दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५
ओ३म्
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

वेद भक्तों की सेवा में

परमात्मा की अमरवाणी वेदभाष्य के प्रकाशन का कार्य संस्थान ने बिना धन के आरम्भ किया था।

आज तक १५,५०० परिवारों में प्रभु की अमरवाणी पहुंचाने का कार्य पूर्ण हो चुका है। इस कार्य में लगभग [illegible]५ लाख रु० व्यय हो चुका है। जिसकी घाटा पूर्ति उदार प्रभु भक्त दानी महानुभावों द्वारा ही पूर्ण हुयी है।

लक्ष्य अभी दूर है। संसार के प्रत्येक परिवार में वेद प्रतिष्ठित करने का हमारा संकल्प आप सभी का सहयोग चाहता है।

कार्य आपके समक्ष है। आप को प्रभु ने सब कुछ दिया है। आप भी प्रभु की वाणी को घर घर पहुंचाने के लिये अपना पवित्र दान भेजें। ५०१) देने वालों का नाम, १००१) देने वालों का छोटा और ५००१) देने वालों का बड़ा चित्र वेदभाष्य में प्रकाशित किया जायगा। कम भेजने वालों का नाम जन ज्ञान साप्ताहिक में छपेगा।

प्रभु आपका सब भांति कल्याण करे —

आशीर्वाद [illegible]—

भारतेन्द्रनाथ

अध्यक्ष

ड्राफ्ट, आदि 'दयानन्द-संस्थान' नई दिल्ली-५ के नाम

प्रकाशक:-

दयानन्द-संस्थान
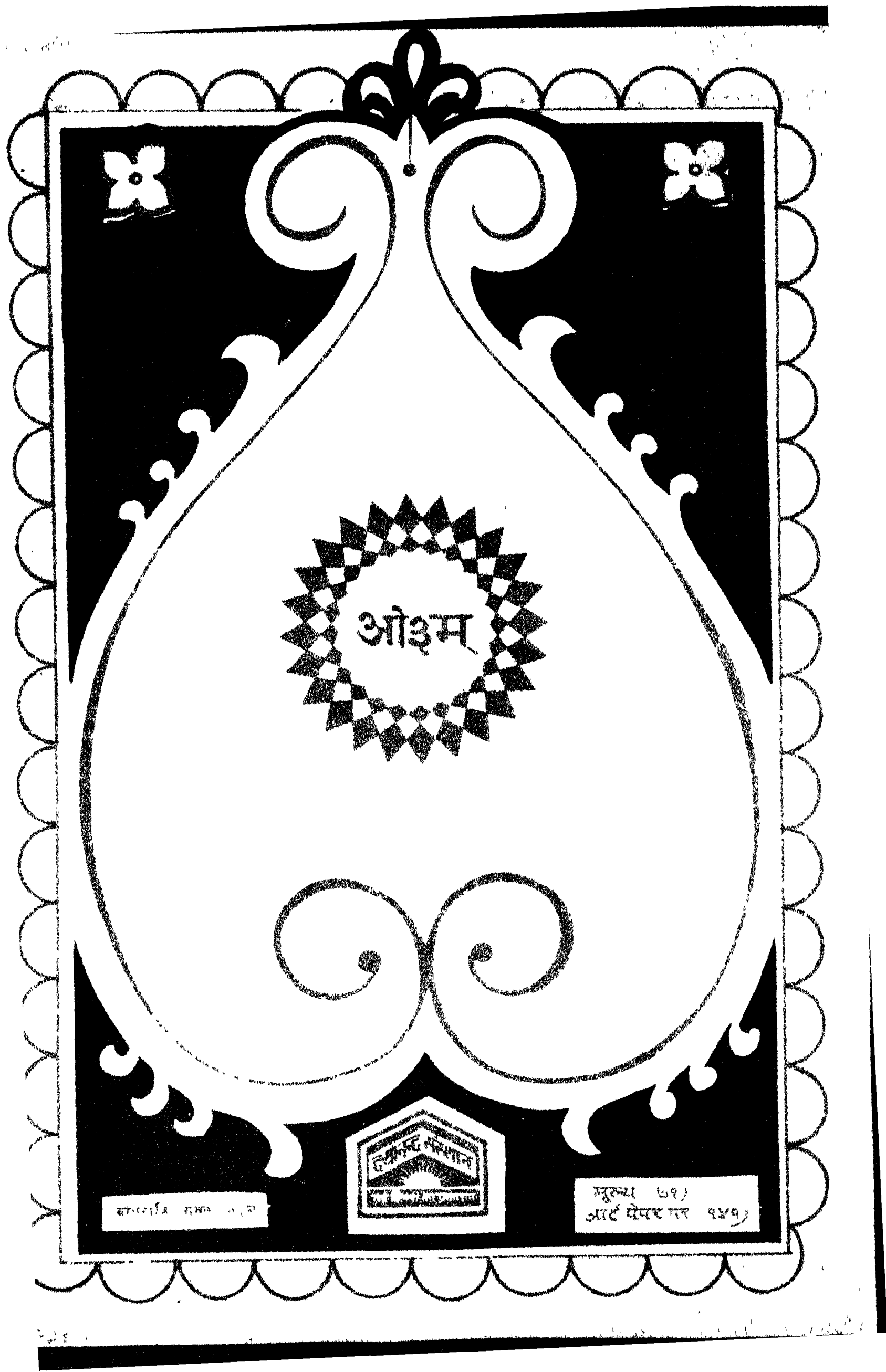
नई दिल्ली-५

ऋग्वेद
भाषा भाष्य
द्वितीय-भाग

अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, अंगिरस, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम की ऋषि परम्परा के ज्योतिर्मय प्रतीक
कणाद, कपिल, जैमिनी की आर्ष प्रतिभा के पुञ्ज--

वेदोद्धारक, धर्म रक्षक, मानवमात्र के मार्ग-दर्शक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जन्म फाल्गुन वदि दशमी
संवत् १८८१ विक्रमी

मृत्यु--दीपमाला, मंगलवार
संवत् १९४० विक्रमी

अपनी ओर से :

[illegible]

जिस यज्ञ का आरम्भ दीपमाला १६७२ में हमने प्रारम्भ किया था, परमात्मा की असीम अनुकंपा से शिवरात्रि (संवत् २०३२) १६७६ ई० में वह महायज्ञ पूर्ण हुआ।

संसार के ज्ञात इतिहास में प्रथम बार १५५०० की सख्या में वेद भाष्य छापने का सौभाग्य 'दयानन्द सस्थान' को प्राप्त हुआ। इतिहास के इस स्वर्णिम अध्याय को लिखने का श्रेय उन सभी सहयोगी भाई बहनो को है जिन्होने अमर वेदवाणी की गौरव गरिमा को समझ मन वचन-कर्म से लक्ष्य को अपना सहयोग प्रदान किया।

किन्तु कार्य की पूर्ति को हम लक्ष्य पूर्ति नही समझ रहे। यह तो आरम्भ है। मजिल बहुत दूर है। हमारी भावना है कि ससार के प्रत्येक परिवार में यह प्रभु का प्रसाद पहुँचे। इसका सभी प्रमुख भाषाओ मे अनुवाद हो, और आकर्षक—सस्ते रूप मे लाखो करोडो की संख्या मे प्रति वर्ष यह छपे।

विश्व के सभी विद्वान ससार के इतिहास मे सब से प्राचीन ग्रथ के रूप में वेद की महत्ता स्वीकार करते हैं। प्रभु की अमर वाणी के रूप मे हम इसे ईश्वरीय ज्ञान मान इसे सब सत्य विद्याओ का ग्रथ मानते हैं।

श्रद्धा से, आदर से, पवित्र भावना भरे मन से 'वेद' की ऋचाओं का सगीत भूमडल पर गुंजाने की उद्दाम कामना लेकर हम अपना जीवन अर्पित कर चुके हैं। हमें विश्वास है कि वह दिन शीघ्र आएगा जब ससार के ३०० करोड व्यक्ति 'वेद' को अपने धर्म ग्रथ—मार्ग दर्शक के रूप मे स्वीकार करेगे।

इस खड मे मडल ७ सूक्त ६१, मत्र ३ तक का भाष्य महर्षि दयानन्द का है। ७वें मडल का शेष व ८वाँ ६वाँ मडल प० आर्यमुनि जी व प० शिवशकर विद्वानो का है। दशम् मडल का भाष्य प० बिहारी लाल जी शास्त्री काव्य व्याकरण तीर्थ ने किया है। हमारा प्रयत्न रहा है कि इसे शुद्ध आकर्षक रूप मे प्रकाशित किया जाय। फिर भी अनेक कारणो से कुछ त्रुटियाँ रहनी सभव हैं, आशा है कि पाठक क्षमा करते हुए हमारा मार्ग दर्शन करेंगे।

प्यार, एकता और ससार को एक परिवार समझने की उदात्त भावना से ज्योतिर्मय हो, हम आप सब धरती को स्वर्ग बनाने मे समर्थ हो। वेद वाणी सर्वत्र गूंजे और सभी इस के दिखाए मार्ग पर चलकर कष्ट-क्लेश को दूर भगाने मे समर्थ हो, इसी भावना से वेद भाष्य का यह द्वितीय खड वेद भक्तो को अर्पित है।

शक्ति दो भगवन्! हम आपके गीत गाते रहे, सुनाते रहें।

अध्यक्ष

दयानन्द संस्थान [illegible] १०००५

आशीर्वाद के साथ

भारतेन्द्र नाथ

शिवरात्रि [illegible]

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम्

अथ सप्तमं मण्डलम् ॥

— ०—०—०—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आ सुव

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य प्रथमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । १—१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । १९—२५ त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ।

अब सातवें मण्डल के प्रथम सूक्त का प्रारम्भ है, इसके पहले मन्त्र मे मनुष्यों को विद्युत् अग्नि कैसे उत्पन्न करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**नर**) विद्वान् मनुष्यो ! जैसे आप (**दीधितिभि**) उत्तेजक क्रियाओ से (**हस्तच्युती**) हाथो से प्रकट होने वाली धमानारूप क्रिया मे (**अरण्यो**) अरणी नामक ऊपर नीचे के दो काष्ठो मे (**दूरेदृशम्**) दूर मे देखने योग्य (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्त**) प्रकट करें वैसे (**अथर्युम्**) अहिंसाधर्म को चाहते हुए (**गृहपतिम्**) घर के स्वामी को (**प्रशस्तम्**) प्रशंसायुक्त करो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! जैसे घिसी हुई अरणियो से अग्नि उत्पन्न होता है वैसे सब पार्थिव द्रव्य वा वायुसम्बन्धी द्रव्यो के घिसने से जो सर्वत्र व्याप्त हुई विद्युत् उत्पन्न होती है वह दूर देशो मे समाचारादि पहुँचान कर व्यवहारो को सिद्ध कर सकती है । इस विद्युत् विद्या से गृहस्थो का बड़ा उपकार होता है ॥१॥

फिर इस बिजुली को कैसे प्रकट करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (**यः**) जो (**दक्षाय्य**) चतुर विद्वान् के तुल्य (**दमे**) घर वा इन्द्रियादि के दमन मे (**नित्य.**) सनातन उपयोगी (**आस**) है जिस (**सुप्रतिचक्षम्**) मनुष्य जिसके द्वारा अनेक विद्याओ को अच्छे प्रकार देखता है (**कुतश्चित्**) किसी के (**अवसे**) रक्षा वा अधिक अन्न के लिए (**वसव**) प्रथम कक्षा के विद्वान (**नि, ऋण्वन्**) निरन्तर प्रसिद्ध करें (**तम्**) उस (**अग्निम्**) विद्युत् को (**अस्ते**) घर मे वा फेंकने मे आप लोग उत्पन्न करो ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो यह नित्यस्वरूप विद्युत् अग्नि स्थूल द्रव्यो को घर बना के नित्य स्वरूप से स्थित है उस अग्नि की विद्या और क्रियाओ से प्रकट कर तथा कलायन्त्रो मे संयुक्त कर के बहुत अन्न धन और रक्षा को प्राप्त होओ ॥२॥

फिर उसको कैसे प्रकट करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) अत्यन्त जवान (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य प्रकाशित बुद्धि-वाले विद्वन् ! जो (**प्रेद्ध·**) अच्छे प्रकार जलता हुआ अग्नि (**अजस्रया**) निरन्तर प्रवृत्त क्रिया [से] (**सूर्म्या**) अच्छे छिद्र रहित शरीरादि मूर्ति वा कला से (**नः**) हम को और (**त्वाम्**) तुम को प्राप्त है जिसको (**शश्वन्त**) प्रवाह से नित्य अनादि पृथिव्यादि (**वाजा**) प्राप्त होने योग्य पदार्थ (**उप, यन्ति**) समीप प्राप्त होते हैं उसको (**पुर**) पहिले वा सामने विद्या और क्रिया से (**दीदिहि**) प्रदीप्त कर ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो अग्नि अनादिस्वरूप प्रकृति के अवयवो मे विद्युत् रूप से व्याप्त है, जिसकी विद्या से बहुत से व्यवहार सिद्ध होते हैं उसको निरन्तर प्रकाशित कर धनधान्यादि ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥३॥

फिर अग्नि किससे प्रकट करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४॥

पदार्थ—जो (**सुवीरास**) सुन्दर वीर (**नर**) पुरुषार्थ से प्राप्तव्य को प्राप्त कराने हारे विद्वान् हैं (**ते**) वे (**यत्र**) जिस व्यवहार मे (**अग्निभ्य**) अग्नि के परमाणुओ से (**सुजाता**) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (**द्युमन्त.**) बहुत दीप्ति वाले (**अग्नय**) विद्युत् आदि अग्नि उत्पन्न होते हैं उसमे (**नि , शोशुचन्त**) निरन्तर शुद्धि करते और उनमे (**वरम**) उत्तम व्यवहार को (**प्र, समासते**) सम्यक् प्राप्त होते हैं वैसे इनको प्रकट करके तुम लोग भी उत्तम सुख को प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थ जो मनुष्य अग्नि से अग्नि को उत्पन्न कर सिद्ध कामना वाले होके सर्वोत्तम सुख पाते हैं वे जगत मे अच्छे प्रसिद्ध होते हैं ॥४॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५॥

पदार्थ—हे (**सहस्य**) बल मे श्रेष्ठ (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् (**धिया**) बुद्धि वा कर्म से जैसे अग्नि क्रिया मे (**सुवीरम**) सुन्दर वीर जन (**स्वपत्यम्**) सुन्दर सन्तान जिसमे हो उस (**प्रशस्तम**) उत्तम (**रयिम**) धन को (**न**) हमारे लिए देता है (**यम**) जिसको (**यातुमावान्**) मेरे तुल्य चलता हुआ (**यावा**) गमनशील (**न**) नहीं (**तरति**) उल्लङ्घन करता उस प्रकार की विद्या हमारे लिये बुद्धि से आप (**दा**) दीजिये ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे विद्वानो ! जिस अग्नि-विद्या से सुन्दर सन्तान, उत्तम शूरवीर जन श्रेष्ठ धन और गानो का बड़ा वेग उत्पन्न हो उस विद्या को उत्तम विचार और अनेक प्रकार की क्रियाओ से प्रकट करो ॥५॥

फिर अग्नि-विद्या किसके तुल्य क्या उत्पन्न करती है
इस विषय को को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषावस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (**युवति.**) युवावस्था को प्राप्त कन्या (**दोषा,** **वस्तो**) रात्रि दिन (**सुदक्षम**) अच्छे बलयुक्त (**यम्**) जिस पति को (**उप, एति**) समीप से प्राप्त होती है जैसे (**हविष्मती**) ग्रहण करने योग्य बहुत वस्तुओ वाली (**घृताची**) रात्रि चन्द्रमा को (**उप**) प्राप्त होती है तथा जैसे (**अरमति**) जिसके गृहस्थ के तुल्य रमणक्रिया नहीं वह (**वसूयु**) द्रव्यो की कामना करने वाली (**स्वा**) अपनी स्त्री (**एनम्**) इस विवाहित प्रिय पति को प्राप्त होके सुख पाती है वैसे अग्निविद्या को प्राप्त होके तुम लोग निरन्तर आनन्दित होओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०- जो दिन रात उद्यम और विद्या के द्वारा अग्निविद्या को प्रकट करते हैं वे परस्पर प्रीति रखने वाले स्त्री पुरुषो के तुल्य बड़े आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! (**येभि**) जिन (**तपोभि.**) हाथो को तपाने वाले अग्नि के गुणो से अग्नि (**जरूथम्**) जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुए पुराने काष्ठ को (**अदह**) जलाता है उन गुणो से (**विश्वा**) सब

(**अराती**) शत्रुओं की सेनाओं को (**अप, दह**) जलाइये तथा (**अमीवाम्**) रोग को (**नि स्वरम्**) निर्मूल जैसे हो वैसे (**प्र, चातयस्व**) नष्ट कीजिये ॥७॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो आप अग्नि के प्रभाव को जान के आग्नेयास्त्र आदिकों को बना के संग्राम में प्रवृत्त होते तो आपके शत्रुओं की सेनाएँ शीघ्र भस्म होवें जैसे उत्तम वैद्य अपने शरीर को रोग रहित करके अन्यों को रोगरहित करता है वैसे ही आप लोग अग्निविद्या के प्रभाव से रोगरूप शत्रुओं का निवारण करो ॥७॥

फिर विद्वानों को किससे सेना तेजस्विनी करनी चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (**वसिष्ठ**) अतिशय कर वसने और (**शुक्र**) शीघ्रता करने वाले पराक्रमी (**दीदिवः**) विजय की कामना करते हुए (**पावक**) पवित्र (**ते**) आपकी (**अनीकम्**) सेना को (**यः**) जो अग्नि (**आ, इधते**) प्रदीप्त प्रकाशित करता है उस अग्नि को (**एभिः**) इन (**स्तवथैः**) स्तुतियों से (**इह**) इस राज्य में (**नः**) हमारे रक्षक (**स्याः**) हूजिये (**उतो**) और भी हम लोग उस अग्नि के बल से ही आपके रक्षक होवें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजपुरुष अग्निविद्या से आग्नेयास्त्रादि को बना के अपनी सेना को अच्छे प्रकार प्रकाशित करके न्याय से प्रजा के पालक हों, वे दीर्घ समय तक राज्य को पाके महान् ऐश्वर्य्य वाले होते हैं ॥८॥

फिर कैसे भृत्यों के साथ राजा प्रजा का पालन करे
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्युत् के तुल्य प्रकाशमान ! (**ये**) जो विद्वान् (**पित्र्यासः**) पितरों के लिये हितकारी (**मर्त्ताः**) मनुष्य (**नरः**) नायक हैं (**ते**) वे (**पुरुत्रा**) बहुत राजाओं में (**अनीकम्**) सेना का (**वि भेजिरे**) सेवन करते हैं (**उतो**) और (**एभिः**) इन प्रत्यक्ष विद्वानों के साथ आप (**इह**) इस राज्य में (**नः**) हम पर (**सुमनाः**) शुद्ध चित्त वाले प्रसन्न (**स्याः**) हूजिये ॥९॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो अग्निविद्या में कुशल, आपकी सेना के प्रकाशक, वीर पुरुष, धार्मिक, विद्वान् अधिकारी हों उनके साथ आप न्याय से हमारे पालक हूजिये ॥९॥

राजा को कैसे मन्त्री करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**ये**) जो (**इमे**) वर्त्तमान (**शूराः**) शूरवीर (**नरः**) न्याययुक्त पुरुष (**वृत्रहत्येषु**) संग्रामों में (**विश्वाः**) समस्त (**अदेवीः**) अशुद्ध (**मायाः**) कपट छलयुक्त बुद्धियों का निवृत्त करके (**मे**) मेरी (**प्रशस्ताम्**) प्रशंसित (**धियम्**) उत्तम बुद्धि का (**अभि, पनयन्त**) सन्मुख स्तुति वा व्यवहार करते हैं वे आपके कार्य्य करने वाले (**सन्तु**) हों ॥१०॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो शत्रुओं के छलों से ठगे हुए न हों, संग्रामों में उत्साह को प्राप्त, शूरतायुक्त युद्ध करें, सब ओर से गुणों का ग्रहण कर दोषों का त्यागें वे ही आपके मन्त्री हों ॥१०॥

फिर वे राजादि क्या न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जो (**अवीरता**) वीरों का अभाव है उसमें (**नृणाम्**) नायकों में (**मा, निषदाम**) निरन्तर स्थित न हों । (**शूने**) शीघ्रकारिणी सेना में (**अशेषसः**) सम्पूर्ण हम (**त्वा**) तेरे (**मा**) न (**परि**) सब ओर से निरन्तर स्थित हों । हे (**दुर्य्य**) घरों में वर्त्तमान जिस कारण (**प्रजावतीषु**) प्रशस्त सन्तानों से युक्त (**दुर्य्यासु**) घरों में हुई रीतियों में सुखपूर्वक निरन्तर स्थित हों वैसा कीजिये ॥११॥

भावार्थ—हे क्षत्रिय-कुल में हुए राजपुरुषो ! तुम कातर मत होओ । विरोध से परस्पर युद्ध करके निःशेष मत होओ । सनातन राजनीति से प्रजाओं का पालन कर कीर्ति वाले होओ ॥११॥

फिर वह अग्नि क्या सिद्ध करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**अश्वी**) बहुत वेगादि गुणों वाला अग्नि (**नः**) हमारे (**यम्**) जिस (**प्रजावन्तम्**) बहुत प्रजावाले (**स्वपत्यम्**) सुन्दर बालकों से युक्त (**यज्ञम्**) संग करने ठहरने योग्य (**क्षयम्**) घर को वा (**स्वजन्मना**) अपने जन्म के (**शेषसा**) शेष रहे भाग से (**वावृधानम्**) बढ़ने वा बढ़ाते हुए के (**नित्यम्**) नित्य (**उपयाति**) निकट प्राप्त होता है उसको तुम लोग जानो ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि प्रकट हुए द्वितीय जन्म से प्रजा, सुन्दर सन्तानों और घर को प्राप्त कराता है उसको प्रसिद्ध करो ॥१२॥

किस करके किससे किसकी रक्षा करनी चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्युत् अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन् वा उपदेशक आप (**नः**) हमको (**रक्षसः**) दुष्टाचारी मनुष्यों से (**पाहि**) बचाइये । हमारी (**अजुष्टात्**) धर्म का सेवन न करते हुए अधर्मी (**धूर्तेः**) धूर्त (**अररुषः**) शीघ्र मारने वाले (**अघायोः**) आत्मा को पाप की इच्छा करते हुए से (**पाहि**) रक्षा कीजिये (**त्वा, युजा**) युक्त हुए तुम्हारे साथ वर्त्तमान मैं (**पृतनायून्**) सेनाओं को चाहते हुओं के (**अभि, ष्याम्**) सन्मुख होऊं ॥१३॥

भावार्थ—वही राजा अध्यापक उपदेशक वा कर्म करनेहारा श्रेष्ठ होता है जो आप धर्मात्मा होकर अन्य को भी धार्मिक करे ॥१३॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**वाजी**) वेगबलादियुक्त (**वीळुपाणिः**) बलरूप जिसके हाथ हैं (**तनयः**) पुत्र के तुल्य (**अग्निः**) (**यत्र**) जहां (**अन्यान्**) अन्य (**अग्नीन्**) अग्नियों को प्राप्त (**अत्यस्तु**) अत्यन्त हो (**स, इत्**) वही (**सहस्रपाथा**) असंख्य अन्नादि पदार्थों वाला (**अक्षरा**) जलों को (**समेति**) सम्यक् प्राप्त होता है वहां उसको तुम लोग सिद्ध करो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सुपुत्र पितरों को प्राप्त होता है वैसे अग्नि अग्नियों को प्राप्त होता है तथा प्रसिद्ध होकर अपने स्वरूप कारण को प्राप्त होकर स्थित होता है, जो लोग अभिव्याप्त बिजुली के प्रकट करने को जानते हैं वे असंख्य ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥१५॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (**यः**) जो (**अग्निः**) अग्नि (**वनुष्यतः**) याचना करते हुओं की (**निपाति**) निरन्तर रक्षा करता है तथा (**समेद्धारम्**) सम्यक् प्रकाशित कराने वाले का (**अंहसः**) दुःख वा दरिद्रता से (**उरुष्यात्**) रक्षा करे जिसको (**सुजातासः**) विद्याओं में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध और (**वीराः**) विज्ञान को प्राप्त हुए वीर पुरुष (**परि, चरन्ति**) सब ओर से जानते वा प्राप्त होते हैं (**स, इत्**) वही अग्नि तुम लोगों को अच्छे प्रकार उपयोग में लाना चाहिये ॥१५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छी विद्या से अग्नि का सेवन कर कार्यसिद्धि के लिये सुप्रयुक्त करते हैं वे दुःख और दरिद्रता से रहित, कीर्ति वाले हुए विजय के सुख को निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥१५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यम्**) जिसको (**ईशानः**) जगदीश्वर (**सम्, इन्धे**) सम्यक् प्रकाशित करता है और (**यम्**) जिसको (**हविष्मान्**) देने योग्य बहुत वस्तुओं सहित (**होता**) होम करने वाला (**अध्वरेषु**) हिंसारहित संग्रामादि व्यवहारों में (**परि एति**) सब ओर से प्राप्त होता है (**सः अयम् इत्**) सो वही (**अग्निः**) विद्युत् अग्नि (**आहुतः**) सम्यक् स्वीकार किया हुआ (**पुरुत्रा**) बहुत कार्य्यों को सिद्ध करता है ॥१६॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! ईश्वर ने जिसलिये बनाया है जिस लिये ऋत्विज् और यजमान सेवन करते हैं तदर्थ वह अग्नि तुम लोगों से बहुत व्यवहारों में प्रयुक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥१६॥

फिर मनुष्य लोग किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सत्यवादी आप्त विद्वन् ! जैसे (**उभा**) दोनों (**वहतू**) प्राप्ति कराने वाले यजमान और पुरोहित (**मियेधे**) परिमाणयुक्त यज्ञ में (**नित्या**)

नित्य (भूरि) बहुत (आहवमानि) अच्छे दानों को देते हैं वैसे (ईशानास.) समर्थ हम लोग उन दोनों यजमान पुरोहितों को समर्थ (कृण्वन्त) करते हुए (त्वे) अग्नि के तुल्य तेजस्वी आप स्वामी के होते हुए उन दोनों को (आ, जुहुयाम) अच्छे प्रकार देवें ।।१७।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो यजमान और ऋत्विजों के तुल्य सब मनुष्यों का अच्छी शिक्षा से उपकार करते हैं उनकी शिक्षा का सब लोग अनुष्ठान करें ।।१७।।

फिर मनुष्य किससे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।

प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ।।१८।।

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! जिससे (अजस्र.) निरन्तर (देवतातिम्) उत्तम सुख देने वाले यज्ञ को (अच्छ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं इससे (इमो) इन (सुरभीणि) सुगन्धि आदि गुणों के सहित (वीततमानि) अतिशयकर व्याप्त होने को समर्थ (हव्या) देने योग्य वस्तुओं को (न) हमारे (प्रति) प्रति (ईम्, व्यन्तु) सब ओर से प्राप्त करें ।।१८।।

भावार्थ—मनुष्य जैसे अग्नि में उत्तम हवियों का होम कर जल आदि को शुद्ध करके सब के उपकार को सिद्ध करते हैं वैसे वर्त्ताव करना चाहिए ।।१८।।

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।

मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ।।१९।।

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! आप (अवीरते) वीरता-रहित सेना में (न) हमको (मा, परा, दा) पराङ्मुख मत कीजिये (दुर्वाससे) बुरे वस्त्र धारण के लिए तथा (अमतये) मूर्खपन के लिए (न) हमको (मा) मत नियुक्त कीजिये । (नः) हमको (अस्यै) इस प्यास के लिये (मा) मत वा (क्षुधे) भूख के लिये (मा) मत नियुक्त कीजिये । हे (ऋताव) सत्य के प्रकाशक ! (रक्षसे) दुष्ट जनके लिये (दमे) घर में (न) हमको (मा) मत पीड़ा दीजिये (वने) वन में हम को (मा) मत (आ जुहूर्था) पीड़ा दीजिये ।।१९।।

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग हमारी कातरता, दरिद्रता, मूढता, क्षुधा, तृषा, दुष्टों के सङ्ग घर वा जङ्गल में पीड़ा का निवारण कर सुखी करो ।।१९।।

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।

रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।२०।।

पदार्थ—हे (देव) विद्वन् (अग्ने) दाताजन ! (त्वम्) आप (मे) मेरे (मघवद्भ्य) बहुत धनयुक्त धनाढ्यों से (ब्रह्माणि) बड़े बड़े धनों की (उत्, शशाधि) शिक्षा कीजिये तथा दुःखों को (सुषूद) नष्ट कीजिये जिससे (उभयासः) दोनों विद्वान् अविद्वान् हम लोग (रातौ) दान देने में प्रकट (स्याम) हों जैसे (ते) आप की रक्षा हम करें वैसे (यूयम्) तुम लोग (न.) हमारी (स्वस्तिभि) सुखों से (सदा) सब काल में (नु) शीघ्र (आ, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ।।२०।।

भावार्थ—राजादि पुरुषों को चाहिये कि धनाढ्यों से दरिद्रों को भी अच्छी शिक्षा देके धनाढ्य करें तथा विद्वान् और अविद्वानों का मेल कराके परस्पर उन्नति करावें और परस्पर दुःख का निवारण कर सुखों से संयुक्त करें ।।२०।।

फिर विद्वान् इस जगत् में कैसे वर्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।

मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ।।२१।।

पदार्थ—हे (सहस·) बलवान् के (सूनो) पुत्र (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वन् ! (सुहव) सुन्दर स्तुति युक्त (रण्वसन्दृक्) रमणीय सम्यक् देखने वाला जैसे (नर्य) मनुष्यों में उत्तम (वीर) वीर (अस्मत्) हमसे (मा) मत (वि, दासीत्) दान से रहित हो वा (नित्ये) सब काल में करने योग्य कर्म में (त्वे) आप (तनये) सन्तान में (सचा) सम्बन्ध से (मा, आ, धक्) अच्छे प्रकार मत जलाइये वैसे (त्वम्) आप (सुदीती) उत्तम दीप्ति से हमको (दिदीहि) प्रकाशित कीजिये ।।२१।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे हमारे बन्धु लोग हमारे विरोधी नहीं होते हैं, जैसे माता में पुत्र, पुत्र के विषय में माता, प्रेम के साथ वर्त्तती है वैसे ही आप भी हमारे साथ वर्तिये ।।२१।।

फिर मनुष्य सब से किसको ग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।

मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ।।२२।।

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (सचा) सम्बन्ध से (एषु) इन (देवेद्धेषु) वायु आदि में प्रज्वलित किये हुए (अग्निषु) अग्नियों में (दुर्भृतये) दुष्ट दुःखयुक्त कठिन धारण वा पोषण जिसका उसके लिए (न) हमको (मा, प्र, वोच) मत कठोर कहो । हे (सहस) बलवान् (देवस्य) विद्वान् के (सूनो) पुत्र ! (भृमात्) भ्रान्ति से (चित्) भी (ते) आपके (दुर्मतय) दुष्टबुद्धि लोग (अस्मान्) हमको (मा) मत (नशन्त) प्राप्त होवें ।।२२।।

भावार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब के शुभ गुण सुन्दर बुद्धि और उत्तम विद्या का ग्रहण करें । दोषों का कदापि ग्रहण न करें ।।२२।।

फिर मनुष्य को किसका सेवन करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।

स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ।।२३।।

पदार्थ—हे (स्वनीक) सुन्दर सेना वाले (अग्ने) विद्या और विनयादि से प्रकाशमान जन ! (य) जो (रेवान) बहुत धनवाला होता हुआ (अमर्त्ये) मरण-धर्मरहित अग्नि वा परमात्मा में (हव्यम्) देने योग्य घृतादि द्रव्य वा चित्त को (आजुहोति) अच्छे प्रकार छोड़ता वा स्थिर करता है (स, देवता) दिव्य गुणयुक्त वह (वसुवनिम्) धनों के सेवन को (दधाति) धारण करता है (यम्) जिसको (अर्थी) प्रशस्त प्रयोजन वाला (पृच्छमान) पूछता हुआ (सूरि·) विद्वान् (एति) प्राप्त होता है (स) वह (मर्त) मनुष्य सुखी करता है ।।२३।।

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निविद्या को जान के इस अग्नि में सुगन्ध्यादि को होम करते और इससे कार्यों को सिद्ध करते हैं और जो पूछ अच्छे प्रकार विचार और ध्यान कर के परमात्मा को जानते हैं उनको अग्नि, धनाढ्य और परमात्मा विज्ञानवान् करता है ।।२३।।

फिर मनुष्य विद्वानों से क्या ग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।

येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ।।२४।।

पदार्थ—हे (सहसावन्) बल से युक्त (अग्ने) दानशील पुरुष (विद्वान्) विद्वान् ! आप (मह) महान् (सुवितस्य) प्रेरणा किये कर्म के कर्त्ता होते हुए (सूरिभ्य) विद्वानों से (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (न·) हमारे लिये (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये (येन) जिस से (अविक्षितासः) क्षीणता रहित (सुवीरा) सुन्दर वीरों से युक्त हुए (वयम्) हम लोग (आयुषा) जीवन के साथ (मदेम) आनन्दित रहें ।।२४।।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों से बड़ी विद्या को ग्रहण करते हैं वे सब काल में वृद्धि को प्राप्त होते हुए पूर्ण लक्ष्मी और दीर्घ अवस्था को पाते हैं ।।२४।।

फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।

रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।२५।।

पदार्थ—हे (देव) धन की कामना करने वाले (अग्ने) विद्वन् ! (त्वम्) आप (मघवद्भ्य) बहुत धन युक्त पुरुषों से (ब्रह्माणि) अन्नों को (मे) मेरे लिये (उत्, शशाधि) उत्कृष्टतापूर्वक शिक्षा कीजिये और (सुषूदः) दीजिये । हम लोग (ते) तुम्हारे लिए ही देवें जिससे (उभयास) देने लेने वाले दोनों हम लोग (रातौ) सुपात्रों को दान देने के लिये प्रवृत्त (स्याम) हों (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभि) सुखों से (न) हमारी (नु) शीघ्र (सदा) सब काल में, (आ, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ।।२५।।

भावार्थ—हे राजपुरुष ! आप न्यायपूर्वक हम सब लोगों को शिक्षा कीजिये, हम से यथायोग्य कर लीजिये, पक्षपात छोड़ के सब के साथ वर्तिये, जिससे राजपुरुष और हम प्रजाजन सदा सुखी हों ।।२५।।

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, श्रोता, उपदेशक, ईश्वर और राजप्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ।।

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

——०✿०——

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथैकादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । आप्रम् **देवता । १—६ विराट्त्रिष्टुप् २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ । ६—८ । १० । ११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर ॥**

अब पञ्चमाष्टक के द्वितीयाऽध्याय का और सातवें मण्डल के द्वितीय सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग किसके तुल्य वर्त्तें इस विषय का उपदेश करते हैं ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे अग्नि (**समिधम्**) समिधा को वैसे (**नः**) हमारी प्रजा का (**जुषस्व**) सेवन कीजिये तथा अग्नि के तुल्य (**अद्य**) आज (**बृहत्**) बड़े (**यजतम्**) सङ्ग करने योग्य व्यवहार को (**शोचा**) पवित्र कीजिये और (**धूमम्**) धूम को (**ऋण्वन्**) प्रसिद्ध करते हुए अग्नि के तुल्य सत्य कामों का (**उप, स्पृश**) समीप में स्पर्श कीजिये तथा (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**स्तूपैः**) सम्यक् तपे हुए (**रश्मिभिः**) किरणों से वायु के तुल्य (**दिव्यम्**) कामना के योग्य वा शुद्ध (**सानु**) सेवनयोग्य धन को (**सम्, ततनः**) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे अग्नि समिधाओं से प्रदीप्त होता वैसे हमको विद्या से प्रदीप्त कीजिये । जैसे सूर्य किरणें सब का स्पर्श करती हैं वैसे आप लोगों के उपदेश हम को प्राप्त होवें ॥१॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**ये**) जो (**सुक्रतवः**) उत्तम प्रज्ञा वाले (**शुचयः**) पवित्र (**धियंधाः**) उत्तम कर्मों के धारण करने वाले (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उभयानि**) शरीर और आत्मा के पुष्टिकारक (**हव्या**) भोजन के योग्य पदार्थों का (**स्वदन्ति**) अच्छे स्वादपूर्वक खाते और (**यज्ञैः**) सङ्गति के योग्य साधनों से (**यजतस्य**) सङ्ग करने योग्य (**नराशंसस्य**) मनुष्यों से प्रशंसा किये हुए तथा अन्न का भोजन करने वाले के (**एषाम्**) इनकी (**महिमानम्**) महिमा की हम लोग (**उप, स्तोषाम**) समीप प्रशंसा करें ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि सदैव विद्वानों के अनुकरण से शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाले खान-पान का सेवन किया करो जिससे तुम्हारी महिमा बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्य किसका सत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग (**वः**) आपके (**अन्तः**) बीच में (**असुरम्**) मेघ के तुल्य वर्त्तमान (**सुदक्षम्**) सुन्दर बल और चतुराई से युक्त (**रोदसी**) सूर्य भूमि और (**दूतम्**) उपताप देने वाले (**अग्निम्**) कार्य को सिद्ध करने वाले अग्नि का जैसे वैसे (**सत्यवाचम्**) सत्य बोलने वाले (**ईळेन्यम्**) प्रशंसा योग्य (**मनुष्वत्**) मनुष्य के तुल्य (**मनुना**) मननशील विद्वान् के साथ (**अध्वराय**) हिंसारहित व्यवहार के लिए (**समिद्धम्**) प्रदीप्त किये (**सदम्**) जिसके निकट बैठें उस अग्नि के तुल्य विद्वान् का (**सम्, इत्, महेम**) सम्यक् ही सत्कार करें वैसे तुम लोग भी हम का सत्कार करो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मेघ के तुल्य प्रकाशित विद्यावाले, धर्मात्मा, विद्वानों का सत्कार करते हैं वे सर्वत्र सत्कार पाते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**अभिज्ञु**) विद्वानों के समीप पग पीछे करके सन्मुख घोंटू जिनके हों वे विद्यार्थी विद्वान् होकर (**सपर्यवः**) सत्य का सेवन करने और (**भरमाणाः**) विद्या को धारण करते हुए (**नमसा**) अन्न के साथ (**बर्हिः**) घृत आदि को (**अग्नौ**) अग्नि में (**प्र, वृञ्जते**) छोड़ते हैं वैसे (**घृतपृष्ठम्**) घृत जिसके पीठ के तुल्य है उस अग्नि को (**आजुह्वानाः**) अच्छे प्रकार होमयुक्त करते हुए (**पृषद्वत्**) सेवनकर्त्ता के तुल्य (**अध्वर्यवः**) अहिंसाधर्म चाहते हुए (**हविषा**) होम सामग्री से मनुष्यों के अन्तःकरणों को तुम लोग (**मर्जयध्वम्**) शुद्ध करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में [उपमा] वाचकलु०—जो विद्वान् लोग यजमानों के तुल्य मनुष्यों के अन्तःकरण और आत्माओं को अध्यापन और उपदेश से शुद्ध करते हैं वे आप शुद्ध होकर सब के उपकारक होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५॥

पदार्थ—जो (**स्वाध्यः**) सुन्दर विचार करते (**देवयन्तः**) विद्वानों को चाहते हुए जन (**देवताता**) विद्वानों के अनुष्ठान या सङ्ग करने योग्य व्यवहार में (**रथयुः**) रथ को चलाने वाले के तुल्य (**रिहाणे**) स्वाद लेते हुए (**पूर्वी**) अपने से पूर्व हुए (**मातरा**) माता पिता (**शिशुम्, न**) बालक के तुल्य (**समनेषु**) सग्रामों में (**अग्रुवः**) आगे चलती हुई [सेनाएँ] (**न**) जैसे वैसे (**दुरः**) द्वारों का (**वि, अशिश्रयुः**) विशेष आश्रय करते हैं और (**समञ्जन्**) चलते हैं वे सुख करने वाले होवें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (उपमा) वाचकलु०—जो मनुष्य सम्यक् विचार करते हुए, विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने वाले, यज्ञ के तुल्य परोपकारी, माता पिता के तुल्य सबकी उन्नति करने और सग्रामों को जीतते हुए, न्याय से प्रजाओं का पालन करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥५॥

फिर विदुषी स्त्रियां कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**नः**) हमारे लिए (**यज्ञिये**) यज्ञ सम्बन्धी कर्म में (**मघोनी**) बहुत धन मिलने के निमित्त (**योषणे**) उत्तम स्त्रियों के तुल्य (**दिव्ये**) शुद्धस्वरूप (**मही**) बड़ी (**धेनुः**) विद्यायुक्त वाणी वा गौ (**सुदुघेव**) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने वाली के तुल्य (**उत**) और (**बर्हिषदा**) अन्तरिक्ष में रहने वाली (**पुरुहूते**) बहुतों से व्याख्यान की गई (**उषासानक्ता**) दिन रात रूप वेला हम को (**आ, श्रयेताम्**) आश्रय करें वे दिन रात (**सुविताय**) ऐश्वर्य के लिये यथावत् सेवने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो स्त्रियां उत्तम विद्या और गुणों से युक्त, रात्रि दिन के तुल्य सुख देने वाली सत्य वाणी के तुल्य प्रिय बोलने वाली हों उन्हीं का तुम लोग आश्रय करो ॥६॥

फिर वह स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥७॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! जो (**मानुषेषु**) मनुष्यसम्बन्धी (**यज्ञेषु**) सत्कर्मों में (**कारू**) वा शिल्पविद्या में कुशल वा पुरुषार्थी (**जातवेदसा**) विद्या को प्रसिद्ध प्राप्त हुए (**विप्रा**) बुद्धिमान् तुम दोनों (**नः**) हमारे (**हवेषु**) जिन में ग्रहण करते उन घरों में (**अध्वरम्**) रक्षा करने योग्य गृहाश्रमादि के व्यवहार को (**ऊर्ध्वम्**) उन्नत (**कृतम्**) करो (**देवेषु**) दिव्य गुणों वा विद्वानों में (**वार्याणि**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (**वनथः**) सम्यक् सेवन करो (**ता**) वे (**वाम्**) तुम दोनों (**यजध्यै**) सङ्ग करने के अर्थ में (**मन्ये**) मानता वैसे तुम दोनों मुझ को मानो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्यसेवन से विद्या को प्राप्त हुए क्रिया में कुशल विद्वान स्त्रीपुरुष सब घर के कामों को शोभित करने को समर्थ होते हैं और वे सग करने योग्य होते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥७॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (भारतीभिः) अपने तुल्य विदुषी स्त्रियों के साथ (भारती) शीघ्र शास्त्रों को धारण कर, वाणी के तुल्य सब की रक्षक विदुषी (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवने वाली (देवैः) सत्यवादी विद्वानों (मनुष्येभिः) और मिथ्यावादी मनुष्यों से (इळा) स्तुति के योग्य (सारस्वतेभिः) वाणी विद्या में कुशलों से (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (अर्वाक्) पुनः (अग्निः) अग्नि के तुल्य शुद्ध (तिस्रः) तीन प्रकार की (देवीः) उत्तम स्त्रियां (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम घर वा शरीर को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग विद्वानों के साथ (आ) आओ ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग प्रशंसित वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो तो सूर्य के तुल्य प्रकाशित होकर इस जगत् में कल्याण करने वाले होओ ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्नस्तुरीपमधं पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥

पदार्थ—हे (त्वष्टः) विद्या को प्राप्त कराने वाले (देव) विद्वन् ! (वि, रराणः) विद्या देते हुए (नः) हमारे (तत्) पढ़ाने के आसन को (पोषयित्नु) पुष्ट करने वाले (तुरीपम्) शीघ्र (स्यस्व) विद्या का पार कीजिये (अध) अब (यतः) जिससे (कर्मण्यः) कर्मों में कुशल (सुदक्षः) सुन्दर बल से युक्त (युक्तग्रावा) मेघ को युक्त करने और (देवकामः) विद्वानों की कामना करने वाला (वीरः) वीर पुरुष (जायते) प्रकट होता है ॥९॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि सब लाभों से विद्या लाभ को उत्तम मान के उसको प्राप्त हों, सदैव जो विद्वानों का सङ्ग करके सदा कर्मों का अनुष्ठान करने वाला होता है वह श्रेष्ठ आत्मा के बल वाला होता है ॥९॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! (शमिता) शान्तियुक्त आप (अग्निः) अग्नि (हविः) हवन किये द्रव्य को (सूदयाति) भिन्न-भिन्न करे वैसे (देवान्) दिव्यगुणों को (उप, अव, सृज) फैलाइये जैसे (होता) दाता (यजाति) यज्ञ करे वैसे (इत्) ही (उ) तो (सत्यतरः) सत्य से दुःख के पार होने वाले हूजिये । जो (देवानाम्) पृथिव्यादि दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के (जनिमानि) जन्मों को (वेद) जानता है (सः) वह पदार्थविद्या को प्राप्त होने योग्य है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे विद्वानो ! यदि आप लोग, सूर्य जैसे वर्षा को, होता जैसे यज्ञ को, और विद्वान् जैसे विद्या को, वैसे पढ़ाने और उपदेश से सर्वोपकार को सिद्ध करें तो आप के तुल्य कोई लोग नहीं हों यह हम जानते हैं ॥१०॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! जैसे (समिधानः) शुभ गुणों से देदीप्यमान अग्नि अर्थात् सूर्य्य का प्रकाश (इन्द्रेण) बिजुली वा सूर्य्य के साथ (अर्वाङ्) नीचे जाने वाला प्राप्त होता है वैसे होकर आप भी (तुरेभिः) शीघ्र करने वाले (देवैः) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ (नः) हमारे लिये (सरथम्) रथ के साथ वर्त्तमान (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ, याहि) आइये और जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रों से युक्त (अदितिः) माता है वैसे आप भी (आस्ताम्) स्थित होवें और जैसे (अमृताः) मोक्ष को प्राप्त हुए (देवाः) विद्वान् जन सब को आनन्दित करते हैं वैसे आप भी सब को (मादयन्ताम्) आनन्दित कीजिये ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य्य का प्रकाश दिव्य गुणों के साथ नीचे भी स्थित हम सबों को प्राप्त होता है और जैसे सत्य विद्या से युक्त और उत्तम सन्तान वाली माता सुखपूर्वक स्थित होती है वैसे ही विद्वान् हम सबों को आप प्राप्त होकर अच्छी शिक्षा दीजिये तथा सुखी कीजिये ॥११॥

इस सूक्त में [अग्नि], मनुष्य, बिजुली, विद्वान्, अध्यापक, उपदेशक, उत्तम वाणी, पुरुषार्थ, विद्वानों का उपदेश तथा स्त्री आदि के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह सप्तम मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ६ । १० विराट्त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ७ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ७वें मण्डल के तृतीय सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्युत् कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (वः) तुम्हारा (सजोषाः) एक सी प्रीति को सेवन वाला (मर्त्येषु) मरणधर्म सहित मनुष्यादिकों में (निध्रुविः) निरन्तर स्थित (ऋतावा) सत्य वा जल का विभाग करने वाला (तपुर्मूर्धा) शिर के तुल्य उत्कृष्ट वा उत्तम जिसका ताप है (घृतान्नः) अन्न के तुल्य प्रकाशित जिसका घृत है (पावकः) जो पवित्र करने वाला है उस (अध्वरे) सूर्य आदि के साथ (यजिष्ठम्) अत्यन्त सङ्गति करने वाले (दूतम्) दूत के तुल्य तार द्वारा शीघ्र समाचार पहुँचाने वाले (अग्निभिः, देवम्) उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव युक्त अग्नि को तुम लोग (कृणुध्वम्) प्रकट करो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो विद्युत् सर्वत्र स्थित, विभाग करने वाली, प्रकाशित गुणों से युक्त साधनों से प्रकट हुई वर्त्तमान है उसी को तुम लोग दूत के तुल्य बनाकर युद्धादि कार्य्यों को सिद्ध करो ॥१॥

फिर वह विद्युत् कैसी है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (ते) आपका (कृष्णम्) आकर्षण करने योग्य (व्रजनम्) गमन (अस्ति) है उसके सम्बन्ध में (महः) महान् (संवरणात्) सम्यक् स्वीकार से (शोचिः) प्रदीपन (अध स्म) और इसके अनन्तर ही (अस्य) इसके सम्बन्ध में (वातः) वायु (यदा) जब (अनु, वाति) अनुकूल चलता है (आत्) अनन्तर तब (यवसे) भक्षण के अर्थ (अविष्यन्) रक्षा करता है (प्रोथत्) और शब्द करता हुआ (अश्वः न) घोड़े के समान शीघ्र यह अग्निमार्ग को (व्यस्थात्) व्याप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जब मनुष्य लोग अग्नियान से गमन और विद्युत् से समाचारों को ग्रहण करें तब ये शीघ्र कार्य्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् बिजुली से क्या सिद्ध करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्युत् अग्नि के तुल्य गुप्त प्रताप वाले ! (यस्य) जिस (नवजातस्य) नवीन प्रकट हुए (वृष्णः) विद्या से बलवान् (ते) आप विद्वान् के निकटवर्ती जैसे (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि के तुल्य कार्यसाधक (इधानाः) प्रकाशमान जलते हुए (अजराः) खर्चरहित अग्नि (उत्, चरन्ति) ऊपर को उठते व चलते हैं (अरुषः) मर्मस्थ पुरुष (द्याम्) प्रकाश को प्राप्त होकर जिसका (धूमः) धुआं (अच्छा, एति) अच्छा जाता है जो (दूतः) दूत के तुल्य (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होता जब उसको (हि) ही आप (समीयसे) प्राप्त होते हो तब कार्य करने को समर्थ होते हो ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! यदि आप विद्युत् की विद्या को जानें तो आप किस-किस कार्य का सिद्ध न कर सकें ॥३॥

फिर वह विद्युत् कैसी है और कैसे प्रकट करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥४॥

पदार्थ—हे (दस्म) दुःखों के नाश करने हारे विद्वन् ! जिस (जुह्वा) होमसाधन से (यवम्) यवों को (न) जैसे वैसे विद्युद्विद्या को (विवेक्षि) व्याप्त होते हो वह (ते) तुम्हारी (सृष्टा) प्रयुक्त क्रिया (प्रसितिः) प्रबल बन्धन होती हुई (सेनेव) सेना के तुल्य (एति) प्राप्त होती है और (यत्) जो (जम्भैः) गात्रविक्षेपों से (अन्ना) अन्नों को (समवृक्त) अच्छे प्रकार वर्जित करता अर्थात् शरीर से छुड़ाता है (यस्य) जिस (ते) उस विद्युत् के (पाजः) बल को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (तृषु) शीघ्र (व्यश्रेत्) आश्रय करता है उसको तुम जानो ॥४॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग विद्युत्विद्या को जानते हैं वे उत्तम सेना के तुल्य शत्रुओं को शीघ्र जीत सकते हैं, जैसे घी आदि से अग्नि प्रज्वलित होता वैसे घर्षण आदि से विद्युत् अग्नि प्रकट करना चाहिए ॥४॥

फिर वह विद्युत् कैसे उत्पन्न करनी चाहिये और वह क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक मनुष्यो ! जो (निशिशाना) निरन्तर तीक्ष्णता पूर्वक कार्य करते हुए आप (तम्) उस विद्युत् अग्नि को (दोषा) रात्रि में (तम्) उसको (उषसि) दिन में (अत्यम्) घोड़े को (न) जैसे वैसे (यविष्ठम्) अत्यन्त जवान के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को (मर्जयन्त) घर्षण आदि से शुद्ध करो (अस्य) इस (आहुतस्य) अभीष्ट सिद्धि के लिए संग्रह किये (वृष्णः) वर्षा के हेतु अग्नि के (योनौ) कारण में (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य सेवने योग्य (शोचिः) दीप्तियुक्त विद्युत् को (दीदाय) प्रकाशित (इत्) ही कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो तीव्र घर्षणादिकों से दिन रात विद्युत् अग्नि को प्रकट करते हैं वे जैसे घोड़े से, वैसे शीघ्र स्थानान्तर के जाने को समर्थ होते हैं ॥५॥

फिर वह वह विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६॥

पदार्थः—हे (स्वनीक) सुन्दर सेना वाले सेनापते ! जिस (ते) आपका (यत्) जो (प्रतीकम्) विजय का निश्चय कराने वाले (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य्य के (न) तुल्य है जो (उपाके) समीप में (वि, रोचसे) विशेष कर रुचि-कारक होते हो। जिस (ते) तुम्हारा (दिवः, न) सूर्य्य के तुल्य (सुसन्दृक्) अच्छे प्रकार देखने का साधन (तन्यतुः) विद्युत् विजय प्रतीतिकारक नियम को (एति) प्राप्त होता है उसका (शुष्मः) बलयुक्त (चित्रः) आश्चर्यस्वरूप (सूरः) सूर्य (न) जैसे वैसे मैं (भानुम्) प्रकाशयुक्त (प्रति) आपके प्रति (चक्षि) कहूं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् यदि आप विद्युत् को जानें तो सूर्य्य के तुल्य सुन्दर सेनादिकों से प्रकाशित हुए सर्वत्र विजय, कीर्ति और राजाओं में सुशोभित होवें ॥६॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

यथा वः स्वाहाऽग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (यथा) जैसे हम लोग (वः) तुम्हारे अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया से (घृतवद्भिः) घृतादि से युक्त (हव्यैः) होम के योग्य पदार्थों (च) और (इलाभिः) अन्नों के साथ (अग्नये) अग्नि के लिये (शतम्) सैकड़ों प्रकार के हविष्यों को (परि, दाशेम) सब ओर से देवें वैसे (अमितैः) असंख्य (महोभिः) बड़े-बड़े कर्मों वा पुरुषों और (तेभिः) उन (आयसीभिः) लोहे से बनी (पूर्भिः) नगरियों के साथ वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अग्ने) हे अग्नि के तुल्य तेजस्वी प्रकाशमान राजन् (नि, पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विक् और यजमान लोग घृतादि से अग्नि को बढ़ाते हैं वैसे ही राजा प्रजाओं को और प्रजाएँ राजा को न्याय विनयादि से बढ़ा के अपरिमित सुखों को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर किन किन से किनकी रक्षा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र ! (जातवेदः) प्रकट बुद्धिमानों को प्राप्त होते हुए (याः) जो (ते) आपकी (अधृष्टाः) न धमकाने योग्य (गिरः) सुशिक्षित वाणी (सन्ति) हैं (वा) अथवा (दाशुषे) दाता पुरुष के लिये हितकारिणी हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन वाणियों से आप (नृवतीः) उत्तम मनुष्यों वाली प्रजाओं की (उरुष्याः) रक्षा कीजिये (ताभिः) उनसे (नः) हम (जरितॄन्) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने वाले (सूरीन्) विद्वानों की (स्मत्) ही (नि, पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जब तक विद्या, शिक्षा, विनयों को ग्रहण कर अन्यों को नहीं ग्रहण कराते तब तक प्रजाओं का पालन करने को नहीं समर्थ होते हैं, जब तक धर्मात्मा विद्वानों के, राज्य में अधिकार न हो, तब तक यथावत् पालन होना दुर्घट है ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा राजा मानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (पूतेव) पवित्रता के तुल्य (स्वधितिः) वज्र (शुचिः) पवित्र पुरुष (निः, गात्) निरन्तर प्राप्त होता है (यः) जो (स्वया) अपनी (कृपा) कृपा से (तन्वा) शरीर करके (रोचमानः) प्रकाशमान (मात्रोः) जननी और धात्री में (उशेन्यः) कामना के योग्य (पावकः) अग्नि के तुल्य प्राशित यश वाला (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञा वाला (देवयज्याय) बुद्धिमानों के समागम के लिये (आ, जनिष्ट) प्रकट होता है वही इस जगत् में प्रशंसा के योग्य होवे ॥९॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिसको वज्र के समान दृढ़, अग्नि के समान पवित्र, कृपालु, दर्शनीय शरीर, विद्वान्, धर्मात्मा जानो उसी को इनमें राजा मानो ॥

राजा भी कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन् ! आप (नः) हमारे (एता) इन (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्यों के भावों को (दिदीहि) प्रकाशित कीजिये जिससे (अपि) भी हम लोग (सुचेतसम्) प्रबल विद्यायुक्त (क्रतुम्) बुद्धि का (वतेम) सेवन करें (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों और (विश्वा) सब की (गृणते) स्तुति करने वाले के लिए ये (च) भी सब प्राप्त (सन्तु) हों (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता करने वाले सुखों वा कर्मों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सब मनुष्यों के सौभाग्यों को बढ़ा के बुद्धि को प्राप्त करो। हे प्रजा पुरुषो ! आप लोग राजा और राज्य की सर्वदा रक्षा करो ॥१०॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह सप्तम मण्डल में तृतीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ४। ७ भुरिक् पङ्क्तिः। ६ स्वराट् पङ्क्तिः। ८। ९ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। १० विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं।

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (वः) तुम्हारे (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) विद्या प्रकाश के लिए तथा (अग्नये) अग्नि में होम करने के लिए (सुपूतम्) सुन्दर पवित्र (हव्यम्) होमने योग्य पदार्थ के तुल्य (मतिम्) विचारशील बुद्धि को वा (दैव्यानि) विद्वानों के लिये (मानुषा) मनुष्यों से सम्पादित (जनूंषि) जन्मों वा कर्मों को (च) और (विश्वानि) सब (अन्तः) अन्तर्गत (विद्मना) जानने योग्य वस्तुओं को (जिगाति) प्रशंसा करता है उसके लिये तुम लोग उत्तम सुखों का (प्र भरध्वम्) पालन व धारण करो। ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो तुम्हारे लिये उत्तम द्रव्यों तथा सब के हितकारी जन्मों और विज्ञानों का उपदेश करने को प्रवृत्त होता है उसकी तुम लोग निरन्तर रक्षा करो ॥१॥

मनुष्यों को युवावस्था में ही विवाह करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (मातुः) अपनी माता से (अजनिष्ट) उत्पन्न होता (सः) वह (अग्निः) पावक के तुल्य तेज बुद्धि वाला बालक (तरुणः) जवान (चित्) ही (अस्तु) हो (यतः) जिससे वह (गृत्सः) बुद्धिमान् (यविष्ठः) अत्यन्त जवान हो (सद्यश्चित्) शीघ्र ही (अन्ना) अन्नों का (इत्) ही (समत्ति) सम्यक् भोजन करता है (शुचिदन्) पवित्र दाँतों वाला (भूरि) बहुत (वना) जैसे सूर्य किरणों को संयुक्त करता वैसे वनों [=तेजों] को (सम्, युवते) संयुक्त करे ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अपने पुत्र पूर्ण युवावस्था वाले, ब्रह्मचर्य्य में सम्यक् स्थापन कर विद्यायुक्त, अति बलवान्, सुरूपवान् सुख भोगने वाले, धार्मिक, दीर्घ अवस्था वाले, बुद्धिमान् होवें वैसा अनुष्ठान करो ॥२॥

फिर कैसे विद्वान् को सभासद् और अध्यक्ष करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।

नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**पौरुषेयीम्**) पुरुषसम्बन्धी कार्यों की रीति का (**नि गृभम्**) निरन्तर ग्रहण करने को (**उवोच**) कहता है (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**आयवे**) जीवन के लिए (**शुशोच**) शोच करता है (**यम्**) जिस (**श्येतम्**) श्वेत (**दुरोकम्**) शत्रुओ से दुःख के साथ सेवने योग्य को (**अस्य**) इस (**देवस्य**) विद्वान् की (**संसदि**) सभा वा (**अनीके**) सेना मे (**मर्तासः**) मनुष्य (**जगृभ्रे**) ग्रहण करते है उसी को सभापति सेनापति करो ॥३॥

भावार्थ—विद्वानो को चाहिये कि अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभासदो और अध्यक्षो को नियत करें । जो बलवान् और अधिक अवस्था वाले हो वे ही राज्य को अच्छे प्रकार भूषित कर सकते हैं ॥३॥

कौन विद्वान् अधिक कर विश्वास के योग्य हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।

स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४॥

पदार्थ—हे (**सहस्वः**) प्रशस्त बलवाले ! जो (**अयम्**) प्रत्यक्ष आप (**अकविषु**) न्यून बुद्धि वाले अविद्वानो मे (**कविः**) तीव्र बुद्धियुक्त विद्वान् (**मर्तेषु**) मनुष्यों मे (**प्रचेता**) चेत कराने वाले (**अग्निः**) विद्युत् अग्नि के तुल्य (**अमृतः**) अपने स्वरूप से नाशरहित पुरुष को (**नि, धायि**) धारण करते है (**सः**) सो आप (**अत्र**) इस व्यवहार मे (**नः**) हमको (**मा, जुहुरः**) मत मारिये जिससे हम लोग (**त्वे**) आप में (**सुमनसः**) सुन्दर प्रसन्न चित्त वाले (**सदा**) सदा (**स्याम**) होवें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो यह दीर्घ ब्रह्मचर्य के साथ विद्वानो से विद्या को ग्रहण करता है वही विद्वान् प्रशंसित बुद्धि वाला, मनुष्यो मे महान् कल्याणकारी हो उसके प्रति सब मनुष्य यदि मित्रता से वर्तें तो अविद्वान् भी बुद्धिमान् होवें ॥४॥

कौन विद्वान् किसके तुल्य करता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।

तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यः**) जो (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**देवकृतम्**) विद्वानो ने विद्या पढ़ने के अर्थ बनाए (**योनिम्**) घर मे (**आ, ससाद**) अच्छे प्रकार निवास कर रहे वह (**हि**) ही (**क्रत्वा**) बुद्धि से (**अमृतान्**) नाश रहित जीवो वा पदार्थों को (**अतारीत्**) तारता है (**च**) और जो (**भूमिः**) पृथिवी के तुल्य सहनशील पुरुष (**तम्**) उस (**विश्वधायसम्**) समस्त विद्याओ के धारण करने वाले (**गर्भम्**) उपदेशक (**च**) और (**ओषधि**) सोमादि ओषधियो (**च**) और (**वनिनः**) बहुत किरणों वाले अग्नियो को (**च**) भी (**बिभर्ति**) धारण करता है वही अतिपूज्य होता है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे अग्नि समिधा और होमने योग्य पदार्थों से बढ़ता है वैसे ही जो पाठशाला मे जा आचार्य को प्रसन्न कर ब्रह्मचर्य से विद्या का अभ्यास करते हैं वे ओषधियों के तुल्य अविद्यारूप रोग के निवारक, सूर्य्य के तुल्य धर्म के प्रकाशक और पृथिवी के समान सब के धारण वा पोषणकर्त्ता होते हैं ॥५॥

मनुष्यो को कभी कृतघ्न नहीं होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।

मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥६॥

पदार्थ—हे (**सहसावन्**) बहुत बलयुक्त विद्वन् पुरुष ! जो (**अग्निः**) अग्नि के समान तेजस्वी आप (**अमृतस्य**) नाश रहित नित्य परमात्मा को जानने को (**ईशे**) समर्थ वा इच्छा करते हो (**भूरेः**) बहुत प्रकार के (**सुवीर्य्यस्य**) सुन्दर पराक्रम के निमित्त (**रायः**) धन के (**दातोः**) देने को (**ईशे**) समर्थ हो (**तं**) उन (**हि**) ही (**त्वा**) आपको (**अवीराः**) वीरता रहित हुए (**वयम्**) हम लोग [(**मा**)] (**परि, सदाम**) सब ओर से प्राप्त [न] हो (**अप्सवः**) कुरूप होकर आपको (**मा**) मत प्राप्त हो (**अदुवः**) न सेवक होकर (**मा**) नहीं प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अमृत रूप ईश्वर का विज्ञान, विविध सुखों से तृप्त करने वाली परिपूर्ण लक्ष्मी को तुम्हारे लिये देता है उसके समीप वीरता, सुन्दरपन और सेवा को छोड़ के निठुर, कृतघ्नी मत होओ ॥६॥

कौन धन अपना और कौन धन पराया है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! आप (**अचेतानस्य**) चेतनता रहित मूर्ख के (**पथः**) मार्गों को (**मा**) मत (**विदुक्षः**) दूषित कर (**परिषद्यम्**) सभा मे होने वाले (**अन्यजातम्**) अन्य से उत्पन्न (**हि**) ही (**रेक्णः**) धन को इस प्रकार जानो कि इस की (**शेषः**) विशेषता वा अपने आत्मा की ओर से शुद्ध विचार कुछ (**न, अस्ति**) नही है आपके सङ्ग वा सहाय मे हम लोग (**अरणस्य**) संग्राम रहित (**नित्यस्य**) स्थिर (**रायः**) धन के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धर्मयुक्त पुरुषार्थ से जिस धन को प्राप्त हो उसी को अपना धन मानो, किन्तु अन्याय से उपार्जित धन को अपना मत मानो । ज्ञानियो के मार्ग को पाखण्ड के उपदेश से मत दूषित करो, जैसे धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन प्राप्त हो वैसे प्रयत्न करो ॥७॥

कौन पुत्र मानने के योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।

अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो (**अरणः**) रमण न करता हुआ (**सुशेवः**) सुन्दर सुख से युक्त (**अन्योदर्य्यः**) दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ हो (**सः**) वह (**मनसा**) अन्तःकरण से (**ग्रभाय**) ग्रहण के लिये (**नहि**) नही (**मन्तवै**) मानने योग्य है (**चित्, उ, पुनः, इत्**) और फिर भी वह (**ओकः**) घर को नही (**एति**) प्राप्त होता (**अध**) इसके अनन्तर जो (**नव्यः**) नवीन (**अभीषाट्**) अच्छा सहनशील (**वाजी**) विज्ञान-वाला (**नः**) हमको (**आ, एतु**) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! अन्य गोत्र मे अन्य पुरुष से उत्पन्न हुए बालक को पुत्र करने के लिये नही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वह घर आदि का दायभागी नही हो सकता किन्तु जो अपने शरीर से उत्पन्न वा अपने गोत्र से लिया हुआ हो वही पुत्र वा पुत्र का प्रतिनिधि होवे ॥८॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।

सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९॥

पदार्थ—हे (**सहसावन्**) बहुत बल से युक्त (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! (**त्वम्**) आप (**वनुष्यतः**) मांगने वालो की (**नि, पाहि**) निरन्तर रक्षा कीजिये (**उ**) और (**त्वम्**) आप (**अवद्यात्**) निन्दित अधर्माचरण से (**नः**) हमारी निरन्तर रक्षा कीजिए जिससे (**त्वा**) आपको (**ध्वस्मन्वत्**) दोष और विकार जिसके नष्ट हो गये उस (**पाथः**) अन्न को (**समभ्येतु**) सब ओर से प्राप्त हूजिये (**सहस्री**) असंख्य (**स्पृहयाय्यः**) चाहने योग्य (**रयिः**) धन भी (**सम्**) सम्यक् प्राप्त होवे ॥९॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि आप आप से रक्षा चाहते हुए प्रजाजनो की निरन्तर रक्षा करें और आप स्वयं अधर्माचरण से पृथक् वर्तें तो आप को अतुल धन धान्य प्राप्त होवें ॥९॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।

विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि राजन् ! आप (**एता**) इन (**सौभगा**) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले पदार्थों को (**नः**) हमारे लिये (**दिदीहि**) प्रकाशित कीजिये (**अपि**) और तो (**सुचेतसम्**) सुन्दर ज्ञानयुक्त (**क्रतुम्**) बुद्धि को प्रकाशित कीजिये (**स्तोतृभ्यः**) ऋत्विजो के लिये (**च**) तथा (**गृणते**) यजमान के लिये उत्तम ऐश्वर्य्य वाले (**सन्तु**) हो जिससे (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभिः**) स्वस्थता करने वाली क्रियाओ से (**नः**) हमारी (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो इसलिये हम लोग पूर्वोक्त बुद्धि और (**विश्वा**) धनो का (**वतेम**) सेवन करें ॥१०॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि आप सब मनुष्यो को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्यादान दिलावें, ऋत्विजो और यजमानो की सर्वदा रक्षा करें तो स्वस्थता से पूर्ण राज्य के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो ॥१०॥

यह सप्तम मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । २ । ३ । ८ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ । ७ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब नौ ऋचा वाले पांचवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसकी प्रशंसा और उपासना करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।

यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**वैश्वानरः**) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान जगदीश्वर (**दिवः**) सूर्य वा (**पृथिव्याः**) पृथिवी के बीच (**विश्वेषाम्**) सब (**अमृतानाम्**) नाशरहित जीवात्माओं वा प्रकृति आदि के (**उपस्थे**) समीप में (**वावृधे**) बढ़ाता है (**जागृवद्भिः**) अविद्या निद्रा से उठने वालों ही से प्राप्त होते उस (**तवसे**) बलिष्ठ (**अरतये**) व्याप्त (**अग्नये**) परमात्मा के लिये (**गिरम्**) योग-संस्कार से युक्त वाणी को (**प्र, भरध्वम्**) धारण करो अर्थात् स्तुति प्रार्थना करो ॥१॥

भावार्थ—यदि सब मनुष्य सब के भर्त्ता योगियों को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर की उपासना करें तो वे सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हों ॥१॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।

स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! योगियों से जो (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य स्वयं प्रकाश-स्वरूप ईश्वर (**दिवि**) सूर्य (**पृथिव्याम्**) भूमि वा अन्तरिक्ष में (**धायि**) धारण किया जाता (**सिन्धूनाम्**) नदी वा समुद्रों और (**स्तियानाम्**) जलों के बीच (**वृषभः**) अनन्त बलयुक्त हुआ (**नेता**) मर्यादा का स्थापक (**वरेण**) उत्तम स्वभाव के साथ (**वावृधानः**) सदा बढ़ाने वाला (**वैश्वानरः**) सब का अपने-अपने कामों में नियोजक (**मानुषीः**) मनुष्य सम्बन्धी (**विशः**) प्रजाओं को (**अभि, वि, भाति**) प्रकाशित करता है (**सः**) वह (**पृष्टः**) पूछने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब प्रजा का नियम व्यवस्था में स्थापक, सूर्यादि प्रजा का प्रकाशक, सब का उपास्य देव, वह पूछने, सुनने, जानने, विचारने और मानने योग्य है ॥२॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।

वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥३॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सर्वत्र विराजमान (**अग्ने**) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (**यत्**) जो आप दुःखों को (**दरयन्**) विदीर्ण करते हुए (**पूरवे**) मनुष्य के लिये (**शोशुचानः**) पवित्र विज्ञान को (**पुरः**) पहिले (**अदीदेः**) प्रकाशित करें इससे (**त्वत्**) आपके (**भिया**) भय (**असिक्नीः**) रात्रियों के प्रति (**असमनाः**) पृथक् पृथक् वर्त्तमान (**भोजनानि**) भोगने योग्य वा पालन और (**जहतीः**) अपनी पूर्वावस्था को त्यागती हुई (**विशः**) प्रजा (**आयन्**) मर्यादा को प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर के भय से वायु आदि पदार्थ अपने अपने काम में नियुक्त होते हैं उसके सत्य न्याय के भय से सब जीव अधर्म से भय कर धर्म में रुचि करते हैं । जिसके प्रभाव से पृथिवी सूर्य आदि लोक अपनी अपनी परिधि में नियम से भ्रमते हैं, अपने स्वरूप को धारण कर जगत् का उपकार करते हैं वही परमात्मा सब को ध्यान करने योग्य है ॥३॥

फिर वह जगदीश कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।

त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाऽजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥४॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सब के नायक (**अग्ने**) सब के प्रकाशक ईश्वर (**तव**) आपके (**व्रतम्**) कर्म और (**त्रिधातु**) धारण करने वाले तीन सत्त्वादि गुणों वाले प्रकृत्यादिरूप अव्यक्त जगत् के कारण को (**पृथिवी**) भूमि (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्य (**सचन्त**) सम्बद्ध करते हैं जो (**त्वम्**) आप (**अजस्रेण**) निरन्तर अन्नादि (**शोचिषा**) अपने प्रकाश से (**शोशुचानः**) प्रकाशमान हुए (**भासा**) अपने प्रकाश से (**रोदसी**) सूर्यादि प्रकाशवाले और पृथिव्यादि प्रकाशरहित दो प्रकार के जगत् को (**आततन्थ**) सब ओर से विस्तृत करते हैं उन्हीं आपका हम लोग निरन्तर ध्यान करें ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के आधार से पृथिवी सूर्य स्थित होके अपना कार्य करते हैं, कठोपनिषत् में लिखा है कि उस परमात्मा को जानने के लिये सूर्य चन्द्रमा, बिजली वा अग्नि आदि कुछ प्रकाश नहीं कर सकते किन्तु उसी प्रकाशित परमेश्वर के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं ॥४॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।

पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जिन (**त्वाम्**) आपको (**हरितः**) दिशा (**वावशानाः**) कामना के योग्य (**गिरः**) वाणी (**धुनयः**) वायु और (**घृताचीः**) रात्रि (**सचन्ते**) सम्बन्ध करती हैं उन (**रयीणाम्**) धनों के (**रथ्यम्**) पहुँचाने वाले घोड़े के तुल्य रथों के हितकारी (**उषसाम्**) प्रभात वेलाओं के बीच (**वैश्वानरम्**) अग्नि के तुल्य प्रकाशित (**अह्नाम्**) दिनों के बीच (**केतुम्**) सूर्य के तुल्य (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यों के (**पतिम्**) रक्षक स्वामी आपका हम लोग निरन्तर सेवन करें ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस में सब दिशा, वेदवाणी, पवन और रात्रि आदि काल के अवयव सम्बद्ध हैं उसी समग्र ऐश्वर्य के देने वाले सूर्य के तुल्य स्वयं प्रकाशित परमात्मा का नित्य ध्यान करो ॥५॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।

त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥६॥

पदार्थ—हे (**मित्रमहः**) मित्रों में बड़े (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य सब दोषों के नाशक जिन (**त्वे**) आप परमात्मा में (**वसवः**) पृथिवी आदि आठ वसु (**असुर्यम्**) मेघ के सम्बन्धी (**क्रतुम्**) कर्म को (**नि, ऋण्वन्**) निरन्तर प्रसिद्ध करते हैं तथा (**जुषन्त**) सेवते हैं जो (**त्वम्**) आप (**आर्याय**) सज्जन मनुष्य के लिए (**उरु**) अधिक (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**जनयन्**) प्रकट करते हुए (**ओकसः**) घर से (**दस्यून्**) दुष्ट काम करने वालों को (**आज**) प्राप्त करते हैं उन (**ते**) आपका (**हि**) ही निरन्तर हम लोग ध्यान करें ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! योगीजन जिस परमेश्वर में स्थिर होकर इष्ट काम को सिद्ध करते हैं उसी परमात्मा के ध्यान से सब कामनाओं को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥६॥

फिर वह जगदीश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।

त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥७॥

पदार्थ—हे परमेश्वर जो (**परमे**) उत्तम (**व्योमन्**) आकाश के तुल्य व्यापक आप में (**जायमानः**) उत्पन्न होता हुआ योगीजन (**वायुः, न**) वायु के तुल्य (**पाथः**) पृथिव्यादि को (**सद्यः**) शीघ्र (**एति**) प्राप्त होता है (**सः**) वह आप से उन्नति को प्राप्त होता है । हे (**जातवेदः**) उत्पन्न हुए सब को जानने वाले जो (**त्वम्**) आप (**भुवना**) सब लोकों को (**जनयन्**) उत्पन्न करते हुए (**अपत्याय**) माता जैसे सन्तान के लिए वैसे कामनाओं को (**दशस्यन्**) पूर्ण करते हुए सब को (**अभि, क्रन्**) पूर्ण करते हुए (**परि, पासि**) सब ओर से रक्षा करते हो इससे उपासना के योग्य हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो अपत्य के लिये माता के तुल्य कृपालु, रक्षक, योगी के तुल्य सब काम देने वाला, सब विश्व का कर्त्ता, सब का रक्षक ईश्वर है उसी की नित्य उपासना करो ॥७॥

फिर वह ईश्वर किसको क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।

यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥८॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सब में प्रकाशमान (**जातवेदः**) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (**विश्ववार**) सब से स्वीकार करने योग्य (**अग्ने**) विज्ञान-स्वरूप ईश्वर आप (**दाशुषे**) विद्या देने वाले (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिए (**यया**) जिससे (**पृथु**) विस्तारयुक्त (**राधः**) धन और (**श्रवः**) श्रवण को (**पिन्वसि**) देते हो (**ताम्**) उस (**द्युमतीम्**) प्रशस्त कामना वाले (**इषम्**) अन्नादि को (**अस्मे**) हमारे लिये (**एरयस्व**) प्राप्त कीजिये ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी उपासना से विद्वान् लोग पूर्ण ऐश्वर्य और पूर्ण विद्या को प्राप्त होते हैं । जो उपासना किया हुआ समस्त ऐश्वर्य को देता है उसी की नित्य सेवा करो ॥८॥

फिर वह ईश्वर क्या क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।

वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥९॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सब को अपने अपने कार्य में लगाने वाले (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य प्रकाशित जगदीश्वर आप (**अस्मभ्यम्**) बहुत धनयुक्त हमारे लिए (**पुरुक्षुम्**) बहुत अन्नादि (**तम्**) उस (**श्रुत्यम्**) सुनने योग्य (**रयिम्**) धन को और (**वाजम्**) विज्ञान को (**नि, युवस्व**) नित्य संयुक्त करो । हे (**अग्ने**) प्राण के प्राण (**वसुभि**) पृथिवी आदि तथा (**सजोषाः**) प्राणों के साथ (**सजोषाः**) व्याप्त और प्रसन्न हुए आप (**नः**) हमारे लिये (**महि**) बड़े (**शर्म**) सुख वा घर को (**यच्छ**) दीजिये ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा धन ऐश्वर्य्य और प्रशंसा के योग्य विज्ञान और राज्य को पुरुषार्थियों के लिये देता उसी की प्रीतिपूर्वक निरन्तर उपासना किया करो ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल में पांचवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः । २ निचृत्पङ्क्ति । ३ । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छठे सूक्त का आरम्भ है इसके पहिले मन्त्र मे कौन राजा श्रेष्ठ हो इस विषय को कहते हैं ॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**दारुम्**) दुःख के दूर करने वाले ईश्वर की (**वन्दमान**) स्तुति करता हुआ मैं (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यो के बीच (**असुरस्य**) मेघ के तुल्य वर्त्तमान (**इन्द्रस्य**) सूर्य के समान (**अनुमाद्यस्य**) अनुकूल हर्ष करने योग्य (**सम्राज.**) चक्रवर्ती (**पुंस.**) पुरुष की (**प्रशस्तिम्**) प्रशंसा (**प्र विवक्मि**) विशेष कहता हूँ (**तवस.**) बल से (**कृतानि**) किये हुओ को (**प्र, वन्दे**) नमस्कार करता हूँ वैसे इस की प्रशंसा कर के इस की सदा वन्दना करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो शुभ गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त वन्दनीय और प्रशंसा के योग्य हो उस चक्रवर्ती राजा की शुभकर्मों मे हुई प्रशंसा करो ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥२॥

पदार्थ—हे राजन् (**अग्ने**) अग्नि के समान जिन आपकी (**गीर्भि**) वाणियों से (**अद्रे**) मेघ के तुल्य वर्त्तमान (**पुरन्दरस्य**) शत्रुओ के नगरो को विदीर्ण करने वाले राजा के (**महानि**) बड़े (**पूर्व्या**) पूर्वज राजाओ ने किये (**व्रतानि**) कर्मों को तथा (**कविम्**) तीव्र बुद्धि वाले (**केतुम्**) अतीव बुद्धिमान् विद्वान् को (**धासिम्**) अन्न के तुल्य पोषक (**भानुम्**) विद्या विनय और दीप्ति से युक्त (**रोदस्यो.**) प्रकाश और पृथिवी के सम्बन्धी (**शम्**) सुखस्वरूप (**राज्यम्**) राज्य को (**हिन्वन्ति**) प्राप्त करवाते बढ़ाते हैं उनका मैं (**आ, विवासे**) अच्छे प्रकार सेवन करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिसके उत्तम कर्म राज्य और विद्वानो को बढ़ाते हैं और राज्य को सुखयुक्त करते है उसी का सत्कार सबको करना चाहिये ॥२॥

फिर विद्वानों को कौन रोकने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३॥

पदार्थ—हे राजन् (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजोमय आप (**अक्रतून्**) निर्बुद्धि (**ग्रथिन**) अज्ञान से बन्धे (**मृध्रवाचः**) हिंसक वाणी वाले (**अयज्ञान्**) सङ्गादि वा अग्निहोत्रादि के अनुष्ठान से रहित (**अश्रद्धान्**) श्रद्धारहित (**अवृधान्**) हानि करने हारे (**तान्**) उन (**दस्यून्**) दुष्ट साहसी चोरों को (**प्रप्र, विवाय**) अच्छे प्रकार दूर पहुँचाइये (**पूर्व**) प्रथम से प्रवृत्त हुए आप (**अपरान्**) अन्य (**अयज्यून्**) विद्वानो के सत्कार के विरोधियो को (**पणीन्**) व्यवहार वाले (**निश्चकार**) निरन्तर करते हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! तुम लोग सत्य के उपदेश और शिक्षा से सब अविद्वानो को बोधित करो जिससे ये अन्यो को भी विद्वान् करें ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**य**) जो (**नृतम**) मनुष्यो मे उत्तम (**शचीभि**) उत्तम वाणियो से (**अपाचीने**) बुरा चलना जिसमे हो उस (**तमसि**) अन्धकार मे (**मदन्तीः**) आनन्द करती हुई (**प्राची**) पूर्व को चलने वाली सेनाओ को (**चकार**) करता है । हे विद्वान् ! जिस (**वस्व**) धन के (**ईशानम्**) स्वामी (**अनानतम्**) नम्रस्वरूप (**पृतन्यून्**) अपने को सेना की इच्छा करने वालो को (**दमयन्तम्**) निवृत्त करते हुए (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर की (**गृणीषे**) स्तुति करता है (**तम्**) उसका हम लोग सत्कार करें ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्यो मे उत्तम राजा प्रजाओ के साथ पिता के तुल्य वर्त्तता है, जैसे निद्रा मे सुखी होता है वैसे सब प्रजाओ को आनन्द देता हुआ शत्रुओ को निवृत्त करता है । जो युद्ध में भय से शत्रुओं के साथ नम्र नहीं होता और धन का बढ़ाने वाला है, उसी राजा का हम लोग सदा सत्कार करें ॥४॥

फिर कैसा राजा अत्यन्त उत्तम होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**य**) जो (**देह्य**) बढ़ाने योग्य (**वधस्नै**) मारने से युद्ध करने वाले न्यायाधीशो से दुष्टो को (**अनमयत्**) नम्र करावे (**य**) जो सूर्य जैसे (**उषसः**) प्रात काल की वेलाओ को सुशोभित करता है वैसे (**अर्यपत्नी**) स्वामी की स्त्रियो को शोभित (**चकार**) करता है और जो (**नहुष**) सत्य मे बद्ध (**यह्व**) महान् (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**सहोभि**) सहनशील बलिष्ठो के साथ शत्रुओ को (**निरुध्या**) रोक के (**विश**) प्रजाओ को (**बलिहृत**) कर पहुंचाने वाला (**चक्रे**) करे (**स**) वह सब को पिता के तुल्य पूज्य है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे प्रजाजनो ! जो अत्यन्त विद्वान् दुष्टाचारियो और अन्याय के वर्त्ताव को रोक जितेन्द्रिय हो के न्यायपूर्वक प्रजा से कर लेता है वह सब को बढ़ाने योग्य होता है ॥५॥

फिर कौन राजा नित्य बढ़ता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यस्य**) जिसके (**शर्मन**) घर मे (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि की (**भिक्षमाणा**) नित्य याचना करते हुए उन्नतिशील (**एवै**) विज्ञानादि से प्राप्त हुए श्रेष्ठ गुणो के साथ वर्त्तमान (**विश्वे**) सब (**जनास**) धर्मात्मा उत्तम विद्वान् जन (**उप, तस्थु**) उपस्थित होते हैं जो (**वैश्वानर**) समस्त मनुष्यो के बीच राजमान (**रोदस्यो**) सूर्य और पृथिवी के बीच (**अग्नि**) सूर्य के तुल्य स्थित हुए के समान (**पित्रो**) उत्तम शिक्षा करने वाले अध्यापक उपदेशक के (**उपस्थम्**) समीप (**वरम्**) उत्तम जन को (**आ, ससाद**) अच्छे प्रकार स्थित करे वही चक्रवर्ती राज्य कर सकता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—वही राजा नित्य बढ़ता है जिसके समीप विद्यावर्धक, विद्वान् मन्त्री सदा रहें । जो सत्यवक्ता के उपदेश को नित्य स्वीकार करता है वह सूर्य के तुल्य भूगोल में प्रकाशमान होकर प्रशस्त राज्य को प्राप्त होता है ॥६॥

कौन राजा प्रशंसित यश वाला होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**वैश्वानर**) सब मनुष्यो का नायक (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**देव**) पूर्ण विद्वान् सुखदाता राजा जैसे (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**उदिता**) उदय मे (**बुध्न्या**) अन्तरिक्षस्थ (**वसूनि**) द्रव्य (**आ**) अच्छे प्रकार प्रकाशित होते हैं वैसे जो न्याय और विद्या के प्रकाश को सब से (**आददे**) लेता है वा जैसे (**परस्मात्**) पर (**अवरात्**) तथा इधर हुए (**आ, समुद्रात्**) अन्तरिक्ष के जल पर्य्यन्त (**दिव**) प्रकाश और (**पृथिव्या**) पृथिवी के बीच सूर्य्य प्रकाश को देता है वैसे श्रेष्ठ गुणो का ग्रहण कर प्रजा के लिये हित (**आददे**) ग्रहण करता है वह (**आ**) अच्छे सुख मे बढ़ता है ॥७॥

भावार्थ—यदि विद्वान् लोग सत्य भाव से न्याय का संग्रह कर प्रजाओ का पुत्र के तुल्य पालन करें तो वे प्रजा मे सूर्य के तुल्य प्रकाशित कीर्ति वाले होकर सब के लिये सुख देने को समर्थ होते है ॥७॥

इस सूक्त मे वैश्वानर के दृष्टान्त से राजा के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । त्रिष्टुप् । ४ । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले सातवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में कैसे पुरुष को राजा करें इस विषय को कहते है ॥

प्र वो॑ दे॒वं चि॑त्सहसा॒नम॒ग्निमश्वं॒ न वा॒जिनं॑ हिषे॒ नमो॑भिः ।
भवा॑ नो दू॒तो अ॑ध्व॒रस्य॑ वि॒द्वान्त्मना॑ दे॒वेषु॑ विविदे मि॒तद्रुः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (**व**) तुमको (**सहसानम्**) यज्ञ के साधक (**देवम्**) दानशील (**अग्निम्**) विद्या से प्रकाशमान (**अश्वम्, न**) शीघ्र चलने वाले घोड़े के तुल्य (**वाजिनम्**) उत्तम वेग वाले (**नमोभि**) अन्नादि करके (**प्र, हिषे**) अच्छी वृद्धि करता हूँ वैसे इसको तुम लोग भी बढ़ाओ। हे राजन् (**त्मना**) आत्मा से जो (**देवेषु**) विद्वानो मे (**मितद्रु**) शास्त्रानुकूल पदार्थों को प्राप्त होने वाला (**विद्वान्**) विद्वान् (**विविदे**) जाना जाता है उसको प्राप्त होके (**नः**) हमारे (**अध्वरस्य**) अहिंसा और न्याययुक्त व्यवहार के (**दूतः**) सुशिक्षित दूत के तुल्य (**भव**) हूजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है—जो प्रजा के किये आक्षेपो को सहता, घोड़े के तुल्य सब कार्य्यों का शीघ्र व्याप्त होता, विद्वानो मे विद्वान्, दूत के तुल्य समाचार पहुंचाने वाला हो उसी को राजा करो ॥१॥

फिर कैसा राजा श्रेष्ठ होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

आ या॑ह्यग्ने प॒थ्या॒३॒॑ अनु॒ स्वा म॒न्द्रो दे॒वानां॑ स॒ख्यं जुषा॒णः ।
आ सानु॒ शुष्मै॑र्न॒दय॑न्पृथि॒व्या जम्भे॑भि॒र्विश्व॑मु॒शध॒ग्वना॑नि ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) बिजुली के तुल्य राजविद्या मे व्याप्त (**देवानाम्**) विद्वानो के (**सख्यम्**) मित्रपन को (**जुषाण**) सेवते हुए (**मन्द्र.**) आनन्ददाता (**शुष्मै**) बलो के साथ (**पृथिव्या**) पृथिवी के (**सानु**) शिखर के तुल्य विज्ञान को (**आ, नदयन्**) अच्छे प्रकार नाद करते हुए विद्युत् के तुल्य (**जम्भेभि**) गात्र नमाने से (**विश्वम्**) समस्त जगत (**वनानि**) सूर्य की किरणो के तुल्य धनो की (**उशधक**) कामना करते हुए (**पथ्या**) धर्ममार्ग को प्राप्त होने वाली (**स्वा**) अपनी प्रजाओ को (**अनु, आ, याहि**) अनुकूल आइय ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो बिजुली के तुल्य पराक्रमी, सूर्य के तुल्य प्रतापी अपनी अनुकूल प्रजाओं को न्याय में आनन्दित करता है वही उत्तम राजा होता है ॥२॥

इस जगत् मे कौन मनुष्य उत्तम हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्रा॒चीनो॑ य॒ज्ञः सुधि॑तं॒ हि ब॒र्हिः प्री॑णी॒ते अ॒ग्निरी॑ळि॒तो न होता॑ ।
आ मा॒तरा॑ वि॒श्ववा॑रे हुवा॒नो यतो॑ यविष्ठ जज्ञि॒षे सु॒शेवः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ**) अतिशय कर युवावस्था को प्राप्त (**यत**) जिनसे आप (**सुशेव**) सुन्दर सुखयुक्त (**जज्ञिषे**) होते हो उन (**विश्ववारे**) सब सुखो के स्वीकार करने वाले दोनो (**मातरा**) माता पिता की (**हुवान**) स्तुति करता हुआ (**ईळित**) प्रशंसित गुणोवाला (**होता**) होमकर्ता (**न**) जैसे वैसे (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य (**प्राचीन**) पूर्वकाल सम्बन्धी (**यज्ञ**) सग करने योग्य पुरुष (**सुधितम**) सुन्दर हितकारी (**बर्हि.**) उत्तम अधिक हविष्य को प्राप्त करने के अर्थ जो (**आ, प्रीणीते**) अच्छे प्रकार कामना करता है (**हि**) वही योग्य होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे होमकर्त्ता वेदविहित यज्ञ और उसकी सामग्री की कामना करता है वैसे ही जो पितृजनों की प्रशंसा करते हुए सेवन करते हैं वे ही इस जगत् में कृतज्ञ होते हैं ॥३॥

फिर कौन मनुष्य योग्य राजा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स॒द्यो अ॑ध्व॒रे र॑थि॒रं ज॑नन्त॒ मानु॑षासो॒ विचे॑तसो॒ य ए॑षाम् ।
वि॒शाम॑धायि वि॒श्पति॑र्दुरो॒णेॳग्निर्म॒न्द्रो मधु॑वचा ऋ॒तावा॑ ॥४॥

पदार्थ—(**विचेतस**) विविध प्रकार की बुद्धि से युक्त (**मानुषासः**) मनुष्य (**अध्वरे**) अहिंसारूप व्यवहार मे जिस (**रथिरम्**) रथवालो मे रमण करने वाले को (**सद्य**) शीघ्र (**जनन्त**) प्रकट करते है (**य**) जो (**एषाम्**) विद्वानो के बीच (**दुरोणे**) घर मे (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य (**मन्द्र**) आनन्ददाता (**मधुवचा**) कोमल वचनो (**ऋतावा**) और सत्य का सेवन करने वाला (**विशाम्**) प्रजाओं का (**विश्पति.**) रक्षक विद्वानो से (**अधायि**) धारण किया जाता है वही राजा होने को योग्य होता है ॥४॥

भावार्थ- [इस मन्त्र मे वाचकलु०]—जिसको उत्तम शिक्षा से विद्या ग्रहण कराके विद्वान् लोग पण्डित करते है वह योग्य होकर घर में दीप के तुल्य प्रजाओ मे न्याय का प्रकाशक होता है ॥४॥

फिर अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असा॑दि वृ॒तो वह्नि॑राजग॒न्वान॒ग्निर्ब्र॒ह्मा नृ॒षद॑ने विध॒र्ता ।
द्यौश्च॒ यं पृ॑थि॒वी वा॑वृधा॒ते आ यं होता॒ यज॑ति वि॒श्ववा॑रम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**नृषदने**) मनुष्यों के स्थान मे (**ब्रह्मा**) चार वेद का जानने वाला होता है वैसे जो (**वृत.**) स्वीकार किया (**आजगन्वान्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होने वाला (**वह्निः**) पहुचाने वाले (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य (**विधर्ता**) विशेषकर धारणकर्ता (**असादि**) अच्छे प्रकार स्थित होता है (**यम्**) जिसको (**द्यौ.**) सूर्य (**च**) और (**पृथिवी**) भूमि (**वावृधाते**) बढ़ाते हैं (**यम्**) जिस (**विश्ववारम्**) सबको स्वीकार करने योग्य को (**होता**) होमकर्त्ता (**आ, यजति**) अच्छे प्रकार सङ्ग करता है उस को सब लोग जानें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे अग्नि यथावत् सम्प्रयोग किया हुआ सब कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सत्कार कर स्वीकार किये वेद के विद्वान् लोग धर्मार्थ काम मोक्ष पदार्थों को सबको प्राप्त कराते हैं ॥५॥

फिर कौन श्रेष्ठ विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

ए॒ते द्यु॒म्नेभि॒र्विश्व॒मात्ति॑रन्त॒ मन्त्रं॒ ये वारं॒ नर्या॒ अत॑क्षन् ।
प्र ये विश॑स्ति॒रन्त॒ श्रोष॑माणा॒ आ ये मे॑ अ॒स्य दीध॑यन्नृ॒तस्य॑ ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**ये**) जो (**एते**) ये (**नर्या**) मनुष्यों मे श्रेष्ठ (**द्युम्नेभि**) धन व कीर्त्ति से (**विश्वम्**) समस्त (**मन्त्रम्**) विचार को (**आ, अतिरन्त**) अच्छे प्रकार पार होत (**वा, अरम्**) अथवा पूर्ण कार्य को (**अतक्षन्**) तीक्ष्णता से करते (**ये**) जो (**श्रोषमाणा**) सुनते हुए (**विशः**) प्रजाजनो को (**प्र, तिरन्त**) अच्छे तरते और (**ये**) जो (**मे**) मेरे (**अस्य**) इस (**ऋतस्य**) सत्य विज्ञान को (**आ, दीधयन्**) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं वे अभीष्ट को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ- जो मनुष्य सुन्दर विचार के साथ स्वीकार करने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते और नित्य विद्वानों के वचनो के श्रोता होकर सत्य-झूठ का विवेक कर और असत्य छोड़ सत्य का ग्रहण कर यशस्वी धनाढ्य होते हैं वही इस जगत् मे सत्कार के योग्य होते हैं ॥६॥

फिर कौन अच्छा, चतुर, अतिबलवान् तथा प्रशंसित होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा ईशा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम् ।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आन॒ड्यूयं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥

पदार्थ—हे (**सहस**) अतिबलवान् के (**सूनो**) सत्पुत्र (**अग्ने**) विज्ञान-स्वरूप (**वसूनाम्**) पृथिव्यादि तत्त्व साधनों के बीच (**ईशानम्**) समर्थ बलवान् (**त्वाम्**) आप को (**वसिष्ठा.**) अत्यन्त वसने वाले हम लोग (**ईमहे**) याचना करते हैं (**यूयम्**) तुम लोग (**स्तोतृभ्य**) सब विद्याओ की प्रशंसा करने वाले (**मघवद्भ्य**) बहुत धनयुक्त होने के लिए (**न**) हमारी (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो। जो तुमको और (**इषम्**) अन्नादि को (**नु**) शीघ्र (**आनट्**) व्याप्त हो उसको तुम (**स्वस्तिभि**) स्वस्थता कराने वाली क्रियाओ से सदा रक्षा करो ॥७॥

भावार्थ-- जो विद्वानो के लिए धन देता है और विद्या की याचना करता है, जिसकी रक्षा प्राप्त करते हैं वह सदा रक्षा को प्राप्त, बढ़ता हुआ सब ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल में सातवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । १ । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । [२]३।४। ६ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत. स्वरः ॥

अब वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।

इ॒न्धे राजा॒ सम॒र्यो नमो॑भि॒र्यस्य॒ प्रती॑क॒माहु॑तं घृ॒तेन॑ ।
नरो॑ ह॒व्येभि॑रीळते स॒बाध॒ आग्निरग्र॑ उ॒षसा॑मशोचि ॥१॥

पदार्थ- जो (**नर.**) नायक मनुष्य (**हव्येभि**) देने योग्य जनो वा (**नमोभि**) अन्नादि से होने वाले सत्कारों के साथ (**घृतेन**) प्रदीप्तिकारक जल वा घी से (**यस्य**) जिसकी (**आहुतम्**) स्पर्द्धा ईर्षा को प्राप्त (**प्रतीकम्**) सेना की निश्चय कराने वाली (**ईळते**) स्तुति करते हैं वह (**समर्य**) युद्ध मे कुशल (**राजा**) प्रकाशमान तेजस्वी मैं उसको (**इन्धे**) प्रदीप्त करता हूँ जैसे (**उषसाम्**) प्रभात समय होने से (**अग्रे**) पहिले (**सबाध.**) बाध अर्थात् संयोग से बने सब संसार के साथ वर्त्तमान (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी जन (**आ, अशोचि**) प्रकाशित किया जाता है वैसे मैं शत्रुओ के सन्मुख अपनी सेना का प्रकाशक और उत्साह देने वाला होऊँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो जिस के भृत्य उपकार करने वाले हों, वे उपकार को प्राप्त हुए से सदा सत्कार पाने योग्य हैं ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (विभाः) प्रकाश करने वाला (यह्वः) बड़ा (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ओषधीभिः) सोमलतादि ओषधियों से (ववक्षे) प्राप्त करता है वैसे (कृष्णपविः) तीक्ष्ण काट करने वाले शस्त्र अस्त्रों से युक्त (होता) दानशील (मन्द्रः) आनन्द कराने वाला (सुमहान्) शुभ गुणकर्मों से सत्कार करने योग्य (मनुषः) मनुष्य विद्वानों से (अवेदि) जाना जाता है (स्यः) वह (अयम्) यह (उ) ही (पृथिव्याम्) पृथिवी पर सब को सुख से (ससृजानः) संयुक्त करता हुआ सबकी उन्नति (अकः) करता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य उपकारक होते हैं वे ही अच्छे प्रकार सत्कार पाने योग्य हैं ॥२॥

फिर वे राजा और प्रजा के जन कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

पदार्थ—हे (सुदत्र) सुन्दर दाता (अग्ने) बिजुली के समान ऐश्वर्य देने वाले राजपुरुष (शस्यमानः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (कया) किसी रीति से (नः) हमको (वि, वसः) प्रवास कराते हैं (काम्, उ) किसी (सुवृक्तिम्) सुन्दर प्रकार जिस में प्राप्त हो उस नीति और (स्वधाम्) अन्न को (ऋणवः) प्रसिद्ध करो (कदा) कब (दुष्टरस्य) दुःख से तरने योग्य (साधोः) सत्पुरुष के (वन्तारः) सेवक (रायः) धन के (पतयः) स्वामी हम लोग (भवेम) होवें ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि आप हमारा यथावत् पालन कर धनाढ्य करें तो हम भी आप सज्जन की निरन्तर उन्नति करें ॥३॥

फिर कैसा राजा सत्कार के योग्य होता और वह राजा किनका सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

पदार्थ—हे राजपुरुष (यत्) जो (अयम्) यह (भरतस्य) धारण वा पोषण करने वाले के (अग्निः) अग्नि के समान वा (सूर्यः, न) सूर्य के समान (वि, रोचते) विशेष प्रकाशित होता है वा जिसको मैं (प्रप्र, शृण्वे) अच्छे प्रकार सुनता हूँ (यः) जो (बृहत्) बड़े जगत् वा राज्य को तथा (पूरुम्) पालक सेनापति को (अभि, भाः) सब ओर से प्रकाशित करता है तथा (अतिथिः) जाने आने की तिथि जिसकी नियत न हो उसके तुल्य (दैव्यः) विद्वानों ने किया विद्वान् (द्युतानः) प्रकाशमान (पृतनासु) सेनाओं में (तस्थौ) स्थित हो वह (शुशोच) प्रकाशित होता है उसका आप सदा सत्कार कीजिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो राजा लोग सत्कर्म करने वालों का ही सत्कार करें और दुष्टाचारियों को दण्ड देवें वे ही सूर्य के तुल्य प्रकाशमान अतिथियों के समान सत्कार करने योग्य होते हुए सर्वदा विजयी होकर प्रसिद्ध कीर्तिवाले होते हैं ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५॥

पदार्थ—हे (सुजात) सुन्दर प्रकार प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वन् राजन् (त्वे) आप के निमित्त (भुवः) पृथिवी के सम्बन्ध में (भूरि) बहुत (आहवनानि) सत्कारपूर्वक निमन्त्रण (असन्) होते हैं (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) अच्छी शिक्षित सेनाओं के साथ (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त (गृणानः) स्तुति करने वालों के वाक्यों को (चित्) भी (शृण्विषे) सुनते हैं सो आप (स्वयमित्) स्वयमेव (तन्वम्) शरीर को (वर्धस्व) बढ़ाइये ॥५॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि आप प्रशंसित धर्मयुक्त कर्मों को करें तो सर्वत्र विजय को प्राप्त होते हुए आप वृद्धि को प्राप्त होके सब प्रजाओं को बढ़ावें ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥६॥

पदार्थ—हे राजन् (शतसाः) सौ का विभाग करने (द्विबर्हाः) विद्या और विनय से बढ़ने और (रक्षोहा) दुष्ट राक्षसों के हिंसा करने वाले आप (अग्नये) अग्नि के लिये जैसे वैसे (इदम्) इस (सं, सहस्रम्) सम्यक् सहस्र (वचः) वचन को (जनिषीष्ट) प्रकट कीजिये (यत्) जिस (द्युमत्) कामना वाले (अमीवचातनम्) रोगनाशरूप (शम्) सुख को (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्ता विद्वानों के लिये वा (आपये) प्राप्त कराने वाले आप्त के लिये (उद्भवाति) प्रसिद्ध करते हैं उसी को निरन्तर सिद्ध करें ॥६॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! जैसे सभापति राजा सब के लिये मधुर कोमल वचन और उत्तम सुख देकर दुःख दूर करता है वैसे ही तुम लोग भी राजा के लिये असंख्य पदार्थों को देकर प्रमाद और रोगरहित करके अधिकतम धन देओ ॥६॥

कैसे पुरुष को प्रजा लोग राजा मानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (अग्ने) सत्य मार्ग के प्रकाशक राजपुरुष जिससे आप (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों के लिये (इषम्) विज्ञान वा धन को (मघवद्भ्यः) बहुत धन वाले के लिये धन वा विज्ञान को (आनट्) व्याप्त होते हो इस कारण (वसिष्ठाः) अत्यन्त धन वाले हम लोग (वसूनाम्) वास के हेतु पृथिव्यादि के (ईशानम्) अध्यक्ष (त्वाम्) आपको (नु, ईमहे) शीघ्र चाहते हैं और हम जिन तुम लोगों की रक्षा करें वे (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हमारी सदा (पात) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थ—हे राजन् ! आप विद्वानों के लिये श्रेष्ठ वस्तु, धनवानों के लिये प्रतिष्ठा देते हो आप और राजपुरुष हमारी निरन्तर रक्षा करें इसलिये आपके हम सेवक होवें ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य नवमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब छः ऋचा वाले नवम सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में फिर कौन विद्वान् सेवने योग्य है इस विषय को कहते हैं ।

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (जारः) रात्रि का नाश करने वाला सूर्य (उषसाम्) प्रातःकाल की वेलाओं के (उपस्थात्) समीप से (उभयस्य) इस लोक परलोक में जाने वाले (जन्तोः) जीवात्मा के (हव्या) होमने योग्य वस्तुओं को (केतुम्) बुद्धि को और (द्रविणम्) धन वा बल को (देवेषु) पृथिव्यादि वा विद्वानों में (दधाति) धारण करता है तथा (होता) दानशील (मन्द्रः) आनन्ददाता (कवितमः) अति प्रवीण (पावकः) पवित्रकर्त्ता विद्वान् जीव के ग्राह्य वस्तुओं को (सुकृत्सु) पुण्यात्मा विद्वानों में धन और बुद्धि का धारण करता स्वयं अज्ञानियों को (अबोधि) बोध कराता उसी अध्यापक विद्वान् की निरन्तर सेवा करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जैसे रात्रि को सूर्य निवारण कर प्रकाश को उत्पन्न करता वैसे अविद्या का निवारण करके विद्या को प्रकट करते हैं, वे जैसे धर्मात्मा न्यायाधीश राजा पुण्यात्माओं में प्रेम धारण करता है वैसे शम-दमादि युक्त श्रोताओं में प्रीति का विधान करें ॥१॥

फिर राजकार्य्यों में कौन लोग श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पणीनाम्) प्रशस्त व्यवहार करनेहारों के (दुरः) द्वारों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (राम्याणाम्) रात्रियों के (तमः) अन्धकार का (तिरः) तिरस्कार करके सूर्य (ददृशे) दीखता है तथा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वाला (अर्कम्) अन्न वा सत्कार योग्य (पुरुभोजसम्) बहुतों के रक्षक मनुष्य को (वि) विशेष कर पवित्रकर्त्ता (नः) हमारी (विशाम्) प्रजाओं में (मन्द्रः) आनन्ददाता (होता) दानशील (दमूनाः) दमनशील अविद्या का तिरस्कार करता है (सः) वह हमारा राजा हो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु० जो सभ्य राजा लोग सूर्य के तुल्य न्याय के प्रकाशक, अविद्यारूप अन्धकार के निवारक, दुष्टों का दमन और श्रेष्ठ धार्मिकों का सत्कार करने वाले होते हुए धर्मसम्बन्धी मार्ग को पवित्र करते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥२॥

फिर कैसा विद्वान् पूजनीय होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**उषसाम्**) प्रभात वेलाओं के (**अग्रे**) पहिले (**चित्रभानु**) अद्भुत प्रकाशयुक्त (**विवस्वान्**) सूर्य के समान (**अपाम्**) अन्तरिक्ष के बीच (**गर्भः**) गर्भ के तुल्य वर्त्तमान (**प्रस्व**) अपने सम्बन्धी उत्तम जनों वाला हुआ (**भाति**) प्रकाशित होता है (**सु ससत्**) सुन्दर सभा वाला (**मित्र**) मित्र (**अमूर**) मूढ़ता रहित (**कविः**) प्रवृत्त बुद्धि वाला पण्डित (**अदितिः**) पिता के तुल्य वर्त्तमान (**अतिथि**) प्राप्त हुए विद्वान् के तुल्य (**न.**) हमारा (**शिव**) मंगलकारी हुआ (**आ, विवेश**) प्रवेश करता है वही विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में मुखिया सूर्य के तुल्य सत्य न्याय का प्रकाशक, अविद्यादि दोषों से रहित, धर्मात्मा विद्वान्, पुत्र के तुल्य प्रजाओं का पालन करता है वही अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य होता है ॥३॥

फिर कौन प्रशंसा योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**य**) जो (**ईळेन्य.**) स्तुति के योग्य (**समनगा**) संग्राम को प्राप्त होने वाला (**जातवेदा**) विद्या को प्राप्त हुआ (**युगेषु**) बहुत वर्षों मे (**व**) तुम (**मनुष**) मनुष्यों का (**सुसन्दृशा**) अच्छे प्रकार दिखाने वाले (**भानुना**) किरण से सूर्य के समान (**विभाति**) प्रकाशित करता है और जैसे (**समिधानम्**) देदीप्यमान के (**प्रति**) प्रति (**गाव**) किरण (**बुधन्त**) बोध के हेतु होते हैं वैसे (**अशुचत्**) शुद्ध प्रतीति कराता है वही मनुष्यों मे उत्तम होता है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश शुभ गुणों का ग्रहण कराके मनुष्यों को प्रकाशित करते हैं वे प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन विद्वान् संगति करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनाऽपो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) वह्नि के तुल्य कार्य सिद्ध करनेहारे विद्वन् ! आप (**दूत्यम्**) दूत के कर्म को (**याहि**) प्राप्त हूजिये (**देवान्**) विद्वानों वा शुभ गुणों को (**मा**) मत (**रिषण्य**) नष्ट कीजिये (**ब्रह्मकृता**) जिससे धन वा अन्न को उत्पन्न करते (**गणेन**) उस सामग्री के समुदाय से (**रत्नधेयाय**) रत्नों का जिसमे धारण हो उसके लिये (**सरस्वतीम्**) विद्याशिक्षायुक्त वाणी का (**मरुत.**) मनुष्यों का (**अश्विना**) अध्यापक और उपदेशकों के (**अप**) कर्मों का और (**विश्वान**) सब (**देवान्**) विद्वानों का जिस कारण (**अच्छा, यक्षि**) अच्छे प्रकार संग करते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्निरूप दूत से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे कार्य की सिद्धि करके किसी को मत मारो, पदार्थविद्या, धन वा धान्य से कोश को पूर्ण कर सब को सुखी करो ॥५॥

फिर वे विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंधिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—हे (**जातवेद**) विज्ञान को प्राप्त (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य विद्यादि गुणों से प्रकाशित विद्वन् जैसे (**समिधान**) सम्यक् प्रकाशमान (**वसिष्ठ**) अत्यन्त धनी (**जरूथम**) शिथिलावस्था से युक्त जीर्ण मेघ को (**हन्**) हनन करता है वैसे सुन्दर सभा के योग्य (**पुरन्धिम्**) बहुतों को धारण करने वाले (**त्वाम्**) आप विद्वान् का (**राये**) धनप्राप्ति के लिए मैं (**यक्षि**) संग करता हूँ (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभि**) सुख साधनों से (**न**) हमारी (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो और (**पुरुणीथा**) बहुतों को प्राप्त होने वाले धर्मयुक्त कर्मों की (**जरस्व**) प्रशंसा करो ॥६॥

भावार्थ—जो राजा के सहित सभ्य लोग, सूर्य मेघ को जैसे वैसे अविद्या और दुष्टाचारों का नाश करते हैं सब को धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कराते वे सब के यथावत् रक्षक होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल मे नवमा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पंचर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि. । अग्निर्देवता । १ । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ५ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत. स्वर. ।

अब पांच ऋचा वाले दशवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में अब विद्वान् किसके तुल्य क्या करे इस विषय को कहते हैं ।

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् जैसे (**जारः**) जीर्ण करने हारे के (**न**) तुल्य (**शोशुचान**) शुद्ध संशोधक (**वृषा**) वृष्टिकर्त्ता (**हरिः**) हरणशील (**उशतीः**) कामना किये जाते (**धियः**) कर्मों वा बुद्धियों को (**हिन्वान**) बढ़ाता हुआ अग्नि (**अजीग**) जगाता है (**भासा**) दीप्ति से सब को (**आ, भाति**) प्रकाशित करता है (**पृथु**) विस्तृत (**पाज**) अन्नादि का (**अश्रेत्**) आश्रय करता है सब को (**दविद्युतत्**) प्रकट करता है (**उष.**) प्रभातवेला के तुल्य (**शुचि.**) पवित्र स्वयं (**दीद्यत्**) प्रकाशित होता है वैसे आप कीजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलु०—जैसे उत्तम शिक्षा को प्राप्त विद्वान् यथावत् कार्य्यों को सिद्ध करते वैसे ही विद्युत् आदि पदार्थ सम्प्रयोग मे लाये हुए सब व्यवहारों को सिद्ध करते हैं ॥१॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद्दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अग्नि**) विद्युत् अग्नि (**स्व:, न**) आदित्य के समान (**वस्तो**) दिवस और (**उषसाम**) प्रभातवेलाओं के सम्बन्ध मे (**अरोचि**) रुचि करता है वा प्रकाशित होता (**यज्ञम्**) संगतियोग्य व्यवहार को (**तन्वाना**) विस्तृत करते और (**उशिज**) कामना करते हुए के (**न**) तुल्य (**देव**) प्रकाशयुक्त कामना करता हुआ (**विद्वान्**) विद्वान् (**मन्म**) मानने योग्य विज्ञान और (**जन्मानि**) जन्मों का (**वि, आ, द्रवत्**) विशेष कर अच्छा शुद्ध करता हुआ (**दूत**) समाचार पहुंचाने वाला (**वनिष्ठ**) अत्यन्त विभागकर्ता (**देवयावा**) दिव्य उत्तम गुणों को प्राप्त होने वाला अग्नि के तुल्य श्रेष्ठ व्यवहारों को प्रकाशित करता उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलु०—जो जिज्ञासु विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त होके विधि और क्रिया से अग्नि आदि पदार्थों से समस्त व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वे प्रसिद्ध धनवान् होते हैं ॥२॥

फिर स्त्रीपुरुष किसके तुल्य होकर कैसे स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो कन्या (**मतय**) बुद्धि के तुल्य वर्त्तमान (**गिर**) विद्यायुक्त वाणियों और (**अच्छा, देवयन्ती**) अच्छे प्रकार विद्वान् पतियों की कामना करती हुई (**सुसन्दृशम्**) अच्छे प्रकार देखने योग्य (**सुप्रतीकम्**) सुन्दर प्रतीति के साधन (**स्वञ्चम**) सुन्दर प्रकार पूजन योग्य (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के सम्बन्ध से (**हव्यवाहम्**) होमने योग्य पदार्थों को देशान्तर पहुंचाने वाले (**अरतिम**) सर्वत्र प्राप्त होने वाले (**द्रविणम्**) धन वा यश को (**भिक्षमाणा**) चाहती हुई (**अग्निम्**) विद्युत की विद्या को (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं वे ही विवाहने योग्य होती हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे कन्या दीर्घ ब्रह्मचर्य के साथ विदुषी हो और अग्नि आदि की विद्या को प्राप्त हो के पुरुषों मे से उत्तम उत्तम पतियों को चाहती हुई अपने अपने अभीष्ट स्वामी को प्राप्त होती है वैसे पुरुषों का भी अपने अनुकूल स्त्रियों को प्राप्त होना चाहिये ॥३॥

कौन विद्वान् निरन्तर सेवने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् (**सजोषा**) तुल्य सेवनकर्त्ता आप (**न**) हमारे लिये (**वसुभि**) पृथिव्यादि के साथ (**इन्द्रम्**) विद्युत अग्नि को (**रुद्रेभि**) प्राणों के साथ (**बृहन्तम्**) बड़े (**रुद्रम्**) जीवात्मा को (**आदित्येभि**) बारह महीनों से (**विश्वजन्याम्**) संसारोत्पत्ति की हेतु (**अदितिम्**) अखण्डित कालविद्या को और (**ऋक्वभिः**) ऋग्वेदादि से (**विश्ववारम्**) सब के स्वीकार करने योग्य (**बृहस्पतिम्**) बड़ी ऋग्वेदादि वाणी के रक्षक परमात्मा को (**आ, वहा**) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थ—जो ही पृथिव्यादि विद्या के साथ बिजुली की विद्या को, प्राणविद्या के साथ जीवविद्या को, कालविद्या के साथ प्रकृति के विज्ञान को और वेदविद्या से परमात्मा के विज्ञान कराने को समर्थ होता है उसी का सब लोग विद्याप्राप्ति के लिये आश्रय करें ॥४॥

मनुष्य प्रतिदिन किस की खोज करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जिसको (**अध्वरेषु**) अग्निहोत्रादि क्रियारूप व्यवहारों मे (**मन्द्रम्**) आनन्दकारी (**होतारम्**) दाता (**यविष्ठम्**) अतिजवान के तुल्य (**अग्निम्**) अग्नि की (**उशिजः**) कामना करते हुए (**विशः**) प्रजाजन (**ईळते**) स्तुति वा खोज करते हैं (**सः, हि**) वही (**क्षपावान्**) बहुत रात्रियो वाला (**अतन्द्रः**) आलस्य रहित (**दूतः**) दूत के समान (**रयीणाम्**) द्रव्यो की (**यजथाय**) प्राप्ति के लिये (**देवान्**) दिव्यगुणो के प्राप्त कराने को समर्थ (**अभवत्**) होता है ॥५॥

भावार्थ—जो अग्नि, दूत के तुल्य सब विद्याओ का सग कराने वाला होता है उसकी सब मनुष्य खोज करें, जिससे सब गुणों की प्राप्ति हो ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और विदुषी के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकादशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ स्वराट् पङ्क्तिः । २ । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर आप (**इह**) इस जगत् मे (**विश्वेभिः**) सब (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**प्रथमः**) पहिले (**होता**) विद्यादि शुभगुणो के दाता हमको (**सरथम्**) रथ सहित (**नि, आ, याहि**) निरन्तर प्राप्त हूजिये जिस कारण (**त्वत्**) आप से (**ऋते**) भिन्न (**अमृताः**) नाशरहित जीव (**न**) नहीं (**मादयन्ते**) आनन्द करते हैं इससे आप (**सद**) स्थिर हूजिये आप (**अध्वरस्य**) सब व्यवहार के (**महान्**) बड़े (**प्रकेतः**) उत्तमबुद्धि के प्रकाशक (**असि**) हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसके विना न विद्या, न सुख प्राप्त होता है जो विद्वानों का सङ्ग, योगाभ्यास और धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य है उसी जगदीश्वर की सदा उपासना करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य स्वयप्रकाशस्वरूप ईश्वर (**यस्य**) जिस आप के (**देवैः**) विद्वानो से (**आ, असदः**) प्राप्त होने योग्य (**बर्हिः**) सुखवर्द्धक विज्ञान प्राप्त होता है (**अस्मै**) इस विद्वान् के लिये आप के (**अहानि**) दिन (**सुदिना**) सुदिन (**भवन्ति**) होते हैं जैसे (**हविष्मन्तः**) प्रशस्त सामग्री वाले (**मानुषासः**) मनुष्य (**दूत्याय**) दूतकर्म के लिये (**सदम्, इत्**) स्थिर होने वाले (**अजिरम्**) फेंकने हारे अग्नि की (**ईळते**) स्तुति करते हैं वैसे ये लोग (**त्वाम्**) आपकी निरन्तर स्तुति करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सामग्री वाले अग्नि-विद्या को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते है वैसे ही ईश्वर को प्राप्त होके निरन्तर श्रीमान् होते हैं ॥२॥

किसके होने पर मनुष्य उत्तम गुण को प्राप्त होते है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् (**त्वे**) आपके (**अन्तः**) बीच (**दाशुषे**) दानशील (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिये (**वसूनि**) द्रव्यो को (**अक्तोः**) रात्रि के सम्बन्ध में (**चित्**) भी (**त्रिः**) तीन बार विद्वान् (**प्र, चिकितुः**) जानते है आप (**इह**) इस जगत् मे (**मनुष्वत्**) मनुष्यो के तुल्य (**देवान्**) विद्वानो का (**यक्षि**) सत्कार कीजिये (**नः**) हमारे (**दूतः**) दूत के समान (**अभिशस्तिपावा**) प्रशंसितो के रक्षक पवित्रकारी (**भव**) हूजिये ॥३॥

भावार्थ—जिसके संग से मनुष्यो को दिव्य गुण और पुष्कल धन प्राप्त होते हैं इस जगत् मे उसी की स्तुति कर जो दूत के तुल्य परोपकारी होते हैं वह सब को सत्य जताने को समर्थ होता है ॥३॥

किसकी विद्या से अभीष्ट प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥४॥

पदार्थ—(**अग्निः**) विद्युत् अग्नि (**बृहतः**) बड़े (**अध्वरस्य**) रक्षा योग्य व्यवहार के करने को (**ईशे**) समर्थ है (**अग्निः**) अग्नि (**कृतस्य**) शुद्ध (**विश्वस्य**) सब (**हविषः**) सग करने योग्य व्यवहार के लिये समर्थ है (**अस्य**) इस अग्नि के सग से जो (**वसवः**) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य करने वाले प्रथम कक्षा के (**देवाः**) विद्वान् जन (**क्रतुम्**) बुद्धि का (**हि**) ही (**जुषन्त**) सेवन करते हैं (**अथ**) इसके अनन्तर (**हव्यवाहम्**) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को प्राप्त करने वाले को (**दधिरे**) धारण करते हैं वे ही जगत् मे पूज्य होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्युत् बड़े बड़े कार्य्यों को सिद्ध करती जिसके सम्बन्ध से योगाभ्यास कर के मनुष्य बुद्धि को प्राप्त होता उसी अग्नि का सब लोग युक्ति से सेवन करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् आप (**अद्याय**) भोगने योग्य वस्तु के लिये (**देवान्**) विद्वानो को (**हविः**) भोजन योग्य अन्न को (**आ, वह**) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये उससे (**इह**) इस समय (**इन्द्रज्येष्ठासः**) जिन मे राजा श्रेष्ठ है वे मनुष्य (**मादयन्ताम्**) आनन्दित करें आप (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) धर्मयुक्त व्यवहार को (**दिवि**) द्योतनस्वरूप परमात्मा और (**देवेषु**) विद्वानो मे (**धेहि**) धारण करो, हे विद्वानो (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभिः**) सुखो से (**नः**) हमारी (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे अग्नि सूर्यादिरूप से सब को आनन्दित करता है वैसे हम जगत् मे तुम सब लोगो की रक्षा कर और कर्त्तव्य को कराके अभीष्ट भोगो को प्राप्त कराओ ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों का कृत्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य द्वादशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराट्-त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**स्वे**) अपने (**दुरोणे**) घर मे (**समिद्धः**) प्रकाशित है वह (**दीदाय**) सबको प्रकाशित करता है उसका (**उर्वी**) बड़ी (**रोदसी**) सूर्य पृथिवी के (**अन्तः**) भीतर वर्त्तमान (**चित्रभानुम्**) अद्भुत किरणो वाले (**स्वाहुतम्**) सुन्दर प्रकार ग्रहण किये (**विश्वतः**) सब ओर से (**प्रत्यञ्चम्**) पीछे चलने और (**यविष्ठम्**) अतिशय विभाग करने वाले (**महा**) बड़े अग्नि को (**नमसा**) सत्कार वा अन्नादि से जैसे हम लोग (**अगन्म**) प्राप्त हो वैसे इसको तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—विद्वानो को उचित है कि सब को ऐसा उपदेश करे कि जैसे हम लोग सब के अन्त स्थित विद्युत् अग्नि को जानें वैसे तुम लोग भी जानो ॥१॥

फिर प्रेम से उपासना किया ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर (**दमे**) घर मे (**अग्निः**) अग्नि के तुल्य (**जातवेदाः**) उत्पन्न हुए पदार्थों मे व्याप्त होकर विद्यमान (**स्तवे**) स्तुति मे (**मह्ना**) महत्त्व से (**साह्वान्**) सहनशील (**विश्वा**) सब (**दुरितानि**) दुराचरणो को दूर करता है (**सः**) वह (**अवद्यात्**) निन्दनीय (**दुरितात्**) दुष्टाचार से (**नः**) हमारी (**आ, रक्षिषत्**) रक्षा करे (**गृणतः**) शुद्धि करते हुए हम लोगो

की रक्षा करे (उत) और (मघोन) बहुत धन वाले (न.) हमारी (सः) वह रक्षा करे ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे घर मे प्रज्वलित किया अग्नि अन्धकार और शीत की निवृत्ति करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान और अधर्म्माचरण को दूर कर धर्म और विद्या ग्रहण मे प्रवृत्ति कराके सम्यक् रक्षा करता है ॥२॥

फिर वह उपासना किया ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर जो (वसिष्ठाः) सब विद्याओ मे अतिशय कर निवास करने वाले (मतिभिः) बुद्धियों से (त्वाम्) तुमको (वर्द्धन्ति) बढ़ाते हैं उन (त्वे) आप मे प्रीति वालों के (सुषणनानि) सुन्दर विभाग किये (वसु) द्रव्य (सन्तु) हो जो (त्वम्) आप (वरुणः) श्रेष्ठ (उत) और (मित्र) मित्र है सो आप हमारी (सदा) सदा रक्षा करो और हे विद्वानो (यूयम्) तुम लोग ईश्वर के तुल्य (नः) हमारी (स्वस्तिभि.) स्वस्थता-सम्पादक क्रियाओं से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमाल०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वानों से सम्यक् बढ़ाया हुआ अग्नि दरिद्रता का विनाश करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान को निवृत्त करता है। जैसे आप्त लोग सब की सदा रक्षा करते हैं वैसे परमात्मा सब संसार की रक्षा करता है ॥३॥

इस सूक्त में अग्नि, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । वैश्वानरो देवता । १ । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ३ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वर. ॥

अब तीन ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में संन्यासी कैसे होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।

भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (मतीनाम्) मनुष्यो के बीच (वैश्वानराय) सब मनुष्यो के नायक (विश्वशुचे) सब को शुद्ध करने वाले (धियन्धे) बुद्धि को धारण करने हारे (असुरघ्ने) दुष्ट कर्मकारियो को मारने वा तिरस्कार करने वाले (अग्नये) अग्नि के तुल्य विद्यादि शुभ गुणो से प्रकाशमान (यतये) यत्न करने वाले सन्यासी के लिए (बर्हिषि) सभा मे (प्रीणानः) प्रसन्न हुआ राजा (भरे) संग्राम मे (हवि) भोगने वा देने योग्य अन्न को जैसे (न) वैसे (मन्म) विज्ञान और (धीतिम्) धर्म की धारणा को तुम लोग (प्र, भरध्वम्) धारण वा पोषण करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे [उपमा] वाचकलु०—हे गृहस्थो ! जो अग्नि के तुल्य विद्या और सत्य धर्म के प्रकाशक, अधर्म के खण्डन और धर्म के मण्डन से सब के शुद्धिकर्त्ता, बुद्धिमान्, निश्चित ज्ञान देने वाले, अविद्या के विनाशक, मनुष्यो को विज्ञान और धर्म का धारण कराते हुए सन्यासी हो उनके सङ्ग से सब तुम लोग बुद्धि को धारण कर निस्सन्देह होओ। जैसे राजा युद्ध की सामग्री को शोभित करता है वैसे उत्तम सन्यासी जन सुख की सामग्री को शोभित करते हैं ॥१॥

फिर वे सन्यासी किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।

त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् सन्यासिन् आप जैसे अग्नि (शोशुचानः) शुद्ध करता और (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (शोचिषा) प्रकाश से (रोदसी) सूर्य भूमि को अच्छे प्रकार पूरित करता वैसे हम लोगो को (त्वम्) आप (आ, अपृणा) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये हे (वैश्वानर) सब मनुष्यो के नायक (जातवेदः) विद्या को प्राप्त विद्वन् (त्वम्) आप (महित्वा) अपनी महिमा से (देवान्) हम विद्वानो को (अभिशस्तेः) सम्मुख प्रशसा करने वाले दम्भी से (अमुञ्चः) छुड़ाइये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि आप शुद्ध हुआ सब को शुद्ध करता है वैसे सन्यासी लोग स्वयं पवित्र हुए सबको पवित्र करते हैं ॥२॥

फिर वे सन्यासी कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।

वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यो मे प्रकाश करने वाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् संन्यासिन् जैसे (जातः) उत्पन्न हुआ अग्नि (भुवना) लोक-लोकान्तरो को (वि, अख्यः) विशेषकर प्रकाशित करता है वैसे (यत्) जो आप विद्याओ मे प्रसिद्ध मनुष्यो के आत्माओ को प्रकाशित कीजिये तथा (पशून्) गौ आदि को (गोपाः) पशुरक्षको के (न) तुल्य (इर्यः) सत्य मार्ग मे प्रेरक और (परिज्मा) सब ओर से प्राप्त होने वाले हूजिये वह आप (ब्रह्मणे) परमेश्वर, वेद वा चार वेदो के ज्ञाता के लिये (गातुम्) प्रशस्त भूमि को (विन्द) प्राप्त हूजिये (यूयम्) तुम सन्यासी लोग सब (स्वस्तिभिः) स्वस्थता के हेतु क्रियाओ और सत्य उपदेशों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य, परोपकार, विद्या और उपदेश जिनके प्रसिद्ध हैं वे जैसे गौएं बछड़ो की रक्षा करतीं वैसे विद्यादान से सब की रक्षा करने वाले सर्वदा घूमते हुए वेद, ईश्वर को जानने के लिये राज्य-रक्षणार्थ राजा के तुल्य न्यायशील होकर सब मूर्खों को बोध कराने से सदा सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥३॥

इस सूक्त मे अग्नि के दृष्टान्त से सन्यासियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यर्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । १ निचृद्-बृहती छन्द । मध्यमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

अब तीन ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र मे सन्यासी की सेवा कैसे करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।

हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् पुरुष और यजमान लोग (समिधा) दीप्ति के हेतु काष्ठ और (हविर्भिः) होम के साधनो और (देवहूतिभिः) विद्वानो से प्रशंसित की हुई वाणियो के साथ (अग्नये) अग्नि के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे (नमस्विनः) अन्न और सत्कार वाले (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) उत्पन्न पदार्थों मे विद्यमान (शुक्रशोचिषे) वीर्य्य और पराक्रम से दीप्तिमान् तेजस्वी (देवाय) विद्वान् सन्यासी के लिये अन्नादि पदार्थ (दाशेम) देवें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे दीक्षित लोग अग्निहोत्रादि यज्ञ मे घृत की आहुतियो से होम किये अग्नि मे जगत् का हित करते हैं वैसे हम अनियत तिथि वाले सन्यासियो की सेवा से मनुष्यो का कल्याण करें ॥१॥

फिर वे सन्यासी क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।

वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥२॥

पदार्थ—हे (यजत्र) संग करने योग्य (होतः) होम करने वाले (भद्रशोचे) कल्याण के प्रकाशक (देव) दिव्य गुणयुक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् जैसे (वयम्) हम लोग (समिधा) ईंधन से अग्नि मे होम (विधेम) करें वैसे (सुष्टुती) श्रेष्ठ प्रशंसा से (ते) तुम अतिथि के लिये (वयम्) हम (दाशेम) अन्नादिक देवें जैसे ऋत्विज् और यजमान लोग (अध्वरस्य) यज्ञ के बीच (घृतेन) घी तथा (हविषा) होमने योग्य द्रव्य से जगत् का हित करते हैं वैसे (वयम्) हम लोग आप का हित करें। जैसे (वयम्) हम आप की सेवा करें वैसे आप हमको सत्य उपदेश करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे गृहस्थ लोग प्रीति से सन्यासियो की सेवा करें वैसे ही प्रीति से सन्यासी भी इनके कल्याण के अर्थ सत्य का उपदेश करें ॥२॥

फिर गृहस्थ और यति लोग परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।

तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य दोषों के जलाने वाले आप (देवेभिः) विद्वानो के साथ (नः) हमारे (देवहूतिम्) विद्वानों मे स्वीकार की हुई

(वषट्कृतिम्) सत्य क्रिया को (जुषाणः) सेवन करते हुए हमको (उप, आ, याहि) समीप प्राप्त हूजिये हम लोग (युष्मम्) तुम (देवाय) विद्वान् के लिये (दाशतः) सेवन करने वाले (स्याम) होवें (यूयम्) तुम (स्वस्तिभि) सुख क्रियाओं से (न) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ।।३।।

भावार्थ—गृहस्थो को चाहिये कि सर्वेव पूर्ण विद्या वाले सन्यासियो को निमन्त्रण द्वारा प्रार्थना वा सत्कार करें जिससे वे समीप आये हुए उनकी रक्षा और निरन्तर उपदेश करें ।।३।।

इस सूक्त मे अग्नि के दृष्टान्त से यति और गृहस्थ के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल मे चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चदशतमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । १ । ३ । ७ । १० । १२ । १४ विराड्गायत्री । २ । ४ । ५ । ६ । ९ । १३ गायत्री । ८ निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज. स्वरः । ११ । १५ । आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

अब पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में अतिथि कैसा हो इस विषय को कहते हैं ।।

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ।।१।।

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (न) हमारे (नेदिष्ठम्) अति निकट (आप्यम्) प्राप्त होने योग्य को प्राप्त होता है उस (उपसद्याय) समीप मे स्थापन करने योग्य (मीळ्हुषे) जल से जैसे वैसे सत्य उपदेशो से सींचने वाले के लिये (आस्ये) मुख मे (हवि) देने योग्य वस्तु को (जुहुत) देओ ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यति समीप प्राप्त हो उसका तुम सब लोग सत्कार करो और अन्नादि का भोजन कराओ ।।१।।

फिर वे सन्यासी और गृहस्थ परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ।।२।।

पदार्थ—(य) जो (कवि) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुआ सन्यासी (दमेदमे) घर घर मे (पञ्च) पांच (चर्षणीः) मनुष्यो वा प्राणों को (अभि, निषसाद) स्थिर करे उसका (युवा) पूर्ण ब्रह्मचर्य्य के साथ वर्त्तमान (गृहपतिः) घर का रक्षक युवा पुरुष निरन्तर सत्कार करे ।।२।।

भावार्थ—सन्यासीजन सदा सब जगह भ्रमण करे और गृहस्थ इस विरक्त का सत्कार करे और इससे उपदेश सुने ।।२।।

फिर वे दोनों परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान्पात्वंहसः ।।३।।

पदार्थ—(स) वह सन्यासी (अग्नि) अग्नि के तुल्य (नः) हम गृहस्थो की वा (अमात्यम्) उत्तम मन्त्री की और (वेद) धन की (विश्वतः) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे (उत) और (अस्मान्) हमारी (अंहसः) दुष्टाचरण वा अपराध से (पातु) रक्षा करे ।।३।।

भावार्थ—गृहस्थ लोग ऐसी इच्छा करें कि सन्यासी जन हमको ऐसा उपदेश करें कि जिससे हम लोग धन के रक्षक हुए अधर्म के आचरण से पृथक् रहें ।।३।।

फिर वे सन्यासी लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् ।

वस्वः कुविद्वनाति नः ।।४।।

पदार्थ—जो (न) हमारे (वस्व.) धन के (कुवित) बड़े भाग को (वनाति) सेवन करे उस (श्येनाय) श्येन के तुल्य पाखण्डियो के विनाश करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान पवित्र के लिये (दिवः) कामना की (नवम्) नवीन (स्तोमम्) प्रशसा को मैं (नु, जीजनम्) शीघ्र प्रकट करूं ।।४।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो अतिथि लोग श्येन पक्षी के तुल्य शीघ्र चलने वाले, पाखण्ड के नाशक, द्रव्य और विद्या के उपदेशक सन्यासधर्मयुक्त हों उनका गृहस्थ सत्कार करें ।।४।।

किसका धन प्रशंसनीय होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।।

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।

अग्रे यज्ञस्य शोचतः ।।५।।

पदार्थ—हे मनुष्यो (यस्य) जिस (वीरवतः) वीरों वाले के (स्पार्हाः) चाहना करने योग्य (श्रियः) लक्ष्मी शोभाएं (दृशे) देखने को योग्य हो वह (यथा) जैसे (अग्रे) पहिले (शोचत) पवित्र (यज्ञस्य) सङ्ग के योग्य व्यवहार का साधक (रयिः) धन है वैसे सत्क्रिया का सिद्ध करने वाला हो ।।५।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—उसी का धन सफल है जिसने न्याय से उपार्जन किया धन धर्मयुक्त व्यवहार मे व्यय किया होवे ।।५।।

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ।।६।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह (यजिष्ठ) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (हव्यवाहन) देने योग्य पदार्थों को प्राप्त होने वाला (अग्नि) पावक अग्नि (नः) हमारी (इमाम्) इस (वषट्कृतिम्) शुद्ध क्रिया को और (गिर) वाणियों को (वेतु) प्राप्त हो उसको तुम लोग (जुषत) सेवन करो ।।६।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि सम्यक् प्रयुक्त किया हुआ हमारी क्रियाओं का सेवन करता वह तुम लोगो को सेवने योग्य है ।।६।।

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ।।७।।

पदार्थ—हे (नक्ष्य) व्याप्त वस्तुओं को उत्तम प्रकार जानने वाले (आहुत) बहुतों से सत्कार को प्राप्त (विश्पते) प्रजारक्षक (देव, अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन जिस (द्युमन्तम्) प्रकाश वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर हो जिससे उस अग्नि के तुल्य शुद्ध (त्वा) आपको जैसे (नि, धीमहि) निरन्तर ध्यान करें वैसे आप हमको निरन्तर आनन्द मे स्थिर कीजिये ।।७।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे हम लोग आपको न्याय से राज्य पालनरूप व्यवहार मे सदा स्थित करें वैसे आप हमको धर्मयुक्त व्यवहार मे प्रतिष्ठित कीजिए ।।७।।

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ।।८।।

पदार्थ—हे राजन् (अस्मयु) हमको चाहने वाले (सुवीर.) सुन्दर वीर पुरुषो से युक्त (त्वम्) आप (क्षप) रात्रियो (च) और (उस्र) किरण युक्त दिनो मे (अस्मान्) हमको (दीदिहि) प्रकाशित कीजिए (त्वया) आपके साथ (स्वग्नय) सुन्दर अग्नियो वाले (वयम्) हम लोग प्रतिदिन प्रकाशित हों ।।८।।

भावार्थ—हे राजा और राज पुरुषो ! जैसे प्रतिदिन सूर्य प्रकाशित होता है वैसे तुम लोग सदा प्रकाशित होओ ।।८।।

फिर विद्वान् क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः ।

उपाक्षरा सहस्रिणी ।।९।।

पदार्थ—हे विद्यार्थिनि ! जैसे (विप्रास) बुद्धिमान् (नर) मनुष्य (धीतिभिः) अगुलियो से (अक्षरा) अकारादि अक्षरो को (उप, यन्ति) उपाय से प्राप्त करते वे जो कन्या (सहस्रिणी) असख्य विद्या विषयो को जानने वाली है उसको जानें वैसे (त्वा) आपके (सातये) सम्यक् विभाग के लिए बुद्धिमान् मनुष्य (उप) समीप प्राप्त हों ।।९।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे अगूठा और अगुलियो से अक्षरो को जानकर विद्वान् होता है वैसे ही विद्वान् लोग शोधन कर विद्या के रहस्यो को प्राप्त हो ।।९।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।

शुचिः पावक ईड्यः । १० ।

पदार्थ—जो (शुक्रशोचिः) शुद्ध तेजस्वी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यपन से रहित (शुचि.) पवित्र (पावक) शुद्ध पवित्र करने वाला (ईड्य) स्तुति करने वा खोजने योग्य (अग्नि) अग्नि के तुल्य राजा वा सेनाधीश (रक्षांसि) रक्षा करने योग्य कार्यों को (सेधति) सिद्ध करे वह कीर्ति वाला होता है ।।१०।।

भावार्थ—जैसे राजा अन्याय का निवारण कर न्याय का प्रकाश करता है वैसे विद्युत् दरिद्रता का विनाश कर लक्ष्मी को प्रकट करता है ।।१०।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ।।११।।

पदार्थ—हे (सहसः) अति बलवान् के (यहो) पुत्र राजन् अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ईशान) समर्थ (भग) ऐश्वर्यवान् जो आप (न.) हमारे लिए (राधांसि) सुख बढ़ाने वाले धनो को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करें तथा (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्य को (च) भी (सः) सो आप (दातु) दीजिए ।।११।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्निविद्या से धनधान्य सम्बन्धी ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे ही उत्तम राज्य प्रबन्ध से मनुष्य धनाढ्य और सुखी होते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।

त्वम॑ग्ने वी॒रव॒द्यशो॑ दे॒वश्च॑ सवि॒ता भगः॑ ।

दि॒तिश्च॒ दाति॒ वार्य॑म् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य तेजस्वि राजन् ! जैसे (**देव**) दानशील वा प्रकाशमान (**सविता**) प्रेरणा करने वाला वा सूर्य और (**दिति**) दुःखनाशक नीति (**च**) भी (**वार्य्यम्**) स्वीकार के योग्य (**वीरवत्**) जिससे उत्तम वीर पुरुष हों (**यशः**) उस धन वा कीर्ति (**च**) और (**भगः**) ऐश्वर्य को (**दाति**) देती है । इसको (**त्वम्**) आप दीजिये ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो राजा अच्छे प्रकार सम्प्रयुक्त अग्नि आदि के तुल्य प्रजाओं मे उद्योग से और अच्छी नीति से ऐश्वर्य कराके दुःख को खण्डित करता है वही यशस्वी होता है ॥१२॥

फिर वह राजा किसके समान क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

अग्ने॒ रक्षा॑ णो॒ अंह॑सः॒ प्रति॑ ष्म देव॒ रीष॑तः ।

तपि॑ष्ठैर॒जरो॑ दह ॥१३॥

पदार्थ—हे (**देव**) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (**अग्ने**) अग्निवत् तेजस्वी राजन् ! जैसे अग्नि (**तपिष्ठैः**) अत्यन्त तपाने वाले तेजो से काष्ठादि को जलाता है वैसे (**अजरः**) वृद्धपन वा शिथिलतारहित हुए आप (**रीषतः**) हिंसक से (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा कीजिये और (**अंहसः**) पापाचरण से (**स्म**) ही (**प्रति**) प्रतीति के साथ रक्षा कीजिये और दुष्टाचारियो को तेजो से (**दह**) जलाइये ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे अग्नि शीत और अन्धकार से रक्षा करता है वैसे राजा आदि विद्वान् हिंसादि पापरूप आचरण से सब को पृथक् रखते हैं ॥१३॥

फिर राजा और राणी प्रजा के प्रति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अधा॑ म॒ही न॒ आय॒स्यना॑धृष्टो॒ नृपी॑तये । पूर्भ॑वा श॒तभु॑जिः ॥१४॥

पदार्थ—हे राणी जैसे तुम्हारा (**अनाधृष्टः**) किसी से न धमकाने योग्य पति राजा न्याय से मनुष्यो का पालन करता है वैसे (**अध**) अब (**आयसी**) लोह से बनी दृढ (**पूः**) नगरी के समान रक्षिका (**मही**) महती वाणी के तुल्य (**शतभुजिः**) असंख्यात जीवो का पालन करने वाली आप (**नृपीतये**) मनुष्यो के पालन के लिये (**नः**) हम स्त्रीजनो की रक्षा करने वाली (**भव**) हूजिये ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जहां शुभ गुणकर्मस्वभावयुक्त राजा पुरुषों और वैसे गुणो वाली राणी स्त्रियो का न्याय और पालन करें वहां सब काल मे विद्या, आनन्द, अवस्था और ऐश्वर्य बढ़ें ॥१४॥

फिर राणी राजा, प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ दोषा॑वस्तरघाय॒तः । दिवा॒ नक्त॑मदाभ्य ॥१५॥

पदार्थ—हे (**अदाभ्य**) रक्षा करने योग्य राजन् ! (**त्वम्**) आप (**दोषावस्तः**) दिन रात (**अघायतः**) अपने को पाप चाहते हुए दुष्ट के सङ्ग से और (**दिवानक्तम्**) रात्रि दिन सब समय मे (**अंहसः**) अपराध से (**नः**) हमको आप (**पाहि**) रक्षित कीजिये, बचाइये ॥१५॥

भावार्थ—जैसे राजा पुरुषो की निरन्तर रक्षा करे वैसे राणी प्रजा की स्त्रियो की नित्य रक्षा करे ॥१५॥

इस सूक्त मे अग्नि के दृष्टान्त से राजा और राणी के कृत्यों का वर्णन करने से इस सूक्त की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल मे पन्द्रहवा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य षोडशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । ११ भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४ । ६ । १० । बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ६ । ८ । १२ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब राजा प्रजा के सुख के लिये क्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒ना वो॑ अ॒ग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒मा हु॑वे ।

प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं स्व॑ध्व॒रं विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् ॥१॥

पदार्थ—हे प्रजाजनो ! जैसे मैं राजा (**वः**) तुमको (**एना**) इस (**नमसा**) अन्न वा सत्कारादि से (**ऊर्जः**) पराक्रम के (**नपातम्**) विनाश को प्राप्त न होने वाले (**प्रियम्**) चाहने योग्य (**चेतिष्ठम्**) अतिशय कर सम्यक् ज्ञापक (**अरतिम्**) सुख प्रापक (**स्वध्वरम्**) सुन्दर अहिंसादि व्यवहार वाले (**अमृतम्**) अपने स्वरूप से नाशरहित (**विश्वस्य**) ससार के (**दूतम्**) बहुत कार्यो के साधक (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी उपदेशक को (**आहुवे**) स्वीकार करता वैसे तुम भी उसको स्वीकार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे राजा सत्योपदेशकों का प्रचार करे वैसे उपदेशक अपने कर्त्तव्य को प्रीति से यथावत् पूरा करें ॥१॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

स यो॑जते अरु॒षा वि॒श्वभो॑जसा॒ स दु॑द्रव॒त्स्वा॑हुतः ।

सु॒ब्रह्मा॑ य॒ज्ञः सु॒शमी॒ वसू॑नां दे॒वं राधो॒ जना॑नाम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो यदि (**सः**) वह (**स्वाहुतः**) सुन्दर प्रकार आह्वान किया हुआ (**सः**) वह (**सुब्रह्मा**) सुन्दर अन्न वा धनों से युक्त वा अच्छे प्रकार चारो वेद का ज्ञाता (**यज्ञः**) सत्कार के योग्य (**सुशमी**) सुन्दर कर्मो वाला (**वसूनाम्**) धनो का (**राधः**) धन (**जनानाम्**) मनुष्यो के बीच (**देवम्**) उत्तम (**विश्वभोजसा**) विश्व के रक्षक (**अरुषा**) घोडों के तुल्य जल अग्नि को युक्त करता और (**दुद्रवत्**) शीघ्र प्राप्त होता हुआ (**योजते**) युक्त करता है वह इच्छासिद्धि वाला होता है ॥२॥

भावार्थ—जो राजा प्रजापालन के अर्थ सदा सुस्थिर है उसको जो दुःख-निवारण के लिये बुलावें उनको शीघ्र प्राप्त होकर सुखी करता है उत्तम आचरणों वाला विद्वान् होता हुआ प्रतिक्षण प्रजा के हित की इच्छा करता है वही सब को पूजनीय होता है ॥२॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद॑स्य शो॒चिर॑स्थादा॒जुह्वा॑नस्य मी॒ळ्हुषः॑ ।

उद्धू॒मासो॑ अरु॒षासो॑ दिवि॒स्पृशः॒ सम॒ग्निमि॑न्धते॒ नरः॑ ॥३॥

पदार्थ—जो (**नरः**) मनुष्य जिस (**आजुह्वानस्य**) अच्छे प्रकार होम किये द्रव्य को प्राप्त (**मीळ्हुषः**) सेचक (**अस्य**) इस अग्नि की (**शोचिः**) दीप्ति (**उदस्थात्**) उठती है (**दिविस्पृशः**) प्रकाश मे स्पर्श करने वाले (**धूमासः**) धूम और (**अरुषासः**) अरुणवर्ण लपटें (**उत्**) उठती हैं उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**समिन्धते**) सम्यक् प्रकाशित करते हैं वे उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ऊर्ध्वगामी धूमध्वजा वाले तेजोमय वह्नि आदि से प्रजा के रक्षक अग्नि को सम्यक् प्रयुक्त करो जिस में तुम्हारे कार्यों की सिद्धि होवे ॥३॥

फिर राजादि मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह ।

विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना॒ रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥४॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) बलवान् के (**सूनो**) पुत्र विद्वन् ! जैसे हम लोग (**यशस्तमम्**) अतिशय कीर्ति करने वाले (**तम्**) उस अग्नि को (**दूतम्**) दूत (**कृण्महे**) करते वैसे (**त्वा**) आपको मुख्य करते है । आप (**वीतये**) विज्ञानादि को प्राप्त करने के लिये (**देवान्**) दिव्य गुणो वा पदार्थों को (**आ, वह**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वा कीजिये (**विश्वा**) सब (**मर्त्तभोजना**) मनुष्यो के भोजनो वा पालनो को (**रास्व**) दीजिये जैसे (**यत्**) जिस अग्नि को कार्यसिद्धि के लिये प्रयुक्त करते वैसे (**तत्**) उसको और (**त्वा**) आपको (**ईमहे**) याचना करते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो सब कार्य्यों के साधक विद्युत् अग्नि को दूत और राजकार्यों के साधक विद्या वा विनय मे युक्त पुरुष को राजा करते हैं वे सब ऐश्वर्य और पालन को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वम॑ग्ने गृ॒हप॑ति॒स्त्वं होता॑ नो अध्व॒रे ।

त्वं पोता॑ विश्ववार॒ प्रचे॑ता॒ यक्षि॒ वेषि॑ च॒ वार्य॑म् ॥५॥

पदार्थ—हे (**विश्ववार**) सब को स्वीकार करने योग्य (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (**गृहपतिः**) घर के रक्षक ! (**त्वम्**) आप (**नः**) हमारे (**अध्वरे**) अहिंसादि लक्षणयुक्त धर्म के आचरण मे (**होता**) दाता (**त्वम्**) आप (**पोता**) पवित्रकर्त्ता (**त्वम्**) आप (**प्रचेताः**) अच्छे प्रकार जताने वाले आप (**वार्य्यम्**) स्वीकार योग्य धर्मयुक्त व्यवहार को (**यक्षि**) सङ्गत करते (**च**) और (**वेषि**) व्याप्त होते हैं उन आपकी हम लोग याचना करते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—पूर्व मन्त्र से यहां (ईमहे) पद की अनुवृत्ति आती है । जैसे अग्नि घर का पालक, सुखदाता, यज्ञ मे पवित्रकर्त्ता, शरीर मे चेतनता कराने वाला, सब विश्व का सग करता और व्याप्त होता है वैसे ही मनुष्य होवे ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ नं ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥

पदार्थ—हे (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि वा धर्मयुक्त कर्म करने वाले पुरुष (यः) जो (सुशंसः) सुन्दर प्रशंसायुक्त जन (दक्षते) वृद्धि को प्राप्त होता उस (विश्वम्) सब (ऋत्विजम्) ऋतुओं के योग्य काम करने वाले को (च) और (नः) हमको (ऋते) सत्यभाषणादि रूप सगत करने योग्य व्यवहार मे (त्वम्) आप (आ, शिशीहि) तीव्र उद्योगी कीजिये (हि) जिस कारण आप (रत्नधा) उत्तम धनो के धारणकर्त्ता (असि) हैं इस कारण (यजमानाय) परोपकारार्थ यज्ञ करते हुए के लिये (रत्नम्) रमणीय धन को प्रकट (कृधि) कीजिये ॥६॥

भावार्थ—इस ससार में जो पुरुष धनाढ्य हो वह निर्धनो को उद्योग कराके निरन्तर पालन करे। जो सत् श्रेष्ठ कर्मों मे बढ़के उन्नत होते है उन को धन्यवाद और धनादि पदार्थों के दान से उत्साहयुक्त करे ॥६॥

फिर वह राजा किन का सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ।

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥७॥

पदार्थ—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार सत्कार को प्राप्त (अग्ने) विद्या विनय के प्रकाशक अग्नि के तुल्य तजस्वि राजन ! (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (गोनाम्) गौ आदि पशुओ के (ऊर्वान्) रक्षको को (दयन्त) दया करते वा सुरक्षित रखते और (यन्तार) शुभ कर्मों को प्राप्त होने वाले (मघवानः) बहुत प्रकार के धनो से युक्त (सूरय) धर्मात्मा विद्वान् (त्वे) आप मे (प्रियास) प्रीति करने वाले (सन्तु) हो उनका आप नित्य सत्कार कीजिये ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु० —हे मनुष्यो ! जैसे राजा सब मे दया का विधान कर और विद्वानो का सत्कार करके अपने राज्य मे धनाढ्यो को बसावे वैसे प्रजाजन भी राजा के हितैषी होवें ॥७॥

राजा को किनका पालन वा किनको दण्ड देना चाहिए
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥८॥

पदार्थ—हे (सहस्य) बल से युक्त राजन् ! (येषाम्) जिन के (दुरोणे) घर म (घृतहस्ता) हाथ म घी लेने वालो के तुल्य (प्राता) व्यापक (इला) प्रशसा योग्य वाणी (आ, निषीदति) अच्छे प्रकार निरन्तर स्थिर होती (तान्) उनकी आप (त्रायस्व) रक्षा कीजिए (दीर्घश्रुत्) दीर्घ काल तक सुनने वाले आप (नः) हमारे (शर्म) घर को (यच्छा) ग्रहण कीजिए जो (द्रुहः) द्रोही (निदः) निन्दक है उनका (अपि) भी अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिए ॥८॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो सत्यवाणी वाले, वेद ज्ञाता हो उनको नित्य सुख दीजिए और जो द्रोहादि दोषयुक्त आप्तो के निन्दक है उनको शीघ्र दण्ड दीजिए ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य न्याय से प्रकाशित राजन् ! [जो] (वह्नि) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान विद्या और सुख प्राप्त कराने वाले (विदुष्टर) अत्यन्त विद्वान् हैं (स) सो आप (मन्द्रया) प्रशसित आनन्द देने वाली (जिह्वया) सत्य भाषणयुक्त वाणी मे (च) और (आसा) मुख मे (मघवद्भ्य) प्रशसित धन वाले (न) हम लोगो के लिए (रयिम्) धन को (आ, वह) प्राप्त कराइए (च) और (हव्यदातिम्) होम के वा ग्रहण करने के योग्य वस्तुओ के खण्डन को (सूदय) नष्ट कीजिए ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु० —जैसे अग्नि सब पृथिव्यादि तत्त्वो से हीरा आदि रत्नो को सब ओर से पका के देता है वैसे राजा, धनाढ्यो के सम्बन्ध से निर्धन को धनवान् कराके सुख प्राप्त कराए, सत्य मधुर वाणी से प्रजाजनो को शिक्षा करे जिससे ये अयुक्त व्यवहार में धनहानि न करें ।

फिर वह राजा प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥१०॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अतिशय कर जवानो मे श्रेष्ठ राजन् (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अन्न की (कामेन) कामना से (शतम्) सैकडो (मघा) स्वीकार करने योग्य (अश्व्या) महत् लोगों मे प्रकट होने वाले (राधांसि) धनो को सब को (ददति) देते हैं (तान्) उनको (पर्तृभि) रक्षक (पूर्भि) नगरियो के साथ (त्वम्) आप (अंहस) दुष्टाचरण से (पिपृहि) रक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थ— हे राजन् ! जो धर्मात्मा उद्योगी जनो को उनसे श्रम करा के धन और अन्न देते हैं उन नगरी और पालको के साथ वर्त्तमानो को अधर्माचरण से पृथक् रक्खो जिससे धर्मपूर्वक उद्योग से पुष्कल धन और अन्न पाकर जगत् के हितार्थ निरन्तर दान करें ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (द्रविणोदा) धनदाता (देव) विद्वान् (व) तुमको (पूर्णाम्) पूरी (आसिचम्) अच्छे प्रकार सेचन वा कान्ति को (विवष्टि) विशेष कर कामना करता है (वा) अथवा जो (देव) दिव्यगुणधारी विद्वान् (वः) तुमको (ओहते) वितर्कित करता उसको (उत, सिञ्चध्वम्) ही सींचो (वा) अथवा (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही (उप, पृणध्वम्) समीप मे तृप्त करो ॥११॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग मनुष्यो की कामना पूर्ण करते है उनको सब सुखी करें ॥११॥

फिर अध्यापक और अध्येता क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥१२॥

पदार्थ—जो (अग्नि) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान विद्वान् (विधते) विधान करते हुए (दाशुषे) दाता (जनाय) जन के लिए (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम युक्त (रत्नम्) रमणीय धन को (दधाति) धारण करता जिसको (देवा) विद्वान् लोग (अध्वरस्य) अहिंसारूप यज्ञ के कर्त्ता वा (होतारम्) विद्या के ग्रहीता (वह्निम्) कार्यों को चलाने और (प्रचेतसम) अच्छे प्रकार जनाने वाले जन को (अकृण्वत) करे (तम्) उसको सब सुरक्षित करावें ॥१२॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो जितेन्द्रिय तीव्र बुद्धि वाले, विद्या ग्रहण के अर्थ प्रवृत्त विद्यार्थी हो उनको अहिंसाशील, बुद्धिमान, विद्या और धर्म के धारक करो ॥१२॥

इस सूक्त मे अग्नि, विद्वान, राजा, यजमान, पुरोहित, उपदेशक और विद्यार्थी के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ।

यह सप्तम मण्डल मे सोलहवा सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता । १ । ३ । ४ । ६ । ७ आर्च्युष्णिक् छन्द. । ऋषभ स्वर । २ साम्नी त्रिष्टुप्छन्द. । धैवत स्वर । ५ साम्नी पङ्क्तिश्छन्द । पचम स्वर. ।

अब विद्यार्थी किसके तुल्य कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ।

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! जैसे (सुषमिधा) समिधा के तुल्य शोभायुक्त धर्मानुकूल क्रिया मे (समिद्ध) प्रदीप्त अग्नि होता है वैसे (भव) हूजिये (उत) और जैसे अग्नि (उर्विया) पृथिवी के साथ (बर्हिः) बढे हुए जल का विस्तार करता हैं वैसे प्रकार होकर आप (विस्तृणीताम्) विस्तार कीजिए ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जैसे इन्धनो से अग्नि प्रदीप्त होता है, वर्षा जल से पृथिवी को आच्छादित करता है वैसे ही ब्रह्मचर्य, सुशीलता और पुरुषार्थ से विद्यार्थी जन सुप्रकाशित होकर जिज्ञासुओ के हृदयो मे विद्या का विस्तार करते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक और विद्यार्थी परस्पर कैसे वर्त्ते इस विषय
को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥२॥

पदार्थ हे विद्यार्थी जैसे (द्वार) द्वार (उशती) कामना वाली हृदय को प्यारी पत्नियो को विद्वान् (उत) और (उशत) कामना करते हुए (देवान्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वान् पतियो को स्त्रियां (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर सेवन करें वा जैसे अग्नि (इह) इस जगत् मे सब को प्राप्त होता (उत) और दिव्य गुणो को प्राप्त कराता है वैसे ही आप (आ, वह) प्राप्त कीजिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो विद्यार्थी विद्या की कामना से आप्त अध्यापको का सेवन करते जिन उत्तम विद्यार्थियो को अध्यापक चाहते वे परस्पर कामना करते हुए विद्या की उन्नति कर सकते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अग्ने॑ वी॒हि ह॒विषा॒ यक्षि॑ दे॒वान्त्स्व॑ध्व॒रा कृ॑णुहि जातवेदः ॥३॥

पदार्थ—हे (जातवेद.) विद्या को प्राप्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थिन् तू विद्युत् के तुल्य (हविषा) ग्रहण किये पुरुषार्थ से विद्याओं को (वीहि) प्राप्त हो (देवान्) विद्वान् अध्यापकों का (यक्षि) सग कर और (स्वध्वरा) सुन्दर अहिंसारूप व्यवहार वाले कामों को (कृणुहि) कर ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्यार्थिजन जैसे विद्युत् मार्ग को शीघ्र व्याप्त होते वैसे पुरुषार्थ से शीघ्र विद्याओं को प्राप्त हों और अध्यापक पुरुष उनको शीघ्र विद्वान् करें ॥३॥

कौन अध्यापक श्रेष्ठ है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

स्व॒ध्व॒रा क॑रति जा॒तवे॑दा॒ यक्ष॑द्दे॒वाँ अ॒मृता॑न्पि॒प्रय॑च्च ॥४॥

पदार्थ—जो (जातवेदा·) विद्या में प्रसिद्ध अध्यापक विद्यार्थियों को (देवान्) विद्वान् और (स्वध्वरा) अच्छे प्रकार अहिंसा स्वभाव वाले (करति) करे (अमृतान्) अपने स्वरूप से मृत्युरहितों को (यक्षत्) सगति करे (च) और इनको (पिप्रयत्) तृप्त करे वह विद्यार्थियों को सेवने योग्य है ॥४॥

भावार्थ—जिन अध्यापकों के विद्यार्थी शीघ्र विद्वान्, सुशील, धार्मिक होते हैं वे ही अध्यापक प्रशसनीय होते हैं ॥४॥

फिर अध्यापक से विद्यार्थी जन क्या पूछें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वंस्व॒ विश्वा॒ वार्या॑णि प्रचेतः स॒त्या भ॑वन्त्वा॒शिषो॑ नो अ॒द्य ॥५॥

पदार्थ—हे (प्रचेत) उत्तम बुद्धि से युक्त पुरुष आप (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य विद्वानों का (वस्व) सेवन कीजिये जिससे (अद्य) आज (न) हमारी (आशिष) इच्छा (सत्या.) सत्य (भवन्तु) होवें ॥५॥

भावार्थ—हे अध्यापक ! आप विवेक से सत्य शास्त्रों को पढ़ाइये और सुशिक्षा करिये जिससे हम लोग सत्य कामना वाले हों ॥५॥

फिर विद्यार्थी किसके तुल्य किसका सेवन करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामु॒ ते द॑धिरे हव्य॒वाहं॑ दे॒वासो॑ अग्न ऊ॒र्ज आ नपा॑तम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विद्या से प्रकाशित (ते) आपके (ऊर्ज) पराक्रमयुक्त (देवास.) उत्तम स्वभाव वाले विद्यार्थी जन (नपातम्) जिसका गिरना नहीं विद्यमान उस (हव्यवाहम्) होमे हुए पदार्थों को पहुचाने वाले अग्नि के समान (त्वाम् उ) तुझे ही (आ, दधिरे) अच्छे प्रकार धारण करें ॥६॥

भावार्थ—जैसे अग्निविद्या जानने वाले ऋत्विज् अग्नि की सेवा करते हैं वैसे ही विद्यार्थी जन अध्यापक की सेवा करें ॥६॥

फिर वे परस्पर क्या क्या देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते ते॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम म॒हो नो॒ रत्ना॒ वि द॑ध इया॒नः ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक ! जो आप (न) हमारे लिये (इयान) प्राप्त होते हुए (मह) बड़े-बड़े (रत्ना) रत्नों को (वि, दध) विधान करते हो (ते) उन (देवाय) विद्वान् अध्यापक आप के लिये (ते) वे हम लोग (दाशत) देने वाले (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थ—जैसे अध्यापक जन प्रीति के साथ विद्यायें देवें वैसे विद्यार्थी जन वाणी, मन, शरीर और धनों से अध्यापकों को तृप्त करें ॥७॥

इस सूक्त में अध्यापक और विद्यार्थियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्याऽष्टादशतमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि. । १-२१ इन्द्र. । २२-२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिर्देवता । १ । १७ । २१ पङ्क्ति २ । ४ । १२ । २२ भुरिक् पङ्क्ति । ८ । १३ । १४ स्वराट्पङ् क्तिश्छन्द. । पञ्चम स्वर । ३ । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ११ । १६ । १६ । २० निचृत्त्रिष्टुप् । ६ । १० । १५ । १८ । २३ । २४ । २५ । त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वरः ॥

अब पच्चीस ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा श्रेष्ठ होता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वे ह॒ यत्पि॒तर॑श्चिन्न इन्द्र॒ विश्वा॑ वा॒मा ज॑रि॒तारो॒ अस॑न्वन् ।
त्वे गाव॑: सु॒दुघा॒स्त्वे ह्यश्वा॒स्त्वं वसु॑ देवय॒ते वनि॑ष्ठः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन् (त्वे) आपके होते (यत्) जो (न) हमारे (पितर) ऋतुओं के समान पालना करने वाले (चित्) और (जरितारः) स्तुतिकर्त्ता जन (विश्वा) समस्त (वामा) प्रशंसा करने योग्य पदार्थों की (असन्वन्) याचना करते हैं (त्वे, ह) आपके होते (सुदुघा) सुन्दर काम पूरने वाली (गाव) गौएं हैं उनको मागते हैं (त्वे, हि) आप ही के होते (अश्वा.) जो बड़े बड़े घोड़े हैं उनको मागते हैं जो आप (देवयते) कामना करने वाले के लिये (वनिष्ठ.) अतीव पदार्थों को अलग करने वाले होते हुए (वसु) धन देते हैं सो (त्वम्) आप सब को सेवा करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि राजा सूर्य के समान विद्या और न्याय का प्रकाशक हो तो सम्पूर्ण राज्य कामना से अलङ्कृत होकर राजा को पूर्ण कामना वाला करे तथा धार्मिक जन धर्म का आचरण करें और अधार्मिक जन भी पापाचरण को छोड़ धर्मात्मा होवें ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

राजे॑व॒ हि जनि॑भि॒: क्षेष्ये॒वाव॒ द्युभि॑र॒भि वि॒दुष्क॒विः सन् ।
पि॒शा गिरो॑ मघव॒न् गोभि॒रश्वै॑स्त्वाय॒तः शि॑शीहि रा॒ये अ॒स्मान् ॥२॥

पदार्थ—हे (मघवन) ऐश्वर्ययवान् विद्वान् जो आप (जनिभि) उत्पन्न हुई प्रजाओं से (राजेव) जैसे राजा वैसे (गोभिः) धेनु और (अश्वै) घोड़ों से (राये) धन के लिये (त्वायत.) तुम्हारी कामना करते हुए (अस्मान्) हम लोगों को (शिशीहि) तेज बुद्धि वाले करो । जो (विदु) विद्वान् (कवि) कविता करने में चतुर (सन) होते हुए (पिशा) रूप से (गिरः) वाणियों को तीक्ष्ण करो (द्युभि) दिनों में (हि) ही (अभि, अव, क्षेषि) सब ओर से निरन्तर निवास करते हो (एव) उन्हीं आपको हम लोग निरन्तर उत्साहित करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—जैसे सूर्य सब पदार्थों के साथ प्रकाशित होता है वैसे जो राजा प्रकाशमान हो और जो हम लोगों को सत्य के चाहने वालों को प्रसन्न करता है वह भी सदा प्रसन्न हो ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒मा उ॑ त्वा पस्पृधा॒नासो॒ अत्र॑ म॒न्द्रा गिरो॑ देव॒यन्ती॒रुप॑ स्थुः ।
अ॒र्वाची॑ ते प॒थ्या॑ रा॒य ए॑तु॒ स्याम॑ ते सुम॒ताविन्द्र॒ शर्म॑न् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् जिन (त्वा) आपको (पस्पृधानास.) स्पर्धा करते अर्थात् प्रति चाहना से चाहते हुए (इमा) यह प्रजाजन और (देवयन्ती) विद्वानों की कामना करती हुई (मन्द्रा) आनन्द देने वाली (गिर) वाणियां (उप, स्थु) उपस्थित हों और (ते) आपकी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) मार्ग में उत्तम नीति (राय·) धनों को (एतु) प्राप्त हो उन (ते) आपके (अत्र) इस (सुमतौ) श्रेष्ठमति और (शर्मन्) घर में (उ) भी हम लोग सम्मत (स्याम) हों ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! यदि आप सर्वविद्यायुक्त, सुशिक्षित, मधुर, श्लक्ष्ण, सत्यवाणियों को धारण करो तो तुम्हारी नीति सब को पथ्य हो सब प्रजाजन अनुरागयुक्त होवें ॥ ३ ॥

राजा सर्वसम्मति से राजशासन करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धे॒नुं न त्वा॑ सूयव॑से॒ दुदु॑क्ष॒न्नुप॒ ब्रह्मा॑णि ससृजे॒ वसि॑ष्ठः ।
त्वामिन्मे॒ गोप॑तिं॒ विश्व॑ आ॒हा न॒ इन्द्र॑: सुम॒तिं ग॒न्त्वच्छ॑ ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (वसिष्ठ) अतीव धन (सूयवसे) सुन्दर भक्षण करने योग्य घास के निमित्त (धेनुम्) गौ को (न) जैसे वैसे (त्वा) तुम्हें (दुदुक्षन्) कामों से परिपूर्ण करता हुआ (ब्रह्माणि) बहुत अन्न वा धनों को (उप, ससृजे) सिद्ध करता है (मे) मेरी (गोपतिम्) इन्द्रियों की पालना करने वाले (त्वाम्) तुम्हें (विश्व) सब जन जो (आह) कहे (इत्) उसी (न) हमारी (सुमतिम्) सुन्दर मति को (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त राजा आप (अच्छ, आ, गन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—यदि आप हम लोगों को विद्वानों की सम्मति में वर्त्तकर राज्य शासन करें वा जो कोई प्रजाजन स्वकीय सुख दु ख प्रकाश करने वाले वचन को सुनावे उस सब को सुनकर यथावत् समाधान दें तो आप को सब हम लोग गौ दूध से जैसे वैसे राज्यैश्वर्य से उन्नत करें ॥४॥

फिर राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्णां॑सि चित्पप्रथा॒ना सु॒दास॒ इन्द्रो॑ गा॒धान्य॑कृणोत्सुपा॒रा ।
शर्ध॑न्तं शि॒म्युमु॒चथ॑स्य॒ नव्य॒: शापं॒ सिन्धू॑नामकृणो॒दश॑स्तीः ॥५॥

पदार्थ—हे राजा (नव्य) नवीनों में प्रसिद्ध आप (इन्द्र) सूर्य वा बिजुली (चित्) के समान (सुदासे) सुन्दर देने योग्य व्यवहार में (पप्रथाना) विस्तीर्ण (अर्णांसि) जल जो (गाधानि) परिमित हैं उनको (सुपारा) सुन्दरता से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करते हैं (सिन्धूनाम्) नदियों को (अशस्तीः)

अप्रशंसित जलरहित (अह्नणोत्) करते हैं (उक्थस्य) कहने योग्य (वर्द्धन्मम्) बल करते हुए (शिम्यून्) अपने को कर्म की कामना करने वाले [के] प्रति (शापम्) शाप अर्थात् जिससे दण्ड देते हैं ऐसे काम को करें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे राजा ! जैसे सूर्य वा बिजुली समुद्रस्थ जलों को सुख से पार जाने योग्य करता है वैसे ही व्यवहारो को भी परिमाणयुक्त और सुगम कर दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का सम्मान कर दुष्टो की अधर्म-क्रियाओ को निन्दित आप सदा करें ॥५॥

फिर राजा किनका सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।

श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६॥

पदार्थ—हे राजा (राये) धन के लिये जो (तुर्वशः) शीघ्र वश करने और (पुरोळाः) आगे जाने (यक्षुः) दूसरों से मिलने वाला (इत्) ही (आसीत्) है वा (च) और जो (मत्स्यासः) समुद्रो मे स्थिर मछलियो के समान (अपीव) अतीव (निशिताः) निरन्तर तीक्ष्णस्वभावयुक्त (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले (द्रुह्यवः) दुष्टों की निन्दा करने वाले (च) भी (श्रुष्टिम्) शीघ्रता (चक्रुः) करते हैं जो (सखा) मित्र (विषूचोः) विद्या और धर्म का सुन्दर शील जिनमे विद्यमान उनके (सखायम्) मित्र को (अतरत्) तरता है उन सबो का आप सदा सत्कार करो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—हे राजन् ! जो सब शुभ कर्म्मों मे आगे, अच्छे प्रकार सिद्धि की उन्नति करने वाले, बड़े मगरमच्छो के समान गम्भीर आशय वाले, शीघ्रकारी, एक दूसरे मे मित्रता रखने वाले हो उन अतीव बुद्धिमानो का सत्कार कर राज्यकार्यों मे नियुक्त करो ॥६॥

फिर राजजन कैसे श्रेष्ठ हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥७॥

पदार्थ—हे राजा जो (पक्थासः) पाकविद्या मे कुशल (भलानसः) सब ओर से कहने योग्य (अलिनासः) जिनकी सुभूषित नासिका (विषाणिनः) जिनके सीग के समान तीक्ष्ण नख विद्यमान (शिवासः) और जो मङ्गलकारी आपको (आ, भनन्त) अच्छे प्रकार उपदेश करें (तृत्सुभ्यः) हिंसका से (युधा) युद्ध से (नॄन्) मनुष्यों को (आ, अजगन्) प्राप्त हो (यः) जो (सधमा) समान स्थान मे मानते हुए (आर्यस्य) उत्तम जन के (गव्या) उत्तम वाणी मे प्रसिद्ध हुओ को (आनयत्) अच्छे प्रकार पहुचाता है उन सब की आप उत्तमता से रक्षा करो ॥७॥

भावार्थ—हे राजा जो तपस्वी पुरुषार्थी वक्ता जन उत्तम रूप वाले मङ्गल जिनके आचरण युद्ध विद्या मे कुशल आर्यजन आपको जिस जिस का उपदेश दें उस उस को अप्रमत्त होते हुए सदा ठानो अर्थात् सर्वदैव उसका आचरण करो ॥७॥

कौन इस लोक मे भाग्यहीन होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।

मह्नाविव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८॥

पदार्थ—जैसे (मह्ना) बड़प्पन से (पत्यमानः) पति के समान आचरण करता (चायमानः) बुद्धिवृद्धि को प्राप्त होता हुआ (कविः) प्रत्येक काम मे आक्रमण करने वाली जिसकी वह (पशुः) गो आदि पशु (अशयत्) सोता है (परुष्णीम्) पालने वाली (पृथिवीम्) भूमि को (आविव्यक्) विविध प्रकार से आक्रमण करता है वैसे जो (अचेतसः) निर्बुद्धि (दुराध्यः) दुष्टबुद्धि पुरुष (अदितिम्) उत्पत्ति काम को (स्रेवयन्तः) सेवते हुए (वि, जगृभ्रे) विशेषता मे लेते हैं वे वर्त्तमान हैं ऐसा जानो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्यो ! वे ही इस ससार मे पशु के तुल्य पामर जन हैं जो स्त्री मे आसक्त हैं ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।

सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९॥

पदार्थ—जैसे (सुदासः) सुन्दर दान जिसके विद्यमान वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अर्थम्) द्रव्य के (न) समान (न्यर्थम्) निश्चित अर्थ वाले को (आशुः) शीघ्रकारी होता हुआ (परुष्णीम्) पालन करने वाली नीति को (चन) भी (अभिपित्वम्) और प्राप्त होने योग्य पदार्थ को (जगाम) प्राप्त होता है (अमित्रान्) मित्रतारहित अर्थात् शत्रुओं को (अरन्धयत्) नष्ट करे और (मानुषे) मनुष्यों के इस सग्राम मे (वध्रिवाचः) जिनकी वृद्धि देने वाली वाणी वे (सुतुकान्) सुन्दर जिनके सन्तान हैं उनकी रक्षा करते हैं वैसे और भी मनुष्य (इत्) उसको (ईयुः) प्राप्त हों ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है हे राजजनो ! जैसे न्यायाधीश राजा न्याय से प्राप्त पदार्थ को लेता और अन्याय से उत्पन्न हुए पदार्थ को छोड़ता तथा श्रेष्ठो की सम्यक् रक्षा कर दुष्टों को दण्ड देता है वही उत्तम होता है ॥९॥

फिर जीव अपने अपने किये हुए कर्म के फल को प्राप्त होते [ही] हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।

पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यवसात्) भक्षण करने योग्य घास आदि से (अगोपाः) जिनकी रक्षा विद्यमान नहीं वे (गावः) गौएं (न) जैसे वा जैसे (अभिमित्रम्) सन्मुख [= सम्मुख] मित्र वैसे (चितासः) सचय अर्थात् सचित पदार्थों मे युक्त जीव (यथाकृतम्) जैसे किया कर्म वैसे उसके फल को (ईयुः) प्राप्त हों वा पहुचें वा जैसे (पृश्निगावः) अन्तरिक्ष के तुल्य किरणों से युक्त (पृश्निनिप्रेषितासः) अन्तरिक्ष मे निरन्तर प्रेषित किये हुए (नियुतः) निश्चित गति वाले वायु (च) और (रन्तयः) जिनमे रमते हैं वे वायु (श्रुष्टिम्) शीघ्रता (चक्रुः) करते हैं वे वैसा ही फल पाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे मनुष्यो ! जैसे चरवाहो से रहित गौएँ अपने बछड़ो को और वायु अन्तरिक्षस्थ किरणो को और मित्र मित्र को प्राप्त होता है वैसे ही अपने किए हुए शुभ अशुभ कर्मों को जीव ईश्वरव्यवस्था से प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।

दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (दस्मः) दुःख के विनाश करने वाले के (न) समान (वैकर्णयोः) विविध प्रकार के कामो मे उत्पन्न हुए व्यवहारो का (नि, अस्तः) निरन्तर प्रक्षेपण करने अर्थात् औरो के कानो मे डालने वाला (राजा) विराजमान (जनान्) मनुष्यों को (सद्मन्) जिसमें बैठते हैं उस घर में (निशिशाति) निरन्तर तीक्ष्ण करता है और (विंशतिम्, च, एकम्, च) बीस और एक भी अर्थात् इक्कीस (श्रवस्या) अन्न मे उत्तम गुण देने वालो को (अकृणोत्) सिद्ध करता है वह (एषाम्) इन वीर मनुष्यो के बीच (इन्द्रः) सूर्य (बर्हिः) अच्छे प्रकार बढ़े हुए (सर्गम्) जल को जैसे वैसे (शूरः) निर्भय शत्रुओ को जीतता है ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है। जो राजा मनुष्यों को पुत्र के समान पालता, अहिंसक के समान सब को आनन्दित करता और सूर्य के समान न्याय विद्या और बलो को प्रकाशित कर शत्रुओ को जीतता है, वही सब सुखो को प्राप्त होता है ॥११॥

फिर राजा अमात्य और प्रजा पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।

वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्नु त्वा ॥१२॥

पदार्थ—हे राजन् ! (ये) जो (अत्र) यहा (सख्याय) मित्रता के लिए (सख्यम्) मित्रपन को (वृणानाः) स्वीकार करते और (त्वायन्तः) तुम्हारी चाह करते हुए धार्मिक विद्वान् पुरुष (त्वा) तुमको (अनु, अमदन्) आनन्दित करते है (अध) इसके अनन्तर उनसे जिस कारण (श्रुतम्) सुना इस कारण उनमे से (कवषम्) उपदेश करने वाले (वृद्धम्) अवस्था और विद्या से अधिक को और (द्रुह्युम्) दुष्टो से द्रोह करने वाले को जो (वज्रबाहुः) शस्त्रो को हाथो मे रखने वाला (निवृणक्) निरन्तर विवेक से स्वीकार करता और (अप्सु) जलो मे (अनु) अनुकूलता से स्वीकार करता है उन सबको वा उसको सब सत्कार करें ॥१२॥

भावार्थ—हे राजा ! जो आपके अनुकूल वर्त्तमान हैं और जिनके अनुकूल आप हैं वे सब मित्र मित्र होकर न्याय से प्रजाओ का पुत्र के समान पालन कर आनन्द भोगें ॥१२॥

फिर वे राजा आदि कैसा बल करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।

व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् राजा (सहसा) बल से (एषाम्) इन शत्रुओ के (सप्त) सातो (पुरः) पुरो को (वि, दर्दः) विशेषता से छिन्न-भिन्न करता वा (आनवस्य) सब ओर से नवीन के (गयम्) प्रजा वा घर को (वि, भाक्) विशेषता से सेवता है तथा (पूरुम्) पूरण बुद्धि वाले मनुष्य को और (विदथे) सग्राम मे (मृध्रवाचम्) हिंसा करने वाली जिसकी वाणी और

(**तृत्सवे**) दूसरे हिंसक के लिए सन्मुख [= सम्मुख] विद्यमान है उसको हम लोग (**जेष्म**) जीतें जिससे हमारी (**सद्यः**) शीघ्र (**विश्वा, बृहितानि**) समस्त सेना के जन वृद्धि—उन्नति को प्राप्त हों ॥१३॥

भावार्थ—जो धार्मिक अपने प्रधानो से सहित वा राज्य कार्य्यों मे शूरवीर पुरुष अपने से सतगुने अधिक भी दुष्ट शत्रुओ को जीत सकते हैं वे प्रजा पालने को योग्य होते हैं ॥१३॥

राजादि मनुष्यों से कितना बल बढ़वाना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

पदार्थ—जिन्होंने (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्त राजा के (**विश्वा**) समस्त (**इत्**) ही (**वीर्या**) पराक्रम (**कृतानि**) उत्पन्न किये वे (**गव्यव**) अपने को भूमि चाहते (**द्रुह्यव**) और दुष्ट अधर्मी जनो को मारने की इच्छा करते हुए (**अनव, षष्टि, वीरास**) साठ वीर अर्थात् शरीर और आत्मा के बल और शूरता से युक्त मनुष्य (**षट् सहस्रा**) छ सहस्र शत्रुओ को (**अधि**) अधिकता से जीतते हैं वे (**च**) भी (**षट्, षष्टि, शता**) छयासठ सैकड़े शत्रु (**दुवोयु**) जो सेवन की कामना करता है उसके लिये (**निसुषुपु**) निरन्तर सोते हैं ॥१४॥

भावार्थ—जहा राजा और प्रजा सेनाओ मे प्रजा और सेना बिजुली के समान पूर्ण बल और पराक्रमयुक्त सेना को बढ़वाते है वहाँ साठि [= साठ] योद्धा छ हजार शत्रुओ को भी जीत सकते हैं ॥१४॥

किस के साथ कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं।

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥

पदार्थ—जो (**एते**) ये (**इन्द्रेण**) परमैश्वर्ययुक्त राजा के साथ (**तृत्सव**) शत्रुओ को मारने वाले (**वेविषाणा**) शत्रुओ के बलो को व्याप्त होते हुए (**आप.**) जलो के (**न**) समान (**सृष्टा**) शत्रुओ पर नियम से रक्खे और (**विश्वानि**) समस्त (**भोजना**) भोजनो को (**मिमाना**) उत्पन्न करते हुए जो (**दुर्मित्रास**) दुष्ट मित्रो वाले हो उनकी जो सेना हैं वे (**नीची**) नीचे जाती और (**अधवन्त**) कम्पती हैं उन पर जो शस्त्र अस्त्रो को (**जहु**) छोड़ते हैं और जो परमैश्वर्ययुक्त राजा (**सुदासे**) श्रेष्ठ देने वाले के निमित्त (**प्रकलवित्**) अच्छे प्रकार कला सख्या का जानने वाला है वे सब विजयभागी होते हैं ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जिनकी समुद्र की तरगो के समान उत्साहयुक्त, बलिष्ठ सेना हो वे शत्रुओ की सेनाओ को नीचे गिरा शीघ्र उन्हे जीत सकते हैं ॥१५॥

फिर वह राजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हं।

अर्द्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६॥

पदार्थ—जो (**क्षाम्**) भूमि का (**पत्यमान**) पति के समान आचरण करता हुआ (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुओ को विदीर्ण करने वाला (**वीरस्य**) शुभ गुणो मे व्याप्त राजा (**शृतपाम्**) पके हुए दूध का पीने वा (**अर्द्धम्**) बढाने वा (**शर्धन्तम्**) बल करने वाले सेनापति को पाकर (**अनिन्द्रम्**) अनैश्वर्य को (**पराणुनदे**) दूर करता है वा जो (**मन्युम्य**) क्रोध को नष्ट करने वाला शत्रुओ पर (**मन्युम**) क्रोध को (**अभि**) सन्मुख [= सम्मुख] से (**मिमाय**) मानता (**पथ**) वा मार्गों को और (**वर्तनिम्**) जिसमे वर्त्तमान होते है उस न्याय-मार्ग को (**भेजे**) सेवता है वही राजजनो म श्रेष्ठ और राजराजेश्वर होता है ॥१६॥

भावार्थ—जो राजा वीर जनो की बल वृद्धि करके दुष्टो पर क्रोध करना और धार्मिको पर आनन्ददृष्टि हो तथा न्याययुक्त मार्ग का अनुगामी होता हुआ ऐश्वर्य को पैदा करता है वही सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१६॥

कौन शत्रुओं के जीतने मे योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है।

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

पदार्थ—जो (**इन्द्र**) दुष्टो के समूह को विदारने वाला (**स्रक्ती**) रची हुई सेनाओ को (**वेश्या**) सूचना से (**अवृश्चत्**) छिन्न-भिन्न करता (**आध्रेण**) सब ओर से धारण किये विषय मे (**चित्**) ही (**तत्**) उस (**एकम्, उ**) एक को (**चकार**) सिद्ध करता (**सिंह्यम्**) सिंहो मे उत्पन्न हुए बल के समान (**चित्**) ही (**पेत्वेन**) पहुँचाने से (**अव, जघान**) शत्रुओ को मारता और (**विश्वा**) समस्त (**भोजना**) अन्नादि पदार्थों को (**प्रायच्छत्**) देता है उस (**सुदासे**) अच्छे देने वाले के होते वीरजन कैसे नहीं शत्रुओ को जीतें ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—जो वीर जन सिंह के समान पराक्रम कर शत्रुओ को मारते हैं और भूगोल मे एक अखण्डित राज्य करने को अच्छा यत्न करते हैं, वे समग्र बल को विधान कर और वीरो का सत्कार कर बुद्धिमानो से राज्य की शिक्षा दिलाने को प्रवृत्त हों ॥१७॥

मनुष्यों को सदा शत्रुपन से युक्त निवारने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्तां एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शत्रुओ को विदीर्ण करने वाले ! जो (**हि**) निश्चय से (**शश्वन्त**) निरन्तर (**शत्रव**) शत्रु जन हैं (**ते**) वे (**स्तुवत**) स्तुति करते हुए (**मर्तान्**) मनुष्यों को (**रारधु**) मारते हैं जो (**भेदस्य, शर्धतः**) बलवान् भेद के (**रन्धिम्**) वश करने को (**चित्**) ही (**विन्द**) प्राप्त हो (**य**) जो (**एन**) पहुँचाने वाला हिंसा (**कृणोति**) करता है (**तस्मिन्**) उसके और उन पिछलो के निमित्त भी (**तिग्मम्**) तीव्र गुण कर्म स्वभाव वाले (**वज्रम्**) शस्त्र और अस्त्र को (**नि, जहि**) निरन्तर छोड़ो ॥१८॥

भावार्थ—हे राजा आदि धार्मिक जनो ! जो सर्वदा शत्रुभावयुक्त और धार्मिक जनो को नष्ट करते हुए विद्यमान है उनको शीघ्र मारो जिससे सब जगह सबके अभय और सुख बढ़ें ॥१८॥

जो मनुष्य परस्पर की रक्षा कर न्याय से राज्य को पालते हैं वे ही शिर के समान उत्तम होते है।

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

पदार्थ—जो (**अजास**) शस्त्र और अस्त्रो के छोड़ने (**शिग्रव**) सांकेतिक बोली बोलने (**यक्षवश्च**) और सग करने वा (**यमुना**) नियम करने (**तृत्सवश्च**) और मारने वाले जन (**अत्र**) इस (**सर्वताता**) राज्यपालनरूपी यज्ञ मे (**बलिम्**) भोगने योग्य पदार्थ को और (**अश्व्यानि**) बड़ो के इन (**शीर्षाणि**) शिरो को (**जभ्रु**) धारण करते हैं (**च**) और जो (**भेदम्**) विदीर्ण करने वा एक एक मे तोड़ फोड़ करने को (**प्र, मुषायत्**) चुराता छिपाता है वा जो (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यवान् की (**आवत्**) रक्षा करें वे सब श्रेष्ठ हैं ॥१९॥

भावार्थ—जो राजा आदि जन, सब मनुष्यो को अभयरूपी दक्षिणा जिस के बीच विद्यमान है ऐसे राज्यपालनरूपी यज्ञ मे भेदबुद्धि को छोड़, महान धार्मिक उत्तम जनो के एक मति आदि उत्तम कामो को स्वीकार कर शत्रुओ के जीतने को प्रवृत्त होते हैं वे ही परमैश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥२०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सुख देने वाले (**ते**) आपके (**पूर्वा**) पहिली और (**नूत्ना**) नवीन (**उषस**) उषा वेलाओ के (**न**) समान वा (**सुमतय**) उत्तम बुद्धिमानो के (**न**) समान (**राय**) धनो का (**संचक्षे**) अच्छे प्रकार कहने को कोई भी (**न**) नहीं (**जघन्थ**) मारता है वा जैसे सूर्य (**बृहतः**) बड़े से बड़े (**शम्बरम**) मेघ दल को (**भेत्**) विदीर्ण करता वैसे जिसे (**त्मना**) अपने से आप (**अव**) नष्ट करते है (**चित्**) उसके समान (**मान्यमानम्**) मान्यों का सत्कार जिसमें है उस (**देवकम्**) देव समान वर्त्तमान का सत्कार करें तो प्रजा सब ओर से बढ़ें ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे राजन् ! जैसे पिछली और नई होने वाली प्रभात वेला सर्वथा मगल करने वाली है वैसे यदि न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से धार्मिक और उत्तम बुद्धिवाले जनो का सत्कार कर उन उक्त मनुष्यो की रक्षा कर इनसे राज्य के कार्यों को साधिये और वहा मेघ को सूर्य के समान दुष्टो को मार श्रेष्ठो को प्रसन्न रखिये तो आपकी सब ओर से वृद्धि हो ॥२०॥

फिर राजा के सहाय से प्रजाजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥

पदार्थ—हे राजन् (**ये**) जो (**त्वाया**) तुम्हारी नीति के साथ (**गृहात्**) घर मे (**अममदु**) आनन्दित होते हैं वा (**शतयातु**) जो सैकड़ो के साथ जाता है जो (**वसिष्ठ**) अतीव वसने वाला और जो (**पराशर**) दुष्टो का हिंसक आनन्दित होता है (**ते**) वे (**भोजस्य**) भोगने और पालन करने की (**सख्यम्**) मित्रता को (**न**) नही (**प्र, मृषन्त**) सहते हैं (**अधा**) इसके अनन्तर जो (**सूरिभ्यः**) विद्वानो से (**सुदिना**) सुखयुक्त दिनो मे (**व्युच्छान्**) निरन्तर वसें वे तुमको सदा सत्कार करने योग्य है ॥२१॥

भावार्थ—जिसकी विद्या, विनय और सुशीलता से सब गृहस्थ आदि मनुष्य आनन्दित हों और जो औरो का उत्कर्ष देखकर पीड़ित होते हैं और जो विद्वानों से सर्वदैव सुन्दर शिक्षा लेते है वे सब सुख पाते है ॥२१॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमंता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वान् जैसे (**अर्हन्**) सत्कार करता हुआ (**सुदास**) उत्तम दानशील मैं (**दानम्**) दान (**होतेव**) देने वाले के समान (**सद्म**) घर को वा (**पैजवनस्य**) वेगवान् (**नप्तु**) पौत्र के स्थान को (**पर्येमि**) सब ओर से जाता हूँ और (**देववत.**) प्रशसित गुण वाले विद्वानो से युक्त की (**गोः**) धेनु वा भूमि सम्बन्धी (**द्वे**) दो (**शते**) सौ (**वधूमन्ता**) प्रशसा युक्त वधू वाले (**द्वा**) दो (**रथा**) जल-स्थल मे जाने वाले रथो को सब ओर से प्राप्त होता हूँ वा जैसे विद्वान् जन (**रेभन्**) स्तुति करते है उनको सब ओर स जाता हूँ वैसे आप हूजिये ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं—हे मनुष्यो जैसे देने वाले उत्तम दान देते और पौत्र पर्य्यन्त धन धान्य और पशु आदि की समृद्धि करते है वैसे सब को वर्त्तना चाहिये ॥२२॥

फिर वे राजा आदि क्या अनुष्ठान करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥

पदार्थ—हे राजा (**पैजवनस्य**) क्षमाशील रखने वाले के पुत्र आपक जैस (**चत्वार**) चार ऋत्विज् (**दाना**) देनेवाले (**स्मद्दिष्टय**) जिनके निश्चित दर्शन (**कृशनिन**) वा बहुत हिरण्य विद्यमान (**ऋज्रास**) जो सरल स्वभाव (**पृथिविष्ठा**') पृथिवी पर स्थित रहते है वे विद्वानजन (**निरेक**) निःशक राज्यव्यवहार मे (**मा**) मुझे विधान करते हैं, स्थिर करते है (**श्रवसे**) विद्या सुनने के लिए और (**तोकाय**) सन्तान के अर्थ (**तोकम्, मा**) मुझ सन्तान को (**वहन्ति**) पहुँचाते हैं वैसे उनके प्रति आप (**सुदासः**) सुन्दर दानशील हूजिये ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्यो ! वेदवेत्ता ऋत्विज् ब्राह्मण राजसहाय से यज्ञानुष्ठान मे सब का निश्चित सुख बढाते हैं और जैसे ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य से पहिले विद्या पढ़ कर सन्तान के लिए विवाह कर सन्तान उत्पन्न करते हैं वैसे राजजन और राजपुरुष सब के हित लिये ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण कराकर सब के सुख की उन्नति करें ॥२३॥

फिर वे राजा आदि किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ।

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्य**) जिसका (**श्रव**) अन्न वा श्रवण (**उर्वी**) बहुफलादि पदार्थो से युक्त (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को (**शीर्ष्णेशीर्ष्णे**) शिर के तुल्य उत्तम सुख के लिए (**अन्तः**) बीच मे (**विबभाज**) विशेषता से भेजता है जिन (**इन्द्रम्**) इन्द्र के (**न**) समान (**सप्त**) सात प्रकार से (**विभक्ता**) विभाग को प्राप्त हुई [=हुए] आकाश और पृथिवी, सुखो को (**इत्**) ही (**स्रवत**) पहुँचाते हैं जिनकी सब विद्वान् जन (**गृणन्ति**) प्रशसा करते है उनकी विद्या से जो राजा (**अभीके**) समीप मे (**युध्यामधिम्**) युद्धरूपी रोग को धारण करने शत्रु को (**नि, अशिशात्**) निरन्तर छेदे वही राज्य-शिक्षा देने योग्य हो ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है -यदि राजादि पुरुष धर्मयुक्त न्याय मे वर्त्त कर राज्य को उत्तम शिक्षा दिलावें तो सूर्य के समान प्रजाओ मे उत्तम सुखो की उन्नति कर सकते है और शत्रुओ का निवार [=निवारण कर] सुख देने वाले समीपस्थ जनो का सत्कार करना जानते है ॥२४॥

फिर मनुष्य कैसे राजा का अच्छे प्रकार आश्रय करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥

पदार्थ—हे (**नरः**) नायक (**मरुत.**) मनुष्यो ! जो (**सुदासः**) उत्तम दान देने वाला हो (**इमम्**) उस (**दिवोदासम्**) विद्याप्रकाश देने वाले को (**पितरम्**) पालने वाले पिता के (**न**) समान तुम लोग (**सश्चत**) मिलो, सम्बन्ध करो और (**पैजवनस्य**) क्षमा शील है जिसका उससे उत्पन्न हुए पुत्र के (**दूणाशम्**) दुःख स नाश करने योग्य पदार्थ वा दुर्लभ विनाश (**केतम्**) उत्तम बुद्धि और (**अजरम्**) विनाश रहित (**दुवोयु**) सेवन करने के लिए मनोहर (**क्षत्रम्**) राज्य वा धन को (**अनु, अविष्टन**) व्याप्त होओ ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—यदि मनुष्य विद्यादि शुभ गुणो के देने वाले, पिता के समान [पालक] राजा का आश्रय करें तो पूर्ण प्रजा अविनाशि सेवने योग्य ऐश्वर्य और राज्य को स्थिर कर सकें ॥२५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा, मित्र, धार्मिक, अमात्य, शत्रुनिवारण तथा धार्मिक सत्कार के अर्थ का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ को इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल मे अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथैकादशर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्रो देवता । १ । ५ त्रिष्टुप् । ३ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ । ९ । १० विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । २ । निचृत्पङ्क्ति. । ४ पङ्क्ति । ८ । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पचम स्वर ।

अब ग्यारह ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे कैसा राजा उत्तम होता है इस विषय को कहते है ।

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् (**यः**) जो कल्याण करने वाला जन (**तिग्मशृङ्ग**) तीक्ष्ण किरणो से युक्त (**वृष**·) वर्षा तथा (**भीम**) भय करने वाले सूर्य के (**न**) समान (**एक**) अकेला (**विश्वा**) समग्र प्रजा (**कृष्टी**) मनुष्यों को (**प्र, च्यावयति**) अच्छे प्रकार चलाता है और (**य**) जो (**शश्वत**) निरन्तर (**अदाशुष**) न देनेवाले के (**गयस्य**) सतान के (**सुष्वितराय**) सुन्दर अतीव ऐश्वय को निकालने वाल के लिये (**वेद**) विज्ञान वा धन को कहता है उसके जिससे तुम (**प्रयन्ता**) उत्तमता से नियम करने वाले (**असि**) हो इससे अधिक मानने योग्य हो ॥१॥

भावार्थ इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वा बिजुली वर्षा करने से सुख देने वाली और तीव्र ताप से वा पड जाने स भयकर है वैसे राजा विद्याध्ययन के लिये सन्तानो को जो नही देते उनके लिये दण्ड देने वाला वा ब्रह्मचर्य्य से सब की विद्या बढाने वाला जो राजा हो उसी को सब स्वीकार करें ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सूर्य के समान प्रतापयुक्त राजा (**त्वम्**) आप सूर्य के समान (**त्यत्**) उस (**कुत्सम्**) बिजुली के तुल्य वज्र को दुष्टो पर प्रहार कर कल्याण करने वाली प्रजा की (**आव**) पालना कीजिये (**शुश्रूषमाण**·) सुनने की इच्छा करने वाले आप (**तन्वा**) शरीर से (**समर्ये**) सग्राम मे (**ह**) ही उत्तम सेना की रक्षा कीजिये (**यत्**) और जिस (**शुष्णम्**) शुष्क करने वा (**कुयवम्**) कुत्सित यव आदि अन्न रखने वाले (**दासम्**) दाता वा सेवक को (**नि, अरन्धय**) नही मारते (**अस्मै**) इस (**आर्जुनेयाय**) सुन्दर रूपवती विदुषी के पुत्र के निमित्त (**शिक्षन्**) विद्या इकट्ठी कराते हुए अविद्या को हनो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो मनुष्य विद्याप्राप्ति के लिये आप्त, श्रेष्ठ, विद्वान अध्यापको की शुश्रूषा करते, शरीर और आत्मा के बल को विधान कर सग्राम मे दुष्टो को जीतते और विद्याध्ययन से [रहित] जनों का तिरस्कार करते, विद्याभ्यास करने वालो का सत्कार करते है वे स्थिर राज्यैश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**धृष्णो**) दृढ पुरुष (**त्वम्**) आप (**धृषता**) प्रगल्भ पुरुष के साथ (**विश्वाभि**) समग्र (**ऊतिभि**) रक्षाओ के साथ (**वीतहव्यम्**) पाये हुए और पाने योग्य पदार्थ वा (**सुदासम्**) अच्छे जिसके दास जो (**पौरुकुत्सिम्**) बहुत शस्त्रास्त्रविद्याओ के योग्य रखने वाले का पुत्र (**त्रसदस्युम्**) जिससे भयभीत दस्यु होते है उस जन की निरन्तर (**प्राव**) कामना करो और (**क्षेत्रसाता**) क्षेत्रो के विभाग मे (**वृत्रहत्येषु**) शत्रुओं के मारनरूप सङ्ग्रामो मे (**पूरुम्**) पालना वा धारण करने वाले की (**प्राव**) कामना करो ॥३॥

भावार्थ—जो राजजन धार्मिक, दस्युओ को मारने, शस्त्र-अस्त्रो के फेकने मे कुशल और विद्यादि शुभगुणो के देने वाले सज्जनो का सत्कार करते हैं वे सदा सुखी होते है ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हं ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४॥

पदार्थ—हे (**हर्यश्व**) मनोहर घोडे से युक्त (**नृमण**) और न्यायाधीशों

में मन रखने वाले राजा (त्वम्) आप (नृभि) न्यायप्राप्ति कराने वाले विद्वानों के साथ (देववीतौ) विद्वानों की प्राप्ति जिस व्यवहार में होती उसमें (भूरीणि) बहुत (वृत्रा) शत्रुसैन्यजन वा धनों को (हंसि) नाशते वा प्राप्त होते हैं (त्वम्) आप (धुनिम्) श्रेष्ठों को कंपाने वाले (चुमुरिम्) चोर और (दस्युम्) दुष्ट आचरण करने वाले साहसी जन को (स्वस्वापय) मार कर सुलाओ तथा (दभीतये) हिंसा के लिये (च) भी दुष्टों को आप (सुहन्तु) अच्छे प्रकार नाशो ॥४॥

भावार्थ—हे राजा ! आप सदैव सत्पुरुषों का संग न्याय से राज्य को पाल के धन की इच्छा और दुष्ट डाकुओं को निवार के प्रजापालना निरन्तर करो ॥४॥

फिर राजा के सेनाजन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।

निवेशने शततमाऽविवेषीरहन् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५॥

पदार्थ—हे (वज्रहस्त) हाथ में वज्र रखनेवाले जैसे (त्व) आपके (तानि) वे (च्यौत्नानि) बल हैं अर्थात् सूर्य (यत्) जो (नवनवतिम्) निन्यानवे (पुरः) मेघरूपी शत्रुओं की नगरी उनको (सद्य) शीघ्र (अहन्) हनता (च) और (निवेशने) जिसमें निवास करते हैं उस स्थान में (शततमा) अतीव सैकड़ों को (उत) और (नमुचिम्) जो अपने रूप को नहीं छोड़ता उस (वृत्रम्) आच्छादन करने वाले मेघ को (च) भी (अहन्) मारता वैसे आप (अविवेषीः) व्याप्त हूजिये अर्थात् सेनाजनों को प्राप्त होकर शत्रुओं को प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे सूर्य असंख्य मेघ की नगरियों के समान सघन घन घटाघूम बादलों को हनता है वैसे तुम्हारे सेना जन उत्तम होकर समस्त शत्रुओं को मारें ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।

वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

पदार्थ—हे (पुरुशाक) बहुत शक्तियुक्त (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले राजा जो (ते) आपके (रातहव्याय) दी है देने योग्य वस्तु जिसने उस (सुदासे) सुन्दर दानशील (वृष्णे) सुखवृष्टि करने (दाशुषे) देने वाले के लिये (सना) सनातन वा विभाग करने योग्य (भोजनानि) भोजन हैं (ता) उनको मैं (युनज्मि) संयुक्त करता हूँ तथा जो (ते) आपके (वृषणा) बलयुक्त अश्व (हरी) हरणशील हैं उनको संयुक्त करता हूँ जिससे प्रजाजन (वाजम्) वेग और (ब्रह्माणि) धनों को (व्यन्तु) प्राप्त हों ॥६॥

भावार्थ—हे राजजनो ! यदि आप लोग कर देने वालों की पालना न्याय से करें और शरीर से, धन से और मन से प्रजाजनों की उन्नति करें तो कुछ भी ऐश्वर्य अलभ्य न हो ॥६॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।

त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७॥

पदार्थ—हे (हरिव) प्रशंसित मनुष्य और (सहसावन्) बहुत बल से युक्त राजा (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से संग करने योग्य वेला में (ते) आपके (परादै) त्याग करने योग्य (अघाय) पाप के लिये हम (मा, भूम) मत होवें (अवृकेभिः) और जो चोर नहीं उन (वरूथैः) श्रेष्ठों के साथ (नः) हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कीजिये जिससे हम लोग (तव) तुम्हारे (सूरिषु) विद्वानों में (प्रियासः) प्रिय (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थ—हे राजा ! जैसे हम लोग तुम्हारी उन्नति के निमित्त प्रयत्न करें वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये, विद्या के प्रचार से सबको विद्वान् कराइये जिससे विरोध न हो ॥७॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।

नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८॥

पदार्थ—(मघवन्) बहुत धन देने वाले (सखाय) मित्र होते हुए (प्रियासः) प्रीतिमान् वा प्रसन्न हुए (नरः) नायक मनुष्य हम लोग (ते) आपके (अभिष्टौ) सब ओर से प्रिय संगति अर्थात् मेल मिलाप में (शरणे) शरणागत की पालना करने के कर्म में (मदेम) आनन्दित हों। आप (तुर्वशम्) निकटस्थ मनुष्य को (नि, शिशीहि) निरन्तर तीक्ष्ण कीजिये और (याद्वम्) जो जाते हैं उन पर जो जाता है उसको (नि) निरन्तर तीक्ष्ण कीजिये और (अतिथिग्वाय) अतिथियों के गमन के लिये (शंस्यम्) प्रशंसनीय को (इत्) ही (करिष्यन्) करते हुए तीक्ष्ण कीजिये ॥८॥

भावार्थ—हे राजा ! जो शुभ गुणों के आचरण से युक्त तुम में प्रीतिमान् हो उन धार्मिक जनों को प्रशंसित कीजिये, जैसे अतिथियों का आगमन हो वैसा विधान कीजिये ॥८॥

फिर पढ़ने और पढ़ाने वाले परस्पर कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।

ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसनीय विद्या के अध्यापक जो (उक्थशासः) प्रशंसा करने योग्य मन्त्रों के अर्थों की शिक्षा देने वाले (नरः) विद्वान् जन (ते) तुम्हारी (अभिष्टौ) सब ओर से प्रिय वेला में (सद्यः) शीघ्र (चित्) ही (उक्था) प्रशंसित वचनों को (शंसन्ति) प्रबन्ध से कहते हैं और (ये) जो (हवेभि) हवनों के साथ (ते) आपके (पणीन्) व्यवहारों को (नु, अदाशन्) ही देते हैं उन्हें और (अस्मान्) हम लोगों को (तस्मै) उस (युज्याय) युक्त करने योग्य व्यवहार के लिये (वृणीष्व) स्वीकार कीजिये ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे विद्वान् अध्यापक ! तुम हम लोगों को वेदार्थ शीघ्र ग्रहण कराओ जिससे हम लोग भी अध्यापन करावें ॥९॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।

तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (नराम्) नायक मनुष्यों के बीच (नृतम) अतीव नायक (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा जो (एते) ये (अस्मद्र्यञ्च) हम लोगों को प्राप्त होते हुए (स्तोमाः) प्रशंसनीय विद्वान् और पढ़ने वाले (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (मघानि) विद्याधनों को (ददतः) देते हैं (तेषाम्) उन (नृणाम्) मनुष्यों के (वृत्रहत्ये) मेघों के हनन करने के समान संग्राम में सूर्य के समान (अविता) रक्षा करने वाले (शिव) मंगलकारी (सखा, च) और मित्र (शूर) शत्रुओं के मारने वाले (च) भी आप (भूः) हूजिये ॥१०॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो आप विद्वानों की रक्षा करके उनसे उपकार लें तो कौन कौन उन्नति न हो ॥१०॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।

उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय सेनापति (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले आप (स्तवमान) सब युद्ध करने वालों को वीररसयुक्त व्याख्यान से उत्साहित करते हुए और (ब्रह्मजूतः) धन वा अन्न से संयुक्त (ऊती) सम्यक् रक्षा से (तन्वा) शरीर से (वावृधस्व) निरन्तर बढ़ो (स्तीन्) और मिले हुए (वाजान्) बल वेगादियुक्त (नः) हम लोगों का (उपमिमीहि) समीप में मान करो तथा (नू) शीघ्र शत्रुबल को (उप) उपमान करो, हे भृत्य जनो ! (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥११॥

भावार्थ—हे सेनापति ! तुम जैसे अपने शरीर और बल को बढ़ाओ वैसे ही समस्त योद्धाओं के शरीर-बल को बढ़ाओ। जैसे भृत्यजन तुम्हारी रक्षा करें वैसे तुम भी इनकी निरन्तर रक्षा करो ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र के दृष्टान्त से राजसभा, सेनापति, अध्यापक, अध्येता, राजा, प्रजा और भृत्यजनों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

[इस अध्याय में अग्नि, वाणी, विद्वान्, राजा, प्रजा, अध्येता, पृथिवी आदि मेधावी, बिजुली, सूर्य, मेघ, यज्ञ, होता, यजमान, सेना और सेनापति के गुण कर्मों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥]

यह सप्तम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ दशर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । १० । निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ५ विराट्त्रिष्टुप् ६ । ८ । ९ त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

अब पञ्चमाष्टक के तीसरे अध्याय तथा दश ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, जिसके पहले मन्त्र में कैसा राजा श्रेष्ठ हो इस विषय को कहते हैं ।

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।

जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (नर्यः) मनुष्यों में साधु उत्तम जन (स्वधावान्) बहुत धन धान्य से युक्त (चक्रिः) करने वाला (उग्रः) तेजस्वी (युवा) जवान मनुष्य (नृषदनम्) मनुष्यों के स्थान को (जग्मिः) जाने वाला (अवोभिः) रक्षा आदि से पालना (करिष्यन्) करता हुआ (त्राता) रक्षा करने वाला सूर्य जैसे (अपः) जलों को (चित्) वैसे (इन्द्रः) राजा (वीर्याय) पराक्रम के लिये (जज्ञे) उत्पन्न हो और (महः) महान् (एनसः) पापाचरण से (नः) हम लोगों को अलग रखता है वही राजा होने के योग्य है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्यों का हितकारी पिता के समान पालने और उपदेश करने वाले के समान पापाचरण से अलग रखने वाला, सभा में स्थिर होकर न्यायकर्त्ता तथा धन, ऐश्वर्य और पराक्रम को निरन्तर बढ़ाता है उसी को सब मनुष्य राजा मानें ॥१॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।

कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (इन्द्रः) सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को वैसे जो शत्रुओं का (अह) निग्रह कर अर्थात् पकड़ पकड़ (नु) शीघ्र (हन्ता) घात करने वाला राजा (शूशुवानः) निरन्तर बढ़ते हुए (वीरः) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त (कर्त्ता) दृढ़ कार्य करने वाले और (वसु, दाता) धन के देने वाले (सुदासे) सुन्दर दानशील के लिये ही (ऊती) रक्षा से (जरितारम्) गुणों की प्रशंसा करने वाले (उ) उद्भुत (लोकम्) अन्य जन्म में देखने योग्य वा अन्य लोक को (मुहुः) वार वार (प्रावीत्) उत्तम रक्षा करे (दाशुषे) दानशील के लिये वार वार (आ, भूत्) प्रसिद्ध हो (वा) वही राज्य करने के लिये श्रेष्ठ हो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो शीघ्रकारी, सूर्य के समान विद्या और विनय के प्रकाश से दुष्टों का निवारण करने वाला शूरवीर होता हुआ अच्छे सुपात्रों के लिये यथायोग्य पदार्थ देता हुआ बहुत सुख को प्राप्त हो ॥२॥

फिर वह कैसा होकर क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।

व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥३॥

पदार्थ—जो राजा (इन्द्रः) बिजुली के समान (जनुषा) जन्म से (स्वोजाः) शुभ अन्न वा पराक्रम जिसके विद्यमान (युध्मः) जो युद्ध करने वाला (अनर्वा) जिसके घोड़े विद्यमान नहीं जो (अषाळ्हः) शत्रुओं से न सहने योग्य (खजकृत्) सङ्ग्राम करने वाला (समद्वा) जो मत्त प्रमत्त मनुष्यों को सेवता (शूरः) शत्रुओं को मारता (सत्राषाट्) जो सत्यों के करने को सहता और (पृतनाः) अपनी सेनाओं को पावे (अध) इसके अनन्तर (वि, आस) विशेषता से मुख के सम्मुख (विश्वम्, शत्रूयन्तम्) सब शत्रुओं की कामना करने वाले को (ईम्) सब ओर से (जघान) मारे वही शत्रुओं को जीत सके ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! श्रेष्ठ राजगुणों सहित, दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से द्वितीय जन्म अर्थात् विद्या जन्म का कर्त्ता, पूर्ण बल पराक्रमयुक्त, धार्मिक हो वह सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं के अन्यायरूप अन्धकार को निवारे वही सब का आनन्द देने वाला हो ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।

नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजा आप (उभे) दो (रोदसी) आकाश और पृथिवी (चित्) के समान (महित्वा) सत्कार पाके (तविषीभिः) बलिष्ठ सेनाओं से (आ, पप्राथ) निरन्तर व्याप्त होता और (तुविष्मः) बहुत बलयुक्त होता हुआ (हरिवान्) बहुत मनुष्यों से युक्त (अन्धसा) अन्नादि पदार्थ से (सम्, नि मिमिक्षन्) प्रसिद्ध सुखों से निरन्तर सींचने की इच्छा करता हुआ (वज्रम्) शस्त्र अस्त्रों को धारण कर जो (इन्द्रः) वीर पुरुष राजा (मदेषु) आनन्दों के निमित्त (उवोच) कहे (वै) वही राज्य करने को योग्य हो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे भूमि और सूर्य बड़प्पन से सब को व्याप्त होकर जल और अन्न से सब को और गीले किये हुए जगत् को सुखी करते हैं वैसे ही राजा विद्या और विनय से सत्य का उपदेश कर सब प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे ॥४॥

उत्पन्न हुआ मनुष्य कैसा होकर सामर्थ्यवान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।

प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (वृषा) वर्षा करने (सेनानीः) सेना को पहुँचाने वाला (सत्वा) बलवान् (गवेषणः) और उत्तम वाणी विद्या को ढूंढ़ने वाला (नृभ्यः) सेना नायकों से (धृष्णुः) धृष्ट प्रगल्भ (जजान) उत्पन्न हो (सः) वह (इनः) ईश्वर के समान (रणाय) संग्राम के लिये प्रतापी (अस्ति) है (अध) इसके अनन्तर जिस (उ) ही (नर्यम्) मनुष्यों में (वृषणम्) बलिष्ठ योद्धा पुत्र को वर्षा करने वाला पुरुष और (नारी) स्त्री (प्र, ससूव) उत्पन्न करते हैं (तम्, चित्) उसी को जन न्यायकारी मानते हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जिसको स्त्री पुरुष दीर्घ ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर उत्पन्न करते हैं वह पुरुष जगदीश्वरवत् सब को न्याय से पालने को समर्थ होकर सेनाधिप हुआ शत्रुओं के जीतने को सदा समर्थ होता है ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।

यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्य) इसके (घोरम्) घोर (मनः) अन्तःकरण को (न, आविवासात्) न सेवे (सः, चित्) वही (नु) शीघ्र विजय को (भ्रेषते) पाता और वह नहीं (रेषत्) हिंसा करता है (यः) जो (ऋतपाः) जो सत्य की पालना करने और (ऋतेजाः) सत्य में उत्पन्न अर्थात् प्रसिद्ध होने वाला (यज्ञैः) मिले हुए कर्मों से (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (दुवांसि) सेवनों को (दधते) धारण करता (सः) वह (राये) धन के लिये निरन्तर (क्षयत्) बसे ॥६॥

भावार्थ—जो रागद्वेषरहित मन वाले, घोर कर्मरहित, परमेश्वर के सेवक, धर्मात्मा जन हों वे कभी नष्ट न हों ॥६॥

फिर विद्वान् अन्यजनों के प्रति कैसे उपकारी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम् ।

अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले (यत्) जो (पूर्वः) प्रथम (अपराय) और के लिये (ज्यायान्) अतीव वृद्ध वा श्रेष्ठ जन (कनीयसः) अत्यन्त कनिष्ठ से (देष्णम्) देने योग्य को (शिक्षन्) शिक्षा अर्थात् विद्या ग्रहण

कराता हुआ (अयत्) प्राप्त होता वा (चित्र) हे अद्भुत कर्म करने वाले जो (अमृत , इत्) नाशरहित ही आत्मा से नित्य योगी (दूरम्) दूर (पर्यासीत) सब ओर से स्थित हो उसके साथ आप (न.) हम लोगो के लिये (चित्र्यम्) अद्भुत कर्मों म हुए (रयिम्) धन को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ।।७।।

भावार्थ—हे राजा ! जो पहिले विद्वान् होकर विद्यार्थियो को शिक्षा देते हैं वा जो ज्येष्ठ कनिष्ठो के प्रति पिता के समान वर्त्ताव रखते हैं वा जो योगी जन परमात्मा को समाधि से अपने आत्मा में अच्छे प्रकार आरोप के औरो को उपदेश देते है उनके लिये तुम शरीर, मन और धन को धारण करो ।।७।।

फिर राजा, भृत्य और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

यस्तं इन्द्र प्रियो जनो ददांशदसंन्निरेके अद्रिवः सखां ते ।

वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८॥

पदार्थ—हे (अद्रिव) मेघो वाले सूर्य के समान वर्त्तमान (इन्द्र) विद्वान् (य·) जो (प्रियः) प्रसन्न करने वाला (जन) मनुष्य (सखा) मित्र (निरेके) नि शक व्यवहार मे (असत्) हो और सुख (ददाशत्) दे जिन (ते) आपके (अस्याम्) इस (नृपीतौ) मनुष्यो से जो रक्षा की जाती उसमे और (सुमतौ) अच्छी सम्मति मे (वयम्) हम लोग (चनिष्ठा.) अत्यन्त अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हो और (अघ्नता) अहिंसक जो (ते) तुम उनके (वरूथे) घर मे प्रसिद्ध हों उन मान करने योग्य दो को हम सत्कारयुक्त करें ।।८।।

भावार्थ—हे राजन् ! जिस नीतिज्ञ आपके जो नीतिमान् जन हैं वे ही प्रिय हो और आप भी उन्ही के प्रिय हूजिये, ऐसे परस्पर सुहृद् होकर एक सम्मति कर निरन्तर आप उन्नति कीजिये ।।८।।

फिर मनुष्य क्या करके किसको प्राप्त हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।।

एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषां त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।

रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ।६ ।

पदार्थ—हे (शक्र) शक्तिमान् (अङ्ग) मित्र पुरुषार्थी राजन् जो (एष) यह (ते) आपका (स्तोम) प्रशसा करने योग्य (उत) और (वृषा) बलिष्ठ जन (अचिक्रदत्) बुलावे वा हे (मघवन्) बहुत धनयुक्त (स्तामु) स्तुति करने वाला जन (अक्रपिष्ठ) समर्थ होता है वा (ते) तुम्हारे लिए जो (राय) धन की (कामः) कामना करने वाला (जरितारम्) स्तुति करने वाले आपको (आ, अगन्) सब ओर से प्राप्त हो वह (त्वम्) आप (न) हमारे (वस्व) धनो को (आशक) सब ओर से सह सको ।।६।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो शक्ति को बढा कर धर्म कर्म से ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की अभिलाषा बढाओ तो तुमको पुष्कल ऐश्वर्य प्राप्त हो ।।६।।

फिर मनुष्य कैसे प्रयत्न करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जनन्ति ।

वस्वी षु तें जरित्रे अंस्तु शक्तिर्यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजा जो आप (त्मना) आत्मा से (त्वयताये) जिसमे अपने मे यत्न होता है उस (इषे) अन्न आदि सामग्री के लिये (न) हम लोगो को (धाः) धारण कीजिये (ये, च) और जो (मघवान) प्रशसित धन वाले इस अन्नादि सामग्री के लिय आपको (जुनन्ति) प्राप्त होते हैं (स) सो आप उद्योगी हूजिए जिससे (जरित्रे) सत्य की प्रशसा करने वाले (ते) तेरे लिए (वस्वी) धनसम्बन्धिनी (शक्ति) शक्ति (अस्तु) हो । हे हमारे सम्बन्धिजनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभि) सुखो स (न) हम लोगो को (सदा) सदा (सु, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ।।१०।।

भावार्थ—वे ही लक्ष्मी करने वाले जन हैं जो आलस्य का त्याग कराय पुरुषार्थ के साथ युक्त करते हैं वा जो ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उनको ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाला सामर्थ्य होता है वा जो परस्पर की रक्षा करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ।।१०।।

इस सूक्त मे राजा, सूर्य, बलिष्ठ, सेनापति, सेवक, अध्यापक, अध्येता, मित्र, दाता और रक्षने वालों के कृत्य और गुणों का वर्णन होने स इस सूक्त के अर्थ को इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल मे बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ दशर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । इन्द्रो देवता । १ । ६ । ८ । ६ । विराट् त्रिष्टुप् । २ । १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर । ३ । ७ भुरिक्पङ्क्तिः । ४ । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ।।

अब दस ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र मे विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ।।

असांवि देवं गोऋजीकमन्धो न्यंस्मिन्निन्द्रो जनुषेंमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥१॥

पदार्थ—हे (हर्यश्व) मनोहर घोडों वाले जो (अन्ध.) अन्न (असावि) उत्पन्न होता उसको तथा (जनुषा) जन्म से अर्थात् उत्पन्न होते समय से (ईम्) ही (गोऋजीकम्) भूमि के कोमलता से प्राप्त कराने और (देवम्) देने वाले को (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त जन (उवोच) कहे वा जिसके निमित्त (त्वा) आपको (नि, बोधामसि) निरन्तर बोधित करें (अस्मिन्) इस व्यवहार मे आप (अन्धस·) अन्न आदि पदार्थ के (मदेषु) आनन्दो में (यज्ञै) विद्वानो के सग आदि से (न) हम लोगो को (बोध) बोध देओ और (स्तोमम्) प्रशसा की प्राप्ति कराओ ।।१।।

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि से धान्य आदि को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त होते है और जो विद्वानो के सग से समस्त विद्या के रहस्यो का ग्रहण करते हैं वे कभी दु खी नही होते हैं ।।१।।

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

प्र यंन्ति यज्ञं विपयंन्ति बर्हिः सोममादो विदथें दुध्रवाचः ।

न्यु भ्रियन्ते यशसों गृभादा दूरउंपब्दो वृषणो नृषाचः ॥२॥

पदार्थ—जो (सोममाद.) सोम मे हर्षित होते (दुध्रवाच:) वा जिनकी दु ख से धारण करने योग्य वाणी (वृषण) वे बलिष्ठ (नृषाच) नायक मनुष्यों से सम्बन्ध करने वाले जन (यज्ञम्) विद्वानो के सग आदि को (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (विदथे) सग्राम मे (बर्हि) अन्तरिक्ष में (विपयन्ति) विशेषता से जाते है (उ) और जो (यशस) कीर्ति से वा (गृभात्) घर से (आ, भ्रियन्ते) अच्छे प्रकार उत्तमता को धारण करते हैं तथा (दूरउपब्द) जिनकी दूर वाणी पहुँचती वे सज्जन (नि) निरन्तर उत्तमता को धारण करते है और वे विजय को प्राप्त होते है ।।२।।

भावार्थ—जैसे यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे युद्ध मे निपुण पुरुष विजय को प्राप्त होते हैं जैसे दूर देशो मे कीर्ति रखने वाला विद्वान् जन होता है वैसे यश से सचय किये कर्मों को कर परोपकारी जन हो ।।२।।

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

त्वद्वावक्रे रथ्योऽ३ न धेना रेजन्ते विश्वां कृत्रिमाणि भीषा ।।३।।

पदार्थ—हे (शूर) शूरवीर (इन्द्र) सूर्य के समान विद्वान् राजा जैसे सूर्य्य (स्रवितवै) वर्षा को (अहिना) मेघ के साथ (पूर्वी) पहिले स्थिर हुए (परिष्ठिता.) वा सब ओर से स्थिर होने वाले (अप.) जलो को उत्पन्न करता है वैसे (त्वम्) आप प्रजाजनो को सन्मार्ग मे (क) स्थिर करो जैसे सूर्य आदि और (रथ्य) रथ के लिए हितकारी घोडा यह सब पदार्थ (वावक्रे) टेढे चलते हैं और (विश्वा) समस्त (विकृत्रिमाणि) विशेषता से कृत्रिम किए कामो को (रेजन्ते) कपित करते हैं वैसे (त्वद्भीषा) तुम से उत्पन्न हुए भय से प्रजाजन (धेना , न) बोली हुई वाणियो के समान प्रवृत्त हो ।।३।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं—जो राजा सूर्य्य के समान प्रजाजनो की पालना करता है दुष्टो को भय देता है वही सुख से व्याप्त होता है ।।३।।

फिर वह सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।

इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ।।४।

पदार्थ—जो (भीमः) भय करने वा (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्र हाथो मे रखने वाला (जर्हृषाण) निरन्तर आनन्दित (विद्वान्) विद्वान् (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजा (आयुधेभि·) युद्ध सिद्ध कराने वाले शस्त्रो से (महिना) बडप्पन के साथ (एषाम्) इन शत्रुओ के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यो के हित करने वाले (अपांसि) कर्मों को (विवेष) व्याप्त हो (पुर) शत्रुओ की नगरियो को (वि, दूधोत्) कपावे, शत्रुओ को (वि, जघान) मारे, वही सेनापति होने योग्य होता है ।।४।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो समग्र युद्ध कार्यों को जान अपनी सेना को युद्ध मे निपुण कर शत्रुओ को कपा और शत्रु सेनाओ को कपाते हैं वे विजय से शोभित होते हैं ।।४।।

अब कौन तिरस्कार करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

न यातवं इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दंना शविष्ठ वेद्याभिः ।

स शर्धदुर्यो विषुंणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेंवा अपि गुर्ऋतं नंः । ५ ।

पदार्थ—हे (शविष्ठ) अत्यन्त बलयुक्त (इन्द्र) दुष्ट शत्रुजनों के विदीर्ण

करने वाले जन जैसे (यातवः) संग्राम को जाने वाले (नः) हम लोगों को (न) न (जूजुवुः) प्राप्त होते हैं और जो (शिश्नदेवाः) शिश्न अर्थात् उपस्थ इन्द्रिय से विहार करने वाले ब्रह्मचर्य्यरहित कामी जन हैं वे (ऋतम्) सत्यधर्म को (मा, गुः) मत पहुँचें (अपि) और (नः) हम लोगों को (न) न प्राप्त हों वे ही (विषुणस्य) शरीर में व्याप्त (जन्तोः) जीव को (वेद्याभिः) जानने योग्य नीतियों से (वन्दनाः) स्तुति करने योग्य कर्मों को न पहुँचें और (यः) जो (अर्यः) स्वामी जन शरीर में व्याप्त जीव को (शर्धत्) उत्साहित करे (सः) वह हम को प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो कामी लंपट जन हों वे तुम लोगों को कदापि वन्दना करने योग्य नहीं, वे हम लोगों को कभी न प्राप्त हों इसको तुम लोग जानो और जो धर्मात्मा जन हैं वे वन्दना करने तथा सेवा करने योग्य हैं, कामातुरों को धर्मज्ञान और सत्य विद्या कभी नहीं होती है ॥५॥

अब कैसे जन से शत्रुजन नहीं जीत सकते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।

स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त जन आप (क्रत्वा) बुद्धि के साथ (ज्मन्) पृथिवी पर शत्रुओं के (अभि, भूः) सम्मुख हूजिए (अध) इसके अनन्तर (ते) आपके (महिमानम्) बड़प्पन को और (रजांसि) ऐश्वर्यों को (शत्रुः) शत्रुजन मुझे (न) न (विव्यक्) व्याप्त हो [= हो] (स्वेन) अपने (शवसा) बल से (हि) ही सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को वैसे शत्रु को आप (जघन्थ) मारो इस प्रकार से (युधा) संग्राम में शत्रुजन (ते) आपके (अन्तम्) अन्त अर्थात् नाश वा सिद्धान्त को (न) न (विविदत्) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को प्रतिदिन बढ़ाते हैं उनके शत्रुजन दूर से भागते हैं किन्तु वह आप शत्रुओं को जीत सकें ॥६॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।

इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (पूर्वे) पहिले विद्या ग्रहण किये हुए (देवाः) विद्वान् जन (ते) आप के (असुर्याय) मेघ में उत्पन्न हुए के लिये और (क्षत्राय) राज्य वा धन के लिये (सहांसि) बलों का (अनु, ममिरे) निरन्तर अनुमान करते जो (चित्) भी (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा (मघानि) प्रशंसा करने योग्य धनों को (दयते) ग्रहण करता वा जो (वाजस्य) प्राप्त हुए व्यवहार के (सातौ) संविभाग में (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को (विषह्य) विशेष सह करके परमैश्वर्य को (जोहुवन्त) निरन्तर ग्रहण करते हैं उनका आप सत्कार करो ॥७॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं जो सबों में दया का विधान और सत्य शास्त्रों का उपदेश कर बलों को बढ़ाते हैं वे ही पिता के समान सत्कार करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।

अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥८॥

पदार्थ—हे (शतमूते) सैकड़ों प्रकार की रक्षा करने वा (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले जो (हि) ही (कीरिः) स्तुति करने वाले (चित्) के समान (अवसे) रक्षा के लिये (ईशानम्) समर्थ (त्वाम्) आपको (जुहाव) बुलावे उसके (भूरेः) बहुत (सौभगस्य) उत्तम भाग्य के होने की (अवः) रक्षा करने वाले आप (बभूथ) हूजिये । जो (अस्मे) हम लोगों की (त्वावतः) आपके सदृश (अभिक्षत्तुः) सब ओर से नाशकर्त्ता हिंसक के (वरूता) स्वीकार करने वाला हो उसके भी रक्षक हूजिये ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् शूरवीर ! जो पीड़ित प्रजाजन तुमको आह्वान दे उनके वचन को आप शीघ्र सुनें और सब की रक्षा करने वाले होकर दुष्टों की हिंसा करने वाले हूजिये ॥८॥

फिर किसकी मित्रता करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।

वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके३ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥९॥

पदार्थ—हे (तरुत्र) दुःख से तारने वाले (इन्द्र) राजा (नमोवृधासः) अन्न के बढ़ाने वा अन्न से बढ़े हुए हम लोग (महिना) बड़प्पन से (विश्वह) सब दिनों (ते) आपके (सखायः) मित्र (स्याम) हों जो (ते) आपके (समीके) समीप में (अवसा) रक्षा आदि में (अभीतिम्) अभय और (वनुषाम्) मांगते जनों के (शवांसि) बलों को (वन्वन्तु, स्म) ही मांगें (अर्यः) वैश्यजन आप इनसे इस पदार्थ को धारण करो ॥९॥

भावार्थ—जो धार्मिक राजा से नित्य मित्रता करने की इच्छा करते हैं वे बड़प्पन में सत्कार पाते हैं, जो प्रजा को अभय देते हैं वे प्रतिदिन बलिष्ठ होते हैं ॥९॥

फिर राजा-प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।

वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख के विदीर्ण करने वाले (सः) सो आप (त्वयतायै) आपने जो बड़े यत्न से सिद्ध की उस (इषे) इच्छा सिद्धि वा अन्न की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों को (धाः) धारण कीजिये (ये, च) और जो (मघवानः) नित्य धनाढ्य जन (जुनन्ति) प्रेरणा देते हैं उनको भी उक्त इच्छा-सिद्धि वा अन्न की प्राप्ति के लिये धारण कीजिये जिससे (ते) आपकी (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (वस्वी) धन करने वाली (शक्तिः) सामर्थ्य (अस्तु) हो । हे मन्त्री जनो ! (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों को (सदा) सब कभी [—सदा] (सु, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थ—हे राजा ! आप प्रयत्न से सबको पुरुषार्थी कर निरन्तर धनाढ्य कीजिये और अच्छे कामों में प्रेरणा दीजिये जिससे आपकी और आपके भृत्यों की अलौकिक शक्ति हो और वे आपकी सर्वदा रक्षा करें ॥१०॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा, विद्वान, इन्द्र, मित्र, सत्य, गुण और याच्ञा आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।

यह सप्तम मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता। १ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ७ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् । ६ । ८ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब नव ऋचा वाले बाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करके कैसा हो इस विषय का उपदेश करते हैं ।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

पदार्थ—हे (हर्यश्व) मनोहर घोड़े वाले (इन्द्र) रोग नष्टकर्त्ता वैद्यजन आप (अर्वा) घोड़े के (न) समान (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस का (पिब) पीओ (यम्) जिसको (अद्रिः) मेघ (सुषाव) उत्पन्न करता है और जो (सोतुः) सार निकालने वा (सुयतः) सार निकालने की ओर सिद्धि करने वाले (ते) आपकी (बाहुभ्याम्) बाहुओं से कार्यसिद्धि करता है वह (त्वा) आपको (मन्दतु) आनन्दित करे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे वैद्यो ! तुम जैसे वाजी घोड़े तृण, अन्न और जलादिकों का अच्छे प्रकार सेवन कर पुष्ट होते हैं वैसे ही बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों को पीकर बलवान् होओ ॥१॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।

स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

पदार्थ—हे (प्रभूवसो) समर्थ और बसाने वाले (हर्यश्व) हरणशील घोड़ों से युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्यवान राजा (यः) जो (ते) आप का (युज्यः) योग करने योग्य (चारुः) सुन्दर (मदः) आनन्द (अस्ति) है वा (येन) जिससे सूर्य (वृत्राणि) मेघ के अङ्गों को वैसे शत्रुओं की सेना के अङ्गों का (हंसि) विनाश करते हो (सः) वह (त्वाम्) तुम्हें (ममत्तु) आनन्दित करे ॥२॥

भावार्थ—जिस-जिस उपाय से दुष्ट बलहीन हों उस-उस उपाय का राजा अनुष्ठान करे अर्थात् आरम्भ करे ॥२॥

फिर मनुष्यों में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित धन वाले विद्वान् आप (याम्) जिस (ते) आप के विषय की (प्रशस्तिम्) प्रशंसित वाणी को (वसिष्ठः) अतीव बसने वाला (आ, अर्चति) अच्छे प्रकार सत्कृत करता है (इमाम्) इस (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को आप (सु, बोध) अच्छे प्रकार जानो उसमें (सधमादे)

एक से स्थान में (इमा) इन (ब्रह्म) धन वा अन्नों का (जुषस्व) सेवन करो ॥३॥

भावार्थ—वही विद्वान् उत्तम है जो जिस प्रकार की उत्तम शास्त्र विषय में बुद्धि अपने लिये चाहे उसी को औरों के लिये चाहे और जो-जो उत्तम अपने लिये पदार्थ हो उसे पराये के लिये भी जाने ॥३॥

फिर पढ़ने-पढ़ाने वाले परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् । कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥४॥

पदार्थ—हे परम विद्वान् आप (**विपिपानस्य**) विविध प्रकार के पीने जिस से बनें उस (**अद्रेः**) मेघ के समान (**अर्चतः**) सत्कार करते हुए (**विप्रस्य**) उत्तम बुद्धि वाले जन के (**हवम्**) शब्दसमूह को (**श्रुधि**) सुनो (**मनीषाम्**) उत्तम बुद्धि का (**बोध**) जानो और (**इमा**) इन (**अन्तमा**) समीपस्थ (**दुवांसि**) सेवनों का (**सचा**) सम्बन्ध करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है – हे जिज्ञासु विद्यार्थी जनो ! तुम अपना पढ़ा हुआ परीक्षा लेने वाले विद्वान् को सुनाओ, वहां वे जो उपदेश करें उनका निरन्तर सेवन करो ॥४॥

फिर परीक्षक जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् । सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५॥

पदार्थ—हे विद्यार्थी ! नहीं है विद्या में अभ्यास जिसका ऐसे (ते) तेरे (**तुरस्य**) शीघ्रता करने वाले की (**गिरः**) वाणियों को (**विद्वान्**) विद्वान् मैं (**न, मृष्ये**) नहीं विचारता (**अपि**) अपितु (**असुर्यस्य**) मूर्खों में प्रसिद्ध हुए जन की (**सुष्टुतिम्**) उत्तम प्रशंसा को (**न**) नहीं विचारता (**ते**) तेरे (**नाम**) नाम और (**स्वयशः**) अपनी कीर्ति की (**सदा**) सदा (**विवक्मि**) विवेक से परीक्षा करता हूँ ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन परीक्षा में जिनको आलसी, प्रमादी और निर्बुद्धि देखें उनकी न परीक्षा करें और न पढ़ावें । और जो उद्यमी अर्थात् परिश्रमी उत्तम बुद्धि विद्याभ्यास में तत्पर बोधयुक्त हों उनकी उत्तम परीक्षा कर उन्हें अच्छा उत्साह दें ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् । मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुत विद्यारूपी ऐश्वर्ययुक्त जो (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**भूरि**) बहुत (**मनीषी**) बुद्धिवाला जन (**ते**) आपके (**सवना**) यज्ञसिद्धि कराने वाले कर्मों वा प्रेरणाओं को (**भूरि**) बहुत (**हवते**) ग्रहण करता तथा जो (**त्वाम्**) आप की (**इत्**) ही स्तुति प्रशंसा करता (**हि**) उसी को (**अस्मत्**) हम लोगों से (**आरे**) दूर (**ज्योक्**) निरन्तर (**मा, कः**) मत करो कि तुम सदा हमारे समीप रक्खो ॥६॥

भावार्थः—जो निश्चय से मनुष्यों के बीच उत्तम विद्वान् आप्त परीक्षा करने वाला हो उसका तथा अन्य अध्यापकों की निरन्तर प्रार्थना करो आप लोगों को हमारे निकट जो धार्मिक, विद्वान् हो वही निरन्तर रखने योग्य है जो मिथ्या प्यारी वाणी बोलने वाला न हो ॥६॥

फिर सेनापतियों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७॥

पदार्थ—हे (**शूर**) निर्भयता से शत्रुजनों की हिंसा करने वाले राजा वा सेनापति, जो (**विश्वधा**) विश्व का धारण करने वाले (**त्वम्**) आप (**नृभिः**) नायक मनुष्यों से (**हव्यः**) स्तुति वा ग्रहण करने योग्य (**असि**) हैं इससे (**तुभ्य**) तुम्हारे लिये (**इत्**) ही (**इमा**) यह (**सवना**) ओषधियों के बनाने वा प्रेरणाओं को (**कृणोमि**) करता हूँ और (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिये (**विश्वा**) समस्त (**ब्रह्माणि**) धन वा अन्नों और (**वर्धना**) उन्नति करने वाले कर्मों को करता हूँ ॥७॥

भावार्थ—सेनाधिष्ठाता जन समस्त योद्धा भृत्यजनों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर अधिकार और कार्यों में नियुक्ति करें यथावत् उनकी पालना करके उत्तम शिक्षा से बढ़ावें ॥७॥

फिर वह राजा कैसे पुरुषों को रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥८॥

पदार्थ—हे (**दस्म**) दुःख के विनाशने वाले (**उग्र**) तेजस्वी (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त राजा (**मन्यमानस्य**) माननीय के मानने वाले (**ते**) आपके (**महिमानम्**) बड़प्पन को (**नु**) शीघ्र सज्जन (**उदश्नुवन्ति**) उन्नति पहुँचाते हैं उनके विद्यमान होते (**ते**) आपके (**वीर्यम्**) पराक्रम को शत्रुजन नष्ट (**न**) न कर सकते हैं (**चित्**) और (**न**) न वहां (**नु**) शीघ्र (**राधः**) धन ले सकते हैं ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् ! आप अच्छी परीक्षा कर सुपरीक्षित, धार्मिक, शूर, विद्वान् जनों को अपने निकट रक्खें तो कोई भी शत्रुजन आपको पीड़ा न दे सके, सदा वीर्य और ऐश्वर्य से बढ़ो ॥८॥

राजादिकों को किनके साथ मैत्री विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः । अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) राजन् (**ये**) जो (**पूर्वे**) विद्या पढ़े हुए (**ऋषयः**) वेदार्थवेत्ता जन (**च**) और धार्मिक अन्य जन (**ये**) जो (**नूत्नाः**) नवीन पढ़ने वाले जन (**च**) और बुद्धिमान् अन्य जन (**विप्राः**) उत्तम बुद्धि वाले जन (**ते**) तुम्हारे और (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**ब्रह्माणि**) धन वा अन्नों को (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं उनके साथ हमारे और आपके (**शिवानि**) मङ्गल देने वाले (**सख्या**) मित्र के कर्म (**सन्तु**) हों जैसे (**यूयम्**) तुम हमारे मित्र हुए (**स्वस्तिभिः**) सुखों से (**नः**) हम लोगों की (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो वैसे हम लोग भी तुम को सुखों से सदा पालें ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजा ! जो वेदार्थवेत्ता और अर्थ पदार्थों को जानने वाले योगी जन विद्याध्ययन में निरत बुद्धिमान् हमारे कल्याण की इच्छा करने वाले हों उनके साथ ऐसी मित्रता कर धनधान्यों को बढ़ा इनसे इनकी सदा रक्षा कर और रक्षा किये हुए वे जन आप की सदा रक्षा करेंगे ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, शूर, सेनापति, पढ़ाने, पढ़ने, परीक्षा करने और उपदेश देने वालों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ६ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब छः ऋचावाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में प्रबन्धकर्त्ता जन उपस्थित संग्राम में क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ । आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

पदार्थ—हे (**वसिष्ठ**) अतीव वसने वाले विद्वान् राजा जैसे विद्वान् जन (**श्रवस्या**) अन्न वा श्रवणों के बीच उत्पन्न हुए (**ब्रह्माणि**) धनधान्यों को (**उदैरत**) प्रेरणा देते हैं वैसे (**इन्द्रम्**) शूरवीर जन का (**उ**) तर्क-वितर्क से (**समर्ये**) संगर में (**महय**) सत्कार करो (**यः**) जो (**उपश्रोता**) ऊपर से देखने वाला अच्छे सुनता है वह (**शवसा**) बल से (**ईवतः**) समीप जाते हुए (**मे**) मेरे (**विश्वानि**) सब (**वचांसि**) वचनों को (**आ, ततान**) अच्छे प्रकार विस्तारता है उस उपदेशक का भी समर में सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजा जब संग्राम उपस्थित हो तब बहुत धन अन्न शस्त्र अस्त्र सेनाओं के अङ्ग और इनकी रक्षा करने तथा अच्छे प्रबन्ध करने वालों को आप प्रेरणा देओ, आप्त और उपदेष्टा जनों को रक्खो, योद्धा जन उत्साहित और सुरक्षित हुए शीघ्र विजय करें ॥१॥

फिर वह राजा और मन्त्री जन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि । नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य के देने वाले (**यत्**) जो (**शुरुधः**) शीघ्र रूंधने वाले (**विवाचि**) नाना प्रकार की विद्याओं में जो प्रवृत्त वाणी उसमें (**इरज्यन्त**) प्राप्त होते हैं वा जिनके साथ (**देवजामिः**) विद्वानों के सङ्ग रहने वाली (**घोषः**) अच्छी वक्तृता से युक्त वाणी प्रवृत्त हो वा जो (**जनेषु**) मनुष्यों में (**स्वम्**) अपनी (**आयुः**) उमर को (**चिकिते**) जानता है वा (**तानि**) उन (**अंहांसि**) अधर्मयुक्त कामों को दूर (**अति, पर्षि**) आप अति पार पहुँचाते वा (**अस्मान्**) हम लोगों की अच्छे प्रकार रक्षा करता है उसकी मैं (**अयामि**) रक्षा करता हूँ ये समस्त हम लोग पुरुषार्थ से पराजित (**इत्, नहि**) कभी न हों ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तें वैसे तुम भी वर्त्तो ब्रह्मचर्य्य आदि से अपनी आयु को बढ़ाओ ॥२॥

फिर क्या करके वीर सग्राम मे जावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

पदार्थ—हे सेनेश जैसे (**इन्द्रः**) सूर्य (**महित्वा**) अपने महान् परिमाण से (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करता है वैसे जिस (**ब्रह्माणि**) धन धान्य पदार्थों को (**जुजुषाणम्**) सेवते हुए (**रथम्**) प्रशसनीय रथ को वीरजन (**उपास्थु**) उपस्थित होते हैं जिससे शूरवीर जन शत्रुओ को (**विबाधिष्ट**) विविध प्रकार से विलोवें—पीडा दे उसको (**अप्रति**) अप्रत्यक्ष अर्थात् पीछे भी (**जघन्वान्**) मारने वाला (**स्य**) वह मैं (**गवेषणम्**) भूमि पर पहुचाने वाले रथ को (**हरिभ्याम्**) हरणशील घोड़ो से (**युजे**) जोड़ता हूँ जिससे (**वृत्राणि**) धनों की प्राप्त होऊ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे शूरवीरो ! जब आप लोग युद्ध के लिये जावें तब सब सामग्री को पूरी करके जावें जिससे शत्रुओ को शीघ्र बाधा-पीडा हो और विजय को भी प्राप्त हो ॥३॥

फिर सेनापति का ईश वीर, कैसे युद्ध करने वालों को रक्खे
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सर्व सेनापति जो वीरजन (**आप**) जलो के (**चित्**) समान सेनाजनों को चलाते हुए (**स्तर्य**) ढपी हुई (**गाव**) किरणो के (**न**) समान (**पिप्यु**) बढ़ावें और (**ते**) आप की (**जरितार**) स्तुति करने वाले जन (**ऋतम्**) सत्य को (**नक्षन**) व्याप्त होते है उनके साथ (**वायुः**) पवन के (**न**) समान (**त्वम्**) आप (**याहि**) जाइये (**हि**) जिससे (**धीभि.**) उत्तम बुद्धियों से (**नियुत**) निश्चित किये हुए (**वाजान**) वेगवान् (**नः**) हम लोगो की (**अच्छा**) अच्छे प्रकार (**वि दयसे**) विशेषता से दया करते हो इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञा का न उल्लघन करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे सेनाध्यक्ष पति यदि आप सुपरीक्षित शूरवीर जनो की अच्छे प्रकार रक्षा कर अच्छी शिक्षा देकर और कृपा से उन्नति कर शत्रुओ के साथ युद्ध करावें तो ये सूर्य की किरणो के समान तेजस्वी होकर पवन के समान शीघ्र जा शत्रुओ को शीघ्र विनाशे ॥४॥

फिर वे सब सेनापति और सब सेना जन परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्त्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५॥

पदार्थ—हे (**शूर**) निर्भय (**इन्द्र**) सर्व सेना स्वामी (**हि**) जिस कारण आप (**एक·**) अकेले (**देवत्रा**) विद्वानो मे जिस (**जरित्रे**) सत्य की स्तुति करने वाले के लिये और जिन भृत्य जनो के लिये (**दयसे**) दया करते हो (**ते**) वे (**मदा**) आनन्दयुक्त होते हुए भट योद्धाजन (**शुष्मिणम्**) बलयुक्त (**तुविराधसम्**) बहुत धन धान्य वाले (**त्वा**) आप को (**मादयन्तु**) हर्षित करें आप (**अस्मिन्**) इस वर्त्तमान (**सवने**) युद्ध के लिये प्रेरणा मे उन (**मर्त्तान्**) मनुष्यो को (**मादयस्व**) आनन्दित करो ॥५॥

भावार्थ—हे सर्व सेनाधिकारियो के पति ! आप सर्वदैव सब पर पक्षपात को छोड़ कृपा करो और सब को समान भाव से आनन्दित करो जिससे वे अच्छी रक्षा और सत्कार पाये हुए दुष्टो का निवारण और श्रेष्ठो की रक्षा करके निरन्तर राज्य बढ़ावें ॥५॥

फिर सर्व सेनापति को सेनाजन परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवत्पातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—जो (**वसिष्ठास**) अतीव बसाने वाले जन (**अर्कै**) उत्तम विचारो से (**वृषणम्**) सुखो की वर्षा करने और (**वज्रबाहुम्**) शस्त्र अस्त्रों को हाथो में रखने वाले (**इन्द्रम्**) सर्व सेनाधिपति का (**अभि, अर्चन्ति**) सत्कार करते हैं (**सः, एव**) वही (**स्तुत**) स्तुति को प्राप्त हुआ (**न.**) हम लोगो की (**पातु**) रक्षा करे। सब (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभि**) सुखो से (**नः**) हम लोगों की तथा (**गोमत्**) प्रशसित गौएं जिसमें विद्यमान वा (**वीरवत्**) वीरजन जिसमें विद्यमान वा (**इत्**) उस सेना समूह की भी [**सदा**] (**पात**) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थ—जिनका जो अधिष्ठाता हो उसकी आज्ञा मे सब को यथावत् वर्त्तना चाहिये। अधिष्ठाता भी पक्षपात को छोड़ अच्छे प्रकार विचार कर आज्ञा दे ऐसे परस्पर की रक्षा कर राज्य, धन और यशो को बढ़ा सदा बढ़े हुए होओ ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र, सेना, योद्धा और सर्व सेनापतियों के कार्य्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप्छन्द. । धैवत· स्वर । ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब छ· ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में
मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१॥

पदार्थ—(**पुरुहूत**) बहुतो से स्तुति पाये हुए (**इन्द्र**) मनुष्यो के स्वामी राजा (**ते**) आपके (**सदने**) उत्तम स्थान मे जो (**योनि.**) घर तुम से (**अकारि**) किया जाता है (**तम्**) उसको (**नृभि**) नायक मनुष्यो के साथ (**प्र, याहि**) उत्तमता से जाओ (**यथा**) जैसे (**न·**) हमारी (**अविता**) रक्षा करने वाला (**असः**) होओ और हमारी (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**च**) भी (**वसूनि**) द्रव्य वा उत्तम पदार्थों को (**ददः**) ग्रहण करो (**सोमै., च**) और ऐश्वर्य वा उत्तमोत्तम ओषधियो के रसों से (**ममदः**) हर्ष को प्राप्त होओ वैसे सब के सुख के लिये होओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—मनुष्यो को चाहिये कि निवास-स्थान उत्तम जल स्थान और पवन जहां हो उस देश मे घर बना कर वहा वसें, सब के सुखो के बढ़ाने के लिये धनादि पदार्थों से अच्छी रक्षा कर सबो को आनन्दित करें ॥१॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करके विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परमैश्वय के देने वाले जो (**विसृष्टधेना**) नाना प्रकार की विद्यायुक्त वाणी और (**सुवृक्ति**) सुन्दर चाल ढाल जिसकी ऐसी (**इयम्**) यह (**मनीषा**) प्रिया स्त्री (**इन्द्रम्**) परमैश्वय देने वाले पुरुष को (**जोहुवती**) निरन्तर बुलाती है उसको (**भरते**) धारण करती है जिसने (**ते**) तेरे (**मन**) मन (**गृभीतम्**) ग्रहण किया तथा जो (**द्विबर्हा**) दो से अर्थात् विद्या और पुरुषार्थ से बढ़ता वह (**सुत**) उत्पन्न किया हुआ (**सोम**) ओषधियो का रस है और जहा (**परिषिक्ता**) सब ओर से सीचे हुए (**मधूनि**) दाख वा सहत आदि पदार्थ हैं उन्हें सेवो ॥२॥

भावार्थ—जो स्त्री सुविचार से अपने प्रिय पति को प्राप्त हो के गर्भ को धारण करती है वह पति के चित्त को खीचने और वश करने वाली होकर वीर सुत को उत्पन्न कर सर्वदा आनन्दित होती है ॥२॥

फिर मनुष्यो को क्या वर्त्त कर क्या पीना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥३॥

पदार्थ—हे (**ऋजीषिन्**) सरल स्वभाव वाले आप (**सोमपेयाय**) उत्तम ओषधियों के रस के पीने के लिये (**दिव**) प्रकाश और (**पृथिव्या**) भूमि से (**नः**) हमारे (**इदम्**) इस वर्त्तमान (**बर्हि**) उत्तम स्थान वा अवकाश को (**आ, याहि**) आओ (**मदाय**) आनन्द के लिए (**मद्र्यञ्चम्**) मेरा सत्कार करते (**आङ्गूषम्**) और प्राप्त होते हुए (**तवसम्**) बलवान् (**त्वाम्**) आपको उत्तम ओषधियो के रस पीने के लिये (**हरय**) हरणशील (**अच्छ, आ, वहन्तु**) अच्छे पहुँचावें ॥३॥

भावार्थ—वे ही नीरोग, शिष्ट, धार्मिक, चिरायु और परोपकारी हो जो मद्यरूप और अच्छे प्रकार बुद्धि के नष्ट करने वाले पदार्थ को छोड़ बल, बुद्धि आदि को बढ़ाने वाले सोम आदि बड़ी ओषधियो के रस के पीने को अपने वा आप्त के स्थान को जावें ॥३॥

फिर कौन आप्त विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥४॥

पदार्थ—हे (**सुशिप्र**) उत्तम शोभायुक्त ठोढी वाले (**हर्यश्व**) हरणशील

मनुष्य वा घोडे बड़े बडे जिसके हुए वह (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देन वाले (विश्वाभि) समस्त (ऊतिभि) रक्षा आदि क्रियाओ से (सजोषा) समान प्रीति सेवन वाले (वसु) धन वा अन्न को (जुषाण) सेवने वा (स्थविरेभि.) विद्या और अवस्था मे वृद्धो के साथ (अस्मे) हम लोगा मे (वृषणम्) सुख वर्षाने वाले (शुष्मं) बल को (दधत्) धारण करते हुए आप दुःखो को (वरीवृजत्) निरन्तर छोडो और (न) हम लोगो को (आ, याहि) आओ, प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य महाशय होते हैं जा पाप और परोपघात अर्थात् दूसरों को पीडा देने के कामों को छोड़ के अपने आत्मा के तुल्य सब मनुष्यो मे वर्त्तमान सब के सुख के लिये अपना शरीर, वाणी और ठोडी को वर्ताते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीऽ३ वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वाऽयमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले जिन आपने (वाहे) सब को सुख की प्राप्ति कराने वाले (महे) महान् (उग्राय) तेजस्वी के लिये (धुरीव) धुरी म जैसे रथ आदि के अवयव लगे हुए जाते है वैसे (अत्य.) शीघ्र चलने वाले घोडे के (न) समान (वाजयत्) वेग कराते हुए (एष) यह (स्तोम) श्लाघनीय स्तुति करने याग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया जो (अयम्) यह (अर्क) सत्कार करन योग्य (वसूनाम्) पृथिवी आदि क बीच (दिवीव) वा सूर्य ज्योति के बीच (त्वा) आपको (ईट्टे) एश्वर्य देता है वह आप (नः) हम लोगो को (द्याम्) प्रकाश और (श्रोमतम्) सुनने योग्य को (अधि, धा·) अधिकता से धारण करो ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो विद्वान तेजस्वियो के लिए प्रशसा धारण करता वह धुरी के समान सुख का आधार और घोडे के समान वेगवान हो बहुत लक्ष्मी पाकर सूर्य के समान इस ससार मे प्रकाशित होता है ॥५॥

फिर मनुष्यो को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओ के विदीर्ण करने वाले आप (वार्यस्य) ग्रहण करने योग्य (ते) आप की जिस (महीम्) बडी (सुमतिम) उत्तम बुद्धि को हम लोग (वेविदाम) यथावत् पावें (एव) उसी को और (न) हमको (प्र, पूर्धि) अच्छे प्रकार पूर्ण करो जिसको (मघवद्भ्य) बहुत धनयुक्त पदार्थों से (सुवीराम्) उत्तम वीर है जिससे उस (इषम्) अन्न को हम लोग यथावत प्राप्त हो । और उसको आप (पिन्व) सेवो । उस सुमति और अन्न तथा (स्वस्तिभि) सुखो से (यूयम्) तुम लोग (न) हम लागो की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! आप हम लोगो के लिये धमयुक्त उत्तम बुद्धि को देओ जिससे हम लोग अच्छे गुण कर्म स्वभावो का प्राप्त होकर सब मनुष्यो की अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥६॥

इस सूक्त मे इन्द्र, राजा, स्त्री, पुरुष और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल मे चौबीसवा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि. । इन्द्रो देवता । १ निचृत्पङ्क्ति २ विराटपङ्क्ति । ४ पङ्क्ति । ६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब छ ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे कैसी सेना उत्तम होती है इस विषय को कहते हैं ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्य१ग्वि चारीत् ॥१॥

पदार्थ—हे (उग्र) शत्रुओ के मारने मे कठिन स्वभाव वाले (इन्द्र) सेनापति (यत्) जिस (नर्यस्य) मनुष्यो मे साधु (महः) महान् (ते) आप के (समन्यव) क्रोध के साथ वर्त्तमान (सेना) सेना (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (आ, समरन्त) सब ओर से अच्छी जाती हैं उन (ते) आप की (बाह्वोः) भुजाओ मे (दिद्युत) निरन्तर प्रकाशमान युद्ध क्रिया (मा) मत (पताति) गिरे, मन नष्ट हो और तुम्हारा (मन) चित्त (विष्वद्र्यक्) सब ओर स प्राप्त होता हुआ (वि, चारीत्) विचरता है ॥१॥

भावार्थ—हे सेनाधिपति ! जब सग्राम समय मे आओ तब जो क्रोध प्रज्वलित क्रोधाग्नि से जलती हुई सेनाएँ शत्रुओ के ऊपर गिरें, उस समय वे विजय को प्राप्त ही जब तक तुम्हारा बाहुबल न फैले, मन भी अन्याय मे न प्रवृत्त हो तब तक तुम्हारी उन्नति होती है यह जानो ॥१॥

फिर राजा को कौन दण्ड देने योग्य और निवारने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥२॥

पदार्थ— हे (इन्द्र) दुष्ट शत्रुओ के निवारने वाले राजा (ये) जो (मर्तास) मनुष्य (न) हम लोगो को (दुर्गे) शत्रुओ को दुःख से पहुँचने योग्य परकोटा मे (अमन्ति) रोगो को पहुचाते हैं उन (अमित्रान्) सब के साथ द्रोहयुक्त रहने वालो को (नि, अभि, श्नथिहि) निरन्तर सब ओर से मारो हम लोगो से (आरे) दूर उनको फेंको (निनित्सो) और निन्दा की इच्छा करने वाले से हम लोगो को दूर कर (नः) हम लोगो के (तम्) उस (शसम्) प्रशसनीय विजय को (कृणुहि) कीजिये तथा (वसूनाम्) द्रव्यादि पदार्थों के (संभरणम्) अच्छे प्रकार धारण पोषण को (आ, भर) सब ओर से स्थापित कीजिये ॥२॥

भावार्थ- हे राजा ! जो धूर्त्त मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि के निवारण से मनुष्यो को रोगी करते है उनको काराघर मे बाधा और जो अपनी प्रशसा के लिये सब की निन्दा करते हैं उनको समझा कर उत्तम प्रजाजनो से अलग रक्खो, ऐसे करने से आपकी बड़ी प्रशसा होगी ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शतं त शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥३॥

पदार्थ— हे (शिप्रिन्) अच्छे मुख वाले राजा (ते) आपके (वनुष) याचना करते हुए (मर्त्यस्य) पीडित मनुष्य की (शतम्) सैकडो (ऊतय) रक्षा आदि क्रिया और (सहस्रम्) असख्य (शसा) प्रशसा हो (उत) और (सुदासे) जो उत्तमता से देता है उसके लिए (राति.) दान (अस्तु) हो आप (वनुष) अधम से मागने वाले पालनो (मर्त्यस्य) मनुष्य की (वध) ताडना को (जहि) हना नष्ट करो तथा (अस्मे) हम लोगो मे (द्युम्नम्) धर्मयुक्त यश और (रत्न च) रमणीय धन भी (अधि, धेहि) अधिकता से धारण करो ॥३॥

भावार्थ— हे राजा ! आप सैकडो वा सहस्रो प्रकार से प्रजा की पालना और सुपात्रो को देना, दुष्टो का वधन, प्रजाजनो मे कीर्ति बढ़ाना और धन का निरन्तर विधान करो जिससे सब सुखी हो ॥३॥

फिर वे राजा और प्रजाजन परस्पर मे कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

पदार्थ—हे (तविषीव) प्रशसित सेना वा (हरिव) प्रशसित हरणशील मनुष्यो वाले (शूर) निर्भय (इन्द्र) सेनापति (हि) जिस कारण से (विश्वा, इत, अहानि) सभी दिनो (त्वावत) तुम्हारे समान के (क्रत्वे) बुद्धि वा कर्म के लिये प्रवृत्त हो (त्वावत) और आपके सदृश (अवितु) रक्षा करने वाले के (रातौ) दान के निमित्त उद्यत (अस्मि) हूँ उस मेरे लिये (उग्र) तेजस्वी आप (ओक) घर (कृणुष्व) सिद्ध करो, बनाओ और अधार्मिक किसी जन को (न) न (मर्धी) चाहो ॥४॥

भावार्थ—हे धार्मिक राजा ! जिससे आप सबकी रक्षा के लिये सदा प्रवृत्त होते हो इससे तुम्हारी रक्षा मे हम लोग सर्वदा प्रवृत्त है ॥

फिर उस राजा को क्या अवश्य करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय जिन (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्त आप मे (हर्यश्वाय) प्रशसित जिसके मनुष्य वा घोडे उसके लिये (एते) ये (कुत्सा) वज्र अस्त्र और शस्त्र आदि समूह हो उनको और (देवजूतम्) देवो से पाये हुए (शूषम्) बल तथा (सह) क्षमा (इयाना·) प्राप्त होते हुए (तरुत्राः) दुःख से सबको अच्छे प्रकार तारने वाले (वयम्) हम लोग (वाजम्) विज्ञान को (सनुयाम) याचें आप (सत्रा) सत्य से (वृत्रा) दुःखो को (सुहना) नष्ट करने के लिये सुगम (कृधि) करो ॥५॥

भावार्थ—हे राजा ! यदि राज्य पालने वा बढ़ाने को आप चाहें तो शस्त्र अस्त्र और सेना जनो को निरन्तर ग्रहण करो फिर सत्य आचार को मांगते हुए निरन्तर बढ़ो और हम लोगों को बढ़ाओ ॥५॥

फिर उपदेशक और उपदेश करने योग्यों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले आप (नः) हम लोगों को विद्या और उत्तम शिक्षा से (प्र, पूर्धि) अच्छे प्रकार पूरा करो जिससे हम लोग (वार्यस्य) स्वीकार करने योग्य (ते) आपकी (सुमतिम्) उत्तम मति और (महीम्) अत्यन्त वाणी को (वेविदाम) प्राप्त हों तथा (मघवद्भ्यः) बहुत धन से युक्त सज्जनों से (सुवीराम्) उत्तम विज्ञानवान् वीर जिसमें होते उस (इषम्) विद्या को प्राप्त होवें यहां आप हम लोगों की (पिन्व) रक्षा करो और (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा, एव) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थ—वे ही पढ़ाने वाले धन्यवाद के योग्य होते हैं जो विद्यार्थियों को शीघ्र विद्वान् और धार्मिक करते हैं और सर्वदैव रक्षा में वर्त्तमान होते हुए सब की उन्नति करते हैं ॥६॥

इस सूक्त में सेनापति, राजा और शस्त्र अस्त्रों को ग्रहण करना इन अर्थों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में जीव का उपकार कौन नहीं कर सकता इस विषय को कहते हैं ॥

न सोम॒ इन्द्र॒मसु॑तो ममाद॒ नाब्र॑ह्माणो म॒घवा॑नं सु॒तासः॑ ।

तस्मा॑ उ॒क्थं ज॑नये॒ यज्जुजो॑षन्नृ॒वन्नवी॑यः शृ॒णव॒द्यथा॑ नः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यथा) जैसे (असुतः) न उत्पन्न हुआ (सोमः) महौषधियों का रस जिस (इन्द्रम्) इन्द्रियों के स्वामी जीव को (न) नहीं (ममाद) हर्षित करता वा जैसे (अब्रह्माणः) चार वेदों के वेत्ता जो नहीं वे (सुतासः) उत्पन्न हुए (मघवानम्) परमपूजित धनवान् को (न) नहीं आनन्दित करते हैं वह इन्द्रियस्वामी जीव (यत्) जिस (नृवत्) नृवत् अर्थात् जिसमें बहुत नायक मनुष्य विद्यमान और (नवीयः) अत्यन्त नवीन (उक्थम्) उपदेश को (जुजोषत्) सेवता है (नः) हम लोगों का (शृणवत्) सुनता है (तस्मै) उसके लिये सब प्रकार के विधानों को मैं (जनये) उत्पन्न करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे बुद्धिमान् मनुष्यो ! जैसे उत्पन्न हुआ पदार्थ जीव को आनन्द देता है जैसे यथावत् वेदविद्या और आप्तजन धार्मिक धनाढ्य को विद्वान् करते हैं वैसे उत्पन्न हुई विद्या आत्मा को सुख देती है और शुभ गुण धनाढ्य को बढ़ाते हैं और सत्सङ्ग से ही मनुष्यत्व को जीव प्राप्त होता है ॥१॥

फिर किसके तुल्य कौन क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उ॒क्थउ॑क्थे॒ सोम॒ इन्द्रं॑ ममाद नी॒थेनी॑थे म॒घवा॑नं सु॒तासः॑ ।

यदीं॑ स॒बाधः॑ पि॒तरं॒ न पु॒त्राः स॑मा॒नद॑क्षा॒ अव॑से॒ हव॑न्ते ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यत्) जो (ईम्) सब ओर से (सबाधः) पीड़ा के साथ वर्त्तमान (पितरम्) पिता को (समानदक्षाः) समान बल, विद्या और चतुरता जिनके विद्यमान वे (पुत्राः) पुत्र जन (न) जैसे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सुतासः) विद्या और ऐश्वर्य में प्रकट हुए (मघवानम्) धर्म कर्म बहुत धन जिसके उसको (हवन्ते) स्पर्द्धा करते वा ग्रहण करते हैं और जैसे (सोमः) बड़ी बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (उक्थे उक्थे) धर्मयुक्त उपदेश करने योग्य व्यवहार तथा (नीथे नीथे) पहुँचाने पहुँचाने योग्य सत्य व्यवहार में (इन्द्रम्) जीवात्मा को (ममाद) हर्षित करता है उनके साथ वैसा ही आचरण करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जो विद्यार्थी जन जैसे अच्छे पुत्र क्लेशयुक्त माता पिता को प्रीति से सेवते हैं वैसे गुरु की सेवा करते हैं वा जैसे विद्या विनय और पुरुषार्थों से उत्पन्न हुआ ऐश्वर्य, उत्पन्न करने वाले को आनन्दित करता है वैसे तुम लोग वर्त्तो ॥२॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

च॒कार॒ ता कृ॒णव॑न्नू॒नम॒न्या यानि॑ ब्रु॒वन्ति॑ वे॒धसः॑ सु॒तेषु॑ ।

जनी॑रिव॒ पति॒रेकः॑ समा॒नो नि मा॑मृजे॒ पुर॒ इन्द्रः॒ सु सर्वाः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (वेधसः) मेधावी जन (सुतेषु) उत्पन्न हुए विज्ञान और बलों में उपदेश करने योग्यों को (यानि) जिन वचनों को तथा (अन्या) और वचनों को (ब्रुवन्ति) कहते हैं (ता) उनको आप (नूनम्) निश्चित (कृणवत्) करें वा जैसे (समानः) पक्षपात रहित (पतिः) स्वामी राजा (एकः) अकेला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (जनीरिव) उत्पन्न हुई प्रजा के समान (सु, सर्वाः) सम्यक् समस्त प्रजा को (पुरः) पहिले (नि, मामृजे) निरन्तर पवित्र करता है वैसे इसको आप (चकार) करो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों के उपदेश के अनुकूल ही आचरण करो जैसे धार्मिक, जितेन्द्रिय, विद्वान् राजा पक्षपात छोड़के अपनी प्रजा न्याय से रखता है वैसे प्रजाजन इस राजा की निरन्तर रक्षा करें, ऐसा करने से निरन्तर सब को निश्चय सुखलाभ होता है ॥३॥

फिर कौन इस जगत् में राजा होने योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒वा तमा॑हुरु॒त शृ॑ण्व॒ इन्द्र॒ एको॑ विभ॒क्ता त॒रणि॑र्म॒घाना॑म् ।

मि॒थ॒स्तुर॑ ऊ॒तयो॒ यस्य॑ पू॒र्वीर॒स्मे भ॒द्राणि॑ सश्चत प्रि॒याणि॑ ॥४॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (पूर्वीः) पुरातन (मिथस्तुरः) परस्पर शीघ्रता करती हुई (ऊतयः) रक्षायें (अस्मे) हम लोगों में (प्रियाणि) मनोहर (भद्राणि) कल्याण करने वाले काम (सश्चत) सम्बन्ध करें जो (एकः) एक (मघानाम्) धनों के (विभक्ता) सत्य असत्य का विभाग करने वा (तरणिः) तारने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त जीव धर्म की सेवा करता है (तम् एव) उसी को आप्त शिष्ट धर्मशील सज्जन धर्मात्मा (आहुः) कहते हैं (उत) निश्चय उसी का उपदेश मैं (शृण्वे) सुनता हूँ ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी प्रशंसा आप्त विद्वान् जन करें वा जिसके धर्मयुक्त कर्मों को समस्त प्रजा प्रीति से चाहे, जो सत्य झूठ को यथावत् अलग कर न्याय करे वही हमारा राजा हो ॥४॥

फिर विद्वान् जन राजा आदि मनुष्यों को धर्म-मार्ग में नित्य अच्छे प्रकार रक्खें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒वा वसि॑ष्ठ॒ इन्द्र॑मू॒तये॒ नॄन्कृ॑ष्टी॒नां वृ॑ष॒भं सु॒ते गृ॑णाति ।

स॒ह॒स्रिण॒ उप॑ नो माहि॒ वाजा॑न्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् (वसिष्ठ) अत्यन्त विद्या में वास जिन्होंने किया ऐसे आप (कृष्टीनाम्) मनुष्यादि प्रजाजनों के बीच (वृषभम्) अत्युत्तम (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् जीव और (नॄन्) नायक मनुष्यों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (एव) ही (माहि) सत्कार कीजिये (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थ जिनके विद्यमान उन (वाजान्) विज्ञान वा अन्नादियुक्त (नः) हम लोगों का जो आप (उप, गृणाति) सत्य उपदेश देते हैं सो निरन्तर मान कीजिये । हे विद्वानो ! (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जनो ! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे राजा आदि जन धार्मिक होकर असंख्य धन वा अतुल आनन्द को प्राप्त हों, जैसे आप उनकी रक्षा करते हैं वैसे ये आपकी निरन्तर रक्षा करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द से जीव, राजा के कर्म और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्ताइसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में सबको कैसा विद्वान् राजा इच्छा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं॒ नरो॑ ने॒मधि॑ता हवन्ते॒ यत्पार्या॑ यु॒नज॑ते॒ धिय॒स्ताः ।

शूरो॒ नृषा॑ता॒ शव॑सश्चका॒न आ गोम॑ति व्र॒जे भ॑जा॒ त्वं नः॑ ॥१॥

पदार्थ—हे राजा जो (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करने वाले (शवसः) बल से (चकानः) कामना करते हुए (त्वम्) आप (नृषाता) मनुष्य जिसमें बैठते वा (गोमति) गौयें जिसमें विद्यमान ऐसे (व्रजे) जाने के स्थान में (नः) हम लोगों का (आ, भज) अच्छे प्रकार सेविये । हे राजन् ! जिन (इन्द्रम्) परमैश्वर्य देने वाले आपको (यत्) जो (पार्याः) पालना करने योग्य (धियः) उत्तम बुद्धि (युनजते) युक्त होती हैं (ताः) उनको आप अच्छे प्रकार सेवो । जो (नरः) विद्याओं में उत्तम नीति देने वाले (नेमधिता) संग्राम में आप को (हवन्ते) बुलाते हैं उनको आप अच्छे प्रकार सेवो ॥१॥

भावार्थ—जो निश्चय से इस संसार में प्रशंसित बुद्धिवाला, सर्वदा बल वृद्धि की इच्छा करता हुआ, शिष्ट जनों की सम्मति वर्तने वाला, विद्वान्, उद्योगी, धार्मिक और प्रजापालन में तत्पर जन हो उसी की सब कामना करो ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य इ॑न्द्र॒ शुष्मो॑ मघवन्ते॒ अस्ति॒ शिक्षा॒ सखि॑भ्यः पुरुहूत॒ नृभ्यः॑ ।

त्वं हि दृ॒ळ्हा म॑घव॒न्विचे॑ता॒ अपा॑ वृधि॒ परि॑वृतं॒ न राधः॑ ॥२॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम पूजित धनवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य देने वाले (यः) जो (ते) आपका (शुष्मः) पुष्कल बलयुक्त व्यवहार (अस्ति) है । हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त जो आपकी (सखिभ्यः) मित्रों के लिए वा (नृभ्यः) अपने राज्य में नायक मनुष्यों के लिए (शिक्षा) सिखावट है । हे

(मघवन्) बहुधनयुक्त जो आपके (वृळ्हा) दृढ़ शत्रु सैन्यजन हैं उनसे (विचेता) विविध प्रकार वा विशिष्ट बुद्धि जिसकी वह (त्वम्) आप (हि) ही (परिवृतम्) सब ओर से स्वीकार किये (राधः) धन को (न) जैसे वैसे दृढ़ शत्रु-सेनाजनों को (अप, वृधि) दूर कीजिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—वही राजा सदा बढ़ता है जो अपराधी मित्रों को भी दण्ड देने के बिना नहीं छोड़ता, जो ऐसे ऐसे सदैव उत्तम यत्न करता है जिससे कि अपने मित्र उदासीन वा शत्रु अधिक न हों और जो सदैव विद्या और शिक्षा की वृद्धि के लिये प्रयत्न करता है वही सब दुष्ट और लोककण्टक डाकुओं को निवार के राज्य करने के योग्य होता है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य (जगत) संसार के बीच (अधि, क्षमि) पृथिवी पर प्रकाशित होता है वैसे (इन्द्र) शत्रुओं का विदीर्ण करने वाला (राजा) विद्या और नम्रता से प्रकाशमान राजा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच प्रकाशित होता है (यत्) जो (विषुरूपम्) व्याप्तरूप धन (अस्ति) है (ततः) उससे (दाशुषे) देने वाले के लिए (वसूनि) धनों को (ददाति) देता और (उपस्तुतः) समीप में प्रशंसा को प्राप्त हुए (चित्) के समान (अर्वाक्) नीचे प्राप्त होने वाला सबको (राधः) धन के प्रति (चोदत्) प्रेरणा देवे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि जन सूर्य के समान राज्य में दण्ड प्रकाश किये और सुख के देने वाले होते हैं वे ही सब सुख पाते हैं ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।

अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मघवा) बहुत धन युक्त (दानः) देने वाला (इन्द्र) बिजुली के समान विद्या में व्याप्त (नः) हम लोगों को (सहूती) एक सी प्रशंसा (ऊत्या) तथा रक्षा आदि क्रिया से (नः) हम लोगों के लिए (वाजम्) धन वा अन्न को (नियमते) निरन्तर देता है (यस्य) जिसकी (चित्) निश्चित (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) मनुष्यों के लिए (अनूना) पूरी (अभिवीता) सब ओर से व्याप्त अभय (दक्षिणा) दक्षिणा और (वामम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म (पीपाय) बढ़ता है वह सब के लिए (नु) शीघ्र सुख देने वाला होता है ॥४॥

भावार्थ—जो राजा आदि जन यथावत् पुरुषार्थ से सब मनुष्यों को अधर्म से धर्म में प्रवृत्त करा अभय उत्पन्न करते हैं वे प्रशंसनीय होते हैं ॥४॥

फिर राजा प्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।

गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) धन की उन्नति के लिए प्रेरणा देने वाले आप (राये) धन के लिये (नः) हमारी (वरिवः) सेवा (कृधि) करो जो (ते) आपका (मनः) चित्त है उसको (मघाय) धन के लिए हम लोग (नु) शीघ्र (आ, ववृत्याम) सब ओर से वर्त्तें (गोमत्) बहुत गौ आदि वा (अश्वावत्) बहुत घोड़ों से युक्त वा (रथवत्) प्रशंसित रथ आदि से युक्त धन को (व्यन्तः) प्राप्त होते हुए (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—हे राजा ! जैसे हम लोग आपको राज्य की उन्नति के लिये प्रवृत्त करावें वैसे हम लोगों का धनप्राप्ति के लिये प्रवृत्त कराओ । सब आप लोग परमैश्वर्य्य को प्राप्त होकर हमारी रक्षा में निरन्तर प्रयत्न करो ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सेनापति, राजा, दाता, रक्षा करने वाले और प्रवृत्ति कराने वाले के गुणों का और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २।५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक्पङ्क्तिः । ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पाँच ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।

विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्त्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥१॥

पदार्थ—हे (विश्वमिन्व) सब को फेंकने वा (इन्द्र) परमैश्वर्य्य और विद्या की प्राप्ति कराने वाले (विद्वान्) विद्यावान् आप (नः) हम लोगों को (ब्रह्म) धन वा अन्न (उप, याहि) प्राप्त कराओ जिन (ते) आपके (अर्वाञ्चः) नीचे को जाने वाले (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) किये योग (सन्तु) हों (चित्) और जो (हि) ही (विश्वे) सब (मर्त्ताः) मनुष्य (त्वा) आपको (वि, हवन्त) विशेषता से बुलाते हैं उन के साथ (अस्माकम्) हमारे वाक्य को (इत्) ही (शृणुहि) सुनिये ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य न्यायवृत्ति से राजभक्त हों वे राज्य में सत्कार किये हुए निरन्तर वर्त्तें ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।

आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हाः ॥२॥

पदार्थ—हे (शवसिन्) बहुत प्रकार के बल और (उग्र) तेजस्वी स्वभाव युक्त (इन्द्र) दुष्टों के विदारने वाले राजा (यत्) जो (ते) आप का (महिमा) प्रशंसासमूह (हवम्) प्रशंसनीय वाणियों के व्यवहार को और (ब्रह्म) धन को (व्यानट्) व्याप्त होता है तथा आप (ऋषीणाम्) वेदार्थवेत्ताओं के प्रशंसनीय वाणीव्यवहार की (पासि) रक्षा करते हो और (यत्) जिस (वज्रम्) शस्त्र समूह को (हस्ते) हाथ में (आ, दधिषे) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (घोरः) मारने वाले (सन्) हो कर (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से (अषाळ्हाः) न सहने योग्य शत्रु सेनाओं को (जनिष्ठाः) प्रकट करो अर्थात् ढिठाई उन की दूर करो सो तुम हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो शस्त्र और अस्त्रों के प्रयोगों का करने धनुर्वेदादिशास्त्रों का जानने और प्रशंसायुक्त सेना वाला हो और जिस की पुण्यरूपी कीर्त्ति वर्त्तमान है वही शत्रुओं के मारने और प्रजा जनों के पालने में समर्थ होता है ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ ।

महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (हि) जिस कारण आप (महे) महान् (क्षत्राय) राज्य धन और (शवसे) बल के लिये (जज्ञे) उत्पन्न होते (तूतुजिः) बलवान् होते हुए हिंसक लोगों को (चित्) भी आप (अशिश्नत्) मारते और (यत्) जो (जोहुवानान्) निरन्तर बुलाये हुए (नॄन्) जन और (अतूतुजिम्) निरन्तर न हिंसा करने वाले को (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (न) समान आप (सं, निनेथ) अच्छे प्रकार पहुँचाते हो उन (तव) आप की (प्रणीती) उत्तम नीति के साथ हम लोग राज्य पालें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो राजपुरुष सूर्य और पृथिवी के समान समस्त प्रजाजनों को धारण कर धर्म को पहुँचावें वे नीति जानने वाले समझने चाहियें ॥३॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।

प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दोषों के विदीर्ण करने वाले जो (अनृतम्) झूठ कहते हैं वे (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र हैं और जो (हि) निश्चय (क्षितयः) मनुष्य सत्य कहते हैं वे (एभिः) इन वर्त्तमान (अहभिः) दिवसों के साथ (पवन्ते) पवित्र होते हैं इनके साथ आप (नः) हम लोगों को (दशस्य) दीजिये और (अनेनाः) निष्पाप आप (यत्) जिसके (प्रति) प्रति (चष्टे) कहते हैं (द्विता) तथा दो का होना (वरुणः) जो स्वीकार करने योग्य वह और (मायी) उत्तम बुद्धिमान् होता हुआ जन (नः) हम लोगों को सत्य का (अवसात्) निश्चय कर देवे ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यहां झूठ कहते हैं वे अधर्मात्मा पुरुष हैं और जो सत्य कहते हैं वे धर्मात्मा हैं ऐसा निश्चय करो ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।

यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो (यः) जो (अर्चतः) सत्कार करते हुए (नः) हम लोगों के (महः) महान् (राधसः) समृद्ध (रायः) धन सम्बन्ध के (अविष्ठः) प्राप्त होने वाला (ब्रह्मकृतिम्) जिसके धन की क्रिया है (एनम्) इस (मघवानम्) परमैश्वर्यवान् (इन्द्रम्) दुष्ट शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले को (यत्) जो (ददत्) देवे (इत्) उसी को हम लोग (वोचेम) कहें (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग राजा आदि मनुष्यों के प्रति सत्य का सर्वदा उपदेश करें वैसे तुम भी उपदेश करो, ऐसे परस्पर की रक्षा कर उन्नति विधान करनी चाहिये ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजगुणों और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराट्पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में किसको कौन बनाना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुधन और (हरिवः) प्रशस्त मनुष्य युक्त (इन्द्र) दारिद्र्य विनाशने वाले जो (अयम्) यह (सोम) ओषधियों का रस है जिसको मैं (तु) तो (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (प्रसुन्वे) खींचता हूं उसको तुम (पिब) पीओ (तदोकाः) वह श्रेष्ठ गृह जिसका है ऐसे होते हुए (आयाहि) आओ (अस्य) इस (सुषुतस्य) सुन्दर निर्माण किये और (चारो) सुन्दर जन के (मघानि) धनों को (इयानः) प्राप्त होते हुए हमारे लिये (ददः) देओ ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से उत्पन्न किये हुए सर्वरोग हरने और बुद्धि बल के देने वाले, बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को पीते हैं वे सुख और ऐश्वर्य पाते हैं ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥२॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) चार वेदों के जानने वाले (वीर) समस्त शुभगुणों में व्याप्त (ब्रह्मकृतिम्) परमेश्वर की कृति जो संसार इसको (जुषाणः) सेवते हुए (अर्वाचीन) वर्त्तमान समय में प्रसिद्ध हुए आप (हरिभिः) अच्छे गुणों के आकर्षण करने वाले मनुष्यों के साथ (तूयम्) शीघ्र (याहि) जाओ (अस्मिन्) इस (सवने) सवन में अर्थात् जिस कर्म से पदार्थों का सिद्ध करते हैं उसमें हम लोगों को (मादयस्व) आनन्दित कीजिये (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) पढ़े हुए वेदवचनों को (सु, उ, उप, शृणवः) उत्तम प्रकार तर्क वितर्क से समीप में सुनिये ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप सृष्टि के क्रम को जान कर हमको जनलाओ, इसमें पढ़ाना पढ़ना काम और पढ़े हुए की परीक्षा करो और विद्यादान से शीघ्र प्रमोद देओ ॥२॥

कौन पढ़ाने और पढ़ने वाले प्रशंसा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य सम्पन्न (का) कौन (ते) आपका (अरङ्कृतिः) अलङ्कार (अस्ति) है (सूक्तैः) और अच्छे प्रकार कहा है अर्थ जिनका उन वेद-वचनों से (ते) आपको (नूनम्) निश्चित (विश्वाः) सब (मतीः) बुद्धियों को हम लोग (कदा) कब (दाशेम) देवें (त्वाया) आपकी बुद्धि से मैं (आ ततने) विस्तार करूं (अध) इसके अनन्तर आप (मे) मेरे (इमा) इन (हवा) सुने वाक्यों को (शृणवः) सुनो ॥३॥

भावार्थ—वे अध्यापक श्रेष्ठ होते हैं जो इन अपने विद्यार्थियों को कब विद्वान् करें ऐसी इच्छा करते हैं और सब के लिये सत्य उत्तम ज्ञानों को देते हैं और वे ही विद्यार्थी श्रेष्ठ हैं जो उत्साह से अपने पढ़े हुए की उत्तम परीक्षा देते हैं तथा वे ही परीक्षा करने वाले श्रेष्ठ हैं जो परीक्षा में किसी का पक्षपात नहीं करते हैं ॥३॥

कौन पढ़ाने वाले अतिश्रेष्ठ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) विद्या ऐश्वर्य्य से सम्पन्न (इन्द्र) विद्या ऐश्वर्य देने वाले विद्वान् जो आप (येषाम्) जिन (पूर्वेषाम्) पहिले जिन्होंने विद्या पढ़ी उन (ऋषीणाम्) ऋषिजनों से वेदों को (अशृणोः) सुनो (उतो) और जो (पुरुष्याः) पुरुषों में सत्यपुरुष (घ) ही (आसन्) होते हैं (ते) वे (नः) हमारे अध्यापक हों जिससे (त्वम्) आप हमारे (पितेव) पिता के समान (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि वाले (असि) हैं इससे (अध) इसके अनन्तर (अहम्) मैं (त्वा) आपको (इत्) ही (जोहवीमि) निरन्तर प्रशंसा करूं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो विद्वान् पितृजन पुत्रों के समान विद्यार्थियों की पालना करते हैं वे ही सत्कार करने और प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन यहां संसार में सब की रक्षा करने वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (यूयम्) विद्यावृद्ध तुम (स्वस्तिभिः) उत्तम शिक्षाओं से (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा करो। हे परीक्षा करने वाले (यः) जो (अविष्ठः) अतीव रक्षा करने वाला (ब्रह्मकृतिम्) वेदोक्त सत्य क्रिया को (नः) हम लोगों के लिये (ददत्) देवे वा (यत्) जिसको (अर्चतः) सत्कार किये हुए जन का (महः) महान् (राधसः) शरीर और आत्मा के बल का बढ़ाने वाला (रायः) विद्यारूपी धन का उत्तम प्रकार से देने वाले (एनम्) इस (मघवानम्) प्रशस्त विद्या धनयुक्त (इन्द्रम् इत्) अविद्यान्धकार विदीर्ण करने वाले अध्यापक की हम लोग (वोचेम) प्रशंसा कहें उसकी तुम भी प्रशंसा करो ॥५॥

भावार्थ—जो जन नाश न होने वाले सर्वत्र सत्कार के हेतु विद्याधन के देने वाले हैं वे ही सबके यथावत् पालने वाले हैं ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोमपान, अध्यापक, अध्येता, परीक्षक, और विद्या देने वालों के गुण और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में कौन राजा प्रशंसा करने योग्य होता है इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥१॥

पदार्थ—हे (शूर) निर्भय (सुवज्र) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में कुशल (नृपते) मनुष्यों की पालना करने वाले (शुष्मिन्) प्रशंसित बलयुक्त (देव) विद्या गुण सम्पन्न (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्यवान् राजन् आप (शवसा) उत्तम बल से (नः) हम लोगों को (आयाहि) प्राप्त होओ (अस्य) इस (रायः) धन वा राज्य की (वृधः) वृद्धिसम्बन्धी (भव) हूजिये और (महे) महान् (नृम्णाय) धन के तथा (महि) महान् (क्षत्राय) राज्य के और (पौंस्याय) पुरुष विषयक बल के लिये प्रयत्न करो ॥१॥

भावार्थ—वही राजा श्रेष्ठ होता है जो राज्य की रक्षा में निरन्तर उत्तम यत्न करे और धनविद्या की वृद्धि से प्रजा को अच्छे प्रकार पुष्टि देकर सुखी करे ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्ययुक्त जो (त्वम्) आप (विश्वेषु) सब (जनेषु) मनुष्यों में (सेन्यः) सेना में उत्तम होते हुए (वृत्राणि) शत्रु सैन्य जन आदि को (रन्धय) मारो (त्वम्) आप जैसे वीर होता हुआ जन शत्रुओं को अच्छे प्रकार हने वैसे उनको आप (सुहन्तु) मारो (सूर्यस्य) सवितृमण्डल की किरणों के समान राज्य के बीच और (तनूषु) फैला है बल जिनमें उन शरीरों में प्रकाशमान (शूराः) शत्रुओं के मारने वाले जन जिन (हव्यम्) बुलाने योग्य (त्वा) आपको (सातौ) संविभाग में अर्थात् बांट चूट में वा (विवाचि, उ) विरुद्ध वाणी जिसमें होती है उस संग्राम में (हवन्ते) बुलावें उनको आप बुलावें ॥२॥

भावार्थ—वही राजा सर्वप्रिय होता है जो न्याय से प्रजा की अच्छी पालना कर संग्राम जीतता है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होता हुआ क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (अत्र) इन (समत्सु) संग्रामों में (यत्) जिन (देवान्) विद्वानों को (सुभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (असुरः) जो प्राणों में रमता है उस (होता) होम करने वाले के (न)

समान शत्रुओं को युद्ध की आग में (जुह्वान:) होमने अर्थात् उनको स्पर्द्धा से चाहते हुए (अग्निः) अग्नि के समान आप (नि, सीदत्) निरन्तर स्थिर होते हो और (यत्) जिस (उपमम्) उपमा दिलाने वाली (केतुम्) बुद्धि के विषय को (अहा) साधारण दिन वा (सुदिना) सुख करने वाले दिनों दिन (व्युच्छान्) विविध प्रकार से बसाये हुए विद्वानों को संग्रामों में (दधः) धारण करो सो आप जीत सकते हो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—वही राजा जीतता है जो उत्तम शूरवीर विद्वानों को अपनी सेना में सत्कार कर रक्खे जैसे होम करने वाली अग्नि में साकल्य होमता है वैसे शस्त्र और अस्त्रों की अग्नि में शत्रुओं को होमे ॥३॥

फिर किसकी उत्तम जीत और प्रशंसा होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥४॥

पदार्थ—हे (शूर) शत्रुओं के मारने और (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले (देव) विद्वान् जन (ये) जो (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिये (मघानि) धनों को (ददतः) देते हुए (ते) आपके (उपमम्) जिससे उपमा दी जाती उस कर्म की (स्तवन्त) प्रशंसा करते हैं (च) और जो (स्वाभुवः) अच्छे प्रकार सब ओर से उत्तम होते हैं वे जन (वरूथम्) घर और (जरणाम्) जरावस्था को (अश्नवन्त) प्राप्त होते हैं (ते) वे (वयम्) हम लोग आपकी प्रशंसा करें आप हम लोगों के लिये धनों को (यच्छ) देओ ॥४॥

भावार्थ—जो राजा अच्छी परीक्षा कर विद्वानों के लिये धन आदि दे और सत्कार कर इन विद्या अवस्था वृद्ध धार्मिक जनों को सेना आदि के अधिकारों में नियुक्त करता है उसकी सर्वदा जीत और प्रशंसा होती है ॥४॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (यः) जो (अविष्ठः) अतीव रक्षा करने वाला (अर्चतः) सत्कार करते हुए (नः) हम लोगों को प्राप्त होकर (ब्रह्मकृतिम्) परमेश्वर ने उपदेश की हुई प्रिय वाणी (ददत्) देता है (यत्) जिस (एनम्) इस (मघवानम्) बहुत धन और ऐश्वर्य से युक्त तथा (महः) महान् (राधसः) उत्तम समृद्धि करने वाले (रायः) धन की वृद्धि करने और (इन्द्रम्) भय विदीर्ण करने वाले विषय को (वोचेम) सत्य कहें (इत्) उसी को तुम भी सत्य उपदेश करो । हे राजा आदि जनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सर्वसुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—यदि सब मनुष्य सत्य के उपदेश करने वाले हों तो राजा कभी ज्ञानहीन न हो, जब राजा धार्मिक हो तब सब मनुष्य धर्मात्मा हों ऐसे परस्पर की रक्षा से सदैव तुम लोग सुख पाओ ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा, भृत्य और उपदेशक के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराड्गायत्री । २ । ८ गायत्री । ६ । ७ । ९ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ । ४ । ५ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १० । ११ भुरिगनुष्टुप् । १२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बारह ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्रों को मित्र के लिये क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

पदार्थ—हे (सखायः) मित्रो (वः) तुम्हारे (हर्यश्वाय) मनुष्य वा हरणशील घोड़े जिसके विद्यमान हैं उस (सोमपाव्ने) सोम पीने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् के लिये (मादनम्) आनन्द तुम (प्र, गायत) अच्छे प्रकार गाओ ॥१॥

भावार्थ—जो मित्रजन अपने मित्रजनों को आनन्द उत्पन्न करते हैं वे मित्र होते हैं ॥१॥

फिर विद्वान्जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् (यथा) जैसे (नरः) मनुष्य हम लोग (सुदानवे) उत्तम दान के लिये वा (सत्यराधसे) सत्य जिसका धन है उसके लिये (द्युक्षम्) मनोहर (उक्थम्) प्रशंसनीय काम (चकृम) करें वैसे आप (इत्) ही (शंसे) प्रशंसा करें (उत) ही ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे विद्वानो ! जिसका धर्म से उत्पन्न हुआ धन है और सुपात्रों के लिये दान वर्त्तमान है उसी को उत्तम जानो ॥२॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं न वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य प्रज्ञावान् (वसो) बसाने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त (वाजयुः) प्रशंसित अन्न वा धन अपने को चाहने वाले (त्वम्) आप (गव्युः) पृथिवी वा उत्तम वाणी की कामना करने वाले (त्वम्) आप (हिरण्ययुः) सुवर्ण की कामना करने वाले (त्वम्) आप (नः) हमारी रक्षा करने और पढ़ाने वाले हूजिये ॥३॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को यही इच्छा करनी चाहिये जो धर्मात्मा आप्त विद्वान् राजा अध्यापक वा परीक्षा करने वाला है सो निरन्तर उन्नति करने हारा हो ॥३॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धि त्वस्य नो वसो ॥४॥

पदार्थ—हे (वसो) बसाने (वृषन्) बल रखने और बल देने वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त राजा वा अध्यापक (त्वायवः) आपकी कामना करने वाले (वयम्) हम लोग आपको (अभि, प्र, णोनुमः) सब ओर से अच्छे प्रकार निरन्तर प्रणाम करें आप (नः) हमको (तु) तो (अस्य) इस राज्य के रक्षा करने वाले (विद्धि) जानो ॥४॥

भावार्थ—जैसे धार्मिक प्रजाजन धार्मिक राजा की कामना करते और उसको नमते हैं वैसे ही राजा इस धार्मिक प्रजा की कामना करे और निरन्तर नमे ॥४॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५॥

पदार्थ—हे राजा (अर्यः) स्वामी होते हुए जो (मम, त्वे) मेरी तुम्हारे बीच (क्रतुः) उत्तम बुद्धि है उसको (मा) मत (रन्धीः) नष्ट करो (अपि) किन्तु (नः) हमारे (वक्तवे) कहने योग्य (अराव्णे) न देने वाले के लिये और (निदे) निन्दक के लिये (च) भी निरन्तर दण्ड देओ ॥५॥

भावार्थ—राजा सदैव विद्या, धर्म और सुशीलता बढ़ाकर निन्दक, दुष्ट मनुष्यों को निवार के प्रजा को निरन्तर प्रसन्न करे ॥५॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के हनने वाले राजा जो (त्वम्) आप (योधः) युद्ध करने वाले (सप्रथः) प्रख्याति प्रशंसा के सहित (वर्म, च) और कवच के समान (असि) हैं जिस (युजा) न्याय से युक्त होने वाले (त्वया) आपके साथ मैं (प्रति, ब्रुवे) प्रत्यक्ष उपदेश करता हूँ सो आप (पुरः) आगे रक्षा करने वाले हूजिये ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा सत्नीति, सुशील, निरभिमान, विद्वान् हो तो उसके प्रति सब सत्य बोलें और वह सुनकर प्रसन्न हो ॥६॥

फिर उसको विद्या और विनय क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजा जैसे (महान्) बड़ा सूर्य है वैसे (यस्य) जिसके प्रकाश से (स्वधावरी) बहुत अन्न की देने वाली (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अनु, मम्नाते) अनुकूलता से अभ्यास करते हैं उन (ते) आपके वैसे ही सेना और राज्य हो (उत) और जिससे आप महान् (असि) हैं इससे (सहः) बल को ग्रहण कर निर्बलों को पालो ॥ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जिस राजा की प्रजा और सेना धार्मिक और सुरक्षित हो उसका सूर्य के समान प्रताप होता है ॥७॥

कौन प्रशंसा करने योग्य हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी ।
नक्षमाणा सह द्युभिः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वान् जिन (त्वा) आपको (मरुत्वती) जिसमें प्रशंसायुक्त मनुष्य विद्यमान (सयावरी) जो साथ जाती (नक्षमाणा) और सब विद्याओं में व्याप्त होती हुई (वाणी) वाणी (द्युभिः) विज्ञानादि प्रकाशों के (सह) साथ (परिभुवत्) सब ओर से प्रसिद्ध हो (तम्) उन आपको हम लोग सब ओर से भूषित करें ॥८॥

भावार्थ—जिस विद्वान् राजा वा उपदेशक विद्वान् की सकलविद्यायुक्त वाणी उत्तम और कार्य करने वाले उपदेश के योग्य हो वही सब प्रशंसा को योग्य होता है ॥८॥

फिर किस मनुष्य को सब नमते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि । सन्ते नमन्त कृष्टयः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (ऊर्ध्वासः) उत्कृष्ट (इन्दव.) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दित (अनु, भुवन्) अनुकूल होते हैं (ते) वे (कृष्टय) मनुष्य (उपद्यवि) समीपस्थ प्रकाशित वा अप्रकाशित विषय मे (दस्मम्) शत्रुओ का उपक्षय विनाश करने वाले (त्वा) आपको (सन्नमन्त) अच्छे प्रकार नमते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिस राजा के समीप मे भद्र, धार्मिक जन हैं उसको नम्रता से सब प्रजा नम्र होती है ॥९॥

फिर राजप्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग (व) तुम्हारे लिये उत्तम पदार्थों को दें वैसे तुम हम लोगो के (महे) महान् व्यवहार के लिये (महिवृधे) तथा बडो के बढ़ने और (प्रचेतसे) उत्तम प्रज्ञा रखने वाले के लिए (सुमतिम) सुन्दर मति को (प्र , भरध्वम्) उत्तमता से धारण करो, हम लोगो को (पूर्वी) प्राचीन पिता पितामहादिको से प्राप्त (विश) प्रजाजनो को (प्र, कृणुध्वम) विद्वान् अच्छे प्रकार करो (चर्षणिप्राः) जो मनुष्यो को व्याप्त होता वह राजा आप न्याय मे (प्र, चर) प्रचार करो ॥१०॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्या ! जैसे विद्वान् जन तुम लोगो के लिये शुभ गुण और पुष्कल ऐश्वर्य विधान करते हैं वैसे तुम इनके लिये श्रेष्ठ नीति धारण करो ॥१०॥

फिर वे विद्वान् जन क्या उत्पन्न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥११॥

पदार्थ—हे (धीरा) ध्यानवान् (विप्रा) विद्वानो आप लोग (उरुव्यचसे) बहुत विद्याओ मे व्यापक (महिने) सत्कार करने योग्य (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् के लिये (सुवृक्तिम्) उत्तमता से अन्याय को वर्जते हैं जिसम उसको और (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जनयन्त) उत्पन्न करते है (तस्य) उनके (व्रतानि) सत्य भाषण आदि कर्म कोई (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करते है ॥११॥

भावार्थ—जो राजा के लिये बहुत धन उत्पन्न करत और असत्य आचरण को निवृत्त कर सत्य आचरण प्रसिद्ध करते है वे पूज्य होते हैं ॥११॥

फिर कैसे मनुष्य को सत्य वाणी सेवती है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जो (वाणी) सकल विद्यायुक्त वाणी (सत्रा) सत्य से (अनुत्तमन्युम्) जिसका प्रेरणा नही किया गया क्रोध उस (राजानम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) अविद्या विदीर्ण करने वाले विद्वान् को (सहध्यै) सहने को (दधिरे) धारण करते तथा (आपीन्) जो व्याप्त होते हैं उनको (सम) अच्छे प्रकार धारण करते हैं (एव) उसी (हर्यश्वाय) प्रशसित मनुष्य और घोडो वाले के लिये सब विद्याओं को (बर्हय) बढ़ाओ ॥१२॥

भावार्थ—जिस न उत्पन्न हुए क्रोध वाले, जितेन्द्रिय राजा को सकल शास्त्रयुक्त वाणी व्याप्त होती है वही सत्य न्याय से प्रजा पालने योग्य होता है ॥१॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान् और राजा के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तविंशत्यृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य । १-२५, २६ २७ *वसिष्ठ । २६* *वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । २४ विराड्बृहती ।* ६ । ८ । १२ । १६ । १८ । २६ निचृद्बृहती । ११ । २७ बृहती । १७ । २५ । भुरिग्बृहती २१ । स्वराड्बृहती छन्द. । मध्यमः स्वर । २ । ६ पङ्क्तिः । ५ । १३ । १५ । १९ । २३ *निचृत्पङ्क्ति । ३ साम्नीपङ्क्ति. । ७ विराट् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम. स्वर ।* १० । १४ भुरिगनुष्टुप् । २० । २२ स्वराडनुष्टुप्छन्द । गान्धारः स्वर ॥

अब सत्ताईस ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे कौन दूर और समीप मे रक्षा करने योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्तांच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् राजा (वाघतः) मेधावी जन आपके (आरे) दूर (चन) और (अस्मत्) हम से दूर (मो, सु, रीरमन्) मत रमें, निरन्तर आपके समीप होते हुए (त्वा) आपको रमावें (आरात्तात्) दूर मे (चित्) भी आप (न) हमारे (सधमादम्) उस स्थान को कि जिसमें एक साथ आनन्द करते हैं (आ, गहि) आओ (इह, वा) यहा प्रसन्न (सन्) होते हुए हमारे वचनो को (नि, उपश्रुधि) समीप मे सुनो ॥१॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों के समीप बुद्धिमान्, धार्मिक, विद्वान् जन और दूर मे दुष्ट जन हैं वे सर्वव सुख पाते है ॥१॥

फिर किसके समीप कौन बसे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

पदार्थ हे राजा (ते) आपके जो (इमे) यह (ब्रह्मकृत) धन वा अन्न को सिद्ध करने (वसूयव) धनो की कामना करने (जरितार) और सत्य की स्तुति करने वाले जन (सुते) उत्पन्न किये हुए (मधौ) मधुरादिगुणयुक्त स्थान मे (मक्ष) मक्खियो के (न) समान (सचा) सम्बन्ध से (आसते) उपस्थित होते है (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् आप मे (रथे) रमणीय यान मे (पादम्) पैर जैसे धरें (न) वैसे (कामम्) कामना को (आ, दधु) सब ओर से धारण करते हैं वे (हि) ही सुखी होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जो विद्वान् राजा धर्मात्मा न्यायकारी हो तो उसके समीप मे बहुत धार्मिक विद्वान् हो ॥२॥

फिर किसको कौन किसके तुल्य उपासना करने योग्य हैं
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥३॥

पदार्थ - हे मनुष्यो (रायस्काम) धनो की कामना करने वाला मै (पुत्र) पुत्र (पितरम्) पिता को जैसे (न) वैसे (वज्रहस्तम्) शस्त्र और अस्त्रो के पार जाने और (सुदक्षिणम्) शुभ दक्षिणा रखने वाले राजा को (हुवे) बुलाता हूँ वैसे तुम भी बुलाओ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जो मनुष्य जैसे पुत्र पिता की उपासना करते हैं वैसे राजा की सेवा करते हैं वे समस्त ऐश्वर्य पाते है ॥३॥

फिर राजा आदि क्या आचरण करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥४॥

पदार्थ — हे (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्रो को हाथ मे रखने वाले जो (इमे) यह (दध्याशिर) धारण करने और व्याप्त होने वाले (सोमास) प्रेरक जन (मदाय) आनन्द और (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये तथा (पीतये) पीने को (सुन्विरे) अच्छे रसो को उत्पन्न करते हैं (तान्) उनको (हरिभ्याम्) अच्छी सीख पाये हुए घोडो से युक्त रथ से (आ, याहि) आओ (ओक) शुभ स्थान को (आ) प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुषार्थ से विद्याओ को प्राप्त होकर उद्यम करते हैं वे राज्यश्री को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद्गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५॥

पदार्थ —(य) जो (श्रुत्कर्णः) श्रुति मे कान रखने वाला (सद्य) शीघ्र (श्रवत्) सुने (न) हमारे (वसूनाम्) धनों के सम्बन्ध मे (गिरः) अच्छी शिक्षा की भरी हुई वाणियो को (चित्) भी (नु) शीघ्र (मर्धिषत्) चाहे (सहस्राणि) हजारो (शता) सैकडो पदार्थों को (ददत्) देता और (ईयते) पहुँचाता है (दित्सन्तम्) देना चाहते हुए को (नकि) नही (आ, मिनत्) विनाशे (चित्) वही सर्वदा सुखी होता है ॥५॥

भावार्थ—जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से सब विद्याओ को सुनते, अच्छी शिक्षायुक्त वाणियो को चाहते और औरों को अतुल विज्ञान देते हैं वे दु.ख नही पाते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य किनके साथ क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥६॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) शत्रुओ को मारने वाले (य.) जो (ते) आपका (अप्रतिष्कुत) इधर उधर से निष्कंप (वीरः) निर्भय पुरुष (इन्द्रेण) परमैश्वर्य और (नृभि) नायक मनुष्यो के साथ (शूशुवे) समीप आता है (गभीरा) गम्भीर (सवनानि) प्रेरणाओं को (सुनोति) उत्पन्न करता है (आ, धावति, च) शीघ्र दौडता है (स) वही शत्रुओ को जीत सकता है ॥६॥

भावार्थ—जो उत्तम पुरुषो के साथ-साथ सब ओर से मित्रता और दुष्टो के साथ वैमनस्य रखते हैं वे अनगिनत ऐश्वर्य पाते हैं ॥६॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मघा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुधनयुक्त राजा आप (**यत्**) जो (**मघोनाम्**) धनवानों का (**वरूथम्**) प्रशंसित घर है उसे (**समजासि**) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (**त्वाहतस्य**) तुम्हारे द्वारा नष्ट किये हुए (**शर्धतः**) बलवान् के घर को प्राप्त (**भव**) होओ, बलवान् के (**गयम्**) प्रजाजनों को (**भर**) धारण पोषण करो और (**दूणाशः**) दुर्लभ है नाश जिसका ऐसे होते हुए (**वि**) विशेषता से प्रसिद्ध हुजिये जिससे (**वेदनम्**) पदार्थों की प्राप्ति को हम लोग (**आ, भजेमहि**) अच्छे प्रकार सेवें ॥७॥

भावार्थ—हे राजा ! दुष्टो के मारने वाले आपकी प्रजा मे जो नीति उसी के अनुकूल कर्म हम लोग करें जिससे हमारे अनुकूल आप होओ ॥७॥

फिर राजा को वैद्यों से क्या कराना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पर्चता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥८॥

पदार्थ—हे वैद्यशास्त्रवेत्ता विद्वानो तुम (**सोमपाव्ने**) बड़ी-बड़ी ओषधियो के रस को पीने वाले के लिये (**सोमम्**) ऐश्वर्य्य को (**सुनोता**) उत्पन्न करो (**वज्रिणे**) शस्त्र और अस्त्रो को धारण करने और (**इन्द्राय**) दुष्ट शत्रुओ को विदीर्ण करने वाले के लिए ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करो सब की (**अवसे**) रक्षा के लिये (**पक्ती**) पाको को (**पचत**) पकाओ (**कृणुध्वम्, इत**) करो ही जैसे (**पृणन्**) पालना करता हुआ विद्वान् (**मय**) सुख को (**पृणते**) पालता है वैसे (**इत्**) ही प्रजाजनो के लिये सुख पालो ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है, जो वैद्य हो वे उत्तम ओषधि, प्रशंसायुक्त रोगनाशक रस और उत्तम अन्न पाको को सब मनुष्यो के प्रति शिक्षा दें जिससे पूर्ण सुख हो ॥८॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**देवासः**) विद्वान् जन (**कवत्नवे**) कुत्सित कर्म मे व्याप्ति के लिए (**न**) नही प्रवृत्त होते है वैसे (**सोमिन**) ओषधि आदि युक्त वा ऐश्वर्यवान् के (**आतुजे**) बल करने वाले (**महे**) महान् (**राये**) धन के लिये (**मा**) मत (**स्रेधत**) विनाशो (**दक्षत**) बल पाओ (**कृणुध्वम्**) सुकर्म करो जो (**तरणि**) पुरुषार्थी जन (**इत्**) ही (**जयति**) जीतता (**क्षेति**) जो निरन्तर बसता वा (**पुष्यति**) जो पुष्ट होता वे सब बल पावें ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—जो अन्याय से किसी की हिंसा नही करते और धर्मात्माओ की वृद्धि करते है वे विद्वान् जन सर्वदा जीतते, धर्म मे निवास करते और पुष्ट होते हैं ॥९॥

फिर किसका किससे क्या हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१०॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिसका (**इन्द्र**) दुष्टो को विदीर्ण करने वाला (**अविता**) रक्षक (**गमत**) जाता है वा (**यस्य**) जिसके (**मरुत**) प्राण के समान मनुष्य रक्षा करने वाले है जो (**गोमति**) जिसमे बहुत सी गौएँ विद्यमान और (**व्रजे**) जिसमे जाते है उस स्थान मे जाता है, जिसका दुष्टो का विदीर्ण करने वाला रक्षक नही वह (**सुदास.**) श्रेष्ठ सेवक वा दासो वाला जन (**रथम्**) रथ को (**नकि**) नही (**पर्यास**) सब ओर से अलग करता और (**स**) वह (**न**) नही (**रीरमत्**) दूसरो को रमाता है ॥१०॥

भावार्थ—यदि राजा प्रजा का रक्षक न हो तो किसी को सुख न हो ॥१०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥११॥

पदार्थ—हे (**शूर**) निर्भय (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त राजा (**यस्य**) जिसके आप (**अविता**) रक्षक (**भुव**) हो वह (**मर्त्य**) मनुष्य (**वाजयन्**) पाने की इच्छा करता हुआ (**वाजम्**) विज्ञान वा अन्नादि को (**गमत्**) प्राप्त होता है जिन (**अस्माकम्**) हम लोगो के (**रथानाम्**) रथ आदि के तथा जिन (**अस्माकम्**) हम लोगो के (**नृणाम्**) मनुष्यो के भी (**अविता**) रक्षा करने वाले (**त्वम्**) आप (**बोधि**) समझें वे हम लोग विज्ञान वा अन्न आदि को प्राप्त हों ॥११॥

भावार्थ—जब राजा प्रजाओ की और प्रजाजन राजाओ की रक्षा करें तब सब की यथावत् रक्षा का सभव हो ॥११॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**हरिवान्**) बहुत प्रशंसित मनुष्य युक्त (**इन्द्र.**) समर्थ राजा (**सोमिनि**) ऐश्वर्यवान् मे (**दक्षम्**) बल (**दधाति**) धारण करता है (**तम्**) उसको (**रिप**) शत्रुजन (**न**) नही (**दभन्ति**) नष्ट करते हैं जिस (**अस्य**) इस (**जिग्युष**) जयशील के (**इत्**) उसी के प्रति (**अंशः**) भाग (**उरिच्यते**) अधिक होता है उसको वह भाग (**धनम्**) धन के (**न**) समान (**नु**) शीघ्र धारण करता है ॥१२॥

भावार्थ—जो राजा धनियो मे जो ऐश्वर्य है उसे दरिद्रों मे भी बढ़ाता है उसको कोई नष्ट नही कर सकता है । जिसका अधिक पुरुषार्थ होता है उसी को धन और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१२॥

फिर प्रजा कैसे राजा के अनुकूल होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥१३॥

पदार्थ—जो (**यज्ञियेषु**) राजपालनादि कामो से सग रखते हुए व्यवहारो मे (**अखर्वम्**) पूर्ण (**सुधितम्**) सुन्दरता से स्थापित (**सुपेशसम्**) सुरूप (**मन्त्रम्**) विचार को (**दधात**) धारण करें । (**य**) जो (**कर्मणा**) उत्तम क्रिया से (**इन्द्रे**) राजा के निमित्त (**भुवत**) प्रसिद्ध हो (**तम्**) उसको (**पूर्वी.**) प्राचीन (**प्रसितय**) प्रकृष्ट प्रेमबंधन (**चन**) भी (**आ, तरन्ति**) प्राप्त होते है ॥१३॥

भावार्थ—जिन राजाओ का गूढ़ विचार सबहित करना और श्रेष्ठ यत्न होता है वे अच्छी क्रिया से सब प्रजाजनो को प्रेमास्पद से प्रसन्न कर सकते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्य किससे रक्षा पाया हुआ कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) बहुत ऐश्वर्य वाले (**इन्द्र**) धार्मिक राजा (**क**) कौन (**मर्त्य**) मनुष्य (**तम्**) उस (**त्वावसुम्**) तुम से पाये हुए धन वाले को (**दधर्षति**) तिरस्कार करता है । (**ते**) आपके (**पार्ये**) पालना करने योग्य वा पूर्ण (**दिवि**) प्रकाश मे कौन (**वाजी**) विज्ञानवान् (**वाजम्**) विज्ञान को तथा (**श्रद्धा**) सत्य मे प्रीति श्रद्धा (**इत्**) ही को (**आ, सिषासति**) अलग करना चाहता है ॥१४॥

भावार्थ—जिसकी रक्षा धार्मिक राजा करता है उसका तिरस्कार कौन कर सकता है ॥१४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥

पदार्थ—हे (**हर्यश्व**) हरणशील महान् घोड़ो वाले मनुष्य (**सूरिभि.**) विद्वानो के साथ (**ये**) जो (**तव**) आपकी (**प्रणीती**) उत्तम नीति से (**प्रिया**) प्रिय मनोहर (**वसु**) धनो को (**ददति**) देते है उनको और जो आपकी उत्तम नीति और विद्वानो के साथ हम लोग (**विश्वा**) सब (**दुरिता**) दु खो को (**तरेम**) तरें उन्हे भी आप (**वृत्रहत्येषु**) शत्रुओ की हिंसा जिनमे होती है उनमे (**मघोन**) धनाढ्य करने (**स्म**) ही को (**चोदय**) प्रेरणा देओ ॥१५॥

भावार्थ—हे राजा ! आप यदि पक्षपात को छोड के सबकी रक्षा करें और उदार धनाढ्यो को सग्राम मे प्रेरणा दें तो हम लोग सब दु खो को तरें ॥१५॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥१६॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् जो (**तव**) आपका (**अवमम्**) निकृष्ट वा रक्षा करने वाला और (**मध्यमम्**) मध्यम (**वसु**) धन है जिससे (**त्वम्**) आप (**पुष्यसि**) पुष्ट होते जिस (**विश्वस्य**) समग्र (**परमस्य**) उत्तम धन के बीच (**सत्रा**) सत्य आप (**राजसि**) प्रकाशित होते हैं उसमें और (**गोषु**) पृथिवियों में (**त्वा**) आपको कोई भी शत्रु जन (**नकि**) न (**इत्**) ही (**वृण्वते**) स्वीकार करते हैं ॥१६॥

भावार्थ—हे राजा ! आप सदैव निकृष्ट, मध्यम और उत्तम धनो का न्याय

से ही सञ्चय करो, जिसका धर्म्म से उत्पन्न होने से सत्य धन वर्त्तमान है उसको कोई दुःख नहीं प्राप्त होता है ॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥१७॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त स्वीकार किये हुए राजन् जो (श्रुतः) प्रसिद्ध कीर्तियुक्त (पार्थिवः) पृथिवी पर विदित (त्वम्) आप (विश्वस्य) समस्त राज्य के (धनदाः) धन देने वाले (असि) हैं जिन (तव) आपका (अयम्) यह (विश्वः) सर्व (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहने वाला जन (नाम) प्रसिद्धः तुम से रक्षा को (भिक्षते) मांगता है (ये) जो (ईम्) सब ओर से (आजयः) संग्राम (भवन्ति) होते हैं जिनमें सब तुम्हारे सहाय को चाहते हैं उनकी आप निरन्तर रक्षा करें ॥१७॥

भावार्थ—जो राजा संग्राम में विजय करने वालों को बहुत धन देता है उसका पराजय कभी नहीं होता है, जो प्रजाजन रक्षा चाहें उसकी रक्षा जो निरन्तर करता है वही पुण्यकीर्ति होता है ॥१७॥

फिर राजपुरुषों को क्या चाहना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१८॥

पदार्थ—हे (रदावसो) करोड़ों में बसने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले (यत्) जो (त्वम्) आप (यावतः) जितने के ईश्वर हो (एतावत्) इतने का मैं (ईशीय) ईश्वर होऊं, समर्थ होऊं (स्तोतारम्) प्रशंसा करने वाले को (इत्) ही (दिधिषेय) धारण करूं और (पापत्वाय) पाप होने के लिये पदार्थ (न) न (अहम्) मैं (रासीय) देऊं ॥१८॥

भावार्थ—हे राजा ! यदि आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें तो हम आपके राज्य की रक्षा कर पापाचरण त्याग, औरों को भी अधर्माचरण से अलग रख कर निरन्तर आनन्द करें ॥१८॥

फिर प्रजाजनों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥१९॥

पदार्थ—हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त परमैश्वर्य्यवान् जो मैं (दिवेदिवे) प्रकाश प्रकाश के लिये (आ, कुहचिद्विदे) जो कहीं भी प्राप्त होता उस (महयते) महान् (राये) धन के लिये (शिक्षेयम्) अच्छी शिक्षा करूं (त्वत्) तुम से (अन्यत्) और रक्षक को न जानूं जो आप (पिता) रक्षा करने वाले (चन) भी हैं इस कारण से आप (इत्) ही (नः) हमारे (वस्यः) अत्यन्त वश (आप्यम्) प्राप्त होने के योग्य हैं और (नहि) नहीं (अस्ति) है ॥१९॥

भावार्थ—वे ही भृत्य उत्तम हैं जो राजा वा स्वामी को छोड़ के दूसरे को [=से] नहीं जाचते [=मांगते], न विना दिये लेते, प्रतिदिन पुरुषार्थ से प्रजा की रक्षा और धनवृद्धि करना चाहते हैं ॥१९॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥२०॥

पदार्थ—जो (तरणिः) तारने वाला (इत्) ही राजा (युजा) योगयुक्त (पुरन्ध्या) बहुत अर्थों को धारण करने वाली बुद्धि से (वाजम्) धन वा विज्ञान को (सिषासति) अच्छे प्रकार बांटने की इच्छा करता है उस (वः) तुम्हारे (पुरुहूतम्) बहुतों से स्तुति को पाये हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् को (सुद्र्वम्) अच्छे प्रकार दौड़ने वाले (नेमिम्) पहिये को (तष्टेव) बढ़ई जैसे (गिरा) वाणी से (आ नमे) अच्छे प्रकार नमता हूँ ॥२०॥

भावार्थ—जो राजा पूर्ण विद्या और विनय तथा धर्मयुक्त व्यवहार से सत्य और असत्य को अलग कर न्याय करता है उसको हम सब लोग नमते हैं जैसे बढ़ई रथादि को बनाता है वैसे हम लोग सब कामों को रचें ॥२०॥

फिर मनुष्य धन की प्राप्ति के लिये क्या क्या कर्म करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परमपूजित धनयुक्त जैसे (मर्त्यः) मनुष्य (दुष्टुती) दुष्ट प्रशंसा से (वसु) धन को (न) न (विन्दते) प्राप्त होता है (स्रेधन्तम्) और हिंसा करने वाले मनुष्य को (रयिः) लक्ष्मी और (सुशक्तिः) सुन्दर शक्ति (इत्) ही (न) नहीं (नशत्) प्राप्त होती है इस प्रकार (मावते) मेरे समान (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (पार्ये) पालना वा पूर्णता करने योग्य (दिवि) काम में (यत्) जो (देष्णम्) देने योग्य को न प्राप्त होता वह और को भी नहीं प्राप्त होता है ॥२१॥

भावार्थ—जो अधर्माचरण से युक्त दुष्ट, हिंसक मनुष्य हैं उनको धन, राज्य, श्री और उत्तम सामर्थ्य नहीं प्राप्त होता है इससे सबको न्याय के आचरण से ही धन खोजना चाहिये ॥२१॥

फिर इस जगत् का स्वामी कौन है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥२२॥

पदार्थ—हे (शूर) पापाचरणों के हिंसक (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा (अस्य) इस (जगतः) जंगम के (ईशानम्) चेष्टा कराने और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (ईशानम्) निर्माण करने वाले (त्वा) आपको (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने को (धेनवः) गौएँ (अदुग्धा इव) दूधरहित हो जैसे वैसे हम लोग (अभि, नोनुमः) सब ओर से निरन्तर नमते—प्रणाम करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! यदि निरन्तर सुखेच्छा हो तो परमात्मा ही की आप लोग उपासना करें ॥२२॥

परमेश्वर के तुल्य वा अधिक कोई नहीं है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले जगदीश्वर जिससे कोई पदार्थ (न) न (त्वावान्) आपके सदृश (अन्यः) और (दिव्यः) शुद्धस्वरूप पदार्थ है (न) न (पार्थिवः) पृथिवी पर जाना हुआ है (न) न (जातः) उत्पन्न हुआ है (न) न (जनिष्यते) उत्पन्न होगा इससे (त्वा) आपकी (अश्वायन्तः) महान् विद्वानों की कामना करने वाले (वाजिनः) विज्ञान और अन्न वाले और (गव्यन्तः) अपने को उत्तम वाणी वा उत्तम भूमि की इच्छा करने वाले हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करते हैं ॥२३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण परमेश्वर से तुल्य अधिक अन्य पदार्थ कोई नहीं न उत्पन्न हुआ, न कभी भी उत्पन्न होगा। इस से ही उसकी उपासना और प्रशंसा हम लोग नित्य करें ॥२३॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥२४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) सकलैश्वर्य और धनयुक्त (इन्द्र) साधारणतया ऐश्वर्ययुक्त (हि) जिससे आप (भरेभरे) पालना करने योग्य व्यवहार में (सनात्) सनातन (हव्यः) स्तुति करने योग्य (पुरूवसुः) बहुतों के बसाने वाले (असि) हैं इससे (सतः) विद्यमान (तत्) उस चेतन ब्रह्म (कनीयसः) अतीव कनिष्ठ के (ज्यायः) अत्यन्त ज्येष्ठ प्रशंसनीय व्यवहार में (च) भी (आ, अभि, भर) सब ओर से धारण करो ॥२४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अणु में अणु, सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा सनातन सर्वाधार सर्वव्यापक सब को उपासना करने योग्य है उसी का आश्रय सब करें ॥२४॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त राजा (सुवेदाः) धर्म से उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्ययुक्त आप (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (परा, णुदस्व) प्रेरो हमारे लिये (वसु) धन को (कृधि) सिद्ध करो (महाधने) बड़े वा बहुत धन जिसमें प्राप्त होते हैं उस संग्राम में (अस्माकम्) हमारे (सखीनाम्) सर्व मित्रों के (अविता) रक्षा करने वाले (बोधि) जानिये और (वृधः) बढ़ने वाले (भव) हूजिये ॥२५॥

भावार्थ—हे राजा ! आप धार्मिक शूर जनों का सत्कार कर उनको शिक्षा देकर युद्धविद्या में कुशल कर डाकू आदि दुष्टों को निवृत्त कर सर्वोपकारी मनुष्यों के रक्षा करने वाले हूजिये ॥२५॥

परमेश्वर मनुष्यों को किसके तुल्य प्रार्थना करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥

पदार्थ—हे (**पुरुहूत**) बहुतो से प्रशसा को प्राप्त (**इन्द्र**) परमैश्वर्य के देने वाले जगदीश्वर भगवन् (**यथा**) जैसे (**पुत्रेभ्य.**) पुत्रो के लिये (**पिता**) पिता, वैसे (**न.**) हम लोगो के लिये (**क्रतुम्**) धर्मयुक्त बुद्धि को (**आ, भर**) अच्छे प्रकार धारण कीजिये (**अस्मिन्**) इस (**यामनि**) वर्तमान समय मे (**न**) हम लोगो को (**शिक्ष**) सिखलाओ जिससे (**जीवा**) जीव हम लोग (**ज्योति**) विज्ञान को और आपको (**अशीमहि**) प्राप्त होवें ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—हे जगदीश्वर ! जैसे पिता हम लोगों को पुष्ट करता है वैसे आप पालना कीजिये, जैसे आप्त विद्वान् जन विद्यार्थियों के लिये शिक्षा देकर सत्य बुद्धि का ग्रहण कराता है वैसे ही हमको सत्य विज्ञान ग्रहण कराओ जिससे हम लोग सृष्टिविद्या और आपको पाकर सर्वदैव आनन्दित हों ॥२६॥

मनुष्य समुद्रादिकों को किससे तरें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥

पदार्थ—हे (**शूर**) निर्भय (**न**) हम लोगो को (**अज्ञाता**) छिपे हुए (**वृजना**) जिनमे जाते है वा जिनसे जाते है वे (**दुराध्य**) और दुःख से चितने योग्य (**न**) हम लोगो को (**मा, अव, क्रमु**) मत उल्लघन करें (**अशिवास**) दुःख देने वाले हम लोगो को (**मा**) मत उल्लघन करें जिससे (**त्वया**) तुम्हारे साथ (**वयम्**) हम लोग (**प्रवत**) नीचे देशो को तथा (**शश्वती**) अनादिभूत (**अप**) जलो को (**अति, तरामसि**) अतीव उतरें ॥२७॥

भावार्थ—राजा और राजजन, सेना और सभाध्यक्ष ऐसी नावें रखें जिनसे समुद्रो का सुख से सब तरें, उन समुद्रो मे नौकाओ के चलाने वालो को मार्गविज्ञान यथार्थ हो ॥२७॥

इस सूक्त मे इन्द्र, मेधावी, धन, विद्या की कामना करने वाले रक्षक, राजा ईश्वर, जीव, धनसचय, फिर ईश्वर और नौकाओं के जानने वालो के गुण और कर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ।

यह सप्तम मण्डल में बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्दशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१४ सप्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा सवाद । १—९ वसिष्ठपुत्रा । १० १४ वसिष्ठ ऋषि. स एव देवता । १ । २ । ६ । १२ । १३ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १४ निचृत्त्रिष्टुप् ८ । ११ विराट् त्रिष्टुप् छन्द. । धैवत स्वर । १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ॥

अब चौदह ऋचा वाले तेतीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने और पढ़ने वाले क्या करें इस विषय का वर्णन करते हैं ॥

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

पदार्थ—जो (**श्वित्यञ्च**) वृद्धि को प्राप्त होते (**दक्षिणतस्कपर्दा**) दाहिनी ओर जटाजूट रखने वाले (**धियम्**) बुद्धि को (**जिन्वास**) प्राप्त हुए (**वसिष्ठा.**) अतीव विद्याओ मे वसने वाले (**हि**) ही (**मा**) मुझे (**प्र, मन्दु**) आनन्दित करते हैं (**मे**) मेरे (**अवितवे**) पालने को (**दूरात्**) दूर से आवें उन (**बर्हिष**) विद्या धर्म बढाने वाले (**नॄन्**) नायक मनुष्यो को (**उत्तिष्ठन्**) उठता हुआ अर्थात् उद्यम के लिए प्रवृत्त हुआ (**परि, वोचे**) सब ओर से कहता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्याओ मे प्रवीण मनुष्यो की सत्य आचार मे वृद्धि बढाने वाले, पढाने पढने और उपदेश करने वाले हों उनको विद्या और धर्म के प्रचार के लिए निरन्तर शिक्षा, उत्साह और सत्कार-युक्त करें ॥१॥

फिर वह राजा कैसे विद्वानों को स्वीकार करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सुतेन**) उत्पन्न हुए पदार्थ वा पुत्र से (**वैशन्तम्**) प्रवेश होने हुए जन के सबन्धी (**पान्तम्**) पालना करते हुए (**उग्रम्**) तेजस्वी (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवान् को (**दूरात्**) दूर से (**अनयन**) पहुँचाते और दारिद्र्य को (**तिर.**) तिरस्कार करते हैं उनसे (**पाशद्युम्नस्य**) जिसने धन यश पाया है उस (**वायतस्य**) विज्ञानवान् के (**सुतात**) धर्म से उत्पन्न किये (**सोमात्**) ऐश्वर्य से (**इन्द्र**) परमैश्वर्य राजा (**वसिष्ठान**) अतीव विद्याओ मे किया निवास जिन्होने उन को (**अति, आ, अवृणीत**) अत्यन्त स्वीकार करें ॥२॥

भावार्थ—हे राजा आदि जनो ! जो दूर से अपने देश को ऐश्वर्य पहुँचाते और दारिद्र्य का विनाश कर लक्ष्मी को उत्पन्न करते हैं उन उत्तम जनो की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥२॥

फिर मनुष्य क्या-क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

पदार्थ—(**वसिष्ठा.**) अत्यन्त ब्रह्मचर्य के बीच जिन्होंने वास किया वह हे विद्वानो (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् यह जन (**एभि.**) उत्तम विद्वानो के साथ (**कम्, एव, इत्**) किसी (**सिन्धुम्**) नदी को भी (**नु**) शीघ्र (**ततार**) तरे (**एभि**) इन उत्तम विद्वानो के साथ (**कम्, एव, इत्**) किसी को भी (**नु**) शीघ्र (**जघान**) मारे (**दाशराज्ञ**) जो सुख देता है उस राजा के लिए (**कम्, एव, इत्**) किसी (**भेदम्**) विदीर्ण करने योग्य को भी (**ब्रह्मणा**) धन से (**नु**) शीघ्र (**प्रावत्**) अच्छे प्रकार रक्खे और (**सुदासम्**) अच्छे देने वाले वा सेवक को तथा (**व**) तुम लोगो को भी (**नु**) शीघ्र रक्खे ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य नौकादिको से समुद्रादिको को अच्छे प्रकार शीघ्र तरें, वीरो से शत्रुओ को शीघ्र विनाशें, राजा और राज्य की भी रक्षा करें वे मान करने योग्य हों ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या नहीं करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥४॥

पदार्थ—हे (**वसिष्ठा**) धन मे अत्यन्त वास करते हुए (**नर**) नायक मनुष्यो तुम (**यत**) जिस (**बृहता**) महान (**रवेण**) शब्द से (**शक्वरीषु**) शक्तियुक्त सेनाओ मे और (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य मे (**शुष्मम**) बल को (**अदधात**) धारण करते हो (**जुष्टी**) प्रीति वा सेवा मे तथा (**ब्रह्मणा**) धन मे (**व**) आप के (**पितॄणाम्**) जनक अर्थात् पिता आदि का जो (**अव्ययम्**) नाशरहित (**अक्षम**) व्याप्त बल उसे (**किल**) निश्चय कर तुम (**न, रिषाथ**) नही नष्ट करते हो उससे सब की रक्षा करो ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी शक्ति को बढा के दुष्टो को मार धन की वृद्धि मे सब के अर्थ जो नष्ट नही उस सुख को प्रीति से बढाते वे बडी कीर्ति को पाते हैं ॥४॥

फिर कौन मनुष्य सूर्य के तुल्य होते है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उदद्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (**द्यामिव**) सूर्य के समान (**नाथितास**) मांगते हुए और (**तृष्णज:**) तृष्णा को प्राप्त (**वृतास.**) स्वीकार किये हुए (**इत्**) ही (**दाशराज्ञ**) देने वालो के राजा के लिये (**उददीधयु**) ऊपर को प्रकाशित करें जो (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् राजा (**वसिष्ठस्य**) अतीव विद्वान् की (**स्तुवत**) स्तुति करने वाले के लिये [वाले की] (**उरुम्**) बहुत सुख करने वाले वाक्य को (**अश्रोत्**) सुने (**तृत्सुभ्य**) और शत्रुओ के मारने वालो के लिये (**उ**) ही (**लोकम्**) लोक को (**अकृणोत**) प्रसिद्ध करता है उनका सब सत्कार करे ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या और नम्रता से प्रकाशित और तृषित जन के समान ऐश्वर्य के ढूढने वाले सकल विद्यायुक्त विद्वानो के लिये आनन्द को धारण करते और शूरवीरो के लिये धन भी देते है वे बहुत सुख पाते है ॥५॥

फिर कौन पढाने और कौन न पढाने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो (**गोअजनास**) सुशिक्षित वाणी मे [**अ**] प्रसिद्ध हुए (**परिच्छिन्ना**) छिन्न-भिन्न विज्ञान वाले (**भरता**) देह धारण और पुष्टि करने मे युक्त (**अर्भकास**) थोडी-थोडी आयु के बालक (**दण्डाइव**) लट्ठ से सूखे हृदय मे अभिमान करने वाले (**इत्**) ही (**आसन्**) हैं उन (**तृत्सूनाम्**) अनादर किये हुओ के बीच (**विश**) प्रजा मनुष्यो को (**अप्रथन्त**) प्रख्यात करते हैं (**आत् इत्**) और ही इनके जो (**पुरएता**) आगे जाने वाले (**वसिष्ठ:**) अतीव धनाढ्य (**अभवत्**) हो (**च**) वही इन को अच्छी प्रकार शिक्षा दे ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—जो मनुष्य दण्ड के समान जडबुद्धि हो वे अच्छी परीक्षा कर न पढाने योग्य और जो बुद्धिमान् हो वे पढाने योग्य होते हैं जो विद्या व्यवहार मे प्रधान हो वही विद्याविभाग को उत्तम प्रबन्ध से शिक्षा पहुँचावे ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।

त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (त्रयः) तीन (भुवनेषु) लोकों में (रेतः) वीर्य (कृण्वन्ति) करते हैं जैसे (त्रयः) तीन (घर्मासः) ताप (उषसम्) प्रभातवेला और (ज्योतिः) विद्याप्रकाश आदि का (सचन्ते) सम्बन्ध करते हैं वैसे (तिस्रः) तीन अर्थात् विद्या राजा और धर्मसभास्थ (वसिष्ठाः) अतीव धन में स्थिर (आर्याः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष (अग्राः) अग्रगण्य (प्रजाः) प्रजाजन (तान्) उन (सर्वान्) सब का (इत्, अनु, विदुः) ही अनुकूल जानते हैं और विद्या प्रकाश आदि को सम्बन्ध करते हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे कार्य्य और कारण को कार्य में स्थिर बिजुलियां सूर्य आदि ज्योति को प्रकाशित करती हैं प्रभातवेला और दिन को उत्पन्न करती हैं वैसे तीन सभा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधन देने वाले प्रकाशों को करती हैं ॥७॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।

वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥८॥

पदार्थ—हे (वसिष्ठाः) अतीव विद्या में वास करने वालो जो (अन्वेतवे) विशेष जानने को, प्राप्त होने को, वा गमन को प्राप्त अत्यन्त धर्मशील विद्वान् हैं (एषाम्) इन बिजुली आदि पदार्थों के और (वः) तुम्हारे विशेष जानने को प्राप्त होने का वा गमन को (सूर्यस्येव) सूर्य के समान (वक्षथः) रोष वा (ज्योतिः) प्रकाश (समुद्रस्येव) समुद्र के समान (महिमा) महिमा (गभीरः) गम्भीर (वातस्येव) पवन के समान (प्रजवः) उत्तम वेग और (स्तोमः) प्रशंसा है वह (अन्येन) और के समान (न) नहीं है ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जिन धार्मिक विद्वानों का सूर्य के समान विद्या और धर्म का प्रकाश, दुष्टाचार पर क्रोध, समुद्र के समान गम्भीरता, पवन के समान अच्छे कर्मों में वेग हो वे ही मिलने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥८॥

कौन सत्य का निश्चय करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।

यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥९॥

पदार्थ—(अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में जाते हैं वे और (यमेन) नियन्ता जगदीश्वर से (ततम्) व्याप्त (परिधिम्) सर्व लोकों के परकोटे को (वयन्तः) व्याप्त होते हुए (वसिष्ठाः) अतीव विद्यावान् जन (प्रकेतैः) उत्तम बुद्धियों से (हृदयस्य) आत्मा के बीच (निण्यम्) निर्णीत अन्तर्गत (सहस्रवल्शम्) हजारों असंख्य अंकुरों के समान शास्त्रबोध जिसमें उस व्यवहार को (उप, सेदुः) उपस्थित होते अर्थात् स्थिर होते हैं (ते, इत्) वे ही पूर्ण विद्याओं का (अभि, सम्, चरन्ति) सब ओर से सञ्चार करते हैं ॥९॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् जन संसार के उपकारी होते हैं जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से और आप्त विद्वानों की उत्तेजना से शिक्षा पाय समस्त विद्या पढ़ परमात्मा से व्याप्त सब सृष्टिक्रम को प्रवेश करते हैं ॥९॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।

तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥

पदार्थ—हे (वसिष्ठ) प्रशंसायुक्त विद्वान् जो (अगस्त्यः) निर्दोष जन (ते) आपकी (विशः) प्रजाओं को (आ, जभार) सब ओर से धारण करता (उत) और (एकम्) एक (जन्म) जन्म को सब ओर से धारण करता और (त्वा) आप को सब ओर से धारण करता तथा (यत्) जिस (विद्युतः) बिजुली को (संजिहानम्) अधिकार त्याग करते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक (अपश्यताम्) देखते हैं (त्वा) आपको इस विद्या की प्राप्ति कराते हैं उस समस्त विषय को आप ग्रहण करें ॥१०॥

भावार्थ—जिस मनुष्य का विद्या में जन्म—प्रादुर्भाव होता है उसकी बुद्धि बिजुली की ज्योति के समान सकल विद्याओं को धारण करती है ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।

द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मन्) समस्त वेदों को जानने वाले (वसिष्ठ) पूर्ण विद्वान् जो (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान के वेत्ता आप (उर्वश्याः) विशेष विद्या से (उत) और (मनसः) मन से (अधि, जातः) अधिकतर उत्पन्न (असि) हुए हो उन (त्वा) आपको (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् जन (ब्रह्मणा) बहुत धन से और (दैव्येन) विद्वानों ने किये हुए व्यवहार से (पुष्करे) अन्तरिक्ष में (स्कन्नम्) प्राप्त (द्रप्सम्) मनोहर पदार्थ को (अददन्त) देवें ॥११॥

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्धान्तःकरण से प्राण और उदान के तुल्य और निरन्तर मनोहर विद्या को ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के समान आनन्दित होते हैं ॥११॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।

यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (उभयस्य) जन्म और विद्या-जन्म दोनों का (प्रविद्वान्) उत्तम विद्वान् (प्रकेतः) उत्तम बुद्धियुक्त (सहस्रदानः) हजारों पदार्थ देने वाला (उत, वा) अथवा (सदानः) दानयुक्त (यमेन) वायु वा बिजुली के साथ वर्त्तमान (ततम्) विस्तृत (परिधिम्) परिधि को (वयिष्यन्) अर्थं करता हुआ (वसिष्ठः) अतीव धनवान् (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में चलने वाले वायु से (परि जज्ञे) सर्वत प्रसिद्ध होता है (सः) वह सब को सेवा करने योग्य है ॥१२॥

भावार्थ—जिस मनुष्य का माता-पिता से प्रथम जन्म, दूसरा आचार्य से विद्या द्वारा होता है वही आकाश के पदार्थों का जानने वाला उत्पन्न हुआ पूर्ण विद्वान् अतुल सुख का देने वाला है ॥१२॥

फिर कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।

ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥

पदार्थ—यदि (जातौ) प्रसिद्ध हुए (इषिता) अध्यापक और उपदेशक (नमोभिः) अन्नादिकों से (सत्रे) दीर्घ (ह) ही पढ़ाने पढ़ने रूप यज्ञ में (कुम्भे) कलश में (रेतः) जल के (समानम्) समान विज्ञान का (सिषिचतुः) सींचें छोड़ें (ततः, ह) उसी से ही जो (मानः) मानने वाला (उदियाय) उदय को प्राप्त होता है (ततः) उस (मध्यात्) मध्य से (जातम्) उत्पन्न हुए (वसिष्ठम्) उत्तम (ऋषिम्) वेदार्थवेत्ता विद्वान् को (आहुः) कहते हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे स्त्री और पुरुषों से सन्तान उत्पन्न होता है वैसे अध्यापक और उपदेशकों के पढ़ाने और उपदेश करने से विद्वान् होते हैं ॥१३॥

फिर पढ़ाने और पढ़ने वाले जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।

उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४॥

पदार्थ—हे (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार वाले मनुष्यो जो (प्रतृदः) अतीव अविद्यादि दोष के नष्ट करने वाले (ग्रावाणम्) मेघ को सूर्य जैसे वैसे विद्या को (बिभ्रत्) धारता हुआ (वसिष्ठः) अत्यन्त विद्या आदि धन से युक्त (अग्रे) पूर्व (उक्थभृतम्) ऋग्वेद को और (सामभृतम्) सामवेद को धारण करने वाले को (बिभर्ति) धारण करता, वह औरों को (प्र, वदाति) कहे जो (वः) तुम लोगों को (आ, गच्छाति) प्राप्त हो (एनम्) उस की तुम (उप, आध्वम्) उपासना करो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विद्यार्थी सकल वेदवेत्ता कुशिक्षा और अविद्या को नष्ट करने वाले आप्त विद्वान की पूर्व अच्छे प्रकार सेवा कर विद्या पाय फिर पढ़ाता है उसकी सब ज्ञान चाहने वाले जन विद्या पाने के लिये उपासना करते हैं ॥१४॥

इस सूक्त में पढ़ाने पढ़ने और उपदेश सुनाने और सुनने वालों के गुण और कार्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १-१५ । १८-२५ विश्वेदेवा । १६ अहि । १७ अहिर्बुध्न्यो देवता । १ । २ । ५ । १२ । १३ । १४ । १६ । १९ । २० भुरिगार्चीगायत्री । ३ । ४ । १७ आर्ची गायत्री । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १५ । १८ । २१ निचृत्त्रिपाद्गायत्री । २२ । २४ । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । षड्जः स्वरः । २३ आर्षी त्रिष्टुप् । २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कन्याजन किससे विद्या को पावें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥१॥

पदार्थ—(शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणयुक्त शीघ्रकारिणी (देवी) विदुषी कन्या (अस्मत्) हमारे से (सुतष्ट) उत्तम काष्ठ अर्थात् कारीगर के बनाए हुए (वाजी) वेगवान् (रथ) रथ के (न) समान (मनीषा.) उत्तम बुद्धिया को (प्रैतु) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालकार है—सब कन्या विदुषियो से ब्रह्मचर्य्य-नियम से सब विद्या पढे ॥१॥

फिर वे कन्या किस किस विद्या को जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अधः क्षरन्तीः ॥२॥

पदार्थ—जो कन्या (अधः, क्षरन्तीः) नीचे को गिरते वर्षते हुए जलो के समान विद्या (शृण्वन्ति) सुनती हैं वे (पृथिव्या) पृथिवी और (दिव) सूर्य के (जनित्रम्) कारण को (विदु) जानें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है—जैसे मेघमण्डल से जल वेग से पृथिवी को पाकर प्रजा आनन्दित होती हैं वैसे जो कन्या पढाने वालो से भूगर्भादि विद्या को पाकर पति आदि को निरन्तर सुख देती हैं वे अत्यन्त श्रेष्ठ होती हैं ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥३॥

पदार्थ—जो कन्या (पृथ्वी) भूमि और (आप.) जल (चित्) ही के समान (अस्मै) इस विद्या व्यवहार के लिये (पिन्वन्त) सिचन करती और (वृत्रेषु) धनों के निमित्त (उग्राः) तेजस्वी (शूराः) शूरवीरो के समान (मंसन्त) मान करती हैं वे विदुषी होती हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—जो कन्या जल के समान कोमलत्वादि गुणयुक्त हैं, पृथिवी के समान सहनशील और शूरो के समान उत्साहिनी विद्याओ को ग्रहण करती हैं वे सौभाग्यवती होती हैं ॥३॥

फिर वे कन्या विद्या के लिए क्या यत्न करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥४॥

पदार्थ—हे कन्याओ तुम (अस्मै) इस विद्याग्रहण करने के लिए (धूर्षु) रथो के आधार धुरियों मे (अश्वान्) घोडे और (हिरण्यबाहुः) जिसकी भुजाओ मे दान के लिए हिरण्य विद्यमान उस (वज्री) शस्त्र अस्त्रो से युक्त (इन्द्र) सूर्यतुल्य राजा के (न) समान ब्रह्मचर्य को (आ, दधात) अच्छे प्रकार धारण करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—जैसे सारथी घोड़ो को रथ मे जोड कर नियम से चलाता है वैसे कन्या आत्मा अन्त करण और इन्द्रियो को विद्या की प्राप्ति के व्यवहार में निरन्तर जोड़कर नियम से चलावें ॥४॥

फिर कन्याजन कैसे विद्या को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥५॥

पदार्थ—हे कन्याओ तुम विद्याप्राप्ति के लिए (अहेव) दिनो के समान (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ के (अभिप्रस्थात) सब ओर से जाओ (त्मना) अपने से (पत्मन्) मार्ग मे (यातेव) जाते हुए के समान (हिनोत) बढाओ ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे कन्याओ! जैसे दिन अनुकूल क्रम से जाते और आते हैं और जैसे बटोही जन नित्य चलते हैं वैसे ही अनुकूल क्रम से विद्याप्राप्ति मार्ग से विद्याप्राप्तिरूप यज्ञ को बढाओ ॥५॥

फिर कन्या विद्याप्राप्ति व्यवहार को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥६॥

पदार्थ—हे कन्याओ जैसे (जनाय) राजा के लिए (समत्सु) सग्रामो में (वीरम्) पूरा करने वाले जन को प्रेरणा देते हैं वैसे (त्मना) अपने से (केतुम्) बुद्धि को (दधात) धारण करो और (यज्ञम्) सग करने योग्य विद्याबोध को (हिनोत) बढाओ ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे शूरवीर धीमान् बुद्धिमान् राजा पुरुष उत्तम यत्न से सग्रामो को विशेषता से जीतते हैं वैसे कन्याओ को इन्द्रियां जीत और विद्याओं को पाकर विजय की विशेष भावना करनी चाहिये ॥६॥

फिर वे कन्या विद्या कैसे पावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं

उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥७॥

पदार्थ—हे कन्याजनो जैसे हम (भारम्) भार को (पृथ्वी) भूमि (न) जैसे और (भानुः) किरणयुक्त सूर्य जैसे (न) वैसे (अस्य) इस विद्या व्यवहार के (शुष्मात्) बल से विदुषी (भूम) हों वा जैसे यह भानु पृथ्वी आदि के भार को (उद्बिभर्ति) उत्कृष्टता से धारण करता है समस्त उस व्यवहार को (आर्त) प्राप्त होता है वैसे तुम होओ ॥७॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् जन इस विद्याबोध के बल से सब सुख को धारण करते है वैसे ही कन्या विद्याबल से सब आनन्द को पाती हैं ॥७॥

फिर अध्यापक, अध्येताओं को क्या उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे मैं (देवान्) विद्वानो को (ह्वयामि) बुलाता हूं (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (साधन्) सिद्ध करता हुआ (धियम्) उत्तम बुद्धि वा शुभ कर्म को (दधामि) धारण करता हूं और (अयातु) जो नही जाता उस स्थिर से विद्या ग्रहण करता हूं वैसे आप कन्या पढ़ाने का निबन्ध करो ॥८॥

भावार्थ—जो विद्वानो को बुला के और उनका सत्कार कर सत्य आचार से विद्या को धारण करते हैं वे विद्वान् होते है ॥८॥

सब मनुष्यो को क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानो जिस (देवत्रा) विद्वानो मे वर्त्तमान (देवीम्) दिव्य (धियम्) बुद्धि को तुम (अभिदधिध्वम्) सब ओर से धारण करो उस (वः) आपकी बुद्धि को हम लोग भी धारण करें विद्वानो मे जिस (वाचम्) वाणी को तुम (प्र, कृणुध्वम्) प्रसिद्ध करो उस (व) आपकी वाणी को हम लोग भी (प्र) प्रसिद्ध करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि विद्वानो का अनुकरण कर बुद्धि, विद्या और वाणी को धारण करें ॥ ९ ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् जैसे (वरुण) सूर्य के समान (उग्र) तेजस्वी जन (सहस्रचक्षाः) जिसके वा जिसमे हजार दर्शन होते है वह सूर्य (आसाम्) इन (नदीनाम्) नदियो के (पाथ) जल को खींचता और पूरा करता है वैसे हुए आप मनुष्यो के चित्तों को खींच के जिस कारण विद्या को (आचष्टे) कहते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—जो विद्वान् सूर्य के तुल्य अविद्या को निवार के विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करता है वही यहां माननीय होता है ॥ १० ॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥११॥

पदार्थ—जो (राजा) प्रकाशमान (नदीनाम्) नदियो के (पेश) रूप के समान (राष्ट्रानाम्) राज्यो की रक्षा का विधान करता है (अस्मै) इसके लिये (अनुत्तम्) शत्रुओं से अपीडित (विश्वायु) जिसमे समस्त आयु होती है वह (क्षत्रम्) धन वा राज्य होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—जो राजा न्यायकारी विद्वान् होता है उसके प्रति समुद्र को नदी जैसे वैसे प्रजा अनुकूल होकर ऐश्वर्य को उत्पन्न कराती है और इस राजा की पूरी आयु भी होती है ॥ ११ ॥

फिर राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

पदार्थ—हे राजजनो तुम (विश्वासु) समस्त (विक्षु) प्रजाओ मे (अस्मान) उनके अनुकूल राज्याधिकारी हम जनों को (अविष्टो) दोषो मे न प्रवेश किये हुए निरन्तर रक्षा करो हमारी (शंसम्) प्रशसा (कृणोत) करो हम लोगो की (निनित्सो.) निन्दा करना चाहते हुए के (अद्युम्) प्रकाशरहित व्यवहार को प्रकाश करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—राजजन प्रजाओं मे वर्त्तमान निन्दक जनो का निवारण कर प्रशसा करने वालों की रक्षा कर और प्रजाजनो मे पिता के समान वर्त्त कर अविद्यान्धकार को निवारण करें ॥ १२ ॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥१३॥

पदार्थ—हे राजजन विद्वानो तुम (द्विषाम्) द्वेष करने वालो को (अशेवा) असुख अर्थात् दुःख को करो (तनूनाम्) शरीरों के (दिद्युत्) निरन्तर प्रकाशमान (विष्वक्) और व्याप्त (रप.) अपराध को (युयोत) अलग करो जिससे अत्र उत्तम सब मनुष्यो को सुख (वि, एतु) व्याप्त हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे राजजनो ! तुम, जो धार्मिक सज्जनो को पीडा देवें उनको दड से पवित्र करो जिससे सब ओर से सबको सुख प्राप्त हो ॥ १३ ॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अवी॑न्नो अ॒ग्निर्ह॒व्यान्नमो॑भिः॒ प्रेष्ठो॑ अस्मा अधायि॒ स्तोमः॑ ॥१४॥

पदार्थ—जिस राजा ने (अस्मै) इस राज्य के लिये (प्रेष्ठः) अतीव प्रिय (स्तोम) प्रशंसा व्यवहार (अधायि) धारण किया गया जो (हव्यात्) होम करने योग्य अन्न भोजन करने वाले (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (नः) हम लोगों की (अवीत्) रक्षा करे वही हम लोगों का सत्कार करने योग्य है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य स्वप्रकाश से सब की रक्षा करता है वैसे राजा न्याय के प्रकाश से सब प्रजा की रक्षा करे ॥ १४ ॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स॒जूर्दे॒वेभि॑र॒पां नपा॑तं॒ सखा॑यं कृध्वं शि॒वो नो॑ अस्तु ॥१५॥

पदार्थ—हे राजा जैसे (देवेभिः) विद्वानों से वा पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के (सजूः) साथ वर्त्तमान सूर्यमण्डल (अपां नपातम्) जलों के उस व्यवहार को जो नहीं नष्ट होता मेघ के समान करता है वैसे आप (नः) हमारे वा हमारे लिये (शिवः) मङ्गलकारी (अस्तु) हो हे विद्वानो ऐसे राजा को हमारा (सखायम्) मित्र (कृध्वम्) कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य आदि पदार्थ जगत् में मित्र के समान वत्तकर सुखकारी होते हैं वैसे ही राजजन सबके मित्र होकर मङ्गलकारी होते हैं ॥ १५ ॥

फिर वे राजजन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒ब्जामु॒क्थैरहिं॑ गृणीषे बु॒ध्ने न॒दीनां॒ रजः॑सु॒ षीद॑न् ॥१६॥

पदार्थ—हे राजा जैसे सूर्य (बुध्ने) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (नदीनाम्) नदियों के सम्बन्धी (रजःसु) लोकों में (सीदन्) स्थिर होता हुआ (अब्जाम्) जलों में उत्पन्न हुए (अहिम्) मेघ को उत्पन्न करता है वैसे (उक्थैः) उसके गुणों के प्रशंसक वचनों से राज्य में जो ऐश्वर्य उनमें स्थिर होते हुए आप नदियों के प्रवाह के समान जिससे विद्या को (गृणीषे) कहते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य वर्षा से नदियों को पूर्ण करता है वैसे धन धान्यों से तुम प्रजाओं को पूर्ण करो ॥१६॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नोऽहि॑र्बु॒ध्न्यो॑ रि॒षे धा॒न्मा य॒ज्ञो अ॑स्य स्रिधदृता॒योः ॥१७॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुआ (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों को (रिषे) हिंसा के लिये (मा) मत (धात्) धारण करे वा जैसे (अस्य) इस (ऋतायोः) सत्य न्याय धर्म की कामना करने वाले राजा का (यज्ञः) प्रजापालन करने योग्य व्यवहार (मा, स्रिधत्) मत नष्ट हो वैसा अनुष्ठान करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे अवर्षण न हो, न्याय व्यवहार न नष्ट हो वैसा तुम विधान करो ॥ १७ ॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उ॒त न॑ ए॒षु नृषु॒ श्रवो॑ धुः॒ प्र रा॒ये य॑न्तु॒ शर्ध॑न्तो अ॒र्यः ॥१८॥

पदार्थ—हे राजा जो (नः) हमारे (एषु) इन व्यवहारों में (राये) धन के लिये (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (धुः) धारण करें वे हम लोगों को प्राप्त होवें (उत) और जो हम लोगों को (शर्धन्तः) बली करते हुए (नृषु) नायक मनुष्यों में (अर्यः) शत्रु जन हमारे राज्य आदि ऐश्वर्य को चाहें वे दूर (प्र, यन्तु) पहुँचें ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सज्जनों के निकट और दुष्टों से दूर रहकर लक्ष्मी की उन्नति करें ॥ १८ ॥

कौन शत्रुओं के निवारण में समर्थ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तप॑न्ति॒ शत्रुं॒ स्व१र्ण भूमा॑ म॒हासे॑नासो॒ अमे॑भिरेषाम् ॥१९॥

पदार्थ—(महासेनासः) जिनकी बड़ी सेना है वे जन (एषाम्) इन वीरों के (अमेभिः) बलादिकों से (शत्रुम्) शत्रु को (तपन्ति) तपाते हैं उनके साथ राजा आदि हम लोग (स्वः) सुख (न) जैसे हो वैसे (भूम) प्रसिद्ध हों ॥१९॥

भावार्थ—हे राजा यदि आपसे योद्धा शूरवीर जनों की सेना सत्कार कर रक्खी जाय तो आपके शत्रुजन बिला जाएं और सुख निरन्तर बढ़े ॥ १९ ॥

फिर राजा और अन्य भृत्य परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यन्नः॒ पत्नी॒र्गम॒न्त्यच्छा॒ त्वष्टा॑ सुपा॒णिर्दधा॑तु वी॒रान् ॥२०॥

पदार्थ—हे राजा जैसे (यत्) जो (पत्नी) भार्या (नः) हम लोगों को (अच्छा) अच्छे प्रकार (आ, गमन्ति) प्राप्त होतीं और रक्षा करती हैं और जैसे हम लोग उनकी रक्षा करें वैसे (त्वष्टा) दुःख-विच्छेद करने वाला (सुपाणिः) सुन्दर हाथों से युक्त राजा आप (वीरान्) शूरता आदि गुणों से युक्त मन्त्री और भृत्यों को (दधातु) धारण करो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पतिव्रता स्त्री स्त्रीव्रत पति जन परस्पर की प्रीति से रक्षा करते हैं वैसे राजा धार्मिकों की, अमात्य और भृत्यजन धार्मिक राजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ २० ॥

फिर वे राजा और मन्त्री आदि परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रति॑ नः॒ स्तोमं॒ त्वष्टा॑ जुषेत॒ स्याद॒स्मे अ॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग राजा की प्रीति से सेवा करें वैसे (अरमतिः) पूर्ण मति है जिसकी (वसूयुः) धनों की कामना करता हुआ (त्वष्टा) दुःखविच्छेद करने वाला राजा (नः) हम लोगों को (प्रति, जुषेत) प्रीति से सेवे जैसे यह राजा हमारी (स्तोमम्) प्रशंसा को सेवे वैसे हम लोग इसकी कीर्ति को सेवें जैसे यह (अस्मे) हम लोगों में प्रसन्न (स्यात्) हो वैसे हम लोग भी इस में प्रसन्न हों ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जहां राजा अमात्य भृत्य और प्रजाजन एक दूसरे की उन्नति को करना चाहते हैं वहां समस्त ऐश्वर्य सुख और वृद्धि होती है ॥२१॥

फिर वे राजादि प्रजाजनों में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता नो॑ रासन्राति॒षाचो॒ वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु ।
वरू॑त्रीभिः सुशर॒णो नो॑ अस्तु॒ त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ रायः॑ ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वानो आप (वरूत्रीभिः) वरणसम्बन्धी विद्याओं से (वरुणानी) अन्नादि पदार्थयुक्त (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के समान (रातिषाचः) दान सम्बन्ध करते हुए (नः) हम लोगों के लिये (ता) उन (वसूनि) धनों को (आरासन्) अच्छे प्रकार देवें हे राजन् (सुदत्रः) अच्छे दानयुक्त (त्वष्टा) दुःखविच्छेदक (सुशरणः) सुन्दर आश्रय जिनका वह आप (नः) हमारे रक्षक (अस्तु) हो हमारे लिये (रायः) धनों को (वि, दधातु) विधान कीजिये । हमारी वार्त्ता (शृणोतु) सुनिये ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजपुरुष सूर्य और भूमि के तुल्य प्रजाजनों को धनी करते, उनके न्याय करने की बातें सुनते और यथावत् पुरुषार्थ से लक्ष्मीवान् करते हैं वे ही पूर्ण सुख वाले होते हैं ॥२२॥

फिर विद्वान् जन अन्यों को क्या-क्या दान देवें इस विषय को अगले
मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्नो॒ रायः॒ पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः ।
वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥२३॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे (पर्वताः) मेघ वा शैल (नः) हमारे लिये (तत्) उन (रायः) धनों को (रातिषाचः) जो दान का सम्बन्ध करते हैं वा (आपः) जलों को वा (तत्) उन (ओषधीः) यवादि ओषधियों को वा (तत्) उन अन्य पदार्थों की (उत) निश्चय करके (सजोषाः) समान सेवनेवाला जन वा (द्यौः) सूर्य (वनस्पतिभिः) वटादिकों के साथ (पृथिवी) वा (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी भी (नः) हम लोगों की (परि, पासतः) रक्षा करें वैसे हम लोगों की आप लोग रक्षा करें ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—पढ़ने और सुनने वाले जन पढ़ाने और उपदेश करने वालों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें हम लोगों को आप ऐसा बोध करावें कि जिससे हम लोग सब सृष्टि के सकाश से सुख की उन्नति कर सकें ॥२३॥

फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु॒ तदु॒र्वी रोद॑सी जिहाता॒मनु॑ द्यु॒क्षो वरु॑ण॒ इन्द्र॑सखा ।
अनु॒ विश्वे॑ म॒रुतो॒ ये स॒हासो॑ रा॒यः स्या॑म ध॒रुणं॑ धि॒यध्यै॑ ॥२४॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो जैसे (उर्वी) बहुपदार्थयुक्त (रोदसी) आकाश और पृथिवी (तत्) उन पदार्थों को (अनु, जिहाताम्) अनुकूल प्राप्त हों वा (इन्द्रसखा) परमैश्वर्य राजा सखा मित्र जिस का (द्युक्षः) प्रकाशों को बसाता (वरुणः) और श्रेष्ठजन (अनु) पीछे जावे वा (ये) जो (विश्वे) सब (सहासः) सहनशील और बलवान् (मरुतः) मनुष्य अनुकूलता से प्राप्त हों । वैसे हम लोग (रायः) धन के (धरुणम्) धारण करने वाले को (धियध्यै) धारण करने को समर्थ (स्याम) हों ॥२४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सृष्टिस्थ भूमि आदि पदार्थ सब को धारण कर सुख देते हैं वैसे ही आप हों ॥२४॥

फिर सेव्य सेवक और अध्यापक अध्येता जन परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्न॒ इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निराप॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ जुषन्त ।
शर्म॑न्त्स्याम म॒रुता॑मु॒पस्थे॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥२५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (**वनिन**) किरणवान् (**इन्द्र**) बिजुली के समान राजा (**वरुण**) श्रेष्ठ (**मित्र.**) मित्रजन (**अग्नि**) पावक (**आप**) जल और (**ओषधीः**) यवादि ओषधी (**न**) हमारे लिये (**तत्**) उस सुख का (**जुषन्त**) सेवते हैं जिससे (**यूयम्**) तुम (**स्वस्तिभि**) सुखो से (**न**) हम लोगों की (**सदा**) सर्वदैव (**पात**) रक्षा करो उन तुम (**मरुताम्**) लोगो के (**उपस्थे**) समीप (**शर्मन्**) सुख मे हम लोग स्थिर (**स्याम**) हो ॥२५॥

भावार्थ—मनुष्यो को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि विद्वानो के सग मे जैसे बिजुली आदि पदार्थ अपने कामों को सेवे वैसे हम लोग अनुष्ठान करे ॥२५॥

इस सूक्त में अध्येता, अध्यापक, स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, सेना, भृत्य और विश्वे देवों के गुण और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । विश्वेदेवा देवता । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ११ । १२ त्रिष्टुप् । ६ । ८ । १० । १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर । १३ । १४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्यो को सृष्टिपदार्थों से क्या क्या ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥१॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर (**वाजसातौ**) सग्राम मे (**सुविताय**) ऐश्वर्य होने के लिए (**न.**) हम लोगो को (**अवोभि**) रक्षा आदि के साथ (**इन्द्राग्नी**) बिजुली और साधारण अग्नि (**शम्**) सुख करने वाले (**शम्**) मगल करने वाले (**रातहव्या**) दी है ग्रहण करने की वस्तु जिन्होने ऐसे (**इन्द्रावरुणा**) बिजुली और जल (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुख करने वाले (**इन्द्रासोमा**) बिजुली और ओषधिगण (**शम्**) सुखकारक (**यो**) सुख के निमित्त और (**इन्द्रापूषणा**) बिजुली और वायु (**न**) हमारे लिये (**शम्**) आनन्द देने वाले (**भवताम्**) हो वैसा हम लोग प्रयत्न करे ॥१॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से, विद्वानो के सग से और अपने पुरुषार्थ से आप की रची हुई सृष्टि मे वर्त्तमान बिजुली आदि पदार्थों मे हम लोग उपकार करना चाहते हैं सो यह हम लोगो का प्रयत्न सफल हो ॥१॥

मनुष्यों को जैसे ऐश्वर्य आदि सुख करने वाले हों वैसे विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं नो॒ भग॒ः शमु॑ न॒ः शंसो॑ अस्तु॒ शं न॒ः पुर॑न्धि॒ः शमु॑ सन्तु॒ राय॑ः ।
शं न॑ः स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒ः शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**न**) हम लोगो के लिये (**भग**) ऐश्वर्य (**शम्**) सुख करने वाला (**न**) हम लोगो के लिये (**शस**) शिक्षा वा प्रशंसा (**शम्**) सुख करने वाली (**उ**) और (**पुरन्धि**) बहुत पदार्थ जिसमे रक्खे जाते हैं वह आकाश (**शम्**) सुख करने वाला (**अस्तु**) हो (**न**) हम लोगो के लिये (**राय**) धन (**शम्**) सुख करने वाले (**उ**) ही (**सन्तु**) हो (**नः**) हम लोगो के लिये (**सत्यस्य**) यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की (**सुयमस्य**) सुन्दर नियम से प्राप्त करने योग्य व्यवहार की (**शस**) प्रशसा (**शम्**) सुख देने वाली और (**पुरुजात.**) बहुत मनुष्यो मे प्रसिद्ध (**अर्यमा**) न्यायकारी (**न.**) हमारे लिये (**शम्**) आनन्द देने वाला (**अस्तु**) होवे वैसा हम लोग प्रयत्न करें ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे ऐश्वर्य, पुण्यकीर्त्ति, धन, धर्म, योग और न्यायाधीश सुख करने वाले हो वैसा अनुष्ठान करो ॥२॥

फिर मनुष्यों को सृष्टि से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभि॑ः ।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रि॒ः शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! आपकी कृपा और सग से (**न**) हम लोगो के लिये (**धाता**) धारण करने वाला (**शम्**) सुखरूप (**उ**) और (**धर्त्ता**) पुष्टि करने वाला (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो (**स्वधाभि**) अन्नादिको के साथ (**उरूची**) जो बहुत पदार्थों को प्राप्त होती वह पृथिवी (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुख देने वाली (**भवतु**) हो (**बृहती**) महान् (**रोदसी**) प्रकाश और अन्तरिक्ष (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप होवें (**अद्रि**) मेघ (**न**) हमारे लिये (**शम्**) सुखकारक हो (**न**) हम लोगो के लिये (**देवानाम्**) विद्वानों के (**सुहवानि**) सुन्दर आवाहन प्रशसा से बुलावे (**शम्**) सुखरूप (**सन्तु**) हो ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुष्टि करने वालो से उपकार लेना जानते हैं वे सब सुखो को पाते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मंत्र में कहते है ॥

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं न॑ः सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वात॑ः ॥४॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् आप की कृपा से (**ज्योतिरनीक.**) ज्योति ही सेना के समान जिसकी (**अग्नि**) वह अग्नि (**नः**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो (**अश्विना**) व्यापक पदार्थ (**शम्**) सुखरूप और (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान (**न**) हमारे लिये (**शम्**) सुखरूप होवें (**न**) हम (**सुकृताम्**) सुन्दर धर्म करने वालो के (**सुकृतानि**) धर्माचरण (**शम्**) सुखरूप सन्तु हो और (**इषिरः**) शीघ्र जाने वाला (**वात**) वायु (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप (**अभि, वातु**) सब ओर से बहे ॥४॥

भावार्थ—जो अग्नि और वायु आदि पदार्थों से कार्यों को सिद्ध करते है वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर और शिक्षा देने वाले ! आप की कृपा और उपदेश से (**पूर्वहूतौ**) जिसमे पिछलो की प्रशसा विद्यमान वा जिससे पिछलो की प्रशसा होती है उस मे (**द्यावापृथिवी**) बिजुली और भूमि (**न**) हम लोगो के लिए (**शम्**) सुख (**दृशये**) देखने को (**अन्तरिक्षम्**) भूमि और सूर्य्य के बीच का आकाश (**न**) हम लोगो के लिए (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो और (**ओषधी**) ओषधि तथा (**वनिन**) वन जिनमे विद्यमान वे वृक्ष (**न**) हमारे लिए (**शम्**) सुखरूप (**भवन्तु**) होवे (**रजस**) लोकों मे उत्पन्न हुओ का (**पति**) स्वामी (**जिष्णु**) जयशील (**न**) हमारे लिए (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो ॥५॥

भावार्थ—जो सब सृष्टिस्थ पदार्थों को सुख के संयुक्त करने को योग्य होते हैं वे ही उत्तम विद्वान होते हैं ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या जान के और सयुक्त कर क्या पाने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंस॑ः ।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! आपके सहाय से और परीक्षा से (**इह**) यहां (**वसुभि**) पृथिव्यादिको के साथ (**देव**) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (**इन्द्र**) बिजुली वा सूर्य (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप और (**आदित्येभि**) सवत्सर के महीनो के साथ (**सुशस**) प्रशसित प्रशसा करने योग्य (**वरुण**) जल समुदाय (**न**) हम लोगों के लिये (**शम्**) सुखरूप (**अस्तु**) हो (**रुद्रेभि**) जीव प्राणो के साथ (**जलाष**) दुःख निवारण करने वाला (**रुद्र**) परमात्मा वा जीव (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप हो (**ग्नाभिः**) वाणियो के साथ (**त्वष्टा**) सर्व वस्तुविच्छेद करने वाला अग्नि के समान परीक्षक विद्वान (**न**) हम लोगो के लिए (**शम्**) सुख (**शृणोतु**) सुने ॥६॥

भावार्थ—जो पृथिवी, आदित्य और वायु की विद्या ले ईश्वर, जीव और प्राणो का जान यहां इनकी विद्या का पढ़ा परीक्षा कर सब को विद्वान् और उद्योगी करते है वे इस ससार मे किस-किस ऐश्वर्य को नही प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर विद्वानों को किन उपायों से जगत् का उपकार करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं न॒ः सोमो॑ भवतु॒ ब्रह्म॒ शं न॒ः शं नो॒ ग्रावा॑णः॒ शमु॑ सन्तु य॒ज्ञाः ।
शं न॒ः स्वरू॑णां मि॒तयो॑ भवन्तु॒ शं न॑ः प्र॒स्व१॒॑: शम्व॑स्तु॒ वेदि॑ः ॥७॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् आपकी कृपा और पढ़ाने से (**सोम**) चन्द्रमा (**न**) हम लोगो के लिए (**शम्**) सुखरूप (**भवतु**) हो (**ब्रह्म**) धन वा अन्न (**न**) हमारे लिए (**शम्**) सुखरूप हो (**ग्रावाण.**) मेघ (**न**) हम लोगो के लिये (**शम्**) सुखरूप (**सन्तु**) हो (**यज्ञा**) अग्निहोत्र आदि से शिल्प-यज्ञ पर्य्यन्त (**न**) हम लोगों के लिए (**सम्, उ**) सुखरूप ही हो (**स्वरूणाम्**) यज्ञशाला के स्तम्भ शब्दो के (**मितय**) प्रमाण हमारे लिये (**शम्**) सुखरूप (**भवन्तु**) हो (**प्रस्व**) जो उत्पन्न होती है वह ओषधि (**न**) हमारे लिये (**शम्**) सुखरूप हो और (**वेदि**) कुण्ड आदि हमारे लिये (**शम्, उ**) सुखरूप ही (**अस्तु**) हो ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या, ओषधी, धन और यज्ञादि से जगत् का सुख के साथ उपकार करते है वे अतुल सुख पाते है ॥७॥

फिर विद्वान् जनों को क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

शं न॒ः सूर्य॑ उरु॒चक्षा॒ उदे॑तु॒ शं न॒श्चत॑स्रः प्र॒दिशो॑ भवन्तु ।
शं न॒ः पर्व॑ता ध्रु॒वयो॑ भवन्तु॒ शं न॒ः सिन्ध॑व॒ः शमु॑ स॒न्त्वाप॑ः ॥८॥

पदार्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् आपकी शिक्षा से (उरुचक्षा) जिससे बहुत दर्शन होते हैं वह (सूर्य.) सूर्य (न.) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (उदेतु) उदय हो (चतस्र) चार (प्रदिश) पूर्वादि वा ऐशानी आदि दिशा वा विदिशा (न) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों (ध्रुवय.) अपने अपने स्थान में स्थिर (पर्वता) पर्वत (नः) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (सिन्धव) नदी वा समुद्र (नः) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप और (आप) जल वा प्राण (शम्) सुखरूप (उ) हि (सन्तु) हों ॥८॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर से बनाये हुए सूर्यादिको से उपकार ले सकते हैं वे इस जगत् मे श्री, राज्य और कीर्ति वाले होते हैं ॥८॥

फिर शिक्षकजनों को शिष्यजन अच्छी शिक्षा दे कैसे सिद्ध करने चाहियें
इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं नो अदि॑तिर्भवतु व्र॒तेभि॒ः शं नो॑ भवन्तु म॒रुत॑ः स्व॒र्काः ।

शं नो॒ विष्णु॒ः शमु॑ पू॒षा नो॑ अस्तु॒ शं नो॑ भ॒वित्रं॒ शम्व॑स्तु वा॒युः ॥९॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वानो ! तुम जैसे (अदिति) विदुषी माता (व्रतेभि.) अच्छे कामो के साथ (न·) हम लोगो को (शम्) सुखरूप (भवतु) हो और (स्वर्का·) सुन्दर मन्त्र विचार है जिनके वे (मरुत) प्राणो के समान प्रियजन अच्छे कामो के साथ (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवे (विष्णुः) व्यापक जगदीश्वर (नः) हम लोगो के [—को] (शम्) सुखरूप हो (पूषा) पुष्टि करनेवाला ब्रह्मचर्य्यादि व्यवहार (न) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (अस्तु) हो (भविश्रम्) होनहार काम (न) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवे और (वायु) पवन (न.) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (अस्तु) हो वैसी शिक्षा देओ ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—माता आदि विदुषियो को कन्या और विद्वान् पिता आदि को पुत्र अच्छे प्रकार शिक्षा देने योग्य है जिससे यह भूमि से ले के ईश्वरपर्यन्त पदार्थों की विद्याओं का पाके धार्मिक होकर सब मनुष्यो को निरन्तर आनन्दित करे ॥९॥

फिर विद्वानों को कैसी शिक्षा करनी चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः ।

शं न॑ः प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्य॒ः शं न॒ः क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम वैसे हम लोगो को शिक्षा देओ जैसे (त्रायमाण) रक्षा करता हुआ (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने वाला ईश्वर (देव) जो कि सब सुखो का देने वाला आप ही प्रकाशमान वह (न) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो (विभाती) विशेषता मे दीप्तिवाली (उषसः) प्रभात वेला (न) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हो (पर्जन्यः) मेघ (प्रजाभ्य न.) हम प्रजाजनो के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो और (क्षेत्रस्य, पति) जिसके बीच मे निवास करते है उस जगत् का स्वामी ईश्वर वा राजा (शम्भु·) सुख की भावना करने वाला (न , हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है—विद्वानो का वेदादि विद्याओ से परमेश्वर आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभाव विद्यार्थियो के प्रति यथावत् प्रकाश करने चाहियें जिससे सबो से उपकार ले सकें ॥१०॥

फिर मनुष्य किनको प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु । शम॑भि॒-

षाच॒ः शमु॑ राति॒षाच॒ः शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वा॒ः शं नो॒ अप्याः॑ ॥११॥

पदार्थ—हमारे शुभ गुणो के आचार से (देवा) विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले (विश्व, देवा) सब विद्वान् जन (न) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवे (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभि) उत्तम बुद्धियो के (सह) साथ (न) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (अभिषाच·) जो अभ्यन्तर आत्मा मे सम्बन्ध करते हैं वे (न) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप हो और (रातिषाच) विद्यादि दान का सम्बन्ध करने वाले हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (उ) ही होवें तथा (दिव्या) शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त (पार्थिवा) पृथिवी मे विदित राजजन वा बहुमूल्य पदार्थ (शम्) सुखरूप और (अप्या) जलों में उत्पन्न हुए नौकाओ से आने वाले वा मोती आदि पदार्थ हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप हों ॥११॥

भावार्थ—मनुष्यो को ऐसा आचरण करना चाहियें जिससे सब को सब विद्वान् जन सुन्दर बुद्धि और वाणी विद्या देने वाले योगी जन राजा और शिल्पी जन तथा दिव्य पदार्थ प्राप्त हों ॥११॥

फिर मनुष्य किसकी इच्छा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं न॑ः स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्त॒ः शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।

शं न॑ ऋ॒भव॑ः सु॒कृत॑ः सु॒हस्ता॒ः शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् जैसे (हवेषु) हवन आदि अच्छे कामो मे (सत्यस्य) सत्य भाषण आदि व्यवहार के (पतय) पति (न) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (अर्वन्त.) उत्तम घोड़े (न) हमारे लिए (शम्) सुखरूप होवें (गाव) दूध देती हुई गौएँ (न) हम लोगो का (शम्) सुखरूप (उ) ही (सन्तु) हो (सुकृत) धर्मात्मा (सुहस्ता.) सुन्दर अच्छे कामो मे हाथ डालने वाले (ऋभव) बुद्धिमान् जन (न) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप हो (पितर) पितृजन (नः) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवे, वैसा विधान करो ॥१२॥

भावार्थ—मनुष्यो को ऐसे शील की धारणा करनी चाहिये जिससे आप्त सज्जन प्रसन्न हों जिनकी प्रीति से सब पशु और विद्वान् पितृजन प्रसन्न और सुख करने वाले होवें ॥१२॥

फिर विद्वान् जनो को क्या शिक्षा करनी चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्य॒ः शं स॑मु॒द्रः ।

शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं न॒ः पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पाः ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम वैसी शिक्षा देओ जैसे (न·) हम लोगो को (अज) जो कभी नही उत्पन्न होता वह जगदीश्वर (एकपात्) जिसके एक पैर मे सब जगत् विद्यमान है (देव.) सब सुख देने वाला विद्वान् (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (बुध्न्य) अन्तरिक्ष मे प्रसिद्ध होने वाला (अहि.) मेघ (न) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हो (समुद्र.) जिसमे अच्छे प्रकार जल उछलते हैं वह सागर (नः) हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप हो (अपाम्) जलो का (पेरु) पार करने वाला और (नपात्) पैर जिसके नही हैं वह नौका (न.) हम लोगो के लिए (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (देवगोपा) और सब की रक्षा करने वाला (पृश्नि.) अन्तरिक्ष अवकाश हम लोगो के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो ॥१३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम हम लोगो को जन्ममरणादि दोषरहित ईश्वर, मेघ, समुद्र और नौका की विद्या का ग्रहण कराइये जिससे हम लोग सब के रक्षक हो ॥१३॥

फिर मनुष्य क्या अवश्य करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ते॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः ।

शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥१४॥

पदार्थ—हे विद्वानो जो आप (आदित्या) अड़तालीस वर्ष प्रमाण से ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या पढ़े हुए हो वा (रुद्रा) चवालीस वर्ष प्रमाण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े हुए हो वा (वसव) चालीस वर्ष प्रमाण जिसका है ऐसे ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ हुए हो वा (दिव्या) शुद्ध मनोहर गुण आदि मे प्रसिद्ध वा (पार्थिवास) पृथिवी मे विदित वा (गोजाता) सुशिक्षित वाणी से उत्पन्न हुए (उत) और (ये) जो (यज्ञिया.) यज्ञ सपादन करने वाले हैं वे (नः) हम लोगो के लिए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (नवीय) अत्यन्त नवीन (क्रियमाणम्) वर्त्तमान मे सिद्ध होते हुए (ब्रह्म) बहुत धन वा अन्न को (जुषन्त) सेवें और हम लोगो का पढ़ा हुआ (शृण्वन्तु) सुनें ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि धार्मिक विद्वानो को बुलाय सत्कार कर अन्नादिको से अच्छे प्रकार तृप्त कर और अपना पढ़ा अच्छे प्रकार सुना शेष इनसे सुने जिससे भ्रमरहित सब हों ॥१४॥

मनुष्यों को किनसे विद्याध्ययन और उपदेश सुनने योग्य हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः ।

ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥१५॥

पदार्थ—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानो के बीच विद्वान् (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने के योग्यों मे (यज्ञिया:) यज्ञ करने योग्य (मनो) विचारशील के (यजत्रा) संग करने (अमृता) अपने स्वरूप से नित्य वा जीवन्मुक्त रहने (ऋतज्ञा) और सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (अद्य) आज (न) हम लोगों के लिए (उरुगायम्) बहुतो ने गाये हुए विद्याबोध को (रासन्ताम्) देवें, हे विद्वानो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभि) विद्यादि दानो से (न) हम लोगो की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अत्यन्त विद्वान् अत्यन्त शिल्पी सत्य आचरण करने वाले जीवन्मुक्त ब्रह्मवेत्ता जन हम लोगों को विद्या और सुन्दर शिक्षा से निरन्तर उन्नति देते हैं उनको हम सत्कार करके सदा सेवें ॥१५॥

इस सूक्त में सर्व सुखों की प्राप्ति के लिए सृष्टिविद्या और विद्वानों के संग का उपदेश किया इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवता । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिः । १ । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब नव ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥१॥

पदार्थ—(**अग्नि**) अग्नि के समान विद्वान् जन जैसे (**सूर्य:**) सूर्य (**रश्मिभि**) किरणों से (**पृथु**) विस्तृत (**प्रतीकम्**) प्रतीत करने वाले पदार्थ (**गा**) किरणों को (**वि, ससृजे**) विविध प्रकार रचता वा छोड़ता वा (**अधि, आ, ईधे**) अधिकता से प्रकाशित होता है और जैसे (**उर्वी**) बहुपदार्थयुक्त (**पृथिवी**) पृथिवी (**सानुना**) शिखर के साथ (**वि, सस्रे**) विशेषता से चलती है वैसे आप (**ऋतस्य**) सत्य के (**सदनात्**) स्थान से (**ब्रह्म**) धन को (**प्रैतु**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर आप ही प्रकाशमान और सूर्यादिकों का प्रकाश करने वा बनाने वाला जगत् के प्रकाश के लिए अग्नि और सूर्यलोक का रचता है उसकी उपासना कर सत्य आचरण से मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥१॥

फिर मनुष्य किसको सेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥२॥

पदार्थ—हे (**असुरा**) प्राणों में रमते हुए (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशको जो (**अन्य**) और जन (**पदवी:**) पद को प्राप्त होता और (**अदब्ध**) अहिंसित (**मित्र**) सखा (**इन**) ईश्वर (**ब्रुवाण**) उपदेश करता हुआ (**वाम्**) तुम दोनों को (**जनम् च**) और जन को भी (**नवीय:**) अत्यन्त नवीन व्यवहार की प्राप्ति कराने को (**यतति**) यत्न कराता तथा (**वाम्**) तुम दोनों की (**इमाम्**) इस प्रत्यक्ष (**सुवृक्तिम्**) जिससे सुन्दरता से दुःखों की निवृत्ति करते हैं उस सत्य वाणी को (**इषम्**) इच्छा वा अन्न के (**न**) समान देता है जिसको कि मैं परोपकार के लिए (**कृण्वे**) सिद्ध करता हूँ उसको मैं तुम नित्य सेवें ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप जो सब के लिये अलग सर्वव्यापी सबका मित्र जगदीश्वर सबके हित के लिए सदैव प्रयत्न है उसकी उपासना कर मोक्ष पद को प्राप्त होवें ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद्वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**महः**) महान् (**दिवः**) प्रकाश के (**सदने**) घर में (**जायमानः**) उत्पन्न होता हुआ (**वृषभः**) बलिष्ठ (**सस्मिन्**) अन्तरिक्ष में और (**ऊधन्**) उषाकाल में (**अचिक्रदत**) आह्वान करता जिसमें (**ध्रजतः**) जाते हुए (**वातस्य**) पवन के सम्बन्धी (**सूदाः**) पाक करने वालों के (**न**) समान (**धेनवः**) गौएँ (**इत्याः**) जो कि पाने योग्य हैं उनको (**रन्ते**) रमता और सबको (**आ, अपीपयन्त**) सब ओर से बढ़ाता है उस सूर्य को युक्ति के साथ उत्तम प्रयोग में लाओ ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाशमान पदार्थों में उत्पन्न हुआ रवि अन्तरिक्ष में प्रकाशित होता है वा जिस अन्तरिक्ष में सब प्राणी रमते हैं उसी में सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर वह राजा किसका सत्कार करके उसकी रक्षा करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**शूर**) शत्रुओं की हिंसा करने वाले (**इन्द्र**) राजा (**यः**) जो (**ते**) आपके (**एता**) यह दोनों (**सुरथा**) सुन्दर रथ वाले (**धायू**) धारणकर्ता (**प्रिया**) मनोहर (**हरि**) घोड़ों को (**गिरा**) वाणी से (**युनजत्**) युक्त करता है वा (**यः**) जो (**रिरिक्षत**) हिंसा करने की इच्छा किये हुए दुष्ट शत्रु से (**मन्युम्**) क्रोध को (**प्रमिणाति**) नष्ट करता है उस (**सुक्रतुम्**) प्रशंसित बुद्धियुक्त (**अर्यमणम्**) न्यायकारी सज्जन को मैं (**आ, ववृत्याम्**) अच्छे प्रकार वर्त्तूँ ॥४॥

भावार्थ—हे राजा जो रथ आदि के चलाने में कुशल, राजप्रिय, विद्वान् हों तिनको आप न्यायकारी करो ॥४॥

कौन संग करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥५॥

पदार्थ—जो (**स्वे**) अपने (**नमस्विन**) बहुत अन्नयुक्त जन (**ऋतस्य**) सत्य के (**धामन्**) धाम में वर्तमान (**अस्य**) इसकी (**सख्यम्**) मित्रता को (**वय**) जीवन को तथा (**पृक्ष**) अच्छे प्रकार संग करने योग्य अन्न को (**यजन्ते**) संग करते हैं जो निश्चय से (**नृभि**) नायक मनुष्यों के साथ (**स्तवान:**) स्तुति किया हुआ (**रुद्राय**) रुलाने वाले के लिये (**इदम्**) इस (**प्रेष्ठम्**) अत्यन्त प्रिय और (**नम**) अन्न आदि पदार्थ को (**वि, बाबधे**) विशेषता से बाधता है उस (**च**) और उन को हम लोग संग करावें ॥५॥

भावार्थ—जो अच्छे पुरुष संग करने वाले, सब के मित्र और सब का दीर्घ जीवन अन्नादि ऐश्वर्य को करना चाहते हैं वे ही लोक में अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥५॥

फिर कैसी स्त्रियां श्रेष्ठ होती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जिन की (**सिन्धुमाता**) नदियों का परिमाण करने वाली सी (**यत्**) जो (**सप्तथी**) सातवीं (**सरस्वती**) उत्तम वाणी वर्त्तमान (**आ**) जो (**स्वेन**) अपने (**पयसा**) जल के (**साकम्**) साथ (**पीप्याना**) बढ़ती हुई नदियों के समान (**सुदुघा**) सुन्दर रीति से इच्छाओं को पूरा करने वाली (**सुधारा**) सुन्दर धाराओं से युक्त (**यशस**) कीर्ति की (**वावशाना.**) कामना करती हुई विदुषी स्त्री (**अभ्यासुष्वयन्त**) सब ओर से जाती हैं वे निरन्तर मान करने योग्य होती हैं ॥६॥

भावार्थ इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे छः अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन के बीच कर्मेन्द्रिय वाणी सुन्दर शोभायुक्त है और जैसे जल से पूर्ण नदी शोभा पाती है वैसे विद्या और सत्य की कामना करती हुई पूर्ण कामना वाली स्त्री श्रेष्ठ और मान करने योग्य होती है ॥६॥

कौन विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥७॥

पदार्थ—(**त्ये**) वे (**वाजिन.**) प्रशंसित विज्ञान वाले (**मन्दसाना:**) कामना करते हुए (**मरुत**) विद्वान् जन (**न·**) हमारी (**धियम्**) बुद्धि को (**उत**) और (**तोकम्**) सन्तान को (**च**) भी (**अवन्तु**) बढ़ावें जैसे (**चरन्ती**) प्राप्त होती हुई (**अक्षरा**) अविनाशिनी वाणी (**न.**) हम लोगों को (**मा**) मत (**परि-ख्यत्**) सब ओर से वर्जे वैसे (**न**) हम लोगों के सम्बन्ध में (**ते**) आप के (**युज्यम्**) योग्य (**रयिम्**) धन को (**अवीवृधन**) बढ़ावें ॥७॥

भावार्थ—वे ही विद्वान् जन अति उत्तम हैं जो सब के पुत्र और कन्याओं को ब्रह्मचर्य से रक्षा कर और बढ़ा कर उत्तम ज्ञाता करते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् जन और विद्यार्थी परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे तुम (**न·**) हमारी (**पूषणम्**) पुष्टि करने वाले (**विदथ्यम्**) संग्रामों में उत्तम (**वीरम्**) शूरता आदि गुणों से युक्त जन के (**न**) समान (**व**) तुम्हारी (**अरमतिम्**) पूर्णमति (**महीम्**) बड़ी वाणी (**भगम्**) ऐश्वर्य (**धियः**) बुद्धियों और (**अवितारम्**) बढ़ाने वाले (**अस्याः**) इस बुद्धिमान् के तथा (**सातौ**) अच्छे भाग में (**पुरन्धिम्**) बहुत सुख धारण करने वाले (**रातिषाचम्**) दानसम्बन्धी (**वाजम्**) विज्ञान को (**प्र, कृणुध्वम्**) अच्छे प्रकार सिद्ध करो वैसे इन को हम लोग भी (**प्र**) सिद्ध करें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे विद्वान् जन अध्यापक और उपदेशक सब की बुद्धि आयु विद्या की वृद्धि और शूरवीरों के समान सर्वदा रक्षा करते हैं वैसे उन की सेवा और सत्कार सब को सदा करने योग्य हैं ॥८॥

कौन विद्वान् सेवा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।

उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (वः) तुम्हारी (श्लोकः) शिक्षायुक्त वाणी (अवोभिः) रक्षाओं के साथ (निषिक्तपाम्) जो धर्म के बीच अभिषेक पाये हुए [हैं उन के रक्षक] (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (अच्छैतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (उत) और जो (प्रजायै गृणते) स्तुति करने वाली प्रजा के लिये (वयः) जीवन को (अच्छा) अच्छे प्रकार (धुः) धारण करते हैं जैसे (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥९॥

भावार्थ—जानने की इच्छा वालों को वेदवेत्ता ब्रह्म के जानने वाले अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त होकर परमेश्वर आदि की विद्याओं का संग्रह कर सर्वदैव सब प्रकार से सब की रक्षा और उन्नति बढ़ानी चाहिये ॥९॥

इस सूक्त में विश्वे देवों के कर्म और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की संगति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवता । १ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ८ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या प्राप्त करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।

अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१॥

पदार्थ—हे (सुशिप्राः) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका वाले (वाजाः) विज्ञानवान् (ऋभुक्षणः) मेधावी बुद्धिमान् जो (वः) तुम्हारा (अमृक्तः) न नष्ट हुआ (वाहिष्ठः) अत्यन्त पहुँचाने वाला (रथः) रमण करने योग्य यान (मदे) आनन्द के लिए (त्रिपृष्ठैः) तीन जानने योग्य रूप जिन के विद्यमान उन (महभिः) सत्कार और (सोमैः) ऐश्वर्य्य वा ओषधि आदि पदार्थों से (सवनेषु) उत्तम कामों में (स्तवध्यै) स्तुति करने को हमको सब ओर से पहुँचाता है वही तुम को (अभ्यावहतु) सब ओर पहुँचावे, उस को तुम (पृणध्वम्) पूरो, सिद्ध करो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम हम लोगों का रथ से चाहे हुए स्थान को पहुँचाने के समान पढ़ाने से विद्या को पहुँचाओ ॥१॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।

सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२॥

पदार्थ—हे (स्वधावन्तः) बहुत अन्नादि पदार्थयुक्त (स्वर्दृशः) सुख देखते हुए (ऋभुक्षणः) मेधावी विद्वान् जनो (यूयम्, ह) तुम्हीं (मतिभिः) बुद्धियों से (मघवत्सु) बहुत धनयुक्त व्यवहारों में (रत्नम्) रमणीय धन को (सं, धत्थ) अच्छे प्रकार धारण करो (यज्ञेषु) संग करने योग्य व्यवहार में (अमृक्तम्) विनाश को नहीं प्राप्त ऐसे बड़ी ओषधियों के रस को (पिबध्वम्) पीओ और (नः) हमारे (राधांसि) धनों को (वि, दयध्वम्) विशेष दया से चाहो ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन हैं वे प्रजाओं में ब्रह्मचर्य्य विद्या उत्तम क्रिया बड़ी बड़ी ओषधियों और धनों को बढ़ाकर सुखी हों ॥२॥

फिर धनाढ्य किस को दान देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।

उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (हि) जिस से आप (महः) बहुत वा (अर्भस्य) थोड़े (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग में (देष्णम्) देने योग्य को (उवोचिथ) कहो जिन (ते) आप के (उभा) दोनों (गभस्ती) हाथ (वसुना) धन से (पूर्णा) पूर्ण वर्त्तमान हैं उन आपकी (वसव्या) धनों में उत्तम (सूनृता) सत्य और प्रिय वाणी किसी से भी (न) नहीं (नियमते) नियम को प्राप्त होती अर्थात् रुकती ॥३॥

भावार्थ—जो धनाढ्य जन बहुत वा थोड़े धन वा सुपात्र और कुपात्र वा धर्म और अधर्म के विभाग में सुपात्र और धर्म की वृद्धि के लिये धन दान करते हैं उन की कीर्त्ति चिरकाल तक ठहरने वाली होती है ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।

वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसित मनुष्यो (इन्द्र) और योगैश्वर्यों से युक्त जन जो (ऋभुक्षाः) मेधावी (स्वयशाः) अपनी कीर्ति से युक्त (ऋक्वा) सत्कार करने वाले (वाजः) ज्ञानवान् के (न) समान (साधुः) सत्कर्म सेवने हारे (त्वम्) आप (अस्तम्) घर को (एषि) प्राप्त होते हैं उन (ते) आप के (ब्रह्म) धन वा अन्न को (नु) शीघ्र (कृण्वन्तः) सिद्ध करते हुए (वसिष्ठाः) अतीव अच्छे गुण कर्मों के बीच निवास करने वाले (वयम्) हम लोग (दाश्वांसः) दानशील (स्याम) हों ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो अच्छे मार्ग में स्थिर, साधु जनों के समान धर्मों का आचरण करते हैं वे ऐश्वर्य के साथ हों अर्थात् ऐश्वर्यवान् होकर दानशील होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।

ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५॥

पदार्थ—हे (हर्यश्व) सद्गुण और हरणशील घोड़ों वाले (इन्द्र) परम सुखप्रद विद्वान् जिस से आप (याभिः) जिन (युज्याभिः) युक्त करने योग्य विद्याओं (चित्) और (धीभिः) बुद्धियों से (ऊती) तथा रक्षा आदि क्रिया से (दाशुषे) देने वाले के लिये (सनिता) विभाग करने वाले (असि) हैं (प्रवतः) नम्रत्व आदि गुणों के देने वालों के (रायः) धनों को (विवेषः) प्राप्त होते हैं हम लोग (ते) आप के जिन पदार्थों को (ववन्म) मांगते हैं उन को (नु) आश्चर्य्य है आप (नः) हम लोगों के लिये (कदा) कब (आदशस्येः) देओगे ॥५॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों से सदा उत्तम विद्या लेनी चाहिये और विद्वान् भी यथावत् अच्छे प्रकार देवें ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।

अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख देने वाले (त्वम्) आप (तात्या) व्याप्त परमेश्वर में उत्तमता से स्थिर होने वाली (धिया) बुद्धि से (नः) हम (वेधसः) बुद्धिमान् जनों को (वासयसीव) बसाने हुए से (नः) हमारे (वचसः) वचन को (कदा) कब (बुबोधः) जानोगे (वाजी) विज्ञानवान् आप (अर्वा) घोड़े के समान (नः) हम लोगों को (सुवीरम्) जिससे अच्छे अच्छे वीर जन होते हैं उस (रयिम्) धन को कब (नि, उहीत) प्राप्त कराओगे और हमारे (अस्तम्) घर को प्राप्त होकर (पृक्षः) सम्पर्क करने योग्य अन्न कब सेवोगे ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—सब मनुष्य विद्वानों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि आप लोग हमें कब विद्वान् करके धन धान्य स्थान आदि पदार्थ और ऐश्वर्य्य को प्राप्त करावेंगे ॥६॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।

उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (यम्) जिस पदार्थ को (निर्ऋतिः) भूमि (चित्) वैसे (देवी) विदुषी स्त्री उसको (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होती वा (सुपृक्षः) जो सुन्दर अन्न वाला (त्रिबन्धुः) तीन जनों का बन्धु जिस (जरदष्टिम्) वृद्धावस्था को (ईशे) ऐश्वर्ययुक्त करता है जिस (इन्द्रम्) सूर्य को (शरदः) शरद् आदि ऋतु (नक्षन्ते) व्याप्त होती है जिस (अस्ववेशम्) अपने रूप को न धारण किये हुए को (मर्ताः) मनुष्य (उप, कृणवन्त) उपकार करते हैं उन सब का हम भी उपकार करें ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे शरीर वाणी और मन से उत्पन्न हुए तीन प्रकार के सुख को प्राप्त विद्वान् जन हृदय से चाही हुई भार्या को प्राप्त होता है, स्त्री भी प्रिय पति को प्राप्त होकर आनन्दित होती वा जैसे ऋतु अपने अपने समय को प्राप्त होकर सब को आनन्दित करती वा जैसे स्वभाव से ही कौमार आदि अवस्था आती हैं वैसे ही परस्पर में प्रीति कर प्रयत्न करो ॥७॥

मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालने से और पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थ—हे (**सवित.**) सकल जगत के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर आप की (**स्तवध्यै**) स्तुति करने को (**न**) हम लोगो को (**राधांसि**) धन (**आ, यन्तु**) मिलें (**पर्वतस्य**) मेघ के (**रातौ**) देने मे (**राय**) धन आव (**दिव्य**) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव मे प्रसिद्ध हुए (**पायु**) रक्षा करने वाले आप (**न**) हम लोगो को सदा (**आसिषक्तु**) सुखो से सयुक्त करें, हे विद्वानो ! इस विज्ञान से सहित (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभि**) सुखो से (**न**) हम लोगो की (**सदा**) सर्वदैव (**पात**) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थ—जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना कर न्याययुक्त व्यवहार से धन पाने को चाहते हैं और जो सदा आप्त अति सज्जन विद्वान् का सग सेवते हैं वे दारिद्र्य कभी नही सेवते हैं ॥८॥

इस सूक्त मे विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्याष्टात्रिशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि । १-६[1] सविता देवता । ६[2] सविता भगो वा । ७ । ८ वाजिन । १ । ३ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप्छन्द. । धैवत स्वर. । २ । ४ । ६ स्वराट् पङ्क्ति । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र मे मनुष्यो को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते है -

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरुवसुर्दधाति ॥१॥

पदार्थ—(**य**) जो (**भग**) सेवन करने योग्य सकलैश्वर्ययुक्त (**पुरुवसु**) बहुत धनो वाला (**सविता**) सकलैश्वर्य का देने हारा (**देव**) दाता ईश्वर (**मानुषेभि**) मनुष्यो से (**नूनम्**) निश्चय से (**हव्य**) स्तुति करने योग्य है जो हम लोगो के कामो को (**विदधाति**) सिद्ध करता है (**स्य**) वह जगदीश्वर (**उ**) ही (**याम्**) जिस (**हिरण्ययीम्**) हिरण्यादि रत्नो वाली (**अमतिम**) सुन्दर रूपवती लक्ष्मी का तथा (**रत्ना**) रमण करने योग्य धनो को (**अशिश्रेत्**) आश्रय करता है उसका हम लोग (**उद्ययाम**) उत्तम नियम पालें ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना करते है वे श्रेष्ठ लक्ष्मी का प्राप्त होते है ॥१॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वी पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥२॥

पदार्थ.—(**हिरण्यपाणे**) हित से रमणरूप व्यवहार जिसका (**सवितः**) वह अन्तर्यामी हे जगदीश्वर आप (**अस्य**) इस जीव की स्तुति (**श्रुधि**) सुनिये (**उ**) और इसके हृदय मे (**उत्तिष्ठ**) उठिये अर्थात् उत्कर्ष से प्राप्त हूजिये और (**ऋतस्य**) सत्य कारण की (**प्रभृतौ**) अत्यन्त धारणा मे (**अमतिम्**) अच्छे अपने रूप वाली (**उर्वीम्**) बहुत पदार्थयुक्त (**पृथ्वीम्**) पृथ्वी को (**वि, सृजान**) उत्पन्न करते हुए (**नृभ्य.**) मनुष्यो के लिये (**मर्तभोजनम्**) मनुष्यो को जो भोजन है उसे (**आ सुवान**) प्रेरणा देते हुए कृपा कीजिये ॥२॥

भावार्थ—जो सत्य भाव व धर्म का अनुष्ठान कर योग का अभ्यास करते हैं उनके आत्मा मे परमात्मा प्रकाशित होता है जिस ईश्वर ने समस्त जगत् उत्पन्न कर मनुष्यादिकों का अन्नादि से हित सिद्ध किया उसको छोड किसी और की उपासना मनुष्य कभी न करें ॥२॥

फिर कौन सब को प्रशसा करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यम् चित्**) जिस परमेश्वर की (**विश्वे**) सब (**वसव**) वे विद्वान् जन जिन मे विद्या बसती है (**गृणन्ति**) स्तुति करते हैं वह (**सविता**) सब को उत्पन्न करने वाला (**देव**) सूर्यादिक का भी प्रकाशक ईश्वर हम लोगो से (**आस्तुत**) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त (**अस्तु**) हो और वह (**अपि**) भी (**नमस्य**) नमस्कार करने योग्य हो (**न**) हमारी (**स्तोमान्**) प्रशसाओ को और (**चनः**) अन्नादि ऐश्वर्य को भी (**धात्**) धारण करे तथा (**स**) वह (**विश्वेभि.**) सब के साथ (**पायुभि.**) रक्षाओ से (**सूरीन्**) विद्वानो की (**नि, पातु**) निरन्तर रक्षा करे ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर की सब धर्मात्मा सज्जन प्रशसा करते हैं जो हम लोगो की निरन्तर रक्षा करता हम लोगो के लिये समस्त विश्व का विधान करता है उसी की हम लोग सदा प्रशसा करें ॥३॥

फिर मनुष्यों को किसकी प्रशसा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**सवितु**) प्रेरणा देने वाला अन्तर्यामी (**देवस्य**) सर्व सुखदाता जगदीश्वर के (**सवम्**) उत्पन्न किये जगत् की (**जुषाणा**) सेवा करती हुई (**देवी**) विदुषी (**अदिति**) माता जिस को (**अभि, गृणाति**) सन्मुख [सम्मुख] कहती है वा (**वरुण**) श्रेष्ठ विद्वान् जन (**सजोषा.**) समान प्रीति सेवने वाला (**अर्यमा**) न्यायाधीश और (**मित्रास.**) सब के सुहृद् (**सम्राज**) अच्छे प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ती राजजन (**यम्**) जिसकी (**अभि, गृणन्ति**) सब ओर से स्तुति करते हैं उसी की सब निरन्तर स्तुति करें ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम उसी प्रशसा करने योग्य परमेश्वर की स्तुति करो जिस की स्तुति करके विदुषी स्त्री राजा और विद्वान् जन चाहा हुआ फल पाते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥५॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**दिव**) मनोहर (**रातिषाच**) दान देने वाले के (**एक-धेनुभि**) एक वाणी ही है सहायक जिनकी उनके साथ (**मिथ**) परस्पर (**वनुष**) मांगते हुए (**न**) हम लोगो की (**रातिम्**) देने को (**अभि, सपन्ते**) अच्छे प्रकार सब ओर से नियम करते है (**उत**) और (**वरूत्री**) स्वीकार करने योग्य माता (**बुध्न्य**) अन्तरिक्ष मे प्रसिद्ध हुए (**अहि**) मेघ के समान हम लोगो का (**पृथिव्या.**) भूमि और अन्तरिक्ष के बीच (**नि, पातु**) निरन्तर रक्षा करे वह समस्त जनमात्र हमारा पढा हुआ (**शृणोतु**) सुने ॥५॥

भावार्थ—जो हम लोगो को विद्याहीन देख निन्दा करते और विद्वान् देख प्रशसा करते और एकता के लिए प्रेरणा देते हैं वे ही हमारे कल्याण करने वाले होते है ॥५॥

फिर राजा आदि मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (**उग्र**) तेजस्वी (**जास्पति**) प्रजा पालने वाला (**सवितु**) सर्वान्तर्यामी (**देवस्य**) सब प्रकाश करने वाले के (**भगम्**) ऐश्वर्य को (**इयान**) प्राप्त होता हुआ जिस (**रत्नम्**) रमणीय धन को स्वार्थ (**मसीष्ट**) मानता है (**तत्**) उसको (**न**) हम लोगो के लिये (**अनु**) अनुकूल माने जिस (**भगम्**) ऐश्वर्य का (**अवसे**) रक्षा आदि के लिए (**अनुग्र**) तेजरहित जन (**जोहवीति**) निरन्तर ग्रहण करता है वह (**रत्नम्**) रमणीय धन (**अध**) हीन दशा को (**याति**) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा परमेश्वर की सृष्टि मे सब की रक्षा के लिये प्रवृत्त होता है वही सब ऐश्वर्य को पाकर सब को आनन्दित करता है ॥६॥

फिर कौन इस संसार में कल्याण करने वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**वाजिन**) वेगवान् घोडा वा ज्ञानवान् योद्धा पुरुष (**मितद्रव**) जो प्रमाण भर जाते हैं (**स्वर्का**) जिन का शुभ अन्नादि है (**हवेषु**) वे सग्रामो मे (**देवताता**) वा विद्वानो के अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ मे (**अहिम्**) सर्प के समान वर्तमान (**वृकम्**) चोर का और (**रक्षांसि**) दुष्ट प्राणियो को (**जम्भयन्त**) जम्भाई दिलाते हुए (**न**) हम लोगो को (**शम्**) सुख के लिये (**भवन्तु**) होवें जिस से (**अस्मत्**) हम लोगो से (**सनेमि**) पुराने व्यवहार मे (**अमीवा**) रोग (**युयवन्**) अलग हों ॥७॥

भावार्थ.—जो दुष्ट आचार वाले प्राणी, रोग और शत्रुओं को निवार के सब के सुख करने वाले होते हैं वे ही जगत्पूज्य होते है ॥७॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥८॥

पदार्थ —हे (अमृता) मृत्युरहित (ऋतज्ञा) सत्य व्यवहार वा ब्रह्म के जानने वाले (वाजिनः) बहु विज्ञान अन्न बल और वेगयुक्त (विप्रा) मेधावी सज्जनो तुम (धनेषु) धनो में (वाजेवाजे) और सग्राम सग्राम मे (नः) हम लोगो की (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्व) मधुरादि गुणयुक्त रस को (पिबत) पीओ, हम लोगो को (मादयध्वम्) आनन्दित करो और (तृप्ता) तृप्त होते हुए (देवयानैः) विद्वानो के मार्ग जिन से जाना होता उन (पथिभि.) मार्गों से (यात) जाओ ॥८॥

भावार्थ:—विद्वानो के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम धार्मिक विद्वान् होकर सब की रक्षा निरन्तर करो और आनन्दित तथा बडी ओषधियों के रस से नीरोग हुए सब को आनन्दित और तृप्त कर धर्मात्माओ के मार्गों से आप चलते हुए औरो को निरन्तर उन्हीं मार्गों से चलावें ॥८॥

इस सूक्त मे सविता, ऐश्वर्य, विद्वान् और विदुषियो के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे अडतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवता । १ । २ । ५ । ७ *निचृत्त्रिष्टुप्* । ३ *स्वराट् त्रिष्टुप्* । ४ । ६ । *विराट् त्रिष्टुप्छन्दः* ॥ *धैवतः स्वरः* ॥

अब सात ऋचा वाले उनतालीसवे सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र मे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।

भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥१॥

पदार्थ.—जो (जूर्णि) जीर्ण (प्रतीची) वा काय के प्रति सत्कार करने वाली विदुषी पत्नी (ऊर्ध्व) ऊपर जाने वाले (अग्नि) अग्नि के समान (देवतातिम्) विद्वानो के अनुष्ठान किये हुए यज्ञ को और (सुमतिम्) श्रेष्ठमति को (अश्रेत्) आश्रय करे वा (रथ्येव) जैसे रथो मे उत्तम घोडे वैसे (ऋतम्) सत्य (पन्थाम्) मार्ग को (एति) प्राप्त होती वा जैसे (अद्री) निन्दारहित पत्नी और यजमान (वस्व) धन को (भेजाते) भजते हैं वा जैसे (इषित) इच्छा को प्राप्त (होता) देने वाला (नः) हम लोगो को (यजाति) सग करे उन सब का और उस का वैसे ही सब सत्कार करें ॥१॥

भावार्थ:—इस मन्त्र मे उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार हैं—जहां स्त्री पुरुष ऐसे हैं कि जिन्होने बुद्धि उत्पन्न की है, पुरुषार्थी हैं, अच्छे काम मे आचरण करते वहा सब लक्ष्मी विराजमान है ॥१॥

फिर वे स्त्री-पुरुष क्या कर इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।

विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥

पदार्थ —जो स्त्री पुरुष (बीरिटे) अन्तरिक्ष मे सूर्य और चन्द्रमा के समान (इयाते) जाते हैं (विश्पतीव) वा प्रजा पालने वाले राजा के समान (अक्तो) रात्रि की (उषस) और दिन की (पूर्वहूतौ) अगले विद्वानो ने की स्तुति के निमित्त जाते हैं वा (पूषा) पुष्टि करने वाले (वायु) प्राण के समान (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर (विशाम्) प्रजा जनो के (स्वस्तये) सुख के लिये हो (एषाम्) इन में से जो कोई (सुप्रया) सब को अच्छे प्रकार तृप्त करता है वा (बर्हिः) उत्तम सब का बढ़ाने वाला कर्म (आ, प्र, वावृजे) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन सब का सब सत्कार करे ॥२॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालकार है--सदैव जो स्त्री-पुरुष न्यायकारी राजा के समान प्रजापालन, ईश्वर के समान न्यायाचरण, पवन के समान प्रिय पदार्थ पहुँचाना और सन्यासी के तुल्य पक्षपात और मोहादि दोष त्याग करने वाले होते हैं वे सर्वार्थ सिद्ध हो ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।

अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥३॥

पदार्थ:—हे (उरुज्रय.) बहुत जाने और (शुभ्राः) शुद्ध आचरण करने वाले (वसव.) विद्या मे वास किये हुए (देवाः) विद्वान् जनो तुम (उरौ) बहुव्यापक (अन्तरिक्षे) आकाश मे (अत्र) इस संसार मे (ज्मयाः) भूमि के बीच (रन्त) रमो (अर्वाक्) पीछे (पथ) मार्गों को (मर्जयन्त) शुद्ध करो (अस्य) इस (दूतस्य) दूत को (न.) हम लोगो को (जग्मुष) जाने, प्राप्त होने वा जानने वाले (कृणुध्वम्) करो और हमारी विद्याओ को (श्रोत) सुनो ॥३॥

भावार्थ:—हे विद्वानो ! तुम धर्म-मार्गों को शुद्ध प्रचरित कर दूत के समान सब जगह घूम, धर्म का विस्तार कर सब मनुष्यो को विद्या सुखयुक्त करो ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे हों और क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।

ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥४॥

पदार्थ:—(ते) वे (हि) ही (यज्ञियास) यज्ञ सिद्ध करने (ऊमा) और रक्षा करने वाले (विश्वे) सब (देवा) विद्वान् (यज्ञेषु) विद्या देने व लेने के व्यवहारो में (अभि, सन्ति) सन्मुख [—सम्मुख] वर्त्तमान है (तान्) उन (अध्वरे) अहिंसनीय व्यवहार मे (सधस्थम्) एक से स्थान को (उशत) चाहने वाले विद्वानो को मैं (यक्षि) मिलू जो (नासत्या) असत्य व्यवहार रहित अध्यापक और उपदेशक (पुरन्धिम्) बहुत सुखो के धारण करने वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (श्रुष्टी) शीघ्र देवें, उनको जैसे मैं मिलू वैसे ही हे (अग्ने) विद्वान् आप भी इन को मिलो ॥४॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो ! जो सत्यविद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले वेदवेत्ता अध्यापक, उपदेशक, विद्वान् सब मनुष्य आदि की उन्नति करते हैं वे ही सर्वदा सर्वथा सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या जानकर क्या दूसरो को जतलावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।

आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥५॥

पदार्थ —हे (अग्ने) विद्वन् आप (दिव) बिजुली और सूर्यादि प्रकाशवान् पदार्थों की विद्या का प्रकाश करने वाली वा (पृथिव्या) भूमि आदि पदार्थों का प्रकाश करने वाली (गिर) सुन्दर शिक्षित वाणियो को (आ, वह) प्राप्त कीजिये (मित्रम्) मित्र (वरुणम्) अतिश्रेष्ठ (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् राजा (अग्निम्) अग्नि (अर्यमणम्) न्यायाधीश (अदितिम्) अन्तरिक्ष (विष्णुम्) व्यापक वायु को (आ) प्राप्त कीजिये और जो (एषाम्) इनकी विद्यायुक्त (सरस्वती) वाणी उसको जानकर हमारे अर्थ (आ) प्राप्त कीजिये हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो उक्त विद्या को देकर हम लोगों को आप (मादयन्ताम्) आनन्दित कीजिये ॥५॥

भावार्थ:—जो मनुष्य बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होकर औरो को प्राप्त कराते हैं वे सबका आनन्द करने वाले होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।

धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥६॥

पदार्थ —जो (मतिभि) प्राज्ञ मनुष्यो के साथ वा (युज्येभि) योग करने योग्य (देवै) विद्वानो के साथ (यज्ञियानाम्) यज्ञ सम्पादन करने वाले (मर्त्यानाम्) मनुष्यो के (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (कामम्) काम को (असिन्वन्) निबन्ध करते हैं जिस (अविदस्यम्) अक्षीण विनाशरहित (सदासाम्) सदैव अच्छे प्रकार सेवने योग्य (रयिम्) धन को (धात) धारण करते हैं वा जो इनके साथ उसको (नक्षत्) व्याप्त होता है उसको मैं (ररे) देऊ, हम सब लोग इनके साथ उसको (नु) शीघ्र (सक्षीमहि) व्याप्त होवें ॥६॥

भावार्थ. – जो विद्वान् अन्य मनुष्यो का काम पूरा करते हैं वे पूर्णकाम होते हैं ॥६॥

फिर विद्वान् जन औरों के लिये क्या देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।

यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ:—जैसे (वरुण) श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (अग्नि.) अग्नि के समान विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशित और (ऋतावान) सत्य को याचने वा (चन्द्रा) हर्ष करने वाले जन (वसिष्ठै) अतीव बसाने वाले के साथ (अभिष्टुते) सब ओर से प्रशसित (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी (उपमम्) जिससे उपमा दी जावे उस (अर्कम्)

सत्कार करने योग्य अन्न वा विचार को (नः) हम लोगों के लिए (नु) शीघ्र (यच्छन्तु) देवें वैसे हे विद्वानो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सदैव (पात) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थ.—जो विद्वान् जन धर्मात्मा, विद्वानों के साथ जिसकी उपमा नहीं उस विज्ञान को देते हैं वे हम लोगों की रक्षा कर सकते हैं ॥७॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवता । १ पङ्क्तिः । ३ भुरिक्पङ्क्तिः । ६ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या॑ समे॑तु प्रति॒ स्तोमं॑ दधीमहि तु॒राणा॑म् ।

यद॒द्य दे॒वः स॑वि॒ता सु॒वाति॒ स्यामा॑स्य र॒त्निनो॑ विभा॒गे ॥१॥

पदार्थ —(ओ) ओ विद्वान् जैसे (श्रुष्टिः) शीघ्र करने वाला (विदथ्या) संग्रामादि व्यवहारों में हुए (तुराणाम्) शीघ्रकारियों के (प्रति, स्तोमम्) समूह समूह के प्रति (समेतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे इस समूह को हम लोग (दधीमहि) धारण करें (यत्) जो (अद्य) अब (देव) विद्वान् (सविता) अच्छे कामों में प्रेरणा देने वाला (विभागे) विशेष कर सेवने योग्य व्यवहार में (अस्य) इस विद्वान् के (रत्निनः) उन व्यवहारों को जिनमें बहुत रत्न विद्यमान और स्तुति समूह को (सुवाति) उत्पन्न करता है वैसे हम लोग उत्पन्न करने वाले (स्याम) हों ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विदुषी माता सन्तानों की रक्षा कर और अच्छी शिक्षा देकर बढ़ाती है वैसे विद्वान् जन हमको बढ़ावें ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मि॒त्रस्तन्नो॒ वरु॑णो॒ रोद॑सी च॒ द्युभ॑क्तमिन्द्रो॑ अर्य॒मा द॑दातु ।

दिदे॑ष्टु दे॒व्यदि॑ती॒ रेक्णो॑ वा॒युश्च॒ यन्नि॑यु॒वैते॒ भग॑श्च ॥२॥

पदार्थ —जो (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान राजा (वरुणः) जलसमूह (वायुः) और पवन (च) भी (द्युभक्तम्) जो प्रकाश को सेवता है (तत्) उसको (नः) हम लोगों के लिए (ददातु) देओ और (देवी) विदुषी (अदितिः) स्वरूप से अखण्डित (भगः) और ऐश्वर्यवान् (च) भी (यत्) जिस (रेक्णः) अधिक धन को (नियुवैते) निरन्तर जोड़ उसका विद्वान् जन हमें (च) भी (दिदेष्टु) उपदेश करें ॥२॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है मनुष्य सर्वदा पुरुषार्थ से सबको ऐश्वर्ययुक्त करावें ॥२॥

कौन सुरक्षित विद्वान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेदु॒ग्रो अ॑स्तु मरुतः॒ स शु॒ष्मी यं मर्त्यं॑ पृषदश्वा॒ अवा॑थ ।

उ॒तेम॒ग्निः सर॑स्वती जु॒नन्ति॒ न तस्य॑ रा॒यः प॑र्ये॒तास्ति॑ ॥३॥

पदार्थ —हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (पृषदश्वाः) सींचे हुए जल और अग्नि से जल्दी चलने वाले बड़े (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य को (अवाथ) रक्खें (स, इत्) वही (उग्रः) तेजस्वी (सः) वह (शुष्मी) बहुत बलवान् (अस्तु) हो जिसको विद्वान् (जुनन्ति) प्रेरणा देते हैं (तस्य) उसके (रायः) धनों का (पर्येता) वर्जन करने वाला (न) नहीं होता है (उत, ईम्) और सब ओर से (अग्निः) अग्नि के समान (सरस्वती) शुद्ध वाणी उसकी उत्तम (अस्ति) है ॥३॥

भावार्थ.—जिन मनुष्यों की विद्वान् जन रक्षा करते हैं वे विद्वान् हो धन और ऐश्वर्य को पाकर औरों की भी रक्षा कर सकते हैं ॥३॥

कौन राजा होने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒यं हि ने॒ता वरु॑ण ऋ॒तस्य॑ मि॒त्रो राजा॑नो अर्य॒मापो॒ धुः ।

सु॒हवा॑ दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा ते नो॒ अंहो॒ अति॑ पर्ष॒न्नरि॑ष्टान् ॥४॥

पदार्थ.—जो (अयम्) यह (नेता) न्यायकर्ता (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र (अर्यमा) और न्यायाधीश (सुहवा) सुन्दर देने लेने वाले (राजानः) राजजन (हि) ही (ऋतस्य) सत्य के (अपः) कर्म को (धुः) धारण करें (ते) वे (अनर्वा) नहीं है घोड़े की चाल जिसकी उस (देवी) देदीप्यमान (अदितिः) अखण्डित नीति के समान (नः) हम लोगों को (अरिष्टान्, अंहः) अपराध से न विनाश किये हुए (अति, पर्षन्) उल्लंघे अर्थात् छोड़ें ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है— वे ही राजा होते हैं जो न्याय श्रेष्ठ गुण और सबों में मित्रता की भावना कराते हैं वे ही अपराध के आचरण से लोगों को दूर रखने योग्य होते हैं और राजा होने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒स्य दे॒वस्य॑ मी॒ळ्हुषो॑ व॒या विष्णो॑रे॒षस्य॑ प्रभृ॒थे ह॒विर्भिः॑ ।

वि॒दे हि रु॒द्रो रु॒द्रियं॑ महि॒त्वं या॑सि॒ष्टं व॒र्तिर॑श्विना॒विरा॑वत् ॥५॥

पदार्थ.—जैसे (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (अस्य) इस (मीळ्हुषः) जल के समान सुख सींचने वाला (विष्णोः) बिजुली के समान व्यापक ईश्वर (एषस्य) जो कि सर्वत्र प्राप्त होने (देवस्य) और निरन्तर प्रकाशमान सकल सुख देने वाला उसके (हविर्भिः) होमने योग्य पदार्थों के समान ग्रहण किये शान्त चित्तादिकों में (प्रभृथे) उत्तमता से धारण किये हुए जगत् में (इरावत्) अन्नादि ऐश्वर्य युक्त (वर्तिः) मार्ग को और (महित्वम्) महत्त्व को (यासिष्टम्) प्राप्त होते हैं उस ईश्वर की (रुद्रियम्) प्राणसम्बन्धी महिमा का (वयाः) प्राप्त करने (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला मैं (हि) ही (विदे) प्राप्त होता हूँ ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर की महिमा का पार सूर्य आदि लोक प्रकाश करते हैं उसी की उपासना सर्वस्व से करनी चाहिये ॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मात्र॑ पूष॒न्नाघृ॑ण इरस्यो॒ वरू॑त्री॒ यद्रा॑ति॒षाच॑श्च॒ रास॑न् ।

म॒यो॒भुवो॑ नो॒ अर्व॑न्तो॒ नि पा॑न्तु वृ॒ष्टिं परि॑ज्मा॒ वातो॑ ददातु ॥६॥

पदार्थ —हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशित (पूषन्) पुष्टि करने वाले जैसे (परिज्मा) सब ओर से जा जाता है वह (वातः) वायु (वृष्टिम्) वर्षा को (ददातु) देवे वैसे (मयोभुवः) श्रेष्ठता कराने वाले (अर्वन्तः) प्राप्त होते हुए (रातिषाचः) दानकर्ता जन (नः) हम लोगों की (नि, पान्तु) निरन्तर रक्षा करें और (यत्) जो (वरूत्री) स्वीकार करने योग्य विद्या है (च) उस को भी (रासन्) देते हैं वैसे (इरस्य) प्राप्त होने योग्य आप और (मा, अत्र) और मत इस जगत् में विद्वेषी होओ ॥६॥

भावार्थ —जो विद्वान जन श्रेष्ठ जनों के तुल्य वर्त कर सब के लिये सुख वा विद्या देते हैं वे सब के सब ओर से रक्षक हैं ॥६॥

फिर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोद॑सी अ॒भिष्टु॑ते वसि॒ष्ठैर्ऋ॒तावा॑नो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निः ।

यच्छ॑न्तु च॒न्द्रा उ॑प॒मं नो॑ अ॒र्कं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥

पदार्थ —जो पढ़ाने और उपदेश करने वाली (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (अभिष्टुते) सामने पढ़ाती वा उपदेश करती वे (वसिष्ठैः) अतीव धनाढ्यों के साथ जैसे (मित्रः) मित्र के समान प्यारे आचरण करने वाला (वरुणः) जल के समान शान्ति देने वाला और (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशित यश जन तथा (चन्द्राः) आनन्द देने वाले (नः) हमारे लिये (उपमम्) उपमा जिस को दी जाती उसको अतीव सिद्ध कराने वाले (अर्कम्) सत्कार करने योग्य धन धान्य को (नु) शीघ्र (यच्छन्तु) देवें वैसे हम लोगों को (ऋतावानः) सत्य का प्रकाश करने वाली कन्याजन निरन्तर विद्या देवें, हे विदुषी स्त्रियो ! (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभती हुई, जल के तुल्य शान्त, सहेली के तुल्य उपकार करने वाली विदुषी पढ़ाने वाली हों वे सब कन्याओं को पढ़ा के और सब स्त्रियों को उपदेश से आनन्दित करें ॥७॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुण और कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १— ७ वसिष्ठर्षिः । १ लिङ्गोक्तदेवता । २— ६ भगः । ७ उषाः । १ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ३ । ५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातः-काल उठ के जब तक सोवें तब तक मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**प्रातः**) प्रभात काल में (**अग्निम्**) अग्नि को (**प्रातः**) प्रभात समय में (**इन्द्रम्**) बिजुली वा सूर्य को (**प्रातः**) प्रातःसमय (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान के समान मित्र और राजा को तथा (**प्रातः**) प्रभात काल में (**अश्विना**) सूर्य चन्द्रमा वैद्य वा पढ़ाने वालों को (**हवामहे**) विचार से प्रशंसा करें (**प्रातः**) प्रभात समय (**भगम्**) ऐश्वर्य्य को (**पूषणम्**) पुष्टि करने वाले वायु को (**ब्रह्मणस्पतिम्**) वेद ब्रह्माण्ड वा सकलैश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर को (**सोमम्**) समस्त ओषधियों को (**उत**) और (**प्रातः**) प्रभात समय (**रुद्रम्**) फल देने से पापियों को रुलाने वाले ईश्वर वा पाप फल भोगने से रोने वाले जीव की (**हुवेम**) प्रशंसा करें वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को रात्रि के पिछले पहर में उठ कर आवश्यक कार्य्य कर ध्यान से शरीरस्थ वा ब्रह्माण्डस्थ वा बिजुली प्राण उदान मित्र सूर्य चन्द्रमा ऐश्वर्य पुष्टि परमेश्वर ओषधिगण और जीव, विचार से जानने योग्य हैं फिर अग्निहोत्रादि कामों से सब जगत् का उपकार कर कृतकृत्य होना चाहिये ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**अदितेः**) अन्तरिक्षस्थ भूमि वा प्रकाश का (**विधर्ता**) वा विविध लोकों का धारण करने वाला (**आध्रः, चित्**) जो सब ओर से धारण सा किया जाता (**मन्यमानः**) जानता हुआ (**तुरः**) शीघ्रकारी (**राजा**) प्रकाशमान (**चित्**) निश्चय से परमात्मा (**यम्**) जिस (**भगम्**) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति होने को (**आह**) उपदेश देता है जिसकी प्रेरणा पाये हुए (**वयम्**) हम लोग (**पुत्रम्**) पुत्र के समान (**प्रातर्जितम्**) प्रातःकाल ही उत्तमता से प्राप्त होने के योग्य (**उग्रम्**) तेजोमय तेज भरे हुए (**भगम्**) ऐश्वर्य को (**हुवेम**) कहें (**इति**) इस प्रकार (**यम्, चित्**) जिस को निश्चय से मैं (**भक्षि**) सेवूं उस की उपासना करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को चाहिये कि प्रातःसमय उठ कर सब के आधार परमेश्वर का ध्यान कर सब करने योग्य कामों को नाना प्रकार से चिंतवन कर धर्म और पुरुषार्थ से पाये हुए ऐश्वर्य को भोगें वा भुगावें यह ईश्वर उपदेश देता है ॥२॥

फिर मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना क्यों करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

पदार्थः—हे (**भग**) सकलैश्वर्य्ययुक्त (**प्रणेतः**) उत्तमता से प्राप्ति कराने वाले (**भग, सत्यराधः**) अत्यन्त सेवा करने योग्य सत्य प्रकृतिरूप धनयुक्त (**भग**) सकल ऐश्वर्य्य देने वाले ईश्वर आप कृपा कर (**नः**) हम लोगों के लिए (**इमाम्**) इस प्रशंसायुक्त (**धियम्**) उत्तम बुद्धि को (**ददत्**) देते हुए हम लोगों की (**उदव**) उत्तमता से रक्षा कीजिये, हे (**भग**) सर्वसामग्रीयुक्त (**नः**) हम लोगों के लिये (**गोभिः**) गौओं वा पृथिवी आदि से (**अश्वैः**) वा शीघ्रगामी घोड़ा वा पवन वा बिजुली आदि से (**प्र, जनय**) उत्तमता से उत्पत्ति दीजिये, हे (**भग**) सकलैश्वर्य्ययुक्त आप हम लोगों को (**नृभिः**) नायक श्रेष्ठ मनुष्यों से (**प्र**) उत्तम उत्पत्ति दीजिये जिस से हम लोग (**नृवन्तः**) बहुत उत्तम मनुष्ययुक्त (**स्याम**) हों ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा, प्रार्थना, ध्यान और उपासना का आचरण पहिले करके पुरुषार्थ करते हैं वे धर्मात्मा होकर अच्छे सहायवान् हुए सकल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को किससे कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

पदार्थः—हे (**मघवन्**) परमपूजित ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर (**इदानीम्**) इस समय (**उत**) और (**प्रपित्वे**) उत्तमता से ऐश्वर्य्य की प्राप्ति-समय में (**उत**) और (**अह्नाम्**) दिनों के (**मध्ये**) बीच (**उत**) और (**सूर्यस्य**) सूर्य लोक के (**उदिता**) उदय में (**उत**) और सायंकाल में (**भगवन्तः**) बहुत उत्तम ऐश्वर्य्ययुक्त (**वयम्**) हम लोग (**स्याम**) हों (**देवानाम्**) तथा आप्त विद्वानों की (**सुमतौ**) श्रेष्ठ मति में स्थिर हों ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य जगदीश्वर के आश्रय और आज्ञा पालन से विद्वानों के संग से अति पुरुषार्थी होकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं वे सकलैश्वर्ययुक्त होते हुए भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों में सुखी होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

पदार्थः—हे (**भग**) सकल ऐश्वर्य के देने वाले जो आप (**भग**) अत्यन्त सेवा करने योग्य (**भगवान्**) सकलैश्वर्य्यसम्पन्न (**अस्तु**) हाओ (**तेन**) उन्हीं भगवान् के साथ (**वयम्**) हम (**देवाः**) विद्वान् लोग (**भगवन्तः**) सकलैश्वर्य्ययुक्त (**स्याम**) हों, हे सकलैश्वर्य्य देने वाले जो (**सर्वः**) सर्व मनुष्य (**तम्**) उन (**त्वा**) आपकी (**जोहवीति**) निरन्तर प्रशंसा करता है (**सः**) वह (**इह**) इस समय में (**नः**) हमारे (**पुरएता**) आगे जाने वाला हो और हे (**भग**) सेवा करने योग्य वस्तु देने वाले आप (**इत्**) ही हमारे अर्थ आगे जाने वाले (**भव**) हूजिये ॥५॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर जो सकलैश्वर्य्यवान् आप सब को सब ऐश्वर्य्य देते हैं उन के सहाय से सब मनुष्य धनाढ्य होवें ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसे होकर क्या पाकर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

पदार्थः—(**रथमिव, अश्वाः**) रमणीय यान को महान् वेग वाले घोड़े वा शीघ्र जाने वाले बिजुली आदि पदार्थ जैसे वैसे जो (**वाजिनः**) विशेष ज्ञानी जन (**शुचये**) पवित्र (**अध्वराय**) हिंसारहितधर्मयुक्त व्यवहार (**पदाय**) और पाने योग्य पदार्थ के लिये (**उषसः**) प्रभात वेला को (**दधिक्रावेव**) धारणा करने वालों को प्राप्त होने के समान (**सम्, नमन्त**) अच्छे प्रकार नमते हैं वे (**अर्वाचीनम्**) तत्काल प्रसिद्ध हुए नवीन (**वसुविदम्**) धनों को प्राप्त होते हुए (**भगम्**) सर्व ऐश्वर्य्य युक्त जन को और (**नः**) हम लोगों को (**आ, वहन्तु**) सब ओर से उन्नति को पहुंचावें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य प्रातःकाल उठ के वेगयुक्त घोड़ों के समान शीघ्र जाकर आकर आलस्य छोड़ ऐश्वर्य को पाय नम्र होते हैं वे ही पवित्र परमात्मा को पा सकते हैं ॥६॥

फिर विदुषी स्त्री क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे पढ़ाने और उपदेश करने वाली पण्डिता स्त्रियो ! तुम (**उषसः**) प्रभात वेला सी शोभती हुई (**अश्वावतीः**) जिन के समीप बड़े बड़े पदार्थ विद्यमान (**गोमतीः**) वा किरणें विद्यमान (**वीरवतीः**) वा वीर विद्यमान (**भद्राः**) जो कल्याण करने (**प्रपीताः**) उत्तमता से बढ़ाने और (**विश्वतः**) सब ओर से (**घृतम्**) जल को (**दुहानाः**) पूरा करती हुईं आप (**नः**) हमारे (**सदम्**) स्थान को (**उच्छन्तु**) सेवो वह (**यूयम्**) तुम (**स्वस्तिभिः**) सुखों से (**नः**) हम लोगों की (**सदा**) सर्वदेव (**पात**) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे प्रभात वेला सब निद्रा में ठहरे हुए मरे हुए जैसों को चैतन्य करा कर्मों में युक्त कराती हैं वैसे ही होती हुई विदुषी स्त्रियां सब अविद्यानिद्रास्थ स्त्रियों को पढ़ाने और उपदेश करने से अच्छे काम में प्रवृत्त करावें ॥७॥

इस सूक्त में मनुष्यों की दिनचर्य्या का प्रतिपादन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे पूरी विद्या वाले जन क्या करें इस विषय को कहते है ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनवं उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥१॥

पदार्थ —हे (ब्रह्माणः) चारों वेदो के जानने वाले जनो (अङ्गिरसः) प्राणो के समान विद्वान् जन जैसे (क्रन्दनुः) बुलाने वाला (नभन्यस्य) अन्तरिक्ष पृथिवी वा सुख मे उत्पन्न हुए (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य व्यवहार के (पेशः) सुन्दर रूप को (प्र, वेतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा (उदप्रुतः) उदक जल को प्राप्त हुई नदियो के समान (धेनवः) और दूध देने वाली गौओ के समान वाणी अहिंसनीय व्यवहार के रूप की (नवन्त) स्तुति करती हैं और जैसे (अद्री) मेघ और बिजुली अहिंसनीय व्यवहार के रूप को (प्रयुज्याताम्) प्रयुक्त हो आप लोग वैसी विद्याओ मे (प्र, नक्षन्त) व्याप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो चारो वेद के जानने वाले, विद्वान् जन, अहिंसादि लक्षण हैं जिसके ऐसे धर्म के स्वरूप का बोध कराते हैं वे स्तुति करने योग्य होते है ॥१॥

कौन विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्याप्रकाशित (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (ये) जो (हरितः) दिशाओ के समान (रोहितः, च) और नदियो के समान (सद्मन्) स्थान मे (अरुषा) लालगुणयुक्त (वीरवाहः) वीरो को पहुचाने वाले हैं उन (देवानाम्) विद्वानो के (जनिमानि) जन्मो का (सत्तः) आसन्न हुआ मैं (हुवे) प्रशसा करता हू वैसे जो आप का (सुगः) अच्छे जाते हैं जिसमे वह (सनवित्तः) सनातन वेग से प्राप्त (अध्वा) मार्ग है जिसकी कि मैं प्रशंसा करू उसको आप (युक्ष्व) युक्त करो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—वे ही विद्वान् जन श्रेष्ठ हैं जो सनातन वेदप्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करके अनुष्ठान कराते हैं, उन्ही विद्वानो का जन्म सफल होता है जो पूर्ण विद्या को पाकर धर्मात्मा होकर प्रीति के साथ सब को अच्छी शिक्षा दिलाते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥३॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) बहुत सेनाओ वाले राजा आप (देवान्) विद्वानो का (सुयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (यज्ञियाम्) जो यज्ञ के योग्य होती उस (अरमतिम्) पूरी मति को (आ, ववृत्याः) प्रवृत्त कराओ (मन्द्रः) आनन्द देने वा (होता) दान करने वाले होते हुए (उपाके) समीप मे (प्र, रिरिचे) अन्याय से अलग रहिये, हे विद्वानो जो (नमोभिः) अन्नादिको स (वः) तुम लोगो के (यज्ञम्) विद्याप्रचारमय यज्ञ का (सम्महयन्) सम्मान [-सम्मान] करते हैं (उ) उन्ही का तुम सत्कार करो ॥३॥

भावार्थ —जो विद्वान् जन सत्कर्मानुष्ठानयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वे पुष्कल वीर सेना वाले होते हुए सबको आनन्द देने वाले होते है ॥३॥

फिर अतिथि और गृहस्थ परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४॥

पदार्थ —(यदा) जब (स्योनशीः) सुख से सोने वाला (अतिथिः) सत्य उपदेशक (रेवतः) बहुत धन वाले (वीरस्य) वीर के (दुरोणे) घर मे (आचिकेतत्) सब ओर से जानता है तब (सः) वह (अग्निः) अग्नि के समान (सुधितः) अच्छा हित करने वाला (सुप्रीतः) सुन्दर प्रसन्न गृहस्थ के (दमे) घर में (इयत्यै) सुखप्राप्ति की इच्छा के लिये (विशे) और प्रजा सन्तान के लिये (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य विज्ञान को (आ, दाति) सब ओर से देता है ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जब विद्वान् धार्मिक उपदेश करने वाला अतिथि जन तुम्हारे घरो को आवे तब अच्छे प्रकार उसका सत्कार करो, हे अतिथि जब जहा जहा आप रमण भ्रमण करें वहा वहा सब के लिये सत्य उपदेश करें ॥४॥

फिर वे गृहस्थ अतिथि परस्पर के लिये क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥५॥

पदार्थ —हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित अतिथि आप (मरुत्सु) मनुष्यो के (इन्द्रे) और राजा के निमित्त (नः) हम लोगो के (इमम्) इस (अध्वरम्) उपदेशरूपी यज्ञ को निरन्तर (जुषस्व) सेवो (नः) हमारी (यशसम्) कीर्ति की वृद्धि (कृधि) करो (नक्तोषसा) रात्रि को दिन के साथ (बर्हिः) तथा उत्तम आसन को (आसदताम्) स्वीकार करो, स्थिर होओ (इह) इस जगत् मे (उशन्ता) कामना करते हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान स्त्री पुरुषो को आप (यज) मिलो ॥५॥

भावार्थ —जब अतिथि आवें तब गृहस्थ अर्घ्य पाद्य आसन मधुपर्क प्रिय वचन और अन्नादिको से उसका सत्कार कर और पूछ कर सत्य और असत्य का निर्णय करे और अतिथि भी प्रश्नो के समाधान देवें ॥५॥

धन की कामना करने वाले क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—जो (रायस्कामः) धन की कामना वाला (वसिष्ठः) अतीव निवासकर्त्ता जन (विश्वप्स्न्यस्य) समग्र रूपो मे और (सहस्यम्) बल मे हुए (अग्निम्) अग्नि की (स्तौत्) स्तुति करता है (एव) वही (अस्मे) हमारी (इषम्) अन्नादि सामग्री (रयिम्) लक्ष्मी (वाजम्) विज्ञान वा अन्न को (पप्रथत्) प्रसिद्ध करता है, हे अतिथि जनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखो से (नः) हम लोगो की (सदा) सदैव (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थ —जिसको धन की कामना हो वह मनुष्य अग्न्यादि विद्या को ग्रहण करे, जो अतिथियो की सेवा करते हैं उनको अतिथि लोग अधर्म के आचरण से सदा अलग रखते हैं ॥६॥

इस सूक्त मे विश्वेदेवो के गुणो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे बयालीसवा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पाच ऋचा वाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे फिर अतिथि और गृहस्थ एक दूसरे के लिये क्या क्या देवें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥१॥

पदार्थ —हे (विप्राः) बुद्धिमानो (येषाम्) जिनको (असमानि) औरो के धनो से न समान किन्तु अधिक (ब्रह्माणि) धन वा अन्न (वनिनः) वन सम्बन्ध रखने और (शाखाः) अन्तरिक्ष मे सोनेवाली शाखाओ के (न) समान (विष्वक्) अनुकूल व्याप्ति जैसे हो वैसे (वि, यन्ति) व्याप्त होते हैं वा जो (नमोभिः) अन्नादिको से (इषध्यै) इच्छा करने वा जानने को (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि की (यज्ञेषु) विद्याप्रचारादि व्यवहारो मे (देवयन्तः) कामना करते हुए (वः) तुम लोगो का (प्रार्चन्) अच्छा सत्कार करते हैं उनका तुम भी सत्कार करो ॥१॥

भावार्थ —हे अतिथि विद्वानो ! जैसे गृहस्थ जन अन्नादि पदार्थों के साथ आपका सत्कार करें वैसे तुम विज्ञान-दान से गृहस्थो को निरन्तर प्रसन्न करो ॥१॥

फिर मनुष्य कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥२॥

पदार्थ - हे (समनसः) समान ज्ञान वा समान मन वाले विद्वानो ! जिन आप लोगो को (यज्ञः) विज्ञानमय सग करने योग्य व्यवहार (एतु) प्राप्त हो वे आप लोग (हेत्वः) अच्छे बढ़े हुए वेगवान (सप्तिः) घोडा के (न) समान सब को (प्रोद्यच्छध्वम्) अतीव उद्यमी करो जिसके (ऊर्ध्वा) ऊपर जाने वाले (देवयूनि) दिव्य उत्तम गुणो को चाहते हुए (शोचींषि) तेज (अस्थुः) स्थिर होते हैं उससे (अध्वराय) अहिंसामय यज्ञ के लिये आप (घृताचीः) रात्रियों और (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (साधु) समीचीनता से (स्तृणीत) आच्छादित करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे गृहस्थो जिससे वायु, जल और ओषधि पवित्र होती हैं उस यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करो । यज्ञ-धूम से अन्तरिक्ष

को हटाओ, हे अतिथियो ! तुम सब मनुष्यो को सारथि घोड़ो को जैसे, वैसे धर्म कामो मे उद्यमी कर इनका आलस्य दूर करो जिससे इनको समस्त लक्ष्मी प्राप्त हो ।।२।।

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।

आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ।।३।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (विश्वाची) विश्व को प्राप्त होने वाली (विदथ्याम्) घरो मे नीति को (आ, अनक्तु) सब ओर से चाहे उसके उपदेश से आप (नः) हमारे (देवताता) दिव्य गुणो की प्राप्ति कराने वाले यज्ञ में (मृधः) हिंसको को (आ, कः) मत करें जो (देवासः) विद्वान् जन (सानौ) ऊपरले देश स्थान मे (विभृत्राः) विशेष कर पुष्टि करने वाले (पुत्रासः) पुत्र जैसे (मातरम्) माता को (न) वैसे (बर्हिषः) उत्तम वृद्ध जन (आ, सदन्तु) स्थिर हो, उनकी आप कामना करें ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालकार है—वही माता उत्तम है जो ब्रह्मचर्य्य से विदुषी होकर सन्तानो को अच्छी शिक्षा देकर विद्या से इनकी उन्नति करे, वही पिता श्रेष्ठ है जो हिंसादिदोषरहित सन्तान करे, वे ही विद्वान् प्रशसा पाये हैं जो और मनुष्यों को मां के समान पालते हैं ।।३।।

फिर मनुष्य क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।

ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ।।४।।

पदार्थः—जो (यजत्रा.) सग करने वाले (जोषम्) पूरी (आ, सीषपन्त) शपथ करें (ते) वे (समनस) एकसे विज्ञान वाले जन (ऋतस्य) सत्य की (सुदुघाः) कामनाओ को पूरी करने वाली (दुहाना) पूर्ण शिक्षा विद्यायुक्त (धारा) वाणियो को (आ, गन्तन) प्राप्त हो और (यति) जिनमे यत्न करते हैं उस व्यवहार मे (आ, स्थ) स्थिर हो । हे धार्मिक सज्जनो (वः) तुम लोगो का (वसूनाम्) धनो का (महः) महान् (ज्येष्ठम्) प्रशंसित भाग (अद्य) आज प्राप्त हो ।।४।।

भावार्थ—जो सत्य कहने, सत्य करने और सत्य मानने वाले होते हैं वे पूर्ण-काम होकर सब मनुष्यो को विद्वान् कर सकते हैं ।।४।।

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।

राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५।।

पदार्थः—हे (सहसावन) बहुबलयुक्त (अग्ने) विद्वान् आप (विक्षु) प्रजाजनों मे (नः) हम लोगों को धन (दशस्य) देओ जिससे (त्वया) तुम्हारे साथ (युजा) युक्त (वयम्) हम लोग (राया) धन मे (सधमाद) तुल्य स्थान वाले (आस्क्राः) सब ओर से बुलाये और (अरिष्टा) अविनष्ट हो, (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखो से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो (एव) उन्हीं की हम लोग भी रक्षा करें ।।५।।

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम हम को विद्या देओ जिससे हम लोग प्रजाजनो मे उत्तम धन आदि पाकर तुम्हारी सदैव रक्षा करें ।।५।।

इस सूक्त मे विश्वे देवों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल में तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ पञ्चर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । लिङ्गोक्ता देवताः । १ निचृज्जगती छन्दः । निषाद स्वर । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः । ४ । ५ पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वरः ।।

अब चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को सृष्टिविद्या से सुख बढ़ाना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।

इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ।।१।।

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (ऊतये) धनादि के लिये मैं (वः) तुम लोगों को और (प्रथमम्) पहिले (दधिक्राम्) जो धारण करने वालों को क्रम से प्राप्त होता उसे (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (उषसम्) प्रभातवेला (समिद्धम्) प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि (भगम्) ऐश्वर्य्य (इन्द्रम्) बिजुली (विष्णुम्) व्यापक वायु (पूषणम्) पुष्टि करने वाले ओषधिगण (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड के स्वामी (आदित्यान्) सब महीने (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (अपः) जल और (स्वः) सुख को (हुवे) ग्रहण करता हूँ, वैसे ही मेरे लिये इस विद्या को आप भी ग्रहण करें ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन प्रथम से भूमि आदि की विद्या का सग्रह करके कार्यसिद्धि करते हैं वैसे तुम भी करो ।।१।।

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ।।

दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।

इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ।।२।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नमसा) अन्नादि से वा सत्कार से (दधिक्राम्) पृथिवी आदि के धारण करने वालो को (बोधयन्त) बोध दिलाते हुए (उदीराणा) उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त (यज्ञम्) यज्ञ का (उपप्रयन्त) प्रयत्न करते (उ) और (देवीम्) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाली (इळाम्) प्रशसनीय वाणी को (बर्हिषि) वृद्धि करने वाले व्यवहार मे (सादयन्तः) स्थिर कराते हुए हम लोग (सुहवा) शुभ बुलाने जिन के उन (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् पण्डितो की (हुवेम) प्रशसा करे, वैसे उनकी तुम भी प्रशसा करो ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—वे ही विद्वान जन जगत् के हितैषी होते हैं जो सब जगह विद्या फैलाते हैं ।।२।।

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।

ब्रध्नं मांश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ।।३।।

पदार्थ—हे विद्वानो (दधिक्रावाणम्) धारण करने वाले यानो को चलाने वाले (अग्निम्) आग (उषसम्) प्रभातवेला (ब्रध्नम्) महान् (सूर्यम्) सूर्यलोक (गाम्) भूमि को (मंश्चतो) मानते हुए विद्वानो को मागने वाले (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (बभ्रुम्) धारण वा पोषण करने वाले को तथा जिनको आपके प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूँ (ते) वे आप लोग (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणो को (यावयन्तु) दूर करें ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—जैसे आप्त विद्वान् सब के लिये विद्या और अभयदान देकर पाप के आचरण से उन्हें अलग करते हैं वैसे सब विद्वान् करें ।।३।।

फिर विद्वान् जन क्या जान कर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ।।

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।

संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।।४।।

पदार्थः—जो (दधिक्रावा) धारण करने वालो को पहुँचाने और (प्रथम) प्रथम सिद्ध करने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) प्रेरणा को प्राप्त अग्नि (उषसा) प्रातःकाल की वेला (सूर्येण) सूर्य लोक (आदित्येभिः) सवत्सर के महीनो (वसुभिः) पृथिवी आदि लोको और (अङ्गिरोभिः) पवनो के सहित होता हुआ (रथानाम्) रमणीय यानो के (अग्रे) आगे वहन करने वाला (भवति) होता है उसको (प्रजानन्) उत्तमता से जानता और (संविदानः) अच्छे प्रकार उसका विज्ञान करता हुआ विद्वान् जन अच्छा प्रयोग करे ।।४।।

भावार्थ—जो अग्निविद्या को जानते हैं वे रथो के शीघ्र चलाने वाले होते हैं ।।४।।

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ।।

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।

शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ।।५।।

पदार्थ—हे विद्वान् आप (दधिक्रा) घोड़े के समान धारण करने वालो को चलाने वाले (पथ्याम्) मार्ग मे सिद्धि करने वाली गति के समान (नः) हम लोगों के (ऋतस्य) सत्य वा बल (पन्थाम्) मार्ग के (अन्वेतवै) पीछे जाने को (आ, अनक्तु) कामना करें (उ) और (अग्नि) बिजुली के समान शीघ्र जावें और (नः) हमारे (दैव्यम्) विद्वानो ने उत्पन्न किये (शर्धः) शरीर और आत्मा के बल को (शृणोतु) सुने (महिषा) महान् (विश्वे) सब (अमूरा) अमूढ़ अर्थात् विज्ञानवान् जन हमारे विद्वानो के सिद्ध किये हुए वचन को (शृण्वन्तु) सुनें ।।५।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे परीक्षक न्यायाधीश वा राजा सब के वचनो को सुन के सत्य और असत्य का निश्चय करता और अग्नि आदि का प्रयोग कर शीघ्र मार्ग को जाता है वैसे ही तुम विद्वानों से सुन कर धर्मयुक्त मार्ग से अपना व्यवहार कर मूढ़ता छोड़ो और छुड़ाओ ।।५।।

इस सूक्त मे अग्निरूपी घोड़ों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल मे चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । सविता देवता । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (**सुरत्नः**) जिसके वा जिसमें सुन्दर रमणीय धन होता (**सविता**) जो सकलैश्वर्य देने वाला (**देवः**) दाता दिव्य गुणवान् (**अन्तरिक्षप्राः**) अन्तरिक्ष को व्याप्त होता (**अश्वैः**) किरणों के समान महान् अग्नि जल आदिकों से भूगोलों को (**वहमानः**) पहुंचता वा पहुँचाता (**पुरूणि**) बहुत (**नर्या**) मनुष्यों के लिये हितों को (**दधानः**) धारण करता और (**निवेशयन्**) प्रवेश करता हुआ (**प्रसुवन्**) जिसमें नाना रूप उत्पन्न होते हैं उस ऐश्वर्य को प्राप्त होता है वैसे इससे प्राप्त कराता हुआ (**च**) और ऐश्वर्य्य को (**हस्ते**) हाथ में धारण करता हुआ विद्वान् (**आ, यातु**) आवे, उसके साथ हम लोग (**च**) भी वैसे ही (**भूम**) होवें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य शुभ गुण और कर्मों से प्रकाशित, मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य पाते हैं ॥१॥

फिर राजादि जन कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (**सूरः**) सूर्य के (**चित्**) समान (**अस्मै**) इस विद्वान् के लिए (**अप, स्याम्**) अपने को कर्म की इच्छा (**अनु, दात्**) अनुकूल देवे जिस (**अस्य**) इसकी (**सः**) वह (**महिमा**) अत्यन्त प्रशंसा हम लोगों से (**नूनम्**) निश्चय (**पनिष्ट**) स्तुति की जाती है जिस (**अस्य**) इस (**दिवः**) प्रकाश के (**अन्तान्**) समीपस्थ पदार्थ वा (**हिरण्यया**) हिरण्य आदि आभूषणयुक्त (**बृहन्ता**) महान् (**शिथिरा**) शिथिल दृढ़ (**बाहू**) भुजा (**उदनष्टाम्**) उत्तमता से प्रसिद्ध होती वही हम लोगों की प्रशंसा करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिसके सूर्य के समान महिमा प्रताप बलयुक्त बाहू वर्त्तमान हैं वही इस राज्य के बीच पूजित होता है ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥३॥

पदार्थः—जो (**वसुपतिः**) धनों की पालना करने वाला (**उरूचीम्**) बहुत वस्तुओं को प्राप्त होता और (**अमतिम्**) सुन्दररूप को (**विश्रयमाणः**) विशेष सेवन करता हुआ (**नः**) हम लोगों को (**मर्तभोजनम्**) मनुष्यों का हितकारक भोजन वा पालन (**रासते**) देता है (**सः, घ, अध**) वही पीछे (**सविता**) ऐश्वर्य्यवान् सूर्य के समान प्रकाशमान (**सहावा**) साथ सेवन वाला (**देवः**) मनोहर विद्वान् (**नः**) हमको (**वसूनि**) धन (**आ, साविषत्**) प्राप्त करे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान सब के धनों को बढ़ा कर सुपात्रों के लिये देते हैं वे धनपति होते हैं ॥३॥

फिर धार्मिक विद्वान् जन किन से स्तुति किये जावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—जो (**अस्मे**) हम लोगों में (**बृहत्**) बहुत (**चित्रम्**) अद्भुत (**वयः**) आयु को (**दधातु**) धारण करे उस (**सुपाणिम्**) सुन्दर हाथों वाले (**पूर्णगभस्तिम्**) पूर्ण रश्मि जिसकी उस सूर्यमण्डल के समान वर्त्तमान (**सवितारम्**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**सुजिह्वम्**) सुन्दर जीभ रखते हुए धार्मिक मनुष्य की (**इमाः**) यह (**गिरः**) विद्या शिक्षा और धर्मयुक्त वाणी (**ईळते**) प्रशंसा करती है हे विद्वानो (**यूयम्**) तुम विद्यायुक्त वाणी के समान (**स्वस्तिभिः**) सुखों से (**नः**) हम लोगों की (**सदा**) सर्वदैव (**पात**) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—अच्छी विद्या से धार्मिक पुरुष होते हैं, धर्मात्मा पुरुष ही को विद्या और सर्व सुख प्राप्त होते हैं ॥

इस सूक्त में सविता के तुल्य विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । रुद्रो देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ विराड् जगती । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ स्वराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छियालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में योद्धाजन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ।

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो जिस (**स्थिरधन्वने**) स्थिरधनुष् वाले (**क्षिप्रेषवे**) शीघ्र जाने वाले शस्त्र अस्त्रों वाले (**स्वधाव्ने**) तथा अपनी ही वस्तु और अपनी धार्मिक क्रिया को धारण करने वाले (**अषाळ्हाय**) शत्रुओं से न सहे जाते हुए (**सहमानाय**) शत्रुओं के सहने को समर्थ (**तिग्मायुधाय**) तीव्र आयुध शस्त्रयुक्त (**वेधसे**) मेधावी (**रुद्राय**) शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर (**देवाय**) न्याय की कामना करते हुए विद्वान् के लिये (**इमाः**) इन (**गिरः**) वाणियों को (**भरत**) धारण करो, वह (**नः**) हम लोगों की इन वाणियों को (**शृणोतु**) सुने ॥१॥

भावार्थः—जो दुष्टों के शिक्षा देने वाले, शस्त्र और अस्त्रवेत्ता, सहनशील, युद्धकुशल विद्वान् हैं उनको सर्वदैव धनुर्वेद पढ़ाने से और उसके अर्थ से भरी हुई वक्तृता में विद्वान् जन अत्यन्त उत्साह देवें और जो सेनापति है वह प्रजास्थ पुरुषों की वाणी सुने ॥१॥

फिर वे राजा आदि जन कैसे हुए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२॥

पदार्थः—हे (**रुद्र**) दुष्टों को रुलाने वाले जो आप (**नः**) हमारी (**अवन्ती**) रक्षा करती हुई सेना वा प्रजाओं की (**अवन्**) पालना करते हुए (**दुरः**) द्वारों के (**उप, चर**) समीप जाओ और (**अनमीवः**) नीरोग होते हुए (**हि**) जिस कारण (**क्षयेण**) निवास से (**क्षम्यस्य**) क्षमा करने योग्य (**दिव्यस्य**) शुद्ध गुण कर्म स्वभाव में प्रसिद्ध हुए (**जन्मनः**) जन्म के (**साम्राज्येन**) सुन्दर प्रकाशमान के प्रकाशित राज्य से हम लोगों को (**चेतति**) अच्छे प्रकार चेताते हैं (**सः**) वह आप (**नः**) हम लोगों की (**जासु**) प्रजाओं में रक्षा करने वाले (**भव**) हूजिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् रक्षा करने वाली सेना वा प्रजाओं की रक्षा करता हुआ प्रत्येक गृहस्थ के व्यवहार को विशेष जानता दुःखों को नाश करता और सुखों को उत्पन्न करता हुआ अच्छे प्रकार राज्य कर सकता है वही प्रजाजनों की पालना करने वाला है यह सब निश्चय करें ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

पदार्थः—हे (**स्वपिवात**) पवन के समान वर्त्तमान (**ते**) आपकी (**या**) जो (**दिवः**) मनोहर कार्य के सम्बन्ध में (**परि**) सब ओर से (**अवसृष्टा**) शत्रुओं में प्रेरणा देने वाली (**दिद्युत्**) न्यायदीप्ति (**क्ष्मया**) भूमि के साथ (**चरति**) जाती है (**सा**) वह (**नः**) हम लोगों को अधर्माचरण से (**परिवृणक्तु**) सब ओर से अलग रक्खे जिस (**ते**) आपके (**सहस्रम्**) असंख्य हजारों (**भेषजा**) ओषधियां हैं वह आप (**तोकेषु**) शीघ्र उत्पन्न हुए और (**तनयेषु**) कुमार अवस्था को प्राप्त हुए बालकों में वर्त्तमान (**नः**) हम लोगों को वा हमारे सन्तानों को (**मा, रीरिषः**) मत नष्ट करो ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा का न्यायप्रकाश सर्वत्र प्रदीप्त है वही सबको अधर्माचरण से रोक सकता है, जिसके राज्य में हजारों दूत गुप्तचर और वैद्यजन विचरते हैं उसकी थोड़ी भी राज्य की हानि नहीं होती है ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—हे (**रुद्र**) दुष्टों को रुलाने वाले आप (**नः**) हम लोगों को (**मा**) मत (**वधीः**) मारो (**मा**) मत (**परा, दाः**) दूर हो और (**हीळितस्य**) अनादर किये हुए (**ते**) आपके (**प्रसितौ**) बन्धन में हम लोग (**मा, भूम**) मत हों आप (**जीवशंसे**) जीवों से प्रशंसा करने योग्य (**बर्हिषि**) अन्तरिक्ष में (**नः**) हम लोगों को (**आ, भज**) अच्छे प्रकार सेवो, हे विद्वानो (**यूयम्**) तुम (**स्वस्तिभिः**) सुखों से (**नः**) हम लोगों की (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—वही राजा वीर वा उत्तम हो जो धार्मिक जनों को अदण्डय कर दुष्टों को दण्ड दे ॥४॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा और पुरुषों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आपो देवता. । १ । ३ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वर. । ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्द । पञ्चम स्वर ॥

अब सैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य प्रथम अवस्था में विद्या ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (वः) तुम्हारी (इळः) वाणी की (प्रथमम्) और प्रथम भाग जो कि (इन्द्रपानम्) जीव को प्राप्त होने योग्य उसको (आपः) तथा बहुत जलो के समान वा (ऊर्मिम्) तरङ्ग के समान (यम्) जिसको (अकृण्वत) सिद्ध करें (तम्) उस (शुचिम्) पवित्र (अरिप्रम्) निष्पाप निर्दोष (घृतप्रुषम्) उदक वा घी से सिंचे (मधुमन्तम्) बहुत मधुरादिगुणयुक्त पदार्थ को (वः) तुम्हारे लिए (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (वनेम) विशेषता से भजें ॥१॥

भावार्थ.—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—जो विद्वान् जन पहिली अवस्था में विद्या ग्रहण करते और युक्त आहार विहार से शरीर को नीरोग करते हैं उन्हीं की सब सेवा करें ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यस्मिन्) जिसमे (आशुहेमा) शीघ्र बढ़ने वा जाने वाला (इन्द्र) बिजुली के समान राजा (वसुभि) धनो के साथ (वः) तुमको (मादयाते) हर्षित करे (तम्) उसको (आप.) जल (ऊर्मिम्) तरंगो का जैसे वैसे (मधुमत्तमम्) अतीव मधुरादिगुणयुक्त पदार्थ को (अपांनपात्) जो जलो के बीच नहीं गिरता है वह बिजुली के समान राजा जैसे (अवतु) रक्खे वैसे हम लोग (तम्) उसको रक्खें और (वः) तुम लोगो की (देवयन्तः) कामना करते हुए हम लोग (अद्य) आज (अश्याम) प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे वायु जल की तरगो को उछालता है वैसे जो राजा धनादिको से प्रजाजनो की रक्षा करे उसी को हम लोग राजा होने की सम्मति देवें ॥२॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे होकर विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३॥

पदार्थ —हे विद्वान् मनुष्यो जो (शतपवित्रा) सौ उपायो से शुद्ध (मदन्ती) आनन्द करती हुई (देवी) विदुषी पण्डिता ब्रह्मचारिणी कन्या (देवानाम्) विद्वानो के (स्वधया) अन्नादि पदार्थ से (पाथ) अन्नादि ऐश्वर्य को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं (ता) वे (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (व्रतानि) व्रतो को (न) नही (मिनन्ति) नष्ट करती हैं जैसे (सिन्धुभ्य.) नदियो के समान (घृतवत्) बहुत घी से युक्त (हव्यम्) देने योग्य वस्तु बनाकर वे होमती हैं वैसे इनको तुम (जुहोत) ग्रहण करो ॥३॥

भावार्थः—जो युवती कन्या, नदियां समुद्रो को जैसे वैसे हृदय के प्यारे पतियों को पाकर छोड़ती नहीं है वैसे ही तुम सब मनुष्य एक दूसरे के सयोग से सर्वदा आनन्द करो ॥३॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—हे पुरुषो (सूर्य) सूर्यमण्डल (रश्मिभि) अपनी किरणो से (याः) जिन जलों को (आ, ततान) विस्तारता है (इन्द्रः) बिजुली (याभ्यः) जिन जलो से (गातुम्) भूमि को और (ऊर्मिम्) तरङ्ग को (अरदत्) छिन्न भिन्न करती है उनको अनुहारि स्त्री पुरुष वर्त्तें जैसे (ते) वे (सिन्धव) नदियां समुद्र को पूरा करती हैं वैसे जो स्त्रियां सुखो से हम लोगो को (धातन) धारण करें (नः) हमारी (वरिव) सेवा करें उनकी हम भी सेवा करें, हे पतिव्रता स्त्रियो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभि) सुखो से (नः) हम पति लोगो को (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य अपने तेजो से भूमि के जलो को खींच कर विस्तार करता है वैसे अच्छे कामो से प्रजा को तुम विस्तारो ॥४॥

इस सूक्त में विद्वान् स्त्री पुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । १-३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वे देवा. । १ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द. । पञ्चम स्वर । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब चार ऋचा वाले अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते है ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥१॥

पदार्थ.—हे (ऋभुक्षणः) महात्मा (मघवान) बहुत उत्तम धनयुक्त (विभ्व) सकल विद्याओ में व्याप्त (अर्वाचः) जो पीछे जाने वाले (वाजा) विज्ञानवान् (नरः) मनुष्यो ! तुम (क्रतव) अतीव बुद्धियो के (न) समान (सुतस्य) उत्पन्न हुए के सेवने से (अस्मे) हम लोगो को (मादयध्वम्) आनन्दित करो (आ, याताम्) आते हुए (वः) तुम लोगो के और हमारे (नर्यम्) मनुष्यो मे उत्तम (रथम्) रमणीय यान को और नर (वर्तयन्तु) वर्त्तें ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम्हें और हमे विद्या और बुद्धि के दान से वा शिल्पविद्या से आनन्दित करते हैं वे सर्वदा प्रशंसा करने योग्य हैं ॥१॥

मनुष्य कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

ऋभुरृभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

पदार्थ —हे मनुष्यो जैसे (वाज.) विज्ञानवान् वा ऐश्वर्य्ययुक्त जन (ऋभुभि.) बुद्धिमान् उत्तम विद्वानों के साथ (वाजसातौ) सग्राम मे (ऋभुः) बुद्धिमान् (वः) तुम्हें और (अस्मान्) हमे (अवतु) पाले रक्खे वा (युजा) योग किए हुए (इन्द्रेण) बिजुली आदि शस्त्र से (वृत्रम्) धन को प्राप्त हो वैसे (विभ्व) सकल शुभ गुण कर्म और स्वभावो में व्याप्त हम लोग (विभुभि) अच्छे गुणादिको मे व्याप्त जन और (शवसा) बल के साथ (शवांसि) बलों को (अभि, तरुषेम) प्राप्त हो जिसमें हम लोग सुखी (स्याम) हो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—वही विद्वान् जन विद्याओ मे व्याप्त शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त हैं जो सग्राम मे भी सब की रक्षा करके धन और अन्न दे सकते हैं ॥२॥

फिर कौन विजयशील राजा राज्य का बढ़ाने वाला होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ॥३॥

पदार्थ —हे मनुष्यो जो (वाज) बल विज्ञान और अन्नयुक्त (अर्य) स्वामी (ऋभुक्षा) उत्तम बुद्धिमानो को निरन्तर बसावे वह (इन्द्र.) परमैश्वर्ययुक्त महान् राजा (शत्रोः) शत्रु की (मिथत्या) हिंसा से (नृम्णम्) जो मनुष्यो में रमणीय ऐसे धन की इच्छा करता हुआ जिन (विश्वान्) समस्त (विभ्वान्) विद्या मे व्याप्त अमात्य जनो को अपना करता है (ते) वे विद्वान् जन (उपरताति) मेघारम्भादिको से सग्राम मे विजय (कृणवन्) करते है वे (चित्) ही (हि) निश्चय कर (शासा) शासन से (पूर्वी) सनातन प्रजाजन (अभि, सन्ति) सब ओर से विद्यमान हैं तथा वह स्वामी (वि) विजयी होता है ॥३॥

भावार्थ.—वही राजा महान् विजयी होता है जो धार्मिक उत्तम विद्वानो का सग्रह करता है ॥३॥

फिर राजादिकों से विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थ —हे (**सजोषा**) समान प्रीति के सेवने वाले (**वसवः**) विद्या मे निवासकर्त्ता (**विश्वे**) समस्त (**देवास**) विद्वान् जनो तुम (**न**) हमारा (**वरिवः**) सेवन (**कर्त्तन**) करो (**नः**) हमारी (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**सु**) शीघ्र (**भूत**) सनद्ध होओ (**अस्मे**) हमारे लिये (**इषम्**) अन्न वा विज्ञान को (**संववीरन्**) अच्छे प्रकार दओ (**यूयम्**) तुम (**स्वस्तिभिः**) सुखो से (**न**) हमारी (**सदा**) सर्वदा (**पात**) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वान् राजजनो ! तुम हम लोगो की और प्रजाजनो की निरन्तर रक्षा करो, सर्वदा विज्ञान और अन्न आदि ऐश्वर्य का देओ, ऐसा करो तो तुम लोगो की हम निरन्तर रक्षा करें ॥४॥

इस मन्त्र मे विद्वानों के गुणों और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल मे अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आपो देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

अब चार ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे फिर वे जल कैसे हैं इस विषय को कहते है ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**या**) जो ऐसी है कि (**समुद्रज्येष्ठा**) जिन मे समुद्र ज्येष्ठ है वे (**पुनाना**) पवित्र करती हुई (**अनिविशमाना**) कही निवास न करने वाली (**आप**) जल तरगें (**सलिलस्य**) अन्तरिक्ष के (**मध्यात**) बीच से (**यन्ति**) जाती हैं वह (**माम्**) मेरी (**इह**) इस ससार मे (**अवन्तु**) रक्षा करें और (**ता**) उन (**देवी**) प्रमोद कराने वाली जल तरगो को (**वृषभ**) वर्षा करने वा (**वज्री**) वज्र के तुल्य छिन्न-भिन्न करने वाला बहुत किरणो से युक्त (**इन्द्र**) सूर्य वा बिजुली (**रराद**) वर्षाता है वैसे तुम होओ ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्यो ! जो जल अन्तरिक्ष से बरस के सब की पालना करते है उन को तुम पान आदि कामो मे अच्छे प्रकार योग करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**या**) जो (**दिव्या**) शुद्ध (**आप**) जल (**स्रवन्ति**) चूते है (**उत, वा**) अथवा (**खनित्रिमा**) खोदने से उत्पन्न होते हैं वा (**या**) जो (**स्वयजा**) आप उत्पन्न हुए है (**उत, वा**) अथवा (**समुद्रार्था**) समुद्र के लिये हैं वा (**या**) जो (**शुचय**) पवित्र (**पावका**) पवित्र करने वाले है (**ता**) वह (**देवी**) देदीप्यमान (**आप**) जल (**इह**) इस ससार मे (**माम**) मेरी (**अवन्तु**) रक्षा करें ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे जल और प्राण हमारी अच्छे प्रकार रक्षा कर बढाते है वैसे तुम लोग हम को बोध कराओ ॥२॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यासाम्**) जिन जलो के (**मध्ये**) बीच (**वरुण**) सब से उत्तम (**राजा**) प्रकाशमान ईश्वर (**जनानाम्**) मनुष्यो के (**सत्यानृते**) सत्य और झूठ आचरणो को (**अव, पश्यन्**) यथार्थ जानता हुआ (**याति**) प्राप्त होता है वा (**या**) जो (**मधुश्चुत**) मधुरादि गुणो से उत्पन्न हुए (**शुचय**) पवित्र (**पावका**) और पवित्र करने वाले है (**ता**) वह (**देवी**) देदीप्यमान (**आप**) जल (**इह**) इस ससार मे (**माम्**) मेरी (**अवन्तु**) रक्षा करें ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर प्राणादिको मे अभिव्याप्त सब जीवो के धर्म अधर्म को देखता है और फल से युक्त करता हुआ सब की रक्षा करता है वही सब को निरन्तर ध्यान करने योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो (**यासु**) जिन अन्तरिक्ष जल वा प्राणो मे (**वरुण**) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावयुक्त (**राजा**) न्याय और विनय नम्रता से प्रकाशमान (**यासु**) वा जिन में (**सोम**) ओषधिगण और (**यासु**) जिन में (**विश्वे**) समस्त (**देवा**) विद्वान् जन अथवा पृथिवी आदि लोक (**ऊर्जम्**) बल पराक्रम को (**मदन्ति**) प्राप्त होते हैं वा (**यासु**) जिन में (**वैश्वानर**) सब में वा मनुष्यों मे प्रकाशमान परमात्मा वा (**अग्नि**) बिजुलीरूप अग्नि (**प्रविष्ट**) प्रविष्ट है (**ता**) वह (**देवी**) मनोहर (**आप**) जल (**इह**) इस ससार में (**माम्**) मेरी (**अवन्तु**) रक्षा करें ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस आकाश मे प्राणो में वा जल में सब जगत् जीवन धारण करता है वा जिन प्राणो में स्थित योगी जन परमात्मा को प्राप्त होता है वा जहां बिजुली प्रविष्ट है उन जलो को तुम जान कर रक्षायुक्त होओ ॥४॥

इस सूक्त मे जलादिक के गुण और कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १-४ वसिष्ठ । १ मित्रावरुणौ । २ अग्निः । ३ विश्वेदेवा । ४ नद्य । १ । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः । २ निचृज्जगती । ४ भुरिगतिजगतीच्छन्द । निषाद स्वर. ॥

अब चार ऋचा वाले पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को इस ससार मे क्या आचरण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरोदधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशक तुम (**इह**) इस ससार मे जो मैं (**कुलाययत्**) कुल की उन्नति चाहता हुआ (**विश्वयत**) सब काम करने वाला (**दुर्दृशीकम्**) दुःख से देखने योग्य (**अजकावम**) जीवो का पालन करने वाला (**तिरोदधे**) निवारण करता हूं वह (**त्सरु**) कुटिल गति रोग (**पद्येन**) प्राप्त होने योग्य (**रपसा**) पाप से (**माम**) मुझ (**मा**) मत (**विदत्**) प्राप्त हो कोई पीडा (**न**) हम लोगो को (**मा**) मत (**आगन्**) प्राप्त हो इससे (**माम्**) मेरी (**आ, रक्षतम्**) सब ओर से रक्षा करो ॥१॥

भावार्थ मनुष्यो को पापाचरण वा कुपथ्य कभी न करना चाहिये जिससे कभी रोगप्राप्ति न हो । जो इस ससार मे अध्यापक और उपदेशक हैं वे पढाने और उपदेश करने से सब को अरोगी कर सीधे और उद्योगी करें ॥१॥

फिर मनुष्यो को रोगनिवारणार्थ क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो इस (**परुषि**) कठोर व्यवहार मे (**वन्दनम्**) वन्दना को (**विजामन**) विशेषता से जानता हुआ (**भुवत्**) प्रसिद्ध होता है (**यत्**) जिस व्यवहार मे (**त्सरु**) कठिन रोग (**अष्ठीवन्तौ**) कफादि न थूकने वाली (**कुल्फौ**) जघाओ को (**च**) भी (**परिदेहत्**) सब ओर से बढावे, पीडा दे (**तत**) उसको (**अग्नि**) अग्नि (**शोचन्**) पवित्र करता हुआ (**इत**) इस स्थान से (**अपबाधताम्**) दूर करे (**पद्येन**) प्राप्त होने योग्य (**रपसा**) अपराध से (**माम्**) मुझको रोग प्राप्त होता है वह मुझको (**मा**) मत (**विदत्**) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य को छोड के बालकपन मे विवाह वा कुपथ्य करते है उनके शरीर मे शोथ आदि रोग होते हैं उनका निवारण वैद्यक-रीति से करना चाहिये ॥२॥

मनुष्यों को रोगनिवृत्त करके ही पदार्थ सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ।

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**यत्**) जो (**विषम्**) प्राण हरने वाला पदार्थ विष (**शल्मलौ**) सेमर आदि वृक्ष मे और (**यत्**) जो (**नदीषु**) नदियो के प्रवाहो मे (**भवति**) होता है (**यत्**) जो विष (**ओषधीभ्य**) यव आदि ओषधियो से (**परिजायते**) उत्पन्न होता है (**तत्**) उसको (**इत**) इस शरीर मे (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् जन (**निस्सुवन्तु**) निरन्तर दूर करें जिस कारण (**पद्येन**) प्राप्त होने योग्य (**रपसा**) पापाचरण से उत्पन्न हुआ (**त्सरु**) कुटिल रोग (**माम्**) मुझको (**मा, विदत्**) मत प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे वैद्य आदि मनुष्यो ! सब पदार्थों से वा पदार्थों मे जितना विष उत्पन्न होता है उतना सब निवार के अन्न पानी आदि सेवन करना चाहिये जिससे तुम को कोई भी रोग न प्राप्त हो ॥३॥

फिर मनुष्यों को किनका निवारण कर क्या सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥४॥

पदार्थ —(याः) जो (प्रवतः) जाने योग्य (निवतः) नीचे (उद्वतः) वा ऊपरले देशों को जाती हैं (याश्च) और जो (उदन्वती) जल से भरी वा (अनुदकाः) जलरहित हैं (ताः) वे (सर्वाः) सब (नद्यः) नदियां (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पयसा) जल से (पिन्वमानाः) सींचती हुई वा तृप्त करती हुई (अशिपदाः) भोजनादि व्यवहारों के लिये प्राप्त होती हुई (देवीः) आनन्द देने और (शिवाः) सुख करने वाली (भवन्तु) हों और (अशिमिदाः) भोजन आदि स्नेह करने वाली (भवन्तु) हों ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जितना जल नदी आदि में जाता है और जितना मेघमण्डल से प्राप्त होता है उतना सब होम से शुद्ध कर सेवो जिससे सर्वदा मंगल बढ़ कर दुःख का अच्छे प्रकार नाश हो ॥४॥

इस सूक्त में जल और ओषधी विष के निवारण से शुद्ध सेवन करना कहा, इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह सप्तम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ त्र्यृचस्यैकपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आदित्या देवता । १ । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब तीन ऋचा वाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में किनके संग से क्या होता है इस विषय को कहते हैं ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥१॥

पदार्थ —जो (तुरासः) शीघ्रकारी (श्रोषमाणाः) सुनते हुए (अनागास्त्वे) अनपराधपन में (अदितित्वे) अखण्डित काम में (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (दधतु) धारण करें उन (आदित्यानाम्) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों की (अवसा) रक्षा आदि से (शंतमेन) अतीव सुख करने वाले (नूतनेन) नवीन (शर्मणा) विग्रह के साथ हम लोग (सक्षीमहि) बंध जावें ॥१॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के संग से अत्यन्त सुख पावें वैसे ही तुम भी इसको पाओ ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२॥

पदार्थः हे मनुष्यो जैसे (रजिष्ठाः) अतीव प्रीति करते हुए (अदितिः) अखण्डित नीति (मित्रः) मित्र (अर्यमा) व्यवस्था देने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ (अस्माकम्) हमारे (भुवनस्य) जल आदि लोकसमूह की (गोपाः) रक्षा करने वाले हैं (नः) और हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (मादयन्ताम्) आनन्द देते हैं (अद्य) आज (सोमम्) बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को (पिबन्तु) पीवें वैसे वे (आदित्यासः) पूर्ण विद्वान् वा संवत्सर के महीने हमारे जलादि वा लोकसमूह की रक्षा करने वाले (सन्तु) हों ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो ! तुम आदित्य के समान विद्या-प्रकाश से वैद्य के समान ओषधियों के सेवने से नीरोग होकर हमारा भी आरोग्य करो ॥२॥

फिर किसकी रक्षा से सब सुख होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ —हे (विश्वे) सब (आदित्याः) संवत्सर के महीनों के समान विद्यावृद्ध (विश्वे, मरुतः, च) और समस्त मनुष्य (विश्वे, देवाः, च) और समस्त विद्वान् (विश्वे, ऋभवः, च) और बुद्धिमान् जन (इन्द्रः) बिजुली (अग्निः) साधारण अग्नि (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा (तुष्टुवानाः) प्रशंसा करते हुए विद्वान् जन तथा (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—जिस देश में सब विद्वान् जन बुद्धिमान् चतुर धार्मिक और रक्षा करने और विद्या देने वाले उपदेशक हैं वहां सब से रक्षायुक्त होकर सब सुखी होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में सूर्य के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य द्विपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आदित्या देवता । १ । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥१॥

पदार्थ —हे मनुष्यो जैसे हम लोग (देवत्रा) देवों में वर्त्तमान (आदित्यासः) महीने के समान (अदितयः) अखण्डित (स्याम) हों जैसे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में उपदेशक (वसवः) निवास करते हुए (सनेम) विभाग करें (पूः) नगरी के समान (मित्रावरुणा) प्राण और उदान दोनों (सनन्तः) सेवन करते हुए (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के समान (भवन्तः) आप (भवेम) हों वैसे आप भी हों ॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! तुम आप्त विद्वान् के समान वर्त कर धार्मिक विद्वानों में निरन्तर वस कर सत्य और असत्य का विभाग कर सूर्य और भूमि के समान परोपकार कर विश्व के सुख के लिए प्राण और उदान के सदृश सब की उन्नति के लिये होओ ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥२॥

पदार्थ —हे (वसवः) निवास करने वालो (यत्) जो (अन्यजातम्) और से उत्पन्न (एनः) पाप कर्म है (तत्) वह (कर्म) कर्म तुम (मा, चयध्वे) मत इकट्ठा करो जैसे (गोपाः) रक्षा करने वाले (शर्म) सुख वा घर को (मामहन्त) सत्कार से वर्तें वैसे (नः) हमारे (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक के लिये और (तनयाय) सुन्दर कुमार के लिये उसको (मित्रः) प्राण के समान मित्र (वरुणः) जल के समान पालने वाला देवें जिससे हम लोग (वः) तुम लोगों को और पाप को (मा, भुजेम) मत भोगें ॥२॥

भावार्थ इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! आप सदैव ब्रह्मचर्य और विद्यादान से अपने लड़कों की रक्षा और सत्कार कर बढ़ावें और आप पाप न करके और से किये हुए का भी न सेवें ॥२॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥३॥

पदार्थ —हे मनुष्यो (तुरण्यवः) शीघ्र करने वाले (अङ्गिरसः) प्राणों के समान (समनसः) समान अन्तःकरण युक्त (इयानाः) पढ़ते हुए (सवितुः) सकल जगत् उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान परमेश्वर की सृष्टि में जिस (रत्नम्) रमणीय धन को (नक्षन्त) व्याप्त हों (तत्) वह (पिता) उत्पन्न करने वाले के समान वर्तमान (महान्) सब से सत्कार (यजत्रः) संग और ध्यान करने योग्य ईश्वर (विश्वे, देवाः, च) और सब विद्वान् जन (नः) हम लोगों के लिये (जुषन्त) सेवें ॥३॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन इस ईश्वरकृत सृष्टि में विद्या पुरुषार्थ और विद्वानों की सेवा आदि से सब सुखों को पाते हैं वैसे आप प्राप्त हों । सब मिल कर पिता के समान पालना करने वाले परमात्मा की निरन्तर उपासना करें ॥३॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य त्रिपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले त्रेपनवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में अब विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥१॥

पदार्थ – हे मनुष्यो जैसे (**सबाध**) पीडा के सहित वर्त्तमान मैं (**नमोभि**) अन्नादिकों से और (**यज्ञैः**) सगति करने वालों से जो (**मही**) बड (**बृहती**) बडे (**यजत्रे**) भग करने योग्य (**पुर**) नगरो को धारण करने वाली (**देवपुत्रे**) देवपुत्र अर्थात् विद्वान् जन जिनकी पुत्र के समान पालना करने वाले हैं उन (**द्यावापृथिवी**) सूर्य और भूमि की (**पूर्वे**) अगले (**कवय**) विद्वान् जन (**गृणन्त**) स्तुति करते हुए (**दधिरे**) धारण करते हैं (**ते, चित्**) (**हि**) उन्हीं की (**प्रेळे**) अच्छे प्रकार गुणो से प्रशसा करता हूँ ॥१॥

भावार्थः– इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है—हे मनुष्यो ! जैसे सबको धारण करने वाले भूमि और सूर्य को विद्वान् जन जानकर उपकार करते हैं वैसे तुम भी करो ॥१॥

फिर वे भूमि और बिजुली कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।

आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२॥

पदार्थः—हे शिल्पि विद्वानो तुम (**नव्यसीभि**) अतीव नवीन (**गीर्भि**) सुशिक्षित वाणियो से (**ऋतस्य**) सत्य वा जल के सम्बन्ध मे (**सदने**) स्थानरूप जिन में स्थिर होते हैं वे (**पूर्वजे**) आगे से उत्पन्न हुए (**पितरा**) माता पिता के समान वर्त्तमान (**द्यावापृथिवी**) भूमि और बिजुली (**दैव्येन**) विद्वानो से बनाये हुए विद्वान् (**जनेन**) प्रसिद्ध जन से (**वाम्**) तुम दोनो के (**महि**) बडे (**वरूथम्**) श्रेष्ठ घर को (**आ, यातम्**) प्राप्त हो वैसे इनको (**न**) हमको (**कृणुध्वम्**) सिद्ध करो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालकार है – हे स्त्री पुरुषो ! तुम पदार्थविद्या से पृथिवी आदि का विज्ञान करके सुन्दर घर बना वहा मनुष्यो के सुखो की उन्नति करो ॥२॥

फिर मनुष्यों को भूमि आदि के गुण जानने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।

अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ —हे अध्यापक और उपदेशको ! जो (**सुदासे**) सुन्दर दानशीलो वाले (**द्यावापृथिवी**) भूमि और बिजुली वर्त्तमान है अथवा जिनमे (**वाम्**) तुम दोनो के (**हि**) ही (**पुरूणि**) बहुत (**रत्नधेयानि**) रत्न जिनमे धरे जाते (**सन्ति**) हैं वे धन धरने के पदार्थ हैं (**ते**) वे भूमि और बिजुली (**अस्मे**) हम लोगो मे (**धत्तम्**) धारण करें (**यत्**) जो (**उतो**) कुछ (**अस्कृधोयु**) कृश (**असत्**) हो अर्थात् मोटा न हो उसके साथ (**यूयम्**) तुम लोग (**स्वस्तिभि**) सुखो से (**न.**) हम लोगो की (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ —जो मनुष्य बिजुली और भूमि के गुणो को जान कर वहां स्थित जो रत्न उनको पाकर सब के लिये सुख का विधान करते हैं वे सब ओर से सदा सुरक्षित होते है ॥३॥

इस सूक्त मे द्यावापृथिवी के गुणो और कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे त्रेपनवा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य चतुष्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षि. । वास्तोष्पतिर्देवता । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर. ॥

अब तीन ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे मनुष्य घर बना कर उस मे क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

पदार्थ – हे (**वास्तो**) निवास कराने वाले घर के (**पते**) स्वामी गृहस्थ जन आप (**अस्मान्**) हम लोगो के (**प्रति, जानीहि**) प्रतिज्ञा से जाना आप (**न**) हमारे घर मे (**स्वावेश**) सुख मे है सब ओर से प्रवेश जिसका ऐसे और (**अनमीव**) नीरोग (**भव**) हूजिये (**यत्**) जहा हम लोग (**त्वा**) आपको (**ईमहे**) प्राप्त हो (**तत्**) उसका (**न**) हमारे (**प्रति, जुषस्व**) प्रति सेवो आप (**न**) हम लोगो के (**द्विपदे**) मनुष्य आदि जीव (**शम्**) सुख करने वाले और (**चतुष्पदे**) गौ आदि पशु के लिये (**शम्**) सुख करने वाले (**भव**) हूजिये ॥१॥

भावार्थ —जो मनुष्य सब ओर द्वार और बहुत अवकाश वाले घर को बना कर उसमे बसते और रोगरहित होकर अपने तथा औरो के लिये सुख देते है वे सबका मङ्गल देने वाले होते हैं ॥१॥

फिर गृहस्थ क्या करके किनको किसके समान रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥२॥

पदार्थ —हे (**इन्दो**) आनन्द के देने वाले (**वास्तोष्पते**) घर के रक्षक आप (**गोभि**) गौ आदि से (**अश्वेभि**) घोडे आदि से (**गयस्फानः**) घर की वृद्धि करने (**प्रतरण**) उत्तमता से दु ख से तारने और (**नः**) हमारे सुख करने वाले (**एधि**) हूजिये जिन (**ते**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन मे हम लोग (**अजरासः**) शरीर जीर्ण करने वाली वृद्धावस्था से रहित (**स्याम**) हो सो आप (**नः**) हम लोगो को (**पुत्रान्**) पुत्रों को जैसे (**पितेव**) पिता वैसे (**प्रति, जुषस्व**) प्रतीति से सेवो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालकार है—मनुष्य उत्तम घर बना कर गौ आदि पशुओं से शोभित कर शुद्ध कर प्रजा के बढाने वाले होकर अक्षय मित्रपन सब मे अच्छे प्रकार प्रसिद्ध कराय जैसे पिता पुत्रो की रक्षा करता है वैसे ही सब की रक्षा करें ॥२॥

फिर वे घर मे रहने वाले क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ —हे (**वास्तोष्पते**) घर की रक्षा करने वाले जिन (**ते**) आप के (**शग्मया**) सुख रूप (**संसदा**) जिस मे अच्छे प्रकार स्थिर हो उस (**रण्वया**) रमणीय (**गातुमत्या**) प्रशसित वाणी वा भूमि से युक्त सभा के साथ (**सक्षीमहि**) सम्बन्ध करें वह आप (**योगे**) न ग्रहण किये हुए पदार्थ के ग्रहण लक्षण विषय में (**उत**) और (**क्षेमे**) रक्षा मे (**न**) हम लोगो की (**वरम्**) उत्तमता जैसे हो वैसे (**पाहि**) रक्षा करो (**यूयम्**) तुम (**स्वस्तिभि**) सुखादिको से (**न**) हम लोगो की (**सदा**) सदैव (**पात**) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ –जो गृहस्थ सज्जनो का सत्कार कर उनकी रक्षा करते हैं वे उन के योग क्षेम की उन्नति कर निरन्तर उनकी पालना करते है ॥

इस सूक्त मे वास्तोष्पति के गुण और कृत्यो का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य पचपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षि । [१] वास्तोष्पतिर्देवता । २—८ इन्द्र । १ निचृद्गायत्री छन्द । षड्ज स्वर । २ । ३ । ४ बृहती छन्द । मध्यम स्वर. । ५ । ७ अनुष्टुप् । ६ । ८ निचृदनुष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

अब आठ ऋचा वाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र मे घर का स्वामी क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।

सखा सुशेव एधि नः ॥१॥

पदार्थ —हे (**वास्तोष्पते**) घर के स्वामी जिस घर मे (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) रूप (**आविशन**) प्रवेश करते है वहा (**न**) हम लोगो के लिये (**अमीवहा**) रोग हरने वाले (**सखा**) मित्र (**सुशेव**) सुन्दर सुख वाले होते हुए (**एधि**) प्रसिद्ध हूजिये ॥१॥

भावार्थ —हे गृहस्थो ! तुम सर्व प्रकार उत्तम घरो को बना कर सुखी होओ ॥१॥

फिर गृहस्थ कहां वास करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।

वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२॥

पदार्थः—हे (**अर्जुन**) अच्छे रूपयुक्त (**सारमेय**) सारवस्तुओ की उत्पत्ति करने वाले (**पिशङ्ग**) पीले पीले (**यत्**) जो आप (**वीव**) पक्षी के समान (**दत**) दांतो को (**यच्छसे**) नियम से रखते हो यह जो (**स्रक्वेषु**) प्राप्त उत्तम घरो मे (**बप्सत**) भक्षण करते हुए (**ऋष्टयः**) पहुचाने वाले (**उप, भ्राजन्ते**) समीप प्रकाशित होते हैं उन मे आप (**नि, सु, स्वप**) निरन्तर अच्छे प्रकार सोओ ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालकार है—हे मनुष्यो ! जहां आरोग्यपन से तुम्हारे दन्त आदि अवयव अच्छे प्रकार शोभते हैं वहा ही निवास और शयन आदि व्यवहार को करो ॥२॥

फिर गृहस्थो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥

पदार्थः—हे (राय) धनियों मे सज्जन (सारमेय) सार वस्तुओं से मान करने योग्य आप (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के (स्तेनम्) चोर (वा) वा (तस्करम्) डाकू आदि चोर को (पुनः, सर) फिर फिर दण्ड देने के लिए प्राप्त होओ जो आप (स्तोतॄन्) स्तुति करने वालों को (रायसि) कहलाते हो (अस्मान्) हम लोगों को (किम्) क्या (दुच्छुनायसे) दुष्टों में जैसे वैसे आचरण से प्राप्त होते सो आप उत्तम स्थान में (नि, सु, स्वप) निरन्तर अच्छे प्रकार सोओ ॥३॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि चोरों की रुकावट और श्रेष्ठों का सत्कार कर के कभी कुत्ते के समान न आचरण करें और सदैव शुद्ध वायु जल और अवकाश में सोवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ जिस (सूकरस्य) सुन्दरता से कार्य करने वाले (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्यवान् (तव) तुम्हारे (सूकरः) कार्य को अच्छे प्रकार करने वाला (दर्दर्तु) निरन्तर बढ़े (त्वम्) आप (रायसि) लक्ष्मी के समान आचरण करते हो और जो सब को (दर्दृहि) निरन्तर उन्नति दें अर्थात् सब की वृद्धि करें (स्तोतॄन्) स्तुति करने वाले विद्वान् (अस्मान्) हम लोगों को (किम्) क्या (दुच्छुनायसे) दुष्ट कुत्तों मे जैसे वैसे आचरण से प्राप्त होते हो उस घर में सुख से (नि, सु, स्वप) निरन्तर सोओ ॥४॥

भावार्थः—हे गृहस्थ ! आप ऐश्वर्य का संचय कर धर्म व्यवहार मे अच्छे प्रकार विस्तार कर और विद्वानों का सत्कार कर श्रीमानों के समान आचरण करो, हम लोगों के प्रति किसलिये कुत्ते के समान आचरण करते हैं, नीरोग होते हुए प्रति समय सुख मे सोओ ॥४॥

फिर गृहस्थ घर में क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥

पदार्थः—जो मनुष्य जैसे मेरे घर मे मेरी (माता) माता (अभितः) सब ओर से (सस्तु) सोवे (पिता) पिता (सस्तु) सोवे (श्वा) कुत्ता (सस्तु) सोवे (विश्पतिः) प्रजापति (सस्तु) सोवे (सर्वे) सब (ज्ञातयः) सम्बन्धी सब ओर से (ससन्तु) सोवें (अयम्) यह (जनः) उत्तम विद्वान् सोवे वैसे तुम्हारे घर मे भी सोवें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को ऐसे घर रखने चाहियें जिनमें सब के सब व्यवहारों के करने को अलग अलग शाला और घर होवें ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते है ॥

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (इदम्) यह (हर्म्यम्) मनोहर घर है (तथा) वैसे (यः) जो (जनः) मनुष्य (नः) हमारे घर में (आस्ते) बैठता है (यः, च) और जो (चरति) जाता है (यः, च) और जो हम लोगों को (पश्यति) देखता है (तेषाम्) उन सबों की (अक्षाणि) इन्द्रियों को हम लोग (सं, हन्म) संहित न देखने वाले करें वैसे तुम भी आचरण करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—मनुष्यों को ऐसे घर बनाने चाहियें जिन मे सब ऋतुओं में निर्वाह हो, सब सुख बढ़ें और बाहर वाले जन गृहस्थों को सहसा न देखें और न घर वाले बाहर वालों को देखें ॥६॥

फिर कैसे घर में सोना आदि करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (सहस्रशृङ्गः) हजारों किरण वाला (वृषभः) वृष्टि कारण सूर्य (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से जैसे (उदाचरत्) ऊपर जाता है वैसे (तेन) उसके साथ (सहस्येन) बल मे उत्तम घर से (वयम्) हम लोग (जनान्) मनुष्यों को (निस्वापयामसि) निरन्तर सुलावें ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जहां सूर्य की किरणों का स्पर्श सब ओर से हो और जो बल का अधिक बढ़ाने वाला घर हो उस के शुद्ध होने में सब को सुलावें और हम लोग भी सोवें ॥७॥

फिर स्त्री जनों के घर उत्तम बनावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८॥

पदार्थः—हे गृहस्थ मनुष्यो जैसे हम लोग (याः) जो (प्रोष्ठेशयाः) अतीव सब प्रकार उत्तम सुखों की प्राप्ति कराने वाले घर मे सोती हैं (वह्येशयाः) वा जो प्राप्ति कराने वाले घर मे सोती वा जो (तल्पशीवरीः) पलग पर सोने वाली उत्तम (नारीः) स्त्री (स्त्रियः) विवाहित तथा (पुण्यगन्धाः) जिनका शुद्ध गन्ध हो (ताः) उन (सर्वाः) सबों को हम लोग उत्तम घर मे (स्वापयामसि) सुलावें वैसे तुम भी उत्तम घर में सुलाओ ॥८॥

भावार्थः—हे गृहस्थो ! जिस घर मे स्त्री वसें वह घर अतीव उत्तम रखना चाहिये जिससे निज सन्तान उत्तम हों ॥८॥

इस सूक्त मे गृहस्थों के काम का और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मरुतो देवता । १ आर्ची गायत्री । २ । ६ । ७ । ९ भुरिगार्चीगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ । ४ । ५ प्राजापत्या बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ८ । १० आर्च्युष्णिक् । ११ निचृदार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १२ । १३ । १५ । १८ । १९ । २१ निचृत्त्रिष्टुप् । १७ । २० । त्रिष्टुप् । २२ । २३ । २५ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २४ पङ्क्ति । १४ । १६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पच्चीस ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र मे अब कौन मनुष्य श्रेष्ठ होते है इस विषय को कहते हैं ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् (अध) अनन्तर इस के (के) कौन (ईम्) सब ओर से (रुद्रस्य) रोगों के निकालने वाले के (स्वश्वाः) सुन्दर घोड़े वा महान् जन जिस मे विद्यमान है (व्यक्ताः) विशेषता से प्रसिद्ध (सनीळाः) समान घर वाले (मर्याः, नरः) मरणधर्मा नायक मनुष्य हैं इस को कहो ॥१॥

भावार्थः—इस संसार मे कौन उत्तम प्रसिद्ध प्रशंसा करने योग्य मनुष्य हैं इस का अगले मन्त्र मे समाधान जानना चाहिये ॥१॥

फिर विद्वान् जन ही प्रकट कीर्ति वाले होते है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥२॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र जिज्ञासु जो (हि) जिस कारण (एषाम्) इन के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः) नहीं (वेद) जानते हैं (ते) वे उसी कारण (मिथः) परस्पर (जनित्रम्) जन्म सिद्ध कराने वाले कर्म को (विद्रे) पाते है ॥२॥

भावार्थः—जिन विद्वानों के जन्मों को विद्याप्राप्ति कराने वाले नहीं जानते हैं वे प्रसिद्ध नहीं होते है और जो विद्याजन्म पाते है वे ही कृतकृत्य और प्रसिद्ध होते हैं यह उत्तर है ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥३॥

पदार्थः—जो गृहस्थ पुरुष (वातस्वनसः) पवन के शब्द के समान जिनका शब्द है वे (श्येनाः) बाज के समान पराक्रमी (स्वपूभिः) सोते हुए अर्थात् अप्रसिद्ध अपने पवित्र आचरणों के साथ (मिथः) परस्पर (वपन्त) बोते (अभ्यस्पृध्रन्) और सम्मुखस्पर्द्धा करते हैं वे श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य वाले होते है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो गृहस्थ परस्पर सत्याचरणानुष्ठान से गम्भीर आशय वाले पराक्रमी होकर सब की उन्नति करना चाहते हैं वे पूजित होते है ॥३॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥४॥

पदार्थः—जो (धीरः) बुद्धिमान् विद्वान् (यत्) जैसे (ऊधः) दुग्धधारायुक्त और (पृश्निः) अन्तरिक्ष के (मही) तथा पृथिवी (जभार) धारण करती है वैसे क्षोभरहित निष्कम्प गम्भीर (एतानि) इन (निण्या) निश्चित पदार्थों को जो (चिकेत) जाने वह घर के भार को धर सके ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है- जैसे पृथिवी और सूर्य्य सब ग्रहो को धारण करते हैं वैसे जो विद्वान् जन निर्णीत सिद्धान्तों को जानते हैं वे सर्वत्र सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

कौन प्रजा उत्तम है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

स विट् सुवीरा मुरुद्भिरस्तु सुनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

पदार्थ —जो (**सुवीरा**) सुन्दर वीरो वाली (**विट्**) प्रजा (**मरुद्भि**) मनुष्यो के साथ (**सनात्**) सनातन व्यवहार मे (**नृम्णम्**) धन को (**पुष्यन्ती**) पुष्ट कराती और पीड़ा को (**सहन्ती**) सहने वाली वर्त्तमान है (**सा**) वह हमारे लिए (**अस्तु**) होवे ॥५॥

भावार्थ:—वही स्त्री श्रेष्ठ है जो ब्रह्मचर्य्य से समग्र विद्याओं को पढ़ के शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न करती है और वही सहनशील तथा कोश वाली होती है ॥५॥

फिर वे स्त्री कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

पदार्थ —हे गृहस्थो जो (**शुभा**) शोभन (**शोभिष्ठा**) अतीव शोभायुक्त (**श्रिया**) धन से (**संमिश्ला**) अच्छे प्रकार मिश्रता के साथ मिली हुई (**येष्ठा**) अतीव प्राप्त होने और (**ओजोभि**.) पराक्रम आदि से (**उग्रा**) कठिन गुण कर्म स्वभाव वाली होती हुई (**यामम्**) प्राप्त होने वाले व्यवहार को पहुँचती है वे गृहस्थो को मान करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थ —हे गृहस्था ! जो शालाघर धन और अन्नादि पदार्थों से युक्त शोभायमान प्राप्त होने योग्य सुख को देते हैं उनको पतिव्रता स्त्रियों के समान सुन्दर शोभायुक्त निरन्तर करो ॥६॥

फिर स्त्री कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥७॥

पदार्थ:—हे स्त्रियो (**व**) तुम्हारा (**मरुद्भि**) उत्तम मनुष्यों के साथ (**उग्रम्**) तेजस्वी (**ओज**) पराक्रम और (**स्थिरा**) स्थिर दृढ़ (**शवांसि**) बल (**अध**) इस के अनन्तर (**गण**) समूह (**तुविष्मान्**) बलवान् हो ॥७॥

भावार्थ —जो स्त्रिया अपने पतियो के बल को न क्षीण कराती उनका पुत्र पौत्रादि समूह बलवान् होता है ॥७॥

फिर गृहस्थ कौन काम करे इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥८॥

पदार्थ —हे गृहस्थो (**व**) तुम्हारा धार्मिक जनो मे (**शुभ्र**) प्रशसनीय (**शुष्म**) बलयुक्त वह हो, दुष्टो मे (**क्रुध्मी**) क्रोधशील (**मनांसि**) मन हो (**मुनिरिव**) मननशील विद्वान् के समान (**शर्धस्य**) बलयुक्त बली (**धृष्णो**) दृढ़ के (**धुनि**) चेष्टा करने के समान वाणी हो ॥८॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमालंकार है—जो गृहस्थ जन श्रेष्ठो के साथ मिलाप और दुष्टो के साथ अलग होना रखते हैं वे बहुत बल पाते हैं ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥९॥

पदार्थ:—हे विद्वानो (**अस्मत**) हम से (**सनेमि**) पुरान (**दिद्युम्**) प्रज्वलित शस्त्र और अस्त्र समूह को (**युयोत**) अलग करो जिससे (**इह**) इस गृहाश्रम व्यवहार मे (**व**:) तुम लोगों को और (**न**) हम लोगो का (**दुर्मति**) दुष्टबुद्धि (**मा**) मत (**प्रणक्**) नष्ट करावे ॥९॥

भावार्थ —हे विद्वानो ! तुम सदा दुष्टाचारी मनुष्यो से अलग रह कर और शत्रु-बल को निवार के बढ़ते हुए होओ ॥९॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०॥

पदार्थ —हे (**वावशाना**) कामना करते हुए (**मरुत**) प्राण के समान प्यारे विद्वानो (**तुराणाम्**) शीघ्र करने वालो (**व**) आप लोगो के (**प्रिया**) मनोहर (**नाम**) नामो को मैं (**हुवे**) प्रशसता हूँ अर्थात् मैं उसकी प्रशसा करता हूँ (**यत्**) जो (**आ, तृपत्**) अच्छे प्रकार तृप्त होता है उस का और मेरा सत्कार करो ॥१०॥

भावार्थ - जो सब के प्रियाचरण करने और सुख की कामना करने वाले मनुष्य वर्त्तमान है वे ही प्रिय सुखो को पाते है ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११॥

पदार्थ: हे मनुष्यो जो (**स्वायुधास**) अच्छे हथियारो वाले (**इष्मिण**) इच्छा और अन्नादि पदार्थों से युक्त (**सुनिष्का**) जिन के सुन्दर सुवर्ण के गहने विद्यमान (**उत**) और (**स्वयम्**) आप (**तन्व**) शरीरो की (**शुम्भमाना**.) शोभा करते हुए वर्त्तमान है वे ही विजय और प्रशसा को पाते हैं ॥११॥

भावार्थ —जो धनुर्वेद को पढ के आरोग्ययुक्त शरीर और युद्धविद्या मे कुशल है वे ही धनधान्य युक्त होते हैं ॥११॥

कौन इस ससार में पवित्र होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥१२॥

पदार्थ —हे (**पावका**) अग्नि के समान प्रताप सहित वर्त्तमान (**शुचय**:) पवित्र (**शुचिजन्मान**) पवित्र जन्म वाले (**ऋतसाप**) जो सत्य से प्रतिज्ञा करते हैं वह (**मरुत**) मरणधर्मा मनुष्यो (**शुचीनाम्**) पवित्र आचरण करने वाले (**व**) तुम लोगो के जो (**शुची**) पवित्र (**हव्या**) देने लेने योग्य वस्तु वर्त्तमान हैं उन (**शुचिभ्य**) पवित्र वस्तुओ से वा पवित्र विद्वानो से (**शुचिम्**) पवित्र को और (**ऋतेन**) यथार्थ भाव से (**सत्यम्**) अव्यभिचारी नित्य (**अध्वरम्**) न नष्ट करने योग्य व्यवहार को (**आयन्**) जो प्राप्त होते हैं उन्हें (**हिनोमि**) बढाता हूँ उस मुझे सब बढ़ावें ॥१२॥

भावार्थ —जिनके पिछले काम पुण्यरूप हैं वे ही पवित्र जन्म वाले हैं अथवा जिनके वर्त्तमान मे धर्मयुक्त आचरण हैं वे पवित्रजन्मा होते हैं ॥१२॥

फिर योद्धा कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥१३॥

पदार्थ - हे (**मरुत**) पवनो के समान बलिष्ठ मनुष्यो ! जो (**उपशिश्रियाणा**) समीप सेवने वाले (**वक्षःसु**) हृदयो मे (**रुक्मा**) देदीप्यमान (**खादय**) भक्षण करते हैं (**वृष्टिभि**) वर्षाओ से जैसे (**विद्युत**) बिजुली (**न**) वैसे (**अनु, स्वधाम्**) अनुकूल अन्न का (**वि, रुचाना**) प्रदीप्त करते हुए (**आयुधै**) शस्त्र और अस्त्र युद्ध के साधनो से शत्रुओ को (**यच्छमाना**) पराजय देने वाले उन (**व**) आप की (**अंसेषु**) भुजाओ की मूलो मे बल (**आ**) सब ओर से वर्त्तमान है वे आप लोग विजय प्राप्त होने वाले होते हैं ॥१३॥

भावार्थ— इस मन्त्र मे उपमालंकार है- हे शूरवीर पुरुषो ! जैसे बिजुली वर्षाओ के साथ ही प्रकाशित होती है वैसे ही आप लोग शस्त्र और अस्त्रो से प्रकाशित होओ और अपने शरीर बल को बढ़ाके और उत्तम सेना का आश्रय लेकर शत्रुओ को पराजय देओ ॥१३॥

फिर मनुष्यो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥१४॥

पदार्थ —हे (**मरुत**) पवनो के समान (**प्रयज्यव**) उत्तम सग करने वाले तुम जो (**व**) तुम लोगो के (**महांसि**) बड़े बड़े (**नामानि**) नामो को (**बुध्न्या**) अन्तरिक्ष मे उत्पन्न हुए मेघ (**प्र ईरते**) प्राप्त होते हैं उससे शत्रुओ के (**प्रतिरध्वम्**) बल को उल्लघन करो (**एतम्**) इस (**सहस्रियम्**) हजारो मे हुए और (**दम्यम्**) शान्त करने योग्य (**गृहमेधीयम्**) घर के शुद्ध व्यवहार मे हुए (**भागम्**) सेवन करने योग्य विषय को (**जुषध्वम्**) सेवो ॥१४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे गृहस्थो ! जैसे मेघ पृथिवी का सेवते हैं वैसे ही आप लोग प्रजा जनो को सेवो और शत्रुओ की निवृत्ति कर अतुल सुख पाओ ॥१४॥

फिर वे मनुष्य कैसे प्रसिद्ध हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥१५॥

पदार्थ हे (**मरुत**) पवनो के समान वर्त्तमान मनुष्यो (**यदि**) यदि (**स्तुतस्य**) प्रशसित (**वाजिन**:) वेगयुक्त (**विप्रस्य**) मेधावी जन के (**हवीमन्**) जिस मे देने योग्य वस्तु विद्यमान उस व्यवहार में (**इत्था**) इस प्रकार से (**मक्षू**) शीघ्र (**अधीथ**) स्मरण कर (**सुवीर्यस्य**) और जिन के सम्बन्ध मे शुभ वीर्य होता उस (**राय**) धन को (**दात**) देओ (**चित्**) और (**यम्**) जिसको (**अन्य**) अन्य (**अरावा**) न देने वाला जन (**नु**) शीघ्र (**आदभत्**) नष्ट करे ना क्या क्या विचार न हो ॥१५॥

भावार्थ —जो विद्वान् के समीप से पढते है वे समर्थ अर्थात् विद्यासम्पन्न हो धनपति होते हैं ॥१५॥

फिर वे राजजन कैसे हो इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (**ये**) जो (**मर्याः**) मरणधर्मा मनुष्य (**अत्यासः**) मार्ग को व्याप्त होते हुओं के (**न**) समान (**स्वञ्चः**) सुन्दरता से जाने (**पयोधाः**) वा जलों को धारण करने वाले (**मरुतः**) पवनों के समान निरन्तर चाल वाले बलिष्ठ (**यक्षदृशः**) जो पूजन करने योग्यों को देखते हैं उनके (**न**) समान (**हर्म्येष्ठाः**) अटारियों पर स्थिर होने वाले (**शिशवः**) बालकों के (**न**) समान (**शुभ्राः**) शुद्ध सुन्दर (**वत्सासः**) शीघ्र उत्पन्न हुए बछड़ों के (**न**) समान (**प्रक्रीळिनः**) अच्छे प्रकार खेल वाले होते हुए (**शुभयन्त**) उत्तम के समान आचरण करते हैं (**ते**) वे कृतकार्य होते हैं ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालंकार है जो शूरवीर घोड़े के समान वेग वाले, अच्छी दृष्टि वाले के समान देखने वाले, बालकों के समान सीधे स्वभाव वाले, बछड़ों के समान खेल करने वाले पवनों के समान पदार्थों के धारण करने वाले राजा आदि वीर जन हैं वे ही विजय और प्रतिष्ठा को निरन्तर पाते हैं ॥१६॥

फिर कौन राजजन श्रेष्ठ हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७॥

पदार्थः—हे वीरो (**मरुतः**) प्राणों के समान (**दशस्यन्तः**) बल करते और (**सुमेके**) एक से रूप वाले (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी को (**वरिवस्यन्तः**) सेवते हुए जन (**नः**) हम लोगों को (**मृळन्तु**) सुख देवें और (**वः**) तुम्हारे (**आरे**) दूर देश मे (**गोहा**) गो हत्यारा (**नृहा**) और मनुष्य हत्यारा (**वधः**) यह दोनों जिससे मारते हैं वह (**अस्तु**) दूर हो जाय (**वसवः**) निवास दिलाने वाले तुम लोग (**सुम्नेभिः**) सुखों के साथ (**अस्मे**) हम लोगों को (**नमध्वम्**) नमो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालंकार है—वे ही राजजन उत्तम हैं जो श्रेष्ठों का सुख देकर दुष्टों को मारते हैं और आप्त जनों को नम के दुष्टों मे उग्र होते हैं ॥१७॥

फिर वे राजजन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८॥

पदार्थः—हे (**मरुतः**) पवनों के तुल्य मनुष्यो (**यः**) जो (**गृणानः**) स्तुति करता (**सत्तः**) बैठा हुआ (**अद्वयावी**) छल कपट आदि से रहित (**होता**) देने वाला (**ईवतः**) जाते हुए (**वृषणः**) वर्षा करने वाले के सम्बन्ध मे (**वः**) तुम लोगों को (**आ, जोहवीति**) निरन्तर बुलाता (**सत्राचीम्**) जो सत्य को देती है उस (**रातिम्**) दान को देता और (**गोपाः**) रक्षा करने वाला (**अस्ति**) है तथा (**उक्थैः**) कहने योग्य वचनों से (**वः**) तुम लोगों को (**हवते**) बुलाता है वह उत्तम है इस को जानो ॥१८॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन अभय देने और सब की रक्षा करने वाला, छल कपट आदि दोष रहित, सत्यविद्या दाता और सत्य ग्राहक है वही यहां प्रशंसित वर्त्तमान है उसी को मनुष्य उत्तम जानें ॥१८॥

फिर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

पदार्थः—हे राजा जो (**इमे**) ये (**मरुतः**) पवनों के समान (**तुरम्**) शीघ्र (**रामयन्ति**) रमण कराते (**इमे**) यह (**सहसः**) बल से (**सहः**) बल को (**आ, नमन्ति**) सब ओर से नमते (**इमे**) यह (**वनुष्यतः**) क्रोध करने वाले की (**शंसम्**) प्रशंसा करने वाले को (**नि, पान्ति**) निरन्तर रखते और (**अररुषे**) पूरा रोष करने वाले के लिए (**द्वेषः**) वैर (**गुरु**) बहुत (**दधन्ति**) धारण करते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार करो ॥१९॥

भावार्थः—हे राजा ! जो सेना को अच्छी शिक्षा देकर शीघ्र विशेष रचना कर बली शत्रुओं को भी जीत उत्तमों की रक्षा कर दुष्टों मे द्वेष फैलाते हैं वे तुम को सत्कार करने चाहियें ॥१९॥

फिर वे राजजन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२०॥

पदार्थः—हे (**वृषणः**) बलिष्ठो (**वसवः**) निवास कराने वालो तुम (**यथा**) जैसे (**इमे**) यह (**मरुतः**) पवनों के समान वर्त्तमान (**रध्रम्**) समृद्धिमान् (**चित्**) ही को (**जुनन्ति**) प्रेरणा करते हैं और (**भृमिम्**) घूमने वाले को (**चित्**) ही (**जुषन्त**) सेवते हैं वैसे और जैसे सूर्य अन्धकारों को वैसे (**तमांसि**) रात्रि के समान वर्त्तमान दुष्ट शत्रुओं को (**अप, बाधध्वम्**) अत्यन्त बाधा देओ और (**अस्मे**) हम लोगों मे (**विश्वम्**) समस्त (**तनयम्**) विस्तारयुक्त शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले (**तोकम्**) सन्तान को (**धत्त**) धारण करो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे प्राणायामादिकों से अच्छे सिद्ध किये हुए पवन समृद्धि और कुपथ्य से सेवन किये दरिद्रता को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सेवन किये हुए विद्वान् राज्य की ऋद्धि और अपमान किये हुए राज्य का भङ्ग उत्पन्न करते हैं, अच्छी शिक्षा दिये और सत्कार कर रक्षा किये हुए शूरवीर जैसे शत्रुओं को नष्ट करते हैं वैसे वर्त्तकर प्रजाजनों मे उत्तम सन्तान राजजन उत्पन्न करावें ॥२०॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दध्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥२१॥

पदार्थः—हे (**मरुतः**) पवनों के समान मनुष्यो जैसे हम लोग (**वः**) तुम को (**दात्रात्**) दान से (**मा**) मत (**निरराम**) अलग करें (**रथ्यः**) बहुत रथों वाले हम लोग (**पश्चात्**) पीछे से (**मा, दध्म**) मत जावें हे (**वृषणः**) वर्षा कराने वालो (**वः**) तुम्हारा (**यत्**) जो (**सुजातम्**) सुन्दर प्रसिद्ध सुख (**अस्ति**) है उस (**वसव्ये**) द्रव्यों मे हुए (**स्पार्हे**) इच्छा करने योग्य (**विभागे**) विभाग जिसमें कि बांटते हैं उस मे तुम (**नः**) हम लोगों को (**ईम्**) सब ओर से (**आ, भजतन**) अच्छे प्रकार सेवो ॥२१॥

भावार्थः—मनुष्य सदैव विद्वानों के लिए देने योग्य सत्यासत्य व्यवहार से अलग न होवें, जो कुछ भी उत्तम सुख हो उसको सब के लिये निवेदन करें ॥२१॥

फिर वे वीर कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥

पदार्थः—हे (**मरुतः**) पवनों के समान (**यत्**) जो (**रुद्रियासः**) रुद्र के समान आचरण करने वाले (**जनासः**) प्रसिद्ध (**शूराः**) निर्भय मनुष्यो (**मन्युभिः**) क्रोधादिकों से शत्रुओं को (**सम्‌**) संग्राम मे (**हनन्त**) मारिये (**अध**) इसके अनन्तर (**यह्वीषु**) बहुत बड़ी (**ओषधीषु**) ओषधियों में और (**विक्षु**) प्रजाओं में (**पृतनासु**) शूरवीरों की सेनाओं मे (**स्म**) निश्चित (**नः**) हमारे (**त्रातारः**) रक्षा करने वाले (**भूत**) हूजिये जो (**वः**) तुम्हारा (**अर्यः**) स्वामी है उसकी भी रक्षा करने वाले हूजिये ॥२२॥

भावार्थः—जो वीर जन शत्रुओं को मारने वाले प्रजाओं के रक्षक और बड़ी बड़ी ओषधियों मे चतुर हैं उनको स्वामी राजा प्रीति से रक्खे ॥२२॥

फिर वे मनुष्य क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३॥

पदार्थः—हे (**मरुतः**) पवन के सदृश वर्त्तमान मनुष्यो (**वः**) आप लोगों के (**या**) जो (**उक्थानि**) प्रशंसा करने योग्य कर्म और (**पित्र्याणि**) पितरों के सेवन आदि (**शस्यन्ते**) स्तुति किये जाते हैं (**पुरा**) पहिले उनको (**मरुद्भिः**) उत्तम मनुष्यों के साथ (**पृतनासु**) सेनाओं मे (**उग्रः**) तेजस्वी (**साळ्हा**) सहने वाला पुरुष और (**मरुद्भिः**) मनुष्यों के साथ (**सनिता**) विभाग करने वाला (**अर्वा**) वेगयुक्त घोड़ा जैसे वैसे (**वाजम्**) विज्ञान वा वेग को प्राप्त हुआ (**चित्**) भी जीतता है उनको आप लोग (**भूरि**) बहुत (**चक्र**) करते हैं ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रशंसनीय कर्मों को करते हैं उनका सदा ही विजय होता है ॥२३॥

फिर वे मनुष्य कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्त्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४॥

पदार्थः—हे (**मरुतः**) प्राणों के सदृश बल करने वाले जनो (**यः**) जो (**वीरः**) वीर अर्थात् प्राप्त हुई बल बुद्धि और शूरता आदि जिसको (**असुरः**) प्राणों में रमता हुआ बिजुली अग्नि के सदृश (**जनानाम्**) मनुष्यों का (**विधर्त्ता**) विशेष करके धारण करने वाला है वह (**अस्मे**) हमारा (**शुष्मी**) बहुत बल से युक्त (**अस्तु**) हो (**येन**) जिससे (**सुक्षितये**) सुन्दर पृथिवी की प्राप्ति के लिये हम लोग (**अपः**) जलों को (**तरेम**) तैरें (**अध**) इसके अनन्तर (**स्वम्**) अपने (**ओकः**) गृह के पार होवें और (**वः**) आप लोगों के रक्षक (**स्याम**) होवें ॥२४॥

भावार्थ—जो मनुष्य, मनुष्यो को बलयुक्त करते और नौका आदिको से समुद्र के पार होकर दूसरे देश में जाकर धन बटोरते है वे आप लोगो और हम लोगो के रक्षक हों ॥२४॥

फिर वे मनुष्य किसके सदृश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

तन्न इन्द्रो वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निराप॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ जुषन्त ।

शर्म॑न्त्स्याम म॒रुता॑मु॒पस्थे॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥२५॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे (**इन्द्र**) बिजुली (**वरुण**) जलाधिपति (**मित्र**) मित्र (**अग्नि**) अग्नि (**आप**) जल (**ओषधी**) सोमलता आदि ओषधियो को (**वनिन**) बहुत किरणें जिसमें पड़ती, ऐसे वन मे वर्त्तमान वृक्ष आदि (**न**) हम लोगो के (**तत्**) पूर्वोक्त सम्पूर्ण कर्म वा वस्तु की (**जुषन्त**) सेवा करें और जिस (**शर्मन**) सुखकारक गृह मे (**मरुताम्**) पवनो वा विद्वानो के (**उपस्थे**) समीप मे हम लोग सुखी (**स्याम**) होवें उसमे (**यूयम्**) आप लोग (**स्वस्तिभि**) कल्याणो से (**न**) हम लोगो की (**सदा**) सदा (**पात**) रक्षा कीजिये ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली आदि पदार्थ सब की उन्नति और नाश करते है वैसे ही दोषो का नाश कर और गुणो की वृद्धि करके सबकी रक्षा सब सदा करें ॥२५॥

इस सूक्त में वायु, विद्वान्, राजा, शूरवीर, अध्यापक, उपदेशक और रक्षक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल मे छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षि । मरुतो देवता २ । ४ त्रिष्टुप । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्द । धैवत स्वर ॥

फिर मनुष्य किसके सदृश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

मध्वो॑ वो॒ नाम॒ मारु॑तं यजत्राः॒ प्र य॒ज्ञेषु॒ शव॑सा मदन्ति ।

ये रे॒जय॑न्ति॒ रोद॑सी चिदु॒र्वी पिन्व॒न्त्युत्सं॒ यदया॑सुरु॒ग्राः ॥१॥

पदार्थ—हे (**यजत्रा**) मिलने वाले (**ये**) जो (**उग्रा**) तेजस्वी बिजुली के सहित पवन (**यत्**) जो (**उर्वी**) बहुत पदार्थों से युक्त (**रोदसी**) अन्तरिक्ष पृथिवी और (**उत्सम्**) कूप को जैसे वैसे सम्पूर्ण ससार को (**पिन्वन्ति**) सींचते है और (**चित**) भी (**रेजयन्ति**) कम्पाते हैं (**अयासु**) प्राप्त होवे उसको (**वो**) जो (**व**) आप लोगो को (**मध्व**) मानते हुए (**नाम**) प्रसिद्ध (**यज्ञेषु**) विद्वानो के सत्कार आदिको मे (**शवसा**) बल से (**मारुतम्**) मनुष्यो के कर्म की (**प्र, मदन्ति**) कामना करते है उनको आप लोग जानिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु० जो पवन, भूगोलो का प्रमाण और धारण करते है और वृष्टियो से सींचते है उनको जानकर विद्वान् जन कामो को करके आनन्द करें ॥१॥

फिर वे विद्वान् कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं

नि॒चे॒तारो॒ हि म॒रुतो॑ गृ॒णन्तं॑ प्रणे॒तारो॒ यज॑मानस्य॒ मन्म॑ ।

अ॒स्माक॑म॒द्य वि॒दथे॑षु ब॒र्हिरा वी॒तये॑ सदत पिप्रिया॒णाः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो (**निचेतार हि**) जिस कारण समूह करने वाले (**मरुत**) पवन सबको प्रेरित करते है उस कारण (**प्रणेतार**) अच्छे न्याय को करते हुए जन (**यजमानस्य**) सब के सुख के लिए यज्ञ करने वाले के (**मन्म**) विज्ञान को और (**अस्माकम**) हम लोगो के (**विदथेषु**) यज्ञो मे (**गृणन्तम**) स्तुति करते हुए को (**पिप्रियाणा**) प्रसन्न करते हुए (**अद्य**) आज (**वीतये**) विज्ञान वा प्राप्ति के लिये (**बर्हि**) अन्तरिक्ष मे स्थित उत्तम आसन पर (**आ, सदत**) बैठिये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु० -हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण पदार्थों के रखने वाले पवनो के समूह को जानकर सबके प्रिय को सिद्ध करो ॥२॥

फिर वे विद्वान जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

नैताव॑द॒न्ये म॒रुतो॒ यथे॒मे भ्राज॑न्ते रु॒क्मैरायु॑धैस्त॒नूभिः॑ ।

आ रोद॑सी विश्व॒पिशः॑ पिशा॒नाः स॑मा॒नम॒ञ्ज्य॑ञ्जते शु॒भे कम् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान जनो (**यथा**) जैसे (**इमे**) ये (**मरुत**) वायु के सदृश मनुष्य (**रुक्मै**) प्रकाशमान (**आयुधै**) आयुधो और (**तनूभि**) शरीरो के साथ (**भ्राजन्ते**) प्रकाशित होते हैं और (**विश्वपिश**) ससार के अवयवभूत (**पिशाना**) उत्तम प्रकार चूर्ण करते हुए (**शुभे**) सुन्दरता के लिए (**समानम्**) तुल्य (**अञ्जि**) गमन को और (**कम्**) सुख को (**अञ्जते**) व्यतीत करते हैं तथा (**रोदसी**) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (**आ**) सब ओर से प्रकाशित करते हैं (**न**) न (**एतावत**) इतना ही (**अन्ये**) अन्य करने को समर्थ होते हैं ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् शूरवीर जन शरीर और आत्मा के बल से युक्त और श्रेष्ठ आयुधो से युक्त हुए सङ्ग्रामो में प्रकाशित होते हैं वैसे भीरु मनुष्य नही प्रकाशित होते हैं, जैसे प्राण सब जगत् को आनन्दित करते हैं वैसे विद्वान् सबको सुखी करते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यो को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

ऋ॒धक्सा वो॑ मरुतो दि॒द्युद॑स्तु॒ यद्व॒ आगः॑ पुरु॒षता॒ करा॑म ।

मा व॒स्तस्या॒मपि॑ भूमा यजत्रा अ॒स्मे वो॑ अस्तु सुम॒तिश्चनि॑ष्ठा ॥४॥

पदार्थ—हे (**यजत्रा**) मेल करने वाले (**मरुत**) मनुष्यो (**यत्**) जिससे (**व**) आप लोगो के (**आग**) अपराध को और जिस (**पुरुषता**) पुरुषपने से (**कराम**) करें (**तस्याम्**) उसमे (**अपि**) भी (**व**) आप लोगो के अपराध को (**मा**) नहीं करें और जिससे हम लोग पुरुषार्थी (**भूम**) होवें (**सा**) वह (**व**) आप लोगों के (**ऋधक**) सत्य मे (**चनिष्ठा**) अतिशय अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (**सुमति**) अच्छी बुद्धि (**अस्मे**) हम लोगो मे (**अस्तु**) हो और वह (**दिद्युत्**) प्रकाशमान नीति (**व**) आप लोगो की (**अस्तु**) हो ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्याय से [रूप] अपराध का परित्याग कर और सत्य बुद्धि को ग्रहण करके पुरुषार्थ से सुखी होओ ॥४॥

फिर विद्वान् जन कैसे होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

कृ॒ते चि॒दत्र॑ म॒रुतो॑ रणन्तानव॒द्यासः॒ शुच॑यः पाव॒काः ।

प्र णो॑ऽवत सुम॒तिभि॑र्यजत्राः॒ प्र वाजे॑भिस्तिरत पु॒ष्यसे॑ नः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान जनो जैसे (**अनवद्यास**) नही निन्दा करने योग्य और धर्म्माचरण से युक्त (**शुचय**) पवित्र और (**पावका**) पवित्र करने वाले (**मरुत**) मनुष्य (**चित्**) भी (**कृते**) उत्तम कर्म मे (**अत्र**) इस ससार मे (**रणन्त**) रमते हैं (**यजत्रा**) मिलने वाले हुए आप लोग (**सुमतिभि**) उत्तम बुद्धि वाले मनुष्यो और (**वाजेभि**) अन्न आदिको के साथ (**न**) हम लोगो की (**प्र, अवत**) रक्षा कीजिये और (**न**) हम लोगो को (**पुष्यसे**) पुष्टि के लिये (**प्र, तिरत**) निष्पन्न कीजिये ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो यथार्थवक्ता, धार्मिक, पवित्र, विद्वान् होके सबकी रक्षा करते हैं वे सबको पुष्ट और सुखी कर सकते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उ॒त स्तु॒तासो॑ म॒रुतो॑ व्यन्तु॒ विश्वे॑भि॒र्नाम॑भि॒र्नरो॑ ह॒वींषि॑ ।

ददा॑त नो अ॒मृत॑स्य प्र॒जायै॒ जि॒गृत रा॒यः सू॒नृता॑ म॒घानि॑ ॥६॥

पदार्थ—हे (**मरुत**) पवनो के सदृश मनुष्यो (**नर**) अग्रणी आप लोगो (**विश्वेभि**) सम्पूर्ण (**नामभि**) सञ्ज्ञाओ से (**न**) हम लोगो के (**हवींषि**) देने योग्य पदार्थों को (**ददात**) दीजिए (**उत**) और (**स्तुतास**) प्रशसा को प्राप्त हुए जन देनेयोग्य द्रव्यों को (**व्यन्तु**) प्राप्त होवें, हम लोगो और (**अमृतस्य**) अविनाशी की (**प्रजायै**) प्रजा के सुख के लिए (**राय**) शोभाओ वा लक्ष्मियो को और (**सूनृता**) धर्म्म से इकट्ठे किए गए (**मघानि**) धनो को (**जिगृत**) उगलिये ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रशसा करने वाले मनुष्य सम्पूर्ण शब्द और अर्थों के सम्बन्धो से सम्पूर्ण विद्याओ को प्राप्त कर और शोभित होकर प्रजाजनो के लिए सत्य वचन को देते हैं वे सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर कौन प्रशंसा करने और आदर करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ स्तु॒तासो॑ मरुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती अच्छा॑ सू॒रीन्त्स॒र्वता॑ता जिगात ।

ये न॒स्त्मना॑ श॒तिनो॑ व॒र्धय॑न्ति यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो (**ये**) जो (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**स्तुतासः**) प्रशसा को प्राप्त हुए (**शतिन**) असङ्ख्य बलवाले (**मरुत**) पवनो के समान विद्या से व्याप्त मनुष्य (**त्मना**) आत्मा से (**ऊती**) रक्षण आदि क्रिया से (**नः**) हम लोगो को (**वर्धयन्ति**) बढ़ाते हैं उन (**सूरीन्**) धार्मिक विद्वानो को (**सर्वताता**) सब सुख करने वाले यज्ञ में (**यूयम्**) आप लोग (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**आ**) (**जिगात**) प्रशसा कीजिये और (**स्वस्तिभि**) कल्याणो से (**न**) हम लोगो की (**सदा**) सब काल मे (**पात**) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् धर्मयुक्त कर्म्म करने वाले असंख्य विद्या से युक्त, दयालु, न्यायकारी, यथार्थवक्ता जन हम सबो की निरन्तर वृद्धि करके सदा रक्षा करते है उनको ही हम लोग प्रशसित करके सेवा करें ॥७॥

इस सूक्त में पवन के सदृश विद्वान् के गुणों और कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की संगति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्याष्टापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मरुतो देवता । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ६ भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (तुविष्मान्) बहुत बल से युक्त (दैव्यस्य) देवताओं से किये गए (धाम्नः) नाम स्थान और जन्म का जानने वाला है उस (साकमुक्षे) साथ ही सुख से सम्बन्ध करने वाले (गणाय) गणनीय विद्वान् के लिए आप लोग (प्र, अर्चत) सत्कार करिये और (अपि) भी जो पवन (महित्वा) महत्त्व से (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (नक्षन्ते) व्याप्त होते हैं अवयवों के सहितों को (उत) भी (क्षोदन्ति) पीसते हैं (निर्ऋतेः) भूमि से (अवंशात्) सन्तान भिन्न से (नाकम्) दुःख से रहित स्थान को व्याप्त होते हैं उनको जानने वाले विद्वानों का आप लोग भी सत्कार करिये ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो वायु आदि की विद्या को जानते हैं उनका नित्य सत्कार करके इनसे वायु की विद्या को प्राप्त होकर आप लोग श्रेष्ठ हूजिये ॥१॥

फिर कौन नहीं विश्वास करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान मनुष्यो (ये) जो (महोभिः) बड़े पराक्रमों वा गुणों के और (ओजसा) बल (त्वेष्येण) प्रकाश में हुए के साथ वर्त्तमान (भीमासः) डरते हैं जिन से वे (तुविमन्यवः) बहुत क्रोधयुक्त (अयासः) जानने वा जाने वाले जन (वः) आप लोगों को (जनूः) स्वभाव (प्रसन्ति) प्रकाश करते हुए हैं और (उत) भी जो (विश्वः) सम्पूर्ण (स्वर्दृक्) सुख को देखने वाला मनुष्य (यामन्) जाते हैं जिससे वा जिसमें उसमें (वः) आप लोगों को (भयते) भय देता है उनको और उसको (चित्) भी आप लोग जानकर युक्ति से सेवा करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० हे विद्वान् मनुष्यो ! जो भयङ्कर मनुष्य आदि प्राणी हैं उनका विश्वास नहीं करके उनको बड़े बल और पराक्रम से वश में करिये ॥२॥

फिर कौन जगत् से आदर पाने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मरुतः) मनुष्य (मघवद्भ्यः) धन से युक्त (नः) हम लोगों के लिए (बृहत्) बहुत (वयः) जीवन का (जुजोषन्) सेवन करते (इत्) ही हैं (नः) हम लोगों की (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को (दधात) धारण करते हैं और जो (गतः) प्राप्त हुआ (अध्वा) मार्ग है उसमें (जन्तुम्) प्राणी को (न) नहीं (वि, तिराति) मारता है और जो (स्पार्हाभिः) स्पृहा करने योग्य (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं में हम लोगों को (प्र, तिरेत) बढ़ावें उनका हम लोग नित्य सेवन करें ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन सबकी अवस्था को बढ़ाते हैं, प्रशंसित कर्मों को कराते हैं, वे ही सबों से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥३॥

किससे रक्षित मनुष्य कैसे होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

पदार्थ—हे (धूतयः) कम्पाने वाले (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रिय करने वाले विद्वान् जनो (युष्मोतः) आप लोगों से रक्षा किया (विप्रः) बुद्धिमान् जन (शतस्वी) असंख्य धन वाला (युष्मोतः) आप लोगों से पालन किया गया (अर्वा) घोड़े के समान (सहुरिः) सहनशील (सहस्री) असंख्यात उत्तम मनुष्य वा पदार्थ जिसके वह (उत) और (युष्मोतः) आप लोगों से उत्तम प्रकार रक्षा किया गया (सम्राट्) उत्तम प्रकाशित सूर्य्य के समान वर्त्तमान चक्रवर्त्ती राजा (वृत्रम्) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे शत्रुओं का (हन्ति) नाश करता है (तत्) वह (देष्णम्) देने योग्य दान (वः) आप लोगों के लिए (प्र, अस्तु) हो अर्थात् आप का दिया हुआ समस्त है सो आपका विख्यात हो ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण, शरीर आदि सबकी रक्षा करके सुख को प्राप्त कराते हैं वैसे ही विद्वान् जन शरीर, आत्मा, बल और अवस्था की रक्षा करके सबको आनन्द देते हैं उनकी रक्षा के बिना कोई भी चक्रवर्त्ती राजा होने को योग्य नहीं होता तिससे ये सब काल में सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन मनुष्य सत्कार करने योग्य और तिरस्कार करने योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥५॥

पदार्थ—जो मनुष्य (यत्) जिस (सस्वर्ता) तपाने वाले शब्द से (नः) हम लोगों को (जिहीळिरे) क्रुद्ध करावें उन (तुराणाम्) शीघ्र कार्य्य करने वालों का (यत्) जो (एनः) पाप अपराध (तत्) उसका (अव) विरोध में (ईमहे) दूर करें उनको (रुद्रस्य) प्राण के सदृश विद्वान् (मीळ्हुषः) सींचने वाले विद्वान् के सम्बन्ध में (नंसन्ते) नम्र होते हैं (पुनः) फिर (तान्) उनको (रुद्रस्य) प्राण के सदृश विद्वान् के (कुवित्) बड़ा करते हुए को मैं (आविः) प्रकटता से (आ) सब प्रकार से (विवासे) बसाता हूँ ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो पापी जन धार्मिक जनों के अनादर करने वाले होवें उनको दूर बसाना चाहिये और जो नम्रता आदि से युक्त धार्मिक होवें उनको समीप बसावें जिससे सबका श्रेष्ठ यश प्रकट होवे ॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद्द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—हे (वृषणः) बलयुक्त जनो (मघोनाम्) बहुत श्रेष्ठ धन वालों की (वाचि) वाणी में (सा) वह (सुष्टुतिः) सुन्दर प्रशंसा है (इदम्) इस (सूक्तम्) उत्तम वचन को (मरुतः) विद्वान् मनुष्य (प्र जुषन्त) सेवन करें (सा) वह हम लोगों का सेवन करे (यूयम्) आप लोग (द्वेषः) द्वेष करने वालों को (आरात्) समीप से वा दूर से (चित्) भी (युयोत) पृथक् करिये और (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सब काम में (पात) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सदा ही सत्य के कहने वाले हों वे स्तुति करने वाले होवें, उनके साथ बल को बढ़ाय के सब शत्रुओं को दूर करके श्रेष्ठों की सदा रक्षा करो ॥६॥

इस सूक्त में वायु और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १—११ मरुतः । १२ रुद्रो देवता । १ निचृद्बृहती । ३ बृहती । ६ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ । १२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ । १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥१॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राणों के सदृश अग्रणी (देवासः) विद्वान् आप लोग (इदमिदम्) इस इस वचन को सुनाय के वा कर्म कर के (यम्) जिसको (नयथ) प्राप्त कराइये (यम्, च) और जिस मनुष्य की (त्रायध्वे) रक्षा करें (तस्मै) उसके लिये (शर्म) सुख वा गृह (यच्छत) दीजिये और हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी (वरुण) श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (अर्य्यमन्) न्यायकारी आप इन्हीं की सदा सेवा करिये ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप लोग सत्य उपदेश, उत्तम शिक्षा और विद्या दान से सब मनुष्यों की उत्तम प्रकार रक्षा करके वृद्धि करिये जिससे सब सुखी होवें ॥१॥

फिर विद्वान् मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥२॥

पदार्थः—हे (**देवाः**) विद्वान् जनो (**य**) जो (**ईजान**) यजमान (**अवसा**) रक्षण आदि से (**द्विषः**) द्वेष करने वालों का (**तरति**) उल्लङ्घन करता है और (**प्रिये**) प्रीति करने वाले (**अहनि**) दिन में (**युष्माकम्**) आप लोगों के प्रिय को सिद्ध करता है और जो (**मही**) भूमियों वा उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों वा (**इषः**) अन्नादिकों को (**वः**) आप लोगों के अर्थ (**वराय**) श्रेष्ठत्व के लिये (**प्र, दाशति**) देता है (**सः**) वह (**क्षयम्**) निवास को (**प्र, वि, तिरते**) बढ़ाता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो दुष्टता के दूर करने वाले, सब की रक्षा करने वाले, विद्या आदि ऐश्वर्य्य के देने वाले, और सुख से सर्वदा वसाने वाले विद्वान् हों उन्हीं की सेवा और मेल करके विद्याओं को प्राप्त हूजिये ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नहि वंश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (**कामिनः**) कामना करने वाले (**विश्वे**) सम्पूर्ण (**मरुतः**) मनुष्य लोग (**सचा**) सम्बन्ध से (**अद्य**) इस समय (**अस्माकम्**) हम लोगों के (**सुते**) उत्पन्न हुए बड़ी ओषधियों के रस में (**पिबत**) रस को पीवें जिससे (**वः**) आप लोगों के (**चरमम्**) अन्त वाले को (**चन**) भी (**वसिष्ठः**) अतिशय वसाने वाला (**नहि**) नहीं (**परि, मंसते**) त्यागने योग्य वा विरुद्ध परिणाम को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोग इच्छा की सिद्धि करने की इच्छा करें तो योग्य आहार और विहार जिसमें उस ब्रह्मचर्य्य को करिये ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।

अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥४॥

पदार्थः—हे (**पिपीषवः**) पान करने की इच्छा करने वाले (**नरः**) अग्रणी जनो जिन (**वः**) आप लोगों की (**ऊतिः**) रक्षा आदि क्रिया (**पृतनासु**) मनुष्यों की सेनाओं में (**नहि**) नहीं (**मर्धति**) हिंसा करती है और (**यस्मै**) जिसके लिये आप लोग (**अराध्वम्**) आराधना करते हैं वह (**वः**) आप लोगों के (**अभि, आ, अवर्त्**) समीप सब प्रकार से वर्त्तमान होता है और जिनका (**नवीयसी**) अतिशय नवीन (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि है वे आप लोग विद्या को (**तूयम्**) शीघ्र (**यात**) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग इस प्रकार से प्रयत्न करिये जिससे आप लोगों की न्याय से रक्षा, सेना की बढ़ती और उत्तम बुद्धि कभी न न्यून हो ॥४॥

फिर स्वामी जन नौकरों के प्रति कैसा आचरण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।

इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ॥५॥

पदार्थः—(**ओ**) हे (**घृष्विराधसः**) इकट्ठे लिये हुए धनों वाले (**मरुतः**) मनुष्यो जिन (**इमा**) इन (**हव्या**) देने और ग्रहण करने योग्य (**अन्धांसि**) अन्नपान आदिकों को (**वः**) आप लोगों के अर्थ (**पीतये**) पान करने के लिये मैं (**ररे**) देता हूँ उनमें (**हि**) ही आप लोग (**कम्**) सुख को (**सु, यातन**) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (**अन्यत्र**) अन्य स्थान में (**मो**) नहीं (**सु**) अच्छे प्रकार (**गन्तन**) जाइये ॥५॥

भावार्थः—हे धार्मिक विद्वानो ! मैं आप लोगों का पूर्ण सत्कार करता हूँ आप लोग अन्यत्र की इच्छा को न करिये यहां ही रहकर योग्य कर्मों को यथावत् करके पूर्ण श्री [illegible] को यहां ही प्राप्त हूजिये ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।

अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥६॥

पदार्थः—हे (**वसु**) द्रव्य का (**अस्रेधन्तः**) नहीं नाश करते हुए (**मरुतः**) मनुष्यो आप लोग (**नः**) हम लोगों के (**स्पार्हाणि**) कामना करने योग्य पदार्थों को (**च**) निश्चित (**दातवे**) देने के लिये हम लोगों के (**बर्हिः**) उत्तम बड़े गृह में (**आ, सदत**) बैठिये (**नः, च**) और हम लोगों की (**अविता**) रक्षा कीजिये (**इह**) इस लोक में (**स्वाहा**) सत्य क्रिया से (**सोम्ये**) सोमलता के सदृश आनन्द करने वाले (**मधौ**) मधुर रस में (**मादयाध्वै**) आनन्द कीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग सब मनुष्यों के लिये विद्या देने को प्रवृत्त हूजिये, विद्या ही से इनकी रक्षा कीजिये और ऐश्वर्य्य सब के लिये बढ़ाइये ॥६॥

फिर मनुष्य किसके सदृश किसको जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।

विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (**शुम्भमानाः**) शोभते हुए (**हि**) ही (**हंसासः**) हंसों के समान गमन करने वाले (**नीलपृष्ठाः**) शुद्ध कारण जिनके वे (**सस्वः**) छिपे हुए (**चित्**) निश्चित (**तन्वः**) विस्तारयुक्त प्राण देह आदि में (**आ**) सब ओर से (**अपप्तन्**) गिरते हैं वैसे (**सवने**) ऐश्वर्य्य में (**मदन्तः**) आनन्द करते हुए (**रण्वाः**) सुन्दर (**नरः**) अग्रणी जनों के (**न**) समान (**मा**) मुझ को (**अभितः**) सब ओर से आप लोग (**नि, षेद**) बैठाइये और (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**शर्धः**) बल को प्राप्त कराइये ॥७॥)

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हंस पक्षी शीघ्र चलते हैं वैसे देह से प्राण निकलते हैं और जैसे उत्तम मनुष्य सब के प्रिय होते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब के प्रिय होते हैं ॥७॥

फिर धार्मिक विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।

द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥८॥

पदार्थः—हे (**वसवः**) वास करने वाले (**मरुतः**) मनुष्यो (**यः**) जो (**दुर्हृणायुः**) दुष्ट विचार वाला (**नः**) हम लोगों के (**चित्तानि**) अन्तःकरणों को (**अभि**) सम्मुख (**जिघांसति**) मारने की इच्छा करता है (**सः**) वह (**द्रुहः**) द्रोह करने वाले (**पाशान्**) बन्धनों को प्राप्त करता है (**तम्**) उसको हम लोगों के (**प्रति**) प्रति (**मुचीष्ट**) छोड़िये (**तपिष्ठेन**) और अत्यन्त तप्त (**हन्मना**) हनन से उसको (**तिरः, हन्तन**) तिरछा मारिये ॥८॥

भावार्थः—हे धार्मिक विद्वानो आप लोग दुष्ट मनुष्यों को श्रेष्ठों से दूर करके मोह आदि बन्धनों को निवृत्त कर के उनके दोषों का नाश करके उन को शुद्ध करिये ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (**सान्तपनाः**) उत्तम प्रकार तपन में हुए (**मरुतः**) मनुष्यो आप (**तत्**) उस (**इदम्**) इस (**हविः**) देने योग्य अन्न आदि पदार्थ की (**जुजुष्टन**) सेवा करिये, हे (**रिशादसः**) हिंसा करने वालों के हिंसक (**युष्माक**) आप लोगों की (**ऊती**) जो रक्षण आदि क्रिया उससे आप सेवन करें अर्थात् परोपकार करें ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग सबका रक्षण करके ग्रहण करने योग्य को ग्रहण कराइये ॥९॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥१०॥

पदार्थः—हे (**गृहमेधासः**) गृह में बुद्धि जिन की ऐसे (**मरुतः**) उत्तम मनुष्यो आप लोग यहां (**आ, गत,**) आइये और (**सुदानवः**) अच्छे दान वाले (**भूतन**) हूजिये और (**युष्माक**) आप लोगों की (**ऊती**) रक्षण आदि क्रिया के सहित आप लोग (**मा**) नहीं (**अप**) विरुद्ध हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे गृहस्थ जनो ! आप लोग विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों के देने वाले होकर सत्य और पुरुषार्थ के विरुद्ध मत होओ ॥१०॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

पदार्थः—(**सूर्य्यत्वचः**) सूर्य्य के समान प्रकाशमान त्वचा जिन की ऐसे (**स्वतवसः**) अपना बल वाले (**कवयः**) हे विद्वान् (**मरुतः**) मनुष्यो (**इहेह**) इसी संसार में (**वः**) आप लोगों के (**यज्ञम्**) सङ्गतिस्वरूप यज्ञ को मैं (**आ, वृणे**) स्वीकार करता हूँ ॥११॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग विद्या आदि के प्रचार नामक कर्म की सदा उन्नति करिये ॥११॥

फिर मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (**सुगन्धिम्**) अच्छे प्रकार पुण्यरूप यशयुक्त (**पुष्टिवर्धनम्**) पुष्टि बढ़ाने वाले (**त्र्यम्बकम्**) तीनों कालों में रक्षण करने वा तीन अर्थात् जीव, कारण और कार्य्यों की रक्षा करने वाले परमेश्वर को हम लोग (**यजामहे**) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें उसकी आप लोग भी उपासना करिये और जैसे मैं

(बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकमिव) ककड़ी के फल के सदृश (मृत्योः) मरण से (मुक्षीय) छूटूं वैसे आप लोग भी छूटिये जैसे मैं मुक्ति से न छूटूं वैसे आप भी (अमृतात्) मुक्ति की प्राप्ति से विरक्त (मा, आ) मत हूजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! हम सब लोगो का उपास्य जगदीश्वर ही है जिसकी उपासना से पुष्टि, वृद्धि, उत्तम यश और मोक्ष प्राप्त होता है, मृत्यु सम्बन्धी भय नष्ट होता है उस का त्याग करके अन्य की उपासना हम लोग कभी न करें ॥१२॥

इस सूक्त मे वायु के दृष्टान्त से विद्वान् और ईश्वर के गुण और कृत्य के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमाष्टके पञ्चमाऽध्यायारम्भः ॥
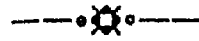
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ द्वादशर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १ सूर्य । २—१२ मित्रावरुणौ देवते । १ पङ्क्ति । ६ विराट् पङ्क्ति । १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वर । २ । ३ । ४ । ६ । ७ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ८ । ११ त्रिष्टुप्छन्द । धैवत स्वर ॥

अब मनुष्यो को किसकी प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहते है ॥

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।

वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन्गृणन्तः ॥१॥

पदार्थ—हे (**सूर्य**) सूर्य के समान वर्त्तमान (**अदिते**) अविनाशी और (**अर्य्यमन्**) न्यायकारी जगदीश्वर (**यत्**) जो (**अनागा**) अपराध से रहित आप हम लोगो को (**उद्यन्**) उद्यत कराते हुए सूर्य्य जसे जैसे (**मित्राय**) मित्र और (**वरुणाय**) श्रेष्ठ जन के लिये (**सत्यम्**) यथार्थ बात को (**ब्रव**) कहिये वैसे हम लोगो के लिये कहिये जिससे आप की (**देवत्रा**) विद्वानो मे (**गृणन्त**) स्तुति करते हुए हम लोग (**तव**) आपके (**अद्य**) इस समय (**प्रियास**) प्रिय (**स्याम**) होवें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश प्रकाशक परमात्मा ही की प्रार्थना करो हे परब्रह्मन् आप हम लोगो के आत्माओ मे अन्तर्यामी के स्वरूप से सत्य सत्य उपदेश करिये जिससे आपकी आज्ञा मे वर्त्ताव कर के हम लोग आप के प्रिय होवें ॥१॥

फिर वह कैसा जगदीश्वर किसके सदृश क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।

विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो (**एष, स्य**) सो यह (**नृचक्षा**) मनुष्यो के कर्मों को देखने वाला परमात्मा (**उभे**) दोनो प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म ससार मे जैसे (**ज्मन्**) भूमि मे (**सूर्य्य**) सूर्य्य लोक मे (**अभि, उत, एति**) सब ओर से उदय करता है वैसे (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**स्थातु**) नही चलने वाले और (**जगत्**) चलने वाले ससार का भी (**गोपा**) रक्षक वह (**मर्तेष**) मनुष्यो मे (**ऋजु**) सरलतापूर्वक (**वृजिना**) सेनाओ को (**च**) और (**पश्यन**) विशेष कर के जानता हुआ (**मित्रावरुणा**) सब के प्राण और उदान वायु को प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे उदय को प्राप्त हुआ सूर्य्य समीप मे वर्त्तमान स्थूल जगत् को प्रकाशित करता है वैसे अन्तर्य्यामी ईश्वर स्थूल और सूक्ष्म जगत् और जीवो को सब प्रकार से प्रकाशित करता है और सब की उत्तम प्रकार रक्षा कर के सब के कर्मों को देखता हुआ यथायोग्य फल देता है ॥२॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मंत्र मे कहते हैं ॥

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।

धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे (**सप्त**) सात (**हरित**) दिशा और (**या**) जो (**घृताची**) रात्रियां (**सधस्थात्**) तुल्य स्थान से (**सूर्य्यम**) सूर्य्य को और (**ईम्**) जल को (**वहन्ति**) धारण करती है वैसे (**य**) जो (**अयुक्त**) युक्त होता है (**धामानि**) जन्म स्थान और नाम को (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु को (**युवाकु**) उत्तम प्रकार सयुक्त करने वाला हुआ (**यूथेव**) समूहो के सदृश (**जनिमानि**) जन्मो को (**सम, चष्टे**) प्रकाशित करता है उसको आप लोग जनाइये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे पवन सूर्य्य लोको को सब ओर से धारण करते है वैसे विद्वान् जन सूर्य्य, प्राण और पृथिवी आदि की विद्या को जाने ॥३॥

फिर विद्वानो को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।

यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥४॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (**वाम्**) आप दोनो के जो (**पृक्षास**) सीचने वाले (**मधुमन्त**) मधुर आदि गुण विद्यमान जिनमे वे (**उत्, अस्थु**) उठें और जो (**सूर्य्य**) सूर्य्य लोक (**शुक्रम्**) शुद्ध (**अर्ण**) जल को (**आ, अरुहत्**) सब ओर से चढ़ाता और (**यस्मै**) जिसके लिये (**आदित्या:**) वर्ष के महीने (**अध्वन**) मार्ग के मध्य मे (**रदन्ति**) आक्रमण करते है (**सजोषा:**) तुल्य प्रीति से सेवा करने योग्य (**मित्र**) प्राण (**वरुण**) जल आदि (**अर्य्यमा**) बिजली और मार्ग के मध्य मे आक्रमण करते हैं उन सब को आप लोग यथावत् जानो ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! अध्यापक और उपदेशक से विद्या को प्राप्त हुए आप लोग पृथिवी आदि की विद्या को जान कर धनवान् हूजिये ॥४॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।

इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो जैसे (**इमे**) ये (**मित्र**) सर्व मित्र (**अर्यमा**) न्यायकारी और (**वरुण**) जल के सदृश पालक (**भूरे**) बहुत प्रकार के (**अनृतस्य**) मिथ्या वस्तु के (**चेतार**) उत्तम प्रकार ज्ञानयुक्त वा जनाने वाले (**सन्ति**) हैं और (**इमे**) जो (**हि**) निश्चित (**शग्मास**) बहुत सुख से युक्त (**अदिते**) अखण्डित न नष्ट होने वाली के (**पुत्रा**) पुत्र (**अदब्धा:**) नहीं हिंसा करने वाले (**दुरोणे**) गृह मे बहुत प्रकार के (**ऋतस्य**) सत्य वस्तु के विज्ञान को (**ववृधु.**) बढ़ाते है इससे वे सत्कार करने योग्य है ॥५॥

भावार्थ—जो पूर्ण विद्यायुक्त होते है वे ही सत्य और असत्य के जानने वाले होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् कैसे श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

इमे मित्रो वरु॑णो दूळभा॑सोऽचेतसं॑ चिच्चितयन्ति दक्षैः ।

अपि॒ क्रतुं॑ सुचेतसं॒ वत॑न्तस्ति॒रश्चि॑दंहः सुपथा॑ नयन्ति ॥६॥

पदार्थः—जो (**इमे**) ये (**दूळभाः**) दुःख से प्राप्त होने योग्य विद्वान् (**मित्र**) मित्र और (**वरुण**) श्रेष्ठ पुरुष (**दक्षैः**) सेनाओं वा चतुर जनों से (**अपि**) भी (**अचेतसम्**) अज्ञानी को (**चित्**) भी (**चितयन्ति**) जनाते है और (**सुचेतसम्**) शुद्ध अन्तःकरण और (**क्रतुम्**) बुद्धि का (**वतन्तः**) सेवन करते हुए जन (**सुपथा**) सुन्दर धर्मयुक्त मार्ग से (**अंहः**) अपराध को (**चित्**) भी (**तिरः**) निवारण मे (**नयन्ति**) पहुँचाते है वे ही ससार मे कल्याणकारक होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो अज्ञानियो को शीघ्र विद्वान करके सत्य धर्म्म के मार्ग से चलाकर पाप से पृथक् करते हैं वे ही इस ससार म दुर्लभ है ॥६॥

फिर कौन विद्वान् श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे दि॒वो अनि॑मिषा पृथि॒व्याश्चि॑कि॒त्वांसो॑ अचेतसं॑ नयन्ति ।

प्र॒व्राजे चि॑न्न॒द्यो॑ गा॒धम॑स्ति पा॒रं नो॑ अ॒स्य वि॑ष्पि॒तस्य॑ पर्षन् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (**इमे**) ये (**चिकित्वांसः**) विज्ञान देते हुए (**अनिमिषा**) निरन्तरता से (**पृथिव्याः**) भूमि आदि पदार्थ मात्र की और (**दिवः**) सूर्य्य आदि की विद्या को (**अचेतसम्**) जड बुद्धि को (**नयन्ति**) प्राप्त कराते हैं और (**चित्**) जैसे (**प्रव्राजे**) जिसमे चलते हैं उस देश मे (**नद्यः**) नदिया जाती हैं जो इन नदियो का (**गाधम्**) अथाह जल (**अस्ति**) है इससे (**पारम्**) परभाग को पहुँचाते हैं वैसे (**अस्य**) इस (**विष्पितस्य**) व्याप्त कर्म के पार को (**नः**) हम लोगो को (**पर्षन्**) पहुँचाते हैं वे ही विद्वान् करने को योग्य होते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन बिजुली और भूमि आदि सम्पूर्ण सृष्टि की विद्या को जानते है वे सब मनुष्यो को दुःख से पार ले जाने को समर्थ होते है ॥७॥

फिर कौन विद्वान् उत्तम होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

यद्गो॒पाव॒ददि॑तिः॒ शर्म॑ भ॒द्रं मि॒त्रो यच्छ॑न्ति॒ वरु॑णः सु॒दासे॑ ।

तस्मि॒न्ना तो॒कं तन॑यं॒ दधा॑ना॒ मा क॑र्म देवहे॒ळनं॑ तुरासः ॥८॥

पदार्थः—जैसे (**अदितिः**) विद्यायुक्त माता (**मित्रः**) मित्र (**वरुणः**) श्रेष्ठ (**गोपावत्**) पृथिवी के पालन करने वाले राजा के सदृश (**भद्रम्**) सेवन करने योग्य सुखकारक (**शर्म**) गृह को देते हैं वैसे (**सुदासे**) सुन्दर दाता जन जिस व्यवहार में (**तस्मिन्**) उसमे (**तनयम्**) विशाल उत्तम (**तोकम्**) सन्तान को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**यत्**) जो जन सबके लिये सुख (**यच्छन्ति**) देते है वे आप लोग (**तुरासः**) शीघ्र करने वाले हुए (**देवहेळनम्**) विद्वानो का जिसमे अनादर हो ऐसे (**कर्म**) को (**मा**) मत करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलु०—जो माता के, मित्र के और न्यायाधीश के सदृश सब को सत्य विद्या देकर सुख देते हैं और धार्मिक विद्वानो के अनादर को कभी भी नही करते है और सब सन्तानो की ब्रह्मचर्य्य और विद्या मे रक्षा करते है वे ही सम्पूर्ण जगत् के हित चाहने वाले होते है ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

अव॒ वेदिं॒ होत्रा॑भिर्यजेत॒ रिपः॒ काश्चि॑द्वरुण॒ध्रुतः॒ सः ।

परि॒ द्वेषो॑भिरर्य॒मा वृ॑णक्तू॒रुं सु॒दासे॒ वृष॑णा उ लो॒कम् ॥९॥

पदार्थः—जो (**होत्राभिः**) हवन की क्रियाओ वा वाणियो से (**वेदिम्**) हवन के निमित्त कुण्ड का (**यजेत**) समागम करे और जो कोई (**चित्**) भी (**काः**) किन्ही (**रिपः**) पापस्वरूप क्रियाओ का (**अव**) नही समागम करे (**सः**) वह (**वरुणध्रुतः**) श्रेष्ठ से स्थिर किया गया (**अर्य्यमा**) न्यायाधीश (**द्वेषोभिः**) द्वेष से युक्त जनो के साथ (**परि**) सब ओर से (**वृणक्तु**) पृथक् होवे तथा (**उरुम्**) बहुत सुखकारक और विस्तीर्ण (**लोकम्**) लोक को (**उ**) और (**वृषणौ**) दो बलिष्ठो को (**सुदासे**) उत्तम प्रकार दान जिसमे दिया जाय ऐसे कर्म्म मे प्राप्त होवे ॥९॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन वेद से युक्त वाणियो से सम्पूर्ण व्यवहारो को सिद्ध करके और दुष्ट क्रियाओ और दुष्टो का त्याग करते हैं वे ही उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर वे विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते है ॥

स॒स्वश्चि॒द्धि समृ॑तिस्त्वे॒ष्ये॑षामपी॒च्ये॑न॒ सह॑सा॒ सह॑न्ते ।

यु॒ष्मद्भि॒या वृ॑षणो॒ रेज॑माना॒ दक्ष॑स्य चिन्महि॒ना मृ॒ळता॑ नः ॥१०॥

पदार्थः—जो (**हि**) निश्चित (**सस्वः**) मध्य मे चलते हुए हैं (**चित्**) और (**एषाम्**) इनकी (**त्वेषी**) प्रकाशमान (**समृतिः**) उत्तम प्रकार सत्य क्रिया है (**अपीच्येन**) जिससे चलता है उस मे हुए (**सहसा**) बल से (**सहन्ते**) सहते है उनके लिए और (**युष्मत्**) आप लोगो के समीप से (**भिया**) भय से (**रेजमाना**) कापते और चलते हुए (**वृषणः**) बलिष्ठ कांपते हुए जाने वाले होते हैं वे आप लोग (**दक्षस्य**) बल के (**महिना**) महत्त्व से (**चित्**) भी (**नः**) हम लोगो का (**मृळत**) सुखयुक्त करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसकी सत्य बुद्धि, विद्या, नीति, सेना और प्रजा वर्त्तमान है वही शत्रुओ को सहता हुआ सब को सुखयुक्त करता है वह महिमा से आनन्दित होता है ॥१०॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

यो ब्रह्म॑णे सुम॒तिमा॒यजा॑ते॒ वाज॑स्य सा॒तौ प॑र॒मस्य॑ रा॒यः ।

सीक्ष॑न्त म॒न्युं म॒घवा॑नो अ॒र्य उ॒रु क्षया॑य चक्रिरे सु॒धातु॑ ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (**यः**) जो (**परमस्य**) श्रेष्ठ (**वाजस्य**) विज्ञान और (**रायः**) धन के (**सातौ**) उत्तम प्रकार बांटने मे (**ब्रह्मणे**) धन के वा परमेश्वर के लिये (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि को (**आयजाते**) सब प्रकार से प्राप्त होवे और जो (**मघवानः**) अत्यन्त धन से युक्त (**अर्य्यः**) यथावत् जानने वाले (**मन्युम्**) क्रोध को (**सीक्षन्त**) सम्बन्धित करते हैं और (**क्षयाय**) निवास के लिये (**उरु**) बड़े (**सुधातु**) सुन्दर धातु सुवर्ण आदि जिसमे उस गृह को (**चक्रिरे**) सिद्ध करते हैं वे ही लक्ष्मीवान होते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के विज्ञान के, उत्तम धन के लाभ के और श्रेष्ठ गृह के लिये क्रोध आदि दोषो का परित्याग कर के प्रयत्न करते हैं वे सम्पूर्ण सुखो से युक्त होते है ॥११॥

फिर विद्वानों से क्या किया जाता है इस विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इ॒यं दे॑व पु॒रोहि॑तिर्यु॒वभ्यां॑ य॒ज्ञेषु॑ मित्रावरुणावकारि ।

विश्वा॑नि दु॒र्गा पि॑पृतं ति॒रो नो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१२॥

पदार्थः—हे (**मित्रावरुणौ**) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (**देवा**) दाता दोनो (**युवभ्याम्**) आप दोनो से (**यज्ञेषु**) विद्वानो के सत्काररूपी यज्ञ कर्मों मे (**इयम्**) यह (**पुरोहितिः**) पहले हित की क्रिया (**अकारि**) की जाती है वे दोनो आप (**नः**) हम लोगो के लिये (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**दुर्गा**) दुःख से जाने योग्य कामो को (**तिरः**) तिरस्कार कर के आप दोनो (**पिपृतम्**) पूर्ण कीजिये और हे विद्वान् जनो (**यूयम्**) आप लोग (**स्वस्तिभिः**) कल्याणो से (**नः**) हम सब मनुष्यो की (**सदा**) सब काल मे (**पात**) रक्षा कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे आप दोनो सब के हित को करें वैसे हम लोगो के दुष्ट व्यसनो को दूर कर के सब काल मे हम लोगो की वृद्धि करें ॥१२॥

इस सूक्त मे सूर्य्य आदि के दृष्टान्तो से विद्वानों के गुण और कृत्य के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मित्रावरुणौ देवते । २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अब अध्यापक और उपदेशक कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

उद्वां॒ चक्षु॑र्वरुण सु॒प्रती॑कं दे॒वयो॑रेति॒ सूर्य॑स्तत॒न्वान् ।

अ॒भि यो विश्वा॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॒ स म॒न्युं मर्त्ये॒ष्वा चि॑केत ॥१॥

पदार्थः—हे (**वरुण**) श्रेष्ठो (**देवयोः**) विद्वान् जो (**वाम्**) आप उन दोनो के जिस (**सुप्रतीकम्**) उत्तम प्रकार रूप आदि के ज्ञान कराने वाले (**चक्षुः**) चक्षु इन्द्रिय को कि जिससे देखता है (**ततन्वान्**) विस्तृत करता हुआ (**सूर्यः**) सूर्य्यमण्डल जैसे (**उत्, एति**) उदय को प्राप्त होता है और (**यः**) जो मनुष्य (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**भुवनानि**) भुवनो को (**अभि, चष्टे**) जानता है (**सः**) वह (**मर्त्येषु**) मनुष्यो मे (**मन्युम्**) क्रोध को (**आ**) सब प्रकार से (**चिकेत**) जाने वैसे आप दोनो कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण लोको को प्रकाशित करता है वैसे अध्यापक और उपदेशक जन सब के आत्माओ को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

फिर वे दोनो कैसे हो इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।

यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (सः) वह (ऋतावा) सत्य का सेवन करने और (दीर्घश्रुत्) बहुत शास्त्रों को वा बहुत काल पर्य्यन्त शास्त्रों का सुनने वाला (विप्र) बुद्धिमान् जन (वाम्) आप दोनों के (मन्मानि) विज्ञानों को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) धनों का (सुक्रतू) सुन्दर बुद्धि से युक्त होते हुए आप (प्र, अवाथ) रक्षा करें और (यत्) जिसकी (क्रत्वा) बुद्धि से (न) जैसे पदार्थों को वैसे (शरदः) शरद् आदि ऋतुओं को (आ, पृणैथे) अच्छे प्रकार पूरो, उन आप दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो बहुत काल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य से शास्त्रों को पढ़ता है वही बुद्धिमान् होकर सब मनुष्यों की रक्षा करने को समर्थ होता है ॥२॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये सप्तमे मण्डले चतुर्थानुवाके एकषष्टितमे सूक्ते पञ्चमाष्टके पञ्चमाध्याये तृतीयवर्गे द्वितीयमन्त्रस्य भाष्यं समाप्तम् ॥

उक्तस्वामिकृतं भाष्यं चैतावदेवेति ॥

सं० १९५६ वि० आषाढ़ कृष्णा ५ को छपके समाप्त हुआ ॥

अब परमात्मा अध्यापक तथा उपदेशकों के कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश करते हैं ।

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद्बृहतः सुदानू ।

स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

पदार्थ—(मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम (प्रोरो.) विस्तृत (पृथिव्याः) पृथिवी और (ऋष्वात्) बड़े (प्रदिव) द्युलोक की विद्याओं का वर्णन करो (यत) क्योंकि आप लोग (बृहत) बड़े-बड़े (सुदानू, स्पश) दानी महाशयों के भावों को (दधाथे) धारण किये हुए हो, और (ओषधीषु) औषधियों द्वारा (अनिमिष) निरन्तर (विक्षु) संपूर्ण संसार की (रक्षमाणा) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम सत्य का प्रचार तथा औषधियों—अन्नादि द्वारा प्रजा का भले प्रकार रक्षण करो अर्थात् अपने सदुपदेश द्वारा मानस रोगों की और औषधियों द्वारा शारीरिक रोगों की चिकित्सा करके संसार में सर्वथा सुख फैलाने का उद्योग करो ॥३॥

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।

अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (मित्रस्य, वरुणस्य, धाम) अध्यापक तथा उपदेशकों के पदों को (शंस) प्रशंसित करो । (शुष्म) जिनका बल (रोदसी) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में (महित्वा) महत्त्व के लिए (बद्बधे) संसार की मर्य्यादा बांधे (अयज्वनां) अयज्ञशील अकर्मी (अवीरा) वीर सन्तानों से रहित होकर (मासा) दिन (अयन्) व्यतीत करें और (प्रयज्ञमन्मा) विशेषता से यज्ञशील सत्कर्मी पुरुष (वृजन) सब विपत्तियों से मुक्त होकर (तिराते) जगत् का उद्धार करें ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! संसार में सबसे उच्च पद अध्यापक तथा उपदेशकों का है, तुम लोग इनके पद की रक्षा के लिए यत्नवान् होओ ताकि इनका बल बढ़कर संसार के सब अज्ञानादि पापों का नाशक हो, और संसार मर्यादा में स्थिर रहे ॥४॥

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।

द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५॥

पदार्थ—(यासु) जिन उपदेशक तथा अध्यापकों की क्रिया में (चित्र) विचित्र शक्तियें (न, ददृशे) नहीं देखी जाती (न, यक्ष) न जिनमें श्रद्धा का भाव है वे (विश्वा) सम्पूर्ण संसार में (इमा , वृषणौ) अपनी वाणी की वृष्टि (न) नहीं कर सकते, और जो (वां) तुम्हारे उपदेशक तथा अध्यापक (जनानां) मनुष्यों की (अनृता, द्रुहः, सचन्ते) निन्दा वा दुश्चरित्र कहते हैं उनकी (निण्यानि) वाणियें (अचिते, अभूवन्) अज्ञान की नाशक नहीं होती, इसलिये (अमूरा) तुम लोग पूर्वोक्त दोषों से रहित होओ, यह परमात्मा का उपदेश है ॥५॥

भावार्थ—जिन अध्यापक वा उपदेशकों में वाणी की विचित्रता नहीं पाई जाती और जिनकी वेदादि सच्छास्त्रों में श्रद्धा नहीं है उनके अज्ञाननिवृत्तिविषयक भाव संसार में कभी नहीं फैल सकते और न उनकी वाणी वृष्टि के समान सद्गुणरूप अंकुर उत्पन्न कर सकती है इसी प्रकार जो अध्यापक वा उपदेशक रात्रि दिन निन्दास्तुति में तत्पर रहते हैं वह भी दूसरों की अज्ञानग्रन्थियों का छेदन नहीं कर सकते, इसलिए उचित है कि उपदेष्टा लोगों को निन्दास्तुति के भावों से सर्वथा वर्जित रहकर अपने हृदय में श्रद्धा के अंकुर दृढ़तापूर्वक जमाने चाहियें, ताकि सारा संसार आस्तिक भावों से विभूषित हो ॥५॥

अब परमात्मा उपदेशकों के वेदवाणीयुक्त होने का उपदेश करते हैं ॥

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।

प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥६॥

पदार्थ—(मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको (सबाध) मैं जिज्ञासु (वां) तुम्हारे (महयं, यज्ञ) प्रशंसनीय यज्ञ को (स, उ) भले प्रकार (नमोभि) सत्कारपूर्वक (हुवे) ग्रहण करता हूँ (वां) आपके (नवानि) नये (मन्मानि) व्याख्यान (प्र ऋचसे) पदार्थ ज्ञान के बढ़ाने वाले हैं, और (वां) आपके (कृतानि) दिये हुए (इमानि) ये व्याख्यान (ब्रह्म, जुजुषन्) परमात्मा के साथ जोड़ते हैं ॥६॥

भावार्थ—हे अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं जिज्ञासु तुम्हारे यज्ञों को सत्कार-पूर्वक स्वीकार करता हुआ प्रार्थना करता हूँ कि आपके उपदेश मुझे ब्रह्म की प्राप्ति करायें ॥६॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(मित्रावरुणौ, युवभ्यां) अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (यज्ञेषु) यज्ञों में (इयं, देव, पुरोहिति) सब विद्वानों के हित करने वाली वाणी (अकारि) कथन करें और (न) हमारी (विश्वानि, दुर्गा) सब प्रकार की विषमता को (तिर) तिरस्कार करके (पिपृत) नष्ट करें, (यूय) आप लोग (न) हमको (सदा) नित्यप्रति (स्वस्तिभि.) अपनी मंगलप्रद वाणियों से (पात) कल्याणदायक उपदेश करते रहें ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि कर्म, उपासना तथा ज्ञान इन तीनों प्रकार के यज्ञों में अध्यापक तथा उपदेशक ही पुरोहित का कार्य करते और यही जनता—जनसमूह का सब विघ्नों से बचाकर उसकी रक्षा करते हैं, इसलिए जनता को समष्टिरूप से इनसे स्वस्ति की प्रार्थना करनी चाहिए ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ सूर्यः । ४-६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,२,६ विराट्त्रिष्टुप् । ३,४,५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त से सर्वप्रकाशक परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।

समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

पदार्थ—(सूय) सब के उत्पादक परमात्मा का (बृहत्, अर्चींषि) बड़ी ज्योतियां (अश्रेत्) आश्रय करती हैं जो (विश्वा, मानुषाणां) निखिल ब्रह्माण्ड में स्थित मनुष्यों के (पुरु, जनिम) अनन्त जन्मों को (ववृत्ते) जानता और (समः, दिवा) सदा ही (रोचमानः) स्वतः प्रकाश है, वही (क्रत्वा कृत) यज्ञरूप है और (कर्तृभि) इस चराचर ब्रह्माण्ड की रचना ने जिसको (सुकृत , भूत्) सर्वोपरि रचयिता वर्णन किया है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम उसी एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करो जो सब मनुष्यों के भूत, भविष्यत तथा वर्त्तमान जन्मों को जानता, सदा एकरस रहता और जिसको इस चराचर ब्रह्माण्ड की रचना प्रतिदिन वर्णन करती है, वही स्वतःप्रकाश परमात्मा मनुष्यमात्र का उपास्यदेव है । इसी भाव से "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च०" यजु० १३।४६ में परमात्मा का सूर्य नाम से वर्णन किया है ॥१॥

अब परमात्मप्राप्ति के साधन कथन करते हैं ॥

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।

प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥२॥

पदार्थ—(सूर्य) हे परमात्मन् (स) आप (एभि, स्तोमेभि.) इन यज्ञों से (नः) हमारे (प्रति, पुर) हृदय में (उद्गाः) प्रकट हों । (एतशेभिः) जो निष्काम कर्म द्वारा साधन किये जाते हैं उनका (एवैः) निश्चय करके (नः) हमारे (मित्राय, वरुणाय) अध्यापक, उपदेशक (अर्यम्णे) न्यायकारी (च) और (अग्नये) विज्ञानी पुरुषों के लिये (प्र, वोच) उपदेश करें कि तुम (अनागसः) संसार में निष्कामता का प्रचार करो जिससे विद्वानों के समक्ष निर्दोष सिद्ध हो ॥२॥

भावार्थ —जपयज्ञ, योगयज्ञ तथा ध्यानयज्ञ इत्यादि यज्ञ परमात्मप्राप्ति के साधन हैं जिनके द्वारा निष्कामकर्मी को परमात्मा की प्राप्ति होती है, इस मन्त्र मे परमात्मा अध्यापक, उपदेशक तथा विज्ञानी पुरुषों का उपदेश करते है कि तुम लोग इन यज्ञो का प्रचार करो ताकि निष्कामता फैलकर ससार का उपकार हो ॥२॥

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।

यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**स्तवाना**) यथार्थगुणसम्पन्न (**वरुण**) उपदेशक (**मित्र.**) अध्यापक (**अग्नि.**) विज्ञानी (**चन्द्रा**) प्रसन्नता देने वाले विद्वान् (**न , काम**) हमारी कामनाओं को (**पूपुरन्तु**) पूर्ण करें (**आ**) और (**वि**) विशेषता से (**न**) हमको (**सहस्रम्**) सहस्रो प्रकार के (**शुरुध**) सुख (**यच्छन्तु**) दें (**ऋतावान**) सत्यवादी विद्वान् (**न**) हमको (**उपम, अर्क**) अनुपम परमात्मा का ज्ञान (**रदन्तु**) प्रदान करें ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे प्रकाशस्वरूप परमात्मा से यह प्रार्थना है कि भगवन् ! आप हमको अध्यापक, उपदेशक, ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानो द्वारा सत्य का उपदेश करायें और अनन्त प्रकार का सुख, सत्यादि धन और जीवन मे पवित्रता दें ताकि हम शुद्ध होकर आपकी कृपा के पात्र बनें ॥३॥

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।

मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

पदार्थ.—(**द्यावाभूमि**) हे प्रकाशस्वरूप, सर्वाधार, (**अदिते**) अखण्डनीय परमात्मन् ! आप (**न**) हमारी (**त्रासीथां**) रक्षा करें, (**ऋष्वे**) हे सर्वोपरिविराजमान जगदीश्वर ! (**ये, सुजनिमान**) जो मनुष्यजन्म वाले हमने (**वां**) आपको (**जज्ञु.**) जाना है, इसलिए (**वरुणस्य, वायो**) अपान वायु (**नृणां, प्रियतमस्य**) जो मनुष्यो को प्रिय है उसका कोप (**मा**) न हो और (**मित्रस्य**) प्राण वायु का भी (**हेळे**) प्रकोप (**मा, भूम**) मत हो ॥४॥

भावार्थ:—हे सर्वोपरि वर्त्तमान परमात्मन् ! आप सच्चिदानन्दस्वरूप है, हमने मनुष्यजन्म पाकर आपको लाभ किया है इसलिये हम प्रार्थना करते है कि हम पर प्राणवायु का कभी प्रकोप न हो और न ही हम पर कभी अपानवायु कुपित हो, इन दोनो के सयम मे हम सदैव आपके ज्ञान का लाभ उठायें अर्थात् प्राणों के सयमरूप प्राणायाम द्वारा हम आपके ज्ञान की वृद्धि करते हुए प्राणापान वायु हमारे लिये कभी दु ख का कारण न हों, यह प्रार्थना करते हैं ॥४॥

अब स्वभावोक्ति अलकार से प्राणापान को संबोधन करके इन्द्रियसयम की प्रार्थना करते हैं ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।

आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५॥

पदार्थ —(**मित्रावरुणा**) हे प्राणापानरूप वायो ! आप (**न**) हमारे (**जीवसे**) जीवन के लिये (**प्र**) विशेषता से (**बाहवा सिसृत**) प्राणापानरूप शक्ति को विस्तारित करें (**आ**) और (**न**) हमारी (**गव्यूति**) इन्द्रियों को (**घृतेन, उक्षत**) अपनी स्निग्धता से सुमार्ग मे सिंचित करें । हे प्राणापान ! आप नित्य (**युवाना**) युवावस्था को प्राप्त हैं इसलिये (**न , जने**) हमारे जैसे मनुष्यो मे (**श्रवयत**) ज्ञानगति बढायें (**आ**) और (**मे**) हमारी (**इमा, हवा**) इन प्राणापानरूप आहुतियो को (**श्रुत**) प्रवाहित करें ॥५॥

भावार्थ —मनुष्य की स्वाभाविक गति इस ओर होती है कि वह अपने मन-प्राण तथा इन्द्रियो को सबोधन करके कुछ कथन करे । साहित्य मे इसको स्वभावोक्ति अलकार और दार्शनिको की परिभाषा मे उपचार कहते हैं । यहा पूर्वोक्त अलकार मे प्राणापान को सबोधन करके यह कथन किया है कि प्राणापान द्वारा हमारी इन्द्रियों मे इस प्रकार का बल उत्पन्न हो जिस से वह सन्मार्ग से कभी च्युत न हो अर्थात् अपने सयम मे तत्पर रहे और इनका "युवाना" विशेषण इसलिये दिया है कि जिस प्रकार अन्य शारीरिक तत्त्व वृद्धावस्था मे जाकर जीर्ण हो जाते है, इस प्रकार प्राणो मे कोई विकार उत्पन्न नही होता, नित्य नूतन रहने के कारण इनको "युवा" कहा गया है ॥५॥

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।

सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ —(**नु**) निश्चय करके (**मित्र**) अध्यापक (**वरुण**) उपदेशक (**अर्यमा**) न्यायकारी ये सब विद्वान् (**न**) हमारे (**त्मने**) आत्मा के लिये और (**तोकाय**) सन्तान के लिये (**वरिव**) ऐश्वर्य को (**दधन्तु**) दें और (**न**) हमारे (**विश्वा.**) सम्पूर्ण (**सुपथानि**) मार्ग (**सुगा**) कल्याणरूप (**सन्तु**) हों, और (**यूय**) आप (**स्वस्तिभि**) स्वस्तिवाचन आदि वाणियो से (**न**) हमारी (**सदा**) सर्वदा (**पात**) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थ —अध्यापक, उपदेशक तथा अन्य अन्य विषयो के ज्ञाता विद्वानो को यजमान लोग अपने-अपने यज्ञो मे बुलाये और सन्मानपूर्वक उन से कहें कि हे विद्वद्गण ! आप हमारे कल्याणार्थ स्वस्तिवाचनादि वाणियो से प्रार्थना करें और हमारे लिये कल्याणरूप मार्गों का उपदेश करें ॥६॥

यह सप्तम मण्डल मे ६२वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रयष्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषि ॥ १—४, ५[1] सूर्य । ५[2], ६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ ५ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

अब प्राणायामादि संयमो द्वारा ध्येय परमात्मा का वर्णन करते है ॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥१॥

पदार्थ (**य , देव**) जो दिव्यरूप परमात्मा (**मित्रस्य, वरुणस्य**) अध्यापक तथा उपदेशको को (**चक्षु**) मार्ग दिखलाने वाला और जो (**तमांसि**) अज्ञानो को (**चर्म, इव**) तुच्छ तृणों के समान (**स**) भले प्रकार (**अविव्यक्**) नाश करता है, वही (**मानुषाणां**) सब मनुष्यो का (**साधारण**) सामान्यरूप से (**सूर्य**) प्रकाशक, (**विश्वचक्षा**) सर्वद्रष्टा और (**सुभग**) ऐश्वर्यसम्पन्न है, वह परमात्मदेव प्राणायामादि सयमो से (**उद्वेति**) प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मदेव ही अध्यापक तथा उपदेशको को सन्मार्ग दिखलाने वाला, सब प्रकार के अज्ञानो का नाशक है, वह सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक तथा सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा प्राणायामादि सयमो द्वारा हमारे हृदय मे प्रकाशित होता है, इसी भाव को "चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य" यजु० ७।४२ मे प्रतिपादन किया है कि वही परमात्मा सब का प्रकाशक और सन्मार्ग दिखलाने वाला है "साधारण" शब्द सामान्य भाव से सर्वत्र व्याप्त होने के अभिप्राय से आया है जिसका अर्थ ऊपर स्पष्ट है ॥१॥

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।

समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥२॥

पदार्थ —वह परमात्मा (**जनाना**) सब मनुष्यो का (**प्रसवीता**) उत्पादक, (**महान्**) सबसे बड़ा (**केतु**) सर्वोपरि विराजमान, (**अर्णव**) अन्तरिक्ष तथा (**सूर्यस्य**) सूर्य्य के (**समान, चक्र, परि, आविवृत्सन्**) समान चक्र को एक परिधि मे रखने वाला है । (**धूर्षु**) इनके धुराओं मे (**युक्त**) युक्त हुई (**यत्**) जो (**एतश**) दिव्यशक्ति (**वहति**) अनन्त ब्रह्माण्डो का चालन कर रही है, वह सर्वशक्तिरूप परमात्मा (**उद्वेति**) सयमी पुरुषो के हृदय मे प्रकाशित होता है ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा का सर्वोपरि वर्णन करते हुए यह वर्णन किया है कि सबका स्वामी परमात्मा जो सम्राट् के केतु—झंडे के समान सर्वोपरि विराजमान है वह सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि कोटि-कोटि ब्रह्माण्डो को रथ के चक्र समान अपनी धुराओ पर घुमाता हुआ सबको अपने नियम मे चला रहा है उस परमात्मा को सयमी पुरुष ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं ॥२॥

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।

एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३॥

पदार्थ —(**विभ्राजमान**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**उषसां**) सब प्रकाशित पदार्थों मे (**उपस्थात**) स्थिर होने से (**रेभै**) उद्गातादि स्तोतृपुरुषों द्वारा (**अनुमद्यमान**) गान किया हुआ (**उदेति**) प्रकाशित होता है । (**एष**) यह (**सविता**) सब का उत्पन्न करने वाला (**देव**) परमात्मा (**मे**) मेरी कामनाओं का (**चच्छन्द**) पूर्ण करता है और (**य**) वह (**नून**) निश्चय करके (**धाम**) सब स्थानों को (**समान**) समान रूप से (**प्रमिनाति**) जानता है अर्थात् न किसी से उसका राग और न किसी से द्वेष है ॥३॥

भावार्थ —भाव यह है कि वह परमात्मदेव प्रत्येक मनुष्य के हृदयरूपी धाम को समानभाव से जानता है, उसमे न्यूनाधिक भाव नही अर्थात् वह पक्षपात किसी के साथ नही करता, परमात्मभावों को अपने हृदयगत करना ही उसके प्रकाश होने का साधन है, वही सब ज्योतियों का ज्योति सर्वोपरि विराजमान और वही सब का उपास्यदेव है, उसी की उपासना करनी चाहिये, अन्य की नही ॥३॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥४॥

पदार्थ —(**तरणि**) सब का तारक (**भ्राजमान**) प्रकाशस्वरूप (**दूरेअर्थ**) सर्वत्र परिपूर्ण (**दिव , रुक्म**) द्युलोक का प्रकाशक (**उरुचक्षाः**) सर्वद्रष्टा परमात्मा उन लोगो के हृदय मे (**उदेति**) उदय होता है जो (**जना**) पुरुष

(नू) निश्चय करके (सूर्येणः) परमात्मा के बतलाये हुए (अयन्) मार्गों पर चलते हुए (प्रसूता) नूतन जन्म वाले (अर्थानि) कर्म (कृण्वन्) करते हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे पुरुषो ! वह सन्मार्ग दिखलाने वाला प्रकाशस्वरूप परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और चमकते हुए द्युलोक का भी प्रकाशक है, वह स्वत प्रकाश प्रभु उन पुरुषो के हृदय मे प्रकाशित होता है जो उस की आज्ञा का पालन करते और वेदविहित कर्म करके सफलता को प्राप्त होते है ॥४॥

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।

प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥५॥

पदार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि (मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (वां) तुम्हारी कृपा से हम (नमोभिः) नम्रभावो से (उदिते, सूरे) सूर्य्य के उदय होने पर उस परमात्मा की (विधेम) उपासना करें, जो (श्येन) विद्युत् के (न) समान गतिवाले पदार्थों की न्याईं (दीयन्) शीघ्र (पाथ, अन्वेति) पहुँचा हुआ है। और जिसका (गातु) प्राप्त होने के लिये (अमृता) मुक्त पुरुष (चक्रु) मुक्ति के साधन करते है। (अस्मै) उस स्वत प्रकाश परमात्मा के लिये (वा) तुम लोग (प्रति) प्रतिदिन प्रात काल उपासना करो (उत) और (हव्यै) हवन द्वारा अपने स्थानो को पवित्र करके (यत्र) जिस जगह मन प्रसन्न हो वहाँ प्रार्थना करो ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा अध्यापक तथा उपदेशको को आज्ञा देते है कि तुम प्रात काल उस स्वय ज्योति प्रकाश की उपासना करो जो विद्युत् के समान सर्वत्र परिपूर्ण है और जिस ज्योति की प्राप्ति के लिए मुक्त पुरुष अनेक उपाय करते रहे है, तुम लोग उस स्वयप्रकाश परमात्मा की प्रतिदिन उपासना करो अर्थात् प्रात काल ब्रह्मयज्ञ तथा देवयज्ञ करके ध्यान द्वारा उसका सत्कृत करो ॥५॥

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।

सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—(नु) निश्चय करके (मित्र) सबका मित्र (वरुण) वरणीय सबका प्राप्य स्थान (अर्यमा) न्यायकारी परमात्मा (न) हमारे (त्मने) आत्मा के (तोकाय) सुखप्राप्त्यर्थ (वरिव) सब प्रकार का ऐश्वर्य्य (दधन्तु) धारण कराय अथवा अन्न धन आदि से सम्पन्न करें ताकि (विश्वा) सब (सुगा) मार्ग (न.) हमारे लिये (सुपथानि) सुमार्ग (सन्तु) हों और हे भगवन् ! (यूय) आप (स्वस्तिभि) कल्याणयुक्त वाणियों से (न) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! आप हमारे लिये सर्वदा- सब काल मे कल्याणदायक हो और आप की कृपा से हमको सब ऐश्वर्य्य तथा सुखो की प्राप्ति हो। इस मन्त्र मे जो मित्र, वरुण तथा अर्यमा शब्द आये हैं वह सब परमात्मा के नाम है, "श नो मित्र श वरुण. श नो भवत्वर्यमा" यजु० ३६।९ मे मित्रादि सब नाम परमात्मा के है ॥६॥

यह सप्तम मण्डल मे ६३वाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य १-५ वसिष्ठ ऋषि ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर. ॥

अब राजसूययज्ञ का निरूपण करते हैं ॥

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।

हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥१॥

पदार्थ—(दिवि, क्षयन्ता) द्युलोक मे क्षमता रखने वाले (पृथिव्याम्) पृथिवी लोक मे क्षमता रखने वाले (रजस) राजस भावो के जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशक राजा तथा प्रजा को सदुपदेशो द्वारा सुरक्षित करे और (प्र वां) उन अध्यापक तथा उपदेशको के लिये प्रजा तथा राजा लोग (घृतस्य, निर्णिज) प्रेम भाव का (ददीरन) दान दें और (न) हमारे (हव्य) राजसूय यज्ञ को (मित्र) सब के मित्र (अर्य्यमा) न्यायशील (सुजात) कुलीन (सुक्षत्र) क्षात्रधर्म के जानने वाले (वरुण) सब को आश्रयण करने योग्य राजा लोग (जुषन्त) सेवन करें ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यो तुम द्युलोक तथा पृथिवी लोक की विद्या जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशको मे प्रेम भाव धारण करो और राजसूय यज्ञ के रचयिता जो क्षत्री लोग है उनका प्रीति से सेवन करो ताकि तुम्हारे राजा का पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य मे सर्वत्र ऐश्वर्य्य विस्तृत हो जिससे तुम सांसारिक अभ्युदय को प्राप्त होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो अर्थात् जो सब का मित्र, न्यायकारी, कुलीन और जो डाकू चोर तथा अन्यायकारियो के दुःखो से छुड़ाने वाला हो ऐसे राजा की प्रेमलता को अपने स्नेह से सिंचन करो ॥१॥

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।

इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥२॥

पदार्थ—(राजाना) हे राजा लोगो ! तुम (मह ऋतस्य, गोपा) बड़े सत्य के रक्षक (सिन्धुपती) सम्पूर्ण सागर प्रदेशो के पति (आ) और (क्षत्रिया) सब प्रजा को दुःखो से बचाने वाले हो (अर्वाक, यात) तुम शीघ्र उद्यत होकर (न) अपने (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशको को (इळां, वृष्टि) अन्न धन के द्वारा (अव) रक्षा करो (उत) और (जीरदानू) शीघ्र ही (दिव) अपने ऐश्वर्य्य से (इन्वत) उनको प्रसन्न करो ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे राजा लोगो ! तुम सदा सत्य का पालन करो और एकमात्र सत्य पर ही अपने राज्य का निर्भर रक्खो, सब प्रजावर्ग को दुःखो से बचाने का प्रयत्न करो और अपने देश मे विद्याप्रचार तथा धर्म-प्रचार करने वाले विद्वानो का धनादि से सत्कार करो ताकि तुम्हारा ऐश्वर्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो ॥२॥

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।

ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥३॥

पदार्थ—हे राजा तथा प्रजाजनो ! तुमको (तत्) वह (मित्र) अध्यापक (वरुण) उपदेशक (अर्य) न्यायाधीश (देव.) विद्वान (प्र साधिष्ठेभि, पथिभि) भले प्रकार शुभ साधनो वाले मार्गों से (नयन्तु) ले जाय ताकि (सह, देवगोपा) राजा तथा प्रजाजन साथ-साथ (इषा, मदेम) ऐश्वर्य्य का सुख लाभ करें (सुदासे) उत्तम दान के लिये (अरि) न्यायकारी परमात्मा (न) हमको (यथा) जिस प्रकार (आत्) सदैव (ब्रवत) उत्तम उपदेश करते हैं उसी प्रकार आप (न) हमको उपदेश करें ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे राजा तथा प्रजाजनो तुम उस सर्वोपरि न्यायकारी परमात्मा की आज्ञा का यथावत पालन करो जिससे तुम मनुष्य-जन्म के फलचतुष्टय को प्राप्त कर सको, तुमको तुम्हारे अध्यापक, उपदेष्टा तथा न्यायाधीश सदैव उत्तम मार्गों से चलायें जिससे तुम्हारा ऐश्वर्य्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो ॥३॥

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च ।

उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४॥

पदार्थ—(य) जो (राजाना) राजा लोग (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशको को (घृतेन) स्नेह से (उक्षेथां) सिंचन करते है (ता) वह (सुक्षिती) सम्पूर्ण प्रजा को (तर्पयेथा) तृप्त करते है (च) और जो (वा) अध्यापक तथा उपदेशको के (गर्तं) गूढाशयो को (मनसा) मन से (तक्षत) विचार कर (एत) उन (ऊर्ध्वां, धीति) उन्नत कर्मों को (धारयत्) धारण करके (कृणवत) करते हैं वह सदैव उन्नत होते है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि जो राजा लोग अपनी प्रजा मे विद्या तथा धार्मिक भावो के प्रचारार्थ अध्यापक और बड़े बड़े विद्वान् धार्मिक उप-देशको का अपने स्नेह से पालन-पोषण करते है वह अपनी प्रजा को उन्नत करते हैं और जो प्रजाजन उक्त महात्माओ के उपदेशो को मन से विचार कर अनुष्ठान करते है वह कभी अवनति को प्राप्त नही होते प्रत्युत सदा उन्नति की ओर जाते है ॥४॥

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—(मित्र, वरुण) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (तुभ्य) तुम्हारे लिये (एष, स्तोम) यह विद्यारूपी यज्ञ (सोम शुक्र) शीत तथा बल के देने वाला हो और तुम्हे (वायवे, न अयामि) आदित्य के समान प्रकाशित करे (धिय) तुम्हारी बुद्धि (अविष्ट) श्रेष्ठ कर्मों मे (जिगृत) सदा वर्ते जिससे तुम (पुरधी) ऐश्वर्य्यशाली होओ (यूय) तुम लोग (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभि) स्वस्तिवाचनादि वाणियो से (न) हमको (पात) पवित्र करो, ऐसा कथन किया करें ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे विद्वानो ! विद्यारूपी यज्ञ तुम्हारे लिये बल तथा प्रकाश देने वाला हो और यह यज्ञ तुम्हारे सम्पूर्ण कर्मों को सफल करे, तुम्हारी बुद्धियां सदा उत्तम कर्मों मे प्रवृत्त रहें, तुम इस यज्ञ की पूर्णाहुति मे सदा यह प्रार्थना किया करो कि परमात्मा मंगलमय भावो से सदैव हमको पवित्र करे ॥५॥

यह सप्तम मण्डल मे चौसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पंचषष्टितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषि ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, ५ *विराट् त्रिष्टुप्* । २ *त्रिष्टुप्* । ३, ४ *निचृत्त्रिष्टुप्* ॥ धैवतः स्वरः ॥

॥ अब सूर्योदय समय में परमात्मा की उपासना कहते हैं ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।

ययोरसुर्य१ मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥१॥

पदार्थ —(**वां**) हे राजा तथा प्रजाजनसमुदाय ! तुम सब (**सूरे, उदिते**) सूर्योदय काल मे (**मित्रं**) सबका मित्र (**वरुण**) सबका उपासनीय (**पूतदक्षं**) पवित्र नीति वाले परमात्मा के (**प्रति**) समक्ष (**सूक्त**) मन्त्रो द्वारा (**हुवे**) उपासना करो (**ययोः**) जो उपासक राजा तथा प्रजाजन (**अक्षित असुर्यं**) अपरिमित बल वाले (**ज्येष्ठं**) सब से बड़े (**विश्वस्य, यामन्**) ससार भर के सग्रामो मे (**आचिता**) वृद्धि वाले देव की उपासना करते हैं वे (**जिगत्नु**) अपने शत्रुओ को सग्रामों मे जीत लेते हैं ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो तुम सब सूर्योदयकाल मे वेद मन्त्रो द्वारा सर्वपूज्य परमात्मा की उपासना करो जिससे तुम्हे अक्षय बल तथा मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होगी और तुम सग्राम मे अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त करोगे । यहां द्विवचन से राजा तथा प्रजा दोनो का ग्रहण है अर्थात् राजा और प्रजा दोनो उपासनाकाल मे प्रार्थना करें कि हे भगवन् ! आप हमको अक्षय बल प्रदान करें जिससे हम शत्रुओं को जीत सकें ॥१॥

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।

अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२॥

पदार्थ.—(**हि**) निश्चय करके (**ता**) वह (**तौ**) राजा तथा प्रजा (**देवानां**) देवो के मध्य (**असुरा**) बल वाले होने, (**अर्या**) वही श्रेष्ठ होने और (**ता**) वही (**न**) हमारी (**क्षिती.**) पृथिवी का (**ऊर्जयन्ती , करत**) उन्नत करते है जो (**मित्रावरुणा**) सब के मित्र तथा वरणीय परमात्मा की उपासना करते हुए यह प्रार्थना करते है कि (**वय**) हम लोग (**अश्याम**) परमात्मपरायण हो (**च**) और (**यत्र**) जहा (**वां**) राजा प्रजा दोनो (**अहा**) प्रतिदिन (**पीपयन्**) वृद्धि की प्रार्थना करते हैं वहा (**द्यावा**) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनो को ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम प्रतिदिन परमात्मपरायण होने के लिये प्रयत्न करो, जो लोग प्रतिदिन परमात्मा से प्रार्थना करते हुए अपनी वृद्धि की इच्छा करते हैं वे द्युलोक तथा पृथिवी लोक के ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं, इसलिये तुम सदैव अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना किया करो ॥२॥

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।

ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३॥

पदार्थ.—(**ऋतस्य**) सत्य का (**पथा**) मार्ग जो (**मित्रावरुणा**) सब का मित्र तथा वरणीय परमात्मा है वह (**वां**) हम राजा प्रजा को (**अप**) जल की (**नावा**) नौकाओ के (**न**) समान (**दुरिता**) पापो से (**तरेम**) तारे, वह परमात्मा (**मर्त्याय**) मरणधर्मा मनुष्यो के (**रिपवे**) रिपुओ के लिये (**भूरिपाशौ**) अनन्त बलयुक्त और (**ता**) पूर्वोक्त गुणो वाले भक्तो के लिये (**अनृतस्य**) अनृत से तराने का (**सेतु**) पुल है जिसके द्वारा उसका भक्त सब प्रकार के विघ्नो से (**दुरत्येतू**) तर जाता है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! जल की नौकाओ के समान तुम्हारे तराने का एकमात्र साधन परमात्मा ही है, इसलिये तुम्हे सेतु के समान उस पर विश्वास करके इस ससार रूप भवसागर को जिसमे रिपु आदि अनेक प्रकार के दुरित रूप नक्र और असत्यादि अनेक प्रकार के भवर हैं, इन सब से तरकर पार होने के लिये तुम्हे एकमात्र जगदीश्वर का ही अवलम्बन करना चाहिये अन्य कोई साधन नही ॥३॥

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।

प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥४॥

पदार्थ —(**मित्रावरुणा**) हे परमात्मन् ! (**नः**) हमारे (**हव्यजुष्टि गव्यूति**) यज्ञ भूमि को (**आ**) भली भाति (**घृतै , इळाभि**) घृत तथा अन्नो से (**उक्षत**) पूर्ण करें (**वां**) दोनो राजा प्रजा को (**अत्र**) यहाँ (**वर**) श्रेष्ठ (**आ**) और (**चारो दिव्यस्य**) चरणशील द्युलोकस्थ प्रदेशो के विचरने वाले बनायें और (**न , जनाय**) हम लोगो का (**उद्न**) प्रेम भाव (**पृणीतं**) प्रदान करें, हमारी आप से (**प्रति**) प्रतिदिन यही प्रार्थना है ॥४॥

भावार्थ —हे दिव्यशक्ति सम्पन्न परमात्मन् ! आप हमारी यज्ञभूमि को अन्न तथा स्निग्ध द्रव्यो से सदैव सिञ्चन करते रहे और हम को द्युलोकादि दिव्य स्थानो मे विचरने के लिये उत्तम साधन प्रदान करें जिससे हम अव्याहतगति होकर आप के लोकलोकान्तरो मे परिभ्रमण कर सकें, यह हमारी आप से प्रार्थना है ॥४॥

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(**वरुण, मित्र**) हे वरणीय तथा सब के प्रियतम परमात्मन् ! (**एष , स्तोम**) यह विज्ञानमय यज्ञ (**तुभ्य**) तुम्हारे निमित्त (**अयामि**) किया गया है, आप हमे (**सोम**) सौम्यस्वभाव (**शुक**) बल (**वायवे, न**) आदित्य के समान प्रकाश (**अयामि**) प्रदान करें, यह यज्ञ (**धिय**, **अविष्ट**) बुद्धि की रक्षा (**जिगृत**) जागृति (**पुरधी.**) स्तुत्यर्थ है (**यूय**) आप (**स्वस्तिभि.**) कल्याणकारक पदार्थों के प्रदान द्वारा (**न**) हमको (**सदा**) सदा (**पात**) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ —इस विज्ञानमय यज्ञ मे स्नेह तथा आकर्षणरूप शक्तिप्रधान परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हे भगवन् ! आप हमें सौम्यस्वभाव, बलिष्ठ तथा आदित्य के समान तेजस्वी बनाये और हमारी बुद्धि की सब ओर से रक्षा करें ताकि हम सदा प्रबुद्ध और अपने उद्योगो मे तत्पर रहें आपसे यही प्रार्थना है कि आप सदैव हम पर कृपा करते रहें ॥५॥

यह सप्तम मण्डल मे पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—१९ *वसिष्ठ ऋषि* ॥ १—३, १७—१९ *मित्रावरुणौ*, ४—१३ *आदित्या* । १४—१६ *सूर्यो देवता* ॥ छन्द — १, २, ४, ९ *निचृद्गायत्री* । ३ *विराड् गायत्री* । ५—७, १८, १९ *आर्षी गायत्री* । ८ *स्वराड् गायत्री* । १७ *पादनिचृद् गायत्री* । १० *निचृद् बृहती* । ११ *स्वराड् बृहती* । १२ *आर्ची स्वराड् बृहती* । १३, १५ *आर्षी भुरिग् बृहती* । १४ *आर्षीविराड्-बृहती* । १६ *पुर उष्णिक्* ॥ स्वर —१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १७, १८, १९ षड्ज । १०—१५ मध्यम । १६ ऋषभ ॥

अब पूर्वोक्त विज्ञान यज्ञ को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान्तुविजातयोः ॥१॥

पदार्थ —(**मित्रयो , वरुणयो**) हे प्रेममय सर्वाधार परमात्मन् ! (**न**) हमारा (**प्र, स्तोम**) यह विस्तृत विज्ञान यज्ञ (**शूष्य.**) सब प्रकार की वृद्धि करने वाला (**एतु**) हो (**तु**) और (**विजातयो**) हे जन्म-मरण से रहित भगवन् ! यह यज्ञ (**नमस्वान्**) बृहदन्न से सम्पन्न हो ॥१॥

भावार्थ—"विगतम् जातम् यस्मात्स विजात" - जिससे जन्म विगत हो उसको 'विजात" कहते हैं, अर्थात् विजात के अर्थ यहा आकृतिरहित के हैं अथवा 'जनन जातम्" उत्पन्न होने वाले को "जात" और इससे विपरीत जन्मरहित को "अजात" कहते है । इस मन्त्र मे जन्म तथा मृत्यु से रहित मित्रावरुण नामक परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारा यह विज्ञानरूपी यज्ञ सब प्रकार के सुखो का देने वाला और प्रभूत अन्न से समृद्ध हो ॥१॥

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ॥२॥

पदार्थ —हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आपको (**देवा**) विद्वान् लोग (**धारयत**) धारण करते है (**या**) जो आप (**सुदक्षा**) विज्ञानी हो (**दक्षपितरा**) विज्ञानियो की रक्षा करने वाले हो, (**प्रमहसा**) प्रकृष्ट तेज वाले आप (**असुर्याय**) हमारे सब के लिये सहायक हो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे भी द्विवचन अविवक्षित है अर्थात् "या" से "यौ" के अर्थों का ग्रहण नही किन्तु यह अर्थ है कि हे परमात्मन् ! आपको विद्वान् लोग धारण करते हैं, आप सर्वोपरि दक्ष और दक्षो के भी रक्षक हैं, आप हमारे इस विज्ञान यज्ञ मे अपनी दक्षता से सहायक हो ॥२॥

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ॥३॥

पदार्थ —(**मित्र**) हे मित्र परमात्मन् ! आप (**जरितृणा**) क्षणभगुर- शरीर वाले मनुष्यो की (**धिय**) बुद्धि को (**साधयतं**) साधन सम्पन्न करें । (**वरुण**) हे वरणीय परमात्मन् ! आप (**न**) हमारे (**स्तिपा**) घरो को पवित्र करें । क्योंकि (**ता**) उक्त गुणो वाले आप (**तनूपा**) सब प्रकार के शरीरो को पवित्र करने वाले है ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे "तनूपा" परमात्मा से सब प्रकार की पवित्रता के लिये प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप हम को सब प्रकार से पवित्र करें अथवा स्तिपा तनूपा आदि सब परमात्मा के नाम है, जो गृहादि स्थानो को पवित्र करे उसका नाम "स्तिपा" और जो शरीरो को पवित्र करें उसको "तनूपा" कहते हैं, इत्यादि नामयुक्त परमात्मा से पवित्रता की प्रार्थना करके पश्चात् विज्ञानयज्ञ मे क्रियाकौशल की सिद्धि के लिये बुद्धि को साधन सम्पन्न करने की प्रार्थना की गई है ॥३॥

यदुद्य सूर उदि॑तेऽनागा मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः ॥४॥

पदार्थः—(यत्) जो धन (अद्य) आज (सूरे, उदिते) सूर्य के उदय होने पर आता है वह सब (अनागाः) निष्पाप (मित्र) सबके प्रिय (अर्यमा) न्यायकारी (सुवाति) सर्वव्यापक (सविता) सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न इत्यादि गुणों वाले परमेश्वर की कृपा से आता है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो प्रतिदिन धन तथा ऐश्वर्य प्राप्त होता है वह सब परमेश्वर की कृपा से मिलता है, मानो वह सत्कर्मियों को अपने हाथ से बांटता है और दुष्कर्मी हाथ मलते हुए देखते रहते हैं। इसलिये भग = सर्वऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा से सत्कर्मों द्वारा उस ऐश्वर्य की प्रार्थना कथन की गई है कि आप कृपा करके हमें भी प्रतिदिन वह ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४॥

सु॒प्रा॒वीर॑स्तु॒ स क्षयः॒ प्र नु याम॑न्त्सुदानवः ।
ये नो॒ अंहो॑ऽति॒पिप्र॑ति ॥५॥

पदार्थः—(सुदानवः) हे यजमान लोगो ! तुम्हारे (यामन्) मार्ग (सः) वह परमात्मा (क्षय) विघ्न रहित करे (नु) और (सुप्रावी , अस्तु) रक्षायुक्त हो, तुम लोग यह प्रार्थना करो कि (ये) जो (नः) हमारे (अंहः) पाप हैं उनको आप (अतिपिप्रति) हम से दूर करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि दानी तथा यज्ञशील यजमानो के मार्ग सदा निर्विघ्न होते हैं और उनके पापो का सदैव क्षय होता है। अर्थात् जब वह अपने शुद्ध हृदय द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! आप हमारे पापो का क्षय करें तब उनके इस कर्म का फल अवश्य शुभ होता है। यद्यपि वैदिक मत मे केवल प्रार्थना का फल मनोभिलषित पदार्थों की प्राप्ति नही हो सकता तथापि प्रार्थना द्वारा अपने हृदय की न्यूनताओ को अनुभव करने से उद्योग का भाव उत्पन्न होता है जिसका फल परमात्मा अवश्य देते हैं, या यो कहो कि अपनी न्यूनताओ को पूर्ण करते हुए जो प्रार्थना की जाती है वह सफल होती है ॥५॥

उ॒त स्व॒राजो॒ अदि॑ति॒रद॑ब्धस्य व्र॒तस्य॒ ये । म॒हो राजा॑न ईशते ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो (राजानः) राजा लोग(अदब्धस्य, महः , व्रतस्य,) अखण्डित महाव्रत को (ईशते) करते है वह (स्वराजः) सब के स्वामी (उत) और (अदिति) सूर्य के समान प्रकाश वाले होते है ॥६॥

भावार्थः—न्यायपूर्वक प्रजाओं का पालन करना राजाओ का "अखण्डित महाव्रत" है। जो राजा इस व्रत का पालन करता है अर्थात् किसी पक्षपात से न्याय नियम को भंग नही करता वह स्वराज्य- अपनी स्वतन्त्र सत्ता से सदा विराजमान होता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि "स्वयं राजते इति स्वराट्" जो स्वतन्त्र सत्ता से विराजमान हो उसका नाम "स्वराट" और 'स्वयं राजते इति स्वराज" जो स्वयं विराजमान हो उसको "स्वराज" कहते हैं। और यह बहुवचन मे बनता है। यहा "स्वराज" शब्द "राजान" का विशेषण है। अर्थात् वही राजा लोग स्वराज का लाभ करते हैं जो न्याय नियम से प्रजापालक होते हैं अन्य नही ॥६॥

प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते मि॒त्रं गृ॑णीषे॒ वरु॑णम् । अ॒र्य॒मणं॑ रि॒शाद॑सम् ॥७॥

पदार्थः—(वां) हे राजा तथा प्रजाजनो ! तुममे से (सूरे, उदिते) सूर्योदय काल मे (प्रति) प्रत्येक मनुष्य (मित्र) सर्वप्रिय (वरुण) सब के उपासनीय परमात्मा की (गृणीषे) उपासना करे जो (अर्यमण) न्यायकारी और (रिशादस) अज्ञान का नाशक है ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा तथा प्रजा के लोगो ! तुम्हारा सब का यह कर्त्तव्य है कि तुम प्रातःकाल उठकर पूजनीय परमात्मा की उपासना करो, जो किसी का पक्षपात नही करता और वह स्वकर्मानुसार सबको शुभाशुभ फल देता है, ऐसे न्यायाधीश को लक्ष्य रख कर उपासना करने से मनुष्य स्वयं भी न्यायकारी और धर्मात्मा बन जाता है ॥७॥

रा॒या हि॑रण्य॒या म॒तिरि॒यम॑वृ॒काय॒ शव॑से । इ॒यं विप्रा॑ मे॒धसा॑तये ॥८॥

पदार्थः—(विप्रा) हे विद्वान् लोगो ! तुम्हारी (इयं) यह (मति) बुद्धि (अवृकाय) अहिंसाप्रधान हो और (इयं) यह मति (शवसे) बल की वृद्धि, (मेधसातये) यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति तथा (हिरण्यया, राया) ऐश्वर्य को बढाने वाली हो ॥८॥

भावार्थ परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम ऐसी बुद्धि उत्पन्न करो जिससे किसी की हिंसा न हो और जो बुद्धि ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तथा कर्मयज्ञ आदि सब यज्ञो को सिद्ध करने वाली हो इस प्रकार की बुद्धि के धारण करने से तुम बलवान तथा ऐश्वर्यसम्पन्न होगे। इसलिये तुमको "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस गायत्री तथा अन्य मन्त्रो द्वारा सदैव शुभ मति की प्रार्थना करनी चाहिए ॥८॥

ते स्या॑म देव वरुण॒ ते मि॑त्र सू॒रिभिः॑ स॒ह । इषं॒ स्व॑श्च धीमहि ॥९॥

पदार्थः—(वरुण) हे सब के पूजनीय (मित्र) परमप्रिय (देव) दिव्यस्वरूप भगवन् ! (ते) तुम्हारे उपासक (स्याम) ऐश्वर्ययुक्त हों, न केवल हम ऐश्वर्ययुक्त हों किन्तु (ते) तुम्हारे (सूरभि) तेजस्वी विद्वानो के (सह) साथ (इषं) ऐश्वर्य (स्वश्च) और सुख को (धीमहि) धारण करें ॥९॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि यजमान लोगो ! तुम इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे परमात्मदेव ! हम लोग सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त हो, न केवल हम किन्तु ऋत्विगादि सब विद्वानो के साथ हम आनन्द लाभ करें ॥९॥

ब॒हवः॒ सूर॑चक्षसो॒ऽग्निजि॒ह्वा ऋ॑ता॒वृधः॑ ।
त्रीणि॒ ये ये॒मुर्वि॒दथा॑नि धी॒तिभि॒र्विश्वा॑नि॒ परि॑भूतिभिः ॥१०॥

पदार्थ—(सूरचक्षस) सूर्यसदृश प्रकाश वाले (अग्निजिह्वाः) अग्निसमान वाणी वाले (ऋतावृध) सत्यरूप यज्ञ के बढ़ाने वाले (ये) जो (परिभूतिभि , धीतिभि.) शुभ कर्मों द्वारा (विदथानि) कर्मभूमि को बढ़ाते हैं वह (त्रीणि) कर्म, उपासना तथा ज्ञान को प्राप्त हुए (बहव) अनेक विद्वान् (विश्वानि) सम्पूर्ण फलो को (येमु) प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष अपने शुभकर्मों द्वारा कर्मक्षेत्र को विस्तृत करते हैं, वही सब प्रकार के फलो को प्राप्त होते और कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप फलचतुष्टय को प्राप्त हैं। इस प्रकार के विद्वान् सूर्यसमान प्रकाश को लाभ करते हैं और अग्नि के सदृश उनकी वाणी असत्यरूप समिधाओ को जलाकर सदैव सत्यरूपी यज्ञ करती है। अर्थात् सत्कर्मी, अनुष्ठानी तथा विज्ञानी विद्वानो का ही काम है कि वह परस्पर मिलकर कर्मभूमि को विस्तृत करें, या यो कहो कि कर्मयोग के क्षेत्र मे कटिबद्ध हों ॥१०॥

वि ये द॒धुः श॒रदं॒ मास॒माद॑हर्य॒ज्ञम॒क्तुं चादृच॑म् ।
अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा क्ष॒त्रं राजा॑न आशत ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो विद्वान् (शरद, मास) शरद् मास के प्रारम्भिक (अह , अक्तु यज्ञ) दिन रात के यज्ञ को (ऋचं) ऋग्वेद की ऋचाओ से (वि दधु) भले प्रकार करते हैं। वह (अनाप्य) इस दुर्लभ यज्ञ को करके (वरुण) सबके पूजनीय (मित्र) सर्वप्रिय (अर्यमा) न्यायशील तथा (राजान) दीप्तिमान होकर (क्षत्रं) क्षात्र धर्म को (आशत) लाभ करते हैं ॥११॥

भावार्थ—शरद् ऋतु के प्रारम्भ मे जो यज्ञ किया जाता है उसका नाम "शारद" यज्ञ है। यह यज्ञ रात्रि दिन अनवरत किया जाता है। जो विद्वान् अनुष्ठानपरायण होकर इस वार्षिक यज्ञ को पूर्ण करते हैं वह दीप्तिमान होकर सबके सत्कारार्ह होते हैं ॥११॥

तद्वो॑ अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सूर॒ उदि॑ते ।
यदोह॑ते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा यू॒यमृ॒तस्य॑ रथ्यः ॥१२॥

पदार्थ—(तत्) वह परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यो ! वह तुम उन विद्वानो का (अद्य) आज (सूरे, उदिते) सूर्योदय काल मे (सूक्तै) सुन्दर वाणियो द्वारा (मनामहे) आवाहन करो। (यत्) जो (ओहते) सुमार्ग दिखलाने वाले हैं और उनसे प्रार्थना करो कि (वरुण) हे सर्वपूज्य (मित्र) सर्वप्रिय (अर्यमा) न्यायपूर्वक वर्तने वाले (रथ्य.) सन्मार्ग के नेता लोगो (यूय) आप ही (ऋतस्य) सन्मार्ग मे प्रवृत्त कराने वाले है ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे यह उपदेश है कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम अपने प्रातःस्मरणीय विद्वानो का सूर्योदय समय सत्कारपूर्वक आवाहन बुलाओ और उनसे प्रार्थना करो कि आप न्यायादिगुणसम्पन्न होने से हमारे पूज्य हैं। कृपा करके हमे भी सन्मार्ग का उपदेश करें, क्योंकि स्वयं अनुष्ठानी तथा सदाचारी विद्वान् ही अपने सदुपदेशो द्वारा सन्मार्ग को दर्शा सकते है। सो आप हमे भी कल्याणकारक उपदेशो द्वारा कृतकृत्य करें ॥१२॥

अब उपर्युक्त विद्वानों के गुण का वर्णन करते हैं ॥

ऋ॒तावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋता॒वृधो॑ घो॒रासो॑ अनृत॒द्विषः॑ ।
तेषां॑ वः सु॒म्ने सु॑च्छ॒र्दिष्ट॑मे नरः॒ स्याम॒ ये च॑ सू॒रयः॑ ॥१३॥

पदार्थ—(ऋतवानः) सत्यपरायण, (ऋतजाता.) सत्य की शिक्षा प्राप्त किये हुए, (ऋतावृधः) सत्यरूप यज्ञ की वृद्धि करने वाले (घोरास , अनृतद्विषः) और असन्मार्ग के अत्यन्त द्वेषी विद्वानो के (सुच्छर्दिष्टमे) सुखतम (सुम्ने) मार्ग में (वः) तुम लोग चलो (च) और (तेषां) उन विद्वानो से (ये) जो अपने गुणगौरव द्वारा (सूरय) तेजस्वी हैं (नर) तुम लोग प्रार्थना करो कि हम भी (स्याम) उक्त गुणसम्पन्न हो ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम अनृत से द्वेष करने वाले तथा सत्य में सदा प्यार करने वाले सत्पुरुषों का सत्सग करो और उनसे नम्रतापूर्वक वर्तते हुए प्रार्थना करो कि हे महाराज ! हमें भी सन्मार्ग का उपदेश करो ताकि हम भी उत्तम गुणसम्पन्न हों ॥१३॥

अब उपर्युक्त विद्वानों के सत्सग से शुद्ध हुए अंतःकरण द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का कथन करते हैं ।

उदु॒ त्यद्द॑र्श॒तं वपु॑र्दि॒व ए॑ति प्रतिह्व॒रे ।
यदी॑मा॒शुर्वह॑ति दे॒व एत॑शो॒ विश्व॑स्मै॒ चक्ष॑से॒ अर॑म् ॥१४॥

पदार्थ—(त्यत्, दर्शतं, वपुः, उत्) और उस अमृत पुरुष का दर्शनीय स्वरूप (यत्) जो (दिव, प्रतिह्वरे) प्रकाशमान अन्तःकरण में (एति) प्रकाशित होता है, उस (विश्वस्मै, चक्षसे) सम्पूर्ण ससार के द्रष्टा (देवः) देव को (एतशः, ई) यह गमनशील अन्तःकरण की वृत्तियाँ (आशु, वहति) शीघ्र ही प्राप्त कराने में (अरं) समर्थ होती है । मन्त्र में "उ" पादपूर्ति के लिये है ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में यह उपदेश किया है कि अनृत से द्वेष तथा सत्य से प्यार करने वाले पुरुषों के सत्सग से शुद्धान्तःकरण पुरुष उस परमात्मदेव को प्राप्त करते हैं अर्थात् उनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ उस सर्वद्रष्टा देव को प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही समर्थ होती हैं और उन्हीं के द्वारा वह देव प्रकाशित होता है, मलिनान्तःकरण पुरुष उसको प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं । इसलिये, हे सासारिक जनो ! तुम सत्सग द्वारा उस अमृतस्वरूप को प्राप्त करो जो तुम्हारा एकमात्र आधार है ॥१४॥

अब परमात्मप्राप्ति के लिए और साधन कथन करते हैं ॥

शी॒र्ष्णःशी॑र्ष्णो॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ स॒मया॒ विश्व॒मा रजः॑ ।
स॒प्त स्वसा॑रः सुवि॒ताय॒ सूर्यं॒ वह॑न्ति ह॒रितो॒ रथे॑ ॥१५॥

पदार्थ—(रथे) योगिजनों के मार्ग में विचरने वाली (हरितः) अन्तःकरण की वृत्तियाँ (सूर्यम्) उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (वहन्ति) प्राप्त करती हैं जो (सुविताय) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके (जगतः, तस्थुषः पतिं) जगम तथा स्थावर का पति है (आ) और जो (रजः, विश्वं) परमाणुओं से लेकर सम्पूर्ण ससार को (समया) अनादि काल से रचता है । उसकी प्राप्ति का हेतु (शीर्ष्णः, शीर्ष्णः,) प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में (स्वसारः सप्त) निरन्तर स्वयं चलने वाली सात इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उस परमात्मा की प्राप्ति का उपाय कथन किया है जो स्थावर तथा जगमरूप इस ब्रह्माण्ड का एकमात्र पति है । उस परमात्मदेव को यहाँ "सूर्य" कथन किया गया है, जो इस भौतिक सूर्य का वाचक नहीं किन्तु उस स्वतःप्रकाश परमात्मा का वाचक है । जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाला है, उसकी प्राप्ति का साधन मस्तिष्क में सप्त इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं अर्थात् दो आँख, दो कान, दो नासिका के छिद्र और एक मुख, इसप्रकार यह सात इन्द्रियों की वृत्तियाँ है । "स्वय सरन्तीति स्वसारः" जो स्वयं गमन करें उनका "स्वसा" कहते हैं । जब यह वृत्तियाँ सदसद्विवेचन करने वाली हो जाती हैं तब उस ज्ञानगम्य परमात्मा की प्राप्ति होती है । अथवा पाच ज्ञानेन्द्रिय छठा मन और सातवीं बुद्धि, इन सातों द्वारा चराचर ब्रह्माण्ड के पति परमात्मा की रचना को ज्ञानगम्य करके मनुष्य उस प्रकाशस्वरूप को प्राप्त होता है, जहाँ "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्" न सूर्य का प्रकाश पहुँच सकता और न चन्द्र तथा तारागण अपना प्रकाश पहुँचा सकते हैं । इस भाव से यहाँ वृत्तियों का वर्णन किया है अर्थात् योगी पुरुषों के अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही उस परमज्योति को प्राप्त कराने में समर्थ होती हैं ॥१५॥

अब उस सर्वद्रष्टा परमात्मा से प्रार्थना करने का प्रकार कथन करते हैं ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं शु॒क्रमु॒च्चर॑त् ।
पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तम् ॥१६॥

पदार्थ (तत्) वह परमात्मा जो (चक्षुः) सर्वद्रष्टा (देवहितं) विद्वानों का हितैषी (शुक्रं) बलवान् (उच्चरत्) सर्वोपरि विराजमान है, उसकी कृपा से हम (जीवेम, शरदः, शतं) सौ वर्ष पर्यन्त प्राणधारण करें, और (पश्येम, शरदः शतं,) सौ वर्ष पर्यन्त उसकी महिमा को देखें अर्थात् उसकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥१६॥

भावार्थ—सर्वप्रकाशक, सर्वहितकारी तथा बलस्वरूप परमात्मा ऐसी कृपा करें कि हम सौ वर्ष जीवित रहें और सौ वर्ष तक उसको देखें । यहाँ "पश्येम" के अर्थ आँखों से देखने के नहीं किन्तु ज्ञान द्वारा साक्षात्कार करने के हैं, जैसा कि "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या" कठ० ३।१२ इस वाक्य में "दृश्यते" के अर्थ बुद्धि से देखने के हैं अथवा उसकी इस रचनारूप महिमा को देखते हुए उसकी महत्ता का अनुभव करके उपासना में प्रवृत्त हों, यह आशय है ॥१६॥

अब यज्ञ में सोमादि सात्त्विक पदार्थों द्वारा देव - विद्वानों का सत्कार कथन करते हैं ॥

काव्ये॑भिरदाभ्या या॑तं वरुण द्यु॒मत् । मि॒त्रश्च॒ सोम॑पीतये ॥१७॥

पदार्थ—(वरुण) हे सर्वपूज्य (मित्र) सर्वप्रिय (अदाभ्या) संयमी (च) तथा (द्युमत्) तेजस्वी विद्वानो ! आप लोग (सोमपीतये) सोमपान करने के लिये (काव्येभिः) यानों द्वारा (आ, यातं) भले प्रकार आयें ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने शिष्टाचार का उपदेश किया है कि हे प्रजाजनो, तुम सर्वपूज्य, विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा वेदोक्त कर्मकर्त्ता विद्वानों को सुशोभित यानों द्वारा सत्कारपूर्वक अपने घर वा यज्ञमण्डप में बुलाओ और सोमादि उत्तमोत्तम पेय तथा खाद्य पदार्थों द्वारा उनका सत्कार करते हुए उनसे सदुपदेश श्रवण करो ॥१७॥

दि॒वो धाम॑भिर्वरुण मि॒त्रश्चा या॑तम॒द्रुहा॑ । पिब॑तं॒ सोम॑मातु॒जी ॥१८॥

पदार्थः—(वरुण, मित्र) हे पूजनीय तथा परमप्रिय विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अद्रुहा) राग द्वेष का त्याग कर (दिवः, धामभिः) ज्ञान से प्रकाशित हुए मार्गों में (आ, यातं) उत्साह पूर्वक आओ (च) और (आतुजी, सोमं) शान्ति प्रदान करने वाले सोमरस को (पिबतं) पीओ ॥१८॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ज्ञान के प्रकाश से सदा तेजस्वी तथा रागद्वेषादि भावों से रहित विद्वान् पुरुषो ! तुम यजमानों से निमन्त्रित हुए उनके पवित्र घरों में आओ और सोमादि सात्त्विक पदार्थों का सेवन करते हुए उनको पवित्र धर्म का उपदेश करो ताकि वह गृहस्थाश्रम के नियमपालन में विचलित न हों ॥१८॥

आ या॑तं मित्रावरुणा जुषा॒णावाहु॑तिं नरा ।
पा॒तं सोम॑मृतावृधा ॥१९॥

पदार्थ—(ऋतावृधा) हे ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, कर्मयज्ञ आदि यज्ञों के बढ़ाने वाले (मित्रावरुणा, नरा) मित्र वरुण विद्वान् लोगो ! तुम (आ, यातं) सत्कारपूर्वक आओ और हमारी इस शान्ति की (आहुतिं) आहुति को (जुषाणौ) सेवन करते हुए (सोमं, पातं) पवित्र सोम का पान करो ॥१९॥

भावार्थ—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे ज्ञानादि यज्ञों के अनुष्ठानी विद्वानो ! तुम सत्कारपूर्वक अपने यजमानों को प्राप्त होओ और सोमपान करते हुए उनके हृदय को शान्तिधाम बनाओ अर्थात् अपने अनुष्ठानरूप ज्ञान से उनको ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ तथा कर्मयज्ञादि वैदिक कर्मों का अनुष्ठानी बनाकर पवित्र करो और शान्ति की आहुति देते हुए ससार भर में शान्ति फैलाओ जो तुम्हारा कर्तव्य है ॥१९॥

यह सप्तम मण्डल में ६६ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य १- १० वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्चीत्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा इस सूक्त में राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

प्रति॑ वां॒ रथं॑ नृपती ज॒रध्यै॑ ह॒विष्म॑ता॒ मन॑सा य॒ज्ञिये॑न ।
यो वां॑ दू॒तो न धि॑ष्ण्यावजी॑ग॒रच्छा॑ सू॒नुर्न पि॒तरा॑ विवक्मि ॥१॥

पदार्थ—(वां) हे अध्यापक वा उपदेशको ! (रथं) तुम्हारे मार्ग को (नृपती) राजा (हविष्मता) हवि वाले (मनसा) मानस (यज्ञियेन) याज्ञिक भावों से (प्रति, जरध्यै) प्रतिदिन स्तुति करें, मैं (वां) तुम लोगों को (दूतः) दूत के (न) समान (यः) जो (विवक्मि) उपदेश करता हूँ उसको (अच्छ) भलीभाँति सुनो (पितरा) पितर लोग (सूनुः) अपने पुत्रों को (न) जिस प्रकार (अजीगः) जगाते हैं इसी प्रकार (धिष्ण्यौ) धारणा वाले तुम लोग उपदेश द्वारा राजाओं को जगाओ ॥१॥

भावार्थ—हे धारणा वाले अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं तुम्हें दूत के समान उपदेश करता हूँ कि जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सुमार्ग में प्रवृत्त होने के लिये सदुपदेश करता है इसी प्रकार तुम लोग भी वेदों के उपदेश द्वारा राजाओं को सन्मार्गगामी बनाओ ताकि वह ऐश्वर्यप्रद यज्ञों से वेदमार्ग का पालन करें अथवा ध्यानयज्ञों से तुम्हारे मार्ग को विस्तृत करें ॥१॥

अब उपदेश का समय कथन करते हैं ॥

अशो॑च्य॒ग्निः स॑मिधा॒नो अ॒स्मे उपो॑ अदृश्र॒न्तम॑सश्चि॒दन्ताः॑ ।
अचे॑ति के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑च्छ्रि॒ये दि॒वो दु॑हि॒तुर्जाय॑मानः ॥२॥

पदार्थ —(**अस्मे**) जब (**पुरस्तात्, श्रिये**) पूर्वदिशा को आश्रयण किये हुए (**दिव , दुहितु., उषस**) द्युलोक से अपनी दुहिता उषा को लेकर (**जायमान:**) उदय होता हुआ (**केतुः**) सूर्य्य (**अचेति**) जान पड़े, और (**तमस , चित, अंता.**) अंधकार का भले प्रकार अत =नाश (**ददृशे, अवृश्रन्**) दीखने लगे तब (**समिधान., अग्निः, अशोचि**) समिधाओं द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करो ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि हे उपदेशको ! अन्धकार के निवृत्त होने पर सूर्योदयकाल में अपने सन्ध्या अग्निहोत्रादि नित्य कर्म करो और राजा तथा प्रजा को भी इसी काल मे उक्त कर्म करने तथा अन्य आवश्यक कर्मों के करने का उपदेश करो, क्योकि उपदेश का यही अत्युत्तम समय है, इस समय सबकी बुद्धि उपदेश ग्रहण करने के लिये उद्यत होती है ॥२॥

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।

पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥३॥

पदार्थ —(**अश्विना**) हे सेनाधीश राजपुरुषो (**वां**) तुम लोग (**नून**) निश्चय करके (**सुहोता**) उत्तम होता बनकर (**स्तोमै**) यज्ञानुष्ठान (**सिषक्ति**) करते हुए शिक्षा प्राप्त करो कि (**नासत्या, विवक्वान्**) तुम कभी असत्य न बोलो (**पूर्वीभि , पथ्याभिः, अर्वाक्**) सनातन मार्गों को अभिमुख करके (**स्वर्विदा, वसुमता**) ऐश्वर्य्य तथा धन प्राप्त होने वाले (**रथेन**) मार्ग मे (**यात**) चलो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा राजपुरुषो को उपदेश करते हैं कि तुम लोग वैदिक यज्ञ करते हुए सत्यवक्ता होकर सदा सनातन सन्मार्गों से चलो जिससे तुम्हारा ऐश्वर्य्य बढ़े और तुम उस ऐश्वर्य्य के स्वामी होकर सत्यपूर्वक प्रजा का पालन करो ॥३॥

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।

आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥४॥

पदार्थ —(**अश्विना**) हे सेनापति तथा न्यायाधीश राजपुरुषो ! (**नून**) निश्चय करके (**वा**) तुम लोग (**अवो**) हमारी रक्षा करने वाले हो, (**युवाकु**) तुम्हारी कामना करते हुए हम लोग (**हुवे**) तुम्हे आवाहन करते है (**यत्**) क्योकि (**वा**) तुम लोग (**माध्वी**) मधुविद्या मे (**सुते**) कुशल हो, इसलिये (**वां**) आप लोग हमको (**वसूयु**) धन से सम्पन्न करो (**स्थविरास**) परिपक्व आयु वाले (**अश्वा**) शीघ्र कार्य्यकर्ता आप लोग (**अस्मे**) हम लोगो को (**आ, वहन्तु**) भले प्रकार शुभ मार्गों मे प्रेरें ताकि (**सुषुता, मधूनि**) संस्कार किये हुए मधुर द्रव्यो का (**पिबाथ**) ग्रहण करके सुखी हो ॥४॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करते है कि हे प्रजाजनो ! तुम उन राजशासनकर्त्ताओ से इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे राजपुरुषो ! आप हमारे नेता बनकर हमे उत्तम मार्गों पर चलायें ताकि हम सब प्रकार की समृद्धि को प्राप्त हो, हम मे कभी रागद्वेष न हो और हम सदा आपकी धर्मपूर्वक आज्ञा का पालन करें, परमात्मा आज्ञा देते है कि तुम दोनो मिलकर चलो, क्योकि जब राजा तथा प्रजा मे प्रेमभाव उत्पन्न होता है तब वह मधुविद्या रसायन विद्या को प्राप्त होते है अर्थात् दोनो का एक लक्ष्य हो जाने से संसार मे कल्याण की वृद्धि होती है ॥४॥

अब ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये शुभ बुद्धि की प्रार्थना करते हैं ॥

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।

विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥

पदार्थ —(**शचीपती**) कर्मों का स्वामी (**देवा**) परमात्मदेव (**शचीभि**) अपनी दिव्य शक्ति द्वारा (**न**) हमको (**शक्त**) सामर्थ्य दे ताकि हम (**ता**) उस (**पुरंधी.**) शुभ बुद्धि को (**आ**) भले प्रकार प्राप्त होकर (**विश्वा , वाजे**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के स्वामी हो, (**अश्विना**) हे परमात्मदेव, (**अविष्ट**) आप से सुरक्षित (**मे**) मुझे (**उ**) विशेषतया (**सातये, वसूयु , कृत**) ऐश्वर्य तथा धनादि की प्राप्ति मे कृतकार्य्य होने के लिये (**प्राची, अमृध्रां**) सरल और हिंसारहित (**धियं**) बुद्धि प्रदान करें ॥५॥

भावार्थ·—इस मन्त्र मे जगत्पिता परमात्मदेव से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप हमारी सब प्रकार से रक्षा करते हुए अपनी दिव्यशक्ति द्वारा हमको सामर्थ्य दें कि हम उस शुभ, सरल तथा निष्कपट बुद्धि को प्राप्त होकर ऐश्वर्य्य तथा सब प्रकार के धनो को सम्पादन करें, या यो कहो कि हे कर्मों के अधिपति परमात्मन् ! आप हमको कर्मानुष्ठान द्वारा ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे हम साधनसम्पन्न होकर उस बुद्धि को प्राप्त हो जो धन तथा ऐश्वर्य्य के देने वाली है अथवा जिसके सम्पादन करने से ऐश्वर्य्य मिलता है ॥५॥

अब मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय की प्रार्थना करते हैं ॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।

आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥६॥

पदार्थ —(**वां, अश्विना**) हे सन्तति तथा ऐश्वर्य्य के दाता परमात्मन् ! (**धीषु, अविष्ट**) कर्मों मे सुरक्षित (**न**) हमको (**प्रजावत्**) प्रजा उत्पन्न करने के लिये (**अह्रय**) अमोघ (**रेत·**) वीर्य्य प्राप्त (**अस्तु**) हो (**आ**) और (**न·**) हमको (**तोके**) हमारे पुत्रो को (**तनये**) उनके पुत्र पौत्रादिको के लिये (**सुरत्नास तूतुजाना**) सुन्दर रत्नो वाला यथेष्ट धन दें ताकि हम (**देववीतिं, गमेम**) विद्वानों की संगति को प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ —हे भगवन ! प्रजा उत्पन्न करने का एकमात्र साधन अमोघ वीर्य्य हमे प्रदान करें ताकि हम इस संसार मे सन्ततिरहित न हो और हमको तथा उत्पन्न हुई सन्तान को धन दें ताकि हम सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सकें ॥६॥

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।

अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥७॥

पदार्थ·—(**वां**) हम लोग (**माध्वी**) संसार मे मधुरता फैलाने वाले (**एष**) इस (**हव्य**) होम को (**सख्ये**) मित्र के सन्मुख (**पूर्वगत्वा, इव**) भेंट के समान (**रात.**) आपको अर्पण करते है जो (**निधि·, हितः**) आरोग्यता का देने वाला है, (**स्य.**) आप इसको (**मानुषीषु, विक्षु**) मनुष्य प्रजाओं मे (**आ, यात**) सर्वत्र विस्तृत करें, (**अस्मे**) हमारी इस भेंट को (**अहेळता**) शान्त (**मनसा**) मन से (**अर्वाक्, अश्नन्ता**) हमारे सन्मुख स्वीकार करें ॥७॥

भावार्थ·—इस मन्त्र मे परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे देव ! जिस प्रकार अपने स्वामी वा मित्र के सन्मुख नैवेद्य रक्खा जाता है, इसी प्रकार हम लोग आहुतिरूप हव्य को जो नीरोगता की निधि तथा मनुष्यमात्र का हितकारक है, आप के सन्मुख रखते हैं, आप कृपा करके इसको स्वीकार करें और सब प्राणिवर्ग मे तुरन्त पहुँचा दें ताकि विकारो से दूषित न हो ॥७॥

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।

न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥८॥

पदार्थ —(**वा**) हे देव तथा मनुष्यो ! (**भुरणा, समाने**) मनुष्यमात्र के लिये समान (**एकस्मिन्, योगे**) एक योग मे (**सप्त, स्रवत**) ज्ञानेन्द्रियो के सात प्रवाह (**रथ , गात्**) उस मार्ग को प्राप्त कराते है (**यें**) जो (**परि**) सब ओर से परिपूर्ण है (**वां**) तुम दोनो के (**धूर्षु**) धुराओं मे लगे हुए (**तरणय.**) युवावस्था को प्राप्त (**देवयुक्ता**) परमात्मा मे युक्त (**सुभ्व**) दृढता वाले (**वायन्ति, न**) थकित न होने वाले उस मार्ग मे (**वहन्ति**) चलाते अर्थात् उस मार्ग को प्राप्त कराते है ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि हे दिव्यशक्तिसम्पन्न विद्वानो तथा साधारण मनुष्यो ! तुम दोनो के लिये परमात्मस्वरूप मे जुड़ना समान है अर्थात् देव, साधारण तथा प्राकृतजन सभी उसको प्राप्त हो सकते हैं , वह एक सबका उपास्यदेव है, उसकी प्राप्ति के लिये बड़े दृढ़ सात साधन हैं जिनके संयम द्वारा पुरुष उस योग को प्राप्त हो सकता है, वह सात साधन इस प्रकार हैं—पांच ज्ञानेन्द्रिय जिनसे जीवात्मा बाह्यजगत् के ज्ञान को उपलब्ध करता अर्थात् संसार की रचना देखकर परमात्मसत्ता का अनुमान करता है, मन से मनन करता और सदसद्विवेचन करने वाली बुद्धि से परमात्मा का निश्चय करता है, इनमे श्रोत्रेन्द्रिय मन तथा बुद्धि, यह तीनो परमात्मप्राप्ति मे अन्तरंगसाधन हैं, इसी अभिप्राय से उपनिषदो मे वर्णन किया है कि "आत्मा वारे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य " वह परमात्मा श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने योग्य है, वेदवाक्यो द्वारा परमात्मविषयक सुनने का नाम "श्रवण", सुने हुए अर्थ को युक्तियो द्वारा मन से विचारने का नाम "मनन" और उस मनन किये हुए को निश्चित बुद्धि द्वारा धारण करने का नाम "निदिध्यासन" है, तीन यह और चार अन्य-यह सातो ही देव का समीपी बनाते हैं जो सब का उपास्य है ॥८॥

अब परमात्मप्राप्ति के अधिकारियों का वर्णन करते हैं ॥

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।

प्र ये बंधुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥९॥

पदार्थ —(**हि**) निश्चय करके (**ये**) जो (**राया**) धन द्वारा (**मघदेय**) हव्यादि पदार्थ (**जुनन्ति**) नियुक्त करते (**असश्चता**) किसी विषय मे आसक्त न होकर (**मघवद्भ्य**) ऋत्विगादिको को (**भूत**) बहुतसा धन दान देते (**ये**) जो (**प्र**) प्रसन्नतापूर्वक (**बधु**) अपने बंधुओं को (**सूनृताभि**) सुन्दर वाणियो द्वारा (**तिरते**) बढ़ाते, और जो (**गव्या**) गौएँ (**मघानि**) धन (**अश्व्या**) घोड़े (**पृञ्चत.**) अर्थियों को देते हैं वह परमात्मप्राप्ति के अधिकारी होते हैं ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो यम नियमादिकों से सम्पन्न अर्थात् किसी विषय में फंसे हुए नहीं, सत्पुरुषों को धनादि पदार्थ देने में उदार, प्रसन्न चित्त से मीठी वाणी बोल कर अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न रखते और सत्यभाषण तथा सत्य का प्रचार करते हैं वह उदार पुरुष परमात्मपद के अधिकारी होते हैं ॥९॥

अब मनुष्य का कर्त्तव्य वर्णन करते हैं ॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थ—(नू) निश्चय करके (मे) मेरे (हव) इस कल्याणदायक वचन को (आ) भले प्रकार (शृणुतं) सुनो (युवाना) हे युवा पुरुषो ! तुम (अश्विनौ) गुरु शिष्य दोनों (इरावत्) हवन युक्त (वर्ति) स्थान को (यासिष्टं) प्राप्त होओ (च) और (सूरीन्) तेजस्वी विद्वानों को (धत्त, रत्नानि) रत्नादि उत्तम पदार्थों को धारण कराओ, ताकि वह (जरत) वृद्धावस्था को प्राप्त (यूय) तुमको (स्वस्तिभिः) मंगलवाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें, और तुम प्रार्थना करो कि (नः) हमको सदा शुभ आशीर्वाद दो ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे युवापुरुषो ! तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य यह है कि तुम गुरुशिष्य दोनों मिलकर यज्ञरूप अग्न्यागारों अथवा कलाकौशलरूप अग्निगृहों में जहां अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रादिकों की विद्या सिखलाई जाती है जाओ और वहां जाकर आध्यात्मिक विद्या के विद्वानों तथा शिल्पविद्याविशारद देवों को प्रसन्न करो अर्थात् उनको विविध प्रकार का धन प्रदान करो ताकि उनकी प्रसन्नता से तुम्हारा सदा के लिये कल्याण हो, और तुम सदा उनसे नम्रभाव से वर्त्तो ताकि वह तुम्हारा शुभचिन्तन करते रहें ॥१०॥

यह सप्तम मण्डल में ६७वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य अष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य १—९ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८, साम्नी त्रिष्टुप् । २, ३, ५, साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।

हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१॥

पदार्थ—(स्वश्वा, अश्विना) हे उत्तम अश्वों वाले राजपुरुषो ! आप (दस्रा) शत्रुओं के नाश करने वाले (शुभ्रा) तेजस्वी (युवाकोः) बलवान् है, (गिर.) हमारी वाणियें आपके लिये (आ) भले प्रकार (जुजुषाणा) सत्कार वाली हों (यात) आप आकर (नः) हमारे यज्ञ को सुशोभित करें (च) और (हव्यानि) यज्ञीय पदार्थों का जो (प्रतिभृता) हविशेष है उसका (वीत) उपभोग करें ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि याज्ञिक लोगो ! तुम अपने न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषों का सन्मान करो, उनको अपने यज्ञों में बुलाओ और मधुरवाणी से उनका सत्कार करते हुए हविशेष से उनको सत्कृत करो ताकि राजा तथा प्रजा में परस्पर प्रेम उत्पन्न होकर देश का कल्याण हो ॥१॥

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।

तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! (नः) हमारे वचनों को (श्रुत) सुनो, (अर्य) हमारे शत्रुओं की (हवनानि) शक्तियों को (तिरः) तिरस्कार करके (मे, हविषः) हमारे यज्ञों की (वीतये) प्राप्ति के लिये (गत) आय, (वां) तुम्हारे (अन्धांसि, मद्यानि) मद करने वाले राजमद (प्र, अस्थुः अरं) भले प्रकार दूर हों ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा परम कर्त्तव्य है कि तुम राजमद त्याग कर प्रजा के धार्मिक यज्ञों में सम्मिलित होओ और धार्मिक प्रजा का विरोधी जो शत्रुदल है उसका सदैव तिरस्कार करते रहो ताकि यज्ञादि धार्मिक कार्यों में विघ्न न हो, अथवा राजा को चाहिये कि वह मादक पदार्थों के अधीन होकर कोई प्रमाद न करे और अपने राजमद को सर्वथा त्याग कर प्रेमभाव से प्रजा के साथ व्यवहार करे, वेदवेत्ता याज्ञिकों को चाहिये कि वह राजपुरुषों को सदैव यह उपदेश करते रहें ॥२॥

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।

अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! (वां) तुम्हारा (रथ) यान (सूर्यावसू) जो सूर्य्य तक वेग वाला (इयानः) गतिशील (मनोजवा.) मन के समान शीघ्रगामी (शतोतिः) अनेक प्रकार की रक्षा के साधनों वाला है वह (रजांसि, तिर) लोक-लोकान्तरों को तिरस्कृत करता हुआ (अस्मभ्य) हमारे यज्ञ को (प्र, इयर्ति) भले प्रकार प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो ! तुम उक्त प्रकार के रथ-यानों वाले राजपुरुषों को अपने यज्ञ में बुलाओ जिनके यान नभोमण्डल में सूर्य्य के साथ स्थिति वाले हों और जिनमें रक्षाविषयक अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लगे हुए हों । यहां रथ के अर्थ पहियों वाले भूमिस्थित रथ के नहीं किन्तु "रमन्ते यस्मिन् स रथः" जिसमें भले प्रकार रमण किया जाय उसका नाम "रथ" है, सो भली भांति रमण आकाश में ही होता है भूमिस्थित रथ में नहीं, और न यह सूर्य्य तक गमन कर सकता है, इत्यादि विशेषणों से यहां विमान का कथन स्पष्ट है ॥३॥

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम् ।

आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४॥

पदार्थः—(वां देवया) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न राजपुरुषो ! तुम्हारा (अय) यह (सोमसुत्) चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर यान (यत्) जब (उ) निश्चय करके (अद्रि, ऊर्ध्व) पर्वतों से ऊंचा जाकर (विवक्ति) बोलता है तब हर्षित हुए (वल्गू, विप्र.) बड़े बड़े विद्वान् पुरुष (आ) सत्कार पूर्वक (युवभ्यां) तुम दोनों को (हव्यैः) यज्ञों में (ववृतीत) वरण करते हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! जब तुम्हारे यान पर्वतों की चोटियों से भी ऊंचे जाकर गर्जते और सुन्दरता में चन्द्रमण्डल का मान मर्दन करते हैं तब ऐश्वर्य्य से सम्पन्न तुम लोगों को अपनी रक्षा के लिये बड़े बड़े विद्वान अपने यज्ञों में आह्वान करते अर्थात ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा का सब पण्डित तथा गुणीजन आश्रय लेते हैं और राजा का कर्तव्य है कि वह गुणीजनों का यथायोग्य सत्कार करे ॥४॥

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।

यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५॥

पदार्थ—(वां) हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! (नु) निश्चय करके (यत्) जब (चित्र, भोजन) विविध प्रकार के अन्न राज्य में (अस्ति) होते हैं तब (वां) तुमको (ओमान) रक्षायुक्त जानकर (नि) निरन्तर सब लोग (प्रिय, सन) प्यार करते हुए (दधते) धारण करते हैं, क्योंकि (य) जो (अत्रये) रक्षा के लिये (महिष्वत) बड़ा होता है (ह) प्रसिद्ध है कि उसी से सब लोग (युयोत) जुड़ते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम अन्न का कोष और विविध प्रकार के धनों को सम्पादन करके पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त होओ, तुम्हारे ऐश्वर्य्य सम्पन्न होने पर सब लोग तुम्हारे शासन में रहते हुए तुम से मेल करेंगे, क्योंकि ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष से सब प्रजाजन मेल रखते तथा प्यार करते हैं, अतएव प्रजापालन करने वाले राजा का मुख्य कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के यत्नों से ऐश्वर्य्य लाभ करे ॥५॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।

अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥६॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! (वां) तुम्हारे (जुरते) उत्साह के (उत) और (च्यवानाय) देशान्तर में गमन के लिये (प्रतीत्य) प्रति दिन (हवि, दे) हवि देते हैं (यत) जिससे (त्यत्) तुम्हारा कल्याण हो, सब प्राणियों को सुख (भूत्) हो और तुम (वर्प, धत्थ) उस नूतन रूप को धारण करो जिससे (इत) प्रजा की (अधि, ऊति) सब ओर से रक्षा हो ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम्हारे याज्ञिक लोग तुम्हारी उन्नति तथा प्रजा के कल्याणार्थ प्रतिदिन यज्ञ करें जिससे तुम्हारा शुभ हो और तुम वैदिक कर्मों द्वारा बलयुक्त होकर शत्रुओं पर चढ़ाई के लिये सदा सन्नद्ध रहो जिससे प्रजा की रक्षा हो ॥६॥

अब राजा के लिये समुद्रयात्रा का वर्णन करते हैं ॥

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।

निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! तुम (त्य) उस (भुज्युम्) भोक्ता सम्राट का (सखाय) मित्रता की दृष्टि से देखो, (दुरेवास) जो एक स्थान में रहने वाले दुःखरूप वास को (जहु) त्यागकर (समद्रे, मध्ये) समुद्र के मध्य में गमन करता (उत) और (य) जो (युवाकु) तुम लोगों को (नि) निरन्तर (ई, अरावा) उत्तम आचरणों की शिक्षा अथवा तुम्हारी रुकावटों को दूर करता हुआ (पर्षत्) तुम्हारी रक्षा करता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा शिक्षा देते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम्हारा और प्रजा का वही सम्राट् सच्चा मित्र हो सकता है जो किसी रुकावट के बिना समुद्र में यात्रा करता हुआ देश-देशान्तरों का परि-भ्रमण करके अपने राज्य को उन्नत करता, अपनी प्रजा तथा राजकीय सैनिक पुरुषों में धार्मिक भावों का सचार करता, और उनके सब दुःख तथा रुकावटों को दूर करके प्रेमपूर्वक वर्तता है । "दुरेवास, जहु" के अर्थ दुरवस्था को छोड़ देने के है । वास्तव में अपनी दुरवस्था को छोड़ने योग्य वही सम्राट् होता है, जो उद्योगी बनकर समुद्रयात्रा करता हुआ नाना प्रकार के धनोपार्जन करके अपनी प्रजा के दुःख दूर करता है । आलसी राजा मित्रता के योग्य नहीं, क्योंकि वह प्रजा को पीड़ित करके धन लेता और बड़े-बड़े कर लगाकर राजकीय व्यवहारों की सिद्धि करता है ॥७॥

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।

यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥८॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे राजपुरुषो ! (**वृकाय**) आदित्य के समान (**चित्, शक्त**) प्रकाशमान ऐश्वर्यसम्पन्न (**जसमानाय**) सत्कर्मों से विभूषित (**श्रुत**) बहुश्रुत (**उत**) और (**शयवे**) विज्ञानी राजा की (**चित् शक्ति**) ऐश्वर्यरूप शक्ति को (**यौ**) तुम लोग (**शचीभिः हूयमाना**) शुभकर्मों तथा प्रतिदिन हवनादि यज्ञों द्वारा बढ़ाओ, और (**अघ्न्यां**) सर्वदा रक्षा करने योग्य गौएँ (**अप**) अपने दुग्धों द्वारा (**अपिन्वतं**) उसके ऐश्वर्य को बढ़ायें (**न, स्तर्यं**) जो बूढ़ा न हो ॥८॥

भावार्थ—"वृणक्ति यः स वृकः" -जो अन्धकार का नाशक हो उसका नाम यहां "वृक" है । परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! अविद्यादि अन्धकार के नाशक, विद्यादि गुणों से सम्पन्न और जो हनन करने योग्य नहीं ऐसी "अघ्न्या सर्वदा रक्षायोग्य गौएँ दुग्ध द्वारा जिसके ऐश्वर्य्य को बढ़ाती अर्थात शरीरों को पुष्ट करती है ऐसे राजा के ऐश्वर्य का आप लोग सत्कर्मों द्वारा बढ़ायें ॥८॥

अब राजा की वृद्धि के लिये प्रजा की प्रार्थना कथन करते हैं ॥

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।

इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

पदार्थः—(**कारु**) सदाचारी (**सुमन्मा**) बुद्धिमान् (**उषसां**) उषाकाल से (**अग्रे**) पहले (**बुधान**) जागने वाला (**एष, स्य**) यह वेदवेत्ता पुरुष (**सूक्तैः**) वेदों के सूक्तों से (**तं**) राजा के अर्थ (**इषा, वर्धत्**) अन्नों द्वारा बढ़ने के लिये प्रार्थना करे (**अघ्न्या पयोभिः**) गौओं के दुग्ध द्वारा परमात्मा बढ़ावे, यह प्रार्थना करे और (**यूयं**) आप लोग (**स्वस्तिभिः**) स्वस्तिवाचक वाणियों से यह प्रार्थना करें कि (**नः**) हमारा (**सदा**) सर्वदा (**पात**) कल्याण हो ॥९॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे वेदवेत्ता पुरुषो ! तुम प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर अपने आचार को पवित्र बनाने का उपाय विचारो और स्वाध्याय करते हुए राजा तथा प्रजा के लिये कल्याण की प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! पुष्कल अन्न वस्त्र तथा दुग्धादि पदार्थों से आप हमारी रक्षा करें । परमात्मा आज्ञा देते हैं कि राजा तथा प्रजा तुम दोनों के ऐसे ही सद्भाव हो जिससे तुम्हारी सदैव वृद्धि हो, और हे वैदिक कर्मों के अनुष्ठानी पुरुषो, तुम सर्वत्र ऐसा ही अनुष्ठान करते रहो ॥९॥

यह सप्तम मण्डल में ६८वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य १-८ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१,४,६,८ निचृत्त्रिष्टुप् । २,७, त्रिष्टुप् । ३ आर्षीस्वराट् त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में परमात्मा राजपुरुषों को सन्मार्ग का उपदेश करते हैं ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।

घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! (**वां रथः**) तुम्हारा रथ (**हिरण्ययः**) जो ज्योति—प्रकाशवाला (**वृषभिः, अश्वैः**) बलवान् घोड़ों वाला (**घृतवर्तनिः**) स्नेह की बत्ती से प्रकाशित (**पविभिः, रुचान**) दृढ़ अस्थियों से बना हुआ (**इषां, वोळ्हा, वाजिनीवान्**) और जो सब प्रकार का ऐश्वर्य्य तथा बलों का देने वाला है उसमें तुम्हारा बैठा हुआ (**नृपतिः**) आत्मारूप राजा (**रोदसी**) अव्याहतगति होकर (**आ, बद्बधानः**) सब ओर से भली भांति विजय करता हुआ (**यातु**) गमन करे ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रथ के रूपकालङ्कार से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा शरीररूपी रथ जिसमें इन्द्रियरूप बलवान् घोड़े जुते हुए हैं, जो दृढ़ अस्थियों से बना हुआ है, जिसमें वीर्यरूप स्नेह से सनी हुई वर्तिका=बत्ती जल रही है, जो सब प्रकार के ऐश्वर्य्य तथा बलों का बढ़ाने वाला है उसमें स्थित आत्मारूप राजा अव्याहतगति—बिना रोक टोक सर्वत्र गमनशील हो अर्थात् तुम लोग पृथिवी और द्युलोक के मध्य में सर्वत्र गमन करो, यह हमारा तुम्हारे लिये आदेश है ॥१॥

स पप्रथानो अभि पंच भूमा त्रिवंधुरो मनसा यातु युक्तः ।

विशो येन गच्छथो देवयंतीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह रथ जो (**पप्रथानः**) विस्तृत (**पंच, भूमा, अभि, युक्तः**) पांच भूतों से बना हुआ, और (**त्रिवंधुरः**) तीन बन्धनों से बंधा हुआ है (**येन**) जिससे (**विशः**) मनुष्य यात्रा करते हुए (**देवयन्तीः, गच्छथः**) दिव्य ज्योति की ओर जाते हैं, (**अश्विना**) हे राजपुरुषो ! (**यामं**) ऐसे दिव्य रथ को (**मनसा, दधाना**) मनसे धारण करते हुए (**कुत्र, चित्**) सर्वत्र (**यातु**) विचरो ॥२॥

भावार्थ—हे राजपुरुषो ! यह शरीररूपी रथ क्षिति, जल, पावक, गगन तथा वायु इन पांच तत्त्वों भूतों से बना हुआ जानो और जिसमें सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों के बन्धन लगे हुए हैं अर्थात् इनसे जगह जगह पर बंधा हुआ है, जिसमें यात्रा करते हुए मनुष्य उस दिव्य ज्योति परमात्मा को प्राप्त होते है जो मनुष्यजीवन का मुख्य उद्देश्य है । परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे संसार के यात्री लोगो ! तुम इस दिव्य रथ को मन से धारण करते हुए सर्वत्र विचरो अर्थात् मन को दमन करते हुए इस रथ में इन्द्रियरूप बड़े बलवान् घोड़े जुते हुए हैं जो मनरूप रासों को दृढ़ता से पकड़े बिना कदापि वशीभूत नहीं हो सकते, इसलिये तुम मनरूप रासों को दृढ़ता से पकड़ो अर्थात् मन की चंचल वृत्तियों को स्थिर करो ताकि यह इन्द्रियरूप घोड़े इस शरीररूपी रथ को विषम मार्ग में ले जाकर किसी गर्त में न गिरायें ॥२॥

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमंतं पिबाथः ।

वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३॥

पदार्थ—(**दस्रा, यशसा**) हे शत्रुओं को दमन करने वाले यशस्वी राज-पुरुषो ! (**वां**) तुम्हारा (**स्वश्वा**) बलिष्ठ घोड़ों वाला (**रथः**) रथ (**मधुमन्तं, निधिं**) मधुररस वाले दर्भों की निधियों को (**पिबाथः**) पान करता हुआ (**वध्वा**) अपने उद्देश्य रूप लक्ष्य में स्थिर (**वर्तनिभ्यां**) गतिशील पहियों से (**वि, बाधते**) सब बाधा—रुकावटों को भले प्रकार दूर करता हुआ (**दिवः अन्तान्**) द्युलोक के अंत तक पहुँच कर (**अर्वाक्, यात**) मेरे सन्मुख आवे ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा इन्द्रिय रूप बलवान घोड़ों वाला रथ जिसका सारथि बुद्धि वर्णन की गई है, जिसमें मनरूप रासें और पवित्र कर्मों वाला जीवात्मा जिसका रथी है, वह अपने सदाचार से देशदेशान्तरों को विजय करके अर्थात् सम्पूर्ण दुराचारों के त्यागपूर्वक अमृत पान करता हुआ धर्म की अन्तिम सीमा पर पहुंच कर मुझे प्राप्त हो ॥३॥

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।

यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

पदार्थ—(**युवोः**) हे युवावस्था को प्राप्त राजपुरुषो, (**सूरः, दुहिता**) शूरवीरों की कन्यायें (**परितक्म्यायां**) वेदियों के स्वयंवरों में (**योषा**) स्त्रियें बनकर तुम्हारी (**श्रियं**) शोभा को (**परि, अवृणीत**) भले प्रकार बढ़ावें, और (**यत्**) जो तुम (**शचीभिः**) अपने शुभकर्मों द्वारा (**देवयन्तं**) क्षात्रधर्मरूप यज्ञ की (**अवथः**) रक्षा करते हो, इसलिये (**वां**) तुमको (**घ्रंसं, ओमना, वयः**) दीप्ति वाला धनादि ऐश्वर्य्य (**परि, गात्**) सब ओर से प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे क्षात्रधर्म को प्राप्त राजपुरुषो ! तुम ब्रह्मचर्य्यादि नियमों का पालन करते हुए युवावस्था को प्राप्त होकर इस सर्वोपरि क्षात्रधर्म का पालन करो जिससे सुरक्षित हुए सब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होते हैं, यदि तुम अपने जीवन से क्षात्रधर्म को उच्च मान कर इस की भले प्रकार रक्षा करोगे तो दिव्यगुणसम्पन्न देवियां तुम्हें स्वयंवरों में वरेंगी और तुम्हें धनरूप ऐश्वर्य्य प्राप्त होगा ॥४॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।

तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे शूरवीर राजपुरुषो (**वां**) तुम (**ह**) निश्चय करके (**अस्मिन्, यज्ञे**) इस यज्ञ में (**नि**) निरन्तर (**शंयो**) सुख को (**वहतं**) प्राप्त होओ (**तेन**) उस यज्ञ से (**नः**) हमको (**उषसः, व्युष्टौ**) प्रातःकाल

उद्बोधन करो, और (य.) जो (रथिरा) रथी -आत्मा रथ से (वस्ते) आच्छादित है (स्य) वह (रथ , युजान) रथ के साथ जडा हुआ (उग्रा) तेजस्वी बनकर (वर्ति , परियाति) तुम्हारे मार्गों को सुगम करे ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा आज्ञा देते है कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम क्षात्रधर्मरूप यज्ञ को भले प्रकार पालन करते हुए सुख को प्राप्त होओ अर्थात् अपने उस रथीरूप आत्मा को जिसका वर्णन पीछे कर आये है, यम नियमादि द्वारा तेजस्वी बनाओ और सब प्रजा को उद्बोधन करो कि वे प्रात उषाकाल मे उठकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें, यदि तुम इस प्रकार संस्कृत आत्मा द्वारा संसार की यात्रा करोगे तो तुम्हारे लिये सब मार्ग सुगम हो जावेंगे जिससे तुम द्युलोक के अन्त तक पहुच कर मुझे प्राप्त होगे ॥५॥

नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम् ।

पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥६॥

पदार्थः— (नरा) हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम (विद्युत) विद्युत् के आकर्षण से आकर्षित हुई (गौरा, इव) पृथिवी के समान (तृषाणा) आकर्षित हुए (अद्य) आज (अस्माक) हमारे (सवना, उप, यात) इस यज्ञ को आकर प्राप्त हो, (हि) क्योंकि (वां) तुमको (पुरुत्रा) कई स्थानो मे (मतिभि , हवन्ते) बुद्धि द्वारा बोधन किया जाता है । (वां) तुम लोग (नि) निश्चय करके (अन्ये) किसी अन्य मार्ग मे (देवयन्त) दीन होकर (मा, यमन) मत चलो ॥६॥

भावार्थ. परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! जिस प्रकार विद्युदादि शक्ति से आकर्षित हुआ पृथिवीमण्डल सूर्य्य की ओर खिचा चला आता है इसी प्रकार तुम लोग क्षात्र धर्म रूपी यज्ञ की ओर आकर्षित होकर आओ, यद्यपि तुम्हारी वासनायें तुम्हे दीन बनाने के लिये दूसरी ओर ले जाती है परन्तु तुम उनसे सर्वथा पृथक् रह कर इस क्षात्रधर्म रूप यज्ञ मे ही दृढ़ रहो, क्योंकि शूरवीर क्षत्रिय ही इस यज्ञ का होता बन सकता है अन्य भीरु तथा कायर पुरुष इस यज्ञ मे आहुति देने का अधिकारी नही ॥६॥

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।

पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥७॥

पदार्थ —(अश्विना) हे शूरवीर राजपुरुषो, (समद्रे, अवविद्ध) समुद्र मे गिरे हुए (युव, भुज्यु) अपने युवा सम्राट को (अस्रिधानै , पतत्रिभि) न डूबने वाले जहाजो (उत) और (अव्यथिभि , दसनाभि , अश्रमै) अपने अनथक शारीरिक परिश्रमो द्वारा (अर्णस.) जलप्रवाहो से (ऊहथु) निकालकर (पारयन्ता)पार करो ॥७॥

भावार्थ - परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम्हारी राज्यस्वरूप श्री का भुज्यु भोक्ता सम्राट् समुद्र मे स्थित है अर्थात् 'समुद्रवन्त्यस्मादाप स समुद्र " - जिसमे भले प्रकार जल भरे हो अथवा जो जलो का धारण करने वाला हो उसको "समुद्र" कहते है इस व्युत्पत्ति से सागर तथा आकाश दोनो अर्थो मे समुद्र शब्द प्रयुक्त होता है जिसके अर्थ ये है कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम्हारे राज्य की श्री जो युवावस्था को प्राप्त अर्थात् चमकती हुई दोनों समुद्रो के मध्य विराजमान है, तुम लोग उसको जल की यात्रा करने वाले जहाजों द्वारा अथवा आकाश की यात्रा करने वाले विमानो द्वारा निकालो ॥७॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थ —(युवाना, अश्विनौ) हे युवावस्था को प्राप्त राजपुरुषो ! (नू) निश्चय करके (मे) मेरे (हव) इस उपदेश को (आ) भली-भांति (शृणुत) सुनो (इरावत्, वर्ति , यासिष्ट) तुम लोग ऐश्वर्य्यशाली देशो के मार्गों को जाओ और वहां (सूरीन्, जरत) शूरवीरो को उपलब्ध करके (रत्नानि, धत्त) रत्नो को धारण करो (च) और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यूय) आप (न) हमको (स्वस्तिभि) कल्याणदायक उपदेशो से (सदा) सर्दैव (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे युवा शूरवीर योद्धाओ ! तुम धनधान्य से पूरित ऐश्वर्य्यशाली देशों की ओर जाओ और वहां के शूरवीरो का विलय करके विविध प्रकार के धनो को लाभ करो, और विजय के साथ ही परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप अपने सदुपदेशो से हमे सदा पवित्र करें ताकि हम से कोई अनिष्ट काम न हो और आप हमारी इस विजय मे सदा सहायक हो ॥८॥

सप्तम मण्डल मे ६९वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य-१-७ वसिष्ठ ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, ३, ४, ६, निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ७ विराट्त्रिष्टुप । धैवत स्वर ॥

अब ज्ञानियों तथा विज्ञानियों द्वारा यज्ञो का सुशोभित होना कथन करते हैं ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।

अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१॥

पदार्थ.—(विश्ववारा, अश्विना) हे वरणीय विद्वज्जनो ! (आगत) आप आकर (न) हमारे यज्ञ को (आ) भले प्रकार सुशोभित करें (वां) तुम्हारे लिये (तत्) उस (पृथिव्या) पृथिवी मे (शुनपृष्ठ) सुखपूर्वक बैठने के लिये (स्थान) स्थान वेदि (अवाचि) बनाई गई है (यत) जो (योनि, न) केवल बैठने को ही नही किन्तु (ध्रुवसे, सेदथु) दृढ़ता मे स्थिर करने वाली है आप लोग (प्र) हर्षपूर्वक (वाजी, अश्व , न) बलवान् अश्व के समान (अस्थात्) शीघ्रता से आयें ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि हे याज्ञिक लोगो! तुम अपने यज्ञो मे ज्ञानी और विज्ञानी दोनो प्रकार के विद्वानो को सत्कारपूर्वक बुलाकर यज्ञवेदि पर बिठाओ और उनसे नाना प्रकार के सदुपदेश ग्रहण करो, क्योंकि यह वेदि केवल बैठने के लिये ही नही किन्तु यज्ञकर्मों की दृढ़ता मे स्थिर कराने वाली है ॥१॥

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२॥

पदार्थ —(सुयुजा, युजान) ज्ञानादि यज्ञो के साथ भली भांति जुड़े हुए याज्ञिक लोगो, (वां) तुम (सा, सुमति) उस उत्तम बुद्धि द्वारा (चनिष्ठा) अनुष्ठानी बनकर (सिषक्ति) इस यज्ञ का सिंचन करो (य) जो (मनुष) मनुष्य का (घर्म) यज्ञ सम्बन्धी स्वेद है वह (दुरोणे) यज्ञगृह मे (अतापि) तपा हुआ (वां) तुम्हारे (समुद्रान् सरित) समुद्र को नदियों के समान तुम्हारी आशाओ को (पिपर्ति) पूर्ण करता है (न, चित् एतग्वा) अन्यथा कभी नही ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे याज्ञिक लोगो ! तुम उत्तम बुद्धि द्वारा अनुष्ठानी बनकर यज्ञ का सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे तप से उत्पन्न हुआ स्वेद मानो सरिताओ का रूप धारण करके तुम्हारे मनोरथ रूपी समुद्र को परिपूर्ण करता है अर्थात् जब तक पुरुष पूर्ण तपस्वी बनकर अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये उद्यत नही होता तब तक उस लक्ष्य की सिद्धि नही होती, इसलिए आप लोग अपने वैदिक लक्ष्यो की पूर्ति तपस्वी बनकर ही कर सकते हो अन्यथा नही ॥२॥

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।

नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥३॥

पदार्थ —(अश्विना) हे ज्ञानी विज्ञानी विद्वानो, (यानि, स्थानानि, दधाथे) जिन जिन स्थानो को आप लोग धारण करते है वह (दिव) द्युलोक सम्बन्धी हो (यह्वीषु, ओषधीषु) चाहे अन्न तथा ओषधियो विषयक हो (विक्षु) चाहे प्रजासम्बन्धी हो (नि) निश्चय करके (पर्वतस्य, मूर्धनि) पर्वतो की चोटियो पर हो, इन सब स्थानो मे (सदता) स्थिर हुए आप (दाशुषे, जनाय) दानी याज्ञिक लोगो के (इष) ऐश्वर्य को (वहन्ता) बढ़ाओ ॥३॥

भावार्थ —ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानो के लिए परमात्मा आज्ञा देते है कि जिन-जिन स्थानो मे प्रजाजन निवास करते है उन स्थानो मे जाकर प्रजा के लिए ऐश्वर्य की वृद्धि करो नानाप्रकार की ओषधियो के तत्त्वो को जानकर उनका प्रजाओ मे प्रचार करो, प्रजाओ को संगठन की नीतिविद्या अथवा उच्च प्रदेशो के ऊपर स्थिर होने के लिए विमानविद्या की शिक्षा दो, विद्याओं को उपलब्ध करते-कराते हुए अपने याज्ञिको का ऐश्वर्य बढ़ाओ ॥३॥

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।

पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥४॥

पदार्थ —(चनिष्ट, देवा) हे योग्य विद्वान् पुरुषो ! (ओषधीषु, अप्सु) ओषधियों तथा जलो मे (ऋषीणा) ऋषियो के तात्पर्य को (यत) जो (अश्नवैथे) जानते हो वह (नि) निश्चय करके हमारे प्रति कहो, क्योंकि आप (योग्य) सब प्रकार से योग्य हो (अस्मे) हमारे लिए (पुरूणि, रत्ना) अनेक प्रकार के रत्न (दधतौ) धारण कराओ, जिनको (अनु, पूर्वाणि, युगानि) पूर्वकालिक सब विद्वानो ने (चख्यथु) कथन किया है ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि हे याज्ञिक लोगो ! तुम उन ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानो से यह प्रार्थना करो कि आप सब प्रकार की विद्याओ मे कुशल हो इसलिए ओषधियो तथा जलीय विद्या सम्बन्धी ऋषियो के अभिप्राय को हमारे

प्रति कहो, और जो प्राचीन रसायन विद्यावेत्ता विद्वानों ने रत्नादि निधियों को निकाला है उनका ज्ञान भी हमें कराओ अर्थात् पदार्थ विद्या के जानने वाले ऋषियों के तात्पर्य को समझाकर हमें निधिपति बनाओ ॥४॥

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।

प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥५॥

पदार्थः—(शुश्रुवांसा, अश्विना) हे सुशिक्षित विद्वानो ! (ऋषीणाम्, पुरूणि, अभि, ब्रह्माणि) ऋषियों सम्बन्धी अनेक वैदिक ज्ञानों को हमारे प्रति (आ) भले प्रकार (चक्षाथे) कथन करो (वां) तुम्हारी (चनिष्ठा, सुमतिः) अनुष्ठानिक उत्तम बुद्धि (अस्मे जनाय) हम लोगों के लिये (अस्तु) शुभ हो, और (वरं, प्रति) हमारे श्रेष्ठ यज्ञस्थान को आप (प्र, यात) गमन करें ॥५ ।

भावार्थ—हे याज्ञिक लोगो ! तुम उन वेदविद्यापारग विद्वानों से यह प्रार्थना करो कि आप उन पूर्वकालिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से उपलब्ध किये ज्ञान का हमें उपदेश करें जिससे हमारी बुद्धि निष्ठायुक्त होकर वेद के गूढ़ भावों को ग्रहण करने योग्य हो, कृपा करके आप हमारे यज्ञीय पवित्र स्थान को सुशोभित करें ताकि हम आपसे वेदविषयक ज्ञान श्रवण करके पवित्र भावों वाले हों ॥५॥

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।

उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥६॥

पदार्थ—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो, (समर्यः) ईश्वर की उपासना-युक्त (हविष्मान्) हविवाला (वां) तुम्हारा (यः) जो (यज्ञः) यज्ञ, जिसमें (कृतब्रह्मा) वेदवेत्ता ब्रह्मा (भवति) बनाया गया है । इस यज्ञ मे (युवभ्यां) तुम्हारे द्वारा (इमा) इन (ब्रह्माणि, ऋच्यन्ते) वेदों का प्रचार (आ) भले प्रकार किया जायेगा इसलिये (वर, वसिष्ठ) अतिश्रेष्ठ इस यज्ञ को (उप, प्रयातं) आप आकर सुशोभित करें ॥६॥

भावार्थ—हे ब्रह्मप्रतिपादक वेद के प्रचारक विद्वानो ! आप इस श्रेष्ठ यज्ञ मे आकर इसकी शोभा को बढ़ावें, जो परमात्मा की उपासना के निमित्त किया गया है, हे आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचारक विज्ञानी देवो ! आप हमको इस पवित्र यज्ञ मे परमात्मविषयक उपदेश करें जो मनुष्यजीवन का एकमात्र लक्ष्य है ॥६॥

अब परमात्मस्तुति का उपदेश करते हैं ॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।

पदार्थः—(वृषणा) हे विद्यादि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानो ! (इयं, मनीषा) यह बुद्धि (इयं, गीः) यह वाणी (इमां, सुवृक्ति) इन परमात्म स्तुतियों को (जुषेथां) आप सेवन करें (युवयूनि) जो तुम से सम्बन्ध रखती हैं और (इमा, ब्रह्माणि) यह ब्रह्मप्रतिपादक स्तोत्र (अग्मन्) तुम्हें प्राप्त हों, और तुम सदैव यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको (यूयं) आप (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (पात) पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम इस वेदवाणी का सदा सेवन करो जो विद्या की वृद्धि द्वारा सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है, और तुम सदैव वेद के उन स्तोत्रों का पाठ करो जिनमे परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना का वर्णन किया गया है जिससे तुम्हारा जीवन पवित्र होकर परमात्म-प्राप्ति के योग्य हो ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य—१-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में ब्राह्ममुहूर्तकाल में उपदेश श्रवण करने का विधान करते हैं ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।

अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१॥

पदार्थः—(अश्वामघा, गोमघा) हे अश्व तथा गोरूप धन सम्पन्न (वां) अध्यापक तथा उपदेशको ! हम आप से (हुवेम) प्रार्थना करते हैं कि आप (दिवा, नक्तं) दिन रात्रि (अस्मत्) हमसे (शरुं) हिंसारूप पाप को (युयोत) दूर करें । (नक्) और जिस समय (कृष्णीः) रात्रि (स्वसुः, उषसः) अपनी उषारूपी पुत्री का (अप, जिहीते) त्याग करके (अरुषाय, पन्थां, रिणक्ति) सूर्य के लिए मार्ग देती है उस समय उपदेश करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम उन ऐश्वर्य्यसम्पन्न अध्यापक तथा उपदेशको से यह प्रार्थना करो कि आप अपने सदुपदेशों द्वारा हमको पवित्र करते हुए हिंसारूप पापपङ्क को हमसे सदैव के लिए छुड़ा कर शुद्ध करें, और हे विद्वानो ! आप हम लोगों को उषाकाल= ब्राह्ममुहूर्त में उपदेश करें जिस समय प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य अपनी नूतन अवस्था को धारण करता और जिस समय पक्षिगण मधुर स्वर से अपने-अपने भावों द्वारा जगन्नियन्ता जगदीश के भावों को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।

युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥२॥

पदार्थ.—(अश्विना) हे विद्वज्जनो ! (रथेन, वामं, उपायातं) अपने आभा वाले शीघ्रगामी यानों द्वारा हमे प्राप्त होकर (मर्त्याय, दाशुषे) हम यजमानों की मनोकामना (वहन्ता) पूर्ण करते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिरां अमीवां) दरिद्रता तथा सब प्रकार के रोगों को (युयुत) पृथक् करो और (माध्वी) हे मधुरभाषी विद्वानो ! (नक्तं, दिवा) रात्रि दिन (नः) हमारी (त्रासीथां) सब ओर से रक्षा करो ॥२॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम उन विद्वानों से यह प्रार्थना करो कि हे भगवन्, आप हमे प्राप्त होकर हमको वह उपाय बतलावें जिससे हमारी दरिद्रता दूर हो, हमारा शरीर नीरोग रहे, हम मधुरभाषी हों और ईर्ष्या-द्वेष से सर्वथा पृथक् रहें अर्थात् अपनी चिकित्सारूप विद्या द्वारा हमको नीरोग करके ऐसे साधन बतलावें जिससे हम रोगी कभी न हों, और पदार्थ विद्या के उपदेश द्वारा हमें कला कौशलरूप ज्ञान का उप-देश करें जिससे हमारी दरिद्रता दूर हो, हम ऐश्वर्यशाली हों और साथ ही हमें आत्म-ज्ञान का भी उपदेश करें जिससे हमारा आत्मा पवित्र भावों में परिणत होकर आपकी आज्ञा का सदैव पालन करने वाला हो ॥२॥

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।

स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥३॥

पदार्थ.—(अश्विना) हे विद्वानो ! आप (ऋतयुग्भिः अश्वैः) दो प्रकार के ज्ञानों से हमको (आ) भले प्रकार (वसुमन्तं, वहेथां) ऐश्वर्यसम्पन्न करें, ताकि हम (सुम्नायवः) सुखपूर्वक (वृषणः वर्तयन्तु) आनन्द को अनुभव कर सकें (वां, रथं) आप अपने रथ = यानों को (अवमस्यां, व्युष्टौ) विघ्न-रहित मार्गों में चलावें, और वह सुन्दर रथ (स्यूमगभस्तिं) ऐश्वर्य की रासों वाले हों ॥३॥

भावार्थ.—इस मन्त्र मे यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मा ! आप हमारे उपदेशकों को ऐश्वर्य की रासों वाले रथ प्रदान करें अर्थात् वह सब प्रकार से सम्पत्तिसम्पन्न हों, दरिद्र न हों ताकि वह हमको ऐहलौकिक तथा पार-लौकिक दोनों प्रकार के सुख का उपदेश करें अर्थात् हम उनसे अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त करके आनन्द अनुभव कर सकें ॥३॥

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।

आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४॥

पदार्थ—(अश्विना) हे सत्यवादी विद्वानो ! (वां) आप (नः) हमको (एना) उस मार्ग द्वारा (उपयात) प्राप्त हों, (यः) जो (विश्वप्स्न्यः) परमात्मा ने (जिगाति) कथन किया है । (नृपती) हे मनुष्यों के पति विद्वानो, (वां) आपका (यत्) जो (रथ) रथ (वोळ्हा, आ) तुम्हे भले प्रकार लाने वाला है, वह (त्रिवन्धुर) तीन बन्धनोंवाला (वसुमान्) ऐश्वर्यवाला, और (उस्रयामा) आकाशमार्ग मे चलनेवाला (अस्तु) हो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे विद्वज्जनो ! आप परमात्मा के कथन किये हुए मार्ग द्वारा हमे प्राप्त हो अर्थात् परमात्मा ने उपदेशकों के लिए जो कर्तव्य कथन किया है उसका आप पालन करें या यों कहो कि आप हमे परमात्मपरायण करके हमारे जीवन को उच्च बनावें और हमें वेदों का उपदेश सुनावें जो परमात्मा ने हमारे लिए प्रदान किया है ॥४॥

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।

निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (युवं) तुम्हारा (जरसः, अमुमुक्तं) जीर्णता से रहित (च्यवानं) ज्ञान (नि) निरन्तर (पेदवे) हमारी रक्षा के लिए हो, और (नि.) निस्सन्देह (अश्वं, आशुं, ऊहथुः) राष्ट्र को शीघ्र प्राप्त करायें (अंहसः तमसः) अज्ञानरूप तम से (अत्रिं) अरक्षित राष्ट्र को (जाहुषं) निकालें और उसके (शिथिरे) शिथिल होने पर (अंतः, धात) आत्मा बनकर धारण करें ॥५ ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आपका जीर्णता से रहित नित नूतन ज्ञान हमारी सब ओर से रक्षा करे और वह पवित्र ज्ञान हमें राष्ट्र = ऐश्वर्य प्राप्त कराये, और आपके ज्ञान द्वारा हम अपने गिरे हुए राष्ट्र को भी पुनर्जीवित करें ॥५॥

अब सब प्रजाजन, अध्यापक तथा उपदेशक मिलकर परमात्मा की इस प्रकार प्रार्थना, उपासना करें ॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(वृषणा) हे विद्यादि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशको, (इयं, मनीषा) यह बुद्धि (इयं, गी.) यह वाणी (इमां, सुवृक्तिं) इन परमात्मस्तुतियों का (जुषेथां) आप सेवन करें, (युवयूनि) जो तुमसे सम्बन्ध रखती हैं, और (इमा, ब्रह्माणि) यह ब्रह्म-प्रतिपादक स्तोत्र (अग्मन्) तुम्हें प्राप्त हों, और तुम सदैव यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको (यूयं) आप (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभि.) स्वस्तिवाचनों से (पात) पवित्र करें ॥

भावार्थ—हे श्रोताजन तथा उपदेशको ! तुम मिलकर वैदिक स्तोत्रों से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करते हुए यह वर मांगो कि हे जगदीश्वर ! हम वेदों के अनुसार अपना आचरण बनावें जिससे हमारा जीवन पवित्र हो ॥६॥

यह सप्तम मण्डल में इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वासप्ततितमस्य सूक्तस्य—१-५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

अब इस सूक्त में यज्ञों का वर्णन करते हुए यजमानों की प्रार्थना कथन करते हैं ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।

अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१॥

पदार्थ—(नासत्या) सत्यवादी अध्यापक तथा उपदेशक, (गोमता) प्रकाशवाले (अश्वावता) शीघ्रगामी (पुरुश्चन्द्रेण) अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करने-वाले (रथेन) रथ - यान द्वारा (आयातं) हमारे यज्ञ में आयें, और (श्रिया तन्वा) सुशोभित शरीर से (शुभाना) शोभा को प्राप्त हुए (वां) उनके (अभि) सब ओर से (स्पार्हया) प्रेमयुक्त (विश्वा) सम्पूर्ण (नियुतः) स्तुतियें (सचते) संगत हों ॥१॥

भावार्थ—हे यजमानो ! आप लोग सदैव मन, वाणी तथा शरीर से ऐसे यत्नवान् हों जिससे तुम्हारे यज्ञों को सत्यवादी विद्वान् आकर सुशोभित करें और आप लोग सब ओर से उनकी स्तुति करते हुए अपने आचरणों को पवित्र बनायें क्योंकि सत्यवादी विद्वानों की संगति से ही पुरुषों में उच्चभाव उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं ॥१॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।

युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥२॥

पदार्थ—(देवेभि) दिव्यशक्तिसम्पन्न (नासत्या) सत्यवादी विद्वान् (रथेन) यानद्वारा (न) हमको (आ) भले प्रकार (उपयात) प्राप्त हों (उत) और (अर्वाक्, सजोषसा) अपनी दिव्यवाणी से (न.) हमें (तस्य, वित्त) उस ज्ञानरूप धन को प्रदान करें (हि) निश्चय करके (युवो) तुम्हारी (सख्या) मैत्री (पित्र्याणि, बन्धु) पिता तथा बन्धु के (समान) समान हो ॥२॥

भावार्थ—हे यजमानो ! तुम सत्यवादी विद्वानों का भले प्रकार सत्कार करो और उनको पिता तथा बन्धु की भांति मान कर उनसे ब्रह्मविद्यारूप धन का लाभ करो जो तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है अर्थात् तुम उन अध्यापक तथा उपदेशकों की सेवा में प्रेमपूर्वक प्रवृत्त रहो, जिससे वह प्रसन्न हुए तुम्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें ॥२॥

अब उन सत्यवादी विद्वानों का उपदेश करते कथन हैं ॥

उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।

आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥३॥

पदार्थ—(अश्विनो) अध्यापक तथा उपदेशक (अबुध्रन्) बोधन करते हैं कि (जामि) हे सम्बन्धिजनो ! तुम लोग (उषस) उषाकाल में (ब्रह्माणि, देवी) वेद की दिव्यवाणी का (आविवासन्) अभ्यास करो (उत्) और (इमे) इन (स्तोमास) वेद के स्तोत्रों को (अच्छ) भली-भांति (रोदसी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य (धिष्ण्ये) फैलाओ (च) और (विप्र) मेधावी पुरुष (नासत्या विवक्ति) सत्यवादी विद्वानों को उपदेश करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वज्जनो ! तुम लोग ब्राह्म-मुहूर्त में वेद की पवित्र वाणी का अभ्यास करते हुए वैदिक स्तोत्रों का उच्चस्वर से पाठ करो और वेद के ज्ञाता पुरुषों को उचित है कि वह विद्वानों को इस वेदवाणी का उपदेश करें ताकि अज्ञान का नाश होकर ज्ञान की वृद्धि हो ॥३॥

अब अध्यापक तथा उपदेशकों के लिये उपदेश का काल कथन करते हैं ॥

वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥४॥

पदार्थः—(अश्विनौ) हे अध्यापक तथा उपदेशको (चेत्) जब (वि) विशेषतया (सविता, देव.) परमात्मदेव (भानुं) सूर्य्य को (ऊर्ध्वं, अश्रेत्) ऊपर को आश्रय = उदय करता (उच्छन्ति, उषसः) जब उषाकाल का विकाश होता, जब (बृहत्, अग्नय·) बड़ी अग्नि (समिधा, जरते) समिधाओं द्वारा प्रज्व-लित की जाती, और जब (कारव) स्तोता लोग (ब्रह्माणि) वेद को (प्र, भरन्ते) भले प्रकार धारण करते हैं, उस काल में (वां) आप लोग ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मदेव उपदेश करते हैं कि हे विद्वान् उप-देशको ! आपका कर्तव्य यह है कि आप प्रातः सूर्य्योदयकाल में जब प्रजाजन अग्नि-होत्र करते तथा स्तोता लोग वेद का पाठ करते हैं उस काल में अज्ञान का मार्जन करके जिज्ञासुओं को सत्योपदेश करो जिससे वह विद्याध्ययन तथा वेदोक्त कर्तव्यपालन में सदा तत्पर रहें, इस मन्त्र में परमात्मा ने ब्रह्मविद्याध्ययन का सूर्योदय काल ही बतलाया है अर्थात् यह उपदेश किया है कि प्रजाजन उषाकाल में निद्रा से निवृत्त होकर शरीर को शुद्ध करके सन्ध्या अग्निहोत्र के पश्चात् ब्रह्मविद्या के अध्ययन तथा उपदेशश्रवण में तत्पर हों ॥४॥

अब विद्वान् उपदेशकों द्वारा मनुष्यमात्र का कल्याण कथन करते हैं ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।

आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो ! तुम लोग (आ, पश्चातात्) भले प्रकार पश्चिम दिशा से (आ, पुरस्तात्) पूर्वदिशा से (अधरात्) नीचे की ओर से (उदक्तात्) ऊपर की ओर से (आ, विश्वत) सब ओर से (पाञ्च-जन्येन) पांचों प्रकार के मनुष्यों का (राया) ऐश्वर्य्य बढ़ाओ, और (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! आप लोग पांचों प्रकार के मनुष्यों को (आ) भले प्रकार (यातं) प्राप्त होकर सब यह प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् ! (यूयं) आप (सदा) सदा (स्वस्तिभि) मंगलरूप वाणियों द्वारा (न) हमारे ऐश्वर्य्य को (पात) रक्षा करें ॥५॥

भावार्थ—मन्त्र में जो "पञ्चजना" पद आया है वह वैदिक सिद्धान्तानुसार पांच प्रकार के मनुष्यों को वर्णन करता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवें दस्यु जिनको निषाद भी कहते हैं, वास्तव में वर्ण चार ही हैं परन्तु मनुष्यमात्र का कल्याण अभिप्रेत होने के कारण पांचवें दस्युओं को भी सम्मिलित करके परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे सत्यवादी विद्वानो ! आप लोग सब ओर से मनुष्यमात्र को प्राप्त होकर वैदिक धर्म का उपदेश करो जिससे सब प्रजाजन सुकर्मों में प्रवृत्त होकर ऐश्वर्य्यशाली हों ॥५॥

यह सप्तम मण्डल में बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य—१—५ वसिष्ठ ऋषि । अश्विनौ देवते ॥ छन्द.—१, ५ विराट्त्रिष्टुप् । २—४ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानों से याज्ञिक बनने के लिए प्रार्थना कथन करते हैं ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।

पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानो ! आप लोग हमको (अस्य) इस संसार के (तमस·, पार) अज्ञानरूप तम से पार को (अतारिष्म) तरायें, (प्रति, स्तोमं, देवयंत·) इस ब्रह्मयज्ञ की कामना करते हुए हम लोग (दधानाः) उत्तम गुणों को धारण करें, (गीः) हमारी वाणी पवित्र हो, और हम (पुरुदंसा) कर्मकाण्डी, (पुरुतमा) उत्तम गुणों वाले, (पुराजा) प्राचीन, और (अमर्त्या) मृत्युराहित्यादि सद्गुणों को धारण करते हुए (हवते) यज्ञकर्म में प्रवृत्त रहें ॥१॥

भावार्थः—हे यजमानो ! तुम लोग यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानों से याज्ञिक बनने के लिये जिज्ञासा करो और उनसे यह प्रार्थना करो कि आप हमको याज्ञिक बनायें जिससे हम इस अविद्यारूप अज्ञान से निवृत्त होकर

ज्ञानमार्ग पर चलें, हम उत्तम गुणों के धारण करने वाले हों और अन्ततः हमको मुक्ति प्राप्त हो, क्योंकि यज्ञ ही मुक्ति का साधन है और याज्ञिक पुरुष ही चिरायु होकर अमृत पद को प्राप्त होते हैं, या यों कहो कि जो पुरुष कर्म तथा ज्ञान दोनों साधनो से जिज्ञासा करता है वही अमृत रूप पद का अधिकारी होता है, इसलिये मुक्ति की इच्छावाले पुरुषो को सदा ही यज्ञ का अनुष्ठान करना श्रेयस्कर है ॥१॥

न्यु॑ प्रि॒यो मनु॑षः सादि॒ होता॒ नास॑त्या॒ यो यज॑ते॒ वंद॑ते च ।

अ॒श्नी॒तं मध्वो॑ अश्विना उपा॒क आ वां॑ वोचे वि॒दथे॑षु॒ प्रय॑स्वान् ॥२॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो ! (यः) जो (होता) जिज्ञासु (यजते) यज्ञ करता (च) और (वदते) वन्दना करता है वह (प्रियः) परमात्मा का प्रिय (मनुषः) पुरुष (नि, सादि) उसी में स्थित होकर (अश्नीत, मध्वः) मधुविद्या का रस पान करता अर्थात् मधुविद्या का जानने वाला होता है । (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! वह पुरुष (विदथेषु) यज्ञो में (प्रयस्वान्) अन्नादि पदार्थों का पान करके (वां) तुम्हारा (वोचे) आह्वान करता (आ) और (उपाके) तुम्हारे समीप स्थिर होकर ब्रह्मविद्या का लाभ करता है ॥२॥

भावार्थ.—जो पुरुष यज्ञादि कर्म करता हुआ परमात्मा की उपासना मे प्रवृत्त रहता है वह परमात्मा का प्रिय पुरुष परमात्माज्ञापालन करता हुआ मधुविद्या का रस पान करने वाला होता है। मधुविद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन "बृहदारण्यकोपनिषद्" मे किया गया है, विशेष जानने वाले वहां देख लें, यहां विस्तारभय से उद्धृत नही किया। वही पुरुष ऐश्वर्य्यशाली होकर यज्ञो मे दान देने वाला होता, वही विद्वानों का सत्कार करने वाला होता और वही ब्रह्मविद्या का अधिकारी होता है, इससे सिद्ध है कि याज्ञिक पुरुष ही ब्रह्म का समीपी होता है अन्य नहीं ॥२॥

अब परमात्मा यज्ञकर्त्ता पुरुष को वेदाध्ययन का विधान करते हैं ॥

अहे॑म य॒ज्ञं प॒थामु॑रा॒णा इ॒मां सु॑वृ॒क्तिं वृ॑षणा जुषेथाम् ।

श्रु॒ष्टी॒वेव॒ प्रेषि॑तो वामबोधि॒ प्रति॒ स्तोमै॒र्जर॑माणो॒ वसि॑ष्ठः ॥३॥

पदार्थ —(उराणा) हे वेदवाणियो के वक्ता याज्ञिक लोगो तुम (इमां, सुवृक्ति) इस सुन्दर वाणी को (जुषेथां) सेवन करते हुए (यज्ञ, पथां, अहेम) यज्ञ के मार्ग को बढ़ाओ, और (वसिष्ठः) सर्वोत्तम गुणो वाला (श्रुष्टीवेव, प्रेषितो) सर्वत्र व्यापक और (वृषणा) सब कामनाओ को पूर्ण करने वाला परमात्मा (स्तोमैः, जरमाण) जो वेदवाणियो द्वारा वर्णन किया जाता है वह (वां, प्रति) तुम्हारे प्रति (अबोधि) बोधन करे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव स्पष्ट है अर्थात् यज्ञनिधि परमात्मा याज्ञिक लोगो को उपदेश करते हैं कि तुम लोग वेदो का अध्ययन करते हुए यज्ञ की वृद्धि करो अर्थात् यज्ञ के सूक्ष्मांशों को वेद के अभ्यास द्वारा जानकर यज्ञविषयक उन्नति में प्रवृत्त होओ, और सर्वगुणसम्पन्न तथा सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले परमात्मा की उपासना करते हुए प्रार्थना करो कि वह हमारी इस कामना को पूर्ण करे ॥३॥

अब दुष्टों से रक्षार्थ उपदेश करते हैं ॥

उप॒ त्या वह्नी॑ गमतो॒ विशं॑ नो रक्षो॒हणा॒ संभृ॑ता वी॒ळुपा॑णी ।

समन्धां॑स्यग्मत मत्स॒राणि॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा गतं॑ शि॒वेन॑ ॥४॥

पदार्थ —(रक्षोहणा) हे राक्षसों के हन्ता (वीळुपाणी) दृढ़ भुजाओ वाले विद्वानो ! (त्या) आप लोग (संभृता) उत्तम गुण सम्पन्न (नः) हमारी (विशं) प्रजा को (गमत) प्राप्त होकर (वह्नी) प्रज्वलित अग्नि मे (उप) भले प्रकार (अन्धांसि, अग्मत) उत्तमोत्तम हवि प्रदान करते हुए (मा, मत्सराणि) मदकारक द्रव्यों से हमारी रक्षा करें (नः) हमारी (स, मर्धिष्ट) किसी प्रकार की हिंसा न करें (शिवेन) कल्याणरूप से (आगतं) हम को सदा प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थ —हे शूरवीर विद्वानो, आप लोग धार्मिक प्रजा को प्राप्त होकर उत्तमोत्तम पदार्थों से नित्य यज्ञ कराओ, प्रजा को सदाचारी बनाओ, मदकारक द्रव्यों से उन्हें बचाओ, उन में अहिंसा का उपदेश करो और दुष्ट राक्षसों से सदा उनकी रक्षा करते रहो जिससे उनके यज्ञादि कर्मों में विघ्न न हो अर्थात् आप लोग प्रजा को सदा ही कल्याणरूप से प्राप्त हों ॥४॥

अब परमात्मा सम्मिलरूप से उन्नति करने का उपदेश करते हैं ॥

आ प॒श्चाता॑न्नास॒त्या पु॒रस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् ।

आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम लोग (आ, पश्चातात्) भले प्रकार पश्चिम दिशा से (आ, पुरस्तात्) पूर्वदिशा से (अधरात्) नीचे की ओर से (उदक्तात्) ऊपर की ओर से (आ, विश्वतः) सब ओर से (पाञ्चजन्येन) पांचों प्रकार के मनुष्यो का (राया) ऐश्वर्य्य बढ़ाओ और (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! आप लोग पांचों प्रकार के मनुष्यो को (आ) भले प्रकार (यात) प्राप्त होकर सब प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! (यूयं) आप (सदा) सदा (स्वस्तिभि) मंगलरूप वाणियो द्वारा (नः) हमको (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ.—मन्त्र में "पञ्चजना" शब्द से ब्राह्मणादि चारों वर्ण और पांचवें दस्युओ से तात्पर्य है, जैसा कि पीछे लिख आये हैं। परमात्मा आज्ञा देते हैं कि अध्यापक तथा उपदेशको ! आप लोग सब ओर से सम्पूर्ण प्रजा को प्राप्त होकर अपने उपदेशों द्वारा मनुष्य मात्र की रक्षा करो, और सब यजमान मिलकर कल्याणरूप वेदवाणियों से यह प्रार्थना करो कि हमारे उपदेशक हमको अपने सदुपदेशो से सदा पवित्र करें ॥५॥

सप्तम मण्डल में तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ३ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती ॥ मध्यमः स्वरः ॥

अब परमात्मा विद्युत् तथा अग्निविद्यावेत्ता उपदेशकों
का सर्वत्र प्रचार करना कथन करते हैं ॥

इ॒मा उ॑ वां॒ दिवि॑ष्टय उ॒स्रा ह॑वन्ते अश्विना ।

अ॒यं वा॑म॒ह्वेऽव॑से शचीवसू॒ विशं॑विशं॒ हि गच्छ॑थः ॥१॥

पदार्थः—(शचीवसू) विद्युत् तथा अग्निविद्या मे कुशल (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशको (दिविष्टय) स्वर्ग की कामना वाले (उस्रा) यजमान (वां) तुम्हारा (हवन्ते) आवाहन करते हैं, तुम (इमाः) इस विद्या का (वां) उनको उपदेश करो (उ) और (हि) निश्चय करके (गच्छथः) गमन करते हुए (विशं विशं) प्रत्येक प्रजा को विद्वान् बनाओ जिससे (अयं) यह (अवसे) अपनी रक्षा करें, और (अह्वे) तुम्हारा आवाहन करते रहें ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम सुख की इच्छा वाले यजमानों को प्राप्त होकर उनको विद्युत् तथा अग्निविद्या का उपदेश करो जिससे वह कला कौशल बनाने मे प्रवीण हों और प्रत्येक स्थान मे घूम-घूम कर प्रजाजनों को इस विद्या का उपदेश करो जिससे वह कलायन्त्र बनाकर ऐश्वर्य्यशाली हों वा यों कहो कि प्रजाजनों में विज्ञान और ऐश्वर्य्य का उपदेश करो जिससे उनके शुभ मनोरथ पूर्ण हो ॥१॥

यु॒वं चि॒त्रं द॑दथु॒र्भोज॑नं नरा॒ चोदे॑थां सू॒नृता॑वते ।

अ॒र्वाग्रथं॒ सम॑नसा॒ नि य॑च्छतं॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॑ ॥२॥

पदार्थ —(युवं) हे विद्वानो ! तुम (चित्र, भोजन) नाना प्रकार के भोजन (ददथु.) धारण=भक्षण करो (नरा) सब प्रजाजन (सूनृतावते) सुन्दर स्तोत्रो मे (चोदेथां) तुम्हे प्रेरित करें, ताकि तुम (अर्वाक्, रथं) उनके सन्मुख उत्तम वेदवाणियो को (समनसा) अच्छे भावों से (नियच्छत) प्रयोग करते हुए (सोम्य) सुन्दर (मधु, पिबत) मीठे रसों का पान करो ॥२॥

भावार्थ —हे यजमानो ! तुम विद्वान् उपदेशकों को नाना प्रकार के भोजन और मीठे रसो का पान कराके प्रसन्न करो ताकि वह वेदवाणियों का तुम्हारे प्रति उपदेश करें और वह तुम्हारे सन्मुख मानस यज्ञो द्वारा अनुष्ठान करके तुम्हें शान्ति का मार्ग बतलायें जिससे तुम लोग परस्पर एक दूसरे की उन्नति करते हुए प्रजा मे धर्म का प्रचार करो ॥२॥

अब जलविद्या को जानने वाले उपदेशकों का सत्कार कथन करते हैं ॥

आ या॑तमुप॑ भूषतं॒ मध्वः॑ पिबतमश्विना ।

दु॒ग्धं पयो॑ वृषणा जेन्यावसू॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तम् ॥३॥

पदार्थ —(अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (आयातं) आप हमारे यज्ञ को आकर (उप, भूषतं) भले प्रकार सुशोभित करें (आगतं) शीघ्र आयें (मध्व, पिबतं) मधुरस का पान करें (जेन्यावसू) हे धनो के जय करने वाले आप (वृषणा) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं (पयः, दुग्धं) वृष्टि द्वारा दुहे हुए (नः) हमारे ऐश्वर्य्य को (मर्धिष्ट, मा) हनन मत करो ॥३॥

भावार्थ.—हे जलविद्या के जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशक ! आप शीघ्र आकर हमारे यज्ञ को सुशोभित करें अर्थात् हमारे यज्ञ मे पधार कर हमें जलों की विद्या में निपुण करें ताकि हम अपने ऐश्वर्य को बढ़ावें, हम आप का मधु आदि

उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार करते हैं, आप सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले धन के स्वामी हैं। कृपा करके हमारे उपार्जन किये हुए धन का नाश न करें किन्तु हमारी वृद्धि करें जिससे हम यज्ञादि धर्मकार्यों में प्रवृत्त रहें ॥३॥

अध्वासो ये वाज्युर्व द्रुह्ववो यह युवा दीयंति विभ्रतः ।

मक्षुभिर्नरा हर्येभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥४॥

पदार्थ —(देवा) हे दिव्यगुणसम्पन्न (अश्विना) विद्वानो (युवां) आप (अस्मयू) हमारे यज्ञ में (आयातं) आवें (नरा) हे अध्यापक तथा उपदेशको (वां) आप लोग (मक्षुभि) शीघ्रगामी (हर्येभिः) घोड़ो द्वारा (उप) आकर (वाजुय, गृहं, दीयति) यजमानों के घरों को दीप्तिमान करें (ये) जो (अध्वास) कर्मकाण्डी और (विभ्रत) गृहस्थधर्मों के धारण करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा आज्ञा देते हैं कि कर्मकाण्डी तथा वेदानुयायी सद्गृहस्थ यजमानो को चाहिये कि वह विद्वान् उपदेशकों को अपने गृह में बुलाकर उनकी खान-पानादि से भले प्रकार सेवा करके उनसे नर, नारी सदुपदेश ग्रहण करके अपने जीवन को पवित्र करें और उन विद्युदादिविद्यावेत्ता विद्वानो से शीघ्र गति वाले यानादि की शिक्षा प्राप्त करके ऐश्वर्यसम्पन्न हो ॥४॥

अब विद्वानों से यश और ऐश्वर्य्य ग्रहण करने का उपदेश कथन करते हैं ॥

अधा ह यंतो अश्विना पृक्षः सचंत सूरयः ।

ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥५॥

पदार्थ — (नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो ! आप (अस्मभ्य) हम लोगो को (यश., छर्दिः) यश उत्पन्न करने वाले स्थान दें (मघवद्भ्य) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न विद्वानो ! हमें आप की कृपा से (पृक्ष , सचत.) अन्नादि ऐश्वर्य्य प्राप्त हो और (ता) आप हम (ध्रुव) दृढ़ता प्रदान करें ताकि हम (सूरय) शूरवीर बनकर (सचत) आप लोगो की सेवा में तत्पर रहें (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको आप (अध, यत) हमको प्राप्त होकर सदुपदेश करें, (ह) यहां प्रसिद्धार्थ का वाचक है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यश तथा ऐश्वर्य की कामना वाले यजमानो ! तुम विद्वान् उपदेशकों को प्राप्त होकर उनसे सदुपदेश ग्रहण करते हुए यशस्वी और ऐश्वर्य्यशाली होओ, और अपने व्रत में दृढ़ रहो अर्थात् ऐश्वर्य्यसम्पन्न होने पर भी अपने व्रत से कदापि विचलित न हो ॥५॥

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।

उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नरउत क्षियंति सुक्षितिम् ॥६॥

पदार्थ —(ये) जो यजमान (अवृकास) कुटिलताओं को छोड़कर (प्रयय) वेदमार्ग को प्राप्त होते हैं वह (नृपातार , रथा इव) राजाओं के रथ समान सुशोभित होते (उत) और (जनानां) प्रजाओं का (स्वेन) अपने (शवसा) यश से (शूशुवुः) सुशोभित करते हैं (उत) और (नरा) वही मनुष्य (सुक्षितिं, क्षियति) उत्तम भूमि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ —जो यजमान वेदमर्यादा पर चलते हुए अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे विजयप्राप्त राजाओं के रथ के समान सुशोभित होते हैं अर्थात् जब राजा विजयी होकर अपने देश को आता है उसी समय उसकी प्रजा उसका मान हार्दिक भावों से करती है, इसी प्रकार प्रजा उन नरों का सत्कार अपने हार्दिक भावों से करती है जो विद्वानों से उत्तम शिक्षा प्राप्त करके तदनुकूल अपने आचरण करते हैं, वही अपने यश से सुशोभित होकर प्रजा को सुशोभित करते और वही उत्तम भूमि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ अष्टर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १-८ वसिष्ठ ऋषि ॥ उषा देवता ॥ छन्द -१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्ची त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वरः ॥

अब परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उषा =ब्राह्ममुहूर्त काल में ब्रह्मोपासना का विधान कथन करते हैं ॥

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।

अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमंगिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१॥

पदार्थ—(उषाः) उषा=ब्राह्ममुहूर्त काल के सूर्य्य का विकास (दिविजा) अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता हुआ (ऋतेन) अपने तेज से (आविष्कृण्वाना) प्रकट होकर (महिमानम्, आ आगात्) परमात्मा की महिमा को दिखलाता, और (वि) विशेषतया (तम) अंधकार को (अपद्रुहः) दूर करता हुआ (आवः) प्रकाशित होकर (अंगिरस्तमा) मनुष्यो के आलस्य को निवृत्त करके (अजुष्टं) परमात्मा के साथ जोड़ता हुआ (पथ्या, अजीगः) पथ्य=शुभ मार्ग का प्रेरक होता है ॥१॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश किया है कि हे सांसारिक जनो ! सूर्य द्वारा परमात्मा की महिमा का अनुभव करते हुए उनके साथ अपने आपको जोड़ो अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त काल में जब सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता हुआ अपने तेज से उदय होता है उस काल में मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह आलस्य को त्याग कर परमात्मा की महिमा को अनुभव करते हुए ऋत - सत्य के आश्रित हो, उस महान् प्रभु की उपासना में संलग्न हों और याज्ञिक लोग उसी काल में यज्ञों द्वारा परमात्मा का आह्वान करें अर्थात् मनुष्य मात्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें जिससे सब प्राणी परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करें, यह परमात्मा का उच्च आदेश है ॥१॥

अब परमात्मा उषा काल में सौभाग्य प्राप्ति तथा धन-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का उपदेश करते हैं ॥

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यंधि ।

चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२॥

पदार्थ —(उषः) ब्रह्ममुहूर्त में (बोधि) उठकर (सुविताय) अपने सुख के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् (महे) आप अपनी महत्ता से (अद्य) आज=सम्प्रति (न) हमको (महे, सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिये (प्रयंधि) प्राप्त होकर (चित्र , यशस, धेहि) नाना प्रकार का धन और यश दें (देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् (मर्तेषु) इस मनुष्य लोक में (अस्मे) हमें (मानुषि) मनुष्यों के कर्मों में प्रवृत्त करें और हम (श्रवस्यु) पुत्र पौत्रादि परिवार से युक्त हों ॥२॥

भावार्थ - परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम प्रातःकाल में उठकर अपने सौभाग्य के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् ! इस मनुष्यलोक में आप हमें नाना प्रकार का धन, यश, बल, तेज प्रदान करें, हमें पुत्र पौत्रादि परिवार दें और हमको अपनी महत्ता से उच्च कर्मों वाला बनायें ॥२॥

अब उषाकाल में जागृति वाले पुरुष के लिये फल कथन करते हैं ॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।

जनयंतो दैव्यानि व्रतान्यापृणंतो अंतरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

पदार्थ —(उषसः) प्रातःकाल की उषा के (चित्राः) जो चित्र (दर्शतायाः) दृष्टिगत होते हैं (एते, त्ये) वे सब (भानव) सूर्य की रश्मियों द्वारा (अमृतास) अमृतभाव को (आ, अगु) भले प्रकार प्राप्त होते हैं, और (दैव्यानि) दिव्य भावों को (जनयत) उत्पन्न करते हुए (अंतरिक्षा, वि, अस्थु) एक ही अन्तरिक्ष में बहुत प्रकार से स्थिर होकर (व्रतानि, आपृणत) व्रतों को धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ— "उषा" सूर्य की रश्मियों का एक पुञ्ज है। जब वह रश्मियें इकट्ठी होकर पृथिवीतल पर पड़ती हैं तब एक प्रकार का अमृत भाव उत्पन्न करती हुई कई प्रकार के व्रत धारण कराती हैं अर्थात् नियमपूर्वक सन्ध्या करने वाले उषाकाल में सन्ध्या के व्रत को और नियम से हवन करने वाले हवन व्रत को धारण करते हैं, इसी प्रकार सूर्योदय होने पर प्रजाजन नाना प्रकार के व्रत धारण करके अमृत भाव को प्राप्त होते हैं। अतएव मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रातः उषाकाल में अपने व्रतों को पूर्ण करे, व्रतों का पूर्ण करना ही अमृतभाव को प्राप्त होना है ॥३॥

अब उषा को रूपकालंकार से वर्णन करते हैं ॥

एषा स्या युजाना पराकात्पंच क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।

अभिपश्यंती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

पदार्थ —(एषा) यह उषा (जनानां) मनुष्यों को (वयुना) प्राप्त होकर (अभिपश्यन्ती) भले प्रकार देखती हुई (दिवः, दुहिता) द्युलोक की कन्या और (भुवनस्य, पत्नी) संसार की पत्नी रूप है। (स्या) वह उषा (युजाना, स्या) योग को प्राप्त होती हुई (पराकात्) दूर देश से (पंच, क्षितीः) पृथिवीस्थ पाँच प्रकार के मनुष्यों को (परि सद्य.) सदा के लिये (जिगाति) जागृति उत्पन्न करती है ॥४॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में उषा को द्युलोक की कन्या और संसार की पत्नी-स्थानीय माना गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि इसको द्युलोक से उत्पन्न होने के कारण "कन्या" और पृथिवीलोक पर आकर सर्वभोग्या=सब के भोगने योग्य होने से "पत्नी" कथन की गई है। उषा में पत्नीभाव का आरोप करने से तात्पर्य यह है कि यह प्रतिदिन प्रातःकाल सब संसारी जनों को उद्बोधन करती है कि

वा नाश को प्राप्त हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के प्रकाशरूप गुण का उस से कदापि वियोग नही होता अर्थात् परमात्मा के गुण विकारी नहीं, यह इस मन्त्र का भाव है ॥३॥

अब ब्रह्मवेत्ता विद्वानों का कर्तव्य कथन करते हैं ॥

तइद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।

गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥४॥

पदार्थः—(देवानां, सधमादे) विद्वानों के समुदायरूप यज्ञ मे (ते, इत्) वह ही (ऋतावानः) सत्यवादी (कवयः) कवि (पूर्व्यासः) प्राचीन (आसन्) माने जाते थे जो (गूळ्हं) गहन ज्योतिप्रकाश परमात्मा को (अनु, अविन्दन्) भले प्रकार जानते थे, (सत्यमन्त्राः) वह सत्य का उपदेश करने वाले (पितर) पितर (उषसं) परमात्मप्रकाश को (अजनयन्) प्रकट करते थे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यो ! विद्वानों के यज्ञ मे वही सत्यवादी, वही कवि, वही प्राचीन उपदेष्टा और वही पितर माने जाते हैं जो परमात्मा के गुप्तभाव को प्रकाशित करते हैं अर्थात् विद्वत्ता तथा कवित्व उन्हीं लोगों का सफल होता है जो परमात्मा के गुणो को कीर्तन द्वारा सर्वसाधारण तक पहुचाते हैं ॥४॥

समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥५॥

पदार्थः—(देवानां) जो विद्वानों के (व्रतानि) व्रतो को (न, मिनन्ति) नही मेटते (ते) वे (अमर्धन्तः) अहिंसक होकर (वसुभिः) वेदवाणी रूपी धनो से (यादमानाः) यात्रा करते हुए (मिथः) परस्पर मिलकर (यतते) यत्न करते हैं (ते) वे (संजानते) प्रतिज्ञा ही (न) नहीं करते किन्तु (संगतास) संगत होकर (अधि, ऊर्वे) बलपूर्वक इन्द्रियो के संयम मे (समाने) समान भाव से यत्न करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानो के नियमो का पालन करते हुए अहिंसक होकर अर्थात् अहिंसादि पांच नियमों का पालन करते हुए संसार में विचरते हैं वह यत्नपूर्वक अपने अभीष्ट फल को प्राप्त होते हैं या यो कहो कि वैदिक नियमो का वही पुरुष पालन करते हैं जो अहिंसक होकर वेदवाणी का प्रचार करते और आपस मे समान भाव से इन्द्रियो का संयम करते हुए औरो को ब्रह्मचर्यव्रत का उपदेश करते है, स्मरण रहे कि उपदेश उन्हीं का सफल होता है जो अनुष्ठानी बनकर यात्रा करते हैं अन्यो का नहीं ॥५॥

अब उषा काल में अनुष्ठान का विधान करते हैं ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥६॥

पदार्थ.—(उष., बुध) उषाकाल में जागने वाले (वसिष्ठा) विद्वान् (स्तोमैः) यज्ञो द्वारा (त्वा, प्रति) तेरे लिये (ईळते) स्तुति करते हैं (सुभगे) हे सौभाग्य के देने वाली (गवां, नेत्री) तू इन्द्रियो को संयम मे रखने के कारण (तुष्टुवांस) स्तुति योग्य है (वाजपत्नी) हे सब प्रकार के ऐश्वर्य की स्वामिनी (जरस्व) अन्धकार को जलाकर (नः) हमारे लिये (उच्छ, उष) अच्छा प्रकाश कर क्योंकि तू (प्रथमा) सब दीप्तियो मे मुख्य (सुजाते) सुन्दर प्रादुर्भाव वाली है ॥६॥

भावार्थ इस मन्त्र मे रूपकालंकार से उषाकाल का वर्णन करते हुए परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष उषाकाल में उठकर सन्ध्यावन्दन तथा हवनादि अनुष्ठानरूप कार्यों मे प्रतिदिन प्रवृत्त रहते है वह सब धनो के देने वाली तथा इन्द्रियसंयम के मुख्य साधनरूप उषाकाल से परमलाभ उठाते है अर्थात् जो पुरुष अपनी निद्रा त्याग उषाकाल मे उठकर अपने नित्यकर्मों मे प्रवृत्त होते है वह सौभाग्यशाली पुरुष इन्द्रियो का संयम करते हुए ऐश्वर्यशाली होकर सब प्रकार का सुख भोगते है, क्योंकि इन्द्रियसंयम का मुख्य साधन उषाकाल में ब्रह्मोपासन है, इसलिये सब मनुष्यो को उचित है कि जब पूर्वदिशा मे सूर्य की लाली उदय हो उसी काल मे ब्रह्मोपासन रूप अनुष्ठान करें ॥६॥

अब उषाकाल में स्वस्तिवाचनों द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।

दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(एषा, उषा) यह उषा काल (राधस, नेत्री) आराधनशील विद्वानो के मार्ग को (सूनृताना) वेदवाणियो द्वारा (उच्छन्ती) प्रकाश करनेवाला (वसिष्ठैः, रिभ्यते) सर्वोपरि गुणसम्पन्न विद्वानों से स्तुति योग्य है, इसी काल मे (दीर्घश्रुत) चिरकालीन सर्वज्ञाता परमात्मा (अस्मे) हमे (रयिं, दधाना) धन प्राप्त करायें, और (नः) हमारे धन को (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विचारशील विद्वानो ! तुम उषाकाल मे अपने कर्तव्य कर्मों मे निवृत्त होकर स्वस्तिवाचनों से प्रार्थना करो कि आप हमे और हमारे यजमानों को ऐश्वर्यसम्पन्न करें और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य पवित्र हो ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में छिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा को चराचर जीवों की जननी रूप से कथन करते हैं ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।

अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥१॥

पदार्थ.—(तमांसि) अज्ञानरूप तम को (बाधमाना) नाश करती हुई (अग्निः ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप ज्योति (मानुषाणां, समिधे, अकः) मनुष्यो के सम्बन्ध मे प्रकट हुई, जिसने (प्रसुवती) प्रसूतावस्था में (विश्वं, चरायै, जीव) विश्व के चराचर जीवो को (अभूत्) प्रकट किया, वह ज्योति (उपो) इस संसार मे (युवतिः) युवावस्थावाली (रुरुचे) प्रकाशित हुई (न योषा) स्त्री के समान नहीं ॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा को ज्योतिरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् जगज्जननी ज्योतिरूप परमात्मा जो जीवमात्र का जन्मदाता है उसने आदि सृष्टि मे विश्व के चराचर जीवों को युवावस्था मे प्रकट किया, और वह परमात्मारूप शक्ति भी युवावस्था में प्रकट हुई स्त्री के समान नहीं ॥१॥

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥२॥

पदार्थ—(सप्रथा) सब प्रकार से (विश्व) सम्पूर्ण विश्व को (प्रतीची) प्रथम (अस्मात्) उत्पन्न करनेवाली (रुशत्) दिव्य शक्ति (वासः) उस दीप्तिवाले स्वरूप (उत्) और (शुक्र) बल का (बिभ्रती) धारण करती हुई जो (अश्वैत्) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, (हिरण्यवर्णा) दिव्यस्वरूप (सुदृशीक) सर्वोपरि दर्शनीय (संदृक्) सर्वज्ञाभी (गवां, माता) सब ब्रह्माण्डों की जननी और (अह्नां, नेत्री) सूर्यादि सब प्रकाशो की प्रकाशक (अरोचि) सब को प्रकाशित कर रही है ॥२॥

भावार्थः—जो दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व को धारण करके कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को चला रही है वही दिव्य शक्तिरूप परमात्मा सब ब्रह्माण्डो की जननी और वही सब का अधिष्ठान होकर स्वयं प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

अब उस दिव्य शक्ति को सम्पूर्ण विश्व का आधार कथन करते हैं ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।

उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥३॥

पदार्थ - (देवानां, चक्षुः) सब दिव्य शक्तियों की प्रकाशक (सुभगा) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (श्वेत, अश्व, वहन्ती) श्वेतवर्ण के गतिशील सूर्य को चलानेवाली (सुदृशीक) सर्वोपरिदर्शनीय (अदर्शि, रश्मिभिः, नयन्ती) नही देखे जाने वाली रश्मियो की चालिका (व्यक्ता) सब मे विभक्त (चित्रामघा) नाना प्रकार के ऐश्वर्य मे सम्पन्न (उषा) परमात्मरूप शक्ति (विश्व) सम्पूर्ण संसार को (अनु) आधेय रूप से आश्रय करके (प्रभूता) विस्तृतरूप से विराजमान हो रही है ॥३॥

भावार्थ - जो दिव्यशक्ति सूर्यादि सब तेजों का चक्षुरूप, सब प्रकाशक ज्योतियों को प्रकाश देनेवाली, गतिशील सूर्य चन्द्रादिको को चलानेवाली और जो सम्पूर्ण संसार को आश्रय करके स्थित हो रही है वही दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान है ॥३॥

अब उक्त ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा से शत्रु निवारण तथा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्ति की प्रार्थना कथन करते हैं ॥

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।

यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥४॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (अन्तिवामा) आप हमें अन्न तथा पशुओं से सम्पन्न करें अर्थात् प्रशस्तसमृद्धि युक्त करें "वाम इति प्रशस्तनामसु पठितम् (निघण्टु ३।८)" (अमित्र, दूरे उच्छ) हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें (उर्वीं, गव्यूतिं) विस्तृत पृथ्वी का हमको अधिपति बनावें (नः) हमको (अभय, कृधि) भयरहित करें (मघोनि) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवन् ! (गृणते) आप अपने उपासकों को (राधः) ऐश्वर्य की ओर (चोदय) प्रेरित करें और (यावय, द्वेष) हमारे द्वेष दूर करके (वसूनि, आ, भर) सम्पूर्ण धनो से हमें परिपूर्ण करें ॥४॥

भावार्थ.—हे सब धनों से परिपूर्ण तथा ऐश्वर्यसम्पन्न स्वामिन् ! आप हमें अन्न तथा गवादि पशुओं का स्वामी बनावें, आप हमें विस्तीर्ण भूमिपति बनावें, हमारे शत्रुओं को हम से दूर करके सब संसार का हमें मित्र बनावें अर्थात् द्वेषबुद्धि को हम से दूर करें जिससे कोई भी हमसे शत्रुता न करे। अधिक क्या आप उपासकों को शीलसम्पन्न करें, सब प्रकार का बल दें जिससे हम लोग निरन्तर आपकी उपासना तथा आज्ञापालन में तत्पर रहें ।४॥

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।

इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥५॥

पदार्थः—(उषः, देवि) हे ज्योतिस्वरूप तथा दिव्यगुणसम्पन्न परमेश्वर ! (अस्मे) हमें (श्रेष्ठेभिः, भानुभिः) सुन्दर प्रकाशों से (विभाहि) भले प्रकार प्रकाशयुक्त करें (नः) हमारी (आयुः, प्रतिरंती) आयु को बढ़ावें (विश्ववारे) हे विश्व के उपास्य देव ! (न) हमें (इष) ऐश्वर्य (दधती) धारण करावें (च) और (गोमत्) गौओं से युक्त (अश्ववत्) अश्वों वाला (रथवत्) यानोंवाला (च) और (राध) सम्पूर्ण धनों वाला करें ॥५॥

भावार्थ·—मन्त्र का भाव स्पष्ट है, इसमें यह वर्णन किया है कि हे परमात्मन् ! आप हमें दीर्घ आयु दें और सब प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें ॥५॥

अब वेदवेत्ता ऋषियों द्वारा प्रार्थना कथन करते हैं ॥

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ.—(दिव·, दुहित) द्युलोक की दुहिता (उष.) उषा के (वर्धयन्ति) उदय होने पर अथवा बढ़ने पर (मतिभि, वसिष्ठाः) बुद्धिमान् ऋषि लोग (सुजाते) सुजन्मवाली उषा को लक्ष्य रख कर भले प्रकार परमात्मा को ज्ञानगोचर करके (यां त्वा) जिस आपका ध्यान करते हैं, (सा) वह आप (अस्मासु) हम लोगों को (ऋष्व) ऐश्वर्ययुक्त करें, (बृहत, रयिं) सब से बड़े धन को (धा.) धारण करावें और (नः) हमको (यूय) आप (स्वस्तिभि) कल्याणयुक्त वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! उषाकाल में विज्ञानी ऋषि महात्मा अपनी ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा आप को ज्ञानगोचर करते हुए आपका ध्यान करते हैं, वह आप हमारे पूजनीय पिता हमें धनसम्पन्न तथा ऐश्वर्ययुक्त करते हुए सब प्रकार से हमारा कल्याण करें ॥६॥

यह सप्तम मण्डल में सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य अष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषि. ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वर ॥

अब परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।

उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

पदार्थ —हे परमात्मन्, (अस्याः) आपकी इस महती शक्ति के (प्रथमा।) पहले (केतव) अनेक हेतु (ऊर्ध्वा) सब से ऊंचे (प्रति) हमारे प्रति (अंजयः) प्रसिद्ध (अदृश्रन्) देखे जाते हैं अर्थात् हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं जो (विश्रयन्ते) विस्तारपूर्वक फैले हुए हैं (उषः) हे ज्योतिस्वरूप भगवन् ! (अर्वाचा) आप हमारे सन्मुख आयें अर्थात् हमे अपने दर्शन का पात्र बनायें, और (ज्योतिष्मता) अपने तेजस्वी (बृहता) बड़े (रथेन) ज्ञान से (अस्मभ्यं) हमको (वाम) ज्ञानरूप धन (वक्षि) प्रदान करें ॥१॥

भावार्थ —जब हम इस संसार में दृष्टि फैलाकर देखते हैं तो सब से पहले परमात्मस्वरूप को बोधन करनेवाले अनन्त हेतु इस संसार में हमारे दृष्टिगत होते हैं जो सबसे उच्च परमात्मस्वरूप को दर्शा रहे हैं, जैसा कि संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और यह अद्भुत रचना आदि चिह्नों से स्पष्टतया परमात्मा के स्वरूप का बोधन होता है, हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप अपने बड़े तेजस्वी स्वरूप का हमें ज्ञान करायें जिससे हम अपने आपको पवित्र करें ॥१॥

अब परमात्मस्वरूप का महत्त्व कथन करते हैं ॥

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।

उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥२॥

पदार्थः—(देवी) परमात्मा का दिव्यस्वरूप (दुरिता, अप) पापों को दूर करता, तथा (विश्वा, तमांसि) सब के अज्ञानों को (बाधमाना) निवृत्त करता हुआ (ज्योतिषा) अपने ज्ञान से (उषा) उच्च गति को (याति) प्राप्त है । (विप्रासः) वेदवेत्ता ब्राह्मण उसको (मतिभि) स्व बुद्धियों से (गृणन्त) ग्रहण करते हैं । (प्रति) उनको परमात्मस्वरूप (समिद्धः) सम्यक् रीति से प्रकाशित होता, और (अग्निः) ज्योतिस्वरूप परमात्मा (सीं) भलीभांति (प्रति, जरते) प्रत्येक पदार्थ में व्यापकभाव से प्रकाशित हो रहा है ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का दिव्यस्वरूप सदैव प्रकाशमान हुआ अज्ञानरूप अन्धकार को निवृत्त करके ज्ञानरूप ज्योति का विस्तार करता अर्थात् उषारूप ज्योति के समान उच्चभाव को प्राप्त होता है, वह वेदवेत्ता ब्राह्मणों की बुद्धि का विषय होने से उनके प्रति प्रकाशित होता अर्थात् वे परमात्मस्वरूप को अपनी निर्मल बुद्धि से भलीभांति अवगत करते हैं । अधिक क्या, उसका दिव्यस्वरूप संसार के प्रत्येक पदार्थ में ओतप्रोत हो रहा है, इसलिए सब पुरुषों को उचित है कि वह परमात्मस्वरूप को अपने-अपने हृदय में अवगत करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें, अर्थात् जिस प्रकार उषा काल अन्धकार को निवृत्त करके प्रकाशमय हो जाता है इसी प्रकार परमात्मा अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके अपने प्रकाश से विद्वानों के हृदय को प्रकाशित करता है ॥२॥

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।

अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥३॥

पदार्थः—(उषसः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (ज्योति, यच्छन्ती·) ज्ञान का प्रकाश करता हुआ (विभाती) प्रकाशित होता, और उसका ज्ञान (प्रति) मनुष्यों के प्रति (पुरस्तात्, अदृश्रन्) सब से पूर्व देखा जाता है, (एता त्या.) ये परमात्मशक्तियां (सूर्यं, यज्ञ, अग्नि) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करती (उ) और (अजुष्ट, तम) अप्रिय तम को (अपाचीन) दूर करके (अगात्) ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करती हैं ॥३॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ज्ञान सब से पूर्व देखा जाता है । वह अपने ज्ञान का विस्तार करके पीछे प्रकाशित होता है, क्योंकि उसके जानने के लिए पहले ज्ञान की आवश्यकता है और उसी परमात्मा से सूर्य चन्द्रादि दिव्य ज्योतियां उत्पन्न होती, उसी से यज्ञ का प्रादुर्भाव होता और उसी से अग्नि आदि तत्त्व उत्पन्न होते हैं, वही परमात्मा अज्ञानरूप तम का नाश करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करता है, इसलिए सब का कर्त्तव्य है कि उसी ज्ञानस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर ज्ञान की वृद्धि द्वारा अपने जीवन को उच्च बनावें ॥३॥

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।

आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥

पदार्थ —(सुयुजः) सुन्दर दीप्तिवाली परमात्मशक्तियां (अश्वासः) शीघ्र गति द्वारा (य, रथ) जिस रथ को (आ) भले प्रकार (वहन्ति) चलाती हैं, उससे (युज्यमानम) जुड़ी हुई (दिव , दुहिता) द्युलोक की दुहिता (उषस) उषा को (विश्वे, (पश्यन्ति) सब लोग देखते हैं, जो (अचेति) दिव्यज्योतिसम्पन्न (मघोनी) ऐश्वर्यवाली (विभाती) प्रकाशयुक्त (स्वधया) अन्नादि पदार्थों से सम्पन्न, और जो (आ) भले प्रकार (अस्थात्) दृढ़तावाली है ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र का आशय यह है कि इस ब्रह्माण्ड रूपी रथ को परमात्मा की दिव्यशक्तियां चलाती हैं, उसी रथ में जुड़ी हुई द्युलोक की दुहिता उषा को विज्ञानी लोग देखते हैं जो अन्नादि ऐश्वर्यसम्पन्न बड़ी दृढ़तावाली है, इस शक्ति को देखकर विज्ञानी महात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा का अनुभव करते हुए उसी की उपासना में प्रवृत्त होकर अपने जीवन को सफल करते और परमात्मा की अचिन्त्य शक्तियों को विचारते हुए उसी में संलग्न होकर अमृतभाव को प्राप्त होते हैं ॥

अब ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा की स्तुति कथन करते हुए प्रार्थना करते हैं ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।

तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वा, प्रति) आपके प्रति (अद्य) आज (सुमनसः) सुन्दर मनो वाले विज्ञानी और (अस्माकास) हमारे ऋत्विगादि (मघवान.) ऐश्वर्य सम्पन्न आपको (बुधंत) बोधन करते (च) और (वयम) हम लोग आपके महत्त्व को समझते हैं । हे परमात्मन् ! आप (तिल्विलायध्व,) हम में परस्पर प्रेम भाव उत्पन्न करें क्योंकि आप (उषस·) प्रकाशरूप ज्ञान से (विभाती.) सदा प्रकाशमान हैं । (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचन रूप वेदवाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे भगवन् ! आपको शान्तमनवाले योगीजन बोधन करते तथा बड़े-बड़े ऐश्वर्य सम्पन्न आपके यश को वर्णन करते हैं और आपकी प्रेममय रज्जु

हिरण्यवे सुम्नभावजन आपका सदैव कीर्तन करते हैं, कृपा करके हमको कल्याणरूप वाणियों से सदा के लिए पवित्र करें ॥६॥

सप्तम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य एकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषि ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा की स्वतः प्रकाशता कथन करते हुए उसीके प्रकाशनिवृत्ति का वर्णन करते हैं ॥

व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१॥

पदार्थ.—(सूर्यः) स्वतः प्रकाश परमात्मा (रोदसी) पृथ्वी तथा द्युलोक के मध्य में (चक्षसा) अपने प्रकाश से (आवः) सबको प्रकाशित करता हुआ (सुसंदृग्भिः) अपने विशेष ज्ञान से (पञ्च, जनानां) पाँचों प्रकार के मनुष्यो को (क्षितीः) इस पृथ्वी पर (मानुषीः) मनुष्यता का (बोधयन्ती) उपदेश कर रहा है, जो ([illegible]) सब के लिए विशेषरूप से पथ्य है, हम सब प्रजाजनो का (वि) विशेषता से मुख्य कर्त्तव्य है कि हम (उक्षभिः) अत्यन्तबलयुक्त (सुसंदृग्भिः) अपने-अपने ज्ञानों से (भानुं, अश्रेत्) उस स्वयंप्रकाश को आश्रयण करें ॥१॥

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जो अपनी दिव्य ज्योति से सम्पूर्ण भूमण्डल को प्रकाशित करता हुआ अपने विशेष ज्ञान से "पञ्च जना"=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दस्यु, इन पाँचों प्रकार के मनुष्यों को सत्यज्ञान का उपदेश कर रहा है जो सब के लिए परम उपयोगी है, हमारा कर्त्तव्य है कि हम यत्नपूर्वक उस स्वतः प्रकाश परमात्मा के स्वरूप को जान कर उसी का आश्रयण करें ॥१॥

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (दिवः, अन्तेषु) द्युलोकपर्यन्त प्रदेशो में (अक्तून्) सूर्यादि प्रकाशो के (न) समान (विशः, व्यञ्जते) सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रकट करते (वि) भले प्रकार (उषसः युक्ताः) प्रकाशयुक्त (यतन्ते) कर रहे हैं (ते, गावः) तुम्हारा ज्ञानरूप प्रकाश (तमः) अज्ञान रूप तम को (आ) भले प्रकार (वर्तयन्ति) दूर करता है (सविता, इव, बाहू) सूर्य्य की किरणो के समान (ज्योतिः) तुम्हारी ज्योति (सं, यच्छन्ति) सब को प्रकाशित करती है ॥२॥

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप द्युलोकपर्यन्त सम्पूर्ण प्रजाओं को अपनी दिव्य ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं अर्थात् आप अपने ज्ञानरूप तप से प्रजाओं को रचकर सूर्य्य की किरणों के समान अज्ञानरूप तम को छिन्नभिन्न करके मनुष्यों को ज्ञानयुक्त बनाते हैं, जैसाकि "यस्य ज्ञानमयं तपः" इत्यादि उपनिषद्वाक्यो में इसी मन्त्र को आश्रय करके कहा है कि उस परमात्मा का ज्ञान ही एक प्रकार का तप है, उसी ज्ञानरूप तप से परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करके सबको यथावस्थित नियम में चला रहे हैं ॥२॥

अब उस दिव्यज्ञान की प्राप्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३॥

पदार्थ —(इन्द्रतमा) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आपका (वि) विस्तृत ज्ञान (सुविताय) हमारे कल्याणार्थ ([illegible]) प्रकाशित हो (मघोनी) हे सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न भगवन् ! आप (श्रवांसि) अपनी ज्ञानशक्ति को (अजीजनत्) प्रकाशित करें, हे ज्योतिस्वरूप ! (दिवः, देवी) द्युलोक की देवी (दुहिता) तुम्हारी दुहितारूप दिव्यशक्ति जो (अङ्गिर, तमा) अत्यन्त गमनशील तमनाशक है वह (सुकृते) हमारे पुण्यो के लिये (वसूनि, दधाति) धनो को धारण करावे ॥३॥

भावार्थ —हे सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आपकी दुहितारूप विद्युतादि शक्तियां हमारे लिये कल्याणकारी होकर हमें अनन्त प्रकार का धन धारण करावें, और आपका ज्ञान हमारे हृदय को प्रकाशित करे ॥३॥

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥

पदार्थ —(उषः) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (अस्मभ्य) हम लोगों को (अरदः) अधिक (तावत् राधः, रास्व) उतना धन प्रदान करें (यावत्) जितने से हम (गृणाना) आपको ग्रहण करने वाले (स्तोतृभ्यः) स्तोता विद्वानों को प्रसन्न कर सकें (यां, त्वा) जो आप को (वृषभस्य, रवेण, जज्ञुः) वृषभ के समान उच्चस्वर से प्रकट कर रहे हैं अर्थात् आपकी स्तुति करते हैं, और हमारे लिये (दृळ्हस्य दुरः, अद्रेः) दृढ़तायुक्त कठिन से कठिन मार्गों को (वि) भली-भाँति (और्णोः) खोल दें ॥४॥

भावार्थः—हे सर्वपालक भगवन् ! हमको ऐश्वर्य्यसम्पन्न करें जिससे हम अपने वेदवेत्ता स्तोता आदि विद्वानो को प्रसन्न करें जो हमारे प्रति आपकी स्तुति उच्चस्वर से वर्णन करते हैं या यों कहो कि परमात्मस्तुतिविषयक उपदेश करते हुए हमको आपकी उपासना में प्रवृत्त करते हैं, हे भगवन् ! आप हम में ऐसी शक्ति प्रदान करें कि हम कठिन से कठिन मार्गों के द्वारे खोल कर [illegible] का दर्शन कर सकें ॥४॥

अब धनप्राप्ति की प्रार्थना करते हैं ॥

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ —हे परमात्मन् (देवं देवं) सब स्तोताओं को (राधसे) धनप्राप्ति के लिये (चोदयन्ती) प्रेरित करें (अस्मद्र्यक्) हम यजमानो को (सूनृताः) उत्तम वेदवाणियो की ओर (व्युच्छन्ती) उत्साहित करें, और (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (सनये) दान के लिये (धाः) [illegible] (ईरयन्ती) उस ओर प्रेरें, जिससे हम दान में समर्थ हों, और (यूय) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणरूप वाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ —हे दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आप सब स्तोताओं को धनधान्यादि से भले प्रकार समृद्ध करें ताकि वह उत्तम-उत्तम वेदवाणियो द्वारा आप का सदा स्तवन करते हुए हमारी बुद्धियों को आप की ओर प्रेरित करें, और हे भगवन् ! आप हमें दानशील बनावें ताकि हम उत्साहित होकर स्तोता आदि अधिकारियों को दान देने में समर्थ हों, और आप हमें सदा के लिये पवित्र करें, यह प्रार्थना है ॥५॥

सप्तम मण्डल में उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्याशीतितमस्य सूक्तस्य १-३ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् २ विराट् त्रिष्टुप् ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वरः ॥

अब सब भुवनों तथा दिव्य पदार्थों की रचना परमात्मा से होना कथन करते हैं ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥१॥

पदार्थ —(विश्वा, भुवनानि) इस संसार के सम्पूर्ण भुवनो की (आविः, कृण्वतीं) रचना करते हुए परमात्मा ने (विप्रासः) वेदवेत्ता ब्राह्मणो को (अबुध्रन्) बोधन किया, और (वसिष्ठाः) उन विशेषगुणसम्पन्न विद्वानों ने (प्रति उषसं) प्रत्येक उषा काल में (स्तोमेभिः, गीर्भिः) यज्ञरूप वाणियो द्वारा परमात्मा का स्तवन किया, और (समन्ते) अन्त समय में (रजसी) रजोगुणप्रधान परमात्मशक्ति (विवर्तयन्तीं) इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को लय करती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कथन किया गया है अर्थात् संसार की उक्त तीनों अवस्थाओं का कारण एकमात्र परमात्मा है, वह परमात्मा इस संसार के रचना काल में प्रथम ऋषियों को वेद का ज्ञान देता है जिससे सब प्रजा उस रचयिता परमात्मा के नियमों को भले प्रकार जानकर तदनुसार ही आचरण करते हुए संसार में सुखपूर्वक विचरें, वही परमात्मा सब संसार का पालक पोषक और अंतसमय में वही सब का संहार करने वाला है ॥१॥

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥२॥

पदार्थ —(अग्रे) सृष्टि रचना से प्रथम (एषा, युवती) यह परमात्मा की गुप्तशक्ति (ज्योतिषा, तमः) प्रकाशरूप ज्योति से तम का नाश करके (सूर्य, यज्ञ, अग्नि) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (प्र) भले प्रकार (अचिकितत्) रचती और (उषा, अबोधि) उषा काल का बोधन करती हुई (अह्रयाणा, एति) प्रकाशवती सदा युवावस्थासम्पन्न रहती है (स्या) वह शक्ति (नव्य, आयुः, दधाना) नवीन आयु को धारण करती हुई (गूढ्वी) उसी परमात्मा में लय हो जाती है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की दिव्य शक्ति जिससे सृष्टि के आदि काल में पुनः रचना होती है वह परमात्मा की प्रकाशरूप ज्योति से प्रथम [illegible] का नाश करती है, क्योंकि प्रलयकाल में यह सब संसार [illegible] होता है, तत्पश्चात् सूर्य, अग्नि और यज्ञ को रचकर उषाकाल का बोधन कराती है जिससे सब प्रजागण

परमात्मा का स्तवन करते हुए अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, परमात्मा की उस दिव्य शक्ति में कभी विकार उत्पन्न नहीं होता, वह युवावस्था को प्राप्त हुई मनुष्यों को कर्मानुसार सदा बल, बुद्धि आदि नूतन भावों को प्रदान करती रहती है और अन्त में उसी परमात्मा में लय हो जाती है ॥२॥

अब इस सूक्त के अंत में परमात्मा के दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए उससे स्वस्ति की प्रार्थना करते हैं ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।

घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अश्वावती) सर्वगतियों का आश्रय (गोमतीः) सब ज्ञानों का आधार (वीरवतीः) सब वीरतादि गुणों का आश्रय हो (न) हमको (उषस) प्रकाश वाले (भद्रा) भद्र गुण (सदं) सदा के लिये (उच्छन्तु) प्राप्त करायें, आप (विश्वत) सब ओर से (घृतं) प्रेम को (दुहाना) उत्पन्न करने वाले (प्रपीता) सब के आश्रय भूत हैं (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन करते हुए यह कथन किया है कि जिस प्रकार वर्तिका=बत्ती सब ओर से स्नेह=चिकनाई को अपने में लीन करके प्रकाश करती है इसी प्रकार सब प्रेमी पुरुषों को परमात्मा प्रकाश=ज्ञान प्रदान करते हैं, वही परमात्मा वीरता, धीरता, ज्ञान तथा गति आदि सब सद्गुणों का आधार और प्रेममय पुरुषों का एकमात्र गतिस्थान है ॥३॥

सप्तम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षष्ठोऽध्यायः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ षडृचस्य एकाशीतितमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः-१ विराड् बृहती । २ भुरिग्बृहती । ३ आर्षीबृहती । ४, ६ आर्षीभुरिग्बृहती । ५ निचृद्बृहती । मध्यमः स्वरः ॥

अब सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रकाशक परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१ च्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(ज्योतिः) सब को प्रकाशक (महि) बड़े (तम) अन्धकार को (व्ययति) नाश करने वाला (चक्षसे) प्रकाश के लिये (दिव, दुहिता) उषा का (प्रति उ, अदर्शि) प्रत्येक स्थान में प्रकाशित करने वाला (सूनरी, आयती) सुन्दर प्रकाश को विस्तृत आकाश में (उच्छन्ती) फैलाकर (अपो) जलों द्वारा सब दुःखों को दूर करता है ॥१॥

भावार्थ—दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से उषादि ज्योतियों का विकाश करता हुआ संसार के अंधकार को दूर करता और विज्ञानी लोगों के लिए अपने प्रभूत ज्ञान का प्रकाश करता है, वही अपनी दिव्य शक्ति से वृष्टि द्वारा संसार का भरण-पोषण करता और वही सबको स्थिति देने वाला है ॥१॥

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।

तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥

पदार्थः—(सूर्यः) सब का उत्पन्न करने वाला परमात्मा (उस्रिया, सृजते) तेजोमण्डल को रचता (उत्) और (सचा) साथ ही (नक्षत्र) नक्षत्रों को (उत् यत्) उत्पन्न करता हुआ (अर्चिवत्) प्रकाशित करता है (तव, इत्, उषः) तुम्हारा वही तेज (व्युषि) हमको प्रकाशित करे, ताकि हम (सूर्यस्य) स्वत प्रकाश आपको (सं, भक्तेन) भले प्रकार श्रद्धापूर्वक (गमेमहि) प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थ—हे सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! आपका तेजोमयस्वरूप जो सूर्य चन्द्रादि लोकों को प्रकाशित कर रहा है वह हमको भी ज्ञान से प्रकाशित करे ताकि हम आपको भक्तिभाव से प्राप्त हों अर्थात् हम लोग सदैव आपके ही स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने जीवन को पवित्र करें ॥२॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।

या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३॥

पदार्थ—(वनन्वति) हे सर्वभजनीय परमात्मन् ! (दिव, दुहित, उषः) द्युलोक की दुहिता उषा के द्वारा (जीराः) शीघ्र ही (त्वा, प्रति) आपको (अभुत्स्महि) भले प्रकार जानें, और (या) जो आप (पुरु, स्पार्हं, वहसि) बहुत धन सबको प्राप्त कराते और (दाशुषे) यजमान के लिए (रत्न) रत्न (मयः) सुख देते हैं (न) उसीके समान हमें भी प्रदान करें ॥३॥

भावार्थ—हे ज्योति स्वरूप परमात्मदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हम उषाकाल में अनुष्ठान करते हुए आपके समीपी हों, आप ही सब सांसारिक रत्नादि ऐश्वर्य तथा आत्मसुख देनेवाले हैं, कृपा करके हमको भी अपने प्रिय यजमानों के समान अभ्युदय और निःश्रेयसरूप दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त करायें। [यहां मन्त्र में "मय." शब्द से आध्यात्मिक आनन्द का ग्रहण है, जैसाकि "नमः शम्भवाय च मयोभवाय च" इत्यादि मन्त्रों में वर्णन किया है, इसी आनन्द की यहां परमात्मा से प्रार्थना की गई है] ॥३॥

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।

तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४॥

पदार्थ—(देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन्, (दृशे) विज्ञानियों के ज्ञान-गोचर (या) जो आप (स्व, प्रख्यै) अपनी ख्याति के लिये (मंहना) स्वमहिमा से (महि, कृणोषि) जगत को रचकर (उच्छन्ती) अज्ञानरूप अंधकार का नाश करके अपने तेजोमय ज्ञान का प्रकाश करते हो (वय) हम लोग (मातु) माता के (सूनव) बच्चों के (न) समान (स्याम) हों, और (तस्या) पूर्वोक्तगुण-सम्पन्न (ते) तुम्हारी (ईमहे) उपासना करते हुए (रत्नभाज) रत्नों के पात्र बनें ॥४॥

भावार्थ—हे परमपिता परमात्मन् ! आपको ज्ञान द्वारा विज्ञानी पुरुष ही उपलब्ध कर सकते हैं साधारण पुरुष नहीं। हे दिव्यस्वरूप भगवन् ! आप हमारे ज्ञानार्थ ही अपनी अपूर्व सामर्थ्य से इस जगत् की रचना करते हैं, आप माता के समान हम पर प्यार करते हुए हमारी सब प्रकार से रक्षा करें और हमें ज्ञानसम्पन्न करके अपनी उपासना का अधिकारी बनावें ताकि हम आपके अनुग्रह से धनधान्य से भरपूर हों ॥४॥

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।

यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५॥

पदार्थ—(उष) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (यत्) जो (दीर्घश्रुत्तम) घोर अन्धकाररूप अज्ञान है (तत्) उसको आप दूर करके (चित्र, राध., आ, भर)

नाना प्रकार का उत्तम धन प्रदान करें, और (यत्) जो (ते) तुम्हारा (दिवः दुहित) दूर देशों मे हित करने वाला सामर्थ्य है उससे (मर्त भोजन) मनुष्यों का भोजनरूप धन (रास्व) दीजिये ताकि (तत्) वह (भुनजामहै) हमारे उपभोग मे आवे ॥५॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप महामोहरूप घोर अज्ञान का नाश करके हमे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति करायें जिससे हम अपने भरण-पोषण के लिए धन उपलब्ध कर सकें। हे भगवन् ! कोटानुकोटि ब्रह्माण्डो मे आपका सामर्थ्य व्याप्त हो रहा है, आप हमारे पालनकर्ता और नाना प्रकार के ऐश्वर्यदाता हैं, कृपा करके हमारे भोजन के लिए अन्नादि धन दें ताकि हम आपकी उपासना मे प्रवृत्त रहे ॥५॥

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥६॥

पदार्थः—हे भगवन् (सूरिभ्य श्रव) विद्वानो के लिए यश, (अमृत) अमृत (वसुत्वन) उत्तम धन, तथा (वाजान्) नानाप्रकार के अन्न प्रदान करें, और (अस्मभ्य) हमको (गोमत) ज्ञान के साधन कलाकौशलादि (चोदयित्री) सबको प्रेरण करने वाली शक्ति (उषा , मघोन) उषा काल मे यज्ञ करने का सामर्थ्य, और (सूनृतावती) उत्तम भाषण करने की शक्ति दें, और (अप, स्रिध·) हमसे सताप को (उच्छत्) दूर करें ॥६॥

भावार्थः—हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप शूरवीरो को वीरता रूप सामर्थ्य देने वाले, विज्ञानियो को विज्ञानरूप समार्थ्य देते, आप ही नानाप्रकार के अन्न तथा ज्ञान के साधन कलाकौशलादि के प्रदाता हैं, आप ही सब शोको को दूर करके अमृत पद देने वाले हैं अर्थात् आप ही अभ्युदय और नि श्रेयस दोनो प्रकार के उपभोग दने हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल मे इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य द्व्यशीतितमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषि ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, २, ६, ७, ९—निचृज्जगती । ३ आर्ची भुरिग्जगती ॥ ४, ५, १० आर्षी विराड्जगती ॥ ८ विराड्जगती ॥ निषाद स्वरः ॥

अब परमात्मा प्रजाजनों को राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥१॥

पदार्थ—(दु·, ध्य) दुर्बुद्धि लोग (पृतनासु) युद्धो मे (यः) जो (वनुष्यति) अनुचित व्यवहार द्वारा जीतने की इच्छा करते और (दीर्घप्रयज्युम्) प्रयोग न करने योग्य पदार्थों का (अति) प्रयोग करते हैं उनको (वय जयेम) हम जीतें (इन्द्रावरुणा) हे अध्यापको तथा उपदेशको (युव) आप (न) हमारे (अध्वराय) सग्रामरूपयज्ञ और (विशे, जनाय) प्रजाजनो के लिये (महि, शर्म) बड़ा शान्तिकारक साधन (यच्छत) दें, जिससे हम उनको विजय कर सकें ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम युद्ध म अप्रयुक्त पदार्थों का प्रयोग करने वाले दुष्ट शत्रुओ को जीतने का प्रयत्न करो और युद्धविद्यावेत्ता अध्यापक तथा उपदेशक से प्रार्थना करो कि वह तुम्हे युद्ध के लिए उपयोगी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दें जिससे तुम दुष्ट शत्रुओ का हनन करके जगत् मे शान्ति फैलाओ ॥१॥

सम्राळन्य स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥२॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम (अन्य.) एक को (सम्राट) सम्राट् (अन्य , स्वराट्) एक को स्वराट बनाओ (महान्तौ) हे महानुभाव (इन्द्रा वरुणा) अध्यापक तथा उपदेशको (वा) तुम्हे (उच्यते) यह उपदेश किया जाता है कि (वां) तुम (विश्वे, देवास) सम्पूर्ण विद्वान् (ओज) अपनी सामर्थ्य से (परमे व्योमनि) इस विस्तृत आकाशमण्डल मे (सं) उत्तमोत्तम (महावसू) बड़े धनो के स्वामी होओ, और (वृषणा) आप सब लोग मिलकर (स) सर्वोपरि (बलं, दधु) बल को धारण करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा ने राजधर्म के सगठन का उपदेश किया है कि हे राजकीय पुरुषो, तुम अपने म से एक को सम्राट्=प्रजाधीश और एक को स्वराट् बनाओ, क्योकि जब तक उपरोक्त दोनो शक्तियें अपने-अपने कार्यों को विधिवत् नही करती तब तक प्रजा मे शान्ति का भाव उत्पन्न नही होता और न प्रजागण अपने-अपने धर्मों का यथावत् पालन कर सकते है। ["सम्यक् राजन इति सम्राट्"—जो भलीभाति अभिषेक करके राजा बनाया गया हो वह "सम्राट्" और "स्वय राजत इति स्वराट्"=जो अपने कार्यों मे स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय करे उसका नाम "स्वराट्" अर्थात् प्रजातन्त्र का नाम "स्वराट्" है जो स्वतन्त्रतापूर्वक अपने लिए सुख-दु ख का विचार कर सके] इस प्रकार सम्राट् और स्वराट् जब परस्पर एक दूसरे के सहायक हो तभी दोनों बलो की सर्वदा वृद्धि होती है] ॥२॥

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रावरुणा) हे राजपुरुषो ! तुम (अस्य, मदे) इस राज्यप्रभुत्व में (धिय., पिन्वत) अपने आपको कर्मयोग से पुष्ट करो (अनु) तदनन्तर (ओजसा) अपने तेज से (अपां, खानि) शत्रु के जलदुर्गों को (आ, अतृन्त) भले प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके (दिवि, प्रभु) दिन के प्रभु (सूर्य) सूर्य को (ऐरयत) अपने धूम्रबाणो से आच्छादन कर (मायिन·) मायावी शत्रुओ को (अपितः) सब ओर से (अपिन्वतं) परास्त करो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे राजपुरुषो ! तुम अपने उग्र कर्मों द्वारा शक्तिसम्पन्न होकर मायावी शत्रुओ का मर्दन करो अर्थात् प्रथम अपनी अन्यत्र विद्या द्वारा उनके जलदुर्गों को विजय करो तदनन्तर अपनी पदार्थ विद्या से सूर्य के तेज को आच्छादन करके अर्थात् यत्रो द्वारा दिन को रात्रि बनाकर शत्रुओं का विजय करो जो ससार मे न्याय का भग करते हुए अपनी माया से प्रजाओ मे नाना प्रकार की पीड़ा उत्पन्न करते हैं, उनका सर्वनाश तथा श्रेष्ठों का रक्षण करना तुम्हारा परम कर्तव्य है ॥३॥

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रावरुणा) हे विद्वान् पुरुषो ! मैं तुम्हें (सुहवा) प्रेमपूर्वक (हवामहे) बुलाकर उपदेश करता हूँ कि तुम लोग (कारव·) कर्मशील बनकर (उभयस्य) राजा तथा प्रजा दोनो के कल्याण मे (वस्व) प्रयत्न करो, और (ईशाना) ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (मितज्ञव) व्यायामसाधित लघु शरीर वाले (क्षेमस्य, प्रसवे) सबके लिए सुख की वृद्धि करो (युवां) आप लोगो को उचित है कि (पृतनासु) युद्धो मे (वह्नय) उत्साही होकर (युत्सु) राज्य के सगठन मे (युवां) तुम्हारा (इत्) ज्ञान वृद्धि को प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं तुम्हे बुलाकर अर्थात् ज्ञान द्वारा मेरे समीप स्थित हुए तुम्हें उपदेश करता हू कि तुम अनुष्ठानी बनकर राजा तथा प्रजा दोनो के हित मे प्रयत्न करो क्योकि अनुष्ठानशील पुरुष ही उपदेशो द्वारा ससार का कल्याण कर सकता है अन्य नहीं। हे विद्वानो ! तुम युद्धविद्या के ज्ञाता बनकर सदैव अपने ज्ञान को बढ़ाते रहो, और युद्ध में उत्साहपूर्वक शत्रुओ का दमन करते हुए राज्य के सगठन मे सदा प्रयत्न करते रहो ॥४॥

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रावरुणा) हे अग्नि तथा जलविद्यावेत्ता विद्वानो ! तुम लोग (मज्मना) अपने आत्मिक बल से (विश्वा, जातानि) सम्पूर्ण विश्व के अनुभव द्वारा (क्षेमेण) कुशलपूर्वक (भुवनस्य) ससार की रक्षा करो। (यत्) जो (इमानि, चक्रथु) यह युद्धविद्याविषयक कार्य करते हो वह (मित्रः) ससार को सुखकारक हो, और (वरुण) सबको आच्छादन करने वाली जलमय वायु को (दुवस्यति) दूर करके (उग्रः) युद्धविद्या मे निपुण सैनिक पुरुष (मरुद्भिः) आकाश मण्डल मे फैलने वाली वायुओं द्वारा शत्रुओ को जीते (अन्यः) अन्य सैनिक पुरुष (शुभ) शुभ साधनो द्वारा शत्रु को (ईयते) प्राप्त हो अर्थात् उसके सम्मुख जाय ॥५॥

भावार्थ—हे आग्नेय तथा जलीय अस्त्र-शस्त्रों के वेत्ता विद्वानो ! तुम लोग अपने अनुभव द्वारा राज्य विरोधी शत्रुओ को विजय करके सम्पूर्ण ससार की रक्षा करो, तुम कलाकौशल के ज्ञान द्वारा युद्धविषयक अस्त्र-शस्त्र निर्माण करो, और ऐसे अस्त्रो का प्रयोग करो जो आकाशमण्डल में फैल जाने वाली वायुओ द्वारा शत्रु का विजय करें अर्थात् प्रबल शत्रु को आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्र द्वारा विजय करो और साधारण शत्रु को शुभ साधनों से अपने वश में करो जिससे उसको घोर कष्ट न हो ॥५॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥६॥

पदार्थः—(वरुणस्य) वरुणास्त्र का प्रयोग करने वाला पुरुष (नु) निश्चय करके (महे, शुल्काय) बड़े ऐश्वर्य के लिए (त्विषे, ओज.) अपने तेज तथा बल द्वारा (मिमाते) शीघ्र ही शत्रु का (आतिरत्) हनन करता (अस्य) उसका (यत्) जो (ध्रुव) निश्चय (स्व) धन है वह (अजामिं) शत्रु को (श्नथयन्त)

नाश कर देता और (अन्य) अन्य जो बल है वह (अभितरत्) हनन करता है, वह (अन्य) अन्य (अर्भेभि) अल्प साधनों से ही (भूयसः) बहुत से शत्रुओं को (प्र, वृणोति) भले प्रकार अपने वश में कर लेता है ॥६॥

भावार्थ—वारुणास्त्र का प्रयोग करने वाला विद्वान् अल्प साधनों से ही शत्रुसेना का विजय करके उसकी सामग्री पर अपना अधिकार जमा लेता है, उसका अस्त्र-अस्त्ररूप बल शत्रुओ के नाश का कारण होता है अर्थात् उसके इस अपूर्व बल के सम्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता, वह अनेक शत्रुओं को विजय करके बड़ा ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥६॥

अब पुरावर्ती राजा की विभूति कथन करते हैं ॥

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।

यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥७॥

पदार्थः—(यस्य) जिस राजा के (अध्वर) यज्ञ को (देवा) अस्त्रास्त्रादि-विद्यासम्पन्न विद्वान् (वीथ.) सगत होकर (गच्छथ) जाते हैं (त) उस राजा को अथवा (मर्तस्य) मरणधर्मा मनुष्य को (परिह्वृति) कोई बाधा (नशते, न) नाश नहीं कर सकती, और (न) न ही (कुतः, चन) किसी ओर से (तप) कोई ताप उसका नाश कर सकता है। (मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (इन्द्रावरुणा) विद्युत् तथा जलीय विद्या जानने वाले विद्वान् प्राप्त होते हैं (त) उसको (न, अंह·) न कोई पाप (न, दुरितानि) न कोई दुष्कर्म नाश कर सकता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा तथा यजमानो ! तुम लोग अस्त्रशस्त्रविद्यासम्पन्न विद्वानों को अपने यज्ञो मे बुलाओ, क्योंकि वारुणास्त्र तथा आग्नेयास्त्र आदि अस्त्र-विद्यावेत्ता विद्वान् जिस राजा वा यजमान के यज्ञ मे जाते हैं अथवा जिनका उपरोक्त विद्वानो से घनिष्ठ संबन्ध होता है उनको न कोई शत्रु पीड़ा दे सकता और न कोई पाप उनका नाश कर सकता है अर्थात् विद्वानों के सत्सग से उनके पाप क्षय होकर जीवन पवित्र हो जाता है, इसलिए राजाओ को उचित है कि विद्वानो का सत्कार करते हुए उनको अपना समीपी बनावें जिससे वह किसी विपत्ति को न देखें ॥७॥

अर्वाङ् नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।

युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥८॥

पदार्थ.—(नरा) हे मनुष्यो ! तुम (अर्वाक्) मेरे सम्मुख आओ (उत) और (दैव्येन, अवसा) दिव्य रक्षा से (आगतं) आये हुए तुमको (हव) उपदेश करता हूं जिसको (शृणुत) ध्यानपूर्वक सुनो (इन्द्रावरुणा) हे विद्वानो ! (यत्) जो आप (यदि) यदि (नियच्छतम्) निष्कपट भाव से मनोदान देकर (मे) मेरे मे (जुजोषथ.) जुडोगे—प्रीति करोगे तो मैं (हि) निश्चय करके (युवो , सख्य) तुम्हारी मैत्री का पालन करूंगा (वा) अथवा (आप्य) तुम्हें प्राप्त होने योग्य (मार्डीक) सुख दूंगा ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रो की विद्या में निपुण विद्वानो ! तुम सरलभाव से मेरे मे प्रीति करो अर्थात् शुद्ध हृदय से वेदाज्ञा का पालन करते हुए मेरे सन्मुख आओ मैं तुम्हे सुखसम्पन्न करूंगा ॥८॥

अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।

यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥९॥

पदार्थ —(इन्द्रावरुणा) हे विद्वानो ! तुम (भरे-भरे) प्रत्येक संग्राम में (अस्माकम्) हमारे (पुरोयोधा) सम्मुख योद्धा (भवत) होओ (कृष्ट्योजसा) हे शत्रुओ के नाशक बलवालो ! (यत्) जो (नरः) नेता (वां) तुम्हारा (स्पृधि) युद्ध मे (तोकस्य, तनयस्य, सातिषु) पुत्र पौत्र की रक्षा के निमित्त (हवन्ते) आह्वान करते हैं तुम उनकी रक्षा करो ॥९॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम प्रत्येक संग्राम मे मेरे सन्मुख होओ अर्थात् मुझसे विजयप्राप्ति के लिये प्रार्थना करो क्योंकि मेरी सहायता के बिना कोई किसी को जय नहीं कर सकता, हे बड़े बलवान् योद्धाओ ! जो तुम्हारे साथ ईर्ष्या करते हैं वह भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये हैं परन्तु प्रजा और धर्म की रक्षा करना तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य होने से तुम किसी का पक्षपात मत करो, सदा राजधर्म का पालन करना और राजा की आज्ञा मे सदैव रहना तुम्हारा धर्म है जिसका अनुष्ठान करते हुए परमात्मा के समीपी होओ ॥९॥

अब राजपुरुषों से धन और परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।

अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

पदार्थ·—(इन्द्रः) वैद्युतविद्यावेत्ता (वरुणः) जलीय विद्या के ज्ञाता (मित्र·) सबके मित्र (अर्यमा) न्याय करने वाले, जो राजकीय पुरुष हैं वे (अस्मे) हमे (द्युम्न) ऐश्वर्य्य (यच्छन्तु) प्राप्त करायें, और (सप्रथ·, महि, शर्म) सब से बड़ा सुख (ज्योति) स्वयप्रकाश परमात्मा हमको नित्य प्रदान करें (अवध्र) हमको नाश न करें ताकि हम (अदितेः) अखण्डनीय (ऋतावृध) सत्यरूपयज्ञ के आधार (देवस्य) दिव्यशक्तिसम्पन्न (सवितु) स्वत प्रकाश परमात्मा के (श्लोक) यश को (मनामहे) सदा गान करते रहें ॥१०॥

भावार्थ·—इस मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार ऋग्, यजु , साम, अथर्व यह चारों वेद परमात्मा की आज्ञा पालन कराने के लिये चार विभागों में विभक्त हैं इसी प्रकार राज्यशासन भी चार विभागों मे विभक्त जानना चाहिये अर्थात् आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्रविद्या जानने वालों से सैनिक रक्षण और राजमन्त्री तथा न्यायाधीश इन दोनो से राज्यप्रबन्ध—इस प्रकार उक्त चारो से धन की याचना करते हुए सदा ही इनके कल्याण का शुभचिन्तन करते रहो अर्थात् सम्राट् के राष्ट्रप्रबन्ध से उक्त चारो सांसारिक सुख की अभिलाषा करो और दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मा से नित्य सुख की प्रार्थना करते हुए उनके दिव्यगुणों का सदा गान करते रहो जिससे तुम्हे सद्‌गति प्राप्त हो ॥१०॥

यह सप्तम मण्डल में बियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि. ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्द.—१, ३, ९ विराड्जगती । २, ४, ६ निचृज्जगती । ५ आर्षी जगती ७, ८, १० आर्षीजगती ॥ निषाद स्वर ॥

अब राजधर्म का वर्णन करते हुए सैनिक पुरुषों से रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

पदार्थ —(इन्द्रावरुणा) हे शूरवीर योद्धाओ ! (युवां) तुम (आप्य) सबको प्राप्त होने योग्य अर्थात् सब के रक्षक होओ । (पश्यमानास.) तुम्हारी वीरता देखकर (पृथुपर्शव) सब ओर से हृष्ट पुष्ट वीर (नरा) मनुष्य (गव्यन्त) अपना आत्म-समर्पण करते हुए (ययु) तुम्हे प्राप्त होते है (च) और (प्राचा, दासा) प्राचीन सेवक (च) और (आर्याणि) आर्य्य पुरुष भी तुम्हारी शरण चाहते हैं। तुम (वृत्रा, हत) शत्रुओ का हनन करके (अवसा) रक्षा करते हुए (अवत, सुदास) दयावान् राजा को प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर विद्वानो ! तुम दास=शूद्र और आर्य्य=कर्मानुष्ठानपरायण पुरुषो की रक्षा करो, तुम इनके शत्रुओं का हनन करके इन्हे अभयदान दो, क्योंकि इनके होने से प्रजाजन वैदिक मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, सब अपनी मर्यादा मे रह कर धर्म का पालन करते हैं, और हृष्ट-पुष्ट शूरवीर तुम्हें प्राप्त होकर युद्ध द्वारा आत्मसमर्पण करते हुए तुम्हारे उत्साह को बढ़ाते हैं, इसलिये इन्हे भी सुरक्षित रखो, क्योंकि शूरवीरों के अभाव से भी प्रजा मे अनेक प्रकार के अनर्थ फैल जाते हैं जिससे मनुष्यो के जीवन में पवित्रता नही रहती ॥१॥

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।

यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

पदार्थ —(यत्र) जिस सग्राम मे (नर) मनुष्य (कृतध्वजः) ध्वजा उठाये हुए (समयन्ते) भले प्रकार आगमन करते (यस्मिन्, आजा) जिस सग्राम में (किंचन, प्रिय, भवति) कुछ सुख हो (यत्र) जिस सग्राम मे बड़े-बड़े योद्धा (भयते) भयभीत होते, और (स्वर्दृश·, भुवना) जहां देवता लोग स्वर्गप्राप्ति को भी अधिक नहीं मानते (इन्द्रावरुणा) हे युद्ध विद्या मे निपुण विद्वानो ! (तत्र) वहां (न.) हमको (अधिवोचतं) भले प्रकार उपदेश करो ॥२॥

भावार्थ —जिस सग्राम मे शत्रु लोग ध्वजा उठाये हुए हम पर आक्रमण करते हो अथवा जिस संग्राम मे हमारा कुछ प्रिय हो, या यो कहो कि जब शत्रु हम पर चढ़ाई करें वा हम दुष्टों के दमन अथवा प्रजा का प्रिय करने के लिये शत्रु पर चढ़ाई करें, हे अस्त्र-शस्त्रवेत्ता विद्वानो ! उक्त दोनों अवस्थाओ मे आप हमारी शत्रु से रक्षा करें ॥२॥

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।

अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥३॥

पदार्थ·—(इन्द्रावरुणा) हे युद्धविद्या मे निपुण राजपुरुषो, (घोष., दिवि, आरुहत्) तुम्हारे शस्त्रो का शब्द आकाश मे व्याप्त हो (स, भूम्या ,

अंता॑) सम्पूर्ण भूमि का अन्त (ध्वसिरा॑) योद्धाओं से विनाश होता हुआ (अदृक्षत) देखा जाय (अरातयः) शत्रु (मां) मुझको (जनानां) सब मनुष्यों के समक्ष (उप, अस्थु) आकर प्राप्त हों, और (अवसा) रक्षा चाहते हुए (हवनश्रुता) वैदिक वाणियों के श्रवण द्वारा (अर्वाक्, आगतम्) हमारे सम्मुख आवें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजधर्म का पालन करने वाले विद्वानो ! तुम शत्रुसेना पर ऐसा घोर आक्रमण करो कि तुम्हारे अस्त्रशस्त्रों का शब्द आकाश में गूंज उठे जिससे तुम्हारे शत्रु वेदवाणी का आश्रयण करते हुए तुम्हारी शरण को प्राप्त हों अर्थात् अपने दुष्टभावों का त्याग करते हुए सब प्रजाजनों के समक्ष वेद की शरण में आवें, और तुम्हारे योद्धा लोग सीमान्तों में विजय प्राप्त करते हुए शत्रुओं के दुर्गों को छिन्न-भिन्न करके सर्वत्र अपना अधिकार स्थापन करें जिससे प्रजा वैदिक धर्म का भले प्रकार पालन कर सके ॥३॥

इन्द्रा॑वरुणा व॒धना॑भिरप्र॒ति भे॒दं वन्व॑न्ता॒ प्र सु॒दास॑मावतम् ।

ब्रह्मा॑ण्येषां शृणुतं॒ हवी॑मनि स॒त्या तृत्सू॑नामभवत्पु॒रोहि॑तिः ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे राजधर्म का पालन करने वाले विद्वानो ! तुम (वधनाभि.) अनन्त प्रकार के शस्त्रों द्वारा (अप्रति, भेद) प्रबल शत्रुओं को (वन्वन्ता) हनन करके (सुदास, आवत) भली-भाँति नम्रभाव को प्राप्त राजा को प्राप्त होओ, और (एषां, तृत्सूनां) इन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदपाठों को (शृणुतं) श्रवण करते हुए (पुरोहिति॑) हितकारी बनो जिससे (हवीमनि) यज्ञों में (सत्या, अभवत्) सत्यरूप फल हो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम वेद से बहिर्मुख शत्रुओं का हनन करके वेदवेत्ता विद्वानों का सत्कार करो और उनका निरन्तर हित करते हुए उनके सत्सङ्ग से अपने जीवन को उच्च बनाओ, उनके यज्ञों की रक्षा करो जिससे उनका सत्यरूप फल प्रजा के लिये शुभ हो ॥४॥

इन्द्रा॑वरुणाव॒भ्या त॑पन्ति म॒घान्य॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तयः ।

यु॒वं हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य॒ राज॒थोऽध॑ स्मा नोऽवतं॒ पार्ये॑ दि॒वि ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रावरुणौ) हे विद्यासम्पन्न राजपुरुषो, (मा) मुझको (अर्य) शत्रु और (अरातय, वनुषां) हिंसक शत्रुओं के (अघानि) पापरूपशस्त्र (अभि, आतपति) चारों ओर से तपाते हैं (हि) निश्चय करके (युव) आप लोग (वस्व) उनका सर्वस्व हरण करके (उभयस्य, राजथ) दोनों प्रकार के बलवान् शत्रुओं को (अध) नीचे गिरायें, और (न, स्म, अवत) हमारी उनसे रक्षा करते हुए (पार्ये, दिवि) विजयरूप पार को प्राप्त करायें ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे इन्द्र तथा वरुणप्रधान युद्धविशारद विद्वानो ! तुम हिंसक तथा अन्य शत्रुओं का सर्वस्व हरण करके उनका नाश करो जो वेदविहित मर्यादा पर चलने वाले विद्वानों को तपाने—दुःख देते हैं, हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि उन शत्रुओं का युद्ध में अधःपतन हो और हम विजयरूप पार को प्राप्त हों ॥५॥

यु॒वां ह॑वन्त उ॒भया॑स आ॒जिष्विन्द्रं॑ च॒ वस्वो॒ वरु॑णं च सा॒तये॑ ।

यत्र॒ राज॑भिर्द॒शभि॒र्निबा॑धितं॒ प्र सु॒दास॒माव॑तं॒ तृत्सु॑भिः स॒ह ॥६॥

पदार्थ—हे इन्द्र तथा वरुणरूप योद्धाओ ! (युवा) आपको हमलोग (उभयास, आजिषु) दोनों प्रकार के युद्धों में (हवते) बुलाते हैं । (इन्द्र, च, वस्व) इन्द्र को धन के लिये (च) और (वरुण, सातये) वरुण को विजयप्राप्ति के लिये (यत्र) जिस युद्ध में (दशभि, राजभि) दशप्रकार के राजाओं से (निबाधित) पीड़ा को प्राप्त (तृत्सुभि, सह) तीनों प्रकार के ज्ञानियों के साथ (सुदास) योग्य राजा को (आवत) प्राप्त होओ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे इन्द्र तथा वरुणरूप विद्वानो ! तुम युद्धों में विजय प्राप्त करते हुए कर्मानुष्ठानी तथा वेदविद्याप्रकाशक विद्वानों की रक्षा करो अर्थात् कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा भक्तिभाव को प्राप्त पुरुषों की सेवा में सदा तत्पर रहो जिससे उन्हें कोई कष्ट प्राप्त न हो ॥६॥

अब वेदानुयायी योद्धा का अपरिमित बल कथन करते हैं ॥

दश॒ राजा॑नः॒ समि॑ता॒ अय॑ज्यवः सु॒दास॑मिन्द्रावरुणा॒ न यु॑युधुः ।

स॒त्या नृ॒णाम॑द्म॒सदा॒मुप॑स्तुतिर्दे॒वा ए॑षामभवन्दे॒वहू॑तिषु ॥७॥

पदार्थ—(अयज्यव) अवैदिक (दश, राजान) दश राजा (समिता॑) इकट्ठे होकर (सुदास) वेदानुयायी राजा से (न, युयुधु) युद्ध नहीं कर सकते । (देवहूतिषु) युद्धों में (अद्मसदां, देवा) यज्ञशील विद्वान् पुरुष (एषां) इन (नृणां) वेदानुयायी पुरुषों की (सत्या) सत्यरूप से (उपस्तुति) स्तुति (अभवन्) करते हैं (इन्द्रावरुणा) हे विद्यासम्पन्न राजपुरुषो ! तुम ऐसे साधनसम्पन्न पुरुषों की सहायता करो ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में यह उपदेश किया है कि राजा तथा राजकीय पुरुषों को सदा वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना चाहिये, क्योंकि व्रत, तप तथा अनुष्ठानशील राजा को दश राजा भी मिलकर युद्ध में पराजित नहीं कर सकते, दृढ़व्रती, कर्मकाण्डी तथा धीर वीर राजा की सब विद्वान् प्रशंसा करते और वही अपने सब कार्यों को विधिवत् करता हुआ संसार में कृतकार्य्य होता है, ऐसे धर्मज्ञ राजा की सब विद्वानों को सहायता करनी चाहिये ॥७॥

दा॒श॒रा॒ज्ञे परि॑यत्ताय वि॒श्वतः॑ सु॒दास॑ इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।

श्वि॒त्यञ्चो॒ यत्र॒ नम॑सा कप॒र्दिनो॑ धि॒या धीव॑न्तो॒ अस॑पन्त॒ तृत्स॑वः ॥८॥

पदार्थ—(यत्र) जिस युद्ध में (नमसा) प्रभुता से (कपर्दिन.) उत्तम अलंकारयुक्त (धीवत) बुद्धिमान् (तृत्सव) कर्मकाण्डी (श्वित्यञ्च) सदाचारी (असपन्त) युद्धरूप कर्म में (धिया) बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होता है, उस युद्ध में (विश्वतः) सब ओर से (दाशराज्ञे, परियत्ताय) दश राजाओं के आक्रमण करने पर (सुदासे) वेदानुयायी राजा को (इन्द्रावरुणौ) हे अस्त्र-शस्त्रों की विद्या में कुशल विद्वानो, (अशिक्षत) बल प्रदान करो ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा लोगो ! तुम कर्मकाण्डयुक्त तथा सदाचारसम्पन्न होकर अपने कार्यों को विधिवत् करो और युद्धरूप कर्म में बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होओ । जो सदाचारसम्पन्न राजा बुद्धिपूर्वक युद्ध करता है उसको अनेक राजा सब ओर से आक्रमण करने पर भी विजय नहीं कर सकते । परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे धनुर्विद्यासम्पन्न अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम ऐसे धर्मपरायण राजा की सदा सहायता करो जिससे वह शीघ्र कृतकार्य्य हो ॥८॥

वृ॒त्राण्य॒न्यः स॑मि॒थेषु॒ जिघ्न॑ते व्र॒तान्य॒न्यो अ॒भि र॑क्षते॒ सदा॑ ।

हवा॑महे वां वृषणा सुवृ॒क्तिभि॑र॒स्मे इ॑न्द्रावरुणा॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥९॥

पदार्थ—(अन्य., समिथेषु) एक शूरवीर युद्धों में (वृत्राणि, जिघ्नते) शत्रुओं को विजय करता (अन्य) एक (सदा) सदैव (अभि) सर्वप्रकार से (व्रतानि) नियमों की (रक्षते) रक्षा करता है । (इन्द्रावरुणा) इन्द्र तथा वरुणदेव योद्धाओ, (वां) आप (अस्मे) हमको (शर्म, यच्छत) सुख प्राप्त करायें आप (वृषणा) युद्ध की कामना पूर्ण करने वाले और (सुवृक्तिभि.) शुभ मार्गों में प्रवृत्त कराने वाले हैं, इसलिये (हवामहे) हम आपका आह्वान करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जो राजा लोग व्रतों की रक्षा करते और दुष्ट शत्रुओं का दमन करते हैं, हे अस्त्रशस्त्रविद्यावेत्ता विद्वानो ! तुम उनकी सहायता करो, क्योंकि व्रतपालन तथा दुष्टदमन किये बिना प्रजा में सुख का संचार कदापि नहीं हो सकता ॥९॥

अ॒स्मे इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा द्यु॒म्नं य॑च्छन्तु म॒हि शर्म॑ स॒प्रथः॑ ।

अ॒व॒ध्रं ज्योति॒रदि॑तेर्ऋता॒वृधो॑ दे॒वस्य॒ श्लोकं॑ सवि॒तुर्म॑नामहे ॥१०॥

पदार्थ—इन्द्र॑ वैद्युतविद्यावेत्ता (वरुण) जलीय विद्या के ज्ञाता (मित्र॑) राजमन्त्री (अर्यमा) न्यायाधीश (अस्मे) हमको (द्युम्न) दीप्ति वाला (महि) बड़ा (सप्रथ) विस्तृत (शर्म) सुख (यच्छन्तु) प्राप्त करायें । (ज्योति.) हे दिव्यरूप (अवध्र) नित्य (अदिते) अखण्डनीय (ऋतावृध) सत्यस्वरूप (देवस्य) दिव्य स्वरूप (सवितु॑) सब के उत्पादक परमात्मन् ! मैं आपकी (श्लोक) स्तुति (मनामहे) करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ—हे न्यायाधीश परमात्मन् ! आप इन्द्रादि विद्वानों द्वारा हमको नित्य सुख की प्राप्ति करायें, और ऐसी कृपा करें कि हम आपके सत्यादि गुणों का गान करते हुए सदैव आपकी स्तुति में तत्पर रहें ॥१०॥

यह सप्तम मण्डल में तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, *निचृत्त्रिष्टुप्* । ३ *त्रिष्टुप्* ॥ धैवतः स्वरः ॥

अथ परमात्मा प्रकारान्तर से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ वां॑ राजानावध्व॒रे व॑वृत्यां ह॒व्येभि॑रिन्द्रावरुणा॒ नमो॑भिः ।

प्र वां॑ घृ॒ताची॑ बा॒ह्वोर्दधा॑ना॒ परि॒ त्मना॒ विषु॑रूपा जिगाति ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र तथा वरुण ! (वां राजानौ) प्रकाश वाले आप दोनों (अध्वरे) संग्राम में (ववृत्यां) आवें । (हव्येभि, नमोभि॑) हम नम्र वाणियों द्वारा आपका सत्कार करते हैं (वां) आपको (बाह्वो.) हाथों में (आ) भले प्रकार (घृताची) स्रुवा (दधाना) धारण कराते हुए (परि, त्मना) शुभमयरूप से (विषुरूपा) नाना प्रकार के द्रव्यों द्वारा (जिगाति) उद्बोधन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो ! तुम अग्निविद्यावेत्ता तथा जल वायु आदि तत्त्वों की विद्या जानने वाले विद्वानों की दुष्टदमनरूप संग्राम

में बुलाओ और नम्र वाणियों द्वारा उनका सत्कार करते हुए उनको उद्बोधन करो कि हे भगवन् ! जिस प्रकार घृतादि पदार्थों से अग्नि देदीप्यमान होती है इसी प्रकार आप हमारे सम्मानादि भावो से देदीप्यमान होकर शत्रुरूप समिधाओ को शीघ्र ही भस्म करें जिससे हमारी शुभ कामनायें पूर्ण हो ॥१॥

अब प्रेम-रज्जू से बधे हुए राष्ट्र की दृढ़ता का वर्णन करते हैं ॥

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।

परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

पदार्थः—(युवो) हे राजा तथा राजपुरुषो ! तुम्हारा (राष्ट्र) राज्य (द्यौः, बृहत्, इन्वति) द्युलोकपर्यन्त बड़ा विस्तृत हो (यौ) तुम दोनो (परि) सब ओर से (सेतृभिः, अरज्जुभिः सिनीथ) प्रेमरूप रज्जुओ मे बधे हुए (न.) हमको प्राप्त होओ (उ) और (लोक) तुम्हारे लोक को (इन्द्र.) विद्युद्विद्यावेत्ता विद्वान् (कृणवत्) रक्षा करें (वरुणस्य , हेळः) जलविद्यावेत्ता विद्वान् का आक्रमण (वृज्याः) तुम पर न हो, और तुम प्रार्थना करो कि (न) हमको (उरुम्) विस्तृत लोको की प्राप्ति हो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते है कि हे राजपुरुषो ! तुम सदैव अपने राष्ट्र की वृद्धि मे लगे रहो और उसको प्रेमरूप रज्जु के बन्धन से ऐसा बाधो कि वह किसी प्रकार से भी शिथिलता को प्राप्त न हो, अधिक क्या, जिनके राष्ट्र दृढ़ बन्धनो से बधे हैं उन पर न कोई जलयानों द्वारा आक्रमण कर सकता और न कोई विद्युत् आदि शक्तियो से उनको हानि पहुँचा सकता है, जो राजा अपने राष्ट्र को दृढ़ बनाने के लिये प्रजा मे प्रेम उत्पन्न करता अर्थात् अन्याय और दुराग्रह का त्याग करता हुआ अपने को विश्वासार्ह बनाता है तब वह दोनो परस्पर उन्नत होते और पृथिवी से लेकर द्युलोकपर्यन्त सवत्र उनका अटल प्रभाव हो जाता है, इस लिये उचित है कि राजा अपने राष्ट्र को दृढ बनाने के लिये प्रजा मे प्रेम उत्पन्न करे, प्रजा मे प्रेम का सचार करने वाला राजा ही अपने सब कार्यों को विधिवत् करता और वही अन्ततः परमात्मा को प्राप्त होता है ॥२॥

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।

उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३॥

पदार्थ —हे विद्वान् राजपुरुषो ! (नः) हमारे (यज्ञ) यज्ञ को (विदथेषु) गृहो मे (चारु, कृतं) सुन्दर बनाओ (ब्रह्माणि) वैदिक स्तोत्रो को (सूरिषु) शूरवीरों मे (प्रशस्ता, कृत) प्रशसनीय बनाओ (न) हमारे (देवजूत.) आपकी रक्षा से (उपो, एतु, रयि) उत्तमोत्तम पुष्कल धन प्राप्त हो, और (न.) हमको (प्र) सर्व प्रकार की (स्पार्हाभिः) अभिलषित (ऊतिभि) रक्षाओ से (तिरेतम्) उन्नत करो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा आज्ञा देते है कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम प्रजाजनो को प्राप्त होकर उनके घरों को यज्ञो द्वारा सुशोभित करो और शूरवीरो को वैदिक शिक्षा दो ताकि वह वेदवाणीरूप ब्रह्मस्तोत्रो का प्रजा मे भली-भाति प्रचार करें और राजा तथा प्रजा दोनो ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थों से भरपूर हो, और प्रजाजन भी उन विद्वानो से प्रार्थना करें कि हे भगवन् ! आपकी रक्षा से हमको पुष्कल धन प्राप्त हो और हम आपकी रक्षा मे रहकर मनोभिलषित उन्नति करें ॥३॥

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) इन्द्र परमैश्वर्य्ययुक्त तथा वरुण सब का उपास्यदेव परमात्मा (विश्ववार) सबको रुचिकर (वसुमत) सब प्रकार के धनो से युक्त (रयिं, धत्त) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को धारण करने वाला (पुरुक्षु) नाना प्रकार के अन्नो से युक्त, और (य) जो (प्र) भले प्रकार (आदित्य.) अज्ञान का नाश करने वाला है वह (अनृता, मिनाति) असत्यवादियो को दण्ड देता, और (शूर.) शूरवीरो को (अमिता, वसूनि, दयते) यथेष्ट धन देता है (अस्मे) कृपा करके हमें भी ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम सब प्रकार के ऐश्वर्य्य तथा धन की याचना उसी परमात्मा से करो क्योंकि वही परमैश्वर्य्ययुक्त, नाना प्रकार के अन्नरूप धनों का स्वामी और वही सब ससार को यथाभाग देने वाला है, वह अनृतवादियो को दण्ड देता और धर्मात्मा शूरवीरो को यथेष्ट धन का स्वामी बनाता है, इसलिये उचित है कि सब प्रजाजन सत्यपरायण होकर परमात्मा से ही धन की प्रार्थना करें ॥४॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(मे) मेरी (इयं) यह (गीः) वेदरूप वाणी (इन्द्रं, वरुण) सर्वैश्वर्य्ययुक्त तथा सर्वोपरि परमात्मा को (अष्ट) प्राप्त हो (तूतुजाना) यह ईश्वरीय वाणी (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र के लिये (प्र, आवत्) भले प्रकार रक्षा करे, और हम लोग (सुरत्नास) धनादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न होकर (देववीतिं) विद्वानो की यज्ञशालाओं को (गमेम) प्राप्त हों, और हे परमात्मन् (यूय) आप (न) हमको (स्वस्तिभि) आशीर्वादरूप वाणियो से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे यजमान की ओर से प्रार्थना कथन की गई है कि हे भगवन् ! हमारा किया हुआ स्वाध्याय तथा वैदिक कर्मों का अनुष्ठान, यह सब आप ही का यश है, क्योंकि इन्हीं कर्मों के अनुष्ठान मे हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तानों की वृद्धि होती और हम ऐश्वर्य्यसम्पन्न होकर आपके भक्तिभाजन बनते है अर्थात् वैदिक कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ही मनुष्य को पुत्रपौत्रादि सन्तति प्राप्त होती और इसी से धनादि ऐश्वर्य्य की वृद्धि होती है, इसलिये जिज्ञासुओ को उचित है कि वह धनप्राप्ति तथा ऐश्वर्य्यवृद्धि के लिये वैदिक कर्मों का निरन्तर अनुष्ठान करें और सन्तति-अभिलाषियों के लिये भी यही कर्म उपादेय है ॥५॥

यह सप्तम मण्डल में चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य १-५ वसिष्ठ ऋषि ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, ४, आर्षीत्रिष्टुप । २, ३, ५, निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

अब राजधर्म का वर्णन करते हुए सैनिक पुरुषो के सहायतार्थ सोमादि द्रव्यों का प्रदान कथन करते हैं ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।

घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥१॥

पदार्थ — हे मनुष्यो ! तुम (अभीके) इस धर्मयुद्ध मे (इन्द्रस्य, वरुणस्य) इन्द्र तथा वरुण के लिए (सोम, जुह्वत्) सोमरस प्रदान करके यह कथन करो कि (वां) आपको (अरक्षस) आसुरभावरहित (घृतप्रतीकां) घृत के समान स्नेह वाली (मनीषां) बुद्धि द्वारा प्रार्थना करके (पुनीषे) पवित्र करें (उषस) उषा के (न) समान (देवीं) दिव्यरूप (ता) बुद्धि द्वारा (यामन्) युद्ध की चढ़ाई के समय (न) हमको (उरुष्यतां) सेवन करें ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि हे प्रजाजनो ! तुम इन्द्र—परमैश्वर्ययुक्त शूर वीर तथा वरुण—शत्रुसेना को शस्त्रो द्वारा आच्छादन करने वाले वीर पुरुषो का सोमादि उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार करके उन्हे प्रसन्न करते हुए अपनी स्नेहपूर्ण शुद्ध बुद्धि द्वारा सदैव उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना करो, जिससे वह शत्रुओ को पराजय करके तुम्हारे लिए सुखदायी हो, तुम युद्ध मे चढ़ाई के समय उनके सहायक बनो और उनको सदा प्रेम की दृष्टि से देखो, क्योंकि जहा प्रजा और राजपुरुषो मे परस्पर प्रेम होता है वहा सदैव आनन्द बना रहता है, इसलिए तुम दोनो परस्पर प्रेम की वृद्धि करो ॥१॥

अब अन्यायकारी शत्रुओ को परास्त करने का उपदेश करते है ॥

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।

युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥२॥

पदार्थ —(इन्द्रावरुणौ) हे इन्द्र तथा वरुण ! तुम (अमित्रान्) शत्रुसेना को (पराच) पराजय करके (शर्वा, विषूच) हिंसक शस्त्रों से (हत) उनको हनन करो, और (देवहूये) इस देवासुर सग्राम मे (येषु, ध्वजेषु) जिन ध्वजाओ में (दिद्यव , पतन्ति) शत्रुओ के फेंके हुए शस्त्र गिरते हैं (वै) निश्चय करके (अत्र) उन स्थलो मे ध्वजाओं की रक्षा करो, और जो (युव) तुम दोनो से (स्पर्धन्ते) ईर्ष्या करते है उनका (ऊ) भली भांति हनन करो ॥२॥

भावार्थः—इन्द्र = विद्युत् की शक्ति जानने वाला, वरुण = जलयानो की विद्या जानने वाला, हे विद्युत् तथा जलीय विद्याओ के जानने वाले सेनाध्यक्षो ! तुम असुर सेना के हनन करने के लिए सदा उद्यत रहो, और युद्ध करते हुए अपनी सेना के झडो की बड़े प्रयत्न से रक्षा करो, और अपने साथ ईर्ष्या करने वालो को सदा परास्त करते रहो ताकि कोई अन्यायकारी पुरुष तुम्हे कभी दबाकर अन्याय न कर सके यह तुम्हारे लिए ईश्वरीय आदेश है ॥२॥

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।

कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥३॥

पदार्थ —हे सेनाधीश (हि) निश्चय करके (आप , चित्) सर्वत्र व्यापक होकर (स्वयशस) अपने यश से (सदःसु) उपासनीय स्थानो मे (देवी) दिव्यशक्तिसम्पन्न (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् (वरुण) सबको स्वशक्ति मे रखने वाले परमात्मा की (देवता) दिव्यशक्तियो को (धुः) धारण कर (अन्यः) कोई (कृष्टी) प्रजा को (धारयति) धारण करता है जो (प्रविक्ता) भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यो के कर्मों को जानता है (अन्यः) अन्य

(वृत्राणि) मेघों के समान नभोमण्डल में फैले हुए (अप्रतीनि) वश मे न आने वाले शत्रुओं को (हंसि) हनन करता है ॥३॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मशक्तियों को धारण करके भिन्न-भिन्न कर्मों के ज्ञाता हैं वह परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा की उपासना करते हुए न्यायाधीश के पद पर स्थित होते हैं और जो बुद्धिविद्याविशारद होते है वह आकाशस्थ शत्रु की सेना को मेघमण्डल के समान अपने प्रबल वायुसदृश वेग से छिन्न-भिन्न करते हैं अर्थात् दिव्यशक्तिसम्पन्न राजपुरुष न्यायाधीश बनकर प्रजा मे उत्पन्न हुए दोषों को नाश करके उसको धर्मपथ पर चलाते और दूसरे सेनाधीश बनकर वश मे न आने वाले शत्रुओं को विजय करके प्रजा मे शान्ति फैलाते हुए परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं ॥३॥

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।

आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥४॥

पदार्थ—(स) वह पुरुष (सुक्रतु) उत्तम कर्मों के करने वाला (ऋतचित्) बड़ी सत्यवादी (होता) वही यज्ञ करने वाला (अस्तु) है (य.) जो (आदित्य) आदित्य के समान तेजस्वी होकर (शवसा) अपने सामर्थ्य से (वां) इन्द्र तथा वरुण शक्ति को (नमस्वान्) सबसे बड़ी समझता और जो (वां) इन्द्र तथा वरुण शक्ति को (अवसे) रक्षा के लिए (आववर्तत्) वर्ताव मे लाता है, और जो (हविष्मान्) सदैव यज्ञादि-कर्म करता है (स) वह (इत्) निश्चय करके (प्रयस्वान्) ऐश्वर्ययुक्त होकर (सुविताय) ससार मे यशस्वी (असत्) होता है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा उपदेश करते है कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्र=विद्युत् तथा वरुण=वायुरूपशक्ति को काम में लाओ, जो इन शक्तियों को व्यवहार मे लाता है वह ऐश्वर्यसम्पन्न होकर सम्पूर्ण ससार मे फैलता अर्थात् उसकी अतुल कीर्ति होती है और वही पुरुष तेजस्वी बनकर अमित्र सेना का हनन करने वाला होता है ॥४॥

अब उक्त शक्तिसम्पन्न होने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(मे) मेरी (इयं) यह (गी) वेदरूपवाणी (इन्द्र, वरुण) इन्द्र तथा वरुणरूप शक्ति को (अष्ट) प्राप्त हो (तूतुजाना) यह प्रार्थनारूप वाणी (तोके, तनये) पुत्र-पौत्रो के लिए (प्र, आवत्) भले प्रकार सफल हो, और हम लोग (सुरत्नासः) धनादि ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (देववीति) विद्वानो की यज्ञशालाओं को (गमेम) प्राप्त हो, और हे परमात्मन् ! (यूय) आप (न) हमको (स्वस्तिभि) आशीर्वादरूप वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! हम आपकी कृपा से विद्युत् तथा वायुरूप शक्तियो की विद्या जानने वाले विद्वानो को सदैव प्राप्त होते रहे अर्थात् ऐसी कृपा करें कि हम उन विद्वानो के सग से उक्त विद्या की वृद्धि द्वारा अपने जीवन को उच्च बनावें और हमारा किया हुआ वेदपाठ तथा यज्ञादि सत्कर्म हमारी सन्तानो को पवित्र करें और आप हमको मगलमय वाणियो से सदैव पवित्र करते रहे, यह हम यजमानो की प्रार्थना है ॥५॥

यह पञ्चम मण्डल में पिचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य—१-८ वसिष्ठ ऋषि ॥ वरुणोदेवता ॥ छन्द १, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्षीत्रिष्टुप ॥ धैवत स्वर ॥

अब वरुणस्वरूप परमात्मा की उपासना से मनुष्यजीवन की पवित्रता कथन करते हैं ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।

प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१॥

पदार्थ—(य) जो परमात्मा (वि) भलीभांति (रोदसी) द्युलोक (चित्) और (उर्वी) पृथ्वी लोक को (तस्तम्भ) थामे हुए है, और जो (बृहत) बड़े-बड़े (नक्षत्र) नक्षत्रो को (च) और (भूम) पृथिवी को (पप्रथत्) रचता, तथा (नाक) स्वर्ग (ऋष्व) नरक को (द्विता) दो प्रकार से (नुनुदे) रचता है (तु) निश्चय करके (अस्य) इस वरुणरूप परमात्मा को (धीरा) पुरुष (महिना) महत्त्व द्वारा (जनूंषि) जानते अर्थात् उसके ज्ञान को लाभ करते है ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रचयिता है और जिसके कर्मानुसार स्वर्ग=सुख और नरक=दु.ख को रचा है उसके महत्त्व को धीर पुरुष ही विज्ञान द्वारा अनुभव करते है, जैसा कि अन्यत्र भी वर्णन किया है ॥१॥

अब परमात्मा की उपासना का प्रकार कथन करते हैं ॥

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।

किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

पदार्थ—(उत) अथवा (स्वया, तन्वा) अपने शरीर से (स) भले प्रकार (तत्) उस उपास्य के साथ (वदे) आलाप करू (कदा) कब (नु) निश्चय करके (वरुण, अन्त) उस उपास्यदेव के स्वरूप मे (भुवानि) प्रवेश करूगा (किं) क्या परमात्मा (मे) मेरी (हव्य) उपासनारूप भेंट को (अहृणान) प्रसन्न होकर (जुषेत) स्वीकार करेंगे (कदा) कब (मृळीकं) उस सर्व सुखदाता को (सुमनाः) सस्कृत मन द्वारा (अभि, ख्य) सब ओर से ज्ञानगोचर करूगा ॥२॥

भावार्थ—उपासक पुरुष उपासना काल से उस दिव्यज्योति परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे भगवन् ! आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि मैं आपके समीप होकर आपसे आलाप करू , हे सर्वनियन्ता भगवन् ! आप मेरी उपासना रूप भेंट को स्वीकार करके ऐसी कृपा करे, कि मैं सर्वसुखदाता आपको अपने पवित्र मन द्वारा ज्ञानगोचर करू, आप ही की उपासना में निरन्तर रत रहूँ और एकमात्र आप ही मेरे सन्मुख लक्ष्य हो अर्थात् उपासक पुरुष नानाप्रकार के तर्क-वितर्कों से यह निश्चय करता है कि मैं ऐसे साधन सम्पादन करू जिनसे उस आनन्दस्वरूप मे निमग्न होकर आनन्द का अनुभव करू ॥२॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।

समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३॥

पदार्थ—(वरुण) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, (तत्) वह (एन) पाप (पृच्छे) आपसे पूछता हूँ (उपो, दिदृक्षु) आपके दर्शन का अभिलाषी मैं (चिकितुष) सर्वथा बन्धनरहित होकर (एमि) आपको प्राप्त होऊ (कवय) विद्वान् पुरुष (विपृच्छ) भले प्रकार पूछने पर (समान) आपके विषय मे (मे) मुझको (चित्) निश्चयपूर्वक (आहु:) यह कहते हैं (ह) प्रसिद्ध है कि (अयं) यह (वरुणः) सर्वशक्तिमान् परमात्मा (तुभ्यं) उपासको को (इत्) निश्चय करके (हृणीते) पापो से उभारकर मुक्ति की ओर ले जाना चाहता है ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक ! मैं उन पापो को कैसे जानू जिनके कारण आपके दर्शन से वंचित हूँ, हे सर्वपालक ! ऐसी कृपा कर कि मैं उन पापो से छूटकर आपको प्राप्त होऊ, यह प्रसिद्ध है कि वेदो के ज्ञाता विद्वान् पुरुष पूछने पर निश्चयपूर्वक यह कहते हैं कि परमात्मा सबका मंगल, कल्याण चाहते हैं, यदि उपासक क्षणमात्र भी उनकी ओर झुके तो वह दयालु भगवान् स्वय उसका उद्धार करते हैं, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह साधनसम्पन्न होकर परमात्मा की उपासना मे प्रवृत्त हो तभी उसका उद्धार हो सकता है अन्यथा नही ॥३॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।

प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

पदार्थ—(वरुण) हे मगलमय परमात्मन् ! वह (किं) क्या (ज्येष्ठ) बड़े (आग) पाप (आस) हैं (यत्) जिनके कारण (सखाय) मित्ररूप आप (स्तोतार) उपासको को (जिघांससि) हनन करना चाहते हैं (तत्) उनको (प्र) विशेषरूप से (मे) मेरे प्रति (वोचः) कथन करें (दूळभ) हे सर्वोपरि अजेय परमात्मन् (त्वा) आप (स्वधाव) ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, इसलिये (अनेनाः) ऐसे पापो से (अव) रक्षा करें, ताकि मैं (नमसा) नम्रतापूर्वक (तुर) शीघ्र ही (इयां) आपको प्राप्त होऊ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपासक अपने पापो के मार्जननिमित्त परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे महाराज ! वह मैंने कौन बड़े पाप किये है जिनके कारण मैं आपको प्राप्त नहीं हो सकता अथवा आपकी प्राप्ति में विघ्नकारी हैं, हे मित्ररूप परमेश्वर ! आप मेरा हनन न करते हुए अपनी कृपा द्वारा उन पापो से मुझे निर्मुक्त करें ताकि मैं शीघ्र ही आपको प्राप्त होऊ ॥४॥

अब पंचप्रकृति द्वारा आए हुए पापों के मार्जनार्थ प्रार्थना कथन करते हैं ॥

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।

अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥५॥

पदार्थः—(राजन्) हे सर्वोपरिविराजमान जगदीश्वर ! आप (द्रुग्धानि, पित्र्या) माता-पिता की प्रकृति से (न) हम में आये हुए दोष और (या) जिनको

(**अयं**) हमने (**तनूभिः**) शरीर द्वारा (**चकृम**) किया है और जो (**पशुतृप**) पशुओं के समान हमारी विषयवासनारूप वृत्ति तथा (**तायुं, न**) चोरों के समान हमारे भाव हैं उनको (**अवसृज**) दूर करके (**दाम्नः**) रज्जु के साथ बंधे हुए (**वत्सं**) वत्स के (**न**) समान (**वसिष्ठं**) विषय वासनाओं में लिप्त मुझको (**अव, सृज**) मुक्त करें ।।५।।

भावार्थ—इस मन्त्र में विषयवासना में लिप्त जीव की ओर से यह प्रार्थना की गई है कि हे जगदीश्वर ! जो स्वभाव मेरे माता-पिता की ओर से मुझ में आया है अथवा मैंने अपने दुष्कर्मों से जो प्रकृति बना ली है उसको आप अपनी कृपा से दूर करके मुझको अपना समीपी बनावें, जिस प्रकार रज्जु से बंधा हुआ वत्स अपनी माता का दूध नहीं पी सकता इसी प्रकार विषयवासनारूप रज्जु में बंधा हुआ मैं आपके स्वरूपरूपी कामधेनु का दुग्ध पान नहीं कर सकता । हे प्रभो ! आपसे विमुख करने वाले विषयवासनारूप बन्धनों से मुक्त करके मुझको आनन्द का भोक्ता बनायें, यह मेरी आपसे प्रार्थना है ।।५।।

प्रारब्धजन्य कुप्रवृत्ति से आये हुए पापों के मार्जनार्थ प्रार्थना कथन करते हैं ।।

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।

अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ।।६।।

पदार्थः—(**वरुण**) हे सबको स्वशक्ति में वेष्टन करने वाले परमात्मन्, (**स्व**) अपनी प्रकृति से जो (**दक्ष**) कर्म किया जाता है (**सः**) वही पापप्रवृत्ति में कारण (**न**) नहीं होता, किन्तु (**ध्रुतिः**) मन्दकर्मों में जो दृढ़ प्रवृत्ति है (**सा**) वह (**सुरा**) मद के तुल्य होने से (**मन्यु**) क्रोध, पापप्रवृत्ति का कारण है, और (**विभीदकः**) द्यूतादि व्यसन तथा (**अचित्तिः**) अज्ञान (**अस्ति**) है (**ज्यायान्, कनीयसः, उपारे**) इस तुच्छ जीव के हृदय में अन्तर्यामी पुरुष भी है जो शुभकर्मी को शुभकर्मों की ओर उत्साह देता और मन्दकर्मी को मन्दप्रवाह की ओर प्रवाहित करता है (**स्वप्नः, चन, इत्**) स्वप्न का किया हुआ कर्म भी (**अनृतस्य, प्रयोता**) अनृत की ओर ले जाने वाला होता है ।।६।।

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि अपने स्वभाव द्वारा किया हुआ कर्म ही पाप की ओर नहीं ले जाता किन्तु (१) जीव की प्रकृति=स्वभाव (२) मन्दकर्म (३) अज्ञान (४) क्रोध (५) ईश्वर का नियमन, यह पाँच जीव को सद्गति वा दुर्गति में कारण होते हैं, जैसाकि कौषीतकी उप० में वर्णन किया है कि "एष एव साधुकर्म कारयति, त यमधो निनीषते" कौ० ३।८ =जिसको वह देव अधोगति को प्राप्त करना चाहता है उसको नीचे की ओर ले जाता, और जिसको उच्च बनाना चाहता है उसको उन्नति के पथ पर चलाता है । यहां यह शंका होती है कि ऐसा करने से ईश्वर में वैषम्य तथा नैर्घृण्यरूप दोष आते हैं अर्थात् ईश्वर ही अपनी इच्छा से किसी को नीचा और किसी को ऊंचा बनाता है । इसका उत्तर यह है कि ईश्वर पूर्वकृत कर्मों द्वारा फलप्रदाता है और उस फल से स्वयंसिद्ध ऊंच नीचपन आजाता है, जैसे किसी पुरुष को यहाँ नीचकर्म करने का दण्ड मिला, उतने काल में जो वह स्वकर्म करने से वंचित रहा इससे वह दूसरों से पीछे रह गया, इस भाव से ईश्वर जीव की उन्नति तथा अवनति का हेतु है, वास्तव में जीव के स्वकृतकर्म ही उसकी उन्नति तथा अवनति में कारण होते हैं, इसी भाव से जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र माना है । कर्मानुसार फल देने से ईश्वर में कोई दोष नहीं आता ।। ६ ।।

अब जीव ईश्वर से स्वकल्याण की प्रार्थना करता है ।।

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।

अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ।।७।।

पदार्थ—(**अहं**) मैं (**अनागा**) निष्पाप होकर (**देवाय**) परमात्म देव से (**दासः, न**) दास के समान (**अरं, कराणि**) अपनी कामनाओं के लिये प्रार्थना करता हूं (**मीळ्हुषे**) वह कर्मों का फलप्रदाता (**अचितः, अचेतयत्**) अज्ञानियों को मार्ग बतलाने वाला (**अर्यः**) सबका स्वामी (**देवः**) दिव्यगुणस्वरूप और (**कवितरः**) सर्वज्ञ परमात्मा (**गृत्सं**) यजन करने वालों को (**राये, जुनाति**) ऐश्वर्य्य की ओर प्रेरित करे ।।७।।

भावार्थ—परमात्मा के अज्ञानियों का पथप्रदर्शक होने से जीव अपने कल्याण की प्रार्थना करता हुआ यह कथन करता है कि हे परमात्मदेव ! मैं आप के निमित्त यजन करता हुआ प्रार्थी हूं कि कृपा करके आप मेरे कल्याणार्थ मुझे ऐश्वर्य्यसम्पन्न करें ।।७।।

अब परमात्मा जीवों को उनके योगक्षेम के लिये प्रार्थना करने का प्रकार कथन करते हैं ।।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।

शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।८।।

पदार्थ—(**वरुण**) हे सर्वोपरि वरणीय परमात्मन् ! (**तुभ्यं**) आपको (**अयं**) यह (**सु, स्तोम**) सुन्दर यज्ञ (**उपश्रितः, अस्तु**) प्राप्त हो । (**स्वधावः**) हे अन्नादि के दाता (**चित्**) चेतनस्वरूप (**हृदि**) यह मेरी आपसे हार्दिक प्रार्थना है कि आप (**नः**) हमारे लिये (**शं**) सुखकारी हो (**उ**) और (**योगे, क्षेमे**) योग=अप्राप्त की प्राप्ति तथा क्षेम=प्राप्त की रक्षा कीजिये जिससे (**नः**) हमको (**स्वस्तिभिः**) मंगलमय वाणियों से (**नः**) हमको (**सदा**) सदा (**पात**) पवित्र करें ।।८।।

भावार्थ—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! यह हमारा किया यज्ञ आपको प्राप्त हो, आप कृपा करके हमारे योगक्षेम की रक्षा करते हुए हमारे भावों को पवित्र करें । अधिक क्या, जो परमात्मा में सदैव रत रहते हैं उनके योग-क्षेम-निर्वाह के लिये परमात्मा स्वयं उद्यत होते हैं ।।८।।

यह सप्तम मण्डल में छियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ सप्तर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य १—७ वसिष्ठ ऋषिः ।। वरुणो देवता ।। छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

अब परमात्मा से सूर्य्य चन्द्रादि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कथन करते हैं ।।

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ।।१।।

पदार्थः—(**वरुणः**) सब का अधिष्ठान परमात्मा (**सूर्याय**) सूर्य्य के लिये (**पथः**) मार्ग (**रदत्**) देता और (**प्र**) भले प्रकार (**समुद्रिया, अर्णांसि**) अन्तरिक्षस्थ जल तथा (**नदीनां**) नदियों को (**सर्गः, न**) घोड़े के समान (**अर्वतीः**) वेगवाली से (**ऋतायन्**) शीघ्र गमन की इच्छा से (**सृष्टः**) रचता, और उसी ने (**अहभ्यः**) दिन से (**महीः**) महान् (**अवनीः**) चन्द्रमा को (**चकार**) उत्पन्न किया ।।१।।

भावार्थ—सब संसार को वशीभूत रखने वाले परमात्मा ने चन्द्रमा, अन्तरिक्षस्थ जल और शीघ्रगामिनी नदियों को रचा, और उसी ने तेजपुञ्ज सूर्य्य को रचकर उसमें गति प्रदान की जिससे सम्पूर्ण भूमण्डल में गति उत्पन्न हो जाती है ।।१।।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।

अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ।।२।।

पदार्थः—(**वरुण**) हे वरणरूप परमात्मन् (**वात**) वायु (**ते**) तुम्हारा (**आत्मा**) आत्मवत् है, आप ही (**रजः**) जलों को (**आ**) भले प्रकार (**नवीनोत्**), नवीन भावों द्वारा प्रेरित करते हैं । (**न**) जिस प्रकार (**यवसे**) तृणादिकों से (**पशुः**) पशु (**ससवान**) सम्पन्न होता है इसी प्रकार प्राणरूप वायु सब जीवों का (**भूर्णि**) पोषक होता है । (**बृहती मही**) इसी बड़ी पृथिवी और (**रोदसी**) द्युलोक के (**अन्तः**) मध्य में (**इमे, विश्वा**) यह सब विश्व (**ते**) तुम्हारे (**धाम**) स्थान है जो (**प्रियाणि**) सब जीवों को प्रिय हैं ।।२।।

भावार्थः—"वृणोति सर्वमिति वरुण" जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति द्वारा आच्छादन करे उसका नाम "वरुण" है । एकमात्र परमात्मा ही ऐसा महान् है जो सब विश्ववर्ग को अपनी शक्तिद्वारा आच्छादन करके महत्ता से सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है इसीलिये उसका नाम वरुण है, जैसाकि "ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्" यजु० ४०।१।। इत्यादि मन्त्रों में अन्यत्र भी वर्णन किया है कि इस संसार में जो कुछ वस्तुमात्र दृष्टिगत हो रहा है वह सब ईश्वर की सत्ता से व्याप्त है । यही भाव इस मन्त्र में प्रकारान्तर से वर्णन किया है कि वायु इस वरुण परमात्मा के प्राणसमान और यह निखिल ब्रह्माण्ड उसके स्थान हैं जो जीवमात्र को प्रिय हैं ।।२।।

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।

ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ।।३।।

पदार्थ—(**ये**) जो (**ऋतावानः**) सत्यवादी (**यज्ञधीराः**) कर्मकाण्डी (**प्रचेतसः**) मेधावी (**कवयः**) विद्वान् (**मन्म, इषयन्त**) ईश्वर की स्तुति करते हैं उनको (**उभे, रोदसी**) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों (**पश्यन्ति**) देखते हैं जो (**सुमेके परि**) देखने में सर्वोपरि सुन्दर अर्थात् दिव्यदृष्टि वाले होने से (**वरुणस्य**) परमात्मा के (**स्मदिष्टा**) प्रशंसनीय (**स्पशः**) दूत हैं ।।३।।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं उनका यश पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य में फैल जाता है । इसी अभिप्राय से उक्त लोकों को साक्षीरूप से वर्णन किया है । लोकों का देखना यहां उपचार से वर्णन किया गया है वास्तविक नहीं,

क्योंकि वास्तव मे देखने तथा साक्षी देने का धर्म पृथिवी तथा द्युलोक में न होने से तपस्वी मनुष्यों की सक्षता कर लेनी चाहिये । पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य मे सब प्राणिवर्ग उन मनुष्यो की साक्षी देते हैं जो सदाचारी तथा ईश्वरपरायण होते हैं अर्थात् वह कभी छिप नहीं सकते, इसलिये प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह ईश्वर-परायण हो कर संसार मे अपना यश विस्तृत करे ॥३॥

अब परमात्मा की ओर से इक्कीस प्रकार की यज्ञीय वाणी का उपदेश कथन करते है ॥

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।

विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४॥

पदार्थः—(**वरुण**) सर्वविद्याभण्डार परमात्मा (**मे**) मुझे (**मेधिराय**) मेधावी शिष्य को (**उवाच**) बोला कि (**त्रि , सप्त, नाम**) इक्कीस नामों को (**अघ्न्या, बिभर्ति**) वेदवाणी ने धारण किया है, (**न**) और (**विद्वान्**) सब विद्याओं के वेत्ता परमात्मा ने (**पदस्य**) मुक्तिधाम के (**गुह्या**) गुप्त मार्गों का उपदेश करते हुए (**वोचत्**) कहा कि (**विप्र., युगाय**) हे मेधावी योग्य शिष्य ! मैं तुझे (**उपराय**) अपनी समीपता के लिये (**शिक्षन्**) यह उपदेश करता हूँ ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा अपने ज्ञान के पात्र मेधावी भक्तों को अपनी भक्ति का मार्ग बतलाते हुए उपदेश करते हैं कि तुम इक्कीस नामों वाले यज्ञ, जिन को वेदवाणी ने धारण किया है उनका, अनुष्ठान करो अर्थात् ब्रह्मयज्ञादि पाच महायज्ञ और उपनयनादि षोडशसंस्काररूप यज्ञ, इन इक्कीस यज्ञो का करने वाला मुक्तिधाम का अधिकारी होता और वही परमात्मा की समीपता को उपलब्ध करके सुख का अनुभव करता है । यह परमात्मा का उपदेश मनुष्यमात्र के लिये ग्राह्य है कि उक्त इक्कीस यज्ञो का अनुष्ठान करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें ॥४॥

अब परमात्मविभूति का कथन का करते हैं ॥

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।

गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५॥

पदार्थः—(**तिस्र., द्याव.**) तीन प्रकार का द्युलोक (**अस्मिन**) इस परमात्मा के (**अंत.**) स्वरूप मे (**निहिता.**) स्थिर है (**तिस्र , भूमीः**) तीन प्रकार की पृथिवी जिसके (**उपरा**) ऊपर (**षड्विधाना**) षड्ऋतुओं का परिवर्तन होता है (**एत**) इन सबको (**गृत्स**) परमपूजनीय (**वरुण**) सबको वश मे रखने वाले (**राजा**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा ने (**दिवि, प्रेंख**) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य मे (**हिरण्ययं**) ज्योतिर्मय को (**शुभे, क**) दीप्ति-प्रकाशार्थ (**चक्रे**) बनाया ॥५॥

भावार्थ—एकमात्र परमात्मा का ही यह ऐश्वर्य्य है जिसने नभोमण्डल मे अणुरूपवालु अन्तरिक्षनिर्वातस्थान तथा द्युलोक प्रकाशस्थान, यह तीन प्रकार का द्युलोक और उपरितम, मध्य तथा रसातल यह तीन प्रकार पृथिवी जिस मे षड् ऋतुएँ चक्रवत् घूम-घूम कर आती हैं, और पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य मे सब से विचित्र तेजोमण्डलमय सूर्य्यलोक का निर्माण किया जो सम्पूर्ण भूमण्डल तथा अन्य लोकलोकान्तरो को प्रकाशित करता है, इत्यादि विविध रचना से ज्ञात होता हैं कि परमात्मा का ऐश्वर्य्य अकथनीय है । इस मन्त्र मे विभूतिसम्पन्न वरुण को विराट्रूप से वर्णन किया गया है ॥५॥

अब परमात्मा की शक्ति का प्रकारान्तर से वर्णन करते है ॥

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।

गंभीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥६॥

पदार्थ—(**द्यौरिव**) सूय के समान स्वत प्रकाश (**वरुण**) परमात्मा (**सिन्धु**) समुद्र को (**अव स्थात**) भले प्रकार मर्यादा मे रखता (**न, द्रप्स**) वह चलायमान नही होता, वह (**श्वेत.**) शुद्धस्वरूप (**तुविष्मान**) कुटिलगति वाला के लिये (**मृग**) सिंहसमान है (**गभीरशंस**) वह अकथनीय है, वह (**रजस , विमान**) सूक्ष्म से सूक्ष्म जलकणो का भी निर्माता है जिसका (**सुपार-क्षत्र**) राज्य अत अपार और जो (**सत अस्य, राजा**) सत् - विद्यमान जगत का स्वामी है ॥६॥

भावार्थ—वह पूर्ण परमात्मा जिसने समुद्रादि अगाध जलाशयो की मर्यादा बाध दी है, वह रेणु आदि सूक्ष्म पदार्थों का निर्माता, वह अनन्तशक्तिसम्पन्न और वही इस सद्रूप जगत् का राजा है ।

स्मरण रहे कि जो इस संसार को मिथ्या मानते हैं वह "सतो अस्य राजा" इस वाक्य से शिक्षा लें जिसमे वेद भगवान् ने मिथ्यावादियो के मत का स्पष्ट खण्डन किया है कि वह जगत सद्रूप है मिथ्या नही ॥६॥

अब परमात्मा के निष्पाप होने का प्रकार कथन करते हैं ॥

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।

अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(**यः**) जो परमात्मा (**आगः चक्रुषे**) अपराध करते हुए को (**चित्**) भी (**मृळयाति**) अपनी दया से क्षमा कर देता है उस (**वरुणे**) वरुणरूप परमात्मा के समक्ष (**वय**) हम (**अनागा.**) निरपराध (**स्याम**) हो (**अदिते**) उस अखण्डनीय परमात्मा के (**व्रतानि**) नियमो को (**अनु, ऋधन्तः**) निरन्तर पालन करते हुए प्रार्थना करें कि हे परमात्मन् (**यूयं**) आप (**स्वस्तिभिः**) मगल वाणियो से (**सदा**) सदैव (**न**) हमारी (**पात**) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे जो यह वर्णन किया है कि वह अपराध करते हुए को अपनी दया से क्षमा कर देता है, इसका आशय यह है कि वह अपने सम्बन्ध म हुए पापो को क्षमा कर देता है परन्तु जिन पापो का प्रभाव दूसरो पर पडता है उनको कदापि क्षमा नहीं करता । जैसे कोई प्रमादवश किसी दिन सन्ध्या न करे तो प्रार्थना करने पर उस पाप का वह क्षमा कर सकता है परन्तु चोरी अथवा असभ्य भाषणादि पापो को वह कदापि क्षमा नही करता , उसका दण्ड अवश्य देता है, यद्यपि परमात्मा मे इतनी उदारता है कि वह अपराधो को क्षमा भी कर सकता है परन्तु हमको उसके समक्ष सदैव निरपराध होकर जाना चाहिये, जब हम उस परमात्मा के नियमो को पालन करते हुए उससे क्षमा की प्रार्थना करते है तभी वह हमारे ऊपर दया कर सकता है, अन्यथा नही ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य १-७ **वसिष्ठ** *ऋषि.* ॥ **वरुणो** *देवता* ॥ *छन्दः*—*१, २, ३, ६, निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्* ॥ *धैवत. स्वर.* ॥

अब ईश्वर की भक्ति कथन की जाती है ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।

य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥१॥

पदार्थः—(**वसिष्ठ**) हे सर्वोत्तम गुण वाले विद्वान् ! आप (**वरुणस्य**) सर्वाधार परमात्मा (**मीळ्हुषे**) जो भरण-पोषण करने वाला है, उसके लिये (**प्रेष्ठाम्**) प्रेममयी (**शुन्ध्युवम्**) अविद्या के नाश करने वाली (**मतिम**) बुद्धि को (**प्र, भरस्व**) धारण करें (**य**) जो परमात्मा (**यजत्रम्**) प्राकृतयज्ञ करने वाले (**सहस्रामघम्**) अनन्त प्रकार के बल को देने वाले (**वृषणम्**) वृष्टि करने वाले (**बृहन्तम्**) सब से बडे (**ईं, अर्वाञ्चम्**) इस प्रत्यक्षसिद्ध सूर्य को जो (**करते**) उत्पन्न करता है तुम एकमात्र उसी की उपासना करो ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे स्नातक विद्वानो ! तुम उसकी उपासना करो जिसने सूर्य-चन्द्रमा का निर्माण किया है, और जो इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का कारण है, जिसके भय से अग्न्यादि तेजस्वी पदार्थ अपने-अपने तेज को धारण किये हुए हैं, जैसा कि "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम' ॥" (कठ० ६, ३ ।) उसके भय से अग्नि तपती है और उसीके भय से सूर्य प्रकाश करता है, विद्युत् और वायु इत्यादि शक्तियां उसी के बल मे परिभ्रमण करती है । "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" (ऋग म० १० सू० १९०। ३) जिसने सूर्यचन्द्रादि पदार्थों को रचा है उसी धाता सब के निर्माता परमात्मा की उपासना पूर्व मन्त्र मे कथन की गयी है ॥१॥

अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।

स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२॥

पदार्थ—(**अध**) अब (**नु**) शीघ्र (**अस्य**) उक्त परमात्मा के (**सन्दृशम्**) साक्षात्कार को (**जगन्वान्**) अनुभव करता हुआ (**वरुणस्य, अग्ने**) ज्ञानस्वरूप परमात्मा के (**अनीकम्**) स्वरूप । (**मंसि**) प्राप्त करता हूँ (**अश्मन**) [अश्नुते व्याप्नोति सर्वमिति अश्मा परमात्मा, जो व्यापक परमात्मा है उसका नाम यहाँ अश्मा है] हे अश्मन् परमात्मन् ! (**अधिपाः**) सबके स्वामिन् ! (**अन्ध.**) सर्वाधिष्ठान ! (**ऊ**) और (**यत्, स्व**) जो आपका आनन्दस्वरूप है वह (**मा**) मुझको (**अभि**) भली-भांति (**वपु.**) उस स्वरूप की (**दृशये**) प्राप्ति के (**निनी-यात**) योग्य बनायें ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप मेरी चित्तवृत्ति को निर्मल करके अपने स्वरूप की प्राप्ति के योग्य बनायें ॥२॥

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।

अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥३॥

पदार्थः—(यत्) जब हम (वरुणः, च) परमात्मा की (नाव) इच्छा पर (आ, रुहाव) आरूढ़ होते हैं और (यत्) जब (समुद्रम्) कर्मों के अधिष्ठाता परमात्मा के (मध्य) स्वरूप का (ईरयाव) अवगाहन करते हैं और (यत्) जब (अधि) कर्मों के (स्नुभि.) प्रेरक परमात्मा की (प्रेंखे) इच्छा में (चराव) विचरते हैं तब (प्र,) प्रकर्षता मे (शुभे) उस मङ्गलवासना मे (क) ब्रह्मानन्द को (ईंखयावहै) अनुभव करते हैं ।।३।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे कर्मयोग का वर्णन किया है कि जब पुरुष अपनी इच्छाओं को ईश्वराधीन कर देता है वा यो कहो कि जब निष्काम कर्मों को करता हुआ उनके फल की इच्छा नहीं करता तब परमात्मा के भावो मे विचरता हुआ पुरुष एक प्रकार के अपूर्व आनन्द को अनुभव करता है ।।३।।

वसिष्ठं ह वरु॑णो ना॒व्याधा॒दृषिं॑ चकार॒ स्वपा॒ महो॑भिः ।

स्तो॒तारं॒ विप्रः॑ सुदिन॒त्वे अह्नां॒ यान्नु द्यावं॑स्तत॒नन्या॒दुषासः॑ ।।४।।

पदार्थः—(वरुण) सर्वपूज्य परमात्मा (वसिष्ठ) उत्तमगुण वाले विद्वान् को (नावि) कर्मों के आधार पर (आधात) स्थिर करता है (ह) निश्चय करके (ऋषि) ऋषि (चकार) बनाता है और (महोभि.) उत्तम साधनो द्वारा (स्वपा) सुन्दर कर्मों वाला बनाता है, (विप्र) मेधावी परमात्मा (स्तोतार) स्तुति करने वाला बनाता है और (अह्ना) उक्त विद्वान् के दिनो को (सुदिनत्वे) अच्छे दिनो मे परिणत करता है तथा (उषस) प्रातःकाल के प्रकाशो को और (द्याव) दिन के प्रकाश को (नु) अच्छी तरह (यात्) प्राप्त करता हुआ (ततनत्) विस्तार करता है ।।४।।

भावार्थ—परमात्मा जिस पुरुष के शुभ कर्म देखता है उसको उत्तम विद्वान् बनाता है और कर्मानुसार ही परमात्मा ऋषि, विप्र, ब्राह्मणादि पदविया प्रदान करता है। इस मन्त्र में वर्णव्यवस्था भी गुणकर्मानुसार कथन की गई है। यही भाव 'तमेव ऋषि तमु ब्रह्माण' ऋग् अ० ८ अ० ६ व० ४ "त ब्रह्माण तमृषि त सुमेधाम्" ऋ० ८।७।११।५ इत्यादि मन्त्रो मे भी है कि कर्मानुसार परमात्मा की कामना से ही ब्राह्मणादि पदविया प्राप्त होती हैं। उपनिषद में भी कर्मानुसार ही ऊंच, नीच व्यवस्था कथन की है। जैसा कि "एष एव साधु कर्म कारयति त यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते, एषमेवासाधु कर्म कारयति त यमधो निनीषत" कौ० ३।८ परमात्मा कर्मों द्वारा ही ऊंच, नीच अवस्था को प्राप्त कराता है यही व्यवस्था उक्त मत्र मे कथन की है ।।४।।

क्व१ त्यानि॑ नौ स॒ख्या ब॑भूवुः॒ सचा॑वहे॒ यद॑वृ॒कं पु॒रा चि॑त् ।

बृ॒हन्तं॒ मानं॑ वरुण स्वधावः स॒हस्र॑द्वारं जगमा गृ॒हं ते॑ ।।५।।

पदार्थ.—हे परमात्मन् (त्यानि) वह (नौ) हमारी (सख्या) मैत्री (क्व) कहा (बभूवु) है, (यत्) जो (पुरा) पूर्वकाल मे (अवृक) हिंसारहित थी (सचावहे) उसकी हम सेवा करें (चित्) और (ते) तुम्हारे (सहस्रद्वार) अनन्त ऐश्वर्य वाले (गृह) स्वरूप को (जगम) प्राप्त हो, जो (बृहन्त, मानम्) सीमारहित है (स्वधाव , वरुण) हे अनन्तैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! हम आपके उक्त स्वरूप को प्राप्त हो ।।५।।

भावार्थ—जो जिज्ञासु सब कर्मों को हिंसारहित करता है और परमात्मा के साथ निष्पापादि गुणो को धारण करके उसकी मैत्री को उपलब्ध करता है वह उसके अनन्त ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि जब तक जिज्ञासु अपने आपको उसकी कृपा का पात्र नहीं बनाता तब तक वह उसकी स्वरूपप्राप्ति का अधिकारी नही बन सकता ।।५।।

य आ॒पिर्नित्यो॑ वरुण प्रि॒यः सन्त्वामागां॑सि कृ॒णव॒त्सखा॑ ते ।

मा त॒ एन॑स्वन्तो यक्षिन्भुजेम य॒न्धि ष्मा॒ विप्रः॑ स्तुव॒ते वरू॑थम् ।।६।।

पदार्थ—(वरुण) हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे साथ (प्रिय', सन्) प्यार करता हुआ (यः) जो पुरुष (नित्यः) सर्वदा (ते) तुम्हारे साथ (सखा, आपिः) सखिभाव रखता हुआ (आगांसि) पाप (कृणवत्) करता है, (यक्षिन्) हे यजनीय परमात्मन् ! वह (एनस्वन्त.) पापो म (मा) मत प्रविष्ट हो, (विप्र) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (स्तुवते) स्तुति करने वाले उस पुरुष के लिए (वरूथं) वरणीय सर्वोपरि अपने स्वरूप को (यन्धि) आप प्रकाश करें ताकि हम लोग आपके ब्रह्मानन्द का (भुजेम) भोग करें ।।६।।

भावार्थः—जो पुरुष कुछ भी परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखता है वह यदि स्वभाववश कभी पाप मे भी पड़ जाता है तो परमात्मा की कृपा से फिर भी उन पापो से निकल सकता है क्योंकि परमात्मा के आराधन का बल उसे पापप्रवाह से निकाल सकता है। इसी अभिप्राय से कहा है कि परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषो के लिए अवश्यमेव शुभ स्थान देते हैं ।।६।।

ध्रु॒वासु॑ त्वा॒सु क्षि॒तिषु॑ क्षि॒यन्तो॒ व्य१॒स्मत्पाशं॒ वरु॑णो मुमोचत् ।

अवो॑ वन्वा॒ना अदि॑तेरु॒पस्था॑द्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ।।७।।

पदार्थः—(ध्रुवासु, त्वासु, क्षितिषु) इस दृढ़ और नित्य पृथिवी मे (क्षियन्त) निवास करते हुए (अस्मत्पाश) हम लोगो के बन्धनो को (वरुणः) सर्वपूज्य परमात्मा (वि) अवश्य (मुमोचत्) मुक्त करें (अदितेः) इस अखण्डनीय मातृभूमि के (उपस्थात्) अङ्क मे रहते हुए हम लोगो की (अव.) आप रक्षा करें और विद्वान् लोगो से हम सदैव (वन्वाना.) भजन करते हुए यह प्रार्थना करें कि (यूय) आप लोग सदैव (स्वस्तिभि) कल्याणप्रद वाणियो से (न) हमारी (पात) रक्षा करे ।।७।।

भावार्थ—इस मन्त्र में जो पृथिवी को नित्य कथन किया है इससे यह तात्पर्य है कि यह ससार मिथ्या नही क्योकि ध्रुव पदार्थ मिथ्या नही होता किन्तु दृढ़ होता है ।।७।।

यह सप्तम मण्डल मे अट्ठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ पञ्चचर्स्यकोननवतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषि ।। वरुणो देवता ।। छन्द १—४ आर्षीगायत्री । ५ पादनिचृज्जगती ।। स्वर १—४ षड्ज, ५ निषाद ।।

अब इस सूक्त मे परमात्मा जीव को ऐश्वर्यप्राप्ति का उपदेश करते हैं ।।

मो षु व॑रुण मृ॒न्मयं॑ गृ॒हं रा॑जन्न॒हं ग॑मम् । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ।।१।।

पदार्थ. (वरुण) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (मृन्मय) मृत्तिका के (गृह) घर आप हमको मत दें (राजन्) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्, हम मिट्टी के गृहो में (मोषु) मत निवास करे (मृळय) हे जगदीश्वर आप हम को सुख दें (सुक्षत्र) हे सब के रक्षक परमात्मन्, (मृळय) आप हम पर सदैव दया करें ।।१।।

भावार्थ—परमात्मा ने उक्त ऐश्वर्य का उपदेश किया है कि हे जीवो, तुम सदैव अपने जीवन के लक्ष्य को ऊंचा रक्खा करो और तुम यह प्रार्थना किया करो कि हम मिट्टी के घरो म न रहे किन्तु हमारे रहने के स्थान अति मनोहर स्वर्णजटित सुन्दर हो तथा उनमे परमात्मा हमको सब प्रकार के ऐश्वर्य दें ।।१।।

यदेमि॑ प्रस्फु॒रन्नि॑व॒ दृति॒र्न ध्मा॒तो अ॑द्रिवः । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ।२।।

पदार्थ—(यत्) जो मैं (दृति) धौंकनी के (न) समान (ध्मात) दूसरो की वायुरूप बुद्धि से प्रेरित किया गया (एमि) अपनी जीवनयात्रा करता हूँ वह यात्रा (स्फुरन्निव) केवल श्वासोच्छ्वासरूप है उसमे जीने का कुछ प्रयोजन नही (अद्रिव) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्, (मृळ) आप हमारी रक्षा करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, (मृळय) आप हमको सुख दें ।।२।।

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि जो पुरुष मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो फलो से विहीन है वे पुरुष लोहनिर्माता की धौंकनी के समान केवल श्वासमात्र से जीवित प्रतीत होते है, वास्तव म ये पुरुष चर्मनिर्मित दृति = धौंकनी के समान निर्जीव है। इसलिये पुरुष को चाहिए कि वह सदैव उद्योगी और कर्मयोगी बनकर अपने लक्ष्य के लिए कटिबद्ध रहे, अपुरुषार्थी होकर जीना केवल चर्ममात्र के समान प्राणयात्रा करना है। इस अभिप्राय से इस मत्र म उद्योग—अर्थात् कर्मयोग का उपदेश किया है ।।२।।

क्रत्वः॑ समह दी॒नता॑ प्र॒तीपं॑ जगमा शुचे । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ।।३।।

पदार्थ.—(समह) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन, (क्रत्व) सत्कर्मों के आचरण मे (दीनता) दीनता करके (प्रतीप) मैं प्रतिकूल आचरण करता रहा, (मृळ) हे परमात्मन् आप मेरी रक्षा करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, आप (मृळय) मुझे योग्य बनायें ताकि मैं कर्मों का अनुष्ठान कर सकू ।।३।।

भावार्थ—पुरुष अपनी निर्बलता से शुभ कर्मों को जानता हुआ भी उनका अनुष्ठान नही कर सकता, प्रत्युत अपनी दीनता से उनके विरुद्ध आचरण करता है, इसलिए इस मन्त्र मे परमात्मा ने उपदेश किया है कि हे वैदिक धर्मानुयायी पुरुषो ! तुम उद्योगी बनने के लिए परमात्मा से सदैव प्रार्थना करो कि हे परमात्मन्, आप हमको आत्मिक बल दें ताकि हम कर्मानुष्ठानी बनकर अकर्मण्यतारूप दोष को दूर करके सत्कर्मी बने ।।३।।

अ॒पां मध्ये॑ तस्थि॒वांसं॒ तृष्णा॑विदज्जरि॒तार॑म् ।

मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ।४।।

पदार्थ—(अपा) कर्मों के (मध्ये) मध्य मे (जरितार) वृद्धावस्था को प्राप्त (तस्थिवास) स्थित मुझको (तृष्णा, अविदत्) तृष्णा व्याप्त हो गयी है (मृळ) हे परमात्मन् ! आप मुझको इससे सुखी करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, आप मुझे (मृळय) सुखी बनाए ।।४।।

भावार्थ—कर्मों के मनोरथरूपी सागर मे पड़ा-पड़ा मनुष्य बूढ़ा हो जाता है और कर्मों का अनुष्ठान नही कर सकता। जिस पर परमात्मदेव की कृपा होती है वही कर्मों का अनुष्ठान करके कर्मयोगी बनता है अन्य नहीं, वा यो कहो कि उद्योगी पुरुष को ही परमात्मा अपनी कृपा का पात्र बनाते हैं अन्य को नहीं। इसी अभिप्राय से परमात्मा ने इस मन्त्र में कर्मयोग का उपदेश किया है। कई एक लोग उक्त मन्त्र का यह अर्थ करते हैं कि समुद्र के जल मे डूबता हुआ पुरुष इस मन्त्र मे वरुण देवता की उपासना करता है, और यह कहता है कि 'लवणात्वटस्य समुद्रजलस्य पानानहत्वात्" कि मैं समुद्र के जल के क्षार होने के कारण इसे पी नही सकता। वह अर्थ सर्वथा वेद के आशय से बाह्य है, क्योकि यहा जल मे डूबने का क्या

प्रकरण, यहां तो इससे प्रथम मन्त्र मे कर्मों के प्रतिकूल आचरण का प्रकरण था, इसलिए यहां भी यही प्रकरण है ॥४॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५॥

पदार्थ – (**वरुण**) हे परमात्मन, (**दैव्ये, जने**) मनुष्यसमुदाय मे (**यत्, किञ्च**) जो कुछ (**इद**) यह (**अभिद्रोह**) द्वेष का भाव (**मनुष्याः**) हम मनुष्य लोग (**चरामसि**) करते हैं और (**अचित्ती**) अज्ञानी होकर (**यत्**) जो (**धर्मा**) धर्मों को (**युयोपिम**) त्यागते हैं, (**तस्मादेनस.**) उन पापो से (**देव**) हे देव, (**नः**) हमको (**मा, रीरिष.**) मत त्यागिये ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उन पापो की क्षमा मांगी गई है जो अज्ञान से किये जाते हैं अथवा यों कहो कि जो प्रत्यवायरूप पाप हैं, उनके विषय मे यह क्षमा की प्रार्थना है । परमात्मा ऐसे पाप की क्षमा नही करता जिससे उसके न्यायरूपी नियम पर दोष आवे, किन्तु यदि कोई पुरुष परमात्मा के सम्बन्ध-विषयक अपने कर्त्तव्य को पूरा नही करता उस पुरुष के अपने सम्बन्धविषयक पाप परमात्मा क्षमा कर देता है । अन्य विषयक किये हुए पाप की क्षमा करने से परमात्मा अन्यायी ठहरता है ॥५॥

यह सप्तम मण्डल मे नवासीवा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य नवतितमस्य सूक्तस्य १—७ वसिष्ठ ऋषि ॥ १-४ वायु । ५-७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्द —१, २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

अब वायुविद्या को जानने वाले विद्वान् का ऐश्वर्य वर्णन करते हैं ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमंतः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यांधसो मदाय ॥१॥

पदार्थ —(**वायो**) हे वायुविद्या के वेत्ता विद्वान् आप (**सुतस्य**) संस्कार किये हुए (**अन्धस**) अन्नो के रसो का (**मदाय**) आह्लाद के लिये (**पिब**) पियें, और (**नियुत**) अपने पद पर नियुक्त हुए (**अच्छ**) भली प्रकार (**वह**) सर्वत्र प्राप्त होओ तथा (**याहि**) विना रोकटोक के सर्वत्र जाओ, क्योंकि (**प्र**) भली भांति (**वीरया**) वीरता के लिये (**वाम्**) तुम को (**अध्वर्युभि**) वैदिक लोगो ने (**मधुमन्त**) मीठे (**सुतास**) सुन्दर-सुन्दर (**शुचय**) पवित्र (**दद्रिरे**) उपदेश दिये हैं ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे वायु आदि तत्त्वो की विद्या को जानने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप वैदिक पुरुषो से उपदेश लाभ करके सर्वत्र भूमण्डल मे अव्याहत गति होकर विचरें ॥१॥

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२॥

पदार्थ —(**वायो**) हे वायुविद्यावेत्ता विद्वान् (**शुचिपा**) सुन्दर पदार्थों को पान करने वाले (**तुभ्यं**) तुम्हारे लिये (**सोम**) सोम रस (**शुचि**) जो पवित्र है उसका (**य**) जो (**ते**) तुम्हारे लिए (**आनट्**) देता है (**त**) उसको मैं (**मर्त्येषु**) मनुष्यो (**प्रशस्त**) उत्कृष्ट बनाता हूं (**जात जात.**) जन्म-जन्म मे (**अस्य**) उसको (**वाजी**) बहुत बल वाला (**जायते**) उत्पन्न करता हूं और जो (**ईशानाय**) ईश्वर के लिए (**प्रहुति**) ऐश्वर्य अर्पण करता है उसको मैं (**कृणोषि**) ऐश्वर्यशाली बनाता हूं ॥२॥

भावार्थ —जो लोग विद्वानो को धन देते हैं वह सर्वदा ऐश्वर्यसम्पन्न होते है और जो लोग ईश्वरार्पण कर्म करते हैं अर्थात् निष्काम कर्म करते हैं, परमात्मा उनको सदा ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३॥

पदार्थ —(**य**) जिस पदार्थविद्यावेत्ता पुरुष को (**रोदसी**) द्युलोक और पृथ्वी-लोक ने (**राये**) ऐश्वर्य के लिए उत्पन्न किया है और (**देव**) जिस दिव्यशक्तिसम्पन्न पुरुष को (**धिषणा**) स्तुतिरूप (**देवी**) दिव्य शक्ति (**धाति**) धारण करती है (**वायु**) उस पदार्थविद्यावेत्ता विद्वान् को (**नि युत.**) जो पदार्थ विद्या के लिये नियुक्त किया गया है (**सश्चत**) तुम सेवन करो (**उत**) और (**निरेके**) दरिद्रता को दूर करने के लिए (**अध**) और (**श्वेत**) पवित्र (**वसुधिति**) धन को (**स्वा**) उस आत्मभूत विद्वान् के लिए तुम उत्पन्न करने का यत्न करो ॥३॥

भावार्थ —स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा इस मन्त्र मे परमात्मा यह उपदेश करते है कि मानो प्रकृति ने ही ऐसे पुरुष को उत्पन्न किया है जो संसार की दरिद्रता का नाश करता है ऐसा पुरुष जिस देश मे उत्पन्न होता है उस देश मे अनैश्वर्य और दरिद्रता का गन्ध भी नही रहता ॥३॥

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥४॥

पदार्थ —जो लोग उक्त वायुविद्यावेत्ता विद्वान् की संगति में रहते हैं उनके (**उषस:**) प्रभातवेलाओ सहित (**सुदिना**) सुन्दर दिन (**अरिप्रा**) निष्पाप (**उच्छन्**) व्यतीत होते है और वे (**दीध्याना**) ध्यान करते हुए (**उरु**) सर्वोपरि (**ज्योति**) ज्योति:स्वरूप ब्रह्म को जान लेते हैं और (**प्रदिव.**) द्युलोक (**आप:**) जलो की (**सस्रु**) वृष्टि करते हैं तथा विद्वान् लोग (**तेषाम्**) उनको (**अनु वव्रु:**) सुन्दर उपदेश करते हैं ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो, जो लोग वायुवत् सर्वत्र गतिशील विद्वानो की संगति मे रहते हैं उनके लिये सूर्योदय काल सुन्दर प्रतीत होते हैं और उनके लिये सुवृष्टि और सम्पूर्ण ऐश्वर्य उपलब्ध होते हैं । बहुत क्या, योगी जनो की संगति करने वाले पुरुष ध्यानावस्थित होकर उस परम ज्योति को उपलब्ध करते है जिसका नाम परब्रह्म है ॥४॥

अब विद्युद्विद्यावेत्ता और वायुविद्यावेत्ता दोनों प्रकार के विद्वानों के गुण वर्णन करते हैं ॥

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहंति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥५॥

पदार्थ — (**इन्द्रवायू**) हे विद्युत् और वायुविद्या को जानने वाले विद्वानो, (**वाम्**) आप लोगो को (**ईशानाय**) जो ईश्वर की विद्या जानने वाले है (**अभि**) चारो ओर से (**पृक्ष**) ऐश्वर्य (**सचन्ते**) संगत होते हैं और आपके बनाये हुए (**रथम**) यान (**वीरवाहम्**) वीरता को प्राप्त करने वाले होते हैं और (**ते**) वे (**सत्येन**) सत्य (**मनसा**) मन से (**दीध्यानाः**) दीप्त हुए (**स्वेन युक्तास.**) ऐश्वर्य के साथ जुड़े हुए (**क्रतुना**) यज्ञो द्वारा (**वहन्ति**) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! विद्युत् विद्या के जानने वाले तथा वायु आदि सूक्ष्म तत्त्वो के जानने वाले विद्वान् जिन यानो को बनाते है वे यान उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं और वीर लोगो को नभोमण्डल मे ले जाने वाले एक मात्र वही यान कहला सकते है, अन्य नही ॥५॥

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥६॥

पदार्थ —(**इन्द्रवायू**) हे विद्युत् और वायु आदि तत्त्वो की सूक्ष्म विद्या जानने वाले विद्वानो ! तुम (**ईशानास**) ईश्वरपरायण लोगो को ऐश्वर्यसम्पन्न करो (**य**) जो लोग (**गोभि**) गौओ द्वारा (**अश्वेभि.**) अश्वो द्वारा (**वसुभि.**) धनो द्वारा (**हिरण्यै**) दीप्तिमान् वस्तुओं द्वारा (**स्वर्ण दधते**) स्वर्णादि रत्नो को धारण करते है और (**सूरय**) वे शूरवीर लोग (**विश्व**) सम्पूर्ण (**आयु**) आयु को प्राप्त हो और (**अर्वद्भिः वीरैः**) वीर सन्तानो से (**पृतनासु**) युद्धो मे शत्रुओ को (**सह्यु**) परास्त करें ॥६॥

भावार्थ – विद्युत् आदि विद्याओ की शक्तियो को जानने वाले विद्वान् ही प्रजाओ को ऐश्वर्यसम्पन्न बना सकते हैं, ऐश्वर्यसम्पन्न होकर ही प्रजा पूर्ण आयु का भोग सकती है, ऐश्वर्यसम्पन्न लोग ही युद्धो मे परपक्षो को परास्त करते है । परमात्मा उपदेश करते है कि हे विद्वानो ! तुम सबसे पहले अपने देश को ऐश्वर्य-सम्पन्न करो ताकि तुम्हारी प्रजायें वीर सन्तान उत्पन्न करके शत्रुओ को परास्त करें ॥६॥

अब परमात्मा सूक्ष्मविद्यावेत्ता विद्वानों द्वारा प्रजा की रक्षा तथा कल्याण का उपदेश करते है ॥

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयंतः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ —हे लोगो, (**वाजयन्त**) बल की इच्छा करते हुए तुम (**स्ववसे**) अपनी रक्षा के लिए यह प्रार्थना करो कि (**वय**) हम लोग (**हुवेम**) विद्वानो को अपने यज्ञो मे बुलायें और यह कहें कि (**यूय**) आप लोग (**स्वस्तिभिः**) स्वस्ति-वाचनो से (**न**) हमारी (**सदा**) सदा के लिये (**पात**) रक्षा करें परन्तु (**अर्वन्त**) कर्मयोगियो के (**न**) समान (**श्रवस**) अन्नादि पदार्थों को (**भिक्षमाणा.**) चाहते हुए और (**इन्द्रवायू**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनो प्रकार के विद्वानो की (**सुष्टुतिभि**) सुन्दर स्तुतियो द्वारा (**वसिष्ठा**) वसिष्ठ हुए आप लोग विद्वानो से कल्याण की प्रार्थना करें ॥७॥

भावार्थ —जो लोग वेदवेत्ता विद्वानों से उपदेश-लाभ करते हैं वे ही बल तथा ऐश्वर्यसम्पन्न होकर अपना और अपने देश का कल्याण कर सकते हैं, अन्य नही ॥७॥

सप्तम मण्डल में नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य एकनवतितमस्य सूक्तस्य—१-७ वसिष्ठ ऋषि ॥ १-३ वायुः २, ४—७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप्, ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत स्वरः ॥

अब उक्त विद्वानों से प्रकारान्तर से विद्याग्रहण करने का उपदेश करते हैं ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।

ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥१॥

पदार्थ—(पुरा) पूर्वकाल मे (ये) जो (देवा.) विद्वान् (वृधासः) ज्ञानवृद्ध और (अनवद्यास) दोषरहित (आसन्) थे, वे (कुवित्) बहुत (अङ्ग) शीघ्र (नमसा) नम्रता से (वायवे) शिक्षा के (मनवे) लाभ के लिये (बाधिता) स्वसन्तानो की रक्षा के लिये (सूर्येण) सूर्योदय के (उषसम) उषा काल को लक्ष्य मे रख कर (अवासयन्) अपने यज्ञ आदि कर्मों को प्रारम्भ करते थे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग आलस्य आदि दोषरहित और ज्ञानी हैं, वे उषा काल मे उठकर अपने यज्ञादि कर्मों का प्रारम्भ करते हैं। मन्त्र मे जो भूतकाल की क्रिया दी है वह "व्यत्ययो बहुलम्" इस नियम के अनुसार वर्तमान काल की बाधिका है। इसलिये वेदो से प्रथम किसी अन्य देव के होने की आशंका इससे नही हो सकती। अन्य युक्ति यह कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" "देवाभागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते" इत्यादि मन्त्रो म पूर्व काल के देवो की सूचना जैसे दी गई है इसी प्रकार उक्त मन्त्र म भी है, इसलिये कोई दोष नही।

तात्पर्य यह है कि वैदिक सिद्धान्त में सृष्टि प्रवाहरूप से अनादि है इसलिये उस मे भूत काल का वर्णन करना कोई दोष की बात नही ॥१॥

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।

इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रवायू) हे कर्मयोग और ज्ञानयोगसम्पन्न विद्वानो ! (उशन्ता) आप हमारे कल्याण की इच्छा करते हुए (दूता) शुभ मार्ग दिखलाने वाले दर्शक के (न) समान (दभाय) हमारे कल्याण के लिये (गोपा) हमारे रक्षक बनें (शरदश्च पूर्वी) और अनत काल तक (पाथ) हमारे शुभ मार्ग की ओर (मासश्च) शुभ समयो की आप रक्षा करे। (सुष्टुति) हमारी स्तुति (वाम्) आप लोगो को (इयाना) प्राप्त होती हुई (मार्डीकम्) सुख की (ईट्टे) याचना करती है (च) और (नव्य) नवीन (सुवितं) धन की याचना करती है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानो को अपना नेता बनाते हैं वे सुख को प्राप्त होते है और उनको नवीन नवीन धनादि वस्तुओ की सदैव प्राप्ति होती है ॥२॥

पीवो अन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।

ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥३॥

पदार्थ—(सुमेधा) ज्ञानयोगी पुरुष (पीवोऽन्नान्) पुष्ट से पुष्ट अन्नो को प्राप्त करते हैं (रयिवृध) और ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं (श्वेत) और उत्तम कर्मों को (सिसक्ति) सेवन करते है (अभिश्री) शोभा (नियुतां) जो मनुष्य के लिये नियुक्त की गई उसको प्राप्त होते है तथा (ते, समनस) वे वशीकृत मनवाले (वायवे) विज्ञान के लिये अर्थात् ज्ञान योग के लिये (तस्थु) स्थिर होते है। (विश्वेन्नर) ऐसे सम्पूर्ण मनुष्य (स्वपत्यानि) शुभ कर्मों को (चक्रुः) करते है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोगी बनकर बुद्धिरूपी श्री को सम्पन्न करते है वे सयमी पुरुष ही कर्मयोगी बन सकते हैं, अन्य नही ॥३॥

यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।

शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रवायू) हे कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषो ! तुम लोग हमारे यज्ञो मे आकर (इदम्) इस (बर्हि) आसन पर (आसदतम्) बैठो और (यावत्) जब तक (तन्वः) हमारे शरीर मे (तरः) स्फूर्ति है तब तक और (यावत्) जब तक (ओज) ब्रह्मचर्य का प्रभाव है और (यावन्नर, चक्षस) हम ज्ञानी हैं (दीध्याना) दीप्ति वाले है तब तक आप (अस्मे) हमारे (सोम) स्वभाव को (शुचि) पवित्र बनायें क्योंकि (शुचिपा) आप हमारे शुभ कर्मों की रक्षा करने वाले हैं इसलिये (पात) आप हमारे यज्ञो मे आकर हमको पवित्र करें ॥४॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य के शरीर में कर्म करने की शक्ति रहती है और जब तक ब्रह्मचर्य के प्रभाव से उत्पन्न हुआ ओज रहता है और जब तक सत्य के समझने की शक्ति रहती है तब तक उसे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषो से सदैव यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन्, आप मेरे समक्ष आकर मुझे सत्कर्मों का उपदेश करके साधु स्वभाव वाला बनाइये ॥४॥

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।

इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रवायू) "इदङ्करणादित्याग्रयण" (नि० १०, ८, ९) अर्थात् सब कर्मों मे जो व्याप्त हो उसे इन्द्र कहते हैं, 'वातीति वायुः' जो सर्व विषय को जानता है वह वायु है। हे कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषो ! (अर्वाक्) हमारे सम्मुख (सरथ) अपने कर्मयोग और ज्ञानयोग के मार्ग को लक्ष्य रखते हुए (यात) हमारे सामने आयें। (स्पार्हवीरा) आप सर्वप्रिय है और (नियुवाना) उपदेश के मार्ग में नियुक्त किये गये हैं और (नियुत) जो तुम्हारा योगमार्ग है उसका आकर हमें उपदेश करो। (वाम्) तुम्हारे लिए ही निश्चय करके (मध्व) मीठे पदार्थ का (इदम्) यह (अग्रम्) सार भेंट किया जाता है, आप इसे ग्रहण करें (अध) और (प्रीणाना) प्रसन्न हुए आप (अस्मे) हम लोगो को (विमुमुक्तम्) पापरूपी बन्धनो से छुड़ायें ॥५॥

भावार्थ—यजमान कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानों से यह प्रार्थना करते है कि हे भगवन् ! आप हमारे यज्ञो मे आकर हमको कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का उपदेश करें, ताकि हम उद्योगी तथा ज्ञानी बन कर निरुद्योगिता और अज्ञानरूपी पापो से छूट कर मोक्ष फल के भागी बनें ॥५॥

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।

आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रवायू) हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषो ! (वाम्) तुम लोगो को, (याः) जो आप (विश्ववारा) सबके वरणीय हो, (या) जो लोग (शतम्) सैकड़ो वार (सहस्र) सहस्रो वार (नियुतः) नियुक्त हुए (सचन्ते) सेवन करते हैं वे सगति को प्राप्त होते हैं इस लिये (नरा) वैदिक मार्ग के नेता लोगो ! (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (आभि) सुन्दर मार्गों से (यात) आओ और (मध्व, प्रतिभृतस्य) आपके निमित्त जो मीठा रस रक्खा गया है इसे आकर (पात) पीओ ॥६॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषो की सैकड़ो और सहस्रो वार सगति करते हैं वे लोग उद्योगी और ब्रह्मज्ञानी बन कर जन्म के धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी चारो फलो को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।

वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रवायू) हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषो ! हम (अर्वन्त.) जिज्ञासुओं के (न) समान (श्रवस) ज्ञानकी (भिक्षमाणा) भिक्षा मांगते हुए (सुष्टुतिभि, वसिष्ठा) आपके स्तुतिपरायण हुए अपनी रक्षा के लिये (वाजयन्त) आपसे बलकी याचना करते है और (हुवेम) [ह्वेञ् शब्दार्थक धातु होने से यहा याच्ञाविषयक शब्दार्थ है,] हम यह दान मांगते है कि (यूय) आप (स्वस्तिभि) स्वस्तिवाचनो से (न) हमारी (सदा) सदैव (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ. जो लोग ज्ञान और विज्ञान के भिक्षु बनकर ज्ञानी और विज्ञानी लोगों से सदैव ज्ञानयोग और कर्मयोग की भिक्षा मागते है परमात्मा उनको अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनो ऐश्वर्यों स परिपूर्ण करता है ॥७॥

यह सप्तम मण्डल मे द्विषष्टितमो सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३—५ वायुः। २ इन्द्रवायू देवते। छन्दः-१ निचृत् त्रिष्टुप्, २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप्, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वर. ॥

अब कर्मयोगी पुरुष को सोमरस पीने के लिए बुलाना कथन करते हैं ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।

उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥१॥

पदार्थ—(वायो) हे कर्मयोगिन् ["वाति=गच्छति स्वकर्मणाऽभिप्रेत प्राप्नोतीति वायु" जो कर्मों द्वारा अपने कर्त्तव्यो को प्राप्त हो उसको वायु कहते हैं "वायुर्वातेर्वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मण" वायु शब्द गतिकर्म वाली धातुओ से सिद्ध होता है (निरुक्त दैवत काण्ड १० —३) इस प्रकार यहा वायु नाम कर्मयोगी का है।] आप आकर हमारे यज्ञ को (आभूष) विभूषित कीजिये और (शुचिपा) आप पवित्र वस्तुओ का पान करने वाले हैं (विश्ववार) आप सबके वरणीय हैं (ते) तुम्हारे (सहस्रम्, नियुतः) हजारो कर्म के प्रकार हैं (न.) हमारा (अन्ध) अन्नादि वस्तुओ से (मद्यम्) आह्लादक जो सोमरस है उसको (उप, अयामि) मैं पात्र मे रखता हूं (देव) हे दिव्यशक्ति वाले विद्वन्, (पूर्वपेय) पहिले पीने योग्य इस को (दधिषे) तुम धारण करो ॥१॥

भावार्थ—यजमान लोग अपने यज्ञो में कर्मयोगी पुरुषो को बुलाकर उत्तमोत्तम अन्नादि पदार्थों के आह्लादक रस उनकी भेंट करके उनसे सदुपदेश ग्रहण करें। वायु शब्द से इस मन्त्र मे कर्मयोगी का ग्रहण है। किसी वायुतत्त्व या किसी अन्य वस्तु का नहीं। यद्यपि वायु शब्द के अर्थ कही ईश्वर के, कही वायुतत्त्व के भी हैं तथापि यहां प्रसग से वायु शब्द कर्मयोगी का बोधक है क्योंकि इसके उत्तर मन्त्र मे "शचीभिः" इत्यादिक कर्मबोधक वाक्यो से कर्मप्रधान पुरुष का ही ग्रहण है और जहां "वायवायाहि दर्शत इमे सोमा अर कृता" १।२।१ इत्यादि मन्त्रो में वायु शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है वहां ईश्वर का प्रसग पूर्वोक्त सूक्तो की सगति से वायु शब्द ईश्वर का प्रतिपादक है अर्थात् "अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्" १।१।१ इस ईश्वर-प्रकरण मे पढे जाने के कारण वहा वायु शब्द ईश्वर का बोधक है क्योंकि "शन्नो मित्रः शं वरुणः" तैत्तिरीय आ० १ इस मन्त्र मे वायु शब्द ईश्वर के प्रकरण मे पढ़ा गया है, जिस प्रकार वहां ईश्वर प्रकरण है इसी प्रकार यहां विद्वानों से शिक्षालाभ करने के प्रकरण मे पढ़े जाने के कारण वायु शब्द विद्वान् का बोधक होता है किसी अन्य वस्तु का नही ॥१॥

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।

प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२॥

पदार्थ —(**अध्वर्यव**) यज्ञो के धारण करने वाले अध्वर्यु लोग (**अध्वरेषु**) यज्ञो मे (**सोमं**) सोम रस को (**अस्थात**) स्थिर करते है क्योकि (**इन्द्राय**) कर्मयोगी, (**वायवे**) ज्ञानयोगी के (**पिबध्यै**) पिलाने के लिये और अध्वर्यु लोग (**शचीभि**) कर्मों के द्वारा (**देवयन्त**) प्रार्थना करते हुए (**अग्रियम्**) सारभूत इस सोमरस को (**भरन्ति**) धारण करते है (**यत्**) जो (**मध्व**) मीठा है और (**वाम्**) तुम विद्वान् लोगो के निमित्त बनाया गया है ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमान लोगो, तुम सुन्दर सुन्दर पदार्थों के रस निकाल कर विद्वानो को तृप्त करो ताकि वे प्रसन्न होकर तुम को उपदेश दें ॥२॥

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ।३॥

पदार्थ.—(**वायो**) हे ज्ञानयोगी विद्वन् ! (**इष्टये**) यज्ञ के लिये (**दुरोणे**) यज्ञ-मण्डपों मे जाकर (**नियुद्भि**) यज्ञिय लोगो द्वारा आह्वान किये हुए आप (**यासि**) जाकर प्राप्त होओ और वहा जाकर (**वीरं**) वीरतायुक्त पुरुष (**गव्य**) गौएँ (**अश्व्य**) घोडे (**च**) और (**राध**) धन को (**युवस्व**) दे और (**सुभोजसम्**) सुन्दर-सुन्दर भाजन (**रयिं**) धनादि पदार्थ दें ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि यजमानो से आह्वान किये हुए विद्वान् लोग यज्ञ मण्डपो मे जाकर जनता को गौए, घोडे और धनादि ऐश्वर्यो के उत्पन्न करने का उपदेश करें ॥३॥

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।

घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४॥

पदार्थ —(**ये**) जो पुरुष (**वायवे**) कर्मयोगी विद्वानो पर विश्वास रखते है (**इन्द्रमादनास**) ज्ञानयोगी विद्वान् का सत्कार करते हैं तथा (**आदेवास**) विद्वान् पुरुषो का सत्कार करते है वे (**अर्य**) शत्रुओ को (**नितोशनास**) नाश करते हुए और (**सूरिभि**) विद्वानो से (**घ्नन्त**) अज्ञानो का नाश करते हुए यह कथन करते है कि (**स्याम**) हम लोग सत्यपरायण होकर (**अमित्रान्**) अन्यायकारी शत्रुओ को (**युधा**) युद्ध मे (**नृभि**) न्यायपथ पर दृढ रहने वाले मनुष्यो के द्वारा (**सासह्वांस**) नाश कर ॥४॥

भावार्थ —जो सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास रख कर अन्यायकारियो के दमन के लिये उद्यत होते हैं वे सदैव विजयलक्ष्मी का लाभ करते है अर्थात् उनके गले मे विजयलक्ष्मी अवश्यमेव जयमाला पहनाती है ॥४॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।

वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ —(**वायो**) हे कर्मयोगिन विद्वन्, (**न**) हमारे (**अध्वर**) इस अहिंसा-रूपयज्ञ मे आप आएं (**शतिनीभि**) अपने क्रियाकौशल से सैकडो प्रकार की शक्तियो को लेकर (**सहस्रिणीभि**) सहस्रो प्रकार की शक्तियो को लेकर (**उपयाहि**) आएँ (**वायो**) हे सर्व विद्या मे निपुण विद्वन्, (**अस्मिन**) हमारे इस (**सवने**) पदार्थ-विद्या के उत्पन्न करने वाले यज्ञ मे आकर आप (**मादयस्व**) आनन्द का लाभ करें और (**यूयम**) आप विद्वान लोग स्वस्तिवाचनो से (**न**) हमको (**सदा**) सदैव (**पात**) पवित्र करे ॥५॥

भावार्थ इस मन्त्र मे परमात्मा ने सैकडो और सहस्रो शक्तियो वाले कर्मयोगी विद्वानो के आवाहन करने का उपदेश किया है कि हे यजमानो, तुम अपने यज्ञो मे ऐसे विद्वानो को बुलाओ जिनकी पदार्थविद्या मे सैकडो प्रकार की शक्तिया है, उनको बुलाकर तुम उनसे सदुपदेश सुनो ॥५॥

यह सप्तम मण्डल मे बानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य त्रिनवतितमस्य सूक्तस्य १—८ वसिष्ठ ऋषि ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्द —१, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।

उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥१॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे ज्ञानी विज्ञानी विद्वानो ! आप अन्यायकारी (**वृत्रहणा**) शत्रुओ को हनन करने वाले है, आप हमारे (**नवजातम**) इस नवीन (**स्तोम**) यज्ञ का (**जुषेथां**) सेवन करें (**हि**) जिस लिये (**उभा, वां**) तुम दोनो को (**सुहवा**) सुखपूर्वक बुलाने योग्य आप को (**जोहवीमि**) पुन - पुन. मैं बुलाता हूँ । इसलिये (**ता**) आप दोनो (**शुचिं**) इस पवित्र यज्ञ को (**सद्य उशते**) कामनावाले यजमान के लिये शीघ्र ही (**वाज**) बल के देने वाला (**धेष्ठा**) धारण करायें ॥१॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते है कि हे विद्वानो ! आप यजमानो के यज्ञ को बल देने वाला तथा कलाकौशलादि विद्याओ से शीघ्र ही फल का देने वाला बनायें ॥१॥

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।

क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२॥

पदार्थ —(**हि**) क्योकि आप (**सानसी**) प्रत्येक पुरुष के सत्सग करने योग्य है और (**शवसाना**) ज्ञान, विज्ञान की विद्या के बल से सुशोभित (**भूत**) हो और (**साकंवृधा**) स्वाभाविक बलवाले हो (**शूशुवासा**) ज्ञानवृद्ध हो (**भूरे. राय.**) बहुत धन और (**यवसस्य**) ऐश्वर्य्य के (**क्षयन्तौ**) ईश्वर हो (**स्थ-विरस्य**) परिपक्व ज्ञान का जो (**वाजस्य**) बल है उसके स्वामी हो (**घृष्वे**) अन्यायकारी दुष्टो के दमन के लिये (**पृङ्क्त**) आकर आप हमारे यज्ञ को भोगो ॥२॥

भावार्थ —यजमानो को चाहिये कि वे अपने भौतिक तथा आध्यात्मिक यज्ञो मे अनुभवी विद्वानों को बुलाकर उनसे शिक्षा ग्रहण करे और उनसे ज्ञान और विज्ञान की विद्याओ का काम करायें । यज्ञ का वास्तव मे यही फल है कि उसमे ज्ञान तथा विज्ञान की वृद्धि हो तथा विद्वानो की सगति और उनका सत्कार हो ॥२॥

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।

अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥३॥

पदार्थ —(**वाजिन**) ब्रह्मविद्या के बल वाले ऋत्विग् लोग (**यत्**) जो (**उपो, गु**) आपको आकर प्राप्त होते है और (**विदथ**) यज्ञ को ["विदन्ति जानन्ति देवान्यत्र स विदथो यज्ञ" "जिसमे देव विद्वानो की सगति हो उसको विदथ यज्ञ कहते है" विदथ इति यज्ञनामसु पठित (**निघ॰**)] नित्य प्राप्त होते है (**विप्रा**) मेधावी लोग (**धीभि**) कर्म्मो द्वारा (**प्रमतिमिच्छमाना**) बुद्धि की इच्छा करते हुए (**काष्ठां, अर्वन्त न**) जैसे कि बलवाला पुरुष अपने बल की पराकाष्ठा- अन्त को प्राप्त होता है इस प्रकार (**नक्षमाणा**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वान् अर्थात् जो कर्म्म तथा ज्ञान मे व्याप्त है (**जोहुवत**) सत्कारपूर्वक यज्ञ मे बुलाये हुए (**ते, नर**) ससार के नेता होते हैं ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो, तुम ऐसे विद्वानो को अपने यज्ञो मे बुलाओ, जो कर्म्म और ज्ञान दोनो प्रकार की विद्या से व्याप्त हो और धार्मिक व्रत रखने के कारण दृढव्रती हो, क्योकि दृढव्रती पुरुष ही अपने लक्ष्य को प्राप्त हो सकता है, अन्य नही ॥३॥

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।

इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥४॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्म्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो, आपकी (**ईट्टे**) स्तुति (**विप्र**) बुद्धिमान् लोग इसलिये करते है कि आप (**वृत्रहणा**) अज्ञान के हनन करने वाले है और (**सुवज्रा**) सुन्दर विद्यारूपी शस्त्र आप के हाथ मे है । (**प्रमतिमिच्छमान**) बुद्धि की इच्छा करते हुए और (**रयिं**) धन की इच्छा करते हुए तथा (**यशस**) यश की इच्छा करते हुए जो (**पूर्वभाज**) सब से प्रथम भजने योग्य अर्थात प्राप्त करने योग्य है (**गीर्भि**) सुन्दर वाणियो से तुम्हारी स्तुति विद्वान लोग करते हैं । (**देष्णैः**) देने योग्य (**नव्येभि**) नूतन धनो से (**प्रतिरत**) हमको आप बढ़ाएँ ॥४॥

भावार्थ —यश और ऐश्वर्य्य के चाहने वाले लोगो को चाहिये कि वे कर्म्म-योगी और ज्ञानयोगी पुरुषो को अपने यज्ञो मे बुलाएँ और बुलाकर उनसे सुमति की प्रार्थना करे, क्योकि विद्वानो के सत्कार के विना किसी देश मे भी सुमति उत्पन्न नही हो सकती । इसी अभिप्राय से परमात्मा ने इस मन्त्र मे विद्वानो से सुमति लेने का उपदेश किया है ॥४॥

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।

अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥

पदार्थ —विद्वानो ! (**सोमसुता**) सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करने वाले ओष-धियो को बनाने वाले (**जनेन**) मनुष्य द्वारा हम आपका सत्कार करते है, (**यत्**) जो आप (**शूरसाता**) वीरतारूपी यज्ञो के रचयिता हैं (**तनूरुचा**) केवल तनुपोषक लोगों के साथ (**स्पर्धमाने**) स्पर्धा करने वाले हैं (**मही**) बडे-बडे (**मिथती**) युद्धो मे आप निपुण है (**विदथे**) आध्यात्मिक यज्ञो मे (**स, सत्रा, हत**) अविद्यादिदोषरहित (**अदेव-युम्**) परमात्मा के स्वभाव को (**देवयुभि**) ज्ञानी पुरुषो की संगति से आप प्राप्त है ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश किया है कि हे विद्वान् पुरुषो, तुम लोग आहार व्यवहार द्वारा सौम्यस्वभाव बनाने वाले विद्वानो का सग करो तथा जो पुरुष ज्ञानयोगी हैं उनकी सगति मे रह कर अपने आप को परमात्मपरायण बनाओ ॥५॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।

नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे ज्ञान विज्ञान विद्याओ के ज्ञाता विद्वानो ! (**नः**) हमारे (**इमां**) इस (**सोमसुति**) विज्ञानविद्या के यन्त्रनिर्माणस्थान को (**सौमनसाय**) हमारे मन की प्रसन्नता के लिये (**उपयात**) आकर दृष्टिगोचर करें (**हि**) क्योकि (**अस्मात्**) हमको (**आ**) सब प्रकार से (**नु, चित्**)

निश्चय करके (**सुवरिमम्नाचे**) आप अपनाते है और (**वां**) आपको हम लोग (**वाणी**) आपके योग्य सत्कारो से (**शश्वद्भि**) निरन्तर (**ववृतीय**) निमन्त्रित करते हैं ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो ! आप लोग ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता विद्वानों को अपनी विज्ञानशालाओं मे बुलायें क्योंकि ज्ञान तथा विज्ञान से बढ़ कर मनुष्य के मन को प्रसन्न करने वाली ससार मे कोई अन्य वस्तु नही, इसलिये तुम विद्वानो की सत्सगति से मन के सौमनस्य अर्थात् विज्ञानादि भावो को बढ़ाओ, यही मनुष्यजन्म का सर्वोपरि फल है ॥६॥

सो अंग एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।

यत्सीमागंश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥७॥

पदार्थ —(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (**स.**) आप (**नमसा**) विनय से (**समिद्धा**) प्रसन्न हुए (**इन्द्र, मित्र, वरुण**) श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक को (**अच्छ, वोचेः**) यह श्रेष्ठ उपदेश करो कि वे लोग यजमानो से पापकर्मो को (**शिश्रथन्तु**) वियुक्त करें और (**यत्**) जो कुछ (**सीं**) हम ने (**आग**) पापकर्म (**चकृम**) किये हैं (**तत्**) वह (**सुमृळ**) दूर कर और उनकी निवृत्ति हम (**अर्यमा**) न्यायकारी और (**अदिति**) अखण्डनीय परमात्मा से न्यायपूर्वक चाहते है ॥७॥

भावार्थ —पापो की निवृत्ति पश्चात्ताप से होती है, परमात्मा जिस पर अपनी कृपा करते है वही पुरुष अपने मन मे पापो की निवृत्ति के लिये प्रार्थना करता है, अर्थात् मनुष्य मे परमात्मा की कृपा से विनीत भाव आता है अन्यथा नही, यहा सञ्चित और क्रियमाण कर्मों की निवृत्ति से तात्पर्य है, प्रारब्ध कर्मों से नहीं ॥७॥

एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।

मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) सर्वशक्तिमान (**विष्णु**) सर्वव्यापक (**एता**, **मरुत**) सर्वरक्षक परमात्मा (**न**) हमको (**मा**) मत (**परिख्यन्**) छोड़े, (**अग्ने**) हे कर्मयोगिन् तथा ज्ञानयोगिन् विद्वन् ! (**आशुषाणास**) आपकी सगति मे रहते हुए हमको (**युवो**) आपकी (**इष्टी**) यह ज्ञानयज्ञ और आपकी सगति का हम लोग (**सचाभ्यश्याम**) कभी न छोडें तथा (**वाजान**) आपके बलप्रद उपदेशो का हम कदापि त्याग न करें, और ईश्वर की कृपा से (**यूय**) आप लोग (**स्वस्तिभि**) स्वस्ति वचनो से (**न**) हमको (**सदा**) सदैव (**पात**) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे इस बात की शिक्षा है कि पुरुष को चाहिए कि वह सत्पुरुषो की सगति से बाहर कदापि न रहे और परमात्मा के आगे हृदय खोल कर निष्पाप होने की सदैव प्रार्थना किया करे, इसी से मनुष्य का कल्याण होता है। केवल अपने उद्योग के भरोसे पर ईश्वर और विद्वान पुरुषो की उपेक्षा अर्थात् उनमे उदासीन दृष्टि, कदापि न करे ॥८॥

यह सप्तम मण्डल मे आनवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

— —

अथ द्वादशर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य १—१२ वसिष्ठ ऋषि ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्द —१, ३, ८ १०, आर्षी निचृत् गायत्री २, ४ ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री । १२ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ स्वर १—११ षड्ज । १२ गान्धार ॥

अब सद्गुणो के ग्रहण के लिये कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियो का यज्ञ में आवाहन कथन करते है ॥

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।

अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! (**वां**) आपकी (**इय**) यह (**पूर्व्यस्तुति**) मुख्यस्तुति (**अभ्रात**) मेघमण्डल से (**वृष्टि.**, **इव**) वृष्टि के समान (**अजनि**) सद्भावो का उत्पन्न करती है (**अस्य**) इस (**मन्मन**) स्तोता के हृदय को भी शुद्ध करती है ॥१॥

भावार्थ.— परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग अपने विद्वानो के सद्गुणो का वर्णन करते है, मानो सद्गुणकीर्तनरूप वृष्टि से अकुरो के समान प्रादुर्भाव को प्राप्त होते हैं ॥१॥

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।

ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (**जरितु**) जिज्ञासु लोगो के (**हव**) आह्वानो को (**शृणुत**) सुनें, (**ईशाना**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न आप (**गिर**) उनकी वाणियो को (**वनत**) सस्कृत अर्थात् शुद्ध करें और उनके (**धिय**) कर्मों को (**पिप्यत**) बढ़ायें ॥२॥

भावार्थ:—परमात्मा उपदेश करते है कि हे विद्वानो, तुम अपने जिज्ञासुओ की वाणियो पर ध्यान दो और उनके कर्मों के सुधार के लिये उन को सदुपदेश दो, ताकि वे सत्कर्मी बन कर संसार का सुधार करें ॥२॥

अब उक्त विद्वानों से सद्गुणों का ग्रहण करना कथन करते है ॥

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।

मा नो रीरधतं निदे ॥३॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो, आप (**नरा**) शुभ मार्गों के नेता है; आपके सत्सग से (**अभिशस्तये**) शत्रु द्वारा दमन के योग्य हम (**मा**) मत हो और (**न**) हम को (**मा, रीरधत**) हिंसा के भागी न बनायें और (**निदे**) निन्दा के भागी मत बनायें (**पापत्वाय**) पाप के लिये हमारा जीवन (**मा**) मत हो ॥३॥

भावार्थ —विद्वानो से मिलकर जिज्ञासुओ को यह प्रार्थना करनी चाहिये कि आपके सग से हम मे ऐसा बल उत्पन्न हो कि हमको शत्रु कभी दबा न सकें और हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे हमारी ससार में निन्दा हो और हमारा मन कदापि पाप की ओर न जाय ॥३॥

इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।

धिया धेना अवस्यवः ॥४॥

पदार्थ.—हम (**इन्द्रे**) कर्मयोगी (**अग्ना**) ज्ञानयोगी के लिये (**नम**) नमस्कार करें और (**बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे**) हम उनके साथ बड़ी नम्रतापूर्वक बर्ताव करें । (**धिया, धेना**) अनुष्ठानरूपवाणी से हम उनसे (**अवस्यव**) रक्षा की याचना करें ॥४॥

भावार्थ जो लोग विद्वानो के साथ रह कर अपनी वाणी को अनुष्ठानमयी बनाते है अर्थात कर्मयोगी बन कर उक्त विद्वानो की सगति करते है, वह ससार मे सदैव सुरक्षित होते है ॥४॥

ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये ।

सबाधो वाजसातये ॥५॥

पदार्थ —(**सबाध**) पीडित हुए (**वाजसातये**) यज्ञो मे (**विप्रास:**) मेधावी लोग (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए (**इत्था**) इस प्रकार (**शश्वन्त**) निरन्तर (**ता, हि**) निश्चय करके उक्त कर्मयोगी, ज्ञानयोगी की (**ईळते**) स्तुति करते है ॥५॥

भावार्थ —जो लोग इस भाव से यज्ञ करते है कि उनकी बाधायें निवृत्त होवें, वे अपने यज्ञो मे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानों को अवश्यमेव बुलायें ताकि उनके सत्सग द्वारा ज्ञान और कर्म मे सम्पन्न होकर सब बाधाओ को दूर कर सकें ॥५॥

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।

मेधसाता सनिष्यवः ॥६॥

पदार्थ. -(**सनिष्यव**) अभ्युदय चाहने वाले (**विपन्यव**) साहित्य चाहने वाले हम (**प्रयस्वन्त**) अनुष्ठानी बनकर (**ता, वां**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को (**मेधसाता**) अपने यज्ञो मे (**गीर्भि**) अपनी नम्र वाणियो से (**हवामहे**) बुलाते हैं ताकि वे आकर हमको सदुपदेश करें ॥६॥

भावार्थ —ससार मे अभ्युदय और शोभन साहित्य उन्ही लोगो का बढ़ता है, जो लोग अपने यज्ञो मे सदुपदेष्टा कर्मयोगी और ज्ञानयोगियो को बुलाकर सदुपदेश सुनते है ॥६॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।

मा नो दुःशंस ईशत ॥७॥

पदार्थ —(**चर्षणीसहा**) हे दुष्टो के दमन करने वाले (**इन्द्राग्नी**) कर्मयोगी ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (**अवसा**) ऐश्वर्य के साथ (**आगत**) हमारे यज्ञो मे आवें और हमारे (**दुशस**) शत्रु (**न.**) हमको (**मा, ईशत**) न सतावें ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि याज्ञिक लोगो, तुम अपने यज्ञो मे ऐसे विद्वानो को बुलाओ जो दुष्टो के दमन करने और ऐश्वर्य के उत्पन्न करने मे समर्थ हो ॥७॥

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।

इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥८॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानो, (**कस्य**) किसी (**अररुषो मर्त्यस्य**) दुष्ट मनुष्य का भी (**न**) हमको (**धूर्ति**) अनिष्टचिन्तन करने वाला (**मा प्रणक्**) मत बनाए और (**शर्म**) शर्मविधि (**यच्छत**) दे ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु जनों, तुम अपने विद्वानो से शर्मविधि की शिक्षा लो अर्थात् तुम्हारा मन किसी मे भी दुर्भावना का पात्र न बने किन्तु तुम सब के कल्याण की सदैव इच्छा करो । इस भाव को अन्यत्र भी वर्णन किया है कि "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" (यजु०) तुम सब को मित्रता की दृष्टि से देखो ॥८॥

गोमद्धिरंण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥९॥

पदार्थ —(**इन्द्राग्नी**) हे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानो ! आपके सदुपदेश से हम (**हिरण्यवत्**) रत्न (**अश्ववावत्**) अश्व (**गोमत्**) गौएं इत्यादि अनेक प्रकार के (**यद्वसु**) जो धन हैं उनकी प्राप्ति के लिए (**ईमहे**) यह प्रार्थना करते है कि (**तत्, वनेमहि**) उनको हम प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ —उक्त विद्वानो के सदुपदेश से हम सब प्रकार के धनो को प्राप्त हो ॥९॥

यत्सोम आ सुते नरं इन्द्राग्नी अजोहवुः ।
सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥१०॥

पदार्थ —हे (**इन्द्राग्नी**) कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! (**नरः**) यज्ञो के नेता ऋत्विगादि, (**यत्**) जब (**सोमे**) सोम औषधि के (**सुते**) बनने के समय (**सपर्यव**) आपके उपासक (**अजोहवु**) आपको बुलाएं तो आप वहा जाकर उनको सदुपदेश करें, और (**सप्तीवन्त**) उन्हे अनेकविध धनो से सम्पन्न करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो, आप ऋत्विगादिक विद्वानों के यज्ञों मे जाकर उनकी शोभा को अवश्यमेव बढ़ाए ॥१०॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।
आङ्गूषैराविवासतः ॥११॥

पदार्थ —(**वृत्रहन्तमा**) हे अज्ञान के नाश करने वाले कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (**उक्थेभि**) परमात्मस्तुतिविधायक वेदमन्त्रो द्वारा (**मंदाना**) प्रसन्न होते हुए (**चिदा**) अथवा (**गिरा**) आपके आवाहनविधायक वाणियो से (**आङ्गूषै**) जो उच्चस्वर मे पढी गई हैं उनसे आकर ज्ञानयज्ञ तथा कर्म्मयज्ञ को अवश्यमेव विभूषित करें ॥११॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे कर्मयोगी और ज्ञानयोगियो मे अज्ञान के नाश करने की प्रार्थना का विधान है ॥११॥

ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप (**दुःशंस**) दुष्ट पुरुषो को, जो (**दुर्विद्वांस**) विद्या का दुरुपयोग करते हैं उनको (**रक्षस्विन**) जो राक्षसभावो वाले हैं (**आभोग**) अन्य अधिकारियो से छीन कर जो स्वय भोग करते हैं (**हन्मना**) उनको अपनी विद्या से (**हतम्**) नाश करो जिस प्रकार (**उदधिम्**) समुद्र विद्वानों की विद्या द्वारा (**हन्मना, हतम्**) यन्त्रो से मथा जाता है इस प्रकार आप अपने विद्याबल से राक्षसो का दमन करो ॥१२॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो, आप राक्षसी वृत्ति वाले दुष्टाचारी पुरुषों का अपने विद्याबल से नाश करो क्योंकि अन्यायाचारी अधर्म्मात्माओ का दमन विद्याबल से किया जा सकता है अन्यथा नही, अत आप इस ससार मे पापपिशाच को विद्याबल से भगाओ ॥१२॥

यह सप्तम मण्डल मे चौरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ षड्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य १-६ *वसिष्ठ ऋषि* ॥ १, २, ४, ५, ६ *सरस्वती;* ३ *सरस्वान् देवता* ॥ *छन्द* —१, *पादनिचृत् त्रिष्टुप्* । २, ५, ६, *आर्षी त्रिष्टुप्,* ३, ४, *विराट् त्रिष्टुप्* ॥ *धैवत* *स्वर* ॥

अब प्रसगसगति से सरस्वती देवी विद्या का वर्णन करते हैं, जिसकी प्राप्ति से पुरुष कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बनते हैं ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

पदार्थ —(**सरस्वती**) विद्या [यह निघण्टु २ । २३ । ५७ वाणी के नामो मे पढा है, इस लिये सरस्वती यहा विद्या का नाम है । व्युत्पत्ति इसकी इस प्रकार है "सरो ज्ञान विद्यतेऽस्या असौ सरस्वती" जो ज्ञान वाली हो उसका नाम सरस्वती है ।] (**धरुणम्**) सब ज्ञानो का आधार है, (**आयसी**) ऐसी दृढ है कि मानो लोहे की बनी हुई है, (**पूः**) सब प्रकार के अभ्युदयो के लिये एक पुरी के सदृश है, (**प्र, क्षोदसा**) अज्ञानो के नाश करने वाले (**धायसा**) वेग से (**सस्रे**) अनवरत प्रवाह मे ससार का सिञ्चन कर रही है, (**एषा**) यह ब्रह्मविद्यारूप (**प्र, बाबधाना**) अत्यन्त वेग से (**रथ्या, इव**) नदी के समान (**याति**) गमन करती और (**महिना**) अपने महत्व से (**सिन्धु**) स्यन्दन करती हुई (**विश्वा, अप**) सब जलों को ले जाने वाली (**अन्या**) और है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो, ब्रह्मविद्यारूपी नदी सब प्रकार के अज्ञानादि पापपको को बहा ले जाती है और यही नदी भुवनत्रय को पवित्र करती अर्थात् अन्य जो भौतिक नदिया है वे किसी एक प्रदेश को पवित्र करती हैं और यह सब को पवित्र करने वाली है, इस लिए इसकी उन मे विलक्षणता है । तात्पर्य यह है कि यह विद्यारूपी नदी आध्यात्मिक पवित्रता का सचार और भौतिक नदी बाह्य पवित्रता का सचार करती है ॥१॥

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२॥

पदार्थ —(**नदीनाम्**) इन भौतिक नदियो के मध्य मे (**एका**) एक ने (**सरस्वती, अचेतत्**) सरस्वतीरूप से सत्ता को लाभ किया, अर्थात् "सरांसि सन्ति यस्या सा सरस्वती" जिस मे बहुत-सी क्षुद्र नदिया मिले उसका नाम सरस्वती है और जो (**गिरिभ्य.**) हिमालय से निकल कर (**आ, समुद्रात्**) समुद्र तक जाती है, वह सरस्वती (**राय , चेतन्ती**) धन को देने वाली है, (**शुचि यती**) पवित्ररूप से बहती है और वह (**भुवनस्य**) सासारिक (**नाहुषाय**) मनुष्यो को (**भूरेः**) बहुत (**घृत**) जल और (**पय**) दूध से (**दुदुहे**) पूर्ण करती है ॥२॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! यह भौतिक नदिया केवल सासारिक धनों को और ससार मे सुखदायक जल तथा दुग्धादि पदार्थों को देती हैं, और विद्यारूपी सरस्वती आध्यात्मिक धन और ऐश्वर्य को देने वाली है । [बहुत से टीकाकारो ने इस मन्त्र के अर्थ इस प्रकार किये है कि सरस्वती नदी नहुष राजा के यज्ञ करने के लिये ससार मे आयी अर्थात् जिस प्रकार यह जनप्रवाद है कि भगीरथ के तप करने से भागीरथी गगा निकली यह भी इसी प्रकार का एक अर्थवादमात्र है, क्योंकि यदि यह भी भागीरथी के समान आती तो इसका नाम भी नाहुषी होना चाहिये था, अस्तु । इस प्रकार की कल्पित अनेक कथायें अज्ञान के समय वेदार्थ मे भर दी गयी जिनका वेदो मे गन्ध भी नही । क्योंकि नहुष शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि 'नह्यति कर्मसु इति नहुषस्तदपत्य नाहुष' इससे नाहुष शब्द का अर्थ यहा मनुष्य सन्तान है कोई राजाविशेष नहीं । इसी से निरुक्तकार ने भी कहा है कि वेदो मे शब्द यौगिक और योगरूढ़ है, केवल रुढ़ नही । इस बात को सायण ने भी अपनी भूमिका मे माना है, फिर न मालूम क्यो यहा राजाविशेष अर्थ मान कर एक कल्पित कथा भर दी] ॥२॥

अब प्रसगसगति से पूर्वोक्त आध्यात्मिक विद्यारूप सरस्वती का ज्ञानरूप से कथन करते हैं ॥

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥३॥

पदार्थ·—(**स**) वह बोध (**नर्य**) मनुष्यो के लिये और (**योषणासु**) स्त्रियो के लिये (**वावृधे**) वृद्धि को प्राप्त हुआ है, और वह बोध (**यज्ञियासु**) यज्ञीय बुद्धिरूपी भूमियो मे (**वृषा**) वृष्टि करने वाला है, और (**शिशु.**) अज्ञानादिको को छेदन करने वाला है ["श्यति अज्ञानादिकमिति शिशु शो तनूकरणे"] (**वृषभ.**) और आध्यात्मिक आनन्दो की वृष्टि करने वाला है, और वही (**मघवद्भ्य.**) याज्ञिक लोगो को (**वाजिन**) बल (**दधाति**) देता है, वही (**सातये**) युद्ध के लिय (**तन्व**) शरीर को (**वि मामृजीत**) मार्जन करता है ॥३॥

भावार्थ —सरस्वती विद्या मे उत्पन्न हुआ प्रबोधरूप पुत्र स्त्रीपुरुषो को सस्कार करके देवता बनाता है और यज्ञकर्मा लोगो को याज्ञिक बनाता है । बहुत क्या जो युद्धो मे आत्मत्याग करके शूरवीर बनते हैं उनको इतने शूरवीर साहसी और निर्भीक एकमात्र सरस्वती विद्या से उत्पन्न हुआ प्रबोधरूप पुत्र ही बनाता है, अन्य नहीं ॥३॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४॥

पदार्थ —(**स्या, सरस्वती**) वह सरस्वती (**न**) हमारे लिये (**जुषाणा**) सेवन की हुई (**अस्मिन्**) इस ब्रह्मविद्यारूपी (**यज्ञे**) यज्ञ मे (**श्रवत्**) आनन्द की वृष्टि करती है (**उत**) और (**मितज्ञुभि**) सयमी पुरुषो द्वारा (**इयाना**) प्राप्त हुई (**सुभगा, राया**) धन से मित्रो को वृद्धियुक्त करती है (**चिदुत्तरा**) उत्तरोत्तर सौन्दर्य्य को देने वाली (**नमस्यै**) नमस्कार से और (**सखिभ्य·**) मित्रो को सदैव वृद्धियुक्त करती है ॥४॥

भावार्थ —सरस्वती विद्या यदि सयमी पुरुषो द्वारा अर्थात् सदाचारी पुरुषो द्वारा उपदेश की जाय तो पुरुष को ऐश्वर्य्यशाली बनाती है, सदा के लिये अभ्युदय-सम्पन्न करती है ॥४॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥५॥

पदार्थ —(**इमा**) ये याज्ञिक लोग (**जुह्वाना**) हवन करते हुए (**युष्मदा**) तुम्हारी प्राप्ति मे रत (**नमोभि**) नम्र वाणियों के द्वारा तुम्हारा आवाहन करते हैं । (**सरस्वति**) हे विद्ये ! (**प्रतिस्तोमं**) इनके प्रत्येक यज्ञ को (**जुषस्व**) सेवन कर, हे विद्ये ! (**तव प्रियतमे**) तुम्हारे प्रियपन मे (**शर्म्मन्**) सुख को (**दधाना**) धारण करते हुए (**उप**) निरन्तर (**स्थेयाम**) सदैव तुम्हारी (**शरण**) शरण को (**वृक्ष, न**) आधार के समान हम आश्रयण करें ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो, तुम इस प्रकार विद्यारूप कल्पवृक्ष का सेवन करो जिस प्रकार धूप से सन्तप्त पक्षिगण आकर छायाप्रद वृक्ष का आश्रयण करते है एव आप इस सरस्वती विद्या का सब प्रकार से आश्रयण करें ॥५॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।

वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(सरस्वति) हे ब्रह्मविद्ये ! (सुभगे) हे ऐश्वर्य्य के देने वाली (अयं) यह उपासक (वसिष्ठ) विद्यागुणसम्पन्न (ते) तुम्हारे (द्वारौ व्यावः) द्वारों को खोलता है अर्थात् लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय के देने वाली वेद विद्ये ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष बोलता है, हे (शुभ्रे) कल्याणिनि ! तू (वर्ध) बढ़, (स्तुवते) जो पुरुष तुम्हारी स्तुति करते हैं उनके लिये तथा उनको (वाजान्, रासि) सम्पूर्ण प्रकार के बल दे और (यूयं) तू (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से उनको सदा पवित्र कर ॥६॥

भावार्थः—जो लोग विद्या को चाहते हैं और प्रतिदिन विद्या मे रत हैं उनके ब्रह्मविद्यारूप यज्ञ के दरवाजे खुल जाते हैं तथा वे सब प्रकार के सुखों को प्राप्त होते हैं ॥६॥

यह सप्तम मण्डल में पिचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ सरस्वती । ४-६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्बृहती । २ आर्षी भुरिग्बृहती । ३ निचृत्पंक्ति. । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ आर्षीगायत्री ॥ स्वरः १-२ मध्यमः, ३ पञ्चमः, ४, ५, ६ षड्जः ॥

अब उक्त विद्या को नदी का रूपक बांध कर वर्णन करते हैं ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।

सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

पदार्थः—(नदीनां) नदियों में से जो प्रफुल्लित पुष्पित करने वाली है और (असुर्या) बलवाली है इस (वच) वाणी को (वसिष्ठ) हे विद्वन् ! (गायिषे) तू गायन कर, (बृहत्रोदसी) द्यु और पृथ्वी लोक मे (सरस्वती, इत्) सरस्वती विद्या की ही तुम लोग (महय) पूजा करो और वह पूजा (सुवृक्तिभि) निर्दोष (स्तोमैः) यज्ञों से करो ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वान् लोगो, आप के लिए पूजायोग्य एकमात्र सरस्वती विद्या है उस की पूजा करने वाला विद्वान् कदापि अवनति को प्राप्त नहीं होता किन्तु सदैव अभ्युदय को प्राप्त होता है । तात्पर्य्य यह है कि सत्कर्तव्य एकमात्र परमात्मा का ज्ञान है उसी का नाम 'ब्रह्मविद्या सरस्वती वा ज्ञान है क्योकि विद्या, ज्ञान, सरस्वती ये तीनो पर्य्याय शब्द है । परमात्मा का ज्ञान तादात्म्यसम्बन्ध से परमात्मा मे रहता है इसलिए वह परमात्मा का रूप है, इसलिये यहा जडोपासना का दोष नहीं आता ॥१॥

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसो अधिक्षियन्ति पूरवः ।

सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थः—(शुभ्रे) हे पवित्र स्वभाव वाली विद्ये ! (पूरव.) मनुष्य लोग तुम से (उभे) दो प्रकार के (महिना, अधिक्षियन्ति) उत्तम फल लाभ करते हैं (यत्ते) तुम्हारे वे दोनो (अन्धसी) दिव्य हैं अर्थात् एक अभ्युदय और दूसरा नि श्रेयस । (सा) वह ब्रह्मविद्या (नः) हमारी (बोध्यवित्री) बोधन करने वाली है (मघोनां) ऐश्वर्य मे से सर्वोपरि ऐश्वर्य्य (मरुत्सखा राध) जो व्यापक धनरूप है, हे विद्ये ! तू वह (चोद) हमको दे ॥२॥

भावार्थ.—ब्रह्मविद्या से मनुष्यो को अभ्युदय और नि श्रेयस ये दोनों फल प्राप्त होते हैं । इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गई है कि बोधन करने वाली ब्रह्मविद्या हमे धनरूप सर्वोपरि ऐश्वर्य्य प्रदान करे ॥२॥

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।

गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३॥

पदार्थः—(भद्रा) प्राप्त करने योग्य (सरस्वती) विद्या (भद्रम्, इत्) कल्याण ही (कृणवत्) करे, जो विद्या (अकवारी) कुत्सित अज्ञानादि पदार्थों की विरोधिनी (चेतति) सबको जगाती है (वाजिनीवती) ऐश्वर्य्यवाली (गृणाना) और अविद्यान्धकार को नाश करने वाली है वह विद्या (जमदग्निवत्) जमदग्नि के समान (च) और (वसिष्ठवत्) सर्वोपरि विद्वान् के समान (स्तुवाना) स्तुति की हुई फलदायक होती है ॥३॥

भावार्थः—सरस्वती ब्रह्मविद्या जो सब ज्ञानों का स्रोत है वह यदि ऋषि-मुनियो के समान स्तुति की जाय अर्थात् उनके समान वह भी ध्यान का विषय बनाई जाय तो मनुष्य के लिये फलदायक होती है । जमदग्नि यहां कोई ऋषि-विशेष नहीं किन्तु "जमद् अग्निरिव" जो जमद्=प्रकाश करता हुआ अग्नि के समान देदीप्यमान हो अर्थात् तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी हो उसको जमदग्नि कहते हैं ; एवम् वसिष्ठ यह नाम भी वेद मे गुणप्रधान है व्यक्तिप्रधान नहीं, जैसा कि "धर्मादिकर्तव्येषु अतिशयेन वसतीति वसिष्ठः" जो धर्मादिकर्तव्यों के पालन करने मे रहे अर्थात् जो अपने यम-नियमादिव्रतों को कभी भग न करे, उसका नाम यहां वसिष्ठ है । तात्पर्य यह कि जो पुरुष उक्त विद्वानों के समान विद्या को पूजनार्ह और सत्कर्तव्य समझता है वह इस संसार में कृतकार्य होता है अन्य नहीं ॥३॥

अब उक्त ब्रह्मविद्या के फलरूप ज्ञान का कथन करते हैं ॥

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।

सरस्वन्तं हवामहे ॥४॥

पदार्थ—(जनीयन्त) शुभ सन्तान की इच्छा करते हुए (पुत्रीयन्त.) पुत्रवाले होने की इच्छा करते हुए (सुदानव·) दानी लोग (अग्रव) ब्रह्म की समीपता चाहने वाले (नु) आज (सरस्वन्तम्) सरस्वती के पुत्ररूपी ज्ञान को (हवामहे) आवाहन करते हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे पुरुषो ! तुम ब्रह्मज्ञान का आह्वान करो, जो विद्यारूपी सरस्वती माता से उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण प्रकार के अनिष्टों को दूर करने वाला है, परन्तु उसके पात्र वे पुरुष बनते है जो उदारता के भाव और वेदरूपी विद्या के अधिकारी हो, अर्थात् जिनके मलविक्षेपादि दोष सब दूर हो गए हों और जो यम-नियमादिसम्पन्न हो, वे ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी होते हैं अन्य नहीं, या यो कहो कि जो अगो और उपागों के साथ वेद का अध्ययन करते और यमनियमादिसम्पन्न होते हैं ॥४॥

अब ज्ञान का स्रोतरूप से वर्णन करते हैं ॥

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः ।

तेभिर्नोऽविता भव ॥५॥

पदार्थ—(सरस्व) हे सरस्व ["मतुवसोरुसम्बुद्धौ छन्दसि"] (ये) जो (ते) तुम्हारी (ऊर्मयः) लहरें हैं (मधुमन्त.) वे बडी मीठी (घृत-श्चुतः) और जिनमे से नाना प्रकार के स्रोत बह रहे हैं, ["घृतमिति उदकनामसु पठित निघण्टौ"] (तेभि) उनसे (नः) हमारे (अविता) तुम रक्षक (भव) बनो ॥५॥

भावार्थ परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्य ! ब्रह्मविद्यारूपी नदी की लहरे अत्यन्त मीठी हैं, और आप विद्याप्राप्ति के लिए सदैव यह विनय किया करें कि वह विद्या नाना प्रकार से आप की रक्षक हो ॥५॥

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥६॥

पदार्थ·—हे परमात्मन् ! (सरस्वतः) ब्रह्मविद्या के (स्तनम्) उस स्तन को (पीपिवांसम्) जो कि अमृत से भरा हुआ है, और (य) जो (विश्वदर्शत·) सब प्रकार के ज्ञानो को देने वाला है अर्थात् जिसको पीकर सब प्रकार की आंखें खुलती हैं, उसका पीकर (प्रजाम्, इषम्) प्रजा के सब ऐश्वर्य को (भक्षीमहि) हम भोगें ॥६॥

भावार्थ—जीव प्रार्थना करता है कि हे परमात्मन् ! मैं ब्रह्मविद्या का निरन्तर पान करता रहूँ, जिस अमृत का पीकर पुरुष दिव्यदृष्टि हो जाता है और ससार के सब ऐश्वर्यों के भोगने योग्य बनता है वह दिव्यदृष्टि मुझे भी प्राप्त हो ॥६॥

यह सप्तम मण्डल में छियानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषि ॥ १ इन्द्रः । २, ४—८ बृहस्पति । ३, ९ इन्द्रा-ब्रह्मणस्पती । १० इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः १ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वर ॥

अब प्रसङ्गसङ्गति से ब्रह्मणस्पति विद्या के पति परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥१॥

पदार्थ.—(यत्र, यज्ञे) जिस यज्ञ मे (देवयव.) देव = ईश्वर परमात्मा को चाहने वाले (नर) मनुष्य (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं और (नृषदने) जिस यज्ञ मे (दिव) द्युलोक से (पृथिव्या·) पृथिवी पर (गमत्) विद्वान् लोग विमानो द्वारा आते है, और जिस यज्ञ मे (वय) ब्रह्म के जिज्ञासु (प्रथमम्) सबसे पहले (मदाय) ब्रह्मानन्द के लिये आकर उपस्थित होते हैं, उस में (इन्द्राय) ["इन्दतीतीन्द्र परमात्मा"] परमात्मा की (सवनानि) उपासनाये (सुन्वे) करू ॥१॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम उपासनारूप यज्ञों मे परस्पर मिल कर उपासना करो और अभ्यागत विद्वानो का आप भली-भांति सत्कार करें । [यहा जो "सुन्वे" उत्तम पुरुष का एक वचन देकर जीव की ओर से प्रार्थना कथन की गयी है यह शिक्षा का प्रकार है, अर्थात् जीव की ओर से यह परमात्मा का वचन है । यही प्रकार 'अग्निमीळे पुरो-हितम् (ऋक् १, १, १)' में परमात्मा की स्तुति करता हूँ इत्यादि मन्त्रो मे भी दर्शाया गया है । इससे यह सदेह सर्वथा निर्मूल है कि यह वाक्य जीवनिर्मित है, ईश्वरनिर्मित नहीं; क्योंकि उपासना प्रार्थना के विषय मे सर्वत्र जीव की ओर से प्रार्थना बतलायी गयी है] ॥१॥

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२॥

पदार्थ —(सखाय) हे मित्र लोगो ! (बृहस्पतिः) वह परमात्मा ["बृहता पतिः बृहस्पतिः" 'ब्रह्म वै बृहस्पतिः' (शतपथ काण्ड ६—१०६) यहां बृहस्पति नाम ब्रह्म का है"] (नः) हम लोगों की (दैव्या, अवांसि) व्यापक रक्षा करें, हम लोग अपने यज्ञों में (आवृणीमहे) वरण करें अर्थात् उसको स्वामी-रूप से स्वीकार करें (यथा) जिस प्रकार (मीळ्हुषे) विश्वम्भर के लिये (अनागा) हम निर्दोष (भवेम) सिद्ध हों (यः) जो परमात्मा (नः) हमको (परावतः, पितेव) शत्रुओं से बचाने वाले पिता के समान (दाता) जीवनदाता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम उस बृहस्पति की उपासना करो जो तुम को सब विघ्नों से बचाता है, और पिता के समान रक्षा करता है। [इस मन्त्र में बृहस्पति शब्द परमात्मा के लिये आया है जैसा कि 'शं नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः' (यजुः ३६, ९) इस मन्त्र में बृहस्पति शब्द परमात्मा के अर्थ में है] ॥२॥

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३॥

पदार्थः—(तम्, उ) उसी (ज्येष्ठम्) सबसे बड़े और (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद के पति परमात्मा को (नमसा, गृणीषे) नम्रता से ग्रहण करता हूँ, [यहां उत्तम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग व्यत्यय से है] (इन्द्र, महि) उस परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा को (दैव्य, श्लोक) यह दिव्य स्तुति (सिषक्तु) सेवन करे (यः) जो (देवकृतस्य, ब्रह्मणः) ईश्वरकृत वेद का (राजा) प्रकाशक है, और वह परमात्मा (सुशेवम्) सब का उपास्यदेव है ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया गया है कि वेदप्रकाशक परमात्मा ही एकमात्र पूजनीय है, उसको छोड़कर ईश्वर के रूप में और किसी की उपासना नहीं करनी चाहिए ॥३॥

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४॥

पदार्थ.—(सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (योनिम्) हृदय में (आ, सदतु) निवास करे (यः) जो परमात्मा (प्रेष्ठः) सब का प्रियतम (बृहस्पतिः) निखिल ब्रह्माण्डों का पति (विश्ववारः) सब का उपास्य देव (अस्ति) है, (सुवीर्यस्य) हमको जो ब्रह्मचर्यरूपी बल (रायः) और ऐश्वर्य की (कामः) इच्छा है (तम्) उसको (दात्) दे, और (सश्चतः) उपद्रवों में फंसे हुए (नः) हमको (अरिष्टान्) सुरक्षित करके (अति, पर्षत्) शत्रुओं से बचावे ॥४॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम उस परमदेव को अपने हृदयमन्दिर में स्थान दो जो सबका एकमात्र उपास्यदेव और इस निखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है ॥४॥

तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥५॥

पदार्थ —(बृहस्पतिम्) सब का स्वामी (अनर्वाणम्) जो इन्द्रियअगोचर है (तं हुवेम) उसका हम ज्ञान द्वारा प्राप्त हों (शुचिक्रन्दम्) जिसके पवित्र स्तोत्र हैं (अर्कम्) जो स्वतःप्रकाश है (यजतम्) जो यजनार्ह है (अमृताय जुष्टम्) जो अमृतमय है जिसको (अमृतासः) मुक्ति सुख के भजने वाले (पुराजाः) प्राचीन (इमे) इन देवों ने (पस्त्यानाम्, नः) हम गृहस्थ लोगों को (आधासुः) धारण कराया है ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा स्वतःप्रकाश और जन्ममरणादि धर्मरहित है अर्थात् नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है उसको हम अपने शुद्ध अन्तःकरण में धारण करें। [तात्पर्य यह है कि जब मन मलविक्षेपादि दोषों से रहित हो जाता है तब उसे ब्रह्म की अवगति अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति होती है, और ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा प्राप्ति के हैं, देशान्तर प्राप्ति के नहीं] ॥५॥

यह ब्रह्मप्राप्ति नीचे के मन्त्र से निरूपण की जाती है ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥६॥

पदार्थ.—(तम्) उस (बृहस्पतिम्) परमात्मा को जो (सधस्थम्) जीव के अत्यन्त सन्निहित है (नभः) और आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है (न, रूपम्) जिसका कोई रूप नहीं है उस (अरुषम्) सर्वव्यापक परमात्मा को (वसानाः) विषय करती हुई (शग्मासः) आनन्द को अनुभव करने वाली (अरुषासः) परमात्मपरायण (अश्वाः) शीघ्रगतिशील (सहवाहः) परमात्मा से जोड़ने वाली इन्द्रियवृत्तियां (वहन्ति) उस परमात्मा को प्राप्त कराती हैं, जो परमात्मा (सहः चित्) बलस्वरूप है और (यस्य, नीळवत्) जिसका नीड अर्थात् घोंसले के समान यह ब्रह्माण्ड है ॥६॥

भावार्थ—श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनों से संस्कृत हुई अन्तःकरण की वृत्तियां उस नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म को प्राप्त कराती हैं जो सर्वव्यापक और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों से रहित है और कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड जिस के एक देश में जीवों के घोंसलों के समान एक प्रकार की तुच्छ सत्ता से स्थिर हैं ॥६॥

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

पदार्थ —(सः, हि) वह परमात्मा निश्चय (शुचिः) शुद्ध है (शतपत्रः) सर्वशक्तिमान है (सः) वह परमात्मा (शुन्ध्युः) सबको शुद्ध करने वाला है (हिरण्यवाशीः) स्वर्णमयी वाणी वाला है ["वाशीति वाङ्नामसु पठितम्" (निघण्टौ १,११)] (इषिरः) सर्वप्रिय (स्वर्षाः) आनन्द का दाता (बृहस्पतिः) कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का पति (स्वावेशः) सर्वाधार (ऋष्वः) दर्शनीय है, इस प्रकार का परमात्मा (सखिभ्यः) अपने भक्तों = जिज्ञासुओं के लिए (पुरु) बहुत (आसुतिम्) ऐश्वर्य (करिष्ठः) करता है ॥७॥

भावार्थ —उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा अपने भक्तों को, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों तापों को मिटा कर अति ऐश्वर्य का प्रदान करता है ॥७॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥८॥

पदार्थ — (देवस्य) उक्त देव जो परमात्मा है उसकी (बृहस्पतिम्) महत्ता को (रोदसी, देवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक रूपी दिव्यशक्तियां (वावृधतुः) बढ़ाती हैं। हे जिज्ञासु लोगो ! (महित्वा) उसके महत्त्व को (दक्षाय्याय) जो सर्वोपरि है उसको (सखायः) हे मित्र लोगो ! तुम भी (दक्षत) बढ़ाओ, और (ब्रह्मणे) जिस परमात्मा ने वेद को (सुतरा) इस भवसागर के तरने योग्य (सुगाधा) सुखपूर्वक अवगाहन करने योग्य (करत्) बनाया है ॥८॥

भावार्थ —इस मन्त्र में द्युलोक और पृथिवीलोक को बृहस्पति परमात्मा के द्योतक वर्णन किया गया है, अर्थात् पृथिव्यादि लोक उसकी सत्ता का बोधन कराते हैं। [यहां जनित्री के ये अर्थ है कि इसका आविर्भाव (प्रकट) करते हैं और ब्रह्म शब्द के अर्थ जो यहां सायणाचार्य ने अन्न के किये हैं वह सर्वदा वेदाशय के विरुद्ध हैं, क्योंकि इसी सूक्त में ब्रह्मणस्पति शब्द में ब्रह्म के अर्थ वेद के आ चुके हैं, फिर यहां अन्न के अर्थ कैसे ? यूरोप देश निवासी मोक्षमूलर भट्ट, मिस्टर विल्सन, और ग्रिफिथ साहब ने भी इस मन्त्र के अर्थ यही किये हैं, कि द्युलोक और पृथिवीलोक ने बृहस्पति को पैदा किया, यह अर्थ वैदिक प्रक्रिया से सर्वथा विरुद्ध है] ॥८॥

इसका खण्डन हम निम्नलिखित मन्त्र से करेंगे ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥९॥

पदार्थ —(ब्रह्मणस्पते) हे ईश्वर, (वां) तुम्हारी (इयम्) यह (सुवृक्तिः) दोषरहित स्तुति जो कि (ब्रह्म, इन्द्राय) सर्वोपरि ऐश्वर्ययुक्त (वज्रिणे) ज्ञानस्वरूप आपके लिए (अकारि) की गई है वह (अविष्टम्) हमारी रक्षक हो और (धियः, जिगृतं पुरंधीः) हमारी सब भावनाओं को स्वीकार करे। (अर्यः) परमात्मा (वनुषाम्) प्रार्थनायुक्त हम लोगों के (अरातीः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश करे ॥९॥

भावार्थ —इस मन्त्र में ब्रह्मणस्पति शब्द उसी वेदपति परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका वर्णन इस सूक्त के कई एक मन्त्रों में प्रथम भी आ चुका है।

[ब्रह्मणस्पति के अर्थ वेद के पति के हैं अर्थात् आदिसृष्टि में ब्रह्मवेदविद्या का दाता एक मात्र परमात्मा था। इसी अभिप्राय से परमात्मा को (ब्रह्म) वेद का पति कथन किया गया है] ॥९॥

अब उक्त बृहस्पति परमात्मा की प्रार्थना द्वारा इस सूक्त का उपसंहार करते हैं ॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थ - (बृहस्पते) हे सब के स्वामी परमेश्वर ! (युवम्) आप (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पन्न हैं (च) और (दिव्यस्य, उत, पार्थिवस्य) द्युलोक और पृथ्वीलोक में होने वाले (वस्वः) रत्नों के (ईशाथे) ईश्वर अर्थात् देने वाले हैं, इससे (स्तुवते) स्तुति करने वाले अपने भक्त को (रयिम्) धन (धत्तम्) दीजिये, (चित्) और (यूयम्) आप (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम उस बृहस्पति सर्वोपरि ब्रह्म की उपासना करो जिसने द्युलोक और पृथिवीलोक के सब ऐश्वर्यों को उत्पन्न किया है, और उसी से सब प्रकार के धन और ऐश्वर्यों की प्रार्थना करते हुए कहो कि हे परमात्मा ! आप मंगलवाणियो से हमारी सदैव रक्षा करें ॥१०॥

यह सप्तम मण्डल में सत्तानबेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ सप्तर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषि ॥ १—६ इन्द्रः, ७ *इन्द्राबृहस्पती देवते* ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ३ *विराट्त्रिष्टुप्* । ४, ५ *त्रिष्टुप्* ॥ *धैवत स्वर* ॥

अब उक्त परमात्मा सर्वशक्तिरूप से वर्णन किया जाता है ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।

गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

पदार्थ —(**अध्वर्यव.**) हे ऋत्विग् ! आप लोग (**क्षितीनां, वृषभाय**) जो इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो का स्वामी आनन्द की वृष्टि करने वाला परमात्मा है, उसकी (**जुहोतन**) उपासना करें, और (**अरुणम्**) आह्लादक पदार्थों से तथा (**दुग्धम्**) स्निग्धद्रव्यो से (**अंशुम्**) ओषधियों के खण्डो से हवन करें और (**वेदीयान्**) वेदीगत (**गौरात्**) शुभ्र पदार्थों का (**अवपानम्**) पान करें, ऐसा करने से (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवाला विद्वान् (**विश्वाहा**) सर्वदा (**सुतसोमम्, इच्छन्**) सुन्दर शील की इच्छा करता हुआ अपने उच्च लक्ष्य को (**याति**) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ऋत्विग् लोगो ! आप निखिल संसार के पति परमात्मा की उपासना करो, और सुन्दर-सुन्दर पदार्थों से हवन करते हुए अपने स्वभाव को सौम्य बनाने की इच्छा करो। [इस मन्त्र मे परमात्मा ने सौम्य स्वभाव बनाने का उपदेश किया, अर्थात् जो विद्वान् शील-सम्पन्न होता है वही अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है अन्य नहीं , इस भाव का यहां वर्णन किया गया है] ॥१॥

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥२॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे विद्वन् ! (**यत्**) जो तुम (**दिवे, दिवे**) प्रतिदिन (**चारु, अन्नम्**) श्रेष्ठ अन्न को धारण करते हो और (**प्रदिवि**) गत दिनो मे भी तुमने श्रेष्ठ अन्न को ही धारण किया और (**अस्य**) सौम्य स्वभाव बनाने वाले सोम द्रव्य के (**पीतिम्, इत्**) पान को ही (**वक्षि**) चाहते हो (**उत**) और (**हृदा**) हृदय से (**उत**) और (**मनसा**) मन से (**जुषाण**) परमात्मा का सेवन करते हुए और (**उशन्**) सबकी भलाई की इच्छा करते हुए तुम (**प्रस्थितान्, पाहि, सोमान्**) इन उपस्थित सोमपा लोगो को अपने उपदेशो द्वारा पवित्र करो ॥२॥

भावार्थ—केवल सोम द्रव्य के पीने से ही शील उत्तम स्वभाव नहीं बन सकता, इसलिये यह कथन किया है कि हे विद्वन् ! आप सौम्य स्वभाव का उपदेश करके लोगो मे शान्ति फैलावें ॥२॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे विद्वन्, (**जज्ञान**) तुमने पैदा होते ही (**सहसे**) बल के लिये (**सोमम्**) सौम्य स्वभाव बनाने वाले सोमरस का (**पपाथ**) पान किया और (**ते**) तुम्हारी माता ने (**महिमानम्, उवाच**) परमात्मा के महत्त्व का तुम्हारे प्रति उपदेश किया। तुमने (**उरु, अन्तरिक्षम्**) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (**आपप्राथ**) अपने विद्याबल से परिपूर्ण किया, तथा (**देवेभ्यः**) देवप्रकृतिवाले मनुष्यो के लिये (**वरिव.**) धनरूपी ऐश्वर्य (**चकर्थ**) उत्पन्न किया ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे इस बात का उपदेश किया गया है कि जो पुरुष प्रथम माता से शिक्षा उपलब्ध करता है तथा वैदिक संस्कारो द्वारा अपने स्वभाव को सुन्दर बनाता है वह सर्वोत्तम विद्वान् होकर इस संसार मे अपने यश को फैलाता है और वेदानुयायी पुरुषो के ऐश्वर्य को बढ़ाता है ॥३॥

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (**महतो, मन्यमानान्, योधयाः**) युद्ध करनेवाले जो बड़े से बड़ा अपने को मानते हैं और (**शाशदानान्**) बड़े हिंसक हैं (**तान्**) उनको (**बाहुभि**) हाथों से (**साक्षाम**) हनन करने मे हम समर्थ हों, और (**यत्, वा**) अथवा (**नृभि.**) मनुष्यो करके (**वृत**) आवृत हुआ (**इन्द्र**) युद्धविद्यावेत्ता विद्वान् (**अभियुध्या**) हम से युद्ध करे (**तम्**) उस (**सौश्रवसम्**) बड़े प्रख्यात को (**आजिम्**) संग्राम में (**त्वया**) तुम्हारी सहायता से (**जयेम**) जीतें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष न्यायशील होकर अन्यायकारी शत्रुओं के दमन का बल मांगते हैं उनको मैं अनन्त बल देता हूं, ताकि वे अन्यायकारी हिंसको का नाश कर संसार मे धर्म और न्याय का राज्य फैलावें ॥४॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥५॥

पदार्थ —(**इन्द्रस्य**) विद्वान् के (**प्रथमा, कृतानि**) पहले किये हुए वीर्यकर्मों को तथा (**या**) जिन (**नूतना**) नवीन कर्मों को (**मघवा**) ऐश्वर्य-सम्पन्न विद्वान् ने (**प्र, चकार**) किया उनको (**प्र, वोचम्**) वर्णन करते हैं, (**यदा**) जब इसने (**अदेवी॰, मायाः**) आसुरी प्रकृति को (**असहिष्ट, इत्**) दृढ़रूप से सह लिया अर्थात उसके वशीभूत न हुआ तब (**केवल , सोमः**) केवल सोम अर्थात् शील (**अस्य, अभवत्**)इसका सहायक हुआ ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! जो पुरुष आसुरी माया के बन्धन मे नहीं आता उसके बल और यश का सम्पूर्ण संसार वर्णन करता है और उसकी दृढ़ता और परमात्मपरायणता उसको आपत् समय मे भी सहायता देती है। इसलिये तुम व्रत धारण करो कि छल, कपट, दम्भ के कदापि वशीभूत न होओ। इस दृढ़ता के लिये मैं तुम्हारा सहायक होऊँगा ॥५॥

जिस परमात्मा की कृपा से पूर्वोक्त विद्वान् उक्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है, अब सूक्त की समाप्ति मे उसका वर्णन करते हैं ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।

गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**तव, इदम्, विश्वम्**) तुम्हारा जो यह संसार है वह (**अभित**) सब ओर से (**पशव्यम्**) प्राणिमात्र का हितकर है, क्योकि (**यत् पश्यसि**) आप इसके प्रकाशक है (**चक्षसा**) और अपने तेज से (**सूर्यस्य**) सूर्य्य के भी प्रकाशक है (**इन्द्र**) ["इन्दतीतीन्द्र, इदि परमैश्वर्ये"] हे परमात्मन् ! तुम (**एक.**) अकेले ही (**गवाम्, असि**) सब विभूतियो के आधार हो और (**गोपति**) सब विभूतियो के पति हो। (**ते**) तुम्हारा (**प्रयतस्य**) दिया हुआ (**वस्वः**) ऐश्वर्य (**भक्षीमहि**) हम भोगें ॥६॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक है और आपका यह संसार प्राणिमात्र के लिये सुखदायक है, जो कुछ हम इसमें दुःखदायक देखते हैं वह सब हमारे ही अज्ञान का फल है ॥६॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ —(**बृहस्पते**) हे सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामिन् ! (**च**) और (**इन्द्र**) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (**युवम्**) आप (**दिव्यस्य वस्व**) द्युलोक के ऐश्वर्य के (**उत, पार्थिवस्य**) और पृथिवी के ऐश्वर्य के (**ईशाथे**) ईश्वर हो, हम आप से प्रार्थना करते है कि (**स्तुवते कीरये**) अपने भक्त के लिये (**रयिम्**) धन को (**धत्तम्**) दें (**चित्**) और (**यूय**) आप (**स्वस्तिभि**) मगल वाणियो से (**सदा**) सर्वदा (**न**) हमारी (**पात**) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ —यहा परमात्मा मे जो द्विवचन दिया है वह इन्द्र और बृहस्पति के भिन्न-भिन्न होने के अभिप्राय से नहीं, किन्तु उत्पत्ति और स्थिति इन दो शक्तियो के अभिप्राय से अर्थात् स्वामित्व और प्रकाशकत्व इन दो शक्तियो के अभिप्राय से है, व्यक्तिभेद के अभिप्राय से नहीं। इसी अभिप्राय से आगे जाकर यूयम् यह बहुवचन दिया। तात्पर्य यह है कि एक ही परमात्मा को यहा बृहस्पति और इन्द्र इन नामो से गुणभेद से वर्णन किया जैसा कि एक ही ब्रह्म का "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० २।१) यहा सत्यादि नामो से एक ही वस्तु का ग्रहण है एव यहां भी भिन्न-भिन्न नामो से एक ही ब्रह्म का ग्रहण है, दो का नहीं ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में अट्ठानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकोनशततमस्य सूक्तस्य १—७ *वसिष्ठ ऋषि*. ॥ १—३, ७ *विष्णु* । ४—६ *इन्द्राविष्णू देवते* ॥ छन्द —१, ६ *विराट् त्रिष्टुप्* । २, ३ *त्रिष्टुप्* । ४, ५, ७, *निचृत् त्रिष्टुप्* ॥ *धैवत स्वर* ॥

अब सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का ज्ञाता परमेश्वर ही है, यह बताते हैं ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।

उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥

पदार्थः—(**मात्रया**) प्रकृति के पञ्च तन्मात्रारूप (**तन्वा**) शरीर से (**वृधान**) वृद्धि को प्राप्त (**ते**) तुम्हारी (**महित्वम्**) महिमा को हे (**विष्णो**) विभो ! (**न**) नहीं (**अन्वश्नुवन्ति**) प्राप्त कर सकते , हे व्यापक परमात्मन् (**ते**) तुम्हारे (**उभे**) दोनों लोको को हम (**विद्म**) जानते हैं जो (**पृथिव्याः**) पृथिवी से लेकर (**रजसी**) अन्तरिक्ष तक हैं। हे (**देव**) दिव्य शक्तिमन् परमात्मन् ! (**त्व**) तुम ही (**अस्य**) इस ब्रह्माण्ड के (**पर**) पार को (**वित्से**) जानते हो, अन्य नहीं ॥१॥

भावार्थ.—जीव केवल प्रत्यक्ष से लोको को जान सकता है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा है । तन्मात्रा कथन करना यहां प्रकृति के सूक्ष्म कर्मों का उपलक्षणमात्र है ॥१॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थ.—(**विष्णो**) हे व्यापक परमेश्वर, (**ते**) तुम्हारे (**महिम्न·**) महत्त्व के (**पर, अन्तं**) सीमा को, (**जायमान**) वर्त्तमानकाल मे (**जात**) भूतकाल में भी ऐसा कोई (**न**) नही हुआ जो आपके अन्त को, (**आप**) प्राप्त हो सका । आप ने (**नाक**) द्युलोक को (**उदस्तभ्ना·**) स्थिर रखा है और आप की (**महत्त्वं, ऋष्वं**) महिमा दर्शनीय है तथा (**बृहन्त**) सबसे बडी है और (**पृथिव्या·**) पृथिवी लोक की (**प्राची, ककुभ**) प्राच्यादि दिशाओ को आप (**दाधर्थ**) धारण किये हुए हैं ॥२॥

भावार्थ—भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनो कालो मे किसी की शक्ति नहीं जो परमात्मा के महत्त्व का ज्ञान सके इसी कारण उसका नाम अनन्त हैं । जिसको 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' (तै० २ । १ ।) इस वाक्य ने भी भली-भांति वर्णन किया है । उसी ब्रह्म का यहा विष्णु नाम से वर्णन है । केवल यहां ही नही किन्तु " य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा (ऋ० म० १।१५४।४") मे यह कहा है कि जिस एक अद्वैत अर्थात् असहाय परमात्मा ने सत्त्वरजस्तम इन तीनो गुणो के समुच्चयरूप प्रकृति को धारण किया हुआ है उस व्यापक ब्रह्म का नाम यहा विष्णु है । "विष्णोर्नु क वीर्याणि प्रवोचम् (ऋ० म० १ । १५४ । १) । तद् विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय (ऋ० म० १ । सू० २२ । २०) । इद विष्णुर्विचक्रमे (ऋ० १ । २२ । १७ ॥) इत्यादि शतश मन्त्रा मे उस व्यापक विष्णु के स्वरूप का वर्णन किया है । फिर न जाने वेदो मे आध्यात्मिकवाद की आशका करने वाले किस आधार पर यह कहा करते है कि वेदो में एकेश्वरवाद नही ॥२॥

इरावती धेनुमती हि भूत सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३॥

पदार्थ—(**विष्णो**) हे व्यापक परमात्मन्, (**पृथिवीमभित**) पृथिवी के चारो ओर से (**मयूखै·**) अपने तेजरूप किरणों से (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक को (**दाधर्थ**) आपने धारण किया हुआ है जो दोनो लोक (**इरावती**) ऐश्वर्य वाले (**धेनुमती**) सब प्रकार के मनोरथो को पूर्ण करने वाले (**सुयवसिनी**) सर्वोपरि सुन्दर (**मनुषे**) मनुष्य के लिए (**दशस्या**) ऐश्वर्य्य देने के लिये आपने उत्पन्न किये हैं (**वि, अस्तभ्ना**) उन दोनो को आप अपनी शक्ति से धारण कर रहे हो ॥३॥

भावार्थ—यहा द्युलोक और पृथिवीलोक दोनो उपलक्षणमात्र है । वास्तव मे परमात्मा ने सब लोक-लोकान्तरो को ऐश्वर्य के लिए उत्पन्न किया है और इस ऐश्वर्य के अधिकारी सत्कर्मी पुरुष हैं । जो लोग कर्मयोगी हैं उनके लिये द्युलोक तथा पृथिवीलोक के सब मार्ग खुले हुए हैं ।

परमात्मा उपदेश करते है कि हे अधिकारी जनो, आप के लिए यह विस्तृत ब्रह्माण्ड खुला है । आप इस मे कर्मयोग द्वारा अव्याहतगति अर्थात् बिना रोक-टोक के सर्वत्र विचरे ॥३॥

उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४॥

पदार्थ—(**उरुम्**) इस विस्तृत (**लोकम्**) लोक को परमात्मा ने (**यज्ञाय**) यज्ञ के लिये (**चक्रथु**) उत्पन्न किया है और उसी ने (**सूर्यम्, उषासमग्निम**) उषा काल की ज्योतिवाले अग्निरूप सूर्य्य को (**जनयन्ता**) रचा है । आप (**पृतनाज्येषु**) युद्धो मे (**दासस्य**) कपटी लोगों को जो (**वृषशिप्रस्य**) दम्भ से काम लेते हैं उनके (**माया**) कपट को (**जघ्नथु**) नाश करें । (**नरा**) हे नेता भगवन् ! [नरा शब्द यहा नेता के अभिप्राय से आया है, द्विवचन यहा व्यत्यय से अविवक्षित है] ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा प्रार्थनाकर्त्ताओ के द्वारा इसको प्रकट करते हैं कि न्यायाभिलाषी पुरुषो, तुम मायावी पुरुषो की माया के नाश करने के लिए प्रार्थनारूपी भाव को उत्पन्न करो । फिर यह सत्कर्म स्वय प्रबल हो करके फल देगा ॥४॥

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्राविष्णू**) हे न्याय और वज्ररूप शक्ति वाले परमात्मन्, आप (**दृंहिता**) दृढ से दृढ (**शम्बरस्य**) मेघ के समान फैले हुए शत्रु के (**नवनवति**) निन्यानवे (**च**) और उस (**वर्चिन**) मायावी पुरुष के (**शत**) सैकडो (**च**) और (**सहस्र**) हजारो (**पुर**) दुर्गों को (**श्नथिष्ट**) नाश करें तथा (**साक**) शीघ्र ही (**अप्रत्यसुरस्य**) उसके उभरने से प्रथम उसके (**वीरान्**) सैनिको को (**हथ**) हनन करो ॥५॥

भावार्थ—मायावी शत्रु को दमन करने के लिये न्यायशील पुरुषो को परमात्मा उपदेश करते हैं कि तुम लोग अन्यायकारी शत्रुओ के सैकडो, हजारो दुर्गों से मत डरो क्योंकि (**माया**) अन्याय से जीतने की इच्छा करने वाला असुर स्वय अपने पाप से आप मारा जाता है और उसके लिये आकाश से वज्रपात होता है । जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि "प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र" (म० ७।१०४ म० १९) हे परमात्मा, तुम अन्यायकारी मायावी के लिये आकाश से वज्रपात करो । इस प्रकार न्याय की रक्षा के लिए वीर पुरुषों के प्रति यहां परमात्मा का उपदेश है ॥५॥

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥६॥

पदार्थ—(**बृहन्तोरुक्रमा**) हे अनन्तशक्ते परमात्मन् ! (**इय**) यह (**मनीषा**) बुद्धि (**बृहती**) जो न्याय की रक्षा के लिये सब से बडी है (**तवसा**) बल देकर (**वर्धयन्ती**) बढाती है इस लिये (**विष्णो**) हे परमात्मन् ! (**वां**) आपकी यह (**स्तोम**) स्तुति हम (**ररे**) करते हैं ताकि (**विदथेषु**) यज्ञो और (**वृजनेषु**) युद्धो मे, (**इन्द्र**) हे परमात्मन् ! (**इष**) हमारे ऐश्वर्य को आप (**पिन्वत**) बढाए ॥६॥

भावार्थ—जो ऐश्वर्य के बढाने वाली इस वाणी का सेवन करते हैं अर्थात् (ब्रह्मयज्ञ) ईश्वरोपासना (और वीरयज्ञ) अन्याय के दमन करने के लिये वीरता करना, इस प्रकार भक्तिभाव और वीरभाव इन दोनो का अनुष्ठान करते हैं वे सब प्रकार की विपत्तियो का नाश कर सकते हैं ॥६॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थ—(**शिपिविष्ट**) हे तेजोमय परमात्मन् ! आप (**हव्य**) हमारी प्रार्थना को (**जुषस्व**) स्वीकार करें जो (**वषट्**) बडी नम्रतापूर्वक की गई है । (**विष्णो**) हे व्यापक परमात्मन ! (**ते**) तुम्हारे (**आस**) समक्ष वे प्रार्थनाए (**आ, कृणोमि**) करता हूं और (**मे**) मेरी (**गिर**) ये वाणियें (**सुष्टुतय.**) जिनमे भले प्रकार से आपका वर्णन किया गया है (**त्वा**) आपके यश को (**वर्धन्तु**) बढाए और (**यूय**) आप (**सदा**) सर्वदा (**स्वस्तिभिः**) मङ्गल कार्यों से (**पात**) हमारी रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ—शिपि नाम यहा तेजोरूप किरणो का है । "शिपयो रश्मयः" (निरु० ५।८॥) अर्थात् ज्योति स्वरूप परमात्मा हमारी प्रार्थनाओ को स्वीकार करे और हमको सर्वदा उन्नति के मार्ग मे ले जाय । यहा पहले (त्वा) एक वचन आकर भी (यूय) फिर आदरार्थ बहुवचन है ॥७॥

यह सप्तम मण्डल में निन्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तचस्य शततमस्य सूक्तस्य—१-७ वसिष्ठ ऋषि ॥ *विष्णुर्देवता* ॥ छन्द १, २, ५, ६, ७ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ३ *विराट् त्रिष्टुप्* । ४ *आर्षी त्रिष्टुप्* ॥ *धैवत स्वरः* ॥

अब परमात्मा सुमति अर्थात् शुभ नीति का उपदेश करते हैं ॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥१॥

पदार्थ—(**य**) जो पुरुष (**उरुगायाय**) अत्यन्त भजनीय (**विष्णवे**) व्यापक परमात्मा की (**सनिष्यन्**) प्राप्ति के लिये इच्छा (**दाशत्**) करते है (**नु**) शीघ्र ही वे मनुष्य उसको (**दयते**) प्राप्त होते है । और जो (**सत्राचा**) शुद्ध मन से (**यजात**) उस परमात्मा की उपासना करता है वह (**एतावन्त, नर्यं**) उक्त परमात्मा को जो सब प्राणिमात्र का हित करनेवाला है (**आविवासात्**) अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मप्राप्ति के लिए सब से प्रथम जिज्ञासा अर्थात् प्रबल इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए । तदनन्तर जो पुरुष निष्कपट भाव से परमात्मपरायण होता है, उस पुरुष को परमात्मा का साक्षात्कार अर्थात् यथार्थज्ञान अवश्यमेव होता है ॥१॥

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥२॥

पदार्थ—(**एवयाव**) हे सर्वकामनाप्रद (**विष्णो**) व्यापक परमेश्वर ! (**त्व**) आप हमे (**विश्वजन्या**) सब ससार का हित करनेवाली (**अप्रयुताम्**) दोषरहित (**सुमति**) नीति (**दा:**) दें । और (**पुरुश्चन्द्रस्य**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का (**राय**) साधन जो धन है और (**भूरे, अश्वावत**) जिस में अनेक प्रकार की शक्तियां हैं और जो (**सुवितस्य**) सुविधा से प्राप्त हो सकता है (**यथा**) जिस प्रकार (**पर्च.**) उनकी प्राप्ति हो वैसी (**न:**) हमको आप बुद्धि दें ॥२॥

भावार्थ—शुभ नीति और सुनीति उसका नाम है जिससे संसार भर का कल्याण हो । इस मन्त्र मे परमात्मा ने इस नीति के उत्पन्न करने के लिये जिज्ञासु द्वारा प्रार्थना कथन करके उपदेश किया है । वास्तव मे शुभ नीति ही धर्म, देश और जाति की उन्नति का सर्वोपरि साधन है ॥२॥

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥

पदार्थ—(**देव**) दिव्यशक्तियुक्त उक्त परमात्मा (**एता**) इस (**पृथिवीं**) पृथ्वी को (**त्रि**) तीन प्रकार से (**विचक्रमे**) रचता है (**शतर्चसं**) जिस पृथ्वी में सैकड़ों प्रकार की (**अर्चि**) ज्वालाएं हैं (**महित्वा**) जिसका बहुत विस्तार है और इस (**स्थविरस्य**) प्राचीन पुरुष का नाम इसीलिए (**विष्णुः**) विष्णु है क्योंकि (**तवस**) यह तेरा स्वामी है, इसलिए इसका नाम विष्णु है अथवा यह सर्वव्यापक होने से सर्वस्वामी है, इसलिये इसका नाम विष्णु है ॥३॥

भावार्थ—तीन प्रकार से पृथ्वी को रचने के अर्थ ये हैं कि प्रकृति के सत्वादि गुणोंवाले परमाणुओं को परमात्मा ने तीन प्रकार से रचा, तामस भाववाले परमाणु पृथ्वी पाषाणादिरूप से, राजस नक्षत्रादिरूप से और दिव्य अर्थात् द्युलोकस्थ पदार्थों को सात्त्विक भाव से, ये तीन प्रकार की गतियां हैं। इसीका नाम 'त्रेधा निदधे पदम्' है। इसी भाव को "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" (मं० १।२२।१७।) में वर्णन किया है जो कई एक लोग इसका अर्थ यह करते हैं कि विष्णु ने वामनावतार को धारण करके तीन पैर से पृथ्वी को नापा। इसका उत्तर यह है कि इसी विष्णुसूक्त में "तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" (म० १।२२।२०) में इस पद को चक्षु की निराकार ज्योति के समान निराकार माना है ॥३॥

अब ईश्वर स्वयं कथन करते हैं कि विचक्रमे के अर्थ निर्माण अर्थात् रचने के हैं ॥

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

पदार्थ—(**विष्णु**) व्यापक परमेश्वर ने (**मनुषे**) मनुष्य के (**क्षेत्राय**) अभ्युदय (**दशस्यन्**) देने के लिये (**पृथिवीम्, एतां**) इस पृथ्वी को (**विचक्रमे**) रचा जिससे (**अस्य**) इस परमात्मा के (**कीरयः**) कीर्तन करने वाले (**जनास**) भक्त लोग (**ध्रुवास**) दृढ़ हो गए क्योंकि (**उरुक्षितिं**) इस विस्तृत क्षेत्ररूपी पृथ्वी को (**सुजनिमा**) सुन्दर प्रादुर्भाववाले ब्रह्माण्डपति परमात्मा ने (**चकार**) रचा है ॥४॥

भावार्थ—जिस पृथ्वी में (सुजनिमा) सुन्दर आविर्भाववाले प्राणिजात हैं उनका कर्त्ता जो परमात्मा है उसने इस सम्पूर्ण विश्व को रचा है। विष्णु के अर्थ यहां "यज्ञो वै विष्णुः" (श० प०) ॥ "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" (यजु० ३१-७) ॥ इत्यादि प्रमाणों से व्यापक परमात्मा के हैं। यही बात विष्णु सूक्तों में सर्वत्र पायी जाती है। इस भाव को वेद ने अन्यत्र भी वर्णन किया है कि "द्यावाभूमी जनयन्देव एकः" (यजु०) एक परमात्मा ने सब लोक-लोकान्तरों को रचा है ॥४॥

अब निम्नलिखित मन्त्र में वेद स्वयं विष्णु के अर्थ ईश्वर के करते हैं ॥

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥५॥

पदार्थः—(**शिपिविष्ट**) हे तेजोमय परमात्मन् ! ["शिपयो रश्मयः" (निरु० ५।८)] (**यत्**) जिस लिये (**ते**) तुम्हारा (**अर्यः**) अर्य यह नाम है, [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यर्यः जो सर्वव्यापक हो उसको अर्य कहते हैं] (**तं, त्वा**) ऐसे तुम्हारी (**गृणामि**) मैं स्तुति करता हूँ। तुम (**तवस**) सर्वोपरि वृद्धियुक्त हो (**अस्य**) इस (**रजसः**) रजोगुणयुक्त ब्रह्माण्ड के (**पराके**) मध्य में (**अतव्यान्**) निरन्तर गमन करने वाले लोक लोकान्तरों में भी आप (**क्षयन्त**) निवास कर रहे हैं और सब प्रकार के (**वयुनानि**) ज्ञानों के (**विद्वान्**) आप जाननेवाले हैं। इसीलिये मैं आपकी (**प्रशंसामि**) प्रशंसा करता हूँ ॥५॥

भावार्थः—विष्णु, अर्य, व्यापक ये तीनों एक ही पदार्थ के नाम हैं। विष्णु को इस मन्त्र में अर्य कहा है और अर्य परमात्मा का मुख्य नाम है। [इस विषय में प्रमाण यह है कि "राष्ट्री। अर्यः। नियुत्वान्। इनइन इति चत्वारीश्वरनामानि ॥" (निघ० २।२२॥) राष्ट्री, अर्य, नियुत्वान्, इनइन ये चारों ईश्वर के नाम हैं] ॥५॥

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥६॥

पदार्थ—(**विष्णो**) हे व्यापक परमेश्वर ! (**किं ते**) क्या तुम्हारा वह रूप कथन करने योग्य है जिसको तुम स्वयं (**शिपिविष्टः, अस्मि**) कि मैं तेजोमय हूँ, यह अपनी वेदवाणी में कथन करते हो, अर्थात् वह स्वयंसिद्ध है ; किसी के कथन की अपेक्षा नहीं रखता। और (**यत्**) जो (**अन्यरूपः**) दूसरा रूप (**समिथे**) संग्राम में (**बभूथ**) होता है (**एतत्, वर्पः**) इस रूप को (**अस्मत**) हम से (**मा**) मत (**अपगूहः**) छिपा ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा स्वप्रकाश तेजोमय रूप सृष्टि की रचना और पालने से सबको प्रसिद्ध है अर्थात् उसकी विचित्र रचना से प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी पुरुष जानता है कि यह विविध रचना किसी सर्वज्ञ तेजोमय परमात्मा के बिना कदापि नहीं हो सकती ॥६॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(**शिपिविष्ट**) हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! (**तन्मे हव्य**) आप हमको ऐसा विश्वास दें जिससे हम सदैव आपके वशवर्ती बने रहें और आप हमारी भक्ति को (**जुषस्व**) सेवन करें (**आस**) आपके समक्ष हम (**वषट्**) श्रद्धा (**कृणोमि**) प्रकट करते हैं (**मे**) हमारी (**गिर, सुष्टुतय**) प्रार्थनारूप वाणियां (**वर्धन्तु**) आपके यश को फैलावें। (**यूय**) आप (**स्वस्तिभि**) कल्याणी वाणियों से (**पात**) हमारी सदैव रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ—इस छठे अध्याय के अन्त में प्रकाशरूप सर्वव्यापक परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि आप हमको अत्यन्त उन्नतिशील बनायें और सदैव हमारी रक्षा करें ॥७॥

सप्तम मण्डल में सौवां सूक्त और षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तमोऽध्यायः

—•☼•—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ षडृचस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ कुमारो वाग्नेय ऋषि ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब प्रसङ्गसंगति से ईश्वर की ऐश्वर्यवर्धक वर्षा ऋतु का वर्णन करते हैं ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तिस्र., वाच.**) ज्ञानप्रद, कर्मप्रद, उपासनाप्रद इन तीनों वाणियों को (**प्रवद**) कहिये (**या**) जो वाणियां (**ज्योति, अग्रा**) अपने प्रकाश से सर्वोपरि हैं, और (**एतत्, ऊधः**) नभोमण्डलरूप से (**मधुदोघम्**) अमृतरूपी औषधियों को (**दुह्रे**) दुहती हैं, और (**स**) वह पर्जन्य (**वत्स, कृण्वन्**) विद्युत् को वत्स बनाता हुआ और (**ओषधीनां, गर्भम्**) नाना प्रकार की औषधियों में गर्भ धारण करता हुआ (**सद्यो, जात**) तत्काल उत्पन्न हुआ (**वृषभ.**) [वर्षणाद्वृषभ.] मेघ (**रोरवीति**) अत्यन्त शब्द करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार से परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि विद्युत् शक्ति को वत्स और आकाशस्थ मेघमण्डल को स्तनस्थानी बनाकर ऋत्विजों को ऋचारूपी हाथों द्वारा दोग्धा बनाया है। तात्पर्य यह है कि वर्षाऋतु में ऋत्विजों को उद्गाता आदिकों के उच्चस्वरों से वेद मन्त्रों का गायन करना चाहिये ताकि वृष्टि सुखप्रद और समय आनन्दप्रद प्रतीत हो ॥१॥

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो ईश्वर (**ओषधीनाम्**) सम्पूर्ण ओषधियों को (**य**) और जो (**अपाम्**) जलो को (**वर्धन**) बढ़ाता है (**य., देव**) और जो दिव्य ईश्वर (**विश्वस्य, जगत., ईशे**) सकल जगत् को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला है (**स**) वह ईश्वर (**त्रिधातु, शरणम्**) विचित्र गृहो मे (**शर्म**) सुख को (**अस्मे**) हमको (**यसत्**) दे। और (**त्रिवतु**) तीन ऋतुओं मे (**स्वभिष्टि, ज्योति**) सुन्दर अभीष्ट ऐश्वर्य को दे ॥२॥

भावार्थ—जो परमात्मा उक्त वर्षादि ऋतुओ में ओषधियो को बढ़ाता है और जो सब ओषधियो मे रसो का आविष्कार करने वाला है वह परमात्मा इस त्रिधातु शरीर मे सुख दे और सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त कराये ॥२॥

अब पर्जन्य को धेनुरूप से वर्णन करते हैं ॥

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

पदार्थः—(**त्वत**) एक तो मेघ (**स्तरी**) नवप्रसूता धेनु के समान (**उ**) निश्चय करके (**भवति**) होता है और (**सूते**) जल को वर्षाता है (**त्वत्**) अन्य (**एष**) यह (**यथावशम्**) स्वेच्छापूर्वक (**तन्वम्**) शरीर को (**चक्रे**) बना लेता है (**पितु·**) पितारूप द्युलोक से (**माता, पय, प्रति, गृभ्णाति**) मातारूप पृथिवी जल को ग्रहण करती है (**तेन**) और उससे (**पिता, वर्धते**) द्युलोक वृद्धि को प्राप्त होता है (**तेन**) और उससे (**पुत्र.**) प्राणिसंघरूप पुत्र भी बढ़ता है ॥३॥

भावार्थ—वर्षाऋतु मे मेघ नवप्रसूता गौ के समान अपने दुग्धरूपी पय पुञ्ज से संसार को परिपूर्ण कर देता है, वा यों कहो कि द्यु पिता और पृथिवी मातास्थानी बनकर वर्षाऋतु मे नाना प्रकार की सम्पत्ति उत्पन्न करते हैं और जो यहा पिता-स्थानी द्युलोक का बढ़ाना कहा गया है वह उसके ऐश्वर्य के भाव से है कुछ आकार-वृद्धि के अभिप्राय से नही ॥३॥

यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।

त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४॥

पदार्थ—(**यस्मिन्**) जिस परमात्मा मे (**विश्वानि, भुवनानि**) सम्पूर्ण भुवन (**तस्थुः**) स्थिर है, (**तिस्रो, द्याव·**) जिस मे भूर्भुव स्व ये तीनो लोक स्थिर हैं, (**त्रेधा, सस्रु, आप·**) [आप्यते प्राप्यत इति अप कर्म, अप इति कर्म-नामसु पठित निघण्टौ २, १ तस्यायमित्याप·] जिसमे तीन प्रकार से कर्म गति करते हैं, अर्थात् संचित, प्रारब्ध, और क्रियमाण, (**त्रय, कोशास**) जिस मे ३ कोश अन्नमय, प्राणमय और मनोमय (**उपसेचनास**) उपसिञ्चन करने वाले हैं, वह परमात्मा (**मध्व, श्चोतन्ति अभित, विरप्शम्**) सब प्रकार से आनन्द की वृष्टि करते हैं ॥४॥

भावार्थ—जिस परमात्मा म अन्नमय, प्राणमय और मनोमय इन तीनो कोशो वाले अनन्त जीव निवास करते हैं और निखिल ब्रह्माण्ड स्थिर है उसी परमात्मा की सत्ता से जीव सचित, क्रियमाण और प्रारब्ध तीन प्रकार के कर्मों की वृष्टि करता है। वह परमात्मा मेघ के समान आनन्दो की वृष्टि करता है। इस मन्त्र मे रूपकालकार से परमात्मा का मेघवत् वृष्टिकर्ता बताया गया है ॥४॥

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत ।

मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**अस्मे**) हमारे लिए (**मयः, भुव, वृष्टय, सन्तु**) वृष्टियें आनन्द के बरसाने वाली हो। (**सुपिप्पला**) और सुन्दर फलो वाली औषधिया हो (**देवगोपा**) और उनके विद्वान् लोग प्रयोग करने वाले हो (**इद, वच**) यह वाणी (**पर्जन्याय, स्वराजे**) स्वतन्त्र राजा जो प्रजा के ऊपर पर्जन्य की तरह वृष्टि करने वाला हो उसके प्रति कहनी चाहिये, और फिर यह कहना चाहिये, (**हृद, अस्तु, अन्तरम**) तुम्हारे हृदयगत यह वाणी हो (**तत् जुजोषत**) और इस का सेवन करो ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उद्गातादि लोगो ! तुम लोग अपने सम्राट् के हृदय मे इस बात को बलपूर्वक भर दो कि जिस प्रकार वृष्टिकर्ता मेघ हम पर वृष्टि करके नाना प्रकार की औषधियां उत्पन्न करते है और जिस प्रकार परमात्मा इस ससार मे आनन्द की वृष्टि करता है इसी प्रकार हे राजन्, आप अपनी प्रजा के लिये न्यायनियम से सुख की वर्षा करने वाले हो ॥५॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थ—(**स**) वह परमात्मा (**रेतोधा**) प्रकृतिरूप बीज के धारण करने वाला है, (**शश्वतीनाम्**) अनन्त प्रजाओ मे (**वृषभ**) [**वर्षिता निघ** १, ८] सुख की वृष्टि करने वाला है (**तस्मिन्**) उसी परमात्मा मे (**जगत, तस्थुष, च**) स्थावर और जगम ससार के सब जीव विराजमान हैं (**तत्**) वह ब्रह्म (**शतशारदाय**) सैकड़ो वर्षों तक (**मा**) हमारी (**ऋतम्**) सच्चाई की (**पातु**) रक्षा करे हे परमात्मन् ! (**यूयम्**) आप (**स्वस्तिभि**) मगल कार्यों द्वारा (**सदा**) सदैव (**न**) हमारी (**पात**) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थ—जिस परमात्मा मे चराचर सब जीव निवास करते हैं और जो प्रकृतिरूपी बीज धारण किये हुए है अर्थात् जिस से तीनो गुणो की साम्यावस्थारूप प्रकृति और जीवरूप प्रकृति सदा भिन्न होकर विराजमान हैं उसी एकमात्र परमात्मा से अपने सदाचार और सचाई की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

सप्तम मण्डल मे एकसौएकवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य द्व्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १-३ वसिष्ठ. कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्द·—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवत· स्वर· ॥

अब श्लेषालकार से परमात्मा और मेघ का वर्णन करते हैं ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।

स नो यवसमिच्छतु ॥१॥

पदार्थ—हे ऋत्विग् लोगो ! तुम (**पर्जन्याय**) तृप्तिजनक जो परमात्मा है उनका (**प्र, गायत**) गायन करो (**सः, नः, यवसम्, इच्छतु**) वह हमारे लिये ऐश्वर्य दे जो (**दिव, पुत्राय**) देवस्वभाव वाले लोगो को नरक से बचाना और (**मीळ्हुषे**) आनंद को बर्षाता है ॥१॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते है कि हे पुरुषो ! तुम तृप्तिजनक वस्तुओ का वर्णन करो जिस से तुम मे ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए उद्योग उत्पन्न हो ॥१॥

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥२॥

पदार्थ—(**य**) जो परमात्मा (**ओषधीनाम्, गर्भम्**) ओषधियों का उत्पत्तिस्थान है और (**अर्वताम्, गवाम्, कृणोति**) गमनशील विद्युदादि पदार्थों को रचता है तथा (**पुरुषीणाम्, पर्जन्य**) जो मनुष्यों की बुद्धियो का तृप्ति-जनक है ॥२॥

भावार्थ—जिस सर्वतृप्तिकारक परमात्मा ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो को रच कर ओषधियो को उत्पन्न किया और जिसने मनुष्यो की बुद्धि की तृप्ति करने के लिए अपने अनन्त ज्ञान को मनुष्यो के लिए दिया, उसकी उपासना प्रत्येक मनुष्य को करनी चाहिये ॥२॥

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ॥३॥

पदार्थ—(**आस्ये**) उस सर्वोपरि मुख्य परमात्मा मे (**मधुमत्तम**) अतिशय आह्लाद करने वाले (**हवि**) हवि को (**जुहोत**) हवन करो और (**तस्मै, इत्**) उसी से ही प्रार्थना करो कि वह (**न**) हमको (**इळां, सयत**) परिपूर्ण ऐश्वर्य (**करत्**) दें ॥३॥

भावार्थ—एक मात्र वही परमात्मा ऐश्वर्यों के लिए प्रार्थनीय है, अन्य नही ॥३॥

यह सप्तम मण्डल मे एकसौदोवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्र्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषि ॥ मण्डूका देवता ॥ छन्द —१ आर्षी अनुष्टुप् । २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वर· १ गान्धार । २—१० धैवत. ॥

अब श्लेषालकार से ब्राह्मणों का देवव्रत और प्रावृषेण्यों का प्रावृट् को विभूषित करना कथन करते हैं ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१॥

पदार्थ—(**ब्राह्मणा**)[ब्रह्माण इमे ब्राह्मणा.] ब्रह्म वेद के साथ सम्बन्ध रखने वाले (**व्रतचारिण**) व्रती (**संवत्सर, शशयाना**) एक वर्ष के अनन्तर (**पर्जन्यजिन्वि-ताम्**) तृप्तिकारक परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखन वाली (**वाचम्**) वाणी को (**प्रावा-दिषु**) बोलने लगे (**मण्डूका·**) [वेदाना मण्डयितार.] वेदो का मण्डन करने वाले [मण्डयन्तीति मण्डूका.] ॥१॥

भावार्थ—वृष्टिकाल मे ब्राह्मण वेदपाठ का व्रत करते है और उस समय में प्राय उन सूक्तो को पढ़ते है जो तृप्तिजनक है। दूसरे पक्ष में इस मन्त्र का यह भी अर्थ है कि वर्षा ऋतु के मण्डन करने वाले जीव वर्षा ऋतु मे ऐसी ध्वनि करते है मानो एक वर्ष के अनन्तर उन्होंने अपने मौनव्रत को उपार्जन करके इसी ऋतु मे बोलना प्रारम्भ किया है। तात्पर्य यह है कि इस मन्त्र मे परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि जिस प्रकार क्षुद्र जन्तु भी वर्षा काल मे आह्लादजनक ध्वनि करते हैं अथवा यो कहो कि परमात्मा के यश का गान करते है, वेदज्ञ लोगो ! तुम भी उसी प्रकार वेद का गान करो। [मालूम होता है कि श्रावणी का उत्सव जो भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र मनाते हैं वह वेदपाठ से ईश्वर के महत्त्वगायन का उत्सव था] ॥१॥

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥२॥

पदार्थ —(अत्र) इस वर्षा काल में (मण्डूकानाम्) वर्षाकाल को मण्डन करने वाले जीवों का (वग्नुः) शब्द (समेति) भली-भांति से वर्षा ऋतु को सुशोभित करता है (न) जैसे कि (वत्सिनीनाम्) प्रमारूपवृत्तियों के साथ मिली हुई (गवाम्) इन्द्रियों का (मायु) ज्ञान यथार्थ होता है, और (न) जिस प्रकार (दृतिम्, शुष्कम्) सूखा हुआ जलपात्र फिर हरा-भरा हो जाता है इसी प्रकार (दिव्या, आपः, यत्, एनम्) द्युलोक मे होने वाले जल जब (अभि) चारों ओर से इस मण्डूकगण को (सरसी, शयानम्) सूखे तालाब मे सोते हुए को (आयन्) प्राप्त होते हैं तो यह भी उस पात्र के समान फिर पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥२॥

भावार्थ.—इस मन्त्र मे यह बोधन किया है कि वर्षाकाल के साथ मेंढकादि जीवों का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा इन्द्रियों का इन्द्रियों की वृत्तियों के साथ । जैसे इन्द्रियों की यथार्थ ज्ञानरूप प्रमादि वृत्तियें इन्द्रियो को मण्डन करती हैं इसी प्रकार ये वर्षाऋतु का मण्डन करते हैं ।

दूसरी बात इस मन्त्र से यह स्पष्ट होती है कि मण्डूकादिको का जन्म मैथुनी सृष्टि के समान मैथुन से नहीं होता, किन्तु प्रकृतिरूप बीज से ही वे फिर उत्पन्न हो जाते हैं । इससे अमैथुनी सृष्टि होने का नियम भी परमात्मा ने इस मन्त्र में दर्शा दिया ॥२॥

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।

अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥३॥

पदार्थः—(यत्, ईम्) जब (प्रावृषि, आगतायाम्) वर्षा ऋतु के आने पर (तृष्यावतः, उशत , एनान्) तृषा से जल को चाहने वाले इन जन्तुओं पर (अभि, अवर्षीत्) वृष्टि होती है तब (अख्खलीकृत्य) सुन्दर शब्दो को करते हुए (पितरम्, न, पुत्रः) जैसे पुत्र पिता के पास जाता है वैसे ही (अन्य', अन्यम्, उपवदन्तम्, एति) शब्द करते हुए एक दूसरे के पास जाते हैं ॥३॥

भावार्थ —वर्षा ऋतु मे जीव आनन्द से विचरते हैं और अपने भावो का अपनी चेष्टा तथा वाणियो से बोध कराते हुए पुत्रो के समान अपने वृद्ध पितरो के पास जाते है । इस मन्त्र मे स्वभावोक्ति अलकार से वर्षा के जीवो की चेष्टा का वर्णन है और इसमे यह शिक्षा भी है कि जैसे क्षुद्र जन्तु अपने वृद्धों के पास जाकर अपने भाव को प्रकट करते हैं इस प्रकार तुम भी अपने वृद्धो के पास जाकर अपने भावो को प्रकट करो ॥३॥

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।

मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥४॥

पदार्थ.—(यत्) जब (अपाम्, प्रसर्गे) वृष्टि होती है तब (एनो) इनमे से (अन्यः, मण्डूक.) एक जलजन्तु (अन्यम्, अनुगृभ्णाति) दूसरे के समीप जाकर बैठता है और (अमन्दिषाताम्) दोनों हर्षित होते है तथा (यत्) जब (अभिवृष्ट) यह अभिषिक्त होता है तब यह (पृश्नि., कनिष्कन्) चित्रवर्णवाला कूदता हुआ (हरितेन, वाचम्, सम्पृङ्क्ते) दूसरे स्फूर्ति वाले के साथ वाणी को सयोजित करता है ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम प्रकृतिसिद्ध वर्षा आदि ऋतुओ मे नूतन-नूतन भावो को ग्रहण करनेवाले जल-जन्तुओ से शिक्षा लो कि वे जिस प्रकार हर्षित होकर उद्योगी बनते है, इसी प्रकार तुम भी उद्योगी बनो ॥४॥

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५॥

पदार्थः—(यत्) जो कि (अन्य., शिक्षमाण) एक शिक्षा पाने वाला जलजन्तु (शाक्तस्य, इव) शक्तिमान् अर्थात् शिक्षा को पाये हुए की तरह दूसरे जलजन्तु के शब्द को सीख कर बोलता है वैसे ही (तत्, एषाम्) तब इनके शब्दों को (सर्वं, समृधा इव, पर्व) सम्पूर्ण अविकल अंगो वाले होकर (अधि, अप्सु) जलो के मध्य मे (तत्, सुवाच.) जो सुन्दर वाणी है उसको (वदथन) बोलो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते है कि जिस प्रकार जलजन्तु एक-दूसरे की चेष्टा से शिक्षालाभ करते हैं और एक ही प्रकार की भाषा सीखते हैं इस प्रकार तुम परस्पर शिक्षालाभ करते हुए एक प्रकार की भाषा बोलो ॥५॥

उक्त वाणी के एकत्व को निम्नलिखित मन्त्र से भली-भांति वर्णन करते हैं ॥

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥६॥

पदार्थ —(एषाम्) इन जलजन्तुओ मे (एक , गोमायुः) एक तो गौ के समान स्वर से बोलता है और (एकः, अजमायु) दूसरा कोई अजा के समान स्वर वाला है, और (पृश्निः, एक) कोई-कोई विचित्र वर्णवाला और (एकः, हरितः) कोई हरित वर्ण का है, तथा (पुरुत्रा) बहुत से भेदवाले छोटे-बड़े (विरूपा.) अनेक रूपवाले होकर भी (समानं, नाम, बिभ्रत) एक नाम को धारण करते हुए (वाचम्, वदन्तः) और एक ही वाणी को बोलते हुए (पिपिशुः) प्रकट होते हैं ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार जन्तु स्वरभेद, आकारभेद और वर्णभेद रखते हुए जातिभेद और वाणीभेद नहीं रखते इस प्रकार हे मनुष्यो ! तुमको प्राकृत जन्तुओ से शिक्षा लेकर भी वाणी का एकत्व और जाति का एकत्व दृढ़ करना चाहिए । जो पुरुष वाणी के एकत्व और जाति के एकत्व को दृढ़ नही रख सकता वह अपने मनुष्यत्व को भी नही रख सकता ॥६॥

इस भाव का अब प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।

संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७॥

पदार्थः—(यत्, मण्डूका) जो कि मण्डूक भी (संवत्सरस्य, तत्, अहः) वर्ष के उपरान्त होनेवाले दिन मे (प्रावृषीणम्, बभूव) जिस दिन कि प्रथम वर्षा होती है (पूर्णं, सर , न, अभितः, वदन्त.) पूर्ण सर की कामना से चारो ओर बोलते हुए (परि, स्थ) इधर-उधर स्थित होते हैं इसी प्रकार (ब्राह्मणासः) हे ब्राह्मणो ! तुम भी (अतिरात्रे) रात्रि के अनन्तर ब्राह्ममुहूर्त मे (सोमे, न) जिस समय सौम्यबुद्धि होती है उस समय वेदध्वनि से परमेश्वर के यश का वर्णन करते हुए वर्षाऋतु के उत्सव को मनाओ ॥७॥

भावार्थ —उक्त मन्त्र मे परमात्मा ने वर्षाकाल मे वैदिकोत्सव के मनाने का उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम वर्षाऋतु मे प्रकृति के विचित्र दृश्य को देखकर वैदिक सूक्तो से उपासना करो और सोमादि यज्ञो द्वारा ब्रह्मोत्सवों को मनाओ । [विचित्र बात है कि जिस जाति के धर्म पुस्तक मे यह उपदेश था उस जाति मे इस भाव को छोड़ कर अन्य सब प्रकार के उत्सव वर्षाऋतु मे मनाये जाते हैं किन्तु वैदिकोत्सव कोई नही मनाया जाता इससे हानिप्रद बात और क्या हो सकती है ।] ॥७॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित् ॥८॥

पदार्थ —(सोमिन , ब्राह्मणास) सौम्यचित्त वाले ब्राह्मण (परिवत्सरीणम्) वर्ष के उपरान्त (ब्रह्म, कृण्वन्त.) ब्रह्म के यश को प्रकाशित करते हुए (वाचम्, अक्रत) वेदवाणी का उच्चारण करते हैं । (केचित्, गुह्याः, अध्वर्यव) कोई एकान्त स्थल मे बैठे व्रत करते हुए ब्राह्मण (घर्मिणः सिष्विदानाः) गरमी से पसीने मे तर होकर भी (न, आविर्भवन्ति) बाहर नहीं निकलते ॥८॥

भावार्थ —वेदव्रती ब्राह्मण ब्रह्म के यश के गायन करने के लिए एकान्त स्थान मे बैठे और वे शीतोष्णादि द्वन्द्वो को सहते हुए तितिक्षु और तपस्वी बनकर अपने व्रत को पूर्ण करें ॥८॥

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।

संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९॥

पदार्थ·—(एते, नर) यह पूर्वोक्त ब्राह्मण (देवहितिं, द्वादशस्य, ऋतुम्) परमेश्वर से विधान की गयी द्वादश मास मे होने वाली ऋतु की (जुगुपु) रक्षा करें (न, प्रमिनन्ति) व्यर्थ न जाने दें (संवत्सरे) वर्ष के उपरान्त (प्रावृषि, आगतायाम्) वर्षाकाल आने पर (तप्ता , घर्मा) तपस्वी और तितिक्षु ब्राह्मण (विसर्गम्, अश्नुवते) व्रत धारण करते हैं ॥९॥

भावार्थ —वर्षाकाल मे ब्राह्मण लोग तप करें अर्थात् संयमी बनकर वेदपाठ करें । यहा व्रत से उसी व्रत का विधान है जिसका 'अग्ने व्रतपते व्रत चरिष्यामि'' (यजु० १।५) इत्यादि मन्त्रों मे वर्णन किया गया है । इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि वैदिक समय मे ईश्वरार्चन केवल वैदिक सूक्तों द्वारा ही किया जाता था अर्थात् जो सूक्त ईश्वर के यश का वर्णन करते हैं उनके पढ़ने का नाम ही उस समय ईश्वरार्चन था । जो ईश्वर के प्रतिनिधि बनाकर इस समय मे मृण्मय देव पूजे जाते है, मालूम होता है उस समय भारतवर्ष मे यह प्रथा न थी । हां, इतना अवश्य हुआ कि जिन-जिन ऋतुओ मे वैदिक यज्ञ होते थे वा प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर वर्षादि ऋतुओ मे वैदिक उत्सव किये जाते थे उनके स्थान पर अब अन्य प्रकार के उत्सव और पूजन होने लग पड़े । इस बात का प्रमाण निम्नलिखित मन्त्र मे दिया जाता है ॥९॥

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।

गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥१०॥

पदार्थः—(गोमायु.) सुन्दर शब्दो वाले वर्षाकालोद्भव जन्तु और (अजमायु.) प्रकृत्यनुसारी शब्दों वाले (पृश्नि) विचित्र वर्णों वाले (हरित) हरित वर्णों वाले ये सब अपनी रचना से (न) हमको (अदात्) शिक्षा दें । (गवां, मण्डूका) अपनी शिक्षा द्वारा विद्यारूपी चमत्कार को बढ़ाने वाले जीव (शतानि, ददत) सैकड़ो प्रकार की शिक्षा हमको दें और परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्य और (आयु) आयु को (प्र, तिरन्ते) बढ़ावें और (सहस्रसावे) [सहस्राणि सहस्रप्रकारकाणि औषधानि सूयन्तेऽस्मिन्निति सहस्रसाव वर्षाकाल. श्रावणमासो वा] अनन्तप्रकार की औषधियां जिसमे उत्पन्न होती हैं उस वर्षाकाल वा श्रावणमास को सहस्रसाव कहते हैं । उस काल मे परमात्मा हमको उक्तप्रकार के जीवो से अनन्तप्रकार का शिक्षालाभ कराये और हमारे ऐश्वर्य और आयु को बढ़ाये ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम वर्षाकाल से अनन्त प्रकार की शिक्षा लो और अपने ऐश्वर्य और आयु की वृद्धि की प्रार्थना करो। [यद्यपि केवल प्रार्थना से ऐश्वर्य और आयुवृद्धि नहीं होती तथापि जिसके हृदय मे आयुवृद्धि और ऐश्वर्यवृद्धि का भाव उत्पन्न होता है वह उसकी प्राप्ति के लिए यत्न अवश्य करता है। इस नियम के अनुसार परमात्मा ने जीवो को प्रार्थना का उपदेश, प्रधानरूप से दिया है] ॥१०॥

सप्तम मण्डल में एकसौतीनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य चतुरुत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—२५ वसिष्ठ ऋषि ॥ देवता १—७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ ८, १६, १९—२२, २४ इन्द्रः । ९, १२, १३ सोम. । १०, १४ अग्निः । ११ देवाः । १७—ग्रावाण । १८ मरुत । २३[१] वसिष्ठ. । २३[२] पृथिव्यन्तरिक्षे ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ विराड्जगती । २ आर्षी-जगती । ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती । ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत्-त्रिष्टुप् । ९ आर्षीत्रिष्टुप् । १२ १६ विराट् त्रिष्टुप् । १९, २०, २२ त्रिष्टुप् । १३ आर्षी भुरिग्जगती । २४ याजुषी विराट्त्रिष्टुप् । २५ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ स्वर.— १—७, १८, २१, २३ निषाद । ८—१७, १९, २०, २२, २४ धैवत । २५ गान्धार. ॥

अब इस मण्डल की समाप्ति करते हुए परमात्मा के दण्ड और न्याय का रक्षोघ्नसूक्त द्वारा वर्णन करते हैं ॥

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्रासोमा**) हे दण्ड और न्यायरूप शक्तिद्वयप्रधान परमात्मन् ! आप (**रक्ष**) ['रक्ष्यते यस्मात्तद्रक्ष' जिन अनाचारियो से न्यायनियमानुसार रक्षा की आवश्यकता पड़े उनका नाम यहा राक्षस है ।] राक्षसो को (**तपतम्**) तपाओ, दमन करो (**उब्जतम्**) मारो (**न्यर्पयतम्**) नीचता को प्राप्त करो । (**वृषणा**) हे कामनाओ की वर्षा करनेवाले परमात्मन् ! (**तमोवृधः**) जो माया से बढनेवाले हैं उनको (**परा, शृणीत**) चारों तरफ से नाश करो, (**अचित**) जो ऐसे जड है, जो समझाने से भी नहीं समझते उनको (**न्योषतम्**) भस्मीभूत कर डालो (**हतम्**) नाश करो (**नुदेथाम्**) दूर करो, (**अत्रिण**) जो अन्याय से भक्षण करनेवाले है उनको (**नि, शिशी-तम्**) घटाओ ॥१॥

भावार्थ —हे परमात्मन् ! जो राक्षसी वृत्ति से प्रजा मे अनाचार फैलाते हैं आप उनका नाश करे। राक्षस कोई जाति विशेषनही किन्तु जिनसे प्रजा मे शान्ति और न्यायनियम का भग होता है उन्ही का नाम यहा राक्षस है । तात्पर्य यह है कि दुष्ट दस्युओ के नाश करने का भाव आप अपने हृदय में उत्पन्न किया करें, जब आपके शुद्ध हृदय मे यह प्रबल प्रवाह उत्पन्न होगा तो राक्षसी वृत्तिया उसमे अवश्य बह जायेंगी ॥१॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२॥

पदार्थ —(**इन्द्रासोमा**) हे दण्ड और न्यायरूप शक्तिद्वयप्रधान परमात्मन् ! (**अघशंसम्**) जो पापमार्ग को अच्छा बतलाता है अथवा ईश्वराज्ञाविरुद्ध कामो की प्रशसा करता है, (**सम्, अघं**) जो पापयुक्त है उसका (**अभि**) निरादर करो । (**तपु**) जो दूसरों को दु'ख देनेवाले हैं वह (**ययस्तु**) परिक्षीण हो जायें जैसे कि (**चरः, अग्निवान्, इव**) चरु सामग्री अग्नि पर भस्मीभूत हो जाती है । (**ब्रह्मद्विषे**) जो वेद के द्वेषी है (**क्रव्यादे**) तथा जो हिंसक हैं (**घोरचक्षसे**) जो क्रूर प्रकृतिवाले हैं (**किमीदिने**) हर एक बात मे शक करनेवाले हैं उनमे (**अनवायम्, द्वेषो, धत्तम्**) हमारा निरन्तर द्वेषभाव उत्पन्न कराइये ॥२॥

भावार्थः—जो लोग वेदद्वेषी और अधायु पुरुषो के दमन करने का भाव नहीं रखते वह परमात्मा की आज्ञा का यथावत् पालन नहीं कर सकते इसलिये परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम पापात्मा धर्मानुष्ठानविहीन धर्मद्वेषी पुरुषों से सदैव ग्लानि करो और जो केवल कुतर्कपरायण होकर रातदिन धर्मनिन्दा मे तत्पर रहते हैं उनको भी द्वेषबुद्धि से अपने से दूर करो ।

[तात्पर्य यह है कि वैदिक लोगों को चाहिए कि वे सत्कर्मी और धर्मरत पुरुषो का सम्मान करें, औरो का नही] ॥२॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चन नोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥

पदार्थ.—(**इन्द्रासोमा**) हे उक्तशक्तिद्वयप्रधान परमात्मन् ! (**दुष्कृत**) जो वेदविरुद्ध कर्म करनेवाले दुराचारी हैं उनका (**वव्रे**) महादुःखो से आवृत (**अना-रम्भणे**) जिसमे कोई आलम्बन नहीं है ऐसे (**तमसि, अन्त**) घोर नरक मे (**प्र, विध्य-तम्**) प्रविष्ट कर ऐसा ताडन कीजिये (**यथा**) जिससे (**अत**) इस यातना से (**एक-श्चन, पुन, न, उदयत्**) फिर एक भी दुष्कर्म न करे तथा (**तत**) वह प्रसिद्ध (**वाम्**) आपका (**मन्युमत्, शव**) मन्युयुक्त बल (**सहसे, अस्तु**) राक्षसो के नाश करने वाला हो ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा के मन्यु का वर्णन किया है जैसा अन्यत्र भी कहा है कि 'मन्युरसि मन्युम्मयि धेहि' कि आप मन्युस्वरूप हैं मुझे भी मन्यु प्रदान करें। मन्यु के अर्थ यहां परमात्मा की दमनरूप शक्ति के हैं। जैसा कि 'महद्भय वज्रमुद्यतम्' (कठ०—६ । २) हे परमात्मन् ! आपकी दमनरूप शक्ति से वज्र उठाये हुए के समान भय प्रतीत होता है। [इसमे सन्देह नहीं कि दुष्टो के दमन के लिए परमात्मा भयरूप है। इसी अभिप्राय से कहा है कि 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य' उसके दमनरूप शक्ति के नियम मे आकर सब सूर्य चन्द्रादि भ्रमण करते हैं। इस भाव को इस सूक्त मे वर्णन किया है] ॥३॥

अब इस भाव को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्रासोमा**) हे न्यायकारिन् परमात्मन् ! (**अघशंसाय**) जो वेद-विरुद्ध कर्मों की प्रशंसा तथा आचरण करता है उस राक्षस के लिये (**दिव**) द्युलोक से तथा (**पृथिव्या**) पृथ्वी से (**तर्हणम्, वधम्**) अतितीक्ष्ण शस्त्रो को (**सं, वर्तयतम्**) उत्पन्न करिये, (**पर्वतेभ्य**) तथा आकाश मे मेघो से बिजली के समान (**स्वर्यम्, उत्त-क्षतम्**) उत्तापक शस्त्रो को उन्नत करिये (**येन**) जिससे (**वावृधानम्**) बढे हुए (**रक्षः**) राक्षस (**निजूर्वथ.**) नष्ट हो जायें ॥४॥

भावार्थ —जिस प्रकार बादलो से बिजली उत्पन्न होकर पृथ्वीतल पर गिरती है इस प्रकार अन्यायकारी शत्रुओं के लिए परमात्मा अनेकविधि अस्त्र शस्त्रो को उत्पन्न करके उनका हनन करता है ॥४॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५॥

पदार्थ (**इन्द्रासोमा**) हे न्यायकारी परमात्मन् ! (**युवम्**) आप (**अग्नितप्तेभि**) अग्नि से तपाये हुए (**तपुर्वधेभि**) शत्रो के नाशने वाले (**अजरेभि**) जोकि बडे दृढ हैं ऐसे (**अश्महन्मभि**) वज्रो से (**दिवस्परि**) अन्तरिक्षस्थल से (**वर्तयतम्**) शत्रुओ को आच्छादन करो और (**अत्रिण**) अन्याय से भक्षण करने वालो को (**पर्शाने**) दोनो ओर से घेर कर (**निविध्य-तम**) ऐसी ताडना करो जिससे (**निस्वरम्**) शब्दहीन होकर (**यन्तु**) भाग जायें ॥५॥

भावार्थः—भाव यह है कि परमात्मा अन्यायकारी दुष्टो के दमन करने के अनेक प्रकार बताते है ॥५॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥६॥

पदार्थ —(**इन्द्रासोमा**) हे परमात्मा, (**इय, मति**) इस मेरी प्रार्थना से (**वाम्**) आप (**विश्वत**) सब शत्रुओ को (**परिभूतु**) वश मे लाकर सुमार्ग की ओर प्रेरणा करें जिस प्रकार (**कक्ष्या**) कक्षबन्धनी रज्जु (**वाजिना, अश्वा, इव**) बलयुक्त अश्वो को वश मे लाकर इष्ट मार्ग मे ले आने के योग्य बनाती है । (**यां वाचम्**) जिस वाणी से (**वां**) आप को (**मेधया**) अपनी बुद्धि के अनुसार (**परिहिनोमि**) मैं प्रेरित करता हूं (**इमा, ब्रह्माणि**) यह स्तुतिरूप वाणी (**नृपती, इव**) जिस प्रकार राजभक्त प्रजा की वाणी राजा को प्रसन्न करती है उसी प्रकार (**जिन्वतम्**) आपको प्रसन्न करे ॥६॥

भावार्थ —मन्त्र में "इमा ब्रह्माणि" के अर्थ वैदिक वाणियो के हैं। जिस प्रकार वेद की वाणियां राजा को कर्म में और अपने स्वधर्म मे प्रेरणा देती हैं वा यो कहो कि जिस प्रकार प्रजा की प्रार्थनायें राजा को दुष्ट-दमन के लिए उद्यत करती हैं इसी प्रकार आप हमारी प्रार्थनाओं से दुष्ट दस्युओं का दमन करके प्रजा मे शान्ति का राज्य फैलावें ॥६॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्रासोमा**) हे दण्डशक्ति और सौम्यस्वभावप्रधान परमात्मन ! आप (**दुष्कृते**) दुष्कर्मी पुरुष के लिये (**मा, सुगम्, भूत्**) सुखकारी मत हो और जो (**न**) हम सदाचारी पुरुषो के काम मे (**कदाचित्**) कभी (**द्रुहा**) दुष्टता से (**अभिदासति**) बाधा डालता है, (**भङ्गुरावत**) जो क्रूर तथा (**द्रुह**) दुष्ट कर्म करने वाले (**रक्षस**) राक्षस हैं उनको (**तुजयद्भि**) जो अतिपीडा देने वाले हैं (**एवै**) ऐसी शक्तियो से (**हतम्**) नाश करे। आप इस प्रार्थना को (**प्रति, स्मरेथाम्**) स्वीकार करें ॥७॥

भावार्थ —दुष्टाचारी अन्यायकारियो के प्रति दण्ड देने का विधान इस मन्त्र में किया गया है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रूर प्रकृति के हैं वे, यथायोग्य दण्ड के अधिकारी होते हैं, क्षमा के नहीं ॥७॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे दण्डशक्तिप्रधान परमात्मन् ! (**पाकेन**) शुद्ध (**मनसा**) मन से (**चरन्तम्**) आचरण करते हुए (**मा**) मुझको (**यः**) जो (**अनृतेभि , वचोभि**) झूठ बोलकर (**अभिचष्टे**) दूषित करता है वह (**काशिना, सगृभीताः**) मुट्ठी में भरे हुए (**आप , इव**) जल के समान (**असन्, अस्तु**) असत् हो जाय क्योंकि वह (**असत वक्ता**) झूठ का बोलने वाला है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शुद्ध मन से आचरण करने की अत्यन्त प्रशंसा की है कि जो पुरुष कायिक, वाचिक और मानस तीनों प्रकार से शुद्धभाव और सत्यवादी रहते हैं उनके सामने कोई असत्यवादी ठहर नहीं सकता । तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी सच्चाई पर सदा दृढ़ रहना चाहिये ॥८॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

पदार्थ—(**ये, पाकशंसं, विहरन्ते**) जो राक्षस अर्थात् अन्यायकारी लोग सच्चे धर्म की प्रशंसा करने वाले पुरुषपर झूठे आक्षेप लगाते हैं (**एवै**) ऐसे ही कामों से (**ये, वा**) जो पुरुष (**स्वधाभि**) अपने साहसरूपबल से (**भद्रम्**) भद्र पुरुष को (**दूषयन्ति**) दूषित करते हैं (**तान्**) उनको (**सोम**) परमात्मा (**अहये**) हिंसकों को (**प्रददातु**) दे (**वा**) अथवा (**निर्ऋतेः, उपस्थे**) असत्यवादियों की संगति में (**आदधातु**) रक्खे ॥९॥

भावार्थ—जो लोग अपने साहस से सद्धर्मपरायण पुरुषों की निन्दा करते हैं उन्हें परमात्मा हिंसकों के वशीभूत करता है अथवा पापात्मा पुरुषों के मध्य में फेंक देता है, जिससे वे स्वयं पापी बन कर अपने कर्मों से आप ही नष्ट भ्रष्ट हो जायँ । इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि परमात्मा उसे दण्ड देने के अभिप्राय से पापात्मा पुरुषों के वशीभूत करता है ताकि वे दण्ड भोग कर स्वयं शुद्ध हो जायें । परमात्मा को सबका सुधार करना अपेक्षित है । नाश करना इस अभिप्राय से कहा गया है कि परमात्मा उनके कुकर्म और कुवृत्तियों का नाश करता है, आत्मनाश नहीं ॥९॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥१०॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे तेजःस्वरूप परमात्मन् ! (**य**) जो राक्षस (**न**) हमारे (**पित्वः**) अन्न के (**रसम्**) रसको (**दिप्सति**) नष्ट करना चाहता है और (**य**) जो (**अश्वानाम्**) घोड़ों के तथा (**य , गवाम्**) जो गौओं के तथा (**य तनूनाम्**) जो हमारे शरीर के रस अर्थात् बल को नष्ट करना चाहता है वह (**रिपु.**) अहिताभिलाषी (**स्तेन**) चोर तथा (**स्तेयकृत्**) छिप कर हानि करने वाला (**दभ्रम्, एतु**) नाश को प्राप्त हो (**स**) और वह दुष्ट (**तन्वा**) अपने शरीर से तथा (**तना**) दुष्कर्मी सन्तानों से (**नि, हीयताम्**) नष्ट हो जाये ॥१०॥

भावार्थ—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसे राक्षसों को सदैव नष्ट करें जो धर्मचारी पुरुषों के बल वीर्य और ऐश्वर्य को छिप कर वा चोरी से वा किसी कुनीति से नष्ट करते हैं ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

पदार्थः—(**स**) वह अन्यायकारी पुरुष (**तन्वा**) शरीर से (**तना**) सन्तानों से (**परः, अस्तु**) हीन हो जाय (**च**) और (**तिस्र पृथिवी**) तीनों लोकों में (**अध , अस्तु**) हीन हो जाय और (**देवा**) हे भगवन् ! (**अस्य, यशः**) इसका यश (**विश्वा , प्रतिशुष्यतु**) सब प्रकार से नष्ट हो जाय (**य**) जो राक्षस (**न**) सदाचारी हम लोगों को (**दिवा**) प्रत्यक्ष (**नक्तम्**) तथा अप्रत्यक्ष में (**दिप्सति**) हानि पहुँचाता है ॥११॥

भावार्थः— जो लोग सदाचारी लोगों को दुःख पहुँचाते हैं वे तीनों लोकों से अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल के सुखों से वञ्चित हो जाते हैं । वा यों कहो कि भूतकाल में उनका ऐतिहासिक यश नष्ट हो जाता है और वर्तमान काल में अशान्ति उत्पन्न होकर उनके शान्त्यादि सुख नाश को प्राप्त हो जाते हैं और भविष्य में उनका अभ्युदय नहीं होता, इस प्रकार वे तीनों लोकों से परे हो जाते हैं अर्थात् वञ्चित रहते हैं ॥११॥

वास्तव में कौन सत्यवादी और असत्यवादी है अब इसका निर्णय करते हैं ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥

पदार्थः—(**सत्, च**) जो सच्चे तथा (**असत्, च**) जो झूठे (**वचसी**) वचन (**पस्पृधाते**) परस्पर विरुद्ध कहे जाते हैं उनको (**चिकितुषे, जनाय**) विद्वान् लोग (**सुविज्ञानम्**) सहज में ही समझ सकते हैं (**तयो , यत् सत्यम्**) उन दोनों में जो सत्य है तथा (**यतरत्**) जो (**ऋजीय**) सरल अर्थात् सीधे स्वभाव से कहा गया है (**तत्, इत्**) उसी की (**सोम**) परमात्मा (**अवति**) रक्षा करता है और (**असत्, हन्ति**) जो कपटभाव से कहा गया झूठा वचन है उसका त्याग करता है ॥१२॥

भावार्थ—इसका अर्थ यह है कि स्वतः तो ये देव एवं असुर दोनों ही स्वयं को सत्यवादी कह सकते हैं । अर्थात् देवता कहेगा कि मैं सत्यवादी हूँ और असुर भी यही कहेगा । परन्तु यह वस्तुतः सही नहीं, क्यों कि विद्वान् ही इसका निर्णय करने में समर्थ है कि कौन सत्यवादी और कौन असत्यवादी है । सत्य के प्रकार भी दो हैं । "ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत" । (ऋग् १० । १९० । १) में भी यही स्पष्ट किया गया है ।

इस मन्त्र में कहा गया है कि वाणी का सत्य ऋत कहा जाता है और वस्तुगत सत्य को सत्य कहा जाता है । देवता ऐसे लोग कहे जाते हैं जो वाणीगत व वस्तुगत सत्य बोलने व माननेवाले हैंअर्थात् सत्यवादियों व सत्यमानियों का नाम ही वैदिक परिभाषा के अनुरूप देव तथा सदाचारी है, असत्यवादी व असत्यमानी ही असुर और राक्षस कहलाते हैं ॥१२॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

पदार्थ—(**सोमः**) परमात्मा (**वृजिनम्**) पापी को (**न, वा, उ**) उतना नहीं (**हिनोति**) दण्ड देता तथा (**मिथुया, धारयन्तम् क्षत्रियम्**) व्यर्थ साहस धारण करने वाले क्षत्रिय को भी उतना दण्ड नहीं देता जितना (**रक्ष, हन्ति**) राक्षसों को (**तथा असत्, वदन्तम् हन्ति**) झूठ बोलने वाले को नष्ट करता है; (**उभौ**) ये दोनों (**इन्द्रस्य, प्रसितौ**) इन्द्र=उस ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा के बन्धन में (**शयाते**) बंधकर दुःख पाते हैं ॥१३॥

भावार्थ—पापी पाप से पश्चात्ताप करे और ईश्वर सम्बन्धी सन्ध्यावन्दनादि कर्म समय पर करे तो प्रत्यवायरूपी दोषों से उसकी मुक्ति संभव है, साहसी क्षत्रिय को भी प्रजारक्षा के भाव से दण्ड से वंचित रखा जा सकता है, परन्तु अन्यायकारी, असत्यवादी व मिथ्याभाव प्रचारक व मिथ्या आचरण करने वाले राक्षस की पाप से मुक्ति असंभव है ।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि परमात्मा दयालु व न्यायप्रिय है किन्तु वह दया केवल दया के पात्रों पर ही करता है । दूसरों से अन्याय व प्रवञ्चना करने वालों को वह कदापि क्षमा प्रदान नहीं करता । इस प्रकार यथायोग्य दण्ड ही उसका विधान है ॥१३॥

ईश्वर के समक्ष अनन्य भक्ति को कहते हैं ।

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४॥

पदार्थ—(**यदि वा**) यदि मैं (**अनृतदेव**) झूठे देवों का माननेवाला (**आस**) हूँ अथवा (**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मा ! (**मोघ**) वा मिथ्या (**देवान्**) देवताओं की (**अप्यूहे**) कल्पना करता हूँ तो निस्सन्देह अपराधी हूँ ; जब ऐसा नहीं तो (**किमस्मभ्य**) हमारे क्यों (**जातवेद**) हे सर्वव्यापक परमात्मन्, आप (**हृणीषे**) विपरीत हैं (**द्रोघवाच**) मिथ्यावादी और मिथ्या देवताओं के पूजन वाले (**ते**) तुम्हारे (**निर्ऋथ**) दण्ड को (**सचन्ताम्**) सेवन करें ॥१४॥

भावार्थ—मिथ्या देवों की उपासना का इस मन्त्र में प्रबल निषेध है । ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य देव की उपासना का भी इसमें प्रबल वर्जन है । इसमें जो लोग विभिन्न देवताओं के पूजक हैं उन्हें राक्षस एवं ईश्वरीय दण्ड का पात्र कहा गया है । इससे स्पष्ट आदेश है कि ईश्वर को छोड़ अन्य किसी की अर्चना ईश्वरसम कदापि न करो । यही इस उपदेश का भाव है ॥१४॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥

पदार्थ—(**अद्य**) आज ही (**मुरीय**) मृत्यु प्राप्त हो (**यदि**) यदि मैं (**यातुधान**) दण्ड का भागी (**अस्मि**) होऊं (**यदि वा**) अथवा (**पूरुषस्य**) पुरुष की (**आयु , ततप**) आयु को तपाने वाला बनूं (**अध**) तब (**वीरैः दशभिः**) दश वीर सन्तान से (**वियूया**) वियुक्त वह पुरुष हो (**य**) जो (**मा**) मुझे (**मोघ**) वृथा (**यातुधानेति**) तू यातुधान है ऐसा (**आह**) कहता है ॥१५॥

भावार्थ—इस के पूर्व मन्त्र में मिथ्या देव पूजकों को राक्षस एवं दण्ड का भागी बताया गया है, उसी प्रकरण में वेद अनुगामी आस्तिक पुरुष शपथपूर्वक यह कहता है कि यदि मैं भी ऐसा ही रहूं तो जीवन सर्वथा निष्फल है इससे मृत्यु ही श्रेयस्कर है । इस मन्त्र द्वारा प्रभु यह शिक्षा देते हैं कि जो व्यक्ति विश्व के उपकार की दिशा में प्रवृत्त नहीं और आस्तिक भावना का प्रचारक नहीं उसका जीवन निरर्थक है तथा उससे कोई लौकिक पारलौकिक उपकार असंभव है ॥१५॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥

पदार्थ—(**य**) जो राक्षस (**मा**) मुझे (**अयातु**) जो अदण्ड्य हूँ, (**यातुधानेत्याह**) राक्षस कहे (**वा**) और (**य.**) जो (**रक्षा**) राक्षस होकर (**शुचिरस्मि**) मैं पवित्र हूँ ! (**इत्याह**) ऐसा कहता है, (**इन्द्र**) परमात्मा (**त**) उस साधु को असाधु कहने वाले को और अपने आप को असाधु होकर साधु कहने वाले को (**महता, वधेन**) तीक्ष्ण शस्त्र से (**हन्तु**) नष्ट करे, (**विश्वस्य**) संसार के ऐसे (**जन्तोः**) जन्तुओं से जो (**अधम.**) अधम है परमात्मा उसको (**पदीष्ट**) नष्ट करे ॥१६॥

भावार्थः— परमात्मा का निर्देश है कि जीवो ! तुम में से जो लोग सदाचारियों को व्यर्थ में ही दोष देते हैं और दम्भ करके स्वयं को सदाचारी सत्यवादी बताते हैं, न्यायकारी राजाओं का कर्त्तव्य है कि ऐसे लोगों को यथायोग्य दण्ड अवश्य ही दें ॥१६॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥

पदार्थः—(या) जो कोई राक्षसी वृत्ति वाली स्त्री (जिगाति) रात-दिन भ्रमण करे (खर्गलेव) निशाचर जीवो के समान (तन्व) शरीर को (गूहमाना) छिपाए रहे वह (वव्रान्, अनन्तान्) अनन्त अधोगतियो को (अव, सा, पदीष्ट) प्राप्त हो और (ग्रावाण) वज्र उसका (उपब्दै·) शब्दायमान होकर (घ्नन्तु) नाश करें, क्योकि (रक्षसः) वह भी राक्षसो से सम्बन्धित है ॥१७॥

भावार्थः—प्रस्तुत मन्त्र राजधानी की रक्षार्थ इस बात का उपदेश है कि जो स्त्री गुप्तचर बनकर रात को विचरे और अपना भेद किसी को न दे अथवा स्त्रियो के आचरण दूषित करने हेतु ऐसा रूप धरे उसको भी राक्षसो की श्रेणी मे ही मानकर राज समुचित दण्ड दे ॥१७॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

पदार्थः—(मरुतः) हे ज्ञानयोगियो व कर्म्मयोगियो ! आप (विक्षु) प्रजाओ मे (वितिष्ठध्वं) विशेषरूप से स्थिर हो और (रक्षसः) राक्षसो को पकड़ने की (इच्छत) इच्छा करें और (गृभायत) पकड़ें (स, पिनष्टन) भली-भांति नाश करें। (ये) जो राक्षस (वय) पक्षियो के (भूत्वी) समान बनें (नक्तभि) रात में (पतयन्ति) विचरण करते है और (ये, वा) जो (देवे) देवो के (अध्वरे) यज्ञ मे (रिप) हिंसा (दधिरे) धारण करते हैं, उनको आप नष्ट करें ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा का उपदेश है कि हे ज्ञानयोगियो व कर्मयोगियो ! आकाश मार्ग मे प्रजा को उत्पीडित करने वाले राक्षसो को अपने क्रियाकौशल से विमानादि बना कर उन्हें नष्ट कर दो। इस मन्त्र मे परमात्मा ने प्रजारक्षण हेतु लोगो को सम्बोधित कर अन्यायकारी राक्षसो को नष्ट करने का आदेश प्रदान किया है ॥१८॥

अब प्रजा को परमात्मा आदेश देते हैं कि तुम ऐसी प्रार्थना करो ॥

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक से राक्षसो को मारने हेतु (अश्मानम्) वज्र को (प्रवर्तय) फेंको जो (सोमशितम्) विज्ञानी विद्वानो ने बनाया हो। (मघवन्) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन, न्यायशील साधु पुरुषों की (स शिशाधि) भली-भांति रक्षा करें और (प्राक्तात्) पूर्व (अपाक्तात्) पश्चिम (अधरात्) दक्षिण (उदक्तात्) उत्तर मे (रक्ष) अन्यायकारी राक्षसो पर (पर्वतेन) वज्र से (जहि) आघात करें ॥१९॥

भावार्थ·—यहा पर्वत से तात्पर्य उस शस्त्र से है जिसमे पोरी सरीखे मे अनेक पर्व पडते हो।

जो पर्वत के अर्थ पहाड़ समझते हैं, वे गलती करते हैं। हा, लौकिक भाषा मे पहाड भी पर्वत बन गए। यहा शस्त्र प्रकरण है अतएव इसका अर्थ शस्त्र ही होना चाहिए ॥१९॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ॥
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥

पदार्थ.—(दिप्सव) जो हिंसक (अदाभ्यम्) अहिंसनीय (इन्द्रम्) परमात्मा का भा (दिप्सन्ति) अपने अज्ञान से हनन करे (श्वयातव) जो श्वानो की-सी वृत्ति वाले (पतयन्ति) स्वय गिरें, और औरो को गिराए (त्ये) ऐसे (उ) निश्चय (एते) इन सब दुष्टो के लिये (शिशीते) परमात्मा तीक्ष्ण (अशनिं) शस्त्रो को (सृजत्) रचता है (यातुमद्भ्य) दुराचारी (पिशुनेभ्य) कपटियो को (नूनम्, वधम्) निश्चय मारता है ॥२०॥

भावार्थ—यहा यह स्पष्ट है कि जो दुष्ट अन्यायी प्रजा को दु ख दें उन्ही के लिए परमात्मा ने तीक्ष्ण शस्त्रो की रचना की है। अर्थात् परमात्मा उपद्रवियो एव दुष्टो का दमन कर विश्व मे शान्ति का विस्तार चाहते है ॥२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥२१॥

पदार्थः—(इन्द्र.) ऐश्वर्यशाली परमात्मा (हविर्मथीनाम्) जो सत्कर्मरूपी यज्ञो मे विघ्न करे तथा (अभि, आविवासताम्) हानि की इच्छा से जो सम्मुख आने वाले (यातूनाम्) राक्षस है उनका (पराशर.) नाशक है। (शक्र.) परमात्मा (परशु, यथा, वनम्) परशु जैसे वन को (पात्रा, इव, भिन्दन्) और मुद्गर जैसे मृन्मय पात्र को तोड़ता है उसी प्रकार (अभि इत्, उ) निश्चय करके चारो ओर से (रक्षस) राक्षसो को मारने मे (सत, एति) उद्यत रहता है ।२१।

भावार्थ.—परमात्मा असत्यकर्मी राक्षसो के सहार हेतु सदैव वज्र उठाये तैयार रहता है। इसीलिए तो उपनिषद् मे भी वर्णित है कि 'महद्भय वज्रमुद्यतमिव' परमात्मा वज्र उठाये पुरुष के समान अत्यन्त भयरूप है।

परमात्मा शान्तिदाता, सर्वप्रिय व सर्वव्यापक है जिसके निराकार, क्रोधरहित होने से वज्र उठाना असम्भव है तथापि उनके न्यायनियम ऐसे हैं कि उसकी अनन्त शक्तियाँ दण्डनीय दुष्टाचारी राक्षसो के लिए सदैव वज्र उठाये रहती हैं। इसी-लिए मुद्गरादि सदैव कार्य करते हैं, कुछ परमात्मा के हाथो से नहीं ॥२१॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥

पदार्थः—(उलूकयातुम्) जो बड़ा समुदाय बनाकर और (शुशुलूकयातुम्) छोटे-छोटे समुदाय बनाकर न्यायकारियो पर अभिघात करते हैं (श्वयातुम्) जो गमनशील है वा जो (कोकयातुम्) विभक्त होकर अभिघात करते हैं (सुपर्णयातुम्) तथा जो निरपराधो को सताते है और जो (गृध्रयातुम्) चक्र-वर्ती होने की इच्छा से न्यायकारियो का दमन करना चाहते हैं कि उनको, (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् परमात्मन् ! (जहि) नष्ट करो, (दृषदा, इव) तथा शिला के समान शस्त्रो से (प्र मृण) पेषण करो और (रक्ष) न्यायकारियो को बचाओ ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र द्वारा परमात्मा से अन्यायी, मायावी और अनेक प्रकार से न्यायकारियो पर प्रहार करने वाले दुष्टो से रक्षार्थ प्रार्थना का उपदेश है। प्रार्थना केवल वाणीमात्र से सफल नही होती तथापि जब हार्दिक तन्मयता सहित प्रार्थना की जाए तो उससे उद्योग का सृजन होकर मनुष्य अवश्यमेव सफलीभूत होता है ॥२२॥

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

पदार्थ.—(या किमीदिना) जो [किमिदम् किमिदम् इति वादिन] ईश्वर के ज्ञान मे सशय करनेवाले अर्थात् ये क्या है ये क्या है ऐसा सशय उत्पन्न करनेवाले और (यातुमावता, मिथुना) राक्षसो के जन्थे (अपोच्छतु) वे हम से दूर हो जायें (मा, न, रक्ष, अभिनट्) ऐसे राक्षस हम पर आक्रमण न करें, और (पृथिवी) भूमि (पार्थिवात्, अहस) पार्थिव पदार्थों की अपवित्रता से (न) हमारी (पातु) रक्षा करे (दिव्यात्) द्युभवपदार्थों से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अस्मान्, पातु) हमारी रक्षा करे ॥२३॥

भावार्थ—इसका अर्थ यह है कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन त्रितापो से हम सर्वथा बचें, अर्थात् पार्थिव शरीर आधिभौतिक ताप रहित हो और अन्तरिक्ष से हम कोई आधिभौतिक ताप न सताए व मानस तापो के मूलभूत अन्याय-कारी राक्षसों के विध्वस से हमे कोई मानस ताप न व्यापे, जो पृथिवी तथा अन्तरिक्ष से रक्षा का कथन है वह तापनिवृत्ति की दृष्टि से औपचारिक है, प्रमुख नही ॥२३॥

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (पुमांस, यातुधान, जहि) अन्यायकारी दण्डनीय राक्षस को आप नष्ट करो (उत) और (मायया) वचना करके (शाशदानाम्, स्त्रियम्) वैदिक धर्म को हानि पहुचाती है ऐसी स्त्री को (जहि) नष्ट करदें (मूरदेवा) हिंसारूपी क्रिया से क्रीडा करने वाले (विग्रीवास, ऋदन्तु) ज्ञानेन्द्रिय-रहित हो जाये ताकि (ते) वे सब (उच्चरन्तम्, सूर्यम् मा दृशन्) ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश को न देख सकें ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे यह कहा गया है कि जो लोग मायावी एव हिंसक हैं वे शनै शनै। ज्ञानरहित होकर ऐसी मुग्धावस्था प्राप्त करते हैं कि फिर उनको सत्य झूठ का विवेक नहीं रहता, हे परमात्मन् ! ऐसे दुराचारियो को आप ऐसी मोह-मयी निशा प्रदान करें कि वह ससार मे जागृति प्राप्त कर न्यायकारी सदाचारियों को दु खी न करे ॥२४॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥

पदार्थ—(इन्द्र, च, सोम, च) हे विद्युच्छक्तिप्रधान तथा ऐश्वर्यप्रधान प्रभो ! (प्रतिचक्ष्व, विचक्ष्व) आप उपदेश करें तथा विविधरूप से उपदेश दें ताकि हम (जागृतम्) आपकी जागृति से उद्बुद्ध हों (रक्षोभ्यः, वधम्) राक्षसो का सहार करें और (अस्यतम्, अशनिम्, यातुमद्भ्य·) दण्डनीय राक्षसों पर वज्रप्रहार करें ॥२५॥

भावार्थ—इस रक्षोघ्न सूक्त का तात्पर्य यह है कि जिसमे राक्षसो का हनन हो उसका नाम रक्षोघ्न है। वस्तुत. इस सूक्त मे अन्यायकारी राक्षसों के हनन हेतु अनन्त प्रकारो कथन हैं और वेदानुयायी आस्तिको के वैदिक यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति हेतु उसकी रक्षार्थं अनेक उपायो का वर्णन है जिनको पढकर व अनुष्ठान द्वारा पुरुष वास्तव मे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीन तापो से बच सकता है। वेदाभिमानी अपने सकटो की निवृत्ति हेतु यदि रक्षोघ्नादि सच्चे सकटमोचन सूक्तों को पढ़ें और अनुष्ठान करें तो सकट निवृत्ति सुनिश्चित है ॥२५॥

यह सप्तम मण्डल में एकसौचारवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सप्तम मण्डलं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथाष्टमं मण्डलम् ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ चतुस्त्रिंशदृचस्य प्रथमसूक्तस्य १, २ प्रगाथो घौर काण्वो वा । ३-२९ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ३०-३३ आसङ्ग प्लायोगि । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी ऋषि ॥ देवता।—१-२९ इन्द्र । ३०-३३ आसङ्गस्य दानस्तुतिः । ३४ आसङ्ग ॥ छन्द —१ उपरिष्टाद्बृहती । २ आर्षी भुरिग् बृहती । ३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती । ५, ८, १५, १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद्बृहती । ६, ९, ११, १२, २०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३, ३०, ३२ आर्षी भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९ बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वर।—१—३२ मध्यम । ३३, ३४ धैवत ॥

अब परमात्मा से भिन्न उपासना का निषेध करते हुए बताया गया है ॥

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

पदार्थ.—(**सखायः**) हे सबके हितैषी उपासको ! (**अन्यत, मा, चित्, विशंसत**) परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की उपासना न करो (**मा, रिषण्यत**) आत्महिंसक न बनो, (**वृषण**) सब कामनाओ के पूर्णकर्ता (**इन्द्र, इत्**) परमैश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा की ही (**स्तोत**) स्तुति करो (**सचा**) सब एकत्रित होकर (**सुते**) साक्षात्कार करने पर (**मुहु**) बार-बार (**उक्था, च, शसत**) परमात्मगुणकीतन करने वाले स्तोत्रो का गान करो ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपदेश है कि हे उपासको ! तुम परम ऐश्वर्यसपन्न सबके रक्षक, सर्वकामना के पूर्तिकर्ता एव सबके कल्याण करने वाले एकमात्र परमात्मा की ही उपासना करो, उसके स्थान पर किसी जड पदार्थ अथवा व्यक्तिविशेष की उपासना कदापि न करो, उसके साक्षात्कार का सदैव प्रयत्न करो और जिन आप ग्रन्थो मे परमात्मा का गुण वर्णन है अथवा जिन ग्रन्थो में उसके साक्षात्कार का विधान है उन्हे नित्य स्वाध्याय करते हुए मनन करो ॥१॥

अब परमात्मा के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत है ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।

विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

पदार्थ.—(**वृषभं, यथा, अवक्रक्षिण**) मेघ जैसी अववर्षण शक्ति वाले (**अजुर**) जरारहित (**गां, न**) पृथिवी के (**चर्षणिसह**) मनुष्यों के कर्मों के सहनशील (**विद्वेषणं**) दुश्चरित्र मनुष्यो का द्रष्टा (**संवनना**) सम्यग् भजनीय (**उभयंकर**) निग्रहानुग्रह करने वाला (**मंहिष्ठ**) सब कामनाओ का पूर्ण करने वाला (**उभयाविनं**) जीव और प्रकृति का स्वामी परमात्मा उपासनीय है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा के गुणगुणिभाव स्वरूप का वर्णन है । इसमे कहा गया है कि वह परमात्मा अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सब लोगो के कर्मों का द्रष्टा है जो सदाचारियो को सद्गति का प्रदाता है वही मनुष्यमात्र की उपासना के योग्य है ।

इस मन्त्र मे लोकप्रसिद्ध मेघादिको का दृष्टान्त इस दृष्टि से प्रस्तुत है कि साधारण पुरुष भी उसके गुणगौरव को जान उसकी स्तुति एव उपासना करें ॥२॥

अब निष्काम कर्मों का वर्णन किया गया है ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥३॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा ! (**इमे, जना**) ये सब उपासक (**यत्**) जो (**चित्, हि**) यद्यपि (**ऊतये**) स्वरक्षार्थ (**नाना**) अनेक प्रकार से (**त्वा, हवन्ते**) आपकी सेवा करते हैं तथापि (**अस्माकम्, इदम्, ब्रह्म**) आपका दिया हुआ यह मेरा धनादैश्वर्य्य (**विश्वा, अहा, च**) सर्वदा (**ते**) आपके यश का (**वर्धनं**) प्रकाशक (**भूतु**) हो ॥३॥

भावार्थ·—इस मन्त्र मे निष्काम कर्मों की चर्चा है अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदाता परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! आपके द्वारा प्रदत्त यह धनादि ऐश्वर्य्य मेरे लिए शुभ हो अर्थात् इस धन द्वारा मैं सदा यज्ञादि कर्मों से आपके यश का विस्तार करूं, हे ऐश्वर्य्य देने वाले परमेश्वर ! आपकी कृपा से हमें भांति-भांति के ऐश्वर्य्य मिलें और हम आपकी उपासना में सर्वदा रत रहें ।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा द्वारा दिए गए धन को सदा उपकार के कार्यों मे व्यय करना चाहिये । जो लोग अपनी सम्पत्ति सदा वेद प्रतिपादित कर्मों में लगाते हैं उन्हे ऐश्वर्य्य उन्नति मिलती है और अवैदिक कर्मों मे लगाने वाले का ऐश्वर्य्य शीघ्र नष्ट होता है और वह सभी प्रकार के सुखों से वंचित रह जाता है ॥३॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।

उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

पदार्थ·—(**मघवन्**) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न प्रभो ! (**विपश्चित**·) आपकी आज्ञा का पालन करने वाले पुरुष (**अर्य**) प्रतिपक्षी के प्रति शत्रुभाव को प्राप्त होने पर (**जनानां, विप**) शत्रुओ को कंपित करते हुए (**तर्तूर्यन्ते**) निश्चय विपत्तियो पर पार पा जाते हैं । (**ऊतये, उप, क्रमस्व**) आप हमारी रक्षार्थ हमे प्राप्त हो (**पुरुरूप**) अनेक रूप वाले (**नेदिष्ठ**) समीपदेश मे उत्पन्न (**वाज, आभर**) अन्नादि पदार्थों से सदैव हमे परिपूर्ण करें ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र का तात्पर्य यह है वेदोक्त कर्मों में रत विद्वान् पुरुष प्रभु की कृपा से नाना प्रकार के उपायो से सब संकटो तथा आपदाओ पर पार पा जाते हैं । वह शत्रुओ से कभी पराजित न होकर उनको प्रकम्पित करते हैं और विभिन्न सुखसाधनयोग्य पदार्थों को सहज ही पा सकते है, अत पुरुषो को वेदविद्या अध्ययन व प्रभु आज्ञा का पालन करना अभीष्ट है, जिससे सुख की प्राप्ति हो ॥४॥

अब ब्रह्मानन्द ही सर्वोपरि ॥

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥५॥

पदार्थः—(**अद्रिव**) हे दारणशक्ति वाले परमात्मा ! मै (**त्वा**) आपको (**महे**) बहुत से (**शुल्काय, च**) शुल्क के निमित्त भी (**न, परा, देयां**) नही छोड सकता (**सहस्राय**) सहस्रसंख्यक शुल्क मूल्य के निमित्त भी (**न**) नही छोड सकता (**अयुताय**) दश सहस्र के निमित्त भी (**न**) नही छोड सकता (**शतमघ**) हे अनेकविध सम्पत्तिशालिन् ! (**वज्रिव**) विद्युदादिशक्त्युत्पादक (**शताय**) अपरिमित धन के निमित्त भी (**न**) नही छोड सकता ॥५॥

भावार्थ.—यहाँ ब्रह्मानन्द को सर्वोपरि बताया गया है अर्थात् स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्मानन्द की तुलना धनधाम आदि सांसारिक पदार्थों से सभव नही । मनुष्य, गन्धर्व, देव व पितृ आदि जो उच्चतम पद हैं उनमे भी उस आनन्द का आभास नही होता जिसे ब्रह्मानन्द कहते हैं । इसी दृष्टि से मन्त्र मे सब प्रकार की अनर्घ वस्तुओ को ब्रह्मानन्द की अपेक्षा तुच्छ माना गया है । मन्त्र मे "शत" शब्द अयुत संख्या के ऊपर आने से अगणित संख्यावाची है जिसका अर्थ यह है कि असंख्यात धन से भी ब्रह्मानन्द की तुलना सभव नही है ॥५॥

अब पिता आदि से भी परमात्मा को उत्कृष्ट बताया गया है ॥

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमात्मन् ! (**अभुंजत**) अपालक (**पितु**) पिता (**उत**) और (**भ्रातु**·) भ्राता से (**वस्यान्, असि**) आप अधिक पालक हैं । (**वसो**) हे व्यापक परमात्मन् ! आप (**च**) और (**मे**) मेरी (**माता**) माता दोनो ही (**वसुत्वनाय**) मेरी व्याप्ति के लिये तथा (**राधसे**) ऐश्वर्य्य के लिये (**समा**) समान (**छदयथ**) पूजित बनाते है ॥६॥

भावार्थ —इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि जिस तरह माता हार्दिक प्रेमसहित पुत्र का लालन-पालन कर उसकी भलाई चाहती है उसी तरह ईश्वर भी मातृतुल्य सभी जीवो का हित चाहता है । इस मन्त्र मे पिता व भ्राता सब सम्बन्धियो का उपलक्षण है अर्थात् ईश्वर इन सबसे बडा है और मा के तुल्य कथन करने से यह दर्शाया गया है कि अन्य सम्बन्धियों की अपेक्षा मा अधिक स्नेह करती है और परमात्मा मातृ तुल्य ही सब मनुष्यो का शुभेच्छुक है ॥६॥

परमात्मा सर्वव्यापक है ॥

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।

अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥७॥

पदार्थ —(**युध्म, खजकृत्**) हे युद्धकुशल, युद्ध करने वाले (**पुरन्दर**) अविद्यासमूह नाशक ! (**क्व, इयथ**) आप किस एक देश मे थे ? (**क्व, इत्, असि**) आप कहां विद्यमान है ? यह शंका नही करनी चाहिये (**हि**) क्योंकि (**ते, मन**·) आपका ज्ञान (**पुरुत्रा, चित्**) सर्वत्र है, (**अलर्षि**) आप अन्त·करण मे विराजमान हैं (**गायत्रा**·) स्तोता (**प्रागासिषु**) आपकी स्तुति करते हैं ॥७॥

भावार्थ- प्रश्नोत्तर रूप मे ईश्वर की सर्वव्यापकता का बोध इस मन्त्र मे कराया गया है जिसका तात्पर्य है कि हे परमात्मन् ! आप पहले कहा थे, अब कहा हैं और भविष्य मे कहा होगे ? ऐसे प्रश्न परमात्मा मे नही हो सक्ते, क्योकि वह अन्य पदार्थों सरीखा एकदेश का निवासी नही अपने ज्ञानस्वरूप से सर्वत्र विद्यमान प्रभु का "पुरुत्रा चिद्धि ते मन" इत्यादि प्रतीको से वर्णन किया गया है। अत उचित है कि परमात्मा की सर्वव्यापकता को मान जिज्ञासुजन उसके ज्ञानरूप प्रदीप से हृदय को आलोकित करें और किसी काल व किसी स्थान मे भी पापकर्म न करें, क्योकि वह सर्वत्र व हर समय हमारे कर्मों को देखता रहता है ॥७॥

विद्वान् परमात्मा के ज्ञान का प्रचार करें ॥

आस्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दुरः ।

याभिः काण्वस्योप बर्हिरासद् यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥८॥

पदार्थ —हे उपासको ! आप (अस्मै) इस परमात्मा के लिये (गायत्रं, आर्चत) स्तुति को (य) जो परमात्मा (वावातु., पुरन्दर) उपासको के विघात करने वालो के पुरो का नाशक है । (वज्री) शक्तिशाली परमात्मा (याभि·) जिन स्तुतियो से (काण्वस्य, बर्हि) विद्वानो की सन्तान के हृदयाकाश मे (आसद, उपयासत) प्राप्त होने के लिये आवें, और (पुरः, भिनत्) अविद्या के समूह को भेदन करें ॥८॥

भावार्थ:—तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण प्रभु विद्वानो की संतति को अविद्यान्धकार से मुक्त कर उनके हृदय मे विद्या का आलोक भरे ताकि वे विद्या प्रचार से परमात्मज्ञान का उपदेश करें व लोगो को श्रद्धालु बनावें और परमात्मा के गुणो की विरुदावलि गाते हुए आस्तिक भावना फैलाए ॥८॥

परमात्मा अनन्तशक्तिशाली है ॥

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये संहस्रिणः ।

अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥९॥

पदार्थ —(ये, ते) जो आपकी (दशग्विन) दशो दिशाओ मे व्यापक (शतिन·) सैकडो (सहस्रिण.) सहस्रो (ते) आपकी (ये) जा (वृषण) सब कामनाओ को पूर्ण करने वाली (रघुद्रुव) क्षिप्रगतिवाली (अश्वास) व्यापक-शक्तियाँ (सति) है (तेभि) उन शक्तियो द्वारा (तूय) शीघ्र (न) हमको (आगहि) प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ —सर्वव्यापक परमात्मा की शक्तियां इतनी विस्तृत है कि उन्हे पूर्णत जानना मनुष्य के वश की बात नही है, इसी अभिप्राय से मन्त्र मे "सहस्रिण" पद से उनको अनन्त बताया गया है, क्योकि "सहस्र" शब्द यहा असख्यो के अर्थ मे है । इसी प्रकार पुरुषसूक्त मे भी "सहस्रशीर्षा पुरुष." इत्यादि मन्त्रो मे उसका महत्त्व वर्णित है । वह परमात्मा अपनी कृपा से हमारे समीप हो जिससे हम उसका गुणगान कर पूर्ण श्रद्धायुक्त बनें ॥९॥

परमात्मा का धेनुरूप से वर्णन ॥

आ त्व१ द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥१०॥

पदार्थ —(अद्य) इस समय (सबर्दुघां) इष्टफल को पूर्ण करनेवाली (गायत्र-वेपस) प्रशसनीय क्रिया वाली (सुदुघा) शोभनफल देने वाली (इष) वाञ्छनीय (उरुधारां) अनेक पदार्थों की धारक (अरंकृत) उन्हे अलकृत करने वाली (अन्या धेनु) लौकिक धेनु से विलक्षण धेनु (इन्द्र) परमात्मा का (तु) शीघ्र (आहुवे) आह्वान करता ह ॥१०॥

भावार्थ·—यहा परमात्मा को "धेनु" बताया गया है जिसके अर्थ गौ तथा वाणी आदि हैं, पर वे गौण हैं । "धेनु" शब्द का मुख्यार्थ ईश्वर मे ही घटित है, क्योकि "धोयते इति धेनु" भी कहा गया है । इसलिये इस प्रकरण से ईश्वर का कामधेनुरूप वर्णन है, क्योकि कामनाओ का पूर्णकर्त्ता परमात्मा है, वह कामधेनु-रूप परमात्मा हमे प्राप्त हो व अपने इष्टफल को पूर्ण करे ॥१०॥

परमात्मा की शक्ति से ही सूर्यादिकों का प्रकाशन ॥

यत्तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।

वहुत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥११॥

पदार्थ —(यत्) जो (सूर) सूर्य्य (एतश) गतिशील (आर्जुनेय) भास्वर श्वेतवर्णवाले (कुत्स) तेजोरूप शस्त्र तथा (वातस्य) वायु सम्बन्धी (वङ्कू) वक्रगति वाली (पर्णिना) पतनशील प्रकाशक और सचारकरूप दो शक्तियो को (वहत्) धारण करता हुआ (तुदत्) लोको का भेदक बनता है वह (शतक्रतु) शतकर्मा परमात्मा ही (अस्तृत) अनिवार्य्य (गन्धर्वम्) गौ पृथिव्यादि लोको को धारण करने वाले सूर्य्य मे (त्सरत्) गूढगति से प्रविष्ट है ॥११॥

भावार्थ —इस गतिशील सूर्य मे आकर्षण तथा विकर्षणरूप दो प्रकार की शक्तियां हैं, उनका धाता व निर्माता केवल ईश्वर ही है, और सूर्यसम कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसके स्वरूप में ओतप्रोत हैं । अतः इस मन्त्र में उसको "शतक्रतु."= सैकडो क्रियाओ वाला कहा गया है । सूर्य्य को "गन्धर्व" इसलिये कहा गया है कि पृथिव्यादि लोक उसी की आकर्षण शक्ति से ठहरे हुए हैं, और वायुसम्बन्धी कहने का तात्पर्य यह है कि तेज का मृजक वायु है, जैसाकि "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत. आकाशाद्वायुः वायोरग्निः" तैत्तिरीयोपनिषद् मे वर्णन है कि वायु से अग्नि उत्पन्न हुई, इत्यादि प्रमाणो से सिद्ध है कि सूर्य्य चन्द्रमादिको का प्रकाश परमात्मा की शक्ति से ही होता है ॥११॥

परमात्मा ही सब दुःखों की निवृत्ति करने वाला है ॥

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२॥

पदार्थ —(य) जो परमात्मा (अभिश्रि·) दोनो सेनाओ के अभिश्लेष (ऋते, चित्) विना ही (जत्रुभ्य) स्कन्ध सन्धि से (आतृद) पीडा उत्पन्न होने के (पुरा) पूर्व ही (सन्धि) सन्धि को (सन्धाता) जोडता है, और जो (मघवा) ऐश्वर्य्यशाली तथा (पुरुवसु) अनेकविधि धनवाला परमात्मा (पुन.) फिर भी (विह्रुतं) किसी प्रकार से विच्छिन्न हुए शरीर को (इष्कर्त्ता) सस्कृत= नीरोग करता है ॥१२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे "जत्रु" शब्द सब शरीरावयव का उपलक्षण है अर्थात् शरीर मे रोग तथा अन्य विपत्तिरूप आघातो के आने से ही परमात्मा उनका सधाता है और वही आध्यात्मिक, आधिभौतिक, तथा आधिदैविक त्रिविध तापो का निवारक है । अत उसी की आज्ञा का पालन व उपासना उचित है ॥१२॥

मनुष्य किन-किन भावों से सद्गुणों का पात्र बनता है ॥

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१३॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे परमात्मन ! (त्वत्) आपके अनुग्रह से हम लोग (निष्ट्या , इव) नीच के तुल्य तथा (अरणा , इव) अरमणीय के समान (मा, भूम) न हो, और (प्रजहितानि) अभिरहित (वनानि) उपासको के समान (न) न हो (अद्रिव) हे दारणशक्तिवाले परमेश्वर ! आपके समक्ष (दुरोषास) शत्रुओ से निर्भीक हम आपकी (अमन्महि) स्तुति करते हैं ॥१३॥

भावार्थ.—यहा वर्णन है कि विद्या व विनयसम्पन्न पुरुष मे सब सद्गुण होते हैं, अर्थात् जो पुरुष परमात्मा की उपासनापूर्वक भक्तिभाव से नम्र होता है उसके शत्रु उस पर विजय नही पा सकते, सब विद्वानो मे वह प्रतिष्ठित होता है और सब गुणीजनो मे मान पाता है । इसलिए सब को उचित है कि नीच भावो को त्याग उच्च भाव ग्रहण करें जिससे परमात्मा के निकटस्थ हों ॥१३॥

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।

सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥१४॥

पदार्थ (वृत्रहन्) हे उग्रो के घननाशक प्रभो ! हम (अनाशव , अनुग्रास) शान्त तथा अक्रूर हो (अमन्महि) आपकी स्तुति करते है । (शूर) हे दुष्ट-हन्ता ! ऐसी कृपा करो कि हम (सकृत) एक बार भी (महता, राधसा) महान् ऐश्वर्य्य से युक्त होकर (ते) आपकी (सुस्तोम) सुन्दर स्तुति (अनु, मुदीमहि) मोद से करें ॥१४॥

भावार्थ —स्तुति द्वारा इस मन्त्र मे परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! आप हमे ऐश्वर्य दो जिससे हम प्रसन्नतासहित स्तुतियो द्वारा आपका गुणगान करें इस का यह अर्थ भी है कि जो मनुष्य शान्ति से परमात्मा की स्तुति करते हुए कर्मयोग मे प्रवृत्त रहता है उसे परमात्मा ऐश्वर्यशाली बनाकर आनन्द देता है । इसलिये प्रत्येक को शान्तभाव सहित सदैव उसकी वन्दना मे रत रहना चाहिए ॥१४॥

परमात्मा के उपासकों के कार्यों की सिद्धि ॥

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।

तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥

पदार्थ —(यदि) यदि वह परमात्मा (मम) मेरे (स्तोम) स्तोत्र को (श्रवत्) सुने तो (अस्माक, इन्दव:) मेरे यज्ञ को (तुग्र्यावृध.) जलादि पदार्थों द्वारा सम्पादित करके (आशव) शीघ्र ही सिद्ध किये हैं वे (तिर) तिरश्चीन - दुष्प्राप्य (पवित्रम्) शुद्ध (इन्द्र) परमात्मा को (ससृवास) प्राप्त होकर (मन्दन्तु) हमको हर्षित करें ॥१५॥

भावार्थ —इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि हे भगवन् ! आप मेरी स्तुति सुने, मैने जो यज्ञादि शुभकर्म किये हैं और करता हूँ वे आपको अर्पित हो, मेरे लिए नही, आप कृपया इन्हे स्वीकारें ताकि मुझे आनन्द मिले, यही निष्काम कर्मभाव है । निस्स्वार्थ शुभकर्म करने वाले पर परमात्मा प्रसन्न होते है और उसे आनन्द मिलता है ॥१५॥

शुभकार्य के प्रारम्भ में प्रभु उपासना ॥

आ त्व१ द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।

उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥१६॥

पदार्थ —हे प्रभो ! (वावातु., सख्यु) आपके भक्त और प्रिय हम (सधस्तुति) समुदायस्तुति के (आ) अभिमुख होकर (अद्य) आज (तु) शीघ्र (आगहि) आकर

प्राप्त हो, (सखीनां) हम यज्ञकर्ताओं की (उपस्तुति·) स्तुति (त्वा) आपको (प्रावतु) प्रसन्न करे ; (अद्य) इस समय (ते) आपकी (सुस्तुतिं) शोभनस्तुति (वश्मि) हम चाहते हैं ।।१६।।

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि सभी को चाहिए कि शुभकार्य से पहले यज्ञादि से परमात्मा की उपासना कर कार्यारम्भ करें, क्योंकि परमात्मा अपने भक्तो व प्रिय उपासको के कार्य निर्विघ्न सम्पन्न कराता है, अत प्रत्येक पुरुष उसकी उपासना में प्रवृत्त रहे ।।१६।।

श्रवणादि द्वारा परमात्मा की उपासना ॥

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।

गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥१७।

पदार्थ —(नर) हे उपासको ! (अद्रिभि) आदरणीय चित्तवृत्तियो द्वारा (सोम) परमात्मा का (सोत) साक्षात्कार करो (ईं) और (एन) उसका (अप्सु, आधावत) हृदयाकाश मे मनन करो, (वक्षणाभ्य.) नदी जैसी प्रवहनशील चित्तवृत्तियो की शुद्धि हेतु (गव्या, वस्त्रा इव) रश्मिवत् श्वेतवस्त्र के तुल्य (वासयन्त) उसे आच्छादन करते हुए (इत्) निश्चय करके (नि., धुक्षन्) अन्त करण मे दीप्त करो ।।१७।।

भावार्थः—परमात्मा का उपदेश है कि हे लोगो ! तुम चित्तवृत्तियों के निरोध से मनन करते हुए उसका साक्षात्कार करो । जैसे सरिता का प्रवाह निरन्तर बहता है इसी प्रकार चित्त की वृत्तियाँ निरन्तर प्रवाहित रहती हैं, उनकी चचलता की स्थिरता का एकमात्र उपाय "ज्ञान" है अतएव ज्ञान से चित्तवृत्तियो का निरोध कर अन्तःकरण की पावनता द्वारा परमात्मा की उपासना मे अनुरक्त होना श्रेयस्कर है ।।१६।।

सर्वनियन्ता परमात्मा से वृद्धि की प्रार्थना ॥

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।

अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥१८॥

पदार्थ·—(अध) हे भगवन् ! इस समय (ज्म·) पृथ्वी (वा) और (बृहत.) महान् (रोचनात्) दीप्यमान (दिव) अन्तरिक्ष लोकपर्यन्त (अधि) अधिष्ठित आप (अया) इस (तन्वा) विस्तृत (गिरा) स्तुति वाणी से (वर्धस्व) हृदयाकाश मे वृद्धि को प्राप्त हो , (सुक्रतो) हे सुन्दर कर्म वाले प्रभो ! (मम) मेरी (जाता) उत्पन्न हुई सन्तान को (आपृण) उत्तम फलयुक्त करके तृप्ति दो ।।१८।।

भावार्थ· - तात्पर्य यह है कि अन्तरिक्षादि लोको मे भी व्याप्त, सर्वरक्षक, सर्वनियन्ता परमात्मा से प्रार्थना है कि आप हमारे हृदय मे विराजमान हो और हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाए तथा हमारी सन्तान को उत्तम फल दें जिससे उसे ससार मे सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो सके ।।१८।।

कर्मयोगी के प्रयत्न की सफलता ॥

इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।

शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥१९॥

पदार्थ -- हे उपासको ! (इन्द्राय) कर्मयोगित्व की प्राप्ति हेतु (मदिन्तम) आनन्दस्वरूप (वरेण्य) उपासनीय (सोम) परमात्मा को (सु, सोत) सम्यक् भजो, क्योकि (शक्र:) सर्वशक्तिमान् प्रभु (विश्वया, धिया) अनेक क्रियाओ से (हिन्वान) प्रसन्न करते हुए, (वाजयुम्) बल चाहने वाले (एन) इस कर्मयोगी को (न) सम्प्रति (पीपयत्) फलप्रदान द्वारा सम्पन्न करते हैं ।।१९।।

भावार्थ.—यहाँ उपदेश है कि हे उपासको ! कर्मयोगी बनने हेतु तुम प्रभु से प्रार्थना करो जो बल व अनेक क्रियाओ का दाता है । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी ही ससार मे सब ऐश्वर्य को प्राप्त होता है और वही प्रतिष्ठित हो मनुष्यजन्म के फल पाता है, अतः पुरुष कर्मयोगी बनने की परमात्मा से सदैव प्रार्थना करें ।।१९।।

उपदेशक परमात्मा का प्रेमसहित उपदेश करें ॥

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।

भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२०॥

पदार्थ —(गिरा) स्तुतियुक्त वाणी द्वारा (सदा) सदैव (याचन्) परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना करते हुए (सवनेषु) यज्ञों में (सोमस्य, गल्दया) परमात्मसम्बन्धी वाणी पूछने पर (त्वा) तुम पर (चुक्रुधं, मा) क्रोध मत करें, क्योंकि (भूर्णि) सबका भरण-पोषण करने वाले (मृगं, न) सिंह समान (ईशानं) ईशन करने वाले परमात्मा की (क.) कौन मनुष्य (न, याचिषत्) याचना न करेगा अर्थात् सभी पुरुष उसकी याचना करते हैं ।।२०।।

भावार्थ —उपदेशक इस मन्त्र मे उपासकों को उपदेश करता है कि हे उपासको! तुम सदैव यज्ञादिकर्मों मे प्रवृत्त रहो और परमात्मा की वेदवाणी जो सभी के लिये कल्याणकारी है, उसमे सन्देह होने पर क्रोध न करते हुए प्रतिपक्षी को यथार्थ उत्तर दो और सबका पालन-पोषण, रक्षण करने वाले परमात्मा से ही सब कामनाओ की याचना करो; वही सबके लिये इष्टफलों को प्रदान करने में समर्थ हैं ।

यद्यपि परमात्मा सभी कर्मों का फल देता है और बिना कर्म के कोई भी इष्टसिद्धि को प्राप्त नही होता तथापि मनुष्य अपनी कमी के लिए अपने से उच्च की अभिलाषा स्वाभाविक रूप से रखता है और सर्वोपरि उच्च एकमात्र परमात्मा है, अत अपनी न्यूनता पूर्ण करने हेतु उसी से सब को याचना करना अभीष्ट है ।।२०।।

उपासक की शत्रुओं के दमनार्थ परमात्मा से प्रार्थना ॥

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।

विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥२१॥

पदार्थ.—(मदे) उपासना से अनुकूल होने पर परमात्मा (मदेन, इषित) हर्ष से प्राप्त करने योग्य (मद, उग्र) हर्षकारक, अधर्षणीय (उग्रेण, शवसा) अधिक बलयुक्त (विश्वेषां, तरुतार) सब शत्रुओ के दमनकर्ता (मदच्युत) उनके मद को नाश करने वाले सेनानी को (न) हमे (हि) निश्चय (ददाति, स्म) देता है ।।२१।।

भावार्थ —उपासक की उपासना से ईश्वर अनुकूल होकर उसके बलवान् शत्रु का दमन कर उसकी सर्वप्रकार रक्षा करते हैं, अत. सभी को सदा उनकी प्रार्थना उपासना मे प्रवृत्त रहना चाहिए ।

तात्पर्य यह है कि प्रार्थना भी एक कर्म है और वह नम्रता, अधिकारित्व तथा पात्रत्वादि धर्मों को अवश्य धारण कराती है, अत प्रार्थना का फल शत्रुदमनादि कोई दुष्कर कर्म नही ।।२१।।

परोपकारार्थ प्रार्थना करने वाले को फल ॥

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।

स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥२२॥

पदार्थ.—(शेवारे) सुखप्रद यज्ञ मे (देव) दिव्यस्वरूप (विश्वगूर्त·) अखिल कार्यों मे प्रवृत्त होता हुआ (स) वह परमात्मा (अरिस्तुत·) जब उभयपक्षी पुरुषो से स्तुति किया जाता है तो (दाशुषे, मर्ताय) जो इन दोनो मे उपकारशील है उसे (च) और (सुन्वते, च, स्तुवते) तत्सम्बन्धी यज्ञ करने वाले स्तोता को (पुरु, वार्या) अनेक वरणीय पदार्थ (रासते) देता है ।।२२।।

भावार्थ·—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि परमात्मा के उपासक दो प्रकार के हैं एक स्वार्थपरायण और दूसरे परार्थपरायण । इन दोनो में से परमात्मा न्यायकारी तथा परोपकारार्थ प्रार्थी-उपासक को अवश्य फल देते हैं, इसलिये प्रत्येक पुरुष परोपकारदृष्टि से प्रभु की उपासना मे रत रहे ।।२२।।

एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।

सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥२३॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (आयाहि) आप अन्तःकरण मे आवें (देव) हे दिव्यगुणसम्पन्न (चित्रेण, राधसा) अनेकविध धनो से हमको (मत्स्व) आह्लादित करें, (उरु, स्फिर, उदरं) अति विशाल अपने उदररूप ब्रह्माण्डो को (सोमेभि , सपीतिभि) सौम्य सार्वजनिक तृप्तियों से (सर , न) सरोवर के समान (आप्रासि) पूरित करें ।।२३।।

भावार्थ — इस मन्त्र में उपासक परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! आप हमारी शुभकामनाओ को पूर्ण कर हमे अनेकविध धनो से सम्पन्न करें ताकि हम आपके गुणगान करते हुए आपकी उपासना में लगे रहें ।।२३।।

समष्टिरूप से प्रार्थना का विधान ॥

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।२४॥

पदार्थ —(इन्द्र) प्रभो ! (हिरण्यये) ज्योति स्वरूप (रथे) ब्रह्माण्डो मे (ब्रह्मयुज·) स्तुतियुक्त (केशिन) प्रकाशमान (हरय) मनुष्य (शतं, सहस्रं) सैकड़ो तथा सहस्रो (आयुक्ताः) मिलकर (सोमपीतये) ब्रह्मानन्द के लिये (त्वा) आपका (आवहन्तु) आह्वान करें ।।२४।।

भावार्थ.—समष्टिरूप से उपासना का यह विधान इस मन्त्र में प्रस्तुत है कि जो इन दिव्य ब्रह्माण्डों का रचयिता सर्वत्र व्याप्त है उसी परमात्मा की हम उपासना करें, हम लोग सैकड़ों तथा सहस्रों एक साथ मिल ब्रह्मानन्द हेतु उस दिव्यज्योति परमपिता की उपासना करें ।।२४।।

ईश्वर अचिन्त्य प्रकृतिवाला है ॥

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।

शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥

पदार्थ —(हिरण्यये, रथे) देदीप्यमान ब्रह्माण्ड मे (मयूरशेप्या) मयूरपिच्छ सरीखी गम्भीर गति वाली (हरी) आपकी आकर्षण तथा विकर्षण शक्तियाँ (शितिपृष्ठा) जिनकी तीक्ष्णगति है वह (मध्व) मधुर (अन्धस) ब्रह्मानन्दार्थ (विवक्षणस्य) प्राप्तव्य (पीतये) तृप्ति हेतु (आ, वहतां) अभिमुख करें ।।२५।।

भावार्थ —परमात्मा को अचिन्त्य शक्तिशाली बताते हुए कहा गया है कि उसका पारावार पाना सम्भव नहीं । मयूरपिच्छ के दृष्टान्त से स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार मयूर के बर्ह=पिच्छ मे नाना वर्णों की कोई इयत्ता नहीं कर सकता

उसी तरह ब्रह्माण्डरूप विचित्र कार्यों की अवधि बाधना मनुष्य की शक्ति मे नही है ॥२५॥

उपदेशक के लिए परमात्मसाक्षात्कार का उपदेश

पिबा त्व१ स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रसिनं इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥२६॥

पदार्थ —(**गिर्वण**) हे प्रशस्तवाणियो के सेवन करने वाले विद्वान् ! (**सुतस्य**) विद्वानो द्वारा साक्षात्कार किये गए (**परिष्कृतस्य**) वेदादि प्रमाणो से सिद्ध (**रसिनः**) आनन्दमय (**अस्य**) इस परमात्मा का (**पूर्वपा, इव**) अत्यन्त-पिपासु के समान (**सु**) शीघ्र (**पिब**) स्वज्ञान का विषय करो (**इम**) यह (**चारु**) कल्याणमयी (**आसुतिः**) परमात्मसम्बन्धी साक्षात् क्रिया (**मदाय**) सब जीवो के हर्ष के निमित्त (**पत्यते**) प्रचारित हो रही है ॥२६॥

भावार्थ —इस मत्र मे उपदेश है कि वेदज्ञाता उपदेशको ! तुम ईश्वर को भली भाति जानकर उसकी पावन वाणी को प्रचारित करो और सब जिज्ञासुओ को परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान का फल दर्शाकर उन्हें कल्याण मार्ग दर्शाओ जिससे वह मानव अपने जन्म का फल पा सके ॥२६॥

परमात्मप्राप्ति के लिए प्रार्थना ॥

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।

गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥२७॥

पदार्थ —(**य**) जो परमात्मा (**एक**) अद्वितीय (**दसना**) कर्म द्वारा (**महान्**) अधिक (**उग्र**) उग्र बलवाला है (**व्रतै**) अपने विलक्षण कर्मों से (**अभि, अस्ति**) सब कमकर्त्ताओ को तिरस्कृत करता है, (**स, शिप्री**) वह सुखद परमात्मा (**गमत्**) मुझे प्राप्त हो, और (**स**) वह (**न, योषत्**) वियुक्त न हो (**हव**) मेरे स्तोत्र को (**आगमत्**) अभिमुख होकर प्राप्त करे (**न, परिवर्जति**) परिवजन न करे ॥२७॥

भावार्थ —अद्वितीय, बलशाली तथा सबको सुख देने वाला ईश्वर कठिन से कठिन विपत्तियो मे भी अपने उपासक की सहायता करता है वह हमे प्राप्त होकर कभी भी वियुक्त न हो और सभी को उचित है कि प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ मे परमात्मा की प्रार्थना उपासना स्तुति करें ताकि सब कामो मे सफलता प्राप्त हो ॥२७॥

परमात्मा का अनन्त बल ॥

त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।

त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥२८॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे परमात्मन् ! (**त्व**) आप (**शुष्णस्य**) शत्रु के (**चरिष्ण्व**) चरणशील (**पुर**) समुदाय को (**वधै**) अपनी हननशील शक्तियो से (**स, पिणक्**) नष्ट करते हो (**अध**) और (**त्व**) आप (**भा**) दीप्ति मे (**अनुचर**) अनुप्रविष्ट हो (**यत्**) जिसमे (**द्विता**) ज्ञानकर्म द्वारा (**हव्य**) भजनीय (**भुव**) हो रहे हो ॥२८॥

भावार्थ —परमात्मा को अनन्त बलशाली बताते हुए इस मन्त्र मे कहा गया है कि परमात्मा अपनी हननशील शक्तियो से शत्रुसमूह को नष्ट करते है, वे सम्पूर्ण ज्योतियो मे प्रविष्ट हो उन्हे प्रकाशित कर रहे है और वही सारे ब्रह्माण्डो को रचकर अपनी शक्ति से सबको थामे है। वस्तुत उन्ही की शक्ति से सूर्य तथा विद्युदादि तेजस्वी पदार्थ अनेक कर्मों के उत्पादन व विनाश मे समर्थ है, और वह सदाचारी को सुख तथा दुराचारी को दुःख देते हैं, अतएव सदाचार द्वारा परमात्म परायण होना ही उचित है ॥२८॥

परमात्मा का सब कालो में स्मरण रखे ॥

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।

मम प्रपित्वे अपि शर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥२९॥

पदार्थः—(**वसो**) हे व्यापक प्रभो ! (**उदिते, सूरे**) सूर्योदय के समय (**मम, स्तोमास**) मेरी स्तुतिया (**दिवः**) दिन के (**मध्यन्दिने**) मध्य मे (**मम**) मेरी स्तुतिया (**शर्वरे, प्रपित्वे, अपि**) रात्रि होने पर भी (**मम**) मेरी स्तुतियाँ (**त्वा**) आप (**अवृत्सत**) आवर्तित- पुन-पुन स्मरण करें ॥२९॥

भावार्थ.—परमात्मा के निदिध्यासन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सब कालो मे परमात्मा का स्तवन करना अभीष्ट है अर्थात् उसे सर्वव्यापक, सर्व कर्म द्रष्टा, शुभाशुभकर्म फलप्रदाता व अन्नवस्त्रादि नाना पदार्थों वाला इत्यादि अनेक भावो से उसे स्मरण रखते हुए उसकी आज्ञापालन मे तत्पर रहें जिससे वह हमे शुभकर्मों मे लगाए ॥२९॥

अब "मेध्यातिथि" को परमात्मा का ऐश्वर्य वर्णन करते हुए
उसी की उपासना का कथन ॥

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।

निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३०॥

पदार्थ—(**मेध्यातिथे**) हे पूज्य अभ्यागत ! (**मघोनां, मंहिष्ठास**) ऐश्वर्यशालियों मे श्रेष्ठ (**एते**) यह परमात्मा है, अत (**ते**) उसकी (**स्तुहि, स्तुहि**) वार-बार स्तुति कर। (**इत् घ**) निश्चय ही वह परमात्मा (**निन्दिताश्व**) सब व्यापको का अपनी व्यापक शक्ति से तिरस्कार करने वाला, (**प्रपथी**) विस्तृत मार्गवाला, (**परमज्या**) बड़े से बड़े शत्रुओ का नाशक, और (**मघस्य**) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदाता है ॥३०॥

भावार्थः—हे अभ्यागत ! तू उसी पूर्ण परमात्मा की उपासना कर जिसकी शक्ति सम्पूर्ण शक्तियों से अधिक है, जो सम्पूर्ण व्यापक पदार्थों को अपनी व्यापक शक्ति से तिरस्कृत करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भण्डार है ॥३०॥

कर्मयोगी ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन ॥

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।

उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥३१॥

पदार्थ —(**यत्**) यदि (**रथे**) गतिशील प्रकृति मे (**वनन्वत, अश्वान्**) व्यापकशक्ति वाले पदार्थों को जानने हेतु (**अह**) हम (**श्रद्धया**) दृढ़ जिज्ञासा से (**आ, रुह**) प्रवृत्त हों (**उत**) तो (**य**) जो (**याद्व, पशु**) मनुष्यो मे सूक्ष्म-द्रष्टा कर्मयोगी (**अस्ति**) है वह (**वामस्य**) सूक्ष्म--दुर्ज्ञेय (**वसुनः**) पदार्थों के तत्त्व को (**चिकेतति**) जान सकता है ॥३१॥

भावार्थ —इस अनन्त ब्रह्माण्ड मे जो परमात्मा की सृष्टि का स्वरूप है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म दुर्विज्ञेय पदार्थ विद्यमान है, जिनका बड़े-बड़े पदार्थवेत्ता अपने ज्ञान से अनुभव करते हैं। परमात्मा की इस प्रकृति को कर्मयोगी दुर्विज्ञेय बताता हुआ यह वर्णन करता है कि हम उन पदार्थों को जानने के लिए दृढ़ जिज्ञासा से प्रयत्न करें अर्थात् कर्मयोगी लिए उचित है कि वह अपने अभ्यास से उनको जानने का प्रयत्न करे। जो पुरुष सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को जान उनका आविष्कार करें वे ऐश्वर्यशाली होकर मनुष्यजन्म के फलो को प्राप्त होते हैं ॥३१॥

ऐश्वर्याभिलाषियों के लिए ज्ञानोत्पादन करने का कथन ॥

य ऋजा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥३२॥

पदार्थ —(**य**) जो प्रभु (**मह्य**) मेरे लिए (**हिरण्यया, त्वचा**) दिव्य-ज्ञानकारक त्वगिन्द्रिय के (**सह**) सहित (**ऋजा**) अनेक गतिशील पदार्थ (**मामहे**) देता है (**एष**) यह (**स्वनद्रथ**) शब्दायमान ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा (**आसगस्य**) अपने मे आसक्त उपासक के (**अभि**) अभिमुख (**विश्वानि, सौभगा**) सकल शुभ ऐश्वर्यों को (**अस्तु**) सम्पादन करे ॥३२॥

भावार्थ—इस मत्र का तात्पर्य यह है कि परमात्मा ने सृष्टि मे अनेकानेक विचित्र पदार्थ बनाए है और उन्हे जानने के लिए विचित्र शक्ति भी प्रदान की है। अतएव ऐश्वर्याभिलाषी पुरुष को चाहिए कि सर्वदा उनके ज्ञानोत्पादन का प्रयत्न करता रहे। जो लोग निरन्तर परमात्मा की उपासना मे प्रवृत्त होकर ज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हे परमात्मा सभी ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसलिए परमात्मा की उपासना द्वारा ज्ञानप्राप्ति उपासक का कर्त्तव्य है ॥३२॥

परमात्मपरायण कर्मयोगी का महत्त्व ॥

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।

अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥

पदार्थ —(**अग्ने**) हे भगवन् ! (**अध**) आपसे ऐश्वर्यलाभ पाने पर (**प्लायोगि**) अनेक प्रयोग करने वाला (**आसग**) आपके ऐश्वर्य मे चित्त लगाने वाला कर्मयोगी (**दशभि, सहस्रै**) दस सहस्र योद्धाओ के साथ आये हुए (**अन्यान्**) शत्रुओ को (**अति**) अतिक्रमण करने मे समर्थ (**दश, उक्षण**) आनन्द वृष्टि करने वाले दश वीरो का (**मह्य**) मेरे लिये (**दासत्**) दे (**अध**) और वे वीर (**रुशतः**) बलवृद्धि से देदीप्यमान हुए (**सरस**) सरोवर से (**नळा इव**) नड तृण विशेष के समान (**नि, अतिष्ठन्**) सगत होकर उपस्थित हो ॥३३॥

भावार्थ —यहा कर्मयोगी के पराक्रम का वर्णन है कि परमात्मपरायण कर्म-योगी नाना प्रयोगो से अपनी अस्त्र-शस्त्र विद्या को इतना उन्नत कर लेता है कि सहस्रो मनुष्यो की शक्ति को भी चूर्ण कर सकता है। इसलिए परमात्मा की उपासना मे प्रवृत्त हुए पुरुष को उचित है कि वह अस्त्र-शस्त्र विद्या मे भी निपुण हो ॥३३॥

परमात्मा भोग्य पदार्थों का 'आकर' है ॥

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।

शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि ॥३४॥

पदार्थः— (**अस्य**) इस परमात्मा का कार्यभूत (**स्थूर**) स्थूल=प्रत्यक्ष-योग्य (**अनस्थ**) नश्वर (**ऊरु**) अति विस्तीर्ण (**अवरम्बमाणः**) अवलम्बमान यह ब्रह्माण्ड (**पुरस्तात्**) आगे (**अनु, ददृशे**) दृष्टिगोचर हो रहा है (**अभिचक्ष्य**) उसे देखकर (**शश्वती, नारी**) नित्या प्रकृतिरूप स्त्री (**आह**) कहती है कि (**अर्य**) हे दिव्यगुणसम्पन्न प्रभो ! आप (**सुभद्र**) सुन्दर कल्याणमय (**भोजनं**) भोगयोग्य पदार्थों के समूह को (**बिभर्षि**) धारण करते हैं ॥३४॥

भावार्थ —नित्य, अनित्य, मिथ्या, कूटस्थनित्य तथा तुच्छ, ऐसे पदार्थों की पाच प्रकार की सत्ता है, जैसा कि ब्रह्म कूटस्थ नित्य, प्रकृति तथा जीव केवल नित्य, यह कार्यरूप ब्रह्माण्ड अनित्य, रज्जु सर्पादिक प्रातिभासिक पदार्थ मिथ्या और शशशृग, वन्ध्यापुत्रादि तुच्छ कहे जाते हैं, इसी प्रकार इस मत्र मे इस ब्रह्माण्ड का "अनस्थ" शब्द से अनित्य कथन किया है, जैसाकि "न भ्रा सर्वकालमभिव्याप्य

तिष्ठतीत्यनस्थ" इस व्युत्पत्ति से "अनस्थ" का अर्थ सब काल मे न रहने वाले पदार्थ का है, अर्थात् जो परिणामी नित्य हो उसको "अनस्थ" शब्द से कहा जाता है। यही भाव इस मन्त्र मे वर्णित है कि यह कार्यरूप ब्रह्माण्ड अनस्थ=सदा स्थिर रहने वाला नहीं, यद्यपि यह अनित्य है तथापि ईश्वर की विभूति और जीवो के भोग का स्थान होने से इसको भोजन कथन किया गया है।

खेद है कि "भोजन" के अर्थ सायणाचार्य ने उपस्थेन्द्रिय किये हैं और "अवरम्बमाण" के लटकते हुए करके मनुष्य के गुप्तेन्द्रिय मे सगत कर दिया है। इतना ही नही, किन्तु "स्थूल" शब्द से उसकी और भी पुष्टि की है ॥३४॥

अष्टम मण्डल मे प्रथम सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वाचत्वारिंशदृचस्य द्वितीयसूक्तस्य १-४ मेधातिथि. काण्व. प्रियमेधश्चाङ्गिरस । ४१, ४२ मेधातिथिऋषि ॥ देवता —१-४० इन्द्र । ४१, ४२ विभिन्दोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१-३, ५, ६, ९, ११, १२, १४, १६-१८, २२, २७, २९, ३१, ३३, ३५, ३६, ३८, ३९, आर्षी गायत्री । ४, १३, १५, १९-२१, २३-२६, ३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री । ७, ८, १०, ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री । ४१ पाद निचृद् गायत्री । २८ आर्षी स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वर —१-२७, २९-४२ षड्जः । २८ गान्धार ॥

कर्मयोगी का सत्कार ॥

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥१॥

पदार्थ - (**वसो**) हे बल आच्छादक कर्मयोगिन् ! (**इद**) वीरो के लिये विभज्यमान इस (**सुत**) सिद्ध (**अन्ध**) आह्लादक रस को (**सुपूर्ण, उदर**) उदरपूर्ति पर्यन्त (**पिबा**) पियो । (**अनाभयिन्**) हे निर्भीक वीर ! (**ते**) तुम्हारे लिये (**ररिमा**) हम देते है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि सेना का नेता वीरो से कहता है कि हे कर्मयोगियो ! तुम सिद्ध किये हुए आह्लादक सोमादि रस को पियो, यह तुम्हारे लिये सिद्ध किया है अर्थात् विजय को प्राप्त कर्मयोगी शूरवीरो की सेवा-शुश्रूषा सोमादि रसो से करने का विधान है ॥१॥

सोमरस का महत्त्व ॥

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥

पदार्थ —(**नृभि धूत.**) उक्त रस नेताओ से शोधित, (**सुत**) सम्यक् सस्कृत, (**अश्नैः, अव्य**) व्यापक बनने वाले वीरो का रक्षणीय (**वारैः**) वरणीय- विश्वसनीय पुरुषो द्वारा (**परिपूत**) सवथा परीक्षित, (**नदीषु**) जलाधारो मे (**निक्त**) उत्पन्न किये हुए (**अश्व , न**) विद्युत् के समान शक्तिप्रद है ॥२॥

भावार्थ —सोमरस जिसे विद्वान् वैद्य शोधकर तैयार करते हैं वह युद्ध-विशारद नेताओ का रक्षक है अर्थात् उसके पीने मे शरीर मे विचित्र बल व स्फूर्ति आती है और वे शत्रु पर अवश्य विजय पाते हैं। अर्थात् उक्त रस पान शूरवीर को विद्युत् तुल्य तेजस्वी और ओजस्वी बना देता है ॥२॥

यज्ञ मे ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी का उपदेशार्थ आह्वान ॥

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे इन्दनशील कर्मयोगी ! (**ते**) तुम्हारे लिये (**त, यव**) अनेक पदार्थ मिश्रित उस रस को (**गोभिः**) गव्य पदार्थों से (**यथा, स्वादु**) विधिपूर्वक स्वादु, (**श्रीणंत**) सिद्ध करने वाले हम ने (**अकर्म**) किया है। (**अस्मिन्, सधमादे**) इस पान के स्थान मे (**त्वा**) आपका आह्वान करते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव यह है कि याज्ञिक ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुषो का यज्ञस्थान मे आह्वान करते है कि हम ने तुम्हारे लिये गव्य पदार्थों से स्वादु रस सिद्ध किया है; कृपा करके हमारे यज्ञ को सुशोभित कर इसका पान करें और हमारे यज्ञ में ज्ञानयोग व कर्मयोग का उपदेश कर हमे कृतकृत्य करो। उल्लेखनीय है कि यज्ञो में जो सोमादि रस सिद्ध किये जाते हैं वह आह्लादक होते हैं, मादक नही ॥३॥

कर्मयोगी का महत्त्व ॥

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर्देवान्मर्त्याँश्च ॥४॥

पदार्थः—(**देवान्, मर्त्यान्, च, अन्तः**) विद्वान् तथा सामान्य पुरुषो के मध्य (**विश्वायुः**) विश्व को वशीभूत करने की इच्छा वाला (**इन्द्रः, इत्**) कर्मयोगी ही (**सोमपा.**) परमात्मसम्बन्धी ज्ञान पाने योग्य होता और (**इन्द्रः, एक**) केवल कर्मयोगी ही (**सुतपा**) सासारिक ज्ञान प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ —कर्मयोगी का महत्त्व बताते हुए इस मन्त्र मे कहा गया है कि विश्व को वशीभूत करने वाला कर्मयोगी परमात्मसम्बन्धी व सासारिक ज्ञान उपलब्ध करता है, अतः पुरुष कर्मयोगी बने। वस्तुत देवो तथा मनुष्यो के बीच कर्मयोगी ही इस विविध विश्व के ऐश्वर्य्य को भोगता है, अतः अभ्युदय के इच्छुको को चाहिए कि वे उस कर्मयोगी की सगति से अभ्युदय की प्राप्ति करें ॥४॥

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥५॥

पदार्थः—(**य**) जिस कर्मयोगी को (**शुक्र**) बलवान् (**न, अपस्पृण्वते**) नहीं प्रसन्न रखता सो नहीं (**उरुव्यचस**) महाव्याप्ति वाले कर्मयोगी को (**दुराशी:, न**) दुष्प्राप मनुष्य नही प्रसन्न रखता सो नही (**सुहार्द**) सर्वोपकारक कर्मयोगी को (**तृप्रा.**) सर्वपूर्णकाम मनुष्य (**न**) नही प्रसन्न रखते सो नहीं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे वर्णन है कि बलवान्, दुष्प्राप्य तथा पूर्णकाम आदि सब पुरुष कर्मयोगी को सदा प्रसन्न रख तदनुकूल आचरण करते है, अर्थात् अनुचर जैसा सम्बन्ध रख सदा उसकी सेवा मे तत्पर रहते हैं ताकि वह प्रसन्न होकर सभी को विद्या-दान से तृप्त करे ॥५॥

कर्मयोगी से विद्याग्रहण ॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते ।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥६॥

पदार्थ —(**यत्**) जो (**अस्मत, अन्ये, व्रा**) हमसे अन्य क्रूर सेवक (**ई**) इसको (**गोभि**) गव्य पदार्थ लिये हुए (**मृग, न**) जैसे व्याध मृग को ढूढता है इस प्रकार (**मृगयन्ते**) ढूढते हैं, और जो लोग (**धेनुभिः**) वाणियो द्वारा (**अभित्सरन्ति**) छलते हैं वह उसको प्राप्त नही हो सकते ॥६॥

भावार्थ —कर्मयोगी का क्रूरता से यत्न करने वाले लोग उससे विद्या सम्बधी लाभ नही पा सकते और जो लोग वाणीमात्र से उसका सत्कार कर उसे अच्छा मात्र कहते हैं और उसके कर्मों का अनुष्ठान नही करते वे भी उससे लाभ नही उठा पाते, ऐसे अननुष्ठानी पुरुष कभी भी अभ्युदय प्राप्त नही करते। इसलिये जिज्ञासु पुरुष को चाहिए कि सदा सरल चित्त से उसकी सेवा व आज्ञापालन करते हुए उससे विद्या पाए और उसके कर्मों का अनुष्ठान कर अभ्युदय प्राप्त करें ॥६॥

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥७॥

पदार्थः—(**सुतपाव्न**) सस्कृत पदार्थों का सेवन करने वाले (**देवस्य**) दिव्य तेजस्वी (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी को (**स्वे, क्षये**) स्वकीय यज्ञसदन मे (**त्रय , सोमाः**) तीन सोम भाग (**सुतास, सन्तु**) दान के लिये सस्कृत हो ॥७॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि तेजस्वी कर्मयोगी हेतु पुन -पुन अर्चन निमित्त तीन सोम भागो के सस्कार की व्यवस्था है अर्थात् यज्ञ मे आये कर्मयोगी को आगमन, मध्य और जाते समय सोमादि उत्तमोत्तम पदार्थ अर्पण करे जिससे वह प्रसन्न हो और विद्यादि सद्गुणो का उपदेश करके जिज्ञासुओ को अनुष्ठानी बनावे ॥७॥

शत्रुविजय के लिये सामग्री ॥

त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः ।
समाने अधि भार्मन् ॥८॥

पदार्थ —(**समाने, भार्मन्, अधि**) समान सग्राम प्राप्ति पर (**त्रयः**) तीन (**कोशासः**) अर्थसमूह (**श्चोतन्ति**) फल प्राप्त करते हैं, (**तिस्र**) तीन (**चम्व.**) सेनायें (**सुपूर्णा**) सुसज्जित फलप्रद होती हैं ॥८॥

भावार्थ.—शत्रु से सग्राम होने पर तीन प्रकार की सामग्री विजयप्राप्ति के लिए आवश्यक है अर्थात् (१) विद्याकोश—बुद्धिमान् सेनापति जो सेना को सुनियोजित ढग से सग्राम मे प्रवृत्त करे (२) बलकोश- बलवान् सैनिक, और (३) धनकोश—पर्याप्त धन; जिसके पास ये तीन कोश पूर्णत होते हैं वह अवश्य विजय पाता है, अन्य नहीं ॥८॥

वीरो के लिये बलकारक भक्ष्य पदार्थों का विधान ॥

शुचिरसि पुरुनिष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः ।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥९॥

पदार्थ —हे आह्लादजनक उत्तम रस ! तुम (**शुचि:, असि**) शुभ हो, (**पुरुनिष्ठा**) अनेक कर्मयोगियो मे रहने वाले हो, (**क्षीरै., दध्ना**) क्षीर, दधि आदि शुद्ध पदार्थों के (**मध्यतः, आशीर्त**) मध्य मे सस्कृत किये गये हो, तथा (**शूरस्य, मन्दिष्ठः**) शूरवीर कर्मयोगी के हर्ष को उत्पन्न करने वाले हो ॥९॥

भावार्थः—पुष्टिकारक व आह्लादजनक दूध, घृतादि पदार्थों की महिमा का इस मन्त्र मे वर्णन है अर्थात् कर्मयोगी शूरवीरों के अंग-प्रत्यग दूध, दधि, घृतादि शुद्ध पदार्थों से ही सुसगठित तथा सुरूपवान् होते हैं; तमोगुण उत्पादक मादक द्रव्यो से नहीं।

अतः प्रत्येक पुरुष उक्त पदार्थों का ही सेवन करे। हिंसा से प्राप्य तथा मादक द्रव्यों का नहीं ॥९॥

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः।

शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन्! (अस्मे, सुतासः) हम लोगों से निष्पादित (शुक्राः) शुद्ध (तीव्राः) पौष्टिक (इमे, ते) यह आपके (सोमाः) सौम्यरस (आशिरं, याचन्ते) आश्रय की याचना कर रहे हैं ॥१०॥

भावार्थ—याज्ञिक कहते हैं कि हे कर्मयोगी महात्माओ! हमारे द्वारा सिद्ध यह शुद्ध, पौष्टिक सोमरस आपके लिये प्रस्तुत है, आप इसका पान करें। तात्पर्य यह है कि सोमादि रस उत्तम कर्मयोगी पर ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं, असत्पुरुष पर नहीं ॥१०॥

कर्मयोगी को पुरोडाश देना ॥

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि।

रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) कर्मयोगिन्! (तान्) उन रसों और (आशिर, पुरोडाश) पय आदि से बने हुए पुरोडाशरूप (इमं, सोमं) इस शोभन भाग को (श्रीणीहि) ग्रहण करें (हि) क्योंकि (त्वा) आपको (रेवन्तं) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (शृणोमि) सुनते हैं ॥११॥

भावार्थ—[पुरो दाश्यते दीयते इति पुरोडाश =जो पुरः=पहले दाश्यते=दिया जाय उसको "पुरोडाश" कहते हैं।] याज्ञिक पुरुष कहते हैं कि हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न कर्मयोगिन्! पय आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से बने इस "पुरोडाश"=यज्ञशेष को आप ग्रहण करें। पुरोडाश यज्ञ के हवनीय पदार्थों में सर्वोत्तम बनाया जाता है, इसलिये उसके सर्वप्रथम देने का विधान है ॥११॥

"सोमरस" के गुण ॥

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।

ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२॥

पदार्थः—(पीतास) पिये हुए सोमरस (हृत्सु) उदर में (युध्यन्ते) पुष्टियुक्त होने से पाकावस्था में पुष्टि आह्लाद आदि अनेक सद्गुणों को उपजाते हैं, (सुरायाँ) सुरापान से (दुर्मदास, न) जैसे दुर्मद उत्पन्न होते हैं वैसे नहीं। (नग्ना) स्तोता (ऊध, न) आपीन=स्तनमण्डल के समान फल से भरे आपकी (जरन्ते) रसपान के लिये स्तुति करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—सोमरस के गुण बताते हुए कहा गया है कि पान किया हुआ सोमरस पुष्टि, आह्लाद तथा बुद्धिवर्द्धकता आदि उत्तम गुण उत्पादक है, सुरापान के समान दुर्मद उत्पन्न नहीं करता। अर्थात् सुरा तो बुद्धिनाशक तथा शारीरिक बलनाशक है सोमरस नहीं, इसलिये हे कर्मयोगी! स्तोता लोग इस रस के पान के लिए आपसे प्रार्थना करते हैं कि कृपा करके इसे ग्रहण करें ॥१२॥

कर्मयोगी के गुण धारण करने वाले पुरुष का तेजस्वी होना ॥

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः।

प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३॥

पदार्थः—(हरिवः) हे हरणशीलशक्ति वाले कर्मयोगिन्! (त्वावत) आप जैसा (मघोन) धनवान् (रेवत) ऐश्वर्यवान् (श्रुतस्य) लोकप्रसिद्ध अन्य मनुष्य का भी (स्तोता) स्तुति करने वाला (रेवान्, इत्) निश्चय ऐश्वर्यवान् (प्र, स्यात्, इत्) होता ही है। (ऊम्) फिर, आपका स्तोता क्यों न हो ॥१३॥

भावार्थ—हे कर्मयोगी! आपके जैसे गुणों वाला पुरुष धन, ऐश्वर्यसम्पन्न होता है जो पुरुष कर्मयोगी के उपदेशों को ग्रहण कर, तदनुकूल आचरण करे वह अवश्य ऐश्वर्यवान् तथा तेजस्वी होता है ॥१३॥

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत।

न गायत्रं गीयमानम् ॥१४॥

पदार्थ—(अगो, अरि.) प्रशस्त वाणी रहित असत्यवादी का शत्रु, कर्मयोगी (शस्यमान, उक्थं, चन) स्तुत्यर्ह शस्त्र को भी (आचिकेत) जानता है, (न) सम्प्रति (गीयमान) कहे हुए (गायत्र) स्तोत्र को भी जानता है, अतः कृतज्ञ होने से स्तोतव्य है ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि जिस की वाणी प्रशस्त नहीं अर्थात् जो अनृतवादी व अकर्मण्य है वह कर्मयोगी के सन्मुख नहीं ठहरता, क्योंकि कर्मयोगी स्तुत्यर्ह स्तोत्रों का ज्ञाता होता है वह प्रभु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करता है ॥१४॥

कर्मयोगी के प्रति जिज्ञासु की प्रार्थना ॥

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।

शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥१५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन्! आप (नः) हमें (पीयत्नवे) हिंसक के लिये (मा) मत (परा, दा) समर्पित करें—(शर्धते) जो अत्यन्त दुःखदाता है उसको मत दीजिये। (शचीव) हे शक्तिमन्! (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (शिक्ष) मेरा शासन करें ॥१५॥

भावार्थ—जिज्ञासु की यह प्रार्थना यहाँ प्रस्तुत है कि हे शासनकर्ता कर्मयोगिन्! आप मुझे उस हिंसक व क्रूरकर्मा जन के वशीभूत न करें जो अत्यन्त कष्ट देता है, कृपा कर आप मुझे अपने ही अधीन रखकर मेरा जीवन उत्तम बनाए, जिससे मैं प्रभु आज्ञा का पालन करता हुआ उत्तम कर्मों में रत रह सकूं।

स्मरण रहे कि इस मन्त्र में "शची" शब्द बुद्धि, कर्म तथा वाणी का द्योतक है और वैदिक कोश में इसके उक्त तीन ही अर्थ हैं अर्थात् "शची" शब्द यहाँ कर्मयोगी की शक्ति के लिये है, व्यक्तिविशेष नहीं ॥१५॥

कर्मयोगी की स्तुति ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।

कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन्! (तदिदर्था) आप ही जैसे समान प्रयोजन वाले, अतएव (सखाय) समान ख्याति वाले, (त्वायन्त) आपकी कामना (उ) व (कण्वा) ज्ञान के लिये परिश्रम करते हुए (वय) हम (उक्थेभि) आपके किये कर्मों के स्तोत्रों द्वारा (त्वा) आपकी (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥१६॥

भावार्थ—जिज्ञासुजन कर्मयोगी की स्तुति करते हुए इस मन्त्र में कहते हैं कि हे भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि हम आपके समान सद्गुण-सम्पन्न व समान ख्याति वाले हों, आप हमारी यह कामना सफल करें ॥१६॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥१७॥

पदार्थः—(वज्रिन्) हे वज्रशक्तिशाली! (अपस, नविष्टौ) कर्मों के नूतन यज्ञ में (अन्यत्) अन्य की (आ, पपन, न, घ, ईं) स्तुति नहीं ही करता, (तव, इत्, उ) आप ही के (स्तोम) स्तोत्र को (चिकेत) जानता हूँ ॥१७॥

भावार्थ.—जिज्ञासु की ओर से यही स्तुति है कि हे महा शक्ति वाले कर्मयोगी! नव रचनात्मक कर्मरूपी यज्ञ में मैं आप ही की स्तुति करता हूं, कृपा कर, मुझे आप अपने सदुपदेशों से कर्मण्य बनाए ताकि मैं भी कर्मशील होकर ऐश्वर्य प्राप्त करूं ॥१७॥

उद्योगी पुरुष के लिए निरालस्य से परमानन्द की प्राप्ति ॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥१८॥

पदार्थ—(देवा) दिव्यकर्मकर्ता योगीजन (सुन्वन्त) क्रियाओं में तत्पर मनुष्य को (इच्छन्ति) चाहते हैं (स्वप्नाय) आलस्य को (न) नहीं (स्पृहयन्ति) चाहते। (अतन्द्रा) निरालस होकर (प्रमाद) परमानन्द को (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥१८॥

भावार्थ—मन्त्र का तात्पर्य यह है कि उत्तमोत्तम आविष्कारों में रत कर्मयोगी निरालसी क्रियाओं में तत्पर पुरुष को विविध रचनात्मक कामों में लगाते हैं अर्थात् उद्योगी पुरुष को अपने उपदेशों से कलाकौशलादि अनेकविध कामों को सिखाते हैं। ऐसा पुरुष जो आलस्य को त्याग निरन्तर उद्योग में प्रवृत्त रहे वही सुख भोगता है, वही परमानन्द प्राप्त करता है और आलसी व्यसनों में प्रवृत्त निरन्तर अपनी अवनति करता तथा सुख, सम्पत्ति और आनन्द से सदा वंचित रहता है। अतएव ऐश्वर्य व आनन्द की कामनावाले पुरुष को निरन्तर उद्योगी होना चाहिए ॥१८॥

कर्मयोगी के लिए आह्वान ॥

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यस्मान्।

महाँ इव युवजानिः ॥१९॥

पदार्थ—हे कर्मयोगिन्! (वाजेभि) आप अपने बल सहित (अस्मान्, अभि) हमारे अभिमुख (सु) शोभन रीति से (प्र, उ) अवश्य (आयाहि) आवें, (महान्, युवजानि, इव) जैसे दीर्घावस्थापन्न पुरुष युवती स्त्री को उद्वाहित करके लज्जित होता है इस प्रकार (मा, हृणीथाः) लज्जित मत हो ॥१९॥

भावार्थ—राजलक्ष्मी सदा युवती है उसका पति वयोवृद्ध—(हत पुरुषार्थ तथा जीर्णावयवों वाला) कदापि नहीं हो सकता अथवा यह कहें कि जिस प्रकार युवती का पति वृद्ध हो तो वह पुरुष सभा समाज व सदाचार नियमों से लज्जित हो अपना सिर ऊंचा नहीं उठा सकता इसी प्रकार जो पुरुष हतोत्साह व शूरतादि गुणों से रहित है वह राज्यश्रीरूप युवती का पति बनने योग्य नहीं। इस मन्त्र में युवती स्त्री के दृष्टान्त से बताया गया है कि शूरवीर बनने हेतु सदा युवावस्थापन्न शौर्यादि भावों की आवश्यकता है ॥१९॥

मो ष्व१द्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत् ।
अश्रीर इव जामाता ॥२०॥

पदार्थ.—(अद्य) इस समय (दुर्हणावान्) शत्रुओं से न सहने योग्य हनन करने वाले आप (अस्मत्, आरे) हमारे समीप आइये, (सु) अति (सायं) विलम्ब (मा, करत्) मत करें—(अश्रीर.) निर्धन (जामाता, इव) जामाता के समान ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि हे सर्वविद्या से सम्पन्न कर्मयोगी ! आप शत्रु हनन कर्ता तथा विद्यादाता हैं, कृपा कर हमारे यज्ञ मे पधारें । आप निर्धन जामाता के तुल्य अति विलम्ब न करें ॥२०॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् ।
त्रिषु जातस्य मनांसि ॥२१॥

पदार्थः—(अस्य, वीरस्य) इस कर्मयोगी वीर की (भूरिदावरीं) बहुदानशील (सुमतिं) सुमति को (विद्म, हि) हम जानें, (त्रिषु) सत्त्वादि तीनो गुणों में (जातस्य) प्रविष्ट होने वाले वीर के (मनांसि) मन को हम जानें ॥२१॥

भावार्थ—यज्ञ मे पधारे कर्मयोगी की प्रशसा करते हुए जिज्ञासुजन कहते हैं कि विद्यादि का दान देने वाले इस बुद्धिमान् के अनुकूल हम आचरण करें जो सत्त्वादि तीनो गुणो का ज्ञाता है अर्थात् जो प्राकृतिक पदार्थों को भली-भांति जानकर नवीन आविष्कार करने वाला है । या यों कहो कि पदार्थविद्या मे भली भांति निपुण कर्मयोगी से विद्यालाभ कर ऐश्वर्यशाली हो ॥२१॥

यज्ञ मे आए हुए कर्मयोगी का सत्कार करना ॥

आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् ।
यशस्तरं शतमूतेः ॥२२॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जनो ! (कण्वमत) विद्वानो से युक्त कर्मयोगी की (तु) शीघ्र (आ, सिञ्च) अभिषेकादि से अर्चना करो । (शवसानात्) बल के आधार, (शतमूते:) अनेक प्रकार से रक्षा करने मे समर्थ कर्मयोगी से (यशस्तर) यशस्वितर अन्य को (न, घ, विद्म) हम नही जानते ॥२२॥

भावार्थ—याज्ञिक कहते है कि हे जिज्ञासुजनो ! तुम सब मिलकर विद्वानो सहित आये कर्मयोगी का अर्चन व विविध भौतिकसेवा-सत्कार करो जो विद्वान् महात्माओ के लिए आवश्यक कर्त्तव्य है । यह यशस्वी, बलशाली यश तथा अनेक प्रकार से रक्षा करने वाले योगिराज प्रसन्न हो हमे विद्यादान से कृतार्थ करें, क्योंकि इनके जैसा यशस्वी, प्रतापी तथा वेदविद्या मे निपुण अन्य कोई नहीं ॥२२॥

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय ।
भरा पिबन्नर्याय ॥२३॥

पदार्थ—(सोत) हे सोमरसोत्पादक ! (वीराय) शत्रुओ का विशेषतया नाश करने वाले, (शक्राय) समर्थ, (नर्याय) मनुष्यो के हितकारक, (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (ज्येष्ठेन) सबसे पूर्वभाग के (सोम) सोमरस को (भर) आहरण करो जिसको वह (पिबत्) पान करे—पीवे ॥२३॥

भावार्थ—सोमरस बनाने वाला "सोता" कहाता है । याज्ञिक लोग कहते हैं कि हे सोता ! शत्रु नाशक, सब कामो के पूर्ण करने मे समर्थ सर्वहितकारक कर्मयोगी के लिए सर्वोत्तम सोमरस भेंट करो जिसका पानकर वह प्रसन्न हुए सद्गुणो की शिक्षा द्वारा हमारा अभ्युदय सम्पन्न करें ॥२३॥

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः ।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥२४॥

पदार्थ—(यः) जो कर्मयोगी (अव्यथिषु) अहिंसको में (वेदिष्ठ) धनो का अत्यन्त प्रदाता है, (जरितृभ्य.) स्तुति कर्ता (स्तोतृभ्यः) कवियो के लिये (अश्वावन्तं) अश्वसहित (गोमन्तं) गोसहित (वाजं) अन्नादि समर्पित करता है ॥२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र का तात्पर्य है कि जो कर्मयोगी धनलाभ कराने वाला और जो कवि=वेदो के ज्ञाता उपासको के लिये अश्व, गौ तथा अन्नादि नाना धनो का समर्पण करता है हम उसका श्रद्धा से सत्कार करें । उससे वह प्रसन्न होकर ऐश्वर्य का हमे लाभ कराए ॥२४॥

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥२५॥

पदार्थः—(सोतारः) हे जिज्ञासा वाले मनुष्यो ! (मद्याय) अन्नपानादि सत्कार द्वारा हर्षित करने योग्य (वीराय) शत्रुहन्ता (शूराय) ओजस्वी कर्मयोगी के लिए (सोमं) सोमरस (पन्यंपन्यं, इत्) स्वादु स्वादु ही (आधावत) संस्कृत करें ॥२५॥

भावार्थ—जिज्ञासुजनो ! इस वेदविद्या ज्ञाता ओजस्वी=कर्मयोगी का सत्कार उत्तम ढग से बने सोमरस से ही करना अपेक्षित है; जिससे वह हर्षित हो कर उत्तमोत्तम उपदेशों से हमारे जीवन में पवित्रता संचारें ॥२५॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
नि यमते शतमूतिः ॥२६॥

पदार्थ—(सुत) संस्कृत पदार्थ का (पाता) पान करने वाला (वृत्रहा) शत्रुहन्ता कर्मयोगी (अस्मत्, आरे) हमसे दूर (न) न हो ; (आगमत्, घ) समीप मे ही आवे । (शतमूतिः) अनेकविध रक्षा करने वाला कर्मयोगी ही (नियमते) शासन करता है ॥२६॥

भावार्थ—जिज्ञासुजनो की प्रार्थना है कि हे प्रभो ! आप हमारे समीप आवें अर्थात् विद्या, शिक्षा व अनेक उपायो से हमारी रक्षा करें, क्योंकि रक्षा करने वाला कर्मयोगी ही शासक है, अरक्षक नही ॥२६॥

यज्ञस्थान को प्राप्त ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी का परमात्मोपदेश ॥

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥२७॥

पदार्थ—(ब्रह्मयुजा) परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाले (शग्मा) लोक के सुखजनक (हरी) ज्ञानयोगी व कर्मयोगी (इह) मेरे यज्ञ मे (सखाय) सब के मित्र (श्रुत) प्रसिद्ध (गिर्वणसं) वाणियो द्वारा भजनीय परमात्मा को (गीर्भिः) वाणियो से (आवक्षत) आवाहित करें ॥२७॥

भावार्थ—प्रभु आज्ञा पालक तथा ससार को सुख का मार्ग दिखाने वाले ज्ञानयोगी व कर्मयोगी यज्ञ मे आकर वेदवाणियों से उस प्रभु की उपासना करते हुए सब जिज्ञासुजनो को परमात्मा की आज्ञा पालन करने का उपदेश देते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस परमात्मा की उपासना व आज्ञा का पालन करो जो सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, जैसा कि "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" इत्यादि मन्त्रो में वर्णन है ॥२७॥

उपदेशानन्तर उनका सत्कार करना ॥

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥२८॥

पदार्थ—(शिप्रिन्) हे शोभन शिरस्त्राणधारी, (ऋषीव) विद्वानो से युक्त (शचीव) शक्तिसम्पन्न कर्मयोगी ! (सोमा) आपके पानार्ह रस (स्वादव) स्वादयुक्त हो गये, (आयाहि) अत उनके पानार्थ आइये और (श्रीता सोमा) वह रस परिपक्व हो गए है, (आयाहि) अतएव आइये । (न) इस समय (सधमाद) साथ-साथ भक्ष्य तथा पान क्रिया योग्य आपके (अच्छ) अभिमुख (अय) यह स्तोता स्तुति करता है ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी का सत्कार करना कथन किया है कि हे भगवन् ! आप विद्वानो सहित भोजन व उत्तमोत्तम रसो का ग्रहण करें, यह भक्ष्य तथा पानक्रियायोग्य पदार्थ परिपक्व हो गये है, अतएव आप इन्हे ग्रहण करें, यह स्तोता आपसे प्रार्थना करते हैं ॥२८॥

सत्कारानन्तर उनसे बल तथा धन हेतु प्रार्थना ॥

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥२९॥

पदार्थ.—(स्तुत) स्तोता (कारिण, वृधन्त) क्रियाशील मनुष्यो को उत्साहित करते हुए, (इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (महे, राधसे) महान् धन के लिए (नृम्णाय) बल के लिये (त्वा) आपको (वर्धन्ति) स्तुति द्वारा बढ़ाते हैं । (याः, च) और उनकी स्तुतियें आपको यशप्रकाशन द्वारा बढ़ाती हैं ॥२९॥

भावार्थ—हे कर्मयोगिन् ! स्तोता जन कर्मशील पुरुषों को उत्साहित कर आपसे धन बल के लिए प्रार्थना करते हैं कि कृपा कर आप हम पदार्थविद्या के आविष्कारो से उन्नत करें जिससे हमारा यश ससार मे विस्तृत हो और हमे उन्नति प्राप्त हो ॥२९॥

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।
सत्रा दधिरे शवांसि ॥३०॥

पदार्थ—(गिर्वाह) हे वाणियों द्वारा सेवनीय (या ते, गिर., च) जो आप की वाणी हैं (च) तथा (तुभ्य, उक्था) जो आपके लिये स्तोत्र हैं, (तानि) वे सब (सत्रा) साथ ही (शवांसि) बलो को (दधिरे) उत्पन्न करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—हे ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ! आपके स्तोत्रो तथा ऋचाओ से आपका उद्बोधन कर, आपकी प्रशसा करते है कि कृपा कर आप हमे वेदविद्या का उपदेश करें जिससे हम ऐश्वर्यशाली हो ससार मे यश प्राप्त करें ॥३०॥

अन्नादि पदार्थों के सुरक्षित रखने के विधान ॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः ।
सनादमृक्तो दयते ॥३१॥

पदार्थ—(एष, इव, इत्) यही कर्मयोगी (तुविकूर्मि) अनेक कर्मों वाला (एकः) एक ही (वज्रहस्तः) वज्रसमान हस्त वाला (सनात्, अमृक्तः)

चिरकाल पर्यन्त निर्विघ्न (वाजान्) अन्नादि पदार्थों को (वयते) सुरक्षित रखता है ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र का अर्थ है कि जिज्ञासु पुरुष कर्मयोगी की स्तुति करते हुए उसको चिरकालपर्यन्त अन्नादि खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने वाला बताते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि राजा व प्रजा अन्न का कोष चिरकाल तक सुरक्षित रखे जिससे प्रजा अन्न कष्ट से दारुण दुःख को प्राप्त न हो। क्योंकि अन्न के बिना प्राणी जीवित नहीं रह पाता अतः पुरुषों को उचित है कि अन्न कोष सदा सुरक्षित रखें ॥३१॥

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुंरुहूतः ।

महान्महीभिः शचीभिः ॥३२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) वही परमैश्वर्य्यसम्पन्न कर्मयोगी (**वृत्र**) सन्मार्ग के वारयिता को (**दक्षिणेन, हन्ता**) चातुर्य्ययुक्त कर्मों से हनन करने वाला (**पुरु**) अनेक स्थलों में (**पुरुहूत**) बहुत मनुष्यों से आहूत, (**महीभि.**) बड़ी (**शचीभि**) शक्ति से (**महान्**) पूज्य हो रहा है ॥३२॥

भावार्थ—ऐसे महान् ऐश्वर्य्यवान् कर्मयोगी को सर्वत्र सम्मान मिलता है जो सन्मार्ग से च्युत पुरुषों को दण्ड देने वाला और श्रेष्ठों की रक्षा करने वाला है, और सभी प्रजाजन उस की आज्ञा मानकर मनुष्यजन्म का फलचतुष्टय पाते हैं ॥३२॥

कर्मयोगी द्वारा बलवान् प्रजाओं की रक्षा ॥

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च ।

अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥३३॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस कर्मयोगी के आधार पर (**विश्वा , चर्षणयः**) सम्पूर्ण प्रजा हैं (**उत**) और (**च्यौत्ना, ज्रयांसि, च**) जिसमें दूसरों का अभिभव करने की शक्ति हैं, (**मघोन , अनु**) वह धनवानों के प्रति (**मन्दी, घेत्**) आनन्ददाता होता है ॥३३॥

भावार्थ—सब पर नियन्त्रण करने वाला कर्मयोगी जो अपने अतुल बल द्वारा सब प्रजा को वश में रखता है वह धनवानों को सुरक्षित रख कर उन्हे आनन्द प्रदाता होता है ॥३३॥

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे ।

वाजदावा मघोनाम् ॥३४॥

पदार्थः—(**एष, इन्द्र**) इस कर्मयोगी ने (**एतानि, विश्वा**) इस सदृश सारे कार्यों को (**चकार**) किया (**य**) जो (**मघोनां**) धनिकों को (**वाजदावा**) अन्नादि पदार्थों का दाता (**अति, शृण्वे**)अतिशय सुना जाता है ॥३४॥

भावार्थ—कर्मयोगी का मुख्य कर्तव्य सांसारिक मर्यादा बांधना है। यदि वह धनियों की रक्षा न करे तो संसार में विप्लव होने के कारण धनवान् सुरक्षित न रहे, अतः यह कहा गया है कि वह धनवानों को सुरक्षित रखने के कारण उनके अन्नदाता जैसा ही है, और ऐश्वर्यसम्पन्न धनियों की रक्षा करना प्राचीन काल से सुना जाता है ॥३४॥

कर्मयोगी अपने राष्ट्र को उत्तम मार्गों द्वारा सुसज्जित करे ॥

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति ।

इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५॥

पदार्थ—(**प्रभर्ता**) जो प्रभर्ता कर्मयोगी (**अपाकात्**) अपरिपक्वबुद्धिवाले तथा (**चित्**) अन्य से भी (**य, गव्यन्त, रथ**) प्रकाश की इच्छा करने वाले जिस रथ की (**अवति**) रक्षा करता है (**सः, हि**) वही कर्मयोगी (**इन**) प्रभु होकर (**वसु**) रत्नों का (**वोळ्हा**) धारण करने वाला होता है ॥३५॥

भावार्थ—मार्गों को इस प्रकार विस्तृत, व स्वच्छ-सुथरे तथा प्रकाशमय बनाने वाला कर्मयोगी कि जिनमें रथ तथा मनुष्यादि सब सुविधा से आ जा सकें, वही प्रभु होता और वही श्रीमान् (सब रत्नादि पदार्थों का स्वामी) होता है ॥३५॥

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।

सत्योऽविता विधन्तम् ॥३६॥

पदार्थ—(**विप्र.**) यह विद्वान् कर्मयोगी (**अर्वद्भिः, सनिता**) गतिशील पदार्थों द्वारासबका विभाग कर्ता है, (**वृत्रं, हंता**) धर्ममार्ग में विरोध करने वालों को हनन कर्ता, (**नृभिः, शूर**) सेनाओं सहित ओजस्वी शूरवीर, (**सत्य.**) सत्यतायुक्त (**विधंतं**) और जो अपने कार्य्य में लगे हैं उनका (**अविता**) रक्षक होता है ॥३६॥

भावार्थ—जो सबका प्रभु है, वह विद्वान् कर्मयोगी यानादि गतिशील पदार्थों से सबको इष्ट पदार्थों का विभाजन करता है, और जो उन्नति करने वाले वैदिक धर्म प्रवृत्त अनुष्ठानी पुरुषों का विरोध करने वाले दुष्टों को दण्ड देता है और जो अपने वर्णाश्रमोचित कर्मों में रत हैं उनकी सर्वप्रकार रक्षा करता है ॥३६॥

कर्मयोगी का प्रेम से अर्चन करना ॥

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा ।

यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥३७॥

पदार्थ—(**प्रियमेधा**) हे प्रिययज्ञ वाले पुरुषो ! (**एनं इन्द्रं**) इस पूर्वोक्त गुण वाले कर्मयोगी की (**सत्राचा, मनसा**) मन से (**यजध्व**) अर्चना करो (**य**) जो (**सोमैः**) सौम्यगुणों से (**सत्यमद्वा**) सच्चे आनन्द वाला है ॥३७॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जो जिज्ञासुजन अनेक प्रकार की विद्यावृद्धि वाले यज्ञों में रत होकर उन्नति कर रहे हैं वे मन से उस सच्चे आनन्द वाले कर्मयोगी की अर्चना करें जिससे वह उनके यज्ञों में उपस्थित विघ्नों को दूर कर उन्हे पूर्ण कराने वाला हो ॥३७॥

कर्मयोगी की स्तुति ॥

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् ।

कण्वासो गात वाजिनम् ॥३८॥

पदार्थ—(**कण्वास**) हे विद्वानो ! (**गाथश्रवस**) वर्णनीय कीर्तिसम्पन्न, (**सत्पति**) सज्जन पालक, (**श्रवस्काम**) यश आकांक्षी, (**पुरुत्मान**) अनेक रूपों वाले, (**वाजिन**) वाणियों के प्रभु कर्मयोगी की (**गात**) स्तुति करो ॥३८॥

भावार्थ—विद्वान् याज्ञिक पुरुषों को चाहिए कि वह विस्तृत कीर्तिमान्, सज्जन पालक, यशस्वी और सब विद्याओं के ज्ञाता कर्मयोगी की वन्दना करें जिससे वह प्रसन्न होकर सभी विद्वानों की कामनाए पूर्ण करे ॥३८॥

कर्मयोगी शक्तिसम्पन्न तथा शक्तियों का प्रदाता ॥

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् ।

ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९॥

पदार्थ—(**ये**) जो पुरुष (**अस्मिन्**) इस कर्मयोगी में (**काम**) कामनाएं (**अश्रियन्**) रखते हैं वे (**नृभ्य.**) उन के लिए (**शचीवान**) प्रशस्तक्रियावान् (**सखा**) हितकारक (**य.**) जो कर्मयोगी (**पदेभ्य , ऋते, चित्**) पदवियों के बिना ही (**गा**) शक्तियों को (**दात्**) देता है ॥३९॥

भावार्थ—ऐसा प्रशस्तक्रियावान् कर्मयोगी, जो सर्वहितकारक, विद्यादि शुभ गुण प्रचारक है और जिसमें सब प्रकार की शक्तियाँ हैं वह अशक्त को भी शक्ति प्रदान करता और कामना करने वाले विद्वानों के लिये पूर्णकाम होता है, इस प्रकार वे अपने मनोरथ में सुखपूर्वक सफल होते हैं ॥३९॥

कर्मयोगी राष्ट्र में उपदेशकों को बढ़ाकर उनकी रक्षा करे ॥

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् ।

मेषो भूतो३ऽभि यन्नयः ॥४०॥

पदार्थ—(**अद्रिव**) हे माननीय शक्तिसम्पन्न कर्मयोगिन् । (**इत्था**) इस उक्त प्रकार से (**धीवत**) प्रशस्त वाणी वाले (**काण्व**) विद्वान् कुल में उत्पन्न (**मेध्यातिथि**) सगतियोग्य अतिथि को (**मेष , भूत**) साक्षी के तुल्य (**अभियन्**) पार्श्ववर्ती होकर (**अय**) चलाते हो ॥४०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कर्मयोगी के कर्तव्य बताते हुए कहा गया है कि वह विद्वानों की सन्तानों को सुशिक्षित बनाए व राष्ट्र में उपदेश कराए और उनकी रक्षा करे जिससे उनका राष्ट्र सद्गुणसम्पन्न और धर्मपथगामी बने ॥४०॥

कर्मयोगी के संग्राम की विविध सामग्री ॥

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् ।

अष्टा परः सहस्रा ॥४१॥

पदार्थ—(**विभिन्दो**) हे शत्रुकुल भेदन कर्ता (**ददत्**) दाता कर्मयोगी ! आप (**अस्मै**) मेरे लिये (**अष्टा, सहस्रा, परः**) आठ सहस्र अधिक (**चत्वारि, अयुता**) चार अयुत (**शिक्षा**) देते हैं ॥४१॥

भावार्थ—सूक्त में क्षात्रधर्म प्रकरण है अत इस मन्त्र में अड़तालीस हजार योद्धाओं का वर्णन है। अर्थात् कर्मयोगी से जिज्ञासुजन यह प्रार्थना करते हैं कि आप शत्रुओं के दमनार्थ हमको उक्त योद्धा प्रदान करें जिससे शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत हो ॥४१॥

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या ।

जनित्वनाय मामहे ॥४२॥

पदार्थ—(**उत**) और (**त्ये**) वे आपकी दो शक्तियाँ जो (**सु**) सुन्दर (**पयोवृधा**) जल से बढ़ी हुई (**माकी**) मान करने वाली (**रणस्य, नप्त्या**) जिनसे संग्राम नहीं रुकता (**जनित्वनाय**) उनकी उत्पत्ति के लिये (**मामहे**) प्रार्थना करता हूँ ॥४२॥

भावार्थ—इस मन्त्र द्वारा कर्मयोगी के प्रति जिज्ञासु की प्रार्थना है कि आप कृपा कर हमें जल से बढ़ी दो शक्तियां प्रदान करें जिनसे हम शत्रुओं पर प्रहार कर सकें। अर्थात् जल द्वारा उत्पन्न किया हुआ "वरुणास्त्र" जिसकी दो शक्तियां विख्यात हैं—(एक—शत्रुपक्ष के आक्रमण को रोकने वाली "निरोधक शक्ति" और दूसरी—आक्षेप करने वाली "प्रहार शक्ति") इन दो शक्तियों से जो सम्पन्न हो वह शत्रु से कभी नहीं डरता और न ही शत्रु उसे वशीभूत कर सकता है, इसलिये यहां उक्त दो शक्तियों की प्रार्थना है ॥४२॥

अष्टम मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य तृतीयसूक्तस्य १-२४, मेध्यातिथि काण्व ऋषि ॥ देवता १-२० इन्द्र, २१-२४ पाकस्थाम्न कौरयाणस्य दानस्तुति ॥ छन्द'—१ ककुम्मती बृहती । ३, ५, ७, ६, १६ निचृद् बृहती । ८ स्वराड् बृहती । १५ २४ बृहती । १७ पथ्या बृहती । २, १०, १४ सत पङ्क्ति । ४, १२, १६, १८ निचृत् पङ्क्ति । ६ भुरिक् पङ्क्ति । २० विराट् पङ्क्ति । १३ अनुष्टुप् । ११, २१ भुरिगनुष्टुप् । २२ विराड् गायत्री । २३ निचृद् गायत्री ॥ स्वर'—१, ३, ५, ७-६, १५, १७, १६, २४ मध्यमः । २, ४, ६, १०, १२, १४, १६, १८, २०, पञ्चम । ११, १३, २१ गान्धारः । २२, २३, षड्जः ॥

गोरसों द्वारा कर्मयोगी का सत्कार करते हुए अपनी रक्षा की प्रार्थना ॥

पिबा सुतस्यं रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमंतः ।

आपिर्नों बोधि सधमाद्यों वृधे३ स्माँ अंवन्तु ते धियः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगी ! (**नः**) हमारे (**गोमत**) गोसम्बन्धी पदार्थयुक्त (**रसिनः, सुतस्य**) आस्वादयुक्त सम्यक् संस्कृत रसों को (**पिब, मत्स्व**) पियें और पीकर तृप्त हों। (**सधमाद्य**) साथ-साथ रसपान से आह्लाद उत्पादन कराने योग्य (**आपि**) हमारे सम्बन्धी आप (**न.**) हमारी (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**बोधि**) सर्वदा जागृत रहें। (**ते**) आपकी (**धिय'**) बुद्धियां (**नः**) हमको (**अवन्तु**) सुरक्षित करें ॥१॥

भावार्थ—यहां याज्ञिकों की ओर से कर्मयोगी के प्रति प्रार्थना की गई है कि हे परमैश्वर्य्यसम्पन्न कर्मयोगिन् ! आप हमारे सुसंस्कृत सिद्ध किये हुए इन दूध, दधि तथा घृतादि गोरसों को पानकर तृप्त हों और हमारे सम्बन्धी जनों की वृद्धि हेतु आप सदैव प्रयत्नशील रहें अर्थात् विद्या और ऐश्वर्य्यवृद्धि सम्बन्धी उपाय आप सदा हमें बताएं जिससे हम विद्वान् व ऐश्वर्य्यशाली हों, अथवा आपकी बुद्धि सदैव हमारे हितचिन्तन में प्रवृत्त रहे, यही हमारी प्रार्थना है ॥१॥

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वय मा नः स्तरभिमातये ।

अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥

पदार्थ—(**वय**) हम (**वाजिन**) धनवान् होकर (**ते, सुमतौ**) आपकी सुबुद्धि में (**भूयाम**) वर्तमान हों। (**अभिमातये**) अभिमानी शत्रु के लिये (**न**) हमको (**मा**) मत (**स्त**) हिंसित करें। (**चित्राभि, अभिष्टिभि**) अनेक अभिलाषाओं से (**अस्मान्, अवतात्**) हमें सुरक्षित कर (**न**) हमें (**सुम्नेषु**) सुखों में (**आ, यामय**) सम्बद्ध करें ॥२॥

भावार्थः—हे कर्मयोगी ! आप ऐसी कृपा करें कि हम ऐश्वर्य्यसम्पन्न हों। आपके सदृश उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों। अभिमानी शत्रु हमें पादाक्रान्त न करें। हे प्रभो ! हमारी इन कामनाओं को आप पूर्ण करें। जिससे हम सुखी हों सदैव परमात्मा की आज्ञा का पालन करने में प्रवृत्त रहें ॥२॥

कर्मयोगी का यशःकीर्तन ॥

इमा उं त्वा पुरूवसो गिरौं वर्धन्तु या ममं ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥३॥

पदार्थ—(**पुरुवसो**) हे अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न ! (**इमा, या, मम, गिर'**) ये जो मेरी आशीर्विषयक वाणियां हैं वे (**त्वा, वर्धन्तु**) आप को बढ़ायें। (**पावकवर्णा'**) अग्निसमान वर्ण वाले (**शुचय**) शुद्ध (**विपश्चित**) विद्वान् पुरुष (**स्तोमै**) यश द्वारा (**अभि, अनूषत**) आपकी कीर्ति कथन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य्यमंडित कर्मयोगिन् ! हम शुभ वाणियों से आपको आशीर्वाद देते हैं कि परमेश्वर आपको अधिकाधिक ऐश्वर्य्य प्रदान करे। अग्निसमान तेजस्वी सब विद्वान् यज्ञों में आपका यश गाते हैं कि परमात्मा आपको अधिक बढ़ावें और आप हमारी वृद्धि करें ॥३॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४॥

पदार्थ—(**सहस्र, ऋषिभि**) अनेक सूक्ष्मदर्शियों द्वारा (**सहस्कृत'**) बलप्राप्त (**अय**) यह कर्मयोगी (**समुद्र, इव**) समुद्र तुल्य व्यापक होकर (**पप्रथे**) प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। (**स, सत्यः, अस्य, महिमा**) वह सत्य=स्थिर इसकी महिमा और (**शव.**) बल (**विप्रराज्ये**) मेधावियों के राज्य में (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**गृणे**) स्तुति किये जाते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि ऐसा कर्मयोगी कि जो अनेक ऋषियों से धनुर्विद्या प्राप्त कर अपने बलप्रभाव से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है सारे देश में पूजा जाता है और अपने स्थिर बल व पराक्रम के कारण विद्वान् उसका सत्कार करते हैं और यज्ञों में सब याज्ञिक उस की वन्दना करते हैं ॥४॥

सब शुभ कामों में कर्मयोगी का आह्वान ॥

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥५॥

पदार्थ—(**वनिनः**) उपासक जन (**देवतातये**) यज्ञ में (**इन्द्रं, इत्**) कर्मयोगी को ही, (**प्रयति, अध्वरे**) यज्ञ प्रारम्भ होने पर (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को ही, (**समीके, इन्द्रं**) संग्राम में कर्मयोगी को ही, (**धनस्य, सातये, इन्द्रं**) धनलाभार्थ कर्मयोगी का ही (**हवामहे**) आह्वान करते हैं ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् तथा ऐश्वर्य्यशाली प्रजाजन विद्वानों से सुशोभित धर्मसमाज में, यज्ञ प्रारम्भ होने पर, संग्राम उपस्थित होने पर और धन उपार्जन वाले कर्मों को प्रारम्भ करने में कर्मयोगी का आह्वान करते हैं अर्थात् शुभ कामों को कर्मयोगी की सम्मति से प्रारम्भ करते हैं ताकि उनमें सफलता मिले ॥५॥

कर्मयोगी के बल का महत्त्व ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥६॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) कर्मयोगी (**शव, मह्ना**) बल की महिमा से (**रोदसी**) पृथिवी तथा द्युलोक को (**पप्रथत्**) व्याप्त करता है। (**इन्द्र**) कर्मयोगी (**सूर्यं, अरोचयत्**) सूर्यप्रभा को सफल करता है। (**इन्द्रे, ह**) कर्मयोगी में ही (**विश्वा, भुवनानि**) सम्पूर्ण प्राणिजात (**येमिरे**) नियमन को प्राप्त होता है। (**सुवानास**) सिद्ध किये हुए (**इन्दवः**) भोजन पानार्ह पदार्थ (**इन्द्रे**) कर्मयोगी को ही प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र द्वारा कर्मयोगी की यह महिमा बताई गई है कि वह अपनी शक्ति से पृथिवी तथा द्युलोक की दिव्य दीप्तियों से लाभ प्राप्त करता है और वही सूर्य्यप्रभा को सफल करता है अर्थात् मूर्खों में विद्वत्ता उपजा कर सूर्य्योदय होने पर स्व-स्व कार्य्य में प्रवृत्त करता है अथवा अपनी विद्या द्वारा सूर्य्यप्रभा से अनेक कार्य्य सम्पादन करके लाभ प्राप्त करता है। कर्मयोगी ही सबको नियम में रखता है और उत्तमोत्तम पदार्थों का भोक्ता कर्मयोगी ही है। अर्थात् जिस देश का नेता विद्वान् है उसी देश के मानव सूर्य्यलोक, द्युलोक तथा पृथ्वीलोक की दिव्य दीप्तियों से लाभ उठा पाते हैं, इसी लिए यहां सूर्य्यादिकों का प्रकाशक कर्मयोगी को माना है ॥६॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगिन् ! (**आयव**) मनुष्य (**पूर्वपीतये**) अग्रपान हेतु (**स्तोमेभि**) स्तोत्र से (**त्वा**) आपका (**अभि**) स्तवन करते हैं। (**समीचीनास.**) सज्जन (**ऋभवः**) सत्य से शोभा पाने वाले विद्वान् (**समस्वरन्**) आप के आह्वान का शब्द कर रहे हैं। (**पूर्व्यं**) अग्रणी (**रुद्रा.**) शत्रु को भयकारक योद्धा लोग (**गृणन्त**) आपकी स्तुति करते हैं ॥७॥

भावार्थ—याज्ञिक कहते हैं कि हे कर्मयोगी ! सत्यभाषी विद्वान् पुरुष स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं व सोमरस का अग्रपान करने को आपका आह्वान करते हैं और शत्रुओं को भयप्रद योद्धा आपकी स्तुति करते हुए सत्कारार्ह उत्तमोत्तम पदार्थ भेंटकर आपको प्रसन्न करना चाहते हैं ॥७॥

कर्मयोगी के आचरण का अनुसरण ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) कर्मयोगी (**अस्य, इत**) इस स्तोता के ही (**वृष्ण्य, शव**) वीर्य्य व बल को (**सुतस्य**) संस्कृत पदार्थ सेवन से (**विष्णवि, मदे**) शरीर व्यापक आनन्द उत्पन्न होने पर (**वावृधे**) बढ़ाता है, (**आयवः**) मनुष्य (**अस्य**) इस कर्मयोगी के (**त, महिमान**) उस महत्त्व को (**अद्य**) अब भी (**पूर्वथा**) पहले की तरह (**अनुष्टुवन्ति**) यथावत् स्तवन करते हैं ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि स्तोता व अधिकारी जिज्ञासुजनों के बल को उत्तमोत्तम पदार्थों से कर्मयोगी बढ़ाता है, क्योंकि बलसम्पन्न पुरुष ही अपनी अभीष्टपूर्ति का सामर्थ्य रखता है और मानव पहले के समान इस कर्मयोगी के धर्माचरण का अनुष्ठान करके अब भी ऐश्वर्य्यशाली हो सकते हैं। अतएव कर्मयोगी की वन्दना करते हुए पुरुष अनुष्ठानार्ह हों ॥८॥

परमात्मा से उक्त ऐश्वर्य्य तथा पराक्रम की याचना ॥

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥

पदार्थ—(**पूर्वचित्तये**) मुख्य अध्यात्मज्ञान हेतु (**तत्, ब्रह्म**) उस परमात्मज्ञान तथा (**सुवीर्यं**) उत्तम बल की (**तत्, त्वा, यामि**) आपसे याचना करता हूं (**येन**) जिस ज्ञान तथा वीर्य्य से (**हिते, धने**) धन की आवश्यकता होने पर (**यतिभ्यः**) यत्नशील कर्मयोगियों से लेकर (**भृगवे**) मायाभर्जनशील ज्ञानयोगी को देते तथा (**येन**) जिस पराक्रम से (**प्रस्कण्व**) प्रकृष्ट ज्ञान वाले की (**आविथ**) रक्षा करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिज्ञासु प्रार्थना करता है कि हे कर्मयोगी ! आप हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे हम परमात्मासम्बन्धी ज्ञान वाले एवं ऐश्वर्य्यशाली हों। हे प्रभो ! आप अधिकारियों की याचना पूर्ण करते हैं। हे पराक्रम-सम्पन्न ! आप कृपा कर हमें भी पराक्रमी बनाएं जिससे हम अपने कार्य्य विधिवत् करते हुए ज्ञान से परमात्मा की निकटता पा लें ॥९॥

अन्य प्रकार से कर्मयोगी की महिमा का वर्णन ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे कर्मयोगिन् ! (**येन**) जिस बल द्वारा (**मही, अप**) महा जलो को (**समुद्र, असृज.**) समुद्र के प्रति पहुँचाते हैं—(**तत्, ते**) ऐसा आपका (**वृष्णि, शव·**) व्यापक बल है । (**स, अस्य, महिमा**) वह इसकी महिमा (**सद्य**) शीघ्र (**न, सनशे**) नहीं मिल सकती । (**यं**) जिस महिमा का (**क्षोणी**) पृथ्वी (**अनुचक्रदे**) अनुसरण करती है ॥१०॥

भावार्थः—कर्मयोगी की महिमा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि वह कृत्रिम नदियों से मरु स्थलों में भी जल पहुँचाकर पृथ्वी को उपजाऊ बनाता है और प्रजा को सुख देता तथा धर्मपथयुक्त व अभ्युदयकारक होने से कर्मयोगी के ही आचरणो का पृथ्वी-भर के सब मनुष्य अनुकरण करते है ॥१०॥

कर्मयोगी से धन की याचना करना ॥

शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**यत्, रयिं**) जिस धन की (**सुवीर्यं, त्वा**) सुन्दर वीर्य वाले आपसे (**यामि**) याचना करता हूँ (**न, शग्धि**) वह हमको दीजिये । (**सिषासते**) जो आपके अनुकूल चलना चाहे उसे (**वाजाय**) अन्न (**प्रथम**) सबसे पहले (**शग्धि**) दीजिये । (**पूर्व्य**) हे अग्रणी ! (**स्तोमाय**) स्तुतिकर्त्ता को (**शग्धि**) दीजिये ॥११॥

भावार्थ —सब धनो के स्वामी हे कर्मयोगी ! हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आपसे याचना करते हैं कि आप हमे सब प्रकार से धनधान्य दे सतुष्ट करें, क्योंकि जो आपके अनुकूल है उसे सबसे प्रथम अन्नादि धन दीजिए अर्थात् कर्मयोगी का कर्त्तव्य है कि वह वैदिक मार्ग पर चलने व चलाने वाली प्रजा को धनादि सभी आवश्यक पदार्थ देकर सर्वदा प्रसन्न रखे जिससे उसके किसी राष्ट्रीय अग मे कमी न आए ॥११॥

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगी ! (**न**) हमारे सम्बन्धी (**धिय·, सिषासत.**) कर्मों मे लगे रहने वाले (**अस्य**) इस यजमान को वह धन (**शग्धि**) दीजिये (**यत्, ह**) जिस धन से (**पौर, आविथ**) पुरवासी जनसमुदाय की रक्षा करते हैं । (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**यथा**) जैसे (**रुशम**) ऐश्वर्य से दीप्तिमान्, (**श्यावकं**) दारिद्र्य से मलिन, (**कृप**) कार्यों मे समर्थ (**स्वर्णर**) सुखी नर की (**प्राव**) रक्षा की वैसे ही (**शग्धि**) मुझको भी समर्थ कीजिये ॥१२॥

भावार्थ —याज्ञिक लोगो से इस मन्त्र मे प्रार्थना है कि हे कर्मयोगी ! आप हमारे याज्ञिक कर्मों मे प्रवृत्त यजमान को धन से सम्पन्न करें । हे भगवन् ! जैसे कर्म प्रवृत्त दरिद्र को धन दे आप सुखी करते हो वैसे ही आप हम लोगो सहित यजमान को भी समर्थ करे जिससे वह उत्साहित होकर यज्ञ सम्बन्धी कर्म करे-कराए ॥१२॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१३॥

पदार्थ - (**अतसीना**) सतत स्तुतियो का (**तुर**) करने वाला (**नव्य**) नवीन शिक्षित (**मर्त्य**) मनुष्य (**कत्, गृणीत**) कहकर कौन समाप्त कर सकता है ! (**अस्य**) इस कर्मयोगी की (**इन्द्रिय, महिमान**) राज्य महिमा का (**स्व, गृणन्त**) सुख से चिरकाल तक बखान करते हुए विद्वानो ने भी (**नहि, नु**) नही ही (**आनशु**) पार पाया है ॥१३॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि बड़े-बड़े विद्वानो ने भी, जो निरन्तर सूक्ष्म पदार्थों के जानने मे लगे रहते है, कर्मयोगी की महिमा का पार नही पाया, तब नवशिक्षित मनुष्य उसकी महिमा का क्या वर्णन कर सकता है ! क्योंकि कर्मयोगी की अनन्त कलायें है जिनको इयत्ता विद्वान् पुरुष भी अनन्तकाल तक नही जान सकता ॥१३॥

अन्य प्रकार से प्रार्थना कथन है ॥

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥१४॥

पदार्थ —(**कत्, उ, स्तुवन्त·**) कौन स्तोता (**देवता**) देव आपके (**ऋतयन्त**) यज्ञ करने की इच्छा कर सके ! (**क**) कौन (**विप्र**) विद्वान् (**ऋषि**) सूक्ष्मद्रष्टा (**ओहते**) आपको वहन कर सकता है ! (**मघवन्, इन्द्र**) हे धनवान् इन्द्र ! (**सुन्वत**) आपका अर्चन करने वाले पुरुष के (**हव**) हव्य पदार्थों को (**कदा**) कब स्वीकार करेंगे ? (**स्तुवतः**) स्तुति करने वाले के गृह को (**कत्, उ**) कब (**आगम**) आवेगे ? ॥१४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे कहा गया है कि कर्मयोगी से प्रार्थना, उसके यश, स्तुति व आह्वान करने का सभी पुरुष उत्कण्ठित रहते है तथा यह चाहते है कि यह कर्मयोगी कब हमारी प्रार्थना को किस प्रकार स्वीकारे जिससे हम भी उसकी कृपा से अभ्युदयसम्पन्न होकर इष्ट पदार्थों को भोगें । हे कर्मयोगी ! आप याज्ञिक पुरुषों के हव्य पदार्थों को कब स्वीकार करेंगे । तात्पर्य यह है कि यज्ञ का फल जो ऐश्वर्यलाभ करना है वह आप हम शीघ्र प्रदान कराए और स्तोता का गृह पवित्र करें अर्थात् उसके गृह मे सदा कुशल क्षेम रहे जिससे यज्ञसम्बन्धी कामो मे विघ्न न हो, यही प्रार्थना है ॥१४॥

यदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५॥

पदार्थ —(**त्ये, मधुमत्तमा, गिर.**) ये आपके लिए मधुर वाणियाँ और (**स्तोमासः**) स्तोत्र (**उ, उदीरते**) निकल रहे हैं, जैसे (**सत्राजित.**) साथ जीतने वाले (**धनसा**) धन चाहने वाले (**अक्षितोतय.**) दृढ़रक्षा वाले (**वाजयन्त**) बल चाहने वाले (**रथा, इव**) रथ निकलते हैं ॥१५॥

भावार्थः—जैसे सग्राम विजयी, धन की इच्छावाले, दृढ़ रक्षा वाले, बल की चाहना वाले रथ समान उद्देश्य को लेकर शीघ्रता से निकलते हैं, उसी प्रकार मधुर वाणियो द्वारा स्तोता लोग समान उद्देश्य से कर्मयोगी स्तुति का गायन कर रहे हैं । हे प्रभो ! आप उन्हें ऐश्वर्यसम्पन्न करें ॥१५॥

कर्मयोगी के प्रति राष्ट्ररक्षा का उपाय कथन हैं ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥

पदार्थः—(**कण्वा, इव**) विद्वानो के तुल्य (**भृगव**) शूरवीर भी (**सूर्या इव**) सूर्यकिरण के समान (**धीत, विश्व, इत्**) जाने हुए ससार मे (**आनशुः**) व्याप्त हो गए । (**आयव**) प्रजाजन (**प्रियमेधास**) अनुकूल बुद्धि वाले (**इन्द्र**) कर्मयोगी को (**स्तोमेभि**) यज्ञो द्वारा (**महयन्त**) अर्चित करते हुए (**अस्वरन्**) कीर्तिगान करते हैं ॥१६॥

भावार्थ —कर्मयोगी की समग्र राष्ट्रभूमि में विद्वान् उपदेशक व शूरवीर छाए रहते है जिससे उसका राष्ट्र ज्ञान से पूर्ण हो तथा सुरक्षित, अन्न-धन से भरपूर होकर सर्वदा उसकी प्रशसा करता है ॥१६॥

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥१७॥

पदार्थ —(**वृत्रहन्तम**) हे अतिशय शत्रुहनन कर्त्ता (**इन्द्र**) कर्मयोगी ! (**हरी**) अश्वो को (**युक्ष्व, हि**) रथ मे जोड़ो । (**परावत**) दूरदेश से, (**अर्वाचीन**) हमारे अभिमुख, (**मघवन**) हे धनवन् ! (**उग्र**) भीम आप (**ऋष्वेभि**) विद्वानो के साथ (**सोमपीतये**) सोमपान के लिये (**आगहि**) आवें ॥१७॥

भावार्थः—याज्ञिकों की ओर से यह प्रार्थना की गई है कि हे शत्रुओं का हनन करने वाले, हे ऐश्वर्यशाली तथा हे भीमकर्मा कर्मयोगी ! आप अपने रथ पर सवार हो, विद्वानो सहित सोमपान हेतु हमारे स्थान को प्राप्त हो ताकि हम आपका सत्कार कर स्वकर्त्तव्य पालन करे ॥१७॥

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥१८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगी ! (**इमे, हि, ते, कारव·**) यह पुरःस्थ आपक शिल्पी, (**विप्रास**) जो स्वकार्य मे कुशल हैं वे, (**मेधसातये**) यज्ञभागी होने हेतु (**धिया**) अपनी स्तुति वाग्द्वारा (**वावशु**) आपकी अत्यन्त कामना करते हैं । (**मघवन्**) हे धनवन् ! (**गिर्वण, स, त्व**) प्रशसनीय वह आप (**वेन, न**) जाताभिलाष पुरुष के सदृश (**न, हव**) हमारी प्रार्थना को (**शृणुधि**) सुन ॥१८॥

भावार्थ —याज्ञिक पुरुषो की ओर से कहा गया है कि हे ऐश्वर्यशाली कर्मयोगी ! शिल्पी जो विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रादि बनाने व अन्य कार्यों के निर्माण मे कुशल हैं, वे यज्ञ मे भाग लेने हेतु आपकी कामना करते हैं अर्थात् अस्त्र-शस्त्र का निर्माण करके युद्धविशारद होना भी यज्ञ ही है, अत. इन साहाय्याभिलाषी पुरुषो को यज्ञ मे भाग देना कि युद्ध सामग्री के निर्माणपूर्वक यह यज्ञ सर्वाङ्गपूर्ण हो ॥१८॥

शस्त्रों के निर्माण का फल ॥

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१९॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगी ! (**बृहतीभ्यः, धनुभ्यः**) बड़े-बड़े शस्त्रों से (**वृत्र**) दुष्ट दस्यु को (**निरस्फुरः**) आपने नष्ट किया । (**अर्बुदस्य**) मेघ के तुल्य (**मायिन**) मायावाले (**मृगयस्य**) हिंसक को भी (**नि.**) नष्ट किया तथा (**पर्वतस्य**) पर्वत के ऊपर के (**गाः**) पृथ्वी प्रदेशों को (**निराज·**) निकाल दिया ॥१९॥

भावार्थ.—याज्ञिक कहते हैं कि हे कर्मयोगी ! आपने श्रेष्ठतम शस्त्रास्त्रों से ही बड़-बड़े दस्युओं को अपने वश मे किया जो अराजकता फैलाते, श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करते तथा याज्ञिक लोगो के यज्ञ मे विघ्न डालते थे । इन्हीं शस्त्रों के प्रभाव से आपने बड़े-बड़े हिंसक पशुओं का हनन कर प्रजा को सुरक्षित किया और इन्हीं के प्रयोग से पर्वतीय प्रदेशो को विजय किया ।

अतएव प्रत्येक पुरुष को शस्त्रास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर युद्धविद्या में निपुण होना चाहिए ॥१९॥

कर्मयोगी के पुरुषार्थ का फल ॥

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।

निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२०॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगी ! (अन्तरिक्षात्) जब आपने हृदयाकाश से (महां, अहिं) बड़े भारी व्यापक अज्ञानान्धकार को (निरधम) निकाल दिया (तत्, पौंस्य, कृषे) वह महापुरुषार्थ किया तब (अग्नयः) अग्नि (नीरुरुचुः) निरन्तर रुचिकारक लगने लगीं (उ) तथा (सूर्य) सूर्य (नि) निरन्तर रुचिवर्धक हो गये । (इन्द्रिय , रस , सोम) आपका हेयभाग सोमरस भी (निः) निःशेषेण रोचक हो गया ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे स्पष्ट किया गया है कि जिस पुरुष का अज्ञान दूर हो जाता है वह महापुरुषार्थी कहलाता है और वही सूर्यादि के प्रकाश, अग्न्याधान व सोमादि रसों का उपयोग कर सकता है । उसी को यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रुचिकर व आनन्दप्रद लगता है, अथवा यह भी कहा जा सकता है कि जो आनन्दमय ब्रह्म सर्वरसधाम है उसकी प्रतीति अज्ञानी को नहीं होती किन्तु ज्ञानी पुरुष ही उसका अनुभव करता है । इसी अभिप्राय से यहा ज्ञानी पुरुष के लिये सम्पूर्ण पदार्थों के रोचक होने से आनन्दप्राप्ति बताई गई है ॥२०॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।

विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥२१॥

पदार्थः—(पाकस्थामा) परिपक्व बलवान् (कौरयाणः) पृथ्वी भर मे गति वाले (इन्द्र) कर्मयोगी और (मरुतः) विद्वानो ने (य, मे, दुः) जिस पदार्थ को मुझे दिया वह (विश्वेषां, त्मना, शोभिष्ठ) सब पदार्थों मे स्वरूप ही से शोभायमान है, जैसे (दिवि) द्युलोक मे (धावमान) दौड़ते हुए (उपेव) सूर्य सुशोभित है ॥२१॥

भावार्थ—पूर्ण बलशाली व तेजस्वी, जिसने अपने बल से पृथ्वी पर विजय पाई है, ऐसा कर्मयोगी तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक वेद वेदागो का अध्ययन कर जो पूर्ण विद्वान् है, जिसका आत्मिक बल भी महान् है, ऐसा विद्वान् जन जिन पदार्थों का सशोधन करे वे पदार्थ स्वभाव से ही स्वच्छ एव सात्त्विक होते है और ऐसे पदार्थों को ही उपयोग मे लाना चाहिए ॥२१॥

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।

अदाद्रायो विबोधनम् ॥२२॥

पदार्थ—(पाकस्थामा) पूर्ण बलवान् कर्मयोगी ने (सुधुर) सुन्दर स्कन्ध वाला (कक्ष्यप्रां) कक्षा मे रहने वाली रज्जु का पूरक= स्थूल (रायः, विबोधनं) धनों का उत्पादनहेतु (रोहित) रोहित वर्णवाला अश्व (मे) मुझ विद्वान् को (अदात्) दिया ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी ही शीघ्र गतिशील अश्वादि पदार्थों को प्राप्त करके विद्वानो को अर्पित करते हैं, जिससे वे सुखी जीवन यापन करे, ["अश्व" शब्द यहां वाहनो का उपलक्षण है] ॥२२॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।

अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥२३॥

पदार्थ—(यस्मै) जिस मुझे (अन्ये, दश, वह्नय) अन्य दश वहनकर्ता इन्द्रिय नामक (वय) जैसे सूर्यकिरण (तुग्र्य) जल परमाणुओं को (अस्त, न) सूर्य की ओर वहन करती हैं इसी प्रकार (धुर) शरीररूप धुर को (प्रतिवहन्ति) गन्तव्य देश के प्रति वहन करती हैं ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे इन्द्रिय एव इन्द्रवृत्तियो का वर्णन किया गया है और कहा गया है कि जिस पुरुष के इन्द्रिय सस्कृत हैं उसकी इन्द्रियवृत्तिया भी साध्वी व सस्कृत होती हैं । इसलिये मनुष्य को अपेक्षित है कि वह मनस्वी बने और इन्द्रियवृत्तियो को सदा अपने अधीन रखे ॥२३॥

पिता से ब्रह्मविद्या प्राप्त किये हुए कर्मयोगी का स्तवन ॥

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।

तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४॥

पदार्थः—जो कर्मयोगी (पितु आत्मा, तनू) पिता ही की आत्मा तथा शरीर है, (वासः) वस्त्र के समान अभिरक्षक तथा (ओजोदाः) बल का प्रदाता है, (अभ्यञ्जनं) उस सब ओर से आत्मा के पोषक, (तुरीय, इत्) शत्रुओं का हनन करने वाले (रोहितस्य, दातार) रोहिताश्व के देने वाले, (भोज) उत्कृष्ट पदार्थों के भोक्ता, (पाकस्थामान) प्रचुर बलवाले कर्मयोगी की मैं (अब्रवम्) स्तुति करता हूँ ॥२४॥

भावार्थः—जिस कर्मयोगी ने पिता से ब्रह्मविद्या व कर्मयोगविद्या का अध्ययन किया है वह ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ होता है, अथवा वह पिता के शरीर का ही अंग है । धर्मशास्त्र में भी कहा गया है कि "आत्मा वै जायते पुत्रः"=अपना आत्मा ही पुत्ररूप से उत्पन्न होता है । इस वाक्य के अनुसार पुत्र पिता का आत्मारूप प्रतिनिधि है । इस प्रकार ब्रह्मविद्याविशिष्ट ऐसे स्नातक के महत्त्व का यहां वर्णन है जिसने अपने पिता के गुरुकुल मे ही ब्रह्मविद्या अर्जित की है ॥२४॥

अष्टम मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकविंशत्यृचस्य चतुर्थसूक्तस्य १—२१ देवातिथि काण्व ऋषि ॥ देवताः—१—१४ इन्द्र । १५—१८ इन्द्र पूषा वा । १९—२१ कुरुङ्गस्य दानस्तुति ॥ छन्दः—१, १३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २, ४, ६, ८, १२, १४, १८ निचृत् पङ्क्तिः । १० सत पङ्क्तिः । १६, २० विराट् पङ्क्ति । ३, ११, १५, निचृद् बृहती । ५, ९ बृहती पथ्या । १७, १९ विराट् बृहती । २१ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—१, ७, १३ गान्धारः । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २० पञ्चम । ३, ५, ९, ११, १५, १७, १९, मध्यमः २१ ऋषभ ॥

कर्मयोगी को उपदेशार्थ बुलाकर उसका सत्कार करना ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) यद्यपि (प्राक) प्राची दिशा के निवासी, (अपाक्) पश्चिम दिशा में रहने वाले, (उदक्) उदीची दिशा मे निवास करने वाले (वा) अथवा (न्यक्) अधोदेश मे रहने वाले (नृभि) मनुष्यो द्वारा (हूयसे) अपने कार्य हेतु आप बुलाये जाते हैं, अत , (सिम) हे श्रेष्ठ ! (पुरु , नृषूत) अनेकबार मनुष्यो से प्रेरित (असि) होते हैं, तथापि (प्रशर्ध) शत्रुओ के पराभविता (आनवे, तुर्वशे) जो मनुष्यान्तर्विशिष्ट मनुष्य है, उसके पास (असि) विशेषरूपेण विद्यमान होते है ॥१॥

भावार्थ—याज्ञिको की ओर से कहा गया है कि इन्द्र= हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! आप चाहे प्राच्यादि किसी दिशा या स्थान मे क्यो न हो हम स्वकार्यार्थ आपको बुलाते हैं और आप हम लोगो से प्रेरित हुए हमारे कार्य के लिए आते है , अतएव कृपा कर शीघ्र आए और हमारी मन कामनाओ की पूर्ति करे ॥१॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगी ! (यद्वा) यद्यपि (रुमे) शब्दमात्र करने वाले तथा (रुशमे) तेजस्वी (श्यावके) तमोगुण युक्त तथा (कृपे) समर्थ पुरुषो मे (सचा) साथ ही (मादयसे) हर्ष उत्पन्न करते है तथापि (स्तोमवाहसः) आपके भाग को लिए हुए (कण्वास) विद्वान जन (ब्रह्मभि) स्तुति द्वारा (त्वा) आपका (आयच्छन्ति) बुलाते हैं , (इन्द्र) हे इन्द्र ! (आगहि) आइये ॥२॥

भावार्थ—हे सुसम्पन्न कर्मयोगी ! भीरु, तेजस्वी, तमोगुणी या सम्पदावान् सभी प्रकार के पुरुष आप को बुलाकर सत्कार करते हैं और आप सभी को हर्षित करते हैं । अतएव हे भगवन् ! आपके सत्कारार्ह पदार्थ लिये हुए विद्वज्जन स्तुतियो से आपको बुला रहे हैं, आप कृपाकर शीघ्र पधारें ॥२॥

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जिस तरह (गौर) गौरमृग (तृष्यन्) तृषार्त हुआ (अपा, कृत) जल से पूर्ण (इरिण) सरोवर की ओर (अवैति) जाता है , उसी प्रकार, (न आपित्वे प्रपित्वे) हमारे साथ सम्बन्ध होने पर (तूय, आगहि) शीघ्र आइये और (कण्वेषु) विद्वानों के मध्य आकर (सचा) साथ-साथ (सु) भली प्रकार (पिब) अपने भाग का पान कीजिये ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् एव ऐश्वर्यदाता कर्मयोगी ! जिस प्रकार प्यासा मृग शीघ्रता से जलाशय को पाता है उसी प्रकार उत्कट इच्छा से आप हमे प्राप्त हों और विद्वानो के मध्य उत्तमोत्तम पदार्थ व सोमरस सेवन करें ॥३॥

सत्कारानन्तर कर्मयोगी की स्तुति ॥

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥४॥

पदार्थ—(मघवन्, इन्द्र) हे धनवन् इन्द्र ! (सुन्वते) जिज्ञासु को (राधोदेयाय) धन देने हेतु (इन्दव) ये रस (त्वा) आपको (मन्दन्तु) हर्षित करें जो आपने (आमुष्य) शत्रुओं से छीन (चमू) सेनाओं के मध्य मे (सुत, सोम) सिद्ध किये हुए अपने भाग को (अपिब) पिया (तत्) जिससे (ज्येष्ठ) सर्वाधिक (सहः) सामर्थ्य के (दधिषे) धारयिता कहे जाते हो ॥४॥

भावार्थ—हे कर्मयोगी ! ये रस आपको प्रसन्न करने हेतु हम ने सिद्ध कर आपको अर्पित किये हैं । आप इन्हें पान कर प्रसन्न हो और हम जिज्ञासुजनों को धनादि ऐश्वर्य प्रदान करें । हे युद्धविद्या कुशल शूरवीर ! आप शत्रुविजयी हो उनके पदार्थों को जीतकर अपना भाग ग्रहण करते हो , इसीलिये आपको सब सामर्थ्ययुक्त कहते हैं ॥४॥

प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली ! आप (सहसा) अपने बल द्वारा (सहः) शत्रुबल को (प्रचक्रे) दबाते हैं ; (ओजसा) स्व पराक्रम से (मन्युम्) शत्रुक्रोध को (बभञ्ज) भञ्जन करते हैं । (यहो) हे महत्त्वविशिष्ट ! (ते) आपके (विश्वे) सब (पृतनायवः) युद्ध चाहने वाले शत्रु (वृक्षा इव) वृक्ष के समान (नियेमिरे) निश्चेष्ट हो जाते हैं ।५।

भावार्थः—यहां जिज्ञासुजनों की ओर से कर्मयोगी की स्तुति का वर्णन प्रस्तुत है कि हे युद्धविशारद कर्मयोगी ! आपके समक्ष शत्रुबल पाषाण जैसे निश्चेष्ट हो जाता है अर्थात् शत्रु का बल अपूर्ण होने के कारण वह आपके समक्ष नहीं ठहरता; आप बल में पूर्ण हैं अतः शत्रु का बल व क्रोध सदा चूर्ण होता रहता है ॥५॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥६॥

पदार्थः—(यवियुधा) वह पुरुष विद्युत् तुल्य युद्ध करने वाला होकर (सहस्रेणेव) सहस्रों बलों से (सचते) सगत होता है (यः) जो (ते) आपको (उपस्तुतिम्) अल्प स्तुति को भी (आनट्) करता है, और जो (नम उक्तिभिः) नम्र वचनों से (दाश्नोति) आपका भाग देता है वह (सुवीर्ये) सुन्दर पराक्रम वाले आपकी अध्यक्षता में (पुत्रं) अपनी सन्तान को (प्रावर्गं) अतिशय अनिवार्य (कृणुते) बनाता है ॥६॥

भावार्थ—हे युद्धविद्याविशारद कर्मयोगी ! आपकी स्तुति से आप से शिक्षा प्राप्त, पुरुष अति तीव्र युद्ध करने वाला तथा सहस्रों योद्धाओं से युक्त होता है और जो नम्रता के साथ आपका सत्कार करता है वह स्वयं युद्धविशारद होता व कर्मयोगी की अध्यक्षता में रहने के कारण उसकी सन्तान भी संग्राम में कुशल होती है अर्थात् उसे कोई युद्ध में हरा नहीं सकता ॥६॥

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥७॥

पदार्थ—(उग्रस्य) शत्रुओं को भय देने वाले (तव) आप कर्मयोगी के (सख्ये) मैत्रीभाव होने पर (मा, भेम) हम भयभीत नहीं होते और (मा, श्रमिष्म) न श्रान्त होते हैं (वृष्णः) कामनाओं की वर्षा करने वाले (ते) आपका (महत्, कृतं) महान् कर्म (अभिचक्ष्यं) प्रशंसनीय है । हे इन्द्र ! (यदुं) अपनी सन्तान को (तुर्वशं) शत्रुहिंसनशील (पश्येम) आपकी कृपा से हम देखें ॥७॥

भावार्थ—शत्रुओं को वश में करने में समर्थ हे कर्मयोगी ! आपसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने पर न हम शत्रुओं से डरते हैं और निर्भयता सहित शत्रुओं पर विजय पाते हैं । हमारी कामनाएं पूर्ण करने वाले ! आपकी शिक्षा से हम उक्त महान् कर्म करने में समर्थ हैं । अतः आपका यह शिक्षणरूप कर्म प्रशंसा योग्य है । हे शत्रु नाशक कर्मयोगी ! आपकी कृपा से यही भावना हमारी सन्तति में भी आए अर्थात् उसे भी शत्रु पर विजय प्राप्त करता हुआ हम देखें—हमारी यह कामना पूर्ण करें ॥७॥

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥८॥

पदार्थः—(वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (सव्याम्, स्फिग्यम्, अनु) बायें अग से ही (वावसे) सबको अभिभूत किये हैं (अस्य) इस कर्मयोगी के (दानः) भाग का दाता सेवक (न, रोषति) कभी इससे रुष्ट नहीं होता (सारघेण) सरघा=मधुमक्षिका से किये हुए (मध्वा) मधु से (सम्पृक्ताः) सम्मिश्रित (धेनवः) गव्य पदार्थ आपके लिये विद्यमान हैं आप (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आइये (द्रव) द्रुतगति से आइये (पिब) सिद्धरस को पीजिये ॥८॥

भावार्थ—हे सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले कर्मयोगी ! आप वाम अग से ही सभी शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ हैं । प्रसन्नतापूर्वक आप का भाग देने वाले का आप सदा कल्याण करते हैं और अनाज्ञाकारी का दमन । हे भगवन् ! यह मधु और दुग्धादि पदार्थों से मिश्रित उत्तम से उत्तम खाद्य पदार्थ आपके लिये सिद्ध किये हुए रखे हैं, आप शीघ्र पधारें और ग्रहण करें ॥८॥

कर्मयोगी से मित्रता करने वाले को फल ॥

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥९॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगी ! (ते सखा) आपका मित्र (अश्वी) अश्वयुक्त (रथी) रथयुक्त (सुरूप, इत्) सुरूपवान् (गोमान्, इत्) गवादियुक्त होकर (श्वात्रभाजा) धनों सहित (वयसा) अन्न से (सदा) सदैव (सचते) सगत होता है, (चन्द्रः) चन्द्रमा के समान द्युतिमान् होकर (सभां) सभा को (उपयाति) जाता है ॥९॥

भावार्थः—कर्मयोगी को प्रसन्न रखकर जो उससे मैत्री करते हैं वे अश्व, रथ तथा गौ आदि पशु और अन्नादि धनों से युक्त हो सदा आनन्द पाते हैं, वे दीर्घायु होते हैं और स्वरूपवान् व प्रतिष्ठित हुए सभा-समाज में मान पाते हैं । अतः प्रतिष्ठाभिलाषी कोऐ से गुणसम्पन्न कर्मयोगी से मित्रता कर सदा लाभ प्राप्त करना चाहिये ॥९॥

ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥

पदार्थ—(तृष्यन्, ऋश्यः) प्यासा ऋश्य [मृगविशेष] (अवपानम्, न) जैसे जलस्थान के निकट जाता है, वैसे ही आप मेरे यज्ञ में (आगहि) आएं । (वशान्, अनु) अपनी-अपनी इच्छानुकूल (सोमम्, पिब) सोमरस पान करें । (मघवन्) हे ऐश्वर्य्यशाली ! (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (निमेघमानः) प्रजाओं में आनन्द की वर्षा करते हुए (ओजिष्ठम्) अत्यन्त ओज से युक्त (सहः) बल को (दधिषे) आप धारण करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—याज्ञिक पुरुषों की ओर से इस मन्त्र में कथन है कि हे कर्मयोगी ! जैसे पिपासातुर मृग अति शीघ्रता से जलाशय की ओर जाता है, वैसे ही शीघ्र आप हमारे यज्ञस्थान को प्राप्त होकर सोमरस पान करें और अपने सदुपदेश से आनन्द की वर्षा करें ! हे महाबलशाली ! कर्मयोगी ! आप हमें भी बल दीजिये जिससे अपने कार्यों को विधिवत् करते हुए हम सदा शत्रुओं का दमन करें ॥१०॥

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे यज्ञपते ! (त्वम्, द्रावय) आप इन्द्र भाग को सिद्ध करें, (इन्द्र) कर्मयोगी (सोम, पिपासति) सोमरस सर्वदा पीने के इच्छुक हैं । (नूनम्) सम्भावना करते हैं कि (वृषणा) बलवान् (हरी) अश्वों को (उपयुयुजे) रथ में नियुक्त किया है (वृत्रहा) शत्रुओं का नाशक वह (आजगाम, च) आ ही गया है ॥११॥

भावार्थ—हे यजमान ! पूज्य कर्मयोगी सोमरस को पीने के लिए शीघ्र ही अश्व रथ में आरूढ होकर यज्ञस्थान को आ रहे हैं, अतएव उनके आने के पूर्व ही सोमरस सिद्ध कर तैयार रखना चाहिए ॥११॥

कर्मयोगी का सोमरस पान करना ॥

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२॥

पदार्थ—हे कर्मयोगी ! (यत्र) जिस यजमान में (सोमस्य, तृम्पसि) सोमपान में तृप्त होते हैं (सः, दाशुरिः, जनः) वह सेवकजन (स्वयम्, चित्, मन्यते) स्वयं ही जागरूक रहता है । (ते) आपका (इदम्, युज्यम्, अन्नम्) यह योग्य अन्न (समुक्षितम्) सिद्ध हो गया, (तस्य) उसका, (इहि) आइये, (प्रद्रव) शीघ्र आइये, (पिब) पान कीजिये ॥१२॥

भावार्थ—हे कर्मयोगी ! यजमान की ओर से कुशल सेवकों द्वारा अन्न-पान भली प्रकार सिद्ध है, आप इसे ग्रहण कीजिये ॥१२॥

रक्षार्थ आये हुए कर्मयोगी की स्तुति ॥

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३॥

पदार्थ—(अध्वर्यवः) हे याज्ञिको ! (रथेष्ठाय, इन्द्राय) रथ में बैठे कर्मयोगी के लिए (सोम) सोमरस को (सोतन) अभिषुत करो । (ब्रध्नस्य) महान् इन्द्र के (अद्रयः) शस्त्र (दाश्वध्वरं) यजमान के यज्ञ को (सुन्वन्तः) निष्पादित करते हुए (विचक्षते) विशेष रूप से शोभित हो रहे हैं ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में यजमान की ओर से कहा गया है कि हे याज्ञिक जनो ! रथ में बैठे कर्मयोगी को सोमरस अर्पण करो, कर्मयोगी द्वारा दिये गए अस्त्र-शस्त्रों से यज्ञस्थान विशेषरूप से सुशोभित है, हमें चाहिए कि हम यज्ञ की रक्षार्थ आये कर्मयोगी का विशेष सत्कार करें ॥१३॥

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥१४॥

पदार्थ—(ब्रध्नम्, उप) अन्तरिक्षमार्ग में (वावाता) अन्तरिक्षगामी (वृषणा) वृषण नामक (हरी) हरणशील शक्तियां (इन्द्रं) कर्मयोगी को (अपसु) यज्ञकर्म की ओर (वक्षतः) ले आयें तथा (अर्वाञ्चम्) भूमिमार्ग में (त्वा) आपको (अध्वरश्रियः) यज्ञ में रहने वाले यजमान सम्बन्धी (सप्तयः) अश्व (सवना) यज्ञ के प्रति (उपवहन्तु) लावें ॥१४॥

भावार्थ—याज्ञिक जनो ! हमारी कामनाएं पूर्ण करने वाली शक्तियां कर्मयोगी को यज्ञभूमि में लाएं अथवा यों कहिए कि यजमान के शीघ्रगामी अश्व, जो यज्ञस्थान में ही रहते हैं, वे कर्मयोगी को यहां पहुँचायें, अतएव हम शिक्षा से स्व-मनोरथ पूर्ण करें ॥१४॥

धनलाभ तथा शत्रुनाश के लिये कर्मयोगी से शिक्षा की प्रार्थना ॥

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥

पदार्थ. —(पुरूवसुम् पूषणम्) अत्यधिक धनी पोषक कर्मयोगी का (सुख्याय) सखित्व हेतु (प्रवृणीमहे) भजन करते है । (शक्र) हे समर्थ, (पुरुहूत) अनेक जनों से आहूत, (विमोचन) दुःख से त्राण दिलाने वाले (स) वह आप (न) हमको (धिया) अपनी शुभ बुद्धि से (तुबे) शत्रुनाश व (राये) धनलाभ हेतु (शिक्ष) शिक्षा दीजिए ॥१५॥

भावार्थ:—ऐश्वर्यशाली एव पालक पोषक कर्मयोगी ! हम आपसे मित्रता के लिये प्रयत्नशील हैं। हे भगवन् ! आप हम दु:खो से छुडाकर सुख देने वाले हैं; कृपा कर अपनी शुद्धबुद्धि से हमे शत्रुनाश व ऐश्वर्यलाभार्थ शिक्षा दीजिए—जिससे हम चिन्तारहित हो कर याज्ञिक कार्य पूर्ण करें ॥१५॥

कर्मयोगी से कर्मों में कौशल्य प्राप्त करने के लिये प्रार्थना ॥

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।

त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥१६॥

पदार्थ —(भुरिजो., क्षुरम्, इव) बाहु मे स्थित क्षुर के तुल्य (नः) हमें (सशिशीहि) कर्मों में अति तीव्र बनाए । (विमोचन) हे दु ख से छुडाने वाले ! (राय रास्व) ऐश्वर्य दीजिये, (त्वे) आपके अधिकार मे (तत्, उस्रियम्, वसु) वह कान्ति वाला धन (नः) हमे (सुवेदम्) सुलभ है (यम्) जिस धन को (त्वम्) आप (मर्त्यम्, हिनोषि) मनुष्य के प्रति प्रेरणा करते हैं ॥१६॥

भावार्थ.—दु खों से मुक्त कराने वाले हे कर्मयोगी ! आप कृपा कर हमें कर्म करने मे कुशल बनाए अर्थात् हम निरन्तर कर्म प्रवृत्त रहें जिससे हमारा दारिद्रय दूर हो हम ऐश्वर्यशाली बनें, आप हमे कान्ति वाला वह उज्ज्वल धन दें जिसे पा कर मनुष्य आनन्द उपभोग करते हैं। आप सब प्रकार समर्थ हैं, अतएव हमारी यह प्रार्थना स्वीकारें ॥१६॥

वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।

न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुषे पज्राय साम्ने ॥१७॥

पदार्थ —(पूषन्) हे पोषक इन्द्र ! (ऋञ्जसे) कार्यसिद्धि हेतु (त्वा, वेमि) मैं आपको जानता हूँ । (आघृणे) आप दीप्तिमान् है अतएव (स्तोतवे) स्तुति करने के लिए (वेमि) आपको जानता हूँ, (तस्य) दूसरे को (न, वेमि) नहीं जानता । (तत् हि, अरणम्) क्योंकि वह रमणीय नहीं है । (वसो) हे आच्छादयिता ! (स्तुषे) आपकी स्तुति करने वाले मुझको (पज्राय, साम्ने) स्व प्राजित साम दीजिये ॥१७॥

भावार्थ —हे सर्व पोषक इन्द्र ! आप ही कार्य सिद्धि कर्ता, आप देदीप्यमान व स्तुति योग्य है, आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्तुति योग्य नही और न ही मै किसी अन्य को ऐसा जानता हूँ । हे युद्धकुशल भगवन् ! आप मुझे प्राजित -एकत्रित साम दें अर्थात् सदा के लिये कल्याण व ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१७॥

गवादि पशुओ के लिये चाराक्प तृण के लिये प्रार्थना ॥

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।

अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥१८॥

पदार्थ.—(अमर्त्य) हे रोग आदि से मुक्त कर्मयोगी ! (गाव) मेरी गौएं (कच्चित्) किसी समय (यवसम्) तृण (परा) भक्षण के लिए यदि जाय तो (रेक्ण) वह उनका तृणरूप धन (नित्यम्) नित्य हो । (पूषन्) हे पोषक इन्द्र ! (अस्माकं) हम जिज्ञासुओ के (शिव , अविता, भव) कल्याणमय रक्षक आप हो । (वाजसातये) धनदान हेतु (मंहिष्ठ) उदारतम हो ॥१८॥

भावार्थ —हे सर्वपालक कर्मयोगी ! हमारी गौओ के लिए तृणरूप धन नित्य हो । (मत्र मे "गाव:" पद सब पशुओ का उपलक्षण है) अर्थात् हमारे पशुओ के लिए प्रतिदिन पर्याप्त उत्तम चारा प्राप्त हो जिससे वे हृष्ट-पुष्ट रहें । हे कर्मयोगी ! आप सदैव हमारी रक्षा करते हो, हमारे लिये धन दान देने मे आप सदा उदार हैं ॥१८॥

कर्मयोगी के विमानादि ऐश्वर्य का वर्णन ॥

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।

राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९॥

पदार्थ·—(दिविष्टिषु) अन्तरिक्ष गमन की कामनारत (कुरुङ्गस्य, राज्ञः) ऋत्विजो के पास जाने वाले (सुभगस्य) सौभाग्य युक्त (त्वेषस्य, राज्ञ·) दीप्तिमान् राजा के (शताश्वम्, स्थूरम्) सैकड़ों अश्वों की शक्ति वाला अतिस्थूल (राध) विमानादि ऐश्वर्य है । (तुर्वशेषु) मनुष्यों के मध्य में (रातिषु) दानो के विषय मे (अमन्महि) हम उदारतया उसको जानते हैं ॥१९॥

भावार्थ:—कर्मयोगी के ऐश्वर्य का वर्णन इस मत्र में किया है कि वह विमान से अन्तरिक्ष मे जाता हुआ तथा उसी मे सवार होकर ऋत्विजो से मिलता है । वह विमान कैसा है ? ऐश्वर्यसम्पन्न राजा के सैकड़ों अश्वों की शक्तिवाला अर्थात् नितांत वेगवान् और अत्यधिक स्थूल बना हुआ है । वह कर्मयोगी दानसबधी उदारता मे प्रसिद्ध है और कर्मों से सभी को धनाढ्य बनाने मे कुशल है ॥१९॥

कर्मयोगी का दान देना ॥

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।

षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥२०॥

पदार्थ —(प्रियमेधै.) यज्ञप्रिय (अभिद्युभि) अधिक कान्तिवान् (धीभि) विद्वानो द्वारा (सातानि) सेवित (काण्वस्य, वाजिनः) मेधाविपुत्र बलवान् कर्मयोगी को (षष्टिं, सहस्रा) साठ सहस्र (निर्मजां, गवां, यूथानि) शुद्ध गायो के यूथो को (ऋषि) ऋषि ने (निः) निरन्तर (अमजे) पाया ॥२०॥

भावार्थ —दानी महात्मा व कर्मयोगी के दान का यहा कथन है और बताया गया है कि यज्ञप्रिय, सुदर्शन, विद्वानो का सेवन करने वाले और मेधावीपुत्र बलवान् कर्मयोगी ने साठ सहस्र उत्तम गायो के यूथो को ऋषि के लिए सर्वदा के लिए दान दिया ॥२०॥

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।

गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥२१॥

पदार्थ:—(मे, अभिपित्वे) मुझे द्रव्य प्राप्त होने पर (गां, भजन्त, मेहना) श्रेष्ठ गोधन को पाया, (अश्व, भजन्त, मेहना) श्रेष्ठ अश्वो को पाया, ऐसा (वृक्षा., चित्) वृक्ष भी (अरारणु) शब्द करने लगे ॥२१॥

भावार्थ.—यहाँ ऋषि की ओर से कहा गया है कि मुझे गोधनरूप धन की प्राप्ति पर महान् आनन्द मिला और मूर्ख से पण्डित पर्यन्त सभी जन इस दान की प्रशसा करने लगे । मन्त्र मे "वृक्ष" शब्द से तात्पर्य जड़=मूर्ख का है, वृक्ष का नही ॥२१॥

अष्टम मण्डल मे चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनचत्वारिंशदृचस्य पञ्चमसूक्तस्य १-३९ ब्रह्मातिथि काण्व ऋषि ॥ देवता १-३६, ३७[१] अश्विनौ । ३७[२]-३९ चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः ॥ छन्द —१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २६, ३२, ३३, निचृद गायत्री । २-४, ६-१०, १५-१७, १९, २०, २४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री । १३, २३, ३१, ३५ विराड गायत्री । २६ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३७, ३८ निचृद् बृहती । ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ स्वर – १-३६ षड्जः । ३७, ३८, मध्यम । ३९ गान्धारः ॥

ज्ञानयोगी और कर्मयोगी की शक्ति का वर्णन करते हुए प्रथम प्रात काल की शोभा का कथन ॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् ।

वि भानुं विश्वधातनत् ॥१॥

पदार्थ —(दूरात्) वास्तव म दूर परन्तु (इहेव, सती) समीपस्थ के सदृश प्रतीत होती हुई (अरुणप्सु.) अरुण रग वाली यह उषा (यत्) जब (अशिश्वितत्) सारे ससार को अरुण कर देती है उसी क्षण (भानुम्) सूर्य किरणो का (व्यतनत्) फैला देती है ॥१॥

भावार्थ —उषाकाल का वर्णन इस मत्र मे प्रस्तुत है कि जब सारे ससार को अरुण तेजस्वी बनाने वाले उषाकाल का आगमन होता है तब सभी प्राणी निद्रादेवी की गोद से उद्बुद्ध हो परमपिता परमात्मा की महिमा का अनुभव कर उसी के ध्यान मे निमग्न होते हैं । इस उषाकाल का महत्त्व ऋषि, महर्षि, शास्त्रकार एव सभी महात्मा बडे गौरव सहित वर्णन करते चले आये हैं कि जो पुरुष इस उषाकाल मे उठकर परमात्मपरायण होते हैं उनको परमात्मा सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१॥

ज्ञानयोगी और कर्मयोगी का उषाकालसेवी होना ॥

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।

सचेथे अश्विनोषसम् ॥२॥

पदार्थ —(दस्रा, अश्विना) दर्शनीय ज्ञानयोगी व कर्मयोगी स्व-राष्ट्र देखने व प्रातःकालिक वायु सेवन हेतु (नृवत्) साधारण मनुष्य के तुल्य (पृथुपाजसा) अतिवेगवान (मनोयुजा, रथेन) इच्छागामी रथ से (उषसम्) उषाकाल का (सचेथे) सेवन करते हैं ॥२॥

भावार्थ·—ज्ञानी व कर्मयोगीजन उषाकाल मे जागकर वेदप्रतिपादित सन्ध्या-अग्निहोत्रादि कर्मों से निवृत्त होकर स्वेच्छागामी रथ पर बैठ अपने राष्ट्र का प्रबन्ध देखने तथा उस काल की वायु का सेवन करने हेतु जाते हैं । जो पुरुष कर्मयोगी के इस आचरण को अपनाते हैं वह भी बुद्धिमान् तथा ऐश्वर्यवान् और दीर्घजीवी हो अनेक प्रकार सुख पाते हैं ॥२॥

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत ।

वाचं दूतो यथोहिषे ॥३॥

पदार्थ:—(वाजिनीवसू) हे बलवान् व धनवाले (युवाभ्याम्) मार्ग मे चलते हुए आप (स्तोमा·) स्तोत्रों को (प्रत्यदृक्षत) सुनते और हम (दूतः, यथा) दूत=सेवक के समान (वाचम्, ओहिषे) आपकी आज्ञासम्बन्धी वाणी की प्रतीक्षा करते हैं ॥३॥

भावार्थ —मन्त्र का भावार्थ यह है कि उषाकाल का सेवन करने वाले ऐश्वर्यसम्पन्न कर्मयोगी की उसी काल मे स्तोता स्तुति करते और कर्मचारीगण आज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने कार्य मे लगते हैं; अतएव प्रत्येक पुरुष को उचित है कि सूर्योदय से पहले ही शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्रादि आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो सूर्योदय होने पर

अपने व्यावहारिक कार्यों में प्रवृत्त हों । ऐसा मनुष्य अवश्य ही अपने अभीष्ट कार्यों को पूर्ण करता है, अन्य नहीं ॥३॥

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।

स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥४॥

पदार्थ—(पुरुप्रिया) बहुजन प्रिय (पुरुमन्द्रा) बहुतों के आनन्दयिता (पुरुवसु) अमितधनवान् (अश्विना) व्यापक उन दोनो की (नः, ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (कण्वासः) हम विद्वान् (स्तुषे) स्तुति करते है ॥४॥

भावार्थ:—कर्मयोगी व विद्याविशारद ज्ञानयोगी की सभी विद्वान् स्तुति करते हैं कि हे भगवन् ! आप सबके प्रिय, सबको आनन्द प्रदान करने वाले व ससार में सुख का विस्तार करने वाले हैं । कृपा कर हमारी सब ओर से रक्षा करें ताकि हम विद्यावृद्धि तथा धर्म का आचरण करते हुए अपनी इष्टसिद्धि को प्राप्त हों ॥४॥

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती ।

गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥५॥

पदार्थ:—(मंहिष्ठा) पूजनीयतम, (वाजसातमा) अत्यन्त बल व अन्न के दाता (इषयन्ता) अपने मे प्रीति उत्पन्न करने वाले (शुभस्पती) शोभन ऐश्वर्य के स्वामी (दाशुषः) यज्ञकर्ता के (गृहम्) गृह को (गन्तारा) आनेवाले उन दोनो की हम स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थ —इस मत्र मे कहा गया है कि हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी ! आप विद्यादि गुणों के कारण सब के पूजनीय, आप अन्नदाता, सर्वमित्र, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी और याज्ञिक पुरुषो मे प्रीति उत्पन्न करने वाले हैं, अत हम आपकी स्तुति करते हैं, कृपा करके हमे भी उक्त गुणों से सम्पन्न करें ॥५॥

सदाचारवर्धक कर्मों के लिए प्रार्थना करना ॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् ।

घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥६॥

पदार्थ.—(ता) वह (सुदेवाय) शोभन देवो सहित (दाशुषे) यजमान के हेतु (सुमेधाम्) सुन्दर सगति वाली (अवितारिणीम्) आत्मा की वञ्चना न करने वाली (गव्यूतिम्) इन्द्रियविषयभूतस्थली को (घृतै) स्नेह से (उक्षतम्) सिंचित करें ॥६॥

भावार्थ —यहाँ याज्ञिक विद्वानो की ओर से यह प्रार्थना की गई है कि हे कर्मयोगी ! आप हमारे यजमान की आत्मा को उच्चता प्रदान करें अर्थात् उन पर सदा प्रेम की दृष्टि रखें जिससे वे अपनी इन्द्रियो को वशीभूत रख सदाचार मे प्रवृत्त रहें, जिससे उनके यज्ञसम्बन्धी कार्य बिना बाधा व विघ्न के पूर्ण हो जाए ॥६॥

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः ।

यातमश्वेभिरश्विना ॥७॥

पदार्थ—(अश्विना) हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ! आप (द्रवत्) उच्चारित (नः, स्तोमम्, उप) हमारे स्तोत्र के अभिमुख (आशुभि , श्येनेभि) शीघ्रगामी शस्त्रो के साथ (अश्वेभि) अश्वो द्वारा (तूयम्) शीघ्र (आयातम्) आवें ॥७॥

भावार्थ —विद्वज्जनो की प्रार्थना है कि हे कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ! हमारे क्षात्रधर्म से सबधित स्तोत्रो के उच्चारण के समय आप शीघ्र ही सशस्त्र आए और आकर क्षात्रधर्म की महत्ता तथा शस्त्रो की प्रयोगविधि से हमे अवगत कराए जिससे हमारे ज्ञान मे वृद्धि हो सके ॥७॥

कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी के यान का वैलक्षण्य ॥

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना ।

त्रीँरक्तून्परिदीयथः ॥८॥

पदार्थ —(येभि) जिन वाहनो से (तिस्र , दिव.) तीन दिन व (त्रीन अक्तून्) तीन रात्रि मे (परावत) सुदूर स्थित (विश्वानि, रोचना) सब दिव्य प्रदेशो मे (परिदीयथ.) प्राप्त करते है ॥८॥

भावार्थ.—इस मत्र मे ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के यान की विलक्षणता का वर्णन है । वह अपने शीघ्रगामी यान से तीन दिन व तीन रात्रि मे सम्पूर्ण दिव्य प्रदेशो देश-देशान्तरो मे परिभ्रमण करने के उपरान्त अपनी राजधानी मे वापस लौट आते हैं ॥८॥

अन्य प्रार्थना ॥

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा ।

वि पथः सातये सितम् ॥९॥

पदार्थ—(अहर्विदा) हे प्रात स्मरणीय (उत) अनन्तर (नः) हमे (गोमती) गोयुक्त (उत) व (साती) देने योग्य (इषः) ऐश्वर्यों को प्रदान करो और (सातये) भोग हेतु (पथः) मार्गों को (विसितम्) बाधारहित करो ॥९॥

भावार्थ —हे प्रात स्मरणीय कर्मयोगी एव ज्ञानयोगी ! आप कृपा कर हमे गवादि धनयुक्त करो, हमे भोगयोग्य पदार्थ प्रदान करो और हमारे मार्ग बाधारहित करो अर्थात् जो दुष्ट हमारे यज्ञादि कर्मों मे बाधक हैं उन्हें क्षात्रबल से वशीभूत कर हमे अभय दान दो ताकि जिससे हम निर्भय हो वैदिककर्मानुष्ठान में प्रवृत्त रह सकें ॥९॥

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।

वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥१०॥

पदार्थ —(अश्विना) हे व्यापक (नः) आप हमे (गोमन्तम्) विद्यायुक्त (सुवीरम्) शोभन वीरयुक्त (सुरथम्) शोभन वाहनयुक्त (रयिम) धन तथा (अश्वावतीः) व्यापकशक्तिसहित (इष) इष्टकामनाओं को (आवोळ्हम्) प्रदान करें ॥१०॥

भावार्थ —हे कर्मयोगी एव ज्ञानयोगी ! आप हमे विद्यादान मे तृप्त करें जिससे हम परमात्मपरायण हो वेदवाणी का विस्तार करें । हमे दुष्ट दस्यु म्लेच्छ के दमनार्थ शूरवीर पुरुष प्रदान करो जो हमारी रक्षा मे तत्पर हों, और हमें उत्तम वाहन व अन्नादि धन प्राप्त करायें जिससे हम अपनी इष्टकामना पूर्ण कर सकें ॥१०॥

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी ।

पिबतं सोम्यं मधु ॥११॥

पदार्थ —(शुभस्पती) हे उत्कृष्ट पदार्थों के स्वामी (दस्रा) शत्रुओ के नाशक (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णमय व्यवहार युक्त ! आप (वावृधाना) अभ्युदय से युक्त हैं । (सोम्यम्, मधु) इस शोभनमधुररस को (पिबतम्) ग्रहण करें ॥

भावार्थ —इस मत्र मे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी की स्तुति करते हुए उनके सत्कार का कथन है कि हे उत्तमोत्तम पदार्थों के स्वामी ! आप शत्रुओ के क्षयकर्ता तथा अभ्युदययुक्त हैं । कृपया इस उत्तम मधुररस को, जो नाना पदार्थों से सिद्ध है, पान कर हमारे इस सत्कार को स्वीकार करें ॥११॥

निवास के लिए गृहादि की प्रार्थना ॥

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२॥

पदार्थ—(वाजिनीवसू) हे बल से रत्नोत्पादक (अस्मभ्यम्, मघवद्भ्यः, च) मुझ विद्वान् व धनवान् के लिये (सप्रथ) सुप्रसिद्ध (अदाभ्यम्) बाधारहित (छर्दि) निवासस्थान का (यन्तम्) प्रबन्ध करें ॥१२॥

भावार्थ —हे बल द्वारा रत्न उत्पादन करनेवाले ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप धनवान् पुरुषों और हम विद्वानो के लिए उत्तम - सभी ऋतुओ मे आनन्ददायक और जिसमे मनुष्य व पशु नीरोग रहें और जो सब उपद्रवो से रहित हो, ऐसे निवास-गृह का यत्न करें । यही आपसे हमारी प्रार्थना है ॥१२॥

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् ।

मो ष्वन्याँ उपारतम् ॥१३॥

पदार्थ —(या) जिन आपने (जनानां) मानवो के (ब्रह्म) यज्ञ की (सु) भलीभाँति (नि, अविष्ट) रक्षा की वह आप (तूय) शीघ्र (आगत) आयें । (अन्यान्) हमसे अन्य के समीप (मो) मत (सूपारत) चिरकाल तक विलम्ब करें ॥१३॥

भावार्थ —हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ! आप यज्ञ रक्षक, याज्ञिक पुरुषो के नितान्त सेवक व विद्वानो का पूजन करने वाले हैं । अतएव प्रार्थना है कि आप विलम्ब न कर शीघ्र हमारे यज्ञस्थान म पधारें और उसे सुशोभित करें ॥१३॥

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः ।

मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥

पदार्थ.—(धिष्ण्या) स्तुति के योग्य, (अश्विना) व्यापक (युवम्) आप (रातस्य) मेरे दिये हुए (चारुण) पावन (मध्व) मधु (मदस्य) हर्षकारक (अस्य) इस सोमरस को (पिबत) पिए ॥१४॥

भावार्थ —हे सबको वशीभूत करने मे समर्थ ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप मेरे द्वारा अर्पित इस पवित्र, मीठे व हर्षोत्पादक सोमरस का पान कर तृप्त हो और हम पर प्रसन्न हो हमारी कामना पूर्ण करें ॥१४॥

सत्कारानन्तर यजमान ऐश्वर्य विषयक प्रार्थना ॥

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।

पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥

पदार्थ —हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप (अस्मे) हमारे (शतवंत) सैकडो तथा (सहस्रिण) सहस्रो पदार्थो सहित (पुरुक्ष) अनेक प्राणियो के आश्रयभूत (विश्वधायस) सबकी रक्षा करने वाले (रयिं) ऐश्वर्य को (आवहतं) प्राप्त करायें ॥१५॥

भावार्थ—अब सोमरस से सत्कार के अनन्तर यजमान प्रार्थना करता है कि हे सबके प्राणियो के आश्रयभूत व सब रक्षक ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप कृपा कर मुझे ऐश्वर्य प्राप्ति का मार्ग बताए जिससे मैं ऐश्वर्ययुक्त हो यज्ञादिकर्मों को विधिवत् कर सकू व यज्ञ निमित्त परमात्मा की आज्ञा के पालन मे सदा सिद्ध रहूँ ॥१५॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१९॥

पदार्थ·—(नरा) हे नेताओ ! यद्यपि (वाम्) आपको (मनीषिणः) विद्वत् जन (पुरुत्रा, चित् हि) अनेक स्थानो मे (विह्वयन्ते) आह्वान करते हैं तथापि (अश्विना) हे व्यापक ! आप (वाघद्भिः) शीघ्रगामी वाहनो से (आगत) आएं ॥१६॥

भावार्थ.—हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ! आप अनेक स्थानो मे निमन्त्रित होने पर भी कृपा कर शीघ्रगामी यान से हमारे यज्ञ को सुशोभित करें ॥१६॥

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥

पदार्थ·—(अश्विना) हे अत्यन्त पैराक्रमी (वृक्तबर्हिष) आपके लिए पृथक् आसन सज्जित कर (हविष्मन्त) आपके सिद्ध भाग को लिये हुए (अरंकृत) सस्कृतशरीर बनकर (जनास) सब मनुष्य (युवां, हवन्ते) आपका आह्वान करते हैं ॥१७॥

भावार्थ —हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप पराक्रमी हो अतएव सबको पराक्रमसम्पन्न बनाने वाले हो। इसलिये आप को उत्तमासन पर सुसज्जित कर उत्तम वस्त्राभूषणो से अलकृत हो सिद्ध किया हुआ सोमरस लिये हुए सब पुरुष आपके आगमन की प्रतीक्षा मे है, अत आप उसे पी कर हमारे यज्ञ में आएं और उत्तम उपदेशो से हमे पराक्रमी बनाए ॥१७॥

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

पदार्थ —(अश्विना) हे ओजस्विन् ! (अद्य) आज (अस्माकं) हमारा (अयं, वां, स्तोमः) यह आपके लिए किया गया स्तोत्र (युवाभ्यां) आपको (वाहिष्ठ.) अवश्य प्राप्त करने वाला और (अन्तम) समीप होने वाला (भूतु) हो ॥१८॥

भावार्थ —हे ज्ञानयोगी, और कमयोगी ! आज हम जिस स्तोत्र से आपकी स्तुति करते हैं वह हमारे लिए सफलीभूत हो अर्थात् हम आपके शुभाचरणो का अनुकरण कर पराक्रमी, उद्योगी व विद्वान् होकर आपके समीपवर्ती हों ॥१८॥

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे ।
ततः पिबतमश्विना ॥१९॥

पदार्थ —(अश्विना) हे तेजस्वी ! (य, ह) जो यह (मधुनः, दृति.) मधुररस का पात्र (वाम्) आपके (रथचर्षणे) रथ से देखने योग्य स्थान मे (आहित) स्थापित है (तत) उस से आप (पिबत) पान करें ॥१९॥

भावार्थ —हे तेजस्वी पुरुषो ! यह सोमरस पात्र, जो आपके रथ से ही दृष्टिगोचर होता है, आपके पीने के लिए स्थापित किया है, कृपाकर इस पात्र से पानकर प्रसन्न हो और हमे अपने सदुपदेशो से ओजस्वी व तेजस्वी बनावें, यह हमारी आपसे प्रार्थना है ॥१९॥

ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी से अपने कल्याणार्थ प्रार्थना ॥

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥२०॥

पदार्थ·—(वाजिनीवसू) हे पराक्रमरूप धनवाले (तेन) तिस रसपान से प्रसन्न हो (नः) हमारे (पश्वे) पशु (तोकाय) सन्तान (गवे) विद्या का (शं, वहत) कल्याण करें और (पीवरी) प्रवृद्ध (इष) सम्पत्ति उत्पन्न करें ॥२०॥

भावार्थ —हे पराक्रमशील ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ! आप हमारे द्वारा सिद्ध किये सोमरस का पानकर प्रसन्न हो और आपकी कृपा से हमारे पशु तथा सन्तान नीरोग रहकर वृद्धि पाए। हमारी विद्या सदा उन्नत होती रहे और हम बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त हों। यही हमारी आपसे विनय है ॥२०॥

उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा ।
अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

पदार्थः—(अहर्विदा) हे प्रात स्मरणीय ! (नः) हमारे लिये (दिव्या, इष) दिव्य इष्ट पदार्थ (उत) और (सिन्धून्) कृत्रिम नदियो =नहरो को (द्वारा इव) द्वार पर प्राप्त होने के समान (अप, वर्षथ) उत्पन्न करें ॥२१॥

भावार्थः—हे प्रातःस्मरणीय ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! हमारे लिये उत्तम से उत्तम पदार्थ प्रदान करें जिनके सेवन से विद्या, बल और बुद्धि में वृद्धि हो। हे भगवन् ! हमारे लिये नहरों का सुप्रबन्ध कीजिए जिससे हम कृषि द्वारा अन्न अधिक उत्पन्न करें तथा जलसम्बन्धी अन्य कार्यों मे हमे सुविधा हो अर्थात् मनुष्य तथा पशु अन्न और जल से सदा संतुष्ट रहें ॥२१॥

ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के यान का महत्त्व ॥

कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥२२॥

पदार्थ.—(नरा) हे नेता ! (यत्) जब (वाम्) आपका (रथ) रथ (विभि·) शीघ्रगामी शक्तियो से युक्त हो (पतात्) उड़ता है तब (वाम्) आपका (समुद्रे) समुद्र मे रहने वाला (तुग्र्य·) जलीय पदार्थ (कदा) कब (विधत्) कुछ कर सकता अर्थात् कुछ भी नही कर सकता ॥२२॥

भावार्थ —हे सब मनुष्यो के नेता ! जब सभी शक्ति युक्त आपका तीव्रगामी यान उड़ता है तब समुद्र मे रहने वाला तुग्र्य =हिंसक जीवविशेष अथवा जल परमाणु आदि आपका कुछ भी नही कर सकते अर्थात् आप जल व स्थल मे स्वच्छन्दता से विचरते हैं, आपके लिए कही कोई रुकावट नही ॥२२॥

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये ।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

पदार्थ —(नासत्या) हे नासत्य ! (युवं) आप (हर्म्ये) गृह स्थित (अपिरिप्ताय) शत्रुओ से सताये हुए (कण्वाय) विचारशील विद्वान् की (शश्वत्) सदैव (ऊती) रक्षा (दशस्यथ) करते हैं ॥२३॥

भावार्थ —जो कभी असत्य न बोलें उन्हें ही "नासत्य" कहते हैं, हे सत्यवादी ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ! गृह स्थित अर्थात् कोई अपराध न करते हुए शत्रुओ से सताये जाने पर आप विद्वानो की सदैव रक्षा करने के कारण सत्कार योग्य हैं कृपा कर हमारी भी दुष्ट पुरुषो से सदा रक्षा करें ॥२३॥

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ।
यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥२४॥

पदार्थ—(वृषण्वसू) हे धनो की वर्षा करने वाले ! (ताभि, नव्यसीभि) नित्य नूतन (सुशस्तिभि) सुप्रशसनीय (ऊतिभि) रक्षाओ सहित (आयात) आए (यत्) जब-जब (वा) आपका (हुवे) आह्वान करें ॥२४॥

भावार्थ —हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप अधिकारी पुरुषो को धन के दाता, प्रशसनीय व सबकी कामनाओ को पूरा करने वाले हैं। हे भगवन् ! हम जब आपका आह्वान करें तब आप शीघ्र आए और हमारी रक्षा करें ताकि हमारे यज्ञादि कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो ॥२४॥

उक्त दोनों से रक्षा की प्रार्थना ॥

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५॥

पदार्थ —(अश्विना) हे व्यापकशक्ति युक्त (यथाचित्) जिस तरह (उपस्तुत) उपस्तुति कर्त्ता विद्वान् (प्रियमेध) प्रशसनीय बुद्धिवाले जन तथा (शिञ्जार, अत्रि) शब्दायमान अत्रि की (आवत) रक्षा की उसी प्रकार मेरी भी रक्षा करें ॥२५॥

भावार्थ.—हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! जिस तरह आपने स्तुति करने वाले विद्वान्, पूज्य बुद्धि वाले जन तथा अत्रि की रक्षा की उसी प्रकार से मेरी रक्षा करें। [जिसके आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनो प्रकार के दु.खो की निवृत्ति हो गई हो उसे "अत्रि" कहते है।]

यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यम् ।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६॥

पदार्थ —(यथा) जिस तरह (कृत्व्ये धने) प्राप्तव्य धन के सम्बन्ध मे (अंशु) अर्थशास्त्रवेत्ता की (गोषु) इन्द्रियो के विषय मे (अगस्त्य) अगस्त्य सदाचारी की, (उत) और (यथा) जिस प्रकार (वाजेषु) यश के विषय मे (सोभरिम्) सुन्दर पालन करने वाले महर्षि की रक्षा की, उसी प्रकार हमारी रक्षा करें।

भावार्थ.—जैसे अर्थवेत्ता सदाचारी व महर्षि की आपने रक्षा की व करते है उसी तरह आप हमारी रक्षा करें, यह याज्ञिक पुरुषो की ओर से प्रार्थना है ["सोभरि' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि "सु—सम्यक् हरत्यज्ञानमिति सोभरि" जो भले प्रकार अज्ञान का नाश करे उसको "सोभरि" कहते हैं, यहा हग्रहोर्भश्छन्दसि" इस पाणिनि सूत्र से 'ह" को "भ" हो गया] ॥२६॥

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना ।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२७॥

पदार्थः—(वृषण्वसू) हे वर्षणशील धनवान् (अश्विना) व्यापक ! (एतावत्) इतनो (अत·, भूयः, वा) या इससे भी अधिक (सुम्नम्) सुख की राशि (वाम) आपकी (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (ईमहे) याचना करते हैं ॥२७॥

भावार्थः—हे सुखराशि, सुख दाता ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! हम आपकी सब प्रकार से अधिकाधिक स्तुति करते हुए आपसे बारम्बार याचना करते है कि कृपा कर सभी कष्टों से बचाकर हमे सुख दें ॥२८॥

उक्त दोनों का यान द्वारा विचरना ॥

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥२८॥

पदार्थ —(अश्विना) हे व्यापकशक्ति सपन्न ! (हिरण्यबन्धुरम्) सुवर्णमय ऊंचे नीचे (हिरण्याभीशुम्) सुवर्णमय श्रृंखलाओं से बद्ध (दिविस्पृशम्) अत्यन्त ऊंचे आकाश में चलने वाले (रथम्) यान पर (हि) निश्चय करके (आ, स्थाथः) चढ़ने वाले हैं ॥२८॥

भावार्थ —हे व्यापकशक्ति के स्वामी ! आप निश्चय कर यान द्वारा आकाश में विचरण करते हैं, जो आपका यान ऊपर-नीचे सुवर्णमय श्रृंखलाओं से आबद्ध है ॥२८॥

हिरण्ययी वां रश्मिरीषा अक्षो हिरण्ययः ।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

पदार्थः—(वाम्) आपके रथ का (रश्मिः, ईषा) आधारदण्ड (हिरण्ययी) हिरण्मय है, (अक्षः, हिरण्ययः) अक्ष हिरण्मय है, (उभा, चक्रा) दोनों चक्र (हिरण्यया) हिरण्मय है ॥२९॥

भावार्थ —हे ऐश्वर्य्यशाली ! आपके रथ (यान) का आधारदण्डधुरा सुवर्णमय, अक्ष (अग्रभाग) सुवर्णमय और दोनों चक्र भी सुवर्णमय हैं। तात्पर्य यह है कि आपका सारा यान ही सुवर्ण का है ॥२९॥

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चि॒दा ग॑तम् ।
उपे॒मां सु॑ष्टुतिं मम॑ ॥३०॥

पदार्थ —(वाजिनीवसू) हे बलशाली व धनवान् ! (तेन) उस रथ से (नः) हमारे समीप (परावतश्चित्) सुदूरदेश से (आगतम्) आइये (इमाम्, मम ; सुष्टुतिम्) यह मेरी स्तुति (उप) ध्यान से श्रवण करें ॥३०॥

भावार्थ —हे बलसम्पन्न ऐश्वर्य्यशाली ! आप कृपा कर उक्त सुवर्णमय रथ से देशान्तर से हमारे यज्ञ में सम्मिलित हो ; हमारी इस प्रार्थना को अवश्य ही सुनिएगा ॥३०॥

आ वहेथे पराकात्पू॒र्वीर॒श्नन्ता॑वश्विना ।
इषो दासी॑रमर्त्या ॥३१॥

पदार्थ —(अमर्त्या) हे अहिंसनीय ! आप (अश्विना) व्यापक शक्ति के स्वामी हैं (पराकात्) दूरदेश से (पूर्वीः) स्वपूर्वजों की (दासीः) शत्रुगृह में स्थित (इषः) धनादि शक्तियों को (अश्नन्ता) प्राप्त करते हुए (आवहेथे) धारण करते हैं ॥३१॥

भावार्थ —हे किसी को दुःख न देने वाले ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ! आप देशदेशान्तर स्थित धन को अर्थात् आपके पूर्वजों का धनरूप ऐश्वर्य्य जो उनसे शत्रुओं ने हरण किया था उसे आप उनसे प्राप्त कर स्वयं उपभोग करते हैं, यह आप सरीखों का ही प्रशंसनीय कार्य्य है। अर्थात् जो पुरुष अपने पूर्वजों की शत्रुगृह में गई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करे, वह प्रशंसा योग्य है ॥३१॥

आ नो॑ द्यु॒म्नैरा श्रवो॑भिरा रा॒या या॑तमश्विना ।
पुरु॑श्चन्द्रा॒ नास॑त्या ॥३२॥

पदार्थ —(पुरुश्चन्द्रा, नासत्या) हे अत्यन्त आह्लादक सत्यभाषी ! (अश्विना) व्यापक ! (नः) हमारे समीप आप (द्युम्नैः) दिव्य विद्याओं सहित (आ) आए व (श्रवोभिः) श्रवणीय यशसहित (आ) आएं, (राया) विविध धनों सहित (आयातम्) आए ॥३२॥

भावार्थ —हे आह्लाद देने वाले तथा सत्यभाषणशील ! आप दिव्य ज्ञानयुक्त यशस्वी व विविध धनों के स्वामी हैं, आप कृपा कर अपने इन सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों सहित आएं और हमारे यज्ञ की शोभा बढ़ाएं ॥३२॥

एह वां॑ प्रुषि॒तप्स॑वो॒ वयो॑ वहन्तु प॒र्णिनः॑ ।
अच्छा॑ स्वध्व॒रं जन॑म् ॥३३॥

पदार्थ —(प्रुषितप्सवः) स्निग्ध वर्ण (पर्णिनः) पक्षी के तुल्य गतिवान् (वयः) अश्व (स्वध्वरम्, जनम् अच्छ) शोभन हिंसारहित यज्ञ वाले जन के अभिमुख (इह) यहाँ (वाम्) आपको (आवहन्तु) लाए ॥३३॥

भावार्थ —हे तेजस्वी वर्णयुक्त, ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप कृपया शीघ्रगामी अश्वों से हमारे हिंसारहित यज्ञ को शीघ्र प्राप्त हो और हमारी याचना स्वीकार करें ॥३३॥

रथं॒ वाम॑नु॒गाय॑सं॒ य इ॒षा वर्त॑ते स॒ह ।
न च॒क्रम॒भि बा॑धते ॥३४॥

पदार्थः—(यः) जो (इषा, सह, वर्तते) इष्ट कामनापूर्ण है उस (वाम्) आपके (अनुगायसम् रथम्) स्तुतियोग्य रथ को (चक्रम्) शत्रुसैन्य (न, बाधते) बाध्य नहीं कर सकता ॥३४॥

भावार्थ —हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! शीघ्रगामी सुदृढ यान में बैठे आपको शत्रु सेना कुछ भी बाधा नहीं कर सकती, क्योंकि आप बलपूर्ण हैं, इसलिए कृपा कर हमारे यज्ञ में आकर शीघ्र उसकी शोभा में वृद्धि करें ॥३४॥

हि॒र॒ण्यये॑न॒ रथे॑न द्र॒वत्पा॑णिभि॒रश्वैः॑ ।
धीज॑वना॒ नास॑त्या ॥३५॥

पदार्थ —(नासत्या) हे सत्य के प्रति प्रतिबद्ध ! (धीजवना) मन के तुल्य तीव्र गति वाले (हिरण्ययेन, रथेन) हिरण्मय रथ व (द्रवत्पाणिभिः अश्वैः) तीव्रगामी पग वाले अश्वों से आप पधारें ॥३५॥

भावार्थ —मन के तुल्य तीव्रगामी स्वर्णिम रथ पर आरूढ़ होकर, हे सत्यनिष्ठ ज्ञान एवम् कर्मयोगी आप तुरन्त हमारे यज्ञ में पधारें ॥३५॥

ऐश्वर्यरूप दान की प्रार्थना ॥

यु॒वं मृ॒गं जा॑गृ॒वांसं॒ स्वद॑थो वा वृषण्वसू ।
ता नः॑ पृङ्क्तमि॒षा र॒यिम् ॥३६॥

पदार्थ —(वृषण्वसू) हे बरसने में समर्थ धनवान् (युवम्) आप के द्वारा (जागृवांसम्, मृगं, वा) सचेतन शत्रु का ही (स्वदथः) आस्वादन होता है। (तौ) ऐसे आप (नः) हमें (इषा) इष्ट कामना समेत (रयिम्) ऐश्वर्य से (पृङ्क्तम्) सपृक्त करें ॥३६॥

भावार्थ —ऐश्वर्य्यवान् ! ज्ञान एवं कर्म के धनी ! आप ऐसे शत्रु से ही युद्ध करके उस पर विजय प्राप्त करते हैं, जो युद्धहेतु सिद्ध हो, अचेतन नहीं। सम्पूर्ण बल में श्रेष्ठ ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करके हमारी इष्ट कामनाएं पूर्ण कीजिए ॥३६॥

ता मे॑ अश्विना सनी॒नां वि॒द्यातं॒ नवा॑नाम् ।
यथा॑ चि॒च्चैद्यः॑ क॒शुः श॒तमुष्ट्रा॑नां॒ ददत्स॒हस्रा॒ दश॒ गोना॑म् ॥३७॥

पदार्थ —(ता, अश्विना) हे ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप (नवानाम्) नित्य-प्रति नवीन (सनीनाम्) सम्भजनीय पदार्थों का (मे) मेरे लिये (विद्यातम्) पता करें। (यथाचित्) जिस तरह (चैद्यः, कशुः) ज्ञानवान् शासक (उष्ट्राणाम्, शतम्) सौ उष्ट्र और (दश, सहस्रा) दश हजार (गोनाम्) गौएं (ददत्) मुझे दें ॥३७॥

भावार्थ —यजमान की ओर से इस मन्त्र में कहा गया है कि हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ! आप श्रेष्ठतम नवीन पदार्थों का मेरे लिये पता करें— अर्थात् मुझे दें। हे सबके शासक ! आप मुझे सौ ऊँट, दश सहस्र गौएं दान दें जिन से मेरे यज्ञ की सब विधि पूर्ति हो सके ॥३७॥

यो मे॒ हिर॑ण्यसन्दृशो॒ दश॒ राज्ञो॒ अमं॑हत ।
अ॒ध॒स्प॒दा इच्चै॒द्यस्य॑ कृ॒ष्टय॑श्चर्म॒म्ना अ॒भितो॒ जनाः॑ ॥३८॥

पदार्थ —(यः) जिस शासक द्वारा (मे) मुझे (हिरण्यसन्दृशः) हिरण्य सरीखे तेजस्वी (दश, राज्ञः) दश राजाओं को (अमंहत) दिया गया (चैद्यस्य) जिस ज्ञानयोगी के (कृष्टयः) सभी शत्रु (अधस्पदाः, इत्) पददलित हैं, (जनाः) उसके भट (अभितः) सभी जगह (चर्मम्नाः) कवच धारण किए रहते हैं ॥३८॥

भावार्थ —हे शत्रुओं के तापदाता, हे सुभट योद्धाओं पर विजय पाने वाले ज्ञानयोगी व कर्मयोगी ! आप तेजस्वी दश राजा मुझे दें अर्थात् दश राजाओं का मुझे शासक बनादें जिससे मैं ऐश्वर्य से युक्त होकर अपना यज्ञ पूर्ण करूं ॥३८॥

माकि॑रे॒ना प॒था गा॒द्येने॒मे यन्ति॑ चे॒दयः॑ ।
अ॒न्यो नेत्सू॒रिरोह॑ते भूरि॒दाव॑त्तरो॒ जनः॑ ॥३९॥

पदार्थ —(येन) जिस मार्ग से (इमे, चेदयः) ये ज्ञानयोगी (यन्ति) गमन करते हैं, (एना, पथा) उस मार्ग से (माकिः, गात्) अन्य कोई नहीं जा पाता, (भूरिदावत्तरः) नितान्त दानी व परोपकारी भी (अन्यः, सूरिः, जनः) कोई सामान्य ज्ञानी (न, इत्, ओहते) उसके तुल्य भौतिक सम्पत्ति नहीं पा सकता ॥३९॥

भावार्थ —हे ज्ञानी और कर्मयोगी ! आप मुझे शुभ मार्ग प्रदान करें जो मेरे लिये *कल्याणकारी हो अर्थात् मुझे भी ज्ञानीजनों का मार्ग प्राप्त हो जिसे दानशील परोपकारी* तथा भौतिकसम्पत्तिवाले पुरुष प्राप्त नहीं कर सकते ॥३९॥

अष्टम मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टाचत्वारिंशदृचस्य षष्ठसूक्तस्य १—४८ वत्सः काण्व ऋषिः ॥ १—४५ इन्द्रः । ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिर्देवताः ॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ *गायत्री* । १४, १८, २३, ३३, ३४ ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४५, ४८, *निचृद् गायत्री* । २० *आर्ची स्वराड् गायत्री* । २४, ४७ *पादनिचृद्गायत्री* । २१, २२, २८, ३१, ४४, ४६ *आर्ची विराड् गायत्री* ॥ षड्जः स्वरः ॥

परमात्मा की स्तुति ॥

म॒हाँ इन्द्रो॒ य ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ इ॑व ।
स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे ॥१॥

पदार्थ —(यः, इन्द्रः) सर्व ऐश्वर्ययुक्त जो परमात्मा (ओजसा) अपने पराक्रम द्वारा (महान्) विशिष्ट व पूज्य है, (वृष्टिमान्, पर्जन्यः, इव) वृष्टि पूरित मेघ जैसा है वह (वत्सस्य) वत्स के समान उपासक के (स्तोमैः) स्तोत्रों से (वावृधे) वृद्धि पाता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा की स्तुति का वर्णन किया गया है। वह परमात्मा अपने पराक्रम या शक्ति से ही प्रतिष्ठायुक्त है, उसे किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नही। जैसे वृष्टि से पूर्ण मेघ फल देता है, वैसे ही वह पूर्ण परमात्मा भी सभी को फल प्रदान करता है और वह वत्स तुल्य उपासको के स्तुति-योग्य वाक्यो से वृद्धि पाता है अर्थात् प्रचार से अनेक पुरुषो मे प्रतिष्ठित होता है। उचित है कि हम श्रद्धा-भक्ति से नित्यप्रति उस परमपिता की उपासना मे रत हों, जिससे परमात्मा से विमुख लोग भी हमारा अनुगमन कर श्रद्धासम्पन्न हों ॥१॥

परमात्मा सत्य का स्रोत ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।

विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२॥

पदार्थः—(यत्) जिस समय (ऋतस्य, प्रजाम) सत्य के सृजनकर्ता परमात्मा को (पिप्रत) हृदय में पूरित कर (वह्नय·) वह्नि जैसे विद्वान् (भरन्त) उपदेश से लोक में प्रकाशित करते है, तब (ऋतस्य) सत्य की (वाहसा) प्राप्ति कराने वाले स्तोत्रो से (विप्रा) स्तोता उसके माहात्म्य को समझकर उसकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—तेजस्वी विद्वज्जन अपने उपदेशो से उस सत्य के स्रोत — परमात्मा को लोक-लोकान्तरों में प्रकाशित करते हैं। तब स्तोता उसके माहात्म्य को समझकर उसकी उपासना मे लगते हैं और उसके सत्य इत्यादि गुण को धार कर अपना जीवन समुन्नत बनाते हैं। अतएव प्रत्येक को यही उचित है कि विद्वानो के मुख से सुने हुए परमात्मा के गुणो को धारण करें और अपने जीवन को पावन बनाकर सफल करें ॥२॥

वाञ्छित फल हेतु परमात्मपरायणता ॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।

जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३॥

पदार्थ—(कण्वा) विद्वज्जन (यत्) जब (इन्द्रम्) परमात्मा को (स्तोमैः) स्तोत्रो से (यज्ञस्य, साधनम्) यज्ञ का साधन (अक्रत) बना लेते हैं तब (आयुधम्) शस्त्र-समुदाय (जामि) निष्प्रयोजन (ब्रुवत) कहा जाता है ॥३॥

भावार्थ—जिस समय विद्वज्जन तप, अनुष्ठान व यज्ञो से परमात्मा के सत्य आदि गुण धारण कर अपना जीवन पवित्र बनाते हैं तब परमात्मा उन्हे मनोवाञ्छित फल देता है, और उनके लिये शस्त्र भण्डार भी निरर्थक है। तात्पर्य यह है कि परमात्मपरायण पुरुष की सारी इष्टकामनायें वाणी से ही सिद्ध हो जाती हैं उसके लिये शस्त्र व्यर्थ है। अतएव इच्छित फल की कामना वालो मे परमात्मा के प्रति अनुरक्ति होनी चाहिये ॥३॥

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।

समुद्रायेव सिन्धवः ॥४॥

पदार्थ—(अस्य, मन्यवे) इस परमात्मा के प्रभाव हेतु (विश्वा) सब (विशः) चेष्टा रत (कृष्टयः) प्रजाये (समुद्राय, सिन्धव, इव) समुद्र के लिए नदियो के तुल्य (संनमन्त) स्वत तत्पर होती हैं ॥४॥

भावार्थ—जैसे नदियां अपने आप ही समुद्र की ओर बहती है, उसी प्रकार परमात्मा के प्रभाव से प्रभावित सब प्रजायें भी उसकी ओर आकृष्ट हो रही हैं, क्योंकि सतप्त प्रजा को शान्ति प्रदान करने वाला आधार केवल वही है, दूसरा कोई नहीं ॥४॥

परमात्मा तेजस्वी है ॥

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।

इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥५॥

पदार्थः—(अस्य) उस [परमात्मा] का (तत्, ओज·, तित्विषे) वह तेज प्रकट हो रहा है (यत्) कि जिस से (इन्द्र) परमात्मा (उभे, रोदसी) पृथिवी और अन्तरिक्ष दोनों को (चर्मेव) चर्म के तुल्य (समवर्तयत्) फैला और सिमटा सकता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा को तेजस्वी बताते हुए इस मन्त्र मे कहा गया है कि वह अपने तेज द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में दीप्तिमान है। अतएव सभी प्रजाओ को चाहिए कि उसके तेजस्वीभाव को धारण कर ब्रह्मचर्यादि व्रतों द्वारा स्वय को तेजस्वी व बलवान् बनाएं, क्योंकि मानवजन्म के फलचतुष्टय की प्राप्ति के लिए पुरुष का बलशाली होना आवश्यक है ॥५॥

परमात्मा अज्ञान का निवारक ॥

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।

शिरो बिभेद वृष्णिना ॥६॥

पदार्थः—परमात्मा (दोधत., वृत्रस्य, चित्) विश्व कोटि प्रकाशित करते हुए आवारक अज्ञान के (शिरः) सिर को (शतपर्वणा) सैकड़ों कोटि-वाली (वृष्णिना) बलवान् (वज्रेण) शक्ति द्वारा (बिभेद) छिन्न-भिन्न कर देता है ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा अज्ञान का नाश करने वाला और ज्ञान का प्रसार करने वाला है। सब का रक्षक वह परमात्मा विद्यारूपी शक्ति द्वारा अविद्या के अज्ञान का नाश कर सुख देता है। सुख की कामना करने वाले पुरुष को निरन्तर विद्यारत रहना उचित है जिससे विद्यावृद्धि से ज्ञान का प्रकाश हो और अज्ञान समाप्त हो सके ॥६॥

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः ।

अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥७॥

पदार्थ—(अग्ने·, शोचि, न) अग्नि की लपट के समान (दिद्युतः) दीप्तिमान् (इमा., धीतय) इन स्तुतियो का (विपाम्) विद्वानो के (अग्रेषु) सामने हम (अभि प्र णोनुम) वार-वार उच्चारण करते हैं ॥७॥

भावार्थ—हम तेजस्वी गुण परिपूरित अर्थात् तेजस्वी बनाने वाली ऋचाए विद्वानो के समक्ष पुनः-पुन उच्चारते हैं कि वह हमारी कमियो को पूर्ण करे जिससे हम तेजस्वी भाव भली-भाति धारण करने मे समर्थ हो ॥७॥

सत्याश्रित कर्म करने वाले को उत्तम फल की प्राप्ति ॥

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः ।

कण्वा ऋतस्य धारया ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जो (धीतय) कर्म (गुहा, सती) गुहा मे रहता है वह (त्मना) स्वय परमात्मा से (उप) जाने हुए (प्रशोचन्त) भासित हो रहे है इसलिये (कण्व.) उसकी महत्ता को जानने वाले विद्वान् (ऋतस्य, धारया) सत्य के प्रवाह द्वारा उसका सेवन करते हैं ॥८॥

भावार्थ—हृदयरूपी गुहा मे जो कर्म विद्यमान हैं अर्थात् जो प्रारब्ध कर्म हैं उन्हे परमात्मा भले प्रकार जानता है, क्योंकि वह मनुष्य के बाहर भीतर सर्वत्र हैं। इसलिये विद्वज्जन सदैव सत्य आश्रित हो कर्मरत रहते हैं ताकि उन्हे शुभ फल मिलें। अतएव जो भी शुभ फल की कामना करता है उसका कर्तव्य है कि वह परमात्मा का महत्त्व जान कर प्रत्येक कर्म सत्यआश्रित होकर करे जिससे उसे उत्तम फल प्राप्त हो सके ॥८॥

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥९॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो ! हम (गोमन्तम्) भास्वर व (अश्विनम्) व्यापक (त, रयिम्)ऐसे धन को (प्र, नशीमहि) प्राप्त करें और (पूर्वचित्तये) अनादि ज्ञान हेतु (ब्रह्म) वेद को (प्र) प्राप्त करें ॥९॥

भावार्थ—हे परमपिता ! आप ऐसी कृपा करो कि हम अपने कल्याण के लिए श्रेष्ठतम धन प्राप्त करें और अनादि ज्ञान का भण्डार वेद हमें प्राप्त हो जिसके आश्रित कर्मानुष्ठान करते हुए ऐश्वर्य्य प्राप्ति के अधिकारी हो—यही हमारी प्रार्थना है ॥९॥

उपासक की उक्ति ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।

अहं सूर्य इवाजनि ॥१०॥

पदार्थ.—(पितु) पालनकर्ता (ऋतस्य) सद्रूप परमात्मा के (मेधां) ज्ञान को (अहम्, इत्, हि) मैंने ही (परिजग्रभ)प्राप्त किया और उससे (अहम्) मै उपासक (सूर्यः, इव, अजनि) सूर्य्य के तुल्य हो गया ॥१०॥

भावार्थः—उपासक इस मन्त्र मे कहता है कि मै सत्यस्वरूप, सबके पालनकर्ता परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त कर सूर्य्य सरीखा तेजस्वी हो गया। और भी जो कोई उसके ज्ञान की प्राप्ति एव आज्ञा का पालन करते हैं वे भी इसी प्रकार तेजस्वी व ओजस्वी जीवन प्राप्त कर आनन्द को पाते है ॥२९॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।

येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥११॥

पदार्थ.—(अहम्) मैं (प्रत्नेन, मन्मना) उस नित्य परमात्मज्ञान द्वारा (कण्ववत्) विद्वान के तुल्य (गिर.) वाणियो को (शुम्भामि) अलकृत करता हू (येन) जिस ज्ञान से (इन्द्रः) परमात्मा (शुष्मम्, इद्दधे) मुझे बल प्रदान करता है ॥११॥

भावार्थः—परमात्मज्ञान से सत्य के आश्रित हो कर मैं महर्षिसदृश परमात्मवाणियो का अभ्यास कर उसकी कृपा से बल धारण करता हूँ। अन्य जो भी वेदवाणियो मे अलकृत होते हैं वे भी तेजस्वी जीवन प्राप्त कर आनन्द प्राप्त करते हैं ॥११॥

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।

ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (ये, ऋषय·) हम मे से जो सूक्ष्मदर्शी महर्षि (त्वां, न, तुष्टुवु) आपकी स्तुति नहीं करते (च) और (ये, तुष्टुवुः) जो करते हैं दोनों से (सुष्टुतः) सम्यक् स्तुति किए गए आप (मम, इत्, वर्धस्व) हम में वृद्धि को पाए ॥१२॥

भावार्थः—हे प्रभो ! हम में से जो महर्षि सदैव आपकी उपासना मे रत रहते हैं और जो नहीं रहते उन दोनों को समान फल प्रदान करें क्योंकि वे दोनों ही तप, अनुष्ठान और सम्यक् स्तुतियों के द्वारा अधिकार पा चुके हैं ।।१२।।

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् ।

अपः समुद्रमैरयत् ।।१३।।

पदार्थः—(यत्) जब (अस्य, मन्युः) इसका प्रभाव (अध्वनीत्) उद्भूत हुआ तब (वृत्रम्) बारक अज्ञान को (पर्वशः) पर्व-पर्व मे (विरुजत्) भग्न करता (अपः, समुद्रम्) जल एवं समुद्र को (ऐरयत्) प्रादुर्भूत करता है ।।१३।।

भावार्थः—उपासक जब उपासनाओं द्वारा शुद्धि प्राप्त कर लेता है तब परमात्मा उसे अज्ञान से छुटकारा दिलाकर ज्ञान का प्रादुर्भाव करते हैं । तात्पर्य यह है कि उपासक तपश्चर्या के प्रभाव से ज्ञान पा कर सुख पाता है । अतएव जिन्हें सुख की कामना है उन्हें अज्ञान की निवृत्ति कर ज्ञान की वृद्धि करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए ।।१३।।

नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि ।

वृषा ह्युग्र शृण्विषे ।।१४।।

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो ! आपने (शुष्णे, दस्यवि) शोषक दस्यु पर (धर्णसिं, वज्रम्) अपने वज्र को (नि जघन्थ) निश्चित ही प्रहारा । (उग्र) हे प्रचण्ड ! आप (वृषा, हि) सब कर्मों के प्रदाता (हि) निश्चय (शृण्विषे) सुने जाते है ।।१४।।

भावार्थ—परमात्मा की उपासना से जो लोग विमुख है, दस्यु जीवन बिताते है परमात्मा दुःखरूप वज्र से निश्चय ही उनका नाश करता है , क्योंकि अशुभ कर्मों का फल दुःख व शुभ कर्मों का फल सुख सदैव परमात्मा देते है । अतः पुरुषों को दस्युजीवन त्याग कर वेदविहित कर्मों का ही सदा अनुष्ठान करना उचित है ।।१४।।

न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।

न विव्यचन्त भूमयः ।।१५।।

पदार्थ—(वज्रिणम्, इन्द्रम्) उस वज्रशक्तियुक्त प्रभु का (ओजसा) पराक्रम द्वारा (न, द्याव) न द्युलोक (न, अन्तरिक्षाणि) न अन्तरिक्ष (न, भूमयः) न भूलोक (विव्यचन्त) अतिक्रमण कर पाते हैं ।।१५।।

भावार्थ—कोई भी उस वज्रशक्तिसम्पन्न परमात्मा को अतिक्रमण नहीं कर पाता और न उसे कोई विचलित कर पाता है । वह राजाओं का महाराजा, दिव्यशक्तिचालक, समस्त लोक-लोकान्तरों का शासक, सबको प्राणशक्ति और सम्पूर्ण धनधान्य देने वाला ऐश्वर्यों का स्वामी है , उसकी आज्ञा का पालन जीवन है और उससे विमुखता ही मृत्यु ।।१५।।

यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् ।

नि तं पद्यासु शिश्नथः ।।१६।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमपिता ! (यः) जो जन (ते) आपके (महीः, अपः) न्याययुक्त पूज्य कर्म को (स्तभूयमान) अवरुद्ध कर (आशयत्) स्थित होता है (तम्) उसको (पद्यासु) आचरणीय क्रियाओं की रक्षा करते हुए (नि शिश्नथः) निश्चय हिंसन करते हो ।।१६।।

भावार्थः—परमपिता के न्याययुक्त मार्ग का अतिक्रमण कर चलने वाले को अवश्य दुःख ही प्राप्त होता है । अतः सुख चाहने वालों का कर्त्तव्य है कि उसके वेदविहित न्याययुक्तमार्ग से कदापि विचलित न हों ।।१६।।

लोकलोकान्तर विषयक परमात्मा का महत्त्व ।।

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् ।

तमोभिरिन्द्र तं गुहः ।।१७।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभो ! (यः) सत्त्वरजतम का जो समूह (समीची) परस्पर सबद्ध (इमे, मही, रोदसी) इस महान पृथिवी और द्युलोक को (समजग्रभीत्) रोक हुए है (तम्) उसे आप प्रलयावस्था मे (तमोभिः) तम.प्रधान प्रकृति से (गुहः) गूढ़ रखते है ।।१७।।

भावार्थ—परमात्मा की महत्ता का वर्णन करते हुए यहां कहा गया है कि हे प्रभो ! सत्त्व, रज तथा तम का समूह जो प्रकृति है, उसके कार्य्य इस पृथिवी और द्युलोक तथा अन्य लोकलोकान्तरों को आप अपनी बन्धनरूप शक्ति से परस्पर एक दूसरे को थामे हैं, जिससे आपकी अचिन्त्यशक्ति का बोध होता है । इन सबको प्रलयकाल मे सूक्ष्मांशों से आप गूढ रखते हैं ।।१७।।

जिज्ञासु की प्रार्थना ।।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः ।

ममेदुग्र श्रुधी हवम् ।।१८।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमपिता ! (ये, यतयः) जो चित्त के निरोधक विद्वान् तथा (ये च, भृगवः) जो अज्ञान का मार्जन करने वाले विद्वान् हैं, (त्वा, तुष्टुवुः) वे आपकी स्तुति करते हैं । (उग्र) हे उग्र ! (ममेत्) उनमें से मेरी ही (हवं) स्तुति (श्रुधी) आप सुनें ।।१८।।

भावार्थ—सर्वरक्षक, सर्वपालक हे प्रभो ! चित्तवृत्ति पर नियन्त्रण करने वाले तथा अज्ञान के नाशकर्ता विद्वान् आपकी उपासना व स्तुति करने को सदा तैयार रहते है, जिससे आप उन्हें उत्पन्न करते हैं । हे परमेश्वर ! मुझ जिज्ञासु की प्रार्थना भी स्वीकारो अर्थात् मुझे भी शक्ति दें कि मैं भी आपकी उपासना मे सदा प्रवृत्त रह जीवन को सफल बना सकूं ।।१८।।

परमात्मा के नियम से वर्षा का होना ।।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।

एनामृतस्य पिप्युषीः ।।१९।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभो ! (ते) आपके द्वारा उत्पन्न की हुई (इमाः, पृश्नयः) ये सूर्य रश्मियां (एनाम्, आशिरम्, घृतम्) इस पृथिवी आदि लोकाश्रित जल को (दुहते) कर्षण करती हैं, जो रश्मियां (ऋतस्य) यज्ञ को (पिप्युषीः) बढ़ाती हैं ।।१९।।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके द्वारा उत्पादित सूर्यरश्मियां पृथ्वी में स्थित जल को अपनी आकर्षणशक्ति से खींच लेती है, पुनः मेघमंडल बनने से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न उपजता है, जिससे प्राणियों के प्राण बचते हैं ।।१९।।

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् ।

परि धर्मेव सूर्यम् ।।२०।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमपिता ! (याः, प्रस्वः) जो उत्पादक रश्मियाँ (त्वा) आपकी शक्ति के आश्रित हो (आसा) अपने मुख से जलपरमाणुओं को खींच (गर्भम् अचक्रिरन्) गर्भ धारण करती हैं (सूर्यम्, परि, धर्मेव) जैसे सूर्य चारों ओर से पदार्थों को धारण किये है ।।२०।।

भावार्थ—हे परमपिता ! जल उत्पादक सूर्यरश्मियाँ जो आपकी ही शक्ति के आश्रित हैं, वे जलपरमाणुओं का खींच मेघमंडल मे एकत्रित करती हैं और फिर जलपरमाणु वर्षाऋतु मे मेघ बनकर बरसते हैं तथा पृथ्वी को धनधान्य से परिपूरित करते है ।।२०।।

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः ।

त्वां सुतास इन्दवः ।।२१।।

पदार्थ—(शवसस्पते) हे बलशाली ! (कण्वाः) विद्वान् (उक्थेन) स्तोत्र द्वारा (त्वाम्, इत्) आपही को (वावृधुः) बढाते हैं, (सुतास) अभिषिक्त (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त जन (त्वाम्) आपको बढाते हैं ।।२१।।

भावार्थ—हे समग्र बल के स्वामी ! विद्वज्जन वेदवाक्यों से आप ही की स्तुति करते है और ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुष आप ही की महिमा बखानते हैं ।।२१।।

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः ।

यज्ञो वितन्तसाय्यः ।।२२।।

पदार्थ—(उत) और (इन्द्र) हे प्रभो ! (प्रणीतिषु) प्रकृष्ट नीतिशास्त्र के सबध मे (तव, इत्, प्रशस्तिः) आप ही की प्रशसा है । (अद्रिवः) हे वज्रशक्तिमान् ! (वितन्तसाय्यः) बड़े से बड़ा (यज्ञः) यज्ञ आप ही के लिये किया जाता है ।।२२।।

भावार्थ—प्रभो ! आप नीतिज्ञों से प्रशंसित नीतिवान् है, आपको प्रसन्न करने को ही बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते हैं, अतः हे प्रभु ! आप हमें सम्पन्नता दें, ताकि हम यज्ञों से आपकी उपासना करें, क्योंकि आपही हमारे पूज्य तथा स्वामी है ।।२२।।

धन जन के लिए परमात्मा से प्रार्थना ।।

आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् ।

उत प्रजां सुवीर्यम् ।।२३।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मा ! आप (नः) हमें (महीम्) बड़े (गोमतीम्) कान्तिवाले (पुरं, न) पुर मे रहने वाले के तुल्य (इषम्) ऐश्वर्य (आदर्षि) देने की इच्छा करें (उत) और (प्रजाम्) सन्तान व (सुवीर्यम्) उत्तम बल देने की इच्छा करें ।।२३।।

भावार्थ—हे परमात्मा ! हम यज्ञ मे आपकी वन्दना करते हैं । आप कृपा कर बड़े नागरिक पुरुषों के समान हम ऐश्वर्य तथा सुन्दर सन्तान दें और हमें बलवान् बनाए जिससे हम अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध कर आपका विस्तार करने मे समर्थ हों ।।२३।।

उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा ।

अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ।।२४।।

पदार्थ—(उत) और (इन्द्र) हे प्रभो ! आप (त्यत्) वह (आश्वश्व्यम्) तीव्रगामी अश्वादि सहित बल देने की इच्छा करें (यत्) जो बल (नाहुषीषु) मानुषी (विक्षु) प्रजाओं के (अग्रे) आगे (आ) चतुर्दिक् (प्रदीदयत्) दीप्तिमान हो ।।२४।।

भावार्थः—हे परमेश्वर आप सम्पूर्ण बलों के स्वामी हैं ! आप हमें तीव्र गति वाले अश्वों सहित बल दें जो प्रजारक्षण हेतु पर्याप्त हो । अर्थात् जिस बल से सम्पूर्ण प्रजाओंको सुख दिया जा सके और अन्यायी का नाश हो, ऐसा बल हमें दीजिए ।।२४।।

अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमपिता ! (यत्) जब (नः) हमें आप (मृळयासि) सुख देते हैं तब (सूरः) प्राज्ञ आप (न) उसी समय (उपाकचक्षसम्) समीप स्थित (व्रजम्) देश को (अभि) भलीप्रकार (तत्निषे) समृद्ध बनाते हैं ॥२५॥

भावार्थः—हे सर्वपालक ! आप हमारे समीप स्थित प्रदेशों को समृद्धि तथा उन्नति प्रदान करें जिससे हम सुखसम्पन्न होकर सर्वव वैदिक कर्म और अनुष्ठान मे दत्तचित्त रहे ॥२५॥

परमात्मा की महिमा का वर्णन ॥

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः ।

महाँ अपार ओजसा ॥२६॥

पदार्थः—(अङ्ग, इन्द्र) हे प्रभो ! (यत्) जो आप (तविषीयसे) सैन्य के जैसा आचरण करते हैं, (क्षिती, प्रराजसि) और मनुष्यो पर शासन करते हैं, इससे (महान्) पूज्य आप (ओजसा) पराक्रम से (अपारः) अपार हैं ॥२६॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! आप सेनापति के तुल्य हमारी सभी ओर से रक्षा करते हैं और प्रजा की तरह हम पर शासन करते है, अतएव आपका पराक्रम महान् है और शक्ति भी। हे परमात्मा ! कृपा करो कि हम आपके शासन मे रहते हुए आपकी आज्ञा का पालन कर उन्नति की दिशा में बढते रहे ॥२६॥

तं त्वा हुविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये ।

उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥२७॥

पदार्थ.—(उरुज्रयसम्) अतिवेगवान् (तं, त्वा) उन आपको (हविष्मती, विशः) सेवायोग्य पदार्थयुक्त प्रजा (इन्दुभिः) दिव्यपदार्थों को लिये हुए (ऊतये) अपनी रक्षार्थ (उपब्रुवते)स्तुति कर रही हैं ॥२७॥

भावार्थ—हे सब प्रजाओ के रक्षक और स्वामी ! आप सभी ओर से हमारी रक्षा करें, हम सब प्रजाजन दिव्य पदार्थों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं—प्रभो ! हमे शक्ति दें कि हम वेदविहित मार्ग पर सदा चले और अपने जीवन को सफल करें ॥२७॥

परमात्मा की सर्वव्यापकता ॥

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् ।

धिया विप्रो अजायत ॥२८॥

पदार्थ—(गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतो के गह्वर प्रान्त मे और (नदीनां, सगमे, च) नदियो के सगम मे (विप्र) वह परमात्मा (धिया) अपने ज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है ॥२८॥

भावार्थ—पूर्ण परमात्मा, जो इस ब्रह्माण्ड के रोम-रोम मे व्यापक है, सबको नियम मे रखता है और अपने कर्मों के अनुसार ही सबको फल देता है, उसका ज्ञान सदा एकरस रहता है अत. कभी मिथ्या नहीं होता। वह अपने ज्ञान से सर्वत्र विद्यमान रहता है ॥२८॥

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति ।

यतो विपान एजति ॥२९॥

पदार्थ—(यत, विपान, एजति) जो कि व्याप्त है वह परमात्मा चेष्टारत रहता है, (अत) अत, वह (चिकित्वान्) सर्वज्ञ परमात्मा (उद्वत) ऊर्ध्वदेश से (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अवपश्यति) नीचा करके निहारता है ॥२९॥

भावार्थ—जो चेतनस्वरूप परमात्मा है वह अपनी व्यापकता से ऊर्ध्व, अन्तरिक्ष तथा अधोभाग मे स्थित सभी को अपनी चेष्टारूप शक्ति से देखता है, सब लोकलोकान्तरो को नियम मे रखता है और सबको यथाभाग सब पदार्थ वितरित करता है ॥२९॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।

परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥

पदार्थ.—(यत्, दिवा, पर, इध्यते) यह जो परमात्मा अन्तरिक्ष से भी परे दीप्त है, (आत्, इत्) इसीसे, विद्वान् (प्रत्नस्य, रेतसः) सबसे प्राचीन गतिशील परमात्मा के (ज्योति) ज्योतिर्मय रूप को (वासरम्, पश्यन्ति) सर्वत्र बसा हुआ देखते हैं ॥३०॥

भावार्थ—जो परमपिता अन्तरिक्ष से भी ऊर्ध्व देश में अपनी व्यापकता से देदीप्यमान है, उसे विद्वान् प्राचीन, गतिशील, ज्योतिर्मय सर्वव्यापक देखते हैं, वे उसी की उपासना में तल्लीन रहते हैं ॥३०॥

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।

उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥३१॥

पदार्थः—(शविष्ठ) हे पूर्ण बलयुक्त ! (इन्द्र) परमात्मा ! (विश्वे, कण्वासः) सब विद्वान् (ते) आपके (मतिम्) ज्ञान (पौंस्यम्) प्रयत्न (उत) तथा (वृष्ण्यम्) बलयुक्त कर्म की (वर्धन्ति) वृद्धि करते हैं ॥३१॥

भावार्थ—अनन्त पराक्रमयुक्त परमात्मा के ज्ञान, कर्म तथा प्रयत्न की सब विद्वान् प्रशसा करते हुए वाणियो से उनका विस्तार करते हैं ॥३१॥

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ।

उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभो ! (इमाम्, मे, सुष्टुतिम्) मेरी इस सुन्दर स्तुति को (जुजुषस्व) सम्यक् सुनें (माम्) मुझे (प्राव) सम्यक् रक्षित करें (उत) और (मतिम्) मेरे ज्ञान की (प्रवर्धय) पूर्ण वृद्धि करें ॥३२॥

भावार्थ -इस मन्त्र मे कहा गया है कि हे प्रभो ! कृपा कर मेरी सब ओर से रक्षा करें, मेरे ज्ञान को प्रतिदिन बढ़ाए, जिससे मैं आपकी उपासना मे प्रवृत्त रह कर सुखपूर्वक जीवन बिताऊं। प्रभो ! इस मेरी प्रार्थना को भली-भाँति सुनिए ॥३२॥

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।

विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३॥

पदार्थ - (उत) और (वज्रिव.) हे वज्रशक्तिसम्पन्न (प्रवृद्ध) सर्वाधिक वृद्ध (वयम्, विप्रा) विद्वान् हम लोग (जीवसे) जीवन हेतु (तुभ्यम्) आपके निमित्त (ब्रह्मण्या) ब्रह्म सम्बन्धी कर्म (अतक्ष्म) सकुचित रूप से कर रहे हैं ॥३३॥

भावार्थ—वज्रशक्तिसम्पन्न, हे परमात्मन् ! आप सर्वाधिक प्राचीन तथा सबको यथायोग्य कर्मों मे प्रवृत्त कराते हैं। प्रभो ! विद्वान् जन अपने जीवन को उच्च बनाने हेतु वैदिककर्मों मे निरन्तर रत रह कर लोक मे चहुँदिक् आपका विस्तार करते हैं ॥३३॥

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः ।

इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४॥

पदार्थ—(कण्वाः) जब विद्वान् जन (अभ्यनूषत) सम्यक् स्तुति करते हैं तब (प्रवता, यती, आप, न) निम्न स्थल की ओर बहते जलो के तुल्य (मतिः) स्तुति अपने आप (इन्द्रम्, वनन्वती) परमात्मा की ओर जा उसका सेवन करती है ॥६४॥

भावार्थ—विद्वज्जन जब परमात्मा की सम्यक् प्रकार स्तुति करते हैं तब वह स्तुति निम्नस्थान मे स्वाभाविक जलप्रवाह के समान परमात्मा को प्राप्त होती है। वह स्तुतिकर्त्ता को फल देती है ॥३४॥

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।

अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५॥

पदार्थ.—(सिन्धव) जैसे सरिताए (समुद्रम्) समुद्र को बढाती है, वैसे ही (उक्थानि) स्तोत्र (अनुत्तमन्यु) अप्रतिहत प्रभावो (अजरम्) जरारहित (इन्द्र) परमात्मा को (वावृधु) बढाते हैं ॥३५॥

भावार्थ—जैसे सरिताए सागर मे मिल कर उसे महान बनाती है वैसे ही वेदवाणिया उस प्रभावी, अजर अमर अभयत्वादि गुणयुक्त परमपिता की यशोवृद्धि करती हैं ॥३५॥

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।

इममिन्द्र सुतं पिब ॥३६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभो ! (परावत) दूरदेश से (हर्यताभ्याम्) मनोहर (हरिभ्याम्) हरणशील ज्ञान-विज्ञानद्वारा (न) हमारे समीप (आयाहि) आए, (इमम्, सुतम्) इस सस्कृत अन्त करण को (पिब) अनुभव करें ॥३६॥

भावार्थ—हे सब की रक्षा करने वाले प्रभो ! आप हमारे हृदय में स्थान ग्रहण कर हमारी कमियो को दूर करें जिससे हमारे हृदय मे केवल आपही का ध्यान रहे ॥३६॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।

हवन्ते वाजसातये ॥३७॥

पदार्थ—(वृत्रहन्तम) हे अज्ञान का निवारण करने वाले ! (वृक्तबर्हिष, जनास) विविक्तस्थल मे आसीन उपासक (वाजसातये) ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु (त्वाम्, इत्, हवन्ते) आपकी ही उपासना करते हैं ॥३७॥

भावार्थः—अज्ञान का अन्धकार हरने वाले प्रभो ! अलग-अलग स्थानो में समाधिस्थ उपासक आपकी उपासना मे रत हैं, कृपाकर आप उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करें जिससे वे आपका गुणगान करते हुए आप की उपासना में ही सदा तत्पर रहें ॥३७॥

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् ।

अनु सुवानास इन्दवः ॥३८॥

पदार्थः—(उभे, रोदसी) द्युलोक व पृथिवीलोक (त्वा) आपका (चक्रम्, एतश, न) जैसे चक्र अश्व का उसी तरह (अनुवर्ति) अनुवर्तन करते हैं, (सुवानासः, इन्दवः) उत्पन्न ऐश्वर्यसम्बन्धी पदार्थ (अनु) आपही का अनुवर्तन करते हैं ॥३८॥

भावार्थः—हे प्रभो ! जैसे अश्व अपने चक्र मे घूमता है वैसे ही द्युलोक तथा पृथिवीलोकादि सब लोक-लोकान्तर आपके नियम मे बंधे अपनी परिधि मे परिभ्रमणरत हैं, और, सारे पदार्थ जो आप का अनुवर्तन करते हैं, कृपा करके हमे प्राप्त करायें जिससे हम आपके यशोगान मे सदैव निमग्न रहें ॥३८॥

मन्दंस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावंति ।

मत्स्वा विर्वस्वतो मती ॥३९॥

पदार्थ —(उत) और (इन्द्र) हे परमपिता ! (शर्यणावति, स्वर्णरे) अन्तरिक्ष के निकट होने वाले सूर्यादि लोकों मे उपासको की (सुमन्दस्व) सुन्दर तृप्ति करें व (विवस्वत.) उपासक की (मती) स्तुति से (मत्स्व) स्वयं तृप्त हो ॥३९॥

भावार्थः—हे प्रभो ! अन्तरिक्ष के समीप स्थित लोक-लोकान्तरो मे अपने उपासकों को सब प्रकार की अनुकूलता दो और आप उनकी उपासना से प्रसन्न हों जिससे वे सदा अपना कल्याण ही देखें—यही विनय है ॥३९॥

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् ।

वृत्रहा सोमपातमः ॥४०॥

पदार्थः—(उपद्यवि) अंतरिक्ष से भी परे (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त (वृषा) इष्टकामनाओ की वर्षा करने वाला (वज्री) वज्रशक्ति युक्त, (वृत्रहा) अज्ञाननाशक, (सोमपातमः) नितांत सौम्य स्वभाव वाला, परमात्मा (अरोरवीत्) अत्यन्त शब्दायमान हो रहा है ॥४०॥

भावार्थ —वह परमपिता जो सर्वत्र विद्यमान हैं सबसे बड़ा है। सबकी कामनाएं वही पूर्ण करता है। वह सर्वशक्तिसम्पन्न, अज्ञान को मिटाने वाला है, जो सर्वत्र शब्दायमान हो रहा है, वही हमे वैदिक पथ पर चलाए और शुभ मार्गों में प्रेरित करने वाला हो ॥४०॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।

इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥४१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो ! आप (पूर्वजा) सबसे पूर्व होने वाले (ऋषि) सूक्ष्मद्रष्टा हैं। (ओजसा) स्वपराक्रम से (एक, ईशान) केवल अद्वितीय शासक हो रहे हैं। (वसु) सबको धनादि ऐश्वर्य्य (चोष्कूयसे) अतिशय दे रहे हैं ॥४१॥

भावार्थ—हे सबपालक एव रक्षक ! आप सब प्रथम सूक्ष्मद्रष्टा और अपने अद्वितीय पराक्रम द्वारा सब पर शासन करते हैं और कर्मों के अनुसार यथाभाग सबको धनादि ऐश्वय देत हैं, कृपाकर उपासक की विशेष रूप से रक्षा करें जिससे वह आपकी उपासना मे सदैव तत्पर रहे ॥४१॥

अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।

शतं वहन्तु हरयः ॥४२॥

पदार्थः—(अस्माकम्, सुतान्, उप) हमारे संस्कारपूर्ण स्वभावों के अभिमुख एव (प्रय, अभि) हवि अभिमुख (वीतपृष्ठाः) मनोहर स्वरूप (हरय) हरणशील शक्तियां (त्वा) आपको (वहन्तु) प्राप्त करायें ॥४२॥

भावार्थ —हे यज्ञस्वरूप प्रभो ! हमारा भाव और हव्य पदार्थ, जो आपके निमित्त यज्ञ मे हुत किये जाते हैं, इत्यादि भाव आपको प्राप्त करायें। तात्पर्य यह है कि वैदिक कर्मों का अनुष्ठान सुखप्रदाता हो ॥४२॥

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् ।

कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३॥

पदार्थः—(कण्वा.) विद्वान् जन (मधो, घृतस्य, पिप्युषीम्) मधुर विषयाकार वृत्तिवर्धक (पूर्व्याम्) परमात्मसम्बन्धी (इमाम्, धियम्) इस बुद्धि को (उक्थेन) वेदस्तुति द्वारा (वावृधु) बढ़ाते है ॥४३॥

भावार्थ —हे परमात्मन् ! अपनी मेधा विद्वान् जन वेदवाक्यो से उन्नत करते हैं जिससे वह आपको प्राप्त कराने वाली हो। तात्पर्य यह है कि हमारी बुद्धि ऐसी सूक्ष्म हो कि जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयो को जान आपकी सूक्ष्मता को अनुभव करे ॥४३॥

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः ।

इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥४४॥

पदार्थ.—(विमहीनाम्) विशिष्ट महान् पुरुषो के (मेधे) यज्ञ में (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रम्, इत्) परमात्मा का ही (वृणीत) वरण करें, (सनिष्यु) धन के इच्छुक (ऊतये) रक्षार्थ (इन्द्रम्) परमपिता ही की उपासना करें ॥४४॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि पुरुष बड़े-बड़े यज्ञ परमात्मा के ही निमित्त करे और ऐश्वर्य का इच्छुक पुरुष उसी की उपासना मे तत्पर रहे तो वह अवश्य ही सफल होगा ॥४४॥

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।

सोमपेयाय वक्षतः ॥४५॥

पदार्थ —(पुरुष्टुत) हे बहुस्तुत प्रभो ! (प्रियमेधस्तुता, हरी) विद्वानों की प्रशसनीय हरणशील शक्तियां (सोमपेयाय) सौम्यस्वभाव के पानार्थ (त्वा) आपको (अर्वाञ्चम्) हमारे अभिमुख (वक्षत) वहन करें ॥४५॥

भावार्थ —हे असख्य विद्वानो द्वारा स्तुत परमात्मा ! ऐसी कृपा कीजिए कि हम विद्वानो की प्रशंसनीय शक्तियां आपका प्राप्त कराने वाली हो। तात्पर्य यह है कि हमारा वेदाभ्यास व वैदिककर्मानुष्ठान हमारे लिए सुख प्रदान कराने वाला हो ॥४५॥

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे ।

राधांसि याद्वानाम् ॥४६॥

पदार्थ —(याद्वानाम्) मनुष्यो मे (तिरिन्दिरे) जो अज्ञान का नाश करने वाले हैं उनके लिए (शतम्) सौ प्रकार का धन (पर्शौ) जो दूसरो को देता है उसके लिये (सहस्रम्, राधांसि) सहस्र प्रकार के धनो को (अहम्) मैं (आददे) धारण करता हूँ ॥४६॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि कर्मों के अनुसार यथाभाग सभी को प्रदान करने वाला परमात्मा ज्ञानशील व परोपकारी पुरुषो को सैकड़ो तथा सहस्रो प्रकार के पदार्थ देता है ॥४६॥

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ।

ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७॥

पदार्थ —(पज्राय, साम्ने) जो विविध विद्या अर्जक सामवेद ज्ञाता है उसे (अर्वतां, त्रीणि, शतानि) तीन सौ अश्व (गोनां, सहस्रा, दश) और दश सहस्र गायें (ददु) उपासक देते हैं ॥४७॥

भावार्थ — सामवेद ज्ञाता विद्वान् को उपासक तीन सौ अश्व और दश सहस्र गायें देते हैं, अर्थात् जिसे प्रभु ऐश्वर्य्य देता है वह सामवेद के ज्ञाता को उक्त दान देता, है प्रसन्न करता है, जिससे अन्य लोग भी उत्साहित होकर वेदाध्ययन करते हुए प्रभु भक्ति मे अनुरक्त हों ॥४७॥

उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् ।

श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८॥

पदार्थः—(ककुहः) अभ्युदय से प्रवृद्ध उपासना करने वाले (चतुर्युजः, उष्ट्रान्) स्वर्ण भारो से लदे चार ऊट, और (याद्वम्, जनम्) जन समुदाय को (ददत्) देता हुआ (श्रवसा) कीर्ति से (दिवम्) द्युलोक तक (उदानट्) व्यापता है ॥४८॥

भावार्थ —ऐश्वर्यशाली उपासक विभिन्न विद्याओं से सपन्न वेदज्ञाता पुरुष को सुवर्ण से लदे चार ऊट व उनकी रक्षा के लिए जनसमुदाय देता हुआ अतुल कीर्ति प्राप्त करता है और दूसरो को भी वेदो के अध्ययन के लिए प्रोत्साहन देता है ॥४८॥

अष्टम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षट्त्रिंशदृचस्य सप्तमसूक्तस्य १-३६ पुनर्वत्स. काण्व ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ छन्द —१, ३-५, ७-१३, १७-१९, २१, २८, ३०-३२, ३४ गायत्री। २, ६, १४, १६, २०, २२-२७, ३५, ३६ निचृद्गायत्री। १५ पादनिचृद्गायत्री। २९-३३ आर्चीविराड्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

क्षात्रबल का वर्णन करते हुए प्रथम योद्धा लोगों के गुणों का कथन ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।

वि पर्वतेषु राजथ ॥१॥

पदार्थः—(मरुत) हे तीव्र गतिमान् योद्धाओ ! (यत्) जो (विप्र:) मेधावी व्यक्ति (व:) आपके (इषम्) इष्टधन को (त्रिष्टुभम्) तीन स्थानो मे बांट कर (प्राक्षरत्) खर्चता है इससे आप (पर्वतेषु) दुर्गप्रदेशो मे (विराजथ) विशेष करके प्रकाशमान हो रहे हैं ॥१॥

भावार्थ—वही क्षात्रबल वृद्धि पाने में समर्थ है जिसके नेता बुद्धिमान् हों। यहाँ मेधावी मन्त्री, प्रधान व क्षात्रशक्ति का निरूपण है। विद्यासभा, सैनिकबल, प्रजोपकारी वापी, कुए, सरोवर, राजपथ इत्यादि के लिए खर्च करना, यही व्यय के तीन प्रकार हैं ॥१॥

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम ।

नि पर्वता अहासत ॥२॥

पदार्थ —(अङ्ग) हे योद्धाओ ! (यद्) जब (शुभ्रा) शोभासपन्न आप (तविषीयव) अन्यों के बल को खोजते (यामम्, अचिध्वम्) वाहनो को एकत्रित करते हैं तो (पर्वता) शत्रुओं के दुर्ग (न्यहासत) कांप उठते हैं ॥२॥

भावार्थ:—साधन सामग्री से सपन्न दुर्ग को ही सैन्य संचालकों को सर्वोत्तम मानना चाहिए। मानवों, यानों, अश्व इत्यादि सेना सरक्षक पशुओं का दुर्ग ही सर्वोपरि है ॥२॥

वेदवाणी के माता तथा स्वत प्रमाण होने का कथन ॥

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः ।

धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥३॥

पदार्थः—(पृश्निमातर) सरस्वती के वरदपुत्र (वाश्रास.) शब्दायमान योद्धा (वायुभिः) वायु जैसी सेना द्वारा (उदीरयन्त) शत्रुओं को प्रेरित करते

हैं ; (पिप्युषीम्) बलादि वर्धक (इषम्) सम्पत्ति का (धुक्षन्ति) दोहन कर पाते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो लोग एकमात्र ईश्वर की वाणी को ही माता मानते है वे ही सदा विजयी होते हैं ; क्योंकि ईश्वरीय वाणी को मान ईश्वरीय नियमों पर चलने जैसा ससार में और कोई बल नही, अतएव मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह वेदवाणी को स्वत.प्रमाण मान ईश्वरीय नियमो का अनुगमन करे ॥३॥

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।

यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (वायुभि) सेना के साथ (मरुत) योद्धा (यामम्, यान्ति) यानो पर बैठते हैं, तो (मिहम्, वपन्ति) शस्त्र बरसाते हैं और (पर्वतान्) दुर्गप्रदेशो को (प्रवेपयन्ति) प्रकम्पित कर देते है ॥४॥

भावार्थ—व्योमयानादि द्वारा शत्रुओ पर आक्रमण करने वाले ही शत्रुबल को प्रकम्पित करने मे समर्थ हो पाते हैं, दूसरा कोई नहीं ॥४॥

उत्साही और साहसी सैनिकों का महत्त्व ॥

नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे ।

महे शुष्माय येमिरे ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जो (वः, विधर्मणे, यामाय) विरुद्ध धर्म वाले आपके वाहन व (महे, शुष्माय) महान् बल हेतु (गिरि) पर्वत (नियेमिरे) स्थगित होते हैं (सिन्धव) और नदियां भी (नि) स्थगित हो जाती हैं, ऐसा है आपका पराक्रम ॥५॥

भावार्थ—उत्साह का वर्णन करते हुए इस मन्त्र में कहा गया है कि नितान्त उत्साही व साहसी जनों के समक्ष सरिताएं व पर्वत भी मार्ग छोड़ देते हैं ॥५॥

अभ्युदयप्राप्ति का हेतु वर्णन ॥

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे ।

युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥६॥

पदार्थ—हे योद्धाओ ! (ऊतये) आत्मरक्षार्थ (नक्तं युष्मान्, उ) रात्रि मे आप का ही (हवामहे) आह्वान किया जाता है , (दिवा, युष्मान्) दिन मे भी आपका और (प्रयति, अध्वरे) यज्ञ के प्रारम्भ मे भी आपका ही आह्वान करते हैं ॥६॥

भावार्थ—क्षात्रधर्मवेत्ता सैनिक व पदार्थ विद्यावेत्ता विद्वान् एवं अध्यात्मविद्यावेत्ता योगी इत्यादि विद्वानो का यज्ञ में सत्कार करने से अभ्युदय की प्राप्ति होती है ॥६॥

उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते ।

वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥७॥

पदार्थः—(त्ये) वह पहले कहे गए (अरुणप्सवः) अरुण वर्ण युक्त (चित्रा) आश्चर्यरूप (वाश्राः) शब्दायमान योद्धा जन (यामेभिः) यानो से (दिव , अधि) अन्तरिक्ष में (ष्णुना) ऊपरी भाग मे (उदीरते, उ) चलते हैं ॥७॥

भावार्थ.—क्षात्रधर्मप्रवीण योद्धाओं के रक्तवर्ण का वर्णन करते हुए इस मन्त्र में कहा गया है कि वह देदीप्यमान सुन्दर वर्णयुक्त योद्धाजन विमानों से अतरिक्ष मे विचरण करते हैं ॥७॥

सम्राट् का महत्त्व ॥

सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे ।

ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥८॥

पदार्थः—(ते) वे योद्धाजन (सूर्याय, यातवे) सूर्य के समान सम्राट् के जाने हेतु (ओजसा) अपने पराक्रम द्वारा (रश्मिम्, पन्थाम्) प्रकाशित मार्ग (सृजन्ति) बना देते हैं (भानुभि) और अपने तेज द्वारा (वितस्थिरे) अधिष्ठाता बन जाते हैं ॥८॥

भावार्थः—जिस तरह सूर्य मे प्रभामण्डल होता है, अर्थात् उसकी रश्मियां प्रभा से सूर्यमुख को ढके रहती हैं, उसी प्रकार जिस सम्राट् का स्वरूप उसके सैनिकों के तेज से ही देदीप्यमान व आच्छादित रहता है वही सम्राट् प्रशंसा के योग्य होता है ॥८॥

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः ।

इमं मे वनता हवम् ॥९॥

पदार्थ—(ऋभुक्षण , मरुतः) हे महत्त्वपूर्ण योद्धाओ ! (इमाम्, मे, गिरम्) मेरी इस प्रार्थनापूर्ण वाणी को, (इमम् स्तोमम्) इस स्तोत्र को, (इमम्, मे, हवम्) मेरे इस आह्वान को, (वनत) स्वीकार करो ॥९॥

भावार्थः—युद्ध में निर्भय होकर मरने-मारने वाले "मरुत्" कहलाते हैं। जो निःस्पृह होकर युद्ध करते हैं और जिन्हे मरने से भय व जीने का मोह नहीं, ऐसे योद्धाओ का नाम "मरुत्" है। इन मरुतो की मातायें उन्हे तीन प्रकार से उत्साहित करती है ॥९॥

माताओं का पुत्रो को युद्धार्थ सन्नद्ध करना ॥

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।

उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१०॥

पदार्थ—(पृश्नय) योद्धाओ की जननियां (वज्रिणे) वज्रशक्ति सम्पन्न अपने पुत्रो के हेतु (त्रीणि, सरांसि) तीन पात्रो का (दुदुह्रे) दोहन करती हैं। ये हैं (मधु, उत्स) मधुर उत्साह पात्र, (कवन्धम्) धतिपात्र, (उद्रिणम्) व स्नेहपात्र ॥१०॥

भावार्थ—विद्युत् शस्त्र सम्पन्न वज्री योद्धाओ की जननियां उन्हे मधुर वचनो मे युद्ध की शिक्षायें देती हैं और उनको उत्साहित करके व जाति मे स्नेह की वृद्धि कर युद्ध के लिए तैयार करती है ॥१०॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।

आ तू न उप गन्तन ॥११॥

पदार्थ—(मरुत) हे योद्धाजनो ! (सुम्नायन्त) सुख की कामना करने वाले हम (यत् ह) जो (व) आप लोगो को (दिव) अन्तरिक्ष से (हवामहे) आह्वान करते हैं (आ, तु) अत. शीघ्र (न) हमारी ओर (उपगन्तन) आप आवें ॥११॥

भावार्थ—यहां योद्धाओ का आह्वान कथन किया गया है जो विमान से अन्तरिक्ष मे घूमते हैं, किसी अन्य का नहीं ॥११॥

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।

उत प्रचेतसो मदे ॥१२॥

पदार्थ.—(यूयम्) आप (सुदानवः) दानशील (हि, स्थ) हैं (रुद्राः) दुष्टो को रुलाने वाले (दमे, ऋभुक्षण) दमन मे नितात तेजस्वी (उत) और (मदे) प्रजा को हर्षित करने मे (प्रचेतसः) प्रयास रत हैं ॥१२॥

भावार्थः—दमनशक्तिसम्पन्नपुरुष उत्पाती व दुस्साहसियों का दमन कर प्रजा मे शान्ति की स्थापना कर सकते हैं। अतएव ऐसे तेजस्वी पुरुषो की प्राप्ति के हेतु परमात्मा से प्रार्थना करना आवश्यक है ॥१२॥

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।

इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३॥

पदार्थ—(मरुत) हे वीरो ! (न) आप हमे (मदच्युतम्) शत्रुओ का गर्व हरने वाले (पुरुक्षुम्) बहुजन प्रशसित, (विश्वधायसम्) सर्वधारक (रयिम्) धन को (दिव) अन्तरिक्ष से (इयर्त) आहरण करें ॥१३॥

भावार्थ—इस अनन्त ब्रह्माण्ड से जो लोग पदार्थविद्या द्वारा उपयोग लेते हैं वे अतरिक्ष मे सदा स्वेच्छा से विचरते हैं और प्रजा को अनन्त धनो का भण्डार देते है। अतएव उन्नति चाहने वालो को उक्त विद्या के जानने हेतु पूर्ण परिश्रम करना अभीष्ट है ॥१३॥

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।

सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥१४॥

पदार्थ—(शुभ्रा) हे शुभ्र योद्धाओ ! (यद्) जब आप (गिरीणाम्, अधीव) पर्वतो के मध्यभाग के तुल्य (यामम्) यान को (अचिध्वम्) एकत्रित करते हैं, तब (सुवानै., इन्दुभिः) अनेक दिव्य पदार्थ का उत्पादन करते हुए (मन्दध्वे) व सब प्रजाओ को हर्षित कर देते हैं ॥१४॥

भावार्थ—मन्त्र मे स्पष्ट किया गया है कि पराक्रमी योद्धाओं के लिए तो जल, स्थल सब एक प्रकार के हो जाते हैं और वह गिरिशिखरो पर बिना रोक-टोक जाते-आते है ॥१४॥

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।

अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५॥

पदार्थ—(अदाभ्यस्य) जिनका कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता, (एतावत.) ऐसे महिमामय (एषाम्) इन योद्धाओं के (सुम्नम्) सुख को (मर्त्यः) मनुष्य (मन्मभि) अनेकविध ज्ञानो से (भिक्षेत) प्राप्त करे ॥१५॥

भावार्थ—जो योद्धा अपने क्षात्रबल मे पूर्ण हैं, और जिनका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता उन्ही से अपनी रक्षा की याचना करनी चाहिए ॥१५॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः ।

उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥१६॥

पदार्थ—(ये) जो योद्धागण (अक्षितम् उत्सम्) सतत उत्साह को (दुहन्तः) दुहते (द्रप्सा इव) जलबिन्दु समूहवत् एकमत होकर (वृष्टिभि) शस्त्रों की वर्षा से (रोदसी) द्युलोक व पृथ्वी को (अनुधमन्ति) गुंजित कर देते हैं ॥१६॥

भावार्थ —जिन शूरवीरों की अस्त्र-शस्त्ररूपी बाणवृष्टि द्वारा गगनमंडल भर जाता है उन्हीं से अपनी रक्षा की याचना करें ॥१६॥

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः ।

उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥१७॥

पदार्थ —(पृश्निमातर) योद्धाजन (स्वानेभि) शब्द सहित (उदीरते, उ) स्थान से निकलते हैं; (रथै.) यानो से (उत्) निकलत है, (वायुभि) वायु के तुल्य वीरो सहित (उदु) निकलते व (स्तोमै) स्तोत्रो सहित (उत्) स्थान से बाहर आते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जिन रणशूरो के रथो के पहियो से धरती गूज उठती है, ऐसे योद्धाओ से ही रक्षा की याचना करना उचित है ॥१७॥

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम

राये सु तस्य धीमहि ॥१८॥

पदार्थः—(येन) जिस रक्षण द्वारा (तुर्वशम्, यदुम्) हिंसा को मिटाने वाले मनुष्य को (आव) रक्षित किया (येन) और जिस रक्षा द्वारा (धनस्पृतम्, कण्वम्) धन प्राप्ति के इच्छुक विद्वान् सुरक्षित हुए (राये) धन के लिए हम (तस्य) उस रक्षण को (सुधीमहि) सम्यक् स्मरण करते हैं ॥१८॥

भावार्थ —हे विद्वान् सेनानायको ! आप आध्यात्मिक विद्या मे श्रेष्ठ विद्वानो की रक्षार्थ अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य क दाता हैं, इससे ब्रह्मविद्या भली भांति उन्नति पाती है ॥१८॥

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः ।

वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥१९॥

पदार्थ —(सुदानव.) हे शोभन दानी! (काण्वस्य, मन्मभि) विद्वान समूह के ज्ञान द्वारा (घृतम् न, पिप्युषी·) घृत जैसे पोषक (इमा, व, इष·) यह आपके ऐश्वर्य पदार्थ (वर्धान्) बढ़ें ॥१९॥

भावार्थ —यहा कहा गया है कि हे विद्वानो ! आप घृतादि पुष्टिप्रद पदार्थों की रक्षा करे जिससे बल वीर्य की पुष्टि व वृद्धि से नीरोग होकर ब्रह्मविद्या व ऐश्वर्य की वृद्धि करने मे प्रयत्नशील हो ॥१९॥

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः ।

ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥२०॥

पदार्थ —(सुदानव) हे शोभन दानी ! (वृक्तबर्हिष) पृथक् दिया गया है आसन जिन्हे ऐसे आप (क्व, नूनम्, मदथा) कहा स्थित हो मनुष्यो को हर्षित कर रहे हैं ? (क, ब्रह्मा) कौन विद्वान् (व) आपको (सपर्यति) वन्दना करता है ? ॥२०॥

भावार्थ —यहा बताया गया है कि जिन्हे यज्ञ मे असाधारण आसन मिलता है वह "वृक्तबर्हिष" कहलाते है और ऐसे विद्वानो का गुणगौरव चतुर्वेद वक्ता ब्रह्मा ही जानता है, अन्य नहीं, और वही विशेषतया पूजायोग्य होते हैं ॥२०॥

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।

शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥२१॥

पदार्थः—(वृक्तबर्हिष, व) जिन्हे पृथक् आसन दिया गया है ऐसे आप (स्तोमेभिः) मेरे स्तोत्रो से प्रार्थित हो (यत्, ह) जो (ऋतस्य) दूसरो के यज्ञो के (शर्धान्) बलो का (जिन्वथ) बढावें (नहि, स्म) ऐसा सभावित नही है ॥२१॥

भावार्थ —हे असाधारण उच्च आसन पर आसीन विद्वज्जनो ! आप हमारे यज्ञो मे पधार कर शोभा बढाए और हमे अपने उपदेशो से शुभ ज्ञान दें ॥२१॥

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥२२॥

पदार्थ —(त्ये) वे योद्धा गण (महतीः, अप.) महान् जलों की (समु) थाह लेते हैं, (क्षोणी) पृथ्वी की (सम्) थाह लेते और (सूर्यम्, समु) सूर्य का सन्धान करते है, (पर्वश) कठोर स्थलो को तोड़ने हेतु (वज्रम्) विद्युत्शक्ति का (सन्दधु.) सन्धान करते हैं ॥२२॥

भावार्थ —उपरोक्त श्रेणी के विद्वान् जन महान् आविष्कारो द्वारा प्रजा को सब प्रकार से सुख देते हैं अर्थात् जलो के सशोधन की विद्या और अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रो का परिचय प्रदान करते है जिससे शत्रु का पूर्णतः दमन हो और इसीलिए वे विद्वान् पूजा के योग्य होते हैं ॥२२॥

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः ।

चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥२३॥

पदार्थ —(अराजिन) स्वतन्त्र (वृष्णि, पौंस्यम्, चक्राणा·) अतिशय पौरुष करते हुए वे लोग (वृत्रम्) अपना मार्ग रोकने वाले शत्रु को (पर्वश·) पर्व-पर्व मे (वियय‍ु) पृथक् कर देत हैं (पर्वतान्) और मार्ग रोकने वाले पर्वतो को भी (वि) तोड-फोड देत हैं ॥२३॥

भावार्थ.—अस्त्र-शस्त्रो के प्रयोग में पारगत विद्वज्जन अपने परिश्रम से मार्ग-रोधक शत्रुओ को छिन्न-भिन्न कर भगा देते हैं, वे जिन पर्वतों का सहारा लेते हैं उन्हें भी अपनी विद्या से तोड़-फोड कर शत्रुओ को परास्त करते हैं ॥२३॥

योद्धाओं की अपने सब कामों में जागरूकता ॥

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।

अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥२४॥

पदार्थ —(वृत्रतूर्ये) असुरो के संग्राम मे (युध्यत, त्रितस्य, अनु) युद्धरत तीन सेनाओ के अधिपति क पीछे (शुष्म, आवन्) उसकी बल रक्षा करते है (उत) और साथ ही (क्रतुम्) उसके राष्ट्रकर्म की भी रक्षा करते तथा (इन्द्रम्) सम्राट् को (अनु) सुरक्षित रखते है ॥२४॥

भावार्थ —वे अग्रणी विद्या से सपन्न योद्धा संग्राम मे युद्ध करते है तथा पिछले तीसरे मडल की रक्षा करते हैं, वे सम्राट् को भी सुरक्षित रखते हैं, इस प्रकार राष्ट्र की रक्षा करते है, इस प्रकार वे अपने दायित्व को पूर्ण कर राष्ट्र को मगल प्रदान करते है ॥२४॥

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः ।

शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५॥

पदार्थ.—(विद्युद्धस्ता) विद्युत शक्तिसपन्न शस्त्रो को सभाले (अभिद्यव) चारो दिशाओ से द्योतमान वे योद्धा (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययी) सुवर्णमय (शुभ्राः) सुन्दर (शिप्रा.) शिरस्त्राण (श्रिये) शोभा हेतु धारण किये हुए (व्यञ्जत) सुशोभित होते हैं ॥२५॥

भावार्थ —वे योद्धा जो पदार्थविद्याओ मे पारंगत हैं नाना प्रकार के विद्युत् शस्त्र लेकर धर्मयुद्ध में उपस्थित हो और शत्रुओ पर विजय पाकर सुशोभित हो ॥२५॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।

द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६॥

पदार्थ —(यत्) जब (उशना) रक्षा की इच्छा रखते हुए योद्धागण (उक्ष्णः) कामनाओ की वर्षा करन वाले अपने रथ के (रन्ध्रम्) मध्यभाग मे (अयातन) जाकर बिराजत हैं तब (परावत.) दूर से ही (द्यौ, न) मेघाच्छन्न द्युलोक के तुल्य (भिया) भय से यह लोक भी (चक्रदत्) आन्दोलित होने लग जाता है ॥२६॥

भावार्थ —नाना प्रकार की कामना देन वाले यानो पर आरूढ़ होकर जो योद्धा युद्ध मे जाते है उनमे सभी भयभीत होते हैं और वही विजय प्राप्त कर पाते है और कोई नही ।

"उक्षा" शब्द का अर्थ सायणाचार्य ने भी कामनाओ की वृष्टि करन वाला किया है, जो लोग इसे बलीवर्द बैल वाचक मान गवादि पशुओं का बलिदान बताते हैं उनका कथन वेदाशय के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि "उक्षा" शब्द किसी पशु-पक्षी के बलिदान के लिए नही आता ॥२६॥

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।

देवास उप गन्तन ॥२७॥

पदार्थ —(देवास.) हे दिव्यजनो ! आप (दावने) अपनी शक्ति देने हेतु (हिरण्यपाणिभि) हिरण्य जिनके हाथ में है ऐसी (अश्वैः) व्यापक शक्तियो समेत (न मखस्य) हमारे यज्ञ के (आ) अभिमुख (उपगन्तन) आवें ॥२७॥

भावार्थ —ऐश्वर्य तथा हिरण्यादि दिव्य पदार्थ दैवी शक्ति सपन्न लोगो के हाथ मे ही होत है । अतएव ऐसे विभूतियुक्त तथा दिव्यशक्तिमान् देवताओ को यज्ञ मे निमन्त्रित करके बुलाया ही जाए ताकि उनके उपदेशो से प्रजाजन लाभान्वित हो सकें ॥२७॥

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।

यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

पदार्थ —(यत्) जब (एषाम्) इन्हे (प्रष्टि) तीव्रगामी सारथि (रथे) रथ म चढाकर (पृषती) जल से सबधित स्थलियो की ओर (वहति) ले जाता है तब वह (शुभ्रा· अप) जल को स्वच्छ (रिणन्) करते हुए (यान्ति) जाते हैं ॥२८॥

भावार्थ —मन्त्र का तात्पर्य यह है कि पदार्थविद्यावेत्ता पुरुषों का कर्तव्य यह भी है कि वह युद्धसम्बन्धी जलों का भी सशोधन करे जिससे किसी प्रकार का जल-सम्बन्धी रोग पैदा न हो ॥२८॥

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति ।

ययुर्निचक्रया नरः ॥२९॥

पदार्थ —(नर) वे नेता (सुषोमे, शर्यणावति) सुन्दर सोम युक्त उन्नत क्षेत्रों मे और (आर्जीके, पस्त्यावति) सुन्दर गृहो वाले सरल प्रदेशो मे (निचक्रया) स्वचक्र को वशीभूत कर (यान्ति) चलते हैं ॥२९॥

भावार्थ—हिमालय आदि उच्च प्रदेशो से लेकर जो समुद्रपर्यन्त निम्नक्षेत्र हैं उन सब मे पदार्थविद्यावेत्ता योद्धाओ का रथचक्र बिना रोक टोक के ही चलता

है । तात्पर्य यह है कि उनके जलयान, पृथ्वीयान तथा नभोयानादि को कोई विपक्षी रोक नहीं पाता ॥२९॥

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।

मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥३०॥

पदार्थ—(**मरुत**) हे योद्धाजनो ! (**इत्था**) ऐसे (**हवमानम्**) बुलाते हुए (**नाधमानम्**) आपके आगमन की याचना करते हुए (**विप्रम्**) मेधावी पुरुष के यहां (**मार्डीकेभि**) सुखसाधन पदार्थों के साथ आप (**कदा, गच्छाथ**) कब आते हैं ? ॥३०॥

भावार्थ—इस मंत्र मे नाना विद्याओ को जानने वाले मरुतो (विद्वान् योद्धाओ) के आगमन की प्रतीक्षा का वर्णन है कि हे मरुद्गण ! आप सुखसामग्री सहित शीघ्र आयें ॥३०॥

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।

को वः सखित्व ओहते ॥३१॥

पदार्थ—(**कधप्रियः**) हे प्राचीनकथा प्रिय आपका वह समय (**कद्ध**) कौन है (**यद्**) जब आप (**इन्द्रम्**) अपने सम्राट् को (**अजहातन, नूनम्**) निश्चय ही छोडते हो (**व , सखित्वे**) और आपके मैत्रीभाव की (**क , ओहते**) कौन प्रार्थना कर सकता है ! ॥३१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे बताया गया है कि उत्तम योद्धा कठिनतम आपत्काल मे भी अपने सम्राट् का साथ नही छोडते, अर्थात् विपत्तिकाल मे भी राष्ट्र की रक्षा करते हैं ॥३१॥

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।

स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥३२॥

पदार्थ—(**कण्वास**) हे विद्वद्गण ! आप (**मरुद्भि**) उन योद्धाओ के (**सहो**) साथ (**नः**) हमारे (**अग्निम्**) अग्नितुल्य सम्राट् की (**सु, स्तुषे**) सुन्दर रीति से स्तुति करें जो योद्धा (**वज्रहस्तै**) हाथ मे वज्र जैसे शस्त्र तथा (**हिरण्यवाशीभि**) सुवर्णमय यष्टि वा शस्त्रिकाओ को लिये हैं ॥३२॥

भावार्थ—आपत्काल मे भी साथ देने वाले आज्ञाकारी योद्धा जिस सम्राट् के साथ हैं, वह सर्वदा सूर्य के तुल्य आलोकित रहता है अर्थात् उसकी राज्यश्री को कोई दबा नही सकता ॥३२॥

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय ।

ववृत्यां चित्रवाजान् ॥३३॥

पदार्थ—(**वृष्ण.**) कामनाए बरसाने वाले (**प्रयज्यून्**) अतिशय पूज्य (**चित्रवाजान्**) अद्भुत बलवान् योद्धाओ को (**नव्यसे, सुविताय**) नित्य नवीन धनप्राप्ति हेतु (**आ, उ**) अपने अभिमुख (**आववृत्याम्**) मैं आवर्तित करूं ॥३३॥

भावार्थ—न्यायशील तथा धर्मपरायण सम्राट् को परमात्मा कामनाए बरसाने वाले, अद्भुत बलशाली व सदा निर्भीक योद्धा देता है ॥३३॥

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः ।

पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥३४॥

पदार्थ—(**पर्शानास**) उनके द्वारा सताये हुए (**मन्यमाना**) अभिमान वाले (**गिरय , चित्**) पर्वत भी (**निजिहते**) काप जाते हैं, क्योकि (**पर्वता , चित्**) वह पर्वत भी (**नियेमिरे**) उनके नियम से बधे हैं ॥३४॥

भावार्थ—मन्त्र का तात्पर्य यह है कि ऐसे निर्भीक योद्धाओ के प्रचण्ड प्रहार से पर्वत भी काप उठते हैं । यह भी कहा जा सकता है कि जल, स्थल तथा ऊचे नीचे सब प्रदेशो मे उनका पूर्ण प्रभुत्व व्यापता है ॥३४॥

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।

धातारः स्तुवते वयः ॥३५॥

पदार्थ—(**पतत**) चलते हुए योद्धाओ को (**अक्ष्णयावान**) नितान्त वेगवान् रथ (**अन्तरिक्षेण**) अन्तरिक्षमार्ग मे (**वहन्ति**) ले जाते है व (**स्तुवते**) अनुकूल प्रजा को (**वयः**) अन्नादि आवश्यक पदार्थ (**धातार.**) प्रदान करते हैं ॥३५॥

भावार्थ—जो योद्धा अपने यान नभोमण्डल मे चलाते हैं, वे योद्धा यश और ऐश्वर्य सब प्रकार के सुख पाते हैं । तात्पर्य यह है कि उनकी प्रजा भी उनके अनुकूल होती है , वे सब प्रकार से सुखी होते है ॥३५॥

उक्त गुणसम्पन्न योद्धाओं से सम्पन्न सम्राट् का यश वर्णन ॥

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।

ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६॥

पदार्थ—(**अर्चिषा, सूरः, न**) जैसे किरणों के हेतु से सूर्य प्रथम स्तोतव्य समझा जाता है इसी प्रकार (**अग्नि., हि**) अग्नि जैसा सम्राट् ही (**पूर्व्य , छन्द.**) प्रथम स्तोतव्य (**जानि**) होता है (**ते**) और वे योद्धा ही (**भानुभि**) उसकी किरणों के समान (**वितस्थिरे**) उपस्थित होते हैं ॥३६॥

भावार्थ—मन्त्र का तात्पर्य यह है कि ऐसे योद्धा जिस सम्राट् के वश में होते हैं, उसका तेज सहस्रांशु सूर्य के तुल्य दशो दिशाओ में फैल अन्यायरूप अन्धकार को हटाता हुआ सारे ससार को प्रकाश देता है ॥३६॥

अष्टम मण्डल मे सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयोविंशत्यृचस्य अष्टमसूक्तस्य—१-२३ सध्वस. काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१-३, ५, ६, १२, १४, १५, १८-२०, २२ निचृदनुष्टुप् । ४, ७, ८, १०, ११, १३, १७, २१, २३ आर्षी विराडनुष्टुप् । ९, १६, अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः ॥

क्षात्रधर्म व सेनाध्यक्ष तथा सभाध्यक्ष के कर्तव्य का वर्णन ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।

दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥१॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! (**युवम्**) आप (**विश्वाभि, ऊतिभि**) सभी प्रकार की रक्षा से युक्त (**नः**) हमारे पास (**आगच्छतम्**) आए । (**दस्रा**) हे शत्रुनाशकर्ता (**हिरण्यवर्तनी**) सुवर्ण से व्यवहार करने वाले ! (**सोम्यम्**) इस सोमसम्बन्धी (**मधु**) मधुरस को (**पिबतम्**) पिएं ॥१॥

भावार्थ—हे सेनाध्यक्ष तथा सभाध्यक्ष ! आप हमारे यज्ञ मे आकर हमारी सब प्रकार से रक्षा करें, हे ऐश्वर्यशाली ! आप हमारी सहायता कर यज्ञ को पूर्ण करें और हमारा सोमरसपान से सबलित सत्कार स्वीकारें ॥१॥

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।

भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥२॥

पदार्थ—(**भुजी**) हे उत्कृष्ट पदार्थों के भोग कर्ता, (**हिरण्यपेशसा**) हिरण्य-भूषित, (**कवी**) सूक्ष्मपदार्थों के ज्ञाता, (**गम्भीरचेतसा**) गभीरबुद्धियुक्त, (**अश्विना**) व्यापक आप ! (**सूर्यत्वचा**) सूर्यसदृश आस्तरण वाले (**रथेन**) रथ से (**नूनम्**) निश्चय ही (**आयातम्**) आए ॥२॥

भावार्थ—सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष की प्रशसा करते हुए इस मन्त्र मे उनका आह्वान कथन किया है कि आप सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञाता, बुद्धिमान् व विस्मय ऐश्वर्य-युक्त हैं । कृपाकर हमारे यज्ञ मे अपने उपदेशो से हमे भी इन गुणो से सम्पन्न करें ॥२॥

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।

पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥३॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे व्यापक ! आप (**नहुषस्परि**) भूलोक से (**आयातम्**) आए और (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष लोक से (**सुवृक्तिभि**) शत्रुओ का तिरस्कार करने वाले (**आ**) आए ; (**कण्वानां**) विद्वानों के (**सवने**) यज्ञ में (**सुतम्**) सिद्ध हुए (**मधु**) मधुर रस को (**पिबाथ.**) पिए ॥३॥

भावार्थः—हे सर्वत्र प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप सबको वश मे करने वाले व विद्या के पथ-प्रदर्शक हैं, आप हमारे यज्ञ मे पधारें, लौकिक व पारलौकिक विद्या का उपदेश दें ॥३॥

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया ।

पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥४॥

पदार्थ—(**अधप्रिया**) हे मध्यदेशप्रिय ! (**दिवस्परि**) द्युलोक से (**न., आयातम्**) आप हमारे पास आयें व (**अन्तरिक्षात् आ**) अतरिक्ष से आए । (**इह**) इस यज्ञसदन मे (**कण्वस्य, पुत्र**) विद्वान् का पुत्र (**वाम्**) आपके लिए (**सोम्यम्, मधु**) शोभन मधुर रस (**सुषाव**) सिद्ध कर रहा है ॥४॥

भावार्थ—हे यानों से अतरिक्ष मे जाने वाले सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप अतरिक्ष से हमारे यज्ञ मे आकर हमारा सत्कार स्वीकारें और हमे अतरिक्षलोकस्थ विद्या का उपदेश देकर कृतार्थ करें ॥४॥

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।

स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे महान् ! (**न , उपश्रुति**) हमारे यज्ञ मे (**सोम-पीतये**) सोमपान के लिए (**आयातम्**) आयें , आप (**स्वाहा**) वेदवाणी से (**स्तोमस्य**) स्तुतिकर्ता की (**प्रवर्धना**) वृद्धि करने वाले (**कवी**) सूक्ष्मदर्शी तथा (**धीतिभि**) अपनी प्रजा से (**नरा**) ससार का सचालन करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थः—हे सुविख्यात सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप बुद्धिमान्, सूक्ष्मदर्शी व वेदविद्या के ज्ञाता है; हमारे यज्ञ मे पधारें, हमे वेदविद्या का उपदेश दें ॥५॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।

आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे व्यापक ! (**यत्, चित्, हि**) जब (**पुरा**) पूर्वकाल मे (**ऋषय**) विद्वज्जन (**वाम्**) आपको (**अवसे**) रक्षार्थ (**जुहूरे**) आह्वान करते थे तब आप (**आयातम्**) आते थे । इसी प्रकार (**मम, सुष्टुतिम्**) मेरी सुन्दर स्तुति के (**आ**) अभिमुख (**उपगतम्**) आइए ॥६॥

भावार्थ —हे सब ओर प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप पूर्वकाल के समान हमारे विद्यावृद्धिविषयक यज्ञ उत्सव मे पधार कर रक्षा करें व धनधान्य से सहायता दें जिससे हमारा यज्ञ पूर्ण हो ॥६॥

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।

धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥७॥

पदार्थ —(स्वर्विदा) हे द्युलोक की गति के ज्ञाता (धीभि., वत्सप्रचेतसा) अपनी बुद्धि से वत्ससदृश प्रजा के गुप्तरहस्यो के ज्ञाता (स्तोमेभि , हवनश्रुता) स्तुतियो से हवनादि कर्म को जानने वाले आप (रोचनात्, दिव , चित्) रोचमान द्युलोक से (न) हमारे निकट (अध्यागन्तम्) शीघ्र आयें ॥७॥

भावार्थः—हे सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप लोक-लोकान्तरो की विद्या, प्रजा के गुप्त रहस्यो, यज्ञादि कर्मों व वेदविद्या भली-भांति जानते हैं , कृपाकर हमारे यज्ञ मे आएं और हमे इन विद्याओ का उपदेश दें ॥७॥

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।

पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८॥

पदार्थः—(अश्विना) हे व्यापक ! (अस्मत्, अन्ये) हम से अन्य उपासक (किम्) क्या (स्तोमेभिः) स्तोत्रो द्वारा (पर्यासते) आप का परिचरण करते हैं ? (कण्वस्य पुत्र) यह विद्वत्पुत्र (ऋषि) सूक्ष्मद्रष्टा (वत्स) वत्सतुल्य उपासना करने वाला (वाम्) आपको (गीर्भि) यश प्रकाशक वाणियो से (अवीवृधत्) बढ़ा रहा है ॥८॥

भावार्थ.—हे सभी जगह प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! हम आपका सबसे ज्यादा सत्कार करते है और आपके यश को फैलाते हैं, इसलिये आप हमारे यज्ञ मे आकर वेदविद्या का उपदेश दें ॥८॥

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना ।

अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥९॥

पदार्थ —(अश्विना) हे व्यापक ! (अरिप्रा) निष्पाप (वृत्रहन्तमा) शत्रु का नाश करने वाले (वाम्) आपको (विप्र) उपासक ने (इह) यहा यज्ञ में (अवसे) रक्षार्थ (स्तोमेभि) स्तोत्रो से (आह्वत्) बुलाया है, (ता) वह आप (नः) हमारे लिये (मयोभुवा) सुखप्रद (भूतम्) हों ॥९॥

भावार्थः—हे सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आप पापरहित, शत्रुनाशक एव यज्ञों के रहस्य ज्ञाता हैं , हम लोग स्तोत्रो से आपका आह्वान करते हैं, कृपाकर यहां यज्ञ में पधारें ॥९॥

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।

विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१०॥

पदार्थ.—(वाजिनीवसू) हे सेनारूप धनवान् ! (यत्) जब (वाम्) आपके (रथम्) रथपर (योषणा) विजयलक्ष्मीरूप स्त्री (आतिष्ठत्) चढ़ती है तब (अश्विना) हे व्यापक ! (युवम्) आप (विश्वानि, प्रधीतानि) सकल अभिलाषाओ को (अगच्छतम्) पा जाते हैं ॥१०॥

भावार्थः—हे सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! आपकी सब इच्छाए पूर्ण हैं; हे भगवन् ! आप हमारी कामनाओ की पूर्ति करने के लिये भी प्रयत्नशील हो, यह प्रार्थना है ॥१०॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।

वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥११॥

पदार्थ —(अत) इस लिये (अश्विना) हे सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! (सहस्रनिर्णिजा) अनेक रूपो वाले (रथेन) रथ से (आयातम्) आप आयें ; (वत्स) आपका वत्स (काव्य) कविपुत्र (कवि) स्वय भी कवि यह उपासक (वाम्) आपकी स्तुति से सम्बन्धित (मधुमद्वच) मधुर वाणियों को (अशंसीत्) कह रहा है ॥११॥

भावार्थ.—हे सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! अपने विचित्र यान के द्वारा आप हमारे यज्ञ मे आए , सब विद्वान् मधुर वाणी द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥११॥

पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।

स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥१२॥

पदार्थ —(पुरुमन्द्रा) हे अति आनन्दयुक्त (पुरूवसू) अति धनवान् (रयीणाम्) धनों के (मनोतरा) अत्यन्त ज्ञानवान् (अश्विनौ) व्यापक शक्ति वाले (वह्नी) जगत् के वोढा ! आप (इम, मे, स्तोमम्) इस स्तोत्र को (अभ्यनूषाताम्) प्रशसनीय करें ॥१२॥

भावार्थः—हे सभाध्यक्ष एव सेनाध्यक्ष ! आप आनन्दयुक्त, बहुधनो के धन व धनोपार्जन की विद्या के ज्ञाता, सर्वपूज्य हैं, हे भगवन् ! हमारे इन स्तुतिपूरित वाक्यो को सुनते हुए हमारे यज्ञ मे आकर इसे सफल करें ॥१२॥

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।

कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! (नः) मुझे (विश्वानि) सर्वप्रकार के (अह्रया) लज्जा के अनुत्पादक (राधांसि) धनों को (आधत्तम्) प्रदान करें और (न) मुझे (ऋत्वियावतः) सब ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले पदार्थों से (कृतम्) सम्पन्न करें; (निदे) निन्दक के लिए (न.) मुझे (मा) मत (रीरधतम्) समर्पित करें ॥१३॥

भावार्थ —हे सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप हमे उत्तमोत्तम धन उपार्जन की विधि बताए जिससे हम धनसम्पन्न हो; आप ऐसी कृपा करें कि वेदज्ञाता सत्पुरुषो से ही हमारा सम्बन्ध एव व्यवहार हो; लम्पट, निन्दक, असत्यभाषी वेदमर्यादा से गिरे हुए पुरुषो से हमारा सम्बन्ध न रहे ॥१३॥

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥

पदार्थ —(नासत्या) हे सत्यवादी ! (यत्) यदि आप (परावति) सुदूरदेश में (यद्, वा) अथवा (अध्यम्बरे) अन्तरिक्षप्रदेश में (स्थ.) हों (अश्विना) हे व्यापकशक्तियुक्त (अत) इन सब स्थानो से (सहस्रनिर्णिजा, रथेन) अनेकरूपवाले यान से (आयातम्) आए ॥१४॥

भावार्थ —हे सत्य इत्यादि गुण वाले सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप जिस किसी स्थान पर भी हो, कृपाकर सब स्थानों से अपने विचित्र यानो के द्वारा हमारे यज्ञ मे आकर सुशोभित हो और हमे विविध विद्याओ का ज्ञान प्रदान करें ॥१४॥

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।

तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५॥

पदार्थः—(नासत्यौ) हे सत्यभाषियो ! (यः, वत्स , ऋषि) जो पुत्रसदृश विद्वज्जन (वाम्) आपको (गीर्भि) स्तुति वाणियो द्वारा (अवीवृधत्) बढ़ाय (तस्मै) उसके लिए (घृतश्चुतम्) स्नेहवर्धक (सहस्रनिर्णिजम्) अनेक प्रकार के (इषम्) अन्न तथा धन (धत्तम्) उत्पन्न करें ॥ १५ ॥

भावार्थ —हे सत्यवादी सभाध्यक्षो एव सेनाध्यक्षो ! जो पुत्रसम विद्वान् आपकी स्तुति करते हुए आपकी प्रसिद्धि करते है वे आपका अपने यज्ञ मे आह्वान करते हैं, आप यज्ञ मे पधार कर अन्न तथा धन के दान से उनको कृतार्थ करें ॥१५॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।

यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६॥

पदार्थ —(अश्विना) हे अश्विना (दानुनस्पती) दान देने मे स्वतन्त्र ! (युवम्) आप (अस्मै) उसके लिये (ऊर्जम्) बल उत्पन्न करने वाले (घृतश्चुतम्) स्नेहवर्धक इष्ट पदार्थ (प्रयच्छतम्) दें (य) जो (सुम्नाय) सुख के हेतु (तुष्टवत्) आपकी स्तुति करता अथवा (वसूयात्) धन की इच्छा करता है ॥१६॥

भावार्थ —हे दानी सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष! आप उत्तम से उत्तम पदार्थ यजमान के लिए प्रदान करें जो आप से धन की अपेक्षा रखता है ॥१६॥

आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।

कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये । १७॥

पदार्थ -(रिशादसा) हे शत्रु का मर्दन करने वाले (पुरुभुजा) बहुत रत्नो के भोक्ता (नरा) नेता ! आप (इमम्) इस (नः, स्तोमम्) हमारे स्तोत्र के (आ) अभिमुख (गन्तम्) आएं (न) हमें (सुश्रिय) शोभनश्रीयुक्त (कृतम्) करें, (अभिष्टये) यज्ञ के अर्थ (इमा) इन भौतिक पदार्थों को (दातम्) प्रदान करें ॥१७॥

भावार्थ —शत्रुओ पर विजय पाने वाले हे सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप हमारे यज्ञ को पूरा करने वाले उत्तमोत्तम पदार्थ प्रदान करते हुए हमारे यज्ञ मे पधारें और हमे उत्साह प्रदान करें ॥१७॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥

पदार्थ —(अध्वराणाम्, राजन्तौ) हे हिंसा से रहित यज्ञादि कर्मों के स्वामी (अश्विना) सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष ! (विश्वाभि , ऊतिभि) सभी प्रकार की रक्षाओ सहित (वाम्) आपको (प्रियमेधा) यज्ञप्रिय मनुष्य (यामहूतिषु) यज्ञों में (आहूषत) आह्वान करते है ॥१८॥

भावार्थ —हे यज्ञादि कर्मों मे अगुआ सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप हमारे यज्ञ को प्राप्त हो हमारी सभी ओर से रक्षा करें जिससे हमारा यज्ञ बिना किसी विघ्न के पूर्ण हो जाए ॥१८॥

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम् ।

यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९॥

पदार्थ —(मयोभुवा) हे सुखप्रदाता (शम्भुवा) शांतिस्रष्टा (अश्विना) बल से सर्वत्र विद्यमान के सदृश (न) हमारे समीप (आगन्तम्) आएं; (विपन्यू) हे व्यवहारकुशल ! (यः, वत्सः) जो पुत्र सदृश पालनीय हम (धीतिभि) कर्मों

के द्वारा और (गीर्भिः) वेदवाणियों से (वाम्) आपको (अवीवृधत्) बढ़ाते हैं ॥१९॥

भावार्थ —हे शान्ति व सुखों के प्रदाता सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप हमारे यज्ञ में आए, हम आपकी वृद्धयर्थ वेदवाणियों से परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥१९॥

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।

याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥

पदार्थ —(नरा) हे नेताओ ! (याभि) जिन रक्षाओं द्वारा (मेधातिथिम्, काण्वम्) पवित्र अतिथि वाले विद्वज्जन (याभि) और जिन रक्षाओं से (वशम्, दशव्रजम्) इन्द्रियों को वश में रखने वाले व्यक्ति की (याभि) और जिनसे (गोशर्यम्) नष्टेन्द्रिय की (आवतम्) रक्षा की (ताभि) उन्हीं रक्षाशक्तियों से (नः) मुझे (अवतम्) सुरक्षित करो ॥२०॥

भावार्थ.—हे धार्मिक नेता ! जिस प्रकार आप विद्वानों की, योगियों की और नष्ट इन्द्रियादि अधिकारियों की रक्षा करते है उसी तरह हमारी भी रक्षा करें ताकि आपके आधिपत्य में हमारा विद्या बढ़ाने वाला यज्ञ पूर्ण हो ॥२०॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।

ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१॥

पदार्थ —(अश्विना, नरा) हे बलवान् नेता सेनापति ! हे सभाध्यक्ष ! (धने, कृत्व्ये) धन उपार्जन के लिए (याभि) जिन रक्षाओं से (त्रसदस्युम्) दस्यु को भयभीत करने वाले शूरवीर को (आवतम्) सुरक्षित किया (ताभि) उन रक्षाओं द्वारा (वाजसातये) धनप्राप्ति हेतु (अस्मान्) हमें (सु) भली प्रकार (प्रावतम्) सुरक्षित करें ॥२१॥

भावार्थ —हे बलशाली शूरवीर सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! जिन शक्तियों से आप दस्यु वेदविरोधी जनों में भय को प्राप्त शूरवीरों की रक्षा करते हैं, उन्हीं शक्तियों से आप हमारी रक्षा करें ताकि हम निर्विघ्न धन पैदा करने में तत्पर रहें ॥२१॥

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।

पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥

पदार्थः—(अश्विना) हे व्यापक ! (सुवृक्तय) सुन्दर निर्मित (स्तोमा, गिरः) स्तुति वाक्य (वाम्) आपको (वर्धन्तु) बढ़ायें, (पुरुत्रा) हे अनेकों के रक्षक ! (वृत्रहन्तमा) शत्रुओं के लिए अतिशय विघातक (तौ) वह आप (न) हमारे (पुरुस्पृहा) अतिशय स्पृहणीय (भूतम्) हों ॥२२॥

भावार्थः—हे सर्वत्र विख्यात सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष हम वेदवाणियों से आपकी वृद्धि की प्रार्थना करते हैं, हे सर्वरक्षक ! आप हम लोगों के समीप हो जिससे हम अपने इष्ट कार्यों को निर्विघ्न समाप्त कर सकें ॥२२॥

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सन्ति गुहा परः ।

कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३॥

पदार्थः—(अश्विनो) सेनाध्यक्ष व सभाध्यक्ष के (त्रीणि, पदानि) तीन पद अर्थात् विजय, शान्तिस्थापन तथा न्यायकरणये (गुहा, पर) गुहाप्रविष्ट के समान गूढ़ (आवि , सन्ति) कार्यकाल में प्रकट होते हैं । (कवी) वे दोनों विद्वान् (जीवेभ्यः, परि) सब प्रजाओं पर (ऋतस्य, पत्मभि.) सत्य के मार्ग से (अर्वाक्) अभिमुख हो ॥२३॥

भावार्थ —हे सेनाध्यक्ष ! विजय, शान्ति और न्यायकार्य से सुभूषित आप विद्वानों व अन्य सब प्रजाजनों की रक्षा में सत्य का आश्रय लेते हुए प्रवृत्त हो अर्थात् सत्य के अनुसार ही प्रजारक्षण व उस पर शासन करें ॥२२॥

अष्टम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त ॥

अथैकविंशत्यृचस्य नवमसूक्तस्य—१, २१ शशकर्णः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः-१, ४, ६ बृहती । १४, १५ निचृद्बृहती । २, २० गायत्री । ३, २१ निचृद् गायत्री । ११ त्रिपाद् विराड्गायत्री । ५ उष्णिक् ककुप् । ७, ८, १७, १९ अनुष्टुप् । ९ पादनिचृदनुष्टुप् । १३ निचृदनुष्टुप् । १६, आर्ची अनुष्टुप् । १८ विराडनुष्टुप् । १० आर्षीनिचृत् पंक्तिः । १२ जगती ॥ स्वरः-१, ४, ६, १४, १५ मध्यमः । २, ३, ११, २०, २१ षड्जः । ५ ऋषभः । ७—९, १३, १६—१९ गान्धारः । १० पञ्चमः । १२ निषादः ॥

सेनापति व सभाध्यक्ष का आह्वान और उनसे प्रार्थना ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।

प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥

पदार्थः– (अश्विना) हे सेनापति, हे सभाध्यक्ष ! (युवम्) आप (नूनम्) निश्चय ही (वत्सस्य) वत्सतुल्य प्रजा की (अवसे) रक्षार्थ (आगन्तम्) आएं (अस्मै) और इस प्रजा को (अवृकम्) बाधारहित (पृथु) विस्तीर्ण (छर्दिः) गृह (प्रयच्छतम्) दें और (याः) जो (अरातयः) इसके शत्रु हों उनको (युयुतम्) दूर करें ॥१॥

भावार्थ - तात्पर्य यह है कि हे सेनापति तथा हे सभापति ! आप हमारे प्रजारक्षण रूपी यज्ञ में पधार कर क्षात्रधर्मरूप सुप्रबन्ध से प्रजा की बाधाएं दूर कर उसे सुखी करें, उनके निवास के लिए उत्तम गृह में स्थान दें और जो दुष्ट प्रजा को दुख दें उन्हें हराएं ॥१॥

यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु ।

नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥२॥

पदार्थ —(अश्विना) हे सर्वत्र प्रसिद्ध (यत्, नृम्णम्) जो धन (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में, (यत्, दिवि) जो द्युलोक में, (यत्, पञ्च, मानुषान्, अनु) जो पांच मनुष्यों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद में है (तत्, धत्तम्) वह इस प्रजा को दें ॥२॥

भावार्थ —हे सर्वत्र प्रसिद्ध सभाप्रमुख ! हे सेनापति ! आप ऐश्वर्यशाली हैं, अत प्रजापालन में समर्थ हैं । हे भगवन् ! विभिन्न स्थानों से धन लें और धनहीनों को सम्पन्न बनाएं ॥२॥

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।

एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ —(अश्विना) हे प्रचण्ड बलशाली ! (ये, विप्रास) जो विद्वान् (वाम्, दंसांसि) आपके कर्मों का (परिमामृशु.) अनुगमन करते हैं (काण्वस्य) विद्वानों के कुल में उत्पन्न हुए हमें भी (एव, इत्) उसी प्रकार (बोधतम्) जानना ॥३॥

भावार्थ —हे बलशाली सभाध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष ! जिस तरह आप विद्वानों का पालन, पोषण व रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वानों के कुल में उत्पन्न हमारी भी रक्षा करें । जिससे हम वेदविद्या सम्पादित कर याज्ञिक कर्मों में रत रहें ॥३॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४॥

पदार्थः—(अश्विना) हे बलवान् सेनाधिपति ! (अयम्) यह (वाम्) आपका (घर्मः) युद्धादि कार्य के प्रारम्भ का दिवस (स्तोमे) स्तोत्रों से (परिषिच्यते) उत्साहवर्धक किया जाता है । (वाजिनीवसू) हे बलयुक्त सेनारूप धनवाले ! (अयम्, मधुमान्, सोम) यह मधुर सोम है (येन) जिसके द्वारा आप (वृत्रम्) अपने शत्रु को (चिकेतथ) जानते हैं ॥४॥

भावार्थ —हे बलसम्पन्न सभाध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष ! हम युद्ध के प्रारम्भ में स्तोत्रों से आपकी विजय हेतु प्रार्थना करते हैं, आप इस सोमरस को पीकर शत्रुओं पर विजय पाएं ॥४॥

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥५॥

पदार्थ —(पुरुदंससा) हे अनेक कर्मयुक्त ! (यत्, अप्सु) जो पौरुष आपने जलों में, (यद्, वनस्पतौ) वनस्पतियों में, (यत्, ओषधीषु) और जो रसाधार अन्नों में (कृतम्) प्रकटा है (तेन) उस से (मा) मुझे (अविष्टम्) सुरक्षित करें ॥५॥

भावार्थ—हे पुरुषार्थ सम्पन्न सभापति एवं सेनापति ! आपने जो पौरुष जल तथा वनस्पतियों की विद्या जानने में किया है और उनसे आप अन्न संग्रह में सब प्रकार दक्ष है, कृपाकर अपने उपदेश से हमें भी ये विद्याएं प्रदान करें जिससे हमें भी अन्न मिले और हम अन्न का उपभोग करें ॥५॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।

अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥६॥

पदार्थ.—(नासत्या, देव) हे सत्यकर्मयुक्त ! (यत्, भुरण्यथ.) जो आप सबका पोषण करते (यद्, वा) और जो (भिषज्यथ) दण्ड से अथवा औषधि से प्रजा को शान्त और नीरोग करते हैं ऐसे जो आप हैं (अयम्, वाम्, वत्स) यह आपकी वत्सरूप प्रजा (मतिभिः) केवल स्तुति से (न, विन्धते) नहीं पा सकती (हि) क्योंकि आप(हविष्मन्तम्) ऐश्वर्यवान् के निकट ही (गच्छथः) जाते हैं ॥६॥

भावार्थ.—हे सत्यनिष्ठ सभाध्यक्ष तथा सेनापति ! आप शासन और सहायता के द्वारा सम्पूर्ण प्रजा को सन्तुष्ट रखते हैं ; आप हम पर ऐसी कृपा-दृष्टि करें कि हम आपको प्राप्त हों और आपके समक्ष अपनी आवश्यकताएं बता सकें, और आपके सन्निकट होकर उत्तम शिक्षा से उच्च पद प्राप्त करने में समर्थ हों ॥६॥

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥७॥

पदार्थ.—(ऋषि) विद्वत् जन (अश्विनो , स्तोमम्) उन बलशाली स्तोत्रों को (वामया) अपनी तीव्र बुद्धि से (नूनम्) निश्चय (आचिकेत) जाने; (मधु-

मत्तमम) अतिमधुर (धर्मम्, सोमम्) यज्ञीय सोमरस (अथर्वणि) हिंसारहित यज्ञ कर्मों मे (आसिञ्चात्) आसिक्त = सिद्ध करें ॥७॥

भावार्थ.—मन्त्र का भावार्थ यह है कि नीतिज्ञ विद्वान् जन राजमर्यादा को भली प्रकार समझें ताकि राजनियम के विरुद्ध आचरण कर दण्ड के भागी न हों और राजकीय जनो का श्रेष्ठतम पदार्थों से सत्कार करें ॥७॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।

आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥८॥

पदार्थ —(अश्विना) हे नितान्त बलशाली ! आप (रघुवर्तनिम) तीव्र गति वाले (रथम्) रथ पर (नूनम्) निश्चय (आतिष्ठाथ) सवार हों; (इमे, मम, स्तोमा) ये मेरे स्तोत्र (नभः, न) सूर्य के समान (वाम्) आपको (आचुच्यवीरत) अभिमुख आह्वान कर रहे हैं ॥८॥

भावार्थ —हे बलशाली सभाध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष ! आप अपने तीव्रगामी देदीप्यमान रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ मे आएं, हम स्तोत्रो के द्वारा आपका आह्वान कर रहे हैं ॥८॥

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।

यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥९।

पदार्थ —(नासत्या) हे सत्यवादी (यत, अद्य) जो अब (वाम्) आपका (उक्थेभि) वेदवाणियो मे (आचुच्युवीमहि) आह्वान करें (यद्, वा, अश्विना) हे परमशक्तिशाली ! (वाणीभि) जो सकल्पित वाणियो के द्वारा आह्वान करें तो (एव, इत्) निश्चय ही (काण्वस्य) विद्वान् जनो के पुत्रो के आह्वान का (बोधतम्) आप जानें ॥९॥

भावार्थ - हे सत्यसंकल्प धारी सभा व सेनाध्यक्ष ! हम विद्वत् जन वेद के स्तोत्रो से तथा आपकी वाणियो द्वारा आपका आह्वान करते है , आप हमारी भावना जान अवश्य हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥९॥

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथा ॥१०॥

पदार्थ —(अश्विना) हे जनाधिप ! (यद्, वाम्) यदि आपको (कक्षीवान्) हाथ मे रज्जु धारी शूर (उत) अथवा (यद्, व्यश्व ऋषि) जो अश्वरहित विद्वान् (यद्, वाम्) यदि आपका (दीर्घतमा) तमोगुणी शूर, (यद्वाम्) और यदि आपका (पृथी वैन्य) तीक्ष्ण बुद्धिवाला विद्वानो का पुत्र (सादनेषु) यज्ञो मे (जुहाव) पुकारें (अत) तो इनको (चेतयेथाम्, एव, इत्) आप निश्चय जानें ॥१०॥

भावार्थ —हे माननीय सेनाध्यक्ष ! यदि आपको ऐश्वर्यशाली व निर्धन विद्वान् और शूरवीर वा बुद्धिमान् विद्वतजन पुकारें तो आप उनका निमन्त्रण मान्य कर अवश्य आए और अपने उपदेशो से इस मानव सुधार के यज्ञ को पूर्ण करें ॥१०॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११॥

पदार्थ — हे परमशक्तिवान् ! (न) हमारे (छर्दिष्पौ, यातम्) घरो के रक्षक होकर आयें (उत) और (परस्पौ, भूतम्) शत्रु से रक्षा करो । (जगत्पौ) ससारपालक आप (न. तनूपौ) हमारे शरीर की रक्षा करें , (तोकाय) पुत्र के (तनयाय) पौत्र के (वर्ति) घर को (यातम्) आयें ॥११॥

भावार्थ —हे बलशाली सबके रक्षक सभाध्यक्ष व सेनाध्यक्ष ! आप शत्रुओं से हमारी और हमारे गृह की रक्षा करें, और हमारे पुत्र पौत्रों की भी रक्षा करते हुए उन्हें विद्या प्रदान कर सुयोग्य बनाए ॥११॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥

पदार्थ.—(अश्विना) हे सेनापति तथा सभापति ! आप (यत्, इन्द्रेण, सरथम्, याथ) स्यात् सम्राट् सहित चलते है (यद्, वा) अथवा कभी (वायुना) तीव्रगामी वीर के (समोकसा) समान स्थान मे (भवथ) रहते हैं (यद्, आदित्येभि , ऋभुभिः) सत्यतायुक्त राजाओ की (सजोषसा) मैत्री सहित रहते है (यद्, वा) या (विष्णो , विक्रमणेषु) सूर्य से प्रकाशित यावत् देशो मे (तिष्ठथ) स्वतन्त्र विचरण करते हैं ॥१२॥

भावार्थ —हे श्रद्धेय सभापति व सेनापति ! सम्राट् के सहगामी और उनके निकटस्थ होने से आप हमारी मन कामनाएं पूर्ण करें जिससे हमारे याज्ञिक कार्य्य सफल व पूर्ण हों ॥१२॥

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३॥

पदार्थः—(अश्विनौ) हे बलसम्पन्न ! (यत्, अद्य) जो इस समय (वाजसातये) युद्ध मे बलप्राप्ति हेतु (अहं, हुवेय) हम आपका आह्वान करें और (यत्) जो (पृत्सु) युद्धो मे (तुर्वणे) शत्रुमर्दन के लिए आह्वान करें (तत्) तो उसका यही कारण है कि (अश्विनोः) आपका (सहः) बल (अवः) तथा रक्षण (श्रेष्ठम्) सर्वाधिक है ॥१३॥

भावार्थ —हे सभा एव सेनापति ! यदि हमे अपनी रक्षार्थ शत्रुओ से युद्ध करना पड़े तो आप हमारे रक्षक हों, क्योंकि आप बलवान् होने से विद्वानों की सर्वेव रक्षा करते हैं ॥१३॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥१४॥

पदार्थ —(अश्विना) हे व्यापक ! (नूनम्) निश्चय (आयातम्) आयें (इमा, हव्यानि) ये भोजनार्ह पदार्थ (वाम्, हिता) आपके अनुकूल हैं; (इमे, सोमास) यह सोमरस (तुर्वशे) शीघ्र वश करने मे समर्थ के यहाँ, (यदौ) सामान्य जन के यहा, (अथ) और (इमे कण्वेषु) ये सोमरस विद्वत्जनो के यहा (वाम्) आपके अनुकूल सिद्ध हुए हैं ॥१४॥

भावार्थ —हे चतुर्दिक् ख्याति प्राप्त सेनाध्यक्ष ! आप हमें प्राप्त हों हमारा सत्कार स्वीकारें, हमने आपके अनुकूल भोजन तथा सोमरस तैयार किया है, इसे स्वीकार कर हम पर कृपा करें ॥१४॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥

पदार्थ —(नासत्या) हे सत्यवादी ! (यत्, भेषजम्) जो भोजनार्ह पदार्थ (पराके) दूरदेश मे (अर्वाके) वा समीप देश मे (अस्ति) हैं, (प्रचेतसा) हे प्रकृष्ट ज्ञानवान् ! (तेन) उनके सहित (विमदाय) मदरहित (वत्साय) अपने जन के लिए (छर्दि) गृह को (नूनम्) निश्चय (यच्छतम्) दें ॥१५॥

भावार्थ —हे सत्यवादी सभापति तथा सेनापति ! आप हमे भोजनार्थ अन्नादि पदार्थों सहित रहने योग्य उत्तम गृह दें जिसमे वास करते हुए हम लोग आत्मिक उन्नति मे रत रहें ॥१५॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।

व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६॥

पदार्थ —(अहम्) हम (अश्विनो) सेनापति और सभापति की (देव्या, वाचा, सह) दिव्य स्तुति सहित (प्राभुत्सि) प्रबुद्ध हो गये । (देवि) हे उषादेवि ! आप (मतिम्) मेरे ज्ञान को (वि, आवः) सम्यक् प्रकाश दें और (मनुष्येभ्य) सब मनुष्यो के लिए (रातिम्) दातव्य पदार्थ (व्याव) प्रादुर्भूत करें ॥१६॥

भावार्थ —मन्त्र मे यह भाव निहित है कि उषाकाल मे उठकर दिव्य ज्योतिः की स्तुति मे लग याज्ञिक प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा ! हमने जो विद्या ग्रहण की है वह फलदायी हो जिससे हमे सब पदार्थ मिल सकें ॥१६॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।

प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥

पदार्थ—(उष) हे उषा ! (अश्विना) आप सेनापति तथा सभापति को (प्रबोधय) स्वोत्पत्ति काल मे प्रबोधित करें, (देवि) हे देवि ! (सूनृते) सुन्दरनेत्री (महि) महत्त्वविशिष्ट आप उन्हें (प्र) प्रबोधित करें, (यज्ञहोतः) हे यज्ञो की प्रेरणा प्रदान करने वाली ! (आनुषक्) निरन्तर (प्र) प्रबोधित करें, (मदाय) हर्षोत्पत्ति के लिये (बृहत्, श्रवः) बहुत धन (प्र) प्रबोधित करें ॥१७॥

भावार्थ—मन्त्र का भावार्थ यह है कि प्रत्येक श्रमजीवी उषाकाल मे जागे तथा अपने कार्य मे लगे । उषाकाल मे प्रबुद्ध पुरुष के लिए ऐश्वर्य्य, हर्ष, उत्साह तथा नीरोगिता इत्यादि महत्त्वपूर्ण पदार्थों की प्राप्ति होती है ॥१७॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।

आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥

पदार्थ —(उष) हे उषा ! (यत्) जब तुम (भानुना यासि) सूर्यकिरणो के साथ मिलती हो (सूर्येण, सरोचसे) और सूर्य के साथ लीन हो जाती हो तब (नृपाय्यम्) शूरो से रक्षित (अयम्, अश्विनो रथः) यह सेनापति व सभापति का रथ (वर्तिः, ह, याति) अपने घर चला जाता है ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे बताया गया है कि सभापति तथा सेनापति ! उषाकाल मे अपने रथो पर आरूढ़ राष्ट्र की व्यवस्था करते हुए सूर्योदय में घर लौटते है, उनके प्रबन्ध की राष्ट्र प्रशंसा करता है । इसी तरह जो लोग उषाकाल मे जागकर अपने ऐहिक और पारलौकिक कार्यों को विधिवत् सपन्न करते हैं उनका मनोरथ अवश्य ही पूर्ण होता है ॥१८॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।

यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९॥

पदार्थः—(यत्) जब (आपीतासः) पिये हुए (अंशव.) सोमरस (गाव., ऊधभि न) जैसे गाये स्तनमण्डल से दूध, उसी प्रकार (दुह्रे) उत्साह को दुहते हैं (यद्वा) अथवा (वाणीः) वेदवाणियां (अनूषत) उनकी स्तुति करती हैं तब

(देवयन्तः) देवों को चाहने वाले (अश्विना) सेनापति तथा सभापति (प्र) प्रजा को सुरक्षा प्रदान करते हैं ॥१९॥

भावार्थः—जब वीरगण सोमरस का पान कर आनन्दित होते हैं अथवा वेदवाणियाँ उनके शौर्य आदि गुणों की प्रशंसा करती हैं तो वे योद्धा उस समय गो दुग्धसमान सब के अर्थ पूर्ण करने में समर्थ होते हैं। इसी अवस्था में सभापति तथा सेनापति उन्हें सुरक्षित रखते हैं अर्थात् उत्साहित योद्धा गौओं के दूध जैसे बलप्रद होते हैं और उन्हीं को सेनापति सुरक्षित रख अपनी विजय से प्रोत्साहित होता है ॥१९॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।

प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥

पदार्थः—(प्रचेतसा) हे प्रकृष्ट ज्ञानवान् ! (द्युम्नाय) उत्तम अन्न के हेतु (प्र) सुरक्षा करें, (शवसे) बल के लिए (प्र) सुरक्षा करें, (नृषाह्याय, शर्मणे) मनुष्यों के अनुकूल सुखार्थ (प्र) सुरक्षा करें (दक्षाय) चातुर्य शिक्षार्थ (प्र) सुरक्षित करें ॥२०॥

भावार्थः—अभ्युदय व निःश्रेयस सिद्धि की प्रार्थना ही इस मन्त्र में है। अर्थात् ज्ञानी पुरुषों से ज्ञान प्राप्त कर अभ्युदय और निःश्रेयस की वृद्धि करना अभीष्ट है ॥२०॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।

यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१॥

पदार्थः—(उक्थ्या) हे स्तुत्य (अश्विना) सेनापति व सभापति ! (यत्) यदि (नूनम्) निश्चय (धीभि) कर्म करते हुए (पितु, योनौ) स्वपालक स्वामी के सदन में (निषीदथ) बसते हो (यद्वा) अथवा (सुम्नेभिः) सुखसहित स्वतन्त्र हो तब भी पधारें ॥२१॥

भावार्थः—हे प्रशंसनीय सभापति तथा सेनापति ! हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे विद्याप्रचाररूप यज्ञ को पूर्ण कर हमारे योगक्षेम की सम्यक व्यवस्था करें जिससे हम धर्मसम्बन्धी कार्य करने में पूर्णतः लिप्त रहें ॥२१॥

अष्टम मण्डल में नवम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य दशमसूक्तस्य १-६ प्रगाथ काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, ५ आर्चीस्वराड् बृहती । २ त्रिष्टुप् । ३ आर्चीभुरिगनुष्टुप् । ४ आर्चीभुरिक् पङ्क्ति ६ आर्चीस्वराड् बृहती ॥ स्वर —१, ५, ६, मध्यम । २ धैवत । ३ गान्धार । ४ पञ्चम ॥

सभापति तथा सेनापति का अन्तरिक्षादि ऊर्ध्व प्रदेशों में विचरण ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः ।

यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥१॥

पदार्थः—(अश्विना) हे सेनापति तथा सभापति ! (यत्)यदि (दीर्घ प्रसद्मनि) दीर्घसद्म देशों में (यद्, वा) अथवा (अद, दिवः, रोचने) इस द्युलोक के रोचमान प्रदेश में (यद्, वा) या (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (अध्याकृते, गृहे) सुनिर्मित देश में (स्थ) हो (अत) इन सब स्थानों से (आयातम्) आएं ॥१॥

भावार्थः—मन्त्र का भावार्थ यह है कि याज्ञिक जनों का कथन है कि हे सभापति तथा सेनापति ! आप कहीं भी हों कृपा कर हमारे विद्याप्रचार व प्रजारक्षणरूप यज्ञ में पधार हमारे मनोरथ पूर्ण करें ॥१॥

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम् ।

बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥२॥

पदार्थः—हे व्यापकशक्तिमान् (यद्वा) जिस तरह (मनवे) ज्ञानी जन के (यज्ञम्) यज्ञ को (संमिमिक्षथुः) स्नेह से ससिक्त करते हो (एवेत्) वैसे ही (काण्वस्य) विद्वत्पुत्रों के यज्ञ को (बोधतम्) जानो ; (बृहस्पतिम्) बृहत विद्वान् को (विश्वान्, देवान्) सब देवों को (इन्द्राविष्णू) परमैश्वर्यवान तथा व्यापक को (आशुहेषसा, अश्विनौ) शीघ्रगामी अश्ववाले सेनापति व सभापति को (अहम् हुवे) मैं आह्वान करता हूँ ॥२॥

भावार्थः—हे सर्वत्र विख्यात हे सब विद्वानों की कामनाएं पूर्ण करने वाले सभापति तथा सेनापति ! जिस तरह आप ज्ञानी जनों के यज्ञ को प्राप्त हो उनकी कामनाएं पूर्ण करते हैं वैसे ही आप हम विद्वत्पुत्रों के यज्ञ को प्राप्त हो हमारे यज्ञ की त्रुटियों को दूर करने वाले सिद्ध हों ॥३॥

त्या न्वश्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।

ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥३॥

पदार्थः—(सुदंससा) सत् कर्मवाले (गृभे) प्रजा संग्रहार्थ (कृता) सम्राट् द्वारा निर्मित (त्या, अश्विना) उन सेनापति व सभापति को (हुवे, नु) आह्वान करते हैं (ययोः, सख्यम्) जिनकी मित्रता (देवेषु) सब देवों के मध्य में (नः) हमें (अधि) अधिक (आप्यम्, अस्ति) प्राप्तव्य है ॥३॥

भावार्थः—हे वैदिककर्म रत सभापति तथा सेनापति ! हम आपके साथ मैत्रीपालन हेतु आपका आह्वान करते हैं ; आप हमारे यज्ञ में आ प्रजापालनरूप शुभकर्मों में योग दें जिससे हमारा यज्ञ सब विधि पूर्ण हो ॥३॥

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।

ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४॥

पदार्थः—(ययो) जिन्हें (यज्ञा प्र, अधि) यज्ञ अधिक प्रवृत्त होते हैं, (असूरे) विद्याविहीन देश में (सूरय, सन्ति) जिनके विद्वान् बसते हैं, (अध्वरस्य, यज्ञस्य, प्रचेतसा) हिंसारहित यज्ञों के ज्ञाता (ता) वह दोनों (स्वधाभि) स्तुति द्वारा आए (या) जो (सोम्यम्, मधु, पिबत) सोम का मधुर रस पीते हैं ॥४॥

भावार्थः—हे सभापति तथा सेनापति ! विद्याविहीन प्रदेशों में विद्याप्रचार की व्यवस्था उन देशों में वास करने वाले विद्वानों से कराएं और हिंसारहित यज्ञों में सहायक हो उन्हें पूर्ण करें ॥४॥

यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।

यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥५॥

पदार्थः—(वाजिनीवसू) हे सेनारूप धनवान (अश्विनौ) व्यापक आप ! (यत्, अद्य) जो इस समय (अपाक्) पश्चिम दिशा में (यत्, प्राक्, स्थः) अथवा पूर्व में हो (यत्) या (द्रुह्यवि) द्रोही के समीप, (अनवि) अस्तोता के निकट, (तुर्वशे) शीघ्रवशकारी के पास, (यदौ) साधारण के पास हो (अथ, वाम्, हुवे) तो भी आपका आह्वान करता हूं, (मा, आगतम्) मेरे पास आएं ॥५॥

भावार्थः—याज्ञिक यजमान की ओर से इस मन्त्र में कहा गया है कि हे सेना के अधिपति तथा सभापति ! मैं आपका आह्वान करता हूँ कि आप चाहे कहीं भी हो कृपाकर मेरे यज्ञ में आकर सहायता दें ॥५॥

यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।

यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६॥

पदार्थः—(पुरुभुजा, अश्विना) बहु पदार्थ भोगी सेनापति और सभापति (यत्, अन्तरिक्षे) यदि अन्तरिक्ष में (पतथ) गए हो (यद्वा) या (इमे, रोदसी, अनु) इस द्युलोक, पृथिवीलोक में हो (यद्वा, स्वधाभि) या स्तुतियों सहित (रथम्, अधितिष्ठथ) रथ पर आरूढ हो (अत, आयातम्) तो भी इस यज्ञसदन में पधारें ॥६॥

भावार्थः—हे अनेकानेक पदार्थों का भोग करने वाले सम्माननीय सभाध्यक्ष तथा सेनापति ! आप कहीं भी, राष्ट्रीय कार्यों में प्रवृत्त होने पर भी हमारे यज्ञ में पधारें, पूर्णाहुति द्वारा सारे ही यज्ञ सम्बन्धी कार्यों को पूरा करें ॥६॥

अष्टम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्यैकादशसूक्तस्य १—१० वत्सः काण्व ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१ आर्चीभुरिग्गायत्री । २ वर्धमाना गायत्री । ३, ५—७, ९ निचृद्गायत्री । ४ विराड् गायत्री । ८गायत्री । १० आर्चीभुरिक् त्रिष्टुप् ॥ स्वर — १ ९ षड्ज ॥, १० धैवत ॥

परमात्मा की स्तुति ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रभो (देव त्वम्) सर्वत्र प्रकाश करते हुए आप (मर्त्येषु, आ) सब के मध्य में (व्रतपा, असि) धर्मों के रक्षक हैं, इससे (त्वम्) आप (यज्ञेषु) यज्ञों में (आ, ईड्य) प्रथम ही आप की स्तुति की जाती है ॥१॥

भावार्थः—हे सर्वरक्षक, सर्वव्यापक सर्वप्रतिपालक प्रभो ! आप सब के पिता - पालक पोषक तथा रक्षक हैं और सबको कर्मानुसार फल देते हैं, इसीलिए आपकी यज्ञादि शुभ कर्मों में प्रथम ही स्तुति की जाती है कि आपकी कृपा से हमारा शुभ कर्म पूर्ण हो ॥१॥

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२॥

पदार्थः—(सहन्त्य) हे सहनशील (अग्ने) परमात्मा ! (विदथेषु) सब यज्ञों में (त्वम् प्रशस्य, असि) आप स्तुतियोग्य हैं, क्योंकि (अध्वराणाम्) हिंसावर्जित कर्मों की (रथी) दिशा दिखाने वाले हैं ॥२॥

भावार्थः—हे परमपिता ! आपके सभी हिंसारहित कर्मों के प्रचारक व मार्गदर्शक होने से सब यज्ञादिकर्मों में प्रथम ही आपकी स्तुति की जाती है ॥२॥

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥३॥

पदार्थः—(जातवेद, अग्ने) हे सर्वज्ञाता प्रभो ! (द्विष) शत्रुओं को (अदेवी, अराती) और उनकी सेना को (अस्मत्) हमसे (त्वम् अप, युयोधि) आप अलग करें ॥३॥

भावार्थः—हे सर्वव्यापक और सर्वरक्षक प्रभो ! आप शत्रुओं और उनके साथी दुष्टजनों से हमारी सदा रक्षा करें, क्योंकि आप सब कर्मों के ज्ञाता हैं ॥३॥

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥४॥

पदार्थः—(जातवेद) हे सर्व कर्म ज्ञाता (रिपोः, मर्तस्य) शत्रुजन के (अन्ति, चित्, सन्तम्, यज्ञम्) अपने समीप होने वाले यज्ञ को भी (न, उपवेषि, अह) आप नहीं ही जानते ॥४॥

भावार्थ—हे सभी के शुभाशुभ कर्मों के ज्ञाता परमात्मा ! शत्रुजनो से होने वाले हिंसकरूप यज्ञ को आप अवश्य ही जानते हैं। अतएव आप उसका फल उनका यथायोग्य ही देंगे ॥४॥

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ॥५॥

पदार्थ—(**मर्ता**) मरणधर्मा (**विप्रास**) हम विद्वान् (**जातवेदसः, अमर्त्यस्य, ते**) सब व्यक्त वस्तुओं को जानने वाले अमर आपके (**भूरि, नाम, मनामहे**) इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि बहुत से नामों से परिचित है ॥५॥

भावार्थ.—मन्त्र का भावार्थ है कि हे प्रभो ! हम विद्वान् आपको अजर, अमर, सबका पालक, सबको वशीभूत रखने वाला और अग्नि अर्थात् प्रकाशस्वरूप आदि गुणसंपन्न जानते हैं ॥५॥

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

पदार्थ—(**विप्रासः, मर्तास**) हम विद्वान् मनुष्य (**ऊतये**) तृप्ति हेतु (**अवसे**) और रक्षार्थ (**विप्रम्**) सर्वज्ञ (**देवम्**) प्रकाशमान (**अग्निम्**) जगत् के अभ्यञ्जक परमात्मा का (**गीर्भि**) वेदवाणी से (**हवामहे**) आह्वान करते हैं ॥६॥

भावार्थ—उपरोक्त गुण से युक्त परमात्मा को हम विद्वान् वेदवाणी के द्वारा आह्वान करते है कि वह सर्वज्ञ प्रभु हमारी सब ओर से रक्षा करे ॥६॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामया गिरा॥७॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे प्रभो ! (**वत्स**) आपके द्वारा रक्षित याज्ञिक (**त्वां कामया, गिरा**) आपकी कामनावाली वाणी से (**परमात, सधस्थात्, चित्**) परम दिव्य यज्ञस्थान से (**ते, मन , आयमत्**) आपके ज्ञान की वृद्धि कर रहा है ॥७॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके द्वारा रक्षित याज्ञिक कामनाओं को पूर्ण कर याज्ञिक वेदवाणियो मे आपके ज्ञान का प्रचार करता हुआ प्रजा को आपकी ओर आकृष्ट करता है कि सब मनुष्य आपका ही पूज्य मान आपकी ही उपासना मे रत हो ॥७॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे॥८॥

पदार्थ—हे प्रभो (**पुरुत्रा, हि**) आप सर्वत्र ही (**सदृङ्, असि**) समान रूप से देखते हैं, (**विश्वा , विश**) इससे सब प्रजा के (**अनु**) प्रति (**प्रभु**) प्रभु हैं ; (**त्वा**) इससे आपको (**समत्सु**) सग्रामो मे (**हवामहे**) आह्वान करते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आप सर्वत्र समानरूप से विद्यमान हैं और सर्वद्रष्टा है सबके प्रभु है। इसी से क्षात्रधर्मप्रवृत्त योद्धा युद्ध मे आपका आह्वान करते हैं ॥८॥

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥९॥

पदार्थ—(**वाजेषु**) सग्रामो मे (**चित्रराधसम्**) विचित्र सामग्रीयुक्त (**अग्निम्**) परमात्मा को (**अवसे**) रक्षार्थ (**वाजयन्त**) बल के इच्छुक हम (**समत्सु**) सग्रामो मे (**हवामहे**) आह्वान करते है ॥९॥

भावार्थ.—हे परमात्मन् ! आप विचित्र सामग्रीयुक्त है अत सब मनुष्य आपसे अपनी रक्षा की याचना करते है और योद्धा सग्रामो मे विजय प्राप्ति हेतु आप ही की प्रार्थना करते है ॥९॥

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।

स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१०॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे परमात्मा ! (**प्रत्न**) आप पुरातन हैं (**हि**) इसी से (**ईड्य**) सबके स्तुतियोग्य (**सनात्, च, होता**) शाश्वतिक हवनप्रयोजक (**नव्य , च**) नित्यनूतन और (**अध्वरेषु सत्सि**) हिंसारहित यज्ञों म विराजमान होते हैं (**स्वाम्, तन्वम्, च**) ब्रह्माण्डरूपी स्वशरीर को (**पिप्रयस्व**) पुष्ट करें (**अस्मभ्यम्, च**) और हम लोगो क लिए (**सौभगम, आयजस्व**) सौभाग्य प्राप्त करायें ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकाश के स्वरूप प्रभो ! आप पुरातन है अत सबके उपासनीय हैं, कृपा कर हमारी शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति मे सहायता दें जिससे हम बलवान् हो मनुष्यजन्म का फलचतुष्टय पा सकें और केवल आप ही की उपासना व आप ही आज्ञा का पालन करते हुए सौभाग्यशाली हो। हमारी आप से यही विनयपूर्वक प्रार्थना है ॥१०॥

अष्टम मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदृचस्य द्वादशसूक्तस्य ऋषि पर्वत काण्व ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, २, ५, ६, ११, १६, २०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७, १८, २२—२४, २६—३० उष्णिक । ७, १३, १९ आर्षी-विराडुष्णिक् । ३३ आर्षी स्वराडुष्णिक् ॥ ऋषभ स्वर ॥

पुनः इन्द्र नाम से परमात्मा की स्तुति है ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**शविष्ठ**) हे अतिशय बलशाली ! देव परमपूज्य ! (**य**) जो तेरा (**सोमपातम**) अतिशय पदार्थों का रक्षक और कृपादृष्टि से अवलोकन करनेवाला (**मदः**) हर्ष=आनन्द (**चेतति**) सर्ववस्तु को यथातथ्यत जानता है और (**येन**) जिस सर्वज्ञ मद के द्वारा तू (**अत्रिणम्**) अत्ता=जगद्भक्षक उपद्रव का (**हंसि**) हनन करता है (**तम्**) उस मद=आनन्द की (**ईमहे**) हम उपासकगण प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थः—यदि हम ईश्वरीय नियम से चलें तो हमे कोई रोग नही होगा, अत इस प्रार्थना से तात्पर्य यही है कि प्रत्येक आदमी उसकी आज्ञा का पालन करे और देखे कि ससार मे उपद्रव शान्त होकर शान्ति स्थापित होती है या नही ॥१॥

ईश्वरीय महिमा की स्तुति है ॥

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।

येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥२॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (**येन**) जिस आनन्द से आप (**दशग्वम्**) [माता के उदर मे नौ मास रहकर दशम मास मे जो जीव आता है उसे 'दशगू' कहते हैं, ऐसे] 'दशगु' (**अध्रिगुम्**) जीवात्मा की (**आविथ**) रक्षा करते हैं तथा (**वेपयन्तम्**) अपनी ज्योति से वस्तुमात्र को कृपा देने वाले (**स्वर्णरम्**) सूर्य की रक्षा करते हैं। (**येन**) जिस आनन्द से (**समुद्रम्**) समुद्र की रक्षा करते हैं। (**तम्, ईमहे**) उस आनन्द से हम जीव वन्दना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! पहले तो प्रभु माता के उदर मे तुम्हारी रक्षा करता है। तत्पश्चात् जिससे तुम्हारा अस्तित्व है उस सूर्य की भी वही रक्षा करता है। जिससे तुम्हारे जीवनयापन हेतु विविध अन्न उत्पन्न होते है उस महासागर की भी वही रक्षा करता है ॥२॥

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः ।

पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥३॥

पदार्थ—हम उपासक (**तम्, ईमहे**) उस पूर्वोक्त मद=ईश्वरीय आनन्द की प्रार्थना करते हैं। क्यो ? (**ऋतस्य**) सत्य के (**पन्थाम्**) मार्ग की ओर (**यातवे**) जाने हेतु (**येन**) और हे इन्द्र जिस मद से तू (**मही**) बहुत (**अप**) जल (**सिन्धुम्**) सिन्धु -नदी मे या सागर मे (**प्रचोदय**) भेजता है। यहा दृष्टात देते हैं—(**रथान्, इव**) जैसे सारथि रथो को अभिमत प्रदेश की तरफ ले जाता है ॥३॥

भावार्थ—परमपिता की यह महान् व्यवस्था है कि धरती पर स्थित जल सागर मे व समुद्र का पृथिवी मे एव पृथिवी व समुद्र से उठकर जल मेघ बनता है और वहा से पुन समुद्रादि मे गिरता है। ऐसे अनेक नियमो के अध्ययन से मनुष्य सत्य को पा सकता है। हे भगवन् ! हमें सत्यता की ओर ले चल ॥३॥

पुनः वही विषय ॥

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।

येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥४॥

पदार्थ—(**अद्रिव**) हे महादण्डधारी परमन्यायिन् इन्द्र ! (**पूतम्**) पवित्र (**घृतम् न**) घृत के तुल्य (**इमम् स्तोमम्**) इस मेरे स्तोत्र को (**अभिष्टये**) अभिमत फलप्राप्ति हेतु तू ग्रहण कर। हे भगवन् ! (**येन**) जिस स्तुति से प्रसन्न होकर (**नु**) शीघ्र (**सद्य**) तुरन्त (**ओजसा**) बल से (**ववक्षिथ**) ससार को सुख पहुँचा ॥४॥

भावार्थ—यद्यपि प्रभु सदैव समरस रहता है, मनुष्य केवल अपना कर्त्तव्य पालन कर शुभ कर्म मे व ईश्वरीय स्तुति प्रार्थना आदि मे रत होता है। ईश्वरीय नियमानुसार उस कर्म का फल पापी को प्राप्त होता है तथापि यदि उपासक की स्तुति सुन प्रभु प्रसन्न और चोर आदि आततायियो के दुष्कर्मों से अप्रसन्न न हो तो ससार कैसे चल सकता है ! इससे इस की एकरसता मे तनिक भी विकार नहीं होता। ससार का कोई विवेकी शासक होना अभीष्ट है। ऐसी विविध भावनाओं से प्रेरित हो मनुष्य स्तुति आदि शुभ कर्म मे लगता है। यही आशय वेद भगवान् दिखाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार ही वेद कहता है कि भगवान् भक्तो की स्तुति सुनते हैं और प्रसन्न हो जगत् की रक्षा करते हैं ॥४॥

स्तुति स्वीकार हेतु प्रार्थना ॥

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।

इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥५॥

पदार्थ—(**गिर्वण**) हे वाणियो द्वारा स्तुति योग्य ! हे स्तुतिप्रिय (**इन्द्र**) हे देवाधिदेव ! (**इमम्**) इस मेरे स्तोत्र को (**जुषस्व**) ग्रहण करो। जो मेरा स्तोत्र तुम्हारे उद्देश्य से प्रयुक्त होने पर (**समुद्र इव**) समुद्र के जैसा (**पिन्वते**) बढता है। तेरी अनन्त महिमा को प्राप्त कर वह तत्समान होता है। अतएव समुद्र की वृद्धि से उपमा दी गई है। हे इन्द्र ! (**येन**) जिस मेरे स्तोत्र से स्तूयमान होने पर तू भी (**विश्वाभि**) समस्त (**ऊतिभि**.) रक्षाओ द्वारा (**ववक्षिथ**) ससार मे विविध सुख उपलब्ध कराता है ॥५॥

भावार्थ—भगवान प्रेम व सद्भाव में रचे गए स्तोत्र तथा प्रार्थना अवश्य सुनता है । ऐसे मनुष्यों के शुभ कर्म जगत के स्वतः कल्याण में सहायक होते हैं ॥५॥

पुनः वही विषय है ॥

यो नों देवः परावतः सखित्वनाय मामहे ।

दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥६॥

पदार्थः— हे इन्द्र ! जो तू (**नः**) हम प्राणियों का (**देव**) इष्टदेव है और जो तू (**परावत**) पर अति दूर देश से, आकर (**सखित्वनाय**) सखित्व—मित्रता के लिये (**मामहे**) हम जीवों को सुख पहुंचाता है, हे भगवन् ! वह तू (**दिवः नः वृष्टिम्**) जैसे द्युलोक की सहायता से जगत् को प्रयोजनीय वर्षा प्रदान करता है तद्वत् (**प्रथयत्**) हम जीवों के लिए सुखों को पहुँचाते हुए (**ववक्षिथ**) इस जगत् का भार उठा रहा है ॥६॥

भावर्थ—जो यह परमात्मा वर्षा के तुल्य आनन्दवृष्टि कर रहा है, वही हमारा पूज्य है और वही हमारा परममित्र है ॥६॥

उसकी महिमा का वर्णन ॥

ववक्षुरस्य केतवं उत वज्रो गभस्त्योः ।

यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥७॥

पदार्थ—इस ऋचा में परमात्मा की कृपा प्रदर्शित की जाती है । यथा—(**अस्य**) सर्वत्र विद्यमान इस देवाधिदेव के (**केतव**) ससार सम्बन्धी विज्ञान अर्थात् नियम ही (**ववक्षुः**) प्रतिक्षण प्राणिमात्र को सुख दे रहे हैं । (**उत**) और उसके (**गभस्त्यो**) हाथों में जो (**वज्र**) दण्ड है वह भी सभी को सुख पहुँचा रहा है अर्थात् ईश्वरीय नियम और दण्ड ये दोनों जीवों को सुख पहुँचाते हैं । कब सुख पहुँचाते हैं इस आशका पर कहा जाता है (**यत्**) जब (**सूर्यः न**) सूर्य सरीखे (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक का अर्थात सारे जाति का (**अवर्धयत्**) पालन करने में प्रवृत्त होता है । हे प्रभो ! यह आप की महान् कृपा है ॥७॥

भावार्थ - परमपिता परमात्मा के नियम व दण्ड से ही जगत् का सचालन हो रहा है । वही इस का कर्त्ता है । जैसे प्रत्यक्षतः सूर्य इसे सर्व प्रकार सुख प्रदान करता है वैसे ही ईश्वर भी । परन्तु वह अगोचर है । अतः हमें उसकी क्रिया दिखाई नहीं देती ॥७॥

उसकी कृपा का वर्णन ॥

यदिं प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः ।

आदित्तं इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥८॥

पदार्थ—(**प्रवृद्ध**) हे सर्व पदार्थों से श्रेष्ठ ! (**सत्पते**) हे परोपकारी सत्याश्रयी जन रक्षक महादेव ! (**यदि**) जब-तब तू (**सहस्रम्**) सहस्रों (**महिषान्**) महान् विघ्नों को (**अघ**) विहत करता है (**आत् इत्**) तब-तब या उसके बाद ही (**ते**) तेरे द्वारा बनाए गए सम्पूर्ण जगत् का (**इन्द्रियम्**) आनन्द व वीर्य (**महि**) महान् होकर (**प्र वावृधे**) अतिशय बढ़ता है । अन्यथा इस जगत् की उन्नति नहीं होती क्योंकि इसमें अनावृष्टि, महामारी, प्लेग और मानव-निर्मित विपुल उपद्रव सदा होते ही रहते हैं । हे देव ! अतः आपकी हम उपासक सदा प्रार्थना करते हैं कि इस जगत् के विघ्नों को शान्त रखें ॥८॥

भावार्थ—जगत की तभी वृद्धि होती है जब जगत् पर परमात्मा की कृपा होती है ॥८॥

उसका अनुग्रह ॥

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति ।

अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥९॥

पदार्थ.— परमपिता जिस भांति विघ्नों का दूर करता है यही इस ऋचा में दर्शाया गया है । यथा—(**इन्द्रः**) वह देवाधिदेव (**सूर्यस्य**) परित स्थित ग्रहों के नित्य प्रेरक सूर्य्य की (**रश्मिभिः**) किरणों से (**अर्शसानम्**) बाधा करने वाले समग्र विघ्नों को (**नि+ओषति**) अतिशय भस्मीभूत कर देता है (**अग्नि वना इव**) जैसे अग्नि ग्रीष्म में स्वभावत प्रवृत्त हो वनों को भस्म करता है, वैसे ही परमात्मा भक्तों के विघ्नों को स्वभावत नष्ट करता है । इसी तरह (**सासहि**) सर्व-विघ्नविनाशक देव (**प्र+वावृधे**) अतिशय जगत् के कल्याण के लिए बढ़ता है ॥९॥

भावार्थः—देवाधिदेव ने इस जगत् की रक्षार्थ ही सूर्य आदि की रचना की है । वह सूर्य्य, अग्नि, वायु और जलादि पदार्थों से ही सकल विघ्न दूर किया करता है ॥९॥

ईश्वर के निर्माण का महत्त्व ॥

इयं तं ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी ।

सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥१०॥

पदार्थः—हे देव ! (**ते**) तेरा (**धीतिः**) जगत् विषयक विज्ञान (**नवीयसी**) नित्य नवीनतम (**एति**) हमें दृष्टिगोचर होता है । कहां नवीनता दिखाई देती है इसे विशेषण से दिखलाते हैं (**ऋत्वियावती**) वह धीति ऋतुजन्य वस्तुयुक्त है अर्थात् प्रत्येक वसन्त आदि ऋतु में एक-एक नवीनता दृष्टिगोचर होती है । जैसे पृथिवी के भ्रमण से नई-नई ऋतुएं आती हैं वैसे ही यह सौर जगत् भी परिवर्तित होते रहते हैं, इस प्रकार सर्ववस्तु नवीन प्रतीत होती हैं । पुनः कैसी हैं (**सपर्यन्ती**) सभी प्राणियों के मन को प्रसन्न करने वाली हैं पुन (**पुरुप्रिया**) सर्वप्रिया हैं, पुनः (**मिमीते इत्**) सदा नवीनतम वस्तु का निर्माण वह करता ही है ॥१०॥

भावार्थ.—ऐसे मन्त्रों के माध्यम से गूढ़ रहस्य प्रदर्शित किया जाता है । अतः यहाँ सब विषय सक्षिप्तरूप से निरूपित हैं [धीति-धी=विज्ञान] ईश्वरीय विज्ञान कैसे सृष्टि में प्रकाशित हो रहा है इसे बाह्यरूप से मौन व्रत धारण करने वाले मुनि ही जानते हैं । जो जितना ध्यान लगाते हैं, उतना ही जानते हैं । आज के समय में कैसे-कैसे नवीन अद्भुत कलाकौशल आविष्कृत हुए हैं वे इन प्राकृत नियमों के अध्ययन में ही निकले हैं और विद्वज्जनों का इसमें एक दृढ़तर मत है कि ऐसी सहस्रों बातें अभी प्रकृति में गुप्त रूप से निहित हैं जिनका पता हमें अभी नहीं लगा । भविष्य में वे क्रमशः विदित होंगी । अत पुरुषो ! सृष्टि के इन विज्ञानों का अध्ययन करने में लगे रहो ॥१०॥

उसके निर्माण की महिमा ॥

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् ।

स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥११॥

पदार्थः—(**यज्ञस्य**) यजनीय-पूज्य प्रभु का (**गर्भ**) स्तुतिपाठ करने वाला परमात्मतत्त्व का ग्रहणकर्त्ता ही (**आनुषक**) एक-एक कर (**क्रतुम्**) शुभ कर्म को (**पुनीते**) पवित्र करता है । वह गर्भ कैसा है (**देवयुः**) मन वचन से केवल ईश्वरीय शुभेच्छा की जो कामना करे । ऐसा स्तोता (**इन्द्रस्य**) परमात्मा के (**स्तोमैः**) प्रभु की सेवा से इस जगत् तथा अपर लोक में (**वावृधे**) उत्तरोत्तर उन्नति करता है और (**मिमीते इत्**) वह भक्त नाना विज्ञान और शुभकर्म रचता ही रहता है यद्वा (**यज्ञस्य गर्भ**) यज्ञ का कारण (**देवयु**) परमपावन और (**क्रतुम्**) कर्मठ पुरुष को (**पुनीते**) पवित्र करता है ॥११॥

भावार्थ—जो व्यक्ति एकाग्रचित्त हो ज्ञानसहित उसकी स्तुति करता है वह पावन होता है और उसकी कीर्ति जगत् में फैलती है ॥११॥

उसकी कृपा का प्रदर्शन ॥

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।

प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥१२॥

पदार्थ—(**सोमस्य**) सभी पदार्थों के ऊपर (**पीतये**) अनुग्रहदृष्टि से अवलोकनार्थ (**इन्द्र**) वह परमात्मा (**पप्रथे**) सर्वव्यापी है । वह कैसा है (**मित्रस्य सनि**) मित्रभूत जीवात्मा को सभी प्रकार के पदार्थों का दाता है । पुन. (**सुन्वते**) शुभ कर्म करने वाले के लिए (**प्राची**) सुमधुरा (**वाशी इव**) वाणी के तुल्य सहायक है । अतः वह इन्द्र (**मिमीते इत्**) भक्तों के लिए कल्याणकारी है ॥१२॥

भावार्थः—सभी पदार्थों के ऊपर अधिकार रखने हेतु परमात्मा सर्वव्यापक तथा मधुरवाणी के तुल्य सबका सहायक भी है ॥१२॥

उसकी महिमा ॥

यं विप्रां उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः ।

घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥१३॥

पदार्थ—विद्वद्गण भांति-भांति से परमात्मा की पूजा करते हैं । दूसरों को भी उनका अनुकरण करना चाहिए यह शिक्षा इस ऋचा में दी गई है । यथा—(**विप्रा**) मेधावी विद्वान् ! (**उक्थवाहस**) विविध विधि स्तुति करने वाले (**आयव**) मनुष्य (**यम्**) जिस इन्द्र नाम वाले परमात्मा को (**अभि**) सर्वभाव से (**प्रमन्दुः**) अपने व्यापार और शुभ कर्मों से प्रसन्न करते हैं उसी (**ऋतस्य**) इन्द्र के (**आसनि**) मुख समान अग्निकुण्ड में मैं उपासक (**न**) इस समय (**यत्**) जो पावन (**घृतम**) शाकल्य है उसे (**पिप्ये**) होमता हूँ । १३॥

भावार्थ.—सबसे बड़ा यज्ञ ईश्वर की दैनिक वन्दना व पूजा ही है ॥१३॥

उसकी महिमा ॥

उत स्वाराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।

पुरुप्रशस्तमूतयं ऋतस्य यत् ॥१४॥

पदार्थः—विद्वान् मात्र ही इन्द्र-स्तुति नहीं करते किन्तु यह सम्पूर्ण प्रकृति भी उसी के गुण गाती है, यह इस ऋचा में दिखाया गया है । यथा—(**उत**) और (**अदिति**) यह अखण्डनीया प्रवाहरूप से नित्या प्रकृति भी (**स्वराजे**) स्वय विराजमान (**इन्द्राय**) इन्द्र भगवान्) के लिए (**पुरुप्रशस्तम्**) बहुप्रशंसनीय (**स्तोमम्**) स्तोत्र को (**जीजनत्**) उपजाती है । (**यत्**) जो स्तोत्र (**ऋतस्य**) इस ससार की (**ऊतये**) रक्षार्थ परमात्मा को प्रेरित करता है ॥१४॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि हर वस्तु अपनी-अपनी सहायता और रक्षा हेतु उस प्रभु की स्तुति कर रही है ॥१४॥

पुनः महिमा गान ॥

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये ।

न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥

पदार्थः—सूर्य्यादि सब पदार्थ ईश्वर की महिमा को प्रदर्शित कर रहे हैं, इसमे यही शिक्षा है । यथा—(वह्नयः) जगत् का निर्वाह करने वाले भूमि, अग्नि, वायु व सूर्य इत्यादि पदार्थ (ऋतये) रक्षार्थ और (प्रशस्तये) ईश्वर की प्रशंसा हेतु (अभ्यनूषत) चतुर्दिक् उसी गुण को प्रकट करते हैं । (देव) हे देव ! (ऋतस्य) आप जो सत्यस्वरूप (हरी) आपस में हरणशील स्थावर जंगमरूप अश्व (सिषक्ता) सत्यादिव्रत रहित (न) न हों किन्तु (यत्) जो सत्य है उसका अनुगमन करें ॥१५॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञानुसार सभी सत्यपथ का अनुगमन करें यही सूर्य आदि भी प्रदर्शित कर रहे हैं ॥१५॥

उसी का पोषण ॥

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे देव ! (विष्णवि) विष्णु = सूर्य्यलोक मे (यत् सोमम्) जिस सोम—वस्तु को तू (मन्दसे) आनन्दित करता है (यद्वा) जैसे (आप्त्ये) जलपूर्ण (त्रिते) त्रिलोक मे जिस सोम को तू आनन्दित करता है (यद्वा) यद्वा (मरुत्सु) मरुद्गणो मे जिस सोम की तेरे द्वारा पुष्टि होती है उन सब (इन्दुभि) वस्तुओ के साथ विद्यमान तेरी (सम् घ) अच्छी प्रकार मैं स्तुति करता हूँ, हे देव ! तू आनन्दित हो ॥१६॥

भावार्थ—ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और वही सबका भरण-पोषण करता है ॥१६॥

श्रद्धा से प्रार्थना ॥

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।

अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७॥

पदार्थ—(शक्र) हे सर्वशक्तिसम्पन्न देव ! (यद्वा) या तू (परावति) अतिदूर स्थित (समुद्रे अधि) समुद्र मे रहता हुआ (मन्दसे) आनन्दित है और आनन्द करता है । वहां से आकर (अस्माकम् इत्) हमारे ही (सुते) यज्ञ मे (इन्दुभिः) निखिल पदार्थों सहित (सम् रण) अच्छी प्रकार हर्षित हो ॥१७॥

भावार्थ—हे प्रभो ! तुम सर्वत्र ही मेरे साथ आनन्दित हो ॥१७॥

पुन प्रार्थना का विधान करते हैं ॥

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।

उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८॥

पदार्थ—(सत्पते) हे सत्यव्रतियो की रक्षा करने वाले ! तू (यद्वा) यद्यपि (सुन्वत) सुकर्म करते हुए (यजमानस्य) समस्त यजनशील पुरुष का (वृध असि) पालन-पोषण करने वाला है (वा) और (यस्य) जिस किसी के (उक्थे) प्रशसा युक्त वचन मे (रण्यसि) आनन्दित होता है । फिर भी (इन्दुभि) हमारे पदार्थों के साथ भी (सम् रण) हर्षित हो ॥१८॥

भावार्थ—हे परमात्मा ! क्योकि आप सबकी रक्षा करते हैं, इसलिए मेरी भी रक्षा आप ही करें ॥१८॥

उसकी कृपा दृष्टि ॥

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।

अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९॥

पदार्थ—हे लोगो ! (व) तुम्हारी (अवसे) रक्षा के लिए (देवम् देवम्) विविध गुण युक्त (इन्द्रम् इन्द्रम्) केवल इन्द्र के ही जब (गृणीषणि) गुणो को मै प्रकाशता है (अधा) तदनन्तर (तुर्वणे) सर्व विघ्नविनाशक (यज्ञाय) यज्ञ के हेतु (व्यानशु) मनुष्य एकत्रित होते है ॥१९॥

भावार्थ—सभी विद्वानो के लिए उचित है कि वे शुभ कर्मों की व्याख्या करते हुए प्रजा को सत्पथ दर्शाए ॥१९॥

पुन. उसकी कृपा पर प्रकाश ॥

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।

होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२०॥

पदार्थ—(यज्ञेभि) क्रियमाण यज्ञो सहित (यज्ञवाहसम्) शुभ कर्मों का निर्वाह करने वाले (सोमेभिः) यज्ञ के पदार्थों सहित (सोमपातमम्) अतिशय पदार्थ रक्षक (इन्द्रम्) भगवान् को मानव (होत्राभि) होमकर्म से (वावृधु) बढ़ाते हैं तब अन्य जन (व्यानशु) उस यज्ञ मे सगत होते हैं ॥२०॥

भावार्थ—शुभ कर्मों से ही उसे प्रसन्न करना अभीष्ट है ॥२०॥

उसकी कृपा ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।

विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के (प्रणीतय) सृष्टि सम्बन्धी विरचन (महीः) महान् तथा परमपूज्य हैं तथा (प्रशस्तय) इसकी प्रशसा भी (पूर्वीः) पूर्ण और बहुत है । इसके (विश्वा) समग्र (वसूनि) धन (दाशुषे) दानी पुरुष के लिए (व्यानशु) प्राप्त होते हैं ॥२१॥

भावार्थ—हे मानवो ! वह सब विधि पूर्ण है; जो कोई उसकी आज्ञानुसार आचरण करता है, उसे वह सब कुछ देता है ॥२१॥

इन्द्र ही स्तवनीय ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।

इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥२२॥

पदार्थः—(देवास) मन सहित इन्द्रिय वा विद्वद्गण (वृत्राय) अज्ञानादि दुरितो के (हन्तवे) निवारणार्थ (इन्द्रम्) इन्द्र को ही (पुर) आगे रखते हैं (वाणी) पुन विद्वानों की वाणी—वचन भी (सम् ओजसे) सम्यक् प्रकार बलप्राप्ति हेतु (इन्द्रम् अनूषत) इन्द्र की ही वन्दना करते है । यह ईश्वर की महिमा है कि सब जड तथा चेतन उसी के गुण प्रकट करते हैं ॥२२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सभी दु खो के निवारक उसी की शरण मे आओ ॥२२॥

फिर वही विषय ॥

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।

अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥२३॥

पदार्थ—(सम् ओजसे) समीचीन बलप्राप्ति हेतु (वयम्) हम लोग (महिना) अपने महिमा से (महान्तम्) महान् व (हवनश्रुतम्) हमारे आह्वान के सुनने वाले इन्द्र को (स्तोमेभि) स्तोत्रो और (अर्कैः) अर्चनीय मन्त्रो के द्वारा (अभि) सर्वभाव से (प्र) अतिशय (णोनुम) बारम्बार प्रणाम करते हैं । स्तुति करते हैं ॥२३॥

भावार्थः—बल प्राप्त करने के लिए भी उसी महिमामय की स्तुति करनी चाहिए ॥२३॥

उसका महत्त्व ॥

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।

अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥२४॥

पदार्थ—(रोदसी) द्यु व पृथिवीलोक (यम्) जिस (वज्रिणम्) दण्डधारी इन्द्र का (न विविक्त) अपने पास से अलग नही कर सकते अथवा अपने मे उसको समा नही पाते व (अन्तरिक्षाणि न) मध्यस्थानीय आकाशस्थित लोक भी जिसे अपने अपने समीप से अलग नहीं कर सकते (अस्य) उस (ओजस) महाबलीके (अमात् इत्) बल से ही यह सकल जगत् (सम् तित्विषे) भली भांति भासित हो रहा है ॥२४॥

भावार्थ—वह परमात्मा इस धरती, द्युलोक व आकाश से भी बहुत विशाल है अत वे इसे अपने मे रख नही सकते । उसी की शक्ति से ये सूर्यादि जगत् चल रहे हैं, इसलिए उसी की उपासना करनी चाहिए ॥२४॥

उसका महत्त्व ॥

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः ।

आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! हे प्रभो ! (यद) जब (देवा) इन्द्रियगण अथवा विद्वान् (पृतनाज्ये) ससार समर मे विजय पाने को (त्वा) तुझको (पुर) अपने समक्ष (दधिरे) रखते है (आद् इत्) तत्पश्चात् ही (ते) तेरे (हर्यता) प्रिय (हरी) स्थावर व जगम ससार (ववक्षतु) तुझे प्रकाशित करते हैं ।

भावार्थ—ससार सागर से वे ही लोग पार उतर पाते हैं जो उसकी शरण मे जाते हैं, भक्तजन उसे इसी प्रकृति मे देखते है ॥२५॥

उसका गुण कीर्तन ॥

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः ।

आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६॥

पदार्थ—(वज्रिन्) हे दण्डधारी न्यायकारी प्रभो ! (यदा) जब (नदीवृतम्) जलप्रतिबाधक (वृत्रम्) अनिष्ट का तू (शवसा) स्वनियमरूपी बल द्वारा (अवधीः) निवारता है (आद् इत्) उसके बाद ही (ते) तेरे (हर्यता) सर्वकमनीय (हरी) परस्पर हरणशील स्थावर जगमरूप द्विविध ससार तुझे (ववक्षतु) प्रकाशित करते है ॥२६॥

भावार्थ—जब लोगो का विघ्न मिटता है तब ही वह प्रभु की ओर जाते हैं, तब ही यह प्रकृति प्रसन्न हो उसकी छवि प्रकटाती है ॥२६॥

पुनः उसी अर्थ का कथन ॥

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।

आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२७॥

पदार्थ.—हे इन्द्र ! (यदा) जिस समय प्रात.काल (ते) तुझ से प्रस्फुटित (विष्णु.) व्यापनशील सूर्य (ओजसा) अपने प्रताप से (त्रीणि पदा) तीन पदों को

तीनो लोकों में (विचक्षते) रखता है (आद् इत्) तदनन्तर ही (ते) तेरे (हर्य्यता) सर्व कमनीय (हरी) परस्पर हरणशील स्थावर व जगम द्विविध ससार तुझे (ववक्षतुः) प्रकाशते है ॥२७॥

भावार्थ —सूर्य्य द्वारा भी उसका महान् यश ही प्रकाशित होता है। इसी दिवाकर को देख उसका महत्त्व स्पष्ट होता है ॥२७॥

उसका महत्त्व ॥

यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।

आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८॥

पदार्थः—हे प्रभु ! (यदा) जिस समय मे (ते) तेरे (हर्य्यता) सर्व कमनीय (हरी) परस्पर हरणशील स्थावर जगमरूप द्विविध ससार (दिवेदिवे) प्रतिदिन- क्रमशः धीरे-धीरे (वावृधाते) अपने अपने स्वरूप मे विकसित होते जाते है (आद् इत्) तभी (ते) तुमसे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोक-लोकान्तर और प्राणिजाल (येमिरे) नियम मे स्थापित किए जाते हैं। ज्यो-ज्यो सृष्टि विकसित होती है त्यो-त्यो तू उन्हे नियम में आबद्ध करता जाता है ॥२८॥

भावार्थ.—इसके कठिन नियम ज्यो-ज्यो विदित होते हैं त्यो-त्यो उपासक का ईश्वर मे विश्वास बढ़ता जाता है ॥२८॥

उसकी विभूति का वर्णन ॥

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।

आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यदा) जिस समय मे (ते) तेरी उत्पादित (मारुती.) वायु-प्रधान लोक मे स्थित (विश) मेघरूपी प्रजाए (तुभ्यम्) तुझे (नियेमिरे) अपने पर प्रकाशित करती है अर्थात् जब मेघो म तेरी बिजली के रूप म परमविभूति दीखती है तब मानो (आद् इत्) उसके बाद ही (ते) तेरे (विश्वा भुवनानि) निखिल भुवन अपने-अपने नियम मे (येमिरे) स्वय बद्ध होते हैं अर्थात् मेघ गर्जन सुन प्रजाए प्रकम्पित हो अपने-अपने नियम मे निबद्ध होती है ॥२९॥

भावार्थ.—परमपिता परमात्मा की विभूति ही वायु आदि सारे पदार्थों मे परिलक्षित होती है ॥२९॥

उसकी महिमा का वर्णन ॥

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।

आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

पदार्थ —हे परमैश्वर्य देव ! (यदा) जब तूने (दिवि) आकाश मे (अमुम्) इस दूर से दिखाई देने वाली (सूर्यम्) सूर्यरूप (शुक्रम्) शुद्ध देदीप्यमान (ज्योति·) ज्योति को (अधारय) स्थापित किया (आदित्) तब ही सकल भुवन नियमबद्ध हो गए ॥३०॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि सूर्य की स्थापना से इस ससार को अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है ॥३०॥

महिमा की स्तुति ॥

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः ।

जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र ! (विप्र) मेधावी जन (अध्वरे) यज्ञ मे (ते) तेरे लिए ही (पिप्रतीम्) प्रसन्न कर्त्री (इमाम्) इस (सुस्तुतिम्) शोभन स्तुति को (धीतिभि.) विज्ञान के तदर्थ (प्र इयर्त्ति) अतिशय प्रेरित करते हैं, अन्य देव हेतु नहीं। यहां दृष्टान्त है—(जामिम्) स्व बन्धु को (पदा इव) जैसे उत्तम पद की ओर ले जाते हैं वैसे ही मेधावीगण अपनी प्रिय स्तुति तेरी ओर ले जाते हैं ॥३१॥

भावार्थ—जिस प्रकार विद्वान् उसकी स्तुति करते है वैसे ही अन्य लोग भी करें ॥३१॥

पुन. उसकी स्तुति ॥

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।

नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! (समीचीनासः) परस्पर सम्मिलित परमविद्वत् जन (यद्) जब (नाभा) सर्व कर्म बांधने वाले (यज्ञस्य दोहना) यजनीय= पूजनीय परमात्मा को तुमको दुहने वाले (प्रिये) प्रिय (अध्वरे धामनि) यज्ञरूप स्थान मे (अस्य) इस तुझे (प्र अस्वरन्) विधिवत् स्तवन करते हैं तब हे प्रभु ! तुम अभीष्ट देने को प्रसन्न हो ॥३२॥

भावार्थः—हे मानव वृन्द ! उस परमपिता परमात्मा को अपने व्यवहार द्वारा प्रसन्न करो ॥३२॥

फिर भी उसी विषय का कथन ॥

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।

होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभु ! (पूर्वचित्तये) पूर्ण विज्ञानप्राप्ति हेतु अथवा सर्वप्रथम ही जनाने हेतु (होता इव) ऋत्विक् के तुल्य (अध्वरे) यज्ञ में तेरी (प्र) वन्दना करता हूँ। तू (न·) हमे (सुवीर्य्यम्) सुवीर्य्योपेत (स्वश्व्यम्) अच्छे अच्छे अश्वो से युक्त (सुगव्यम्) मनोहर गवादि पशुसमेत धन को (दद्धि) दे ॥३३॥

भावार्थ —उसी प्रभु की कृपा के परिणामस्वरूप अश्व इत्यादि भी मिलते हैं ॥३३॥

अष्टम मण्डल मे बारहवां सूक्त समाप्त ॥

त्रयस्त्रिंशदृचस्य त्रयोदशस्यूक्तस्य नारद काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, ५, ८, ११, १४, १९, २१, २२, २६, २७, ३१ निचृदुष्णिक् । २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक् । ३० आर्चीविराडुष्णिक् ॥ ऋषभ: स्वरः ॥

इन्द्रवाच्य ईश्वर की प्रार्थना ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।

विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥१॥

पदार्थ —(इन्द्रः) सम्पूर्ण जगत् का रचनाकार ईश्वर हमे (वृधस्य) वृद्धि और (दक्षस) बल की (विदे) प्राप्ति हेतु (सुतेषु) क्रियमाण (सोमेषु) विविध शुभ कर्मों मे (क्रतुम्) हमारी क्रिया व (उक्थ्यम्) भाषणशक्ति को (पुनीते) पावन करे (हि) क्योंकि (स) वह इन्द्र (महान्) सबसे महान् है, अतएव वह सब कर सकता है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा सभी कर्मों मे हमे वैसी सुमति प्रदान करें जिससे हमारे सभी काय अभ्युदय के हेतु पवित्रतम हो सकें ॥१॥

उसी का वर्णन ॥

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।

सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

पदार्थ —(स) वह सब कुछ देखने वाला ईश्वर (देवानाम्) सभी पदार्थों के (प्रथमे) उत्कृष्ट और (व्योमनि) व्यापक (सदने) भवन मे स्थित होकर (वृधः) प्राणियो के सुख बढाता है जो इन्द्र (सुपार) भली प्रकार दु खो से पार उतारने वाला है (सुश्रवस्तम) और अतिशय सुयशस्वी और सुधनाढ्य है और (समप्सुजित्) जलों मे अन्तर्हित विघ्नो पर भी पार पाने वाला है ॥२॥

भावार्थ.—वह प्रभु सबका अन्तर्यामी हो सबको बढाता व उनको पालता-पोसता है। वही सर्व विघ्नो का हर्त्ता है। अत वही पूज्य और वन्दनीय है ॥२॥

ईश्वर की स्तुति ॥

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।

भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥

पदार्थ —(तम्) उस विख्यात (शुष्मिणम्) महाबली (इन्द्रम्) जगत् के द्रष्टा ईश्वर का (वाजसातये) विज्ञान-धन-प्रापक (भराय) यज्ञ हेतु (अह्वे) आवाहन करता हूँ। वह इन्द्र (न) हमारे (सुम्ने) सुख मे (अन्तम·) समीपस्थ हो और (वृधे) वृद्धि हेतु (सखा) मित्र हो ॥३॥

भावार्थ —वही परमात्मा धन व विज्ञान का दाता है, ऐसा समझकर उसकी पूजा करो ॥३॥

पुन: वही विषय ॥

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥

पदार्थ —(गिर्वण) हे केवल वाणी द्वारा वन्दनीय ! हे स्तुतिप्रिय ! (इन्द्र) प्रभो ! (सुन्वत.) शुभ कर्मकर्त्ता के हेतु (ते) तेरा (इयम्) यह प्रत्यक्ष (रातिः) दान (क्षरति) सदा बरसता है तू (मन्दान) इसके शुभ आचरणो से सतुष्ट होकर (अस्य) इस यजमान के (बर्हिष) सारे शुभ कर्मों का (वि) विशेषरूप से (राजसि) शासन करता है ॥४॥

भावार्थ.—यह सकल अद्भुत व समग्रविभूति सम्पन्न जगत् उसका ही दान है। विद्वान् उससे ही महाधनिक होते हैं। हे जनो ! इसका शासक वही प्रभु है उसी की उपासना करनी योग्य है ॥४॥

ईश्वर की प्रार्थना ॥

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे ।

रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥५॥

पदार्थ — (इन्द्र) हे प्रभो ! (नूनम्) तू अवश्य (तत्) वह विख्यात विज्ञानरूप धन (नः) हमें (दद्धि) दे (यत्) जिस धन को (त्वा सुन्वन्त·) तेरी वन्दना करते हुए हम उपासक (ईमहे) चाहते हैं। हे इन्द्र ! (चित्रम) विभिन्न प्रकार के तथा (स्वर्विदम्) सुखजनक बुद्धिरूप (रयिम्) महाधन को (न.) हमारे लिये (आभर) ले आ ॥५॥

भावार्थः—जो व्यक्ति प्रभु की पूजा मन से करता है और उसकी आज्ञानुसार सदा चलता है, वही सर्वधनो के योग्य है ॥५॥

कैसी वाणी प्रयोक्तव्य है ?

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद्गिरः ।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन (**यत्**) जब (**ते**) तेरा (**विचर्षणिः**) गुण देखने वाला गुणग्राहक (**स्तोता**) स्तुतिपाठक विद्वान (**गिरः**) अपने वचनों को (**अतिप्रशर्धयत्**) नितान्त विघ्नविनाशक बनाता है या अपनी वाणी से जगत् को वश में कर लेता है और (**यत्**) जब वे वाणियाँ (**जुषन्त**) गुरुजनों को हर्षित करती हैं तब वे (**वयाः इव**) वृक्ष की शाखा के जैसी (**अनुरोहते**) सदा बढ़ती जाती हैं ॥३॥

भावार्थः—वाणी सत्य और प्रिय ही प्रयोक्तव्य है ॥६॥

उसी से प्रभु की प्रार्थना की जाती है ॥

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥७॥

पदार्थः—हे प्रभु ! तू (**प्रत्नवत्**) पूर्वकाल के समान ही इस समय मे भी (**गिरः**) विविध वाणियों को (**जनय**) पैदा कर। जैसे पूर्वकाल में मानव पशु व पक्षी प्रभृति प्राणियो में तूने विविध भाषाएं दीं वैसे अब भी नानाविधि भाषाओं का सृजन कर जिससे मूक हो और (**जरितुः हवम्**) गुणग्राही जनों का स्तुतिपाठ (**शृणुधी**) सुन। (**मदे मदे**) उत्सव-उत्सव पर (**सुकृत्वने**) शुभ कर्म वाले के हेतु (**ववक्षिथ**) अपेक्षित परिणाम दे ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ने ही मनुष्यों को सुस्पष्ट वाणी प्रदान की है। वही सब कर्मों का फल देने वाला है, अतः हे मनुष्यो ! उसी की वन्दना करो ॥७॥

वह सब का पति है ॥

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८॥

पदार्थः—हे प्रभु ! परमात्मा की महिमा देखो ! (**अस्य**) इस इन्द्र नामी ईश्वर के (**सूनृताः**) प्रिय व सत्य वचन प्रकृतियों मे (**क्रीळन्ति**) विचरण कर रहे हैं। यहां दृष्टान्त देते हैं—(**आपः न**) जैसे जल (**प्रवता**) नीचे के मार्ग से (**यतीः**) चलते हुए विचरते हैं। हे मनुष्यो ! (**यः**) जो इन्द्र (**अया**) इस (**धिया**) विज्ञान अथवा क्रिया से (**दिवः**) स्वर्ग या प्रकाश का पति (**उच्यते**) कहलाता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा कर्ता है और यह जगत् कार्य, कार्यों में उसी की क्रिया है। अतः मनुष्यो से कीट पर्यन्त प्राणियो में जो वचन, जो शक्तियाँ, जो सौन्दर्य, आदि जो आश्चर्य रचनाएं है, वह ईश्वर की हैं। अतः वही विज्ञान का दाता है ॥८॥

प्रजापति भी वही है ॥

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९॥

पदार्थ—(**उतो**) और (**यः**) जो परमात्मा (**वशी**) सभी प्राणियो को अपने वश मे करता है और जो (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यों का (**एक इत्**) एक ही (**पतिः**) पालक स्वामी (**उच्यते**) कहा जाता है। कौन उसे एक पति कहते हैं ? इस आकाङ्क्षा मे कहते हैं कि (**नमोवृधैः**) जो ईश्वर को प्रणाम व पूजा कर इस जगत् मे बढ़ते हैं अर्थात् ईश्वरभक्त और जो (**अवस्युभिः**) सब प्राणियो की रक्षा हो ऐसी कामना करने वाले हैं वे परमात्मा को एक अद्वितीय पति कहते है। अतः हे इन्द्र ! तू (**सुते**) हमारे सम्पादित गृह अपत्यादि वस्तु अथवा शुभ कर्म मे (**रण**) रत हो। अथवा हे स्तोता ! (**सुते**) प्रत्येक शुभ कर्म मे (**रण**) उसी की स्तुति करो ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! परमात्मा ही सर्वपति है ऐसा समझकर उसकी ही वन्दना व गुणगान करो ॥०॥

वही स्तुत्य है ॥

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप (**श्रुतम्**) सर्वश्रुत व (**विपश्चितम्**) सर्वद्रष्टा विज्ञानी परमात्मा की (**स्तुहि**) स्तुति करो। (**यस्य**) जिसकी (**प्रसक्षिणा**) प्रसहनशील (**हरी**) स्थावर व जंगमात्मक सम्पत्तियां (**नमस्विनः**) पूजावान् और (**दाशुषः**) दरिद्रों को देने वाले के (**गृहम्**) घर मे (**गन्तारौ**) जाते है ॥१०॥

भावार्थ—यहां यह स्पष्ट किया गया है कि जो लोग ईश्वर की पूजा करते हैं उन्हें कभी धन की कमी का अनुभव नहीं हो पाता। अतएव उसी की पूजा करनी चाहिए ॥१०॥

अगले मन्त्र से प्रार्थना करते हैं ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११॥

पदार्थ—(**महेमते**) हे महान् फल देने वाले ! हे महामति परमविज्ञानी प्रभु ! यद्यपि तू (**प्रुषितप्सुभिः**) स्निग्धरूप (**आशुभिः**) तीव्रगामी (**अश्वेभिः**) संसारस्थ पदार्थों के साथ (**तूतुजानः**) विद्यमान है ही तथापि (**यज्ञम्**) हमारे यज्ञ मे (**आयाहि**) प्रत्यक्ष आ। (**हि**) क्योंकि (**ते**) तेरा आना (**शम् इत्**) कल्याणकारी होता है। तेरे आने से ही यज्ञ सफल हो सकता है ॥११॥

भावार्थ—यज्ञादि शुभकर्मों मे वही परमात्मा पूज्य है, और कोई नहीं। उसी का पूजन वन्दन कल्याण करने वाला है ॥११॥

ईश्वर की प्रार्थना ॥

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२॥

पदार्थ—(**शविष्ठ**) हे बलशाली ! (**सत्पते**) सत्यपालक (**इन्द्र**) सर्वद्रष्टा ! (**गृणत्सु**) स्तुतिपाठक जनो मे (**रयिम्**) ज्ञानविज्ञानात्मक धन को (**धारय**) स्थापित करो। और (**सूरिभ्यः**) विद्वानों को (**श्रवः**) यश दो और (**वसुत्वनम्**) उनको बहुव्यापक बहुकाल स्थायी (**अमृतम्**) मुक्ति भी प्रदान करो ॥१२॥

भावार्थ—ईश्वर ही मुक्ति प्रदान करते हैं, यह समझकर उसी की उपासना करना अभीष्ट है ॥१२॥

दो काल वही प्रार्थनीय है ॥

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः ।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे सर्वद्रष्टा ! (**सूरे उदिते**) सूर्योदय पर [प्रातःकाल] (**त्वा हवे**) मैं तेरी प्रार्थना करता हूँ और (**दिवः**) दिन के (**मध्यन्दिने**) मध्यकाल [मध्याह्न] मे तेरी वन्दना करता हूँ। हे इन्द्र ! यद्यपि तू (**सप्तिभिः**) सर्पणशील [गमनशील] पदार्थों सहित विद्यमान ही है तथापि तुझे हम प्राणी नहीं देखते। इसलिए (**जुषाणः**) प्रसन्न होकर (**नः**) हमारे निकट (**आगहि**) आ और हम पर कृपा कर ॥१३॥

भावार्थ—सूर्योदय के समय और मध्याह्न को परमात्मा का ध्यान करें ॥१३॥

इससे प्रार्थना करते हैं ॥

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (**तु**) शीघ्र (**आगहि**) हमारे सुकर्मों मे प्रकट हो। और (**तु**) शीघ्र (**प्र द्रव**) हम भक्तों पर कृपा कर और तू (**गोमतः**) वेदवाणीयुक्त (**सुतस्य**) यज्ञ को (**मत्स्व**) आनन्दित कर और (**पूर्व्यम्**) पूर्व पुरुषों मे आचरित (**तन्तुम्**) सन्तानादि सूत्र को (**तनुष्व**) विस्तारित कर (**यथा**) जिससे मुझे वह तन्तु (**विदे**) प्राप्त हो सके ॥१४॥

भावार्थ—हे प्रभु ! तू हमें देख ! सन्मार्ग मे ले चल। यज्ञ की वृद्धि कर। पूर्ववत् पुत्रादिको की भी वृद्धि कर ॥१४॥

ईश्वर स्तुति ॥

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५॥

पदार्थ—(**शक्र**) हे सर्वशक्तिमन् ! (**वृत्रहन्**) सर्वविघ्नविनाशक ! (**यत्**) यदि तू (**परावति**) दूर देश मे (**असि**) है (**यत्**) यदि तू (**अर्वावति**) समीपस्थ देश मे है (**यद्वा**) यद्वा (**समुद्रे**) समुद्र मे या आकाश में है, कहीं भी तू है, वहीं से आकर हमारे (**अन्धसः**) अन्न का (**अविता इत्**) रक्षक (**असि**) होता ही है ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! परमात्मा सबका रक्षक है यह अनुभूति सदा रहनी चाहिए ॥१५॥

उसी की प्रार्थना ॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः ।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**नः**) हमारे (**गिरः**) स्तुतिरूप वचन (**इन्द्रम्**) ईश्वर महिमा मे (**वर्धन्तु**) बढ़ें। यद्वा हम ईश्वर का ही यश बढ़ाएं और (**सुतासः**) हमारे उपार्जित (**इन्दवः**) उत्तमोत्तम पदार्थ (**इन्द्रम्**) भगवान् को ही लक्ष्य कर बढ़ें तथा भगवान् का ही यश बढ़ाएं। (**हविष्मतीः**) पूजावती (**विशः**) सारी प्रजाएं (**इन्द्रे**) भगवान् मे (**अराणिषुः**) आनन्दित हों ॥१६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारे मन वचन कर्म व शरीर ईश्वर की ही यशोवृद्धि करें और तुम स्वयं उसकी आज्ञा में आनन्दित रहो ॥१६॥

उसकी महिमा ॥

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ।

इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥१७॥

पदार्थः—(**अवस्यव**) जगत् रक्षा के आकांक्षी और स्वयं साहाय्य के आकांक्षी (**विप्रा**) मेधावी (**तम् इत्**) उसी इन्द्र की (**प्रवत्वतीभिः**) प्रवृत्तिमती अत्युन्नत (**ऊतिभि**) स्तुतियों से स्तुति करते हैं। और (**क्षोणी**) पृथिवी आदि सर्व लोक-लोकान्तर (**वया. इव**) वृक्ष की शाखा के तुल्य अधीन होकर (**इन्द्रम्**) इन्द्र के ही गुणों को (**अवर्धयन्**) बढ़ाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सभी विद्वान् व अन्यान्य लोक भी उसी की महिमा गाते हैं यह जान तुम भी उसी के गुण गाओ ॥१७॥

उसकी महिमा ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८॥

पदार्थः—(**देवास**) दिव्यगुणसंपन्न विद्वद्गण (**त्रिकद्रुकेषु**) त्रिलोक में (**चेतनम्**) चेतन व सर्व में चेतनता देनेवाले और (**यज्ञम्**) पूजनीय उसी परमात्मा को (**अत्नत**) यशोगान से और पूजा से विस्तारित करते हैं (**तम् इत्**) उसी (**सदावृधम्**) सर्वदा जगत् में सुखवर्धक इन्द्र के लिये ही (**नः**) हमारी (**गिर**) वाणी (**वर्धन्तु**) बढ़ें। अर्थात् उसी इन्द्र के परम यश को हमारी वाणी वृद्धि करें ॥१८॥

भावार्थः—परम विद्वान् भी जिस की सर्वदा स्तुति गाते और प्रार्थना करते हैं उसी को हम भी तन्मय होकर पूजें ॥१८॥

महिमा का वर्णन ॥

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।

शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥१९॥

पदार्थ—(**स्तोता**) स्तुतिपाठ करने वाले (**अनुव्रतः**) स्वकर्तव्यपालन रत व तुझे प्रसन्न करने के लिए नानाव्रतधारी हो (**ऋतुथा**) प्रत्येक ऋतु में (**यत् ते**) जिस तेरी प्रीति हेतु (**उक्थानि**) विविध स्तुति वचनों को (**दधे**) बनाते रहते हैं, वह तू हम जीवों पर कृपा कर। हे मनुष्यो ! (**स**) वह महान् देव (**शुचि**) परमपावन है (**पावकः**) अन्यान्य सब वस्तुओं का शोधक और (**अद्भुत**) महाऽद्भुत (**उच्यते**) कहलाता है। उसी की पूजा करो, वही मान्य है। वह सब का स्वामी है ॥१९॥

भावार्थ—जो पावन, पवित्रकारक व अद्भुत है। उसी को विद्वान् स्तोता एकाग्रचित्त होकर पूजते हैं, हम भी उसी की वन्दना करें ॥१९॥

उसकी महिमा ॥

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।

मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥२०॥

पदार्थ—(**तद् इत्**) वह ही (**यह्वम्**) इन्द्ररूप महान् तेज (**रुद्रस्य**) विद्युत् आदि पदार्थों को (**प्रत्नेषु**) प्राचीन अविनश्वर सदा स्थिर (**धामसु**) आकाश-स्थानों में (**चेतति**) चेतन बनाता है। अर्थात् चेतन जैसा उनको कार्यों में व्यवहार करता है। (**यत्र**) जिस इन्द्रवाच्य ईश में (**विचेतसः**) विशेष विज्ञानीजन (**तत्**) उस शान्त (**मन**) मनको समाधि-सिद्धि हेतु (**विदधु**) स्थापित करते हैं उसी इन्द्र की पूजा सभी करें ॥२०॥

भावार्थः—जो परमात्मा लोकों का अधिपति है वह विद्युदादि अनन्त पदार्थों को आकाश में स्थापित कर उन पर शासन भी करता और चेताता है। उसी में योगी मन लगाते हैं। हे मनुष्यो ! उसी एक की पूजा करो ॥२०॥

उससे प्रार्थना ॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।

येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥२१॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! (**यदि**) यदि आप (**मे**) मेरी (**सख्यम्**) मैत्री (**आवरः**) भली प्रकार स्वीकारें तो इसकी सूचना हेतु प्रथम (**इमस्य**) इस (**अन्धसः**) अन्धा करने वाले संसार की हर वस्तु की (**पाहि**) रक्षा करें। इस अन्धकारी संसार से पृथक् कर मेरी रक्षा करें, (**येन**) जिससे (**विश्वा**) समस्त (**द्विषः**) द्वेष करने वाली काम क्रोधादि की सेनाओं पर हम (**अति अतारिम**) पूर्णतः विजयी हो पार उतरें ॥२१॥

भावार्थः—जो भगवान् को अपना सखा समझकर सब वस्तु उसे ही समर्पित करता है वही सब क्लेशों से मुक्ति प्राप्त करता है ॥२१॥

इस मन्त्र से प्रार्थना ॥

कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।

कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२॥

पदार्थः—(**गिर्वणः**) हे समस्त उत्तम वाणियों से वन्दनीय ! हे स्तोत्रप्रिय (**इन्द्र**) इन्द्र (**ते**) तेरा (**स्तोता**) यशोगाता (**कदा**) कब (**शन्तम**) अतिशय सुखी और कल्याणयुक्त (**भवाति**) होगा और (**कदा**) कब (**न**) हम अधीन जनों को तू (**गव्ये**) गोसमूह में (**अश्व्ये**) अश्वों के झुण्डों में और (**वसौ**) उत्तम निवासस्थान में (**दध**) रखेगा। हे भगवन् ! ऐसी कृपा कर कि तेरे स्तोतृजन सदा सुखी हों। उन्हें गौएं, घोड़े और अच्छे निवास स्थान मिलें ॥२२॥

भावार्थः—हे भगवन् ! स्तुति करने वाले को सौभाग्ययुक्त कर और उसे अन्य पदार्थ दे जिनकी वह अभिलाषा करे ॥२२॥

उसका महत्त्व ॥

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।

अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३॥

पदार्थ—(**उत**) और (**ते**) तुझ से उत्पन्न (**सुष्टुता**) सर्वथा प्रशंसित (**वृषणा**) सकल कामनाओं को वर्षाने वाले (**हरी**) परस्पर हरणशील स्थावर जंगमात्मक दो अश्व (**अजुर्यस्य**) जरामरणादि दुःखरहित तेरे (**रथम्**) रमणीय रथ को (**वहत.**) प्रकाशित करते हैं। मानो संसार तुझे रथ पर बैठा हमारे समीप दिखला रहा है। (**मदिन्तमम्**) अतिशय आनन्ददाता (**यम्**) जिस तुझ से (**ईमहे**) हम धनादिक वस्तु मांगते हैं ॥२३॥

भावार्थ.—हे मनुष्यो ! ये स्थावर व जंगम संसार परमात्मा को दिखला रहे हैं। अतः ये दोनों भली-भांति ज्ञातव्य हैं ॥२३॥

प्रार्थना सिखलाते हैं ॥

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।

नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥२४।

पदार्थ—(**तम् ईमहे**) उस परमात्मा से हम याचना व प्रार्थना करते हैं जिसकी (**पुरुष्टुतम्**) सब स्तुति गाते हैं और (**यह्वम्**) जो महान् है, जो (**प्रिये बर्हिषि**) प्रिय संसाररूप आसन पर (**निसदत्**) बैठा है और जो (**द्विता**) अनुग्रह-निग्रह दोनों कार्य करता है, उस इन्द्र वाच्य प्रभु को हम (**प्रत्नाभि ऊतिभि**) शाश्वत सहायता हेतु मांगते हैं ॥२४॥

भावार्थ—परमात्मा की ही प्रार्थना व याचना करना योग्य है। वही सर्वत्र व्याप्त होने से हमारी स्तुति सुनता है और अभीष्ट को जानता है ॥२४॥

इन्द्र की स्तुति ॥

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।

धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥२५॥

पदार्थ.—(**पुरुष्टुत**) हे बहुभांति स्तुत्य महेन्द्र ! (**ऋषिष्टुताभि**) ऋषियों से प्रशंसित और प्रचालित (**ऊतिभि**) सहायता के साथ (**सु**) भली प्रकार (**वर्धस्व**) हमें बढ़ाओ (**च**) और (**पिप्युषीम्**) सर्व पदार्थ युक्त (**इषम्**) अन्न (**न**) हमें (**अव धुक्षस्व**) दे ॥२५॥

भावार्थः—ऋषिप्रदर्शित मार्ग का ही अवलम्बन करें, यह उपदेश इसमें देते हैं ॥२५॥

इन्द्र की स्तुति ॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।

ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥२६॥

पदार्थ—(**अद्रिव**) हे दण्डधारी (**इन्द्र**) सर्वद्रष्टा प्रभु ! (**इत्था**) इस तरह (**स्तुवत**) यश गायक के (**त्वम**) आप (**अविता इत् असि**) रक्षक ही होते हैं। इस हेतु हे प्रभु ! (**ऋतात्**) सत्यता के कारण (**मनोयुजम्**) समाधि में मन स्थापित करने वाली (**धियम्**) बुद्धि की (**ते**) आप से (**इयर्मि**) याचना करता हूं। जिस कारण आप सदा हमारी रक्षा ही करने आए हैं, अतः मुझे सुबुद्धि दो जिससे मेरी पूर्ण रक्षा हो ॥२६॥

भावार्थ.—परमात्मा उसकी रक्षा करता है जो शुभकर्म करता है और जो उस परमात्मा में मन लगाता है ॥२६॥

इससे इन्द्र की प्रार्थना करते हैं ॥

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।

हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७॥

पदार्थ.—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! तू (**त्या**) अत्यधिक प्रसिद्ध उन (**सधमाद्या**) तेरे ही साथ आनन्दयिता (**प्रतद्वसू**) बहुधनसम्पन्न सर्वसुखमय (**हरी**) परस्पर हरणशील स्थावर व जंगमरूप द्विविध संसारों को (**युजान**) अपने-अपने कार्य में नियोजित करता हुआ (**इह**) इस मेरे घर में (**सोमपीतये**) सकल पदार्थों के ऊपर अनुग्रहार्थ (**अभिस्वर**) हमारे अभिमुख आ ॥२७॥

भावार्थः—हे प्रभु ! इन पदार्थों को अपने अपने कार्य में लगा और हम पर कृपा कर ॥२७॥

ईश्वर की प्रार्थना ॥

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।

उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (**तव**) तेरे (**ये**) जो (**वज्रा**) भक्त है वे (**अभिस्वरन्तु**) हमारे यज्ञ मे आए और आकर (**श्रियम्**) यज्ञ की शोभा (**सक्षत**) बढ़ाए (**उत**) और (**मरुत्वतीः**) कई व्यक्ति मिलकर कार्य करनेवाली तेरी (**विश**) प्रजाए भी (**प्रय**) विविध अन्न लेकर हमारे यज्ञ मे (**अभिस्वरन्तु**) आवें ॥२८॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! तेरी कृपा से ससार की शोभा मे वृद्धि हो और अन्नो से लोग हृष्ट-पुष्ट रहे ॥२८॥

पुन उसी विषय का कथन ॥

इमा अस्य प्रतूर्तयः पद जुषन्त यद्दिवि ।

नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ।२९॥

पदार्थ—हे लोगो ! (**अस्य**) इस परमात्मा की (**इमा**) ये इमसे पहले वर्णित गुणग्राहिणी आज्ञापालिका व (**प्रतूर्तय**) काम क्रोधादि वासनाओ को नष्ट करनेवाली प्रजा उस उत्तम (**पदम्**) पद को (**जुषन्त**) पाती है (**यद्**) जो पद (**दिवि**) सर्वप्रकाशक परमात्मा मे है । (**यथा विदे**) विज्ञान के अनुसार (**यज्ञस्य**) सकल सुकर्म के (**नाभा**) नाभि मे [मध्यस्थान मे] (**सदधु.**) सन्निकट होती है अर्थात् यज्ञ तत्त्वो से अवगत हैं ॥२९॥

भावार्थ—हे लोगा ! उमी परमपिता की कृपा मे उत्तम से उत्तम स्थान प्राप्त करने म समर्थ हो, अत यही उचित है कि उसी की उपासना की जाए ॥२९॥

ईश्वर की स्तुति ॥

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे ।

मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३०॥

पदार्थ—यज्ञ का कर्त्ता व विधाता वही परमात्मा है यह इम से प्रदर्शित करते है । (**प्राचि**) अति प्रशमनीय (**अध्वरे**) हिमामुक्त यज्ञ के (**प्रयति**) प्रवृत्त होने पर (**दीर्घाय चक्षसे**) बहुत प्रकाश पाने के लिए (**अयम**) यह परमात्मा स्वय ही (**विचक्ष्य**) देख-रेख कर (**आनुषक्**) क्रमसहित (**यज्ञम्**) यज्ञ (**मिमीते**) पूर्ण करता है ॥३०॥

भावार्थ—परमात्मा ही सारे यज्ञो का विधायक भी है, अत यज्ञो मे वही पूज्यतम है और उसी की कृपा से भक्तो का यज्ञ पूरा होता है ॥३०॥

ईश्वर की स्तुति ॥

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी ।

वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ।३१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**अयम् ते रथ**) अविभाज्य रूप मे स्थित जो यह समग्र ससाररूपी तुम्हारा रथ है, वह (**वृषा**) सारे कामो का दाता है (**उतो**) और (**ते**) तेरे (**हरी**) विभाग से स्थित जो स्थावर व जगमरूप द्विविध अश्व है (**वृषणा**) वे भी सारी इच्छाओ को पूरा करते हैं । (**शतक्रतो**) हे परमात्मन् ! (**त्वम् वृषा**) तू स्वय कामवर्षिता है । हे परमात्मा ! अधिक क्या कहे (**हव**) तेरा आवाहन, श्रवण, मनन आदि भी (**वृषा**) सारा ही अभीष्टप्रद है ॥३१॥

भावार्थ—उस प्रभु के सारे कर्म आनन्दप्रद हैं, वही उपास्यदेव है और उमी का आह्वान श्रवण मनन अभीष्ट है ॥३१॥

पुन वही अर्थ ॥

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।

वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२॥

पदार्थ—ईश्वर की सृष्टि मे लघुतम पदार्थ भी बहुगुणप्रद है, यह शिक्षा इससे है । यथा—(**ग्रावा**) नि सार क्षुद्र पत्थर भी (**वृषा**) बहुत फल देता है (**मद**) मादक पदार्थ भी वैद्यक शास्त्रानुसार प्रयोग मे लाने पर (**वृषा**) लाभदायक है (**अयम् सुत सोम**) हम जीवो से निष्पादित यह सोम आदि भी (**वृषा**) कामवर्षिता है (**यम् इन्वसि**) जिस यज्ञ मे तू जाता है वह (**यज्ञ वृषा**) यज्ञ कामवर्षिता है । (**हव वृषा**) तेरा आवाहन भी वृषा है ॥३२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उमी परमात्मा की सगति करो, उसका सग ही आनद प्रदान करने वाला है ॥३२॥

इन्द्र का दान ॥

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।

वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥३३॥

पदार्थ—हे प्रभु ! आपकी कृपा द्वारा मैं भी (**वृषा**) विज्ञान इत्यादि धनो को प्रजाओ मे देनेवाला हू । वह मैं (**वृषणम् त्वा**) सर्व कामप्रद तुझे (**हुवे**) पूजना और आवाहन करता हू (**वज्रिन्**) हे महादण्डधर ! (**चित्राभि**) विविध प्रकार की (**ऊतिभि**) रक्षाओ सहित सर्वत्र आप विद्यमान हैं (**हि**) जिसलिये (**प्रतिष्टुतिम्**) सर्व स्तोत्र के प्रति आप (**ववन्थ**) प्राप्त होते हैं अत (**हव वृषा**) आपका आवाहन भी सर्व फलदायक है ॥३३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! दयालु परमात्मा का दान अनन्त है, तुम भी यथाशक्ति उसका अनुकरण करो ॥३३॥

अष्टम मण्डल मे तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पञ्चदशर्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य १—१५ *गोषूक्तयश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषी ॥* इन्द्रोदेवता ॥ छन्द —१, ११ *विराड्गायत्री* । २, ४, ५, ७, १५ *निचृद्गायत्री* । ३, ६, ८—१०, १२—१४ *गायत्री ॥* षड्ज स्वर ॥

पुनः इन्द्र की प्रार्थना ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**यथा**) जिस तरह (**एकः इत**) एक ही (**त्वम्**) तू (**वस्व**) सब प्रकार के धनो पर अधिकार रखता है । वैसा ही (**यद्**) यदि (**अहम्**) मैं भी (**ईशीय**) सब प्रकार के धनों पर अधिकार रखूं और उनका स्वामी होऊ तो (**मे**) मेरा (**स्तोता**) स्तुतिपाठ करने वाला भी (**गोसखा स्यात्**) गो सरीखे धनो का मित्र हो । हे प्रभु ! आपकी कृपा द्वारा मेरे स्तोता भी जैसे धनी होवें वैसी कृपा हम पर करे ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार वह ईश्वर दान दे रहा है, उसी प्रकार हम धन पाकर दान दें ॥१॥

मनुष्य की आशा ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

पदार्थ—(**शचीपते**) हे यज्ञ इत्यादि कर्मों व विज्ञानो के स्वामी प्रभु ! मेरी सदा यही इच्छा रहती है कि (**अस्मै**) सुप्रसिद्ध (**मनीषिणे**) मननशील परमशास्त्रतत्त्वविद जनो को (**शिक्षेयम्**) बहुत धन दू, (**दित्सेयम**) सदा देता रहूं (**यद्**) यदि (**अहम**) मै (**गोपति स्याम्**) ज्ञानो का तथा गो प्रभृति पशुओ का स्वामी होऊं । मेरी इच्छा पूर्ण कर ॥२॥

भावार्थ—हे प्रभु ! मुझे धनवान व दाता बना जिससे निर्धनो और विद्वानों को मै धन द इस मेरी इच्छा को पूरी कर ॥२॥

वाणी सत्या बनाए ॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।

गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमात्मा ! (**ते**) तेरे उद्देश्य से प्रयुक्त हमारी वाणी यदि (**सूनृता**) सत्य और सुमधुरा है, तो वही वाणी (**पिप्युषी**) सदा वृद्धिकारक (**धेनु**) गो समान होकर (**सुन्वते यजमानाय**) शुभ कर्मकर्त्ता यजमान को (**गाम**) दूध देने हेतु गौए और चढ़ने के लिये (**अश्वम्**) घोडे (**दुहे**) सदा देती है । यद्वा (**ते**) तेरे उद्देश्य से प्रयुक्त (**धेनु**) हमारी वाणी यदि (**सूनृता**) सत्य व सुमधुर हो तो वही वाणी (**पिप्युषी**) सदा बढाने वाली (**धेनु**) गो समान होकर (**सुन्वते यजमानाय**) शुभ कर्म करने वाले यजमान को (**गाम्**) दूध देने हेतु गौए और चढने के लिए (**अश्वम्**) अश्व (**दुहे**) सदा देती है ॥३॥

भावार्थ—हे प्रभु ! मैं जो तुझ से सदा धन मांगता हूँ वह अनुचित ही है, क्योंकि तुम्हारे द्वारा दी गई वाणी ही मुझे सब देती है । अन्य कोई भी यदि वाणी को सुमधुर और सुसस्कृत बनाएगा तब वह उसी से पूर्णमनोरथ होगा । अत. सदा ईश्वर के समीप धन याचना न करें किन्तु उसके साधनो से उद्योगी बनें, यह शिक्षा इस ऋचा म है ॥३॥

ईश्वर की स्वतन्त्रता ॥

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।

यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४॥

पदार्थ—हे परमात्मा ! तू (**स्तुत**) विद्वानो से प्रार्थित हो (**यत्**) जो (**मघम्**) पूजनीय धन लोगो को (**दित्ससि**) देना चाहता है (**ते**) तेरे उस (**राधस.**) पूज्य धन के दान से (**वर्ता**) निवारण कर्त्ता (**न**) न तो (**देव**) देव है और (**न**) न (**मर्त्यः**) मरणधर्मा मनुष्य ॥४॥

भावार्थ—ईश्वर कुछ भी करने मे समर्थ है । यह स्पष्ट कहा गया है कि उसका बाधक या निवारक कोई पदार्थ नहीं ॥४॥

शुभकर्म से ही ईश की प्रसन्नता ॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।

चक्राण ओपशं दिवि ॥५॥

पदार्थ—जैसे (**यज्ञ**) वैदिक या लौकिक सुकर्म (**इन्द्रम्**) भगवान् को (**अवर्धयत्**) प्रसन्न करता है (**यत्**) जो यज्ञ (**भूमिम्**) भूलोक को (**व्यवर्तयत्**) विविध शस्यादिको से पुष्ट करे और जो (**दिवि**) प्रकाशात्मक परमात्मा के निकट (**ओपशम्**) यजमान के लिए सुन्दर स्थान (**चक्राण.**) बनाता हुआ बढता है ऐसे यज्ञ को सब किया करें । उसी यज्ञ से परमात्मा प्रसन्न हो सकता है ॥५॥

भावार्थः—शुभ कर्मों से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं, अत हे मनुष्यो ! सत्यादि व्रतो और सन्ध्यादि कर्मों को नित्य करो जिससे उसकी प्रसन्नता प्राप्त हो ॥५॥

रक्षा के लिए प्रार्थना ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वावृधानस्य) सृष्टिकार्य्य में बारम्बार लगे और उसे सब भांति से बढ़ाते हुए और (विश्वा) सकल (धनानि) धनों के (जिग्युषः) महास्वामी (ते) तेरे निकट (ऊतिम्) रक्षा और सहायतार्थ (वयम्) हम उपासक (वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं। हे ईश ! सूर्य्य, चन्द्र, भूप्रभृति महाधनों का तू ही स्वामी है। यदि तेरा पालन जगत् में न हो तो सर्व वस्तु विनष्ट हो जाये। अतः तू ही बनाता व बिगाड़ता है ॥६॥

भावार्थ—प्रातः और सायं सदा ईश्वर से रक्षा के लिए और सहायता के लिए प्रार्थना करना श्रेयस्कर है ॥६॥

ईश्वर महिमा की स्तुति ॥

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यद्) जब (इन्द्र) परमात्मा हमारे सब (वलम्) विघ्न को (अभिनत्) दूर कर देता है तब तब (सोमस्य) सारे पदार्थ का (मदे) आनन्द उदित होता है अर्थात् (अन्तरिक्षम्) सब का अन्तःकरण और सर्वाधार आकाश (रोचना) स्वच्छ व (व्यतिरत्) आनन्द से भर जाता है ॥७॥

भावार्थ—जब जब परमात्मा हमारे विघ्नों को दूर करता है तभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूप से प्रकाशित होते हैं ॥७॥

सब विघ्नों का नाशक है ॥

उदुगा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।

अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥८॥

पदार्थ—जब परमात्मा हमारे (वलम्) सारे विघ्न और अज्ञान को (अर्वाञ्चम्) नीच की ओर करके (नुनुदे) नीचे गिराता है (तदा) तब (गुहा) हृदयरूपी गुफा में (सतीः) गूढ़ मेधादि शक्तियों को (आविष्कृण्वन्) प्रकाशित करता वह परमात्मा (अङ्गिरोभ्यः) हमारे इन्द्रियों को (गाः) मेधादि दिव्य शक्तियां (उद् आजत्) देता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपादृष्टि से ज्ञान विज्ञान, विवेक और मेधा आदि गुण उपजते हैं यह शिक्षा यहां दी गई है ॥८॥

ईश्वर महिमा की स्तुति ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च ।

स्थिराणि न पराणुदे ॥९॥

पदार्थ—सब का आधार वही इन्द्र है यह शिक्षा इसमें है। यथा—(दिवः) द्युलोक के (रोचना) शोभमान पृथिवीस्थ समुद्र आदि समस्त वस्तु इस प्रकार (इन्द्रेण) इन्द्र ने (दृळ्हानि) दृढ़ की और (दृंहितानि) बढ़ाई है जिससे ये वस्तु (स्थिराणि) स्थिर हों (न पराणुदे) न कदापि विनाशशाली हों ॥९॥

भावार्थ.—हे मनुष्यो ! महान् आश्चर्ययुक्त इस संसार को देखो ! यह सूर्य पृथिवी आदि कैसे ठहरे हैं। अपने-अपने स्थान से विचलित होकर ये नष्ट क्यों नहीं हो जाते हैं। हे मनुष्यो ! सब का आधार परमात्मा को ही जानो और उसी की पूजा करो ॥९॥

महिमा स्तुति ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।

वि ते मदा अराजिषुः ॥१०॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रभो ! जैसे (अपाम्) जल की (ऊर्मिः) तरंग (मदन् इव) बलपूर्वक आगे बढ़ती है। वैसे ही तेरे लिए विद्वानों से विरचित (स्तोम) स्तुति समूह (अजिरायते) अग्र गमन के लिए शीघ्रता करते हैं अर्थात् प्रत्येक स्व-स्व स्तुतिरूप उपहार आपके समीप प्रथम ही पहुँचाने के लिये प्रयत्नशील है। हे इन्द्र ! (ते) वे आपके (मदाः) आनन्द (वि अराजिषुः) सभी जगह विराजमान हैं। हम उसके भागी हों ॥१०॥

भावार्थ—सब विवेकीजन प्रातःकाल उठकर स्तुति करते हैं। हे प्रभो ! आपने सर्वत्र आनन्द दिया है। उसे लेने को जिस से हम में बुद्धि उपजे वैसा उपाय बता कर कृपा करें ॥१०॥

महिमा स्तुति ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ।

स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥११॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मा ! (हि) जिस लिए (त्वम्) तू ही (स्तोमवर्धन) स्तुतियों को बढ़ाता है व (उक्थवर्धन असि) तू ही उक्तिवर्धक है। (उत) और (स्तोतृणाम्) स्तुतिपाठकों का (भद्रकृत्) तू कल्याण करने वाला है ॥११॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से भक्तों की स्तुतिशक्ति, भाषणकुशलता और कल्याण होता है। अतः वही स्तुत्य और पूज्य है, यह शिक्षा यहां दी गई है ॥११॥

महिमा स्तुति ॥

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।

उप यज्ञं सुराधसम् ॥१२॥

पदार्थ—(केशिना) वनस्पति, वृक्ष व पर्वत आदि केशधारी (हरी) आपकी हरणशील स्थावर जङ्गमात्मक द्विविध संसार (यज्ञम्) यजनीय (सुराधसम्) और सुपूज्य (इन्द्रम्) प्रभु को (सोमपेयाय) सारे पदार्थों की रक्षार्थ (उप वक्षतः) अपने-अपने समीप धारण किये हैं। भगवान् सर्वव्यापक है यही इसमें शिक्षा है ॥१२॥

भावार्थ—ये सूर्य आदि सब पदार्थ परमात्मा को दिखलाने में समर्थ हैं। अन्यथा उसे कौन दिखा सकता है। इन पदार्थों की स्थिति पर जब विचार किया जाए तो उसका अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है ॥१२॥

विघ्न हनन कर्त्ता ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।

विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र ! आप (नमुचेः) अवर्षणरूप अनिष्ट व विघ्न का (शिरः) शिर (अपाम् फेनेन) जल के फेन से (उदवर्तयः) काटते हैं। (यद्) जब (विश्वाः) सर्व (स्पृधः) बाधाओं को (अजयः) जीतते हैं। हे इन्द्र ! जब आप जलवर्षा से स्थावर जंगम जीवों को सन्तोष देते हैं तभी संसार की सारी बाधाएं दूर होती हैं। ऐसे तुझे मैं भजता हूँ ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा ही जल का भी कारण है ऐसा समझना चाहिए ॥

ईश्वर की महिमा की स्तुति ॥

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।

अव दस्यूँरधूनुथाः ॥१४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मा ! (मायाभिः) माया सहित (उत्सिसृप्सतः) खिसकते हुए (दस्यून्) चोर आदि (द्याम् आरुरुक्षतः) यदि परम उच्चस्थान भी पा लें तो वहां से भी उन्हें तू (अव अधूनुथाः) नीचे गिराता है ॥१४॥

भावार्थ—वह परमपिता बलिष्ठतम पापियों को भी अपने स्थान से च्युत कर देता है, अतः हे मनुष्यो ! तुम पापों से बचो ॥१४॥

निखिल विघ्नविनाशक ॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।

सोमपा उत्तरो भवन् ॥१५॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे परमात्मा (सोमपाः) सारे पदार्थों के रक्षक होने से (उत्तर भवन्) उत्कृष्टतर होता हुआ तू (असुन्वाम्) शुभ कर्मविहीना (संसदम्) मानवसभा को (विषूचीम्) छिन्न-भिन्न कर (व्यनाशयः) नष्ट करता है ॥१५॥

भावार्थ—परमपिता न्यायकारी और महादण्डधर है वह पापी जनों की सभा को भी उखाड़ देता है। यह समझकर पापयुक्त आचरण न करें, यही तात्पर्य है ॥१५॥

अष्टम मण्डल में चौदहवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रयोदशर्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५—७, ११, १३ निचृदुष्णिक् । ४ उष्णिक् । ८, १२ विराडुष्णिक् । ९, १० पादनिचृदुष्णिक् ॥ ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर महिमा की स्तुति ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पुरुहूतम्) अनेकों से आहूत व मन से ध्याया हुआ और (पुरुष्टुतम्) सर्वस्तुत (तम् उ) उसी (इन्द्रम्) इन्द्र को (अभि प्र गायत) सब प्रकार गाओ। हे मनुष्यो ! (तविषम्) उस महान् की (गीर्भिः) अपनी-अपनी भाषाओं से (आविवासत) भली प्रकार सेवा करो ॥१॥

भावार्थः—उस परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी को पूजा और स्तुति के योग्य न समझा जाए ॥१॥

परमात्मा की स्तुति ॥

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी ।

गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥२॥

पदार्थः—(**द्विबर्हसः**) द्युलोक व पृथिवी के धारणकर्त्ता (**यस्य**) जिस इन्द्र का (**बृहत्**) महान् (**सह**) बल (**रोदसी**) परस्पर रोधनशील इन दोनो लोको का (**दाधार**) भली-भांति पालन पोषण व धारण करता है और जो बल (**अज्रान्**) आकाश से तीव्रगामी (**गिरीन्**) मेघो को व (**स्व**) सुखदायक (**अप**) जल को (**वृषत्वना**) अपनी शक्ति से धारता है उस ससार-पोषक महाबली परमात्मा के यश का ही हे मनुष्यो ! गुणगान करो ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा ही धरती, द्युलोक, नक्षत्रो व अन्य सभी वस्तुओ का धारक व पोषक है। उसकी शक्ति का अनुभव कर उसी की पूजा करो ॥२॥

परमात्मा की स्तुति ॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।

इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥३॥

पदार्थः—(**पुरुष्टुत**) हे सर्वपूज्य प्रभु ! (**स**) नितान्त प्रसिद्ध वह तू (**राजसि**) प्रकृति के मध्य सुशोभित है और सभी का शासन कर रहा है और (**एक**) असहाय एकाकी ही (**वृत्राणि**) ससार के सकल विघ्नो को नष्ट करता है। (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**जैत्रा**) जेतव्य (**च**) और (**श्रवस्या**) श्रोतव्य सारे पदार्थों के (**यन्तवे**) अपने वश मे रखने हेतु तू सर्वदा निःशेष विघ्न नष्ट किया करता है। हे प्रभु तुम धन्य हो, धन्य है तुम्हारी शक्ति ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा ही सारे विघ्नो का विनाश करने वाला है अत उसी को निश्चित रूप से पूज्य मानो ॥३॥

इन्द्र की प्रार्थना ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥४॥

पदार्थ—(**अद्रिव**) हे जगत् के शासन हेतु दण्ड धारण करने वाले (**ते**) तेरे (**तम**) उस सुप्रसिद्ध (**मदम्**) आनन्द की (**गृणीमसि**) हम लोग स्तुति करते हैं जो आनन्द (**वृषणम्**) सारे सुखो की वर्षा करता है। पुन (**पृत्सु**) आध्यात्मिक सघर्ष मे (**सासहिम्**) सहनशील है। ईश्वरीय आनन्द से मग्न पुरुष आपत्काल मे भी मोहित नही होते। पुन (**उ**) निश्चयरूप से (**लोककृत्नुम्**) पृथिवी आदि सारे लोको का कर्त्ता वही है, क्योकि ईश्वर आनन्दमग्न होकर ही सृष्टि करता है। लोक मे भी द्रष्टव्य है कि आनन्द-आप्लावित होकर ही नर-नारी सन्तान को जन्म देते हैं। पुन. जो (**हरिश्रियम्**) स्थावर-जगम ससारो को भूषित करता है, ऐसे आनन्द की स्तुति ही हम सब करते हैं। हे परमात्मा ! हम सदा आपके आश्रय मे आनन्दमय हों, यही प्रार्थना है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा सदैव पदार्थों पर आनन्द बरसाते रहते हैं। फिर भी सब आनन्दित नही, यह आश्चर्य है। हे मनुष्यो ! इस जगत् से उस आनन्द को निकाल धारणहेतु प्रयत्नशील बनो ॥४॥

परमदेव की स्तुति ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**येन**) जिस आनन्द से युक्त हो आप (**आयवे**) मातृगर्भ मे बार-बार आने वाले (**मनवे**) मननकर्त्ता जीवात्मा के लिये (**ज्योतींषि**) अत्यधिक प्रकाश (**विवेदिथ**) देते है, हे प्रभु ! (**मन्दान**) वह आनन्दमय आप (**अस्य बर्हिष**) इस प्रवृद्ध ससार के बीच (**वि राजसि**) आसीन है ॥५॥

भावार्थ.—वह परमदेव हम जीवो को सूर्य्यादिको व इन्द्रियो से भौतिक अभौतिक दोनो प्रकार की ज्योति प्रदान करता है, जिससे हम बहुत सुख पाते है। तथापि न तो उसे हम जानते है और न उसे पूजते है। हे मनुष्यो ! वह यही विद्यमान है। उसी को जानो, पूजो, यही तात्पर्य है ॥५॥

जल के लिए प्रार्थना ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (**उक्थिन.**) विभिन्न भाषाओ के विज्ञाता व स्तोत्र-तत्त्ववित् विद्वज्जन (**पूर्वथा**) पूर्व के तुल्य अथवा पूर्वकाल के जैसे ही (**ते**) तेरे (**तत्**) उस सुप्रसिद्ध बल की (**चित् अद्य**) आज भी (**अनुष्टुवन्ति**) क्रमश स्तुति गाते हैं। हे प्रभो ! मा तू (**वृषपत्नी**) मेघस्वामिक (**अप**) जल को (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**जय**) अपने आधीन कर। जल के विना स्थावर जगम दोनो ससार व्याकुल हो जाते हैं। अतएव जल दे ॥६॥

भावार्थ—हे प्रभो ! तू ही सब से पूज्य है। वह तू जब-जब भी जल की आवश्यकता हो, तब-तब जल दे, जिस से सब पदार्थ प्राणवान् होते हैं ॥६॥

इन्द्र के गुणो की स्तुति ॥

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् शुष्ममुत क्रतुम् ।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मा ! (**धिषणा**) हमारी विवेकवती बुद्धि (**तव**) तेरे (**त्यत्**) उस सुप्रसिद्ध (**इन्द्रियम्**) वीर्य्य की (**तव**) तेरे (**बृहत्**) विस्तृत (**शुष्मम्**) बल की (**उत**) और (**क्रतुम्**) सृष्ट्यादि पालनरूप कर्म तथा (**वरेण्यम्**) स्वीकरणीय (**वज्रम्**) दण्ड की (**शिशाति**) प्रशसा करती है ॥७॥

भावार्थ.—हमारे सारे कर्म उसी की विभूतियाँ प्रदर्शित करें, यही इसका तात्पर्य है ॥७॥

इन्द्र की महिमा ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।

त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्य्यशाली ! (**तव**) तेरे (**पौंस्यम्**) पुरुषार्थ को (**द्यौ**) सूर्य्यलोक (**वर्धति**) बढाता है। (**पृथिवी**) यह दृश्यमान हमारी पृथिवी तेरे (**श्रव**) यश की (**वर्धति**) वृद्धि करता है (**आप·**) अन्तरिक्ष लोक मेघादिस्थान (**च**) व (**पर्वतास**) स्वय मेघ भी (**त्वाम्**) तुझे (**हिन्विरे**) आह्लादित करते हैं ॥८॥

भावार्थ—सूर्य्य इत्यादि सब ही पदार्थ उस परमपिता की महिमा का ही प्रदर्शन कर रहे है ॥८॥

इन्द्र महिमा ॥

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥९॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (**बृहन्**) पृथिवी आदि लोको की तुलना मे बहुत विशाल और (**क्षय.**) सभी प्राणियो का निवासहेतु (**विष्णु**) यह सूर्य्य (**त्वाम् गृणाति**) तेरी वन्दना करते हैं। तथा (**मित्र·**) ब्राह्मण या दिवस (**वरुण**) क्षत्रिय अथवा रात्रि तेरी ही स्तुति करते हैं। (**मारुतम्**) वायु का (**शर्ध**) बल (**त्वाम अनु**) तेरी शक्ति से ही (**मदति**) मदयुक्त होता है ॥९॥

भावार्थ तात्पर्य यह है कि हे प्रभो ! यह महान् सूर्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय और दिन तथा रात आपकी ही कीर्ति गा रहे है। इस वायु का वेग या उसका बल भी तुम से ही प्राप्त होता है। हे महान् देव, मैं तुम्हारी ही स्तुति किया करू ॥९॥

इन्द्र स्तुति ॥

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।

सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥१०॥

पदार्थ.—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**जनानाम्**) हम लोगों के बीच (**त्वम्**) तुम ही (**वृषा**) सारी कामनाओ के दाता हो। और तुम ही (**मंहिष्ठ जज्ञिषे**) नितान्त उदारदानी हो। तथा (**सत्रा**) साथ ही (**विश्वा**) सारे (**स्वपत्यानि**) अपत्य ऐश्वर्य को (**दधिषे**) धारण करते हो ॥१०॥

भावार्थ—उस परमात्मा को नितान्त उदार मान कर उसकी उपासना करे ॥१०॥

इन्द्र ही पूज्य है ॥

सत्रा त्वं पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे ।

नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥११॥

पदार्थ—(**पुरुष्टुत**) हे सर्वपूज्य ! हे बहुस्तुत्य ! हे वन्दनीयतम ! (**त्वम् एक**) तू एक ही (**सत्रा**) सर्वोपकरण व सर्वसाधनो से (**वृत्राणि**) सारे विघ्नो को (**तोशसे**) नष्ट करता है। हे मनुष्यो ! (**इन्द्रात्**) उस प्रभु के अतिरिक्त (**अन्यः**) अन्य (**न**) कोई नही (**भूय**) उतना अधिक (**करणम्**) कार्य (**इन्वति**) कर सकता ॥११॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि एक ही सर्वविघ्न विनष्ट करने वाला है। वह जो चाहे कर सकता है यह समझकर उसकी अर्चना करे ॥११॥

इन्द्र महिमा स्तुति ॥

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥१२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**यद्**) यद्यपि (**त्वा**) तुझे (**मन्मश.**) मननीय स्तोत्रो द्वारा (**नाना**) विभिन्न स्थानो मे (**ऊतये**) अपनी रक्षार्थ (**हवन्ते**) पूजते हैं, फिर भी (**अस्माकेभि नृभि.**) हमारे साथ (**अत्र**) हमारे घर पर (**स्व**) सुखपूर्वक (**जय**) जय करें ॥१२॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से ही विजय भी प्राप्त होती है अत उसके लिये भी उसी की उपासना योग्य है ॥१२॥

स्तुति का विधान ॥

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् ।

इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥१३॥

पदार्थः—हे स्तुति पाठ करने वाले विद्वन् ! (**न**) हमारे (**महे**) महान् (**क्षयाय**) गृह मे उस प्रभु के (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) रूप अर्थात् धन जन

अन्नादि अर्थात् सारे पदार्थ (आविशन्) विद्यमान हैं । इसके लिये वह प्रार्थनीय नही किन्तु (जैत्राय) भीतरी और बाहरी शत्रुओ को जीतने हेतु (शचीपतिम्) सर्व कर्मों व शक्तियो के अधिपति (इन्द्रम्) इन्द्र को (हर्षय) प्रसन्न करे ॥१३॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा की कृपा से मेरा घर सारे धनधान्य से सम्पन्न है वैसे ही तुम्हारा घर भी हो, यदि उसी की पूजा करो ॥१३॥

अष्टम मण्डल मे पन्द्रहवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य षोडशसूक्तस्य इरिम्बिठि. काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ९—१२ गायत्री । २—७ निचृद्गायत्री । ८ विराड्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

इन्द्र स्तुति ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वज्जनो ! (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यो के (**सम्राजम्**) महाराजा (**नव्यम्**) स्तुत्य (**नरम्**) जगत् के नेता (**नृषाहम्**) दुष्टो का पराजित करने वाले और (**मंहिष्ठम्**) अतिशय दानी नितान्त उदार (**इन्द्रम्**) परमात्मा की (**गीर्भि**) अपने-अपने वचनो से (**प्रस्तोत**) भली भांति स्तुति कीजिये ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रभु की ही प्रशसा करो जो सभी का महाराजा है, नायक है । जो दुष्टनियन्ता है तथा नितान्त उदार है ॥१॥

इन्द्र महिमा ॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।

अपामवो न समुद्रे ॥२॥

पदार्थ—(**न**) यथा जैसे (**समुद्रे**) सागर मे (**अपाम**) जल का (**अव.**) तरंग समूह शोभायमान है वैसे ही (**यस्मिन्**) जिस परमात्मा मे (**विश्वानि**) सकल (**च**) और (**श्रवस्या**) श्रवणीय (**उक्थानि**) प्राणियो की विभिन्न भाषाएँ (**रण्यन्ति**) शोभित होती है अर्थात जिस परमात्मा मे सारी भाषाए स्थित है उसकी चाहे किसी भाषा मे स्तुति करो वह उस भाषा और भाव को समझ लेगा । सन्देहरहित होकर उसकी ही उपासना करो ॥२॥

भावार्थः—सर्वान्तर्यामी की जो स्तुति-प्रार्थना की जाती है वह समुद्र मे जल की तरगो के तुल्य शोभा पाती है ॥२॥

सकाम प्रार्थना का विधान ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।

महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(**महः**) महानतम (**वाजिनम्**) विज्ञान के (**सनिभ्य.**) लाभो के हेतु (**भरे कृत्नुम्**) सग्राम मे या ससार मे प्रतिक्षण कार्य्यकर्ता और (**ज्येष्ठराजम्**) सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, पृथिवी आदि महत् पदार्थों मे व्याप्त (**तम्**) उस इन्द्र को (**सुष्टुत्या**) शोभन स्तुति से मै उपासना कर (**विवासे**) सेवता हैं ॥३॥

भावार्थ—सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि इन पदार्थों मे से सदा विज्ञान का लाभ करे । इनका अध्ययन करने से ही मनुष्य धन सपन्न होते हैं ॥३॥

पुन इन्द्र स्तुति ॥

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः ।

हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस प्रभु के (**मदा**) विविधतापूर्ण आनन्ददायक जगत् (**अनूना.**) अन्यून (**गभीराः**) अत्यन्त गम्भीर (**उरव**) जालवत् फैले (**तरुत्रा**) सन्तो के तारक और (**शूरसातौ**) जीवन-यात्रा मे (**हर्षुमन्त.**) आनन्दमय हैं । हे मनुष्यो ! उसी की सेवा करो ॥४॥

भावार्थ—मदा = ईश्वररचित विविध ससार ही मद है । यह पूर्ण, गम्भीर, जाल जैसा रक्षक है । शूरसाति - सग्राम; जिस मे शूरवीर ही लाभ उठाते हैं । इस जीवन यात्रा मे भी वे ही कृत-कृत्य होते है जो मानसिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक बलो से सुपुष्ट हैं ॥४॥

पुन इन्द्र स्तुति ॥

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते ।

येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥५॥

पदार्थ—हे मानवो ! (**हितेषु धनेषु**) कल्याणकारी धन पा लेने पर विद्वान् जन (**अधिवाकाय**) अधिक स्तुति करने हेतु (**तम् इत्**) उसी इन्द्र की (**हवन्ते**) स्तुति करते हैं (**येषाम्**) जिनके पक्ष मे (**इन्द्रः**) इन्द्र है (**ते**) वे ही (**जयन्ति**) विजय प्राप्त करते है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! धन के लिए उसी की स्तुति करो । यह असन्दिग्ध है कि जिसके पक्ष मे परमात्मा है वह अवश्य विजय पाता है, क्योकि वह सत्यहेतु ही युद्ध करता है ॥५॥

पुन वही विषय ॥

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः ।

एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥६॥

पदार्थ—हे लोगो ! विवेकी जन (**तम् इत्**) उसी परमात्मा की (**च्यौत्नै.**) बलवान् स्तोत्रो द्वारा (**आर्यन्ति**) स्तुति करते हैं, श्रेष्ठ बताते है व (**चर्षणय**) मनुष्यगण (**कृतेभिः**) अपने अपने कर्मों से (**तम्**) उसी इन्द्र के पास (**आर्यन्ति**) जाते है अर्थात् आश्रय लेते हैं । (**एष इन्द्रः**) यही परमात्मा (**वरिवस्कृत्**) धन का भी स्वामी है ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा के लिये ही उत्तम से उत्तम स्तोत्र रचें और ऐसे अच्छे कर्म करे जिनसे ईश्वर प्राप्ति हो । हे मनुष्यो ! वही सब प्रकार के धन प्रदान करता है, यह जान उसी की वन्दना करो ॥६॥

ईश्वर का महत्त्व ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।

महान्महीभिः शचीभिः ॥७॥

पदार्थः—यह (**इन्द्र**) इन्द्र (**ब्रह्मा**) सब पदार्थों से बडा है (**इन्द्रः**) वही (**ऋषि.**) सर्वद्रष्टा है महाकवि है । (**इन्द्र**) वही परमात्मा (**पुरू**) बहुविधि (**पुरुहूत**) बहुतो से आहूत है । वह (**महीभि**) महान् (**शचीभि**) सृष्टि आदि कर्म द्वारा (**महान्**) महानतम है ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा सबसे महान है, क्योकि इस सारी सृष्टि का जो कर्त्ता है वह अवश्य ही सबसे सब भांति महान् होना चाहिये । सृष्टिरचना उसकी ही महती क्रिया है । हे लोगो ! उसकी यह लीला देखो ॥७॥

इन्द्र की स्तुति ॥

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः ।

एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥८॥

पदार्थ.—(**स**) वह विख्यात प्रभु ही (**स्तोम्य**) विभिन्न स्तोत्रो से वन्दनीय है । (**स हव्य**) वही शुभ कर्मों मे पूजार्थ आह्वान योग्य है । वही (**सत्य.**) सारे विद्यमान पदार्थों मे रहकर कल्याणकारी है । वही सत्यस्वरूप है । पुन (**स त्वा**) अपने नियमो से दुष्ट पुरुषो व प्राणियो का निपात भी वही करता है । पुन (**तुविकूर्मि**) अनन्तकर्मा, सर्वकर्मा है । इस लिए (**एक चित्**) एक ही अन्य किसी की सहायता से रहित ही (**सन्**) होता हुआ (**अभिभूति.**) ससार के सारे विघ्नो को नष्ट करने वाला है ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा के सबध मे जितना कहे वह नितात कम है । हे मनुष्यो ! वही स्तुत्य है, हव्य व सत्य तथा विश्वकर्मा है । वह असहाय सारे कार्य कर रहा है ॥८॥

इन्द्र के गुण ॥

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः ।

इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥९॥

पदार्थ—हे लोगो ! (**चर्षणय**) तत्त्वज्ञ होतृरूप मनुष्य (**अर्कै**) वन्दनीय मन्त्रो से (**तम्**) उसी इन्द्र को (**वर्धन्ति**) बढाते है अर्थात् उसका गुणगान करते है । (**सामभि**) उद्गातृरूप लोग सामगान से (**तम्**) उसे बढाते है (**तम**) उसी को (**गायत्रै**) गायत्री आदि छन्दो से बढाते है (**क्षितय**) विज्ञानाधार पर निवासकर्ता भली भांति से (**इन्द्रम्**) इन्द्र की प्रार्थना करते है ॥९॥

भावार्थ—हे विवेकी जन ! जहा कही भी देखो क्या यज्ञो मे या अन्यत्र, सभी जगह बुद्धिमान् जन उसी का यश गाते है । आप भी उसी की यशोगाथा गाओ ॥९॥

पुन. उसी अर्थ का कथन ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।

सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१०॥

पदार्थ—(**अच्छ**) भली भांति वह इन्द्र उपासको की ओर (**वस्यः**) प्रशस्त धन (**प्रणेतारम**) ले जाने वाला है । पुन (**समत्सु**) ससार मे जैसे कि सग्रामो मे (**ज्योति कर्त्तारम्**) प्रकाश का दाता है तथा (**युधा**) सग्राम द्वारा (**अमित्रान्**) ससार के शत्रुभूत लोगो को (**सासह्वांसम्**) मूलोच्छेद करने वाला है ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम उसके शरण मे अन्त करण से जाओगे तो निश्चय ही वह तुम्हे धन की ओर ले जायगा, महान्तम सग्राम मे भी तुम्हे ज्योति देगा और अन्ततः तुम्हारे सारे शत्रुओ का मूलोच्छेदन करेगा ॥१०॥

पुन. उसी अर्थ का कथन ॥

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।

इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥११॥

पदार्थ—(**पप्रि**) मनोरथो का पूरा करने वाला परमरक्षक (**पुरुहूत**) अनेक लोगों द्वारा निमन्त्रित (**स इन्द्र**) वह ऐश्वर्यशाली प्रभु (**विश्वा**) समस्त (**द्विष**) द्वेष करने वाली प्रजा से (**न**) हम उपासको को (**नावा**) नौका साधन

द्वारा (**स्वस्ति**) कल्याण सहित (**अति पारयाति**) पार उतारे अर्थात दुष्टजनो से हमे सदा दूर रखे ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! दुष्टजनो से रक्षार्थ सदा ही परमात्मा से प्रार्थना करना अभीष्ट है । स्वय कभी दुराचार मे नहीं फसना चाहिए ॥११॥

ईश्वर प्रार्थना ॥

स त्वं न॑ इन्द्र॒ वाजे॑भिर्दश॒स्या च॑ गातु॒या च॑ ।

अच्छा॑ च नः सु॒म्नं ने॑षि ॥१२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमात्मन् ! (**स त्वम्**) वह तू (**नः**) हम उपासको का (**वाजेभि**) विज्ञान (**दशस्य**) दे । (**च**) और अन्यान्य अभीष्ट वस्तुए भी दे । (**च**) और (**गातुया**) शोभन मार्ग दिखा (**च**) तथा (**नः**) हमे (**सुम्नम्**) सुख (**अच्छ नेषि**) अच्छी तरह दे ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! भगवान् ही से धन जन, ज्ञान व बल देने के लिए प्रार्थना करो वही तुम्हे सत्य मार्ग दिखलाएगा ॥१२॥

अष्टम मण्डल मे सोलहवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तदशसूक्तस्य इरिम्बिठि काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१-३, ७ ८ गायत्री । ४-६, ६-१२ निचृद्गायत्री । १३ विराड्गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग्बृहती ॥ स्वर १-१३ षड्ज । १४ १५ मध्यम ॥

परमदेवता की प्रार्थना ॥

आ या॑हि सुषु॒मा हि त॒ इन्द्र॒ सोमं॒ पिबा॑ इ॒मम् ।

एदं ब॒र्हिः स॑दो॒ मम॑ ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमदेव ! परमैश्वर्य देव (**आ याहि**) मेरे निकट आ (**हि**) क्योंकि हम उपासक (**ते**) तेरे लिये (**सुसुम**) यज्ञ करते है । इस हेतु (**इमम् सोमम्**) यज्ञ मे स्थापित पदार्थो को (**पिब**) कृपादृष्टि से देख । हे भगवन ! (**मम**) मेरे (**इदम्**) इस (**बर्हि**) बहद् हृदयरूप आसन पर (**आ सद**) आसीन हो ॥१॥

भावार्थ मनुष्य जो भी शुभकर्म करते (पकाते, खाते होम करते और देते) है, उन सबको पहले परमात्मा के समीप समर्पित करे । यह शिक्षा ही इस ऋचा मे है ॥१॥

पुन वही अर्थ ॥

आ त्वा॑ ब्रह्म॒युजा॒ हरी॒ वह॑तामिन्द्र के॒शिना॑ ।

उप॒ ब्रह्मा॑णि नः शृणु ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) सर्वद्रष्टा परमेश्वर (**ब्रह्मयुजा**) महायोजनायुक्त, महारचनासयुक्त पुन (**केशिना**) सूर्यादिरूप वेशवान् सुख के दाता (**हरी**) परस्पर हरणशील स्थावर व जगमात्मक जो ससारद्वय है वे (**त्वाम्**) तुझ (**आ वहताम्**) ले आए । हे इन्द्र ! (**न**) हमारे (**ब्रह्माणि**) स्तोत्र व स्तुति-प्रार्थनाओ को (**उप**) पास आकर (**शृणु**) सुन ॥२॥

भावार्थ—यह सर्वथा असन्दिग्ध है कि यदि हम प्रेम, श्रद्धाभक्ति और भावना सम्पन्न हो प्रभु की प्रार्थना करे तो वह अवश्य हमारी सुनेगा । यदि उसकी विभूतिया देखनी हो तो नयन खोलकर इस नितान्त अद्भुत ससार को देखे । इसी मे उसकी लीला प्रकट हो रही है ॥२॥

पुन इन्द्र की प्रार्थना ॥

ब्र॒ह्माण॑स्त्वा व॒यं यु॒जा सो॑म॒पामि॑न्द्र सो॒मिनः॑ ।

सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**ब्रह्माण**) शुद्ध, पावन, अहिंसक स्तुतिपरायण स्तुतिकर्त्ता (**सोमिन**) सर्व सामग्रीयुक्त सोमरससम्पन्न और (**सुतावन्त**) सदैव शुभकर्मकारी (**वयम्**) हम उपासक (**युजा**) योगद्वारा (**त्वाम्**) तुझे (**हवामहे**) पुकारते हैं । हे प्रभु ! जिससे हम शुद्ध पवित्र शुभकर्मकारी हैं अत हमारे मन मे आप बसें जिससे दुर्व्यसनादि दोष हमे न जकडें ॥३॥

भावार्थ—पहले मनुष्य वेदविहित यज्ञो और सत्य इत्यादि के अभ्यास से स्व-अन्त करण को शुद्ध बनाए, ऐसे मन से जो कुछ प्रार्थना वह करेगा वह स्वीकृत होगी । अत 'ब्रह्माण.' इत्यादि पद आये हैं ॥३॥

पुन वही विषय ॥

आ नो॑ याहि सुताव॒तोऽस्माकं॑ सुष्टु॒तीरुप॑ ।

पिबा॒ सु शि॑प्रि॒न्नन्ध॑सः ॥४॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (**सुतावत**) सदा शुभकर्म करने वाले (**न**) हमारे निकट (**आयाहि**) तू आ । क्योंकि तेरी आज्ञा के आश्रय द्वारा हम उपासक सदैव शुभकर्म ही करते है अत हमारी रक्षार्थ और पितृवत् देखने हेतु आ । तब (**अस्माकम्**) हमारी (**सुष्टुती**) अच्छी स्तुतियों को (**उप**) समीप आकर सुन और (**सुशिप्रिन्**) हे भद्रजनरक्षक दुष्टसहारक प्रभु ! (**अन्धस**) हमारे विभिन्न प्रकार के अन्न (**पिब**) कृपादृष्टि से देख ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर आज्ञा मे रहकर शुभकर्मों में लगे रहते हैं उन पर वह सदा प्रसन्न रहते हैं और सर्वभाव मे उनकी रक्षा भी करते है ॥४॥

इससे प्रार्थना को दिखलाते हैं ॥

आ ते॑ सिञ्चामि कु॒क्ष्योरनु॒ गात्रा॒ वि धा॑वतु ।

गृ॒भा॒य जि॒ह्वया॒ मधु॑ ॥५॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (**ते**) तेरे द्वारा उत्पन्न व पालित (**कुक्ष्यो**) स्थावर जगमरूप उदरो मे (**आ सिञ्चामि**) मैं उपासक प्रेमरूपी जल भली-भांति सिक्त करता हूँ । हे परमात्मा ! वह प्रेमजल (**गात्रा**) सकल अवयवो मे (**अनु धावतु**) क्रमश प्रविष्ट हो । तेरी कृपा से सब पदार्थ प्रेममय हों । हे ईश ! तू भी (**मधु**) प्रेमरूप मधु अर्थात् माधुर्योपेत प्रेम को (**जिह्वया**) रसनेन्द्रिय से (**गृभाय**) ग्रहण कर अर्थात् उस प्रेम का सर्वत्र विस्तार हो जिसमे हिंसा, राग, द्वेष आदि दुर्गुण नहीं । क्या मेरी यह प्रार्थना तुम पूर्ण करोगे ? ॥५॥

भावार्थ—हे प्रेमयुक्त प्रभु ! हमारे सारे कार्य प्रेम से परिपूर्ण हों क्योंकि तुम सर्वत्र व्याप्त हो । जिससे हम घृणा या राग द्वेष करेंगे वह तेरा ही शरीर है । तात्पर्य यह है कि सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर का शरीर है । क्योंकि वह सर्वत्र व्याप्त है । फिर हम किससे राग द्वेष करें, यह बार-बार सोचना चाहिए ॥५॥

इन्द्र की प्रार्थना ॥

स्वा॒दुष्टे॑ अस्तु सं॒सुदे॒ मधु॑मान्त॒न्वे॒३॒ तव॑ ।

सोमः॒ शम॑स्तु ते हृ॒दे ॥६॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (**ससुदे**) जगत् को भली-भांति दान देने वाले (**ते**) तेरे लिये मेरा (**सोम**) सोम पदार्थ (**स्वादु अस्तु**) स्वादिष्ट हो । (**तव तन्वे**) तेरे जगत्रूप शरीर के लिये वह (**मधुमान्**) मधुर सोम हितकारी हो (**ते हृदे**) तेरे ससाररूपी हृदय के लिये (**शम् अस्तु**) सुखकर हो ॥६॥

भावार्थ—मनुष्यो ! जगत् मे प्रेम का ही प्रसार करो । प्रेम अभाव मे ही यह राग, द्वेष, हिंसा, द्रोह आदि से पूर्ण हो रहा है । मनुष्य को विवेक इसी कारण मिला है कि वह इन कुकर्मो से बचे व दूसरो को बचाए ॥६॥

पुन वही विषय ॥

अ॒यमु॑ त्वा विचर्षणे॒ जनी॑रिवा॒भि संवृ॑तः ।

प्र सोम॑ इन्द्र सर्पतु ॥७॥

पदार्थ—(**विचर्षणे**) हे सब कुछ देखने वाले (**इन्द्र**) ईश्वर (**अयम् सोम**) यह मेरा यज्ञ सस्कृत सोम पदार्थ (**त्वा प्र सर्पतु**) तुझे प्राप्त हो वह कैसा है ? (**अभि संवृत**) नाना गुणो से भूषित । (**जनी इव**) जैसे कुलवधू शुद्ध पावन परिधानो से लदी रहती है ॥७॥

भावार्थ—ईश्वर को ही सारे पदार्थ अर्पित करो । यही तात्पर्य है कि जगत् के कल्याण हेतु प्रतिदिन यथाशक्ति दान करे । पुरुषार्थ व सत्य से प्राप्त धन अवश्यमेव देश और जनहित मे लगाए ॥७॥

पुन वही विषय ॥

तु॒वि॒ग्री॒वो व॒पोद॑रः सुबा॒हुरन्ध॑सो॒ मदे॑ ।

इन्द्रो॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ॥८॥

पदार्थ—(**अन्धस मदे**) अन्न के आनन्द मे (**इन्द्र**) इन्द्र (**वृत्राणि**) सारे विघ्नो को (**जिघ्नते**) नष्ट करता है । जिस इन्द्र के (**तुविग्रीव.**) ग्रीवास्थानीय सूर्य्यादि नितान्त व्यापक हैं पुन (**वपोदर**) जिसके उदरस्थानीय आकाश बहुत स्थूल तथा सूक्ष्म है और जिसके (**सुबाहु**) बाहुस्थानीय पृथिव्यादि-लोक सुशोभित हैं । हे प्रभु ! तू महान् है । तू हमारे विघ्नो का नाश किया कर ॥८॥

भावार्थ—जो लोग सदा ईश्वर के आश्रित हो शुभकर्म मे रत रहते है उनके विघ्न स्वय उसकी कृपा से नष्ट होते है ॥८॥

विघ्नविनाश के लिए प्रार्थना ॥

इन्द्र॒ प्रेहि॑ पु॒रस्त्वं विश्व॒स्येशा॑न॒ ओज॑सा ।

वृ॒त्राणि॑ वृत्रहञ्जहि ॥९॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! तू (**ओजसा**) अपनी महान् शक्ति से (**विश्वस्य**) सारे जगत् का (**ईशान**) स्वामी है । वह तू (**पुर**) हम प्राणियो के समक्ष (**प्रेहि**) आ । (**वृत्रहन्**) हे सकल विघ्नविनाशक देव (**वृत्राणि**) हमारे सारे विघ्नों को (**जहि**) नष्ट कर ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस सारे ससार का स्वामी वही प्रभु है । वही तुम्हारे सकल विघ्नो का नाश करने मे समर्थ है । सब उसी की उपासना करें ॥९॥

पुनः प्रार्थना का विधान ॥

दी॒र्घस्ते॑ अस्त्वङ्कु॒शो येना॒ वसु॑ प्र॒यच्छ॑सि ।

यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥१०॥

पदार्थः—हे परमात्मा ! (**ते**) तेरा (**अङ्कुशः**) अङ्कुश नामक आयुध (**दीर्घः अस्तु**) लम्बा हो । (**येन**) जिस अङ्कुश से (**सुन्वते**) शुभकर्मों को

करते हुए (यजमानाय) यजमान को (वसु) धन (प्रयच्छसि) प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा कोई अस्त्र-शस्त्र नही रखता फिर भी आरोप कर सर्व वर्णन किया जाता है । जो शुभकर्म रत रहते हैं वे कदापि अन्नादिको के अभाव से पीड़ित नही होते । यह परमात्मा की दया ही है ॥१०॥

पुन प्रार्थना का ही विधान ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिब ॥११॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमदेव ! (ते) तेरा (अयम् सोम) यह रसमय ससार (बर्हिषि अधि) आकाश मे स्थापित (निपूतः) नितान्त शुद्ध है । (ईम्) हे प्रभु ! इस समय (अस्य एहि) इस ससार के पास आ । (द्रव) इस पर द्रवीभूत हो तथा (पिब) उसे कृपापूर्वक देख ॥११॥

भावार्थ.—ससार ही प्रभु की प्रिय वस्तु है । जैसे हम लोग सोमरस से नितान्त प्रसन्न होते हैं परमात्मा भी इससे प्रफुल्लित होता है यदि यह छल-कपट से रहित व पवित्र हो । इसमे यह शिक्षा दी गई है कि हर व्यक्ति शुद्ध पवित्र हो ॥११॥

पुन वही विषय ॥

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।

आखण्डल प्र हूयसे ॥१२॥

पदार्थ —(शाचिगो) हे सुदृढ पृथिवी आदि लोकोत्पादक ! (शाचिपूजन) हे प्रख्यातार्च्यचन ! (ते) तेरा (अयम सुत) रचित यह ससार (रणाय) सभी जीवो को आनन्द पहुँचाने के लिए विद्यमान है । अतएव (आखण्डल) हे दुष्ट सहारक ! (प्र हूयसे) तू सर्वत्र उत्तमोत्तम स्तोत्रो से पूजित है ॥१२॥

भावार्थ —ईश्वर ने जिस लिए यह जगत् रचा है और वह इससे सब प्राणियो को सुख पहुचाता है, इस तत्व को समझकर ऋषि मुनि उसकी सदा वन्दना करते है ॥१२॥

पुन वही विषय ॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (य. ते) जो तेरे द्वारा रचित (शृङ्गवृष·) यह महान् सूर्य्य है (अस्मिन्) इसमे तत्वविद् जन (मनः नि आ दध्रे) मन रमाते है । अर्थात् इसको आश्चर्य्य से देखते है क्योकि यह (नपात) निराधार आकाश मे स्थापित रहने पर भी नही गिरता पुन (प्रणपात्) अपने परिस्थित ग्रहो को भी नही गिरने देता, किन्तु यह (कुण्डपाय्य·) उन पृथिव्यादि लोको को भली भाति पालन कर रहा है । यह सूर्य्य ऐसा अद्भुत है ॥१३॥

भावार्थः—यद्यपि ससार मे प्रत्येक पदार्थ ही विचित्र है फिर भी यह सूर्य्य तो अत्यद्भुत है इसे देख-देख कर ऋषिगण चकित होते है । हे प्रभु ! यह तेरी अद्भुत कीर्ति का प्रतीक है ॥१३॥

इन्द्र महिमा ॥

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।

द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥१४॥

पदार्थ —(वास्तो पते) हे निवासस्थानीय सकल जगत् के स्वामी ! आपकी कृपा से (स्थूणा) इस जगद्रूपी गृह का स्तम्भ (ध्रुवा) स्थिर हो । (सोम्यानाम्) परमदर्शनीय सारे प्राणियो का (असत्रम्) बल बढ़े । (इन्द्र) स्वयं इन्द्र (द्रप्स·) इसके ऊपर दयावान् हो । दुष्टो की (शश्वतीनाम्) नितान्त पुरानी (पुराम्) पुरियो का भी (भेत्ता) विनाशक हो और (मुनीनाम्) मुनियो का (सखा) सखा हो ॥१४॥

भावार्थः—ईश्वर से सभी के कल्याण हेतु प्रार्थना करे । सभी अपना बल बढ़ाए । अपने-अपने स्थानो को सुदृढ रखे और ऐसा शुभ आचरण करें कि वह सदा उस पर प्रसन्न रहे ॥१४॥

उसकी स्तुति ॥

पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।

भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥१५॥

पदार्थः—जो (पृदाकुसानु) मनोरथो को पूरा करनेवाला व परमदाता है । जो (यजतः) परम यजनीय है । जो (गवेषण) गौ आदि पशुओ को देता है और जो (एकः सन्) अकेला ही (भूयस) अनेक विघ्नो का (अभि) पराभव करता है । मनुष्यगण (इन्द्रम्) उस इन्द्र को (सोमस्य पीतये) अपनी-अपनी आत्मा की रक्षार्थ (तुजा) तीव्रगामी (गृभा) ग्रहणयोग्य स्तोत्र से (पुर)अपने-अपने आगे (नयत्) लाएं । जो इन्द्र (भूर्णिम्) सबका भरण-पोषण करनेवाला और (अश्वम्) सर्वत्र व्याप्त है ॥१५॥

भावार्थ·—बुद्धिमान् व्यक्तियो को केवल उसी की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि वही इस संसार का स्वामी है । वही सब मे व्याप्त व चेतन है ॥१५॥

अष्टम मण्डल में सत्रहवां सूक्त समाप्त ॥

द्वाविंशत्यृचस्याष्टादशसूक्तस्य इरिम्बिठि काण्व ऋषि ॥ देवता —१—७, १०– २२ आदित्या । ८ अश्विनौ । ९ अग्निसूर्यानिलाः ॥ छन्द —१, १३, १५, १६ पादनिचृदुष्णिक् । २ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३, ८, १०, ११, १८, २२ उष्णिक् । ४, ९, २१ विराडुष्णिक् । ५—७, १२, १४, १९, २० निचृदुष्णिक् ॥ ऋषभः स्वर ॥

किससे भिक्षा मांगे ॥

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।

आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥१॥

पदार्थ —(आदित्यानाम् एषाम्) इन आचार्य्यों की (सवीमनि) प्रेरणा पर (मर्त्य·) ब्रह्मचारी व अन्यान्य जन भी (नूनम्) निश्चय ही (इदम् ह) इस (अपूर्व्यम्) नूतनतम (सुम्नम्) विज्ञानरूप महाधन को (भिक्षेत) मागे ॥१॥

भावार्थ —जब-जब आचार्य अथवा विद्वान् आज्ञा दे तब-तब उनसे विज्ञान की याचना करें । ससार मे सूर्य्य से भी नाना सुखो की प्राप्ति मनुष्य करें ॥१॥

आचार्य्य कैसे होते हैं ॥

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।

अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥२॥

पदार्थ — हे मनुष्यो ! (हि) जिस लिए (एषाम् आदित्यानाम्) इन आचार्यों के (पन्था) मार्ग (अनर्वाण) दोषरहित हैं । इसलिए (अदब्धा) सदा उन मार्गों की लोग रक्षा करते ही रहते है । पुन वे (पायव.) नाना प्रकार से रक्षक होते है और (सुगेवृध) सुख के बारे मे सदा वृद्धिकारक होते हैं ॥२॥

भावार्थ – विद्वानो तथा आचार्य्यो से भली भाति धर्मादि मार्ग अत्यधिक आनन्ददायक होते है । अत. मनुष्यमात्र का परम धर्म है कि उनकी रक्षा करें ॥२॥

सब ही उपकार करें ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥३॥

पदार्थ·—(सविता) ससार रचयिता (भगः) भजनीय (वरुण) वरुण (मित्र) सर्वस्नेही (अर्य्यमा) श्रेष्ठो से मान्य प्रभु (न) हमे (सप्रथ.) सर्वत्र व्याप्त (तत्) वह (शर्म) कल्याण व घर (सु यच्छन्तु) भली भाति दें वह (यत्) जिसे हम (ईमहे) चाहते हैं ॥३॥

भावार्थ - यदि हम धर्म रचना से प्रभावित होकर प्रभु से प्रार्थना करें तो अवश्य ही स्वीकार हो ॥३॥

बुद्धि को सम्बोधित कर उपदेश ॥

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि ।

स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥४॥

पदार्थ — (देवि) हे दिव्यगुणसम्पन्न ! (अरिष्टभर्मन्) सज्जन पोषक (पुरुप्रिये) बहुप्रिये (अदिते) बुद्धे ! आप (सूरिभिः) नवीनतम आविष्कारकर्ता विद्वानो (सुशर्मभि) और मङ्गलमय (देवेभि) दिव्यगुण-समन्वित पुरुषों सहित (स्मत्) ससार की शोभा के लिये (आगहि) आए ॥४॥

भावार्थ —ऐसे प्रकरणो मे सुबुद्धि का नाम ही अदिति है । विद्वान् जनो और मगलकारी लोगो की यदि सुबुद्धि हो तो ससार का बड़ा उपकार सभव है, क्योकि वे तत्त्ववित् जन हैं । अत बुद्धि हेतु प्रार्थना की जाती है ॥४॥

विद्वानों की प्रशसा का विधान ॥

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।

अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥५॥

पदार्थः—(अदिते) विमलबुद्धि के (ते हि) वे सुविख्यात (पुत्रासः) पुत्र (द्वेषांसि) दुष्ट राक्षसादिको को यद्वा द्वेषो व शत्रुता को समाज से (योतवे) पृथक् करना (विदु) जानते हैं । तथा (उरुचक्रय) महान् काम करने वाले (अनेहसा) रक्षक वे आचार्य्य (अहो चित्) महापाप से भी हमे दूर करना जानते है । अतएव उनकी आज्ञा मे सभी रहा करे यही उपदेश है ॥५॥

भावार्थ --आचार्य या विद्वान् जन सदा जनता को भांति-भांति के कष्टो से बचाते है । अपने सुभाषण द्वारा लोगों को सन्मार्ग मे लाकर पापो से बचाते हैं । अत देश मे ऐसे आचार्य्य व विद्वान् जैसे बढ़ें, वैसे उपाय सभी को करने चाहिए ॥५॥

बुद्धि की प्रशसा ॥

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः ।

अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥६॥

पदार्थ —(अद्वया) सहायतारहिता वह (अदिति) विमलबुद्धि (न) हमारे (पशुम्) पशुओ और आत्मा की (दिवा) दिन मे (पातु) रक्षा करे (नक्तम्) रात्रि मे भी (अदिति·) वह अदिति पा ले (सदावृधा) सदा बढ़ाने वाली (अदिति·) विमलबुद्धि (अंहसः) पाप से हमे (पातु) बचाए ॥६॥

भावार्थ —सद्बुद्धि ही मनुष्य की सदा रक्षा करती है, अतः हे लोगो ! उसको सभी उपायों द्वारा प्राप्त करें ॥६॥

पुनः उसकी प्रशंसा ॥

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् ।
सा शन्ताति मयस्करदप स्रिधः ॥७॥

पदार्थ —(उत) और (मति) बुद्धिरूपा (सा) वह (अदिति) अदिति (दिवा) दिन में (ऊत्या) रक्षा के साथ (नः) हमारे पास (आ गमत्) आए (सा) वह अदिति (शन्ताति) शान्ति करे (मयः) सुख (करत्) करे तथा (स्रिधः) बाधा डालने वाले दुष्टों व विघ्नों को (अप) दूर भगाए ॥७॥

भावार्थः—बुद्धि सदा अज्ञान का विनाश करने में लगाने से ही संसार में सुख का संचार संभव है ॥७॥

राजा आदि प्रजा की सदा रक्षा करें ॥

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।
युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥८॥

पदार्थः—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) दिव्यगुणयुक्त और देवोपकारी (भिषजा) वैद्य (अश्विना) अश्वयुक्त राजा शिक्षक आदि (नः) हमारे (शम्) रोगों को दूर करें । और (इतः) हम लोगों से (रपः) पाप, दुष्टाचार आदि को (युयुयाताम्) दूर करें । तथा (स्रिधः) बाधक विघ्नों व शत्रुओं को (अप) दूर करें ॥८॥

भावार्थ —वैद्य, राजा, मन्त्री व विद्वान आदि को उचित है कि वे मानव समाज से रोग, अज्ञान, पाप और शत्रुता आदि को दूर करने में रत रहें । तभी संसार सुख पूर्वक रह सकता है ॥८॥

इससे आशीर्वाद की याचना ॥

शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः ।
शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥९॥

पदार्थ—(अग्नि) यह अग्नि (अग्निभिः) अग्निहोत्रादि कर्मों द्वारा या विद्युत् आदि की सहायता से (शम्) हमारे रोगों को दूर करे, या हमें सुखी करे (सूर्य्यः) तथा सूर्य्य भी (शम्) कल्याण या रोगशमन जैसे हो वैसी (तपतु) उष्णता देवे तथा (वातः) वायु भी (अरपाः) पापरहित (वातु) बहे । और (स्रिधः) बाधक रोगादिक विघ्न व शत्रु (अप) नष्ट हों ॥९॥

भावार्थ – इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि उपायों द्वारा प्रजा-सम्बन्धी विघ्नों को दूर करने में रत रहें ॥९॥

पुनः प्रार्थना का विधान ॥

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१०॥

पदार्थ —(आदित्यासः) हे बुद्धिपुत्रो ! विद्वानो ! आप (अमीवाम्) रोग को (अप सेधत) मनुष्यसमाज से दूर करो । (स्रिधम्) बाधक विघ्न व शत्रु को (अप) दूर करो । (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि को (अप) दूर करो । (नः) हम साधारण जनों को (अंहसः) पाप क्लेश और दुर्व्यसन आदि से (युयोतन) मुक्त करो ॥१०॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! तुम लोग सद्बुद्धि उपार्जित करो, जिससे हमें सब प्रकार से सुख प्राप्त हो ॥१०॥

पुनः वही विषय ॥

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् ।
ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥११॥

पदार्थ —(आदित्यास) हे आचार्य्यो ! आप (अस्मद् आ) हमारे समीप से (शरुम्) हिंसक को (युयोत) पृथक् करो (उत) और (अमतिम्) मूर्खता या दुर्बुद्धि या दुर्भिक्ष आदि को भी दूर करो (विश्ववेदस) हे सर्वज्ञ आदित्यो ! (द्वेष) द्वेष करने वालों को भी (ऋधग् कृणुत) पृथक् करो ॥११॥

भावार्थ —आचार्य्य एवं ज्ञानी जनों के लिए उचित है कि वे जहां भी रहें वहां अज्ञान को नष्ट कर सुख की वृद्धि में रत रहें ॥११॥

पुनः वही विषय ॥

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति ।
एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥१२॥

पदार्थ —(सुदानव) हे सुन्दर दान दाताओ ! (आदित्या) आचार्यो ! (नः) हमें (तत् शर्म) उस कल्याण को (सु) भली प्रकार (यच्छत) दो (यत्) जो कल्याण (एनस्वन्तम् चित्) पापयुक्त भी हम लोगों के पुत्रादि को (एनसः) पाप से (मुमोचति) मुक्त करा सके । वह ज्ञानरूप कल्याण है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा से ज्ञानरूप कल्याण की ही याचना करना अभीष्ट है वही मानव को पाप से बचाने में समर्थ है ॥१२॥

पुनः वही विषय ॥

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥१३॥

पदार्थ – (यः) जो (कः चित्) कोई भी (मर्त्यः) मनुष्य (रक्षस्त्वेन) राक्षसी वृत्ति धारणकर (नः) हमारी (रिरिक्षति) हिंसा करना चाहे । (सः जनः) वह जन (स्वैः एवैः) अपने कर्मों से ही (युः) दुःख पाता हुआ (रिरिषीष्ट) नष्ट हो जाय ॥१३॥

भावार्थः—अपने प्रति अपराध करने वाले से प्रतिशोध लेने का प्रयास न कर ईश्वर की इच्छा पर उसे छोड़ दें । वह शत्रु अवश्य ही अपने कर्मों से सन्तप्त होता रहेगा अथवा दुष्टता छोड़ देगा ॥१३॥

दुष्ट दण्डनीय है ॥

समित्तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥१४॥

पदार्थ —(अघम् इत्) पाप ही (तम् मर्त्यम्) उस व्यक्ति को (सम् अश्नवत्) अच्छी प्रकार व्यापे अर्थात् नष्ट कर दे जो मनुष्य (दुःशसम्) दुष्कीर्ति है जिसने विविध कुकर्म कर संसार में अपयश पाया है और जो (रिपुम्) मानवमात्र का दुश्मन है । ऐसे व्यक्ति को पाप ही खा जावे । पुनः (यः) जो (अस्मत्रा) निरपराधी हमारे विषय में (दुर्हणावान्) दुष्ट अपकारी है उसको भी पाप मारे । (द्वयुः) दो प्रकारों से जो युक्त है अर्थात् जो परोक्ष में कार्य्यहन्ता और प्रत्यक्ष में प्रियवादी है, उन सब को पाप खाए ॥१४॥

भावार्थ —अपनी ओर से किसी का अनिष्ट न हो यही सदैव चेष्टा करनी चाहिये । जो निरपराधों को सताते हैं, उन्हें सांसारिक नियम ही दण्ड देते हैं व नष्ट कर देते हैं ॥१४॥

विद्वानों का स्वभाव ॥

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् ।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥१५॥

पदार्थ.—(देवाः) हे विद्यादि दिव्यगुण युक्त (वसव) सर्वत्र निवास करने वाले ! सबको निवास देने वाले विद्वत् जनो ! जिस कारण आप (पाकत्रा स्थन) परिपक्व बुद्धि हैं अतः (हृत्सु) अपने हृदय में (द्वयुम्) जो द्विप्रकार युक्त (कपटी) है और जो (अद्वयुम्) कपटरहित निश्छल सत्यस्वभाव (मर्त्यम्) जन है, उन दोनों प्रकार के मनुष्यों को आप (जानीथ) जानें ॥१५॥

भावार्थ —मनुष्यों की चेष्टा से ही उनकी हृदयस्थ भावना जान लेने वाले ही विद्वान् हैं । कपटी और निष्कपट जनों की मुखच्छवि भिन्न-भिन्न होती है । अतः तत्त्ववित् पुरुष उनको अतिशीघ्र पहचान लेते हैं ॥१५॥

कल्याण के लिये प्रार्थना ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे ।
द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥१६॥

पदार्थ —हे आचार्य्यादि विद्वानो ! हम प्रजागण (पर्वतानाम्) पर्वतों का (शर्म) सुख (आ वृणीमहे) याचते हैं (उत) और (अपाम्) नदियों का सुख (आ वृणीमहे) मांगते हैं; अर्थात् आप ऐसा उद्योग करें कि जैसे पर्वत और नदी परम उपकारी हैं, हम भी वैसे ही होवें । (द्यावाक्षामा) द्युलोक के सदृश दीप्तिमती, पृथिवी के समान क्षमाशीला बुद्धिमत्ता और माता ये दोनों यहां द्यावक्षामा कहलाती हैं । हे बुद्धि तथा माता ! आप दोनों (रपः) पाप को (अस्मद् आरे) हम से बहुत दूर देश में (कृतम्) ले जाएं ॥१६॥

भावार्थ —जो जन पृथिवी व द्युलोक के तत्त्वों को सदा विचारें वे पापों में प्रवृत्त नहीं होते, क्योंकि क्षुद्र जन ही पाप में प्रवृत्त होते हैं, महान् नहीं । तत्त्ववित् जनों का हृदय सुविशाल हो जाता है ॥१६॥

पुनः वही विषय ॥

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः ।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥१७॥

पदार्थ —(वसव) हे धनस्वरूप ! हे वासयिता आचार्यो ! (ते) वे सुप्रसिद्ध आप (भद्रेण) कल्याण व (शर्मणा) सुख सहित (नः) हमें (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरिता) पापों से (युष्माकम्) अपनी (नावा) नौका द्वारा (अति पिपर्तन) पार उतार दें ॥१७॥

भावार्थ – विद्वानों के साथ रहने से कुकर्म में प्रवृत्ति नहीं होती । अतः उनका आदर और सेवा करना श्रेयस्कर है ॥१७॥

संगति का फलादि ॥

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥१८॥

पदार्थ —(सुमहस) हे सुतेजा (आदित्यासः) विद्वज्जनो ! आप (तुचे) पुत्र की और (तनाय) मेरे पौत्र की (द्राघीय.) अतिदीर्घ (तत) उस (आयुः) आयु को (जीवसे) जीवन के लिये (सुकृणोतन) भली प्रकार करें ॥१८॥

भावार्थ—आचार्यों आदि की शिक्षा पर चलने वाले व्यक्ति की आयु मे वृद्धि होती है । अत बालकों को सदा उनके निकट भेजना श्रेयस्कर है ॥१८॥

यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।

युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥१९॥

पदार्थ—हे (आदित्याः) बुद्धिपुत्रो ! हम ने (यज्ञ) जो शुभकर्म (हीळः) किया है वह (वः) आपके (अन्तर) समीप मे (अस्ति) वर्तमान हो अर्थात् हमारे कर्मों को आप जानें, अत (मृळत) हमे सुखी करें । (युष्मे इत्) आपके ही आधीन हम (स्मसि) हैं (अपि) और हम सब (वः) आपके (सजात्ये) सजातित्व मे विद्यमान हैं ॥१९॥

भावार्थ—शिष्यों के लिए उचित है कि अपने शुभ अशुभ कर्मों से आचार्यों को अवगत कराएं । उनकी ही आज्ञा और प्रेम की छाया मे रहें ॥१९॥

पुन प्रार्थना ॥

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना ।

मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥२० ॥

पदार्थ—हम (स्वस्तये) कल्याण के लिए और सुखपूर्वक निवास हेतु (मरुताम्) प्राणो व बाह्य वायुओ के (त्रातारम् देवम्) रक्षक देव से (अश्विना) राजा तथा अमात्यादिको से (मित्रम्) ब्राह्मण प्रतिनिधि से व (वरुणम्) राज-प्रतिनिधि से (बृहत्) बहुत बडे (वरूथम्) ज्ञानभवन की (ईमहे) याचना करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि परमात्मा से ज्ञान की ही प्रार्थना करनी उचित है ॥२०॥

गृह के लिये प्रार्थना ॥

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम् ।

त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥२१॥

पदार्थ—(मित्र) हे ब्राह्मण ! (वरुण) हे क्षत्रिय ! (अर्यमन्) हे वैश्य श्रेष्ठ ! (मरुत) हे इतर जनो ! (न) हमे (अनेह) अहिंसित (नृवत्) मानव युक्त (शंस्यम्) प्रशसनीय (त्रिवरूथम्) त्रितापनिवारक (छर्दि) ज्ञान-भवन (यन्त) दो ॥२१॥

भावार्थ—रहने के लिए ऐसा भवन बनाना चाहिए कि जो उपद्रवरहित हो ॥२१॥

आयु बढ़ानी चाहिये ॥

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।

प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥२२॥

पदार्थ—(आदित्याः) हे बुद्धिपुत्रो ! (हि) जिस कारण (ये चित्) जो हम (मनव.) मनुष्य (स्मसि) विद्यमान हैं वे हम सब (मृत्युबन्धवः) मृत्यु-बन्धु अर्थात् अवश्य मरनेवाले है । अतएव (नः) हमारे (जीवसे) जीवन हेतु (आयुः) आयु को (सु) भली प्रकार (प्र तिरेतन) बढ़ा दें ॥२२॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि विद्वज्जनो का सम्पर्क आयु को बढ़ाना है ॥२२॥

अष्टम मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त ॥

अथ सप्तत्रिंशदृचस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य सोभरि काण्व ऋषि ॥ देवता—१- -३३ अग्निः । ३४, ३५ *आदित्याः* । ३६, ३७ त्रसदस्योर्दानस्तुतिः ॥ छन्द—१, ३, १५, २१, २३, २८, ३२ *निचृदुष्णिक्* । २७ *भुरिगार्ची विराडुष्णिक्* । ५, १९, ३० उष्णिक् ककुप् । १३ पुर उष्णिक् । ७, ९, ३४ पाद निचृदुष्णिक् । ११, १७, ३६, *विराडुष्णिक* । २५ *आर्चीस्वराडुष्णिक्* । २, २२, २९, ३७ *विराट्पङ्क्तिः* । ४, ६, १२, १६, २०, ३१ *निचृत् पंक्तिः* । ८ *आर्चीभुरिक पंक्ति* । १० सतः पक्ति । १४ पक्ति । १८, ३३ पादनिचृत् पक्ति । २४, २६ आर्चीस्वराट् पक्ति । ३५ स्वराड्बृहती ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २८, ३०, ३२, ३४, ३६ ऋषभः । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २२, २४, २६, २९, ३१, ३३, ३७ पञ्चम । ३५ *मध्यमः* ॥

स्तुति विधान ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।

देवत्रा हव्यमोहिरे ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (तम्) उस परमात्मा की (गूर्धय) स्तुति कर जिसे (देवासः) मेधाविजन और सूर्य्यादि (दधन्विरे) प्रकाशित करते हैं और जिस (हव्यम्) प्रणम्य देव को (देवत्रा) सर्व देवो या पदार्थों में (आ ऊहिरे) व्याप्त जानते हैं । वह कैसा है (स्वर्णरम्) सुख का नेता (देवम्) और देव है, पुन वह (अरतिम्) वि-रक्त है ॥१॥

भावार्थः—ये सूर्यादि पदार्थ अपने अस्तित्व द्वारा अपने रचयिता प्रभु को ही दर्शा रहे हैं ॥१॥

ईश वर्णन ॥

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।

अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थः—(विप्र) हे विप्र ! (सोभरे) हे सुभरणकर्ता विद्वन्! आप (अध्वराय) यज्ञ हेतु (अग्निम् ईम्) परमात्मा की ही (प्र ईळिष्व) वन्दना करें जो वह (विभूतरातिम्) ससार मे विभिन्न प्रकार दे रहा है । (चित्रशोचिषम्) जिसका तेज आश्चर्यजनक है । जो (अस्य) इस (सोम्यस्य) सुन्दर विविध पदार्थयुक्त (मेधस्य) ससाररूप महासगम का (यन्तुरम्) शासक है और (पूर्व्यम्) सनातन है ॥२॥

भावार्थ—केवल परमदेव ही यज्ञ मे पूज्य, स्तुत्य और वन्दनीय है, क्योंकि वही चेतन है । यह सपूर्ण सृष्टि उसी की है ॥२॥

ईश स्तुति ॥

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

पदार्थः—हे प्रभु ! (त्वा) तुझे ही हम (ववृमहे) स्वीकार करते हैं । तुझे ही परमपूज्य समझते है जो तू (यजिष्ठम्) परमयजनीय है । (देवम्) तू ही सर्वगुणयुक्त है (देवत्रा) सूर्य्य, अग्नि, वायु आदि देवो मे तू ही (अमर्त्यम्) मरणधर्म्मा है । केवल तू ही शाश्वत अनादि अमत्र्य है और तू (होतार) जीवनदाता है । तू ही (अस्य) इस दृश्यमान (यज्ञस्य) ससाररूप यज्ञ का (सुक्रतुम्) सुकर्ता है । ऐसे तुझे ही हम पूजें ऐसी बुद्धि दे ॥३॥

भावार्थ—हम मनुष्यो को केवल परमात्मा की ही उपासना-पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वही पूजा करने योग्य है ॥३॥

उसकी महिमा ॥

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥४॥

पदार्थ—हम उपासक (ऊर्ज) विज्ञान बलयुक्त पुरुष को (नपातम्) न गिराने वाले, (सुभगम्) ऐश्वर्य्ययुक्त (सुदीदितिम्) सर्वत्र सुप्रकाश करने वाले (श्रेष्ठशोचिषम्) सर्वोत्तम तेजस्वी (अग्निम्) परमात्मा की वन्दना करते हैं । (स) वह (मित्रस्य) दिन का (वरुणस्य) और रात्रि का (सुम्नम्) सुख (न) हमे (दिवि) व्यवहार हेतु (यक्षते) प्रदान करता है और (अपाम्) जल का भी वही सुख (आ यक्षते) देने वाला है ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकार हम विद्वान् उस परमात्मा की पूजा करते है, हे मनुष्यो ! आप भी उसी प्रकार केवल उसी को पूजो ॥४॥

अग्निहोत्र-विधान ॥

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।

यो नमसा स्वध्वरः ॥५॥

पदार्थ—जैसे (य. मर्तः) जो मनुष्य (अग्नये) इस भौतिक अग्नि को (समिधा) चन्दन, पलाश इत्यादि की समिधा द्वारा (ददाश) सेवता है (य) जो (आहुती) घृतादिको की आहुतियो द्वारा सेवता है (य) जो (वेदेन) वेदाध्ययन से सेवता है और जो (स्वध्वरः) शुभ कर्म करता हुआ (नमसा) विविध मन्त्रों से सेवता है (तस्य इत अर्वन्त) उसके घोड़े आदि होते हैं यह अगले मन्त्र से सम्बन्धित है ॥५॥

भावार्थ—इस ऋचा मे तीन कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है १—अग्नि-होत्र, २—वेदाध्ययन और ३—दान, ये आवश्यक व नित्य कर्त्तव्य हैं ॥५॥

इस ऋचा से अग्निहोत्रादि कर्मों का फल बताया गया है ॥

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।

न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥६॥

पदार्थ—(तस्य) उस अग्निहोत्रादि कर्मकर्त्ता के (आशव) तीव्रगामी (अर्वन्त) अश्व (रंहयन्ते) सग्राम में वेग करते हैं व (तस्य) उसी की (द्युम्नितमम्) अतिशय प्रकाशित (यशः) कीर्ति होती है । (तम्) उसे (कुतश्चन) किसी भी कारण से (देवकृतम्) देवो से प्रेरित (अंह) पाप (न नशत्) प्राप्त नही होता और (न मर्त्यकृतम्) मनुष्यकृत पाप भी उसे प्राप्त नही होता ॥६॥

भावार्थ—जो सदा शुभ कर्म मे लगता है वह कदापि अशुभ कर्म मे प्रवृत्त नहीं होता । अत वह न इन्द्रियाधीन होता और न दुर्जनो के जाल मे ही फंसता है ॥६॥

अग्निहोत्र को दिखलाते हैं ॥

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते ।

सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥७॥

पदार्थः—(सहस) हे ससार के (सूनो) सृजक (ऊर्जाम्) हे बलशाली सूर्य्य आदि के या बलो के (पते) स्वामिन् ! (व) आपके (अग्निभि) अग्निहोत्रादि कर्मों

से (स्वग्नय) अच्छे अग्निहोत्रादि शुभ कर्मकर्त्ता हम सब (स्याम) हों। हे भगवन् ! वस्तुतः (त्वम्) आप ही (सुवीरः) महावीर हैं, आप (अस्मयु) हमारी कामना करें ॥७॥

भावार्थ—अग्निहोत्रादि कर्म करने से मनुष्य पवित्र होता है, अतः उन्हें करना नित्य कर्त्तव्य है ॥७॥

अग्नि नाम से परमात्मा की स्तुति ॥

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।

त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥८॥

पदार्थ.—हे मनुष्यो ! (**प्रशंसमान**) प्रशस्त (**अतिथि न**) अतिथि सरीखा (**अग्निः**) वह परमात्मा (**मित्रिय**) मित्रों का हित करने वाला है। वह (**रथः न**) देवरथ सूर्य्यादि के समान (**वेद्य**) ज्ञातव्य है। हे प्रभु ! (**अपि**) और (**त्वे**) तुझ में (**क्षेमास**) निवास करने वाले (**साधवः सन्ति**) परहितसाधक होते हैं। (**त्वम्**) तू (**रयीणाम्**) धनों का (**राजा**) शासक है ॥८॥

भावार्थ—हे भद्रजनो ! उस परमपिता परमात्मा को ही अपना सखा बनाओ। जो शुभ आचरण करते हैं जो उसकी आज्ञा पालन करते हैं उन पर उसकी कृपा होती है ॥८॥

आशीर्वाद की याचना ॥

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।

स धीभिरस्तु सनिता ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) प्रभु ! जिसने (**दाश्वध्व**) सुयज्ञ किये हैं (**स**) वह (**अद्धा**) सत्य फलवान हो। (**सुभग**) हे परमसुन्दर ! (**सः**) वह (**प्रशस्य**) प्रशंसनीय हो। (**स**) वह (**धीभि**) विविध विज्ञानों तथा शुभकर्मों से युक्त (**अस्तु**) हो। वह (**सनिता**) अन्न दाता हो ॥९॥

भावार्थ—जो व्यक्ति भगवान की आज्ञा में रहता है वह निश्चय ही जगत् में प्रशंसायोग्य होता है और प्रभुकृपा से उसे बुद्धि, धन और उदारता मिलती है ॥९॥

उसकी प्रशंसा ॥

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।

सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥१०॥

पदार्थ—हे परमात्मन ! (**यस्य**) जिस यजमान के (**अध्वराय**) यज्ञार्थ (**त्वम्**) तू स्वयं (**ऊर्ध्वः तिष्ठति**) उद्योग करता है (**स**) वह (**क्षयद्वीरः**) चिरजीवी वीर पुत्रों आदि से युक्त हो (**साधते**) संसार के सब कार्य सिद्ध करता है (**स**) वह (**अर्वद्भि**) अश्वों से (**सनिता**) युक्त होता है (**सः**) वह (**विपन्युभि**) विद्वानों से युक्त होता है (**स**) वह (**शूरैः**) शूरों से (**सनिता**) युक्त होता है। इन से युक्त हो (**कृतम्**) संसार के सब कर्म सिद्ध करता है ॥१०॥

भावार्थ—प्रभु कृपा से मानव सर्व सुखों से युक्त हो जाता है। प्रतिदिन उसकी वृद्धि तथा अभ्युदय होता है। यह संसार में मान पाकर गणनीय होता है ॥१०॥

परमात्मा की स्तुति ॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।

हव्या वा वेविषद्विषः ॥११॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिसके (**गृहे**) घर में (**विश्ववार्य्य**) सर्व स्वीकार-योग्य (**अग्नि**) सर्वव्यापी ईश (**वपु**) नाना रूप वाले (**स्तोमम्**) स्तोत्र को तथा (**चन**) विविध अन्नों को (**दधीत**) पुष्ट करता है (**वा**) और जो यजमान (**हव्या**) भोज्य पदार्थ (**विष**) विद्वज्जनों को (**वेविषद्**) खिलाता है, वह सर्व कार्य सिद्ध करता है। यह पूर्व से सम्बन्धित है ॥११॥

भावार्थ—वे मनुष्य धन्य हैं जिनके घर अग्निहोत्रादि कर्मों व उपासना से मुदित हैं ॥११॥

इससे प्रार्थना सिखाते हैं ॥

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।

अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२॥

पदार्थ—(**वा**) और (**सहस यहो**) हे जगत् के निर्माता ! हे (**वसो**) वासप्रद ईश (**विप्रस्य**) ज्ञानविज्ञानों से संसार को पूरित करने वाले (**स्तुवत.**) आपका गुणगान करने वाले (**रातिषु**) और दान देने में (**मक्षूतमस्य**) तीव्रगामी ऐसे (**विविदुष**) विशेषज्ञ पुरुष के (**वच**) स्तोत्ररूप वचन को (**अवोदेवम्**) देवों के नीचे व (**उपरिमर्त्यम्**) मनुष्यों के ऊपर (**कृधि**) करें ॥१२॥

भावार्थ—संसार के उपकार में सदा लगे रहने वाले विद्वानों की वाणी को प्रभु सब के ऊपर स्थापित करता है। अतः स्वार्थत्याग परमार्थ में लगना ही श्रेष्ठ है ॥१२॥

उपासक का कर्म ॥

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति ।

गिरा वाजिरशोचिषम् ॥१३॥

पदार्थ—(**य**) जो उपासक (**सुदक्षम्**) जगत् रचना में नितांत निपुण या अति बलशाली पुनः (**अजिरशोचिषम्**) महातेजस्वी (**अग्निम्**) परमात्मा के उद्देश्य से (**हव्यदातिभि**) भोज्यान्न देने से (**नमोभि वा**) या नमस्कारों अथवा सत्कारों से व (**गिरा**) वाणी द्वारा (**आविवासति**) संसार की सेवा करता है उसे सब सिद्ध होता है ॥१३॥

भावार्थ—ईश्वर के उद्देश्य से ही सब शुभ कर्म करना धर्म है, जो लोग अभिमान में पड़ ईश्वर और सदाचार को भुलाते हैं, वे क्लेश व कष्ट पाते हैं ॥१३॥

उपासना का फल ॥

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।

विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥१४॥

पदार्थ.—(**य मर्त्य.**) जो व्यक्ति (**निशिती**) अत्यन्त तीव्र व (**समिधा**) प्रदीप्त भक्ति से और (**अस्य**) उसीके दिये (**धामभिः**) धारण-पोषण करने वाले प्राणसहित सभी इन्द्रियों से (**अदितिम**) अविनश्वर प्रभु की (**दाशत्**) सेवा करता है (**स**) वह (**धीभि**) बुद्धि भूषित हो (**सुभग**) देखने में सुन्दर तथा सर्वप्रिय होता है और उस बुद्धि द्वारा और (**द्युम्नै.**) द्योतमान यशों से (**विश्वा इत्**) सब ही (**जनान**) मनुष्यों को (**अतितारिषत्**) अतिशय पार करने में समर्थ होता है। यहां दृष्टान्त है- (**उद्न इव**) जैसे नौका की सहायता से मनुष्य नदी पार करता है ॥१४॥

भावार्थ—शुभ कर्मों और ईश्वरीय आज्ञा के पालन से ही मनुष्य की पूर्ण उन्नति होती है ॥१॥

अग्निवाच्य ईश्वर की स्तुति ॥

तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कंचिदत्रिणम् ।

मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥१५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे भगवत प्रभु ! (**तद् द्युम्नम्**) उस प्रकाशमान ज्ञान को (**आभर**) हमारे हृदय में लाइये (**यत्**) जो ज्ञान (**सदने**) हृदयरूप भवन में (**कञ्चित् अत्रिणम्**) स्थित तथा सन्तापप्रद सारे अविवेक को (**सासहत्**) विनष्ट कर और जो (**दूढ्य**) दुर्मति (**जनस्य**) जन के (**मन्युम्**) क्रोध को निवारे ॥१५॥

भावार्थ—परम पिता की प्रार्थना व विद्या द्वारा उस विवेक का उपार्जन करना चाहिए जिससे महान् रिपु हृदयस्थ अविवेक नष्ट हो और गृहसम्बन्धी सारे कलह शांत हों ॥१५॥

पुनः प्रार्थना का विधान ॥

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।

वयं तत्ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥१६॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (**वरुण**) राजप्रतिनिधि (**मित्रः**) ब्राह्मण (**अर्यमा**) वैश्य (**नासत्या**) व असत्यरहित वैद्य प्रतिनिधि (**भग**) और भजनीय प्रतिनिधि (**येन**) जिस ज्ञान से (**चष्टे**) सत्य असत्य व कर्त्तव्याकर्त्तव्य देखते हैं और उनकी व्याख्या करते हैं (**तत्**) उस (**ते**) तेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान को (**वयम्**) हम भी (**विधेमहि**) कामों में लगा सकें ऐसा बन दे। जो हम लोग (**शवसा**) पूरी शक्ति से (**गातुवित्तमा**) भली भांति स्तोत्रों के ज्ञाता और (**इन्द्रत्वोता**) तुझ से ही सुरक्षित हैं ॥१६॥

भावार्थ—ऐसी ऋचाओं में यह विषय सुस्पष्ट किया है कि प्रार्थयिता नर योग्य है अथवा नहीं। अतः पहले स्वयं प्रार्थनायोग्य बनें तब उससे याचना करें, तो ही उसकी पूर्ति संभव है ॥१६॥

प्रभु की स्तुति ॥

ते घेदग्ने स्वाध्यो३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् ।

विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥१७॥

पदार्थ.—(**अग्ने**) हे अग्नि ! (**विप्र**) हे सर्वव्यापक ! (**देव**) प्रभो ! (**ते**) वे (**घ इत्**) ही उपासक निश्चय (**स्वाध्य**) अच्छी प्रकार ध्यान करते हैं और (**विप्रास**) वे ही बुद्धिमान् हैं। जो (**नृचक्षसम्**) मानव के सारे कर्मों के द्रष्टा और उपदेष्टा और (**सुक्रतुम्**) जगत् के कर्त्ता (**त्वा**) तुझे (**निदधिरे**) योगावस्थित हो हृदय में धारते हैं ॥१७॥

भावार्थ—प्रभु को हृदय-प्रदेश में स्थान दें। अग्निहोत्रादि शुभ कर्म सदा करें, इत्यादि का तात्पर्य यही है कि हम उसकी आज्ञा का सदा पालन करें। कभी लुब्ध व वशीभूत होकर भी उसका अपमान न करें। तभी उसकी उपासना समझी जा सकती है जब उपासक भी तदनुरूप ही हो। शुद्धता, पवित्रता, और उदारतादि ईश्वरीय गुण हैं इन्हें अपने में धार प्रतिदिन इनमें वृद्धि करें ॥१७॥

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।

त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥१८॥

पदार्थ—हे (**सुभग**) परमसुन्दर ! (**त इत्**) वे उपासक ही (**वेदिम्**) पूजार्थ वेदी (**चक्रिरे**) रचते हैं (**त इत्**) वे ही (**आहुतिम्**) उस वेदी में

आहुति देते हैं (ते) वे ही (दिवि) दिन प्रतिदिन (सोतुम) यज्ञ करने हेतु तत्पर रहते है (त इत्) वे ही (वाजेभिः) ज्ञानों से (महद्धनम्) महाधन (जिग्युः) जीतते हैं, हे परमात्मा (ये) जो सर्वभाव से (त्वे) आप मे ही (कामम्) सब कामनाएं (न्येरिरे) समर्पित कर देते हैं ॥१८॥

भावार्थ — वे लोग धन्य है जो सदा प्रभु की आज्ञानुसार चलते हुए ससार के कार्य्यों मे लिप्त रहते है ॥१८॥

इससे प्रार्थना करते हैं ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१९॥

पदार्थ —(सुभग) हे सर्वैश्वर्य्ययुक्त ! (आहुत) आहुतियो से सतुष्ट (अग्निः) अग्नि (नः) हमारा (भद्रः) कल्याणप्रद हो (रातिः) हमारा दान (भद्रा) मङ्गलदाता हो (अध्वर भद्रः) योग मङ्गलप्रद हो (उत) और (प्रशस्तयः) प्रशसा (भद्रा) कल्याणदायिनी हो, ऐसी अनुकम्पा कर ॥१९॥

भावार्थ —हम लोग प्रत्येक कर्म जगत् के मङ्गल के लिये ही करें । हम सब, अनिष्ट कर्म न कर कल्याणप्रद कार्य्य ही किया करें ॥१९॥

इससे प्रार्थना करते हैं ॥

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२०॥

पदार्थ —हे सर्वगत प्रभो ! (वृत्रतूर्ये) महायुद्ध मे भी (मन भद्रम्) हमारे मनको कल्याण पूर्ण (कृणुष्व) करो (येन) जिस मन से आप (समत्सु) जगत् मे (सासह) सर्वविघ्न शान्त करते हैं । हे परमात्मा ! (शर्धताम्) महादुष्ट व जगत् के कण्टक जनो के (स्थिरा) सुदृढ भी (भूरि) और बहुत से नगर हो तो भी उन्हें (अव तनुहि) भूमि मे मिला दें जिससे हम उपासक (ते) आपके दिये हुए (अभिष्टिभि) अभिलषित मनोरथो से (वनेम) सम्पन्न हो ॥२०॥

भावार्थ—विपुलतम सग्राम मे भी बुद्धिमान् अपने मन को न बिगाड़े और सत्य से कदापि न हटे ॥२०॥

स्तुति का आरम्भ ॥

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे ।

यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥२१॥

पदार्थ —(गिरा) वाणी से हम (मनुर्हितम्) मानव हितकारी उस अग्निदेव के (ईळे) गुणो का अध्ययन करें (यम्) जिस अग्नि को (देवा) विद्वत्जन (दूतम्) देवदूत (अरतिम्) धनस्वामी (यजिष्ठम्) श्रेष्ठ दाता व (हव्यवाहनम्) आहुत द्रव्यो को पहुँचाने वाला (न्येरिरे) स्वीकारते हैं ॥२१॥

भावार्थ —मनुष्य के लिये उचित है कि अग्निहोत्र इत्यादि कर्म करे और उसके द्वारा होने वाले लाभ तथा अग्निविद्या का वर्णन दूसरो को सुनाए ॥२१॥

पुन उसी विषय का कथन ॥

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।

यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥२२॥

पदार्थः—(तिग्मजभाय) जिसकी ज्वाला बहुत तीक्ष्ण है (तरुणाय) जो नित्य नवीन है और (राजते) जो सुशोभित हो रहा है ऐसे (अग्नये) अग्नि के लिये या अग्निहोत्रादि कर्म हेतु (प्रय) विविध प्रकार के अन्नो को (गायसि) बढ़ाते हैं, यह अच्छा है क्योकि (य अग्नि) जो अग्नि (सूनृताभि) प्रिय व सत्य वचनों से प्रसादित और (घृतेभिः) घृतादि द्रव्यो से (आहुत) आहुत होने पर (सुवीर्य्यम्) शुभ बल को (पिंशते) देता है ॥२२॥

भावार्थ —हम मनुष्य अन्न, पशु, सोना व भूमि आदि की वृद्धि कर धन सचित करे, वह केवल परोपकार के और यज्ञादि शुभ कर्म के हेतु ही करे । धन की क्या जरूरत है इसे भली प्रकार विचार कर सन्मार्ग मे इस धन को व्यय करे ॥२२॥

यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चावच ।

असुर इव निर्णिजम् ॥२३॥

पदार्थः —(घृतेभिः) घृत आदि से (आहुतः) तर्पित (अग्नि) अग्नि (यदि) जब (वाशीम्) शब्द करने वाली ज्वाला को (उच्चाव च) ऊँचे-नीचे (भरते) करता है तब (असुर इव) सूर्य्य के जैसा (निर्णिजम्) निजरूप को प्रकाशित करता है ॥२३॥

भावार्थ —जिस तरह सूर्य्य गर्मी व प्रकाश से ससार का उपकार करता है वैसे ही अग्नि भी इस धरती पर कर्म कर सकता है यदि उसके गुणानुसार उसे काम मे लगा सकें ॥२३॥

गुणों की स्तुति ॥

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।

विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥२४॥

पदार्थ —(स्वध्वर.) जो मार्गों को भली-भांति दिखाता है क्योकि गहन-तम में भी अग्नि की मदद से मनुष्य सर्व कार्य करता है । (होता) वायु, मेघ, पानी आदि देवो को बुलाता है (देव) प्रकाशयुक्त और (अमर्त्य) अमरणधर्मा सदा-स्थायी अग्नि है वह (मनुर्हित) मनुष्यो के द्वारा स्थापित व आहुत होने से (हव्यानि) आहुत द्रव्यो को (ऐरयत) यथास्थान पहुँचाता है और (वार्य्याणि) वरणीय जल अन्न आदि पदार्थ (विवासते) देता है ॥२४॥

भावार्थ.—होम से जल बरसता है ऐसी अनेक आचार्य्यों की सम्मति है, अत हवनसामग्री उसके अनुकूल हो । तभी वह लाभदायक है ॥२४॥

इससे प्रार्थना सिखलाते है ॥

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः ।

सहसः सूनवाहुत ॥२५॥

पदार्थ —(अग्ने) हे अग्नि ! (मित्रमह) हे मित्रमह ! (सहस सूनो) जगदुत्पादक (आहुत) हे सर्वपूजित ! (यद) यदि (मर्त्य) मनुष्य (अहम्) मैं (त्वम् स्याम्) तू होऊ अर्थात् जैसा तू है वैसा ही यदि मैं भी हो जाऊ तो (अमर्त्य) मैं भी न मरने वाला बन जाऊ ॥२५॥

भावार्थ —ईश्वर-उपासना से मनुष्यो मे उसके गुण भी आते हैं अत वह उपासक भी उपास्य के तुल्य माना जाता है और मानुष इच्छा भी बलवती होती है अत उसके अनुसार ही यह प्रार्थना है ॥२५॥

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।

न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥२६॥

पदार्थ —(वसो) हे वासदाता ! मैं (अभिशस्तये) मिथ्यापवाद और हिंसा हेतु (त्वा) तेरी (न रासीय) स्तुति न करू । तथा (सन्त्य) हे परम-पूज्य ! (पापत्वाय) पाप के लिए (न) तेरी स्तुति न करू । (मे) मेरा (स्तोता) स्तुतिपाठक पुत्रादि (अमतीवा) दुष्टबुद्धि न हो (दुर्हित न) और न किसी का शत्रु हो (अग्ने) हे सर्वगत ! और वह (पापया) पाप से युक्त (न स्यात्) न हो ॥२६॥

भावार्थः - कुत्सित कर्मों के लिए हम परमात्मा की उपासना न करें तथा हम कदापि किसी के शत्रु न बनें और कलकदाता न हो ॥२६॥

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥२७॥

पदार्थ —(न) जैसे बुढ़ापे मे (पुत्र) सुयोग्य पुत्र (पितु) पिता की (सुभृत) अच्छी प्रकार देखभाल करता है तद्वत् वह परमात्मा (दुरोणे) हमारे गृह मे भरण-पोषण कर्त्ता बन (नः) हमारे (देवान्) क्रीडाशील पुत्रादि के (आ) लिए (हवि) हविष्यान्न को (प्र एतु) बढ़ाए ॥२७॥

भावार्थ —हे मानव ! प्रथम तुम अपना अन्त करण शुद्ध करो और हिंसा परद्रोहादि दुष्टकर्मों से सर्वथा अलग हो जाओ । तब वह प्रभु तुम्हारे हृदय व घर मे वास कर तुम्हें शुभ मार्ग की ओर प्रवृत्त करेंगे ॥२७॥

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो ।

सदा देवस्य मर्त्यः ॥२८॥

पदार्थ —हे प्रभो (वसो) हे परमोदार ईश ! (मर्त्य) मरणधर्मा (अहम्) मैं उपासक (देवस्य तव) सर्वपूज्य आप की (नेदिष्ठाभि) समीपवर्ती (ऊतिभि) रक्षाओ द्वारा (जोषम्) प्रीति (आ सचेय) पाऊ, ऐसी कृपा करें ॥२८॥

भावार्थ —हे भगवन् ! मुझे दुर्व्यसन व दुष्टता से दूर रखो जिससे मैं सबका प्रिय बनू । लोग अज्ञान से दुर्व्यसन और स्वार्थ से परद्रोह मे फँसते हैं, अत सत्सग तथा विद्याभ्यास व ईश्वरीय गुणों को अपने हृदय मे धारें ॥२८॥

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।

त्वामिदाहु प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥२९॥

पदार्थ —(अग्ने) हे ईश ! मैं उपासक (तव) तेरी ही (क्रत्वा) सेवा के कर्म से (सनेयम्) तेरी सेवा करने (तव) तेरे (रातिभि) दानो से तुझे ही भजू (तव) तेरी ही (प्रशस्तिभि) प्रशसाओ से तुझे ही सेऊ, क्योकि (त्वाम्) तुझको ही तत्त्ववित् पुरुष (प्रमतिम्) परम ज्ञानी तथा रक्षक (आहु) कहते हैं । अत (वसो) हे परम उदार धनस्वरूप (अग्ने) प्रभो ! (मम) मुझे (दातवे) देने हेतु (हर्षस्व) प्रसन्न हो ॥२९॥

भावार्थ —मानव के लिए उचित है कि वह हर स्थिति मे परमात्मा की आज्ञा पर ही चले, तभी कल्याण का सुख देख सकता है ॥२९॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः ।

यस्य त्वं सख्यमावरः ॥३०॥

पदार्थ - -(अग्ने) हे सर्वगत ! (यस्य) जिस उपासक की (सख्यम्) मित्रता को (आवर) आप स्वीकारते हैं (स) वह (तव) आपकी (ऊतिभिः)

रक्षाओं से (प्रतिरते) जगत् मे बढ़ता है। जिन रक्षाओं से (सुवीराभिः) कुल मे वीर जन्मते है और (वाजशर्मभि) जिन से ज्ञान विज्ञान आदि की पूर्ति होती है ॥३०॥

भावार्थ.—जिस पर परमात्मा की कृपा होती है वही धन-धान्य सम्पन्न हो इस लोक मे प्रशसा प्राप्त करता है ॥३०॥

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।

त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१॥

पदार्थ —(सिष्ण) हे सुखवर्धिता ! (तव) तेरा (द्रप्स) द्रवणशील प्रवहणशील ससार (नीलवान्) श्यामसुखप्रद है। (वाश) कमनीय है (ऋत्विय) प्रत्येक ऋतु मे अभिनव है (इन्धान) दीप्तिमान् और (आददे) ग्रहणयोग्य है (त्वम्) तू (महीनाम्) महान् (उषसाम्) प्रातःकाल का (प्रिय असि) प्रिय है। (क्षप) रात्रिकी (वस्तुषु) वस्तुओ म भी (राजसि) सुशोभित है ॥६१॥

भावार्थ —प्रभु व उसका काव्यजगत्, ये दोनो सदा चिन्तनीय है। वह इसी मे व्याप्त है, उसके कार्य्य का ज्ञान प्राप्त कर ही विद्वान् सतुष्ट होते हैं ॥३१॥

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे ।

सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥३२॥

पदार्थ —(सोभरय) विद्या और धनादिको से प्रजा का भरणपोषण करने वाले हम उपासक (अवसे) रक्षार्थ (तम्) उस परमात्मा के पास (आ अगन्म) प्राप्त हुए है। जिसका (सहस्रमुष्कम्) अनन्त तेज है (स्वभिष्टिम्) जो शुभ तथा अभीष्टदेव है (सम्राजम्) जो अच्छे प्रकार सर्वत्र व्याप्त हैं और (त्रासदस्यवम्) जिससे दुष्टगण सदा भय खाते हैं, ऐसे परमात्मा को हम प्राप्त हुए हैं ॥३२॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि हम छल कपट को त्याग दे तभी हमारा कल्याण होना सभव है ॥३२॥

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।

विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥३३॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वगत ! जो (अन्ये अग्नय) अन्य सूर्य्य, अग्नि, विद्युत् आदि अग्नि हैं वे (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपक्षित) आश्रित हैं, उस तुझे मैं गाता हूँ। (वया इव) जैसे शाखाए स्वमूल वृक्ष के आश्रय मे हैं तद्वत्। हे महान् ! (तव) तेरे (क्षत्राणि) बल या यशो को (वर्धयन्) स्तुति से मैं बढ़ाता हुआ (विप इव) अन्यान्य स्तुतिपाठक के तुल्य (जनानाम्) मनुष्यो के मध्य (द्युम्ना) सुख तथा यश को (नि युवे) अच्छी प्रकार पाता हूँ यह आपकी महान् अनुकम्पा है ॥३३॥

भावार्थ—ये सूर्य्यादि अग्नि भी उसी महाग्नि ईश्वर से तेज तथा प्रभा पाते हैं, उसी का यशोगान कर कवि भी सुखी होते हैं ॥३३॥

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् ।

मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥

पदार्थ —हे (अद्रुह) द्रोहरहित (सुदानव) हे शुभकारी (आदित्या) विद्वानो ! आप (विश्वेषाम्) सारे (मघोनाम्) धनवानों के बीच (मर्त्यम) जिस मनुष्य को (पारम्) कर्मों के पार (नयथ) ले जाते हैं उसे ही पूर्वोक्त फल मिलता है ॥३४॥

भावार्थ —पूर्व सूक्त मे अग्निवाच्य प्रभु की स्तुति वर्णित है, यहा आदित्य की चर्चा देखते है। कारण यह है कि आदित्य नाम है आचार्य का। उनकी कृपा से ही सारे काय सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञान दाता हैं, सन्मार्ग पर ले जाते हैं और ईश्वर की आज्ञाएं स्पष्ट करते है ॥३४॥

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।

वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥

पदार्थ.—हे आचार्यो ! जिस कारण आप (राजानः) सबके शासक है और (चर्षणीसह) दुष्ट जनो को दण्ड देते है, अतएव (कच्चित्) जो कोई (मनुष्यान् अनु) लोगों मे दुष्ट कर्म करता हुआ (क्षयन्तम्) निवास कर रहा है उसे दण्ड दें। (वरुण) हे राजप्रतिनिधि ! (मित्र) हे ब्राह्मणप्रतिनिधि ! (अर्यमन्) हे वैश्यप्रतिनिधि (वयम्) हम उपासक (ऋतस्य इत्) सत्य नियम के ही (रथ्यः) नेता (स्याम) हो ॥३५॥

भावार्थ —यहा यह स्पष्ट किया गया है कि हमारे लिए यही उचित है कि हम सदा सत्य न्यायपथ पर चलें ॥३५॥

इन दो मन्त्रो मे उपासना का फल वर्णित है ॥

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पंचाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् ।

मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥

पदार्थः—(मंहिष्ठ) परमदानी (अर्य्य) परमवन्दनीय (सत्पति) सज्जन का पालन करने वाला (त्रसदस्यु) दुष्टनिवारक (पौरुकुत्स्य) सब जीवों का पालक वह परमदेव (मे) मुझ उपासक को (वधूनाम् पञ्चाशतम्) अनेक घोडे, घोडियां तथा अन्य पशु (अदात्) देता है ॥३६॥

भावार्थ —जो परमात्मा की उपासना शुद्ध हृदय से करता है वह सब प्रकार के धन-धान्य से सम्पन्न होता है, अत हे मनुष्यो ! उसी की उपासना सदैव करो ॥३६॥

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।

तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७॥

पदार्थ —(सप्ततीनाम्) अतितीव्रगामी सदा चलने वाले (तिसृणाम्) तीनों लोको का और (दियानाम्) दानाओ का (पति) अधिपति पालनकर्त्ता (श्याव) सर्वव्यापी परमात्मा (उत मे) मेरी (सुवास्त्वा) सारे शुभकर्मों की (अधि तुग्वनि) समाप्ति पर (प्रणेता) प्रेरक व (वसुः) वासदाता (भुवत्) हो। जो मैं (प्रयियो) उसी की ओर बढ़ रहा हू और (वयियो) सदा शुभकर्मों मे अनुरक्त हू ॥३७॥

भावार्थ.—समस्त भुवनो तथा सकल दाताओ का रक्षक प्रभु भक्तों के शुभ-कर्मों की समाप्ति मे सहायता प्रदान करता है। अत सर्वत्र वही उपासना के योग्य है ॥३७॥

अष्टम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त

चत्वारिंशदृचस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्द -१, ५, ७ १६, २३ उष्णिक् ककुप्। ६, १३, २१, २५ निचृदुष्णिक्। ३, १५, १७ विराडुष्णिक्। ११ पादनिचृदुष्णिक्। २, १०, १६, २२ सत पंक्तिः। ८, २०, २४, २६ निचृत् पंक्ति। ४, १८ विराड् पंक्ति। ६, १२ पादनिचृत् पंक्ति। १४ आर्ची भुरिक् पंक्ति ॥ स्वर.-१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५ ऋषभ। २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २२, २४, २६ पञ्चम ॥

सेनाओं का वर्णन

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः ।

स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥१॥

पदार्थ —इस सूक्त मे सैन्य वर्णन है, यथा —(प्रस्थावानः) हे सज्जनो की रक्षार्थ सर्वत्र प्रस्थानकारी मरुन्नाम सैन्यजनो ! (आ गन्त) आप आवें, सर्वत्र प्राप्त हो। (मा रिषण्यत) किसी निरपराधी को आप न मारें और (समन्यवः) क्रोधयुक्त होकर (मा अपस्थात) आप कही न रहे क्योंकि आप (स्थिरा चित्) दृढ़ पर्वतादिको को भी (नमयिष्णव) प्रकम्पित कर देते है, अत यदि आप क्रुद्ध रहेंगे तो प्रजा मे अति हानि होगी ॥१॥

भावार्थ —इस सूक्त का देवता है मरुत्। इस शब्द के अनेक अर्थ हैं। यहाँ सैन्यवाची है। मरुत् शब्द का एक वास्तवर्थ सहारक भी है। राज्यप्रबन्ध के लिए दुष्टसहारजन्य मरुद्गण महासाधन तथा महास्त्र है, अत इसका नाम मरुत् है। इस प्रथम ऋचा मे अनेक विषय ऐसे है जिनसे विदित होता है कि सैन्य वर्णन है। जैसे (मा रिषण्यत.) मे दिखाया गया है कि प्राय सैन्यपुरुष उन्मत्त होते हैं, निरपराध प्रजा को भी लूटते-मारते हैं, अत यहा शिक्षा है कि हे सैन्यनायको ! तुम किसी निरपराध की हिंसा कदापि न करो ॥१॥

सेनाएं कैसी हों यह वर्णित है

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।

इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥२॥

पदार्थ —(ऋभुक्षण) हे मानव हितकारी (रुद्रास) हे दु खविनाशकर्ता ! (पुरुस्पृह) हे बहु स्पृहणीय (सोभरीयव) हे सत्पुरुषाभिलाषी सैन्यजनो ! आप (वीळुपविभि) दृढ़तर चक्रादि से युक्त (सुदीतिभि) सुदीप्त रथो द्वारा (आ गत) आए (इषा) अन्न सहित (अद्य) आज (आ गत) आएं (यज्ञम्) प्रत्येक यज्ञ मे (आ) पधारे ॥२॥

भावार्थ—सेना के लिए उचित है कि प्रजा उसका मान करे और वह प्रजा की रक्षा अच्छी प्रकार करें ॥२॥

सेना का बल ज्ञातव्य है यह दिखाया गया है

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥३॥

पदार्थ —(रुद्रियाणाम्) दु ख हरने वाले (शिमीवताम्) कर्त्तव्यपरायण और (विष्णो) पोषक (एषस्य) अभिलषणीय अन्नो की (मीळ्हुषाम्) वर्षा के देने वाले (मरुताम) मरुन्नामक सैन्यजनो को (विद्म हि) हम अवश्य जानते हैं ॥३॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि सैन्य शक्ति क्या है, उसे क्या अधिकार हैं, वह जगत् मे किस प्रकार उपकारी बन सकती है, इत्यादि विषय विद्वानो को समझने

चाहियें। वे सैन्यजन दुष्टो को शिष्टता सिखाए। और यदि वे अपनी दुष्टता न त्यागें तो उनके धन से देश का हित साधन करें ॥३।

सेना का वर्णन ॥

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद् दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।

प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥४॥

पदार्थ—(शुभ्रखादय) हे शोभनायुधो ! (स्वभानवः) हे स्वप्रकाश ! हे स्वतन्त्र ! (यद्) जब (एजथ) आप भयकर रूप धारण कर ससार को कँपाते है तो (द्वीपानि) द्वीप द्वीपान्तर (वि पापतन्) नितान्त लरजने लगते है। (तिष्ठत्) स्थावर वस्तु भी (दुच्छुना) दु खयुक्त होती है (रोदसी युजन्त) द्युलोक तथा पृथिवी भी दुःखयुक्त होती है (धन्वानि) जल स्थल भी (प्रैरत) सूख जाते हैं ॥४॥

भावार्थ—राजसेनाओ की नियुक्ति सदा प्रजा की रक्षार्थ ही की जाती है, इसी कार्य में सदा धर्म पर वे डटी रहे ॥४॥

सेना के गुण ॥ !

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।

भूमिर्यामेषु रेजते ॥५॥

पदार्थ—हे सैनिको ! (व) आपके (अज्मन्) चलने से (अच्युताचित्) सुदृढ और अपतनशील भी (पर्वतास) पर्वत (वनस्पति) तथा वृक्षादिक भी (नानदति) गु जित होने लगते है (यामेषु) आप के गमन से (भूमि) पृथिवी भी (रेजते) कांपती है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे यह बताया गया है कि यदि सेना उच्छृ खल बन जाय तो ससार की विपुल हानि होती है, अत उसका शासक देश का परमहितैषी और स्वार्थविहीन होना चाहिए ॥५॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।

यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥६॥

पदार्थ—(मरुत) हे मरुद्गण ! (व) आप लोगों के (अमाय यातवे) बल के कारण स्वच्छन्दपूर्वक गमन हेतु (द्यौ) अन्यान्य जिगीषु वीर पुरुष (बृहत्) बहुत स्थान आपके लिये छोड (उत्तरा जिहीते) आगे बढ़ जाते है (यत्र) जिमके निमित्त (नरः) जननेता तथा (बाह्वोजस) भुजबलधारी आप (तनूषु) शरीरो मे (त्वक्षांसि) आयुध (आ, देदिशते) सजाते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो अच्छे सैनिक होते हैं उनसे सभी डरते है, क्योकि वे निःस्वार्थ और जनहित के लिये युद्ध करते हैं ॥६॥

सेनाए कैसी हो ॥

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।

वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥७॥

पदार्थ—(नर) ये जगन्नेता मरुद्गणो ! (स्वधाम् अनु) जब देश रक्षा करते हैं तब (महि) नितांत (श्रियम्) शोभा को (वहन्ते) प्राप्त करते हैं, वे कैसे है (त्वेषा) अत्यन्त प्रकाशित, पुन (अमवन्त) परम बलिष्ठ, पुन (वृषप्सव) जिनके रूप से करुणा टपक रही हो, पुन (अह्रुतप्सव) अकुटिल-रूप हो ॥७॥

भावार्थः—सेना के लिए उचित है कि वह अपने देश की सभी विधि से रक्षा करे, सैनिक स्वय अपने आचरण से दीप्तिमान् और करुणानन्द हो और उनका प्रत्येक कार्य्य सरल हो ॥७॥

वे कैसे हों ?

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।

गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८॥

पदार्थ—(सोभरीणाम्) मनुष्य जाति का भली भांति भरणपोषण करने वाले सैनिको का (बाण) बाण (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे कोशे) रथस्थ कोश मे (गोभि) शब्द से (अज्यते) ज्ञात होता है। अर्थात् वीरजन जब बाण चलाते हैं व धनुष का शब्द होता है तब प्रतीत होता है कि रथ पर अनेक बाण हैं। (गोबन्धव) पृथिवी के बन्धु (सुजातास) शोभनजन्मा कुलीन व (महान्त) महान् ये मरुद (नः) हमारे (इषे) अन्न हेतु (भुजे) भोग हेतु और (स्परसे) प्रीति हेतु (नु) शीघ्र हो ॥८॥

भावार्थ—वीर पुरुषो का कर्त्तव्य है कि सदा जगत् का उपकार करें। वे प्रजा के क्लेशो को मिटाने के लिये सदा प्रयत्नशील हो ॥८॥

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।

हव्या वृषप्रयाव्णे ॥९॥

पदार्थः—(वृषदञ्जयः) हे शुभ आचरणयुक्त प्रजाजनो ! (व) आप (मारुताय) उत्तम सेनाजनों के लिये (हव्यानि) विविध द्रव्य खाद्य पदार्थ (प्रतिभरध्वम्) रक्षा के बदले मे दें। (वृष्णे) जो मरुद्गण रक्षा और धनादि की वर्षा करते हैं (शर्धाय) जो आप लोगो का बल है और (वृषप्रयाव्णे) जिनके नायक वृषवत् बलिष्ठ हैं ॥९॥

भावार्थ—भगवान् का उपदेश है कि सेना देशहित मे रत हो और प्रजा उसका भरण पोषण करे ॥९॥

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।

आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥१०॥

पदार्थ—(नर) हे जन नेता (मरुत) मरुद्गण आप (न) हमारे (हव्या) सारे पदार्थों की (वृथा) अनायास (वीतये) रक्षार्थ (रथेन) रथ पर चढकर (आ गत) आए। कैसा रथ हो (वृषणश्वेन) जो बलिष्ठ अश्वो से युक्त हो जो (वृषप्सुना) धनादिको की वर्षा करे, पुन (वृषनाभिना) जिसके मध्यस्थान भी धनादिवर्षक हो। (न) जैसे (श्येनास) श्येन नाम के (पक्षिण) पक्षी बडे वेग से उडते है ॥१०॥

भावार्थ—प्रजा के कार्य मे किञ्चित् भी विलम्ब सैनिक जननेता न करें और अपने साथ नाना पदार्थ लेकर चले। जहां जैसी आवश्यकता प्रतीत हो वहां वैसा ही करें ॥१०॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु ।

दविद्युतत्यृष्टयः ॥११॥

पदार्थ—सेना एक प्रकार की हो यथा—(एषाम्) इन मरुद्गणो की (अञ्जि) गति (समानम्) समान हो। यथा (रुक्मास) अन्य-अन्य सुवर्णमय आभरण भी समानरूप से (वि भ्राजन्ते) शोभित हो। तथा (बाहुषु अधि) बाहुओ पर (ऋष्टय) शक्ति आदि नाना आयुध भी समानरूप से (दविद्युतति) नितांत शोभित हो ॥११॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि सेना विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो से युक्त हो, किन्तु उनका गणवेश एक ही हो ॥११॥

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।

स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥

पदार्थ—पुन सेनाजन कैसे हो, बताया गया है—(ते) वे सेनाजन (उग्रास) सभी कार्य्यों मे परमोद्योगी हों, पुन (वृषण) शान्ति, रक्षा, धन आदि की वर्षा करने वाले हों, पुन (उग्रबाहव) बाहुबल से उग्र हो या जिनके बाहु सदा सर्व-कार्य हेतु उद्यत हो, किन्तु (तनूषु) निज शरीर के भरण-पोषणार्थ (नकिः) कदापि न (येतिरे) चेष्टा करें, क्योकि उनके पोषण की चिन्ता प्रजा किया करें। तथा हे मरुद्गण ! (व) आपके (रथेषु) रथो पर (धन्वानि) धनुष् व (आयुधा) बाण आदि आयुध (स्थिरा) दृढ हो जिससे (अनीकेषु अधि) सेनाओं मे (श्रिय) विजयलक्ष्मी को पाए ॥१२॥

भावार्थ—सैनिक परमोद्योगी होने चाहिए। वे अपने शरीर की चिन्ता न करें, क्योकि यह काय जनता का है। वे अच्छे-अच्छे अस्त्रों से सुशोभित हो ॥१२॥

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।

वयो न पित्र्यं सहः ॥१३॥

पदार्थ—पुन सैनिक कैसे हो बताया गया है—(येषाम्) जिनका (नाम) नाम (अर्णः न) जल के जैसा (सप्रथः) सर्वत्र व्याप्त है। और (त्वेषम्) दीप्तियुक्त हो पुन (शश्वताम्) चिरस्थायी उन मरुद्गणो की (भुजे) भुजा मे (एकम् इत्) बल ही प्रधान हो और (न) जैसे (सह) प्रसहनशील (पित्र्यम्) पैत्रिक (वयः) अन्न का लोग स्वच्छन्दता से भोग करते हैं, तद्वत् सैनिक जन भी प्रजाकार्य्य मे आ सकें ॥१३॥

भावार्थ—सैनिक ऐसे शुद्धाचारी होने चाहिए कि जिनके नाम की कीर्ति व्याप्त हो और वे ऐसे प्रजाहितकारी हो कि सब उनसे अपने धन के समान लाभान्वित हो सके ॥१३॥

तान्वन्दस्व मरुतस्तां उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।

अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४॥

पदार्थ—हे प्रजागण (तान् मरुत) उन सैनिको की (वन्दस्व) स्तुति करो। (तान्) उनके (उप स्तुहि) पास जाकर वन्दना करो (हि) क्योकि (तेषाम् धुनीनाम्) दुष्टो को कँपाने वाले उन मरुदगणो की रक्षा मे हम सब वसते है (न) जैसे (अराणाम्) श्रेष्ठ पुरुषों का (चरम) पुत्रादि रक्षणीय होता है वैसे ही हम लोग सैनिको से रक्षणीय है (तद् एषाम्) इसलिये इनके (दाना) दान भी (मह्ना) महत्त्वपूर्ण हैं। (तद् एषाम्) अतएव इनकी स्तुति आदि करना अभीष्ट है ॥१४॥

भावार्थः—जो सेना आदर्श है, उसकी प्रशसा करनी ही चाहिए ॥१४॥

सुभगः स वं ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।

यो वा नूनमुतासंति ॥१५॥

पदार्थ —(मरुत) हे सैनिको ! (व) आप लोगो की (ऊतिषु) रक्षाओ मे जो (आस) रहे (स) वह जन (सुभग) सदा धनसम्पन्न होता है। कब ? (पूर्वासु व्युष्टिषु) अतीत, वर्त्तमान और भविष्यत् मे सुख पाता है। (उत) और (वा नूनम्) अवश्य ही (य) जो धन (असति) आप का होकर रहता है वह सदा सुखी होता है—यह सन्देह से परे है ॥१५॥

भावार्थ —जो देश सेनासे सुरक्षित हैं, वहाँ सभी जन सुखी रहते हैं। सेना के लिए उचित है कि वह लोभ, काम, क्रोध, और अपमानादि से प्रेरित होकर प्रजाओ मे कोई उपद्रव न करे, किन्तु प्रेम से प्रजा को अभय करे ॥१५॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।

अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६॥

पदार्थ —(नर) हे नेता ! आप (यस्य वा) जिस (वाजिन) यजमान के (हव्या) धनों के (प्रति) प्रति (वीतये) रक्षार्थ (आ गथ) आते-जाते हैं (धूतय) हे दुष्टो को कम्पाने वाली सेनाओ (स) वह (द्युम्नै) विविध धनो से तथा यश से (उत) और (वाजसातिभि) अन्नो के दानो से युक्त होता है। और (व) आप लोगो से सुरक्षित हो वह जन सदा (सुम्ना) विविध प्रकार के धनों को (अभिनशत्) अच्छी तरह मे पाता है ॥१६॥

भावार्थ.—सेनाओ के लिए उचित है कि वे प्रजा के धन और सुखों का पोषण करें और उसकी रक्षा करें ॥१६॥

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशंत्यसुरस्य वेधसः ।

युवानस्तथेदसत् ॥१७॥

पदार्थ —हे मानवो ! वे सैनिक (रुद्रस्य सूनव) प्रभु पुत्र हो अर्थात् ईश्वर-भक्त हो (दिव.) सुस्वभाव वाले (असुरस्य) भक्तो के (वेधस.) रक्षक हो तथा (युवान) युवा हो (यथा) जिस प्रकार यह कार्य सिद्ध हो (तथा इत्) वैसा ही (असत्) हो ॥१७॥

भावार्थ —यहाँ रुद्रादि शब्द से सैनिको का लक्षण वर्णित है। प्रथम रुद्रसूनु पद में दर्शाया गया है कि ईश्वरपुत्र जैसे परोपकारी आदि हो सकते है वैसे ही सैनिक हैं और प्रत्येक उत्तम कार्य्य के वे कर्ता है और युवा है। युवक सेना मे जितने कार्य्य करने मे समर्थ हैं उतन वृद्धादि नहीं ॥१७॥

ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।

अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥१८॥

पदार्थ —(मरुत.) हे सैनिको ! आप (मीळ्हुष.) सुख दाता हैं। उन सुख दाता (मीळ्हुष मरुत) सैनिको को (ये च अर्हन्ति) जो जन आदर करते हैं और (ये सुदानव.) जो सुदानी (स्मत्) भली प्रकार (चरन्ति) सेना के अनुकूल चलते है और सैनिको का आदर करते हैं (युवान) हे युवा सैनिको ! (अतश्चित्) इस कारण से भी (न) हमे आप (वस्यसा) परम उदार (हृदा) हृदय से (उपाववृध्वम्) सेवा और हमारा हित करो ॥१८॥

भावार्थ—यहा यह शिक्षा दी गई है कि सेना व प्रजा एक दूसरे की सहायता करें ॥१८॥

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।

गाय गा इव चर्कृषत् ॥१९॥

पदार्थ —(चर्कृषत्) किसान (गा इव) जैसे युवा बैलो का प्रशसक हो उन्हें कार्य्य मे लगाता है, तद्वत् (सोभरे) भरण-पोषण करने वाले जन ! आप (यून) तरुण (वृष्ण) सुखदाता (पावकान्) और तेजस्वी सैनिकों का (ऊषु) अच्छी रीति से (अभिगाय) आदर करें और काम मे लगाए ॥१९॥

भावार्थ —गृहस्थजन जैसे क्षेत्रोपकारी बैल इत्यादि को भली-भांति पालते व उन्हें काम मे लगाते है, वैसे ही प्रजा सेनाओ को पाले और उनमे काम ले ॥१९॥

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।

वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२०॥

पदार्थ—हे कविगणो, हे प्रजाजनो तथा हे विद्वद्वर्ग ! आप (हव्य) प्रशसनीय तथा युद्ध मे बुलाने योग्य (मुष्टिहा इव) मल्ल के तुल्य (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) युद्धो मे और (होतृषु) आह्वानकर्त्ता योद्धाओ मे (सहा. सन्ति) समर्थ व अभिभवकारी है उन (वृष्ण:) वर्षाकारी (चन्द्रान्) आनन्ददायक और (सुश्रवस्तमान्) अतिशय यशस्वी (मरुत) सैनिको की (अह) ही (न) इस समय (वन्दस्व) कीर्ति गाइये ॥२०॥

भावार्थ.—ऐसी सेनाएं ही प्रशसा के योग्य हैं जो अपना कार्य उत्तम रीति से करें ॥२०॥

गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

रिहते ककुभो मिथः ॥२१॥

पदार्थ —(समन्यव:) हे समान तेजस्वी या समान क्रोधी (मरुत:) दुष्टमारक शिष्टरक्षक सैनिको ! आप देखें। आप की रक्षा से ही (सजात्येन) समान जाति से (सबन्धव) समान बन्धुत्व को प्राप्त यह (गाव चित् घ) यशोगायिका प्रजा (ककुभ.) अपने-अपने स्थान मे (मिथ:) परस्पर (रिहते) प्रेम रत है। गौ, मेघ आदि पशु भी आनन्दित हैं ॥

भावार्थ —प्रजाजन सेनाओं द्वारा देश की रक्षा से परम सुखी और प्रेमी हो रहे है। अथवा पशुजाति मे भी परस्पर प्रेम है ॥२१॥

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।

अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥

पदार्थ - (नृतव:) हे प्रजारक्षक नाचने वाले। (रुक्मवक्षस) हे सुवर्ण-भूषणभूषितवक्षस्थल सैन्यजन ! (मर्त चित्) साधारण जन भी (व) आप के साथ (भ्रातृत्वम् उप आयति) भ्रातृत्व पाते हैं इस कारण (न) हम प्रजाओ को (अधि गात) अच्छे प्रकार यथोचित उपदेश दें। (मरुत) हे मरुद्गण (हि) जिस कारण (व.) आपका (आपित्वम्) बन्धुत्व (सदा) सदा (निध्रुवि अस्ति) निश्चल है ॥२२॥

भावार्थ.—सैनिकजनो को सब का प्रिय होना चाहिए और यथोचित कर्त्तव्य भी लोगो को समझाना चाहिए ॥२२॥

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।

यूयं सखायः सप्तयः ॥२३॥

पदार्थ —(सुदानव.) हे शुभ दानयुक्त। (सखाय) हे सखाओ (सप्तय) रक्षा के लिए इधर-उधर गमनशील (मरुत) मरुतो ! (यूयम्) आप (मारुतस्य) अपने सम्बन्धी (भेषजस्य) विभिन्न प्रकार की औषध (आ वहत न) हमारे उपकारार्थ लाए ॥२३॥

भावार्थ —प्रजा की भलाई के लिए विविध औषधो को प्रस्तुत करना भी सैनिकों का प्रमुख कार्य है ॥२३॥

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।

मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥२४॥

पदार्थ —हे सैनिको ! (याभि) जिस रक्षा और सहायता के द्वारा आप (सिन्धुम्) समुद्र की (अवथ) रक्षा करते हैं (याभि) जिन उपायो द्वारा (तूर्वथ) शत्रुओ का नाश करते है (याभि) जिस सहायता से (क्रिविम्) कूप बना बनवाकर प्रजा को (दशस्यथ) देते हैं। (मयोभुव) हे सुखदायक (असचद्विष) हे शत्रुरहित मरुद्गण ! आप (शिवाभि) उन कल्याण करने वाली (ऊतिभि) रक्षाओ से (न:) हम जनो को (मय भूत) सुख पहुँचावें ॥२४॥

भावार्थ —सागर मे व्यापारिक जलयानो की रक्षा नितान्त आवश्यक होती है अत वेद का कथन है कि समुद्र की रक्षा करना भी सैनिको का कर्त्तव्य है। तथा कुओ मे सदा जल रहे और उसमे शत्रुगण विषादि पदार्थ न मिला पाए, अत उनकी रक्षा का भी निर्देश है ॥२४॥

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।

यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥२५॥

पदार्थ -सैनिको के लिए विभिन्न कर्त्तव्यो का उपदेश है। (सुबर्हिष:) रक्षारूप महायज्ञ के कर्त्ता (मरुत) मरुद्गण ! (सिन्धौ) प्रवाहित जलाशयो में (यत्) जो (भेषजम्) औषधि है। (यत् असिक्न्यां) कृष्ण जलवाली नदी मे जो औषधि है, (समुद्रेषु) समुद्रों मे (यत्) जो औषधि प्राप्य है और (पर्वतेषु) पर्वतो पर (यत्) जो औषधि है उसे प्रजा के हित के लिए लाओ ॥२५॥

भावार्थ —सैनिको का कर्त्तव्य यह भी है कि औषधियो का सग्रह करें ॥२५॥

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।

क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः॥ २६॥

पदार्थ—(मरुतः) हे सैनिको ! (विश्वम्) सारी औषधी को (पश्यन्त) देखते व जानते हुए आप उन्हे लाकर (तनूषु) आपके शरीरस्वरूप हम मे (आविभृथ) स्थापित करो और (तेन) उनसे (न) हमें कर्तव्याकर्तव्य का (अधिवोचत) उपदेश दें । हे सैनिको ! हम मे (आतुरस्य) जो रोगी हो उसके (रप) पापजनित रोग को (क्षमा) दूर जैसे भी हो आप करें और (विह्रुतम्) टूटे अङ्ग (पुन.) फिर (इष्कर्त) अच्छी तरह पूर्ण करो ॥२६॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि सैनिको का एक आवश्यक कार्य चिकित्सा करना भी है ॥२६॥

अष्टम मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ अष्टादशर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य सोभरि काण्व ऋषि ॥ १—१६ इन्द्रः । १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक् । १३, १७ निचृदुष्णिक् । ५, ७, ६, ११ उष्णिक् ककुप् । २, १२, १४ पादनिचृद् पङ्क्तिः । १० विराट् पङ्क्तिः । ६, ८, १६, १८ निचृत् पङ्क्ति । ४ भुरिक् पङ्क्ति ॥ स्वर —१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७ ऋषभ । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८ पञ्चम ॥

पुनः परमदेव की स्तुति ॥

व॒यमु॑ त्वामपूर्व्य स्थू॒रं न कच्चि॒द्भर॑न्तोऽव॒स्यवः॑ ।
वाजे॑ चि॒त्रं ह॑वामहे ॥१॥

पदार्थ—(अपूर्व्यः) हे अपूर्व ! (त्वाम् उ) तुझे ही (वयम्) हम सब मिलकर (हवामहे) पुकारते है जो तू (वाजे) विज्ञान के लिए (चित्रम्) आश्चर्य है और हम सब (कच्चित्) कुछ भी (स्थूरम्) दृढ वस्तु (न भरन्तः) रखनेवाले नही किन्तु (अवस्यव) आपसे रक्षा की कामना करत है ॥१॥

भावार्थ अपूर्व्य जिसके जैसा कोई नही वह अपूर्व है । वेद मे अपूर्व्यं होता है । "वाज" अनेकार्थक शब्द है । ज्ञान, अन्न, युद्ध गमन आदि इसके अनेक अर्थ हैं ॥१॥

वही सेव्य है यह इसमें प्रदर्शित है ॥

उप॑ त्वा॒ कर्म॑न्नू॒तये॒ स नो॒ युवो॒ग्रश्च॑क्राम॒ यो धृ॒षत् ।
त्वामिद्ध्य॑वि॒तारं॑ ववृ॒महे॒ सखा॑य इन्द्र सान॒सिम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र (ऊतये) रक्षार्थ (कर्मन्) प्रत्येक शुभ कार्य मे (त्वा) तुझे (उप) आश्रय बनाते हैं । (यः) जो इन्द्र (धृषत्) सर्व विघ्न विनाशक है (युवा) जो सदैव एकरस व (उग्र) उग्र है (स) वह (न) हमे (चक्राम) प्राप्त हो । अथवा हमे उत्साह दो । हे इन्द्र ! (त्वाम् इत्) तुझे ही हम (अवितारम्) अपना रक्षक तथा (सानसिम्) सेवनीय (सखाय) हम मनुष्यगण (ववृमहे) मानते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस प्रकार हम ऋषिगण उस परमात्मा की उपासना करते है उसी प्रकार आप भी करे ॥२॥

रक्षा के लिए प्रार्थना ॥

आ या॑हीम॒ इन्द॒वोऽश्व॑पते॒ गोप॑त॒ उर्व॑रापते ।
सोमं॑ सोमपते पिब ॥३॥

पदार्थ—(अश्वपते) हे अश्वपति ! (गोपते) हे गोपति ! हे (उर्वरापते) क्षेत्रपति ! (सोमपते) हे सोमादि लताओ के स्वामी (इमे इन्दव) ये सोमादि लताए आपकी हैं । (आयाहि) उनकी रक्षार्थ आप आएं और (सोमम् पिब) सोमादि पदार्थों पर कृपा कर उनकी रक्षा करें ॥३॥

भावार्थ—उपजाऊ भूमि ही उर्वरा कहलाती है । परमात्मा हमारे पशु, खेतो व लताओ की भी रक्षा करता है ॥३॥

वही स्तवनीय है यह बतलाया गया है ॥

व॒यं हि त्वा॒ बन्धु॑मन्तमब॒न्धवो॒ विप्रा॑स इन्द्र येमि॒म ।
या ते॒ धामा॑नि वृषभ॒ तेभि॒रा ग॑हि॒ विश्वे॑भिः॒ सोम॑पीतये ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभु ! (वयम् विप्रास) मेधावीगण हम (अबन्धव) बन्धुओ से रहित है । और तू (बन्धुमन्तम्) बन्धुमान् है । हम (त्वा येमिम) उस तुझे आश्रय बनाते हैं (वृषभ) हे सर्वकामनापूर्णकर्त्ता (ते या धामानि) तेरे जितने ससार हैं (तेभि विश्वेभिः) उन सभी जगतो के सहित विद्यमान (सोमपीतये) सोमादि पदार्थों को कृपादृष्टि से देखने हेतु (आगहि) आ ॥४॥

भावार्थ—यो तो भाई, पुत्र, परिवार आदि बन्धु-बान्धव सब के न्यूनाधिक होते है, तथापि वास्तविक बन्धु परमात्मा ही है ॥४॥

वह नमस्कारयोग्य है यह इससे प्रदर्शित है ॥

सीद॑न्तस्ते॒ वयो॑ यथा॒ गोश्री॑ते॒ मधौ॑ मदि॒रे वि॒वक्ष॑णे ।
अ॒भि त्वामि॑न्द्र नोनुमः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टा ! (त्वाम्) तुझे हम सब (अभिनोनुमः) सब प्रकार से बारम्बार स्तुति करते हैं । (यथा वय) जैसे पक्षी अपने घोंसले में सानंद रहते हैं इसी तरह हम सब (ते) तेरे (गोश्रीते) दूध, दही पदार्थों से मिले हुए (मधौ) मधुर (मदिरे) आनन्द स्रष्टा (विवक्षणे) इस ससार मे आनन्द से (सीदन्त) बैठे हैं अतएव तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थ—जीव मनुष्य-शरीर पा नाना भोग भोगते हुए नितान्त आनन्द सहित परमात्मा द्वारा बनाए ससार मे विश्राम कर रहा है अत भगवत् स्तुति प्रार्थना उचित ही है ॥५॥

प्रार्थना का विषय ॥

अच्छा॑ च त्वै॒ना नम॑सा॒ वदा॑मसि॒ किं मुहु॑श्चि॒द्वि दी॑धयः ।
सन्ति॒ कामा॑सो हरिवो द॒दिष्ट्वं स्मो व॒यं सन्ति॑ नो॒ धियः॑ ॥६॥

पदार्थ—(अच्छा च) और भी (एना नमसा) इस नमस्कार से (त्वा वदामसि) तेरी बार-बार प्रार्थना करते है (किम्) किस कारण तू (मुहु. चित्) भूयो भूय (विदीधय.) चिन्तित है । (हरिव) हे ससारीय (कामास सन्ति) हमारी अनेक कामनाए हैं (त्वम् ददि) तू दाता है (वयम् स्म) हम तेरे हैं (न. धियः) हमारी क्रिया व ज्ञान (सन्ति) विद्यमान हैं अत तुझ से याचना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—मानव हृदय मे अनेक कामनाए है, इनमे से हितकर तथा शुभ कामनाओ की परमात्मा पूर्ति करता है ॥६॥

उसका ज्ञान करना अभीष्ट है ॥

नू॒त्ना इदि॑न्द्र ते व॒यमू॒ती अ॑भूम न॒हि नू ते॑ अद्रिवः ।
वि॒द्मा पु॒रा परी॑णसः ॥७॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे प्रभु ! (अद्रिवः) हे ससार की रक्षा करनेवाले यद्वा हे ससारी ! हम उपासक (ते) तेरी (ऊती) रक्षा मे (नूत्ना इत) नूतन ही हैं (नहि) यह नही किन्तु प्राचीन भी हैं । (पुरा) पूर्वकाल से ही (परीणस. ते) तुझे नितान्त उदार (विद्म) जानते है (नू) यह निश्चित है ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा की सदा से ही रक्षा होती आई है, वह असीम उदार है, अत वही वन्दनीय है ॥७॥

इससे प्रार्थना दिखाते हैं ॥

वि॒द्मा स॑खि॒त्वमु॒त शू॑र भो॒ज्य१॒॑मा ते॒ ता व॑ज्रिन्नीमहे ।
उ॒तो स॑मस्मि॒न्ना शि॑शीहि नो वसो॒ वाजे॑ सुशिप्र॒ गोम॑ति ॥८॥

पदार्थ—(शूर) हे शूरवीर ! (उत) और (सखित्वम् विद्म) तेरी मित्रता हम जानते है । (वज्रिन्) हे दण्डधारी ! (भोज्यम्) तूने जीवों को जो नाना भोज्य पदार्थ प्रदान किये है उन्हे भी हम जानते हैं । हम (ते) तेरी (ता) उस मित्रता व भोज्य पदार्थ का (आ) सब प्रकार (ईमहे) चाहते हैं । (उतो) और (वसो) हे वसो ! (सुशिप्र) हे सुशिष्टजन पूरक ! (न) हम को (गोमति) गवादियुक्त (समस्मिन् वाजे) समग्र धन और विज्ञान मे (आ शिशीहि) स्थापित कर ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा ने हम जीवो के भोग हेतु सहस्रो पदार्थ प्रदान किए हैं । फिर भी हम जीव विकल ही रहते है । इसका कारण है अनुद्योग ॥८॥

प्रार्थना कर्त्तव्य है यह वर्णित है ॥

यो न॑ इ॒दमि॑दं पु॒रा प्र वस्य॑ आनि॒नाय॒ तमु॑ वः स्तुषे ।
सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥९॥

पदार्थ—(सखायः) हे सखाओ ! (य) जो परमात्मा (न) हम जीवो के सुख हेतु (पुरा) सृष्टि के आरम्भ मे ही (वस्यः) प्रशस्त (इदम् इदम्) इस सारे जगत् और इन पदार्थों को (प्र आनिनाय) लाया है (तम उ इन्द्रम्) उसी की (व ऊतये) तुम्हारी रक्षार्थ (स्तुषे) वन्दना करते है ॥९॥

भावार्थ.—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अनन्त पदार्थों को भूमि पर प्रस्तुत करता है वही पूज्य है अन्य कोई नही ॥९॥

उसके गुण कीर्तनीय हैं ॥

हर्य॑श्वं॒ सत्प॑तिं चर्षणी॒सहं॒ स हि ष्मा॒ यो अम॑न्दत ।
आ तु नः॒ स व॑यति॒ गव्य॒मश्व्यं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घवा॑ श॒तम् ॥१०॥

पदार्थः—(स हि स्म) वही व्यक्ति परमात्मा का पूजक है (य अमन्दत) जो इस संसार मे पुत्रादि के साथ सब सुखो का अनुभव करता है । कैसा वह परमात्मा है—(हर्यश्वम्) यह ससार ही उसका अश्व है, (सत्पतिम) जो सत्पति है, (चर्षणीसहम्) दुष्टजन शासक है इसलिए (स मघवा) श्रेष्ठ धनसम्पन्न वह प्रभु (शतम्) विविध (गव्यम्) गोयुक्त (अश्व्यम) अश्वयुक्त धन (न स्तोतृभ्य) हम स्तुतिपाठको को तू शीघ्र (आवयति) दे ॥१०॥

भावार्थ—वही परमपिता हम जीवो का मनोरथ पूर्ण करने मे समर्थ है ॥१०॥

उसका उपासक विजयी होता है ॥

त्वया॑ ह स्विद्यु॒जा व॒यं प्रति॑ श्व॒सन्तं॑ वृषभ ब्रुवीमहि ।
सं॒स्थे जन॑स्य॒ गोम॑तः ॥११॥

पदार्थ —(वृषभ) हे सकल मनोरथ पूर्ण करने वाले ! (गोमत) पृथिवीपति मनुष्य के (संख्ये) सग्राम मे (श्वसन्तम्) अतिशय क्रोध से हांपते शत्रुओं को (युजा) सहायक (त्वया ह स्वित्) तेरी ही सहायता से (प्रति ब्रुवीमहि) प्रत्युत्तर देते हैं अर्थात् तेरी ही सहायता से उन पर विजय पाते हैं ॥११॥

भावार्थ —जो व्यक्ति परमात्मा को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे महान् शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करते हैं ॥११॥

उसकी कृपा से ही जय होती है ॥

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।

नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥१२॥

पदार्थः—(पुरुहूत) हे बहुतों द्वारा आहुत ! हे बहुपूज्य ! हे सर्वनिमन्त्रित (कारे) संघर्ष मे (कारिणः) हिंसा करने वालों को (जयेम) विजय करें (दूढ्य) दुर्मति पुरुषों को (अभि तिष्ठेम) पराजित करें (वृत्रम्) विघ्नों को (नृभि) पुत्र इत्यादि के साथ (हन्याम) हनन करें, इस तरह शत्रुओ व विघ्नो को हटा कर (शूशुयाम) जगत् मे बढ़ें । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (न) हमारी (धियः) बुद्धियों व क्रियाओं को (आवे) अच्छी प्रकार बचाए ॥१२॥

भावार्थ —उपासना करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित है कि वह अपने आन्तरिक और बाहरी विघ्नो का शमन करे ॥१२॥

उसका गुणगान योग्य है यह इससे प्रदर्शित है ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥१३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमात्मा ! (जनुषा) ससार के जन्म के साथ ही (सनात्) सर्वदा (अभ्रातृव्य असि) तू बन्धुरहित है । (अना) तेरा नायक कोई नहीं (त्वम् अनापि.) तू बन्धुरहित है (युधा इत्) युद्ध द्वारा (आ पित्वम्) बन्धुता को (इच्छसे) चाहता है ॥१३॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा सारे अपराधो से रहित है तथापि इसका बन्धु जीवात्मा है । वह जीवात्मा को ही ससार मे विजयी देखना चाहता है । जो जीव जीतता है वही उसका असली बन्धु है ॥१३॥

दुर्जन का स्वभाव दिखाते हैं ॥

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥१४॥

पदार्थ —हे इन्द्र ! तू जो व्यक्ति (रेवन्तम्) केवल धनी है किन्तु दान और यज्ञादि से वंचित है उसको (सख्याय नकिर्विन्दसे) मैत्री के लिये प्राप्त नहीं करता । अर्थात् ऐसे पुरुष से तू मैत्री नही करता, क्योंकि (सुराश्व) सुरा इत्यादि निरर्थक द्रव्यों से सुपुष्ट नास्तिक (त्वाम् पीयन्ति) तेरे नियमो को नहीं मानते । परन्तु (यदा) जब तू (नदनुम्) मेघ द्वारा गर्जन (कृणोषि) करता है और (समूहसि) महामारी आदि भयकर रोगो से लोगो को महारता है (आत इत्) तब (पिता इव हूयसे) पिता के तुल्य आहूत व पूजित होता है ॥१४॥

भावार्थः—जो लोग पापात्मा तथा दुराचारी है वे परमात्मा के नियमों को भग करते रहते हैं, परन्तु जब वे विपत्ति में पड जाते हैं तो उसको ही पुकारते हैं ॥१४॥

इससे आशीर्वाद मांगते हैं ॥

मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः ।

नि षदाम सचा सुते ॥१५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टा ! (त्वावत सख्ये) तेरे सदृश देव की मैत्री मे (मूरास) मूढ़जन (यथा) जैसे (अमाजुर) अपने घर पर ही रहकर व्यसनों मे फंसे रोगों से पीडित हो नष्ट होते हैं (तथा) वैसे (ते) तेरे उपासक हम लोग न हो जिसलिये हम उपासक (सुते सचा) यज्ञ के साथ (नि षदाम) बैठते हैं ॥१५॥

भावार्थ —हम आलसी कदापि न बनें और व्यर्थ समय नष्ट न करें, किन्तु ईश्वरीय आज्ञा का पालन कर सदा शुभकर्म मे लगें ॥१५॥

मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।

दृळहा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥१६॥

पदार्थ —(गोदत्र) हे गौ आदि पशुओ के दाता (ते) तेरे उपासक हम (राधस·) सम्पत्तियो से (मा निरराम) पृथक् न हो । और (ते) तेरे उपासक हम (मा गृहामहि) दूसरे का धन न लें । (अर्य) तू धन का स्वामी (दृढाचित्) दृढ़ धनो को भी (प्र मृश) दे (अभि आभर) सब प्रकार से हमे पुष्ट कर (ते दामान·) तेरे दान (न आदभे) अनिवार्य है ॥१६॥

भावार्थ —हम अपने पुरुषार्थ द्वारा धनसग्रह करें । दूसर के धनो की कदापि आशा न करें । ईश्वर से ही हम अभ्युदय के लिए याचना करें ॥१६॥

परमात्मा बहुत धन देता है, यह प्रदर्शित है ॥

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।

त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१७॥

पदार्थः—(वा) अथवा क्या (इन्द्र घ इत्) परमात्मा ही (इयत् मघम्) इतना धन (दाशुषे) भक्तों को (ददि) देता है (वा) अथवा (सुभगा सरस्वती) अच्छी सरिताए (वसु) इतना धन देती हैं—आगे कहते हैं (चित्र) हे विचित्र ! (दाशुषे) भक्तो को (त्वा) तू ही धन प्रदान करता है । (वा) यह निश्चित है ॥१७॥

भावार्थ —जहां सरिताओं व मेघो के कारण धन उपजता है वहां के लोग धन देने वाले ईश्वर को न समझ नदी आदि को ही धनदाता समझकर पूजते हैं ; इसका वेद मे निषेध है ॥१७॥

ईश्वर ही सर्वशासक है ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।

पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥

पदार्थ —(चित्र इत्) आश्चर्यजनक प्रभु ही (राजा) सर्व शासक है (सरस्वतीम् अनु) नदी तट वासी (यके अन्यके) जो अन्यान्य मनुष्य व राजा हैं वे (राजका इत्) ईश्वराधीन ही राजा है (वृष्ट्या पर्जन्य इव) जैसे वर्षा से मेघ वैसे ही वह ईश्वर (सहस्रम्) सहस्रो (अयुता) और अयुतो धन (ददत्) देता हुआ (ततनत्) जगत् को विस्तार देता है ॥१८॥

भावार्थ —अनेक अज्ञानी राजा व नदी आदि को धनदाता समझकर उसे ही पूजते हैं, वेद इसको निषिद्ध ठहराता है ॥१८॥

अष्टम मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य सोभरि काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । ३, ५ निचृद्बृहती । ७ बृहती पथ्या । २ विराट् पंक्ति. । ६, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४, १० सत पंक्तिः । १४ भुरिक् पंक्ति. । ८ अनुष्टुप् । ९, ११, १७ उष्णिक् । १३ निचृदुष्णिक् । १५ पादनिचृदुष्णिक् १२ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वर.—१, ३, ५, ७ मध्यम २, ४, ६, १०, १४, १६, १८ पञ्चम । ८ गान्धार. । ९, ११, १३, १५, १७ ऋषभः । १२ धैवत. ॥

राजधर्मों का उपदेश ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।

यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥१॥

पदार्थ —मैं विद्वान् (अद्य) आज सुदिन मे या दिन मे (दंसिष्ठम्) परमकमनीय या अतिशय शत्रुविनाशक (त्यम् रथम्) उस सुप्रसिद्ध रमणीय नितान्त तीव्र विमान को (ओ) सर्वत्र (ऊतये) रक्षार्थ (आ अह्व) बनाता हूं या आह्वान करता हूं (यम्) जिस रथ के ऊपर (सुहवा) जो सर्वत्र भली भांति बुलाये जाते हैं या जिनका बुलाना सरल है और (रुद्रवर्तनी) जिनका मार्ग प्रजा की दृष्टि मे भयकर है (अश्विनौ) ऐसे हे राजा व अमात्यवर्ग ! आप दोनों (सूर्यायै) महाशक्ति के लाभ हेतु (आ तस्थथु) बैठेंगे ॥१॥

भावार्थ —विद्वानों के लिए उचित है कि नवीनतम रथ और विमान आदि का आविष्कार करें जिनसे राज्यव्यवस्था मे सुविधा हो तथा शत्रुओं पर आतङ्क स्थापित हो ॥१॥

रथ के विशेषण ॥

पूर्वायुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।

सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥२॥

पदार्थ.—(सोभरे) हे विद्वानो ! आप जो रथ (पूर्वायुषम्) पूर्ण रीति सहित पोषण व पूर्व पुरुषों की पुष्टि करे (सुहवम्) जिसका गमनागमन सरल हो (पुरुस्पृहम्) जिसे बहुत विद्वान् पसन्द करें (भुज्युम्) जो प्रजापालक हो (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्व्यम्) पूर्ण हो (सचनावन्तम्) जल, स्थल व आकाश तीनों में जिसका गमन संभव हो (विद्वेषसम्) शत्रुओ से पूर्ण विद्वेषी हो और (अनेहसम्) जो दूसरों से हिंस्य न हो ऐसे रथो का (सुमतिभि) तीक्ष्ण बुद्धि लगाकर रचना करें ॥२॥

भावार्थः—जो रथ अथवा विमान या नौका आदि मजबूत चिरस्थायी व सग्रामादि कार्यों के योग्य हों वैसी बहुत सी रथ आदि वस्तुए सदा विद्वान् निर्माण करें ॥२॥

आपके लिये कैसे राजा और मन्त्रिदल भेजता हूं उसे हे लोगो तुम समझो !

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।

अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥३॥

पदार्थ—हे लोगो ! जो शासक और मन्त्री दोनो (इह) इस धरती पर (पुरुभूतमा) बहुजन को अत्यधिक सम्मान प्रदाता हो । (देवा) दिव्यगुणयुक्त हो (नमोभि) सन्मानो से पूर्ण हो (अश्विना) अश्वो से युक्त हो या गुणो से प्रजा के हृदय में बसते हो । (अर्वाचीना) युद्ध मे सदैव अभिमुख जाने वाले हों तथा (दाशुष) भक्तो के (गृहम्) घर पर (गन्तारा) गमनशील हों ऐसे नरेश व मन्त्रिदल को (अवसे) ससार की रक्षार्थ (करामहे) नियुक्त करते हैं ॥३॥

भावार्थः—प्रजा मिलकर उन्हें अपना राजा बनाए जो विद्वान्, साहसी, सत्यवादी और जितेन्द्रियत्व आदि गुणयुक्त हों। जिन मे स्वार्थ तनिक सा भी न हो, किन्तु जन हित के लिये जिनकी सकल निष्ठा हो ॥३॥

प्रजा को स्वगृह पर राजा और मन्त्रिदल को बुलाने की शिक्षा ॥

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।

अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥४॥

पदार्थः—हे राजा तथा मन्त्रियो ! आप महाप्रतापी हैं क्योंकि (युवोः) आप के (रथस्य) रथ का एक ही (चक्रम्) पहिया (परि) प्रजा में सर्वत्र (ईयते) जाता है (अन्यत्) और दूसरा (वाम्) आपकी ही (इषण्यति) सेवा करता है अर्थात् आपके धर्मपरिश्रम से ही प्रजापालन होता है। आप कैसे हैं ? (ईर्मा) कार्य जान वहां सेनादि को भेजने वाले। (शुभस्पती) हे शुभकर्मों के रक्षको ! जिस हेतु आप शुभस्पति हैं अतः (धेनु इव) वत्स के लिए नवप्रसूता गौ के तुल्य (वाम्) आप की (सुमतिः) सुमति (अस्मान् अच्छ) हमलोगों की ओर (आधावतु) दौड़ आए ॥४॥

भावार्थः—जो नीतिनिपुण तथा वीरत्व इत्यादि गुणयुक्त नरेश और मन्त्री हों उन्हें ही प्रजा जन् मिलकर सत्कृत करें ॥४॥

राजा माननीय है ॥

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।

परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥

पदार्थः—(अश्विना) हे अश्वयुक्त ! (नासत्या) सत्यस्वभाव राजा तथा अमात्यो ! (वाम्) आप का (यः रथः) जो रमणीय रथ अथवा विमान (त्रिवन्धुरः) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का बन्धु है (हिरण्याभीशुः) जिसके अश्वों का लगाम स्वर्णयुक्त है जो (द्यावापृथिवी) द्युलोक व पृथिवी के बीच मे (परि-भूषति) शोभित है और जो (श्रुतः) सर्वत्र प्रसिद्ध है (तेन) उस विमान से हम लोगो के समीप (आगतम्) आए ॥५॥

भावार्थ—राजा अपने मन्त्रिदल सहित समय-समय पर गृहों पर आकर सत्कार पाए ॥५॥

राज-कर्त्तव्य ॥

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।

ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥४॥

पदार्थः—(शुभस्पती अश्विना) हे शुभकर्मी राजा तथा मन्त्रियो ! आप स्वय (मनवे) मानव जाति को (दशस्यन्ता) उत्तमोत्तम शिक्षा या विद्या देते हैं उदाहरणार्थ (दिवि) व्यवहार के लिए (यवम्) यवक्षेत्र को (पूर्व्यम्) पूर्ण रीति से (वृकेण) हल के द्वारा (कर्षथ) खेती करते हैं। अर्थात् यवादि अन्न के लिए खेतो मे स्वय हल चलाते हैं। आप ऐसे अनुग्रहकारी हैं (ता) उन (वाम्) आप दोनो को (सुमतिभिः) सुन्दर बुद्धि से अथवा सुस्तोत्रों से (प्रस्तुवीमहि) अच्छी प्रकार हम वन्दना करें ॥६॥

भावार्थ—यदा-कदा राजा व मन्त्रिदल भी अपने आप हल चलावें जिससे इतर प्रजा मे भी कृषि-कार्य का उत्साह हो अतएव वेद में हल चलाने की भी विधि का उल्लेख है ॥६॥

पुन राजकर्त्तव्य का कथन ॥

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।

येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥७॥

पदार्थः—(वाजिनीवसू) बुद्धि, विद्या, वाणिज्य, और अन्न इत्यादि को वाजिनी कहते है ये ही धन हैं जिनके वे वाजिनीवसु अर्थात् हे बुद्धि आदि धन देने वाले राजा तथा अमात्यो ! (ऋतस्य) सत्य के (पथिभि) मार्गों से विस्तार करते हुए आप (न) हमारे (उप यातम्) निकट आएं (वृषणा) हे धनादि देने वाले (येभि) जिन पथों से (त्रासदस्यवम्) दस्यु सहारक (तृक्षिम्) सेनानायक को (महे) महान् (क्षत्राय) क्षात्रधर्म की वृद्धिहेतु (जिन्वथः) प्रसन्न रखते हैं ॥७॥

भावार्थ—मन्त्रिगण सहित राजा सदैव सत्पथ पर उन्नति करते रहें और पक्षपात त्याग सब की भलाई के वर्धन और रक्षा मे लगे रहें ॥७॥

राजा आदरणीय है यह दर्शाया गया है ॥

अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।

आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥८॥

पदार्थः—(नरा) हे सब के नेता ! (वृषण्वसू) हे धन की वर्षा करने वाले! (वाम्) आपके लिये (अयम्) यह (सोमः) सोमरस (अद्रिभिः) शिलाओं से (सुत) पीसा है अतः (सोमपीतये) सोम पीने हेतु (आयातम्) आएं और आकर (दाशुषः गृहे) दानी या भक्त के घर (पिबतम्) सोमरस का पान करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि राजा और मन्त्रियों का सत्कार होना चाहिए ॥८॥

राजकर्त्तव्य ॥

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।

युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९॥

पदार्थः—(वृषण्वसू) हे धन देने वाले महाधनेश्वर ! (अश्विना) अश्व वाले राजा व मन्त्री आप दानो (कोशे) द्रव्यादि कोषयुक्त (हिरण्यये) सुवर्णरचित रमणीय रथ अथवा विमान पर (आ रुहतम् हि) अवश्य विराजें और बैठकर (पीवरी) बहुत (इषः) इष्यमाण अन्नादि सम्पत्तियो को (युञ्जाथाम्) हम लोगो मे स्थापित करें ॥९॥

भावार्थ—राजा और राज्यकर्मचारी विमान आदि पर आरूढ़ हो प्रजा के कल्याण हेतु इधर-उधर सदा घूमते हुए उनके सुख मे वृद्धि करे ॥९॥

पुन राजकर्मों की शिक्षा ॥

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।

ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजन् व मन्त्रियो ! (याभि) जिन से आप (पक्थम्) शास्त्र तथा व्यवहार परिपक्व निपुण जनो की (अवथ) रक्षा करते हैं (याभि) जिन रक्षाओ से (अध्रिगुम्) पशु की रक्षा करते हैं (याभि) जिन से (बभ्रुम्) अनाथो के पोषणकर्ता की तथा (विजोषसम्) विशेष प्रीतिसम्पन्न की रक्षा करते हैं (ताभि) उन से ही (न) हमारी रक्षा करने (मक्षु) शीघ्र (तूयम) शीघ्र ही (आगतम्) आए और (यत्) यदि कोई (आतुरम्) आतुर पुरुष हो तो (भिषज्यतम्) उसे औषधि दें ॥१०॥

भावार्थ—मन्त्रिगण एव राजा सभी प्रकार के लोगों (अन्धे, बहरे पङ्गु इत्यादि) और प्राणियों की रक्षा करें कराए। औषधालयो को सर्वत्र स्थापित कर चिकित्सा की व्यवस्था करें ॥१०॥

पुनः वही विषय ॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।

वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥

पदार्थ—(अध्रिगू) हे असमर्थों की रक्षा करने वाले (अश्विना) राजा तथा मन्त्रियो ! (यत्) यद्यपि हम (अध्रिगाव) शिथिल हैं तथापि (विपन्यवः) आपके गुण गायक हैं अतएव (वयम्) हम (गीर्भि) वचनों से (अह्नः) दिन के (इदा चित्) इसी समय आपको (हवामहे) पुकारते हैं। आप हमारी रक्षार्थ यहा आए ॥११॥

भावार्थ—हे राजन् तथा मन्त्रियो ! हम शिथिलेन्द्रिय होकर भी आपके गुण-गायक हैं और आपको पुकारते हैं। आप हमारी रक्षा करें ॥११॥

राजकर्त्तव्य का उपदेश ॥

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।

इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥१२॥

पदार्थः—(वृषणा) हे नाना प्रकार के धनों के दाता ! (इषा) हे अभि-लाषयुक्त (मंहिष्ठा) हे प्रशसनीय दानी ! (पुरुभूतमा) हे बहु स्थानो व मनुष्यो के मध्य जाने आने वाले (नरा) हे सर्वनेता ! (मे) मेरे (विश्वप्सुम्) विविध रूपयुक्त (विश्ववार्य्यम्) सर्वप्रिय (हवम्) आह्वान की ओर (उप यातम्) आए। और (ताभि) उन रक्षाओ सहित (आयातम्) आए। हे राजा ! (क्रिविम) दुःखकूप मे पतित के प्रति (याभि) जिन रक्षाओ सहित (वावृधु) जाने हेतु आगे बढ़ते हैं (ताभिः) उनके सहित हमारी ओर (आगतम्) आए ॥१२॥

भावार्थ—राज्य के कर्मचारी लोकप्रिय और नितान्त उदार हो जो प्रजा-रक्षार्थ सदा सिद्ध रहें ॥१२॥

राजवर्ग के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य ॥

ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे ।

ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३॥

पदार्थ—(अहानाम्) दिनो के (इदाचित्) प्रात ही मैं (तौ) उन्हीं (अश्विना) राजा आदि को (वन्दमान) नमस्कार कर (उपब्रुवे) समीप जाकर प्रार्थना करता हू। और हम सब मिलकर (ता ऊ) उनसे ही (नमोभिः) प्रार्थना द्वारा (ईमहे) अनुरोध करते हैं ॥१३॥

भावार्थ—राजा को नमस्कार कर उनसे मिलकर हम सब याचना करें ॥१३॥

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।

मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४॥

पदार्थः—हम (तौ इत्) उन्ही (शुभस्पती) शुभकर्मपति अन्नप्रदाता व (रुद्रवर्तनी) कठिन मार्गवालो को (दोषा) रात्रि मे सत्कार करते है (ता) उन्हें ही (उषसि) प्रातःकाल (ता) उन्हे ही (यामन्) सर्व काल व यज्ञो मे सम्मान करते हैं ! (वाजिनीवसू) हे ज्ञानधनो ! (रुद्रौ) हे दुष्टदमनकारी ! आप (न) हमें (मर्ताय रिपवे) दुर्जनों के निकट (मा परः अति ख्यतम्) न फेंकें ॥१४॥

भावार्थः—प्रजा के लिए उचित है कि वह अपने सुख-दुःख से राजा को अवगत कराए और यथोचित रीति से उनसे शुभकर्म कराए ॥१४॥

आ शुम्यांय शुम्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।

हुवे पितेव सोभरी ॥१५॥

पदार्थ —(सक्षणी) हे सेवनीय (अश्विना) हे राजा व अमात्यो ! आप दोनो (शुम्याय) सुखयोग्य पुरुष को (शुम्यम्) सुख (प्रात) प्रात ही (रथेन) रथ से (आ) भली प्रकार पहुँचाए । हे राजन् ! (सोभरी) मैं विद्वान् (पिता इव) अपने पिता-पितामह के तुल्य (हुवे) आपकी वन्दना करता हूं ॥१५॥

भावार्थ —राजवर्ग के लिए उचित है कि वह प्रात काल उठकर नित्यकर्म से निवृत्त हो पूज्यजनो का समाचार जानें ॥१५॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः ।

आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥१६॥

पदार्थ —(मनोजवसा) हे मनोवेग ! (वृषणा) हे धनादि के दाता ! (मदच्युता) हे आनन्ददाता (पुरुभोजसा) हे बहुतो को भोजन के दाता राजन् व अमात्यो आप दोनो (मक्षुङ्गमाभि) शीघ्रगामी (पूर्वीभि) सनातनी (ऊतिभि) रक्षाओ से (अस्मे) हमारी (अवसे) रक्षार्थ (आरात्तात् चित्) समीप मे ही (भूतम्) हो । आप हमारे समीप मे ही सदा रहे ॥१६॥

भावार्थः—राज्य की ओर से प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध उचित ढग से किया जाना चाहिए ॥१६॥

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्ट मधुपातमा नरा ।

गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७॥

पदार्थः—(मधुपातमा) हे मधुर पदार्थ रक्षक (दस्रा) हे दर्शनीय (अश्विना) राजन् व न्यायाधीशादि ! आप दोनो (न) हमारे (वर्ति) घर पर (आ यासिष्टम्) आय और आकर (अश्वावत) अश्वयुक्त (गोमत्) गोयुक्त यथा (हिरण्यवत्) सुवर्णमय धन दिया । आपकी यह महती अनुकम्पा है ॥१७॥

भावार्थ —राजा की उदारता के लिए उनको हृदय से धन्यवाद देना प्रजा का कर्त्तव्य है यही शिक्षा यहा दी गई है ॥१७॥

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।

अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८॥

पदार्थ —हे राजा तथा मन्त्रिगण ! हमारा (वार्य्यम्) धन (सुप्रावर्गम्) भली-भांति दान देने योग्य हो (सुवीर्यम्) वीरपुरुषयुक्त हो (सुष्ठु) सुन्दर हो और जिस धन को (रक्षस्विना) बलशाली भी (अनाधृष्टम्) नष्ट न कर पाए (वाजिनीवसू) हे विज्ञान पारगतो ! (वाम्) आप के (अस्मिन् आयाने) आगमन से (विश्वा वामानि) हम ने मानो सब धन ही (आ धीमहि) प्राप्त कर लिया ॥१८॥

भावार्थ —राजा यदि रक्षा का सुनिश्चित प्रबन्ध न करे तो सभी अज्ञानी प्रजाए आपस मे लड कर नष्ट हो जायगी । अत राज्य-प्रबन्धकर्त्ता सभी प्रबन्ध प्रतिक्षण रखे ॥१८॥

अष्टम मण्डल मे बाईसवा सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रिंशदृचस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वमना वैयश्व ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१, ३, १०, १४—१६, १९—२२, २७ निचृदुष्णिक् । २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २६, ३० विराडुष्णिक् । ३, ८, ९, १३, ३८ उष्णिक् । १२, २३, २८ पादनिचृदुष्णिक् । २४ आर्चीस्वराडुष्णिक् ॥ ऋषभ स्वर ॥

अग्नि के गुणों का अध्ययन कर्त्तव्य है ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसम् ।

चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥१॥

पदार्थ —हे विद्वान् ! (अग्निम् ईळिष्व) अग्नि के गुणो का प्रकाश करो (हि) निश्चय (प्रतीव्यम्) जो अग्नि सब का उपकार करता है (जातवेदसम्) जो सब भूतो में समाया हुआ है (यजस्व) उस अग्नि से यजन करो । पुन वह अग्नि कैसी है (चरिष्णुधूमम्) जिस का धुआ चतुर्दिक् व्याप्ति हो रहा है (अगृभीतशोचिषम्) जिसके तेज से लोग अवगत नही ॥१॥

भावार्थ —वस्तुत हम अग्नि के गुणो से पूर्णत. अपरिचित ही है । अतएव वेद मे बार-बार अग्निगुणज्ञान के लिए उपदेश है ॥१॥

अग्निवाच्य ईश्वर की प्रार्थना हेतु प्रेरणा ॥

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा ।

उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥२॥

पदार्थ —(उत) और भी (विश्वचर्षणे) हे अनेक अर्थों के द्रष्टा (विश्वमन) हे सर्वकल्याण इच्छुक ऋषियो ! आप सब (अग्निम्) सब के आधार प्रभु की (गिरा) वाणी से (स्तुषे) स्तुति करो जो (विष्पर्धसः) स्पर्धा आदि से रहित भक्तो को (रथानाम्) रथ आदि वस्तु का (दामानम्) दानदाता है ॥२॥

भावार्थः—विविध पदार्थों का देनेवाला परमात्मा ही वन्दनीय है ॥२॥

ईश्वर का न्याय दिखलाते हैं ॥

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे ।

उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥३॥

पदार्थ —(येषाम्) जिन उपद्रवी जनो को (आबाध) ईश्वर सब प्रकार से बाधक है उनके (इष) अन्नो को (पृक्ष च) अन्नादि पदार्थ के रसो को (निग्रभे) छीन लेता है जो (ऋग्मिय) पूज्य है । परन्तु (वह्नि) स्तुतिपाठ करने वाला (उपविदा) सर्वज्ञ परमात्मा से (वसु विन्दते) धन पाता है ॥३॥

भावार्थ —भगवान् उपद्रवियो से धन छीनता है और स्तुतिपाठ करने वाले उन्ही धनों से धनिक होते है । तात्पर्य यह है कि वह साधुओ का पोषक है ॥३॥

उसकी महिमा ॥

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्य१जरम् ।

तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥४॥

पदार्थः—(अस्य) इस का (शोचि) तेज (उद अस्थात्) सर्वत्र प्रकट है जो तेज (अजरम) जरारहित है । जो ईश्वर (दीदियुष) जगद्दीपक (तपुर्जम्भस्य) दुष्ट-सहार हेतु जिसके दांत तीक्ष्ण हैं (सुद्युत) जिसकी कान्ति शोभित है और (गणश्रिय) जो सब गणो को शोभा प्रदान करता है ॥४॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! वह परमात्मा सर्वव्यापक है, अतएव उससे डर कर सदा शुभकर्मों मे रत रहो ॥४॥

उसकी स्तुति दिखलाते है ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा ।

अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५॥

पदार्थ —(स्वध्वर) हे सुयज्ञ तुम (उद् उ तिष्ठ) हमारे हृदय मे उठो और हमे उठाओ । (स्तवान) जिस तेरी हम सदा स्तुति करते हैं (देव्या कृपा) जो तू दैवी कृपायुक्त है और (अभिख्या) सर्वत्र विख्यात (भासा) तेज से मडित है (बृहता) महान तेज से (शुशुक्वनि.) जो तू प्रकाशित है ॥५॥

भावार्थः—स्वध्वर —जिसके लिए सुयज्ञ हो वह । यद्यपि परमात्मा सदैव स्वत जागृत है तथापि सेवक ईश्वर को अपनी ओर करता है । उसे हृदय मे देखते हुए उपासक सदा काम मे लिप्त रहे ॥५॥

उसकी स्तुति का प्रदर्शन ॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् ।

यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥६॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सब के आधार ! (आनुषक्) तू मानो आसक्त हो (हव्या जुह्वान) हव्य पदार्थ को स्वय होमता हुआ (प्रशस्तिभि) विभिन्न स्तुतियों सहित (याहि) स्तुति पाठको के घर जा । हे ईश ! (यथा) जैसे तू (हव्यवाहन.) हमारे हव्य पदार्थों को वहन करता है (दूत बभूथ) वैसे तू हमारा दूत भी है ॥६॥

भावार्थ —ईश्वर दूत तुल्य इसलिए है कि वह अपने सन्देश हमे पहुँचाता है । और हव्यवाहन इसलिए है कि उसी का यह सुप्रबन्ध है कि वस्तु एक से दूसरे स्थान मे जाती रहती है ॥६॥

अग्नि प्रार्थनीय है—यह वर्णन है ॥

अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् ।

तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥७॥

पदार्थ —हे लोगो ! मैं उपासक (व.) तुम्हारे कल्याण हेतु (पूर्व्यम्) पुरातन (चर्षणीनाम् होतार) प्रजा को सब कुछ प्रदान करने वाले (अग्निम्) सर्वाधार प्रभु का (हुवे) आह्वान करता हू, पुन मैं तुम्हारे मङ्गल हेतु (अया वाचा) इस वचन से (तम्) उसकी (गृणे) प्रशसा करता हू और (तम्) उसी की (स्तुषे) वन्दना करता हू ॥७॥

भावार्थ —विद्वानो के लिए यही उचित है कि वे सब के कल्याण हेतु परमात्मा की स्तुति-वन्दना करें ॥७॥

वही उपासनीय है यह दर्शाया गया है ॥

यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् ।

मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥८॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (अद्भुतक्रतुम्) अद्भुत कर्मशाली (कृपा) कृपालु (यम्) जिस ईश को लोग (शुभकर्मभि) शुभकर्म द्वारा (सूदयन्ते इत्) उपासना करते ही है और जो प्रभु (ऋतावनि) सत्य का पालन करने वाले और पवित्र नियम के अनुसार चलने वाले (जने) मनुष्य मे (मित्रम् न) मित्र

के जैसा रहता है और जो (सुचितम्) सब का ध्येय है उसी की सेवा की जाए ।।८।।

भावार्थ—वह परमात्मा जो सत्यस्वरूप है उसी व्यक्ति पर प्रसन्न होता है कि जो सत्य-पथ का अवलम्बन करता है और कर्मनिष्ठा जिसका गुण है ।।८।।

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा ।

उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ।९।।

पदार्थ—(ऋतायव) हे ईशव्रत का पालन करने वालो ! (नमसस्पदे) यज्ञ इत्यादि शुभ कर्मों मे (ऋतावानम्) सत्यस्वरूप (यज्ञस्य साधनम्) यज्ञ के साधनस्वरूप (एनम) इस की (गिरा) वाणी द्वारा (उपो जुजुषु) सेवा करो ।।९।।

भावार्थ.—परमात्मा जिस कारण सत्यस्वरूप है उसके उपासक भी वैसे ही होने चाहिएँ । और जैसा वह नितान्त उदार है वैसे उपासक भी हों । ऐसी शिक्षा इन मन्त्रो मे दी गई है ।।९।।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः ।

होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ।।१०।।

पदार्थः—(न) हमारे (यज्ञास.) शुभ कर्म (सयत·) नियम सहित उसके निकट (यन्तु) पहुँचे जा (अंगिरस्तमम्) प्राणिमात्र के अगों का रसस्वरूप है और (यः) जो अग्निवाच्य प्रभु (विक्षु) प्रजा मे (होता) सब कुछ देने वाला और (आ) सब प्रकार से (यशस्तम अस्ति) नितान्त यशस्वी है ।।१०।।

भावार्थ—हमारे सभी कर्म शुभ हों और उस परमात्मा के प्रति ही समर्पित हो ।।१०।।

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भाः ।

अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ।।११।।

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि (अजर) हे अजर नित्य (त्ये) तेरे (भाः) प्रकाश (इन्धानास) सर्वत्र दीप्त और (बृहत्) सर्वगत सबसे महान् हैं (अश्वा इव) अश्व तुल्य वेगवान् (वृषण) कामनाओं के दाता (तविषीयवः) और परमबलशाली हैं ।।११।।

भावार्थ—परमात्मा अनन्त गुणो का स्वामी है । गुणकीर्तन से वेद का तात्पर्य यह है कि उपासक भी यथाशक्ति उन गुणों को धारण करें । इस स्तुति से ईश्वर को न हर्ष होता है और न विस्मय ।।११।।

उसकी प्रार्थना ।।

स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् ।

प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ।।१२।।

पदार्थ—(ऊर्जांपते) हे अन्न-बल के स्वामी ! (स त्वम्) वह तू (नः) हम को (सुवीर्यम्) वीरो के उपयुक्त (रयिम्) अभ्युदय (रास्व) दे (समत्सु) सग्रामों मे (न) हमारे (तोके) पुत्रो (आ) व (तनये) पौत्रो सहित (प्राव·) सहायता कर ।।१२।।

भावार्थ—ईश्वर अन्न बल के स्वामी हैं । उनसे जो मागेंगे वह मिलेगा, परन्तु यदि वे पदार्थ हमारे लिये हानिकारक न हो, अत हम शुभकर्म मे निरन्तर रत रहें उसी मे हमारा कल्याण निहित है ।।१२।।

उसका गुण वर्णन ।।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि ।

विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ।।१३।।

पदार्थ—(यद्वै) जब (विश्पति) सकल प्रजा का अधीश्वर (शित) सूक्ष्मकर्त्ता (अग्नि·) सर्वान्तर्यामी प्रभु (सुप्रीतः) सुप्रसन्न हो (मनुष विशि) मनुष्य के स्थान मे विराजता है (तदा) तब (विश्वा इत्) सभी (रक्षांसि) दुष्टो को (प्रतिषेधति) मिटा देता है ।।१३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! दुर्जनो की दुर्जनता को विध्वस करने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उस प्रभु से अपने मन को लगा दो ।।१३।।

उसकी प्रार्थना ।।

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।

नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ।।१४।।

पदार्थ—(वीर) हे महान् बलशाली ! (विश्पते) हे प्रजा-अधिपति (अग्ने) अग्नि (मे) मेरे (नवस्य स्तोमस्य) नूतन स्तोत्रो को (श्रुष्टी) सुन कर (मायिनः रक्षसः) मायावी राक्षसो को (तपुषा) अपने तीव्र तेज से (निदह) पूर्णत. भस्म कर दीजिए ।।१४।।

भावार्थ—मनुष्य के अन्दर के दुर्गुण ही महादुष्ट हैं । आत्मा मे परमात्मा की स्थिति का परिज्ञान ही प्रतिदिन उन्हें क्षीण करता जाता है । अत इस प्रकार की प्रार्थना की जाती है ।।१४।।

उपासना की महिमा ।।

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।

यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ।।१५।।

पदार्थः—(य) जो व्यक्ति (अग्नये) ईश्वरप्रीति हेतु (हव्यदातिभि) हव्य पदार्थों के दान सहित (ददाश) दान देता है (तस्य) उस पुरुष पर (मर्त्यः रिपु) मानवशत्रु (मायया चन) अपनी माया द्वारा (न ईशीत) शासन नहीं कर पाता ।।१५।।

भावार्थ—ब्रह्म की उपासना करने वालो को इस लोक मे किसी का भय नहीं होता, क्योंकि उनकी शक्ति व प्रभाव धरती पर फैल कर सबको अपने वशीभूत कर लेते हैं, उनका प्रताप सम्राट् से भी अधिक हो जाता है । किन्तु उपासना मे मनोयोग की पूर्णता हो ।।१५।।

उसकी स्तुति का वर्णन ।।

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः ।

महो राये तमु त्वा समिधीमहि ।।१६।।

पदार्थ—(उक्षण्यु) ज्ञानसिञ्चनकर्ता (व्यश्व) जितेन्द्रिय (ऋषि) कविगण सदैव (वसुविदम् त्वा) धनो के दाता तुझे अपनी-अपनी वाणी द्वारा (अप्रीणात्) प्रसन्न करते आये है । इसलिये हम उपासक भी (तम् उ त्वा) उसी तुझे (मह राये) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु (समिधीमहि) सम्यक् दीप्त व ध्यान करते हैं ।।१६।।

भावार्थ—जिस प्रभु की वन्दना ऋषिगण सर्वदा ही करते आए हैं उसी की हम पूजा करें ।।१६।।

सब उसी की स्तुति करते हैं ।।

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।

आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ।।१७।।

पदार्थ—हे प्रभो ! (उशना) अभिलाषी (काव्य) कविपुत्र (मनवे) मनन हेतु (त्वा) तुझे ही (नि असादयत्) प्राप्त करते हैं जो तू (होतारम्) सकल विश्व मे अनन्त पदार्थों की आहुति देता है और इसी प्रकार (आयजिम्) वास्तविक यज्ञ भी तू ही कर रहा है । और (जातवेदसम्) तेरे से ही जगत् की सम्पत्तियाँ उपजी हैं ।।१७।।

भावार्थ—वास्तव मे परमपिता परमात्मा ही सब धनो का स्वामी है और याजक है ।।१७।।

उसकी प्रधानता ।।

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।

श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ।।१८।।

पदार्थ—हे परमात्मन् (विश्वे देवास) सारे ज्ञानी (सजोषस) सगठित होकर (त्वा हि दूतम् अक्रत) तुझे ही दूत अथवा अपना उपास्यदेव मानते हैं । इसलिये हे देव तू (श्रुष्टी) स्तुति का श्रोता अथवा शीघ्र (प्रथम यज्ञिय भुव·) सर्वश्रेष्ठ पूज्य है ।।१८।।

भावार्थ—सारे विद्वान् पहले ईश्वर की ही पूजा करते हैं, अत. अन्य लोग भी उन्ही का अनुकरण करें । यही शिक्षा दी गई है ।।१८।।

वही पूज्य है यह आज्ञा है ।।

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः ।

पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ।।१९।।

पदार्थ—(वीरः मर्त्य) वीरजन (इमम् घ) इसी प्रभु को (कृण्वीत) उपास्य देव बनाए जो (अमृतम्) सदा एकरस है अमर है (दूतम्) अन्तःकरण मे ज्ञानादि का सन्देशवाहक (पावकम्) शोधक (कृष्णवर्तनिम्) आकर्षण संपन्न सूर्य्यादिक का प्रवर्तक और (विहायसम्) महान् है ।।१९।।

भावार्थ—भगवान् ही सबका पालक है और धारक भी है अत उसी की पूजा-प्रार्थना की जानी आवश्यक है ।।१९।।

उसकी स्तुति ।।

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् ।

विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ।।२०।।

पदार्थ—(यतस्रुच.) स्रुवा आदि सामग्रीयुक्त हम(तम् अग्निम् हुवेम) उस प्रभु की स्तुति करते हैं जो (सुभासम्) सुतेजयुक्त (शुक्रशोचिषम्) शुद्ध तेजस्वी (विशाम्) प्रजा का स्वामी (अजरम्) अजर (प्रत्नम्) पुराण (ईड्यम्) और वन्दनीय है ।।२०।।

भावार्थः—हम लोग वेदविहित कर्मों एव उपासना दोनो को ही साथ-साथ करें ।।२०।।

उपासना का फल ।।

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत् ।

भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ।।२१।।

पदार्थ —(यः) जो उपासक (अस्मै) इस परमेश्वर को अर्थात् ईश्वर के लिए (हव्यदातिभिः) हव्यादि पदार्थों के दानों सहित (आहुतिम्) अग्निहोत्रादि शुभकर्मों में होम से सर्वाचत आहुति (अविवत्) करता है वह (भूरि) बहुत (पोषम्) पुष्टिकर (वीरवत्) वीर पुत्रादि युक्त (यशः) यश (धत्ते) प्राप्त करता है ॥२१॥

भावार्थ —जो व्यक्ति नियमपूर्वक अग्निहोत्र इत्यादि कर्म संपन्न करता है उसे इस लोक में धन, यश, पुत्र और नीरोगिता मिलती है ॥२१॥

अग्निहोत्र कर्म इससे दिखाया जाता है ॥

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।

प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥२२॥

पदार्थ —(हविष्मती) घृतवती (स्रुक्) स्रुवा (नमसा) नम. आदि शब्द सहित (अग्निम् प्रति एति) उस अग्नि के प्रति पहुँचती है जो (प्रथमम्) श्रेष्ठतम है और (जातवेदसम्) जिसकी सहायता से विविध सम्पत्ति मिलती है और (यज्ञेषु पूर्व्यम्) जो यज्ञ इत्यादि शुभकर्मों में पुरातन है ॥२२॥

भावार्थः—पहले स्रुवा आदि सामग्री इकट्ठी करके हवन किया जाए। और होम के समय भगवान का सच्चे हृदय से स्मरण करता जाय और जो अभिलाषा हो उसे भी मन मे रखे ॥२२॥

होम के समय परमात्मा का ध्यान ॥

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।

मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥२३॥

पदार्थः—हम उपासक (व्यश्ववत्) जितेन्द्रिय ऋषि तुल्य (शुक्रशोचिषे) शुद्धतेजस्वी (अग्नये) परमात्मा की (आभि. ज्येष्ठाभि) इन श्रेष्ठ (मंहिष्ठाभि) पूज्यतम (मतिभि) प्रार्थनाओं से (विधेम) सेवा करें ॥२३॥

भावार्थ —ध्यान करते समय इन्द्रियसहित मन को रोककर और अन्त करण मे ही उत्तम से उत्तम स्तोत्र पढ़ते हुए उपासक प्रभु का ही स्मरण करें ॥२३॥

उस काल मे परमात्मा ही ध्येय है यह दर्शाया गया है ॥

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।

ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥२४॥

पदार्थ —(वैयश्व) हे जितेन्द्रिय (ऋषे) ऋषियो (स्थूरयूपवत्) याज्ञिक पुरुषो के तुल्य (स्तोमेभि) स्तुतियों से (अग्नये) परमात्मा की महिमा को (नूनमर्च) निश्चय गाए जो (विहायसे) सर्वव्यापी और (दम्याय) गृहपति है ॥२४॥

भावार्थ —परमात्मा स्वय आदेश देता है कि मेरी वन्दना करो और मुझे महान् व्यापक और गृहपति समझो। अर्थात मुझे अपने परिवार में ही शामिल समझो ॥२४॥

मेधावी पुरुष भी उसी की स्तुति करते हैं ॥

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।

विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥२५॥

पदार्थ —(विप्रा) बुद्धिमान् व्यक्ति (मानुषाणामतिथिम्) मनुष्यों के अतिथि तुल्य पूज्य (वनस्पतीनाम्) औषधियो के (सूनुम्) उत्पादन करने वाले (प्रत्नम्) पुराण (अग्निम्) परमात्मा की (ईळते) वन्दना करते हैं ॥२५॥

भावार्थ —जब बुद्धिमान् व्यक्ति भी उसी की पूजा वन्दना आदि करते हैं तब अन्य लोगो को भी तो वही कर्म अवश्य करना चाहिये, यह शिक्षा दी गई है ॥२५॥

उसकी प्रार्थना ॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा ।

अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६॥

पदार्थ।—(अग्ने) हे सबके आधार प्रभो! (बर्हिषि अधि) तू मेरे हृदयासन पर (नमसा नि षत्सि) नमस्कार व आदर से बैठ। (महः) महान् (विश्वान्) समस्त (सत) विद्यमान पदार्थों के (अभि) चतुर्दिक् व्याप्त हो तथा (मानुषा हव्यानि) मनुष्य सम्बन्धी पदार्थों के (अभि) चारो ओर बैठ ॥२६॥

भावार्थ.—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र व्यापक ही है फिर भी व्यक्ति अपने स्वाभावानुसार प्रार्थना करता है। परमात्मा के सकल गुणो का वर्णन अनुवादमात्र ही है ॥२६॥

वस्वा नो वार्या पुरु वस्व रायः पुरुस्पृहः ।

सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥२७॥

पदार्थ —हे प्रभो! (न) हमको (वार्या) वरणीय (पुरु) बहुत से धन (वस्व) प्रदान कर और (राय.) विविध सम्पत्ति व अभ्युदय (वस्व) दे, जो सम्पत्ति (पुरुस्पृह) बहुतो से स्पृहणीय हो। (सुवीर्यस्य) पुत्र-पौत्रादि वीर युक्त (प्रजावत) सन्ततिमान् (यशस्वत) तथा कीर्तिमान् हों ॥२७॥

भावार्थः—इस लोक का धन वही प्रशस्य है जो सन्तति, पशु, हिरण्य और यश सयुक्त हो ॥२७॥

इस ऋचा से प्रार्थना ॥

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय ।

सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥

पदार्थः— (वरो) हे वरण योग्य (वसो) हे वासक! (यविष्ठ) हे अतिशय मिश्रणकारी (अग्ने) हे सर्वाधार! (त्वम्) तू (सुषाम्णे) तेरे यश के सुन्दर गायक (शश्वते) सब जनों को (रातिम् चोदय) दान प्राप्त करा ॥२८॥

भावार्थः—जो तेरी कीर्ति के गान व शुभकर्म में निपुण हों, प्रजागण सदैव उनका भरण पोषण करें और वे भी उद्योगी हो प्रजा में अपनी विद्या उजागर किया करें ॥२८॥

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः ।

महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९॥

पदार्थ — (अग्ने) हे जगदीश! (त्वम् हि) तू ही (सुप्रतूः असि) उपासको को विविध दान प्रदाता है (त्वम्) तू (न) हमे (गोमतीः) गौ आदि पशुयुक्त (इष) अन्न और (मह राय) महती सम्पत्ति का (सातिम्) भाग (अपावृधि) प्रदान कर ॥२९॥

भावार्थ —परमपिता परमात्मा पर विश्वास करके प्रार्थना करें तो निश्चित रूप से ही फल प्राप्ति होगी ॥२९॥

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।

ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥

पदार्थ —(अग्ने त्वम्) हे अग्नि तू (यशा असि) परम यशस्वी है अतएव हमारे (मित्रा वरुणा) ब्राह्मण व क्षत्रिय का (आवह) पालन पोषण कर जो (ऋतावाना) तेरे सत्य नियमानुसार चलते है (सम् राजा) एक सरीखी दृष्टि से सब पर शासन करने वाले तथा (पूतदक्षसा) पवित्र बल धारण करने वाले हैं ॥३०॥

भावार्थः—ब्राह्मणो व क्षत्रियो की रक्षार्थ प्रार्थना कर इस सूक्त का समापन किया जाता है ॥३०॥

अष्टम मण्डल में तेईसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रिंशदृचस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वमना वैयश्व ऋषि ॥ १—२७ इन्द्र । २८—३० वरो सौषाम्णस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्द —१, ६, ११, १३, २०, २३, २४, निचृदुष्णिक् । २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक् । ९, १२, १८, २२, २८, २९, प्रवराडुष्णिक् । १४, १५, १७, २१ पादनिचृदुष्णिक् । १९ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३० निचृदनुष्टुप् ॥ स्वर —१—२९ ऋषभ । ३० गान्धारः ॥

पुन: परमदेवता इन्द्र की महिमा-स्तुति ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१॥

पदार्थ —(सखाय) हे सखाओ! (वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) परमात्मा के कीर्तिगान हेतु (ब्रह्म) स्तोत्र का (आशिषामहि) अध्ययन करें, मैं (वः) तुम्हारे (नृतमाय) सब कर्मों के नेता व परममित्र (धृष्णवे) सर्वविघ्न-विनाशक प्रभु के लिये (सुस्तुषे) प्रार्थना करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हम सब मिलकर परमपिता के गुणो का अध्ययन करें जिससे हमारा मानवजन्म सफल हो सके ॥१॥

इन्द्र की स्तुति ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥२॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे प्रभो! (हि) निश्चय ही तू (शवसा) अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा (श्रुतोऽसि) प्रसिद्ध है (वृत्रहत्येन वृत्रहा) वृत्र अर्थात् विघ्न का नाश करने से तू वृत्रहा नाम से ख्याति पाता है (शूर) हे महावीर (मघोनः) जितने धनी जन जगत् मे हैं उनसे (मघैः) धन द्वारा (अति) तू अतिश्रेष्ठ है। और उनसे बहुत अधिक (दाशसि) भक्तो को प्रदान करता है॥२॥

भावार्थ —यहाँ बताया गया है कि परमात्मा सर्वविघ्नो का नाश करता है और वह श्रेष्ठतम दानी है ॥२॥

धन के लिये वही प्रार्थनीय है ॥

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् ।

निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥३॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (सः) वह तू (स्तवानः) सारे जगत् से और हम से स्तूयमान हो (न) हमे (चित्रश्रवस्तमम्) अतिशय विविध कीर्तियुक्त (रयिम्) अभ्युदय व सम्पदा (आभर) दे और (निरेके चित्) अभ्युदय के ऊपर स्थापित कर (हरिवः) हे जगत्रक्षक! (यः वसुर्ददि) जो तू जगत्वासक एव दाता है ॥३॥

भावार्थः—विभिन्न प्रकार की सम्पदाओं को पाने हेतु केवल उसी की प्रार्थना करना उचित है ॥३॥

इन्द्र प्रिय धन का दाता है ॥

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् ।

धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥४॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे प्रभो ! तू (उत) और (जनानाम्) मनुष्यों व सर्व प्राणियो मे (प्रियम् निरेकम्) प्रिय व प्रसिद्ध धन को भी (आदर्षि) प्रकाशता है (धृष्णो) हे विघ्नहर्ता ! (स्तवानः) स्तूयमान हो (धृषतः) परम उदारता से (आभर) हमारा भरण पोषण कर ॥४॥

भावार्थ.—जगत् में सभी वस्तु प्रिय हैं फिर भी कुछ वस्तुओं को कुछ प्राणी पसन्द नहीं करते । विष, सर्प, वृश्चिक, विद्युदादि पदार्थों का भी कुछ विशेष उपयोग है । इस जगत् को नाना पदार्थों से ईश्वर प्रति क्षण भूषित करता है, अत वही वन्दनीय है ॥४॥

वह स्वतन्त्र है ॥

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः ।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥५॥

पदार्थ.—(हरिवः) हे जगत् की रक्षा करने वाले देव ! (आमुर.) जगत् का नाश करने वाले दुष्टजन (ते सव्यम् हस्तम्) तेरा बायां हाथ (न वरन्ते) रोक नहीं सकते (न दक्षिणम्) तेरा दाहिना हाथ भी नहीं रोक सकते (गविष्टिषु) पृथिवी आदि जगत् रचनारूप यज्ञ मे (परिबाधः न) कोई बाधक नहीं है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा सर्वोपरि है अतः उसकी महिमा कैसे गाई जाए । उसीके अधीन यह विश्व है, अतः उसी की उपासना करनी चाहिए ॥५॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।

आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥६॥

पदार्थ —(अद्रिवः) हे विश्वरक्षक देव ! (गोभि इव व्रजम्) जैसे गो-पालक गायो के साथ गोष्ठ मे जाता है वैसे ही मैं (गीर्भि) स्तुतियों सहित (त्वा आ ऋणोमि) तेरे निकट आता हूँ । हे ईश ! (जरितुः) मुझ स्तुतिपाठक के (कामम्) कामनाओं को (आ पृण) पूरा कर (आ) और (मनः) मन को भी पूरा कर ॥६॥

भावार्थ —मन की गति तथा चेष्टाए असीम हैं, अत परमात्मा ही उन्हे पूरा कर सकता है ॥६॥

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।

उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥७॥

पदार्थ —(वृत्रहन्तम) हे सर्व विघ्नहर्ता ! (उग्र) हे उग्र ! (प्रणेत) हे उत्कृष्ट (वसो) हे जगत्-वासक (विश्वमनस न.) सबका कल्याण करने वाले हमारे (विश्वानि) सारे शुभ कर्मों को (धिया) ज्ञान व मन से (सु) भली भांति (अधि गहि) पावन कर ॥७॥

भावार्थ —यदि हम दूसरो का कल्याण करने में मन लगाए तो हमारा मन अवश्य ही पवित्र होगा ॥७॥

पुन उसी वस्तु का वर्णन ॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।

वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८॥

पदार्थ —(वृत्रहन्) हे विघ्नो का नाश करने वाले ! (शूर) हे महावीर ! (पुरुहूत) हे इन्द्र ! (ते) तेरे (वसो) धनो को (विद्याम) पाएं (नव्यस) जो नवीन-नवीन हो (स्पार्हस्य) सब के स्पृहणीय हो तथा (राधस) कल्याण-साधक हो ॥८॥

भावार्थ —ऐसा धन ही उपार्जन करने योग्य है जो सर्वप्रिय और सब का हित करने वाला हो ॥८॥

उसका दान ॥

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।

अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥९॥

पदार्थः—(नृतो) हे जगत् नर्तक ! (पुरुहूत) अत्यधिक पूजित (यथा) जैसे (ते शवः) तेरी शक्ति (अपरीतम् हि अस्ति) अविनाशी व अविध्वसनीय है वैसा ही (दाशुषे) भक्तो के प्रति (रातिः) तेरा दान भी (अमृक्ता) अहिंसित तथा अनि-वारणीय है ॥९॥

भावार्थ.—परमात्मा की शक्ति तथा दान दोनो ही अनश्वर हैं ॥९॥

उसके दान का वर्णन ॥

आ वृषस्व महामहे महे नृतम राधसे ।

दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥१०॥

पदार्थ —(महामह) हे परमपूज्य (नृतम) हे श्रेष्ठतम नायक (मघवन्) हे सर्वधनयुक्त (महे राधसे) महान् अभ्युदय हेतु (आवृषस्व) अपनी सम्पत्ति व ज्ञान इस जगत् में प्रसारित कर और (मघत्तये) धनवृद्धि हेतु (दृढश्चित्) दुष्टो के दृढ नगरों को (दृह्यः) नष्ट कर ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा सभी प्रकार के धन से युक्त है, वह न्यायकर्ता है, अतएव जो लोग अन्यायी हैं वह उनका धन छीन लेता है ॥१०॥

वही स्तुत्य ॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।

मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥

पदार्थ —(अद्रिवः) हे संसार को धारण करने वाले (मघवन्) हे सकलधनसम्पन्न ! (न आशसः) हमारे स्तोत्र व अभिलाषाए (त्वत् अन्यत्र चित्) तुझे छोड अन्य किन्हीं देवों मे (नू जग्मु) कदापि न गये हैं न जाते हैं (तत्) अत (तव ऊतिभि) तू अपनी रक्षा व सहायता द्वारा (न शग्धि) हमें सब प्रकार सामर्थ्य से सम्पन्न कर ॥११॥

भावार्थ —वही हमे सारे कार्यों मे समर्थ बना सकता है यदि मन से उसकी वन्दना करें ॥११॥

नह्यङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।

राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२॥

पदार्थः—(नृतो) हे जगत् को चलाने वाले (गिर्वण.) हे स्तुति प्रिय स्वामी (राधसे) सम्पत्ति हेतु (राये) अभ्युदय हेतु (द्युम्नाय) द्योतमान यश के लिए (शवसे च) और परम सामर्थ्य हेतु (त्वत् अन्यम् नहि) तुम से भिन्न किसी अन्य देवता को नहीं (विन्दामि अङ्ग) पाता हूँ, यह विख्यात है ॥१२॥

भावार्थ —सामर्थ्य, धन एव यश भी उसी से मिलता है । अत वही प्रार्थना-योग्य है ॥१२॥

इन्द्र को ही प्रिय वस्तु समर्पणीय है ॥

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु

प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥

पदार्थ —हे लोगो ! आप सब एकत्रित होकर (इन्द्राय) इन्द्र के समीप (इन्दुम्) स्वकीय प्रियवस्तु (आ सिञ्चत) समर्पित करें, जिससे वह इन्द्र (सोम्यम् मधु) सोमरसयुक्त मधुर पदार्थों पर (पिबाति) कृपादृष्टि करें और बचाएं तथा (महित्वना) जो अपनी सामर्थ्य से व (राधसा) ससाधक सम्पत्ति स स्तुतिपाठको को (चोदयाते) उन्नति की दिशा दिखाता है ॥१३॥

भावार्थ —परमात्मा ही हमे उन्नति की ओर भी ले आता है अतः प्रेम एव श्रद्धा से उसी की सेवा करनी चाहिए ॥१३॥

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।

नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४॥

पदार्थः —मैं उपासना करने वाले (हरीणाम्) परस्पर हरणशील जगतों के (पतिम्) पालक (दक्षम्) परमबली (पृञ्चन्तम्) प्रकृति व जीव को मिलाने वाले परमात्मा के (उपो अब्रवम्) समीप पहुँच प्रार्थना करता हू कि हे प्रभु ! तू (स्तुवत) स्तुति करते हुए (अश्व्यस्य) ईश्वर की तरफ ले आने वाले ऋषि के स्तोत्र को (नूनम् श्रुधि) निश्चयपूर्वक सुन ॥१४॥

भावार्थः—जो परमात्मा से सम्बन्धित काव्यो को बनाते है तथा उसके तत्त्वों से अज्ञात हैं वही यहां ऋषि कहलाते हैं । वे जितेन्द्रिय हैं अतएव अश्व्य कहे जाते हैं ॥१४॥

उसी का महत्त्व ॥

नह्यङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५॥

पदार्थ.—हे प्रभु ! (त्वत्) तुझ से अधिक (पुरा) पहले या वर्तमान काल में (वीरतर न च जज्ञे) कोई वीर पुरुष न पैदा हुआ, न होगा (अङ्ग) यह विख्यात है (राया) सम्पत्ति में भी (नकि:) तुम से बडा कोई नहीं (एवथा न) रक्षण हेतु तुम से अधिक कोई न ही (भन्दना न) और नही स्तुति के कारण तुम से अधिक कोई है, तू ही वीर है, धनवान्, रक्षक तथा स्तुतियोग्य है ॥१५॥

भावार्थः—वही परमात्मा सारे गुणो का भण्डार है इसलिये वह पूज्यतम है ॥१५॥

वही पूज्यतम है ॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।

एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६॥

पदार्थ —(अध्वर्यो) हे याज्ञिक (मध्वः) मधुर (सदावृध) सदैव बलवीर्य की वृद्धि करने वाले (अन्धस) अन्नो मे से (मदिन्तरम्) आनन्दप्रद कुछ अश लेकर (आ सिञ्च इत्) ईश्वर की प्रीति के लिये पात्रो मे दो (हि) क्योंकि यही इन्द्र (एव) निश्चय ही (वीरः) सब विघ्नो का हर्ता है, (स्तवते) स्तुति के योग्य है ॥१६॥

भावार्थः—तुम जो कोई भी शुभ कार्य करो वह प्रभु की प्रीति हेतु ही होना चाहिए ॥१६॥

उसकी महिमा ॥

इन्द्र स्यातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।

उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७॥

पदार्थ —(हरीणाम् स्यातः) हे सकल जगत् के अधिष्ठाता (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते पूर्व्यस्तुतिम्) तेरी पूर्ण स्तुति को (नकि शवसा उदानश) कोई देव अथवा मनुष्य स्व बल से अतिक्रमण नहीं कर सकता (न भन्दना) स्तुति के सामर्थ्य से भी तुझ से बड़ा कोई नहीं हो सकता ॥१७॥

भावार्थ:—परमात्मा की शक्ति अनन्त है सब उसी की स्तुति करते हैं अत हम भी उन्हीं का पूजन करें ॥१७॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (श्रवस्यवः) कीर्ति व अन्न इत्यादि चीजों की कामना करने वाले हम उपासक (वः) तुम्हारे व हमारे और सब के (पतिम्) पालक उस प्रभु की (अहूमहि) वन्दना करते हैं । जो (वाजानाम्) सारी सम्पत्ति व ज्ञानों का (पतिम्) पति है और जिस को (अप्रायुभि) प्रमादरहित पुरुष (यज्ञेभि) यज्ञों से (वावृधेन्यम्) बढ़ाते हैं उसी को कीर्ति गाते हैं ॥१८॥

भावार्थ —उसी की चतुर्दिक् पूजा हो रही है, विद्वान व मूर्ख यज्ञों से उसीका महत्त्व दर्शा रहे हैं ॥१८॥

वही स्तुत्य है ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९॥

पदार्थ—(सखाय.) हे सखाओ ! (एतो) आओ (नु इन्द्रम् स्तवाम) सब मिलकर उस प्रभु की स्तुति करें जो (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य व (नरम्) जगत् नेता है (य एक इत्) जो अकेला ही (विश्वाः कृष्टी अभ्यस्ति) सारी उपद्रवकारिणी प्रजा को दूर करता है ॥१९॥

भावार्थ —वही स्तुति के योग्य है और हमारे सारे विघ्नों का भी निवारण करता है, अत उसी की सेवा करना उचित है ॥१९॥

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।

घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२०॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (वच वोचत) उस प्रभु का यशोगान उन वचनों द्वारा करो जो (घृतात्) घृत से भी (मधुन च) मधु से भी (स्वादीय) अधिक स्वादिष्ट हों व (दस्म्यम्) दर्शनीय हों, जो इन्द्र (अगोरुधाय) स्तुतियों का श्रोता (गविषे) स्तुति-इच्छुक (द्युक्षाय) और सर्वत्र दीप्यमान है ॥२०॥

भावार्थ —उत्तम से उत्तम स्तोत्र की रचना कर उस परमात्मा की वन्दना करनी चाहिए ॥२०॥

उसका महत्त्व ॥

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे ।

ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (यस्य वीर्या) जिसके वीर्य्य या कर्म (अमितानि) असीम अनन्त व अहिस्य है (यस्य राध) जिसकी सम्पत्ति (पर्येतवे न) सीमित नहीं (दक्षिणा) जिसका दान (विश्वम् अभ्यस्ति) सर्वत्र व्याप्त है (ज्योति न) जैसे सूर्य्य का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है ॥२१॥

भावार्थ —जिसकी शक्ति, वीर्य्य व दान असीम है वही मानव जाति का उपास्य है ॥२१॥

वही स्तवनीय है ॥

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।

अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२॥

पदार्थ —(व्यश्ववत्) हे जितेन्द्रिय ऋषितुल्य ! (इन्द्रम् स्तुहि) इन्द्र की वन्दना करो जो (अनूर्मिम्) एक रस (वाजिनम्) विज्ञानयुक्त (यमम्) जगत् नियन्ता है (अर्य्य) जो सबका स्वामी भगवान् (दाशुषे) भक्तों को (मंहमानम् गयम्) विस्तृत गृह व धन (वि) प्रदान करता है ॥२२॥

भावार्थ —जो हमे सारे भोग्य पदार्थ प्रदान कर रहा है उसी प्रभु की स्तुति करो ॥२२॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।

सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३॥

पदार्थ —(वैयश्व) हे जितेन्द्रिय ! (नूनम्) इस समय (एव) उस प्रभु की ही (उपस्तुहि) मन से समीप पहुँच वन्दना करो जो (दशमम्) दशसंख्यापूरक है अर्थात् शरीर में जो नव प्राण हैं उनमें यही दशम है । यद्वा दशम बार भी स्तुति व पूज्य होने पर (नवम्) नवीन ही होता है (सुविद्वांसम्) वह परम विद्वान् (चरणीनाम् चर्कृत्यम्) प्रजा में वारवार वन्दनीय है ॥२३॥

भावार्थ —परमात्मा ही सर्वज्ञ व सर्वज्ञान दाता है वही सब का पूज्य और वन्दनीय है ॥२३॥

वही पूज्य है ॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४॥

पदार्थ:—(वज्रहस्त) हे दण्डधारी ! तू (निर्ऋतीनाम्) सबर्थों की (परिवृजम्) निवृत्ति को (वेत्थ) जानता है, उनकी कैसे निवृत्ति सभव है उसे तू जानता है । (इव) जैसे (शुन्ध्यु) शोधक (परिपदाम्) माघादि मासों के (अहः अहः) प्रत्येक दिन में परिचित है ॥२४॥

भावार्थ:—परमात्मा सर्वज्ञ है अत हम जीव उससे कुछ भी नहीं छिपा सकते अत यह जान पाप से परे रहें ॥२४॥

उसकी प्रार्थना ॥

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने ।

द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभु ! (दंसिष्ठ) हे परमविचित्र ! हे दर्शनीयतम ! हे सर्वविघ्नहर्त्ता ! तू (तत् अव) वह सहायता व रक्षा हमे (आभर) दे । जिससे (कृत्वने) कर्म रत (कुत्साय) जगत् के कुकर्मों की भर्त्सना करने वाले समाज के दोषों के दिग्दर्शक ऋषि के लिए (द्विता) दो प्रकार के शारीरिक व मानसिक शत्रुओं को (शिश्नथ) मारता है, उसी रक्षा की (निचोदय) सर्वत्र प्रेरणा दे ॥२५॥

भावार्थ - जिस प्रकार ईश्वर समदृष्टि है वैसे ही यथासम्भव हम भी बनने का प्रयास करें ॥२५॥

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे ।

स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६॥

पदार्थ —(दंसिष्ठ) हे अद्भुत कर्मकर्त्ता ! हे परमदर्शनीय ! (सन्यसे) संन्यास के लिए भी (नव्यम्) स्तुत्य (तम् उ त्वा) उस तेरे से ही (नूनम्) निश्चय (ईमहे) याचना करते हैं । (स त्वम्) वह तू (नः) हमारी (विश्वा) सब (अभिमाती) विघ्न सेनाओं का (सक्षणि) विनाश करने वाला हो ॥२६॥

भावार्थ —"सन्यसे" का अर्थ यह है कि हम जो कुछ पाए उसमें से अपने योग्य रख शेष सब दान कर दें और काम क्रोधादि जो शत्रु हैं उन्हें भी जीतने हेतु सदा प्रयत्नशील रहें ॥२६॥

विघ्नविनाश हेतु पुन प्रार्थना ॥

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु ।

वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥

पदार्थ —(य) जो प्रभु हमें (ऋक्षात् अहस) घातक (यद्वा) ऋक्ष-पशुवत् भयानक पाप से (मुचत्) मुक्त करता है (वा) अथवा (य) जो (सप्तसिन्धुषु) नदियों के तट पर (आर्य्यात) शोभा व सौभाग्य दिखाता है यद्वा (सप्तसिन्धुषु) नयनादि सप्त इन्द्रिययुक्त शिर में विज्ञान देता है वही सब का पूज्य है । (तुविनृम्ण) हे बहुधन ! (दासस्य) उपद्रवकारी जन के दूर करने हेतु (वधः) घातक आयुध (नीनम) नीचे कर ॥२७॥

भावार्थ —हमारे समक्ष समय-समय पर जो विघ्न आते हैं उनका नाश करने के लिए भी वही वन्दनीय है ॥२७॥

इन्द्रियां जेतव्य हैं ॥

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् ।

व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८॥

पदार्थ:—(वरो) हे वरणीय ! (यथा) जैसे तू (सुषाम्णे) सुन्दर गायक (सनिभ्यः) और याचक सुपात्रों की ओर (रयिम् आवहसि) धन लाता है (सुभगे) हे सुभगे (वाजिनीवति) हे बुद्धि ! इन्द्र के तुल्य ही तू भी (व्यश्वेभ्य) जितेन्द्रिय ऋषियों को धन प्रदान कर ॥२८॥

भावार्थ —जैसे ईश्वर संसार पर कृपा करता है वैसे ही सब परस्पर रखें व अपनी-अपनी इन्द्रियों को भी अपने वश में कर उसकी ओर लगाए, तब ही मानव ऋषि व महाकवि आदि बनता है ॥२८॥

प्रार्थना दिखाते हैं ॥

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः ।

स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥२९॥

पदार्थ:—(नार्यस्य) जनहितकारी परमात्मा का (दक्षिणा) दान (सोमिन) सोमादि लताओं के तत्त्वज्ञों और (व्यश्वान्) जितेन्द्रिय पुरुषों को (एतु) मिले (च) और (शतवत् सहस्रवत्) शतश व सहस्रश (स्थूरम्) पश्वादि स्थूल तथा ज्ञानादि सूक्ष्म (राध) धन उन्हें प्राप्त हो ॥२९॥

भावार्थ —जो पदार्थतत्त्वों के जानने वाले हों उनकी सहायता करना सबका कर्त्तव्य होना चाहिये, जिससे वे सुखी रह नाना विद्याओं का प्रसार कर देश की गरिमा में वृद्धि कर सकें ॥२९॥

शुभकर्म का फल ॥

यस्त्वां पृच्छादीजानः कुहुया कुहयाकृते ।

एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३०॥

पदार्थ—(कुहयाकृते) हे जिज्ञासु ! (ईजान) जिस पुरुष ने यज्ञ कर लिया है वह (कुहया) इस समय कहां है ? (यत् पृच्छात् त्वा) यदि तुझे इस प्रकार कोई पूछे तो ऐसा कहना। (एष वल॰) यह वरणीय यजमान (अपश्रित.) यहाँ से चला गया और जाकर (गोमतिम् अवतिष्ठति) गो आदि पशुयुक्त भूमि पर विद्यमान है ॥३०॥

भावार्थ—यज्ञो के फल प्राप्त होने मे सन्देह नही करना चाहिये यह इसमे बताया गया है। शुभकर्म करने वालों को सुफल प्राप्त होता है ॥३०॥

अष्टम मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १-९, १३-२४ मित्रावरुणौ । १०-१२ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५-९, १९ निचृदुष्णिक् । ३, १०, १३-१६, २०-२२ विराडुष्णिक् । ४, ११, १२, २४ उष्णिक् । २३ आर्ची उष्णिक् । १७, १८ पादनिचृदुष्णिक् ॥ ऋषभः स्वर ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय के धर्म ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया ।

ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥१॥

पदार्थ—हे मित्र (ब्राह्मणप्रतिनिधि) हे वरुण (क्षत्रियप्रतिनिधि) आप दोनो (विश्वस्य गोपा) सारे कार्य के रक्षक है (देवेषु देवा) विद्वानो मे परम विद्वान् हैं और (यज्ञिया) विद्वानों म यज्ञवत् पूज्य (ऋतावाना) ईश्वरीय सत्य नियम पर चलने वाले हैं अतएव (पूतदक्षसा) पवित्र हैं। (ता) उन और वैसे (वाम्) आप दोनो का प्रजागण (यजसे) सभी कार्यों मे सत्कार करते है ॥१॥

भावार्थ—समार के लिए जो जितने अधिक लाभकारी है वे उतने ही पूज्य हैं। जो देश मे ईश्वरीय नियमो को सदा फैलाते हैं व प्रकृति-अध्ययन मे रहते हैं, सत्यपथ से कदापि नही हटते। सत्यादि गुणयुक्त पुरुष का नाम ब्राह्मण है और प्रजापालन मे तत्पर व सत्यादि सर्वगुणसम्पन्न पुरुष का नाम क्षत्रिय है। ऐसे महापुरुष अवश्य ही पूज्य, मान्य और स्वागत योग्य हैं। यही विषय इस सूक्त मे है ॥१॥

वे दोनों कैसे हों ?

मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः ।

सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥२॥

पदार्थ—और फिर वे दोनो प्रतिनिधि कैसे हो (मित्रा) सब मित्र (तना) धनादिविस्तारक (न) और (रथ्या) सर्व सारथि के तुल्य हो (सुक्रत) शुभ कार्य करने वाले (यः च वरुण) जो वरुण व मित्र हैं (सनात्) सर्वदा (सुजाता) सुकुल के (तनया) पुत्र हो (धृतव्रता) लोकोपकारार्थ व्रतधारी हो ॥२॥

भावार्थ—परोपकार करना नितात कठिन है, अतः यहाँ इन दोना के विशेषणो मे मित्र, सुक्रतु और सुजात आदि पद का प्रयोग हुआ है ॥२॥

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा ।

मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥३॥

पदार्थः—(ता) वैसे पुत्रो को (मही) बडी (ऋतावरी) सत्यवती (अदिति) माता (जजान) जन्म देती है जो पुत्र (विश्ववेदसा) सर्व विधि ज्ञानसम्पन्न होते (प्र महसा) बडे तेजस्वी व (असुर्याय) बलप्रदर्शक के लिये सर्वदा तत्पर रहते हैं ॥३॥

भावार्थ—विश्व विख्यात विद्वान् की कोटियो मे दो चार ही होते हैं। किन्तु प्रारम्भ से ही यदि बालक-बालिका सुशिक्षित हो तो वे वैसे बन सकते हैं ॥३॥

वे कैसे हों ?

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा ।

ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥४॥

पदार्थ—(महान्ता) जो सब कार्य मे महान् (सम्राजा) जगत् शासक (देवौ) दिव्यगुणयुक्त (असुरा) परमबलशाली (ऋतावानौ) सद्धर्म अनुगामी (मित्रावरुणा) मित्र व वरुण हैं ये दोनो (ऋतम्) ईश्वरीय सत्य नियम को (बृहत्) विस्तृतरूप से (आघोषतः) फैलाए ॥४॥

भावार्थ—ऐसे लोग सदा ईश्वरीय नियमो को देश-देश मे प्रसारित किया करें ॥४॥

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू ।

सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥५॥

पदार्थ—वे ब्राह्मणप्रतिनिधि मित्र व राजप्रतिनिधि वरुण कैसे हों (महः शवस. नपाता) महाबल पोषक, (दक्षस्य सूनू) परमबल के सुत, (सुक्रतू) शुभकर्म करने वाले और (सृप्रदानू) जिनके धनादि दान सर्वत्र फैले हैं। ऐसे मित्र व वरुण (इष वास्तु) धन के भवन में (अधिक्षित॰) विराजें अर्थात् वे सर्वगुणसम्पन्न हो ॥५॥

भावार्थ—उन दोनो के पास सब प्रकार के धन हो और वे ससार में बल वीर्य सत्यता आदि की वृद्धि करें ॥५॥

उनके गुणो का वर्णन ॥

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः ।

नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥६॥

पदार्थः—हे मित्र और ! (या) जो आप दोनो (दानूनि सयेमथु) प्रजा को सुख देने के लिए बहुत से देय पदार्थों का सग्रह करते हैं। यहाँ तक कि (दिव्या.) वरुण द्युलोकस्थ (पार्थिवी) पार्थिव धरती सम्बन्धी (इषः) सब प्रकार के धन का सग्रह करते हैं। इस प्रकार (नभस्वती) आकाश स्थित (वृष्टय) वृष्टियां भी (वाम् आचरन्तु) आप को सहायता प्रदान करें ॥६॥

भावार्थ—व्यक्ति के सुख के लिये जिन भी वस्तुओं की आवश्यकता हो उन सभी का सग्रह आवश्यक है ॥६॥

पुन उसी अर्थ को दर्शाता ॥

अधि या बृहतो दिवो३ऽभि यूथेव पश्यतः ।

ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥७॥

पदार्थ—पुन (या) जो आप दोनो (बृहत दिव) अनेकानेक व बडे-बडे विद्वत् जनो को (अभि) अपने समक्ष (यूथा इव) झुंड के झुड (अधिपश्यत.) ऊपर से देखते हैं (ऋतावाना) सत्यमार्ग पर चलने वाले (सम्राजा) अच्छे शासक (नमसे) नमस्कार योग्य (हिता) जगत् का हित करने वाले है ॥७॥

भावार्थ — मित्र और वरुण दोनो ही जिस कारण महाप्रतिनिधि हैं अत वे उच्च और उत्तम सिहासन पर बैठते हैं और अन्यान्य सिहासन के नीचे। अत मन्त्र मे कहा गया है कि वे दोनो ऊपर से समूह के समूह अपने सामने विद्वानो को देखते हैं ॥७॥

उन दोनों का कर्तव्य ॥

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।

धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥८॥

पदार्थ—पुन वे दोनो (ऋतावाना) ईश्वर के सत्यनियमो के अनुगामी और (सुक्रतू) सुकर्मा (साम्राज्याय) राज्य कल्याण के लिये (निषेदतुः) उत्तम आसन पर बैठते हैं अथवा प्रजा से अभिषिक्त हो व्यवस्था करने के लिये बैठते हैं। (धृतव्रता) प्रजा के शासन व्रत को जिसने धारा है (क्षत्रिया) जो क्षात्रधर्म सपन्न हो। (क्षत्रम् आशतु.) और जिसने परम बल प्राप्त किया हो ॥८॥

भावार्थ—इसमे पूर्व बताए गए ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनो राज्य-कार्य हेतु चुने जायें तब वे इसे महाव्रत समझ सदा प्रजाहित मे रत रहे ॥८॥

उनके गुण ॥

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।

नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥९॥

पदार्थ—पुनः वे मित्र तथा वरुण (अक्ष्ण चित्) नेत्र से भी उत्तम (गातुवित्तरा) मार्गदर्शक हों। और (निमिषन्ता चित्) सब वस्तुओ को उस समय भी देखे जब वे स्वय (निचिरा) आँखें बन्द रखें अर्थात् ज्ञानचक्षु से सब पदार्थ देखे फिर (अनुल्बणेन) प्रसन्न (चक्षसा नि चिक्यतु) नेत्र से सब कुछ निश्चय करे ॥९॥

भावार्थः— उन दोनों को सब वस्तुओ मे बड़ा ही तीक्ष्ण होना चाहिए। वे शीघ्र मानवगति परिचायक हो, प्रसन्न नेत्रो द्वारा प्रजा को देखें ॥९॥

सब प्रजाए रक्षणीय हैं ॥

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।

उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥१०॥

पदार्थ—(उत) और (देवी अदिति) सत्पुत्रो को जन्म देने वाली उत्तम गुणयुक्त लोकमाता (न उरुष्यताम्) हमारी सहायता तथा रक्षा करें और (नासत्या) असत्यरहित वैद्यगण हमारी रक्षा करे एव (वृद्धशवस. मरुत) परम बलशाली सेनानायक भी हमारी रक्षा करे ॥१०॥

भावार्थ—प्रजा की रक्षा ही परमधर्म है। दण्ड का भय ही शान्ति रखता है। अत. यथाशक्ति सब श्रेष्ठ पुरुष व स्त्रिया इस कार्य मे दत्तचित्त तथा सावधान रहे ॥१०॥

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः ।

अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥११॥

पदार्थः—(सुदानव) हे अपनी रक्षा द्वारा सुदान दाता सेनानायको ! (ते) वे आप सारे (नः नावम्) हमारे व्यापारिक जहाजो को (दिवा) दिन मे (नक्तम्)

रात मे (उक्ष्यत) पालिये और (पायुभि) आप रक्षको सहित हम सब (अरिष्यन्त) हिंसित न होते हुए अर्थात् भली प्रकार पालित होकर (वि सचेमहि) अपने-अपने कार्य मे सदा लगे रहें ॥११॥

भावार्थ.—जो राज्यरक्षार्थ नियुक्त हों वे सतर्क रहते हुए सब पदार्थो पर ध्यान रखें जिससे प्रजाएं सुखी रहें ॥११॥

सभाध्यक्ष का कर्तव्य ॥

अध्वते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।

श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥१२॥

पदार्थः—हे मानवो ! (वयम् अरिष्यन्त) हम सभी किसी से बाध्य न होते हुए (अध्वते) अहिंसक (सुदानवे) शुभदाता (विष्णवे) सभाध्यक्ष तथा परमात्मा की सेवा करें (स्वयावन्) हे स्वयं रक्षार्थ जाने वाले (सिन्धो) हे दयालुतम ! सभाध्यक्ष व भगवन् आप (पूर्वचित्तये) पूर्ण ज्ञान हेतु (श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुनें ॥१२॥

भावार्थ—प्रजा जिन-जिन भी उपायों द्वारा उपद्रवो से मुक्त हों वे ही आवश्यक कर्तव्य हैं और स्वस्थ प्रजाएं भी रक्षा करने वालों को प्रसन्न रखें ॥१२॥

कैसा धन उपार्जनीय है

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।

मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥१३॥

पदार्थः—(तत् वार्यम् वृणीमहे) हे मित्र व वरुण ! हमारी सब की उसी धन की कामना है जो (वरिष्ठम्) नितान्त श्रेष्ठ हो (गोपयत्यम्) व सब का पालन करते हों और (यत् यत्) जिस-जिस धन को (मित्रः वरुण अर्यमा) क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रतिनिधि मित्र, वरुण, अर्यमा (पान्ति) पालते हैं ॥१३॥

भावार्थ —वही धन उपार्जनीय है जिससे अपना व दूसरों का उपकार तथा हितसाधन होता हो ॥१३॥

आशीर्वाद की याचना ॥

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।

इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥१४॥

पदार्थ —(उत) और (अपां सिन्धु) जल का सागर मेघ (मरुत) वायु तथा सेनानायक (अश्विना) सद्वैद्य सूर्य, चन्द्र (इन्द्रः विष्णु) राजा व सभाध्यक्ष विद्युत् एव द्युलोकस्थ पदार्थ ये सब (सजोषस) मिलकर (न. तत् तत्) हमारे उस उस अभ्युदय को बचाए, बढ़ाए और कृपावृष्टि से देखें और (मीढ्वांस) सुखवर्षा करने वाले हों ॥१४॥

भावार्थ —चेतन एव अचेतन दोनो से ही ससार का निर्वाह हो रहा है, अत इन दोनो से बुद्धिमान् लाभान्वित हो ॥१४॥

उनके गुणो का वर्णन ॥

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् ।

तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥१६॥

पदार्थ —(ते हि स्म) वे ही मित्र, वरुण तथा अर्यमा (कयस्य चित्) सब की (अभिमातिम्) शत्रुता को (प्रतिघ्नन्ति) दूर करते हैं। जो (वनुषः) यथार्थ न्याय के विभाग कर्ता हैं (नर) नेता हैं तथा (न) जैसे (भूर्णय) अतिवेगवान् (क्षोद.) जल (तिग्मम्) अग्रत स्थित वृक्ष इत्यादि को उखाड़ देते हैं ॥१५॥

भावार्थः—कार्य हेतु नियुक्त मित्र इत्यादि आलस्यरहित होकर प्रजा के विघ्न दूर करें ॥१५॥

क्षत्रिय को कैसा होना चाहिए ॥

अयमेक इत्था पुरू रू चष्टे वि विश्पतिः ।

तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥१६॥

पदार्थः—वे वरुण (विश्पति) सभी जनों के पति तथा (एक एव) एक ही (पुरु उरु च) बहुत व विस्तृत धनों को (इत्था विचष्टे) इस ढंग से देखते हैं (तस्य व्रतानि) उनके नियमो को (व) आप और हम सब (अनुचरामसि) पालें ॥१६॥

भावार्थः—राज्य जिन नियमों को बनाता है सब लोग एकमत होकर उनका पालन करें तथा कराए ॥१६॥

राज्यनियम पालनीय हैं ॥

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम ।

मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥१७॥

पदार्थ —(दीर्घश्रुत्) बहुत दिनो मे विख्यात (यद्वा) दूरस्थ स्थानो की बातों का श्रोता (मित्रस्य वरुणस्य) ब्राह्मण व राज-प्रतिनिधि के किए हुए (साम्राज्यस्य) जो महाराज्य के (पूर्वाणि ओक्या) नितान्त प्राचीन गृह्य नियम हैं व (व्रतानि) उनके पालन के जो ढंग हैं उनका (अनु सश्चिम) हम अनुसरण करें ॥१७॥

भावार्थ —राज्यप्रतिनिधियों द्वारा जो नियम निर्धारित किए गए हैं और उपाय हैं उनका प्रतिपालन सभी के लिए उचित है ॥१७॥

ब्राह्मणों के गुण वर्णन ॥

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः ।

उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥१८॥

पदार्थः—(य) जो ब्राह्मण (दिव पृथिव्या अन्तान्) द्युलोक एवं पृथिवी की अन्तिम सीमा को (रश्मिना) विज्ञान तेज द्वारा (परिममे) मापते हैं तथा (महित्वा) ज्ञान की महिमा से (उभे रोदसी) दोनो पृथिवी व द्युलोक को ज्ञान और कर्म से (आपप्रौ) पूरा करते हैं ॥१८॥

भावार्थ.—जो अपने विज्ञान द्वारा संसार का परोपकार कर रहा है वही ब्राह्मण वस्तुत है ॥१८॥

ब्राह्मण के गुण ॥

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः ।

अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥१९॥

पदार्थ —(स्य) वह जनहितकारी ब्राह्मण (दिवः शरणे) द्युलोक तक (सूर्य) सूर्य के तुल्य (उद् अयंस्त ज्योति) ज्योति तथा विज्ञान को प्रसारित कराते हैं (उ) वह विख्यात है और (अग्निर्न) अग्नि के तुल्य स्वय (शुक्रः) देदीप्यमान होते हुए (समिधान) जगत् को प्रकाश देते हुए (आहुत) मनुष्यमात्र से प्रसादित तथा तर्पित हैं ॥१९॥

भावार्थ —सच्चे अर्थों मे ब्राह्मण वही है जो ज्ञान का उपार्जन करते हैं तथा परोपकार में रत रहते हैं ॥१९॥

उसी के गुणवर्णन ॥

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः ।

ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥२०॥

पदार्थ —हे विद्वत्जन ! जो ब्राह्मण मित्र (दीर्घप्रसद्मनि) विशाल भवन मे बसते हैं (वच) और जो (गोमत वाजस्य) गौ आदि पशुयुक्त सम्पत्ति के (ईशे) शासक हैं और (दावने) दान हेतु (अविषस्य) विषरहित प्रीतिकारी (पित्व) अन्न पर अधिकार रखते है वे प्रशसनीय हैं ॥२०॥

भावार्थः—जो सब प्रकार धन सम्पदा के स्वामी हो वे ब्राह्मण ही प्रशसनीय हैं ॥२०॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे ।

भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥२१॥

पदार्थ —(सूर्यम्) सूर्य के तुल्य (तत्) मित्र तथा वरुण का वह नियम एव उपाय (उभे रोदसी) त्रिलोको मे प्रचलित है मैं (दोषा) रात्रि में (वस्तो) दिन में (उपब्रुवे) उसकी वन्दना करता हूँ अर्थात् सदा उसका प्रचार करता हूँ । हे प्रभो ! (अस्मान्) वैसे हमें (सदा) सर्वदा (भोजेषु) विविध अभ्युदयो पर (अभ्युच्चर) स्थापित कर ॥२१ ॥

भावार्थः—हम धन के अधिकारी तभी बन सकते हैं जब राज्य द्वारा जारी तथा ईश्वरीय नियमों का अच्छी प्रकार पालन करें ॥२१॥

उपासना का फल ॥

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे ।

रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥२२॥

पदार्थ —परमात्मा की उपासना मे हम उपासक (उक्षण्यायने) सर्व कामनाओं के पूर्ण कर्ता प्रभु के निकट (ऋज्रम्) ऋजुगामी सात्विक इन्द्रियगण (असनाम) पाये हुए हैं और (हरयाणे) सकल दु खनिवारक भगवान् के प्रसन्न होने से (रजतम्) श्वेत अर्थात् सात्विक ज्ञान प्राप्त किया है । (सुसामनि) जिसके हेतु लोग सुन्दर सामगान गाते हैं उसकी कृपा से (युक्तम् रथम्) विविध इन्द्रिय व सद्गुण युक्त शरीररूप रथ पाये हुए हैं ॥२२॥

भावार्थ —उपासक अवश्य फल प्राप्त करता है यह असन्दिग्ध है; अतः ईश्वरभक्त धैर्य व विश्वास रखे ॥२२॥

इन्द्रियां कैसी हों ॥

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना ।

उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥२३॥

पदार्थः—(मे) मेरे (हरीणाम्) हरणशील (अश्व्यानाम्) अश्वो के बीच (नितोशना) शत्रुविनाशक ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय हों (उतो नु) और भी (कृत्व्यानाम्) कर्म करने मे कुशल लोगो के मध्य (नृवाहसा) मनुष्य का सुख देने वाले हों ॥२३॥

भावार्थ—हमारे इन्द्रियगण उसकी कृपा से विषयविमुख हों और सदा मनुष्यों में सुखवाहक हों ॥२३॥

उपासनाफल ॥

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती ।

महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥२४॥

पदार्थ—मैं उपासक (**नविष्ठया मती**) नित नवीन बुद्धि से युक्त (**अर्वन्ता**) द्विविध इन्द्रिय (**सचा**) साथ ही (**असनम्**) प्राप्त किये हुए हूँ। वे कैसे हैं? (**स्मदभीशू**) सुशान रज्जुयुक्त (**कशावन्ता**) विवेकयुक्त (**विप्रा**) मेधावी विचारशील (**महः**) महत् (**वाजिनौ**) तीव्रगामी है ॥२४॥

भावार्थः—कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय दोनों को शुद्ध कर्मकुशल, विवेकशील और धीर बनाए ॥२४॥

अष्टम मण्डल से पच्चीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पंचविंशत्यृचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः ॥ १-१९ अश्विनौ । २०-२५ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक् । २, ८, २३ विराडुष्णिक् । ५, ९-१५, २२ निचृदुष्णिक् । २४ पादनिचृदुष्णिक् । १६, १९ विराड् गायत्री । १७, १८, २१ निचृद्गायत्री । २५ गायत्री । २० विराडनुष्टुप् ॥ स्वर —१-१५, २२-२४ ऋषभ । १६-१९, २१, २५ षड्ज । २० गान्धार ॥

राजधर्मों का उपदेश ॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।

अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥१॥

पदार्थ—(**अतूर्तदक्षा**) हे अनिवारणीय शक्तिसम्पन्न (**वृषणा**) हे प्रजा में धन वर्षा करने वाले (**वृषण्वसू**) हे धनयुक्त! हे राजन्! हे मन्त्रिदल! (**युवो रथम्**) आप लोगों के रथ को (**सूरिषु सधस्तुत्याय**) विद्वानों की सभा में सबके साथ आदर हेतु (**सु**) साधुभाव सहित (**हुवे**) मैं बुलाता हूँ (**उ**) निश्चित ही ॥१॥

भावार्थ—पहले भी बताया गया है कि राजा और मन्त्रिदल का नाम "अश्व" भी है। प्रजा के लिए उचित है कि बड़ी-बड़ी सभाओं में मन्त्रिसमेत राजा को बुलाकर सम्मानित करें। जो राजदल प्रजा में सदा अपनी उदारता का प्रकाश करते हों वे आदर के पात्र हैं ॥१॥

राजा के अन्य कर्तव्य ॥

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।

अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥२॥

पदार्थ—(**नासत्या**) हे असत्य से मुक्त (**वृषणा**) हे प्रजा में धनवर्षा करने वाले (**वृषण्वसू**) हे धनयुक्त राजन् व मन्त्रिगण! (**युवम्**) आप सब (**वरो**) श्रेष्ठजन (**सुषाम्णे**) सुन्दर गायक (**महे**) महान् (**तने**) विद्या धनादि के विस्तारक इत्यादि ऐसे मनुष्यों के लिये (**अवोभिः**) पालन सहित अर्थात् रक्षक सेनाओं के साथ (**याथ**) यात्रा करते हैं ॥२॥

भावार्थ—राजा के लिए उचित है कि सब पुरुषों की रक्षा करे तथा देश में घूम कर उनकी दशा से परिचित हो व यथायोग्य व्यवस्था करे ॥२॥

राजकर्म ॥

ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।

पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥३॥

पदार्थ—(**वाजिनीवसू**) हे अन्नादि में परिपूर्ण धन वाले राजा तथा मन्त्रियो (**ता वाम्**) उन आप सब को (**अद्य**) आज (**अति क्षपः**) रात्रि बीतने के बाद अर्थात् प्रातःकाल (**हवामहे**) आदर सहित बुलाते हैं (**हव्येभिः**) स्तुतियों से आपका सत्कार करते हैं, आप सब (**पूर्वीः इषः**) बहुत से धनों को (**इषयन्तौ**) एकत्रित करने हेतु इच्छा करें ॥३॥

भावार्थ—राजा के लिए उचित है कि प्रजा-हितार्थ अधिकाधिक धन एकत्रित कर के रखे ॥३॥

राजा का कर्त्तव्य कर्म ॥

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।

उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥४॥

पदार्थ—(**नरा**) जन नेता! (**अश्विना**) राजा और मन्त्रिदल (**वाम्**) आप सब का (**वाहिष्ठः**) अतिशय अन्नादिक वाहक (**श्रुतः**) प्रसिद्ध (**रथः**) रथ (**आयातु**) प्रजा के गृह पर आए व आप (**तुरस्य**) श्रद्धा तथा भक्तिसहित स्तुति करते हुए पुरुषों के (**स्तोमान्**) स्तोत्रों को (**श्रिये**) कल्याण हेतु (**उपदर्शथः**) सुनें ॥४॥

भावार्थः—प्रजा में जहाँ-जहाँ भी भोज्य पदार्थों की कमी हो वहाँ राजदल रथ, अश्व, उष्ट्र आदि से अन्न पहुँचाने की व्यवस्था करें ॥४॥

पुनः राजकर्म ॥

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू ।

युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥५॥

पदार्थ—(**वृषण्वसू**) हे वर्षणशील धनसम्पन्न (**अश्विना**) हे राजा व मन्त्रिदल! (**जुहुराणा चित्**) कुटिलों को (**मन्येथाम्**) विविध दूतों से जानें और उन्हें सत्पथ पर लाएं (**रुद्रा**) भयंकर (**युवम्**) आप दोनों मिलकर (**द्विषः**) परस्पर द्वेषी और धर्म कर्म से परस्पर द्वेष रखने वालों को (**अति पर्षथः**) दण्ड दें ॥५॥

भावार्थ—राष्ट्रकर्मचारियों को परस्पर द्वेष, हिंसा व अवगुण को दूर कर उपद्रवकारी जनों को यथाविधि दण्ड देकर सुमार्ग पर लाने का प्रयास करना उचित है ॥५॥

पुनः उसी वस्तु का कथन ॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।

धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥६॥

पदार्थ—वे राजा तथा मन्त्री (**दस्रा**) दर्शनीय एवं शत्रुओं का क्षय करते हों (**धियञ्जिन्वा**) प्रजा की बुद्धि और कर्मों को बढ़ाएं और (**मधुवर्णा**) उनके वर्ण मधुर व सुन्दर हों (**शुभस्पती**) समय समय पर जलों के प्रबन्धकर्ता हों। वैसे मन्त्रिदलसहित राजा (**मक्षूभिः**) तीव्रगामी रथ तथा सेनासहित (**विश्वम्**) प्रजा की सकल वस्तुओं को (**आनुषक्**) सर्वदा (**परिदीयथः**) रक्षा करें (**हि**) निश्चय ही इसीसे उनकी कीर्ति भी बढ़ती है ॥६॥

भावार्थ—जिन उपायों से राज्य में बुद्धि, सुकर्म, विद्या, धन और व्यवसाय आदि की वृद्धि हो वे अवश्य कराए जाएं ॥६॥

पुनः उसी का वर्णन ॥

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।

मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७॥

पदार्थ—(**अश्विना**) हे राजा व मन्त्रिगण! (**विश्वपुषा**) सबके पोषक (**राया**) धनसम्पत्ति सहित (**नः**) हमारे (**उपयातम्**) निकट आएं अर्थात् हम प्रजा को अपने उद्योग व वाणिज्यादि से धनसम्पन्न बनाएं क्योंकि आप (**मघवाना**) श्रेष्ठ धनयुक्त हैं (**सुवीरौ**) वीरजन युक्त हैं और (**अनपच्युतौ**) पतनरहित हैं ॥७॥

भावार्थ—क्योंकि राष्ट्र हितसाधनार्थ राजा के पास सब साधन रहते हैं अतः राजदल को सदा प्रजा के अभ्युदय हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥७॥

पुनः वही कथन ॥

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् ।

देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्रनासत्या**) हे महापुरुष तुल्य असत्य से दूर (**देवा**) हे दिव्यगुणसम्पन्न राजा व मन्त्रिदल! आप दोनों (**सचनस्तमा**) अतिशय मिलनसार हैं। वे आप (**देवेभिः**) अन्यान्य देवों के साथ (**अद्य**) आज (**अस्य मे**) इस मेरे उपासक के (**प्रतीव्यम्**) कर्म की रक्षा हेतु (**आगतम्**) आएं ॥८॥

भावार्थ—शुभकर्म में सत्पुरुषों को बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए ॥८॥

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।

सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥९॥

पदार्थ—हे राजा तथा मन्त्रियो! (**उक्षण्यन्तः**) धनस्वामी व रक्षक की अपने लिये कामना करते हुए हम (**हि**) निश्चित रूप से (**व्यश्ववत्**) जितेन्द्रिय ऋषि के तुल्य (**वाम् हवामहे**) प्रत्येक शुभकर्म में आपका आह्वान करते हैं (**विप्रौ**) हे मेधावी राष्ट्रदल (**सुमतिभिः**) सुन्दर बुद्धि व बुद्धिमान् पुरुषों सहित (**इह**) इस यज्ञ में (**उपागतम्**) आकर विराजिए ॥९॥

भावार्थः—प्रजा राजदल से प्रेम करे और उस पर विश्वास करे तथा राजदल प्रजा हित में सदा रत रहे ॥९॥

पुनः उसी का कथन ॥

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् ।

नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥१०॥

पदार्थ—(**ऋषे**) हे ऋषे! आप (**अश्विना सु स्तुहि**) राजा व मन्त्रियों के गुणों को भली प्रकार प्रकाशित करें (**ते**) तेरी (**कुवित् हवम्**) प्रार्थना को अनेक बार (**श्रवतः**) सुनेंगे (**उत**) व (**नेदीयसः पणीन्**) समीपी कुटिल जनों को (**कूळयातः**) दण्ड देकर दूर करेंगे ॥१०॥

भावार्थ—कूळयात = "कुडि दाहे" दाहार्थक कुण्ड धातु से बनता है। पणि—जिसका व्यवहार अच्छा नहीं। वाणिज्य आदि में कुटिल व्यवहार करने वाले को दण्ड देना राज्य का कार्य है ॥१०॥

वैयश्वस्य श्रुत नरोतो मे अस्य वेदथः ।

सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११॥

पदार्थ—(नरा) हे लोकनायक ! राजा व मन्त्री (उतो) और भी आप सब (वैयश्वस्य) जितेन्द्रिय ऋषियो के तुल्य (अस्य मे) मेरे आह्वान को (श्रुतम्) सुनें और (वेदथ) जानें और (सजोषसा) मिलकर (वरुण) राजप्रतिनिधि (मित्र) ब्राह्मणप्रतिनिधि व (अर्यमा) वैश्यप्रतिनिधि मेरी सुनें ॥११॥

भावार्थः—प्रजा अपनी इच्छा से स्वतन्त्रता सहित सब प्रतिनिधियो के समक्ष सुनाए । प्रतिनिधिदल उस पर यथोचित कार्यवाही करे ॥११॥

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।

अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥१२॥

पदार्थ—(धिष्ण्या) पूजा योग्य (वृषणा) धनादि की वर्षा करने वाले आप सब (सूरिभि युवादत्तस्य) विद्वानो को आपने जो धन दिया है (युवानीतस्य) और उनके लिये जो धन लाए हैं उस से (मह्यम्) मुझे भी (अहरह) सर्वदा (शिक्षतम्) सम्पन्न करें ॥१२॥

भावार्थ—जो धन राज्य द्वारा विद्वद्वर्ग मे बाटा जाय वह इतर जातियो मे भी वितरित हो ॥१२॥

पुन वही अर्थ ॥

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।

सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

पदार्थ—(अधिवस्त्रा) अधोवस्त्र धारण करने वाली (वधू इव) कुल वधू के तुल्य (य वाम यज्ञेभि आवृत) जो जन शुभकर्मरूप वस्त्रो से स्वय ढके उनकी कामनाओ को (सपर्यन्ता) पूर्ण करते हुए आप सब उन्हें (शुभे) शुभकर्म पर या मङ्गल के ऊपर (चक्राते) स्थापित करते है (अश्विना) हे मन्त्रियो सहित राजन् ! आप सदा प्रजा का कल्याण करे ॥१३॥

भावार्थ—राजसभा द्वारा जारी नियमो का सब पालन करे और जो कोई उनके प्रचार मे सहायता व दान दें वे परितोषणीय हैं ॥१३॥

पुन उसी की अनुवृत्ति ॥

यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।

वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४॥

पदार्थ—(य) जो भक्त (उरुव्यचस्तमम्) नितान्त विस्तृत व बहुयशस्कर (नृपाय्यम) मनुष्यग्रहणयोग्य स्तोत्र को (वाम्) आप लोगो के लिए (चिकेतति) जानता है (अश्विना) हे अश्वद्वय (वर्ति) उसके घर को (अस्मयू) मानवमात्र को चाहने वाले आप (परियातम्) आकर भूषित कर ॥१४॥

भावार्थ—जो कवि तथा विद्वान् आदि काव्य वा शास्त्र रचते हैं वे राज्य की ओर से पूजनीय व पोषणीय है ॥१४॥

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यात वर्तिर्नृपाय्यम् ।

विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५॥

पदार्थ—(वृषण्वसू) हे धन बरसाने वाले अश्विद्वय ! (अस्मभ्यम्) हमारे कल्याण हेतु आप सब (सुयातम्) भली प्रकार आए व (नृपाय्यम्) मनुष्यो के रक्षणीय तथा आश्रय (वर्ति) जो मेरे गृह व यज्ञशाला है वहाँ आकर विराजमान हो (विषुद्रुहा इव) जैसे वीर बाण की सहायता से रक्षा करते हैं वैसे ही (गिरा) स्तुतियो से प्रसन्न हो (यज्ञम्) प्रजा के शुभकर्म की (ऊहथु) रक्षा व भार वहन करे ॥१५॥

भावार्थ—राजवर्ग को प्रजा के कल्याणार्थ सदा चेष्टारत रहना चाहिए । वह आलस्य न करे क्योंकि राजवर्ग प्रजा की रक्षार्थ ही नियुक्त होता है ॥१५॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।

युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६॥

पदार्थ—(नरा अश्विना) हे प्रजानायक अश्विद्वय ! (हवानाम्) आह्वानकर्ता वा प्रार्थनाकारी हम जो हैं उनका (स्तोम) स्तोत्र ही (दूत) दूत होकर या दूत के तुल्य (वाम् हुवत्) आप दोनो को निमन्त्रित कर यहाँ लाए । जो स्तुतिगान (वाहिष्ठ) आपके यशो का यत्र तत्र अतिशय ले जाने वाला है तथा वह स्तोम (युवाभ्याम भूत) आप सब के प्रिय हो ॥१६॥

भावार्थ—हमारे सारे काम राज्यप्रियसाधक होने चाहिए ॥१६॥

पुन उसका कथन ॥

यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।

श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७॥

पदार्थ—(अमर्त्या) हे चिरस्थायी यश सपन्न पुरुषश्रेष्ठ राजा व मन्त्रिदल (यत्) यदि आप सारे (अद: दिव: अर्णवे) उस विलाससागर मे (मदथ) क्रीडा रत हो (वा इष: गृहे) यद्वा अन्नगृह मे आनन्दित हो, उस-उस स्थान से आकर (मे श्रुतम् इत्) मेरी स्तुति सुना ही करें ॥१७॥

भावार्थ—राजा अपनी व्यस्तता त्याग प्रजा के कार्य हेतु सदा तत्पर रहें ॥१७॥

राजा कैसे हों ?

उत स्या श्वैतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।

सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥

पदार्थ—(उत) और भी (नदीनाम्) इन्द्रियरूपी नदियो मे (स्या श्वैतयावरी) वह बुद्धि जो सात्विक भाव की प्रकाशक है और जिसमें किञ्चिन्मात्र कलंक नहीं (वाम् वाहिष्ठा) आपके यश को प्रजा मे पहुँचाया करती है और (हिरण्यवर्तनि सिन्धु) सुमार्गगामी स्यन्दनशील विवेक भी तुम्हारा ही गुणगायक है ॥१८॥

भावार्थ—गुणवान् तथा शीलवान् राजा की प्रशसा सभी करें तथा कराए ॥१८॥

राजा कैसा हो यह प्रदर्शित है ॥

स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया ।

वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९॥

पदार्थ—(शुभ्रयावाना) जिनका जाना शुद्ध हिंसारहित व प्रजा मे उपद्रव न मचानेवाला हो ऐसे (अश्विना) राजा व मन्त्री (एतया सुकीर्त्या) इस सांसारिक सुकीर्ति से मडित हो और (स्मत) वे अच्छी रीति से प्रजा के क्लेश की जिज्ञासा हेतु इधर-उधर यात्रा करे और (श्वेतया धिया) शुद्ध बुद्धि से प्रजा का भार (वहेथे) वहन करे ॥१९॥

भावार्थ—जो शुभ प्रशसाओ से युक्त हो, जिनकी बुद्धि निर्मल हो और प्रजा के भारवहन मे उत्तीर्ण हो, वे राजा हैं ॥१९॥

सेनानायक का कर्तव्य ॥

युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।

आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥२०॥

पदार्थ—(वायो) हे सेनानायक (त्व हि रथासहा) आप रथयोग्य अश्वो को रथ मे (युक्ष्व) जोडो । (वसो) हे स्व पुरुषार्थ से सब को वास देने वाले (पोष्या) पालपोषकर शिक्षित किये घोडो को (युवस्व) सग्राम मे लगाओ (आत् न: मधु पिब) तब सग्रामो मे विजयलाभ के बाद हमारे द्वारा दिये हुए मधुर पदार्थ व सत्कार ग्रहण करें तथा (सवना आगहि) प्रत्येक शुभकर्म मे आए ॥२०॥

भावार्थ—जब सेनापति नानाविजय प्राप्त करके आए तब उनका पूरा सत्कार किया जाए और प्रत्येक शुभकर्म मे उन्हे बुलाया जाय ॥२०॥

उसके गुण का प्रकटीकरण ॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।

अवांस्या वृणीमहे ॥२१॥

पदार्थ—(ऋतस्पते) प्रभु के सच्चे नियमो को पालन वाले (त्वष्टु: जामात:) सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य्य को उत्पन्न व निर्माण करनेवाले (अद्भुत) हे आश्चर्यजनक कार्य्य करनेवाले सेनानायक (ते अवांसि आवृणीमहे) हम सभी आपकी शरण के प्रार्थी हैं ॥२१॥

भावार्थ—प्रभु के तथा राजकीय-दोनो नियमो को पालने वाले व सूक्ष्म कार्यसाधक जो वीर जन हैं वे ही सेनानायक पद ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हैं ॥ २१ ॥

उसका कर्तव्य ॥

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।

सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥२२॥

पदार्थ—(सुतावन्त) सदा शुभकर्म रत (जनास वयम्) हम सब जन (त्वष्टु: जामातरम् ईशानम्) सूक्ष्म कार्य्य निर्माता व प्रजा पर शासक (वायुम् राय: ईमहे) सेनानायक से विविध अभ्युदयो की आकाक्षाए रखते है और (द्युम्ना) उनकी सहायता पाकर धन, जन, सुयश व धर्म से समृद्ध हो ॥२२॥

भावार्थ—देश जिन उपायो से समृद्ध हो, विद्वानो से व राजसभा से सम्पत्ति प्राप्त कर उनको सेनानायक कार्य्य मे लगाए ॥२२॥

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् ।

वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥२३॥

पदार्थ—(शिव वायो) हे कल्याण करनेवाले सेनापति (दिव: याहि) क्रीडा स्थल को त्याग कर भी प्रजा की ओर जाएं, (स्वश्व्यम् सुवहस्व) रथ मे सुन्दर अश्व लगा प्रजा की सम्पत्ति की वृद्धि हेतु देश मे भ्रमण करें । (पृथुपक्षसा) स्थूल पार्श्ववाले अश्वो को (मह: रथे) महान् रथ में (वहस्व) लगाए ॥२३॥

भावार्थ—सेनापति के लिये उपयुक्त है कि वे सुदृढ रथो पर सवार होकर जन कल्याणार्थ देश का दौरा करें ॥२३॥

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे ।

ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥२४॥

पदार्थ हे सेनापति ! (**नृसदनेषु**) बड़ी-बड़ी जन सभाओ मे (**त्वां हि**) आपको (**हूमहे**) निमन्त्रित कर बुलाते हैं (**सुप्सरस्तमम्**) अपनी कीर्ति व यश से आपका शरीर नितांत सुगन्धित व सुन्दर हो रहा है जो आप (**ग्रावाणम् न**) अपने कार्य में अचल हैं (**अश्वपृष्ठम्**) और जिसके सर्वाङ्ग लड़ाकू घोड़े के समान बलवान् तथा सगठित है ॥२४॥

भावार्थ —राजा के तुल्य ही सेनानी भी प्रत्येक शुभकार्य मे आदरणीय हैं ॥२४॥

पुन उसी का विवर्णन ॥

स त्वं नों देव मनंसा वायों मन्दानो अंग्रियः ।
कृधि वाजाँ अपो धियः ॥२५॥

पदार्थ —(**देव वायो**) हे दिव्यगुण से युक्त नायक ! जिस लिए आप (**मन्दान**) आनन्दित हो प्रजा का आह्लादित कर रहे है (**अग्रिय**) सेनाओ के आगे होते हैं अत (**स त्वम्**) वह आप (**मनसा**) अपने मन से (**न**) हमें (**वाजान्**) अन्नो की (**अप**) क्षेत्र हेतु जलो की (**धिय**) और उत्साह की (**कृधि**) वृद्धि करें ॥२५॥

भावार्थ — सेनानी का यह भी कर्त्तव्य है कि अन्न, जल व प्रजा के उत्साह को भी विविध उपायो को अपना कर उसकी वृद्धि करे ॥२५॥

अष्टम मण्डल में छब्बीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य मनुर्वैवस्वत ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता. ॥ छन्दः—१, ७, ६ निचृद्बृहती । ३ शङ्कुमती बृहती । ५, ११, १३ विराड् बृहती । १५ आर्ची बृहती । १८, १६, २१, बृहती । २, ८, १४, २० पंक्तिः । ४, ६, १६, २२ निचृत् पङ्क्ति । १० पादनिचृत् पंक्ति । १२ आर्ची स्वराट् पंक्ति । १७ विराट् पङ्क्ति ॥ स्वर —१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १८, १६, २१ मध्यम । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १७, २०, २२ पञ्चम ॥

यज्ञ मे प्रयोजनीय वस्तु ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ —(**उक्थे**) स्तुति हेतु (**अग्नि**) सबका आधार ईश्वर (पुरोहित) अग्रगण्य और प्रथम वन्दनीय है (**अध्वरे**) यज्ञ हेतु (**ग्रावाण**) प्रस्तर खड भी स्तुत्य है । (**बर्हि**) कुश आदि तृण की भी आवश्यकता होती है । अत मैं (**ऋचा**) स्तोत्र से (**मरुत**) वायु से (**ब्रह्मणस्पतिम्**) स्तात्राचार्य्य द्वारा (**देवान्**) और अन्यान्य विद्वानो मे (**वरेण्यम्**) श्रेष्ठ (**अव**) रक्षण की (**यामि**) प्रार्थना करता हूँ ॥१॥

भावार्थ —यज्ञ के लिये अनेक वस्तुए आवश्यक हैं । इसलिये सब सामग्री जब जुट सके उस समय यज्ञ सम्पन्न करे ॥१॥

यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं का ही वर्णन ॥

आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतींनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वें च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥२॥

पदार्थ —हे देव ! हम उपासक (**पशुम्**) पशु (**पृथिवीम**) पृथिवी (**वनस्पतीन्**) वनस्पति (**उषासा**) प्रात (**नक्तम्**) रात (**ओषधी**) गेहूँ, जौ आदि औषधियो के गुणो का (**आगासि**) गान व प्रकाश करते हैं । अतएव (**वसव**) हे सब के वास दाता (**विश्ववेदस**) हे सर्वधन तथा ज्ञानवान् ! (**विश्वे**) हे विद्वानो आप (**न**) हमारी (**धीनाम्**) बुद्धि व विचारो के (**प्रावितार भूत**) रक्षक तथा वर्धक होवें ॥२॥

भावार्थ —यज्ञ मे दूध तथा घृतादि के लिये पशु, मृत्तिका, प्रस्तर व उखल आदि भी आवश्यक हैं । इन सामग्रियों से युक्त होने से यज्ञ मे सफलता मिलती है ॥२॥

यज्ञ-विस्तार के लिये प्रार्थना ॥

प्र सू नं एत्वध्वरो३ग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुंणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥३॥

पदार्थ.—हे प्रभो ! (**न**) हमारे (**पूर्व्यः अध्वर**) पूर्ण यज्ञ पहले (**अग्ना**) तुझ मे व (**देवेषु**) अन्यान्य देवो मे (**सु**) भली प्रकार (**प्रैतु**) प्राप्त हो तथा (**आदित्येषु**) आदित्यों मे (**धृतव्रते वरुणे**) व्रतधारी वरुण मे एव (**विश्वभानुषु मरुत्सु**) विश्वव्यापी तेजयुक्त वायु गणों मे (**प्रैतु**) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—यज्ञ का फल इस धरती से लेकर सूर्य्य तक विस्तीर्ण हो यह परमात्मा से प्रार्थना है ॥३॥

गृह व यज्ञशाला को शुद्ध बनाकर रखें ॥

विश्वे हि ष्मा मनंवे विश्ववेदसो भुवंन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥४॥

पदार्थ—(**मनवे वृधे**) मानव जाति के कल्याण व वृद्धि हेतु (**विश्ववेदस**) सर्वधन व विज्ञान संहित (**विश्वे हि स्म**) सब ही विद्वान् (**भुवन्**) होवें, और (**रिशादस**) उनके शत्रुओ व विघ्नो के नाशकर्ता हो और (**विश्ववेदस**) हे सर्वधनविज्ञानयुक्त बुद्धिमान् मानवो ! आप सब (**अरिष्टेभि पायुभि**) बाधारहित शाप से युक्त होकर (**न**) हमारे (**छर्दि**) निवास को (**अवृकम् यन्त**) पाप एव बाधा से मुक्त कीजिये ॥४॥

भावार्थ —अपने घर को शुद्ध व पावन रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिये उचित है ॥४॥

यज्ञ में सब ही पूजनीय हैं ॥

आ नों अद्य समंनसो गन्ता विश्वें सजोषंसः ।
ऋचा गिरा मरुंतो देव्यदिते सदंने पस्त्ये महि ॥५॥

पदार्थः—(**विश्वे**) हे विद्वानो ! (**समनस**) आप सब एकाग्रचित्त होकर व ((**सजोषस**) समान कार्य्य हेतु सब मिलकर (**अद्य न**) आज हमारे साथ (**आगन्त**) आए व कार्य्य मे सहयोग दें तथा (**मरुत**) हे बन्धु बान्धवो व (**महि देवि अदिते**) माननीया देवी माताओ (**गिरा**) सुन्दर वचन (**ऋचा**) तथा स्तुतियुक्त होकर हमारे (**सदने पस्त्ये**) स्थान व घरो मे बैठें ॥५॥

भावार्थ — जो छोटे, बड़े, मूर्ख, विद्वान, राजा तथा प्रजा यज्ञ मे श्रद्धा से आए वे सबही सम्मान-योग्य है ॥५॥

अभि प्रिया मंरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथनं ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुंणस्तुरा नरं आदित्यासः सदन्तु नः ॥६॥

पदार्थ -(**मरुत मित्र**) हे बन्धुओ ! हे सखाओ ! (**व या प्रिया**) आप के निकट जो-जो चीजें हैं (**अश्व्या**) अश्वयुक्त (**हव्या**) विविध खाद्य पदार्थ जो आपके हैं उन्हे (**अभि**) चारो ओर (**प्रयाथन**) लोगो मे प्रसारित करे और (**इन्द्रः वरुण**) सेनापति व राजप्रतिनिधि (**आदित्यास नर**) तेजयुक्त अन्य नेता सब मिलकर और (**तुरा.**) अपने-अपने कार्य्य मे तत्परता बरतते हुए (**नः**) हम प्रजा के (**बर्हि आ सदन्तु**) आसनो पर विराजें ॥६॥

भावार्थ—मरुत्, मित्र, वरुण और आदित्य इत्यादि का शुभकर्म मे सत्कार होना अपेक्षित है ॥६॥

वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रंयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नंयः ॥७॥

पदार्थ - (**वरुण**) हे राजप्रतिनिधि ! (**व**) आप को (**वयम**) हम सब (**आनुषक**) सदा और क्रम से (**हवामहे**) याग के लिए बुलाते हैं । जो हम (**वृक्तबर्हिष**) आसनादि सामग्री युक्त है (**हितप्रयस**) जिनका अन्न हितकार्य्य मे लगे है (**सुतसोमास**) सोमादि यज्ञकर्ता (**मनुष्वत्**) विज्ञानी पुरुष के तुल्य (**इद्धाग्नय**) और जो सदा अग्निहोत्रादि कर्म मे रत रहते है ॥७॥

भावार्थ - अपने पास जो चीजें हो उनसे अपना व पर हित सिद्ध करे और समय-समय पर सत्पुरुषो को बुलाकर अपने घर पर उनका सत्कार करे ॥७॥

वही उल्लेख ॥

आ प्र यांत मरुंतो विष्णो अश्विंना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यांतु प्रथमः संनिष्युभिर्वृषा यो वृंत्रहा गृणे ॥८॥

पदार्थ —(**मरुत**) हे सैनिको ! तथा हे बन्धुओ ! (**विष्णो**) हे सभापति (**अश्विना**) हे वैद्यगण ! (**पूषन्**) हे मार्गरक्षक व पोषणकर्त्ता ! आप सब (**माकीनया धिया**) मेरी क्रिया तथा बुद्धि से प्रसन्न होकर (**आ**) चारो ओर से (**प्रयात**) आओ और (**प्रथम इन्द्र**) सर्वश्रेष्ठ सेनापति (**सनिष्युभि**) लाभेच्छु पुरुषो सहित (**आयातु**) प्रजा की रक्षार्थ हमारे घर पर आए । (**य वृषा वृत्रहा**) जो इन्द्र सुखो के दाता और सर्वविघ्नहर्ता है (**गृणे**) उन सब सज्जनो से मेरी प्रार्थना है ॥८॥

भावार्थ—जो प्रजा का हित चिन्तन करने वाले हैं वे सब के सम्मानयोग्य हैं ॥८॥

ऋत्वा से प्रार्थना ॥

वि नों देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्मं यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमा दधर्षति ॥९॥

पदार्थ—(**अद्रुह देवास**) हे द्रोहमुक्त देवो ! (**न**) हमे (**अच्छिद्रम् शर्म**) बाधारहित कल्याण व गृह (**वि यच्छत**) भली प्रकार दें (**यत् वरूथम्**) जिस प्रशसनीय घर को (**दूरात्**) दूर से (**अन्तित**) समीप से आकर कोई रिपु (**नू चित्**) कदापि (**न आ दधर्षति**) नष्ट भ्रष्ट न कर पाए ॥९॥

भावार्थ—उत्तमोत्तम निवास स्थान, यज्ञशाला, धर्मशाला, पाठशाला आदि का निर्माण करे और उनसे जो उचित हो वह काम लेवें ॥९॥

प्राचीन और नवीन दोनों का ग्रहण करने का उपदेश ॥

अस्ति हि वंः सजात्यं रिशादसो देवांसो अस्त्याप्यंम् ।
प्र णः पूर्वंस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यंसे ॥१०॥

पदार्थ —(**रिशादस**) हे हमारे सारे विघ्न दूर करने वाले (**देवास**) विद्वानो ! हमारे साथ (**व**) आप का (**सजात्यम् अस्ति हि**) समानजातित्व

जरूर है और (आप्यम् अस्ति) बन्धुता भी है। हे विद्वानो ! इस हेतु (न॰) हमे (पूर्वस्मै) प्राचीन (सुविताय) परम ऐश्वर्य की ओर (प्र वोचत) आप ले चलें और (नव्यसे) अति नवीन (सुम्नाय) अभ्युदय की ओर भी (मक्षु) तुरत ले चलें ॥१०॥

भावार्थ—जो प्राचीन काल की वस्तु अच्छी व लाभकारी हो उनकी रक्षा करना और जो नूतन विषय प्रचलित हो उन्हे ग्रहण करना मानव धर्म है ॥१०॥

अपेक्षित वस्तुओं के लाभ के लिये नई-नई प्रार्थना बनानी चाहिये यह उपदेश दिया गया है ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युरॉ असृक्ष्यन्यामिव ॥११॥

पदार्थः—(विश्ववेदस) हे सकल धनसम्पन्न विद्वत्जनो ! (व) आप के पास (वामस्य भक्तये) अतिकमनीय वस्तु की प्राप्ति हेतु (नमस्यु) नमस्कार-पूर्वक मैं उपासक (इदा हि) इस समय ही (व) आपके लिए (अन्याम् इव) अन्यान्य अक्षयधारा नदी तुल्य (उपस्तुतिम्) इस मनोहर प्रार्थना को (उप आ असृक्षि) विधिपूर्वक रचता हूँ। कृपया इसे ग्रहण कर प्रसन्न हो ॥११॥

भावार्थ—नित नई स्तुति रचना करने से अनेक लाभ होते है। पहले तो अपनी वाणी पावन होती है, बार बार विचारने से अन्त करण पावन होता है, साहित्य की उन्नति तथा भावी सन्तान हेतु सुपथ निर्माण होता जाता है ॥११॥

हम सूर्य्य के समान वृत्ति ग्रहण करें—यह इसमे आदेश देते हैं ॥

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥१२॥

पदार्थ—(सुप्रणीतय) हे सुनीतिविशारदो ! (व) आप लोगो के हितार्थ (उ) निश्चय (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ (ऊर्ध्व) व सर्वोपरि विराजमान (स्य सविता) वह सूर्य (उद अस्थात) उदित होता है तब (द्विपाद) द्विचरण मानव (चतुष्पाद) चतुश्चरण गौ महिषादि पशु तथा (पतयिष्णव) उड़ने वाले पक्षी प्रभृति एव अन्यान्य सब जीव (अर्थिन) अपने-अपने प्रयोजन के अभिलाषी होकर(नि विश्रन) अपने अपने कार्य मे लगते है। इसी प्रकार आप भी अपने कार्य्य के लिए सन्नद्ध हो ॥१२॥

भावार्थ—जो प्रणयन रचना मे पारगत है वे भी सुप्रणीति कहाते है या जिनके लिये स्तुतिवचन अच्छे हैं वे भी। प्राय विद्वज्जन आलसी होते है, अत उन्हे आलस्य त्यागने के लिये शिक्षा दी गई है ॥१२॥

प्रत्येक विद्वान् आदरणीय है ॥

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥१३॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (देव्या) शुद्ध, पावन और देव तुल्य (धिया) मन, क्रिया व स्तुति से युक्त हो (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (व) आप मे से प्रत्येक (देव देवम्) विद्वान् को (अवसे) सहायता के लिये (हुवेम) निमन्त्रित करते हैं (अभिष्टये) अपनी अपनी कामना की गई वस्तुओं की प्राप्ति हेतु (देव देवम्) प्रत्येक विद्वान् का सत्कार करते है (सातये) एव अन्यान्य विविध लाभो के लिए (देव देवम्) प्रत्येक विद्वान् की वन्दना करते हैं। अत आप हम पर कृपा करें ॥१३॥

भावार्थ—गृहस्थ को विद्वान् का सत्कार कर उत्तमोत्तम शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥१३॥

विद्वानो की उदारता ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥१४॥

पदार्थ—(मनवे) ईश्वरीय विभूतियो के मनन कर्ता और जानने वाले पुरुष के हेतु (विश्वे देवाम) सब विद्वान् (समन्यव हि स्म) समान रीति से प्रीति व सम्मान करते आये हैं और (साकम् सरातय) साथ साथ उसे धन, ज्ञान व उत्तम से उत्तम शिक्षा भी देते आये हैं। (ते) वे विद्वद्वर्ग (अद्य) आज (अपरम्) तथा आगामी दिनो मे अर्थात् सदा (न) वर्तमानकालीन हम (तु न तुचे) और हमारी भावी सन्तति के लिए (वरिवोविद भवन्तु) सब प्रकार का सुख देने वाले हो ॥१४॥

भावार्थ—विद्वत्जन कदापि आलस्य व घृणा न करके प्रजा मे जा जाकर सत् विद्या का बीज वपन किया करें ॥१४॥

विद्वानों की गोष्ठी के लाभ के लिये प्रार्थना ॥

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥

पदार्थ—(अद्रुह) हे द्रोहमुक्त हिंसाशून्य विद्वत्जनो ! मैं उपासक (उपस्तुतीनाम्) मनोहर स्तोत्रों के (संस्थे) स्थान पर अर्थात् यज्ञादिस्थलो मे (व) तुम्हारी ही (प्रशंसामि) प्रशसा करता हूँ। (वरुण मित्र) हे वरणीय मित्रो ! (य) जो व्यक्ति (धामभ्य) मनसा वाचा कर्मणा (व विधत्)तुम्हारी सेवा करता है (तम मर्त्यम्) उस मानव को (धूर्ति) शत्रुओ की ओर से वध (न) प्राप्त नहीं होता ॥१५॥

भावार्थ—निष्कपट तथा निश्छल होकर प्रेम सहित विद्वानों की सेवा करो और उनसे श्रेष्ठतम शिक्षा प्राप्त करो ॥१५॥

विद्वानों की सेवा का माहात्म्य है ॥

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥१६॥

पदार्थ—हे विद्वत् जनो ! (य) जो मनुष्य (वराय) अपने-अपने कल्याण के लिए (व) आप लोगो के पास (दाशति) सब कुछ सद्भाव सहित समर्पित करता है (स.) वह (क्षयम् प्रतिरते) अपने गृह को सुदृढ़ व मनोहर बनाकर बढ़ाता है। पुन वह (इष मही) सम्पत्ति का बहुत (वि तिरते) विशेष रूप से सचय करता जाता है और (धर्मण परि) धर्मानुसार (प्रजाभि प्रजायते) पुत्र-पौत्रादिको सहित जगत् मे प्रसिद्ध होता है। बहुत क्या कहे (सर्व.) विद्वानो के सब सेवक (अरिष्ट) अहिंसित, उपद्रवरहित व आनन्दित हो (एधते) समाज मे उन्नति की दिशा मे बढ़ते हैं ॥१६॥

भावार्थ—लोगो के लिए यह उचित है कि वे विद्वानो की सेवा करें, विद्या से ही तुम्हारी सकल उन्नति होगी ॥१६॥

विद्वानों की रक्षा का माहात्म्य ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥१७॥

पदार्थ—(यम्) जिस के प्रति (अर्यमा) वैश्यप्रतिनिधि (मित्र) ब्राह्मणप्रतिनिधि (वरुण) राजप्रतिनिधि ये तीनो मिलकर (सरातय) समानरूप से दान दें और (सजोषस) जिस पर समान प्रीति करें या जिसके गृह पर मिलते रहे (स) वह पुरुष (युध ऋते) मानसिक व लौकिक युद्ध के विना ही (विन्दते) नाना सम्पत्ति सञ्चित करता है और (सुगभि) अपने समाज मे उत्तम धर्म, उत्तम शिक्षा, नम्रता, वाणी माधुर्य तथा सौजन्य आदि जो अच्छे गमन है उन सहित (अध्वन याति) पैतृ मार्ग पर चलता है अथवा (सुगभि अध्वन याति) हय, गज आदि सुन्दर यानो से मार्ग तय करता है ॥१७॥

भावार्थ—प्रत्येक मानव समाज व देश के विचारवान लोगो से सत्सग करे और उनकी सम्मति ले तथा अपना आचरण बनावे। तभी उसकी विपुल समृद्धि होती है ॥१७॥

मननकर्ता जन सदा रक्षणीय है ॥

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥१८॥

पदार्थ—हे विद्वत् जनो ! आप सब (अस्मै) जो सदा ईश्वरीय विभूतियो के मनन मे सलग्न है उस इस विज्ञानी का (अज्रे चित्) सरल मार्ग को भी (न्यञ्चनम् कृणुथ) अति सुगम बनादें अथवा (अज्रे चित्) जिस नगर मे कोई न जा सके वहाँ भी इसके जाने का पथ बनाएं। (दुर्गे चित्) अरण्य समुद्र आदि जो दुर्गम स्थल हैं और राजकीय प्राकार आदि जो अगम्य जगह हैं वहा भी (सुसरणम्) इसका गमन (आ) भलीभांति कराए। (एषा अशनि चित्) यह ईश्वरीय वज्रादिक आयुध भी (अस्मात्) इस जन से (पर.) दूर जा गिरे (नु) और पश्चात् (सा अस्रेधन्ती) वह किसी की हिंसा न करती हुई अशान्त (विनश्यतु) नष्ट हो जाय ॥१८॥

भावार्थ—विद्वानो की अपेक्षा भी मननशील पुरुष अधिक माननीय हैं। उन्हे सर्व बाधाओ से बचाना सब का कर्तव्य है क्योंकि वे नई-नई विद्या का प्रकाश कर लोगो का महान् उपकार करते हैं ॥१८॥

उपकार के लिए कालनियम नहीं ॥

यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥१९॥

पदार्थ—(प्रियक्षत्रा) हे प्रिय, हे कृपालु (विश्ववेदस) हे सर्वधन सम्पन्न विद्वानो ! (अद्य) इस क्षण (यद्) यद्वा (सूर्ये उद्यति) सूर्य उदित होने पर प्रात॰ (यद्) यद्वा (निम्रुचि) सूर्य्यास्तवेला मे (प्रबुधि) प्रबोधकाल या अति प्रात काल (दिव॰) यद्वा दिन के (मध्यन्दिने) मध्यसमय मे अर्थात् किसी भी समय मे आप प्रजा मे (ऋतम् दध) सत्यता की स्थापना करें ॥१९॥

भावार्थ—शक्ति अथवा बल वही है जिससे प्रजा को उत्तम लाभ मिले। धन भी वही है जिससे सब का उपकार हो। बहुत से लोग किसी विशेष स्थान, विशेष पात्र और नियत तिथि मे ही दानादि उपकार करना चाहते है, परन्तु वेद का आदेश है कि उपकार का कोई समय निश्चित नही ॥१९॥

विद्वानों की गोष्ठी के लाभ के लिए प्रार्थना है ॥

यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥२०॥

पदार्थः—(यद्वा) अथवा (असुरा) हे महाबलप्रद सब प्रतिनिधिगण ! जब आप (अभिपित्वे) साय अथवा अन्य समय में अथवा किसी भी समय (ऋतम् यते) सत्यनियम, सत्यव्रत, सत्यबोध आदि को प्राप्त और (दाशुषे)

यथाशक्ति दानदाता हतु (क्षयं) गृह, दारा, पुत्र व बहुविध पदार्थ (वि येम) देते हैं (वसव) हे सब के वासदाता (विश्ववेदस) हे सर्वधनसम्पन्न ! (तत्) तब (वयम्) हम चाहते हैं कि (व मध्ये) आप लोगो के बीच (आ) सब प्रकार से (उपस्थेयाम) उपस्थित हो । क्योंकि आपके साथ ही हम भी उदार हों ॥२०॥

भावार्थ —विद्वानो के साथ रहने से अनेक लाभ हैं । आत्मा की पवित्रता, उदारता आती है, बहुज्ञता बढ़ती है और परोपकार करने से जन्मग्रहण सफल होता है ॥२०॥

विद्वानों की उदारता

यदुद्य सूर्य उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि ।

वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥२१॥

पदार्थ —(विश्ववेदस) हे सर्वधन सर्वज्ञान विद्वज्जनो ! (यद्) जिस कारण (अद्य) इस क्षण (सूरे उदिते) सूर्योदयवेला मे (यत्) जिस कारण (मध्यन्दिने) मध्याह्न (आतुचि) और सायकाल अर्थात् हर क्षण आप (जुह्वानाय) कर्मानरत (प्रचेतसे) ज्ञानी व विवेकी (मनवे) पुरुष को (वामम् धत्थ) सुन्दर पदार्थ धन और लौकिक सुख प्रदान करते हैं अत आपकी गोष्ठी हम चाहते हैं जिससे हम भी उदार हो ॥२१॥

भावार्थ·—वे पुरुष दानपात्र अनुग्राह्य और उत्थाप्य हैं जो जुह्वान और प्रचेता हो, ईश्वरीयेच्छा के अनुरूप शुभकर्मों मे जिनकी प्रवृत्ति हो । वे जुह्वान और तदीय विभूतियो के अध्ययन व ज्ञान मे प्रवीण लोग ही प्रचेता हैं ॥२१॥

विद्वानो के निकट विनयवचन

वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।

अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहै ॥२२॥

पदार्थ —(सम्राज) हे सब पर धर्मपूर्वक शासन करनेवाले महाधिपति ! (तत्) जिस हेतु आप नितान्त उदार हैं उस हेतु (वयम् व आवृणीमहे) क्या हम भी आपसे माग सकते है ! (पुत्र न बहुपाय्यम) जैसे पुत्र अपने पिता से बहुत सी भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य और परिधेय वस्तु मांगा करता है (आदित्या) हे अखण्डव्रत, सत्यप्रकाशको ! (हवि जुह्वत) शुभकर्म करते हुए हम (तत् अश्याम) क्या उस धन का पा सकते हैं (येन) जिससे (वस्य) धनिकता को (अनशामहै) प्राप्त करें अर्थात् हम भी ससार मे धनी हो ॥२२॥

भावार्थ —पहले हम ऐहलौकिक और पारलौकिक कर्मों मे नितान्त निपुण हो, पूर्ण योग्यता प्राप्त करे तभी पुरस्कार के भी अधिकारी होंगे । विद्वानो से सदैव नम्र होकर विद्याग्रहण करें ॥२२॥

अष्टम मण्डल में सत्ताईसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य—मनुर्वैवस्वत ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता. ॥ छन्द —१, २ गायत्री । ३, ५ विराड्गायत्री । ४ विराडुष्णिक् ॥ स्वर १-३, ५ षड्ज· । ४ ऋषभ ॥

इन्द्रियसंयम का उपदेश

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।

विदन्नह द्वितासनन् ॥१॥

पदार्थः—(त्रिंशति) तीस और उससे (परः) अधिक (त्रयः) तीन अर्थात् तेतीस (ये देवास.) जो देव हैं वे (बर्हि) मेरे व्यापक अन्त·करणरूप आसन पर (आसदन्) आसीन हो । चञ्चल चपल होकर इधर-उधर न विचरें । यहां स्थित हो (अह) निश्चित रूप से (विदन्) परमात्मा को पाए और (द्विता) दो प्रकार के जो कर्मदेव व ज्ञानदेव है वे दोनो (असनन्) अपने-अपने पास से दुर्व्यसन को दूर करें ॥१॥

भावार्थ —३३ देव कौन हैं—यह विवादास्पद है । वेदों मे तेतीस देव कहीं गिनाए नहीं गए हैं । किन्तु नियत सख्या का वर्णन अवश्य आता है । अत ये तेतीस देव इन्द्रिय हैं । हस्त, पाद, मूत्रेन्द्रिय, मलेन्द्रिय, और मुख ये पाच कर्मेन्द्रिय और नयन, कर्ण, घ्राण, रसना और त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं । और मन एकादश इन्द्रिय कहलाते हैं । ये उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार के ही तेतीस प्रकार के देव हैं । इनको वश मे रखने व उचित कर्म में लगाने से ही मानव योगी, ऋषि, मुनि, कवि और विद्वान् होता है । अत वेद इनके सम्बन्ध में उपदेश देते हैं ॥१॥

इन्द्रिय-स्वभाव

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः ।

पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥२॥

पदार्थः—(वरुण) पाशभृत् तथा न्याय से दण्डविधाता मानवप्रतिनिधि (मित्र) सर्व स्नेहकारी ब्राह्मणवर्ग (अर्यमा) वैश्यवर्ग तथा (स्मद्रातिषाचः) शुभ विविध दानो से पोषक जो (अग्नय) व्यापारपरायण अन्य जन हैं वे सब (पत्नीवन्त) अपनी-अपनी पत्नी सहित मुझे (वषट्कृता.) वषट् शब्द से सम्मानित हुए हैं । वे सम्प्रति मुझ पर प्रसन्न हो, यह वन्दना है ॥२॥

भावार्थ —भगवान् शिक्षा देते है कि जगत् का उपकार करने वाले सबको आदर से देखो और यथायोग्य उनकी पूजा वन्दना करो । यद्वा – प्रथम और अन्तिम ऋचा से विस्पष्टतया विदित होता है कि यह सब वर्णन इन्द्रियो का ही है । अत — यहाँ भी वरुण आदि का तत्परक ही अर्थ उचित है (मित्र) हितकारी इन्द्रिय (वरुण) वशीकृतेन्द्रिय (अर्यमा) गमनशीलेन्द्रिय और (अग्नय·) अग्नि-समान प्रचण्ड तथा उपकारी इन्द्रिय (पत्नीवान्) अपनी-अपनी शक्ति के साथ जगत् के उपकारी हों ॥२॥

वही प्रसग

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् ।

पुरस्तात्सर्वया विशा ॥३॥

पदार्थ —(ते) वे क्षत्र, ब्रह्म वैश्य (सर्वया विशा) सर्व प्रजा सहित (अपाच्या) पश्चिम दिशा से (न) हमारे रक्षक हो (ते) वे ही (उदक्त.) उत्तर दिशा से हमारी रक्षा करें । (इत्था) इस प्रकार दक्षिण दिशा से ऊर्ध्व दिशा से भी हमारा पोषण करें । पुन (न्यक्) निम्न दिशा से और (पुरस्तात्) पूर्व दिशा से हमारा पालन करें ॥३॥

भावार्थ —मनुष्यदेव जो ब्राह्मणादि हैं वे सवदा सब ओर से हमारी रक्षा करें, अथवा वे इन्द्रिय हमारी रक्षा करें ॥३॥

कर्तव्य कथन

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत् ।

अरावा चन मर्त्यः ॥४॥

पदार्थ —(देवा.) गतमकल्प, सत आमक्त, परोपकारी, सर्वथा स्वार्थरहित विद्वान (यथा वशन्ति) जैसा चाहें (तथा इत्) वैसा ही (असत्) होता है क्योकि (एषाम्) इन विद्वद्देवो की (तत्) उस कामना को (नकि) कोई नहीं (मिनत्) निवारित कर सकता । परन्तु अन्य मानव वैसे नही होते क्योकि वह (अरावा) अदाता होते हैं वह मूर्ख न दता है न होमता है न तपता है न कोई शुभकर्म ही करता है अत वह (मर्त्य) इतरजन मर्त्य है अर्थात् अविनाशी यश का वह उपार्जन नही करता इससे वह मरणधर्मा है और असत्यसंकल्प है । ॥४॥

भावार्थ.—जो व्यक्ति अपने पीछे यश, कीर्ति तथा कोई चिरस्थायी वस्तु छोडने वाला नही वही मरणधर्मा है क्योकि उसका कोई स्मारक नही रहता । जिनके कुछ स्मारक रह जाते है वे ही देव है । अत सभी देव बनने का प्रयास करें अत यहशिक्षाप्राप्त होती है कि मनुष्य शुभकर्म करके देव बने ॥४॥

इन्द्रिय-स्वभाव

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् ।

सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥५॥

पदार्थ —मनुष्य शरीर मे (सप्तानाम्) दो कान, दो नेत्र, दो घ्राण और एक जीभ ये जो सात इन्द्रिय हैं, उनके (सप्त ऋष्टय.) सात आयुध है, दो-दो प्रकार के श्रवण व दर्शन, सूघना व एक भाषण ये सातो महान् अस्त्र है (एषाम्) इन कर्णादि देवो के (सप्त द्युम्नानि) ये ही श्रवण आदि शक्तियां अलङ्कार हैं (सप्तो) ये सातो (श्रिय) विशेष शोभा (अधि धिरे) दायक है ॥५॥

भावार्थ. -परमात्मा ने मनुष्य जाति मे सभी वस्तुओ के सग्राहक सप्तेन्द्रिय स्थापित किये हैं । उनसे विद्वान अनेक अद्भुत चीजो का सग्रह करते हैं । किन्तु मूर्ख इन्हीं को पापो मे लगा नष्ट कर दीन-हीन रहते है, हे मनुष्यो ! उन्हे शुभकर्म मे लगाकर उन्हें सुधारो ॥५॥

अष्टम मण्डल मे अठाईसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य मनुर्वैवस्वत कश्यपो व मारीच ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द —१, २ आर्चीगायत्री । ३, ४, १० आर्चीस्वराड् गायत्री ५ विराड्गायत्री । ६-९ आर्ची भुरिग्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

मनोरूप देव का वर्णन

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥१॥

पदार्थः—(बभ्रु) सर्वइन्द्रियो के धारक और पोषक (विषुण) इतस्तत भ्रमणशील (सूनर) इन्द्रियो का सुनेता एव (युवा) सब मे योग प्रदाता (एक.) एक मनोरूप देव (हिरण्ययम्) स्वर्णमय (अञ्जि) भूषण (अङ्क्ते) प्रदर्शित कर रहा है ॥१॥

भावार्थ —वास्तव में मानरूपी इन्द्रिय इस शरीर मे एक विचित्र भूषण है । इसे जो जानता है और सत्कर्म मे इसे लगाता है वही मानव जाति मे भूषण बनता है ॥१॥

वसुदेव का वर्णन

योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥२॥

पदार्थ —(**देवेषु**) इन्द्रियो के (**अन्त**) बीच (**द्योतन**·) अपने तेज से प्रकाशित और (**मेधिरः**) बुद्धिदाता (**एक**) एक नयनरूप देव (**योनिम्**) प्रमुख स्थान (**आससाद**) पाए हुए हैं ॥२॥

भावार्थ·—शरीर मे नेत्रो का प्रमुख स्थान है। प्रथम मानव की बुद्धि इससे बढ़ती है क्योंकि इससे देख शिशु मे जिज्ञासा शक्ति बुद्धि पाती जाती है ॥२॥

कर्णदेव का गुण

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥३॥

पदार्थः– (**देवेषु अन्त**) देवो के बीच (**निध्रुविः**) निश्चल स्थान पर रहने वाले (**एक**) एक कर्णरूप देव (**हस्ते**) हाथ मे (**आयसीम्**) लोहे से बना (**वाशीम्**) बसूला (**बिभर्ति**) रखता है ॥३॥

भावार्थ —कर्णदेव सब कुछ सुनकर व निश्चय कर मनो द्वारा आत्मा से कहता है, तब यह काट छांट करता है, अत यहाँ बसूले की चर्चा है ॥३॥

आत्मदेव का वर्णन

वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥४॥

पदार्थ —(**एक**) एक आत्मदेव (**हस्ते आहितम्**) हाथ मे निहित=स्थापित (**वज्रम्**) विवेकरूपी महान् अस्त्र (**बिभर्ति**) रखता है (**तेन**) उस वज्र द्वारा (**वृत्राणि**) सारे विघ्नो को (**जिघ्नते**) समाप्त करता रहता है ॥४॥

भावार्थ —केवल विद्या अथवा ज्ञान से या क्रियाकलाप से यह जीव निषिद्ध कर्मों मे निवृत्ति नहीं पाता किन्तु निवृत्ति हेतु वस्तुतत्त्व का पूर्णज्ञान व बलवती इच्छाशक्ति होनी अपेक्षित है। यही दोनो आत्मा के महान् हथियार हैं, इन्हे ही यत्न-पूर्वक उपजाए ॥४॥

मुखदेव का गुण

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥५॥

पदार्थ —(**शुचिः**) अपने तेज से उद्दीप्त (**उग्र**) तीव्र (**जलाषभेषज**) सुखदायक भैषज्यधारी (**एक**) मुख (**हस्ते**) हस्त मे (**तिग्मम्**) तीव्र (**आयुधम्**) आयुध (**बिभर्ति**) रखता है ॥

भावार्थ —अन्नो का पीसनेवाल दन्त ही मुख में महान् उपकारी अस्त्र हैं ॥५॥

हस्तदेव का गुण

पथ एकः पीपाय तस्करो यथा एष वेद निधीनाम् ॥६॥

पदार्थ —(**एक**) एक हाथरूप देव (**पथ**) इन्द्रिय मार्गों के (**पीपाय**) रक्षक है (**एष**) यह देव (**निधीनाम्**) निहित धनो का (**वेद**) ज्ञाता है। हाथ ही सब इन्द्रियो का रक्षक है। यह तो स्पष्ट ही है और जब किसी अङ्ग मे कुछ भी शुभ अशुभ होता है तब हस्त शीघ्र ही जान जाता है, व शीघ्र वहा पहुँचता है। यहा दृष्टान्त कहते है (**तस्कर यथा**) जैसे चोर धनहरणार्थ पथिको के मार्ग की रक्षा करता है और गृह मे निहित धनो को जान वहा से चोरी कर अपने बान्धवो को देता है। तद्वत् ॥६॥

भावार्थ —प्रत्येक कर्मेन्द्रिय का गुण अध्येतव्य है हम उपासक हाथ से क्या-क्या काम ले सकते है। इसमे कितनी शक्ति है और इसे कैसे उपकारार्थ लगावे, इत्यादि पर विचार करें ॥६॥

चरणदेव का गुण

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥७॥

पदार्थः—(**उरुगायः**) सर्वाधार होने से जिसकी कीर्ति फैली है (**एक**) एक चरणदेव (**त्रीणि**) सूर्य्य के समान तीनो स्थानो मे (**वि चक्रमे**) चलता है। (**यत्र**) जिस चलने से (**देवास**) अन्य इन्द्रियदेव (**मदन्ति**) आह्लादित होते हैं। जब पग चलता है तब सुख प्राप्ति के कारण इन्द्रिय प्रसन्न होते हैं। यदि भ्रमण न हो तो सभी इन्द्रियदेव रोगी हो जायें ॥७॥

भावार्थ —इसमे यह उपदेश दिया गया है कि मानव को आलस्य नही करना चाहिए। वह पग से चलकर अपना और दूसरो का उपकार सदैव करे ॥७॥

मन और अहंकार

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥८॥

पदार्थ —(**द्वा**) मन व अहङ्कार दोनों (**विभिः**) वासनाओ सहित (**चरत**) चलते है और (**एकया**) एक बुद्धि के (**सह**) साथ (**प्र वसत**) यात्री हैं। (**प्रवासा इव**) जैसे दो प्रवासी सदैव मिलकर चलते है वैसे ही मन व अहङ्कार बुद्धिरूप पत्नी सहित सदैव चलते रहते हैं ॥८॥

भावार्थ.—मन और अहङ्कार ये दोनो प्राणी को कुपथ मे ले जाने वाले हैं। अतएव इन्हें अपने वश मे करके उत्तम से उत्तम कार्य सिद्ध करें ॥८॥

मुख और रसना का वर्णन ॥

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥९॥

पदार्थ —इस ऋचा मे मुख व मुखस्थ रसना की चर्चा है। (**उपमा**) उपमास्वरूप क्योंकि प्राय मुख की उपमा ही अधिक दी जाती है। अथवा जिससे सब कुछ जाना जाय वे उपमा, मुख से ही सब परिचित होते हैं। पुन (**सम्राजा**) सम्यक् प्रकाशित पुन (**सर्पिरासुती**) घृत आदि खाद्य पदार्थों के स्वाद देने वाले जो (**द्वा**) दो मुख और रसना हैं (**दिवि**) प्रकाशित स्थान में (**सदः**) अपना आवास (**चक्राते**) बनाते हैं ॥९॥

भावार्थ —अपने प्रत्येक इन्द्रिय के आकार, गुण तथा स्थिति से अवगत हो ॥९॥

ईश ही पूज्य है

अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥

पदार्थः—(**एके**) नितान्त विख्यात सबके प्राण (**अर्चन्त**) परमात्मा की अर्चना करते हुए (**महि**) विस्तृत (**साम**) गेय वस्तु को (**मन्वत**) गाते हैं (**तेन**) उस सामगान से (**सूर्यम्**) सूर्य के समान प्रकाशक विवेक को प्रकाश मिलता है। सब मनुष्य परमात्मा की ही वन्दना, पूजा, स्तुति, प्रार्थना इत्यादि करें यह शिक्षा यहाँ दी गई है ॥१०॥

भावार्थ — योगी, यति व विद्वानो के प्राण ईश्वर मे लगे रहते हैं। अन्य लोग भी यथाशक्ति अपने इन्द्रियो से परोपकार ही करें ॥१०॥

अष्टम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ मनुर्वैवस्वत ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता । छन्दः— १ निचृद्गायत्री । २ पुर उष्णिक् । ३ विराड्बृहती । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ षड्जः । २ ऋषभः । ३ मध्यम । ४ गान्धारः ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥१॥

पदार्थ —(**देवास व**) दिव्यगुण युक्त पदार्थों में से (**न हि अर्भकः अस्ति**) न कोई शिशु, कम आयु वाला है, (**न कुमारः**) और न कोई किशोर। देवताओं मे किसी प्रकार का न आयु का अन्तर है और न कोई सामर्थ्य मे आपस मे न्यूनाधिक है। (**विश्वे इत्**) सभी देवता (**महान्त सत**) महान् हैं, उन सबका महत्त्व समान ही है ॥१॥

भावार्थ —वक्ष्यमाण तेतीस देव अपनी-अपनी जगह सभी महान् है ॥१॥

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२॥

पदार्थ —(**ये त्रयः च त्रिंशत च**) जो ये तीन व तीस अर्थात तेतीस देवता हैं, वे (**इति स्तुतास**) सभी महान हैं इस प्रकार वर्णित होकर (**रिशादस असथा**) मानवीय दोषो और उनके शत्रुओ के विध्वंस मे सहायता देते हैं। क्योंकि वे (**मनो देवा**) मननशील धार्मिक मनुष्य के सब प्रकार के लौकिक-अलौकिक व्यवहारो की सिद्धि के कारण (**यज्ञियास**) सगति योग्य है ॥२॥

भावार्थ —इस मण्डल के २८ वें सूक्त के प्रथम मन्त्र मे बताया गया है—"त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्", शतपथ के १४ वें काण्ड मे इनकी गणना इस प्रकार हुई है 'अष्टौ वसव, एकादश रुद्रा, द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशत् (३१) इन्द्रश्चैव, प्रजापतिश्च-त्रयस्त्रिंशत् ॥ इत्यादि ॥२॥

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥३॥

पदार्थ.—(**ते न त्राध्व**) वे देवता स्वसामर्थ्य का दान दें और हमारा पालन करें हानि से हमे दूर रखें, (**ते अवत**) हमे तृप्ति तथा आनन्द दें एव अन्य अनेक कार्यों मे हमारी सहायता करें, [अव् धातु अनेकार्थक है]। (**उ**) तथा (**ते नः अधि वोचत**) अपने उदाहरण तथा वाणी द्वारा हमे उपदेश दें। हमे (**नः**) हमारे (**पित्र्यात्**) माता-पिता-गुरु आदि गुरुजनो की सेवा व (**मानवात्**) मानवोचित (**पथ**) मार्ग से, जीवनचर्या पद्धति द्वारा (**अधिदूर**) बहुत अधिक दूर (**नैष्ट**) ने जाने देना चाहे ॥३॥

भावार्थ —जिन देवताओ के महत्त्व का वर्णन है उन्हें अन्त करण मे स्थान देते हुए मनुष्य मानवोचित जीवन-पद्धति का अनुगमन करे ॥३॥

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४॥

पदार्थ —(**ये देवास**·) वे देवता जो (**इह स्थन**) यहाँ मूर्तरूप मे विद्यमान हैं, (**उत**) अथवा (**वैश्वानरा**) सभी मे सत्यधर्म और सत्य विद्या के प्रकाशक रूप मे उपस्थित है, (**विश्वे**) वे सब (**अस्मभ्य**) हमारे लिये (**गवे**) ज्ञानशक्ति हेतु (**अश्वाय**) हमारी कर्मशक्ति के लिये (**सप्रथः**) चतुर्दिक् से विस्तृत (**शर्म**) सुख (**यच्छत**) दें ॥४॥

भावार्थ —मूर्त-अमूर्तसभी देव मानव के लिये सुख प्रदान करने वाले हैं ॥४॥

अष्टम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ अष्टादशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१८ मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ १—४ ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च ५—८ दम्पती । १०—१८ दम्पत्योराशिषो देवता । छन्द —१, ३, ५ ७, १२ गायत्री । २, ४, ६, ८ निचृद्गायत्री । ११, १३ विराड्गायत्री । १० पादनिचृद्गायत्री । ९ अनुष्टुप् । १४ विराडनुष्टुप् । १५—१७ विराट् पंक्ति । १८ आर्ची भुरिक्पंक्ति ॥ स्वरः—१—८, १०—१३ षड्जः ।९, १४ गान्धार । १५—१८ पञ्चमः ॥

इस सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों में यज्ञ एवं यजमान की प्रशंसा है

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च ।

ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥१॥

पदार्थ.—(य) जो आदमी (यजाति) स्वय दान-आदान युक्त सत्कर्म करता है (इत्) और (यजाते) यज्ञ करता है; (च) तथा (सुनवत्) किसी पदार्थ आदि का निष्पन्न कर्ता है (च) और (पचाति) पका कर सस्कार करता है उस (इन्द्रस्य) कर्मशक्ति सम्पन्न को (ब्रह्मा इत्) महान् प्रभु भी (चाकनत्) चाहता है ॥१॥

भावार्थ —जो व्यक्ति कर्मठ है उसी से परमात्मा प्यार करते हैं ॥१॥

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् ।

पादित्तं शक्रो अंहसः ॥२॥

पदार्थः—ईश्वर को ही सम्बोधित करके सभी शुभकर्म कर्तव्य हैं यह यहाँ शिक्षा दी गई है । यथा (य)जो उपासक (अस्मै) सर्वत्र विद्यमान परमात्मा को प्रथम अर्पण कर (पुरोळाशम्) दरिद्रो को अन्न (ररते) प्रदान करता रहता है और (सोमम्) परम पावन अन्न को और (आशिरम्) विविध द्रव्यो से मिश्रित अन्न को प्रदान करता रहता है (तम) उस (अंहसः) पाप से (शक्र) सर्वशक्ति-सपन्न परमात्मा (पात् इत) पालता है ॥२॥

भावार्थः—विश्व मे दरिद्रता व अज्ञान अधिक हैं इसलिए ज्ञानी पुरुष ज्ञान व धनी भाँति-भाँति के अन्न व द्रव्य के इच्छुक जनो को सदा दान करें । ईश्वर दाताओ को सभी दु खो से बचाता है क्योंकि वही सर्वशक्तिसपन्न है ॥२॥

तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत् ।

विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥३॥

पदार्थ.—जो परमात्मा के निकट सद्भाव से जाता है (तस्य) उस उपासक का (रथ) शरीररूपी रथ या अश्वादियुक्त रथ (द्युमान्) दीप्तिमान् और (देवजूत) शिष्टेन्द्रियो या श्रेष्ठ अश्वो से प्रेरित (असत्) होता है या फिर उस रथ के सारथी श्रेष्ठ विद्वान् होते हैं । तथा (विश्वा) समस्त (अमित्रिया) बाधाओ को (वन्वन्) नष्ट करता हुआ वह उपासक (शूशुवत्) ज्ञान, धन व अन से ससार मे वृद्धि पाता रहता है । उसका कभी पतन नही होता ॥३॥

भावार्थ —ससार म उसी भक्त का अभ्युदय होता है, शत्रु भी उसके वशीभूत होते हैं जो हृदय से परोपकार मे रत रहते है और आस्तिकता से ससार को सुख देते हैं ॥३॥

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे ।

इळा धेनुमती दुहे ॥४॥

पदार्थ —जो हृदय स प्रभु की पूजा करता है (अस्य) उसके (गृहे) घर मे (दिवेदिवे) प्रतिदिन (प्रजावता) पुत्रादि स सयुक्त (असश्चन्ती) अचला और (धेनुमती) गौ आदि पशुओ से प्रशस्त (इला) अन्नराशि (दुहे) प्राप्त होती है । जैसे गाय का दोहन होता है अर्थात् अपनी इच्छानुसार दूध निकाल कर हम अपने काम मे लाते हैं उसी प्रकार उपासक के घर मे उतना अन्न होता है जिसस बहुत खर्च करने पर भी कभी कमी नही आती ॥४॥

भावार्थ —जो व्यक्ति सच्चे हृदय से प्रभु की उपासना करता है उसे अत्यधिक व्यय करने पर भी कभी घर मे अभाव का अनुभव नही होता ॥४॥

सुखी दम्पती का वर्णन ॥

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।

देवासो नित्ययाशिरा ॥५॥

पदार्थः—(देवासा) हे देवगण ! हे विद्वज्जन ! (या) जो (दम्पती) नर और नारी (समनसा) शुभकर्म मे समान मन से रत होकर (सुनुत·) यज्ञ करते है । (च) और (आ धावत) ईश्वर उपासना से अपने आत्मा को पावन कर और (नित्यया) पवित्र (आशिरा) मिश्रित अन्न को दरिद्रो मे बाँटें वे सदैव सुख पाते हैं ॥५॥

भावार्थ.—ईश्वर की उपासना करनेवाले तथा दानदाता दम्पती सदैव सुख पाते है ॥५॥

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते ।

न ता वाजेषु वायतः ॥६॥

पदार्थ.—जो नर और नारी (सम्यञ्चा) भली-भाति एकमत होकर (बर्हि.) यज्ञ (आशाते) करते हैं (ता) वे (प्राशव्यान्) भोज्य पदार्थ (प्रतीतः) प्राप्त करते हैं और (वाजेषु) अन्नों के लिए (न वायत) अन्यत्र नही जाते ॥६॥

भावार्थ —ऐसे दम्पती कि जो पारस्परिक एकमत रखते है अन्न आदि के अभाव का कदापि अनुभव नहीं करते ॥६॥

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः ।

श्रवो बृहद्विवासतः ॥७॥

पदार्थ —जो नर-नारी ईश्वर के प्रति अनुराग रखते हैं वे (देवानाम्) देवो का (न अपि ह्नुतः) अपलाप नही करते । प्रतिज्ञा करके भी न देने का नाम है अपलाप । व (सुमतिम्) ईश्वर द्वारा दी गई सुबुद्धि को (न जुगुक्षत·) नही छिपाते । अर्थात् अपनी बुद्धि द्वारा अन्यान्य जनो का उपकार करते हैं । और इस तरह शुभाचरणो से ससार मे (बृहत् श्रव) सुयश या अन्न का (विवासत.) विस्तार करते हैं या देते है ॥७॥

भावार्थः - परमात्मा के प्रति अनुराग रखनेवाले और बुद्धि का सदुपयोग करने वाले नर नारी सदैव सुख पाते है ॥७॥

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।

उभा हिरण्यपेशसा ॥८॥

पदार्थ·—जो पति-पत्नी सदा ईश्वर-आज्ञा का पालन करते हुए शुभकर्म रत रहें (ता) वे स्त्री-पुरुष (पुत्रिणा) सुपुत्र वाले और (कुमारिणा) सदा महोत्सवो से चित्तविनोदशील होते है और (विश्वम् आयु) पूरी आयु (व्यश्नुतः) पाते है तथा (उभा) वे दोनो (हिरण्यपेशसा) सुवर्णों से सुभूषित रूप भी पाते हैं अर्थात् सदैव ऐहिक सम्पूर्ण सुखो से युक्त रहते हैं ॥८॥

भावार्थ —भली सन्तान ईश्वर के प्रति अनुरक्त दम्पती को मिलती है ॥८॥

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।

समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥९॥

पदार्थ —(वीतिहोत्रा) जो यज्ञप्रिय हैं व जिनकी वाणी सभी सुनना चाहते है पुन (कृतद्वसू) सत्पात्रो में धन वितरित करते हैं । पुन. (अमृताय) अविनश्वर प्रभु के उद्देश्य से अथवा मुक्ति की प्राप्ति के लिए (कम्) सुख को (दशस्यन्तो) सभी को देने वाले हैं । पुन (ऊध) गौ आदि और (रोमशम्) रोमयुक्त मेषादि पशुओ को (सम् हत) वे दोनो पाते है तथा (देवेषु) माता, पिता, आचार्य, गुरु, पुरोहित और परमदेव के निमित्त (दुव) सेवा (कृणुत) करते है ॥९॥

भावार्थ.— जो नर-नारी सत्पात्रो मे अपना धन प्रदान करते है, माता-पिता और गुरुजनो की सेवा करते है वे सदैव सुख प्राप्त करते हैं ॥९॥

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।

आ विष्णोः सचाभुवः ॥१०॥

पदार्थ —(पर्वतानाम्) हिमालय इत्यादि पर्वतो मे रहने वालो का अथवा पर्वतो का जो (शर्म) सुख है और (नदीनाम्) नदीतट वासियो का या नदियो का जो सुख है उस कल्याण को (सचाभुव) सबके साथ होनेवाले सर्वव्यापी (विष्णो) परमात्मा के निकट (आ वृणीमहे) मागते है ॥१०॥

भावार्थ —प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित है कि वह परमात्मा की परम विभूतिया देखे, जाने व विचारे । धरती पर पर्वत कैसा विशाल सुगठित तथा वृक्षादि से सुशोभित लगता है, नदी का जल कितना जीव-हितैषी है, नदी तट सदा शीतल और घासयुक्त रहते हैं । इसी तरह पृथिवी पर सैकड़ो पदार्थ हैं । इन्हे देखकर इनसे गुण ग्रहण करना अपेक्षित है ॥१०॥

ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः ।

उरुरध्वा स्वस्तये ॥११॥

पदार्थ —(रयि) सभी जीवो को अपने-अपने कर्मानुसार जो फल देता है (भग) सब का सेव्य व (सर्वधातम) अपने आधार से सब पदार्थों को धारण करता है (पूषा) पोषणकर्ता परमात्मा (स्वस्ति) कल्याण सहित (ऐतु) हम उपासको के निकट आए । उसके आने के बाद (अध्वा) हमारा मार्ग (स्वस्तये) कल्याण हेतु (उरु) विस्तीर्ण होवे ॥११॥

भावार्थः—सब का पालन-पोषण करनेवाला जो प्रभु है वह सब को कर्मानुसार फल प्रदान करता है ॥११॥

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा ।

आदित्यानामनेह इत् ॥१२॥

पदार्थ·—(अनर्वण) जो अविनश्वर, अगम्य और अगाध है (देवस्य) उस परमात्मा के (विश्व) सभी भक्तजन (मनसा) मानसिक श्रद्धा सहित (अरमति) पूर्ण बुद्धिमान् होते है । और (आदित्यानाम्) प्रत्येक मास के बारह [द्वादश] सूर्य के तुल्य भक्तो का कर्म (अनेह इत्) पाप रहित होता है ॥१२॥

भावार्थ. जो परमेश्वर का सच्चा भक्त है वह पापी नही होता ॥१२॥

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः ।

सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥१३॥

पदार्थ.—वेद मे अनेक नामो से परमात्मा की वन्दना है । किसी-किसी ऋचा मे अनेक नाम आये हैं । नामकृत बहुवचन भी है । अत नाम पृथक्-पृथक् देवो के हैं ऐसा भ्रम कई भाष्यकारो को हुआ है । वस्तुत ये ईश्वर के ही नाम हैं क्योंकि उसका चिह्न उपलब्ध है । (मित्र) सब से स्नेहकर्ता जो मित्र-वाच्य प्रभु

है (अर्य्यमा) गृहस्थ पुरुषो से मान्य जो अर्य्यमा-वाच्य परमात्मा है (वरुण) सब का स्वीकरणीय जो वरुण-वाच्य ब्रह्म है वे (यथा) जैसे (न) हम उपासको के (गोपाः सन्ति) रक्षक हों। ऐसी सुबुद्धि हमें दे और जैसे हमारे (ऋतस्य) सत्य के (पन्था) मार्ग (सुगा) सुगमनीय—सरल हो ऐसी कृपा करें ॥१३॥

भावार्थ — मित्र, वरुण, ब्रह्मा आदि नामो से वाच्य प्रभु की भक्ति से लक्ष्य का पाना सरल हो जाता है ॥१३॥

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।

सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (वः) आप के बीच जैसे मैं (पूर्व्यम्) पुरातन (वसूनाम् देवम्) धनदेव महाधनेश (अग्निम) प्रभु की (ईळे) स्तुति करता हूँ। वैसे ही आप भी (मित्रम् न) सब के मित्र अतएव (पुरुप्रियम) सर्वप्रिय (क्षेत्रसाधसम्) धरती आदि लोक-लोकान्तर के निर्माता प्रभु को (सपर्यन्त) पूजते हुए स्तुति करो। अर्थात् कुपथ को त्याग सुपथ पर चलो ॥१४॥

भावार्थ —परमपिता परमात्मा लोक-लोकान्तरो की रचना करनेवाले हैं तथा सच्चे मित्र के समान प्रेम करते हैं ॥१४॥

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१५॥

पदार्थ —(देववत) देववान् या एक प्रभु की उपासना करने वाले का (रथ) रमणीय वाहन (मक्षू) शीघ्र सर्वत्र सुप्रसिद्धि पाता है (वा) अथवा वह स्वय (कासुचित) किन्हीं (पृत्सु) सेनाओ मे (शूर.) नायक बनता है और (यः) जो (यजमान) सदा प्रभु का गुण गान करने वाला है और जो (देवानाम्) दिव्यगुणयुक्त पुरुषो के (मन इत्) मन को ही (इयक्षति) अपने अनुकूल आचरण द्वारा तथा ईश्वर की आज्ञा पर चलन से पूजता है यानी आदर-सत्कार करता है वह (अयज्वन) यज्ञ न करने वाले नास्तिको का (अभि भुवत् इत्) निश्चित ही अभिभव करता है ॥१५॥

भावार्थ —परमात्मा की पूजा करने वाले व्यक्ति को जीवन-सघर्ष के लिये सुन्दर शरीर रूपी रथ प्राप्त होता है ॥१५॥

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१६।

पदार्थ —(यजमान) हे यजमान ! यदि आप सदैव प्रभु यजन ही करते हैं तो (न रिष्यसि) कदापि विनष्ट न होगे। (सुन्वान) हे शुभकर्म सम्पादक ! यदि आप सदैव सुकर्म ही करते रहेगे तो (न रिष्यसि) कदापि आपका विनाश न होगा तथा (देवयो) हे देवाभिलाषी ! यदि आप सदैव एक देव की ही इच्छा करेंगे तो (न रिष्यसि) आप कभी नष्ट न होगे। इसी प्रकार (य यजमान) पूर्ववत् ॥१६॥

भावार्थ.—जो व्यक्ति केवल परमात्मा की ही वन्दना करता है उसे कदापि किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पडती ॥१६॥

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१७॥

पदार्थ जो केवल प्रभु के सहारे रहता है (तम्) उस प्रसिद्ध भक्त को (नकि) नहीं कोई (कर्मणा) अपने कर्म से (नशत्) व्यापता है अर्थात् स्वकर्म के द्वारा कोई उसके तुल्य नहीं होता और वह स्वय (न प्र योषत्) अपने स्थान और भक्ति आदि से कभी विचलित नहीं होता तथा (न योषति) पुत्र-पौत्रादिको से व विविध प्रकार के धनो से वह कदापि वंचित नहीं होता। अर्थात् उसे सदैव ही ऐहिक सुख मिलता रहता है। (देवानाम्) इत्यादि पूर्ववत ॥१७॥

भावार्थ —जो व्यक्ति भगवान् का आश्रय लेने वाला है और कमठ भी है वह सभी प्रकार के ऐश्वर्य से भरापूरा रहता है ॥१७॥

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१८॥

पदार्थ.—(अत्र) इस प्रभु उपासक जन मे (सुवीर्यम्) शारीरिक व मानसिक बल (असत्) सदा बढता रहता है (उत) और (आश्वश्व्यम्) तीव्रगामी अश्व आदि पशुसमूह (त्यत्) प्रसिद्ध धन उसके पास बहुत होता है। (यजमानः) जो यजमान (देवानाम्) विद्वानो के (मन इत्) मन को ही (इयक्षति) अपने आचरण से वशीभूत करता है (अयज्वन) वह अयजनशील नास्तिको का (अभि भुवत् इत्) अवश्य अभिभव करता है ॥१८॥

भावार्थ —जो परमात्मा का उपासक है उसकी शारीरिक शक्ति तथा मनोबल सदैव बढता जाता है ॥१८॥

अष्टम मण्डल में इकतीसवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रिंशदृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—३० मेधातिथिः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ७, १३, १५, २७, २८ निचृद्गायत्री । २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री । ३, ५, १६, २०, २३, २९ विराड्गायत्री । १८, ३० भुरिग्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।

मदे सोमस्य वोचत ॥१॥

पदार्थ —(ऋजीषिण) विभिन्न विद्याओ के उपार्जन मे दक्ष (कण्वा) मेधावी जन (सोमस्य मदे) विद्या से सम्पादित ऐश्वर्यकारक शास्त्रबोध की (मदे) उमङ्ग मे (गाथया) गीतो मे (इन्द्रस्य) प्रभु, राजा, विद्युत्, सूर्य आदि के (कृतानि) कृत्यो को (प्र वोचत) हमे सुनाए ॥१॥

भावार्थ —विविध शास्त्रो म पारगत ऐश्वर्यवान् जन परमेश्वर आदि का गुण गान कर सकते हैं ॥१॥

इन्द्र के कृत्यों का वर्णन

यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।

वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥२॥

पदार्थ— (य) जो (उग्र) उग्र प्रभाव युक्त (अपः) सर्वत्र व्याप्त जल को [विद्युत् रूप मे], राज्य मे व्याप्त अव्यवस्था आदि को [राजा के रूप मे], और अपने जीवन मे व्याप्त असयम आदि को [जीवात्मा रूप में] (रिणन्) व्याप्य में से पृथक् कर (सृबिन्द) फैलकर शक्तिशाली होते हुए को (अनर्शनिम्) निष्पाप को अपने वश मे किये हुए को, (पिप्रु) विप्र को, (दासम्) उत्पीडक को (अहीशुवम्) कुटिल को गतिशील करने वाले को (वधीत्) नष्ट कर देता है ॥२॥

भावार्थ अवर्षणशील घन आकाश मे विस्तीर्ण होकर शक्तिशाली होता चला जाता है, वह रोगनाशक जल को रोकता है—कडकडाती बिजली उसका भेदन कर जल को मुक्त करती है, राजा रूप मे इन्द्र राज्य मे फैले, सज्जनो को अपने नियन्त्रण मे रख तग करने वाले, स्वार्थी, कुटिलो के नेताओ का वध कर अव्यवस्था मिटाता है। जीवात्मा इसी तरह असयम आदि को दूर कर अपनी शक्ति को उन्मुक्त करता है। इत्यादि ये सब 'इन्द्र' के कार्य हैं ॥२॥

न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर ।

कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥३॥

पदार्थ (बृहत) सुविशाल (अर्बुदस्य) मेघ के (वर्ष्माण) वर्षा कर सकने मे समर्थ (विष्टम्) व्याप्ति स्थान अन्तरिक्ष पर (नि तिर) पूरी तरह से अधिकार कर ले—इन्द्र अर्थात् वायु (तत) इस (पौंस्यम्) पुरुषोचित साहस को (कृषे) पुरुषार्थ के साथ करता है ॥३॥

भावार्थ —जल से भरा वायु अन्तरिक्ष म जल फैला कर वरुण बनता है, वही फिर विभिन्न अवस्थाओ मे 'रुद्र', 'इन्द्र' और 'पर्जन्य' नाम से सम्बोधित किया जाता है। वर्षा करना इन्द्र का प्रमुख कार्य है ॥३॥

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि ।

हुवे सुशिप्रमूतये ॥४॥

पदार्थः—वह सूर्य (तूर्णाश न) शीघ्रता मे व्याये गए के तुल्य, शीघ्रता मे पर्वत पर इकटठे हुए जल को (गिरे अधि) मेघ मडल मे से (व) प्राणियो के (प्रति श्रुताय) प्रति किये गये वचन की पूर्ति हेतु ही मानो (धृषत्) बलपूर्वक नीचे गिराता है। मैं (ऊतये) रक्षार्थ उस (सुशिप्रं) सुआकृति को पुकारता हूँ ॥४॥

भावार्थ —सूर्यमण्डल अपनी किरणो से अन्तरिक्ष के मेघमडलस्थ जल को नीचे बरसाता है, राजा राज्य के पर्वत इत्यादि अगम्य स्थानो से दुष्टो को निष्कासित करता है और जीवात्मा अपनी बुद्धि मे व्याप्त कुविचारो को हराता है। ये सब इन्द्र के ही कार्य है ॥४॥

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ॥

पुरं न शूर दर्षसि ॥५॥

पदार्थ —(शूर) हे पापियो के विनाशक (स.) वह आप इन्द्र (सोम्येभ्य) सुख सम्पादन योग्य जनो के हित के लिए (मन्दान) सब को हर्षित करते हुए (गो अश्वस्य) ज्ञान एव कर्मशक्ति के (व्रज) बाडे को (पुर न) एक नगर की तरह विद्यमान को (विदर्षसि) विदीर्ण करते हैं ॥५॥

भावार्थ —इन्द्र का एक कार्य दुष्टो के नगर ढहाना भी है। जिस प्रकार ग्वाला पशुओ को बाडे में रोके रखता है—ऐसे ही वणिक्वृत्ति जन राष्ट्र का धन अपने कोषागारो मे रोक राष्ट्र की हानि करते हैं। इन्द्र अर्थात् राजा उसे मुक्त करता है, जीवात्मा की ज्ञान व कर्मशक्तियाँ दुर्भावनाओ के वशीभूत हो निष्क्रिय हो जाती हैं, बुद्धि तथा हृदय की शुद्धि द्वारा जीवात्मा इन्द्र उन्हें मुक्त कर सक्रियता प्रदान करता है ॥५॥

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः ।

आरादुप स्वधा गहि ॥६॥

पदार्थ —(यदि) यदि (मे) मेरे (सुते) निष्पादित सुखदायक ऐश्वर्य मे (रारण) तूने रमण किया हो (वा) और (उक्थे) मेरी स्तुति मे (चन) तुझे आनन्द (दधसे) अनुभव ही तो (आरात्) दूर से व (उप) समीप से—कहीं से भी, (स्वधा) अपने स्वभाव से ही मुझे (गहि) पा ले ॥६॥

भावार्थ —जो व्यक्ति परमेश्वर के द्वारा उत्पन्न सांसारिक पदार्थों का सदुपयोग करता तथा मग्न रहता है और साथ ही उसके गुणो का गान कर उन्हें जीवन

में धारण करने का प्रयत्न करता रहता है—उसे स्वभाव से ही परमेश्वर का सान्निध्य मिलता है ॥६॥

वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।

त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥७॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वाणी से याजित (इन्द्र !) इन्द्र ! (वय) हम (घा) ही (ते) आपके (स्तोतार) स्तुतिकर्ता (अपि ष्मसि) निश्चय ही हैं । हे (सोमपाः) ससार मे उपजे पदार्थों से सबका पालन करने वाले ! (त्वं) आप (न) हमे (जिन्व) तृप्त करें ॥७॥

भावार्थ—ऐश्वययुक्त विद्वान, राजा इत्यादि की स्तुति का तात्पर्य है, उसके गुणो का ज्ञान, कथन, श्रवण तथा सत्य भाषण । स्तुति से ही स्तुत्य के गुण धारण करने की भी शक्ति मिलती है ॥७॥

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् ।

मघवन्भूरि ते वसु ॥८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उदार सम्पत्तिशाली राजा ! (ते वसु) आपका सुखदायक ऐश्वर्य्यं (भूरि) विद्या, आरोग्य, सुवर्ण आदि अनेक प्रकार का है । (न) हमे (उत) भी (अविक्षितम्) अक्षय (पितुम्) भोजन (सरराण) सम्यक् रीति से प्रदान करते हुए (आ भर) हमारा पालन-पोषण करो ॥८॥

भावार्थ—विद्या, नीरोगता सुवर्ण आदि भांति-भांति धन के स्वामियो को उनके द्वारा दूसरो का भी भरण-पोषण करना अपेक्षित है ॥८॥

उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः ।

इळाभिः स रभेमहि ॥९॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्यवान ! (न) हमे (गोमत) उत्कृष्ट गौ आदि से युक्त, (हिरण्यवत) सुवर्ण आदि रत्नवाले और (अश्विन) वेगवान् अश्व आदि से युक्त (उत) भी करिए, अथवा हम जीव स्वय ऐसा प्रयास करें कि हमारी कर्मशक्तियाँ व ज्ञान उत्कृष्ट हो तथा ज्ञान आदि उत्कृष्ट साधन हमे मिलें । इस तरह हम (इलाभि) प्रशसनीय धनो को (सरभेमहि) भली प्रकार अपने अधिकार मे रखें ॥९॥

भावार्थ—प्रशसा योग्य धन—विद्या, आरोग्य, सुवर्ण इत्यादि—हमारे अधिकार मे रहे—ऐसा प्रयत्न करना हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है ॥

बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।

साधु कृण्वन्तमवसे ॥१०॥

पदार्थ—हम (बृबदुक्थ) व्यापक स्तोत्र या वर्णनीय गुण वाले (ऊतये) अपने सरक्षण मे लेने हेतु (सृप्रकरस्नम्) रक्षणीय को आश्वासन देने को मानो भुजायें फैलाये और (अवसे) देखभाल के लिए (साधु कृण्वन्त) प्रयत्नशील परमेश्वर, राजा व विद्वान् अपने अन्तरात्मा—आदि के रूप मे विद्यमान इन्द्र की (हवामहे) प्राप्ति के इच्छुक हो ॥१०॥

भावार्थ—प्राणियों की रक्षा करना प्रभु का तो स्वभाव है ही, राज्य का रक्षक भी ऐसा व्यक्ति होना चाहिये कि जो प्रजा की रक्षा स्वेच्छासहित करे, तथा अपने आत्मा को परमेश्वर की उपासना से इस योग्य बनाना चाहिये कि अपनी रक्षा स्वय कर सकें ॥१०॥

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा ।

जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥११॥

पदार्थ—(यः) जो (जरितृभ्य) स्तुति करने वालो को (पुरूवसु) भांति-भांति का ऐश्वर्य प्राप्त करा, उनको बसाता है और (सस्थे) स्थिर (चित्) चित्त मे (शतक्रतु) नाना प्रकार से सैकड़ों कर्म कराता है (आत्) अनन्तर (वृत्रहा) विघ्ननाशक बन (ईं) जीवात्मा को भी शतक्रतु (कृणोति) कर देता है ॥११॥

भावार्थ—प्रभु स्तुति से जीव उसके गुणो को धार कर विविध ऐश्वर्य पाता है तथा स्थिर चित्त होने पर उसके जीवन के मार्ग मे आने वाले विघ्न नष्ट होते हैं और तब वह भी विविध कर्म करता है ॥११॥

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः ।

इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥

पदार्थ—(स इन्द्र) वह इन्द्र (परमेश्वर) अथवा राजा (शक्र चित्) समर्थ ही है, (दानवान्) दान देने वाला है, (विश्वाभि) सब प्रकार की सभी (ऊतिभि) रक्षा-सामग्रियो के साथ विद्यमान हो (अन्त आभर) हमारे अन्त-करण को पुष्ट करता है और (आशकत्) इस तरह हमे सभी तरह से समर्थ बनाता है ॥१२॥

भावार्थ—यदि हम अभ्यास द्वारा यह अनुभव करें कि दानवान् प्रभु अथवा हमारा समर्थ शासक हमारी सब प्रकार से रक्षा के लिये सिद्ध है तो हमारा मनोबल बढ़ता है और हम स्वयं को शक्तिमान् अनुभव करते है ॥१२॥

यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।

तमिन्द्रमभि गायत ॥१३॥

पदार्थ—(यः) जो इन्द्र (राय) शुभ दान के योग्य सम्पन्नता का (अवनि) प्रदाता है , (महान्) पूज्य है ; (सुपार) कर्मों को भली-भांति पूरा कराता है , (सुन्वत) धर्म-विद्या आदि को [स्वय] निष्पन्न करनेवाले का (सखा) सखा है; (तम् इन्द्र) उस इन्द्र या जीवनशक्ति के गुणो का (अभि गायत) गायन करो ॥१३॥

भावार्थ—अध्यात्म की दृष्टि से जीवात्मा ही इन्द्र है ; सद्धर्म-कर्म को पूर्ण करनेवाले का जीवात्मा सखा होता है अर्थात् वह स्वय का भी मित्र होता है , ऐसा व्यक्ति स्व पुरुषार्थ से सभी श्रेष्ठ धन प्राप्त करता है ॥१३॥

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् ।

भूरेरीशानमोजसा ॥१४॥

पदार्थ—[उस जीवनशक्ति के दाता के गुणो का गान करो कि] जो (पृतनासु) सघर्षों मे (आयन्तार) नियन्ता है , (महि) महान् है, (स्थिर) दृढ़ता पूर्वक टिकने वाला है व (श्रवोजितम्) कीर्ति प्राप्त करनेवाला है ; (ओजसा) बलवीर्य से (भूरे) विविध प्रकार के धन व ऐश्वर्य्य का (ईशानम) स्वामी है ॥१४॥

भावार्थ—जीवन के सघर्ष मे अपनी इन्द्रिय-वृत्तियो को सयम मे रखकर जो अविचल रहता है वह जीवात्मा यश तथा धनादि ऐश्वय का मालिक होता है ॥१४॥

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् ।

नकिर्वक्ता न दादिति ॥१५॥

पदार्थ—(अस्य) इस इन्द्र— [परमेश्वर, राष्ट्राध्यक्ष राजा, जीवात्मा—] के (सूनृतानाम्) अनुग्रहशील व प्रभुशक्तियुक्त (शचीनां) कार्यों एव कर्मशक्तियो का (नियन्ता) अवरोधक (न कि) कोई नही और (न दात्) 'इसने अमुक को नही दिया' (इति वक्ता) यह कहने वाला भी कोई नही ॥१५॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान प्रभु सबका देनेवाला है और अपने कार्यों मे वह प्रभु है । इसी तरह अनुग्रहशील, सब पर समान रूप से कृपा करनेवाला राष्ट्र का प्रमुख भी स्वकार्य मे स्वतन्त्र है । मानव जीवन म जीवात्मा की वही स्थिति है जो ब्रह्माण्ड का सञ्चालन करने मे परमेश्वर की है ॥१५॥

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ।

न सोमो अप्रता पपे ॥१६॥

पदार्थ—(नून) निश्चित रूप से ही (सुन्वताम्) यज्ञ सम्पादन हेतु विद्या आदि धन का निष्पन्न कर्त्ता (प्राशूना) अपने कार्य मे नितान्त निष्णात (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणवृत्ति वालो पर (ऋण) कोई ऋण नही चढ़ता , (सोम) यथार्थ विद्या आदि का निष्पन्न कर्त्ता (अप्रता) समृद्ध जन (न पपे) स्वय नही पीता ॥१६॥

भावार्थ—ससार मे विद्यमान प्रत्येक व्यक्ति पर देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृऋण स्वत ही आरूढ़ रहते हैं ; परन्तु जो ब्राह्मण वृत्ति का व्यक्ति सब के हित के लिए कर्म करता है, उस पर कोई ऋण नही चढ़ता ॥१६॥

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत ।

ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥१७॥

पदार्थ—स्तुतियोग्य प्रभु के लिए ही (उप) उसकी उपस्थिति को अनुभव कर (गायत) उसका गुण गान करो, (पन्ये, इत) उस स्तुत्य प्रभु को लक्ष्य कर (उक्थानि) शास्त्रोक्त स्तुति वचनो से (पन्ये शसत) उस स्तुत्य के गुण कथन करो । (उत) और (ब्रह्मा) मन को (पन्ये इत्) स्तुत्य में ही (कृणोत) लगाओ ॥१७॥

भावार्थ—तस्य (पुरुषस्य) मन एव ब्रह्मा (कौ० १७ ७) कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार पुरुष का मन ही 'ब्रह्मा' है । मनुष्य का एकमात्र स्तुत्य (इन्द्र) परमेश्वर है । हम शास्त्र वचन से प्रभु के न केवल गुणगान करे अपितु उनका मनन करना भी जरूरी है ॥१७॥

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः ।

इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥१८॥

पदार्थ—(य) जो (इन्द्र) इन्द्र प्रभु शत्रु का हनन करनेवाला सेनाधीश या अपनी दुर्भावनाओ को दूर करने का प्रयत्नशील कर्मयोगी साधक है वह (यज्वन) यज्ञानुष्ठाता की (वृध) वृद्धि करता है, उसके उत्साह को बढ़ाता है, वही (पन्य) स्तुतियोग्य (वाजी) बलशाली (शता सहस्रा) शत सहस्र अर्थात् अगणित (अवृत) सम्पत्ति का विभाजन न करने वालो को (आ दर्दिरत) काटता है ॥१८॥

भावार्थ—बलशाली इन्द्र जहां यजनशीलो को बढ़ाता है, वहीं स्वार्थियो का नाश भी करता है ॥१८॥

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः ।

इन्द्र पिब सुतानाम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् अथवा राजन् ! (कृष्टीनां) परिश्रमी प्रजा की (आहुव अनु) पुकार अथवा यज्ञीय भावना के अनुरूप और (स्वधा अनु)

अपने स्वाभाविक दृढ़ निश्चय के अनुरूप (वि सु चर) विविध प्रकार से व्यवहार कर; हे इन्द्र ! (सुतानां) निष्पन्न पदार्थों का (पिब) उपभोग कर ॥१६॥

भावार्थ —संसार मे प्रभु परिश्रमियो को उनके द्वारा यज्ञ के लिए किए कर्मानुसार भोग भुगवाता है, राजा राष्ट्र के लोगों को उनके कर्मों के अनुरूप भोग्य पदार्थ प्रदान करता है ॥१६॥

पिब॒ स्वधै॑नवानामु॒त यस्तु॒ग्र्ये॒ सचा॑ ।

उ॒तायमि॑न्द्र॒ यस्तव॑ ॥२०॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) जीवात्मा ! (**य**) जो निष्पन्न आनन्द (**स्वधैनवानां**) तेरी अपनी आनन्द देनेवाली इन्द्रियो का है उसका (**उत**) और (**य**) जो (**तुग्र्ये सचा**) बलिष्ठ होने की क्रिया के साथ है (**उत**) और (**य**) जो (**अय**) यह तेरा अपना ही स्वभावज है— उसको उपभोग मे ला ॥२०॥

भावार्थ—आध्यात्मिक आनन्द का गुणगान वेद मे यत्र-तत्र किया गया है। अनेक मन्त्रो मे उस आध्यात्मिक आनन्द की ओर निर्देश है। यह आध्यात्मिक आनन्द जीवात्मा मे कुछ तो स्वभावजन्य होता है, कुछ शुभकर्मकर्त्री इन्द्रियो से मिलता है ॥२०॥

अतीहि मन्युषा॒विणं सुषु॒वांस॑मु॒पार॑णे ।

इ॒मं रा॒तं सु॒तं पि॑ब ॥२१॥

पदार्थ—हे सेनापति अथवा मेरे साधक मन ! (**मन्युषाविण**) क्रोध व अभिमान के उत्पादक (**उपारणे**) अरमणीय कष्टदायी स्थिति की ओर (**सुषुवास**) प्रेरित करनेवाले भोग्य रस को (**अतीहि**) पार कर जा, उसको ग्रहण न कर। (**इम रात**) इस उपहाररूप से दिए गए अतएव प्रकृष्ट (**सुत**) प्राप्त आनन्द का अथवा ध्यानयोग से प्रस्तुत परमानन्द का (**पिब**) उपभोग कर ॥२१॥

भावार्थ —ऐसे आनन्द का उपभोग करना व्यक्ति के लिए उचित नही जो रोष, अभिमान आदि दुर्गुणो को जन्म दे और इस प्रकार उसके लिए कठिन परिस्थितिया उत्पन्न कर दे ॥२१॥

इ॒हि ति॒स्रः प॑रा॒वत॑ इ॒हि पञ्च॒ जनाँ॒ अति॑ ।

धेना॑ इन्द्राव॒चाक॑शत् ॥२२॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) जीवात्मा ! (**तिस्र परावत**) तीन दूरस्थ स्थितियो को (**अति इहि**) लाघकर और (**पञ्चजनान्**) पाच सामान्य जनो [ब्राह्मण आदि चार वर्ण तथा पञ्चम निषाद] को भी (**अति इहि**) लाँघकर मेरे समीप पहुँच। तू (**धेना**) दूध देने वाली गायो के समान आनन्दरस की वर्षा करने वाली वाणियो की (**अवचाकशत्**) प्रगाढ कामना कर ॥२२॥

भावार्थ आध्यात्मिक रूप मे सुखी होने के लिए मनुष्य ज्ञान कर्म और भक्ति का निर्देश करनेवाली वेदवाणियो का सेवन करे ॥२२॥

सूर्यो॑ र॒श्मिं यथा॑ सृ॒जा त्वा॑ यच्छन्तु मे॒ गिरः॑ ।

नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्य॑क् ॥२३॥

पदार्थ —(**यथा**) जैसे (**सूर्य.**) सूर्य (**रश्मिम्**) अपना प्रकाश (**सृजा**) फेंकता है, और (**आप न**) जैसे जल (**निम्न**) निचले स्थान पर (**सध्र्यक्**) एक साथ पहुच जाता है, ऐसे ही (**मे गिर**) मेरी वाणिया (**त्वा**) तुझ इन्द्र को (**यच्छन्तु**) रोकें ॥२३॥

भावार्थ —सूर्य का प्रकाश बिन मागे स्वभावत मिलता है, जल का अपना यह स्वाभाविक धर्म है कि वह नीचे की ओर बहता है और निचले भूभागो को एकदम घेर लेता है, ऐसे ही परमैश्वर्यवान् परमेश्वर का गुणगान करने वाली मेरी वाणी उसको स्वाभाविक रूप मे घेरे रहे—भक्त तभी भगवान् के गुणो को निरन्तर अपने ध्यान मे रख सकता है जबकि स्तुति करना उसकी स्वाभाविक क्रिया बन जाय ॥

अध्व॑र्य॒वा तु हि षि॒ञ्च सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॑ ।

भरा॑ सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥२४॥

पदार्थ —हे (**अध्वर्यो**) मेरे मन ! तू (**वीराय**) शौर्यवान् (**शिप्रिणे**) शत्रुओ तथा शत्रुभूत दुर्भावनाओ को रुलानेवाले इन्द्र या आत्मा के लिये (**सोम**) [अङ्ग अङ्ग मे व्याप्त] प्राणशक्ति को (**आ सिञ्च**) चतुर्दिक् से सींचकर रख। (**सुतस्य**) यह सम्पादित प्राण शक्ति (**पीतये**) अपने उपभोग हेतु (**भरा**) भरले ॥२४॥

भावार्थ.—शतपथ (१।५।१।२१) मे मन को अध्वर्यु कहा गया है। जीवनयज्ञ के 'होता' आत्मा का यह एक सहायक ऋत्विक् ही है। यज्ञ मे वेदी के स्थान व वेदीरचना तथा अन्य सामग्री जुटाना अध्वर्यु का ही काम है। जीवनयज्ञ की साधक सामग्री प्राणशक्ति जुटाना मन का ही काम है। प्राणशक्तियुक्त, सुदृढ़ मन ही जीवात्मा को शत्रुभूत दुर्भावनाओ को रुलाकर भगाने मे समर्थ बना पाता है ॥२४॥

य उ॒द्नः फ॑लि॒गं भि॒नन्न्य१॒क्सिन्धूँ॑र॒वासृ॑जत् ।

यो गोषु॑ प॒क्वं धा॒रय॑त् ॥२५॥

पदार्थ —(**य**) जो सूर्य (**उद्न:**) जल हेतु (**फलिगं**) उसके धारण करने वाले मेघ को छिन्न-भिन्न करता है और (**न्यक्**) उसको नीचे पृथ्वी पर पहुँचा कर (**सिन्धून्**) तालाब, समुद्र, आदि जलाशयो की रचना करता है और (**य**) जो सूर्य भूमियो मे (**पक्व**) पक्व अन्न आदि को (**धारयत्**) परिपुष्टि देता है— वही इन्द्र है ॥२५॥

भावार्थ —सूर्य या विद्युत् मेघ को भेद कर किस तरह उससे कार्य कर पृथ्वी पर छोटे-बडे जलाशयो की रचना करता है, किस प्रकार वृष्टिजल भूमि मे पहुँचकर अन्न का उत्पादन, वर्धन और उसको परिपक्व करता है—इस सब विज्ञान को जानना अभीष्ट है ॥२५॥

अह॒न्वृत्रमृ॒चीष॑म औ॒र्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म् ।

हि॒मेना॑विध्य॒दर्बु॑दम् ॥२६॥

पदार्थ—(**ऋचीषम**) दीप्ति के तुल्य स्वत दीप्त सूर्य (**और्णवाभ**) ऊन से भरे आच्छादक पदार्थ के जैसे जल को ढक कर रखने वाले (**अहीशुवम्**) द्युलोक तथा भूलोक के बीच अन्तरिक्ष मे गतिमान् (**वृत्रं**) मेघ पर (**अहन्**) आक्रमण करता है। वह (**हिमेन**) शीत से (**अर्बुद**) खूब फूले व कठोर बने बादल को (**अविध्यत्**) बेध कर तहस-नहस करता है ॥२६॥

भावार्थ —प्रकृति मे मेघ की रचना और उसकी गतिविधियो का एव वर्षा किस प्रकार होती है—इसका अनुसन्धान करना अपेक्षित है ॥२६॥

प्र व॑ उ॒ग्राय॑ नि॒ष्टुरेऽषा॑ळ्हाय प्रस॒क्षिणे॑ ।

दे॒वत्तं॒ ब्रह्म॑ गायत ॥२७॥

पदार्थ —हे विद्वज्जनो ! (**उग्राय**) तेजस्वी, (**निष्टुरे**) अजेय, (**अषाळ्हाय**) असह्य, और (**प्रसक्षिणे**) प्रकृष्ट एव सामर्थ्यवान् सेनाध्यक्ष को (**देवत्त**) दिव्यभावना द्वारा प्रदत्त (**ब्रह्म**) ब्रह्मबल के (**प्र गायत**) गुणो का श्रवण कराओ ॥२७॥

भावार्थ —ब्राह्मबल और क्षात्रबल साथ-साथ रहने चाहिए। हमारे सेनापति, राजा व स्वय जीवात्मा मे भी जहा दुष्टदलन के लिए अभीष्ट क्षात्रबल हो वहा राष्ट्र व चरित्रनिर्माण हेतु ब्राह्मबल भी जरूरी है ॥२७॥

यो विश्वा॑न्य॒भि व्र॒ता सोम॑स्य॒ मदे॒ अन्ध॑सः ।

इन्द्रो॑ दे॒वेषु॒ चेत॑ति ॥२८॥

पदार्थ —(**य**) जो (**अन्धस.**) खाने के उपयोग मे आने वाले पदार्थों के (**सोमस्य**) सौम्य रस के (**मदे**) हर्षदायक प्रभाव मे (**देवेषु**) [राष्ट्र के] दिव्य गुणियो या इन्द्रियो को (**विश्वानि**) सब (**व्रता**) कृत्य व नियम (**अभि चेतति**) सिखाए (**इन्द्र**) इन्द्र—राजा या आत्मा वही है ॥२८॥

भावार्थ —खाने-पीने के उपयोग मे आने वाले पदार्थों का सात्त्विक, राजसिक व तामसिक प्रभाव शरीर, मन व आत्मा पर पडता है, जैसा प्रभाव वैसा ही उसका मद या हर्ष होता है ! राष्ट्र-निर्माता अथवा मानव-जीवन के कर्णधार जीव के लिए आवश्यक है कि वह अपनी इन्द्रियो को सौम्य बनाए ॥२८॥

इ॒ह त्या स॑ध॒माद्या॒ हरी॒ हिर॑ण्यकेश्या ।

वो॒ळ्हाम॒भि प्रयो॑ हि॒तम् ॥२९॥

पदार्थ —(**त्या**) वे (**सधमाद्या**) साथ-साथ तृप्ति देने वाले व हर्षित करने वाले (**हिरण्यकेश्या**) [ज्योतिर्वै हिरण्यम्—शत० ४-३-१-२१] ज्योतिर्मय सूर्य आदि की किरणो के जैसा तेज.किरणो से युक्त (**हरी**) [हरणशील] जीवन का भलीभाति निर्वाह करने मे समर्थ—दोनो ज्ञान एव कर्मेन्द्रियाँ (**हित**) हितकारी, पथ्य, (**प्रय**) भोग्य या उससे प्राप्त होने वाले काम्य सुख (**अभि**) की ओर जाकर उसे (**इह**) जीवन मे (**वोळ्ह**) ढो लाए ॥२९॥

भावार्थ.—वृष्टिसुख का वहन करने वाले वायु विद्युत है और राष्ट्र मे सुख का वाहन करने वाले राजा व प्रजाजन हैं। ऐसे ही मानव जीवन मे आध्यात्मिक सुख के वाहक ज्ञान एव कर्म-इन्द्रिया है। हितकारी भोग्य पदार्थों का भोग ही हितकारी सार उपजा सकता है। प्रभु से प्रार्थना है कि राष्ट्र मे राजा व प्रजाजन और व्यक्तिगत जीवन मे ज्ञान एव कर्मेन्द्रियाँ हित अथवा पथ्य का ही सेवन करें, जिससे उनके मिलने वाला आनन्द भी हितकारी हो ॥२९॥

अ॒र्वाञ्चं॑ त्वा पुरुष्टुत प्रि॒यमे॑धस्तुता॒ हरी॑ ।

सो॒म॒पेया॑य वक्षतः ॥३०॥

पदार्थ —हे (**पुरु-स्तुत**) अनेको से स्तुत ! (**अर्वाञ्च त्वा**) अभिमुख उपस्थित तुझ इन्द्र को (**प्रियमेधस्तुता**) मेधावियो से प्रशसित (**हरी**) जीवनयात्रा के निर्वाह मे समर्थ ज्ञान एव कर्म इन्द्रियाँ (**सोमपेयाय**) ऐश्वर्यकारक सारभूत रस का पान कराने हेतु (**वक्षत**) ले जाती हैं ॥३०॥

भावार्थ —व्यक्ति [इन्द्र] को जो ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियाँ भोग्य पदार्थों के सौम्य रस का पान कराएं, उनके व उनके अधिष्ठाता व्यक्ति की अनेक प्रशंसा करते हैं ॥३०॥

अष्टम मण्डल मे बत्तीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-१९ मेधातिथि काण्व ऋषि ।। इन्द्रो देवता ।। छन्द—१-३, ५ बृहती । ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती । ६, ९, ११, १४, १५ निचृद्बृहती । १३ आर्ची भुरिग्बृहती । १६, १८ गायत्री । १७ निचृद्गायत्री । १९ अनुष्टुप् ।। स्वर—१-१५ मध्यम । १६-१८ षड्ज । १९ गान्धारः ।।

व॒यं घ॑ त्वा सु॒ताव॑न्त॒ आपो॒ न वृ॒क्तब॑र्हिषः ।

प॒वित्र॑स्य प्र॒स्रव॑णेषु वृत्रह॒न्परि॑ स्तो॒तार॑ आसते ।।१।।

पदार्थ (आप न) जल के तुल्य (वृक्तबर्हिष) स्वच्छ अन्तःकरण युक्त (त्वा सुतावन्त) ध्यानरूपी यज्ञ से आपके सान्निध्य से प्राप्त होने वाले ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हुए (वय घा) हम भी, (हे वृत्रहन्!) हे विघ्नहर्ता परमैश्वर्ययुक्त प्रभो! (पवित्रस्य) पावन ब्रह्मानन्द के (प्रस्रवणेषु) प्रपातो के पास (स्तोतार) आपकी उपासना करते (परि आसते) बैठे हैं ।।१।।

भावार्थ—निर्मल अन्त करण मे ही प्रभु की उपासना सभव है ।।१।।

स्वर॑न्ति त्वा सु॒ते नरो॒ वसो॑ निरे॒क उ॒क्थिनः॑ ।

क॒दा सु॒तं तृ॑षा॒ण ओक॒ आ ग॑म॒ इन्द्र॑ स्व॒ब्दीव॒ वंस॑गः ।।२।।

पदार्थः—हे (वसो!) सारे जग को बसाने वाले (निरेके) सशययुक्त अर्थात् निश्चित रूप से (सुते) अन्त करण मे परमानन्द के प्राप्त हो जाने पर (उक्थिन नर.) स्तोता (त्वा) आपको (स्वरन्ति) पुकारते है। मानो वे कहते हैं कि हे (इन्द्र!) हे मेरे जीवात्मा! (स्वब्दीव) श्रेष्ठ जलदाता के तुल्य (वसग) विभाग करके देने वाला तू (सुत तृषाणः) प्राप्त परमानन्द से प्यास बुझाना चाहने वाले के समान (ओके) निवास स्थान मे (कदा आगम.) कब आएगा ।।२।।

भावार्थ—जब साधक भगवान् के सान्निध्यरूप परमानन्द का अनुभव करता है तो मानो वह अपने सभी तृषार्त्त अधिकरणो की पिपासा ही उसके उपयोग से मिटाना चाहता है ।।२।।

कण्वे॑भिर्धृष्ण॒वा धृ॒षद्वाजं॑ दर्षि सह॒स्रिण॑म् ।

पि॒शङ्ग॑रूपं मघवन्विचर्षणे म॒क्षू गोम॑न्तमीमहे ।।३।।

पदार्थ—हे (धृष्णो) बलवान् सेनापति! आप (सहस्रिण) सहस्रो सुखो से युक्त (धृषद् वाज) विजय प्रदान करने वाले ऐश्वर्य को (आ दर्षि) हम चतुर्दिक् से दिखाते ही है। परन्तु (मघवन्) हे पूजनीय ऐश्वर्य के स्वामी! (विचर्षण) विविध प्रकार की दर्शनशक्ति व विज्ञान युक्त प्रभु! हम (कण्वेभि) बुद्धिमान् विद्वानो द्वारा अब (मक्षू) शीघ्र ही (पिशङ्गरूप) उज्ज्वल सुव्यवस्था मे ढले हुए (गोमन्त) ज्ञान विज्ञान के ऐश्वर्य की (ईमहे) कामना करते है ।।३।।

भावार्थ—क्षात्रबल से ही भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है; परन्तु साथ ही ब्राह्म अथवा आध्यात्मिक बल की साधना का लक्ष्य भी रखना अभीष्ट है ।।३।।

पा॒हि गाया॒न्धसो॒ मद॒ इन्द्रा॑य मेध्यातिथे ।

यः संमि॑श्लो॒ हर्यो॒र्यः सु॒ते सचा॑ व॒ज्री रथो॑ हिर॒ण्ययः॑ ।।४।।

पदार्थ—हे (मेध्य अतिथे) पूज्य अभ्यागत विद्वान्! आप (पाहि) भक्ष्य तथा पेय ग्रहण कीजिये व (अन्धसः मदे) अन्न के हर्षदायक सुख मे विभोर हो (इन्द्राय) इन्द्र को लक्ष्य कर कुछ (गाय) गीतो मे वर्णन करिए। उस इन्द्र का वर्णन करें कि जो (हर्यो) शरीररूपी रथ ले जाने वाली प्राण व अपान शक्तियो का (संमिश्ल) मिश्रण है, (सुते) उत्पन्न ससार मे (अयं.) वीर है, (सचा) साथ ही (वज्री) लक्ष्यप्राप्ति के साधनो से युक्त है, (रथ) गतिशील तथा (हिरण्यय) तेजोमय है ।।४।।

भावार्थ—राष्ट्राध्यक्ष राजा या सेनापति प्राण व अपान की सम्मिलित शक्ति से बलिष्ठ, योद्धा अर्थात् सघर्षशील होकर सांसारिक पदार्थों का प्रदान करने वाला साधनयुक्त, गतिशील और तेजस्वी हो ।।४।।

यः सु॑ष॒व्यः सु॒दक्षि॑ण इ॒नो यः सु॒क्रतु॑र्गृ॒णे ।

य आ॑क॒रः स॑ह॒स्रा यः श॒ताम॑घ॒ इन्द्रो॒ यः पू॒र्भिदा॑रि॒तः ।।५।।

पदार्थः—उस इन्द्र का वर्णन करें (य.) जो (इन्द्र) राष्ट्राध्यक्ष या सेनापति (सु-सव्य सुदक्षिण) जिसका बायाँ व दायाँ—दोनो हाथ अर्थात् समस्त कर्म-शक्तियाँ समर्थ हैं, (इन.) जो दृढ निश्चयी व साहसपूर्वक स्वामित्व करता है, (य सुक्रतु) जिसकी सकल्प या इच्छाशक्ति सुदृढ है—(गृणे) ऐसी घोषणा है। (य आकर सहस्रा) जो सहस्रो गुणो की खान है, (शत-मघ) सैकडो प्रकार के न्याय से कमाए धन का स्वामी है; (य. पूर्भित्) जो शत्रु-नगरो को तोड देता है और (आरित) सभी स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव (- स्तोम) जिसमे हैं ।।५।।

भावार्थ—राष्ट्र नेता के गुणो का वर्णन करते हुए बताया गया है कि वह दृढ सकल्पी, साहसी, गुणवान व शत्रु दमन मे समर्थ हो ।।५।।

यो धृ॑षि॒तो योऽवृ॑तो॒ यो अस्ति॒ श्मश्रु॑षु श्रि॒तः ।

वि॒भूत॑द्युम्न॒श्च्यव॑नः पुरु॒ष्टुतः॒ क्रत्वा॒ गौरि॑व शाकि॒नः ।।६।।

पदार्थः—(यः) जो (धृषित) साहसी है; (अवृत) चाटुकारो अथवा वञ्चकों से नहीं घिरा रहता, (य.) जो (श्मश्रुषु श्रितः) पौरुष के चिन्हों से सम्पन्न है; (विभूतद्युम्न) विशिष्ट यशस्वी है, (च्यवन) शत्रुओ को गिराता है, (पुरुष्टुत) अनेको से प्रशसित है, (क्रत्वा) क्रियाशील है, (शाकिन) कर सकने वाले—सामर्थ्यवान् के लिये (गौ. इव) भूमि, वाणी व गौ के तुल्य फल देने वाला है ।।६।।

भावार्थ—राजनेता के साहसी होने व धूर्तों की सगति से बचे रहने से ही समर्थ जन उससे लाभान्वित होते है और उसका सर्वत्र यश गूजता है ।।६।।

क ईं॑ वेद सु॒ते सचा॒ पिब॑न्तं॒ कद्वयो॑ दधे ।

अ॒यं यः पुरो॑ विभि॒नत्त्योज॑सा मन्दा॒नः शि॒प्र्यन्ध॑सः ।।७।।

पदार्थ—(अय) यह (य) जो (शिप्री) सुमुख सेनाध्यक्ष (अन्धस) अन्न आदि भोग्य पदार्थों से (सुते) उत्पन्न रस से (मन्दान) तृप्त हो उत्पन्न बल से बली बनकर (ओजसा) पराक्रम के द्वारा (पुर) शत्रुओ व शत्रुभूत दुर्भावनाओ की दुर्गरचनाओ को (वि-भिनत्ति) नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है, (ई) उसको कौन जानता है, (सचा) साथ ही (पिबन्त) पिया हुआ (वय) प्राण (कत्) कितना है—यह भी कौन जानता है? ।।७।।

भावार्थ—शूर सेनापति अन्न के सेवन व प्राणशक्ति के सचय से बलशाली बनता है। उसके शारीरिक बल व साहस का रहस्य यही है ।।७।।

दा॒ना मृ॒गो न वा॑र॒णः पु॑रु॒त्रा च॒रथं॑ दधे ।

न॒किष्ट्वा॒ नि य॑म॒दा सु॒ते ग॑मो म॒हाँश्च॑र॒स्योज॑सा ।।८।।

पदार्थ—(दाना) चरणशील (मृग इव) पशु के तुल्य—घास आदि चरता पशु जैसे (पुरुत्रा) अनेक स्थानो पर (चरथ) आजीविका पाता है, वैसे (वारण) दोषनिवारक मन बहुत प्रकार से विचरणशीलता को (दधे) धारता है। हे मेरे मन! तेरी इस गतिशीलता को (न कि नियमत) कोई नियन्त्रण करने वाला न ही (सुते आगम) ध्यान धारणादि से प्रस्तुत परमानन्द के मध्य (आ गम) आ जा, (ओजसा महान् असि) तू तो अपने बल के कारण महान् है ।।८।।

भावार्थः—इन्द्रियो का सचालक मन ही मानव के सभी दोषो को दूर करता है, जो सदा गतिमान् रहता है और मस्त हाथी के समान किसी के अधीन नहीं होता। वह यदि ध्यान धारणा के द्वारा प्रस्तुत परमानन्द का उपभोग करे तो सब विकारो से मुक्त हो जाता है ।।८।।

य उ॒ग्रः सन्नति॑ष्टुतः स्थि॒रो रणा॑य॒ संस्कृ॑तः ।

यदि॑ स्तो॒तुर्म॒घवा॑ शृ॒णव॒द्धवं॒ नेन्द्रो॑ योष॒त्या ग॑मत् ।।९।।

पदार्थ (य) जो मन (उग्र सन्) नितान्त उत्तेजित स्थिति मे (अनिष्टृत) अजेय व शक्तिशाली है, (स्थिर) चञ्चलता छोडने पर (रणाय) जीवन मे सघर्ष हेतु अथवा अनिष्ट प्रवृत्तियो से सघर्ष के उद्देश्य से (संस्कृत) परिष्कृत होता है, सर्वशक्तियुक्त हो जाता है। (यदि) यदि (मघवा) सुन्दर स्तुत्य शमदमादि ऐश्वर्यवान् मन (स्तोतु.) अपने स्तोता साधक की (हव) पुकार को (शृणवत्) सुनता है तो फिर यह (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पन्न मन (न योषति) कहीं भी नहीं भटकता, (आ गमत्) वह अपने अधिष्ठाता जीवात्मा की ओर—उसके वश मे हो जाता है ।।९।।

यम, नियम, ध्यान इत्यादि योग के साधनो से पहले मन को वश मे करना अपेक्षित है। उसके बाद ही जीवात्मा परमानन्द को प्राप्त कर सकता है ।।९।।

स॒त्यमि॒त्था वृषेद॑सि॒ वृष॑जूति॒र्नोऽवृ॑तः ।

वृषा॒ ह्यु॑ग्र शृण्वि॒षे प॑रा॒वति॒ वृषो॑ अर्वा॒वति॑ श्रु॒तः ।।१०।।

पदार्थ—(इत्था) इस तरह सुसस्कृत मन (सत्य इत) सचमुच ही (वृषा असि) सुख वर्धक सिद्ध होता है, (वृषजूति) बलवती एकाग्रताशक्ति युक्त है, (न.) हममे से (अवृत) दुर्भावनावालो से घिरा हुआ नहीं है (उग्र) बलवन् तू (वृषा हि) निश्चित रूप से सुख देने वाले के रूप मे (शृण्विषे) प्रसिद्ध है, (परावति) दूर देश मे भी (अर्वावति) तथा समीप मे भी (वृष·) सुखदाता (श्रुत) प्रसिद्ध है ।।१०।।

भावार्थ—मन बलवान तो है ही, वह सुखदाता भी है—एकाग्रता के अभ्यास से उसे दुर्भावनाओ द्वारा घेराव किए जाने से बचाना चाहिये ।।१०।।

वृष॑णस्ते अ॒भीश॑वो॒ वृषा॒ कशा॑ हिर॒ण्ययी॑ ।

वृषा॒ रथो॑ मघव॒न्वृष॑णा॒ हरी॒ वृषा॒ त्वं श॑तक्रतो ।।११।।

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अनेक प्रकार के दृढ सकल्प धारी! तदनुसार सैकडो कर्म करने वाले! क्योकि (ते अभीशव) तेरे [जीवन-रथ के घोडो की नियन्त्रक रासे] चारो तरफ फैले तेज (वृषण) बलवान है, (हिरण्ययी) न्याय के प्रकाश से चमकने (कशा) नियन्त्रणसाधक क्रियारूप चाबुक (वृषा) सुदृढ है, हे (मघवन्) स्वच्छतम पूजायोग्य ऐश्वर्यवाले! (रथ) हर्षदाता सर्वथा स्वस्थ तेरा शरीर रूपी रथ (वृषा) सुदृढ है, (हरी) हरणशील जीवनचक्र को चलाने वाली दो-दो प्रकार की इन्द्रियाँ, ज्ञान व कर्मेन्द्रियाँ (वृषणा) सर्वथा कार्यदक्ष है, इसलिये तू अपने आप (वृषा) समर्थ व दानशील है ।।११।।

भावार्थ—जिस आदमी का शरीर—इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि आदि जीवनचक्र के सभी चालक यन्त्र सुदृढ है, वह ससार मे नाना कर्म सुदृढ सकल्प से करता है तथा स्वय समर्थ व दानशील होता है ।।११।।

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥१२॥

पदार्थ—हे वीर जन ! (**वृषा**) बलिष्ठ (**सोता**) वीर्य सपन्न तेरा मन (**ते**) तेरे लिये (**सुनोतु**) वीर्यरूप ऐश्वर्य को सम्पादित करे; हे (**वृषन्** !) बलवान् (**ऋजीषिन्**) शत्रु भावनाओ पर प्रहार करने वाले तू (**आ भर**) सम्पादित होते वीर्यरूप ऐश्वर्य को भली-भाँति भर ले । हे (**हरीणां**) चञ्चल इन्द्रिय वृत्तियो के (**स्थातः**) स्थिर करने वाले ! (**तुभ्य**) तुझे प्रदान करने हेतु (**वृषा**) बलवान् मन (**नदीषु**) नाडियो में (**वृषण**) बलवर्धक वीर्य रस (**आ दधन्वे**) पुष्ट करे ॥१२॥

भावार्थः—यम नियम इत्यादि साधनो से समाहित मन से शरीर की प्रत्येक नाडी मे वीर्य का आधान होता है, वीर पुरुष इसी तरह बलवान बनते हैं ॥१२॥

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) शौर्यरूप ऐश्वर्य इच्छुक ! (**शविष्ठ**) बलवान् होने के अभिलाषी ! तू (**सोम्य**) वीर्यवान् बनाने मे समर्थ (**मधु**) मधुर पेय के (**पीतये**) उपभोग हेतु (**आ याहि**) स्तोता मन का सपर्क कर । ऐसा किये विना (**मघवा**) शुभ-पूजनीय धनवान् भी (**सुक्रतु**) बुद्धिमान् भी (**अय इन्द्र**) यह वीर्यरूप ऐश्वर्य इच्छुक जन (**न**) न तो (**ब्रह्म**) वेद ज्ञान को (**च**) और न (**उक्था**) गुणवर्णन कर्ता द्वारा किये गए गुणगान को (**अच्छा शृणवत**) भली-भाँति सुन पाता है ॥१३॥

भावार्थ—चाहे मनुष्य सुकर्मा भी हो जाय तब भी जब तक वह मन व इन्द्रियो को यमनियमादि के द्वारा समाहित कर उससे मिलने वाले दिव्य आनन्द का भोग नही करता तब तक वेद इत्यादि ज्ञान-विज्ञान की बातो को नही सुन सकता ॥१३॥

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्य सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥१४॥

पदार्थ—हे (**वृत्रहन्**) दिव्य आनन्द की प्राप्ति के मार्ग की बाधाओ को हटाते हुए (**शतक्रतो**) नानाविध सकल्प व कर्म सिद्ध करने वाले सक्षम जन ! (**रथेष्ठा**) जीवनयात्रा के साधन [इन्द्रियादि सहित] शरीर रूपी रथ मे अविचल बैठे हुए तुझे (**रथयुज**) तेरे शरीर मे एकाग्रतासहित सयुक्त (**हरय**) इन्द्रिय इत्यादि ले जाने वाले उपकरण (**वहन्तु**) ले चलें, (**या**) जो (**सवनानि**) प्रेरणा (**अन्येषां**) दूसरो की, उन इन्द्रियादि साधनो की हैं जो तेरी या तेरे अपने वश मे नही हैं वे तो, (**अर्य चित्**) समर्थ भी तुझे—तेरे सामर्थ्य का (**तिर**) तिरस्कृत करेंगे ॥१४॥

भावार्थ—इन्द्रियो को अपने वश मे करने मे जो व्यक्ति समर्थ है वही सुख से जीवन बिता सकता है, जिसका इन्द्रियो आदि पर वश नही है, उसका सामर्थ्य भी व्यर्थ है ॥१४॥

अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥१५॥

पदार्थ—हे (**महामह**) परमेश्वर ! (**अद्य**) अब शीघ्र ही (**अन्तम**) सर्व दुःख हर्ता (**स्तोम**) स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव को (**अस्माक**) हम धारण कराए । हे (**सोमपा**) उत्पादित पदार्थों के द्वारा सबकी रक्षा करने वाले ! (**द्युक्ष**) स्व ओज से प्रदीप्त प्रभु ! (**ते**) आपकी (**सवना**) प्रेरणाए, जो (**शतमा**) अति सुखदायक है वे (**अस्माक**) हम (**मदाय सन्तु**) आनन्दित करें ॥१५॥

भावार्थ—भगवान की प्रेरणा से ही मनुष्य श्लाघा करने योग्य गुण-कर्म-स्वभाव को पाता है और जीवन मे आनन्द करता है ॥१५॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६॥

पदार्थ (**य वीर**) जो वीर जन (**अस्मान्**) हम मन, इन्द्रिय आदि को (**आनयत**) अपने वश मे कर लेता है (**स.**) वह (**न हि तव**) न ही तेरे (**नो मम**) न मेरे (**अन्यस्य**) न किसी अन्य के (**शास्त्रे**) शासन मे (**रण्यति**) प्रसन्न रहता है ॥१६॥

भावार्थ—वीर व्यक्ति के मन-इन्द्रिय आदि जब तक उसके अपने वश मे रहते हैं तभी तक वह आनन्द पाता है, पराये नियन्त्रण मे वह सुखी नही होता ॥१६॥

इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥१७॥

पदार्थ—(**चित्**) फिर (**इन्द्र घ**) नितान्त समर्थ स्वामी भी (**इव**) यह (**अब्रवीत्**) कहे कि (**स्त्रिया**) सग चलने वाली अर्थात् जीवन सगिनी के (**मन**) मन को, उसकी विचारधारा को (**अशास्य**) वश मे लाना कठिन है (**उतो अह**) साथ ही निश्चित रूप से ही उसके (**क्रतु**) बुद्धिबल व सकल्प शक्ति को भी यदि वह (**रघु**) अल्प या तुच्छ कहता है ॥१७॥

भावार्थ—नितान्त समर्थ पति भी यदि कभी यह अनुभव करे कि उसकी भार्या की विचारधारा और उसकी विचारधारा मे साम्य नहीं है तो (क्या होना चाहिये—यह अगले मन्त्र में है) ॥१७॥

सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् ।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८॥

पदार्थ—(**सप्ती चित्**) शीघ्र गामी भी पति-पत्नी निश्चित रूप से ही (**मदच्युता**) मन आदि के सयम से दिव्य आनन्द को भोगते हुए (**मिथुना**) मिले हुए (**रथ वहत**) जीवन रथ को चलाते हैं । (**एवेत्**) इसी तरह (**वृष्ण**) बलवान् पति का (**धू**) भार—दायित्व (**उत्तरा**) दोनो के भारो मे अधिक है ॥१८॥

भावार्थ—इससे पूर्व व्यक्त शङ्का का उत्तर यह है कि पति-पत्नी का पारिवारिक जीवन दोनो का सयुक्त दायित्व है परन्तु शारीरिक दृष्टि आदि से अधिक बलशाली तथा दानशील पति का दायित्व अधिक बडा है उसी तरह जैसे कि रथ आदि मे जुती जोडी मे से अधिक बलिष्ठ पर अधिक भार पड़ता है ॥१८॥

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९॥

पदार्थ—(**स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**) अर्थात [इस गृहस्थ रूप यज्ञ मे] पुरुष की सहचरी, स्त्री ही (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा नामक ऋत्विक् (**बभूविथ**) बनी हो—तो वह कहती है कि (**अध पश्यस्व**) नीचे देख (**उपरि मा**) ऊपर नहीं, (**पादकौ**) दोनो पगो को (**सन्तरां हर**) सश्लिष्ट रूप से उठाकर चल । (**ते**) तेरे (**कशप्लकौ**) निम्नांग (**मा दृशन्**) नग्न न हो ॥१९॥

भावार्थ—यज्ञ के चार ऋत्विजो मे से 'ब्रह्मा' उद्गाता है । वह निर्देश देता रहता है कि ऐसा करो व ऐसा न करो इत्यादि । गृहस्थ रूपी यज्ञ की ब्रह्मा तो मानो नारी ही है । वह कर्म करने के उत्तरदायी शक्तिशाली पुरुष (इन्द्र) को इस जीवन-यज्ञ मे परामर्श देती रहती है । नीचे देखने का अभिप्राय है 'विनयी' होना व ऊपर देखना है 'उद्दत' होना । मनुष्य दो पैरो को इस प्रकार सामञ्जस्य से बढ़ाए कि उसके जीवन मे 'प्रगति' हो ॥१९॥

अष्टम मण्डल में तेतीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-१५ नीपातिथि काण्व । १६-१८ सहस्र वसुरोचिषोऽङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ *निचृदनुष्टुप् ।* २, ४ ६, ७, ९, *अनुष्टुप् ।* ५, ११, १४ *विराडनुष्टुप् ।* १६, १८ *निचृद्गायत्री ।* १७ *विराड् गायत्री ॥* स्वर - १-१५ *गान्धार ।* १६-१८ षड्ज ॥

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील जन ! तू (**हरिभि**) इन्द्रियां, अन्त करण एवं प्राणो के साथ (**कण्वस्य**) बुद्धिमान् की (**सुष्टुति**) शुभ स्तुति (गुण वर्णन) को (**उप याहि**) निकट से सुन । (**अमुष्य दिव शासत.**) जब तक वह दिव्यगुणी स्तोता उपदेश कर रहा है, उसे सुनकर, हे (**दिवावसो**) दिव्यता को स्वय मे बसाने की इच्छा वाले साधक ! तू (**दिव यय**) दिव्यता प्राप्त कर ॥१॥

भावार्थः—स्तुति का परिणाम गुणो को धारण करना और अवगुणो को छोड़ना है । बुद्धिमान् द्वारा की गई ईश्वरादि की स्तुति को मानव अपनी इन्द्रियो, अन्त करण व प्राणादि साधना से अपने मे बसाए तो वह स्वय दिव्यगुणी बनता है, ऐसा अवसर न त्यागना चाहिए ॥१॥

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

पदार्थ - (**त्वा**) तुझ ऐश्वर्यार्थी को (**ग्रावा**) पदार्थों का स्तोता या उपदेष्टा (**सोमी**) स्वय प्रशस्त पदार्थों को जान उनसे लाभान्वित विद्वान् (**आ वदन्**) तुझे बताते हुए (**घोषेण**) शौर्य व उत्साहप्रद चित्र-विचित्र वाद्य ध्वनि द्वारा (**यच्छतु**) तेरे अन्तकरण मे धारण कराए । (**अमुष्य आदि पूर्ववत्**) ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् स्तोता न केवल स्व वाणी से उपदेश ही करे अपितु उद्घोषक वादित्रों की मदद से भी श्रोता के मन मे अपना कथन भी भलीभांति बसा दे ॥२॥

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

पदार्थ—(**वृक उरा धूनुते**) भेडिये द्वारा भेड बल से खूब झकझोरी जाती है (**न**) इसी प्रकार (**अत्रा**) इस जीवनयात्रा मे (**एषां**) स्तोताओं की (**नेमि**) गर्जनध्वनि श्रोता साधक को (**वि धूनुते**) विशेष रूप से झकझोरती है । शेष पूर्ववत् ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् स्तोता की वाणी मे विद्युत् गर्जन-सरीखा बल हो अर्थात् वह इतनी बलयुक्त हो कि श्रोता साधक को सुनना ही पड़े ॥३॥

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४॥

पदार्थ —(कण्वा) स्तोता विद्वान् (इह) इस जीवनयज्ञ मे (वाजसातये) ज्ञानादि बल प्राप्त कराने और (अवसे) रक्षा प्रदान करने को (त्वा) तुझे (आ हवन्ते) स्वीकारते है । शेष पूर्ववत् ॥४॥

भावार्थ —सद्गुण साधक ! तेरा यह सौभाग्य है कि बुद्धिमान् विद्वानो ने अपने गुणवर्णन के श्रोता के स्वरूप तुझे स्वीकारा है; इस अवसर पर चूक न कर ॥४॥

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५॥

पदार्थः—[बुद्धिमान् स्तोता द्वारा साधक पुरुष से कहा जाता है कि] मैं (सुतानां) सुसंस्कृत गुणवर्णन की (पूर्वपाय्यम्) पूर्ण मात्रा (वृष्णे न ते) जलवर्षक मेघ तुल्य दानशील तेरे अन्तःकरण मे (दधामि) बसाता हूँ । शेष पूर्ववत् ॥५॥

भावार्थ —विद्वान् स्तोता साधक को सुपात्र समझ पहले उसे ही अपने द्वारा की गई ईश्वरादि की स्तुति सुनाता है, साथ ही वह आशा भी रखता है कि इसे सुनकर वह इस को रोक अपने पास ही न रखे; रोधक, वृत्र, मेघ न बन दूसरो को ज्ञान दे ॥५॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥६॥

पदार्थ —(विश्वतो धी) सर्वत्र जाने वाली बुद्धि व सर्वगामी कर्मशक्ति सम्पन्न श्रोता साधक (स्मत् पुरन्धि) अनेक प्रकार की श्रेष्ठ विद्या से युक्त हो (ऊतये) हमें ज्ञान देने को (न) हमारा (आ गहि) हाथ पकड़े ॥६॥

भावार्थ —जब श्रोता साधक ज्ञान की वर्षा करनेवाला है तो अन्य साधारण जन उससे अपेक्षा रखें कि वह अपनी सारी सूझबूझ व कर्मशक्ति का दूसरो को उपदेश दे ॥६॥

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

पदार्थ —हे (महेमते) ज्ञानवान् (सहस्रोते) अनेकानेक ज्ञानधाराओ वाले ! (शतामघ) सैकड़ो प्रकार के ज्ञानबल आदि उत्तम धनो के इच्छुक ! वीर्यसाधक इन्द्र ! (नः) हमारे निकट (आ याहि) आ । शेष पूर्ववत् ॥७॥

भावार्थः—सामान्यजन श्रोता साधक से अनुरोध करते है कि वह स्वय ज्ञानी बनकर अन्यो को अपने उपदेश रूपी अमृत की वर्षा से लाभान्वित करे ॥७॥

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८॥

पदार्थ — [हे साधक, बलार्थी, वीर !] (त्वा) तुझे (होता) दिव्यगुणियो के आह्वान करने वाला, (मनुः) मननशील (हित) हितकारी (देवत्रा ईड्य.) दिव्यगुणियो मे स्तुत्य गुणो के कारण प्रशंसनीय इन्द्र, (आ वक्षत्) बढ़ाता व बलवान् बनाता है । शेष पूर्ववत् ॥८॥

भावार्थ —बलार्थी साधक के लिए उचित है कि वह अपनी उन्नति के लिये मननशील, हितकारक, दिव्यगुणियो मे श्रेष्ठ दिव्यगुणी का सेवन करे ॥८॥

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९॥

पदार्थः—(त्वा) तू जो बलार्थी साधक है (मदच्युता) बलवान अथवा शत्रु-भावना के दर्प को हरने वाला है (हरी) शरीररूपी रथ के वाहक प्राण एव अपान, (श्येन पक्षा इव) अतिवेग से उड़ सकने वाले शक्तिशाली श्येन पक्षी को जैसे उसके पख सहायता देते हैं वैसे [प्राण और अपान] तुझे बलशाली रखते है (शेष पूर्ववत्) ॥९॥

भावार्थः—प्राणायाम के द्वारा प्राणो पर नियन्त्रण करने से बलार्थी साधक को बल प्राप्त हो सकता है ॥९॥

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१०॥

पदार्थ [बलार्थी साधक उपदेष्टा से प्रार्थना करे कि हे !] (अर्य) प्रगतिशील, विद्वान् ! (स्वाहा) सत्य वचन, सत्य क्रिया व सत्यपुरुषार्थ से (परि सोमपीतये) निष्पन्न पदार्थों के सबन्ध मे ज्ञान का सब ओर से सम्यक् रूप से आदान-प्रदान करने के व्यवहार हेतु (आ) आइये । (शेष पूर्ववत्) ॥१०॥

भावार्थ —समर्थ विद्वान् पदार्थों के सबन्ध मे ज्ञानविज्ञान के आदान-प्रदान का सच्चे हृदय से प्रयास करे । इस प्रकार साधक बलार्थी दिव्यता की दिशा मे आगे बढ़ता है ॥१०॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥

पदार्थ —[बलार्थी साधक को मानो विद्वान् कहते है कि] हे साधक ! तू (न) हमारे कहने के (उपश्रुति) उपयुक्त श्रवण को (आ याहि) पाए; और (इह) इस श्रवण का अवसर प्राप्त होने पर (उक्थेषु) बनाये जासकने वाले सब स्तुति वचनो मे (रणया) रमण करे । शेष पूर्ववत् ॥११॥

भावार्थः—बलार्थी साधक ऐसे शुभ अवसर की खोज मे रहे कि जब उसे विद्वानों के उपयुक्त कथन सुनने को मिलें । विद्वान् द्वारा वेदो मे वर्णित सृष्टि के पदार्थों के गुणावगुण का वर्णन (स्तोत्र) होता है, साधक परम आनन्द से उन्हें सुने ॥११॥

सरूपैरा सु नो गहि सम्भृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अ[illegible]ष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥

पदार्थ —[बलार्थी साधक के लिये विद्वान् कहते हैं कि] (सम्भृताश्व) तू सम्पुष्ट इन्द्रियरूप अश्वो वाला (सभृतै) परिपुष्ट व (सरूपै) अपने समान रूपवान् साथियो सहित (न) हमें (सु आ गहि) भली-भांति ग्रहण कर (शेष पूर्ववत) ॥१२॥

भावार्थ —साधक अकेले नही, अपितु अपने जैसे ही परिपुष्ट, इन्द्रियादि साधनो वाले साथियो सहित आकर विद्वानो का सहयोग ले ॥१२॥

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥

पदार्थ —हे साधनारत ! तू (पर्वतेभ्य) पर्वतो के तुल्य दुर्लंघ्य स्थानो पर से, (समुद्रस्य अधि) सागर की गहराइयो मे और (विष्टप) सुदूर व्याप्त अन्तरिक्ष तक से भी (आयाहि) आकर समर्थ विद्वान की सेवा मे पहुँच । (शेष पूर्ववत्) ॥१३॥

भावार्थ साधक के लिये उचित है कि वह अपने मार्ग की सभी विघ्न बाधाओ को लाँघे और समर्थ विद्वान् की सेवा मे पहुँचे ॥१३॥

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥

पदार्थ —साधक (न.) हमारे (सहस्रा) अगणित (गव्यानि) ज्ञानेन्द्रियो के लिये हितकारी एव (अश्व्या) कर्मेन्द्रियो के हितकारी नाना बलो को (आदर्दृहि) चतुर्दिक् से बढ़ाये । (शेष पूर्ववत) ॥१४॥

भावार्थ.—साधक का यह कर्त्तव्य है कि वह विद्वानो का अनुसरण करे, उसे चाहिये कि उनके ज्ञान एव कर्मबल के अनुसार अपने ज्ञान एव कर्मबल को बढ़ाने को प्रयत्नशील रहे ॥१४॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥

पदार्थ —[साधक बलशाली विद्वान् से प्रार्थना करता है कि] हे विद्वन् ! आप (न) हमे (सहस्रश अयुतानि, शतानि च) सैकड़ों, सहस्रों व लाखो ऐश्वर्यों से (आ भर) परिपूर्ण कर पुष्ट करें । (शेष पूर्ववत्) ॥१५॥

भावार्थ —साधक का यह कर्त्तव्य है कि वह बलवान् उपदेशक विद्वान् से शिक्षा लेकर असख्य प्रकार के पौष्टिक पदार्थों, बल वृद्धि के योगाभ्यास आदि की साधनभूत क्रियाओ के अभ्यास का सकल्प लें ॥१५॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः ।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥१६॥

पदार्थ —(यत्) जब (वसुरोचिष.) वास के साधनभूत ऐश्वर्य की कान्ति के अभिलाषी हम (इन्द्र च) तथा समर्थ विद्वज्जन (ओजिष्ठ) पराक्रम के साधनभूत, (अश्व्यं) कर्मेन्द्रियो के लिये हितकारी व (पशु) दर्शनशक्ति वाले ज्ञानेन्द्रियो के प्रतीक ज्ञानेन्द्रियो के हितकारी बल को (आ दद्वहे) पाए ॥१६॥

भावार्थ —साधक और उसे उपदेश देने वाला शक्तिशाली विद्वान् वही बल प्राप्त करे कि जो उसके ज्ञान तथा कर्मशक्ति मे वृद्धि करे ॥१६॥

य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः ।
भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७॥

पदार्थ —(ये) जो (ऋज्रा) धर्म के सरल मार्ग से जीवन बिताने वाले (वातरंहस) वायु वेग से गतिशील, [आलस्यहीन] (अरुषास) परन्तु अहिंसाशील तेजस्वी, (रघुष्यद) मार्ग को निर्विघ्न करने वाले विद्वान् है, वे (सूर्याइव) सूर्य किरणो से प्रकाशित नक्षत्रो के तुल्य (भ्राजन्ते) दीप्त होते हैं ॥१७॥

भावार्थ.—जो विद्वज्जन स्वयं धर्ममार्ग पर चल कर साधको के लिए जीवन-यात्रा का मार्ग सुगम तथा सुखद बनाते हैं —वे वस्तुत स्तुत्य है, जैसे सूर्य से प्रकाश पाकर आकाश मे नक्षत्र चमकते हैं—वैसी ही यश कान्ति से ये विद्वान् यशस्वी होते हैं ॥१७॥

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु ।

तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥१८॥

पदार्थ —जब (**पारावतस्य**) परमस्थिति मे स्थिर प्रभु की (**रातिषु**) दानभूत, (**आशुषु**) शीघ्रगामी अश्वरूप बलवती इन्द्रियाँ (**द्रवत् चक्रेषु**) शरीररूप रथ के चक्रो को अतिवेग से दौडाने की स्थिति पा लें, तब मैं साधक (**वनस्य मध्ये**) ऐश्वर्य के बीच (**आ तिष्ठम्**) आ विराजू ॥१८॥

भावार्थ—जब व्यक्ति की इन्द्रियाँ उसके वश मे हो और उसकी जीवन-यात्रा निर्विघ्न व पूर्णवेग से होने लगे तो साधक सर्व प्रकार के ऐश्वर्य का अधिष्ठाता होकर इन्द्ररूप पा लेता है ॥१८॥

अष्टम मण्डल में चौंतीसवा सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुर्विशत्यृचस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-२४ श्यावाश्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द -१-५, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ७-६, १३ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, १०—१२, १४, १५, २७ भुरिक् पंक्ति । २०, २१, २४ पंक्ति । १६, २२ निचृत् पंक्ति । २३ पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ स्वर -१-५, ७-६, १३, १६, १८ धैवत । ६, १०—१२, १४, १५, १७, १६ —२२, २४ पञ्चम । २३ निषाद ॥

राज्यपुरुषों के कर्तव्य कहते हैं ॥

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥१॥

पदार्थ —(**अश्विना**) हे अश्वयुक्त राजन् व मन्त्रियो ! आप (**अग्निना**) अग्निहोत्रादि शुभकर्म के (**सचाभुवा**) साथ ही हुए हैं । यद्वा अग्नि सामर्थ्य सहित राजा रहते हैं, क्योंकि उन्हे आग्नेयास्त्रो का प्रयोग सदा ही करना पडता है । इसी प्रकार (**इन्द्रेण**) विद्युच्छक्ति के साथ आप हुए है, (**वरुणेन**) वरणीय जलशक्ति के साथ हुए हैं क्योंकि प्रजा के उपकारार्थ जल को नाना प्रकार नहर आदि से नाना प्रयोग से राजा को प्रयुक्त करना पडता है । (**विष्णुना**) आप सूर्यशक्ति के साथ हुए हैं, क्योंकि सूर्य के समान विद्या प्रचारादि से वे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं । (**आदित्यै**) द्वादश मासो की शक्ति के साथ हुए हैं, क्योंकि द्वादश मासो के समान ही जीवो को सुख पहुँचाते हैं (**रुद्रै**) एकादश प्राणो के सामर्थ्य के साथ हुए हैं, क्योंकि जैसे एकादश प्राण शरीर मे सुख देते हैं वैसे ही आप प्रजा को विविध सुख प्रदान करते है । तथा (**वसुभि**) आठ प्रकार के धनो के साथ ही आप हुए है । और (**उषसा**) प्रात काल इससे मृदुता शीलता आदि गुणो का (**सूर्येण**) सूर्य शब्द से तीक्ष्णता प्रताप आदि का ग्रहण है इसलिए मृदुता व तीक्ष्णता दोनो गुणो से आप (**सजोषसा**) युक्त है क्योंकि उभयगुणसम्पन्न राजा हो । इस कारण (**सोमम् पिबतम्**) सोमरस का पान करें क्योंकि आप इसके योग्य है । इस प्रकार आगे भी व्याख्या कर्त्तव्य है ॥१॥

भावार्थ —मानव जाति को उत्तम व सुशील बनाने हेतु तीन मार्ग है—विद्या, धर्म व राज-नियम । परन्तु इन तीनो मे राजदण्ड से ही ससार की स्थिति बनी रहती है, क्योंकि इसके उग्रदण्ड से पापी डरते है । अत राजमण्डल का वर्णन इस प्रकार वेद मे है ॥१॥

विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥२॥

पदार्थ—(**वाजिना**) हे ज्ञानी तथा बली (**अश्विना**) हे राजन ! तथा मन्त्रिगण आप (**विश्वाभि**) सर्व प्रकार की (**धीभि**) बुद्धियो के (**सचाभुवा**) साथ ही उपजे हैं । एव (**भुवनेन**) सर्व प्राणियो के (**दिवा**) द्युलोक के (**पृथिव्या**) धरती के (**अद्रिभि**) पर्वतो या मेघो के साथ आविर्भूत हुए हैं । तथा (**उषसा सूर्येण च**) मृदुता व तीक्ष्णता दोनो से युक्त है । इसलिए आप महान् है, इस कारण सोमरस का पान करें ॥२॥

भावार्थ —जो राजा तथा उसका मन्त्रिमडल बुद्धि और विवेक के साथ द्युलोक आदि से लाभ उठाते है, वे दिव्य आनद के योग्य है ॥२॥

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३॥

पदार्थ —हे राजन् ! व मन्त्रिगण ! आप (**विश्वै देवै**) सबदेव अर्थात् (**त्रिभि**) त्रिगुणित (**एकादशै**) एकादश याने ३३ (तेंतीस) देवो के (**अद्भि**) जलो के (**मरुद्भि**) मरुतो के एव (**भृगुभि**) भर्जनकारी अग्नियो के (**सचाभुवा**) साथ ही उपज है । आगे पूर्ववत् ॥३॥

भावार्थ तेंतीस देवो से लाभान्वित होने वाले राजा तथा उसके मन्त्री सुख प्राप्त करते है ॥३॥

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥४॥

पदार्थ —(**अश्विना देवौ**) हे राजन् ! व मन्त्रिगण ! आप सब मिलकर (**यज्ञम्**) शुभकर्म को (**जुषेथाम्**) प्रीतिपूर्वक वर्तें । (**मे**) मेरे (**हवस्य**) आह्वान को (**बोधतम्**) जानें व प्राप्त करे । आप दोनो (**उषसा**) मृदुता (**सूर्येण च**) तथा तीक्ष्णता से (**सजोषसा**) सयुक्त हो (**न**) हमारे निकट (**इषम्**) अन्न (**आ वोळ्हम्**) उपलब्ध कराए ॥४॥

भावार्थ —राजा के लिए यही उपयुक्त है कि वह अपने मन्त्रिमंडल सहित शुभ कर्मो मे रत रहे, इस प्रकार वे सुख पाते है ॥४॥

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५॥

पदार्थ —(**अश्विनौ देवौ**) हे शासक व मन्त्रिमण्डल ! आप दोनो (**सोमम्**) प्रार्थनाओ को (**जुषेथाम्**) प्रीतिपूर्वक सेवें । यहा दृष्टान्त है (**युवशा इव**) जैसे युवक (**कन्यानाम्**) कन्याओ की बातें सुनते हैं । (**इह**) इस ससार मे, इत्यादि (पूर्ववत्) ॥५॥

भावार्थ—राजा तथा उसके मन्त्री अपनी प्रजा की आवश्यकताओ को प्रीतिपूर्वक पूर्ण करे ॥५॥

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥६॥

पदार्थ —(**देवौ**) हे देव (हे राजन्) हे अमात्यो ! आप सब (**गिर**) हमारी सर्व ससार की भाषाओ को (**जुषेथाम्**) जाने व (**अध्वरम्**) सारे यज्ञ को (**जुषेथाम्**) सेवे, (**इह**) इस ससार मे, इत्यादि पूर्ववत् ॥६॥

भावार्थ —राजा तथा मन्त्रिगण अपनी प्रजा की विविध भाषाओ को जानें जिससे उनके सुख-दु:ख को पहचान सकें ॥६॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७॥

पदार्थ —(**अश्विनौ**) हे राजा तथा मन्त्रियो ! (**हारिद्रवा इव**) जैसे प्यास से व्याकुल हारिद्रव पक्षी (**वना इत्**) जल की तरफ उडते है वैसे ही आप दोनो हमारी रक्षार्थ इधर-उधर (**पतथ**) जाते है और (**महिषा इव**) जैसे भैंसें प्यासी होकर जल की ओर दौडती है वैसे ही आप (**सुतम्**) गृहस्थो से सम्पादित (**सोमम्**) सारे पदार्थ देखने के लिए (**अवगच्छथ**) दौडते हैं (**अश्विना**) हे अश्वदेवो ! (**त्रि**) प्रतिदिन तीनवार (**वर्ति यातम्**) कार्यनिरीक्षण के लिए इधर-उधर जाओ ॥७॥

भावार्थ — राजा तथा मन्त्रियो के लिए उपयुक्त है कि वे राज्य के विविध प्रजा जनो के सुख-दुःख का अन्वेषण वैसी ही लगन से करें कि जैसी लगन से प्यासे पशुपक्षी जल के लिये दौडते है ॥७॥

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥८॥

पदार्थ — राजन् व मन्त्रिवर्ग (**हंसा इव**) जैसे प्यासा हंस (**अध्वगौ इव**) जैसे प्यासा पथिक और (**महिषौ इव**) जैसे भैंस इत्यादि जल की तरफ भागते है । वैसे ही आप (**सुतम्**) मनुष्यो से तैयार किए हुए (**सोमम्**) सारे पदार्थों की ओर जाचने को जाते हैं । आप धन्य हैं (**इह**) इत्यादि पूर्ववत् ॥८॥

भावार्थ जिस प्रकार प्यासे पशुपक्षी जल पर टूटते है वैसे ही राजा तथा उसके मन्त्री अपनी प्रजा से निष्पन्न पदार्थों को जाचे ॥८॥

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥९॥

पदार्थ - हे राजन् ! हे मन्त्रियो ! आप (**हव्यदातये**) दानी पुरुष हेतु (**सुत सोमम्**) मनुष्य प्राप्त सोम की ओर (**श्येनौ इव**) श्येन पक्षी के समान (**पतथः**) जाते है । यह आपकी अति प्रशसा है ॥९॥

भावार्थ —राजा तथा मन्त्री दानशील प्रजा को अतिशीघ्र समृद्धि प्रदान करे ॥९॥

पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१०॥

पदार्थ —(**अश्विना**) हे पुण्यात्मा राजा ! तथा हे मन्त्रियो ! प्रजा द्वारा दिए गए सोमरस को (**पिबतम्**) आप पिए (**तृप्णुतञ्च**) और उन्हे पीकर तृप्त हो (**च**) और (**आगच्छतम् च**) प्रजा की रक्षार्थ इधर-उधर आएं-जाए । (**च**) और जाकर (**प्रजाम च**) प्रजा का (**धत्तम्**) धारण-पोषण करें (**द्रविणम् च**) और हमारे लिए भाति-भाति के सुवर्णादि द्रव्य (**धत्तम्**) धारें । (**नः**) हमारे कल्याण हेतु (**ऊर्जम्**) बल भी आप धारें ॥१०॥

भावार्थ —राजा तथा मन्त्री प्रजा के द्वारा दिए गए कर को प्रीतिपूर्वक स्वीकारें और उससे प्रजा का ही पालन-पोषण करें ॥१०॥

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥११॥

पदार्थ —हे राजन् ! व मन्त्रिगण ! आप शत्रुओ को (**जयतम्**) विजय करे और उन्हें जीतकर प्रभु की (**प्र स्तुतम्**) स्तुति करें । और सब की (**प्र अवतम्**) रक्षा करें । शेष पूर्ववत् ॥११॥

भावार्थ—राजा तथा मन्त्रिगण शत्रु को जीतने के लिए सदा सतर्क व प्रयत्नशील रहें ॥११॥

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१२॥

पदार्थः—हे राजन् ! हे मन्त्रिगण ! आप (शत्रून्) शत्रुओं का (हतम्) नाश करें (च) और (मित्रिणः) मैत्रीयुक्त पुरुषों के पास (यततम्) जाया करें। शेष पूर्ववत् ॥१२॥

भावार्थः—शत्रुओं को केवल नष्ट करना ही राजा व मन्त्रियों का काम नहीं, उन्हें मित्रों से मेल-जोल भी रखना चाहिए ॥१२॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१३॥

पदार्थ—(अश्विनौ) हे राजा ! तथा मन्त्रिगण ! आप (मित्रावरुणवन्ता) ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनों वर्गों से युक्त हैं (उत) और (धर्मवन्ता) धर्म युक्त हैं और (मरुत्वन्ता) वैश्यों से अर्थात् इन्द्रियों से युक्त हैं। वे आप (जरितुः) गुणों के गायक के (हवम्) निवेदन को सुनने के लिए जाएं। पुनः आप (उषसा) मृदुता से व (सूर्येण) तीक्ष्णता से (सजोषसा) सम्मिलित हैं, वे आप (आदित्यैः) सूर्य के जैसे प्रकाशित महापुरुषों के साथ शुभ कर्मों में (यातम्) जावें ॥१३॥

भावार्थ—राजा तथा राजपुरुषों की प्रजा में ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य—सभी प्रकार के लोग सम्मिलित हैं ॥१३॥

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१४॥

पदार्थ—(उत) और भी हे राजन् ! एवं सभापति आदि ! आप दोनों (अङ्गिरस्वन्ता) अग्निहोत्रादि शुभकर्मों से संयुक्त हैं। और (विष्णुवन्ता) भगवान् के आदेशों से युक्त हैं। शेष पूर्ववत् ॥१४॥

भावार्थ—राजा तथा राजपुरुष स्वयं अग्निहोत्रादि शुभकर्म करनेवाले होने चाहिए ॥१४॥

ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१५॥

पदार्थ—हे राजन् ! तथा हे मन्त्रियो ! आप दोनों (ऋभुमन्ता) ऋभुयुक्त हैं [तक्षा, लुहार, सुनार, रथकार ऐसे व्यवसायी पुरुषों का नाम ऋभु है] पुनः (वृषणा) अन्नादि पदार्थों की वर्षा करते हैं। पुनः (वाजवन्ता) ज्ञान-विज्ञान से युक्त हैं। शेष पूर्ववत् ॥१५॥

भावार्थ—राजा की प्रजा में सभी प्रकार के शिल्पी, वैज्ञानिक तथा कृषक व ब्राह्मण होते हैं ॥१५॥

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१६॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजन्, हे मन्त्रियो ! आप दोनों (ब्रह्म) ज्ञानियों को (जिन्वतम्) प्रसन्न रखें, (धियः) विद्या प्रचार आदि से उनकी बुद्धि को बढ़ाएं। उनकी शान्ति हेतु (रक्षांसि) सारे विघ्नों को या दुष्टों को (हतम्) दूर करें और (अमीवाः) विविध चिकित्सालयों से व जलवायु शोधन से विविध रोगों को (सेधतम्) देश से भगायें। हे राजन् ! (सोमम् सुन्वतम्) शुभकर्म कर्त्ता की रक्षा करें। शेष पूर्ववत् ॥१६॥

भावार्थ—राजा तथा मन्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वे विद्याप्रचारकों को प्रसन्न रखें, प्रजा के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के मार्गों में बाधक रोग, चोर आदि विघ्नों को दूर करें ॥१६॥

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१७॥

पदार्थ—हे राजा ! तथा हे मन्त्रिगण ! आप दोनों सहयोग से (क्षत्रम्) क्षत्रिय जाति को (जिन्वतम्) प्रसन्न रखें (उत) और उनकी प्रसन्नता के लिए (नॄन्) सर्व मनुष्यों को (जिन्वतम्) अपना प्रिय बनाएं। शेष पूर्ववत् ॥१७॥

भावार्थ—राजपुरुषों के लिए आवश्यक है कि प्रजा के क्षत्रियवर्ग को प्रसन्न रखें ॥१७॥

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजन् ! हे मन्त्रिगण आप दोनों (धेनूः) गौओं को (जिन्वतम्) बढ़ाएं (उत) और उनकी रक्षक (विशः) वैश्य जाति (व्यापारियों) को (जिन्वतम्) प्रसन्न रखें ॥१८॥

भावार्थ—राजपुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे गौ आदि पशुपालक तथा व्यापारी वैश्यवर्ग को भी प्रसन्न रखें ॥१८॥

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥१९॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजन् ! तथा मन्त्रियो ! आप दोनों (अत्रेः इव) जैसे माता पिता भ्राता विहीन अनाथ की प्रार्थना सुनते हैं वैसे ही (सुन्वतः) शुभकर्म करते हुए (श्यावाश्वस्य) रोगों के कारण मलिनेन्द्रिय या पापरोगी पुरुष की भी (पूर्व्यस्तुतिम्) करुणायुक्त स्तुति को (शृणुतम्) सुनो ! (मदच्युता) हे आनन्द बरसाने वालो ! (तिरो अह्न्यम्) दिन बीतने पर रात्रि में सब लोगों की रक्षा कीजिए ॥१९॥

भावार्थ—राजा तथा मन्त्रियों को चाहिए कि अपनी प्रजा के पापरोगी आदि लोगों की करुण प्रार्थनाओं पर भी अवश्य ध्यान दें ॥१९॥

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२०॥

पदार्थ—(अश्विना) हे अश्विद्वय आप दोनों (सुन्वतः) शुभकर्म रत रह कर (श्यावाश्वस्य) पापरोग पीड़ित जनों की (सुष्टुतीः) अच्छी स्तुति को (सर्गान् इव) आभरणों के तुल्य (उपसृजतम्) हृदय में धारण करें। शेष पूर्ववत् ॥२०॥

भावार्थ—राजपुरुषों को पापरोगियों की स्तुतियों को आभूषण के तुल्य धारण कर उन पर ध्यान देना चाहिए ॥२०॥

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२१॥

पदार्थ—हे राजा तथा मन्त्रियो ! आप (सुन्वतः) शुभकर्मों में रत (श्यावाश्वस्य) रोगीजनों के (अध्वरान्) हिंसारहित यागों को (रश्मीन् इव) अश्व के लगाम जैसे (यच्छतम्) संभालें। शेष पूर्ववत् ॥२१॥

भावार्थ—राजपुरुषों को पापरोगियों के भी हिंसारहित शुभकर्मों का संरक्षक बनना चाहिए ॥२१॥

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

पदार्थ—(अश्विना) हे राजन् व मन्त्रिगण ! आप स्वकीय (रथम्) रथ को (अर्वाग्) हमारी ओर (नियच्छतम्) लाएं। लाकर (सोम्यम्) सोमरसयुक्त (मधु) मधु को (पिबतम्) पीवें, हे देवो ! (आयातम्) हमारी ओर आओ (आगतम्) पुनः-पुनः आओ। (अवस्युः) रक्षा का अभिलाषी (अहम्) मैं (वाम्) आप दोनों को (हुवे) पुकारता हूँ (दाशुषे) मुझ भक्त को (रत्नानि धत्तम्) रत्न दें ॥२२॥

भावार्थ—राजपुरुष उन लोगों की उत्कट प्रार्थना पर ध्यान देते ही है ॥२॥

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥

पदार्थ—(अश्विना) अश्विद्वय (नरा) हे सबनेता एवं मन्त्रिगण ! (नमोवाके) जिसमें नमः शब्द का उच्चारण हो ऐसे (अध्वरे) यज्ञ के (प्रस्थिते) होने पर आप दोनों ! (विवक्षणस्य) प्रवहणशील सोम के (पीतये) पान हेतु (आयातम्) आए ॥२३॥

भावार्थ—राजपुरुषों की सर्वहितकारी सत्कर्म (यज्ञ) से ही तृप्ति होती है, अतः उनकी प्रजा को निष्काम भाव से सत्कर्मों में रत रहना चाहिए ॥२३॥

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४॥

पदार्थ—(अश्विना) हे अश्विद्वय (देवौ) हे देवो ! आप दोनों (स्वाहाकृतस्य) स्वाहा शब्द से पावन हुए (सुतस्य) शोधित (अन्धसः) ओदन से (तृम्पतम्) तृप्त हों ॥२४॥

भावार्थः राजपुरुष सब के लिए किए गए सत्कर्म (यज्ञ) में सन्तुष्ट रहें व ऐसे सत्कर्म रत प्रजाजनों को उत्साह प्रदान करते रहें ॥२४॥

अष्टम मण्डल में पैंतीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ सप्तर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—७ श्यावाश्व ऋषिः ॥इन्द्रो देवता । छन्द-१, ५, ६ शक्वरी । २, ४ निचृच्छक्वरी । ३ विराट् शक्वरी । ७ विराड् जगती ॥ स्वर-१-६ धैवतः । ७ निषादः ॥

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः

समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥१॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) विविध कार्य करने वाले (इन्द्र) मेरे अन्तरात्मा ! तू (वृक्तबर्हिषः) पावन अन्तःकरण वाले (सुन्वतः) सुखों के कर्त्ता साधक को (अवि-

तासि) सर्वथा सतुष्ट करेगा—इस हेतु (विश्वा. पृतना.) सभी आक्रामक शत्रुभूत दुर्भावनाओं को (सं सेहानः) पूर्णरूप से पराजित करता हुआ ; (उरुज्रय) व्यापक व नितात तेजस्वी ; (अप्सुजित्) प्राणशक्ति विजेता और अतएव (मरुत्वान्) इन्द्रियजयी तू इन्द्र, विद्वानो ने (ते) तेरा (यं भागम् अधारयन्) दिव्य आनन्द मे जितना अश निर्धारित किया है उस (कं) सुखदायक (सोमं) प्रेरणा को (पिब) ग्रहण कर ।।१।।

भावार्थ —यहां इन्द्र का आध्यात्मिक अर्थ जीवात्मा आदि है । अन्तरात्मा भी दिव्य आनन्द की प्राप्ति की प्रेरणा ग्रहण करे । तभी वह दुर्भावनाओ को दूर कर इन्द्रियो व प्राणो का वशकर्त्ता बन सकेगा और यह वही अन्तरात्मा करेगा जिसका अन्त करण दिव्य आनन्द से प्रेरणा ग्रहण करे ।।१।।

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः
समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।।२।

पदार्थ —हे (मघवन्) पूजित ऐश्वर्यशाली मेरे अन्तरात्मा ! तू (स्तोतार) तेरे अपने गुणो की प्रशसा कर उन्हे धारण करने हेतु प्रयत्नशील को (अव) सतुष्ट कर , और वह स्तोता (त्वां) तुझे (अव) प्राप्त करे , हे (शतक्रतो) इत्यादि ।।२।।

भावार्थ —व्यक्ति को चाहिए कि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक आदि ऐसा बल धारण करें कि जिन्हे सब प्राप्त करना चाहे । इसलिए अन्तरात्मा को दिव्य आनन्द की प्राप्ति की प्रेरणा दी जाए और यह उसी जीव के लिए सम्भव है कि जिसका अन्त करण पावन व दिव्यानन्द से प्रेरित है ।।२।।

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः
समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।।३।।

पदार्थ -- (शतक्रतो) हे विविधकर्मरत मेरे अन्तरात्मा ! तू (देवान्) दिव्य-गुणो की ओर आकृष्ट इन्द्रियो को (ऊर्जा) बल देकर (अवसि) सन्तृप्त करता है और वे इन्द्रियां (त्वा) तुझे (ओजसा) ओजस्विता देकर प्रसन्न करती हैं ।।६।।

भावार्थ -जब जीवेन्द्रियां दिव्यगुणो की ओर आकृष्ट होती हैं तो शक्तिशाली जीव उन्हें बल देता है और इस प्रकार बलशाली हुई इन्द्रियो का अधिष्ठाता जीव स्वय तेजस्वी हो जाता है । जीव अपनी इन्द्रियो को बलशाली तभी बनाता है जबकि उसे दिव्य आनन्द की प्रेरणा मिले । ।।३।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः
समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।।४।।

पदार्थ —हे (शतक्रतो) अनन्तकर्म करने वाले और बुद्धिमान् प्रभो ! आप (दिव जनिता) स्वयं प्रकाशित लोको का प्रादुर्भाव करते हैं और (पृथिव्या जनिता) स्वप्रकाश रहित धरती आदि लोको का भी प्रादुर्भाव करते हैं । हे इन्द्र ! नितान्त ऐश्वर्यवान् परमशक्तिशाली प्रभु ! आप (विश्वा पृतना स सेहान.) सभी आक्रामक शक्तियो का भली-भांति हराते हैं, (उरु ज्रय) आप नितान्त गतिशील (अप्सुजित्) अपने सर्वव्यापक गुण से सर्वातिशायी हैं; (मरुत्वान्) प्राणशक्ति के स्वामी हैं, (ते) आपका (य भाग) जितने भागग्रहण का (अधारयन्) साधको ने मननपूर्वक निश्चय किया है, (मदाय) हर्ष प्रदान करने हेतु उनमे (क) सुखद (सोम) शुभकर्मों मे प्रवृत्ति को (पिब) सेवन कराए ।।४।।

भावार्थ.- साधको के द्वारा ही यह निश्चय होता है कि जीव को शुभ कर्म ग्रहण करवाने मे परमेश्वर का कितना भाग है । यह अनुभव करने के बाद ही साधक परमेश्वर की प्रेरणा को वास्तव मे ग्रहण कर सकता है ।।४।।

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः
समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।।५।।

पदार्थ —हे (शतक्रतो) विविधकर्मरत तथा विविध बुद्धि द्वारा युक्त परम-सामर्थ्यवान् परमात्मा ! आप (अश्वानां) अश्वो के समान द्रुतगामी बलवान कर्मेन्द्रिय रूप एव (गवां) ज्ञानरूपी प्रकाश के कारणभूत ज्ञानेन्द्रिय रूप सञ्चालक शक्तियो के (जनिता असि) मूल कारण हैं । शेष पूर्ववत् ।।५।।

भावार्थ —जीवात्मा का सचालन करने वाले ज्ञान एव कर्मेन्द्रिय शक्ति का मूल स्रोत प्रभु ही है, उनके गुणो से प्रेरणा ग्रहण कर प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का सञ्चालन करना चाहिये ।।५।।

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः
समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।।६।।

पदार्थ —हे (अद्रिव.) गुणो के कारण सम्माननीय शतक्रतो ! आप (अत्रीणां) आत्मिक, वाचिक व शारीरिक—तीनों प्रकार के— दोषो से मुक्त जनो के (स्तोमं) स्तुति वचन को (महस्कृधि) महान् व ग्राह्य समझते हैं ।।६।।

भावार्थ —मनुष्य आत्मिक, वाचिक व शारीरिक—तीन प्रकार के दोषो को छोडने पर ही भगवान् के गुणों का आदर करने मे समर्थ है । वही उनका गुण कीर्तन इस तरह करता है कि उनके ग्रहण का प्रयत्न करने लग जाता है—ऐसे स्तोता के लिये कहा गया है कि प्रभु ने उसके स्तुतिवचनो को सत्कारयोग्य एव ग्राह्य बना लिया है । अर्थात् परमेश्वर ने उसकी स्तुति मानली है ।।६।।

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ।।७।।

पदार्थ —हे (इन्द्र) शक्तिशाली प्रभु ! (कर्माणि कुर्वत.) स्व जीवन-यात्रा मे सतत कर्म करने मे रत (अत्रे) त्रिविध दोषो से रहित व्यक्ति की स्तुति को आप (यथा अशृणो) जिस तरह सुनते हैं (तथा) वैसे ही (सुन्वत) सुख-सम्पादन मे लगे हुए (श्यावाश्वस्य) अपनी गतिशीलता द्वारा लक्ष्य प्राप्ति मे सफल इन्द्रिय रूप अश्वों वाले साधक की वन्दना भी सुनिये । (त्वं एक इत्) आप अकेले ही किसी सहायक के माध्यम के बिना (नृषाह्ये) प्रमुख या अग्रणी लोगों के सम्मेलन मे (ब्रह्माणि) वेदविज्ञान की (वर्धयन्) व्याख्या करके (त्रसदस्युम्) शत्रु-भावनाओ को भगाने म समर्थ साधक को तथा उसके इस गुण को (प्र आविथ) बनाये रखते है ।।७ ।

भावार्थ —इससे पहले के मन्त्र मे बताया गया है कि त्रिविध दोषो से रहित कर्मठ व्यक्ति ईश्वरीय गुणो को ग्रहण करने मे समर्थ होता है । यहाँ बताया गया है कि जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियो को निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर ले चलने मे सफल बनाले वह भी परमात्मा के गुणग्रहण करने का अधिकारी होता है । ऐसे व्यक्ति जब मिलकर विचार करें तब वेदवाक्य उन्हे प्रभु कृपा से स्वय अपना रहस्य ज्ञात कराने लगते हैं ।।७।।

अष्टम मण्डल मे छत्तीसवां सूक्त समाप्त ।।

अथ सप्तर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—७ श्यावाश्व ऋषि । इन्द्रो देवता ।। छन्द.—१ विराडतिजगती । २—६ निचृज्जगती । ७ विराड्जगती ।। निषादः स्वर ।।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ।।१।।

पदार्थ —हे (शचीपते) शचीपते ! (इन्द्र) विद्वान् ऐश्वर्यवान् राजा ! आप (वृत्रतूर्येषु) विघ्नकारक प्रवृत्तियो से किये जाने वाले सघर्षों के आने पर (प्रसुन्वत) ज्ञानधन के सम्पादन के (इद) इस निष्पादित (ब्रह्म) ज्ञानधन की (विश्वाभि) सम्पूर्ण (ऊतिभि) रक्षणादि क्रियाओ से (आविथ) रक्षा कराइये । हे (अनेद्य) अनिन्दनीय ! (वृत्रहन्) विघ्नकर्ताओ के नाशक ! (वज्रिवः) सब साधनो वाले राजन (माध्यंदिनस्य) दिन के मध्य किये जाने वाले (सवनस्य) ऐश्वर्यप्राप्ति के साधक क्रियाकाण्ड रूपी (सोमस्य) सोम का (पिब) उपभोग करें ।।१।।

भावार्थः—राजा स्वय शास्त्रो का ज्ञाता हो, जिससे वह ज्ञानधन को सुरक्षित रखे । राजा को चाहिये कि मध्याह्न समय करने योग्य ऐश्वर्यसाधक क्रिया-काण्ड को पूरी तरह निबाहे ।।१।।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ।।२।।

पदार्थ.— हे (उग्र) उग्र (शचीपते) प्रजापति व कर्मनिष्ठ (इन्द्र) राजन् ! आप (विश्वाभि ऊतिभि) अपनी सारी रक्षणादि क्रियाओ के द्वारा (अभिद्रुह.) द्रोह करने वाले (पृतना) लोगों को (सेहान) परास्त करें ।।२।।

भावार्थ —राजा के लिए जहा अपनी विद्वत्ता के द्वारा ब्राह्मबल बनाये रखना चाहिये, वहां उसे अपने प्रभाव के द्वारा द्वेषी जनो का पराजित भी करना चाहिये ।।२।।

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ।।३।।

पदार्थ —हे (शचीपते) कर्मिष्ठ (इन्द्र) राजन् आप अपनी (विश्वाभि) समग्र (ऊतिभि) रक्षणादि क्रियाओं के द्वारा (अस्य भुवनस्य) इस लोक के (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान अध्यक्ष के तुल्य अथवा एकच्छत्र राजा के जैसे (राजसि) विराजमान हैं ।।३।।

भावार्थ —प्रत्येक शासक के लिये उचित है कि वह अपनी प्रजा का अद्वितीय शासक या सर्वोत्तम आदर्श शासक बनने का यत्न करे ।।३।।

सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ।।४।।

पदार्थ —हे (शचीपते) कर्मठ (इन्द्र) राजन् आप अपनी (विश्वाभि) सारी (ऊतिभि) रक्षणादि क्रियाओ के द्वारा (एक इत्) अकेले ही दो (सस्थावाना)

समान स्थितिवाली प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को (यवयसि) आपस में टकराने से पृथक् रखते हैं ॥४॥

भावार्थ.—राजा के लिये आवश्यक है कि वह इतना बलशाली हो कि अपने शासनाधीन प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को परस्पर टकराने से रोके । राष्ट्र में समान शक्तियों व स्थितियों वाली शक्तियाँ आपस में सहायक तथा पूरक रहें, उनमें आपस में संघर्ष न हो ॥४॥

क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥५॥

पदार्थः—हे (शचीपते) कर्मठ शासक ! आप अपनी (विश्वाभिः) समग्र (ऊतिभिः) रक्षणादि क्रियाओं से (क्षेमस्य) प्राप्त ऐश्वर्य को अक्षय रखने के (च) और उसकी (प्रयुजः) प्राप्ति कराने के (ईशिषे) प्रमुख हैं ॥५॥

भावार्थ—कर्मठ राजा अपने नेतृत्व में ही प्रजा के योग क्षेम को सम्पन्न करता है । वह अनुचित रीति से न प्रजा को ऐश्वर्यसाधन करने देता है और न अनुचित रूप से उसे संरक्षण प्रदान करता है ॥५॥

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥६॥

पदार्थः—हे (शचीपते) कर्मठ (इन्द्र) राजा ! अपनी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण रक्षा क्रियाओं द्वारा (त्वं) आप (क्षत्राय) क्षात्रबल को प्राप्त कराने हेतु (अवसि) अपनी प्रजा के संरक्षक हैं । (त्वं) आपको (न आविथ) अपनी रक्षा कराने की आवश्यकता नहीं ॥६॥

भावार्थ—राजा के लिए आवश्यक है कि अपनी प्रजा के क्षात्रबल को बढ़ाये और उसे बनाये रखे, ऐसे कर्मठ राजा को अपनी रक्षा की चिन्ता नहीं रहती ॥६॥

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शासक ! (त्वं एक इत्) आप अकेले ही (नृषाह्ये) राष्ट्र नेताओं के सम्मिलन के समय (क्षत्राणि) क्षत्रिय कुलों को (वर्धयन्) प्रोत्साहित करते हुए (त्रसदस्युं) दस्युको मार भगाने वाले वीरता के गुण को (आविथ) सहारा प्रदान करते है । आप (कर्माणि कुर्वतः) कर्मरत रहने वाले (अत्रे) सुख भोक्ता की स्तुति को (यथा अशृणोः) जैसे सुनते हैं (तथा) उसी प्रकार (रेभतः) स्तुतिकर्ता (श्यावाश्वस्य) प्रगतिशील इन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न व्यक्ति द्वारा की गई स्तुति को सुनें ॥७॥

भावार्थ—राजा स्वराष्ट्र में स्थित क्षात्रकुलों को प्रोत्साहन प्रदान करे और इस प्रकार दस्युओं को राज्य से दूर भगाए ॥७॥

विशेष—यहाँ राजा के प्रतीक इन्द्र का वर्णन है ॥

अष्टम मण्डल में सैंतीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्याष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१० श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री । ३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

ब्राह्मण और क्षत्रियों के कर्म ॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे क्षत्रिय एवं हे ब्राह्मण ! अथवा हे राजा तथा हे राजदूत ! आप दोनो (तस्य बोधतम्) इस ईश्वरीय बात को पूर्णरीति से दृष्टिगत रखें, जानें, मानें और मनवाएं (हि) क्योंकि आप दोनों (यज्ञस्य) सारे शुभकर्मों के (ऋत्विजा स्थ) ऋत्विक् हैं, (सस्नी) शुद्ध हैं और (वाजेषु) युद्ध और ज्ञानसम्बन्धी (कर्मसु) कर्मों में अधिकारी हैं ॥१॥

भावार्थ.—इन्द्र का कार्य राज्य का शासन है, अतः इससे यहाँ क्षत्रिय का तात्पर्य है और अग्नि का कर्म यज्ञशासन है, अतः इससे ब्राह्मण का तात्पर्य है, अथवा राजा और दूत का, क्योंकि अग्नि को दूत भी कहा गया है । ब्राह्मण व क्षत्रिय के लिये उचित है कि वे ईश्वरीय आज्ञाओं का कभी तिरस्कार न करें ॥१॥

पुनः वही कथन ॥

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्) हे क्षत्रिय एवं हे ब्राह्मण अथवा हे राजन् तथा दूत ! आप दोनों इस बात का पूरा ध्यान रखें कि आप दोनों (तोशासा) शत्रुसंहारक, (रथयावाना) रथ पर चलने वाले, (वृत्रहणौ) सारे विघ्नविनाश-कर्ता तथा (अपराजिता) अन्यों से अजेय हैं ॥२॥

भावार्थः—जिस कारण ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों हर प्रकार के विघ्नों को दूर करने वाले हैं अतः वे कभी अपना अधिकार न भूलें और न उसमें प्रमाद करें ॥२॥

पुनः वही कथन ॥

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे क्षत्रिय एवं ब्राह्मण अथवा हे राजन् तथा हे दूत ! (तस्य बोधतम) आप इस विषय को भली प्रकार आज जानें कि (वाम्) आप लोगों के लिये (नरः) ये प्रजाजन (अद्रिभिः) पर्वत समान परिश्रमों से (मदिरम्) आनन्ददायक (इदम् मधु) इस कृषिकर्मादि के द्वारा मधुर-मधुर वस्तु (अधुक्षन्) उपजा रहे हैं ॥३॥

भावार्थ—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को प्रसन्न व सुखी रखने के लिये ये प्रजाजन नितान्त परिश्रम से अनेक वस्तु उत्पन्न कर रहे हैं—यह बात इन्हें नहीं भूलनी चाहिये, किन्तु स्मरण रख सब की रक्षा में ये लगे रहें ॥३॥

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती ।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥४॥

पदार्थः—(सधस्तुती) हे प्रजा के साथ वन्दनीय (नरा) हे प्रजानायक (इन्द्राग्नी) क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ! यद्वा राजा व दूत ! आप दोनो (यज्ञम् जुषेथाम्) हमारे शुभकर्म का सेवन रक्षा के द्वारा करें और (इष्टये) यज्ञ के लिये (सुतम् सोमम्) सम्पादित सोमरस पीने हेतु यहाँ (आ गतम्) आए ॥४॥

भावार्थः—राजा तथा ब्राह्मण अथवा राजा और दूत दोनों को मिलकर यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए ॥४॥

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः ।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥५॥

पदार्थ—(नरा) हे नायक (इन्द्राग्नी) राजन ! और दूत ! आप (इमा सवना) इन प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायसवन तीनों यज्ञों को (जुषेथाम्) करें (यैः) जिनसे (हव्यानि) दातव्य द्रव्यों को आप (ऊहथुः) इतस्ततः पहुँचाते हैं ॥५॥

भावार्थ यज्ञ इत्यादि शुभकर्मों में जिस-जिस उद्देश्य से जो-जो दान दिए जाएं उन्हें वहाँ-वहाँ राजा और दूत पहुँचाने की चेष्टा करें ॥५॥

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम ।
इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥६॥

पदार्थ—(नरा) हे प्रजानायक (इन्द्राग्नी) राजन् और दूत ! आप दोनो (गायत्रवर्तनिम्) गायत्री छन्दयुक्त (मम) मेरी (इमाम् सुष्टुतिम्) इस शोभन स्तुति को (जुषेथाम्) सेवें और तदर्थ (आगतम्) यहाँ आएं ॥६॥

भावार्थ—प्रजाजन जहाँ राजा को बुलाएं वहाँ गण सहित आकर वह प्रजा की रक्षा करें ॥६॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७॥

पदार्थः—(जेन्यावसू) हे जययुक्त धन के या शत्रु धन के नेता (इन्द्राग्नी) राजन् तथा दूत ! आप दोनो (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल जाने वाले (देवेभिः) विद्वानों सहित (सोमपीतये) सोमरस पीने हेतु (आगतम्) आइये ॥७॥

भावार्थ—राजा के लिए सदैव धनसंग्रह आवश्यक है और प्रजा के कार्य्य में उसे तैयार रहना चाहिये ॥७॥

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे राजन् व हे दूत ! आप दोनो (सुन्वतः) शुभ कर्मों में रत (श्यावाश्वस्य) रोगी पुरुष का तथा (अत्रीणाम्) माता, पिता व बन्धु इन तीनों से रहित अनाथों का (हवम्) निवेदन (शृणुतम्) सुनें और (सोमपीतये) सोमादि पदार्थ पीने को यहाँ आवें ॥८॥

भावार्थ—रोगी और अनाथादि पर सबसे पहले ध्यान देना अभीष्ट है ॥८॥

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे राजन् व दूत ! (यथा) जैसे जिस नियम के अनुसार (मेधिराः) मेधाविगण (वाम् अहुवन्त) आपको निमन्त्रण देते हैं (एव) वैसे ही मैं भी (ऊतये) सहायता और (सोमपीतये) सोमपान हेतु आपको बुलाता हूँ ॥९॥

भावार्थ—राजा के लिए उचित है कि विद्वानों व मूर्खों दोनों की ही प्रार्थना ध्यान पूर्वक सुनें ॥९॥

विद्वान् राजा तथा दूत आदर के पात्र हैं ॥

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे ।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥१०॥

पदार्थः—(याभ्याम्) जिन इन्द्र व अग्नि अर्थात् राजा तथा राजदूत के लिये (गायत्रम् ऋच्यते) गायत्र नामक साम कहा जाता है उन (सरस्वतीवतो) विद्यापूर्ण (इन्द्राग्न्यो) राजा व दूत के निकट (अव आवृणे) रक्षा तथा सहायता की मैं याचना करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ—प्रजाजनों को राजा के निकट सहायता के लिए याचना करनी चाहिए ॥१०॥

अष्टम मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-१० नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६-८ स्वराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृज्जगती । १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-८, १० धैवतः । ९ निषादः ॥

पुनरपि अग्निनाम से परमात्मा की स्तुति का आरम्भ करते हैं ॥

अ॒ग्निम॑स्तोष्यृ॒ग्मिय॑म॒ग्निमी॒ळा य॒जध्यै॑ । अ॒ग्निर्दे॒वाँ अ॑नक्तु न उ॒भे हि वि॒दथे॑ क॒विर॒न्तश्चर॑ति दू॒त्यं१॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम् अस्तोषि) मैं उपासना करने वाला उस सर्वशक्तिप्रद अग्नि नाम से विख्यात परमात्मा की वन्दना करता हूँ। (ऋग्मियम् अग्निम्) ऋचाओं से वन्दनीय उसी के गुणों का गान (यजध्यै) सर्व कर्मों मे पूजनार्थ (ईळा) स्तुति के द्वारा कर रहा हूँ, (न विदथे) हमारे यज्ञगृह मे मौजूद (देवान्) माननीय विद्वज्जनों को (अनक्तु) शुभकर्म मे वह लगाए जो ईश (कवि) सर्वज्ञ है और (उभे अन्त) इन दोनों लोकों के बीच (दूत्यम् चरति) दूत के तुल्य काम कर रहा है उसी की कृपा से (अन्यके समे) अन्यान्य सब ही शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हो जाय ॥१॥

भावार्थ—ऐसी जगह मे अग्नि नाम परमात्मा का ही है जो सर्वगत सर्वलीन है। जैसे सब मे अग्नि मौजूद है। वह महाकवि तथा ध्येय एव वन्दनीय है ॥१॥

शत्रु के विनाश हेतु प्रार्थना ॥

न्य॑ग्ने॒ नव्य॑सा॒ वच॑स्त॒नूषु॒ शंस॑मेषाम् । न्यरा॑ती॒ ररा॑व्णां॒ विश्वा॑ अ॒र्यो अरा॑तीरि॒तो यु॑च्छन्त्वा॒मुरो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वशक्तिमन् ! (एषाम्) इन हम लोगों के (तनूषु) शरीर मे (शसम्) प्रशंसनीय (वचः) वचन को (नव्यसा) नूतन वचन सहित बढ़ा। (रराव्णाम्) दानाओं के (विश्वा अराती) सर्व शत्रुओं को (नि) दूर करें। पुन (इत) यहाँ से (आमुर) मूर्ख (अराती) तथा अदाता (अर्य) शत्रुगण (युच्छन्तु) दूर हो जाय ॥२॥

भावार्थ—हम प्राचीन भाषा तथा नवीन भाषा दोनों की प्रगति करें और अनाथादि को सदा दान दें। जो न दें उन्हें शिक्षा देकर दानपथ पर लाया जाए ॥२॥

उसके गुणों का कीर्तन ॥

अग्ने॒ मन्मा॑नि॒ तुभ्यं॒ कं घृ॒तं न जु॑ह्व आ॒सनि॑ । स दे॒वेषु॒ प्र चि॑किद्धि॒ त्वं ह्यसि॑ पू॒र्व्यः शि॒वो दू॒तो वि॒वस्व॑तो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वशक्तिमन ! (तुभ्यम्) तेरी प्रीति हेतु (आसनि) विद्वान् मनुष्यों के मुख मे (घृतम् न) घृत के जैसे (मन्मानि) मननीय स्तोत्रों को (जुह्वे) होमता हूँ। (देवेषु) देवों मे विख्यात (स) वह तू (पूर्व्य) पुरातन (शिव) सुखकारी और (दूत) दूत के तुल्य है अत तेरी कृपा से (अन्यके समे) अन्य सब ही दुष्ट लोग (नभन्ताम्) नष्ट हो जायें ॥३॥

भावार्थ—विद्वज्जन सदैव परमात्मा के गुणों की स्तुति करें ; वही परमात्मा सदैव सुख देने वाला है ॥३॥

अग्नि अवस्था व अन्न क्यों देता है यह बताया गया है ॥

तत्त॑द॒ग्निर्वयो॑ दधे॒ यथा॑यथा कृप॒ण्यति॑ । ऊ॒र्जाहु॑ति॒र्वसू॑नां॒ शं च॒ योश्च॒ मयो॑ दधे॒ विश्व॑स्यै दे॒वहू॑त्यै॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥४॥

पदार्थ—(अग्नि.) वह सर्वगत प्रभु (तत् तत) उस उस शक्ति, खाद्य व य श्रम का सर्वत्र (दधे) स्थापित करता है, (यथा यथा कृपण्यति) जो-जो प्राणियों की स्थिति के लिये अनिवार्य है, वह वह (ऊर्जाहुति.) सारा बल व सामर्थ्य देने वाला है, पुन वह (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के बीच अथवा धनों के मध्य (शम् च) कल्याण और (यो च) रोगादि निवर्तक (मय दधे) सुख की स्थापना करता है और (विश्वस्यै देवहूत्यै) सभी देवों के मध्य वही पूज्य होता है ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आवश्यकता अनुसार वही सब को शक्ति सामर्थ्य दे रहा है, वही जीवों के लिए अन्न की भी व्यवस्था कर रहा है, अत वही पूजनीयतम है ॥४॥

वह कैसे जानता है ॥

स चि॑केत स॒हीय॑सा॒ग्निश्चि॒त्रेण॒ कर्म॑णा । स होता॒ शश्व॑तीनां॒ दक्षि॑णाभिर॒भीवृ॑त इ॒नोति॑ च प्रती॒व्यं१॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥५॥

पदार्थ—(स अग्निः) वह सबका जगदीश (सहीयसा) सबके ऊपर शासक, (चित्रेण) अद्भुत (कर्मणा) कर्म द्वारा (चिकेत) जाना जाता है; (स. शश्वतीनाम् होता) वह सर्वदा चली आती नित्य सृष्टियों का (दक्षिणाभिः) विविध दानों के कारण (होता) दाता या अस्तित्व मे लानेवाला है (अभीवृतः) सर्वत वर्तमान अथवा सबसे मान्य है और वह (प्रतीव्यम् च इनोति) विश्वासी के समीप पहुँचता भी है ॥५॥

भावार्थः—सर्वत्र विद्यमान प्रभु केवल सृष्टिरचनारूप द्वारा ही जाना जाता है। वही सर्वत्र पूज्य है ॥५॥

परमात्मा सर्ववित् है ॥

अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॑द॒ मर्ता॑नामपी॒च्य॑म् । अ॒ग्निः स द्र॑विणो॒दा अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते॒ स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥६॥

पदार्थ—(अग्नि) सबके आधार वह परमात्मा (देवानाम् जाता वेद) सूर्य्यादि देवों के जन्म का ज्ञाता है, (अग्निः) वह देव (मर्तानाम् अपीच्यम्) मनुष्यों की गुप्त बातों को भी जानता है। (स अग्निः द्रविणोदा) वह अग्नि सब प्रकार का धन देने वाला है। (अग्निः) वह देव (द्वारा) सब पदार्थों का द्वार (व्यूर्णुते) प्रकाशित करता है और (स्वाहुतः) वह सुपूजित होकर (नवीयसा) नूतन विज्ञान सहित उपासक पर कृपा करता है, उसी की कृपा से (अन्यके समे) अन्य सभी शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हो जाय ॥६॥

भावार्थ—सभी देवों का वह जनक है। वह सभी की दशा जानता है। सर्व शासक है, इत्यादि दिखलाने से तात्पर्य यह है कि वही पूज्य है और कोई नहीं ॥६॥

पुनः उसी अर्थ का कथन ॥

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः॒ स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा । स मु॒दा काव्या॑ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥७॥

पदार्थ—(अग्नि. देवेषु) वह प्रभु सब देवों के बीच बसने वाला है (आ) और (स यज्ञियासु विक्षु) यज्ञार्ह पवित्र प्रजाओं मे भी निवास करता है। (स मुदा) वह हर्ष से (पुरु काव्या) उपासकों के अनेक स्तोत्रादि काव्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता है और (भूम इव) पृथिवी के जैसे ही (विश्वम् पुष्यति) सब को पुष्ट करता है। (देवेषु यज्ञिय देव) वह सूर्य्यादि देवों मे पूज्य देव है, एकमात्र वही पूज्य है ॥७॥

भावार्थ—सब देवों मे वही एकमात्र परमपूज्य है। हे मनुष्यो ! उसी की वन्दना-प्रार्थना करो, अन्य किसी की नहीं ॥७॥

उसकी व्यापकता ॥

यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो विश्वे॑षु॒ सिन्धु॑षु । तमाग॑न्म त्रिप॒स्त्यं म॑न्धा॒तुर्द॑स्यु॒हन्त॑मम॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥८॥

पदार्थ—(य अग्नि सप्तमानुष) जो सबका आधार परमात्मा सप्त-मनुष्यों का प्रभु है, (विश्वेषु समुद्रेषु) सारी नदियों, समुद्रों, व आकाशों मे (श्रित) व्याप्त है, (तम् अग्निम् आगन्म) उसे हम उपासकगण प्राप्त हों। फिर वह (त्रिपस्त्यम) तीनों लोकों मे विद्यमान है (मन्धातु) और जो उपासकों के (दस्युहन्तमम्) सारे विघ्नों का हटाने वाला है और (अग्निम्) सबका आधार है और (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञों मे प्रथम पूजनीय व परिपूर्ण है ॥८॥

भावार्थ—सप्तमानुष=दो नेत्र, दो कान, दो घ्राण व एक रसना ये ही सप्त मानव हैं। अथवा पृथिवी पर सात प्रकार के मनुष्य बसे हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक ये ही तीन लोक तथा तीन गृह और तीन स्थान हैं। अत इनका शासक परमात्मा परमपूज्य है ॥८॥

उसकी व्यापकता ॥

अ॒ग्निस्त्रीणि॑ त्रि॒धातू॒न्या क्षे॑ति वि॒दथा॑ क॒विः । स त्रीँरे॑काद॒शाँ इ॒ह यक्ष॑च्च पि॒प्रय॑च्च नो॒ विप्रो॑ दू॒तः परि॑ष्कृतो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥९॥

पदार्थ—(कवि) महाकवि सब कुछ जानने वाला (अग्नि) सर्वाधार प्रभु (विदथा) विज्ञातव्य और (त्रिधातूनि) ईश्वर, जीव व प्रकृतिरूप तीनों पदार्थों से युक्त (त्रीणि) तीनों लोकों में (आक्षेति) बसता है। फिर (विप्र॰) परम ज्ञानी, (दूत) दूत के तुल्य सर्वतस्थक और (परिष्कृतः) सर्वत्र कर्तृत्व से प्रसिद्ध (स) वह परमात्मा (त्रीन् एकादशान्) तेतीसों देवों को (इह यक्षत् च) इस संसार मे सब तरह के दान दे और (न.) हम उपासकों को भी (पिप्रयत् च) सारी कामनाओं से पूर्ण करे ॥९॥

भावार्थ - त्रिधातु पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक ये धातु या पदार्थ। अथवा ईश्वर, जीव व प्रकृति। अथवा कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय (मन आदि) ३३ देव—उत्तम, मध्यम व अधम भेद से एकादश इन्द्रिय ही ३३ देव हैं। पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और एक मन ये ही एकादश (११) इन्द्रिय हैं। परमात्मा ही जब इन पर कृपा करता है तब इनको प्रकाश मिलता है। अत॰ इस कारण भी वही वन्दनीय देव है ॥९॥

वही सर्वधन का स्वामी है ॥

त्वं नो॑ अग्न आयुषु त्वं देवेषु॑ पूर्व्य वस्व एक॑ इरज्यसि ।

त्वामापः॑ परिस्रुतः परि यन्ति॒ स्वसे॑तवो नभ॑न्तामन्यके स॑मे ॥१०॥

पदार्थः—(पूर्व्य) हे पूर्ण (अग्ने) सब के आधार परमदेव ! (न आयुषु) हमारे मनुष्यो मे (त्वम्) तू ही (वस्व इरज्यसि) धनेश है, (देवेषु) देवों मे भी (एक.) एक तू ही धन का स्वामी है। (त्वाम्) तेरे चतुर्दिक् (आप परि यन्ति) जल की धाराएं प्रवाहित होती हैं जो (परिस्रुत) तेरी कृपा से सर्वत्र फैल रही हैं और (स्वसेतव:) अपने नियम मे बंधी हैं या स्यन्दनशील हैं। हे ईश ! तेरी कृपा मे जगत् के (समे) सब ही (अन्यके) अन्य शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हो जाय या इन्हे तू ही दूर कर ॥१०॥

भावार्थ—धन की कामना से भी वही वन्दनीय है, क्योंकि वही सारे धन का स्वामी है और जिससे धन पैदा होता है वह जल भी उसी के अधीन है ॥१०॥

अष्टम मण्डल में उन्तालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-१२ नाभाकः काण्व ऋषि ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः-१, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । २ स्वराट् शक्वरी । ५, ७, ६ जगती । ६ भुरिग्जगती । ८, १० निचृज्जगती ॥ स्वरः-१-४, ११, १२ धैवत. । ५-१० निषादः ॥

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता दास॑थो र॒यिम् । येन॑ दृ॒ळ्हा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒मह्य॒ग्निर्वने॑व वात॒ इन्नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य तथा ज्ञानरूप प्रकाश के दाता, क्षात्र एव ब्राह्मबल धारण कराने वाले दो प्रकार के शिक्षको ! (युव) आप दोनो (सु सहन्ता) सम्यक्तया धैर्य धारण किए हुए, बडे धैर्य सहित (न) हमे (रयि) बल तथा ज्ञानधन (दासथ) प्रदान करते हो (येन) उस धन से हम (समत्सु) जीवन में आने वाले सघर्षों के समय (दृळ्हा) सुदृढ (चित्) और (वीळु) बलशाली [शत्रु] को भी (साहिषीमहि) इस तरह पराभूत कर दें (इव) जैसे कि (वाते इत्) वायु के बहते समय (अग्नि.) आग (वना) बडे-बडे वनो तक को भी नष्ट कर डालता है। (समे) सब (अन्यके) परायी अर्थात् शत्रुभूत - दुर्भावनाए (नभन्ताम्) नष्ट हो जायें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य मे शारीरिक बल और मानसिक विचार शक्ति का परस्पर मेल एवं सतुलन रहना चाहिए, प्रजा मे क्षत्रियो तथा ब्राह्मणों का सहयोग रहे, शिक्षा जगत् मे शारीरिक एव मानसिक शिक्षा देने वाले दोनो प्रकार के शिक्षको का सहयोग रहे—तभी सब शत्रु नष्ट होते हैं ॥१॥

न॒हि वां॑ व॒व्रया॑महे॒ऽथेन्द्र॒मिद्य॑जामहे॒ शवि॑ष्ठं नृ॒णां नर॑म् । स नः॑ क॒दा चि॒दर्व॑ता॒ गम॒दा वाज॑सातये॒ गम॒दा मे॒धसा॑तये॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥२॥

पदार्थ—हे इन्द्र अग्नि ! यदि हम (वां) आप दोनो को (नहि) नहीं (ववयामहे) मिल पाते (अथ) तो फिर (नृणा नर) मानवो मे से नेतृत्व गुण विशिष्ट (शविष्ठ) सबसे अधिक बलवान् (इन्द्र इत्) ऐश्वर्यवान् की ही (यजामहे) प्रतिष्ठा तथा सगति करते हैं। (स) वह (कदाचित्) कभी तो (अर्वता) ज्ञानवान् के साथ [अग्निर्वा अर्वा । शं० १।३।६।४] (वाजसातये) शारीरिक बलार्थ नितान्त उत्तम अन्नादि भोगो का विभागपूर्वक प्रदान करने हेतु (आगमत्) आ जाये और (मेधसातये) विचारशक्ति के लिए धारणावती बुद्धि का विभागपूर्वक प्रदान करने हेतु आ जाय और इस प्रकार हमारे (समे) सभी (अन्यके) हमसे अन-जाने शत्रुभाव (नभन्ताम्) नष्ट हो जायं ॥२॥

भावार्थ—बलशाली नेता के आश्रय तथा संगति मे भी यदा-कदा विद्वान् की प्राप्ति हो जाती है। इस तरह इन दोनों की संगति प्राप्त होने पर हमें शत्रुओ से व शत्रु भावनाओ से मुक्ति मिलती है ॥२॥

ता हि मध्यं॒ भरा॑णामिन्द्रा॒ग्नी अ॑धिक्षि॒तः । ता उ॑ कवित्व॒ना क॒वी पृ॒च्छ्यमा॑ना सखीय॒ते सं धी॒तम॑श्नुतं नरा॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥३॥

पदार्थ—(ता) वे उपरोक्त (इन्द्राग्नी) इन्द्र तथा अग्नि (हि) निश्चय ही (भराणा) हमारे जीवन सघर्षों के (मध्य) आभ्यन्तर भाग में (अधि क्षित) अध्यक्षरूप में स्थित रहते हैं—जीवन में सघर्ष आने पर हमारे संरक्षण के उत्तरदायी बनते हैं। (ता) वह दोनो (उ) ही (कवी) क्रान्त द्रष्टा (पृच्छ्यमाना) आदेश के लिए अथवा सन्देहनिवारण हेतु पूछे गये (कवित्वना) क्रान्तदर्शिता के द्वारा (सखीयते) मित्र के समान आचरण करने वाले जन हेतु, उसके सामने (संधीत) सतोषप्रद, कल्याणकारी, मननपूर्वक सुनिश्चित विचारधारा का (अश्नुतम्) सचय कर देते हैं ॥३॥

भावार्थ—हमारे जीवन-सघर्ष के अधिष्ठाता एव सचालक क्षात्रबल और ब्राह्मबल दोनो हैं। शकाए खड़ी होने पर हम इन दोनो शक्तियो से युक्त विद्वानों पर निर्भर रहते हैं और वे हमें अपनी भली-भांति सोची-समझी विचारधारा प्रदान कर हमारा मार्ग-दर्शन करते हैं ॥३॥

अ॒भ्य॑र्च नभाक॒वदि॑न्द्रा॒ग्नी य॒जसा॑ गि॒रा । ययो॒र्विश्व॑मि॒दं जग॑दि॒यं द्यौः पृ॑थि॒वी म॒ह्यु१॒॑पस्थे॑ बिभृ॒तो वसु॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥४॥

पदार्थ—हे साधना करने वाले तू (नभाकवत्) दुःखो को ध्वस्त करने के इच्छुक व्यक्ति की भांति, (यजसा) आदरमयी (गिरा) भाषा द्वारा (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त इन्द्र व अग्नि का (अभि अर्च) स्वागत कर और उनकी आज्ञाओ का पालन कर (ययो) जिनके (उपस्थे) गोद या आश्रय पर ही (इद विश्व जगत्) यह सारा ससार अर्थात् (इय द्यौः) यह स्वत-प्रकाशमान लोक व (इय पृथिवी मही) यह अतिविस्तृत विशाल भूमि, अपने निजी प्रकाश से रहित भूलोक—दोनो (वसु) ऐश्वर्य को (बिभृत.) धारण किए हैं ॥४॥

भावार्थ—दु खदायी तत्त्वो को नष्ट करने का इच्छुक साधक क्षात्र व ब्राह्म दोनो बलो का, ऐसे बलशालियो का और ऐसी भावनाओ का आदरसहित स्वागत करे। इन पर ही सारे ससार का पालन होता है ॥४॥

प्र ब्रह्मा॑णि नभाक॒वदि॑न्द्रा॒ग्निभ्या॑मिरज्यत । या स॒प्तबु॑ध्नमर्ण॒वं जि॒ह्मबा॑रमपोर्णु॒त इन्द्र॒ ईशा॑न॒ ओज॑सा॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥५॥

पदार्थ—हे साधकगण ! (नभाकवत्) अपने दु खों का विनाश चाहने वाले के तुल्य (इन्द्राग्निभ्यां) पूर्वोक्त इन्द्र व अग्नि हेतु (ब्रह्माणि) गुण वर्णन के मन्त्रो का (इरज्यताम्) आधिपत्य पाओ, ऐसे मन्त्रो को भली-भांति समझ उनका प्रयोग करो। उन्हीं इन्द्र व अग्नि के लिये कि (या) जो (सप्तबुध्न) सात-सात आधारो वाले अर्थात् सुदृढ पेंदी वाले (जिह्मबारं) टेढ़े-मेढ़े द्वार वाले (अर्णव) प्रबोध-जल के महोदधि को (अप ऊर्णुत) उघाड़ते हैं, (इन्द्र) इन दोनो मे से भी (इन्द्र) सामर्थ्यवान् क्षात्रबलवाले (ओजसा) अपनी ओजस्विता के कारण (ईशान) स्वामित्व करता है ॥५॥

भावार्थ—शुद्ध आत्मा से मेल न खाने वाली, परायी शत्रुरूप दुर्भावनाओं को दूर करने हेतु साधक को ज्ञान तथा कर्म दोनो शक्तियो की आवश्यकता है। एतद् विषयक प्रबोध गहन महासागर के समान है—उसके मुखद्वार का उद्घाटन भी नितान्त दुष्कर है। ब्राह्म व क्षात्रबल दोनो की सम्मिलित मदद से ही इसका उद्घाटन हो सकता है—साथ ही ब्राह्मबल की तुलना मे क्षात्रबल ज्यादा ओजस्वी है, यही उस मन्त्र का विषय है ॥५॥

अपि॑ वृश्च पुराण॒वद् व्र॒तते॑रिव गुष्पि॒तमोजो॑ दा॒सस्य॑ दम्भय । व॒यं तद॑स्य॒ सम्भृ॑तं॒ वस्विन्द्रे॑ण॒ वि भ॑जेमहि॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥६॥

पदार्थ—हे शक्तिशाली शासक ! (व्रतते.) बल के (गुष्पित) उलझे गुच्छे को (पुराणवत्) जैसे कि पुराना हो तो सरलता से (वृश्च) काट देते हैं वैसे ही (दासस्य) क्षीण करने वाले विध्वसक दुष्ट जन के (गुष्पित) पुञ्जीभूत (ओज) तेज को काट (अपि) और उसे (दम्भय) अपने आदेश के अधीन कर ले। (वय) हम प्रजाजन (अस्य) इसके (तत्) उस (इन्द्रेण) बलशाली राजा इत्यादि द्वारा (सम्भृत) एकत्र किए हुए (वसु) तेजरूपी ऐश्वर्य का (विभजेमहि) बांटकर सेवन करें ॥६॥

भावार्थ—राष्ट्र म जो दुष्ट पुरुष हैं राजा न केवल उन्हे निस्तेज ही करे अपितु उस मे बिखरे हुए सारे ओज व धन को समेट राजा अपनी शिष्ट प्रजा मे वितरित कर दे ॥६॥

यदि॑न्द्राग्नी॒ जना॑ इ॒मे वि॒ह्वय॑न्ते॒ तना॑ गि॒रा । अ॒स्माके॑भि॒र्नृभि॑र्व॒यं सा॑स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तो व॑नु॒याम॑ वनुष्य॒तो नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥७॥

पदार्थ—(यद्) जब (इमे जना:) ये हमारे जीव (तना) सतत उच्चारित (गिरा) अपने शब्दो के द्वारा (इन्द्राग्नी) उपरोक्त इन्द्र व अग्नि को (विह्वयन्ते) विकल होकर पुकार लेते हैं—गुण वर्णन द्वारा उनका आधान अपने अन्तरात्मा मे कर लेते है तब हम (अस्माकेभि) इन अपने ही हुए (नृभि) लोगो को साथ ले (पृतन्यत) आक्रान्ता शत्रुओं व शत्रु भावनाओं को (सासह्याम) धीरता सहित परास्त करें और (वनुष्यत:) जो हमे हराना चाहते हैं या विध्वस्त करना चाहते हैं हम उन्हें (वनुयाम) पराजित करें या नष्ट कर दें ॥७॥

भावार्थ—हमारे लिये उपयुक्त है कि हम विविध प्रकार से ब्राह्मबल तथा क्षात्रबलशालियो के गुणो का वर्णन करते हुए उन गुणों को अपने अन्त करण मे धारें। हम अपने आक्रामक तथा आक्रमण करके हमे पराजित अथवा नष्ट करने के इच्छुक शत्रुओं व शत्रुभूत भावनाओं को इसी प्रकार परास्त कर सकते हैं ॥७॥

या नु श्वे॒ताव॒वो दि॒व उ॒च्चरा॑त॒ उप॒ द्युभिः॑ । इ॒न्द्रा॒ग्न्योरनु॑ व्र॒तमु॒हा॑ना यन्ति॒ सिन्ध॑वो॒ यान्त्सीं॑ ब॒न्धादमु॑ञ्चतां॒ नभ॑न्ताम॒न्य॒के स॑मे ॥८॥

पदार्थ—(या) जो (श्वेतौ) सत्त्वगुणसम्पन्न [इन्द्र और अग्नि] (द्युभि) अपने कमनीय गुणों के प्रकाश द्वारा (अव.) निम्न, अन्धकार अथवा अज्ञान

अवस्था से (उप दिव) उच्च, प्रकाश या ज्ञान की अवस्था मे (उच्चरात·) पहुँचा देते हैं, फिर वे (यान्) जिन [पदार्थों या उच्च भावनाओ] को (बन्धात्) अपने बन्धन से (अमुञ्चताम्) मुक्त कर दे वे (सिन्धव) भाति-भाति के गहन समुद्र की भान्ति काश, जलो की भाति (इन्द्राग्न्यो ऋत अनु) इन्द्र व अग्नि के सनातन नियम का अनुसरण करते हुए (उहाना यन्ति) प्रवाहित होते जाते हैं ॥८॥

भावार्थ —सत्त्वगुणी साधक क्षात्र व ब्राह्म बल अथवा ऐसे बलशाली क्षत्रिय व ब्राह्मण की शरण में पहुँच जाता है, उन दोनो की मदद से उसका जीवन उच्च होता है और उसे उनकी मुक्त दानशीलता से अपार ऐश्वर्य मिलता है ॥८॥

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः । वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥९॥

पदार्थ —हे (हरिव.) जीवनयात्रा का भली भाति निर्वाह कर सकने वाली ज्ञानेन्द्रियो व कर्मेन्द्रियो की शक्तियो से सम्पन्न (हिन्वस्य) स्तुति के द्वारा सन्तुष्ट करने वाले व्यक्ति के (सूनो) प्रेरक, (इन्द्र) क्षात्रबल को धारण करने वाले नेता (ते) तेरे (उपमातय.) दान [सायण] (पूर्वी) सबसे प्रथम हैं (उत) अत तेरी (प्रशस्तयः)स्तुतिया भी (पूर्वी) सवप्रथम हैं । (वीरस्य) तुझ वीर द्वारा की गई (आपृच.) आपूर्तिया, उदारता सहित प्रदत्त सिद्धिया (वस्व) बसाने वाली हैं । (या) और वे आपूर्तिया (न) हमारी (धिय) बुद्धि और कर्मों को—हमारे चिन्तन तथा कृत्यो—दोनो—को ही (साधन्त) सिद्ध करें ॥९॥

भावार्थ —प्रभु, ऐश्वर्यवान क्षात्रबलयुक्त राजा तथा स्वय जीव जो सिद्धिया प्राप्त कराते हैं—वे वस्तुत मनुष्य की विचारधारा तथा उसकी कर्तृत्वशक्ति को सफलता प्रदान करते हैं । यही भाव इस मन्त्र म व्यक्त हुआ है ॥९॥

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् । उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥१०॥

पदार्थ.—उस उपरोक्त क्षात्र बल रूपी इन्द्र को, जो (त्वेष) शत्रुओ तथा शत्रु भावनाओ के लिये भयानक और तेजस्वी है, (सत्वानम्) शुद्धान्त करण एव बलिष्ठ है; (ऋग्मियम) स्तुति के योग्य है, (उतो नु चित्) और (य) जो (ओजसा) अपनी ओजस्विता से ही (शुष्णस्य) शोषक शत्रु, रोग या दुर्भावना आदि । (आण्डानि) गर्भस्थ सन्तान को (भेदति) छिन्न भिन्न करता है और इस तरह (स्वर्वती·) सुखप्रापक (अप) कर्मों को (जेषत्) जीतता है, (त) उस इन्द्र को (सुवृक्तिभि) शुभ दु खवर्जक क्रियाओ के द्वारा (शिशीत) अधिक तीक्ष्ण कार्यसक्षम बनाओ ॥१०॥

भावार्थ —क्षात्र बल की ओजस्विता के फलस्वरूप ही शत्रु सन्तानें गर्भावस्था में ही नष्ट होती हैं, साधक के दु खवर्जक कर्मों के द्वारा यह बल अधिक समर्थ बनता है ॥१०॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्य सत्वानमृत्वियम् । उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥११॥

पदार्थ —जिस ब्राह्मबल के क्रियान्वयन (स्वध्वर) शोभन अहिंसा आदि हैं, (सत्य) जो कभी विपरीत फल प्रदान नही करता [अव्यभिचारी है], (सत्वान) सत्वगुण विशिष्ट तथा बलवान् है, (ऋत्वियम्) जो नियमपूर्वक फल देता है , (उतो नु चित्) और (य) जो (ओहते) तर्कवितर्क करता है विवेकशील है और (शुष्णस्य) शोषक की (आण्डा) गर्भस्थ सन्तान को (भेदति) भेद देता है । (स्वर्वती.) सुख प्रापिका (अप) क्रियाओ को (अजै) जीतता है— (त) उस ब्राह्मबल को (शिशीत) कार्यक्षम बनाओ ॥११॥

भावार्थः—ब्राह्मबल साधना करने वाले को विवेकशीलता देता है, जब कि क्षात्रबल मे आक्रामकता और ओज प्रबल होता है । दोनो के सहयोग से ही शत्रुओं की हार होती है ॥११॥

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि । त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१२॥

पदार्थ —(एव) इस तरह जिन (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र तथा अग्नि के लिए [उन्हे] (पितृवत्) पालक माता-पिता के तुल्य, (मन्धातृवत्) ज्ञानधारण करने वाले एव ज्ञान का प्रकाश देने वाले के समान और (अङ्गिरस्वत्) प्राणो के तुल्य जीवनदाता के समान [पद देते हुए] (नवीय) अतिशय स्तुतिकारक वचन (अवाचि) कहा, वे इन्द्र एव अग्नि (त्रिधातुना) तीन धारक तत्त्वों—सत्त्व, रज और तम से युक्त (शर्मणा) दु ख अभाव रूप सुख से (अस्मान्) हम साधको की (पातम्) रक्षा करें । (वय) हम (रयीणां) दानशीलता के प्रवर्तक और ऐश्वर्यों के (पतय) पालक (स्याम) हो ॥१२॥

भावार्थ —क्षात्र तथा ब्राह्मबल और उनके अधिष्ठाता राजा, विद्वान् और एक सर्वोपरि परम ऐश्वर्यवान् प्रभु को पितृस्थानीय, बुद्धि और विचारशीलता प्रदान करने वाला तथा प्राणधारक मानकर उनके गुणो का वर्णन करते हुए उन्हे अपने अन्त करण में स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये । मनुष्य को दु खरहित सुख इसी प्रकार की स्तुति से प्राप्त हो सकता है ॥१२॥

विशेष—इस सूक्त के देवता हैं इन्द्र और अग्नि । उन्ही के गुणों तथा कृत्यों का वर्णन समग्र सूक्त मे है ।

अष्टम मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१० नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्द —१,५ *त्रिष्टुप्* । ४, ७ *भुरिक त्रिष्टुप्* । ८ *स्वराट् त्रिष्टुप्* । २, ३, ६, १० *निचृज्जगती* । ९ *जगती* । स्वर —१, ४, ५, ७, ८ *धैवत*. । २, ३, ६, ९, १० *निषादः* ॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः । यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥१॥

पदार्थ —हे मानवगण ! आप (प्रभूतये) अपनी वृद्धि, अभ्युदय तथा कल्याण के लिये (अस्मै) सर्वत्र विद्यमान इस (वरुणाय) परम स्वीकरणीय पूज्य प्रभु की (उ) मन को स्थिर कर (सु) भली-भाति (अर्च) पूजा करो और (मरुद्भ्य) जो कम बोलने वाले योगी है उनकी भी वन्दना करो तथा (विदुष्टरेभ्य) जो अच्छे विद्वान् हो उन्हे भी पूजो । (य) जो वरुणवाच्य परमदेव (मानुषाणाम) मनुष्यो के (पश्व) पशुओ को भी (धीता) स्व कर्म से (गाः इव) पृथिव्यादि लोको के तुल्य (रक्षति) रक्षा करता है । जिससे (समे) सभी (अन्यके) शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हो ॥१॥

भावार्थ - प्रभु की आराधना यदि मन व श्रद्धा सहित की जाय तो सब प्रकार का फल देती है, और उस उपासक के सारे विघ्न भी दूर हो जाते हैं ॥१॥

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः । नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥२॥

पदार्थ --हे मानववृन्द ! आप (तम् उ) उसी वरुण कहे जाने वाले ईश्वर की (समना) समान (गिरा) स्तुति से (सु) भली प्रकार स्तुति करें और (पितृणाम् च) अपने पूर्वज पितरो के (मन्मभि) मननीय स्तोत्रों से वन्दना कीजिये , (नाभाकस्य) ससार विरक्त ऋषि इत्यादि कृत (प्रशस्तिभि) प्रशंसनीय स्तोत्रो से उसकी वन्दना कीजिए । (य) जो वरुणदेव (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील इन्द्रियो के (उप) समीप मे (उदये) उदित होता है और जो (सप्तस्वसा) दो नेत्र, दो कान, दो घ्राण और एक मुखस्थ रसना इन सातो के लिए कल्याणप्रद है, (स) वही (मध्यम.) सब के बीच स्थित है । उसकी स्तुति से (समे अन्यके नभन्ताम्) सब शत्रुओ का पराजय हो ॥२॥

भावार्थ —उसकी वन्दना अपनी भाषा के द्वारा या पूर्व रचित स्तोत्र के द्वारा किसी प्रकार करे; इसी मे मानव का कल्याण निहित है ॥२॥

स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः । तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

पदार्थ —हे मानवगण (स) वह वरुणवाच्य परमात्मा (क्षप) रात मे भी (परि षस्वजे) व्यापक है अर्थात् रात्रि मे भी लोगो के सारे कामो को देखा करता है । (दर्शत) नितान्त दर्शनीय (स) वह प्रभु (उस्र) सर्वव्यापी हो (मायया) अपनी शक्ति और बुद्धि से (परि) चतुर्दिक् (विश्वम्) सारे पदार्थ को (नि दधे) भली प्रकार धारण किये हुए हैं । (तस्य व्रतम्) उसके व्रत को (वेनी) उससे कामनाओ की इच्छा करती सारी प्रजा (तिस्र· उष) त्रिकाल मे (अवर्धयन्) बढ़ा रही हैं अर्थात् भूत, भविष्यत् व वर्तमान या प्रात , मध्याह्न तथा सायकाल में उसकी कीर्ति बढ़ा रही हैं ॥३॥

भावार्थ —वह प्रभु सर्व काल मे सब जगह व्यापक है—यह जान पापों से मुक्त रहे ॥३॥

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः । स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४॥

पदार्थ —(पृथिव्याम् अधि) भूमि के ऊपर (दर्शत) दर्शनीय व विज्ञेय (य) जो प्रभु (ककुभ) सारी दिशाओ को (निधारय.) धारण करता है । (स माता) वही ससार का भी निर्माता, पाता तथा संहर्ता है । (वरुणस्य) उसी प्रभु का (तत् पदम्) वह स्थान (पूर्व्यम्) पूर्ण एव अति प्राचीन है और (सप्त्यम्) सबके जानने योग्य है । (स हि) वही (गोपाः इव) गोपालक के तुल्य जगत् का पालन करता है वह (ईर्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु है ॥४॥

भावार्थ— जिस कारण से वह प्रभु जगत् का कर्ता है अत सर्वभाव से वही पूजा और उपासना के योग्य है ॥४॥

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या वेद नामानि गुह्या । स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो वरुण (भुवनानाम्) सकल सूर्य्यादि जगत् तथा समस्त प्राणियों को (धर्ता) धारण करता है और (उस्राणाम्) सूर्य्य की किरणों का भी वही धाता तथा विधाता है और (अपीच्या) अन्तर्हित=भीतर छिपे (गुह्या) गोपनीय (नामानि) नामों को भी (वेद) जानता है। (सः कविः) वह महाकवि है और वही (काव्या) काव्यों को (पुरु) बहुत बनाकर (पुष्यति) सपुष्ट करता है। (इव) जैसे (द्यौः) सूर्य्य (रूपम्) रूप को पुष्टि प्रदान करता है वैसे ही ॥५॥

भावार्थ.—परमात्मा लोक-लोकान्तरों का रचयिता तथा पालन करने वाला है; अतः वही उपासना करने के योग्य है ॥५॥

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता। त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥६॥

पदार्थः—हे मानवो ! आप वरुणदेव की महिमा देखें। (यस्मिन्) जिस वरुण मे (विश्वा) सकल (काव्या) काव्यकलाप (श्रिता) आश्रित हैं, जैसे—(चक्रे) चक्र में (नाभिः इव) नाभि स्थापित है उसी प्रकार उस परमदेव मे स्वयं काव्यकलाप विद्यमान है। हे मनुष्यो ! उस (त्रितम्) त्रिलोक मे व्याप्त वरुण को (जूती) शीघ्र ही प्रेम के साथ (सपर्यत) पूजो, ऐसे ही (गावः न) जैसे गौएं (व्रजे) गोष्ठ मे (संयुजे) संयुक्त होने के लिए तत्परता बरतती हैं, पुनः (युजे) जुए मे जैसे मनुष्य (अश्वान) अश्वों को (अयुक्षत) जोतते हैं, वैसे ही हे मनुष्यो ! आप स्वयं को ईश्वर की पूजा के लिए शीघ्र तत्पर करो ॥६॥

भावार्थ·—परमात्मा स्वयं महाकवि है। फिर भी विद्वान् अपनी वाणी को पवित्र करने हेतु उससे ईश्वरीय स्तोत्र की रचना करते हैं। स्वयं स्वास्थ्य हेतु उसकी पूजा करो। आलस्य को पास मत आने दो ॥६॥

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्। परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो वरुण (आसु) प्रजा मे (अत्कः) व्याप्त है अथवा इन मे सतत गमन करता है और जो (एषाम्) इन प्राणियों के (विश्वा जातानि) सकल उत्पन्न चरित्र को (आशये) जानता है और (धामानि) सारे स्थानों मे (परि) चतुर्दिक् से (मर्मृशत्) व्याप्त होते हुए (वरुणस्य) वरुण के (गये पुरः) रथ के सामने (विश्वे देवाः)समस्त सूर्य्यादि देव (व्रतम् अनु)नियम का अनुगमन करते हैं। (नभन्ताम्) इत्यादि पूर्ववत् ॥७॥

भावार्थ.—जिस परमात्मा के नियमानुसार सब सूर्य्यादि देव चल रहे हैं, हे लोगो ! उसकी वन्दना करो ॥७॥

पुनः वरुण का वर्णन ॥

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे। स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८॥

पदार्थः—(सः) वह वरुण (समुद्रः) महासागर है अर्थात् जिससे सकल प्राणी उत्पन्न हों वही समुद्र। यद्यपि सकल जगद्योनि वही है फिर भी प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु (अपीच्यः) सबके मध्य मे रहता है। पुनः (तुरः) सब सूर्य्यादि देवों से तीव्रगामी है। पुनः (द्याम् इव) जैसे सूर्य्य आकाश मे क्रमशः चढ़ता है उसी प्रकार वह सबके हृदय मे विद्यमान है। (यद्) जो वरुण (आसु) इन प्रजाओं मे (यजुः) दान (नि दधे) देता है और (सः) वह भगवान् (मायाः) दुष्टों के कपट को (अर्चिना) ज्वालायुक्त (पदा) पद से (अस्तृणात्) नष्ट करता है और (नाकम्) सुखमय स्थान मे (आरुहत्) बसता है ॥८॥

भावार्थ—क्योंकि परमात्मा कपट नहीं चाहता, अतएव निष्कपट भाव से ही उसकी उपासना करो तथा उसे अपने-अपने हृदय मे देखो ॥८॥

यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः। त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके समे ॥९॥

पदार्थः—(अधिक्षितः) सब से ऊपर निवास करते हुए और सबके ऊपर वर्चस्व रखते हुए (यस्य) जिस परमदेव के (श्वेता) श्वेत तथा दिव्य (विचक्षणा) तेज (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियों में और (उत्तराणि) अत्युत्तम (त्रिः) तीनों भुवनों मे (पप्रतुः) पूर्ण हैं और जिस वरुण का (सदः) यह जगद्‌रूप भवन (ध्रुवम्) निश्चल तथा अविनश्वर है (सः) वही देव (सप्तानाम्) सर्पणशील जंगम स्थावर पदार्थमात्र का (इरज्यति) स्वामी है। अतः उसी की पूजा करनी चाहिए ॥९॥

भावार्थ.—इस ऋचा के द्वारा प्रभु की महान् शक्ति दर्शायी गई है। जीवात्मा की दृष्टि मे ये तीन लोक हैं, परन्तु लोक-लोकान्तर की कोई संख्या नहीं। सृष्टि अनन्त है। परमात्मा उनसे अलग रहता हुआ भी सब में है यह इसकी विचित्र-लीला है। हे मनुष्यो ! विचार की दृष्टि से उसकी विभूतियों को देखो और तुम क्या हो, यह विचार भी करो ॥९॥

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता। स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके समे ॥१०॥

पदार्थ—(अनु व्रता) कर्मानुसार (यः) जो वरुणवाच्य परमात्मा (श्वेतान्) श्वेत (निर्णिजः) किरणों को अर्थात् दिवस को (अधि चक्रे) बनाता है और (कृष्णान्) कृष्ण किरणों को अर्थात् रात्रि बनाता है अथवा (श्वेतान्) सात्त्विक और (कृष्णान्) उसके विपरीत तामस (निर्णिजः) जीवों का निर्माण करता है। पुनः (अनु व्रता) कर्मानुसार ही (सः) वह वरुण (पूर्व्यम् धाम) पूर्व धाम की (ममे) रचना करता है। (यः) जो (स्कम्भेन) अपनी महिमा से (रोदसी) परस्पर रोधनशील द्यावापृथिवी को (वि अधारयत्) भली प्रकार घेरे है, ऐसे ही (अजः न द्याम्) जैसे सूर्य अपने परितःस्थित ग्रहों को धारता है, वैसे ही ॥१०॥

भावार्थ.—परमात्मा ही दिन-रात तथा सात्त्विक व तामसिक जीवों को बनाता है ॥१०॥

अष्टम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ षड्‌चस्य द्वाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-६ नाभाकः काण्वः अर्चनाना वा। अथवा १-३ नाभाकः काण्वः। ४-६ नाभाकः काण्वः अर्चनाना वा ऋषयः ॥ १-३ वरुणः। ४-६ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१-३ त्रिष्टुप्। ४-६ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३ धैवतः ४-६ गान्धारः ॥

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१॥

पदार्थ—(असुरः) सब के प्राण देने वाला (विश्ववेदाः) सर्वधन तथा सर्व ज्ञानसपन्न वह वरुण-वाच्य जगदीश (द्याम्) पृथिवी से ऊपर सारे जगत् को (अस्तभ्नात्) स्तम्भ के तुल्य पकड़े हुए विद्यमान है। पुनः (पृथिव्याः वरिमाणम्) पृथिवी के परिमाण का (अमिमीत) जो निर्माण करता है और जो (विश्वा भुवनानि) सम्पूर्ण भुवनों को बनाकर (आसीदत्) उन पर नियन्त्रण रखता है; (सम्राट्) वही सबका शासक है। हे मनुष्यो ! (वरुणस्य) वरणीय परमात्मा के (व्रतानि) कर्म (तानि) वे ये (विश्वा इत्) सब ही हैं। कहां तक उनका वर्णन हो। इसकी यह शक्ति जानकर उसी का गुणगान तथा पूजन करो ॥१॥

भावार्थ·—परमात्मा ने ही ये सारे लोक बनाये है और वही इनका आधार है, उसी की वन्दना करो ॥१॥

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्। स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पात नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप (बृहन्तम्) महान् (वरुणम्) वरणीय प्रभु की (वन्दस्व) अर्चना करें। पुनः (धीरम्) सर्ववित् (अमृतस्य) अमृत=मुक्ति (गोपाम्) रक्षक उसी वरुण-वाच्य परमात्मा को (नमस्य) नमस्कार करो (सः) वह इस प्रकार वन्दनीय हो (नः) हमें (त्रिवरूथम्) त्रिभूमिक अथवा त्रिलोक-वरणीय (शर्म) गृह, कल्याण तथा मङ्गल (वि यंसत्) दें। (द्यावापृथिवी) हे द्यावापृथिवी ! (उपस्थे) आपके क्रोड मे वर्तमान हम उपासकों की आप (पातम्) सारे उपद्रवों-विघ्नों से रक्षा करें ॥२॥

भावार्थ—जो परमात्मा की पूजा तथा वन्दना करते हैं सब पदार्थ उनकी रक्षा करते हैं। अतः हे मनुष्यो ! यदि अपनी रक्षा करना चाहते हो तो केवल उस की ही पूजा करो ॥२॥

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि। ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥३॥

पदार्थ—(वरुण देव) हे सारे पाप दूर करने वाले महादेव ! (शिक्षमाणस्य) अपना जानते तथा पूर्ण परिश्रम व धार्मिक कार्य्य मे मनोयोग देते हुए मेरी (इमाम्) इस (धियम्) सुक्रिया को एवं (क्रतुम् दक्षम्) यश तथा आन्तरिक बल को (सं शिशाधि) भली प्रकार तीक्ष्ण कीजिये, (यया) जिस सुक्रिया क्रतु और बल के द्वारा (विश्वा दुरिता) सारे पापों, व्यसनों दुःखों को (अति तरेम) पार कर जायं और (सुतर्माणम् नावम्) अच्छी प्रकार पार लगाने वाली सुक्रियारूप नौका पर (अधिरुहेम) आरूढ़ हों ॥३॥

भावार्थ.—हे परमात्मा ! बुद्धि, बल तथा क्रियाशक्ति—ये तीनों हमें दे, जिससे हम पापों व दुःखों को तैर कर विज्ञानरूपी नौका पर आरूढ़ हो तेरे पास पहुँच सकें ॥३॥

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः। नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥४॥

पदार्थ—(नासत्या) हे असत्य से मुक्त शुद्ध (अश्विना) अश्वयुक्त शासक तथा अमात्यो ! (ग्रावाणः) निष्पाप व पाषाणवत् अपने कर्म में निश्चल एवं दृढ़ और (धीभिः) बुद्धियों से संयुक्त (विप्राः) ये मेधाविगण (सोमपीतये) जौ, गेहूँ, धान इत्यादि पदार्थों को सुखपूर्वक भोगने हेतु (वाम्) आप लोगों के

निकट (आ अनुच्यथु) पहुँचते हैं, (समे) सब (अन्यके) शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हों ॥४॥

भावार्थः—विद्वानों पर भी यदि कोई आपत्ति आए तो वे भी शासक और अमात्यादि राज्य-प्रबन्धकर्त्ताओं के निकट जाएं और उनसे सहायता लेकर सारे विघ्नों को दूर करें ॥४॥

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।

नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥५॥

पदार्थः—(नासत्या) हे असत्य से मुक्त (अश्विना) अश्वयुक्त राजवर्ग ! (अत्रि) रक्षारहित (विप्र) मेधावी (यथा) जैसे (वाम्) आपको (सोमपीतये) सकल पदार्थों की रक्षार्थ (अजोहवीत्) बुलाते हैं वैसे ही अन्य भी आपको बुलायें जिससे (समे) सकल (अन्यके नभन्ताम्) शत्रु तथा विघ्न नष्ट हों ॥५॥

भावार्थ —राजा तथा राज्य-कर्मचारियों के लिए उपयुक्त है कि विद्वान्, मूर्ख, धनी, निर्धन व असहाय आदि सब प्रकार के लोगों की पूर्ण रक्षा करें, जिससे कोई विघ्न न रहे ॥५॥

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।

नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥६॥

पदार्थः—(नासत्या) हे असत्य से मुक्त राज्यप्रबन्धकर्त्ताओ ! (यथा) जैसे (मेधिरा) विद्वान् मेधा विजन (वाम्) आपको (अहुवन्त) अपने कार्य के लिये बुलाते हैं (एव) वैसे ही मैं भी (वाम्) आपको (ऊतये) सहायता के लिये (अह्वे) पुकारता हूँ ॥६॥

भावार्थ —राजा का सत्कार करना सभी के लिए अभीष्ट है ॥६॥

अष्टम मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-३३ विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१, ९-१२, २२, २६, २८, २९, ३३ *निचृद्गायत्री ।* २-८, १३, १५-२१, २३-२५, २७, ३१, ३२ *गायत्री ।* १४ *ककुम्मती गायत्री ।* ३० *पादनिचृद्गायत्री । षड्ज स्वर ॥*

अग्निवाच्य ईश्वर की वन्दना ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः ॥

गिरः स्तोमास ईरते ॥१॥

पदार्थ —(विप्रस्य) मेधावी तथा विशेषकर ज्ञान विज्ञान के प्रसारक (वेधस) त्रिविध स्तुतियों के कर्त्ता मुझ उपासक के (इमे स्तोमास) ये स्तोत्र, (अस्तृतयज्वनः) जिसके उपासक कभी हिंसित व अभिभूत नहीं होते तथा (गिर) जो वन्दनीय व परमपूज्य है (अग्ने) उस प्रभु की ओर (ईरते) जाएँ ॥१॥

भावार्थ —जिस परमात्मा के उपासक कभी दु खनिमग्न नहीं होते उसकी ही वन्दना मेरी वाणी करे, उसी की ओर मेरा ध्यान लगे तथा वचन पहुँचे ॥१॥

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे ।

अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥२॥

पदार्थ —(जातवेद) हे सब कुछ जानने वाले, हे सर्वधन, हे सर्वज्ञान बीजदाता, (विचर्षणे) हे सर्वव्यापक, (अग्ने) सर्वव्यापी प्रभु ! (प्रतिहर्यते) सारी कामनाओं को देते हुए व उपासकों के कल्याणाभिलाषी (अस्मै ते) इस आपके लिये मैं (सुष्टुतिम्) सु स्तुति (जनामि) जानता हूँ, हे परमात्मा ! आप इसे स्वीकार करें ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा स्वय सर्वज्ञ तथा सर्वज्ञानमय है। उसी की वन्दना हम लोग अपने कल्याण हेतु करें। वह प्रभु इतना जरूर चाहता है कि सभी प्राणी मेरी आज्ञा का पालन करें ॥२॥

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः ।

दद्भिर्वनानि बप्सति ॥३॥

पदार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक महान् देव ! (तव) आपके ये (तिग्मा) तीव्र (त्विष) दीप्ति प्रकाश अर्थात् सूर्य आदि रूप प्रकाश (आरोकाः इव) मानो सबके रुचिकर होते हुए (दद्भि) विविध दानों सहित (वनानि) कमनीय सुन्दर इन ससारों का (बप्सति) सदा उपकार करते हैं। (घ इत् अह) यह असन्दिग्ध है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर का तीक्ष्ण प्रकाश ये ही सूर्य इत्यादि हैं जिनसे ससार को अनेक लाभ हो रहे हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है ॥३॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि ।

यतन्ते वृथगग्नयः ॥४॥

पदार्थ.—हे परमात्मन् ! आपके द्वारा बनाए गए ये (अग्नय) सूर्य्य, विद्युत्, अग्नि तथा चन्द्र आदि सर्वजगत् (पृथक्) अलग-अलग (यतन्ते) अपने अपने कार्य्य मे प्रयत्नशील हैं। ये सब (हरय) परस्पर हरणशील व परस्पर उपकार है। पुन (धूमकेतव) इनके चिह्न धूम है; पुन (वातजूता) ये स्थूल व सूक्ष्म वायु से प्ररित होते हैं। पुन (उप द्यवि) कोई पदार्थ द्युलोक मे, कोई पृथिवी पर और कोई मध्यलोक में अपने-अपने कार्य में रत हैं ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा की महती शक्ति है जिससे सूर्य इत्यादि लोकों में भी कार्य हो रहा है। हे मनुष्यो ! आप उसकी ही वन्दना करो ॥४॥

एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत ।

उषसामिव केतवः ॥५॥

पदार्थः—हे परमपिता ! आप के द्वारा उत्पन्न किये गए (एते त्ये) ये वे (अग्नय) सूर्य्य, विद्युत् तथा अग्नि आदि विभिन्न प्रकार के आग्नेय पदार्थ (इद्धास) दीप्त होने से (पृथक्) अलग-अलग (समदृक्षत) दीखते हैं यद्यपि सब समान ही हैं। पुन (उषसाम् केतव इव) प्रात काल के ये सब जताने वाले हैं अथवा दाह सूचक है ॥५॥

भावार्थ —जिस परमात्मा की रचना ये सूर्य्यादि अग्नि जगत् का उपकार कर रहे हैं उसकी पूजा करो। उसकी परम विभूतियाँ देखो। तभी उस प्रभु को पहचानने मे समर्थ हो सकते हो ॥५॥

अग्नि के गुण ॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः ।

अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥६॥

पदार्थ —(यद्) जब (अग्नि) भौतिक अग्नि (क्षमि) धरती पर (रोधति) प्रसारित होता है तब (जातवेदस) उस जातवेदा अग्नि के (प्रयाणे) प्रसारण से (पत्सुत) नीचे की (रजांसि) धूलि (कृष्णा) काले रग की हो जाती है ॥६॥

भावार्थ —कहीं-कहीं पर वेद मे स्वाभाविक वर्णन है जिससे व्यक्ति यह शिक्षा ले कि प्रथम प्रत्येक वस्तु का सामान्य गुण जाने। तत्पश्चात् विशेष गुण को समझे। हे मनुष्यो ! इन तथ्यों की सूक्ष्मता पर ध्यान दो ॥६॥

अग्नि के गुण ॥

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति ।

पुनर्यन्तरुणीरपि ॥७॥

पदार्थ.—(अग्नि) अग्निदेव (ओषधी) गोधूम इत्यादि सभी वनस्पतियों को (धासिम्) निज अनुरक्त बनाकर (बप्सत्) उनका आहार करते हुए भी (न वायति) सतुष्ट नहीं होते। यही नहीं, वे अग्निदेव (तरुणी) नवीन तरुण ओषधियों को (अपि) भी (यन्) प्राप्त कर उनमे फैलते हुए खाना चाहते हैं ॥७॥

भावार्थ.—यह वर्णन भी स्वभाविक ही है। आग्नेय शक्तियाँ ही पदार्थ मात्र को बढ़ाती व घटाती हैं। अत सदा पदार्थों मे उपचय और अपचय होता ही रहता है। हे मनुष्यो ! यह पदार्थगति देख ईश्वर के स्मरण मे लगो। एक दिन तुम्हारा भी अपचय शुरू होगा ॥७॥

जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् ।

अग्निर्वनेषु रोचते ॥८॥

पदार्थ —(अग्नि) यह भौतिक आग (जिह्वाभि अह) अपनी ज्वाला से ही (ननमद्) सारी वनस्पतियों को नम्र करती है और (अर्चिषा) तेज से (जञ्जणाभवन्) जलता हुआ (वनेषु) वनों मे (रोचते) प्रकाशित होता है ॥८॥

भावार्थ - -हे मनुष्यो ! पहले भौतिक अग्नि के गुणों का अध्ययन करो। देखो, कैसी तीव्र इसकी गति है और इससे कौन-कौन से काम हो रहे हैं ॥८॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।

गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥९॥

पदार्थ —(अग्ने) हे अग्नि ! (तव) तेरा (सधि) स्थान = गृह (अप्सु) जलों मे है। (स) वह तू (ओषधी अनु) सारी वनस्पतियों के मध्य (रुध्यसे) प्रविष्ट है। (पुन) पुन (गर्भे) उन ओषधियों व जलों के गर्भ में (सन्) रहता हुआ (जायसे) नया होकर उत्पन्न होता है ॥९॥

भावार्थ —यह ऋचा भौतिक तथा परमात्मा दोनों पर घट सकती है। ईश्वर भी जल और ओषधियों मे व्याप्त है और इनसे ही प्रकट भी होता है। भौतिक अग्नि के इस गुण के वर्णन से वेद का तात्पर्य यही है कि भगवान् द्वारा बनाया हुआ यह अग्नि कैसा विलक्षण है जो मेघ और समुद्र मे भी वसता है और वहा वह बुझता नहीं। विद्युत् जल से ही उपजती है, परन्तु जल इसे शमित नहीं कर सकता—यह कैसा आश्चर्य है ! ॥९॥

बाह्य ससार मे अग्निक्रिया को दर्शा कर होमीय अग्निक्रिया का वर्णन किया गया है ॥

उदग्ने तव तद्घृतादर्ची रोचत आहुतम् ।

निसानं जुह्वो मुखे ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (आहुतम्) भांतिभांति के आहुत (तव तद् अर्चि) तेरी वह ज्वाला (घृतात्) घृत की मदद से (उद् रोचते) ऊपर

आकर प्रकाशित होती है। पुन (जुह्व) जुहू नाम की स्रुवा के (मुखे मिसानम्) मुख मे चाटती वह ज्वाला शोभायमान होती है ॥१०॥

भावार्थः—वेद यह शिक्षा देते है कि अग्नि में प्रतिदिन विविध सामग्रियो से होम करो, होम के लिये जुहू, उपभृत, स्रुक् आदि नाना साधन तैयार करो, और यह ध्यान रक्खो कि धूम्र न हो किन्तु निरन्तर ज्वाला ही उठे। इस प्रकार हवन करने से अनेक कल्याण होंगे ॥१०॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।

स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११॥

पदार्थः—हम उपासना करने वाले (अग्नये) उस सर्वव्यापक प्रभु की (स्तोमैः) विविध स्तोत्रों व मन से (विधेम) पूजा करें। जो ईश्वर (उक्षान्नाय) धनवर्धक सूर्यादिकों का भी अन्न के तुल्य पोषक है; (वशान्नाय) अपने वशीभूत समस्त जगतो का भी अन्न के समान धारक व पोषक है और (वेधसे) सब का रचयिता भी है। ऐसे परमात्मा की उपासना करें ॥११॥

भावार्थ—जो परमात्मा सबका धाता, विधाता और ईश है उसी की पूजा, उपासना सर्वभाव से करनी चाहिये ॥११॥

उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो ।

अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२॥

पदार्थः—(उत) और (होत) हे सर्वप्राण प्रदाता, हे परमदाता, (वरेण्यक्रतो) हे श्रेष्ठकर्मन् (अग्ने) सर्वव्यापी देव! (वयम्) हम (त्वा) आपको (नमसा) नमस्कार और (समिद्भि) सम्यक् दीप्त शुद्ध इन्द्रियो से पूज कर (ईमहे) याचना करते है ॥१२॥

भावार्थ—विभिन्न कामनाओ की पूर्ति हतु विभिन्न देवो से लोग याचना करते है। इस ऋचा के द्वारा उसका निषेध कर केवल परमात्मा से ही याचना करने की शिक्षा दी गई है ॥१२॥

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत ।

अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३॥

पदार्थ—(शुचे) हे पावनतम! (अग्ने) हे सब को गति के प्रदाता! (आहुत) हे पूज्य जगदाधार! (उत) और (त्वा) आपका (भृगुवत्) भृगु के तुल्य (मनुष्वत) मनु के समान और (अङ्गिरस्वत्) अङ्गिरा के तुल्य हम उपासक (हवामहे) पूजते है ॥१३॥

भावार्थ—भृगु- जो लोग तपस्या, कठिन व्रत आदि मे पारङ्गत हो वह भृगु। मनु जो मनन करने मे पारगत हो, जो सब विषयो को भली-भांति समझता हो। अङ्गिरा- यह सारा ससार परमात्मा क अङ्गवत् है अत उसको अङ्गी कहते है, जो उस अङ्ग मे सदैव रत हो वही अङ्गिरा हैं। अथवा जो अङ्गो का रस हो, जो अग्नि-विद्या मे सिद्ध हो जो अग्नित्व को समझने-समझाने वाला हो, ऐसे अनेक अर्थ इस शब्द के किए जाते रहे है ॥१३॥

ईश्वर का महत्त्व ॥

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता ।

सखा सख्या समिध्यसे ॥१४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वगति के देने वाले प्रभो! (हि) जिस के लिए (त्वम्) तू (अग्निना) अग्नि के साथ अग्नि होकर (समिध्यसे) भासित होता है (विप्रेण) मेधावी विद्वान् के साथ (विप्र) विद्वान् होकर (सता) साधु के साथ (सत्) साधु होकर, (सख्या सखा) मित्र के साथ मित्र बनकर प्रकाशित हो रहा है, अत तू अगम्य तथा अक्षोभ्य है ॥१४॥

भावार्थ—सूर्य्य तथा वायु आदि जो दृश्य है उन्ही के समान परमात्मा स्वरूप से कहीं पर भी दृश्य नहीं। उसकी कोई आकृति नही। अत वेद का कथन है—तत् तत् रूप के साथ वह तत् तत् स्वरूप है। अत वह अगम्य है ॥१४॥

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् ।

अग्ने वीरवतीमिषम् ॥१५॥

पदार्थः—(अग्ने) हे सर्वगति देने वाले परमात्मा! (स त्वम्) वह तू (विप्राय) मेधावी जन को तथा (दाशुषे) ज्ञान विज्ञानदाता जन को (सहस्रिणम्) अनन्त (रयिम्) धन (देहि) दे। पुन (वीरवतीम्) वीर पुत्र पौत्र आदि सहित (इषम्) अन्न प्रदान करे ॥१५॥

भावार्थ—परमात्मा उसे ही अपने आशीर्वाद से सम्पन्न करता है जो स्वय परिश्रमी हो व धन अथवा ज्ञान प्राप्त कर दूसरों का उपकार करे। अतः 'विप्र' व 'दाश्वान्' पद आये हैं। जो परिश्रम द्वारा प्राकृत जगत् से या विद्वानो से शिक्षा पाता है वही विप्र मेधावी है। जिसने कुछ दिया है अथवा जो देता है उसी को दाश्वान् कहा जाता है। वीरवती=जिसमे वीरता नहीं जगत् में उसका आना न आना समान है। अवीर जन अपनी जीविका भी उचित रूप से नही कर सकता ॥१५॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत ।

इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥१६॥

पदार्थः—(भ्रात) हे जीवों का भरण-पोषण करने वाले (सहस्कृत) हे जगत् के रचयिता (रोहिदश्व) हे संसाराश्वारूढ़! (शुचिव्रत) हे शुद्ध नियम बनाने वाले (अग्ने) परमात्मा! (मे) मेरे (इमम् स्तोमम्) इस स्तोत्र को (जुषस्व) कृपा कर ग्रहण करो ॥१६॥

भावार्थ—'सहस्कृत' 'रोहिदश्व' इत्यादि पद आग्नेय सूक्तो मे प्रायः आते हैं। ईश्वर व भौतिक अग्नि इन दोनो पक्षो मे दो अर्थ होंगे। लोक मे भी ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं। ईश्वर पक्ष में सहस=संसार या बल, बलदाता भी वही है; अग्नि पक्ष मे केवल बल। इसी प्रकार रोहित इत्यादि पदो का भी अलग-अलग अर्थ करना चाहिए ॥१६॥

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते ।

गोष्ठं गाव इवाशत ॥१७॥

पदार्थ—(उत) और (अग्ने) हे सर्वगति देने वाले प्रभु! (मम स्तुत) मेरी स्तुति (त्वा) तुझे (आशत) प्राप्त हो। ऐसे ही (गाव इव) जिस प्रकार गायें (वाश्राय) नाद करते हुए और (प्रतिहर्यते) दुग्धाभिलाषी बछड़े के हेतु (गोष्ठम् आशत) गोष्ठ मे प्रविष्ट होती हैं ॥१७॥

भावार्थ—जैसे गौ बछड़े के लिए दौडकर गोष्ठ मे जाती है वैसे ही मेरे स्तोत्र भी शीघ्रता से आपके समीप प्राप्त हों ॥१७॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।

अग्ने कामाय येमिरे ॥१८॥

पदार्थः—(अङ्गिरस्तम) हे देवो मे श्रेष्ठतम (अग्ने) प्रभु! (कामाय) अपने-अपने मनोरथ की प्राप्ति के लिए (विश्वा) समस्त (ता) वे (सुक्षितय) प्रजाजन (तुभ्यम्) तेरी ही (पृथक्) अलग-अलग (येमिरे) वन्दना करते हैं ॥१८॥

भावार्थ—केवल परमात्मा ही पूज्य, स्तुत्य, ध्येय और गेय है—यही शिक्षा इसम दी गई है ॥१८॥

सर्वपूज्य ईश्वर ॥

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।

अद्मसद्याय हिन्विरे ॥१९॥

पदार्थ—(मनीषिणः) मनस्वी तथा मन पर अधिकार रखने वाले (मेधिरास) विद्वान् और (विपश्चित) तत्त्ववित् व आत्मद्रष्टा (अद्मसद्याय) ज्ञान-विज्ञान की सिद्धि हेतु अथवा विविध भोग हेतु (धीभिः) सब प्रकार की सुमतियो व कर्मों से (अग्निम्) अग्नि-वाच्य परमात्मा को ही रिझाते हैं ॥१९॥

भावार्थ—हे मानवो! जब श्रेष्ठ पुरुष सकल मनोरथ की सिद्धि हेतु उसी को प्रसन्न करते है तो आप भी अन्यान्य भौतिक अग्नि सूर्यादि की उपासना व पूजा छोड़-कर केवल उसी की अर्चना करो ॥१९॥

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।

वह्निं होतारमीळते ॥२०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापी सर्वशक्ति दाता! (अज्मेषु) अपने-अपने घरो मे (अध्वरम्) योग पूजा पाठ उपासना इत्यादि शुभकर्मों को (तन्वाना) विस्तार के साथ करते हुए मेधावी जन (वाजिनम्) ज्ञानस्वरूप व बलप्रद (वह्निम्) इस सारे जगत् के वाहक (होतारम्) सर्वधन देने वाले (तम् त्वाम्) उस तेरी ही (ईळते) वन्दना करते है ॥२०॥

भावार्थ—प्रत्येक शुभकर्म मे ईश्वर ही पूज्य है, अन्य कोई नही ॥२०॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।

समत्सु त्वा हवामहे ॥२१॥

पदार्थ—हे महेश! (हि) जिस लिये तू (पुरुत्रा) सर्व प्रदेश मे (सदृङ् असि) समानरूप से विराजता है और (विश्वा) सकल (विश अनु) प्रजाओं का (प्रभु) स्वामी है अत (त्वा) तुझे ही (समत्सु) सग्रामो और शुभकर्मों मे (हवामहे) पूजते, स्मरण करते और नाना स्तोत्रों से तेरी ही वन्दना करते हैं ॥२१॥

भावार्थ जिस लिए परमात्मा मे तनिक-सा भी पक्षपात विद्यमान नही और वही सब का स्वामी भी है अत उसी को सब पूजते आते हैं। इस समय भी तुम उसी का यशोगान करो ॥२१॥

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः ।

इमं नः शृणवद्धवम् ॥२२॥

पदार्थ—हे विद्वत् जन! (तम् ईळिष्व) उसकी स्तुति करो (य अग्नि) जो अग्निवाच्य ईश्वर (घृतै.) घृत के तुल्य विविध स्तोत्रों से (आहुत) पूजित हो उपासकों के हृदय मे (विभ्राजते) प्रकाशित होता है और जो (न)

हमारे (इमम् हवम्) इस आह्वान, स्तुति व निवेदन को (शृणवत्) सुनता है ॥२२॥

भावार्थ—परमात्मा चेतन देव है अतः वह हमारी वन्दना तथा स्तुति को सुनता है । अन्य सूर्य्यादि देव जड़ हैं अतः वे हमारी प्रार्थना नहीं सुन सकते । अतएव केवल ईश्वर की ही स्तुति करना कर्त्तव्य है ॥२२॥

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् ।

अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥२३॥

पदार्थः—(अग्ने) हे सर्वगति प्रदान करने वाले ! (शृण्वन्तम्) हमारी वन्दना सुनते हुए (जातवेदसम्) सकल ज्ञानों के दाता और (द्विषः) जगत् के द्वेष विघ्नों को (अप घ्नन्तम्) नष्ट करते हुए (तम् त्वा) उस तुझे (वयम्) हम उपासक (हवामहे) पूजें, गाएं, तथा तेरा आवाहन करें ॥२३॥

भावार्थ—वही देव हमारी वन्दना सुनता है और सारे विघ्नों को दूर करता है अतः केवल वही मनुष्यों का परमपूज्य, ध्येय व वन्दनीय है ॥२३॥

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।

अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥२४॥

पदार्थः—मैं (विशाम् राजानम्) प्रजा के स्वामी, (अद्भुतम्) महान् आश्चर्य और (धर्मणाम्) सकल कर्मों के (अध्यक्षम्) प्रमुख (इमम् अग्निम्) इस अग्निवाच्य प्रभु की (ईळे) वन्दना करता हूँ; (स उ) वही (श्रवत्) हमारी प्रार्थना स्तुति सुनता है ॥२४॥

भावार्थ—परमात्मा ही सब का अधिपति व प्रमुख है; अतएव विद्वान् हो या मूर्ख, राजा हो या प्रजा सब का वही पूज्य है ॥२४॥

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।

सप्तिं न वाजयामसि ॥२५॥

पदार्थ—(अग्निम्) उस परमात्मा को हम भक्त (वाजयामसि) पूजें, उसकी वन्दना करें जो (विश्वायुवेपसम्) सब को बल देता है (मर्य्यम् न) मित्र के तुल्य (हितम्) हितकारी है । पुनः (वाजिनम्) स्वयं महाबलवान् और सारे ज्ञान से युक्त है; पुनः (सप्तिम् न) मानो एक से दूसरे स्थान को जाने वाला है । उस की ही उपासना करनी चाहिए ॥२५॥

भावार्थ—हे मानवो ! उसकी विभूति देखो; सूर्य्य इत्यादि को भी वही बल देता है । वही सर्व हितकारी है, उसी की पूजा करो ॥२५॥

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा ।

अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥२६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् सर्वाधार ! तू (मृध्राणि) हिंसक (द्विषः) द्वेषी जनों को (अप घ्नन्) नष्ट करता है और (विश्वाहा) सर्व दिन (रक्षांसि) महा दुष्ट अत्याचारी अन्यायी व घोर पापी लोगों को (तिग्मेन) तीक्ष्ण तेज से (दहन्) जलाता हुआ (दीदिहि) इस धरती को उज्ज्वल कर ॥२६॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से लोगों के सारे विघ्न शान्त होते हैं अतः हे मनुष्यो ! उसी की वन्दना करो ॥२६॥

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम ।

अग्ने स बोधि मे वचः ॥२७॥

पदार्थ—(अङ्गिरस्तम) हे सबको अत्यधिक रस देने वाले ! (अग्ने) हे सबके आधार सर्वशक्तिमान् ! (मनुष्वत्) विज्ञाता मनुष्यों के तुल्य (यम् त्वाम्) जिस तुझे (जनासः) मनुष्य (इन्धते) समाधि में देखते हैं (सः) वह तू (मे वचः) मेरे स्तुतिरूप वचनों को (बोधि) कृपा करके सुन ॥२७॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं आपकी केवल वन्दना ही करता हूँ, इसी पर कृपा करो । तुझे योगीगण ध्यान में देखते हैं तथा मैं उसमें असमर्थ हूँ अतएव केवल तेरी कीर्ति का ही गान करता हूँ ॥२७॥

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत ।

तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥२८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् ! सर्वगतिप्रदाता ! (सहस्कृत) हे सकल जगत्कर्ता ! (यत्) जो तू (दिविजाः) सर्वोपरि द्युलोक में भी (असि) विराजता है (वा) और (अप्सुजाः) सर्वत्र आकाश में भी तू व्याप्त है (तम् त्वाम्) उस तुझे (गीर्भिः) वचनों के द्वारा (हवामहे) स्तुति करते हैं, तेरी कीर्ति गाते हैं ॥२८॥

भावार्थः—सामान्यजन समझते हैं कि भगवान् सूर्य्य अग्नि आदि तेजपुञ्ज पदार्थों में ही व्याप्त है । इस ऋचा द्वारा दर्शाया गया है कि भगवान् सर्वव्यापक है । जो सब में व्याप्त है उसी की हम कीर्ति गाते हैं, आप भी गाएं ॥२८॥

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।

धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥२९॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (ते इमे) वे ये दृश्यमान (जनाः) नर-नारीमय संसार तथा (विश्वाः) ये सकल (सुक्षितयः) चराचर प्रजा (धासिम् अत्तवे) अपने-अपने आहार की प्राप्ति हेतु (तुभ्यम् घ) तुझे ही (पृथक्) अलग-अलग (हिन्वन्ति) रिझाती हैं ॥२९॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से ही अन्न प्राप्त होता है, वायु, जल तथा सूर्य्य का प्रकाश ये तीनों ही प्राणियों के अस्तित्व के श्रेष्ठतम साधन हैं जिनके बिना *प्राणी क्षणमात्र* नहीं रह पाता, इन्हें उसने विपुल राशि में बना रखा है । तथापि इन्हें छोड़ विविध गेहूँ जौ आदि अन्नों की जरूरत है, इन्हें परमात्मा दान दे रहा है । इसलिये वही उपास्य तथा पूज्य है ॥२९॥

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः ।

तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥३०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सबके आधार ! (ते घ इत्) तेरी महती कृपा से ही (नृचक्षसः) लोगों की ऊंच नीच विविध दशाओं को देख उनसे घृणायुक्त इसलिये (विश्वा अहा) सर्व दिन (स्वाध्यः) शुभ कर्मरत रहते हुए आप से प्रार्थना करते हैं कि (दुर्गहा) दुर्गम क्लेशों को (तरन्तः स्याम) पार करने की हमें सामर्थ्य दें ॥३०॥

भावार्थः—ज्ञानी व्यक्तिजन अपनी व अन्यान्य जीवों की विचित्र स्थिति पर ध्यान देते हैं तो उनसे घृणा व वैराग्य उपजता है । तत्पश्चात उनकी निवृत्ति हेतु वह ईश्वर के निकट पहुँचता है । यही शिक्षा इसमें दी गई है कि सदा प्रभु की ओर बढ़ो ॥३०॥

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् ।

हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ॥३१॥

पदार्थः—हे मानवो ! हम उपासक (मन्द्रम्) आनन्द देने वाले (पुरुप्रियम्) बहुप्रिय (शीरम्) सकल पदार्थों में शयनशील या व्याप्त और (पावकशोचिषम्) पवित्र तेजयुक्त (अग्निम्) उस प्रभु से (हृद्भिः) मनोहर तथा (मन्द्रैः) आनन्दप्रद स्तोत्रों के द्वारा (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ! आप भी उसी की प्रार्थना करें ॥३१॥

भावार्थ—सभी उसी परमात्मदेव की पूजा-उपासना करें, अन्य किसी की नहीं ॥३१॥

स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः ।

शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥३२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सब के आधार परमात्मा ! (विभावसुः) जिस लिए आप सब को अपने तेज से प्रकाशित करते हैं और (शर्धन्) समर्थ हैं; अतः (स त्वम् न) वह आप सरीखे (रश्मिभिः) किरणों से (सृजन्) उदित होता हुआ सूर्य्य अन्धकार को मिटाता है तद्वत् (तमांसि) हमारे सकल अज्ञान (जिघ्नसे) दूर करें ॥३२॥

भावार्थ—परमात्मा की वन्दना व पूजा से अन्तःकरण पावन होता जाता है और उपासक दिन प्रति दिन पाप से मुक्त होता जाता है ॥३२॥

तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति ।

त्वदग्ने वार्यं वसु ॥३३॥

पदार्थ—(सहस्वः) हे महाबलशाली ! हे जगत् के रचयिता ! (अग्ने) हे सब के आधार ईश ! (यत्) जो (ते) आपका धन (न उपदस्यति) कदापि नहीं घटता अर्थात् विज्ञानरूप तथा मोक्षरूप धन है (तत्) उस (दात्रम्) दानी (वार्य्यम्) स्वीकरणीय (वसु) धन को (त्वत्) आपसे (ईमहे) याचना करते हैं ॥३३॥

भावार्थ अपने पुरुषार्थ के द्वारा लौकिक धन उपार्जन करें, किन्तु विज्ञानरूप धन उस प्रभु से ही माँगें ॥३३॥

अष्टम मण्डल में त्रितालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रिंशदृचस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—३० विरूप आङ्गिरस ऋषि । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २०—२२, २५, २६, *गायत्री ।* २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ *निचृद्गायत्री ।* ६, १२, १३, १८, २८, ३० *विराड्गायत्री ॥* २७ *यवमध्यागायत्री ।* २९ *ककुम्मती गायत्री ।* १९, २३ *पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥*

अग्निहोत्र का उपदेश ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥१॥

पदार्थ—हे लोगो ! (समिधा) ईंधन तथा चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से (अग्निम् दुवस्यत) अग्नि की सेवा करो व (अतिथिम्) अतिथिस्वरूप इस आग को (बोधयत) जगाओ और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) हव्य द्रव्यों को (आ जुहोतन) समर्पित करो ॥१॥

भावार्थः—भगवान् का उपदेश है कि अग्निहोत्र प्रतिदिन किया जाए । घृत, चन्दन, केशर आदि उपकरणों से शाकल्य तैयार कर, सुशोभित कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि जलाकर होम करो ॥१॥

अग्निहोत्र के समय अग्निसंज्ञक परमात्मा स्तवनीय ॥

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना ।

प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे सब कुछ जानने वाले प्रभु ! (**मे**) मुझ पुजारी का (**स्तोमम्**) स्तोत्र (**जुषस्व**) ग्रहण करें । हे भगवन् ! (**अनेन**) इस (**मन्मना**) मननीय विचारणीय मनोहर स्तोत्रों से पूजित व प्रार्थित हो आप (**वर्धस्व**) हमें शुभकार्य्य में बढ़ावें । हे ईश ! (**नः**) हमारे (**सूक्तानि**) शुभ वचनों का (**प्रति हर्य**) सुनने की इच्छा करें ॥२॥

भावार्थ—अग्निहोत्र के समय नाना स्तोत्र रच कर परमात्मा का यश गान करो और सुन्दर भावों से उसकी स्तुति तथा प्रार्थना करो ॥२॥

विशेष—जिन धातुओं से अग्नि शब्द बनता है उनसे सकलाधार सबशक्ति सूक्ष्म आदि अर्थ भी स्पष्ट होते हैं ।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे ।

देवाँ आ सादयादिह ॥३॥

पदार्थः—जिस तरह ईश्वर हमारा सखा, बन्धु भ्राता, पिता, माता और जनक कहलाता है वैसे ही वह दूत भी है, वह आत्मा को सन्देश प्रदान करता है । अथवा दूत के जैसा हितकारी है या दूत शब्द का अर्थ सकल दुःख हरने वाला भी होता है । मैं उपासना करने वाला (**दूतम्**) दूत (**अग्निम्**) तथा सर्वाधार प्रभु को (**पुरोदधे**) समक्ष रखता हूँ अर्थात् मन में स्थान देता हूँ । और ऐसा करके (**हव्यवाहम्**) उस स्तोत्ररूप हव्यवाहक प्रभु की (**उपब्रुवे**) स्तुति करता हूँ, वह स्वयं (**इह**) इस ध्यान योग में (**देवान्**) सारी इन्द्रियों को (**आ**) भली प्रकार (**सादयात्**) प्रसन्न करें अर्थात् स्थिरता दें ॥३॥

भावार्थ—ध्यान-योग के क्षणों में मन में परमात्मा को बैठा कर इन्द्रियों को वशीभूत कर स्तुति वन्दना करें ॥३॥

वि० वेद की यह एक विचित्रता है कि जिस शब्द के द्वारा ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करते हैं वह शब्द यदि भौतिक अर्थ में भी घटे तो उसके पर्य्याय भी ईश्वर के लिये प्रयुक्त होते हैं, परन्तु ऐसे स्थलों में यौगिक अर्थ करके घटाना उचित है ॥

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।

अग्ने शुक्रास ईरते ॥४॥

पदार्थ—(**दीदिव**) हे सकल जगत् को अपने तेज से प्रदीप्त करने वाले (**अग्ने**) हे सर्वाधार ! (**समिधानस्य**) सम्यक् सर्वत्र प्रकाशित (**ते**) तेरी (**बृहन्त**) महान् और (**शुक्रास.**) शुचि (**अर्चय**) सूर्य्यादिरूप दीप्तियां (**उदीरते**) अधिकाधिक ऊपर विस्फारित हो रही हैं ॥४॥

भावार्थ—ईश्वर सर्वत्र व्यापक हो अपने तेज द्वारा सबको प्रदीप्त करता है । अग्नि व सूर्य्यादि में उसी का प्रकाश है, पृथिवी में उसकी शक्ति से सारी वस्तुएं उत्पन्न हो रही हैं । वायु में भी उसी की गति है, इस अनन्त ईश्वर की उपासना करने से ही हे मनुष्यो ! तुम्हारा कल्याण हो सकेगा ॥४॥

मनुष्य के सभी कर्म उसकी प्रीति हेतु ही हों, यही इससे सीखते हैं ।

उप त्वा जुह्वो३मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।

अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥५॥

पदार्थ—(**हर्यत**) हे भक्तों के मंगलाभिलाषी ! (**अग्ने**) प्रभु ! (**घृताची**) घृत संयुक्त (**मम**) मेरे (**जुह्व**) जुहू स्रुवा उपभृत आदि हवनोपकरण भी (**त्वा**) आपकी प्रीति हेतु (**उप यन्तु**) हों । हे ईश ! (**नः**) हमारे (**हव्या**) स्तोत्रों को तुम (**जुषस्व**) ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम वैसे ही शुद्ध कर्म करो जिससे परमात्मा को प्रसन्नता प्राप्त हो ॥५॥

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।

अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥६॥

पदार्थ—मैं उपासना करने वाला (**अग्निम् ईळे**) अग्निवाच्य परमात्मा की वन्दना करता हूँ, क्योंकि (**स उ**) वही (**श्रवत्**) मेरे स्तोत्र व अभीष्टों को सुनता है । जो (**मन्द्रम्**) आनन्दप्रद, (**होतारम्**) दाता (**ऋत्विजम्**) ऋतु-ऋतु में सारे पदार्थों को एकत्रित करने वाला, (**चित्रभानुम्**) आश्चर्य तेजयुक्त और (**विभावसुम्**) सब को प्रकाशित करने वाला व आदर देने वाला है । वही एक उपास्य देव है ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उसी प्रभु की उपासना करो जो तुम्हारी बातों को सुने और पूर्ण करे ॥६॥

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् ।

अध्वराणामभिश्रियम् ॥७॥

पदार्थ—मैं (**अग्नि**) उस अग्नि कहे जाने वाले ईश्वर की वन्दना करता हूँ जो (**प्रत्नम्**) पुराण तथा शाश्वत है, (**होतारम्**) दाता, (**ईड्यम्**) स्तुत्य, (**जुष्टम्**) सेवित, (**कविक्रतुम्**) महाकवीश्वर व (**अध्वराणाम्**) सारे शुभ कर्मों को (**अभिश्रियम्**) सब भाँति शोभा प्रदान करने वाला है ॥७॥

भावार्थ—ईश ही पूज्य है जो सब के मनोरथ पूर्ण कर सकता है ॥७॥

जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् ।

अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥८॥

पदार्थ—(**अङ्गिरस्तम**) हे सकल देवों में पूज्यतम तथा सर्व अङ्गों का अतिशय आनन्दप्रद रस देने वाले (**अग्ने**) सर्वाधार ! तू (**इमा**) मेरे इन (**हव्यानि**) हव्य समान स्तोत्रों के प्रति (**आनुषक**) अनुरक्त हो (**जुषाण**) इन्हें ग्रहण कर । तथा (**ऋतुथा**) ऋतु ऋतु में (**यज्ञम् नय**) यज्ञ का आयोजन करा ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर मुझे तथा सभी को ऐसी शक्ति, श्रद्धा तथा भक्ति दे जिससे सदैव सर्व ऋतु में तेरी उपासना—वन्दना कर सकें ॥८॥

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह ।

चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥९॥

पदार्थ—(**सन्त्य**) हे सेवनीय, (**शुक्रशोचे**) हे पवित्रदीप्ति परमात्मा ! तू (**समिधान उ**) सम्यक् दीप्त होता हुआ मेरे योग्य अभीष्ट (**इह**) मेरे निकट लाए क्योंकि तू (**दैव्यम् जनम्**) इस अपने सम्बन्धी जन को (**चिकित्वान्**) जानता है । अर्थात् तू मुझे जानता है अतः मेरे कल्याण का वाहन बन ॥९॥

भावार्थ—मानव प्रथम अपने को शुद्ध सत्य तथा उदार बनावे तब ईश्वर के समीप याचना करे ॥९॥

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।

यज्ञानां केतुमीमहे ॥१०॥

पदार्थ—हम उपासक परमात्मा से अभीष्ट की (**ईमहे**) याचना करते हैं जो ईश (**विप्रम्**) सर्वज्ञानमय और अभीष्ट पूरक है, (**होतारम्**) दाता, (**अद्रुहम्**) शत्रु न होने के कारण द्रोहरहित, (**धूमकेतुम**) अज्ञानावृत जनों का ज्ञानदाता, (**विभावसुम्**) सब में प्रदीपक और (**यज्ञानाम् केतुम्**) यज्ञों का ज्ञापक है । उससे हम प्रार्थना करें ॥१०॥

भावार्थ—विविध विशेषण देने का तात्पर्य यह है कि उपासक के मन में ईश्वर के गुण बैठें और वह उपासक भी सम्पूर्ण माननीय सद्गुणों से संयुक्त होवे ॥१०॥

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः ।

भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥११॥

पदार्थः—(**देव**) हे श्रेष्ठतम ! (**सहस्कृत**) संसार के निर्माता (**अग्ने**) सर्वशक्ते, सकल आधार प्रभु ! (**नः प्रति**) हम उपासना करने वालों को (**रिषतः**) हिंसक पुरुष से (**नि पाहि**) भली-भाँति बचाओ । तथा (**द्वेष**) जगत् से द्वेष करने वालों को (**भिन्धि**) विदीर्ण कर यहां से उठाओ ॥११॥

भावार्थ—प्रत्येक व्यक्ति यदि द्वेष को त्यागता जाय तो द्वेषी रहेगा कहां ! जब अपने पर विपदा आती है तब व्यक्ति ईश्वर व सत्यता को गुहार मचाता है । इस अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को विचारना चाहिए कि द्वेष कहां से उपजता है ! अपनी-अपनी भावी विपत्ति को देख यदि व्यक्ति अन्याय व असत्यता से दूर हट जाय तो कितना सुख मिले ! यही शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है ॥११॥

परमात्मा कैसे प्रसन्न हो ?

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम् ।

कविर्विप्रेण वावृधे ॥१२॥

पदार्थ—(**प्रत्नेन**) पुरातन (**मन्मना**) मननीय स्तोत्र से या मन से ध्याया गया वह (**कवि अग्नि.**) महाज्ञानी कवीश्वर सब का आधार प्रभु (**स्वाम् तन्वम्**) अपने उपासक की तनु को (**शुम्भान**) प्रकाशित करते हुए (**विप्रेण**) उस उपासक के साथ (**वावृधे**) रहता है ॥१२॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि सच्चे हृदय से व प्रेम से स्मरण करने व स्तुति करने पर वह प्रसन्न होता है और उपासना करने वाले के साथ सदा रहता है ॥१२॥

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।

अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१३॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस (**स्वध्वरे**) हिंसा से मुक्त अथवा अहिंस्य (**यज्ञे**) ध्यान यज्ञ में (**अग्निम्**) सब के आधार प्रभु की (**आहुवे**) स्तुति करता हूँ जो देव (**ऊर्जः नपातम्**) बल व शक्ति को बढ़ाता है और (**पावकशोचिषम्**) पवित्र व तेज से युक्त है ॥१३॥

भावार्थ —अध्वर तथा यज्ञ दोनो शब्दो का एक ही अर्थ है । फिर भी यहा विशेषण के रूप मे अध्वर शब्द प्रयुक्त हुआ है । इसका भाव यह है कि ईश्वर बल देने वाला है उसकी उपासना से महान् बल की प्राप्ति होती है ॥१३॥

स नो॑ मित्रमहु॒स्त्वमग्ने॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ।

दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥१४॥

पदार्थ —(मित्रमह) हे मित्रभूत जीवो द्वारा सुपूजित (अग्ने) महेश ! (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) तेजोयुक्त (सः त्वम्) वह तू (देवै.) हमारी इन्द्रियो के सहित (नः) हमारे (बर्हिषि) हृदय आसन पर (आसत्सि) आसीन हो ॥१४॥

भावार्थ —प्रभु को हृदयासन में बैठाकर ध्यान करे तथा इन्द्रियो को पहले वश मे कर उसकी स्तुति हृदय से करे ॥१४॥

यो अ॒ग्निं त॒न्वो॑३ दमे॑ दे॒वं मर्तः॑ सप॒र्यति॑ ।

तस्मा॒ इद्दी॑दय॒द्वसु॑ ॥१५॥

पदार्थ —(य मर्त) जो मृत्यु का ग्रास बनने वाला उपासक (तन्व) शरीर के (दमे) गृह मे (अग्निम् देवम्) सर्वाधार अग्निवाच्य महादेव की (सपर्य्यति) पूजा करता है, वह प्रसन्न हाकर (तस्मै इत्) उसी को (वसु) अभीष्ट धन (दीदयत्) प्रदान करता है ॥१५॥

भावार्थ - मिथ्या ज्ञान के कारण मनुष्य नाना तीर्थों मे जा उसकी वन्दना करता है व समझता है कि इन स्थानो मे वह इष्टदेव साक्षात् रहता है जिसके दर्शन पूजन आदि से सारे पाप छूटते हैं । यह मिथ्या भ्रम है । हे लोगो ! वह सर्वत्र है । [हृदय का पवित्र कर उसी को शुद्ध मन्दिर मानो ! वहां ही उसे पूजो] ॥१५॥

अ॒ग्निर्मू॒र्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्या अ॒यम् ।

अ॒पां रेतां॑सि जिन्वति ॥१६॥

पदार्थ —(अयम् अग्नि) यह सब व्यापक ईश (मूर्धा) सब का शिर है और (दिव मूर्धा ककत) द्युलोक का शिर व उससे भी ऊपर विद्यमान है और यह (पृथिव्या पतिः) पृथिवी पति है । यह (अपाम्) जल के (रेतांसि) स्थावर जगमरूप बीजो को (जिन्वति) पुष्ट करता तथा जिलाता है ॥१६॥

भावार्थः—हे लोगो ! जो परमात्मा त्रिभुवन-अधिपति व स्थावरो तथा जगमो का प्राणस्वरूप है उसकी आज्ञा मानो और उसी को जान-पहिचान कर पूजो, तथा उसकी ही स्तुति करो । अन्य की नहीं ॥१६॥

उद॑ग्ने॒ शुच॑यस्तव शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।

तव॒ ज्योतीं॑ष्य॒र्चयः॑ ॥१७॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् सर्वगति देने वाले ईश ! (तव) तेरी (अर्चय) सूर्य्यादिरूप ज्वालाए (उद् ईरते) ऊपर विस्तृत होती हैं । जो (शुचय) परम पावन है, (शुक्रा) शुक्ल है, (भ्राजन्त.) सर्वत्र दीप्त हो रही है । हे प्रभु ! (तव ज्योतींषि) आपका तेज सर्वत्र व्याप्त है ॥१७॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! ईश्वरीय तेज देखो । सूर्य्य उसकी ज्वाला है । तुम स्वय भी उसकी ज्योति हो । जिसमे सारा ज्ञान भरा है वह मानव जाति किस तरह भटक रही है ॥१७॥

ईशि॑षे॒ वार्य॑स्य॒ हि दा॒त्रस्या॑ग्ने॒ स्व॑र्पतिः ।

स्तो॒ता स्यां॒ तव॒ शर्म॑णि ॥१८॥

पदार्थ.—(अग्ने) हे प्रभु ! (हि) जिस कारण तू (स्वर्पति) सुख तथा ज्योति का अधिपति है और (वार्यस्य) वरणीय सुखदायक (दात्रस्य) दातव्य धन का (ईशिषे) ईश्वर है, अत. हे प्रभु ! मैं (तव शर्मणि) तुझ मे कल्याणस्वरूप शरण पा (स्तोता स्याम्) स्तुति पाठ करनेवाला बनू ॥१८॥

भावार्थ —जिस कारण से वह प्रभु सुख तथा प्रकाश का स्वामी है व धनो का भी स्वामी वही है अत हे मनुष्यो ! उसी की शरण मे आओ ! उसी की कीर्ति गाते हुए स्तुति पाठ करने वाले और विद्वान् बनो ॥१८॥

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिण॒स्त्वां हि॑न्वन्ति॒ चित्ति॑भिः ।

त्वां व॑र्धन्तु नो॒ गिरः॑ ॥१९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वगति प्रदान करनेवाले ! (त्वाम्)तुझे ही (मनीषिण) मनस्वी विद्वान् ध्याते है, (त्वाम्) तुझे ही विद्वद्वर्ग (चित्तिभि) चित्तो और विविध कर्मोंद्वारा (हिन्वन्ति) प्रसन्न करते हैं । अत॰ हे भगवन् ! (न.) हमारे (गिर) वचन (त्वाम्) आपकी ही कीर्ति (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥१९॥

भावार्थ —विद्वानो के लिये उचित है कि वे उसी परमात्मा की पूजा करें, कराए और उसी की कीर्ति गाए । अन्य जन भी इनका ही अनुगमन करें ॥१९॥

अद॑ब्धस्य स्व॒धाव॑तो दू॒तस्य॒ रेभ॑तः॒ सदा॑ ।

अग्ने॑ स॒ख्यं वृ॑णीमहे ॥२०॥

पदार्थः—हम उपासक (अग्ने) उस प्रभु की (सख्यम्) मैत्री को (सदा) सदा (वृणीमहे) चाहते हैं, जो ईश्वर (अदब्धस्य) अविनश्वर व शाश्वत है, (स्वधावतः) प्रकृतिधारक है, (दूतस्य) सकल दु खनिवारक है और (रेभत) जो महाकवीश्वर है ॥२०॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! उस प्रभु के साथ मित्रता करो जिससे तुम्हारा अमित कल्याण होगा । वह सदा रहने वाला है ॥२०॥

अ॒ग्निः शुचि॑व्रततमः॒ शुचि॒र्विप्रः॒ शुचिः॑ क॒विः ।

शुची॑ रोचत॒ आहु॑तः ॥२१॥

पदार्थः—(अग्नि.) वह प्रभु (शुचिव्रततम) नितान्त पवित्रकर्मा, अतिशय पवित्र नियमो की स्थापना करनेवाला है । वह (शुचिः विप्र॰) श्रेष्ठ पवित्र विद्वान् है । वह (शुचिः कवि) अतिशय शुद्ध कवि है । (शुचिः) वह महा पावन है । (आहुत) वन्दित होने पर उपासको के हृदय को पावन करता हुआ (रोचते) प्रकाशित होता है ॥२१॥

भावार्थ —परमात्मा परम पवित्र है अतः उस की उपासना भी पवित्र बन कर की जाए ॥२१॥

उ॒त त्वा॑ धी॒तयो॒ मम॒ गिरो॑ वर्धन्तु वि॒श्वहा॑ ।

अग्ने॑ स॒ख्यस्य॑ बोधि नः ॥२२॥

पदार्थ.—(अग्ने) हे सर्वगति ज्ञाता सर्वशक्तिमान् ईश ! (मम) मेरे (धीतय) सारे ध्यान, सारे कर्म और (गिर) सर्व वचन, विद्याए व स्तुतिया (त्वा) तेरी ही कीर्ति को (उप वर्धन्तु) बढ़ाए । (अग्ने) हे ईश ! (न सख्यस्य) हमारी मित्रता को (बोधि) स्मरण रखिये ॥२२॥

भावार्थ —हे लोगो ! तुम्हारे ध्यान ईश्वर के गुण बढाए, तुम्हारे वचन भी उसी की कीर्ति बढ़ाएं तथा गावें , उसी की शरण मे तुम जाओ । तभी तुम्हे वह मित्र के समान स्वीकार करेगा ॥२२॥

यद॑ग्ने॒ स्याम॒हं त्वं त्वं वा॑ घा॒ स्या अ॒हम् ।

स्युष्टे॑ स॒त्या इ॒हाशिषः॑ ॥२३॥

पदार्थ —(अग्ने) सर्वशक्तियुक्त, सर्वाधार, ईश ! (यद्) यदि (अहम्) मैं (त्वम्) तू (स्याम्) होऊ, यदि वा (अहम् स्या) तू मै हो, तब (ते) तेरे (आशिष) सारे आशीर्वचन (सत्या॰ स्यु) सत्य होवे ॥२३॥

भावार्थ —इसका तात्पर्य यह है कि मानव अपनी न्यूनता से ईश्वर से विविध प्रार्थनाए चाहता है । किन्तु अपनी सही कामना पूरी न होते देख इष्टदेव को दोष देता है । अत आकुल होकर कभी-कभी उपासक इष्टदेव से प्रार्थना करता है कि हे देव आप मेरी आवश्यकता नही समझते, यदि आप मेरी दशा मे रहे तो आपको विदित होगा कि दु॰ख क्या है ! आप ने कदाचित् दु ख कभी अनुभव नही किया, अत. आप मेरी दु.खमय प्रार्थना पर ध्यान नही दे रहे ॥२३॥

वसु॒र्वसु॑पति॒र्हि क॒मस्य॑ग्ने वि॒भाव॑सुः ।

स्याम॑ ते सुम॒ताव॒पि ॥२४॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् ईश ! (हि) जिस कारण आप (वसु) उपासको के धन तथा वास देने वाले है, (वसुपति) धनपति हैं व (विभावसु असि) प्रकाशमय धनवाले है , अतः हे भगवन् ! क्या हम उपासक (ते) तेरी (सुमतौ अपि) कल्याणमयी बुद्धि मे (स्याम) रह सकते हैं ? ॥२४॥

भावार्थ.—ईश्वर श्रेष्ठतम धन का स्वामी है ,वह नितान्त उदार है ,उसका धन प्रकाशरूप है । अत॰ हमारे लिए उचित है कि अपने शुद्धाचरण से तथा सत्यता से उसकी कृपा व आशीर्वाद के पात्र बनें ॥२४॥

अग्ने॑ धृ॒तव्र॑ताय ते समु॒द्राये॑व॒ सिन्ध॑वः ।

गिरो॑ वा॒श्रास॑ ईरते ॥२५॥

पदार्थ —(अग्ने)हे सर्वव्यापी । मुझ उपासक के (वाश्रास) इच्छुक या स्थिर (गिर) वचन (ते) आपकी ओर (ईरते) धावते हैं ,जिस आपने (धृतव्रताय) जगत् कल्याण हेतु सुदृढतर नियम स्थापित किए हैं। ऐसे ही (इव) जैसे (सिन्धव.) नदियाँ (समुद्राय) समुद्र की ओर दौड़ती हैं ॥२५॥

भावार्थ शरीर म स्थित जीव ही ईश्वर का सखा तथा सेवक है । यह स्व-स्वामी का महान् ऐश्वर्य्य चिरकाल से देखता आता है। यद्यपि शरीरबद्ध होने से कुछ काल हतु यह स्वामी से विमुख हो रहा है तथापि इसकी स्वाभाविक गति परमात्मा की ओर ही है जैसे नदिया समुद्र की ओर बहती हैं ॥२५॥

युवा॑नं वि॒श्पतिं॑ क॒विं वि॒श्वादं॑ पुरु॒वेप॑सम् ।

अ॒ग्निं शु॑म्भामि॒ मन्म॑भिः ॥२६॥

पदार्थ — मै उपासना करने वाले (अग्निम्) सर्वगत प्रभु को (मन्मभिः) मननीय स्तोत्रो से (शु भामि) सुभूषित करता हू जो ईश (युवानम्) प्रकृति व जीवों को एक साथ मिलाने वाला है, (विश्पतिम्) समस्त प्रजा का वही एक अधिपति है, (कविम्) महाकवि है, (विश्वादम्) सबका सहर्ता है । पुनः (पुरुवेपसम्) सर्वविधि कर्म करने वाला है ॥२६॥

भावार्थ—परमात्मा वह महान् देव है जो सब का अधिपति है। कर्त्ता, धर्त्ता, व संहर्त्ता भी वही है। जैसे उसे विद्वान् पूजते, गाते व उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, सब वैसा ही करें ॥२६॥

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे ।

स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥

पदार्थ—(**वयम्**) हम उपासक (**अग्नये**) सकलाधार प्रभु को (**स्तोमै**) स्तोत्रो से, स्तोत्र रूप उपहारो से (**इषेम**) प्राप्त करने के इच्छुक हों, जो ईश (**यज्ञानाम् रथ्ये**) हमारे सारे शुभ कर्मों के नायक तथा चालक हैं, (**तिग्मजंभाय**) जिसके तेज एव प्रताप अत्यन्त तीव्र हैं और जो (**वीळवे**) सर्वशक्तियुक्त हैं ॥२७॥

भावार्थ—जिस परमात्मा की कृपा से लोगो की सुकर्मों मे प्रवृत्ति होती है और यज्ञादि पूर्ण होते हैं, जिसके सूर्य्यादिक तेज व प्रताप प्रत्यक्ष हैं उसे हम उपासक शुद्धाचारो व प्रार्थनाओं के द्वारा प्राप्त होवें ॥२७॥

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य ।

तस्मै पावक मृळय ॥२८॥

पदार्थ—(**सन्त्य**) हे सर्वत्र विद्यमान (**अग्ने**) प्रभु! (**अयम्**) यह मानव समाज जो आप से विमुख हो रहा है (**त्वे अपि**) आपकी ही ओर (**भूतु**) हो और आपकी ही (**जरिता**) स्तुति करे। (**पावक**) हे परम पावन देव! (**तस्मै**) उस जन-समाज को (**मृळय**) सुख प्रदान करो ॥२८॥

भावार्थ—ईश्वर-विमुख मानव-समाज को देख विद्वान् के लिये आवश्यक है कि वह प्रयत्न करे कि लोग उच्छृखल, नास्तिक व उपद्रवी न होने पाएं क्योंकि उनसे जगत् की बड़ी क्षति होती है। जैसे राजनियमो को कार्य मे लाने के लिये पहले अनेक उद्योग करने पड़ते हैं वैसे ही धार्मिक नियमों के लिए भी ॥२८॥

धीरो ह्यस्यद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा ।

अग्ने दीदयसि द्यवि ॥२९॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे सर्वगत परमात्मा! (**हि**) जिस कारण तू (**धीर असि**) धीर एव गभीर है, (**अद्मसद्**) सबके हृदय रूपी गृह मे बसता है, (**न**) और (**विप्र.**) विशेषरूप से मनोरथ पूर्ण करता है तथा (**सदा**) सदैव (**जागृवि**) भुवन के हित हेतु जागृत रहता है। हे देव! (**द्यवि**) प्रकाशमय स्थान मे तू (**दीदयसि**) प्रदीप्त हो रहा है। अत तुझे प्रत्यक्षवत् देखकर मैं तेरा गायन करता हू ॥२९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो परमात्मा तुम्हारे कल्याण हेतु सदा जागृत है उसकी आज्ञा का पालन करो ॥२९॥

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे ।

प्र ण आयुर्वसो तिर ॥३०॥

पदार्थ—(**कवे**) हे महाकवि! (**वसो**) हे वासदाता (**अग्ने**) प्रभु! (**दुरितेभ्यः**) पापो के आने के (**पुरा**) पूर्व ही और (**मृध्रेभ्य**) हिंसको के आने के (**पुरा**) पहले ही (**न**) हमारी (**आयुः**) आयु को (**प्रतिर**) वृद्धि दो ॥३०॥

भावार्थ—आशीर्वाद की याचना की गई है। पापों तथा शत्रुओ से रक्षा के लिए केवल परमात्मा की ही शरण है और उसमे श्रद्धा और विश्वास। सब से बड़ा कर्त्तव्य उसी की आज्ञा का पालन करना है ॥३०॥

अष्टम मण्डल में चवालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वाचत्वारिंशदृचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—४२ त्रिशोकः काण्व ऋषि ॥ *१ इन्द्राग्नी । २-४२ इन्द्रो देवता* ॥ *छन्द*—*१, ३-६, ८, ९, १२, १३, १५—२१, २३—२५, ३१, ३६, ३७, ३९-४२ गायत्री । २, १०, ११, १४, २२, २८-३०, ३३-३५ निचृद्गायत्री । २६, २७, ३२, ३८ विराड्गायत्री । ७ पादनिचृद्गायत्री* ॥ *षड्जः स्वर* ॥

जीव-वर्ग ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥

पदार्थः—(**ये**) जो व्यक्ति (**आ**) भली प्रकार (**घ**) सिद्धान्त निर्धारित करके अग्निहोत्र कर्म हेतु (**अग्निम् इन्धते**) अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और जो अतिथियो, दीनो व रोगियो के लिए (**आनुषक्**) प्रेमपूर्वक (**बर्हि**) कुशा आसन (**स्तृणन्ति**) बिछाते हैं और (**येषाम्**) जिनका (**इन्द्र.**) आत्मा (**युवा**) युवा अर्थात् कार्य्य क्षम और (**सखा**) मित्र है और जिनका आत्मा अपने वश मे एव ईश्वराभिमुख है, जो दुष्टाचारी दुर्व्यसनी नहीं, वे धन्य हैं ॥१॥

भावार्थ—मानवमात्र के लिए उचित है कि वह प्रतिदिन अग्निहोत्र करे और अतिथिसेवा से कभी मुख न मोड़े और अपने आत्मा को दृढ विश्वासी और मित्र बनाए। आत्मा को कभी उच्छृखल न होने दे ॥१॥

विशेष—इन्द्र नाम जीवात्मा का भी है। इन्द्रिय शब्द ही इसका प्रमाण है। यह भी स्मरणीय है कि ईश्वर, राजा, सूर्य्य आदि जब इन्द्र शब्द के अर्थ होते है तब जिस तरह के शब्द पर्य्याय और हन्तव्य शत्रु आदि का वर्णन आता है, वैसे ही जीव प्रकरण मे भी रहेगे। हा, थोड़ा-सा भेद होगा जो सूक्ष्म विवेक से विदित होगा।

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥

पदार्थ—जिन (**एषाम्**) इन लोगों का (**इध्म**) अग्निहोत्रोपकरण समिधा इत्यादि (**बृहन् इत**) बड़ा है, जिनका (**भूरि**) बहुत (**शस्तम्**) स्तोत्र है, जिनका (**स्वरु**) सदाचाररूप वज्र या यज्ञोपलक्षक यूपखण्ड (**पृथु**) महान् है, (**येषाम् इन्द्र**) जिनका आत्मा (**युवा**) सदैव कार्य करने मे समर्थ हो (**सखा**) सखा है, वे धन्य हैं ॥२॥

भावार्थ—भगवान् का उपदेश है कि मनुष्य अपने कल्याण के लिए प्रथम अग्निहोत्रादि कर्म जरूर करे और अपने आत्मा को सदा सुदृढ बनाए रखे। इसी मे कल्याण है ॥२॥

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥

पदार्थ—(**येषाम्**) जिन व्यक्तियो का (**इन्द्र**) आत्मा (**युवा सखा**) युवा तथा मित्र है और जो अग्निहोत्र व ईश्वर की उपासनायुक्त है, वह (**अयुद्ध इत्**) योद्धा न भी हो फिर भी (**शूर**) शूरवीर होकर (**सत्वभि**) निज आत्मिक बलो की सहायता से (**युधा**) विविध योद्धाओ से (**वृतम्**) आवृत शत्रु को भी (**आजति**) दूर हटा देता है ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा की उपासना व अग्निहोत्रादि कर्म करने से आत्मा बलिष्ठ होता है और अपने समीप भी पापो को नही फटकने देता ॥३॥

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् ।

क उग्राः के ह शृण्विरे ॥४॥

पदार्थ—(**वृत्रहा**) सकल विघ्नविनाशक (**जात**) प्रसिद्ध आत्मा (**बुन्दम् आददे**) अपने सदाचार की रक्षार्थ और अन्याय को रोकने हेतु सदा उपासना व कर्मरूप बाण को हाथ मे रखता है और उसे लेकर (**मातरम्**) बुद्धिरूपा माता से (**विपृच्छत्**) पूछता है कि (**के**) कौन मेरे (**उग्रा**) भयकर शत्रु हैं और (**के ह**) कौन (**शृण्विरे**) प्रसिद्ध शत्रु सुने जाते हैं ॥४॥

भावार्थ—उपासक जब परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करता रहता है तो उसका आत्मा शुद्ध पवित्र होकर बलिष्ठ होता है। वह आत्मा अपने निकट पापो को कदापि नही आने देता है। उस अवस्था मे मानो वह अपनी रक्षा के लिये सदा अस्त्र-शस्त्रों से युक्त रहता है। उस समय मानो, यह बुद्धि से प्रश्न करता है मेरे कितने और कौन-कौन शत्रु हैं। इससे यह शिक्षा है कि आत्मा यदि तुम्हारा वास्तव मे सखा है तो उसका उद्धार करना ही परमधर्म है जो केवल कर्म व उपासना से ही सभव है ॥४॥

प्रति त्वा शवसी वदद्गिरावप्सो न योधिषत् ।

यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥५॥

पदार्थ—आत्मा स्वयं मे कहता है कि हे इन्द्र! (**त्वा**) तुझे (**शवसी**) बलवती बुद्धिरूपी माता (**प्रति वदत्**) कहेगी कि (**य ते**) जो तेरे प्रति (**शत्रुत्वम्**) शत्रुता की (**आचके**) आकाङ्क्षा करता है वह (**गिरौ**) पर्वत के ऊपर (**अप्स न**) दर्शनीय राजा के तुल्य (**योधिषत्**) युद्ध करेगा ॥५॥

भावार्थ—ईश्वर की उपासना मे जब आत्मा मे कुछ-कुछ बल आने लगता है तो वह शत्रुरहित व निश्चिन्त होने लगता है उस समय बुद्धि कहती है कि हे आत्मा! आप निश्चिन्त न हो अभी आपके शत्रु हैं वे आप से युद्ध करेंगे। ईश्वर की शरण मे वार-वार जाओ। उसकी उपासना स्तुति प्रार्थना कभी न छोड़ो ॥५॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् ।

यद्वीळयासि वीळु तत् ॥६॥

पदार्थः—(**उत**) और (**मघवन्**) हे बलयुक्त आत्मा! (**त्वम् शृणु**) तू यह सुन। (**यत्**) जो वस्तु (**ते**) तुझसे उपासना करने वाला (**वष्टि**) चाहता है (**तत्**) उस को (**ववक्षि**) उसके लिए तू ले आता है। (**यद् वीळयासि**) जिसको तू दृढ करता है (**तत् वीळु**) वही दृढ होता है ॥६॥

भावार्थः—यह समग्र वर्णन सिद्ध जितेन्द्रिय आत्मा का है, यह ध्यान रहे। इसका भाव यह है कि यदि आत्मा वश में हो व ईश्वरीय नियमवित् हो तो उस से कौन सी वस्तु प्राप्त नही होती। लोग आत्मा को नही जानते अत वे स्वयं दरिद्री बने रहते हैं। हे उपासको! अपने आत्मा को पहचानो ॥६॥

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप ।

रथीतमो रथीनाम् ॥७॥

पदार्थः—(**आजिकृत्**) प्रत्येक सांसारिक कार्य्य के साथ युद्धकृत् (**इन्द्र**) वह बलिष्ठ ईश्वर-भक्तिपरायण आत्मा (**स्वश्वयुः**) मनोरूप अश्व को चाहता हुआ (**यद्**)

जब (प्राजिम) संग्राम में (उपयाति) उतरता है तो (रथीनाम्) सब महारथों में (रथीतम) श्रेष्ठ रथी होता है ॥७॥

भावार्थ —प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव है कि उसे प्रतिदिन कितना संघर्ष करना पड़ता है । जीविका के लिये, प्रतिष्ठा व मर्य्यादा के लिये, सम्मान पाने के एवं व्यापारादि में क्यानिलाभ के लिए मनुष्य सदा युद्ध करता ही है । इन से भी अधिक उस समय घोर समर करना पड़ता है जब किसी प्रिय अभीष्ट वस्तु के लाभ की चिन्ता होती है । कितने ही युवक-युवती उसे न पाकर आत्म-हत्या करते हैं । परन्तु जब ज्ञानी आत्मा युद्ध में भी जाता है तब वह शोभित ही होता है ॥७॥

उपासक का अपनी आत्मा को समझाना ॥

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह ।
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥८॥

पदार्थः—(वज्रिन्) हे अपने शील की रक्षा के लिये महादण्डधारी मेरे आत्मा ! आप मेरी (विश्वा) समग्र (अभियुज) उपद्रवकारी प्रजा को (सु) भली प्रकार (विवृह) निर्मूल कर नष्ट कर दें जिससे वे (यथा) जैसे (विष्वक्) छिन्न-भिन्न हो नाना मार्गावलम्बी हो जाय और आप, हे अन्तरात्मा ! (नः) हमारे (सुश्रवस्तम) सुशोभित यशस्वी हो ॥८॥

भावार्थ —हमारे अन्तःकरण में प्रतिदिन ही नाना दुष्ट वासनाएं पैदा होती रहती हैं । ये हमारे महाशत्रु हैं । इन्हें ज्ञानी सुशील आत्मा अपने निकट नहीं आने देता; ऐसा आत्मा ही संसार में यशस्वी होता है । अतः हे मनुष्यो ! आत्मा में बुरी वासनाएं उत्पन्न न होने दो ॥८॥

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये ।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥९॥

पदार्थ —(इन्द्र) वह शुद्ध व दृढव्रती जीवात्मा (अस्माकम्) हमारे (सु रथम) शरीररूपी सुन्दर रथ को (सातये) अभीष्ट लाभ हेतु (पुरः कृणोतु) संसार में इस शरीर को यशस्वी बनावे । (यम्) जिस अन्तरात्मा को (धूर्तय) हिंसक पापाचार (न धूर्वन्ति) हिंसित नहीं कर पाते ॥९॥

भावार्थ —पापाचरणों से रहित जो आत्मा सदाचारों से सुभूषित और विवेकी है वही स्वाधार शरीर को जगत् में श्रेष्ठ तथा पूज्य बनाता है । अतः हे मनुष्यो ! आत्मकल्याण के मार्ग के तत्त्ववित् पुरुषों की शिक्षा का अनुसरण कर अपने को सुधारो ॥९॥

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने ।
गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥१०॥

पदार्थ —(शक्र) हे शक्तिशाली अन्तरात्मन् ! हम उपासक (ते) तेरे (द्विष) द्वेषी पापाचारों को (परि वृज्याम) पूर्णतः त्याग दें उनके निकट न जाएं किन्तु (गोमत) प्रशस्त इन्द्रियों से युक्त (ते) तेरे द्वारा किये जाने वाले (दावने) दान के हेतु (इन्द्र) हे इन्द्र ! (गमेम इत्) तेरे समीप अवश्य पहुँचें ॥१०॥

भावार्थ —अन्तरात्मा के गुणों को पहचानो । जो कोई भी इसे जान कर इसे शुद्ध बनाता व पापों से बचाता है वह इससे बहुत कुछ पाता है । हे मनुष्यो ! यह 'शक्र' है । महादण्डधारी है । इसे पापाचार से स्वभावतः घृणा है । इसकी पूजा करो ॥१०॥

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः ।
विवक्षणा अनेहसः ॥११॥

पदार्थ —(अद्रिव) हे महादण्डधर ! हम उपासक संसार के कार्य में (शनैः चित) मन्द मन्द (यान्त) चलते हुए सुखी हों (अश्वावन्त) अश्व, गौ और मेष आदि पशुओं से युक्त हों तथा (शतग्विन) शतधनोपेत यथार्थ विविध प्रकार के रत्नों से युक्त हों एवं (विवक्षणा) नित्य नवीन-नवीन वस्तुओं को प्राप्त करते हुए हम (अनेहस) उपद्रव से मुक्त हों ॥११॥

भावार्थ —हम स्व-उन्नति धीरे-धीरे करें । गौ, अश्व, मेष आदि पशुओं को भी पाल कर उनसे लाभ लें और सदा ऐसे आचार और विचार से चलें जिससे कोई उपद्रव न हो ॥११॥

इन्द्रवाच्य ईश्वर की स्तुति ॥

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता ।
जरितृभ्यो विमंहते ॥१२॥

पदार्थ —हे प्रभो ! (ते) तुम्हारे (जरितृभ्य) स्तुतिपाठकों को (दिवे दिवे) प्रतिदिन जनता अत्यधिक धन (वि मंहते) देती है, वह (ऊर्ध्वा) श्रेष्ठ व मूल्य वस्तु प्रदान करती है । (सूनृता) उनके निकट सत्यसाधन जुटाती है तथा (सहस्रा शता) नाना प्रकार के बहुविध धन जुटाती है ॥१२॥

विशेष—ये ऋचाएं अन्तरात्मा में भी घट सकती हैं । जो आत्मा सिद्ध तपस्वी जितेन्द्रिय लोकोपकारी बने उसे लोग क्या नहीं देते ! ॥१२॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम् ।
आदारिणं यथा गयम् ॥१३॥

पदार्थ —(इन्द्र) परमैश्वर्यशाली देव ! (त्वाम् विद्म हि) तुझे हम उपासक जानते हैं । आपको (धनञ्जयम्) धनंजय (दृळ्हा चित्) दृढ़ शत्रुओं का भी (आरुजम्) तोड़ देने वाले (आदारिणम्) और विदीर्ण करने वाले जानते हैं और (गयम यथा) जैसे गृह की नाना उपद्रवों से रक्षा होती हैं वैसे आप भी हमारी नाना विघ्नों से रक्षा करते हैं ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा को जानकर ही उसकी उपासना करनी अभीष्ट है । वही धन का स्वामी है अतः धन हेतु भी उसी की वन्दना करें । वह दुष्टों का दमन करने वाला है और गृहवद् रक्षक है, अतः सब कामनाओं के लिये व्यक्ति उसी के निकट जाए ॥१३॥

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः ।
आ त्वा पणिं यदीमहे ॥१४॥

पदार्थ —(कवे) हे महाकवि देव ! (धृष्णो) हे पापियों के प्रति महा-भयंकर ! यद्यपि आप (ककुहम्) महाश्रेष्ठ व सर्वोत्तम हैं तथापि (त्वम्) आपको (इन्दव) ये समस्त स्थावर तथा जंगम पदार्थ (मदन्तु) आनन्द दें । हे भगवन् ! (यद) जब हम उपासक (त्वाम् पणिम्) आपको व्यवहारकुशल जानकर (आ) आपके समीप और आपकी ओर हो (ईमहे) अपना अभीष्ट मांगें ॥१४॥

भावार्थ —प्रभु स्वयं पणि है, उसे जो तुम दोगे उसके बदले में वह भी तुम्हें कुछ देगा । अतः उसकी वन्दना करो ॥१४॥

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये ।
तस्य नो वेद आ भर ॥१५॥

पदार्थ —हे इन्द्र, हे प्रभो ! आप (तस्य) उस कंजूस का (वेद) धन (न) हमारे लिये (आभर) ले आएं (य) जो (रेवान्) धनिक होकर भी (ते) आपके उद्देश्य से दीनों के मध्य (अदाशुरि) कुछ नहीं देता, प्रत्युत (मघत्तये) धन दान करने हेतु (प्रममर्ष) अन्यान्य उदार पुरुषों की जो निन्दा करता है ॥१५॥

भावार्थ —कंजूस को धन का स्वामी न रहने दिया जाना चाहिये ॥१५॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥१६

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो ! (इमे) ये मेरे (सखाय) जनसमुदाय सखा (सोमिन) शुभकर्मी बनकर (त्वा उ) तेरी ओर निहारते हैं, तेरी ही प्रतीक्षा करते हैं । (यथा) जैसे (पुष्टावन्त) घासों से सम्पन्न स्वामी (पशुम्) अपने पशुओं की प्रतीक्षा करता है । १६॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! पहले तुम शुभकर्मी बनो फिर ईश्वर की प्रतीक्षा करो । अन्यथा वह तुम्हारा साथी न होगा । तुम सब के मित्र बनो । किसी की हानि मत सोचो । देखो, संसार में तुम्हें कितने दिन रहना है ! ॥१६॥

उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये ।
दूरादिह हवामहे ॥१७॥

पदार्थ —(उत) और (वयम्) हम पूजक (दूरात्) दूर देश से (इह) अपने अपने घर और शुभ कर्म में (त्वाम्) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं जो तू (अबधिरम्) हमारे अभीष्ट सुनने को सदा सतर्क है और इसी कारण (श्रुत्कर्णम्) श्रवणपर है और (सन्तम्) सर्वत्रव्यापक है, उस तुझे (ऊतये) अपनी रक्षार्थ बुलाता हूँ ॥१७॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! तुम्हें विदित हो कि वह बधिर नहीं, वह हमारा वचन सुनता है । प्रार्थना पर ध्यान देता है और आवश्यकता पूरी करता है । अतः उसी की स्तुति करो ॥१७॥

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत ।
भवेरापिर्नो अन्तमः ॥१८॥

पदार्थ —हे प्रभु ! (यद्) यदि आप हमारे (इमम् हवम्) इस आह्वान को (शुश्रूया) एक बार भी सुन चुके हैं तो उसे (दुर्मर्षम्) अविस्मरणीय (चक्रिया) बनाएं (उत) और (न) समग्र जनसमुदाय के आप (अन्तम) अतिशय समीपवर्ती (आपि भवे) बन्धु तथा सखा हों ॥१८॥

भावार्थ —ईश्वर को सभी अपना बन्धु व सखा बनाना चाहते हैं परन्तु वह किसका सखा बनता है ? यह बार-बार विचारना उचित है ॥१८॥

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि ।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥१९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (अपि चित्) और भी (यद्) जब-जब हम (व्यथि) कष्टों से व्यथित होते हैं तब-तब ही (ते) आपकी ओर (जगन्वांसः) जाते हुए हम (अमन्महि) आपको याद करते हैं । (इन्द्र) हे इन्द्र ! तब-तब आप (गोदा इत्) गोदाता होकर ही (न) हमारी प्रार्थना (बोधि) सुनें और उस पर ध्यान दें ॥१९॥

भावार्थः यह असन्दिग्ध है कि जब-जब मानव व्यथित होता है तब-तब ईश्वर की सहायता चाहता है परन्तु ऐसा न करके सदैव ईश्वर की आज्ञा पर चलने से ही कल्याण है ॥१९॥

आ त्वा रुम्भं न जिव्रयो ररुम्मा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥२०॥

पदार्थ.—(शवस पते) हे बलशाली ! (न) जिस प्रकार (जिव्रय) जीर्ण वृद्ध जन (रम्भम्) दण्ड को अपना सहारा बनाते हैं वैसे ही हम (त्वाम्) आपको (आ ररम्भ) अपना सहारा व आश्रय बनाते है (आ) और सदा (त्वाम्) आपको (सधस्थे) यज्ञस्थल मे (उश्मसि) चाहते है ॥२०॥

भावार्थः—हे मानवो ! ईश्वर को ही अपना सहारा बनाओ । उस पर ही भरोसा करो । प्रत्येक शुभकर्म मे उसकी उपासना अभीष्ट है ॥२०॥

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने ।

नाकिर्यं वृण्वते युधि ॥२१॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! उस (इन्द्राय) प्रभु के हेतु (स्तोत्रम् गायत) अच्छे-अच्छे स्तोत्र गाओ, (यम्) जिस इन्द्र को (युधि) युद्ध मे (नकि) कोई नहीं (वृण्वते) निवारण कर सकता यद्वा जिसे युद्ध के लिये कोई स्वीकार नहीं करता है । पुन वह इन्द्र कैसा है ? (पुरुनृम्णाय) वह सर्वधनसम्पन्न और (सत्वने) महाबलवान् है ॥२१॥

भावार्थ —युद्ध मे भी प्रभु का ही गान करें, क्योकि उसकी कृपा से वहां विजय प्राप्त होती है ॥२१॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥२२॥

पदार्थ —(वृषभ) हे उपासकगणो की मनो.कामना पूर्ण करने वाले देव ! (त्वाम् अभि) आपकी प्रसन्नता हेतु (सुते) प्रस्तुत यज्ञक्रिया मे (पीतये) मनुष्यो के पान तथा भोग के लिये (सुतम) सोमयुक्त विविध पदार्थ (सृजामि) देता हू । हे इन्द्र ! (तृम्प) उन्हे आप तृप्त करें और (मदम्) उनके आनन्द का (व्यश्नुहि) वृद्धि दें ॥२२॥

भावार्थ —मानव भांति-भांति के पदार्थों की रचना कर उन्हे प्रभु को समर्पित करे अर्थात् वे सबके उपयोग मे लाए जाए ॥२२॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३॥

पदार्थ.—हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (मूरा) मूढजन (मा दभन्) न ठगने पावें तथा (उपहस्वान·) हसी मनोरजन करने वाले भी तुम्हे (मा दभन्) न ठग पाए जब वे (अविष्यव) आपकी सहायता की इच्छा करें और हे ईश ! (ब्रह्मद्विष) प्रार्थना, ईश्वर, वेद व ब्राह्मण आदि से द्वेष रखनेवालो को आप (माकीम् वन.) कदापि पसन्द न करें ॥२३॥

भावार्थ —ससार के द्वेषी नाना पाप व अपराधो मे लिप्त रहते हैं, ईश्वरीय नियमो को तोडते हैं, वे ईश्वरभक्तो की निन्दा भी किया करते हैं किन्तु अपने पर आपत्ति आने पर प्रभु की शरण आ उन्हे भी ठगना चाहते हैं और उतने समय के लिये परमभक्त बन जाते है, अत प्रार्थना है कि ऐसे आदमी उन्नत न हो सकें ॥२३॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।

सरो गौरो यथा पिब ॥२४॥

पदार्थ.—हे प्रभु ! नितांत ऐश्वर्य सपन्न महादेव ! आपकी कृपा से (इह) इस ससार मे (त्वा) तुम्हारे उपदेश द्वारा (महे राधसे) बहुत से धनो की प्राप्ति के उत्सव के हेतु (गोपरीणसा) गौ, दुग्ध दही आदि पदार्थों से (मन्दन्तु) गृहस्थ जन परस्पर आनन्दित हो और करें । हे महान् ! (यथा) जैसे (गौरः) प्यासा मृग (सर) तालाब से जल पीता है वैसे ही आप नितांत उत्कण्ठासहित यहाँ आकर (पिब) हमारे सकल पदार्थों को देखें ॥२४॥

भावार्थ·—जब-जब नया अन्न अथवा अधिक लाभ हो तब-तब व्यक्ति को उचित है कि वे ईश्वर के नाम पर अपने परिजनो व मित्रो को बुलाकर समारोह आयोजित कर ईश्वर को धन्यवाद देवें ॥२४॥

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे ।

ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५॥

पदार्थ —(वृत्रहा) सकल विघ्न मिटाने वाले इन्द्रदेव मनुष्य को (परावति) किसी दूर देश मे या घर पर (या) जो (सना) पुराने (नवा च) और नवीन धन (चुच्युवे) प्रदान करता है (ता) उनको धनस्वामी (संसत्सु) सभाओ मे (प्र वोचत) कहे ॥२५॥

भावार्थः—प्रभु की कृपा से व्यक्ति को जो कुछ मिले उसके लिये ईश्वर को धन्यवाद दे और सभा मे ईश्वरीय कृपा का फल भी सुनाए जिससे लोगो मे विश्वास तथा प्रेम बढ़े ॥२५॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।

अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सर्वशक्तिसपन्न देव (कद्रुव) प्रकृति के इस (सुतम्) रचे गए संसार को अन्त मे (अपिबत्) पी जाता है । तब (अत्र) यहाँ (सहस्रबाह्वे) सहस्र बाहु उस ईश्वर का (पौंस्यम) परमबल (अदेदिष्ट) उजागर होता है ॥२६॥

भावार्थ —जब परमात्मा अन्त मे इस अनन्त सृष्टि को समेटता है तो अल्पज्ञ जीवो को यह देख आश्चर्य होता है । तभी उस मे जीव श्रद्धा और भक्ति व्यक्त करता है ॥२६॥

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् ।

व्यानट् तुर्वणे शमि ॥२७॥

पदार्थ —प्रभु (तुर्वशे) शीघ्र ही वशीभूत होने वाले सरल स्वभावी (यदौ) व्यक्ति म (अह्नवाय्यम्) प्रतिदिन किए (तत सत्यम्) उस सत्य को (विदान) पाकर उसके लिये (तुर्वणे) संसार-सग्राम मे (शमि) कल्याण का मार्ग (व्यानट्) प्रशस्त करता है ॥२७॥

भावार्थ —परमात्मा जिसमें सत्य पाता है उसके लिये मंगलमय मार्ग प्रशस्त करता है । अत हे मनुष्यो ! प्रतिदिन सत्य की ओर बढ़ो । असत्य मे फँस अपने को पतित न करो ॥२७॥

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।

समानमु प्र शंसिषम् ॥२८॥

पदार्थ —हे व्यक्तियो ! (व) तुम (जनानाम्) लोगो को (तरणिम्) दु खो से मुक्ति दिलाने वाले और (गोमत.) गौ, मेष आदि पशुओ से युक्त (वाजस्य) धन के(त्रदम्) रक्षक व दाता हो और (समानम् उ) सर्वत्र समान हो, उस आप की मैं (प्रशंसिषम्) प्रशस्ति करता हूँ ॥२८॥

भावार्थ —जो परमात्मा सभी का स्वामी है और जो समानरूप से सभी जगह विद्यमान व हितकारी है उस की स्तुति करता हूँ और आप लोग भी ऐसा ही करे ॥२८॥

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् ।

इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२९॥

पदार्थ —(न) पुन (उक्थेषु) भिन्न-भिन्न स्तोत्रो से युक्त शुभकर्म की प्राप्ति पर मै (ऋभुक्षणम्) महान् तथा (तुग्र्यावृधम्) जल-वर्षयिता पिता परमात्मा को (वर्तवे) ग्रहण हेतु उसकी वन्दना करता हूँ । तथा (सुते) अनुष्ठित (सोमे) सोमयज्ञ मे भी (सचा) कर्म के सहित (इन्द्रम्) इन्द्र की ही प्रार्थना करता हूँ ॥२९॥

भावार्थ —जिस प्रकार प्रत्येक लौकिक या वैदिक कर्म के समय मैं परमात्मा की वन्दना करता हूँ वैसे ही हे मनुष्यो आप भी करे ॥२९॥

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।

गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥३०॥

पदार्थः—(हि) जिस कारण से (य इत्) जो ही इन्द्रवाच्य प्रभु (त्रिशोकाय) सकल जीवो के लिये (योन्यम्) सब के कारण (पृथुम्) सर्वत्र फैलने वाले (गिरिम्) मेघ का (कृन्तत्) निर्माण करता है और (गोभ्य) उन जनो के (निरेतवे) भली-भांति चलने के लिय (गातुम्) पृथिवी का भी निर्माण करता है ॥३०॥

भावार्थ.—हे मानव ! प्रभु की महान् शक्ति पर दृष्टिपात करो ! यदि जल न होता तो इस धरती पर एक भी जीव न होता । यह उसकी कृपा है कि उसने ऐसा मेघ बनाया और उसका माग भूमि पर निर्माण किया । वह वन्दनीय है ॥३०॥

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।

मा तत्करिन्द्र मृळय ॥३१॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) नितान्त ऐश्वर्य सपन्न परम उदार देव ! (मन्दान) स्तुति पाठको पर प्रसन्न होकर उन्हे देने हेतु (यद् दधिषे) जो वस्तु आप के पास है अथवा (मनस्यसि) करने का मन मे निश्चय करते है यद्वा (प्र इयक्षसि इत्) जो वस्तु दे देते हैं (तत् मा क) वे सब आप करें या न करे किन्तु (मृळय) हमें सब प्रकार से सुख प्रदान करे ॥३१॥

भावार्थ.—तात्पर्य यह है कि हमारे लिये आप अनेक कष्ट उठाते है । हम आपसे सदैव याचना करते रहते है, आप यथाक्रम हमे दान करते रहते है । यह सब न कर आप केवल हमारे लिये उतना करें कि जिससे हमे सुख प्राप्त हो ॥३१॥

दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि ।

जिगात्विन्द्र ते मनः ॥३२॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे प्रभो ! (त्वावत) तुम से रक्षित व्यक्ति का (दभ्रम् चित् हि) नितान्त अल्प भी (कृतम्) कृत कर्म (क्षमि अधि) इस धरती पर (शृण्वे) प्रसिद्ध हो जाता है, प्रसार पाता है । इस लिए (ते मन) आपका मन अर्थात् आपकी वैसी कृपा मुझ मे भी (जिगातु) हो । मेरी भी कीर्ति धरती पर फैले, ऐसा करें ॥३२॥

भावार्थः—तात्पर्य स्पष्ट है । जिस पर प्रभु की कृपा दृष्टि होती है वह विश्वविख्यात हो जाता है । यह दृश्य देख उपासक कहता है कि हे इन्द्र ! मैं भी आपका

कृपा पात्र बन विश्वविख्यात होऊ ऐसी शुभेच्छा अनेक पुरुषो की होती है, यह मानव-स्वभाव है ॥३२॥

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः ।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३३॥

पदार्थ.—हे इन्द्र ! (यत्) आप जो कृपा कर (न) हम उपासकों को (मृळयासि) सब प्रकार सुख देते हैं। (ताः) वे (तव इत् उ) आपकी ही (सुकीर्तय) सुकीर्तियाँ (असन्) हैं (उत) और आपकी ही (प्रशस्तयः) प्रशंसाएं हैं ॥३३॥

भावार्थः—इस ऋचा का अर्थ यह है कि इन्द्र से निवेदन किया जाता है कि आप जो हमे सुखी करते हैं वह आपकी कृपा, सुकीर्ति और प्रशसा ही है ॥३३॥

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु ।

वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४॥

पदार्थ—(शूर) हे न्यायकारी महावीर ! (न) हम दुर्बलो को (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध होने पर (मा वधीः) दण्डित न करें। (द्वयो) दो अपराध होने पर (मा) हमे दण्ड न दें (त्रिषु) तीन अपराधो पर भी हमे दण्ड न दें। किंबहुना (भूरिषु) बहुत अपराध होने पर भी (मा) हमे दण्ड न देवें ॥३४॥

भावार्थः—मानव अन्त करण से कमजोर है, वह बार-बार परमात्मा के निर्देश भग करता है, इससे बात बात मे अनेक अपराध हो जाते हैं। देखता है कि इन सबके बदले मे यदि मुझको दण्ड मिला तो मैं सदा कारागार मे निगडित ही रहूँगा। अत मानव दुर्बलता के कारण ऐसी प्रार्थना होती है ॥३४॥

बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः ।

दस्मादहमृतीषहः ॥३५॥

पदार्थः—हे न्यायकारी परमात्मा ! (त्वावत) आपके तुल्य न्यायवान् से (अहम्) मैं सदैव (हि) नि सन्देह (बिभय) भयभीत रहता हूँ। हे प्रभु ! जिस कारण आप (उग्रात्) पापियो के लिए महा भयङ्कर हैं, (अभिप्रभगिण.) चारो ओर से दुष्टो को नष्ट करते हैं, (दस्मात्) पापियों को दूर भगाते हैं और (ऋतीसहः) सारे विघ्नो को दबाते हैं, अत मैं भय खाता हूँ ॥३५॥

भावार्थ—इससे पूर्व प्रार्थना की गई है कि अपराध होने पर भी आप हमे दण्ड न दें। इस पर उपासक मन मे कहता है कि हे प्रभु ! मै जान-बूझकर अपराध न करूगा। मैं आपको जानता हूँ कि आप न्यायकारी हैं। पापी आपके निकट नहीं रह पाता, अत आप से मैं भय खाता हू. आपके आदेश पर चलता हूँ, फिर भी अपराध हो जाय तो कृपया क्षमा करें ॥३५॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो ।

आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥३६॥

पदार्थ—(प्रभूवसो) हे सकल सम्पत्ति से युक्त प्रभो ! मैं (सख्यु) अपने मित्रो की (शूनम्) कमी का (मा आविदे) बोध न करूं और (पुत्रस्य) पुत्र की कमी का बोध (मा) मैं न करू ऐसी आप कृपा करें। (ते मन.) आपका मन (आवृत्वत्) मेरी प्रार्थना सुने ॥३६॥

भावार्थ—प्रत्येक व्यक्ति को उतना परिश्रम अवश्य करना चाहिये जिससे कि वह अपने घर तथा मित्रो को सुखी रख पाए। उद्योग न करने वाला आलसी पुरुष ईश्वर के राज्य में दु ख पाता है। देखो, निर्बुद्धि परन्तु परिश्रमी पक्षी कितने प्रसन्न रहते हैं ॥३६॥

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् ।

जहा को अस्मदीषते ॥३७॥

पदार्थः—(मर्या) हे मनुष्यो ! (कः नु) कौन (सखा) सखा (अमिथित·) अबाधित होने पर भी अर्थात् अकारण (सखायम्) अपने सखा को (अब्रवीत्) कहता है अर्थात् मित्र पर दोषारोपण करता है ! (क) कौन कृतघ्न सखा अपने मित्र को आपत्त मे (जहा) छोड़ता है और कौन कहता है कि (अस्मत्) हमे छोड़कर हमसे दूर (ईषते) मित्र भागा है ॥३७॥

भावार्थ—कोई भी सच्चा मित्र अपने सखा पर कभी अकारण दोषारोपण नहीं करता और न ही आपत्ति मे उसे छोडता ही है ॥३७॥

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः ।

श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८॥

पदार्थः—(वृषभ) हे सारे मनोरथ पूर्ण करने वाले प्रभु ! हमारे इस (एवारे) नितात प्रिय (सुते) शुभकर्म मे (भूरि) बहुत धन (असिन्वन्) देते हुए आप (आवय) आए। (इव) जैसे (निवता चरन्) जुआ खेलता हुआ (श्वघ्नी) जुआरी सभा स्थान मे प्रविष्ट होता है ॥३८॥

भावार्थ.—भगवान् सभी मनोरथो का दाता होने से वृषभ भी कहा जाता है। अतः हे लोगो ! उसी की सेवा करो और उसी से अपनी वाञ्छित वाली वस्तु माँगो ॥३८॥

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।

यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥३९॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (वचोयुजा) अपनी-अपनी वाणी और भाषा से युक्त (सुमद्रथो) अनादि अचलकालरूप रथ मे लगे (ते) तेरे (एते) ये प्रत्यक्ष (हरी) आपसी हरणशील स्थावर व जंगमरूप द्विविध ससार के तत्त्वो व नियम को तेरी कृपा से (आ गृभ्णे) जानता हूँ, (यद् ईम्) जिस लिए (ब्रह्मभ्य इत्) ब्रह्म के ज्ञाता पुरुषों को तू (ददः) तत्त्व जानने की शक्ति प्रदान करता है ॥३९॥

भावार्थ—प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित है कि यथासाध्य ससार के नियम व रचना आदि को जाने, विद्वानों को इस तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए ॥३९॥

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥४०॥

पदार्थः—हे विश्वम्भर ! वन्दना सुनकर (विश्वा) सारी (द्विष) द्वेष करने वाली प्रजा को (अपभिन्धि·) ससार से उठा लो और (बाधः) बाधा डालने वाले (मृध) सग्रामो को भी (परि जहि) दूर करो, (तत्) तब इस ससार मे (स्पार्हम्) स्पृहणीय (वसु) धन (आभर) भरो ॥४०॥

भावार्थः—ससार मे द्वेष करने वाली मानव जाति या पशु आदि जाति कितनी हानि करने वाली है यह स्पष्ट है और उन्मत्त स्वार्थी राजा सघर्ष कर कितनी बाधाएँ सन्मार्ग मे स्वीकारते हैं यह भी प्रत्यक्ष है. अतः इन दोनों उपद्रवों से छूटने हेतु बारबार वेद मे प्रार्थना की गई है। इन दोनो के अभाव से ही ससार सुख पाता है। इत्यादि ॥४०॥

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥४१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सर्वमगल देने वाले देव ! (यत्) जो विज्ञान अथवा धन आपने (वीळौ) सुदृढतर स्थान मे (यत्) जो धन (स्थिरे) निश्चल स्थान मे, (यत्) जो (पर्शाने) विकट स्थान मे, (पराभृतम्) रखा है (तत्) उस सब (स्पार्हम्) स्पृहरणीय (वसु) धन का इस ससार मे (आभर) भली-भांति भर दो ॥४१॥

भावार्थ—पर्वत, सागर और पृथिवी के भीतर बहुत सा धन गुप्त है। वैज्ञानिक इसे जानते हैं। विद्वानो को उचित है कि उस धन को जगत् के कल्याण हेतु प्रकाशित करें ॥४१॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥४२॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (विश्वमानुष) सकल मनुष्य (ते) आपके द्वारा (दत्तस्य) द्वारा प्रदत्त (यस्य) जिस (भूरे) बहुत दान को (वेदति) जानते हैं (तत्) उस (स्पार्हम्) स्पृहणीय (वसु) धन को ससार मे (आभर) भर दो ॥४२॥

भावार्थः—परमात्मा से अपने तथा ससार के कल्याण हेतु सदैव प्रार्थना करना अभीष्ट है ॥४२॥

अष्टम मण्डल में पैतालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदृचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-३३ *वशोऽश्व्य ऋषि* ॥ *देवताः*—१-२०, २९-३१, ३३ इन्द्रः । २१-२४ पृथुश्रवसः कानीतस्य दानस्तुति । २५-२८, ३२ वायु ॥ *छन्द*—१ *पादनिचृद्गायत्री* । २, १०, १५, २९ *विराड्गायत्री* । ३, २३ *गायत्री* । ४ *प्रतिष्ठा गायत्री* । ६, १३, ३३ *निचृद्गायत्री* । ३० *आर्चीस्वराट् गायत्री* । ३१ *स्वराड् गायत्री* । ५ *निचृदुष्णिक्* । १६ *भुरिगुष्णिक्* । ७, २०, २७, २८ *निचृद् बृहती* । ९, २६, *स्वराड् बृहती* । ११, १४ *विराड् बृहती* । २१, २५, ३२ *बृहती* । ८ *विराडनुष्टुप्* । १८ *अनुष्टुप्* । १९ *भुरिगनुष्टुप्* । १२, २२, २४ *निचृत् पङ्क्ति* १७ *जगती* । *स्वरः*—१-४, ६, १०, १३, १५, २३, २९-३१, ३३ षड्ज. । ५, १६, ऋषभ । ७, ९, ११, १४, २०, २१, २५-२८, ३२ *मध्यमः* । ८, १८, १९ *गान्धारः* । १२, २२, २४ *पञ्चमः* । १७ *निषाद.* ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।

स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१॥

पदार्थः—(पुरूवसो) हे भूरिधन हे सकल सम्पत्तिवान् ! (प्रणेतः) हे सारी निधियो व सम्पूर्ण भुवनो के विधाता ! (हरीणाम् स्थातः) आपस मे हरणशील भुवनो के अधिष्ठाता, (इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली महेश्वर ! (त्वावतः) तेरे ही उपासक (वयम् स्मसि) हम लोग हैं, अत हमारी रक्षा व कल्याण जिससे हो वैसा करें ॥१॥

भावार्थ.—परमात्मा ही सब का विधाता व कर्त्ता है, उसी के सेवक हम लोग हैं अत. उसी की उपासना स्तुति व प्रार्थना हम करें ॥१॥

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् ।

विद्म दातारं रयीणाम् ॥२॥

पदार्थ—(अद्रिव) हे महादण्डधारी प्रभो ! (सत्यम्) यह असन्दिग्ध है कि (त्वाम् हि) तुझे (इषाम् दातारम्) अन्नदाता (विद्म) हम जानते हैं तथा (रयीणाम् दातारम्) सम्पत्तिदाता (विद्म) तुझे जानते हैं ॥२॥

भावार्थ—अन्न धनों का अधिपति व दाता परमात्मा को मानकर उसी की उपासना करनी चाहिए ॥२॥

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो ।

गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥३॥

पदार्थः—(शतमूते) हे अनन्त प्रकार से रक्षा करने वाले ! (शतक्रतो) हे अनन्तकर्म से युक्त देव ! (यस्य ते) जिस तेरी (महिमानम्) महिमा को (कारव) स्तुति करने वाले (गीर्भिः) अपने-अपने गद्य-पद्यमय वचनों से (गृणन्ति) गाते हैं ॥३॥

भावार्थ—विद्वान्जन, स्तुतिपाठक व अन्यान्य आचार्य्य उसी भगवान् की स्तुति करते हैं ; अत हे मनुष्यो ! तुम सब भी उसी की महिमा का गान करो ॥३॥

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।

मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४ ।

पदार्थ –(घ) यह विषय भली-भांति विख्यात है कि (स मर्त्य) वह व्यक्ति (सुनीथ) सुयश होता है या उस के सारे वैदिक या लौकिक कर्म पुष्पित फलित होते हैं, अर्थात् वह अच्छी प्रकार जगत् मे चलाया जाता है, (यम्)जिसकी (मरुत) राज्यसेनाएं (अद्रुह) द्रोहरहित हो (पान्ति) रक्षा करे , (यम् अर्यमा) जिसकी रक्षा श्रेष्ठ पुरुष करे, (मित्र) मित्रभूत ब्रह्मवित् पुरुष जिसकी रक्षा करे ॥४॥

भावार्थः—जिस पर ईश्वर एव लोक की कृपा हो वही श्रेष्ठजन है । अत प्रत्येक को शुभकर्म मे रत रहना चाहिए । शुभकर्मों से शत्रु भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥४॥

दधानो गोमदश्ववत्सु वीर्यमादित्यजूत एधते ।

सदा राया पुरुस्पृहा ॥५॥

पदार्थ—(आदित्यजूत.) प्रभु के अनुग्रहपात्र ईश्वर के उपासक व्यक्ति जन (गोमत्) गौ आदि दुधारू पशुओ से युक्त धन प्राप्त करते हैं तथा (अश्ववत्) वहनसमर्थ गज इत्यादि पशुओ से युक्त सम्पत्ति उन्हें मिलती है । तथा (सुवीर्य्यम्) वीर पुत्र पौत्रादिको से वे सम्पन्न होते हैं और इनके साथ (एधते) संसार मे प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं और (पुरुस्पृहा) जिस धन को बहुत लोग चाहते हैं वैसे (राया) धन से युक्त हो (सदा) सदा उन्नति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो प्रभु के प्रेमी हैं वे सदैव वृद्धि पाते हैं । कारण यह है कि भक्त सभी से प्रेम रखता है, उनके सुख-दु ख मे सहभागी होता है, सत्यता से वह अणुमात्र नहीं डिगता । अत· लोगो की सहानुभूति व ईश दया से वह प्रतिदिन उन्नति करता जाता है ॥५॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् ।

ईशानम् राय ईमहे ॥६॥

पदार्थ—हम उपासक (तम् इन्द्रम्) उस परमात्मा से (दानम् राय) दातव्य धन की (ईमहे) प्रार्थना करते है जो प्रभु (शवसानम्) बल का देनेवाला (अभीर्वम्) निर्भय एव (ईशानम्) जगत् का स्वामी है ॥६॥

भावार्थ—हे लोगो ! अपनी आकांक्षाए परमात्मा के समक्ष निवेदन करो । वह उन्हें अवश्य ही पूरा करेगा ॥६॥

तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।

तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तस्मिन्) उस परमात्मा मे (विश्वाः) सकल (अभीरवः) निर्भय (ऊतय) रक्षाएं (सचा सन्ति) समवेत हैं या विद्यमान हैं। (तम्) उस (पुरूवसुम्) बहु धन व सर्वधन परमात्मा को (सप्तयः) सचलनशील (हरयः) ये सारा संसार (मदाय) आनन्द हेतु (सुतम्) इस यज्ञ मे (आवहन्तु) प्रकाशित करें ॥७॥

भावार्थः—जगदीश में सब रक्षाए विद्यमान हैं । तात्पर्य यह है कि वही सब की रक्षा कर सकता है । उसे ये ससार प्रकट कर सकते हैं ॥७॥

ईश्वरीय आनन्द का वर्णन ॥

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।

य आददिः स्व१र्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्रवाच्य प्रभु ! (य ते मदः) जो आपका आनन्द (वरेण्यः) श्रेष्ठतम और स्वीकरणीय है, (य) जो (वृत्रहन्तमः) नितान्त विघ्न नाशक है और (यः) जो (स्व आददिः) सुखदाता है (पृतनासु) सांसारिक सघर्षों में (नृभि) मनुष्यों से (दुष्टरः) नितान्त अजेय है, उस आनन्द को हम पाए ॥८॥

भावार्थ—यह शिक्षा यहां दी गई है कि मनुष्य को ईश्वरीय कार्य्य मे सदैव आनन्दित रहना चाहिए, तभी मानव सुखी रह सकता है ॥८॥

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।

स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९॥

पदार्थ—(विश्ववार) हे सर्वजन वन्दनीय सर्वश्रेष्ठ प्रभु ! जिस तेरा (य) जो आनन्द (दुस्तर) दुस्तर (श्रवाय्य.) श्रवण योग्य और (वाजेषु तरुता अस्ति) सग्रामो मे पार लगाने वाला है (स) वह तू (न) हमारे (सवना) प्रात , दोपहर तथा सायकाल के यज्ञो में (आगहि) आ और हम (गोमति व्रजे) गोसयुक्त स्थान मे या आनन्दमय प्रदेश मे (गमेम) विचरण करें ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा की वन्दना से वह आनन्द मिलता है कि जो उसे ससार-सागर से पार कर देता है । अत· शेष सब को छोड़ परमात्मा की ही स्तुति करना श्रेयस्कर है ॥९॥

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।

वरिवस्य महामह ॥१०॥

पदार्थ.—(महामह) हे महान् तम, हे श्रेष्ठतम ! हे परमपूज्य, हे महाधनेश्वर ! (यथा पुरा) पूर्ववत् (उ) इस समय भी (नः) हम उपासको को (गव्या) गो धन देने की इच्छा से (उत) और (अश्वया) अश्व देने की इच्छा से (रथया) रथ देने की इच्छा से (वरिवस्य) यहां कृपाकर पधारें ॥१०॥

भावार्थ—ईश्वर के पास सब पदार्थ हैं ; वह कितना महान् है यह मानव की बुद्धि मे नही आ पाता , उसके पास कितना धन है उसकी न तो गणना हो पाती है और न मानव-मन ही वहां तक पहुँच पाता है । अत उसके साथ महान् आदि शब्द लगाय जाते हैं । इस ऋचा मे यह बताया गया है कि जब वह इतना महान् है तो उसे छोड़ दूसरों से मत मांगो । गो, अश्व और रथ आदि पदार्थ गृहस्थाश्रम के लिए परमोपयोगी हैं, अत इनकी प्राप्ति के लिए बहुधा प्रार्थना आती है ॥१०॥

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।

दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥११॥

पदार्थः—(शूर) हे महेश ! (ते) तेरे (राधसः) पूज्य धन की (अन्तम्) अन्त मे उपासना करने वाला (सत्रा) सत्य ही (नहि विन्दामि) नहीं पाता हू, अतएव (मघवन्) हे महाधनेश (अद्रिवः) हे महादण्डधर ! (नू चित्) शीघ्र ही (न) हमे (दशस्य) दान दे व (वाजेभि) ज्ञान तथा धन से हमारे (धिय) कर्मों की (आविथ) रक्षा कर ॥११॥

भावार्थः—यह स्पष्ट ही है कि परमात्मा के धन का अन्त नही । ईश्वर से हम उपासक अपनी आवश्यकता निवेदन करें और उसी की इच्छा पर छोड़ दें ॥११॥

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।

तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥१२॥

पदार्थ.—(य) जो इन्द्रवाच्य प्रभु (ऋष्वः) प्रकृति मे दृश्य है या जो नितान्त दर्शनीय है या महान् है , जो (श्रावयत्सखा) उपासकों का सुविख्यात मित्र है , जिसके सखा या उपासक उसके यशो को सुनाते हैं , (स) वह इन्द्र (विश्वा इत्) सभी (जनिमा) जन्म (वेद) जानता है अर्थात् सारे प्राणियों का जन्म जानता है । पुन वह (पुरुष्टुत) बहुतो से स्तुत है (तम् तविषम्) उस महाबल (इन्द्रम्) ईश्वर को (विश्वे मानुषाः) सभी लोग और (यतस्रुच) सर्व याज्ञिक (युगा) सदैव (हवन्ते) वन्दना करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा की उपासना सभी आदिकाल से करते आए है आज भी उसी की वन्दना करो, वह चिरन्तन है ॥१२॥

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरः स्थाता ।

मघवा वृत्रहा भुवत् ॥१३॥

पदार्थ—(सः) वह इन्द्र नामधारी प्रभु (नः) हमारे (वाजेषु) सांसारिक तथा आध्यात्मिक आदि विविध सघर्षों मे (अविता) रक्षक (भुवत्) हो जिसके (पुरूवसु) बहुत धन है , (पुर स्थाता) जो सब के आगे खड़ा है अर्थात् जो सर्वत्र व्यापक है । (मघवा) जिसका नाम ही धनवान् है जो (वृत्रहा) सारे विघ्नों को हरता है, वह हमारा रक्षक और पूज्य हो ॥१३॥

भावार्थः—संकट में परमात्मा ही रक्षक है, वही धन का स्वामी है, उसी की वन्दना प्रार्थना करो ॥१३॥

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।

इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (व) आप लोगों को जब-जब (अन्धस मदेषु) अन्न का आनन्द मिले अर्थात् ऋतु-ऋतु मे जब-जब अन्न की फसल हो तब-तब (गिरा) अपनी वाणी से (इन्द्रम्) परमात्मा का (अभि गायत) भली-भांति गान करो । जो (वीरम्) महावीर, (महा) महान्, (विचेतसम्) व महा प्रज्ञान है, (नाम श्रुत्यम्) जिसका नाम श्रवणयोग्य है । पुन (शाकिनम्) जो सब कुछ करने मे समर्थ है, जिसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं, (वचः यथा) जहां तक वाणी की गति हो वहां तक हे लोगो ! उसका गुण गान करो ॥१४॥

भावार्थ —परमात्मा की कृपा से जब-जब कुछ लाभ मिले तब-तब ईश्वर के नाम पर समारोह हो । सब मिलकर उसकी कीर्ति गाएं ॥१४॥

दुदी रेक्णस्तन्वे॑ दुदिर्वसु॑ दुदिर्वाजे॑षु पुरुहूत वाजिन॑म् ।

नूनमथ॑ ॥१५॥

पदार्थ —(**पुरुहूत**) हे सर्वमानवसुपूजित देव ! मेरे (**तन्वे**) शरीर के पोषण हेतु तू (**रेक्णः**) धन का (**ददिः**) दान दे ; (**वसु ददिः**) कोश दे , (**वाजेषु**) संग्राम होने पर (**वाजिनम्**) नाना प्रकार के अश्व आदि पशु (**ददिः**) दे । ये सब (**नूनम्**) निश्चय करके दे (**अथ**) और भी जो आवश्यकता हो उसे भी तुम पूर्ण करो ॥१५॥

भावार्थ.—आपत्ति एवं सम्पत्ति दोनों के समय में ईश्वर की वन्दना और प्रार्थना करनी चाहिए ॥१५॥

विश्वे॑षामिरज्यन्तं॒ वसू॑नां सासह्वांसं॑ चिदुस्य वर्प॑सः ।

कृपयतो नूनमत्यथ॑ ॥१६॥

पदार्थः—हम उपासक (**विश्वेषाम् वसूनाम्**) सारी सम्पत्तियों के (**इरज्यन्तम्**) स्वामी प्रभु की वन्दना प्रार्थना करते हैं जो (**सासह्वांसम्**) हमारे सारे विघ्नों रोगों व मानसिक क्लेशों को दूर करने वाला है । जो (**अस्य वर्पसः चित्**) इस संसार के सब रूपों का स्वामी है । जो रूप (**नूनम्**) इस समय या (**अथ**) आगे (**अति कृपयतः**) होने वाला है उस सबका भी वही स्वामी है ॥१६॥

भावार्थ —परमात्मा सर्वसम्पत्ति और सर्वरूपरंगों का नायक है उसकी वन्दना हम करते हैं और इसी प्रकार सभी करें ॥१६॥

महः सु वो॒ अर॑मिषे स्तवा॑महे मी॒ळ्हुषे॑ अरङ्गमाय॒ जग्म॑ये ।

यज्ञेभि॑र्गीर्भिर्विश्वम॑नुषां म॒रुता॑मियक्षसि॒ गाये॑ त्वा॒ नम॑सा गि॒रा ॥१७॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! हम उस इन्द्र की (**स्तवामहे**) वन्दना करते हैं जो (**मीळ्हुषे**) सकल कल्याणों की वर्षा करता है । पुनः (**अरङ्गमाय**) जो अतिशय भ्रमण करता है और (**जग्मये**) भक्तों के निकट जाना जिसका स्वभाव है । हे भगवन् तू (**विश्वमनुषाम्**) सारी मनुष्यजातियों में और (**मरुताम्**) वायु आदि देवजातियों में (**इयक्षसि**) पूज्य तथा वन्दनीय है । हे ईश ! (**यज्ञेभिः**) यज्ञों में (**गीर्भिः**) अपनी अपनी भाषा से, (**नमसा**) नमस्कार से, (**गिरा**) स्तुति से (**त्वा**) तुझे ही (**गाये**) मैं गाता हूं, हम सब तेरा गुणगान करते हैं ॥१७॥

भावार्थ —उसी प्रभु का सब गुणगान करें जो परमपूज्य व वन्दनीय है ॥१७॥

ये पा॒तय॑न्ते॒ अज्म॑भि॒र्गिरी॑णां॒ स्नुभि॑रेषाम् ।

य॒ज्ञं म॑हि॒ष्वणी॑नां सु॒म्नं तु॑वि॒ष्वणी॑नां॒ प्राध्व॒रे ॥१८॥

पदार्थ - (**ये**) जो वायु पृथिवी सूर्यादिक देव (**अज्मभिः**) अपनी शक्तियों से हमारे उपद्रवों को (**पातयन्ते**) दूर गिराते हैं और जो देव (**एषाम**) इन (**गिरीणाम्**) मेघों के (**स्नुभिः**) प्रसरणशील जल से हमारे दुर्भिक्षादि दूर करते हैं, हे मनुष्यो ! उन देवों का (**अध्वरे**) संसाररूप यज्ञक्षेत्र में (**यज्ञम्**) दान तथा (**सुम्नं**) सुख हम पाते हैं (**महिष्वणीनाम्**) जिनकी ध्वनि महान् है, पुनः (**तुविष्वणीनाम्**) जिनकी ध्वनि अत्यधिक है ॥१८॥

भावार्थ —यहां इन्द्र सम्बन्धी कार्य्यों का वर्णन है । पृथिवी, जल, वायु, सूर्य आदि पदार्थ उसी के कार्य हैं । यहां दिखाया गया है कि इसके कार्य्यों से लोगों को सुख व दान मिल रहे हैं । प्रत्येक ईश्वरीय पदार्थ से लाभ प्राप्त होता है, यह जान कर उसे धन्यवाद दो ॥१८॥

प्र॒भ॒ङ्गं दु॑र्मती॒नामि॑न्द्र शविष्ठा भ॑र ।

र॒यिम॒स्मभ्यं॒ युज्यं॑ चोदयन्मते॒ ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते ॥१९॥

पदार्थ - (**इन्द्र**) हे सर्वसम्पत्तिशाली ! (**शविष्ठ**) हे महाबली ! (**दुर्मतीनाम**) दुष्ट जनों के और निकृष्ट बुद्धियों के (**प्रभङ्गम्**) भञ्जक पदार्थ हमें (**आभर**) प्रदान कर । (**चोदयन्मते**) हे शुभकर्मों में बुद्धिप्रेरक देव ! (**युज्यम्**) सुयोग्य उचित (**रयिम्**) धन (**अस्मभ्यम्**) हमें दे । (**चोदयन्मते**) हे ज्ञान-विज्ञानप्रेरक ! हे चैतन्यप्रद ! (**ज्येष्ठम्**) श्रेष्ठ प्रशस्त हितकारी वस्तु हमें दे ॥१९॥

भावार्थ —दुर्जनों व नीच बुद्धि वालों से जगत् की बहुत हानि होती है । अतः विद्वानों को उचित है कि सुबुद्धि और सुजन जगत् में उत्पन्न करें ॥१९॥

स॒नि॒तः सुस॑नितरुग्र॒ चित्र॒ चेति॑ष्ठ॒ सूनृ॑त ।

प्रा॒स॒हा स॑म्राट् सहु॑रिं॒ सह॑न्तं भु॒ज्युं वाजे॑षु॒ पूर्व्य॑म् ॥२०॥

पदार्थः—(**सनित**) हे देने वाले ! (**सुसनित**) हे परमदानी ! (**उग्र**) हे उग्र ! (**चित्र**) हे चित्र आश्चर्य ! (**चेतिष्ठ**) हे चेतानेवाले ज्ञानविज्ञानदाता ! (**सूनृत**) सत्यस्वरूप ! (**प्रसहा**) हे विघ्नविनाशक ! (**सम्राट**) हे महाराज ! तू (**सहुरिम्**) सहनशील (**सहन्तम्**) दुःख दूर करने वाला (**भुज्यम्**) भोग्योचित (**पूर्व्यम्**) पुरातन पूर्ण धन दे ॥२०॥

भावार्थः—उपासना करने वालों के हृदय में ईश्वरीय गुण प्रवेश पाएं, अतः नाना विशेषणों के द्वारा यही वर्णन किया गया है ॥२०॥

जिन लोगों पर ईश्वर की कृपा है उनका वर्णन ॥

आ स ए॑तु॒ य ईव॒दाँ अदे॑वः पू॒र्तमा॑द॒दे ।

यथा॑ चि॒द्वशो॑ अश्व्यः पृ॑थु॒श्रव॑सि कानी॒ते॒३॑ऽस्या व्युष्या॑द॒दे ॥२१॥

पदार्थ —(**सः**) वे सुप्रसिद्ध विद्वज्जन (**आ एतु**) इतस्ततः उपदेश हेतु आएं और जाएं (**य अदेव**) जो देव-भिन्न मनुष्य (**ईवत**) व्यापक हैं सर्वत्र जाने में समर्थ हैं और (**पूर्तम्**) परिपूर्ण प्रभु को (**आददे**) स्वीकारते हैं अर्थात् ईश्वरीय आज्ञा पर चलते हैं वे विद्वान् इस प्रकार भ्रमण करें कि (**यथा चित्**) जिस तरह (**अश्व्य**) कर्मफलभोक्ता (**वशः**) वशीभूत जीवात्मा (**कानीते**) वाञ्छनीय (**पृथुश्रवसि**) महायशस्वी ईश्वर के निकट (**अस्याः**) इस प्रभातवेला के (**व्युष्टौ**) प्रकाश में (**आददे**) उसकी महिमा को ग्रहण कर पाए ॥२१॥

भावार्थ —विद्वान् ऐसे उपदेश करें जिससे जीवगण ईश्वर की ओर अपना ध्यान लगा सकें ॥२१॥

ष॒ष्टिं स॒हस्राश्व्य॑स्या॒युता॑सनमुष्ट्रा॑णां विंश॒तिं श॒ता ।

दश॒ श्यावी॑नां श॒ता दश॒ त्र्य॑रुषीणां॒ दश॒ गवां॑ स॒हस्रा॑ ॥२२॥

पदार्थ —परमात्मा की कृपा से मैं उपासक (**अश्व्यस्य षष्टिं सहस्रा**) ६०००० घोड़े (**असनम्**) रखता हूँ, (**अयुता**) अन्यान्य पशु मेरे निकट कई एक अयुत हैं (**उष्ट्राणाम् विंशतिम् शता**) बीस शत ऊंट हैं (**श्यावीनाम् दश शता**) दश शत घोड़ियाँ मेरे पास हैं । (**त्र्यरुषीणाम्**) तीन स्थानों में श्वेत चिह्नवाली (**गवाम्**) गाएं (**दश सहस्रा**) दश सहस्र हैं ॥२२॥

भावार्थ —जिन राजा महाराजा आदि के पास इतने पशु हों, वे ही इन मन्त्रों का उच्चारण कर परमात्मा की स्तुति करें । उसका आभार व्यक्त करें ॥२२॥

दश॑ श्या॒वा ऋ॒धद्र॑यो वी॒तवा॑रास आ॒शवः॑ ।

म॒थ्रा ने॒मिं नि वा॑वृतुः ॥२३॥

पदार्थ —उस प्रभु की कृपा से (**दश**) दश (**श्यावाः**) श्याव वर्ण के (**आशवः**) तीव्र अश्व (**नेमिम्**) रथनेमि को (**नि वावृतुः**) ले कर चलते हैं अर्थात् मेरे रथ में दश अश्व जोते जाते हैं जो (**ऋधद्रयः**) बड़े वेगवान् हैं (**वीतवारासः**) जिनकी पूंछें बड़ी लम्बी हैं और (**मथ्राः**) जो रण में शत्रु को मथ देते हैं ॥२३॥

भावार्थ —जिनके पास इस प्रकार के अश्व आदि सामग्री हो वे ऐसी प्रार्थना करें ॥२३॥

दाना॑सः पृथु॒श्रव॑सः कानी॒तस्य॑ सु॒राध॑सः ।

रथं॑ हिर॒ण्ययं॒ दद॒न्मंहि॑ष्ठः सू॒रिर॑भू॒द्वर्षि॑ष्ठमकृत॒ श्रवः॑ ॥२४॥

पदार्थ —हे मानवो ! (**पृथुश्रवसः**) महान्तम कीर्ति (**कानीतस्य**) कमनीय (**सुराधसः**) परम धनाढ्य उस प्रभु के (**दानासः**) दान अनेक व असीम हैं । मुझे (**हिरण्ययं रथम्**) सुवर्णमय रथ (**ददत्**) देता हुआ (**मंहिष्ठः**) परमपूज्य होता है । हे मनुष्यो ! वह (**सूरिः**) सर्व प्रकार के धन का प्रेरक है । (**वर्षिष्ठम् श्रवः अकृत**) उपासकों के महान् यश को भी वह प्रसारित करता है ॥२४॥

भावार्थ.—लोग परमात्मा से याचना करते हैं परन्तु उसके दान नहीं जानते । उसकी कृपा व दान असीम हैं । वह सुवर्णमय रथ देता है जो शरीर है । इससे जीव सब कुछ पा सकता है उसे धन्यवाद दो ॥२४॥

आ नो॑ वायो म॒हे तने॑ या॒हि म॒खाय॒ पाज॑से ।

व॒यं हि ते॑ चकृ॒मा भूरि॑ दा॒वने॑ स॒द्यश्चि॒न्महि॑ दा॒वने॑ ॥२५॥

पदार्थ —(**वायो**) हे सर्वगते, सर्वशक्ते ! आप (**नः**) हमारे (**महे तने**) महान् विस्तार हेतु, (**मखाय**) यज्ञ हेतु (**पाजसे**) बल हेतु (**आ याहि**) हमारे गृह पर हृदय में व शुभकर्मों में आएं । आप (**भूरि दावने**) बहुत अधिक देने वाले हैं आप (**महि दावने**) महान् वस्तु देते हैं, हे भगवन् (**सद्य चित्**) सर्वदा (**ते**) उस आपके लिये (**वयम् हि**) हम लोग (**चकृम**) वन्दना करते हैं, आप की यशोगाथा गाते हैं ॥२५॥

भावार्थ —वह परमात्मा हमारी सारी आवश्यकताओं को जानता और यथा-काम पूरा करता है । उससे बढ़कर कौन दानी है । हे मनुष्यो ! उसी परमात्मा की स्तुति करो ॥२५॥

यो अश्वे॑भि॒र्वह॑ते॒ वस्त॑ उ॒स्रास्त्रिः स॒प्त स॑प्तती॒नाम् ।

ए॒भिः सोमे॑भिः सोम॒सुद्भिः॑ सोमपा दा॒नाय॑ शुक्रपूतपाः ॥२६॥

पदार्थ —(**यः**) जो ईश (**अश्वेभिः**) संसार के साथ ही (**वहते**) वहता है या इस जगत के साथ ही सब कार्य कर रहा है जो (**उस्राः**) प्राणियों की इन्द्रियों में व्याप्त या विद्यमान है जो इन्द्रिय (**त्रिः सप्त**) त्रिगुण सात हैं (**सप्ततीनाम्**) ७० [सत्तर] के जो (**एभिः**) इन सोम प्रभृति ओषधियों सहित और (**सोमसुद्भिः**) उन ओषधियों को काम में लाने वाले प्राणियों सहित मौजूद है । (**सोमपा**) हे सोमरक्षक (**शुक्रपूतपा**) हे शुचि व पवित्र जीवों के रक्षक ! (**दानाय**) महादान हेतु आप यह रचना रचते हैं ॥२६॥

भावार्थ—मनुष्य की सभी इन्द्रिय-शक्तियों का मूल स्रोत स्वयं विश्वस्रष्टा परमेश्वर ही है ॥२६॥

यो मे इम चिदु त्मनामन्दच्चित्र दावने ।

अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥२७॥

पदार्थः—(य) जो (सुक्रतु) अपनी सुप्रज्ञा व शुभकर्मों के द्वारा सुबुद्धि व सुकर्मों का प्रेरक प्रभु (अरट्वे) [अ-लट्वे] बाल्यपन से मुक्त, (अक्षे) व्यवहार कुशल [ऋ० द०], (सुकृत्वनि) शुभ कर्म करने का सकल्प धारण किये हुँ (नहुषे) मनुष्य मे (सुकृत्तराय) और अधिक सुष्ठकर्म की प्रवृत्ति हेतु तथा (दावने) दानशीलता बढ़ाने के लिये (मे) मेरे (इम) इम पूर्ववर्णित (चित्र) आश्चर्यजनक रूप से भांति-भांति के ऐश्वर्य का (त्मना) स्वत (अमन्दत्) भोग कराता है ॥२७॥

भावार्थ—परमात्मा ने ससार मे सुकर्म करने वाले को जो भोगसाधन दिए हुए हैं, वे सब साधन इस प्रयोजन से दिए हैं कि उपभोक्ता खुद भी दानी बने ॥२७॥

उचथ्ये३ वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।

अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्मः तदिदं नु तत् ॥२८॥

पदार्थ—(वायो) हे जगद्नियन्ता ! (यः) जो आप (उचथ्ये) प्रशमनीय, स्तुत्य (वपुषि) इस आश्चर्यजनक प्रपञ्च मे (स्वराट्) स्वय अध्यक्षवत् आसीन हैं (उत) और (घृतस्ना) ज्ञानरूप प्रकाश देते है । वह आप साधक को उसकी (अश्वेषित) आशुगति प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित, (रजेषित) अनुराग तथा तन्मयता प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित एव (शुनेषित) परमानन्द प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित (अज्म) भाग्य का (प्र) प्रदान करते है, (नु) निश्चय ही (इद) यह मुझे प्राप्त हुए सब भाग्य (तत्, तत्) वही वही ही है ॥२८॥

भावार्थ—सकल आश्चर्यजनक प्रपञ्च (ससार) का रचने वाला परमेश्वर ही इसका एकमात्र प्रभाव है, उसने ही सारे भोग साधक को दिए है—और ये सब भोग साधक को गतिशीलता, तन्मयता और परमानन्द देते हैं ॥२८॥

विशेष—सूक्त के २५ से २८ तक के मन्त्रो का देवता 'वायु' है। वायु का अर्थ यहाँ—'नियन्ता' है। परमेश्वर ने ऐश्वर्य देकर मनुष्य को सामर्थ्य दी है परन्तु इस शर्त सहित कि यह सारा ऐश्वर्य अभावपीडितो की पीडा मिटाने के लिये हो। यही भाव अगले मन्त्रो मे है ॥२८॥

अधं प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् ।

अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥२९॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर मैं इन्द्र, वैभवयुक्त व्यक्ति (वृष्णां) बलशाली (अश्वानां) अश्वो के (न) तुल्य बलशाली (सहस्रा षष्टि) साठ सहस्र धनो से विभिन्न प्रकार के भौतिक, शारीरिक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक इत्यादि पदार्थों से निर्मित ऐश्वर्य को, जो (इषिराय) इच्छुक, अभावग्रस्त के लिए (प्रिय) अभीष्ट है, उसे मै (असनम्) सेवन करू ॥२९॥

भावार्थ—इन्द्र का ऐश्वर्य, अभिलाषितो व अभावग्रस्तो की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही सचित हो ॥२९॥

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥३०॥

पदार्थ—(वध्रय) अतिवृद्ध [ऋ० द०] बैल (न) जैसे (गावः) गायो के अपने (यूथ) समूह का (उप यन्ति) आश्रय लेते है, ऐसे ही (वध्रय) [धन आदि मे] निबल जन (मा उपयन्ति) मेरा आश्रय ग्रहण करते है ॥३०॥

भावार्थ—वैभवशाली लोग यह समझे कि निर्धन जनो का भरण-पोषण करना उनका कर्त्तव्य है ॥३०॥

अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् ।

अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥३१॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (यत्) जब (चारथे) अपने चलते हुए (गणे) समूह मे से (शत, उष्ट्रान्) सैकड़ो ऊटो को (अध) और उसके बाद (श्वित्नेषु) शुभ्रवर्ण के पशुओं मे से (विंशति शता) दो सहस्रो का (अचिक्रदत्) आह्वान करता है ॥३१॥

भावार्थ—वैभवसपन्न व्यक्ति (इन्द्र) अपने यहा एकत्रित ऊट आदि पशुओ में से अनेक को दान करने का संकल्प व्यक्त करता है ॥३१॥

शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।

ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥३२॥

पदार्थ—(बल्बूथे) बलवान् के (शत दासे) सैकडो पदार्थों के वैभव दाता होने पर (तरुक्ष) तारक (विप्रः) बुद्धिमान् उस वैभव को (आ, ददे) स्वीकार करता है। हे (वायो) नियन्ता ! (ते ते) वे (इमे) और ये सब (ते जनाः) तेरे उपासक (इन्द्रगोपा) ऐश्वर्यशाली द्वारा रक्षा होकर (मन्दन्ति) प्रसन्न रहते हैं और (देवगोपा) विद्वानों के द्वारा सुरक्षित हुए (मदन्ति) आनन्द भोगते है ॥३२॥

भावार्थः—प्रभु की प्रेरणा से राजा आदि ऐश्वर्यशाली वीरो से धनादि ऐश्वर्य उपलब्ध करने वाले साधक सब प्रकार से सुरक्षित रहते हैं ॥३२॥

अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् ।

अधिरुक्मा वि नीयते ॥३३॥

पदार्थ—(अध) वैभव दिलाने के बाद (मही) महती पूज्या (प्रतीची) अनुकूल (स्या) प्रसिद्ध (अधिरुक्मा) सुवर्णालङ्कार से विभूषित (योषणा) स्त्री (अश्व्य वश) सयमी विद्वान् की ओर (विनीयते) विनयपूर्वक भेजी जाती है ॥३३॥

भावार्थ—ज्ञान, अन्न, यश आदि की यथेच्छ प्राप्ति के बाद ही व्यक्ति को अनुकूल एव विनयी स्त्री से विवाह करना उचित है ॥३३॥

अष्टम मण्डल मे छियालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१८ त्रित आप्त्य ऋषि ॥ १—१३ आदित्या । १४—१८ आदित्या उषाश्च देवते ॥ छन्द —१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ९, १३, १५, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ १४ त्रिष्टुप् ॥ स्वर —१, ४, ६—८, १२ निषाद । २, ३, ५, ९ –११, १३—१८ धैवत ॥

श्रेष्ठ नरो की स्तुति

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे । यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१॥

पदार्थ—(वरुण) हे वरणीय राज प्रतिनिधि ! (मित्र) हे ब्राह्मण प्रतिनिधि हे अन्यान्य श्रेष्ठ मानवो ! (महताम् व) आप बहुत बड़े हैं और (दाशुषे) सज्जन, न्यायी व परोपकारी के लिये आप का (अव) रक्षण भी (महि) महान हैं (आदित्या) हे सभाध्यक्ष पुरुषो ! (यम्) जिसको (द्रुह) द्रोहकारी दुष्ट से बचा कर (अभि रक्षथ) आप सब प्रकार उसकी रक्षा करते है (ईम्) निश्चय ही उसको पाप क्लेश व उपद्रव आदि (न नशत) प्राप्त नही होता, क्योकि (व ऊतय) आप की सहायता, रक्षा तथा निरीक्षण (अनेहस) निष्पाप, निष्कारण एव हिंसा से रहित है, (व ऊतय सु ऊतय) आपकी सहायता सुसहायता है। (व ऊतयः) आपकी रक्षा भी प्रशसनीय है ॥१॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ऋचा का आशय यह है कि मनुष्य के प्रत्येक वर्ग के मुख्य-मुख्य पुरुष राष्ट्र-सभासद् हो और निरपेक्ष तथा नि स्वार्थ भाव से मानव जाति की हित-चिन्ता मे रत रहे और जो सर्वोत्तम कार्य करके अपने प्रतिवासियो, ग्रामीणो तथा देश वासियो को विशेष लाभ पहुँचाते हो उन्हे सदैव पारितोषिक दान दिया जाए। देश मे पाप उदय न हो इसका सदैव प्रयत्न करना चाहिये ॥१॥

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् । पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥२॥

पदार्थ—(देवा) हे दिव्यगुणयुक्त जनो ! (आदित्या) हे सभाध्यक्षो ! हे माननीय श्रेष्ठ जनो ! आप (अघानाम) सारे पाप दुर्भिक्ष रोगादि क्लेशो को (अपाकृतिम विद) दूर करने मे समर्थ हो। इसलिये (यथा) जैसे (वय) पक्षी (उपरि) अपने छौनो पर (पक्षा) रक्षार्थ दोनो पख फैलाते है वैसे ही (अस्मे) हमारे ऊपर आप (शर्म) मगलमय कल्याणकारी रक्षण (वि यच्छत) फैला दे (अनेहस) पूर्ववत् ॥२॥

भावार्थ—विद्वानो व सभासदो तथा श्रेष्ठ पुरुषो को उचित है कि उपद्रवो की शान्ति का उपाय समझें और उसे क्रियान्वित करें ॥२॥

व्यस्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन । विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥३॥

पदार्थ—हे सभा प्रमुख ! (न वय पक्षा) जैसे पक्षी अपने बच्चों के ऊपर पंख रखते हैं वैसे ही आप (अस्मे अधि) हम लोगों पर (तत् शर्म) उस कल्याण को (वि यन्तन) विस्तीर्ण करें (विश्ववेदस) हे सर्वधनसपन्न श्रेष्ठ जनो ! हम प्रजागण (विश्वानि) सकल (वरूथ्या) गृहोचित धन की (मनामहे) आपसे कामना करते हैं, कृपाकर उन्हे पूरा करें। (अनेहस) पूर्ववत् ॥३॥

भावार्थ—श्रेष्ठ सभासदो का यह कर्त्तव्य है कि वे जनसाधारण की सदैव सहायता करें ॥३॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः । मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥

पदार्थ—(प्रचेतस) ज्ञानीजन व सभासद् (यस्मै) जिस सज्जन को (क्षयम्) निवास के लिये गृह (च) और (जीवातुम्) जीवन साधन उपाय (अरासत) प्रदान करते हैं (घ इत्) निश्चय (इमे आदित्या) ये सभासद् उस (विश्वस्य मनो) सब कृपापात्र लोगो के (राय.) धन पर (ईशते) अधिकार भी रखते हैं ॥४॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि सभासद् जिस पारितोषिक के रूप मे धनादि दें उसके धन की वे रक्षा करें ॥४॥

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥५॥

पदार्थ.—(यथा) जैसे (रथ्य) रथी=रथ चलाने वाला (दुर्गाणि) दुर्गम, ऊंचे नीचे मार्गों को छोड़ देता है वैसे ही (न) हम लोग (अघा) पाप, रोग, अविमनस्कता आदि क्लेश (परि वृणजन) छोड़ दें । अर्थात् हमारे पास क्लेश न आने पायें—इसके लिये (इन्द्रस्य) परमात्मा या सभाध्यक्ष के (शर्मणि) मंगलमय शरण मे (स्याम इत्) सदा रहे तथा (आदित्यानाम्) सभासदो के (अवसि) रक्षण व सहायता मे सर्दव स्थित रहे । ॥५॥

भावार्थ—हम सदैव ईश्वर आचार्य्य, गुरु, श्रेष्ठजनो तथा धर्मात्मा सभी प्रमुखो के संग निवास करें जिससे पाप और आपत्तियाँ हमारे निकट न आए ॥५॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति । देवा अदभ्रमाशवो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥६॥

पदार्थ.—हे सभाध्यक्षो ! (परिह्वृता इत्) कष्ट से ही (अना) प्राण धारण करता हुआ (जन) जन (युष्मादत्तस्य) आप से पुरस्कार के रूप में धन पाकर (वायति) जगत् में वृद्धि पाता है । (देवा) हे देवो ! (आशव·) हे तीव्रगामी जनो ! (आदित्या.) हे सभ्य जनो ! (यम्) जिस सज्जन के पास (अहेतन) आप जाते हैं वह (अदभ्रम्) अधिक आनन्द, अधिक धन और अत्यधिक सुख पाता है ॥६॥

भावार्थ·—राष्ट्र-नियमो के अनुरूप आचरण करने से ही जगत् मे कल्याण होता है । राष्ट्र के सञ्चालक विद्वान् हितैषी निःस्वार्थी विषय-विमुख हो ॥६॥

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु । यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥७॥

पदार्थ—(तम्) उस पुरुष पर (तिग्मम् चन) तीव्र (त्यज) क्रोध भी (न द्रासत्) नही पड़ता है और (तम्) उसके पास (गुरु) महान् क्लेश भी (न अभि द्रासत्) नहीं आता, (आदित्यास) हे सभासदो ! (यस्मै उ) जिसे आप (सप्रथ) अति विस्तीर्ण (शर्म) शरण (अराध्वम्) प्रदान करते हैं । (अनेहस) इत्यादि पूर्ववत् ॥७॥

भावार्थ·—स्व व्यवहार तथा आचार ऐसा बनाए रखें कि उस पर कोई आपत्ति न हो सके ॥७॥

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु । यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥८॥

पदार्थ—(देवा) हे सभ्यजनो ! (वर्मसु) कवचो मे हो अर्थात् कवच धारण कर (युध्यन्त इव) और योद्धा के समान हम (अपि) भी (युष्मे) आपके अन्तर्गत (स्मसि) विद्यमान हैं । हे सभ्यो ! (यूयम्) आप (महः एनस) विपुल पाप, महान् क्लेश तथा आपत्ति से (न) हमे (उरुष्यत) बचाते है और (अर्भात्) छोटे-छोटे से अपराधो व दुःखो से भी (यूयम्) आप हमे बचाते हैं ॥८॥

भावार्थ—ईश्वरीय एवं राष्ट्र सम्बन्धी आदेशो को मानने से ही मनुष्य सुख पाता है ॥८॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु । माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयः व ऊतयः ॥९॥

पदार्थ—(अदिति·) प्रजा से स्थापित राजसभा जो (मित्रस्य) ब्राह्मण-वर्ग का, (रेवत) धनवान् (अर्य्यम्ण·) वैश्य दल का, (च) तथा (वरुणस्य) राज-दल का (माता) निर्माण करती है वह (न) हमारी (उरुष्यतु) रक्षा करे । पुन (अदिति) वह सभा (शर्म) कल्याण, शरण, सुख तथा आनन्द (यच्छतु) प्रदान करे ॥९॥

भावार्थ—सारी प्रजा मिलकर सुदृढ़तर राजसभा स्थापित करें । उसमे देश के बुद्धिमान्, विद्वान्, शूरवीर और प्रत्येक दल के मुख्य-मुख्य पुरुष और नारियां सभासद हो जो देश का सर्वप्रकार से हित साधन करे ॥९॥

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् । त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१०॥

पदार्थ.—(देवा) दुष्टो पर विजय पाने वाले हे विजयी सभासदो ! (यत् शर्म) जो सुखसम्पदा, (शरणम) जो रक्षण, (यद् भद्रम्) जो भद्र, (यद् अनातुरम्) जो रोगरहित चीजे, (त्रिधातु) त्रिप्रकार के धातु (यद् वरूथ्यम) गृहोचित उपकरण संसार मे है (तत्) उस सब को (अस्मासु) हम प्रजाजनों मे (वि यन्तन) स्थापित करें ॥१०॥

भावार्थ—राज्यकार्य में लगे कर्मचारियो, सभासदो, प्रतिनिधियो एवं अन्य पुरुषो को उचित है कि सब प्रकार से स्व देश को नितान्त समृद्ध बनाने का प्रयास करें ॥१०॥

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः । सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥११॥

पदार्थः—(आदित्या) हे सभाधिकारी व्यक्तियो ! (अवख्यत हि) नीचे हम लोगो को देखे; ऐसे ही—जैसे (अधि कूलात् इव) नदी तट से (स्पश) पुरुष नीचे पानी को देखता है (तद्वत्) । पुन (यथा) जैसे अश्व के रक्षक (अर्वत) अश्वो को (सुतीर्थम्) अच्छे चलने योग्य रास्ते से ले चलते हैं वैसे ही (न·) हमे (सुगम्) सद्मार्ग की ओर(अनु नेषथ) ले चलो ॥११॥

भावार्थ.—विद्वत् जन सभासदो एवं अन्य हितकारी पुरुषो के लिए उचित है कि वे प्रजा को सन्मार्ग पर ले जाय ॥११॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत । गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥

पदार्थ—हे सभाधिष्ठाताओ ! (इह) इस विश्व में (रक्षस्विने) राक्षस के साथी को भी (भद्रम् न) कल्याण न हो (अवयै न) जो हमे मारने की ताकत मे है उसका कल्याण न हो (च) किन्तु (गवे) हमारे गाय आदि पशुओ का (धेनवे च) नवप्रसूतिका गौ आदि का (भद्रम्) कल्याण हो (च) एवं (श्रवस्यते वीराय) यश के आकांक्षी शूरवीर का कल्याण हो ॥१२॥

भावार्थ—दुर्जन निषिद्ध तथा जो हानिकारक कर्म करते हैं वे ही राक्षस कहे जाते है । उन्हे शिक्षा व दण्ड देकर सुपथ पर लाए ॥१२॥

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् । त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

पदार्थ—(देवास) हे दिव्यगुणसम्पन्न सभासदो ! (यद् दुष्कृतम्) जो दुर्व्यसन, पाप तथा कष्ट आदि आपत्तियाँ (आवि) प्रकाशित है और जो (अपीच्यम्) गुप्त हैं और (यद) जो (विश्वम्) सारे दुर्व्यसनादि पाप (आप्त्ये त्रिते) व्याप्त तीन लोक मे हैं, उन सभी को (अस्मद आरे) हम से दूर के स्थान मे (दधातन) रख दो । (अनेहस) इत्यादि पूर्ववत् ॥१३॥

भावार्थ—हे प्रभु ! इस दुनिया मे भांति-भांति के विघ्न, नाना उपद्रव, विविध क्लेश व बहुविधि प्रलोभन उपस्थित हैं, उन सब से हमे दूर करो ॥१३॥

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

पदार्थ·—(दिव दुहित) हे दिव कन्ये बुद्धे ! अथवा हे उषो देवि ! (यद दुःष्वप्न्यम्) जो दुःस्वप्न (गोषु) इन्द्रियो मे होता है अर्थात् इन्द्रियों के बारे में होता है और (यत च) जो दुःस्वप्न (अस्मे) हमारे अन्य अवयवो के बारे मे भी होता है, (विभावरि) हे प्रकाशमय देवि मते ! (तत्) उस सब दुःस्वप्न को (आप्त्याय त्रिताय) व्यापक जगत् के हेतु (परा वह) कहीं दूर फेंक दे । शेष पूर्ववत् ॥१४॥

भावार्थ—जागृत अवस्था मे अनुभूत पदार्थ स्वप्न अवस्था मे दृढ होते हैं । प्रातःकाल लोग अधिक सपने देखते हैं । अतः उषा देवी को सम्बोधित किया है । जैसे (दिव दुहिता) प्रकाश की कन्या है बुद्धि क्योंकि उसी से आत्मा प्रकाशित है । अतः बुद्धि सम्बोधित हुई हैं । स्वप्न से किसी भी प्रकार डरना उचित नहीं अतः बुद्धि से आह्वान है कि स्वप्न को दूर करो ॥१४॥

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१५॥

पदार्थ—(दिवः दुहित) हे प्रकाश की कन्या बुद्धि देवि ! (वा) अथवा (निष्कम्) आभरण (कृणवते) धारण करने वाले (वा) या (स्रजम्) माला पहिनने वाले अर्थात् आनन्द के समय भी मुझे जो दुःस्वप्न प्राप्त होता है (तत् सर्वम् दुःष्वप्न्यम्) उस सब दुःस्वप्न को (आप्त्ये) व्याप्त (त्रिते) तीनो लोकों मे (परि दद्मसि) हम रखते हैं । अर्थात् दुःस्वप्न इस संसार मे लुप्त हो जाय । शेष पूर्ववत् ॥१५॥

भावार्थ—बुद्धि के द्वारा विचार करना चाहिये कि स्वप्न क्या होते है ? जब सिर मे गरमी पहुँचे तो नीद भली भांति नहीं आती उस समय लोग भांति-भांति के स्वप्न देखते है, इसलिये सिर को सदैव ठण्डा रखे । पेट सदा शुद्ध रखें । बल वीर्य्य से शरीर को नीरोग बनावें । व्यसनो मे न फसें । कोई भयंकर कार्य न करें । ऐसे उपायो से स्वप्न कम होंगे ॥१५॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे । त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१६॥

पदार्थ—(उष) हे देवि उषे ! हे प्रकाशदायिनी ! (तदन्नाय) उस अन्नवाले (तदपसे) उस कर्मवाले तथा (तम् भागम्) उस-उस भाग को (उपसेदुषे) प्राप्त करने वाले अर्थात् जाग्रत अवस्था मे जो अन्न, जो कर्म और जो-जो भोग विलास करता है वे ही पदार्थ जिसे स्वप्न में भी प्राप्त हुए हैं ऐसा जो (त्रिताय) सारा संसार है और (द्विताय) प्रत्येक जीव है उस संसार व उस जीव को (दुःष्वप्न्यम्) जो दुःस्वप्न प्राप्त होता है उसे (वह) कहीं अन्यत्र ले जाय । यही मेरी प्रार्थना है ॥१६॥

भावार्थ—तीनो लोकों का एक नाम त्रित भी है, क्योंकि यह नीचे-ऊपर व मध्य इन तीनो स्थानो मे व्याप्त है। द्वित—यह जीव का नाम इसलिये है कि इस लोक व परलोक से सम्बन्ध रखता है। अथवा शरीर मे भी रहता है और इसे छोड अन्यत्र भी रहता है अत उसे द्वित कहते हैं। अथवा कर्मेन्द्रियों एव ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इसका काम होता है अत इसे द्वित कहते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य यह है कि दु स्वप्न से मानसिक व शारीरिक क्षति होती है। अतः शरीर को ऐसा नीरोग रखें कि उसे स्वप्न न हो। प्रातः का सम्बोधन इसलिये भी बारम्बार हुआ है कि उस समय शयन करना उचित नहीं। स्वप्न भी एक आश्चर्य-जनक मानसिक व्यापार है अत इसका वर्णन वेद मे है ॥१६॥

यथा कलां यथा शफं यथं ऋणं सन्नयामसि । एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१७॥

पदार्थ—मानव (**यथा**) जैसे (**कलाम्**) अपनी अगुली से मृत नख कटवा कर (**सन्नयामसि**) दूर फेंक देते है, (**यथा शफम्**) जैसे पशु के मृत खुर कटवा कर अलग कर दिए जाते हैं अथवा (**यथा**) जैसे (**ऋणम्**) ऋण को दूर करत हैं (**एव**) वैसे ही (**आप्त्ये**) विशाल ससार मे जो (**दु ष्वप्न्यम**) दु स्वप्न मौजूद हैं (**सर्वम्**) उन सब को (**सन्नयामसि**) दूर कर देते हैं ॥१७॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह स्वप्न न दिखाए, क्योंकि उससे हानि होती है। इसका तात्पर्य है कि अपने शरीर व मन को ऐसा स्वस्थ, शान्त, नीरोग व प्रसन्न बना रखे कि वह स्वप्न न देखे ॥१७॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् । उषो यस्माद्दुःष्वप्न्याद-भैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१८॥

पदार्थ—हे मानवो ! (**वयम्**) हम सब परस्पर मिलकर (**अद्य**) आजकल (**अजैष्म**) सारे विघ्नो, दु खो व क्लेशो तथा मानसिक आधियो पर विजय पाए। उसको जीतकर नाना भोग-विलास (**असनाम**) पाए (**च**) और (**अनागस.**) निरपराध व निष्पाप (**अभूम**) होवें (**उष**) हे उषा देवि ! (**यस्मात् दु.स्वप्न्यात्**) जिस बुरे स्वप्न से (**अभैष्म**) हम डरें (**तत्**) वह पापस्वरूप बुरा स्वप्न (**अप उच्छतु**) दूर हो ॥१८॥

भावार्थः—इसका तात्पर्य यह है कि कल्पित अवस्तु वा सकल्पमात्र मे स्थित पदार्थ पदार्थों से भयभीत न होकर और उनकी चिन्ता न कर हम मानव सारी आपत्तियो को दूर करने का प्रयास करें जिससे हम सुखी हो तथा ईश्वर की व मनुष्यो की सेवा कर सकें। हे मनुष्यो ! जिससे यह अपूर्व जीवन सार्थक व सफल तथा हितकारी हो ऐसी ही चेष्टा सदैव करें ॥१८॥

अष्टम मण्डल में सैंतालीसवा सूक्त समाप्त

अथ पञ्चदशर्चस्याष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-१५ प्रगाथ. काण्व ऋषि ॥ सोमो देवता ॥ छन्द-१, २, १३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । १२, १५ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ७-९ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप् । ५ विराड् जगती ॥ स्वर-१-४, ६-१५ धैवत । ५ निषाद ॥

अन्न की प्रशसा ॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥१॥

पदार्थ—मैं (**वयस**) अन्न (**अभक्षि**) ग्रहण करू। हम मानव जाति अन्न खायें किन्तु मांस नहीं। कैसा अन्न हो ? जो (**स्वादोः**) स्वादिष्ट हो, जो (**वरिवोवित्तरस्य**) सत्कार योग्य हो, जिसे देखते ही चित्त प्रसन्न हो उठे। पुन (**यम्**) जिस अन्न को (**विश्वे**) सभी (**देवाः**) श्रेष्ठ (**उत**) तथा (**मर्त्यासः**) जन साधारण (**मधु ब्रुवन्तः**) मधुर कहते है व (**अभि सञ्चरन्ति**) खाते हैं। वैसा अन्न ही हम सब खायें। खाने वाले कैसे हो—(**सुमेधा.**) सुमति तथा बुद्धिमान् हो और (**स्वाध्यः**) सुकर्मा स्वाध्यायशील, उद्योगी व कर्मपरायण हो ॥१॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति, बुद्धिमान् हैं परिश्रमी हैं, व स्वाध्यायरत है उन्हे ही मधुमय स्वादु अन्न मिलते हैं, जो व्यक्ति आलसी, कुकर्मी व असयमी है वे यदि महाराज व महा श्रेष्ठी भी हैं तो भी उन्हे अन्न मधुर व स्वादु नहीं लगते क्योंकि उनकी क्षुधाग्नि अतिशय मन्द हो जाती है। उदराशय बिगड़ जाता है। पाचनशक्ति बहुत घट जाती है। अतएव उन्हें मधुमान् पदार्थ भी अति कटु लगने लगते हैं, उत्तमोत्तम भोज्य वस्तु को भी उनका मन नहीं करता। अतएव कहा गया है कि परिश्रमी, नीरोग व सयमी आदमी ही अन्न का सही स्वाद ले पाता है। इसके अतिरिक्त यह है कि मनुष्य व श्रेष्ठ मनुष्यो को उचित है कि मांस, अपवित्र अन्न, जिससे शरीर की नीरोगिता मे बाधा आए और जो देखने मे घृणित हो वैसे अन्न न खाय ॥१॥

अन्न का वर्णन ॥

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे श्रेष्ठ अन्न ! (**च**) पुन: जब तू (**अन्त**) हृदय के अन्दर (**प्रागा.**) जाता है तब तू (**अदिति**) उदार होता है। पुन (**दैव्यस्य हरसः**) दिव्य क्रोध का भी (**अवयाता**) दूर करने वाला है। पुन (**इन्द्रस्य**) जीव का (**सख्यम्**) हित (**जुषाण**) साधता हुआ (**राये अनु ऋध्या**) ऐश्वर्य की ओर ले जाता है। ऐसे ही जैसे (**श्रौष्टी इव धुरम्**) तीव्रगामी अश्व रथ को वांछित प्रदेश मे ले जाता है ॥२॥

भावार्थः—यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि वेद मे जड वस्तु को सम्बोधित कर चेतनवत् का वर्णन करने की रीति है। अत. पदानुसार ही इसका अर्थ सुगमता के लिये हुआ है। इसी को प्रथम पुरुषवत् वर्णन समझिए। अब तात्पर्य यह है—जब वैसे मधुमान् अन्न शरीर के भीतर जाते हैं तो इनसे अनेक सुगुण उपजते है। इनसे शुद्ध रक्त और मांस आदि बनते हैं। शारीरिक दुर्बलता नहीं रहती। मन प्रसन्न रहता है। परन्तु जब पेट मे अन्न न हो या अन्न की कमी से शरीर कृश हो जाए तो क्रोध भी बढ़ जाता है। वह क्रोध भी अन्न मिलने से निबट जाता है शरीर नीरोग व पुष्ट रहने से दिन-प्रतिदिन धनोपार्जन मे मन लगता है। अतएव कहा जाता है कि अन्न क्रोध को दूर भगाता है ॥२॥

अन्न-भक्षण का लाभ ॥

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे श्रेष्ठतम रसमय अन्न (**अपाम**) मुझे हम पीए। (**अमृता अभूम**) अमृत हो (**ज्योति अगन्म**) शारीरिक शक्ति या परमात्म-ज्योति को प्राप्त हो, (**देवान्**) इन्द्रियशक्तियो को (**अविदाम**) प्राप्त करे, (**अस्मान्**) हमारा (**नूनम्**) इस स्थिति में (**अराति**) आन्तरिक शत्रु (**किं कृणवत**) क्या करेगा ! (**अमृत**) हे ईश ! (**धूर्ति**) हिंसक जन (**मर्त्यस्य**) मरणधर्मी भी मुझे (**किम्**) क्या करेगा ! ॥३॥

भावार्थ—सोम नाम ईदृक स्थल मे श्रेष्ठान्न श्रेष्ठ रसवाची है। यह एक प्रकार ईश प्रार्थना ही है। प्राय. मनुष्य उत्तम से उत्तम अन्न और फलादि इसलिये खाते है कि शरीर मे पूर्ण बल हो और भोगविलास करें, वीर शक्तिमान् हो निपराधो को लूटकर देश मे यशस्वी बने इत्यादि, इस आशय से जो अपने शरीर को पुष्ट करते हैं वे ही असुर हैं, किन्तु व्यक्ति के लिए उचित है कि अन्न खाने पीने से जो बल मिले उससे परोपकार करें। विद्यादि धन दे दैनिक जनो को सुधारें, राज्य का सगठन भली प्रकार करें जिससे दीन-हीन प्रजा लूटी न जाय। और ऐसे कार्य्य करते हुए अन्त मे ईश्वर प्राप्ति हो अर्थात् सदैव ईश्वर आज्ञाओं को अन्त करण मे रख सांसारिक कार्य करें। तब निश्चय ही उस का कौन शत्रु होगा। उसके इन्द्रियगण कैसे विचलित होंगे ? कैसे कोई उसकी हानि का साधन खोजेगा ! इत्यादि इसका महान् तात्पर्य है ॥३॥

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे आह्लाददायक (**सोम**) हे सर्वश्रेष्ठ रस एव शरीर-पोषक अन्न ! तू (**पीत**) हम जीवों से पीत व भुक्त होकर (**न हृदे**) हमारे हृदय के लिये (**शम् आ भव**) कल्याणकारी हो। यहा दृष्टांत है (**पिता इव सूनवे**) जैसे पुत्र को पिता सुख देता है, पुन (**सखा इव**) सखा सखाओ को (**सख्ये**) मैत्री मे रखकर अर्थात् जैसे मित्र मित्रो को दुर्व्यसन आदि से छुड़ाकर हितकार्य्य मे लगाकर (**सुशेव**) सुखी होता है वैसे ही। (**उरुशंस सोम**) हे बहुप्रशसनीय सोम ! (**धीर:**) तू धीर होकर (**जीवसे**) जीवन हेतु (**न आयु**) हमारी आयु (**प्र तारी**) बढ़ा ॥४॥

भावार्थ—ऐसा अन्न तथा रस खाओ व पिओ जिससे शरीर तथा आत्मा को लाभ पहुँचे और आयु मे वृद्धि हो ॥४॥

सोम का निरूपण ॥

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५॥

पदार्थ—(**इमे पीता**) ये सोमरस पीत हो जाने पर हमारे (**यशस**) यशस्कर और (**उरुष्यव**) रक्षक हो और (**पर्वसु**) मेरे शरीर के प्रत्येक पर्व मे दाखिल हो (**मा**) मुझे (**समनाह**) प्रत्येक वीर कार्य मे तत्पर करें। ऐसे ही (**न**) जैसे (**रथम्**) रथ को (**गाव**) बलीवर्द सब कार्य मे तैयार रखते है। (**ते**) वे सोम (**विस्रसः चरित्रात्**) शिथिल चरित्र से (**मा रक्षन्तु**) मुझे बचावें (**उत**) और (**इन्दव**) आह्लादकर वे सोम (**स्रामात्**) व्याधियो से (**मा**) मुझे (**यवयन्तु**) पृथक् करें ॥५॥

भावार्थ—हम मानव ऐसे अन्न खायें जिनसे शरीर की रक्षा हो, फुर्ती आए और वीरता प्राप्त हो, उत्तेजक मद्यादि न पीए जिससे शुभ चरित्र भ्रष्ट हो और व्याधियां बढ़ें। अन्नो के खाने-पीने से ही विविध रोग होते हैं। अत विधि के साथ अन्नसेवन करें। इसी लिए इस सूक्त मे अन्न का ऐसा वर्णन है ॥५॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

पदार्थ—हे सोम ! (**मा**) मुझे (**मथितम्**) दो लकडियो से मथने से निकाली हुई (**अग्निं न**) अग्नि के तुल्य (**सन्दीपः**) सदीप्त कर, जगत् मे आग के तुल्य चमकीला व तेजस्वी बना । (**प्रचक्षय**) दिखला अर्थात् नेत्र मे देखने की पूरी शक्ति दे । और (**न**) हमे (**वस्यस**) अतिशय धनी (**कृणुहि**) बना । (**अथ हि**) इस समय (**ते मदे**) तेरे आनन्द मे (**आ मन्ये**) ईश्वरीय भाव का मनन करता हू या उसकी वन्दना करता हू । मैं (**रेवान् इव**) धनी पुरुष के तुल्य (**प्रच्छ**) भली प्रकार (**पुष्टिम्**) पोषण व विश्राम (**प्रचर**) प्राप्त करू या मुझे वह अन्न पुष्टिप्रद हो ॥६॥

भावार्थ—ऐसे अन्न का सेवन कर जिसमे वह अग्निवत् तेजस्वी प्रतीत हो, नेत्र की ज्योति बढ़े और वह दिन प्रतिदिन धनवान् ही होता जाय अर्थात् मद्यादि व लम्पटता द्यूतादि कुकर्मों मे धन का अपव्यय न करे । जब-जब अन्न मिले तब-तब प्रभु को धन्यवाद दे । और सदैव अदीन भाव से रहे । ये सब शिक्षाए इसमे मिलती है ॥६॥

इ॒षि॒रेण॑ ते॒ मन॑सा सु॒तस्य॑ भक्षी॒महि॒ पित्र्य॑स्येव रा॒यः ।

सोम॑ राजन्म॒ ण॒ आयूं॑षि तारी॒रहा॑नीव॒ सूर्यो॑ वास॒राणि॑ ॥७॥

पदार्थ—हे सोम (**इषिरेण मनसा**) उत्सुकता से (**ते सुतस्य**) तुझ पावन अन्न का हम (**भक्षीमहि**) भोग करें ऐसे (**पित्र्यस्य इव रायः**) जैसे पितापितामहादि से प्राप्त धन पुत्र-पौत्र उपभोग करते है । (**सोम राजन्**) हे राजा सोम ! तू (**नः आयूंषि**) हमारी आयु (**प्र तारीः**) बढा । (**इव**) जैसे (**सूर्यः**) सूर्य (**वासराणि**) वासप्रद (**अहानि**) दिनो की वृद्धि करते हैं ॥७॥

भावार्थ—तात्पर्य स्पष्ट है । जब तक खब भूख न लगे, अन्न हेतु आकुलता न हो तब तक भोजन न करे । उसी अवस्था मे अन्न सुखदायी होता है व आयु बढ़ती है । सोम इसलिये राजा कहाता है कि शरीर मे प्रवेश कर यही चमकता है और सब इन्द्रियो पर अधिकार रखता है । यदि अन्न न खायें तो सब इन्द्रियां शिथिल हो जाय व शरीर भी न रहे । अत शरीर का राजा होने से अन्न राजा ही है ॥७॥

सोम॑ राजन्मृ॒ळया॑ नः स्व॒स्ति तव॑ स्मसि व्र॒त्या॒३॑स्तस्य॑ विद्धि ।

अल॑र्ति॒ दक्ष॑ उ॒त म॒न्युरि॑न्दो॒ मा नो॑ अ॒र्यो अ॑नुका॒मं परा॑ दाः ॥८॥

पदार्थ—(**सोम राजन्**) हे सोम राजा ! (**नः**) हमे (**मृळय**) सुखी कर, (**स्वस्ति**) हमारा कल्याण कर । (**तव स्मसि**) हम तेरे ही है, (**व्रत्याः**) हम सयमी व व्रती हैं, (**तस्य**) उसे तू (**विद्धि**) जान । (**दक्षः अलर्ति**) हम मे बल है (**उत मन्युः**) और मननशक्ति भी है । (**इन्दो**) हे आनन्ददाता (**नः**) हमे (**अर्यः**) शत्रु की (**अनुकामम्**) इच्छा के अनुसार (**मा परादाः**) मत दे जा ॥८॥

भावार्थ—अभिप्राय यह है कि हम ऐसा अन्न खाये जिससे सुख तथा कल्याण हो । हम सदैव सयम रखे । अन्न खाकर सात्विक बल धारें और क्रोध आदि शत्रु के वशीभूत न हो ॥८॥

त्वं हि न॑स्त॒न्वः॑ सोम गो॒पा गात्रे॑गात्रे निष॒सत्था॑ नृ॒चक्षाः॑ ।

यत्ते॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॒ स नो॑ मृळ सुष॒खा दे॑व॒ वस्यः॑ ॥९॥

पदार्थ—(**सोमदेव**) हे सवश्रेष्ठ तथा प्रशसनीय रस व अन्न ! (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीर का (**गोपाः**) रक्षक (**त्वम् हि**) तू है, अतएव (**गात्रे-गात्रे**) हरएक अङ्ग मे (**निषसत्थ**) प्रविष्ट हो, तू (**नृचक्षाः**) मानव शरीर का पोषणकर्ता है । (**यद्**) यद्यपि (**वयम्**) हम मनुष्य (**ते व्रतानि**) तेरे नियमो को (**प्रमिनाम**) भग करते हैं तथापि (**सः**) वह तू (**वस्यः**) श्रेष्ठ (**नः**) हमे (**सुसखा**) अच्छे मित्र के तुल्य (**मृळ**) सुख ही देता है ॥९॥

भावार्थ—इसका भाव स्पष्ट है । अन्न ही शरीर का पोषक है इसमे सन्देह नही । वह प्रत्येक अंग का पोषण करता है । अन्न के व्रतो को हम भग करते है । इसका तात्पर्य यह है नियमपूर्वक शक्ति अनुसार भोजन नही करते । अतिभोजन से अनेक रोग होते है, जब कि स्वल्प भोजन सदा हितकारी होता है ॥९॥

ऋ॒दू॒दरे॑ण॒ सख्या॑ सचेय॒ यो मा॒ न रिष्ये॑द्धर्यश्व पी॒तः ।

अ॒यं यः सोमो॒ न्यधा॑य्य॒स्मे तस्मा॒ इन्द्रं॑ प्र॒तिर॑मे॒म्यायुः॑ ॥१०॥

पदार्थ—मैं जैसे (**ऋदूदरेण**) शरीर के लिए हितकारी उदर के रक्षक (**सख्या**) मित्र समान लाभ देने वाले सोमरस का (**सचेय**) ग्रहण करता हूँ वैसे ही अन्य जन भी करे । (**यः पीतः**) जो पीने पर (**मा न रिष्येत्**) मुझे हानि नही पहुँचाता वैसे थोडा सा पीने से किसी को क्षति न पहुँचाएगा । (**हर्यश्व**) हे आत्मा ! (**अयम् यः सोमः**) यह जो सोमरस (**अस्मे न्यधायि**) हमारे उदर मे स्थापित है वह चिरकाल तक हमे सुख देता रहे । (**तस्मै प्रतिरम् आयुः**) उससे आयु मे वृद्धि हो ऐसी (**इन्द्रम् एमि**) ईश्वर से प्रार्थना है ॥१०॥

भावार्थ—सभी ईश्वर से प्रार्थना करें कि उत्तम से उत्तम अन्न खा-पीकर हम बलवान् व लोक का उपकार करने वाले हो ॥१०॥

अप॒ त्या अ॑स्थुरनि॒रा अमी॑वा॒ निर॑त्रस॒न्तमि॑षीचीरभैषुः ।

आ सोमो॑ अ॒स्माँ अ॑रुह॒द्विहा॑या॒ अग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥११॥

पदार्थः—(**त्याः**) वे (**अनिराः**) अनिवार्य (**अमीवाः**) रोग हमारे शरीर से (**अप अस्थुः**) दूर हो । वे यद्यपि (**तमिषीचीः**) नितान्त बलशाली है तथापि अब (**निरत्रसन्**) उनकी शक्ति कम हो गई और वे (**अभैषुः**) अत्यधिक दुर्बल हो गये । इसके जानने का यह कारण है कि (**सोमः**) उत्तमोत्तम रस व अन्न (**अस्मान्**) हमे (**आ अरुहत्**) प्राप्त होते है जो (**विहायाः**) सर्व रोगों के नाशक है । और हम (**अगन्म**) वहा आकर बसे (**यत्र**) जहा (**आयुः**) आयु (**प्रतिरन्ते**) बढती है ॥११॥

भावार्थ—सन्देह नही कि उत्तम से उत्तम अन्न के खाने-पीने व उत्तम गृह मे रहने से रोग नही होते और शरीर मे जो रोग हो वे भी नष्ट हो जाते हैं ॥११॥

यो न॒ इन्दुः॑ पितरो हृ॒त्सु पी॒तोऽम॑र्त्यो॒ मर्त्याँ॑ आवि॒वेश॑ ।

तस्मै॒ सोमा॑य ह॒विषा॑ विधेम मृळी॒के अ॑स्य सुम॒तौ स्या॑म ॥१२॥

पदार्थ—(**पितरः**) हे श्रेष्ठ जनो ! (**यः इन्दुः**) जो आनन्ददाता सोमरस (**अमर्त्यः**) चिरकालस्थायी है और जो (**हृत्सु पीतः**) हृदय से पीत होने पर बल को बढाता है, जो ईश्वरकृपा से (**नः मर्त्यान् आविवेश**) हम लोगो को प्राप्त हुआ है (**तस्मै सोमाय हविषा विधेम**) उस सोम का भली प्रकार प्रयोग करे और (**अस्य**) इस प्रयोग द्वारा (**मृळीके**) सुख मे और (**सुमतौ**) कल्याणबुद्धि मे (**स्याम**) रहे ॥१२॥

भावार्थ—श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ का प्रयोग हम उस प्रकार करे कि जिससे सुख बढे और बुद्धि न बिगडे ॥१२॥

सोमवाच्येश्वर की प्रार्थना ॥

त्वं सो॑म पि॒तृभिः॑ संविदा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑तन्थ ।

तस्मै॑ त इन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥१३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सर्वप्रिय देव ! (**पितृभिः**) परस्पर रक्षक परमाणुओ सहित (**संविदानः**) वर्तमान (**त्वम्**) तू (**अनु**) क्रमश (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक तथा पृथिवीलोक आदि को (**आततन्थ**) बनाता है । (**इन्दो**) हे जगत् को आह्लाद देने वाले ईश ! (**तस्मै ते**) उस तेरी (**हविषा**) हृदय से व नाना स्तोत्रादि से (**विधेम**) सेवा करें । तेरी कृपा द्वारा (**वयम् रयीणाम् पतयः स्याम**) हम सब धनो के अधिपति हो ॥१३॥

भावार्थ—वेद की यह एक रीति है कि भौतिक पदार्थों का वर्णन कर उसी नाम से अन्त मे ईश्वर की प्रार्थना की जाती है । अतः इन तीन मन्त्रो से ईश्वर की प्रार्थना का विधान है ॥१३॥

त्रातारो॑ देवा॒ अधि॑ वोचता नो॒ मा नो॑ नि॒द्रा ई॑शत॒ मोत जल्पिः॑ ।

व॒यं सोम॑स्य वि॒श्वह॑ प्रि॒यासः॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥१४॥

पदार्थ—हे (**त्रातारः**) रक्षको ! (**देवाः**) हे विद्वानो ! आप सब मिलकर (**नः अधिवोचत**) हम अशिक्षितो को भली प्रकार सिखला दें जिससे (**निद्रा मा नः ईशत**) निद्रा, आलस्य, क्रोधादि दुर्गुण हमारे स्वामी न बन जाए (**उत**) और (**जल्पिः**) निन्दक जन भी (**मा नः**) हमारी निन्दा न करे । (**विश्वह**) सब दिन (**वयम्**) हम (**सोमस्य प्रियासः**) प्रभु के प्रिय बने रहे और (**सुवीरासः**) सुवीर होकर (**विदथम्**) विज्ञान का (**आ वदेम**) उपदेश करे या अपने घर मे रहकर आपकी स्तुति वन्दना करे ॥१४॥

भावार्थ—समय-समय पर हम विद्वानो से उपदेश ग्रहण करें जिससे कि आलस्यादि दोष न आने पाए और ईश्वर के यहा प्रिय बने रहे ॥१४॥

त्वं नः॑ सोम वि॒श्वतो॑ वयो॒धास्त्वं स्व॒र्विदा वि॑शा नृ॒चक्षाः॑ ।

त्वं न॑ इन्द ऊ॒तिभिः॑ स॒जोषाः॑ पा॒हि प॒श्चाता॑दु॒त वा॑ पु॒रस्ता॑त् ॥१५॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सबके प्रिय जगत् रचयिता ईश ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमे (**विश्वतः**) सब प्रकार व सब दिशाओ से (**वयोधाः**) अन्न दे रहा है, (**त्वम् स्वर्विद्**) तू ही सुखदाता है, तू ही (**नृचक्षाः**) मानव के सारे कर्मों को देखता है । वह तू (**आविश**) हमारे हृदय मे आ विराज । (**इन्दो**) हे जगत् को सुख देने वाले ! (**त्वम् सजोषाः**) तू हमारे साथ प्रसन्न होता हुआ (**पश्चातात्**) पीछे (**उत वा पुरस्तात्**) वा आगे (**ऊतिभिः**) रक्षा व साहाय्यो से (**नः पाहि**) हमारी रक्षा कर ॥१५॥

भावार्थ—परमात्मा ही सब को अन्न इत्यादि प्रदान कर सुख प्रदान करता है और वह सबके कर्मों का द्रष्टा व तदनुसार फल प्रदाता है ॥१५॥

अष्टम मण्डल मे अड़तालीसवां सूक्त समाप्त ॥

अथ वालखिल्यम्

अथ दशर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—१० प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । छन्दः—१ बृहती । ३ विराड्बृहती । ५ भुरिग्बृहती । ७, ९ निचृद्बृहती । २ पङ्क्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पङ्क्तिः ॥ स्वरः १, ३, ५, ७, ९ मध्यमः । २, ४, ६, ८, १० पञ्चमः ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

पदार्थ —(य) जो (**मघवा**) उत्तम धनादि ऐश्वर्य का स्वामी, (**पुरूवसु**) अनेकों का बसाने वाला, (**जरितृभ्य**) स्तोताओं को [उन द्वारा स्तुत गुणों के धारण द्वारा] (**सहस्रेण इव**) निश्चय ही हजारों प्रकार का ऐश्वर्य (**शिक्षति**) प्रदान करता है, जो (**सुराधस**) श्रेष्ठ सिद्धि प्रदान करता है, उस (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् प्रभु की ओर (**अभि**) लक्ष्य करके (**यथाविदे**) यथायोग्य के लाभ हेतु (**प्र, अर्च**) अर्चन करो—उसकी वन्दना करो ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा के गुणकीर्तन से उन गुणों को धारण करने का प्रयास करना चाहिये, वह इसी प्रकार सब को बसाता है ॥१॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥

पदार्थ —जैसे (**शतानीक इव**) सैकड़ों सेनाओं का स्वामी सेनापति (**प्रजिगाति**) प्रकृष्टता से विजयी होता है, वैसे ही वह प्रभु भी जो 'शतानीक' (सैकड़ों शक्तियों से युक्त) है, वह इन द्वारा प्रकृष्ट विजयी है, (**धृष्णुया**) साहस व दृढ़ता के गुणों से वह (**दाशुषे**) अपने लिये समर्पित भक्त के हित के लिये (**वृत्राणि**) उसके मार्ग की सभी विघ्न-बाधाओं को (**हन्ति**) मिटा देता है, (**अस्य**) इस (**पुरुभोजस**) अनेकों का पालन-पोषण करने वाले के (**दत्राणि**) दिये गये ऐश्वर्य दान —[पदार्थ एवं शक्तियाँ]—(**प्रपिन्विरे**) जगत् को इस प्रकार तृप्त करते है (**इव**) जैसे कि (**गिरे**) मेघ से प्राप्त (**रसा**) जल ॥२॥

भावार्थः—प्रभु से प्राप्त शक्तियाँ अटूट व दृढ़ हैं—प्रभु भक्त को पदार्थों के साथ ही ये शक्तियां भी मिलती हैं, इन्हीं पर संसार आश्रित है ॥२॥

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।

आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥३॥

पदार्थ —हे (**गिर्वण**) भक्त की वाणी से वन्दित, स्तुत (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्यसंपन्न परमेश्वर, (**ये**) जो (**मदा**) तृप्ति देने वाले (**इन्दव**) आनन्ददायक (**सुतास**) भक्त द्वारा निष्पादित भक्तिरस हैं, वे (**शूर**) हे स्वयं शौर्यसंपन्न तथा भक्त को उसके जीवनसंघर्ष में शौर्य की प्रेरणा देने वाले ! (**वज्रिन्** !) साधन युक्त ! (**राधसे**) भक्त को संसिद्धि प्राप्त कराने हेतु (**त्वा**) आपको (**आपृणन्ति**) चारों ओर से तृप्त करते हैं— कैसे ? जैसे कि (**आपः**) जल (**ओक्य**) अपने गृह—आश्रयभूत महाजलाशय को (**आ पृणन्ति**) भर कर संतुष्ट करते है ॥३॥

भावार्थ —साधक की भक्ति का आश्रय एकमात्र वह ऐश्वर्यसंपन्न परमेश्वर ही है, उसकी भक्ति के आनन्द में मस्त होकर भक्त न केवल स्वयं सन्तृप्त होता है, प्रभु भी उससे प्रसन्न होते हैं और ऐसी प्रेरणा प्रदान करते हैं कि वह उनके गुणों की प्राप्ति-हेतु उत्सुक हो जाए ॥३॥

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।

आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥४॥

पदार्थ —हे इन्द्र—परम ऐश्वर्य हेतु साधक आत्मा ! (**ईं**) इस दिव्यानन्द को, जो (**अनेहस**) सदा रक्षणीय है (**प्रतरण**) प्रवर्धक अर्थात् उन्नतिदाता है, (**विवक्षण**) विशेषरूप से स्फूर्तिदाता है, (**मध्वः स्वादिष्ठ**) सामान्य मधु से भी अधिक स्वादिष्ट है, उसका तू (**पिब**) उपभोग कर, (**यथा**) जिस तरह उसका उपभोग करके (**मन्दसान**) सजीव हुआ तू (**धृषत्**) शत्रुभावनाओं को धक्का देता हुआ (**क्षुद्रा इव**) मधुमक्खी के समान (**न**) हम अन्य साधकों की ओर भी (**आ, किरासि**) उसे फेंकेगा ॥४॥

भावार्थ —साधक को भगवद्भक्ति के रस में विभोर होना चाहिये, उसका उपभोग करने से उसकी दुर्भावनायें मिटेंगी और फिर वह अपना यह दिव्य आनन्द दूसरों को भी प्रदान करेगा ॥४॥

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।

यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥५॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यसाधक मेरे मन ! (**स्वधावन्**) हे अमृतरूप गुणयुक्त ! (**य**) जिस (**ते**) तेरे (**स्तोम**) स्तुतिरूप गुणप्रकाश को (**कण्वेषु**) बुद्धिमानों की (**रातय**) मित्र (**धेनव**) तुझ साधक की पालन-पोषण कर्ता धेनुरूपा इन्द्रियाँ (**स्वदयन्ति**) स्वादिष्ट बना लेती हैं उस गुणप्रकाश को (**सोतृभिः हियानः अश्व. न**) प्रेषकों से प्रेरित शीघ्र गतिवाले अश्व की भाँति (**न आ उपद्रवत्**) हमारे समीप पहुंचा ॥५॥

भावार्थः—बुद्धिमान् स्तोताओं के सहवास में साधक की इन्द्रियां भी परमप्रभु की अभ्यस्त स्तोता हो जाती हैं ॥५॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।

उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥६॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्यवान् प्रभु ! (**विभूति**) विविधरूप धारण करने वाले (**अक्षितावसुम्**) वास देने की अक्षीण शक्तियुक्त तथा (**उग्र न**) प्रचण्ड-पराक्रमी के सदृश (**वीर**) बलिष्ठ हम आप की सेवा में (**नमसा**) विनयसहित (**उपसेदिम**) पहुंचते हैं । हे अभेद्य व साधनसम्पन्न ! (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**उद्रीव**) जल से भरे (**अवतम**) कूप के तुल्य (**सिञ्चते**) सिंचन करते हुए आप के प्रति (**धीतयः**) हमारी विचारधारायें (**क्षरन्ति**) प्रवाहित हो रही हैं ॥६॥

भावार्थः—जल से भरे कुएं से खेत की सिंचाई होती है, विविध रूप में सब को बसाने वाले बलशाली परमेश्वर भिन्न-भिन्न पदार्थ देकर सुख रूपी जल से हमारे अन्तःकरण को सींचकर उसे तृप्ति प्रदान करते है, हमारा ध्यान उनकी ओर लगता है ॥६॥

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।

अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥७॥

पदार्थ —हे (**महेमते**) पूज्य बुद्धिशक्ति के धनी भगवन् ! (**यद्ध नूनं**) आप जहां भी हैं—निश्चय से हैं, आप (**यद्वा**) या तो (**यज्ञे**) किसी परोक्ष सत्कर्म आदि में विद्यमान हैं अथवा यहीं (**पृथिव्याम् अधि**) भूलोक में अधिष्ठाता हैं । [आप जहाँ भी कहीं हैं] (**अतः**) उस स्थान से (**उग्र**) नितान्त बलिष्ठ आप (**आशुभि**) तीव्रगामिनी (**उग्रै**) अति बलशाली शक्तियों सहित (**न**) हमारे (**यज्ञ**) धर्म अर्थ काम मोक्षसाधक व्यवहार में (**आ गहि**) आइये— सम्मिलित होइये ॥७॥

भावार्थ—जबतक साधक धारणा-ध्यान-समाधि आदि धर्मार्थ काममोक्ष साधक व्यवहार में मन नहीं लगाता तब तक उसे सर्वदा सहस्थित भी परमेश्वर अनुभव नहीं होता, परमप्रभु को सदा उपस्थित समझकर ही सब सत्कर्म करने चाहियें ॥७॥

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।

येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥८॥

पदार्थ —हे ऐश्वर्यवान् ! (**ते**) आपकी (**ये**) जो (**अजिरास**) जीर्ण न होने वाली, (**हरय**) हरणशील शक्तियाँ हैं वे (**वाता इव**) प्रवहमान वायुओं के तुल्य तीव्रगामिनी हैं और (**प्रसक्षिण**) वायु के समान ही बलात् गतिशील हैं—उनको कोई रोकने वाला नहीं है । (**येभि**) उन्हीं शक्तियों द्वारा [आप] (**मनुष**) मानव को (**अ-पत्य**) पतन न होने देने के हेतुत्व को (**परीयसे**) प्राप्त होते हैं और (**येभि**) उन्हीं शक्तियों से (**विश्वं**) समग्र (**स्व**) सुख को (**दृशे**) दर्शाते हैं ॥८॥

भावार्थ —जब साधक साधना में निपुणता पा जाता है तो उसे अनुभव होता है कि परमप्रभु अब शीघ्र ही मुझे मिलेंगे, उनके और मेरे सान्निध्य में विघ्न डालने वाली कोई शक्ति नहीं । आराधन मनुष्य को धर्ममार्ग से गिरने नहीं देता ॥८॥

एतावतस्त ईमहे इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।

यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥

पदार्थः—हे (**मघवन्**) ऐश्वर्य के स्वामी हे परमेश्वर ! आप (**यथा**) जिस तरह (**मेध्यातिथि**) पावनता की ओर सदा गतिशील को (**प्र, अव**) खूब संतुष्ट करते हैं और (**यथा**) जिस तरह (**नीपातिथि**) विचार सागर की गहराइयों में जाने के अभ्यस्त को (**धने**) सफलता देते हैं; हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् प्रभु, हम (**एतावत**) इतने ही—ऐसे ही (**गोमत**) गौ आदि पशुओं से व ज्ञान-विज्ञान आदि प्रकाश से समृद्ध (**सुम्नस्य**) सुख की (**ईमहे**) कामना करते हैं ॥९॥

भावार्थ —साधक के जीवन का लक्ष्य जब परम पवित्र प्रभु हो जाय और वह गहन विचार करने का अभ्यस्त हो जाय तो वह भरेपूरे सब प्रकार से समृद्ध हो सुख का पात्र बन जाता है ॥९॥

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।

यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥

पदार्थ —हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभु ! आप जैसे (**कण्वे**) मेधावी स्तोता के लिये (**यथा**) जैसे (**त्रसदस्यवि**) नष्ट करने वाले विचारों या व्यक्तियों को भयभीत कर भगाने वाले साधक के लिए (**यथा**) जैसे (**पक्थे**) परिपक्व जीवन वाले (**दशव्रजे**) दसों इन्द्रियों के आश्रयभूत साधक के लिए (**यथा**) जैसे (**गोशर्ये**) इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाले साधक के हेतु और (**ऋजिश्वनि**) सीधे-सादे मार्ग पर चलने वाले, कुटिलतारहित जीवन बिताने वाले साधक के लिए (**गोमत्**) गौ आदि पशुओं से समृद्ध व (**हिरण्यवत्**) मनोहारी पदार्थों तथा भावनाओं से समृद्ध ऐश्वर्य (**असनो**) प्रदान करते हैं वैसे सुख की हम प्रार्थना करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—जब साधक सभी प्रकार के हिंसक शत्रुओं व भावनाओं को दूर भगाने में समर्थ होता है, उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में हो जाती है, उसके जीवन में कुटिलता का स्थान नहीं रहता—तब उसे मानो भगवान् से सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥१०॥

अष्टम मण्डल में उन्चासवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—१० पुष्टिगु काण्व ऋषि. ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३, ५, ७ *निचृद्बृहती* । ९ *विराड्बृहती* । २, ४, ६, १० पंक्ति । ८ *निचृत् पंक्ति*: ॥ स्वर —१, ३, ५, ७, ९ *मध्यमः* । २, ४, ६, ८, १० *पञ्चमः* ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो नितान्त ऐश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर (सुन्वते) ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले एवं उसके उत्पादक (स्तुवते) [वेदादि शास्त्रो के अर्थ को प्रशसा करते हुए अर्थात् उनको हृदयगम कर] साधक के लिए (काम्य वसु) कामना करने योग्य ऐश्वर्य को (सहस्रेणेव) सहस्रो की सख्या मे (मंहते) वृद्धि देता है, उस (श्रुतम्) भली-भांति प्रसिद्ध, (सुराधसं)सम्यक् सिद्धि की प्रेरणा देने वाले (शक्र) शक्तिशाली परमेश्वर की (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये (प्र) प्रकृष्ट रीति से (अर्च) स्तुति कर ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्यइच्छुक साधक वेदादि शास्त्रो के अर्थ को समझे, और उसके अनुसार प्रभु के गुणो को प्राप्त करने का प्रयास करे ; इस तरह वह सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का पात्र बनता है ॥१॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।

गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥२॥

पदार्थ—(यदि) जब (सुता) सम्पादित भक्तिरस (ईं) इस परम ऐश्वर्य सम्पन्न को (अमन्दिषु) हर्षित करते है तब (अस्य) इस (इन्द्रस्य) परमात्मा की (शतानीका) शतमुख (दुष्टरा) अजेय (हेतय) गतियाँ (मघवत्सु) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न बनने के इच्छुको मे (मही) मूल्यवान् (इष)इष्ट पदार्थों को, (न) जैसे (भुज्मा) पालक (गिरि) मेघ पृथिवी को वर्षाजल द्वारा सींचता है वैसे दे कर सेवा करती हैं ॥२॥

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा की शक्तियाँ बहुमुखी है परन्तु भक्ति से हर्षित भगवान् भी उन्ही भक्तो की इच्छाए पूर्ण करते है कि जो आदरणीय ऐश्वर्य चाहते हैं ॥२॥

यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।

आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥

पदार्थः—(यदि) जब (सुतास) भक्त के द्वारा निष्पन्न (इन्दव) आनन्दकर सोमगुण [सोमो वा इन्दु —श० २ २, ३ २३] (ईम्) इस (प्रिय) प्रिय नितान्त ऐश्वर्यवान् प्रभु को (अमन्दिषु) प्रसन्न कर दें तो प्रभु से भक्त की प्रार्थना है कि हे (वसो) बसानेवाले ! (दाशुषे मे) आपको अपना सब कुछ अर्पित करनेवाले मुझ भक्त के लिये वे सोम गुण, (आप न) जैसे कि जल तथा (दुघा इव) जैसे कि दुधारू गायें (सवनं) यज्ञ के अर्थ धारण की जाती हैं वैसे, (सवन) यज्ञसाधक प्रेरणा को धारण (आ उप धायि) कराए ॥३॥

भावार्थ—जिस प्रकार शुद्ध जल व दुधारू गौओ का दूध भौतिक यज्ञ के आवश्यक उपकरण है, वैसे ही ऐश्वर्य साधक प्रेरणा को सफलता देने के लिये भक्त के द्वारा सुसम्पादित सौम्य गुण जरूरी है—उनसे ही भगवान आह्लादित होकर उसे प्रेरणा देते हैं ॥३॥

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।

आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥४॥

पदार्थ—हे परमऐश्वर्यवान् प्रभु (ऊतये) रक्षण आदि सहायता की प्राप्ति के लिये (व) आपको (हवमान) आह्वान करते हुए (अनेहस) अत , सर्वथा रक्षणीय साधक के प्रति आपकी (मध्व) मननीय इसलिये मधुर (धीतय) विचारधाराए (क्षरन्ति) बह आती है । (आ) और (इन्दव) ऐश्वर्य के अभिलाषी सौम्यगुणयुक्त साधक, (वसो) हे बसानेवाले ! (हवमानास) आपका गुणगान करते हुए (स्तोत्रेषु) अपने द्वारा की जाती हुई स्तुतियो मे (त्वा उप दधिरे) आपको अपने समीप स्थापित करते है ॥४॥

भावार्थ—जो साधक भगवान् के गुणगान करते हुए वेदो मे वर्णित प्रभु के विचारो का चिन्तन करते है, उन्हे प्रभु की सायुज्यता अनायास ही मिल जाती है ॥४॥

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।

यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥५॥

पदार्थ—हे (स्वध्वर) शोभित अहिंसक व्यवहारो के प्रेरक प्रभु ! (न) हमारे (सोमे) सकल गुणो, ऐश्वर्यों व कल्याण आदि को सम्पन्न करने वाले, यज्ञ कर्म के अवसर पर (इयान) पहुँचते हुए आप (अत्य न) निरन्तर गमनशील प्रवाह की भांति (तोशते) रिसते है । हे (स्वदावन्) भाग्यपदार्थों का आस्वादन कराने वाले (य) जिस (ते) आपकी (हवम्) प्रार्थना का (गूर्तय) उद्यमशील प्रजा (स्वदन्ति) स्वादपूर्वक भोग करती हैं उस वन्दना को (पौरे) अपना पेट भरने के स्वभाव वाले स्वार्थी की ओर भी (छन्दयसे) आगे बढ़ा ॥५॥

भावार्थ—हर एक सर्वहितकारी कर्म या यज्ञ मे भगवान् की सहायता सतत बहने वाले झरने के जल की भांति हमे तृप्त करती है , क्या ही अच्छा हो कि निरा स्वार्थभरा जीवन व्यतीत करने वाले आदमी भी प्रभु की इस सतत स्यन्दमान कृपा के झरने मे नहाए ॥५॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।

उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥६॥

पदार्थ—यह ऐश्वर्यसाधक भक्त (वीर) सब दुःखों को दूर कर देने वाले, (उग्र) तेजस्वी (विविच) विवेकशील, (धनस्पृत) सफलता-दाता ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, परम ऐश्वर्यवान् प्रभु से (महः) आदरणीय (राधस) संसिद्धि का कारणभूत ऐश्वर्य (प्र—प्रार्थये) चाहता है। हे (वज्रिवन् , बहुत से प्रशंसनीय एव वज्रवत् दृढ साधनो वाले परमात्मा ! (उद्री अवत इव) जैसे जलपूरित कूंआ अपने जल से सब को सतुष्ट करता है वैसे आप (दाशुषे) अपने को समर्पित किये भक्त को (सदा) सर्वदा (पीपेथ) सन्तृप्त करते हैं ॥६॥

भावार्थः—साधक सदैव ऐसे ऐश्वर्य की कामना एवं प्रार्थना करे कि जो उसको सम्मानपूर्वक समृद्धि दे, भगवान् के साधन, उसकी शक्तियाँ विविध एवं अभेद्य हैं—वह भक्त को सदा भरा पूरा, सतुष्ट व पुष्ट रखता है ॥६॥

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।

युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७॥

पदार्थ—हे (महेमते) पूज्य बुद्धि के धनी प्रभु ! (यत् ह) जहाँ कहीं भी, (परावति) सुदूर देश मे, (पृथिव्यां) धरती पर, (दिवि) अन्तरिक्ष मे (नून) निश्चित रूप से आप वर्तमान तो है ही। हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! [आप जहाँ भी कहीं है, वहीं मे] हे (ऋष्व) प्राप्तियोग्य भगवन् ! (ऋष्वेभि) ज्ञान-साधिका (हरिभि) अपनी हरणशील शक्तियों सहित (युजान) सयुक्त हुए (आ गहि) आइये ॥७॥

भावार्थ—यो तो भगवान सदैव सर्वत्र मौजूद है—उसका आना-जाना होता ही नही परन्तु साधनहीन साधक को उसका सायुज्य प्राप्त नही हो पाता । उसकी प्रभु से प्रार्थना है कि उसे वे साधन, ज्ञानसाधिका इन्द्रिय शक्तिया प्राप्त हो जिनसे भगवान् का सायुज्य मिले ॥७॥

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।

येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥८॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (ये) जो (रथिरास) रमणसाधन योग्य (अस्रिध) अहिंसक तथा अक्षय विज्ञानयुक्त (हरय) हरणसमर्थ तरी ताकत, [रथ मे जोतने योग्य, अक्षोभनीय घोडो के तुल्य (लुप्तोपमा)], (येभि) जिनके द्वारा (मनुष) मानव की (दस्यु) मानवता दाहक या नष्ट करने वाली शक्ति को (नि घोषय) आप शान्त कर देते है और (येभि) जिन शक्तियो के द्वारा (स्व) दिव्य आनन्द का (परीयसे) प्राप्त करते व कराते हैं, (ते) वे शक्तियाँ (वातस्य) प्राण की (ओज) ओजस्विता से (पिप्रति)परिपूर्ण हो जाती है ॥८॥

भावार्थ—मानव को क्षीण करने वाली भावनाओ को निष्क्रिय प्रभु द्वारा प्राप्त ज्ञान-कर्मसाधनो को सफल बनाकर ही किया जा सकता है और इन्द्रियाँ प्रबल बन सकेंगी प्राण की ओजस्विता का पान करके । प्राणायाम से इन्द्रियां पुष्ट होती हैं ॥८॥

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।

यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥९॥

पदार्थ—हे (शूर) प्रेरणा के द्वारा दोष का नाश करने वाले परमेश्वर ! (वसो) सब को वास देने वाले ! (ते) आपके (एतावत) इतने (नव्यस) वन्दनीय सामर्थ्य को हम (विद्याम) जाने और प्राप्त करे कि (यथा) जिस तरह (कृत्व्ये धने) कर्त्तव्य सफलता की प्राप्ति के लिए (एतश) गमनकुशल साधक की (प्राव) प्रकृष्टता से रक्षा हो और (दशव्रजे) दसो इन्द्रियो के आश्रय के निर्माण हेतु (वश) सयमी साधक की (प्राव) सम्यक्तया रक्षा हो ॥९॥

भावार्थ— भगवान् के स्तुत्य सामर्थ्य के द्वारा गतिशील साधक सफलता प्राप्त करता है और उस के द्वारा ही सयमी साधक अपनी इन्द्रियशक्तियो की रक्षार्थ आश्रय-स्थान बनाता है ॥९॥

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।

यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (मघवन्) आदरणीय ऐश्वर्य स्वामी भगवन् ! आपने (यथा) जिस तरह अथवा जितनी मात्रा मे (कण्वे) स्तुतिकर्ता मेधावी के लिए, (मेधे) विद्वानो के सगम हेतु, (अध्वरे) अहिंसक सत्कर्म के लिए, (दीर्घनीथे) सुदीर्घ काल तक नेतृत्व-क्षम के निमित्त, (गोशर्ये) इन्द्रियप्रेरक साधक हेतु, (असिषास) प्रदान किया; उसी प्रकार अथवा उतनी मात्रा मे तो अवश्य ही, हे (अद्रिव) अतिशय प्रशंसित ऐश्वर्य प्रभु ! (मयि) मुझ साधक के अधिकार मे मेरा (गोत्रं) इन्द्रियो का समूह (हरिश्रियम्) मुझे आपकी दिशा मे ले चलने के गुण से शोभित करे ॥१०॥

भावार्थ—स्तुति करने वाले विद्वान् आदि को प्रभु से सामर्थ्य प्राप्त होता है; इन्द्रियो को सफल बनाने का लक्ष्य रखनेवाला साधक भी इस प्रकार साधना करे कि इन्द्रिया उसके वश मे हो, जिससे वह भगवान् से सायुज्य प्राप्त कर सके ॥१०॥

अष्टम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—१० श्रुष्टिगु. काण्व ऋषि. ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द -१, ३, ९ निचृद् बृहती । ५ विराड् बृहती ७ बृहती । २ विराट् पंक्ति. । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ स्वर — १, ३, ५, ७, ९ मध्यम । २, ४, ६, ८, १० पञ्चम ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोमंमिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचां ॥१॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् प्रभु ! आपने (**यथा**) जिस परिमाण मे (**सांवरणौ**) दोषो से या संवरण-आच्छादन बचाव किये हुए (**मनौ**) मननशील साधक के अन्तःकरण मे (**सुतं**) निष्पादित (**सोम**) ऐश्वर्यदायक शास्त्रबोध आदि का (**अपिबः**) सरक्षण किया और जिस मात्रा में (**नीपातिथौ**) ज्ञान सागर की गहराइयो मे गमनशील के अन्त करण मे, (**मेध्यातिथौ**) पावनता की ओर निरन्तर गतिशील के अन्त करण मे व (**पुष्टिगौ**) इन्द्रियो को पुष्ट रखने वाले साधक के अन्तःकरण मे ऐश्वर्यकारक शास्त्रबोधादि का (**अपिब**) सरक्षण किया उतनी ही मात्रा मे, (**हे मघवन्**) आदरणीय ऐश्वर्य के स्वामी आप (**श्रुष्टिगौ**) क्रियाशील [शीघ्रतामय] इन्द्रियो वाले साधक के अन्त करण मे (**सचा**) एकत्रित करें ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान-विज्ञान नाना ऐश्वर्यो के प्रदाता है ; ये कैसे साधक के अन्त करण में प्रभु द्वारा प्रेरित होते है ? इसके उत्तर मे बताया है कि विभिन्न दोषो से बचते हुए मनन मे रत ; गहरा विचार करने वाले, इन्द्रियो को पावन, पुष्ट व सक्रिय रखने वाले साधको के अन्त करण शास्त्रबोध आदि के लिये ईश्वर के द्वारा प्रेरणा पाते रहते है ॥१॥

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥

पदार्थ—(**पार्षद्वाणः**) वाणी विध्वसक रोग आदि ने (**जिव्रि**) वृद्ध, (**उद्धित**) अपनी स्थिर स्थिति से उखड़े, (**शयान**) सोत हुए, अतएव, असावधान (**प्रस्कण्व**) प्रकृष्ट स्तोता बुद्धिमान् को (**सम् असादयत्**) दबोचा ; तब उस (**वृकः**) आक्रमण के शिकार, (**ऋषि**) मन्त्रद्रष्टा ने (**त्वोत**) परमेश्वर से आदेश-प्रेरणा-पाये हुए ने (**दस्यवे**) हिंसक लुटेरो के लिये—उसके प्रभाव को दूर करने हेतु (**गवां सहस्राणि**) अनेक सूर्यकिरणो का(**असिषासत्**) सेवन करना चाहा ॥२॥

भावार्थ—प्रकृष्ट स्तोता किन्तु असावधान हो वाणी का प्रयोग करने वाला विद्वान् भी कभी अचानक वाणी से हिंसक रोगादि का शिकार हो जाता है। सूर्य किरणो ने ऐसे रोग आदि नष्ट होन का यहाँ इंगित किया गया है ॥२॥

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

पदार्थ—(**ऋषिचोदन**) तत्त्वज्ञानार्थ तर्क के प्रेरक [या तत्त्वज्ञानार्थोहा सैव तर्कशब्देन गृह्यते, अत्र तर्क एव ऋषिरुक्त.।], (**चिकिद्य**) जानने योग्य (**य**) जो नितांत ऐश्वर्यवान् (**उक्थेभि**) केवल मात्र शास्त्र उपदेशो से ही (**न**) नहीं (**विन्धते**=**विन्दते**) उपलब्ध होता; (**त**) उस (**भोजसे**) भोग या ज्ञान आदि पदार्थों के लिये [**न अरिष्यन्तं**) हिंसित या कष्टापन्न न करन वाले (**इन्द्र**) इन्द्र के प्रति (**मती**) भक्ति सहित (**नव्यस्या**) स्तुति वचन [**अच्छा**] भली-भाँति (**वद**) उच्चारे ॥३॥

भावार्थ—तत्त्वज्ञान हेतु ऊहापोह की शक्ति प्रभु से ही मिलती है परन्तु कोरे ऊहापोह या तर्क से ही प्रभु की प्राप्ति नही होती, अपितु भक्तिसहित उसका गुणगान करते हुए उन गुणो का अन्त करण मे धारण करके उसकी सायुज्यता मिलती है ॥३॥

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ॥
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४॥

पदार्थ—(**यस्मा**) जिस प्रभु को भली-भाँति समझने हेतु (**उत्तमे पदे**) उत्कृष्टतम स्थान मे स्थित (**सप्तशीर्षाण**) सप्तविध रश्मियो से युक्त (**त्रिधातु**) भू आदि तीनो लोकों का पोषण करने वाले (**अर्कं**) सूर्य की (**आनृचु**) वन्दना करते हैं अर्थात् उससे गुणो को जान उनसे लाभ उठाते हैं और (**स तु**) वह प्रभु (**इमा विश्वा भुवनानि**) इस सारी सृष्टि को—(**अचिक्रदत्**) निरन्तर पुकारता है—उपदेश देता है, और (**आत् इत्**) इसके बाद (**पौंस्य**) पौरुष का (**अजनिष्ट**) प्रादुर्भाव करता है ॥४॥

भावार्थ—भगवान् की सृष्टि में सूर्य इत्यादि अनेक स्तुत्य व उत्कृष्ट पदार्थ हैं, उनके गुणो को जान उनसे लाभ उठाना प्रभु की शक्ति को समझने का सर्वोत्तम उपाय है। प्रभु अपने उदाहरण द्वारा सारी सृष्टि को अपना अनुकरण करने का उपदेश देता है—मानव मे पौरुष का प्रादुर्भाव इसी तरह होता है ॥४॥

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो इन्द्र (**न**) हमे (**वसूनां**) ऐश्वर्य (**दाता**) देता है (**त**) उस इन्द्र का (**वयम्**) हम (**हूमहे**) गुण गाते है, (**हि**) ताकि हमे इस प्रकार (**अस्य**) इसकी (**नवीयसीं**) नित्य नयी-नयी (**सुमति**) अनुग्रहबुद्धि का (**विद्म**) पता लगे और (**गोमति**) ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित (**व्रजे**) सन्मार्ग पर (**गमेम**) हम बढ़ने लगें ॥५॥

भावार्थ—भगवान् के गुणगान से स्तोता को उसके अनुग्रहो का नित्य नया ज्ञान होता है और उसके सन्मार्ग पर चलने की समझ उपजती जाती है। इस भाँति वह भगवान् के अधिकाधिक समीप होता जाता है ॥५॥

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥६॥

पदार्थ—हे (**वसो**) ऐश्वर्य द्वारा सब को बसाने वाले भगवन् ! (**यस्मै**) जिसे (**त्वं**) आप (**दानाय**) दान देने की (**शिक्षसि**) शिक्षा [अपने उदाहरण से] देते हैं (**स.**) वह व्यक्ति (**रायस्पोष**) ऐश्वर्य की पुष्टता (**अश्नुते**) पा लेता है, वह विपुल ऐश्वर्यशाली हो जाता है। हे (**मघवन्**) सन्माननीय ऐश्वर्य स्वामी (**इन्द्र**) इन्द्र ! आप की वन्दना (**गिर्वण,**) वाणी द्वारा की जाती है, हम (**सुतावन्त**) ऐश्वर्ययुक्त हो—इस प्रयोजन से आप का (**हवामहे**) आह्वान करते है ॥६॥

भावार्थः—भगवान ने सब कुछ रचकर विश्व को ही सब प्रदान कर दिया, और फिर भी वह नितांत ऐश्वर्यशाली है। इसी प्रयोजन से हम उसका गुणगान करते है कि उसके उदाहरण से कर्त्तव्य व कर्म की शिक्षा ले हम धनसपन्न बनें ॥६॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! आप (**कदाचन**) कदापि (**दाशुषे**) प्रदानशील हेतु (**स्तरी**) निष्फल (**न असि**) नही होते, (**सश्चसि**) उसे सदा प्राप्त कराते हैं। हे (**मघवन्**) आदरणीय ऐश्वर्यवन् ! (**ते**) आप के निमित्त किया (**दानं**) दान (**नु**) निश्चय ही (**नु**) शीघ्र (**भूयः इत्**) और अधिक होकर (**देवस्य**) दाता के साथ (**पृच्यते**) सम्पृक्त होता है ॥७॥

भावार्थ—ऐश्वर्य का एकमात्र स्वामी परमेश्वर ही है। उस समर्पण बुद्धि से किया हुआ, सत्पात्र मे दिया दान, और अधिक होकर दाता की सेवा मे लौटता है ॥७॥

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥

पदार्थ—(**अमू**) इस धरती को (**प्रथयन्**) प्रकट करते हुए (**यत् इत्**) जब भी जिसने (**दिव**) प्रकाशलोक को (**अस्तभीत्**) थामा (**आत् इत्**) और उसके बाद (**य.**) जो (**पार्थिव**) स्वामी (**अजनिष्ट**) आवश्यक रूप से निरूपित हुआ उसने (**शुष्ण**) शोषक को (**वधै**) आघातो से (**निघोषयन्**) नि.शब्द, [मौन अतएव मृत] करते हुए (**क्रिविं अभि**) हिंसक को (**ओजसा**) अपनी ओजस्विता द्वारा (**प्र, ननक्षे**) व्याप्त किया ॥८॥

भावार्थः—भगवान् जब सारी सृष्टि रचकर इसका आधार बना तब वह स्वभावत इसका स्वामी भी कहलाया। अधीश्वर के रूप में वह सभी शोषको व हिंसको को नियन्त्रित करता है ॥८॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥९॥

पदार्थ—(**अय**) यह (**विश्व.**) सकल ससार, भले ही वह (**आर्यः**) प्रगतिशील हो या (**दास**) प्रगति का विध्वसक हो, (**शेवधिपा**) धन रक्षक हो या (**अरि**) लूटने वाला शत्रु हो (**यस्य**) जिसके पीछे है, (**स रयिः**) वह ऐश्वर्य (**तिर चित्**) अप्रत्यक्षत (**अर्ये**) स्वामिभूत, (**रुशमे**) हिंसक भावना के मारने वाले (**पवीरवि**) साधनयुक्त (**तुभ्येत**) आप इन्द्र मे ही स्थापित है ॥९॥

भावार्थ—ससार मे भाँति-भाँति की भावनाओ वाल सभी व्यक्ति ऐश्वर्य के इच्छुक हैं, परन्तु इस ऐश्वर्य का मुखिया तो एकमात्र परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ही है, उससे निर्दिष्ट साधनो से ही उत्तम ऐश्वर्य मिल सकता है ॥९॥

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१०॥

पदार्थ—(**तुरण्यव**) तीव्र गति वाले (**विप्रास.**) बुद्धिमान् साधक (**मधुमन्त**) अमृतरस, मोक्षसुखयुक्त, (**घृतश्चुत**) ज्ञानरूप तेज से ओत-प्रोत—(**अर्कं**) पूजनीय प्रभु की (**अर्चन्ति**) इन शब्दों में स्तुति करते हैं—"(**अस्मे**) हममे (**रयि**) दान की भावना से दिया गया ऐश्वर्य (**प प्रथे**) बढ़ें, और (**वृष्ण्य**) बलिष्ठ मे प्राप्य (**शव**) बल बढ़े व (**सुवानास**) प्रेरणा [अन्तर्ज्ञान] के देने वाला (**इन्दव**) आनन्दरस प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थ—वही बुद्धिमान् है जो परम ऐश्वर्य, मोक्षसुख के धनी उस प्रभु के क्षात्र व ब्राह्मबल का ध्यान कर स्वय शारीरिक बल व आत्मिक शक्ति अर्जित करने की चेष्टा करते है ॥१०॥

अष्टम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य द्वापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १-१० आयु काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, ७ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ९ विराड् बृहती । २ पादनिचृद् पङ्क्ति । ४, ६, ८, १० निचृत् पङ्क्ति. ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९ मध्यम । २, ४, ६, ८, १० पञ्चमः ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥१॥

पदार्थ —हे (**शक**) साधना से शक्ति प्राप्त मेरे आत्मा ! जिस तरह तू (**विवस्वति**) अज्ञानान्धकार का दूर भगा ज्ञान के प्रकाश से आलोकित (**मनौ**) मननशील साधक के हृदय मे (**सुतं**) उपजे (**सोम**) ऐश्वर्यकारक प्रबोध का (**अपिब**) पान करता है और (**त्रिते**) त्रिविध सुख युक्त साधक के अन्त करण मे आसीन (**कण्व**) सन्तृप्ति सुख—जैसे सुख का (**जुजोषसि**) सतत खूब सेवन करता है, (**आयौ**) सत्यासत्य के विवेचक साधक के अन्त करण मे विद्यमान वैसे ही परमानन्द मे भी (**सचा**) सगति के द्वारा (**मादयसे**) आह्लादित होता है ॥१॥

भावार्थ —अज्ञान के अंधकार से रहित, प्रबोधयुक्त साधक का आत्मा एक प्रकार के ऐश्वर्य को पाता है और त्रिविध सुखप्राप्त साधक का आत्मा सन्तुष्टि से आनन्दित होता है, इसी तरह सत्यासत्य के विवेचक साधक का आत्मा भी दिव्यानन्द में मग्न रहता है ॥१॥

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।

यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यसाधक मन ! (**सोम**) ऐश्वर्य के दाता बोध की (**सुवाने**) प्रेरणा प्राप्त कर रहे (**पृषध्रे**) दिव्यानन्दधारी, (**मातरिश्वनि**) अन्तरिक्ष मे गति वाली वायु के तुल्य बलिष्ठ एव वेगवान्, (**दशशिप्रे**) बहुविध ठोस सुख से परिपूर्ण, (**दशोण्ये**) बहुत प्रकार से स्वाश्रितो के दुःख हरने वाले, (**स्यूमरश्मौ**) अग अग मे व्याप्त विज्ञान-किरण एव (**ऋजूनसि**) सरल आचार-व्यवहार वाले अभ्यासी के सपर्क मे (**यथा**) उचित (**अमन्दथा**) तृप्ति का अनुभव कर ॥२॥

भावार्थ —ऐश्वर्य देने वाले बोध के प्राप्त होने पर व्यक्ति दिव्यानन्दधारी, बलिष्ठ, उत्तम सुख सुविधाओ से सपन्न विज्ञानरश्मियो के द्वारा तेजस्वी हो जाता है और पूरी तरह तृप्त रहता है ॥२॥

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।

यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३॥

पदार्थ —(**यः**) जिसने (**केवला = केवलानि**) विशुद्ध (**उक्था = उक्थानि**) प्रोत्साहन तथा उपदेश देने योग्य वेदस्थ स्तोत्रो को ही धारा है (**य.**) जो (**धृषिता**) दृढ व विजयी होने के लक्ष्य से (**सोम**) पौष्टिक ओषधि आदि के रस को (**अपिबत्**) पीता है और (**यस्मै**) जिसके हित हेतु (**विष्णु**) सर्वव्यापक प्रभु स्वय (**मित्रस्य धर्मभि**) मैत्री के कर्त्तव्यो के साथ मित्रता का निर्वाह करते हुए (**त्रीणि**) स्वरचित ससार के तीन चौथाई भाग को (**विचक्रमे**) सतत सचेष्ट करते हैं—यह जीवात्मा ऐसा है ॥३॥

भावार्थ —प्रभु प्रकृति आदि पृथ्वी पर्यन्त यह जो सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है—सो उसके एक चौथाई अर्थात् एक देश मे बसता है और जो प्रकाशगुणयुक्त (प्रकाशक) जगत है वह उससे तिगुना है और वह स्वय मोक्षस्वरूप, सर्वप्रकाशदाता है। बस अपने मित्र जीवात्मा के लाभ हेतु परम प्रभु अपने इस प्रकाशक तीन गुन भाग को सतत रूप से सचेष्ट रखते है ॥३॥

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।

तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ।४॥

पदार्थ —हे (**वाजिन्**) विज्ञान इत्यादि बल-धारण करने वाले, (**शतक्रतो**) सैकडो कर्म करने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्य सपन्न जीवात्मन् ! (**त्व**) तू विज्ञानादि बल हेतु (**यस्य**) जिसके (**स्तोमेषु**) स्तुतिवचनो मे (**चाकन**) प्रीति रखे (**त**) उस प्रभु को (**श्रवस्यव वय**) अन्न आदि ऐश्वर्य की इच्छा रखते हुए हम (**गोदुह**) गाय से दूध दुहने वाले (**सुदुघां इव**) सुगमता से दुही जाने वाली गाय को जैसे दाना आदि देकर उससे दूध लेते हैं वैसे हम (**जुहूम**) उस प्रभु का गुणगान कर मानो उसे कुछ समर्पित करते है और फिर उसके गुण ग्रहण करते है ॥४॥

भावार्थ —परमेश्वर का स्तुतिगान करके जीवात्मा यो तो वस्तुत कुछ नहीं देता परन्तु मानो वही उसका प्रभु को दान है। इस 'दान' से उसमे परमेश्वर के गुणग्रहण की शक्ति का सचय होता है—यही 'आदान' है, इस तरह 'दानादान' की क्रिया है अथवा यज्ञ निष्पन्न हो रहा है ॥४॥

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।

अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥

पदार्थ —(**य**) जो प्रभु (**न**) हमे (**दाता**) ऐश्वर्य प्रदान करता है, (**स**) वही (**न· पिता**) हमारा पालन कर्ता है, (**महान् उग्र**) नितांत तेजस्वी है और (**ईशानकृत्**) अभावग्रस्त को भी ऐश्वय का शासक बना देता है और (**अयामन्**) अगन्तव्य मार्ग पर चलने वाले पापकर्मा के प्रति वह (**उग्र**) भयानक रूप धारण करता है। वह (**पुरूवसु**) बहुतों को बसाने वाला (**मघवा**) स्वय ऐश्वर्य युक्त (**न.**) हमें (**गो अश्वस्य**) गौ, अश्व आदि सपन्नता प्रदान करे ॥५॥

भावार्थ.—पाप के मार्ग पर चलने वाले को प्रभु के गुणगान से कोई लाभ नहीं हो सकता, अत हम कुपथगामी न हो और उसके गुणों को धारने का सामर्थ्य पैदा करें ॥५॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।

वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥६॥

पदार्थ —हे (**वसो**) बसाने वाले प्रभु ! आप (**यस्मै**) जिस साधक के हेतु (**दानाय**) दानार्थ (**महसे**) आदेश देते हैं (**स**) वह साधक (**रायस्पोष**) ऐश्वर्य पुष्टि को (**इन्वति**) प्राप्त करता है—वह धन से समृद्ध होता है। अतएव (**वसूयव**) ऐश्वर्य के इच्छुक हम साधक (**स्तोमै**) स्तुति वचनो के द्वारा (**वसुपति शतक्रतु**) धनपालक, बहुकर्मा (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् भगवान् का ही (**हवामहे**) दूसरो को उपदेश देते है और उस ही के गुण सुनते हैं ॥३॥

भावार्थ —प्रभु के समृद्ध रूप का गुणगान करते-करते जब साधक गुणग्रहण हेतु सुपात्र बनता है तब उसे भगवान् के गुणों का दान ऐसे मिलता है कि मानो भगवान् के आदेश से ही ऐसा हुआ है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह प्रभु के गुणो को स्वय सुने व दूसरो को सुनाए भी। यही भगवत्-कीर्तन यज्ञ है ॥६॥

कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।

तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥७॥

पदार्थ —हे (**तुरीय**) चतुर्थ अर्थात् परमकारण ! (**आदित्य**) विनाश से परे ! (**इन्द्रिय**) ऐश्वय प्राप्ति का लक्षक (**अमृत**) मोक्षप्रापक (**ते**) आपका (**हवन**) आवाहन या प्रार्थना (**दिवि**) ज्ञान के प्रकाश पर (**आतस्थौ**) आश्रित है। आप तो (**उभे**) अच्छे तथा बुरे—स्वभाव से पापी पुण्यात्मा—दोनों (**जन्मनी**) जीवो पर (**निपासि**) विशेष ध्यान देते हैं, द्रष्टा के अपने इस कर्त्तव्य आप (**कदाचन**) कभी (**न**) नहीं (**प्रयुच्छसि**) प्रमाद करते ॥७॥

भावार्थ·—विश्व के पापी-पुण्यात्मा—दोनो तरह के मनुष्यो के कर्मों का द्रष्टा प्रभु है—इस कार्य मे वह कभी प्रमाद नहीं करता। हा, जो परमात्मा का आवाहन करने लगते है—उन्हे मानो उस अविनाशी, परमकारण प्रभु का ऐश्वर्य प्राप्त हो गया हो। यह आवाहन वह जीव करता है जिसे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो जाता है ॥७॥

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।

अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥८॥

पदार्थ —हे (**मघवन्**) ऐश्वर्ययुक्त ! हे (**गिर्वण**) वाणियो के द्वारा याचना योग्य ! (**शिक्षो**) हे शिक्षक ! (**इन्द्र**) प्रभु ! (**त्व**) आप (**यस्मै दाशुषे**) जिस आत्म समर्पण करने वाले भक्त को (**शिक्षसि**) शिक्षा देते हैं, (**अस्माक**) उसके समान हमारी भी (**वसो**) हे बसाने वाले ! (**गिर**) प्रार्थना को (**उत**) और (**सुष्टुतिं**) शुभ स्तुति को (**कण्ववत्**) स्तुत्य के तुल्य (**त्व**) आप भी (**शृणुधि**) सुनिये ॥८॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे वर्णित है कि प्रभु ईश्वरार्पणबुद्धि से काम करने वाले भक्त को ही उक्त शिक्षाप्रकाश प्रदान करता है ॥८॥

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९॥

पदार्थ —(**मन्म**) मननयोग्य (**पूर्व्यं**) सनातन (**ब्रह्म**) वेदज्ञान (**अस्तावि**) स्तुति मे सिद्ध किया गया है, उसका (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य की साधना कर रहे जीवात्मा को (**वोचत**) उपदेश दो। (**ऋतस्य**) परमसत्य या यथार्थ का ज्ञान देने वाली (**पूर्वी**) सनातन (**बृहती**) बृहत् ऋचाओ के द्वारा (**अनूषत**) वन्दना करें। इस तरह (**स्तोतु**) स्तोता की (**मेधा**) बुद्धिशक्ति की (**असृक्षत**) रचना होती है ॥९॥

भावार्थः—विधिसहित भगवान की स्तुति से साधक के हृदय मे प्रभु के गुणो का आधान होता है और वह सर्वप्रकार समृद्ध होता है। इस मन्त्र मे कहा गया है कि स्तुति के उपयुक्त शब्द सनातन वेद के शब्द हैं, उन्ही का विधिपूर्वक पाठ करो ॥९॥

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य के साधक मननशील जीवात्मा उपर्युक्त (**बृहती**) बृहत् ऋचाओ रूप (**राय**) ऐश्वर्य का (**स अधूनुत**) भली-भाति से प्रवर्तित कर और इस स्तवन द्वारा (**क्षोणी**) द्युलोक से पृथिवी तक को (**उ**) और (**सूर्य**) सूर्यलोक को भी (**सम्, अधूनुत**) गुंजित कर दे। उस इन्द्र को (**शुक्रास**) वीर्यकारक, और (**शुचय**) पवित्र (**सोमाः**) दिव्यानन्द रस तथा (**गवाशिर**) ज्ञानमिश्रित दिव्यानन्द रस (**सम्, अमन्दिषु**) भली-भाति हर्षित करते है ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा की स्तुति वन्दना भली-भाति करनी चाहिये। ज्ञानपूर्वक—शब्दो के अर्थों को भली भाति समझते हुए—किया हुआ गुणकीर्तन अपूर्व आनन्द प्रदान करता है ॥१०॥

अष्टम मण्डल मे बावनवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टर्चस्य त्रिपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य १—८ मेध्यः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड् बृहती । ३ आर्ची स्वराड् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पङ्क्तिः । ८ विराट् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७ मध्यमः । २, ४, ६, ८ पञ्चमः ॥

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।

पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) पूज्य ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त ! (**इन्द्र** (ऐश्वर्यवान् प्रभो ! (**मघोनां**) उदारजनों मे (**उपमं**) दृष्टान्तस्वरूप, (**वृषभाणां**) सुख आदि के दाताओ मे (**ज्येष्ठ**) प्रशसनीय, (**पूर्भित्तम**) [दुष्टो की] रक्षापक्तियो को नष्ट करने वाले, (**गोविद**) पृथ्वी आदि पदार्थों के प्रापक, (**ईशान**) ऐश्वर्य के लिये सृष्टि के कर्ता, (**राये**) दानभावना से सुसस्कृत ऐश्वर्य हेतु (**त्वा**) आपको (**ईमहे**) प्राप्त करें अथवा जानें ॥१॥

भावार्थः—संसार का अधिपति नितांत उदार है, ऐश्वर्य प्राप्त करने का एकमात्र उपाय उसे जानकर उसके गुणो का आधान ही है, इस प्रकार उस से अधिष्ठित तथा पूजित ऐश्वय हम प्राप्त करते हैं ॥१॥

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।

तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥२॥

पदार्थः—(**दिवेदिवे**) निशिदिन (**वावृधान**) बढाते हुए (**यः**) जो प्रभु (**आयुं**) प्राप्तव्य अन्न-ज्ञान-आदि को, (**कुत्स**) शत्रुओ व शत्रुभावनाओ को तिरस्कृत करने के साधन वज्र इत्यादि को तथा (**अतिथिग्व**) अतिथिवद् पूज्यों का सगम कराने वाले साधनो को (**अर्दय**) दिलाते है (**त**) उन, (**हर्यश्व**) मनुष्यों को सुपथ पर शीघ्र चलाने वाले, (**शतक्रतु**) सैकडो प्रज्ञा व कर्मशील, आपको (**वाजयन्त**) प्राप्त करना चाहते हुए हम (**हवामहे**) आपकी वन्दना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सकल सांसारिक पदार्थ, अन्न-ज्ञान-विभिन्न साधन—परमपिता परमात्मा की ही देन हैं, वही मानव को सुमार्ग दिखाते हैं; उन परमात्मा को प्राप्त करने हेतु उनके गुणो का बार-बार स्मरण व उच्चारण अनिवार्य है ॥२॥

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।

ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥३॥

पदार्थ—(**ये**)जो (**इन्दव**) सोमगुण से समृद्ध विद्वज्जन (**परावति**) दूरस्थ—अनुत्सुक, उत्साहरहित—(**जनेषु**) जन के प्रति (**सुन्विरे**) सुख देने वाली क्रियाओ का उपदेश देते हैं और जो (**अर्वावति**) उत्सुक-स्वाभिमुख अपनी तरफ कान देने वाले व्यक्ति को तो सुखसाधक क्रियाए बताते है वे (**अद्रय**) [मेघो के तुल्य तापहारी उपदेशामृत को] सींचने वाले विद्वज्जन (**विश्वेषां**) सकल पदार्थों के ज्ञान का (**मध्व**) मधुर (**रस**) सारभूत द्रव (**न**) हमारे अन्त करण मे (**सिञ्चन्तु**) बरसाए अर्थात हमे वह बोध दें ॥३॥

भावार्थ—कोई चाहे अथवा न चाहे मेघ बादलों से वर्षा का जल देता ही है । सौम्य विद्वान भी उसी प्रकार अपने उपदेश रूपी अमृत की वर्षा ऐसे लोगो पर भी करते हैं जिनमे उनके लिये उत्सुकता नहीं है ॥३॥

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।

शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४॥

पदार्थ—(**यत्र**) जब (**शीष्टेषु**) प्रशिक्षित, (**चित्ते**) अन्त करण (**सोमस्य**) सम्पादयितव्य सुख के (**मदिरास**) मादक (**अंशव**) कणों से (**तृम्पसि**) तृप्त हो जाते हैं तब (**विश्वा**) सारी (**द्वेषांसि**) द्वेषभावनाए (**जहि**) दूर हो जाती हैं (**च**) और [साधक] सब द्वेषभावनाओ को (**अवकृधि**) त्याग देता है । उस स्थिति में (**विश्वे**) सारे (**वसु**) वासक ऐश्वर्य (**सन्वन्तु**) साधक की सेवा करते हैं ॥४॥

भावार्थ—प्रभु की भक्ति के परमसुख से भरा चित्त कुछ विशेष नियमो मे आबद्ध हो हर्षित हो जाता है ऐसे चित्त मे द्वेष की भावनाओं को स्थान नहीं रहता और साधक सब भांति समृद्ध हो जाता है ॥४॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! (**मितमेधाभि**) अनुग्रहबुद्धियों सहित (**ऊतिभि**) रक्षणादि क्रियाओ सहित (**नेदीय**) समीपतर (**इत्**) ही (**आ इहि**) आइये । हे (**शंतम**) अधिकतम कल्याण करने वाले प्रभु ! (**शंतमाभि**) अधिकतम कल्याण-कर (**अभिष्टिभि**) हमारी कामनाए पूर्ण करते हुए आइये; हे (**स्वापे !**) सुष्ठुतया सुखप्राप्त परमात्मा ! आप (**स्वापिभि**) सुष्ठुतया सुखों को प्राप्त कराने वाली शक्तियों को लेकर आइये ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर का गुण गान साधक को इस प्रयोजन से करना चाहिये कि उसके गुण अपने अन्त करण मे धार कर वह परमप्रभु के अनुग्रह का पात्र बने; और उसे अधिक से अधिक कल्याण की प्राप्ति हो । उसकी कल्याणकारिणी इच्छाएं अधिकाधिक पूर्ण हों और इस भांति वह सुखी हो ॥५॥

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।

प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥६॥

पदार्थ—हे प्रभो ! आप (**प्रजासु**) हमारी सतान का (**आजितुर**) सघर्ष मे पार लगाने वाले, (**सत्पति**) सज्जनो के पालन के साधक (**विश्वचर्षणि**) सभी मनुष्यों के रक्षासाधन (**भगम्**) ऐश्वर्य (**आकृधि**) प्रदान करो । (**ये**) जो (**उक्थिन**) स्तोता (**ते**) आप की (**आ नुषक्**) अनुकूलता सहित (**क्रतु**) प्रशस्त यज्ञ कर्म (**पुनते**) करते हैं उन्हें (**शचीभि**) कर्तृत्व व प्रज्ञाशक्तियों के द्वारा (**सुप्रतिर**) सम्यक्तया खूब बढ़ाए ॥६॥

भावार्थः—मानव के ऐश्वर्य का प्रयोजन सज्जनों तथा सभी मनुष्यों की रक्षा हो । जो लोग ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार, उसके अनुकूल, अपना बर्ताव रखे उसकी बुद्धि तीव्र होती है और वह सदैव कर्मठ रहता है ॥६॥

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।

वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (**ते**) आपके (**भरेषु**) दायित्वों के प्रति, (**ते**) आपकी (**अवसे**) प्रसन्नता या सन्तोष के प्रयोजनानुसार (**यः**) जो (**ते**) आप की दृष्टि मे (**साधिष्ठ.**) सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हो बस उतने ही उपयुक्त हम (**स्याम**) हों । (**ससवांस**) ऐश्वर्यप्राप्ति की इच्छा रखने वाले (**वय**) हम (**होत्राभिः**) वाणियों के द्वारा (**उत**) और (**देवहूतिभि**) विद्वानो के आह्वान द्वारा (**मनामहे**) आपका मनन करें ॥७॥

भावार्थ—साधक के लिये यह सकल्प धारण करना आवश्यक है कि वह परमेश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाने वालो मे सबसे उपयुक्त सिद्ध हो । भगवद् गुणो का स्तवन वह स्ववाणी से विद्वानो द्वारा निर्दिष्ट शब्दों मे करे ॥७॥

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।

त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**हरिव**) आकर्षक गुणयुक्त (**ब्रह्म**) महान् परमात्मा ! (**हि**) निश्चय ही (**वाजयु**) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला (**अहं**) मै साधक (**सदा**) सदैव (**ते**) आपकी (**ऊतिभि**) देखभाल सहित (**आजिं**) जीवन सघर्ष मे (**यामि**) पहुँचता हूँ । पुनश्च (**अश्वयु**) बलवती कर्मेन्द्रियों का इच्छुक मैं (**त्वां इत् एव त**) उस आपको ही (**मथीनाम्**) मन्थन करने वालो के (**अग्रे**) अग्रभाग मे (**सं अमे**) अपना सखा बनाता हूँ ॥८॥

भावार्थ—प्रभु की देखभाल मे जीवन-सघर्ष के निर्वाह का अभिप्राय है उसकी आज्ञाओ के अनुसार व्यवहार रखना । प्रभु का आज्ञाकारी मानव भला किस विघ्न-बाधा मे आतकित हो सकता है ! वह तो प्रभु के अग्रगामी मित्रो मे स्थान प्राप्त करता है ॥८॥

अष्टम मण्डल मे त्रेपनवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टर्चस्य चतुष्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—८ मातरिश्वा काण्व ऋषि. ॥ १, २, ५—८ इन्द्र । ३, ४ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्द—१, ५ निचृत् बृहती । ३ बृहती । ७ विराड् बृहती । २, ४, ६, ८ निचृत् पङ्क्ति ॥ स्वर—१, ३, ५, ७ मध्यम । २, ४, ६, ८ पञ्चम ॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।

ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! (**कारव**) स्तोता विद्वज्जन (**गीर्भि.**) स्ववाणी द्वारा (**ते**) आपके (**एतत् वीर्यं**) इस शौर्य का (**गृणन्ति**) वर्णन करते है, वे कहते हैं कि (**ते पौरास**) वे जनसाधारण (**स्तोभन्त**) वन्दना करते हुए (**ऊर्जं**) बल को (**आ अवन**) पाते है तथा (**धीतिभि**) धारणा एव ध्यान के द्वारा (**घृतश्चुत**) अतितेजस्वी आनन्द (**नक्षन्ते**) प्राप्त करते है ॥१॥

भावार्थ—मानव को परमात्मा के गुणगान से जो आत्मिक बल मिलता है, धारणा-ध्यान व समाधि से वही नितात तेजस्वी रूप मे प्राप्त होता है ॥१॥

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।

यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य के आकाक्षी ! (**येषां**) जिन साधको के (**सुतेषु**) निष्पादित विज्ञान बल आदि पर (**मन्दसे**) तू आह्लादित होता है वे (**अवसे**) अपनी सुरक्षा तथा सहायतार्थ (**सुकृत्यया**) शुभ कर्म धारा द्वारा, सतत सुकर्मरत रहते हुए (**इन्द्रं**) परमेश्वर को (**नक्षन्ते**) प्राप्त करते हैं । तू (**यथा**) जितना (**संवर्ते**) सब कुछ सचित कर रखने वाले में (**अमद**) प्रसन्न होता है और (**यथा**) जितने (**कृशे**) कुछ भी संचय न करने वाले—ऐश्वर्य से दुर्बल मे (**अमद**) आनन्द पाता है (**एव**) उसी तरह (**अस्मे**) हम—सचित कर दान देने वालो मे (**मत्स्व**) आनन्दित हो ॥२॥

भावार्थ—मानव न तो केवल संचयी ही हो और न ही निरा धनहीन । संचय करते हुए दानशील होना ही प्रभु की आज्ञा का पालन करना है ॥२॥

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥३॥

पदार्थः—(विश्वे) सभी (देवास:) मूर्त तथा अमूर्त देव (नः सजोषस) हमसे प्रीतियुक्त हुए (न)हमारे (उप गन्तन) निकट पहुँचें—हमारे अनुकूल हों । (वसव) अग्नि आदि आठों—सर्व वास दाता—और (रुद्रा.) शरीर से निकल जाने पर सम्बन्धियों को रोने पर बाध्य करने वाले ग्यारहों रुद्र देवता (न) हमारे (अवसे) उपकार के लिए (आ गमन्) आए और (मरुत) ऋत्विज, वायु के तुल्य बलिष्ठ वीरजन व अन्य विद्वान् (न:) हमारी (हवम्) प्रार्थना सुनें ॥३॥

भावार्थः—मूर्तिमान् दिव्य वस्तुओं के गुणों को समझ कर हम उन्हें अपना निकटस्थ बनाएं और उन्हें उपयोग में लाएं तथा विद्वानों का सत्संग कर उनके उपदेशों से लाभान्वित हों ॥३॥

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४॥

पदार्थ—(पूषा) सर्व पोषक सूर्य, (विष्णु) व्यापक वायु, (सरस्वती) वाणी व (सप्त सिन्धव) सात जगहों पर स्थित जल [भूमि, समुद्र नदी, कूप और सरोवर—इन चार स्थानों में स्थित, तथा अन्तरिक्ष में निकट, मध्य व दूर पर स्थित] (मे हव) मेरे आह्वान को (अवन्तु) मानें । इसी प्रकार (आप) व्यापक अन्तरिक्ष (वात) वायु (पर्वतास) मेघ, (वनस्पति) वृक्ष, लता इत्यादि, (पृथिवी) भूमि (हवम्) मेरी पुकार (शृणोतु) सुनें ॥४॥

भावार्थ—यहाँ उदाहरण रूप से कुछ प्रमुख जड़ दिव्य पदार्थों का नाम है। इनके गुणों का गहरा अध्ययन ही इनका आह्वान करना है, मनुष्य को चाहिये कि उनके गुण जानकर इनसे यथोचित उपकार ग्रहण करे ॥४॥

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५॥

पदार्थ—हे (मघवत्तम) माननीय ऐश्वर्य स्वामियों में से श्रेष्ठतम, (इन्द्र) प्रभो ! (यत् ते राध) जो आपका सिद्धिप्रद वैभव (माघोन) मघवा ऐश्वर्य के वास्तविक स्वामी आप से शासित (अस्ति) है, हे (वृत्रहन्) विघ्नहर्ता प्रभो ! आप (सधमाद्य) साथ-साथ ही प्रसन्न होने वाले एवं (भग:) सहभागी होकर (वृधे) हमें बढ़ाने हेतु तथा (दानाय) दानशीलता के लिये, (तेन) उस उपर्युक्त ऐश्वर्य का (न बोधि) हमें बोध दें ॥५॥

भावार्थ—परम प्रभु ऐश्वर्यजनित हमारी प्रसन्नता में सहभागी तभी होता है कि जब हम ऐश्वर्य को उसके वास्तविक स्वामी द्वारा शासित समझें—उसका उपयोग परमेश्वर से प्राप्त निर्देशानुसार करते रहें । ये निर्देश हमें परमात्मा के गुणगान तथा सिद्ध पुरुषों के उपदेशों से प्राप्त होते हैं ॥५॥

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥६॥

पदार्थ—(आजिपते) युद्ध इत्यादि संघर्षों में हमारा पालन करने वाले (सुक्रतो) शुभ प्रज्ञा वाले एवं कर्मवान्, (नृपते) राजन् ! (त्व इत् हि) आप ही (न) हम (वाजे) युद्ध इत्यादि में (आ वक्षि) वहन करते हैं, (वीती) कामना सहित किये गये (होत्राभि) दानादान रूप सत्कर्मों से और (देववीतिभि) विद्वानों की विशेष नीतियों का सहारा लेकर (ससवांस) अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए हम प्रजाजन (विशृण्विरे) विशेष रूप से प्रसिद्धि पाते हैं ॥६॥

भावार्थ—प्रजा राजा की मदद से युद्ध में विजय पाता है और यश इत्यादि सत्कर्मों व विद्वानों की नीतियों का अवलम्बन करके सम्पन्न व परिणामत प्रसिद्धि पाता है ॥६॥

सन्ति ह्य१र्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (जनानाम्) मनुष्यों की (आशिष) सिद्ध होने वाली इच्छाएं तथ (आयु) जीवन व जीवन हेतु अन्न आदि सब (अर्य) सब के स्वामी (इन्द्रे) आप सर्वैश्वर्यवान् ईश्वर के आधार पर (सन्ति) विद्यमान हैं। हे (मघवन्) पूजित ऐश्वर्य सम्पन्न ! आप (अस्मान्) हमें (उप नक्षस्व) सामीप्य से व्याप्त करें और (अवसे) हमारी रक्षा व सहायतार्थ (पिप्युषीम्) नितान्त पालक (इष) प्राप्तव्य की प्रेरणा (धुक्षस्व) पूरित करें तथा दें ॥७॥

भावार्थः—मानव की सकल सफल इच्छाएं परमात्मा पर निर्भर हैं—प्रभु के यथार्थ रूप को अपने सामने रखता हुआ मानव यदि उससे सही प्रेरणा पाए तो उसे सभी प्राप्तव्य पदार्थ मिलते हैं ॥७॥

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥

पदार्थ हे (इन्द्र) नितान्त ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर ! (स्तोमेभि) सामगान इत्यादि स्तुतियों द्वारा (ते) आप का (विधेम) गुणगान करें तो हे (शतक्रतो) असंख्य कर्मों व अनन्त प्रज्ञा वाले एवं इसलिये हमारी सब मनोकामनाएं पूर्ण करने में समर्थ भगवन् ! आप (प्रस्कण्वाय) प्रकृष्ट उपासक मुझे (महि) आदर दिलाने वाले, (अह्रय) जिसे प्राप्त कर समाज में अपमानित न होना पड़े ऐसे (स्थूर) स्थिर (शशय) सदैव प्रवहमान [शश प्लुतगतौ](राध) सिद्धिदाता ऐश्वर्य (नि तोशय) देकर सन्तुष्ट हों ॥८॥

भावार्थ—सारे ऐश्वर्य के स्वामी एवं जीवों को उसे देने वाले परमप्रभु के व जीवों के आदर की वजह वही ऐश्वर्य होता है जिसे साधक ने प्रभु के गुणों को अपने अन्तःकरण में रख तथा वाणी से उनका गान करते हुए प्राप्त किया हो । ऐसा ऐश्वर्य सदैव प्रवहमान, दूसरों को दिया जाता रहे, किसी एक स्थान पर ठहरना नहीं चाहिये । और फिर भी वह प्रभु की समग्र सृष्टि के समान प्रवाहरूप में स्थिर है ॥८॥

अष्टम मण्डल में चौवनवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—५ कृश काण्व ऋषि ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्द—१ पादनिचृद्गायत्री । २, ४, गायत्री । ३, ५ अनुष्टुप् ॥ स्वर.—१, २, ४ षड्ज । ३, ५ गान्धार ॥

भूरीदिन्द्रस्य वीर्य१ं व्यख्यमभ्यायति ।
राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) सम्पत्तिवान् के (भूरि) प्रभूत (वीर्यम्) शक्ति की मैं (व्यख्यम्) विशेष रूप से व्याख्या करता हूँ । हे (दस्यवे) लुटेरे हेतु (वृक) उसे काट डालने वाले ! (ते) तेरा वैभव (अभि, आ, अयति) मेरे समक्ष आ रहा है ॥१॥

भावार्थ—इन ऋचाओं का अभिप्राय स्तोता की दानशीलता का गुणगान करना है । इस ऋचा में कहा गया है कि धनी मानी व्यक्ति का बल बहुत अधिक होता है; वह लुटेरे को तो सहन नहीं करता, अपना धन-ऐश्वर्य दान दे सकता है ॥१॥

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥२॥

पदार्थ—(शत) सैकड़ों (श्वेतास:) शुभ्र रंग के (उक्षण) वीर्यसेक्ता, अतएव सन्तान द्वारा वृद्धिकारक वृषभ आदि जो (रोचन्ते) शोभित होते हैं, ऐसे (न) जैसे कि (दिवि) आकाश में (तार) तारे चमकते हैं । (मह्ना) अपने महत्त्व द्वारा वे (दिव न) मानो आकाश को ही (तस्तभु) थामे हुए हैं ॥२॥

भावार्थ—इन्द्र के ऐश्वर्य में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण पदार्थ 'उक्षा' है जिसका अर्थ है सेचन के द्वारा वृद्धि कराने वाले । इनमें सभी उत्पादक शक्तियों वाले पदार्थ समाहित हैं ॥२॥

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥३॥

पदार्थ—(शत) सैकड़ों (वेणून्) वीणा (शत) अनेक श्वान, (शत म्लातानि चर्माणि) सैकड़ों साफ किये हुए चमड़े, (शत) सैकड़ों (बल्बजस्तुका) विशेष प्रकार की घास के गुच्छे (अरुषीणां) चमकती हुई [भूमियों की] (चतुःशतम्) चार सौ संख्या ॥३॥

भावार्थ—जो व्यक्ति धन व सम्पदा से युक्त हैं उनकी ऐसी-ऐसी प्राकृतिक व परिष्कृत विभूतियाँ हैं ॥३॥

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥४॥

पदार्थ—(वयोवय) कमनीय जीवन में (विचरन्त:) विचरण करते हुए, (काण्वायना) शिष्य-प्रशिष्यों समेत हे स्तोताओ ! (सुदेवा:) शुभ गुण कर्म स्वभावों से दीप्यमान होवो । (अश्वास न) अश्वों के समान वीरतापूर्वक (चङ्क्रमत) लगातार चलते रहो ॥४॥

भावार्थ—शुभगुण कर्म व स्वभाव से युक्त स्तोताओं का समूह भी प्रमुख स्तोता का एक प्रकार का वैभव ही है । प्रकृष्ट स्तोता अकेला नहीं होता, उसका एक समूह, परिवार का परिवार ही, होता है । यह भी उसकी विभूति है ॥४॥

आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥५॥

पदार्थः—(आदित्) इसके बाद तो उन्होंने (साप्तस्य) सातों प्रकार के ऐश्वर्य के स्वामी तथा (अनूनस्य) सब प्रकार की कमियों से रहित के (श्रव:) यश को भी (महि) आदरणीय (न) नहीं (चर्किरन्) ठहराया । बात यह है कि (श्यावी) अन्धेरे (पथ:) रास्तों को (अति ध्वसन्) पार करता हुआ (चक्षुषा चन) नेत्र तक से भी नहीं (संनशे) उन मार्गों को आच्छादित कर सकता है ॥५॥

भावार्थ—अन्धेरे रास्ते पर प्रकाश की कमी से नेत्र भी काम नहीं देते—प्रभु भक्त का ऐश्वर्य सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से बढ़ा-चढ़ा होता है—उसके अभाव में

अन्य सब ऐश्वर्य एक प्रकार से फीके ही हैं; उसी प्रकार जैसे कि प्रकाश बिना आँख भी व्यर्थ है ॥५॥

अष्टम मण्डल में पचपनवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चपंचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य पृषध्र: काण्व ऋषि. ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । ५ अग्निसूर्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराड्गायत्री । २ गायत्री । ५ निचृत् पङ्क्तिः. ॥ स्वर १—४ षड्ज । ५ पञ्चम ॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् ।

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥

पदार्थः—हे (**दस्यवे**) दस्युओ को नष्ट करने हेतु (**वृक**) वृक के तुल्य भयङ्कर ! (**ते राधः**) तेरे ऐश्वर्य को मैंने (**अह्रय**) शर्म आदि दोषों से रहित (**प्रति अदर्शि**) समझा । (**ते शव**) तेरा बल (**द्यौ, न**) आकाश के तुल्य (**प्रथिना**) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—प्रभु का उन्मुक्त गुण कीर्तन करने वाले स्तोता को जो वैभव मिलेगा, वह उसे लज्जित नहीं करता, ऐसे स्तोता की दानशीलता के कारण उसका प्रभाव चतुर्दिक् विस्तृत हो जाता है ॥१॥

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।

नित्याद्रायो अमंहत ॥२॥

पदार्थः—(**दस्यवे वृक**) घातक लुटेरे के लिये वृक के जैसा भयङ्कर व कठोर हृदय वाला (**पौतक्रत**) पावन ज्ञान एव पवित्र कर्मकर्ता धनवान् राजा आदि (**नित्यात्**) अपने निरन्तर बने रहने वाले (**राय**) दान की दृष्टि से सगृहीत ऐश्वर्य मे से (**दशसहस्रा**) दश सहस्र अर्थात् बहुत सा धन (**मह्य**) मुझ स्तोता को (**अमंहत**) देता है ॥२॥

भावार्थ—ऐश्वय-अधिपति, स्तोता-साधक को अपन कोश म से दे, दस्यु को नही । (रायः) उसका कोष तो देने हेतु ही है ॥२॥

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् ।

शतं दासाँ अति स्रजः ॥३॥

पदार्थः—वह धनाढ्य (**मे**) मुझ स्तोता को (**शत गर्दभानाम्**) सैकड़ो गधे आदि पशु; (**ऊर्णावतीनां शतम्**) सैकडो ऊन वाले पशु व (**शत दासान्**) सैकडो कार्य मे मदद देने वाले सहायको को [दास दासतेर्दानकर्मण] (**अतिस्रज.**) देता है ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्य-अधिपति जहा भांति-भांति के पशुओं का पालन कर उनसे विविध कार्य ले सकता है वहा वह अपने कार्यों मे सहायकों की नियुक्ति कर उनका पालन भी कर सकता है ॥३॥

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।

अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥४॥

पदार्थ—(**तत्रो अपि**) उनमे भी निश्चित रूप से ही (**पूतक्रतायै**) पावन ज्ञान एव सकल्परूपा ऐश्वर्यशक्ति हेतु (**व्यक्ता**) विविध गमनशील उन्होने (**अश्वानां इत् न**) मानो वेगवान् घोडो के ही (**यूथ्यां**) समूह मे सम्भव शक्ति का (**प्र अनीयत**) प्रणयन किया ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे जो पशु इत्यादि ऐश्वर्य प्रदर्शित हैं उसे और अधिक शक्तिमान् बनाने का सकेत इस मन्त्र मे लगता है ॥४॥

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।

अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥५॥

पदार्थः—(**चिकितु**) ज्ञानी (**हव्यवाट्**) दातव्य व आदातव्य पदार्थों भावो, विचारो इत्यादि को एक से दूसरे स्थान, एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने वाला (**अग्नि.**) अग्नि जैसा तेजस्वी विद्वान् पुरुष (**अचेति**) ज्ञान देता है, (**सः**) वह (**सुमद्रथः**) स्वय गतिमान् है । (**अग्निः**) विद्वान् पुरुष जो (**बृहत् सूरः**) महान् प्रेरक है, वह (**शुक्रेण**) पावन (**शोचिषा**) विज्ञान के साथ (**दिवि**) ज्ञान के प्रकाश मे (**अरोचत**) रुचिकर लगता है, ऐसे ही जैसे कि (**दिवि**) द्युलोक मे स्थित (**सूर्य.**) सूर्य (**अरोचत**) सब को प्रिय लगता है ॥५॥

भावार्थ—ज्ञानी विद्वान् का कर्तव्य है कि अपने ज्ञान को सब जगह बाँटे; इसके लिये स्वयं सक्रिय हो; द्युलोक स्थित सूर्य अपना प्रकाश व ताप सर्वत्र पहुँचाता है और सब का प्यार पाता है—इसी तरह विद्वान् अपने ज्ञानरूपी प्रकाश को बिखेरता हुआ भला लगता है ॥५॥

अष्टम मण्डल में छप्पनवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ मेध्य काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।

आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥१॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) सदैव सत्याचरण करने वाले (**देवा**) दानी सुशिक्षित नरनारियो ! (**युव**) तुम दोनो (**पूर्व्येण**) पूर्वजो के द्वारा साक्षात्कृत (**क्रतुना**) अपने द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान (**युक्ता**) के सहित तथा (**रथेन**) रमणीय तेज सहित (**तविष**) अपने सामर्थ्य को (**यजत्रा**) दूसरो से सगत कराते हुए दूसरो को भी अपने जैसा बली बनाते हुए (**आगच्छतं**) आओ, (**शचीभि**) अपनी शक्तियो को साथ मे लेकर आओ और (**इद तृतीय सवन**) तृतीय सवन तक ब्रह्मचर्य-सेवन का (**पिबथ**) पालन करो, इस तृतीय अवस्था का उपभोग करो ॥१॥

भावार्थ—नर-नारियो के जीवन-यज्ञ का तृतीय सवन ४८ वर्ष की आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन है । इस उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले नर नारी उपार्जित ज्ञानवान्, तेजस्वी व बलवान् स्वय तो होते ही हैं परन्तु उन्हें अपने शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक सामर्थ्य का दूसरो को भी उपदेश देते रहना चाहिये ॥१॥

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।

अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोमंमश्विना दीद्यग्नी ॥२॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) नर-नारियो ! (**युवा**) तुम दोनो को (**सत्या**) न चूकने वाले (**त्रय एकादशास**) ३×११=३३ (**देवा**) देवताओ ने (**पुरस्तात्**) पहले ही (**सत्यस्य**) सत्य (**ददृशे**) दिखलाया है । (**दीद्यग्नी**) अपने सकल्पबल को उजागर करते हुए, अब तुम दोनो (**सवन**) तृतीय सवन का (**जुषाणा**) प्रीतिसहित सवन करते हुए (**अस्माक**) हमारे (**सोम**) सारे गुणो, ऐश्वर्य एव कल्याण के निष्पादक अध्ययन-अध्यापन रूप (**यज्ञ**) इस जीवन यज्ञ का (**पात**) पालन कराए ॥२॥

भावार्थ—वसु इत्यादि ३३ देवताओ के गुणो का अध्ययन एव जीवन मे उनसे उपयोग तो तृतीय सवन मे पहुँचने से पहले ही नर-नारी कर चुके हैं और सत्य या यथार्थ का दर्शन भी कर चुके है । अब साधक उनसे अपने जीवन-यज्ञ मे सहायक होने की प्रार्थना करता है ॥२॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥३॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) ब्रह्मचर्यव्रती नर-नारियो ! (**दिवः**) द्युलोक से, (**रजसः**) अन्तरिक्ष से व (**पृथिव्याः**) भूलोक से (**वृषभ.**) सुख बरसाने वाले सूर्य, मेघ व विद्वान् पुरुष ने (**तत्**) वह (**वां**) तुम्हारा (**कृत**) कर्म (**पनाय्यं कृत**) स्तुत्य बनाया है । (**उत**) और (**गविष्टौ**) सुखविशेष की इच्छा को पूरा करने के निमित्त (**ये**) जो (**सहस्र**) हजारो (**शसा**) कथन—वैदिक उपदेश—हैं (**पिबध्यै**) उन्हे अपने अन्त करण मे सरक्षण देने हेतु (**सर्वान् इत तान्**) उन सभी के (**उप यात**) निकट आओ, पास से, सावधान होकर, उन्हे सुनो ॥३॥

भावार्थ—सुखदाता परमेश्वर की आज्ञा, विद्वानो के उपदेश व सम्यक् प्रयोग से सुख देनेवाले सूर्य, मेघ आदि के गुणो को तृतीय सवन के सेवी नर-नारी अपने अन्त.करण मे स्थान दें और अभीष्ट सुख पाएं ॥३॥

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।

पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥

पदार्थः—हे (**यजत्रा**) सगतियोग्य (**नासत्या**) सदैव सत्याचार रत नर-नारियो ! (**अय वा भाग निहित**) यज्ञ मे तुम्हारा यह भाग सुरक्षित है ; (**इमा गिर उपयातम्**) इन वैदिक वाणियो के निकट पहुँचो ; वैदिक आदेशो को अपने अन्त करण मे धारो । (**अस्मे**) हम साधकों के हेतु (**मधुमन्तं**) मधुर (**सोम**) प्रबोध रस (**पिबत**) अपने अन्त करण मे सुरक्षित करो एव (**दाश्वांसं**) तुम्हे जो सब कुछ देता है—उस समर्पित भक्ति की, (**शचीभिः**) स्व शक्तियो व सत्क्रियाओं द्वारा, (**प्र अवत**) प्रकृष्ट रूप से रक्षा करो ॥४॥

भावार्थ—आदित्य ब्रह्मचारी नर-नारियो को सामान्य जनो के जीवन-यज्ञ में सहभागी बनना चाहिए, उनकी आवश्यकतानुसार अपने अनुभवो से उन्हे लाभान्वित करना चाहिए । सामान्य जन भी उनका आदर-सत्कार कर उनसे उपदेश ग्रहण करें और अपने जीवन सुरक्षित बनाएं ॥४॥

अष्टम मण्डल में सत्तावनवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ त्र्यृचस्य अष्टापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य मेध्य काण्व ऋषि ॥ १ विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । २, ३ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।

यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥१॥

पदार्थ —(यं) जिस (इमं) इस (यज्ञ) पुरुष या मनुष्य के भोग साधन जीवन रूप यज्ञ का (ऋत्विजः) ऋतु अनुकूल सगत हो नियम से कार्य करने वाले मनुष्य के अंग (बहुधा) बारबार (कल्पयन्त) समर्थ होकर और (सचेतस) आपस मे सहमत तथा जागरूक रहकर (वहन्ति) सञ्चालन करते है । फिर जब (य.) कोई (अनूचानः) विद्वान् (ब्राह्मण) ब्रह्मवेत्ता (युक्तः) सर्वोच्च शक्ति परमात्मा से युक्त हो जाता है, या उससे एकात्म प्राप्त कर लेता है, तब तो (यजमानस्य) यज्ञ के यजमान आत्मा की (सवित्) प्रतिबोध की प्राप्ति (का स्वित्) आश्चर्यजनक हो जाती है ॥१॥

भावार्थ —मानव जीवन ही आत्मा का भोगसाधन है, उसका जीवन एक यज्ञ ही है जिसके ऋत्विक् शरीर के अंग हैं, वे जब सशक्त तथा परस्पर सहमत होते हुए उसका सञ्चालन करते है तो ब्रह्मवेत्ता जीवात्मा को परम प्रभु का सायुज्य मिलता है, यह उस यजमान आत्मा की सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यजनक उपलब्धि है। व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने अंगो को सदैव सशक्त बनाए और वे एक-दूसरे के सहायक होकर मानव-जीवन रूपी यज्ञ का सञ्चालन करने मे लगे रहें ॥१॥

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥२॥

पदार्थ —स्व जीवन-यज्ञ का सम्पादन करते हुए व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि (एक एव) अकेला एक ही (अग्नि) अग्नि (बहुधा) अनेक रूपो मे (समिद्ध) सदीप्त कर दिया जाता है, [मानव अनुभव करता है कि] (एकः) अकेला (सूर्य) सूर्य (विश्व) सकल ससार के (अनु प्रभूतः) जन्म-मरण चक्र का सञ्चालन करता है (एका एव) एक ही (उषा) प्रात कालीन प्रकाश (इद सर्व) इस सारे जगत् को (विभाति) प्रकाशित करता है। (वा) वस्तुत तो (एकं) एक ही ब्रह्म (इदं सर्व) समग्र जगत् मे (विबभूव) व्याप्त है ॥२॥

भावार्थ.— मनुष्य अपने जीवन मे भौतिक अग्नि के अनेक रूप आग, जाठराग्नि, वाडवाग्नि, विद्युत्– आदि देखता है, वह यह अनुभव करता है कि सूर्य ही स्थावर व जगम ससार की प्रेरक शक्ति है और इसी प्रकार अन्त मे अनुभव करता है कि प्रभु ही शक्तिरूप मे कण-कण म व्याप्त है—वही वस्तुत ससार का सचालक है ॥२॥

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥३॥

पदार्थ —(वां—व) तुम सकल दिव्यो मे से जो (अतिरिक्त) सर्वोत्कृष्ट है, (ज्योतिष्मन्त) सूर्यादि प्रकाशमान दिव्य पदार्थ जिसके प्रकाश्य है (केतुमन्तं) सर्वज्ञ होने से प्रजा व कर्म जिसके विषय है; (त्रिचक्र) तीनो अर्थात् सभी लोक लोकान्तरो मे व्याप्त है, (सुख) निरतिशय आनन्दस्वरूप है, (रथ) सतत गमनशील है, (सुषद) सुस्थित है, (भूरिवार) अतिशय वरणीय या प्रिय है (यस्य योगे) जिसका सम्मिलन होने पर (चित्रामघा) प्रभात या अज्ञान नष्ट होकर प्रबोध उदित होता है– देवताओ मे म उस सर्वातिशायी देव का मैं अपने म (पिबध्यै) लीन करने हेतु (हुवे) स्तुति के द्वारा स्वीकारता हूँ ॥३॥

भावार्थ. –सतत व्यापक प्रभु ही चराचर को प्रकाश व ज्ञान देने वाला एकमात्र सर्वोत्कृष्ट देवता है जिसका जीवात्मा से सायुज्य होने पर प्रभात होता है—अर्थात् सारा अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

इस सूक्त के देवता 'विश्वेदेवा' है प्रथम मन्त्र मे मानव जीवन के ऋत्विजो (देवो) की चर्चा कर शेष दो मन्त्रो म परमेश्वर की सर्वोत्कृष्टता का उल्लेख है ॥३॥

अष्टम मण्डल मे अठावनवा सूक्त समाप्त ॥

अथ सप्तर्च्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य १–७ सुपर्णः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्द १ जगती। २, ३ निचृज्जगती। ४, ५, ७ विराड् जगती। ६ त्रिष्टुप् ॥ स्वर — १-५, ७ निषाद । ६ धैवत. ॥

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥

पदार्थ —हे (इन्द्रावरुणा) शक्ति तथा न्याय व प्रेमभावना की प्रतीक दिव्य शक्तियो ! (इमानि वा) ये तुम्हारे (भागधेयानि) गुण हैं जो (प्रमहे) मेरे प्रकृष्ट जीवन-यज्ञ मे (वां) तुम म (सुतेषु) प्रेरित ऐश्वर्यो म (सिस्रते) आते है। (यत्) जब तुम (सुन्वते) जीवन-यज्ञ करते हुए (यजमानाय) यज्ञ के यजमान 'आत्मा' को (शिक्षथ) सिखाते हो तो (ह) निश्चय ही (यज्ञेयज्ञे) प्रत्येक व्यक्ति रूपी जीवन-यज्ञ मे (सवना) ऐश्वर्यप्राप्त करनेवाले क्रियाकाण्ड को (भुरण्यथः) शीघ्र पहुँचाते हो ॥१॥

भावार्थ —ससार म हर व्यक्ति ही जीवन यज्ञ कर रहा है—उसका आत्मा है यजमान जो प्रभु से शक्ति, न्याय व प्रेमभावना की प्रेरणा प्राप्त करता है। मनुष्य का प्रत्येक क्रिया-कलाप ईश्वरीय शक्ति, प्रेम तथा न्याय भावना से प्रेरित हो ॥१॥

निः षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

पदार्थ —(ओषधी) उष्णता धारण करने वाले (नि षिध्वरी) अमगल के निषेध कर्म एव उसे भस्म कर, मगलकारी शक्ति के प्रतीक ओषधिपदार्थ एवं स्नेह के प्रतीक (आप) व्यापक जल मनुष्य के जीवन-यज्ञ मे (आस्ताम्) उपयुक्त स्थान पाए व इस प्रकार (इन्द्रा वरुणा) शक्ति, प्रेम तथा न्याय शक्तियाँ (महिमान) महत्त्व (आशत) प्राप्त करे। (या) जो ये दोनो शक्तियां (रजस पारे अध्वन) अन्धकार के पार विद्यमान प्रकाशमय मार्ग से (सिस्रतुः) आती हैं— (ययो) और जिनका शत्रु (न कि अत एव) कोई भी नही (ओहते) व्यवहार मे आता है ॥२॥

भावार्थ मानव जीवन के लिये उपयोगी सभी पदार्थों के मूल उष्णता– दाहक गुण व शामक गुण हैं—इनके प्रतीक हैं इन्द्र व वरुण । ये दोनों शक्तियाँ जीवन मे प्रकाश भी देती हैं। इनकी विपरीत शक्तिया व्यवहारसाधक नही, अत जीवन-यज्ञ मे शक्ति, प्रेम और न्याय भावना का आह्वान करना ही अभीष्ट है ॥२॥

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) शक्ति, न्याय तथा प्रेम की प्रतीक दिव्य-शक्तियो ! (युवा) तुम दोनो (सप्तवाणी) सात छन्दो वाली वेदवाणी से निचोडकर (तत्) वह प्रसिद्ध (मध्व॰, ऊर्मिम्) मधुरता की लहर के तुल्य (सत्य) सत्यज्ञान (कृशस्य) तपस्वी के हेतु (दुहते) प्राप्त करती हो । (ताभि) उन वेदवाणियो से, हे (शुभस्पती) शुभ पालको ! तुम उस (दाश्वांस) दानशील समर्पित भक्त का (अवत) पालन करो (य) जो (वां) तुम दोनो तरह की शक्तियो को (चित्तिभिः) मननपूर्वक (अभि पाति) बनाये रखता है ॥३॥

भावार्थ —न्याय शक्ति तथा प्रेम के माध्यम से प्रति कृश तपस्वी को भी वेदवाणी के रूप मे मधुर सत्य का बोध होता है। और यह साधक मनन के द्वारा इन शक्तियो को जगाए रखता है ॥३॥

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥४॥

पदार्थ —हे (इन्द्रावरुणा) शक्ति न्याय तथा प्रेम भावनाओ की प्रतीक दिव्य शक्तियो ! (ऋतस्य सदने) परम सत्य की प्राप्ति के साधनभूत जीवन यज्ञ मे सहयोगी, (घृतप्रुष) तेज.पूर्ण, (सौम्या.) सौम्य स्वभाव, (जीरदानव) जीवनदाता, (या) जो (वां) तुम्हारी (सप्तस्वसारः) सात भगिनियो के जैसे पाच प्राण व मन तथा बुद्धि उपकरण हैं और वे (घृतश्चुत) तेज के दाता भी हैं (ताभि) उन स्वसा-भूत साता उपकरणो से (धत्त) इस यज्ञ को पुष्टि दो तथा (यजमानाय) यजमान आत्मा को (शिक्षतम्) बोध दो ॥४॥

भावार्थ.—मानव जीवनरूपी यज्ञ मे पाच प्राण व मन तथा बुद्धि—इन सात उपकरणो का बडा महत्त्व है, इन्हे साधने से मानव-जीवन तेजस्वी बनता है। परन्तु यह तभी होता है जब कि ये सातो साधन आपस मे 'स्वसाओ' की तरह साथ-साथ चलें। यज्ञकार्य मे आपसी मेल से काम करे ॥४॥

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥५॥

पदार्थ —हे (इन्द्रावरुणौ) शक्ति, न्याय व स्नेह के प्रतीक दिव्यगुणियो ! (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य हेतु (त्वेषाभ्यां) बल व न्यायदीप्ति से प्रतापवान् तुम दोनो के द्वारा (सत्य) यथार्थ (महिमान) महत्त्वपूर्ण (इन्द्रिय) प्रभु-प्रदत्त सर्वसुख के साधन का (अवोचाम) उपदेश हम पाते हैं। (शुभस्पती) कल्याणकारी सुखो के द्वारा पालन करने वाले तुम दोनो (घृतश्चुत.) तेजस्वी (अस्मान्) हमे (त्रिभिः साप्तेभि) सात-सात के तीन समूहों द्वारा (अवतम्) अपने सरक्षण म लो ॥५॥

भावार्थ - पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु, प्रकृति इन सात का एक समूह है, दूसरा समूह है नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, इच्छा और प्रयत्न का। पांच प्राणो मन व बुद्धि का तीसरा सप्त समूह है। परमेश्वर द्वारा प्रदत्त इन साधनो को उचित रीति से प्रयुक्त करने वाला साधक शक्तिशाली, न्यायशील एवं साथ ही स्नेही बनकर सब को पालता है ॥५॥

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥६॥

पदार्थ —हे (इन्द्रावरुणा) शक्ति व न्याय एव स्नेह की प्रतीक दिव्य-शक्तियो ! (ऋषिभ्य) मंत्रद्रष्टाओं को (यत्) जो (मनीषां) विचारशक्ति

सम्बन्धी प्रेरणा, (वाचः) वाणियाँ (मतिं) मननशक्ति (श्रुत) श्रवण शक्ति (अग्रे) पहले (अदत्तम्) तुम दोनों ने दीं—उन्हें (यज्ञ तन्वानाः) यज्ञ का विस्तार करते हुए (धीराः) संयमी जन (यानि) जिन (स्थानानि) महत्त्वपूर्ण स्थितिस्थान (असृजन्त) बनाते हैं—उन को भी, मैं साधक (तपसा) तप के द्वारा (अभि अपश्यम्) देखूं अर्थात् उनका साक्षात् कर लूं ॥६॥

भावार्थ—मन्त्रद्रष्टा की बुद्धि, मनन तथा उसकी श्रवणशक्ति मे जहां ओज होना चाहिए वहां उसमे न्याय व स्नेह की भावना होनी भी आवश्यक है ॥६॥

इन्द्रावरुणा सौमनुसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।

प्रजां पुष्टिम्भूतिमुस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः॥ ७॥

पदार्थ.—हे (इन्द्रावरुणा) शक्ति व न्याय एव प्रेमभावना की प्रतीक दिव्य शक्तियो ! तुम (यजमानेषु) जीवन-यज्ञ को निष्ठापूर्वक सपन्न करने वाले आत्माओ मे (सौमनस) सुहृद्भावना तथा (अदृप्त) गर्वरहित (रायस्पोष) ऐश्वर्य की पुष्टि का (धत्तम्) आधान करते हो; (अस्मासु) हम साधको को (प्रजां) सन्तति, (पुष्टिम्) पुष्टता तथा (भूतिम्) वैभव (धत्तम्) धारण कराओ, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घजीवन हेतु (न आयुः) हमारी जीवनावधि मे (प्रतिरतम्) वृद्धि करो ॥७॥

भावार्थ.—साधक को शक्ति, स्नेहपूर्ण न्याय करने की सामर्थ्य का आवाहन तो करना चाहिए परन्तु उसका उद्देश्य सबके प्रति सहृदयता और गर्व से अलग रहना हो। इसी उद्देश्य से सन्तति, पुष्टि व वैभव की आकाक्षा करे और परमात्मा से प्रार्थना करे कि इस सत्कर्म हेतु उसकी जीवनावधि मे वृद्धि हो ॥७॥

अष्टम मण्डल उनसठवां सूक्त समाप्त ॥

इति वालखिल्यं समाप्तम्

अथ विंशत्यृचस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य १—२० भर्गः प्रागाथ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१, ६, १३, १७ *विराड् बृहती* । ३, ५ पादनिचृद् बृहती । ११, १५ *निचृद् बृहती* । ७, १९ बृहती । २ *आर्चीस्वराट् पङ्क्ति* । १०, १६ पादनिचृत् *पङ्क्ति* । ४, ६, ८, १४, १८, २० *निचृत् पङ्क्ति* । १२ *पङ्क्ति* ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९ मध्यम । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २० पंचम. ॥

अग्नि नाम से परमात्मा की स्तुति ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् ! ईश ! (त्वा) तुझे ही (वृणीमहे) हम उपासक स्तुति, प्रार्थना, पूजा इत्यादि के लिये स्वीकारते हैं। तू (अग्निभि) सूर्य्य अग्नि प्रभृति आग्नेय शक्तियो सहित (आ याहि) इस ससार मे आ तथा आकर इसे सुरक्षित कर। जो तू (होतारम्) सर्व धनदाता है। हे ईश ! पुन (प्रयता) अपने-अपने कार्य मे नियत और (हविष्मती) होत्रादि शुभकर्मवती प्रजा (त्वां आ अनक्तु) तुझे ही अलङ्कृत करे। जो तू (यजिष्ठम्) परम यजनीय है वह तू (बर्हिः) हृदय-प्रदेश को (आसदे) प्राप्त कर; वहां आसीन हो ॥१॥

भावार्थ —अग्नि भी ईश्वर का परम प्रसिद्ध नाम है। उसकी स्तुति प्रार्थना हम मनुष्यों को सदैव करनी चाहिए ॥

यज्ञ में अग्नि नाम से परमात्मा ही पूज्य ॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—(सहस. सूनो) हे ससार को उत्पन्न करने वाले ! (अङ्गिर) हे अङ्गिरन् ! हे सर्वव्यापक ! देव ! (अध्वरे) यज्ञ मे (त्वा हि) तुझे ही (अच्छ) प्राप्त करने हेतु (स्रुच) अग्निहोत्री के स्रुवा आदि साधन (चरन्ति) कार्य मे लाए जाते हैं वैसे (अग्निम्) अग्नि नाम से प्रसिद्ध तुझे ही हम उपासक (ईमहे) भजते हैं, जो तू (ऊर्जः नपातम्) बल देने वाला है, (घृतकेशम्) जलादि का भी ईश है, पुन (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञो मे सकल पदार्थों को पूर्ण भी तू ही करने वाला

भावार्थ.—यह सारा सूक्त यज्ञिय अग्नि में भी घटित हो सकता है। अतएव बहुत से विशेषण ऐसे रखे गए हैं कि जो दोनो अर्थ देने मे समर्थ हो जैसे (सहसः सूनु) इसका अग्नि पक्ष में बल का पुत्र अर्थ है क्योंकि बलपूर्वक रगड से ही अग्नि उपजती है ॥२॥

अग्नि का वर्णन ॥

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।

मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥३॥

पदार्थः—(अग्ने) हे सब के आधार सर्वशक्तिमान् महेश ! (कविः) तू ही महाकवि है। (वेधाः) तू ही सकल कर्मों व जगतों का विधाता है, (होता) तू ही होता है। (पावक) हे पवित्र करने वाले, हे परममित्र, देव ! तू (मन्द्रः) आनन्ददाता, (यजिष्ठ) अतिशय यजनीय और (अध्वरेषु) सब शुभकर्मों मे (विप्रै) मेधावी विद्वानो के द्वारा (मन्मभिः) मननीय स्तोत्रो से (ईड्य) स्तुत्य, पूज्य व प्रशंसनीय है। (शुक्र) हे सर्वदीपक ! तू ही परम वरेण्य है ॥३॥

भावार्थ.—ईश्वर ही सदैव पूज्य है यही इसका अभिप्राय है ॥३॥

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।

अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥४॥

पदार्थ —(यविष्ठ्य) हे यविष्ठ ! हे मिश्रणामिश्रणकारी ! (अजस्र) हे शाश्वत ! हे सदैव स्थायी ! (अद्रोघम् आ) द्रोह, हिंसा, कुटिलता आदि दुर्गुणों से रहित मेरे निकट (वीतये) भोजन के लिए या सत्कार ग्रहण करने हेतु (उशत) साहाय्यो के अभिलाषी (देवान्) सत्पुरुषो को (आवह) भेजिये एव तदर्थ (वसो) हे धनदाता ईश (सुधिता) उत्तमोत्तम (प्रयांसि) अन्नो को (अभिगहि) दीजिये और (धीतिभिः) हमारे कर्मों मे (हित) प्रसन्न एव हितकारी हो (मन्दस्व) हमे आनन्द प्रदान कीजिये ॥४॥

भावार्थ.—हम कभी भी किसी से द्रोह की बात मन मे न लाए और सदैव सत्पुरुषो को अपने घर पर बुलाकर उनका सत्कार करें तथा प्रयत्नपूर्वक अन्नोपार्जन कर दरिद्रों पर उपकार किया करें ॥४॥

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।

त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (त्रात) हे त्राता ! (त्वम् इत्) तू ही (सप्रथाः) सर्वाधिक विस्तीर्ण है। तू (ऋतः) सत्य है, (कवि) तू महाकवि है, (समिधान) हे जगद्दीपक ! (दीदिव) हे जगद्भासक ! (त्वाम्) तेरी ही (विप्रास) मेधाविगण व (वेधसः) कर्मविधातृगण आचार्य्यादि महापुरुष (आविवासन्ति) सेवा करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की सभी उपासना करते हैं, हे मनुष्यो ! तुम भी उसी की सेवा करो, जो सत्यरूप है, महाकवि है और जिससे बड़ा कोई नहीं है ॥५॥

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।

देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥६॥

पदार्थ —हे प्रभो ! (शोच) तू प्रकृतियों मे देदीप्यमान हो, (शोचिष्ठ) हे अतिशय प्रकाशयुक्त ! (दीदिहि) सबको प्रकाश दे। (विशे) प्रजामात्र को तथा (स्तोत्रे) स्तुतिपाठक जनो को (मय) कल्याण (रास्व) दे। तू (महान् असि) महान् है। हे ईश ! (मम) मेरे (सूरयः) विद्वद्वर्ग (देवानाम्) सत्पुरुषो के (शर्मन्) कल्याणसाधन मे ही सदैव (सन्तु) रहे और वे (शत्रूषाह) शत्रुओं को दबाने वाले तथा (स्वग्नय) अग्निहोत्रादि शुभ कर्म करने वाले हो ॥६॥

भावार्थः—यहां परमात्मा से आशीर्वाद की याचना है। प्रभु की कृपा से ही धन, जन, बल, एव प्रताप प्राप्त होते हैं। हमारे स्वजन तथा परिजन भी जगत् का हित करने वाले हो और नित्य नैमित्तिक कर्मों मे सदैव लगे रहें ॥६॥

यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने संजूर्वसि क्षमि ।

एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥७॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सब के आधार ईश ! तू (यथाचित्) जिस तरह (क्षमि) पृथिवी आदि लोको मे वर्तमान (वृद्धम्) नितान्त जीर्ण (अतसम्) शरीर को (संजूर्वसि) जीवात्मा से छुड़ाकर नष्ट कर देता है क्योंकि तू ही संहारकर्त्ता भी है (एव) वैसे ही (दह) उस दुर्जन को दग्ध कर, (मित्रमह.) हे सर्वजीव पूज्य ! (य. अस्मध्रुग्) जो हमारा द्रोही है (दुर्मन्मा) दुर्मति है एव (वेनति) सब के अहित की सोचता है ॥७॥

भावार्थ —इस सूक्त के शब्द द्व्यर्थक हैं। अग्नि पक्ष मे—जिस भांति अग्नि बहुत बढ़ते हुए काष्ठ को भी जलाकर पृथिवी मे मिला देता है वैसे ही मेरे शत्रु को भी भस्म कर। ऐसे मन्त्रो से यह शिक्षा मिलती है कि हमे किसी का अनिष्ट नहीं सोचना चाहिये किन्तु परस्पर मित्र तुल्य व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस थोड़े से जीवन मे जहां तक हो उपकार करते रहना चाहिए ॥७॥

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।

अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥८॥

पदार्थ —(यविष्ठ्य) हे युवतम ! हे सर्वाधार ! तू (नः) हमे (रिपवे मर्ताय) शत्रुजन के निकट शिकार हेतु (मा रीरध) न फेंक तथा (अघशंसाय) पापीजन के पास (मा) हमें न ले जा किन्तु तू (पायुभि) पालकजनो के साथ हमे रखकर (पाहि) बचा। वे जो जन (अस्रेधद्भि) अहिंसक हो, (तरणिभि) दुःखो से त्राण दिलाने वाले हो और (शिवेभि) सदैव कल्याण के चाहने वाले हों, ऐसे पुरुषो के सङ्ग हमे रख ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! दुर्जनो का साथ छोड़ उत्तम पुरुषो के साथ ही रहो और उन्हीं से संपर्क आदि रखो ॥८॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥९॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (ऊर्जाम् पते) हे बलाधिदेव, प्रभो ! (नः) हम जीवो को (एकया) मधुर वाणी से (पाहि) रक्षा कर (तिसृभि गीर्भिः) लौकिकी, वैदिकी व आध्यात्मिक वाणियो से (पाहि) हमारी रक्षा कर । (वसो) हे वासदाता सर्वत्रवासी (चतसृभि) तीन पूर्वोक्त तथा एक दैवी—इन चारो वाणियो से हमारा पालन कर ॥९॥

भावार्थः—पहले मनुष्य अपनी वाणी मधुर व सत्य बनाए । तब वेदशास्त्रो के वाक्यो को इस तरह पढ़े व व्याख्या करे कि लोग मोहित हो और उनके हृदय मे अज्ञान भाग जाय । तब आत्मा के अभ्यन्तर से जो-जो विचार उत्पन्न हो उन्हे बड़े यत्न से लिखता जाय, उन पर सदैव ध्यान दे और उन्हे बढ़ाता जाय । तत्पश्चात् आत्मा से जो ईश्वरीय आदेश मिलें उन्हें एकान्त मे निश्चिन्त हो विचारे और जगत् को सुनाए । यह सब तभी संभव है जब अन्त करण शुद्ध हो ॥९॥

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्रस्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥१०॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (विश्वस्मात् रक्षसः) सकल दुष्ट पुरुषो से (न. पाहि) हमे बचा; (अराव्णः) अदाता से हम बचा, तथा (वाजेषु) ससार-सम्बन्धी संग्रामो मे तू (प्र अव) हमारी रक्षा कर । हे परमात्मा ! (देवतातये) सकल शुभकर्म के लिये और (वृधे) सासारिक अभ्युदय हेतु भी (त्वाम् इत हि) तुम्हे ही (नक्षामहे) आश्रय बनाते हैं, क्योंकि तू (नेदिष्ठम्) अति समीप है, तू ही (आपिम्) वास्तविक बन्धु है ॥१०॥

भावार्थ - हे मानव ! जब तुम परमात्मा की शरण गहोगे तभी तुम्हारे सकल विघ्न मिटेंगे । ईश्वर को ही अपने समीपी सम्बन्धी और बन्धु समझो और उसी के आश्रय में सदैव रहो ॥१०॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥११॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वगत, (पावक) हे परमपवित्र, हे (उपमाते) सबके समीप वर्तमान ! तू (न) हमारे लिये (वयोवृधम्) अन्न पशु पुत्रादि की वर्धक तथा (शस्यम्) प्रशसनीय (रयिम्) सम्पत्ति (आ) लाकर दे (च) पुन. (सुनीती) सुनीति द्वारा (पुरुस्पृहम्) बहुप्रिय व (स्वयशस्तरम्) निज यशोवर्धक धन, जन एव ज्ञान (नः) हमे (रास्व) दे ॥११॥

भावार्थ—धन जन ऐसा हो कि जो प्रशंसनीय हो अर्थात् लोकोपकारी व उद्योगी हो । जिस धन से अनाथो तथा असमर्थों की रक्षा न हुई तो वह किस काम का है ! धनादि की तब ही प्रशसा की जा सकती है जब उनका माहात्म्यार्थ सदुपयोग हो । बहुत से व्यक्ति धन पाकर उसका उपयोग न जान उससे धर्म के स्थान में अधर्म ही अर्जित करते हैं ॥११॥

येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२॥

पदार्थ—(येन) जिस धन या ज्ञान से (पृतनासु) व्यावहारिक व पारमार्थिक सग्रामो मे (शर्धत) बल करते हुए (अर्य) शत्रुओ को और (आदिश) उनके गुप्त विचारो तथा मन्त्रो को (तरन्त) दबाते हुए हम उपासक (वसाम) नष्ट भ्रष्ट कर दें, वह धन दे और (स त्वम्) वह तू (न.) हमे (प्रयसा) अन्नो सहित (वर्ध) बढ़ा । (शचीवसो) हे ज्ञान व कर्म के बल से बसाने वाले परमात्मा ! तू (धिय जिन्व) हमारी बुद्धि व कर्मों को तेज बना—जो बुद्धि और कर्म (वसुविद) धन सम्पत्ति का उपार्जन करने मे समर्थ हो ॥१२॥

भावार्थ—हमारे बाहरी तथा आन्तरिक शत्रु हैं । उन्हे सदैव दबा रखने के उपाय सोचे व अपनी बुद्धि तथा कर्मों को ईश्वर की प्रार्थना से शुद्ध एव तेज बनाए ॥१२॥

ईश्वर से डरना चाहिये ॥

शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥१३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम परमात्मा से डरो, अर्थात् प्रभु न्यायी है यदि उससे विपरीत चलोगे तो वह अवश्य दण्डित करेगा । (अग्निः) वह सूर्य्यादि अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान है, (दविध्वत्) दुष्टो को सदैव प्रकम्पित करता है, (यथा) जैसे (शृङ्गे शिशान) सींगो का तेज बनाता हुआ (वृषभ) साड गाय को भयभीत कर देता है । (अस्य हनव) इसके हनुस्थानीय दाँत (तिग्मा) बड़े तीक्ष्ण हैं, (न प्रतिधृषे) वे अनिवार्य्य हैं, (सुजंभ) वह सुदष्ट्र है तथा (सहस) इस ससार का (यहु) महान् रक्षक है, अत इसके नियमो का पालन करो ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा परम न्यायी है । वह केवल प्रार्थना से प्रसन्न नही होता । जो उसकी आज्ञा के अनुसार चलता है वही उसका प्रिय है ॥१३॥

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४॥

पदार्थ - (अग्ने) हे अग्ने, (वृषभ) हे सकल कामवर्षक देव ! दुर्जनो के प्रति जाज्वल्यमान (ते) तेरे (जंभास) दन्त (नहि प्रतिधृषे) अनिवार्य हैं, उन्हे कोई हटा नहीं सकता; (यत्) क्योंकि (वितिष्ठसे) तू सर्वत्र व्याप्त हो वर्तमान है जीवो के सुकर्म और दुष्कर्म दोनो को तू देखता है । (होत) हे स्वय होता ! (स त्वम्) वह तू (हवि) परोपकार तथा निजोपकार के लिये अग्नि मे प्रक्षिप्त घृतादि शाकल्य को (सुहुतम् कृधि) भस्म कर यथास्थान ले जा । हे प्रभु ! (वार्या) स्वीकरणीय और (पुरु) बहुत धन सम्पत्ति व विज्ञान (वंस्व) दे ॥१४॥

भावार्थ—हे लोगो ! प्रभु के न्याय से डरो व अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसी से प्रार्थना करो ॥१४॥

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥

पदार्थ—हे सर्वगत ! तू (मात्रोः) द्युलोक व पृथिवी के मध्ये विद्यमान सर्व ससारो मे (शेषे) व्याप्त है । (मर्तास) मनुष्य (त्वा) तुझे ही (सम् इन्धते) हृदय मे स्थान देते है या तेरे ही नाम पर अग्नि प्रज्वलित करते हैं, (आत् इत) तब तू (हविष्कृत) उन यजमानो के (हव्या) हव्य पदार्थों को (अतन्द्र) अनलस हो (वहसि) इधर-उधर ले जाता है । तू ही (देवेषु) सूर्य्यादि देवो मे (राजसि) विद्यमान हो ॥१५॥

भावार्थ—पृथिवी का नाम माता भी है । ईश्वर के नाम पर ही अग्निहोत्रादि शुभकर्म करें, क्योंकि अग्नि आदि देवो मे वही विद्यमान है । वह मनुष्य के हर कर्म को देखता है । वही कर्मफल प्रदान करता है ॥१५॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥१६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वगत प्रभो ! (तम् इत् त्वा) उस व्यापक तेरी ही (सप्त होतार) सात होता (ईळते) वन्दना करते है । जो तू (सुत्यजम्) सब प्रकार के दान को देनेवाला है और (अह्रयम्) अक्षय है, (अग्ने) हे सर्वाधार ! तू (तपसा) ज्ञानमय तप से व (शोचिषा) तेज से (अद्रिम्) आदि सृष्टि को (भिनत्सि) बनाता है, वह तू (जनान् अति) मनुष्यो के प्रति समीप (प्र तिष्ठ) स्थित हो ॥१६॥

भावार्थ—यज्ञ मे प्रभु की ही स्तुति व प्रार्थना करनी अपेक्षित है । दो नयन, दो कर्ण, दो नासिकाए और एक जिह्वा ये सात होता हैं । अथवा होता, अध्वर्यु, उद्गाता व ब्रह्मा तथा यजमान-पत्नी व पत्नी की सहायिका । यह इसका तात्पर्य है ॥१६॥

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥१७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (व चर्षणीनाम्) तुम मानवो के हितार्थ (अग्निम्) परमात्मा का ही (आहुवेम) हम आवाहन करें, उनकी ही प्रार्थना करें । जो मनुष्य (शश्वतीषु) बहुत भूमियो पर विद्यमान हैं उन सबके हेतु हम प्रभु की वन्दना करें । उस ईश की कि जो (अध्रिगुम्) सर्वत्र मौजूद है और जो (होतारम्) सब कुछ देने वाला है । हम मनुष्य कैसे है ? (वृक्तबर्हिषः) दर्भादि होम-साधनसम्पन्न व (हितप्रयस) बहुत अन्नो से युक्त ॥१७॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि जो सदैव अग्निहोत्रादि कर्म करते रहते हो और सुखी हो, वे दूसरो की भलाई के लिये परमात्मा से प्रार्थना करें ॥१७॥

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥१८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वाधार ! (तुभ्यम्) तुझे ही (केतेन) ज्ञापक प्रदर्शक (चिकित्वना) विज्ञान के द्वारा मानव पूजते हैं—जो तू सदैव (सु सामानि) सुन्दर सामगानो से युक्त (शर्मन्) मगलमय यज्ञादि स्थान मे (सचते) बसता है । वह तू (इषण्यया) स्वेच्छा से (ऊतये) हमारी रक्षा व साहाय्य के लिये (पुरुरूपम) नानाविध (नेदिष्ठम्) और सदैव समीप रहने वाले (वाजम्) ज्ञान, विज्ञान तथा अन्नादि पदार्थ (न) हम उपासको को (आ भर) दे ॥१८॥

भावार्थ—हे लोगो ! जहां तुम रहो उसे पवित्र बना कर रखो । वहां सर्वदा ईश्वर की स्तुति प्रार्थना के लिये पवित्र स्थान बनाओ और परमात्मा की आज्ञा पर सदैव चला करो तभी तुम्हारा कल्याण हो सकेगा ॥१८॥

पुन. अग्नि का वर्णन है ॥

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥१९॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वाधार, (देव) सर्वदिव्यगुणसम्पन्न, (जरित.) हे स्तुतिशिक्षक, ज्ञानदाता प्रभो ! तू (विश्पतिः) सकल मानव जाति का स्वामी तथा रक्षक है । हे ईश ! तू ही (रक्षस तेपान) दुष्टो को तपाने वाला है । तू ही (अप्रोषिवान्) न कभी छोड़ने वाला सदैव निवासी (गृहपति.) गृहपति है (महान) तू महानतम (दिव पायु. असि) केवल गृहपति ही नहीं किन्तु सकल ससार का भी पति है (दुरोणयु) तू भक्तो के हृदय-रूप गृह मे बसने वाला है ॥१९॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! परमात्मा को ही अपना व जगत् का पालक मान कर उसकी वन्दना करो, वही दुष्टों का सहारक है ॥१९॥

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।

परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२०॥

पदार्थ —(आघृणीवसो) हे प्रकाशयुक्त वासदाता ईश्वर ! (नः) हमारे मध्य (रक्षः मा वेशीत्) दुष्ट, दुर्जन, पिशुन, महादुराचारी, अन्यायी, डाकू आदि प्रवेश न करें, ऐसी कृपा कर और (यातुमावताम्) उन जगत्पीड़क, राक्षसो की (यातुः मा) पीड़ा हमे पीड़ित न करे और (अग्ने) हे सर्वाधार ! (अनिराम्) दरिद्रता (क्षुधम्) क्षुधा व (रक्षस्विनः) राक्षस गण एव उनके सुहृद्-जनो को (परो गव्यूति) नितान्त दूर देश में (अपसेध) लेजा ॥२०॥

भावार्थः—जगत् मे ऐसा न्याय तथा शिक्षा फैलाएं कि मानव परस्पर द्वेष द्रोह करना छोड़ मित्र बनकर रहें । तभी वे सुखी हो ईश्वर की भी उपासना कर सकते हैं ॥२०॥

अष्टम मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१८ भर्गः प्रागाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११, १५ निचृद् बृहती । ३, ९ विराड् बृहती । ७, १७ पादनिचृद् बृहती । १३ बृहती । २, ४, १० पङ्क्तिः । ६, १४, १६, विराट् पंक्ति । ८, १२, १८ निचृत् पङ्क्ति ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७ मध्यमः । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८ पञ्चमः ॥

इन्द्र नाम से परमात्मा की स्तुति ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥

पदार्थ—(अर्वाग) हमारे अभिमुख हो (इन्द्र) सर्वैश्वर्य्ययुक्त इन्द्र (नः) हमारे (उभयम् च) लौकिक व वैदिक, यद्वा, गद्यात्मक तथा पद्यात्मक दोनो प्रकार के (इदम् वचः) इस प्रस्तूयमान वचन को (शृणवत्) सुने और (मघवा) परम धनवान् (शविष्ठ) परम बली परमेश्वर (सत्राच्या) सबके साथ पूजित होने वाली व सब को आनन्द देने वाली (धिया) हमारी क्रिया और बुद्धि से प्रसन्न हो (सोमपीतये) हमारे निखिल पदार्थों और प्रिय भोजनो की रक्षा के लिये (आगमत्) यहां उपस्थित हो ॥१॥

भावार्थ —वह परमदेव है, परम धनाढ्य है, परम बलिष्ठ है और परमोदार है, हमे उसी को अपनी वाणी, प्रार्थना व स्तुति सुनाकर प्रसन्न करना चाहिए ॥१॥

इन्द्र की महिमा ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥

पदार्थ —(धिषणे) ये दृश्यमान द्युलोक तथा पृथिवीलोक अर्थात् यह सकल भुवन (तम् हि) उसी इन्द्र की (नि ततक्षतु) पूजा स्तुति व प्रार्थना करता है, (ओजसे) महाबल, प्रताप व ऐश्वर्य्यादि की प्राप्ति हेतु भी उसी का पूजता है जो (स्वराजम्) सबका स्वतन्त्र शासक है जो सदा से स्वय आसीन है और जो (वृषभम्) सकल मनोरथो की पूर्ति करने वाला है । (उत) और हे परमात्मन् ! (उपमानाम्) स्वसमीप वर्तमान सारे पदार्थों के मध्य (प्रथम) तू श्रेष्ठ तथा उनमे व्याप्त है (हि) हे ईश, निश्चय (ते मन) तेरा ही मन (सोमकामम्) सारे पदार्थों की रक्षा करने मे लगा है ॥२॥

भावार्थ—जिसकी वन्दना प्रार्थना संसार कर रहा है, जिसका महत्त्व यह सारा भुवन दिखा रहा है वही वन्दनीय है ॥२॥

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।

विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥३॥

पदार्थ—(पुरुवसो) हे बहुधन सर्वधन, (इन्द्र) हे प्रभु, तू ससार के कल्याण हेतु (सुतस्य) पवित्र जो मनुष्य हितकारी हो वैसा (अन्धसः) अन्न (आवृषस्व) चारों तरफ दें । (हि) निश्चय करके हम (त्वा विद्म) तुझे जानते हैं कि तू महाधनिक है । क्योंकि (हरिव) हे ससारवान् ! जो तू ससार का स्वामी है और (पृत्सु सासहिम्) सकल जगत् में दुष्टो पर शासन करने वाला है, (अधृष्टम्) तुझे कोई नही दबा सकता ; (दधृष्वणिम्) तू सबको दबाने मे समर्थ है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ही सर्व धनाधिपति है । वही संसार मे सबको सुख देता है, वही उपास्यदेव है ॥३॥

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।

सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥४॥

पदार्थः—(अप्रामिसत्य) हे अपरिवर्तनीय सत्य, हे सत्य मे दृढ़तम, हे सत्यसन्ध, (मघवन्) हे धनवन् ! (इन्द्र) हे इन्द्र, प्रभो (तथा) वैसा (इत्) ही (असत्) होता है (यथा) जैसा (क्रत्वा) विज्ञानरूप कर्म से (वशः) तू चाहता है । हे परमात्मन् ! (शिप्रिन्) हे शिष्टजन के मनोरथ पूर्ण करने वाले ! (अद्रिव) हे महादण्डधर देव ! (तव अवसा) तेरी रक्षा के कारण (मक्षु) शीघ्र ही (यन्त चित्) सांसारिक अभ्युदय व परमोन्नति को प्राप्त कर हम उपासक सम्प्रति तेरी कृपा से (वाजम्) परम विज्ञान व मोक्ष सुख (सनेम) प्राप्त करें ॥४॥

भावार्थ.—इसमें ईश्वर को धन्यवाद देते हुए प्रार्थना की जाती है । जो व्यक्ति ईश कृपा से सांसारिक सकल पदार्थों से सम्पन्न है वे ईश्वर की प्राप्ति हेतु यत्न शील रहें ॥४॥

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥५॥

पदार्थ —(शचीपते) हे सृष्टिक्रियाधिदैवत ! (इन्द्र) हे परमात्मा ! तू (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (सु) अच्छी प्रकार (ऊ) निश्चित रूप से हमे (शग्धि) सर्व कार्य मे समर्थ कर, (हि) क्योंकि (शूर) हे महावीर! (त्वा अनु) तेरी आज्ञा के अनुसार ही हम (चरामसि) सदैव विचरण करते हैं । जो तू (भगम् न) जगत् का भाग्यस्वरूप है अर्थात् भजनीय व सेवनीय एव पूजनीय है (यशसम्) यश स्वरूप है और (वसुविदम्) सारा धन देने वाला है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा ही जगत् का भाग्य है । वही यशोरूप है, हे मनुष्यो ! वही सृष्टि का अधिदैवत है; अत उसी की स्तुति तथा वन्दना करो ॥५॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥६॥

पदार्थ.—(देव) हे सर्वपूज्य ! तू इस (अश्वस्य) ससार या अश्व का (पौर) पूरक व दायक है । तू (गवाम् पुरुकृत्) इन्द्रियो व गौ आदि पशुओ को बहुधा बनाता है, (उत्सः असि) तू आनन्द का स्रोत है, (हिरण्ययः) सुवर्णादि धातुओं व सूर्यादि लोको का स्वामी है । हे प्रभो ! (त्वे दानम्) आपके पास जो जगत् को देने हेतु दातव्य पदार्थ हैं उन्हें (नकि परिमर्धिषत्) कोई रोक नही सकता । आप चाहे जिसे दें । इसलिए (यद् यद् यामि) जो जो मैं मांगता हूँ (तत् आभर) सो मुझे दे ॥६॥

भावार्थ —वेद प्रेममय स्तोत्र पद्धति है । किस प्रेम से, किस सम्बन्ध से यहा प्रार्थना की जाती है उस पर विचारना अभीष्ट है । इसका भावार्थ सुस्पष्ट है ॥६॥

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! (त्वम् हि) तू ही (चेरवे) स्वभक्तो के उद्धारार्थ जगत् में (एहि) आ । और (वसुत्तये) मनुष्यों को अतिशय धनिक बनाने हेतु (भगम् विदाः) परमैश्वर्य दे । तथा (मघवन्) हे परमैश्वर्ययुक्त ! (इन्द्र) हे महेश ! (गविष्टये) गौ आदि पशुओं के इच्छुक जगत् को गवादि पशुओ को (उद् वावृषस्व) बहुत वर्षा कर तथा (अश्वमिष्टये) अश्व आदि को चाहने वाले ससार को अश्वादि पशुओ की (उद्) बहुत वर्षा कर ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा की प्रार्थना, उस पर पूर्ण आस्था और जगत् मे पूर्ण उद्योग करके सब कोई सुखी हो । दीन हीन रहना एक प्रकार का पाप ही है । अत वेद मे बारबार धन के लिये प्रार्थना है । भिक्षावृत्ति की चर्चा वेद मे नही । यह भी पाप ही है ॥७॥

दान की प्रार्थना ॥

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥८॥

पदार्थ —हे प्रभो ! (त्वम्) तू (दानाय) जगत् को दान देने हेतु (पुरु) अनेक (सहस्राणि) सहस्र (यूथा) पशुओ के यूथ (मंहसे) रखता है । (च) पुनः (शतानि) अनन्त अनन्त पशुयूथ तू रखता है । हे मनुष्यो ! (विप्रवचस) विशेषरूप से प्रार्थना करते हुए व उत्तमोत्तम वचनो को धारण करने वाले हम उपासक (पुरन्दरम्) दुष्टों के नगरो को मिटाने वाले प्रभु का ही (आ चकृम) सहारा लेते है । (अवसे) रक्षा व सहायता के लिये (इन्द्रम् गायन्त) परमात्मा का ही गान करते हुए हम उसी का आश्रय ग्रहण करते है ॥८॥

भावार्थ —हे मानवो ! ईश्वर के पास सहस्र-सहस्र अनन्त-अनन्त पदार्थ है । वह परम कृपालु है । अत सांसारिक द्रव्य हेतु भी उसी की सेवा करो । विद्वान् उसी की वन्दना करते हैं ॥८॥

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।

स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥९॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे प्रभो ! (शतक्रतो) हे अनन्तकर्मा (प्राचामन्यो) हे अप्रतिहतक्रोध ! (अहंसन) हे अहं नाम भगवन् ! (अविप्रः वा) अविप्र वा (विप्रः वा) विप्र (यद्) जब-जब (ते वच) तेरी स्तुति व उपासना (अविधत्) करता है तब-तब (त्वाया) तेरी कृपा से (स) वह स्तुतिकर्ता (प्र ममन्दत्) जगत् मे सब सुख पा आनन्द करता है । तू धन्य है ! मैं भी तेरी वन्दना करूं ॥९॥

भावार्थ—अद्भुत—"अहम्" यह नाम प्रभु का इसलिये है कि वही मुख्य है । दूसरा उसके तुल्य नहीं । उसकी स्तुति व प्रार्थना महापण्डित से लेकर महामूर्ख तक अपनी-अपनी भाषा से करें । जो मन, प्रेम व श्रद्धा से स्तुति करेगा वह अवश्य सुख पाएगा ॥९॥

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम् ।

वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥१०॥

पदार्थः—(**उग्रबाहु:**) दुष्टों के लिए भयानक भुजाधारी, (**म्रक्षकृत्वा**) सृष्टि के अन्त में संहार करने वाले, (**पुरन्दर**) दुर्जनों के नगरों के संहारकर्त्ता, ईश, (**यदि मे हवम्**) यदि मेरी प्रार्थना आह्वान व आवाहन (**शृणवत्**) सुने तो मैं कृतकृत्य हो जाऊं और तब (**वसूयव**) सम्पत्ति के इच्छुक हम सब मिलकर (**वसुपतिम्**) धनेश, (**शतक्रतुम्**) अनन्तकर्मा, (**इन्द्रम्**) उस परमात्मा की (**स्तोमैः**) स्तोत्रों के द्वारा (**हवामहे**) प्रार्थना करें ॥१०॥

भावार्थ—ईश्वर के विशेषण में उग्रबाहु तथा पुरन्दर इत्यादि शब्द दर्शाए गए हैं कि वह परम न्यायी है । इसके निकट पापी, अपराधी तथा नास्तिक खड़े नहीं हो पाते । अतः यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहे तो असत्यादि दोष पहले सर्वथा त्याग देवें ॥१०॥

ईश्वर को अपना सखा बनाओ ॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।

यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥११॥

पदार्थ—हम उपासक (**पापासः**) पापिष्ठ हो उस प्रभु की (**न मनामहे**) स्तुति प्रार्थना नहीं करते किन्तु पाप त्याग सुकर्म करते हुए ही उसे पूजते हैं । इसी प्रकार (**अरायसः**) धन पाकर अदानी होकर (**न**) उसकी प्रार्थना नहीं करते किन्तु दानी होकर ही करते हैं, और (**न जल्हव**) अग्निहोत्रादि कर्मरहित होकर भी उसकी वन्दना नहीं करते किन्तु शुभ कर्मों से युक्त होकर ही । (**यद् इत्**) इसी लिए (**नु**) इस समय (**वृषणम्**) सारे कर्मों की वर्षा करने वाले (**इन्द्रम्**) भगवान् को (**सुते सचा**) शुभकर्म में सब कोई मिलकर (**सखायम्**) अपना सखा (**कृणवामहै**) बनाते हैं ॥११॥

भावार्थ—पहले के कई मन्त्रों में बताया गया है कि वह इन्द्रवाच्य परमदेव शुद्ध, विशुद्ध, पापरहित व सदा पापियों को दण्ड देने वाला है । अतः इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है कि हे मनुष्यो ! यदि तुम परमात्मा को अपना मित्र व इष्टदेव बनाना चाहते हो तो सकल पापों कुटिलताओं व दुर्व्यसनों को छोड़ अग्निहोत्रादि शुभकर्मों को करते हुए और धन विद्यादि गुण पाकर उन्हें सत्पात्रों में वितीर्ण कर एक ही ईश्वर में प्रेमभक्ति व श्रद्धा रखो ॥११॥

सर्वत्र ईश्वर ही प्रार्थनीय है ॥

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।

वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥१२॥

पदार्थ—हे मानवो ! हम उपासक (**पृतनासु**) भयङ्कर युद्धों में भी (**उग्रम्**) न्यायी होने से लोक में उग्रत्वेन प्रसिद्ध प्रभु की ही (**युयुज्म**) वन्दना करते हैं । उसी के न्याय के आधार पर विजयप्राप्ति की आशा रखते हैं जो प्रभु (**सासहिम्**) सर्दैव अन्याय दबाता है, (**ऋणकातिम्**) जो ऋण के तुल्य अवश्य फल दे रहा है, (**अदाभ्यम्**) जिसे सम्पूर्ण संसार भी हरा नहीं सकता, (**सनिता**) जो कर्मानुसार अवश्य ही सुख दुःख का विभाग करता है, (**रथीतम**) संसार रूपी महारथ का जो एक मात्र स्वामी है, पुनः वह (**भृमचित्**) मनुष्य को पोषण करने वाला भी (**वेद**) जानता है अर्थात् कौन उपकारी है उसे भी जानता है और (**वाजिनम्**) धर्म तथा सुख हेतु कौन युद्ध कर रहा है उसे भी जानता है, (**यम् इत् ऊ**) जिसके निकट (**नशत्**) वह पहुँचे वही विजय पाता है ॥१२॥

भावार्थ—सुख या दुःख, सभी में परमात्मा के आश्रय में रहना उचित है ॥१२॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) नितांत ऐश्वर्ययुक्त महान देव ! (**यत**) जिस दुष्ट तथा पापादि से हम (**भयामहे**) भय पाते हैं (**ततः**) उससे (**नः**) हमें (**अभयम् कृधि**) अभयदान दे । (**मघवन्**) हे अतिशय धनी ! (**शग्धि**) हम सब कार्य में समर्थ कर, (**तव**) तू (**तत ऊतिभिः**) अपनी उन प्रसिद्ध रक्षाओं से (**नः**) हमारे (**द्विषः**) शत्रुओं को (**विजहि**) हनन कर, (**मृधः**) जगत् को हानि पहुँचाने वाले हिंसकों का भी (**वि**) दूर कर ॥१३॥

भावार्थ—जो लोग हमारे शत्रु हों या अहितचिंतक हों उन्हें ईश्वरीय न्याय पर छोड़ दो ॥१३॥

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४॥

पदार्थ—(**राधस्पते**) हे सर्वधन ! (**त्वम् हि**) तू (**विधतः**) स्वसेवक, उपकारी व सत्यपक्षावलम्बी पुरुष के (**महः राधसः**) महान् धन का और (**क्षयस्य**) उसके वासस्थान को बढ़ाता (**असि**) है । (**मघवन्**) हे परम धनी ! (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**गिर्वणः**) हे लौकिक वैदिक वचनों से स्तवनीय परमात्मा ! (**सुतावन्तः**) शुभकर्मी (**वयम्**) हम उपासक (**तम् त्वा**) उस तुझे (**हवामहे**) साहाय्य के लिये पुकारते हैं, तेरी प्रार्थना कर रहे हैं, आप हमारे सहायक हो ॥१४॥

भावार्थ—वह परमात्मा ही धनपति तथा गृहपति है । उसी की कृपा से मानव का गृह सुखमय व वर्धिष्णु होता है । हे विद्वानो! इसलिए उसी की पूजा-अर्चना करो ॥१४॥

इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।

स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५॥

पदार्थ—(**इन्द्र:**) वह प्रभु (**स्पट्**) सबका मन जानता है (**उत**) और (**वृत्रहा**) सर्वविघ्न दूर करता है, (**परस्पा**) शत्रुओं से रक्षा करता है और (**नः वरेण्य**) हमारा पूज्य स्वीकार्य व स्तुत्य है । (**सः नः रक्षिषत्**) वह हमारी रक्षा करे, (**स चरमम्**) वह अन्तिम पुत्र अथवा पितामहादि की रक्षा करे । (**सः मध्यमम्**) वह मध्यम की रक्षा करे । (**स नः पश्चात्**) वह हमें पीछे से और (**पुरः**) आगे से (**पातु**) बचाए ॥१५॥

भावार्थ—हे परमात्मा ! तुम हमारी सभी ओर से रक्षा करो क्योंकि तुम ही सब पापियों और धर्मात्माओं को जानते हो ॥१५॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।

आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**पश्चात्**) आगे से (**अधरात्**) नीचे व ऊपर से (**उत्तरात्**) उत्तर व दक्षिण से (**पुरः**) पूर्व से अर्थात् (**विश्वतः**) सर्व प्रदेश से (**नि पाहि**) बचा । हे भगवन् ! (**दैव्यम् भयम्**) देवसम्बन्धी डर को (**अस्मत्**) हमसे (**आरे कृणुहि**) दूर कर और (**अदेवी हेती**) अदेव सम्बन्धी आयुधों को भी (**आरे**) दूर कर ॥१६॥

भावार्थ—मानव समाज को जितना भय है उतना किसी अन्य प्राणी को नहीं । ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी उन्मत्त राजा सारे देश को विविध यातनाओं में जला देता है । कभी किसी विशेष वंश को निर्मूल करता है । कभी इस भयकरता से अपने शत्रु को मारता है कि सुनने से ही रोमाञ्च हो जाता है । इसके अतिरिक्त कृषक खेती करने में भी स्वतन्त्र नहीं । राजा व जमींदार उससे कर लेते हैं । चोर डाकू आदि का भी भय रहता है । इसी तरह विद्युत्पात, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी आदि उपद्रवों से मनुष्य भयभीत रहता है, अतः ऐसी प्रार्थना की है ॥१६॥

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।

विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**अद्य अद्य**) आज-आज (**श्वः श्वः**) कल-कल (**परे च**) और तीसरे चौथे पांचवे आदि दिन भी (**नः त्रास्व**) हमारी रक्षा कर । (**नः जरितॄन्**) हम स्तुतिपाठकों को (**विश्वा अहा**) सब दिनों में (**दिवा च नक्तम् च**) दिन तथा रात्रि में (**सत्पते**) हे सत्पालक देव (**रक्षिषः**) बचा ॥१७॥

भावार्थ—वही परमात्मा रक्षक, पालक तथा आश्रय है । अतः सभी प्रकार के विघ्नों से बचने हेतु उसी की प्रार्थना करनी अभीष्ट है ॥१७॥

उसके न्याय का वर्णन ॥

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! यह प्रभु (**प्रभङ्गी**) दुष्ट मर्दन कर्त्ता, (**शूर**) अति पराक्रमी, (**मघवा**) सर्वधनयुक्त, (**तुवीमघ**) महाधनी, (**सम्मिश्ल**) कर्मानुसार सुख व दुःखों से मिलाने वाला और (**वीर्याय कम्**) पराक्रम के लिये सर्वथा समर्थ है । उसी की पूजा करो । (**शतक्रतो**) हे अनन्तकर्मन् प्रभु ! (**ते**) तेरे (**उभा बाहू**) दोनों बाहु (**वृषणा**) सुकर्मियों को सुख पहुँचाते हैं और (**या**) वे पापियों के लिये (**वज्रम्**) न्यायदण्ड (**निमिमिक्षतु**) धारण करते हैं वैसे तुझे ही हम पूजते हैं ॥१८॥

भावार्थ—परमात्मा के बाहु आदि का वर्णन यहां एक आधार से होता है । वह परम न्यायी तथा सर्वद्रष्टा है । अतः हे मनुष्यो, पापों से डरो, अन्यथा उसका न्याय तुम्हें दण्ड देगा ॥१८॥

अष्टम मण्डल में इकसठवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य द्वाषष्टितमस्य सूक्तस्य १-१२ प्रगाथः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३, ६, १०, ११ निचृत् पंक्ति । २, ५ विराट् पंक्ति । ४, १२ पंक्ति । ७ निचृद् बृहती । ८, ९ बृहती ॥ स्वर -१—६, १०-१२ पञ्चम । ७—९ मध्यम ॥

परमात्मा की स्तुति ॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।

उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अस्मै**) इस इन्द्र हेतु (**उपस्तुतिम्**) उत्तमोत्तम स्तुति (**प्रो भरत**) गान करो क्योंकि (**यत्**) जो इन्द्र भक्तो की प्रार्थना व स्तुति सुनकर (**जुजोषति**) नितान्त प्रसन्न होता है । हे मनुष्यो ! (**सोमिन.**) सारे जगदुत्पादक (**इन्द्रस्य**) इन्द्रवाच्य परमात्मा का (**माहिनम्**) महत्वसूचक (**वच**) सामर्थ्य (**वर्धन्ति**) सब विद्वान् बढ़ाते हैं अर्थात् दिखाते हैं, क्योंकि (**इन्द्रस्य रातय.**) उसके दान (**भद्रा**) मङ्गल विधायक हैं ॥१॥

भावार्थः—प्रभु मगलमय हैं उनके सकल कार्य ही मगलदाता हैं । विद्वद्वर्ग भी उम परम महिमा को दिखलाते रहे हैं । अत हे मनुष्यो ! उसकी आज्ञा का ही सदैव पालन करो ।

वि—'भद्रा', 'इन्द्रस्य', 'रातय' इन पदों की आवृत्ति सारे सूक्त में है ॥१॥

इन्द्र का महत्त्व ॥

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥२॥

पदार्थ.—(**अयुज**) वह इन्द्र स्व कार्य मे किसी की मदद की अपेक्षा नही करता , (**असम**) उसके सदृश कोई नही , (**नृभि· एक**) वह मनुष्यो व देवो में एक ही है । पुन (**अयास्य·**) उसका क्षय कोई नहीं कर पाता । पुनः (**पूर्वी कृष्टी·**) पहले की व आज की सर्व प्रजा को (**अति**) उल्लघन कर (**प्र वावृधे**) अत्यन्त विस्तृत है अर्थात् (**ओजसा**) अपने पराक्रम और प्रताप से (**विश्वा जातानि**) सारे जगत् से वह बढ़कर है ॥२॥

भावार्थ—वह प्रभु सर्वशक्तिमान् है अर्थात् वही ऐसा है कि जो अपने कार्य मे किसी से सहायता नहीं लेता ॥२॥

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**वीर्याणि करिष्यत तव**) ससार की स्थापना तुम करते हो रक्षक हो और सहरण तत्तद्रूप पराक्रम करते हुए तेरा (**तत् प्रवाच्यम्**) वह महत्त्व सदा वन्दनीय है । क्योंकि तू (**जीरदानुः**) भक्तो को शीघ्र दान दे उनका उद्धार करता है और तू (**अहितेन अर्वता**) स्वय प्रवृत्त इस जगत् को कर्मानुसार (**सिषासति**) सारे सुख प्रदान कर रहा है ॥३॥

भावार्थ—प्रभु की कीर्ति व उसकी दया का सदा गायन करना चाहिए क्योकि इससे पहले तो मन प्रसन्न होता है और कृतज्ञता का प्रकाश होता है और फिर उसके उपकार भी अनन्त हैं इसे सब जानें, जिससे आत्मा शुद्ध हो तथा उसकी ओर लगे ॥३॥

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**शविष्ठ**) हे विश्वेश्वर ! हम उपासक (**ते**) तेरे महत्त्व को (**वर्धना**) बढ़ाने वाले (**ब्रह्माणि**) स्तोत्रो को (**कृणवाम**) विशेषरूप से गाते हैं । अत तू (**आ याहि**) यहां आने की कृपा कर । हे इन्द्र ! (**येभि**) जिन स्तुतियो से प्रसन्न होकर (**इह श्रवस्यते**) इस जगत मे कीर्ति इत्यादि चाहने वाले शिष्टजनो का तुम (**भद्रम् चाकनः**) कल्याण करते हो ॥४॥

भावार्थः—उस महान् प्रभु की आज्ञा का पालन करते हुए उसकी कीर्ति का सभी गान करें क्योंकि वही सबका कल्याण कर रहा है ॥४॥

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५॥

पदार्थ.—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**यत्**) जिस कारण जो कोई तुझे (**तीव्रैः सोमै**) तीव्र आनन्दजनक प्रिय पदार्थों से (**सपर्यत**) पूजता है और (**नमोभि प्रतिभूषयत**) विविध नमस्कार आदि से तुझे ही अलङ्कृत करता है और जो उपासना के कारण (**धृषतः चित्**) अति बलवान् है उनके (**मन· धृषत् कृणोति**) मन को और भी अधिक बलवान् बना देता है । अत (**त्वम्**) तू ही उपास्य है ॥५॥

भावार्थः—वह महेश्वर नितांत बलिष्ठ है और जो कोई उसके द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलते हैं वह उन्हें अध्यात्म रूप से और बलिष्ठ बनाता जाता है ॥५॥

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥६॥

पदार्थ—(**ऋचीसम**) ऋचाओ तथा ज्ञानो से वन्दनीय तथा पूज्य वह महेश्वर हमारे सब कर्मों को (**अव चष्टे**) नीचे देखता है, (**अवतान् इव मानुष.**) जैसे मनुष्य कूपादिकों को नीचे देखता है । देखकर (**जुष्ट्वी**) यदि हमारे कर्म शुभ होते है तो वह प्रसन्न होता है और यदि अशुभ अमङ्गल और अन्यायी हों तो अप्रसन्न होता है । हे मनुष्यो ! जो (**दक्षस्य**) प्रभु मार्ग पर चलते हुए उन्नति कर रहे हैं और (**सोमिनः**) सदा शुभ-कर्मों में रत है उनके आत्मा को (**सखायम्**) जगत् के साथ सखा बनाता है और (**युजम् कृणुते**) सर्व कार्य हेतु योग्य बनाता है अत वही महान् देव उपासना के योग्य है ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा उसी की मदद करता है जो स्वय उद्योग करता है और उसके द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन करता है ॥६॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवान् ! (**पुरुष्टुत**) हे सर्वस्तुत प्रभो ! (**ते**) तेरे (**वीर्यम्**) वीर्य, (**क्रतुम**) कर्म व प्रज्ञा को (**विश्वे देवा**) सर्व पदार्थ (**अनु ददु**) धारण किये है अर्थात तेरी शक्ति, कर्म व ज्ञान से ही ये सकल पदार्थ शक्तिमान्, कर्मवान् तथा ज्ञानवान् हैं इस हेतु तू (**विश्वस्य**) सकल जगत् का (**गोपति**) गोप है ॥७॥

भावार्थ—प्रभु की शक्ति से ही ससार के सारे पदार्थ शक्तिमान्, कर्मवान् और ज्ञानवान् है । उसी की स्तुति करनी चाहिये ॥७॥

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**शचीपते**) बलाधिदेव ! (**यत्**) जिस लिए तू (**ओजसा**) स्वीय नियमरूप प्रताप से (**वृत्रम् हंसि**) सकल विघ्नो को दूर करता है; इस कारण (**देवतातये**) शुभ कामना सिद्धि हेतु (**ते**) तेरे (**उपमम्**) प्रशसनीय (**तत् शव**) उस-उस बल का मैं (**गृणे**) गाता हूं या सब गा रहे हैं ॥८॥

भावार्थ—हम सभी मिल कर प्रतिदिन उसे धन्यवाद दें क्योकि वही हमे प्रतिक्षण सुख देता है ॥८॥

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥९॥

पदार्थ—प्रभु (**मानुषा**) माननीय जातियो एव (**युगा**) मास, वर्षा, ऋतु आदि कालो को (**कृणवत**) बनाता है और वश मे रखता है ऐसे ही (**इव**) जैसे (**समना**) समानमनस्का तथा मनोहारिणी (**वपुष्यत**) नारी अभिलाषी पुरुषो को स्व वश मे रखती है । (**इन्द्र**) वह परमात्मा (**तत् चेतनम**) वशीकरण विज्ञान का (**विदे**) ज्ञाता है, (**अध श्रुत**) अत वह नितांत प्रसिद्ध है ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस प्रकार ईश्वर अपनी अधीनता मे सभी को रखता है वैसे ही अपने आचरणो से सत्पुरुषो को वश मे करो ॥९॥

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे प्रभु ! (**भूरिगो**) बहुससार ! (**मघवन्**) हे परम धनी भगवन् ! जो विद्वान (**ते शर्मणि**) तेरी आज्ञा तथा कृपा पर आश्रित हैं वे (**भूरि**) तेरा विपुल यश गाते हैं और जो (**ते शव**) तेरा बल (**जातम्**) इन प्रकृतियो मे फैला है उसे (**उत वावृधु**) अपने गान से बढ़ाते हैं । (**त्वाम्**) तुझे साक्षात् (**उत्**) उच्च स्वर से गाते हैं (**तव क्रतुम्**) तेरे विज्ञान व कर्मों का (**उत्**) उच्चस्वर से उच्चारण करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—गौ से यहां सम्पूर्ण ससार से अभिप्राय है । जैसे ससार और गौ शब्द का धात्वर्थ एकही लगता है ' ससरतीति ससार , गच्छतीति गौ '' । अतएव ये दोनो शब्द ऐसे स्थलो मे पर्य्यायवाची हैं ॥१०॥

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११॥

पदार्थ—(**वृत्रहन्**) हे सकल विघ्नहर्ता ! (**अद्रिव**) हे महादण्डधर ! (**शूर**) हे वीर ! (**आ सनिभ्य**) मुझे जबतक सुखलाभ हो तब तक (**अहम् च त्वम् च**) मैं और तू तथा यह संसार सब (**सयुज्याव**) मिल जाय । जिस भांति हम लोग परस्पर सुख हेतु मिलते हैं वैसे ही तू भी हमारे साथ मिल । (**नौ**) इस तरह सयुक्त हम दोनो को (**अरातीवा चित्**) दुर्जन भी (**अनु मसते**) अनुमति = अपनी सम्मति देंगे ॥११॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि हम तभी सुख मिल सकता है जब हम प्रभु से मिले । आशय यह है कि जिस स्वभाव का वह है उसी स्वभाव के हम भी हों । वह सत्य है, हम सत्य हों । वह उपकारी है, हम भी उपकारी बनें । वह परम उदार है, हम भी वैसे ही हो इत्यादि । ऐसे विषयो में सबकी समान सम्मति होती है ॥११॥

मनुष्य-कर्त्तव्य व ईश्वरीय न्याय ॥

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥

पदार्थ—मूर्ख, विद्वान्, नर, नारी—हम सब—मिलकर या अलग अलग (**तम् इन्द्रम्**) उस प्रभु को (**वै उ**) बारंबार निश्चित कर उसके गुण व स्वभाव को अच्छी प्रकार जान (**सत्यम् इत्**) सत्य ही मानें व (**स्तवाम**) स्तुति करें, (**अनृतम् न**) असत्यकारी मानकर स्तुति न करें क्योकि (**असुन्वत**) अशुभकारी, नास्तिकजनो के लिये (**महान् वध**) महान् वध है व (**सुन्वतः भूरि ज्योतींषि**) आस्तिक, विश्वासी, श्रद्धालु, सत्याश्रयी लोगो के लिये नितांत प्रकाश, सुख

दिये जाते हैं क्योंकि (इन्द्रस्य रातय भद्रा) इन्द्र के दान कल्याण के देने वाले हैं ॥१२॥

भावार्थ—तात्पर्य इसका यह है कि अनेक मनुष्य असत्य व्यवहार हेतु भी ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं। किन्तु यह उनकी भारी भूल है, भगवान् सत्य-स्वरूप है, वह किसी से भी असत्य व्यवहार नहीं करता। वह पक्षपाती नहीं। जो कोई भूल में पड़कर ईश्वर को अपने पक्ष में समझ असत्य आचरण करते हैं वे अवश्य दण्ड पाऐंगे ॥१२॥

अष्टम मण्डल में बासठवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य १-१२ प्रगाथः काण्व ऋषि ॥१-११ इन्द्र । १२ देवा देवता ॥ छन्द—१, ४, ७ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ८, ९, ११, निचृद्गायत्री । १० गायत्री । १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वर—१, ४, ५, ७ गान्धार । २, ३, ६, ८—११ षड्जः ॥ १२ धैवत ॥

इस सूक्त से इन्द्र की स्तुति की जाती है ॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१॥

पदार्थ—(स) वह पहले वर्णित सर्वत्र विख्यात स्वयसिद्ध इन्द्र नामधारी प्रभु (पूर्व्यः) सर्वगुणों से पूर्ण व सर्वप्रथम है और (महानाम् वेन) पूज्य महान् पुरुषों का भी वही कमनीय है। वही (क्रतुभिः) स्वकीय विज्ञान व कर्मों से (आनजे) सर्वत्र प्राप्त है। पुन (यस्य द्वारा) जिसकी मदद से (पिता) पालक (मनु) मन्ता, बोद्धा (धिय) विज्ञान व कर्मों को (आनजे) पाते है ॥१॥

भावार्थ—देव शब्द से अर्थ सब पदार्थों से है यह वेद में प्रसिद्ध है। 'धी' शब्द के भी अनेक प्रयोग है। विज्ञान, कर्म, ज्ञान, चैतन्य आदि भी इसके अर्थ है। अर्धर्च का तात्पर्य यह है कि ईश्वर की कृपा से ही मननशील पुरुष प्रत्येक पदार्थ में ज्ञान व कर्म देखते है। प्रत्येक पदार्थ को ज्ञानमय और कर्ममय समझते हैं। जैसे हर पदार्थ में ईश्वरीय कौशल तथा क्रिया देखते है ॥१॥

इन्द्र-स्तुति ॥

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥२॥

पदार्थ—हे मानवो! (सोमपृष्ठास) सोमलता इत्यादि ओषधियों से युक्त पृष्ठ वाले (अद्रय) स्थावर पर्वत आदि ने भी उस (दिवः मान) द्युलोक के निर्माण करने वाले और प्रकाश के दाता को (न उत्सदन्) नहीं त्यागा और न त्यागते हैं। क्योंकि वे पर्वत आदि भी नाना पदार्थों से भूषित हो उसका महत्त्व प्रदर्शित कर रहे हैं। तब मनुष्य उन्हें कैसे त्यागें—यही इसका तात्पर्य है। अत हे बुद्धि-मानो! उसके लिये (उक्था) पावन वाक्य व (ब्रह्म च) स्तोत्र (शंस्या) कथन है। अर्थात् उसकी प्रसन्नता हेतु तुम अपनी वाणी को पहले पावन करो और उससे उसकी वन्दना करो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! स्थावर भी उस परमात्मा का महत्त्व दर्शा रहे हैं तब तुम वाणी व ज्ञान प्राप्त करके भी यदि उसकी कीर्ति नहीं गाते तो तुम नितान्त कृतघ्न हो ॥२॥

इन्द्र का महत्त्व ॥

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप ।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥३॥

पदार्थः—(स इन्द्र विद्वान्) इन्द्रवाच्य प्रभु सर्ववित् है अतएव (अङ्गिरोभ्य) प्राणसहित जीवों के कल्याणार्थ इसने (गा) पृथ्वी आदि लोकों को (अप अवृणोत) प्रकाशित किया है। अर्थात् जो जो अव्यक्तावस्था में थे उन्हें जीवों के हित प्रभु ने रचा है। (तत्) इस लिये (अस्य तत् पौंस्यम्) उसका यह पुरुषार्थ व सामर्थ्य (स्तुषे) वन्दनीय है ॥३॥

भावार्थ—अङ्गिरस प्राणसहित जीव का नाम है। यदि यह सृष्टि न होती तो सदा ही नित्य जीव कहीं निष्क्रिय रहते। इनका विकास न होता। अत इन्द्र ने इनके कल्याणार्थ यह सृष्टि रची है। इस लिए भी जीवों के द्वारा वह स्तवनीय व वन्दनीय है ॥३॥

इन्द्र के गुणों का व्याख्यान ॥

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥४॥

पदार्थ (स इन्द्र) वह इन्द्रवाच्य प्रभु (प्रत्नथा) पहले के समान अब भी (कवि वृध) कवियों का बढ़ाने वाला (वाकस्य वक्षणिः) स्तुति रूप वाणी का सुनने वाला और (अर्कस्य) अर्चनीय आचार्यादिकों को (शिव) सुख देने वाला है। वह प्रभु (अस्मत्रा होमनि) हमारे होमकर्म में (अवसे गन्तु) रक्षा हेतु जाय ॥४॥

भावार्थ—जिस लिए सत्पुरुषों को वह सदैव कल्याण पहुंचाता है अत यदि हम भी सन्मार्ग पर चलें तो वह हमें भी सुख देगा, इसमें सन्देह नहीं ॥४॥

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र! (वरस्य यज्यव) श्रेष्ठतम कर्मरत ऋत्विग्गण (स्वाहा) स्वाहा शब्द का उच्चारण कर (ते क्रतुम्) तेरे प्रशंसनीय कर्म को (अनु) क्रमपूर्वक (आत् उ नु) निश्चयरूपेण व शीघ्रता से (अनूषत) गाते हैं। तथा (अर्का) लोक में माननीय वे ऋत्विक् (गोत्रस्य दावने) पृथिवी आदि लोकों के रक्षक तेरी प्राप्ति हेतु (श्वात्रम्) शीघ्रता से तेरी (अनूषत) अर्चना करते रहते हैं ॥५॥

भावार्थ—हम मनुष्य भी उसी तरह सत्यमार्गावलम्बी बनें जैसा प्रभु है और उसकी कीर्ति गाए ॥५॥

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च ।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रे) इसी प्रभु में (विश्वानि वीर्या) सकल सामर्थ्य हैं जो सामर्थ्य (कृतानि) पूर्व समय में दर्शाए गए व हो चुके हैं और (कर्त्वानि च) जो कर्तव्य हैं (अर्का) अर्चनीय व माननीय आचार्यादिक (यम्) जिसे (अध्वरम् विदु) अहिंसक कृपालु तथा पूज्यतम समझते हैं ॥६॥

भावार्थ—सृष्टि आदि की रचना पहले हो चुकी है और कितने लोक लोकान्तर अब भी बन रहे हैं और कितने अभी बनने वाले है। यह सब उसी की महत्ता है। अत उसी की कीर्ति गाओ ॥

उसका अनुग्रह ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥७॥

पदार्थ—(यद्) जब जब (पाञ्चजन्यया विशा) सकल मानव जातियां अपने अपने देश के पावन स्थानों में सम्मिलित हो (इन्द्रे) परमात्मा के प्रति (घोषा असृक्षत) अपनी प्रार्थनाएं सुनाती हैं तब-तब वह देव (बर्हणा) स्वकीय महत्त्व से (अस्तृणात्) उनके विघ्नों को दूर करता है क्योंकि वह (विपः) विशेषरूप से पालक है, (अर्यः) माननीय है और (मानस्य) पूजा का (क्षय) आश्रय है ॥७॥

भावार्थ—संसार के सभी देशों की प्रजा का एकमात्र आराध्य परमेश्वर ही है और वह सब के विघ्नों का हरता है ॥७॥

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या ।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥८॥

पदार्थ—हे प्रभु! (इयम्) हम से विधीयमान यह (अनुष्टुति) अनुकूल स्तुति (उ) निश्चय ही (ते) तेरी है क्योंकि तू ही (तानि) उस सृष्टि का कर्ता पालक व संहारक है (पौंस्या) तू जीवों के कल्याणार्थ वीर्य्य करता है। हे परमात्मा! तू ही (चक्रस्य वर्तनिम्) सूर्य्य, चन्द्र, बृहस्पति आदि ग्रहों के चक्रों के मार्गों को (प्र आव) भली प्रकार बचाता है ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा की शिक्षा है कि केवल उसे ही स्रष्टा, पालक, संहर्ता समझो और उसी की महान् शक्ति को देख उसकी वन्दना करो ॥८॥

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे ।
यवं न पश्व आ ददे ॥९॥

पदार्थ—(अस्य वृष्णो) सर्वत्र प्रत्यक्ष तुल्य भासमान उस सुखदाता जगदीश्वर से (वि ओदने) विविध प्रकार के अन्नों को पाकर यह जीवलोक (जीवसे) जीवन हेतु (उरु क्रमिष्ट) वारंवार क्रीड़ा करता है (न) जैसे (पश्व) पशु (यवम्) घास पाकर (आददे) आनन्द पाते हैं ॥९॥

भावार्थ—इसका तात्पर्य यह है कि परमात्मा जीवलोक को बहुत अन्न दे जिससे इसमें उत्सव हो। और प्राणी प्रसन्न हो उसकी कीर्ति गाएं ॥९॥

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः ।
स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०॥

पदार्थ हे मानव जन! हम सब (युष्माभि) आप लोगों के साथ मिल-कर (मरुत्वत) प्राणप्रद परमात्मा के गुणों व यशों को बढ़ाने के लिए ही (स्याम) जीवन धारें। तथा (तत् दधाना) सदैव उसको अपने अपने सर्व कर्म में धारें और उसी से (अवस्यव) रक्षा की इच्छा करें तथा (दक्षपितर) बलों के स्वामी हों ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! परमात्मा ही सब का पिता है, हम उसके पुत्र हैं। अत हमारा जीवन उसके गुणों व यश को सदैव बढ़ाए अर्थात् हम उसके समान पावन व सच्चे हों। हम उसे कदापि न त्यागें ॥१०॥

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः ।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥११॥

पदार्थः—(शूर) हे वीरवर! (इन्द्र) हे महेश! हम मनुष्य तुझे ही (ऋक्व-भिः) विविध मन्त्रों के द्वारा (नोनुम) वारंवार नमस्कार करें। (बट्) यह सत्य है जो तू (ऋत्वियाय) ऋतु-ऋतु में अपनी महिमा दर्शाता है और तू (धाम्ने) तेज,

आनन्द, कृपा, धन आदि का नाम है । हे इन्द्र (त्वया युजा) तुझ मित्र के साथ (वेनाम) सकल विघ्नों पर विजय पाएं ॥११॥

भावार्थः—हम अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करें जिससे वह सत्य अर्थात् फल देने वाला हो और उसी की मदद से अपने-अपने निखिल विघ्नों को दूर किया करें ॥११॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।

यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र - परमात्मा ! (अस्मे) हमारे पास (रुद्राः) परदुःखहारी जन (वृत्रहत्ये भरहूतौ)—विघ्नविनाशक सांसारिक संग्राम के अवसर पर (अवन्तु) आएं (मेहना) दया व सुवचनों की वर्षा करने वाले (पर्वतास) ज्ञानादि से पूर्ण तथा प्रसन्न करने वाले (सजोषा) हमारे साथ समान प्रीति रखने वाले (ज्येष्ठा देवा.) ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वान् (अवन्तु) हमारे पास आवें । तथा (शंसते) ईश्वरीय प्रशंसक के और (स्तुवते) स्तावक जन के समीप (य धायि) जो धाता है (पज्र) जो बलवान् है इस प्रकार के लोग सर्वत्र हमें प्राप्त हों ॥१२॥

भावार्थ—दूसरों का दुःखहरण करने आदि शुभ कर्मों के सभी अनुष्ठानाओं का आपस में सहयोग होना अपेक्षित है ॥१२॥

अष्टम मण्डल मे तरेसठवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य चतुष्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—१२ प्रगाथः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द -१, ५, ७, ६ निचृद्गायत्री । ३ आर्चीस्वराड्गायत्री । ४ विराड्गायत्री । २, ६, ८, १०-१२ गायत्री ॥ षड्जः स्वर ॥

इन्द्रवाच्येश्वर को पुनरपि इस सूक्त से स्तुत और प्रार्थित करते हैं ॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(अद्रिव) हे ससार के रचने वाले ! हमारे (स्तोमा) स्तव (त्वा) तुझे (उत्) उत्कृष्टरूप से (मन्दन्तु) प्रसन्न करें । और तू (राध) जगत् पोषण हेतु पवित्र अन्न अन्न (कृणुष्व) उपजाए और (ब्रह्मद्विष) जो प्रभु वेद व शुभकर्मों के विरोधी हैं उन्हें (अव जहि) यहां से दूर ले जाये ॥१॥

भावार्थ—यहां सरल-सी प्रार्थना है । भाव भी स्पष्ट ही है । हम अपने आचरण को शुद्ध करें और हृदय से प्रभु की प्रार्थना करें जिससे हमारा कोई शत्रु न रहे ॥१॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।

नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (अराधस) धनयुक्त होने पर भी जो शुभकर्म हेतु धन खर्च नहीं करते उन (पणीन्) लुब्ध जनों को (पदानि) चरणाघात से (नि बाधस्व) दूर कर । (महान् असि) तू महान् है (हि) क्योंकि (क श्चन) कोई भी मानव (त्वा प्रति) तुझ से बढ़कर (न) समर्थ नहीं ॥२॥

भावार्थ—ऐसा भी देखा जाता है कि प्राय' वाणिज्यकर्त्ता धनिक होते हैं । किन्तु जो धन पाकर व्यय न करे ऐसे लोभी का वेदों मे पणि कहते हैं । धन सचय करके क्या करना चाहिये यह विषय यद्यपि सुबोध है तथापि जटिल भी है । देशहित-कार्य्य मे धन लगाना यह निर्विवाद है । किन्तु देशहित भी क्या है इसे जानना कठिन है ॥२॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।

त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे प्रभु ! (त्वम्) तू (सुतानाम्) शुभकर्मों में रत लोगों का (ईशिषे) स्वामी है और (असुतानाम्) कुकर्मियों व अकर्मियों का भी (त्वम्) तू स्वामी है । न केवल इनका ही किन्तु (जनानाम् त्वम् राजा) सभी का तू ही शासक है ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा को कोई माने या न माने, चाहे कोई उसकी प्रार्थना करे या न करे, किन्तु वह सब का शासन वैसे ही करता है । कर्मानुसार अनुग्रह और निग्रह करता है । अतः वही पूज्यतम है ॥३॥

एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३घोषञ्चर्षणीनाम् ।

ओभे पृणासि रोदसी ॥४॥

पदार्थ—हे प्रभु ! यद्यपि तेरा (क्षय.) निवासस्थान (दिवि) पावन शुद्ध कपटादि रहित व परमोत्कृष्ट प्रदेश मे है, तू अशुद्धि अपावनता के पास नहीं जाता तथापि हम सब (चर्षणीनाम्) तेरे ही अधीन हैं या तेरे ही पुत्र हैं अत हमारे मध्य (आघोषन्) स्वकीय आज्ञाओं को सुनाता हुआ (एहि) आ और (प्रेहि) आ । हे भगवन् तू (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक व पृथिवी लोक को (आपृणासि) प्रसन्न पूर्ण व सुखी रखता है अत तेरी दया के पात्र हम लोग भी हैं ॥४॥

भावार्थ—भगवान परमपावन है, वह अशुद्धि नहीं चाहता अत यदि उसकी सेवा मे रहना हो तो वैसे ही बनना चाहिये ॥४॥

त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।

वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥५॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! तू ही जल की भी वर्षा करता है, तू (स्तोतृभ्य) स्तुति-परायण इन सकल प्राणियों के कल्याणार्थ (त्यम चित) उस (गिरिम्) मेघ को (विरुरोजिथ) विविध प्रकार छिन्न भिन्न करता है व बरसाता है जो मेघ (पर्वतम्) अनेक पर्वतों से युक्त है, जो (शतवन्तम्) सख्या में सैकड़ों व (सहस्रिणम) सहस्रों है ॥५॥

भावार्थ—जल की वर्षा करने वाला भी वही है । सृष्टि के आरम्भ मे कहां से ये मेघ आए, इनकी उत्पत्ति कैसे हुई; यदि मेघ न होते तो जीव भी न होते इत्यादि भावना सदैव करनी अपेक्षित है ॥४॥

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे ।

अस्माकं काममा पृण ॥६॥

पदार्थ—हे प्रभु (वयम) हम उपासक (उ) निश्चय कर (दिवा) दिन में, (सुते) शुभकर्म के समय (त्वा हवामहे) तेरा आवाहन, वन्दना और प्रार्थना करते हैं और (वयम् नक्तम्) हम सब रात्रि मे भी तेरी स्तुति करते हैं । अतएव (अस्माकम्) हमारी (कामम्) इच्छाएं (आ पृण) पूर्ण कर ॥६॥

भावार्थ—जब भी समय मिले तभी ईश्वर की वन्दना करो और उससे अपना अभीष्ट निवेदन करो ॥६॥

वृषभरूप से इन्द्र की स्तुति ॥

क्व१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥७॥

पदार्थ—(स्य') वह सर्वत्र विख्यात (वृषभ) सकल कामना पूर्ण करने वाला वृष अर्थात् इन्द्र (क्व) कहा है ! कौन जानता है ? जो (युवा) नित्य तरुण व जीवों के साथ जगत् को मिलाता है, (तुविग्रीव) वह सर्वत्र विस्तीर्ण व व्यापक है, जो (अनानत) अनम्रीभूत अर्थात् उच्च से उच्च और सर्वशक्तिमान् है; (तम्) उस प्रभु को (क' ब्रह्मा) कौन ब्राह्मण (सपर्य्यति) पूज सकता है ! ॥७॥

भावार्थ—जब उस प्रभु के रहने का कोई पता नहीं है तो कौन उसकी पूजा का विधान कर सकता है । तात्पर्य यह है कि वह अगम्य अगोचर है ॥७॥

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति ।

इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥८॥

पदार्थ—(स्वित्) मैं उपासक वितर्क करता हूँ कि (कस्य सवनम्) किस पुरुष के यज्ञ मे वह इन्द्र (अव गच्छति) जाता जो (वृषा) वृषा अर्थात् अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले के नाम से प्रसिद्ध है और (जुजुष्वान्) जो शुभ-कर्मियों पर प्रसन्न होता है । (क उ स्वित्) कौन ज्ञानी विज्ञानी (इन्द्रम्) उस इन्द्र को (आचके) अच्छी प्रकार जानता है ? ॥८॥

भावार्थ—ऐसी ऋचाओं मे उस प्रभु की अनवगम्यता तथा दुर्बोधता दर्शायी जाती है । उस महान् शक्ति को विरले ही विद्वान् जानते हैं ॥८॥

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या ।

उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥९॥

पदार्थ—(वृत्रहन्) हे विघ्नहर्त्ता इन्द्र ! (कम्) किसे (ते दाना') तेरे दान (असक्षत) प्राप्त होते हैं ? (कम्) किसे तेरी कृपा से (सुवीर्य्या) शुभ वीर्य्य व पुरुषार्थ मिलते हैं ? (उक्थे) स्तोत्र सुनकर (क उ स्वित्) कौन उपासक तेरा (अन्तम) निकटतम व प्रियतम होता है ॥९॥

भावार्थ—उसका अनुग्रह किन्हें प्राप्त होता है इस पर सब विचार करें ॥९॥

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते ।

तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (ते) तेरे हेतु (मानुषे जने) मुझ व्यक्ति के निकट और (पूरुषु) सकल मनुष्य वर्गों मे (अयम सोम. सूयते) यह तेरा प्रिय सोमयाग होता है । (तस्य एहि) उसके पास आ, (प्रद्रव) उस पर कृपा कर; (पिब) और कृपादृष्टि से उसे देख ॥१०॥

भावार्थ—पूर्व ऋचाओं मे बताया गया है कि वह किसके याग मे जाता है, वह किसके घर पर पधारता है या नहीं । यहां प्रार्थना है कि हे प्रभु समस्त मनुष्य जातियों मे तेरी पूजा होती है, तू उन पर कृपा कर ॥१०॥

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः ।

आर्जीकीये मदिन्तमः ॥११॥

पदार्थ.—हे इन्द्र ! (शर्य्यणावति) इस काया मे (सुसोमायाम्) इस रस-मयी बुद्धि मे तथा (आर्जीकीये) सकल इन्द्रियों के सहयोग मे (अधिश्रित) आश्रित (ते) तेरी कृपा से (मदिन्तम) मेरे लिये आनन्दजनक याग सदा होता है, इसे ग्रहण कर ॥११॥

भावार्थ —याग दो तरह के है एक वह जो विविध द्रव्यो से सपन्न होता है वह बाह्य तथा जो इस शरीर मे बुद्धि द्वारा अनुष्ठित होता है वह आभ्यन्तर है। इसे ही मानसिक व आध्यात्मिक आदि भी कहते हैं । और यही यज्ञ श्रेष्ठ है ॥११॥

तमद्य राधसे मह चारुं मदाय घृष्वये ।

एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥१२॥

पदार्थ —हम उपासक (अद्य) आज (चारुम्) नितात सुन्दर (तम्) उस प्रभु की वन्दना करत हैं, (राधसे) धन तथा आराधनार्थ (मदाय) आनन्द हेतु और (घृष्वये) सकल शत्रु विनाश के लिये उसकी पूजा करते हैं (इन्द्र) हे इन्द्र वह तू (ईम्) इस समय (एहि) आ (द्रव) कृपा कर एव (पिब) कृपा दृष्टि से देख ॥१२॥

भावार्थ —जो भगवान् की उपासना करते है उन्हें धन तथा आनन्द की कोई कमी नही रहती ॥१२॥

अष्टम मण्डल मे चौसठवा सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१२ प्रगाथ काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, २, ५, ६, ६, ११, १२ *निचृद्गायत्री* । ३, ४ *गायत्री* । ७, ८, १० *विराड् गायत्री* ॥ षड्ज स्वर ॥

इन्द्र की प्रार्थना का विधान ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

आ याहि तूयमाशुभिः ॥१॥

पदार्थ.—(यद्) यद्यपि, (इन्द्र) हे इन्द्र तुम्हे (नृभि) उपासक (प्राक्) पूर्व दिशा मे, (अपाक्) पश्चिम मे (उदङ्) उत्तर मे (वा) अथवा (न्यक्) नीचे की ओर (हूयसे) बुलाते हैं, फिर भी आप (आशुभि) शीघ्र-गामी वाहको से वहन किये जाकर (तूयं) शीघ्र ही मेरे घर (आ याहि) पधारिए ॥१॥

भावार्थ —सर्वत्र व सभी दिशाओ मे लोग परमात्मा का गुणगान करते ही हैं, मैं चाहता हूँ कि मैं भी अपने अन्त करण मे उसे जगाऊ ॥१॥

उस की व्यापकता ॥

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।

यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥२॥

पदार्थ —हे ईश (यद्वा) अथवा (स्वर्णरे) प्रकाशमण्डित ! (दिव प्रस्रवणे) सूर्य्य के गमन स्थान मे (यद्वा) जैसे (समुद्रे) अन्तरिक्ष मे यद्वा (अन्धसः) अन्नोत्पत्तिकारण पृथिवी के गमन स्थान मे अर्थात् जहां तहां सर्वत्र स्थित हो तू (मादयसे) प्राणिमात्र को आनन्द दे रहा है तथापि हम उपासक तेरे शुभागमन हेतु तुझसे प्रार्थना करत हैं ॥२॥

भावार्थ —यो तो परमेश्वर सर्वत्र सब को आनन्द दे रहा है फिर भी हमें अपने अन्त करण मे उसके गुणों का ध्यान करना चाहिए ॥२॥

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।

इन्द्र सोमस्य पीतये ॥३॥

पदार्थ —हे इन्द्र ! (सोमस्य पीतये) ससार की रक्षार्थ (गीर्भि) विविध स्तोत्रो द्वारा (त्वा) तेरा (आ हुवे) आवाहन व स्तवन करता हूँ, जो तू (महाम्) महान् और (उरुम्) सर्वव्यापक है—ऐसे ही जैसे (भोजसे) घास खिलाने के लिये (गाम् इव) गौ को बुलाया जाता है ॥३॥

भावार्थ —जो महान् तथा सर्वत्र व्याप्त है वह स्वय ससार की रक्षा मे लगा है, तथापि प्रेमवश भक्तजन उसका आह्वान एव वन्दना, प्रार्थना करते हैं ॥३॥

आ ते इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।

रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥४॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे सकल ऐश्वर्य युक्त ! (देव) हे देव ! (ते) तेरी (महिमानम्) महिमा को और (ते मह) तेरे तेज को (बिभ्रत) धारण करते हुए ये (हरय) हरणशील सूर्य्यादि लोक तुझे (रथे) रमणीय ससार मे (वहन्तु) प्रकाशित करें ॥४॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! परमात्मा की महिमा को इस ससार मे देखो । इसी मे यह विराजमान है, यह उपदेश यहा दिया गया है ॥४॥

इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् ।

एहि नः सुतं पिब ॥५॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (गृणीषे) सबके द्वारा गीयमान होता है अर्थात् तेरी कीर्ति सभी गाते हैं । (उ) निश्चय करके (महान्) तुझे महान्, (उग्र) न्याय दृष्टि से भयकर व (ईशानकृत्) ऐश्वर्य्ययुत धनदाता मान (स्तुषे) स्तुति करते हैं । वह तू (न एहि) हमारे पास आ और (सुतम् पिब) इस ससार की उपद्रवों से रक्षा कर ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबसे महान है । वही धनेश भी है और उग्र भी क्योंकि उसके समक्ष पापी नही ठहर पाते । अत उसकी प्रार्थना करनी आवश्यक है ॥५॥

सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।

इदं नो बर्हिरासदे ॥६॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! (सुतावन्त) सदैव शुभकर्मपरायण तथा (प्रयस्वन्तः) दरिद्रो को देने हेतु और अग्निहोत्रादि कर्म करने के लिये सकल प्रकार के अन्न व सामग्रियो से सम्पन्न होकर (वयम्) हम उपासक (नः) हमारे (इदम् बर्हिः) हृदय प्रदेश मे (आसदे) प्राप्त होने हेतु (त्वाम्) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं और तेरी स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थ—सुतावन्त —यहा यह दर्शाया गया है कि पहले शुभकर्मी बनो । प्रयस्वन्त —और सकल सामग्रीसम्पन्न हो जाओ तब तुम ईश्वर को बुलाने का अधिकार पा सकोगे ॥६॥

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।

तं त्वा वयं हवामहे ॥७॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे ईश ! (यत्) जिस लिए (शश्वताम्) सदैव स्थायी मानव समाजो का (त्वम् साधारण) तू समान स्वामी (असि) है, (हि) यह प्रसिद्ध व (चित्) निश्चय है । अतएव (तम् त्वाम्) उस तुझे (वयम् हवामहे) हम सब अपने शुभकर्मों मे बुलाते व तेरी स्तुति करते हैं ॥७॥

भावार्थ—शश्वताम्= इसका अर्थ है चिरन्तन और चिर स्थायी । मानव समाज प्रवाहरूप से अविनश्वर है अत शाश्वत है । परमात्मा सबका साधारण पोषक है—इसमें सन्देह ही नही । अत प्रत्येक शुभकर्म मे पहले उसी का स्मरण, कीर्तन, पूजन व प्रार्थना करनी अपेक्षित है ॥७॥

अन्नादिक सब वस्तु परमात्मा को समर्पणीय ॥

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।

जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे ईश्वर ! (नर) कर्म तत्त्ववित् जन (ते) तेरे लिये (इदम् सोम्यम् मधु) इस सोमसम्बन्धी मधुर रस को (अद्रिभिः) शिला के द्वारा (अधुक्षन्) निकालते है । (तत्) उसे (जुषाणः) प्रसन्न होकर (पिब) ग्रहण करें ॥८॥

भावार्थ —यहां यह बताया गया है कि पर्वत के टुकडो से अन्न प्रस्तुत करने हेतु अनेक साधन बनाने चाहियें । जैसे शिला व खल बनाए जाते हैं । जब-जब कोई नवीन वस्तु प्रस्तुत हो तब-तब ईश्वर के नाम पर प्रथम उसे रखे, फिर सब मिलकर ग्रहण करें । अग्नि मे होमना यह सहज उपाय है ॥८॥

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।

अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥९॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! तू सबका समानरूप से (अर्य्यः) स्वामी है अत थोडी देर (विश्वान्) समस्त (विपश्चित) तत्त्वज्ञ पण्डितों को भी, जिन पर स्वभावत तेरी कृपा है, (अति) छोड़कर (ख्य) हम जो मूर्ख है किन्तु तेरे भक्त हैं हमे देख और (तूयम आगहि) शीघ्र हमारी ओर आ । और आकर (अस्मे) हमे (बृहत) बहुत बडा (श्रव) यश, अन्न, पुरस्कार आदि विविध वस्तु (धेहि) प्रदान कर ॥९॥

भावार्थ —हमे अच्छी तरह विदित है कि ईश्वर ज्ञानमय है । अत ज्ञानीजन उसके प्रिय हैं । भक्तो से भी प्रिय उसे ज्ञानी हैं । ज्ञान से बढ़कर कोई वस्तु पावन नही । परन्तु ईश्वर की प्रार्थना मूर्ख व पण्डित दोनों ही करते हैं । अतः यह स्वा-भाविक प्रार्थना है । अपने स्वार्थ हेतु सभी उसकी स्तुति प्रार्थना करते हैं ।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।

मा देवा मघवा रिषत् ॥१०॥

पदार्थ - इन्द्रनामी प्रभु (मे दाता) मेरा दाता है या वह मेरा दाता हो । क्योंकि वह (हिरण्यवीनाम्) सुवर्णवत् हितकारिणी (पृषतीनाम्) नाना वर्णों की गौओ व अन्यान्य पशुओं एव धनों का (राजा) स्वामी है । (देवा) हे विद्वत् जनो ! जिससे (मघवा) वह परम धनसम्पन्न प्रभु हम प्राणियो पर (मा रिषत्) रुष्ट न हो ऐसी शिक्षा व अनुग्रह हम पर करो ॥१०॥

भावार्थ.—हम लोगों की प्रिय वस्तु है गौ, क्योंकि थोड़े ही परिश्रम से वह महत् उपकार करती है । स्वच्छन्दतया वन मे चर बहुत दूध देती है । अत. इसकी प्राप्ति के लिये अधिक प्रार्थना है । और जो जन धन जन-ज्ञानादिकों से हीन हैं वे समझते ही हैं कि हमारे ऊपर उसकी उतनी कृपा नही । अत "मघवा रुष्ट न हो" यह प्रार्थना है ॥१०॥

यह मन्त्र पढ़कर ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे ॥

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु ।

शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

पदार्थः—मैं उपासक (**पृथलीनाम**) नाना वर्णों की गायों के (**सहस्रे अधि**) एक सहस्र से अधिक अर्थात् एक सहस्र गौवो के अतिरिक्त (**हिरण्ययम् आददे**) सुवर्ण कोश को भी पाया हुआ हूँ। जो हिरण्य (**चन्द्रम्**) आनन्ददाता है (**बृहत्**) महान् व (**पृथु**) ढेर है और (**शुक्रम्**) शुद्ध है ॥११॥

भावार्थः—इस ऋचा मे यह शिक्षा है कि परमात्मा की कृपा से जिसे धन जैसा प्राप्त हो वैसा ईश्वर से प्रार्थना करे और अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करे। वही धन उचित है जो शुद्ध हो अर्थात् पापो से उत्पन्न न हुआ हो और चन्द्र अर्थात् आनन्दजनक हो। शुभकर्म व शुभ दान में लगाने से धन सुखप्रद होता है ॥११॥

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः ।

श्रवो देवेष्वक्रत ॥१२॥

पदार्थ—हे प्रभु ! यद्यपि मैं (**दुर्गहस्य**) दुःख मे फसा हूँ तथापि (**मे**) मेरे (**नपातः**) पौत्र, दौहित्र आदि (**सहस्रेण**) आपके दिए हुए अपरिमित धन से (**सुराधसः**) धन सम्पन्न हो और (**देवेषु**) श्रेष्ठ पुरुषो में वे (**श्रवः**) यश, अन्न, पशु, हिरण्य व आपकी कृपा (**अक्रत**) पाए ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र से पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्रादिको को सुखी होने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए ॥१२॥

अष्टम मण्डल में पैंसठवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—१५ कालः प्रगाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३, ५, ११, १३ विराड् बृहती । ७ पादनिचृद् बृहती । २, ८, १२ निचृत् पंक्तिः । ४, ६ विराट् पंक्तिः । १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १० पंक्तिः । ९, १५ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ११, १३ मध्यमः । २, ४, ६, ८, १०, १२, १४ पञ्चमः । ९, १५ गान्धारः ॥

ईश्वर-प्रार्थना के लिये उपदेश ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

पदार्थः—हे लोगो ! (**सबाधः**) भय, रोगादि बाधाओ से युक्त ससार मे (**ऊतये**) रक्षा पाने हेतु (**बृहद् गायन्तः**) उत्तमोत्तम बृहत् गान गाते हुए (**तरोभिः**) नितान्त वेग से (**इन्द्रम्**) उस परमपिता की सेवा करो जो (**वः**) तुम्हारे लिये (**विदद्वसु**) वास, वस्त्र व धन देता है। हे मनुष्यो ! मैं उपदेशक (**भरं न**) जैसे स्त्री भर्ता भरणकर्ता स्वामी की सेवा करती है वैसे ही (**कारिणम्**) जगत्कर्ता उसको (**सुतसोमे**) सर्वपदार्थसम्पन्न (**अध्वरे**) नाना पथावलम्बी ससार मे (**हुवे**) पुकारता तथा याद करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—अध्वर=ससार। इस शब्द का अर्थ आजकल याग होता है। इस याग का भी बोध ससार के देखने से ही होता है। आम्र प्रतिवर्ष सहस्रश फल देता है। इस का क्या उद्देश्य है 'किस अभिप्राय से इतने फल एक वृक्ष मे लगते हैं। विचार से इसका उद्देश्य परोपकार ही लगता है। ये ही उदाहरण मानव जीवन को भी परोपकार व परस्पर सहायता की ओर ले जाते हैं इसीसे अनेक यागादि विधान उपजे हैं ॥१॥

सोम=वेद मे सोम की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। आश्चर्य यह है कि यद्यपि इसमे बहुत से विघ्न है तथापि इसमें सुखमय पदार्थ भी अत्यधिक हैं। उन्ही आनन्दप्रद पदार्थों का एक नाम है सोम। यह शब्द भी अनेकार्थक है ॥

आशय—तात्पर्य यह है कि ससार सुखमय व दु खमय कुछ हो, हम सब मिलकर परमात्मा की प्रार्थना करें। हमारा इसी में कल्याण निहित है ॥

ईश्वर स्वतन्त्र कर्ता है ॥

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—हे मानवो ! (**अन्धसः मदे**) धन देने से (**यम्**) जिस इन्द्र को (**दुध्राः**) दुर्धर नरेश आदि (**न वरन्ते**) नही रोक पाते (**स्थिराः**) स्थिर (**मुरः न**) जन भी जिसे नही रोक सकते। जो (**सुशिप्रम्**) शिष्टजनों को धनादि से परिपूर्ण करता है और जो (**आदृत्य**) श्रद्धा भक्ति व प्रेम से आदर कर उसकी (**शशमानाय**) कीर्ति की प्रशसा करने वालो को, (**सुन्वते**) शुभकर्मी को और (**जरित्रे**) स्तुति करने वाले को (**उक्थ्यम्**) वक्तव्यवचन, धन व पुत्रादि पावन वस्तु (**दाता**) प्रदान करता है ॥२॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जो शुभकर्म में लगे हैं वे उसकी कृपा के फल-स्वरूप सुखी रहते हैं ॥२॥

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।

स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥३॥

पदार्थ—(**य**) जो प्रभु (**शक्रः**) सर्वशक्तिमान् (**मृक्षः**) शुद्ध तथा (**अश्व्य**) व्यापक है (**य. वा**) और जो (**कीजः**) वन्दनीय, (**हिरण्ययः**) हित और रमणीय है, (**सः**) वह (**ऊर्वस्य**) नितांत विस्तीर्ण (**गव्यस्य**) गतिमान् संसार की (**अपावृतिम्**) सभी बाधाओ को (**रेजयति**) दूर करता है, क्योंकि जो (**वृत्रहा**) वृत्रहा=सकल विघ्न विनाशक नाम से प्रसिद्ध है ॥३॥

भावार्थ—प्रभु सर्वशक्तिमान् तथा शुद्धादि गुणों से भूषित है अतएव वही मनुष्यो का वन्दनीय, स्मरणीय और पूज्य है ॥३॥

उसकी महिमा ॥

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।

वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥४॥

पदार्थ—(**य**) जो भगवान् (**दाशुषे**) परोपकारी है वह श्रद्धालुओ और भक्तों को (**निखातम् चित्**) पृथिवी के भीतर गाड़े हुए भी (**पुरुसंभृतम्**) बहु सचित (**वसु उत्**) धन अवश्य (**वपति इत्**) देता है, जो (**वज्री**) न्यायदण्डधारी (**सुशिप्र**) शिष्टजनभर्त्ता तथा (**हर्यश्व**) सूर्य्य पृथिवी आदि मे व्याप्त ही है, वह (**इन्द्र**) इन्द्र (**यथा वशत्**) जैसा चाहे (**क्रत्वा**) कर्म से (**करत् इत्**) वैसा ही करता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा सर्व प्रकार हितकारी तथा स्वतन्त्र कर्ता है, अत उसी एक की उपासना करनी चाहिए ॥४॥

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।

वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५॥

पदार्थ—(**पुरुष्टुत**) हे परम वन्दनीय ! (**शूर**) महावीर, प्रभु ! (**पुरा चित्**) पूर्वकाल मे सृष्टि आदि मे तुमने (**नृणाम्**) मनुष्यो के कर्तव्य के बारे मे (**यत् वावन्थ**) जो जो कामना की, जो जो नियम बनाये हैं, (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**ते तत्**) तेरी उस वस्तु को और (**तुरम्**) शीघ्र (**वयम्**) हम (**उक्थम्**) यज्ञ स्तोत्र (**वचः**) सत्यवचन आदि नियम का पालन करते हैं। अत तुम हमारी रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—जो कोई परमात्मा के नियम पर चलत है वे इस ऋचा से प्रार्थना करें। उसने जो जो कर्तव्य बताया है उन्हें विद्वान् जैसे निबाहते हैं हम भी वैसे ही उनका पालन करें ॥५॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।

त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥६॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) हे बहुवन्दित ! (**वज्रिव**) हे दण्डधारी ! (**द्युक्ष**) हे दिव्यलोकस्थ ! (**सोमपाः**) हे ससाररक्षक ! तू (**मदाय**) आनन्द हेतु (**सोमेषु**) जगतो मे (**सचा**) सर्व पदार्थों सहित निवास कर। हे इन्द्र ! (**त्वम् इत् हि**) तू ही (**ब्रह्मकृते**) स्तोत्र-रचयिता को तथा (**सुन्वते**) शुभकर्म करने वालो को (**काम्यम्**) कमनीय (**वसु**) धन (**देष्ठः भुवः**) प्रदान करता हो ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा स्तोता और सत्कर्मरत रहने वालो को खूब ऐश्वर्य देने वाला है ॥६॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥७॥

पदार्थ—हे मानवजन ! (**इदा**) इस समय हमारा यह कर्त्तव्य है कि जैसे हम उपासक (**ह्यः**) गत दिवस (**एनम् वज्रिणम्**) इस न्यायपरायण महादण्ड-धारी परमात्मा की वन्दना प्रार्थना द्वारा (**इह**) इस यज्ञ मे (**अपीपेम**) प्रसन्न कर चुके हैं वैसे ही आप भी सदैव किया करें और (**अद्य**) आज (**तस्मै उ**) उसी की प्रसन्नता हेतु (**समनाः**) एकाग्र चित्त होकर आप लोग (**सुतम्**) उससे उत्पादित संसार को (**भर**) धनादि से परिपूरित करें। (**श्रुते**) जिस कार्य के सुनने से वह (**नूनम्**) अवश्य ही (**आ भूषत**) उपासको को सब प्रकार से सम्पन्न करता है ॥७॥

भावार्थः—जो उपदेशक प्रतिदिन नियम पालन करते हैं वे इसके अधिकारी हैं। वे शिक्षा दें कि हे मनुष्यो ! हम आज, कल, परसो, गतदिन तथा आगामी दिन अपने आचरण द्वारा उसे प्रसन्न रखते हैं और रखेंगे। तुम भी वैसा ही करो ॥७॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥८॥

पदार्थः—(**वृक. चित्**) वृक के तुल्य महादुष्ट भी (**वारणः**) सबके बाधक भी (**उरामथिः**) मार्ग मे लूटमार करने वाले भी (**अस्य वयुनेषु**) इसी की कामना मे रत रहते है अर्थात् वे अन्याय करके भी इसी की शरण मे आते हैं, इसी का ही नाम जपते हैं यह आश्चर्य की बात है ! (**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**सः**) वह तू (**नः इमम् स्तोमम्**) हमारे इस अनुरोध को (**जुजुषाणः**) सुनता हुआ (**आ गहि**) आ। हे भगवन् ! (**चित्रया धिया**) विविध तथा अद्भुत-अद्भुत कर्म व ज्ञान की वृद्धि के लिये तू हमारे हृदय में निवास कर ॥८॥

भावार्थ—उस परमात्मा की सन्त, असन्त, चोर, डाकू, मूर्ख, विद्वान् सब वन्दना करते हैं। परन्तु वे अपने-अपने कर्मानुसार फल पाते हैं ॥८॥

ईश्वर की पूर्णता ॥

कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥९॥

पदार्थ—(**अस्य वृत्रस्य**) इस प्रभु का (**कद् नु**) कौनसा (**पौंस्यम्**) पुरुषार्थ (**अकृतम् अस्ति**) करने को शेष है अर्थात् उसने कौन कर्म अभी तक नहीं किये जो उसे अब करने हैं अर्थात् वह सर्व पुरुषार्थ कर चुका है उसे अब कुछ करना नहीं। हे मनुष्यो! (**केनो नु कम्**) किसने (**श्रोमतेन**) श्रवणीय कर्म के कारण (**न शुश्रुवे**) उसको न सुना है क्योंकि (**जनुषः परि**) सृष्टि के जन्म से ही वह (**वृत्रहा**) सकल विघ्न नाशक नाम से विख्यात है ॥९॥

भावार्थ—वह परमात्मा सर्व प्रकार पूर्ण धाम है। उसे अब कुछ करना शेष नहीं। वह सृष्टि के प्रारम्भ से विख्यात है, उसी की उपासना करनी चाहिए ॥९॥

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।

इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥१०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (**अस्य तविषी**) इसकी शक्ति (**कदू**) कितनी (**मही**) महान् पूजनीय और (**अधृष्टा**) अक्षुण्ण है! (**वृत्रघ्न**) इस सकल दु:ख हर्त्ता भगवान् का यश (**कदु**) कितना (**अस्तृतम्**) अविनश्वर व महान है! हे मनुष्यो! (**इन्द्र**) वह परमात्मा मानव जाति के कल्याणार्थ (**विश्वान**) समस्त (**बेकनाटान्**) सूदखोरों को (**क्रत्वा**) उनके कर्मानुसार (**अहर्दृश**) केवल इसी जन्म में सूर्य्य को देखने देता है अर्थात् दूसरे जन्म में उन्हें अन्धकार में फेंक देता है। (**उत**) और (**पणीन्**) जो वणिक् मिथ्या आचरण करते हैं, असत्य बोलते हैं असत्य तोलते हैं उपकारी पशुओं को गुप्त रीति से बेचते हैं—इस प्रकार के मिथ्या व्यवसायी को वेद में पणि कहा गया है उन्हें भी वह इन्द्र (**अभि**) चतुर्दिक् से समाज से दूर हटाता है ॥१०॥

भावार्थ—बेकनाट—संस्कृत में इसे कुसीदी, वृद्धिजीवी आदि कहा जाता है। जो द्विगुण, त्रिगुण ब्याज लेता है। शास्त्र, राजा व समाज के नियम से जितना ब्याज बंधा है उससे द्विगुण त्रिगुण जो लेता है वह बेकनाट है। उसकी शक्ति असीम है। वह जगत् के शासन हेतु दुष्टों पर सदैव शासन करता है—यही इसका तात्पर्य है ॥१०॥

वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन्।

पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥११॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे नितान्त ऐश्वर्यशाली! (**वृत्रहन्**) हे सर्वदु:खहर्ता! (**पुरुहूत**) हे बहुवन्दित! हे अनेकों द्वारा आहूत! (**वज्रिव**) हे महादण्डधारी! (**भृतिम् न**) जिस प्रकार नियमपूर्वक लोग वेतन देते हैं वैसे ही (**पुरूतमास**) पुत्र, पौत्र बन्धु आदि से बहुत (**वयम्**) आपके उपासक हम सब (**खलु**) निश्चित रूपेण (**ते**) तुझे (**अपूर्व्या**) अपूर्व (**ब्रह्माणि**) स्तोत्र (**प्र भरामसि**) समर्पित करते हैं। उन्हें ग्रहण करो और हमें सुखी रखो ॥११॥

भावार्थ—वृत्र का अर्थ है विघ्न, दु:ख, क्लेश, मेघ, अन्धकार, अज्ञान। पुरुहूत=बहु पूजित। हमें उचित है कि उस परमदेव को नित्य नवीन स्तोत्र सुनाएं ॥११॥

पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः।

तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥१२॥

पदार्थ—(**तुविकूर्मिन्**) हे अनन्तकर्मा! (**इन्द्र**) हे इन्द्र! (**त्वे**) तुझमें (**आशस**) विद्यमान आशाएं (**पूर्वी चित**) पूर्ण हैं, (**ऊतय**) तुझमें रक्षा भी पूर्णरूप से मौजूद है। अतः प्राणी व रक्षार्थ (**हवन्ते**) तुझे लोग बुलाते, पूजते व तेरी स्तुति करते हैं। (**हे वसो**) हे सबके वासदाता! (**शविष्ठ**) हे शक्ति सम्पन्न! बलाधिदेव! (**अर्य**) वह माननीय देव तुम (**तिर चित्**) गुप्तरूप से भी (**सवना आगहि**) हमारे यज्ञों में आएं और (**मे हवम**) हमारे आह्वान, निवेदन, प्रार्थना आदि सुनें ॥१२॥

भावार्थ—सकल शुभ कर्म करते हुए व्यक्ति को चाहिये कि वह प्रभु को विद्यमान समझ उसकी स्तुति वन्दना आदि इस तरह करे कि मानो प्रभु उसके समक्ष ही है ॥१२॥

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि।

नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥१३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे महेश्वर! (**वयम् घ**) हम उपासक (**ते**) तेरे ही हैं, तेरे ही पुत्र व अनुग्रहपात्र हैं। इसी लिये (**विप्रा**) हम विप्रजन (**त्वे इत् ऊ**) तेरे ही आधीन होकर (**स्मसि**) विद्यमान व जीवन बिताते हैं, (**अपि**) यह असन्दिग्ध है। (**हि**) क्योंकि (**पुरुहूत**) हे वन्दित! हे पूज्य! (**मघवन्**) हे सर्वधन! (**त्वदन्य**) तुझसे बढ़कर अन्य (**कश्चन**) कोई देव अथवा महाराजा (**मर्डिता न अस्ति**) सुखदाता नहीं है ॥१३॥

भावार्थ—प्रभु से बढ़कर अन्य कोई पालक, पोषक व कृपालु नहीं, अतएव उसी की उपासना प्रेम, भक्ति व श्रद्धा से करनी अपेक्षित है ॥१३॥

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।

त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

पदार्थ—हे प्रभु! (**त्वम्**) तू (**न**) हम आश्रित जनों को (**अस्या अमते**) इस अज्ञान से (**अवस्पृधि**) हटा (**उत क्षुध**) और इस क्षुधा या दरिद्रता से हमें अलग ले जा। और (**अभिशस्ते.**) इस निन्दा से भी हमें दूर कर। हे भगवन्! तू (**न**) हमें (**ऊती**) रक्षा व सहायता (**शिक्ष**) दे। तथा तू (**तव**) अपनी (**चित्रया धिया**) आश्चर्य बुद्धि एवं क्रिया हमें दे। (**शचिष्ठ**) हे महाशक्ते! तू (**गातुवित्**) सकल मार्ग तथा सर्वरीति से अवगत है ॥१४॥

भावार्थ—इस ऋचा द्वारा अज्ञान निर्धनता व निन्दा से बचने हेतु और रक्षा, सहायता व श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्ति के लिये शिक्षा दी जाती है ॥१४॥

सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन।

अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥१५॥

पदार्थ—(**कलय**) हे कलामर्मज्ञो! अथवा हे शुभकर्म करने वालो! (**वः**) तुम्हारे घरों में (**सोमः**) प्रिय रसमय व मधुर पदार्थ तथा सोमयज्ञ (**सुत इत्**) सम्पादित हो, (**मा बिभीतन**) तुम डरो नहीं क्योंकि प्रभु कृपा से (**एष ध्वस्मा**) यह विध्वंसक शोक मोह आदि (**अपायति इत्**) जा रहे हैं, (**एष**) यह (**स्वयम् घ**) स्वयं (**अपायति**) दूर जा रहा है ॥१५॥

भावार्थ—हे मानवो! तुम सदैव शुभकर्म करो जिससे आप लोगों के सारे भय दूर हो जायेंगे व शोक मोह आदि क्लेश भी तुम्हें प्राप्त नहीं होंगे ॥१५॥

अष्टम मण्डल में छियासठवां सूक्त समाप्त ॥

अथ कविंशत्यृचस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य १—२१ *मत्स्य साम्मदो मान्या वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः। आदित्या देवता।* छन्दः—१—३, ५, ७, ९ १३—१५, २१ *निचृद्गायत्री*। ४, १० *विराड्गायत्री*। ६, ८, ११, १२, १६—२० *गायत्री* ॥ षड्जः स्वरः ॥

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे।

सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥१॥

पदार्थ—(**अभिष्टये**) अभीष्ट फल प्राप्ति हेतु हम प्रजाजन (**त्यान् नु क्षत्रियान्**) उन प्रसिद्ध न्यायपरायण बलिष्ठ वीर जनों के पास (**अव**) रक्षार्थ (**याचिषामहे**) याचना करते हैं जो (**आदित्यान्**) सूर्य के तुल्य तेजस्वी, प्रतापी एवं अज्ञानान्धकार निवारक हैं तथा (**सुमृळीकान्**) जो प्रजा, आश्रितों एवं असमर्थों का सुखदाता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रक्षकों व रक्षितों के कर्त्तव्य का वर्णन है। सर्व प्रकार रक्षक सुखप्रद हों और रक्षित उनसे सदैव अपनी रक्षा कराएं। इसके लिये आपस में प्रेम व कर-वेतन आदि की सुव्यवस्था हो ॥१॥

मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा।

आदित्यासो यथा विदुः ॥२॥

पदार्थ—(**मित्र**) ब्राह्मण जन, (**वरुण**) क्षत्रिय जन (**अर्यमा**) वैश्यप्रतिनिधि, (**आदित्यास**) व सूर्य्य जैसे प्रकाशमान व दु:खहर्ता अन्यान्य सभासद् (**यथा विदु**) जैसा जानते हों या जानते हैं उस रीति से (**न**) हम प्रजाजनों के (**अंहतिम्**) क्लेश, उपद्रव, दुर्भिक्ष, पाप व इस प्रकार के सारे विघ्नों को (**अति पर्षद्**) नितान्त दूर ले जायं ॥२॥

भावार्थ—मित्र जो स्नेहमय व प्रेम का आगार हो। वरुण—जो न्याय-दृष्टि में दण्ड दे तथा सभ्यता का स्तम्भ हो। अर्य्यमा—वैश्यों का माननीय। यद्वा न्याय हेतु जिसके पास लोग पहुँचें वह अर्य्यमा—जो प्राप्त होकर प्रजा का हनन करे जिसका आगमन असह्य हो। सभासद वे हों जो बुद्धिमान, परिश्रमी, उद्योगी, सत्यवादी, निर्लोभी व परहित में समर्थ हों ॥२॥

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे।

आदित्यानामरंकृते ॥३॥

पदार्थ—(**दाशुषे**) जो लोग जनता के कार्य्य में अपना समय, धन, बुद्धि, शरीर व मन लगाते हैं वे दाश्वान कहे जाते हैं और जो (**अरंकृते**) अपने सदाचारों से प्रजा को भूषित रखते हैं व प्रत्येक कार्य्य में जो क्षम हैं वे अलङ्कृत कहलाते हैं। इस तरह मनुष्यों के लिये (**तेषाम् हि आदित्यानाम्**) उन सभासदों का (**चित्रम्**) बहुविध (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**वरूथम**) दान, सत्कार, पुरस्कार, पारितोषिक तथा धन आदि होता है ॥३॥

भावार्थ—राष्ट्र में जो उच्चाधिकारी हों वे सदैव उपकारी जनों में पुरस्कार बांटें, इससे देश की वृद्धि होती है। केवल अपने स्वार्थ में कभी भी मग्न न हों ॥३॥

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्।

अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थ—(**वरुण मित्र अर्य्यमन्**) हे वरुण, हे अर्य्यमन्! (**व महताम्**) आप महा पुरुषों का (**अव**) रक्षण, सहायता व दान आदि (**महि**) प्रशंसनीय तथा महान है (**अवांसि**) आयु रक्षण आदि की आप से हम (**आवृणीमहे**) याचना करते हैं ॥४॥

भावार्थ—राष्ट्रीय सभासदों के पास प्रजाजन सदैव अपनी-अपनी आवश्यकताएं बताएं और उनसे उनकी पूर्ति कराएं ॥४॥

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्।

कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥५॥

पदार्थ.—(आदित्यास) हे राज्यसभा-सदस्यगण ! (दुधतः पुरा) प्रजा में उपद्रव व विघ्नों के आने के पूर्व ही (न. जीवान्) हम जीते हुए लोगो के उद्धारार्थ (अभि धेतन) चारो ओर से धाए । (श्रुतश्रुत.) हे प्रार्थना के श्रोताओ ! (कत् ह स्थ) आप मन मे विचार करें कि आप हैं कौन अर्थात् आप इसी कार्य के लिये सभासद् बनाए गए हैं । प्रजा के प्रार्थनापत्र आप ही सुनते हैं । यदि इस कार्य मे शिथिलता हुई तो कितनी हानि होगी, इसे विचारें । आपके थोडे से आलस्य से प्रजा मे महान् विनाश उपस्थित होगा ॥५॥

भावार्थ—राज्यसभासद् प्रजा मे महान् उपद्रव फैलने से पहले उनकी आवश्यकताए समझें व उन्हें पूर्ण करें ॥५॥

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः ।

तेना नो अधि वोचत ॥६॥

पदार्थ —हे प्रबन्धकर्ताओ ! (श्रान्ताय) नितात परिश्रमी, उद्योगी, साहसी तथा (सुन्वते) सदा शुभकर्म रत जनों हेतु (वः) आप का (यत् वरूथम्) जो दान के लिये धन, सहायता व पुरस्कार आदि हैं और (यत् छर्दिः) रहने के लिये बड़े-बड़े भवन तथा आश्रय है (तेन) उन दोनो उपकरणो से (नः) हम प्रजाजनों की (अधिवोचत) सहायता व रक्षा करें ॥६॥

भावार्थ—परिश्रमी तथा सुकर्मी लोगो को राज्य की ओर से सब सुविधाए मिलनी चाहियें—यह शिक्षा इसमे दी गई है ॥६॥

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः ।

आदित्या अद्भुतैनसः ॥७॥

पदार्थ —(आदित्या देवा) हे सभासदो ! (अद्भुतैनस) आप सब निरपराध तथा निष्पाप हैं । हे देवो ! (अहोः) हिंसकों अपराधियों व पापियो का (उरु अस्ति) महाबन्धन व (अनागस) निरपराधी जनो हेतु (रत्नम्) रमणीय श्रेय होता है ॥७॥

भावार्थ —सभासद् स्व सदाचार ऐसा बनाए कि वे कभी पाप व अपराध करते हुए न पाए जाय क्योंकि हिंसक पापियो को महादण्ड तथा निरपराधी को श्रेय प्राप्त होता है ॥७॥

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि ।

इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥८॥

पदार्थः—हे मानवो ! (नः) हमे (सेतुः) पापरूप बन्धन जैसे दृढता से (न सिषेत्) न बाधे—ऐसा व्यवहार रखना चाहिये । (अयम्) यह न्यायाधीश प्रभु (न) हमे (महे) पुण्यकार्य्य हेतु (परि वृणक्तु) छोड दे (हि) क्योंकि (इन्द्र इत्) यही परमेश्वर (श्रुत) विख्यात (वशी) वशी है अर्थात् सारे जगत् को अपने वश मे रखता है ॥८॥

भावार्थः—हमे सदैव शुभकर्म मे रत रखिये जिससे ईश्वरीय दण्ड हमे न मिले । हमारा सम्पूर्ण जीवन प्राणियो के हितार्थ हो ॥८॥

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः ।

देवा अभि प्र मृक्षत ॥९॥

पदार्थ —(अविष्यवः) हे सभाध्यक्षो ! (वृजिनानाम्) पापिष्ठ हिंसक (रिपूणाम्) शत्रुओ की (मृचा) हत्या (नः मा) हमारे मध्य न आए । (देवा) हे देवो ! वैसा प्रबन्ध आप (अभि) सब ओर से (प्रमृक्षत) करिये ॥९॥

भावार्थ —सभाध्यक्षो ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे प्रजा मे कोई बाधा उपस्थित न हो ॥९॥

सभा को सबोधन ॥

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे ।

सुमृळीकामभिष्टये ॥१०॥

पदार्थ —(महि) हे पूज्य ! (देवि) हे देवि ! (अदिते) अदिते ! (उत) व सभास्थ पुरुषो ! (अभिष्टये) अभिमत फलप्राप्ति हेतु (अहम्) मैं (सुमृळीकाम्) सुखदात्री (त्वा) तुमसे भी (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ —अदिति—यहाँ अदिति शब्द से सभा का ग्रहण है । यह भी एक वैदिक शैली है कि सभा को सम्बोधित करके प्रजागण अपनी प्रार्थना सुनाए ॥१०॥

पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः ।

माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥११॥

पदार्थ.—(उग्रपुत्रे) हे उग्रपुत्र सभा! (जिघांसतः) हिंसक शत्रुओं से (दीने) विपुल संकट में (आ) और (गभीरे) अति अगाध सकट मे हमें (पर्षि) सदैव बचाती है और इसी तरह बचाया कर । हे अदिते ! (नः तोकस्य) हमारी बीजभूत सन्तानों को (माकिः रिषत्) कोई प्रबल शत्रु भी नष्ट न करने पाएं, ऐसी व्यवस्था आप करें ॥११॥

भावार्थ—दीन गम्भीर शब्द से थोड़ा व अधिक क्लेश व्यक्त होता है । यहाँ स्वाभाविक अर्थ यह लगता है कि छोटे-बड़े सब सकटों से आप हमारी रक्षा करती हैं, अत धन्यवाद के पात्र हैं । हमारा बीज नष्ट न हो ऐसा उपाय कीजिये ॥११॥

अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे ।

कृधि तोकाय जीवसे ॥१२॥

पदार्थ —(उरुव्रजे) हे नितांत विस्तीर्णगते ! (उरूचि) हे बहुशासिके ! (नः) हमे भी (अनेहः) शत्रुओ से बचा, अहिंसित रख, विस्तीर्ण (कृधि) बना (वि प्र सर्तवे) जिससे हम भी आनन्द से इधर-उधर जा सकें तथा यह आशीर्वाद भी दे कि (तोकाय जीवसे) हमारे सन्तानरूप बीज सदैव जीवित रहे ॥१२॥

भावार्थ —अनेहा =अहिंसित, अपाप इत्यादि । उरुव्रजा =क्योंकि राष्ट्रीय सभा का प्रभाव सारे देश मे पडता है अत वह उरुव्रजा तथा बहुतो का शासन करती है अत वह उरूची कही जाती है । उस का सभी आदर करते हैं—इस लिए भी उसे उरूची कहते हैं ॥१२॥

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।

व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥१३॥

पदार्थ —सभासद् कैसे हो इसका वर्णन यहां किया गया है । (क्षितीनाम्) मनुष्यो मे (ये मूर्धान) जो गुणो से सर्वश्रेष्ठ हो; (अदब्धास) दूसरो की विभूति, उन्नति व मगल देखकर ईर्ष्या न करें, (स्वयशस.) अपनी वीरता, सद्-गुण, विद्यादि के द्वारा व परिश्रम कर जो स्वय यश उपजाते हो । पुन , जो (अद्रुह) किसी का द्रोह न करें वे ही सभासद् बन सकते हैं और वे ही (व्रता रक्षन्ते) ईश्वरीय तथा लौकिक नियमों के भी पालन मे समर्थ हो सकते हैं ॥१३॥

भावार्थ —ऐसे लोग ही सभासद् चुन जाय जो समय-समय पर समाज मे श्रेष्ठ गुणसम्पन्न रहे ॥१३॥

ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत ।

स्तेनं बद्धमिवादिते ॥१४॥

पदार्थ (आदित्यास) हे सभासदो ! (वृकाणाम्) हिंसक, चोर, डाकू व द्रोही असत्यवादी व वृक पशु के तुल्य भयकर लोगो के (आस्न.) मुख से (नः) हम प्रजा को (मुमोचत) बचाओ । (अदिते) हे सभे ! (बद्धम् स्तेनम्) बद्ध चोर को जैसे छोडते हैं वैसे ही दुर्भिक्षादि पापो से पीडित व बद्ध हमे बचाइये ॥१४॥

भावार्थ —प्रजा को अनेक प्रकार से लूटा जाता है, इसका दृश्य यदि देखना हो तो आंख फैलाकर ग्राम-ग्राम मे देखिए । मनुष्य वृकों व व्याघ्रो से भी बढ़कर स्वजातियो के हिंसक हो रहे हैं । सभा को उचित है कि इन उपद्रवों से प्रजा को बचाए ॥१४॥

अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः ।

अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥१५॥

पदार्थः—(आदित्या.) हे माननीय जनो ! आप की कृपा व राज्यप्रबन्ध से (इयम् शरु·) यह हिंसा करने वाला दुर्भिक्षादिरूप आपत्तिजाल (न) हमे (अजघ्नुषी) न सताए (अस्मत्) हम लोगो से (सु अपो एतु) कही दूर चले जाय । और इसी तरह (दुर्मति.) हमारी दुर्मति भी (अप) यहां से कही दूर भागे ॥१५॥

भावार्थ —अज्ञानता तथा दरिद्रता ये दोनो ही महापाप हैं, इन्हे यथाशक्ति सदैव क्षीण-हीन बनाइये ॥१५॥

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् ।

पुरा नूनं बुभुज्महे ॥१६॥

पदार्थ —(सुदानव आदित्या) हे नितात उदार परमदानी सभासदो ! (वः ऊतिभि) आप लोगो द्वारा रक्षा, सहायता और राज्यप्रबन्ध से (वयम् हि) हम प्रजाजन (शश्वत) सर्वदा (पुरा) पूर्वकाल मे और (नूनम्) इस वर्तमान समय मे (बुभुज्महे) आनन्द भोग विलास करते हैं और कर रहे हैं । अत. आप लोग धन्यवाद के पात्र हैं ॥१६॥

भावार्थ —राज्य-कर्मचारियो का शुभ कर्म करने पर अभिनन्दन होना चाहिए ॥१६॥

शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः ।

देवाः कृणुथ जीवसे ॥१७॥

पदार्थ —इस ऋचा द्वारा विनय की प्रार्थना की गई है—(प्रचेतस) हे ज्ञानी, उदारचेता, हे सुज्ञो (देवा·) विद्वानो ! उन पुरुषो को (जीवसे) वास्तविक, मानव जीवन प्राप्ति हेतु (कृणुथ) सुशिक्षित बनाओ कि जो (शश्वन्तम् हि) अपराध व पाप करने के सदा अभ्यासी हो, परन्तु (एनस) उनको करके पश्चात्ताप हो (प्रतियन्तम्) जो आपकी शरण मे आ रहे है उन्हे आप सुशिक्षित तथा सदाचारी बनाने का प्रयास करें ॥१७॥

भावार्थ·—पापियो, अपराधियों, चोरों, व्यसनियो आदि मनुष्यो को सुधारना भी राष्ट्र का ही कार्य है ॥१७॥

तत्सु नो नव्यं सन्यंस आदित्या यन्मुमोचति ।

बन्धाद्बद्धमिवादिते ॥१८॥

पदार्थ —(**आदित्या**) हे प्रकाशमान सभासदो ! (**अदिते**) हे सभे ! (**सन्यसे**) हमारे कल्याण व महोत्सव हेतु (**तत् नव्यम्**) क्या आप लोगों की ओर से वह नवीन साहाय्य व रक्षण (**न**) हमे (**सु**) सुविधा व आराम से प्राप्त हो सकता है (**यत् मुमोचति**) जो हमे विविध क्लेशो से छुड़ाता है । ऐसे ही (**बन्धात् बद्धम् इव**) जैसे बन्धन से बधे पशु या पुरुष को खोलते हैं ॥१८॥

भावार्थ—हे सभ्यो ! प्रजा में नये-नये उपाय व सहायता पहुँचाने की व्यवस्था करो ॥१८॥

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे ।

यूयमस्मभ्यं मृळत ॥१९॥

पदार्थः—(**आदित्यास**) हे सभाप्रमुखो ! (**अतिष्कदे**) दुःख, व्यसन आपत्ति आदि से बचने के और उन्हे भगाने हेतु (**अस्माकम्**) हम मे (**तत् तरः न अस्ति**) वह वेग, सामर्थ्य, विवेक नही जो आप लोगो मे है । अत हे सभ्यो ! (**यूयम्**) आप ही (**अस्मभ्यम् मृळत**) हमे सुख व सामर्थ्य प्रदान करें ॥१९॥

भावार्थ.—जिस कारण से राष्ट्रीय सभा के अधीन शतश सहस्रश सेनाए कोष व प्रबन्ध रहते हैं और वे सब प्रजा की ओर से ही एकत्रित रहते हैं । अत सभा का बल प्रजापेक्षया अधिक होता है । अतएव सभा को ही मुख्यतया प्रजा की रक्षा आदि की व्यवस्था करनी चाहिये ॥१९॥

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः ।

पुरा नु जरसो वधीत् ॥२०॥

पदार्थ —(**आदित्या**) हे राष्ट्र का प्रबन्ध करने वालो ! आप ऐसा प्रबन्ध करे कि जिससे (**जरसः पुरा नु**) जरावस्था के पूर्व ही (**विवस्वत हेतिः**) काल-चक्र का आयुध (**नः मा वधीत**) हमे न मारे । जो आयुध (**कृत्रिमा**) बड़ी कुशलता व विद्वत्ता से बना है और (**शरुः**) जो जगत् को अवश्य मार सकने वाला है ॥२०॥

भावार्थ—मरना सभी को है परन्तु जरावस्था से पहले मरना प्रबन्ध व अविवेक की कमी से होता है अत राज्य की ओर से रोगादि निवृत्ति हेतु पूर्ण प्रबन्ध होना अपेक्षित है ॥२०॥

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।

विष्वग्वि वृहता रपः ॥२१॥

पदार्थः—(**आदित्यास.**) हे राज्य-प्रबन्ध करने वालो (**विष्वग्**) सर्व प्रकार से और सर्व दिशाओ से आप सब मिलकर (**द्वेष**) द्वेषियो को (**सु**) भली प्रकार (**वि वृहत**) मूल से उखाडें । (**अंहतिम्**) पापो को (**वि**) हमसे दूर करें (**संहितम्**) सम्मिलित आक्रमण को (**वि**) रोकें । तथा (**रप वि**) रोग, शोक, अविद्या व पापो को नष्ट कीजिये । यही आपसे अन्तिम विनय है ॥२१॥

भावार्थ —राज्य की ओर से नितांत विवेकी विद्वानो को देश की दशा के निरीक्षण हेतु नियुक्त करो और उनके कथनानुसार राज्यव्यवस्था करो, तब सारे उपद्रव शान्त रहेगे ॥२१॥

अष्टम मण्डल मे सतसठवां सूक्त समाप्त ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१९ प्रियमेध ऋषि ॥ १—१३ इन्द्रः । १४—१९ ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्द —१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप । २, ३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १९ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री ९, १४, १८ पादनिचृद्गायत्री । १६ आर्चीस्वराड्गायत्री ॥ स्वर —१, ४, ७, १० गान्धार । २, ३, ५, ६, ८, ९, ११—१९ षड्ज ॥

इन्द्रनाम से परमात्मा की महिमा-स्तुति ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥१॥

पदार्थ —(**शविष्ठ**) हे महाबली ! (**सत्पते**) हे सुजनरक्षक ! (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्ययुक्त महेश ! (**ऊतये**) अपनी-अपनी सहायता व रक्षार्थ (**सुम्नाय**) स्वाध्याय, ज्ञान व सुख हेतु (**त्वा आवर्तयामसि**) तुझे हम अपनी ओर खीचते है अर्थात् हम पर कृपादृष्टि करने हेतु तेरी प्रार्थना करते है; ऐसे ही (**यथा रथम्**) जैसे रथ को खीचते हैं ! तू कैसा है ? (**तुविकूर्मिम्**) तेरे अनन्त कर्म हैं, (**ऋतीषहम्**) तू सारे विघ्नो को दूर करने वाला है ॥१॥

भावार्थ.—हे महाबली, हे सुजनरक्षक महेश हम सभी आपकी प्रार्थना करें ॥१॥

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।

आ पप्राथ महित्वना ॥२॥

पदार्थ—(**तुविशुष्म**) हे सर्वशक्तिमान् ! (**तुविक्रतो**) हे सर्वज्ञ ! (**शचीव.**) हे अनन्तकर्मी ! (**मते**) हे ज्ञानरूपी देव ! तू (**विश्वया**) सकलव्यापी (**महित्वना**) अपने महत्त्व से (**आ पप्राथ**) सर्वत्र पूर्ण है ॥२॥

भावार्थः—तुवि=बहुत । १—उरु २—तुवि ३—पुरु ४—भूरि ५—शश्वत् ६—विश्व ७—परीणसा ८—व्यानशि ९—शत १०—सहस्र ११—सलिल और १२—कुविन् ये १२ (द्वादश) बहुनाम हैं । (निघण्टु ३ । १ ।) शुष्म=बल । शची—कर्म । निघण्टु देखिए । हे मनुष्यो ! जिसके बल, प्रज्ञा और कर्म असीम हैं, जो स्वय ज्ञानरूप मे सर्वत्र व्याप्त है, वही सर्वत्र पूज्य है ॥२॥

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।

हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥

पदार्थ —हे प्रभो ! (**महः**) महान् व महातेजस्वी (**यस्य ते**) जिस तुम्हारे (**हस्ता**) हाथ (**महिना**) अपने महत्त्व से (**वज्रम्**) नियमरूप दण्ड को (**परि ईयतु.**) धारण किये हैं, जो वज्र (**ज्मायन्तम्**) सर्वव्याप्त है और (**हिरण्ययम्**) जो हितकर व रमणीय है ॥३॥

विशेष—ज्मायन्तम्=ज्मा—धरती । यहाँ यह शब्द उपलक्षण मात्र है अर्थात् केवल धरती पर ही नहीं कि जो सर्वत्र व्याप्त है । वज्र ससार में जो ईश्वरीय नियम व्याप्त है उसी को वेद मे वज्र व अग्नि आदि कहा जाता है । उन्हीं नियमो से सब अनुग्रह व निग्रह पाते है । हस्त—उसके हाथ आदि नहीं हैं तथापि मानव के बोध हेतु इस प्रकार का वर्णन है । भावार्थ यह है कि इस ससार में प्रभु ने ऐसे नियम निर्धारित किये हैं कि जिन्हे न पालने से प्राणी स्वय दण्डित होते रहते हैं । अत हे मानवो ! उसकी प्रार्थना करो और उसके नियमो का पालन करो ॥३॥

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥४॥

पदार्थ —हे नरो ! (**व पतिम्**) आप के पालक प्रभु को (**चर्षणीनाम्**) प्रजा और (**रथानाम्**) रथस्वरूप इन जगत्प्राणियो की (**एवै.**) स्वेच्छा से (**ऊती**) रक्षा, सहायता व कृपा करने हेतु (**हुवे**) शुभकर्मों में वन्दना करता हूँ, अपने हृदय मे ध्यान करता व आवश्यकताए मांगता हूँ । जो प्रभु (**विश्वानरस्य**) सकल मानव का पति है और (**अनानतस्य**) सूर्य्यादि लोको व (**शवस**) उनकी शक्तियो का भी शासक है ॥४॥

भावार्थः—जिस लिये वह सबका पालक, शासक तथा अनुग्राहक है और सर्वशक्तिमान् है अत· जगत कल्याण हेतु उसी की मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः ।

नाना हवन्त ऊतये ॥५॥

पदार्थ —(**नर**) मनुष्य (**यम् सदावृधम्**) जिस सदा बढ़ाने व सुख पहुँचाने वाले व सदैव जगत्पोषक प्रभु की (**स्वर्मीळ्हेषु**) सकटो, सुखों व जीवनयात्रा मे (**अभिष्टये**) स्वमनोरथ सिद्धि हेतु और (**ऊतये**) सहायतार्थ (**नाना**) विविध प्रकार (**हवन्ते**) स्तुति, पूजा, पाठ व कीर्ति गाते हैं, उसी का मैं भी स्मरण करता हूँ ॥५॥

भावार्थ —उसका यश महान् है जिसे सभी गा रहे हैं । हम भी सदैव उसी की उपासना करें ॥५॥

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम् ।

ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६॥

पदार्थ —हे विवेकी जनो ! मैं (**इन्द्रम्**) उस नितान्त ऐश्वर्यशाली ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व गान गाता हूँ, तुम भी ऐसा करो जो (**परोमात्रम्**) अतिशय पर है तथापि (**ऋचीषमम्**) ऋचा के सम है । भावार्थ यह है—यद्यपि वह परमात्मा अपरिच्छिन्न है तथापि हम उसकी स्तुति प्रार्थना करते हैं अत· मानो वह ऋचा के तुल्य है, ऋचा जहाँ तक पहुँचती है वहा तक है । पुन (**उग्रम्**) महाबली व भयकर है (**सुराधसम्**) सुशोभित धनसम्पन्न है और (**वसूनां चित्**) धनों व वासों का (**ईशानम्**) ईश भी है ॥६॥

भावार्थ —प्रभु अनन्त है फिर भी जीवों पर दया भी करता है । अत वह पूजनीय है ॥६॥

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।

यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७॥

पदार्थ —मैं उपासक (**पीतये**) कृपादृष्टि से अवलोकन हेतु और (**महः राधसे**) महान् पूज्य सर्व प्रकार के धनों की प्राप्ति के लिये (**तम् तम् इत् इन्द्रम्**) उसी इन्द्र की (**चोदामि**) वन्दना करता हूँ । उस प्रभु को छोड अन्य की वन्दना नहीं करता जो (**पूर्व्याम् अनुष्टुतिम्**) प्राचीन व नवीन अनुकूल वन्दनाएं सुनता है और जो (**कृष्टीनाम्**) सकल प्रजा का (**ईशे**) शासक व स्वामी है और (**नृतु**) जो सभी का नायक है ॥७॥

भावार्थः—हे नरो ! उसी की कीर्ति गाओ जो सारे जग का स्वामी है । वह इन्द्र-नामधारी परमात्मा है ॥७॥

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः ।

नकिः शवांसि ते नशत् ॥८॥

पदार्थः—(शवसान) हे बलशाली देव ! हे सर्वशक्ते ! परमात्मन् ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्यम्) मैत्री को कोई भी (मर्त्यः) मरणधर्मा जन कदापि (न आनशः) पा न सके तब मैं आपकी मैत्री प्राप्त करूंगा, इसकी कौन-सी आशा है फिर भी मैं आपकी ही वन्दना करता हूँ ! हे भगवन् ! (नकि.) कोई मानव या देवगण (ते शवांसि) आपकी उन शक्तियों को भी (नशत्) पा नहीं सकता ॥८॥

भावार्थ.—वह परमात्मा अनन्त शक्तिशाली है । उसी की शक्ति की मात्रा से यह सकल संसार शक्ति पा रहा है । तब उसे कौन पा सकता है; उसकी मैत्री परम पवित्र शुद्ध सत्यवादी ही पाते हैं, किन्तु वैसे नर थोड़े से ही हैं ॥८॥

त्वोतासुस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम् ।

जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥९॥

पदार्थः—(वज्रिवः) हे दुष्टसंहारक ! शिष्टानुग्राहक ! परमन्यायी ! हम प्रजाजन (त्वोतासः) तुझसे सुरक्षित हो (त्वा युजा) तेरी सहाय के साथ (अप्सु) जल में स्नानार्थ तथा (सूर्ये) सूर्यदर्शनार्थ (पृत्सु) इस जीवन-यात्रा रूप महासमर मे (महत् धनम्) आयु, ज्ञान, विज्ञान, यश, कीर्ति, लोक, पशु इत्यादि और अन्त में मुक्ति-रूप महाधन (जयेम) पाएं ॥९॥

भावार्थ.—सूर्य को मैं बहुत दिन देखूं, ऐसी प्रार्थना बहुधा आती है, परन्तु (अप्सु - सूर्ये) जल मे शतवर्ष स्नान करूं ऐसी प्रार्थना बहुत थोड़ी है । परन्तु जलवर्षण की प्रार्थना ही अधिक है । अत अप्सु - इसका अर्थ जल के निमित्त भी हो सकता है ॥९॥

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।

इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥१०॥

पदार्थ.—(गिर्वणस्तम) हे अतिशय स्तुति वन्दना योग्य ! हे स्तोत्रप्रियतम ! देव ! (तम् त्वाम्) जो तू सब जगह प्रसिद्ध व व्याप्त है, उस तुझे (यज्ञैः) विविध शुभकर्मों के अनुष्ठान से (ईमहे) याचते व खोजते हैं । हे प्रभो ! (तम्) उस तेरी (गीर्भिः) अपनी-अपनी भाषाओं से स्तुति करते हैं । (इन्द्र) हे निखिलैश्वर्यसम्पन्न! तू (यथाचित्) जिस किसी भांति (वाजेषु) इन सांसारिक संघर्षों मे (पुरुमाय्यम्) बहु ज्ञानी पुरुष को अवश्य व सदैव (आविथ) बचाता व सहायता प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा सभी अवस्थाओं मे ज्ञानी जन की रक्षा करता है । अतएव ज्ञानप्राप्ति का अभ्यास करना अभीष्ट है ॥१०॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः ।

यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥११॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्यम्) मित्रता (स्वादु) अत्यन्त प्रिय व रसवती है । (अद्रिव) हे ससारोत्पादक ! (प्रणीति.) तेरी जगत् रचना भी (स्वाद्वी) मधुमयी है अतएव तेरी स्तुति प्रार्थना हेतु (यज्ञः) शुभकर्म (वितन्तसाय्यः) अवश्य [व सदा कर्त्तव्य व विस्तारणीय है ॥११॥

भावार्थ.—ईश्वरप्रेम या भक्ति से क्या आनन्द मिलता है इसको कोई योगी, ध्यानी व ज्ञानी ही अनुभव कर पाते हैं ; उसका प्रेम मधुमय है । हे नरो ! उसकी भक्ति करो ॥११॥

उरु णस्तन्वे३ तन उरु क्षयाय नस्कृधि ।

उरु णो यन्धि जीवसे ॥१२॥

पदार्थ.—हे प्रभु ! (न. तन्वे) हमारे शरीर अथवा पुत्र हेतु (उरु कृधि) अति सुख दो । (तने) हमारे पौत्र हेतु बहुत सुख दो । (न· क्षयाय कृधि) हमारे निवास के लिये कल्याण करो । (नः जीवसे) हमारे जीवन के लिये (उरु यन्धि) महान् सुख दो ॥१२॥

भावार्थ —क्षय= क्षय शब्द निवासार्थक भी है । यन्धि=यम धातु दानार्थक है । तात्पर्य इसका यह है कि हम शुभकर्म करें, हमे अवश्य ही उसका फल सुख में मिलेगा ॥१२॥

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् ।

देववीतिं मनामहे ॥१३॥

पदार्थः—हम उपासक (देववीतिम्) शुभकर्म को (मनामहे) समझते हैं कि यह (नृभ्य उरुम्) मानव हेतु बहु विस्तृत शुभ (पन्थाम्) पथ है; (गवे उरुम्) गौ अश्वादि पशुओं हेतु भी यह हितकारी है तथा (रथाय उरुम् पन्थाम्) रथों के लिये भी सुखदायक है ॥१३॥

भावार्थ—नरो का शुभ यज्ञादि कर्म केवल अपने लिये ही नहीं किन्तु जड़ व चेतन दोनों का कल्याण करने वाला है ॥१३॥

कृतज्ञता प्रकाश ॥

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।

तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥१४॥

पदार्थ —उस प्रभु की कृपा से (सोमस्य हर्ष्या) सोम के हर्ष से (द्वा द्वा) दो-दो मिल कर (षड्) छः — दो नयन—दो नासिकाएं और दो कर्ण ये छः प्रकार के इन्द्रिय (मा उपतिष्ठन्ति) मुझे मिली है जो (नर) अपने-अपने विषयो के नायक तथा शासक हैं । पुन (स्वादुरातय) जिनके दान स्वादिष्ट हैं ॥१४॥

भावार्थ—षट् - नयन इत्यादि इन्द्रियां सख्या मे छः हैं परन्तु साथ ही (द्वा) दो-दो हैं । अत मन्त्र मे "षट्" व "द्वा द्वा" पद आए हैं । ये इन्द्रियां यद्यपि सब को मिली है तथापि विशेष पुरुष ही इनके गुणो व कार्यों से सुपरिचित हैं और विरले ही इनसे वास्तविक कार्य लेते हैं । ईश कृपा से जिनके इन्द्रियगण यथार्थ नायक तथा दानी हैं वे ही धन्य हैं ॥१४॥

ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।

आश्वमेधस्य रोहिता ॥१५॥

पदार्थ —मैं उपासक (इन्द्रोते) ईश्वर से व्याप्त शरीर के लिये (ऋज्रा) ऋजुगामी नासिका रूप दो अश्व (आददे) प्राप्त करता हूँ । (ऋक्षस्य सूनवि) शुद्ध जीवात्मा के पुत्र शरीर हेतु (हरी) हरणशील नयनरूप दो अश्व हैं और पुनः (आश्वमेधस्य) इन्द्रियाश्रय शरीर के कल्याणार्थ (रोहित) प्रादुर्भूत कर्णरूप दो इसमें जुड़े है ॥१५॥

भावार्थ —हे नरो ! यह पावन शरीर तुम्हे दिया गया है इससे शुभकर्म ही करो ॥१५॥

वर्णन समुदाय इन्द्रियों का ।

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे ।

आश्वमेधे सुपेशसः ॥१६॥

पदार्थ —(आतिथिग्वे) इस शरीर के लिये (सुरथान्) अच्छे रथयुक्त इन्द्रियरूप घोड़ों को मैं पाता हूँ (आर्क्षे) ईश्वर रचित शरीर के हितार्थ (स्वभीशून्) अच्छे लगाम युक्त इन्द्रियाश्वो को मैं प्राप्त करता हूँ । इसी तरह (आश्वमेधे) इन्द्रियाश्रम देह के मंगल हेतु (सुपेशस) सुन्दर इन्द्रियाश्वो को मैं पाता हूँ ॥१६॥

भावार्थ --अपनी इन्द्रियों के द्वारा शुभ कर्म करते हुए शरीर व मानव जन्म को सफल बनाओ ॥१६॥

षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः ।

सचा पूतक्रतौ सनम् ॥१७॥

पदार्थ —(आतिथिग्वे) इस शरीर मे नयन आदि (षट्) छः घोड़ो को (सचा सनम्) साथ ही पाता हूँ । इसी तरह (इन्द्रोते) ईश्वरव्याप्त शरीर में (वधूमत) बुद्धिरूप नारी सहित व (पूतक्रतौ) शुद्धकर्म शरीर मे इन्द्रियगण पाते हैं ॥१७॥

भावार्थ —बार-बार इसलिये इस तरह का वर्णन आता है कि उपासक अपनी इन्द्रियों को वश मे कर इनसे पवित्र कार्य लें ॥१७॥

बुद्धि का वर्णन ॥

ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी ।

स्वभीशुः कशावती ॥१८॥

पदार्थः—(एषु ऋज्रेषु) इन सरलगामी इन्द्रियो के (अन्त) बीच वर्तमान एक (कशावती) विवेकवती बुद्धिरूपा नारी (आचेतत्) सभी को चेताती और शासन करती है जो (वृषण्वती) सुखवर्षक है और (स्वभीशु) जिसके हाथ मे अच्छा लगाम भी है ॥१८॥

भावार्थ —इन इन्द्रियों के साथ ही अद्भुत शक्तिशालिनी विवेकवती बुद्धि है, उसे मनन आदि व्यापारो से सदैव बढ़ाना व शुद्ध रखना चाहिए, यह सारा जगत् इसी के वश मे है ॥१८॥

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः ।

अवद्यमधि दीधरत् ॥१९॥

पदार्थः—(वाजबन्धव) हे विज्ञानरूपी अन्न द्वारा परस्पर बद्ध बन्धुभूत इन्द्रिय जनो ! (युष्मे) तुम में (निनित्सु चन) निन्दाभ्यासी (मर्त्यः चन) जन भी (अवद्यम्) निन्दा या अपराध (न अधि दीधरत्) पैदा नहीं करता ॥१९॥

भावार्थ —यहाँ शुद्ध इन्द्रियो का वर्णन है । जिनकी इन्द्रियां शुद्ध तथा विज्ञानयुक्त हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं ॥१९॥

अष्टम मण्डल मे उनसठवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१८ प्रियमेध ऋषि ॥ *देवता:—१—१०, १३—१८ इन्द्र । ११ विश्वे देवा । १२ वरुण.* ॥ *छन्दः—१, ३, १० विराडनुष्टुप् । ७, ९, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । ८ पादनिचृद्गायत्री । १४ अनुष्टुप् । २ निचृदुष्णिक् । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ गायत्री । ११ पङ्क्तिः । १६ निचृत् पंक्ति । १७ बृहती । १८ विराड् बृहती ॥ स्वर.—१, ३, ७—१०, १२—१५ गान्धारः । २ ऋषभ । ४—६ षड्ज । ११, १६ पञ्चमः । १७, १८ मध्यम* ॥

इन्द्रवाच्य ईश्वर की प्रार्थना ॥

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।

धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

पदार्थ —हे नरो ! (**व**) तुम सभी मिलकर (**मन्दद्वीराय**) धार्मिक पुरुषो को आनन्द प्रदाता (**इन्दवे**) और जगत् को विविध सुखो के दाता परमात्मा के लिए (**त्रिष्टुभम् इषम्**) स्तुतिमय अन्न (**प्र प्र**) भली प्रकार समर्पित करो, वह ईश्वर (**धिया**) शुभकर्म व (**पुरन्ध्या**) बहुत बुद्धि की प्राप्ति के लिए (**मेध-सातये**) यज्ञादि शुभकर्म करने हेतु (**व विवासति**) तुम्हे चाहता है ॥१॥

भावार्थ.—वीर उसी को कहते हैं जो निर्धनो व असमर्थों को अन्यायी जनों से बचाता है व स्वय ब्रह्मचर्य्यादि धर्म पालने तथा शारीरिक मानसिक शक्तियो को बढ़ाते हुए सदैव देशहित कार्य में लगा रहता है । ऐसे पुरुषो से प्रसन्न (मन्दद्वीर) होता है । इसमे यह शिक्षा दी गई है कि प्रत्येक नर-नारी वीर-वीरागना बने ॥१॥

विवासति - इस क्रिया मे दर्शाया गया है कि प्रभु अपनी सन्तानो की चिन्ता में रहता है और चाहता है कि मेरे पुत्र शुभकर्मी हो । तभी उनकी बुद्धि व क्रियात्मक शक्ति बढ़ेगी । मेध=जितने शुभकर्म हैं वे सभी छोटे-बडे यज्ञ हैं । स्वार्थ त्याग परार्थ के लिये प्रयत्न करना यही महायज्ञ है । हे लोगो ! मानव समाज बहुत बिगड़ गया है । इसे ज्ञान-विज्ञान देकर धर्म मे लगाना व सुधारना एक महान् प्रयास है ॥१॥

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥२॥

पदार्थ —हे नरो ! तुम उस प्रभु को प्रसन्न करने की इच्छा रखो जो देव (**व ओदतीनाम्**) तुम्हारी सम्पत्ति का (**नदम्**) रक्षक है और (**यो युवतीनाम्**) परम सुन्दरी नारियो का (**नदम्**) पालक है और जो (**व**) तुम्हारी (**अघ्न्यानाम्**) अहन्तव्य (**धेनूनाम्**) दुग्धवती गौओं का भी (**पतिम्**) पति है, (**इषुध्यसि**) उस प्रभु की आज्ञा का पालन करो ॥२॥

भावार्थ —यहा ओदती, योयुवती और धेनु ये तीनो स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं । इस से स्पष्ट है कि जैसे नारी जाति का रक्षक प्रभु है वैसे ही प्रत्येक वीर के लिए उचित है कि स्त्रियो पर कभी अत्याचार न करें ॥२॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३॥

पदार्थ —(**अस्य**) इस सभी जगह प्रसिद्ध (**विश**) परमात्मा के (**त्रिषु आरोचने**) तीनो प्रकाशमान पृथिवी आदि लोको मे जो (**देवानाम् जन्मन्**) सकल पदार्थों के जन्म के कारण (**विश**) प्रजा है (**ता**) वे सभी (**पृश्नय**) गौओ के तुल्य (**सोमम् श्रीणन्ति**) मधुर-मधुर पदार्थ दे रही हैं । कैसी गौए ? (**सूद-दोहस**) जिन के थन कूप के समान हैं ॥३॥

भावार्थ —जैसे गौए मधुर दूध प्रदान करती है वैसे ही सकल पदार्थ मधुरता पैदा कर रहे है । इसे देखिये व विचार करिए ॥३॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

पदार्थ —हे मानवो ! (**यथा विदे**) जैसे विज्ञात तथा प्रख्यात पुरुषों को पूजते हो वैसे ही (**गिरा**) अपनी वाणी से (**अभि**) अन्त करण के सर्वभाव सहित (**इन्द्रम्**) उस प्रभु को (**प्रार्च**) पूजो जो जगदीश (**गोपतिम्**) सभी लोको का रक्षक है (**सत्यस्य सूनुम**) सत्य का जनयिता तथा (**सत्पतिम्**) सत्पति है ॥४॥

भावार्थ—प्रभु को प्रत्यक्ष नही देखते, अत उसके अस्तित्व मे लोग सदेह करते हैं और उसकी पूजा पाठ मे आलस्य दिखाते हैं । इसलिए विश्वासार्थ कहा गया है कि विज्ञात पुरुष जैसे देखते व उसे पूजते हैं वैसे ही उसे भी समझो । क्योंकि यदि वह न हो तो य पृथिवी इत्यादि कहा से हो । इसका विचार करो ॥४॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।

यत्राभि संनवामहे ॥५॥

पदार्थ —उस इन्द्रवाच्य प्रभु ने (**अधि बर्हिषि**) इस निराधार आकाश मे (**अरुषी**) प्रकाशित इन (**हरय**) परस्पर हरणशील पृथिवी आदि लोकों को (**ससृज्रिरे**) बनाया है, (**यत्र**) जहा हम (**संनवामहे**) रहते हैं ॥५॥

भावार्थ —बर्हिष् आकाश का नाम है (निघण्टु १ । ३ ।) । इससे ईश्वर की महती शक्ति बताई गई है ॥५॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।

यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥

पदार्थः—(**वज्रिणे**) दण्डधारी (**इन्द्राय**) उस इन्द्र हेतु (**गाव**) ये पृथिवी आदि लोक (**आशिरम्**) पुष्टिकर (**मधु दुदुह्रे**) मधु देते है । (**यत्**) जिसे (**उपह्वरे**) समीप में ही (**सीम्**) सर्वत्र (**विदत्**) वह देखता है ॥६॥

भावार्थ —इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रभु की प्रीति हेतु मानो ये सारा जगत् ही अपना अपना स्वत्व प्रदान कर रहे हैं और ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होने से वह वहा ही उसे पा भी रहा है, तब स्वल्प जन उसे क्या दे सकेगा ! तथापि हे नरो ! तुम्हारे पास जो कुछ हो उसकी प्रीति हेतु उसे दो ॥६॥

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७॥

पदार्थ.—यद्यपि प्रभु दिखाई नही देता तथापि उसका अनुभव जीव अवश्य करता है । वह हमारा पिता व सखा है । रक्षक है, हमारी प्रार्थना सुनता है और उसका फल देता है, इत्यादि विचारो क साथ वेद विद्यमान हैं । इस अवस्था में यह मन्त्र वक्ष्यमाण प्रकार का विचार प्रस्तुत करता है । अध्यात्मार्थ—(**ब्रध्नस्य**) सूर्य्य-वत् प्रकाशक शिरसम्बन्धी (**यत् विष्टपम्**) जो व्यापक और विलप्त (**गृहम्**) गृह है । वहा मै उपासक (**इन्द्र च**) और प्रभु दोनो (**उद् गन्वहि**) जाए और वहा (**मध्व पीत्वा**) मुक्ति का सुख भोगते हुए (**त्रि सप्त**) एकविंशति विवेक-युक्त (**सख्युः पदे**) अपने मित्र के पद पर (**सचेवहि**) संयुक्त हों ॥७॥

भावार्थ —त्रि × सप्त = २१—यह वर्णन आध्यात्मिक है । इस शिर मे दो नयन, दो कर्ण, दो नासिकाए और एक रसना है । ये सातों अपने-अपने विषयों के विचारकर्त्ता है ॥ उत्तम, मध्यम व अधम भेद से इनके तीन प्रकार के विचार हैं । अत ७ × ३ = २१ प्रकार के अनुभव या विचार इस शिर मे सदैव रहते हैं । अतः यही शिर एकविंशति विचारों से युक्त है । सखा=परमात्मा का सखा जीव है । उसका मुख्य स्थान शिर ही है जैसे लोक मे मित्र को बुलाकर लोग सत्कार करते हैं वैसे ही उपासक जीवात्मा परमात्मा को अपने स्थान मे बुलाता है और उसे मधु प्रदान करता है

वेद मानवस्वभाव का निरूपक ग्रन्थ है । वेद वाणी जहा तक पहुँचती है उतना ही ईश्वर है । ॥७॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥८॥

पदार्थ.—(**प्रियमेधास**) हे यज्ञप्रिय जनो ! तुम सब मिलकर उसकी (**अर्चत**) अर्चना करो, (**प्रार्चत**) अच्छी प्रकार उसे गाओ, अवश्यमेव (**अर्चत**) उसकी स्तुति प्रार्थना वन्दना आदि करो । केवल तुम्ही नहीं (**उत**) किन्तु (**पुत्रकाः**) तुम्हारे पुत्र-पौत्र व भावी सन्तान भी (**अर्चन्तु**) उसकी कीर्ति गाए ! (**न**) जैसे (**धृष्णु पुरम्**) विजयी पराक्रमी व महान् नगर की प्रशंसा लोग गाते हैं वैसे उसको गाओ ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की उपासना या प्रार्थना न करो यह इसका तात्पर्य है ॥८॥

वैराग्योत्पादन के लिये संसार की विलक्षणता ॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।

पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥९॥

पदार्थ—(**गर्गर**) गर्गर शब्द करने वाला नक्कारा आदि बाजा (**अव स्वराति**) भयानक शब्द कर रहा है (**गोधा**) ढोल, मृदङ्ग इत्यादि (**परि सनिस्वनत्**) चारो ओर जोर से बज रहे हैं । इसी तरह (**पिङ्गा**) अन्यान्य वाद्य भी (**परि चनिष्कदत्**) चारो ओर भय फैला रहे हैं । अत हे नरो ! (**इन्द्राय**) उस प्रभु के लिये (**ब्रह्म उद्यतम्**) स्तुतिगान का प्रयास हो ॥९॥

भावार्थ —ससार एक भयानक रणभूमि है इसमे प्रतिक्षण अपने-अपने अस्तित्व हेतु प्रत्येक जीव सघर्ष कर रहा है । अन्य जीवो की अपेक्षा मनुष्य-समाजों मे अधिक सघर्ष है । अत इसमे कौन बचेगा और कौन नही, इसका निश्चय नहीं । इस हेतु पहले परमात्मा का स्मरण करो ॥९॥

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥१०॥

पदार्थ.- (**यत्**) जब (**सुदुघा**) सुगमता से दोहन योग्य, सुष्ठु फल-दायिनी (**एन्य**) गमन [प्रगति] शील व (**अनपस्फुरः**—अन्+अप+स्फुरः) स्फुरित होने या सूझ जानेवाली शारीरिक तथा आत्मिक बल की साधक क्रियाए [साधक के अन्त करण मे] (**आपतन्ति**) आकर उपस्थित होती हैं तब (**इन्द्राय पातवे**) ऐश्वर्यसाधक जीवात्मा के उपभोग हेतु (**अप स्फुरं**) न हिलनेवाले (**सोम**) [उन क्रियाओ द्वारा निष्पादित] शारीरिक व आत्मिक बल को (**गृभायत**) ग्रहण करें ॥१०॥

भावार्थ —सत्य साधक को उन क्रियाओं की सूझ-बूझ फलने लगती है कि जिन्हें करने से जीवात्मा बलशाली होता है । बस, इनको क्रिया में परिणत करने मे न चूके ॥१०॥

विशेष—स्फुर स्फुरणे—के दो अर्थ हैं; स्फुरित होना और हिलना । 'अनप-स्फुर ' क्रियाओं का विशेषण है जिसमें स्फुर (सूझना) के साथ दो निषेधार्थक शब्द 'न' तथा 'अप' के संयोग से 'सूझना' अर्थ दृढ किया गया है । 'अपस्फुरं' 'सोम' का विशेषण है—इससे सोम की 'चञ्चलता' का निषेध है ॥१०॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥११॥

पदार्थ—(तं) उस सोम का (इन्द्र अपात्) ऐश्वर्य का साधक जीवात्मा, राजा आदि पान करता है; (अग्नि) ज्ञान साधक इसे ग्रहण करता है, (विश्वेदेवा) सभी दिव्यगुणों का आधान करने वाली शक्तियाँ (अमत्सत) इसके पान से हर्ष पाती हैं; (वरुणः इत्) न्याय व स्नेहभावनाओं की प्रतीक दिव्य शक्ति (इह अक्षयत्) इस सोम में ही बसती है—इसी पर आश्रित है, (आपः) सद्गुण प्राप्त करने वाले साधक उस सोम के (अभि, अनूषत) गुणगान करें ऐसे ही जैसे कि (सं शिश्वरीः) गर्व से फूली [माताएँ] (वत्स) अपने प्रिय शिशु की प्रशंसा करती हैं ॥११॥

भावार्थ—परमात्मा द्वारा उत्पन्न पदार्थों का नाम ही 'सोम' है। ये ही नाना दुःखनाशक हैं—रोग आदि नाशक हैं, सारभूत होने से भी 'सोम' हैं। न्याय, प्रेम आदि शुभ भावनाएँ भी 'सोम' हैं। इस तरह सांसारिक पदार्थ विभिन्न रूप से मानव को सुखी कर इन्द्र आदि पदवाच्य बनाते हैं ॥११॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥१२॥

पदार्थ—हे (वरुण) ज्ञानरूपी जलागार, श्रेष्ठ उपदेशकर्ता ! तू (सुदेवः) शुभ प्रबोधदाता है; वह तू कि (यस्य ते) जिस तेरी जलवाहक नदियों-सरीखी (सप्त) सात या बहने वाली (सिन्धवः) सुख को बहा लाने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ [२ आँख, २ कान, २ नाक और एक रसना] अपने निष्पादित ज्ञान को (काकुद) शब्द में प्रेरणा देनेवाले तालु में इस प्रकार (अनुक्षरन्ति) चुआती हैं जैसे कि (सुषिरां) खोखली (सूर्म्यं) मूर्ति में जल चू जाता है ॥१२॥

भावार्थ—श्रेष्ठ विद्वान् का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा एकत्रित ज्ञानरूपी जल का प्रयोग वाणी के द्वारा उच्च स्वरों में दूसरों को प्रबोध देने में करे। ऐसा उपदेष्टा वास्तव में ज्ञान का गम्भीर सागर है ॥१२॥

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१३॥

पदार्थ—(यः) जो ऐश्वर्य इच्छुक साधक (उपदाशुषे) स्व अन्तःकरण में दानशीलता व समर्पणशीलता प्राप्त करने हेतु (व्यतीन्) अपने मार्ग से भटके इन्द्रियाश्वों को (सुयुक्तान्) सुदृढ़ शरीररूपी रथ में संयुक्त (अफाणयत्) कर लेता है, (आत् इत) तदनन्तर (य) जो (तक्व) सहनशील, (नेता) नेता, (वपुः) रूपवान्, (उपमा) आदर्श उपमान होकर (अमुच्यत) विश्रान्ति, मानसिक शान्ति अनुभव करता है ॥१३॥

भावार्थ—जिस आदमी की इन्द्रियाँ अपने वश में न हों वह प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण नहीं कर पाता, इस भावना को अर्जित करने हेतु व्यक्ति आत्मसंयमी बने। उसके बाद ही वह मन को अशान्त करनेवाली दुश्चिन्ताओं से मुक्ति पा सकता है ॥१३॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥१४॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ऐश्वर्य साधक (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेषभावनाओं को (अति) जीतकर (अति, इत्) उच्च अवस्था में पहुँचा हुआ (ओहते) समाधियोग में लगता है। पुनश्च (परः कनीनः) उत्कृष्ट व कान्तियुक्त होकर (पच्यमानं) परिपक्व होते हुए या पूर्णता को पाते हुए (ओदन) चावलों के समान सुपक्व बुद्धिस्थ होने वाले प्रबोध रूपी भक्ष्य को (गिरा) स्व वाणी से (भिनत्) अंश अंश करके बाँट देता है ॥१४॥

भावार्थ—जब साधक सभी द्वेष-भावनाओं पर विजय पा लेता है तभी उसका मन भगवान् के ध्यान में सम्यक् रूप से संलग्न होता है और फिर धीरे-धीरे जब उसका अपना प्रबोध पूर्ण होने लगता है तब उपदेष्टा के रूप में वह उसे अंश-अंश कर वितरित करने लगता है ॥१४॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१५॥

पदार्थ—ऐश्वर्य साधक इन्द्र (न अर्भक) न तो शैशव अवस्था वाला हो और (न कुमारकः) न बालक ही, अपितु सर्वथा युवा सशक्त शरीरादि का हो तो वह (नव) स्तुतियोग्य (रथं) शरीररूपी रथ पर आरूढ़ होकर (स) वह साधक (पित्रे, मात्रे) पिता व माता के पद पर प्रतिष्ठित करने हेतु (महिषं) महान् (मृगं) अनुसन्धातव्य (विभुक्रतुम्) व्यापक प्रज्ञा व कर्मों वाले भगवान् को (पक्षत्) प्रत्यक्ष करता है ॥१५॥

भावार्थः—ऐश्वर्य-इच्छुक व्यक्ति का अन्तिम व महान् लक्ष्य प्रभु ही है। उसका मार्गदर्शन अन्वेषण, उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करना ही व्यक्ति का महान् लक्ष्य है। प्रशंसनीय शरीररथ वही है कि जिसके वाहक इन्द्रियाश्व, बुद्धिरूपी सारथि व मनरूपी प्रग्रह के माध्यम से जीव के पूर्णतया वश में हों। इसी से प्रभु प्रत्यक्ष होता है ॥१५॥

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (सुशिप्र) चिरन्तन सुखदायी ! अथवा सेवा करने से शुभ फलदाता ! (दम्पते) ब्रह्माण्ड रूपी विशाल गृह के स्वामी ! (तू–तु) आप मेरे इस (हिरण्ययम्) तेजोमय एवं यशस्वी (रथ) रमणीय यान सरीखे शरीर पर (आ तिष्ठ) उपस्थित हो (अध) तदुपरान्त हम दोनों ही इस (द्युक्ष) द्युतिमान् (सहस्रपाद) असंख्यात गमनसाधन रूप पहियों से संयुक्त, (अरुषं) भयकारक दोष आदि से बचाने योग्य, (स्वस्तिगां) सुख प्रापक, (अनेहस) सतत रक्षणीय इस रथ का (सचेवहि) साथ-साथ उपयोग करें ॥१६॥

भावार्थ—प्रभु ने जीवनयात्रा को पूर्ण करने के लिये सुन्दर शरीररूपी रथ दिया है, यह तभी द्युतिमान्, असंख्य पहियोंवाला, सुखप्रापक आदि हो सकता है जब इस पर ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु को भी जीव अपने साथ बैठाए, जीव अन्तःकरण में प्रभु का साक्षात्कार करे ॥१६॥

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१७॥

पदार्थ—(यत्) जब (अस्य) इस (दावने) दाता इन्द्र, की (एतवे) प्राप्ति हेतु और (सुधित) इसके सुनिहित (अर्थं) प्राप्ति योग्य गुण व इसके दिये हुए द्रव्य समूह को (चित्) भी प्राप्त करने के लिये (आवर्तयन्ति) इसके गुणों का बार-बार गान करते हैं, (घ) निश्चय ही (नमस्विन) आज्ञानुवर्ती साधक (त) उस (स्वराज) स्वयं प्रकाशित प्रभु की (इत्था) इसी प्रकार (उप, आसते) पूजा करते हैं ॥१७॥

भावार्थ—पहले मन्त्र में जीवात्मा को कहा गया है कि वह प्रभु को अपने समीप बैठाए—किन्तु कैसे ? उत्तर यह है कि बार-बार उसके गुणों का कीर्तन करे, उससे उन गुणों की प्राप्ति का संकल्प बढ़ेगा और इस संकल्पबल के सहारे उसके गुण जीव धारण करेगा, यही उसकी सच्ची उपासना की पद्धति है ॥१७॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८॥

पदार्थ—(एषां) आज्ञानुवर्ती साधकों में से जो (प्रियमेधासः) धारणावती बुद्धि चाहते हैं वे अपने (पूर्वां) पूर्ववर्ती (प्रयतिं) संकल्प के (अनु) अनुसार (वृक्तबर्हिष) जिन्होंने अपने हृदय रूपी अन्तरिक्ष को स्वच्छ किया हो वे, तथा जो (हितप्रयसः) सुखकामी हैं, उन्होंने (प्रत्नस्य ओकस – प्रत्न ओक) अपने बहुत पुराने निवास स्थान की [स्वर्गलोक को] सुखमयी स्थिति को (आशत) पा लिया ॥१८॥

भावार्थः—स्वर्ग का अर्थ है सुखमय व लोक का अर्थ है स्थान या स्थिति। सुखमयी स्थिति है ब्राह्मी स्थिति। इसकी प्राप्ति का उपाय इस मन्त्र में बताया है कि इस की प्राप्ति का संकल्प कर अपने अन्तःकरण को स्वच्छ करे। स्वच्छ अन्तःकरण में ही परमेश्वर होते हैं—इसी का नाम सुखमयी स्थिति है ॥१८॥

अष्टम मण्डल में उनहत्तरवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य १-१५ पुरुहन्मा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् बृहती । ५, ७ विराड्बृहती । ३ निचृद् बृहती । ८, १० आर्ची स्वराड् बृहती । १२ आर्ची बृहती । ६, ११, बृहती । २, ६ निचृत् पङ्क्तिः । ४ पङ्क्तिः । १३ उष्णिक् १५ निचृदुष्णिक् । १४ भुरिगनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७-१२ मध्यमः । २, ४, ६, पञ्चम । १३, १५ ऋषभ । १४ गान्धार ॥

इन्द्र की महिमा ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—(य) जो परमात्मा (चर्षणीनाम्) सकल प्रजा का (राजा) शासक है जो (रथैः) नितान्त रमणीय इन सारे पदार्थों सहित (याता) व्यापक है एवं (अध्रिगु) अतिशय रक्षक है। रक्षा में जो विलम्ब नहीं करता (विश्वासाम् पृतनानां) जगत् की सारी सेनाओं का विजेता है (ज्येष्ठ) सर्वश्रेष्ठ व (वृत्रहा) सकल विघ्नहन्ता है; (गृणे) उस परमात्मा की मैं प्रार्थना, वन्दना व गुणगान करता हूँ ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सकल धाता विधाता एवं पितृपालक है उसकी वन्दना करो ॥१॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(पुरुहन्मन्) हे ईश्वर उपासक ! (अवसे) रक्षार्थ (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यशाली ईश्वर को स्तुति वन्दना आदि से (शुम्भ) भूषित करो (यस्य विधर्तरि) जिस धारणकर्ता व पोषक एवं दण्डव्यवस्थापक प्रभु में (द्विता) निग्रह व अनुग्रह दोनों विद्यमान हैं, दण्ड के लिए जिसके (हस्ताय) हाथ में (वज्र प्रति धायि) वज्र है और अनुग्रह के लिए जो (दर्शत) अत्यन्त दर्शनीय है, (मह) तेज स्वरूप है, (दिवे न सूर्यः) जैसे आकाश में सूर्य वैसे ही जो सब जगह प्रकाशित है। उसकी वन्दना पूजा करो ॥२॥

भावार्थः—हे नरो ! देखो परमात्मा के कैसे अखण्ड नियम हैं जिनके वश में चराचर चलते हैं ॥२॥

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥३॥

पदार्थ —(तम्) उस ईश्वरपूजक की तुलना (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्) कोई नही कर पाता, जो जन (यज्ञैः) शुभकर्म से (इन्द्रम् न) उस प्रभु को ही (चकार) अपने अनुकूल करता है जो इन्द्र (सदावृधम्) सदैव धनजन बढ़ाने वाला है, (विश्वगूर्तम्) सबका गुरु एव पूज्य, (ऋभ्वसम्) महान् व्यापक, (अधृष्टम्) अधर्षणीय तथा (धृष्ण्वोजसम्) बल से जग को कँपाने वाला है ॥३॥

भावार्थ —वह प्रभु सभी का पूज्य, व्यापक, अधर्षणीय एव बल से जगत् को प्रकम्पित करने वाला है ॥३॥

अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥४॥

पदार्थ —मैं उस प्रभु की स्तुति करता हू जो (अषाळ्हम्) दुष्टो को क्षमा नहीं करता, इसी लिए (उग्रम्) वह दण्डविधाता है और जगत् की उपद्रवी (पृतनासु) सेनाओ का (सासहिम्) शासक व विनाशक है, (यस्मिन् जायमाने) जिसके सब जगह विद्यमान होने के कारण (उरुज्रय) महा वेगवान् (मही) बड़े (धेनव) द्युलोक व पृथिवी आदि लोक (सम् अनोनवु) नियमपूर्वक चलते हैं। धेनु शब्दार्थ स्वय श्रुति करती है (द्याव क्षाम) द्युलोक व पृथिवी आदि लोक हैं ॥४॥

भावार्थ —हे मनुष्यो ! वह प्रभु महान् न्यायी तथा महा उग्र है जिसकी आज्ञा मे सम्पूर्ण जगत् चल रहा है। उसकी कीर्ति गाओ ॥४॥

परमात्मा का अपरिमेयत्व ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥५॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे देव ! (यद्) यदि इसके सदृश (शतम् द्याव) शतश द्युलोक (स्यु) हो (उत) और (भूमी) शतश पृथिवी हो फिर भी (ते) तेरा परिमाण इन दोनो से नही हो सकता। (वज्रिन्) हे दण्डधर ! (सहस्रम् सूर्य्या) सहस्र सूर्य्य भी (त्वा न) तुझे व्याप्त नहीं कर सकते। हे भगवन् ! किंबहुना कोई भी वस्तु (जातम्) सर्वत्र व्याप्त तुझे (न अष्ट) व्याप्त नही कर सकेगी (रोदसी) यह सारा द्युलोक व पृथिव्यादि लोक मिलकर भी तुझे नही व्याप सकता। क्योकि पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक तथा सम्मिलित सारे लोको से वह बड़ा है ॥५॥

भावार्थ —प्रभु सकल लोको से बड़ा एव सर्वत्र व्यापक है। सभी लोक पृथक्-पृथक् या सब एक साथ भी उसे व्याप्त नहीं कर सकते ॥५॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥६॥

पदार्थ — (वृषन्) हे अभीष्ट फलदाता ! (शविष्ठ) परमशक्तिशाली ! (मघवन्) हे महाधनी ! (वज्रिन्) हे न्यायकारी देव ! तू (महिना) अपनी महिमा से (वृष्ण्या) आनन्दवर्षाकारक (शवसा) बल से (विश्वा) सारे संसार को (आ पप्राथ) अच्छी प्रकार पूर्ण करता है। अत हे भगवन् ! (गोमति व्रजे) गौ आदि पशुयुक्त गोष्ठ में (चित्राभिः ऊतिभि) विविध रक्षा व सहायता से (अस्मान् अव) हमारी रक्षा व सहायता कर ॥६॥

भावार्थ — जिस लिये वह देव स्वय सारे जगत् को सुखो से पूरित कर रहा है। अत धन्यवाद हेतु उसके गुण गाओ ॥६॥

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।

एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥७॥

पदार्थ —(दीर्घायो) हे चिरन्तन ! हे सनातन ! (अदेव) जो तेरी पूजा प्रार्थना आदि से रहित (मर्त्यः) मानव है वह (सीम् इषम्) किसी प्रकार के अन्नो को (न आपत्) न पाए। (य) जो तू (एतग्वा चित्) नाना वर्णयुक्त (एतशा) इन दृश्यमान स्थावर व जगम रूप ससारो को (युयोजते) काम मे लगाकर शासन करता है। पुनश्च, (इन्द्र. हरी युयोजते) परमात्मा इन आपसी हरणशील द्विविध ससारो को नियोजित करता है। उस प्रभु को जो नहीं भजता उसका कल्याण असभव है ॥७॥

भावार्थ.—'अदेव' शब्द से यह दर्शाया गया है कि जो ईश्वर की उपासना से रहित है वह इस लोक व परलोक दोनो मे दुःख भोगता है ॥७॥

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।

यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥८॥

पदार्थ —हे नरो ! (वः) आप सब मिलकर (मह) तेजःस्वरूप (महाय्यम्) पूज्य व (दानाय) जीवो के कर्मानुसार फलदाता के लिये सर्वत्र (सक्षणिम्) विद्यमान (तम् इन्द्रम्) उस प्रभु को गाओ व पूजो (गाधेषु) गाध व अगाध जल मे और (य) जो (आरणेषु) स्थलो मे (हव्य) स्तवनीय व प्रार्थनीय है और जो (वाजेषु) वीरो के वीर कर्मों मे (हव्य अस्ति) प्रार्थनीय है जिसे लोग सब जगह बुलाते हैं, वह परम वन्दनीय है ॥८॥

भावार्थ —हे नरो ! वह प्रभु जीवो को हर क्षण दान देता है। सुख, दुःख, सम्पत्ति, विपत्ति, नदी, समुद्र, जगल, जल व स्थल सर्वत्र और सर्व काल मे उसकी पूजा करो ॥८॥

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।

उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥९॥

पदार्थः—(वसो) हे सर्वजीवो को वासप्रद एव सर्वत्र निवासी ! (नः सु उ) हमे अच्छी प्रकार (महे राधसे) महती सम्पत्ति हेतु (उन्मृशस्व) ऊपर उठा। (मघवन्) हे सर्वधन युक्त ! (मह्यै मघत्तये) महा धन हेतु हमें (सु उ) अच्छी प्रकार (उन्मृशस्व) ऊपर उठा (इन्द्र) हे इन्द्र (महे श्रवसे) प्रशंसनीय प्रसिद्धि हेतु हमे (उत्) ऊपर उठा ॥९॥

भावार्थ —इस ऋचा मे महासम्पत्ति, महाधन व महाकीर्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना है। नि सन्देह जो तन-मन से ईश्वर के पास प्राप्त होते हैं उनका मनोरथ अवश्य पूर्ण होता है, उसमे विश्वास कर उसकी आज्ञा पर चल ॥९॥

त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि ।

मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥१०॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र ! जिस लिये (त्वम्) तू (ऋतयु) सत्यप्रिय व सत्यकामी है अतः (त्वानिदः) नास्तिक, चोर, दस्यु आदि दुष्टो की अपेक्षा (नः नि तृम्पसि) हमे अतिशय तृप्ति देता है। (तुविनृम्ण) हे सकल धनवाली इन्द्र ! (ऊर्वोः) द्युलोक व धरती के (मध्ये) मध्य हम लोगो को सुख से (वसिष्व) बसा व (दासम्) दुष्ट का (हथै.) प्रहारों से (नि शिश्नथ.) सहार कर ॥१०॥

भावार्थ —ईश्वर सत्यप्रिय है, अतएव असत्यवादी तथा उपद्रवियों को दण्डित करता है और सत्यवादियो को दान देता है। अतः हे नरो ! सत्यप्रिय बनना चाहिये ॥१०॥

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।

अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥११॥

पदार्थ —इन्द्र (सखा) जो ससार का हितेच्छुक (पर्वतः) दण्डधारी न्यायी शासक है वह उस पुरुष को (स्व.) सकल सुखो से (अव दुधुवीत) दूर कर दे; केवल उसे दूर ही न करे अपितु (दस्युम्) उस दुष्ट मानव विनाशक को (सुघ्नाय) मृत्यु के मुख मे (पर्वतः) न्यायी राजा फेंके जो (अन्यव्रतम्) प्रभु को छोड़ किसी नर देवता की उपासना पूजादि करे, (अमानुषम्) मानव से भिन्न राक्षसादि जैसी जिसकी चेष्टा हो, (अयज्वानम्) जो शुभकर्म यज्ञादि से दूर रहता हो; (अदेवयुम्) जिसका स्वभाव महादुष्ट व हानिकारक हो, ऐसे समाज विरोधी दुष्टो को राजा सदैव दण्ड दे ॥११॥

भावार्थ —मानवों के लिये उचित है कि वे केवल प्रभु की उपासना ही करें; समाजो, देश या ग्रामो मे राक्षसी कार्य न करें; नारीलम्पटता, बालहत्या इत्यादि पातक म न लगे। राजा स्व प्रबन्ध से समाज को सुधारे ॥११॥

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।

धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥१२॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र (शविष्ठ) हे महान् तम ! (अस्मयु) हम पर प्रेम करता हुआ (त्वम्) तू (न.) हमे (दावने) देने हेतु (आसाम्) इन गौ, भूमि, हिरण्य इत्यादि सम्पत्तियो को (हस्ते संगृभाय) अपने हाथ मे ले (धानानाम् न) जैसे चर्वण कर्त्ता हाथ मे धान लेता है वैसे ही। हे प्रभो (अस्मयुः) हमे कृपा-दृष्टि से देखता व चाहता हुआ तू (द्वि.) बार-बार (सगृभाय) उस सम्पत्ति को हाथ मे ले व यथाकर्म हमे बाट ॥१२॥

भावार्थ - यह प्रार्थना प्रेममय है। जैसे बालक माता पिता से खाने पीने के लिये याचना करता है, वैसे ही सबके समान पिता उस प्रभु से हम अपनी आवश्यक-ताए पूर्ण करने की याचना करें ॥१२॥

सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य ।

उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्रयः ॥१३॥

पदार्थः—(सखाय) हे सखा ! (क्रतुम्) शुभकर्म हेतु (इच्छत) इच्छा करो। अन्यथा (शरस्य) दुखहन्ता उस प्रभु की (कथा राधाम) कैसे आराधना कर सकेंगे ? (उपस्तुतिम्) उसकी प्रिय स्तुति कैसे करेंगे ? अतः शुभ कर्म करो। जो ईश (भोजः) सर्व प्रकार सुख दाता है; (सूरि.) सर्वज्ञ है और (यः) जो (अह्रयः) अविनश्वर है ॥१३॥

भावार्थ —इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति शुभ कर्म करे। यज्ञादि से केवल आत्मा का ही उपकार नही होता किन्तु देश को भी लाभ पहुचता है और दुराचारो से रक्षा होती है, शरीर नीरोग होता है। मरणपर्यन्त सुखी जीवन व्यतीत होता है ॥१३॥

भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।

यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥१४॥

पदार्थः—(सम्राट्) हे सर्वपूज्य प्रभु ! तू (बर्हिष्मद्भिः) सर्वसाधन युक्त (सूरिभिः ऋषिभिः) अनेक ऋषियों से (स्तविष्यसे) वन्दित है। (शर) हे विघ्नविनाशक ! (यत्) जो तू (इत्थम्) इस तरह (एकमेकम् इत्) एक-एक कर (वत्सान्) अनेक वत्स सत्पुरुषों को (पराददः) देता है ॥१४॥

भावार्थः—इसका तात्पर्य यह है कि उसकी पूजा जब महर्षि करते है तब हम क्यों न करें और जब हम देखते हैं कि उपासकों के धन की क्रमशः वृद्धि होती है। अतः वह परमात्मा ही चिन्तनीय है ॥१४॥

कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् ।

अजां सूरिर्न धातवे ॥१५॥

पदार्थः—(मघवा) ऐश्वर्यवान् (शौरदेव्यः) शूरों व देवों का हितकारी प्रभु (नः) हमें (त्रिभ्यः) तीनों लोकों से (कर्णगृह्या) कान पकड़ कर (वत्सम्) वत्स ला देता है; (न) जैसे (सूरिः) स्वामी (धातवे) पिलाने के लिये (अजाम्) बकरी लाता है ॥१५॥

भावार्थ—ईश्वर जिसे देना चाहता है उसे अनेक उपायों से देता है। मानो तीनों लोकों में से कहीं से लाकर उसे अभिलषित देता है, क्योंकि वह महा धनी है। हे मनुष्यो ! उसकी उपासना प्रेमसहित करो ॥१५॥

अष्टम मण्डल में सत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चदशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१५ सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री । ३, ६, ८, ९, निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री । १०, १३ निचृद् बृहती । १४ विराड् बृहती । १२ पादनिचृद् बृहती । ११, १५ बृहती ॥ स्वर—१, ९ षड्जः । १०, १५ मध्यम ॥

अग्नि नाम से परमात्मा की स्तुति ॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।

उत द्विषो मर्त्यस्य ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सकल आधार, हे जगन्नियन्ता प्रभु ! (त्वम्) तू (महोभिः) अपनी महती शक्तियों से (विश्वस्याः) सारी (अरातेः) शत्रुता, दीनता व मानसिक मलीनता आदि से (नः) हमें (पाहि) बचा (उत) और (मर्त्यस्य) मानव के द्वेष, ईर्ष्या व द्रोह आदि से भी हमें बचा ॥१॥

भावार्थः—इससे यह शिक्षा दी जाती है कि तुम पहले अकारण शत्रुता न करो। केवल मानवता क्या है इसपर पूर्ण विचार कर इसे प्रचारो। अपने अन्तःकरण से हिंसा-भाव को सर्वथा निकाल दो ॥१॥

नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात ।

त्वमिदसि क्षपावान् ।

पदार्थः—(प्रियजात) हे सब प्राणियों के प्रिय सर्वशक्तिमान्, जगदीश ! (वः) तेरे पर (पौरुषेयः मन्युः) मानवसम्बन्धी क्रोध (नहि ईशे) अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। क्योंकि (त्वम् इत्) तू ही (क्षपावान् असि) जगदीश्वर है ॥२॥

भावार्थ—क्योंकि परमात्मा ही पृथिवीपति है, अतः उस पर मानव का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु उसका प्रभाव लोगों पर पड़ता है, क्योंकि वह पृथिवीश्वर है ॥२॥

बल की याचना ॥

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे ।

रयिं देहि विश्ववारम् ॥३॥

पदार्थः—(ऊर्जोनपात्) हे बलदाता ! (भद्रशोचे) हे कल्याणकारी तेजोयुक्त प्रभो ! (सः) सर्वत्र दीप्त तू (विश्वेभिः देवेभिः) सारे पदार्थों सहित (नः) हम लोगों को (विश्ववारम्) सर्व ग्रहणीय (रयिम्) सम्पत्ति (देहि) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—जो बल को न घटाए वही ऊर्जोनपात् या बलप्रद है। देव=शब्द सर्व पदार्थवाचक है। मन्त्र का तात्पर्य यह है कि सारे प्राणियों सहित मुझे भी सहायता दे ॥३॥

उसका महत्त्व ॥

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः ।

यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४॥

पदार्थः—हे अग्नि ! तू (दाश्वांसम्) जिस दाता या उदार व्यक्ति की (त्रायसे) सहायता व रक्षा करता है (तम् मर्तम्) उसे (अरातयः) शत्रु व दुष्ट (रायः) कल्याण सम्पत्ति से (न युवन्त) कोई अलग नहीं कर सकता ॥४॥

भावार्थः—प्रभु की कृपा जिस पर होती है उसे कौन शक्ति कल्याण-पथ से हटा सकती है ? ॥४॥

यं त्वं विप्र मेधसाताग्ने हिनोषि धनाय ।

स तवोती गोषु गन्ता ॥५॥

पदार्थ—(विप्र) हे संसार के पोषक, हे प्रेम से ससार के मार्ग दर्शक ! (अग्ने) सर्वाधार प्रभो ! (मेधसातौ) देवयज्ञ में (धनाय) धन प्राप्ति हेतु (यम् त्वम्) जिसे तू (हिनोषि) प्रेरणा करता है (सः) वह (तव ऊती) तेरी मदद व रक्षा से (गोषु गन्ता) गौ आदि पशुओं का स्वामी है ॥५॥

भावार्थ—गो शब्द के अनेक अर्थ प्रसिद्ध हैं। जो कोई देवयज्ञ करे उसे सब प्रकार से धन मिलता है और (गौ) सारी इन्द्रियां उसके वश में होती हैं ॥५॥

परमानन्द की प्राप्ति हेतु प्रार्थना ॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय ।

प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमदेव ! (त्वम्) तू (दाशुषे मर्ताय) नितान्त उदार व्यक्ति को (पुरुवीरम् रयिम्) बहुत वीरों से संयुक्त सम्पत्ति देता है। हे प्रभु ! (नः) हमें (वस्यः) परमानन्द की (अच्छ) ओर (प्र नय) ले जा ॥६॥

भावार्थः—वस्य=जो आनन्द सब जगह व्याप्त है वह मुक्तिरूपी सुख है। उसी की ओर लोग जाएं। वह इस लोक में भी है परन्तु उसे केवल विद्वान् ही अनुभव कर पाता है ॥६॥

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः ।

दुराध्ये मर्ताय ॥७॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (नः) हमारी (उरुष्य) रक्षा कर व (जातवेद) हे सर्वज्ञ प्रभु ! (अघायते) जो सदैव पाप करता है और दूसरो का अनिष्ट सोचता है ऐसे पुरुष के पास (मा परा दा) हमें न ले जा। तथा (दुराध्ये) जिसकी बुद्धि परद्रोह से विकृत है, जो दूसरो के अमंगल की सोचता है (मर्ताय) ऐसे पापी के पास भी हमें न ले जा ॥७॥

भावार्थ—मानव को उचित है कि अपनी जाति के अशुभ में न लगे और अनिष्ट चिन्तन से मनको दूषित न करे; अन्यथा बहुत हानि होगी ॥७॥

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत ।

त्वमीशिषे वसूनाम् ॥८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् ! (ते देवस्य रातिम्) तुम देव के द्वारा दिए गए दान को (अदेव) महा दुष्ट जन (माकि युयोत) नष्ट-भ्रष्ट न करें क्योंकि (त्वम् वसूनाम् ईशिषे) तू ही सर्वसम्पत्ति का अधीश्वर व शासक है ॥८॥

भावार्थ—इसका तात्पर्य है कि प्रभु हर क्षण वायु, जल, अन्न व आनन्द का दान देता है। दुष्टजन इन्हें भी अपने आचरण से गन्दा बनाते हैं अथवा गौ, मेष, अश्व, हाथी आदि इन्हें चुरा कर नष्ट न कर पाएं, क्योंकि प्रभु ही रक्षक है ॥८॥

कृतज्ञता का प्रकाश ॥

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य ।

सखे वसो जरितृभ्यः ॥९॥

पदार्थः—(ऊर्जः) हे महाशक्ति के (नपात्) दाता, (सखे) हे प्राणियों के मित्र तुल्य हितकारी, (वसो) वास दाता जगदीश ! (सः) वह तू (नः जरितृभ्य) हम स्तुतिपाठकों को (वस्वः) प्रशंसनीय सम्पत्ति व (माहिनस्य) महत्त्व दोनों प्रदान करता है ॥९॥

भावार्थ—ईश्वर बलदाता, सखा व वासदाता है। हे लोगो ! इसे तुम अनुभव करो व विचारो। वह जैसे विविध दान व महत्त्व हमें दे रहा है वैसे तुम्हें भी देगा, यदि उसकी आज्ञा पर चलोगे ॥९॥

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।

अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१०॥

पदार्थः—हे लोगो ! (नः) हमारी स्तुति प्रार्थना व विनय वाक्य (अच्छ) उस ईश्वर की ओर जाएं (शीरशोचिषम्) जिसका तेज सर्वत्र छाया है और जो (दर्शतम्) परम दर्शनीय है। तथा (यज्ञासः) हमारे सर्व यज्ञादि शुभकर्म (नमसा) आदर से (अच्छ) उस प्रभु की ओर जाएं जो ईश (पुरूवसुम्) सारी सम्पत्ति का स्वामी है और (ऊतये) अपनी-अपनी रक्षा व सहायता हेतु (पुरुप्रशस्तम्) जिसकी सब स्तुति करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हमारे सारे शुभकर्म धन व पुत्रादि ईश्वर के लिये ही हों ॥१०॥

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।

द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥११॥

पदार्थ—(सहसः) इस जगत् के (सूनुम्) सूचक, (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (अग्निम्) व सर्वाधार सर्वव्यापी ईश की ओर हमारी प्रार्थना जाये, जिससे कि (वार्याणां दानाय) उत्तम-उत्तम सुखप्रद सम्पत्ति का दान मिले और (यः) जो (द्विता) दो प्रकार से भासित है। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी इत्यादि देवों में वह (अमृतः) अमृतरूप व्याप्त है (मर्त्येषु आ) और लोगों में (होता) दान-दाता और (विशि) गृह-गृह में (मन्द्रतमः) अतिशय आनन्द दे रहा है ॥११॥

भावार्थः—यद्यपि भगवान् स्वयं कर्मानुसार आनन्द देता है तथापि अपनी-अपनी इच्छापूर्ति हेतु उसकी प्रार्थना नित्यप्रति करो ॥११॥

अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे ॥१२॥

पदार्थः—हे लोगो ! (वः) आप (देवयज्यया) देवयजनार्थ (अग्निम्) उस परमात्मा की स्तुति करो , (अध्वरे प्रयति) यज्ञ के समय मे भी (अग्निम्) उस प्रभु का गान करो , (धीषु) सारे शुभ कर्मों या बुद्धि के लिए (प्रथमम् अग्निम्) प्रथम अग्नि का ही स्मरण करें , (अर्वति) यात्रा के समय (अग्निम्) ईश्वर को ही याद करें और (क्षैत्राय साधसे) क्षेत्र के साधने हेतु (अग्निम्) उसी से याचना करें ॥१२॥

भावार्थः—सभी वस्तुओ की प्राप्ति हेतु सर्वकाल मे उसी की वन्दना-प्रार्थना करें ॥१२॥

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् ॥१३॥

पदार्थ —(य) जो अग्निवाच्य ईश्वर (वार्याणाम्) सर्वश्रेष्ठ धनो का (ईशे) सर्वाधिकारी है (अग्नि.) वह अग्नि (सख्ये) जिस हेतु वह सभी का मित्र व पालक है अत (न·) हमें (इषाम् ददातु) सर्व प्रकार सुख दे । (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र आदि के लिये (शश्वत्) सदैव (अग्निम् ईमहे) ईश्वर से सुख सम्पत्ति की प्रार्थना करते हैं जो ईश (वसुम्) सबको बसाने वाला (सन्तम्) सर्वत्र व्याप्त और (तनूपाम्) शरीर-रक्षक है ॥१३॥

भावार्थ —वह प्रभु सबका सखा व पोषक है अत सभी वस्तुओ के लिये उससे याचना करें ॥१३॥

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (अवसे) स्व रक्षार्थ व सहायतार्थ (गाथाभि) स्तुति द्वारा (अग्निम्) उस सर्वाधार प्रभु की (ईळिष्व) स्तुति करो जिसका (शीरशोचिषम्) तेज सर्वत्र व्याप्त है । (पुरुमीळ्ह) हे अनेको को सन्तोषप्रद ! (राये) सारे सुख की प्राप्ति हेतु (अग्निम्) ईश वन्दना करो । (नर) अन्य जन भी (श्रुतम्) सर्वत्र विख्यात (अग्निम्) उस प्रभु की स्तुति करें जो (सुदीतये) प्राणिमात्र का (छर्दि) निवास दाता है ॥१४॥

भावार्थः—जो ईश्वर सभी को निवास व भोजन देता है उसकी स्तुति प्रार्थना हम करें ॥१४॥

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुरृषूणाम् ॥१५॥

पदार्थ —हम उपासक (न) अपने (द्वेष) द्वेषियो को (योतवै) दूर करने हेतु (अग्निम्) प्रभु से (गृणीमसि) प्रार्थना करते है और (शम् यो च) सुख के मिश्रण को (दातवे) देने हेतु प्रभु से प्रार्थना करते हैं । जो परमात्मा (विश्वासु) सारी (विक्षु) प्रजा मे (अविता इव) रक्षक रूप से विद्यमान है और जो (ऋषूणाम्) ऋषियों का (हव्य) स्तुत्य है व (वस्तु) वास दाता (भुवत्) है ॥१५॥

भावार्थ —हम किसी से द्वेष न करें । जहाँ तक हो जगत् मे सुख पहुँचाए व उस ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करें जो सब का अधीश्वर है ॥१५॥

अष्टम मण्डल में इकहत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य १--१८ हर्यत प्रगाथ ऋषिः ॥ अग्निर्हवींषि वा देवता ॥ छन्द —१, ३, ८—१०, १२, १६ गायत्री । २ पादनिचृद् गायत्री । ४—६, ११, १३-१५, १७ निचृद् गायत्री ७, १८ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

यज्ञ के लिए मानव का नियोजन ॥

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः ।
विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥१॥

पदार्थः—हे मानवो ! यज्ञ हेतु (हवि) घृत, शाकल्य, समिधा व कुण्ड आदि की (कृणुध्वम्) तैयारी करो । (आगमत्) इसमे सारा समाज आए । (अध्वर्यु) मुख्य, प्रधान याजक (पुन वनते) बार-बार प्रभु की कामना करे जो (अस्य प्रशासनम्) इस यज्ञ का विधान (विद्वान्) जानते हैं वे प्रभु की कामना करें ॥१॥

भावार्थ.—यज्ञ आरम्भ होने के पूर्व सारी सामग्री एकत्रित कर लोगो को बुला ईश्वर की प्रार्थना करे ॥१॥

होतृकार्य ॥

नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि ।
जुषाणो अस्य सख्यम् ॥२॥

पदार्थः—(होता) होता (अस्य सख्यम्) ईश्वर की मैत्री प्रार्थना व यज्ञ-सम्बन्धी अन्यान्य व्यापार (जुषाण) करते हुए (मनौ अधि) जहा मब बैठे हों उससे ऊंचे आसन पर (तिग्मम् अंशुम्) तीव्र अंशु या अग्निकुण्ड के (अभि) समक्ष होकर (निषीदत्) बैठे ॥२॥

भावार्थ —होता को उच्च आसन पर आसीन होकर प्रभु का ध्यान करना चाहिए ॥२॥

ईश्वर का ग्रहण कैसे होता है ? ॥

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया ।
गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥३॥

पदार्थ.—(रुद्रम्) सर्वदु खहर्ता (तम्) उस परमात्मा को (पर मनीषया) अतिशयित बुद्धि से (जने अन्तः) प्राणियो के बीच देखने व अन्वेषण करने की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं । और (ससम्) सब जगह प्रसिद्ध उसको (जिह्वया) जिह्वा से = स्तुतियों से (गृभ्णन्ति) ग्रहण करते हैं ॥३॥

भावार्थ —जिसकी यज्ञ में स्तुति प्रार्थना होती है वह कहा है ? इस शङ्का पर कहते हैं कि प्राणियों के बीच मे ही उसे खोजो व स्तुति से उसे ग्रहण करो ॥३॥

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् ।
दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४॥

पदार्थ —अन्तरिक्ष स्थित अग्नि, सूर्य, (जामि) सर्व अतिशायी (धनु) अन्तरिक्ष को (अतीतपे) अत्यधिक तपाता है, पुनश्च (वयोधाः) अन्न प्रदाता वह सूर्य (वनं) अन्तरिक्ष स्थित जल को (अरुहत्) बढ़ाता है व (जिह्वया) अपने ग्रहणसाधन किरण समूह से (दृषद) पत्थर की तरह कठोर बादल को (अवधीत्) छिन्न-भिन्न करता है ॥४॥

भावार्थ —सूर्य ताप से अन्तरिक्ष स्थित वायु उत्तप्त होती है और वह ताप दूर भूमि तक पहुँचकर जहा-तहां की आर्द्रता को वाष्प मे बदल कर मेघ रूप मे एकत्र करता है और फिर वही बादल छिन्न-भिन्न हो वर्षा मे परिणत होकर अन्न उत्पादन का कारण बनता है , इसी लिए अन्तरिक्षस्थ अग्नि 'वयोधा ' है ॥४॥

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते ।
वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥५॥

पदार्थ —(चरन्) अन्तरिक्ष मे विचरते, (रुशन्) दीप्ति से चमकते हुए, (वत्स) सूर्य के चपल किरणसमूह अथवा विद्युत् को कोई भी (निदातार) निरोधक शक्ति (न) नहीं (विन्दते) पकडती, यह किरणजाल या विद्युत् (स्तोतवे) अपने गुण-वर्णन करने हेतु (अम्ब्य) स्तोता या गुणवर्णन करनेवाले विद्वान् की (वेति) कामना करता है ॥५॥

भावार्थ —अन्तरिक्ष मे स्व दीप्ति के साथ व्याप्त विद्युत् रूप अग्नि के गुणो का अध्ययन कर उसका वर्णन करना तथा उससे लाभ उठाना विद्वानो का कर्तव्य है ॥५॥

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् ।
दामा रथस्य ददृशे ॥६॥

पदार्थ —(उतो) और यह भी है कि (नु) शीघ्र ही (अस्य) इस आदित्य का (महत्) महान् (बृहत्) व्यापक (अश्वावत्) रथ मे जोडे घोडो के सयोजन की भांति सूर्य की रमणीय किरणो के समूह मे बलशाली वेगादि गुणो का (योजनं) सयोजन (रथस्य दामा) सूर्य रूपी रथ को आगे और घेरे विद्युत्पंक्ति के रूप मे दीखता है ॥६॥

भावार्थ —जैसे जैसे आदित्य गतिमान् होता है—इसका आभा-वितान स्पष्ट दिखायी देने लग जाता है ॥६॥

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः ।
तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

पदार्थः—उस समय (सिन्धोः) हृदय सागर के (अधि स्वरे) मुखर (तीर्थे) सुगमता से दुःखो पर पार उतारनेवाले स्थान पर अर्थात् हृदय देश में उपासक की (सप्त) पांचो ज्ञानेन्द्रिय व मन तथा बुद्धि—ये सातो ऋत्विज् (एकां) परमेश्वर रूपिणी मा को (दुहन्ति) दुहती हैं ; उनमे से (द्वा) दो, मन तथा बुद्धि (पञ्च) पांच दूसरे ऋत्विजो या पांच कर्मेन्द्रियों को (सृजतः) प्रयुक्त करते हैं ॥७॥

भावार्थ·—प्रात सूर्य की आभा के दर्शन होते ही उपासक अपने हृदय-देश मे, अन्तःकरण की वृत्तियो की शक्ति से भगवान् का ध्यान करता है और साथ ही वह अपनी कर्मेन्द्रियो को भी उसी अनुभव से प्रयुक्त करता है । साधक की ज्ञान व कर्मेन्द्रियो तथा मन और बुद्धि शक्तियो का आपसी सामञ्जस्य होने पर ही हृदय-देश मे भगवान् के दर्शन हो पाते हैं ॥७॥

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् ।
खेदया त्रिवृता दिवः ॥८॥

पदार्थ —जैसे (इन्द्र) सूर्य्य (त्रिवृता) तिहरे (खेदया) उत्तापक रश्मि जाल से (कोश) मेघ को (दिव·) अन्तरिक्ष से (आचुच्यवीत्) नीचे धरती पर

ला देता है, वैसे ही (दशभिः) दसो इन्द्रियों से (विवस्वतः) अर्चित प्रभु की संरक्षा में स्थित (इन्द्रः) ऐश्वर्य का साधक (दिवः कोशं) प्रकाश लोक के कोश को (त्रिधातु) तिहरे—ज्ञान, कर्म व उपासना के—(अत्यः) तप के द्वारा (आ अचुच्यवीत्) बरसाता है ॥८॥

भावार्थः—अपनी रश्मियों से उत्तप्त कर सूर्य मेघ का छेदन-भेदन करता है; उपासक अपनी कर्मेन्द्रियों से भगवान् की सेवा कर और इस तरह ज्ञान, कर्म व उपासना से तप-साधन द्वारा अपने लिये ज्ञान प्रकाश का कोश प्राप्त करता है ॥८॥

परि॑ त्रि॒धातु॑रध्व॒रं जू॒र्णिरे॑ति॒ नवी॑यसी ।

मध्वा॒ होता॑रो अञ्जते ॥९॥

पदार्थः—(त्रिधातु) सत्त्व, रज व तमस्—तीनों गुणों के समन्वय से समन्वित, या ज्ञान, कर्म तथा उपासना—तीनों से क्रियमाण (जूर्णिः) वेगवान् कर्मिष्ठ उपासक (नवीयसी=नवीयस्या) नव्यतर सामर्थ्य से (अध्वरं परि एति) अहिंसनीय होता है; (होतारः) उसकी हृदयवेदी पर यज्ञ कर्ता इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि होता (मध्वा) मधुर दिव्य आनन्द से (अञ्जते) परम प्रभु की शक्ति व्यक्त करते हैं ॥९॥

भावार्थ—ज्ञान, कर्म तथा उपासना द्वारा सत्त्व, रज व तमोगुण के आनुपातिक समन्वय से समन्वित साधक एक नई अद्भुत शक्ति पाता है, फिर वह मानो अहिंसनीय हो जाता है और सुसम्पादित दिव्य आनन्द से प्रभु के सामर्थ्य को प्रकटता है ॥९॥

सि॒ञ्चन्ति॒ नम॑साव॒तमु॒च्चाच॑क्रं॒ परि॑ज्मानम् ।

नी॒चीन॑बारमक्षि॑तम् ॥१०॥

पदार्थ—साधक (उच्चा चक्रं) उच्चतम स्थिति में गतिशील, (परिज्मानम्) सर्व व्याप्त (नीचीनबारं) नीचे की ओर प्रवेशद्वार वाले, (अक्षितम्) अक्षीण (अवतं) जलाधार कूप के जैसे दिव्य आनन्द के आधारभूत प्रभु को (नमसा) अपनी भक्ति-भावना से (सिञ्चन्ति) संतृप्त करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—प्रभु अक्षय दिव्य आनन्द का आधार तथा स्रोत है; किसी ऐसे कुए को सींचना कठिन है कि जिसका मुह उलटा हो; झुक कर ही उसमें अंश डाला जा सकता है। दिव्य आनन्द के स्रोत भगवान् भी सुगमता से प्राप्य नहीं; उपासक भक्तिभाव से, नम्र होकर ही उनकी कृपा का पात्र बन सकता है ॥१०॥

अ॒भ्यार॒मिदद्र॑यो॒ निषि॑क्तं॒ पुष्क॑रे॒ मधु॑ ।

अ॒व॒तस्य॑ वि॒सर्ज॑ने ॥११॥

पदार्थ—(अवतस्य) दिव्य आनन्द के स्रोत रूपी निम्न स्थान की निम्नता के (विसर्जने) हटने पर, इस खाई के पटने पर (पुष्करे) पुष्टिकर दिव्य आनन्द रस के भण्डार मे (निषक्तं) भरे (मधु) मधुर आनन्द की (अभि) ओर (अद्रय) मेघरूपी चित्तवृत्तियाँ (आरम्) जाया करती हैं ॥११॥

भावार्थः—उपासक भक्ति की भावना का स्व अंश प्रदान कर जब कठिनता से उपास्य प्रभु को संतृप्त करने में सफल होता है तब उस दिव्यानन्द से लबालब भरे आनन्द-स्रोत से आनन्द का पान करने हेतु उसकी चित्तवृत्तियाँ उसकी ओर चल देती हैं ॥११॥

गाव॒ उपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ ।

उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥१२॥

पदार्थ—ये जो (गावः) गायें, (उभा कर्णा) जिनकी दोनो कार्यसाधिका शक्तियाँ—ज्ञान व कर्म (हिरण्यया) अति प्रशस्त हैं, और जो (मही) आदरणीय हैं; (यज्ञस्य) यज्ञीय भावना को (रप्सुदाः) रूप प्रदान करती हैं, वे (अवतं) कूप के तुल्य दिव्य-आनन्द-रस के स्रोत को (उप अवत) गहें ॥१२॥

भावार्थः—भगवान् ने मानव को ज्ञान व कर्मेन्द्रिय—ये दो प्रकार के अति प्रशस्त साधन दिये हैं, इनसे मनुष्य विभिन्न रूपों में यज्ञीय भावना बढ़ाता है, परन्तु ये साधन दिव्य आनन्द के परम स्रोत से ही शक्ति पाते हैं—उपासक की विनय है कि ये सदैव उस परम स्रोत भगवान् से स्नेह करें ॥१२॥

आ सु॒ते सि॑ञ्चत॒ श्रियं॒ रोद॑स्योरभि॒श्रिय॑म् ।

र॒सा द॑धीत वृष॒भम् ॥१३॥

पदार्थः—(सुते) दिव्य आनन्द निष्पन्न होने पर (रोदस्योः) द्यु लोक व अन्तरिक्ष लोक=दोनों की (अभिश्रियं) आश्रयभूत उत्तम वर्ण की अवस्था को (आ सिञ्चत) उस आनन्द रस से सींचो, पुष्ट करो। (रसा) आनन्द के उपभोक्ता उपासको ! (वृषभं) सेचन सामर्थ्य को (दधीत) धारो ॥१३॥

भावार्थः—संसार के सकल प्राणी चाहते हैं कि वे सांसारिक स्थिति सुखपूर्ण व उत्तम वर्ण की पाएं—सभी का लक्ष्य है उत्तम स्थिति। जब उपासक अपने अन्तःकरण में दिव्य आनन्द रस भी लेता है तब यह स्थिति आनन्ददायक बन जाती है। परन्तु उपासक को इस मन्त्र में यह चेतावनी भी दी गई है कि रसावस्था को स्वयं तक सीमित न करो; इसकी वर्षा कर वृषभ बनो ॥१३॥

ते जा॑नत॒ स्वमो॒क्यं१॒॑ सं व॒त्सासो॒ न मा॒तृभिः॑ ।

मि॒थो न॑सन्त जा॒मिभिः॑ ॥१४॥

पदार्थः—(ते) वे उपासना करने वाले (स्वम् ओक्यं) अपने निवास हेतु हितकर को (जानत) जानते हुए (जामिभिः मिथः) अपने सरीखे अन्य ज्ञाताओं सहित (नसन्त)—निवास करते हैं—ऐसे ही (न) जैसे (वत्सासः) छोटे बालक (मातृभिः) माता के साथ (सं) रहते हैं या उनका संग नहीं छोड़ते। ['जामि' शब्द यहाँ 'ज्ञा' धातु से निष्पन्न है] ॥१४॥

भावार्थ—उपासक यह जानते हैं कि उन्हें भलीभांति वास देने वाला ज्ञान-स्वरूप परमात्मा ही है; वे उसका साथ नहीं छोड़ना चाहते और उपासना से उसका सान्निध्य बनाये रखते हैं ॥१४॥

उप॑ स्र॒क्वेषु॒ बप्स॑तः कृण्व॒ते ध॒रुणं॑ दि॒वि ।

इन्द्रे॑ अ॒ग्ना नमः॒ स्वः॑ ॥१५॥

पदार्थः—(स्रक्वेषु) मुख आदि शरीर के अंगो के हितार्थ परमप्रभु की सृष्टि के भांति भांति के पदार्थों का (उप बप्सतः) उपभोग करते हुए साधक (दिवि) ज्ञान के प्रकाश को (धरुणं) अपना धारक बल (कृण्वते) बनाते हैं और इस तरह (इन्द्रे) सब ऐश्वर्यों के स्वामी एवं (अग्ना अग्नौ) ज्ञानप्रदाता अग्रणी प्रभु के प्रति (स्वः) परमसुख को (नमः) नम्रता से समर्पित करते हैं ॥१५॥

भावार्थ—प्रभु ने सृष्टि मे भाँति-भाँति के पदार्थों की रचना इसलिए की है कि मानव उनका समुचित उपभोग अपनी पाचनशक्ति से कर अपनी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति बढ़ाये—यही इन्द्ररूप परमात्मा की उपासना है, इस उपभोग मे उपयुक्तता तभी आ सकती है जबकि यह उपभोग ज्ञान के प्रकाश मे किया जाय—प्रत्येक पदार्थ के गुणों का ज्ञान पा कर उनसे समुचित लाभ उठाये। यही ज्ञानस्वरूप अग्नि (परमेश्वर) की उपासना है। इन्द्र व अग्नि रूप मे प्रभु की ऐसी उपासना करने से प्राप्त होने वाले दिव्य सुख को हम इस तरह उसी को समर्पित कर देते हैं ॥१५॥

अधु॑क्षत्पि॒प्युषी॒मिष॒मूर्जं॑ स॒प्तप॑दीम॒रिः ।

सूर्य॑स्य स॒प्त र॒श्मिभिः॑ ॥१६॥

पदार्थ—(अरिः) परमेश्वर (सप्तपदीं) सात अवयवों की इस सृष्टि का दोहन (सूर्यस्य) सूर्य की (सप्तरश्मिभिः) सात तरह की किरणों के द्वारा कर (पिप्युषीं) पुष्टिकारक (इषं) अन्न तथा (ऊर्जं) उसकी सारभूत ओजस्विता को (अधुक्षत्) निकालता है। [अरि ऋच्छति इति अरिः ईश्वर निं० ५-७। सप्तपदीम्=पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-विराट्-परमाणु-प्रकृति नाम के सात पदार्थों से युक्त] ॥१६॥

भावार्थः—भगवान् सृष्टि के विभिन्न पदार्थों का दोहन कर नाना जाति का विविध प्रकार की ऊर्जा प्रदान करते हैं, जिससे प्राणी-जीवन चलता है। प्रगतिशील उपासक इस संकेत से सृष्टि के भाँति-भाँति के पदार्थों का उपयोग करना सीखे ॥१६॥

सोम॑स्य मित्रावरुणोदि॑ता॒ सूर॒ आ द॑दे ।

तदातु॑रस्य भेष॒जम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) स्नेह व न्यायभावना के प्रतीक भगवन् ! (सूरे उदिते) सूर्योदय होने पर, मैं (सोमस्य) सोम नामक बलकारी औषधि के रस को (आददे) ग्रहण करूं; कारण कि (तत्) वह औषधि (आतुरस्य) रोगी की (भेषजं) औषधि है अथवा पौष्टिक अन्न आदि के सारभूत वीर्य को अपने शरीर मे खपा दू; वह पीड़ित की औषधि है ॥१७॥

भावार्थ—पौष्टिक अन्न आदि का रस, विशेषतया सोम नामक बलकारी औषधि का सार सब रोगों की दवाई है; विभिन्न ओषधियों के गुणों का यत्नपूर्वक अध्ययन करें व उनका यथाविधि सेवन करें ॥१७॥

उ॒तो न्व॑स्य॒ यत्प॒दं ह॑र्य॒तस्य॑ निधा॒न्य॑म् ।

परि॒ द्यां जि॒ह्वया॑तनत् ॥१८॥

पदार्थ—(उतो) और फिर (अस्य हर्यतस्य) प्रभु के प्रेमी उपासक का (यत्) जो (निधान्य) संग्रहयोग्य (पदं) प्रतिफल था उसे विद्वान् उपासक (जिह्वया) वाणी से (द्यां परि) सारे आकाश व वायुमण्डल में (आतनत्) फैलाता है ॥१८॥

भावार्थः—प्रेमसहित प्रभु की उपासना करने वाले भक्त को भगवान् का बोध प्रतिफल के रूप में मिलता है, उस को, ईश्वर विषयक प्रबोध को, वह अपने लिये संग्रहीत करके नहीं रखता इसके स्थान पर उसका अपने वातावरण मे सर्वत्र प्रचार करता है ॥१८॥

अष्टम मण्डल में बहत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टादशर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१८ गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द-१; २, ४, ५, ७, ९—११, १६—१८ गायत्री । ३, ८, १२—१५ निचृद् गायत्री ॥ ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

राजकर्त्तव्य का उपदेश ॥

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१॥

पदार्थ —(अश्विना) हे शुभ अश्वयुक्त राजा व मन्त्रियो ! (ऋतायते) सत्याचारी व प्रकृतिनियम वेत्ता हेतु आप (उदीराथाम्) सदा जागृत रहिए और (रथम्) रथ को (युञ्जाथाम्) जोड़िये । इस तरह (वाम्) आप दोनो का (अवः) रक्षण (अन्ति) हमारे समीप मे (सत् भूतु) विद्यमान होवे ॥१॥

भावार्थ—राजा व अमात्यादिको को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि प्रजा अपने समीप मे सम्पूर्ण रक्षा की सामग्री समझे ॥१॥

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥२॥

पदार्थ.—(अश्विना) हे प्रशस्त अश्व वाले राजा व मन्त्री ! (निमेष चित्) क्षणमात्र मे आप सत्याचारी पुरुष हेतु (जवीयसा रथेन) अतिशय वेगवान रथ से (आ यातम्) आइये । (अन्ति) अन्ति इत्यादि का अर्थ प्रथम मन्त्र मे देखें ॥२॥

भावार्थ —राजा तथा उसके अमात्य प्रजा-रक्षण के लिये सदैव तैयार रहें ॥२॥

राजा के प्रति द्वितीय कर्त्तव्य ॥

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥३॥

पदार्थ—(अश्विना) हे सुन्दर अश्व युक्त महाराजा एव मन्त्री ! आप दोनो (अत्रये) मातृपितृभ्रातृविहीन जन के (घर्मम्) सन्तापक भूख आदि क्लेश को (हिमेन) हिमवत अन्नादिक से (उप स्तृणीतम्) शान्त कीजिये । (अन्ति) इत्यादि पूर्ववत् ॥३॥

भावार्थः—अत्रि० १—ईश्वर को छोड तीनो लोको मे जिसका कोई रक्षक नही वह अत्रि । यद्वा—२—त्रि=त्र= रक्षण रक्षार्थक त्रै धातु से त्रि बनता है जिसका रक्षण कहीं से न हो वह अत्रि । ३—यद्वा जननी पिता व भ्राता ये तीनो जिसके न हों वह अत्रि । ऐसे आदमी की रक्षा राजा करे यह उपदेश है ॥३॥

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥४॥

पदार्थ —हे अश्विद्वय [राजा व सचिव] इस समय (कुह) कहा आप दोनो (स्थ) हैं (कुह) कहां गए हैं । (कुह) कहां (श्येना इव) दो श्येन पक्षियों की तरह उड कर बैठे हैं; व्यर्थ इधर उधर आपका जाना उचित नहीं । जहां कहीं हो वहा से आकर प्रजा की रक्षा करो । अन्ति० ॥४॥

भावार्थ —प्रजाओं के पास यदि राजा अथवा राजसहाय्य न पहुँचे तो जहा वे हो वहां से उनका बुला लाना चाहिये । राजा सर्वकार्य को छोड इस रक्षा-धर्म का सब प्रकार से पालन करे ॥४॥

यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥५॥

पदार्थ —हे राजन् तथा अमात्य ! (यद्) जिस लिए इस समय आपकी स्थिति का ज्ञान हमे नही है अतः (अद्य) आज आप दोनो (कर्हि कर्हि चित्) कही कहीं हो वहां से आकर (इमम्) हमारी (हवम्) इस प्रार्थना का (शुश्रूयातम्) बार-बार सुनें ॥५॥

भावार्थ —राजा तथा उसके अमात्यो का प्रथम व अन्तिम कर्त्तव्य प्रजा का पालन करना ही है ॥५॥

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥६॥

पदार्थ —मैं एक जन प्रार्थी (यामहूतमा) समय-समय पर अतिशय पुकारने योग्य (अश्विना) महाराज व अमात्य के पास (यामि) जाता हू । तथा उनके (आप्यम्) बन्धुत्व को मैं प्राप्त करता हू । हे नरो ! आप भी उनके पास जाकर अपने क्लेश का वृत्त सुनावें व शुभाचरण से उनके भ्राता बनें । अन्ति० ॥६॥

भावार्थः—प्रजा भी राजा तथा उनके अमात्यों के समीप जाने मे सकोच अनुभव न करे ॥६॥

तृतीय कर्त्तव्य ॥

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७॥

पदार्थ.—(अश्विना) हे राजा वा अमात्य ! (युवम्) आप दोनों (अत्रये) मातृ पितृ भ्रातृ विहीन जनसमुदाय के लिये (अवन्तम्) सर्वप्रकार से रक्षक (गृहम्) गृह को (कृणुतम्) बनवाए । जिस घर मे पोषण के लिये अन्नपान और विद्यादि का अभ्यास हो । अन्ति० ॥७॥

भावार्थ—राजा अनाथों के लिये गृह आदि का प्रबन्ध करे ॥७॥

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥८॥

पदार्थः—हे राजा तथा अमात्य ! आप दोनो (वल्गु) मनोहर सुवचन (वदते) बोलते (अत्रये) मातृपितृभ्रातृविहीन शिशु वर्ग को (आतपः) तपाने वाली भूख प्यास इत्यादि (अग्निम्) अग्नि ज्वाला को (वरेथे) दूर कीजिये । आपके राज्य मे यह महान् कार्य होना चाहिए । अन्ति० ॥८॥

भावार्थ —राजा के लिए अनाथों के खान-पान की व्यवस्था करना आवश्यक है ॥८॥

प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९॥

पदार्थः—हे अश्विद्वय ! आपके शासन मे (सप्तवध्रि) काव्यो मे सात छन्दों के बांधने वाले महाकवि महर्षि (आशसा) ईश्वर स्तुति की मदद से (अग्नेः) प्रजाओं की बुभुक्षा, पिपासा व अग्नि समान सन्तापक रोग की (धाराम्) ज्वाला को (प्र अशायत) शमन करते हैं । आप भी धन व रक्षा की सहायता देकर वैसा करें । अन्ति० ॥९॥

भावार्थ.—राज्य के आप्त पुरुषो को भी प्रजारक्षण करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए ॥९॥

राजा के कर्त्तव्य ॥

इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१०॥

पदार्थः—(वृषण्वसू) हे बहुधन देने वाले राजा एव अमात्य ! आप दोनों (इह) मेरे स्थान मे (आगतम्) आए तथा आकर (मे) मेरे (इमम् हवम्) इस आह्वान अथवा प्रार्थना को (शृणुतम्) सुनें । अन्ति० ॥१०॥

भावार्थ —राजा तथा राजपुरुष प्रार्थी प्रजा के दुःखो को दूर करने हेतु उससे घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित रखें ॥१०॥

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥११॥

पदार्थ —हे राजा व अमात्य ! (वाम्) आप दोनों के बारे मे (पुराणवत्) अतिवृद्ध (जरतो इव) जराजीर्ण दो पुरुषों के तुल्य (इदम्, किम्) यह क्या अयोग्य वस्तु (शस्यते) कही जाती है जैसे अति वृद्ध जीर्ण पुरुष बार-बार पुकारे जाने पर भी कहीं नहीं जाते । वैसे ही आप दोनों के सम्बन्ध मे यह क्या कहावत है । इसे दूर कीजिये । अन्ति० ॥११॥

भावार्थः—राजा के लिए सदा आलस्य रहित होना चाहिये । वे प्रजा कार्य्यों में सदा जागृत हों । यह शिक्षा यहां दी जाती है ॥११॥

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१२॥

पदार्थ.—(वाम्) आप दोनो राजा व मंत्री का प्रजा के साथ (समानम्) समान ही (सजात्यम्) सजातित्व है । अतः आप गर्व न करें । आप प्रजा-रक्षण मे दासवत् नियुक्त हैं । पुन सब जन आपके (समानः बन्धुः) समान ही बन्धु हैं । अत. प्रजा का हित सदैव करो । अन्ति० ॥१२॥

भावार्थ —राजा के लिए उचित है कि सारी प्रजा में समान बुद्धि करे । समान बन्धुत्व दिखाए । स्वय राजा भी प्रजा के तुल्य ही है । वह राजा कोई अवि-ज्ञात ईश्वर प्रेरित देव है या इतर जन मर्त्य हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये । किन्तु सभी अल्पज्ञ विविध दोष दूषित, कामादि के वशीभूत राजा व इतर जन समान ही हैं, यही यहां दर्शाया गया है ॥१२॥

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१३॥

पदार्थ—हे राजा व मत्री ! (वाम्) आप दोनों का (यः रथः) जो रथ (रजांसि) विभिन्न लोको म तथा (रोदसी) द्युलोक व पृथिवी के सारे भागो में (वि याति) विशेषरूप से जाना आता है उस परम गतिमान् रथ से हमारे पास आए । अन्ति० ॥१३॥

भावार्थः—विमान अथवा रथ ऐसा बना कि जिसकी गति तीन लोक में अहत हो ॥१३॥

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१४॥

पदार्थः—हे राजा व मत्री ! आप दोनो (सहस्रैः) बहुत (गव्येभिः) गोसमूहो व (अश्व्यैः) अश्व-समूहों सहित अर्थात् हमें देने के लिये बहुत सी गौओं को और अश्वों को लेकर (नः) हमारे पास (उपागच्छतम्) आए । अन्ति० ॥१४॥

भावार्थः—हे मानवो ! ईश्वर से मिली सुबुद्धि से हम लोग विज्ञान व यश प्राप्त करें, किसी को हानि न पहुँचाएं ॥९॥

अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।

यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥१०॥

पदार्थ—हे मानवो ! जो (सत्पतिम्) सज्जनों का पालन करने वाला (त्वेषम्) तेजस्वरूप (रथप्रां) संसार को विविध सुखो से पूर्ण करने वाला (गाम्) गमनीय=गानीय (अश्वमित्) और जो सर्वव्याप्त ही है उस (इन्द्रं न) परमात्मा को गाओ (यस्य श्रवांसि) जिसके यश सर्वत्र फैले हैं (कृष्टय) हे मानवो ! (पन्यंपन्यं च उस परम वन्दनीय की (तूर्वथ) कीर्ति गान करो ॥१०॥

भावार्थः—हे लोगो ! जिसकी कीर्ति सभी जगह व्याप्त है उसका गुणगान करो और अन्य का नहीं ॥१०॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अंगिरः ।

स पावक श्रुधी हवम् ॥११॥

पदार्थः—(अंगिरः) हे सारे जगत् में अगो के रस पहुँचाने वाले, (पावक) हे शुद्धिकारक, (अग्ने) सर्वाधार जगदीश ! (यं त्वा) जिस तुझे (गोपवनः) रक्षक श्रेष्ठ तत्त्ववेत्ता ऋषिगण (गिरा) अपनी-अपनी स्तुति से (चनिष्ठत्) स्तुति करते हैं (सः) वह आप (हवम्) हमारी प्रार्थना (श्रुधि) सुनिये ॥११॥

भावार्थ—जो इस जगत् का रसस्वरूप व संशोधक है उसी की स्तुति प्रार्थना ऋषिगण करते हैं; हम भी उनका अनुकरण कर पाए ॥११॥

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये ।

स बोधि वृत्रतूर्ये ॥१२॥

पदार्थः—(सबाध) नाना रोग आदि सहित (जनास) मानवगण (यं त्वा) जिस तेरी (वाजसातये) ज्ञान व धनादि के लाभार्थ (ईळते) स्तुति करते हैं (स) वह तू (वृत्रतूर्ये) सकल विघ्न विनाशक कार्य हेतु (बोधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥१२॥

भावार्थ—जिस लिए मानव जाति रोग शोक इत्यादि अनेक विघ्नो से युक्त है अत. उन कारणो की निवृत्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना करें ॥१२॥

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।

शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥१३॥

पदार्थ—(अहम्) मैं उपासक (आर्क्षे) मानव के लिये (श्रुतर्वणि) श्रोतृजनो के लिये तथा (मदच्युति) मानव जाति मे आनन्द वर्षा हेतु (हुवान·) प्रभु से प्रार्थना कर रहा हूँ और मनुष्यमात्र के जो (स्तुकाविनाम्) ज्ञानविज्ञान सहित (चतुर्णाम्) नयन, कर्ण, घ्राण तथा रसना ये चारो ज्ञानेन्द्रियां हैं उनके (शीर्षा) शिर (शर्धांसि इव) परम बली हो और (मृक्षा) शुद्ध और पवित्र हों ॥१३॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति स्वजाति के कल्याणार्थ ईश्वर से प्रार्थना करे जिससे मानवमात्र के ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रयास करें ॥१३॥

मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।

सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥१४॥

पदार्थः—(शविष्ठस्य) परम बलशाली प्रभु की कृपा से प्राप्त (आशव) स्व विषय में नितात निपुण (द्रवित्नव) आलस्य रहित, (सुरथास·) शरीर रूपी सुन्दर रथयुक्त (चत्वारः) चक्षु, श्रोत्र, घ्राण व रसना रूप चार ज्ञानेन्द्रिय (माम्) मुझे (प्रय) विविध सुख (अभि वक्षन्) पहुँचाती हैं, ऐसे (न) जैसे (वय) नौका (तुग्र्यम्) भोज्यादि पदार्थ यत्र-तत्र पहुँचाती है ॥१४॥

भावार्थ—जो व्यक्ति स्वज्ञानेन्द्रियों के तत्त्वों को समझ उन्हें कार्य मे लगाते हैं वे ही ससार मे परम धनी होते हैं ॥१४॥

सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।

नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५॥

पदार्थ—(महेनदि) हे विविध शाखायुक्त ! (परुष्णि) हे सुखदायक बुद्धि देवि ! (आपः) हे गमनशील इन्द्रियो ! (सत्यम् इत्) सत्य ही (त्वा) तुझे (अवदेदिशम्) कहता हूँ कि (शविष्ठात्) अति बलवान् प्रभु की अपेक्षा अधिक (अश्वदातर.) अश्वादि पशुओ व हिरण्यादि धन दाता (मर्त्य) मानव (ईम्) नहीं है अत आप सब मिल कर उसी की उपासना करें ॥१५॥

भावार्थः—जिस लिये प्रभु सर्व प्रकार से हमें सुख प्रदान कर रहा है और धनादि उपार्जन हेतु बुद्धि विवेक पुरुषार्थ देता है, अत· हम उसकी आज्ञा का अनुगमन कर कल्याणाभिलाषी हो ॥१५॥

अष्टम मण्डल में चौहत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथ षोडशर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१६ विरूप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, ४, ५, ७, ९, ११ निचृद् गायत्री । २, ३, १५ विराड् गायत्री । ८ आर्ची स्वराड् गायत्री । ६, १०, १२—१४, १६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

परमात्मदेव की महिमा ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव ।

नि होता पूर्व्यः सदः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे सर्वाधार ! (देवहूतमान्) प्राणियों को नितांत सुख देने वाले (अश्वान्) सूर्यादि लोकों को (युक्ष्वा हि) भली प्रकार कार्य में लगाइए, ऐसे ही जैसे (रथी इव) रथी अपने घोड़ों को सीधे मार्ग पर चलाता है । हे ईश आप (होता) महादाता हैं । (पूर्व्यः) सबके पूर्व अथवा पूर्ण हैं; वह आप (नि. सद) हमारे हृदय में विराजें ॥१॥

भावार्थ—वह प्रभु सूर्यादि सकल जगत् का शासक, दाता तथा पूर्ण है ; उसे अपने हृदय मे बसा कर प्रार्थना करें ॥१॥

अग्निनाम से ईश्वर-स्तुति ॥

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः ।

श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥२॥

पदार्थ—(उत) और भी (देव) हे देव ! (देवान्) तेरी आज्ञा पर चलने से शुभ कर्मवान् और (विदुष्टरः) जगत् के तत्त्वो के ज्ञाता (नः) हम उपासको को (अच्छ) अभिमुख होकर (वोचः) उपदेश दें व (विश्वा) समस्त (वार्य्या) वरणीय ज्ञान व धनो को (श्रत् कृधि) सत्य बनायें ॥२॥

भावार्थः—प्रभु हमारे हृदय में उपदेश देता है और इस जगत् के सभी पदार्थ भी मानव को सदुपदेश दे रहे हैं किन्तु इस तत्त्व को विरले ही विद्वान् समझते हैं । हे नरो ! उसकी शरण मे आकर ससार का अध्ययन करो ॥२॥

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत ।

ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३॥

पदार्थः—(यविष्ठ) हे जगत्मिश्रणकारी, (सहस सूनो) हे जगत्-निर्माता ! (आहुत) हे ससार मे प्रविष्ट ! (यत्) जिस कारण (त्वम् ह) तू (ऋता वा) सत्यवान् व (यज्ञियः भुव.) परम पूज्य है, अतः तू सर्वत्र प्रार्थित है ॥३॥

भावार्थ—यविष्ठ्य—जीव से जगत् व सूर्य्यादि लोको को आपस मे मिलाने वाला होने से वह यविष्ठ्य कहाता है । आहुत; इसे उत्पन्न कर प्रभु ने इसमे स्वयं को होम दिया ऐसा वर्णन प्राय आता है अत वह आहुत है । अन्यत् स्पष्ट है ॥३॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।

मूर्धा कवी रयीणाम् ॥४॥

पदार्थ—(अयम् अग्नि) यह सभी जगह विख्यात प्रभु (शतिनः) शत सख्या युक्त, (सहस्रिणः) सहस्र पदार्थ युक्त (वाजस्य) धन तथा विज्ञान का पति है । (रयीणाम्) सर्वप्रकार के ऐश्वर्य का भी वही अधिपति है एव (मूर्धा) सकल जगत् का शिर एव (कवि) परम विज्ञानी है ॥४॥

भावार्थ—जो प्रभु सम्पूर्ण ज्ञान व धन का अधिपति है वह हमे धन एवं ज्ञान दे ॥४॥

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो (सहूतिभि·) समान प्रार्थनाओं द्वारा (तं) उस प्रभु को (आनमस्व) नमस्कार करो (यथा) जैसे (ऋभवः) रथकार (नेमिम्) रथ का आदर करते हैं वैसे ही । (अंगिर) हे अगो के रसप्रद (यज्ञम्) शुभकर्म (नेदीयः) हमारे पास कीजिये ॥५॥

भावार्थः—सदैव प्रभु से प्रार्थना करनी उचित है कि जिससे हम शुभ कर्म मे सदैव लगें ॥५॥

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया ।

वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥६॥

पदार्थः—(विरूप) हे विविध रंगरूप तथा भाषादियुक्त मानवो ! तुम (तस्मै) उस परमात्मा की (सुष्टुतिम्) शुभ स्तुति (नित्यया वाचा) नित्य वेदरूप वाणी से (चोदस्व) करो जो (नूनम्) अवश्य (अभिद्यवे) चतुर्दिक् प्रकाशित हो रहा है और जो (वृष्णे) आनन्द की वर्षा कर रहा है ॥६॥

भावार्थ—जो प्रभु सर्वत्र प्रकृति के मध्य आसीन है उसकी वन्दना प्रार्थना करो ॥६॥

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः ।

पणिं गोषु स्तरामहे ॥७॥

पदार्थः—हे नरो ! हम सब (अपाकचक्षसः) सर्वद्रष्टा सर्वनियन्ता (अस्य अग्नेः) इस सर्वाधार की (सेनया) कृपा से (गोषु) गौओं के (कं स्विदु) सकल (पणिं) चौरादिक उपद्रवों से (स्तरामहे) पार उतरने में समर्थ हों ॥७॥

भावार्थः—जिस लिये परमात्मा सर्वद्रष्टा व सर्वशासक है इस हेतु अपनी सारी वस्तु उसको समर्पित करें और उसकी इच्छा पर ही स्व कल्याण छोड़ें ॥७॥

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः ।

कृशं न हासुरघ्न्याः ॥८॥

पदार्थः—(देवानां) सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि आदि से सुरक्षित व सुरक्षित (विशः) प्रजाजन (नः) हमें (मा हासु) न त्यागें । ऐसे ही (इव) जैसे (प्रस्नातीः) शीतलता व प्रकाश को फैलाती हुई (उस्राः) उषा जीवो को नहीं त्यागती और जिस प्रकार (अघ्न्याः) अहन्तव्या गौएं (कृशं) स्व वत्सगण को (न हासु.) नहीं छोड़तीं ॥८॥

भावार्थ.—हम मानव शुद्धाचरण, सत्य ग्रहण, कपट इत्यादि दोष रहितता व ईश आराधनादि सद्गुण प्राप्त करें, जिससे सज्जन हमे न त्यागें ॥८॥

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः ।

ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥९॥

पदार्थ —(समस्य) समस्त (दूढ्यः) दुर्बुद्धि व (परिद्वेषसः) जगत् के महाद्वेष का (अंहतिः) हनन करने वाला अथवा पाप (नः) हम लोगों का (मा अवधीत्) हनन न करे । (न) जैसे (ऊर्मि) समुद्र तरंग (नावम्) नौका को छिन्न-भिन्न कर नष्ट कर डालती है ॥९॥

भावार्थः—दुर्बुद्धि वाले और द्वेषी व्यक्तियो से हम सदैव अलग रहें । ऐसा न हो कि उनका संसर्ग हमें भी कुपथ पर लेजाकर नष्ट करदे । जैसे क्षुब्ध समुद्र की लहर जहाज को भी तोड़कर डुबा देती है ॥९॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१०॥

पदार्थ —(अग्ने) हे प्रभु ! (देव) दिव्यगुण सम्पन्न ! (कृष्टयः) प्रजाजन (ओजसे) बलप्राप्ति करने हेतु (ते) तुम्हें (नमः गृणन्ति) नमस्कार करते हैं । वह तू (अमैः) अपने नियमों से (अमित्रम्) जगत् के शत्रुओं को (अर्दय) हटा ॥१०॥

भावार्थ —हर व्यक्ति के लिए उचित है कि वह परस्पर द्रोह की चिन्ता से अलग रहे, तभी जगत् का शत्रुसमूह नष्ट हो सकता है ॥१०॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥११॥

पदार्थः—(अग्ने) हे जगदीश, तू (गविष्टये) गौ आदि पशुओ की प्राप्ति हेतु (कुवित्) बहुत (रयिम्) सम्पत्ति (नः) हमे (सुसंवेषिषः) दे । हे भगवन् ! तू (उरुकृत्) बहुत करनेवाला है, अतएव (नः) हमारी सब वस्तुओ को (उरु) बहुत (कृधि) कर ॥११॥

भावार्थ.—हम मानव गौ आदि पाल उनके दुग्ध घृत आदि से यज्ञकर्म कर लोकोपकारी बनें ॥११॥

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा ।

संवर्गं सं रयिं जय ॥१२॥

पदार्थः—हे प्रभु ! (अस्मिन् महाधने) इस नाना धनयुक्त विश्व में (नः) हम लोगो को असहाय (मा परा वर्क्) न छोड़ (यथा) जैसे (भारभृत्) भारवाही भार त्यागता है वैसे ही, किन्तु (संवर्गं) चिरस्थायी (रयिं) मुक्तरूप धन (संजय) हमें दे ॥१२॥

भावार्थ —महाधन=संसार मे जिधर देखो उधर सम्पत्ति का अन्त नहीं, तथापि मानव अज्ञानवश दुर्नीति से दुःख पाता है, इससे ईश्वर उसकी रक्षा करे ॥१२॥

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना ।

वर्धा नो अमवच्छवः ॥१३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे प्रभो ! (इयम्) यह (दुच्छुना) विस्फोटक महामारी आदि आपकी अर्चना से रहित चोर डाकू आदि को (भिये सिषक्तु) भय दे व नाश करे किन्तु (अस्मत्) जो हम आपकी कीर्ति गाते हैं उन्हें न डरावे । (नः) हमारे (शवः) आन्तरिक बल को (अमवत्) दृढ़, धैर्य्ययुक्त (वर्ध) कर तथा बढ़ा ॥१३॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! तेरा कोप महामारी इत्यादि रोग हम पर न आ गिरे, किन्तु जो जगत् के शत्रु व तेरी स्तुति से रहित हैं उन्हें भय दिखाएं ॥१३॥

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेद्ग्निर्वृधावति ॥१४॥

पदार्थ—(यस्य नमस्विनः) जिस प्रभु भक्त के (वा) या (अदुर्मखस्य) शुभ कर्म करने वाले के (शमीम्) कर्म में विद्वत् जन (अजुषत) जाते तथा उसके कर्म को शुद्ध कराते हैं (तं घ इत्) उसी पुरुष को (अग्निः) प्रभु (वृधा) सर्व वस्तु की वृद्धि करके (अवति) बचाता है ॥१४॥

भावार्थः—हर शुभकर्म में विद्वानों का सत्कार व उनसे शुद्धकर्म कराएं तो ही कल्याण होता है ॥१४॥

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥१५॥

पदार्थः—हे प्रभो ! (परस्याः) अन्य (संवतः) चोर डाकू आदि की सभा को (अधि) छोड़ व नष्ट कर (अवरान्) तेरे अधीन हमारी (अभ्यातर) ओर आ और जिन लोगों में (यत्र अहं अस्मि) मैं उपासक होऊं (तान् अव) उन्हें सहायता प्रदान कर ॥१५॥

भावार्थ —जहां ईश्वरभक्त ऋषिगण विद्यमान होते हैं वहां कल्याण अवश्य ही होता है ॥१५॥

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः ।

अधा ते सुम्नमीमहे ॥१६॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वशक्तिमान् ! (यथा) जैसे (पितु) पिता का पालन पुत्र जानता है वैसे (वय) हम (पुरा) बहुत दिनो से (ते) तुम्हारा (अवसः) रक्षण व सहायता (विद्म) जानते हैं (अध) इस लिए (ते) तुमसे (सुम्न) सुख को (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—हे प्रभो ! जिस लिए आपकी सहायता बहुत दिनो से हम जानते हैं इस हेतु आप से उसकी अपेक्षा है ॥१६॥

अष्टम मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१२ कुरुसुतिः काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, २, ५, ६, ८—१२ गायत्री । ३, ४, ७, निचृद् गायत्री । षड्जः स्वर ॥

प्राण मित्र परेश की महिमा ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥१॥

पदार्थ —हे मानवो ! मैं उपासक (नु) इस समय (वृञ्जसे) अन्तःकरण व बाहर के सकल शत्रुओ के निपातन हेतु यद्वा (न वृञ्जसे) मुझे और अन्यान्य निखिल प्राणियो को न त्याग करने के लिए किन्तु सबको अपने पास ग्रहणार्थ (इमम् नु इन्द्रम्) इस जगदीश की (हुवे) प्रार्थना व आवाहन करता हू तुम भी ऐसा ही करो । जो (मायिनम्) महाज्ञानी, सर्वज्ञ व महामायावान् है, (ओजसा) स्व अचिन्त्यशक्ति से (ईशानम्) जगत् का शासन करता है तथा (मरुत्वन्तम्) जो प्राणो का अधिपति एव सखा है ॥१॥

भावार्थ—जिस लिए वह ईश्वर प्राणाधिपति, मित्र व जगत्शासक तथा महाराजा है, अत. सब उसकी वन्दना करें ॥१॥

उसका उपकार ॥

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।

वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

पदार्थः—(अयम् इन्द्र) यह इन्द्रवाच्य प्रभु जिस लिए (मरुत्सखा) प्राणो का सखा है अत (शतपर्वणा) भाँति-भाँति के पर्वविशिष्ट (वज्रेण) वज्र से (वृत्रस्य) प्राणों के अवरोधक अज्ञान के (शिर) शिर (वि अभिनत्) काटता है ॥२॥

भावार्थ —यहा जीव का सखा से तात्पर्य ईश्वर है । जैसे इस लोक मे सखा हितकारी होता है और अपने मित्र के विघ्ननाश हेतु चेष्टा करता है, वैसे ही मानो वह प्रभु भी करता है । इसलिए वज्र आदि शब्द ईश्वरपक्ष मे अन्य अर्थ का परिचायक है । अर्थात् उसके जो न्याय व नियम हैं वे ही शतपर्व वज्र हैं । भावार्थ यह है कि जो निष्कपट हो उसकी शरण मे जाए वह सुख पाता है ॥२॥

उसके कार्य का गान ॥

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥३॥

पदार्थः—हे मानवो ! यह (मरुत्सखा) प्राणों का सखा (वावृधानः) त्रिभुवनों के हितो को बढ़ाते हुए और (समुद्रिया) आकाश मे जाने वाले मेघरूप (अपः) जलों को (सृजन्) रचता हुआ (इन्द्र) प्रभु (वृत्रम्) उनके विघ्नो को (वि ऐरयत्) दूर करता है । अत वही वन्दनीय है ॥३॥

भावार्थः—इस ऋचा मे दिखाया गया है कि जल के परमाणुओं को मेघरूप में रचने वाला प्रभु ही है । कैसी आश्चर्यमय व्यवस्था है आकाश मे मेघ उड़ रहे हैं । हे मनुष्यो ! इसकी अद्भुत रचना देखो ॥३॥

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥४॥

पदार्थ—(वै) निश्चय (येन मरुत्वता) जिस प्राण सखा (इन्द्रेण) प्रभु ने (सोमपीतये) सकल पदार्थों की रक्षार्थ (अयम् ह) इन जीवो को अपने वश मे किया है और (इदम् स्वः) इन सारे सुखों व जगतों को जीता है, वह मानवों का पूज्य है ॥४॥

भावार्थः—जिस लिए सारे चराचर संसार को वह अपने अधीन रखता है जिससे अव्यवस्था न हो । अतः वह महान् देव वरेण्य है ॥४॥

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥५॥

पदार्थः—हम उपासक (इन्द्रम्) परमात्मवाची इन्द्रदेव की महान् कीर्ति को (गीर्भि) स्वस्वभाषाओ के द्वारा (हवामहे) गावें । जो (मरुत्वन्तम्) प्राणों का स्वामी

भावार्थ.—परमात्मा मानव के सुकर्म से ही प्रसन्न होता है। अतएव उसकी इच्छा-अनुसार मानव को सुमार्ग पर चलना चाहिए ॥७॥

त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा ।

सुदात्वपरिह्वृता ॥८॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वपदार्थयुक्त प्रभो ! (त्वे) तुममें (विश्वा) सब प्रकार के (वसूनि) धन (संगता) विद्यमान हैं और सब प्रकार के (सौभगा) सौभाग्य तुम में हैं। इस हेतु से हे प्रभो ! (सुदातु) सर्व प्रकार के सुदान (अपरिह्वृता) तेरे लिये सहज हैं ॥८॥

भावार्थः—जिस लिए वह प्रभु सम्पूर्ण संसार का अधिपति है अतएव उसके लिये दान देना कठिन नहीं। यदि हम अन्तःकरण से अपना अभीष्ट मांगें तो वह अवश्य उसे पूर्ण करेगा ॥८॥

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥९॥

पदार्थ—(यवयु) जौ, गेहूँ, मसूर इत्यादि के इच्छुक (गव्यु) गो, महिष, अजा आदि पशुकामी, (हिरण्ययु) सोना, चान्दी धातुओं का अभिलाषी (अश्वयुः) घोड़ा, हाथी आदि वाहनों के अभिलाषी, (मम कामः) मेरा काम (त्वाम् इत्) तुझे ही, अन्य को नहीं किन्तु (त्वाम्) तुझे ही (एषते) चाहता है ॥९॥

भावार्थः—हम सब पदार्थों की इच्छा रखते हैं यह मानव का स्वाभाविक गुण है ॥९॥

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।

दिनस्य वा मघवन्त्सम्भृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो ! (तव इत्) तुम्हारी ही (आशसा) आशा से (अहम्) मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन) काटने हेतु हँसुआ आदि लेता हूँ। (मघवन्) हे सर्व धनयुक्त ! (दिनस्य वा) प्रतिदिन (सम्भृतस्य) एकत्रित (यवस्य) जौ आदि खाद्य पदार्थों की (काशिना) मुष्टि से हमारा घर भरो ॥१०॥

भावार्थ—प्रभु से हम मानव उतने ही पदार्थ मांगें जिनसे हम अपना भली भांति निर्वाह कर सकें ॥१०॥

अष्टम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्यैकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—९ कृत्नुर्भार्गव ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४, ५, ७, ८ गायत्री । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-८ षड्जः । ९ गान्धारः ॥

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः ।

ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥१॥

पदार्थ—(अयं) प्रकृति में प्रत्यक्षवत भासित यह प्रभु (कृत्नु) जगत् कर्त्ता (अगृभीतः) किन्हीं से किसी साधन द्वारा ग्रहण योग्य नहीं, (विश्वजित्) विश्वविजेता, (उद्भिद् इत्) जगत् उत्पादक, (सोम) सर्वप्रिय, (ऋषि) सर्वद्रष्टा, (विप्र) सन्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाला और (काव्येन) काव्य द्वारा वन्दनीय है ॥१॥

भावार्थ—प्रभु सर्वगुणसम्पन्न हैं अतः उन्हीं की स्तुति और प्रार्थना करना योग्य है ॥१॥

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम् ।

प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥२॥

पदार्थ—(यन्नग्नं) नग्न व्यक्ति को वह प्रभु (अभ्यूर्णोति) वस्त्र से ढांकता है (यत् विश्वम् तुरम्) जो रोगग्रस्त है उसकी (भिषक्ति) चिकित्सा करता है (अन्ध) नेत्रहीन (प्र ख्यत् ईम्) भली भांति देखता है। (श्रोण) पङ्गु (निः भूत्) चलने लग जाता है ॥२॥

भावार्थ—प्रभु की शक्ति अवर्णनीय है, इस कारण विपरीत बातें भी होती हैं; इसमें आश्चर्य्य नहीं करना चाहिये ॥२॥

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।

उरु यन्तासि वरूथम् ॥३॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वप्रिय ! (त्वं) तू साधुजनों को (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य दुष्टों की दुष्टता व अपकार आदि से बचाकर (उरु) बहुत (वरूथं) श्रेष्ठ रक्षण (यन्तासि) देता है। (तनूकृद्भ्यः) जो शरीर व मन को कमजोर बनाते हैं उनसे तू बचाता है ॥३॥

भावार्थः—जो भगवान् की आज्ञा का पालन करते हैं वे ईर्ष्या, द्वेष आदि से रहित हो जाते हैं। अतः उनकी भी कोई निन्दा नहीं करता। इस तरह परमात्मा सज्जनों को दुष्टता से बचाता है ॥३॥

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।

यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥४॥

पदार्थः—(ऋजीषिन्) सज्जन साधुजन रक्षक व अभिलाषियों (त्वं) तू (चित्ती) अपनी महान् शक्ति व मन से (तव दक्षैः) अपने महान् बल से (दिवः) द्युलोक से (आ) तथा (पृथिव्याः) पृथिवी पर से (अघस्य) पापियों के (द्वेष) द्वेषों को (यावीः) दूर कर ॥४॥

भावार्थः—यहाँ शिक्षा दी जाती है कि मानवमात्र द्वेष तथा निन्दा आदि अवगुण त्यागे तभी संसार का कल्याण होगा ॥४॥

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् ।

ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मा ! जगत् में आपकी कृपा से (अर्थिनः) धनाभिलाषी लोग (अर्थं यन्ति चेत्) धन पाएं और दीन पुरुष (ददुष.) दाता से (रातिं) दान (गच्छान् इत्) पाए तथा (तृष्यतः) धन व पानी के पिपासुओं के (कामम्) मनोरथ (ववृज्युः) लोग पूर्ण करें ॥५॥

भावार्थ—हे नरो ! तुम एक दूसरे की सहायता करो, न जाने तुम्हारे पर भी अचानक आपत्ति आए व सहायता की आकांक्षा हो। अतएव परस्पर प्रेम व भ्रातृभाव से व्यवहार करो ॥५॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥६॥

पदार्थः—हे प्रभु ! आपका उपासक (यत्) जो वस्तु (पूर्व्यं) पहले (नष्टम्) नष्ट हो गयी हो उसे (विदत्) प्राप्त करे और (ऋतायुं) सत्याभिलाषी जन को (ईं) निश्चित रूपेण (उदीरयत्) धनादि सहायता से बढ़ाए एवं (अतीर्णम्) अवशिष्ट (ईम् आयुम्) इस विद्यमान आयु की (प्रतारीत्) वृद्धि करे ॥६॥

भावार्थ.—उपासक को धैर्य्य से ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। उसे सज्जनों की रक्षा कर अपनी आयु बढ़ानी चाहिए ॥६॥

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वप्रिय ! ध्यान द्वारा (हृदे) हृदय में धारित तू (नः) हमारा (शं) कल्याणकारी (भव) हो, (नः) हमें तू ही (सुशेव) सुखकारी है। (मृळयाकुः) आनन्ददायी तथा (अदृप्तक्रतुः) शान्तकर्मा और (अवात) वायु आदि से रहित है ॥७॥

भावार्थ—जब परमात्मा उपासना के द्वारा हृदय में विराजता है तब ही वह सुखकारी होता है ॥७॥

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् ।

मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे देव ! (नः) हमें (मा सं वीविजः) अपने स्थान से विचलित न कर। (राजन्) हे भगवन् ! हमें (मा वि बीभिषथाः) भययुक्त न बना और (नः हार्दि) हमारे हृदय को (त्विषा) क्षुधा पिपासा इत्यादि ज्वाला से (मा वधीः) हनन न कर ॥८॥

भावार्थ—जब मानव पाप व अन्याय करता है तभी उसके हृदय में भय उत्पन्न होता है और क्षुधा से शरीर जलता है, अतः वैसा कार्य न करे ॥८॥

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥९॥

पदार्थः—हे देव ! (यत्) जब-जब (स्वे सधस्थे) स्व स्थान पर (देवानां दुर्मती) सज्जनों के शत्रुओं को (अव ईक्षे) देखूं तब-तब (राजन्) हे नरेश (द्विषः) उन द्वेषकारी जनों को (अपसेध) दूरकर और (स्रिधः) हिंसक पुरुषों को हम लोगों के समाज से (अप सेध) दूर हटा ॥९॥

भावार्थ—हम जब-जब सज्जनों की निन्दा होते देखें तो उचित है कि उन निन्दकों को समुचित दण्ड दें ॥९॥

अष्टम मण्डल में उनासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ दशर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य १—१० एकद्यूर्नौधस ऋषिः ॥ १-९ इन्द्रः । १० देवा देवताः ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री । ४, ६, ७, ९, १० गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥१॥

पदार्थ—(शतक्रतो) हे सर्वशक्तिमन् प्रभो ! तेरे (अन्यं) अतिरिक्त कोई (मर्डितारम्) सुखकारी देव (नहि) नहीं। (अकरं) यह मैं भली-भांति देखता व सुनता हूँ। (बळा) यह सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! इस हेतु (नः) हमें (त्वं) तू (मृळय) सुखी कर ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ही जीवमात्र को सुख देने वाला होने से सेव्य और वन्दनीय है ॥१॥

यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥२॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (यः) जो तू (अमृध्रः) चिरस्थायी है इसलिये तू (शश्वत्) सर्वदा (पुरा) पूर्वकाल से आजतक (वाजसातये) ज्ञान तथा धन प्राप्ति हेतु (नः)

हमें (आविथ) बचाता आ रहा है। (सः त्वं) वह तू (नः) हमे (मृळय) सुख प्रदान कर ॥२॥

भावार्थः—ईश्वर सदैव जीवो की रक्षा करता है अतएव अन्त करण से अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु उसी से प्रार्थना करे ॥२॥

किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित्स्विन्द्र णः शकः ॥३॥

पदार्थः—(अङ्ग) हे (इन्द्र) प्रभो ! (किम्) मैं तुझसे क्या प्रार्थना करूं तू स्वयं (रध्रचोदन) दीनपालक है और (सुन्वानस्य) उपासकों का (अविता इत्) सदैव रक्षक है। क्या (नः) हमे (इन्द्र) हे इन्द्र ! (कुवित्) तू बहुधा (सु) अच्छी प्रकार (शकः) समर्थ बनाएगा ? ॥३॥

भावार्थ—वह प्रभु दीनो व उपासकों की रक्षा करता है अत क्या वह हमारी रक्षा नहीं करेगा ॥३॥

इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः ।
पुरस्तादेनं मे कृधि ॥४॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! सर्वद्रष्टा ! (नः) हमारे (रथम्) रथ को महासग्राम मे (प्र अव) बचा और (पश्चात् चित् सन्तम्) पीछे विद्यमान भी (मे एनं) मेरे रथ को (पुरस्तात्) आगे (कृधि) बढ़ा ॥४॥

भावार्थ—महा सग्राम में विजय प्राप्ति हेतु उसी से प्रार्थना करनी चाहिए ॥४॥

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ॥५॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! (हन्तो) खेद की बात यह है कि तू (नु) इस समय (किं आससे) क्यों चुप है, (नः) हमें (रथं) रथ को (प्रथमम्) सबसे आगे (कृधि) कर तथा (वाजयु) विजय सम्बन्धी (श्रवः) यश (उपमं) पास ला ॥५॥

भावार्थः—हम ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करें कि महासग्राम में भी हमे विजय मिले ॥५॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! (नः) हमारे (वाजयु) विजय-आकांक्षी (रथं) रथ को (अव) बचा। (ते) तुम्हारे लिये (किं इत्) सर्व कर्म (परि) सर्व प्रकार (सुकरं) सहज है अर्थात् तुम्हारे लिये असाध्य कुछ भी नहीं। इस हेतु महासमर में (अस्मान्) हमें (जिग्युषः) विजेता (सुकृधि) अच्छी प्रकार करें ॥६॥

भावार्थः—ईश्वर हमारे रथ को विजयी तथा हमें विजेता बनाए ॥६॥

इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् ।
इयं धीर्ऋत्वियावती ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! हमें शुभकर्मों में (दृह्यस्व) दृढ़ कर, क्योंकि तू (पूः असि) भक्तो के मनोरथ पूर्ण करता है और (निष्कृतम्) सबके भाग्य को स्थिर करने वाले (ते) तुम से हमारी (इयं ऋत्वियावती) यह सामयिक (धीः) स्तुति व प्रार्थना (एति) है ॥७॥

भावार्थः—यह स्वाभाविक है कि जीवों का झुकाव उस प्रभु की ओर है। अतः प्रत्येक विद्वान् का समग्र शुभकर्म उसी की ओर और उसी के उद्देश्य से किया जाता है ॥७॥

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् ।
अपावृक्ता अरत्नयः ॥८॥

पदार्थः—हे प्रभो ! आपकी कृपा से हमें (अवद्ये) निन्दा, अपयश, ईर्ष्या आदि दुर्गुण (सीम्) किसी प्रकार (आ भाक्) न मिलें। (काष्ठा) जीवन की अन्तिम दशा (उर्वी) बहुत व्यापक है। अर्थात् जीवन के दिन अभी बहुत हैं अतः हमें कोई अपकीर्ति प्राप्त न हो। हे प्रभु ! (धनं हितम्) आपने इस जगत् में बहुत धन दिया है (अरत्नयः) जगत् के दुष्ट जन (अपावृक्ताः) जन-समाज से पृथक् हों ॥८॥

भावार्थः—प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित है कि किसी स्वार्थवश किसी की निन्दा या स्तुति न करे, अन्यथा संसार में अनेक अशान्तियां फैलेंगी ॥८॥

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि । आदित्पतिर्न ओहसे ॥९॥

पदार्थः—हे प्रभु ! (यद्) जो (यज्ञियम्) यज्ञसम्बन्धी (तुरीयम्) चतुर्थ (नाम) नाम हमारा करता है (तद् उश्मसि) उस नाम को हम चाहते हैं। क्योंकि (आद् इत्) उसके बाद ही तू (नः पतिः) हम लोगों का स्वामी (ओहसे) होता है। अर्थात् तब ही यज्ञ करते हुए हम तुझे अपना पालक समझते तथा मानते हैं ॥९॥

भावार्थः—पितृनाम, मातृनाम, आचार्यनाम और यज्ञसम्बन्धी नाम ये चार हैं। सोमयाजी आदि यज्ञिय नाम हैं। मानव जब शुभकर्म में प्रवेश करता है तभी से ईश्वर को अपना स्वामी मानने लगता है ॥९॥

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१०॥

पदार्थः—(अमृताः) हे अमर (देवाः) दिव्यगुण युक्त जनो ! (वः) आपको (उत) तथा (याः च देवीः) जो आप लोगों की स्त्रियां हैं उन्हें भी (एकद्यूः) दैनिक यज्ञकर्ता सदैव (अवीवृधत्) बढ़ाते व (अमन्दीत्) आनन्दित करते हैं। अतः (तस्मै उ) उसे (प्रशस्तम् राधः) प्रशस्त धन विशाल दो और (धियावसुः) हृदयज्ञान व क्रिया में निवासी प्रभु हमारे निकट (मक्षू) शीघ्र व (प्रातः) प्रातःकाल ही (जगम्यात्) पधारे ॥१०॥

भावार्थः—गृहस्थ नर-नारी प्रतिदिन यज्ञ करें। वे प्रतिदिन प्रात प्रभु की उपासना ऐसे करें कि उसका सान्निध्य अनुभव हो ॥१०॥

अष्टम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य १—९ कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री । ४, ९, विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

परमात्मा की प्रार्थना ॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टा ! जिस लिए तू (महाहस्ती) महान् शक्तिशाली है, इसलिये (दक्षिणेन) महाबली हस्त से (नः) हमारे लिये (क्षुमन्तम्) प्रशस्त (चित्रम्) चित्र विचित्र नाना प्रकार की (ग्राभम्) ग्रहणीय वस्तुओं को (संगृभाय) एकत्रित कीजिए ॥१॥

भावार्थ—यहां हस्त का निरूपण है। ग्रामादिक जो प्रशस्त धन है उसकी याचना परमात्मा से करनी चाहिए ॥१॥

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (अवोभि) आपके द्वारा रक्षित हम मानव (विद्म हि) इस बात को भली-भांति जानते हैं कि (त्वा) तू (तुविकूर्मिम्) सर्वकर्मा, (तुविदेष्णम्) सर्वदाता महादानी, (तुविमघम्) सर्वधन, (तुविमात्रम्) सर्वव्यापी है। ऐसा हम जानते हैं अत. हम पर कृपा करो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वशक्तिमान् व सर्वधन तथा सर्वदाता है, अतः वही प्रार्थना व स्तुति के योग्य है ॥२॥

उसका महत्त्व ॥

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥

पदार्थः—(शूर) हे महावीर ! (दित्सन्तम्) इस ससार को दान देते हुए (त्वा) तुझको (देवाः नहि वारयन्ते) देवगण निवार नहीं सकते; (न मर्तासः) मानव भी तुझको निवारण नहीं कर पाते। (न) जैसे (भीमम्) भयानक (गाम्) सांड को रोका नहीं जा सकता ॥३॥

भावार्थः—वह प्रभु सबसे बलशाली है और अपने काम मे परम स्वतन्त्र है; अत. वहां किसी की शक्ति नहीं चल सकती ॥३॥

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् ।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥४॥

पदार्थः—हे मानवो ! (एत) आओ। हम सब मिलकर (नु) इस समय (इन्द्रम् स्तवाम) उस प्रभु की कीर्ति गाएं और स्तवन करें जो (वस्वः ईशानम्) इस जगत् व धन का स्वामी तथा अधिकारी है और (स्वराजम्) स्वतन्त्र राजा व स्वयं विराजमान देव है। जिसकी स्तुति से अन्य कोई भी (नः) हमें (राधसा) धन के कारण (न मर्धिषत्) बाधा नहीं डाल सकता ॥४॥

भावार्थः—जो व्यक्ति ईश्वर में आस्था रख कर उसकी आज्ञा पर चलते हैं उन्हें बाह्य या आन्तरिक बाधा नहीं पहुँचती ॥४॥

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम् ।
अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥

पदार्थ.—मानव उस प्रभु की (प्र स्तोषत्) भली-भांति स्तुति करें, उसका (गासिषत्) गान करें, (गीयमानम् साम) गीयमान वन्दना को (श्रवत्) सुनें और (राधसा) अभ्युदय से युक्त हों (अभि जुगुरत्) सर्वत्र ईश्वरीय आदेश का प्रचार करें ॥५॥

भावार्थः—हम सब प्रकार परमात्मा में मन लगाएं यही इसका तात्पर्य है ॥५॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश ।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥६॥

पदार्थः—(यं) जिस (अस्पृतं) अजेय पदार्थ-बोध को (ते) साधक के लिये (श्येनः) विद्वान्, [श्यायति विज्ञापयतीति श्येनो विद्वान्-यजु० २१-३५ ऋ०द०] (पदा) ज्ञान के प्रकाश की किरण से (रजांसि) अज्ञानान्धकार को (तिरः) पार कर (अभरत्) ला देता है (अस्य) उसका तू स्वामी है, (पिब इत्) निश्चय ही उसका उपभोग कर ॥९॥

भावार्थ—विद्वान् जन साधक को ज्ञान का वह प्रकाश देता है कि जो अजेय होता है साधक को चाहिये कि वह ध्यान से उसे ग्रहण करे ॥९॥

अष्टम मण्डल में बियासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-९ कुसीदी काण्वः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः । छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री । ४ पादनिचृद् गायत्री । ७ आर्चीस्वराड् गायत्री । ८ विराड् गायत्री । स्वरः—षड्जः ॥

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥१॥

पदार्थ.—(वयं) हम (अस्मभ्यं ऊतये) अपने लिये संरक्षण, सहायता आदि के प्रयोजन से (वृष्णां) सुख आदि देने वाले (देवानां) मूर्त एवं अमूर्त, जड़ तथा चेतन दिव्यगुणी पदार्थों का (इत्) ही (महत्) महत्त्वपूर्ण जो (अवः) संरक्षण, सहायता आदि है (तत्) उसे (आ वृणीमहे) स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थ:—परमात्मा की सृष्टि मे अनेक जड़, चेतन, मूर्त, अमूर्त दिव्यगुणी पदार्थ हैं; वे हमें सुख देते हैं, किन्तु हमे सावधान होकर उनकी देन को स्वीकार करना चाहिये ॥१॥

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा ।

वृधासश्च प्रचेतसः ॥२॥

पदार्थ.—(वरुणः) जल, वायु, उत्तम विद्वान्, परमेश्वर आदि सब वरुण; (मित्रः) न्यायकारी होते हुए भी स्नेहशील परम प्रभु तथा सूर्य, (अर्यमा) विद्युत्, न्यायाधीश, कर्मानुसार फल देकर जीव की गतिविधि का नियमनकारी प्रभु आदि देव (वृधासः) बढ़ाने वाले (च) व (प्रचेतसः) प्रकृष्ट रूप से [अपने गुणों द्वारा] चेताने वाले हैं; (ते) वे (सदा) सभी समय सर्वत्र (नः) हमारे (युजः) सहायक (सन्तु) हों ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र मे बताए गए देवताओं में से कुछ के नाम व गुण गिनाकर यह संकल्प दुहराया गया है कि उपासक इन्हें अपने चिरसंगी बनायें ॥२॥

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ ।

यूयमृतस्य रथ्यः ॥३॥

पदार्थः—हे (ऋतस्य) यथार्थ ज्ञान, कर्म, विचार आदि के (रथ्यः) नेताओ ! (यूयं) आप सब (नौभिः अपः) जैसे नौकाओं से जलप्रवाहों—नदी, तडाग, सागर आदि को जीतते या पार करते हैं वैसे ही, (नः) हमें (पुरु) बहुत से (विष्पिता—विष्पितानि) इधर से उधर तक फैले (अप) कर्मों के (पर्षथः) पार लगाते हो ॥३॥

भावार्थ—प्राणी जगत् में आकर नाना कर्म करता है, इस कर्मजाल में घिरा वह दिव्य पदार्थों की सहायता से ही पार उतरता है—जैसे नौका की सहायता से नदी आदि सुगमता से पार किये जाते हैं। अतः साधकों को प्रभु प्रदत्त दिव्य पदार्थों की सहायता ग्रहण करनी चाहिये ॥३॥

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् ।

वामं ह्यावृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—हे (अर्यमन्) न्यायकारी ! (वामं) सेवन योग्य ऐश्वर्य (नः अस्तु) हमारा हो, हे (वरुण) श्रेष्ठ ! (शंस्यं) प्रशंसनीय ऐश्वर्य (नः) हमारा हो, कारण कि हम (हि) निश्चय ही (वामं) सेवन योग्य और प्रशंसनीय ऐश्वर्य की ही आप से (आ वृणीमहे) याचना करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सभी दिव्य गुणयुक्त विद्वानों से श्रेष्ठ, प्रशंसनीय, अतएव सेवनयोग्य ऐश्वर्य के प्रबोध की प्रार्थना करो ॥४॥

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।

नेमादित्या अघस्य यत् ॥५॥

पदार्थ—हे (प्रचेतसः) प्रकृष्ट ज्ञान युक्त, (रिशादसः) हिंसक भावनाओं, प्रवृत्तियों व व्यक्तियों का नष्ट करने वाले (आदित्याः) ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रह सुशिक्षाप्राप्त विद्वानो ! आप (वामस्य) प्रशस्त ज्ञानधन के (ईशानासः) स्वामी हैं, (यत्) जो ऐश्वर्य (अघस्य) पाप का है (ईम्) उसे (न) आप नहीं पाते ॥५॥

भावार्थः—आदित्य ब्रह्मचारी जो प्रबोध देते हैं वह प्रशंसनीय व ग्रहण करने योग्य ही होते हैं; कारण कि पाप का ज्ञान वे अपनाते ही नहीं ॥५॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना ।

देवा वृधाय हूमहे ॥६॥

पदार्थ.—हे (सुदानवः) सुदानकर्ता (देवाः) दिव्य जन (वयं) हम उपासक (क्षियन्तः) सनातन नियमों का पालन करते हुए, (वः) आपके सुझाये गये (अध्वन्) मार्ग पर (यान्तः) चलते हुए (इत्) भी (वृधाय) और अधिक उन्नति हेतु आप को (आ हूमहे) पुकारते हैं ॥६॥

भावार्थः—प्रभु की सृष्टि में विद्यमान दिव्य गुणी जड़-चेतन, मूर्त-अमूर्त देवताओं की मदद की अपेक्षा उन साधकों को भी है जो सृष्टिकर्ता के नियमों को मानते हैं और स्वयं को सही मार्ग पर चलता समझते हैं। उपासक कितना ही सावधान क्यों न हो, उसे दिव्य गुणियों का सत्संग नहीं त्यागना चाहिये ॥६॥

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् ।

इता मरुतो अश्विना ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यदाता ! हे (विष्णो) सर्वव्यापक प्रभु ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! हे (अश्विना) अध्यापक-उपदेशको ! आप (नः) हम उपासकों को भी (एषां) इन्हीं के (सजात्यानां) सजातीय (अधि इत) समझो ॥७॥

भावार्थः—समान वृत्ति वाले संग रहते हैं—यह एक सर्वविदित शाश्वत नियम है। उपासक को चाहिए कि वह अपने आदर्श विद्वानों की संगति में ही रहे ॥७॥

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या ।

मातुर्गर्भे भरामहे ॥८॥

पदार्थः—हे (सुदानवः) सुदाता दिव्यजनो ! (भ्रातृत्वं) भ्रातृत्व भाव अर्थात् हिस्सा बंटाने व परस्पर पालक होने का गुण (अध) और साथ ही (समान्या) आदरयुक्त (द्विता) द्वित्वस्वरूप=ये दोनों गुण हम (मातुः) प्रकृति के (गर्भे) आन्तरिक भाग में ही (प्र भरामहे) धारण करते हैं ॥८॥

भावार्थ.—सभी दिव्यगुणियों का आपस में भ्रातृत्व तो है ही, पर उनमें द्वित्व भी है जिसका वे परस्पर आदर करते हैं, गुणों की भिन्नता से उनमें परस्पर द्वेष-भावना नहीं; अपितु उनको 'द्विता' होते हुए भी उनमें भ्रातृत्व है, वे एक-दूसरे के पालक हैं। इस भ्रातृत्व का कारण यही है कि सभी प्रकृति माता की सन्तान हैं, उसी के गर्भ में निवास कर रहे हैं ॥८॥

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।

अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥९॥

पदार्थ—हे (सुदानवः) शुभदानदाता दिव्यगुणिजनो ! आप सब (इन्द्रज्येष्ठाः) प्रमुख हैं, (अभिद्यवः) दीप्तिमान् तथा ज्ञानवान् हैं, (अधा चित्) यह समझने के बाद मैं उपासक (वः) आपकी (उप ब्रुवे) वन्दना करता हूं, (उत) और फिर स्तुति करता हूं ॥९॥

भावार्थ—सभी देवों में प्रमुख महादेव, प्रभु ही हैं। वे जहां बाह्य स्वरूप से प्रकाशित हैं—वहां वे स्वयं ज्ञानी हैं या ज्ञान से जाने जाते हैं अतएव ज्ञान की ज्योति से भी प्रकाशित हैं ॥९॥

अष्टम मण्डल में तिरासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-९ उशना काव्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री । ४, ५, ७—९ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।

अग्निं रथं न वेद्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे मेरे साथी उपासक गणो ! मैं (वः) तुम्हारे और मेरे (मित्रं इव प्रियं) मित्र निःस्वार्थ स्नेही के समान प्रिय, (अतिथिं) समय निश्चित करके प्राप्त न होने वाले, इसीलिये (प्रेष्ठं) सर्वाधिक प्रिय (रथं न) 'रथ' के तुल्य सकल पदार्थों के (वेद्यम्) पहुंचाने वाले तथा उनका ज्ञान कराने वाले (अग्निं) ज्ञानस्वरूप प्रभु के (स्तुषे) गुण गाता हूं ॥१॥

भावार्थ—प्रभु अन्तःकरण में प्रकटते हैं—वे मेरे अतिथि हैं, उनके प्रादुर्भूत होने का समय निश्चित नहीं, मेरा शरीर ही मेरा 'रथ' है और 'प्राण' मेरा सखा है ये मुझे प्रिय हैं, परन्तु प्रभु इन सबसे अधिक प्रिय हैं। मैं उनका गुण गाता हूं ॥१॥

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

पदार्थः—(यं) जिस ज्ञान से अज्ञान समाप्त करने व नेतृत्व गुणविशिष्ट शक्ति को, जो (कविं इव) क्रान्तद्रष्टा एवं क्रान्तकर्मा ऋषि की भांति (प्रचेतसं) प्रकृष्टचेता है, (देवासः) विद्वानों ने (मर्त्येषु) मरणधर्मा मानवों में (द्विता) दो प्रकार से—ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय रूप से (नि, आदधुः) निश्चित किया है—उस द्विरूपा शक्ति के मैं गुण गाता हूं ॥२॥

भावार्थ—'अग्नि' शक्ति का द्योतक है, मानवों में इसके रूप दो हैं—ज्ञानस्वरूप व कर्मकर्तृत्व रूप। ये ही ज्ञानेन्द्रियां व कर्मेन्द्रियां हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों में दिव्यता धारण करे ॥२॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।

रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) युवातम, ज्ञान व नेतृत्व शक्ति की अधिकता से सम्पन्न प्रभु ! आप (दाशुष) दानशील, आत्म समर्पक (नृन्) जनों की (पाहि) रक्षा करते हैं और (गिरः) स्तुति वचन (शुश्रुधि) सुनते हैं, (तोकम् उत) हमारी सन्तति की भी (त्मना) स्वयं अपने आप (रक्षा) रक्षा करें ॥३॥

भावार्थ—व्यक्ति में निहित ज्ञान व कर्तृत्वशक्ति का प्रतीक 'अग्नि' वह शक्ति है जो स्वत हमारी ज्ञान व कर्मेन्द्रियों से हमारी सन्तति तक की रक्षा करती है। उपासक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की इस प्रकार देखरेख करनी चाहिये कि इनकी शक्ति सदैव प्रभावशाली रहे ॥३॥

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।

वराय देव मन्यवे ॥४॥

पदार्थः—हे (ऊर्जो न पात्) ओजस्विता कम न होने देनेवाले ! (अङ्गिरः) अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त, अङ्गों के रस प्रदाता ! (देव) देव ! (कया) सुखमयी वाणी से (ते) तेरी (उपस्तुति) समीप रहकर स्तुति को हम (वराय) श्रेष्ठ (मन्यवे) क्रोध या तेजस्विता के लिये करते हैं ॥४॥

भावार्थ—व्यक्ति को सम्यक् जीवननिर्वाह हेतु तेजस्विता की भी आवश्यकता है। इसीलिये अन्यत्र भी मन्यु की प्रार्थना है। 'मन्यु' का अर्थ 'तेजस्विता' है जो मानव को निस्तेज नहीं बनाती। 'अग्नि' इस शक्ति का भी प्रतीक है ॥४॥

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।

कदु वोच इदं नमः ॥५॥

पदार्थ—हे (सहस) विजयी बल के (यहो) पुत्र ! बल क्षीण न होने देने वाले ! अग्निदेव ! तुम्हारे अलावा अन्य (यज्ञस्य) सत्सग करने योग्य (कस्य) किस देव के समक्ष (मनसा) हृदय से (दाशेम) समर्पण करें ? और (कद् उ) कहाँ अर्थात् किसे लक्ष्य करके (इद) यह (नम) नमस्कार (वोचे) कहूं ॥५॥

भावार्थः—ज्ञान व कर्मशक्ति का प्रतीक अग्निदेव विद्वान् आदि के रूप में सगति करने योग्य है कि जिसकी सेवा कर, जिसका सत्सग कर साधक अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को बलिष्ठ बना सकता है ॥५॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।

वाजद्रविणसो गिरः ॥६॥

पदार्थ—(अधा) इसके बाद (त्वं हि) निश्चय ही आप विद्वान् (अस्मभ्यं) हमारे हेतु (विश्वा) सब की सब वे (गिरः) वाणियां अर्थात् उपदेश (कर) कीजिये कि जो (सुक्षिती) हमें सुखदायी बसने के साधन दें अथवा मानव दें और जो (वाजद्रविणस) ज्ञान, वेग व अन्य सुखदाता व्यवहार रूप समृद्धि व धन का स्रोत सिद्ध हो ॥६॥

भावार्थ—विद्वानों को साधकों को ऐसे उपदेश देने चाहियें कि जिनसे जीवन-यज्ञ करनेवाले उपासक को अपने बसने के सभी साधन मिलें, पुत्रपौत्रादि प्राप्त हों और विज्ञान आदि ऐश्वर्य भी मिलें ॥६॥

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते ।

गोषाता यस्य ते गिरः ॥७॥

पदार्थः—हे (दम्पते) अपनी आश्रयभूत स्थिति बनाये रखने वाले ज्ञान व कर्मशक्ति के प्रतीक अग्निदेव ! आप (नून) निश्चय ही (कस्य) किस साधक की (परीणस) बहुत से कर्मों व चिन्तन शक्तियों को (जिन्वसि) परिपूर्ण करते हैं ? उत्तर—(यस्य) जिस साधक की की हुई (ते) आपकी (गिर) स्तुतियाँ, गुणगान (गोषाता) ज्ञान के प्रकाश से सेवित हों ॥७॥

भावार्थ—जो उपासक अग्नि (परमेश्वर) विद्वान् आदि के गुणों को पूरी तरह जानता हुआ उनके ज्ञान के पूर्ण प्रकाश में उनका कीर्तन करता है, निश्चय ही उसके कर्म तथा उसके चिन्तन दैवी ज्ञान व कर्म की शक्तियों से पूर्ण होते हैं। इस मन्त्र में 'दम्पति' पद से यह भी दिखाया गया है कि परमेश्वर विद्वान् आदि देव अपनी विश्रामदायिनी स्थिति (दम्) से कभी नहीं हटते ॥७॥

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु ।

स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥८॥

पदार्थ—(सुक्रतु) उत्तम कर्म तथा ज्ञानवाले (आजिषु) सघर्ष के स्थल व समय पर या प्रतिद्वन्द्विताओं में (पुरः) आगे-आगे (यावान) चलनेवाले (तं) उस ज्ञान व कर्म शक्ति के प्रतीक अग्नि को उपासक (स्वेषु) अपने-अपने (क्षयेषु) गृह रूप हृदयों में (मर्जयन्त) बसाते हैं ॥८॥

भावार्थ—ज्ञान व कर्म की शक्तियों के प्रतीक 'अग्नि' को उपासक अपने हृदय में धारते हैं। यह 'अग्नि' ज्ञान व कर्मस्वरूप परमेश्वर है जो दिव्य आनन्द का दाता है, जिसकी उपासना लौकिक समृद्धि का कारण बनती है, विद्वान् शिक्षक भी है जो विभिन्न प्रकार की शिल्पक्रिया आदि का ज्ञान देकर उपासकों के लिए व्यावहारिक समृद्धि देता है ॥८॥

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः ।

अग्ने सुवीर एधते ॥९॥

पदार्थः—जो उपासक (साधुभि) सफलसाधक (क्षेमैः) अर्जित कल्याणों सहित (क्षेति) निवास करता है—उनको बनाए रखता हुआ [अन्तिम समय की प्रतीक्षा करता है]; (यं) जिसे (न किः घ्नन्ति) कोई शत्रुभूत भावना हानि नहीं पहुँचा पाती अपितु (यः) जो स्वयं दुर्भावनाओं को (हन्ति) अपने से दूर रखता है; हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! वह (सुवीर) वीर्यवान् पुरुष (एधते) धनधान्य, पुत्र-पुत्रादि से समृद्धि पाता है ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में बताया गया है कि उपासक अन्त में ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जब वह बहुत-सी कल्याणकारी समृद्धि पा लेता है; उस अवस्था में उसे चाहिये कि वह अर्जित को बनाये रखे—यदि वह बना रहेगा तो फिर उससे दुर्भावनाएं दूर रहेंगी और वह सर्व प्रकार उन्नति करेगा ॥९॥

अष्टम मण्डल में चौरासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषि १—९ कृष्ण ॥ *देवते—अश्विनौ* ॥ छन्द—१, ९ विराड्गायत्री । २, ५, ७ निचृद्गायत्री । ३, ४, ६, ८ गायत्री ॥ स्वर—षड्ज ॥

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥१॥

पदार्थ—(नासत्या) कभी अपने कर्तव्य से न चूकने वाले (युवम्) दोनों (अश्विनौ) शक्तिसम्पन्न प्राण व अपान (मध्वः) माधुर्य आदि गुणयुक्त (सोमस्य) वीर्य शक्ति को मुझ उपासक के (पीतये) [शरीर में] खपाने हेतु (मे) मेरे (हव) दान-आदान पूर्वक किये जा रहे जीवनयापन रूपी यज्ञ में (आ गच्छतम्) आकर सम्मिलित हों ॥१॥

भावार्थः—अश्वी देवताओं के वैद्य हैं। उपासक का जीवनयापन भी यज्ञ ही है, इस प्रक्रिया में वह कई प्रकार से दान करता है और ग्रहण करता है। शरीर, मन आदि जीवनयापन के साधन अपने कार्य से कभी चूकें नहीं, अस्वस्थ न हों, अत प्राण व अपान को अचूक बनाना जरूरी है और इसके लिये आवश्यक है कि वीर्यशक्ति सदैव इन साधनों में ही खपती रहे। 'प्राण' आदान व 'अपान' दान या विसर्जन क्रिया का प्रतीक है ॥१॥

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—[साधक आचार्य गुरु शिष्यों से कहता है] हे (अश्विनौ) अध्यापक व अध्येता 'युगल' ! (मध्वः) माधुर्य आदि गुणयुक्त (सोमस्य) ऐश्वर्य-कारक शास्त्रबोध का पान करने हेतु (इमं मे) इस मेरे द्वारा किये जा रहे (स्तोमं) पदार्थों के गुणों की व्याख्यासमूहरूप (हवम्) उपदेश का (शृणुतम्) श्रवण करो ॥२॥

भावार्थ—गुरु व शिष्य भी अपने से बड़े आचार्य के मुख से प्रभुसृष्टि के पदार्थों के गुण सुनकर उन्हें आत्मसात् करें ॥२॥

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥३॥

पदार्थः—(अय) यह (कृष्णः) [दुर्भावना आदि शत्रुओं के] उखाड़ने में रत उपासक, (मध्व) मधुर आदि गुणयुक्त (सोमस्य) [शारीरिक एवं आत्मिक] बल को (पीतये) प्राप्त कराने हेतु (वाजिनीवसू) बल व वेगवती क्रिया-शक्ति के आश्रयभूत (वां) तुम दोनों (अश्विनौ) प्राण तथा अपान को (हवते) बुलाता है ॥३॥

भावार्थः—जो उपासक स्व मन की दुर्भावनाएं मिटाना और परिणामस्वरूप शारीरिक, मानसिक व आत्मिक बल प्राप्त करना चाहे वह प्राण व अपान को नियन्त्रण में करे। प्राण व अपान शरीर को बल तथा स्फूर्ति देते हैं ॥३॥

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥४॥

पदार्थ—(नरा) सुशिक्षित नर-नारी (मध्वः) माधुर्य आदि गुणयुक्त (सोमस्य) सुखदाता शास्त्रबोध का (पीतये) पान कर, उसे प्राप्त करने हेतु (जरितु.) विद्यागुणप्रकाशक (स्तुवत) गुणवर्णन करते हुए (कृष्णस्य) सशयों को नष्ट करनेवाले विद्वान् के (हवम्) वचन (शृणुत) सुनें ॥४॥

भावार्थ—जिस उपदेशक का दैनिक कार्य ही सशय मिटाना है—उसके वचनों को सुनकर नर-नारी सरलता से पदार्थों के गुणों का ज्ञान पा सकते हैं; अतएव यह प्रयत्न आवश्यक है ॥४॥

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥५॥

पदार्थ—(नरा) नर-नारी (मध्वः सोमस्य पीतये) माधुर्य आदि गुणयुक्त (सोमस्य) शास्त्रबोध की प्राप्ति हेतु या प्रभु द्वारा सृष्ट सुखात्मक पदार्थों को भली-भाँति समझने हेतु, (स्तुवते) गुण वर्णन करते (विप्राय) बुद्धिमान् विद्वान् के लिये (अदाभ्यं) अहिंसनीय (छर्दि.) आश्रय (यन्त) दें ॥५॥

भावार्थः—जो सुशिक्षित नर-नारी पदार्थों के गुणावगुण को भली-भाँति जानना चाहें उन्हें बुद्धिमानों को आश्रय देकर, उनकी सर्व प्रकार रक्षा कर, उनसे बोध पाना चाहिए ॥५॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥६॥

पदार्थः—(अश्विना) उपदेष्टा व शिक्षक इन दो वर्गों के बलशाली विद्वान् (मध्व) माधुर्य आदि गुणयुक्त (सोमस्य) सुख बढ़ाने वाले पदार्थबोध को (पीतये) देने हेतु (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार भली-भाँति प्रशंसा करते हुए (दाशुषः) दानशील आत्मसमर्पक उपासक के (गृहं) घर (आ, गच्छतम्) आ जाते हैं ॥६॥

भावार्थ—शिक्षकों एव उपदेशकों के प्रशंसक उपासकों को विभिन्न पदार्थों के गुणों का ज्ञान प्रदान करने हेतु तो अध्यापक व उपदेशक जन स्वयमेव उनके गृहों पर आ कर उन्हें ज्ञान देते हैं ॥६॥

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥७॥

पदार्थः—(वृषण्वसू) बलिष्ठ शरीर को बसानेवाले प्राण व अपान (मध्व सोमस्य पीतये) माधुर्य आदि गुणसंयुक्त वीर्यशक्ति को खपाने हेतु (वीड्वङ्गे) दृढ़ अवयवों वाले (रथे) जीवनयात्रा के वाहनरूप शरीर में (रासभ) शब्दायमान, स्तोतारूप अश्व (युञ्जाथाम्) संयुक्त करते हैं ॥७॥

भावार्थ—प्रभु कीर्तन के द्वारा उपासक के आत्मिक बल की वृद्धि होती है और वह गुणकीर्तन प्राण व अपान के नियन्त्रण से ही सुगम होता है ॥७॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥८॥

पदार्थः—(अश्विना) बल देने वाले प्राण व अपान (मध्व सोमस्य पीतये) माधुर्य आदि गुणसंयुक्त वीर्यशक्ति को खपाने के लिये (त्रिवन्धुरेण) तीन प्रकार के बन्धनोंवाले वात, पित्त तथा कफ—इन तीन प्रकृतिवाले पदार्थों से बधे, (त्रिवृता) सत्व, रज एव तमस्—इन तत्त्वों के साथ वर्तमान (रथेन) रमणीय यान सदृश शरीर द्वारा (आयातं) मिलें ॥८॥

भावार्थ—प्राण व अपान की गति को नियन्त्रित कर वीर्यशक्ति को शरीर मे विलीन करने के लिए शरीररचना का ज्ञान जरूरी है । यथा—यह शरीर वात, पित्त व कफ प्रकृति इन तीन प्रकार के पदार्थों के आधार पर स्थित है और सत्, रज एवं तम के तत्त्व इसमें सदा रहते हैं । शरीर की रचना को भली-भाँति जाननेवाला उपासक ही अपने प्राण व अपान तत्त्वों को नियन्त्रित कर पाता है ॥८॥

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

पदार्थ—(मध्व·) माधुर्य इत्यादि गुणयुक्त (सोमस्य) सोतव्य दिव्य आनन्द का (पीतये) उपभोग कराने हेतु (नासत्या) स्व कृत्य को सदा सम्पादित करने वाले (अश्विना) अश्व तुल्य वेग व बल गुणयुक्त प्राण एव अपान (युवम्) दोनो (मे) मेरी (गिर·) वाणी को (अवतम्) कायम रखें ॥९॥

भावार्थः—यदि प्राण व अपान से गुणकीर्तन करने वाले उपासक की वाणी बलवान् रहेगी तो वह प्रभु का सतत गुणकीर्तन करता रहेगा और इस तरह दिव्य आनन्द पा सकेगा ॥९॥

अष्टम मण्डल में पच्चासीवां सूक्त समाप्त

अथ पञ्चर्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषि —१—५ कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः ॥ देवते—अश्विनौ ॥ छन्द·-१, ३ विराड्जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः निषाद· ॥

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।

ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥१॥

पदार्थः—हे (दस्रा) रोग इत्यादि विघ्न मिटाने वाले, (भिषजा) रोगादि से डरे लोगों की रक्षा करने वाले, (मयोभुवा) सुखदाता (उभा) दोनों, प्राण व अपान नामक दिव्य गुणियो ! (हि) निश्चय ही तुम (दक्षस्य) समाहितचित्त या एकाग्र, दृढ़ चेता के (वचसः=वचसि) कहने में (बभूवथुः) रहते हो, (ता वां) उन तुम दोनों की, (विश्वकः) सब पर कृपा करनेवाला विद्वान् भिषक् (तनू कृथे) देह की रक्षा हेतु, (हवते) वन्दना करता है—तुम्हारे गुणों का वर्णन करता हुआ उनका अध्ययन करता है । (नः मा वियौष्ट) तुम दोनों हमसे अलग न होओ , (सख्या) अपनी मित्रता से हमें (मा मुमोचतम्) मुक्त न करो ॥१॥

भावार्थ—शरीर स्वस्थ रखने हेतु मानव के प्राण व अपान ही उसके तथा उसकी इन्द्रियों (देवों) के वैद्य हैं; ध्यान से उनकी गति की जांच करते रहें ; मनुष्य ऐसा प्रयत्न करे कि वे सदैव उसके मित्र एव उपकारी बने रहें । प्राण व अपान शरीर में ग्रहण (आदान) तथा विसर्जन की क्रियायें हैं, ये जब तक शरीर की सत्ता हैं, शरीर स्वस्थ रहता है ॥१॥

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्य इष्टये ।

ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२॥

पदार्थः—(नूनं) निश्चय ही (वां) दोनो, प्राण तथा अपान की, (विमना) चेतनाशून्य, अनेकाग्र, असमाहितचित्त, व्यक्ति (कथा) किस तरह (उप स्तवत्) स्तुति, गुणकीर्तन कर सकेगा ? (युवं) तुम दोनो (वस्य इष्टये) विपुल मात्रा में ऐश्वर्य का सगम कराने हेतु (धियं) ध्यान शक्ति को (ददथु) देते हो । (तौ वां) उन तुम दोनों की, (विश्वक) सब पर कृपा करनेवाला विद्वान् भिषक् (तनू कृथे) देह की रक्षा हेतु, (हवते) वन्दना करता है—तुम्हारे गुणों का वर्णन करता हुआ उनका अध्ययन करता है । (न मा वियौष्ट) तुम दोनों हमसे अलग न होओ , (सख्या) अपनी मित्रता से हमे (मा मुमोचतम्) मुक्त न करो ॥२॥

भावार्थ—प्राण एव अपान की गति को नियन्त्रित कर एकाग्रचित्त होने की शक्ति मिलती है और एकाग्रता के बिना कोई अपनी इन दोनो क्रियाओं पर नियन्त्रण नहीं रख पाता ; इन पर नियंत्रण रखे बिना स्वास्थ्य भी नहीं रह सकता ॥२॥

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये ।

ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्ट सख्या मुमोचतम् ॥३॥

पदार्थः—(युवं हि) निश्चय ही तुम दोनो [प्राण व अपान] (वस्य इष्टये) अतिशयमात्रा में ऐश्वर्य का सगम कराने हेतु (विष्णाप्वे) विद्या-पारंगत विद्वानों की प्राप्ति बोध मे (एधतु) समृद्धि को (ददथु) धारण कराते हो । (तौ वां) उन तुम दोनो की, (विश्वकः) सब पर कृपा करनेवाला विद्वान् भिषक् (तनू कृथे) देह की रक्षा हेतु, (हवते) वन्दना करता है—तुम्हारे गुणों का वर्णन करता हुआ उनका अध्ययन करता है । (नः मा वियौष्ट) तुम दोनों हमसे अलग न होओ, (सख्या) अपनी मित्रता से हमे (मा मुमोचतम्) मुक्त न करो ॥३॥

भावार्थ—विद्वानो से बोध पा कर तथा उसके अनुसार आचरण कर उपासक प्राण—अपान की क्रियाओं को अपने नियन्त्रण में ला सकता है ॥३॥

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।

यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥४॥

पदार्थः—(उत) और (त्य) उस विख्यात (धनसां) मूल्यवान् पदार्थों के प्रदाता, (ऋजीषिणं) शोधक (वीरं) पुत्रभूत प्राण को (दूरे चित् सन्त) दूर पर ही विद्यमान को (अवसे) अपनी देख-रेख व सहायता के लिए (हवामहे) बुलाएं । (यस्य) जिसकी (सुमति) शुभ मन्त्रणा (स्वादिष्ठा) अतिप्रिय है—वैसी ही जैसी कि (पितुः) परमपिता की सुप्रेरणा (ता वां) उन तुम दोनो की, (विश्वक) सब पर कृपा करनेवाला विद्वान् भिषक् (तनू कृथे) देह की रक्षा हेतु, (हवते) वन्दना करता है—तुम्हारे गुणों का वर्णन करता हुआ उनका अध्ययन करता है । (न मा वियौष्ट) तुम दोनो हमसे अलग न होओ, (सख्या) अपनी मित्रता से हमे (मा मुमोचतम्) मुक्त न करो ॥४॥

भावार्थ—प्रभुरचित हमारे दसों प्राण यदि हमारे पास रहें, हमारी पहुँच में रहें तो उनसे प्राप्त प्रिय प्रेरणाएं हमें कदापि कुपथ पर न जाने देंगी ॥४॥

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।

ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥५॥

पदार्थः—(देव. सविता) ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित, तेजस्वी (सविता) सब के प्रेरक प्रभु (ऋतेन) अपने यथार्थ नियमों से (शमायते) सबका कल्याण कराता है , वही (ऋतस्य) यथार्थज्ञान के (शृङ्गम्) शिर के ऊपर के भाग शृङ्ग के जैसा मुख्य, आश्रयभूत अश को (उर्विया) बहुत (वि पप्रथे) विविध रूप में फैलाता है । परम प्रभु का (ऋत) यथार्थ सच्चा नियम ही (महि चित्) बड़े-बड़े भी (पृतन्यत) समूह बनाकर क्षति पहुँचाने वालों को (सासाह) परास्त कर देता है । (ता वां) उन तुम दोनों की, (विश्वक) सब पर कृपा करनेवाला विद्वान् भिषक् (तनू कृथे) देह की रक्षा हेतु, (हवते) वन्दना करता है—तुम्हारे गुणों का वर्णन करता हुआ उनका अध्ययन करता है । (न मा वियौष्टं) तुम दोनों हमसे अलग न होओ, (सख्या) अपनी मित्रता से हमे (मा मुमोचतम्) मुक्त न करो ॥५॥

भावार्थः—प्राण व अपान आदि क्रिया प्रभु के सत्य नियम मे बधी काम करती है । यह जानकर उपासक उन सच्चे नियमों की जानकारी पा कर सारी क्रियाओं की आधारभूत प्राणशक्ति पर अपना नियन्त्रण स्थापित करे ॥५॥

इस सूक्त मे इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाए रखने वाली प्राण-अपान आदि प्राणों की शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करने का संकेत है । प्राणशक्ति से ही शरीर स्वस्थ रह पाता है ॥

अष्टम मण्डल में छियासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ षड्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषि —१—६ कृष्णो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेधो वा ॥ देवते—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद्बृहती । २, ४, ६ निचृत्पंक्तिः ॥ स्वरः-१, ३, ५ मध्यमः । २, ४, ६ पञ्चमः ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।

मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥१॥

पदार्थः—हे (अश्विना) गृहाश्रम व्यवहार में व्याप्त दम्पती ! (वां) तुम्हारा (स्तोमः) गुणप्रकाश या शास्त्रों का अध्ययन व अध्यापन कार्य, (सेके) जल की सिंचाई में (क्रिविः) कूप (न) के तुल्य, (द्युम्नी) यशस्वी है, (आ गतम्) आओ; (सः) वह उपरोक्त तुम्हारा स्तोम (दिवि) पदार्थ विज्ञान के प्रकाशित करने हेतु आवश्यक, (मध्वः) मधुर (सुतस्य) निष्पादित पदार्थविद्यासार का (प्रियः) अपेक्षित है; हे (नरा) गृहस्थ नर-नारियो (इरिणे) ऊसर प्रदेश में जैसे (गौरौ) दो मृग नितांत प्यासे होकर अचानक मिले जल को पीते हैं वैसे तुम, उस पदार्थबोध का (पातं) उपभोग करो ॥१॥

भावार्थः—गृहस्थ नर-नारी शास्त्रों का अध्ययन व अध्यापन इस प्रकार करें कि वह सर्वत्र विख्यात हो, जिस कुए में काफी जल होता है, सिंचाई हेतु वह विख्यात हो जाता है। फिर उनका अध्ययन अध्यापनकर्म पदार्थ व विज्ञान के सार को निष्पन्न करने में सहायक हो, उस सार को वे इस तरह ग्रहण करें जैसे कि ऊसर भूमि में अचानक मिले पानी को प्यासे मृग अधीरता से पीते हैं ॥१॥

पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥२॥

पदार्थः—हे (अश्विना) गृहाश्रम के कृत्यों में रत (नरा) गृहस्थ नर-नारियो ! तुम (बर्हि) इस धरती पर (सीदत) स्थिरता से बसो, (मधुमन्त) रुचिकर (घर्म) ब्रह्मवर्चस् [आत्मिक पवित्रता] का (पिबत) उपभोग करो, (ता) वे तुम दोनों (मनुष) मनुष्य के (दुरोणे) गृहरूप शरीर में (मन्दसाना) हर्षित होते हुए (वेदसा) सुख प्रदाता धनादि ऐश्वर्य द्वारा (वय) अपनी कमनीय वस्तु जीवन की (आ पात) रक्षा करो या सुखपूर्वक जीवन का उपभोग करो ॥२॥

भावार्थः—गृहस्थ नर-नारी पृथिवी स्थित मानवों के बीच स्थिरता से निवास करते हुए वेदज्ञान के द्वारा प्राप्तव्य आत्मिक मानवता का उपभोग करें और इस तरह इसी मानव शरीर में ही सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त कर स्वजीवन का उपभोग करें ॥२॥

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥३॥

पदार्थः—(विश्वाभिः ऊतिभि) सभी एवं सभी प्रकार की रक्षा व सहायता सामग्री सहित विद्यमान (प्रियमेधाः) सर्वत्र बुद्धि चाहनेवाले प्रभु (वां) तुम दोनों को (आ, अहूषत) बुलाते हैं तथा कहते हैं (ता) वे तुम दोनों (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विक् के (वर्तिः) पथ पर (उप यातं) चलो एवं (दिविष्टिषु) दिव्य कामनाओं की पूर्ति हेतु (यज्ञं) दानादानक्रियायुक्त सत्कर्म (जुष्टम्) करो ॥३॥

भावार्थः—सभी गृहस्थ नर-नारियों की विवेकबुद्धि को जगाने का इच्छुक प्रभु उन्हें मानो बुलाकर कहता हो कि जीवन में यज्ञीय भावना को धार कर ऋत्विक् बनो और अपनी दिव्य कामनाओं की पूर्ति के लिए सदैव दान-आदान पूर्वक सत्कर्म में रत रहो ॥३॥

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।

ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥४॥

पदार्थः—हे (अश्विना) बलिष्ठ गृहस्थ नर-नारियो ! (सुमत्) स्वयमेव (बर्हि) इस लोक में (सीदत) दृढ़ता से बैठो, (मधुमन्त) मधुरता इत्यादि गुणों से युक्त (सोम) सकल गुणों व सुख के साधक शास्त्रबोध, धन आदि ऐश्वर्य का (पिबत) ग्रहण करो; (ता) वे तुम दोनों (वावृधाना) उस ऐश्वर्य से वृद्धि—उन्नति—को प्राप्त होते हुए (दिव) ज्ञानरूपी प्रकाश की (सुष्टुति) शुभ स्तुति को, इस भाँति (उपगन्त) प्राप्त करो जैसे कि (गौरौ) वन में मृगयुगल (इरिण) अन्न-जल युक्त स्थान की मन ही मन प्रशंसा करता है ॥४॥

भावार्थः—गृहस्थ जन स्वजीवन में प्रभु की सृष्टि के पदार्थों का ज्ञान अधिकाधिक प्राप्त करें और विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति से उन्नति करते हुए प्रशसित हों ॥४॥

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।

दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

पदार्थः—हे (अश्विना) गृहस्थ नर-नारियो ! (प्रुषितप्सुभिः) प्राणबल से सिंचित (अश्वैः) बलशाली इन्द्रियों से वहन किये हुए (नूनं) निश्चय ही (आ यात) स्व जीवनयज्ञ में पधारो, अपना जीवन-यज्ञ आरम्भ करो। जीवन-यज्ञ में तुम (दस्रा) दुःखनाशक बने हुए, (हिरण्यवर्तनी) हित व रमणीय मार्ग पर चलने वाले, (शुभस्पती) कल्याण पालक, (ऋतावृधा) यथार्थज्ञान को बढ़ाते हुए (सोमं) शास्त्रबोधादिरूप ऐश्वर्य के सार का (पातं) उपभोग करो ॥५॥

भावार्थः—ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियां ही जीवनयात्रा के मुख्य साधक हैं; इन्हें प्राण-शक्ति से बलवान् रखते हुए ही सुखपूर्वक जीवनयात्रा सम्भव है। इस भाँति जीवन-यात्रा करने वाले नर-नारी दुःखों को नष्ट करते हैं, हितरमणीय मार्ग का अनु-गमन करते हैं, अपने यथार्थ ज्ञान को बढ़ाते हुए सदैव कल्याण बनाए रखते हैं ॥५॥

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।

ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥६॥

पदार्थः—हे (अश्विना) बलिष्ठ इन्द्रिय वाले नर-नारियो ! (विपन्यवः) विविध रूप में [ईश्वर के] गुणकीर्तन या ईश्वर स्तुति करने वाले (वयं) हम (विप्रास) मेधावीजन (वाजसातये) बल, विज्ञान, अन्न आदि की प्राप्ति हेतु (वां) तुम दोनों का (हवामहे) आह्वान करते हैं और कहते हैं कि (ता) वे तुम दोनों (वल्गू) शुभवाणी वाले (दस्रा) दुर्गुणों को नष्ट करते हुए, (पुरु-दंससा) विविध कर्मयुक्त हुए, (श्रुष्टि) शीघ्र ही (धिया) अपनी धारणावती बुद्धि सहित (आगतम्) अपने जीवनरूप यज्ञ में आओ और उसे आरम्भ करो ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर के विभिन्न गुणों का गान करने वाले विद्वान् गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को उपदेश दें कि वे स्व जीवनयज्ञ में शुभ बोलें, शुभ ही विविध कर्म करें और विवेकशक्ति-धारक बुद्धि कभी पृथक् न करें ॥६॥

अष्टम मण्डल में सत्तासीवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ षड्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः-१-६ नोधा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः-१, ३, बृहती । ५ निचृद्बृहती । २, ४ पंक्तिः । ६ विराट्पंक्तिः ॥ स्वरः-१, ३, ५ मध्यमः २, ४, ६ पञ्चमः ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

पदार्थः—हे उपासक जनो ! (वः) तुम्हारे तथा अपने (तं) उस (ऋतीषह) शत्रुओं एवं शत्रुभूत भावनाओं पर विजय प्राप्त करानेवाले (दस्मं) दर्शनीय (इन्द्र) प्रभु की (गीर्भि.) वाणियों से (अभिनवामहे) स्तुति करते हैं—ऐसे ही जैसे कि (स्वसरेषु) गोगृहों में (धेनव.) गौएं (वसोः अन्धसः मन्दानं) बसाने वाले अन्न से तृप्त हो (वत्सं) अपने बछड़े को (गीर्भिः) अपनी वाणियों द्वारा बुलाती हैं ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् प्रभु का गुणगान उपासक उतने ही प्रेम तथा तन्मयता से करे कि जितने स्नेह से बछड़े का आह्वान उसकी माता गोष्ठ में पहुँचकर करती है। माता एवं उसके बालक में पारस्परिक दिव्य स्नेह होता है ॥१॥

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

पदार्थः—हम उस (वाजं) अन्न, धनादि ऐश्वर्य के (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) इच्छुक हैं कि जो (द्युक्षं) दिव्यता में निवास करे; (सुदानुम्) उत्तम दानशीलतादायक हो, (तविषीभिः) नाना प्रकार की शक्ति से (आवृत) आच्छादित या परिपूर्ण हो, (गिरिं) मेघ के (न) तुल्य (पुरुभोजस) विशाल पालन-शक्ति से भरा-पूरा हो, (क्षुमन्तम्) प्रशस्त भोगशक्तियुक्त हो, (शतिनं, सहस्रिणं) सैकड़ों-हजारों के लिए लाभदायक हो ॥२॥

भावार्थ—यहाँ उस दिव्य ऐश्वर्य की प्रार्थना या आकांक्षा करने का उपदेश है कि जो मानव को दिव्य बनाए; प्रशस्त भोग शक्ति दे, जिसके सहारे साधक सैकड़ों-हजारों का पालन-पोषण करने में समर्थ हो ॥२॥

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।

यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य प्रदाता, भगवन् ! (त्वा) तेरे [मार्ग] को (बृहन्तः) बड़े-बड़े (वीळव) सुदृढ़ (अद्रयः) पर्वत भी (न) नहीं (वरन्ते) रोकते हैं; (मावते) मेरे सरीखे (स्तुवते) गुणकीर्तन कर्त्ता को (यत् वसु) जो वासक ऐश्वर्य, ज्ञान-धनादि तू (दित्ससि) देना चाहता है (ते न किः तत्) उस तेरे दान को कोई भी नहीं (मिनाति) नष्ट कर पाता है ॥३॥

भावार्थ—महान् ऐश्वर्यदाता प्रभु को देने से कोई नहीं रोक सकता। वह जिसे जो देना चाहता है, उस दान को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।

आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥४॥

पदार्थ—(यं) जिस (त्वा) आप ऐश्वर्ययुक्त को (गोतमा) शुभगुणों को धारण किये विद्वान् (अजीजनन्) अपने-अपने हृदय में प्रकट कर लेते हैं उसको (अयं) यह (अर्कः) स्तोता (ऊतये) स्व रक्षा तथा सहायता—देखभाल के लिए (आ ववर्तति) पुनः-पुनः [गुण-कीर्तन द्वारा] अपने अनुकूल करता है; ऐसे

हे प्रभु ! आप (ओजसा) अपने कृत्यों व प्रताप से (ओजा) सर्व विजयी हैं, (उत) और (दंसना) इन कर्मों से तथा (मज्मना) अपने भीतर तक बेधने वाले प्रभाव के द्वारा (सर्वा) सब (जाता) उत्पन्न पदार्थों तथा प्राणियों से (अभि) सर्वोपरि हैं ॥४॥

भावार्थ—प्रभु ही जगत् में सर्वोपरि हैं; उसके आश्रय से ही साधक को भी सब कुछ प्राप्त होता है ; इसीलिये विद्वान् शुभगुण धारण कर हृदयदेश में उसे ही प्रत्यक्ष (अनुभव) करते हैं ॥४॥

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।

न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो ! (यः) जो आप (ओजसा) अपने आत्मगत प्रभाव द्वारा (दिवः) प्रकाशमय दूरस्थलोक की (अन्तेभ्यः) अन्तिम सीमाओं से भी (परि) परे तक (हि) निश्चय ही (प्र रिरिक्षे) बहुत अधिक अतिरिक्तता से—(पृथक् होकर) विद्यमान है, (त्वा) आप को (पार्थिव) पृथिवी क्षेत्र की (रज) धूल [दोष] (न विव्याच) नहीं व्यापती । ऐसे आप (स्वधां) अन्न, जल आदि पदार्थ तथा अपनी धारणाशक्ति को (ववक्षिथ) हमें प्राप्त कराए ॥५॥

भावार्थ—प्रभु की शक्ति तथा उसका प्रभाव दूर-दूर प्रकाशमय लोकों से भी दूर तक व्याप्त है, उस पर पार्थिव धूल तथा दोष कोई प्रभाव नहीं डाल पाते; वही प्रभु हमें सर्व प्रकार का निर्दोष ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ है ॥५॥

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।

अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) ऐश्वर्य सम्पन्न ! (यत्) जब (दाशुषे) दानशील को आप (दशस्यसि) ऐश्वर्य देते हैं, तब, (ते) आप के (मघस्य) उस पूजनीय दान की (न किः परिष्टिः) कोई [हिंसा] नहीं होती—आप के दान में कोई बाधक नहीं । (मंहिष्ठः) पूजनीय तथा (चोदिता) सन्मार्ग प्रेरक आप (वाजसातये) अन्न आदि ऐश्वर्य के लाभार्थ (अस्माकं) हमारे लिये (उचथस्य) उचित उपाय (बोधि) बताए ॥६॥

भावार्थ—प्रभु की उपासना श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्रदाता के रूप में शुद्ध अन्तःकरण से करनी चाहिये; इस प्रकार वह उचित प्रेरणा देगा कि जिसके अनुसार कार्य करने से आदरणीय शुभ ऐश्वर्य मिलेगा ॥६॥

अष्टम मण्डल में अट्ठासीवां सूक्त समाप्त ॥

अथ सप्तर्चस्यैकोननवतितमस्य सूक्तस्य ऋषी—१—७ नृमेधपुरुमेधौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७ बृहती । ३ निचृद्बृहती । २ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ४ विराट्पङ्क्तिः । ५ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ७ मध्यमः । २, ४ पञ्चमः । ५, ६ गान्धारः ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥१॥

पदार्थः—हे (मरुत) विद्वत्जन ! (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के प्रति (वृत्रहन्तमम्) अज्ञाननाश हेतु श्रेष्ठतम अथवा मेघहन्ता सूर्य के तुल्य अतिशय प्रभावशाली (बृहत्) बृहत् साम का (गायत) गायन करो । बृहत् साम के द्वारा परमेश्वर के गुण गाओ; इस गायन से (ऋतावृधः) सनातन नियमों को बढ़ाने वाले विद्वान् (देवाय) दिव्यता का आधान करने के लिये (देव) दिव्य सुख दाता (जागृवि) जागरूक अर्थात् अतिप्रसिद्ध (ज्योति) ज्योति को (अजनयन्) प्रकटते हैं ॥१॥

भावार्थः—मानव के लिये उचित है कि सर्वदा युक्त आहार-विहार के द्वारा शारीरिक व आत्मिक विघ्नबाधाओं को दूर करते हुए प्रभु के गुणों का कीर्तन बृहत् सामगान से करें ॥१॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।

देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥२॥

पदार्थः—(अशस्तिहा) अकल्याणकारी आशंकाओं का नाशक (इन्द्रः) शुभसंकल्पकारी जीव या राजा (अभिशस्ती) सामने प्रशंसा करने वाले दम्भियों को (अप, अधमत्) धमकाकर दूर करता है । (अथ) अनन्तर वह इन्द्र (द्युम्नी) बहुत से प्रशंसारूप धनवाला (आ भुवत्) हो जाता है । हे (बृहद्भानो) किरणोंवाले सूर्य तुल्य महातेजस्वी ! (मरुद्गण) मनुष्यों अथवा पवनों के समूह से कार्यसाधक उपर्युक्त इन्द्र ! (देवाः) दिव्यगुणी इन्द्रियां अथवा विद्वत्जन (ते) आपकी (सख्याय) मित्रता हेतु (येमिरे) जीवन धारण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—प्रभु के समान धनाढ्य राजा आदि के लिये उचित है कि वे चाटुकारी दम्भियों को अपने से दूर रखें । जो सज्जन इस प्रकार दम्भियों की श्रेणी में न रहकर समर्थ पुरुषों के वास्तविक मित्र बने रहते हैं, उनकी मैत्री के लिये मानो जीवित रहते हैं; वे परम यशस्वी होते हैं ॥२॥

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) उपासक विद्वानो ! तुम उस (बृहते) महान् (इन्द्राय) प्रभु की (ब्रह्म अर्चत) वेदवाणी से वन्दना करो; वह (शतक्रतुः) सैकड़ों प्रकार के ज्ञानों तथा कर्मों का प्रमुख, (वृत्रहा) विघ्नकारकों का विध्वंसक (शतपर्वणा) सैकड़ों विभागोंवाले वज्ररूप ज्ञान से (वृत्रं) अज्ञान को (हनति) हरता है ॥३॥

महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के (३३-९६) इसी मन्त्र का अर्थ इस भांति किया है :—"हे मनुष्यो ! जो (शतक्रतुः) असंख्य प्रकार की बुद्धि व कर्मों वाला सेनापति (शतपर्वणा) असंख्य जीवों के पालन के साधन (वज्रेण) शस्त्रास्त्र से (वृत्रहन्ता) जैसे मेघहन्ता सूर्य (वृत्र) मेघ को मारता है वैसे (बृहते) बड़े (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये शत्रुओं को मारता है और (व) तुम्हारे लिये (ब्रह्म) धन व अन्न को प्राप्त करता है, उसका तुम शीघ्र सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सूर्य जैसे मेघ को नष्ट करता है वैसे जो लोग शत्रुओं को मार कर तुम्हारे ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, उनका तुम सत्कार करो । इस प्रकार कृतज्ञ होकर महान् ऐश्वर्य पाओ ॥३॥

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।

अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥४॥

पदार्थ—हे (धृषन्मन) दृढ़चेता उपासक ! (ते) तेरा (श्रवः) गुणकीर्तन, विद्याश्रवण, भोग [अन्न] आदि सब कुछ (बृहत्) विशाल (असत्) हो गया है, (धृषता) दृढ़ निश्चय द्वारा (अभि प्रभर) इसे अनुकूलता से धारण कर । (मातर) मान्य के कारण (आपः) आप्त (जवसा) वेगपूर्वक (वि, अर्षन्तु) तेरे विविध अंगों में प्राप्त हों; इस भांति दृढ़ाङ्ग होकर (वृत्रं) सुगुणों का आगमन रोकने वाली रुकावट को (हनः) नष्ट कर; (स्वः) स्वर्गलोक, सुखावस्था को (जय) जय कर ॥४॥

भावार्थ—उपासक पहले सम्यक् रूप से शास्त्र अध्ययन तथा श्रवण द्वारा ज्ञानधन की उपलब्धि करे, पदार्थविज्ञान के द्वारा उत्तमोत्तम भोगों को उपलब्ध करे; और इस सारे ऐश्वर्य को दृढ़चित्त से स्व अनुकूल बनाये रखे । ऐसा करने पर वह गुणधारण करने में आने वाले सभी अवरोधों को दूर कर सकेगा और अन्त में दिव्य सुखमयी अवस्था पा सकेगा ॥४॥

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥५॥

पदार्थः—हे (अपूर्व्य) अपूर्वगुणी एवं सर्वप्रथम (मघवन्) सम्पदा के स्वामी ! आप (यत्) जब (वृत्रहत्याय) विघ्नों के निवारण हेतु (अजायथाः) प्रकट हुए थे (तत्) तभी (पृथिवीं) इस भूमि को (अप्रथय.) विस्तृत करके धरती को बनाया (उत) और (द्यां) निराधार से प्रतीत होते अन्तरिक्ष एवं दूसरे प्रकाशित लोकों को (अस्तभ्ना) थामा; आप उनके आधार बने ॥५॥

भावार्थ—प्रभु ही वह दिव्य पदार्थ है जो सबके पूर्व प्रकटा है, पृथिवी आदि स्वतः अप्रकाशित तथा द्युलोक स्थित, स्वतः प्रकाशित—दोनों प्रकार के लोकों की रचना करने वाला परमेश्वर ही है ॥५॥

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥६॥

पदार्थ—(तत्) तभी (ते) तुमसे (यज्ञ) यजन क्रिया—दान + आदानपूर्वक सत्कर्मकरण—(अजायत) उत्पन्न हुई (आरम्भ हुई) । (तत्) तभी (हस्कृति) प्रकाश क्रिया एवं साथ ही (अर्कः) अग्नि उत्पन्न हुई जिसके नाम (घर्म, शुक्र ज्योति और सूर्य हैं) (तत् यत् जातं) वह जो कुछ उत्पन्न हुआ है, (च यत्) और जो कुछ (जन्त्वम्) उत्पन्न होगा उस (विश्वम्) सबका तू (अभिभूः असि) अभिभवकर्ता, सर्वाधिक उत्कृष्ट है ॥६॥

भावार्थः—इससे पहले मन्त्र में बताया गया है कि प्रभु से पूर्व कोई भी, कुछ भी नहीं था; पृथिवी, सूर्य इत्यादि लोक उसी ने रचे हैं । फिर संसार में सत्क्रियाएं एवं अन्धकार को दूर करने की प्रक्रिया व साधन भी उससे ही प्रचलित हुए—वह संसार में सर्वाधिक उत्कृष्ट शक्ति है ॥६॥

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।

घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७॥

पदार्थ—(आमासु) अपरिपक्व [ओषधियों आदि] में (पक्वं) परिपक्व [रस] आदि अथवा परिपक्वता को तूने (ऐरय) प्रेरणा प्रदान की; (सूर्यं) सूर्य को (दिवि) प्रकाशमान द्युलोक में (आरोहयः) चढ़ाया । उस (गिर्वणसे) वाणी से सेवन योग्य परमैश्वर्यवान् हेतु (जुष्टं) प्रीति के कारणभूत अथवा प्रिय (बृहत् साम) बृहत्साम को (घर्मं न) शोधक एवं उष्ण सूर्यताप के तुल्य (तपत) तपो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सृष्टि में हो रही सारी क्रियाओं का अधिष्ठाता है । अपरिपक्व ओषधियों में रस भी उस शक्ति से ही आता है—द्युलोक में जो प्रकाश लोक इतनी ऊंचाई पर दिखाई देते हैं—वह भी उस के सामर्थ्य के प्रतीक हैं । यों ए के

द्वारा उसकी स्तुति करना सर्वथा उचित है : बृहत्साम उसका अभीष्ट स्तुतिगान है; विद्वान् उससे ही उसका गुणगान करें ॥७॥

अष्टम मण्डल में नवासीवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ षडृचस्य नवतितमस्य सूक्तस्य ऋषी—१—६ नृमेधपुरुमेधौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती । ३ विराड्बृहती । ५ पादनिचृद्बृहती । २, ४ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५ मध्यमः । २, ४, ६ पञ्चमः ॥

आ नो॒ विश्वा॑सु॒ हव्य॒ इन्द्रः॑ स॒मत्सु॑ भूषतु ।

उप॒ ब्रह्मा॑णि॒ सव॑नानि वृत्र॒हा प॑रम॒ज्या ऋची॑षमः ॥१॥

पदार्थ—(नः) हमारे (विश्वासु) सभी (समत्सु) अग्रगमन हेतु किये गये सवनों में [युद्धों में] (हव्य) स्तुतियोग्य, (वृत्रहा) विघ्ननिवारक, (परमज्या) उत्कृष्टतम बाधाओं का नाशक (ऋचीषमः) स्तुति [गुणकीर्तन] के अनुरूप, इन्द्र परमेश्वर, आत्मा या ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रेष्ठ जन (ब्रह्माणि) वेद-वचनों को (उप आ भूषतु) समीप आकर अलंकृत करे ॥१॥

भावार्थ—जब कभी साधक की उन्नति-यात्रा में विघ्न पड़े तो वह सर्वश्रेष्ठ विघ्नहर्ता, प्रभु, [अथवा विद्वान् अथवा समर्थ व्यक्ति] का गुणगान कर उसके सान्निध्य का अनुभव करे; इस भाँति निर्भय हो जाय ॥१॥

त्वं दा॒ता प्र॑थ॒मो राध॑साम॒स्यसि॑ स॒त्य ई॑शान॒कृत् ।

तु॒वि॒द्यु॒म्नस्य॒ युज्या वृ॑णीमहे पु॒त्रस्य॒ शव॑सो म॒हः ॥२॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (त्व) आप ही (राधसां) सिद्धिकारक ऐश्वर्यों—(ज्ञान, धन) आदि—के (प्रथम) सर्वप्रथम (दाता) प्रदान करने वाले हैं। आप ही (सत्य) सत्य (ईशानकृत्)उस पर दूसरों का प्रभुत्व स्थापित करानेवाले [ऐश्वर्य देनेवाले] हैं। अतएव हम (तुविद्युम्नस्य) बहुत धन एवं ऐश्वर्यवान्, (शवस पुत्रस्य) अति बलवान् (महः) महान् आप से (युज्या) युक्त या आपके योग्य वस्तुओं की (वृणीमहे) याचना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सृष्टि की रचना करने वाला भगवान् ही प्रथम दाता है—वास्तविक स्वामी भी वही है, अतएव वही किसी को कुछ देने का अधिकारी है। उससे ही यश दिलाने वाला ऐश्वर्य, बल इत्यादि प्राप्त करने की इच्छा करे, वह भी वही जो उसके योग्य हो; प्रभु के गुणों के अनुरूप हो ॥२॥

ब्रह्मा॑ त इन्द्र गिर्वणः क्रि॒यन्ते॒ अन॑तिद्भुता ।

इ॒मा जु॑षस्व हर्यश्व॒ योज॒नेन्द्र॒ या ते॒ अम॑न्महि ॥३॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) योगियों की योगसंस्कारयुक्त वाणी से वर्णन करने योग्य (इन्द्र) प्रभु ! (ते) आपके हेतु (अनतिद्भुता) अतिशयोक्तिरहित (ब्रह्म) स्तुतिवचन [वेद में] (क्रियन्ते) किये गए हैं। हे (इन्द्र) प्रभो ! (या) जिन वेदोक्त स्तुतिवचनों का हम (ते) आपके लिये (अमन्महि) उच्चारण करते हैं, (इमाः) इन (योजना) सम्यक्तया आपके हेतु उपयुक्त स्तुतिवचनों को, हे (हर्यश्व) सुख प्रदाता वेगवती अश्वसदृश शक्तियों वाले परमप्रभु आप, (जुषस्व) सेवन करें ॥३॥

भावार्थ—प्रभु के गुणों का जो वर्णन वेदवाणी में है, वह सर्वथा स्वाभाविक है। जब साधक उन्हीं शब्दों में प्रभु के गुणों की स्तुति करता है, तब उसे यह आशा होनी स्वाभाविक है कि उन गुणों को धारण करने का प्रयास करने वाले साधक को भगवान् की सायुज्यता प्राप्त होगी ॥३॥

त्वं हि स॒त्यो म॑घव॒न्नना॑नतो वृ॒त्रा भूरि॑ न्यृ॒ञ्जसे॑ ।

स त्वं श॑विष्ठ वज्रहस्त दा॒शुषे॒ऽर्वाञ्चं॑ र॒यिमा कृ॑धि ॥४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसनीय, प्रभो ! (हि) निश्चय ही (त्व) आप (सत्य) सचमुच (अनानतः) अपराजेय रहे हैं, इसीलिये (भूरि) अत्यधिक भी (वृत्रा) विघ्नों = रुकावटों को (नि, ऋञ्जसे) सम्यक्तया भून देते हैं—(स त्वं) वह आप, हे (शविष्ठ) अतिशय बलवान् ! (वज्रहस्त) दुष्ट भावनाओं को निषेध करने की शक्तिवाले (दाशुषे) आत्मार्पित करने वाले उपासक हेतु (रयिं) ऐश्वर्य को (अर्वाञ्च) उसके समक्ष (कृधि) कीजिये ॥४॥

भावार्थ—ज्ञान, बल, धन इत्यादि समृद्धि की प्राप्ति में अनेक बाधाएं आती हैं—उपासक इन्हें भगवान् की सहायता से ही दूर कर सकता है। कैसे ? जब कि वह भगवान् के गुणों का कीर्तन करता हुआ और उन्हें स्व अन्तःकरण में धारण करने का प्रयत्न करता हुआ परमात्मा के प्रति समर्पित हो जाय ॥४॥

त्वमि॑न्द्र य॒शा अ॑स्यृजी॒षी श॑वसस्पते ।

त्वं वृ॒त्राणि॑ हंस्यप्र॒तीन्येक॒ इद॑नु॒त्ता च॑र्षणी॒धृता॑ ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) इन्द्र ! परमेश्वर ! बलवन् ! राजन् ! (त्व) तू (यशा असि) इस कीर्तिवाला है कि तू (ऋजीषी) सरलस्वभाव, सरलमार्ग से ले चलता है; हे (शवसस्पते) बल बनाये रखने वाले ! (त्व) तू (एक इत्) अकेला ही (अप्रतीनि) अदम्य (अनुत्ता) किसी अन्य के द्वारा अतिरस्कृत (वृत्राणि) मार्ग में आने वाले विघ्नों को (चर्षणीधृता) मनुष्यों की धारणा शक्ति से (हंसि) नष्ट करता है ॥५॥

भावार्थ—उपासक के लिये आवश्यक है कि वह भगवान् की सायुज्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करे उसका गुणगान इसी उद्देश्य से किया जाता है। उसके नेतृत्व में दिव्य सुख प्राप्ति का सरलतम मार्ग मिल जाता है जो सब विघ्न-बाधाओं से रहित है ॥५॥

तमु॑ त्वा नू॒नम॑सुर॒ प्रचे॑तसं॒ राधो॑ भा॒गमि॑वेमहे ।

म॒हीव॒ कृत्तिः॑ श॒रणा॑ त इन्द्र॒ प्र ते॑ सु॒म्ना नो॑ अश्नवन् ॥६॥

पदार्थ—हे (असुर) प्राणवान् ! शक्तियुक्त ! (तम् उ) उसी (प्रचेतसं) प्रकृष्टज्ञानवान (त्वा) आप से, (नूनं) निश्चय ही (राध) सफलता देने वाले ऐश्वर्य को (भागं इव) अपने दायभाग तुल्य मान (ईमहे) आपसे माँगते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र (ते) आपकी, (कृत्तिः) कीर्ति (मही) बड़ी (शरणा इव) आश्रय-स्थली के सरीखी है; (ते) आप के (सुम्ना) सुख (नः) हमें (प्र अश्नवन्) प्रकृष्ट रूप में व्याप्त हों ॥६॥

भावार्थ—भगवान् निश्चय ही सफलतादाता ऐश्वर्यसंपन्न है, हम दाय-भाग के रूप में उससे ऐश्वर्य की याचना करें अर्थात् स्वयं को उसका सच्चा उत्तराधिकारी पुत्र समझें; और एक उत्तराधिकार के रूप में ऐश्वर्य की इच्छा करें ॥६॥

अष्टम मण्डल में नब्बेवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ सप्तर्चस्यैकाधिकनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—७ अपालात्रेयी ॥ देवता-इन्द्रः ॥ छन्दः—१ पार्चीस्वराट्पङ्क्तिः ॥ २ पङ्क्तिः । ३ निचृदनुष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५, ६ विराडनुष्टुप् । ७ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः । ३—७ गान्धारः ॥

क॒न्या॒३॒॑ वार॑वाय॒ती सोम॒मपि॑ स्रु॒ताविद॑त् ।

अस्तं॒ भर॑न्त्यब्रवी॒दिन्द्रा॑य सुनवै त्वा श॒क्राय॑ सुनवै त्वा ॥१॥

पदार्थ—(वार्) [पति द्वारा] वरण को (अवायती) स्वीकार करती (कन्या) कन्या, जो (स्रुता) [शारीरिक दृष्टि से] शुष्क हो गई हो वह (सोमं) सोम-लता आदि ओषधियों के रोगनाशक रस को (अपि) निश्चय ही (अविदत्) प्राप्त करे और प्राप्त कर (अस्त भरन्ति) घर आती हुई उस रस के प्रति मन ही मन यह (अब्रवीत्) कहे कि (त्वा) तुझ सोम को मैं (इन्द्राय) रोगादि दुःख निवारणार्थ (सुनवै) निष्पादित करती हूँ, (शक्राय) समर्थ होने हेतु (सुनवै) सम्पादित कर रही हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो कन्या किसी रोग के कारण शरीर से निर्बल तथा निस्तेज हो उसे विवाह से पूर्व सोमलता आदि रोगनाशक ओषधियों का रस सेवन कराकर पहले समर्थ और शक्तिशाली बनाना चाहिये, ऐसा हो जाने पर ही वह वस्तुतः पति के स्वीकार-योग्य बनती है ॥१॥

अ॒सौ य एषि॑ वीर॒को गृ॒हंगृ॑हं वि॒चाक॑शत् ।

इ॒मं जम्भ॑सुतं पिब धा॒नाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म् ॥२॥

पदार्थ—(असौ) वह जो (वीरक) [पूर्णशरीरात्मबलप्रद ऋ० द० ऋ० १-४०-३] शरीर तथा आत्मा को पूर्ण बलशाली बनाने वाला [सोम रस] (गृह गृह) प्रत्येक घर अर्थात् जीवात्मा के निवासभूत शरीर को (विचाकशत्) विशेष रूप से कान्तिमान् बनाता हुआ (एषि) सक्रिय है, (इम) इसे हे इन्द्र ! रोगादि दुःखों को काटने के लिए कृतसंकल्प मेरे आत्मा ! (पिब) सेवन कर, यह जो (जम्भसुतम्) औषधि को मुख में प्रसकर निकाला गया है; (धानावन्तं) पुष्टिप्रद है (करम्भिणम्) सभी दिव्य पदार्थों से मिश्रित है (अपूपवन्तम्) दुर्गन्धित न होने के पदार्थ युक्त है और जो (उक्थिनम्) उक्थ अर्थात् प्राण की शक्ति से संयुक्त है, शरीर को स्फूर्ति प्रदाता है [शरीर को उठानेवाली प्राणशक्ति का नाम ही उक्थ है—सोमरस में भी वही शक्ति है] ॥२॥

भावार्थ—सोमलता इत्यादि औषधियों का जो रस—सोम यहाँ अभिप्रेत है-वह मुँह में चाबा जाता है, उसमें पौष्टिक तथा दिव्य गुण वाले पदार्थों का मिश्रण है, साथ ही वह ताप आदि से विश्लिष्ट हो दुर्गन्ध नहीं देता और प्राणशक्ति का दाता है। निर्बल कन्या पतिवरण से पूर्व ऐसे सोम का सेवन करे ॥२॥

आ च॒न त्वा॑ चिकित्सा॒मोऽधि॑ च॒न त्वा॒ नेम॑सि ।

शनै॑रिव शन॒कैरि॒वेन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्दो) सोमरस की आनन्ददायक बूँद ! (शनैः इव शनकैः इव) धीरे ही धीरे (इन्द्राय) रोगादि दुःखनिवारक शक्ति प्रदान करने हेतु (परिस्रव) स्रवित हो, हम (त्वा) तेरे (न चन अधि+ईमसि) गुणावगुणों को नहीं जानते यह नहीं, भली-भाँति जानते हैं। इसलिये (त्वा) तुझ पर (चिकित्साम चन) नियन्त्रण भी रखते हैं ॥३॥

भावार्थ—सोमरस की मात्रा को पूर्णतः नियन्त्रित रखना चाहिये। यह बलप्रद औषधि बूँद-बूँद कर सर्वथा नियन्त्रित मात्रा में ही दी जाय—यह धीरे-धीरे प्रभावी होती है ॥३॥

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥४॥

पदार्थः—वह सोम (कुवित् शकत्) अत्यधिक समर्थ बनाए; (कुवित् करत्) हमे खूब परिष्कृत करे, (नः) और हमें (कुवित्) बहुत (वस्यसः) बसाने वाली शक्तियों से (करत्) सम्पन्न करे । (कुवित्) जिससे कि (पतिद्विषः) [दुर्बलता इत्यादि के कारण] पतियुक्त होने की भावना से ही मानो द्वेष करनेवाली हम (यती) क्रियाशील हो (इन्द्रेण) शक्तिशाली वीर्यवान् [वरण किये पति] के साथ (सगमामहै) संगम कर पाएं ॥४॥

भावार्थः—सोमलता इत्यादि औषधियों के रस का सेवन कर दुर्बल तथा रोगिणी कन्याएँ भी, जो किसी को पतिवरण करने के विचारमात्र से भयभीत थीं, शक्तिसम्पन्न हो वीर्यवान् पति को चाहने लग जाती हैं ॥४॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शक्ति तथा ऐश्वर्य इच्छुक मेरे जीवात्मन् ! (इमानि त्रीणि) ये तीन (विष्टपा—विष्टपानि) अपने मे व्याप्त होने वालि को बचा रखने वाले—पात्र हैं [शरीर की तीन गुहाएं हैं—शिरो गुहा, उरो गुहा एवं उदर गुहा] (तानि) इन तीनो को (विरोहय) स्वस्थ कर, वृद्धिशील कर, उन्नतिशील कर । इनमे से (ततस्य) इस सन्तति के रूप मे निरन्तर चलने वाले [तन्+क्त] शरीर का (शिरः) शिरोभाग है— [दूसरी गुहा] (उर्वराम्) [प्राण से फैलने वाली] उरो गुहा है, [तथा तीसरी गुहा] (इदं मे उपोदरे) मेरे शरीर के मध्य भाग मे स्थित उदर गुहा है ॥५॥

भावार्थः—शरीर तीन क्षेत्रों या गुहाओं मे विभाजित है—शिरोगुहा, उरोगुहा तथा उदरगुहा । पुत्रपौत्रादि रूप मे फैलने वाला —आगे चलने वाला शरीर है—उसका ही यहा 'तत' से सकेत है । इसकी दो गुहाए शिर तथा 'उदर' तो यहां स्पष्ट ही सकेतित हैं—'उर्वरा तथा 'उरस्' शब्द का मूल [उर् गमने सौत्र धातु है अथवा 'ऋ' धातु है] उरो गुहा में हृदय, फेफड़े एवं धमनियां हैं, जो प्राण आदि के द्वारा निरन्तर गतिशील हैं । इस प्रकार इन तीनों क्षेत्रो की शुद्धि से ही शरीर शुद्ध तथा सशक्त होता है ॥५॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥६॥

पदार्थः—इसी को पुनः स्पष्ट किया गया है । (च) और (असौ या नः उर्वरा) वह जो हमारी उरो गुहा है उसे (आत्) तथा (इमां) इस (मम) मेरी जो (तन्वं) पतली-दुबली सूक्ष्म सी उदरगुहा है—उसे (अथ उ) तथा च (ततस्य) शरीर का (यत्) जो (शिरः) शिरोभाग, मस्तिष्कगुहा है—(सर्वा ता) उन सभी को (रोमशा) वर्धनशील कर ॥६॥

भावार्थः—शिरोगुहा स्थित मस्तिष्क तथा ज्ञानेन्द्रियां, उरोगुहा के हृदय, फेफड़े तथा उदर गुहा में स्थित आंतें, गुर्दे आदि अग वृद्धिशील तथा सशक्त हों तो मानव स्वस्थ रहता है ॥६॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सोमरस के उपभोग के द्वारा शक्तिशाली बने मेरे आत्मन् ! (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों के कर्ता तथा विज्ञानवान् ! (अपालां) शुष्क पालन-पोषण रहित कन्या को (रथस्य) इस रमणीय वाहन शरीर के (खे) दोष मे से, (अनसः) [अन् प्राणने+असुन्, अन. जो समर्थ बनाता है वह प्राण ।] प्राण के (खे) दोष में से तथा (युगस्य) पर्याप्त समय से चले आये (खे) अन्य दोष में से इस प्रकार निर्दोष करके (त्रिष्पूत्वी) तीन प्रकार से निर्दोष कर (सूर्यत्वचम्) सूर्य के तुल्य तेजस्वी त्वचा वाली (अकृणोः) कर दे ॥७॥

भावार्थः—सोमलता इत्यादि औषधियों के रस का विधिवत् उपयोग करने से शरीर के सम्पूर्ण दोष, प्राणापान आदि क्रियाओं के दोषो से उत्पन्न रोग मिट जाते हैं । पोषण के अभाव में रिक्त एवं खोखला हुआ शरीर पुनः कान्तिमान् हो जाता है ॥७॥

अष्टम मण्डल में इक्यानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदृचस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—३३ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २, ४, ८—१२, २२ २५—२७, ३० निचृद्गायत्री । ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद्गायत्री । ५ आर्ची स्वराड्गायत्री । ६, १३—१५, २८ विराड्गायत्री । १६—२१, २३, २४, २९, ३२ गायत्री ॥ स्वरः—१ गान्धारः । २—३३ षड्जः ॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थः—(वः) तुम प्रजा द्वारा (अन्धसः) समर्पित अन्न अथवा कर आदि भोग्य का (आ पान्तं) सर्वात्मना भोग करते हुए, (विश्वासाहं) सब शत्रुओं पर विजय पाने वाले (शतक्रतुं) बहुत प्रकार के ज्ञान के ज्ञाता तथा अनेक कर्म करने वाले (चर्षणीनां मंहिष्ठं) अपने ऐसे गुणो से समझ-बूझवाले लोगों के भी अतिशय माननीय (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा की (अभि प्र गायत) प्रकृष्ट स्तुति करो ॥१॥

भावार्थः—जो राजा बलवान् है अतएव शत्रुजेता है, वह स्वय विद्वान् प्रजा की भलाई के अनेक कार्यों को करता है, विवेकशील जनों का भी वह माननीय है और प्रजा उसे कर-रूप में भांति-भांति के भोग्य प्रदान करती है ॥१॥

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम् ।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२॥

पदार्थः—ऐश्वर्यवान् राजा कौन है ? उत्तर देते हैं—(पुरुहूतं) अनेकों द्वारा अपनी सहायता के लिये पुकारे गये, (पुरुष्टुतं) बहुत से जानने वालो द्वारा जिसकी स्तुति की गई है, जो (गाथान्यं) प्रशसनीय उपदेशों का दाता है, (सनश्रुतम्) सनातन शास्त्र जिसने सुने हैं ऐसे राजपुरुष को (इन्द्र इति) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजा के नाम से (ब्रवीतन) पुकारो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजा की परिभाषा बताई गई है—अर्थ भी सुस्पष्ट है ॥२॥

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः ।
महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रः इत्) पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त राजा ही (नः) हमे (महानां वाजानां दाता) आदरणीय बल, विज्ञान, धन इत्यादि ऐश्वर्यों का दाता (नृतुः) विविध रूप मे, नट के तुल्य, कर्मकर्त्ता अथवा सर्व नेता (महान्) महान् ऐश्वर्य (अभिज्ञु) नम्रता पूर्वक (आयमत्) प्रदान करे ॥३॥

भावार्थः—राजा तो राजा ही है, परन्तु वही राजा वस्तुतः महान् तथा उदार है जो नम्र हो प्रजा मे अपना ऐश्वर्य बांटता है ॥३॥

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥४॥

पदार्थः—(शिप्री) सुन्दर मुख नासिका आदि से युक्त तथा मुकुटधारी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजपुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान तथा बल युक्त, (प्रहोषिणः) प्रकृष्ट रूप से समर्पित किये हुए (यवाशिरः) यव आदि को मिलाकर पकाये गए, (इन्दोः) आनन्ददायक, (अन्धसः) स्वादु अन्न का (अपात्) ग्रहण तथा उसकी रक्षा करे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शासक के कर्त्तव्य तथा उसके लक्षण का संकेत दिया गया है; अर्थ स्पष्ट है ॥४॥

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥५॥

पदार्थः—हे प्रजाजनो ! (सोमस्य पीतये) सृष्ट पदार्थों के ज्ञान एव उनकी (पीतये) रक्षार्थ, उन्हें बनाये रखने हेतु (तं) उस पूर्वोक्त (इन्द्रं) राजपुरुष की (अभि प्रार्चत) स्तुति करो; रक्षा के लिये उसी से प्रार्थना करो; (तत् इत्) यह स्तुति कर्म ही (अस्य वर्धनम्) इस सोम को बढ़ाता भी है ॥५॥

भावार्थः—पूर्वोक्त मन्त्र से वर्णित राजा ही राष्ट्र के ऐश्वर्य का उत्तम प्रहरी हो सकता है । सकल प्रजा ऐसे शासक को ही रक्षा के लिये नियुक्त करे ॥५॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा ।
विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यगुण सपन्न राजा (अस्य) प्रजा के द्वारा समर्पित इस कर आदि के (मदानां) हर्षदायक आनन्द का (पीत्वा) पान कर उस (देवस्य) समर्पित दिव्य धन आदि से प्राप्त (ओजसा) ओजस्विता के द्वारा (विश्वा भुवना अभिभुवत्) सभी लोकस्थ शक्तियों को पराभूत करता है ॥६॥

भावार्थः—प्रजा के द्वारा प्रसन्नता से समर्पित कर आदि धन से राजा न केवल हर्षित रहता है, अपितु, वह उससे सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वविजयी भी बन जाता है ॥६॥

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥७॥
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥८॥

पदार्थः—हे राजा के प्रशंसको ! (त्यम् उ) उस ही (सत्रासाहं) बहुतों पर विजयी (वः) प्रजाजनो की (विश्वासु) सभी (गीर्षु) वाणी द्वारा गाये गये स्तोत्रों में (आयतं) विस्तृत, (युध्मं सन्तं) योद्धा होने से (अनर्वाणं) अन्यों [शत्रुओं] की पहुँच से बाहर, (सोमपां) विविध पदार्थों के भोक्ता अतएव (अनपच्युतं) अहिंसित तथा (अवार्य क्रतुं) अनिवारणीय कृत्यों वाले (नरं) नेता राजा को (ऊतये) रक्षा, देखभाल व सहायतार्थ (आ च्यावयसि) लिया जाता है ॥७ ८॥

भावार्थः—दोनो ही मन्त्रो का अर्थ एक साथ किया गया है । प्रजाजन किन गुणों से युक्त राजपुरुष को अपना रक्षक बनाएं—यह इनमें दर्शाया गया है । मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट है ॥७, ८॥

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥९॥

पदार्थ—प्रजाजनों के बीच विद्यमान ऐश्वर्यशाली—इन्द्रपदवाच्य राजा से प्रजापुरुष प्रार्थना करते हैं—हे (ऋचीषम) सर्वथा स्तुति योग्य ! (विद्वान्) सारी बातों से सुपरिचित आप (इन्द्र) राजपुरुष ! (नः) हमें (रायः) दातव्य ऐश्वर्य (पुरु) अनेक बार (शिक्षा) प्रदान करें, (पार्य) निर्णायक—पार पहुँचानेवाले—(अमे) ऐश्वर्य की प्राप्ति तक (न अव) हमें बचा ॥९॥

भावार्थ—राजा ऐश्वर्ययुक्त है ; वह अनेक अवसरों पर प्रजा को ऐश्वर्य के साधन दे उन्हें ऐसा ऐश्वर्य देता है कि जो प्रजा को सब बाधाएं पार करा लक्ष्य तक पहुँचा देता है ॥९॥

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया ।
इषा सहस्रवाजया ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष ! (अतः चित्) अपने वर्तमान स्थान से ही, (शतवाजया) सैंकड़ों बल वाली, (सहस्रवाजया) हजारों सामर्थ्य-वाली (इषा) समृद्धि सहित (णः=नः) हमारे (उप) समीप (आयाहि) चल-कर आ ॥१०॥

भावार्थ—शासक की जो समृद्धि—ज्ञान, बल तथा धन आदि—का भण्डार है उससे अनेक उपयोगी काम हो सकते हैं । राजा प्रजा के मध्य जब पहुँचे, उस समय उसका भण्डार दानहेतु खुला हो ॥१०॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे ।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥११॥

पदार्थ—हे (शक्र) समर्थ ! (वज्रिवः) शस्त्र-अस्त्र इत्यादि साधनों वाले, (गोदरे) भूमि एवं पर्वत आदि के विदारण सरीखे प्रयत्नसाध्य कर्मों के द्वारा धनधान्य प्राप्त करने वाले राजपुरुष ! (धीवतः) प्रशस्त कर्म तथा ज्ञान वाले पुरुषों की (धियः) ज्ञान एवं कर्म शक्तियों को (अयाम) प्राप्त करें और (पृत्सु) संघर्ष स्थलों में (जयेम) विजयी हों ॥११॥

भावार्थः—राजपुरुष का आदर्श समक्ष रख हम भी उसी के समान नाना विद्याओं के ज्ञाता तथा कर्मकुशल बनें और इस भाँति राजा-सहित हम सभी अपनी बाधाओं पर विजय पाएं ॥११॥

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा ।
उक्थेषु रणयामसि ॥१२॥

पदार्थ—(यथा) जिस भाँति (गावः) गौ आदि पशुओं को (यवसेषु) भक्ष्य तृण घास आदि से आनन्दित करते हैं, वैसे ही, हे (शतक्रतो) विविध कर्म शक्तियुत, नेता राजपुरुष (वयम् उ) हम ही (त्वा) आप को (उक्थेषु) कथन योग्य प्रशंसा वचनों से हर्षित करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—प्रजा द्वारा राजपुरुष की उचित शब्दों में प्रशंसा राजपुरुष को प्रजा के कल्याण के लिए प्रोत्साहन देती है—अतः वह करनी ही अपेक्षित है ॥१२॥

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो ।
अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥१३॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असीम ज्ञान तथा कर्मशक्तिशाली ! (वज्रिन्) कठोर शस्त्रास्त्रादि साधनयुक्त ! राजपुरुष ! तेरी कृपा से हम (विश्वा हि) प्रायः सभी (मर्त्यत्वना) मानवोचित (अनुकामा) कामनाओं को और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) ग्रहण करें ॥१३॥

भावार्थः—समाज के नितान्त ज्ञानी व कर्मिष्ठ जन राजपद योग्य होते हैं । साधारण व्यक्ति उनकी कृपा से अपनी सभी मानवोचित कामनाएं तथा आशाएं सफल कर पाते हैं ॥१३॥

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥१४॥

पदार्थः—हे (शवसः) बल के (पुत्र) रक्षक ! अथवा बल से अनेकों के रक्षक राजपुरुष ! (कामकातयः) कामनाओं की पूर्ति के अभिलाषी जन (त्वे) तुझ पर (सु, अवृत्रन्) भली-भाँति निर्भर हैं । हे (इन्द्र) शक्तिशाली राजपुरुष ! (त्वां) तुझ से कोई भी (न अतिरिच्यते) बढ़कर नहीं ॥१४॥

भावार्थ—समाज में सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वाधिक शक्तिशाली पुरुष को उच्चतम या राजपद प्रदान किया जाता है । साधारण जन सब सुख-साधनों हेतु स्वभावतः उसी पर निर्भर हैं ॥१४॥

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा ।
धियाविड्ढि पुरन्ध्या ॥१५॥

पदार्थ—हे (वृषन्) बलशाली एवं सुखप्रदाता राजपुरुष ! (सः) वह तू (सनिष्ठया) स्थिर अथवा हमारे प्रति घनिष्ठ अनुराग रखनेवाली, (घोरया) महा तेजस्विनी इसलिए आदरणीया, (द्रवित्न्वा) शीघ्रता से कार्यसाधिका, (पुरन्ध्या) संसार भर की रक्षिका (धिया) प्रज्ञा तथा कर्मशक्ति सहित (नः) हमारे समाज में (आविड्ढि) प्रवेश कर ॥१५॥

भावार्थ—समाज जिस व्यक्ति का राजपुरुष के रूप में चयन करता है उसकी विचारशक्ति तथा कर्मशक्ति शीघ्र कार्य करने वाली तो हो ही, साथ ही उस पुरुष का समाज के प्रति भी अनुराग हो और वह इतना तेजस्वी हो कि स्वभाव से ही सब उसका आदर करें ; अतिपरिचयदोष के कारण वह मान-हानि का शिकार न बने ॥१५॥

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
तेन नूनं मदे मदेः ॥१६॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) सैंकड़ों प्रकार के ज्ञान तथा क्रिया शक्ति से समृद्ध (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! (नूनं) निस्सन्देह (यः) जो (ते) आपका (द्युम्नितमः) नितांत यशस्वी (मदः) हर्ष है; (तेन मदे) उस हर्ष में (नूनं) अब (मदेः) हमें भी हर्षित बना ॥१६॥

भावार्थ—हर्षित तो सभी होना चाहते हैं; ऐश्वर्यवान् जन अपनी समृद्धि के बल पर हर्ष में रत रहते हैं ; परन्तु उपासक तो परमेश्वर से वही हर्ष मांगता है कि जिस हर्ष से परम प्रभु हर्षित रहते हैं—अर्थात् अत्यन्त यशस्वी हर्ष । इस लोक के ऐश्वर्यवान् व्यक्ति ऐसे हर्ष भी मनाते हैं, जो उनके अपयश के सूचक हैं । ऐसे हर्षों से उपासक बचे ॥१६॥

यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य ओजोदातमो मदः ॥१७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! उस हर्ष में अब हमें भी हर्षित कर कि (यः) जो (ते) तेरा हर्ष (चित्रश्रवस्तमः) नितांत आश्चर्यजनकरूप से अतिशय श्रवण करने योग्य या प्रशंसनीय है; (यः) जो (वृत्रहन्तमः) विघ्नकारी, गुणों की अवरोधक शक्तियों को नष्ट करने में समर्थ है और (यः) जो (ओजोदातमः) ओजस्विता का आधान करने में समर्थ है ॥१७॥

भावार्थः—निश्चित रूप से ही इस मन्त्र में वर्णित ईश्वरीय हर्ष सर्वथा निष्पाप ही होता है , मनुष्यों को ऐसे ही हर्ष का सेवन करना अपेक्षित है ॥१७॥

विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः ।
विश्वासु दस्म कृष्टिषु ॥१८॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ के तुल्य उदारों के तथा पाषाणवत् दृढ़ तथा शत्रुनाशक जनों के स्वामी ! (सत्य) न्यायनिष्ठ ! एवं (दस्म) अज्ञानान्धकार नाशक ! (सोमपाः) ऐश्वर्य पालक ! (यः) जो (त्वादत्तः) आपका दिया हुआ हर्ष (विश्वासु) सभी (कृष्टिषु) मनुष्यों में विद्यमान है, हम उसे (ते) आपका (हि) ही (विद्मा) जानें ॥१८॥

भावार्थ—भगवान् सर्व प्रकार के विविध ऐश्वर्यों का भण्डार हैं और साथ ही जैसे मेघ उदारता से जल देता है, वैसे ही वे भी अपना ऐश्वर्य मानवों में बाँट देते हैं । अपने चारों ओर ऐश्वर्यवानों को प्रसन्न देख हम यह अनुभव करें कि इनकी प्रसन्नता तभी तक है जब तक कि ये परमेश्वर की भाँति निष्पाप हर्ष के भागी हों—सपाप हर्ष टिकाऊ नहीं ॥१८॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१९॥

पदार्थः—(मद्वने) आनन्द विभोर (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् हेतु (सुतं) निष्पादित दिव्य आनन्द की (नः गिरः) हमारी वाणी (परि, स्तोभन्तु) सर्वत प्रशंसा करें । पुनश्च इस (अर्कं) सारभूत सोम तत्त्व की (कारवः) कर्म दक्ष—परम लक्ष्य के कुशल साधक ही (अर्चन्तु) सेवा करते हैं—अथवा इसे प्राप्त करते हैं ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा आनन्दस्वरूप हैं ; हमें उनके आनन्द का मर्म समझना चाहिए और हम उसकी प्रशंसा कर उसे प्राप्त करने की अभिलाषा मन में जगाएं । कुशल साधना से ही यह दिव्य आनन्द प्राप्त हो सकता है ॥१९॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥२०॥

पदार्थ—(संसदः) सम्यक् स्थिरता सहित टिकाऊ (सप्त) सप्त इन्द्रियां अथवा सप्तऋषि (विश्वा) सभी (यस्मिन् अधिश्रियः) जिस अधिष्ठाता का आश्रय ग्रहण करते हैं उस (इन्द्रं) ज्ञानघन के मन को (सुते) योगयज्ञ में ऋतम्भरा की सिद्धि के प्रयोजन से (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—पांचों ज्ञानेन्द्रियां, मन तथा बुद्धि ये सातों ऋषि जीवात्मा के अधिष्ठातृत्व में ज्ञानयज्ञ का सम्पादन करते हैं । इस ज्ञान एवं योगयज्ञ का सम्पादन करते हुए ऋतम्भरा प्रज्ञा की सिद्धि होने पर जीवात्मा को दिव्य आनन्द प्राप्त होता है ॥२०॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥

पदार्थः—(देवासः) दिव्य इन्द्रियाँ (त्रिकद्रुकेषु) शरीर-आत्मा-मन की पीड़ाओं की स्थितियों में (यज्ञं) उपासकों के संगमनीय अथवा पूजनीय (चेतनम्) ज्ञान आदि गुणोंवाले प्रभु का (अत्नत) विस्तार करते हैं—उसका विस्तार सहित मनन अथवा

ध्यान करते हैं। (तं इत्) उस ही मनन को (नः) हमारी (गिरः) वाणी (वर्धन्तु) बढ़ाए ।।२१।।

भावार्थः—किसी भी पीड़ा की स्थिति में मानव परम चेतन प्रभु की शक्ति को ध्यान में लाता है। यदि हम वाणी से प्रभु का गुणकीर्तन करते रहें तो उक्त तीन पीड़ाओं की अवस्थाओं से अतिरिक्त अवस्थाओं में भी हमें परमात्मा का सान्निध्य-सा मिलता है ।।२१।।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।।२२।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशाली प्रभु! (सिन्धवः) नदी, नद आदि के जल जैसे (समुद्रं आ विशन्ति) समुद्र में ही समाते हैं, कुछ भी शेष नहीं रहता; वैसे ही तुझ परमेश्वर में (इन्दवः) सभी आनन्दकर ऐश्वर्यरूप पदार्थ (आ विशन्ति) चारों ओर से आकर प्रविष्ट हो जाते हैं, (त्वां अति) तुझ परमेश्वर को लाँघ (न अतिरिच्यते) कोई वस्तु शेष नहीं रहती ।।२२।।

भावार्थ—सृष्टि के सकल पदार्थों से मिलनेवाला आनन्दरस उनके रचयिता प्रभु में ही निहित है; उससे बाहर व उससे बड़ा कोई पदार्थ या उससे प्राप्त होनेवाला आनन्द नहीं। सृष्टिरचित पदार्थों से मिलनेवाला आनन्द प्रभु के दिव्य आनन्द से भिन्न या अधिक अथवा उत्कृष्ट नहीं होता ।।२२।।

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।

य इन्द्र जठरेषु ते ।।२३।।

पदार्थ—हे (वृषन्) सुखदाता! (जागृवे) जागरूक! सदैव सतर्क! (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर! (य) जो (ते) तेरे (जठरेषु) उदर की भाँति अन्तर्हित सुखाधिष्ठानों में (सोमस्य) ऐश्वर्य का (भक्षं) मेरा भक्षणीय या सेवनीय अंश है उसे तूने (महिना) अपनी बुद्धि से (विव्यक्थ) व्याप्त किया है ।।२३।।

भावार्थ—भगवान् की सृष्टि के पदार्थों में मानव का जितना सेवनीय अंश है—उस पर प्रभु की बुद्धि का अधिकार है। परमात्मा मनुष्य के कर्मानुसार अपनी विवेक बुद्धि से भोग्य पदार्थों को मानो वितरित करते हो ।।

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।

अरं धामभ्य इन्दवः ।।२४।।

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) विघ्नहर्ता! (इन्द्र) प्रभु! (सोम) ऐश्वर्य (ते) तेरे (कुक्षये) उदर तुल्य अन्तर्हित अधिष्ठान हेतु [कोश] के (अरं) पर्याप्त (भवतु) होता है। (इन्दवः) सभी आनन्द दायक पदार्थ तेरे (धामभ्य) पारिवारिक जनों [धाम—गृहनिवासियों] के लिए (अरं) प्रचुर हैं ।।२४।।

भावार्थ—पहले मन्त्र के अनुसार प्रभु दिव्यानन्द का दाता है; उसके वे कोश उसमें स्थापित तथा उदरतुल्य अन्तर्हित हैं। इस मन्त्र में कहा गया है कि इस कोश हेतु पर्याप्त ऐश्वर्य प्राप्त होता रहता है—और केवल उसके लिये ही नहीं, अपितु ब्रह्माण्डरूप उसके नानाविध प्रतिष्ठानों में बसने वाले संसारी जन उसके आत्मीय ही हैं, उनके लिये भी उसके कोश में पर्याप्त ऐश्वर्य संचित रहता है ।।२४।।

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे ।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ।।२५।।

पदार्थ—(श्रुतकक्ष) वैदिकज्ञान सम्पन्न विद्वान् (इन्द्रस्य) भगवान् सम्बंधी (अश्वाय) शीघ्र गमनागमनशक्ति अर्थात् कर्मशक्ति हेतु (अरं) पर्याप्त, (गवे) ज्ञानशक्ति के लिए (अरं) पर्याप्त तथा (धाम्ने) परमेश्वर की आधारशक्ति के लिये (अरं) पर्याप्त (गायति) वन्दना करता है ।।२५।।

भावार्थः—पूर्व मन्त्रों में बताया गया है कि परमेश्वर में ही दिव्य आनन्द के कोश हैं। इन आनन्दमय कोशों से मानव को आनन्द प्राप्त होता है। मानव अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को सशक्त बनाकर इस प्राप्ति को अनुभव कर सकता है ।।२५।।

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि ।

अरं ते शक्र दावने ।।२६।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पन्न राजपुरुष! (सोमेषु) ऐश्वर्यप्रदाता पदार्थों के (नः) हमारे द्वारा (सुतेषु) विद्या व सुशिक्षा द्वारा निष्पन्न कर लेने पर, उनका शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिए जाने पर आप (हि अरं भूषसि स्म) निश्चय ही समर्थ हो जाते हैं। हे (शक्र) दानसमर्थ! (ते) तेरी (दावने) दानशीलता हेतु भी (अरम्) वह शुद्ध ज्ञान समर्थ है ।।२६।।

भावार्थः—प्रभु-भक्त मानव जब विद्या तथा सुशिक्षा के द्वारा सृष्टि के विभिन्न पदार्थों का सार पा लेता है तो उसके राष्ट्र अध्यक्ष राजपुरुष की दानशक्ति भी बहुत बढ़ जाती है। प्रजा का ज्ञानबल बढ़े तो राष्ट्र की शक्ति में भी वृद्धि होती है ।।२६।।

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।

अरं गमाम ते वयम् ।।२७।।

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ जैसे उदार तथा पाषाणवत् शक्तिशाली प्रभु! (नः) हमारी (गिरः) वाणी (त्वां) तुझ तक (पराकात्तात् चित्) दूर से भी दूर (नक्षन्त) पहुँच जाती हैं (वयम्) हम (ते) तुझे (अरं) पर्याप्त (गमाम) समझलें ।।२७।।

भावार्थ—प्रभु से अधिकाधिक विमुख व्यक्ति भी उसके गुणकीर्तन से उसे पर्याप्त समझ लेता है। स्पष्ट है कि प्रभु के गुणों की स्तुति अर्थ समझते हुए ही करें ।।२७।।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।

एवा ते राध्यं मनः ।।२८।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य साधक! (हि वीरयुः एव असि) तू वीरो एवं वीरता का प्रेमी तो निश्चय ही है, फिर तू (शूर उत स्थिर) दुष्ट दोषों का निवारक व निश्चल प्रकृति भी है। (एवा) इसी भाँति (ते) तेरा मन भी (राध्यम्) संशोधित करने योग्य है ।।२८।।

भावार्थ—वीर एवं वीरता प्रेमी साधक शूर तथा निश्चल एवं दृढ़ स्वभाव का तो होता ही है, यदि वह प्रभुभक्ति के दिव्य आनन्द का रस लेना चाहे तो वह अपने मन को सुसंस्कृत करे ।।२८।।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।

अधा चिदिन्द्र मे सचा ।।२९।।

पदार्थ—हे (तुवीमघ) भाँति-भाँति के ऐश्वर्य के धनी परमात्मा! (विश्वेभि) सभी (धातृभि.) पोषणकारियों द्वारा (राति एवा) दानशीलता ही (धायि) धारण की गई है, (अधा) इसके अतिरिक्त तो (इन्द्र) हे शक्तिशाली! तू (मे) हमारा (सचा) सखा ही है ।।२९।।

भावार्थ—परमेश्वर पोषणकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध है; और पोषणकर्त्ता कोई भी हो, वह दानशील होगा ही, अन्यथा पोषणसामर्थ्य कैसे देगा! सच्चे भक्त का तो भगवान् सदैव साथी, सखा ही होता है—वह अपने सखा हमें पोषणसामर्थ्य क्यों न प्रदान करेगा? ।।२९।।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।

मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।।३०।।

पदार्थ—हे (वाजानां पते) ज्ञान, बल, धन इत्यादि ऐश्वर्यों के संरक्षक राजपुरुष! (ब्रह्मा इव) योगिराज चतुर्वेदवेत्ता विद्वान् जैसे (तन्द्रयुः) आलसी नहीं होता वैसे तू भी (मा सु भव) तन्द्रालु न बन, सदैव जागृत रह। सतर्क रह कर ऐश्वर्यों की रक्षा कर। (सुतस्य) निष्पादित (गोमतः) प्रशस्त स्तोताओं वाले ऐश्वर्य में (मत्स्व) हर्षित हो ।।३०।।

भावार्थ—चतुर्वेदवेत्ता विद्वान् के तुल्य राजपुरुष भी कभी आलसी नहीं होना चाहिए, राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षार्थ वह सदैव सतर्क रहे और इस भाँति विविध स्तोताओं से प्रशंसित ऐश्वर्य में मग्न रहे ।।३०।।

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् ।

त्वा युजा वनेम तत् ।।३१।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) इन्द्र! (अक्तुषु) रात्रि के तिमिर के समय में (दिशः) किसी भी दिशा से आकर कोई (सूर) छापा मारनेवाला चोर, आदि (नः) प्रजा को (न आ यमत्) न दबावे। अथवा हे मेरे दिव्य मन! अज्ञान की अवस्था में कोई दुष्ट प्रेरणा दायक दुर्भाव आदि हमें न दबोच ले। (त्वा युजा) तुझ से मिले हुए हम (तत्) उस आक्रमण को (वनेम) परास्त करें ।।३१।।

भावार्थ—शासक सतर्क रहे तो रात्रि में भी उसकी प्रजा किसी अप्रत्याशित आक्रामक का शिकार नहीं होती, प्रजा तथा राजा मिलकर ऐसे आक्रमण के समय विजयी होते हैं। ऐसे ही यदि मानव-मन सजग रहे तो दुर्भावनाएं दबोच नहीं सकतीं, दिव्य मन, संकल्पशक्ति की सहायता से मानव की दुर्भावनाओं पर विजय पा लेता है ।।३१।।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।

त्वमस्माकं तव स्मसि ।।३२।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् तथा दिव्य मन! (त्वया युजा इत्) तुझ सहयोगी सहित ही हम (स्पृध) स्पर्धा करनेवाले शत्रु एवं शत्रुभावनाओं की चुनौती का (प्रति ब्रुवीमहि) प्रत्युत्तर देते हैं। हे (इन्द्र) राजन्! (त्वं अस्माकम्) तू हमारा रह और हम (तव स्मसि) तेरे ।।३२।।

भावार्थः—राजा तथा प्रजा परस्पर मित्र व सहायक रह कर सभी ईर्ष्यालुओं पर विजय पा सकते हैं। ऐसे ही यदि मन तथा इन्द्रियां परस्पर सहायक एवं सखा रहें तो दुष्ट भावनाएं मानव जीवन को नष्ट नहीं कर सकतीं ।।३२।।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ।।३३।।

पदार्थ—हे (इन्द्र) राजन्! हे दिव्य मन! (कारव.) कर्म कुशल प्रशासक प्रजाजन एवं कर्मकुशल इन्द्रियां (त्वायव) तुझे पाना चाहते हुए, तेरी मित्रता की कामना करते हुए (त्वां इत् हि) निश्चय ही तुझे ही (अनुनोनुवतः) प्रणाम करते हुए (चरान्) जीवन व्यतीत करें ।।३३।।

भावार्थ—राष्ट्र मे राजा के प्रशसक कर्मकुशल व्यक्ति राज्य अनुशासन मे भक्तिभाव से रहे तो राष्ट्र का जीवन सुखी रहता है और दिव्य मन एव इन्द्रियों का परस्पर श्रद्धापूर्ण सहयोग रहता है तो मानव-जीवन सुखपूर्ण रहता है ॥

अष्टम मण्डल में बानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुस्त्रिंशदृचस्य त्रिनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषि—१—३४ सुकक्षः ॥ देवता—१—३३ इन्द्रः । ३४ इन्द्र ऋभवश्च ॥ छन्द—१, २४ ३३ विराड्गायत्री । २—४, १०, ११, १३, १५, १६, १८, २१, २३, २७—३१ निचृद्गायत्री । ५—९, १२, १४, १७, २०, २२, २५, २६, ३२, ३४ गायत्री । १९ पादनिचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—हे (**सूर्य**) प्रेरक प्रभो ! आप (**श्रुतामघ**) अपनी अन्त प्रेरणा से समृद्ध, (**वृषभ**) ज्ञानदाता (**नर्यापसं**) मानव के हितकारक कार्यों की सम्पादक, (**अस्तार**) काम, क्रोध व तामस भावनाओ के दूर कर देनेवाली प्रज्ञा-शक्ति को (**अभि घ-इत्**) लक्ष्य करके ही निश्चय (**उत् एषि**) उदित होते हैं ॥१॥

भावार्थ—प्रभु से प्रेरणा पा करके मानव मन अर्जित ज्ञान के उपदेश, यज्ञ आदि सर्व हितकारी कार्यों और काम, क्रोध आदि दुष्ट भावनाओ को दूर कर देने आदि मे प्रवृत्त होता है ॥१॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

मन्त्र संख्या २ तथा ३ का सम्मिलित अर्थ—

पदार्थ—(**य.**) जिस इन्द्र अर्थात् मानव की प्रज्ञा ने (**बाह्वोजसा**) अपने दूर-दूर तक प्रभावशाली ओज से (**नव नवतिं**) $9 \times 90 = 810$ अर्थात् अनेक (**पुर.**) शत्रुभावनाओं की बस्तियो को (**बिभेद**) छिन्न-भिन्न किया और उस (**वृत्रहा**) मेघहन्ता सूर्य के तुल्य (**अहिं**) सर्प-जैसी दुष्टभावनाओ तथा रोगादि का (**अवधीत्**) उन्मूलन किया (**सः**) वह (**नः**) हमारी (**शिव**) कल्याणकारिणी, (**सखा**) मित्र (**इन्द्रः**) प्रज्ञा (**अश्वावत्**) कर्मबलयुक्त (**गोमत्**) ज्ञानबलयुक्त (**यवमत्**) और दोनो के मिश्रणभूत फल को (**उरुधारेव**) बडी विशालधाराओ मे ही (**दोहते**) दूध के तुल्य प्रदान करती है ॥२, ३॥

भावार्थ—साधक जब अपनी मननशक्ति द्वारा दुर्भावना, रोग आदि विघ्नों को दूर कर दे तो उसकी कर्मेन्द्रियां एव ज्ञानेन्द्रियां निर्विघ्न हो समृद्धि अर्जित करती हैं ॥२, ३॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥४॥

पदार्थ—हे (**वृत्रहन्, सूर्य**) मेघहन्ता सूर्य के तुल्य तामस वृत्तियो की विध्वसक मेरी परमेश्वर प्रेरित प्रज्ञे ! (**अद्य**) आज (**यत्, कत्, च**) जिस किसी को (**अभि**) लक्ष्य कर (**उत् अगाः**) तेरा उदय हुआ हो, (**इन्द्र**) हे मेरी प्रज्ञे ! (**सर्वं तत्**) वह सब (**ते**) तेरे (**वशे**) अधीन हो ॥४॥

भावार्थ—सूर्य द्वारा मेघ छिन्न-भिन्न किए जाते हैं ; ऐसे ही मानव की प्रज्ञा, तामस वृत्तियो को काटती है; मनुष्य सकल्प करे कि उसकी प्रज्ञा जिस तामस-वृत्ति को नष्ट करने हेतु उद्यत हो तभी वह उसको सफलतापूर्वक काटे ॥४॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥५॥

पदार्थ—(**वा**) अथवा (**प्रवृद्ध**) हे वृद्धि प्राप्त (**सत्पते**) सद्भावनाओ की रक्षिका बनी मेरी प्रज्ञे ! (**यत्**) जब तू (**न मरा = न मरें**) मैं न मरू (**इति**) यह (**मन्यसे**) समझने लगती है (**उतो**) तब ही (**तत्**) वह तेरा मानना (**इत्**) ही (**तव सत्यम्**) तेरा सच्चा स्वरूप है ॥५॥

भावार्थ—जिस समय हमारी मननशक्ति, सद्भावनाओ से ओतपोत होकर अमर प्रतीत होती है तो वही उसका वास्तविक स्वरूप है । सद्भावनाओ से ओत-प्रोत मन एक अमर शक्ति है ॥५॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥६॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**सोमास**) अर्जित पदार्थबोध (**परावति**) दूरस्थकाल या देश मे और (**ये**) जो पदार्थबोध (**अर्वावति**) समीपस्थ काल या प्रदेश मे (**सुन्विरे**) सम्पन्न किये गये हों (**ता**) उनको, हे (**इन्द्र**) प्रज्ञे ! तू (**गच्छसि**) प्राप्त होती है ॥६॥

भावार्थ—दूरस्थ देश अथवा समीपस्थ देश में अभी अथवा बहुत पहले या बाद में पदार्थों का जो भी बोध प्राप्त हुआ, या होता है अथवा होगा—वह सब हमारी प्रज्ञा को ही प्राप्त होगा क्योंकि प्रज्ञा ही पदार्थबोध को वहन करती है ॥६॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥७॥

पदार्थ—(**महे**) विपुल (**वृत्राय**) ज्ञान अवरोधक तामस प्रवृत्ति को (**हन्तवे**) नष्ट करने हेतु हम (**त**) उस पूर्वोक्त (**इन्द्रं**) प्रज्ञा को (**वाजयामसि**) बलवती बनाते हैं । (**सः**) हमारा मन (**वृषा**) ज्ञान की वर्षा से (**वृषभ,**) सुखों की वर्षा करनेवाला (**भुवत्**) हो ॥७॥

भावार्थ—मन की सकल्प शक्ति को बलवान् बना कर ही तामस प्रवृत्तियों को मारा जा सकता है । प्रबल संकल्प ही सुख का मूल है ॥७॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥८॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**इन्द्र**) इन्द्र [प्रज्ञा], जिसे (**दामने कृतः**) कुटिलताओ के दमन में समर्थ बनाया गया है , जो (**ओजिष्ठ**) नितान्त ओजस्वी है ; और (**सः**) वह (**मदे**) बल के कार्यों मे (**हितः**) रत है ; जो (**द्युम्नी**) प्रभु प्रेरणा प्राप्त नितान्त बलवान् है , (**श्लोकी**) प्रशसित है तथा (**सः**) वह (**सोम्य.**) सौम्य गुणसम्पन्न है ॥८॥

भावार्थ—जब मानव स्व मन में कुटिलताएं नहीं उभरने देता—तब वह उस समर्थ चिन्तन शक्ति द्वारा स्वयं ओजस्वी, बलवान् तथा बल के कार्य करने वाला, अत. यशस्वी हो जाता है ॥८॥

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥९॥

पदार्थ—(**वज्र. न**) युद्ध या सघर्ष के कठोर साधन के तुल्य (**गिरा**) वेदवाणी से (**सम्भृत**) कठोर अर्थात् समाहित = अनन्यवृत्ति हुआ (**सबल**) बलवान्, (**अनपच्युतः**) कुटिल वृत्तियों द्वारा अपने स्थान से न गिराया गया, (**ऋष्वः**) ज्ञान हेतु (**अस्तृत**) अबाधित मन (**ववक्ष**) अपने कार्य को निबाहे ॥९॥

भावार्थ—वेद में भगवान् के गुणकीर्तन से मन समाहित हो कुटिलताओं से लोहा लेने के लिये ऐसा ही कठोर हो जाता है जैसा कि वज्र । समाहित मन, बलवान् व अडिग बन जाता है । इस भांति एकाग्रमन से ही कुटिलताओ का अपहार हो सकता है ॥९॥

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं च मघवन् वशः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**गिर्वण**) वेदवाणी द्वारा वन्दनीय (**इन्द्र**) मेरे मन ! (**दुर्गे चित्**) अस्तव्यस्त प्रदेश मे (**न**) हमारे लिये (**सुगं**) सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग (**कृधि**) बना दे । (**त्वं च**) और तू, (**मघवन्**) हे आदरणीय ऐश्वर्य-बुद्धि के धनी मेरे मन ! (**वशः**) मेरे वश में हो ॥१०॥

भावार्थ—मानव की जीवनयात्रा का प्रदेश अनेकानेक कठिनाइयो तथा रुकावटों से ऊबड-खाबड है । उसमें चलने हेतु सरल मार्ग समाहित मन से ही मिल सकता है । और यह भी तब जब समाहित मन भी जीवात्मा के वश में रहे ॥१०॥

यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् ।
न देवो नाध्रिगुर्जनः ॥११॥

पदार्थ—हे मेरे मन ! (**यस्य**) जिस तेरे (**आदिश**) आदेश को तथा (**स्वराज्यम्**) प्रतिद्वन्द्विता रहित अपनी निजी व्यवस्था को (**न मिनन्ति**) कोई भी ध्वस्त नहीं करता; (**न देवः**) न तो कोई इन्द्रियवशी विद्वान् ही और (**न**) न ही (**अध्रिगु**) अधीरता से कार्य करने वाला (**जनः**) व्यक्ति ही ॥११॥

भावार्थ—मानव मन की मननशक्ति इतनी प्रचंड है कि मानव जीवन में उसके शासन का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं; मानव जीवन मे वही सर्वेसर्वा है; भले ही व्यक्ति दिव्यगुणी इन्द्रियजयी विद्वान् ही हो या अधीर प्रकृति का मनुष्य । अतएव मन को समर्थ बनाना चाहिये ॥११॥

अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः ।
उभे सुशिप्र रोदसी ॥१२॥

पदार्थ—(**अधा**) पुनश्च (**सुशिप्र**) हे शुभ व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सुखों के स्रोत मेरे मन ! (**उभे**) दोनों (**देवी**) द्योतमान (**रोदसी**) द्यावा पृथिवी के मध्य वर्तमान प्राणी (**ते**) तेरे (**अप्रतिष्कुतं**) विरोधी शक्तियों द्वारा अपराजित (**शुष्मं**) शौर्य का (**सपर्यत**) आदर करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—मानव मन का बल अपराजेय है—सभी प्राणी उसके समक्ष नत-मस्तक हैं ॥१२॥

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
परुष्णीषु रुशत् पयः ॥१३॥

पदार्थ—(**त्व**) तू ही (**कृष्णासु**) तुझ मस्तिष्क द्वारा आदेश, प्रेरणा, आदि का आकर्षण करनेवाली (**च**) और (**रोहिणीषु**) शारीरिक अनुभूति को ले मस्तिष्क में आरोहण करनेवाली (**परुष्णीषु**) कुटिलगामिनी—वातनाड़ियों में (**रुशत्**) उष्ण (**पयः**) तरल पदार्थ को (**अधारय.**) धारता है ॥१३॥

भावार्थ—शारीरिक क्रियाओं का संचालन वातनाड़ियों द्वारा होता है । इनके भीतर एक तरल पदार्थ तथा ऊपर सूत्रतन्तु होता है । प्रत्येक तन्तु के दो सिरे होते हैं । इनमे से एक मस्तिष्क मे और दूसरा भिन्न-भिन्न अंगो में होता है । ये दो प्रकार के हैं । एक से इन्द्रियो की अनुभूति मस्तिष्क तक और दूसरे प्रकार के सूत्रों

से मस्तिष्क की प्रेरणायें अंगों तक पहुँचाती हैं। उष्ण तरल पदार्थ इनके जीवित होने का लक्षण है। इस भांति मस्तिष्क ही इन दो प्रकार के वातसूत्रों के द्वारा शरीर के चैतन्य का धारणकर्त्ता बना रहता है ॥१३॥

वि यद्हेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः ।

विदन्मृगस्य ताँ अमः ॥१४॥

पदार्थ —(अध) इसके बाद (यत्) जब (विश्वे) सभी (देवासः) दिव्य अङ्ग (अहेः) सर्प जैसी कुटिल भावना की (त्विषः) प्रचण्डता को (वि अक्रमुः) लांघ जाते हैं, उन पर विजय पा लेते हैं तब तू (तान्) उन्हें (मृगस्य) शिकार करने वाले पशु, सिंह, का उसके बल के तुल्य (अमः) बल (विदत्) दे देता है ॥१४॥

भावार्थ —मस्तिष्क द्वारा सभी अङ्गों को इतना बल मिलता है कि कुटिल भावनायें या दुर्बलता, रोग इत्यादि उपसर्ग उन्हें पीड़ित नहीं करते। रोग या अन्य घातक उपसर्गों से बचने हेतु चेतना का केन्द्र मस्तिष्क शक्तिशाली होना चाहिये ॥१४॥

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् ।

अजातशत्रुरस्तृतः ॥१५॥

पदार्थ —(उ) और (आत्) इसके उपरांत (मे) मेरा (अजातशत्रु) शत्रुत्वभावना जिसमें कभी उत्पन्न नहीं होती—सर्व सखा (अस्तृतः) बलवान् होने के कारण अहिंसित मन (निवर) कुटिलताओं को दूर करने वाला; (वृत्रहा) बाधाओं का हर्ता (भुवत्) हो जाता है और (पौंस्यम्) बल (अदिष्ट) देता है ॥१५॥

भावार्थ.—जो शक्तिशाली मन शक्ति स्वयं दुर्भावनाओं का आहार नहीं बनती वह अपने सुमार्ग की सब विघ्नबाधाओं को नष्ट कर शरीरादि को बल देती है ॥१५॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

आ शुषे राधसे महे ॥१६॥

पदार्थ —(चर्षणीनाम्) व्यक्तियों की (आशुषे) कामना पूर्ति हेतु और (महे) बड़ी (राधसे) सफलता के लिये (श्रुत) प्रसिद्ध, (वृत्रहन्तमम्) नितांत श्रेष्ठ विघ्न नाशक (व) अपने मनोबल को (प्र) प्रकृष्ट बनाओ ॥१६॥

भावार्थः—मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है। व्यक्तियों का अपना मनोबल ही है जो उनकी कामनाएं पूर्ण कर जीवन में सफलता दिला सकता है। उसी को दृढ़ बनाओ ॥१६॥

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।

यत्सोमेसोम आभवः ॥१७॥

पदार्थ —हे (पुरुणामन्) बहुत नामों से विख्यात ! (पुरुष्टुत) अनेकों से स्तुत मेरी मननशक्ति ! (अया) इस रीति से (च) एवं (गव्यया) ज्ञान या प्रबोध इच्छुक (धिया) कर्त्तृत्व बुद्धि के साथ (सोमेसोमे) प्रत्येक ऐश्वर्य के इच्छुक व्यक्ति में (आभुव.) अपने अस्तित्व को प्रकटें ॥१७॥

भावार्थ —ज्ञान, बल तथा ऐश्वर्य इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति अपने मस्तिष्क को ऐसा जागरूक बनाए कि ज्ञान प्राप्त करने व प्रेरणा देने की—दोनों प्रकार की शक्तियों को सदैव साथ रखे ॥१७॥

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।

शृणोतु शक्र आशिषम् ॥१८॥

पदार्थ.—(न) हम मानवों में जो (बोधिन्मना) बोधयुक्त मननशक्ति वाला है वह (इत्) ही (वृत्रहा) विघ्नहर्ता और (भूर्यासुति) सफलता वाला (अस्तु) होता है। ऐसा (शक्र) समर्थ मन (आशिषं) कामना को (शृणोति) सुनता है ॥१८॥

भावार्थ —जब मननशक्ति प्रबोध तथा कर्त्तृत्व शक्ति युक्त हो जाती है तब जीवन पथ की सभी बाधाएं दूर हो जाती हैं और अपेक्षित सफलता मिलती है ॥१८॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।

कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१९॥

पदार्थ —हे (वृषन्) सुख की वर्षा करने वाले, समर्थ भगवन् ! आप (कया) किस अद्भुत (ऊत्या) रक्षा व सहायता से (न) हमें (अभि प्र मन्दसे) आनन्द देते हैं ! और (कया) किस उत्तम रीति से (स्तोतृभ्य) गुण-कीर्तन करने वाले साधकों को (आ भर) परिपूर्ण करते हैं ! ॥१९॥

भावार्थः—मन की शक्ति का वर्णन करता भक्त उसके दाता प्रभु की महिमा गाता है। इस सृष्टि में जीवात्मा को प्रभु द्वारा जो संरक्षण व साहाय्य, मननशक्ति आदि से प्राप्त हो रहा है, वह अवर्णनीय है ॥१९॥

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत् ।

वृत्रहा सोमपीतये ॥२०॥

पदार्थः —(नियुत्वान्) शुभगुणों से युक्त या अपनी वाहक शक्ति से युक्त, (वृषभ) इसीलिये बलवान तथा श्रेष्ठ (वृत्रहा) विघ्न नष्ट करने के सामर्थ्य-वाला साधक मन (सोमपीतये) दिव्य आनन्दरस का पान करने हेतु (वृषा) सर्व-प्रकार के सुख देने वाले (कस्य) सुखस्वरूप प्रभु के (सुते) उत्पादित संसार में उसके (सचा) संयोग से (रणत्) रमण करता है ॥२०॥

भावार्थः—सुखस्वरूप प्रभु ही सर्वसुखों के दाता हैं, उनसे संयुक्त होकर साधक संसार में आनन्दित होता है, परन्तु वह भी तभी जब कि उसकी अपनी शक्ति बाधाओं को दूर करने में उसका साथ दे ॥२०॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् ।

प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥२१॥

पदार्थ —हे परमेश्वर ! (मन्दसान) आनन्दमय (त्व) आप (न अभि) हमारी ओर (सहस्रिण) हजारों सुखों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य (सु) भलीभांति प्रेरित करें। (प्रयन्ता) पथप्रदर्शक बने आप (दाशुषे) आत्मसमर्पक भक्त को (बोधि) प्रबोध दे दें ॥२१॥

भावार्थ.—परमेश्वर सुखस्वरूप हैं - उनसे ही सुखयुक्त ऐश्वर्य की याचना उचित है। सुखस्वरूप प्रभु के गुणों का अध्ययन करने से मार्गदर्शन प्राप्य है और यह समझ प्राप्त होती है कि वास्तविक ऐश्वर्य कैसे मिलता है ॥२१॥

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये ।

अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥२२॥

पदार्थ.—(पत्नीवन्त.) शुभशक्तियुक्त, (सुता) उनके विज्ञानरूपी सार के रूप में निष्पन्न, (इमे) ये ऐश्वर्यदाता ईश्वररचित पदार्थ (उशन्त) अभीष्ट बने हुए (वीतये) साधक के भोग हेतु (यन्ति) उसे प्राप्त हो रहे हैं। जिस भांति (अपां) जलों का (जग्मि.) ग्रहणशील (निचुम्पुण) शनै शनै पी जाने वाला सागर है वैसे ही (अपां) पदार्थों के रस या सारभूत विज्ञान को ग्रहण करने वाला साधक (निचुम्पुण) शनै शनै. प्राप्तज्ञान कहा जाता है ॥२२॥

भावार्थ —जिस भांति सागर शनै शनै जल पीकर 'निचुम्पुण' कहलाता है वैसे ही साधक को चाहिये कि वह धीरता सहित परमेश्वर-रचित पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे, इस भांति ग्रहण किये हुए द्रव्य उसके हेतु ऐश्वर्य के साधन बनते हैं ॥२२॥

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे ।

अच्छावभृथमोजसा ॥२३॥

पदार्थ—(अध्वरे) जीवनयज्ञ में (इष्टा) अभीष्ट की प्राप्ति हेतु आहुति प्रदाता (इन्द्र) मन शक्ति को (वृधास) बढ़ाते हुए (होत्रा) यजमान इन्द्रिय शक्तियां (ओजसा) अपनी ओजस्विता से (अवभृथम्) शोधक यज्ञान्त स्नान को (अच्छ) भली-भांति (असृक्षत) रचकर पूरा करते हैं ॥२३॥

भावार्थ —परमात्मा द्वारा रचित द्रव्यों से ऐश्वर्य की साधना हेतु उनका ज्ञान-ग्रहण रूप जो यज्ञसाधक स्वजीवन में रच रहा है उसमें उसकी इन्द्रियां ही यजमान हैं जो स्व आहुतियों के द्वारा अपने अधिष्ठाता मन की शक्तियों को सतत बढ़ाकर उसे बलवान् बनाती हैं और धैर्यसहित इस यज्ञ को पूरा करती हैं ॥२३॥

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।

वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२४॥

पदार्थः—(त्या) वे (सधमाद्या) साथ-साथ हर्षित होनेवाली, (हिरण्य-केश्या) ज्योतिर्मय सूर्य आदि की किरणों के तुल्य तेजस्विनी, (हरी) [हरणशील] जीवन का भली-भांति निर्वाह करने में समर्थ—दोनों—ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियां (हित) हितकारी, पथ्य, (प्रय) पदार्थज्ञान इत्यादि इष्ट भोग्य तथा उससे प्राप्त सुख-सम्पन्नता (अभि) की ओर आकर (इह) इस जीवन में (वोळ्हा) लाएं ॥२४॥

भावार्थः— मानव-जीवन में ईश्वर द्वारा रचित द्रव्यों के यथावत् ज्ञान तथा व्यवहार द्वारा आध्यात्मिक सुख की वाहिका हमारी ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियां हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि ये सदा पथ्य या हितकारक भोग्य का ही सेवन करें। यहां यह संकेत भी है कि वृष्टिसुख-वाहक विद्युत् तथा वायु विश्व में हितकारी वृष्टिजल की वर्षा करें तथा राजा एवं प्रजाजन राष्ट्र में हितकारक भोग्य जुटाएं ॥२४॥

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।

स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥२५॥

पदार्थ — हे (विभावसो) विभिन्न ज्योतियों के वासदाता प्रभो ! (इमे) ये सर्व ऐश्वर्य साधन पदार्थ (तुभ्य) आपको प्राप्त करने हेतु ही (सुता) निचोड़े गये हैं— इनका सारभूत ज्ञान प्राप्त किया गया है; आप के हेतु (बर्हि.) हृदयरूपी आसन (स्तीर्णं) बिछा है, (स्तोतृभ्य) अपने गुणकीर्तन कर्त्ताओं को (इन्द्र) ऐश्वर्य को (आ, वह) ला दें ॥२५॥

भावार्थ —प्रभु द्वारा रचित सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने का अन्तिम लक्ष्य प्रभु ही है। उसके गुणानुवाद से उसकी महिमा हृदय पर छा जाती है और हम उसके अधिकाधिक समीप हो जाते हैं ॥२५॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे ।

स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥२६॥

पदार्थः—हे प्रभु ! (रत्ना) जीव को आनन्द देने वाले (विरोचना) विशेष दीप्तिमान् सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि (ते दक्ष) आप के बल व सामर्थ्य को ही (दाशुषे) आत्मसमर्पक भक्त हेतु (विदधत्) विविध रूप मे धारण करते हैं। हे मनुष्यो ! (स्तोतृभ्य) स्तोता के लाभ के लिए (इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अर्चत) वन्दना करो ॥२६॥

भावार्थ —सूर्य, चन्द्र, पृथिवी एव अन्य रुचिकर पदार्थों मे जो शक्ति है वह प्रभु की ही है, इन पदार्थों को स्व प्रयोग मे लगानेवाला भक्त उपासक इनसे जो बल पाता है वह परमात्मा का ही है। भगवान् की अर्चना इसीलिये की जाती है कि पूजक उत्तम स्तोता बने ॥२६॥

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो ।

स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥२७॥

पदार्थ —हे (शतक्रतो) विविध प्रज्ञा एवं कर्मशक्तियुक्त प्रभो ! मैं (ते) आपके द्वारा प्रदत्त (इन्द्रिय) सर्व प्रकार के सुखो की प्राप्ति के ज्ञान-साधक उपायो को और (विश्वे) सभी (उक्था) वेदविद्याओ को (दधामि) धारण करने का सकल्प धारता हूँ। हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (स्तोतृभ्यः) स्तोताओ को (मृळय) आनन्द दे ॥२७॥

भावार्थ —प्रत्येक कार्य का आरम्भ सकल्प से होता है। प्रस्तुत मत्र में सुख-प्राप्ति का मूल वेदवर्णित पदार्थविद्याओ को जानने का सकल्प बताया गया है ॥२७॥

भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो ।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२८॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) कर्मशक्तियुक्त (इन्द्र) प्रभो, (यत) जब आप (न.) हमे (मृळयासि) सुख देते हैं तो (न) हमें (भद्रं भद्रं) कल्याणकारी ही कल्याणकारी (इष) ज्ञान से प्रेरणा तथा (ऊर्ज) पदार्थों के सारभूत ज्ञानबल से (आभर) पूर्ण कर दें ॥२८॥

भावार्थ—मानव जब प्रभु प्रेरणा से उसके द्वारा सृष्ट पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हे यथोचित रीति से उपयुक्त करने लग जाता है तो उसे शनै-शनै अन्य ऐश्वर्य भी मिलने लगते हैं ॥२८॥

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो ।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२९॥

पदार्थ.—हे (शतक्रतो) नानाकर्मकर्ता ! (यत्) क्योकि आप (नः) हमें (मृळयासि) सुख देते हैं, इसलिये (स) वह आप (न) हमे (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुवितानि) सुष्ठुतया प्रेरित कर्म प्रदान कर (आ, भर) पूर्णतया पालन करें ॥२९॥

भावार्थ —प्रभु द्वारा प्रेरित सुकर्मों में व्याप्त जीव ही सुखी रहता है—यही इस मन्त्र का तात्पर्य है ॥२९॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३०॥

पदार्थ —हे (वृत्रहन्तम) जीवनयज्ञ मे आनेवाले विघ्न आदि दूर करने मे (इन्द्र) अति समर्थ प्रभु ! (यत्) क्योकि (नः) आप हमे (मृळयासि) सुख देते हैं अतएव (सुतावन्त) ऐश्वर्य सम्पन्न हुए हमारे द्वारा (त्वां इत्) आपका ही (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—ससार के नाना पदार्थों को प्रदान कर सुखी रखने की शक्ति परमेश्वर मे ही है, इसलिए वही वन्दनीय है ॥३०॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥३१॥

पदार्थः—हे (मदानां) दिव्य आनन्द के (पते) सरक्षक हमारे हृदय ! अथवा मेरे आत्मा ! (न हरिभि) जीवन निर्वाह करने वाली हमारी शक्तियो द्वारा (सुत) निष्पन्न ज्ञानरस को (उप याहि) प्राप्त हो; उस (हरिभिः सुतं) इन्द्रियो के द्वारा उत्पादित ज्ञानरस का (उप याहि) भोग कर ॥३१॥

भावार्थ —शुद्ध हृदय से साधना रत भक्त की इन्द्रियां ही ऐसी दिव्य शक्तियां हैं कि वे प्रभु की सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ मे दिव्य आनन्द पाती हैं ॥३१॥

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥३२॥

पदार्थ.—(य) जो यह (इन्द्रः) समर्थ, ऐश्वर्ययुक्त हमारा आत्मा (वृत्रहन्तमः) अपनी ज्ञानशक्ति से आवरक अज्ञान का अतिशय विनाशक एव कर्म-शक्ति के द्वारा (शतक्रतो) विविध कर्मों का कर्ता—इस प्रकार (द्विता) दो रूपो से—दो प्रकार से (विदे) जाना गया है—दो प्रकार की शक्तियो से सम्पन्न, मेरे आत्मा ! तु [इन्द्रियो द्वारा] निष्पादित ज्ञानरस को (उप याहि) पा ॥३२॥

भावार्थः—परमेश्वर तो विघ्न विनाशक एवं विविध कर्मकर्ता है ही, मेरा आत्मा भी इन्द्रियो के द्वारा निष्पादित ज्ञानरस व दिव्यानन्द का आनन्द ले दोनों प्रकार की शक्तियों से युक्त हो सकता है ॥३२॥

त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥३३॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) अज्ञान के तम आदि अवरोधों को दूर करनेवाले समर्थ मेरे आत्मा ! (त्वं हि) निश्चय तू ही (एषां) इन सृष्टि में प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले (सोमानां) सुखसाधक पदार्थों का (पाता असि) इनके ज्ञान से इनका संरक्षक है। [अपने इस गुण को बनाए रखने हेतु] (हरिभि.) जीवनयापन समर्थ इन्द्रियो द्वारा (सुतं) निष्पादित ज्ञानरस (उप याहि) प्राप्त कर ॥३३॥

भावार्थ.—जीवनचक्र मे ज्ञान व अन्य नानाविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति के मार्ग में विशेषतया अज्ञानजन्य रुकावटें आती रहती हैं। इन्हें रोकने का उपाय यह है कि साधक अपनी दोनो प्रकार की इन्द्रियशक्तियों को प्रबल बनाये और उनसे ज्ञान-रस का निरन्तर पान करे ॥३३॥

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।

वाजी ददातु वाजिनम् ॥३४॥

पदार्थ —(इन्द्र) परमैश्वर्यवान् प्रभु (इषे) हमारी कामनाओं की पूर्ति हेतु (न) हमे (ऋभुक्षणं=उरुक्षयणं) व्यापक आधार प्रदान करनेवाले, (ऋभु) सुगमता से प्रयुक्त कर पाने योग्य (रयिं) सुख साधनों—धन, विद्या, बल, पुत्र आदि को (ददातु) प्रदान करे। (वाजी) ज्ञान, बल, धन आदि का स्वामी भगवान् हमे (वाजिन) ज्ञान-बल-धन आदि से युक्त जनसमाज (ददातु) प्रदान करे ॥३४॥

भावार्थः—स्वय ऐश्वर्यवान् प्रभु ही हमारी कामनाएं पूर्ण कर सकते हैं—अर्थात् उनके गुण गान करते हुए भक्त उन गुणो को धारने का यत्न कर स्वय ऐश्वर्य-वान् हो सकते है। इस भांति प्रभु सारे समाज का ही है ॥३४॥

अष्टम मण्डल में तिरानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य ऋषि १—१२ *बिन्दुः पूतदक्षो वा* ॥ *देवता—मरुतः* ॥ *छन्द*—१, २, ८ *विराड्गायत्री* । ३, ५, ७, ९ *गायत्री* । ४, ६, १०—१२ *निचृद्गायत्री* ॥ *स्वरः—षड्जः* ॥

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥१॥

पदार्थ —(मघोनां) ऐश्वर्य सपन्न (मरुतां) व्यक्तियों की (माता) माता के तुल्य निर्माण करने वाली, (रथानां) रमणीय तथा सुखदायी पदार्थों को (वह्नी) वहन करने वाली एव (युक्ता) उनसे संयुक्त (गौः) पृथिवी (श्रवस्यु) उन्हें अन्न, बल, धन व कीर्ति से युक्त बनाने का सकल्प युक्त हुई (धयति) पालन करती है ॥१॥

भावार्थ —धरती व्यक्तियों की माता के तुल्य है। इस पर तथा इसमें विभिन्न रमणीय व सुखदायी पदार्थ हैं। इनके द्वारा यह मनुष्यों का निर्माण करती है। यह माता मनुष्य को अन्न आदि से न केवल बलवान् ही और विविध पदार्थों के द्वारा ऐश्वर्यवान् बनाती है अपितु मानव को इन पदार्थों के समुचित प्रयोग से विश्व में यशस्वी भी बनाती है ॥१॥

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते ।

सूर्यामासा दृशे कम् ॥२॥

पदार्थः—(यस्या) जिस धरती की (उपस्थे) गोद मे (विश्वे) सभी (देवा) रमण करने वाले मानव (व्रताः) कर्मों को (धारयन्ते) धारण करते हैं। तथा (सूर्यामासा) सूर्य, चन्द्रमा एव अन्य ज्योतिर्मय लोक भी (दृशे) दर्शन-क्षमता प्रदान करने हेतु (कम्) सुखी स्थिति को प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ.—धरती की गोद मे बैठ सभी जन भांति-भांति पदार्थों में आनन्द लेते हैं। इस समय ज्योतिर्मय लोक इन्हें दर्शन-क्षमता देते हैं ॥२॥

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।

मरुतः सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ —(तत्) इसके बाद (विश्वे) सभी (अर्यः) प्रगतिशील, (कारव) स्तुत्य=प्रशसनीय कर्मों के करनेवाले या वेदवाणी से गुणगान करने वाले, (मरुत) मानव (सु सोमपीतये) परमात्मा द्वारा उत्पादित पदार्थों के सुष्ठु व्यवहार हेतु (नः) हमें (आ गृणन्ति) भलीभांति उपदेश देते हैं ॥३॥

भावार्थ.—सृष्टि के रचयिता प्रभु के गुणों का कीर्तन उसके द्वारा रचित सुखदायी पदार्थों के सुष्ठु व्यवहार का उपदेश है। यह समझ कर ही हम भी उसके गुण कीर्तन का श्रवण करें ॥३॥

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

उत स्वराजो अश्विना ॥४॥

पदार्थः—(अयं) यह (सोमः) सपन्नता (सुतः) उत्पादित (अस्ति) विद्यमान है। (स्वराजः) धर्माचरणों में स्वयं शासक [प्रशसित] (मरुतः) मानव (अस्य) इसके (पिबन्ति) व्यवहार का ज्ञान पाते हैं। (उत) और (अश्विना) कर्मठ तथा ज्ञानी साधक भी ॥४॥

भावार्थः—जो मानव प्रभु द्वारा रचित पदार्थों का समुचित व्यवहार करते हैं, वे धर्माचरण में रत रहते हैं। ऐसे ही नर-नारी फिर कर्मठ तथा ज्ञानी बनते हैं ॥४॥

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।

त्रिषधस्थस्य जावतः ॥५॥

पदार्थ —(मित्रः) सबका सखा, (अर्यमा) दानशील, (जावतः) स्व विस्तार किये हुए (त्रिषधस्थस्य) तीनो लोको में पक्षपातरहित अतएव (पूतस्य) अपवित्रतारहित का (तना) पुत्र (वरुण) न्यायकारी—ये सब पदार्थों के व्यवहारज्ञान को ग्रहण करते हैं ॥५॥

भावार्थ.—भांति-भांति के पदार्थों के व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने वाला मानव ही मित्रता, दानशीलता तथा अतिशय पक्षपातरहितता या न्यायकारिता आदि गुणों से संपन्न हो सकता है ॥५॥

उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।

प्रातर्होतेव मत्सति ॥६॥

पदार्थः—(उतो नु) और निश्चित रूप से ही (अस्य) इस (सुतस्य) सम्पादित (गोमतः) प्रशस्तज्ञानयुक्त व्यवहार-बोध का (जोषं) प्रीतिपूर्वक सेवन कर (इन्द्र) आत्मा (प्रातः होता इव) प्रातःकाल आहुतिदाता के जैसा ही (मत्सति) प्रसन्न हो उठता है ॥६॥

भावार्थः—जब मानव को सृष्टि के विविध पदार्थों का ज्ञान होता है और वह उसे सस्नेह ग्रहण करता है, तब उसे एक प्रकार का अलौकिक आनन्द मिलता है ॥६॥

कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः ।

अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥७॥

पदार्थः—(पूतदक्षसः) स्व सामर्थ्य को निर्दोष रखे हुए (सूरयः) विद्वान् जन जैसे (आपः) जल को (तिरः) तिर्यक् गति से सुगमता सहित पार करते हैं वैसे ही सुगम रीति से (स्रिधः) सद्व्यवहार के विरोधियों को हताश करते हुए जो (अर्षन्ति) आगे बढ़ते हैं वे (कत्) कितने (अत्विषन्त) सुशोभित होते हैं ॥७॥

भावार्थः—प्रभु की सृष्टि मे विद्यमान पदार्थों का उनके गुणधर्मानुसार ठीक-ठीक व्यवहार [न्याययुक्त] कर तथा सभी चेतनों के साथ भी उनकी सामर्थ्य, गुण, धर्म के अनुसार व्यवहार कर न्यायकारी बने, तरुण-पुरुष बहुत अधिक यश पाते हैं ॥७॥

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे ।

त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥८॥

पदार्थः—साधक मन ही मन उन विद्वानों से पूछता है कि मैं (वः) आप (महानां) सम्माननीय (च) और (त्मना) अपने आप ही (दस्मवर्चसां) असाधारणतया दर्शनीय, अति सुन्दर व्यक्तित्ववाले (देवानाम्) दिव्यगुणी जनो की (अवः) देख-रेख या सहायता को (अद्य) अभी व आज ही (कत् वृणे) कैसे पाऊं ? ॥८॥

भावार्थ.—जन-साधारण विद्वत्जनो के दर्शनीय तथा सुन्दर व्यक्तित्व को देख उनसे ईर्ष्या न करे अपितु यह विचारे कि मैं किस भांति इनके सरक्षण में रह ऐसे ही गुण प्राप्त कर सकता हूँ ॥८॥

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः ।

मरुतः सोमपीतये ॥९॥

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

पदार्थः—(ये) जिन (मरुतः) बलिष्ठ मनुष्यों ने (सोमपीतये) सृष्ट-पदार्थों के समुचित व्यवहार के बोध रूप रस का पान करने हेतु (विश्वा) सभी, (पार्थिवानि) भौतिक तथा (दिवः रोचना) अपनी द्युति से प्रकाशित रचनाओं को (आ पप्रथन्) विस्तृत किया है ॥९॥ (त्यान्) उन (नु) ही (पूतदक्षसः) अपनी सामर्थ्य को निर्दोष रखे हुए (वः) आप (मरुतः) मनुष्यों को (अस्य सोमस्य पीतये) इन सोम पदार्थों के व्यवहार का बोध प्रदान करने हेतु (हुवे) आमन्त्रण देता हूँ ॥१०॥

भावार्थः—पदार्थों के व्यवहार का ज्ञान पदार्थों को फैलाकर, उनका विश्लेषण कर, उन्हें प्रकट कर, उनका प्रदर्शन करके, उनमें वृद्धि करके ही किया जाता है। जो मानव अपने सामर्थ्य को निर्दोष रख उस ज्ञान को पाते हैं, उनसे ही दूसरों को वह ज्ञान लेना चाहिये ॥९, १०॥

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥

पदार्थः—(ये) जो (मरुतः) मानव (रोदसी) धरती तथा द्युलोक—दोनो मे स्थित पदार्थों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से बनाए रखते हैं (त्यान् नु) निश्चय ही उन्हीं को मैं (अस्य) इस पदार्थ-व्यवहार-बोध का (पीतये) पान करने हेतु (हुवे) आमंत्रित करता हूँ ॥११॥

भावार्थ —विश्व भर के पदार्थों के ज्ञान के तात्त्विक रूप से ज्ञाता विद्वान् ही दूसरों को उनका बोध करा सकते हैं ॥११॥

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥

पदार्थः—(अस्य सोमस्य पीतये) पूर्वोक्त सोम का पान करने कराने के लिये मैं (गिरिष्ठां) उच्च आसन प्राप्त (वृषणं) [कमनीयों की] वर्षा करने वाले (त्यं नु) उसी (मारुत गणं) जन समूह का (हुवे) आह्वान करता हूँ ॥१२॥

भावार्थः—पूर्वोक्त गुणो से युक्त लोगों का समूह (सगठित होकर) पदार्थ-ज्ञान रूपी दान=आदान क्रिया (यज्ञ=सत्कर्म) को सफल करने मे समर्थ हैं ॥१२॥

अष्टम मण्डल में चौरानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषि —१—९ तिरश्ची ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द —१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप् । ५, ९ अनुष्टुप् । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥१॥

पदार्थ—हे (गिर्वण) वेदवाणियों से सुसंस्कृत हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओ से सेवित प्रभु ! (सुतेषु) [विद्या सुशिक्षा आदि द्वारा] सृष्टि के पदार्थों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर (रथी इव) प्रशस्त वाहनसाधनवाले यात्री के जैसी मेरी (गिरः) वाणियां (त्वा) आप में (आ अस्थुः) सम्यक्तया स्थित है। हे (इन्द्र) प्रभु ! (मातरः) माताएं स्नेहसहित जैसे (वत्सं न) अपने प्रिय शिशु के (अभि) प्रति (सं अनूषत) झुकती हैं वैसे ही मेरी वाणी (त्वा) आप के प्रति नम्र हो आपका गुणगान करे ॥१॥

भावार्थ —उपासक जब प्रभु द्वारा विरचित पदार्थों का ज्ञान पा लेता है तो वह उसकी महत्ता की यथार्थ प्रशंसा करता है। तब वह उसी को अपना गन्तव्य लक्ष्य मानने लगता है और उसका गुणगान करता हुआ उसकी प्राप्ति हेतु यत्न करने लग जाता है ॥१॥

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।

पिबा त्व१स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥२॥

पदार्थ —हे (गिर्वणः) मेरे प्रशसनीय आत्मन् ! (सुतासः) सुसम्पादित पदार्थविज्ञान (शुक्राः) जो निर्दोष होने से अतीव शोभित हैं वे (त्वा) तुझ मेरे आत्मा की ओर (आ अचुच्यवुः) चारों ओर से क्रमशः प्राप्त हुए हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य प्राप्ति के अभिलाषी मेरे आत्मन् ! (विश्वासु) सभी ओर (ते हितं) तेरे लिये प्रभु द्वारा स्थापित (अस्य) इस (अन्धसः) पदार्थविज्ञान रूपी रस को (नु) शीघ्र ही (पिब) पी ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा की सृष्टि का सम्यक् ज्ञान ग्रहण करना एक प्रकार से सोम सम्पादन है; इन्द्रियों के द्वारा यह सब आत्मा के हितार्थ किया जाता है। हर जीव इस प्राप्तव्य रस को शीघ्रातिशीघ्र ग्रहण करे ॥२॥

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।

त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य इच्छुक मेरे आत्मा ! तू (सुतं) विद्या सुशिक्षा आदि से सुसम्पादित (श्येनाभृतं) प्रशसनीय गति तथा पराक्रम से संयुक्त श्येन पक्षी के जैसे प्रशसनीय आचरण तथा सामर्थ्यवाले इन्द्रिय रूप अश्वो से लाकर दिये हुए (कं) सुख के हेतुभूत (सोमं) ऐश्वर्यकारक पदार्थ-बोध का (मदाय) अपनी तृप्ति हेतु (आ पिब) उपभोग कर। (त्वं हि) निश्चय ही तू तो (विशां) [विद्योद्यम, बुद्धि, धन धान्यादि बलयुक्त] मनुष्यों में (राजा) शुभ गुणों से प्रकाशित अध्यक्षवत् विद्यमान तथा (शश्वतीनां) उन प्रवाहरूप से अनादि प्रजा का (पतिः) पति है ॥३॥

भावार्थः—साधक जन विद्या, बुद्धि, बल एव धन आदि से युक्त होना चाहता है। इसलिए उसे चाहिये कि सृष्टि को अधिक से अधिक जानकर पदार्थों का समुचित प्रयोग करे। यही आत्मा का सोमपान है ॥३॥

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥४॥

पदार्थः—साधक पुनः प्रभु से याचना करता है । हे (इन्द्र) प्रभु ! (यः) जो साधक (तिरश्च्या) अन्तर्ध्यान की क्रिया से (त्वा) आपका (सपर्यति) समागम करता है, उस (सुवीर्यस्य) उत्तमबलसम्पन्न, (गोमतः) इन्द्रियजयी, संयमी साधक की (हवं) पुकार को (श्रुधि) सुनो और (राय.) उसे ऐश्वर्य से (पूर्धि) पूर्ण करो, (महान् असि) आप तो महान् हैं ॥४॥

भावार्थः—अन्तर्ध्यान से प्रभु का समागम होता है: सतत स्मरण से ही वह परमात्मा पुकार सुनता है—अर्थात् अन्तर्ध्यान द्वारा ही हम प्रभु के गुणों को ग्रहण करने में समर्थ हो उसके अच्छे एवं सतत सेवक बन पाते हैं ॥४॥

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥५॥

पदार्थ.—हे (इन्द्र) प्रभु ! (यः) जो उपासक (ते) आपकी प्राप्ति हेतु (नवीयसीं) नित नई (मन्द्रां) हर्षजनक (गिरं) गुणवन्दना को (अजीजनत्) प्रकाशित करता है; उस उपासक की (धियं) बुद्धि को आप (चिकित्विन्मनसम्) मनन या आन्तरिक विचारधारा की पहचान करानेवाले (प्रत्नां) पुरातन (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्यनियम के ज्ञान से परिपूरित कर देते हैं ॥५॥

भावार्थ —प्रतिदिन प्रभु का गुण गान करनेवाला उपासक सृष्टिकर्ता के उन सत्य नियमों को समझ जाता है कि जिनसे यह सृष्टि रची गयी है ॥५॥

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥६॥

पदार्थ —हम उपासक (तम् उ इन्द्रं) उस प्रभु की ही (स्तुवाम) गुण-वन्दना करें (यं) जिसको (गिरः) वेदवाणी से सुसंस्कृत हमारी वाणियां (उक्थानि) एवं हमारे प्रशसनीय कर्म (वावृधुः) बढ़ाते रहते हैं । फिर हम (अस्य) इस परमेश्वर के (पुरूणि) बहुत से (पौंस्या) बल ऐश्वर्य को (सिषासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) उसका भजन करते हैं ॥६॥

भावार्थ—प्रभु के गुणों की निरन्तर वन्दना से उसके प्रति उपासक नया उत्साह पाता है—यही परमेश्वर का विस्तार है । हमारे सुकर्म परमेश्वर के प्रति हमारी आस्था को सुदृढ़ तथा विस्तृत करते हैं ॥६॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥७॥

पदार्थः—(आ एत उ नु) आओ उपासको ! हम उपासक (शुद्धं) शुद्ध (इन्द्रं) प्रभु की (शुद्धेन) शुद्ध सामगायन से (स्तवाम) वन्दना करें । (शुद्धैः) शुद्ध (उक्थैः) स्तुति वचनों से (वावृध्वांसं) वर्धनशील को (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध कामनायुक्त उपासक (ममत्तु) हर्ष प्रदान करे ॥७॥

भावार्थ —सदा पावन प्रभु की उपासना अविद्यादि दोषरहित शुद्ध हृदय से की जानी सम्भव है । शुद्ध स्तुति हेतु वचन भी, सामवेदादि वेदवचन ही, शुद्ध वचन ही हों । परमेश्वर के गुणों की वन्दना, जब वेद के शुद्ध वचनों में होगी, तभी उसका शुद्ध स्वरूप वन्दना करनेवाले के शुद्ध हृदय पर अंकित होगा ॥७॥

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! (शुद्धः) आप शुद्ध हैं (नः) हमें (आ, गहि) आ कर सहारा दें । (शुद्धः) पवित्र आप (शुद्धाभिः) अपनी निर्दोष (ऊतिभिः) रक्षण आदि क्रियाओं से हमारा हाथ पकड़ें । (शुद्धः) शुद्ध आप ही (रयिं) ऐश्वर्य को (निधारय) धारण कराएं । हे (सोम्य) सोमगुणयुक्त, मेरे आत्मन् ! (शुद्धः) अविद्यादि दोषों से रहित होकर ही तू (ममद्धि) आनन्दित हो ॥८॥

भावार्थः—परम पावन प्रभु का ही आश्रय ग्रहण करना उचित है, उसकी प्रेरणा से हम जो कार्य करेंगे, वे ही शुद्ध होंगे और इस भांति हम शुद्ध होकर ही शुद्ध हर्ष पाने की इच्छा करें ॥८॥

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! आप (शुद्धः हि) निश्चय ही परमपावन, (नः रयिं) हमें ऐश्वर्य एवं (शुद्धः) परमपवित्र रूप में ही (दाशुषे) समर्पक भक्त को (रत्नानि) विविध रमणीय पदार्थ एवं (शुद्धः) परम पवित्र रूप में ही (वाजं) अन्न, बल आदि (सिषाससि) प्रदान करना चाहते हैं । (शुद्धः) आप शुद्ध हैं और (वृत्राणि) विघ्नों को (जिघ्नसे) दूर करना चाहते हैं ॥९॥

भावार्थ —प्रभु ही मानव को सभी कुछ देता है—अन्न, बल, धन आदि जो कुछ वह हमें प्रदान करता है, वह सब हम तभी पाते हैं जब कि उसके शुद्ध रूप को भलीभांति अपने हृदयपटल पर अंकित कर उसकी प्रेरणा से प्रेरित कर्मानुसार अपना व्यवहार बनाएं ॥९॥

अष्टम मण्डल में पिच्यानबेवां सूक्त समाप्त ॥

अथैकविंशत्यृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-२१ तिरश्चीर्द्युतानो वा मारुतः ॥ देवता—१—१३, १६—२१ इन्द्रः । १४ इन्द्रः मरुतश्च । १५ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः— १, २, ५, १३, १४ *निचृत्त्रिष्टुप्* । ३, ६, ७, १०, ११, १६ *विराट्त्रिष्टुप्* । ८, ९, १२ *त्रिष्टुप्* । १५, १८, १९ *पादनिचृत्त्रिष्टुप्* । ४, १७ *पङ्क्तिः* । २० *निचृत्पङ्क्तिः* । २१ *विराट्पङ्क्तिः* ॥ स्वरः—१—३, ५—१६, १८, १९ धैवतः । ४, १७, २०, २१ पञ्चमः ॥

अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥१॥

पदार्थः—(अस्मै इन्द्राय) ऐश्वर्य इच्छुक पुरुषार्थी व्यक्ति के लिये (उषासः) प्रबोधदायिनी शक्तियां (यामं) अपने विचरण की अवधि को (आतिरन्त) बढ़ाती है, (नक्तं) रात्रि में (ऊर्म्याः) रात्रियां (सुवाचः) उत्तम वाणियों से युक्त होती हैं । (अस्मै) इसके हेतु (आपः) सबकी आधार (सप्त) सात (मातरः) निर्माणकर्त्री तत्त्व—[१ पृथिवी, २ अग्नि, ३ सूर्य, ४ वायु, ५ विद्युत्, ६ उदक एवं ७ अवकाश] (तस्थुः) विद्यमान रहते हैं, (सिन्धवः) शीघ्र गतिशील तथा दुस्तर महासागर, नदी आदि के समान फुर्तीले दुर्जन शत्रुभूत दुर्भावनायें (सुपाराः) सुख से पार उतरने—जीतने योग्य—हो जाते हैं ॥१॥

भावार्थः—ऐश्वर्य साधक पुरुषार्थी को प्रातःकाल से जागरण एवं उद्बोधन की प्रेरणा प्राप्त होती है, तथा रात्रि भी अपने अन्तिम समय में पाठ की गई सूक्तियों के द्वारा शुभ कर्म की प्रेरणादायक होती है ॥१॥

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥२॥

पदार्थ—(गिरीणाम्) वृत्रों के शरीरों [उन्नति मार्ग में विद्यमान नाना प्रकार के विघ्नों के] तस्य वृत्रस्य एतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः । (संहिता) एकत्रित (त्रिः सप्त) २१ (सानु) शिखरवत् वर्तमान ऊंचे होकर बाधाएं डालने वाली भावनाओं को (विथुरेण) दुःखदायी (अस्त्रा) अस्त्र से, पीडक शक्ति के द्वारा (अतिविद्धा) वेध दिया । इस प्रकार (प्रवृद्धः) शक्ति-सम्पन्न (वृषभः) प्रबल व्यक्ति ने (यानि) जो किये (तत्) वैसे कार्य (न) न तो कोई (देवः) दिव्यशक्तियुक्त (तुतुर्यात्) करे और (न) न कोई (मर्त्यः) व्यक्ति ही कर सके ॥२॥

भावार्थ —मानव जब उन्नति के मार्ग में आने वाले विघ्नों को नष्ट कर आगे बढ़ता है तो उसकी प्रबलता को देखकर आश्चर्य होता है ॥२॥

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥३॥

पदार्थ —(इन्द्रस्य) ऐश्वर्य इच्छुक पुरुषार्थी व्यक्ति का (वज्रः) वीर्य—शुक्र (आयसः) लोह निर्मित-सा कठोर एवं (निमिश्लः) शरीर में भलीभांति मिश्रित होता है, इन्द्र की (बाह्वोः) बाहुओं में (भूयिष्ठं) बहुत (ओजः) तेज होता है । (इन्द्रस्य) इस इन्द्र के (शीर्षन्) मस्तिष्क में (निरेके) संशय-रहित (क्रतवः) संकल्प होते हैं, (आसन्) मुखोपलक्षित वाणी में (उपाके) समीप से (श्रुत्यै) सुनने-सुनाने के लिये प्रेरणा (आ+ईषन्त) आती हैं अथवा (एषन्त) दौड़कर आती हैं ॥३॥

भावार्थ —ऐश्वर्य-इच्छुक साधक को नितांत संयम सहित जीवन यापन करना चाहिए कि उसका वीर्य उसके शरीर में विलीन हो कर उसकी हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियों को तेजस्वी बनाये । उसकी संकल्प शक्ति बलशाली हो और उसकी प्रेरणा शक्ति प्रबल हो ॥३॥

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य इच्छुक पुरुषार्थी साधक ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां) सत्संगति योग्यों में अधिक (यज्ञियं) संगति योग्य (मन्ये) समझता हूं । मैं (त्वा) तुझे (अच्युतानां) स्थिर—अडिग—समझे जाने वाले दुर्भावों को भी (च्यवनम्) डिगानेवाला (मन्ये) समझता हूं । मैं (त्वा) तुझे (सत्वनाम्) बलिष्ठों का (केतुं) प्रमुख मानता हूं और (त्वा) तुझे (चर्षणीनाम्) विवेकशील एवं पुरुषार्थी मनुष्यों में (वृषभम्) सर्वश्रेष्ठ समझता हूं ॥४॥

भावार्थ -जो मानव संयम का अभ्यासी होता है, सामान्यजन उसकी संगति चाहते हैं, वह अपनी दुर्भावनाओं को भी उखाड़ फेंकता है तथा विवेकशील पुरुषार्थी जनों में उसको सर्वोत्तम पद प्राप्त होता है ॥४॥

आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥५॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) शक्तियुक्त ! मानव ! (यत्) जब तू (अहये हन्तवै) हिंसक भावनाओं को नष्ट करने के लिये (मदच्युतं) उन हन्ताओं का मद चूर करने वाले (वज्रं) बल-वीर्य को (धत्से) धारण कर लेता है तब (पर्वताः) पर्वत अर्थात् पर्वतों सरीखे अगम्य स्थानों पर स्थित [शत्रुभूत दुर्भाव] (इन्द्रं)

तुझ इन्द्र की शरण में (प्र अनमन्त) आ जाते हैं [नम्=गतौ] (गावः) गौएं अर्थात् इसी भूमि-स्थल पर स्थित [शत्रुभूत दुर्भाव] (प्र अनमन्त) तेरी शरण में आ जाते हैं और (ब्रह्माणः) सभी प्रकार के बल [बल वै ब्रह्म तैत्ति० ब्रा० ३-८-५-२] (अभि) तेरी ओर (नमन्त) बल पड़ते हैं ॥५॥

भावार्थः—जब ऐश्वर्य की साधना करने वाला वीर्य को शरीर में खपा लेता है तथा उसकी कर्मेन्द्रियां तेजस्वी हो जाती हैं तो वह अपने दुर्भावों पर विजयी हो जाता है और उसे शारीरिक, मानसिक, सांसारिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार की शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं ॥५॥

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।

इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥६॥

पदार्थः—सारे साधक संकल्प लें कि हम (तम् उ) उस ही की वन्दना करेंगे (यः) जिसने (इमाः) इन सकल पदार्थों को सृजा है, क्योंकि (विश्वा) सारे (जातानि) प्रकटित पदार्थ (अस्मात्) इससे (अवराणि) अर्वाचीन हैं—उक्त (इन्द्रेण) परमैश्वर्यवान् परमात्मा की (मित्र) मित्रता (दिधिषेम) धारण किये रहना चाहें । (उ) और (गीर्भि.) वचनों के द्वारा (नमोभि) विनीत-भावो से (वृषभं) उस सर्वश्रेष्ठ के (उप विशेम) समीप आसन ग्रहण करने योग्य हो सकें—उस प्रभु की सायुज्यता पा सकें ॥६॥

भावार्थः—प्रभु, जीव तथा प्रकृति अनादि तथा अनन्त हैं । परन्तु जीव एव प्रकृति का उद्भव, मानवादि जीवो व जड पदार्थों के रूप में उद्भावन, प्रभु ही करते हैं । अतएव प्राचीनतम प्रभु ही हैं, हमें उसी की स्तुति करनी चाहिये ॥६॥

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य साधक मेरे आत्मा ! (वृत्रस्य) [तेरी विजय यात्रा में] विघ्नभूत आवरक शक्ति के (श्वसथात्) असन्तोषसूचनामात्र से ही (ईषमाणा) पलायन करते हुए (विश्वे देवा) सभी दिव्यगुण, (ये सखायः) जो तेरे सखा हैं वे (त्वा अजहुः) तुझे छोड़ जाते हैं । इस लिये (मरुद्भिः) मरुतों—विभिन्न प्राण-अपान आदि शक्तियों से (ते सख्यं) तेरी मैत्री (अस्तु) हो, (अथ) परिणामत (इमाः विश्वाः पृतनाः) इन सभी [शत्रुभूत दुर्भाव-नाओं की] सेनाओं पर (जयासि) तू विजय पा लेगा ॥७॥

भावार्थः—यो तो दिव्यगुण जीवात्मा के सखा हैं परन्तु वे मन मे उद्भूत दुर्भावो के श्वासमात्र से ही जीव का साथ छोड़ जाते हैं । यदि मानव अपनी प्राण-शक्ति को अपना सखा बना ले तो उसके मन में दुर्भावनाएं उद्भूत न होंगी और वह दिव्यगुण धारण करने मे समर्थ होगा ॥७॥

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।

उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८॥

पदार्थः—(त्रि षष्टि) तरेसठ (यज्ञियासः) सगति योग्य (मरुत.) प्राण अपान इत्यादि प्राण शक्तियां (राशय·) सामूहिक रूप मे विद्यमान (उस्रा., इव) गौओ के तुल्य (त्वा) तुझ जीवात्मा [की शक्ति] को (वावृधानाः) बढ़ाती हुई बल प्रदान करती हैं । हम ऐसे शक्तिशाली (त्वा उप इम·) तुझ आत्मा के निकटवर्ती होते हैं, (नः) हमारा (भागधेयं) भाग (कृधि) नियत कर, (एना हविषा) इस [प्राप्त भाग रूप] हवि से [इसको तुझे ही सौंप] (ते) तेरा (शुष्म) शोषक बल (विधेम) तुझे प्रदान करें ॥८॥

भावार्थः—प्राण, अपान इत्यादि भांति-भांति के मरुतो की सहायता से जीव शक्ति पाता है । मानव का शरीर व शरीरस्थ इन्द्रियों को मरुतों के द्वारा प्रदत्त प्राणशक्ति में से अपना-अपना भाग प्राप्त होता है और ये अग प्राप्त बल को जीवात्मा को सौंप उसे बलशाली बनाते हैं ॥८॥

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।

अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य साधक मेरे आत्मा ! (मरुतां) प्राणशक्तियों की (अनीकं) शक्ति ही [अन्—प्राणने+ईकन्—जीवन साधन] (ते) तेरा (तिग्मं) पैना (आयुधं) युद्ध साधन (वज्र) वज्र है । (क प्रति वज्रं) कौन है जो उसके विरोधी वज्र को (दधर्ष) धारण करता हो ? (असुराः) स्वार्थ आदि कुप्रवृत्तियां रूप असुर तो (अनायुधास) युद्ध-संघर्ष के साधनो से रहित हैं; [निर्वीर्य] वे (अदेवाः) तेजस्विता से भी वंचित हैं । (ऋजीषिन्) अवशिष्ट का सेवन करनेवाले फिर भी बलशाली इन्द्र ! उन्हें तू (अप वप) छिन्न-भिन्न कर ॥९॥

भावार्थ—बलवान् एवं ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियादि पैने आयुध-साधन सम्पन्न जीवात्मा निश्चित रूप से ही भाग्यवान् है; क्योंकि स्वार्थ, हिंसा आदि दुर्भाव स्वतः हीभूत एव निस्तेज हैं । यह समझकर हम स्व आत्मा को उत्साहित करें कि अव-शिष्ट सोमरस का उपभोग कर तू भी दुर्भावनाएं शीघ्र नष्ट कर सकता है ॥९॥

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।

गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥१०॥

पदार्थ.—हे साधक तू (महे उग्राय) नितांत तेजस्वी, (तवसे) बलवान्, (पश्व.) दृष्टिशक्तियुक्त द्विपाद व चतुष्पाद सभी के (शिवतमाय) अधिकतम कल्याणकारी (इन्द्राय) अपने आत्मा हेतु (सुवृक्ति) सुष्ठुतया दुष्कर्म छोड़ने की क्रिया की (प्रेरय) प्रेरणा दे । हे साधक ! (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् आत्मा हेतु (पूर्वीः) बहुत सी (गिरः) स्तुतियां (धेहि) धार । [परिणामत] (तन्वे) [कुल-विस्तारक] पुत्र या स्व शरीर के लिये (कुवित्) प्रचुर ऐश्वर्य (वेदत्) पा ॥१०॥

भावार्थ.—जिस समय साधक स्व आत्मा को दुष्कर्मों से अलग रहने की प्रेरणा मधुरवाणी से किये स्तुतिवचनो से करेगा तो निश्चित ही यह जीवात्मा उग्र, बलवान् तथा अधिकतम कल्याणकारी होगा ॥१०॥

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।

नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥११॥

पदार्थः—हे साधक ! (उक्थवाहसे) उत्थापक गुण-वाहक तथा (विभ्वे) आत्मनियंत्रित बनने के लिये (मनीषां) मनन बुद्धि को (ईरय) प्रेरितकर (नदीनां पारं) नदियों के पार (द्रुणा न) जैसे काष्ठनिर्मित नौका आदि द्वारा जाते हैं । (तन्वि=आत्मनि) आत्मा में (जुष्टतरस्य) नितात प्रिय (श्रुतस्य) ज्ञान को (धिया) धारणावती बुद्धि से (नि स्पृश) पूर्णतया सयुक्त कर अथवा पा । हे (अङ्ग) प्रिय साधक ! (कुवित्) इस भांति बहुत कुछ (वेदत) उपलब्ध कर ॥११॥

भावार्थ.—मानव का मन मनन से ही नियन्त्रित तथा शुभ गुणो का वाहक बन पाता है । उसे ज्ञान धारणावती बुद्धि से ही मिलता है । इस भांति उसे 'बहुत' मिलता है ॥११॥

तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।

उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२॥

पदार्थः—हे साधक ! (तत्) उस [कर्म] में (विविड्ढि) उस कृत्य मे व्याप्त हो कि (यत्) जो (ते) तेरा (इन्द्रः) इन्द्रियवशी [जीव] (जुजोषत्) भली भांति चाहता है । (सुष्टुतिं) शुभगुणवाहिका स्तुतिवाले प्रभु की (स्तुहि) वन्दना कर और उसी की (नमसा) विनयपूर्वक (विवास) सेवा कर । हे (जरित.) साधक ! (उपभूष) उसके पास रह, (मा रुवण्य.) ऐसा करने पर तुझे पश्चात्ताप न होगा । (वाच) उसे स्व कथ्य (श्रावय) सुना, इस भांति हे (अंग) प्रियस्तोता ! तू (कुवित्) नितांत ऐश्वर्य (वेदत्) प्राप्त कर ॥१२॥

भावार्थ—साधक का आत्मसयम से पहले अपनी इन्द्रियों को सयत कर उन्हें बलवान् बनाना चाहिये और फिर अपने आत्मसयमी जीव के प्रिय कार्य करने चाहियें । इस प्रकार साधक परम प्रभु का सान्निध्य पा जाता है और उसकी देखरेख में वह किसी पदार्थ का अभाव अनुभव नहीं करता ॥१२॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥

पदार्थः—(कृष्ण) हानिकारक (द्रप्स) दर्पकारी वीर्य (दशभि. सहस्रैः) अपने दस सहस्र अर्थात् असख्य सहायकों—दुर्भावों सहित (इयान·) आकर (अंशुमतीम्) [अंशुः व्याप्तौ से अंश्ट अर्थात व्याप्त, जो व्याप्त हो कल्याण-कारी हो अर्थात् शुभवीर्य] शुभ वीर्यवती जीवनमदी पर (अव अतिष्ठत्) अधिकार करके बैठे (धमन्त) गर्वोद्धत करते हुए (त) उस दूषित वीर्य का (इन्द्र·) उत्कृष्ट ऐश्वर्य का इच्छुक जीव (शच्या) अपनी श्रेष्ठ कर्मशक्ति से (आवत्) अपने स्वामित्व मे ले, (नृमणा) कर्म के नेतृत्व की शक्तियों का प्रिय (स्नेहिती), मित्र भावनाओं को (अप, अधत्त) ढक कर धारे ॥१३॥

भावार्थः—'द्रप्स' या बूंद-बूंद कर शरीर मे खपने वाले शुक्र-वीर्य का एक रूप श्वेत—वृद्धि कारक एव हर्षदायक है तो दूसरा 'कृष्ण' गर्वित करने वाला है । साधक अपनी कर्मठता से स्व वीर्य को कृष्ण नहीं होने देता और इस भांति मित्र-भावनाओं की रक्षा करता है ॥१३॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥

पदार्थ·—उक्त (द्रप्स) दूषित वीर्य को मैंने (अंशुमत्या नद्य.) शब्द करती जीवन नदी के (विषुणे) शरीर मे व्याप्त (उपह्वरे) टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर (चरन्त) विचरते हुए को (अपश्यम्) अनुभव किया है । (इष्यामि) मैं चाहता हूं कि (वृषणः व) मेरी बलवान् प्राण शक्तियो ! तुम (नभ न) हिंसक के तुल्य विद्यमान (आजौ) संघर्ष स्थल पर जमकर स्थित हुए इस (कृष्णं) पापात्मा दूषित वीर्य से (युध्यत) संघर्ष करो ॥१४॥

भावार्थः—ऐश्वर्य की साधना करने वाला जब यह अनुभव करे कि उसके शरीर के मर्मस्थलो तक में दूषित वीर्य प्रभाव जमा रहा है तो वह सकल्प सहित अपनी सारी शक्तियों से उसकी कायापलट का प्रयास करे ॥१४॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।

विशो अदेवीरभ्या३चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (तित्विषाणः) दीप्तिमान (द्रप्सः) शुद्धवीर्य (अंशुमत्या) शुद्धवीर्यवती जीवन नदी की (उपस्थे) गोदी में (तन्वं) अपने आप (अधारयत्) रहने लगा । (इन्द्रः) ऐश्वर्येच्छुक जीवात्मा ने (बृहस्पतिना) पावक वायु [वायु] प्राण अपान आदि मरुद्गणों से (युजा) सहयोग किये हुए ने (अभि, आचरन्ती.) सामना करने को आती—विरोधिनी (अदेवी) दिव्यता-रहित (विशः) प्रजाओं—भावनाओं को (ससाहे) परास्त किया ॥१५॥

भावार्थ—गर्व पैदा करने वाले वीर्य को शरीर में स्थान न दे हर्ष उत्पन्न करने वाले वीर्य को स्थान दो; वही हमें सच्ची उन्नति देता है । प्राण-अपान आदि वायु केवल शरीर की शुद्धि ही नहीं करते अपितु हमारी दुर्भावनाएं भी दूर भगाते हैं ॥१५॥

त्वं ह॒ त्यत्स॒प्तभ्यो॒ जाय॑मानोऽश॒त्रुभ्यो॑ अभवः॒ शत्रु॑रिन्द्र ।

गू॒ळ्हे द्यावा॑पृथि॒वी अन्व॑विन्दो विभु॒मद्भ्यो॒ भुव॑नेभ्यो॒ रणं॑ धाः ॥१६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) जीवात्मा ! (त्व ह) तू निश्चय ही (अशत्रुभ्य) मित्र भूत (सप्तभ्यः) सात प्राणों से (जायमान) प्रकटित हो (त्यत्) उस समर्थ (अभवत्) रूप में आता है । पुनश्च (गूह ळ्हे) रहस्यात्मक (द्यावापृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी लोकस्थ सभी पदार्थों को (अनु, अविन्दः) अनुक्रम से सम्पादित कर लेता है । (विभुमद्भ्यः) शक्तिशाली (भुवनेभ्य) निवास स्थानों से (रणं) रमण को (धाः) पाता है ॥१६॥

भावार्थ—जिस समय साधक जीवात्मा की शक्तियां सप्त प्राणों के संयम से प्रकट होती हैं तो साधक दोनों लोकों में स्थित पदार्थों का ज्ञान पा लेता है और जहां-जहां शक्तिशाली निवास करते हैं, वहां से उसे प्रसन्नता मिलती है ॥१६॥

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन्धृषि॒तो ज॑घन्थ ।

त्वं शुष्ण॒स्यावा॑तिरो॒ वध॑त्रै॒स्त्वं गा इ॑न्द्र॒ शच्येद॑विन्दः ॥१७॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) वीर्यवान् ! (त्व ह) निश्चय ही तूने (त्यत्) वह (अप्रतिमान) अनुपम (ओज) ओज, (वज्रेण) वीर्य से (धृषित) विजयी हो (जघन्थ) प्राप्त किया था । (त्व) तूने (वधत्रै) संघर्ष साधना के द्वारा (शुष्णस्य) शोषक के ओज को (अव+अतिर) जीता तथा (त्व) तूने, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (शच्या) स्व ज्ञान एवं कर्तृत्व के द्वारा (गा) ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों को पाया है ॥१७॥

भावार्थ—देहधारी जीवात्मा को वीर्य के द्वारा ही ओजस्विता प्राप्त होती है और फिर जीवन यात्रा में मिले संघर्ष साधनों के सहयोग से वह स्व इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है ॥१७॥

त्वं ह॒ त्यद्वृ॑षभ चर्षणी॒नां घ॒नो वृ॒त्राणां॑ तवि॒षो ब॑भूथ ।

त्वं सिन्धूँ॑रसृजस्तस्तभा॒नान् त्वम॒पो अ॑जयो दा॒सप॑त्नीः ॥१८॥

पदार्थ—(त्व ह त्यत्) निश्चय ही तू वह (चर्षणीनां) विवेकशील तथा कर्तृत्वशक्तिसम्पन्न मनुष्यों में, हे (वृषभ) बलवान् एवं श्रेष्ठ साधक ! (तविष) बलवान् तथा (वृत्राणां) विघ्नों का, (घनः) नाशक (बभूथ) विद्यमान था । (त्वं) तू ने (तस्तभानान्) रोक लेने वाले आशयों को (सिन्धून्) स्रवणशील (असृजः) बनाया और इस भांति (दासपत्नी) [दसु उपक्षये] नष्ट करने वाले के द्वारा स्व अधिकार में रक्षित (अप) कर्मशक्तियों को (अजयः) तू विजय कर लाया ॥१८॥

भावार्थ—जीवन-प्रवाह में बाधाएं भी आती ही हैं । विवेकशील तथा कर्मठ व्यक्ति शुभ सामर्थ्य से उन्हें छिन्न भिन्न कर प्रवाह को पुन प्रसरणशील बनाता है और उसकी कर्मशक्ति फिर अपने मार्ग पर अग्रसर होने लग जाती है ॥१८॥

स सु॒क्रतू॒ रणि॑ता॒ यः सु॒तेष्वनु॑त्तमन्यु॒र्यो अहे॑व रे॒वान् ।

य एक॒ इन्नर्यपां॑सि॒ कर्ता॒ स वृ॑त्र॒हा प्रतीद॒न्यमा॑हुः ॥१९॥

पदार्थ—(स) वह इन्द्र (सुक्रतु) शुभ संकल्प व कर्म कर्ता है (य) जो (सुतेषु) पदार्थबोध रूप सारग्रहण के कार्यों में (रणिता) रमण करता है और (अनुत्तमन्यु) [नञ्+उन्दी क्लेदने+क्त] अजेय साहसी तथा (य) जो (अहा इव) दिवसों के तुल्य चमकता (रेवान्) ऐश्वर्यवान् है । (य) जो (एक इत्) एकाकी ही (नर्यपांसि) पौरुषयुक्त कर्मों का (कर्ता) कर्ता है, (सः) वह (वृत्रहा) विघ्ननाशक है, उसी इन्द्र को (इत्) ही (अन्य) सब दूसरों का—शत्रुओं का (प्रति) विरोधी (आहु) कहते हैं ॥१९॥

भावार्थ—जो साधक सुकर्म करने वाला हो, रुचि सहित साहसपूर्वक पदार्थ-ज्ञान प्राप्त करे, और पौरुष के कर्मों में ढील न दे वह निश्चय ही अपने सभी शत्रुओं पर विजय पाता है ॥१९॥

स वृ॑त्र॒हेन्द्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम ।

स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य दा॒ता ॥२०॥

पदार्थ—अन्य सभी साधक पूर्ववर्णित ऐश्वर्येच्छुक के विषय में कहते हैं—(सः) वह (इन्द्र) इन्द्र (वृत्रहा) विघ्ननाशक है, (चर्षणीधृत्) विवेकशील मानवों को धारण करता है, (त हव्यं) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सुष्टुत्या) शुभ गुणवर्णन से (हुवेम) संतुष्ट करें । (सः) वह (न) हमारा (प्र, अविता) प्रकृष्ट प्रिय, (अधिवक्ता) उपदेष्टा हो और (स) वह अपने मार्गदर्शन से (श्रवस्यस्य) यश का तथा (वाजस्य) सुखप्रद ऐश्वर्य का (दाता) देने वाला हो ॥२०॥

भावार्थ—ऐश्वर्येच्छुक साधकगण जब दूसरों का मार्गदर्शन कराने की स्थिति में हो जाय तो निश्चय ही वह दूसरों का मार्गदर्शन करे ॥२०॥

स वृ॑त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव ।

कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः ॥२१॥

पदार्थ—(सः) वह (इन्द्र.) इन्द्र (वृत्रहा) विघ्न नाशक (ऋभुक्षाः) मेधावियों को आश्रय देने वाला (जज्ञान) प्रकट होकर (सद्यः) तत्काल (हव्य) स्तुत्य (बभूव) हो जाता है । (पुरूणि) बहुत से (नर्या) नर हितकारी पौरुष के (अपांसि) कर्म करता हुआ वह (पीत सोम न) पान किये गए सोमलतादि के रस के तुल्य सेवित वह वीर्यवान् (सखिभ्य) सखाओं के हेतु (हव्यः) वन्दनीय हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ—ऐश्वर्य साधक व्यक्ति ज्यों ही सिद्ध अवस्था पा जाता है—सर्व साधक उसके स्तोता तथा उसके गुणों के अनुकर्ता बन जाते हैं ॥२१॥

अष्टम मण्डल में छियानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषि—१—१५ *रेभः काश्यप.* ॥ *देवता*—*इन्द्र.* ॥ *छन्दः*—१, ११ *विराड्बृहती* । २, ६, ९, १२ *निचृद्बृहती* । ४, ५, ८ *बृहती* । ३ *भुरिगनुष्टुप्* । ७ *अनुष्टुप्* । १० *भुरिग्जगती* । १३ *अतिजगती* । १५ *ककुम्मती जगती* । १४ *विराट्त्रिष्टुप्* ॥ *स्वर.*—१, २, ४—६, ८, ९, ११, १२ *मध्यम* । ३, ७ *गान्धार* । १०, १३, १५ *निषाद* । १४ *धैवत* ॥

या इ॑न्द्र॒ भुज॒ आभ॑रः॒ स्व॑र्वाँ॒ असु॑रेभ्यः ।

स्तो॒तार॒मिन्म॑घवन्नस्य वर्धय॒ ये च॒ त्वे वृ॒क्तब॑र्हिषः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रभो ! (स्वर्वान्) बहुसुख संपन्न आप (असुरेभ्य) प्राणद पिण्डों से (या) जिन (भुज) भोग्यों को (आभर) लाकर देते हैं—(अस्य) उस भोग्य समूह के (स्तोतार इत्) प्रशंसक को ही, हे (मघवन्) सम्मानित ऐश्वर्य के स्वामी ! आप (वर्धय) बढ़ाइये (च) और उन लोगों को बढ़ाइये (ये) जो (त्वे) आपके हेतु (वृक्तबर्हिषः) स्व शुद्ध अन्तःकरण का आसन फैलाए हैं ॥१॥

भावार्थ—यों तो प्रभु रचित सारे भोग्य पदार्थ सदैव विद्यमान रहते ही हैं परन्तु वस्तुत वे उन्हें ही आमोद देते हैं जो उनके गुणों को जान उनका सदुपयोग करें और उनके दाता प्रभु को सदैव अपने अन्त करण में प्रत्यक्ष देखें ॥१॥

यमि॑न्द्र दधि॒षे त्वमश्वं॒ गां भा॒गमव्य॑यम् ।

यज॑माने सुन्व॒ति दक्षि॑णावति॒ तस्मि॒न् तं धे॑हि॒ मा प॒णौ ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रभु ! (त्व) आप (य) जिस (गां, अश्व, अव्यय भाग) गाय, अश्व आदि से उपलक्षित ऐश्वर्य के अविनश्वर वितीर्यमाण अंश को वितरण के लिये (दधिषे) धारते हैं (तं) उस अंश को (तस्मिन्) उन प्रसिद्ध (सुन्वति) पदार्थों के बोध रूप सार का निष्पादन करनेवाले, और साथ ही (दक्षिणावति) दानशील मानव में (धेहि) स्थापित कर, (मा पणौ) क्रय-विक्रय करने वाले कंजूस में स्थापित न कीजिये ॥२॥

भावार्थ—जो विद्वान् परमात्मा द्वारा रचित पदार्थों के गुणावगुणों को जान उस बोधरूप सार को दूसरों में बांटते हैं, वे ही वस्तुत प्रभु प्रदत्त ऐश्वर्य में वास्तविक भागीदार हैं, ज्ञान का आदान-प्रदान करनेवाले पदार्थों के वास्तविक भोग से वंचित रहते हैं ॥२॥

य इ॑न्द्र॒ सस्त्य॑व्र॒तोऽनु॒ष्वाप॒मदे॑वयुः ।

स्वैः ष एवै॑र्मुमुर॒त्पोष्यं॑ र॒यिं स॑नु॒तर्धे॑हि॒ तं ततः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रभो ! (यः) जो मनुष्य (अव्रत) सुकर्मरहित है; (अदेवयु.) अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता, अथवा उन्हें दिव्यगुणी नहीं बनाना चाहता और (अनुष्वाप) निद्रा—आलस्य सहित (सस्ति) सोता रहता है, (स) वह (स्वै.) अपने ही (एवै) कृत्यों तथा आचरणों से (पोष्य) पुष्टियोग्य (रयिं) ऐश्वर्य को (मुमुरत्) नष्ट कर देता है; (तं) उस अकर्मण्य व्यक्ति को (तत. सनुत) उस सनातन दान से परे (धेहि) हटा दें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के दान सदातन तथा सनातन हैं । सुकर्महीन के भाग से वे निकल जाते हैं । हीनकर्मी को प्रभु प्रदत्त सत्य, सनातन भोग भी नहीं मिलते ॥३॥

यच्छ॒क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन् ।

अत॑स्त्वा गी॒र्भिर्द्यु॒गदि॑न्द्र के॒शिभिः॑ सु॒तावाँ॒ आ वि॑वासति ॥४॥

पदार्थ—हे (शक्र) सब भांति समर्थ ! (वृत्रहन्) विघ्न विनाशक ! प्रभो ! आप (यत्) जिस (परावति) दूर देश में या (यत्) जिस (अर्वावति) समीप स्थित देश में हैं, हे (इन्द्र) प्रभु ! (अतः) उस स्थान से (द्युगत्=द्युगद्भिः) अन्तरिक्ष में सर्वत्र फैली (केशिभि) सूर्यरश्मियों के तुल्य किरणोंवाली (गीर्भिः)

स्तुतिवाणियों के द्वारा (सुतावान्) पदार्थबोध को प्राप्त साधक (त्वा) आप को (आ विवासति) बुला लाता है ॥४॥

भावार्थ—यों तो भगवान् सर्वव्यापक है अत किसी से दूर नही। परन्तु उसके गुणो को न जाननेवाला व्यक्ति उसका सामीप्य नहीं पाता, स्तोता, गुणगान कर—उसके गुणों का भलीभांति मनन करके उसकी महत्ता समझ लेता है—यही उसका अपने समीप आह्वान है ॥४॥

यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि ।

यत्पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ॥५॥

पदार्थः—पुन दूसरे शब्दो मे भी उसी भाव का वर्णन है। हे प्रभु! (यद्वा) अथवा यदि आप किसी (दिव रोचने) द्युलोक के किसी ज्योतिष्मान् लोक में हैं; या (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (विष्टपि अधि) किसी लोक में आसीन हैं। हे (वृत्रहन्तम) विघ्नों के नाशक! आप (यत्) यदि किसी (पार्थिवे सदने) भूलोक के स्थान मे या (यद्) यदि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष स्थान मे—कहीं भी हो, (आ गहि) आकर हमे सहारा प्रदान करे ॥५॥

भावार्थ—जब तक मानव परमेश्वर की शक्ति का अनुभव नही करता तब तक वह उसके लिये रहस्य ही रहता है—न जाने वह कहा हो। विघ्न-नाशक प्रभु की सहायता पाना आवश्यक है ॥५॥

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।

मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥६॥

पदार्थ—हे (सोमपा) जगत् मे उपजे पदार्थों के द्वारा सर्व रक्षक! (शवसस्पते) बल पालक! (सः) वह आप (नः सोमेषु सुतेषु) पदार्थबोध रूप उनके सार के निचोड़ लेने पर, हे (इन्द्र) परमेश्वर! आप (राधसा) सिद्धिदायक, (सूनृतावता) सत्यवाणी युक्त, (राधसा) सुखसाधन, (परीणसा) बहुत से, (राया) सर्व प्रकार की विद्या से सम्पन्न पदार्थबोध रूप धन से (न) हमे (मादयस्व) हर्षित करें ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर अपने द्वारा उत्पन्न पदार्थों से सबकी रक्षा करते हैं। परन्तु इसका माध्यम यही है कि मानव उन पदार्थों का सदुपयोग कर पाता है—यही प्रभुप्रदत्त धन होता है ॥६॥

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः ।

त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रभु! (नः) हमारा (मा) मत (परा वृणक्) परित्याग करें, (न) हमारे (सधमाद्यः) साथ-साथ हर्षित होनेवाले हों। (त्व न ऊती) आप ही हमारे रक्षणादि क्रियायुक्त हैं, (त्व इत्) आप ही (न) हमारे (आप्य) प्राप्तियोग्य सखा हैं। हे (इन्द्र) परमेश्वर! (न मा परावृणक्) हमारा त्याग न कीजिये ॥७॥

भावार्थः—उपासक का मन सदैव इस चिन्ता मे रहना चाहिये कि कही वह भटककर प्रभु को न छोड दे। सर्वव्यापक परमात्मा तो जीव को कैसे छोड़ेगा! परन्तु जीव ही परमेश्वर के गुणों से ध्यान हटा कर विचलित हो जाता है। इस चिन्ता मे विकल जीव पुनः सकल्प करता है कि ऐसा न हो कि मैं प्रभु को छोड दूं ॥७॥

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।

कृधी जरित्रे मघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य सपन्न! (सुते) पदार्थबोध रूप सारग्रहण क्रिया निष्पन्न करने पर (मधु पीतये) उसके रस का उपभोग करने हेतु (अस्मे सचा) हमारे साथ (निषदा) बैठो! (मघवन्) हे आदरणीय ऐश्वर्यस्वामी! (जरित्रे) अपना गुण गाने वाले उपासक के हेतु (महत्) व्यापक (अव) रक्षण (कृधी) करें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा की सृष्टि में उत्पन्न पदार्थों का बोध पा लेने पर जो हर्ष मिलता है, उसका हर्ष भी उसे तभी मिलता है जब वह परमेश्वर को अपना सदैव साथी समझे। दु:ख में तो सभी उसे पुकारते हैं, सुख मे भी उसके साथ की अभिलाषा रहनी अपेक्षित है ॥८॥

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।

विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥९॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) आदरणीय अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त विघ्नहर्ता प्रभु! (त्वा) आपको (न) न तो (देवास) स्वय को दिव्य अथवा अमर हुआ समझने-वाले ही (आशत) पा सकते हैं और (न) न ही (मर्त्यास.) स्वय को मरण-शील मानने वाले आपको पाते हैं। आप अपने (शवसा) बल से (विश्वा जातानि) उत्पन्न सभी पदार्थों व प्राणियों से (अभि भू असि) बड़े-चढ़े हैं ॥९॥

भावार्थ—प्रभु के साथ सामीप्य वे ही साधक पा सकते हैं कि जिन्हें न तो अपनी शक्तियों का गर्व हो और न जिनमे हीनता के भाव हों ॥९॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१०॥

पदार्थ—(पृतना) मानव जन (सजू) एक साथ मिलकर (विश्वा.) सभी को (अभिभूतर) परास्त करने वाले (नर) नेता को (ततक्षु) बनाते हैं तथा (राजसे) राज्य करने हेतु उसे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (जजनु) बना देते हैं। फिर कैसे नेता को इन्द्र बनाते हैं—कि जो (क्रत्वावरिष्ठ) अपने कृत्य मे श्रेष्ठ है, (वरे) चुनाव के प्रयोजन से (आमुरि) अनभीष्टो का नाशक है (उत) साथ ही (उग्रम्) तेजस्वी है, (ओजिष्ठ) पराक्रमी है, (तवस) बलशाली है और स्वय (तरस्विन) बलवान् है ॥१०॥

भावार्थ—वेद मे इन्द्र पद से मनुष्यो के नेता राजा का वर्णन भी है। इस मन्त्र मे यह विचार प्रस्तुत है कि श्रेष्ठकर्मा, शत्रुनाशक, बलशाली को इस प्रकार से शिक्षित कर अपना नेता बनाना चाहिये कि वह सर्वातिशायी हो ॥१०॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥११॥

पदार्थ—(ईं) इस (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शासक को (रेभास) बहुश्रुत स्तोता विद्वान्, (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य की रक्षार्थ (सम्, अस्वरन्) सम्यक्तया पुकारते हैं। तथा च (यत) जब (ईं) इस (स्वर्पति) धनस्वामी से (वृधे) अपने वर्धन हेतु प्रार्थना करते हैं तब (धृतव्रत) कर्मठ बना वह राजा (हि) निश्चय ही (ओजसा) बल तथा (ऊतिभि) पालन शक्तियो मे (सम्) सपन्न होता है ॥११॥

भावार्थ.—प्रजाजन पहले मन्त्र मे वर्णित गुणसम्पन्न शासक से राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं। वह भी कर्मठ बन, ओजस्वी तथा पालक होकर राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करता है ॥११॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।

सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥१२॥

पदार्थ—(विप्रा) बुद्धिमान् प्रजागण (नेमि) परिधि के तुल्य प्रजा के रक्षक (मेष) सुखवर्षक शासक को (अभिस्वरा) उसकी उपस्थिति मे पुकारते हुए (चक्षसा नमन्ति) आदर की दृष्टि से देखते हैं। (सुदीतय.) शुभ विद्या-प्रकाश से दीप्त, (अद्रुह) द्रोहरहित (व अपि) शेष आप भी जो (कर्णे) कर्तव्य कर्म मे (तरस्विनः) बलशाली तथा आलस्य-रहित है, (ऋक्वभि) प्रशस-नीय सत्कर्मों से (स) उसका समादर करते हैं ॥१२॥

भावार्थः—राष्ट्र की परिधि बना शासक उसकी सभी ओर से रक्षा करता है। इसी लिए बुद्धिमान् प्रजाजन उसकी उपस्थिति मे ही उसका आदर करते हैं तथा दूसरे प्रजाजनो से भी आग्रह करते हैं कि वे सत्कर्म कर उसके प्रति आदर, भावना प्रदर्शित करें ॥१२॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो

विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१३॥

पदार्थ—[मैं उपासक तो] (तं) उस विख्यात (मघवान) परम आदरणीय ऐश्वर्य अधिपति, (उग्र) तेजस्वी, (सत्रा) सत्य (शवांसि) बलो से (दधान) युक्त, (अप्रतिष्कुत) निर्विरोध विद्यमान (इन्द्र) प्रभु से (जोहवीमि) बार-बार प्रार्थना करता हूं। वह (मंहिष्ठ) अतिशय उदार है (च) और (गीर्भि) पवित्र वाणी द्वारा (यज्ञिय.) सगति योग्य (आ ववर्तत्) सर्वथा विद्यमान है। वह (वज्री) न्यायरूप दण्डधर (राये) दानशीलता के प्रयोजनवाले ऐश्वर्य हेतु (न) हमारे (विश्वा) सभी (सुपथा) शुभ मार्ग (कृणोतु) सिद्ध करता है ॥१३॥

भावार्थ—प्रजा ऐश्वर्य के लिये शासक की सहायता चाहे। किन्तु व्यक्तिश उपासक शासको के भी राजा परमात्मा का ही गुण गाए। प्रभु सर्वोपरि हैं ही, उसके गुणो को धारने का यत्न करने वाला साधक स्वय जान जाता है कि आदरणीय ऐश्वर्य किन-किन शुभ मार्गों मे प्राप्य है ॥१३॥

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।

त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) नितांत बलशाली! (शक्र) सर्व समर्थ! (इन्द्र) प्रभु! (त्व) आप (पुरः) दुष्टता से भरे-पूरे नगरो का (ओजसा) अपने प्रभाव से ही (वि, नाशयध्यै) विध्वस करना (चिकित्) भलीभांति जानते हैं। हे (वज्रिन्) दुर्भेद्य शासनयुक्त! (विश्वानि भुवनानि त्वत्) यों तो सकल लोक ही आपके हैं (च) परन्तु (द्यावापृथिवी) ये हमारे सामने प्रत्यक्ष विद्यमान द्युलोक पृथिवी लोक तो (भीषा) भय से (रेजते) मानो प्रकाशित ही हैं ॥१४॥

भावार्थः—प्रभु दुष्टता के सभी स्थलो से परिचित है और उसके प्रभाव से वे नष्ट होते जाते हैं। सभी लोक लोकान्तर उसके शासनाधीन हैं तो हमारी इस शरीररूपी नगरी मे विद्यमान शत्रु भला उससे कैसे बचे रह सकते हैं? ॥१४॥

तन्मं ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा नं इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥१५॥

पदार्थ हे (**शूर**) दुष्ट दोषो के संहारकर्ता ! (**चित्र**) पूजनीय ! (**इन्द्र**) प्रभु ! (**तत्**) आपका वह (**ऋत**) सत्य सनातन नियम (**मा**) मुझे (**पातु**) अपना संरक्षण दे । हे (**वज्रिन्**) न्यायरूप दण्ड धारक ! आप (**भूरि**) हमारे बहुत से (**दुरिता**) पापो को (**अप**) जलो के तुल्य (**अतिपर्षि**) पार कराए । हे (**इन्द्र राजन्**) हे सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् ! आप (**विश्वप्स्न्यस्य**) सभी रूपो मे विद्यमान (**स्पृहयाय्यस्य**) स्पृहणीय (**राय**) धन (**न**) हमे (**कदा**) कब (**दशस्येः**) देंगे ? ॥१५॥

भावार्थ —उपासक की एकमात्र आशा प्रभु ही है। परन्तु वह यह भी समझता है कि सकल संसार उसके सत्य-प्रवाहित नियमो मे आबद्ध है। उसे विदित है कि यदि प्रभु की सहायता मिले तो सारी दुर्भावनाओ, दुष्ट विचारो से सरलता से मुक्ति मिल सकती है ॥१५॥

अष्टम मण्डल मे सत्तानवेवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्याष्टनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषि —१-१२ नृमेध ॥ देवता—इन्द्र ॥ छन्द — १, ५ उष्णिक् । २, ६ ककुम्मती उष्णिक् । ३, ७, ८, १०-१२ विराडुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥ स्वर — ऋषभ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥

पदार्थ —हे स्तोताजनो ! तुम उस (**विप्राय**) विविधरूप से हमे परिचित कर रहे, (**बृहते**) विशाल, (**धर्मकृते**) नियमो के निर्माता, (**विपश्चिते**) विविध ज्ञान तथा समशक्तियो के पालक, (**पनस्यवे**) स्तुतियोग्य (**इन्द्राय**) प्रभु के लिये (**बृहत् साम**) बृहत्साम को (**गायत**) गाओ ॥१॥

भावार्थ -- प्रभु हमे विभिन्न पदार्थ दे परिपूर्ण किये हुए है, वह उन शाश्वत नियमो तथा सिद्धान्तो का निर्माता है कि जिनके आधार पर यह संसार टिका है। उसका सामगायन से विस्तृत गान या वर्णन ना हो, जिससे उसका सन्देश प्राप्त होता है ॥१॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) प्रभु ! (**त्व**) आप (**अभिभू असि**) सामर्थ्य से सबको पराजित कर आसीन हैं, (**त्व सूर्य अरोचय**) सूर्य आदि ज्योतिष्पुञ्जो को भी आपने प्रकाशित किया है, आप (**विश्वकर्मा**) समारम्भ के शिल्पी, और (**विश्वदेव**) समारम्भ के पदार्थो को दिव्यता देने वाले हैं अतः आप (**महान् असि**) महान् हैं ॥२॥

भावार्थ —सूर्य इत्यादि आलोकित पिण्ड हम कितने सुहाने हैं—उनके बिना हमारा कोई कार्य नही चल सकता। परन्तु सूर्य आदि चमकते पिण्डो का प्रकाशक भी तो प्रभु ही है। अतएव उससे बड़ा कोई नही है ॥२॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) प्रभु ! आप अपनी (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**विभ्राजन्**) दीप्त है, आप (**दिव**) प्रकाशलोक को भी (**रोचन**) प्रकाश के दाता अर्थात् उससे भी अधिक प्रकाशित (**स्व**) शाश्वत सुख को (**अगच्छ**) पहुँचाते है। हे (**इन्द्र**) प्रभु ! (**देवा**) विद्वान् इसीलिये (**ते**) आपके साथ (**सख्याय**) मैत्री हेतु (**येमिरे**) प्रयत्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ —प्रभु न केवल इस लोक का ऐश्वर्य तथा सुख ही प्रदान करता है अपितु दिव्य सुख का दाता भी है अतएव सभी विद्वान् उसकी मैत्री के इच्छुक रहते हैं ॥३॥

एन्द्रं नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥४॥

पदार्थ:—हे (**इन्द्र**) प्रभु ! आप जो (**सत्राजित्**) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव के द्वारा सर्वविजयी है, (**अगोह्य**) जिस आपकी सत्ता सदैव प्रकट है, (**गिरि न**) पर्वत की भाति (**विश्वत पृथु**) सब ओर विशाल है, (**दिव पति**) प्रकाश लोक के पालक है, वह आप (**न**) हम (**आ गधि**) बोध प्राप्त कराए ॥४॥

भावार्थ —विराट प्रभु अद्भुत सृष्टि के माध्यम से ही प्रकट है, उसे भला कौन नहीं अनुभव करता ! हा उचित बोध, प्रेरणा बिना मानव उसे देखता हुआ भी नही देखता ॥४॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥५॥

पदार्थः हे (**सत्य**) सनातन ! प्रभु ! आप (**सोमपा**) इस सारे पदार्थ-वैभव के रक्षक है, (**रोदसी**) द्युलोक तथा भूलोकरूप (**उभे**) दोनो मे विद्यमान सभी से (**अभि बभूथ**) अधिक उत्तम हैं। हे (**इन्द्र**) परमात्मा ! आप (**सुन्वतः**) सकल पदार्थो के बोधरूप सार को ग्रहण कर रहे साधक को (**वृध**) उत्साहित करते हैं, आप (**दिव पति**) ज्ञानरूप प्रकाश के स्वामी हैं ॥५॥

भावार्थ —सृष्टि मे जो कुछ भी है—प्रभु-आधीन है। जो साधक सृष्टि के पदार्थो का बोध पाने मे व्यस्त है, उसे ज्ञान-रूप प्रकाश का कुबेर परमेश्वर उत्साह देता है ॥५॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥६॥

पदार्थ.– हे (**इन्द्र**) परमात्मा ! (**त्व**) आप (**शश्वतीनां**) प्रवाहरूप से अनादि तथा अनन्त (**पुरां**) मानव उन्नति मे बाधक दुर्भावनाओं की सर्व प्रकार से भरी-पूरी बस्तियो के (**दर्ता**) विध्वंसक है और (**दस्यो**) उपतापक दुर्भावनाओ का (**हन्ता**) नष्ट करते है, (**मनो वृध**) मननशील को उत्साह प्रदान करते हैं तथा (**दिव पति**) प्रकाशलोक को संरक्षण देते हैं ॥६॥

भावार्थ —मानव-अन्तःकरण मे दुर्भावनाओ के अनेक क्षेत्र हैं, उन्हें अपने भरण-पोषण हेतु वही सब कुछ प्राप्त होता रहता है—प्रभु के मनन से अन्तःकरण मे प्रभु का आसीन कर सकने वाला साधक ही इन क्षेत्रों का विध्वंसक है। फिर ये प्रवाहरूप से अनादि-अनन्त हैं—बार-बार टूट टूटकर फिर बन जाते हैं। इसलिये मनन भी बार-बार करना अनिवार्य है ॥६॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥७॥

पदार्थ. -हे (**गिर्वण**) स्तुतियोग्य प्रभु ! (**अध हि**) अब तो हम (**त्वा उप**) आप के सान्निध्य मे (**महः**) बड़ी-बड़ी (**कामान्**) अभिलाषाओ की (**ससृज्महे**) सृष्टि करें– (**इव**) जैसे कि (**उदभिः**) जलो—नदी सागर आदि द्वारा (**यन्त**) यात्रा करने वाले (**उदा**) जलो के द्वारा अपनी अभिलाषाओं की वृद्धि करते हैं ॥७॥

भावार्थ —जलपूरित जलागारो के पास जानेवाले जलो मे पूर्ण हो सकने वाली अभिलाषाओ की सृष्टि कर सकते हैं। प्रभु तो सभी ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है—फिर उसके सान्निध्य मे साधक का किसी भी कामना की पूर्ति की आशा रखना संभव है ॥७॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥८॥

पदार्थ –हे (**अद्रिव**) अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त (**न**) जैसे (**वा.**) जल (**यव्याभि**) जल की वाली सरिताओ के द्वारा दिन प्रति दिन बढ़ने वाले जलाधिपति को ही बढ़ाते हैं ऐसे ही हे (**शूर**) वीर ! (**ब्रह्माणि**) वाणियो (**यव्याभि**) आप तक पहुँचने वाली स्तुतियो से (**दिवे दिवे**) दिन-प्रतिदिन (**वावृध्वांस चित्**) वृद्धिशील ही आप को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती हैं ॥८॥

भावार्थ —जल से सागर वृद्धि पाता है—यह पूर्णत प्रत्यक्ष है। ऐसे ही प्रभु की वृद्धि अर्थात् हमारे अन्तःकरण मे उसकी अधिकाधिक दृढ़ता से स्थिति,हमारी वाणियों के द्वारा—हम जो उसके गुणो का उच्चार कर उनका अध्ययन करते हैं—उनसे होती है ॥८॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥९॥

पदार्थ —(**वचोयुजा**) वाणी युक्त अर्थात् वश्य, (**स्वर्विदा**) सुखप्रदाता (**इन्द्रवाहा**) जीव के वाहनभूत दो अश्व—[ज्ञान तथा कर्मेन्द्रिया] (**उरौ रथे**) इस बहुमूल्य रथरूपी देह मे—(**उरौ युगे**) इसके दृढ़ जुए मे (**इषिरस्य**) सर्व-प्रेरक प्रभु की (**गाथया**) स्तुतिरूप बन्धनो द्वारा (**युञ्जन्ति**) जुड़े हैं ॥९॥

भावार्थ —प्रभु की वन्दना के माध्यम से ही हमारी ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियाँ आत्मा के वश मे इस प्रकार रहती हैं कि वे रथी आत्मा का नितान्त सुख तक पहुँचाती है ॥९॥

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥१०॥

पदार्थ. हे (**शतक्रतो**) विविध कर्म साधक, सैकड़ो प्रज्ञाओ वाले ! (**विचर्षणे**) सर्वद्रष्टा ! (**इन्द्र**) प्रभु ! (**त्वं**) आप (**न.**) हमें (**ओजः**) ओजस्विता (**नृम्ण**) साहस से (**आ भर**) भरपूर कर दें। और हमें (**पृतनासह**) अनेको पर विजय प्राप्त कराने वाले (**वीरं**) वीरताधायक बल से भी (**आ**) परिपूरित करें ॥१०॥

भावार्थ —परमेश्वर की वन्दना उसके गुणो के तुल्य गुणो के ग्रहण हेतु साधक के साहस मे वृद्धि करती है ॥१०॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥११॥

पदार्थ.—हे (**वसो**) वासदाता परमेश्वर ! (**त्वं हि**) आप ही (**नः**) हम सबके (**पिता**) पालक तथा हे (**शतक्रतो**) विविध प्रज्ञा तथा कर्मविशिष्ट प्रभो ! आप ही हमारे (**माता**) निर्माणकर्ता (**बभूविथ**) होते हैं। (**अध**) इसी लिए (**ते**) आप से (**सुम्नं**) सुख की (**ईमहे**) कामना करते हैं ॥११॥

भावार्थ—चतुर्दिक् से साधन जुटाकर बसानेवाला पिता तथा सारी देख-रेख कर शरीर व चरित्र का निर्माण करनेवाली माता—ये दोनों ही—पुत्र को सुख देने वाले होते हैं। प्रभु में ये दोनों शक्तियां निहित है—इनसे ही वह सकल संसार को सुख देता है ॥११॥

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**शुष्मिन्**) बलशाली ! (**शतक्रतो**) अपार ज्ञान तथा कर्म-शक्ति युक्त, (**पुरुहूत**) अनेकों से प्रेमपूर्वक बुलाए गये प्रभु ! (**वाजयन्त**) सत्यासत्य का ज्ञान कराते हुए (**त्वां**) आप से (**उपब्रुवे**) याचना करता हूँ कि (**सः**) वह आप (**नः**) हमें (**सुवीर्यम्**) शुभ वीर्य व बल (**रास्व**) प्रदान करें ॥१२॥

भावार्थ—मनन, ध्यान तथा निदिध्यासन के द्वारा प्रभु के सान्निध्य में प्राप्त आत्मा अनुभव करता है कि भगवान् अब मुझे सत्यासत्य का ज्ञान देंगे। उस समय भी साधक यह न भूले कि वही अन्न-वीर्य वह परमेश्वर से चाहे जो शुभ हो, सबके कल्याण का साधन बने, किसी को सताने में उसका प्रयोग न करे ॥१२॥

अष्टम मण्डल में अठानवेवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथाष्टर्चस्यैकोनशततमस्य सूक्तस्य ऋषि—१—८ नृमेध । देवता—इन्द्र ॥ छन्द—१ *आर्चीस्वराड् बृहती* । २ *बृहती* । ३, ७ *निचृद्बृहती* । ५ *पाद-निचृद्बृहती* । ४, ६, ८ *पङ्क्ति* ॥ स्वर—१—३, ५, ७ *गान्धार* । ४, ६, ८ पञ्चम ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) शक्तियुक्त मन ! (**भूर्णय**) तेरे भरणपोषण कर्त्ता (**नर**) साधक जनों ने (**त्वा**) तुझे (**इदा**) आज भी (**ह्य**) पहले भी (**अपीप्यन्**) तृप्त किया था। वह तू प्रभु ! (**स्तोमवाहस**) तुझे प्रशंसित बनाने वाले साधकों की बात (**श्रुधि**) सुन, (**इह उपस्वसर**) यहाँ स्वघर को (**आ, गहि**) आ जा ॥१॥

भावार्थ—श्रवण, मनन, निदिध्यासन इत्यादि योग-क्रियाओं के द्वारा मानव मन को ही शक्तिशाली बनाये—और यत्र-तत्र न जाने देकर उसे इस अपने शरीर आदि रूपी घर का अधिष्ठाता बनाए ॥१॥

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥

पदार्थ—हे (**सुशिप्र**) ज्ञान द्वारा प्रदीप्त, (**हरिव.**) इन्द्रियवशी (**इन्द्र**) मेरे मन ! तू, (**मत्स्व**) मग्न हो, (**त ईमहे**) इस स्वरूपवाले ही तुझे हम चाहते हैं, (**त्वे**) इस रूपवाले ही तुझे (**वेधस**) ज्ञान युक्त [इन्द्रिया] (**भूषन्ति**) भूषित करती हैं। हे (**गिर्वण इन्द्र**) हे स्तुत्य प्रभु ! (**सुतेषु**) [परमसत्य की सम्पन्नता हेतु किये गये] यज्ञों में (**तव**) तेरी (**श्रवांसि**) अन्त प्रेरणाएँ (**उक्थ्या**) प्रशसनीय तथा (**उपमानि**) आदर्श है ॥२॥

भावार्थ—जब मानव-मन ज्ञानवान् हो इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण कर लेता है तो वह एक विशेष प्रकार के आनन्द में डूबा रहता है। ऐसे मन की अन्त प्रेरणायें मानव को महान् सत्य की ओर ले जाती है ॥२॥

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥३॥

पदार्थ—[हे मनुष्यो !] (**सूर्य श्रायन्त इव**) सूर्य का आश्रय लेते हुए [सूर्य-किरणों के तुल्य] हम प्रेरक प्रभु का आश्रय लेते हुए (**जाते**) इस उत्पन्न हुए तथा (**जनमाने**) भविष्य में उत्पन्न होनेवाले जगत् में (**विश्वा इत्**) सभी (**वसूनि**) वासक, धन, अन्न, ज्ञान इत्यादि ऐश्वर्यों का, (**इन्द्रस्य ओजसा**) प्रभु की शक्ति से ही (**भक्षत**) उपभोग करते हैं। [उस उपभोग का हम] (**प्रतिभाग न**) अपने-अपने अश के समान ही (**दीधिम**) मनन करें ॥३॥

भावार्थ—जैसे सूर्य किरणें सूर्य के आश्रय में रहती है, वैसे ही हम जीवात्मा प्रभु के आश्रय में स्थित हो संसार के पदार्थों से उपकार लेते रहें—परन्तु ऐसा करते हुए अथवा उनका उपभोग करते हुए हम केवल अपने-अपने भाग को ही ध्यान में रखें ॥३॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥४॥

पदार्थ—[हे मानव !] (**अनर्शरातिं**) निर्दोष दानी, (**वसुदां**) ऐश्वर्य देने वाले [प्रभु] की (**उपस्तुहि**) उसमें विद्यमान गुणों से स्तुति कर; (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवान् के (**रातय**) दान (**भद्रा**) कल्याण करने वाले है। (**स**) वह प्रभु (**विधतः अस्य**) यथावत् विविध व्यवहार करने वाले इस साधक के (**मन.**) मन को (**दानाय चोदयन्**) दानशीलता हेतु प्रेरणा देता रहता है और इस भाँति इसकी (**काम**) कामना को (**न**) नहीं (**रोषति**) मारता ॥४॥

भावार्थ—प्रभु ऐश्वर्य देता है परन्तु उसका दान सदैव निर्दोष तथा कल्याण-कारी होता है। अपने भक्त अर्थात् कर्मशील को भी वह ऐसा ही दानशील होने को प्रेरित करता है, जो ऐसा दानी बने उसकी सकल कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं ॥४॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥५॥

पदार्थ.—हे (**इन्द्र**) जगदीश ! (**त्व**) आप (**प्रतूर्तिषु**) हमारे आध्यात्मिक सघर्षों में (**विश्वा स्पृध**) आत्मा को कलुषित बनाने वाली सकल दुर्भावनाओं को (**अभि असि**) ललकारते हैं। आप (**अशस्तिहा**) अनिष्ट अभिलाषाओं को मिटा देते हैं, और (**जनिता**) कल्याणकारी साधनाओं के प्रेरक हैं, (**विश्वतूः असि**) तथा विघ्नों को नष्ट करने वाले हैं। (**त्व**) आप (**तरुष्यत**) आक्रान्ता [दुर्भावनाओं] को (**तूर्य**) शीघ्र नष्ट कर ॥५॥

भावार्थ—श्रवण मनन एवं निदिध्यासन के द्वारा प्रभु का सामर्थ्य स्व अन्त -करण में अनुभव करने वाला साधक उसकी प्रत्यक्षता से लाभान्वित होता है; प्रभु की प्रत्यक्ष अनुभूति उसे सारी दुर्भावनाओं को दूर करने में तथा धृष्टता से आक्रमण कर ही देने वाली अनिष्ट भावनाओं को नष्ट करने में सहायता प्रदान करती है ॥५॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६॥

पदार्थ— हे (**इन्द्र**) परमात्मा ! (**इव**) जैसे (**मातरा**) माता-पिता [अपने] (**शिशु**) अविद्या इत्यादि दोषों को दूर करने में यत्नशील एवं शासनीय प्रिय पुत्र के (**अनु ईयतु**) अनुकूल चलते हैं ऐसे ही (**क्षोणी**) द्युलोक पर्यन्त सभी प्राणी (**ते**) आपके (**तुरयन्त**) शीघ्र चलने वाले (**शुष्म**) शत्रुभावनाओं का हनन करने वाले बल वीर्य के (**अनु ईयतु**) अनुकूल चलते हैं। हे (**इन्द्र**) प्रभु ! (**यत्**) जब आप (**मन्यवे**) उत्साह करने के लिए (**वृत्र**) विघ्नकारी अज्ञान को (**तूर्वसि**) नष्ट करते है तब (**ते**) आप के (**विश्वा**) सभी (**स्पृध**) स्पर्धालु, काम-क्रोध इत्यादि हमारे दुर्भाव (**श्नथयन्त**) शिथिल पड़ जाते हैं ॥६॥

भावार्थ—माता-पिता अपने आधीन परन्तु स्व दोषों को क्षीण करने में रत शिशु के अनुकूल आचरण करते हैं। संसार के सभी प्राणी प्रभु के बल के अनुकूल स्व आचरण बना लेते हैं—परमात्मा की शक्ति को सदैव अपने साथ विद्यमान अनुभव करने लगता है तो मानव का अज्ञान मिट जाता है और वह आगे बढ़ने को उत्साहित होता है। इस प्रकार उसके अन्त करण की सारी दुर्भावनाएं शिथिल हो जाती हैं ॥६॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥७॥

पदार्थ.— [हे मानवो !] (**व**) तुम्हारी अपनी (**ऊती**) रक्षा, सहायता व देखरेख हो इस हेतु तुम (**अजर**) सदैव समर्थ, (**प्रहेतार**) सर्व प्रेरक परन्तु स्वय (**अप्रहितम्**) स्वतन्त्र, (**आशु**) व्याप्त होने से सर्वत्र शीघ्र प्राप्त, (**जेतार**) इसी लिये जयशील (**हेतार होतार**) दानशील (**रथीतम्**) रथ के स्वामी अर्थात् उत्तम अधिष्ठाता, (**अतूर्त**) अमर (**तुग्र्यावृध**) दुर्भावनाओं को मारने में हितकारी बल प्रदान करके बढ़ाने वाले प्रभु की शरण में (**इत**) जाओ ॥७॥

भावार्थ—मानव की देखभाल अन्य किसकी शरण में जाकर हो सकती है ? स्पष्ट है कि अजर, अमर परमेश्वर की शरण में ही, स्व अन्त करण में उसकी अनुभूति प्रत्यक्ष करना ही उसकी शरण में जाना है ॥७॥

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।

समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥८॥

पदार्थ.—[हम] (**अवसे**) आत्म रक्षा एवं सहायतार्थ (**इष्कर्तारं**) इच्छा पूर्ति करने वाले, (**अनिष्कृतं**) किसी अन्य द्वारा पापमुक्त न किये गये, (**सहस्कृतं**) सब बलों के रचयिता, (**शतमूतिं**) अपरिमित रक्षासाधनों से युक्त (**शतक्रतुं**) अपरिमित प्रज्ञा तथा कर्मवाले, (**समान**) सबके प्रति समान, (**वसवान**) सब पर अपना करुणाहस्त रखने वाले (**वसूजुवम्**) सभी वस्तुओं के प्रेरक (**इन्द्रं**) परमात्मा को (**हवामहे**) पुकारते हैं ॥८॥

भावार्थ—सृष्टि में सर्वाधिक शक्तिशाली प्रभु ही है, वही हमारी देखरेख भलीभाँति कर सकता है। उसको आमन्त्रित करना, अन्त करण में उसे श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन आदि साधनों से आविर्भूत करना ही मानव का प्रथम धर्म है ॥८॥

अष्टम मण्डल में निन्यानवेवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वादशर्चस्य शततमस्य सूक्तस्य—ऋषि —१—१२ नृमेध ॥ देवता—इन्द्र ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड् बृहती । २ बृहती । ३, ७ निचृद्बृहती । ५ पाद-निचृत्बृहती । ४, ६, ८ पङ्क्ति. ॥ स्वरः—१ —३, ५, ७ गान्धारः । ४, ६, ८ पञ्चम' ॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।

यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् प्रभु ! (**यदा**) जब आपने (**मह्य**) मेरे हेतु (**भाग**) भोग्य अश को (**दीधर =अधीधर**) अपनी विचारधारा का विषय बनाया, (**आदित्**) और उसके उपरान्त (**मया**) मेरे द्वारा (**वीर्याणि**) वीरोचित नाना कार्य (**कृणव**) कराने लगे तब मै (**तन्वा**) अपन समग्र वितान सहित (**ते**) आपके (**पुरस्तात्**) समक्ष (**अयं**) तत्काल (**एमि**) आता हूँ और (**पश्चात**) मेरे पीछे-पीछे (**विश्वे देवा**) सभी दिव्यता-इच्छुक स्तोता (**मा**) मेरे (**अभि यन्ति**) आश्रय मे आते जाते हैं ॥१॥

भावार्थ -परमात्मा के स्तोता को जब यह निश्चय हो जाता है कि मुझे उसके ऐश्वर्य मे से अपने कर्मफल-अनुकूल अश प्राप्त हो रहा है तो उसके न्याय से सन्तुष्ट श्रोता वीरता के नाना कार्य करने हेतु उत्साहित होता है, वह प्रभु का हृदय से गुणगान करता है एव दूसरे विद्वान् भी उसके समान ही स्तोता बनते हैं ॥१॥

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।

असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥२॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (**ते**) आपके द्वारा प्रदत्त (**मधुन'**) हर्षदायक [मदी हर्षे] भोगो मे से (**भक्ष**) भोग्य अश को (**दधामि**) धारता हूँ । पुनश्च (**सुत**) उसका साररूप से गृहीत (**सोमः**) सुखदायी (**भाग.**) अंश भी (**ते अग्रे**) आपके समक्ष रख देता हूँ । (**च**) और (**त्व**) आप (**मे**) मेरे (**दक्षिणत**) दायी ओर से (**सखा**) सखा (**असः**) हो जाते है । (**अधा**) इसके उपरान्त हम दोनो (**भूरि**) बहु संख्या मे (**वृत्राणि**) विघ्न-राक्षसो को (**जङ्घनाव**) वारम्वार मारते हैं ॥२॥

भावार्थ—भगवान् ने अपनी सृष्टि मे अनेक प्रकार के भोग प्रदान किये हैं। जीव का कर्त्तव्य है कि उनका सार अर्थात् बोध प्राप्त कर उसे ही समर्पित करने की भावना से उसे ग्रहण करे । इस भाँति वह प्रभु का शक्तिशाली सखा—दायाँ हाथ—बनकर प्रभु के सहयोग से अपने जीवनपथ मे आने वाले विघ्नो को दूर करने लग जाता है ॥२॥

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।

नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥३॥

पदार्थ—हे नरो ! (**यदि सत्य अस्ति**) यदि प्रत्यक्षादि प्रमाणो से तुम्हारे मन मे यह बात निश्चित हुई है तो (**वाजयन्त**) तुम ऐश्वय की कामना करते हुए (**सत्य**) सत्य ही (**इन्द्राय**) प्रभु को लक्ष्य कर (**सु स्तोम**) श्रेष्ट स्तुतिसमूह को (**प्र, भरत**) समर्पित करो । (**इन्द्र न अस्ति**) भगवान् नही है यह तो (**त्व**) कोई (**नेम**) अपरिपक्व ज्ञानी ही (**आह**) कहता है । वह शका करता है कि (**ईम्**) उसको (**क ददर्श**) किसने देखा है ? इस कारण हम (**क**) किसकी (**अभिस्तवाम**) प्रत्यक्ष रूप से वन्दना करे ? ॥३॥

भावार्थ.—भगवान् के अस्तित्व का सत्य निश्चय किये हुए ही स्तोता उसकी वन्दना कर सकता है । अपरिपक्व ज्ञानी तो उसके अस्तित्व के प्रति भी शकालु ही बना रहता है ॥३॥

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।

ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥४॥

पदार्थ—शकालु स्तोता को परमेश्वर विश्वास दिलाते हैं—हे (**जरित**) स्तोता ! (**अयमस्मि**) यह मैं प्रत्यक्ष ही तेरे समक्ष हूँ–(**पश्य मा इह**) मुझे यही देख । (**मह्ना**) अपने महान् सामर्थ्य से, मैं (**जातानि**) सृष्टि मे प्रसिद्ध व अप्रसिद्ध भी सकल पदार्थ (**अभि अस्मि**) अपने वश मे किये हूँ । (**मा**) मुझे (**ऋतस्य**) यथार्थ ज्ञान या यज्ञ के (**प्र, दिश.**) उपदेष्टा अथवा मार्गदर्शन देने वाले (**मा**) अपने उपदेश आदि से मेरे महत्त्व को (**वर्धयन्ति**) बढ़ाते हैं । (**आदर्दिर**) आदरणशील मैं (**भुवना**) सर्व सत्ताधारियों को (**दर्दरीमि**) पुन पुन. विच्छिन्न करता हूँ ॥४॥

भावार्थ. -परमात्मा का सच्चे हृदय मे कीर्तन करने वाला साधक सर्वोपरि ता है ही, वह प्रभु का यथार्थ अधिवक्ता भी है और इस भाँति उसके महत्त्व का व्यापक प्रचार भी करता है ॥४॥

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्य एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।

मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥५॥

पदार्थ—(**हर्यतस्य**) प्रेप्सित (**ऋतस्य**) दिव्य सत्य या यथार्थ बल के (**पृष्ठे**) आधार पर (**आसीन**) अवस्थित (**एक**) अद्वितीय (**मा**) मुझे (**वेनाः**) चाहने वाले विद्वान् (**यत् मा आरुहन्**) जब मुझ पर आरूढ़ होते है तब (**हृद**) मेरे अन्त करण से ही मानो (**मे**) मेरी (**मन.**) विचारधारा (**आ, प्रति, अवोचत्**) उत्तर देती है कि (**शिशुमन्त**) दोषहरण दूर करने वाली प्रशस्त प्राणशक्ति से युक्त (**सखाय**) मित्रो ने मुझे (**अचिक्रदन्**) पुकारा है ॥५॥

भावार्थ—भगवान् की प्राप्ति की प्रचंड अभिलाषा लेकर स्तुति करने वाले स्तोता जब तन्मयता सहित स्तुति मे लगते है, और वे अपने प्राणबल द्वारा अपने दोषो को दूर करने का प्रयत्न भी साथ-साथ करते हैं तो ऐसा लगता है कि प्रभु भी उनकी पुकार सुनता है ॥५॥

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।

पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) सत्करणीय ऐश्वर्ययुक्त, (**इन्द्र**) प्रभु ! आप (**सवनेषु**) ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा सुखसाधन हेतु सम्पन्न किये जा रहे अथवा सत्कर्म-रूप यज्ञो मे (**सुन्वते**) उन कर्मों के सम्पादक के लिए (**या**) जो सहायताकरूप कर्म आप (**चकर्थ**) करते रहे है (**ते**) आपके वे (**विश्वा इत्**) सब ही (**प्रवाच्या**) शिक्षणीय है । (**पारावत**) मोक्षावस्था से सम्बद्ध (**यत्**) जो (**पुरुसम्भृत**) बहुतसा एकत्रित (**वसु**) ऐश्वर्य है उसे आप (**ऋषिबन्धवे**) श्रम तथा तप द्वारा स्वर्गावस्था को प्राप्त होने वाले स्नेही (**शरभाय**) तप द्वारा आत्मपीडक के लिये (**अपावृणो**) स्व सरक्षण मे, ढक कर, रखते हैं ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ऐश्वर्य साधक की अनेक प्रकार से सहायता करता है । वह श्रम तथा तप द्वारा स्वय को पीडा देने वाले साधक को दिव्य सुख देता है ॥६॥

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत् ।

नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥७॥

पदार्थः—हे उपासको ! (**इह**) यहाँ तुम्हारे जीवन-पथ पर (**य**) जो (**व**) तुम्हे (**न**) नही (**अव अवरीत्**) तुम्हारा मित्र बनकर नही रहता, (**नूनं**) निश्चय ही उससे तुम (**पृथक्**) अलग होकर (**प्रधावत**) अपने पथ पर आगे बढ़ते चलो । (**इन्द्र**) परमात्मा तो (**वृत्रस्य**) विघ्नमात्र के या विघ्नकारी शक्तियो के (**मर्मणि**) मर्मस्थल पर (**सीं**) चतुर्दिक् से (**वज्र**) अपने बल रूप वज्र को (**नि, अपीपतत्**) वार-वार गिराता है अर्थात् बल से विघ्नों को परास्त करता है ॥७॥

भावार्थ—जो स्व जीवन मे मैत्रीपूर्वक सहायक हो, उसी की सगति अपेक्षित है । ऐसा मित्र प्रभु ही है ! वही लोगों के शत्रुभूत विघ्नो को दूर करता है ॥७॥

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम् ।

दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥८॥

पदार्थ—(**मनोजवा**) मन के तुल्य वेगवान्, (**अयमान.**) आगे बढ़ता हुआ (**सुपर्ण**) शुभगति युक्त (**आयसीं**) लोहे के जैसे अतिकठोर तत्वों से बनी (**पुरम्**) इस पुरी को (**अतरत्**) पार कर जाता है । पुनश्च (**दिवं गत्वाय**) दिव्यता को प्राप्त हो वह (**वज्रिणे**) वीर्यवान् इन्द्र हेतु (**सोम**) दिव्यसुख को (**आभरत्**) लाता है ॥८॥

भावार्थ.—इस मन्त्र के 'सुपर्ण' एव 'आयसी पुरम्' ये दो शब्द विशेषरूप से विचारणीय हैं । मानव शरीर को 'पुरी' कहा गया है—'आयसी' यह इस कारण है कि दुष्प्रवेश्य है । यह पुरी 'चेतन तत्त्व' आत्मा का निवास स्थान है । इसमे प्रवेश का तात्पर्य है इसे भली-भाँति समझना । इसे समझकर ही साधक जीवात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है । 'सुपर्ण' का एक अर्थ ज्ञानवान् भी है, ज्ञानवान् चेतन साधक इस पुरी को भली-भाँति जानकर दिव्यता पा जीवात्मा को दिव्य सुख प्रदान करता है ॥८॥

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।

भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥९॥

पदार्थ—(**उद्ना**) जल के तुल्य सौम्यता तथा व्यापकता के गुण से (**अभीवृत**) सर्वात्मना आच्छादित (**वज्र**) वीर्यरस (**समुद्रे अन्तः**) जलकोश के समान रस के कोश शरीर के अन्दर (**अधिशेते**) निवास करता है, (**अस्मै**) इसके लिये (**संयत.**) सम्यङ् नियमित (**पुरः प्रस्रवणा**) नाड़ियाँ (**बलि**) उपहार (**भरन्ति**) प्रदान करती हैं ॥९॥

भावार्थ.—शरीर वीर्यरस का महान् कोश अर्थात् सागर ही है । इस शरीर मे अन्ननलिकायें, धमनियाँ, शिरायें, वायुनलिका, वायु प्रणालिकायें, वात नाड़िकायें आदि नदियो के तुल्य विभिन्न रसों के प्रस्रवणमार्ग हैं, जो अपना-अपना द्रव्य इस ससार को समर्पित करते रहते हैं और सभी रसो का अन्तिम परिणाम, शरीर .ा वीर्य है । इस व्यवस्था को समझे ॥९॥

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।

चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥१०॥

पदार्थ,—(**यत्**) जब (**वाक्**) सकल पदार्थों को समझाने की शक्ति (**अविचेतनानि**) अज्ञात अर्थ वाले शब्दार्थों को (**वदन्ती**) स्पष्ट कहती हुई, (**मन्द्रा**) आनन्द देती हुई (**देवानां**) दिव्य शक्तियों में (**राष्ट्री**) उनकी रानी रूप मे (**निषसाद**) अवस्थित हो जाती है तब (**चतस्रः**) चारों दिशायें या चारों

वेदवाणियां (ऊर्जं) पराक्रम अन्नादि प्रद (पयांसि) विविध ज्ञानों का (दुदुहे) दोहन करती हैं (अस्याः) इस व्याख्या की शक्ति का (परमं) अन्तिम लक्ष्य देखो ! (क्वस्वित्) कहां तक (जगाम) गया है ।।१०।।

भावार्थः—ऐश्वर्य-इच्छुक जीवात्मा वाक्शक्ति का अधिष्ठाता भी है—जब उसकी पदार्थों की व्याख्या-शक्ति जागरूक हो अधिष्ठित हो जाती है तो अविज्ञात अर्थ वाले शब्दों का अभिप्राय और उन शब्दों से ज्ञात पदार्थों का बोध मानव प्राप्त कर लेता है। चारों ओर से मानव हेतु ज्ञानरूप दुग्ध दुहा जाने लगता है अथवा चारों वेदवाणियाँ उसे ज्ञान देने लगती हैं। पदार्थों का विस्तृत बोध कराने वाली शक्ति (अथवा वेदवाणी) का अन्तिम लक्ष्य तो अत्यन्त दूर तक है। दिव्यशक्ति बोध कराती रहती है—उसका अन्त नहीं ।।१०।।

दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति ।

सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्जं॒ दुहा॑ना धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒ सुष्टु॒तैतु॑ ।।११।।

पदार्थः—(देवाः) विद्वान् (देवीं) ज्ञान देने वाली (वाचं) पदार्थों की स्पष्ट परिभाषा व्याख्या शक्ति को (अजनयन्त) प्रकटाते हैं, (विश्वरूपाः) सभी रूपों के विविध स्पष्ट एवं अस्पष्ट भाषण शक्ति वाले (पशवः) प्राणी (तां) उसी को (वदन्ति) बोलते हैं (सा) वह (वाक्) वाणी (नः) हमें (मन्द्रा) हर्ष देती हुई तथा (इषं) इष्ट (ऊर्जं) दुग्ध के रूप में पराक्रम-प्रद-बल आदि (दुहाना) टपकाती हुई (धेनु) दूध देने वाली गाय के तुल्य अथवा चार वेदों की वाणी (सुष्टुता) सुष्ठुतया सेविता (अस्मान्) हमें (उप एतु) प्राप्त हो ।।११।।

भावार्थ—विद्वज्जन अपनी वाक्शक्ति प्रादुर्भूत करते हैं और उसके द्वारा प्रभूरचित पदार्थों का बोध प्राप्त कर नानाविध ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। वेदचतुष्टय के रूप में विद्यमान उस वाणी का हम भली-भांति सेवन करें ।।११।।

सखे॑ विष्णो वित॒रं वि क्र॑मस्व॒ द्यौर्दे॒हि लो॒कं वज्रा॑य वि॒ष्कभे॑ ।

हना॑व वृ॒त्रं रि॒णचा॑व॒ सिन्धू॒निन्द्र॑स्य यन्तु प्रस॒वे विसृ॑ष्टाः ।।१२।।

पदार्थ—जीवात्मा मानो पुरुषार्थी मानव शरीरधारी से कह रहा हो—हे (सखे) मेरे सहायक मित्र ! (विष्णो) विद्या-विज्ञान में व्याप्त ! (वितरं) विविध दुःखों से तारने वाले [कर्मों] को (वि क्रमस्व) विशेष रूप से सम्पादित करने का प्रयास कर, (द्यौः) ज्ञान का प्रकाश (वज्राय) कर्मों के साधन वीर्य को (विष्कभे) स्थिर होने हेतु (लोकं) प्रकाश तथा स्थान (देहि) प्रदान करे। इस भांति सशक्त हुए हम दोनों (वृत्रं) विघ्न को (हनाव) नष्ट करें, (सिन्धून्) स्वभाव से प्रवहणशील किन्तु अब रुकावटों से रुके (सिन्धून्) जलों, शक्ति स्रोतों को (रिणचाव) गतिशील करें—(विसृष्टाः) मुक्त हुए [वे शक्तिस्रोत] (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (प्रसवे) प्रेरणा में (यन्तु) चलें ।।१२।।

भावार्थ—वही पुरुषार्थी व्यक्ति अपने आत्मा का सहायक है कि जो विविध पदार्थ विज्ञान को प्राप्त करता दुःख दूर करने वाले सुकर्म करता है। इस प्रकार वह अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी बाधाओं को नष्ट कर देता है और अपने शक्तिस्रोतों को सतत गतिशील रखकर प्रभु से प्रेरणा प्राप्त करता हुआ सर्वात्मना सुखी होता है ।।१२।।

अष्टम मण्डल में सौवां सूक्त समाप्त ।।

अथ षोडशर्चस्यैकाधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-१६ *जमदग्निर्भार्गवः* ।। **देवता**—१-४ *मित्रावरुणौ* । ५ *मित्रावरुणावादित्याश्च* । ६ *आदित्याः* । ७, ८ *अश्विनौ* । ९, १० *वायुः* । ११, १२ *सूर्यः* । १३ *उषाः सूर्यप्रभा वा* । १४ *पवमानः* । १५, १६ *गौः* ।। **छन्दः**—१ *निचृद्बृहती* । *आर्चीस्वराड्बृहती* । ६, ७, ९, ११ *विराड्बृहती* । १० *स्वराड्बृहती* । १२ *भुरिग्बृहती* । १३ *आर्चीबृहती* । २, ४, ८ *पङ्क्तिः* । ३ *गायत्री* । १४ *पादनिचृत्त्रिष्टुप्* १५ *त्रिष्टुप्* । १६ *विराट्त्रिष्टुप्* ।। **स्वरः**—१, ५-७, ९-१३ *मध्यमः* । २, ४, ८ *पञ्चमः* । ३ *षड्जः* । १४-१६ *धैवतः* ।।

ऋध॑गि॒त्था स मर्त्यः॑ शश॒मे दे॒वता॑तये ।

यो नू॒नं मि॒त्रावरु॑णाव॒भिष्ट॑य आच॒क्रे ह॒व्यदा॑तये ।।१।।

पदार्थः—(यः) जो मानव (नूनं) निश्चय ही (अभिष्टये) अपने इष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु (हव्यदातये) ग्रहण योग्य भोग्य की प्राप्ति तथा त्यागने योग्य को त्यागने हेतु (मित्रावरुणौ) प्राण एवं उदान को (आ, चक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है (सः) वह (मर्त्यः) मानव (इत्था) इस भांति (ऋधक्) सचमुच ही (देवतातये) दिव्यता की प्राप्ति हेतु (शशमे) शान्त हो जाता है, दुष्प्रवृत्तियों से निवृत्त हो जाता है ।।१।।

भावार्थः—प्राण व उदान को स्व अनुकूल करने से मानव की दुष्प्रवृत्तियां शान्त होती हैं और वह दिव्यगुणों के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाता है। पुनश्च शनैः शनैः उसे अभीष्ट लक्ष्य की सिद्धि होती है ।।१।।

वर्षि॑ष्ठक्षत्रा उरु॒चक्ष॑सा॒ नरा॒ राजा॑ना दीर्घ॒श्रुत्त॑मा ।

ता बा॒हुता॒ न दं॒सना॑ रथर्यतः सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ।।२।।

पदार्थः—(ता नरा) वे नर-नारी जो मित्रता तथा श्रेष्ठत्व के गुणों को साथ-साथ निबाहते हैं, या दिवस व रात्रि के तुल्य जिनकी जोड़ी है, (वर्षिष्ठक्षत्रा) अतिशय बड़े बल से युक्त, (उरुचक्षसा) दीर्घदर्शी, (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घश्रुत्तमा) दीर्घकाल तक वेदादि शास्त्रों को सुनने वालों में सर्वोपरि, (बाहुता न) दोनों भुजाओं के तुल्य (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के सहित (दंसना) कर्मों पर आरूढ़ होते हैं ।।२।।

भावार्थः—मनुष्य की भुजाएं बाधाओं की विद्यमानता में अपना कार्य करती रहती हैं; रात दिन निरन्तर अपना-अपना कृत्य करते रहते हैं। इसी भांति जो नर-नारी अपना-अपना कर्तव्य पूर्ण करते रहते हैं वे बड़े बलवान्, दीर्घदर्शी व दीर्घश्रुत रहते हैं ।।२।।

प्र यो वां॑ मित्रावरुणाजि॒रो दू॒तो अद्र॑वत् ।

अयः॑शीर्षा॒ मदे॑रघुः ।।३।।

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) नर-नारियो (वां) तुम दोनों में से (यः) जो (अजिरः) ज्ञानवान् है यह (अयःशीर्षा) गतिशील मस्तिष्क वाला, (मदेरघुः) हर्षित मत कर्मठ; (दूतः) जीवन पथ पर आने वाले विघ्नों को भगाने वाला (प्र, अद्रवत्) गमनशील रहता है ।।३।।

भावार्थ—जीवनपथ के यात्री नर-नारियों में से पुरुष साथी ज्ञानी एवं मननशील हो, अनर्थों को अपने मार्ग से हटाने वाला हो और दोनों में से अपेक्षया अधिक गति से कार्य करे ।।३।।

न यः सं॒पृच्छे॒ न पुन॒र्हवी॑तवे॒ न सं॑वा॒दाय॒ रम॑ते ।

तस्मा॑न्नो अ॒द्य सम॑ृतेरुरुष्यतं बा॒हुभ्यां॑ न उरुष्यतम् ।।४।।

पदार्थ—(यः) जो (न) न तो (सम्पृच्छे) प्रश्नोत्तर की विधि में (रमते) रुचि लेता है, (पुनः न) न ही फिर (हवीतवे) हवन अर्थात् दान-आदान क्रिया में रुचि रखता है और (न) न (संवादाय) संवाद हेतु तैयार है; (नः अद्य) अभी-अभी हमें—समाज को (तस्मात्) उससे आने वाली (समृतेः) टक्कर से (उरुष्यतम्) बचाओ, (बाहुभ्यां) बल तथा पराक्रम की प्रतीक इन भुजाओं से (नः, उरुष्यतम्) हमें बचाए रखो ।।४।।

भावार्थ—जीवनपथ पर एक साथ चलनेवालों में मतभेद तो सम्भव हैं; परन्तु प्रश्नोत्तर से उनका विश्लेषण कर, कुछ लेकर और कुछ देकर एवं अन्त में प्रत्यक्ष रूप से वाद-विवाद द्वारा समझौता कर परस्पर संघर्ष से बचा जा सकता है। जीवनयात्रा के साथियों को उचित है कि वे इसी प्रकार से आपसी टकराव से बचें, कभी संघर्ष का अवसर न आने दें ।।४।।

प्र मि॒त्राय॒ प्रार्य॒म्णे स॑च॒थ्य॑मृतावसो ।

व॒रू॒थ्यं१॒॑ वरु॑णे॒ छन्द्यं॒ वचः॑ स्तो॒त्रं राज॑सु गायत ।।५।।

पदार्थः—हे (ऋतावसो) यथार्थतारूपधन से धनी जनो ! (मित्राय) मित्र हेतु (सचथ्यं) सामूहिक (वरूथ्यं) पारिवारिक एवं (छन्द्यम्) प्रीतिकर (स्तोत्रं वचः) स्तुतिवचन का (प्र, गायत) गायन करो, इसी भांति (अर्यम्णे) दानशील हेतु (प्र) गायन करो, (वरुणे) श्रेष्ठ के प्रति और (राजसु) दीप्तिशीलों के प्रति भी स्तुति वचन कहो ।।५।।

भावार्थ—पुरुषार्थी मानव स्वजीवन में स्नेहशील, दानशील, श्रेष्ठ तथा दीप्तिमान् बनने हेतु परमेश्वर के उन गुणों का गान करे ।।५।।

ते हि॑न्विरे अरु॒णं जेन्यं॒ वस्वेकं॑ पु॒त्रं ति॑सृ॒णाम् ।

ते धामा॑न्य॒मृता॒ मर्त्या॑ना॒मद॑ब्धा अ॒भि च॑क्षते ।।६।।

पदार्थ—(ते) वे विद्वान् (तिसृणां) तीनों—मित्र, अर्यमा एवं वरुण—के (एकं) एकसमान (पुत्रं) पालित संरक्षित उस पुत्र को जो (अरुणं) तेजस्वी है, (जेन्यं) जयशील है, (हिन्विरे) प्रेरणा देते हैं। (ते अमृताः) वे अपनी कीर्ति से अमर या आत्मविज्ञानी विद्वान् प्रेरक (अदब्धाः) सदा सतर्क रहकर (मर्त्यानां) मरणधर्मा मनुष्यों को (धामानि) उनके निर्भर करने योग्य बलों का (अभि, चक्षते) उपदेश देते हैं ।।६।।

भावार्थः—जो व्यक्ति मित्रता, दानशीलता एवं श्रेष्ठता आदि गुणों का पालन करता है—निश्चय ही आत्मविज्ञानी विद्वान् उसे प्रेरित करते हैं—वे उसे ऐसे गुणों का उपदेश देते हैं कि जिन्हें धार कर वह सुख से जीवन बिता सकता है ।।६।।

आ मे॒ वचां॑स्यु॒द्यता॑ द्यु॒मत्त॑मानि॒ कर्त्वा॑ ।

उभा॑ यातं नासत्या स॒जोष॑सा॒ प्रति॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑ ।।७।।

पदार्थः—उपदेश देने वाला विद्वान् कहता है कि हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले ज्ञानी नर-नारियो ! (उभा) तुम दोनों (मे) मेरे (उद्यता) द्वारा कथित (द्युमत्तमानि) यथार्थ ज्ञान रूपी प्रकाश से भलीभांति प्रकाशित (वचांसि) उपदेश वाक्यों को (कर्त्वा) कार्यरूप में परिणत करोगे तो (सजोषसा) परस्पर प्रीतिपूर्वक संगत हुए (वीतये) भोग हेतु (हव्यानि प्रति) देने और लेने योग्य पदार्थों की ओर ही (यातम्) बढ़ोगे ।।७।।

भावार्थ—उपदेशक विद्वान् के यथार्थ ज्ञान से परिपूर्ण उपदेशों को कभी न टालनेवाले नर-नारी यदि उनके अनुसार एक-दूसरे को साथ ले कर चलें तो उन्हें उचित भोग्य पदार्थों की कभी कमी न होगी ।।७।।

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥८॥

पदार्थः—हे (**वाजिनीवसू**) उषा के सदृश प्रकाश तथा वेग मे बसने वाले ज्ञानी नर-नारियो ! (**यत्**) जब हम (**युवां**) तुम दोनों की (**रातिं**) दान-शीलता को (**अरक्षसं**) स्वार्थरक्षा एवं परार्थ की हिंसा से शून्य वृत्तिपूर्वक (**हवामहे**) अपने लिये चाहते हैं तब (**नरा**) नेतृत्व गुण विशिष्ट तुम दोनों (**जमदग्निना**) प्रज्वलिताग्नि विद्वान् द्वारा (**गृणाना**) स्तूयमान (**प्राचीं**) उत्कृष्ट (**होत्रां**) स्तुतियज्ञ को (**प्रतिरन्ती**) अधिक काल तक चालू रखते हुए (**इतं**) यहां पधारो ॥८॥

भावार्थ—जिन नर-नारियो के आचरण की विशेष-विशेष गुणान्वित विद्वान् भी प्रशसा करते हैं, अन्य जन चाहे कि उनसे किया सामूहिक स्तवन और अधिक काल तक चले, जिससे उसमे अधिकाधिक व्यक्ति भाग ले सकें ॥८॥

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो३ऽयं शुक्रो अयामि ते ॥९॥

पदार्थः—हे (**वायो**) योगबल से व्यावहारिक कार्य करने वाले ! (**त्व**) तू (**नः**) हमारे (**दिविस्पृशं**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के साथ स्पर्श कराने वाले (**यज्ञे**) स्तुति यज्ञ मे (**सुमन्मभि**) शुभ विचारो अथवा विज्ञानो के साथ लिये (**आ**) उपस्थित हो। (**शुक्र**) शुद्ध आचारवान् (**अयम्**) यह मैं उपासक (**ते उपरि**) तुझ पर (**श्रीणान**) निर्भर रहते हुए, (**पवित्रे अन्त**) तेरे शुद्ध अन्त:करण मे (**अयामि**) स्थान पा लू ॥९॥

भावार्थ—साधक प्रस्तुत सूक्त मे वर्णित योगी जन को अपने प्रभु के गुण-कीर्तन यज्ञ मे उससे शिक्षा ग्रहण करने हेतु आमन्त्रित करे और अपने सुकृत्यो से उसके हृदय मे स्थान पाने का प्रयास करे ॥९॥

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥१०॥

पदार्थ—(**वीतये**) भोग्यो की प्राप्ति हेतु (**अध्वर्यु**) स्वय हानिरहित बने रहने का इच्छुक पुरुष (**रजिष्ठै**) अत्यन्त सरल (**पथिभि**) मार्गों से (**हव्यानि प्रति**) दानादानयोग्य पदार्थों की ओर (**वेति**) चलता है (**अधा**) कि चाहे (**नियुत्व**) नितरा शुभगुणी शक्तियो से युक्त साधक ! (**न**) हमारे (**उभयस्य**) उभयविध (**शुचि**) शुद्ध एव (**गवाशिर**) ज्ञान के साथ परिपक्व हुए (**सोमं**) प्रेरणा नाम के व्यवहार का भी (**पिब**) भोग कर ॥१०॥

भावार्थ—स्वय को किसी भी भाति हानि से बचाकर चलने वाले को सरलतम मार्गों से तो चलना ही चाहिये। किन्तु साथ ही उस विद्वानो की ज्ञानयुक्त शुद्ध प्रेरणा को भी अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥१०॥

बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥११॥

पदार्थ—हे (**सूर्य**) प्रभो ! (**बट**) सत्य ही (**त्व**) आप (**महान् असि**) नितान्त तेजस्वी है, (**आदित्य**) हे अविनाशी ! (**त्व**) आप (**महान् असि**) नितान्त अनश्वर है। (**महः सतः ते**) महान होते हुए आपके (**महिमा**) महत्त्व की (**पनस्यते**) स्तोता वन्दना करते हैं। (**अद्धा**) सचमुच (**देव**) हे दिव्य प्रभो ! आप (**महान्**) महान है ॥११॥

भावार्थ—गुणो से महान् परमात्मा स्व प्रेरक शक्ति के कारण नितान्त पूजनीय है। अपने जीवनपथ पर चलते हुए नर-नारी उसकी महत्त्वपूर्ण प्रेरणा कदापि न भुलाये ॥११॥

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**सूर्य**) प्रभु ! आप (**बट**) सत्य ही (**श्रवसा**) कीर्ति के कारण (**महान**) वन्दनीय हैं। (**देव**) हे दिव्य ! आप (**सत्रा**) वस्तुत (**महान् असि**) महान् हैं। (**देवाना**) दिव्यो मे से आप (**मह्ना**) अपनी शक्ति से (**असुर्य**) स्वार्थी जनो के नियामक, (**पुरोहित**) हितोपदेष्टा है, (**ज्योति**) आप का तेज (**विभु**) व्याप्त तथा (**अदाभ्य**) अक्षुण्ण है ॥१२॥

भावार्थ—जीव या साधक जिस महान् परमात्मा से प्रेरणा लेता है—उसका यश भी अनिवार्य है, दिव्यवस्तुओ मे भी दुष्टभावनाये है उन्हे नियन्त्रण मे रखने हेतु उसका गुणगान करना अपेक्षित है। उसका तेज नितात व्यापक है ॥१२॥

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥१३॥

पदार्थ.—उस प्रेरक परमात्मा की (**इयम्**) यह (**या**) जो (**नीची**) प्रभु से नीचे को आई (**अर्किणी**) ज्योतिष्मती, (**रूपा**) रूपा (**रोहिणी**) सूर्योदय की क्रिया से (**कृता**) बनायी गई है—वह (**दशम**) दस (**बाहुषु**) भुजाओ के सरीखी अवस्थित दस दिशाओ के (**अन्त.**) मध्य (**आयती**) आती हुई (**चित्रा इव**) अद्भुत सी (**प्रत्यदर्शि**) प्रतीत होती है ॥१३॥

भावार्थ.—परमात्मा की प्रेरकशक्ति का यह आलकारिक वर्णन, प्रतिदिन उदीयमान सूर्य प्रभा के वर्णन के तुल्य किया गया है। मानव को प्रभु की रोचक प्रेरणा की ओर आकर्षण हेतु यह रोचक वर्णन है ॥१३॥

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥१४॥

पदार्थ—(**तिस्र**) तीन प्रकार की [उत्तम, मध्यम एव निकृष्ट] (**प्रजा**) कारणरूप प्रकृति आदि तो (**अत्यायं ईयुः**) लुप्त हो गई थी; (**अन्याः**) दूसरी (**अर्क**) उस स्तुत्य के (**अभितः**) चतुर्दिक् (**नि, विविश्रे**) निविष्ट हो गई। (**ह**) निश्चय वह (**बृहत्**) बृहत् (**पवमान**) पावन करता हुआ (**भुवनेषु अन्त**) लोको मे (**हरित**) दिशाओं मे (**आ विवेश**) अधिकारारूढ हो गया ॥१४॥

भावार्थ—परमात्मा की इस सृष्टि मे उत्कृष्ट, मध्यम तथा निकृष्ट तीन प्रकार की रचनायें हैं जो विनाशशील हैं, शेष कारणरूपा शक्तियां विद्यमान रहती हैं, वह प्रभु सभी दिशाओ-प्रदिशाओ मे व्याप्त रहता है ॥१४॥

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥

पदार्थ—जो वेदवाणी (**रुद्राणा**) ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले विद्वानो की (**माता**) 'माता' है, (**वसूनां**) २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वालो की (**दुहिता**) 'दुहिता' है और (**आदित्यानां**) ४८ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक विद्याध्ययन करनेवालो की (**स्वसा**) 'स्वसा' है और (**अमृतस्य**) धर्मार्थ काममोक्ष नामवाले अविनाशी सुख की (**नाभि·**) बाधनेवाली केन्द्रबिन्दु है। उस वेदवाणी का (**चिकितुषे**) समझदार (**जनाय**) जन को (**नु**) ही, मैं (**प्रवोचम्**) उपदेश करता हू। हे मनुष्यो ! (**अनागां**) इस निष्पाप (**अदिति**) ज्ञान की अक्षय अक्षीण भण्डार रूपा (**गा**) वेदवाणी को (**मा**) मत (**वधिष्ट**) लुप्त करो ॥१५॥

भावार्थ—वसु विद्वानो से यह दूर रखी होने अथवा उनकी शक्ति को दुहती रहने से दुहिता है, इसके पश्चात् ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-पूर्वक अध्ययन करने वालो की यह 'माता' है। पुनश्च 'आदित्यो' की यह 'स्वसा' सुष्ठुतया अज्ञान को परे फेंक देने वाली (स्वसा=सु+अस । ऋन्) साध्वी विद्या होती है और अन्त मे धर्मार्थकाम मोक्ष की केन्द्रबिन्दु है। इस भांति इस वेदवाणी को मानव कभी लुप्त न होने दे ॥१५॥

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥

पदार्थ—जो (**वचोविदम्**) वेदितव्य का बतानेवाली है, (**वाचं**) वाक्-शक्ति को (**उदीरयन्तीम**) प्रेरित कर प्रकट रूप मे लाती है, (**विश्वाभि**) सभी (**धीभि**) बुद्धिमानो द्वारा (**उपतिष्ठमानाम्**) सेवित की जा रही है; (**देवीम**) ज्ञान के द्वारा सकल पदार्थों का स्पष्ट बोध कराने वाली है—उस (**गाम्**) वेदवाणी को जो (**देवेभ्य·**) विद्वानो से (**मा**) मुझे (**पर्येयुषीम्**) प्राप्त हुई है, उसे (**दभ्रचेता**) कम समझ (**मर्त्य**) मानव ही (**आवृक्त**) छोड़ देता है ॥१६॥

भावार्थ—व्यक्त तथा अव्यक्त बोलने वाले सकल प्राणियो की वाक्शक्ति वेदवाणी से ही प्रेरित है, विश्व मे जो भी वेदितव्य है उसे यह जतलाती है—इसीलिये बुद्धिमान् इसका ज्ञान प्राप्त करते है। वह मानव नासमझ ही होगा जो इसे छोड़ देता है ॥१६॥

अष्टम मण्डल में एकसौएकवां सूक्त समाप्त ॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्य द्व्यधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषि—१—२२ *प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्य । अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहस· सुतौ तयोर्वान्यतर ॥ देवता - अग्नि ॥ छन्द*—१, ३—५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ *निचृद्गायत्री* । २, ६, १२, १३, १६, *गायत्री* । ७, ११, १७ १९ *विराड्गायत्री* । १०, १८ *पादनिचृद्गायत्री* ॥ *स्वरः*—*षड्ज* ॥

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥१॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) सर्वप्रकाशक ! (**देव**) हे ज्ञानदाता ! (**त्व**) आप (**दाशुषे**) आत्मसमर्पक जन को (**बृहत**) व्यापक (**वय**) कमनीय चिरजीवन-सुख (**दधासि**) देते हैं। आप (**कवि**) सर्वज्ञ है, (**गृहपतिः**) ब्रह्माण्ड रक्षक हैं; और (**युवा**) संयोजक तथा वियोजक हैं ॥१॥

भावार्थ—जो परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक, ब्रह्माण्डभर का पालन करने वाला, नानाप्रकार के संयोग-वियोग रच विविध सृष्टि का रचयिता है एक मात्र उसी की भक्ति करने वालों को संसार मे क्या प्राप्त नहीं हो सकता ! परन्तु आवश्यक है कि भक्त भगवान् के इन गुणो को समझे और तदनुसार ही जीवन यापन का यत्न करे। स्वयं क्रान्तदर्शी, स्वशरीर तथा गृह का स्वामी और विविध पदार्थों का रचयिता भी हो ॥१॥

स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा ।
चिकिद्विभानवा वह ॥२॥

पदार्थ—हे (**चिकित्**) ज्ञानी तथा (**विभानो**) विविधतम गुणों से प्रकाशित (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप परमात्मा ! (**स**) वह आप (**अनया**) इस प्रसिद्ध, (**दुवस्युवा**) आपका सेवन करना चाहती हुई (**इडा सह**) सुशिक्षित वाणी से (**न**) हमें (**देवान्**) सद्गुणों को (**आ, वह**) प्रदान कराए ॥२॥

भावार्थ—सुशिक्षित तथा मधुरवाणी से प्रभु का गुणगान करने पर ही प्रभु के विविध गुण भक्त के अन्तःकरण में स्फुरित होते हैं और तभी हम सद्गुण-धारक बनते हैं ॥२॥

त्वया॑ ह स्विद्युजा व॒यं चोदि॑ष्ठेन यविष्ठ्य ।

अ॒भि ष्मो॒ वाज॑सातये ॥३॥

पदार्थः—हे (**यविष्ठ्य**) पदार्थों के अणु-परमाणुओं का सफल संयोग-वियोग करनेवाले परम शक्तिशाली प्रभो ! (**चोदिष्ठेन**) अपने गुणों में अतिशय प्रेरणा प्रदाता (**त्वया युजा स्वित्**) आपके सहयोग से ही (**वय**) हम उपासक (**वाजसातये**) विविध प्रकार के ज्ञान, बल, धन, ऐश्वर्य को प्राप्त करने हेतु (**अभि ष्म**) सर्वथा सक्षम हैं ॥३॥

भावार्थ—भाँति-भाँति के ऐश्वर्य की प्राप्ति का प्रयास, उसके लिये पुरुषार्थ, मानव तभी करता है, जब उसे कहीं से ऐसा करने की प्रेरणा प्राप्त हो। मानव का सर्वाधिक सच्चा प्रेरक, मात्रा में भी तथा गुणों में भी, परमात्मा ही है ॥३॥

औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छुचि॑मप्नवान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥४॥

पदार्थ—मैं (**और्वभृगुवत्**) व्यापक एवं परिपक्व विज्ञानयुक्त तपस्वी के समान एवं (**अप्नवानवत्**) बाहु अर्थात् कर्मशक्तिसंपन्न साधक के तुल्य (**समुद्रवाससं**) हृदयान्तरिक्ष में बसने वाले (**अग्नि**) ज्ञानस्वरूप प्रभु का (**आहुवे**) आह्वान करता हूं ॥४॥

भावार्थः—साधक को अपेक्षित है कि वह अपने अन्तःकरण में 'अग्नि' बसाये । दृढ़ संकल्प की अग्नि को तो धारण करे ही, साथ ही प्रभु के ज्ञान एवं कर्म-प्रधान स्वरूप को भी आदर्श रूप में अपने अन्तःकरण में धारे ॥४॥

हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं॒ सहः॑ ।

अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥५॥

पदार्थः—(**वातस्वनं**) मलिनता को बहा ले जाने वाले शोधक वेगवान् वायु तुल्य ही जिसका, 'स्वन' शब्द या उपदेश है, जो (**कवि**) सर्वज्ञ है, जो (**पर्जन्यक्रन्द्य**) तृप्ति कर्ता, पापियों को परास्त करनेवाला एवं उसके समान गर्जन करने वाला; (**सह**) बलस्वरूप प्रभु है, मैं उस (**समुद्रवाससं**) अपने हृदयान्तरिक्ष में वास करने वाले का (**हुवे**) आह्वान करता हूं ॥५॥

भावार्थ—साधक की यदि यह कामना हो कि उसकी पाप-भावनायें नष्ट हों और वह स्वयं सर्व प्रकार तृप्त हो तो वह अपने अन्तःकरण में साक्षात् बलस्वरूप परमेश्वर को बसाले ॥५॥

आ स॒वं स॑वि॒तुर्य॑था॒ भग॑स्येव भु॒जिं हु॑वे ।

अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥६॥

पदार्थ—(**भगस्य**) मोक्षसुख के (**भुजि**) प्रदान करने वाले (**इव**) के तुल्य (**सवितुः**) सर्वप्रेरक की (**सवं**) प्रेरणा को (**यथा**) सही ढंग से भोग कराने उस प्रभु का मैं (**समुद्रवाससं अग्नि**) हृदयान्तरिक्ष में वास करने वाले के रूप में (**आ हुवे**) आह्वान करता हूँ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा की ज्ञान प्रदाता तथा कर्मप्रेरक अद्भुत शक्ति को अपने अन्तःकरण में इस प्रयोजन से प्रज्वलित करना चाहिये कि उससे प्रेरणा मिलती रहे; और फिर मोक्षसुख तो प्राप्त होता ही है ॥६॥

अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑मध्व॒राणां॑ पुरू॒तम॑म् ।

अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥७॥

पदार्थः—हे मानवो ! (**सहस्वते**) बलशाली (**नप्त्रे**) बन्धुत्व स्थापना के लिये (**व.**) तुम्हारे (**अध्वराणां**) अहिंसनीय व्यवहारों को (**पुरुतमम्**) अतिशय रूप से (**वृधन्तम्**) प्रोत्साहित कर रहे (**अग्नि**) ज्ञानस्वरूप अग्रणी प्रभु को (**अच्छा**) प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थः—प्रभु स्व उदाहरण द्वारा हमें अहिंसामय व्यवहार के लिये प्रोत्साहित करते हैं । उस नेता से हमारा जो बन्धुत्व स्थापित होता है वह अतिशय दृढ़ है । हम उस के साथ अपना बन्धुत्व स्थापित करें ॥७॥

अ॒यं यथा॑ न आ॒भुव॒त्त्वष्टा॑ रू॒पेव॒ तक्ष्या॑ ।

अ॒स्य क्रत्वा॒ यश॑स्वतः ॥८॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**त्वष्टा**) काष्ठकार (**तक्ष्या**) घड़ने या रचने योग्य (**रूपा**) आकृतियों को (**आभुवत्**) रचता है; (**इव**) वैसे ही (**अयं**) यह ज्ञान एवं कर्मस्वरूप प्रभु ही (**न॰ आभुवत्**) हमें विविधरूप प्रदान करने में सक्षम है । (**अस्य**) इस प्रभु के (**क्रत्वा=कृत्य**) सारे कार्य (**यशस्वतः**) यशस्वी के कार्यों के तुल्य हैं ॥८॥

भावार्थ—प्रभु की सारी सृष्टि ही बुद्धिपूर्वक की हुई है । जैसे कि एक कुशल बढ़ई विवेकपूर्ण रीति से अपनी रचना करता है ऐसे ही परमात्मा की सृष्टि के सभी अंग उसके विवेक के परिचायक हैं, वे सभी सप्रयोजन हैं, हमें भले ही कोई तुच्छ या निष्प्रयोजन ही लगे ॥८॥

अ॒यं विश्वा॑ अ॒भि श्रियो॒ऽग्निर्दे॒वेषु॑ पत्यते ।

आ वाजै॒रुप॑ नो गमत् ॥९॥

पदार्थः—(**अय अग्नि.**) यह ज्ञानस्वरूप अग्रणी (**देवेषु**) दिव्य पदार्थों के तुल्य (**विश्वा**) सभी (**श्रिय**) शोभाओं को (**अभि, पत्यते**) प्राप्त होता है; वह प्रभु (**वाजै**) सर्व प्रकार के ऐश्वर्यों के साथ (**न उप आगमत्**) हमें प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ—सकल दिव्य पदार्थों में प्रभु ही सर्वाधिक श्रीसंपन्न है, वह अधिदेव है । हम उस देवाधिदेव को अपने अन्तःकरण में बसाएं ॥९॥

विश्वे॑षामि॒ह स्तु॑हि॒ होतॄ॑णां य॒शस्त॑मम् ।

अ॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् ॥१०॥

पदार्थ—(**इह यज्ञेषु**) यहाँ यज्ञों में, सत्कर्म करने के समय अवसरों पर (**विश्वेषां**) सभी (**होतॄणां**) दानादान गुणविभूषित (**विश्वेषां**) समस्त देवों में से (**यशस्तमम्**) सर्वाधिक यशस्वी (**पूर्व्यं**) सर्वाधिक पूर्वतः विद्यमान (**अग्नि**) ज्ञानस्वरूप तथा कर्मठ नेता प्रभु का (**स्तुहि**) गुणगान कर ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा की सृष्टि में भाँति-भाँति के दिव्य पदार्थ हैं, उनसे हम अनेक उपकार पाते हैं और उनकी गुणवन्दना करते हैं । परन्तु इनमें सर्वाधिक पूर्ववर्ती एवं सर्व प्रकार से यशस्वी तो प्रभु ही है; मानव उसके गुणगान करे ॥१०॥

शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषं॒ ज्येष्ठो॒ यो दमे॒ष्वा ।

दी॒दाय॑ दी॒र्घश्रु॑त्तमः ॥११॥

पदार्थ—(**य**) जो प्रभु (**शीरम्**) सर्वत्र व्याप्त है, (**पावकशोचिष**) जो अपनी सन्निधि के द्वारा अग्नि के तुल्य दोषों का दाहक है, (**ज्येष्ठ.**) सर्व॰ देवों में श्रेष्ठ है, (**दीर्घश्रुत्तम**) दीर्घकाल से नितांत प्रसिद्ध है, वह (**दमेषु**) हमारे शरीररूपी घरों में (**आ, दीदाय**) सर्वतः प्रकाशित हो ॥११॥

भावार्थ—भौतिक अग्नि भौतिक मल भस्म कर सुवर्ण आदि धातुओं को शुद्ध कर देता है, सर्वव्यापक ज्ञानस्वरूप, कर्मप्रेरक प्रभु का बल ही हम उपासकों में व्याप्त है, हम उस सर्वशक्तिमान् की संगति में निश्चय ही निर्दोष रह सकते हैं ॥११॥

तमर्व॑न्तं॒ न सा॑न॒सिं गृ॑णी॒हि वि॑प्र शु॒ष्मिण॑म् ।

मि॒त्रं न या॑त॒यज्ज॑नम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (**विप्र**) बुद्धिमान् ! तू (**तं**) उस प्रसिद्ध, (**अर्वन्तं न**) लक्ष्य पर शीघ्र पहुँचने वाले अश्व के तुल्य (**सानसिं**) शीघ्र ही अर्जित करानेवाले (**मित्र न**) स्नेही मित्र के समान (**जन**) मानव को (**यातयत्**) उद्योग के लिये प्रेरणा देते हुए ज्ञान स्वरूप परमेश्वर का (**गृणीहि**) गुणगान कर ॥१२॥

भावार्थ—प्रभु के गुणों का गान करनेवाले, उसके दिव्य गुणों को शीघ्र ग्रहण करने का प्रयास करनेवाले मानव को परमेश्वर भी मित्र की भाँति सहायता करता है और उसे शीघ्रातिशीघ्र लक्ष्य पर पहुँचा देता है ॥१२॥

उप॑ त्वा जा॒मयो॒ गिरो॒ देदि॑शतीर्हवि॒ष्कृतः॑ ।

वा॒योरनी॑के अस्थिरन् ॥१३॥

पदार्थ—हे प्रभु ! (**हविष्कृत**) गुणगान या स्तुतिरूप हवि प्रदान करती हुई, (**जामयः**) ज्ञानयुक्त (**गिरः**) वेदवाणियां (**त्वां**) आपका (**उप देदिशती**) बारबार वर्णन करती हुई (**वायो**) प्राण के (**अनीके**) बल पर (**अस्थिरन्**) स्थिर होती हैं ॥१३॥

भावार्थ—ज्ञान तथा प्रबोध से आपूर्ण वेदवाणियों से प्रभु का गुणगान करो और प्राणायाम द्वारा प्राण की गति को नियमित कर स्थिरता से गुणगान में रत रहो ॥१३॥

यस्य॑ त्रि॒धात्वबृ॑तं ब॒र्हिस्त॒स्थावसं॑दिनम् ।

आप॑श्चि॒न्नि द॑धा प॒दम् ॥१४॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस ऐसे गुणगायक स्तोता का (**त्रिधातु**) सत्त्व, रज तथा तम—इन तीन गुणों का धारक, (**अवृतं**) बिन ढपा, (**बर्हि**) अन्तःकरणरूप आसन, (**असन्दिनम्**) बन्धनरहित (**तस्थौ**) स्थित है; उस अन्तःकरण में (**आप**) शान्ति (**चित**) निश्चय ही (**पदम्**) अपना निवास (**निदधा**) बना लेती है ॥१४॥

भावार्थ—वेदवाणी में परमात्मा का गुणगान करने वाले उपासक का अन्तःकरण शनैः-शनैः शान्ति का आवासस्थल हो जाता है ॥१४॥

प॒दं दे॒वस्य॑ मी॒ळ्हुषोऽना॑धृष्टाभिरू॒तिभिः॑ ।

भ॒द्रा सूर्य॑ इवोप॒दृक् ॥१५॥

पदार्थ —(मीळ्हुष) सुखदायक (देवस्य) दिव्य प्रभु का (घर्म) यह शान्ति सदन (अनाधृष्टाभि) अपराजेय (ऊतिभिः) रक्षा तथा सहायताओं सहित (सूर्य इव) सर्वद्रष्टा सूर्य के तुल्य (भद्रा) कल्याणकारी (उपदृक्) उपनेत्र होता है ॥१५॥

भावार्थ —जिस अन्तःकरण में शान्ति होती है, निश्चय ही वह सुखवर्षक प्रभु का ही आवासस्थान बनता है और फिर ज्ञानस्वरूप प्रभु सूर्य की भांति ऐसे साधक को सभी कुछ दिखला देते हैं—अन्तःकरण मे स्थित ज्ञानस्वरूप प्रभु की शक्ति भी ससार को दिखाने के लिये उपासक हेतु उपनेत्र बनती है ॥१५॥

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा ।

आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वत्जन ! (देव) दिव्यगुण धारण करने के इच्छुक ! साधक ! (घृतस्य) विद्या के प्रदीप्त बोध को (धीतिभि) अनेक बार मनन कर (शोचिषा) पावन विज्ञान से (तेपान) तपता हुआ तू (देवान) दिव्यगुणों को (आवक्षि) प्राप्त कर (च) और (यक्षि) उनका दूसरों से सगम करा ॥१६॥

भावार्थः—बार-बार पदार्थ बोध का मनन करने से विद्वान् दिव्य गुणों को धार कर तथा उपदेश द्वारा उन्हें दूसरों को प्रदान करने मे समर्थ होता है ॥१६॥

तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः ।

हव्यवाहममर्त्यम् ॥१७॥

पदार्थ —हे (अङ्गिर) —विद्वन् ! (तं) उस पूर्वोक्त प्रकार से साधना करते हुए (त्वा) तुझे (मातर) माता के समान स्नेह से निर्माण करनेवाले (देवास) दिव्यगुणी विद्वान् (कविं) क्रान्तदर्शी, (हव्यवाहम्) दानाऽऽदान करने योग्य, (अमर्त्य) कीर्ति से मरणधर्मरहित के रूप मे (अजनन्त) प्रकटन हैं ॥१७॥

भावार्थ —दिव्यगुणी जनों की सगति म रहकर विद्वान् गुणग्रहण करना तथा गुणों को दूसरों को देना आदि गुण सीखता है और इस भांति उसकी कीर्ति अमरता पा जाती है ॥१७॥

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् ।

हव्यवाहं नि षेदिरे ॥१८॥

पदार्थ —हे (कवे) क्रान्तदर्शी ! (अग्ने) विद्वन् ! (प्रचेतस) प्रकृष्ट ज्ञान युक्त, (दूत) उत्तम ज्ञान व गुण देने वाले, (वरेण्यम्) श्रेष्ठ, (हव्यवाह) दानाऽऽदानशील (त्वा) हम तेरी (निषेदिरे) प्रतिष्ठा करते हैं ॥१८॥

भावार्थ – जो विद्वान् दूरदर्शी है तथा जिसका ज्ञान प्रचुर है तथा जो अपने गुण दूसरों को देता है, समाज मे उसका सम्मान होता है ॥१८॥

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति ।

अथैतादृग्भरामि ते ॥१९॥

पदार्थ—(हि मे) निश्चित ही मेरी (न) न तो (अघ्न्या) पापनष्ट करने की शक्ति, (अस्ति) विद्यमान है और (न) न ही (स्वधिति) स्वय को धारण करने की शक्ति ही (वनन्वति) अवस्थित है, (अथ) तो भी (एतादृक्) इतना—अल्प सा भी (ते) आप के हेतु लाता हूँ ॥१९॥

भावार्थ —जो मानव अभी ज्ञान के प्रकाश से पूर्णरूपेण प्रबुद्ध नहीं भी हुआ और जो अभी अपनी कर्मशक्ति को भी नहीं जगा पाया—उसे भी प्रभु की गुण-कथनरूप हवि को—जैसी और जितनी भी वह दे सके देनी ही अपेक्षित है ॥१९॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।

ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥२०॥

पदार्थः—(यत) जब हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप अग्रणी ! (कानि कानि चित) किन्हीं-किन्हीं भी (दारूणि) चीरने व ध्वस्त करने योग्य अपने दुर्गुणों, दुर्भावनाओं को (ते) आपकी विनाशक शक्तियों मे (दध्मसि) हम झोंकें, तब आप (ता) उनको, हे (यविष्ठ्य) बलवन् ! (जुषस्व) प्रीतिपूर्वक सेवन करो ॥२०॥

भावार्थ —जिस भांति भौतिक अग्नि विदारणीय काष्ठखण्डों को विदीर्ण कर उनका भक्षण कर जाता है; उसी प्रकार यदि हम निष्कपटता से अपने सारे विदारणीय दोषों तथा दुर्भावनाओं को प्रभु को अर्पित कर अपने सब अवगुणों को उस के गुणों के प्रकाश मे प्रत्यक्ष देखें तो हमारे अवगुण स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं ॥२०॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।

सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥२१॥

पदार्थ —(यत्=या)जो (उपजिह्विका) गन्ध से आकृष्ट हो भीतर प्रविष्ट होकर खाने वाला कीट खाता है तथा (यत्=या) जो (वम्रो) अपने भक्षणीय काष्ठ आदि को मिट्टी से ढक भीतर ही भीतर खाने वाली—दीमक (अतिसर्पति) आक्रमण करती है—(सर्वं तत्) वे सभी हिंसक दोष (ते) आप प्रभु के (घृतं) घृत तुल्य सेवनीय बनें ॥२१॥

भावार्थ —मानव शरीर मे, मन मे एवं इनके द्वारा उसके आत्मा में भी ऐसे दोष, दुर्भाव प्रविष्ट हो जाते हैं जो घुण के तुल्य इसे जर्जरित कर देते हैं—उनसे रक्षा प्रभु की शरण में जा उसके गुणों का निरन्तर गान करने से होती है ॥२१॥

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।

अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२॥

पदार्थ —(मर्त्य.) मानव (अग्नि) यज्ञार्थ अग्नि को (इन्धान) प्रदीप्त करता हुआ, (मनसा) अपनी मनन शक्ति से (धियं) अपनी धारणावती बुद्धि को इस भांति (सचेत) सम्बुद्ध करे कि मैं तो (विवस्वभि) विविध स्थानों पर पहुँचनेवाली, अन्धकार हरने वाली किरणों—द्वारा (अग्नि) ज्योति-स्वरूप प्रभु को ही (इन्धे) अपने अन्त करण मे जागृत कर रहा हूँ ॥२२॥

भावार्थ —यज्ञाग्नि, उस ज्योति स्वरूप परमात्मा का ही प्रतीक है। इसे यज्ञार्थ प्रदीप्त किया जाता है। इसे प्रदीप्त कर मानव को परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये। वह हमारे अज्ञानान्धकार को भगाता है। उसकी स्तुति करना ही उसे प्रदीप्त करना है ॥२२॥

अष्टम मण्डल मे एक-सौ-दोवाँ सूक्त समाप्त ॥

अथ चतुर्दशर्चस्य त्र्यधिकशततमस्य सूक्तस्य—ऋषि —१—१४ सोभरि काण्व ॥ देवते —१—१३ अग्नि । १४ अग्निर्मरुतश्च ॥ छन्दः—१, ३, १३, विराड्बृहती । २ निचृद्बृहती । ४ बृहती । ६ आर्चीस्वराड्बृहती । ७, ६ स्वराड्-बृहती । ५ पङ्क्ति । ११ निचृत्पङ्क्ति । ८ निचृदुष्णिक् । १२ विराडुष्णिक् । १० आर्चीभुरिग्गायत्री । १४ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—४, ६, ७, ६, १३ मध्यम. । ५, ११ पञ्चम । ८, १२ ऋषभ । १० षड्जः । १४ गान्धार ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥१॥

पदार्थ.—(यस्मिन्) [जिस पथप्रदर्शक की खोज करने हेतु] (व्रतानि) सकल्पाधारित कर्मों, ब्रह्मचर्यपालन आदि, को (आ दधु) हमने धारा था वह (गातुवित्तम) सर्वोत्तम मार्गवित् (अदर्शि) दिखाई दे गया। (सु जात) सम्यक्तया समिद्ध (आर्यस्य वर्धन) उन्नतिपथ के पथिक को प्रोत्साहन दाता (अग्नि) इस ज्ञानरूपी तेज स्वरूप प्रभु को (अस्माक गिर) हमारी वाणी (उपो नक्षन्त) उसके निकट ले जाती है ॥१॥

भावार्थ —भगवान् की प्राप्ति का दृढ़ सकल्प लेकर उसके लिये प्रयत्न करने वाले का मार्गदर्शक को अपने निकट प्राप्त कराने का साधन, निश्चय ही, उसका गुणगान ही है ॥१॥

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥

पदार्थः—(दैवोदासः) प्रकाशदाता (अग्नि) सूर्य (न) मानो कि (मज्मना) अपने बल से नहीं अपितु स्वभावतया ही (नाकस्य) स्वर्लोक के (सानौ) शिखर पर (तस्थौ) बैठा हो, वह (अनु) अनुक्रम से (मातर पृथिवीं अच्छा) निर्मात्री पृथिवी की ओर (देवान्) अपनी प्रकाश-किरणों को (प्र) स्पष्टता से (वि वावृते) चक्राकार रूप मे लौटाता है। अथवा ज्ञान प्रकाश दाता प्रभु जो बल से नहीं, स्वभावत ही परमसुख की उच्च स्थिति मे विद्यमान है, अनुक्रम से निर्मात्री धरती पर स्थित मानवों को अपनी ज्ञान-किरणें लौटाता है ॥२॥

भावार्थ —जैसे धरती पर भौतिक प्रकाश स्वर्लोक स्थित सूर्य से मिलता है वैसे ही मनुष्यों को ज्ञान का प्रकाश उच्चतम सुखमयी स्थिति मे विद्यमान प्रभु से प्राप्त होता है, ज्ञानरूपी प्रकाश प्राप्ति हेतु उससे ही याचना करे ॥२॥

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥३॥

पदार्थ —(चर्कृत्यानि) बार-बार कर्तव्य कर्मों को (कृण्वत) करते हुए (कृष्टय) कर्मरूप बीज की कृषि करते हुए मानव (यस्मात्) जिससे (रेजन्ते) चमकते हैं—उस (अग्नि) प्रभु को, जो (सहस्रसां) अनन्तदानदाता है, (मेधसातौ इव) मानो कि पवित्रता के बटवारे के समय ही, (त्मना) अपने आप (धीभि) मनन क्रियाओं से (सपर्यत) सेवन करो ॥३॥

भावार्थ —प्रभु ने भांति-भांति के दान दिये हैं—उसके गुणों के श्रवण, मनन एव निदिध्यासन से मानव बुद्धि, उसकी विचारधारा, पावन होती है, पवित्र बुद्धि वाला साधक स्व कर्तव्य कर्मों को करता हुआ एक अभूतपूर्व आभा से आलोकित रहता है ॥३॥

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

पदार्थ —हे (वसो) [अपने द्वारा प्रदत्त बल, विज्ञान, धन आदि से] बसाने वाले प्रभो ! (यः मर्तः) जो मरणशील जन (ते) आप को (दाशत्)

आत्मसमर्पण करता है तथा आप (राये) ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु (य मिनीथसि) जिसका पथ प्रदर्शित करते हैं; हे (अग्ने) ज्योति-स्वरूप ! (स) वह उपासक (उक्थशंसिन) वेदवचनों के वक्ता, (सहस्रपोषिण) सहस्रों के पोषक (वीर) वीर पुत्र को पाता है ॥४॥

भावार्थ.—प्रभु सब को बसाता है—ऐश्वर्य-प्राप्ति का मार्ग भी दर्शाता है—वीर सन्तान भी उसी की कृपा से मिलती है ॥४॥

स दृळहे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥५॥

पदार्थः—हे (पुरूवसो) बहुतो को वासदाता ! प्रभो ! जिसने आप को अपना सब कुछ सौंपा है । (सः) वह उपासक (दृळहेचित) सुदृढ़ स्थान या स्थिति से भी, सुरक्षित स्थान मे से (वाजं) ऐश्वर्य को (अभि तृणत्ति) ग्रहण कर पाता है । हम उपासक भी (देवत्रा त्वे) परमदानी आपके आश्रय मे (विश्वा वामानि) सर्वोत्तम पदार्थ (सदा धीमहि) सदैव प्राप्त करते रहे ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे भी प्रभु के प्रति समर्पण की भावना की ही प्रशसा है ॥५॥

यो, विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥६॥

पदार्थः—(य) जो प्रभु (वसु होता) ऐश्वर्यदाता है (विश्वा दयते) सबका पालक है और इस प्रकार (जनानां) मनुष्यो का सुखकारी है (अस्मै) उस (अग्नये) ज्योति स्वरूप परमेश्वर को ही (मधो. पात्रा न) मधु से भरे पात्रो की भाँति मधुरतापूर्ण हमारी (प्रथमानि स्तोमा) पहली स्तुतिया मिलें ॥६॥

भावार्थ·—परमेश्वर ही वास्तविक दानी है, उसके गुणगान द्वारा ही उपासक दानशील बनता है—यह दानशीलता उसके ऐश्वर्य का कारण होती है ॥६॥

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।

उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥७॥

पदार्थ.—(सुदानव.) दानभावना द्वारा भावित (देवयव) अपने लिये दिव्यता के इच्छुक उपासक (गीर्भि.) स्व वाणियो से (रथ्य) सुवाहक (अश्व) अश्व की भाँति वाहनसमर्थ आपकी (मर्मृज्यन्ते) आराधना करते है । वह आप, हे (दस्म) दर्शनीय ! (विश्पते) प्रजा पालक ! (तोके) पुत्र और (तनये) पौत्र (उभे) दोनो ही मे (मघोनाम्) उदारो के (राध) सफलतारूप ऐश्वर्य को (पर्षि) पहुँचाइये ॥७॥

भावार्थ—प्रभु द्वारा दिव्यगुणो की अभिलाषा स्वय दानशीलता से भावित होकर ही करें, दानशीलो को ही सफलतारूपी ऐश्वर्य मिलता है ॥७॥

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।

उपस्तुतासो अग्नये ॥८॥

पदार्थः—हे (उप स्तुतास) स्तुति क्रिया के द्वारा स्वय स्तुति पात्र बने उपासको ! (मंहिष्ठाय) परमदानी (ऋताव्ने) सत्य नियमों का ज्ञान देने वाले, (बृहते) विशाल, (शुक्रशोचिषे) विशुद्ध ज्योति पुञ्ज (अग्नये) परमेश्वर के गीत (प्रगायत) गाओ ॥८॥

भावार्थ—ससार के सत्य, त्रिकाल के लिये निर्धारित नियमो का ज्ञान भी परमेश्वर के गुणो का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने से ही मिलता है ॥८॥

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।

कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥९॥

पदार्थ—(द्युम्नी) अज्ञान तिमिर की निवृत्ति से स्वय प्रकाशित, (आहुतः) स्तुतिरूप आहुतियां जिसे दी गई है तथा (समिद्ध) इस भाँति जागृत किया गया (मघवा) उदार ऐश्वर्यशाली प्रभु (वीरवत्) वीरतापूर्ण कीर्ति (आ वंसते) पहुँचाता है । (अस्य) इस, उद्भावित ज्ञानस्वरूप प्रभु की, (नवीयसी) सदैव प्रस्तुत किये जाने से नित नयी (सुमति) अनुग्रह बुद्धि (नः अच्छा) हमारी ओर (वाजेभिः) सभी समृद्धि सहित (आगमत्) प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ—वेदवाणी के द्वारा नित्य गुणगान कर प्रभु की शक्ति की अनुभूति अन्त करण में उद्बुद्ध कर दी जाती है । अन्त करण मे उद्भावित प्रभु उपासक पर नित्य नये-नये अनुग्रहो को बरसाता है ॥९॥

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् ।

अग्निं रथानां यमम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (आसाव) अभिषवकर्ता, सृष्ट पदार्थों का सार तथा उनका ज्ञानरूपी रस निकालने वाले साधक ! (रथानां) आनन्दों के (यमं) नियामक—नियन्त्रित आनन्द देने वाले (प्रियाणां) प्यारो मे (प्रेष्ठम्) सर्वाधिक प्रिय (अतिथिं) अचानक ही, बिना किसी नियत समय के अन्त करण मे उद्भूत हो जाने वाले (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप प्रभु की (स्तुहि) वन्दना कर ॥१०॥

भावार्थ—ज्ञानस्वरूप प्रभु के गुणो का सतत श्रवण, मनन एव निदिध्यासन करते रहो—साधक को उसे ही अपना सर्वाधिक प्रिय समझना चाहिये—पदार्थ ज्ञान के साथ-साथ उसका महत्त्व जब हृदयङ्गम होगा तो वह भी अचानक उद्भूत होगा ॥१०॥

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।

दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥११॥

पदार्थ·—(वेदिता) ज्ञानदाता, (यज्ञिय) पूजनीय प्रभु (निदिता) इस सृष्टि मे निहित (वसु) बसाने वाले पदार्थों को (उदिता) हमारे अन्त करण मे उद्भूत होने पर (आ, ववर्तति) बार बार लौटबदल कर रखता है । (धिया) धारणावती, शुभगुणो को धारण करने वाली प्रज्ञा के साथ (वाज) बोध एव अन्य विविध ऐश्वर्यों को (सिषासत) देना चाहते हुए (यस्य) जिस ज्ञानस्वरूप प्रभु की (ऊर्मय) आच्छादक कृपा (प्रवणे) भक्त पर (दुष्टरा) प्रशस्यतम रूप मे बरसती है—(इव) जैसे कि (प्रवणे) ढालू तल पर पड़ने वाली (ऊर्मय) जल धारायें (दुष्टरा) अजेय होती है ॥११॥

भावार्थ प्रभु तो स्वरचित समग्र ऐश्वर्य को बार-बार हमारे समक्ष फिराता रहता है और उनका ज्ञान देता है । भक्त को वह धारणावती प्रज्ञा देता है जिसके साहाय्य से वह प्रभु की इस प्रशस्यतम कृपावृष्टि को सह कर लाभ उठाता है ॥११॥

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।

यः सुहोता स्वध्वरः ॥१२॥

पदार्थ·—(य) जो (एष.) यह (पुरुप्रशस्त) बहुविध प्रशसनीय, (सुहोता) सुष्ठु दाता व आदाता, (स्वध्वर.) इसीलिये उत्तम यज्ञकर्त्ता है; (वसु) वास देने वाला (अग्नि) ज्ञान तथा ज्योति स्वरूप प्रभु है उस (अतिथिम्) अतिथिवत् अचानक हमारे अन्त करण मे समुद्भूत होने वाले को (न·) हम मे से कोई भी (मा हृणीथा) रुष्ट न करे ॥१२॥

भावार्थ—बोध देने वाला प्रभु ज्ञानयज्ञ का श्रेष्ठ 'होता' है, वह हमे देता ही रहता है, परन्तु यह तो भक्त की श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने की शक्ति पर आधारित है कि वह कब उसके अन्त करण मे आ विराजे । वह जब भी आए उसका स्वागत करो ॥१२॥

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।

कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥१३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञान तथा तेज स्वरूप (वसो) वासदाता प्रभु ! जो साधक (अच्छोक्तिभि) शुभ वचनो द्वारा, और (क) सुखकर (एवै चित्) प्रशस्त कर्मों द्वारा भी आपकी वन्दना करते है (ते) वे (मोरिषन्) कभी कष्ट नहीं पाते । क्योंकि (कीरि चित्) तेरा गुणगान कर्ता तो (रातहव्य) देनेयोग्य अपना सर्वस्व आपको समर्पित किये हुए, इसीलिये (स्वध्वर) यज्ञ का सुष्ठु अनुष्ठाता बना हुआ (दूत्याय) दिव्य गुण धर्मों के सन्देशवाहकत्व हेतु (त्वां ईट्टे) आपको ऐश्वर्य का हेतु बनाता है ॥१३॥

भावार्थ—प्रभु अपने आदर्श से दिव्यगुणो का सन्देश देन वाला है । उसके गुणो का गान साधक को दिव्य गुण धारण करने को प्रेरित करता है । इसीलिये प्रभु की सत्य मन से स्तुति करने वाले ऐसा कोई कर्म नही करते जो उन्हे क्षति पहुँचावे ॥१३॥

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।

सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान तथा तेज स्वरूप प्रभो ! आप (मरुत्सखा) इन्द्रियो के सखा है, (सोमपीतये) सृष्ट पदार्थों के पानकर्ता मुझ साधक के हितार्थ (रुद्रै सह) रुद्रो के साथ (आ याहि) मेरे अन्तःकरण मे उद्भूत हो । पुनश्च (सोभर्या) सुष्ठुतया निर्वाह समर्थ, (स्वर्णरे) दिव्यसुखयुक्त मुझ नेतृत्वगुण विशिष्ट साधक के अन्त करण मे (सुष्टुतिं) मेरे द्वारा की गई शुभ स्तुति को लक्ष्य कर (मादयस्व) प्रसन्न हो ॥१४॥

भावार्थ—जो साधक सृष्ट पदार्थों की बोधप्राप्ति हेतु अपनी ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियो को प्रभु की आज्ञानुसार संचालित करता है, प्राणशक्तियां उसके नियन्त्रण मे आजाती हैं और प्रभु को वह अपने शुद्ध तथा बलशाली अन्त करण में प्रदीप्त करता है । उस दिव्यसुख से सुखी अन्त करण से प्रतिध्वनित परमात्मा के गुणगान मानो परमेश्वर को ही आनन्दित करते हैं ॥१४॥

अष्टम मण्डल मे एकसौतीनवां सूक्त समाप्त ॥

अष्टमं मण्डल समाप्तम् ॥

卐

॥ ओ३म् ॥

अथ नवमं मण्डलम्।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३० । ३ ।

अथाऽस्मिन्मण्डलेसौम्यस्वभावस्य परमात्मनो गुणा वर्ण्यन्ते —

अब इस मण्डल मे सौम्यस्वभाव परमात्मा के गुणो का वर्णन करते हैं :—

अथ दशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य —

१—१० मधुच्छन्दा ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३, ७-१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री । षड्ज. स्वर ॥

स्वादि॑ष्ठया मदि॑ष्ठया पव॑स्व सोम धार॑या ।

इन्द्रा॑य पात॑वे सुतः ॥१॥

पदार्थ.—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्, (स्वादिष्ठया) आनन्द के बढ़ाने वाले (मदिष्ठया धारया) आह्लाद के वर्द्धक स्वभाव से आप हमे (पवस्व) पवित्र करें जो स्वभाव, आप का (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के (पातवे) बढ़ाने के लिये (सुत.) प्रसिद्ध है ॥१॥

भावार्थः—यो तो परमात्मा के अपहतपाप्मादि अनन्त गुण हैं, पर शान्त स्वभाव परमात्मा के शान्ति के देने वाले सौम्य स्वभावादि ही हैं, परमात्मा के सौम्यस्वभाव के धारण करने से पुरुष शान्तिसम्पन्न हो जाता है । फिर उसको अपने स्वरूप मे एक प्रकार का आनन्द प्रतीत होने लगता है । जिससे एक प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है । मद यहा हर्ष का नाम है किसी मादक द्रव्य का नही ॥१॥

र॒क्षो॒हा वि॒श्वच॑र्षणिर॒भि योनि॒मयो॑हतम् ।

द्रुणा॑ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, आप (रक्षोहा) राक्षसो के हनन करने वाले हो, (विश्वचर्षणि.) सम्पूर्ण विश्व के द्रष्टा हो, (अभियोनिम्) सबके उत्पत्तिस्थान हो, (अयोऽहतम्) किसी शस्त्र-अस्त्र से छेदन नही किये जाते (द्रुणा) गतिशील और (सधस्थ) मध्यस्थरूप से सर्वत्र (आसदत्) स्थिर हो ॥२॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र परिपूर्ण और विश्व के द्रष्टा हो तथा पापकारी हिंसक राक्षसो के हन्ता हो । आप हमारे हृदय मे विराजमान हो ॥२॥

व॒रि॒वो॒धात॑मो भव॒ मंहि॑ष्ठो वृत्र॒हन्त॑मः ।

पर्षि॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥३॥

पदार्थ.—(वरिवोधातम) हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण धनो के देने वाले (भव) हो [वरिव इति धननामसु पठितम, नि० २।१०] (मंहिष्ठ) सर्वोपरिदाता हो (वृत्रहन्तम) सब प्रकार के अज्ञानों के नाशक हो (मघोनाम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों के पूर्ण करनेवाले हो (राध) धनो को (पर्षि) हमे दें ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा से सब ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति होती है, और परमात्मा ही अज्ञान से बचाकर मनुष्य को सन्मार्ग मे ले जाता है, इसलिय सर्वोपरि देव परमात्मा से ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

अ॒भ्य॑र्ष म॒हानां॑ दे॒वानां॑ वी॒तिमन्ध॑सा ।

अ॒भि वाज॑मु॒त श्रवः॑ ॥४॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (महानां) बडे (देवानाम्) विद्वानो के (वीतिम्) पदवी को प्राप्त कराने वाले हैं और (अन्धसा) अन्नादि ऐश्वर्य्य से (अभि, वाज) सब प्रकार के बल को (अभ्यर्ष) प्राप्त करायें (उत) और (श्रव) अन्नादि ऐश्वर्य्य को प्राप्त करायें ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा की कृपा से मनुष्य देव पद को प्राप्त होता है, और परमात्मा की कृपा से सब प्रकार का बल मिलता है, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की शरण ग्रहण करे ॥४॥

त्वाम॑च्छा च॑रामसि॒ तदिदर्थं॑ दि॒वेदि॑वे ।

इन्दो॒ त्वे न॑ आ॒शसः॑ ॥५॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वां) तुमको (अच्छ) भली भाति (चरामसि) हम लोग प्राप्त हो और (दिवेदिवे) प्रतिदिन हे परमात्मन् ! (तत, त्वे अर्थं) आपके लिये (इत्) ही (न) हमारा जीवन हो, यही (नः) हमारी (आशस.) प्रार्थना है ॥५॥१६॥

भावार्थ—जो पुरुष प्रतिदिन निष्काम कर्म्म करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करते हैं, और ईश्वर से भिन्न किसी अन्य देव की उपासना नहीं करते वे परमात्मास्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥५॥

अथ रूपकालङ्कारेण श्रद्धां सूर्य्यस्य पुत्रीरूपेण वर्णयति ।

अब रूपकालङ्कार से श्रद्धा को सूर्य्य की पुत्रीरूप से वर्णन करते हैं :—

पु॒नाति॑ ते परि॒स्रुतं॒ सोमं॒ सूर्य॑स्य दुहि॒ता ।

वारे॑ण॒ शश्व॑ता॒ तना॑ ॥६॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (परिस्रुत) जिसका सर्वत्र प्रभाव फैल रहा है ऐसे (सोमं) सौम्यस्वभाव का (सूर्य्यस्य, दुहिता) सूर्य्य की पुत्री (पुनाति) पवित्र करती है, और (वारेण) बाल्यपन से (शश्वता) निरन्तर (तना) शरीर से पवित्र करती है ॥६॥

भावार्थ—जो पुरुष श्रद्धा द्वारा ईश्वर को प्राप्त हो[illegible] मानो प्रकाश की पुत्री द्वारा अपने सौम्यस्वभाव को बनाता है । जिस प्रकार[illegible] पुत्री उषा मनुष्यो के हृदय मे आह्लाद उत्पन्न करती है इसी प्रकार जिन[illegible] हृदय मे श्रद्धा देवी का निवास है वे लोग उषा देवी के समान सब के आह्लादजनक सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करते हैं ॥६॥

तमी॒मण्वीः॑ सम॒र्य आ गृ॒भ्णन्ति॒ योष॑णो॒ दश॑ ।

स्वसा॑रः॒ पार्ये॑ दि॒वि ॥७॥

पदार्थ —(त) उस पुरुष को (समर्ये) ज्ञानयज्ञ मे (आ) भली प्रकार (गृभ्णन्ति) ग्रहण करती हैं (दश) दश सख्यावाली (स्वसार·) स्वयं गतिशील (योषण) वृत्तियां जो (अण्वी) अति सूक्ष्म हैं (पार्ये, दिवि) प्रकाशरूप ज्ञान के भाव मे दश धर्म्म के स्वरूप उसे आकर प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थ —जो पुरुष श्रद्धा के भावो से युक्त होता है उसे धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध, ये धर्म्म के दश रूप आकर प्राप्त होते हैं । तात्पर्य्य यह है कि वेद, शास्त्र और ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाला पुरुष ही धार्मिक भाव प्राप्त करता है ॥७॥

तमीं॑ हिन्वन्त्य॒ग्रुवो॒ धम॑न्ति बाकु॒रं दृति॑म् ।

त्रि॒धातु॑ वार॒णं मधु॑ ॥८॥

पदार्थ —(तं) उस पुरुष को (अग्रुव.) उग्रगतियें (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती है और (बाकुर) भासमान (दृति) शरीर को वह पुरुष प्राप्त होता है जिसमे (त्रिधातु) तीन प्रकार से (वारण) दूसरो का वारण करने वाला (मधु) मधुमय शरीर मिलता है ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा के भाव रखने वाले होते है, उनके सूक्ष्म, स्थूल और कारण तीनो प्रकार के शरीर दृढ़ और शत्रुओं के वारण करने वाले होते हैं । अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक तीनो प्रकार के बल उन पुरुषो को प्राप्त होते है जो श्रद्धा भाव रखते हैं ॥८॥

अ॒भी॒३॒॑मम॒घ्न्या उ॒त श्री॒णन्ति॑ धे॒नवः॒ शिशु॑म् ।

सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥९॥

पदार्थः—(इम) उस (सोम) सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को (शिशुं) कमारावस्था में ही (अभि) सब प्रकार से (अघ्न्याः) अहिंसनीय (धेनव) गौवें (श्रीणन्ति) तृप्त करती हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य की (पातवे) वृद्धि के लिये । (उत) अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियें ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये संस्कृत करती हैं ॥९॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष श्रद्धा के भाव वाले हैं उनको गौ आदि ऐश्वर्य्य और सदुपदेशरूपी पवित्र वाणिया उनकी रक्षा के लिये सदा उद्यत रहती है । इस मन्त्र म गौ को (अघ्न्या) - अहिंसनीय माना गया है; इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोमेध आदि यज्ञो के अर्थ किसी हिंसाप्रधान यज्ञ के नहीं किन्तु [गाव इन्द्रियाणि मेध्यन्ते यस्मिन् स गोमेधः] जिसमें ज्ञानयज्ञ द्वारा इन्द्रियां पवित्र की जायें उसका नाम गोमेध है । इसी प्रकार अश्वमेध, नरमेध आदि यज्ञ भी ज्ञान-प्रधान यज्ञों के ही बोधक हैं, हिंसारूप यज्ञो के नही ॥९॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।

शूरो मघा च मंहते ॥१०॥

पदार्थ—(इन्द्रः) विज्ञानी पुरुष (अस्येत्) इसी भाव से (विश्वा) सम्पूर्ण (वृत्राणि) अज्ञानो को (जिघ्नते) नाश करता है (च) और इसी श्रद्धा के भाव से (शूरः) शूरवीर (मदेषु) अपनी वीरता के मद मे मस्त हो (मघा) ऐश्वर्य्यों को (मंहते) प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थ —श्रद्धा के भाव से ही विज्ञानी पुरुष अज्ञानरूपी शत्रुओं का नाश करता है और श्रद्धा के भाव से ही वीर पुरुष युद्ध मे शत्रुओ को जीतता है, श्रद्धा के भाव से ही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥१०॥

इति प्रथमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्त ॥

पहला सूक्त व सत्रहवा वर्ग समाप्त ॥

अथ सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मान वर्णयति ।

अब सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मा का वर्णन करते हैं ।

अथ दशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य—

१—१० मेधातिथिर्ऋषिः । पवमान सोमो देवता । छन्दः—१, ४, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ५, ७—९ गायत्री । १० विराड् गायत्री । षड्ज स्वर ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या ।

इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्यस्वभाव ! और (देववी) दिव्यगुणयुक्त परमात्मन् ! आप (पवस्व) हमे पवित्र करें और (इन्दो) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप (रंह्या) शीघ्र ही (विश) हमारे हृदय मे प्रवेश करें और (पवित्र) पवित्र करें तथा (अति) अवश्य रक्षा करें ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा की कृपा से ही पवित्रता प्राप्त होती है और परमात्मा की कृपा से ही पुरुष सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है । जिस पुरुष के मन मे परमात्मदेव का आविर्भाव होता है वह सौम्यस्वभावयुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥१॥

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।

आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥

पदार्थ – (वृषेन्दो) हे सब कामनाओ के पूरण करने वाले ! (द्युम्नवत्तम) यशस्वी (महि) महान् परमात्मन् ! आप हमे (आ) सर्वव्यापी (प्सरः) ज्ञान का (वच्यस्व) उपदेश करें क्योंकि आप (सदः) सद्विज्ञान को (योनि) संसार के कारणभूत प्रकृति को (आ) सब ओर से (धर्णसिः) धारण किये हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डो का आधार है, उसी के शासन मे द्युलोक, भूलोक, स्वर्लोक इत्यादि लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं, वही इस चराचर ब्रह्माण्ड का आधार है । मनुष्य को उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥२॥

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।

अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थः—वह परमात्मा (अप) अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से (वसिष्ट) सब को अपने वशीभूत कर रहा है वह (सुक्रतु) सत्कर्म्मों वाला है (सुतस्य, वेधसः) अभिलषित पदार्थों का देने वाला है और (मधु, धारा) अमृत की वृष्टियो से और (प्रिय) प्रिय वस्तुओ से (अधुक्षत) परिपूर्ण करने वाला है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभाव ऐसे हैं कि जिस से एकमात्र परमात्मा ही सुकर्म्मा कहा जा सकता है, अर्थात् परमात्मा के ज्ञानादि गुण और सृष्टि के रचनादि कर्म्म तथा अचल, नित्य, ध्रुवादि स्वभाव सदा एकरस हैं ॥३॥

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।

यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (महान्तं) सब से बड़े (त्वा) तुमको (मही) पृथिवी और (आप) जल तथा (सिन्धव) स्यन्दनशील सब पदार्थ (अर्षन्ति) आश्रय किये हुए हैं (यत्) क्योंकि तुम (गोभिः) अपनी शक्तियों से सबका (वासयिष्यसे) नियमन करते हो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा की शक्ति मे पृथिवी, जल, वायु इत्यादि सम्पूर्ण तत्त्व तथा लोक लोकान्तर परिभ्रमण करते हैं उसी महतोभूत के आश्रित होकर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है ॥४॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।

सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (समुद्र) समुद्ररूप हैं [सम्यग् द्रवन्ति आपो यस्मात् स समुद्र.] जिसकी शक्ति से जलादि सब पदार्थ सूक्ष्म भाव को प्राप्त हो जाते हैं उसका नाम समुद्र है—इस प्रकार परमात्मा का नाम समुद्र है और (अप्सु) सूक्ष्म पदार्थों मे (मामृजे) जो अपनी शुद्ध सत्ता मे विराजमान है तथा जो सबका (विष्टम्भ) थामने वाला (दिव) द्युलोक का (धरुण) धारण करने वाला (सोम) सौम्यस्वभाव, और (अस्मयु) सर्वप्रिय है वही परमात्मा (पवित्रे) सम्पूर्ण शुभ काम मे पूजनीय है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा सबको प्यार करता है, वह सर्वाधिकरण, सर्वाश्रय तथा सर्वनियन्ता है ॥५॥१८॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।

सं सूर्येण रोचते ॥६॥

पदार्थ.—(हरि) दुष्टो का दलन करने वाला और सबका (मित्रः) मित्र के (न) समान (दर्शत) सन्मार्ग दिखलाने वाला और (स) भली प्रकार (सूर्य्येण) अपने विज्ञान से (रोचते) प्रकाशमान हो रहा है (वृषा) सर्वकामप्रद वह परमात्मा (अचिक्रदत्) सबको अपनी ओर बुला रहा है ॥६॥

भावार्थ —वह परमात्मा जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तापरूपी शत्रुओ का नाश करने वाला, मित्र की तरह सब प्राणियो का सन्मार्गप्रदर्शक तथा आत्मज्ञान द्वारा सब के हृदय मे प्रकाशित है उसी के आह्वानरूप वेदवाणियां हैं और वही परमात्मा सब कामनाओ का पूर्ण करने वाला है, इस लिये उसी एकमात्र परमात्मा की शरण मे सबको आना उचित है ॥६॥

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।

याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥

पदार्थ.—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्यप्रद परमात्मन् ! (ते) आप के (ओजसा) प्रताप से (अपस्युव) कर्म्मबोधक (गिर) वाणियां (मर्मृज्यन्ते) लोगों को शुद्ध करती हैं (याभिः) जिन के द्वारा आप (मदाय) आनन्द प्रदान के लिये (शुम्भसे) विराजमान हैं ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा अपने कर्म्मबोधक वेदवाक्यो से सदैव पुरुषो को सत्कर्म्मों मे उद्बोधन करता है, जिस से वे ब्रह्मानन्दोपभोग के भागी बनें जैसा कि अन्यत्र भी वेदवाक्यों मे वर्णन किया है "क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर यजु० ४०।१५।" "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँ समा" यजु० ४०।२। " इत्यादि वाक्यों में कर्म्मयोग का वर्णन भली भांति पाया जाता है । उसी कर्म्मयोग का वर्णन इस मन्त्र मे है ।

कई एक लोग यह कहते हैं कि वेदों मे विधिवाद नही अर्थात् ऐसा करो, ऐसा न करो इस प्रकार विधि तथा निषेध के बोधक वेदवाक्य नहीं मिलते । उनको स्मरण रखना चाहिये कि जब वेद ने गिराओं का विशेषण "अपस्युव" यह कर्मों का उद्बोधक दिया फिर विधिवाद अर्थात् अनुज्ञा मे क्या न्यूनता रह जाती है । विधि विधान, अनुज्ञा, आज्ञा यह सब एकार्थवाची शब्द हैं । इस प्रकार वेदो ने शुभ कर्म्मों के करने का विधान सर्वत्र किया है । एव निषेध के बोधक भी सहस्रशः वेदवाक्य पाए जाते है ॥७॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।

तव प्रशस्तयो महीः ॥८॥

पदार्थ —हे परमेश्वर ! (त) उस (त्वा) तुझको (ईमहे) हम प्राप्त हों जो तू (लोककृत्नु) सम्पूर्ण ससार का रचने वाला है । (मदाय) आनन्द की प्राप्ति (उ) और (घृष्वये) दु खो की निवृत्ति के लिये प्राप्त हो (तव) तुम्हारी (प्रशस्तय) स्तुतियां (मही) पृथिवी भर मे पाई जाती है ॥८॥

भावार्थ —हे परमात्मन् ! आप का स्तवन प्रत्येक वस्तु कर रही है, और आप सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति, स्थिति, सहार करने वाले हैं । आपकी प्राप्ति से सम्पूर्ण अज्ञानो की निवृत्ति होती है इसलिये हम आप को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया ।

पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त और (इन्द्रयु) सर्वव्यापक परमात्मन् ! (मध्व) आनन्द की (धारया) वृष्टि से (वृष्टिमान्) वर्षा करने वाले (पर्जन्य.) मेघ के (इव) समान आप (अस्मभ्य) हमको (पवस्व) पवित्र करें ॥९॥

भावार्थ —जिस प्रकार मेघ अपनी वृष्टि से भूमि का सिञ्चन कर देता है, उसी प्रकार हे परमात्मन् ! आप अपनी आनन्दरूप वृष्टि से हमको पवित्र तथा सिक्त करें ॥९॥

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।

आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१०॥१९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (यज्ञस्य) सम्पूर्णयज्ञों के (पूर्व्य) आदि कारण हैं । आप हमको (गोषा) गायें (अश्वसाः) घोड़े (वाजसा) धन्न (नृषाः) मनुष्य (उत) और (आत्मा) आत्मिक बल इन सब वस्तुओ के देने वाले (असि) हो ॥१०॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों फलो की प्राप्ति होती है । जिन पर आप कृपालु होते हैं, उनको हृष्ट पुष्ट गौ और बलीवर्द तथा उत्तमोत्तम अश्व एव नाना प्रकार की सेनाये इत्यादि अभ्युदय के सब साधन देते है । और जिन पर आपकी कृपा होती है उन्हीं को आत्मिक बल देकर यम नियमो द्वारा सयमी बनाकर निःश्रेयस प्रदान करते हैं ॥१०॥१९॥

द्वितीय सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

दूसरा सूक्त व उन्नीसवा वर्ग समाप्त ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य—

१—१० शुनःशेप ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १० गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री । षड्ज स्वरः ॥

अथ पूर्वोक्तस्य परमात्मदेवस्य गुणा निर्दिश्यन्ते ।

अब पूर्वोक्त परमात्मदेव के गुणो का कथन करते हैं ।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।

अभि द्रोणान्यासदम् ॥१॥

पदार्थ—(**एष, देवः**) जिस परमात्म देव का पूर्व वर्णन किया गया वह (**अमर्त्यः**) अविनाशी है (**आसदम्**) सर्वत्र व्याप्त होने के लिये वह परमात्मा (**अभि, द्रोणानि**) प्रत्येक ब्रह्माण्ड को (**पर्णवीः**) विद्युत् शक्ति के (**इव**) समान (**दीयति**) प्राप्त है ॥१॥

भावार्थ—दीव्यतीति देवः - जो सबको प्रकाश करे उसे देव कहते हैं । सर्व-प्रकाशक देव अनादिसिद्ध और अविनाशी है, उसकी गति प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे है । वही परमात्मा इस ससार की उत्पत्ति, स्थिति, सहार का करने वाला है उसी की उपासना सबको करनी चाहिये ॥१॥

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।

पवमानो अदाभ्यः ॥२॥

पदार्थ—(**एषः देवः**) यह पूर्वोक्त देव (**विपा**) मेधावी विद्वानो ने (**अति**) विस्तार से (**कृतः**) वर्णन किया है [विप्र इति मेधाविनामसु पठित" नि० ३।१५।] (**अदाभ्यः**) उपासना किया हुआ (**पवमानः**) यह पवित्र देव (**ह्वरांसि**) उपासको के हृदय मे (**धावति**) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—जिस परमात्मा का विद्वान् लोग वर्णन करते हैं वह उपासना करने से उपासको के हृदय मे आविर्भाव को प्राप्त होता है ॥२॥

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।

हरिर्वाजाय मृज्यते ॥३॥

पदार्थ—(**एष देवः**) यह पूर्वोक्तदेव (**विपन्युभिः, ऋतायुभिः**) सत्य-वक्ता विद्वानो द्वारा (**पवमानः**) पवित्र वर्णन किया गया है (**हरिः**) यह सब दुःखो का दूर करने वाला परमात्मदेव (**वाजाय**) ज्ञानयज्ञ के लिये (**मृज्यते**) उपास्य रक्खा जाता है ॥३॥

भावार्थ—जिस पूर्णपुरुष को विद्वान् लोग इन्द्रियागोचर कहते हैं वही पूर्ण पुरुष ज्ञानयज्ञ द्वारा ज्ञानियो के ज्ञानगम्य होकर उपास्यभाव को प्राप्त होता है ॥३॥

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।

पवमानः सिषासति ॥४॥

पदार्थ—(**एष**) यह पूर्वोक्त देव (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्या**) धनो का (**सिषासति**) विभाग करता है । (**इव**) जिस प्रकार (**शूर**) शूरवीर (**सत्वभिः**) अपने पराक्रमो से (**यन्**) आक्रमण करता हुआ सच झूठ का निपटारा कर देता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मदेव अपने ऐश्वर्यों का विभाग पात्र-अपात्र समझ कर करता है । जिसको वह अपने ऐश्वर्यों का पात्र समझता है उसको ऐश्वर्य देता है और जिसको अपात्र समझता है उससे ऐश्वर्य हर लेता है, जिस प्रकार पात्र अपनी बनावट और अपने गुण कर्म, स्वभाव से उपादेय वस्तु का पात्र बनता है उसी प्रकार पुरुष भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव से पात्रता को प्राप्त होता है, वा यो कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों से वह उपादेय वस्तु को प्राप्त होने योग्य बनता है ।

जो लोग निष्कर्म, मन्दभागी और आलसी हैं वे सदैव ईश्वर के ऐश्वर्य से वञ्चित रहते हैं । इसी लिये उनको अपात्र कहा है । उक्त मन्त्र मे शूरवीर का दृष्टान्त इस अभिप्राय से दिया गया है कि जिस प्रकार शूरवीर के निपटारा करने के बाद किसी को असतोष तथा ननु नच करने का अवकाश नहीं मिलता, उसी प्रकार परमात्मा के निपटारा करने पर फिर किसी को झगडा करने का अवकाश नही रहता ॥४॥

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति ।

आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥५॥२०॥

पदार्थ—(**एष, देवः**) यह परमात्मदेव (**पवमानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**रथर्यति**) सदा सबका शुभ चाहता है और (**दशस्यति**) मनोवाञ्छित फलो की प्राप्ति कराता है तथा (**वग्वनुम्**) सत्य को (**आविष्कृणोति**) प्रकट करता है ॥५॥

भावार्थ—वही परमात्मा सबके लिये पवित्रता का धाम है । सब लोग आत्मिक, शारीरिक, तथा सामाजिक पवित्रताएँ उसी से प्राप्त करते हैं, इस लिये वही परम देव एकमात्र उपासनीय है ॥५॥२०॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥६॥

पदार्थ—(**एष**) यह परमात्मा (**विप्रैः**) मेधावी लोगो के द्वारा "विप्र इति मेधाविनामसु पठितम्" निरु० ३।१९।१५ (**अभिष्टुतः**) वर्णन किया गया है (**अपो, देवः**) कर्मों का अध्यक्ष है (**विगाहते**) सम्पूर्ण ससार की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय करने वाला है (**दाशुषे**) यजमानो को (**रत्नानि**) नाना प्रकार के धन (**दधत्**) दे ॥६॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जिस परमात्मा का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं वही इन्द्रियागोचर और एकमात्र ज्ञानगम्य परमात्मा सर्वाधार, सर्वकर्त्ता, अजर, अमर और कूटस्थ नित्य है । उसी की उपासना सब को करनी चाहिये ॥६॥

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।

पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

पदार्थ—(**एष**) उक्त परमात्मा (**दिवं**) द्युलोक को (**वि**) नानाप्रकार से (**रजांसि**) परमाणुपुञ्ज के (**धारया**) प्रबल वेगो से (**तिरो, वि, धावति**) ढक देता है (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**कनिक्रदत्**) अपनी प्रबलगति से सर्वत्र गर्ज रहा है ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा नाना प्रकार के परमाणुओ से द्युलोकादि लोक लोका-न्तरों को आच्छादन करता है और अपनी सत्ता से सर्वत्र विराजमान हुआ सबको शुभ मार्ग की ओर बुला रहा है ॥७॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः ।

पवमानः स्वध्वरः ॥८॥

पदार्थ—(**एषः**) वही परमात्मा (**दिवं**) द्युलोक को (**व्यासरत्**) प्राप्त है (**रजांसि**) परमाणु मे लोक-लोकान्तरो को (**तिरः**) आच्छादन करके (**अस्पृतः**) अविनाशी भाव से (**पवमानः**) पवित्र और (**स्वध्वरः**) अहिंसकरूप से विराजमान है ॥८॥

भावार्थ—वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्मा सर्वत्र विराजमान है, और उसी की सत्ता मे सब लोक-लोकान्तर परिभ्रमण करते हैं ॥८॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।

हरिः पवित्रे अर्षति ॥९॥

पदार्थ—(**एष, देवः**) यह परमात्मा (**प्रत्नेन**) अनादि काल से (**जन्मना**) आविर्भाव से (**देवः**) उक्तदेव (**देवेभ्यः**) विद्वानो के लिये (**सुतः**) सुप्रसिद्ध (**हरिः**) सब दुःखो का हरने वाला (**पवित्रे**) मनुष्य के पवित्र हृदय मे (**अर्षति**) प्रकट होता है ॥९॥

भावार्थ—जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र करते है और परमात्मा के निष्पापादि भावो को धारण करते हैं उनके हृदय मे परमात्मा आकर प्रकट होता है ॥

जो मन्त्र मे जन्म शब्द आया है इसके अर्थ जन्मधारण के नहीं किन्तु आवि-र्भाव के हैं, किसी उत्पत्ति विशेष के नहीं । इसी अभिप्राय से मन्त्र मे प्रत्न शब्द को विशेषण देकर जन्म का वर्णन किया है, जिसके अर्थ अनादि सिद्ध आविर्भाव के हैं न कि उत्पत्ति के ।

तात्पर्य यह है कि वह अनादि सिद्ध परमात्मा निष्पाप आत्माओ मे प्रकट होता है ॥९॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।

धारया पवते सुतः ॥१०॥२१॥

पदार्थ—(**स्यः**) वह पूर्वोक्त परमात्मा (**पुरुव्रतः**) अनन्तकर्मा है (**जज्ञानः**) सर्वत्र प्रसिद्ध (**इषः**) सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**सुतः**) स्वसत्ता से विराजमान है (**एषः**) वही (**धारया**) अपनी सुधामयी वृष्टि की धाराओं से (**पवते**) सबको पवित्र करता है ॥१०॥

भावार्थ—जो परमात्मा अनन्तकर्मा है वही अपनी शक्ति से सब लोक-लोकान्तरो को उत्पन्न करता है और वही अपनी पवित्रता से सबको पवित्र करता है ।

अनन्तकर्मा, यहाँ परमात्मा को उसकी अनन्त शक्तियो के अभिप्राय से वर्णन किया है किसी शारीरिक कर्म के अभिप्राय से नहीं ॥१०॥२१॥

तृतीय सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

तीसरा सूक्त व इक्कीसवां वर्ग समाप्त ।

अथाभ्युदयाय विजयाय आत्मसुखाय च निःश्रेयस वर्ण्यते ।
अब उक्त परमात्मा से अभ्युदय के लिये विजय, और आत्मसुख के लिये निःश्रेयस की प्रार्थना वर्णन करते हैं ।

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य—

१—१० हिरण्यस्तूप ऋषि । पवमानः सोमो देवता । छन्द —१, ३, ४, १० *गायत्री* । २, ५, ८, ९ *निचृद् गायत्री* । ६, ७ *विराड् गायत्री* । षड्जः स्वर ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**महिश्रव.**) सर्वोपरिदाता तथा (**च**) और (**पवमान**) पवित्र (**जेषि**) पापियों का नाश करो (**च**) किन्तु सदा के लिये (**नः**) हमको (**वस्यसस्कृधि**) कल्याण दो (**सन**) हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा, अभ्युदय और निःश्रेयस दोनो के दाता है । जिन लोगो को अधिकारी समझते हैं उनको अभ्युदय, नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, और जिसको मोक्ष का अधिकारी समझते हैं उसको मोक्षसुख प्रदान करते हैं ।

जो मन्त्र मे 'जेषि' यह शब्द है इसके अर्थ परमात्मा की जीत को बोधन नहीं करते किन्तु तदनुयायियो की जीत को बोधन करते हैं । जो सत्कर्म्मी पुरुष हैं वे ही उसके मित्र कहे जाते हैं और जो असत्कर्म्मी हैं उन्ही मे शत्रुभाव आरोपित किया जाता है । वास्तव मे यह दोनो भाव मनुष्यकल्पित है । ईश्वर सदा सब के लिये समदर्शी है ॥१॥

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२॥

पदार्थ.—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**सन, ज्योति**) सदा ज्योतिःस्वरूप हो (**च**) और (**सन, स्व**) सदा सुखस्वरूप हो । (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**सौभगा**) सौभाग्यदायक वस्तुए आप हमको दें (**अथ**) और (**नः**) हमको (**वस्यसस्कृधि**) मुक्ति-सुख दें ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है ! उसी की कृपा से नाना विधि के सौभाग्य मिलते हैं और मोक्ष सुख मिलता है ॥२॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**क्रतुम्**) हमारे शुभ कर्म्मों की आप (**सन**) रक्षा करें (**अथ**) और (**मृध**) पाप कर्म्मों को (**अप, जहि**) हमसे दूर करें (**उत**) और (**दक्षम्**) सुनीति और (**वस्यस**) मुक्ति सदा (**कृधि**) करो ॥३॥

भावार्थ—जो पुरुष शुद्धभाव से परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनके पापकर्म्मों को हर लेता है और नाना प्रकार के चातुर्य्य प्रदान करता है ॥३॥

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पदार्थ—(**पवीतारः**) हे विद्वान् लोगो ! तुम (**इन्द्राय, पातवे**) ऐश्वर्य्याधिकारी पुरुष के लिये (**सोम**) सौम्यस्वभाव वाले परमात्मा का (**पुनीतन**) वर्णन करो (**अथ**) और यह प्रार्थना करो कि (**न**) हमको वह परमात्मा (**वस्यसस्कृधि**) मोक्ष सुख का भागी बनाए ॥४॥

भावार्थ.—विद्वान् लोग जब किसी पुरुष को दीक्षित करे तो शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मा का सब से प्रथम उपदेश करें । तदनन्तर अभ्युदय और निःश्रेयस का विस्तृत उपदेश करके इस सांसारिक यात्रा मे दक्ष बनाए ॥४॥

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥२२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वं**) तुम (**न.**) हमको (**सूर्य्ये**) ज्ञानप्रदान के लिए (**आभज**) आकर प्राप्त हो । (**क्रत्वा**) यज्ञो द्वारा (**अथ तव, ऊतिभि.**) और अपनी रक्षा द्वारा (**न**) हमको (**वस्यसस्कृधि**) सुखी बनायें ॥५॥२२॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप ज्ञान और कर्म द्वारा हमारी सर्वदा रक्षा करें और ऐहिक, तथा पारलौकिक सुख से हमको सदैव सम्पन्न करें ॥५॥२२॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! हम (**तव, क्रत्वा**) आपके कर्मयोग (**तवोतिभि**) और ज्ञानयोग द्वारा सदैव (**सूर्य्यम्**) आपके प्रकाशस्वरूप को (**ज्योक्**) निरन्तर (**पश्येम**) अनुभव करें (**अथ**) और (**न**) हमारे (**वस्यस.**) कल्याण को (**कृधि**) करिये ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुष अपने आत्मभूत सामर्थ्य से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करके सदैव आनन्द का लाभ करते हैं ॥६॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

पदार्थ—(**सोम**) "सूते चराचर जगदिति सोम परमात्मा=जो चराचर जगत् को उत्पन्न करे उसका नाम यहा सोम है" हे जगदुत्पादक परमात्मन् ! आप हमको (**रयि**) ऐश्वर्य्य (**अभ्यर्ष**) प्रदान करें जो ऐश्वर्य्य (**द्विबर्हसं**) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य म सर्वोपरि है (**स्वायुध**) आप सब प्रकार से अज्ञान के दूर करने वाले हैं, इसलिए (**न**) हमारे अज्ञान का नाश करके हमको (**वस्यसस्कृधि**) आनन्द प्रदान करें ॥७॥

भावार्थ—स्वप्रकाश परमात्मा अज्ञान को निवृत्त करके सदैव सुख का प्रकाश करता है ॥७॥

अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

पदार्थ—(**अनपच्युत**) वह कूटस्थनित्य परमात्मा (**रयिम्, अभ्यर्ष**) अपने भक्तो को ऐश्वर्य्यदान करता है (**अथ**) और (**समत्सु**) सग्रामो म (**सासहि**) अन्यायकारी शत्रुओ को पराजित करके अपने भक्तो को (**वस्यसस्कृधि**) सुख प्रदान करता है ॥८॥

भावार्थ—जो न्यायशील है उनको परमात्मा विजयी बनाता है और अन्यायकारी दुरात्माओ का सदैव दमन करता है ॥८॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**त्वां**) आपको (**यज्ञै.**) उपासनादि यज्ञो द्वारा (**अवीवृधन्**) उपास्य बनाते हैं । (**विधर्मणि**) पापीय विषयो से आप हमारी रक्षा करें (**अथ**) और (**वस्यस. कृधि**) आनन्द के भागी बनाये ॥९॥

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥२३॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**नः**) हमको (**चित्रम्**) नाना प्रकार के (**अश्विनम्**) सर्वत्र व्याप्त होने वाले ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें (**अथ**) और (**विश्वम्, आयुम्**) सब प्रकार की आयु से (**रयिम्**) धन से भरपूर करें ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिन पुरुषो को ऐश्वय के पात्र समझता है उनको सब ऐश्वर्यों से और ज्ञानादि गुणो स परिपूर्ण करता है ॥१०॥

चतुर्थं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः
चौथा सूक्त तेईसवा वर्ग समाप्त ॥

एकादशर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य १-११ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्द —१, २, ४,—६ गायत्री । ३, ७ निचृद् गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् । ९, १० अनुष्टुप् । ११ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः १-७ षड्ज । ८-११ गान्धार ॥

अथ परमात्मन स्वत प्रकाशत्व वर्ण्यते ।
अब परमात्मा की स्वत प्रकाशता का वर्णन करते हैं ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो विराजति ।

प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—(**समिद्ध**) जो सर्वत्र प्रकाशमान है (**विश्वतस्पति**) सब प्रकार से जो स्वामी है (**पवमान**) पवित्र करने वाला परमात्मा (**विराजति**) सर्वत्र विराजमान हो रहा है (**प्रीणन्**) वह सबको आनन्द देता हुआ (**वृषा**) सब कामनाओ का पूरक (**कनिक्रदत्**) अपने विचित्र भावो से उपदेश करता हुआ हम को पवित्र करे ॥१॥

भावार्थ इस ससार मे परमात्मा ही केवल ऐसा पदार्थ है जो स्वसत्ता से विराजमान है अर्थात् जो परसत्ता की सहायता नही चाहता । अन्य प्रकृति तथा जीव परमात्मसत्ता के अधीन होकर रहते हैं । इसी अभिप्राय से परमात्मा को यहा समिद्ध कहा गया है अर्थात् स्वप्रकाशरूपता से वर्णन किया है ॥१॥

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति ।

अन्तरिक्षेण रारजत् ॥२॥

पदार्थ—(**तनूनपात**) "तनू न पातयतीति तनूनपात् अर्थात् जो सब शरीरों को अधिकरण रूप से धारण करे उसका नाम यहा तनूनपात् है" वह परमात्मा (**पवमान**) सब को पवित्र करने वाला है (**शृङ्गे, शिशान**) जो कूटस्थनित्य है और (**अर्षति**) सर्वत्र व्याप्त है और (**अन्तरिक्षेण, रारजत्**) जो द्युलोक और

पृथिवीलोक के अधिकरण रूप से विराजमान हो रहा है वह परमात्मा हमको पवित्र करे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को क्षेत्रज्ञरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य पदार्थों मे परमात्मा कूटस्थरूपता से विराजमान है। गीता में भी इस भाव को भली भाँति वर्णन किया गया है कि सब क्षेत्ररूपी शरीरो मे क्षेत्रज्ञ परमात्मा है ॥२॥

ई॒ळेन्य॒ः पव॑मानो र॒यिर्वि रा॑जति द्यु॒मान् ।

म॒धोर्धारा॑भि॒रोज॑सा ॥३॥

पदार्थ—(ईळेन्यः) उपासनीय परमात्मा (पवमानः) जो शुद्ध स्वरूप है (रयि) "राति सुखमिति रयिः=जो सब प्रकार के सुखो को देने वाला है" वह (मधोर्धाराभिः) आनन्द की वृष्टि से तथा (ओजसा) प्रभावशाली प्रताप से (विराजति) विराजमान है और वह परमात्मा (द्युमान्) प्रकाशस्वरूप है ॥३॥

भावार्थ.—उपासक को चाहिए कि वह उपास्यदेव की उपासना करे जो स्वप्रकाश और सबको पवित्र करने वाला तथा आनन्द की वृष्टि से सबका आनन्दित करता है वही धारणाध्यानादि योगज वृत्तियो से साक्षात् करने योग्य है ॥३॥

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा॒ पव॑मानः स्तृ॒णन्हरि॑ः ।

दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते ॥४॥

पदार्थ—(बर्हिः) "बृहतीति बर्हि - सबसे बड़ा" परमात्मा जो (ओजसा) अपने प्रकाश से सबको (पवमान) पवित्र करता है और (प्राचीनम्) प्रवाह रूप से अनादि ससार को (स्तृणन्) कार्य्यरूप करता हुआ (हरि) अन्त मे "हरतीति हरि" अपने मे लय कर लेता है (देवेषु) सब दिव्य वस्तुओ मे (देवः) "दीव्यतीति देव =जो सर्वोपरि दीप्तिमान है वह ध्यान द्वारा (ईयते) साक्षात्कार किया जाता है ॥४॥

भावार्थः—वह देव जो सब दिव्य वस्तुओं मे दिव्य स्वरूप है वही एक मात्र उपासनीय है अन्य नहीं। इस देव शब्द की व्याख्या "एषो देव प्रदिशोनु सर्वा" यजु० ३२ ॥४॥ इस वेद वाक्य मे स्पष्ट रीति से पायी जाती है। इसी देव की इस मन्त्र मे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का एकमात्र हेतु कथन किया है ॥४॥

उदा॒तैर्जि॑हते बृ॒हद्द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययी॑ः ।

पव॑मानेन सुष्टु॒ताः ॥५॥२४॥

पदार्थ.—(देवी, हिरण्ययी) प्रकृति की अव्य शक्तियां जो अनादि ऐश्वर्यों के देने वाली हैं वह (पवमानेन) पूज्य परमात्मा के साथ (सुष्टुता) वर्णन की हुई (बृहद्द्वार) ऐश्वर्य का मूल होती हैं और (आतै) उनके विज्ञान से विज्ञानी लोग दिशाओ द्वारा (उद् जिहते) सर्वत्र फैल जाते हैं ॥५॥२४॥

भावार्थ—जो लोग प्रकृति पुरुष की विद्या को जानते हैं कि परमात्मा निमित्त कारण और प्रकृति ससार का उपादान कारण है अर्थात् प्रकृति मे ही नाना प्रकार की विद्याओ के बीज भरे पड़े हैं उसके तत्त्वज्ञान से वे लोग सब दिशाओ मे फैल सकते है। तात्पर्य यह है कि अभ्युदय तथा नि.श्रेयस दोनो के विज्ञान मे होते हैं एक के विज्ञान स नही ॥५॥२४॥

अथ परमात्मन उपासनार्थमुष कालस्य महत्त्व वर्णयति —

अब पूर्वोक्त परमात्मा की उपासनार्थ उष काल का महत्त्व कथन करते हैं।

सु॒शि॒ल्पे बृ॑ह॒ती म॒ही पव॑मानो वृषण्यति ।

नक्तो॒षासा॒ न द॑र्श॒ते ॥६॥

पदार्थ—(नक्तोषासा) रात्रि और उषःकाल (दर्शते) परमात्मा की उपासना करने योग्य हैं (सुशिल्पे) और सुन्दर-सुन्दर कला-कौशलादि विद्याओ के अनुसधान करने योग्य हैं। (बृहती) बड़े और (मही) पूज्य अर्थात सफल करने योग्य है। इन कालो मे (पवमान) उपास्यमान परमात्मा (वृषण्यति) सब कामनाओ का देता है और जो इस प्रकार के उपासक नहीं उनकी कामनाओ को (न) नही पूर्ण करता ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि उष काल अपने स्वाभाविक धर्म से ऐसा उत्तम है कि ऐसा अन्य कोई काल नही, इसमे मनुष्य की ईश्वरोपासना की ओर स्वाभाविक रुचि होती है इसलिए इस ब्रह्म मुहूर्त का वर्णन वेदो मे बहुधा आता है ॥६॥

उ॒भा दे॒वा नृ॒चक्ष॑सा॒ होता॑रा॒ दैव्या॑ हुवे ।

पव॑मान॒ इन्द्रो॒ वृषा॑ ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्र.) 'इरामन्नाद्यैश्वर्यं ददातीतीन्द्रः' परमात्मा जो इरा अन्नादि ऐश्वर्यों को दे उसका नाम इन्द्र है और (वृषा) वह इन्द्ररूप परमात्मा 'वर्षतीति वृषा' जो सब कामनाओ को देने वाला है (पवमान) सब को पवित्र करने वाला है उस परमात्मा को (उभा) दोनों (देवा) दिव्य शक्तियो वाले जो कर्म योग और ज्ञानयोग है (नृचक्षसा) और ईश्वर के साक्षात् कराने वाले (होतारा) अपूर्व सामर्थ्य देने वाले ज्ञान तथा कर्म द्वारा (दैव्या) जो दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं उनमे मै (हुवे) परमात्मा का साक्षात्कार करता हूँ ॥७॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष जैसा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है इस प्रकार अन्य कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि कर्म द्वारा मनुष्य शक्ति बढ़ा कर ईश्वर की दया का पात्र बनता है और ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार करता है ॥७॥

भार॑ती॒ पव॑मानस्य॒ सर॑स्व॒तीळा॑ म॒ही ।

इ॒मं नो॑ य॒ज्ञमा ग॑मन्ति॒स्रो दे॒वीः सु॒पेश॑सः ॥८॥

पदार्थ—(भारती) बिभर्तीति भरतस्तस्येय भारती=ईश्वरविषयिणी बुद्धि (सरस्वती) सरो विद्यतेऽस्या इति सरस्वती विविधज्ञानविषयिणी बुद्धि और (इळा, मही) सर्वपूज्या बुद्धि (तिस्र,) ये तीनों प्रकार की (सुपेशस, देवी.) सुन्दर बुद्धियें (पवमानस्य) सब को पवित्र करने वाले परमात्मा के (इमं, यज्ञम्) इस ज्ञानरूपी यज्ञ मे (न) हमको (आगमन्) प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ज्ञानयज्ञ में विद्या प्राप्ति के लिये प्रार्थना करो। इसी अभिप्राय से उक्त मन्त्र मे विद्याविधायक भारती, सरस्वती और इला ये नाम आये है। भारती, सरस्वती और विद्या ये एकार्थवाची शब्द हैं। इस प्रकार परमात्मा ने विद्यावृद्धि के लिये जीवों की प्रार्थना द्वारा उपदेश किया है। जैसा कि "धियो योन. प्रचोदयात्" इस वेदमन्त्र मे विद्या की वृद्धि का उपदेश है ऐसा ही उक्त मन्त्र मे विद्या वृद्धि के लिए उपदेश है ॥८॥

त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑न॒मा हु॑वे ।

इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒ः पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥९॥

पदार्थ—(त्वष्टारम्) त्वक्षतीति त्वष्टा=जो इस सृष्टि को प्रलयकाल मे परमाणुरूप कर देता है उसका नाम त्वष्टा है (अग्रजाम्) अग्रेजाता अग्रजा=जो सब के प्रथम हो अर्थात् सबका आदिमूल कारण हो उसका नाम अग्रजा है (गोपाम्) गोपायतीति गोपा=जो सर्वरक्षक हो उसका नाम यहाँ गोपा है (पुरोयावानम्) जो सर्वाग्रणी है उस देव को (आहुवे) हम उपास्य समझें वही देव (इन्दु) सब को प्रेमभाव से आर्द्र करने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य वाला (वृषा) सब कामनाओ की वर्षा करने वाला (हरि) और सब दु खो को हर लेने वाला (पवमान) पवित्रात्मा और (प्रजापति) सब प्रजा का पालन करने वाला है ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता पुरुष विशेष का इस ज्ञान यज्ञ मे उपास्य रूप से निर्देश किया है और त्वष्टादि द्वितीयान्त इसलिये हैं कि उपासनात्मक क्रिया के ये सब कर्म हैं अर्थात् इनकी उपासना उक्त यज्ञ मे की जाती है ॥९॥

अथोक्तज्ञानयज्ञ उपासनीयस्य परमात्मनो गुणा वर्ण्यन्ते:—

अब उक्त यज्ञ मे उपासनीय परमात्मा के गुण कथन करते हैं —

वन॒स्पतिं॑ पवमान॒ मध्वा॒ सम॑ङ्ग्धि॒ धार॑या ।

स॒हस्र॑वल्शं॒ हरि॑तं॒ भ्राज॑मानं हिर॒ण्यय॑म् ॥१०॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पावन करने वाले परमात्मन् ! आप (मध्वा, धारया) सुवृष्टि से (वनस्पतिम्) इस वनस्पति को (समङ्ग्धि) सींचें जो वनस्पति (सहस्रवल्श) अनन्त प्रकार की है, (हरित) हरे रङ्गवाली है, (भ्राजमानं) नाना प्रकार मे देदीप्यमान है और (हिरण्ययं) सुन्दर ज्योति वाली है ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना है कि वह चराचर ब्रह्माण्डगत वनस्पति का सिञ्चन करे। इस स्वभावोक्ति अलङ्कार द्वारा परमात्मा के वृष्टिकर्तृत्व भाव का निरूपण किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदमन्त्रो मे "कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषव" अथ० ३।६।२७।५। इत्यादि स्थलो मे वनस्पति को परमात्मा के ग्रीवास्थानी वर्णन किया है। इसी प्रकार वनस्पति का विराट्स्वरूप की शोभा वर्णन करते हुए ईश्वर मे स्वभावसिद्ध प्रार्थना है ॥१०॥

विश्वे॑ देवाः॒ स्वाहा॑कृतिं॒ पव॑मान॒स्या ग॑त ।

वा॒युर्बृह॒स्पति॒ः सूर्यो॒ऽग्निरिन्द्र॑ः स॒जोष॑सः ॥११॥२५॥

पदार्थ—(पवमानस्य) सर्वपूज्य परमात्मा की (स्वाहाकृति) सुन्दर वाणी को (वायु) सर्व विद्याओ में गति वाला (बृहस्पति.) सुन्दर वक्ता (सूर्य्य) दार्शनिक तत्त्वो का प्रकाशक (अग्निः) प्रतिभाशाली (इन्द्र) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य वाला (विश्वे, देवा) ये सब विद्वान् (सजोषस.) परस्पर प्रेमभाव रखने वाले (आगत) इस ज्ञान रूपी यज्ञ में आकर उपस्थित हो ॥११॥

भावार्थ.—इस सूक्त के उपसहार मे विद्वानो की सङ्गति कथन की है कि उक्तगुणसम्पन्न विद्वान लोग ज्ञानयज्ञ में आकर विविधप्रकार के ज्ञानों को उपलब्ध करें। तात्पर्य्य यह है कि इस मन्त्र मे ज्ञानयज्ञ को सर्वोपरि वर्णन किया गया है। वस्तुतः ज्ञानयज्ञ सर्वोपरि है ॥११॥

इति पञ्चम सूक्त पञ्चविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

५वां सूक्त और २५वां वर्ग समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य षष्ठसूक्तस्य —

१—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३—६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः सकाशाद्बलमाह्लादश्च प्रार्थ्यते:—

अब परमात्मा से बल और आह्लाद की प्रार्थना की जाती है—

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।

अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यादिगुण सम्पन्न परमात्मन् ! आप (मन्द्रया) आह्लाद करने वाली (धारया) वृष्टि से (पवस्व) हमे पवित्र करें क्योंकि आप (वृषा) सब कामनाओं के देने वाले हैं । (देवयु) देवताओ के प्रिय हैं और (वारेषु, अव्यः) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों में व्यापक हैं, आप (अस्मयुः) हम को प्राप्त होकर आनन्दित करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विराजमान है । दैवी सम्पत्ति वाले लोग उसको पा सकते हैं । इस अभिप्राय से परमात्मा को इस मन्त्र मे देवप्रिय कथन किया गया है । वस्तुतः परमात्मा न किसी का प्रिय और न किसी का द्वेषी है ॥१॥

अभि त्य मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर ।

अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥

पदार्थ —(इन्दो) हे प्रेममय (इन्द्र) परमात्मन्, आप (त्य, मद, मद्यम्) उस आह्लाद-जनक अपने प्रेममय मद की (अभि क्षर) वृष्टि करे जो (अभि, वाजिनः) सब बलकारक वस्तुओं मे से हमारे योग्य है (अर्वत) और जो ऐश्वर्य द्वारा सर्वत्र व्याप्त कराने वाला है ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे सर्वोपरि हर्षजनक परमात्मा के प्रेम की प्रार्थना की गयी है ॥२॥

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥३॥

पदार्थ —(पवित्र) हे सबको पावन करने वाले परमात्मन् ! आप (त्यं, पूर्व्यं, मद) उस नित्यानन्द को (सुवान) प्रदान करने वाले है जिससे मनुष्य सदैव के लिये आनन्दलाभ करता है इसलिये आप (अभि, वाजं) सब प्रकार का बल (उत) और (श्रव) ऐश्वर्य्य (अर्ष) हमको प्रदान करें ॥३॥

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् ।

पुनाना इन्द्रमाशत ॥४॥

पदार्थ —(द्रप्सासः) गतिशील परमात्मा (इन्दव) ऐश्वर्य्य सम्पन्न (अनु) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (प्रवता, आप, न) बहते हुए जलो के समान (असरन) गति करता है । उक्त परमात्मा (पुनानाः) पवित्र करता हुआ (इन्द्र ऐश्वर्य्य को (आशत) देता है ॥४॥

भावार्थ —जिस प्रकार सर्वत्र बहते हुए जल इस पृथिवी को नाना प्रकार के लतागुल्मादिको से सुशोभित करते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक जीव के प्राणो मे आह्लाद उत्पन्न करता है ॥४॥

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश ।

वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥५॥२६॥

पदार्थ —(य) जिस (अत्य) सर्वव्यापक परमात्मा को (योषण , दश) दश प्रकार की प्रकृतियां (वाजिनम्, इव) जीवात्मा के समान (मृजन्ति) शोभायुक्त करती हैं वह जीवात्मा जो (वने) शरीर रूपी वन मे (क्रीळन्ति) क्रीड़ा कर रहा है और (अत्यविम्) इन्द्रियसंघात से परे है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ये दशो मिल कर जीवात्मा की महिमा को बढ़ाते हैं इसी प्रकार पांच सूक्ष्म भूत और स्थूलभूत ये दोनों प्रकृतियां मिल कर परमात्मा के महत्व को वर्णन करते हैं ॥५॥२६॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये ।

सुतं भराय सं सृज ॥६॥

पदार्थ —(तम्) उक्त परमात्मा को (वृषणम्) जो कामनाओ का देने वाला है (मदाय) आह्लाद के लिये (रसम्) रस रूप है (देववीतये) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने के लिये (भराय) धारण करने के लिये (सुतम्) स्वत. सिद्ध उस परमात्मा को (संसृज) ध्यान का विषय बनाओ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तू सर्वोपरि ब्रह्मानन्द के देने वाले ब्रह्म को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उसके साथ तू अपनी चित्तवृत्तियो का योग कर । इसका नाम आध्यात्मिक योग है । रस के अर्थ यहां ब्रह्म के हैं; किसी रसविशेष के नही ॥६॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।

पयो यदस्य पीपयत् ॥७॥

पदार्थ.—(देव) 'दीव्यतीति देवः' प्रकाशस्वरूप परमात्मा (देवाय) दिव्यशक्तिधारी (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले जिज्ञासु के लिए (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पवते) पवित्र करता है (सुतः) आनन्दो का आविर्भाव करने वाला है (यत्) जो (अस्य) इस पूर्वोक्त जिज्ञासु को (पयः) पानार्ह आनन्द को (पीपयत्) पिलाता है इसलिए वह आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ही सब आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है । वह जिन पुरुषो को ब्रह्मानन्द का पात्र समझता है उनको आनन्द प्रदान करता है, यहां देव शब्द के अर्थ परमात्मा और दूसरे देव के अर्थ जिज्ञासु के हैं ॥७॥

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः ।

प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥८॥

पदार्थ —पूर्वोक्त परमात्मा (यज्ञस्य, आत्मा) यज्ञ का आत्मा है (सुष्वाणः) सर्वप्रेरक और (सुतः) आनन्द का आविर्भावक (रंह्या) सर्वत्र गति रूप से (पवते) पवित्र करता है । वही परमात्मा (प्रत्न काव्यम्) प्राचीन काव्य की (निपाति) रक्षा करता है ॥८॥

भावार्थ.—परमात्मा सब यज्ञो का आत्मा है अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि कोई यज्ञ भी उसकी सत्ता के बिना नही हो सकता । जो इस मन्त्र मे काव्य शब्द आया है वह 'कवते इति कवि ' इस व्युत्पत्ति से ज्ञानी का अभिधायक है और 'कवे कर्म काव्यम्' इस प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा की रचना रूप वेद का नाम यहां काव्य है किसी आधुनिक काव्य का नहीं । तात्पर्य यह है कि वह अपने ज्ञानरूपी वेद-काव्य द्वारा उपदेश करके सृष्टि की रक्षा करता है ॥८॥

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये ।

गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९॥२७॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (गुहा) आपने अपनी ज्ञानरूपी गुहा मे (गिरः) वेदरूपी वाणियो को (दधिषे) धारण किया है (चित्) क्योंकि (इन्द्रयु) आप ऐश्वर्य के चाहने वाले हैं इसलिए (वीतये) ऐश्वर्य के लिए (मदं, मदिष्ठ) उनके द्वारा हमारे आनन्द को बढ़ाइये ॥९॥

भावार्थ.—परमात्मा के ज्ञान मे वेद सदैव रहते हैं । आदि सृष्टि मे परमात्मा लोकोपकार के लिए उनका आविर्भाव करता है । इसी अभिप्राय से यहां काव्य अर्थात् वेद को प्रत्न अर्थात् सनातन विशेषण दिया है वेदो के नित्य मानने का भी यही प्रकार है अर्थात् प्रत्येक सर्ग के आदि मे परमात्मा अपने ज्ञानरूप वेदो का आविर्भाव करता है और प्रलय काल मे परमात्मा के ज्ञानरूप से वेद विराजमान रहते हैं ॥९॥

इति षष्ठं सूक्तं सप्तविंशतितमो वर्गश्च समाप्तः ॥

छठा सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य

१-९ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्द —१, ३, ५-९ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ विराड्गायत्री । षड्ज स्वरः ॥

अथ परमात्मनो विविधगुणाकरत्वं वर्ण्यते—

अब परमात्मा को अनेक गुणो का आधार कथन करते हैं —

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।

विदाना अस्य योजनम् ॥१॥

पदार्थ —(इन्दव) विज्ञानी पुरुष (अस्य) इस परमात्मा के (योजनम्) सम्बन्ध को (विदाना) जानते हुए (सुश्रियः) अनन्त प्रकार की शोभाओ को धारण करते हैं (ऋतस्य) और इस सत्यरूप परमात्मा के (धर्मन्) धर्म मे रहते हुए (असृग्रम्) अच्छे गुणो को लाभ करते है ॥१॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध को जानते है और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को जानकर उसके धर्मपथ पर चलते हैं वे संसार मे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥१॥

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।

हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥२॥

पदार्थ —(हविष्षु) 'हूयते गृह्यते इति हवि ' संपूर्ण ग्रहणयोग्य पदार्थों मे से जो (हविः) सर्वोपरि ग्राह्य है और (वन्द्य) सम्पूर्ण विश्व से वन्दनीय है वह (अग्रिय) अग्रणी परमात्मा (मध्वः, धाराः) मीठी धाराओ से (मही) पृथिवी लोक तथा (अप) द्युलोक को (विगाहते) अवगाहन करता है ॥२॥

भावार्थः—सर्वजनवन्दनीय परमात्मा लोकलोकान्तरो मे सर्वत्र ही अपने मधुर आनन्द की वृष्टि करता है ॥२॥

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने ।

सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (अध्वर) "न ध्वरतीत्यध्वर, अध्वान राति वा अध्वरः" हिंसावर्जित हैं और सत्य का रास्ता दिखलाने वाले हैं (सत्यः) सत्य स्वरूप है (वृषा) कामनाप्रद तथा (अग्रिय) सबसे अग्रणी और (प्रयुजः वाच)

उपयुक्त वाणी के बोलने वाले हैं (वने, सत्य, कवि) याज्ञिक उपासनाओं मे (श्रव, अक्षवत्) उपास्य ठहराये जाते हैं ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा सत्यस्वरूप अर्थात् त्रिकालाबाध्य है ऐसे सत्यादि पदों से उपनिषदो मे "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म" ये लक्षण किए गए हैं ॥३॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति ।

स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**कवि**) सर्वज्ञ है "कवत जानाति सर्वमिति कविः" अ. सबको जाने उसका नाम कवि है और (**नृम्णा**) ऐश्वर्यों को (**वसान**) धारण करने वाला (**पर्यर्षति**) सर्वत्र प्राप्त है (**स्वर्वाजी**) आनन्दरूप बलवाला है तथा (**काव्या, सिषासति**) कवित्वरूप कर्मों के प्रचार की इच्छा करता है ॥४॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।

यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥२८॥

पदार्थ —(**पवमान**) 'पवते इति पवमान' सबको पवित्र करने वाला (**अभिस्पृधः**) सबको मर्दन करके विराजमान है (**विश राजा, इव सीदति**) प्रजाओं को राजा क समान अनुशासन करता है (**यद्, ईम्**) भली भांति (**ऋण्वन्ति**) सत्कर्मों मे प्रेरणा करता है (**वेधस.**) सर्वोपरि बुद्धिमान् है ॥५॥२८॥

भावार्थ.—राजा की उपमा यहा इसलिए दी गई है कि राजा का शासन लोकप्रसिद्ध है । इस अभिप्राय से यहां राजा का दृष्टान्त है, ईश्वर के समान बलसूचना के अभिप्राय से नही और जो मन्त्र में बहुवचन है वह व्यत्यय से है ॥५॥२८॥

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।

रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

पदार्थ—वह परमात्मा (**अव्य , वारे**) "अव्यत प्रकाशते इति अविर्व्यादि-लोक' प्रकाश वाले लोको में (**परि, सीदति**) रहता है (**प्रिय**) सर्वप्रिय है। (**हरि**) सबके दुःखो को हरण करने वाला है, (**वनेषु**) उपासनादि भक्तियो मे उसी की उपासना से (**मती, वनुष्यते**) बुद्धि निर्मल होती है (**रेभ**) वेदादि शब्दो का प्रकाशक है ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा सब लोकलोकान्तरो मे व्यापक है और भक्तो की बुद्धि मे विराजमान है अर्थात् जिसकी बुद्धि उपासनादि सत्कर्मो से निर्मल हो जाती है उसी की बुद्धि मे परमात्मा का आभास पड़ता है ॥६॥

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।

रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७॥

पदार्थ —(**य**) जो पुरुष (**अस्य, धर्मभि**) इस परमात्मा के धर्मो को धारण करता हुआ (**रणा**) रमण करता है (**स**) वह (**वायुम्**) ज्ञानी यज्ञकर्मी पुरुष के और (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य वाले पुरुष के (**अश्विना**) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष के (**साकम्**) साथ (**मदेन**) अभिमान से (**गच्छति**) चल सकता है ॥७॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों का धारण करता है वह ज्ञानी विज्ञानी आदिको की सब पदवियो को प्राप्त होता है अर्थात् अभिमान के साथ वह ज्ञानी विज्ञानी विद्वानो के मद का मदन कर सकता है ॥७॥

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।

विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

पदार्थ —जिन विद्वानो की (**मध्व , ऊर्मयः**) मीठी वृत्तियां (**भगम्**) ईश्वर के ऐश्वर्य की ओर लगती हैं तथा (**मित्रावरुणा**) ईश्वर के प्रेम और आकर्षण रूप शक्ति की ओर लगती हैं वे (**विदाना**) विज्ञानी (**अस्य, शक्मभि**) इस परमात्मा के आनन्द से (**आ, पवन्ते**) सम्पूर्ण ससार को पवित्र करते है ॥८॥

भावार्थ—ईश्वरपरायण लोग केवल अपना आपका ही उद्धार नही करते, किन्तु अपने भावो से सम्पूर्ण ससार का उद्धार करते है ॥८॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।

श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥२९॥

पदार्थ —हे परमात्मन ! (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक के मध्य मे (**मध्व. वाजस्य**) बड़े बल की (**सातये**) प्राप्ति के लिए (**रयिम्**) धन (**श्रव**) ऐश्वर्य (**वसूनि**) रत्न (**सञ्जितम**) हमको आप दे ॥९॥

भावार्थ - परमात्मा जब प्रसन्न होता है तो नाना प्रकार की विभूतियों का प्रदान करता है क्योंकि जो विभूतिया हैं वह सब परमात्मा का ऐश्वर्य है ॥९॥

इति सप्तमं सूक्तमेकोनत्रिंशत्तमो वर्गश्च ॥७॥२९॥

यह सातवा सूक्त और उनतीसवां वर्ग समाप्त ॥७॥२९॥

अथ नवर्चस्य अष्टमसूक्तस्य—

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्द — १, २, ५, ८ निचृद्गायत्री । ३, ४, ७ गायत्री । ६ पाद निचृद् गायत्री ९ विराड् गायत्री । षड्ज स्वर' ॥

सम्प्रति सोमात्मपरमात्मनो निखिलकार्यसिद्धिः कथ्यते ।

अब उक्त सोमस्वभाव परमात्मा से कामनाओं की सिद्धि कथन करते हैं ।

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।

वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ —(**अस्य**) इस (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा की (**अभिप्रियम्, कामम्**) अभीष्ट-कामनाओ को (**अक्षरन्**) देता हुआ (**वीर्यम्**) उसके बल को (**एते, सोमा**) उक्त परमात्मा (**वर्धन्त.**) बढाता है ॥१॥

भावार्थ — "बलमसि बल मे देहि वीर्यमसि वीर्य मे देहि" यजु० २।३।१७ जिस प्रकार इस मन्त्र मे परमात्मा से बल वीर्यादिको की प्रार्थना है इसी प्रकार इस मन्त्र मे भी परमात्मा से बल वीर्यादिको की प्रार्थना है ॥१॥

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।

ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थ —(**पुनानास**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**चमूषद**) जो प्रत्येक सैनिक बल मे रहता है (**अश्विना**) प्रत्येक कर्म योगी और ज्ञानयोगी को तथा (**वायुम्**) गतिशील विद्वान् को (**गच्छन्त**) जो प्राप्त है (**ते**) वह परमात्मा (**न**) हमको (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल (**धान्तु**) धारण कराये ॥२॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।

ऋतस्य योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थः—(**ऋतस्य, योनिम्**) हे परमात्मन् ! आप सत्यरूपी यज्ञ के कारण हो (**आसदम**) प्रत्येक सत्यवादी के हृदय मे स्थिर हो (**सोम**) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! (**हार्दि**) अभिलषित कामनाओ की सिद्धि के लिये (**इन्द्रस्य**) इस जीवात्मा की (**राधसे**) ऐश्वर्य के लिये (**चोदय**) आप प्रेरणा करें क्योंकि (**पुनान.**) आप सब को पवित्र करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ —सत्य का स्थान एकमात्र परमात्मा ही है ; इसी अभिप्राय से "ऋत च सत्य चाभीद्धात्तपस." इस मन्त्र मे यह लिखा है कि दीप्तिमान परमात्मा से ऋत और सत्य अर्थात् ऋत शास्त्रीय सत्य, और सत्य वस्तुगतसत्य ये दोनो प्रकार के सत्य परमात्मा के आधार पर ही स्थिर रहते है इस अभिप्राय से यहा परमात्मा को ऋत की योनि कहा गया है । योनि के अर्थ यहां कारण है ॥३॥

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।

अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थ —हे परमात्मन ! (**त्वा, दश, क्षिप**) तुम को पाच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूल भूत (**मृजन्ति**) ऐश्वर्यसम्पन्न करते है और (**सप्त, धीतय**) महदादि सात प्रकृतियें तुम्हे (**हिन्वन्ति**) गति रूप से वर्णन करती हैं (**अनु**) इसके पश्चात् (**विप्राः**) मेधावी लोग आप को उपलब्ध करके (**अमादिषु**) हर्षित होते हैं ॥४॥

भावार्थ—पाँच सूक्ष्म और पाच स्थूलभूत उसकी शुद्धि व ऐश्वर्य का कारण इस अभिप्राय से वर्णन किये गये हैं कि उन्ही भूतो के कार्यरूप इन्द्रिय कर्म और ज्ञान द्वारा उसको उपलब्ध करते हैं और उस उपलब्धि को पाकर विद्वान् लोग आनन्द को प्राप्त होते है ॥४॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।

सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥३०॥

पदार्थ.—(**मेष्यः**) अज्ञान की वृत्तियां (**सृजानम्**) ससार के रचने वाले तुमको (**अति**) अतिक्रमण कर जाती हैं (**देवेभ्य , त्वा**) दिव्य वृत्तियो वाले देवताओ के लिये तुम्हारा (**कम्**) आनन्द (**मदाय**) आह्लाद के लिये हो ताकि हम आपको (**सम्**) भली प्रकार (**गोभि**) इन्द्रियो द्वारा (**वासयामसि**) निवास दे ॥५।३०॥

भावार्थ —जो पुरुष अज्ञानी हैं उनकी बुद्धि का विषय ईश्वर नही होता, इसलिये कहा गया है कि उनकी बुद्धि को अतिक्रमण कर जाता है और जो लोग शुद्ध इन्द्रियो वाले है वह लोग उसको बुद्धि का विषय बनाकर आनन्द को उपलब्ध करते है ॥५।३०॥

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।

परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थ —वह परमात्मा (**वस्त्राणि, अरुष**) विद्युत् के समान तेज रूप वस्त्रों को धारण करता हुआ (**आ**) प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर रख कर (**कलशेषु**) प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे आप व्यापक होकर (**पुनान.**) सबको पवित्र कर रहा है और (**हरि.**) सबके दुःखों को हरने वाला (**गव्यानि, पर्यव्यत**) प्रत्येक पृथिव्यादि ब्रह्माण्डो का आच्छादन कर रहा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है इसीलिये उसको हरि रूप से कथन किया है । वह परमात्मा विद्युत् के समान गतिशील होकर सब को चमत्कृत करता है । उसी की ज्योति को ज्ञानवृत्ति द्वारा उपलब्ध करके योगी आनन्दित होते हैं ॥६॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।

इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् ! आप (मघोन) हमको ऐश्वर्यसम्पन्न करें (आ, पवस्व) और सब प्रकार से पवित्र करें (विश्वा) सब (अपद्विषः) दुष्टों का नाश करें और (सखायम्, आविश) सज्जनों को सर्वत्र फैलायें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम इस प्रकार के प्रार्थनारूप भाव को हृदय में उत्पन्न करो कि तुम्हारे सत्कर्मी सज्जनों की रक्षा हो और दुष्टों का नाश हो ॥७॥

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।

सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिं, परि, स्रव) वृष्टि द्वारा (द्युम्नम्) अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिये और (पृथिव्या, अधि) सर्वत्र पृथिवी में (नः) हमको (सहः) बल देकर (पृत्सु, धाः) युद्धों में विजयी करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मविश्वासी होते हैं परमात्मा उनको युद्धों में विजयी और धनादि ऐश्वर्यों से नानाविध ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥८॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९॥३१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (इन्द्रपीतम्) विद्वानों के द्वारा गृहीत किये गये (नृचक्षसम्) "नृन् चष्टे पश्यति य स नृचक्षास्तम्" सर्वद्रष्टा (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ (त्वाम्) आपकी कृपा से (प्रजाम, इषम्) संसार के ऐश्वर्य को (भक्षीमहि) भोगें ॥९॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों के सदुपदेश से सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त परमात्मा की उपासना करते हैं वे संसार के आनन्द को भोगते हैं ॥९॥

इत्यष्टमं सूक्तमेकत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह आठवाँ सूक्त और इकतीसवाँ वर्ग समाप्त ।

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य—

१—९ *असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः* । *पवमान सोमो देवता* । छन्दः—१, ३-५, ८ *गायत्री* । २, ६, ७, ९ *निचृद्गायत्री* । *षड्जः स्वरः* ॥

अथ सौम्यस्वभावस्य परमात्मनोऽन्ये गुणा वर्ण्यन्ते ।

अब सौम्यस्वभाव परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ।

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।

सुवानो याति कविक्रतुः ॥१॥

पदार्थः—(कविक्रतुः) सर्वज्ञ (सुवानः) सब को उत्पन्न करने वाला (नप्त्योः, हितः) जीवात्मा और प्रकृति का हित करने वाला (कविः) मेधावी (वयांसि) व्याप्तिशील (दिवः, प्रिया) द्युलोक का प्रिय (परि, याति) सर्वत्र व्यापता है ॥१॥

भावार्थः—जिसके स्वरूप का नाश न हो उसका नाम यहां नप्ती है । इस प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का नाम यहां नप्ती हुआ । इन दोनों का परमात्मा हित करने वाला है अर्थात् प्रकृति को ब्रह्माण्ड की रचना में लगा कर हित करता है और जीव को कर्मफल भोग में लगा कर हित करता है । "वियन्ति व्याप्नुवन्ति—इति वयांसि" जो सर्वत्र व्याप्त हो उसको वयस कहते हैं और बहुवचन यहाँ ईश्वर के सामर्थ्य के अनन्तत्व बोधन के लिये आया है, तात्पर्य यह निकला कि जो प्रकृति पुरुष का अधिष्ठाता और संसार का निर्माता तथा विधाता है उसको यहाँ कविक्रतु आदि नामों से वर्णन किया है ॥१॥

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे ।

वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (पन्यसे) जो पुरुष कर्मयोगी है तथा (अद्रुहे) जो किसी के साथ द्वेष नहीं करता (जनाय) ऐसे मनुष्य के हृदय में आप (प्र, प्र, क्षयाय) अत्यन्त विराजमान होते हैं (च) और (वीती) उसकी तृप्ति के लिये (चनिष्ठया, जुष्टः) ऐश्वर्य की धारा से संयुक्त होकर (अर्ष) ऐश्वर्य दें ॥२॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक हैं तथापि ऐश्वर्य के प्रदाता होकर उन्हीं पुरुषों के हृदय में विराजमान हो रहे हैं जो पुरुष कर्मयोगी और रागद्वेष से रहित हैं, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह राग द्वेष के भाव से रहित होकर निष्काम भाव से सदैव कर्मयोग में लगा रहे ॥२॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।

महान्मही ऋतावृधा ॥३॥

पदार्थः—(सः) वह कर्मयोगी पुरुष (शुचिः) पवित्र है (महान्) विशालात्मा वाला है (ऋता, वृधा) यज्ञ के बढ़ाने वाले (मही) महान् (जाते) विश्व के उत्पन्न करने वाले (मातरा) जो माता-पिता रूप द्युलोक और पृथिवी लोक हैं उनका (जातः, सूनुः) वह सच्चा पुत्र है (अरोचयत्) और वह कर्मयोग से उनको ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः—द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में कर्मयोगी ही एक ऐसा पुरुष है जो अपने कर्मों द्वारा संसार को प्रकाशित करता है । इसी अभिप्राय से उसको द्युलोक और पृथिवीलोक का सच्चा पुत्र कहा गया ॥३॥

स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः ।

या एकमक्षि वावृधुः ॥ ॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (सप्त, नद्यः) इडा, पिङ्गलादि सात नाड़ियों को "नदन्तीति नद्यः" (धीतिभिः) 'धीयते सत्कर्मसु इति धीतिर्बुद्धिः' जब बुद्धि की वृत्तियों में (हितः) धारण किया जाता है तो (अजिन्वत) योग द्वारा तृप्त करता है (याः, अद्रुहः) जो नाड़ियाँ स्वास्थ्य पालन करती हुई (एकम, अक्षि) उस एक अविनाशी परमात्मा को (वावृधुः) प्रकाशित करती है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है । भाव यह है कि जब पुरुष अपने प्राणायाम द्वारा इडा पिङ्गलादि नाड़ियों को तृप्त कर देता है तो वह उस अभ्यास से एकाग्रचित्त होकर अविनाशी परमात्मा के भाव का अनुभव करता है ॥४॥

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।

इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥५॥३२॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् (तव, व्रते) तुम्हारे व्रत की पूर्ति के लिये (इन्दुम्) जीवात्मा को (युवानम्) जो नित्य नूतन है (सन्तम्) सत्कर्मी (अस्तृतम्) जो अहिंस्य है उसको (ताः) वे (अभि) भलीभांति योगज बुद्धिवृत्तियें (महे) महत्त्व की प्राप्ति के लिए (आदधुः) धारण करती हैं ॥५॥३२॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष अपने निष्काम कर्म द्वारा उस तत्त्व को प्राप्त होता है जिसको योग में एकतत्त्वाभ्यास लिखा है अर्थात् उस तत्त्व की प्राप्ति के लिए कर्मयोगी होना आवश्यक है ॥५॥३२॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः ।

क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

पदार्थः—जो (अमर्त्यः) मृत्युरहित है (वह्निः) प्रकाशमान है (वावहिः) जो सबका प्रेरक है (सप्त, देवीः) भूम्यादि सात प्रकृतियाँ (अतर्पयत्) जिसका वर्णन करती हैं । (क्रिविः) जो सद्गुणों से भरा हुआ है वह (पश्यति) सबको अपनी ज्ञानदृष्टि से देखता है ॥६॥

भावार्थः—जो परमात्मा महत्त्वादि सात प्रकार की प्रकृतियों से अलङ्कृत है और जिसका धारणा ध्यानादि बुद्धि की सात वृत्तियां विषय करती हैं वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, एकमात्र उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिए ॥६॥

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या ।

तानि पुनान जङ्घनः ॥७॥

पदार्थः—हे (सोम) सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! आप (तमांसि) अज्ञानों को और जो (योध्या) युद्ध करने योग्य हैं (तानि) उनको (जङ्घनः) हनन करो । (पुनान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (पुमन) हे पूर्ण पुरुष (नः) हमारी (कल्पेषु) सब अवस्थाओं में (अव) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य का परम शत्रु एकमात्र अज्ञान ही है । जो पुरुष अज्ञानरूपी शत्रु को नहीं जीतता वह शूरवीर व विजयी कदापि नहीं कहला सकता, बहुत क्या पुरुष में पुरुषत्व यही है कि वह अज्ञानरूपी शत्रु को जीत कर अभ्युदय और निःश्रेयस रूपी फलों को लाभ करे । इस अभिप्राय के लिए उक्त मन्त्र में अज्ञान के जीतने की परमात्मा से प्रार्थना की गई है ॥७॥

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः ।

प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नव्यसे) नूतन जीवन बनाने के लिए (नु) निश्चय करके (नवीयसे, सूक्ताय) नई वाणियों के लिए (साधया, पथः) हमारे लिए रास्ता खोलो और पहले के समान (रुचः) अपनी दीप्तिएं (रोचया) प्रकाशित करो ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने जीवन को नित्य नूतन बनाना चाहे उसका कर्तव्य है कि वह परमात्मा की ज्योति से देदीप्यमान होकर अपने आपको प्रकाशित करे, और नित्य नूतन वेदवाणियों से अपने रास्तों को साफ करे अर्थात् वेदोक्त धर्मों पर स्वयं चले और लोगों को चलाये ॥८॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।

सना मेधां सना स्वः ॥९॥३३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (महि, श्रवः) हमको सर्वोपरि आनन्द प्रदान करो और (गाम्, अश्वम्) गौ अश्वादि

नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन (दाति) आप हमको दें । और (वीरवत्) वीरता धर्म वाले मनुष्य (सना) दें (मेधाम्) बुद्धि और (स्व) स्वर्ग (सना) दें ॥९॥३३॥

भावार्थ —जिस जाति या धर्म पर परमात्मा की अत्यन्त कृपा होती है उसको परमात्मा नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन प्रदान करता है और शुद्ध बुद्धि तथा सर्वोपरि आनन्द का प्रदान करता है ॥९॥३३॥

इति नवमं सूक्तं त्रयस्त्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।
यह नवमा सूक्त और तेंतीसवां वर्ग समाप्त ।

अथ नवर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य

१ ९ असित काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमान सोमो देवता । छन्दः—
१, २, ६, ८ निचृद्गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ पूर्वोक्तः परमात्मा यज्ञरूपेन वर्ण्यते ।
अब उक्त परमात्मा को यज्ञरूप से वर्णन करते हैं ।

प्र स्वा॒नासो॒ रथा॑ इ॒वार्व॑न्तो॒ न श्र॑व॒स्यवः॑ ।

सोमा॑सो रा॒ये अ॑क्रमुः ॥१॥

पदार्थ —(**सोमास**) चराचर संसार का उत्पादक उक्त परमात्मा (**राये**) ऐश्वर्य के लिए (**अक्रमु**) सदा उद्यत है (**रथा, इव**) अति शीघ्र गति करने वाले विद्युदादि के समान (**प्र, स्वानास**) जो प्रसिद्ध है और जो (**अर्वन्त, न**) गतिशील राजाओं के समान (**श्रवस्यव.**) ऐश्वर्य देने को सदा उद्यत है ॥१॥

भावार्थ —जिस प्रकार बिजली की जागृतिशील ध्वनि से सब पुरुष जागृत हो जाते है इस प्रकार परमात्मा के शब्द म सब लोग उद्बुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् परमात्मा नाना प्रकार के शब्दो से पुरुषों का उद्बोधन करता है, और जिस प्रकार न्यायशील राजा अपनी प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करता है इसी प्रकार वह सत्कर्मी पुरुषों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥१॥

हि॒न्वा॒नासो॒ रथा॑ इव दधन्वि॒रे गभ॑स्त्योः ।

भ॒रासः॑ कारि॒णामि॑व ॥२॥

पदार्थ —(**रथा इव**) विद्युत् के समान (**गभस्त्यो., दधन्विरे**) अपनी चमत्कृत रश्मियों को धारण किए हुए है । (**हिन्वानास**) सदैव गतिशील है और (**कारिणाम्, इव**) कर्मयोगियों के समान सदैव सत्कर्म क (**भरास**) भार उठाने को समर्थ है ॥२॥

भावार्थ —जिस प्रकार कर्मयोगी सत्कर्म को करने मे सदैव तत्पर रहता है इसी प्रकार संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्मों मे परमात्मा सदैव तत्पर रहता है अर्थात् उक्त कर्म उसमे स्वत सिद्ध और अनायास होत रहते हैं ।

इस प्रकार परमात्मा सदैव गतिशील है । इसी अभिप्राय से गतिकर्मा रहति धातु से निष्पन्न रथ की उपमा दी है ॥२॥

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभिः॒ सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते ।

य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभिः॑ ॥३॥

पदार्थ —(**राजान., न**) राजाओ के समान (**सोमास**) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (**गोभि**) अपनी प्रकाशमय ज्योतियों से (**अञ्जते**) प्रकाशित होता है (**यज्ञ न**) जिस प्रकार यज्ञ (**सप्त, धातृभि**) ऋत्विगादि सात प्रकार के होताओ से सुशोभित होता है इसी प्रकार परमात्मा प्रकृति की विकृति महदादि सात प्रकृतियो से संसारावस्था मे सुशोभित होता है ॥३॥

भावार्थ —संसार भी एक यज्ञ है और इस यज्ञ के कार्यकारी ऋत्विगादि होता प्रकृति की शक्तियां है । जब परमात्मा इस बृहत् यज्ञ को करता है तो प्रकृति की शक्तियां उसमे ऋत्विगादि का काम करती है ॥३॥

परि॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा ।

सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या ॥४॥

पदार्थ —(**परि सुवानास**) संसार को उत्पन्न करता हुआ (**इन्दव**) सर्वप्रकाशक परमात्मा (**बर्हणा, गिरा**) अभ्युदय देने वाली वेदवाणी द्वारा (**सुता**) वर्णन किया हुआ (**धारया**) अमृत की वृष्टि से (**मदाय, अर्षन्ति**) आनन्द को देता है ॥४॥

भावार्थ —द्युम्वादि अनेक लोकों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा अपनी पवित्र वेदवाणी द्वारा हमको नानाविध आनन्द प्रदान करता है ॥४॥

आ॒पा॒नासो॑ वि॒वस्व॑तो॒ जन॑न्त उ॒षसो॒ भग॑म् ।

सू॒रा अण्वं॒ वि त॑न्वते ॥५॥३४॥

पदार्थ —(**अपानास**) सब दुःखों का नाश करने वाला (**विवस्वत**) सूर्य से (**उषस, भगम्**) उषारूप ऐश्वर्य को (**जनन्त**) उत्पन्न करता हुआ (**सूरा**) गतिशील (**अण्वम्**) सूक्ष्म प्रकृति का (**वितन्वते**) विस्तार करता है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से अथवा यों कहो कि परमाणुओं से सृष्टि को उत्पन्न करता है और सूर्यादि प्रकाशमय ज्योतियों से उषारूप ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ संसार के दु खो का नाश करता है ।

तात्पर्य यह है कि उष.काल होते ही जिस प्रकार सब ओर से आह्लाद उत्पन्न होता है इस प्रकार का आह्लाद और समय में नहीं होता इसलिये उष काल को यहां ऐश्वर्य रूप से कथन किया गया है यद्यपि प्रात सन्ध्या, मध्याह्न इत्यादि सब काल परमात्मा की विभूति हैं तथापि जिस प्रकार की उत्तम विभूति उष काल है वैसी विभूति अन्य काल नहीं । तात्पर्य यह है कि उष.काल को उत्पन्न करके परमात्मा ने सब दु खो को दूर किया है । अर्थात् उक्त काल मे योगी भोगी तथा रोगी सब प्रकार के लोग उस परमात्मा के आनन्द में निमग्न हो जाते हैं ॥५॥३४॥

अप॒ द्वारा॑ मती॒नां प्र॒त्ना ऋ॑ण्वन्ति का॒रवः॑ ।

वृष्णो॒ हर॑स आ॒यवः॑ ॥६॥

पदार्थ —(**वृष्ण**) सब कामनाओ के दाता परमात्मा की (**हरसे**) पाप की निवृत्ति के लिय उपासना करने वाले (**आयवः**) मनुष्य (**कारवः**) जो कर्मयोगी हैं (**प्रत्ना**) जो अभ्यास मे परिपक्व है वह (**मतीनाम्**) बुद्धि के (**अप, द्वारा**) जो कुत्सित मार्ग हैं उनको (**ऋण्वन्ति**) मार्जन कर देते हैं ॥६॥

भावार्थ — जो कर्मयोगी लोग कर्मयोग में तत्पर हैं और ईश्वर की उपासना मे प्रतिदिन रत रहते हैं वह अपनी बुद्धि को कुमार्ग की ओर कदापि नहीं जाने देते । तात्पर्य यह है कि कर्म योगियो मे अभ्यास की दृढ़ता के प्रभाव से ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है कि उनकी बुद्धि सदैव सन्मार्ग की ओर ही जाती है, अन्यथा नहीं ॥६॥

स॒मी॒ची॒नास॑ आसते॒ होता॑रः स॒प्तजा॑मयः ।

प॒दमेक॑स्य॒ पिप्र॑तः ॥७॥

पदार्थ —(**सप्त, जामय**) यज्ञकर्म मे संगति रखने वाले (**होतार**) होता लोग (**समीचीनास.**) यज्ञ कर्म मे जो निपुण हैं वे (**एकस्य, पदम्**) एक परमात्मा के पद को जब (**आसते**) ग्रहण करते है तो वे (**पिप्रत**) यज्ञ को संपूर्ण करते है ॥७॥

भावार्थ — जो लोग एक परमात्मा की उपासना करते हैं उन्ही के सब कामों की पूर्ति होती है । तात्पर्य यह है कि ईश्वरपरायण लोगों के कार्यों मे कदापि विघ्न नहीं होता ॥७॥

नाभा॒ नाभि॑ न॒ आ द॑दे॒ चक्षु॑श्चि॒त्सूर्ये॒ सचा॑ ।

क॒वेरप॑त्य॒मा दु॑हे ॥८॥

पदार्थ —(**कवे**) उस सर्वज्ञ क्रान्तकर्मा परमात्मा के (**अपत्यम्**) ऐश्वर्य को (**आ, दुहे**) मैं प्राप्त करूँ और (**नाभिम्**) 'नह्यति बध्नाति चराचर जगदिति नाभि ' जो चराचर जगत् को नियम मे रखता है उसको (**नाभा, न.**) अपने हृदय मे (**आददे**) ध्यानरूप मे स्थित करूं, जो (**सूर्ये, चित**) सूर्य मे भी (**चक्षु सचा**) चक्षुरूप से संगत है ॥८॥

भावार्थ — उक्त कामधेनु रूप परमात्मा के ऐश्वर्य को वह लोग दुह सकते है जो लोग उस परमात्मा को हृदयरूपी कमल मे साक्षी रूप से स्थिर समझ कर सत्कर्मी बनते हैं और वह परमात्मा अपनी प्रकाश रूप शक्ति से सूर्य का भी प्रकाशक है । इस मंत्र मे परमात्मा इस भाव का बोधन करते हैं कि हे जिज्ञासु पुरुषो ! तुम उस प्रकाश से अपने हृदय को प्रकाशित करके संसार के पदार्थों को देखो जो सवप्रकाशक है और जिससे यह भूतवर्ग अपनी उत्पत्ति और स्थिति को लाभ करता है ॥८॥

अ॒भि प्रि॒या दि॒वस्प॒दम॑ध्व॒र्युभि॒र्गुहा॑ हि॒तम् ।

सूरः॑ पश्यति॒ चक्ष॑सा ॥९॥३५॥

पदार्थः —(**सूर**) "सरति ज्ञानद्वारेण सर्वत्र प्राप्नोतीति सूरो विद्वान्" विद्वान् (**अभि, प्रिया**) जो सबका प्यारा है वह (**अध्वर्युभि**) अध्वर्यु आदि ऋत्विजो से जो (**गुहा, हितम्**) यज्ञ की गुहा मे निहित है और (**दिवस्पदम्**) जो द्युलोक का भी अधिकरणरूपी पद है उसको (**चक्षसा**) ज्ञानदृष्टि से (**पश्यति**) देखता है ॥९॥

भावार्थ —जो इस संसार रूपी गुहा मे स्थिर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म परमात्मा है और जो द्युवादिलोको का एकमात्र अधिकरण है उसको आत्मज्ञानी विद्वान् ही जान सकते हैं अन्य नहीं ॥९॥३५॥

इति दशमं सूक्तं पञ्चत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।
यह दशवां सूक्त और पैंतीसवां वर्ग समाप्त ।

अथ नवर्चस्य एकादशस्य सूक्तस्य

१-९ असित काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमान सोमो देवता । छन्दः—
१—४, ९ निचृद्गायत्री । ५—८ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

सम्प्रति उक्त परमात्मनः उपासनाप्रकारः कथ्यते —
अब उक्त परमात्मा के उपासन का प्रकार कथन करते हैं:—

उपा॑स्मै गायता नरः॒ पव॑माना॒येन्द॑वे ।

अ॒भि दे॒वाँ इय॑क्षते ॥१॥

पदार्थ —(**नरः**) हे यज्ञ के नेता लोगो ! तुम (**पवमानाय**) सबको पवित्र करने वाला (**इन्दवे**) 'इन्दतीतीन्दु.' और जो परम ऐश्वर्य वाला है (**उपास्म**)

उसकी प्राप्ति के लिये (गायत) गायन करो, जो (अभि, देवाँ, इयक्षते) यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति को चाहता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञादि कर्मों मे विद्वानों की संगति करो और मिलकर अपने उपास्य देव का गायन करो ॥१॥

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।

देवं देवाय देवयु ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (ते) तुमको (अथर्वाण) "न थर्वति स्वाधिकार न मुञ्चतीत्यथर्वा" जो अपने अधिकार को न छोड़े उसका नाम अथर्वा है, ऐसे दृढ़-विश्वासी विद्वान् (अशिश्रयु) आश्रयण करते हैं जो तुम (देवाय) दिव्य शक्तियों के देने के लिये (देवम्) एकमात्र देव हो, और (देवयु) "देवमिच्छतीति देवयु" दिव्य शक्ति की इच्छा करनेवाला पुरुष (पय) आपके रस को (मधुना) मधुरता के साथ (अभि) भलीभांति ग्रहण करता है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे दृढविश्वासी विद्वानो ! आप लोग उस रस का पान करो जिससे बढ़कर ससार में अन्य कोई रस नही और उपास्यत्वेन उस देव का आश्रयण करो जिससे बढ़कर और कोई उपास्य नही । वास्तव मे बात भी यही है कि परमात्मा के आनन्द के बराबर और कोई आनन्द नहीं ॥२॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।

शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थः—हे (राजन्, स) पूर्वोक्त दीप्तिमन् परमात्मन् ! आप (न) हमारी (गवे) इन्द्रियों के लिये (श, पवस्व) कल्याणकारी हो (शम्, अर्वते, जनाय) कर्मकाण्डी मनुष्यो के लिए कल्याणकारी हो (शम् ओषधीभ्य) और हमारी ओषधियो के लिये कल्याणकारी हों ॥३॥

भावार्थ—यहां ओषधि आदिक केवल उपलक्षण हैं । वस्तुतः इस मन्त्र मे प्रत्येक ससार वर्ग के लिये कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥३॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।

सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम (बभ्रवे) 'बिभर्तीति बभ्रु' जो विश्वम्भर परमात्मा है और जो (स्वतवसे) बलस्वरूप है और (दिविस्पृशे) जो द्युलोक तक फैला हुआ है (सोमाय) चराचर ससार का उत्पन्न करने वाला है (अरुणाय) "ऋच्छतीत्यरुण" जो सर्वव्यापक है उसकी (नु) शीघ्र ही (गाथम्) स्तुति (अर्चत) करो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि हे पुरुषो ! तुम ऐसे पुरुष की स्तुति करो जो पूर्ण पुरुष अर्थात् द्युम्वादि सब लोको मे पूर्ण हो रहा है और तेजस्वी और सर्वव्यापक है । इस भाव को वेद के अन्य भी कई स्थलो मे वर्णन किया है ॥४॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।

मधावा धावता मधु ॥५॥३६॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (हस्तच्युतेभि, अद्रिभि) वाणीरूप वज्र से (सुत) कूट कूट कर (सोम) मेरे स्वभाव को (पुनीतन) पवित्र करें ताकि (मधौ) आप के मधुर स्वरूप मे (मधु) मीठा बन कर (आधावत) लगे ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा का वागूरूपी वज्र जिस पुरुष की अविद्या लता को काटता है वह पुरुष सरल प्रकृति बन कर परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप मे निमग्न होता है ॥५॥३६॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।

इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन ! आप (नमस, इत्) हमारी नम्रवाणियो से (उपसीदत) हमारे हृदय में निवास करो (दध्ना इत्) 'धीयतेऽनेनेति दधि' हमारी धारणा से (उप, श्रीणीतन) हमारे ध्यान का विषय बनो । (इन्दुम्, इन्द्रे) हमारे मन को अपने प्रकाशित स्वरूप मे (दधातन) लगाओ ॥६॥

भावार्थ—जो लोग प्रार्थना से अपने हृदय को नम्र बनाते हैं उनका मन परमात्मा के स्वरूप में अवश्यमेव स्थिर होता है ॥६॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।

देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (अमित्रहा) आप प्रेमरहित नास्तिक लोगो के हनन करने वाले हैं और (देवेभ्यो, अनुकाम कृत) और दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओ के पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (विचर्षणि) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं, आप (गवे) हमारी वृत्तियो का (श, पवस्व) कल्याण करें और उन्हें पवित्र करें ॥७॥

भावार्थ— ससार मे असुर और देव दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं । असुर उनको कहते हैं जो धर्म को त्याग करके केवल प्राण यात्रा में लग जाते हैं, अर्थ इसके इस प्रकार हैं 'अस्यति धर्ममित्यसुर' यद्वा—'असुषु रमते इत्यसुर' जो धर्म को छोड़ दे या प्राणो मे ही रमण करे वह असुर है । और 'दीव्यतीति देव' जो सदसद्विवेकिनी बुद्धि रखने वाले ज्ञानी पुरुष है उनको देव कहते हैं । जो असुर लोग हैं उन्हीं को इस मन्त्र मे अमित्र माना गया है अर्थात् दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषो को परमात्मा बढ़ाता है और आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुषों का सहार करता है ॥७॥

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।

मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (मनश्चित्) आप ज्ञानस्वरूप हैं 'मनुते इति मन' और (मनसस्पति) सबके मनो के प्रेरक है (इन्द्राय) जीवात्मा की (पातवे) तृप्ति के लिये (मदाय) आह्लाद के लिये (परिषिच्यसे) उपासना किये जाते हैं ॥८॥

भावार्थ - जो लोग उपासना द्वारा अपने हृदय मे ईश्वर को विराजमान करते हैं वे उसके मधुर आनन्द का पान करते हैं ।

तात्पर्य यह है कि यों तो परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण सब के हृदय मे स्थिर हैं पर जो लोग धारणा ध्यानादि साधना से सम्पन्न होकर उसको अत्यन्त समीपी बनाते है वे ही उसके मधुर आनन्द का पान कर सकते हैं, अन्य नही ॥८॥

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः ।

इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥९॥३७॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दर बल को (रयिम्) और धन को (न, रिरीहि) हमको दे, (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक (इन्द्रेण) परमैश्वर्य के साथ (नः, युजा) हमको युक्त कर (सोम) आप सौम्य-स्वभाव वाले है ॥९॥

भावार्थ—जो लोग सत्कर्मी बनकर ईश्वरपरायण होते है परमात्मा सर्वोपरि ऐश्वर्य का उन्ही को दान देता है ॥९॥३७॥

इत्येकादशं सूक्तं सप्तत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह ग्यारहवां सूक्त और सैंतीसवां वर्ग समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य

१—९ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, २, ६—८ *गायत्री ३—५, ९ निचृद्गायत्री* ॥ षड्जः स्वर ॥

अथ उक्तपरमात्मानं यज्ञादिकर्मणः कर्तृत्वेन वर्णयति ।

अब उक्त परमात्मा को यज्ञादि कर्मों के कर्त्तारूप मे वर्णन करते हैं ।

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने ।

इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

पदार्थ — (इन्द्राय) जीवात्मा के लिये (मधुमत्तम) जो अत्यन्त आनन्दमय परमात्मा है (ऋतस्य) यज्ञ की (सादने) स्थिति मे जो (सुता) उपास्य समझा गया है वह (इन्दव) प्रकाशस्वरूप (सोमा) सौम्य स्वभाव वाला है । (असृग्रम्) उसी के द्वारा यह ससार रचा गया है ॥१॥

भावार्थ - जो सब प्रकार की सच्चाइयो का एकमात्र अधिकरण है और जिससे वसन्तादि यज्ञरूप ऋतुओ का परिवर्तन होता है वही परमात्मा इस निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति है ॥१॥

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः ।

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थः—उस परमात्मा को पाने के लिये (गाव) इन्द्रिया (मातर, वत्सम्, न) जैसे माता को बछड़ा आश्रयण करता है इसी प्रकार आश्रयण करती हैं, उसी प्रकार (विप्रा) विज्ञानी लोग (सोमस्य, पीतये) सौम्य स्वभाव के बनाने के लिये (इन्द्रम्) परमात्मा को (अभि अनूषत) विभूषित करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जब तक पुरुष सौम्यस्वभाव परमात्मा को आश्रयण नही करता, तब तक उसके स्वभाव मे सौम्य भाव नही आ सकता और उसका आश्रयण करना साधारण रीति से हो तो कोई अपूर्वता उत्पन्न नही कर सकता । जब पुरुष परमात्मा मे इस प्रकार अनुरक्त होता है जैसे कि वत्स अपनी माता में अनुरक्त होते है अथवा इन्द्रिया अपने शब्दादि विषयो मे अनुरक्त होती हैं इस प्रकार की अनुरक्ति के बिना परमात्मा के भावो को पुरुष कदापि ग्रहण नही कर सकता ॥२॥

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।

सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—जिस प्रकार (ऊर्मा) तरगें (सिन्धो) नदी का आश्रयण करती हैं और (विपश्चित्) विद्वान् (गौरी, अधि, श्रित) वेदवाणी मे अधिष्ठित होता है इसी प्रकार (सोमः, मदच्युत्) आनन्द का देने वाला सौम्य स्वभाव परमात्मा (सादने, क्षेति) यज्ञस्थल को प्रिय समझता है ॥३॥

भावार्थ - कर्मयज्ञ, योगयज्ञ, जपयज्ञ, इस प्रकार यज्ञ नाना प्रकार के हैं परन्तु 'यजनं यज्ञ' जिसमे ईश्वर का उपासना रूप अथवा विद्वानो की सगति रूप अथवा दानात्मक कर्म किये जायें उसका नाम यहां यज्ञ है और वह यज्ञ ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है ॥३॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।

सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

पदार्थ —(यः) जो परमात्मा (दिव , नाभा) द्युलोक का नाभि है (विचक्षण) सर्वज्ञ है (अव्य.) सब का भजनीय है (वारे महीयते) जो सब श्रेष्ठो मे श्रेष्ठतम है (सोम) सौम्यस्वभाव वाला है (सुक्रतुः) सत्कर्मी है और (कवि) आत्मकर्मा है ॥४॥

भावार्थ —सत्य ज्ञान और अनन्तादि गुणो वाला ब्रह्म है। पूजा एक प्रकार का कर्म है उसी को कर्तव्य कहते है। तात्पर्य यह निकला कि परमात्मा ने इस मन्त्र मे उपदेश किया है कि तुम लोग उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा का पूजन करो अर्थात् सन्ध्यावन्दनादि कर्मों से उसे वन्दनीय समझो ॥४॥

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः ।

तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥३८॥

पदार्थ - (य.) जो परमात्मा (कलशेषु) 'कल शब्दातीति कलशो वैदिक शब्द ' वैदिक शब्दो मे , (आ) वर्णन किया गया है (पवित्रे, अन्त) और सब पवित्र वस्तुओ मे (आहित) स्थिर है और (सोम) सौम्यस्वभाव वाला है (तम् इन्दु) उसे विद्वान् लोग (परिष वजे) लाभ करते हैं ॥५॥

भावार्थ —विद्वान् परमात्मा की अभिव्यक्ति अर्थात् आविर्भाव को सब पवित्र वस्तुओ मे पाते है तात्पर्य यह है कि जो जो विभूति वाली वस्तु है उसमे वे परमात्मा के तेज को अनुभव करते हैं ॥५॥३८॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।

जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थ (समुद्रस्य, अधि, विष्टपि) "समुद्रवन्ति यस्मादाप. स समुद्र" जो परमात्मा अन्तरिक्ष लोक के मध्य मे (मधुश्चुतम्, कोशम) सब प्रकार की मधुरताओ के सिञ्चन करने वाले कोश को (जिन्वति) बढाता है (इन्दु) वही परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (वाचम्, प्र, इष्यति) वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा के नियम से समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष मे जलो का सञ्चय रहता है क्योकि समुद्र के अर्थ ये है जिसमे जलो का भलीभाति सञ्चार हो अर्थात् इतस्तत गमन हो उसे समुद्र कहते हैं। अन्तरिक्ष लोक मे मेघो का इतस्तत गमन होता है इस लिये मुख्य नाम समुद्र इन्ही का है। तात्पर्य यह है कि जिस परमात्मा ने इन विशाल नियमो को बनाया है उसी परमात्मा ने वेदरूपी वाणी का प्रकट किया है ॥६॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।

हिन्वानो मानुषा युगा ॥७॥

पदार्थ —वह परमात्मा (नित्यस्तोत्र) नित्यस्तुति करने योग्य है (वनस्पति) सब ब्रह्माण्डो का स्वामी है (धीनाम, अन्त) बुद्धियो का अन्त है (सब दुघ) अमृत से परिपूर्ण करने वाला है (मानुषा, युगा) और स्त्री-पुरुष के जोडे को उत्पन्न करने वाला है (हिन्वान) सबका तृप्तिकारक है ॥७॥

भावार्थ —बुद्धियो का अन्त उसे इस अभिप्राय से कहा गया है कि मनुष्य की बुद्धि उसके पारावार को नही पा सकती इसलिये उसने मनुष्यो पर अत्यन्त करुणा करके अपने वेदरूपी ज्ञान का प्रकाश किया है ॥७॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।

विप्रस्य धारया कविः ॥८॥

पदार्थ (कवि) कान्तकर्मा (सोम) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (दिवस्पदा) द्युलोक का व्यापक रूप से अधिकरण है (विप्रस्य) ज्ञान की (धारया) धारा से (प्रिया अभि, अर्षति) हमको आनन्दित करता है ॥८॥

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।

अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥९॥३९॥७॥

पदार्थ. (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन ! (अस्मे) आप हमारे लिये (रयिम) धन को तथा (सहस्रवर्चस, स्वाभुवम्) अत्यन्त दीप्ति वाले गृहो को (आ, धारय) धारण कराइये अर्थात् दीजिये ॥९॥

भावार्थ —परमात्मा जिन पुरुषो के कर्मों द्वारा प्रसन्न होता है उनको अनन्त प्रकार की दीप्तियो वाले गृहो को देता है और नानाविध ऐश्वर्य से उन्हें सम्पन्न करता है ॥९॥३९॥

वेदव्याख्यानपुण्येन मोहो मम निवर्त्यताम् ।

याचेऽहमीशतो ह्येतद्वेदधर्मः प्रवर्तताम् ॥

इति द्वादशसूक्तमेकोनचत्वारिंशत्तमो वर्गश्च समाप्त ।

यह ऋग्वेद के छठे अष्टक मे सातवा अध्याय और उनतालीसवा वर्ग, नवममण्डल मे बारहवा सूक्त समाप्त ।

अथ नवर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य—

१—९ असित काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमान सोमो देवता । छन्दः—१, ३, ५, ८ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री । ७ पाद निचृद्गायत्री । ९ यवमध्या गायत्री ॥ षड्ज स्वरः ॥

अधुना परमात्मन यज्ञादिकर्मप्रियता दानप्रियता च निरूप्यते ।

अब परमात्मा की यज्ञादि कर्म प्रियता और दानप्रियता को कहते है ।

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।

वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ.— (सोम) 'सूते चराचर जगदिति सोम ' सब चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाला परमात्मा (पुनान , अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ सब जगह व्याप्त हो रहा है और (सहस्रधार) सहस्रो वस्तुओं को धारण करने वाला है (अत्यवि.) अत्यन्त रक्षक है और (वायो) कर्मशील तथा (इन्द्रस्य) ज्ञानशील विद्वानो का (निष्कृतम्) उद्धार करने वाला है ॥१॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा सर्व रक्षक है, वह किसी को द्वेष दृष्टि व प्रिय दृष्टि से नही देखता तथापि वह सत्कर्मी पुरुषो को शुभ फल देता है और असत्कर्मियों को अशुभ, इसी अभिप्राय से उसको कर्मशील पुरुषों का प्यारा वर्णन किया है ॥१॥

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।

सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पदार्थ —(अवस्यव) हे उपदेश द्वारा प्रजा की रक्षा चाहने वाले विद्वानो ! आप (देववीतये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुष्वाणम्, पवमानम्, विप्रम्) सबको पवित्र करने वाले पूर्ण परमात्मा का (अभि, प्र, गायत) तुम गान करो ॥२॥

भावार्थ परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम उस पुरुष की उपासना करो जो सर्वप्रेरक है और सबको पवित्र करने वाला है और व्यापक रूप से सर्वत्र स्थिर है ॥२॥

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।

गृणाना देववीतये ॥३॥

पदार्थ उक्त विद्वान (देववीतये) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (गृणाना) स्तुति करते हुए (सहस्रपाजस) अनन्त प्रकार के बलो वाले (सोमा) सौम्य स्वभाव वाले (वाजसातये) धर्म युद्धो मे (पवन्ते) हमको पवित्र करते हैं ॥३॥

भावार्थ —जो लोग ईश्वर पर विश्वास रखकर अनन्त प्रकार के कला कौशलादि बलो से सम्पन्न होते है वे ही सब प्रजा को पवित्र करते हैं अर्थात् अपने ज्ञान से प्रजा की रक्षा करते है ॥३॥

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।

द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् ! (द्युमत्) दीप्तिवाला (सुवीर्यम्) बल (पवस्व) हमको दें (उत) और (वाजसातये) युद्धो मे (न , बृहती , इष) हमको बडी शक्ति प्रदान करें ॥४॥

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।

सुवाना देवास इन्दवः ॥५॥१॥

पदार्थ —(इन्दव.) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा (देवास) दिव्य शक्ति वाला (सुवाना) सबको उत्पन्न करने वाला (सुवीर्यम्) सुन्दर बल को (आ, पवन्ताम्) भली भाति हमको दे और (ते) वह (सहस्रिणम्) अनन्त प्रकार के (रयिम्) ऐश्वर्य को (न) हमको दे ॥५॥१॥

भावार्थ —यहा 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से एकवचन के स्थान मे बहुवचन हुआ है इसलिए ईश्वर का ही ग्रहण समझना चाहिए, किसी अन्य का नही ॥५॥१॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।

वि वारमव्यमाशवः ॥६॥

पदार्थ - (अत्या) "अतति सर्वमित्यत्य" जो सर्वत्र परिपूर्ण हो उसका नाम अत्य है (हियानाः) प्रार्थना किया गया (हेतृभि) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियो के (न) समान (वाजसातये) धर्मयुद्धो में (असृग्रम्) हमारी रक्षा करे (विवारम्, आशव) जो शीघ्र ही अज्ञान को नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाला और (अव्यम्) सबका रक्षक है उसकी हम उपासना करते हैं ॥६॥

भावार्थ —जो पुरुष ज्ञान स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और एकमात्र उसी का भरोसा रखते हैं वे धर्मयुद्धों मे सदैव विजयी होते हैं ॥६॥

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः ।

दधन्विरे गभस्त्योः ॥७।

पदार्थः—(धेनवः) इन्द्रियां (न) जिस प्रकार (वत्सं) अपने प्रिय अर्थ की ओर जाती हैं उसी प्रकार (वाश्राः) जो वेदादि शास्त्रों की योनि है (इन्दवः) वह परमात्मा (अभ्यर्षन्ति) अपने उपासक की ओर जाता है (गभस्त्यो., वचस्विरे) और सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाता है ॥७॥

भावार्थ —उपासक पुरुष जब शुद्ध हृदय से ईश्वर की उपासना करता है तो ईश्वर का प्रकाश उसको आकर प्रकाशित करता है 'उपास्यतेऽनेनेत्युपासनम्' जिससे ईश्वर की समीपता लाभ की जाय उस कर्म का नाम उपासना कर्म है । समीपता के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा समीप होने के हैं इसलिए जब परमात्मा ज्ञान द्वारा समीप होता है तो उसका प्रकाश उपासक के हृदय को अवश्यमेव प्रकाशित करता है ॥७॥

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पर्वमानु कनिक्रदत् ।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

पदार्थ —(इन्द्राय) जो धर्मप्रिय विद्वानों का (जुष्ट) सगी है (मत्सर) जो न्याय रूपी मद से मत्त है वह (पवमान) सबको पवित्र करने वाला (कनिक्रदत्) सबको सदुपदेश दाता (विश्वा) सम्पूर्ण (अप, द्विष , जहि) जो हमारे राग द्वेषादि हैं उनका नाश करे ॥८॥

भावार्थ —जो लोग ईश्वरपरायण होकर अपनी जीवनयात्रा करते हैं परमात्मा उनके रागद्वेषादि भावों को निवृत्त करता है ॥८॥

अपघ्नन्तो अराव्णः पर्वमानाः स्वर्दृशः ।

योनावृतस्य सीदत ॥९॥२॥

पदार्थः—(अराव्णः) दुष्टों को (अपघ्नन्त) दारुण दण्ड देने वाला (पवमानाः) सत्कर्मियों को पवित्र करने वाला (स्वर्दृशः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (ऋतस्य) सत्कर्म रूपी यज्ञ की (योनौ) वेदी में (सीदत) आकर विराजमान हो ॥९॥

भावार्थ —कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के यज्ञों में परमात्मा अपने सद्भावों से आकर सदैव विराजमान होता है तात्पर्य यह है कि परमात्मा के भाव सत्कर्मों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं इसीलिए आकर विराजमा कथन किया गया है । वस्तुत परमात्मा सदैव कूटस्थ नित्य है ॥९॥

इति त्रयोदश सूक्त द्वितीयो वर्गश्च समाप्त ।

यह तरहवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त ।

अथाष्टर्चस्य चतुर्दश सूक्तस्य

१-८ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१-३, ५, ७ गायत्री । ४, ८ निचृद्गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथोक्तपरमात्मन अन्ये गुणा वर्ण्यन्ते ।

अब उक्त परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ।

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।

कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१॥

पदार्थ —(सिन्धो ऊर्मौ) जिसने समुद्र की लहरों को (अधिश्रित) निर्माण किया (कारम्, बिभ्रत्, पुरुस्पृहम्) जिसने सर्वजनों के मनोरथ रूप इस कार्य ब्रह्माण्ड को बनाया (कवि) वही परमात्मा (परि, प्रासिष्यदत्) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥१॥

भावार्थ —उस परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की रचनाए की हैं । कहीं महासागरों में अनन्त प्रकार की लहरें उठती हैं । कहीं हिमालय के उच्च शिखर नभोमण्डलवर्ती वायु से सघर्षण कर रहे हैं एव नाना प्रकार की रचनाओं का रचयिता वही परमात्मा है ॥१॥

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।

परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥२॥

पदार्थ —(पञ्च व्राता.) पांच ज्ञानेन्द्रिएं (सबन्धव.) कर्मेन्द्रियों के साथ (यदि, अपस्यवः) जब ईश्वर परायण हो जाती हैं तो (गिरा) परमात्मा की स्तुति से (धर्णसिम्) इस पृथिवी को (परिष्कृण्वन्ति) भूषित कर देती हैं ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी पुरुष जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों को हटा कर अपने पांचो ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर की ओर लगा देता है तो इस सम्पूर्ण ससार को अलंकृत करता है ॥२॥

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।

यदी गोभिर्वसायते ॥३॥

पदार्थ.— (यदि) अगर (विश्वेदेवा.) सम्पूर्ण विद्वान् (अस्य) पूर्वोक्त (शुष्मिणः) बल सम्पन्न परमात्मा को (गोभि , वसायते) इन्द्रियगोचर कर सकें (आत्) तदनन्तर वे सब देव (अमत्सत) उसको ध्यान का विषय बनाकर आनन्दित होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम्हारे इन्द्रिय तुमको स्वभाव से बहिर्मुख बनाते हैं । तुम यदि संयमी बन कर उनका संयम करो तो इन्द्रिय परमात्मा के स्वरूप को विषय करके तुम्हें आनन्दित करेंगे ॥३॥

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा ।

अत्रा सं जिघ्नते युजा ॥४॥

पदार्थ —उक्त परमात्मा (निरिणान.) ज्ञान का विषय होता हुआ (तान्वा) अपने प्रकाश से (शर्याणि) अपनी प्रकाश रश्मियों को छोड़ता हुआ (विधावति) जिज्ञासु के बुद्धिगत होता है (अत्र, युजा) उस परमात्मा में युक्त होकर (सं, जिघ्नते) उपासक लोग अज्ञान का नाश करते हैं ॥४॥

भावार्थ —ध्यान का विषय हुआ वह परमात्मा जिज्ञासुओं के अन्त करणों को निर्मल करता है और जिज्ञासुजन उसकी उपासना करते हुए अज्ञान का नाश कर परम गति को प्राप्त होते हैं ॥४॥

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।

गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥५॥३॥

पदार्थ —(य.) जो परमात्मा (विवस्वत) विज्ञान वाले जिज्ञासु की (नप्तीभि.) चित्त वृत्तियों द्वारा (शुभ्र.) प्रकाशित होकर (युवा) समीपस्थ वस्तु के (न) समान (मामृजे) साक्षात्कार को प्राप्त होता है और वह साक्षात्कार (गा कृण्वान) इन्द्रियों को प्रसन्न करते हुए (निर्णिज, न) रूप के समान होता है ॥५॥३॥

भावार्थ —जो पुरुष अपने मन को शुद्ध करते हैं व उस पुरुष का साक्षात्कार करते हैं उन पुरुषों की चित्तवृत्तियां उसको हस्तामलकवत् साक्षाद्रूप से अनुभव करती है, अर्थात् शुद्ध मन द्वारा साक्षात् किए हुए परमात्मध्यान में फिर किसी प्रकार का भी सशय व विपर्ययज्ञान नहीं होता ॥५॥३॥

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या ।

वग्नुमियर्ति यं विदे ॥६॥

पदार्थ —(अति, श्रिती) "श्रितिमतिक्रान्त अतिश्रिती" जो किसी अन्य वस्तु के आश्रित न हो उसका नाम अतिश्रिती अर्थात् सबका आश्रय परमात्मा (अण्व्या) सूक्ष्म (तिरश्चता) तीक्ष्ण (गव्या) इन्द्रियों की वृत्तियों से (जिगाति) प्रकाश को प्राप्त होता है (य) जिसको (वग्नुम) शब्द प्रमाण (विदे) जिज्ञासु के लिए (इयर्ति) प्रकट करता है ॥६॥

भावार्थ —जब धारणा ध्यानादि योगाङ्गों से चित्तवृत्तियां निर्मल होती हैं तो उक्त परमात्मा को विषय करती हैं । जो पुरुष शब्द प्रमाण पर विश्वास करते हैं वे साधन सम्पन्न वृत्तियों के द्वारा उसका अनुभव करते हैं अन्य नहीं ॥६॥

अभि क्षिपः सम॑ग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् ।

पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥७॥

पदार्थ —(क्षिप) चित्तवृत्तियां (अभि) सब ओर से (इषस्पतिम्) जो सब ऐश्वर्यों का पति है उसको (मर्जयन्ती) प्रकाशित करती हुई (समग्मत) समाधि अवस्था को प्राप्त होती हैं, और वहां (वाजिन) सब बलों के (पृष्ठा) अधिकरण को (गृभ्णत) ग्रहण करती हैं ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा सब पदार्थों का अधिकरण है अर्थात् उसी की सत्ता से सब पदार्थ स्थिर हो रहे हैं । उस बलस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार समाधि अवस्था के बिना कदापि नहीं हो सकता ॥७॥

परि दिव्यानि मर्मृशद्विश्वानि सोम पार्थिवा ।

वसूनि याह्यस्मयुः ॥८॥४॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (दिव्यानि) दिव्य (पार्थिवानि) पृथिवीलोक के (विश्वानि, वसूनि) सम्पूर्ण धनों को (मर्मृशत्) देते हुए (अस्मयुः) हमारे उद्धार की इच्छा करते हुए (परि, याहि) हमको प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ —पार्थिवानि यह कथन यहां उपलक्षण मात्र है अर्थात् पृथिवी लोक अथवा द्युलोक के जितने ऐश्वर्य हैं उनको परमात्मा हमें प्रदान करे । इस सूक्त में परमात्मा के सर्वाश्रयत्व और सर्वदातृत्वादि अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन किया है ॥८॥४॥

चतुर्दश सूक्तं चतुर्थो वर्गश्च समाप्त ।

यह चौदहवां सूक्त और चौथा वर्ग पूर्ण हुआ ।

अथाष्टर्चस्य पञ्चदश सूक्तस्य—

१—८ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३ ५, ८ निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्ज स्वरः ॥

अथ गुणान्तरं परमात्मनो महत्त्व वर्ण्यते ।

अब अन्य गुणों से परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं ।

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ — (एष) यह परमात्मा (धिया, अण्व्या) अपनी सूक्ष्म धारणशक्ति से (याति) सर्वत्र प्राप्त हो रहा है (रथेभि , आशुभि) अपनी शीघ्रगामिनी शक्तियों से (इन्द्रस्य, निष्कृत) जीवात्मा के उद्धार के लिये (शूरः) "शृणाति

हन्तीति शूर " अविद्यादि दोषों का हनन करने वाला (कर्म्मन्) जगद्रचनारूप कर्म करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा जीवों को कर्मों का फल भुगवाने के लिये इस संसार रूपी रचना को रचता है और वह अपनी विविध शक्तियों से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् जिस-जिस स्थान मे परमात्मा की व्यापकता है उस-उस स्थान मे परमात्मा अनन्त शक्तियों के साथ विराजमान है ॥१॥

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।

यत्रामृतास आसते ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (पुरु, धियायते) अनन्त विज्ञानों का दाता है (बृहते, देवतातये) सदैव ससार मे देवत्व फैलाने का अभिलाषी है (यत्र) जिस ब्रह्म को प्राप्त होकर (अमृतासः, आसते) अमृतभाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा अनन्तकर्मा है । उसकी शक्तियों के पारावार को कोई पा नहीं सकता । इसी अभिप्राय से कहा है कि उस परावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है उसी को जान कर मनुष्य अमृतपद को लाभ कर सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा ।

यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥३॥

पदार्थ—(यदि, भूर्णयः) यदि उपासक गण (तुञ्जन्ति) उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तो (शुभ्रावता) शुभ (पथा) मार्ग द्वारा (एषः, हितः) उस हितकारक परमात्मा को (अन्तः, विनीयते) अन्त करण मे स्थिर करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो लोग यम नियमों का पालन करते हैं वे अपने अन्त करण मे परमात्मसत्ता का साक्षात्कार करते हैं और परम पद को लाभ करते हैं ॥३॥

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्योऽ३ वृषा ।

नृम्णा दधान ओजसा ॥४॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (शृङ्गाणि) सब ब्रह्माण्डो को (दोधुवत्) गतिशील करता है (शिशीते) सर्वव्यापक है (यूथ्यः) सबका पति है (वृषा) कामनाओं की वृष्टि करने वाला है (ओजसा) अपने पराक्रम से (नृम्णा) सब ऐश्वर्यों को (दधानः) धारण कर रहा है ॥४॥

भावार्थः—वही परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डो का चलाने वाला है, और उसी ने इन ब्रह्माण्डो मे विद्युत् आदि गुणो को उत्पन्न कर अनेक प्रकार के आकर्षण विकर्षण आदि गुणो को उत्पन्न किया है । एकमात्र उसकी उपासना करने से मनुष्य सद्गति को लाभ कर सकता है ॥४॥

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।

पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थ—(एषः, वाजी) अनन्तबलवाला यह पूर्वोक्त परमात्मा (रुक्मिभिः) दीप्तिमान् (शुभ्रेभिः) निर्मल (अंशुभिः) प्रकाशरूप शक्तियो से (ईयते) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील सब प्रकृतियो का (पतिः, भवन्) वह पति है ॥५॥

भावार्थ—प्रकृति परिणामिनी नित्य है परमात्मा की कृति अर्थात् यत्न से प्रकृति परिणामभावको धारण करती है उस से महत्तत्व और महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्र—इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है । इस अभिप्राय से उसको स्यन्दनशील अर्थात् बहनेवाली प्रकृतियो का अधिपति कथन किया गया है । उक्तप्रकार के गुणो वाला परमात्मा उस पुरुष के हृदय मे अपनी अनन्त शक्तियों का आविर्भाव करता है जो पुरुष अपनी अनन्य भक्ति से उसकी उपासना करता है ॥५॥

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।

अव शादेषु गच्छति ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पिब्दना) छीनने वाले (परुषा) कठोर राक्षसो को (अति, ययिवान्) अतिक्रमण करके (शादेषु) युद्धों मे भक्तो की (अवगच्छति) अनेक प्रकार मे ज्ञानादिको को देकर रक्षा करता है ॥६॥

भावार्थ—जो पुरुष अपने पवित्र भावो मे परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अवश्यमेव रक्षा करता है ॥६॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।

प्रचक्राणं महीरिषः ॥७॥

पदार्थ—(आयवः) मनुष्य (मर्ज्यं एतम्) ध्यान करने योग्य इस परमात्मा को (द्रोणेषु) अन्त करणो मे रख कर (उप, मृजन्ति) उपासना करते हैं, (प्रचक्राणं) जो परमात्मा (महीः, इषः) बड़े भारी अन्नादीश्वर्यों का दाता है ॥७॥

भावार्थ—उपासको को चाहिये कि वे उपासना-समय मे परमात्मा के विराट् स्वरूप का ध्यान करते हुए उसके गुणो द्वारा उसकी उपासना करें अर्थात् उसकी शक्तियों का अनुसंधान करते हुए उसके विराट् स्वरूप को भी अपनी बुद्धि में स्थिर करें ॥७॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।

स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥५॥

पदार्थ—(एतं, त्यम्, उ) उस सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा को (दश, क्षिपः) दश इन्द्रियाँ और (सप्त, धीतयः) सात धारणादिवृत्तियाँ (मृजन्ति) प्रकट करती हैं (स्वायुधं) जो स्वतन्त्रसत्तावाला है और (मदिन्तमम्) सबको आनन्द देने वाला है ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी स्वतन्त्रसत्ता मे विराजमान है । जब वह श्रेष्ठो का उद्धार और दुष्टो का दमन करता है तब उसे किसी शस्त्रादि साधन की आवश्यकता नहीं किन्तु उसका स्वरूप ही आयुध का काम करता है । इस प्रकार के स्वतन्त्र-सत्तासम्पन्न परमात्मा को हृदय मे धारण करने वाले अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥५॥

पञ्चदशसूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ।

पन्द्रहवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त ।

अथाष्टर्चस्य षोडशसूक्तस्य—

१–८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ८ निचृद्गायत्री ३—७ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ सात्त्विकभावोत्पादका रसा वर्ण्यन्ते—

अब सात्त्विकभाव को उत्पन्न करनेवाले रसो का वर्णन करते हैं—

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये ।

सर्गो न तक्त्येतशः ॥१॥

पदार्थः—(प्रसोतारः) हे जिज्ञासु जनो ! (ते) तुम्हारे (मदाय) आनन्द के लिये और (घृष्वये) शत्रुओं के नाश के लिये (ओण्योः) द्यावा पृथिवी के मध्य मे (रसम्) सौम्य स्वभाव का देने वाला रस (सर्गः) बनाया है जो (एतशः, न तक्ति) विद्युत् के समान तीक्ष्णता देने वाला है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम ऐसे रस का पान करो जिससे तुम मे बल उत्पन्न हो और शत्रुओं पर विजयी होने के लिये तुम सिंह के समान आक्रमण कर सको । यहाँ इस रस के अर्थ किसी रस विशेष के नहीं किन्तु आह्लादजनक रसमात्र के हैं ।

या यों कहो कि सौम्य स्वभाव उत्पन्न करने वाले रस के हैं इसलिये सोमरस भी कहा जा सकता है, और 'धात्वर्थ' भी इसका यह है कि 'रस आस्वादने रस्यते स्वाद्यते इति रसः' जो आनन्द से वा आनन्द के लिये आस्वादन किया जाय उसका नाम यहा रस है । इस प्रकरण मे यह शंका नहीं करनी चाहिये कि कहीं सोम के अर्थ रस के और कहीं सोम के अर्थ ईश्वर के ऐसा व्यत्यय क्यों ? ॥१॥

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा ।

गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२॥

पदार्थः—(दक्षस्य) चातुर्य का देने वाला (रथ्यम्) स्फूर्ति का देने वाला (अन्धसा, वसानम्) अन्नो से जिसकी उत्पत्ति है (गोषाम्) इन्द्रियों का (अण्वेषु) सूक्ष्मशक्तियो मे बल उत्पन्न करने वाला रस (क्रत्वा, सश्चिम) कर्मों के द्वारा हम प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थ—जीवो की प्रार्थना द्वारा ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम ऐसे रस की प्राप्ति की प्रार्थना करो जिससे तुम्हारा चातुर्य बढ़े, तुम्हारी स्फूर्ति बढ़े और तुम्हारी इन्द्रियों की शक्तियां बढ़ें और तुम ऐश्वर्यसम्पन्न होओ ॥२॥

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।

पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (पवित्रे) श्रेष्ठ लोगों के लिए (सोमं) सोम रस को उत्पन्न करो जो (अनप्तम्) क्रूर स्वभाव वालो के लिए अप्राप्य है और (अप्सु) जिसका सत्कार दूध मे किया जाता है और जो (दुष्टरम्) आसुरी सम्पत्ति वालो के लिए दुस्तर है (इन्द्राय) कर्मयोगी के (पातवे) पीने के लिए ऐसे रस का तुम पवित्र बनाओ ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम दैवी सम्पत्ति के देने वाले अर्थात् सौम्य स्वभाव के बनाने वाले सोम रस की प्रार्थना करो ताकि तुम कर्मयोगियों को कर्मों मे तत्पर करने के लिए पर्याप्त हो ।

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष अन्नादि औषधियों के रस का पान कर अपने कामो मे तत्पर होते हैं वे पूरे-पूरे कर्मयोगी बन सकते हैं और जो लोग मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं वह अपनी इन्द्रियों की शक्तियां नष्ट-भ्रष्ट करके स्वयं भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।

क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

पदार्थः—(चेतसा, प्र, पुनानस्य) चित्त को पवित्र करने वाले द्रव्य का जो (सोम) सोमरस है वह (पवित्रे, अर्षति) पवित्र लोगो मे ज्ञान को उत्पन्न करता है फिर वह मनुष्य (कृत्वा) शुभकर्मों को करके (सधस्थम्) सद्गति को (आसदत्) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—सोमरस, जो कि पवित्र और सुन्दर द्रव्यो से निकाला गया है अर्थात् जो स्वभाव को सौम्य बनाते हैं उनका रस मनुष्य मे शुभ बुद्धि को उत्पन्न करता है ॥४॥

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।

महे भराय कारिणः ॥५॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे शूरवीर , मैने (त्वा) तुम्हारे लिए (नमोभि) अन्नादि द्वारा (इन्दवः, सोमाः) परमैश्वर्य के देने वाले और सौम्यस्वभाव बनाने वाले सुन्दर रस (प्रासृक्षत) उत्पन्न किए हैं जो कि (कारिणे) कर्मयोगी पुरुष के लिए (महे, भराय) अत्यन्त पुष्टि करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीरो ! मैने तुम्हारे लिए अनन्त प्रकारके रसो को उत्पन्न किया है जिनका उपभोग करके तुम आह्लादित होकर अन्यायकारी शत्रुओं के विजय के लिए शक्तिसम्पन्न हो सकते हो ॥५॥

अब इस बात को कथन करते है कि किस प्रकार का शूरवीर युद्ध मे उपयुक्त हो सकता है ।

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६॥

पदार्थ —(अव्यये, रूपे) निराकार परमात्मा के स्वरूप के विश्वास से (पुनान) जिसने अपने आपको पवित्र किया है (विश्वा , श्रिय) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को (अभ्यर्षन्) धारण करता हुआ भी (न, गोषु, तिष्ठति) जो इन्द्रियो के वशीभूत नही होता वही (शूरः) वीर कहला सकता है ॥६॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो ! तुम सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को भोगते हुए भी इन्द्रियो के वशीभूत मत होओ क्योंकि इन्द्रियो के वशवर्ती लोग शूरवीरता के धर्म को कदापि धारण नहीं कर सकते । इसलिए शूरवीरो के लिए संयमी बनना अत्यावश्यक है ॥६॥

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।

वृथा पवित्रे अर्षति ॥७॥

पदार्थ —(पवित्रे) उस पात्र मे (पिप्युषी) तृप्ति करने वाली (वेधस सुतस्य, धारा) माता के दूध की या सोमादि रस की धारा (वृथा, अर्षति) वृथा ही गिरती है जो इन्द्रिय संयमी नहीं है जिस तरह (दिवः, न, सानु) अन्तरिक्ष से उन्नत शिखर पर मेघ की धारा गिर कर व्यर्थ ही हो जाती है ॥७॥

भावार्थः —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो ! तुम संयमी बनो इन्द्रियारामी मत बनो । इन्द्रियारामी पुरुषो मे जो सोमादि रसो की धाराएं पड़ती है वे मानो इस प्रकार पडती हैं जिस प्रकार चोटी के ऊपर पडता हुआ जल इधर-उधर बह जाता है और उसमें कोई विचित्र भाव उत्पन्न नही करता इसी प्रकार असंयमियो का दुग्धादि रसो का उपभोग करना है । यहां चोटी पर जल गिरने के दृष्टान्त से परमात्मा ने स्पष्ट रीति से बोधन कर दिया कि जो पुरुष वीर्य ही का संयम नही करते न वे धीर वीर बन सकते हैं न वे ज्ञानी विज्ञानी व ध्यानी बन सकते हैं । उक्त सब प्रकार की पदवियो के लिए मनुष्य का संयमी बनना अत्यन्त आवश्यक है ॥७॥

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।

अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! (त्वम्) आप (आयुषु) मनुष्यों में (विपश्चितं, तना) विद्वान् को भलीभांति (पुनानः) पवित्र करते हुए (अव्य) रक्षा के लिए (वारम्) उस वरणशील को (विधावसि) प्राप्त होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा को वरण करता है अर्थात् एकमात्र उसी पर विश्वास रख कर उसी को उपास्य देव ठहराता है उसकी परमात्मा अवश्यमेव रक्षा करता है, वार शब्द का अर्थ यहां यह है कि जो वरण करे वह वार है । इस मन्त्र मे सोम के अर्थ परमात्मा के हैं । तात्पर्य यह है कि उक्त परमात्मा की उपासना करने वाला पुरुष सदैव कृतकार्य होता है क्योंकि परमात्मा उसका रक्षक होता है इसलिए उपासक के लिए परमात्मपरायण होना आवश्यक है ॥८॥

षोडशं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ।

सोलहवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त ।

अथाष्टर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य—

१-८ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्दः— १, ३-८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ उपासकस्य हृदये परमात्मप्रकाशः कथ्यते ।

अब उपासक के हृदय मे परमात्मा का प्रकाश कथन करते हैं ।

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।

सोमा असृग्रमाशवः ॥१॥

पदार्थः—(सोमाः) उक्त सौम्य स्वभाव वाला परमात्मा (वृत्राणि, घ्नन्त) अज्ञानो का नाश करता हुआ "वृणोत्याच्छादयत्यात्मानमिति वृत्रमज्ञानम्" (भूर्णयः) शीघ्रगतिशील (आशव.) सर्वव्यापक "अश्नुते व्याप्नोति सर्वमित्याशु" (सिन्धव , प्रनिम्नेन, इव) नदियां जैसे शीघ्रगतिशील नीचे की ओर जाती हैं उसी प्रकार वह (असृग्रम्) भक्तों के हृदय मे प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थ - -जो लोग शुद्ध हृदय से उसकी उपासना करते हैं और यम नियमों द्वारा अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं उनके हृदय मे अतिशीघ्र परमात्मा का प्रकाश उत्पन्न होता है ॥१॥

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।

इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२॥

पदार्थ —(इन्दव.) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (सोमास) परमात्मा (अभि, सुवानास.) भक्तो से सेवन किया गया (इन्द्रम्) सेवक को ऐश्वर्य सम्पन्न करके (अक्षरन्) दयावृष्टि से आर्द्र करता है जिस प्रकार (वृष्टय:, पृथिवीम्, इव) वृष्टियां पृथिवी को आर्द्र करती हैं इस प्रकार सबको आर्द्र करता है ॥२॥

भावार्थ —जिस प्रकार वर्षा काल की वृष्टि धरातल को सिक्त कर नाना प्रकार के अंकुर उत्पन्न करती है इसी प्रकार परमात्मा की कृपा दृष्टि उपासकों के हृदय मे नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञानादि भावो को उत्पन्न करती है ॥२॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३॥

पदार्थ —(अत्यूर्मि) विघ्न पैदा करने वाली सम्पूर्ण संसार की बाधाओ को अतिक्रमण करने वाला (मत्सर.) प्रभुता के अभिमान वाला (मदः) हर्षप्रद (सोमः) उक्त परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) दुराचारियो को नष्ट करता हुआ और (देवयुः) सत्कर्मियो को चाहता हुआ (पवित्रे अर्षति) जो कि उपासना द्वारा पात्रता को प्राप्त है, उसमे विराजमान होता है ॥३॥

भावार्थः—जिस पुरुष ने ज्ञानयोग और कर्मयोग द्वारा अपने आत्मा को संस्कृत किया है वह ईश्वर के ज्ञान का पात्र कहलाता है । उक्त पात्र के हृदय मे परमात्मा अपने ज्ञान को अवश्यमेव प्रकट करता है ॥३॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।

उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

पदार्थ —वह पूर्वोक्त परमात्मा (कलशेषु, आ, धावति) 'कल शब्दति इति कलश ' वेदादि वाक्यो मे भली भांति वाच्य रूप से विराजमान है (पवित्रे, परिषिच्यते) और पात्र मे अभिषेक को प्राप्त होता है और (उक्थैः , यज्ञेषु, वर्धते) स्तुति द्वारा यज्ञो में प्रकाशित किया जाता है ॥४॥

भावार्थ. –जब वेदवेत्ता लोग मधुर ध्वनि से यज्ञो मे उक्त परमात्मा का स्तवन करते हैं तो मानो उसका साक्षात् रूप भान होने लगता है ॥४॥

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् ।

इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥५॥

पदार्थ – (सोम) हे परमात्मन् ! (त्री, रोचना, अति) आप तीनो लोको को अतिक्रमण करके (रोहन्, न) सर्वोपरि विराजमान होकर (दिवं, भ्राजसे) द्युलोक को प्रकाशित करते है (न) और (इष्णन्) सर्वत्र गतिशील होकर (सूर्यम्, चोदय) सूर्य की भी प्रेरणा करते हैं ॥५॥

भावार्थ.—परमात्मा की सत्ता से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनो लोक स्थिर हैं और उसी की सत्ता मे सूर्य चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थ स्थिर हैं । अर्थात् उसी के नियम मे विराजमान हैं ॥५॥

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः ।

दधाना चक्षसि प्रियम् ॥६॥

पदार्थ —(कारव) कर्मकाण्डी और (चक्षसि, प्रियं, दधाना) उस सर्वद्रष्टा परमेश्वर मे प्रेम को धारण करते हुए (विप्राः) विद्वान् लोग (यज्ञस्य, मूर्धनि) यज्ञ के प्रारम्भ मे (अभ्यनूषत) उस परमात्मा की भलीभांति स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थ —यज्ञ के प्रारम्भ मे उद्गाता आदि लोग पहले परमात्मा के महत्त्व का गायन करके फिर यज्ञ के अन्य कर्मों का आरम्भ करते हैं ॥६॥

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।

मृजन्ति देवतातये ॥७॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (अवस्यव) रक्षा चाहने वाले (विप्रा. नर) विद्वान् लोग (देवतातये) यज्ञ के लिए (तम्, उ) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट (वाजिनम्)

अन्नादि ऐश्वर्य के देने वाले (त्वा) आपको (धीभिः) अपनी बुद्धि से (मृजन्ति) बुद्धि की वृत्ति का विषय करते हैं ॥७॥

भावार्थ—याज्ञिक लोग जब 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्' इत्यादि मन्त्रों का पाठ करते हैं केवल पाठ ही नहीं किन्तु उसके व्याख्यार्थ पर दृष्टि देकर तत्त्व का अनुशीलन करते हैं तब परमात्मा का साक्षात्कार होता है । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'धीभिः त्वामृजन्ति' अर्थात् बुद्धि द्वारा तुम्हारा परिशीलन करते हैं ॥७॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।

चारुर्ऋताय पीतये ॥८॥७॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमारे इस यज्ञ में (मधो धाराम, अनुक्षर) प्रेम की धारा बहाइये (तीव्र) आप गतिशील हैं और (चारु) सुन्दर हैं (ऋताय, पीतये) सत्य की प्राप्ति के लिए (सधस्थम्, आसद) यज्ञ में स्थित हुए हमको स्वीकार करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मों में स्थिर हैं और सत्कर्मों के प्रचार के लिए यज्ञादि कर्म करते हैं उनके उत्साह को परमात्मा अवश्यमेव बढ़ाता है ॥८॥७॥

इति सप्तदशं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ॥

सत्रहवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ४ निचृद्गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री ३, ५, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अथ विभूतिमत्सु वस्तुषु परमात्मनो महत्त्वं कथ्यते—

अब विभूति वाली वस्तुओं में परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं—

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।

मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

पदार्थ—वह आप (परि सुवान) 'परि सर्वं सूत इति परि सुवान' सर्वोत्पादक हैं (गिरिष्ठा) 'गृणाति शब्दं करोतीति गिरि' आप विद्युदादि पदार्थों में स्थित हैं (पवित्रे) पवित्र पदार्थों में स्थित हैं (सोम) सौम्य स्वभाव वाले हैं (अक्षाः) 'अक्षति व्याप्नोति सर्वमित्यक्षा' और सर्वव्यापक हैं, (मदेषु) और हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (असि) हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा विद्युदादि सब शक्तियों में विराजमान है क्योंकि वह सर्वव्यापक है और जो-जो विभूति वाली वस्तु है उनमें सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाला परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यापक रूप से परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि विभूति वाली वस्तुओं में उसकी अभिव्यक्ति विशेष रूप से पाई जाती है । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'मदेषु सर्वधा असि' ॥१॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।

मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वं, विप्र) 'विप्राति क्षिप्नोतीति विप्र' आप सबके प्रेरक हैं और (त्वं, कवि) "कवते जानाति सर्वमिति कवि" आप सर्वज्ञ हैं (मधु, प्रजातम्, अन्धस) और अन्नादिकों में रस आप ही ने उत्पन्न किया है और (मदेषु) हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा धारण कराने वाले (असि) आप ही हैं ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा ने अपनी विचित्र शक्तियों से नानाविध रस उत्पन्न किये हैं, और नाना प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न किये हैं । वस्तुतः परमात्मा ही सब ऐश्वर्यों का अधिष्ठान और सब रसों की खान है ॥२॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।

मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तव, पीतिम्) आपकी तृप्ति को (सजोषस) परस्पर प्रेम करने वाले (विश्वे, देवास) सब विज्ञानी लोग (आशत) पाते हैं (मदेषु) हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (असि) आप ही हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा के आनन्द को विज्ञानी लोग ही वस्तुतः पा सकते हैं अन्य नहीं । कारण यह कि विविध प्रकार के ज्ञान के बिना उसका आनन्द मिलना अति कठिन है ॥३॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे ।

मदेषु सर्वधा असि ॥४॥

पदार्थः—(य) जो परमात्मा (विश्वानि) सब (वार्या) 'वरीतुं योग्यानि वार्याणि' प्रार्थनीय (वसूनि) धन रत्नादिकों को (हस्तयो आदधे) विज्ञानी लोगों के हस्तगत कर देता है वही (मदेषु) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है ॥४॥

भावार्थ—जो सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने हस्तगत करना चाहते हो तो ईश्वर के उपासक बनो ॥४॥

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते ।

मदेषु सर्वधा असि ॥५॥

पदार्थ—(य) जो परमेश्वर (मातरा, इव) जीवों की माता के समान (इमे, मही, रोदसी) इस महान् आकाश और पृथिवी लोक से (सं, दोहते) दूध के समान नाना प्रकार के धन रत्नादिकों को दुहता है (मदेषु) वही परमात्मा हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है ॥५॥

भावार्थ—माता शब्द यहां उपलक्षणमात्र है । वास्तव में भाव यह है कि जीवों के माता-पिता के समान जो पृथिवीलोक और द्युलोक हैं उनसे नानाविध भोग पैदा करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥५॥

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।

मदेषु सर्वधा असि ॥६॥

पदार्थ—(य) जो परमात्मा (उभे, रोदसी) पृथिवी और आकाश इन दोनों लोकों में (वाजेभि, पर्यर्षति) ऐश्वर्यों के सहित व्याप्त है वही (मदेषु) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) है ॥६॥

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा के ऐश्वर्य से कोई स्थान भी खाली नहीं तथापि प्राकृत ऐश्वर्यों का स्थान जैसा द्युलोक और पृथिवी लोक है ऐसा अन्य नहीं । इसी भाव से इन दोनों का वर्णन विशेष रीति से किया है ॥६॥

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।

मदेषु सर्वधा असि ॥७॥८॥

पदार्थः—(शुष्मी) ओजस्वी और (पुनान) सबको पवित्र करने वाला (स) वह परमात्मा (कलशेषु) "कल शब्दन्ति इति कलशा वैदिकशब्दा" वैदिक शब्दों में (अचिक्रदत्) बोलता है (मदेषु) और हर्षयुक्त वस्तुओं में (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (असि) वही है ॥७॥

भावार्थ—जिस प्रकार परमात्मा के अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक मूर्धस्थानी रूपकालङ्कार से माने गए हैं इसी प्रकार उसके शब्दों की भी रूपकालङ्कार से कल्पना की गई है । वास्तव में वह परमात्मा 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' कि वह शब्दस्पर्शादि गुणों से रहित है और अव्यय -अविनाशी है इत्यादि वाक्यों द्वारा शब्दादि गुणों से सर्वथा रहित वर्णन किया गया है ॥७॥८॥

अष्टादशं सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्तः ।

अठारहवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त ॥

अथैकोनविंशतितमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मन ऐश्वर्यं प्रार्थ्यते :—

अब परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं —

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।

तन्नः पुनान आ भर ॥१॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (यत्) जो (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (दिव्यम्) द्युलोक सम्बन्धी तथा (पार्थिवं) पृथिवीसम्बन्धी (वसु) धन रत्नादि ऐश्वर्य है (तत्) उससे (न) हमें (पुनान) पवित्र करते हुए (आभर) परिपूर्ण होने की शिक्षा दीजिये ॥१॥

भावार्थ—इसमें परमात्मा से विविध धनादि ऐश्वर्य पाने के लिए शिक्षा की प्रार्थना है ॥१॥

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।

ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् आप (च) और (इन्द्र) अध्यापक (युवम्, हि) ये दोनों (स्वर्पती) सुख के पति (स्थः) हैं और (गोपती) वाणियों के पति हैं और (ईशाना) शिक्षा देने में समर्थ हैं । (धियः, पिप्यतं) आप दोनों हमारी बुद्धि को उपदेश द्वारा बढ़ाइये ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों को प्रार्थना द्वारा यह शिक्षा दी है कि तुम अपने अध्यापकों से और ईश्वर से सदैव शुभशिक्षा की प्रार्थना किया करो ॥२॥

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।

हरिः सन्योनिमासदत् ॥३॥

पदार्थः—(वृषा) सब कामनाओं का देनेवाला (आयुषु, पुनानः) सब मनुष्यों को पवित्र करता हुआ (अधि, बर्हिषि, स्तनयन्) प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि-कारणों को उत्पन्न करता हुआ वह परमेश्वर (हरिः, सद्म) अज्ञानादिकों का नाश करता हुआ (योनिम्, आसदत्) प्रकृतिरूप योनि को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा जब प्रकृति के साथ मिलता है अर्थात् अपनी कृति से प्रकृति में नाना प्रकार की चेष्टायें उत्पन्न करता है तो प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कार्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् सूक्ष्म भूतों के कारण उत्पन्न होते हैं, इस कार्यावस्था में प्रकृतिरूप योनि अर्थात् उपादान कारण का परमात्मा आश्रयण करता है ॥३॥

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।

सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥४॥

पदार्थः—(धीतयः) सात प्रकृतियां (वृषभस्य) सब कामप्रद परमात्मा के (अधिरेतसि) कार्य में (अवावशन्त) सङ्गत होती हैं (सूनोः, वत्सस्य) जैसे वत्स के लिये (मातरः) गाय सगत होती है ॥४॥

भावार्थः—गौ अपने बच्चे को दुग्ध पिला कर जिस प्रकार परिपुष्ट करती है इसी प्रकार प्रकृति अपने इस कार्यरूप ब्रह्माण्ड को अपने परमाण्वादि दुग्धों द्वारा परिपुष्ट करती है, तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है परमात्मा निमित्त कारण है और यह संसार वत्ससमान प्रकृति और वृषभरूपी पुरुष का कार्य है ॥४॥

कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।

याः शुक्रं दुहते पयः ॥५॥

पदार्थः—(पुनानः) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा ने (वृषण्यन्तीभ्यः) प्रकृतियों से (कुवित्, गर्भम्) बहुत से गर्भ का (आदधत्) धारण किया (याः) जो प्रकृतियें (शुक्रं, पयः) सूक्ष्म भूतों से कार्यरूप ब्रह्माण्ड को (दुहते) दुहती हैं ॥५॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जलादि सूक्ष्म भूतों से यह ब्रह्माण्ड स्थूलावस्था में आता है पञ्च तन्मात्रा के कार्य जो पांच सूक्ष्म भूत उन्हीं का कार्य यह सब संसार है, जैसा कि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी' तै० २।१॥ इत्यादि वाक्यों में निरूपण किया है कि परमात्मारूपी निमित्त कारण से प्रथम आकाशरूप तत्त्व का आविर्भाव हुआ जो एक अतिसूक्ष्मतत्त्व, और जिसका गुण शब्द है, फिर उससे वायु और वायु के संघर्षण से अग्नि और अग्नि से फिर जल आविर्भाव में अर्थात् स्थूलावस्था में आया । उसके अनन्तर पृथिवी ने स्थूल रूप को धारण किया यह कार्यक्रम है जिसको उक्त मन्त्र ने वर्णन किया है ॥५॥

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु ।

पवमान विदा रयिम् ॥६॥

पदार्थः—(पवमान) 'पवत इति पवमानः सम्बुद्धौ तु पवमान' हे सबको पवित्र करने वाले भगवन् ! आप (अपतस्थुषः, उपशिक्ष) जो आपके समीप में रहने वाले हैं उनको शिक्षा दीजिये और (शत्रुषु भियसम्, आधेहि) शत्रुओं में भय उत्पन्न करिये तथा (विदा, रयिम्) उनके धन को अपहरण कर लीजिये ॥६॥

भावार्थः—मित्रदल से तात्पर्य यहां उस दल का है जो न्यायकारी और दोनों पर दया और प्रेम करने वाला हो । शत्रुदल से तात्पर्य उस दल का है जो "शातयतीति शत्रुः" शुभगुणों का नाश करने वाला हो । इसलिये उक्त मन्त्रार्थ में अन्याय का दोष नहीं, क्योंकि न्याय यही चाहता है कि दैवी सम्पत्ति के रखने वाले वृद्धि को प्राप्त हों और आसुरी सम्पत्ति के रखने वाले नाश को प्राप्त हों ॥६॥

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर ।

दूरे वा सतो अन्ति वा ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्, (शत्रोः) शत्रु के (वृष्ण्य) बल को (नितिर) नाश करिये और (नि, शुष्मम्) तेज को तथा (वय, नि) अन्नादि ऐश्वर्य को नाश करिये जो शत्रु (दूरे सतः) दूर में विद्यमान है (वा, अन्ति) या समीप में ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों के भावद्वारा अन्यायकारी शत्रुओं के नाश करने का उपदेश किया है । जिस देश में अन्यायकारियों के नाश करने का भाव नहीं रहता वह देश कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकता ॥७॥

एकोनविंशतितमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ।
उन्नीसवां सूक्त और नवम वर्ग समाप्त ।

अथ सप्तर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य—

१—७ *असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥*

अस्मिन्सूक्ते वेदवित्सु बलप्रदानं कथ्यते :—

इस सूक्त में वेदवेत्ताओं में बल प्रदान का कथन करते हैं :—

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।

साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

पदार्थः—वह परमात्मा (कविः) मेधावी है और (अव्यः) सबका रक्षक है (देववीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (अर्षति) ज्ञान देता है (साह्वान्) सहनशील है (विश्वाः, स्पृधः) सम्पूर्ण दुष्टों को संग्रामों में (अभि) तिरस्कृत करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विद्वानों को ज्ञानप्रदान से और न्यायकारी सैनिकों को बलप्रदान से तृप्त करता है ॥१॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।

पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

पदार्थः—(सः, हि, ष्म) वही (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (जरितृभ्य) अपने बलहीन उपासकों का (आ) भली प्रकार (सहस्रिणम्) हजारों प्रकार के (गोमन्तम्) बुद्धि के सहित (वाजम्) बलों को (इन्वति) देता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषों को अनन्त प्रकार का बल और बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।

स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (चेतसा) हमारे मन के अनुकूल (विश्वानि) आप सब प्रकार के धनों को (परिमृशसे) देते हो (मती, पवसे) हमारी बुद्धि को स्तुतियों से पवित्र करते हो (सः, नः) सो आप हमारे लिये (श्रवः, विदः) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को दीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मपरायण पुरुषों की परमात्मा सब प्रकार से रक्षा करता है और उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।

इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (मघवद्भ्यः) जो आपके उपासक धनादि ऐश्वर्यसम्पन्न हैं उनके (रयिं, ध्रुवम्) धन को अचल सुरक्षित कीजिये और (बृहत्, यशः) अत्यन्तयश को (अभ्यर्ष) दीजिये और (इषं, स्तोतृभ्यः, आभर) जो आप के स्तोता हैं उनके लिये धनादि ऐश्वर्य दीजिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सदाचारी और संयमी पुरुषों के धनादि ऐश्वर्य्य और यश को दृढ़ करता है ॥४॥

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।

पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं राजा इव) आप राजा की तरह (सुव्रतः) सुकर्मा हैं और (गिरः, आविवेशिथ) वेद वाणियों में प्रविष्ट हैं (पुनानः) सबको पवित्र करने वाले हैं और (वह्ने) हे सबके प्रेरक ! आप (अद्भुत) नित्य नूतन हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सब नियमों का नियन्ता है, नियम पालने की शक्ति मनुष्यों में उसी की कृपा से आती है ॥५॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।

सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

पदार्थः—(सः, सोमः) वह परमात्मा (अप्सु) लोक लोकान्तर में विद्यमान है और (वह्निः) सबका प्रेरक है और (दुष्टरः) दुराधर्ष है (गभस्त्योः) अपने प्रकाश से (मृज्यमानः) स्वयं प्रकाशित है (चमूषु, सीदति) न्यायकारियों की सेना में स्वयं विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा के भाव सर्वत्र भावित हैं तथापि जैसे न्यायकारी सम्राजों की सेनाओं में उनके रौद्र, वीर, भयानकादि भाव प्रस्फुटित होते हैं ऐसे अन्यत्र नहीं ॥६॥

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (क्रीळुः) आप क्रीडनशील हैं (मखः, न, मंहयुः) यज्ञ के समान दानी हो (पवित्रं, गच्छसि) पवित्र सत्कर्मी मनुष्य को प्राप्त होते हो (स्तोत्रे, सुवीर्यं, दधत्) वेदादिसच्छास्त्रों में अपना बल प्रदान करते हो ॥७॥

भावार्थः—संसार की यह विविध प्रकार की रचना, जिसके पारावार को मनुष्य मन से भी नहीं पा सकता, वह परमात्मा के आगे एक लीलामात्र है ॥७॥

विंशतितमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ।
बीसवां सूक्त और दसवां वर्ग समाप्त ॥

अथ सप्तर्चस्यैकविंशस्य सूक्तस्य—

१—७ *असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् गायत्री २, ७ गायत्री । ४-६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥*

अथ विराट् परमात्मनोरूपेण वर्ण्यते—
अब विराट को परमात्मा के स्वरूप से वर्णन करते हैं—

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।

मत्सरासः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(**एते, सोमा.**) हे परमात्मन्, आप (**धावन्ति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, (**इन्दव**) स्वप्रकाश से प्रकाशित है, (**इन्द्राय, घृष्वय**) विद्वानो द्वारा स्तुत्य हैं, (**मत्सरास**) प्रभुता के अभिमान से मुक्त हैं और (**स्वर्विद.**) सुख के देने वाले हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा स्वयप्रकाश और अपने प्रभुत्वभाव से सर्वत्रैव विराजमान है ॥१॥

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः ।

स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥२॥

पदार्थ.—(**प्रवृण्वन्त**) जो लोगो से भजन किया जाता, (**अभियुज**) जो दूसरो का प्रेरक, (**सुष्वये**) सेवक के लिये (**वरिवोविद**) धन देने वाला, (**स्वय**) स्वसत्ता से विराजमान (**स्तोत्रे वयस्कृत**) और स्तोता के लिये अन्नादिको को देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जिन लोगो को परमात्मा की विविध प्रकार की रचना पर विश्वास है आप परमात्मा की अनन्य भक्ति करते हैं उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३॥

पदार्थ—उक्त परमात्मा मे विविध प्रकार के सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह (**सिन्धो, ऊर्मा**) जिस तरह सिन्धु मे से लहरें उठती हैं इस प्रकार इसी मे पैदा होकर इसी मे समा जाते हैं वे ग्रह उपग्रह कैसे है (**वृथा, क्रीळन्त**) जो अनायास से भ्रमण करते हैं (**इन्दव**) जिस तरह प्रकाशरूप अग्नियें (सधस्थम्) अन्तरिक्ष मे आके प्राप्त होती हैं इस प्रकार (**अभि, एकमित्**) वह एक ही परमात्मा मे प्राप्त होते है "गति गच्छन्तीतिद्रुत्" ॥३॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो मे जितने ग्रह, उपग्रह हैं वे सब परमात्मा को ही आश्रित करते हैं ॥३॥

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत ।

हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

पदार्थ—जिस प्रकार (**सप्तय**) सात सूर्य की किरणें (**रथे**) इस विराट् रूपी रथ मे (**हिता**) निहित हैं (**न**) इसी प्रकार (**एते, पवमानास**) सब को पवित्र करते हुए ये (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्या**) ब्रह्माण्ड (**आशत**) परमात्मा मे निवास करते हैं ॥४॥

भावार्थ जिस प्रकार उपग्रह सूर्य आदि ग्रहो के अन्तर्गत भ्रमण करते हैं इसी प्रकार सब लोक, लोकान्तर इस विराट् के अन्तर्गत परिभ्रमण करते हैं ॥४॥

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।

यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

पदार्थ (**अस्मिन्**) इस विराट् मे (**पिशङ्गम**) अनेक वर्णों को (**दधाता**) धारण करते हुए (**इन्दव**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (**वेनम्, आदिश**) उस परमात्मा का आश्रय लेते हैं (**य**) जो परमात्मा (**अस्मभ्यम अरावा**) हमारे लिये सब कामनाओ का देने वाला है ॥५॥

भावार्थ उक्त कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसी निरपेक्ष परमात्मा के आधार पर स्थित हैं ॥५॥

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे ।

शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६॥

पदार्थ (**शुक्रा**) हे पवित्रकारक परमात्मन् ! आप (**रथ्यम नवम**) नये घोडे को (**दधाता**) वश मे रखते हुए (**ऋभुन**) सारथी की तरह (**केतम, आदिश**) आप सबको वश मे करके ज्ञानादि ऐश्वर्य देते हैं (**अर्णसा**) आप हमको धनाद्यैश्वर्य देकर (**पवध्व**) पवित्र करिये ॥६॥

भावार्थ जीव करने मे स्वतन्त्र और भोगने मे परतन्त्र है । ईश्वर कर्मों के भोगने मे उसे ऐसे नियमो मे नियन्त्रित करता है जिसका वह अतिक्रमण कदापि नहीं कर सकता । बडे-बडे सम्राटो को भी कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पडता है । इसी अभिप्राय से यह कहा है कि जिस प्रकार घोडे को सारथी अपने अधीन रखता है इसी प्रकार परमात्मा जीवो को अपने अधीन रखता है ॥६॥

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत ।

सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥७॥

पदार्थ—(**वाजिन**) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाला (**त्ये, एते, उ**) वही पूर्वोक्त परमात्मा (**अवीवशन्**) सबको वश मे रखता हुआ (**सत, मतिम्**) सत्कर्मियो की बुद्धि को (**प्रासाविषु.**) शुभ मार्ग की ओर लगाता हुआ (**परम्, काष्ठाम्, अक्रत**) परम काष्ठा को प्राप्त कराता है ॥७॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की ओर झुकते हैं अर्थात् यमनियमादि साधन सम्पन्न होकर सयमी बनते हैं वे ब्रह्मविद्या की पराकाष्ठा को प्राप्त होते हैं इसी अभिप्राय से उपनिषदो मे यह कहा है कि 'सा काष्ठा सा परागति' ॥७॥

एकविंशतितमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्त. ।
इक्कीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त ।

अथ सप्तर्चस्य द्वाविंशस्य सूक्तस्य—

१—७ असित. काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥
छन्द *१, २ गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४—७ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥*

अथ परमात्मनो जगत कर्तृत्व वर्ण्यते—
अब परमात्मा की सृष्टिरचना का वर्णन करते हैं—

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।

सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥१॥

पदार्थ—(**एते, सोमास**) यह परमात्मा (**रथा, इव**) विद्युत् के समान (**आशव**) शीघ्रगामी है और (**प्र, वाजिन**) अत्यन्त बल वाला है (**सर्गा, सृष्टा, अहेषत**) उसने सृष्टियो को शब्दायमान रचा है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा मे अनन्त शक्तियां पायी जाती हैं उसकी शक्तियाँ विद्युत् के समान क्रियाप्रधान हैं उसने कोटानुकोटि ब्रह्माण्डो को रचा है, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाच तन्मात्राओ के कार्य हैं । और इनकी ऐसी अचिन्त्य रचना है जिसका अनुशीलन मनुष्य मन से भी भली भांति नहीं कर सकता ॥१॥

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।

अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥

पदार्थ—(**एते**) सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**उरव, वाता., इव**) बहुत सी वायु की तरह (**पर्जन्यस्य वृष्टय, इव**) और मेघ की वृष्टि के समान (**अग्ने, भ्रमा, इव**) अग्नि के प्रज्वलन की तरह (**वृथा**) अनायास गमन कर रहे हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार अग्नि की ज्वलनशक्ति स्वाभाविक है इसी प्रकार ये ब्रह्माण्ड भी स्वाभाविक गतिशील बनाए गये हैं । स्वाभाविक से तात्पर्य यहा आकस्मिक नहीं है किन्तु नियमपूर्वक भ्रमण का है । जैसे कि सूर्य चन्द्र आदि ईश्वरदत्त नियम से सदैव परिभ्रमण करते हैं ॥२॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।

विपा व्यानशुर्धियः ॥३॥

पदार्थ—(**पूता**) पवित्र (**एते, सोमास**) ये सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**दध्याशिर.**) सबके धारक आश्रयभूत (**विपा**) ज्ञानद्वारा (**विपश्चित**) विद्वानो की (**धिय**) बुद्धि का (**व्यानशु**) विषय होते हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा की रचना मे जो कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड हैं वे सब ज्ञानी विज्ञानियो के ही गम्य मे आ सकते हैं अन्यो के नहीं ॥३॥

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।

इयक्षन्तः पथो रजः ॥४॥

पदार्थ—(**मृष्टा**) भास्वरस्वरूप (**अमर्त्या**) नक्षत्रगण (**पथ, रज**) रजोगुण के मार्ग को (**इयक्षन्त**) प्राप्त होने वाले (**ससृवास**) चलते हुए (**न, शश्रमु**) विश्राम को नहीं पाते ॥४॥

भावार्थ—यो तो ससार मे दिव्यादिव्य अनेक प्रकार के नक्षत्र हैं पर जो दिव्य नक्षत्र हैं उनकी ज्योति प्रतिपल सहस्रो मील चलती हुई भी अभी तक इस भूगोल के साथ स्पर्श नहीं कर पायी । तात्पर्य यह है कि इस दिव्यरचनारूप ब्रह्माण्डो की इयत्ता को पाना परमात्मा का काम ही है, खद्योतकल्प क्षुद्र जीव केवल इनकी रचना को कुछ-कुछ अनुभव करता है सब नहीं । हा योगीजन जो परमात्मा के योग मे रत हैं वे लोग साधारणासाधारण लोगो से परमात्मा की रचना को अधिक अनुभव करते हैं ॥४॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।

उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

पदार्थ—(**एते**) ये सब नक्षत्रादि (**रोदसोः, पृष्ठानि**) पृथिवी और द्युलोक के मध्य मे (**विप्रयन्त**) चलते हुए (**इद, उत्तमम्, रज**) इस उत्तम रजोगुण को (**उत, व्यानशु**) व्याप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ—उक्त ब्रह्माण्डो की विविध रचना मे परमात्मा ने इस प्रकार का आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न किया है जिसमे एक दूसरे के आश्रित होकर वे प्रतिक्षण गतिशील बन रहे हैं । अथवा यो कहो कि सत्त्व, रज और तम प्रकृति के ये तीनो गुण अर्थात् प्रकृति की ये तीनों अवस्थायें जिस प्रकार एक दूसरे का आश्रयण करती हैं इस प्रकार एक दूसरे को आश्रयण करता हुआ प्रत्येक ब्रह्माण्ड इस नभोमण्डल मे वायुवेग से उत्तेजित तृण के समान प्रतिक्षण चल रहा है, कोई स्थिर नहीं ॥५॥

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।

उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६॥

पदार्थः—(प्रवत.) गतिशील ब्रह्माण्ड (उत्तम, तन्तुम्, तन्वानम्) उत्तम परमाणु प्रबन्ध को बढ़ाते हुए (इदम्) इतने (उत्तमाय्यम्) उत्तम कार्यों से (उत, अन्वाशत) व्याप्त हो रहे हैं ॥६॥

भावार्थ—प्रत्येक ब्रह्माण्ड माना तन्तुरूप से अर्थात् रचनारूप यज्ञ से परमात्मा की ससृति को बढ़ा रहा है ॥६॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ।

ततं तन्तुमचिक्रदः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वम्) आप (पणिभ्य) दुष्टो से (वसु, गव्यानि) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी रत्नो का (आ, धारय.) अच्छी प्रकार ग्रहण करते हो और (तत, तन्तुम्) बढे हुए कर्मात्मकयज्ञ का (अचिक्रदः) प्रचार करते हो ॥७॥

भावार्थ—इस सूक्त की समाप्ति करते हुए अर्थात् इस अगाध रचयिता की रचना का वर्णन करते हुए परमात्मा के रुद्ररूप का वर्णन करके इस सूक्त का उपसहार करते है 'रोदयति राक्षसानिति रुद्र.' जो अन्यायकारी राक्षसो को रुला दे उसका नाम यहाँ रुद्र है वह रुद्ररूप परमात्मा अन्यायकारी दुष्ट दस्युओ से धन जन और राज्यश्री का अपहरण कर लेता है और न्यायकारी दान्त शान्त देवताओ को लेकर प्रदान कर देता है, इसी का नाम देवासुर सग्राम है और इसी का नाम दैवी और आसुरी सम्पत्ति है । यह व्यवहार परमात्मा की विविध रचना मे घटीयत्र के समान सदैव होता रहता है जिस तरह घटीयत्र अर्थात रहट के पात्र जो कभी भरे हुए होते हैं वे ही ऊंचे चढ़ कर गर्व करते हुए सर्वथा रीते हो जाते है और जो रीते हो जाते हैं वे ही विनय और नम्रता करते हुए भर जाते हैं अर्थात् परिपूर्ण हो जाते है इसलिए सदैव परमात्मा की विनयभाव से पूर्ण होने की अभिलाषा प्रत्येक अभ्युदयाभिलाषी को करनी चाहिए ॥७॥

द्वाविंश सूक्त द्वादशो वर्गश्च समाप्त ।

बाईसवा सूक्त और बारहवा वर्ग समाप्त ।

अथ सप्तर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-७ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि. ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द — १-४, ६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथोक्तरचना प्रकारान्तरेण वर्ण्यते—

अब उक्त रचना को प्रकारान्तर से वर्णन करते है—

सोमा असुग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।

अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—(सोमा) "सूयन्ते - उत्पाद्यन्त इति सोमा· ब्रह्माण्डानि" अनन्त प्रकार के कार्यरूप ब्रह्माण्ड (मधो , मदस्य) प्रकृति के हर्षजनक भावो की (धारया) सूक्ष्म अवस्था से (आशव) शीघ्र गति वाले (असृग्रम्) बनाए गए है और (अभि, विश्वानि, काव्या) तदनन्तर सब प्रकार के वेदादि शास्त्रो की रचना हुई ॥१॥

भावार्थ परमात्मा ने प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डो को उत्पन्न किया और तदनन्तर उसने विधि-निषेधात्मक सब विद्याभण्डार वेदो को रचा ॥१॥

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।

रुचे जनन्त सूर्यम् ॥२॥

पदार्थ—उनमे (आयव) शीघ्रगामी प्रकृति परमाणु (प्रत्नास) जो स्वरूप से अनादि है वे (अनु, नवीय , पदम, अक्रमु) नवीन पद को धारण करते हैं (रुचे) दीप्ति के लिए परमात्मा ने उन्ही परमाणुओ मे से (सूर्यम, जनन्त) सूर्य को पैदा किया ॥२॥

भावार्थ—प्रकृति की विविध प्रकार की शक्तियो से परमात्मा सम्पूर्ण कार्यों को उत्पन्न करता है । इन सब कार्यों का उपादान कारण प्रकृति अनादि अनन्त है । इसी भाव से मन्त्रो मे 'प्रत्नास' पद से वर्णन किया है ॥२॥

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् ।

कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

पदार्थ. (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (न·) हमको (अर्य) जो भाव असुरो को (अदाशुष) नही दिये वह (गयम्) भाव (आ, भर) दे और (प्रजावती , इष) धन पुत्रादि ऐश्वर्यों को (कृधि) दे ॥३॥

भावार्थ.—इस मन्त्र मे (अर्य) परमात्मा का नाम है "ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोति इत्यर्य्यं परमात्मा" जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम अर्य है उस परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्, आप हमको दैवी सम्पत्ति के गुण दें अर्थात् हमको ऐसे पवित्र भाव दें जिससे हममें आसुर भाव कदापि न आवे । जो पुरुष सदैव देवताओ के गुणों से सम्पन्न होने की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हे सदैव दिव्य गुणों का दान देता है ॥३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थ—(सोमास) ये कार्य्य ब्रह्माण्ड जो (आयव) गतिशील हैं (मद्य , मदम्) अनन्त प्रकार के आह्लादकारक और मदकारक वस्तुओ को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते हैं और (मधुश्चुतम्) नाना प्रकार के रसो को देने वाले (कोशम्) खजाने को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते है ॥४॥

भावार्थ. सब विभूतियो की खानि ये ब्रह्माण्डो का वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि इस ससार मे नाना प्रकार की वस्तुएं जिन ब्रह्माण्डो मे उत्पन्न होती हैं उनको सोम नाम से कथन किया गया है ॥४॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् ।

सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

पदार्थ.—(सोमः) सब पदार्थो का उत्पत्तिस्थान यह ब्रह्माण्ड (अर्षति) गति कर रहा है (धर्णसि) सबके धारण करने वाला है और (इन्द्रिय, रसम्) इन्द्रियो के शब्द स्पर्शादि रसो को (दधान) धारण करता हुआ विराजमान है और उसका (सुवीर) सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा (अभि, शस्तिपा) सब ओर से रक्षक है ॥५॥

भावार्थ—जो ब्रह्माण्ड कोटि-कोटि नक्षत्रो को धारण किए हुए हैं और जिनमे नाना प्रकार के रस उत्पन्न होते है उनका जन्मदाता एकमात्र परमात्मा ही है अन्य कोई नही । इस मन्त्र मे ब्रह्माण्डाधिपति परमात्मा का वर्णन किया गया है और उसी की सत्ता के धारण किए हुए ब्रह्माण्डो का वर्णन है ॥५॥

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।

इन्दो वाजं सिषाससि ॥६॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्, (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये तुम (पवसे) पवित्रता देते हो और (देवेभ्य) विद्वान् लोगो के लिए तुम (सधमाद्य) यज्ञ मे सेवनीय हो और (इन्दो) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्, आप (वाज, सिषाससि) सबको अन्न दान देते हो ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ही कर्मयोगी को कर्मों मे लगने का बल देता है और परमात्मा ही सत्कर्मी पुरुषो को यज्ञ करने का सामर्थ्य प्रदान करता है । बहुत क्या परमात्मा ही अन्न धनादि सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्रदान करता है ॥६॥

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।

जघान जघनच्च नु ॥७॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द को (पीत्वा) पीकर जो (मदानाम्) सब प्रकार के मदो का तिरस्कार करके विराजमान है (इन्द्र) कर्मयोगी पुरुष (वृत्राणि) अज्ञानो का (अप्रति) प्रतिपक्षी बन कर (जघनच्च) नाश करता है (नु) निश्चय करके तुम उसी परमात्मा के आनन्द को पान करो ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! सब आनन्दो से बढ़कर ब्रह्मानन्द है । इस आनन्द के आगे सब प्रकार के मादक द्रव्य भी निरानन्द प्रतीत होते है । वास्तव मे मदकारक वस्तु मनुष्य की बुद्धि को नाश करके आनन्ददायक प्रतीत होती है और ब्रह्मानन्द का भान किसी प्रकार के मद को उत्पन्न नहीं करता किन्तु आह्लाद को उत्पन्न करता है । इसीलिए सब प्रकार के मद उसके सामने तुच्छ हो जाते है जिस प्रकार राजमद, धनमद, यौवनमद, रूपमद इत्यादि सब मद विद्यानन्द के आगे तुच्छ प्रतीत होते है इसी प्रकार विद्यानन्द योगानन्द इत्यादि आनन्द ब्रह्मानन्द के आगे सब फीके हो जाते है । इसी अभिप्राय से मन्त्र मे कहा है कि "मदानाम्" सब मदो मे से सच्चा मद एकमात्र परमात्मा का आनन्द है ॥७॥

इति त्रयोविंश सूक्त त्रयोदशो वर्गश्च समाप्त ॥

तेईसवा सूक्त और तेरहवा वर्ग समाप्त ।

अथ सप्तर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-७ असित काश्यपो देवलो वा ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द — १, २ गायत्री । ३, ५, ७ निचृद्गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्ज. स्वर ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।

श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥१॥

पदार्थ—(सोमास) सौम्य स्वभाव को उत्पन्न करने वाले परमात्मा के आह्लादादि गुण (पवमानास) जो मनुष्य को पवित्र कर देने वाले हैं (इन्दव) जो दीप्ति वाले हैं, जो कर्मयोगियो मे (प्र) प्रकर्षता से आनन्द (अधन्विषु) उत्पन्न करने वाले है (श्रीणाना·) सेवन किए हुए (अप्सु) शरीर मन और वाणी तीनों प्रकार के यज्ञो मे (मृञ्जत) शुद्धि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम परमात्मा के गुणो का चिन्तन करके अपने मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि करो । जिस प्रकार जल

शरीर की शुद्धि करता है और परमात्मोपासन मन की शुद्धि करता है और स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन वाणी की शुद्धि करता है इसी प्रकार परमात्मा के ब्रह्मचर्य्यादि गुण शरीर, मन और वाणी की शुद्धि करते हैं। 'ब्रह्म' नाम यहाँ वेद का है। वेद के निमित्त जो व्रत किया जाता है उसका नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। इस व्रत मे इन्द्रियो का संयम भी करना आवश्यक होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य्य के अर्थ जितेन्द्रियता भी है। मुख्य अर्थ इसके वेदाध्ययन व्रत के ही हैं। वेदाध्ययन व्रत इन्द्रियसंयम द्वारा शरीर की शुद्धि करता है, ज्ञान द्वारा मन की शुद्धि करता है और अध्ययन द्वारा वाणी की शुद्धि करता है इसी प्रकार परमात्मा के सत्य, ज्ञान और अनन्तादि गुण आह्लाद उत्पन्न करके मन वाणी तथा शरीर की शुद्धि के कारण होते हैं ॥१॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।

पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥

पदार्थ.—(**गावः**) इन्द्रियाँ (**अभि, अधन्विषु**) कर्मयोगियो मे (**आप, न**) जल के समान (**प्रवता**) वेग वाली होती हैं और (**यती**) वशीभूत होती है (**पुनाना**) वे वशीकृत इन्द्रियाँ मनुष्य को पवित्र करती हुई (**इन्द्रम, आशत**) परमात्मा को विषय करती है।

भावार्थ.—कर्मयोगी पुरुषो की इन्द्रिया परमात्मा का साक्षात्कार करती है। यहाँ साक्षात्कार से तात्पर्य्य यह है कि वे परमात्मा को विषय करती है। कर्मयोगी पुरुष की इन्द्रियें परमात्मा के साक्षातकार के सामर्थ्य को लाभ करती है ॥२॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे ।

नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

पदार्थ—(**प्र, पवमान**) हे परमात्मन् ! (**धन्वसि**) तुम सर्वत्र गतिशील हो और (**सोम, इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पातवे**) तृप्ति के लिए ही एकमात्र उपास्यदेव हो (**यत**) जिस लिए (**नृभि**) ऋत्विगादि लोगो के (**विनीयसे**) विनीतभाव से आप उन्हें प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ--परमात्मा उपदेश करते है कि जो पुरुष कर्मयोगी व ज्ञानयोगी है उनकी तृप्ति का कारण एकमात्र परमात्मा ही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार परमात्मा मे ज्ञान, बल, क्रिया इत्यादि धर्म स्वाभाविक पाये जाते हैं इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुष भी साधनसम्पन्न होकर उन धर्मों को धारण करते हैं ॥३॥

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे ।

सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**त्व**) तुम (**नृमादन**) मनुष्यो को आनन्द देने वाले हो (**चर्षणीसहे**) जो आपसे विमुख मनुष्य है उन पर भी कृपा करने वाले हो (**सस्नि**) शुद्ध स्वरूप हो (**अनुमाद्य**) सर्वथा स्तुति करने योग्य हो (**य**) जो इस प्रकार के गुणो का आधार सर्वोपरि देव आप हैं (**पवस्व**) आप हम पर कृपा करें ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा किसी से राग, द्वेष नही करते सबको स्वकर्मानुकूल फल देते हैं। अर्थात एकमात्र परमात्मा ही पक्षपात से शून्य होकर न्याय करते हैं। इसीलिए परमात्मा को यहा "चर्षणीसह" अर्थात् सब पर दया करने वाला कहा गया है ॥४॥

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**यत्**) जब तुम (**पवित्रम्**) पवित्र अन्त करणो मे (**परिधावसि**) निवास करते हो तब (**अद्रिभि, सुत**) अन्त करण की वृत्ति द्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (**इन्द्रस्य, धाम्ने**) कर्मयोगी पुरुष के अन्त करण रूपी धाम को (**अरम्**) अलङ्कृत करते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी व्यापकता से कर्मयोगी पुरुषो के अन्त करणो को अलङ्कृत करता है।

यद्यपि परमात्मा प्रत्येक पुरुष के अन्त करण को विभूषित करता है तथापि कर्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा जिन पुरुषों ने अपने अन्त करणों को निर्मल बनाया है उनके अन्त करण मे परमात्मा का प्रकाश विशेषरूप से प्रतीत होता है। इसीलिए योगियो के अन्त करणो का विशेष रूप से प्रकाशित होना कथन किया गया है ॥५॥

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पदार्थ.—(**वृत्रहन्तम**) हे अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मन् ! आप (**उक्थेभि**) यशो द्वारा (**अनुमाद्य**) मनुष्यों को आनन्द देते हैं (**शुचि.**) शुद्ध स्वरूप हैं (**पावक**) सबको पवित्र करने वाले है तथा (**अद्भुत**) आश्चर्यरूप हैं आप कृपा कर (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ही इस ससार मे आश्चर्यमय है अर्थात् अन्य सब वस्तुओ का पारावार मिल जाता है, एकमात्र परमात्मा ही ऐसा पदार्थ है जिसका पारावार नही। यद्यपि जिज्ञासु पुरुष उस पूर्ण को पूर्णरूप से नही जान सकता तथापि उसके ज्ञानमात्र से पुरुष आनन्द का अनुभव करता है। केवल एकमात्र परमात्मा ही आनन्दमय है अन्य सब उसी के आनन्द को लाभ करके आनन्द पाते है अन्यथा नहीं ॥६॥

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः ।

देवावीरघशंसहा ॥७॥

पदार्थ—वह परमात्मा (**शुचि**) शुद्ध स्वरूप है (**पावकः, उच्यते**) सब को पवित्र करने वाला कहा जाता है (**सोम**) "सूत चराचर य. स सोम" जो सब का उत्पादक हैं उसका नाम यहाँ सोम है (**सुतस्य**) इस कार्यमात्र ब्रह्माण्ड का (**मध्व**) अधिकरण है (**देवावी**) देवताओ का रक्षक है (**अघशंसहा**) पापो की स्तुति करने वाले पापमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषो का हनन करने वाला हैं ॥७॥

भावार्थ—जो लोग पापमय जीवन व्यतीत करते है परमात्मा उनकी वृद्धि कदापि नही करता। यद्यपि पापी पुरुष भी कही कही फलते-फूलते हुए देखे जाते हैं तथापि उनका परिणाम अच्छा कदापि नही होता। अन्त मे जिस ओर धर्म होता है उसी पक्ष की जय होती है इस तात्पर्य से मन्त्र मे यह कथन किया है कि परमात्मा पापी पुरुष और उनका अनुमोदन करने वाले दोनो का नाश करता है ॥७॥

इति चतुर्विंश सूक्त, चतुर्दशो वर्ग, प्रथमोऽनुवाकश्च समाप्तः ।

चौबीसवा सूक्त और चौदहवा वर्ग तथा पहिला अनुवाक समाप्त ।

अथ षड्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-६ दृढच्युत आगस्त्य ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता । छन्द —१, ३, ५, ६ गायत्री । २, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मा मुक्तिधामत्वेन वर्ण्यते —

मुक्ति का धाम एकमात्र परमात्मा है अब इस बात का वर्णन करते हैं—

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।

मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१॥

पदार्थ—(**हरे**) हे परमात्मन् ! सब दु:खो के हरने वाले जगदीश्वर ! आप (**वायवे**) कर्मयोगी पुरुष के लिए (**मद**) आनन्द स्वरूप हैं आप (**मरुद्भ्य**) और ज्ञानयोगियो के लिए भी आनन्द स्वरूप है आप (**देवेभ्य.**) उक्त विद्वानो की (**पीतये**) तृप्ति के लिए (**दक्षसाधन**) पर्याप्त साधनो वाले हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा के आनन्द का अनुभव केवल ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष ही कर सकते हैं अन्य नहीं। जो पुरुष अयोगी हैं अर्थात् जिस पुरुष का किसी तत्व के साथ योग नही वह कर्मयोगी व ज्ञानयोगी नही बन सकता ॥१॥

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् ।

धर्मणा वायुमा विश ॥२॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**धिया, हित**) बुद्धि से धारण किए हुए आप (**अभि, योनिम्**) हृदयरूपी स्थान मे (**कनिक्रदत्**) सदुपदेश करते हुए (**आविश**) प्रवेश कीजिये और (**धर्मणा**) अपने अपहतपाप्मादि धर्मों द्वारा (**वायुम्**) कर्मयोगी विद्वान् के हृदय में आकर प्रवेश करें ॥२॥

भावार्थ--परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग शुद्ध बुद्धि द्वारा परमात्मा की उपासना करते है उनके हृदय को परमात्मा सदैव शुद्ध करता है। तात्पर्य यह है कि अपहतपाप्मादि परमात्मा के गुणो को वही पुरुष धारण कर सकता है जो पुरुष योगसाधनादि द्वारा सस्कृत की हुई बुद्धि के साथ परमात्मा का ध्यान करता है। जब जिज्ञासु पुरुष उस स्वत प्रकाश ब्रह्म को अपने योगज सामर्थ्य से देखता है तो पुण्य पाप से छूटता है अर्थात् जिस प्रकार वह परमपुरुष निष्पाप है उसी प्रकार वह भी निष्पाप होकर उसके सत्यादि गुणो को धारण करता है। इसी का नाम मुक्ति है ॥२॥

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।

वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थ.—सर्व जगत् का उत्पादक वह परमात्मा (**देवैः**) दिव्य शक्तियो के द्वारा (**स, शोभते**) शोभा को प्राप्त हो रहा है (**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला है (**कवि**) सर्वज्ञ (**योनौ, अधि**) प्रकृति रूप योनि मे अधिष्ठित अर्थात् अधिष्ठान रूप से जो विराजमान है (**प्रियः**) वह सर्वप्रिय और (**वृत्रहा**) अज्ञान का नाश करने वाला (**देववीतम**) विद्वानो के हृदय में प्रकाश रूप से जो विराजमान है ॥३॥

भावार्थ.—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको साक्षात् करने वाले विद्वानो के हृदय मे विशेष रूप से विराजमान है। वह अज्ञान का नाश करने वाला है ॥३॥

मुक्तपुरुषा तस्य ब्रह्मण स्वरूपे निवसन्तीत्युच्यते :—

अब इस बात का कथन करते हैं कि मुक्त पुरुष उस ब्रह्म के स्वरूप मे निवास करते हैं —

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः ।

यत्रामृतास आसते ॥४॥

पदार्थ—(पुनान) सबको पवित्र करता हुआ (विश्वा, रूपाणि) सब रूपों मे (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (हर्यत.) अपनी कमनीयता से (याति) सर्वत्र प्राप्त है (यत्र) जिस ब्रह्मरूप मे (अमृतासः) मुक्ति पद को भोगते हुए (आसते) मुक्त पुरुष निवास करते हैं वह ब्रह्म सबको पवित्र करने वाला है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा प्रत्येक वस्तु के भीतर व्यापक है अर्थात् वह प्रत्येक रूप मे प्रविष्ट है अर्थात् उसी की सत्ता से उस रूप की मनोहरता है इस प्रकार का जो सर्वाधिकरण परमात्मा है उसी में मुक्त पुरुष जाकर निवास करते हैं ॥४॥

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् ।

इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५॥

पदार्थ—(अरुषः) प्रकाशमान परमात्मा (गिरः) वेदरूप वाणियों को (जनयन्) उत्पन्न करने वाला (सोम.) ससार के उत्पन्न करने वाला (इन्द्र) जीवात्मा को (आयुषक्) जो कि कर्मयोग मे लगा हुआ है (गच्छन्) प्राप्त होकर (पवते) पवित्र करता है (कविक्रतुः) वह परमात्मा सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थ—शुभाशुभ कर्मों द्वारा परमात्मा प्रत्येक जीव को प्राप्त है । अर्थात् उनको शुभाशुभ कर्मो के फल देता है । और वही परमात्मा वेदरूप वाणियो का प्रकाश करके पुरुषो को शुभाशुभ मार्ग दर्शाकर शुभ कर्मों की ओर प्रेरणा करता है ॥५॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥

पदार्थः—(अर्कस्य) ज्ञान रूप प्रकाश के (योनिं) स्थान की (आसदम्) प्राप्ति के लिए (मदिन्तम) हे आनन्दस्वरूप भगवन् आप (धारया) आनन्द की वृष्टि द्वारा (पवित्रं) हमको पवित्र करें (कवे) हे सर्वद्रष्ट, (आपवस्व) सब ओर से आप हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थ—जो लोग शुद्ध हृदय से परमात्मा की उपासना करते हैं उनके हृदय मे ज्ञान का प्रकाश अवश्यमेव होता है वे लोग सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥६॥

इति पञ्चविंशतितम सूक्त पञ्चदशो वर्गश्च समाप्त ।

२५वां सूक्त और १५वां वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य—

१-६ इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषि ॥ पवमान. सोमो देवता । छन्दः—१, ३-५ निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री ॥ षड्जः स्वर ॥

अथेश्वर केन प्रकारेण बुद्धिविषयो भवतीत्युच्यते—

ईश्वर किस प्रकार बुद्धिविषय होता है इस बात का उपदेश करते हैं—

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि ।

विप्रासो अण्व्या धिया ॥१॥

पदार्थ.—(विप्रासः) धारणा ध्यानादि साधनो से शुद्ध की हुई बुद्धि वाले लोग (अण्व्या) सूक्ष्म (धिया) बुद्धि द्वारा (अदितेरधि) सत्यादिक ज्योतियो के अधिकरण स्वरूप (त, वाजिनं) उस बलस्वरूप परमात्मा को (उपस्थे) अपने अन्त करण मे (अमृक्षन्त) शुद्ध ज्ञान का विषय करते हैं ॥१॥

भावार्थ—जिन लोगो ने निर्विकल्प, सविकल्प समाधियो द्वारा अपने चित्त-वृत्ति को स्थिर करके बुद्धि को परमात्मविषयिणी बनाया है, वे लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं । अर्थात् उसको आत्मसुख के समान अनुभव का विषय बना लेते हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अपने आनन्दादि गुण प्रतीत होते हैं इसी प्रकार योगी पुरुषों को परमात्मा के आनन्दादि गुणो की प्रतीति होती है ॥१॥

अथोक्त स्वरूपस्य साक्षात्काराय प्रकारान्तर कथ्यते—

अब उक्त स्वरूप के साक्षात्कार का अन्य प्रकार कथन करते हैं:—

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् ।

इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥२॥

पदार्थः—(गाव:) "गच्छन्ति विषयानिति गाव इन्द्रियाणि" इन्द्रियां (तम्) उस परमात्मा को (अभ्यनूषत) अपना विषय बनाती हैं, जो परमात्मा (सहस्रधारम्) अनेक वस्तुओं का धारण करने वाला, (अक्षितम्) अच्युत, (इन्दुम्) परमैश्वर्य सम्पन्न (दिव. आधर्तारम्) तथा द्युलोक पर्यन्त लोकों का धारण करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा द्युभ्वादि लोकों का आधार है और जिसमें अनन्त प्रकार की वस्तुए निवास करती हैं वह शुद्ध इन्द्रियो द्वारा साक्षात्कार किया जाता है ॥२॥

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि ।

धर्णसिं भूरिधायसम् ॥३॥

पदार्थ—(तम्, वेधां) उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मा को (मेधया, अह्यन्) विद्वान् लोग अपनी बुद्धि का विषय बनाते हैं जो (पवमानम्) सबको पवित्र करने वाला है और (अधि, द्यवि) जो द्युलोक मे अधिष्ठातारूप से स्थित है (धर्णसिम्) सबको धारण करने वाला तथा (भूरिधायसम्) अनेक वस्तुओ का रचयिता है ॥३॥

भावार्थ—उक्त परमात्मा जो सब लोक लोकान्तरों का आधार है उसको योगादि साधनों द्वारा सस्कृत बुद्धि से योगीजन विषय करते हैं । इस मन्त्र मे जो परमात्मा को वेधा अर्थात् "विधति लोकान् विदधातीति वा वेधा" विधाता रूप से वर्णन किया है । इसका तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब वस्तुओ का निर्माण करता है वस्तुत सब ब्रह्माण्डो का निर्माता एक परमात्मा ही है, कोई अन्य नही ॥३॥

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः ।

पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥४॥

पदार्थ—(वाचः पतिम्) जो ऋग्वेदादि वाणियो का पति परमात्मा है और (अदाभ्यम्) जो निष्कपट सेवन करने योग्य है (संवसानम्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो मे व्यापक है (तम्) उस परमात्मा को तथा (विवस्वत.) उस प्रकाश स्वरूप की (भुरिजो.) शक्तियो को विद्वान् लोग (धिया) अपनी बुद्धि से (अह्यन्) साक्षात्कार करते है ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकाश स्वरूप परमात्मा से ऋगादि चारो वेद उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ऋगादि वेद जिसकी वाणीरूप हैं वह परमात्मा योगीजनो के ध्यान गोचर हो कर उनको आनन्द प्रदान करता है ॥४॥

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥५॥

पदार्थ.—(जामय.) इन्द्रिय वृत्तियें (त) उस परमात्मा को (सानौ, अधि) उच्च से उच्च प्रदेश मे (अद्रिभिः) अपनी शक्तियो से (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं जो कि (हरिम्) भक्तो के दुःख को हरने वाला और (हर्यतम्) प्रलयादि परिणामो मे हेतुभूत तथा (भूरिचक्षसम्) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थ—उक्त परमात्मा ही जगत् के जन्मादिकों का हेतु है अर्थात् उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होता है । वह परमात्मा हिमालय के उच्च से उच्च प्रदेशो मे और सागर के गम्भीर से गम्भीर स्थानो मे विराजमान है । उस सर्वज्ञ का साक्षात्कार चित्तवृत्तिनिरोधरूपी योग द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा नही ॥५॥

तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् ।

इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥६॥१६॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (तम्, गिरावृधम्) उस पूर्वोक्त गुणसम्पन्न और वेदवाणियो से प्रकाशमान (त्वा) आप को (वेधस) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) साक्षात्कार करते हैं (इन्दो) हे परमैश्वर्य सम्पन्न भगवन् ! आप (इन्द्राय, मत्सरम्) अज्ञानी जीव के लिए अत्यन्त गूढ हो ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा के साक्षात्कार करने के लिये मनुष्य को संयमी होना आवश्यक है । जो पुरुष संयमी नही होता उसको परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नही होता । सयम मन, वाणी तथा शरीर तीनो का कहलाता है । मन के सयम का नाम शम और वाणी के सयम का नाम वाक्सयम, और इन्द्रियों को संयम का नाम दम है । इस प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियो को संयम मे रखता है तथा व्यर्थ बोलता नही किन्तु वाणी को संयम मे रखता है, वह पुरुष सयमी तथा दमी कहलाता है । उक्त मन्त्र मे परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रियारामी और अज्ञानी मत बनो किन्तु तुम विद्वान् बन कर सयमी बनो यही मनुष्य जन्म का फल है ॥६॥

इति षड्विंशतितम सूक्त षोडशो वर्गश्च समाप्त. ।

छब्बीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त ॥

अथ षडृचस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य ।

१—६ नृमेध ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द.—१,६ निचृद्गायत्री ३—५ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथोक्तपरमात्मनो विविधशक्तयो वर्ण्यन्ते—

अब उक्त परमात्मा की नाना शक्तियो को वर्णन करते है—

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।

पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

पदार्थ—(एष) यह परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है (अभिष्टुत) सबकी स्तुति के योग्य है (पवित्रे, अधि) अन्त करण के मध्य मे (तोशते) प्राप्त होता है (स्रिधः) दुराचारी शत्रुओ को (अप, घ्नन्) नाश करता हुआ (पुनान) सत्कर्मियो को पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा दुष्टो का दमन करके सदाचारियो को उन्नतिशील बनाता है । उसके पाने के लिये अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना चाहिये । जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र नहीं बनाते वे उसको कदापि उपलब्ध नहीं कर सकते ॥१॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

पदार्थ —(**एषः**) यह उक्त परमात्मा (**वायवे, इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये सुलभ होता है (**स्वर्जित्, परिषिच्यते**) जिन लोगों ने सुख को जीत लिया है उन लोगों से सत्कृत होता है और (**पवित्रे**) पवित्र अन्त करण मे (**दक्षसाधन**) सुनीति का देने वाला है ॥२॥

भावार्थ.—जो लोग परमात्मा पर दृढ विश्वास रखते हैं उनको परमात्मा सुनीति का दान देता है और वह परमात्मा जिन लोगो ने विषयजन्य सुख को जीत लिया है उन्ही की चित्तवृत्तियों का विषय होता है ।

वा यो कहो कि कर्मयोगी लोग अपने उग्र कर्मों द्वारा उसको उपलब्ध करके उसके भावो को प्राप्त होते हैं । जो लोग आलसी बनकर अपने जन्म को व्यथ व्यतीत करते है उनका उद्धार कदापि नही होता ॥२॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

पदार्थः—(**एष**) यह परमात्मा (**वनेषु, सोम**) प्रार्थनाओ मे सौम्य-स्वभाव वाला है (**दिव , मूर्धा**) और द्युलोक का मूर्धारूप है (**वृषा**) सब कामनाओ को देने वाला है (**सुत**) स्वयसिद्ध है (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है एवभूत परमात्मा (**नृभि , विनीयते**) मनुष्यो का उपास्य देव है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा को पालन करने वाले नम्र पुरुषो के लिये परमात्मा सौम्य स्वभाव है और जो उद्दण्ड अज्ञानकारी है उनके लिये परमात्मा उग्ररूप है । उक्त परमात्मा से सदैव अपने कल्याण की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

पदार्थ —(**अस्तृत , एष**) यह उक्त अविनाशी परमात्मा (**सत्राजित्**) सब प्रकार के शत्रुओ को जीतकर सदाचारियों को (**हिरण्ययुः**) धन देता है और (**पवमान**) पवित्र करता हुआ (**अचिक्रदत्**) निर्भयता का उपदेश करता है और वही परमात्मा (गव्यु) भूम्यादि धनो का दाता है (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप है ॥४॥

भावार्थ.— परमात्मा जिन लोगो पर प्रसन्न होता है उनको भूम्यादि धनो का स्वामी बनाता है और हिरण्यादि ऐश्वर्यों का स्वामी बना कर उनसे शत्रुओ को परास्त कराता है ॥४॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पदार्थ — (**एष**) यह परमात्मा (**सूर्येण, हासते**) सूर्य को भी अपने तेज से तिरस्कृत करता है (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाला है (**अधि, द्यवि**) और द्युलोकादि सम्पूर्ण लोको मे विराजमान है (**पवित्रे, मत्सर , मद**) पवित्र अन्त करण वाले पुरुषो को अपने आनन्द से आनन्दित करता है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा की सत्ता से ही सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते है और वही परमात्मा सब लोक-लोकान्तरो का अधिष्ठाता है, उसी मे चित्तवृत्ति लगाने से पुरुष आनन्दित होता है अन्यथा नही ॥५॥

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६॥१७॥

पदार्थ — (**एष**) यह (**शुष्मी**) बलवान् परमात्मा (**अन्तरिक्षे, असिष्यदत**) अन्तरिक्ष म सवत्र व्याप्त हो रहा है (**वृषा**) सब कामनाओ का देने वाला और (हरि) दुख का हरने वाला, (**पुनान**) सबको पवित्र करने वाला, (**इन्दु**) सवत्र प्रकाशमान, (**इन्द्रम, आ**) कर्मयोगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म जो सवव्यापक और सब कामनाओ का देने वाला है वह अपने निवास का स्थान एकमात्र कर्मयोगी पुरुषो को समझता है । यद्यपि ब्रह्म सवव्यापक है तथापि विशेषाभिव्यक्ति उसकी कर्मयोगियों के हृदय मे ही होती है अन्यत्र नहीं । तात्पय यह है कि कर्मयोगी पुरुष अपने कर्मों द्वारा उसकी आज्ञाओ का पालन करके दिखला देता है अन्य लोग आलस्य म पडे-पडे ही समय को बिता देते है इसलिये इस मन्त्र मे कर्मयोगी पुरुष को ज्ञान का मुख्यपात्र निरूपण किया गया है ॥६॥

इति सप्तविंशतितम सूक्त सप्तदशोवर्गश्च समाप्त ।

२७ वा सूक्त और १७ वा वग समाप्त ।

अथ षडृचस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्य —

१—६ प्रियमेध ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ४, ५ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथेश्वर अज्ञानस्यनिवर्त्तकत्वरूपेण वर्ण्यते—

अथ ईश्वर का अज्ञाननिवर्त्तकत्वरूप से वर्णन करते है—

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
अव्यो वारं वि धावति ॥१॥

पदार्थ — (**एष.**) यह परमात्मा (**वाजी**) बल वाला है और (**नृभि , हित**) जिज्ञासुओ द्वारा अन्त करण में धारण किया गया है (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है (**मनस , पति**) मन का स्वामी है (**अव्य**) अविनाशी है और (**वारं, विधावति**) अपने भक्त के हृदय मे निवास करता है ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा को मनसस्पति इसलिये कहा गया कि मन उसके सात्विक रूप सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है इसलिये मन से ज्ञान उत्पन्न होता है । वा यो कहो कि मन का निरोध केवल उसी की कृपा से हो सकता है इसलिये मनसस्पति कहा है । तात्पर्य यह है कि आत्मिक बल बढाने वाले पुरुषो को चाहिये कि सब ओर से अपने मन का निरोध करके अपने मन को उसी परमात्मा मे लगाये ॥१॥

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः ।
विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

पदार्थ.—(**एष.**) यह परमात्मा (**सोम**) सौम्य स्वभाव वाला (**देवेभ्य सुत**) दैवी सम्पत्ति वालो के लिये प्रकाशमान है (**विश्वा धामानि, आविशन्**) सम्पूर्ण स्थानो मे व्याप्त है एवभूत परमात्मा (**पवित्रे, अक्षरत्**) जिज्ञासुओ के पवित्र अन्त करण मे विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थ —("यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानत " यजु ०) विज्ञानी पुरुष के लिये सब भूत उसका निवासस्थान हैं । जिस प्रकार जीवात्मा अपने शरीर का प्रेरक है उसी प्रकार वह जीवात्मा का प्रेरक है इसलिये मन्त्र मे धामान्याविशन् का कथन किया है अर्थात् शरीररूपी धाम म वह विराजमान है ॥२॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थ —(**एष , देव**) यह परमात्मा (**अधि, योनौ**) प्रकृति मे (**अमर्त्य**) अविनाशी होकर (**शुभायते**) प्रकाशित हो रहा है (**वृत्रहा**) और वह अज्ञान का नाशक है तथा (**देववीतम.**) सत्कर्मियो को अत्यन्त चाहने वाला है ॥३॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि योनि नाम यहा कारण का है वह कारण प्रकृति रूपी कारण है अर्थात् प्रकृति परिणामी नित्य है और ब्रह्म कूटस्थ नित्य है । परिणामी नित्य उसको कहते हैं कि जो वस्तु अपने स्वरूप को बदले और नाश को न प्राप्त हो और कूटस्थनित्य उसको कहते है कि जो स्वरूप से नित्य हो अर्थात् जिसके स्वरूप मे किसी प्रकार का विकार न आये । उक्त प्रकार से यहा परमात्मा का कूटस्थरूप से वणन किया है ॥३॥

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

पदार्थ —(**एष , वृषा**) यह सवकामप्रद परमात्मा (**कनिक्रदत**) शब्दायमान और (**दशभि जामिभि यत**) दश स्थूलभूत और सूक्ष्मभूतो द्वारा स्थिर भाव है (**अभि द्रोणानि, धावति**) कायमात्र म प्राप्त है ॥४॥

भावार्थ तात्पय यह है कि परमात्मा दश सूक्ष्मभूत और दश स्थूलभूतो को व्याप्त करके स्थिर है इसीलिये 'स भूमि सवत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम ' यह कथन किया है कि वह कायमात्र को अपने मे व्याप्त करके दश प्रकार के भूतो का भी अतिक्रमण करके विराजमान है ॥४॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५॥

पदार्थ -(**एष**) यह परमात्मा (**सूयम अरोचयत**) सूर्य को भी प्रकाशित करता है (**विचर्षणि**) सर्वद्रष्टा है (**विश्वा, धामानि**) सब स्थानो मे विराजमान है (**विश्ववित**) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र म परमात्मा को सूर्य का भी प्रकाशक कथन किया है । तात्पय यह है कि यह जड सूय उसकी सत्ता से प्रकाशित होता है जो लोग गायत्री आदि मन्त्रो से इस जड सूर्य की उपासना बतलाया करते हैं उनको 'सूयमरोचयत्' इस वाक्य से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि वेद का तात्पर्य जड सूर्य को उपास्य देव कथन करना होता तो इस जड सूय को उससे प्रकाश पाकर प्रकाशित होना न कथन किया जाता ॥५॥

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥६॥१८॥

पदार्थ (**एष**) यह (**शुष्मी**) बलवाला परमात्मा (**अदाभ्य.**) दम्भ से अप्राप्य है (**सोम**) सौम्यस्वभाव वाला (**पुनानः**) पवित्रताकारक (**अर्षति**) व्याप्त हो रहा है (**देवावी**) देवताओ का रक्षक तथा (**अघशंसहा**) अघशंसियो का नाश करने वाला है ॥६॥

भावार्थ--जो लोग स्वयं पापी अथवा पापियों की प्रशंसा करते हैं उनको परमात्मा कदापि प्राप्त नहीं होता । परमात्मप्राप्ति के लिये सदैव सरलप्रकृति होनी चाहिये । तात्पर्य यह है कि परमात्मप्राप्ति बिना दैवी सम्पत्ति नहीं होती । दैवी सम्पत्ति के गुण ये हैं तेज, तेजस्वी होना, धृति-दृढ़ता, क्षमा, शौच, अद्रोह, अहिंसा, सत्य अक्रोध इत्यादि अनेक प्रकार के दैवी सम्पत्ति के गुण है । और जो लोग आसुरी सम्पत्ति वाले हैं उनमें निम्नलिखित अवगुण होते हैं दम्भ, दर्प, गर्व, अभिमान, क्रोध पारुष्य इत्यादि । इस मन्त्र मे परमात्मा अदाभ्य पद से इस बात का उपदेश करता है कि दम्भ दर्पादि छोड कर तुम लोग सन्मार्ग का ग्रहण करो ॥६॥

इति अष्टाविंशतितमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ।

अटठाइसवा सूक्त और अठारहवा वर्ग समाप्त ॥

अथ षडर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१ विराड् गायत्री ।
२ ४, ६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री । षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मनाऽभ्युदयप्राप्ते साधनानि वर्ण्यन्ते —
अब परमात्मा अभ्युदयप्राप्ति के साधनो का वर्णन करते हैं:—

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।

देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—(**प्रभूषत**) प्रभन्व अर्थात् अभ्युदय को चाहने वाले पुरुष का कर्तव्य यह है कि वह (**देवान्, अनु**) विद्वानो का अनुयायी बने और (**सुतस्य, ओजसा**) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त परमात्मा के तेज से अपने आप को तेजस्वी बनावे (**वृष्णः, अस्य, धारा**) जो सर्वकामप्रद परमात्मा है उसकी धारा से (**अक्षरन्**) अपने को अभिषिक्त करे ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम विद्वानो की सगति के बिना कदापि अभ्युदय को नही प्राप्त हो सकते । जिस देश के लोग नाना प्रकार की विद्याओ के वेत्ता विद्वानो के अनुयायी बनते हैं उस देश का ऐश्वर्य देश-देशान्तरों में फैल जाता है । इसलिये हे अभ्युदयाभिलाषी जनो ! तुम भी विद्वानो के अनुयायी बनो ॥१॥

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।

ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(**वेधस**) कर्मयोगी लोग जो (**गृणन्त**) परमात्मपरायण है (**कारव**) वे कर्मकाण्डी लोग (**गिरा, जज्ञानम्**) वेदरूपी वाणी द्वारा उत्पन्न हुई (**सप्तिम्**) शक्ति को (**मृजन्ति**) बढाते है (**ज्योति**) वह ज्योतिर्मयशक्ति (**उक्थ्यम्**) प्रशसनीय है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! तुम अपनी शक्तियो को वेदरूपी वाणी द्वारा बढाओ, जो लोग अपनी शक्तियो को ईश्वराज्ञा से बढाते है उनका ऐश्वर्य विश्वव्यापी हो जाता है ॥२॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।

वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव वाले परमात्मन् ! (**प्रभूवसो**) हे अखिल धन रत्नादिको के स्वामिन् ! (**उक्थ्यम्, समुद्रम्, वर्ध**) आप आकाश मे फैलनेवाले प्रशसनीय यश को मेरे लिये बढाइये (**तानि, सुषहा, ते, पुनानाय**) और यह सबको पवित्र करने वाले आपका बढा हुआ यश हमारे लिये सुख से भोग करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग अपनी कीर्ति को नभोमण्डलव्यापिनी बनाना चाहें उनका कर्तव्य है कि वे परमात्मपरायण होकर कर्मयोगी बनें । कर्मयोगी पुरुष के बिना किसी पुरुष का ऐश्वर्य बढ़ नही सकता ॥३॥

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया ।

इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥४॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**विश्वा, वसूनि, संजयन्**) आप मेरे लिये सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्य को बढा कर (**धारया, पवस्व**) आनन्द की वृष्टि से हमको पवित्र करिये (**इनु, द्वेषांसि, सध्र्यक्**) और सब प्रकार के द्वेषो को भी साथ ही दूर करिये ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे इस बात का उपदेश किया है कि जो पुरुष अपना अभ्युदय चाहे वह रागद्वेषरूपी समुद्र की लहरो मे कदापि न पडे । क्योंकि जो लोग रागद्वेष के प्रवाह मे पड़कर बह जाते हैं वे आत्मिक सामाजिक तथा शारीरिक तीनो प्रकार की उन्नतियो को नहीं कर सकते इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह रागद्वेष के भावो से सर्वथा दूर रहे ॥४॥

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् ।

निदो यत्र मुमुच्महे ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन्, (**न.**) हमारी (**समस्य, कस्यचित्, अररुषः**) सम्पूर्ण अदाता लोगों के (**स्वनात्, रक्ष**) निन्दारूप शब्द से रक्षा करिये (**निदः**) और निन्दक लोगो से भी बचाइये (**यत्र, मुमुच्महे**) जिस रक्षा से हम निन्दादिकों से मुक्त रहें ॥५॥

भावार्थ—अभ्युदयशाली मनुष्य का कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह कदर्य कदापि न बने जो पुरुष कदर्य होता है वह सर्वदैव ससार मे निन्दनीय रहता है इस लिये हे पुरुषो ! तुम कदर्यता, कायरता और प्रमत्तता इत्यादि भावो को छोडकर उदारता, वीरता और अप्रमत्तता इत्यादि भावो को धारण करो ॥५॥

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।

द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥६॥१९॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! (**दिव्यम्, पार्थिवम्, रयिम्**) आप हमको द्युलोकसम्बन्धी तथा पृथिवीसम्बन्धी ऐश्वर्य को (**धारया, आपवस्व**) धारा मे पवित्र करिये और (**द्युमन्तम, शुष्मम्**) दिव्यबल को (**आभर**) दीजिये ॥६॥

भावार्थ—जो पुरुष उक्त प्रकार के अवगुणो से रहित होते है उनको परमात्मा द्युलोक और पृथिवी लोक के ऐश्वर्यो से भरपूर करता है ॥६॥

इत्येकोनत्रिंशत्तमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

२९वा सूक्त और १९वा वर्ग समाप्त ॥

अथ षडृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ बिन्दुर्ऋषिः । पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, २, ६ गायत्री ॥
३—५ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मा बलप्राप्तेरुपायमुपदिशति —
अब परमात्मा बलप्राप्ति का उपदेश करते हैं —

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।

पुनानो वाचमिष्यति ॥१॥

पदार्थ—(**प्रपुनान**) अपने आप को पवित्र करता हुआ जो पुरुष (**वाचम्, इष्यति**) वाणी सम्बन्धी बल की इच्छा करता है (**अस्य, शुष्मिण**) उस बलिष्ठ के लिये (**पवित्र**) पात्र मे (**वृथा**) व्यर्थ ही इस सोमरस की (**धारा**) धारायें (**अक्षरन**) गिरती है ॥१॥

भावार्थ—जितने प्रकार के ससार मे बल पाये जाते है उन सब मे से वाणी का बल सबसे बडा है इस अभिप्राय से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! यदि तुम सर्वोपरि बल का उपलब्ध करना चाहते हो तो वाणीरूप बल की इच्छा करो जो पुरुष वाणीरूप बल को उपलब्ध करते हैं उनके लिये सोमादि रसो से बल लेने की आवश्यकता नहीं ॥१॥

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।

इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दु**) दीप्ति वाला शब्द (**सोतृभि, मृज्यमान, हियानः**) जो वेदवेत्ता पुरुषो से शुद्ध करके प्रेरित किया गया है वह (**वग्नुम्, इन्द्रियम्**) श्रोत्रेन्द्रिय को जब (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**इयर्ति**) प्राप्त होता है तो अनेक प्रकार के बल उत्पन्न करता है ॥२॥

भावार्थ—सदुपदेशकों द्वारा जिन शब्दो का प्रयोग किया जाता है वे शब्द बलप्रद होते है इसलिये हे श्रोता लोगो ! तुमको चाहिये कि तुम सदैव सदुपदेशकों से उपदेश सुनकर अपने आप को तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाओ ॥२॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।

पवस्व सोम धारया ॥३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**न**) हमको आप (**शुष्मम्**) जो बल (**नृषाह्यम्**) शत्रु का नाश करने वाला (**वीरवन्तम्**) वीरता वाला (**पुरुस्पृहम**) सर्वोपरि है उसकी (**धारया**) सुवृष्टि से (**आ, पवस्व**) भली प्रकार पवित्र करें ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते है कि जो पुरुष सर्वोपरि बल की कामना करते हुये अपने आपको उस बल के योग्य बनाते है उनको ससार मे न्याय नियम फैलाने के लिये सर्वोपरि बल अवश्यमेव मिलता है ॥३॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।

अभि द्रोणान्यासदम् ॥४॥

पदार्थ—(**सोम**) परमात्मा (**धारया**) अपनी कृपा की वृष्टिरूप धाराओ से (**पवमान**) पवित्र करता हुआ ज्ञान के प्रभाव मे (**अभि, द्रोणानि, आसदम्**) उन अन्तःकरणो को प्राप्त होता है जो अन्तःकरण सत्कर्मों द्वारा शुद्ध किये हुये होते हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! यदि तुम अपने आप को सत्कर्मी बनाओगे तो ज्ञान का प्रवाह तुम्हारे अभ्युदयरूपी अकुरो को अवश्यमेव अभ्युदयशाली बनायेगा ॥४॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्याभिलाषी जीव, ! (**अप्सु,**) सब रसो मे (**मधुमत्तमम्**) मीठा जो एक प्रकार का रस है ऐसे (**त्वा**) तुमको (**हरिम्**) जो तुम अज्ञान के हरने वाले हो (**अद्रिभिः**) वाणीरूप वज्र से (**हिन्वन्ति**) वेदवेत्ता पुरुष तुम्हें प्रेरित करते हैं ताकि तुम (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पीतये**) ऐश्वर्य-प्रदान करने के लिये समर्थ बनो ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष धार्मिक बनके सदुपदेश करते हैं वे मानो सब रसों मे से अपने आपको माधुर्य्यसम्पन्न सिद्ध करते हैं और वे ही लोग उपदेष्टा बनकर संसार मे लोगो को कर्मयोग का उपदेश करते हैं ॥५॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥६॥२०॥

पदार्थः—(**इन्द्राय, वज्रिणे**) वज्र वाले कर्मयोगी के लिये (**सोम, सुनोत**) सोमरस उत्पन्न करो जो रस (**चारुम्**) सुन्दर है (**शर्धाय, मत्सरम्**) बल के लिये जो हर्ष उत्पन्न करने वाला है (**मधुमत्तमम**) जो अत्यन्त मीठा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वान पुरुषो, तुम उत्तमोत्तम औषधियो से सौम्य स्वभाव बनाने वाले रसो को उत्पन्न करो जिन रसो को पान करके कर्मयोगी पुरुष अपने कर्तव्यो मे दृढ़ रहे और जिन रसो से हर्ष को प्राप्त हो कर ससार मे सर्वोपरि बल को उत्पन्न करें ॥६॥

इति त्रिंशत्तमं सूक्तं विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥
तीसवां सूक्त और बीसवां वर्ग समाप्त ॥

अथ षडृचस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१—६ गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३, ५ गायत्री । ४, ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ शूरवीरगुणा वर्ण्यन्ते—
अब शूरवीरो के गुणो का वर्णन किया जाता है:—

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥१॥

पदार्थः—(**सोमासः**) शूरवीर लोग (**स्वाध्य**) उच्चोद्देश्य वाले (**पवमानास**) वीरता धर्म से ससार को पवित्र करते हुए (**अक्रमु**) अन्यायकारी शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं और उक्त प्रकार के आक्रमण से (**रयिं**) अपने ऐश्वर्य को (**चेतनम्**) जीता जागता (**कृण्वन्ति**) बनाते हैं ॥१॥

भावार्थ—जो लोग उच्चोद्देश्य से अर्थात् देश की रक्षा के लिये शत्रुओ पर आक्रमण करते हैं वे लोग अपने ऐश्वर्य को पुनरुज्जीवित करके अपने यश को विमल करके दशो दिशाओ मे फैलाते हैं ॥१॥

उक्तविधवीरैः परमात्मा एवं प्रार्थ्यते—
उक्त वीर परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना करते है—

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः ।
भवा वाजानां पतिः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन्, आप (**वाजानाम्**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के (**पति**) स्वामी है (**दिवस्पृथिव्याः, अधि**) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच मे (**द्युम्नवर्धनः**) ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले (**भव**) हो ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा इस प्रकार उपदेश करता है कि हे शूरवीरो, तुम लोग अपने परिश्रम के अनन्तर उस पराशक्ति से इस प्रकार की प्रार्थना करो कि हमारा ऐश्वर्य सर्वत्र फैले और हम द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच मे शान्ति को फैलायें ॥२॥

तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य कैसा ही ऐश्वर्य्यशाली हो अथवा तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी हो पर फिर भी उसे पराशक्ति की सहायता लेनी पड़ती है जिसने इस ससार को अपने नियमो मे बाध रक्खा है ॥२॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन्, (**तुभ्यम्**) तुमको (**वाता**) शूरवीर "वान्ति वीरधर्मेण सर्वत्र गच्छन्ति इति वाताः शूरवीराः—जो वीर धर्म से सर्वत्र फैल जायें उनका नाम यहा [वात] है" (**अभिप्रिय**) वे प्यारे है और (**तुभ्यम्**) तुम्हारे नियम से (**सिन्धव**) सिन्धु आदि नदियां (**अर्षन्ति**) बहती हैं (**ते**) तुम्हारे (**मह**) यश को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा के नियम से शूरवीर उत्पन्न होकर उसके यश को बढ़ाते हैं और परमात्मा के नियम से ही सिन्धु आदि महानद स्यन्दमान होकर सम्पूर्ण धरातल को सिञ्चित करते हैं ॥३॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सम्पूर्ण ससार के उत्पादक परमात्मन्, (**ते, वृष्ण्य**) सब कामनाओ की वर्षा करनेवाला तुम्हारा ऐश्वर्य्य (**विश्वत**) सब ओर से (**समेतु**) हमको प्राप्त हो और आप (**आप्यायस्व**) सब प्रकार से हमारी वृद्धि करें तथा (**वाजस्य, संगथे**) ऐश्वर्य्यनिमित्तिक सग्रामों मे आप (**भव**) हमारे सङ्गी बनें ॥४॥

भावार्थ—जो लोग एकमात्र परमात्मा को अपना आधार बनाते हैं वे सब प्रकार से ऐश्वर्य्यशाली होते हैं और सग्रामजनित विपत्तियो मे परमात्मा उनकी सहायता करता है ॥४॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

पदार्थ (**बभ्रो**) "बिभर्तीति बभ्रुः तत्सम्बुद्धौ बभ्रो" हे सबके धारण करने वाले परमात्मन् (**वर्षिष्ठे, अधि, सानवि**) विभूति वाली प्रत्येक वस्तु मे आप शक्तिरूप से विराजमान हैं और (**तुभ्यम् गाव**) तुम्हारे लिये ही पृथिव्यादि लोक-लोकान्तर (**घृतम्, पय**) घृत दुग्धादि अनन्त प्रकार के रसों को जो (**अक्षितम्**) निरन्तर स्यन्दमान हो रहे हैं (**दुदुह्रे**) दुहते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मरचित इस ब्रह्माण्ड मे नाना प्रकार के घृतदुग्धादि रस दिनरात प्रवाहरूप मे स्यन्दमान हो रहे हैं बहुत क्या जो जो विभूति वाली वस्तु है उसमे परमात्मा का ऐश्वर्य सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है इसी अभिप्राय से कहा है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥१॥ जो-जो विभूति वाली वस्तु अथवा ऐश्वर्य्य और शोभावाली है वह सब परमात्मा के प्रकृतिरूप अश से उत्पन्न हुई है ॥५॥

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयं ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥६॥

पदार्थ—(**भुवनस्य, पते**) हे सम्पूर्ण भुवनो के पति परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारी (**स्वायुधस्य, सत**) जीवित, जागृत शक्ति से (**इन्दो**) हे परमैश्वर्य्य स्वरूप, हम लोग तुम्हारे (**सखित्वम्**) मैत्रीभाव को (**उश्मसि**) चाहते हैं ॥६॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो के नियन्ता और निखिल ज्ञानो के अवगन्ता परमात्मा से जो लोग मैत्री डालते है वे लोग इस ससार मे परमानन्द को लाभ करते है ॥६॥

इति एकत्रिंशत्तमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥
३१वां सूक्त और २१वां वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१—६ श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्गायत्री । ३—६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मन उपलब्धिरुच्यते —
अब परमात्मा की उपलब्धि का कथन करते हैं —

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

पदार्थ—(**मदच्युत**) आनन्द का स्रोत (**सुता**) स्वयम्भू (**सोमास**) परमात्मा (**विदथे**) यज्ञ मे (**मघोन, न**) मुझ जिज्ञासु के (**श्रवसे**) ऐश्वर्य के लिये (**प्राक्रमु**) आकर प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध भाव से यज्ञ करते है उनको परमात्मा अपने आनन्द स्रोत से सदैव अभिषिक्त करता है, यज्ञ के अर्थ यहां शुद्धान्तःकरण से ईश्वरोपासन १ ब्रह्मविद्यादि उत्तमोत्तम पदार्थों का दान २ और कला कौशलादि द्वारा विद्युदादि पदार्थों को उपयोग मे लाना ३ ये तीन हैं । जो पुरुष उक्त पदार्थों की सगति करने वाले यज्ञो को करता है वह अवश्यमेव ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥१॥

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थ—(**त्रितस्य**) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनो अवस्थाओ मे अप्रतिहत प्रभाव वाले भक्त पुरुष की (**योषण**) शक्तियां (**इन्द्राय, पीतये**) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (**आत्, ईम्**) इस पूर्वोक्त (**इन्दुम्**) परमैश्वर्य वाले (**हरिम्**) सब दुःखो के हरने वाले परमात्मा को (**अद्रिभि**) इन्द्रिय वृत्तियो द्वारा (**हिन्वन्ति**) प्रेरित करती है ॥२॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की भक्ति मे रत है उनकी इन्द्रिय वृत्तियां परमात्मज्ञान की उपलब्धि के लिये सदैव तत्पर रहती हैं ॥२॥

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥३॥

पदार्थ—(**विश्वस्य, मतिम्, अवीवशत्**) सबकी मति को वश में रखने वाला (**अत्यो, न**) विद्युत की नाईं दुर्ग्राह्य (**आदीम्**) ऐसे परमात्मा को (**हंसः, यथा, गणम्**) जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में जाकर मिलता है उसी प्रकार (**गोभिः, अज्यते**) जीव इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार करता है ॥३॥

भावार्थ.—जीवात्मा जबतक अपनी सजातीय वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं लगाता तब तक उसे आनन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता । इस भाव का इस मन्त्र में उपदेश किया है कि जिस प्रकार हम अपने सजातीय गण मे मिल कर आनन्दित होता है इस प्रकार जीवात्मा भी उस चिद्घन ब्रह्म मे मिल जाता है ॥३॥

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् (**उभे, अवचाकशत्**) आप द्युलोक और पृथिवी लोक के साक्षी है (**मृग , न, तक्त**) और सिंह के समान प्रकृतिरूप वन मे विराजमान हो रहे है (**ऋतस्य, योनिम आसीदन्**) अखिलकार्य का कारण जो प्रकृति उसमे स्थित हो कर (**अर्षसि**) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा इस प्रकृति के कार्य चराचर ब्रह्माण्ड मे ओत प्रोत हो रहा है अर्थात् प्रकृति एक प्रकार से गहन वन है और परमात्मा सिंह के समान इस वन का स्वामो है । इस मन्त्र मे परमात्मा की व्यापकता और शौर्य क्रौर्यादि गुणो के भाव मे परमात्मा की रौद्ररूपता वर्णन की है ॥४॥

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।
अगन्नाजिं यथा हितम् ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**योषाजारमिव, प्रियम्**) "यावयति आत्मनि प्रीतिमुत्पादयतीति योषा रात्रि तस्या जारो जरयिता चन्द्रस्तम्" । चन्द्रमा के समान सर्वप्रिय (**आजिम्**) प्राप्त करने योग्य (**हितम्**) सबका हित करने वाले आप (**यथा, अगम्**) जिस प्रकार प्राप्त हो जाय उसी प्रकार (**गाव**) इन्द्रिय वृत्तियां (**अभ्यनूषत**) आपको विषय करती हैं ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे कर्मयोगी और ज्ञानयोगियो की ओर से परमात्मा की प्रार्थना कथन की गयी है और परमात्मनिष्ठाप्रियता की तुलना चन्द्रमा के साथ की अर्थात जिस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होने से सर्वप्रिय है इसीप्रकार परमात्मा भी आह्लादक होने से सर्वप्रिय हैं । योषाजार यहा चन्द्रमा का नाम है किसी लम्पट-कामी पुरुष का नहीं ॥५॥

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥६॥२२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (**अस्मे**) मेरे लिये (**द्युमत्, यशः, धेहि**) दीप्ति वाले यश को दीजिये (**मघवद्भ्य , च**) कर्मयोगियो के लिये और (**मह्य च**) मेरे लिये (**सनिम्**) धन को (**मेधाम्**) बुद्धि को तथा (**उत श्रव**) सुन्दर कीर्ति को दीजिये ॥६॥

भावार्थ—कर्मयोग और ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा निम्नलिखित गुणो को प्रदान करता है । धन, बुद्धि, सुकीर्ति इत्यादि ॥६॥

इति द्वात्रिंशत्तमं सूक्तं, द्वाविंशो वर्गश्च समाप्त ।
३२वां सूक्त, और २२वां वर्ग समाप्त ।

अथ षड्ऋचस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१—६ त्रित ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्द—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अधुना ईश्वरप्राप्तये ज्ञानकर्मोपासनापराणि त्रीणि वचांसि निरूप्यन्ते ।

अब ईश्वर-प्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना विषयक तीन वाणियें कही जाती हैं ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थ—(**अपाम्, ऊर्मयः, न**) जैसे समुद्र की लहरें स्वभाव ही से चन्द्रमा की ओर उछलती हैं और (**वनानि, महिषा, इव**) जैसे महात्मा लोग स्वभाव ही से भजन की ओर जाते है इसी प्रकार (**सोमास , विपश्चित यन्ति**) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् ज्ञान, कर्म, उपासना बोधक वेद-वाणी की ओर लगते है ॥१॥

भावार्थ.—वेद रूपी वाणी मे इस प्रकार आकर्षण शक्ति है जैसी कि पूर्णिमा के चन्द्रमा मे आकर्षण शक्ति होती है । अर्थात् पूर्णिमा को चन्द्रमा के आह्लादक धर्म की ओर, सब लोग प्रवाहित होते हैं इसी प्रकार ओजस्विनी वेदवाक् अपनी ओर विमल दृष्टि वाले लोगो को खींचती है ॥१॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थ—(**बभ्रव**) ज्ञान, कर्म, उपासना को धारण करने वाले (**शुक्राः**) पवित्र अन्त करण वाले विद्वान् (**ऋतस्य, धारया**) सच्चाई की धारा से (**अभि, द्रोणानि**) सत्पात्रो के प्रति उपदेश देकर (**वाजम्, गोमन्तम्**) उनके अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को (**अक्षरन्**) बढाते है ॥२॥

भावार्थ—जो लोग वेद विद्या का सदुपदेश देते है, उनके सदुपदेश से सब प्रकार के अन्नादिक ऐश्वर्य बढ़ते है ॥२॥

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥३॥

पदार्थः—(**मरुद्भ्य , सुता , सोमा**) विद्वानो से कर्मोपासना से सिद्धि को प्राप्त हुये विद्वान् (**विष्णवे, अर्षन्ति**) सर्वव्यापक परमात्मा के पद को प्राप्त होते हैं । जो परमात्मा (**इन्द्राय**) "इन्दति परमैश्वर्यं प्राप्नोतीतीन्द्र" परमैश्वर्य सम्पन्न है तथा (**वायवे**) "वाति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीति वायु" सर्वव्यापक है । (**वरुणाय**) "व्रियते स भज्यते जनैरिति वरुण" सब को भजनीय है उसको प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ.—जिन लोगों ने माता-पिता और आचार्य से सिद्धि को प्राप्त किया है वे ज्ञान कर्म उपासना द्वारा ईश्वर को उपलब्ध करते है ॥३॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥४॥

पदार्थ—(**धेनव , गाव**) इन्द्रियवृत्तियाँ (**तिस्र , वाच उदीरते, मिमन्ति**) तीनों वाणियो को उच्चारण करती हुयी परमात्मा का साक्षात्कार कराती हैं (**हरि**) और वह परमात्मा (**कनिक्रदत्, एति**) गर्जता हुआ उनके ज्ञान का विषय होता है ॥४॥

भावार्थ—जो लोग वैदिक सूक्तो द्वारा वर्णित परमात्मा के स्वरूप को अपने ध्यान मे लाना चाहते है वे भलीभांति परमात्मा का साक्षात्कार करते है । तात्पय यह है कि परमात्मा शब्दगम्य है तर्कों से उसका साक्षात्कार नहीं होता क्योंकि तर्क की कोई आस्था नही प्रथम के तर्क को द्वितीय, जिसकी अधिक बुद्धि है काट देता है द्वितीय के तर्क को तृतीय, तृतीय के तर्क को चतुर्थ । और वेद पूर्ण पुरुष का ज्ञान है इसलिये उसमे यह दोष नहीं ॥४॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥५॥

पदार्थ.—(**ऋतस्य, मातर**) सत्य को उत्पन्न करने वाली (**यह्वी ब्रह्मी**) अतिविस्तृत परमात्मसम्बन्धी वेदवाणियें (**अभि, अनूषत**) अपने वक्ता को विभूषित कर देती हैं (**मर्मृज्यन्ते, दिव शिशुम**) और ब्रह्मचारी को पवित्र कर देती है ॥५॥

भावार्थ—वेदवाणियां परमात्मा के साथ वाच्यवाचकभावसम्बन्ध से रहती हैं इसीलिए इनको ब्रह्मी कहा गया है । वेद-वाणियां पुरुष के अज्ञान को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर देती हैं ॥५॥

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥६॥२३॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मान् ! (**सहस्रिण , राय**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य वाले (**चतुर., समुद्रान्**) शब्द रूपी जल के चारो वेद रूपी समुद्रो को (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**विश्वत**) भली प्रकार (**आ, पवस्व**) दीजिये ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा के पास नाना प्रकार के रत्नो के भरे हुये अनन्त समुद्र है परन्तु शब्दार्णवरूप समुद्रो मे सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न होते है इससे परमात्मा से शब्दार्णवरूप समुद्र की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

इति त्रयस्त्रिंशत्तमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्त ।
३३ वा सूक्त और २३ वां वर्ग समाप्त ॥

अथ षड्ऋचस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१—६ त्रित ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्द—१, २, ४ निचृद्गायत्री ३, ५, ६ गायत्री । षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मनोऽद्भुतसत्ता वर्ण्यते ।
अब परमात्मा की अद्भुत सत्ता वर्णन की जाती है ।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति ।
रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥१॥

पदार्थ—(**इन्दु.**) वह परमैश्वर्य वाला परमात्मा (**ओजसा**) अपने पराक्रम से (**दृळ्हा, विरुजत्**) अज्ञान का नाश करता हुआ (**धारया प्रसुवान**) अपनी आधिकरणरूपसत्ता से सबको उत्पन्न करता हुआ (**हिन्वान**) सबकी प्रेरणा करता हुआ (**तना, अर्षति**) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड मे व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा की ऐसी अद्भुत सत्ता है कि वह निरवयव होकर भी सम्पूर्ण सावयव पदार्थों का अधिष्ठान है, उसी के आधार पर यह चराचर जगत् स्थिर है, और वह सर्वप्रेरक होकर कर्मरूपी चक्र द्वारा सबकी प्रेरणा करता है ॥१॥

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥२॥

पदार्थः—(**सुत., सोम**) स्वयम्भू परमात्मा (**इन्द्राय**) ज्ञान योगी के लिये (**वायवे**) कर्मयोगी के लिये (**वरुणाय**) उपदेशक के लिये (**मरुद्भ्य**) विद्वद्गणों के लिये (**विष्णवे**) अनेक शास्त्रो मे प्रविष्ट विद्वान् के लिये (**अर्षति**) आकर उनके अन्त करण मे प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ.—यद्यपि परमात्मा व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा अन्य साधनों द्वारा जिन लोगों ने अपने अन्तःकरण को निर्मल किया है उनके हृदय में विशेष रूप से होती है ॥१॥

वृषाणं वृभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।

दुहन्ति शक्मना पयः ॥२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (वृषाणम्) सब कामनाओं के देनेवाले (सोमम्) परमात्मा को (यतम्) ज्ञान का विषय बना कर (वृभिः, अद्रिभिः) अखिल-कामनाओं की साधक इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा (शक्मना) ज्ञानयोग और कर्म योगद्वारा (सुन्वन्ति) प्रेरणा करते हुये (पयः) ब्रह्मानन्द को (दुहन्ति) दुहते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी बन कर अभ्यास करते हैं वे ही लोग ब्रह्मामृतरूप दुग्ध को परमात्मरूपकामधेनु से दोहन करते हैं अन्य नहीं ॥२॥

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।

सं रूपैरज्यते हरिः ॥४॥

पदार्थ—परमात्मा (त्रितस्य) श्रवण, मनन, निदिध्यासन इन तीनों साधनों से (मर्ज्यः, भुवत्) उपासनीय है, और (इन्द्राय, मत्सरः, भुवत्) विज्ञानियों के लिये आह्लादकारक है तथा (हरिः रूपैः समज्यते) पापनाशक परमात्मा अपने ब्रह्माण्डरूप कार्यों से अभिव्यक्त होता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा की रचना से उसकी सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है अर्थात् जो नियम इस ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं उनका नियन्ता कोई अवश्य मानना पड़ता है। उस नियन्ता का साक्षात्कार यम नियमादि साधनों द्वारा होता है अन्यथा नहीं ॥४॥

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।

चारु प्रियतमं हविः ॥५॥

पदार्थ—(पृश्निमातरः) कर्मयोगी विद्वान् (ऋतस्य, विष्टपं, ईम्) सत्य के स्थान परमात्मा से (चारु) सुन्दर (प्रियतमम्) अतिप्रिय (हविः) शुभकर्म की (अभिदुहते) भली प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष अपने कर्मों से उसका साक्षात्कार अर्थात् उपासनाकर्मद्वारा उसकी सत्ता को लाभ करते हैं ॥५॥

समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।

धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥६॥२४॥

पदार्थ—(सस्रुतः) आकाश में फैलती हुई (अह्रुताः) निष्कपट भाव से की हुई (इमाः, गिरः) कर्मयोगियों द्वारा की हुई स्तुतियें (एनम्, समर्षन्ति) इस परमात्मा को प्राप्त होती हैं (वाश्रः) और वह वेदोत्पादक परमात्मा (धेनूः, अवीवशत्) उन कर्मयोगियों के लिये अभीष्ट कामनाओं के देने को उद्यत रहता है ॥६॥

भावार्थ—शुभ सङ्कल्पों के मन में उत्पन्न हो जाने से परमात्मा उनका फल अवश्यमेव देता है।

तात्पर्य यह है कि उपासना, प्रार्थना भी एक प्रकार के कर्म्म हैं उनका फल उनको अवश्य मिलता है। इसलिये प्रार्थना केवल मांगना ही नहीं, किन्तु एक प्रकार का कर्म है वह निष्फल कदापि नहीं जा सकता ॥६॥

इति चतुस्त्रिंशत्तमं सूक्तं चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्तः ।

३४वां सूक्त और २४वां वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४-६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा धर्मादिदातृत्वेन वर्ण्यते—

अब परमात्मा का धर्मादिदातृत्वेन वर्णन करते हैं—

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।

यया ज्योतिर्विदासि नः ॥१॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! (नः धारया, आपवस्व) हमको आप आनन्द की धारा से भली प्रकार पवित्र करिये (रयिम्, पृथुम्) और बड़े भारी ऐश्वर्य को दीजिए (यया, नः, ज्योतिः विदासि) उसी आनन्द की धारा से आप ज्ञानप्रद हैं ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष अपने आपको परमात्मज्ञान का पात्र बनाते हैं परमात्मा उन्हें आनन्द की वृष्टि से सिञ्चित करते हैं ॥१॥

इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।

रायो धर्ता न ओजसा ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (समुद्रमीङ्खय) हे अन्तरिक्षादि लोकों में व्याप्त! (विश्वमेजय, ओजसा) हे अपने प्रताप से संसार को कम्पित करने वाले! (रायः धर्ता) आप सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्यों को धारण करने वाले हैं (नः, पवस्व) आप हमको धनादि ऐश्वर्य का दान करके पवित्र करिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही धनादि सब ऐश्वर्य पुरुष को प्राप्त होते हैं इसलिए पुरुष को सदैव परमात्मपरायण होने का यत्न करना चाहिए ॥२॥

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः ।

क्षरा णो अभि वार्यम् ॥३॥

पदार्थ—(वीरव) हे वीरों के अधिपति परमात्मन्! (वीरेण, त्वया) सर्वोपरि पराक्रम वाले आपके द्वारा हम (पृतन्यतः, अभिष्याम) संग्राम की इच्छा करने वाले शत्रुओं को पराजित करें (नः, वार्यम्, अभिक्षर) आप हमको अभिलषित पदार्थों को दीजिए ॥३॥

भावार्थ—जो लोग अन्यायकारी शत्रुओं के विजय करने का सङ्कल्प रखते हैं, परमात्मा उन्हें अन्यायकारियों के दमन का बल प्रदान करता है ताकि अन्यायकारियों को मर्दन करके वे संसार में न्याय का प्रचार करें ॥३॥

प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः ।

व्रता विदान आयुधा ॥४॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वैश्वर्य वाला (सिषासन्) अपने भक्तों को चाहने वाला (वाजसाः) अखिल ऐश्वर्यों से युक्त (ऋषिः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का साक्षी (व्रता, आयुधा विदानः) सम्पूर्ण कर्मों तथा आयुधों से सम्पन्न परमात्मा (वाजम्, प्रेष्यति) अपने भक्तों को सब प्रकार के ऐश्वर्य को देता है ॥४॥

भावार्थ.—परमात्मा सन्मार्गगामी पुरुषों को सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करता है जो लोग परमात्मा की आज्ञा मान कर उसका अनुष्ठान करते हैं वही परमात्मा के भक्त व सदाचारी कहलाते हैं, अन्य नहीं ॥४॥

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।

सोमं जनस्य गोपतिम् ॥५॥

पदार्थ—(वाचमीङ्खयम्) वेदवाणी में निवास करने वाले (पुनानम्) सबको पवित्र करने वाले (जनस्य, गोपतिम्) मनुष्यों की इन्द्रिय वृत्तियों को प्रेरणा करने वाले (तं सोमम्) उस परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (वासयामसि) अपने अन्तःकरण में बसाते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा को स्वअन्तःकरण में धारण करने का उपाय यह है कि पुरुष उसके सद्गुणों का चिन्तन करके उसके स्वरूप में मग्न हो जाय, इसी का नाम परमात्मप्राप्ति वा परमात्मयोग है ॥५॥

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः ।

पुनानस्य प्रभूवसोः ॥६॥२५॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (धर्मणस्पतेः) धर्म को पालन करने वाले (पुनानस्य) संसार को पवित्र करने वाले (प्रभूवसोः) अनन्त ऐश्वर्य वाले परमात्मा की (व्रते) भक्ति में (विश्वः) सम्पूर्ण ऐश्वर्याभिलाषियों का गण (जनः दाधार) अपने-अपने मन को धारण करता है उस परमात्मा को अपने हृदय में बसाते हैं ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा के नियम से ही सब सूर्यादि पदार्थ अपने-अपने धर्मों को धारण करते हैं अर्थात् उसके नियमों का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उस परमात्मा के महत्त्व को स्वहृदय में धारण करना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है ॥६॥

इति पञ्चत्रिंशत्तमं सूक्तं पञ्चविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

३५वां सूक्त और २५वां वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पाद निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री ३-५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तिद्वयाधारत्वं वर्ण्यते—

अब परमात्मा को रै और प्राण रूप शक्ति का आधार रूप से वर्णन करते हैं—

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।

कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥१॥

पदार्थ—(रथ्यः) सब गतिशील पदार्थों को गति देने वाला वह परमात्मा (चम्वोः, सुतः) रै और प्राणरूप दोनों शक्तियों में प्रसिद्ध है और उसने (यथा, असर्जि) पूर्ववत् सब संसार को पैदा किया और (वाजी) श्रेष्ठ बल वाला परमात्मा (पवित्रे, कार्ष्मन्, न्यक्रमीत्) अपने द्वारा सबको आकर्षण करने वाले भक्तों के पवित्र हृदय में आकर विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थ.—यद्यपि परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक पुरुष के हृदय में विद्यमान है तथापि जो पुरुष अपने अन्तःकरण को निर्मल रखते हैं उनके हृदय में उसकी स्फुट प्रतीति होती है इसी अभिप्राय से कथन किया है कि वह भक्तों के हृदय में विराजमान है ॥१॥

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति ।

अभि कोशं म ॥२॥

पदार्थ—(सोम) हे [illegible] ! (सः) वह पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (वह्नि) सबके प्रेरक हैं और (जागृवि) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप हैं (देववीः, अति) सद्गुणसम्पन्न विद्वानों को अति चाहने वाले हैं (मधुश्चुतम्, कोशम्, अचिक्रदत्स्व) आप आनन्द के स्रोत को बहाइये ॥२॥

भावार्थः—सम्पूर्ण वस्तुओं में से परमात्मा ही एकमात्र आनन्दमय है। उसी के आनन्द को उपलब्ध करके जीव आनन्दित होते हैं। इसलिए उसी आनन्दस्वरूप सागर से सुख की प्रार्थना करनी चाहिए ॥२॥

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

पदार्थ—(पूर्व्य, पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले अनादि परमात्मन् ! (नः ज्योतींषि) आप हमारे ज्ञान को (विरोचय) प्रकाशित कीजिये (नः) और हमको (क्रत्वे, दक्षाय, हिनु) बलप्रद यज्ञ के लिए उन्नत कीजिए ॥३॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मज्योति का ध्यान करते हैं, वे पवित्र होकर सदैव शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं ॥३॥

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।

पवते वारे अव्यये ॥४॥

पदार्थ—हे परमात्मन ! आप (ऋतायुभि) सत्य को चाहने वाले विद्वानों से (गभस्त्योः) अपनी शक्तियों द्वारा स्थित होते हुए आप (मृज्यमान) उपास्य हो (शुम्भमान) सर्वोपरि शोभा को प्राप्त होते हुए (अव्यये, वारे, पवते) अपने उपासकों के लिए अव्यय मुक्ति पद का प्रदान करते हैं ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुष शुभ काम करते हुए श्रवण, मनन निदिध्यासनादि साधनों से युक्त रहते हैं वे मुक्ति पद के अधिकारी होते हैं ॥४॥

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।

पवतामान्तरिक्ष्या ॥५॥

पदार्थ—(स, सोम) वह सौम्य स्वभाव वाले आप (दाशुषे) अपने उपासक के लिए (दिव्यानि) दिव्य (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्ष में होने वाले तथा (पार्थिवानि) पृथिवीलोक में होने वाले (विश्वा, वसु) सम्पूर्ण रत्नादि ऐश्वर्यों को (आपवताम्) दीजिये ॥५॥

भावार्थ—जो लोग अपने स्वभाव को सौम्य बनाते हैं अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को लक्ष्य रखकर अपने गुण कर्म स्वभाव को भी उसी प्रकार से पवित्र बनाते हैं वे सब ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं ॥५॥

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि ।

वीरयुः शवसस्पते ॥६॥२६॥

पदार्थ—(सोम, शवसस्पते) हे अन्नादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् परमात्मन् ! आप अपने उपासक के लिए (वीरयुः) वीरों की इच्छा करने वाले तथा (अश्वयु, गव्ययु) अश्व, गौ आदिकों की इच्छा करने वाले हैं (दिव, पृष्ठम्, आरोहसि) और द्युलोक के भी पृष्ठ पर आप विराजमान हैं ॥६॥

भावार्थ—ईश्वर सदाचारी और न्यायकारी लोगों के लिए वीरत्व व रत्नादि धर्मों को धारण करता है। और गौ, अश्वादि सब प्रकार के धनों से उन्हें सम्पन्न करता है ॥६॥

इति षट्त्रिंशत्तमं सूक्तं षड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ।

३६वां सूक्त और २६वां वर्ग समाप्त ।

अथ षड्ऋचस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द—१-३ गायत्री । ४-६ निचृद् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मना राक्षसेभ्यो रक्षणमुपदिश्यते—

अब परमात्मा दुराचारियों से रक्षा का कथन करते हैं—

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थ—(सुत) स्वयम्भू (वृषा) सर्व कामप्रद (स, सोम) वह परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन) राक्षसों को हनन करता हुआ और (देवयु) देवताओं को चाहता हुआ (पीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिए (पवित्रे, अर्षति) उनके अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में आकर विराजमान होता है और उनके सब विघ्नों को दूर करके उनको कृतकार्य बनाता है। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि वह देवभाव को धारण करने वाले मनुष्यों को ज्ञान द्वारा प्रतीत होता है अन्यों को नहीं। इस अभिप्राय से यहां देवताओं के हृदय में उसका निवास कथन किया गया है, अन्यों में नहीं ॥१॥

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।

अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—(अभियोनिम्) प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त होकर (कनिक्रदत्) शब्दायमान (स) वह परमात्मा (पवित्रे, अर्षति) पवित्र हृदयों में निवास करता है और (विचक्षण) सर्व द्रष्टा है (हरि) पापों का हरने वाला तथा (धर्णसि) सबको धारण करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ही इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का अधिष्ठाता तथा विधाता है ॥२॥

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।

रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (वाजी) अत्यन्त बल वाला (दिवः, रोचना) तथा अन्तरिक्ष का प्रकाशक है (रक्षोहा) असत्कर्मियों का हनन करने वाला (वार) सबका भजनीय और (अव्ययम्) अविनाशी है (पवमानः) स्वयम्भू परमात्मा, सबको पवित्र करता हुआ (विधावति) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥३॥

भावार्थ—सूर्य चन्द्रमादि सब लोक-लोकान्तर उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। स्वय प्रकाश एकमात्र वही परमात्मा है। अन्य कोई वस्तु स्वतः प्रकाश नहीं ॥३॥

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।

जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह परमात्मा (त्रितस्य, अधिसानवि) नीति शास्त्रों में सर्वोपरि नेता है (पवमानः) लोकों को शुद्ध करने वाले उसी परमात्मा ने (जामिभि, सह) तेजों के सहित (सूर्यम्, अरोचयत्) सूर्य को देदीप्यमान किया है ॥४॥

भावार्थ—सब प्रकार की विद्यायें उसी परमात्मा से मिलती हैं और वही परमात्मा राजनीति के राजधर्मों का निर्माता तथा विधाता है ॥४॥

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।

सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

पदार्थ—(वृत्रहा) अज्ञानों का नाशक (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (सुत) स्वय सिद्ध (वरिवोवित्) ऐश्वर्यों का देने वाला (अदाभ्य) अदम्भनीय (स, सोम) वह परमात्मा (वाजम्, इव, असरत्) शक्ति की नाईं व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य (वृत्र) मेघों को छिन्न-भिन्न करके धरातल को जल से सुसिञ्चित कर देता है, इसी प्रकार परमात्मा सब प्रकार के आवरणों को छिन्न-भिन्न करके अपने ज्ञान का प्रकाश कर देता है ॥५॥

स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।

इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥६॥२७॥

पदार्थ—(स) वह परमात्मा (देव) दिव्यगुण सम्पन्न है (कविना, इषित) विद्वानों द्वारा प्रार्थित होता है (इन्दु) परम ऐश्वर्य सम्पन्न है (मंहना) महान् है (इन्द्राय, अभि, द्रोणानि) विद्वानों के अन्तःकरणों में (धावति) विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थ—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि विद्याप्रदीप से जो लोग अपने अन्तःकरणों को देदीप्यमान करते हैं उनके हृदय में उसकी अभिव्यक्ति होती है। इस अभिप्राय से यहां परमात्मा का विद्वानों के हृदय में निवास करना कथन किया गया है ॥६॥

इति सप्तत्रिंशत्तमं सूक्तं सप्तविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

३७वां सूक्त और २७वां वर्ग समाप्त ।

अथ षड्ऋचस्य अष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१-८ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द—१, २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ प्रकारान्तरेण ईश्वरस्य गुणा उपदिश्यन्ते ।

अब प्रकारान्तर से ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हैं।

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति ।

गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—(एष, स्य) यह परमात्मा (रथ) गतिशील और (वृषा) सब कामनाओं का देने वाला (अव्यः) तथा सबका रक्षक है (सहस्रिणम्, वाजम्) अनन्त शक्ति सम्पन्न (गच्छन्) होता हुआ (वारेभि, अर्षति) वरणीय विद्वानों द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा का ज्ञान विद्वानों द्वारा इस संसार में प्रचार पाता है, इस अभिप्राय से परमात्मा ने उक्त मंत्र में विद्वानों की मुख्यता निरूपण की है ॥१॥

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थ—(त्रितस्य, योषण, हरिम्) "हरति अपगमयति स्वबलमाश्रयतीति हरिः स्वामी" तीनों गुण वाली माया के अधिपति (एतम्, इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न

परमात्मा को (इन्द्राय पीतये) जीव की तृप्ति के लिए (प्रद्रिभि) इन्द्रिय वृत्ति द्वारा (हिन्वन्ति) विद्वान् लोग ध्यानविषय करते हैं ।।२।।

भावार्थ —सत्व, रज और तम इन तीनो गुणो वाली माया जो प्रकृति है उसका एकमात्र अधिपति परमात्मा ही है कोई अन्य नही । जो-जो पदार्थ इन्द्रियगोचर होते हैं वे सब मायिक है अर्थात् मायारूपी उपादान कारण से बने हुए हैं । परमात्मा माया रहित होने से अदृश्य है । उसका साक्षात्कार केवल बुद्धि वृत्ति से होता है । बाह्य-चक्षुरादि इन्द्रियो से नही । इसी अभिप्राय से यहा परमात्मा को बुद्धि वृत्ति का विषय कहा गया है ।।२।।

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।

याभिर्मदाय शुम्भते ।।३।।

पदार्थ —(हरित , दश, अपस्युव.) परमात्मस्तुति द्वारा पापो को हरण करने वाली दश इन्द्रियां (एतम्, त्यम्) इस परमात्मा को (मर्मृज्यन्ते) ज्ञान का विषय बनाती हैं (याभि.) जिन इन्द्रियो से (मदाय, शुम्भते) आनन्द देने के लिए परमात्मा प्रकाशित होता है ।।३।।

भावार्थ —जो लोग योगादि साधनो द्वारा अपने मन का सयम करते हैं, अथवा यो कहिए कि, जिन्होने पाप वासनाओ को अपने मन की पवित्रता से नाश कर दिया है, परमात्मा उन्ही के ज्ञान का विषय होता है । मलिनात्माओं का कदापि नही ।।३।।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।

गच्छञ्जारो न योषितम् ।।४।।

पदार्थ —(एष , स्यः) यह परमात्मा (श्येन , न) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियो के समान (जार., योषित, गच्छन्, न) जैसे चन्द्रमा रात्रि को प्रकाशित करता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार (मानुषीषु, विक्षु, सीदति) मानुषी प्रजाओ में प्राप्त होता है ।।४।।

भावार्थ —जिस प्रकार चन्द्रमा अपने शीतस्पर्श और आह्लाद को देता हुआ प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार परमात्मा अपने शान्त्यादि और आनन्दादिगुणो से सब प्रजाओ को प्रसन्न करता है ।।४।।

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।

य इन्दुर्वारमाविशत् ।।५।।

पदार्थ.—(मद्य) आह्लादजनक (रस) आनन्दरूप (दिव , शिशु) द्युलोक का शासक (एष , स्य) यह परमात्मा (अवचष्टे) सबको देखता है (य , इन्दु) जो परमैश्वर्यवाला परमात्मा (वारम्, आविशत्) स्तोता विद्वान् के अन्त -करण मे प्रविष्ट होता हैं ।।५।।

भावार्थ —इस ससार मे सर्वद्रष्टा एकमात्र परमात्मा ही है । उससे भिन्न सब जीव अल्पज्ञ हैं । योगी पुरुष भी अन्यों की अपेक्षा सर्वज्ञ कहे जाते हैं, वास्तव मे सर्वज्ञ नही ।।५।।

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।

क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ।।६।।२८।।

पदार्थ —(एष , स्य) यह परमात्मा (सुत) स्वयम्भू (धर्णसि) धारण करनेवाला (क्रन्दन्) शब्दमयवेद को आविर्भाव करता हुआ (पीतये) ससार की तृप्ति के लिये (योनिम्, प्रियम्) प्रियप्रकृति मे (अभ्यर्षति) व्याप्त हो रहा है ।।६।।

भावार्थ —इस प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड के रोमरोम मे व्याप्त, और वेदादि विद्याओ का आविर्भावकर्ता एकमात्र परमात्मा ही है ।।६।।

इति अष्टत्रिंशत्तमं सूक्तमष्टाविंशोवर्गश्च समाप्त ।।

३८वा सूक्त और २८वा वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ बृहन्मतिर्ऋषि ।। पवमान सोमो देवता ।। छन्द —१, ४, ६ निचृद् गायत्री ।। २, ३, ५, गायत्री ।। षड्ज स्वर ।।

अथ यज्ञविषये परमात्मनो ज्ञानरूपेणाह्वानं कथ्यते ।

अब यज्ञ मे ज्ञानरूप से परमात्मा का आवाहन कथन करते हैं ।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।

यत्र देवा इति ब्रवन् ।।१।।

पदार्थः—(बृहन्मते) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (आशु.) आप शीघ्रगति शील हैं (यत्र देवा , इति, ब्रवन्) जहा दिव्यगुणसम्पन्न ऋत्विगादि आपका आवाहन करते हैं, उस यज्ञस्थल में आप (प्रियेण, धाम्ना, परि अर्ष) अपने सर्वहितकारक तेजस्वरूप से विराजमान हो ।।१।।

भावार्थ —यज्ञादिशुभकर्मों मे परमात्मा के भाव वर्णन किये जाते हैं इस लिये परमात्मा की अभिव्यक्ति यज्ञादिस्थलों मे मानी गई है । वास्तव मे परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है ।।१।।

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।

वृष्टिं दिवः परि स्रव ।।२।।

पदार्थ.—(अनिष्कृतम्, परिष्कृण्वन्) हे परमात्मन् ! आप अपने अज्ञानी उपासको को ज्ञान देते हुए (जनाय इष , यातयन्) और अपने भक्तो का ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए (दिव , वृष्टिम्, परिस्रव) द्युलोक से वृष्टि का उत्पन्न कीजिये ।।२।।

भावार्थ —परमात्मा के, ससार मे अद्भुत कर्म ये हैं कि उसने द्युलोक को वर्षणशील बनाया है, और सूर्यादिलोको को तेजोमय तथा पृथवीलोक को दृढ, इत्यादि विचित्र भावो का कर्ता एकमात्र परमात्मा ही है ।।२।।

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।

विचक्षाणो विरोचयन् ।।३।।

पदार्थ —(विरोचयन्) सब प्रकाशित वस्तुओ का प्रकाशमान करता हुआ (विचक्षाण) और अखिलब्रह्माण्ड का द्रष्टा (सुत) वह स्वयम्भू परमात्मा (ओजसा, त्विषि, दधान) अपने प्रताप से ज्ञान को धारण करता हुआ (पवित्रे, एति) विद्वानो के पवित्र अन्त करण म प्राप्त होता है ।।३।।

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक है तथापि उसका स्थान विद्वानो के हृदय को इसलिय वर्णन किया गया है कि विद्वान् लोग अपने हृदय को उसके ज्ञान का पात्र बनाते है ।।३।।

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ।।४।।

पदार्थ—(अयम्, स) यह वह परमात्मा है (य) जोकि (दिवस्परि) अन्तरिक्ष के भी ऊर्ध्वभाग मे वर्तमान है (रघुयामा) और शीघ्रगतिवाला है (पवित्रे, आ) और ज्ञानयोगियो के पवित्र अन्त करण मे निवास करता है तथा (सिन्धो ऊर्मा, व्यक्षरत्) जो स्यन्दनशक्ति उत्पन्न करता है ।।४।।

भावार्थ —उसी परमात्मा की अद्भुत शक्ति से सूर्यचन्द्रमादिको का परिभ्रमण और नदियो का प्रवहन इत्यादि सम्पूर्णगतियाँ उसी की अद्भुत सत्ता से उत्पन्न होती हैं ।।४।।

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

इन्द्राय सिच्यते मधु ।।५।।

पदार्थ —(सुत) वह स्वयम्भू परमात्मा (परावत) दूरस्थ (अथो, अर्वावत) और समीपस्थ वस्तुओ को (आविवासन) भलीप्रकार प्रकाशित करता हुआ (इन्द्राय, सिच्यते, मधु) जीवात्मा के लिये आनन्द की वृष्टि करता है ।।५।।

भावार्थ —जीवात्मा के लिये आनन्द का स्रोत एकमात्र वही परमात्मा है ।।५।।

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

योनावृतस्य सीदत ।।६।।२९।।

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (हरिम्) पापो का नाश करने वाले आपको (समीचीना) सत्कर्मी ऋत्विगादि लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं । तथा (अद्रिभि , हिन्वन्ति) इन्द्रियवृत्तियो द्वारा ज्ञान का विषय बनाते हैं (ऋतस्य, योनौ, सीदत) हे परमात्मन् ! आप सत्य की योनि, यज्ञ म स्थित हो ।।६।।

भावार्थ —याज्ञिकपुरुष अपने अन्त करण को यज्ञवेदिस्थानी बनाकर परमात्मज्ञान को अवनेय बनाकर इस ज्ञानमययज्ञ से प्रजा को सुगन्धित करते है, तात्पर्य यह है कि अध्यात्मयज्ञ ही एकमात्र परमात्मप्राप्ति का मुख्य साधन है, अन्य जलस्थलादि कोई वस्तु भी परमात्मप्राप्ति का मुख्यसाधन नही ।।६।।

इति एकोनचत्वारिंशत्तमं सूक्तमेकोनत्रिंशत्तमो वर्गश्च समाप्त ।

३९वा सूक्त और २९वा वर्ग समाप्त ।।

अथ षडृचस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ बृहन्मतिऋषि ।। पवमान सोमो देवता ।। छन्द —१, २ गायत्री । ३—६ निचृद्गायत्री ।। षड्ज स्वर. ।।

अथ ईश्वरस्य सकाशात्शील प्रार्थ्यते ।

अब ईश्वर से शील की प्राथना करते है ।

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ।।१।।

पदार्थ —(विचर्षणि) सर्वद्रष्टा परमात्मा (पुनान) सत्कर्मियोको पवित्र करता हुआ ! (विश्वा, मृध , अभ्यक्रमीत) अखिलदुराचारियोका नाश करता है (विप्र, धीतिभि) उस परमात्माको विद्वान लोग वेदवाणियो स (शुम्भन्ति) स्तुति करके विभूषित करते है ।।१।।

भावार्थ —परमात्मा सत्कर्मी पुरुषो को शुभस्वभाव प्रदान करता है । तात्पर्य यह है कि सत्कर्मियो को उनके शुभकर्म्मानुसार शुभफल देता है और दुष्कर्मियो को दुष्कर्मानुसार अशुभफल देता है ।।१।।

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।

ध्रुवे सदसि सीदति ॥२॥

पदार्थः—(**अरुण**) सर्वव्यापी (**सुत**) स्वयंसिद्ध वह परमात्मा (**आयो'-निम् रुहत्**) सम्पूर्णप्रकृति मे व्याप्त हो रहा है और (**वृषा**) सर्वकामनाओं का देनेवाला वह परमात्मा (**सदसि**) यज्ञस्थल मे (**इन्द्रम् गमत्**) ज्ञानयोगी को प्राप्त होकर (**ध्रुवे, सीदति**) उसके दृढविश्वासी अन्त करण मे विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुषो का परमात्मा सदैव उत्साह देकर सत्कर्मों मे प्रवृत्त करता है ॥२॥

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**सोम**) हे सौम्य-स्वभाववाले (**न**) हमारे लिये (**नु**) निश्चय करके (**विश्वत**) सब ओर से (**सहस्रिणम्**) अनेक प्रकार के (**महां**) बडे (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**आपवस्व**) दीजिये ॥३॥

भावार्थ—सत्कर्मी पुरुष भी जब तक परमात्मा से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि की प्रार्थना नही करते तबतक उनका अभ्युदय नही होता यद्यपि अभ्युदय पूर्वकृत शुभकर्मों का फल है तथापि जबतक मनुष्य का अभ्युदयशालीशील नही बनता तब तक वह अभ्युदय को कदाचित् भी नही चाहता, इसलिये अभ्युदयशालीशील बनाने के लिये अभ्युदय की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये ॥३॥

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर ।

विदाः सहस्रिणीरिषः ॥४॥

पदार्थ—(**सोम, पवमान**) हे जगत् को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! (**विश्वा, द्युम्नानि, आभर**) आप मेरे लिये सम्पूर्ण दिव्यरत्नो को दीजिये तथा (**सहस्रिणी, इष, विदा**) अनेक प्रकार के अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिये ॥४॥

भावार्थ—सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये उससे ऐश्वर्यों की प्रार्थना करनी चाहिये ॥४॥

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।

जरितुर्वर्धया गिरः ॥५॥

पदार्थ—(**स**) हे परमात्मन् ! वह पूर्वोक्त आप (**न:, स्तोत्रे**) आपकी स्तुति करनेवाले मुझको (**पुनान**) पवित्र करते हुये (**सुवीर्यम्, रयिम्**) सुन्दर पराक्रम के साथ ऐश्वर्य को (**आभर**) दीजिये (**जरितुः, गिर., वर्धय**) और मुझ उपासक की वाक्शक्ति को बढाइये ॥५॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपनी वाक्शक्ति को बढाते हैं परमात्मा उन्हे वाग्मी अर्थात् सुन्दर वक्ता बनाता है ॥५॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।

वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥६॥३०॥

पदार्थ—(**इन्दो, सोम**) हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन् ! (**पुनान**) आप मेरे स्वभाव को पवित्र करते हुये (**द्विबर्हसम, रयिम्, आभर**) द्युलोक तथा पृथिवी-लोक सम्बन्धी दोनो ऐश्वर्यों को दीजिये (**इन्दो**) हे प्रकाशरूप ! (**वृषन्**) सब कामनाओं की वर्षा करनेवाले आप (**न, उक्थ्यम्**) मेरी स्तुतिरूप वाणी को स्वीकार करिये ॥६॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा के गुणकर्मानुसार अपने स्वभावको बनाते हैं परमात्मा उन्हे ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्रदान करता है ॥६॥

इति चत्वारिंशत्तमं सूक्तं त्रिंशो वर्गश्च समाप्त ॥

४०वा सूक्त और ३०वा वर्ग समाप्त ॥

अथ षडृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ *मेध्यातिथिर्ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥* **छन्द**—१, ३, ४, ५ *गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ६ निचृद्गायत्री ॥* **षड्ज स्वर ॥**

अथ परमात्मनो रचनामहत्त्व वर्ण्यते—

अब परमात्मा की रचना का महत्त्व वर्णन करते है :—

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थ—(**ये, गाव, न**) पृथिव्यादिलोको के समान जो लोक (**भूर्णयः**) शीघ्रगतिशील हैं (**त्वेषाः**) जो दीप्तिमान् और (**अयास**) वेगवाले (**कृष्णाम्, त्वचम्**) महागूढ अन्धकार को (**अपघ्नत, प्राक्रमु**) नष्ट करते हुए प्रक्रमण करते है ॥

भावार्थः परमात्मा सब लोकलोकान्तरोको उत्पन्न करता है उसीकी सत्तासे सब पृथिव्यादिलोक गति कर रहे हैं ॥१॥

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।

साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥२॥

पदार्थ—(**सुवितस्य, दुराव्यम्, सेतुम्**) ऐसे पूर्वोक्त लोको को उत्पन्न करने वाले दुःखसे प्राप्तकरनेयोग्य ससारके सेतुरूप ईश्वरकी (**मनामहे**) स्तुति करते हैं जो परमात्मा (**अव्रतम्, दस्युम् साह्वांस**) वेदधर्मको नही पालन करनेवाले दुराचारियों का शमन करने वाला है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर जगत् का सेतु है, अर्थात् मर्य्यादा है, उसी की मर्य्यादामे सूर्य्यचन्द्रादि सब लोक परिभ्रमण करते हैं । मनुष्यो को चाहिये कि उस मर्य्यादा पुरुषोत्तम को सदैव अपना लक्ष्य बनावे ॥२॥

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।

चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थ—(**वृष्टे, इव, स्वन., शृण्वे**) जिसका अनुशासन मेघकी वृष्टिके समान नि:सन्देह सुना जाता है उसी (**पवमानस्य, शुष्मिण**) ससारको पवित्र करनेवाले तथा सर्वोपरि बलवाले परमात्माकी (**विद्युत, दिवि चरन्ति**) विद्युदा-दिशक्तियें आकाश मे भ्रमण करती हुई दिखायी देती हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्माकी विद्युदादि अनेकशक्तियें हैं, इसलिये उसे अनन्तशक्ति-मद्ब्रह्म कहा जाता है ॥३॥

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।

अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥४॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमात्मान् ! आप (**सुत**) स्वयंसिद्ध हैं (**गोमत्, हिरण्यवत, अश्वावत्, वाजवत्**) गौ हिरण्य अश्व बल पराक्रमादि से युक्त (**महीम्, इषम् आपवस्व**) बड़े भारी ऐश्वर्य को मेरे लिये उत्पन्न करिये ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी स्वसत्तासे विराजमान है । अर्थात् परमात्मा सब का अधिष्ठान होकर सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा है और वह स्वयंप्रकाश है ॥४॥

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।

उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

पदार्थ—(**विचर्षण**) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! (**उषा, सूर्य, न, रश्मिभि**) जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोसे उष कालको प्रकाशित कर देते हैं उसी-प्रकार (**मही, रोदसी**) इस महान् पृथिवीलोक और द्युलोकको (**आपृण**) अपने ऐश्वर्य से पूरित करिये और (**पवस्व**) उस ऐश्वर्य से अपने सत्कर्मी उपासकों को पवित्र करिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र पवित्रताका केन्द्र है, पवित्रता चाहनेवालो को चाहिये कि पवित्र होने के लिये उसी परमात्मा की उपासना करके अपने आपको पवित्र बनायें ॥५॥

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।

सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥३१॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन्, ! (**रसेव, विष्टपम्**) जिस प्रकार रससे अर्थात् ब्रह्मसे लोक व्याप्त हो रहा है उसीप्रकार (**शर्मयन्त्या, धारया**) सुख देनेवाली आनन्दकी धारा सहित (**न, विश्वत, परिसर**) मेरे हृदय मे आप भली प्रकार निवास कीजिये ॥६॥

भावार्थ—आनन्दका स्रोत एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिये आनन्दा-भिलाषीजनो को चाहिये कि उसी आनन्दाम्बुधि का रसपान करके अपने आपको आनन्दित करें ॥६॥

इति एकचत्वारिंशत्तम सूक्तमेकत्रिंशो वर्गश्च समाप्त ॥

४१वां सूक्त और ३१वां वर्ग समाप्त ।

अथ षडृचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ *मेध्यातिथिर्ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥* **छन्द**—१, २ *निचृद्-गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥* **षड्ज स्वर ॥**

अथ परमात्मन सूर्यादीनां कर्तृत्वं वर्ण्यते ।

अब परमात्माको सूर्यादिकोंके कर्तारूपमे वर्णन करते हैं ।

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् ।

वसानो गा अपो हरिः ॥१॥

पदार्थ—(हरि,) पापोका हरनेवाला वह परमात्मा (**दिव, रोचना, जनयन्**) आकाशमे प्रकाशित होनेवाले ग्रहनक्षत्रादिकोको उत्पन्न करता हुआ और (**अप्सु, सूर्यम्, जनयन्**) अन्तरिक्षमे सूर्यको उत्पन्न करता हुआ (**गा, अपः**) भूमि तथा द्युलोकको (**वसान**) आच्छादित करता हुआ सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—उसी परमात्माने सूर्य्यादि सब लोको को उत्पन्न किया । और उसी की सत्ता से स्थिर होकर सब लोकलोकान्तर अपनी-अपनी स्थितिको लाभ कर रहे है ॥१॥

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि।
धारया पवते सुतः॥२॥

पदार्थ —(प्रत्नेन, मन्मना) प्राचीन वेदरूपस्तोत्र से (देव) प्रकाशमान (एषः, सुतः) यह स्वयंसिद्ध परमात्मा (देवेभ्य) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वानोंकी (धारया) आनन्दकी धारासे (परि, पवते) भलीप्रकार आह्लादित करता है॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने वैदिकज्ञानसे सबलोगोंको ज्ञानी विज्ञानी बनाकर आनन्दित करता है॥२॥

वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये।
सोमाः सहस्रपाजसः॥३॥

पदार्थ —(सहस्रपाजस , सोमा) अनन्तशक्तिसम्पन्न परमात्मा (वावृधानाय) अपनी अभ्युन्नति की इच्छा करनेवाले (तूर्वये) दक्षतायुक्त कर्मयोगियो की (वाजसातये) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए (पवन्ते) उनके हृदयो मे ज्ञान उत्पन्न करके उनको पवित्र करता है॥३॥

भावार्थः—इस संसार मे सर्वशक्तिमान् एकमात्र परमात्मा से सब प्रकार के अभ्युदय की प्रार्थना करनी चाहिए। जो लोग उक्त परमात्मा से अभ्युदयकी प्रार्थना करके उद्योगी बनते हैं, वे अवश्यमेव अभ्युदयको प्राप्त होते हैं॥३॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते।
क्रन्दन्देवाँ अजीजनत्॥४॥

पदार्थ—(प्रत्नम्, इत्) प्राचीन वेदवाणियो मे (पयः, दुहान) ब्रह्मानन्द को उत्पन्न करता हुआ वह परमात्मा (पवित्रे, परिषिच्यते) उपासकोके पवित्र हृदय मे ध्यान का विषय होता है (क्रन्दन्) और उसी शब्दायमान परमात्मा ने (देवान्, अजीजनत्) देदीप्यमान चन्द्रादिकोको उत्पन्न किया॥४॥

भावार्थ —परमात्माने वेदवाणीरूपी कामधेनुको ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण कर दिया है। जो लोग इस अमृतरसको पान करना चाहते हो, वे उक्तामृतप्रदायिनी ब्रह्मविद्यारूपी वेदवाग्धेनुको वत्सवत् उसके प्रेमपात्र बनकर इस दुग्धामृतको पान करें॥४॥

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः।
सोमः पुनानो अर्षति॥५॥

पदार्थः—(सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (ऋतावृधः, देवान्) सत्य को बढाने वाले सत्कर्मियो को (अभिपुनानः) सर्वथा पवित्र करके (वार्या, विश्वानि) सम्पूर्ण वाञ्छनीय पदार्थो को (अभ्यर्षति) उसके लिए प्राप्त करता है॥५॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा दयामय और सर्व-हितकारी है, तथापि उद्योगी पुरुषों को पवित्र करता हुआ, अभ्युदयरूप फल देता है। अनुद्योगियों को नहीं॥५॥

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः।
पवस्व बृहतीरिषः॥६॥३२॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! आप (गोमत्) गवादि ऐश्वर्यो से युक्त तथा (वीरवत्) वीरयुक्त (अश्वावत्, वाजवत्) अश्वादि युक्त और अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त हैं (बृहती, इषः, पवस्व) आप अपने उपासको को महान् ऐश्वर्य दीजिये॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ही वीर धर्म का दाता है। उसकी कृपा से वीर पुरुष उत्पन्न होकर दुष्टो का दलन और श्रेष्ठो का परिपालन करते हैं॥६॥

इति द्विचत्वारिंशत्तमं सूक्तं, द्वात्रिंशो वर्गश्च समाप्तः।
४२वां सूक्त और ३२वां वर्ग समाप्त।

अथ षडृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१-६ मेध्यातिथिर्ऋषि। पवमान सोमो देवता। छन्द – १, २, ४, ५ गायत्री। ३, ६ निचृद्गायत्री॥ षड्ज स्वर॥

अथ परमात्मनो दातृत्वं वर्ण्यते—
अब परमात्मा का दातृत्व वर्णन करते हैं—

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः।
तं गीर्भिर्वासयामसि॥१॥

पदार्थ —(हर्यत, य) सर्वोपरि कमनीय जो परमात्मा (अत्य, इव) विद्युत् के समान दुर्ग्राह्य है (गोभि मदाय मृज्यते) और जो परमात्मा ब्रह्मानन्द-प्राप्ति के लिए इन्द्रियो द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता है (तम) उस परमात्मा को (गीभि) अपनी स्तुतियो द्वारा (वासयामसि) हृदयाधिष्ठित करते है॥१॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा की प्रार्थना उपासना और स्तुति करते है वे अवश्यमेव परमात्मा के स्वरूप को अनुभव करते है॥१॥

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा।
इन्दुमिन्द्राय पीतये॥२॥

पदार्थ —(तम्, इन्दुम्) उस प्रकाशमान परमात्मा को (अवस्युवः, नः, विश्वा, गिरः) रक्षा को चाहने वाली मेरी सम्पूर्ण वाणियां (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्ति के लिए (पूर्वथा) पहले की तरह (शुम्भन्ति) स्तुतियो मे विराजमान करती है॥२॥

भावार्थ —वही परमात्मा मनुष्य की पूर्ण तृप्ति के लिए पर्याप्त होता है। अन्य शब्दस्पर्शादि विषय इसको कदाचित् भी तृप्त नही कर सकते॥२॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः।
विप्रस्य मेध्यातिथेः॥३॥

पदार्थ —(गीर्भि, परिष्कृत) वेदवाणियो से स्तुति किया गया (हर्यत, सोम) दर्शनीय परमात्मा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (मेध्यातिथेः, विप्रस्य) ज्ञानयोगी विद्वान् के हृदय मे (याति) निवास करता है॥३॥

भावार्थ – जो लोग ज्ञानयोगी बनकर ज्ञान प्रदीप से अपने हृदय मन्दिर को प्रदीप्त करते हैं उनके हृदय रूपी मन्दिर मे परमात्मा का पूर्णतया अवभास होता है॥३॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम्।
इन्दो सहस्रवर्चसम्॥४॥

पदार्थ —(पवमान) हे सर्वपावक परमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशमान ! (सोम) हे सौम्य स्वभाव वाले ! (अस्मभ्यम्) आप मेरे लिए (सहस्रवर्चसम्) अनेक प्रकार की दीप्ति वाले (सुश्रियम्) सुन्दर शोभा से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (विदा) प्राप्त कराइये॥४॥

भावार्थ —वही परमात्मा अनन्त प्रकार के अभ्युदयो का दाता है। अर्थात् ब्रह्मवर्चसादि सब तेज उसी की सत्ता से उपलब्ध होते हैं॥४॥

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ।
यदक्षारति देवयुः॥५॥

पदार्थ—(इन्दुः) वह प्रकाशमान परमात्मा (अत्य न वाजसृत्) विद्युत् के सदृश अपनी शक्तियो से व्याप्त होता हुआ (कनिक्रन्ति) शब्दायमान हो रहा है (यत्) जो परमात्मा (देवयु) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वानो को चाहता हुआ (पवित्रे, आ) उनके पवित्र हृदयो मे भली प्रकार (अति, अक्षा) ब्रह्मानन्द का अत्यन्त क्षरण करता है॥५॥

भावार्थ —दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषो के हृदय मे परमात्मा की ज्योति सदैव देदीप्यमान रहती है। मलिनान्त करण, आसुरी सम्पत्ति वालों के हृदय उस दैवी दिव्य ज्योति से सर्वथैव वञ्चित रहते हैं॥५॥

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे।
सोम रास्व सुवीर्यम्॥६॥३३॥८॥६॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (वाजसातये) अन्नादि ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये और (वृधे) अभ्युन्नति के लिए (गृणत, विप्रस्य, पवस्व) आपकी स्तुति करने वाले जो कर्मयोगी विद्वान् हैं उनको पवित्र करके योग्य बनाइये और (सुवीर्य, रास्व) उनके शत्रुओ को दमन करने के लिए पर्याप्त पराक्रम को दीजिये॥६॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष जो अपने उद्योग से सदैव अभ्युदयाभिलाषी रहते हैं, उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है॥६॥

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये षष्ठाष्टकेऽष्टमोऽध्याय समाप्त।

समाप्त चेद षष्ठाष्टकम्।
४३वां सूक्त और छठा अष्टक समाप्त॥

अथ षडृचस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य

१-६ अयास्य ऋषि॥ पवमान सोमो देवता॥ छन्द :—१ निचृद्गायत्री। २-६ गायत्री॥ षड्ज स्वर॥

अथ परमात्मन, मेधाविबुद्धिविषयत्वं वर्ण्यते।
अब परमात्मा मेधावी लोगो की बुद्धि का विषय है, यह वर्णन करते हैं।

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।
अभि देवाँ अयास्यः॥१॥

पदार्थ – (इन्दो) हे परमात्मन् ! (ऊर्मिम, बिभ्रत्) आप आनन्द की तरङ्गो को धारण करते हुए (महे, तने) बड़े ऐश्वर्य के लिए (न, न, प्रार्षसि) हमको शीघ्र ही प्राप्त होते हैं और (अभिदेवान्) कर्मयोगियो को (अयास्यः) बिना प्रयत्न प्राप्त होते हैं॥१॥

भावार्थ —जो पुरुष अनुष्ठानशील नहीं अर्थात् उद्योगी बनकर कर्मयोग मे तत्पर नही है वह पुरुष कदाचित् परमात्मा को नही पा सकता इसलिए उद्योगी बन कर कर्म मे तत्पर होना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिये॥१॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति।
विप्रस्य धारया कविः॥२॥

पदार्थ — (कवि , सोमः) वेदरूप काव्यों का निर्माता वह परमात्मा (परावति) अल्प प्रयत्न से ध्यान विषयी न होने के कारण दूरस्थ (मती, सुष्ट) स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होता हुआ (विप्रस्य, धिया, हित) ज्ञान योगियों की बुद्धि से साक्षात्कार किया गया (धारया, हिन्वे) अपने ब्रह्मानन्द की धारा से तृप्त करता है ॥२॥

भावार्थ — वेद यद्यपि परमात्मा का ज्ञान है तथापि उस ज्ञान का आविर्भाव परमात्मा करता है । इसी अभिप्राय से उसे वेदों का निर्माता वा कर्त्ता कथन किया है वास्तव में वेद नित्य है ॥२॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।

सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥

पदार्थ —(जागृविः, सुत , अयम्, सोम) स्वयसिद्ध जागरूक यह परमात्मा (विचर्षणि) सबको देखता हुआ (आ, याति) सर्वत्र व्याप्त है और (देवेषु) विद्वानों के (पवित्रे) पवित्र हृदय में (एति) आविर्भूत होता है ॥३॥

भावार्थ —अन्य लोगों की जागृति नैमित्तिकी होती है अर्थात् स्वत सिद्ध नहीं होती । एकमात्र परमात्मा की जागृति ही स्वत सिद्ध है अर्थात् परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप है, अन्य सब जीव पराधीन ज्ञान वाले हैं ॥३॥

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।

बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४॥

पदार्थ —जो परमात्मा (बर्हिष्मान्, आ, विवासति) व्यापकरूप से सब लोकों को आच्छादन कर रहा है (स) वह परमात्मा (अध्वरं, चारु , चक्राणः) हमारे यज्ञ का शोभायमान करता हुआ (नः, पवस्व) हमको पवित्र करे ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा अपनी व्यापक सत्ता से सब लोक-लोकान्तरों को एक देशी बनाकर व्यापक रूप से स्थिर है उक्त यज्ञ में उसकी प्रकाशक भाव से प्रकाशित होने की प्रार्थना की गई है ॥४॥

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः ।

सोमो देवेष्वा यमत् ॥५॥

पदार्थः—(सदावृध) जो सदैव सर्वोपरि रहता है और (विप्रवीर) "वीरयति यद्वा विशेषेण-इर्ते-ईरयति वा इति वीर " जो मेधावी पुरुषों को वीर अर्थात् शक्ति प्रदान करके प्रेरणा करता है (सः, सोम) वह परमात्मा (न भगाय, वायवे) हमारे व्याप्तिशील ऐश्वर्य के लिए (देवेषु, आयमत्) ज्ञानक्रियाकुशल विद्वानों की शक्तियों को बढ़ाये ॥५॥

भावार्थ —कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी पुरुषों की शक्तियों के बढ़ाने के लिए परमात्मा सदैव उद्यत रहता है ॥५॥

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः ।

वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥६॥१॥

पदार्थ —(क्रतुवित्) सबके कर्मों को जाननेवाले और (गातुवित्तम) कवियों में उत्तम कवि (स) वह आप (वसुत्तये) रत्नादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए (न) हमारे (बृहत्, वाजम, श्रव) बड़े बल तथा कीर्तियों (अद्य) तत्काल ही (जेषि) बढ़ाइए ॥६॥१॥

भावार्थ —कवि शब्दके अर्थ यहां सर्वज्ञ हैं । ज्ञानी विज्ञानी सबमें से एकमात्र परमात्मा ही सर्वोपरि कवि सर्वज्ञ है, अन्य कोई नहीं ॥६॥१॥

इति चतुश्चत्वारिंशत्तम सूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्त ।

४४वां सूक्त और १ला वर्ग समाप्त ।

अथ षड्ऋचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—६ अयास्य ऋषि । पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३-५ गायत्री । २ विराड्गायत्री । ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मा न्यायकारी इति वर्ण्यते ।

अब परमात्मा न्याय करता है यह वर्णन करते हैं ।

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।

इन्दविन्द्राय पीतये ॥१॥

पदार्थ —(स) पूर्वोक्तगुणसम्पन्न (इन्दो) प्रकाशमान ! आप (नृचक्षा) सब मनुष्योंके द्रष्टा हैं (मदाय) आह्लादके लिए और (देववीतये) यज्ञके लिए तथा (इन्द्राय पीतये) जीवात्माकी तृप्तिके लिए (कम्, पवस्व) आप सुखप्रदान करिये ॥१॥

भावार्थ —जीवात्माके हृदय-मन्दिरको एकमात्र परमात्मा ही प्रकाशित करता है, अन्य कोई भी जीवको सत्यज्ञानके प्रकाशका दाता नहीं ॥१॥

स नो अर्षाभि दूत्यं १ त्वमिन्द्राय तोशसे ।

देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (स) वह आप (न दूत्यम्, अभ्यर्ष) हमारे लिए कर्मयोग प्रदान करिये (त्वम्, इन्द्राय, तोशसे) क्योंकि आप परमैश्वर्यसम्पन्न होने के लिये स्तुति किये जाते हैं (देवान्, सखिभ्य) और सत्कर्मी विद्वानों के लिये (आवरम्) भली प्रकार उनके अभीष्टको दीजिये ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा सदाचारियोंको सुख और दुष्कर्मियोंको दुःख देता है । परमात्मा के राज्य में किसी के साथ भी अन्याय नहीं होता । इस बात को ध्यान में रखकर मनुष्यों को सदैव सदाचारी बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।

वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (अरुणम्, उत, त्वाम्) गतिशील आपको (मदाय) आह्लादप्राप्ति के लिये (गोभि , अञ्ज्म) इन्द्रियों द्वारा ज्ञान का विषय करते हैं (न , राये) आप हमारे ऐश्वर्य के लिये (दुर , विवृधि) पापों को नष्ट करिये तथा (कम्) सुख प्रदान करिये ॥३॥

भावार्थ —जो लोग अपनी इन्द्रियों का संयम करते हैं वे ही उस परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को अनुभव कर सकते हैं अन्य नहीं ॥३॥

अत्यु पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि ।

इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥४॥

पदार्थ —(वाजी, इन्दु) उत्तम बलवाला वह परमात्मा (धुरम्, अत्यक्रमीत्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भार के सहने में समर्थ है और (यामनि, न) ध्यान करने से शीघ्र ही (देवेषु, पवित्रम्, पत्यते) विज्ञानियों के हृदय में अधिष्ठित होता है ॥४॥

भावार्थ —यद्यपि प्रकृति, जीव यह दोनों पदार्थ भी अपनी सत्ता से विद्यमान है तथापि अधिकरण अर्थात् सब का आधार बनकर एकमात्र परमात्मा ही स्थिर है । इसलिये उसको (धुर) रूप अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के आधाररूप से कथन किया गया है ॥४॥

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम् ।

इन्दुं नावा अनूषत ॥५॥

पदार्थ —(अत्यविम्) अतिशय सबकी रक्षा करने वाले (वने, क्रीळन्तम्) अखिलब्रह्माण्डरूप वन में क्रीडा करते हुए (ईम्, इन्दुम्) इस परमात्मा की (सखाय) उसके प्रिय स्तोता लोग (अस्वरन्) शब्दायमान होते हुए (नावाः समनूषत) उसकी रचित वेदवाणियों से स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा के ज्ञान का साधन मनुष्य के पास एकमात्र उसका स्तोत्र वेद ही है अन्य कोई ग्रन्थ उसके पूर्णज्ञान का साधन नहीं ॥५॥

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे ।

इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥६॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यया, पीत) जिस ज्ञान की धारा से सेवन किये गये आप (विचक्षसे, स्तोत्रे) अपने विद्वान् स्तोता के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर ज्ञानकर्मशालिनी शक्ति को देते हैं (तया, धारया, पवस्व) उसी आनन्दोत्पादक ज्ञान की धारा से आप मुझे पवित्र करिये ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा अपनी ज्ञानरूप धारा से सबके अन्त करणों को सिञ्चित करता है । तात्पर्य यह है कि उसका ज्ञानरूप प्रकाश प्रत्येक पुरुष के हृदय में पड़ता है । परन्तु सुपात्र पुरुष ही पात्र बनकर उसका ग्रहण कर सकते हैं अन्य नहीं ॥६॥

इति पञ्चचत्वारिंशत्तम सूक्त द्वितीयो वर्गश्च समाप्त ।

४५वां सूक्त और २सरा वर्ग समाप्त ।

अथ षड्ऋचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-६ अयास्य ऋषि । पवमान. सोमो देवता । छन्द -१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६, निचृद्गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ पदार्थविद्याविदो विदुषां गुणा उपदिश्यन्ते—

अब पदार्थविद्या के जानने वाले विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ।

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव ।

क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१॥

पदार्थ —उस परमात्मा द्वारा (पर्वतावृध) ज्ञान और कर्म से बढ़े हुए (क्षरन्त) उपदेश को देने वाले (कृत्व्याः, इव) कर्मयोगियों के समान (अत्यासः) सर्वकर्मों में व्यापक विद्वान् (देववीतये) देवों के तृप्ति कारक यज्ञ के लिए (असृग्रन्) पैदा किये जाते हैं ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ज्ञानरूपयज्ञ के लिए ज्ञानी-विज्ञानी पुरुषों को उत्पन्न करता है । इसलिए सब पुरुषों को चाहिए कि वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानों को बुलाकर अपने यज्ञादि कर्मों का आरम्भ किया करें ॥१॥

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती ।

वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥

पदार्थ—(**पित्र्यावती, योषेव**) पितावाली कन्या के समान (**परिष्कृतासः**) ब्रह्मविद्या से अलङ्कृत होने से (**इन्दव**) परम ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (**सोमा**) वे विद्वान् लोग (**वायुम्**) सूक्ष्मभाव को प्राप्त हुए पदार्थों का (**असृक्षत**) सिद्ध करते है ॥२॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष उक्त पदार्थों मे से अतिसूक्ष्मभाव निकालकर प्रजाओं मे प्रचार करते है । इसलिये प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि कर्मयोगी विद्वानो का सत्कार करें । ताकि विज्ञान की वृद्धि होकर प्रजाओ मे सुख का संचार हो ॥२॥

एते सोमा॑स इन्द॑वः प्रय॑स्वन्तश्च॒मू सु॒ताः ।

इन्द्रं॑ वर्धन्ति॒ कर्म॑भिः ॥३॥

पदार्थ—(**सुताः, एते, इन्दव , सोमास**) ये उत्पन्न किये गये परमैश्वर्यशाली विद्वान् लोग (**चमू, प्रयस्वन्तः**) सेनाओ मे प्रयत्न करते हुए (**कर्मभि**) अनेक प्रकार की क्रियाओ से (**इन्द्रम्**) अपने स्वामी को (**वर्धन्ति**) जययुक्त करके समृद्ध बनाते हैं ॥३॥

भावार्थ—कर्मयोगियो के प्रभाव से ही सैनिक बल की वृद्धि होती है । और कर्मयोगियो के प्रभाव से ही सम्राट् सम्पूर्ण देश-देशान्तरो का शासन करता है इसलिए परमात्मा ने इन मन्त्रो मे कर्मयोगियो के सत्कार का वर्णन किया है ॥३॥

आ धा॑वता सुहस्त्यः शु॒क्रा गृ॑भ्णीत म॒न्थिना॑ ।

गोभिः॑ श्रीणीत मत्स॒रम् ॥४॥

पदार्थ—(**सुहस्त्यः**) हे क्रियाकुशल हस्तों वाले विद्वानो ! आप (**आ, धावत**) ज्ञान की ओर लग कर (**मन्थिना**) यन्त्र द्वारा (**शुक्रा, गृभ्णीत**) बलवाले पदार्थों को सिद्ध कीजिए (**गोभि.**) और रश्मियुक्त विद्युदादिपदार्थों द्वारा (**मत्सरम्**) आह्लादकारक पदार्थों को (**श्रीणीत**) सुदृढ करके प्रकाशित कीजिए ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यो को चाहिए कि वे कर्मयोगियो से प्रार्थना करके अपने देश के क्रियाकौशल की वृद्धि करें ॥४॥

स प॑वस्व धनञ्जय प्रय॒न्ता राध॑सो म॒हः ।

अ॒स्मभ्यं॑ सोम गातु॒वित् ॥५॥

पदार्थ—(**धनञ्जय**) हे अपने उपासको के धन को बढानेवाले ! (**गातुवित**) हे उपदेशकों मे श्रेष्ठ ! (**सः**) ऐसे ऐसे विद्वानो के उत्पादक आप (**मह , राधस**) बड़े भारी ऐश्वर्य के (**प्रयन्ता**) प्रदाता हैं (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**अस्मभ्यम**) आप हमारे लिए (**पवस्व**) सब अभीष्ट का प्रदान कीजिए ॥५॥

भावार्थ:—परमात्मा की कृपा से सदुपदेशक उत्पन्न होकर देश मे सदुपदेश देकर देश का कल्याण करते हैं ॥५॥

ए॒तं मृ॑जन्ति॒ मर्ज्यं॒ पव॑मानं॒ दश॒ क्षिपः॑ ।

इन्द्रा॑य मत्स॒रं मद॑म् ॥६॥३॥

पदार्थ—(**पवमानम**) सबको पवित्र करने वाले (**मर्ज्यम, एतम्**) सभजनीय उस परमात्मा को (**दश, क्षिप , मृजन्ति**) दश इन्द्रियें ज्ञानगोचर करती हैं । जो परमात्मा (**इन्द्राय, मत्सरम्, मदम्**) जीवात्मा के लिए आह्लादकारक मद है ॥६॥३॥

भावार्थ:- परमात्मा ही जीवात्मा के लिए एकमात्र आनन्द का स्रोत है । उसी के आनन्द का लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥३॥

इति षट्चत्वारिंशत्तम सूक्त तृतीयो वर्गश्च समाप्त ।

४६वा सूक्त और ३सरा वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१,३ ,४, गायत्री । २, निचृद गायत्री । ५ विराड्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ परमात्मा उद्योगमुपदिशति ।

अब परमात्मा उद्योग का उपदेश करते हैं ।

अ॒या सोमः॑ सुकृ॒त्यया॑ म॒हश्चि॑द॒भ्य॑वर्धत ।

म॒न्दा॒न उद्वृ॑षायते ॥१॥

पदार्थ—(**सोम**) परमात्मा (**अया, सुकृत्यया**) विद्वानो के शुभकर्मों मे (**मन्दान**) हर्ष को प्राप्त होता हुआ (**महश्चित्, अभ्यवर्धत**) उनका अत्यन्त अभ्युदय को प्राप्त कराता है । और (**उद् वृषायते**) उन विद्वानों के लिए बल प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थ:—हे अभ्युदयाभिलाषीजनो ! यदि आप अभ्युदय को चाहते है तो एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त होकर उद्योगी बनो ॥१॥

कृ॒तानीद॑स्य॒ कर्त्वा॒ चेत॑न्ते दस्यु॒तर्ह॑णा ।

ऋ॒णा च॒ धृष्णु॑श्चयते ॥२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (**अस्य इत्**) उस परमात्मा के (**दस्युतर्हणा, कृतानि, कर्त्वा**) दुष्टनाशन रूप किये हुए कर्मों का (**चेतन्ते**) स्मरण करते हैं (**धृष्णु**) और स्वयशासक वह परमात्मा (**ऋणा, च, चयते**) देवऋणादि तीनो ऋणो के उद्धार का उपदेश करता है ॥२॥

भावार्थ—देवऋण पितृऋण ऋषिऋण इन तीन ऋणो को उतारने योग्य वही पुरुष हो सकता है जो परमात्माज्ञापालन करता हुआ उद्योगी बनता है ॥२॥

आत्सोम॑ इन्द्रि॒यो रसो॒ वज्रः॑ सहस्र॒सा भु॑वत् ।

उ॒क्थं यद॑स्य॒ जाय॑ते ॥३॥

पदार्थ—(**यत, अस्य, उक्थम्, जायते**) जब इस परमात्मा की वेदरूपी स्तुति का आविर्भाव होता है (**आत्**) तब (**सोम**) वह परमात्मा (**इन्द्रियः, रस**) जीवात्मा का तृप्तिकारक आनन्दमयरस तथा (**वज्र**) दुष्टो से रक्षा करने के लिए शस्त्ररूप और (**सहस्रसाः**) अनन्तशक्तियो का प्रदाता (**भुवत्**) होता है ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा के लिए परमात्मा ने अनन्तशक्तियें प्रदान की हैं । परन्तु उन सब का आविर्भाव तभी होता है जब जीवात्मा वेदो द्वारा उन शक्तियो का ज्ञाता बनता है ॥३॥

स्व॒यं क॒विर्वि॑ध॒र्तरि॒ विप्रा॑य॒ रत्न॑मिच्छति ।

यदी॑ मर्मृ॒ज्यते॒ धियः॑ ॥४॥

पदार्थ—(**यदि धिय , मर्मृज्यते**) यदि यह परमात्मा बुद्धि द्वारा ध्यानविषय किया जाता है तो (**स्वय, कविः**) स्वय वेदादि काव्यो का रचयिता वह परमात्मा (**विधर्तरि**) रत्नादिको को विरुद्ध धारण करने वाले असत्कर्मियो से (**विप्राय, रत्नम् इच्छति**) सत्कर्मी विद्वान् को रत्नादि ऐश्वर्य दिलाने की इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा किसी को बिना कारण ऊच-नीच नही बनाता, किन्तु कर्मानुकूल फल देता है । इसलिए उद्योगी और सदाचारियो को ही ऐश्वर्य मिलता है, अन्यो को नही ॥४॥

सि॒षा॒सतू॑ र॒यी॒णां वाजे॒ष्वर्व॑तामिव ।

भरे॑षु जि॒ग्युषा॑मसि ॥५॥४॥

पदार्थ—(**वाजेष्वर्वतामिव**) हे परमात्मन ! आप सर्वशक्तियो मे व्यापक के समान (**भरेषु जिग्युषाम**) संग्राम मे जय को चाहने वाले कर्मयोगियो को (**रयीणां सिषासतुरसि**) सम्पूर्ण उपयोगी पदार्थों के देने वाले है ॥५॥

भावार्थ—जो सग्रामो मे कर्मयोगी बनकर विजय की इच्छा करते है परमात्मा उन्ही को विजयी बनाता है ॥५॥

इति सप्तचत्वारिंशत्तम सूक्त चतुर्थो वर्गश्च समाप्त ।

४७वा सूक्त और ४था वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य अष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द — १, ५ गायत्री २—४ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ जगत्कर्तु गुणकर्मस्वभावा उच्यन्ते ।

अब परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव कहे जाते है—

तं त्वा॑ नृ॒म्णानि॒ बिभ्र॑तं स॒धस्थे॑षु म॒हो दि॒वः ।

चारुं॑ सुकृ॒त्यये॑महे ॥१॥

पदार्थ—(**नृम्णानि बिभ्रतम्**) अनेक रत्नो को धारण करने वाले (**दिवो मह**) द्युलोक के प्रकाशक (**सुकृत्यया चारुम**) सुन्दर कर्मों से शोभायमान (**त त्वा**) पूर्वोक्त आपकी (**सधस्थेषु**) यज्ञस्थलो मे (**ईमहे**) स्तुति करते है ॥१॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का धारण करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है ॥१॥

सं॒वृक्तधृ॑ष्णुमु॒क्थ्यं॑ म॒हाम॑हिव्रतं॒ मद॑म् ।

श॒तं पुरो॑ रुरु॒क्षणि॑म् ॥२॥

पदार्थ—(**संवृक्तधृष्णुम**) धर्मपथ को छोड अधमपथ को ग्रहण करने वाले दुराचारियो को नाश करने वाले (**उक्थ्यम**) स्तुति करने योग्य (**महामहिव्रतम्**) बड़े श्रेष्ठ व्रतो का धारण करने वाले (**मदम**) आनन्दजनक (**शत पुरो रुरुक्षणिम्**) दुष्कर्मियो के अनेक पुरो को नाश करने वाले आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा सत्य के विरोधी अनन्तदलो का भी नाश करने वाला है । इसलिये सत्यव्रती होने के लिए उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा के उपासन की आवश्यकता है, क्योंकि सम्पूर्ण अज्ञानो को दूर करके एकमात्र अपने सच्चे ज्ञान का प्रकाश करता है ॥२॥

अत॑स्त्वा र॒यिम॒भि राजा॑नं सुक्रतो दि॒वः ।

सु॒प॒र्णो अ॑व्य॒थिर्भ॑रत् ॥३॥

पदार्थ—(**सुक्रतो**) हे शोभनकर्मों से विराजमान ! (**रयिमभि राजानम्**) आप जो कि सम्पूर्ण धनाश्वैश्वर्य के स्वामी है और (**दिव सुपर्ण**) द्युलोक मे भी चेतन रूप से विराजमान हैं और (**अव्यथिर्भरत्**) अनायास संसार को पालन करने वाले है, (**अत त्वा**) इससे आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ —सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिए उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जिससे बढ़कर जीव का कोई अन्य स्वामी नहीं हो सकता ॥३॥

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।

गोपामृतस्य विर्भरत् ॥४॥

पदार्थ —(विश्वस्मै, इत् स्वर्दृशे) हे परमात्मन् ! आप सब ही दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वानों के लिए (साधारणम्) समान हैं और (रजस्तुरम्) प्रधानतया रजोगुण के प्रेरक हैं (ऋतस्य गोपाम्) तथा यज्ञ के रक्षिता हैं और (वि) सब-व्यापक होकर (भरत्) संसार का पालन करते हैं ॥४॥

भावार्थ —जिस प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों में से रजोगुण की प्रधानता है अर्थात् रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को धारण किए हुए रहता है इसी प्रकार से परमात्मा के सत्, चित् और आनन्द इन तीनों गुणों में से चित् की प्रधानता है। अर्थात् चित् ही सत् और आनन्द का भी प्रकाशक है। इसी प्रकार परमात्मा के तेजोमय गुण को प्रधान समझ कर उसके उपलब्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए ॥४॥

अर्षा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।

अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥५॥८॥

पदार्थ —(अर्षा) आप (इन्द्रियं, हिन्वानः) इन्द्रिय के प्रेरक हैं (ज्यायः) सर्वोपरि विराजमान होने से (महित्वमानशे) अपनी महिमा से सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं (अभिष्टिकृत्) तथा अपने भक्तों के लिये कामनाओं के प्रदाता हैं (विचर्षणिः) सबके कर्मों के द्रष्टा हैं ॥५॥

भावार्थ —जीवों के अन्तर्यामी रूप से एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य देव नहीं ॥५॥

इति अष्टचत्वारिंशत्तमं सूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ।

४८वां सूक्त और ५वां वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य ऊनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तिर्वर्ण्यते—

अब परमात्मा की शक्ति का वर्णन करते हैं—

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।

अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (नः) आप हमारे लिये (दिवस्परि) द्युलोक से (अपामूर्मिम्) जल की तरङ्गों वाली (सुवृष्टिम्) सुन्दर वृष्टि को (आ पवस्व) सम्यक् उत्पन्न करिये तथा (अयक्ष्मा बृहती, इषः) रोगरहित महान् अन्नादि ऐश्वर्य को उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ने ही द्युलोक को वर्षणशील और पृथिवीलोक को नानाविध अन्नादि औषधियों की उत्पत्ति का स्थान बनाया है ॥१॥

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।

जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

पदार्थ —(तया धारया पवस्व) हे परमात्मन् ! आप मुझे उस आनन्द की धारा से पवित्र करिये (यया) जिस धारा से (गावः) सम्पूर्ण इन्द्रियां (जन्यासः) सब जनों का हितकारक होकर (इह नः गृहम्) अपने गृहरूप शरीर के अभ्यन्तर ही में (उपागमन्) आये ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर हम को संयमी बनाइये ॥२॥

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।

अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

पदार्थ हे परमात्मन् आप (यज्ञेषु) यज्ञों में (देववीतमः) देवताओं के अत्यन्त तृप्तिकारक हैं (धारया घृतं पवस्व) आप अपनी ज्ञान की धारा से हमारे हृदय में स्नेह को उत्पन्न करिये और (अस्मभ्यम् वृष्टिमापव) हमारे लिये सब कामनाओं की वर्षा करिये ॥३॥

भावार्थ —जो लोग ज्ञानयज्ञ, या कर्म में तत्पर होकर परमात्मा का यजन करते हैं परमात्मा उनको सर्वैश्वर्यसम्पन्न बनाता है ॥३॥

स न ऊर्जे व्य१ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।

देवासः शृणवन्हि कम् ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सः) वह आप (ऊर्जे) ज्ञान और क्रिया में बलप्राप्ति के लिये (नः, अव्ययं पवित्रम्) हमारे अन्तःकरण को निश्चल करके (धारया धाव) ज्ञान की धारा से शुद्ध करें और हे भगवन् ! (कम्) आपकी उच्चारित वेदवाणी को (देवासः, हि) दिव्यगुण वाले विद्वान् ही (शृणवन्) सुनें ॥४॥

भावार्थ —जो लोग दिव्यशक्ति वाले होते हैं वही परमात्मा की वेदरूपी वाणी का श्रवण मनन आदि कर सकते हैं अन्य नहीं ॥४॥

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।

प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥६॥

पदार्थः—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (रक्षांसि, अपजङ्घनत्) असत्कर्मियों का नष्ट करता हुआ और (प्रत्नवत् रुचः रोचयन्) पहले ही के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने प्रकाश को फैलाता हुआ (असिष्यदत्) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा चराचर के हृदय में स्थिर है इसलिये उसकी स्थिति को अत्यन्त सन्निहित मानकर सदैव परमात्मपरायण होना चाहिये ॥५॥

इति ऊनपञ्चाशत्तमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

४९वां सूक्त और ६वां वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनः शक्तेर्नैरन्तर्यं वर्ण्यते—

अब परमात्मा की शक्तियों की निरन्तरता का वर्णन करते हैं—

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।

वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (सिन्धोः, ऊर्मेः, स्वनः, इव) जिस प्रकार समुद्र की तरङ्गों के शब्द अनवरत होते रहते हैं उसी प्रकार (ते शुष्मास ईरते) आपकी शक्तियों के वेग निरन्तर व्याप्त होते रहते हैं। आप (वाणस्य पविं चोदय) वाणी की शक्ति को प्रेरित करें ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा की शक्तियां अनन्त और नित्य हैं। यद्यपि प्रकृति जीवात्मा की शक्तियां अनादि अनन्त होने से नित्य हैं तथापि, वे अल्पाश्रित होने से अल्प और परिणामी नित्य हैं। कूटस्थ नित्य नहीं।

तात्पर्य यह है कि जीव और प्रकृति के भाव उत्पत्तिविनाशशाली हैं और ईश्वर के भाव सदा एकरस हैं ॥१॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।

यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थ —(यत्) जब आप (मखस्युवः, अव्ये सानवि, एषि) यज्ञकर्ताओं को रक्षणीय उच्च यज्ञस्थलों में प्राप्त होते हैं तो वह ऋत्विग्लोग (ते प्रसवे) आपके प्रादुर्भूत होने से (तिस्रः वाचः, उदीरते) ज्ञान, कर्म, और उपासनाविषयक तीनों वाणियों का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थ — परमात्मा का आविर्भाव और तिरोभाव वास्तव में नहीं होता, क्योंकि वह कूटस्थ नित्य अर्थात् एकरस सदा अविनाशी है। उसका आविर्भाव तिरोभाव उसके कीर्तनप्रयुक्त कहा जा सकता है। अर्थात् जहां उसका कीर्तन होता है उसका नाम, आविर्भाव है, और जहां उसका अकीर्तन है वहां तिरोभाव है। उक्त आविर्भाव-तिरोभाव मनुष्य के ज्ञान के अभिप्राय से है। अर्थात् ज्ञानियों के हृदय में उसका आविर्भाव है और अज्ञानियों के हृदय में तिरोभाव है ॥२॥

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (मधुश्चुतम्) परम आनन्द के क्षरण करने वाले हैं और (पवमानम्) सबके पवित्रकारक हैं और (हरिम्) सबके दुःखों के हरने वाले हैं इससे (परि, प्रियम्) परमप्रिय आपकी (अव्यः) आपसे रक्षा को चाहने वाले आपके उपासक (वारे) आपकी भक्ति से युक्त अपने हृदयों में (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥३॥

भावार्थ —कर्मयोगी या ज्ञानयोगी विद्वान् दोनों अपने शुद्धान्तःकरण से परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थ —(अर्कस्य योनिमासदम्) तेज की योनि को प्राप्त होने के लिये अर्थात् तेजस्वी बनने के लिये (मदिन्तम) हे आनन्द के बढ़ाने वाले ! (कवे) हे वेदरूप काव्य के रचने वाले ! (धारया) अपनी ज्ञान की धारा से (पवित्रं, आ पवस्व) मेरे अन्तःकरण को पवित्र करिये ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा ही अपने ज्ञानप्रदीप से उपासकों के हृदयरूपीमन्दिर को प्रकाशित करता है ॥४॥

स पंवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।

इन्दुविन्द्राय पीतये ॥५॥७॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (मदिन्तम) सर्वोपरि आनन्द के जनयिता ! (अक्तुभि गोभिरञ्जान) साधनभूत इन्द्रियो द्वारा ध्यानविषय किये गये (सः) सकलभुवनप्रसिद्ध वह आप (इन्द्राय पीतये) जीवात्मा की परमतृप्ति के लिये (पवस्व) ब्रह्मानन्द का क्षरण कीजिये ॥५॥

भावार्थ —जीव की सच्ची तृप्ति परमानन्द से ही होती है, अन्यथा नही ॥५॥

इति पञ्चाशत्तमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

५०वां सूक्त और ७वा वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—५ उचथ्य ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१, २ गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ सौम्यस्वभावोत्पादन वर्ण्यते ।

अब सौम्यस्वभाव के उत्पादन का वर्णन करते है ।

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।

पुनीहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थ — (अध्वर्यो) हे अध्वर्यु लोगो ! (सोमम्) परमात्मा का (अद्रिभि सुतम्) अपनी इन्द्रियो द्वारा ज्ञान का विषय (सृज) करिये (इन्द्राय पातवे) और जीवात्मा की तृप्ति के लिये (पवित्रे पुनीहि) अपने अन्त करण को पवित्र करिये ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा की प्राप्ति के लिये अन्त करण पवित्र होना अत्यावश्यक है, इसलिये प्रत्येक जिज्ञासु को चाहिए कि पहले अपने अन्त करण को पवित्र करे ॥१॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

सुनोता मधुमत्तमम् ॥२॥

पदार्थ —हे अध्वर्यु लोगो ! जोकि (मधुमत्तमम्) सब रसो मे उत्तम है (दिव पीयूषम्) और द्युलोक का अमृत है ऐसे (उत्तम सोमम्) उत्तम परमात्मा को (इन्द्राय पातवे) अपने जीवात्मा की तृप्ति के लिये (सुनोत) ध्यान का विषय बनाओ ॥२॥

भावार्थ - जो अपनी तृप्ति के लिये एकमात्र परमात्मा को ध्यान का विषय बनाते है, वे ही उस ब्रह्मामृत का पान करते है अन्य नही ॥२॥

तव त्य इन्द्रो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते ।

पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबका पवित्र करने वाले (तव) आपके (मधो) मधुर (अन्धस) रस का (देवा त्ये मरुत) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान (व्यश्नते) पान करते है ॥३॥

भावार्थ —ब्रह्मामृत-रसास्वाद के लिये दिव्यशक्तियो को उपलब्ध करना अत्यावश्यक है, इसलिये उक्त मन्त्र मे परमात्मा ने दिव्यशक्तियो का उपदेश किया है ॥३॥

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।

वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं हि) आप जब (सुत) विद्वानो द्वारा साक्षात्कार किये जाते है तो (मदाय) आनन्द के लिये और (भूर्णये) दक्षता के लिये तथा (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तोतारम्) उपासक को (वर्धयन्) समृद्ध बनाते हुए (वृषन्) सब कामनाओ को पूर्ण करते हैं ॥४॥

भावार्थ —सर्वोपरि नीति और व्यवहारकुशलता की नीति एकमात्र परमात्मा द्वारा उपदिष्ट वेदो से ही मिल सकती है, अन्यत्र नही ॥४॥

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥८॥

पदार्थ —(विचक्षण) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (सुत) ध्यान विषय किये गये आप (धारया पवित्रमभ्यर्ष) आनन्द की धारा से पवित्र हुए अन्त करण मे निवास करिये और (वाजम्) अन्नादि ऐश्वर्य तथा (उत श्रव) सुन्दर कीर्ति का (अभि) प्रदान करिये ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥५॥

इति एकपञ्चाशत्तम सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्त ।

५१वां सूक्त और ८वा वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य

१-५ उचथ्य ऋषि । पवमान सोमो देवता । छन्द —१ भुरिग्गायत्री । २ गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ सदुपदेशं वर्णयति ।

अब सदुपदेश का वर्णन करते है ।

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।

सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥१॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (परि द्युक्ष) सर्वोपरि प्रकाशमान हैं। आप (न) हमारे लिए (सनद्रयि) धनादिको को देते हुए (अन्धसा) अन्नादि ऐश्वर्य के सहित (वाज भरत्) बल को परिपूर्ण करिये और (सुवान:) स्तुति किये जाने पर, आप (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र अन्त करण मे निवास करिये ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करते हैं कि, हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग जब अपने अन्त करण को पवित्र बनाकर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उपलब्ध करने की जिज्ञासा अपने हृदय मे उत्पन्न करोगे तब तुम ऐश्वर्य का उपलब्ध करोगे ॥१॥

तवं प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः ।

सहस्रधारो यात्तना ॥२॥

पदार्थ -- (तव प्रिय , अव्य.) हे भगवन् ! आपका प्रिय रक्षणीय उपासक (प्रत्नेभिरध्वभि) आपके प्राचीन वेद विहित मार्गों द्वारा (सहस्रधार) आपकी अनेक प्रकार की धाराओ से युक्त होने से (तना) समृद्ध होकर (वारे परियात्) आपके प्रार्थनीय पद को प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा वेदमार्ग के आश्रयण का उपदेश करते है ॥२॥

चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय ।

वधैर्वधस्नवीङ्खय ।३।

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (य , चरु.) जो आप चराचर को ग्रहण करने वाले है (तम्, न, ईङ्खय) वह आप अपने रूप को शीघ्र प्राप्त कराइये। और (दानम्, न, ईङ्खय) मुझको दातव्य वस्तु को शीघ्र प्राप्त कराइये। (वधै , वधस्नो, ईङ्खय) हे अपनी प्रबल शक्तियो से शत्रुओ के नाश करने वाले आप मुझको सत्कर्म की ओर प्रेरित कीजिये ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा ने सत्कर्मी बनने का उपदेश दिया है ॥३॥

नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।

यो अस्माँ आदिदेशति ॥४॥

पदार्थ - (इन्दो) हे परमात्मन् ! (पुरुहूत) हे अखिल विद्वानो से स्तुति किये गये ! (एषा, जनानाम्, बलम्, नि) इन विद्वानो के बलो को बढाइये (य, अस्मान् आदिदेशति) जो कि आप हम लोगो का अनुशासन करते हैं ॥४॥

भावार्थ - -इस मन्त्र मे परमात्मा ने इस बात का उपदेश दिया है कि जो पुरुष विद्या, तथा बल को उपलब्ध करके सत्कर्मी तथा विनीत बनते हैं उन्ही से समाज दीक्षा का लाभ करता है ॥४॥

शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।

पवस्व मंहयद्रयिः ॥५॥९॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन ! (महयद्रयि) आप हमारे धनादि ऐश्वर्य को बढाते हुए (ऊतिभि) रक्षा के लिए (शुचीना शतम्, न, सहस्र , वा) पवित्र सैकडो तथा सहस्रो शक्तियो को (पवस्व) उत्पन्न करिये ॥५॥

भावार्थ परमात्मा ने मनुष्य के ऐश्वर्य के लिए सैकडो और सहस्रो शक्तियो को उत्पन्न किया है—मनुष्य को चाहिए कि कर्मयोगी बन कर उन शक्तियो का लाभ करे ॥५॥

इति द्विपञ्चाशत्तम सूक्त नवमो वर्गश्च समाप्त. ।

५२वा सूक्त और ९वा वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य

१-४ अवत्सार ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,३ निचृद्गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।

नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

पदार्थ—(अद्रिवः) हे शस्त्रो को धारण करने वाले ! (ते शुष्मास) आपकी शत्रुशोषक शक्तिया (रक्षः भिन्दन्त) राक्षसो का नाश करती हुयीं (उदस्थु) सदा उद्यत रहती हैं (नुदस्व या. परिस्पृधः) जो आपके द्वेषी हैं उनकी शक्तियों को वेगरहित करिये ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा मे रागद्वेषादि भावो की गन्ध भी नही है। जो लोग परमात्मोपदिष्ट मार्ग को छोडकर यथेष्टाचार मे रत हैं उनको यथा-योग्य फल देने के कारण परमात्मा उनका द्वेष्टा कथन किया गया है ॥१॥

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।

स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (**अया ओजसा निजघ्नि**) अपने इस शत्रु-नाशनशील पराक्रम से शत्रु की शक्तियो को शमन करने वाले हैं। इससे (**रथसङ्गे धने हिते**) शरीररूप रथ के हितकारक धनादि ऐश्वर्य के निमित्त (**अबिभ्युषा हृदा स्तवै**) अन्त करणों से आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष शुभकार्य करते हुए परमात्मा की उपासना के समय निर्भयता से उसकी समक्षता लाभ करते हैं वे सदैव तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी आदि दिव्य भावो को उपलब्ध करते हैं ॥२॥

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।

रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

पदार्थः—(**पवमानस्य अस्य**) जगत्पावक आपके नियमानुशासन को (**दूढ्या**) कोई भी दुराचारी (**नाधृषे**) बाधित नही कर सकता, क्योकि (**य. त्वा पृतन्यति**) जो आपसे ईर्ष्या करता है उसको (**रुज**) आप शक्तिहीन कर देते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा दुराचारियो का अधःपतन करते हैं और सदाचारियों को सदैव उन्नतिशील बनाते है ॥३॥

तं हिन्वंति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥१०॥

पदार्थ—(**मदच्युतम्**) आनन्द को धारण करने वाले (**हरिम्**) सब दुःखो के हरने वाले (**नदीषु वाजिनम्**) सब शब्दायमान विद्युदादि शक्तियो मे बल को निवेश करने वाले (**इन्दुम्**) अखिल ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान (**इन्द्राय मत्सरम्**) विद्वानो के लिये गर्वजनक धनरूप आपको विद्वान लोग (**हिन्वन्ति**) बुद्धि द्वारा प्रेरित करते है ॥४॥

भावार्थ—आनन्द का स्रोत परमात्मा ही सबका प्रकाशक है उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है ॥४॥

इति त्रिपञ्चाशत्तम सूक्त दशमो वर्गश्च समाप्त ।

५३वा सूक्त और १०वा वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य चतु पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य

१-४ *अवत्सार ऋषि* ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द—१,२, ४ *गायत्री* । ३ *निचृद्गायत्री* ॥ षड्जः स्वर ॥

अथ सर्वथा परमात्मसेवनहेतुर्वर्ण्यते ।

अब केवल परमात्मा के सेवन मे हेतु कहते हैं ।

अस्य प्रत्नामनु द्युत शुक्रं दुदुहे अह्रयः ।

पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

पदार्थ—(**अह्रय**) विज्ञानी जन (**अस्य**) इस परमात्मा के रचित (**प्रत्नाम् ऋषिम अनु**) प्राचीन वेद स (**द्युतम्**) दीप्तिमान् (**शुक्रम**) पवित्र (**सहस्रसाम्**) अपरिमित शक्तियो को उत्पन्न करने वाले (**पय दुदुहे**) ब्रह्मानन्द रूप रस को दुहते हैं ॥१॥

भावार्थ—उक्त कामधेनु रूप परमात्मा से विद्वान् सदाचारी लोग दुग्धामृत के दोग्धा बनकर ससार मे ब्रह्मामृत का सचार करते हैं ॥१॥

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।

सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह परमात्मा (**सूर्य इव उपदृग्**) सूर्य के समान सबके कर्मों का द्रष्टा है और (**अयं सरांसि धावति**) यह परमात्मा ज्ञान द्वारा सर्वत्र व्याप्त है (**सप्त प्रवत आदिवम**) जो यह परमात्मा सात किरण वाले सूर्य को अपने भीतर लेकर और द्युलोक को भी एकदेशी बना कर स्थिर हो रहा है ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार अन्य ग्रह उपग्रहो की अपेक्षा से सूर्य स्वयप्रकाश है इसी प्रकार सूर्य आदिको की अपेक्षा से परमात्मा स्वयप्रकाश है। उस स्वयप्रकाश स्वयज्योति की उपासना करके सबको पवित्र बनने का यत्न करना चाहिए ॥२॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।

सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थ—(**सूर्य , न**) सूर्य के समान जगत्प्रेरक (**अयम**) यह परमात्मा (**सोमः, देव**) सौम्य स्वभाव वाला और जगत्प्रकाशक है और (**विश्वानि, पुनानः**) सब लोको को पवित्र करता हुआ (**भुवनोपरि, तिष्ठति**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो के ऊर्ध्व भाग में भी वर्तमान है ॥३॥

भावार्थ—उसी सर्वपावन परमात्मा की उपासना करनी चाहिए ॥३॥

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः ।

पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥४॥११॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**नः**) हमको (**परिपुनान**) सब ओर मे पवित्र करते हुए आप (**देववीतये**) देवों की तृप्ति के लिए (**गोमत वाजान्**) गवादि ऐश्वर्य को (**अर्षसि**) देते हैं (**देवयुः**) क्योकि आप देवो अर्थात् दिव्य गुण-सम्पन्न सत्कर्मियो को चाहने वाले हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य को दिव्य शक्तियां मिलती हैं। परमात्मा ही अपनी अपार दया से मनुष्यों को देवभाव को प्रदान करता है। हे देवत्व के अभिलाषीजनो ! आपको चाहिए कि आप सदैव उस दिव्यगुण परमात्मा की उपासना करते रहें ॥४॥

इति चतु पञ्चाशत्तम सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्त ॥

५४वा सूक्त और ११वा वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१-४ *अवत्सार ऋषि* ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द—१, २ *गायत्री* । ३; ४ *निचृद्गायत्री* ॥ षड्ज. स्वर ॥

अथ परमात्मन अनन्तत्वविविधवस्तूत्पादकत्वादिगुणा वर्ण्यन्ते ।

अब परमात्मा के अनन्तत्व, अनेकवस्तुजनकत्व आदि गुणो का वर्णन करते हैं ।

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव ।

सोम विश्वा च सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**न**) हमारे लिये (**अन्धसा**) अन्नादिको के सहित (**पुष्टम पुष्टम**) अतिबलप्रद (**यवम् यवम**) सञ्चित अनेक पदार्थों को तथा (**विश्वा च सौभगा**) सम्पूर्ण सौभाग्य को (**परिस्रव**) उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाला एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नही ॥१॥

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।

नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**यथा तव स्तव**) जिस प्रकार आपका यश ससार भर मे व्याप्त है और (**यथा ते अन्धस , जातम्**) जिस प्रकार अन्नादि पदार्थों का समूह आप ही ने रचा है उसी प्रकार (**निषद प्रिये बर्हिषि**) जो आपका प्रिय यज्ञस्थल है उसमें आकर आप विराजमान हो ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा यज्ञादि स्थानो को अपने विचित्र भावो मे विभूषित करता है ॥२॥

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।

मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥

पदार्थ—(**उत न**) जो कि हमारे लिए (**गोवित् अश्ववित्**) गवाश्वादि ऐश्वर्य के प्रापक आप ही हैं इसलिए (**सोम**) हे परमात्मन ! (**मक्षूतमेभिः अहभि**) अति अल्पकाल ही मे (**अन्धसा पवस्व**) सम्पूर्ण अनादि समृद्धि से पवित्र करिये ॥३॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिए उसी की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिए ॥३॥

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।

स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥१२॥

पदार्थ—(**य जिनाति**) जो आप सकल ब्रह्माण्डगत पदार्थों को आयुरहित कर देते हैं और (**न जीयते**) स्वय कदापि निरायुष नही होते तथा (**शत्रुम् अभीत्य हन्ति**) जो आप अपनी व्याप्ति द्वारा शत्रुओ की शक्तियो को हर लेते है और स्वय अहार्य शक्ति वाले हैं (**सहस्रजित्**) वह सर्वोपरि शक्तिसम्पन्न आप (**पवस्व**) हमको सुरक्षित करिये ॥४॥

भावार्थः—काल सब पदार्थों के आयु को क्षय करके आप स्वय अविनाशी बना रहता है। परन्तु काल का अविनाशित्व भी सापेक्ष है अर्थात् अनित्य पदार्थों का अपेक्षा काल को नित्य कहा जाता है परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से काल भी अनित्य है। इसलिए परमात्मा सर्वोपरि कूटस्थ नित्य है, उसी की उपासना मनुष्य को शुद्ध हृदय से करनी चाहिए ।

इति पञ्चपञ्चाशत्तम सूक्त द्वादशो वर्गश्च समाप्त ।

५५वा सूक्त और १२वां वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—४ *अवत्सार ऋषि* । *पवमान सोमो देवता* । छन्द—१, ३, *गायत्री* । ४ *यवमध्या गायत्री* ॥ षड्जः स्वर ॥

सम्प्रति सदाचारिभिरेव परमात्मा लभ्य इति वर्ण्यते ।

अब परमात्मा सदाचारियों को ही ज्ञानगोचर हो सकता है—यह कहते है ।

परि सोमं ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ऋतम् बृहन् आशु) सत्यस्वरूप और सबसे महान् तथा शीघ्रगति वाले हैं (देवयुः) सत्कर्मियो का चाहन हुए और (रक्षांसि विघ्नन्) दुष्कर्मियो को नाश करते हुए (पवित्रे अर्षति) पवित्र अन्तःकरणो मे निवास करते है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मों का यथायोग्य फलप्रदाता है; इसलिए उसके उपासक को चाहिए कि सत्कर्म करता हुआ उसका उपासक बने, ताकि उसे परमात्मा के दण्ड का फल न भोगना पड़े । तात्पर्य यह है कि प्रार्थना उपासना से केवल हृदय की शुद्धि होती है पापो की क्षमा नहीं होती ॥१॥

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।

इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥२॥

पदार्थ —(यत्, सोमः, वाजम्, अर्षति) जो परमात्मा बल को प्रदान करता है इससे (अपस्युवः) कर्मयोगी लोग (इन्द्रस्य, सख्यम, आविशन्) परमैश्वर्य वाले उस परमात्मा के मैत्रीभाव को प्राप्त होते हुए (शतम् धारा) उसके दिए हुए बल और आनन्द की अनेक धाराओ का उपभोग करते हैं ॥२॥

भावार्थ —वास्तव में परमात्मा का कोई मित्र या अमित्र नही । जो लोग उसकी आज्ञापालन करने से उसके अनुकूल चलते है उनसे वह स्नेह करता है इसलिए वे मित्र कहलाते हैं और प्रतिकूलवर्ती लोग स्नेह के पात्र नही होते, इसलिए अमित्र कहलाते हैं इसीलिए यहाँ मित्र शब्द आया है । कुछ मानुषी मैत्री के भाव से नही ॥२॥

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत ।

मृज्यसे सोम सातये ॥३॥

पदार्थ —(कन्या, जारम्, न) जिस प्रकार दीप्ति अग्नि को प्राप्त होती है उसी प्रकार (दश, योषण) दश इन्द्रियवृत्तियें (त्वा, अभ्यनूषत) आपको स्तुति द्वारा प्राप्त होती हैं (सोम) हे परमात्मन् ! (सातये) आप इष्ट-प्राप्ति के लिए (मृज्यसे) ध्यान गोचर किये जाते है ॥३॥

भावार्थ —सत्कारी पुरुषो की इन्द्रियवृत्तियाँ उसको विषय करती हैं असत्कारियो की नही ॥३॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।

नॄन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥४॥१३॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (इन्द्राय विष्णवे) व्याप्तिशील ज्ञानयोगी के लिए (स्वादुः) परम आस्वादनीय रस है । उनके लिए (परिस्रव) आप सकल अभीष्ट का प्रदान करिये (नॄन् स्तोतॄन् पाहि अंहसः) अपने उपासको का पाप से बचाइये ॥४॥१३॥

भावार्थ —ज्ञानयोगी अपने ज्ञान के प्रभाव से ईश्वर का साक्षात्कार करता है और अनिष्ट कर्मों से बचता है ॥४॥१३॥

इति षट्पञ्चाशत्तमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ।

५६वाँ सूक्त और १३वाँ वर्ग समाप्त ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मा स्वभक्तान् विविधानन्दैर्योजयति असतश्च दरिद्रयतीति वर्ण्यते ।

परमात्मा अपने भक्तो को विविध आनन्दो से और दुराचारियो को दारिद्र्य से युक्त करता है, यह कहते है ।

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।

अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ —(दिवः वृष्टय न) द्युलोक से वृष्टि के समान (ते, धाराः) आपके ब्रह्मानन्द की धारायें (असश्चत) अनेक प्रकार की (यन्ति) विद्वानो के हृदयो मे प्रादुर्भूत होती है, आप अपने उपासको को (सहस्रिणम् वाजम्) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य के (अच्छ) अभिमुख करिये ॥१॥

भावार्थ —जिन लोगो ने सत्कर्मों द्वारा अपने आपको ज्ञान का पात्र बनाया है उनके अन्तःकरण मे परमात्मा की सुधामयी वृष्टि सदैव होती रहती है ॥१॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।

हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

पदार्थ —(हरि) वह परमात्मा (आयुधा तुञ्जान) अपने शस्त्रो से शत्रुओ को व्यथित करता हुआ (विश्वा काव्या चक्षाणः) सम्पूर्ण कर्मों को देखता हुआ (प्रियाणि अभि अर्षति) अपने प्रिय उपासको की ओर जाता है ॥२॥

भावार्थ —उसका दण्डरूप वज्र दुष्टो के लिए सदैव उद्यत रहता है और सत्कर्मी सदैव उससे निर्भय रहते है ॥२॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।

श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थः—(सुव्रत, इभ, राजा, इव) सुन्दर अनुशासन वाले निर्भीक राजा के समान (स) वह परमात्मा (आयुभि, मर्मृजान) ऋत्विजो द्वारा स्तुति किया गया (श्येन, वसु, न) जिस प्रकार विद्युदादिशक्तियें सूक्ष्म पदार्थों मे रहती है उस प्रकार (सीदति) वह उनके हृदय मे अधिष्ठित होता है ॥३॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्माण्डगत प्रत्येक पदार्थ मे विद्युत व्याप्त है इसी प्रकार परमात्मशक्ति भी सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।

पुनान इन्दवा भर ॥४॥१४॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमात्मन् ! (स) वह आप (न) हमारे लिए (दिव, विश्वा, वसु) द्युलोक सम्बन्धी सकल सम्पत्तियाँ (उतो) तथा (पृथिव्या, अधि) पृथिवी सम्बन्धी सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ (आभर) आहरण कीजिये और (पुनान) मुझको पवित्र करिये ॥४॥१४॥

भावार्थ —सम्पूर्ण सम्पत्तियो का स्वामी एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए उसी की शरणागत होना आवश्यक है ॥४॥१४॥

इति सप्तपञ्चाशत्तमं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः ।

५७वाँ सूक्त और १४वाँ वर्ग समाप्त ॥

अथ चतुर्ऋचस्य अष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो विभुत्वं वर्ण्यते ।

अब परमात्मा का सर्वव्यापक होना वर्णन करते हैं ।

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।

तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

पदार्थ —(मन्दी स) परम आनन्दमय वह परमात्मा (तरत्) पापियो को तारता हुआ (सुतस्य अन्धस धारा) उत्पन्न किये हुए ब्रह्मानन्द के रस सहित (धावति) स्नानाओ के हृदय मे विराजमान होता है । (तरत् स मन्दी धावति) और वह परमात्मा निश्चय सब पापियो को तारता हुआ परमानन्दरूप से संसार मे व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थ —पापियो को तारने का अभिप्राय यह है कि जो लोग पाप का प्रायश्चित करके उसकी शरण को प्राप्त होते हैं वे फिर कदापि पापपङ्क से पीडित नहीं होते । अथवा यों कहो कि पापमयसञ्चित कर्मों की स्थिति उनके हृदय से दूर हो जाती है । अन्य पापो की क्षमा ईश्वर कदापि नही करता ॥१॥

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।

तरत्स मन्दी धावति ॥२॥

पदार्थ —(वसूनाम् उस्रा) सर्वविध रत्नादि ऐश्वर्यों की प्रदात्री (देवी) उस परमात्मा की दिव्यशक्ति (मर्तस्य अवस वेद) जीवो की रक्षा करने मे जागरूक रहती है (तरत स मन्दी धावति) और वह परमात्मा सबको तारता हुआ आनन्दरूप से सर्वत्र व्याप्त है ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा के आनन्द से ही आनन्दित होकर सब प्राणी सुख को उपलब्ध करते हैं । अर्थात् आनन्दमय एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं ॥२॥

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।

तरत्स मन्दी धावति ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ध्वस्रयो पुरुषन्त्यो) आपकी व्याप्तिशील जो ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति (सहस्राणि) अनेक प्रकार की हैं उनको (आदद्महे) हम प्राप्त करें (तरत स मन्दी धावति) आप सबका तारते हुए हर्षरूप से सर्वत्र विराजित हैं ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा की ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति को लाभ करके कर्मयोगी और ज्ञानयोगी अपने कर्तव्य मे तत्पर रहते है ॥३॥

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।

तरत्स मन्दी धावति ॥४॥१५॥

पदार्थः—(ययोः) जिन शक्तियों से (त्रिशतम् तना) हम तीनसौ वर्ष तक दीर्घायु और (सहस्राणि च आदधहे) सहस्रों शक्तियों को उत्पन्न कर सकते हैं, ऐसी शक्तियों वाला (अम्बी) आह्लादजनक (स) वह परमात्मा (तरत्) सब पापियों को तारता हुआ (धावति) सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहा है ॥४॥

भावार्थ —यद्यपि साधारणतया मनुष्य के आयु की अवधि सौ वर्ष तक है, तथापि कर्मयोगी अपने उग्रकर्मों द्वारा अपनी आयु को बढ़ा सकते हैं। इसीलिए "भूयश्च शरदः शतात्" इस वाक्य में सौ से अधिक की प्रार्थना की गई है। और जो इस मन्त्र में पापों के नाश का कथन है वह पापवासना के क्षय के अभिप्राय से है। प्रारब्धकर्मों के नाश के अभिप्राय से नहीं ॥४॥

इति अष्टपञ्चाशत्तमं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ।

५८वां सूक्त और १५वां वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः— १ गायत्री । २ आर्चीस्वराड्गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥षड्जः स्वरः ॥

अथ स्वाभ्युन्नतिं वाञ्छद्भिः अवश्यमेवासनः परमात्मैव प्रार्थनीय इत्युच्यते ।

अभ्युन्नति को चाहने वाला केवल परमात्मा की ही प्रार्थना करे, यह कथन करते हैं।

पव॑स्व गो॒जिद॑श्व॒जिद्वि॒श्व॒जित्सो॑म रण्य॒जित् ।

प्र॒जाव॒द्रत्न॒मा भ॑र ॥१॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (गोजित्, अश्वजित्) आप गवाश्वादि ऐश्वर्यों से विराजमान तथा (रण्यजित्) संग्राम में दुराचारियों को पराजय प्राप्त कराने वाले और (विश्वजित्) संसार में सर्वोपरि हैं। आप हमको (पवस्व) पवित्र करिए और (प्रजावद्रत्नम् आभर) सन्तानादियुक्त रत्नों से परिपूर्ण करिये ॥१॥

भावार्थ.—परमात्मा की दया से ही पुरुष को विविध प्रकार के रत्नों का लाभ होता है ॥१॥

पव॑स्वा॒द्भ्यो अदा॑भ्यः॒ पव॒स्वौष॑धीभ्यः ।

पव॑स्व धि॒षणा॑भ्यः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अदाभ्य) अदम्भनीय हैं (अद्भ्यः) जलों से (ओषधिभ्य) ओषधियों से (धिषणाभ्य) तथा बुद्धियों से (पवस्व) हमको सुरक्षित कीजिये ॥२॥

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब शक्तियों के ऊपर विराजमान है। उसका शासन करने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं ॥२॥

त्वं सो॑म॒ पव॑मानो॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता त॑र ।

क॒विः सी॑द॒ नि ब॒र्हिषि॑ ॥३॥

पदार्थ —(सोम) हे भगवन् ! (त्वम्) आप (विश्वानि दुरिता तर) सम्पूर्ण पापों को दूर करिए (कवि) सर्वकर्माभिज्ञ आप (बर्हिषि) यज्ञस्थलों में (निषीद) विराजमान हो ॥३॥

भावार्थ —मलिन वासनाओं के क्षय के लिए परमात्मा से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए ॥३॥

पव॑मान॒ स्व॑र्विदो॒ जाय॑मानोऽभवो म॒हान् ।

इन्दो॒ विश्वाँ॑ अ॒भीद॑सि ॥४॥१६॥

पदार्थ —(पवमान) हे सबपावक ! (इन्दो) परमात्मन् ! आप (अभव) अनादि हैं और (महान्) पूजनीय हैं तथा (विश्वान्, अभि, इदसि) सबको नीचे किए हुए आप सर्वोपरि विराजमान हैं। (जायमान.) आप विज्ञानियों के हृदय में प्रादुर्भूत होते हुए (स्व , विद) सर्वविध अभीष्टों को प्रदान करिए ॥४॥

भावार्थ —उसी परमात्मा की उपासना से सब इष्ट फलों की प्राप्ति होती है ॥४॥

इति एकोनषष्ठितमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ।

५९वां सूक्त और १६वां वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य षष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१—४ अवत्सार ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, २, ४ गायत्री । ३ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः १, २, ४ षड्ज । ३ ऋषभ ॥

अथ तद्गुणकीर्तनेन परमात्मा स्तूयते—

अब उसके गुणों के कीर्तन से परमात्मा की स्तुति करते हैं।

प्र गा॑य॒त्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिम् ।

इन्दुं॑ स॒हस्र॑चक्षसम् ॥१॥

पदार्थ —हे होता जनो ! तुम (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न (पवमानम्) सबको पवित्र करने वाले (सहस्रचक्षसम्) अनेकविध वेदादि वाणी वाले (विचर्षणिम्) सर्वद्रष्टा परमात्मा को (गायत्रेण) गायत्र्यादि छन्दों से (प्रगायत) गान करो ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम वेदाध्ययन से अपने आपको पवित्र करो ॥१॥

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षसम॒थो स॒हस्र॑भर्णसम् ।

अति॒ वार॑मपाविषुः ॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (तम् त्वा) लोकप्रसिद्ध उन आपको स्तोता लोग (अति) अत्यन्त (अपाविषुः) स्तुति द्वारा प्रकाशित करते हैं जो आप (सहस्रचक्षसम) अनेक वेदवाक् के रचयिता हैं तथा (सहस्रभर्णसम्) सम्पूर्ण जीवों के पोषक हैं और (वारम्) भजनीय हैं ॥२॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में परमात्मा की सर्वज्ञता का वर्णन किया गया है और एकमात्र उसी को उपास्यदेव वर्णन किया है ॥२॥

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो असिष्यदत्क॒लशाँ॑ अ॒भि धा॑वति ।

इन्द्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन् ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य, हार्दि, आविशन्) विज्ञानी के हृदय में निवास करते हुए (वारान् अतिपवमान) अपने उपासकों को अत्यन्त पवित्र करते हुए (कलशान, अभि, धावति) उनके अन्तःकरणों में आप प्रादुर्भूत होते हुए (असिष्यदत्) सर्वत्र अपनी स्यन्दनशील शक्तियों से पूरित हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानप्रद होकर शुद्धान्तःकरणों में सदैव विराजमान रहता है। इसलिए परमात्मज्ञान के लिए बुद्धि का निर्मल करना अत्यावश्यक है ॥३॥

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से॒ शं प॑वस्व विचर्षणे ।

प्र॒जाव॒द्रेत॒ आ भ॑र ॥४॥१७॥

पदार्थ.—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्रस्य, राधसे) कर्मयोगी के ऐश्वर्य के लिए आप (श, पवस्व) आनन्द का कारण कीजिए और (प्रजावत्, रेतम्, आभर) प्रजादिकों से सम्पन्न ऐश्वर्य को परिपूर्ण करिए ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा से अभ्युदय की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप हमको कर्मयोगी बनाकर अभ्युदयशील बनाएँ ॥४॥

इति षष्ठितमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ।

६०वां सूक्त और १७वां वर्ग समाप्त ।

अथ त्रिंशदृचस्यैकषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१—३० अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः— १, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२—२४, २६, ३० निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ७, ९, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६, २८ गायत्री । ११, १९ विराड्गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरेण क्षात्रधर्म उपदिश्यते ।

अब ईश्वर क्षात्रधर्म का उपदेश करते हैं।

अ॒या वी॒ती परि॑ स्रव॒ यस्त॑ इन्दो॒ मदे॒ष्वा ।

अ॒वाह॑न्नव॒तीर्नव॑ ॥१॥

पदार्थ.—(इन्दो) हे सेनापते ! (य) जो शत्रु (ते) तुम्हारे (मदेषु) सर्वसुखकारक प्रजापालन में (आ) विघ्न करे उसको (अया, वीती, परिस्रव) अपनी क्रियाओं से अभिभूत करो और (अवाहन्, नवती , नव) निन्यानवे प्रकार के भी दुर्गों का ध्वंसन करो ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र में क्षात्रधर्म का वर्णन है। और परमात्मा से इस विषय का बल मांगा गया है कि हम सब प्रकार से शत्रुओं का नाश करके संसार में न्याय का प्रचार करें ॥१॥

पुरः॑ स॒द्य इ॒त्थाधि॑ये॒ दिवो॑दासाय॒ शम्ब॑रम् ।

अध॒ त्यं तु॒र्वशं॒ यदु॑म् ॥२॥

पदार्थ —हे कर्मयोगिन् ! जो (इत्थाधिये, दिवोदासाय) सत्यबुद्धि वाले और द्युलोक सम्बन्धी कर्मों में कुशल आपका (शम्बरम्) शत्रु है (त्यम्, तुर्वशम्, यदुम्) इस हिंसक मनुष्य को (अध) और उसके (पुर) पुर का ध्वंसन करो ॥२॥

भावार्थ — कर्मयोगी लोग शत्रुओं के पुरों को सर्वप्रकार से भेदन कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥२॥

परि॑ णो॒ अश्व॑मश्व॒विद्गोम॑दिन्दो॒ हिर॑ण्यवत् ।

क्षरा॑ सह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥३॥

पदार्थ —(इन्दो) हे कर्मयोगिन् ! (अश्वविद्) अश्वादिकों से युक्त आप (न.) हमारे लिए (परि) सब ओर से अपने कर्मयोग द्वारा (अश्वमत्,

गोमत्, हिरण्यवत्) अश्व, गो, हिरण्यादि युक्त (सहस्रिणी , इषः) अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों को (क्षर) उत्पन्न करिये ॥३॥

भावार्थ —इस मंत्र मे कर्मयोगियो के द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों की उपलब्धि का वर्णन किया गया है ॥३॥

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।

सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥१७॥

पदार्थः—(पवमानस्य) अपने आश्रितजनो को पवित्र करते हुए (पवित्रम्, अभ्युन्दत) और पवित्र किये हुए मनुष्य को उत्साहित करने वाले (ते) तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्रीभाव के लिये (वयम्) हम लोग (आवृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥४॥

भावार्थ —इस मंत्र में परमात्मा के सद्गुणों को धारण करके परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का वर्णन किया गया है ॥४॥

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।

तेभिर्नः सोम मृळय ॥५॥१८॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्यस्वभाव कर्मयोगिन् ! (ये, ते, ऊर्मय) जो आपकी शरणरक्षक शक्तियां (पवित्रम्) शुद्ध हृदय वाले मनुष्य की ओर (धारया) प्रवाह रूप से (अभिक्षरन्ति) अभिगत होती हैं (तेभि) उन शक्तियों से (न) हमको (मृळय) सुरक्षित करके सुखी करिये ॥५॥

भावार्थः—कर्मयोगी के उद्योगादि भावो को धारण करके स्वयं उद्योगी बनने का उपदेश इस मंत्र मे किया गया है ॥५॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।

ईशानः सोम विश्वतः ॥६॥

पदार्थ —(सोम) हे विद्वन् ! (स) वह आप (विश्वत , ईशान) चारो ओर से अपना अधिकार जमाते हुए (न पुनान) हम लोगो को पवित्र करते हुए (वीरवतीम्) बड़े-बड़े वीरो से युक्त (इषम्, रयिम्) अन्नधनादि सम्पत्ति से (आ, भर) अपने जनस्थानो को परिपूर्ण करिये ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अपने विद्या बल से अपने देश को ऐश्वर्यों से परिपूर्ण करते हैं । इसलिए विद्वानो का सत्कार परम कर्त्तव्य है ॥६॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

समादित्येभिरख्यत ॥७॥

पदार्थ —(एतम, त्यम्, उ) उन आपको (दश, क्षिप , मृजन्ति) दसो इन्द्रियां नियत होने से शानक्रिया दक्ष बनाती हैं । जिससे आप (सिन्धुमातरम्) समुद्र विषयक पदार्थों के ज्ञाता तथा (आदित्येभि , समख्यत) विद्युदादि शक्तियो द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञाता हो जाते हैं "आदित्य कस्मादादत्ते रसानादत्ते भास ज्योतिषा मादीप्तो भासेति" नि० अ० २ । ख० १३ ॥७॥

भावार्थ —ईश्वर का साक्षात्कार बुद्धि की वृत्तियो के द्वारा होता है ॥७॥

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।

सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८॥

पदार्थ —(सुत) सुसंस्कृत कर्मयोगी (सूर्यस्य, रश्मिभि , सम्) तैजस पदार्थों के आश्रय से (इन्द्रेण, उत, वायुना) विद्युत् और वायु से मिलकर (पवित्रे, आ समेति) बड़े बड़े पवित्र कार्यों को सिद्ध करता है ॥८॥

भावार्थ —कर्मयोगी सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों की सिद्धि कर लेता है । अर्थात् उससे कोई काम भी अशक्य नहीं । कर्मयोगी के सामर्थ्य मे समग्र काम है । इस बात का वर्णन इस मंत्र मे किया गया है ॥८॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९॥

पदार्थ —(मधुमान्) मधुर आनन्द के उत्पादक (चारु) सर्वत्र गति वाले (स) वह आप (न) मुझको (मित्रे) और उचित कर्म करने वाले को तथा (वरुणे) जो सत्कार करने योग्य है उसको (भगाय) ऐश्वर्य (वायवे) सुन्दर गति (पूष्णे) तथा पुष्टि प्राप्त होने के लिये (पवस्व) सोद्योग हो ॥९॥

भावार्थ —इस मंत्र मे परमात्मा से उद्योग की प्रार्थना की गई है । परमात्मा की परमकृपा से ही पुरुष उद्योगी बनकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥९॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे ।

उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥१९॥

पदार्थ —(ते, अन्धसः) हे कर्मयोगिन ! तुम्हारे पैदा किये हुए पदार्थों के (उच्चा, जातम्) उच्च समूह को (भूमि आददे) सम्पूर्ण पृथिवी भर के लोग ग्रहण करते हैं (उग्रम्, शर्म) जो कि अत्यन्त सुखस्वरूप है तथा (महि श्रव) आपका महत् यश (दिविषत्) द्युलोक मे भी व्याप्त है ॥१०॥

भावार्थ —कर्मयोगी पुरुष के उत्पन्न किये हुए कलाकौशल से सम्पूर्ण लोग लाभ उठाते हैं ॥१०॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

सिषासन्तो वनामहे ॥११॥

पदार्थ —(अर्य) प्रजाओ का स्वामी (एना) अपनी क्रियाओ से (मानुषाणाम्) मनुष्यो की (विश्वा, द्युम्नानि) सम्पूर्ण सम्पत्तियो का (आ) आहरण अर्थात् संचय करता है (सिषासन्त) ऐसे स्वामी की भक्ति मे तत्पर रहते हुए हम (वनामहे) उसकी प्रार्थना करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मंत्र मे स्वामिभक्ति का वर्णन किया गया है । तात्पर्य यह है कि स्वामिभक्ति से पुरुष उच्च पदवी को प्राप्त होता है ॥११॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥

पदार्थ —(स) ऐसे कर्मयोगी (वरिवोवित्) सम्पूर्ण धनों के प्रापयिता आप (न) हमारे (यज्यवे) प्रशंसनीय (इन्द्राय, वरुणाय, मरुद्भ्यः) तैजस, जलीय तथा वायवीय पदार्थों की सिद्धि के लिये (परिस्रव) उद्यत हों ॥१२॥

भावार्थ —अग्नि तथा जलादि सब पदार्थ कर्मयोगी पुरुषों के द्वारा सब प्रकार के सुखो को उत्पन्न करते हैं ॥१२॥

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३॥

पदार्थ —(सुजात) सुन्दर सस्कारयुक्त (अप्तुरम्) अनेक कर्मों का प्रेरक (गोभि परिष्कृतम्) शुद्ध इन्द्रियों वाला (भङ्गम्) शत्रुओ का भञ्जक, जो (इन्दुम्) परम प्रकाश वाला कर्मयोगी है उसका (देवा) अपनी अभ्युन्नति चाहने वाले लोग (अयासिषु) अनुसरण करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—अभ्युदयाभिलाषी जनो को चाहिए कि वे उक्त गुण वाले कर्मयोगी का आश्रयण करें ॥१३॥

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।

य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥

पदार्थ —(य) जो राष्ट्र (इन्द्रस्य, हृदसनि) अपने स्वामी का भक्त है (तम्) उसको (इत्) निश्चय (न , गिर) उपदेश प्रयुक्त मेरी वाणियां (वर्धन्तु) बढ़ायें (वत्सम्, संशिश्वरी , इव) जिस प्रकार दुग्ध से परिपूर्ण गौ अपने बच्चे को बढ़ाती है उसी प्रकार ॥१४॥

भावार्थ —इस मंत्र मे स्वामिभक्ति का उपदेश किया गया है ॥१४॥

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।

वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥१५॥२०॥

पदार्थ —(सोम) हे कर्मयोगिन ! आप (न) हमारी (गवे) वाणी के लिये (शम्, अर्ष) सुख को बढ़ाइये (पिप्युषीम्, धुक्षस्व) और तृप्ति करने में पर्याप्त अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करिये (समुद्रम्, उक्थ्यम, वर्ध) समुद्र के समान अचल ऐश्वर्य को बढ़ाइये ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि, आप ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहते है तो कर्मयोगियो से प्रार्थना करके उद्योगी बनिये ॥१५॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६॥

पदार्थः—(पवमान) सबको पवित्र करने वाला कर्मयोगी (दिव , तन्यतुम्, न) द्युलोक की शस्त्र रूप विद्युत् के समान (बृहत्, वैश्वानरम्, ज्योति) बड़े विद्युदादि तैजस पदार्थ को (अजीजनत्) पैदा करता है ॥१६॥

भावार्थ —कर्मयोगी द्वारा ही विद्युदादि पदार्थ उपयोग मे आ सकते हैं । इसलिये हे मनुष्यो ! तुमको चाहिए कि तुम कर्मयोगियों को उत्पन्न करके अपने देश को अभ्युदयशाली बनाओ ॥१६॥

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः ।

वि वारमव्यमर्षति ॥१७॥

पदार्थ —हे कर्मदक्ष ! (पवमानस्य, ते) सबको सुख देने वाले आपको (रस) पैदा किया हुआ सुख और (मद) आह्लाद (राजन्) हे स्वामिन् ! (अदुच्छुन) जो विघ्नकारियो से रहित है वह (वारम्, अव्यम्) जो आपका दृढ़ भक्त है उसकी ओर (वि) विशेष रूप से (अर्षति) जाता है ॥१७॥

भावार्थ —इस मंत्र मे ईश्वर की भक्ति का उपदेश किया गया है । ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को समझ कर जो पुरुष ईश्वरपरायण होता है, उसको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥१७॥

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।

ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८॥

पदार्थ—(पवमान) हे प्रजारक्षक ! (तव) तुम्हारा (रसः) रक्षा-जनित सुख (सुमान्) सुन्दर (दक्ष) अनायासलब्ध (विराजति) विराजमान है और (स्व.)सब (दृशे) पदार्थों के देखने के लिये आप (विश्वम्, ज्योति.) सर्वव्यापिनी सूक्ष्म शक्तियो को पैदा करते हैं ॥१८॥

भावार्थ—परमात्मा की कृपा से मनुष्य मे दिव्य शक्तियां उत्पन्न होती हैं। जिससे मनुष्य देवभाव को धारण करता है ॥१८॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।

देवावीरघशंसहा ॥१९॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! आप (देवावी अघशंसहा) सदाचारियो के रक्षक तथा दुष्टो का मारने वाले हैं (य) जो (ते) तुम्हारा (वरेण्य, रस) भजनीय सुख है (तेन, अन्धसा) उस तृप्तिकारक सुख से हम लोगो को (पवस्व) पवित्र करिये ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से आनन्दोपलब्धि की प्रार्थना की गई है ॥१९॥

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।

गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥२१॥

पदार्थ—(अमित्रियम्, वृत्रम्, जघ्नि) आप जो आपकी आज्ञा के प्रतिकूल है, उस पापी के हन्ता हैं तथा (वाजम, दिवेदिवे, सस्नि) प्रतिदिन संग्राम के लिये सैनिक विभाग मे तत्पर रहते हैं (गोषा, उ, अश्वसा, असि) गौ, अश्व आदि हितकारक जीवो के बढाने वाले हैं ॥२०॥

भावार्थ—परमात्मा का वज्र दुष्टो के दमन के लिए सदैव उद्यत रहता है। इस मन्त्र मे परमात्मा की दंडशक्ति का वर्णन किया गया है ॥२०॥

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।

सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१॥

पदार्थ—आप (श्येन, न, योनिम्, आसीदन्) विद्युत् के समान अपने स्थान मे स्थित होते हुए (न) तत्काल ही युद्ध मे (सूपस्थाभि, धेनुभि, संमिश्लः) दृढ स्थिति वाली इन्द्रियो से मिश्रित अर्थात् सावधान होकर (अरुष, भव) देदीप्यमान हो ॥२१॥

भावार्थ—परमात्मा की शक्तियां विद्युत् के समान सदैव उग्र रूप से विद्यमान रहती हैं। जो पुरुष उनके विरुद्ध करता है उसको आत्मिक सामाजिक और शारीरिक रूप से अवश्यमेव दण्ड मिलता है ॥२१॥

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।

वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

पदार्थ—(य) जो आप (वृत्राय, हन्तवे) दुष्टाचारी प्रतिपक्षी के हनन करने के लिए (महीः, अप, वव्रिवांसम्) सब अवस्थाओं मे अप्रतिहत (इन्द्रम्, आविथ) शक्तियों को सुरक्षित रखते हैं (स) एवंभूत आप (पवस्व) मेरी रक्षा करें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना की गई है ॥२२॥

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।

पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥

पदार्थः—(मीढ्व) हे सुख की वर्षा करने वाले ! (न) हमारी (गिर) वाक्‌शक्ति को (पुनान) बढाते हुए (वर्ध) हमको भी अभिनन्दित करिये, जिससे (सोम) हे स्वामिन् (वयम्) हम (सुवीरासः) सुन्दर वीरों से संगत होकर (धनम् जयेम) अनेक प्रकार की सम्पत्ति का लाभ करें ॥२३॥

भावार्थ—इस मंत्र मे परमात्मा से प्रगल्भवक्ता बनने की प्रार्थना की गई है ॥२३॥

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः ।

सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥

पदार्थः—(त्वोतासः, तव, अवसा) हे प्रभो ! तुम्हारी रक्षा से सुरक्षित होकर हम (वन्वन्त.) आपकी सेवा मे तत्पर होते हुए (आमुर., स्याम) आपके विरोधियों के विनाशक हो जायें (सोम) हे सौम्यचित्त वाले ! आप (व्रतेषु जागृहि) अपने नियमो में सदैव जागृत हैं ॥२४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने नियमों मे सदैव जागृत है अर्थात् जिसके नियम सदैव अटल हैं उन नियमों के अनुयायी होकर हम ईश्वर-नियम विरोधियों का दलन करें ॥२४॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५॥२२॥

पदार्थ—(सोमः) रक्षा करने वाला स्वामी (मृध, अपघ्नन्) हिंसकों को मारता हुआ (अराव्ण) जो लोग इसको देय धन नहीं देते उनको (इन्द्रस्य) अपने कर्माधिकारी के (निष्कृतम्) अधिकार मे (अपगच्छन्) दुर्गति रूप से स्थापन करता हुआ (पवते) संसार को निर्विघ्न करता है ॥२५॥

भावार्थ—जो अपने रक्षक स्वामी अर्थात् राजा को देयधन (कर) नहीं देते वे राजनियम से दण्डनीय होते हैं ॥२५॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।

रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६॥

पदार्थ—(इन्दो) हे ऐश्वर्य सम्पन्न ! आप (न) हमको (मह, राय, आभर) पवित्र धन से परिपूर्ण करिये (पवमान) हे सर्वरक्षक ! (मृध, जहि) हिंसको को नष्ट करिये (वीरवत्, यश:, रास्व) वीरों के सहित यश को प्रकट करिये ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे राजधर्म का उपदेश है। जो पुरुष राजधर्म का पालन करते हैं, वे वीर पुरुषों को उत्पन्न करके प्रजा को सर्वथा सुरक्षित करते हैं ॥२६॥

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।

यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥

पदार्थ—(यत्, पुनानः, मखस्यसे) आप जो कि अपनी प्रजाओं को सुखी करने के लिए धन ग्रहण करने की इच्छा करते हैं इससे (राध.) धन को (आदित्सन्तम्) ग्रहण करते हुए (त्वा) तुमको (शतम्, चन, ह्रुता.) सैकडो कुटिल दुष्ट (न, मिनन्) बाधित नही कर सकते ॥२७॥

भावार्थ—जो राजा प्रजा की रक्षा के निमित्त 'कर' लेता है उसे कोई दूषित नही कर सकता और उसकी रक्षा से सुरक्षित होकर प्रजा सर्वथैव निर्विघ्न रहती है, उसमें दुष्ट दस्यु आदि कोई विघ्न उत्पन्न नही कर सकते ॥२७॥

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८॥

पदार्थ—(इन्दो) हे स्वामिन् ! आप (वृषा) सब कामनाओं के प्रापण करने मे समर्थ हैं (सुत, पवस्व) आप सेवन किये गये अपने सेवकों की रक्षा कीजिए (न, यशस, कृधि, जने) और मनुष्यो मे मुझको यशस्वी बनाइये (विश्वा, अपद्विष, जहि) सम्पूर्ण बुरे कामो में तत्पर शत्रुओं को मारिये ॥२८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा से यशस्वी बनने की प्रार्थना की गई है ॥२८॥

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।

सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥

पदार्थ—(अस्य, ते, सख्ये) तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त होकर (इन्दो) हे सुन्दर यश से प्रकाशित ! (तव, उत्तमे, द्युम्ने) तुम्हारे उत्तम यश के निमित्त हम (पृतन्यत., सासह्याम) संग्राम में युद्ध के निमित्त आये हुए प्रतिपक्षियो को अभिभूत करें ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने राजधर्म मे सहायता का उपदेश किया है ॥२९॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।

रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥२३॥

पदार्थ—हे सेनापते ! (धूर्वणे) शत्रुओ के नाश के लिए (या) जो (ते) आपके (भीमानि, तिग्मानि, आयुधा, सन्ति) भयंकर तीक्ष्ण शस्त्र हैं, उनसे (न) हमको (समस्य, निद) सब प्रकार के अपयशो से (रक्ष) बचाइये ॥३०॥२३॥

भावार्थ—तीक्ष्ण शस्त्रो वाले सेनापति प्रजाओं को सब प्रकार की विपत्तियों से बचाते हैं ॥३०॥२३॥

इत्येकषष्ठितमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

६१वां सूक्त और २३वां वर्ग समाप्त ।

अथ त्रिंशदृचस्य द्विषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१—३० जमदग्निर्ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द—१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९ निचृद्गायत्री । २, ५, ११-१६, २१-२४, २७, ३० गायत्री । ३ ककुम्मती गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २०, २६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ सेनाधीशः प्रशस्यते ।

अब सेनापति की प्रशंसा की जाती है ।

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।

विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

पदार्थ—(एते) यह (आशव.) क्रियादक्ष (इन्दव.) सेनाधीश (पवित्रम् अभि) अपनी पवित्र प्रजा के लिए (विश्वानि) सब प्रकार के (तिर) द्विगुण (सौभगा) भोग्य पदार्थों को (असृग्रम्) पैदा करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे सेनापति के गुणो का वर्णन किया है ॥१॥

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥२॥

पदार्थः—(**वाजिन**) पर्याप्त बलवाले सेनापति (**पुरु, दुरिता, विघ्नन्त**) बड़ी-बड़ी आपत्तियो का हनन करते हुए (**तोकाय**) हमारी सन्तानों को (**अर्वते**) व्यापक होने के लिए (**सुगा**) सब प्रकार के सुखो तथा (**तना**) धनो का (**कृण्वन्त**) सचय करते हुए भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो सेनापति प्रजा की सन्तानों को व्यापक होने के लिए सब रास्तो को निष्कटक बनाता है, उक्त गुणो वाला सेनापति राज का अग होकर राज्य की रक्षा करता है ॥२॥

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

पदार्थः—(**गवे, वरिवः, कृण्वन्त**) हमारे गवादिको के लिए अनेक पदार्थों को उत्पन्न करते हुए और (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**सयतम्**) सुदृढ (**इलाम्**) अन्न को सचित करते हुए (**सुष्टुतिम्**) हमारी सुन्दर प्रार्थना को (**अभ्यर्षन्ति**) दत्तचित्त होकर सुनते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो सेनापति प्रजा के लिए ऐश्वर्य उत्पन्न करता है और प्रजा की प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है, वह धर्म का पालन करता हुआ भली-भांति प्रजाओ की रक्षा करता है ॥३॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥४॥

पदार्थ—(**अप्सु, दक्ष**) क्रियाओं मे कुशल (**गिरिष्ठा, श्येन, न**) मेघ मे स्थित विद्युत् के समान शीघ्रकारी (**अंशु**) तेजस्वी सेनापति (**असावि**) ईश्वर से पैदा किया गया (**योनिम् आसदत्**) अपनी पदवी को ग्रहण करता है ॥४॥

भावार्थ—उक्त गुण सम्पन्न सेनापति ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त गुणो वाले पुरुष को सेनापति मानो और ऐसे सेनापतियो से राजधर्म का दृढ़ प्रबन्ध करके प्रजा में रक्षा का प्रचार करो ॥४॥

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥५॥२४॥

पदार्थ—(**देववातम**) उस दिव्यगुण सम्पन्न सेनाधीश की रक्षा से सुरक्षित तथा (**नृभि, सुत**) प्रजाओ द्वारा पैदा किये गये जो अन्न (**अप्सु, धूत**) और जो जल से शुद्ध किया गया है (**शुभ्रम्, अन्ध**) वीर्य और बुद्धि के वर्धक उस उज्ज्वल अन्न को (**गाव, पयोभि**) भली-भांति जो कि गौ के दुग्ध मे संस्कृत है ऐसे अन्न को (**स्वदन्ति**) प्रजागण उपभोग करते है ॥५॥२४॥

भावार्थ—जिस देश मे प्रजा की रक्षा करने वाले सेनाधीश होते है, उस देश की प्रजा, नाना प्रकार के अन्नो को दुग्ध से मिश्रित करके उपभोग करती है।

तात्पर्य यह है कि राजधर्म से सुरक्षित ही ऐश्वर्य को भोग सकते हैं, अन्य नही। इसलिए परमात्मा ने इस मन्त्र मे राजधर्म का उपदेश किया है ॥५॥२४॥

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय ।
मध्वो रसं सधमादे ॥६॥

पदार्थ—(**सधमादे**) यज्ञस्थलो मे (**आत**) आनन्दित होने के अनन्तर (**हेतार**) प्रार्थयिता प्रजा लोग (**अश्वम्, न**) शीघ्र ही राष्ट्र भर मे व्यापक (**मध्व, रसम्**) मधु रस के समान आस्वादनीय आनन्द को (**अमृताय**) फिर भी सुरक्षित होने के लिए (**अशूशुभन्**) स्तुति द्वारा सुभूषित करते है ॥६॥

भावार्थ—जो लोग कर्मकाण्डी बनकर यज्ञ करते है, वे लोग अपने शुभ कर्मों से प्रजा को विभूषित करते है ॥६॥

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥७॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे कर्मप्रधान सेनापते ! (**या**) जो (**मधुश्चुत**) आनन्द की वर्षा करने वाली आपकी (**धारा**) अनेक शाखाए (**ऊतये**) प्रजाओ के रक्षणार्थ (**असृग्रम**) इधर-उधर फैली हुई हैं (**ताभि**) उनसे (**पवित्रम्**) सत्कर्मी को (**आसद**) अनुगृहीत करिये ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि सेनाधीश अपनी सुरक्षा रूप वृष्टि से प्रजाओं को आनन्द से सुसिञ्चित करे ॥७॥

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया ।
सीदन्योना वनेष्वा ॥८॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! (**स**) पूर्वोक्त आप (**योना, आसीदन्**) अपने पद पर स्थिर होते हुए (**वनेषु**) अपने राष्ट्र मे (**इन्द्राय पीतये**) विज्ञानी की तृप्ति के लिए (**अर्ष**) व्याप्तिशील हो (**तिर, रोमाणि, अव्यया**) और अन्तर्हित जीवो को भी रोम-रोम प्रति अव्यय अर्थात् दृढ रक्षित करिये ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे यह प्रतिपादन किया गया है कि राजधर्म की रक्षा द्वारा देश मे ज्ञान और विज्ञान की वृद्धि होती है ॥८॥

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद्घृतं पयः ॥९॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे तेजस्विन् ! (**त्वम्**) आप (**स्वादिष्ठ**) परमप्रिय हैं। और (**वरिवोविद**) सब प्रजाओ के धनो के प्रापयिता हैं (**अङ्गिरोभ्य**) आप विद्वानो के लिए (**घृतम्, पय**) घृत दुग्धादि पदार्थ (**परिस्रव**) उत्पन्न करिये ॥९॥

भावार्थ—प्रजाओ को चाहिए कि वे सदैव अपने राजपुरुषों से ऐश्वर्य की प्रार्थना करके संसार मे ऐश्वर्य बढाने का यत्न करें ॥९॥

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१०॥२५॥

पदार्थ—(**स, अयम्**) यह सेनापति (**विचर्षणि**) प्रजाओ को विशेष रूप से देखने वाला (**हित**) और सबका हितकारक (**पवमान**) दुष्टो को दण्ड द्वारा शुद्ध करता हुआ (**बृहत् आप्यम् हिन्वानः**) बहुत से भोग्य पदार्थ को उत्पन्न करता हुआ (**चेतति**) सर्वथा जागृतावस्था से विराजमान है ॥१०॥२५॥

भावार्थ—जो सेनापति अपने कर्म मे तत्पर रहता है अर्थात् राजधर्म का यथाविधि पालन करता है वह प्रजा मे सब प्रकार से सुख उत्पन्न करता है ॥१०॥२५॥

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।
करद्वसूनि दाशुषे ॥११॥

पदार्थः—(**वृषा**) कामनाओ की वर्षा करने वाला (**वृषव्रत**) कामनापूर्ति रूप ही व्रत धारण करने वाला (**पवमान**) सर्वपावक (**अशस्तिहा**) दुराचारियो का नाशक (**एष**) यह सेनापति (**दाशुषे**) भाग देने वाले के लिए (**वसूनि, करत**) प्रत्येक प्रकार के धनो की प्राप्ति का प्रयत्न करता है ॥११॥

भावार्थ—उक्तगुण-सम्पन्न सेनापति सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न करके प्रजा मे सुख बढाता है ॥११॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥१२॥

पदार्थ—हे सेनाधीश ! (**सहस्रिणम्**) आप प्रत्येक प्रकार के (**गोमन्तम् अश्विनम्**) गो अश्वादि के सहित (**चन्द्रम्**) हर्षोत्पादक (**पुरुस्पृहम्**) अनेक लोगो से प्रार्थनीय (**पुरु, रयिम्**) बहुत से धन को (**आ पवस्व**) सर्वथा सञ्चित करिये ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा ने सेनाधीश के गुणो का वर्णन किया है कि सेनाधीश सहस्र प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रजाजनो के लिए उत्पन्न करे ॥१२॥

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः ।
उरुगायः कविक्रतुः ॥१३॥

पदार्थ—(**एष स्य**) वह यह (**कविक्रतु**) जो कि विद्वानो मे श्रेष्ठ और (**उरु गाय**) सब लोगो से प्रशंसित है, ऐसा सेनापति (**आयुभि.**) सब प्रजाओ द्वारा (**मर्मृज्यमान**) शुद्धाचरण रूप से सिद्ध किया गया (**परिषिच्यते**) नेतृत्वपद पर अभिषिक्त किया जाता है ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है वही सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१३॥

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः ।
इन्द्राय पवते मदः ॥१४॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) वह सेनापति इन्द्र अर्थात् सर्वोपरि ऐश्वर्य-सम्पन्न होने के लिए (**सहस्रोति**) सहस्रो प्रकार की रक्षण शक्ति को धारण करता है और (**शतामघ**) सैकड़ो प्रकार के धनो का सञ्चय करता है (**विमान रजसः**) और प्रजारक्षणार्थ रजोगुणप्रधान होता है (**कवि**) सब शास्त्रो का प्राज्ञ तथा (**इन्द्राय मद**) विज्ञानियों का सत्कर्ता और तृप्तिकर्ता तथा (**पवते**) उनकी विशेष रूप से रक्षा करता है ॥१४॥

भावार्थ—जो विद्वानो का रक्षक तथा सत्कार करने वाला और विद्या के प्रचार मे प्रेमी होता है वही सेनापति प्रशंसित कहा जाता है ॥१४॥

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।
विर्योना वसताविव ॥१५॥२६॥

पदार्थ—(**वि, वसतौ, इव**) "विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मण. अथापि इषुनामेह भवत्येतस्मादेव" नि अ २।६। जिस प्रकार शत्रु से रक्षा के लिए बाण ज्या मे स्थापित किया जाता है उसी प्रकार (**इह, जात इन्दु**) इस लोक मे सब

ऐश्वर्य को प्राप्त सेनापति (गिरा स्तुतः) सबकी वाणियों द्वारा स्तुत (इन्द्राय) रक्षा करने से निर्भीक होने के लिए (योना, धीयते) उच्च पद पर स्थापित किया जाता है ॥१५॥

भावार्थ—जिस प्रकार शस्त्र अपने नियत स्थानों में स्थित होकर राजधर्म की रक्षा करते हैं इसी प्रकार सेनापति अपने पद पर स्थिर होकर राजधर्म की रक्षा करता है ॥१५॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।

चमूषु शक्मनासदम् ॥१६॥

पदार्थ—(नृभि सुतः) विदुषी प्रजाओं के द्वारा अभिषिक्त (सोम) सौम्य सेनाधीश (पवमान) सबको पवित्र करता हुआ (चमूषु) सेनाओं में (शक्मना) अपने पराक्रम से (आसदम्) अपने शत्रु की ओर अभिगमन करने के लिए (वाजम्, इव) विद्युदादि अद्भुतशक्ति के समान (असरत्) गमन करता है ॥१६॥

भावार्थ—सोम यहाँ सेनाधीश का नाम है क्योंकि सेनाधीश को भी वीरता के लिए सौम्यस्वभाव की आवश्यकता है। इसलिए उसे सोमरूप से वर्णन किया है ॥१६॥

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।

ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥१७॥

पदार्थ—(ऋषीणाम्, सप्त, धीतिभि) जो कि ऋषियों अर्थात् विज्ञानी शिल्पियों के द्वारा रचित है तथा सात प्रकार के आकर्षणादि गुणों से संयुक्त है तथा (त्रिपृष्ठे) तीन उपवेशनस्थानों से युक्त था (त्रिवन्धुरे) तीन जगह ऊंचा-नीचा है (रथे) ऐसे रथ में (तम्) उस सेनापति को (यातवे, युञ्जन्ति) यात्रा करने के लिए प्रयुक्त करते हैं ॥१७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम अपने सेनापतियों के लिए ऐसे यान बनाओ, जो अनन्त प्रकार के आकर्षण-विकर्षणादि गुणों से युक्त हों और जल स्थल तथा नभोमण्डल में सर्वत्र अव्याहतगति होकर गमन कर सकें ॥१७॥

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे ।

हरिं हिनोत वाजिनम् ॥१८॥

पदार्थ—(सोतार) हे अमात्यादि अभिषेक्ता जनो ! (धनस्पृतम्) जो कि धनों का सञ्चय करने वाला है तथा (आशुम्) बहुव्यापी है (हरिम्) और शत्रुओं का विघातक (वाजिनम्) सुन्दर बल वाला है उसको (वाजाय) शक्ति बढ़ाने को (यातवे) यात्रा करने के लिए (हिनोत) प्रेरणा करो ॥१८॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! तुम लोग जो उक्तगुण सम्पन्न पुरुष हैं उसको अपने अभ्युदय के लिए सेनाधीशादि पदों पर नियुक्त करो ॥१८॥

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९॥

पदार्थ—(सुत) अभिषिक्त सेनापति (कलशम्, आविशन्) शब्दायमान शस्त्रों में प्रवेश करता हुआ अर्थात् शस्त्रविद्या को सीखता हुआ (विश्वा श्रिय अभ्यर्षन्) सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त करता हुआ (गोषु) इन्द्रियों में (शूर, न) शूर के समान अर्थात् जितेन्द्रिय की तरह (तिष्ठति) स्थित होता है ॥१९॥

भावार्थ - जो पुरुष जितेन्द्रिय और दृढ़व्रती होते हैं वे ही राजधर्म के लिए उपयुक्त होते हैं, अन्य नहीं ॥१९॥

आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः ।

देवा देवेभ्यो मधु ॥२०॥२७॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन् ! (ते) आपके (मदाय) आनन्द के लिए (आयवः, देवा) दिव्य शक्ति वाले आपके अनुयायी लोग (देवेभ्य) ज्ञानक्रियाशाली विद्वानों से (मधु) सुन्दर भोग-योग्य (पयः) दूध रूपी (कम्) सुख को (आ) भली भांति (दुहन्ति) दुहते हैं ॥२०॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आपके अनुयायी लोग कामधेनुरूप पृथिव्यादि-लोक-लोकान्तरों से अनन्त प्रकार के अमृतों को दुहते हैं ॥२०॥

आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।

देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥२१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (न) हम लोगों के (सोमम्) सौम्य स्वभाव वाले स्वामी को (आ, सृजत) इस प्रकार सिद्ध करो जिससे (मधुमत्तमम्) मधुर स्वभाव वालों में उत्तम हो और (देवेभ्यः, देवश्रुत्तमम्) सब देवों अर्थात् विद्वानों की प्रार्थना सुनने वाला हो ॥२१॥

भावार्थ—हे प्रजाजनो ! तुम ऐसे सेनापति को वरण करो जो मधुर स्वभाव वाला हो और सबकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देने वाला हो ॥२१॥

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे ।

मदिन्तमस्य धारया ॥२२॥

पदार्थ—(एते, सोमा) ये सेनापति (महे, श्रवसे गृणाना) महायश के लिए स्तुति किये गये (मदिन्तमस्य, धारया) आह्लादक शौर्यवीर्यादि शक्तियों की धारा के सहित (असृक्षत) पैदा किये जाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—उक्त गुणों वाले सेनापति संसार में यश और बल बढ़ाने के लिए उत्पन्न किये जाते हैं ॥२२

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।

सनद्वाजः परि स्रव ॥२३॥

पदार्थ—हे स्वामिन् ! (वीतये) उपभोग के लिए (गव्यानि नृम्णा) गोसम्बन्धी धनों को (अभि पुनान) निर्विघ्न करते हुए (अर्षसि) आप गमन करते हैं (सनद्वाज) सब शक्तियों को सर्वत्र विभक्त करते हुए आप (परिस्रव) सर्वत्र व्याप्त हो ॥२३॥

भावार्थ—जो सेनापति पृथिव्यादि रत्नों को निर्विघ्न करने के लिए अपनी जीवनयात्रा करते हैं वे, सेनाधीशादि पदों के लिए उपयुक्त होते हैं ॥२३॥

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।

गृणानो जमदग्निना ॥२४॥

पदार्थ—(उत) और (जमदग्निना गृणान) प्रज्वलित प्रताप होने से सब लोगों से स्तूयमान आप (न) हमारे लिए (परिष्टुभ) जो कि किसी प्रकार नहीं थमने वाली ऐसी (विश्वा) सब प्रकार की (गोमती इष) गवादि-पदार्थ युक्त शक्ति को (अर्ष) प्राप्त कराइये ॥२४॥

भावार्थ — परमात्मा उपदेश करता है कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग उक्तगुण-सम्पन्न राजपुरुषों के सदैव अनुयायी बने रहो, ताकि वे तुम्हारे लिए पृथिव्यादि-लोकलोकान्तरों के ऐश्वर्यों से तुम्हें विभूषित करें ॥२४॥

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।

अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥२८॥

पदार्थ - (सोम) हे सौम्य ! (अग्रिय) आप जो कि हम लोगों में अग्रणी हैं इसलिए (चित्राभि, ऊतिभि) अनेक प्रकार की विचित्र रक्षाओं से (वाच) अपनी आज्ञाविषयक वाणी का तथा (विश्वानि, काव्या) सम्पूर्ण वेदादि काव्यों को (अभिरक्ष) सुरक्षित कीजिए ॥२५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमेश्वर से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है ॥२५॥

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।

पवस्व विश्वमेजय ॥२६॥

पदार्थ—(विश्वमेजय) हे सब संसार को भय से अपने वश में रखने वाले ! आप (अग्रिय) प्रधान हैं (वाच, ईरयन्) अपने अनुशासन द्वारा (समुद्रिया, अप) समुद्र सम्बन्धी जलों को (पवस्व) निर्बाध करिए ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा की कृपा से ही सब पदार्थ निर्विघ्न रह सकते हैं, अन्यथा नहीं इसी का वर्णन किया गया है ॥२६॥

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।

तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥२७॥

पदार्थ — (कवे) हे विद्वन् ! (इमा भुवना) यह लोक (तुभ्यमहिम्ने) तुम्हारी ही महिमा के लिए (तस्थिरे) ईश्वर द्वारा स्थित हैं और (सोम) हे सौम्य ! (सिन्धव) सब नदियां (तुभ्यम् अर्षन्ति) तुम्हारे उपभोग के लिए ही ईश्वर द्वारा स्यन्दमान हो रही हैं ॥२७॥

भावार्थ — इस मन्त्र में परमात्मा के महत्व का वर्णन किया गया है कि अनेक प्रकार के भुवनों की रचना और समुद्रों की रचना उसके महत्व का वर्णन करती हैं। अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति के कार्य उसके एक देश में हैं। परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। अर्थात् परमात्मा अनन्त है और प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य सान्त हैं ॥२७॥

प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः ।

अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥२८॥

पदार्थः—हे सेनापते ! (दिव वृष्टय न) जिस प्रकार आकाश से जल की अनेक धाराओं का पात होता है उसी प्रकार (ते) आपकी (धारा) रक्षक सेनायें (असश्चत) पृथक्-पृथक् (प्रयन्ति) इधर-उधर विचरती हैं और (शुक्राम्, अभि) अपनी रक्षणीय प्रजा को (उपस्तिरम्) भली भांति अनुगृहीत करती हैं ॥२८॥

भावार्थ जिस प्रकार सेनापति की सेनायें इतस्ततः विचरती हुई उसके महत्व को बतलाती हैं उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड परमात्मा के महत्व का सेनाओं की नाईं सुशोभित करते हैं ॥२८॥

इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम् ।

ईशानं वीतिराधसम् ॥२९॥

पदार्थ—हे प्रजाजनो ! जोकि (**उग्रम्**) महातेजस्वी है और (**दक्षाय, साधनम्**) जिसके द्वारा तुम लोग दक्ष अर्थात् सब कार्यों में कुशल हो सकते हो और जो (**ईशानम्**) स्वयं परमैश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ है और (**वीतिराधसम्**) जो सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता है ऐसे (**इन्द्रम्**) अपने ऐश्वर्यशाली सेनाधीश को (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यसम्पन्न होने के लिए (**पुनीतन**) सब सम्मिलित होकर यथाशक्ति उपसेवन करो ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सेनापति की आज्ञा का पालन करना कथन किया गया है, कि जो लोग ऐश्वर्यशाली होना चाहें वे अपने सेनाधीश की आज्ञा का पालन करें ॥२९॥

पर्वमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासंदत् ।
दर्धत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३०॥२९॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबके रक्षक ! आप (**ऋत**) सत्यता को धारण करने वाले (**कविः**) विद्वान् (**सोम**) उदार हैं और (**स्तोत्रे सुवीर्यम्, दधत्**) अपने स्तोताओं तथा अनुयायियों के लिए सुन्दर पराक्रम को धारण करते हुए (**पवित्रम् आसदत्**) सत्कर्मी तथा सुरक्षित करते हैं ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में राजधर्म की रक्षार्थ परिश्रमी बनने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है ॥३०॥

इति द्विषष्टितमं सूक्तमूनत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ।

६२वां सूक्त और २९वां वर्ग समाप्त ।

अथ त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१—३० निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३० निचृद्गायत्री । ३, ७—११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री । ५, १३, १५ विराड्गायत्री । ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ प्रकारान्तरेण राजधर्म उपदिश्यते—

अब दूसरी तरह से राजधर्म का उपदेश करते हैं ।

आ पंवस्व सहुस्रिणं रुयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥१॥

पदार्थ—(**सोम**) हे जगदीश्वर ! आप (**सहस्रिणं सवीर्यं**) अनन्त प्रकार का बल हमको प्रदान करें (**रयिं**) और अनन्त प्रकार का ऐश्वर्य (**अस्मे**) हममें (**श्रवांसि**) सब प्रकार के विज्ञान (**धारय**) प्रदान करें । (**आपवस्व**) सब तरह से पवित्र करें ॥१॥

भावार्थ—राजधर्म की पूर्ति के लिए इस मन्त्र में अनेक प्रकार के बलों की परमात्मा से याचना की गई है ॥१॥

इषमूर्जं च पिन्वस् इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**चमूषु**) आप सब सेनाओं में (**आनिषीदसि**) नियामक रूप से स्थित हैं । आप (**इन्द्राय**) शूरवीर के लिए (**मत्सरितम**) अत्यन्त मद करने वाला वीरता का भाव उत्पन्न करें । (**इष च**) ऐश्वर्य और (**ऊर्जं**) बल (**पिन्वसे**) धारण कराइये ॥२॥

भावार्थ—राजधर्म के लिए अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य की आवश्यकता होती है । इसलिए परमात्मा से इस मन्त्र में अनन्त सामर्थ्य की प्रार्थना की गई है ॥२॥

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**सुत सोम**) साधनों से सिद्ध किया हुआ सौम्य स्वभाव (**इन्द्राय**) ज्ञानयोगी के लिए (**विष्णवे**) जो बहुव्यापक है (**वायवे**) कर्मयोगी के लिए (**मधुमाँ अस्तु**) सुशीलता-युक्त माधुर्यादि भावों को देने वाला हो और (**कलशे**) उनके अन्तःकरणों में (**अक्षरत्**) सदैव प्रवाहित होता रहे ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने सर्वोपरि शील की शिक्षा दी है कि हे पुरुषो ! तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाओ जिससे कि तुम्हारा अन्तःकरण धृत्यादि धर्म के लक्षणों को धारण करके राजधर्म के धारण के योग्य बने ॥३॥

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारंया ॥४॥

पदार्थ—(**एते**) ये (**सोमा**) सौम्यस्वभाव (**बभ्रव**) जो दृढ़ता युक्त हैं वे (**ऋतस्य**) सचाई की (**धारया**) धारा में (**अतिह्वरांसि**) राक्षसों को अतिक्रमण करते हुए (**आशव**) जो अत्यन्त तेजस्वी हैं, हे परमात्मन् ! आप (**असृग्रम्**) उनको उत्पन्न करें ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि राजधर्मानुयायी पुरुषो ! तुम लोग उग्र स्वभाव को बनाओ ताकि दुष्ट दस्यु और राक्षस तुम्हारे रौद्र स्वभाव से भयभीत होकर कोई अनाचार न फैला सकें ॥४॥

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) शूरवीर के महत्व को (**वर्धन्त**) बढ़ाते हुए और उस को (**अप्तुरः**) गतिशील (**कृण्वन्त**) करते हुए और (**अराव्ण**) सब शत्रुओं का (**अपघ्नन्त**) नाश करते हुए (**विश्वं**) सब प्रकार के (**आर्यम्**) आर्यत्व को दें ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना है कि परमात्मा श्रेष्ठ स्वभाव को प्रदान करे ताकि आर्यता को धारण करके पुरुष राजधर्म का शासन करे ॥५॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः ।
इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥६॥

पदार्थ—(**सुता**) संस्कार किए हुए और (**स्व**) अपने (**रज**) स्थान को (**आगच्छन्त**) प्राप्त होते हुए (**इन्द्रम्**) परमात्मा को प्राप्त होकर (**इन्दव.**) प्रकाशस्वरूप सकल्प (**बभ्रव**) जो स्थिर हैं वे (**अभ्यर्षन्ति**) परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करते हैं, वे एक प्रकार से व्यवसायात्मक बुद्धि को बनाते हैं । परमात्मा ने इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! आप शुद्ध सकल्प होकर मेरी ओर आयें ॥६॥

अया पंवस्व धारंया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (**अया**) उस (**धारया**) प्रकाश से प्रकाशित करते हुए (**यया**) जिससे (**सूर्यमरोचय.**) सूर्य को आप प्रकाशित करते हैं, मुझे भी प्रकाशित कीजिए । और (**मानुषी**) मनुष्य के (**अपः**) कर्मों को (**हिन्वान**) यथायोग्य प्रेरणा करते हुए (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से यथायोग्य न्याय की प्रार्थना है । यद्यपि परमात्मा स्वभावसिद्ध न्यायकारी है, तथापि परमात्मा ने इस मन्त्र में "हिन्वान मानुषीरपः" इस वाक्य से यथायोग्य कर्मों का फल-प्रदाता कथन करके यह सिद्ध किया कि तुम परमात्मा के न्याय तथा नियम के अनुकूल काम करो ॥७॥

अयुंक्त सूर एतंशं पर्वमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातंवे ॥८॥

पदार्थ—(**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**मनावधि**) जो मनुष्यमात्र का स्वामी है, वह (**अन्तरिक्षेण**) अन्तरिक्ष मार्ग द्वारा (**यातवे**) जाने के लिए (**सूर**) जो अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करता है (**एतश**) ऐसे शक्ति सम्पन्न सूर्य को (**अयुक्त**) जोड़ता है ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से अनन्त शक्तियां उत्पन्न की हैं ॥८॥

उत त्या हुरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९॥

पदार्थ—(**उत**) और (**इन्दु.**) जो पुरुष अपने प्रेम से सब पुरुषों के हृदयों को स्निग्ध कर उसका नाम यहां इन्दु है (**इन्द्रः**) जो सर्वैश्वर्ययुक्त परमात्मा है (**इति**) उसको ऐसे नामों से (**ब्रुवन्**) कथन करता हुआ जो पुरुष (**यातवे**) अपनी शारीरिक यात्रा के लिए (**त्या**) उन (**हरित**) पाप को नष्ट करने वाली (**दशसूर**) दश प्रकार की वृत्तियों को (**अयुक्त**) जोड़ता है वह परमानन्द को प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थ—जो पुरुष अपनी इन्द्रियवृत्तियों को सब ओर से हटाकर एक परमात्मा में लगाते हैं वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं । इस मन्त्र में परमात्मा ने इन्द्रियवृत्तियों को रोक कर ईश्वर में लगाने का उपदेश किया है । इसका नाम ईश्वरयोग है । परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इसलिए वे बाहर की ओर जाती हैं । इनके रोकने का उपाय उक्त मन्त्र में बतलाया है ॥९॥

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१०॥३१॥

पदार्थ—(**गिर**) हे स्तोता लोगो ! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए और (**वायवे**) ज्ञानयोगी के लिए (**इत**) इस कर्मभूमि में (**मत्सर**) आह्लादजनक (**सुत**) शील की वृष्टि करें और (**वारेषु**) सब वरणीय पदार्थों में (**अव्य**) रक्षा की (**परिषिञ्चत**) सब ओर से वृष्टि करें ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि वेदवेत्ता ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का उपदेश करते हैं वे मानो अमृत की वृष्टि से अकर्मण्यतारूप मृत्यु से मृत लोगों का पुनरुज्जीवन करते हैं ॥१०॥

पर्वमान विदा रुयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव ! (**अस्मभ्यं**) हमारे लिए उस (**रयिं**) धन को (**विदाः**) दें

(**य**) जो (**वनुष्यता**) शत्रुओं से (**दूणाश.**) अजेय है (**दुष्टरम्**) और अप्राप्य है ॥११॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा ने उस अलभ्य लाभ का उपदेश किया है जो ज्ञान-विज्ञान रूपी धन है। ज्ञान-विज्ञान रूपी धन को कोई पुरुष बलात्कार से छीन व चुरा नहीं सकता। इसीलिए कहा है कि हे वेदानुयायियो ! आप उक्त धन का सचय करें ॥११॥

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (**सहस्रिणम् रयिम्**) अनन्त प्रकार के धनो को जो (**गोमत्**) अनेक प्रकार की भूमि हिरण्यादि युक्त है तथा (**अश्विनम्**) जो विविध यानो से परिपूर्ण है और जो (**वाजम्**) बलरूप (**उत**) और (**श्रव**) यशोरूप है उसको (**अभ्यर्ष**) आप हमको दें ॥१२॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा ने अनन्त प्रकार के धनो की उपलब्धि का उपदेश किया है ॥१२॥

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः ।

दधानः कलशे रसम् ॥१३॥

पदार्थ —(**सोम**) सब ससार को उत्पन्न करने वाला (**देव**) दिव्यस्वरूप (**सूर्य न**) सूर्य के समान (**अद्रिभि**) अपनी शक्तियो से (**पवते**) पवित्र करता है। और जो (**सुत**) स्वत.सिद्ध परमात्मा (**कलशे**) प्रत्येक पदार्थ मे (**रस**) रस को (**दधान**) धारण कराता है ॥१३॥

भावार्थ —परमात्मदेव ही प्रत्येक पदार्थ मे रस को उत्पन्न करता है। और वही अपनी शक्तियो से सबको पवित्र करता है ॥१३॥

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया ।

वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥

पदार्थ —(**एते शुक्रा**) पूर्वोक्त शीलस्वभाव जो (**ऋतस्य धारया**) सचाई की धाराओ से (**वाजम्**) बल को और (**गोमत**) ऐश्वर्य को (**अक्षरन्**) बरसाते है वे (**आर्या**) आर्यपुरुषो के (**धामानि**) स्थान समझने चाहियें ॥१४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि श्रेष्ठपुरुषो की स्थिति का हेतु एकमात्र शुभस्वभाव वा शील ही समझना चाहिए। अर्थात् शुभशील से ही उनकी दृढ़ता और उनका आर्यत्व बना रहता है। इसलिए शील को सम्पादन करना आर्यों का परम कर्तव्य है ॥१४॥

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः ।

पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥३२॥

पदार्थ —(**सुता सोमास**) स्वयसिद्ध परमात्मा (**अतिपवित्र दध्याशिर**) जो सर्वोपरि पवित्रता का अधिकरण है वह (**इन्द्राय वज्रिणे**) कर्मयोगी पुरुष के लिए (**अक्षरन्**) परमानन्द की वृष्टि करता है ॥१५॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मयोगी पुरुष के लिए आनन्द की वृष्टि करता है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुषो के लिए परमात्मा सदैव आनन्द को प्रदान करता है। यद्यपि परमात्मा का आनन्द सबके सन्निहित है तथापि उसके आनन्द का उद्योगी कर्मयोगी ही लाभ कर सकते हैं। इस अपूर्वता का इस मन्त्र मे उपदेश किया गया है ॥१५॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ ।

मदो यो देववीतमः ॥१६॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमेश्वर ! आपका (**यः**) जो (**मद.**) रस (**मधुमत्तम**) अत्यन्त स्वादु तथा (**देववीतम**) दिव्यस्वरूप है उसको (**राये**) हमारे ऐश्वर्य के लिए (**पवित्रे**) पवित्रान्त करणो मे (**प्रार्ष**) प्राप्त कराइये ॥१६॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के आनन्द का अनुसधान करते हैं अर्थात् परमात्मा को ध्येय बनाकर उसके आह्लाद से आह्लादित होते हैं वे सब प्रकार से अभ्युदय के पात्र होते हैं ॥१६॥

तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् ।

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥

पदार्थ —(**तं, हरिं**) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का (**इन्दु**) जो सबको अपने प्रेम से आर्द्रित करने वाला है और (**इन्द्राय मत्सरम्**) कर्मयोगी के लिए आह्लाद को उत्पन्न करने वाला है (**ईं वाजिनम्**) बलस्वरूप को समृद्धियो मे (**नदीषु**) सम्पूर्ण अभ्युदयो मे (**आयव**) मनुष्य लोग (**मृजन्ति**) अविद्या के परदे को हटाकर बुद्धिविषय बनाते है ॥१७॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग आवरण को दूर करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे सब प्रकार के अभ्युदयो को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् ।

वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥

पदार्थ.—हे परमात्मन् ! आप (**आपवस्व**) हमको सब ओर से पवित्र करें। आप (**हिरण्यवत्**) सब प्रकार के ऐश्वय वाले हैं (**अश्वावत्**) सर्वशक्ति सम्पन्न हैं (**वीरवत्**) विविध प्रकार के वीरो के स्वामी हैं। आप हमको (**गोमन्त वाज**) ज्ञान के ऐश्वर्य से (**आभर**) भरपूर करिये ॥१८॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मपरायण होते हैं उनको परमात्मा ज्ञान विज्ञानादि अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है ॥१८॥

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत ।

इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**मधुमत्तमम्**) सर्वोपरि माधुर्य को (**परिषिञ्चत**) सिंचन करें (**अव्य**) सबकी रक्षा करने वाले आप (**वारेषु**) वरणीय पदार्थों मे (**वाजयु न**) वीरो के समान (**वाजे**) युद्ध मे रक्षा करें ॥१९॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते है कि जो लोग कर्मयोगी और उद्योगी बनकर अपने लक्ष्य की पूर्ति मे कटिबद्ध रहते है परमात्मा वीरो के समान उनकी रक्षा करता है ॥१९॥

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।

वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥३३॥

पदार्थः—(**अवस्यव**) रक्षा करने वाले (**विप्राः**) मेधावी लोग (**धीभि**) बुद्धि द्वारा (**मर्ज्यं**) शुद्ध स्वरूप तथा (**कवि**) सर्वज्ञ परमात्मा को (**मृजन्ति**) ध्यान का विषय बनाते है वह परमात्मा (**वृषा**) जो कि कामनाओ की वृष्टि करने वाला है एवभूत ईश्वर (**कनिक्रत्**) वेदवाणी को प्रदान करता हुआ (**अर्षति**) आनन्द की वृष्टि करता है ॥२०॥

भावार्थ —इस मत्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग सस्कृत बुद्धि द्वारा उसका ध्यान करते है उनको परमात्मा का साक्षात्कार होता है ॥२०॥

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।

मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥

पदार्थ —(**विप्रा**) मेधावीजन (**वृषण**) कामनाओ की वृष्टि कराने वाले (**सोमं**) परमात्मा को (**धीभि**) शुद्ध बुद्धि द्वारा (**मती**) स्तुति से तथा (**ऋतस्य धारया**) सत्य की धारणा से (**समस्वरन्**) बुद्धिविषय करते है ॥२१॥

भावार्थ —इस मत्र मे परमात्मा के साक्षात्कार करने का उपदेश किया है ॥२१॥

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।

वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥

पदार्थ.—(**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप मुझको (**पवस्व**) पवित्र करें। (**ते**) आपका (**मद**) परम आनन्द (**आयुषक्**) उपासक (**इन्द्र**) कर्मयोगी पुरुष को (**गच्छतु**) प्राप्त हो तथा आप (**वायु**) ज्ञानयोगी पुरुष को (**धर्मणा**) उपास्यभाव से (**आरोह**) प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोगी वा कर्मयोगी बनकर परमात्मा के उपासक बनते हैं परमात्मा उन्हें तद्धर्मतापत्तियोग द्वारा पवित्र करता है। अर्थात् अपने शिष्यादि भावो को प्रदान करके उनको शुद्ध करता है ॥२२॥

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।

प्रियः समुद्रमा विश ॥२३॥

पदार्थ —(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले ! (**सोम**) हे परमात्मन् ! जो आप (**श्रवाय्य, रयिम्**) दुष्टो के धन को (**नि तोशसे**) भली-भांति नष्ट करते हैं वह (**प्रिय.**) आनन्ददाता आप (**समुद्र**) आर्द्रीभूत हमारे अन्त करण मे (**आविश**) विराजमान हो ॥२३॥

भावार्थ —इस मत्र मे परमात्मा के रौद्र भाव का वर्णन किया है। यहां परमात्मा का स्वरूप दुष्टों के प्रति भयप्रद वर्णन किया है ॥२३॥

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।

नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**मत्सर**) परम आनन्द देने वाले तथा (**क्रतुवित्**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। जो आप (**मृध**) दुष्टो को (**अपघ्नन्**) हनन करते हुए (**पवसे**) रक्षा करते हैं वह आप (**अदेवयु**) दुष्टाचारी (**जन**) राक्षस समूह को (**नुदस्व**) हनन करिये ॥२४॥

भावार्थ —इस मत्र मे भी परमात्मा के रौद्ररूप का वर्णन किया गया है ॥२४॥

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।

अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥३४॥

पदार्थ —(शुक्रासः) जो बलवान् तथा (इन्दवः) दीप्तिमान् है ऐसा (पवमाना) रक्षा करने वाला (सोमाः) परमात्मा (विश्वानि) सम्पूर्ण (काव्या) वेद को (अस्वसृक्षत) प्रकाशित करता है ॥२५॥

भावार्थ —इस मंत्र मे इस बात का कथन है कि परमात्मा सब ज्ञानों का स्रोत तथा वेद का प्रकाशक है । जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि मत्रो मे अन्यत्र भी वर्णन किया है कि परमात्मा से ऋगादि वेद उत्पन्न हुए ॥२५॥

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।

घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥

पदार्थ —(अपद्विषः) अनुचित द्वेषियो को (घ्नन्तः) नाश करता हुआ (पवमानासः) देश को पवित्र करने वाला शूरवीर (आशवः) अतिशीघ्रता करने वाले (शुभ्रा) सुन्दर (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली (विश्वा असृग्रम्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता है ॥२६॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि जो शूरवीर अन्यायकारी दुष्टों को दमन करते है वे देश के लिये अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को उत्पन्न करते है ॥२६॥

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।

पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥

पदार्थ —जो शूरवीर (दिवस्परि) द्युलोक से ऊपर (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष और (पृथिव्या अधि) पृथिवी लोक के बीच मे (सानवि) शूर वीरता धर्म से सर्वोपरि होकर विराजमान है वे (पवमाना) स्वय पवित्र होकर (असृक्षत) शुभगुणों का उत्पन्न करते है ॥२७॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम अपने शूर वीरतादि धर्मों से इस ससार के उच्च शिखर पर विराजमान होकर सबकी रक्षा करो ॥२७॥

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः ।

जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥

पदार्थ —हे सौम्य स्वभाव वाले विद्वन् ! आप (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पुनान) हमको पवित्र करते हुए (विश्वा अपस्रिधः) सम्पूर्ण धर्म विरोधियो का (जहि) नाश करो (रक्षांसि) जो राक्षस शुभकर्मों का नाशक है । हे सुक्रतो ! अनाचारियो का नाश करो ॥२८॥

भावार्थ —धीरवीरतादि गुणसम्पन्न शूरवीर दुराचारी राक्षसो का नाश करके देश मे सदाचार प्रचार करता है ॥२८॥

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न विद्वन् ! आप (रक्षसः) राक्षसो का (अपघ्नन्) नाश करते हुए (कनिक्रदत्) और शूरवीरता का उपदेश करते हुए (उत्तमं) उत्तम (द्युमन्तं) दीप्ति वाला (शुष्मं) बल (अभ्यर्ष) हमको दे ॥२९॥

भावार्थ —जिस देश मे सौम्य स्वभाव युक्त शूरवीर उत्पन्न होते है, उस देश मे सर्वोपरि बल और ऐश्वर्य उत्पन्न होता है । तात्पर्य यह है कि ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिये धीरवीरतादि गुणो का धारण करना अत्यावश्यक है ॥२९॥

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।

इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥३५॥

पदार्थ —(इन्दो) हे ज्ञान विज्ञानादि गुणसम्पन्न विद्वन् ! (सोम) हे परमात्मन् ! आप (पार्थिवा) पृथिवी सम्बन्धी (दिव्यानि) तथा द्युलोक सम्बन्धी (विश्वानि वसूनि) सर्व रत्न (वार्या) जो वरण करने योग्य है, उनको (अस्मे) हमारे लिए (धारय) धारण कराइये ॥३०॥

भावार्थ —परमात्मा ने इस मत्र मे इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग सौम्य स्वभाव युक्त शूरवीरो के अनुयायी होकर देश का परिपालन करते हैं, वे नाना प्रकार के रत्नो का धारण करके ऐश्वर्यशाली होते हैं ॥३०॥

इति त्रिषष्ठितम सूक्तं पञ्चत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥
६३वां सूक्त और ३५वां वर्ग समाप्त ।

अथ त्रिंशदृचस्य चतुःषष्ठितमस्य सूक्तस्य

१—३० काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ १२, १३ १५ १७, १९, २२, २४, २६ गायत्री । २, ५, ६, ८-११, १४, १६, २०, २३ २५ २८ निचृद्गायत्री । १८, २१, २७, २९ विराड्गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अथ परमात्मनो गुणा वर्ण्यन्ते ॥
अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते है ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।

वृषा धर्माणि दधिषे ॥१॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (द्युमान्) आप दीप्तिमान् (असि) है (वृषा) तथा सब कामनाओ की वर्षा करने वाले है । (देव) हे देव ! आप (वृषव्रतः) अर्थात् आनन्द की वृष्टि रूप शील को धारण किये हुए हैं तथा उपासको के हृदयो को (वृषा) स्नेह से सिंचन करते हैं, (वृषा धर्माणि दधिषे) और वर्षणशील धर्मों को धारण किये हुए है ॥१॥

भावार्थ —हे परमात्मन ! आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं और आपकी मर्यादा मे ही सब लोक-लोकान्तर स्थिर है । आप अपनी धर्ममर्यादा मे हमको भी स्थिर कीजिए ॥१॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः ।

सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (वृष्ण) वर्षणशील (ते) आपका (मदः) आनन्द (वृषा) वर्षक है तथा (ते) तुम्हारा (शव) बल (वृष्ण्यं) वर्षणशील है और तुम्हारा (वृषा) वर्षणशील (सत्यं) सत्य स्वरूप (वनं) भजन करने योग्य है और तुम्ही (वृषेत्) वर्षक आप ही (असि) उपासना करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थ —इस मत्र मे एकमात्र परमात्मा को उपास्य रूप से वर्णन किया गया है । तात्पर्य यह है कि ईश्वर से भिन्न सत्यादि गुणो का धाम अन्य कोई पदार्थ नही है ॥२॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।

वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन ! आप (अश्वो न) विद्युत् के समान (स चक्रदः) शब्दो के देने वाले ! और (इन्दो) हे परमेश्वर ! आप (गा) ज्ञानेन्द्रियों के (समर्वतः) और कर्मेन्द्रियो के (दुर) द्वारो को (राये) ऐश्वर्यार्थ (नः) हमारे लिए (विवृधि) खोल दें ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा जिन पर कृपा करता है उन पुरुषो की ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय की शक्तियो को बढाता है । तात्पर्य यह है कि उद्यमी पुरुष अथवा यों कहो कि सत्कर्मी पुरुषो की शक्तियो को परमात्मा बढाता है । आलसी और दुराचारियों की नही ॥३॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।

शुक्रासो वीरयाशवः ॥४॥

पदार्थ —(सोमास) सौम्य स्वभाव वाला (वाजिन) बलरूप (अश्वया) गतिशील तथा (गव्या) प्रकाशस्वरूप (शुक्रास) ज्ञानस्वरूप (वीरया) वीरो को उत्पन्न करने वाला (आशव) गतिशील परमात्मा को उपासक लोग (प्रासृक्षत) अपना उपास्य बनाते है ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को अपना उपास्य बनाओ ॥४॥

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।

पवन्ते वारे अव्यये ॥५॥३६॥

पदार्थ —(शुम्भमाना) सब भूषणो का भूषक (मृज्यमाना) सबको शुद्ध करने वाला (गभस्त्यो) प्रकाशस्वरूप (वारे) वरणीय पदार्थों मे (अव्यये) अव्यय रूप से जो विराजमान है, ऐसा परमात्मा (ऋतायुभि) सत्याई चाहने वाले लोगो से उपासना किया हुआ परमात्मा (पवन्ते) उन्हे पवित्र करता है ॥५॥

भावार्थ —जो लोग सत्य के अभिलाषी है, उनको परमात्मा सदैव पवित्र करता है । क्योंकि परमात्मा भक्तो पर और सत्याभिलाषियो पर अपनी कृपा करके उनका उद्धार करता है ॥५॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।

पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥

पदार्थ —(ते सोमा) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (दिव्यानि) द्युलोक के (पार्थिवा) पृथिवी लोक के (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्ष लोक के (विश्वा) सब (वसु) धन (दाशुषे) जिज्ञासु वेदानुयायियो को (आपवन्ताम्) दे ॥६॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, परमात्मा उनको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।

सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥

पदार्थ —(विश्ववित) हे सम्पूर्ण ससार के जानने वाले परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) तुम्हारी (सर्गा) सृष्टियां (प्रासृक्षत) जो रची गई हैं, वे (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मय इव) किरणो के समान (न) इस काल मे शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा के कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड सूर्य की रश्मियों के समान देदीप्यमान हो रहे हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी ज्योति से अनन्त ब्रह्माण्डो को प्रकाशित करता है, उस प्रकार अन्य भी तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरों का प्रकाश करने वाले परमात्मा की रचनाएं अनन्त हैं ॥७॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥

पदार्थ —(सोम) हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! (दिवस्परि) द्युलोक के ऊपर (केतु कृण्वन) सूर्य तथा चन्द्रमा को आपने केतुरूप बनाया है और (विश्वारूपा) सम्पूर्ण रूपो को (अभ्यर्षसि) पवित्र बनाया है । (समुद्र) जिसमे सब आनन्द मिलते है उसका नाम यहाँ समुद्र है (पिन्वसे) वह आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों को हमारे लिए देते है ॥८॥

भावार्थ - परमात्मा ने अपनी रचना मे सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश के केतु बना कर ससार की शोभा को बढाया है और आनन्द का सागर होने से परमात्मा का नाम समुद्र है ॥८॥

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥

पदार्थ —हे परमात्मन ! (सूर्य) सूर्य के (न) समान (देव) आप प्रकाशस्वरूप है और (विधर्मणि) सब अधिकरणो का (अक्रान्) आप अतिक्रमण करते है । (पवमान) सबका पवित्र करते हुए (वाचमिष्यसि) आप वेदरूपी वाणी की इच्छा करते है । (हिन्वान) आप सर्वप्रेरक है ॥९॥

भावार्थ -इस मन्त्र मे सूर्य का दृष्टान्त देकर परमात्मा का स्वत प्रकाश वर्णन किया है ।

यद्यपि वास्तव मे सूर्य स्वत प्रकाश नही है, तथापि लोक की प्रसिद्धि से सूर्य को स्वत प्रकाश मान कर यहा सूर्य का दृष्टान्त दिया गया है । वास्तव मे परमात्मा निरपेक्ष स्वत प्रकाश है ॥९॥

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती
सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥३७॥

पदार्थ —(इन्दु) परमात्मा स्वत प्रकाश है । (पविष्ट) सबको पवित्र करने वाला है । (चेतन) चिद्रूप है (कवीना प्रिय) विद्वानो का प्रिय है । (मती) बुद्धिरूप है । (अश्व) सर्वोपरि विद्युदादि शक्तियो को (सृजत) रचता है और वह परमात्मा (रथीरिव) महारथी के समान तेजस्वी होकर विराजमान है ॥१०॥३७॥

भावार्थ इस मन्त्र म परमात्मा को चेतन स्वरूप वर्णन करने के लिए चेतन शब्द स्पष्ट आया है । जो यह कहते हैं कि वेद मे परमात्मा को ज्ञानस्वरूप कहने वाले शब्द नही, उन्हे इस मन्त्र से शिक्षा लेनी चाहिए ॥१०॥३७॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥

पदार्थ —हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे आनन्द की (ऊर्मि) लहरें (य) जो (देवावी) दिव्य हैं, वे (पवित्रे) पवित्र अन्त करणो मे (पर्यक्षरत्) सब ओर से बहती है । आप (ऋतस्य) सचाई के (योनिमासीदन) धाम मे निवास करते हैं ॥११॥

भावार्थ —परमात्मा शुद्ध अन्त करण वाले पुरुषो के हृदयो को अपनी सुधामयी वृष्टि से सिंचित कर देता है ॥११॥

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥१२॥

पदार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (इन्द्राय पीतये) कर्मयोगी की तृप्ति के लिए आप (आ) सब ओर से (मद) आनन्द की वृष्टि करें । (य) जो आनन्द (देववीतम) देवताओ की तृप्ति करने वाला है और (पवित्रे) पवित्र अन्त करणो मे जिसका संचार होता है (स) उस आनन्द को (न) हम लोगो को (अर्ष) दीजिए ॥१२॥

भावार्थ—परमात्मा वह आनन्द जो देवताओं के लिए तृप्ति-कारक है, अर्थात् जिसके अधिकारी दिव्यगुण वाले सदाचारी पुरुषहैं, वह आनन्द केवल कर्मयोगियो और ज्ञानयोगियों को ही उपलब्ध हो सकता है, अन्यो को नही । इसलिए सबको चाहिए कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बनकर उस आनन्द की प्राप्ति का यत्न करें ॥१२॥

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१३॥

पदार्थ —(इन्दो) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप (इषे) ऐश्वर्य के लिए (पवस्व) हमको योग्य बनाएँ और (मनीषिभि) बुद्धिमानो से (अभिमृज्यमान) उपास्यमान आप (धारया) अपने आनन्द की वृष्टि से (गा.) हमारी इन्द्रियो को पवित्र करें । (रुचा) अपने प्रकाशस्वरूप से (इहि) आकर हमारे अन्त.करण को पवित्र करिये ॥१३॥

भावार्थ —जो लोग शुद्ध अन्त करण से परमात्मा की उपासना करते हैं, परमात्मा उनकी शक्तियो को बढाता है और उनकी इन्द्रियो को विमल करके ऐश्वर्य-प्राप्ति के योग्य बनाता है ॥१३॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥१४॥

पदार्थ. (हरे) हे दुष्टो की शक्तियो को हरने वाले परमात्मन् ! आप हमको (वरिव) ऐश्वर्य सम्पन्न करे । (गिर्वण) आप वैदिक वाणियो द्वारा उपासना करने योग्य है और (पुनान) पवित्र करने वाले हैं । आप ससार के लिए (आशिर) मगल (सृजान) करते हुए (जनाय) अपने भक्त के लिए (ऊर्जं) बल (कृधि) करे ॥१४॥

भावार्थ परमात्मा दुष्टो की शक्तियो को हर लेता है और श्रेष्ठों को अभ्युदय दे करके बढाता है ॥१४॥

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥३८॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को (देववीतये) ब्रह्मप्राप्ति के लिए (याहि) प्राप्त हो । (यत) क्योकि आप (निष्कृत द्युतान) स्वाभाविक दीप्तिमान हैं तथा (वाजिभि) उपासक लोगो से उपासना किये जाते हैं और (पुनान) सबको पवित्र करते हैं । इसलिए कर्मयोगी का लक्ष्य आप ही बनें ॥१५॥३८॥

भावार्थ —कर्मयोगी यहा उपलक्षण मात्र है । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी अथवा अन्य कोई उपासक हो, इन सबको एकमात्र ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिए, किसी अन्य की नही ॥१५॥३८॥

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।
धिया जूता असृक्षत ॥१६॥

पदार्थ — (धिया) सस्कृत बुद्धि से (जूता) उपासना किया हुआ (आशव) गतिशील (अच्छ) निर्मल परमात्मा (समुद्रं) द्रवीभूत मन से (असृक्षत) ध्यान का विषय बनाता है । उक्त परमात्मा (इन्दव) सब प्रकार ऐश्वर्य वाला है । तथा (हिन्वानास) सबको प्रेरणा करने वाला है ॥१६॥

भावार्थ —सर्वप्रकाशक और सबका प्रेरक परमात्मा, सयमी पुरुषो के ध्यान का विषय होता है, अन्यो के नही ॥१६॥

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१७॥

पदार्थ —उक्त परमात्मा (ऋतस्य योनि) सच्चाई के स्थान को (आ) भली-भाति (अग्मन) प्राप्त होता है । वह परमात्मा (मर्मृजानास) सबको पवित्र करने वाला है । (आयव.) गतिशील है (इन्दव) प्रकाश स्वरूप है । तथा (वृथा समुद्रम्) अन्तरिक्ष मे भी अनायास गमन करने वाला है ॥१७॥

भावार्थ — उक्त सर्वशक्ति-सम्पन्न परमात्मा बिना परिश्रम के ही अन्तरिक्षादिलोको मे गमन कर सकता है अन्य नही ॥१७॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा ।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (अस्मयु) भक्तो को प्राप्त होने वाले आप (न) हम लोगो के (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) धन को (ओजसा) बल के सहित (परियाहि) सब ओर से प्राप्त कराइए और (न) हम लोगो के (वीरवत्) वीर पुत्रो की और (शर्म) शील की (पाहि) रक्षा कीजिए ॥१८॥

भावार्थ —जो लोग सदाचारी है और सदाचार से अपने शील को बनाते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१८॥

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः ।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ऋक्वभि) ऋत्विक् लोगो से (यत्) जब (वह्नि) हवन की अग्नि (एतश) जो दिव्यशक्ति-सम्पन्न है (मिमाति) प्रज्वलित की जाती है तब (युजान) यज्ञ मे युक्त होने वाला परमात्मा जो (समुद्रे) भक्ति भाव से नम्रीभूत अन्त करणो मे (आहित.) स्थिर रहता है, वह (पद) अपने पद को धारण करता है ॥१९॥

भावार्थ —याज्ञिक लोग जब यज्ञ करते हैं, तब उनके नम्रीभूत अन्त करणो मे परमात्मा निवास करता है । यज्ञ शब्द के अर्थ यहाँ उपासनात्मक यज्ञ के हैं । यो तो जपयज्ञ, योगयज्ञ, कर्मयज्ञ इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञो मे यज्ञ शब्द आता है, जिनके करने वाले ऋत्विक् कहलाते है, परन्तु यहा ऋत्विक् शब्द का अर्थ उपासक है। जो ऋतु-ऋतु मे अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक भाव मे उपासना करते है, उनको यहां ऋत्विक् कहा गया है ॥१९॥

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति ।
जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥३९॥

पदार्थ (यत्) जब (आशु) अतिवेग गतिशील परमात्मा (ऋतस्य हिरण्यय योनि) हिरण्मयी यज्ञवेदी को (आसीदति) प्राप्त होता है, तब (अप्रचेतस.) असमाहित लोगो के अन्त करणो को (जहाति) छोड देता है ॥२०॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि ज्ञान से प्रकाशित अन्त करणो को परमात्मा अपनी शक्ति से विभूषित करता है, अज्ञानावृत अन्त करणो को नही । इसीलिए यहा "अप्रेचतस जहाति" यह लिखा है । वास्तव मे परमात्मा न किसी स्थान को छोडते है, न पकडते है ॥२०॥३९॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।

मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१॥

पदार्थ—(**प्रचेतसो वेना**) प्रकृष्ट ज्ञान वाले विज्ञानी लोग (**अभ्यनूषत**) परमात्मा की उपासना करते है और (**इयक्षन्ति**) उपासनात्मक यज्ञ से परमात्मा का यजन करते है । (**अविचेतस**) अज्ञानी लोग (**मज्जन्ति**) डूबते हैं ॥२१॥

भावार्थ—जो लोग शुद्ध मन वाले हैं, वे परमात्मा के तत्त्वज्ञान से मुक्ति क भोगी होते हैं, और अज्ञानी जन बार बार जन्म लेते है, और मरते हैं, परन्तु फिर भी परमात्मा के तत्त्व को नही पाते । इसीलिए उनका यहा डूबना दिखलाया है ॥२१॥

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।

ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**मरुत्वते इन्द्राय**) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी के लिए (**पवस्व**) आप अपने आनन्द की वृष्टि करें क्योकि आप (**मधुमत्तम**) आनन्दमय है । इसलिए उक्त विद्वानो को आप आनन्द को प्रदान करें । और (**ऋतस्य योनिमासदम्**) यज्ञवेदी को आकर विभूषित करें ॥२२॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी और ज्ञानयोगी के हृदयमण्डप को विभूषित करता है और उनके सत्यव्रतात्मक यज्ञ को सदैव सुशोभित करता है ॥२२॥

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**त त्वा**) उक्त गुणसम्पन्न आपको (**वचोविदो विप्रा.**) वेदवाणी के जानने वाले मधावी लाग (**परिष्कृण्वन्ति**) वर्णन करते हैं और (**वेधस आयव**) कर्मकाडी लोग (**त्वा**) आपको (**सम्मृजन्ति**) ध्यानविषय करते हैं ॥२३॥

भावार्थ—जा लोग कर्मयोगी हैं, तथा योगसाधनरूपी कर्मों द्वारा परमात्मा को अपने ध्यान का विषय बनाते हैं, वे परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं ॥२३॥

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे ।

पवमानस्य मरुतः ॥२४॥

पदार्थ.—(**पवमानस्य**) सबको पवित्र करने वाले जो आप हैं, ऐसे आपके (**रस**) रस को (**मित्र**) समदर्शी विद्वान् (**वरुण**) विज्ञानादि गुणो मे सृष्टि को आच्छादन करने वाले (**मरुत·**) कर्मयोगिगण (**ते कवे**) तुम जा सवज्ञ हो, ऐसे आपके रस को (**अर्यमा**) न्यायकारी लोग (**पिबन्ति**) पान करते हैं ॥२४॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी है, वही उस परमात्मा के आनन्द का पान कर सकता है, अन्य नहीं । तात्पर्य यह है कि परमात्मा के समान परमात्मा का आनन्द भी सर्वत्र परिपूर्ण है । परन्तु बिना उक्त उपदेश मे, वा यो कहो, कि सर्वोपरि साधन के बिना उसके आनन्द का कोई भी उपभोग नही कर सकता । इसीलिए यहां उक्त प्रकार के योगियो का कथन किया है कि उक्त योगी ही उसके आनन्द को भोगते हैं ॥२४॥

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि ।

इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५॥४०॥

पदार्थ—(**पुनान**) सबको पवित्र करने वाले ! (**सोम**) सबके उपास्यदेव परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक ! (**त्व**) तुम (**विपश्चित**) ज्ञान विज्ञान को देने वाली (**वाच**) जो वाणी है (**सहस्रभर्णसम्**) और अनन्तप्रकार के भूषणो के समान जिसकी शोभा है, ऐसी वाणी को (**इष्यसि**) चाहते हो ॥२५॥

भावार्थ—वेदवाणी के समान कोई अन्य भूषण ज्ञान का ज्ञापक नही है । वह सहस्रो प्रकार के भूषणो की शोभा को धारण किए हुई है । जो पुरुष इस विद्याभूषण को धारण करता है, वह सर्वोपरि दर्शनीय बनता है ॥२५॥४०॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् ।

पुनान इन्दवा भर ॥२६॥

पदार्थ—(**उतो**) और (**सहस्रभर्णस**) अनेक प्रकार के भूषणो की शोभा वाली (**मखस्युवम्**) जो विविध प्रकार के धनो को देने वाली है, ऐसी (**वाच**) वाणी का (**पुनान·**) सबको पवित्र करने वाले ! (**सोम**) परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक ! (**आभर**) हमको सब प्रकार से प्रदान करिये ॥२६॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना है कि उक्त प्रकार का विद्याभूषण हमको प्रदान करें ॥२६॥

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।

प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥

पदार्थ—(**पुनान**) हे सबको पवित्र करने वाले ! (**पुरुहूत**) सर्वपूज्य ! (**इन्दो**) सर्वप्रकाशक ! (**प्रिय.**) सबके प्रिय परमात्मन् ! (**एषां जनाना**) इन उपासक पुरुषो के (**समुद्र**) द्रवीभूत अन्त.करण को (**आविश**) अपनी अभिव्यक्ति से शुद्ध करिये ॥२७॥

भावार्थ—जो लोग विद्या और विनय से सम्पन्न है, उनके अन्त.करण को परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ॥२७॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।

सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥

पदार्थ—(**सोमा**) सर्वोत्पादक (**शुक्रा.**) बलस्वरूप (**गवाशिर**) इन्द्रियागोचर परमात्मा (**दविद्युतत्या**) अपनी उज्ज्वल ज्योति से (**रुचा**) जो ज्ञानदीप्ति वाली है (**परिस्तोभत्या**) और जो सर्वोपरि शोभा वाली है (**कृपा**) ऐसी कृपादृष्टि से हमारा कल्याण करें ॥२८॥

भावार्थ: परमात्मा जिन लोगो पर अपनी कृपादृष्टि करता है, उनका कल्याण अवश्यमेव होता है ॥२८॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।

सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥

पदार्थ—(**हेतृभि**) उपासक लोगो से (**हिन्वान**) उपासना किया हुआ परमात्मा (**यत**) अपने प्रयत्न से (**वाजी**) सर्वोपरि बलवाला (**वाज**) बल को (**अक्रमीत्**) जीतता है (**वनुष**) मनुष्य (**सीदत**) युद्ध मे प्रविष्ट होकर (**यथा**) जैसे अन्य बलो को जीतता है, इस प्रकार परमात्मा सब बलो को जीतता है ॥२९॥

भावार्थ.—परमात्मा ने इस मन्त्र मे बल का उपदेश किया है कि जिस प्रकार योद्धा सेनापति अपने बल के गर्व से अन्य सेनाधीशो को जीत कर स्वाधीन कर लेता है, इसी प्रकार सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो को अपने वशीभूत किए हुए है ॥२९॥

ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः ।

पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥४१॥

पदार्थ.—(**ऋधक् सोम**) हे अद्वितीय परमात्मन् ! आप (**संजग्मान**) सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा (**दिव.**) प्रकाशस्वरूप है (**कवि**) सर्वज्ञ है । आप (**स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिए (**पवस्व**) हमको पवित्र करें । (**सूर्य**) हे परमात्मन् ! (**दृशे**) ज्ञान की वृद्धि के लिए आप हमारे हृदय मे आकर विराजमान हों ॥३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा ने ज्ञान का उपदेश किया है कि हे उपासक जनो ! आप अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए सर्वोपरि शक्ति से अपने मङ्गल की उपासना सदैव करते रहें ॥३०॥

इति चतुःषष्टितमं सूक्तमेकचत्वारिंशत्तमो वर्गश्च समाप्त. ।

६४वां सूक्त और ४१वां वर्ग समाप्त हुआ ।

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये नवममण्डले

सप्तमाष्टके प्रथमोऽध्याय समाप्तः ।

ऋग्वेद के ९वें मण्डल म ७वें अष्टक का पहला

अध्याय समाप्त हुआ ।

———

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

अथ त्रिंशदृचस्य पंचषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१—३० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द — १, ६, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४, २६ *गायत्री* । २, ११, १४, १५, २९, ३० *विराड्गायत्री* । ३, ६—८, १९, २०, २७, २८ *निचृद्गायत्री* । ४, ५ *पादनिचृद्गायत्री* । १७, २३ *ककुम्मती गायत्री* ॥ *षड्जः स्वरः* ॥

अथ परमात्मनो ध्यानविषयत्वं निरूप्यते ।
अब परमात्मा का ध्यानविषयत्व निरूपण करते हैं ।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥

पदार्थ —(**पतिं**) जो सबका रक्षक है, तथा (**महामिन्दुम्**) सर्वोपरि जो सर्वप्रकाशक है (**सूरं**) ऐसे परमात्मा को (**स्वसार**) बुद्धिवृत्तियां (**जामय**) ज्ञानरूप बुद्धिवृत्तियां (**उस्रय**) परमात्मा को विषय करने वाली (**महीयुव**) ब्रह्मविषयिणी उक्त प्रकार की वृत्तियां (**हिन्वन्ति**) उसका साक्षात्कार नहीं करती हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो ! तुम जगज्जन्मादि हेतुभूत महाशक्ति को विषय करने वाली संस्कृत बुद्धियों को उत्पन्न करो, ताकि इन्द्रियागोचर उस सूक्ष्म शक्ति का तुम ध्यान द्वारा साक्षात्कार कर सको ॥१॥

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पदार्थ —(**देवेभ्यस्परि देव**) जो सब देवों से उत्तम देव है तथा जो परमात्मा (**रुचा रुचा पवमानः**) अपनी ज्ञानदीप्ति से सबको पवित्र करता है, ऐसा परमेश्वर (**विश्वा वसूनि**) सब ऐश्वर्यों के साथ (**आविश**) मेरे अन्तःकरण में आकर निवास करे ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा को सर्वोपरि देव इसलिए कथन किया गया है कि उस दिव्यशक्ति के आगे सब शक्तियां तुच्छ हैं । उसी स्वजातीय विजातीय स्वगतभेदशून्य देव से यह प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! आप आकर हमारे हृदयों को शुद्ध करें ॥२॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

पदार्थ —(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले ! आप (**देवेभ्य**) विद्वानों के लिए (**सुष्टुतिं वृष्टिं**) सुन्दर स्तुतिरूप वेद की वृष्टि को (**दुवः**) प्रसन्नता के लिए (**आपवस्व**) दीजिए और मुझ (**संयत**) संयमी को (**इषे**) ऐश्वर्य (**आपवस्व**) दीजिये ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा संयमी जनों को ऐश्वर्य प्रदान करता है और जो लोग दिव्यगुण सम्पन्न हैं, उनको ही सुधामयी वृष्टि से परमात्मा सिञ्चित करता है । तात्पर्य यह है कि परमात्मा की कृपा पाने के लिए प्रथम मनुष्य को स्वयं पात्र बनना चाहिए अर्थात् मनुष्य अधिकारी बनके उसके ऐश्वर्यों का पात्र बने ॥३॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वाध्यः ॥४॥

पदार्थः—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले हे जगदीश ! आप (**भानुना**) अच्छे अर्थ को प्रकाश करने से (**वृषाहि**) अवश्य वेदरूप वाणी की वर्षा करने वाले (**असि**) हैं । (**स्वाध्य**) अच्छी बुद्धि वाले हम लोग (**द्युमन्त**) स्वयं प्रकाश (**त्वा**) आपकी (**हवामहे**) स्तुति करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, उन्हीं के परिश्रम सफल होते हैं । इस अभिप्राय से यह वर्णन किया गया है कि परमात्मा उद्योगी पुरुषों के उद्योगों को सफल करे ॥४॥

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥५॥१॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (**सुवीर्य**) हमारे पराक्रम को (**आपवस्व**) सब प्रकार से पवित्र करें । (**मन्दमान**) आप आनन्द स्वरूप हैं और (**स्वायुधः**) आप स्वयम्भू हैं (**इह उ**) यहां ही (**सु**) भली-भांति (**आगहि**) हमको आकर अनुग्रही करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के आह्वान करने का तात्पर्य स्वकर्माभिमुख करने का है, अर्थात् आप हमारे कर्मों के अनुकूल फल प्रदान करें । परमात्मा सर्वव्यापक है, इसलिए एक स्थान से उठकर किसी दूसरे स्थान में जाना उसका नहीं हो सकता । इस प्रकार बुलाने का तात्पर्य सर्वत्र हृदयदेश में अवगत करने का समझना चाहिए, कुछ अन्य नहीं ॥५॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः ।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥६॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस कारण से आप (**अद्भिः**) सत्कर्मों से (**परिषिच्यसे**) पूजित होते हैं, अतः (**गभस्त्योः मृज्यमानः**) स्वशक्तियों से जो शुद्ध है और (**द्रुणा**) अपनी शक्ति से (**सधस्थ**) जीवात्मा को (**अश्नुषे**) व्याप्त करते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो पुरुष सत्कर्म करता है, उसकी आत्मा को परमात्मा स्वशक्तियों से विभूषित करता है ॥६॥

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत ।
महे सहस्रचक्षसे ॥७॥

पदार्थ —(**व्यश्ववत्**) कर्मयोगी के समान (**सहस्रचक्षसे**) अनन्तशक्तिसम्पन्न (**सोमाय**) परमात्मा को (**प्रगायत**) आप लोग गान करें । जो परमात्मा (**महे**) सर्वपूज्य और (**पवमानाय**) सबको पवित्र करने वाला है ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम उस पूर्ण पुरुष की उपासना करो जो सर्वशक्ति सम्पन्न और सब संसार का हर्ता, धर्ता तथा कर्ता है ॥७॥

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥

पदार्थ —(**यस्य**) जिस परमात्मा का (**वर्णं**) स्वरूप (**मधुश्चुतं**) आनन्द देने वाला है, उस (**हरिं**) पाप को हरण करने वाले (**इन्दु**) स्वतःप्रकाश परमात्मा को (**अद्रिभि**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**हिन्वन्ति**) उपासक लोग ध्यान का विषय बनाते हैं । (**इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पीतये**) तृप्ति के लिए इसी प्रकार की उपासना उचित समझनी चाहिए, अन्य नहीं ॥८॥

भावार्थ—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे ही कर्मयोगी कहलाते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! जो आप (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**धनानि**) धन (**जिग्युषः**) स्वाधीन करने वाले हैं (**तस्य ते**) उस आपके (**सखित्व**) मैत्रीभाव को (**वाजिन**) हम उपासक लोग (**आवृणीमहे**) सब प्रकार से वरण करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का उपदेश है । तात्पर्य यह है कि जो सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से मित्रता का भाव रखते हैं, वे लोग परमात्मा के प्रिय गुणों को अपने में अवश्यमेव धारण करते हैं ॥९॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥१०॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**वृषा**) आप सब कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं । (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवस्व**) हमको पवित्र करें । (**मरुत्वते**) ज्ञान और क्रियाकुशल विद्वानों के लिए (**मत्सर**) आप आनन्दमय हैं (**च**) और (**विश्वा**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (**ओजसा**) अपने आत्मिक बल से (**दधान**) आप धारण किए हुए हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा आनन्द स्वरूप है, उसमें दुःख का लेश भी नहीं । उसके आनन्द को ज्ञानी तथा विज्ञानी एवं कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥१०॥

तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११॥

पदार्थ —(**ओण्योः**) द्युलोक और पृथिवीलोक के (**धर्तारं**) धारण करने वाले जो आप हैं (**तं त्वां**) उक्त गुणसम्पन्न आपको (**पवमान**) जो सबको पवित्र

करने वाले और (विचर्षणि) जो सब लोक लोकान्तरों के ज्ञाता है, ऐसे (वाजिन) सर्वशक्तिसम्पन्न आपको (वाजेषु) सब यज्ञो मे (हिन्वे) हम लोग आह्वान करते हैं ॥११॥

भावार्थ—जो लोग योगयज्ञ, ध्यानयज्ञ, विज्ञानयज्ञ, संग्रामयज्ञ और ज्ञानयज्ञ इत्यादि सब यज्ञो मे एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते है वे लोग अवश्यमेव कृत-कार्य होते है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा की सहायता बिना किसी भी यज्ञ की पूर्ति नहीं होती। इसलिए मनुष्यो को चाहिये कि वे सदैव परमात्मा की सहायता लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करें ॥११॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।

युजं वाजेषु चोदय ॥१२॥

पदार्थः—(हरिः) हे सम्पूर्ण बलो को स्वाधीन रखने वाले परमात्मन् ! आप (धारया) आनन्द की वृष्टि से हमको (पवस्व) पवित्र करें। जो आनन्द की वृष्टि (चित्त) अद्भुत है (अया) और कर्मशीलता देने वाली है और (विपा) शुभकार्यों मे प्रेरणा करने वाली है (अनया) उससे (पवस्व) आप हमको पवित्र करें। (वाजेषु) यज्ञो मे (युज) युक्त मुझको (चोदय) सत्कर्म की प्रेरणा करें ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मी बनने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उन्हे अवश्यमेव शुभ कर्मों मे लगाता है ॥१२॥

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।

अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (विश्वदर्शत) संपूर्ण विश्व के प्रकाशक है और (महीमिष) सर्वैश्वर्य सम्पन्न हैं। (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (अस्मभ्य) हम लोगो के (गातुवित) सपूर्ण ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता है (न) हमको (आपवस्व) सब प्रकार से पवित्र करिये ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुमको अपनी पवित्रता की प्रार्थना केवल उसी देव से करनी चाहिए, जो सब ब्रह्माण्डो का ज्ञाता और सर्वोत्पादक है ॥१३॥

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा ।

एन्द्रस्य पीतये विश ॥१४॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (धाराभिः) आनन्द की वृष्टि द्वारा (इन्द्रस्य पीतये) कर्मयोगी की तृप्ति के लिए (कलशा) उसके अन्तःकरण मे (आविश) सब ओर से प्रवेश करें और (ओजसा) अपने प्रकाश से कर्मयोगी को (आनूषत) विभूषित करें ॥१४॥

भावार्थ—जो पुरुष कर्म करने मे तत्पर रहते हैं अर्थात् उद्योगी हैं, परमात्मा उनको अपने प्रकाश से परमोद्योगी बनाता है ॥१४॥

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।

स पवस्वाभिमातिहा ॥१५॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) आपके (मद्य) आह्लादकारक (तीव्र) उत्कट (रस) रस को कर्मयोगी लोग (अद्रिभि) उद्योग रूप शस्त्रियो से (दुहन्ति) पूर्ण रूप से दुहते है, (स) वह (अभिमातिहा) विघ्नो के हनन करने वाले आप (पवस्व) हम को पवित्र करें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मयोगियो के सब विघ्नों का हनन करने वाला परमात्मा उनके उद्योग को सफल करता है ॥१५॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।

अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६॥

पदार्थ—(राजा) परमात्मा (मेधाभिः) बुद्धि से (ईयते) प्राप्त होता है। (पवमान) सबको पवित्र करने वाला है (मनावधि) यज्ञो मे पवित्रता देने वाला है तथा (अन्तरिक्षेण यातवे) परलोक यात्रा मे सहायक है ॥१६॥

भावार्थ—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इत्यादि सब यज्ञो मे परमात्मा ही यज्ञदेव है और याजको को पवित्र करने वाला है तथा परलोक यात्रा मे जीव का एकमात्र सहारा परमात्मा ही है। उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा की उपासना एकमात्र संस्कृत बुद्धि द्वारा ही करनी चाहिए ॥१६॥

आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।

वहा भगत्तिमूतये ॥१७॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (भगत्ति) हमारी भक्ति की (ऊतये) रक्षा के लिए हे परमात्मन् ! (न आवह) आप हमको प्राप्त हो और (गवां) इन्द्रियो की (शतग्विनं) सहस्रगुणी (पोष) पुष्टि (स्वश्व्यं) जो गतिशील है, ऐसी पुष्टि आप हमको दें ॥१७॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की अनन्य भक्ति करते हैं, परमात्मा उनकी सब प्रकार से रक्षा करता है और उनकी इन्द्रियो को सहस्र प्रकार की शक्तियो से सम्पन्न करता है। अर्थात् ज्ञान विज्ञानादि शक्तियो से उनकी सहस्र प्रकार की शक्तियां बढ़ जाती है, इसी का नाम इन्द्रियो की सहस्रशक्ति है ॥१७॥

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।

सुष्वाणो देववीतये ॥१८॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिए (न) हमको (आभर) सब प्रकार के अभ्युदयो से आप भरपूर करें। आप सबके (सुष्वान) उत्पत्ति स्थान हैं और (सह) शत्रुबल नाशक (जुव) शीघ्र-गति वाले आप (वर्चसे) प्रकाश के लिए (रूप न) रूप हमको दें ॥१८॥

भावार्थ—परमात्मा जिन पुरुषो मे दैवी सम्पत्ति के गुण देता है, उनको तेजस्वी बनाता है और सब प्रकार के ऐश्वर्यों का भण्डार बनाकर उनको सर्वोपरि बनाता है ॥१८॥

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।

सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥१९॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (श्येनः) विद्युत् के (न) समान गतिशील है। (द्रोणानि) सपूर्ण लोक-लोकान्तरो मे (रोरुवत्) गतिशील होकर आप सर्वत्र विराजमान है और (द्युमत्तम) आप स्वयप्रकाश है। (योनि) हमारे हृदयस्थान मे (आसीदन्) विराजमान होकर (अभ्यर्ष) हमारे हृदय को शुद्ध करें ॥१९॥

भावार्थ—परमात्मा स्वयप्रकाश है और उसी के प्रकाश से सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं ॥१९॥

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

सोमो अर्षति विष्णवे ॥२०॥४॥

पदार्थ—(सोम) सर्वपूज्य परमात्मा (इन्द्राय वायवे) कर्मयोगी विद्वानो के लिए (मरुद्भ्य) पदार्थ विद्यावेत्ता विद्वानो के लिए (वरुणाय) अपने विद्याबल से सबको आच्छादन करने वाले विद्वान् के लिए और (विष्णवे) ज्ञानयोगी विद्वान् के लिए (अप्सा अर्षति) अपनी ज्ञानरूपी गति से प्राप्त होता है ॥२०॥

भावार्थ—जो लोग ज्ञानयोग, कर्मयोग इत्यादि योगो मे परमात्मा की आज्ञा का पालन करते है, उनको परमात्मा अपनी ज्ञानगति से अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२०॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (न) हमारे (तोकाय) सन्तानों के लिए (सहस्रिण) अनन्त प्रकार के धन (विश्वत) सब ओर से (दधद्) धारण करावें और (अस्मभ्य) हमको सब प्रकार का ऐश्वर्य दें तथा (आपवस्व) सब प्रकार से पवित्र करें ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा से अभ्युदय प्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥२१॥

अथ सोमनामकस्येश्वरस्योपासकानां विदुषां गुणा वर्ण्यन्ते ॥

अब सोम नामक परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानो के गुणो का वर्णन करते है ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।

ये वादः शर्यणावति ॥२२॥

पदार्थ—(ये सोमासः) जो सौम्य स्वभाव वाले विद्वान (परावति) पर ब्रह्म रूप शक्ति मे (ये) और जो (अर्वावति) प्रकृति रूप शक्ति मे, (ये) जो (वा) और (अद शर्यणावति) इस ससार रूप शक्ति मे (सुन्विरे) निपुण किए गए हैं, इन सब विद्वानो को परमात्मा पवित्र करें ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र का यह तात्पर्य है कि परमात्मा सब प्रकार के विद्वानों को पवित्र करता है ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।

ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥

पदार्थ—(ये) जो विद्वान् (आर्जीकेषु कृत्वसु) सत्कर्मों मे और (ये) जो विद्वान् (पस्त्यानां मध्ये) गृहकर्मों मे चतुर है, (ये वा) और जो (जनेषु पञ्चसु) पांच प्रकार के मनुष्यो मे शिक्षा दे सकते हैं, वे सब हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे विद्वानो के गुणो का वर्णन किया है। पांच प्रकार के मनुष्यो की शिक्षा का तात्पर्य यहां यह है कि जो विद्वान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों मे उपदेश कर सकते है और पांचवे उन मनुष्यो मे जो सर्वथा असंस्कारी है, अर्थात् दस्यु भाव को प्राप्त है, इन सबको सुधार सकते हैं, वे प्रजा के लिए सदैव कल्याणकारी होते है ॥२३॥

ते नों वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।

सुवाना देवास इन्दवः ।।२४।।

पदार्थ —(ते) वे विद्वान् (नः) हमारे लिए (वृष्टिं) वृष्टि को (दिवस्परि) द्युलोक से बरसाये (इन्दवः) ऐश्वर्य वाले (देवासः) दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वान (सुवीर्यं) पराक्रम को (सुवानाः) पैदा करते हुए (आपवन्ताम्) हमको सब प्रकार से पवित्र करें ।।२४।।

भावार्थ —द्युलोक से वृष्टि करने का तात्पर्य यहां हिमालय आदि दिव्य स्थानों से जल की धाराओं से सींच देने का है। जो विद्वान् व्यवहार विषय के सब विद्याओं के वेत्ता होते हैं, वे अपने विद्याबल से प्रजा में सुवृष्टि करके अद्भुत पराक्रम को उत्पन्न कर देते हैं। उक्त विद्वानों से शिक्षा लेकर सुशिक्षित होने का उपदेश यहां परमात्मा ने किया है ।।२४।।

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।

हिन्वानो गोरधि त्वचि ।।२५।।

पदार्थ —(हरिः) परमात्मा (हर्यतः) विद्वानों को चाहने वाला (जमदग्निना) ध्यान यज्ञ से (गृणानः) ग्रहण किया हुआ जो (अधित्वचि) शरीर में (गोः) इन्द्रियों की (हिन्वानः) रचना करने वाला है, वह (पवते) ज्ञान द्वारा हमको पवित्र करता है ।।२५।।

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा से इस बात की प्रार्थना की है कि आप सर्वोपरि विद्वान उत्पन्न करके हमारा कल्याण करें ।।२५।।

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।

श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ।।२६।।

पदार्थ —(शुक्रासः) वीर्य वाले (वयोजुवः) अन्नादिकों की विद्या जानने वाले (श्रीणानाः) विद्या द्वारा संस्कृत हुए उक्त प्रकार के विद्वान् ऋत्विक् लोगों द्वारा (मृञ्जत) वरण किए जाते हैं। (न) जैसे कि (अप्सु हिन्वानासः) जलों में शुद्ध किये हुए (सप्तयः) इन्द्रियों के सात द्वार (प्र) शुभगुणों को देते हैं ।।२६।।

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि हे लोगो ! जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के सप्तद्वार जल से शुद्ध किये हुए सुन्दर ज्ञान के साधन बनते हैं, इसी प्रकार यज्ञों में वरण किये हुए विद्वान ज्ञान द्वारा तुम्हारे कल्याणकारी होते हैं ।।२६।।

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।

स पवस्वानया रुचा ।।२७।।

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (तं) उक्त गुणसम्पन्न (त्वा) आपको (सुतेषु) सुन्दर करने वाले यज्ञों में (आभुवः) ऋत्विक् लोग (देवतातये) विघ्नों के विनाश के लिए (हिन्विरे) आपकी उपासना करते हैं। (सः) वह उक्त गुणसम्पन्न आप (अनया रुचा) पवित्र ज्ञान की शक्ति से (पवस्व) हमको पवित्र करें ।।२७।।

भावार्थ —जो परमात्मा अपने ज्ञान-प्रदीप से भक्तों के हृदय को पवित्र करते हैं, वे हमारे अन्तःकरण को पवित्र करें ।।२७।।

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।२८।।

पदार्थ —(मयोभुवं) जो सब सुखों के देने वाले हैं, (पुरुस्पृहं) जो सब पुरुषों से भजनीय हैं (पान्तं) सर्वरक्षक हैं, (दक्षं) सवज्ञ हैं (वह्निं) प्रकाशस्वरूप हैं, उक्त गुण सम्पन्न (ते) आपको (अद्य) आज (आवृणीमहे) हम सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ।।२८।।

भावार्थ —जो उपासक उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा की उपासना करते हैं, वे सब प्रकार से शुद्ध होकर परमात्मभाव को प्राप्त होते हैं ।।२८।।

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।२९।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (मन्द्रं) जो आप सर्वोपरि स्तुति करने योग्य हैं (वरेण्यं) वरण करने योग्य हैं, (विप्रं) मेधावी हैं, (मनीषिणं) मन के स्वामी हैं, (पुरुस्पृहं) सब पुरुषों के कामना करने योग्य हैं, (पान्तं) सबके रक्षक हैं, ऐसे आपको (आ) "आवृणीमहे" हम लोग सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ।।२९।।

भावार्थ —उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा का वरण करना, अर्थात् सब प्रकार से स्वीकार करना इस मन्त्र में बताया गया है। "आ" शब्द यहां प्रत्येक गुण-सम्पन्न परमात्मा को भली-भांति वर्णन करने के लिए आया है ।।२९।।

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।३०।।

पदार्थ —(सुक्रतो) हे सर्वयज्ञाधिपते परमात्मन् ! आप (रयिं) धन को (सुचेतुनं) और सुन्दर ज्ञान को (तनूषु) हमारी सन्तानों में (आ) सब प्रकार से दें। आप (पुरुस्पृहं) सबके उपास्यदेव हैं। (पान्तं) सबको पवित्र करने वाले हैं (सुक्रतो) हे शोभन कर्मों वाले परमात्मन् ! आप ही हमारे उपास्यदेव हैं ।।३०।।

भावार्थ —इस मन्त्र में नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सर्वरक्षक पतितपावन परमात्मा के गुणों का वर्णन किया गया है और उसको एकमात्र उपास्यदेव माना है ।।३०।।

इति षट्षष्टितमं सूक्तं षष्ठोवर्गश्च समाप्तः ।

६६वां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त ।

अथ त्रिंशदृचस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य—

१—३० शत वैखानसा ऋषिः ।। १-९, २२-३० पवमानः सोमो । १०-२१ अग्निर्देवता ।। छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री ।। २, ३, ५-८, १०, ११, १३, १५-१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४, २२, २७ विराड् गायत्री । ९, १२, २१, २८, २९ निचृद्गायत्री । १८ पादनिचृदनुष्टुप् । स्वरः—१-१७, १९, ३० षड्जः । १८ गान्धारः ।।

अथेश्वरगुणा वर्ण्यन्ते ।

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हैं ।

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या ।

सखा सखिभ्य ईड्यः ।।१।।

पदार्थ —(विश्वचर्षणे) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! (विश्वानि, काव्या) सम्पूर्ण कवियों के भावों को (अभि) सब ओर से प्रदान करके हमको आप (पवस्व) पवित्र करें और (सखिभ्यः) मित्रों के लिए आप (सखा) मित्र हैं (ईड्यः) तथा सर्वपूज्य हैं ।।१।।

भावार्थ —जो लोग परमात्मा से मित्र के समान प्रेम करते हैं, अर्थात् जिनको परमात्मा मित्र के समान प्रिय लगता है, उनको परमात्मा कवित्व की अद्भुत शक्ति देता है ।।१।।

ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी ।

प्रतीची सोम तस्थतुः ।।२।।

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ताभ्यां) ज्ञान और कर्म दोनों द्वारा (विश्वस्य) सम्पूर्ण विश्व को (राजसि) प्रकाशित करते हैं (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (ये धामनी) जो ज्ञान कर्म (प्रतीची) प्राचीन हैं, वे (तस्थतुः) हम में विराजमान हों ।।२।।

भावार्थ —परमात्मा सब लोक-लोकान्तरों में विराजमान है। ज्ञान, क्रिया और बल, यह तीनों प्रकार के उसके प्राचीन धाम हैं, जिनसे वह सबको प्रेरणा करता है ।।२।।

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।

पवमान ऋतुभिः कवे ।।३।।

पदार्थ —(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले ! आप (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के परिवर्तन से संसार में नये-नये भाव उत्पन्न करते हैं और (यानि, ते) जो तुम्हारे (धामानि) लोक लोकान्तर (परि) सब ओर हैं, उनको (विश्वतः) सब प्रकार से (सोमासि) आप उत्पन्न करने वाले हैं ।।३।।

भावार्थ —परमात्मा उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय तीनों प्रकार की क्रियाओं का हेतु है। अर्थात् उसी से संसार की उत्पत्ति और उसी में स्थिति और उसी से प्रलय होता है ।।३।।

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या ।

सखा सखिभ्य ऊतये ।।४।।

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (विश्वानि) सब पदार्थ (वार्या) वरणीय (अभि) सब ओर से आप हमें दें और (इषः) ऐश्वर्य को (जनयन्) पैदा करते हुए (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (सखिभ्यः) मित्रों की (ऊतये) रक्षा के लिए (सखा) आप मित्र हैं ।।४।।

भावार्थ —जो लोग परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उन्हें सब प्रकार के आनन्दों से विभूषित करता है ।।४।।

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते ।

पवित्रं सोम धामभिः ।।५।।

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (धामभिः) आप अपनी शक्तियों से (पवित्रं) पवित्र हैं। (तव) तुम्हारी (शुक्रासः) बल वाली (अर्चयः) प्रकाश की लहरें (दिवस्पृष्ठे) द्युलोक के ऊपर (वितन्वते) विस्तृत हो रही हैं ।।५।।

भावार्थ —परमात्मा की ज्योति सर्वत्र दीप्तिमती है, उसके प्रकाश से एक रेणु भी खाली नहीं। द्युलोक में उसका प्रकाश इस प्रकार फैला हुआ है, जैसे मकड़ी के जाले के तन्तुओं के आतान-वितान का पारावार नहीं मिलता इसी प्रकार उसका पारावार नहीं।

अथवा यों कहो कि मयूरपिच्छ की शोभा के समान उसके द्युलोक की समस्त प्रकार की शोभा है, जिसको परमात्मज्योति ने देदीप्यमान किया है ।।५।।

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (तव) तुम्हारे (इमे) ये (सप्त सिन्धव) सात प्रकार के (धेनवः) वाणियो के प्रवाह (प्रशिष) प्रशासन को (सिस्रते) अनुसरण करते हैं और (तुभ्य) तुम्हारे लिए ही (धावन्ति) प्रतिदिन गमन करते हैं ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा के शासन मे वेदवाणियो के प्रवाह बहते हैं।

अथवा यो कहो कि ज्ञानेन्द्रियो के सप्तछिद्रो के द्वारा प्राण सिन्धु के समान प्रतिक्षण क्रिया को प्राप्त हो रहे है। अथवा यों कहो कि सम्पूर्ण भूत, सिन्धु आदि नदियो के समान उसी से निकलकर उसी के स्वरूप में प्रतिदिन स्रवित होते हैं ॥६॥

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः ।
दधानो अक्षिति श्रवः ॥७॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (धारया) अपने आनन्द की वृष्टि से (प्रयाहि) आप हमको आकर प्राप्त हो। आप (इंद्राय) ऐश्वय के लिए (सुत) प्रसिद्ध हैं, और (मत्सर) आनन्दस्वरूप हैं, तथा (अक्षिति) अक्षय (श्रव) यश को (दधान) आप धारण किये हुए हैं ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा का यश अक्षय है, इसलिए अन्यत्र भी वेद ने वर्णन किया है कि "यस्य नाम महद्यश" जिसका सबसे बड़ा यश है, वह परमात्मा निराकार भाव से सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥७॥

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥८॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (विप्र) सर्वज्ञ (त्वा) आपको (सप्तजामय) ज्ञानेन्द्रियो के सात गोलक (धीभि) बुद्धि-द्वारा (समु) भली भांति (अस्वरन्) शब्द करते हुए (विवस्वत) यज्ञकर्ता के (आजा) यज्ञ मे (हिन्वती) प्रेरणा करते हैं ॥८॥

भावार्थ—उपासक लोग बुद्धि-वृत्तियो द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। वा यो कहो कि यमनियमादि सात अङ्गो द्वारा समाधि की सिद्धि करते हैं। अर्थात् समाधि साध्य पदार्थ है और सात उसके साधन है ॥८॥

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥९॥

पदार्थ—हे जगदीश ! (रेभ) शब्दगम्य (त्वा) आपको (अग्रुव) कर्मयोगी जन (अव्ये) रक्षक तथा (अधिष्वणि) शब्दगम्य और (जीरौ) शत्रुनाशक (वने) भजनीय आपको (यत) जब (समृजन्ति) ध्यानविषय करते है, तब आप (अज्यसे) उनके साक्षात्कार के विषय होते हैं ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे सर्वप्रेरक परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है। कर्मयोगी लोग अपने कर्मण्यतायोग से परमात्मपरायण होकर परमात्मा का साक्षात्कार करते है ॥९॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१०॥८॥

पदार्थ—(कवे) हे सर्वज्ञ ! (वाजिन्) हे सर्वशक्तिमान् परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) आपकी (सर्गा) अनन्त प्रकार की सृष्टियें इस प्रकार (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं (न) जैसे कि (अर्वन्त) विद्युत् शक्तियें अनेक प्रकार से (श्रवस्यव) प्रवाहित होती है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा को निमित्त कारण वर्णन किया है कि परमात्मा इस सृष्टि का निमित्त कारण है। उपादान कारण प्रकृति है, और निमित्त कारण परमात्मा है, इसी से यहां विद्युत् का दृष्टान्त दिया है ॥१०॥

अथ सर्वाधिकरणत्वेन परमात्मा स्तूयते ।
यहा सर्वाधिकरणत्व से परमात्मा की स्तुति करते हैं।

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥११॥

पदार्थ—जिस परमात्मा ने इस संसार को (अच्छ) निर्मल और (कोश) सर्वनिधान तथा (मधुश्चुत) आनन्ददायक (असृग्रम्) रचा है उसी (अव्यये) अविनाशी तथा (वारे) वरणीय परमात्मा मे (धीतय) सृष्टिया (अवावशन्त) निवास करती है ॥११॥

भावार्थ—परमात्मा ही एकमात्र सब लोक-लोकान्तरो का अधिकरण है ॥११॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥

पदार्थ—(इन्दवो न) जैसे वेदवाणिया (अस्त) स्थानरूप (समुद्रम्) जिसमे शब्द उत्पन्न होते हैं, ऐसे (अच्छ) निर्मल परमेश्वर को (आगमन्) भली-भांति प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (इन्दवः) प्रकाश करने वाली (गाव) सत्कर्मियों की इन्द्रियवृत्तिया (ऋतस्य योनि) सत्य-स्थान परमात्मा को भली-भांति प्राप्त होती हैं ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र से यह सिद्ध किया गया है कि परमात्मा एकमात्र शब्दगम्य है। अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा की वेदवाणी ही उसका विषय करती है। अन्य प्रमाणों का विषय सुगमता से परमात्मा नही ॥१२॥

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥

पदार्थ—(न) हमारे (महेरणे) ज्ञानरूप यज्ञ के लिए (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपने (गोभि) ज्ञानेन्द्रियो द्वारा हमारे शरीर का (वासयिष्यसे) निर्माण किया है और (यत्) जब (सिन्धवः) स्यन्दनशील कर्मेन्द्रिया (आप) कर्मों का (प्रार्षन्ति) प्राप्त होती है, तब हमारे इस बृहत् यज्ञ की पूर्ति होती है ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा ने ज्ञान और कर्म का समुच्चय कथन किया है कि जब ज्ञान और कर्म दोनो मिलते है, तब ही यज्ञ की पूर्ति होती है, अन्यथा नही ॥१३॥

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥१४॥

पदार्थ—(अस्य ते सख्ये) पूर्वोक्त गुण विशिष्ट आपके मैत्री भाव में (वयं) हम लोग (इयक्षन्त) आपका यजन करते हैं। (त्वोतय) आपसे सुरक्षित हुए हम लोग (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपकी (सखित्व) मित्रता को (उश्मसि) चाहते है ॥१४॥

भावार्थ—परमात्मा के साक्षात्कार से जब मनुष्य अत्यन्त सन्निहित हो जाता है तब ब्रह्म के सत्यादि गुणो के धारण करने से उसमें ब्रह्मसाम्य हो जाता है। उसी का नाम ब्रह्ममैत्री है। इसी भाव का कथन इस मन्त्र मे किया है कि हे परमात्मन् ! हम तुम्हारे मैत्रीभाव को प्राप्त हो ॥१४॥

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५॥९॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (आपवस्व) हमको सब ओर से पवित्र करें (महे) बड़े (नृचक्षसे) ज्ञान की वृद्धि के लिए और (गविष्टये) इन्द्रियो की शुद्धि के लिए और (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) जठराग्नि में (आविश) प्रवेश करें ॥१५॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि मैं कर्मयोगियो तथा ज्ञानयोगियो के हृदय मे अवश्यमेव निवास करता हूँ। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र है, तथापि परमात्मा की अभिव्यक्ति जैसी ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के हृदय मे होती है, वैसी अन्यत्र नहीं होती। इसी अभिप्राय से यहा कर्मयोगी के हृदय मे विराजमान होना लिखा गया है ॥१५॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द्र ओजिष्ठः ।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥१६॥

पदार्थ - (सोम) हे परमात्मन् ! आप (महानसि) बड़े हैं और (उग्राणां) तेजस्वियो मे (ज्येष्ठ) बड़े हैं। (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (ओजिष्ठ) सर्वोपरि ओजस्वी है और आप (युध्वासन्) अपने से प्रतिकूल शक्तियो से युद्ध करते हुए (शश्वत) निरन्तर (जिगेथ) जीतते हैं ॥१६॥

भावार्थ—परमात्मा सूर्यचन्द्रमादिको की रचना करता हुआ अर्थात् उत्पत्ति समय मे विनाशरूपी सब विरोधी शक्तियो को जीतता है। इस प्रकार परमात्मा सर्वविजयी कथन किया गया है। किसी युद्धविशेष के अभिप्राय से नहीं ॥१६॥

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः ।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७॥

पदार्थ—(य) जो परमात्मा (शूरेभ्य) शूरवीरों से (शूरतर) अत्यन्त शूरवीर है और (भूरिदाभ्य) अत्यन्त दानशीलो से (महीयान्) अत्यन्त दानशील है (चित्) और (उग्रेभ्य) जो अत्यन्त बल वाले हैं, उनसे (ओजीयान्) अत्यन्त बल वाला है ऐसे परमात्मा की हम उपासना करते है ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे यह वर्णन किया गया है कि परमात्मा अजर, अमर तथा अविनाशी है। जैसा कि "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि" इत्यादि मन्त्रो मे परमात्मा का बलस्वरूप कथन किया गया है। इसी प्रकार इस मन्त्र मे भी परमात्मा को बलस्वरूप कथन किया गया है ॥१७॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् ।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्व) तुमको हम (युज्याय) योग्य (सख्याय) सख्य के लिए (वृणीमहे) वरण करें। तुम कैसे हो ? (सूर) सर्वप्रेरक हो (इष) सब ऐश्वर्य देने वाले हो और (तोकस्य) पुत्र के (तनूना)

शरीर से उत्पन्न पुत्रादिकों के (दाता) देने वाले हो । उक्त गुण-सम्पन्न आपको (आवृणीमहे) हम भली-भांति स्वीकार करते हैं ॥१८॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा को सर्वोपरि मित्र रूप से कथन किया गया है । वस्तुत मित्र शब्द के अर्थ स्नेह करने के है । वास्तव मे परमात्मा के बराबर स्नेह करने वाला अन्य कोई नही है ॥१८॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥

पदार्थ —(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (आयूंषि) हमारी आयु को (पवसे) पवित्र करते हैं (च) और (नः) हमारे लिए (इषं) ऐश्वर्य और (ऊर्जं) बल (आसुव) दें तथा (दुच्छुनां) विघ्नकारी राक्षसो को हम से (आरे) दूर (बाधस्व) करें ॥१९॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा ने विघ्नकारी राक्षसो से बचने का उपदेश किया है कि हे पुरुषो ! तुम विघ्नकारी अवैदिक पुरुष जो राक्षस हैं, उनके हटाने में सदैव तत्पर रहो ॥१९॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

तमीमहे महागयम् ॥२०॥१०॥

पदार्थ —(अग्नि) ज्ञानस्वरूप (ऋषि) सर्वव्यापक परमात्मा (पवमान) सबको पवित्र करने वाला है (पाञ्चजन्य) पांचो ज्ञानेन्द्रियो को शुभ मार्ग मे चलाने वाला (पुरोहित) वैदिक लोगो का एकमात्र उपास्य (महागयं) वेदराशि रूप धन को देने वाला है (तं) उसको (ईमहे) हम लोग प्राप्त हों ॥२०॥

भावार्थ—जो परमात्मा सर्वगत परिपूर्ण और नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है, जिसकी उपासना से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनो बलवीर्य-सम्पन्न होकर ऐश्वर्य के उपलब्ध करने का सर्वोपरि हेतु बनते है । हम एकमात्र उक्त गुण-सम्पन्न परमात्मा को ही अपना उपास्य समझें ॥२०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।

दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१॥

पदार्थ —(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें । आप (स्वपा) शोभन कर्मों वाले है (अस्मे) हममे आप (वर्चः) ब्रह्मतेज दें और (मयि) मुझमे (रयिं) ऐश्वर्य (सुवीर्यं) और सुन्दर बल (पोषं) तथा पुष्टि को (दधत) धारण करायें ॥२१॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मपरायण होते है, परमात्मा उनमे सब प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण कराता है ॥२१॥

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।

सूरो न विश्वदर्शतः ॥२२॥

पदार्थः—(पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (स्रिध अति) दुष्टो को अतिक्रमण करता है और (सुष्टुतिं) सद्गुणसम्पन्न पुरुषो को (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है, वह परमात्मा (सूरो न) सूर्य की तरह (विश्वदर्शत.) स्वत प्रकाश है ॥२२॥

भावार्थ —जो पुरुष सयमी बनकर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा उनपर अवश्यमेव कृपा करता है ॥२२॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः ।

इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥

पदार्थ —(इंदु) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (हित) सबका हितकारक तथा (अत्य) सतत गमनशील है और (विचक्षण) सर्वज्ञ (प्रयस्वान्) तर्पक (सः) वह जगदीश (प्रयसे) ब्रह्मानन्द के लिए (आयुभि) कर्मयोगियो से (मर्मृजानः) ध्यान किया गया उनके साक्षात्कार को प्राप्त होता है ॥२३॥

भावार्थ —योगी लोग जब परमात्मा का ध्यान करते है, तब परमात्मा उन्हें आत्मस्वरूपवत् भान होता है ॥२३॥

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।

कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४॥

पदार्थ —तब (पवमान) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (बृहत्) बड़े (शुक्र) बलरूप (ऋत ज्योति) सत्यरूप प्रकाश को (अजीजनत्) पैदा करता है और (कृष्णा) काले (तमांसि) अंधियारे को (जङ्घनत्) नाश करता है ॥२४॥

भावार्थ —परमात्मा के साक्षात्कार से अज्ञान की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है अथवा यों कहो कि उस समय योगी सद्रूपब्रह्म के साथ सह अवस्थान को प्राप्त होता है । अर्थात् उस समय सद्रूपब्रह्म से भिन्न और कुछ प्रतीत नहीं होता है ॥२४॥

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।

जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥११॥

पदार्थ —उस समय (पवमानस्य) पवित्र करने वाले (जङ्घ्नत) अज्ञानों के नाश करने वाले तथा (हरे) पापो को हरण करने वाले (अजिरशोचिषः) सर्वत्रगति तेज वाले परमात्मा की (चन्द्रा) आह्लादक (जीरा) ज्योतियां (असृक्षत) उत्पन्न होती है ॥२५॥

भावार्थ —जब योगीजन उस परमात्मा का लक्ष्य बनाकर उसका ध्यान करते है, तब अपूर्व ज्योति उत्पन्न होती है । या यों कहो कि अजर, अमर, भाव देनेवाला ब्रह्मज्ञान उस समय मनुष्य की बुद्धि को प्रकाशित करता है । इसी का नाम ब्राह्मी प्रज्ञा है ॥२५॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।

हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६॥

पदार्थ —(पवमान) पवित्र करने वाला तथा (रथीतम) गतिशील परमात्मा (शुभ्रेभि) अपनी ज्योति से (शुभ्रशस्तम) सर्वोपरि प्रकाशक है । ऐसा ईश्वर (हरिश्चन्द्र) सबका आनन्द देने वाला (मरुद्गण) विद्वानो का एकमात्र उपास्य है ॥२६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमात्मा की उपासना करते हैं, किसी अन्य की नहीं ॥२६॥

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२७॥

पदार्थ —(वाजसातम) आध्यात्मिक बल देने वाला परमात्मा जो (रश्मिभिः) अपनी शक्तियो से (स्तोत्रे) सबको स्वाधीन किए हुए है, वह (पवमान) सबको पवित्र करने वाला ईश्वर (स्तोत्रे) वेदाध्ययनशीलो मे (सुवीर्यं) ब्रह्मवर्चस का (दधत्) प्रदान करता है ॥२७॥

भावार्थ—स्वयज्योति परमात्मा से ही विद्वानों को ब्रह्मवर्चस मिलता है । इसलिए एकमात्र उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥२७॥

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥२८॥

पदार्थ —(सुवान) सबको उत्पन्न करने वाला तथा (इन्दु) सर्वप्रकाशक परमात्मा (प्राक्षा) आनन्द की वृष्टि करता है तथा (पुनानः) पवित्र करने वाला जगदीश (इन्द्र) कर्मयोगी को (पवित्रमव्यय) पवित्र अव्यय भाव को देता हुआ, तथा उनके अन्त करणो मे (आ) निवास करता हुआ (अति) "अत्येति" अज्ञान का नाश करता है ॥२८॥

भावार्थ —यद्यपि मनुष्यमात्र के हृदय मे परमात्मा विराजमान है, उससे एक अणुमात्र भी खाली नही, तथापि कर्मयोगियो और ज्ञानयोगियो के हृदय मे योगज सामर्थ्य से अधिक अभिव्यक्ति समझी जाती है । इस अभिप्राय से परमात्मा का आवेश यहा योगीजनो के हृदय में कथन किया गया है ॥२८॥

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।

इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९॥

पदार्थ —(एष सोम) यह परमात्मा (गवां) इन्द्रियो की (अधित्वचि) मनोरूप शक्ति मे (अद्रिभि) इन्द्रियवृत्तियो द्वारा साक्षात्कार किया जाता है । (इन्द्र) कर्मयोगी के कर्मक्षेत्र मे (जोहुवत्) प्राणापान की गति को हवन करता है और कर्मयोगी को कर्मक्षेत्र मे (क्रीळति) क्रीडा कराता है ॥२९॥

भावार्थ —परमात्मा की कृपा से ही कर्मयोगी जन प्राणापान की गति को रोक कर प्राणायाम करते है और वही परमात्मा इस ब्रह्माण्डरूपी अद्भुत कर्मक्षेत्र में उनसे सर्वोपरि कर्म कराता है । इसमे "अधि त्वचि" नाम मन का है, क्योंकि "इन्द्रियाणां शक्ति तनोतीति त्वक्" "त्वचि अधि इति अधित्वचि" । "अधि त्वचि"—इससे यहां आध्यात्मिक यज्ञ का अभिप्राय है ॥२९॥

यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः ।

तेन नो मृळ जीवसे ॥३०॥१२॥

पदार्थ —(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (यस्य) जिस आपका (द्युम्नवत् पय) दीप्तियुक्त ऐश्वर्य जो (दिव आभृत) द्युलोक से दुहा गया है, (तेन) उस ऐश्वर्य से (नः) हम लोगो के (जीवसे) जीवन के लिए (मृळ) सुख दें ॥३०॥

भावार्थ —परमात्मा के ऐश्वर्यरूपी अमृत का जब तक मनुष्य पान नहीं करता, तब तक उसके ऐश्वर्य की वृद्धि कदापि नहीं होती । इसलिए अपने जीवन की वृद्धि के लिए इन्द्रियसंयम द्वारा ईश्वराज्ञा का पालन करता हुआ पुरुष १०० बरस जीने की इच्छा करे । इस अभिप्राय से वेद मे अन्यत्र भी कहा है कि "जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शतम्" इत्यादि ॥३०॥

इति षट्षष्ठितमं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ।

६६वां सूक्त और १२वां वर्ग समाप्त ।

———

अथ द्वात्रिंशदृचस्य सप्तषष्ठितमस्य सूक्तस्य -

ऋषि १—३ भरद्वाज । ४—६ कश्यप । ७—६ गोतम । १०—१२ अत्रि । १३—१५ विश्वामित्र । १६-१८ जमदग्नि. । १६-२१ वसिष्ठ । २२-३२ पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा । दवता—१-६, १३-२२, २८-३० पवमान सोम । १०-१२ पवमान सोम पूषा वा । २३, २४ अग्नि । २५ अग्नि सविता वा । २६ अग्निरग्निर्वा सविता च । २७ अग्निर्विश्वेदेवा वा । ३१, ३२ पवमान्यध्येतृस्तुति ॥ छन्द—१, २, ४, ५, ११-१३ १५, १६, २३-२५ निचृद्गायत्री । ३, ८ विराड्गायत्री । १० यवमध्यागायत्री । १६-१८ भुरिगार्ची विराड्गायत्री । ६, ७, ६, १४, २०-२२, २४, २६, २८, २६ गायत्री । २७ अनुष्टुप् । ३१, ३२ निचृदनुष्टुप् । ३० पुरउष्णिक् ॥ स्वर—१-२६, २८, २६ षड्ज । २७, ३१, ३२ गान्धार । ३० ऋषभ ॥

अथ गुणान्तरेण परमात्मा स्तूयते ।
अब गुणान्तरो से परमात्मा की स्तुति करते है ।

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।

पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन ! (**त्व**) तुम (**धारयुः**) धारणाशक्ति वाले हो तथा (**मन्द्र**) तुम आनन्दप्रद हो और (**ओजिष्ठ.**) ओजस्वी हो तथा आप (**अध्वरे**) यज्ञ मे (**मंहयद्रयि**) धन प्रदान करते हुए (**पवस्व**) हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा को सर्वाधार कथन किया है और सम्पूर्ण धनो का दातृरूप से वर्णन किया है ॥१॥

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।

इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए (**मत्सरिन्तम**) अत्यन्त आह्लादजनक है और (**सुत**) स्वयम्भू है तथा (**नृमादन**) आप सर्वानन्द जनक हैं और (**दधन्वान्**) सबके धारण करने वाले हैं और (**सूरि**) सर्वोत्पादक हैं तथा (**अधसा**) अपने ऐश्वर्य से सबको ऐश्वर्यशाली बनाते है ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा उद्योगी पुरुषों को अपने ऐश्वर्य से ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥३॥

पदार्थ —(**त्व**) आप (**कनिक्रदत्**) वेदरूपी वाणियो द्वारा (**सुष्वाण**) स्तूयमान है । (**द्युमन्त**) दीप्ति वाले (**उत्तम**) सबसे अच्छे (**शुष्म**) बल को (**अद्रिभि**) अपने आदरणीय शक्तियो से (**अभ्यर्ष**) प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा वेदवाणियो द्वारा ज्ञानरूपी बल का प्रदान करता है ॥३॥

इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया ।

हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥४॥

पदार्थ —(**इन्दु**) स्वयप्रकाश (**हिन्वान**) सर्वप्रेरक परमात्मा (**तिर**) अज्ञान को तिरस्कार करके (**वाराणि**) वरण करने योग्य (**अव्यया**) नित्यज्ञानो को (**अर्षति**) देता है । (**हरि**) पूर्वोक्त परमेश्वर ज्ञान देने के लिए (**वाज**) बलपूर्वक (**अचिक्रदत्**) आह्वान करता है ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे अज्ञान की निवृत्त करके ईश्वर के सद्गुणो के धारण का उपदेश किया गया है ॥४॥

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा ।

वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५॥१३॥

पदार्थ —(**इन्दो**) सर्वैश्वर्य सम्पन्न ! (**सोम**) परमात्मन् ! (**अव्य**) अव्यय (**विश्रवांसि**) विशेष यश को तथा (**विसौभगा**) विशेष सौभाग्य को और (**गोमतो विवाजान्**) ऐश्वर्य वाले विशेष बल को (**अर्षसि**) आप देते है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिस पुरुष को अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है, उसे अनन्त प्रकार के बल, सौभाग्य तथा यश को प्रदान करता है ॥५॥

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

भरा सोम सहस्रिणम् ॥६॥

पदार्थ —(**इन्दो**) सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (**शतग्विन**) सैकड़ो प्रकार की शक्ति वाले (**गोमन्तं**) तथा ऐश्वर्ययुक्त (**अश्विनं**) सर्वत्र व्यापक (**सहस्रिण**) हजारो प्रकार के (**रयिं**) धन को (**न**) हमको (**आभर**) दीजिये ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा सहस्रो प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला है ॥६॥

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।

इन्द्रं यामेभिराशत ॥७॥

पदार्थ —(**पवमानास**) पवित्र करने वाला तथा (**इन्दव**) सर्वैश्वर्य सम्पन्न और (**आशव**) व्यापक परमात्मा (**यामेभि**) अपनी अनन्त शक्तियो से (**तिर**) अज्ञानो का तिरस्कार करके (**पवित्र**) पवित्र (**इन्द्र**) कर्मयोगी को (**आशत**) प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थ —जो पुरुष ज्ञानयोग एव कर्मयोग द्वारा अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाते हैं, उन्हे परमात्मा अपने अनन्त गुणो से प्राप्त होता है । अर्थात् वह परमात्मा के सच्चिदादि अनेक गुणो का लाभ करता है ॥७॥

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः ।

आयुः पवत आयवे ॥८॥

पदार्थ —(**ककुह**) महान् (**सोम्य**) सौम्य स्वभाव (**इन्दु**) सर्वैश्वर्य सम्पन्न (**आयु**) सर्वत्र गन्ता (**रस**) रस स्वरूप (**पूर्व्य**) अनादि परमात्मा (**आयवे**) सर्वत्र गति वाले (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पवते**) पवित्र करता है ॥८॥

भावार्थ —इन्द्र शब्द के अर्थ यहाँ केवल कर्मयोगी नही, किन्तु कर्मयोगी ज्ञानयोगी दोनो के है । तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष कर्म व ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करना चाहते है, उनके लिए परमात्मा सर्वत्र सुलभ है ॥८॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् ।

अभि गिरा समस्वरन् ॥९॥

पदार्थ —(**उस्रय**) ज्ञानी लोग (**पवमान**) पवित्र करने वाले (**मधुश्चुत**) आनन्द की वृष्टि करने वाले (**सूर**) परमात्मा को (**गिरा**) वेदवाणियो से (**समस्वरन्**) स्तुति करते हुए (**अभिहिन्वन्ति**) सब ओर से साक्षात्कार करते है ॥९॥

भावार्थ —विद्वान लोग वेदवाणियो द्वारा पूर्वोक्त परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥९॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि ।

आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०॥१४॥

पदार्थ —(**अजाश्व**) नित्यज्ञान वाला (**पूषा**) सर्वपोषक परमात्मा (**न**) हम लोगो का (**अविता**) पालन करने वाला हो (**यामनि यामनि**) सर्वदा (**कन्यासु**) कमनीय पदार्थों मे (**न**) हम लोगो को (**आभक्षत्**) ग्रहण करें ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा ईश्वरपरायण लोगो के लिए सदैव कल्याणकारी होता है ॥१०॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।

आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११॥

पदार्थ —(**अय सोम**) पूर्वोक्त परमात्मा (**कपर्दिने**) कर्मयोगी को (**घृत**) अपने प्रेम से (**मधु न**) मधु के समान (**पवते**) मधुर बनाता है और (**न.**) हम लोगो को (**कन्यासु**) कमनीय पदार्थों मे (**आभक्षत्**) ग्रहण करता है ॥११॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मयोगियो को कमनीय पदार्थों का प्रदान करता है ॥११॥

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।

आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

पदार्थ —(**आघृणे**) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (**अय**) यह (**सुत**) संस्कृत (**ते**) आपका (**शुचि**) शुद्ध स्वभाव (**घृत न**) स्नेह की तरह (**पवते**) पवित्र करता है और (**न**) हम लोगो को (**कन्यासु**) अपने कल्याणकारक गुणो मे (**आभक्षत्**) ग्रहण करता है ॥१२॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मसुखोपलब्धि के लिए सत्कर्म करते है, उन्हे परमात्मा मंगलमय बनाता है ॥१२॥

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया ।

देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**कवीनां**) कवियो के मध्य मे आप (**वाचो जन्तु**) वेदवाणियो के उत्पादक हैं और (**देवेषु**) विद्वानो को (**रत्नधा असि**) विद्यारूप रत्न धारण कराते हैं । ऐसे आप (**धारया**) अपनी सुधामयी वृष्टि से (**पवस्व**) पवित्र करिये ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा ही वस्तुतः आदि कवि है । उसकी कवित्व शक्ति का अनुकरण करके अन्य कवियो ने अपने-अपने भावो को व्यक्त किया है ॥१३॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।

अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**श्येन**) जैसे विद्युत (**वर्म**) विग्रहवत् वस्तु को (**विगाहते**) अवगाहन करती है और (**अभिद्रोणा**) प्रत्येक विग्रह वस्तु के अभिमुख (**कनिक्रदत्**) शब्दायमान होकर प्राप्त होती है, इस प्रकार (**कलशेषु**) प्रत्येक स्थान में (**आयावर्ति**) आप विराजमान होते हैं ॥१४॥

भावार्थ—विद्युत निराकार होकर भी सबसे तेजस्वी, ओजस्वी और शब्दायमान है। इसी प्रकार निराकार परमात्मा तेजस्वी, ओजस्वी तथा शब्दयोनि होकर विराजमान है। यहां विद्युत का दृष्टान्त व्यापन बल और निराकार के अभिप्राय से है। किसी और अभिप्राय से नहीं ॥१४॥

परि॒ प्र सो॑म ते॒ रसोऽस॑र्जि क॒लशे॑ सु॒तः ।

श्ये॒नो न त॒क्तो अ॑र्षति ॥१५॥१५॥

पदार्थ (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**श्येनो न**) जैसे विद्युत (**अर्षति**) सर्वत्र गमन करती है तथा (**ते**) आपका (**सुत**) स्वतःसिद्ध (**तक्त**) सर्वत्र गतिशील (**रस**) आनन्द (**परि**) चारों ओर (**कलशे**) पवित्र अन्तःकरणों में (**आसर्जि**) स्थिर होता है ॥१५॥

भावार्थ—जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥१५॥

पव॑स्व सोम म॒न्दय॒न्निन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्तमः ॥१६॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**मधुमत्तम**) अत्यन्त आनन्दमय है, अत (**मदयन**) आनन्दित करते हुए (**इन्द्राय**) उद्योगी के लिए (**पवस्व**) मंगलमय भावों से पवित्र करिये ॥१६॥

भावार्थ—उद्योगी पुरुष को परमात्मा उत्साहित करके पवित्र करता है ॥१६॥

असृ॑ग्रन्दे॒ववी॑तये वाज॒यन्तो॒ रथा॑ इव ॥१७॥

पदार्थ—(**देववीतये**) देवमार्ग की प्राप्ति के लिए (**वाजयन्त**) बल वाले (**रथा इव**) रथों की तरह उद्योगी लोग (**असृग्रन्**) रचे जाते हैं ॥१७॥

भावार्थ—यहां रथ का दृष्टान्त है। तात्पर्य यह है कि जिन पुरुषों के शरीर दृढ होते हैं अथवा यों कहो कि परमात्मा पूर्व कर्मानुसार जिन पुरुषों के शरीरों को दृढ बनाता है, वे कर्मयोग के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हैं ॥१७॥

ते सु॒तासो॑ म॒दिन्त॑माः शु॒क्रा वा॒युम॑सृक्षत ॥१८॥

पदार्थ—(**ते**) तुम्हारे (**सुतास**) संस्कृत (**मदिन्तमा**) आह्लादजनक (**शुक्रा**) स्वभाव (**वायु**) कर्मयोगी को (**असृक्षत**) उत्पन्न करते हैं ॥१८॥

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि जिसको परमात्मा उत्तम शील देता है, वही कर्मयोगी बनता है, अन्य नहीं ॥१८॥

ग्राव्णा॑ तु॒न्नो अ॒भिष्टु॑तः प॒वित्रं॑ सोम गच्छसि ।

दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥१९॥

पदार्थ—(**ग्राव्णा**) जिज्ञासुओं से (**तुन्न**) आविर्भाव को प्राप्त हुए तथा (**अभिष्टुत**) सब प्रकार से स्तुति किए हुए (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**पवित्र**) उनके पवित्र अन्तःकरणों को (**गच्छसि**) प्राप्त होते हैं और (**स्तोत्रे**) उक्त स्तोता लोगों के लिए आप (**सुवीर्यं**) सुन्दर बल का (**दधत्**) उत्पन्न करते हैं ॥१९॥

भावार्थ—उपासक लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा उनके लिए सुन्दर बल का प्रदान करता है ॥१९॥

ए॒ष तु॒न्नो अ॒भिष्टु॑तः प॒वित्र॒मति॑ गाहते ।

र॒क्षो॒हा वार॑म॒व्यय॑म् ॥२०॥१६॥

पदार्थ—(**एष**) उक्त परमात्मा (**तुन्न**) जो अज्ञान निवृत्ति द्वारा आविर्भाव को प्राप्त हुआ है और (**अभिष्टुत**) सब प्रकार से स्तुति किया गया है, वह (**पवित्र**) पवित्र अन्तःकरण को (**अतिगाहते**) प्रकाशित करता है और (**रक्षोहा**) दुष्टों का विघातक तथा (**अव्यय**) अविनाशी और (**वार**) भजनीय है ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा के दण्डदातृत्व और अविनाशित्वादि धर्मों का कथन किया गया है ॥२०॥

यदन्ति॒ यच्च॑ दूर॒के भ॒यं वि॒न्दति॒ मामि॒ह ।

पव॑मान॒ वि तज्ज॑हि ॥२१॥

पदार्थ—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**मामिह**) मुझको इस संसार में (**यद्**) जो (**भयं**) भय (**विन्दति**) प्राप्त है (**च**) और (**यद्**) जो विघ्न (**अन्ति**) मेरे समीप तथा (**दूरके**) दूर हैं (**तत्**) उनको (**विजहि**) सर्वथा नाश करें ॥२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से भय और विघ्नों के नाश करने की प्रार्थना की गई है ॥२१॥

पव॑मानः॒ सो अ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणिः ।

यः पो॒ता स पु॑नातु नः ॥२२॥

पदार्थ—(**स**) वह परमात्मा (**न**) हम लोगों को (**पवमान**) पवित्र करने वाला तथा (**विचर्षणि**) सर्वद्रष्टा है और (**पवित्रेण**) अपने पवित्र धर्मों से (**य**) जो (**पोता**) सबको पवित्र करने वाला है (**स**) वह (**न**) हमको (**अद्य**) अब (**पुनातु**) पवित्र करे ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में इस अपूर्वता का उपदेश किया गया है कि उपासना काल में उपासक अपनी पवित्रता का अनुसन्धान करे और उसकी न्यूनता देखकर उस की याचना परमेश्वर से अवश्यमेव करे ॥२२॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तम॒न्तरा ।

ब्रह्म॒ तेन॑ पुनीहि नः ॥२३॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**यत्**) जो (**ते अन्त**) तुममें (**पवित्र**) पवित्र (**आविततं**) विस्तृत (**अर्चिषि**) ज्योतियां हैं, (**तेन**) उनसे (**ब्रह्म**) हे परमात्मन् ! (**न**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२३॥

भावार्थ—ब्रह्म शब्द के अर्थ यहां परमात्मा के हैं ॥२३॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिव॒दग्ने॒ तेन॑ पुनीहि नः ।

ब्र॒ह्म॒स॒वैः पु॑नीहि नः ॥२४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**ते**) आपका (**यत्**) जो (**पवित्र**) पवित्र (**अर्चिवत्**) सूर्यादिकों में तेज है (**तेन**) उससे (**न**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये तथा (**ब्रह्मसवै**) अपने ब्रह्मभाव से (**न**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२४॥

भावार्थ—परमात्मा सूर्यादि सब दिव्य पदार्थों का प्रकाशक है और उसी के प्रकाश से प्रकाशित होकर सब तेजोमय प्रतीत होते हैं ॥२४॥

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च ।

मां पु॑नीहि वि॒श्वतः॑ ॥२५॥१७॥

पदार्थ—(**देव**) दिव्य गुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**सवित**) हे सर्वोत्पादक ! आप (**उभाभ्या**) ज्ञानयोग तथा कर्मयोग द्वारा (**मां**) मुझको (**विश्वत.**) सब ओर से (**पुनीहि**) पवित्र करिये (**च**) और (**पवित्रेण**) पवित्र (**सवेन**) ब्रह्मभाव से मुझे पवित्र करिये ॥२५॥

भावार्थ—जो लोग अपने ज्ञानयोग और कर्मयोग की न्यूनता समझते हैं, वे परमात्मा से ज्ञानयोग और कर्मयोग की प्रार्थना करें ॥२५॥

त्रि॒भिष्ट्वं॑ देव सवित॒र्वर्षि॑ष्ठैः सोम॒ धाम॑भिः ।

अग्ने॒ दक्षैः॑ पुनीहि नः ॥२६॥

पदार्थ—(**सोम**) परमात्मन् ! (**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप ! (**सवित**) हे सर्वोत्पादक ! (**देव**) हे दिव्य गुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**त्व**) आप (**त्रिभि**) तीन (**धामभि**) शरीरों में (**वर्षिष्ठै**) जो श्रेष्ठ हैं तथा (**दक्षै**) दक्षतायुक्त हैं उनसे (**न**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सूक्ष्म, स्थूल और कारण इन तीनों शरीरों की शुद्धि की प्रार्थना है। प्रलयकाल में जीवात्मा जब प्रकृतिलीन होकर रहता है, उसका नाम कारण शरीर है तथा जिसके द्वारा जन्मान्तर को प्राप्त होता है, उसका नाम सूक्ष्म-शरीर है और तीसरा स्थूल शरीर है। इन नाना शरीरों की पवित्रता का उपदेश यहां किया गया है ॥२६॥

पु॒नन्तु॒ मां दे॑वज॒नाः पु॒नन्तु॒ वस॑वो धि॒या ।

विश्वे॑ देवाः पुनी॒त मा॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा ॥२७॥

पदार्थ—(**देवजना**) विद्वान् जन (**मां**) मुझको उपदेश द्वारा (**पुनन्तु**) पवित्र करें। (**वसव**) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण (**धिया**) अपनी शुभ बुद्धि द्वारा (**पुनन्तु**) पवित्र करें (**विश्वेदेवा**) हे विद्वानो ! (**मां**) मुझको आप लोग (**पुनीत**) पवित्र करें तथा (**जातवेद**) हे परमात्मन् ! (**मा**) मुझको (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने विद्वानों के उपदेशों द्वारा पवित्रता का उपदेश दिया है कि हे जीवो ! तुम अपने विद्वानों से तथा ब्रह्मचारिगणों से सदैव सद्-बुद्धि का ग्रहण किया करो ॥२७॥

प्र प्या॑यस्व॒ प्र स्य॑न्दस्व॒ सोम॒ विश्वे॑भिरं॒शुभिः॑ ।

दे॒वेभ्य॑ उत्त॒मं ह॒विः ॥२८॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**प्रप्यायस्व**) हमको वृद्धियुक्त करें तथा (**विश्वेभिरंशुभि**) अपने सम्पूर्ण भावों से द्रवीभूत होकर (**प्रस्यन्दस्व**) कृपायुक्त हों तथा (**देवेभ्य**) विद्वानों के लिए (**उत्तम हवि**) उत्तम दान रूपी भावों का प्रदान करें ॥२८॥

भावार्थ—परमात्मा ही एकमात्र तृप्ति का कारण है। वह अपने ज्ञान के प्रदान से हमको तृप्त करे ॥२८॥

उप॑ प्रि॒यं पनि॑प्नतं॒ युवा॑नमाहुती॒वृध॑म् ।

अग॑न्म॒ बिभ्र॑तो॒ नमः॑ ॥२९॥

पदार्थः—(प्रियं) सबको प्रसन्न करने वाले (पनिप्नत) वेदादि शब्द-राशि के आविर्भावक (युवानं) सदा एकरस (आहुतीवृधं) जो अपनी प्रकृति रूपी आहुति से बृहत् हैं, उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को (नमः) नम्रतादिभावों को (बिभ्रत) धारण करते हुए हम लोग (उपागन्म) प्राप्त हों ॥२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा नम्रतादि भावों का उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम नम्रतादि भावों को धारण करते हुए उक्त प्रकार की प्रार्थनाओं से मुझको प्राप्त हो ॥२९॥

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।

आखुं चिदेव देव सोम ॥३०॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (देव) दिव्यगुणसम्पन्न ! (अलाय्यस्य) सर्वत्र व्याप्त शत्रु का जो (परशुः) अस्त्र है (न) उस (आखुं चित्) सर्वघातक अस्त्र को (ननाश) नाश करिए । (देव) हे परमात्मन् ! (आपवस्व) आप मुझको पवित्र करें ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा जिनमें दैवी सम्पत्ति के गुण समझता है, उनको वृद्धियुक्त करता है और जिनमें आसुरी भाव के अवगुण देखता है, उनका नाश करता है ॥३०॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥

पदार्थः—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वर स्तुतिरूप ऋचाओं को (अध्येति) पढ़ता है (सः) वह (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं से (सम्भृतं) स्पष्ट किया हुआ (रसं) ब्रह्मानन्द को (अश्नाति) भोगता है और (सर्वं) सम्पूर्ण (मातरिश्वना स्वदितं) वायु से स्वादुकृत (पूतं) पवित्र पदार्थों को (अश्नाति) भोगता है ॥३१॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा के पवित्र गुणों का सहारा लेते हैं, वे ब्रह्मानन्द रस का पान करते हैं और उनके लिए वायु के पवित्र किए हुए पदार्थ मधुर रसों के प्रदाता होते हैं । तात्पर्य यह है कि वायु फलों में एक प्रकार का माधुर्य उत्पन्न करता है । उस माधुर्य के भोक्ता पुण्यात्मा ही हो सकते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥१८॥३॥

पदार्थ—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वर स्तुतिरूप ऋचाओं को (अध्येति) पढ़ता है (तस्मै) उसके लिए (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं से (सम्भृतं) स्पष्टीकृत (रसं) रस का और (क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्) दूध, घी, मधु, और जल का (सरस्वती) ब्रह्मविद्या (दुहे) दोहन करती है ॥३२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के शरणागत होते हैं, उनके लिए मानो (सरस्वती) ब्रह्मविद्या स्वयं दुहने वाली बन कर दूध, घी, मधु और नाना प्रकार के रसों का दोहन करती है । वा यों कहो कि माता के समान सरस्वती विद्या नाना प्रकार के रसों का अपने विज्ञानमय स्तनों से पान कराती है ॥३२॥

इति सप्तषष्ठितमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥
६७वां सूक्त और १८वां वर्ग समाप्त ॥

अथ दशर्चस्याष्टषष्ठितमस्य सूक्तस्य—

१-१० वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ *निचृज्जगती* । २, ४, ५, ९ *जगती* । ८ *विराड्जगती* । १० *त्रिष्टुप्* ॥ स्वरः—१-९ *निषादः* । १० *धैवतः* ॥

अथेश्वरोपासकानां विदुषां गुणा वर्ण्यन्ते ॥

अब ईश्वर के उपासकों के गुण वर्णन करते हैं ॥

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।

बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१॥

पदार्थ—(इन्दवः) परम विद्वान् (मधुमन्तः) मीठे उपदेशों वाले (देवं) परमात्मा के (अच्छ) प्रति (प्रासिष्यदन्त) नम्रीभूत होकर जाते हैं । (गावो धेनवो न) जैसे प्रकाश करने वाली वाणियां (वचनावन्तः) सदुपदेश वाली (बर्हिषदः) प्रतिष्ठा वाली (ऊधभिः) ज्ञानरूपी अमृत को धारण करने वाली (उस्रियाः) सुदीप्ति वाली (परिस्रुतं) व्याप्तिशील (निर्णिजं) शुद्ध ज्ञान को (आधिरे) धारण कराती हैं, इसी प्रकार उक्त विद्वान् ज्ञान को धारण कराते हैं ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा के मार्ग का उपदेश करने वाले विद्वान् वाग्धेनु के समान सद्ज्ञान का उपदेश करते हैं । जिस प्रकार सद्वाणी सद्ज्ञान को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञाता विद्वान् सत का उपदेश करके सच्चे ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥१॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।

तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥

पदार्थ—(हरिः) दुर्गुण दूर करने वाला (उपारुहः) उन्नतिशील (सः) पूर्वोक्त विद्वान् (रोरुवत्) बलपूर्वक उपदेश करता हुआ तथा (श्रथयन्) सत्यानृत का विभेद करता हुआ, जिज्ञासु को (स्वादते) सत्कारी बनाता है और (पूर्वाः) अनादिसिद्ध परमात्मा की स्तुति को (अभ्यचिक्रदत्) विशाल करता है और (देवः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् (शर्याणि) अज्ञानों का (तिरः) तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र ज्ञान को (परियन्) प्रकाश करते हुए (उरु) बड़े (ज्रयः) कर्मयोगी को (निदधते) धारण कराता है तथा (वरं) वरणीय पदार्थ को (आदधते) देता है ॥२॥

भावार्थ—सदुपदेश द्वारा अज्ञानों को निवृत्त करना पूर्ण विद्वान् का ही काम है । पूर्ण विद्वान् के उपदेश से मनुष्य ज्ञानी और विज्ञानी बनकर मनुष्यजन्म के फल को उपलब्ध करता है ॥२॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।

मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥

पदार्थ—(यो मदः) जो आनन्द का वर्धक कर्मयोगी (यम्या) युगल (संयती) परस्पर सम्बद्ध पृथिवीलोक और द्युलोक के ज्ञान का (विममे) उत्पन्न करता है और (साकं) साथ ही (पयसा वृधा) ऐश्वर्य से बढ़ा हुआ (अक्षिता) अक्षीणद्युलोक (रजसी) जो आकर्षणशील है, उसको ज्ञान द्वारा (विवेविदत्) व्यक्त करता है तथा (अभिव्रजन्) अव्याहत गति होता हुआ (अक्षितं पाज आददे) क्षयरहित बल को देता है ॥३॥

भावार्थ—कर्मयोगी विद्वान् के उपदेश से ही मनुष्य को पृथिवीलोक और द्युलोक का ज्ञान होता है और उसी के सदुपदेश से अक्षय बल मिलता है ॥३॥

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।

अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (मेधिरः) प्राज्ञ कर्मयोगी (मातरा) सब जीवों की माता के समान द्युलोक में तथा पृथिवीलोक में (विचरन्) विचरता हुआ और (अपः) कर्मरूपी योग का (वाजयन्) बल प्रदान करता हुआ (पदं) कर्मयोग के पद का (स्वधया) अनुष्ठानरूप क्रिया से (पिन्वते) पुष्ट करता है । (अंशुः) ज्ञानरूप प्रकाश में प्रदीप्त विद्वान् (यवेन) अपने भव और अप्ययरूप योग से (पिपिशे) योगाङ्ग को धारण करता है, (यतः) जिससे कर्मयोगी (जामिभिर्नृभिः) परस्पर सगति बांध कर चलने वाले जिज्ञासु द्वारा (संनसते) अपने कर्तव्य का पालन करता है और (शिरः) पतित पुरुषों की (रक्षते) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—कर्मयोगी का यह कर्तव्य है, कि वह अकर्मण्यता-दोषग्रस्त मनुष्यों में उद्योग उत्पन्न करके उनमें जागृति उत्पन्न करे ॥४॥

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।

यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥५॥

पदार्थ—वह कर्मयोगी (दक्षेण मनसा) समाहित मन से (ऋतस्य कविः संजायते) सचाई का कथन करने वाला होता है । (यमा) दैव ने उसे (परः) सर्वोपरि (निहितः) सुरक्षित (गर्भः) गर्भस्थानीय बनाया । (यूना सन्ता) कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का पूरण करते हुए ज्ञानयोगी और कर्मयोगी यह (ह) प्रसिद्ध दोनों (गुहाहितं) अन्तःकरणरूपी गुहा में निहित परमात्मा को (प्रथमं) सबसे पहले (विजज्ञतुः) जानते हैं । जो परमात्मा (जनिम) सबकी उत्पत्ति का स्थान तथा (नेमं) सबको नियम में रखने वाला और (उद्यतं) सर्वोपरि बलस्वरूप है ॥५॥

भावार्थ—जो परमात्मा सूक्ष्मरूप से सबके अन्तःकरण में विराजमान है, उसको कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही सुलभता से लाभ कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।

तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

पदार्थ—(मन्द्रस्य) आनन्दस्वरूप परमात्मा के (रूपं) रूप को (मनीषिणः) मेधावी लोग (विविदुः) जानते हैं । जो परमात्मा (परावतः) सब लोक-लोकान्तरों की (अभरत्) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला है और (श्येनः) जो विद्युत् के समान (यदन्धः) सर्वव्यापक है, (तं) उस (ऋग्मियं) स्तवनीय (अंशुं) प्रकाशस्वरूप (सुवृधं) बढ़े हुए (उशन्तं) कान्ति वाले (परियन्तं) सर्वव्यापक परमात्मा का हम लोग (नदीषु) वेदवाणियों से (आमर्जयन्त) साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थ—आनन्दमय परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा संस्कृत बुद्धि से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं । इसी अभिप्राय से कहा गया है कि "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि उसको सूक्ष्मबुद्धि से सूक्ष्मदर्शी ही देख सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

अथ प्रसङ्गसंगत्या परमात्मप्राप्तिर्वर्ण्यते ।
अब प्रसंगसंगति से परमात्मप्राप्ति का वर्णन करते हैं ।

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।

अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुत) स्वयंसिद्ध (त्वां) तुमको (दश योषणः) धृत्यादि धर्म के दस साधन (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं । (सोम) हे परमात्मन् ! तुम (मतिभिः) ज्ञानयोगी तथा (धीतिभिः) कर्मयोगी (ऋषिभिः) ऋषियों से (हित) साक्षात्कार किए जाते हो तथा तुम (अव्य) सर्वरक्षक हो (उत) और (वारेभिर्बहूतिभिर्नृभिः) सर्वोपरि वरणीय योगी मनुष्यों द्वारा (सातये) अज्ञान-निवृत्ति के लिए (वाज) बल का (यत) जिस हेतु (आवर्षि) देते हो अत तुम सर्वोपरि उपासनीय हो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगियों तथा कर्मयोगियों को अनन्त बल देता है । इसलिए मनुष्य को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी अवश्य बनना चाहिये ॥७॥

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।

यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

पदार्थ —(मनीषा स्तुभ) शुभ बुद्धियां (परिप्रयन्त) सबको प्राप्त होने वाले (वय्य) विद्वानों में काम्यमान (सुषसद) शोभन स्थिति वाले (सोम) परमात्मा को (अभ्यनूषत) वर्णन करती हैं । (यो धारया) जो अपने अमृत की धारा से (मधुमान्) आनन्दमय है तथा (ऊर्मिणा) आनन्द की लहर द्वारा (दिव) द्युलोक से (वाच) वेदवाणी को (इयर्ति) देता है, वह परमात्मा (रयिषाट्) समस्तैश्वर्यदाता तथा (अमर्त्य) मरणधर्म-रहित है ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा अपनी दिव्यशक्ति से पवित्र वेदवाणी का प्रकाश करता है और स्वयं अमरणधर्मा होकर जगज्जन्मादि का हेतु है ॥८॥

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।

अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥९॥

पदार्थ —(अय सोम) यह परमात्मा (दिव) द्युलोक के (विश्व) सम्पूर्ण (रज) ऐश्वर्य को (इयर्ति) देता है और (कलशेषु) समस्त अन्तःकरणों में (पुनान) पवित्र करता हुआ (आसीदति) विराजमान है तथा (अद्रिभि) इन्द्रियवृत्तियों से (अद्भिर्गोभि) ज्ञान और कर्मों द्वारा (मृज्यते) साक्षात्कार किया जाता है और (सुत) स्वयंसिद्ध (इन्दु) परमैश्वर्यवान् (पुनान) पवित्रकर्ता परमात्मा (प्रिय) प्रियकारक (वरिव) वरणीय ऐश्वर्य को ज्ञानयोगियों और कर्मयोगियों को (विदत्) देता है ॥९॥

भावार्थ—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य देता है ॥९॥

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।

अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमान) ज्ञानयोग और कर्मयोग से साक्षात्कृत आप (न) हम लोगों को (चित्रतम) नानाविध (वय) बल को (दधत् एव) अवश्य धारण कराते हुए (पवस्व) पवित्र करें तथा (अद्वेषे द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक को द्वेष से रहित होने की (हुवेम) हम लोग प्रार्थना करते हैं और (देवा) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वान् (अस्मे) हम लोगों में (सुवीर रयिं) सुन्दरवीरों वाले ऐश्वर्य को (धत्त) धारण करावें ॥१०॥

भावार्थ —जो लोग कर्मयोगियों और ज्ञानयोगियों की संगति में रहते हैं, उनके लिए परमात्मा नानाविध ऐश्वर्यों को देता है और द्युलोक और पृथिवीलोक उनके द्वेषियों से सर्वथा रहित हो जाता है । अर्थात् वे मित्रता की दृष्टि से सबको देखते हैं ॥१०॥

इत्यष्टषष्ठितमं सूक्तं विंशो वर्गश्च समाप्तः ।
६८वां सूक्त और २०वां वर्ग समाप्त ।

अथ दशर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१-१० *हिरण्यस्तूप ऋषि* ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१,५ *पादनिचृज्जगती* । २—४ ६ *जगती* । ७, ८ *निचृज्जगती* । ९ *निचृत्त्रिष्टुप्* । १० *त्रिष्टुप्* ॥ स्वर —१—८ *निषाद* । ९, १० *गान्धार* ॥

अथेश्वरसाक्षात्कारसाधनानि निरूप्यन्ते—

अब ईश्वर के साक्षात्कार के साधनों का निरूपण करते हैं ।

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।

उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

पदार्थ —(धन्वन्) धनुष में (न) जैसे (इषु) बाण (प्रतिधीयते) रखे जाते हैं उसी प्रकार हे जिज्ञासो ! तुमको ईश्वर में (मति) बुद्धि को लगाना चाहिये और (न) जैसे (वत्स) बछड़ा (मातु) गाय के (ऊधनि) स्तनों के पान के लिए (उपसर्जि) रखा गया है उसी प्रकार तुम भी ईश्वर की उपासना के लिए रखे गए हो और (अस्य) इस जिज्ञासु के (व्रतेषु) सत्यादि व्रतों में (सोम) परमात्मा (इष्यते) उपास्य रूप से कहा गया है । (वत्सस्य) बछड़े के (अग्रे) आगे (आयती) उपस्थित (उरुधारेव) गौ जैसे (दुहे) दुही जाती है, उसी प्रकार सन्निहित परमात्मा सब अभीष्टों का प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थ —जिस प्रकार धन्वी लक्ष्यभेदन करने वाला मनुष्य इतस्ततः वृत्तियों को रोक कर एकमात्र अपने लक्ष्य में वृत्ति लगाता है, उसी प्रकार परमात्मोपासक को चाहिए कि वे सब ओर से वृत्ति को रोक कर एकमात्र परमात्मा की उपासना करें ॥१॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

पदार्थः—(पवमान) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (प्रघ्नताम्) शूरवीरों के (सन्तान) शरों के (इव) समान रुद्र रूप है और साधु पुरुषों के लिए (द्रप्स) गतिशील परमात्मा (मधुमान्) मधु के समान मीठा है अर्थात् शान्तिप्रद है । (वारम्) जो उसका कृपापात्र भक्त जन है उसको (पर्यर्षति) सब प्रकार से प्राप्त होता है और (अन्तरासनि) भक्त पुरुषों के अन्तःकरण में (मन्द्राजनि) आह्लाद उत्पन्न करने वाली (मति) बुद्धि (चोदते) उत्पन्न होती है । जिससे (मधु सिच्यते) आनन्द की वृष्टि की जाती है ॥२॥

भावार्थ —जो पुरुष शान्त भाव से परमात्मा के नियमानुकूल चलते हैं, परमात्मा उन्हें शान्त रूप से उनके कर्मानुकूल फल देता है और जो परमात्मनियमों का उल्लंघन करते हैं, उनके लिए परमात्मा दण्ड देता है । इसी अभिप्राय से यहां शूरवीरों के बाणों के समान परमात्मा का कथन किया गया है । जैसा कि "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" उठे हुए वज्र की तरह परमात्मा भयप्रद है ॥२॥

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।

हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

पदार्थ —(वधूयु) प्रकृति का स्वामी (हरि) परमात्मा (अक्रान्) दुष्टों को अतिक्रमण करता है । (यजत) याग करने वाला जो (संयत) संयमी पुरुष है (मद) उसको आह्लाद उत्पन्न करने वाला है । (नृम्णा) बलस्वरूप है तथा (शिशान) सर्वगत है (महिष) और अत्यन्त तेजस्वी के (न) समान विराजमान है । वह परमात्मा (अदिते) पृथिव्यादि तत्त्वों के (ऋतं यते) तत्त्व को जानने वाले पुरुष के लिए (अव्य) जो रक्षा करने वाला है (त्वचि) उसके अन्तःकरण में (परिपवते) सब ओर से विराजमान होता है । तथा (नप्ती) उनकी सन्ततियों को (श्रथ्नीते) सफल करता है ॥३॥

भावार्थ —जो पुरुष संयमी बन कर निष्काम यज्ञ करते हैं, उन पुरुषों के लिए परमात्मा शुभ सन्तानों और शुभ फलों को उत्पन्न करता है ॥३॥

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।

अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

पदार्थ —(उक्षा) ब्रह्मचर्यादि बलसम्पन्न पुरुष ही (मिमाति) सर्वज्ञाता हो सकता है । उस (निष्कृत) परिष्कृत पुरुष को (धेनव) इन्द्रियां (प्रतियन्ति) प्राप्त होती है । (देवस्य देवी) दिव्य परमात्मा की दिव्य शक्तियां (उपयन्ति) उसी को प्राप्त होती है । वही (अर्जुन) बड़े-बड़े योद्धाओं को (अत्यक्रमीत्) अतिक्रमण करता है । (वार) उस सर्ववरणीय (अव्यय) इन्द्रिय-विकार-रहित (अत्क न) कवच की तरह (निक्त) यश से उज्ज्वल को (सोमः) परमात्मा (पर्यव्यत) चारों ओर से रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचारी बनकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार के बल अपने में उत्पन्न करता है, वह परमात्मा के सामर्थ्य का पात्र होता है ॥४॥

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।

दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥२१॥

पदार्थ —(अमर्त्यो हरि) अमरणधर्मा परमात्मा तथा (निर्णिजानः) शुद्ध (अमृक्तेन रुशता) अपने स्वाभाविक तेज से (वाससा) अपनी शक्तिरूपी आच्छादन द्वारा (दिवस्पृष्ठ) द्युलोक के पृष्ठ को, जिसमें (चम्वोर्नभस्मयम्) द्युलोक और पृथिवी लोक का (कृतोपस्तरणम्) अन्तरिक्ष रूपी बिछौना है, उसको (बर्हणा) अपनी प्रकृति रूपी पुच्छ से (निर्णिजे) पुष्ट करता है और (परि व्यत) सब ओर से इस ब्रह्माण्ड को आच्छादित करता है ॥५॥

भावार्थ —अजरामरादिभावयुक्त परमात्मा अपने प्रकृतिरूपी बर्ह से सब संसार को आच्छादित किये हुए है ॥५॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६॥

पदार्थ —(मत्सरास) सर्वाह्लादक (प्रसुप) सबका निवास स्थान परमात्मा (तत तन्तु) विस्तृत प्रकृतिरूप तन्तु के (साक) साथ (ईरते) गति करता है । उससे (आशव) गमनशील (सर्गास) सृष्टियां (सूर्यस्य रश्मय इव) सूर्य की किरणों के समान (द्रावयित्नव) क्षरणशील उत्पन्न होती हैं । उक्त परमात्मा (इन्द्रादृते) उद्योगी के अतिरिक्त (किंचन धाम) अन्य किसी के अन्तःकरण को (न पवते) नहीं पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थ —उक्त गुण-सम्पन्न परमात्मा के द्वारा सूर्य की रश्मियों के समान अनन्त प्रकार की सृष्टियां उत्पन्न होती हैं ॥६॥

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।

शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥७॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**अस्मे**) हमारी (**निवेशे**) स्थिति मे (**नः**) हमारे (**द्विपदे चतुष्पदे**) मनुष्यो तथा पशुओ के (**श**) कल्याणकारी हो तथा हमारी (**कृष्टय**) बुद्धियां (**तिष्ठन्तु**) शुभ हो । (**मदास**) आनन्दमय (**आशव**) व्यापक आपके यश को (**गातु**) गान कर इस प्रकार जिज्ञासु लोग आपके स्वरूप मे (**आयत**) लीन हो, जैसे (**सिन्धोरिव**) समुद्र के (**प्रवणे निम्ने**) निम्न प्रवाह मे (**वृषच्युता**) वेग से बहने वाली नदियां मिलती हैं ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा करुणासिन्धु है । जिस प्रकार क्षुद्र नदियां समुद्र म मिल कर महासागर हो जाती हैं, इसी प्रकार उक्त परमात्मा को मिलकर उपासक महत्व को धारण करता है ॥७॥

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्ववद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।

यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन ! (**वसुमत्**) ऐश्वर्य सम्पन्न (**हिरण्यवत्**) स्वर्णादिधन के स्वामी (**गोमत**) गवादिश्वर्य वाले (**अश्ववत**) विद्युदादिशक्तियो के स्वामी (**यवमत्**) अन्नधनादिश्वर्य-युक्त आप (**सुवीर्य**) सुन्दर पराक्रम को (**न**) हम लोगो को (**आपवस्व**) सब ओर से दें । (**यूय**) आप (**हि**) निश्चय करके (**मम**) मेरे (**पितर स्थन**) पालन करने वाले हो और (**वयस्कृत**) ऐश्वर्य के देने वाले आप (**दिव**) द्युलोक के (**मूर्धान**) मुख्य रूप (**प्रस्थिता**) विराजमान हैं ॥८॥

भावार्थ इस मन्त्र मे परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥८॥

एते सोमाः पवमानास इन्द्र रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।

सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रि हरितो वृष्टिमच्छ ॥९॥

पदार्थ (**पवमानास**) पवित्र करने वाले (**एते**) ये (**सुता**) संस्कृत (**सोमा**) सौम्यस्वभाव (**रथा इव**) संग्राम मे महारथी के समान (**पवित्र**) पवित्र (**सातिमच्छ**) संग्राम के अभिमुख आने वाले (**इन्द्र**) कर्मयोगी को (**प्रयय**) प्राप्त हो । उक्त स्वभाव (**हरित**) पापो को हरण करने वाले (**अव्य**) रक्षा करने को (**अतियन्ति**) दूर करते हैं और (**वव्रि**) जरा का (**हित्वी**) नाश करके (**वृष्टि**) आनन्द की वृष्टि को (**अच्छ**) देते हैं ॥९॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे शील की प्रार्थना है जिस शुभ शील से मनुष्य ऐश्वर्य-सम्पन्न होता है ॥९॥

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।

भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥२२॥

पदार्थ —(**इन्दो**) ऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मन ! (**सुमृलीक**) कर्मयोगी को सुख देने वाले (**अनवद्य**) निन्दारहित (**रिशादा**) बाधको के नाशक आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए (**पवस्व**) पवित्रता को प्रदान करें और (**गृणते**) स्तुति करने वाले कर्मयोगी के लिए (**चन्द्राणि**) आह्लाद देने वाले (**वसूनि**) धनो को (**भर**) प्रदान करें । आप (**देवै**) दिव्य धनो के सहित (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी-लोक को (**न**) हम लोगो के लिए (**प्रावतम्**) प्राप्त करायें ॥१०॥

भावार्थ.—इस मन्त्र मे कर्मयोगी के लिए ऐश्वर्य प्रदान का वर्णन किया गया है ॥१०॥

इत्येकोनसप्ततितमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

६९वां सूक्त और २२वां वर्ग समाप्त ।

अथ दशर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य

१—१० रेणुर्वैश्वामित्र ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३ त्रिष्टुप् । २, ६, ९, १० निचृज्जगती । ४, ५, ७ जगती । ८ विराड्जगती । स्वर —१, ३ धैवत । २, ४—१० निषाद ॥

अथ पञ्चविंशतितत्त्वानि वर्ण्यन्ते ।

अब पच्चीस प्रकार के तत्त्वो का वर्णन करते हैं ।

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

पदार्थ.—(**पूर्व्ये व्योमनि**) महदाकाश मे (**अन्या**) प्रकृति से भिन्न (**चत्वारि भुवनानि**) चार तत्त्व (**यत**) जो कि (**चारूणि**) सुन्दर हैं, वे (**निर्णिजे**) शुद्धि के लिए (**ऋतै**) प्रकृति के सत्य द्वारा (**चक्रे**) परमात्मा ने रचे हैं । (**अस्मै**) इस कार्य के लिए (**धेनव**) वेदवाणियां (**त्रि सप्त**) अहङ्कार से लेकर इन्द्रियो तक २१ तत्त्वो द्वारा (**दुदुह्रे**) पूर्ण करती हैं और उनका (**सत्याशिर**) सत्य हैं कारण जिनके ऐसे क्षीरादि रसो को (**अवर्धत**) बढ़ाती हैं ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ने प्रकृति रूपी उपादान कारण से इस संसार को उत्पन्न किया और वह इस प्रकार कि प्रकृति से महत्तत्त्व और महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्र अर्थात् शब्द, स्पर्श रूप रस, तथा गन्ध इनसे पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एव पञ्च-भूत अर्थात् पृथिवी, जल तेज वायु, आकाश और २१वां अहंकार इन २१ प्रकृतियो से परमात्मा ने संसार को उत्पन्न किया । महत्तत्त्व को यहां इसलिए नही गिना कि वह वैदिक लोगो के मन्तव्य मे एक प्रकार की प्रकृति ही है । तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस संसार का परिणामी उपादान कारण है । अर्थात् प्रकृति के परिणाम से इस संसार की रचना हुई है और परमात्मा कूटस्थ नित्य है । उसका किसी प्रकार से परिणाम अथवा परिवर्तन नही होता ॥१॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।

तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

पदार्थ —(**भिक्षमाण**) प्रकृति रूपी तत्त्व को लाभ करता हुआ (**चारुणोऽमृतस्य**) सुन्दर अमृत के देने वाले (**उभे द्यावा**) द्युलोक और पृथिवी लोक को (**काव्येन**) अपनी चतुराई से (**विशश्रथे**) व्यक्त करता है । (**स**) वह परमात्मा (**तेजिष्ठा अप**) तेजस्वी जलमय परमाणुओं के (**महना**) महत्त्व से (**परिव्यत**) आच्छादन करता है । (**यदि देवस्य**) अगर दिव्य ज्ञान के (**श्रवसा**) महत्त्व से (**सद**) सद्रूपब्रह्म को (**विदु**) जानें, तो उक्त परमात्मा के कर्तृत्व को जान सकते हैं ॥२॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा के महत्त्व को जानते हैं, वे ही इस जगत् की अद्भुत सत्ता जान सकते हैं अन्य नही ॥२॥

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मननां अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थ (**ते**) वे (**अमृत्यव**) मरणधर्मरहित (**अदाभ्यास**) अदम्भनीय पूर्वोक्त तत्त्ववेत्ता लोग (**अस्य**) इस संसार के (**केतव**) मौलिमणिस्थानीय (**सन्तु**) हों । (**उभे जनुषी**) दोनो जन्मो को (**अनु**) लक्ष्य करके (**देव्या नृम्णा**) दिव्य कर्म (**येभि**) जिनसे किये जाते हैं, वे ही (**पुनते**) संसार को पवित्र करते हैं (**च**) और (**आदित**) वे ही (**मनना**) माननीय (**राजान**) प्रकाश रूप परमात्मा को (**अगृभ्णत**) ग्रहण करते हैं ॥३॥

भावार्थ —जो लोग लोक और परलोक को लक्ष्य रखकर शुभ काम करते हैं, वे ही परमात्मा के ज्ञानपात्र हो सकते हैं, अन्य नही ॥३॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।

व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४॥

पदार्थ —(**मध्यमासु प्रमातृषु**) ज्ञानेन्द्रियो मे (**प्रमे**) प्रमाण के लिए (**सचा**) संगत (**स**) वह परमात्मा (**दशभि कर्मभि**) पांच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूल भूतो से (**मज्यमान**) विराट रूप मे अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ सर्वत्र विराजमान है (**व्रतानि पान**) व्रतो का धारण करने वाला मनुष्य (**चारुणोऽमृतस्य**) सुन्दर अमृत भाव के देने वाले (**उभे विशौ**) दोनो ज्ञान और कर्म जो है, उनको (**नृचक्षा**) सर्वज्ञ पुरुष ही (**अनुपश्यते**) देखता है, अन्य नही ॥४॥

भावार्थ —जो पुरुष तपश्चर्यादि कर्मो को करता है, वही पुरुष ज्ञान तथा कर्म के प्रभाव से सर्वत्राभिव्यक्त परमात्मा को ज्ञानदृष्टि से देख सकता है, अन्य नही ॥४॥

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।

वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५॥२३॥

पदार्थ —(**मर्मृजान**) सर्वपूज्य (**दुमती शुरुध**) दुष्ट प्रकृति वाले असुरो का (**आदेदिशान**) शिक्षा देने वाला (**वृषा**) आनन्द का वर्षक (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक दोनो के (**अन्तर्हित**) मध्य मे विराजमान (**स**) वह परमात्मा (**इन्द्रियाय**) इन्द्रियो के (**धायसे**) धारण करने वाले बल के लिये (**अहर्षते**) सर्वत्र विराजमान है और (**शुष्मेण**) अपने बल से (**विबाधते**) दुष्टो को पीड़ा देता है । (**शर्यहेव**) जैसे बाणों से योद्धा अपने प्रतिपक्षी को मारता है, उसी प्रकार परमात्मा दुराचारी और विघ्नकारी राक्षसो को मारता है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा अपने सच्चिदानन्द रूप से सर्वत्रैव परिपूर्ण हो रहा है और वह अपनी दमन रूप शक्ति से दुष्टो का दमन करके सत्पुरुषो का उद्धार करता है ॥५॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।

जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६॥

पदार्थ —(**मातरा ददृशान**) माता को देखता हुआ (**न**) जैसे वत्स (**नानदत**) शब्द करके (**उस्रिय**) गौ के सम्मुख (**एति**) जाता है, उसी प्रकार (**स**) वह (**सुक्रतु**) शुभकर्मा उपासक (**मरुतां स्वन इव**) कर्मयोगी विद्वानों के शब्दो से (**ऋत**) सत्य को (**जानन्**) जानता हुआ (**स्वर्णर**) सर्वहितकारक (**प्रथम**) अनादि (**क**) सुखरूप परमात्मा की (**प्रशस्तये**) प्रशंसा के लिए (**अवृणीत**) उस परमात्मा का स्वीकार करता है ॥६॥

भावार्थ जो पुरुष ब्रह्मामृतवर्षिणी धेनु के समान परमात्मा को कामधेनु समझकर उसकी उपासना करता है, वह अन्य किसी सुख की अभिलाषा नही करता ॥६॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।

आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७॥

पदार्थ —जिस कर्मयोगी की (**गव्ययी**) सत् असत् का निर्णय करने वाली (**त्वक**) चैतन्यशक्ति (**निर्णिगव्ययी**) परिशोधन करने वाली और रक्षा करने वाली (**भवति**) होती है, उस (**सुकृत**) सुकृति कर्मयोगी के हृदय को (**योनि**) स्थान बनाकर (**तविष्यया**) वृद्धि की इच्छा से (**भीम**) दुष्ट के भयदाता (**वृषभ**) कर्मों का वर्षक (**विचक्षण**) सर्वज्ञ (**सोम.**) परमात्मा (**आनिषीदति**) निवास

करता है और (हरिणी) अविद्या को हरण करने वाली (शृङ्गे) दो दीप्तियों को (शिशान) तीक्ष्ण करता हुआ (वक्ति) शब्द स्पर्शादिकों के आश्रयभूत पञ्चतत्त्वों को उत्पन्न करता है ॥७॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।

जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

पदार्थः—(सुकर्मभि) सुन्दर कर्मों से (त्रिधातु) कफ, वातपित्तात्मक (अरेपस) पापरहित (तन्व) शरीर (मित्राय वरुणाय वायवे) अध्यापक, उपदेशक और कर्मयोगी बनने के लिये (मधु क्रियते) जिसने संस्कृत किया है, वह पुरुष (अव्ये सानवि) सर्वरक्षक परमात्मा के स्वरूप में (न्यधाविष्ट) स्थिर होता है। जो परमात्मा (हरि) पापों का हरण करने वाला है और (शुचि) पवित्र है, तथा (पुनान) पवित्र करने वाला है और (जुष्ट) प्रीति से सेव्य है ॥८॥

भावार्थ —जो लोग अपने इन्द्रिय संयम द्वारा वा यज्ञादि कर्मों द्वारा इस शरीर का संस्कार करते है, वे मानो इस शरीर को मधुमय बनाते हैं ॥८॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।

पुरा नो बाधाद्दुरितातिं पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥९॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! आप (देववीतये) यज्ञादि कर्म के लिये (पवस्व) हमको पवित्र बनायें और (वृषा) आनन्दवर्षक आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को (सोमधान) जो आपकी स्थिति के योग्य मन (हार्दि) सर्वप्रिय है, उसमें (आविश) आकर प्रवेश करें और जिस प्रकार (क्षेत्रवित्) मार्ग का जानने वाला पुरुष (विपृच्छते) मार्ग पूछने वाले को (दिश आह हि) शुभमार्ग का उपदेश करता है, इसी प्रकार आप (न) हम लोगो के (बाधात्) पीडन के (पुरा) पहले ही (दुरिता) पापो को (अति पारय) दूर करिये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा जीवो को शुभमार्ग का उपदेश करके आने वाले दुःखो से पहले ही बचाता है ॥९॥

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।

नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदःस्पः ॥१०॥२४॥

पदार्थ —(इन्दो) परमैश्वर्य-सम्पन्न परमात्मन् ! (नावा न) जैसे नाविकजन (सिन्धु) नदी को (अतिपर्षि) पार करते है, ऐसे आप हमको संसार-सागर से पार करें। (विद्वान् शूरो न) और जैसे विद्वान शूरवीर (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (न) हम लोगो के (निद) निन्दको को (अवस्प.) मारता है, इसी तरह आप दुष्टो को दमन कर श्रेष्ठो को उबारें और (सप्तिन) जैसे सूर्य (वाज) ऐश्वर्य को उत्पन्न करता हुआ (अभ्यर्ष) अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है, इसी प्रकार आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठर) हृदय मे ज्ञानरूपी सत्ता से विराजमान होकर (आपवस्व) पवित्र करें ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा सूर्य के समान अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके हमारे हृदय मे ज्ञानदीप्ति का प्रकाश करता है ॥१०॥

इति सप्ततितम सूक्त चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्त ।

७०वा सूक्त और २४वां वर्ग समाप्त ।

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—९ ऋषभो वैश्वामित्र ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ४, ७ विराड्जगती । २ जगती । ३, ५, ८ निचृज्जगती । ६ पादनिचृज्जगती । ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वर —१—८ निषाद । ९ धैवत ॥

अथ परमात्मनो द्युभुवादीनामधिकरणत्वं निरूप्यते ॥

अब परमात्मा को द्युभुवादि लोको का अधिकरण रूप से निरूपण करते हैं।

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।

हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥

पदार्थ —(सोम.) परमात्मा (शुष्मी) बल वाला (आसद) सर्वत्र व्याप्त है। उपासक लोग (दक्षिणा) उपासनारूप दक्षिणा को (सृज्यते) परमात्मा को समर्पित करते हैं। (जागृवि·) जागरणशील परमेश्वर (द्रुहो रक्षस) द्रोह करने वाले राक्षसों को मारकर सज्जनो की (पाति) रक्षा करता है और (चम्वो·) द्युलोक तथा पृथिवीलोक का (निर्णिजे) पोषण करता है। (हरि) पापो का हरण करने वाला (ब्रह्म) परमात्मा (नभ) अन्तरिक्षलोक को (पय) परमाणु समूह में (उपस्तिरे) आच्छादित करता है तथा (ओपश) वही परमात्मा अन्तरिक्षलोक को (कृणुते) सबको अवकाश देने वाला करता है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड को द्रवीभूत अथवा यों कहो कि वाष्परूप परमाणुओं से आच्छादित किया हुआ है। उसी सर्वोपरि उपास्यदेव की उपासक लोग अपनी उपासनारूप दक्षिणा से उपासना करें ॥१॥

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।

जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥२॥

पदार्थ.—(शूष.) इस संसार की उत्पत्ति करने वाला परमात्मा (कृष्टिहेव) योद्धा के समान (प्रैति) बड़े प्रभाव से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है और (असुर्य) असुरो को (रोरुवत्) अत्यन्त रुलाता है तथा (अस्य) इस जीवात्मा के (त) पूर्वोक्त (वर्ण) आच्छादन करने वाली (वव्रि) वृद्धावस्था को (जहाति) अतिक्रमण करता है और (पितु एति) पिता के भाव को प्राप्त होकर (निष्कृत) कृतकार्य और (उपप्रुत) पूर्ण (कृणुते) बना देता है तथा (तना) इस शरीर को (निर्णिज) सुन्दर रूप युक्त बना देता है और (निरिणीते) निर्मुक्त करता है ॥२॥

भावार्थ·—जो पुरुष परमात्मज्ञान के पात्र है, परमात्मा उनको पूर्ण ज्ञान देकर जरामरणादि भावो से निर्मुक्त करके अमृत बना देता है ॥२॥

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।

स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

पदार्थः—(सुत) स्वयंसिद्ध स्वयम्भू परमात्मा (अद्रिभि) चित्तवृत्तियो द्वारा साक्षात् किया हुआ (पवते) पवित्र करता है और (गभस्त्यो) इस जीवात्मा की ज्ञानरूपी दीप्तियो को (वृषायते) बल युक्त करता है तथा (मती) वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा (नभसा वेपते) व्याप्त हो रहा है। (स) वह (मोदते) आनन्दरूप से विराजमान है और (नसते) सबका अङ्गी-सङ्गी होकर विराजमान है। (गिरा) वेदरूपी वाणियो द्वारा उपासना किया हुआ (साधते) सिद्धि का देने वाला है और (अप्सु) सत्कर्मों मे प्रवेश करके (नेनिक्ते) मनुष्य को शुद्ध करने वाला है तथा (परीमणि) रक्षाप्रधान यज्ञो मे (यजते) सर्वत्र परिपूजित है ॥३॥

भावार्थ —जो परमात्मज्ञान के पात्र होते हैं, वे प्रथम स्वयं उद्योगी बनते है, फिर परमात्मा उनके उद्योग द्वारा उनको शुद्ध करके परमानन्द का भागी बनाता है ॥३॥

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।

आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४॥

पदार्थ —(सहस) क्षमाशील वह परमात्मा (मध्व) सबका आनन्द देने वाला (द्युक्ष) ज्ञानरूपी दीप्तियो मे स्थिर जीव को (हर्म्यस्य सक्षणि) जो शत्रुओं को हनन करने वाला है तथा (पर्वतावृध) जो हिमालय की तरह अपने सहायक लोगो से वृद्धि को प्राप्त है, ऐसे जीवात्मा को (परिसिञ्चन्ति) परमात्मा ज्ञानरूपी वृष्टि से सिंचन करता है तथा वह ऐसे जीवात्मा को ज्ञानदृष्टि से परिपूर्ण करता है। (यस्मिन्) जिसमे (गाव) इन्द्रिया (सुहुताद) अपने शब्दस्पर्शादि भोग्य विषयो का भोगने की शक्ति रखती है और (वरीमभि.) अपने महत्त्व से (ऊधनि) पयोधार पात्र के समान (अग्रिय) उस अग्रणी पुरुष के (मूर्धन्) मूर्धा को (आश्रीणन्ति) अभिषेक द्वारा शुद्ध करती हैं ॥४॥

भावार्थ·—परमात्मा उपासक को ज्ञानी तथा विज्ञानी बनाकर उसका उद्धार करता है ॥४॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।

जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥२५॥

पदार्थ (दश) दश संख्या वाले (स्वसार) स्वाभाविक गति वाले प्राण (अदिते, उपस्थे) इस पार्थिव शरीर मे (आजिगात्) इन्द्रियो की वृत्तियो को जीतने है और (न) जैसे सारथी (रथ) रथ को (भुरिजो) हाथो से (अहेषत) प्रेरणा करता है, इसी प्रकार परमात्मा शुभाशुभ कर्म द्वारा मनुष्यो के शरीररूपी रथ की प्रेरणा करता है। (अस्य) इस जीवात्मा के (मतुथा) मनोरथो को जो (अजीजनन्) सफल करते हैं तथा (यत्) जो (अपीच्य) गूढ (पद) पद है, वह इस जीवात्मा को प्रदान करते है और (ईं) उक्त परमात्मा को (सं) भलीभांति प्राप्त होकर (उप ज्रयति) अपने मनोरथो को सिद्ध कर लेता है ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे यह बतलाया गया है कि मनुष्य प्राणायाम द्वारा संयमी बनकर उन्नतिशील बने ॥५॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।

ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

पदार्थ·—(देव) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा (धिया कृत) संस्कृत बुद्धि से साक्षात्कार किया हुआ (हिरण्यय) प्रकाशरूप (श्येनो न योनि सदन) अपने स्थिर स्थान घोंसले को प्राप्त होता है उसी तरह जैसे बाज (आसद) स्थान को (एषति) प्राप्त होता है। (ईं) उक्त (प्रिय) सबके प्यारे परमात्मा की उपासक (बर्हिषि) हृदय में (गिरा) वेदवाणियो से (आरिणन्ति) स्तुति करते हैं। एव (यज्ञियः) परमात्मा (देवान्) दिव्य गुण वाले विद्वानो का (अ येति) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहे, वे अपने हृदय मे उसका ध्यान करें ॥६॥

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।

सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७॥

पदार्थ —(अरुष:) प्रकाशस्वरूप (वृषा) आनन्द का वर्षक (कवि.) सर्वज्ञ (व्यक्त) स्फुट परमात्मा (दिव परा) द्युलोक से भी परे है तथा (त्रिपृष्ठ) त्रिकालज्ञ परमात्मा (गा) उपासनारूपी वाणी को (अभि) लक्ष्य करके (अनविष्ट) स्थिर है और वह परमेश्वर (सहस्रणीति.) अनन्त शक्ति वाला है और (यति) लोक मर्यादा का हेतु और (परायति) सर्वत्र व्याप्त है। परमात्मा

(पूर्वी उषस) अनादि काल की ऊषाओं में (रेभो न) प्रकाशमान सूर्य के समान (विराजति) विराजमान है ॥७॥

भावार्थ —अनादि काल से परमात्मा अनेक ऊषाकालों को प्रकाशित करता हुआ सर्वत्र विद्यमान है ॥७॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८॥

पदार्थ.—(सोम) परमात्मा (रूप) रूपको (त्वेष) दीप्यमान (कृणुते) करता है । (वर्ण) वरणीय (स) वह परमात्मा (यत्र) जिस (समृता) सग्राम में (अशयत्) स्थिर होता है (अस्य) उसमे (स्रिध) दुष्टो को (सेधति) मारता है । (दैव्य जन) दिव्यशक्ति वाले मनुष्य का वह (अप्सा) सत्कर्मों का दाता (सस्तुती) सुन्दर स्तुति योग्य परमात्मा (स्वधया) अपने आनन्द से (याति) परिपूर्ण है और (गोअग्रया) वेदवाणी से (सनसते) सर्वत्र संगत होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे इस बात का वर्णन किया गया है कि परमात्मा प्रत्येक रूप को प्रदीप्त करने वाला है । उसी की सत्ता से सम्पूर्ण पदार्थ स्थिर है और स्वय वह निर्लेप होकर इन सब चीजो मे विराजमान है ॥८॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥२६॥

पदार्थः—(उक्षेव) विद्युत् के समान (यूथा) गणो को (परियन्) प्राप्त होकर (अरावीत्) शब्दायमान होता है (सूर्यस्य) सूर्य को (त्विषी) दीप्ति का (अध्यधित) धारण कराता हैं । (दिव्य) दिव्यगुण वाला (सुपर्ण.) चेतन (सोम) परमात्मा (क्षां) पृथिवी का (अवचक्षत) निर्माण करने वाला है । वह परमात्मा (जा.) प्रजा को (क्रतुना) ज्ञानदृष्टि से (परिपश्यते) देखता है ॥९॥

भावार्थ—परमात्मा अपनी ज्ञानदृष्टि से संपूर्ण पदार्थों को देखता है और सूर्यादि लोक-लोकान्तरो का प्रकाशक है ॥९॥

इत्येकसप्ततितमं सूक्तं षड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ।
७१वां सूक्त और २६वां वर्ग समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१-९ हरिमन्त ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द.—१-३, ६, ७ निचृज्जगती । ४, ८ जगती । ५ विराड्जगती । ९ पादनिचृज्जगती ॥ निषादः स्वर ॥

अथ परमात्मोपदेशो निरूप्यते ।
अब परमात्मोपदेश निरूपण करते हैं ।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥

पदार्थ —(सोम) परमात्मा (उद्वाच) सदुपदेश को (ईरयति) प्रेरणा करने वाला है । (मती) बुद्धि का (हिन्वते) प्रेरक है और (पुरुष्टुतस्य) विज्ञानियो को (परिप्रिय) सर्वोपरि प्यारा परमात्मा (कतिचित्) अनन्त दान देता है । (अरुषो न) विद्युत् की तरह परमात्मा (युज्यते) युक्त होता है । ऐसे (हरि) परमात्मा को उपासक (मृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं और उसका (संधेनुभि) इन्द्रियो के द्वारा (कलशे) अन्त करणो मे (अज्यते) साक्षात्कार किया जाता है ॥१॥

भावार्थ —जो लोग अपनी इन्द्रियों को संस्कृत बनाते हैं, अर्थात् शुद्ध मन वाले होते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥१॥

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

पदार्थ —(यदि) जब (बहवो मनीषिण) बुद्धिमान् लोग (साकं) साथ ही (वदन्ति) उसका यशोगान करते हैं तब (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) अन्त करण मे (सोम) शान्तिरूप परमात्मा (दुहु) परिपूर्ण रहते हैं और (सुगभस्तयो नर) भाग्यवान् लोग (यदा) जब (मृजन्ति) उसका साक्षात्कार करते हैं तब (सनीलाभिर्दशभि) बलयुक्त दश इन्द्रियो से (काम्य मधु) यथेष्ट आनन्द को लाभ करते हैं ॥२॥

भावार्थ —जब कर्मयोगी जन उस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, तब सामाजिक बल उत्पन्न होता है अर्थात् बहुत से लोगो की सङ्गति होकर परमात्मा के यश का गान करते हैं ॥२॥

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३॥

पदार्थ —(अरममाणः) जितेन्द्रिय कर्मयोगी (गा) इन्द्रियो का (अत्येति) अतिक्रमण करता है । (सूर्यस्य प्रियं दुहितु) सूर्य की प्रिय दुहिता उषा के (अभि) सम्मुख (तिरोरवं) शब्दायमान होकर स्थिर होता है और वह कर्मयोगी (द्वयीभि स्वसृभि) कर्मयोग की दोनों वृत्तियां जो एक मन से उत्पन्न होने के कारण स्वसृभाव को धारण किये हुई हैं और (जामिभि) जो युगलरूप से रहती हैं, उनसे (सक्षेति) विचरता है । (विनङ्गृस) स्तोता (अस्मै) उस कर्मयोगी के लिए (जोषमभरत्) प्रीति से सेवन करता है ॥३॥

भावार्थ —जितेन्द्रिय पुरुष के यश का स्तोता लोग गान करते हैं, क्योंकि उनके हाथ मे इन्द्रियरूपी घोड़ो की रासें रहती है । वही इस संसाररूपी मार्ग को तै करके परम पद को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! परमात्मा (नृधूत) सबको कम्पायमान करने वाला और (अद्रिषुत) संस्कृत इन्द्रियो की वृत्तियों से साक्षात्कार को जो प्राप्त है तथा (बर्हिषि) यज्ञो मे (प्रिय.) जो प्रिय है और जो जगदीश्वर (गवां पति) लोक-लोकान्तरो का पति है तथा (प्रदिव.) द्युलोक का (इन्दु) प्रकाशक है और (ऋत्विय) त्रिकालज्ञ (पुरन्धिवान्) सर्वज्ञ तथा (मनुष) मनुष्यों के लिए (यज्ञसाधनः) ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञादिको का देने वाला वह (सोमः) परमात्मा (शुचिर्धिया) शुद्ध बुद्धि से साक्षात्कार किया हुआ (ते) तुमको (पवते) पवित्र करता है ॥४॥

भावार्थ —जो लोक-लोकान्तरो का अधिपति परमात्मा है, उसको जब मनुष्य ज्ञानदृष्टि से लाभ कर लेता है तब आनन्दित हो जाता है ॥४॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥५॥२७॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुमको (अनुष्वध) बल के लिये (सोमः) शान्तरूप परमात्मा (पवते) पवित्र करे । उक्त परमात्मा (नृबाहुभ्यां) मनुष्यो के ज्ञान और कर्म द्वारा (चोदित) प्रेरणा किया हुआ तथा (धारया) धारणारूप बुद्धि से (सुत.) साक्षात्कार किया हुआ पवित्र करे । उक्त परमात्मा के पवित्र किये हुए तुम (क्रतूनाप्राः) धर्मों को प्राप्त हो । (अध्वरे) धर्मयुद्ध मे (मती) अभिमानी शत्रुओ को तुम (समजैः) भलीभांति जीतो । (वेर्न) जिस प्रकार विद्युत् (द्रुषत्) प्रत्येक गतिशील पदार्थ में स्थिर है, इसी प्रकार (हरि) परमात्मा (चम्वो) द्युलोक तथा पृथिवीलोक मे (आसदत्) स्थिर है ॥५॥

भावार्थ —कर्मयोगी उद्योगी पुरुष धर्मयुद्ध मे अन्यायकारी शत्रुओ पर विजय पाते है और विद्युत् के समान सर्वव्यापक परमात्मा पर भरोसा रखकर इस संसार मे अपनी गति करते हैं ॥५॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६॥

पदार्थः—(पुनर्भुव.) बारम्बार अभ्यास करने वाली (गावोमतय) बुद्धिरूपी इन्द्रियवृत्तियां (संयत) संयम को प्राप्त होती हुई (ऋतस्य योना सदने) सचाई के यज्ञ में स्थिर (ई) उक्त परमात्मा को (सयन्ति) प्राप्त करती हैं और (मनीषिण) बुद्धिमान् (अपस) कर्मयोगी (कवय) स्तुति की शक्ति रखने वाले लोग (कवि) सर्वज्ञ (अंशु) सर्वव्यापक तथा (स्तनयन्त) संपूर्ण संसार का विस्तार करने वाले (अक्षित) क्षयरहित परमात्मा का (दुहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थ —जो लोग सर्वाधार और सर्वेश्वर परमात्मा के ज्ञान को लाभ करते हैं, वे ही उसके सचाई के यज्ञ के ऋत्विक् बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७॥

पदार्थ —(इन्द्रस्य वज्र) रुद्ररूप परमात्मा (वृषभ) सब कामनाओ की वृष्टि करने वाला तथा (विभूवसु) परिपूर्ण ऐश्वर्य वाला और (चारु मत्सर.) जिसका सर्वोपरि आनन्द है, वह उक्त (सोम) परमात्मा (हृदे) हमारे हृदय को (पवते) पवित्र करे । (पृथिव्या नाभा) जो परमात्मा पृथिवी की नाभि मे स्थित है और (महोदिव) बड़े द्युलोक का (धरुण) धारण करने वाला है तथा (अपामूर्मौ) जल की लहरों मे और (सिन्धुषु) समुद्रो मे (अन्तरुक्षित) अभिषिक्त किया गया है । उक्त गुणविशिष्ट परमात्मा हमको पवित्र करे ॥७॥

भावार्थ जो लोग उक्त गुण से विशिष्ट परमात्मा का उपासन करते हैं, और उसमें अटल विश्वास रखते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव पवित्र करता है और जो हतविश्वास होकर, ईश्वर के नियम का उल्लङ्घन करते हैं, परमात्मा उनके मद का चूर्ण करने के लिए वज्र के समान उद्यत रहता है ॥७॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८॥

पदार्थ.—(सुक्रतो) हे शोभनयज्ञेश्वर परमात्मन् ! (सः) वह पूर्वोक्त आप (तु) शीघ्र (पार्थिवं) पृथिवीलोक और (रज) अन्तरिक्षलोक के (परि) चारो ओर (पवस्व) हमको पवित्र करें और (आधून्वते स्तोत्रे) कम्पायमान हुए तथा स्तुति करते हुए मुझको (शिक्षन्) शिक्षा करते हुए आप पवित्र करें और (सादनस्पृश) घर के शोभायुक्त (वसुन) जो धन हैं उनसे (न.) हमको (मानिर्भाक्) वियुक्त मत करिए इसलिए (पिशङ्ग) स्वर्णादियुत (बहुलं रयिं) बहुत धन को (वसीमहि) हम लोग प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थ —हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से हम लोग पृथिवी तथा अन्तरिक्ष-लोक के चारो ओर परिभ्रमण करें और नाना प्रकार के धनो को प्राप्त करें ॥८॥

आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९॥२८॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशरूप परमात्मन् ! आप (शतदातु अश्व्यं) विद्युदादि सैकड़ो प्रकार के कलाकौशलयुक्त और (सहस्रदातु) सहस्रों प्रकार के (पशुमत् हिरण्यवत्) पशु और हिरण्यादियुक्त धन और (रेवतीरिषः) धनयुक्त ऐश्वर्य (बृहती.) जो सबसे बड़े हैं, उनको हमारे लिए (उपमास्व) निर्माण करिये । (पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (स्तोत्रस्य) उक्त स्तुति करने वाले (नः) हमको (अधिगहि) आप ग्रहण करें ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने कर्मयोग और उद्योग के अनन्तर अपने कर्मों को ईश्वरार्पण कर देता है, अर्थात् निष्काम भाव से कर्मों को करता है, परमात्मा अवश्यमेव उसका उद्धार करता है ॥९॥

इति द्विसप्ततितमं सूक्तमष्टाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥
७२वां सूक्त और २८वां वर्ग समाप्त ॥

अथ नवर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य

१-९ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः —१ जगती । २-७ निचृज्जगती । ८, ९ विराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ परमात्मना यज्ञकर्मोपदिश्यते ।
अब परमात्मा यज्ञकर्म का उपदेश करते हैं ।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥

पदार्थ —(सत्यस्य नावः) सचाई की नौकारूप उक्त यज्ञ (सुकृतं) शोभन कर्म वाले को (अपीपरन्) ऐश्वर्यों से परिपूर्ण करते हैं । (स सोमः) उक्त परमात्मा ने (मूर्ध्नः) सर्वोपरि (त्रीन्) तीन लोको के (आरभे) आरम्भ के लिए (असुरश्चक्रे) असुरो को बनाया और (द्रप्सस्य) कर्मयज्ञ के (स्रक्वे) मूर्धास्थानी (धमतः) प्रतिदिन कर्म करने मे तत्पर कर्मयोगियों को बनाया । उक्त कर्मयोगी (ऋतस्य योना) यज्ञ के कारणरूप कर्म मे (समस्वरन्) चेष्टा करते हुए (समरन्त) सांसारिक यात्रा करते हैं । उक्त कर्मयोगियों को परमात्मा ने (नाभयः) नाभिस्थानीय बनाया ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे असुरो के तीन लोको का वर्णन किया गया है और वे तीन लोक काम, क्रोध, और लोभ हैं ॥१॥

अथासुराणां निन्दया कर्मयोगिनः प्रशंसयन्नाह ।
अब असुरो की निन्दा करते हुए, और कर्मयोगियो की प्रशंसा करते हुए कहते हैं ।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥

पदार्थ —(महिषा) महान् पुरुष (सम्यञ्चः) संगति वाले (सम्यक्) भली-भांति (सिन्धोरूर्मावधि) इस संसाररूपी समुद्र मे (वेना) अभ्युदय की अभिलाषा करने वाले (अहेषत) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (अवीविपन्) दुष्टों को कम्पायमान करते हैं । (मधोर्धाराभिः) ऐश्वर्य की धाराओं से (जनयन्तः) प्रकट होते हुए तथा (अर्कमित्) अर्चनीय परमात्मा को प्राप्त होते हुए (प्रियामिन्द्रस्य तन्वं) ईश्वर के प्रिय ऐश्वर्य को (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थ.—जो लोग परमात्मा के महत्त्व को धारण करके महान् पुरुष बनते हैं, वे इस भवसागर की लहरो से पार हो जाते हैं और परमात्मा के यश को गान करके, अन्य लोगो को भी अभ्युदयशाली बनाकर, इस भवसागर की धार से पार कर देते हैं ॥२॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

पदार्थ. (पवित्रवन्तः) उक्त पुण्य कर्म वाले कर्मयोगी (परिवाचं) वेदरूपी वाणी का (आसते) आश्रयण करते हैं । (एषां) इन कर्मयोगियों का (प्रत्नः) प्राचीन (पिता) परमात्मा (व्रतं) इनके व्रत की (अभिरक्षति) रक्षा करता है और उनके सामने (महः समुद्रं) इस बड़े संसाररूपी सागर को (वरुणः) जो वरुणरूप अपनी लहरों मे डुबा लेने के लिए उद्यत है, उसको (तिरोदधे) परमात्मा तिरस्कार कर देता है । (धरुणेषु) उक्त कर्मयोग और ज्ञानयोगादि साधनो मे (आरभं) आरम्भ को (धीरा) धीरपुरुष (इत्) ही (शेकुः) समर्थ होते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है कि पवित्र कर्मों वाले पुरुष ही वाग्मी बनते हैं और वे ही इस भवसागर की लहरो से पार हो सकते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) आपके (सेतवः) मर्यादारूप सेतु (पदेपदे सन्ति) पद-पद पर हैं और वे मर्यादारूप सेतु (पाशिनः) पापियों के दण्डदाता हैं । (भूर्णयः) शीघ्रता करने वाले हैं और (न निमिषन्ति) उनके सामने कोई आँख उठा कर नही देख सकता । (अस्य) उस परमात्मा के (स्पशः) सारभूत (असश्चतः) अनन्त ज्योतियां हैं । हे परमात्मन् ! आप (सहस्रधारे) अनन्त आनन्द-स्वरूप मे (अव) हमारी रक्षा करें और (दिवो नाके) द्युलोक के मध्य में (समस्वरन्) स्रवित होते हुए आपके आनन्द (मधुजिह्वा) जो अत्यन्त आह्लादजनक हैं, वे हमको प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा के आनन्द की सहस्रो धाराएं इस संसार मे इतस्ततः सर्वत्र बह रही हैं । जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओ का पालन करता है, वही उन आनन्दो को लाभ करता है, अन्य नहीं ॥४॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥२९॥

पदार्थ —जो लोग (पितुर्मातुः) पिता-माता की शिक्षा को पाकर सुशिक्षित हैं, और (ये) जो लोग (ऋचा) वेद की ऋचाओ के द्वारा (समस्वरन्) अपनी जीवन यात्रा करते हैं (शोचन्तोऽव्रतान्) तथा शोकशील अव्रतियो को (संदहन्तः) भली-भांति दाह करने वाले हैं और जो (मायया) अपनी अपूर्व शक्ति से (इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति) ईश्वर की आज्ञा को भङ्ग करने वाले राक्षसो का नाश करते हैं और जो राक्षस (असिक्नीं) रात्रि के अन्धकार के समान (भूमनः) भूलोक और (दिवः) द्युलोक के (परि) चारो ओर (त्वचं) त्वचा के समान वर्तमान हैं, उनको नाश करने वाले पितृमान और मातृमान् कहलाते हैं ॥५॥

भावार्थ —मनुष्य इस संसार मे चार प्रकार से शिक्षा को लाभ करता है । वे चार प्रकार ये हैं कि माता, पिता, आचार्य और गुरु ॥५॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥

पदार्थ —(अनक्षासः) अज्ञानी लोग (बधिरा) जो हितोपदेश को भी नहीं सुन सकते वे (ऋतस्य पन्थां) सचाई के मार्ग को (अपाहासत) छोड़ देते हैं । (दुष्कृतः) वे दुष्टाचारी इस भवसागर की लहर को (न तरन्ति) नहीं तर सकते और (ये) जो (प्रत्नात्) प्राचीन (मानात्) आप्त पुरुष से (अध्या) आए हुए उपदेशो को (समस्वरन्) पालन करते हुए (श्लोकयन्त्रासः) सत्पुरुषों की संगति मे रहने वाले हैं तथा (रभसस्य मन्तवः) परमात्मा की आज्ञा मानने वाले हैं, इस भवसागर की लहर को तर जाते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग आप्त पुरुषो के वाक्यो पर विश्वास करते हैं और सामाजिक बल को धारण करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥६॥

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥

पदार्थ —(नृचक्षसः) कर्मयोगी और (सुदृशः) ज्ञानयोगी (स्वञ्चः) गतिशील और (स्पशः) बुद्धिमान् (अद्रुहः) किसी के साथ द्रोह न करने वाले हैं तथा (इषिरासः) गमनशील (रुद्रासः) परमात्मा के न्याय-पालन करने के लिए रुद्ररूप होते हैं । (एषां) उक्तगुण-सम्पन्न पुरुषों का परमात्मा सदैव रक्षक होता है और वे लोग (सहस्रधारे वितते) अनन्त आनन्दमय विस्तृत (पवित्रे) पवित्र परमात्मा मे (वाचमापुनन्ति) अपनी वाणी को उसकी स्तुति द्वारा पवित्र करते हैं । उक्त प्रकार के विद्वान् ही (मनीषिणः) मनस्वी और (कवयः) क्रान्तदर्शी होते हैं ॥७॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा के स्वरूप मे चित्तवृत्ति को लगा कर अपने आपको पवित्र करते हैं, वे ही कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥७॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे ।
विद्वान्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥

पदार्थ —(ऋतस्य गोपा) सचाई की रक्षा करने वाला (सुक्रतुः) शोभन कर्मों वाला कर्मयोगी (न दभाय) जो किसी से दबाया नहीं जाता (स) वह (पवित्रा) अपने पवित्र (हृद्यन्तः) अन्तःकरण मे (त्री) परमात्मा की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयरूप तीनों शक्तियो को (आदधे) धारण करता है । (विद्वान् स) वह विद्वान् पुरुष (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो को (अभिपश्यति) देखता है और (कर्ते) कर्तव्य मे (अव्रतान्) जो अव्रती (अजुष्टान्) और परमात्मा से वियुक्त हैं, उनको (अवविध्यति) मारता है ॥८॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा पर अटल विश्वास रखने वाले हैं, वे किसी से दबाए नहीं जा सकते ॥८॥

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥३०॥

पदार्थ —(**अप्रभु**) जो पुरुष कर्मयोगी नही है, वह (**कर्तमव पताति**) कर्मरूप मार्ग से गिर जाता है । (**अत्र**) इस कर्म मे (**धीराश्चित्**) कर्मयोगी पुरुष ही (**तत्**) उसके समक्ष (**समिनक्षन्त.**) गतिशील होकर (**आशत**) स्थिर होते हैं । (**ऋतस्य**) सचाई का (**तन्तु**) विस्तार करने वाला (**वितत**) जो विस्तृत है, वह परमात्मा (**वरुणस्य मायया**) सबको वशीभूत रखने वाली अपनी शक्ति के साथ (**पवित्रे**) उसके पवित्र अन्त करण मे और (**जिह्वाया अग्रे**) जिह्वा के अग्रभाग मे (**आ**) निवास करता है ॥९॥

भावार्थ —जो कर्मयोगी और उद्योगी पुरुष हैं, उन्ही के अन्त करण मे परमात्मा निवास करता है ॥९॥

इति त्रिसप्ततितम सूक्त त्रिंशो वर्गश्च समाप्त ।

७३वा सूक्त और ३०वां वर्ग समाप्त ।

अथ नवर्चस्य चतु स्सप्ततितमस्य सूक्तस्य--

१—९ **कक्षीवानृषि** ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द —१, ३ *पादनिचृज्जगती* । २, ६ *विराड्जगती* । ४, ७ *जगती* । ५, ९ *निचृज्जगती* । ८ *निचृत्त्रिष्टुप्* । स्वर —१—७, ९ *निषाद* । ८ *धैवत* ॥

अथाभ्युदयपात्रतामाह ।

अब अभ्युदय के अधिकारियो का निरूपण करते है ।

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

पदार्थ — (**वने**) भक्ति के विषय मे (**यत्**) जब (**जातः**) तत्काल उत्पन्न (**शिशु**) बालक के (**न**) समान यह जिज्ञासु पुरुष स्वाभाविक रीति से (**चक्रदत्**) रोता है, तब (**स्व**) सुखस्वरूप (**वाजी**) बलस्वरूप (**अरुष**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**सिषासति**) उसके उद्धार की इच्छा करता है । (**दिवो-रेतसा**) जो परमात्मा द्युलोक से लेकर लोक-लोकान्तरो के साथ अपनी शक्ति से (**सचते**) सगत है और (**पयोवृधा**) जो अपने ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त होता है, (**त**) उस परमात्मा से (**सप्रथ.**) विस्तृत अभ्युदय और (**शर्म**) नि श्रेयस सुख इन दोनो की हम लोग (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थ.—जब पुरुष दूध पीते बच्चे के समान मुक्त कण्ठ से परमात्मा के आगे रोता है, तब परमात्मा उसे अवश्यमेव ऐश्वर्य देता है ॥१॥

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

पदार्थ (**दिवो य स्कम्भ**) जो द्युलोक का सहारा है और (**धरुण**) पृथिवी का धारण करने वाला है तथा (**स्वातत**) विस्तृत (**आपूर्णः**) सर्वत्र परिपूर्ण (**अंशु**) व्यापक परमात्मा (**विश्वत**) सब ओर से (**पर्येति**) प्राप्त है (**स**) वह परमात्मा (**इमे मही रोदसी**) इस भूलोक और अन्तरिक्षलोक को (**आवृता**) अद्भुत कर्म से (**यक्षत्**) सगत करता है और (**समीचीने**) सगत द्युलोक और भूलोक को वही परमात्मा (**दाधार**) धारण करता है । वह (**कवि**) सर्वज्ञ परमेश्वर (**इष**) ऐश्वर्यों को (**स**) देता है ॥२॥

भावार्थ.—जिस परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवीलोकादिको को लीलामात्र से धारण किया है, वही सब ऐश्वर्यों का दाता है, अन्य नही ॥२॥

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

पदार्थ —(**ऋग्मिय**) स्तुतियोग्य (**इत ऊति**) सब प्रकार का रक्षक (**य**) जो (**नेता**) नियन्ता है, और (**अपां वृषा**) सब प्रकार के कर्मों का फल देने वाला (**उस्रिय**) प्रकाशस्वरूप है (**इत**) द्युलोक से उत्पन्न (**वृष्टे**) वृष्टयादि का (**ईशे**) ईश्वर है । (**महि**) सबसे बडा है (**प्सर**) सबका कर्ता है (**सुकृत**) शुभकर्मा है । (**सोम्य**) सौम्य स्वभाव वाला है । (**अदिते**) उस ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (**गव्यूति**) इस जीवात्मा का मार्ग (**मधु**) मीठा और (**उर्वी**) विस्तृत होता है और (**ऋत यते**) सत्यरूप यज्ञ को प्राप्त होने वाले पुरुष के लिए वह परमात्मा शुभ करता है ॥३॥

भावार्थ —सन्मार्ग चाहने वाले पुरुषो को उचित है कि वे सचाई का यज्ञ करने के लिए परमात्मा की शरण लें ॥३॥

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥

पदार्थ —जिस परमात्मा से (**नभ**) द्युमण्डल से (**आत्मन्वत**) सारभूत (**घृत**) जलादिक (**दुह्यते**) दुहे जाते हैं और (**ऋतस्य**) जो सचाई की (**नाभि**) नाभि है और (**अमृत**) अमृतस्वरूप है वह (**पय**) तृप्तिरूप परमात्मा (**विजायते**) सर्वत्र विराजमान है । (**नर**) जो पुरुष उसकी उपासना करता है (**त**) उसको (**पेरव**) सर्वरक्षक शक्तियाँ (**प्रीणन्ति**) तृप्त करती हैं और (**समीचीना**) सुन्दर (**सुदानव**) दानशील शक्तियां उसके लिए (**हित**) हित की (**अवमेहन्ति**) वृष्टि करती हैं ॥४॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओ का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिए अपनी दानशील शक्तियो से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों की वृष्टि करता है ॥४॥

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५॥ ३१ ॥

पदार्थ —(**ऊर्मिणा**) अपने आनन्द की लहरो से (**सचमान**) सगत (**अंशु.**) सर्वव्यापक परमात्मा (**अरावीत**) सदुपदेश करता है और (**मनुषे**) मनुष्य के लिए (**देवाव्य त्वच**) देवभाव को पैदा करने वाले शरीर को (**पिन्वति**) पुष्ट करता है तथा (**अदितेरुपस्थे**) इस पृथिवी पर (**गर्भ**) नाना प्रकार के औषधियो के उत्पत्तिरूप गर्भ को (**आदधाति**) धारण कराता है, (**येन**) जिससे (**तोक**) दुःख के नाश करने वाले (**तनय**) पुत्र-पौत्र को (**धामहे**) हम लोग धारण करें ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा की कृपा से ही सुकर्मा पुरुष को का नीरोग और दिव्य शरीर मिलता है, जिससे वह सत्सतति को प्राप्त होकर इस ससार मे अभ्युदयशाली बनता है ॥५॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥

पदार्थ —(**सहस्रधारे**) अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य वाले (**तृतीये**) तीसरे अन्तरिक्षलोक मे (**रजसि**) जो रजोगुणविशिष्ट है, उसमे (**प्रजावती**) नाना प्रकार की प्रजा वाले ऐश्वर्य (**सन्तु**) हमको प्राप्त हो । (**असश्चत**) जो ऐश्वर्य जीव को अशक्त करने वाले न हो (**ता**) वे शक्तियां (**घृतश्चुत**) जो नाना प्रकार के स्निग्ध पदार्थों को देने वाली है (**हविरमृत भरन्ति**) और हविरूप अमृत को देने वाली हैं और जो (**दिवोऽवो निहिता**) द्युलोक के नीचे रक्खी हुई हैं, जिनमे (**चतस्रो नाभ**) चार प्रकार की दीप्तियां हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो प्रकार के फल सयुक्त हैं, वे शक्तियां परमात्मा हमे प्रदान करे ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा जिन पर प्रसन्न होता है, उनको चारो प्रकार के फलों को प्रदान करता है ॥६॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

पदार्थ —(**यत्**) जब (**सिषासति**) मनुष्य सुखप्रद ऐश्वर्य को चाहता है, तब परमात्मा उसके लिए (**श्वेत रूप कृणुते**) ऐश्वर्ययुत रूप करता है । (**मीढ्वान्**) सब प्रकार के ऐश्वर्यो का देने वाला (**सोम**) परमात्मा (**भूमन.**) सब लोक-लोकान्तरो का (**वेद**) ज्ञाता है । (**स ई**) वह परमात्मा इस उपासक को (**धिया**) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (**सचते**) सगत होता है और वह (**दिव**) इस द्युलोक से (**उद्रिण**) बहुत जल वाले (**कवन्ध**) वृष्टि को (**अवदर्षत्**) उत्पन्न करता है और (**प्रवत**) उग्र (**शमी**) कर्म वाले (**असुर.**) राक्षसो को दण्ड (**अभि**) देता है ॥७॥

भावार्थ —जो लोग अनन्य भक्ति द्वारा परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव तेजस्वी बनाता है और जो दुष्कर्मी बन कर अन्याय करते है, परमात्मा उनको अवश्यमेव दण्ड देता है ॥७॥

अधं श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

पदार्थ —(**अध**) जब (**श्वेत कलश**) सत्त्व-गुण-विशिष्ट अन्त करण को (**गोभि**) जो इन्द्रियवृत्तियो से (**अक्त**) रञ्जित है (**कार्ष्मन्**) जो अत्यन्त शुद्ध हो गया है, उसमें (**वाजी**) बलवान् परमात्मा (**आक्रमीत्**) अपनी दीप्ति द्वारा प्रविष्ट होता है । उस परमात्मा का (**ससवान्**) भजन करता हुआ (**मनसा देवयन्त**) मन से प्रकाश करते हुए, (**गोना**) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरो के (**शतहिमाय**) सौ हेमन्तऋतु पर्यन्त अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को (**कक्षीवते**) विद्वान् के लिये (**हिन्विरे**) प्रेरणा करता है ॥८॥

भावार्थ —जो पुरुष शुद्धि की पराकाष्ठा को पहुँच जाता है परमात्मा उस पर अवश्यमेव दया करता है ॥८॥

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥९॥ ३२॥

पदार्थ —(**अद्भि.**) सत्यकर्मों से (**पपृचानस्य**) अभिव्यक्त (**ते**) आपका (**रस**) आनन्द (**अव्य.**) जो सर्वरक्षक है, वह (**वार**) वरणीय पुरुष के प्रति (**विधावति**) विशेष रूप से प्राप्त होता है । (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले (**सोम**) परमात्मन् ! आप (**कविभि**) विद्वानो से (**मृज्यमानः**) साक्षात्कृत हैं और (**पवमान**) पवित्र करने वाले है और (**मदिन्तम**) सबको आह्लादकारक आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पीतये**) तृप्ति के लिये (**स्वदस्व**) प्रियकारक हो ॥९॥

भावार्थ —जो लोग कर्मयोग से अपने को पवित्र बनाते हैं, उनके लिये परमात्मा अवश्यमेव अपने ब्रह्मामृत का प्रदान करते है ॥९॥

इति चतुस्सप्ततितम सूक्त द्वात्रिंशो वर्गश्च समाप्त ।

७४वां सूक्त और ३२वां वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्ऋषि । पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती । ५ विराड्जगती । निषादः स्वरः ॥

अथेश्वरः सूर्यादीनां प्रकाशकत्वेन वर्ण्यते ।

अब ईश्वर का सूर्यादिकों के प्रकाशकत्वरूप से वर्णन करते हैं ।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—(विचक्षण) वह सर्वज्ञ परमात्मा (विष्वञ्च) विविध प्रकार वाले इस संसार को (रथ) रम्य बनाकर (अध्यरुहत्) तथा सर्वोपरि होकर विराजमान हो रहा है । वह परमात्मा (बृहन्) बड़ा है और (बृहतः सूर्यस्य) इस बड़े सूर्य के चारों ओर (आ) व्याप्त होता है और (चनोहित) सबका हितकारी परमात्मा (अभिप्रियाणि) सबका कल्याण करता हुआ, (पवते) पवित्र करता है । तथा (यह्वः) सबसे बड़ा है । (येषु नामानि) जिसमें अनन्त नाम हैं, वह परमात्मा (अधिवर्धते) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त है ॥१॥

भावार्थ—इस निखिल ब्रह्माण्ड का निर्माता परमात्मा सूर्यादि सब लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक है । इसी अभिप्राय से कहा है, कि "न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः" अर्थात् परमेश्वर का प्रकाशक कोई नहीं, वही सबका प्रकाशक है ॥१॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥

पदार्थः—(दिव) द्युलोक के (रोचने) प्रकाश के लिये (तृतीय) तीसरा (नाम) नाम (अधिदधाति) धारण करता है तथा (पुत्र पित्रो) सन्तानभाव और सन्तानीभाव का (अपीच्य) अधिकरण है और (ऋतस्य जिह्वा) सचाई की जिह्वा है । तथा (पवते) सबको पवित्र करता है । (मधु) मधुर (प्रिय) प्रिय वचनों का (वक्ता) कथन करने वाला है और (अदाभ्य) अदम्भनीय वह परमात्मा (अस्या धियः) इन कर्मों का अधिपति है ॥२॥

भावार्थ—जीव के शुभाशुभ सब कर्मों का अधिपति परमात्मा है । उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा से सब द्युभ्वादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाश होता है ॥२॥

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।

अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥३॥

पदार्थ—(त्रिपृष्ठः) भूः, भुवः, स्वः, यह तीन लोक हैं पृष्ठस्थानी जिसके वह परमात्मा (उषसः) उषाकाल का प्रकाशक होकर (अधिविराजति) विराजमान है । (ऋतस्य) सचाई के (दोहना) दोहन करने वाले (ईं) इस परमात्मा को (अभ्यनूषत) उपासकगण उपासना द्वारा विभूषित करते हैं । (हिरण्यये कोशे) प्रकाशक अन्तःकरण में (येमान) सम्पूर्ण नियमों का कर्ता वह परमात्मा (अचिक्रदत्) शब्दायमान होता हुआ (नृभि) उपासक लोगों से स्तुति किया गया निवास करता है । (कलशान्) उनके अन्तःकरणों को (अवद्युतान) निरन्तर प्रकाश करता हुआ (आ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा उषा के प्रकाशित सूर्यादिकों का भी प्रकाशक है और वह पुण्यात्माओं के स्वच्छ अन्तःकरण को हिरण्मय पात्र के समान प्रदीप्त करता है । अर्थात् जो पुरुष परमात्मपरायण होना चाहे, वह पहले अपने अन्तःकरण को स्वच्छ बनाये ॥३॥

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।

रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४॥

पदार्थ—(रोदसी मातरा) इस संसार के माता-पितावत् वर्तमान जो द्युलोक और पृथिवीलोक हैं, उनको (प्ररोचयन्) प्रकाश करता हुआ (च) और (मतिभिरद्रिभि) ज्ञानरूपी-चित्तवृत्तियों से (सुत) संस्कृत और (चनोहितः) सबका हितकारी (शुचि) शुद्धस्वरूप परमात्मा (समया) सब ओर से (रोमाण्यव्या) सब पदार्थों की रक्षा करता हुआ (विधावति) विशेष रूप से गति करता है । (दिवेदिवे) प्रतिदिन (मधोर्धारा) अमृतवृष्टि से (पिन्वमाना) पुष्ट करता है ॥४॥

भावार्थ—द्युलोक और पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक परमात्मा अपनी सुधामयी-वृष्टि से सदैव पवित्र करता है ॥४॥

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।

ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५॥ २३ ॥२

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (ये ते मदा आहनसः) जो आपके स्वभाव वाणी के समान उपदेश करते हैं (तेभिः) उनसे (विहायसाः) हमारा आप आच्छादन करें और (इन्द्र) कर्मयोगी को (मघ दातवे) ऐश्वर्य देने के लिए (चोदय) प्रेरणा कीजिए । (सोम) हे परमात्मन् ! (नृभि) उपदेशकों द्वारा (परिपुनान) हमको पवित्र करते हुए (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए (प्रधन्व) प्राप्त होइये और (आशिर) हमारे आश्रय का (अभिवासय) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥५॥

भावार्थ—जो लोग एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करते हैं । क्योंकि सर्वनियन्ता और सबका अधिष्ठाता एकमात्र वही है । परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है । अधिष्ठान, अधिकरण, आश्रय ये एक ही वस्तु के नाम हैं । उसी परमात्मा ने इस चराचरात्मक-संसार को उत्पन्न किया है । जिसको कोई आश्चर्य रूप से देख रहा है, कोई आश्चर्य रूप से सुन रहा है और कोई इस गूढ़तत्त्व को न समझ कर अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ है । पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके कर्तृत्व का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता । अर्थात् नास्तिक से नास्तिक भी जब इस बात का विचार करता है कि इस विविध-रचना-संयुक्त-विश्व को किसने उत्पन्न किया, तो उसकी दृष्टि भी किसी अद्भुत शक्ति पर ही ठहरती है ।

"आशिरम्" हमारे आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति करने वाला परमात्मा, हम में कर्मयोगियों को उत्पन्न करके, हमको कर्मयोगी तथा उद्योगी बनाये ॥५॥

इति श्रीमदार्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये सप्तमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य—

१-५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराड्जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१ धैवतः । २-५ निषादः ॥

अथ द्युभ्वादीनामाधारत्वं वर्ण्यते ।

अब परमात्मा का सर्वाधार रूप से वर्णन करते हैं ।

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोक का (धर्ता) धारणकर्ता परमात्मा (पवते) हमें पवित्र करे (नृभि) सब मनुष्यों का (कृत्व्यः) जो उपास्य है तथा (रस) आनन्द स्वरूप है और (दक्षः) सर्वज्ञ है । (देवानामनुमाद्य) और विद्वानों का आह्लादक है । (हरिः) उक्त गुणयुक्त परमात्मा (सृजान) सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करता हुआ (अत्यो न) विद्युत् के समान (वृथा) अनायास ही (सत्वभिः) प्राणियों द्वारा (पाजांसि) बलों को (कृणुते) करता है और उक्त परमात्मा (नदीषु) प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों में (आ) व्याप्त है ॥१॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राकृत पदार्थ में परमात्मा की सत्ता विद्यमान है और वही द्युलोकादि का अधिकरण है ॥१॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।

इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (मनीषिभि) ज्ञानयोगियों द्वारा (अज्यते) ध्याया जाता है । (अपस्युभि) कर्मयोगियों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा किया हुआ तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (शुष्म) बल को (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (शूरो न) शूरवीर के समान (गभस्त्योः) अपने कर्म और ज्ञानरूप शक्ति में (आयुधा) सृष्टि के करणोपकरणरूप आयुधों को (धत्ते) धारण करता है । (स्व) वह सुखस्वरूप परमात्मा (गविष्टिषु) प्रजाओं में (सिषासत) विभाग करने की इच्छा से (रथिर) गतिस्वरूप परमात्मा अपनी गति से सर्वत्र परिपूर्ण होता है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा कर्मों के फल देने के अभिप्राय से सर्वत्र सृष्टि में अपनी न्यायरूपी शक्ति से सम्पूर्ण प्रजा में विराजमान होकर कर्मों के यथायोग्य फल देता है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।

प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥३॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमान) सबको पवित्र करते हुए आप तथा (ऊर्मिणा) अपनी ज्ञान की लहरों से (तविष्यमाण) सबकी वृद्धि चाहते हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरेष्वाविश) अन्तःकरणों में आकर विराजमान हो

और (विद्युत्) बिजली (अभ्रेव) जिस प्रकार मेघो को प्रकाशित करती है और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को वृद्धियुक्त करती है, उस प्रकार (न) हमे आप (प्रपिन्व) वृद्धियुक्त करें और (धिया) कर्मों के द्वारा (वाजान्) बलों को (शश्वतो न) सप्रति निरन्तर (उपमासि) निर्माण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा मनुष्यो को इस प्रकार प्रदीप्त करता है, जिस प्रकार बिजली मेघ मण्डलो और द्यु तथा पृथिवीलोक को प्रदीप्त करती है। इस लिए उसकी ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिये ॥३॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।

यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४॥

पदार्थ—(विश्वस्य राजा) सम्पूर्ण ससार का राजा परमात्मा (पवते) हमें पवित्र करता है। (ऋतस्य) सत्यवक्ता कर्मयोगी का तथा (स्वर्दृशः) सुख के ज्ञाता के (धीतिं) कर्म को (अवीवशत्) चाहता है और परमात्मा (ऋषिषाट्) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है तथा (यः) जो परमात्मा (सूर्यस्य) ज्ञान की रश्मियो से (मृज्यते) साक्षात् किया जाता है और (मतीनां) समस्त ज्ञानो का (पिता) प्रदाता है तथा (असमष्टकाव्यः) जो कवियो की वाणी से परे है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा सब ज्ञानो का केन्द्र है और उसको कोई ज्ञानविषय नहीं कर सकता इसलिए वह अतीन्द्रिय है। अर्थात् "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" उसको वाणी और मन दोनों ही विषय नही कर सकते। अर्थात् वह वाणी का लक्ष्यार्थ है, वाच्यार्थ नही ॥४॥

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।

स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५॥

पदार्थ—(त्वोतय) आपसे सुरक्षित हुए (यथा) जिससे (समिथे) सग्राम मे (जेषाम) हम जीतें वैसा करें। (स) वह (मत्सरिन्तम) आनन्द के प्रदाता आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (पवसे) पवित्रता प्रदान करते हैं आप (वृषा) कामनाओ के (यूथेव) दातृगण के समान (कोश) ऐश्वर्य के कोश को (पर्यर्षसि) प्राप्त होते हैं जिस प्रकार (अपामुपस्थे) जल के समीप (वृषभः) मेघमण्डल (कनिक्रदत्) गर्ज कर प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा हमारे ज्ञान विज्ञानादि कोशो की रक्षा करने वाला है और वह उद्योगी और कर्मयोगियों को सदैव पवित्र करता है ॥५॥

इति षट्सप्ततितमं सूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्तः ॥
७६वा सूक्त और पहिला वर्ग समाप्त ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य

१-५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । १ ४, ५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ वाचां सदाचारो वर्ण्यते ।
अब वाणियो का सदाचार वर्णन करते हैं।

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।

अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥

पदार्थ—(वाश्रा) शब्द करती हुई (धेनव) वाणियाँ जो (पयसेव) जल प्रवाह के समान (अभ्यर्षन्ति) चलती हैं, वे वाणियां (ईं) इस (ऋतस्य) सत्य की (सुदुघा) दोहन करने वाली हैं और (घृतश्चुत) माधुर्य को देने वाली है। (एष) उक्त परमेश्वर (कोशे) अन्तःकरण मे (मधुमान्) आनन्दरूप से वर्तमान (प्राचिक्रदत्) साक्षीरूप से उपदेश करता है और वह (वपुष्टर) सबका आदि बीज है तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (वपुष) शरीर का (वज्र) वज्र है ॥१॥

भावार्थ—सब सचाइयों का आश्रय एकमात्र वाणी है, जो पुरुष वाणी को मीठी और सब कामनाओ की दोहन करने वाली बनाते है, वे इस ससार मे सदैव सुख लाभ करते हैं ॥१॥

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।

स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥

पदार्थ—(स) पूर्वोक्त परमात्मा (पूर्व्यः) अनादि है और (पवते) सबको पवित्र करता है, जो (रज) प्रकृति से रजोगुण को (तिर) तिरस्कार करके (परिमथायत्) सबका मथन करता है (स) वह (मध्व) मधुरूप है और (आयुवते) परमाणुरूप प्रकृति को आपस मे मिलाने वाला है। (वेविजान) गतिशील है। (कृशानो) अपनी तेजरूप शक्ति से (अस्तु) आक्षेप्ता पुरुषो को (मनसा) अपनी मननरूप शक्ति से (बिभ्युषा) भय का देने वाला है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा प्रकृति के रजोरूप परमाणुओ का सयोग करके इस सृष्टि को उत्पन्न करता है ॥२॥

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।

ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३॥

पदार्थ—(ते) पूर्वोक्त विद्वान् (नः) जो हमारे (पूर्वास) पूर्वज (उपरास) और जो भविष्य मे होने वाले हैं (इन्दव) वे ज्ञानी (महेगोमते) बड़े ज्ञान के लिए और (वाजाय) बल के लिये (धन्वन्तु) उस परमात्मा को प्राप्त हो और (ये) जो (ब्रह्म ब्रह्म) ब्रह्म प्राप्ति के लिए और (हविर्हविः) हवि के लिए (जुजुषु) सेवन करते हैं, वे (चारव) श्रेष्ठ लोगो के (न) समान (अह्य) सुन्दर और (ईक्षेण्यास) दर्शनीय होते है ॥३॥

भावार्थ—प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् पुराने और नये दोनों प्रकार के विद्वान् जो वेद को ईश्वर प्राप्ति के लिए पढ़ते है और हवनादि यज्ञो को कर्मकाण्ड के लिये करते है, वे इस ससार मे दर्शनीय और सदाचार फैलाने के हेतु होते हैं, अन्य नही ॥३॥

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।

इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४॥

पदार्थ—(अय) यह जो (न) हमारे मध्य मे विद्वान् है, वह (वनुष्यत) हमारे शत्रुओ को (सत्राचा मनसा) समाहित मन से नाश कर सकता है और वह (इन्दु) प्रकाशस्वरूप है (पुरुष्टुत) तथा माननीय है। (य) जो पुरुष (इनस्य) ईश्वर की (सदने) सन्निधि मे (गर्भं) शिक्षा को (आदधे) धारण करता है, वह (गवां) इन्द्रियो के (व्रज) फल को (उरुब्ज) जो सर्वोपरि है, उसको (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थ—जो विद्वान् ईश्वरीयज्ञान पर विश्वास करता है, वह मनुष्य जन्म के फल को लाभ करता है ॥४॥

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।

असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥२॥

पदार्थ—(चक्रि) वह पुरुष अनुष्ठान-परायण होता है और (दिवः) द्युलोक को (पवते) पवित्र करता है (कृत्व्य) और कर्तव्यशील (रस) आनन्दस्वरूप (महान्) बड़ा (अदब्ध) किसी से न दबाये जाने वाला परमेश्वर (हुरुग्यते) कुटिलता से चलने वाले पुरुष को (वरुण) अपने विद्याबल से आच्छादित करता है और (असावि) ज्ञानरूपी बल को प्राप्त करता है (मित्र) सर्वप्रिय है (वृजनेषु अत्य) सब विषयो मे गमन कर सकता है और (यज्ञिय) यज्ञ सम्बन्धी कर्मों मे योग्य (वृषयुः) सब कामनाओ के (यूथे) देने वाले गण के (न) समान (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, इस ससार मे यात्रा करता है ॥५॥

भावार्थ जो विद्वान् धीर-वीर दृढव्रती और अपने विद्या प्रभाव से कुटिल वा मायावी पुरुषो को दबाने की शक्ति रखता है वह इस मनुष्य समाज में वृषभ के समान गर्जन करता हुआ अपने सदाचारी समाज की रक्षा करता है ॥५॥

इति सप्तसप्ततितमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ॥
७७वा सूक्त और २सरा वर्ग समाप्त ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य

१-५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः १, निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ सर्वनियामकस्येश्वरस्यैश्वर्यमुपदिश्यते ॥
अब सर्वनियामक परमात्मा के ऐश्वर्य का उपदेश करते है ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।

गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थः—(राजा) सबका प्रकाशक परमात्मा (वाचं) वेदरूपी वाणी को (जनयन) उत्पन्न करता हुआ (प्रासिष्यदत्) ससार को उत्पन्न करता है और (अपः) कर्मों को (वसान) धारण करता हुआ (गा) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरो के (अभि) सम्मुख (इयक्षति) गति करता है। जो पुरुष (अस्य) उस परमात्मा की (तान्वा) शक्ति से (रिप्र) अपने दोषो को (गृभ्णाति) ग्रहण कर लेता है अर्थात् उनको समझ कर मार्जन कर लेता है, इस प्रकार (अवि) सुरक्षित होकर (शुद्ध) शुद्ध है तथा (देवानां) देवताओ के (निष्कृत) पदको (उपयाति) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा के जगत्कर्तृत्व में विश्वास करता है, वह उसकी उपासना द्वारा शुद्ध होकर देवपद को प्राप्त होता है ॥१॥

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।

पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

पदार्थ—(वने) भक्ति के मार्ग में (कवि) सर्वज्ञ परमात्मा (नृभि) मनुष्यो के द्वारा (अज्यसे) उपासना किया जाता है। वह (नृचक्षा) सबका अन्तर्यामी है। (ऊर्मि) आनन्द का समुद्र है। (सोम) हे परमात्मन्! आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (परिषिच्यसे) लक्ष्य बनाये गये हो। (ते) तुम्हारी (स्रुतय) शक्तियां (हि) क्योंकि (पूर्वी) सनातन हैं। (यातवे) गतिशील कर्मयोगी के लिए (सहस्र) अनन्त प्रकार की (अश्वा) गतिशील (चमूषद) सेना में स्थिर होकर (हरय) विनाश को धारण करती हुई (सन्ति) कर्मयोगी को प्राप्त होती हैं ॥२॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा की भक्ति मे विश्वास करते हैं, परमात्मा उनके बल को अवश्यमेव बढ़ाता है अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और संहार रूप परमात्मा की शक्तियां कर्मयोगियों की आज्ञा पालन करने के लिए आ उपस्थित होती हैं ॥२॥

समुद्रियां अप्सरसों मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।

ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥३॥

पदार्थः—(सोममभि) परमात्मा के समक्ष (समुद्रिया आसीना अप्सरसः) अन्तरिक्ष की स्थिर-शक्तियां (अक्षरन्) क्षरण करती हुई (मनीषिणं) मनस्वी पुरुष के (अन्तः) अन्त करण में उद्बोधन करती हैं। (ताः) वे शक्तियां (ईं) इसको (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं और उक्त परमात्मा से (हर्म्यस्य) सब सौन्दर्यों के साधन तथा (सक्षणिं) सब आपत्तियों के सहारने वाले (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (अक्षित) क्षयरहित पद की (याचन्ते) उपासक लोग याचना करते हैं ॥३॥

भावार्थ.—विद्युदादि अनन्त शक्तियां जो अन्तरिक्ष मे स्थिर है, उसी अनन्त-शक्तिमद्ब्रह्म से लोग अक्षय पद की याचना करते हैं ॥३॥

गोजित्रः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।

यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

पदार्थः—(सोम) परमात्मा (गोजित्) सब प्रकार की सूक्ष्म शक्तियों को जीतने वाला है तथा (रथजित्) बड़ से बड़े वेग वाले पदार्थ को जीतने वाला है और (हिरण्यजित्) बड़ी-बड़ी शोभा को जीतने वाला है तथा (स्वर्जित्) सब सुखों को जीतने वाला है और (अब्जित्) बड़े-बड़े वेग को जीतने वाला है तथा (सहस्रजित्) अनन्त पदार्थों को जीतने वाला है (य) जिस (मद) आह्लादक (स्वादिष्ठ) ब्रह्मानन्द देने वाले (द्रप्सं) रसस्वरूप (अरुण) प्रकाशस्वरूप (मयोभुव) सुख देने वाले परमात्मा का (देवास) विद्वद्गण (न) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिए (चक्रिरे) व्याख्यान करते हैं ॥४॥

भावार्थ.—परमात्मा के आगे इस ससार की सब शक्तियां तुच्छ हैं। अर्थात् वह सर्वविजयी है उसी से विद्वान् लोग नित्य सुख की प्रार्थना करते हैं ॥४॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।

जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५॥३॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमान) पवित्र (अस्मयु) हमारे शुभ की इच्छा करने वाले आप (सत्यानि) सदुपदेशों को (कृण्वन्) करते हुए (एतानि) पूर्वोक्त समस्त (द्रविणानि) ऐश्वर्यों को (अर्षसि) देते हैं और जो हमारे (अन्तिके) समीपवर्ती (च) तथा (दूरके) दूरवर्ती (शत्रु) शत्रु हैं उनको आप (जहि) नाश करें। (य) जो (उर्वी) विस्तृत (गव्यूतिः) मार्ग है, उसे हमारे लिए खोल दें और (नः) हमको (अभय) भयरहित (कृधि) कर दीजिये ॥५॥

भावार्थः—शत्रु से तात्पर्य यहाँ अन्यायकारी मनुष्यों का है। वे मनुष्य दूरवर्ती वा निकटवर्ती हों, उन सबके नाश की प्रार्थना इस मन्त्र मे परमात्मा से की गयी ॥५॥

इत्यष्टसप्ततितम सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्त ॥

यह ७८वां सूक्त और ३सरा वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्यैकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ कविर्ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३ पादनिचृज्जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वर. ॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।

वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥१॥

पदार्थः—(अचोदसः) स्वतन्त्र परमात्मा जो किसी से प्रेरणा नहीं किया जाता वह (नः) हमको (धन्वन्तु) प्राप्त हो। वह परमात्मा (इन्दव) सर्वैश्वर्ययुक्त है और (सुवानास.) सर्वोत्पादक है (हरय) दुष्टों को हरण करने वाला है (बृहत् दिवेषु) आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के यज्ञों मे हमारी रक्षा करे (च) और (इषोऽरातय) हमारे ऐश्वर्य के विनाशक (अर्य) शत्रुओं को (विनशन्) नाश करके (नः) हमको ऐश्वर्य दे और (नो धियः) हमारे कर्मों को (सनिषन्त) शुद्ध करे ॥१॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मपरायण होकर अपने कर्मों का शुभ-रीति से अनुष्ठान करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करते हैं अर्थात् वे लोग आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के यज्ञों से अपनी तथा अपने समाज की उन्नति करते हैं ॥१॥

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।

तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२॥

पदार्थ.—(मदच्युत) सबको आनन्द देने वाला परमात्मा (इन्दवः) जो प्रकाशस्वरूप है वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो (वा) अथवा (धना) गोहिरण्यरूप धन हमको प्रदान करे (येभिः) जिन धनों से हम (अर्वतः) बल वाले शत्रुओं को (जुनीमसि) जीतें (कस्यचित्) किसी के (मर्तस्य) मनुष्य का (तिर) तिरस्कार करके (परिह्वृतिं) पीड़ा देकर (वयं) हम लोग (धनानि) धनों को (विश्वधा) सर्वदा (भरेमहि) धारण न करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को परमात्मा से सदैव इस प्रकार के बल की याचना करनी चाहिए कि वह किसी मनुष्य को अन्याय से पीड़ा देकर धन का संग्रह न करे किन्तु यदि धन-संग्रह की इच्छा हो तो वह अपने शत्रुओं को पराजय करके धन का लाभ करे ॥२॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।

धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥

पदार्थः—(उत) अथवा (स्वस्या अरात्या) अपना शत्रु हो (उत) अथवा (अन्यस्या अरात्या) दूसरे का शत्रु हो, दोनों प्रकार के शत्रु हिंसनीय होते हैं (हि) क्योंकि (सः) वह (वृक) हिंसक रूप है (धन्वन् न तृष्णा) जिस प्रकार बाधा देने वाली तृष्णा (समरीत) आकर प्राप्त होती है (तानभि) उस तृष्णा का (सोम) हे परमात्मन् तुम (जहि) नाश करो (पवमान) हे सबके पवित्र करने वाले (दुराध्य) हे इन्द्रियागोचर परमात्मन् आप इस कामना-रूप तृष्णा का नाश करें ॥३॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप, जो दुराराध्य शत्रु है, अर्थात् दुःख से वशीभूत होने वाले हैं उनका हनन करें यहाँ शत्रु से तात्पर्य कामरूप शत्रु का भी है ॥३॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।

अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४॥

पदार्थः—(मनीषिण) मेधावी लोग (त्वा) तुमको (हस्तै) ज्ञानयोग कर्मयोगादि साधनों द्वारा (दुदुह) साक्षात्कार करते है और उनकी (अद्रय.) चित्तवृत्तियां (गोरधित्वचि) अपने मन मे (अप्सु) कर्मों के लिए (त्वा) तुमको (बप्सति) ग्रहण करती है। हे सोम ! (ते) तुम्हारे (दिविनाभा) लोक-लोकान्तरों के बन्धनरूप द्युलोक मे (य) जो पुरुष (आददे) तुमको ग्रहण करता है, वह (परम) सर्वोत्कृष्ट होता है और (ते) तुम्हारे (पृथिव्या) पृथिवीलोक के (सानवि) उच्चशिखर मे (क्षिप) रक्खा हुआ (रुरुहु) उत्पन्न होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे परमात्मा की विभूति में सर्वोपरि होकर विराजमान होते हैं ॥४॥

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।

निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥४॥

पदार्थ —(इन्दो) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा (सुपेशस) रूप (सुभ्व) सुन्दर है। (अभिश्रियः) तुम्हारे उपासक लोग (प्रथमा) मुख्य (रस) आनन्द को (तुञ्जन्ति) ग्रहण करते हैं। (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन ! (निदंनिद) प्रत्येक निन्दक का आप (नितारिष) नाश करते हैं और (ते) तुम्हारा (शुष्म) बल (प्रिय) जो सबके प्रिय करने वाला है (मद) और आनन्द देने वाला है, वह (आविः) प्रकट ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा का आनन्द परमात्मयोगियों के लिए सदैव आह्लादक है और दुराचारी-दुष्टों के लिए परमात्मा का बल नाश का हेतु है। इसलिए परमात्म-परायण-पुरुषों को चाहिए कि वे सदैव परमात्मा के नियमों के पालन मे तत्पर रहें ॥५॥

इत्येकोनाशीतितम सूक्त चतुर्थो वर्गश्च समाप्त ।

यह ७९वां सूक्त और ४था वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ वसुर्भारद्वाज ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ४ जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती ॥ निषाद स्वर ॥

अथ परमात्मन ऐश्वर्यं प्रकारान्तरेण निरूप्यते ।

अब परमात्मा के ऐश्वर्य को प्रकारान्तर से निरूपण करते हैं ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।

बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१॥

पदार्थ —(नृचक्षसः) परमात्मा के उपासकों के लिए (सोमस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा की (धारा) आनन्दमय वृष्टि (पवते) पवित्र करती है और (देवान्) विद्वान लोगों को (ऋतेन) शास्त्रीय सत्य द्वारा (दिवस्परि) सब ओर से (पवते) परमात्मा पवित्र करता है। (बृहस्पते) वाणियों के पति विद्वान् को परमात्मा (रवथेन) शब्द से पवित्र करता है। (न) जिस प्रकार (समुद्रासः) अन्तरिक्षलोक (सवनानि) यज्ञों का (विव्यचु.) विस्तार करते हैं, इसी प्रकार शब्दविद्या के वेत्ता विद्वान् परमात्मा के ऐश्वर्य का विस्तार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिए कि प्रथम शब्दब्रह्म का ज्ञाता बने, फिर मुख्य ब्रह्म का ज्ञाता बनकर लोगों को सदुपदेश दे ॥१॥

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।

मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मघोनां) उपासकों की (आयुः) आयु के (प्रतिरन्) बढ़ाने वाले हैं और (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (महिश्रवः) बड़े बल के देने वाले है । (मद) सबके आह्लादक हैं और (वृषा) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले हैं और (पवसे) पवित्र करते हैं । हे परमात्मन ! (वाजिन्) हे बलस्वरूप ! (य त्वा) जिस आपको (अघ्न्या) प्रकृत्यादि अविनाशी शक्तियां (अभ्यनूषत) विभूषित करती है । (अयोहत) आप हिरण्यमय (योनि) स्थान को (आरोहसि) व्याप्त किए हुए हैं और (द्युमान्) प्रकाशस्वरूप हैं ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा इस हिरण्यमय प्रकृतिरूपी ज्योति का अधिकरण है अथवा यों कहो, कि इस हिरण्यमय प्रकृति ने उसके स्वरूप को आच्छादन किया है । इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है, कि 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यास्यापिहित मुखम्' कि हिरण्मय-पात्र से परमात्मा का स्वरूप ढका हुआ है ॥२॥

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।

प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३॥

पदार्थ —(श्रवसे) सर्वोपरि बल के लिये (सुमगल) मगलरूप है । (ऊर्जं वसान) सबका प्राणाधार होकर विराजमान हो रहा है (मदिन्तम) सबका आनन्दकारक है (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (कुक्षा) अन्तःकरण मे (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (स) वह (प्रत्यङ) सर्वव्यापक है और (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो को (अभिपप्रथे) रचता है । (हरि) वह अनन्त-बलयुक्त (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ और (अत्यः) सर्वव्यापक होकर और (वृषा) आनन्द का वर्षक होकर (स्यन्दते) अपनी व्यापक शक्ति द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥३॥

भावार्थ —वह अनन्त बलयुक्त परमेश्वर कर्मयोगियो के अन्त करण मे पवित्रता प्रदान करता है ॥३॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।

नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४॥

पदार्थ —(देवेभ्य) विद्वानो के लिए (मधुमत्तम) अत्यन्त आनन्द के प्रदाता (त त्वा) पूर्वोक्त तुम्हे (नर) ऋत्विगादि लोग (दुहते) दुहते है और (दश क्षिप) पाच कर्मेन्द्रिय और पाच ज्ञानेन्द्रियो की (ग्रावभि) शक्तियो मे (सुतः) सिद्ध किये हुए (सोम) हे परमात्मन् ! आप (नृभि) मनुष्यों से साक्षात्कार किये जाते हैं । (सहस्रजित्) अनन्त प्रकार की आसुरीय शक्तियो को तिरस्कृत करने वाले आप (विश्वान् देवान्) सम्पूर्ण विद्वानो को (आपवस्व) पवित्र करें ॥४॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हे अवश्य पवित्र करते है ॥४॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।

इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५॥५॥

पदार्थ —(त त्वा) पूर्वोक्त गुण-सम्पन्न आपको जो (वृषभ) सब कामनाओ की वृष्टि करता है (अद्रिभि) अपनी शक्तियो मे (दशक्षिप) दशप्राण (हस्तिन) स्वच्छता युक्त (अप्सु) कर्मविषयक (दुहन्ति) दुहते हैं (सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्र दैव्य जन) दिव्यगुण सम्पन्न कर्मयोगी को (मादयन्) आनन्द देते हुए (सिन्धोरिवोर्मि) समुद्र की लहरो के समान (पवमानः) पवित्र करते हुए (अर्षसि) प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थ —जो पुरुष कर्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा अपने आपको परमात्मा की कृपा का पात्र बनाते है, परमात्मा उन्हें सिन्धु की लहरो के समान अपने आनन्द-रूपी वारि से सिञ्चित करता है ॥५॥

अस्सीवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ वसुर्भारद्वाज ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती । ४ जगती । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वर १—४ निषाद । ५ धैवत ॥

अब ईश्वर के ज्ञान के अधिकारियो का निरूपण करते है ।

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।

दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥१॥

पदार्थ —(पवमानस्य) सब को पवित्र करने वाले (सोमस्य) परमात्मा के ज्ञान की (ऊर्मय) लहरें (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगी के (जठर) अन्त करण को (प्रयन्ति) प्राप्त होती है । जो लहरें (सुपेशस) सुन्दर है और (गवा) इन्द्रियो के (दानाय) सुन्दर ज्ञान देने के लिये (दध्ना यदीमुन्नीता) सहायक सस्कार द्वारा (यशसा) बल से (उदमन्दिषु) आनन्द मे (सुता) सस्कार किये हुए (शूर) शूरवीर कर्मयोगी को प्रदीप्त करती है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा के सदुपदेश ज्ञानयोगी को पवित्र करते हैं और उसके उत्साह को प्रतिदिन बढ़ाते है ॥१॥

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।

अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥२॥

पदार्थ —(देवाना) कर्मयोगी और विज्ञानयोगी आदि जो विद्वान् हैं, उनके (उभयस्य) दोनो (जन्मन.) ज्ञान और कर्म को (विद्वान्) जानता हुआ (सोम) सौम्य-स्वभाव परमात्मा (कलशान्) उसके अन्त करणो को (अत्य) अतिशीघ्रगामी (वोळ्हा) विद्युत् के (न) समान (अच्छा सिस्यन्दत्) भली-भांति सिंचन करता है । वह परमात्मा (रघुवर्तनि) सूक्ष्म से सूक्ष्म है और (वृषा) सब कामनाओं का प्रदाता है जो पुरुष (अमुत.) इसी जन्म मे उसके महत्व को जान लेता है, वह (अश्नोति) ब्रह्मानन्द को भोगता है (च) और (यत्) जो आनन्द (इत) इसी ज्ञानयोग से मिलता है, अन्य किसी साधन से नहीं ॥२॥

भावार्थ —मनुष्य की उन्नति के लिए इस लोक मे ज्ञान और कर्म दो ही साधन है । इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह इन दोनो मार्गों का अवलम्बन करे ॥२॥

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।

शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमान) आप सबको पवित्र करने वाले है । (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! आप (न) हमे (वसु) सब प्रकार के धन को (आकिर) दें । (मघवा) आप सब ऐश्वर्य के स्वामी हैं । इसलिए हमारे (महो राधस) अत्यन्त धन को (भव) प्रदाता बने रहे हे परमात्मन् ! आप हमे अपने (सुचेतुना) पवित्रज्ञान से (शिक्ष) शिक्षा दें और (वयोध) आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण करने वाले हैं । (वसवे) ऐश्वर्य के पात्र मेरे लिए आप ऐश्वर्य प्रदान करे । और (गय) धन को (अस्मदारे) हम से (मा परासिच) मत दूर करें ॥३॥

भावार्थ.—ईश्वरोपासको को चाहिए, कि ईश्वर की प्राप्ति के हेतु ईश्वर के परम ऐश्वर्य का कदापि त्याग न करें और ईश्वर से भी सदा यही प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर ! आप हमको ऐश्वर्य से कदापि वियुक्त न करें ॥३॥

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।

बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (नः) हमको (पूषा) धर्मोपदेश द्वारा पुष्टि करने वाला विद्वान् (पवमान) पथ्यापथ्य बताकर पवित्र करने वाला विद्वान् (सुरातय) दानशील विद्वान् (मित्र) सबसे मैत्री करने वाला विद्वान् (वरुण) सबको वशीभूत करने वाला विद्वान (बृहस्पति) वाणियो के पति (मरुत) ज्ञानयोगी (वायु) कर्मयोगी (अश्विना) कर्म और ज्ञानयोगी दोनो (त्वष्टा) कार्य करने मे समर्थ विद्वान् (सविता) उत्तमोत्तम पदार्थों का निर्माता विद्वान् (सुयमा) सबको नियम मे रखने वाला विद्वान् (सरस्वती) ज्ञान को सर्वोपरि भूषणरूप से धारण करने वाला विद्वान्, ये सब पूर्वोक्त विद्वान् (न) हमको (आगच्छन्तु) प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम सामाजिक उन्नति के लिए पूर्वोक्त विद्वानो का सग्रह करो ताकि तुम सब विद्याओ मे निपुण होकर ससार मे अभ्युदयशाली बनो ॥४॥

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।

भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ॥५॥६॥

पदार्थ.—(पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा को (उभे द्यावा पृथिवी) पृथिवीलोक और द्युलोक (विश्वमिन्वे) जो विस्तृत रूप से व्याप्त है (अर्यमा देव) और न्याय करने वाला राजा (अदिति.) अज्ञान का खण्डन करने वाला विद्वान् (विधाता) सब नियमो का विधान करने वाला (भग) ऐश्वर्य-सम्पन्न (नृशस) पदार्थों के गुणो का वर्णन करने वाला (उर्वन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष की विशाल विद्या को जानने वाला (विश्वे देवा) ये सब देव (जुषन्त) सेवन करते है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा की विभूति द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्षलोक ये सब लोक-लोकान्तर है और इन सब लोक-लोकान्तरो के ज्ञाता विद्वान् भी परमात्मा की विभूति है ॥५॥

८१वां सूक्त और ६वां वर्ग समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य द्व्यशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ वसुर्भारद्वाज ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती । २ निचृज्जगती । ३ जगती । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वर —१—४ निषाद ५ धैवत ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१॥

पदार्थ —(सोम) जो सर्वोत्पादक (अरुष) प्रकाश स्वरूप (वृषा) सद्गुणो की वृष्टि करने वाला (हरि) पापो के हरण करने वाला है, वह (राजेव)

राजा के समान (वस्म) दर्शनीय है और वह (न) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के चारों ओर (अभि अचिक्रदत्) शब्दायमान हो रहा है। वह (वार) वरणीय-पुरुष को जो (अव्यय) दृढ़भक्त है उसको (पुनान) पवित्र करता हुआ (पर्येति) प्राप्त होता है। (न) जिस प्रकार (श्येन) विद्युत् (घृतवन्त) स्नेह वाले (आसद) स्थानों को (योनि) आधार बनाकर प्राप्त होता है। इसी प्रकार उक्तगुण वाले परमात्मा ने (असावि) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया है।

भावार्थ.—"सूते चराचर जगदिति सोम" जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है उसका नाम सोम है। यह शब्द षूङ् प्राणि गर्भविमोचन से सिद्ध होता है और उसी धातु से असावि यह प्रयोग है। जिसके अर्थ किसी वस्तु को उत्पन्न करने के हैं ॥१॥

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।

अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (वेधस्या) उपदेश करने की इच्छा से आप (माहिन) महापुरुषों को (पर्येषि) प्राप्त होते हैं और आप (अत्य) अत्यन्त गतिशील पदार्थों के (न) समान (अभिवाज) हमारे आध्यात्मिक यज्ञ को (अभ्यर्षसि) प्राप्त होते हैं। आप (कवि) सर्वज्ञ हैं, (मृष्ट) शुद्ध स्वरूप हैं (दुरिता) हमारे पापों को (अपसेधन्) दूर करके (सोम) हे सोम ! (मृळय) आप हमको सुख दें और (घृत वसान) प्रेमभाव को उत्पन्न करते हुए (निर्णिज) पवित्रता को (परियासि) उत्पन्न करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सर्वज्ञ परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमको शुद्ध करें और सब प्रकार के सुख प्रदान करें। यहाँ सोम के लिए कवि शब्द आया है। वास्तव में वेदों में कवि शब्द जड़ के लिए कहीं भी नहीं आता। इतना ही नहीं किन्तु 'कविर्मनीषी' परिभूः स्वयम्भू य० ४०-८ इत्यादि वाक्यों में कवि शब्द परमात्मा के लिए आया है। इस प्रकार उक्त मन्त्र में कवि शब्द से परमात्मा का ग्रहण करना चाहिए, जड़ सोम का नहीं ॥२॥

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।

स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥३॥

पदार्थ—(वीते अध्वरे) पवित्र यज्ञों में (ग्रावभि) रक्षा से आप (नसते) प्राप्त होते हैं (उत) और (गा) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों में (अभिसरन्त) गति करते हुए (आप) सर्वव्यापक आप (स्वसार) स्वयंगतिशील होकर विराजमान होते हैं। आप कैसे हैं (पर्जन्य) सबके तर्पक हैं और (पिता) सबके रक्षक हैं और (महिषस्य पर्णिन) बड़े से बड़े गतिशील पदार्थों के नियन्ता हैं और (पृथिव्या, नाभा) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के केन्द्र होकर (गिरिष) सब पदार्थों में (क्षय दध) रक्षा को उत्पन्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक और पर्जन्य के समान सबका तृप्तिकारक है। उसी परमात्मा से सब प्रकार की शान्ति रक्षा उत्पन्न होती है ॥३॥

अथ परमात्मा शीलमुपदिशति ।

अब परमात्मा सदाचार का उपदेश करता है।

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।

अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥

पदार्थ—(गर्भ) हे गर्भ ! [गृह्णातीति गर्भ] हे सद्गुणों के ग्रहण करने वाले जीवात्मन् ! (ते) तुमको (ब्रवीमि) मैं कहता हूँ कि (शृणुहि) तुम सुनो। (पज्राया) जिस प्रकार पृथिवी की (पत्यौ, अधि) पर्जन्यरूप पति में अत्यन्त प्रीति होती है (जाय, इव) जैसे कि सदाचारिणी स्त्री की अपने पति में प्रीति होती है। वैसे ही सब स्त्रियों को अपने-अपने पतियों में प्रीति करनी चाहिए। ऐसा करने पर (महसे) प्रत्येक अधिकारी के लिए सुख की प्राप्ति होती है। (अनिन्द्य) सब दोषों से दूर होकर (वृजने) अपने लक्ष्यों में सावधान होकर (सोम) हे सौम्य-स्वभाव जीवात्मन् ! (जागृहि) तुम जागो और (अन्तर्वाणीषु) विद्यारूपी वाणी में (प्रचरासु) जो सबमें प्रचार पाने योग्य है उसमें (जीवसे) अपने जीने के लिए जागृति को धारण करो ॥४॥

भावार्थ.—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तुमको अपने कर्तव्य में सदैव जागृत रहना चाहिए। जो पुरुष अपने कर्तव्य में नहीं जागता उसका संसार में जीना निष्फल है। यही मान शब्द के अर्थ [illegible] के हैं ॥४॥

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।

एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥७॥

पदार्थ—(इन्दो) हे जीवात्मन् ! (यथा) जैसे (पूर्वेभ्य) पूर्व-जन्मों के लिए (शतसा) सैकड़ों (सहस्रसा) हजारों प्रकार के (वाज) बलों को (पर्यया) तुम प्राप्त हुए (एवा) इसी प्रकार (नव्यसे) इस नवीन जन्म के लिए (सुविताय) अभ्युदयार्थ (तव व्रत) तुम्हारे व्रत को (अनु आप) सत्कर्म (सचन्ते) सत्कृत हों। इसलिए आप (पवस्व) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ:—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो ! तुम्हारे पूर्व जन्म बहुत व्यतीत हुए हैं तुम इस नूतन जन्म में सत्कर्म करके अभ्युदयशाली और तेजस्वी बनो। यहाँ पूर्व और उत्तर जन्मों का कथन सृष्टि के प्रवाहरूप से अनादि मानकर है और यही भाव "सूर्याचन्द्रमसौ धाता। यथा पूर्वमकल्पयत्" इस मन्त्र में वर्णन किया गया है ॥५॥

इति द्व्यशीतितमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ।

यह बयासीवाँ सूक्त और सातवाँ वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अथ तितिक्षोपदिश्यते ।

अब तितिक्षा का उपदेश करते हैं।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा स्वरूप (पवित्र) पवित्र है और (वितत) विस्तृत है। (प्रभु) आप सबके स्वामी हैं और (विश्वत गात्राणि) सब तत्त्वों को (पर्येषि) चारों ओर व्यापक हैं। (अतप्ततनू) जिसने अपने शरीर में तप नहीं किया (तदाम) वह पुरुष कच्चा है। वह तुम्हारे आनन्द को (न अश्नुते) नहीं भोग सकता। (शृतास इत) अनुष्ठानी पुरुष ही (वहन्त) तुमको प्राप्त हो सकते हैं। वे (तत्) तुम्हारे आनन्द को (समाशत) भोग सकते हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में तप का वर्णन स्पष्ट रीति से किया है। जो लोग तपस्वी हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त हो सकते हैं, अन्य नहीं। यहाँ शरीर का तप एक उपलक्षणमात्र है। वास्तव में आध्यात्मिकादि सब प्रकार के तपों का यहाँ ग्रहण है ॥१॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।

अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (दिवस्पदे) द्युलोक में आपका (तपो) तपोरूपी (पवित्र) पवित्र (वितत) विस्तृतपद विराजमान है। (अस्य) उस पद की (तन्तव) किरणें (शोचन्त) दीप्ति वाली (व्यस्थिरन्) स्थिर हैं। (अस्य) इस पद के (पवितार) उपासक को (आशव) इस पद के आनन्द (अवन्ति) रक्षा करते हैं। उक्त पद के उपासक (दिवस्पृष्ठमधि) द्युलोक के शिखर पर (चेतसा) अपने बुद्धिबल से (तिष्ठन्ति) स्थिर होते हैं ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि संसार में तप ही सर्वोपरि है। जो लोग तपस्वी हैं वे सर्वोपरि उच्च पद को ग्रहण करते हैं। इसलिए हे मनुष्यो ! तुम तपस्वी बनो ॥२॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥

पदार्थ—पूर्वोक्त परमात्मा (उषस) सूर्य के प्रभामण्डल को (अरूरुचत्) प्रकाश करता है और (पृश्नि) प्राश्नुते सर्वमिति पृश्नि, प्रलयकाल में जो सबको भक्षण करे उसका नाम पृश्नि है। (उक्षा) उक्षतीति उक्षा इति महन्नामसु पठितम्—निः० ३—१३—३। जो इस सम्पूर्ण संसार को अपने प्रेमवारि से सिञ्चित करे उस महान् पुरुष का नाम उक्षा है। (भुवनानि बिभर्ति) वह सब भुवनों का भरण पोषण करता है। (वाजयु) सब बलों का आधार है। (अस्य मायया) उसकी शक्ति से (मायाविनो ममिरे) मायावी लोग मर जाते हैं। (नृचक्षस) वह सर्वज्ञ (पितर) सबका उत्पन्न करने वाला (गर्भम) इस संसाररूपी गर्भ को (आदधु) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह प्रकाशस्वरूप है और लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठाता है। सब तत्त्वों का केन्द्र है और सब मायावियों की माया का मर्दन करनेवाला है। तात्पर्य यह है कि उसी पूर्ण पुरुष की उपासना से पुरुष तपस्वी बन सकता है ॥३॥

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।

गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४॥

पदार्थ—(गा धरतीति गन्धर्व) जो पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों को धारण करे उसका नाम यहाँ गन्धर्व है। (इत्था) वह सत्यरूप परमात्मा इत्था इति सत्यनामसु पठित निः० ३—१३—१०। (देवानां जनिमानि) विद्वानों के जन्म की (रक्षति) रक्षा करता है। (अद्भुत) बड़ा है अद्भुत इति महन्नामसु पठित निः० ३-१३-१३ (निधापति) सब शक्तियों का पति (निधया) अपनी शक्ति से (रिपु) अपने से प्रतिकूल शक्ति वाले शत्रु को (गृभ्णाति) स्वाधीन करता है। (अस्य मधुन. पद) उस आनन्दमय परमात्मा के पद को (सुकृत्तमा) पुण्यात्मा लोग (भक्ष) भोग्य बना कर (आशत) स्थिर होते हैं और उक्त उपासकों को (पाति) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—(तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः) उस विष्णु के परमपद को सदा विद्वान् लोग देखते हैं। उसी व्यापक परमात्मा के परमपद का इस मन्त्र में वर्णन किया है कि उस परमपद के उपासक लोग ब्रह्मानन्द को भोगते हैं, अन्य नहीं ॥४॥

हुविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**हवि**) आप हवि है (**हविष्म**) और हवि वाले है । (**महि**) बडे हैं । (**दैव्य**) दिव्यरूप वाला (**नभ**) यह विस्तृत आकाश (**सद्म** आपका गृह है । इसमे (**वसानः**) निवास करते हुए (**अध्वर**) अहिंसारूप यज्ञ को (**परियासि**) प्राप्त होते हैं । (**राजा**) आप सर्वत्र विराजमान हो रहे है । (**पवित्ररथ**) पवित्रगति वाले (**वाजमारुह**) सब प्रकार के बलो को धारण किए हुये हैं (**सहस्रभृष्टि**) अनन्त प्रकार की पवित्रताओ को धारण किये हुये हैं (**बृहत्श्रव**) सर्वोपरि यश को धारण किए हुए आप (**जयसि**) सबको जय करते है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा को सहस्रशक्तियो वाला वर्णन किया है । जैसा कि सहस्रशीर्षा पुरुष इस मन्त्र मे वर्णन किया गया है । उस अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा की उपासना करके जो पुरुष तपस्वी बनते है वे इस भवनिधि से पार होते है ॥५॥

इति त्र्यशीतितम सूक्तमष्टमोवर्गश्च समाप्त ।
यह ८३वा सूक्त और ८वा वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—५ *प्रजापतिर्वाच्य ऋषि* ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द—१, ३ *विराड्जगती* । ४ *जगती* । २ *निचृत्त्रिष्टुप्* । ५ *त्रिष्टुप्* ॥ स्वर—१, ३, ४ *निषाद* । २, ५ *धैवत* ॥

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१॥

पदार्थ—(**देवमादन**) हे विद्वानो के आनन्द के वर्द्धक परमात्मन् ! (**विचर्षणिरप्सा**) हे कर्मो का द्रष्टा ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए (**वरुणाय**) विज्ञानी के लिए (**वायवे**) ज्ञानी के लिए (**पवस्व**) आप पवित्रता प्रदान करें और (**न**) हमको (**अद्य**) इस समय (**वरिवः**) धनयुक्त करें और (**उरुक्षितौ**) इस विस्तृत भूमण्डल मे (**जन** , इस जन को (**दैव्य**) दिव्य बनाकर (**गृणीहि**) अनुग्रह करें ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! आप ज्ञानी-विज्ञानी बनकर कर्मो के नियन्ता देव से यह प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप अपने ज्ञान द्वारा हमे अविनाशी बनायें और हमारी दरिद्रता मिटा कर आप हमको ऐश्वर्ययुक्त करें ॥१॥

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**सूर्य**) सूर्य के (**उषस**) उषा के (**न**) समान (**सिषक्ति**) सयुक्त करता है और (**अभिष्टये**) ऐश्वर्य के लिए (**सञ्चृत**) प्रकाशो से सयुक्त और (**विचृत**) अज्ञानो से रहित (**कृण्वन्**) करता हुआ (**आतस्थौ**) आकर हमारे हृदय मे विराजमान हो । (**य**) जो परमात्मा (**अमर्त्य**) अविनाशी हैं और (**विश्वानि भुवनानि**) सब लोक-लोकान्तरो के (**परि, अर्षति**) चारो ओर व्यापक है । वह (**सोम**) सोमगुणसम्पन्न परमात्मा हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा ने ज्ञानी-विज्ञानी लोगो को सूर्य की प्रभा के समान वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि ज्ञान-विज्ञान द्वारा ही पुरुष तेजस्वी और सूर्य के समान प्रभाकर बन सकता है, अन्यथा नही ॥२॥

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥३॥

पदार्थ—(**सोम**) परमात्मा (**दैव्यजन**) दिव्यगुण वाले (**इन्द्र**) कर्मयोगी को (**मादयन्**) आनन्द करता हुआ (**उपावसु**) स्थिर होता है । (**य**) जो परमात्मा (**गोभि**) पृथिव्यादिको की सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रो से लेकर (**ओषधिषुआ**) ओषधियो तक (**आसृज्यते**) सब ब्रह्माण्डो को रचता है और (**देवानां**) विद्वानो के (**सुम्ने**) सुख के लिए (**इषयन्**) इच्छा करता हुआ (**विद्युता**) विद्युत्रूपी शक्ति से सबको पवित्र करता है और (**धारयासुत.**) सुधामय है ॥३॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष ईश्वरीय विद्या को प्राप्त होकर ससार की रक्षा करना चाहते है, परमात्मा उनके सुख की सदैव वृद्धि करता है ॥३॥

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

पदार्थ—(**सहस्रजित्**) अनन्त शक्तिसम्पन्न परमात्मा विद्वानो की (**इषिरा**) ज्ञानप्रद (**वाच**) वाणी को (**उषर्बुधं**) जो उषाकाल मे जगाने वाली है । उसको (**हिन्वानः**) प्रेरणा करता हुआ (**पवते**) पवित्र बनाता है । (**एष स्यः सोम**) वह परमात्मा (**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप है और (**समुद्र**) अन्तरिक्ष को (**उदियर्ति**) वर्षणशील बनाता है और (**वायुभिः**) अपनी ज्ञानरूपी शक्तियों से (**इन्द्रस्य**) ज्ञानयोगी के (**हार्दि**) हृदयव्यापी (**कलशेषु**) हृदय आकाश मे (**सीदति**) स्थिर होता है ॥४॥

भावार्थ—"समुद्रमिति अन्तरिक्षनामसु पठित" नि० २।१०।५॥ समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्र" जिससे जल का प्रवाह बहे उसका नाम यहां समुद्र है । तात्पर्य यह है कि जिस परमात्मा ने अन्तरिक्षलोक को वर्षणशील और पृथिवीलोक को वसुता प्रदान की है । वह लोक-लोकान्तरो का पति परमात्मा अपनी ज्ञानगति से कर्मयोगी के हृदय मे आकर विराजमान होता है ॥४॥

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥९॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**पयोवृध**) ज्ञान से वृद्धि को प्राप्त जो आप हैं (**त्य**) उस आप को (**गाव**) इन्द्रिया (**पयसा**) ज्ञान द्वारा (**अभि श्रीणन्ति**) सेवन करती हैं और (**सोमं**) सोमगुण विशिष्ट आपका (**स्वर्विद**) जो आप देवताओ के लक्ष्य स्थानीय हैं आपको (**मतिभि**) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (**पवते**) विद्वान् लोग साक्षात्कार करते हैं । (**धनञ्जय**) आप धनञ्जय हैं । सम्पूर्ण जनो के जेता है । (**कृत्व्य.**) सब शक्तियो के केन्द्र हैं । (**रस**) आनन्दरूप हैं । (**विप्रः**) मेधावी हैं । (**कवि**) सर्वज्ञ हैं । (**काव्येन स्वर्चना**) अपनी सर्वशक्ति से सब लोक-लोकान्तरो के प्रलयकर्त्ता हैं ॥५॥

भावार्थ—जो परमात्मा पूर्वोक्तगुणो से सम्पन्न है उसका ज्ञानयोगी अपने चित्तवृत्ति निरोधरूपी योग द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥५॥

८४वा सूक्त और नवां वर्ग समाप्त ।

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चाशीतितमसूक्तस्य—

१-१२ *वेनो भार्गव ऋषि* ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द—१, ५, ६, १० *विराड्जगती* । २, ७ *निचृज्जगती* । ३ *जगती* । ४, ९ *पादनिचृज्जगती* । ८ *आर्चीस्वराड्जगती* । ११ *भुरिक् त्रिष्टुप्* । १२ *त्रिष्टुप्* ॥ स्वर—१-१० *निषाद* । ११, १२ *धैवतः* ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्दव**) कर्मयोगी इस ससार मे (**द्रविणस्वन्त**) ऐश्वर्य वाले होकर (**इह**) इस यज्ञ मे (**सन्तु**) विराजमान हो और (**द्वयाविन**) कठ सच्च का विवेक न करने वाले मायावि पुरुष (**ते रसस्य**) तुम्हारे आनन्द का (**मा मत्सत**) मत लाभ उठावें (**सोम**) हे जगत्कर्त्ता परमात्मन् ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए (**सुषुत**) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (**परिस्रव**) ज्ञान द्वारा उसके हृदय मे आकर विराजमान होओ और (**रक्षसा सह**) राक्षसो करके किए हुए कर्मयोगियों को रोगादिक (**अपभवतु**) दूर हो ॥१॥

भावार्थ जो लोग सत्यासत्य मे विवेक नही कर सकते और असत्य का त्यागकर दृढतापूर्वक सत्य का ग्रहण नही कर सकते वे सदैव सत्यानृत के सागर मे गोते खाते रहते हैं । इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सत्यासत्य का विवेक करके सत्यग्राही बनें ॥१॥

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**समर्ये**) वैदिक यज्ञो मे आप (**अस्मान्**) हमको (**चोदय**) प्रेरणा करें । आप (**देवानां**) विद्वानो के (**दक्षोऽसि**) प्रेरक है । (**हि**) क्योंकि (**प्रियोमदः**) आनन्द के प्यारे हैं । (**शत्रूञ्जहि**) आप अन्यायकारी शत्रुओ का नाश करें और (**अभ्या**) सब प्रकार से हमको प्राप्त हो (**भन्दनायत**) उपासक के (**सोम**) स्तुति को (**पिब**) आप ग्रहण करे और (**नोमृध**) हमारे यज्ञों से विघ्नकारियों को (**अव जहि**) दूर करें ॥२॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मपरायण होकर परमात्मा के स्वरूप मे ध्यान द्वारा प्रविष्ट होते है, परमात्मा उन्हे अवश्यमेव ग्रहण करता है ॥२॥

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**अदब्ध**) किसी से दबाये नहीं जा सकते और (**मदिन्तम**) आनन्दस्वरूप हैं । (**पवसे**) पवित्र करते हैं । (**इन्द्रस्य**) प्रकाशयुक्त विद्युदादि पदार्थो मे (**आत्मा भवसि**) व्यापकरूप से विराजमान हो रहे हैं और (**धासिरुत्तम**) उत्तमोत्तमगुणों को धारण करा रहे हैं । (**बहवो मनीषिण**) बहुत से ज्ञानी-विज्ञानी लोग (**अभिस्वरन्ति**) आपकी स्तुति करते हैं और (**अस्य भुवनस्य**) इस संसार के (**राजानं**) प्रकाशक आपको (**निंसते**) मानते हैं ॥३॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में परमात्मा को आत्मा शब्द से वर्णन किया है । अर्थात् "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा" जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम आत्मा है । यहां सर्वोत्पादक सोम परमात्मा को व्यापकरूप से वर्णन किया है ॥३॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥

पदार्थ—(सहस्रणीथः) आप सहस्राक्ष हैं । (शतधारः) अनेक प्रकार के आनन्दों के स्रोत हैं । (अद्भुतः) आश्चर्यमय हैं । (इन्द्राय इन्दुः) ऐश्वर्य के प्रकाशक हैं । (काम्यं मधु) कामनारूप मधुरता को (पवते) पवित्र करने वाले हैं और (क्षेत्रं जयन्) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड को वशीभूत करते हुए और (अपः) कर्मों को वशीभूत करते हुए (नोगातुं) हमारी उपासना को (उरु कृणु) विस्तृत करें । (सोम) हे परमात्मन् ! आप सब प्रकार के आनन्दों को (मीढ्वः) सिंचन करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा में ज्ञान और आनन्द की अनन्तशक्तियां हैं । बहुत क्या ? सब आनन्दों की वृष्टि करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए उपासकों को चाहिए कि उस सर्वैश्वर्यप्रद परमात्मा की उपासना करें ॥४॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१'व्ययं समया वारमर्षसि ।

मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् (कनिक्रदत्) स्वसत्ता से गर्जते हुए (कलशे) विद्वानों के अन्तःकरण में (गोभिः) अन्तःकरण की वृत्तियों से (अज्यसे) साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं । (अव्ययं) आप । अव्यय स्वरूप के (समया) साथ (वारं) वर्णनीय ज्ञान के पात्र को (अर्षसि) प्राप्त होते हैं । (मर्मृज्यमानः) साक्षात्कार को प्राप्त (अत्यो न) गतिशील पदार्थों के समान (सानसिः) उपासना योग्य आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) अन्तःकरण में (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् आप (समक्षरः) भली-भांति विराजमान होते हैं ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा का अविनाशी भाव जब मनुष्य के हृदय में आता है तो मनुष्य मानो ईश्वर के समीप पहुँच जाता है । इसी का नाम परमात्मप्राप्ति है । वास्तव में परमात्मा किसी के पास चलकर नहीं आता और न किसी से दूर जाता । इसी अभिप्राय से वेद में लिखा है कि "तद्दूरे तद्वन्तिके" अर्थात् अज्ञानियों से दूर और ज्ञानियों के समीप है ॥५॥

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।

स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥१०॥

पदार्थ—(अदाभ्य) हे अदम्भनीय परमात्मन् ! (बृहस्पतये) वाणियों के पति विद्वान् के लिए आप (मधुमान्) मीठे हैं । (मित्राय) सर्वमित्र (वरुणाय) वरणीय (वायवे) ज्ञानयोगी के लिए (स्वादुः) सर्वप्रिय बनाकर (पवस्व) हमको पवित्र करें और (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए आप हमको (स्वादुः) प्रिय बनायें और (सुहवीतुनाम्ने) कर्मयोगी के लिए आप हमको पवित्र करें ॥६॥१०॥

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा की उपासना करते हैं उनकी कुटिलतायें ज्ञानयोग में दग्ध हो जाती हैं । इसलिए वे सर्वप्रिय हो जाते हैं ॥६॥१०॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।

पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७॥

पदार्थ—(मदिरास इन्दवः) आनन्द के वर्द्धक और ज्ञान के प्रकाशक स्वभाव (इन्द्रमाविशन्ति) कर्मयोगी को आकर प्राप्त होते हैं जो कर्मयोगी (सुष्टुतिं) सुन्दर स्तुति करने वाला है । उसको (पवमानाः) परमात्मा के पवित्र भाव (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होते हैं उसे (कलशे) अन्तःकरण में (दशक्षिपः) दशप्राण (अत्यं) गतिशील परमात्मा को (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं । (विप्राणां मतयः) विज्ञानी पुरुषों की बुद्धियां (वाच ईरते) उस परमात्मा में वाणियों का प्रयोग करती हैं ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा की उपासना से मनुष्य को सुन्दर शील मिलता है जिस शील के द्वारा मनुष्य सद्विद्या को प्राप्त होकर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है ॥७॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।

माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

पदार्थ—(पवमानः) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (सुवीर्यमुर्वीं) बल के देने वाले विस्तृत मार्ग को जो (गव्यूतिं) इन्द्रियों का ज्ञानमार्ग है उसको देकर हे परमात्मन् ! आप (महि) महत् (सप्रथः) सब प्रकार से बड़ा (शर्म) सुख (अभ्यर्षा) दें । (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (परिषूतिरीशत) किसी का द्वेषी (नः) हमको (माकिः) मत करो और (त्वया) तुम्हारे से उत्पन्न किया हुआ (धनं धनं) सब धन को (जयेम) हम जीतें ॥८॥

भावार्थ—जिन लोगों के ऐश्वर्य सम्बन्धी इन्द्रिय विशाल होते हैं वह किसी के साथ द्वेष नहीं करते और बुद्धिबल से ही सब ऐश्वर्य उनके अधीन हो जाते हैं ॥८॥

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।

राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९॥

पदार्थ—(कविः) सर्वज्ञ परमात्मा (दिवोरोचना) द्युलोक के प्रकाशक नक्षत्रों को (अरूरुचत्) प्रकाश करता है । वह परमात्मा (विचक्षणः) विविध पदार्थों का द्रष्टा है और (वृषभः) बल वाला है । (अधिद्यामस्थात्) द्युलोक को आश्रित करके स्थिर है (राजा) सबका प्रकाशक है और (पवित्रमत्येति) सर्वोपरि पवित्र है (रोरुवद्दिवः) जो द्युलोक को भी शब्दायमान कर रहा है । (पीयूषं) उस अमृतमय को (नृचक्षसः) विज्ञानी लोग (दुहते) परिपूर्ण करते हैं ॥९॥

भावार्थ—द्युलोक के नक्षत्रादिकों का प्रकाशक स्वयंप्रकाश परमात्मा ही है । उसी से सूर्यचन्द्रादिकों का प्रकाश होता है । वही स्वतःप्रकाश-स्वरूप परमात्मा (पीयूषं) अमृत का धाम है । उसी से नित्य सुख मुक्ति की इच्छा करनी चाहिए ॥९॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।

अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१०॥

पदार्थ—(गिरिष्ठां) वाण्यादिकों के प्रकाशक (उक्षणं) सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा को (वेनाः) याज्ञिक लोग (दुहन्ति) परिपूर्ण रूप से साक्षात्कार करते हैं । जो याज्ञिक (असश्चतः) कामनाओं में समक्त नहीं । (मधुजिह्वाः) मधुर बोलने वाले (दिवो नाके) आध्यात्मिक यज्ञों में जो स्थिर हैं । वे (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (आ) सब ओर से प्राप्त होते हैं । जो परमात्मा (मधुमन्तं) आनन्दस्वरूप है और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (सिन्धोरूर्मा) वाष्परूप परमाणुओं को (वावृधानं) जो बढ़ने वाला है और (अप्सु द्रप्सं) जो सब रसों में सर्वोपरि रस है ॥१०॥

भावार्थ—याज्ञिक लोग जो नित्य मुक्ति सुख की इच्छा करते हैं, वे आनन्दमय परमात्मा का अपने पवित्र अन्तःकरण में ध्यान करते हैं । जिस प्रकार जलादि पदार्थों के सूक्ष्मरूप परमाणु उस विस्तृत नभोमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं इसी प्रकार परमात्मा के अपहत पाप्मादि धर्म उनके रोम रोम में व्याप्त हो जाते हैं । अर्थात् वे सर्वाङ्ग से पवित्र होकर परमात्मा के भावों को ग्रहण करते हैं ॥१०॥

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।

शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११॥

पदार्थ—(वेनानां) उपासक लोगों की (पूर्वीः, गिरः) बहुत सी वाणियां (अकृपन्त) उसकी स्तुति करती हैं । जो (नाके) सुख में (सुपर्णम्) अपनी चित्सत्ता से (उपपप्तिवांसम्) शब्दायमान होता है । शिशुम् श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले इति शिशुः परमात्मा, जो प्रलयकाल में सब पदार्थों को सूक्ष्म कर उसका नाम यहां शिशु है । उस परमात्मा को (रिहन्ति) जो प्राप्त होते हैं (मतयः) सूक्ष्मबुद्धि वाले (पनिप्नतम्) जो शब्दायमान है (हिरण्ययम्) प्रकाशस्वरूप है और (शकुनम्) शक्नोति सर्वं कर्तुमिति शकुनः, जो सर्वशक्तिमान् हो उसका नाम यहां शकुन है (क्षामणिस्थाम्) जो क्षमा में स्थिर है ॥११॥

भावार्थ—परमात्मा विद्वानों की वाणी द्वारा मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित होता है । इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे सदुपदेश द्वारा उसका ग्रहण करें ॥११॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।

भानुः शुक्रेण शोचिषा

व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥११॥४॥

पदार्थ—(विश्वा, रूपा प्रतिचक्षाणोऽस्य) इस सूर्य मण्डल की प्रतिचक्षाण रूपा नाना प्रकार के रूपों को प्रख्यात करता हुआ परमात्मा (अधि, नाके, अस्थात्) सर्वोपरि सुख में विराजमान है । (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि है । और (शुक्रेण) अपने बल से और (शोचिषा) अपनी दीप्ति से (भानुः) सूर्य को भी (व्यद्यौत्) प्रकाशित करता है और (रोदसी मातरा) अन्य लोक-लोकान्तरों का निर्माण करता हुआ द्यावा पृथिवी को (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करने वाला है । (शुचिः) पवित्र है और (गन्धर्वः) सर्वलोक-लोकान्तरों का अधिष्ठाता है ॥१२॥

भावार्थ—परमात्मा अपने प्रकाश से सूर्यचन्द्रादिकों का प्रकाशक है और सम्पूर्ण विश्व का निर्माता, विधाता और अधिष्ठाता है, उसी की उपासना सब लोगों को करनी चाहिए ॥१२॥

८५वां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त ॥

अथाष्टाचत्वारिंशदृचस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य—

ऋषि—१-१० आकृष्टामाषाः । ११-२० सिकता निवावरी । २१-३० पृश्नयोऽजाः । ३१-४० त्रय ऋषिगणाः । ४१-४५ अत्रिः । ४६-४८ गृत्समदः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३३, ४० जगती । २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७ विराड्जगती । ३-५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६ निचृज्जगती । १४, १५, २८, २९, ४३, ४८ पादनिचृज्जगती । २४ आर्चीजगती । ४५ आर्चीस्वराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।

दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (ते) तुम्हारे (धीजवः) ज्ञान के (आशवः) प्राणरूप भाव (रघुजाइवत्मना) विद्युत् के समान शीघ्रगति करने वाले (मदाः) और आनन्दरूप (प्रार्षन्ति) अनायास से प्रतिदिन गति कर रहे हैं और वे भाव (दिव्याः) दिव्य हैं (सुपर्णाः) चेतनरूप हैं (मधुमन्तः) आनन्दरूप हैं (इन्दवः) प्रकाशरूप हैं । (मदिन्तमासः) आह्लादक हैं । वे उपासक के (कोशं) अन्तःकरण में (पर्यासते) स्थिर होते हैं ॥१॥

भावार्थ —जो लोग पदार्थान्तरो से चित्तवृत्ति को हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करने के लिए परमात्मा दिव्यभाव से आकर उपस्थित हो जाते हैं ॥१॥

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२॥

पदार्थ —(**वज्रिणम्, इन्द्रम्**) विद्युत् की शक्ति रखने वाले कर्मयोगी के लिए (**धेनु**) गौ (**न**) जैसे (**वत्स**) अपने बच्चे को (**पयसा**) दूध के द्वारा (**अभिगच्छति**) प्राप्त होती है। इसी प्रकार (**इन्दव.**) परमात्मा के प्रकाशस्वरूप भाव (**मधुमन्त**) जो आनन्दमय हैं। (**ऊर्मय**) और समुद्र की लहरों के समान गतिशील हैं। वे (**मदास**) आह्लादक (**मदिरास**) उत्तेजक (**आशव**) व्याप्तिशीलस्वभाव (**ते**) तुम्हारे लिए (**असृक्षत**) रचे गए हैं। (**यथा**) जैसे (**रथ्यास**) रथ की गति के लिए अश्वादिक (**पृथक्**) भिन्न-भिन्न रचे गए हैं इसी प्रकार (**ते**) तुम्हारे लिए हे उपासक ! उक्त स्वभाव रचे गए हैं ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपासक ! तुम्हारे शरीर रूपी रथ के लिए ज्ञान के विचित्र भाव घोड़ों के समान जिस प्रकार घोड़े रथ को गतिशील बनाते हैं, इसी प्रकार विज्ञानी पुरुष को चित्तवृत्तियां उसके शरीर को गतिशील बनाती हैं ॥२॥

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥३॥

पदार्थ —(**सोम**) परमात्मा (**पुनान**) सबको पवित्र करता हुआ (**इन्द्रियाय धायसे**) धन के धारण कराने के लिए (**अव्यये**) अविनाशी (**पवित्र**) पवित्र आत्मा मे (**अधिसानो**) जो सर्वोपरि विराजमान है ऐसे पवित्र आत्मा के लिए (**वृषा**) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला परमात्मा (**स्वर्वित्**) जो सर्वज्ञ है (**अत्य**) गतिशील पदार्थ के (**न**) समान (**हियान**) प्रेरणा करने वाला परमात्मा (**वाजम्**) यज्ञ के (**अभि**) सन्मुख (**अर्ष**) गति करता है (**दिवो, अद्रिमातरम**) द्युलोक मे मेघ का निर्माता (**कोशम**) निधि को उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा विद्युदादि पदार्थों के समान गतिशील है और प्रकाशमात्र के आधार निधियों का निर्माता है। वही परमात्मा पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुष को ऐश्वर्य सम्पन्न करता है ॥३॥

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥४॥

पदार्थ —(**पवमान**) हे परमात्मन् (**ते**) तुम्हारी (**आश्विनी**) व्याप्ति तथा (**धीजुव**) जो मन के वेग के समान गतिशील और (**दिव्या**) दिव्यरूप हैं। (**धरीमणि**) आपको धारण करने वाले अन्तःकरण में (**पयसासृग्रन**) अमृत को बहाती हुई गमन करती हैं। (**वेधस**) कर्मों का विधान करने वाले (**ऋषिषाण**) ज्ञानी (**ये**) जो (**त्वा**) तुमको (**मृजन्ति**) विचार करके जानते हैं। वे ऋषि (**स्थाविरी**) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले आपको (**अन्त**) अन्तःकरण में (**प्रासृक्षत**) ध्यान का विषय बनाते हैं ॥४॥

भावार्थ —जो लोग दृढ़ता से ईश्वर की उपासना करते हैं। परमात्मा उनके ध्यान का विषय अवश्यमेव होता है। अर्थात् जब तक पुरुष सब ओर से अपनी चित्तवृत्तियों को हटाकर एकमात्र ईश्वरपरायण नहीं होता तब तक वह सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा उसकी बुद्धि का विषय कदापि नहीं होता। इसी अभिप्राय से कहा है कि 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' वह सूक्ष्मदर्शियों की सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही देखा जाता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५॥१२॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**विश्वस्य भुवनस्य**) सम्पूर्ण भुवनों के (**पति**) स्वामी हैं और (**धर्मभि**) अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावादि धर्मों के द्वारा (**राजसि**) विराजमान हैं (**व्यानशि**) और सर्वत्र व्यापक होकर (**पवसे**) सबको पवित्र करते हो (**विश्वचक्ष प्रभो**) हे सर्वज्ञ जगत्स्वामिन् ! (**ते**) तुम्हारी (**ऋभ्वस**) बड़ी (**केतव**) शक्तियां (**परियन्ति**) सर्वत्र विद्यमान हैं और (**ते सत**) तुम्हारी सत्ता से (**विश्वाधामानि**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं ॥५॥

भावार्थ —जो यह संसार के पति हैं, वह अपहतपाप्मादि धर्मों से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥५॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६॥

पदार्थ —(**ध्रुवस्य**) इस ध्रुव परमात्मा का (**सत**) जो सर्वत्र विद्यमान है और (**पवमानस्य**) जोकि सबको पवित्र करने वाला है। उसकी (**रश्मय**) ज्योतियां (**उभयत**) दोनों लोकों में (**परियन्ति**) प्राप्त होती हैं। वे ज्योतियां (**केतव**) सर्वोपरि होने से केतु के समान हैं। (**यदि**) जो (**पवित्र**) पवित्र अन्तःकरण में (**हरि.**) परमात्मा (**अधिमृज्यते**) साक्षात्कार किया जाता है तब (**सत्ता**) उसकी सत्ता (**नि**) निरन्तर (**कलशेषु योना**) अन्तःकरण स्थानों मे (**सीदति**) विराजमान होती है ॥६॥

भावार्थ —जो पुरुष अपने अन्तःकरणों को सत्कर्म द्वारा शुद्ध बनाते हैं। उन्हीं के अन्तःकरणों में परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है, अन्यों के नहीं ॥६॥

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७॥

पदार्थ —(**यज्ञस्य केतु**) ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञ, ध्यानयज्ञ, योगयज्ञ इत्यादि यज्ञों का परमात्मा केतु है। (**पवते**) सबको पवित्र करने वाला है और (**स्वध्वर**) अहिंसाप्रधान यज्ञ वाला है। (**सोम**) वह सौम्य स्वभाव परमात्मा (**देवानां**) विद्वानों के (**निष्कृतम्**) संस्कृत अन्तःकरणों को प्राप्त होता है। (**सहस्रधार**) अनन्तशक्ति-सम्पन्न है और (**कोशम्**) ज्ञानी पुरुष के अन्तःकरण को (**पर्यर्षति**) प्राप्त होता है। वह परमात्मा (**पवित्र**) प्रत्येक पवित्रता को (**अत्येति**) अतिक्रमण करता है अर्थात् सर्वोपरि पवित्र है (**वृषा**) वह बलस्वरूप है और (**रोरुवत**) सर्वत्र शब्दायमान है ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा अपनी अनन्त शक्ति से सर्वत्र विराजमान है यद्यपि वह सर्वत्र विद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति विद्वानों के अन्तःकरण में ही होती है, अन्यत्र नहीं ॥७॥

राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मि सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥८॥

पदार्थ —जो परमात्मा (**पृथिव्या**) पृथिवीलोक और (**महोदिव**) इस बड़े द्युलोक का (**धरुण**) आधार है। (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**नद्य.**) सब समृद्धियों को और (**अव्यय समद्रम्**) इस अविनाशी अन्तरिक्ष को (**विगाहते**) विगाहन करता है। (**अपामूर्मिम्**) जल की लहरें रूप नदियों को (**सिन्धुषु**) महासागरों में (**सचते**) संगत करता है। (**श्रित**) वह सबका आश्रय होकर (**अध्यस्थात**) विराजमान हो रहा है और (**सानुनाभा**) उच्च से उच्च शिखरों के मध्य में भी विराजमान है ॥८॥

भावार्थ —यद्यपि स्थूलदृष्टि से यह पृथिव्यादि लोक अन्य पदार्थों के अधिष्ठान प्रतीत होते हैं तथापि सर्वाधिष्ठान एकमात्र परमात्मा ही है क्योंकि सब लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाला और ग्रह-उपग्रहों को सूर्यादि बड़ी-बड़ी ज्योतियों में संगत करने वाला एकमात्र परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है कोई अन्य वस्तु नहीं ॥८॥

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद्द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥९॥

पदार्थ —जो परमात्मा (**दिव सानु**) द्युलोक के उच्चशिखर को (**स्तनयन्**) विस्तार करने की (**न**) नाईं (**अचिक्रदत्**) गर्ज रहा है (**च**) और (**यस्य धर्मभि**) जिसके धर्मों से (**द्यौ**) द्युलोक और पृथिवीलोक स्थिर है वह परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**सख्य**) मैत्रीभाव को (**पवते**) पवित्र करता है तथा (**विवेविदत्**) प्रसिद्ध करता है। वह (**सोम**) परमात्मा (**पुनान**) हमको पवित्र करता हुआ (**कलशेषु**) हमारे अन्तःकरणों में (**सीदति**) विराजमान होता है ॥९॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का निरूपण किया है कि द्युलोक और पृथिवीलोक किसी चेतन वस्तु के सहारे से स्थिर हैं और उस चेतन में भी जगत्कर्तृत्वादि-धर्मों से इनको धारण किया है और द्युलोक तथा पृथिवी लोक स्थिर है। इससे स्पष्ट सिद्ध है यहां ईश्वर का वर्णन है ॥९॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥१३॥

पदार्थ —वह परमात्मा (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**ज्योति**) ज्योति है और (**मधु**) आनन्दरूप है। (**प्रियं पवते**) जो उससे प्रेम करते हैं उन्हें पवित्र करता है। (**देवाना**) सब लोक-लोकान्तरों का (**पिता**) पालन करने वाला और (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला है (**विभूवसु**) और अत्यन्त ऐश्वर्य वाला है (**स्वधयोरपीच्य**) तथा द्यावा-पृथिवी के अन्तर्गत (**रत्न**) रत्नों को (**दधाति**) धारण करता है और वह परमात्मा (**मदिन्तम**) आनन्दस्वरूप है तथा (**मत्सरः**) सबको आनन्द देने वाला है और (**इन्द्रिय**) ऐश्वर्ययुक्त है तथा (**रस**) आनन्दस्वरूप है ॥१०॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा को नानाविध रत्नों का धाता, विधाता और निर्माता कथन किया है। अर्थात वही सृष्टि का धारण करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही प्रलय करने वाला है। इस मन्त्र में "मत्सर" और 'मदादिक' जो नाम आए हैं वे परमात्मा के गौरव को कथन करते हैं। आधुनिक संस्कृत में मद-मत्सरादि नाम बुरे अर्थों में आने लगे हैं। वेद में इनके ये अर्थ न थे ॥१०॥१३॥

देवेत्व वा अहमस्मि" कि "मैं, तू," और "तू मैं" इस प्रकार की अहग्रह उपासना द्वारा अर्थात् अभेदोपासना द्वारा परमात्मा का ध्यान करते हैं ॥२०॥

अयं पुनान उषसो विरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१॥

पदार्थ—(**अय**) पूर्वोक्त परमात्मा अपनी शक्तियों से (**पुनान**) पवित्र करता हुआ और (**उषस**) उषाकाल का (**विरोचयत्**) प्रकाश करता हुआ (**सिन्धुभ्य**) स्यन्दनशील प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वो से (**लोककृत्**) संसार का करने वाला (**अभवत्**) हुआ (**उ**) यह दृढ़ताबोधक है। (**अयं त्रि सप्त**) यह परमात्मा प्रकृति के एकविंशति महत्तत्त्वादि तत्त्वो को (**दुदुहान**) दोहन करता हुआ (**आशिर**) ऐश्वर्य को उत्पन्न करके (**सोम**) यह जगदुत्पादक परमात्मा (**चारु-मत्सर**) जो अत्यन्त आह्लादक है वह (**हृद्ये**) हमारे हृदय मे (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है ॥२१॥

भावार्थ—परमात्मा ने प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न किया और महत्तत्त्व से जो अहङ्कारादि एकविंशति गण है उसी का यहां "त्रि सप्त" शब्द से गणन है किसी अन्य का नही ॥२१॥

पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन ! (**दिव्येषु धामसु**) द्युलोकादि स्थानो मे (**सृजान**) उक्त सृष्टि को रचने वाले आप (**पवस्व**) पवित्र करें। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप ! (**पवित्रे कलशे**) पवित्र अन्तःकरणो मे (**आसीदन्**) स्थिति करते हुए आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी की (**जठरे**) सत्ता स्फूर्ति देने वाली जठराग्नि मे (**कनिक्रदत्**) गर्जते हुए (**नृभिर्यत**) मनुष्यो के स्थान के विषय आप (**दिवि**) द्युलोक मे (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आरोहय**) आश्रय करें ॥२२॥

भावार्थ—परमात्मा सूर्य-चन्द्रमादिको का निर्माण करता हुआ इस विविध प्रकार की रचना का निर्माण करके प्रजा को उद्योगी बनाने के लिए कर्मयोगी की कर्माग्नि को प्रदीप्त करता है ॥२२॥

अद्भिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के कर्म प्रदीप्त (**जठरेषु**) अग्नि मे (**आविशन्**) प्रवेश करते हुए (**अद्भिः सुत**) कर्म से संस्कार किये हुए कर्मयोगी को (**पवसे**) पवित्र करते है। (**आ**) और (**पवित्रे**) उसके पवित्र अन्तःकरण मे (**अभव**) निवास करें। (**नृचक्षा**) तुम सर्वद्रष्टा हो (**विचक्षण**) तथा सर्वज्ञ हो। (**सोम**) हे जगदुत्पादक ! आप (**अङ्गिरोभ्य**) प्राणायामादि द्वारा (**गोत्र**) कर्मयोगी के शरीर की रक्षा करें और उसके विघ्नो को (**अपावृणो**) दूर करें ॥२३॥

भावार्थ—"गौर्वाग्गृहीता अनेनेति गोत्रं शरीरम्" जो वाणी को ग्रहण करे उसका नाम यहां गोत्र है इस प्रकार यहां शरीर और प्राणो का वर्णन इस मन्त्र मे किया गया है। वास्तव मे यह प्रकरण कर्मयोगी का है और उसी को प्राणो की पुष्टि के द्वारा विघ्नो को दूर करना लिखा है ॥२३॥

त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**पवमान त्वां**) सर्वपूज्य तुझको (**स्वाध्य**) सुकर्मी लोग (**विप्रास**) जो मेधावी हैं और (**अवस्यव**) आपकी उपासना की इच्छा करने वाले हैं। वे (**अन्वमदन्**) आपकी स्तुति करते हैं। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप (**त्वां**) तुझको (**सुपर्ण**) बोधयुक्त उपासक (**आभरत्**) उपासना द्वारा ग्रहण करता है। तुम कैसे हो (**दिवस्परि**) कि द्युलोक की भी मर्यादा को उल्लघन करके वर्तमान हो और (**विश्वाभिर्मतिभि**) सम्पूर्ण ज्ञानो से (**परिष्कृतम्**) अलंकृत हो ॥२४॥

भावार्थ—जो लोग विद्या द्वारा अपनी बुद्धि का परिष्कार करते हैं वे ही परमात्मा की विभूति को जान सकते हैं, अन्य नहीं ॥२४॥

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५॥१६॥

पदार्थ—(**अव्ये वारे**) वरणीय पुरुष को (**ऊर्मिणा**) प्रेम मे (**पुनान**) पवित्र करने वाले (**हरिम**) परमात्मा को (**सप्तधेनव**) इन्द्रियो की सात वृत्तियां (**अभिनवन्ते**) प्राप्त होती हैं (**अपामुपस्थे**) कर्मों की अध्यक्षता मे जो (**कवि**) सर्वज्ञ है उसको (**अध्यायव**) उपासक लोग जो (**महिषा**) महाशय हैं वे (**ऋतस्य योना**) सच्चाई के स्थान मे (**अध्यहेषत**) उपासना करते हैं ॥२५॥

भावार्थ—सदसद्विवेकी लोग अन्य उपास्य देवो की उपासना को छोड़कर सब कर्मों के अधिष्ठाता परमात्मा की ही एकमात्र उपासना करते हैं किसी अन्य की नहीं ॥२५॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥

पदार्थ—(**यज्वे**) यज्ञ करने वाले यजमानो के लिए परमात्मा (**विश्वानि सुपथानि**) सब रास्तो को (**कृण्वन्**) सुगम करता हुआ (**मृधः**) उनके विघ्नो को (**अतिगाहते**) मर्दन करता है और (**पुनान**) उनको पवित्र करता हुआ और (**निर्णिज**) अपने रूप को (**गा. कृण्वान**) सरल करता हुआ (**हर्यत**) वह कान्तिमय परमात्मा (**कवि**) सर्वज्ञ (**अत्योन**) विद्युत् के समान (**क्रीळन्**) क्रीड़ा करता हुआ (**वार**) वरणीय पुरुष को (**पर्यर्षति**) प्राप्त होता है ॥२६॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा की आज्ञाओ का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिए सब रास्तो को सुगम करता है ॥२६॥

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥

पदार्थ—(**उदन्युव**) प्रेम की (**ता**) वे (**शतधारा**) सैकड़ो धाराएं (**असश्चत**) जो नानारूपो मे (**अभिश्रिय**) स्थिति को लाभ कर रही हैं। वे (**हरिं**) परमात्मा को (**अवनवन्ते**) प्राप्त होती हैं। (**गोभिरावृत**) प्रकाशपुञ्ज परमात्मा को (**क्षिप**) बुद्धिवृत्तियां (**मृजन्ति**) विषय करती हैं। जो परमात्मा (**दिवस्तृतीये पृष्ठे**) द्युलोक के तीसरे पृष्ठ पर विराजमान है और (**रोचने**) प्रकाशस्वरूप है उसको बुद्धिवृत्तियां प्रकाशित करती हैं ॥२७॥

भावार्थ—द्युलोकादिको के प्रकाशक परमात्मा को मनुष्य ज्ञान की वृत्तियो से ही साक्षात्कार करता है अन्यथा नहीं ॥२७॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥२८॥

पदार्थ—(**तव दिव्यस्य, रेतस**) तुम्हारे दिव्य सामर्थ्य से (**इमा प्रजा**) ये सब प्रजा उत्पन्न हुई है। (**त्व**) तुम (**विश्वस्य भुवनस्य**) सम्पूर्ण सृष्टि के (**राजसि**) राजा होकर विराजमान हो। (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन ! (**इद विश्व**) ये सम्पूर्ण संसार (**ते वशे**) तुम्हारे वश मे है। (**अथ**) और (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! (**त्व प्रथम**) तुम ही पहले (**धामधा**) सबके निवास स्थान (**असि**) हो ॥२८॥

भावार्थ—परमात्मा सबका अधिकरण है इसलिए सब भूतो का निवास स्थान वही है ॥२८॥

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥

पदार्थ—(**विश्ववित् कवे**) हे सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता परमात्मन् (**त्व**) तुम (**समुद्रोऽसि**) समुद्र हो "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्र" जिसमे सब भूत उत्पत्ति स्थिति प्रलय को प्राप्त हों उसका नाम यहां समुद्र है। (**तव विधर्मणि**) तुम्हारी विशेष सत्ता मे (**इमा पञ्च प्रदिश**) इन पांचो भूतो से सूक्ष्म पञ्च तन्मात्रा विराजमान है और (**त्व द्याञ्च**) आप द्युलोक को (**पृथिवीञ्च**) और पृथिवीलोक को अति (**जभ्रिषे**) भरणपोषण करते हैं और हे पवमान परमात्मन् ! (**सूर्य**) सूर्य भी (**तव ज्योतींषि**) तुम्हारी ज्योति है ॥२९॥

भावार्थः—सम्पूर्ण भूतो की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का हेतु होने से परमात्मा का नाम समुद्र है। उसी सर्वाधार सर्वनिधि महासागर से यह सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता है। किसी अन्य से नहीं ॥२९॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा
विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥१७॥

पदार्थः—(**त्व**) तुम (**पवित्रे विधर्मणि**) अपने पवित्र स्वरूप मे (**देवेभ्यो रजस**) दिव्यगुणयुक्त रजोगुण के परमाणुओं से इस संसार को उत्पन्न करते हो। (**सोम**) हे परमात्मन् (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले (**पूयसे**) तुम पवित्र करते हो। (**त्वामुशिज**) तुमको विज्ञानी लोगो ने (**प्रथमा.**) पहले (**अगृभ्णत**) ग्रहण किया। (**तुभ्य इमा**) तुम्हारे लिये ये (**विश्वाभुवनानि**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर (**येमिरे**) अपने आपको समर्पित करते हैं ॥३०॥

भावार्थ—परमात्मा ही सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो की उत्पत्ति का कर्ता है और उसी की विभूति को सब लोक-लोकान्तर प्रदीप्त कर रहे हैं ॥३०॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१॥

पदार्थ—(**रेभ**) शब्दब्रह्म का आधार परमात्मा (**वारमव्ययं**) वरणीय उपासक को (**प्र, अत्येति**) भलीभांति प्राप्त होता है। जो परमात्मा (**वृषा**) सबों का दाता है (**स हरि**) वह सबको स्वसत्ता में लीन करने वाला परमात्मा (**वनेषु**)

उपासनाओं मे (अचिक्रदत्) शब्दायमान होता है । (धीतयः) उपासक लोग (वावशानाः) उसकी उपासना मे मग्न हुए (समनूषत) भली-भांति उसकी स्तुति करते हैं । (परिस्रुतम्) उस शब्द ब्रह्म के आदि कारण ब्रह्म को जो (शिशुं) सबका लक्ष्य स्थान है । उसको (मतयः) सुमति लोग (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥३१॥

भावार्थ.—जो लोग चित्तवृत्ति को अन्य प्रवाहों से हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं । वही परमात्मा का भली-भांति साक्षात्कार करते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।

नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२॥

पदार्थ—वह परमात्मा (यथाविदे) यथार्थ ज्ञानी के लिए (त्रिवृत) तीन प्रकार के ब्रह्मचर्य्य को (तन्वानः) विस्तार करता हुआ (तन्तु परिव्यत) सन्ततिरूप तन्तु का विस्तार करता है (स) और वह परमात्मा (सूर्य्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाश करता हुआ (ऋतस्य प्रशिषः) सच्चाई की प्रशसा (नवीयसीः) जो कि नित्य नूतन है उसको (नयन्) प्राप्त कराता हुआ (जनीना) मनुष्यो के (निष्कृत) सस्कृत अन्त करण को (उपयाति) प्राप्त होता है । (पतिः) वही परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पति है ॥३२॥

भावार्थ - परमात्मा इस ससार मे प्रथम मध्यम उत्तम ३ प्रकार के ब्रह्मचर्य की मर्यादा को निर्माण करता है उन कृतब्रह्मचर्य पुरुषो से शुभसन्ततिका प्रवाह ससार मे प्रचलित होता है ॥३२॥

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।

सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥

पदार्थ—(हरिः) परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (वाचं जनयन) वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करता हुआ (उपावसु) सब धनों का आधार (परिषिच्यते) विद्वानों द्वारा उपासना किया जाता है । (सहस्रधार) वह अनन्त-शक्तिमान् है । (सिन्धूनां राजा) और स्यन्दनशील सब पदार्थों का राजा है और (दिव) द्युलोक का (पति) पति है । (ऋतस्य पथिभि) सच्चाई के रास्तो से (कनिक्रदत्) वह शब्दायमान ब्रह्म (याति) अपने भक्तो की गति करता है तथा (पवते) उनको पवित्र करता है ॥३३॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करके सदा उपदेश करता है । परमात्मानुयायी पुरुषो को चाहिये कि उसकी आज्ञानुसार अपना जीवन बनावें ॥३३॥

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।

गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (मह्यर्णः) गतिस्वरूप हैं (विधावसि) अपनी गति से सबको गमन कराते हैं । (सूर न) जैसे सूर्य (चित्र) नानावर्ण-विशिष्ट (अव्ययानि) रक्षायुक्त पदार्थों को (पव्यया) अपनी शक्ति से पवित्र करते हैं । इसी प्रकार (गभस्तिपूतः) आप की रोशनी से पवित्र हुए आपके उपासक (अद्रिभिर्नृभि) आपको साक्षात्कार करने वाली चित्तवृत्तियो द्वारा (सुत.) आपकी उपासना करते हैं (महेवाजाय) तब आप बड़े ऐश्वर्य के लिये और (धन्याय) धन के लिये (धन्वसि) ऐश्वर्यप्रद होते हैं ॥३४॥

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा स्वाश्रित पदार्थों को प्रकाशित करता है । इसी प्रकार परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति से अपने भक्तो का प्रकाशक है ॥३४॥

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।

इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥३५॥१८॥

पदार्थ.—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् आप (इष) ऐश्वर्य और (ऊर्जं) बल को (अभ्यर्षसि) देते हैं । (श्येनो न) जिस प्रकार बिजली (वसुकलशेषु) निवास योग्य स्थानो मे स्थिर होती है । इसी प्रकार (सीदसि) आप पवित्र अन्त करणो मे स्थिर होते हैं । (इन्द्राय) आप कर्मयोगी के लिये (मद्वा) आनन्द करने वाले (मद्य.) और आनन्द के हेतु हैं । (मद.) स्वय आनन्दस्वरूप हैं । (सुत) स्वयं-सिद्ध हैं । (दिवो विष्टम्भ) द्युलोक के आधार हैं । (उपमः) और द्युलोक की उपमा वाले हैं । (विचक्षणः) सर्वोपरि प्रवक्ता हैं ॥३५॥

भावार्थ.—परमात्मा द्युम्वादि लोकों का आधार है और उसी के आधार मे चराचर सृष्टि की स्थिति है और वेदादि विद्याओं का प्रवक्ता होने से वह सर्वोपरि विचक्षण है ॥३५॥

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।

अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥

पदार्थः—(सप्त स्वसार) ज्ञानेन्द्रियो के सप्त छिद्रो से गति करने वाली इन्द्रियो की सात वृत्तियां (अभिमातरः) जो ज्ञान योग्य पदार्थ को प्रमाणित करती हैं । वे (शिशु) सर्वोपास्य परमात्मा को (नवं) जो नित्य नूतन है (जज्ञान) और स्फुट है (जेन्य) सबका जेता (विपश्चित) और सबसे बड़ा विज्ञानी है, उसको विषय करती है । जो परमात्मा (अपां) जलों का (गन्धर्व) और पृथिवी का धारण करने वाला है (दिव्य) दिव्य है । (नृचक्षस) सर्वान्तर्यामी है (सोम) सर्वोत्पादक है । उसकी (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सम्पूर्ण भवनो के ज्ञान के लिए विद्वान् लोग उपासना करते हैं ॥३६॥

भावार्थः—परमात्मा का ध्यान इसलिए किया जाता है कि परमात्मा अपहृत-पाप्मादि गुणो को देकर उपासक को भी दिव्य दृष्टि दे । ताकि उपासक लोक-लोकान्तरो के ज्ञान को उपलब्ध कर सके । इसी अभिप्राय से योग मे लिखा है कि 'भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्' परमात्मा मे चित्तवृत्ति का निरोध करने से लोक-लोकान्तरों का ज्ञान होता है ॥३६॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।

तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (ईशान) आप ईश्वर हैं । (इमा भुवनानि) इन सब भुवनो को (वीयसे) चलाते हैं । (हरित) हरणशील-शक्तियां (सुपर्ण्य) जो चेतन हैं । उनको (युजान.) नियुक्त करते हैं । (ता) वे (ते) तुम्हारी शक्तियां (मधुमद्घृत) मीठा प्रेम हमारे लिए (क्षरन्तु) बहायें । (पय·) और दुग्धादि स्निग्ध पदार्थों का प्रदान करें । (सोम) हे परमात्मन् ! (तव व्रते) तुम्हारे नियम मे (कृष्टय) सब मनुष्य (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें ॥३७॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा के नियम मे स्थिर रहने का वर्णन है जैसा कि (अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि) इत्यादि मन्त्रो मे व्रत की प्रार्थना है यहां भी परमात्मा के नियमरूप व्रत के परिपालन की प्रार्थना है ॥३७॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।

स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्व) तुम (नृचक्षा असि) मनुष्यो के कर्मों के भिन्न-भिन्न फल देने वाले हो और (पवमान) हे पवित्र करने वाले (विश्वत) सब प्रकार से (वृषभ) हे अनन्तशक्तियुक्त परमात्मन् ! (ता विधावसि) उन शक्तियो मे आप हमको शुद्ध करें । (स) उक्त शक्तियुक्त आप (न) हमको (पवस्व) पवित्र करें । आप (वसुमत्) ऐश्वर्य वाले और (हिरण्यवत्) प्रकाश वाले हैं । (वय) हम (भुवनेषु) इस ससार मे (जीवसे) जीने के लिए (स्याम) उक्त ऐश्वर्ययुक्त हों ॥३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा को कर्मों के साक्षीरूप से वर्णन किया है ॥३८॥

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।

त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (गोवित्) आप विज्ञानी हैं । ज्ञान से (पवस्व) हमे पवित्र करें । (वसुवित्) ऐश्वर्य से सम्पन्न है ऐश्वर्य से हमको पवित्र करें । (हिरण्यवित्) प्रकाश-रूप हैं प्रकाश से हमको पवित्र करें । (रेतोधा) आप प्रजा के बीजस्वरूप सामर्थ्य को धारण करने वाले हैं । (भुवनेषु अर्पित) और सब ससार मे व्याप्त हैं । (त्व) तुम (सुवीरोऽसि) सर्वोपरि बल-युक्त हो । (सोम) सर्वोत्पादक हो (विश्ववित) सर्वज्ञाता हो । (त त्वा) उक्त-गुणयुक्त आपको (विप्रा) विद्वान् लोग (उपगिरेम) उपासना करते हुए (आसते) स्थित होते हैं ॥३९॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा को ज्ञान, प्रकाश और क्रिया इत्यादि अनन्तगुणो के आधार रूप से वर्णन किया है, इसी आशय को लेकर (स्वभाव की ज्ञान बल क्रिया इत्यादि) उपनिषद्वाक्यो मे परमात्मा को ज्ञान बल क्रिया का आधार वर्णन किया है ॥३९॥

उन्मध्व ऊर्मिर्वननां अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।

राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥१९॥

पदार्थः—(मध्व) मीठी (ऊर्मिर्वनना) लहरो वाली वेदवाणी (अतिष्ठिपत्) तुम आश्रय किये हो । तथा (राजा) तुम सबको प्रकाश देने वाले हो और (पवित्ररथ) आप पवित्रगति वाले हैं । तथा (वाजमारुहत्) ऐश्वर्यरूपी शक्तियो को आश्रय किए हुए हो और (सहस्रभृष्टि.) अनन्तशक्तियो से इस ससार को पालन करने वाले हो । तथा (बृहच्छ्रव) बड़े यश वाले हो और (जयति) सर्वोत्कृष्टता से वर्तमान हो । उक्तगुण-सम्पन्न आपको (अपोवसान.) कर्मयोगी (महिष·) महापुरुष (विगाहते) साक्षात्कार करता है ॥४०॥

भावार्थ.—महिष शब्द के अर्थ यहां महापुरुष के हैं । महिष इति महन्नामसु पठितम् । नि० अ० ३ । खं० १३ ॥ महिष यह निरुक्त मे महत्व का वाचक है महापुरुष यहां कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को माना है । उक्त पुरुषो मे महत्व परमात्मा के सद्गुणों के धारण करने से आता है इसलिये इनको महापुरुष कहा है ॥४०॥

स मन्दना उदियर्ति प्रजावती विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।

ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१॥

पदार्थ—(**स**) पूर्वोक्त कर्मयोगी (**वन्दना**) वन्दना (**उवियर्ति**) करता है, जो वन्दना (**अहर्दिवि**) सर्वदा (**प्रजावतीः**) शुभप्रजा को देने वाली है तथा (**विश्वायु**) सम्पूर्ण आयु को देने वाली है और (**विश्वा**) सब प्रकार की (**सुभरा**) पूर्तियों को करने वाली है। (**ब्रह्म**) वेद (**प्रजावत्**) जो सदुपदेश द्वारा शुभप्रजाओं को देने वाला है और (**रयिं**) धन और (**अश्वपस्त्य**) अन्य गतिशील पदार्थों को देने वाला है। (**पीत.**) नित्यतृप्त (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्र**) कर्मयोगी को तथा (**अस्मभ्य**) हमारे लिए उक्त ऐश्वर्य (**यावतात्**) दें ॥४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हुए वेदों के सदुपदेशरूपी महत्व का वर्णन किया है ॥४१

सो अग्र अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२॥

पदार्थ—(**स सोम**) उक्त गुण-सम्पन्न परमात्मा (**अह्नामग्र**) इस दिन रात से पहले (**हर्यतो हरि**) हरण करने वाली शक्तियों का हरण करने वाला था। (**मद**) आनन्द स्वरूप था और (**अनुद्युभि**) द्युआदि लोकों को (**चेतसा**) अपनी चैतन्यरूप शक्ति से (**प्रचेतयते**) गतिशील करने वाला था (**द्वाजना**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों पुरुषों को (**यातयन्**) वेदविधि से प्रेरणा करके (**अन्तरीयते**) इस द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य गतिशील है (**च**) और (**नरा**) उक्त दोनों पुरुषों को (**शंस**) प्रशंसनीय (**दैव्य**) दिव्य (**च**) और (**धर्तरि**) धारण विषय में सर्वोपरि बनाता है ॥४२॥

भावार्थ—वह परमात्मा इस प्रकृति की नानाविध शक्तियों का संयोजन करता हुआ कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों प्रकार के पुरुषों को प्रशंसनीय बनाता है ॥४२॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

पदार्थ—(**अञ्जते**) उक्त परमात्मा अपने ज्ञान द्वारा गति का हेतु है और (**व्यञ्जते**) पूर्वकृत कर्मों के द्वारा जीवों के विविध प्रकार के जन्मों का हेतु है तथा (**समञ्जते**) स्वयं न्यायशील होकर गति का हेतु है इसलिए सम्यग्गति कराने वाला कथन किया गया और (**क्रतु**) यज्ञरूप परमात्मा को (**रिहन्ति**) उपासक लोग ग्रहण करते हैं। जो परमात्मा (**मधुना**) अपने आनन्द से (**अभ्यञ्जते**) सर्वत्र प्रकट है और (**सिन्धोरुच्छ्वासे**) जो सिन्धु की उच्च लहरों में (**पतयन्त**) गिरा हुआ मनुष्य है (**उक्षण**) और बलस्वरूप है (**हिरण्यपावा**) और सदसद्वि की है और (**पशु**) जो ज्ञान दृष्टि से देखता है "पशु पश्यतेरिति निरुक्तम्" ३।१६ उक्त पुरुष को परमात्मा (**आसु**) अपने आर्द्रभाव से अर्थात् कृपादृष्टि में (**गृभ्णते**) ग्रहण करता है ॥४३॥

भावार्थ—परमात्मा पतितोद्धारक है जो पुरुष अपने मन्द कर्मों से गिरकर भी उद्योगी बना रहता है, परमात्मा उसका अवश्यमेव उद्धार करता है ॥४३॥

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४॥

पदार्थ—हे ज्ञानीपुरुषो ! (**विपश्चिते**) सर्वज्ञ परमात्मा के (**पवमानाय**) जो सबको पवित्र करने वाला है, उसके लिए आप (**गायत**) गान करें जो (**धारा न**) धारा के समान (**मही**) बड़े (**अन्धः**) ऐश्वर्य का (**अर्षति**) देने वाला है। जिसका जानकर पुरुष (**अहि**) सांप की (**जूर्णां त्वच न**) जीर्णत्वचा के समान (**अतिसर्पति**) त्याग कर गमन करता है (**अत्यो न**) विद्युत के समान (**क्रीळन**) क्रीडा करता हुआ (**असरत**) सर्वत्र गतिशील होता है और (**वृषा**) सब कामनाओं की वृष्टि करता है (**हरि**) तथा सब विपत्तियों को हर लेता है ॥४४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा की उपासना का कथन किया गया है कि, हे उपासक लोगो तुम उस सर्वज्ञ पुरुष की उपासना करो जो सर्वोपरि विज्ञानी और पतितोद्धारक है। इस मन्त्र में विपश्चित् शब्द परमात्मा के लिए आया है और पहले-पहल (विपश्चित्) शब्द मेधावी के लिए वेद में ही आया है। इसी का अनुकरण आधुनिक कोषों में भी किया गया है ॥४४॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो
ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ।४५॥२०॥

पदार्थ—जो परमात्मा (**अग्रेग**) सबसे पहले गति करने वाला है, तथा (**राजा**) सबका स्वामी है और (**अप्य**) सर्वगत है (**तविष्यते**) वह स्तुति किया जाता है। (**अह्नोविमान**) सूर्यचन्द्रमादिकों का निर्माता है (**भुवनेष्वर्पित**) सब लोकों में स्थिर है और (**हरि**) हरणशील है तथा (**घृतस्नु**) प्रेम को चाहने वाला है, तथा (**सुदृशीक**) सुन्दर है। (**अर्णव**) सुखों का समुद्र है (**ज्योतीरथ**) ज्योति स्वरूप है और (**ओक्य**) सबका निवासस्थान है यह परमात्मा (**राये**) ऐश्वर्य के लिये (**पवते**) हमें पवित्र करे ॥४५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा का सर्वाधिकरणरूप से वर्णन किया है, जैसा कि (यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः) ऋ०१।१५४।२ । में यही वर्णन किया है कि सर्व लोक-लोकान्तर उसी में निवास करते हैं ॥४५॥

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६॥

पदार्थ—जो परमात्मा (**दिव स्कम्भ**) द्युलोक का आधार है और (**त्रिधातुर्भुवनानि**) प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य जो लोक हैं उनको (**पर्यर्षति**) चलाने वाला है और (**मद**) आनन्दस्वरूप है तथा (**उद्यत**) अपनी सत्ता में सदैव जीवित जाग्रत है (**असर्जि**) उसने इन लोक-लोकान्तरों को रचा। (**अंशु**) उस गतिशील (**पनिप्नत**) शब्दायमान परमात्मा को (**मतय**) बुद्धिमान् (**गिरा**) वेदवाणी द्वारा (**रिहन्ति**) साक्षात्कार करते हैं। जब-जब (**यदि**) जब-जब (**निर्णिज**) उस शुद्धस्वरूप को (**ऋग्मिण**) स्तोता लोग स्तुति द्वारा (**ययु**) प्राप्त होते हैं ॥४६॥

भावार्थ—जब उपासक शुद्धभाव से उसका स्तवन करता है तो उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होती है ॥४६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ
सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**यद्**) जब आप (**गोभि**) ज्ञानी पुरुषों द्वारा (**चम्वो**) आध्यात्मिक वृत्तियों की सेना के सम्बन्ध में (**समज्यसे**) उपासना किए जाते हो तब आप (**आसुवान**) सर्वव्यापक (**सोम**) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन् ! (**कलशेषु**) उपासकों के अन्तःकरणों में (**सीदसि**) विराजमान होते हो और (**ते धारा**) तुम्हारी प्रेम की धारायें (**अत्यण्वानि**) जो सूक्ष्म हैं (**संयत**) संयमी पुरुष को (**पुनानस्य**) जो सदुपदेश द्वारा सबको पवित्र करने वाला है उसको (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं जो प्रेमधाराये (**रंहय**) गतिशील हैं ॥४७॥

भावार्थ—जब उपासक बाह्यवृत्तियों का निरोध करके अन्तर्मुख होकर परमात्मा का ध्यान करता है तो वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥४७॥

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥२१॥

पदार्थ—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**क्रतुवित्**) कर्मों के वेत्ता हैं (**न**) हमको आप (**पवस्व**) पवित्र करें। (**उक्थ्य**) आप सर्वोपासनाओं के आधार हैं और (**अव्य**) रक्षक हैं तथा (**वारे**) वरणीय पुरुष में (**प्रिय मधु**) प्यारे आनन्द को (**परिधाव**) दें। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप ! (**अत्रिणो विश्वान् रक्षस**) सम्पूर्ण हिंसक राक्षसों को आप (**जहि**) मारें (**सुवीरा**) सुन्दर सन्तान वाले हम (**विदथे**) बड़े-बड़े यज्ञों में (**बृहद्वदेम**) आपकी अत्यन्त स्तुति करें ॥४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में राक्षसों से तात्पर्य यज्ञविघ्नकारी दुराचारियों से है क्योंकि (रक्षन्ति यस्मात्ते राक्षसा) जिनसे रक्षा की जाय उनका नाम यहाँ राक्षस है तात्पर्य यह कि सब विघ्नों से बचाकर परमात्मा हमारे यज्ञों की पूर्ति करें ॥४८॥

इति षडशीतितमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥
यह ८६वाँ सूक्त और २१वाँ वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य—

१—९ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ७, ९ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अस्मिन् सूक्ते ऋषिविप्रादिनामभिः परमात्मैव वर्ण्यते—

इस सूक्त में ऋषिविप्रादिनामों से परमात्मा का ही वर्णन है—

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (**तु**) शीघ्र (**प्रद्रव**) गमन करो और गमन करके (**कोश**) कर्मयोगी के अन्तःकरण को (**परिनिषीद**) ग्रहण करो (**नृभि**) और मनुष्यों में (**पुनान**) पूज्यमान आप (**वाज**) बल की (**अभ्यर्ष**) वृष्टि करो (**अश्व**) विद्युत् के (**न**) समान (**त्वा वाजिन**) बलस्वरूप आपकी (**मर्जयन्त**) उपासना करते हुए उपासक लोग (**अच्छा बर्हि**) यज्ञ के प्रति आपकी (**रशनाभि**) उपासना द्वारा (**नयन्ति**) आपका साक्षात्कार करते हैं ॥१॥

भावार्थ—यहाँ (वाजी) नाम बलवान् का है, बलस्वरूप परमात्मा से यहाँ हृदय की शुद्धि की प्रार्थना की गई है, 'वाज' शब्द के अर्थ (अन्न, ऐश्वर्य और बल) ही हैं इसलिए (ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वम्) इत्यादि मन्त्रों में ऐश्वर्य के परिपक्व करने का अर्थ है, घोड़ा मारने का नहीं ॥१॥

स्वायुधः पंवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (**दिव**) द्युलोक के (**विष्टम्भ**) आधार हैं तथा (**पृथिव्या**) पृथिवी के (**धरुण**) धारण करने वाले हैं। (**सुदक्ष**) चतुर तथा (**देवाना जनिता**) सूर्यादि दिव्य ज्योतियो के उत्पादक है ! (**वृजिन**) व्यसनों से (**रक्षमाण**) रक्षा करते हुए (**पिता**) पिता के समान (**अशस्तिहा**) राक्षसो को हनन करने वाले है और (**इन्दु**) सर्वप्रकाशक है । (**देव**) दिव्यरूप है (**स्वायुध**) सर्वशक्ति सम्पन्न है । उक्त गुणो वाले आप (**पवते**) हमको पवित्र करें ॥२॥

भावार्थ —यहा सुदक्षादि नामो मे उक्त परमात्मा का प्रकारान्तर से वर्णन किया है ॥२॥

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ —(**ऋषि**) ऋषति जानात्यतीन्द्रियार्थमिति ऋषि, जो अतीन्द्रियार्थ को जाने उसका नाम यहां ऋषि है तथा (**विप्र**) जो मेधावी है (**पुर एता जनाना**) और जो मनुष्यो के हृदय मे पहले ही प्राप्त है और (**ऋभुः**) अनन्त शक्ति सम्पन्न तथा (**धीर**) धीर है और (**काव्येन**) अपनी सर्वज्ञता से (**उशना**) सर्वत्र देदीप्यमान है । (**सचित्**) वही परमात्मा (**यदासा**) जो प्रकृति की शक्तियो के (**गोना**) जो दीप्ति वाली हैं उनके (**अपीच्य**) भीतर (**गुह्य नाम**) सर्वोपरि गुह्य रहस्य (**निहित**) रक्खा है उसको परमात्मा ही (**विवेद**) जानता है ॥३॥

भावार्थ —'ऋषति सर्वत्र गच्छति व्यापकत्वेन सर्वं व्याप्नोति' इति ऋषि, परमात्मा जो सर्वत्र व्यापक है उसका नाम यहा ऋषि है, यहां ऋषि, विप्र, इत्यादि नामो से परमात्मा का वर्णन किया है । किसी जड वस्तु का नही ॥३॥

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे जगदीश्वर ! (**सोम**) आप सोमस्वभाव है और (**वृषा**) सब कामनाओ के देने वाले है तथा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरणो मे आप (**अक्षा**) आनन्द की वृष्टि करने वाले हैं (**वृष्णे**) हे व्यापक परमात्मन् ! (**एष स्य**) वह ये (**ते**) तुम्हारा (**मधुमान**) मधुरतादि गुणो को देने वाला (**शतसा , सहस्रसा**) सैकड़ो और हजारो शक्तियों का रखने वाला (**भूरिदावा**) जो अनन्त प्रकार की कामनाओ को देने वाला है (**शश्वत्तमम्**) निरन्तर फल उत्पन्न करने वाला (**बर्हि**) जो यज्ञ है तथा (**वाजी**) बलयुक्त है उसको आप (**अस्थात**) अपनी सत्ता से सुशोभित करते हैं ॥४॥

भावार्थ —बर्हि , इति ' अन्तरिक्षनामसु पठितम्' नि० अ०।२।ख०१ । बर्हि' शब्द के मुख्यार्थ अन्तरिक्ष के है जिस प्रकार अन्तरिक्ष नाना प्रकार की ज्योतियो का आधार और अनन्त प्रकार कामनारूप वृष्टियो का आधार इसी प्रकार यज्ञ भी अन्तरिक्ष के समान विस्तृत है यहा रूपकालङ्कार से यज्ञ को बर्हि रूप से वर्णन किया है ॥३॥

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥२२॥

पदार्थ.— (**एते**) पूर्वोक्त (**सोमा**) परमात्मा के सौम्यस्वभाव (**गव्या**) गतिशील (**सहस्रा**) सहस्रशक्तियों वाले (**महे**) बड़े (**वाजायामृताय**) यज्ञ के लिए जो (**श्रवांसि**) ऐश्वर्यरूप है (**पवित्रेभि**) पवित्र अन्तःकरणो से जो (**पवमाना**) पवित्रता वाले है वे उक्त स्वभावो को (**श्रवस्यव**) यश की इच्छा करने वाले उपासक लोग (**पृतनाज**) जो युद्धो मे जेता बनने की इच्छा करते है, वे (**अत्या न**) शीघ्रगामिनी विद्युत् की शक्तियो के समान (**अस्थ्रग्रम**) धारण करें ॥४॥

भावार्थ —जो लोग ससार मे विजेता बनना चाहे वे परमात्मा के विचित्र भावो का धारण करे । जिसप्रकार सत्पुरुष के भावो को धारण करने से पुरुष सत्पुरुष बन सकता है इसी प्रकार उस आदि पुरुष परमात्मा के गुणो के धारण करने से उपासक सत्पुरुष महापुरुष बन सकता है । इसका नाम परमात्मयोग है ॥५॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथाभर श्येन भृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥६॥

पदार्थ — (**हि**) क्योंकि परमात्मा (**पुरुहूत**) सबका उपास्य देव है । (**जनाना**) मनुष्यो के (**विश्वा**) सब (**भोजना**) भोग्य पदार्थों को (**पूयमान**) पवित्र करने वाला (**पर्यसरत्**) उपासकों के हृदय मे आकर विराजमान होता है, (**अथ**) और (**श्येनभृत**) विद्युत् की शक्तियो को धारण करने वाला परमात्मा (**प्रयांसि**) सब ऐश्वर्यों का (**आभर**) पूर्ण करें और आप (**रयि**) धन को (**तुञ्जान**) देने वाले हैं और आप हमको (**वाज**) बल (**अभ्यर्ष**) सब प्रकार से दें ॥६॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा सर्वैश्वर्य प्रदाता के रूप से वर्णन किया है ॥६॥

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

पदार्थ.—(**एष**) उक्त परमात्मा (**सुवान**) सर्वत्र आविर्भूत (**सोम**) जो सौम्यस्वभाव है वह (**पवित्र**) पवित्र अन्तःकरण मे (**सृष्ट**) रचे हुए (**सर्ग**) सृष्टियो के (**न**) समान (**अर्वा**) गतिशील जो परमात्मा है वह (**पर्यदधावत्**) उपासको की ओर अपनी ज्ञानदृष्टि से धाता है । (**न**) जिस प्रकार (**तिग्मे**) तीक्ष्ण (**शृङ्गे**) अज्ञान विदारण मे (**शिशानः**) मग्न हुआ (**महिष**) महापुरुष होता है अथवा (**शूर**) शूरवीर (**न**) जैसे (**सत्वा**) स्थिति वाला होकर (**गव्यन् गा**) बड़े ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर (**अभि**) जाता है इसी प्रकार परमात्मा उपासकों को ज्ञान-दृष्टि से लक्ष्य बनाता है ॥७॥

भावार्थ —जो लोग श्रवणमननादि साधनो के द्वारा अपने अन्तःकरण को ज्ञान का पात्र बनाते हैं परमात्मा उनके अन्तःकरण को अवश्यमेव ज्ञान से भरपूर करता है ॥७॥

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥८॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे कर्मयोगिन् ! (**सोमस्य**) सौम्यगुण विशिष्ट परमात्मा की (**धारा**) ज्ञान की धारा (**ते**) तुमको (**पवते**) पवित्र करे । (**न**) जिस प्रकार (**दिव**) द्युलोक से (**अभ्रै**) अभ्रो के द्वारा (**विद्युत्**) बिजली (**स्तनयन्ती**) शब्द करती हुई विस्तार पाती है इसी प्रकार परमात्मा की ज्ञानज्योति तुममे विस्तार को प्राप्त हो । (**एषा**) उक्तधारा (**परमादद्रे**) सबको विदीर्ण करने वाला जो परमात्मा है उसके (**अन्त**) स्वरूप मे (**कूचित्सती**) किसी एक स्थान मे गूढ हुई (**ऊर्वे**) गूढदेश मे जो (**गा**) अपनी सत्ता को (**विवेद**) लाभ कर रही है वह (**आययौ**) उपासक के अन्तःकरण मे स्थिर होती है ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा अपने भक्त के हृदय मे अपने भावो को प्रकाश करता है ॥८॥

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९॥२३॥

पदार्थ —(**सोम**) हे परमात्मन ! (**इन्द्रेण**) कर्मयोगी के साथ (**सरथ**) मैत्री भाव का (**पुनान**) पवित्र करते हुए आप (**गोना राशि**) ज्ञानरूपी शक्तियो के भण्डार का (**परियासि**) प्राप्त होते है । (**उतस्म**) अपि च (**पूर्वी**) अनादिकाल के जो (**बृहती**) बड़े (**इष**) ऐश्वर्य हैं उनके (**जीरदानो**) आप देने वाले है । (**शचीव**) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन (**उपष्टुत्**) आप स्तुति योग्य हैं (**ता**) उन ऐश्वर्यादि शक्तियो को आप हमे प्रदान करें ॥९॥२३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा शुभ शिक्षाओ का उपदेश करता है और ऐश्वर्य प्रदान के भावो का प्रकाश प्रदान करता है ॥९॥२३॥

८७वां सूक्त और २३वां वर्ग समाप्त ।

अथाष्टर्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य

१-८ उशना ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१ पङ्क्ति । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वर —१ पञ्चम २—८ धैवत ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि त्वम् ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

पदार्थ —(**इन्द्र**) हे कर्मयोगिन् ! (**तुभ्य सुन्वे**) तुम्हारे संस्कार के लिए (**अय सोम**) यह सोम परमात्मा (**तुभ्य पवते**) तुमको पवित्र करता है । (**त्वं**) तुम (**अस्य**) इसकी आज्ञा को (**पाहि**) पालन करो । (**त्व**) तुम (**य**) जिस (**इन्दु**) प्रकाशरूप (**सोम**) परमात्मा की (**चकृषे**) उपासना करते हो । वह (**त्व**) तुम्हारे (**ववृषे**) वरण करने के लिए और (**मदाय**) आनन्द देने के लिए स्वीकार करता है इसलिए तुम (**युज्याय**) अपनी सहायता के लिए (**सोम**) सोमरूप परमात्मा की उपासना करो ॥१॥

भावार्थ - जो लोग परमात्मा को शुद्ध भाव से वर्णन करते है परमात्मा उनको अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥१॥

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥

पदार्थ.— (**स ई**) यह सोम (**रथो न**) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (**भुरिषाट**) सबको गति करने वाला है और सब पदार्थों को उत्पत्ति समय में (**अयोजि**) मिलाता है । (**पुरूणि वसूनि**) बहुत से धनो का (**सातये**) सुख देने के लिए (**आदीं**) निश्चय जो (**नहुष्याणि**) मनुष्यत्व के योग्य है उनको देता है (**वनेस्वर्षाता**) संग्राम मे (**विश्वा**) जो बहुत से (**जाता**) शत्रु उत्पन्न हो गये हैं वे (**ऊर्ध्वानवन्त**) नीचे हों ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा हमको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करे और हमारे अन्यायकारी प्रतिपक्षियों को दूर करे ॥२॥

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥३॥

पदार्थ —(यः) जो सोम (वायुर्न) वायु के समान (नियुत्वान्) वेग-वाला है । (इष्टयामा) स्वेच्छाचारी गमन वाला है और (नासत्येव) विद्युत् के समान (शम्भविष्ठ.) अत्यन्त सुख के देने वाला है । (विश्ववारः) सबके वरण करने योग्य है । (पूषेव) पूषा के समान पोषक है । (सवितेव, धीजवन., असि) सूर्य्य के समान मनोरूपवेग वाला है । उक्त गुणसम्पन्न हे सोम ! आप हमारी रक्षा करें ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमात्मा से यह प्रार्थना है कि, हे परमात्मन् ! आप हमारे अन्त करण को शुद्ध कर ॥३॥

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥

पदार्थ —(यः) जो सोम (इन्द्रो न) इन्द्र के समान (महाकर्म्माणि) बड़े-बड़े कर्मों को (चक्रि) करता है । (वृत्राणां हन्ता, असि) अज्ञानो के तुम हनन करने वाले हो । (सोम) हे सोम (पूर्भित्) अज्ञानरूपी ग्रन्थियो को भेदन करने वाले हो (पैद्वोन) और विद्युत् के समान (अहिनाम्नां) अन्धकारो के (हन्ता) हनन करने वाले हो । (विश्वस्य दस्योः) सम्पूर्ण दस्युओ के आप (हन्ता, असि) हनन करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सब प्रकार के अज्ञानों का नाश करने वाला है उसकी कृपा से उपासक मे ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है जिससे वह विद्युत् के समान तेजस्वी बनकर विरोधी शक्तियो का दलन करता है ॥४॥

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥५॥

पदार्थ —(यः) जो सोम (सृज्यमान अग्निर्न) उत्पन्न की हुई अग्नि के समान (वने) वन मे (पाजांसि) बलो को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (नदीषु) अन्तरिक्षो मे (पाजांसि) जल के बलो को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है (जनोन) जिस प्रकार मनुष्य (युध्वा) युद्ध करके (महत उपब्दि) बड़ा शब्द करता हुआ (इयर्ति) प्रेरणा करता है इसी प्रकार (पवमान) सबको पवित्र करने वाला (सोम) साम (ऊर्मिम्) आनन्द की लहरो को बहाता है ॥५॥

भावार्थ —अग्नि जिस प्रकार सब तेजों को तिरस्कृत करके अपने मे मिला लेता है अर्थात् विद्युदादि तेज, जैसे अन्य तुच्छ तेजो को तिरस्कृत कर देता है इसी प्रकार परमात्मा के समक्ष सब तेज तुच्छ हैं अर्थात् परमात्मा ही सब ज्योतियो की ज्योति होने से स्वयज्योति है ॥५॥

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥६॥

पदार्थ —(एते सोमा) [illegible] परमात्मा के सोमादि गुण (वाराण्यव्या) वरणीय और रक्षणीय दिव्यादिव्य पदार्थों को (कोशास·) पात्रो का (अभ्रवर्षाः, न) मेघ की वर्षा के समान परिपूर्ण कर देते हैं और (वृथा) जैसे अनायास से ही (समुद्र) अन्तरिक्ष को (सिन्धवः) स्यन्दनशील प्रकृति के सत्वादिक गुण प्राप्त होते है इसी प्रकार (नीचीर्न) नीचाई की ओर (सुतास.) आविर्भाव को प्राप्त हुए गुण (कलशां अभि,) शुद्ध अन्त करणो की ओर (असृग्रन्) भलीभाति गमन करते हैं ॥६॥

भावार्थ —जिन पुरुषों का अन्त करण पवित्र है 'अर्थात् जिन्होंने श्रवण मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अपने अन्त करणो को शुद्ध किया है' परमात्मा के ज्ञान का प्रवाह उनके अन्त करणो की ओर स्वत ही प्रवाहित होता है ॥६॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥

पदार्थ—(शुष्मी) सबको शोषण करने के कारण परमात्मा का नाम शुष्मी है । हे बलस्वरूप परमात्मन् ! (मारुत) विद्वानो के गण को (शर्धो न) बल के समान (पवस्व) आप पवित्र करें । (यथा) जैसे (दिव्या, विट्) दिव्य प्रजाओ का (अनभिशस्ता) सुख देने वाला राजा पवित्र होता है इसी प्रकार (आपोन) सत्कर्मों के समान (मक्षु) शीघ्र (सुमति भव) हमारे लिए सुमति उत्पन्न करें (सहस्राप्सा) अनन्त शक्तियो वाले आप (पृतनाषाट्) अनाचारियों को युद्ध में नाश करने वाले परमात्मन् ! (यज्ञो न) आप हमारे लिए यज्ञ के समान हो ॥७॥

भावार्थ.—परमात्मा का बल सब बलो मे से मुख्य है इसीलिये (य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते ।)ऋ० ८ । म० ।१०।२१।२ इत्यादि मन्त्रो मे जिसको सर्वो-परि बलस्वरूप कथन किया गया है वह हमको बल प्रदान करे ॥७॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥२४॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ते वरुणस्य राज्ञ.) तुम सब वस्तुओं को अपनी शक्ति मे रखने वाले श्रेष्ठतम राजा हो । (ते) तुम्हारे (नु) निश्चय करके (व्रतानि) व्रतो को हम धारण करें । (सोम) हे परमात्मन् ! (तवधाम) तुम्हारा स्वरूप (बृहद्गभीर) बहुत गम्भीर है और (शुचिस्त्वमसि) तुम नित्य-शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव हो । (प्रियो, न) प्रिय के समान हो । (मित्रो न) मित्र के समान हो । (दक्षाय्यः) मान्य हो । (अर्य्यमा इवासि, सोम) हे सोम परमात्मन् ! आप न्यायकारी हो ॥८॥२४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा ने व्रत पालन का उपदेश किया जो पुरुष व्रती होकर परमात्मा के नियम का पालन करता है वह परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है ॥८॥२४॥

८८वां सूक्त और २४ वां वर्ग समाप्त ।

अथ सप्तर्चस्य नवाशीतितमस्य सूक्तस्य

१-७ उशना ऋषि. ॥ पवमान. सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ।
२, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवत. स्वरः ॥

अथ परमात्मनि सद्धर्म्मताप्राप्तियोगो निरूप्यते ।

अब परमात्मा के गुण धारण करने रूपी योग का वर्णन करते हैं ।

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्यस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥१॥

पदार्थः—(वह्नि) वहति प्रापयतीति वह्नि जो उत्तम गुणो को प्राप्त कराये उसका नाम यहां वह्नि है परमात्मा (पथ्याभि) शुभ मार्गों द्वारा (अस्यान्) शुभ स्थानो को प्राप्त कराता है । (प्रोस्य) वह परमात्मा (दिव.) द्युलोक की (वृष्टि) वृष्टि के (न) समान (पवमान) पवित्र करने वाला है (अक्षाः) वह सर्वद्रष्टा परमात्मा है (सहस्रधारः) अनन्त शक्तियो से युक्त है (अस्मे) हमारे लिए (न्यसदत्) विराजमान होता है । (मातुरुपस्थे) माता की गोद मे (च) और (वने) वन मे (सोम) वह परमात्मा (आ) सब जगह पर आकर हमारी रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ —जिस प्रकार माता की गोद मे पुत्र सानन्द विराजमान होता है इसी प्रकार उपासक लोग उसके अङ्क मे विराजमान हैं ।

तात्पर्य यह है कि ईश्वरविश्वासी भक्तो को ईश्वर पर इतना विश्वास होता है कि वे माता के समान उसकी गोद मे विराजमान होकर किसी दुःख का अनुभव नही करते ॥१॥

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥२॥

पदार्थ —वह परमात्मा (सिन्धूनां) प्रकृत्यादि पदार्थों का (राजा) स्वामी है और (वास) सर्वनिवास स्थानो का (अवसिष्ट) आच्छादन करता है । (रजिष्ठा ऋतस्य नाव) सबसे सुखदायी जो कर्मों की नौका है । उसमे (आरुहत्) चढाकर (अप्सु) कर्मों के सागर से पार करता है । (द्रप्स) वह आनन्दस्वरूप परमात्मा (ववृधे) सदैव वृद्धि को प्राप्त है । (श्येनजूत) विद्युत के समान दीप्ति-मती-वृत्ति से ग्रहण किया हुआ परमात्मा ध्यान का विषय होता है । (ईं) इसको (पिता) सत्कर्मों द्वारा यज्ञ का पालन करने वाला यजमान (दुहे) परिपूर्ण रूप से दुहता है । अर्थात् अपने हृदयङ्गम करता है । (पितुर्जाम्) सदुपदेशक से आविर्भाव को प्राप्त हुए इस परमात्मा को (दुहे) मैं प्राप्त करता हूं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी बनकर परमात्मा की आज्ञा के अनुसार पर-मात्मा के नियमो को पालन करता है वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२॥

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

पदार्थः—(सिंह) जो सिंह के समान है (मध्व) आनन्दस्वरूप है । (अयास) जो अनायास से ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने वाला है (अरुष) दीप्ति वाला (दिव·) जो द्युलोक का (पतिम्) पति है (अस्य) उस परमात्मा के ज्ञान को (युत्सु शूरः) जो ज्ञानयज्ञादि रूप युद्ध मे शूरवीर (प्रथमः) जो सबसे अग्रगण्य है, वह पाता है । (अस्य पृच्छते) और जो इसके ज्ञान को पूछता है उस जिज्ञासु के लिए (अस्य चक्षसा) इसका कथन करने वाला (गाः) उस ज्ञान का उपदेश करता है और (उक्षा) सब कामनाओ को परिपूर्ण करने वाला परमात्मा (परिपाति) उसकी रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अपने ज्ञान के द्वारा रक्षा करता है ॥३॥

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥४॥

पदार्थः—(मधुपृष्ठ) जो सैन्धवघनवत् सर्व ओर से आनन्दमय है (घोर-मयास) जिसका प्रयत्न घोर है अर्थात् भयानक है और (अश्वं) जो गतिरूप है (उरुचक्रे रथे) अत्यन्त वेगवाली द्रुतगति में (युञ्जन्ति) जिसने नियुक्त किया है ।

(स्वसार.) "स्वय सरन्तीति स्वसार इन्द्रियवृत्तय " स्वाभाविक गतिशील इन्द्रियों की वृत्तियां (जामयः) जो मन से उत्पन्न होने के कारण परस्पर बन्धुपन का सम्बन्ध रखती हैं (सनाभय) चित्त से उत्पन्न होने के कारण सनाभि सम्बन्ध रखने वाली चित्तवृत्तिया (मर्जयन्ति) उक्त परमात्मा को विषय करती हैं और (वाजिन) उस बलस्वरूप को (ऊर्जयन्ति) विषय करके उपासक को अत्यन्त आध्यात्मिक बल प्रदान करती हैं ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे जामी नाम चित्तवृत्ति का है, क्योंकि वृत्ति मन से उत्पन्न होती है और मन से उत्पन्न होने के कारण अन्य वृत्तिया भी उसके साथ सम्बन्ध रखने के कारण जामी कहलाती हैं।

उक्त वृत्तियां जब परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं तो उपासक में आत्मिक बल उत्पन्न होता है अर्थात् शारीरिक आत्मिक सामाजिक तीनो प्रकार के बल की उत्पत्ति का कारण एकमात्र परमात्मा है, कोई अन्य नहीं ॥४॥

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

पदार्थः—(चतस्र) पृथिवी जल तेज और वायु की चारों शक्तियां (ईं) इस परमात्मा को जो (घृतदुहः) स्नेह के दोहन करने वाली है। वे (सचन्ते) सगत होती हैं। (समाने धरुणे) एक अधिकरण में (अन्तर्निषत्ता) व्याप्य-व्यापकता का सम्बन्ध रखकर (ता) वे शक्तियां (ईं) इस परमात्मा को (अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं। (नमसा) ऐश्वर्य से (पुनानाः) पवित्र करती हुई (ता) वे शक्तियां (पूर्वीः) जो अनन्त हैं वे (ईं) इस परमात्मा को (परिषन्ति) सर्व ओर से विभूषित करती हैं ॥५॥

भावार्थ—प्रकृति की परमाणुरूप शक्तियों से ईश्वर का ऐश्वर्य विभूषित हो रहा है इन सब शक्तियों का केन्द्र एकमात्र परमात्मा ही है उसी एकमात्र परब्रह्म मे ये उत्पत्ति स्थिति प्रलय करती हैं अर्थात् आविर्भाव का नाम उत्पत्ति और सूक्ष्म रूप से विराजमान होने का नाम प्रलय है ॥५॥

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

पदार्थ—(दिवोविष्टम्भः) जो द्युलोक का सहारा है (धरुण पृथिव्याः) और पृथिवी का आधार है (उत) और (विश्वा, क्षितयः) सब लोक-लोकान्तर (अस्य, हस्ते) उस परमात्मा के हस्तगत है। (उत्स) वह सब लोगों का उत्पत्ति स्थान है परमात्मा (गृणते ते) स्तुति करने वाले उपासक के लिए (नियुत्वान् असत्) ज्ञानप्रद हो (मध्व) जो परमात्मा आनन्दस्वरूप है (अंशु) सर्वव्यापक है। (इन्द्रियाय) कर्मयोगी के लिए (पवते) पवित्रता दे ॥६॥

भावार्थ—द्युभ्वादिलोकों का अधिकरण एकमात्र वही परमात्मा है अर्थात् उसी परमात्मा के सहारे सब ब्रह्माण्डों का स्थिति है। इस प्रकार यहां परमात्मा को अधिकरण रूप से वर्णन किया है ॥६॥

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७॥२५॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (वृत्रहा) अज्ञान के नाश करने वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी को (देववीति) जो देवताओं के यज्ञ को प्राप्त है (वन्वन्नवातः) और जो गम्भीर है उसको (अभि पवस्व) सब ओर से आप पवित्र करिये। (शग्धि) सबकी याचना को पूर्ण करने वाले (महः) सबसे बड़े और (पुरुश्चन्द्रस्य रायः) सब आह्लादकों के आह्लादक जो आनन्दस्वरूप आप हैं आपकी कृपा से (सुवीर्यस्य) सब बलों के हम लोग (पतय) स्वामी (स्याम) हों ॥७॥२५॥

भावार्थ—हे परमात्मन् आपकी कृपा से हम सब लोक-लोकान्तरों के पति हों ॥७॥

८९वां सूक्त और २५वां वर्ग समाप्त।

अथ षड्ऋचस्य नवतितमस्य सूक्तस्य—

१—६ वसिष्ठ ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् । २, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१॥

पदार्थ—(हिन्वान) शुभ कर्मों में प्रेरणा करते हुए (रोदस्योर्जनिता) द्युलोक और पृथिवी लोक को उत्पन्न करते हुए (रथोन) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (वाजं) बल को (सनिष्यन्) देते हुए (अयासीत्) आकर आप हमारे हृदय में विराजमान हो, हे परमात्मन्! आप (आयुधा) बलप्रद शस्त्रों को (संशिशानः) तीक्ष्ण करते हुए (इन्द्रं गच्छन्) कर्मयोगी को प्राप्त होते हुए (विश्वावसु) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (हस्तयोः) हाथों मे (आदधानः) धारण करते हुए (प्रायासीत्) हमारी ओर आयें ॥१॥

भावार्थः—जो जो विभूति वाली वस्तु है उन सब में परमात्मा का तेज विराजमान है इसलिए यहां परमात्मा के आयुधों का वर्णन किया है। वास्तव में परमात्मा किसी आयुध का धारण नहीं करता क्योंकि वह निराकार है ॥१॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥२॥

पदार्थ—(त्रिपृष्ठ) तीनो भवनों वाले ब्रह्मचर्य को करते हुए (वृषणं) बलशील कर्मयोगी के उपदेश के लिए आप (वयोधां) बल का धारण कराने वाले (आंगूषाणां)बलदायक वाणी के प्रयोग करने वाले हैं ऐसे स्तोता लोगों की वाणी मे (अवावशन्त) निवास करते हुए (वनावसान) सब प्रकार की सूक्ष्म-शक्तियों को धारण करते हुए (वरुण) सबको स्वशक्ति से आच्छादन करते हुए और (सिन्धून् न) समुद्र के समान (विरत्नधा) नाना प्रकार के रत्नों को धा करते हुए आप (वार्याणि) उत्तम धनों को (दयते) कर्मयोगियों के लिए देते हैं ॥२॥

भावार्थ—यहां तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का वर्णन अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रथम २४ वें वरस तक दूसरा ३६ और तीसरा ४० इनको प्रथम मध्यम उत्तम कहते हैं। जो पुरुष उक्त प्रकार के ब्रह्मचर्यों को धारण करते हैं उनको परमात्मा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥

पदार्थः—(शूरग्राम) जो शूरवीरों के समुदाय वाले हैं (सर्ववीरः) और स्वयं भी सब प्रकार से वीर हैं और (सहावान्) धैर्यवान् है। (जेता) सबको जीतने वाले है (धनानि सनिता) और जो ऐश्वर्योपार्जन मे लगे हुए हैं उनको आप (पवस्व) पवित्र करें। आप (तिग्मायुध.) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले हैं और (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगति शस्त्रों वाले हैं और (समत्सु) संग्राम मे (अषाळ्ह) परशक्ति को न सहने वाले हैं और (पृतनासु) पर सेना मे (साह्वान्) धुरन्धर (शत्रून्) शत्रुओं के (जेता) जीतने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ—यहां परमात्मा के रुद्रधर्म का निरूपण है। रुद्रधर्म को धारण करने वाला परमात्मा वीरों के अनन्त, संघों मे शक्ति उत्पन्न करके संसार से पाप की निवृत्ति करता है। उस अनन्त शक्तियुक्त परमात्मा के अति तीक्ष्ण शस्त्र हैं जिनसे वह अन्यायकारियों की सेना को विदीर्ण करता है ॥३॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः : स चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥

पदार्थ—(उरुगव्यूति) विस्तृत मार्गों वाले आप (समीचीने) धर्म की राह मे (अभयानि कृण्वन्) अभय प्रदान करते हुए (आपवस्व) हमको पवित्र करें। आप (पुरन्धी) सम्पूर्ण संसार के धारण करने वाले हैं और (अप.) शुभ कर्मों की (सिषासन्) शिक्षा करते हुए (उषस) उषा काल की (स्वर्णा) रश्मियों को (सचिक्रद) अपने वैदिक शब्दों मे विस्तृत करते हैं (महः) हे सर्व-पूज्य परमात्मन्! (अस्मभ्य) हमको (वाजान्) धनों को दें ॥४॥

भावार्थ - जो लोग परमात्मा के उपदेश किये हुए शुभ मार्गों पर चलते हैं परमात्मा उनको शुभ मार्गों की प्राप्ति कराता है ॥४॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥५॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन्! (वरुण) सबको आच्छादन करने की शक्ति रखने वाले विद्वान् को आप (मत्सि) तृप्त करें। (मित्र) और स्नेह की शक्ति रखने वाले विद्वान् को (मत्सि) तृप्त करें। (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (पवमान) सबको पवित्र करने वाले! परमात्मन्! (विष्णु) सब विद्याओं मे व्याप्तिशील विद्वान् को और (इन्द्र) कर्मयोगी को (मत्सि) तुम तृप्त करो। (शर्ध) रुद्ररूप जो विद्वानों का गण है उसे (मत्सि) तृप्त करें (देवान्) शान्त्यादि दिव्यगुण-युक्त विद्वानों को (मत्सि) तृप्त करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! (महां) सर्वपूज्य आप (मदाय) आनन्द के लिए (इन्द्र) कर्मयोगी को (मत्सि) तृप्त करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे कर्मयोगी के क्रिया-कौशल्य की पूर्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्! आप कर्मयोगी को सब प्रकार से निपुण करिये ॥५॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥२६॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! (राजेव) आप सबको प्रदीप्त करने वाले और सर्वस्वामी हैं। (क्रतुमान्) कर्मों के अधिष्ठाता हैं (विश्वा, अमेन) सम्पूर्ण बल से (दुरिता, घनिघ्नत्) समस्त पापों को दूर करते हुए (पवस्व) हमको पवित्र करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (सूक्ताय वचसे) सुन्दर वाणियों के कथन करने को (वयोधा.) ऐश्वर्य देने वाले (यूय) आप (स्वस्तिभि) कल्याणकारी भावों से (सदा) सदैव (न) हमको (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थ—इसमें परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥६॥

९०वां सूक्त और २६वां वर्ग समाप्त।

अथैकनवतितमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य—

१—६ कश्यप ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, २, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वर ॥

अब चिरजीवी होने का कथन करते है—

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।

दश स्वसारो अधि सानौ अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

पदार्थः—(**मनीषी**) जो परमात्मपरायण पुरुष है और (**प्रथम**) गुणो म श्रेष्ठ होने से मुख्य है । (**मनोता**) जो सर्वप्रिय है । वह (**धिया**) अपनी बुद्धि से (**आजौ**) आध्यात्मिक यज्ञ मे ज्ञान की आहुति प्रदान करे । (**यथा**) जैसे (**रथ्ये**) कमरूपी यज्ञ म (**वक्वा**) वक्ता पुरुष वाणी रूपी कर्म को (**असर्जि**) करता है । (**अव्ये, अधिसानौ**) सवरक्षक परमात्म रूप यज्ञकुण्ड म (**दश स्वसार**) दश प्राणो को (**अधि**) उक्त यज्ञ क विषय म (**अजन्ति**) डालते है । जिस प्रकार (**सदनानि**) सुन्दर वेदियो के (**अच्छ**) प्रति (**वह्नि**) वह्नि को लक्ष्य बनाकर हवन किया जाता है । इस प्रकार आध्यात्मिक यज्ञ मे परमात्मा को वह्निस्थानीय बनाकर हवन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ – इस मत्र मे प्राणायाम का वणन किया है जो लोग भलो-भाति प्राणायाम करते है वे आध्यात्मिक यज्ञ करते हैं ॥१॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।

प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२॥

पदार्थ (**अद्भि**) कर्मों के द्वारा "अपइति कर्मनामसु" पठितम्—निघण्टौ—२—१ (**गोभि**) ज्ञान के द्वारा (**अविभि**) रक्षा से (**मर्मृजान**) जिसका सशोधन किया गया है । ऐसा यज्ञ (**मर्त्येभि नृभि**) मनुष्यो से किया हुआ (**अमृत**) अमृत होता है । जो यज्ञ (**दिव्यस्य जनस्य**) ज्ञानी पुरुष के (**कव्यै**) हवनो के द्वारा (**अधिसुवान**) उत्पन्न हुआ (**इन्दु**) दीप्ति वाला होता है और (**वीती**) देवमार्ग के लिए होता है और यह उक्त यज्ञ (**नहुष्येभि**) मनुष्यो के द्वारा किया हुआ उत्तम फलवाला होता है ॥२॥

भावार्थ —जो लोग सत्कर्मों के द्वारा कमयज्ञ का सम्पादन करते हैं वे उत्तम सुख [illegible] होते है ॥२॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।

सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

पदार्थ –(**वृषा**) कामनाओ की वृष्टि करने वाला परमात्मा (**वृष्णे**) कर्मयोगी के लिये (**रोरुवद्**) अत्यन्त शब्द करता हुआ (**अस्मै**) इस कर्मयोगी के लिए (**अंशु**) सर्वव्यापक और (**पवमान**) सब को पवित्र करने के लिए परमात्मा (**रुशद्**) दीप्ति देता हुआ (**गो**) इन्द्रियो के (**पय**) सारभूत ज्ञान को (**ईर्ते**) प्राप्त होता है । जिस से (**सहस्र ऋक्वा**) अनन्त प्रकार की वाणियो का वक्ता (**वचोवित्**) वाणियों का ज्ञाता (**पथिभि**) वाणियो के रास्ते से जो (**अध्वस्मभि**) हिंसारहित है । (**सूर**) विज्ञानी (**अण्व**) सूक्ष्म पदार्थों के तत्त्व को (**वियाति**) प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थ — जो लोग वेदवाणियो का अभ्यास करते है वे सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को प्राप्त होते है ॥३॥

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द्र ऊर्णुहि वि वाजान् ।

वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥४॥

पदार्थ —और यह कर्मयोगी (**रक्षस**) राक्षसो की (**दृळ्हासदांसि**) दृढ़सभाओ को (**चिद्**) भी (**रुजा**) अपनी नाशक शक्ति से नष्ट कर देता है और (**विवाजान**) न्यायकारी बलयुक्त पुरुषो की शक्तियो को (**इन्दो**) हे प्रकाशमान परमात्मन ! तुम (**ऊर्णु हि**) आच्छादन करो और (**उपरिष्टात**) जो ऊपर की ओर से आते है अथवा (**दूरात**) दूर देश से जो आते है । (**एषा**) इन राक्षसो के (**उपनाय**) स्वामी को (**तुजता वधेन**) तीक्ष्णवध से नाश करो ॥४॥

भावार्थ —जो पुरुष शमदमादि साधन सम्पन्न होकर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके सब विघ्नो को दूर करता है और उनके विघ्नकारी राक्षसो को दमनकरके उनके मार्ग को सुगम करता है ॥४॥

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।

ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

पदार्थ – (**विश्ववार**) हे विश्ववरणीय परमात्मन ! (**सप्रत्नवत्**) आप प्राचीन है । (**नव्यसे**) हमको नूतन जन्म देने के लिए हमारे लिए (**प्राच , पथ**) प्राचीन रास्ता को (**सूक्ताय कृणुहि**) सरल कीजिए । (**पुरुकृत्**) हे बहुत कर्म करने वाले ! (**पुरुक्षा**) हे शब्दब्रह्म के उत्पादक परमात्मन् ! (**ये दु सहास**) जो राक्षसो के सहन योग्य नही (**वनुषा**) और जो हिंसारूप हैं (**बृहन्त**) बड़े हैं । (**तान्**) उन (**ते**) तुम्हारे भावो को यज्ञ मे (**अश्याम**) हम प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा के स्वभाव अर्थात् परमात्मा के सत्यादि धर्मों को राक्षस लोग धारण नही कर सकते । उनको केवल दैवी सम्पत्ति वाले ही धारण कर सकते है, अन्य नही । इस मन्त्र मे देव भाव के दिव्य गुणो का और राक्षसो के दुर्गुणो का वर्णन है ॥

एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।

शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥१॥

पदार्थ,—हे परमात्मन ! (**एवपुनान**) इस प्रकार पवित्र करते हुए आप (**अप**) अन्तरिक्षलोक (**स्वर**) स्वर्गलोक और (**गा**) पृथिवीलोक (**अस्मभ्य**) हमारे लिए दें । (**तोका**) पुत्र और (**तनयानि**) पौत्र (**भूरि**) बहुत प्रदान करें और (**न**) हमारे लिये (**श**) कल्याण हो (**उरुक्षेत्र**) और विस्तृत क्षेत्र हो । (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**उरु ज्योतींषि**) बहुत सी ज्योतियां (**न**) हमारे लिए हो और (**ज्योक**) चिरकाल तक (**सूर्यं दृशय**) इस तेजोमय सूर्य के देखने के लिए (**रिरीहि**) सामर्थ्ययुक्त बनाये ॥६॥

भावार्थ —जो लोग ईश्वर की आज्ञा को पालन करते हैं परमात्मा उनके लिये सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

इत्येकनवतितम सूक्त प्रथमो वर्गश्च समाप्त. ॥

अथ षड्ऋचस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य—

१—६ कश्यप ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप । ३ विराट्त्रिष्टुप । ६ त्रिष्टुप् । धैवत स्वर. ॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।

आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१॥

पदार्थ —(**सुवान**) सर्वव्यापक (**हरि**) हरणशील (**अंशु**) सूत्रात्मा परमात्मा (**पवित्रे**) पवित्र अन्त करण मे (**रथोन**) गतिशील पदार्थों के समान (**परिसर्जि**) साक्षात्कार किया जाता है (**सनये**) जो परमात्मा उपासना के लिये (**हियान**) प्रेरणा करता है और (**इन्द्रियम्**) कर्मयोगी को (**श्लोक**) शब्द सघात को (**आपत्**) उत्पन्न करता है (**पूयमान**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**प्रयोभि**) अपने आशीर्वादो से (**देवान, प्रति**) देवताओ के लिए (**अजुषत**) प्रेम को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ —जो लोग शुद्ध अन्त करण से परमात्मा की उपासना करते है परमात्मा उनके अन्त करण मे पवित्र ज्ञान प्रादुर्भूत करता है ॥१॥

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।

सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२॥

पदार्थ —(**नृचक्षा**) सबका द्रष्टा (**कवि**) और सर्वज्ञ (**नाम दधान**) इत्यादि नामो का धारण करने वाला परमात्मा (**अस्य, योनौ**) कर्मयोगी के अन्त-करण मे (**पवित्रे**) जो साधनो द्वारा पवित्रता को प्राप्त है । उसमे (**अच्छासरत**) भली-भाति प्राप्त होता है । (**होतेव**) जिस प्रकार होता (**सदने**) यज्ञ मे (**सीदन्**) प्राप्त होता हुआ (**चमूषु**) बहुत से समुदायो म स्थिर होता है । इसी प्रकार (**उपेम्**) इसके समीप (**सप्तर्षय**) पाच प्राण, मन और बुद्धि (**विप्रा**) जो मनुष्य को पवित्र करने वाले है वह आकर प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ —जो पुरुष कर्मयोगी हैं उनके पांचो प्राण, मन तथा बुद्धि वशीकृत होती है, उक्त साधनो द्वारा परमात्मा का अपने अन्त करण म साक्षात्कार करता है ॥२॥

प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।

भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥३॥

पदार्थ—(**सुमेधा**) शोभन प्रज्ञा वाला और (**गातुवित्**) मार्ग के जानने वाला (**विश्वदेव**) जिसका ज्ञान सवत्र विद्यमान है । (**सोम**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**पुनान**) सबको पवित्र करता हुआ परमात्मा (**नित्यम्**) सदैव (**सद**) उस स्थान को (**एति**) प्राप्त होता है । जिस स्थान मे (**विश्वेषु काव्येषु**) सम्पूर्ण प्रकार की रचनाओ मे (**रन्ता**) रमण करने वाला योगी (**पञ्चधीर**) पाच प्रकार के (**जनान्**) प्राणो को (**अनुयतते**) लगाता है और लगाकर अर्थात् प्राणायाम करके (**भुवत्**) रमणशील होता है ॥३॥

भावार्थ —योगी पुरुष प्राणायाम द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है । इसी अभिप्राय से यह कथन किया गया है कि योगी को परमात्मा प्राप्त होता है । वास्तव मे परमात्मा सर्वव्यापक है उसका जाना आना कहीं नहीं होता ॥६॥

तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।

दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वेदेवा**) सम्पूर्ण देव जो (**त्रय एकादशासः**) ३३ हैं । वे (**निण्ये**) अन्तरिक्ष मे वर्तमान हैं । (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**त्ये**) वे (**तव**) तुम्हारे लिए (**दशस्वधाभि**) पांच सूक्ष्मभूत और पांच स्थूलभूतो का (**स्वधाभि**) सूक्ष्मशक्तियो द्वारा (**अधिसानो**) तुम्हारे सर्वोपरि उच्च स्वरूप मे (**अव्ये**) जो सर्वरक्षक है । उसमे (**मृजन्ति**) संशोधन करने वाले हैं और (**त्वा**)

तुझको (सप्तयह्वी नद्य) जो बडी सात नाड़िया है उनके द्वारा प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे योगविद्या का वर्णन किया है और सप्तनद्य से तात्पर्य सात प्रकार की नाडियो का है, जिनका इडा-पिङ्गलादि नाडियो के सुषमणा नामो मे कथन किया है। तात्पर्य यह है कि योगी पुरुष उक्त नाड़ियो के द्वारा सयम करके परमात्मयोगी बने अर्थात् परमात्मा मे युक्त हो ॥४॥

तत्र॒ स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु॒ यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ स॒ंनस॑न्त ।

ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे क॒रभी॑कम् ॥५॥

पदार्थ—(पवमानस्य) जो सबको पवित्र करने वाला परमात्मा है उसका (सत्यं) सत्य का स्थान (नु) निश्चय करके (तत्र) वह है (यत्र) जिसमे (विश्वे) सब (कारव) उपासक (सन्नसन्त) सगत होते है। (अह्ने) प्रकाश के लिए (यत्) जो ज्योति है (उ) और (लोकमकृणोत) जो ज्योति ज्ञानरूप प्रकाश को उत्पन्न करती है और (मनु) विज्ञानी पुरुष की (प्रावत) रक्षा करती है। उस ज्योति से (दस्यवे) अज्ञानी असत्कारी वा अवैदिक पुरुष के लिए (अभीक) निर्भयता (क) कौन कर सकता है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा के सद्रूप का वर्णन किया और उक्त परमात्मा को सब ज्योतियो का प्रकाशक माना है ॥५॥

परि॒ सद्मे॑व पशु॒मन्ति॒ होता॒ राजा॒ न स॒त्यः समि॑तीरिया॒नः ।

सोमः॑ पुना॒नः क॒लशाँ॑ अयासी॒त्सीद॑न्मृ॒गो न म॑हि॒षो वने॑षु ॥६॥२॥

पदार्थ—(होता) उक्त परमात्मा का उपासक (पशुमन्ति सद्मे व) ज्ञानागार के समान (परियाति) उसको प्राप्त होता है (राजा न) जैसे कि राजा (सत्य) सत्य का अनुयायी (समितो) सभा को (इयान) प्राप्त होता हुआ प्रसन्न होता है इसी प्रकार विद्वान् ज्ञानागार को प्राप्त होकर प्रसन्न होता है। (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनान) सबको पवित्र करता हुआ (कलशा) अन्त करणो को (अयासीत्) प्राप्त होता है। (न) जैसे कि (महिषो मृग) बल वाला मृग (वनेषु) वनो मे प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे राजधर्म का वर्णन है कि जिस प्रकार राजा लोग सत्यासत्य की निर्णय करने वाली सभा को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार, विद्वान् लोग भी न्याय के निर्णय करने वाली सभाओ को प्राप्त होकर ससार का उद्धार करते हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजा लोग अपने न्यायरूपी सत्य से ससार का उद्धार करते है इसी प्रकार विद्वान लोग अपने सदउपदेशो द्वारा ससार का उद्धार करते हैं ॥६॥

इति द्विनवतितम सूक्त द्वितीयो वर्गश्च समाप्त ।

अथ त्रिनवतितमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य—

१—५ नोधा ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवत स्वरः ॥

सा॒कमु॒क्षो म॑र्जयन्त॒ स्वसा॑रो॒ दश॒ धीर॑स्य धी॒तयो॒ धनु॑त्रीः ।

हरिः॒ पर्य॑द्रव॒ज्जाः सूर्य॑स्य॒ द्रोणं॑ ननक्षे॒ अत्यो॒ न वा॒जी ॥१॥

पदार्थः—(अत्योवाजो) बल वाले विद्युदादि पदार्थ (न) जैसे (ननक्षे) व्याप्त हो जाते है। इसी प्रकार (सूर्यस्य द्रोण) सूर्य-मण्डल का जो प्रभाकलश है तथा (जा) उसकी जो दिशा-उपदिशायें है उनमे (हरि) हरणशील परमात्मा (पर्य्यद्रवत्) सर्वत्र परिपूर्ण है। उस पूर्ण परमात्मा को (साकमुक्ष) एक समय मे (मर्जयन्त) विषय करती हुई (स्वसार) स्वय सरणशील (दश धी) १० प्रकार की इन्द्रियवृत्तियां (धीतय) जो ध्यान द्वारा परमात्मा को विषय करने वाली हैं और (धनुत्री) मन की प्रेरक है वे परमात्मा के स्वरूप को विषय करती हैं ॥१॥

भावार्थः—योगी पुरुष जब अपने मन का निरोध करता है तो उसकी इन्द्रियरूप वृत्तियां परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं ॥१॥

सं मा॒तृभि॒र्न शिशु॑र्वावशा॒नो वृषा॑ दधन्वे पुरु॒वारो॑ अ॒द्भिः ।

मर्यो॒ न योषा॑म॒भि नि॑ष्कृ॒तं यन्त्सं ग॑च्छते क॒लश॑ उ॒स्रिया॑भिः ॥२॥

पदार्थ—(वृषा) कर्मयोगी जो (पुरुवार) बहुत लोगो को वरणीय है। वह (अद्भि) सत्कर्मो द्वारा (दधन्वे) धारण किया जाता है जो कर्मयोगी (वावशान) परमात्मा की कामना वाला है और (मातृभि) अपनी इन्द्रियवृत्तियो से (शिशु) सूक्ष्म करने वाले के (न) समान (सदधन्वे) धारण करता है (न) जिस प्रकार (योषा) स्त्री को (मर्य्य) मनुष्य धारण करता है इस प्रकार (उस्रियाभि.) ज्ञान की शक्तियो के द्वारा कर्मयोगी परमात्मा की विभूतियो को धारण करता है और जो परमात्मा (निष्कृत) ज्ञान का विषय हुआ (कलशे) उस कर्मयोगी के अन्त.करण मे (सगच्छते) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार ऐश्वर्यप्रद प्रकृतिरूपी विभूति को उद्योगी पुरुष धारण करता है इसी प्रकार प्रकृति की नानाशक्तिरूप विभूति को कर्मयोगी पुरुष धारण करता है ॥२॥

उ॒त प्र पि॑प्य॒ ऊध॒रघ्न्या॑या॒ इन्दु॒र्धारा॑भिः सचते सुमे॒धाः ।

मू॒र्धानं॒ गावः॒ पय॑सा च॒मूष्व॒भि श्री॑णन्ति॒ वसु॑भि॒र्न नि॒क्तैः ॥३॥

पदार्थ—(सुमेधा) सर्वोपरि विज्ञान वाला (इन्दु) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (धाराभि) अपनी अनन्त शक्तियो के ऐश्वर्य से (सचते) सर्वत्र सगत होता है। (उत) और (अघ्न्याया ऊध) गौओ के दुग्धाधार स्तनमण्डल को (प्रपिप्ये) अत्यन्त वृद्धियुक्त करता है और (गावश्चमूषु) गौओ की सेना मे (पयसा) दुग्ध से (अभिश्रीणन्ति) सयुक्त करता है, और (निक्तैर्वसुभिर्न) शुभ्रधनो के समान (मूर्धान) उस परमात्मा के मुख्य स्थानीय ऐश्वर्य को हम लोग प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे इस बात की प्रार्थना है कि परमात्मा गो, अश्वादि उत्तम धनो को हमको प्रदान करे ॥३॥

स नो॑ दे॒वेभिः॑ पवमान र॒देन्दो॑ र॒यिम॒श्विनं॑ वावशा॒नः ।

र॒थि॒रा॒यता॑मुश॒ती पुरं॑धिरस्म॒द्र्य१॒॑गा दा॒वने॒ वसू॑नाम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! (रयि) धन (अश्विन) कर्मयोगियो और ज्ञानयोगियो के लिए (वावशान) धारण किए हुए आप (रद) प्रदान करो (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन ! (देवेभि.) दिव्यशक्तियो के द्वारा (न) हमको (वसूनां) धनो की (रथिरायतामुशती) अत्यन्त बलवती शक्ति (पुरन्धि) जो बड़े बडे पदार्थों के धारण करने वाली है वह (अस्मद्र्यक्) हमारे लिए आप दें ॥४॥

भावार्थ—जिन पुरुषो पर परमात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है उनको धनादि ऐश्वर्य की हेतु सर्व शक्तियो से परिपूर्ण करता है ॥४॥

नू नो॑ र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑ पुना॒नो वा॒ताप्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।

प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायुः॑ प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥५॥३॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (नु) निश्चय करके (न) हमारे लिए (रयि) ऐश्वर्य (उपमास्व) आप दें और (नृवन्त) लोक सग्रह वाले मुझको (पुनान) पवित्र करते हुए आप (वाताप्य) प्रेमरूप (विश्वश्चन्द्र) जो विश्व को प्रसन्न करने वाला ऐश्वर्य है वह मुझे दें और (वन्दितु) इस उपासक की आपके द्वारा (प्रतारि) वृद्धि हो और (आयु) आयु हो। (धियावसु) सम्पूर्ण ज्ञानो के निधि जो आप है (प्रात) उपासनाकाल मे (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) आकर हमारी बुद्धि मे आरूढ हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥५॥

इति त्रिनवतितम सूक्त तृतीयो वर्गश्च समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य

१-५ कण्व ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१ निचृत्त्रिष्टुप् २, ३, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा को सर्वैश्वर्य का धाम निरूपण करते हैं।

अधि॒ यद॑स्मिन्वा॒जिनी॑व॒ शुभः॒ स्पर्ध॑न्ते॒ धियः॒ सूर्ये॒ न विशः॑ ।

अ॒पो वृ॑णा॒नः प॑वते कवी॒यन्व्र॒जं न प॑शु॒वर्ध॑नाय॒ मन्म॑ ॥१॥

पदार्थ—(सूर्ये) सूर्य के विषय मे (न) जैसे (विश) रश्मिया प्रकाशित करती है। उसी प्रकार (धिय) मनुष्यो की बुद्धिया (स्पर्धन्ते) अपनी-अपनी उत्कट शक्ति से विषय करती है। (अस्मिन् अधि) जिस परमात्मा मे (वाजिनीव) सर्वोपरि बलो के समान (शुभ) शुभ बल है वह परमात्मा (अपोवृणान) कर्मो का अध्यक्ष होता हुआ (पवते) सबको पवित्र करता है। (कवीयन्) कवियो की तरह आचरण करता हुआ (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्व पद के लिए (व्रज, न) इन्द्रियो के अधिकरण मन के समान 'अजन्ति इन्द्रियाणि यस्मिन् तद्व्रजम्' (मन्म) जो अधिकरणरूप है वही श्रेय का धाम है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है, जो लोग उसके साक्षात् करने के लिए अपनी चित्तवृत्तियो का निरोध करते है परमात्मा उनके ज्ञान का विषय अवश्यमेव होता है ॥१॥

द्वि॒ता व्यू॒र्ण्वन्न॒मृत॑स्य॒ धाम॑ स्व॒र्विदे॒ भुव॑नानि प्रथन्त ।

धियः॑ पिन्वा॒नाः स्वस॑रे॒ न गाव॑ ऋता॒यन्ती॑र॒भि वा॑वश्र॒ इन्दु॑म् ॥२॥

पदार्थ—वह परमात्मा (द्विता) जीव और प्रकृतिरूप द्वैतका (व्यण्वन) आच्छादन करता हुआ (अमृतस्य धाम) अमृत का धाम है उस (स्वर्विदे) सर्वज्ञ के लिए (भुवनानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर (प्रथन्त) विस्तीर्ण होते है वह परमात्मा (धिय. पिन्वाना:) विज्ञानो से भरा हुआ (स्वसरे) अपने स्वरूप मे (न) जैसे कि (गाव) इन्द्रिया (ऋतयन्ती.) यज्ञ की इच्छा करती हुई सब ओर से (अभिवावश्रे) शब्द करती हैं अथवा (इन्दु) प्रकाशरूप परमात्मा की कामना करती है इसी प्रकार जिज्ञासु लोग उस परमात्मा की कामना करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा के द्वैतवाद का वर्णन किया है ॥२॥

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।

देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥३॥

पदार्थ —(यत्) जो परमात्मा (कवि) सर्वज्ञ है (काव्या भरते) कवियों के भाव को पूर्ण करने वाला है जिसमें (शूरो न) शूरवीर के समान (रथः) क्रियाशक्ति है (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण भुवन जिसमे स्थिर हैं । (देवेषु) सब विद्वानो मे (यश) जिसका यश है । (मर्ताय भूषन्) सब मनुष्यो को विभूषित करता हुआ (दक्षाय राय) जो चातुर्य का और धन का (पुरुभूषु) स्वामी है और (नव्यः) नित्य नूतन है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा सर्वज्ञ है और अपनी सर्वज्ञता से सबके ज्ञान मे प्रवेश करता है ॥३॥

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।

श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥४॥

पदार्थ —वह परमात्मा (श्रिये जात) ऐश्वर्य के लिए सर्वत्र प्रकट है और (श्रिय निरियाय) श्री के लिए ही सर्वत्र गतिशील है और (श्रिय) ऐश्वर्य को और (वय) आयु को (जरितृभ्य.) उपासको के लिए (दधाति) धारण करता है । (श्रिय वसाना) श्री को धारण करता हुआ (अमृतत्वमायन्) अमृतत्व का विस्तार करता हुआ (सत्या समिथा) सत्यरूपी यज्ञो के करने वाला होता है । (मितद्रौ) सर्वत्र गतिशील परमात्मा मे (सत्या भवन्ति) ब्रह्मयज्ञ चित्त की स्थिरता के हेतु होते हैं ॥४॥

भावार्थ —जो परमात्मोपासक हैं उनको परमात्मा सब प्रकार का ऐश्वर्य देता है ॥४॥

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरुज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।

विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥५॥४॥

पदार्थ —(इषम्) ऐश्वर्य और (ऊर्जम्) बल (अभ्यर्ष) हे परमात्मन् आप दें और (अश्वम्) क्रियाशक्ति और (गाम्) ज्ञानरूपी शक्ति इन दोनो को आप (उरुज्योति) विस्तृत ज्योति (कृणुहि) करें और (देवान्) विद्वान् लोगो को (मत्सि) तृप्त करें । (विश्वानि हि सुषहा) सम्पूर्ण सहनशील शक्तियां निश्चय करके आप मे हैं । (तानि) वे शक्तियां तुमको विभूषित करती हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (तुभ्यम्) तुमसे मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम (शत्रून्) अन्यायकारी दुष्टो को (बाधसे) निवृत्त करने के लिए समर्थ हो । (सोम) हे परमात्मन् ! आप हमम भी इस प्रकार का बल दीजिये ॥५॥४॥

भावार्थ —परमात्मा अनन्त शक्तिरूप है जब वह अपने भक्तो को पात्र समझता है तो सब प्रकार के अन्यायकारियो का दमन करके सुनीति और धर्म का प्रचार ससार मे फैला देता है । तात्पर्य यह है कि जो लोग परमात्मा की दया का पात्र बनते हैं उन्ही के शत्रुभूत दुष्ट दस्युओ का परमात्मा दमन करता है अन्यो के नही ॥५॥४॥

इति चतुर्नवतितम सूक्त चतुर्थो वर्गश्च समाप्त ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य

॥ ९५ ॥ १—५ प्रस्कण्व ऋषि. ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१ त्रिष्टुप् । २ सस्तारपंक्ति । ३ विराटत्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वर १, ३—५ धैवत । २ पचम ॥

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।

नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

पदार्थ —(हरि) हरणशील शक्तियों वाला परमात्मा (सृज्यमान) जब साक्षात्कार को प्राप्त होता है तब (वनस्य) भक्त के (जठरे) अन्त करण मे (सीदन्) ठहरता हुआ और (पुनान) उसको पवित्र करता हुआ विराजमान होता है । (यत) जिस लिए (नृभि) मनुष्यो द्वारा (निर्णिज कृणुते) साक्षात्कार किया जाता है तब (गा) इन्द्रियों को शुद्ध करके (मतीर्जनयत) अच्छे प्रकार की बुद्धि उत्पन्न करता है (स्वधाभि) स्वशक्तियो के द्वारा और (कनिक्रन्ति) पुन शब्दायमान के समान साक्षात्कार को प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ —वास्तव मे परमात्मा सर्वव्यापक है उसके लिए विराजमान होना और न विराजमान होना कथन नहीं किया जा सकता, विराजमान होना यहां साक्षात्कार के अभिप्राय से कथन किया गया है ॥१॥

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२॥

पदार्थ —(हरि) वह पूर्वोक्त परमात्मा (सृजान) साक्षात्कार को प्राप्त हुआ (ऋतस्य पथ्यां) वाक् द्वारा मुक्ति मार्ग की (इयर्ति) प्रेरणा करता है । (अरितेव नावम्) जैसा कि नौका के पार लगाने के समय में नाविक प्रेरणा करता है और (देवानां देव) सब देवो का देव (गुह्यानि) गुप्त (नामाविष्कृणोति) सज्ञाओं को प्रकट करता है (बर्हिषि प्रवाचे) वाणीरूप यज्ञ के लिए ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ने ब्रह्मयज्ञ के लिए बहुत सी संज्ञाओं को निर्माण किया अर्थात्—शब्दब्रह्म जो वेद है उसका निर्माण अर्थात्—आविर्भाव सज्ञा-सज्ञिभाव पर निर्भर करता है इसलिए सज्ञासज्ञिभाव को रहस्यरूप से कथन किया गया है ॥२॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥३॥

पदार्थ —(उशती) शोभावाली स्तुतियां (उशन्तम्) शोभा वाले को (संविशन्ति) प्राप्त होती हैं जैसे कि (तर्तुराणा) शीघ्र करने वाले लोगो की (मनीषा) बुद्धि मे (प्रेरते) प्रेरणा करती हैं इसी प्रकार (सोमम्) परमात्मा को (अच्छ) भली-भांति प्राप्त होती हैं (च) और (अपामिवोर्मय) जैसे कि जलों की लहरें जलो को सुशोभित करती है इसी प्रकार परमात्मा की विभूतियां परमात्मा को सुशोभित करती हैं (च) और (नमस्यन्ति) परमात्मा की विभूतियां सत्कार करती हैं और (उपयन्ति) उसको प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ.—इसमे परमात्मा की विभूतियो का वर्णन है कि परमात्मा की विभूतियां परमात्मा के भावो का द्योतन करती हैं जिनसे परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।

तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४॥

पदार्थ —(त मर्मृजानम्) उस भक्तों द्वारा उपासित परमात्मा को (सानौ) सर्वोपरि शिखर पर (महिष न) महापुरुष के समान विराजमान को (अंशुम्) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है । (उक्षणम्) जो सर्वोपरि बलप्रद है । (गिरिष्ठाम्) जो वेदरूपी वाणी का अधिष्ठाता है । (त वावशानम्) उस सर्वोपरि कमनीय परमात्मा को (मतय) सुमति लोग (सचन्ते) सगत होते हैं जो परमात्मा (समुद्रे) अन्तरिक्ष मे (वरुणम्) वरणीय पदार्थों को (बिभर्ति) धारण करता है और (त्रित) प्रकृति, जीव और महत्तत्वरूप सूक्ष्म जगत्कारणों का अधिष्ठाता है अथवा (त्रित) भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनो कालों का अधिष्ठाता है ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है उसको सयमी पुरुष साक्षात्कार कर सकते हैं ॥४॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।

इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥५॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (मनीषाम्) बुद्धि को हमारे लिए (विष्य) प्रदान कीजिये और (वाचमिष्यन्) वाणी की इच्छा करते हुए (उपवक्तेव) वक्ता के समान (होतु) उपासक को सदुपदेश करें (च) और (यत्) जो (इन्द्र) कर्मयोगी और आप (क्षयथः) दोनो अद्वैतभाव का प्राप्त हैं । (सौभगाय) इस सौभाग्य के लिए हम आपका धन्यवाद करते हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि (सुवीर्यस्य पतय स्याम) सर्वोपरि बल के पति हों ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उक्त परमात्मा से बल की प्रार्थना की गई है ॥५॥

इति पञ्चनवतितमं सूक्त पञ्चमो वर्गश्च समाप्त ।

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य

१ २४ प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३, ११, १२, १४, १६, २३ त्रिष्टुप । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—१०, १३, १५, १८, २१, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक्त्रिष्टुप् २०, २२ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वर ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।

भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थ —(सोम) सोमरूप परमात्मा (सखिभ्यः) अपने अनुयायी (इन्द्रहवान्) जो कर्मयोगी हैं उनके लिए (भद्राणि कृण्वन्) भलाई करता हुआ (वस्त्रा-रभसानि) अत्यन्त वेगवाले शस्त्रो को (आदत्ते) ग्रहण करता है । जैसे कि (शूरः) शूरवीर (सेनानी) जो सेनाओ का नेता है वह (रथानाम्) सज्ञाओं के (अग्रे) समक्ष (गव्यन्) यजमानो के ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ (एति) प्राप्त होता है । इस प्रकार परमात्मा न्यायकारियो के ऐश्वर्य को चाहता हुआ अपने रूप से न्यायकारियो की रक्षा करता है । (अस्य) उस शूरवीर की (सेना) फौज (हर्षते) जैसे प्रसन्न होती है, इसी प्रकार परमात्मा के अनुयायियो की सेना भी हर्ष को प्राप्त होती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे राजधर्म का वर्णन है कि परमात्मपरायण पुरुष राजधर्म द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं ॥१॥

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।

आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२॥

पदार्थ —(अस्य हरिम्) उस परमात्मा की हरणशील शक्ति को (हरय) ज्ञान की किरणें (मृजन्ति) प्रदीप्त करती है और (अश्वहयै.) विद्युदादि शक्तियों के समान (अनिशितम्) असस्कृत को भी (नमोभि.) सत्कार द्वारा सस्कृत करता हुआ (आ तिष्ठति) आकर विराजमान होता है । (रथम) उक्त गतिस्वरूप परमात्मा को (इन्द्रस्य) कर्मयोगी का (सखा) मित्र (विद्वान्) मेधावी पुरुष

(एना) उक्त रास्ते से (सुमतिम्) सुन्दर मार्ग को (अच्छ याति) भली-भाँति प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग नम्रभाव से परमात्मा की उपासना करते हैं वे असंस्कृत होकर भी शुद्ध हो जाते हैं, अर्थात्—उनकी शुद्धि का कारण एकमात्र परमात्मोपासन रूपी संस्कार ही है, कोई अन्य संस्कार नहीं ॥२॥

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥३॥

पदार्थः—(देव सोम) हे दिव्य गुण युक्त परमात्मन् ! (देवताते) विद्वानों से विस्तृत किये हुए (महे) बड़े (प्सरसे) सुन्दर यज्ञ को आप (पवस्व) पवित्र करें (इन्द्रपान) आप कर्मयोगियों के तृप्तिरूप हैं और (अप कृण्वन्) शुभ कर्मों को करते हुए (उत) अथवा (इमां द्याम्) इस द्युलोक को उत्पन्न करते हुए आप (उरु) इस कर्मयोग के विस्तृत मार्ग से (आ) आते हुए (न) हमको (वरिवस्य) धनादि ऐश्वर्य के द्वारा (पुनान) पवित्र करते हुए आप आकर हमारे हृदय में विराजमान हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोग का वर्णन है कि कर्मयोगी अपने योगज कर्म द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है ॥३॥

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (अजीतये) हम किसी से जीते न जायें । (अहतये) किसी से मारे न जायें (पवस्व) इस बात के लिए आप हमको पवित्र बनायें और (स्वस्तये) मगल के लिए (बृहते सर्वतातये) सर्वोपरि बृहत् यज्ञ के लिए (तदुशन्ति) इसी पद की कामना (इमे विश्वे) ये सब (सखाय) मित्रगण करते हैं । (तत्) इसलिए (अहम्) मैं (वश्मि) यही कामना करता हूँ । इसलिए हे परमात्मन् ! आप हमको उक्त प्रकार का ऐश्वर्य दें । क्योंकि आप इस ब्रह्माण्ड के उत्पत्तिकर्ता है ॥४॥

भावार्थ — जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं वे किसी से दबाए व दीन नहीं किए जा सकते ॥४॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥६॥

पदार्थ—(सोम) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (पवते) सबको पवित्र करता है (जनिता मतीनाम्) और ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है । (दिवो जनिता) द्युलोक को उत्पन्न करने वाला है । (पृथिव्या जनिता) पृथिवीलोक को उत्पन्न करने वाला है और (अग्नेर्जनिता) अग्नि का उत्पन्न करने वाला है और (सूर्यस्य जनिता) सूर्य को उत्पन्न करने वाला है । (उत) और (विष्णो जनिता) ज्ञानयोगी को उत्पन्न करने वाला है । (इन्द्रस्य जनिता) कर्मयोगी को उत्पन्न करने वाला है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे परमात्मा के सर्व कर्तृत्व   न किया है ॥५॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

पदार्थ —(सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (पवित्रम्) वज्र वाले को भी (रेभन्) शब्द करता हुआ अतिक्रमण कर जाता है । जिस प्रकार (गृध्राणाम्) "गृध्यति शत्रवच्छेत्तुमभिकांक्षति इति गृध्र शस्त्रम्" । शस्त्रों के मध्य मे (स्वधितिः) वज्र सबको अतिक्रमण कर जाता है और (मृगाणां श्येनः) शीघ्रगति वाले पक्षियो में बाज (विप्राणाम्, कवीनां, ऋषि) विप्र और कवियो के मध्य में ऋषि सबको अतिक्रमण कर जाता है । (देवानाम्) और विद्वानो के मध्य मे (ब्रह्मा) ४ वेदों का वक्ता सबको अतिक्रमण कर जाता है । इसी प्रकार (पदवी) सर्वोपरि उच्चपद रूप परमात्मा सब वस्तुओं में मुख्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कवि, विप्र, ब्रह्मादि मुख्य-मुख्य शक्तियो वाले पुरुषो का दृष्टान्त देकर परमात्मा की मुख्यता वर्णन की है ॥६॥

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥

पदार्थ—वह परमात्मा (वाच ऊर्मिम्) वाणी की लहरों को (सिन्धुर्न) जैसे कि सिन्धु (प्रावीविपत्) कपाता है, इसी प्रकार से कपाता है । (सोमः) वह सोमरूप परमात्मा (पवमान) सबको पवित्र करता है । (मनीषा) मन का भी प्रेरक है । (अन्त पश्यन्) सबका अन्तर्यामी होकर (वृजना) इस संसाररूपी यज्ञ मे (इमा अवराणि आतिष्ठति) इन प्रकृति के कार्यों को आश्रयण करता है । जिस प्रकार (वृषभः) सब बल को देने वाला जीवात्मा (जानन्) चेतनरूप से अधिष्ठाता बनकर (गोषु) इन्द्रियो मे विराजमान होता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सबका अन्तर्यामी है । वह सर्वान्तर्यामी होकर सर्वप्रेरक है "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्यपृथिवी शरीरम् यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः" इत्यादि वाक्य उक्त वेद के आधार पर निर्माण किए गए हैं ॥७॥

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥

पदार्थ —(स) वह परमात्मा (मत्सरः) आनन्दस्वरूप है । (पृत्सु) यज्ञो मे (वन्वन्) सब विघ्नो को नाश करता हुआ (अवात) निश्चल होकर विराजमान है । (सहस्ररेताः) अनन्त प्रकार के बलों से युक्त है । (वाजम्) सब बलों को (अभि) आश्रय देकर (अर्ष) व्याप्त हो रहा है (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (पवमान) आप सबको पवित्र करने वाले हैं । (मनीषी) मन के प्रेरक हैं । (अंशो इषण्यन्) इन्द्रियो को प्रेरणा करते हुए (ऊर्मिमीरय) आनन्द की लहरों को हमारी ओर प्रेरित करें ॥८॥

भावार्थ —जो पुरुष अनन्य भक्ति से अर्थात् एकमात्र ईश्वरपरायण होकर ईश्वर की उपासना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव आनन्द का प्रदान करता है ॥८॥

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥

पदार्थ —(प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा (देववात) जो विद्वानो से सुगम है वह (सोम.) सर्वोत्पादक (रण्य) रमणीक (इन्द्राय मदाय) कर्मयोगी के आह्लाद के लिए (सहस्रधार) जो अनन्त प्रकार की शक्ति से सम्पन्न और (शतवाज) अनन्त प्रकार के बल से सम्पन्न है वह (इन्दु) परमैश्वर्यशाली (सप्तिर्न) विद्युत् की शक्ति के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (समना, परिजिगाति) आध्यात्मिक यज्ञो मे (कलशे) 'कला शेरते अस्मिन् इति कलशम्" नि —१-१२ अन्तःकरणम् । जिसमे परमात्मा अपनी कलाओ के द्वारा विराजमान हो उसका नाम यहाँ कलश है । विद्वानो के अन्त करण मे आकर उपस्थित होता है ॥९॥

भावार्थ —जो लोग ब्रह्मविद्या द्वारा परमात्मा के तत्त्व का चिन्तन करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ज्ञान का विषय होता है ॥९॥

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥७॥

पदार्थ —(स) वह (पूर्व्य) अनादिसिद्ध परमात्मा (वसुवित्) सब धनो का नेता (जायमानः) जो सब जगह पर व्यापक है । (मृजान) शुद्ध है (अप्सु) कर्मों मे (दुदुहान) पूर्ण किया जाता है और (अद्रौ) सब प्रकार के संकटों मे (अभिशस्तिपा) शत्रुओ से रक्षा करने वाला है । (भुवनस्य राजा) सब भुवनो का राजा है (ब्रह्मणे पूयमान) कर्मों मे पवित्रता प्रदान करता हुआ (गातुम्) उपासकों के लिए (विदत्) पवित्रता प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थ —शुद्धभाव से उपासना करने वाले लोगो को परमात्मा सर्व प्रकार के ऐश्वर्य और पवित्रताओ का प्रदान करता है ॥१०॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (पूर्वे पितर) पूर्व काल के पिता-पितामह (धीरा) जो धीर है (त्वया) तुम्हारी प्रेरणा से (कर्माणि, चक्रु:) कर्मों को करते थे । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (वन्वन्) आपका भजन करते हुए (अवात) निश्चल होकर (परिधीन्) राक्षसो को (अपोर्णु) दूर करें (वीरेभि) वीर पुरुषो से (अश्वै.) और जो शक्तिसम्पन्न है उनसे (न) हमको (मघवा, भव) ऐश्वर्य-सम्पन्न करें ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा की आज्ञा पालन करने से देश मे ज्ञानी तथा विज्ञानी पुरुषो की उत्पत्ति होती है और देश ऐश्वर्य-सम्पन्न होता है । इस प्रकार राक्षसभाव निवृत्त होकर सभ्यता के भाव का प्रचार होता है ॥११॥

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (यथा) जिस प्रकार (मनवे) विज्ञानी पुरुष के लिए (अपवथा) धनादिक देने के लिए आप पवित्र करते हैं । अन्नादिकों के देने वाला (अमित्रः) दुष्टो को दण्ड देने वाला (वरिवोवित्) और धनादि ऐश्वर्य को देने वाला (हविष्मान्) हविवाला भक्तपुरुष आपको प्रिय होता है । इस प्रकार हे परमात्मन् ! (एव) निश्चय करके (पवस्व) आप हमको पवित्र करें और (इन्द्रे) कर्मयोगी मे (द्रविण, दधानः) ऐश्वर्य को धारण करते हुए आप (सन्तिष्ठ) आकर विराजमान हो । तथा (जनय, आयुधानि) कर्मयोगी के लिए अनन्त प्रकार के आयुधों को उत्पन्न करें ॥१२॥

भावार्थ—परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा मे चित्तवृत्ति निरोध द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य और आयुधो को उत्पन्न करके देश को अभ्युदयशाली बनाते हैं ॥१२॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमान्) आनन्दमय हैं (ऋतावापः) कर्मरूपी यज्ञ के अधिष्ठाता हैं । (अव्ये) रक्षायुक्त (अधिसानौ) सर्वोपरि

उच्च पद मे (वसानः) विराजमान हैं । (पवस्व) आप हमारी रक्षा करें और (द्रोणानि) अन्तःकरणरूपी कलश (घृतवन्ति) जो स्नेह वाले हैं, (आसीद) उनमे आकर स्थिर हो । आप (मत्सर) सबके तृप्ति कारक है और (मदिन्तम) अत्यन्त आह्लादक हैं और आप (इन्द्रपान) कर्मयोगी की तृप्ति के कारण है ॥१३॥

भावार्थ —जिन पुरुषों के अन्तःकरण प्रेमरूप वारि से नम्रभाव को ग्रहण किए हुए है, उनमे परमात्मा के भाव आविर्भाव को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४॥

पदार्थ —(शतधार) आप अनन्त शक्ति-युक्त हैं और (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिम्) वृष्टि से (पवस्व) पवित्र करें । (देववीतौ) यज्ञो मे (वाजयुः) अनेक प्रकार के बलो को प्राप्त हैं और (सिन्धुभिः) प्रेम के भावों से (कलशे) हमारे अन्तःकरण मे (वावशानः) वास करते हुए (उस्रियाभिः) ज्ञानरूप शक्तियों से (नः) हमारी (आयु) उमर को (प्रतिरन्) बढ़ायें ॥१४॥

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा के ज्ञान-विज्ञानादि भावों को धारण करके अपने को योग्य बनाते हैं परमात्मा उनके ऐश्वर्य को अवश्यमेव बढ़ाता है ॥१४॥

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥८॥

पदार्थ —(एष स्य सोम) वह उक्त परमात्मा (मतिभि) ज्ञान-विज्ञानो द्वारा (पुनान) पवित्र करता हुआ (अत्योन) विद्युत् के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (अराती) शत्रुओं को (इत) अवश्य (तरति) उल्लंघन करता है वह परमात्मा (अदिते) गौ के (दुग्धम) दुहे हुए (पय) दुग्ध के (न) समान (इषिरम्) सर्वप्रिय है (उरु) विस्तीर्ण (गातुरिव) मार्ग के समान सबका आश्रयणीय है तथा (वोह्ला) सम्यक् नियन्ता के (न) समान है ॥१५॥

भावार्थ —परमात्मा के सदृश इस ससार मे कोई नियन्ता नही । उसी के नियम मे सब लोक लोकान्तर भ्रमण करते हैं ॥१५॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (गुह्यम्) सर्वोपरि रहस्य (चारु) श्रेष्ठ (नाम) जो तुम्हारी सज्ञा है । (अभ्यर्ष) उसका ज्ञान कराये । आप (सोतृभि पूयमान) उपासक लोगो से स्तूयमान हैं । (स्वायुध) स्वाभाविक शक्ति से युक्त हैं और (सप्तिरिव) विद्युत् के समान (श्रवस्याभि) ऐश्वर्य के सम्मुख प्राप्त कराइये और (वायुमभि) हमको प्राणो की विद्या का वेत्ता बनाइये । (देव) हे सर्वशक्ति-सम्पन्न परमेश्वर ! हमको (गा) इन्द्रियो के (अभिगमय) नियमन का ज्ञाता बनाइये ॥१६॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा पर विश्वास रखते है वे अवश्यमेव सयमी बन कर इन्द्रियो के स्वामी बनते हैं ॥१६॥

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥

पदार्थ —(शिशुम्) "श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले जगदिति शिशुः परमात्मा" उस परमात्मा को (जज्ञानम्) जो सदा प्रकट है, (हर्यत) जो अत्यन्त कमनीय है, उसका उपासक लोग (मृजन्ति) बुद्धिविषय करते हैं और (शुम्भन्ति) उसकी स्तुति द्वारा उसके गुणो का वर्णन करते हैं और (मरुत) विद्वान लोग (वह्निम्) उस गतिशील परमात्मा का (गणेन) गुणो के गान द्वारा वर्णन करते हैं और (कवि) कवि लोग (गीर्भि) वाणी द्वारा और (काव्येन) कवित्व से उसकी स्तुति करते हैं । (सोम) सौम्यस्वरूप (पवित्रम्) पवित्र वह परमात्मा कारणावस्था मे अतिसूक्ष्म प्रकृति को (रेभन् , सन) गर्जता हुआ (अत्येति) अतिक्रमण करता है ॥१७॥

भावार्थ —परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से यह ब्रह्माण्ड सूक्ष्म से स्थूलावस्था को प्राप्त होता है और उसी से प्रलयावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥

पदार्थ —(सोम) सौम्यस्वरूप परमात्मा (सिषासन्) पालन की इच्छा करता हुआ (महिष) जो महान है वह परमात्मा (तृतीय, धाम) देवयान और पितृयान इन दोनो से पृथक् तीसरा जो मुक्तिधाम है । उसमे (विराजम) विराजमान जो ज्ञानयोगी है उनको (अनुराजति) प्रकाश करता रहता है और (स्तुप) स्तूयमान है । (कवीनाम पदवी) जो क्रान्तदर्शियो की पदवी अर्थात् मुख्य स्थान है और (सहस्रनीथ) अनन्त प्रकार से स्तवनीय है (ऋषिमना) सर्वज्ञान के साधनरूप मनवाला वह परमात्मा (य) जो (ऋषिकृत) सब ज्ञानो का प्रदाता (स्वर्षा) सूर्यादिको को प्रकाशक है । वह जिज्ञासु के लिए उपासनीय है ॥१८॥

भावार्थ —परमात्मा सब लोक लोकान्तरो का नियन्ता है तथा मुक्तिधाम मे विराजमान पुरुषो का भी नियन्ता है ॥१८॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥

पदार्थ —(अपामूर्मिम्) प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों के साथ (सचमान) जो सगत है और (समुद्रम) "सम्यक् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्र" जिससे सब भूतो की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है । वह (तुरीयम्) चौथा (धाम) परमपद परमात्मा है । उसको (महिष) महयते इति महिषः महिष इति महन्नामसु पठितम् नि० ३—१३ । महापुरुष उक्त तुरीय परमात्मा का (विवक्ति) वर्णन करता है । वह परमात्मा (चमूसत्) जो प्रत्येक बल मे स्थित है (श्येन) सर्वोपरि प्रशंसनीय है और (शकुन) सर्वशक्तिमान् है । (गोविन्दु) यजमानो को तृप्त करके जो (द्रप्स) शीघ्रगति वाला है (आयुधानि, बिभ्रत्) अनन्त शक्तियो को धारण करता हुआ इस सम्पूर्ण ससार का उत्पादक है ॥१९॥

भावार्थ —परमात्मा इस विविध रचना का नियन्ता है । उसने अन्तरिक्षलोक को सम्पूर्ण भूतो के इतस्ततः भ्रमण का स्थान बनाया है ॥१९॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥

पदार्थ —वह परमात्मा (यूथा, वृषेव) जिस प्रकार एक सघ को उसका सेनापति प्राप्त होता है, इसी प्रकार (कोशम्) इस ब्रह्माण्डरूपी कोश को (अर्षन्) प्राप्त होकर (कनिक्रदत्) उच्च स्वर से गर्जता हुआ (चम्वो) इस ब्रह्माण्ड रूपी विस्तृत प्रकृति-खण्ड मे (पर्याविवेश) भली-भाँति प्रविष्ट होता है और (न) जैसे कि (मर्य) मनुष्य (शुभ्रस्तन्व, मृजान) शुभ्र शरीर को धारण करता हुआ (अत्योन) अत्यन्त गतिशील पदार्थों के समान (सनये) प्राप्ति के लिए (सृत्वा) गतिशील होता हुआ (धनानाम्) धनो के लिए कटिबद्ध होता है, इसी प्रकार प्रकृतिरूपी ऐश्वर्य को धारण करने के लिए परमात्मा सदैव उद्यत है ॥२०॥

भावार्थ —जिस प्रकार मनुष्य इस स्थूल शरीर को चलाता है अर्थात् जीव रूप से इसका अधिष्ठाता है उसी प्रकार परमात्मा इस प्रकृतिरूपी शरीर का अधिष्ठाता है ॥२०॥

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥

पदार्थ —(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (महोभि) महापुरुषो से (पवमान) उपास्यमान आप (पवस्व) हमको पवित्र करें और (कनिक्रदत्) वैदिक वाणियों के द्वारा शब्दायमान होते हुए आप (वाराणि) श्रेष्ठ पुरुषो के प्रति (पर्यर्ष) प्राप्त हो और (चम्वो , क्रीळन) इस ब्रह्माण्ड मे क्रीडा करते हुए और (पूयमान) सबको पवित्र करते हुए (आविश) हमारे अन्तःकरण मे आकर प्रविष्ट हो । हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा (रस) आनन्द (मदिर) जो आह्लादित करने वाला है, वह (इन्द्रम) कर्मयोगी को (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥२१॥

भावार्थ —परमात्मा के आनन्दाम्बुधि के रस को केवल कर्मयोगी ही पान कर सकता है । आलसी निरुद्यमी लोग उक्त रस आनन्द के अधिकारी कदापि नही हो सकते ॥२१॥

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२॥

पदार्थ —(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द की (बृहती , धारा) बडी धारायें (प्रासृग्रन्) जो परमात्मा की ओर से रची गई हैं । (अक्त) सर्व-व्यापक परमात्मा (गोभि) अपने ज्ञान की ज्योति द्वारा (कलशान) उपासकों के अन्तःकरणों को (आविवेश) प्रवेश करता है और (सामकृण्वन्) सम्पूर्ण ससार मे शान्ति फैलाता हुआ (सामन्य) शान्ति रस मे तत्पर परमात्मा (विपश्चित) जो सर्वोपरि बुद्धिमान है । वह (सख्यु) मित्र के (न, जामिम्) हाथ को पकडने के समान (क्रन्दन् , अभ्येति) मंगलमय शब्द करता हुआ हमको प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थ —परमात्मा अपने भक्तो को सदैव सुरक्षित रखता है । जिस प्रकार मित्र अपने मित्र पर सदैव रक्षा के लिए हाथ प्रसारित करता है एव स्वमर्यादानुयायी लोगो पर ईश्वर सदैव कृपादृष्टि करता है ॥२२॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

पदार्थ —(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (शत्रून् अपघ्नन्) अन्यायकारी शत्रुओं का नाश करते हुए (एषि) आप सत्पुरुषो को प्राप्त होते है । (जार , न) जारयतीति जारोऽग्निः, जैसे अग्नि (प्रियाम्) कमनीय वस्तु को प्राप्त होकर उसे संस्कृत करता है, जिस प्रकार (अभिगीत , इन्दु) सत्कार द्वारा आह्वान किया हुआ ज्ञानयोगी (वनेषु, सीदन्) भक्तो मे स्थिर होता हुआ उनको शान्ति प्रदान करता है और (शकुन) विद्युत् शक्ति (न) जैसे (पत्वा) अपने प्रभाव को डाल कर उन्हें उत्तेजित करती है, इसी प्रकार (सोम.) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनान) सबको पवित्र करता हुआ (कलशेषु) भक्त पुरुषो के अन्तःकरण मे (सत्ता) स्थिर होता है ॥२३॥

भावार्थः—अन्य पदार्थ जीवात्मा का ऐसा सत्कार नही कर सकते जैसा कि परमात्मा करता है अर्थात् परमात्मज्ञान के सत्कार द्वारा जीवात्मा सर्वथा शुद्ध हो जाता है ।।२४।।

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।

हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ।।२४।।१०।।५।।

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पवमानस्य, ते, रुच) सबको पवित्र करने वाले आपकी दीप्तिया (सुदुघा) जो भली-भांति सबको परिपूर्ण करने वाली हैं (सुधारा) और सुन्दर धाराओ वाली हैं, वे भक्त पुरुष के प्रति (योषेव, यन्ति) परमप्रेम करने वाली माता के समान प्राप्त होती हैं । (हरि) जो सब दु खो को हरण करने वाला परमात्मा है, वह (आनीत) सब ओर से भली-भांति उपासना किया हुआ (अप्सु, पुरुवार.) प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड में अत्यन्त वरणीय है । वह (देवयूनाम) परमात्मा की दिव्य शक्ति चाहने वाले उपासकों के (कलशे) हृदय में (अचिक्रदत्) सर्वदैव शब्दायमान है ।।२४।।

भावार्थ —यो तो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्ड मे सर्वत्रैव देदीप्यमान है पर भक्त पुरुषों के स्वच्छ अन्त करणो मे परमात्मा की अभिव्यक्ति सबसे अधिक दीप्तिमती होती है ।।

।। इति षण्णवतितम सूक्त दशमो वर्गश्च समाप्त ।।

अथाष्टपञ्चाशदृचस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य—

ऋषि —१-३ वसिष्ठ । ४-६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७-९ वृषगणो वासिष्ठः । १०-१२ मन्युर्वासिष्ठ । १३-१५ उपमन्युर्वासिष्ठ. । १६-१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठ । १९-२१ शक्तिर्वासिष्ठ । २२-२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठ । २५-२७ मृळीको वासिष्ठ। । २८-३० वसुक्रोवासिष्ठः। ३१-४४ पराशर । ४५-५८ कुत्स. ।। पवमान। सोमो देवता छन्द।—१, ६, १०, १२ १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६ निचृत्त्रिष्टुप् । २-४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३ २४, ३३, ४८, ५३ विराटत्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७-३०, ३४, ३५, ३७, ४२-४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१, ४९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४० भुरिक्त्रिष्टुप ।। धैवत स्वर ।।

अब विद्वानो के गुण वर्णन किये जाते है ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ।।१।।

पदार्थ —(सुत) विद्या द्वारा संस्कृत हुआ विद्वान् (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ (पवित्र, पर्येति) पवित्रता को प्राप्त होता है । जिस प्रकार (पशुमन्ति) ज्ञान वाले स्थान का (मिता, इव) नियमी पुरुष के समान (होता) यज्ञकर्ता पुरुष प्राप्त होता है । (अस्य, प्रेषा) उक्त विद्वान् की जिज्ञासा करने वाला पुरुष (हेमना, पूयमान) सुवर्णादि भूषणो से पवित्र होता हुआ (देवेभि , सम्पृक्त) विद्वानो से सगति का लाभ करता हुआ (देव) दिव्य भाव वाला (रसम्) ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है ।।१।।

भावार्थ — विद्वान् पुरुषो के शिष्य अर्थात जो पुरुष वेदवेत्ता विद्वानो से शिक्षा पाकर विभूषित होते हैं वे सदैव ऐश्वर्य से विभूषित रहते है ।।१।।

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ।।२।।

पदार्थ —उक्त विद्वान् (विचक्षण) विलक्षण बुद्धि वाला (जागृवि.) जागरणशील (चम्वो', पूयमान) बडे-बडे समाजो को अपने ज्ञान द्वारा पवित्र करता हुआ (समन्या) शान्ति की (वस्त्रा) रक्षा करने वाले (भद्रा) सुन्दर भावो को (वसान') धारण करता हुआ (निवचनानि शसन्) जो सुन्दर वक्तव्य हैं उनको जानता हुआ (महान्, कवि) महाविद्वान् होता है । (देववीतौ) यज्ञ के विषय मे उक्त विद्वान् को (आवच्यस्व) ऐसा वचन कह कर सत्कृत करें ।।२।।

भावार्थ —जो पुरुष अपने आध्यात्मिकादि यज्ञो मे उक्त विद्वानो की प्रशसा तथा सत्कार करते हैं वे अभ्युदयशील होते है ।।२।।

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।३।।

पदार्थ —यशस्वियो के मध्य मे जो (यशस्तर) अत्यन्त विद्वान् है और (क्षैत) पृथिव्यादि लोको में (यशसां, प्रियः) यशो को चाहने वाला है (सानो, अव्य) रक्षा के उच्च शिखर मे जो (समु, मृज्यते) भली-भांति मार्जन किया गया है, उक्त गुणो वाला विद्वान् (अस्मे) हमारे लिए (धन्वा) अन्तरिक्ष मे (अभि, स्वर) सदुपदेश करे (पूयमान) सबको पवित्र करने वाला विद्वान् सदा सत्कार योग्य होता है । हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त विद्वानो के प्रति इस प्रकार का स्वस्तिवाचन कहो कि (स्वस्तिभिः) कल्याणरूप वाणियो के द्वारा (यूयं) आप लोग (सदा) सदैव (न) हमारी (पात) रक्षा करें ।।३।।

भावार्थः—स्वस्तिवाचन द्वारा मङ्गल को करने वाले पुरुष सदैव उन्नतिशील होते हैं ।।३।।

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।

स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ।।४।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (महते, धनाय) बडे ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (देवान्) विद्वान लोगो का (प्र, गायत) स्तवन करो (अभ्यर्चाम') और उन्हीं का सत्कार करो और (सोम) उनमें जो सौम्यगुण सम्पन्न विद्वान् है उसको (हिनोत) प्रेरणा करो कि वह तुमको सदुपदेश करे और (स्वादु) आनन्ददायक पदार्थों के लिये (पवाते) पवित्र करे (देवयु) दिव्यगुण और (वारं) वरणीय (अव्य) रक्षक उक्त विद्वान् (न) हमारे (कलश) अन्त करण मे (आसीदति) स्थिर हो ।।४।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम कल्याण की प्राप्ति के लिए विद्वानो का सत्कार करो ।।४।।

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।

नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ।।५।।

पदार्थ (इन्दु) कर्मयोगी विद्वान् (देवानाम्) विद्वानो के (उपसख्यं) मैत्रीभाव को (उपायत्) प्राप्त होता हुआ (मदाय) आनन्द के लिये (पवते) सबको पवित्र करता है । वह कर्मयोगी (सहस्रधार) अनन्त प्रकार की शक्तियाँ रखता हुआ (महते सौभगाय) बडे सौभाग्य के लिये (इन्द्र) ऐश्वर्य को (अगन्) प्राप्त होता हुआ (पूर्व धाम) सर्वोपरि धाम बनाता है ।।५।।

भावार्थ —जिन पुरुषो के मध्य मे एक भी कर्मयोगी होता है वह सबको उद्योगी बना कर पवित्र बना देता है ।।५।।

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।

देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।६।।

पदार्थ.—(हरि) 'हरतीति हरि'' जो प्रलय काल मे सब कार्यों को अपने मे लय कर लेता है उसका नाम यहा हरि है । वह हरि (इन्द्रम) कर्मयोगी को (पुनान) पवित्र करता हुआ (अर्ष) आता है और (राये) ऐश्वर्य के लिये (स्तोत्रे) यज्ञ सम्बन्धी स्तोत्रो मे आकर प्राप्त होता है । हे हरि ! (ते) तुम्हारा (मद) आनन्द (भराय) सग्राम के लिये (गच्छतु) प्राप्त हो और (देवै) विद्वानो के साथ (याहि) आकर आप हमको प्राप्त हो (राध) ऐश्वर्य (अच्छ) हमको दो और (यूयम) आप (स्वस्तिभि) स्वस्तिवाचनो से (न) हमारी सदा के लिये (पात) रक्षा करें ।।६।।

भावार्थ —जो परमात्मा प्रलय काल मे सब वस्तुओ का एकमात्र आधार होता हुआ विराजमान है, वह परमात्मा हमको आनन्द प्रदान करे ।।६।।

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ।।७।।

पदार्थ (देवानाम्) विद्वानो के मध्य मे (देव) जो मुख्य विद्वान् है वह (उशनेव काव्य ब्रुवाण) कान्तिशील विद्वान् के समान सदर्भ रचना को करने वाला विद्वान् (जनिम विवक्ति) अनेक जन्म-जन्मान्तरो का वर्णन करता है । (महिव्रत) बडे व्रत को धारण करने वाला (शुचिबन्धु) पवित्रता का बन्धु (पावक) सबको पवित्र करने वाला है (वराह) [वरञ्च तदहश्चेति वराह वराहो विद्यतेयस्यस वराह] जिसका श्रेष्ठ तेज हो उसका नाम यहाँ वराह है । उक्त प्रकार का विद्वान् (रेभन) सुन्दरोपदेश करता हुआ (पदाऽभ्येति) सन्मार्ग द्वारा आकर उपदेश करता है ।।७।।

भावार्थः—जो उत्तम विद्वान है वे अपनी रचना द्वारा पुनर्जन्मादि सिद्धान्तो का वर्णन करते है । वराह शब्द यहा सर्वोपरि तेजस्वी विद्वान् के लिये आया है । वराह के अर्थ यहां विद्वान् के ही हैं ।।७।।

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ।।८।।

पदार्थ —(वृषगणा) विद्वानो के गण (हंसास.) हंसो के समान विचरते हुये (तृपलम्) शीघ्र ही (मन्युमच्छ अमात् अस्तम) दुष्टो के दमन करने वाले उक्त परमात्मा को (आंगूष्यम्) जो सबका लक्ष्य है और (पवमानम्) सबको पवित्र करने वाला है उसको (प्रायासु) प्राप्त होते है । तदनन्तर (सखायः) परस्पर मैत्रीभाव से सगत होते हुए (वाणम्) भजनीय (दुर्मर्षम्) जो दु ख से प्राप्त होने योग्य लक्ष्य है उस लक्ष्य के (साकम्) साथ-साथ (प्रवदन्ति) वर्णन करते है ।।८।।

भावार्थ —जो पुरुष परमात्मा के सद्गुणो को परमप्रेम से धारण करते हैं वे मानो परमात्मा के साथ मैत्री करते हैं । वास्तव में परमात्मा किसी का शत्रु वा मित्र नही कहा जा सकता ।।८।।

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।

परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ।।९।।

पदार्थ —(स) उक्त परमात्मा (रहते) गतिशील है (उरुगायस्य) सर्वोपासनीय परमात्मा की (जूतिं) गति को स्मरण करते हुए (गाव) इन्द्रिया

(न मिनते) उसके तत्त्व को नहीं पा सकती जो (वृथा) अनायास से (क्रीळन्तम्) क्रीडा कर रहा है (तिग्मशृङ्ग) अज्ञानों को नाश करने वाला परमात्मा (परीणसम्) अनन्त प्रकार के ज्ञान का प्रकाश (कृणुते) करता है और (हरि) जो परमात्मा (दिवानक्तम्) दिन-रात ज्ञानदृष्टि से (ऋज्र) एक रस (ददृशे) देखा जाता है ॥९॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा समय-समय पर उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण है तथापि उसके स्वरूप में कोई विकार न उत्पन्न होने से वह सदैव एकरस है ॥९॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥१२॥

पदार्थ —(वृजनस्य) बल का (राजा) प्रदीप्त करने वाला परमात्मा (वरिव) ऐश्वर्य को (कृण्वन) करता हुआ (अराती) शत्रुरूप राक्षसो को (परिबाधते) नाश करता है और (इन्दु) वह प्रकाशस्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (गोन्योघा.) गतिशील (पवते) हमको पवित्र करता है और (इन्द्रे) कर्मयोगी विषयक (सोम) सोमस्वभाव (सह) शीलस्वभाव को (इन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (मदाय) आनन्द के लिए उक्त गुणो को प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थ —कर्मयोगी उद्योगी पुरुषो के सब विघ्नो की निवृत्ति करके परमात्मा कर्मयोगी के लिये आत्मभावो का प्रकाश करता है ॥१०॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥

पदार्थ.—(अद्रिदुग्ध.) चित्तवृत्तियो से साक्षात्कार किया हुआ परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है (अध) और (मध्वा, धारया) आनन्द की धाराओ से (पृचान) विद्वानो को तृप्त करता हुआ (रोम, तिर) अज्ञान को तिरस्कृत करके हमको पवित्र करे और (देवस्य) उक्त दिव्यरूप परमात्मा का (मत्सर) आह्लादक जो आनन्द है वह (मदाय) हमारे मोद के लिये हो (इन्द्रस्य) *ऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा के (सख्यम्) मैत्रीभाव को (जुषाण) सेवन करता* हुआ (इन्दु) प्रकाशस्वरूप (देव) विद्वान् सद्गति को प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थ —अज्ञान की निवृत्ति के लिये परमात्मा की उपासना सर्वोपरि साधन है ॥११॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

पदार्थ —(देव) उक्त परमात्मस्वरूप देव (देवान्) विद्वानो को (स्वेन) अपने (रसेन) आनन्द से (पृञ्चन्) तृप्त करता हुआ (अभि प्रियाणि) सब प्रिय पदार्थों को (पवते) पवित्र करता है (पुनान) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (इन्दुः) जो प्रकाशस्वरूप है, वह (धर्माणि) वर्णाश्रमो के धर्मों को पृथक-पृथक विधान करता हुआ (ऋतुथा) सब ऋतुओ और देश कालो मे (वसान) निवास करता हुआ (दश क्षिप) पाच स्थूल और पाच सूक्ष्म भूतों के (अव्ये, सानौ) ब्रह्माण्डरूप इस कार्य मे विराजमान होकर (अव्यत) हमारी रक्षा करता है ॥१२॥

भावार्थ —परमात्मा सूत्रात्मारूप से सब सूक्ष्म और स्थूल भूतो मे विराजमान है और उसी ने आदिसृष्टि मे वर्णाश्रमो का गुण, कर्म, स्वभाव द्वारा विभाग किया है ॥१२॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥

पदार्थ —(शोणः) वह तेजस्वी परमात्मा (वृषा) आनन्दो का वर्षक है (गा, अभि, कनिक्रदत्) लोक-लोकान्तरो के समक्ष शब्दायमान होता हुआ (द्याम्) द्युलोक (उत) और (पृथिवीम्) पृथिवी लोक को (नदयन्) समृद्धि को प्राप्त करता हुआ (एति) विराजमान होता है (आजौ) धर्म विषय मे जीवात्मा को (प्रचेतयन) बोधन करता हुआ (इमां, वाचम्) इस वेदरूपी वाणी का (अर्षति) प्राप्त होता है और उसका (वग्नु) शब्द (इन्द्र इव) विद्युत् के समान (शृण्वे) सुना जाता है ॥१३॥

भावार्थ —सब आनन्दों की राशि एकमात्र परमात्मा ही है इसलिए उसी मे चित्तवृत्ति का निरोध करके ब्रह्मानन्द का उपभोग करना चाहिये ॥१३॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

पदार्थ —(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपास्यमान आप (संतनिम्) अभ्युदय का (कृण्वन्) विस्तार करते हुए (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (एषि) प्राप्त होते हैं (पवमानः) सबको पवित्र करने वाले आप (पयसा रसाय्यः) आनन्दस्वरूप हैं सब प्रकार के अभ्युदयों से (पिन्वान) वृद्धि को प्राप्त आप (मधुमन्तमंशुम्) माधुर्ययुक्त अष्टसिद्धियों को (ईरयन्) प्रेरणा करते हुए (एषि) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—अभ्युदय और निःश्रेयस का प्रदाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उसी परमात्मा की दृढ़भक्ति से सब प्रकार के ऐश्वर्य और मुक्ति को लाभ करे ॥१४॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥१३॥

पदार्थः—(मदिर) हे आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! (मदाय) हमारे आनन्द के लिए आप (उदग्राभस्य) अज्ञान के बादल को (वधस्नैर्नमयन्) अपने बाधक शस्त्रो से नम्र करते हुए (रुशन्तम्) दीप्ति वाले (गव्यु) ज्ञान को (नः) हमारे लिए (पर्यर्ष) प्रदान कीजिये । (सोम) हे सौम्यगुण सम्पन्न परमात्मन् ! (वर्णं भरमाण) हम मे योग्यता को करते हुए आप (परिसिक्त) हमारे लिये ज्ञानप्रद हो ॥१५॥१३॥

भावार्थ —जो लोग अनन्य भक्ति से परमात्मा का भजन करते है परमात्मा उनके अज्ञान के बीज को छिन्न-भिन्न करके अवश्यमेव ज्ञान का प्रकाश करता है ॥१५॥१३॥

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥

पदार्थ—(इन्दो) हे स्वप्रकाश परमात्मन् ! आप (वरिवांसि) धनो का प्रदान (कृण्वन्) करते हुए (न) हमारी (पवस्व) रक्षा करें और (जुष्ट्वी) हमारी प्रार्थनाओ से प्रसन्न हुए आप (सुपथा) सुन्दर मार्ग और (सुगानि) सरल वैदिक धर्म के रास्तो का उपदेश करें । (उरौ) विस्तीर्ण (सानौ, अव्ये) रक्षा के पथ मे (विष्वग्दुरितानि) विषम से विषम पापो का (घना इव) बादलो के समान (विघ्नन्) नाश करते हुए (ष्णुना) अपनी आनन्दमय धाराओ से (अधिधन्व) प्राप्त हो ॥१६॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा का प्रीति से सेवन करते हैं अर्थात् सर्वोपरि *प्रिय एकमात्र परमात्मा ही जिनको प्रतीत होता है वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी होकर* इस ससार मे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरते है ॥१६॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

पदार्थ —हे परमात्मन ! (न) हमारे लिए आप (दिव्याम्) दिव्य (वृष्टिम्) वृष्टि (अर्ष) दें, जो वृष्टि (जिगत्नु) सर्वत्र व्याप्त हो (इळावतीम्) अन्न वाली हो (शंगयीम्) सुखप्रद हो (जीरदानुम्) शीघ्र ऐश्वर्य के देने वाली हो और तुम (वीता, स्तुका, इव) सुन्दर सन्तानो के समान (विचिन्वन्) उत्पन्न करते हुए (इमान्, बन्धून्) इस बन्धुगण को (अवरान्) जो देश देशान्तरो मे स्थिर है और (वायून्) वायु के समान गतिशील है, उसको (धन्व) आकर प्राप्त हो ॥१७॥

भावार्थ —यद्यपि परमात्मा स्वस्वकर्मानुकूल ऊँच नीच गति प्रदान करता है, तथापि वह सन्तानो के समान जीवमात्र की भलाई चाहता है इसलिये कर्मों द्वारा सुधार करके सबको शुभमार्ग मे प्रेरित करता है ॥१७॥

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ग्रथितम) बद्ध पुरुषो के (पुनान) मुक्तिदाता आप (न.) हमारे (ग्रन्थिम्) बन्धन को (विष्य) मोचन करें (च) और (गातुम्) हमारे मार्ग को (ऋजुम्) सरल करें । (सोम) हे परमात्मन् ! (च) तथा (वृजिनम) हमको बल प्रदान करें (अत्योन) विद्युत् की शक्ति के समान (क्रद) आप शब्दायमान हैं (आ, सृजान) उत्पत्तिकाल में सबके स्रष्टा हैं और प्रलयकाल मे (हरि) सबके हरणकर्त्ता है । (देव) हे देव ! (पस्त्यवान) अन्यायकारी शत्रुओ के (मर्य) आप नाशक हैं, (धन्व) आप हमारे अन्त करणो को शुद्ध करें ॥१८॥

भावार्थ —परमात्मा स्वभाव से न्यायकारी है । वह आप उपासकों के अन्त -करण को शुद्धि प्रदान करता है और अनाचारियो को रुद्ररूप से विनाश करता हुआ इस ससार म धर्म और नीति का स्थापन करता है ॥१८॥

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९॥

पदार्थ.—(सहस्रधारः) अनन्त शक्तियुक्त परमात्मा (सुरभिरदब्धः) किसी से न दबाये जाने वाला (वाजसातौ) यज्ञ मे (नृषह्ये) जो मनुष्यो के तपोबल का वर्धक है और (अव्ये) सबका रक्षक है (सानौ) रक्षारूप उच्च शिखर पर (ष्णुना) अपने प्रवाह से (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तुम (धन्व, परिस्रव) हमको पवित्र करो क्योंकि आप (देवताते) विद्वानों के विस्तृत यज्ञ मे (मदाय) आनन्द को (जुष्टः) प्रीति से सेवन करने वाले है ॥१९॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१९॥

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥१४॥

पदार्थः—(आजौ) ज्ञानयज्ञों मे जो विद्वान् (ससृजानासः) दीक्षित किये गये हैं (अत्यास) विद्युत् के (न.) समान जो (अयुक्ता) बन्धनरहित हैं,

(अरक्मानः) जीवन्मुक्त होते हुए ये जो (अरणा) कर्मों के बन्धनो से रहित हैं (एते शुक्रासः) उक्त तेजस्वी विद्वान् (अभ्यग्मि) अव्याहतगति होकर सर्वत्र विचरते है । (सोमाः) सौम्य (देवास) दिव्य जो परमात्मा के गुणकर्म स्वभाव हैं (ताम्) उनको (पिबध्वै, उपयात) विद्वानो से प्रार्थना है कि आप लोग उक्त परमात्मा के गुणो को सेवन करने का प्रयत्न करें ॥२०॥१४॥

भावार्थ—इस मंत्र मे परमात्मा के गुणकर्म स्वभाव के सेवन करने का उपदेश है अर्थात् परमात्मा के गुणो के धारण करने से पुरुष पवित्र और तेजस्वी हो जाता है ॥२०॥१४॥

एवा न॑ इन्दो अ॒भि दे॒ववी॑तिं॒ परि॑ स्रव॒ नभो॒ अर्णश्च॒मूषु॑ ।

सोमो॑ अ॒स्मभ्यं॒ काम्यं॑ बृ॒हन्तं॑ र॒यिं द॑दातु वी॒रव॑न्तमु॒ग्रम् ॥२१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! (न) हमारे (देववीतिम्, अभि) यज्ञ के प्रति (परिस्रव) ज्ञान की वृष्टि करें और (चमूषु) हमारे क्षेत्ररूप यज्ञो मे (नभः) नभोमण्डल से (अर्णः) जल की वृष्टि करें, (सोमः) सोमगुण सम्पन्न आप (अस्मभ्यम) हमारे लिये (काम्यम्) कमनीय (बृहन्तम) बडे (रयिम्) धन को (ददातु) दे और वह धन (उग्र वीरवन्तम्) उग्र वीरो की सम्पत्ति वाला हो ॥२१॥

भावार्थ—जो लोग अनन्य भक्ति से ईश्वर की उपासना करते हैं, ईश्वर उनको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२१॥

तक्ष॒द्यदी॒ मन॑सो॒ वेन॑तो॒ वाग्ज्येष्ठ॑स्य वा॒ धर्म॑णि॒ क्षोर॑नीके ।

आदी॑मायन्व॒रमा वा॑वशा॒ना जुष्टं॒ पतिं॑ क॒लशे॒ गाव॒ इन्दु॑म् ॥२२॥

पदार्थ—(क्षोरनीके, धर्मणि) वैदिक धर्म में (वेनतो मनस) अत्यन्त कान्ति वाले मन की (वाक) वाणी (तक्षत) आत्मा का सस्कार करती है (यदि वा) अथवा (गाव:) इन्द्रिया (इन्दुम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का जो (पतिम) लोक लोकान्तरो का पति है (वरम्) वरणीय है (जुष्टम्) जो सबका प्रेमपूर्वक उपासनीय है (कलशे) अन्त करण मे (ईम्) उक्त परमात्मा को (आयन्) प्राप्त हुए (वावशाना) ग्रहण करके (आत्) तदनन्तर तुरन्त ही साक्षात्कार करती है ॥२२॥

भावार्थ—जो लोग कर्मयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ द्वारा मन का सस्कार करते हैं उनका शुद्ध मन परमात्मा के ज्ञान को लाभ करता है ॥२२॥

प्र दा॑नु॒दो दि॒व्यो दा॑नुपि॒न्व ऋ॒तमृ॒ताय॑ पवते सुमे॒धाः ।

ध॒र्मा भु॑वद्वृज॒न्य॑स्य॒ राजा॒ प्र र॒श्मिभि॑र्द॒शभि॑र्भारि॒ भूम॑ ॥२३॥

पदार्थ—(सुमेधा) स्वप्रकाश परमात्मा (ऋतम्) सच्चाई को (ऋताय) कर्मयोगी के लिए (पवते) पवित्र करता है, वह परमात्मा (दानुपिन्व) जिज्ञासुओ को धन दानादिको से पुष्ट करने वाला है (दिव्य) दिव्य है (दानुद) सब दाताओं का दाता है वह (धर्मा भुवत्) सब धर्मों को धारण करने वाला है (वृजन्यस्य) साधुबल के धारण करने वाला है (रश्मिभिर्दशभि:) पांच सूक्ष्म पाच स्थूल भूतो की शक्तियो द्वारा (भूम, प्रभारि) इस चराचर जगत् को धारण कर रहा है और (राजा) सब लोक-लोकान्तरो का प्रकाश करने वाला है ॥२३॥

भावार्थ—परमात्मा इस चराचर जगत् का निर्माण करने वाला है । उसी ने सम्पूर्ण ससार को रचकर धर्म की मर्यादा को बाधा है ॥२३॥

प॒वित्रे॑भिः॒ पव॑मानो नृ॒चक्षा॒ राजा॑ दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।

द्वि॒ता भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णामृ॒तं भर॒त्सुभृ॑तं॒ चार्विन्दुः॑ ॥२४॥

पदार्थ—(इन्दु:) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (चारु) सुन्दर (ऋतम्) प्रकृतिरूपी सत्य को (भरत्) धारण किये हुए है वह प्रकृतिरूपी सत्य (सुभृतम्) भली-भांति सबकी तृप्ति का कारण है, उक्त परमात्मा (रयीणाम्) धनो का (पतिः) स्वामी है और (द्विता) जीव और प्रकृतिरूपी द्वैत के लिए (भुवत्) स्वामीरूप से विराजमान है, (उत) और (मर्त्यानाम्) साधारण मनुष्यो का और (देवानाम्) विद्वानो का (राजा) राजा है (नृचक्षा) शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा है तथा (पवित्रेभि) अपनी पवित्र शक्तियो से (पवमान) पवित्रता देने वाला है ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृतिरूपी परिणामी नित्य और जीवरूपी कूटस्थ नित्य द्वैत को धारण किया है । इस प्रकार जीव और प्रकृति का परमात्मा से भेद है । इस विषय का वर्णन वेद के कई एक स्थानों मे अन्यत्र भी पाया जाता है । जैसा कि [न त विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकम् अन्तर बभूव] तुम उसको नहीं जानते जिसने इस ससार को उत्पन्न किया है । वह तुमसे भिन्न है । इस मन्त्र मे द्वैतवाद का वर्णन स्पष्ट रीति से पाया जाता है ॥२४॥

अर्वा॑ इव॒ श्रव॑से सा॒तिमच्छेन्द्र॑स्य वा॒योर॒भि वी॒तिम॑र्ष ।

स नः॑ स॒हस्रा॑ बृह॒तीरिषो॑ दा॒ भवा॑ सोम द्रविणो॒वित्पु॑ना॒नः ॥२५॥१५॥

पदार्थ—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (सहस्रा) सहस्रो प्रकार के (बृहती) बड़े-बड़े (इष) ऐश्वर्यों के (दा.) देने वाले (भव) हो क्योंकि आप (द्रविणोवित्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के जानने वाले हैं । इसलिये (पुनानः) ऐश्वर्यों द्वारा पवित्र करते हुए (अर्वा इव) गतिशील विद्युत् के समान (श्रवसे) ऐश्वर्य के लिए (सातिम) यज्ञ को (अच्छ) हमारे लिए दें और (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को और (वायोरभि) ज्ञानयोगी का (वीतिम्) ज्ञान (अर्ष) दें (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (न:) हमको ज्ञान प्रदान से पवित्र करें ॥२५॥१५॥

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानयोगी को नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह ज्ञानयोग का सम्पादन करे ॥२५॥१५॥

दे॒वा॒व्यो॑ नः परिषि॒च्यमा॑नाः॒ क्षयं॑ सु॒वीरं॑ धन्वन्तु॒ सोमाः॑ ।

आ॒य॒ज्यवः॑ सुम॒तिं वि॒श्ववा॑रा॒ होता॑रो॒ न दि॑वि॒यजो॑ म॒न्द्रत॑माः ॥२६॥

पदार्थ—(देवाव्य) विद्वानो को ज्ञान द्वारा तृप्त करने वाला परमात्मा और (आयज्यव:) यजनशील (विश्ववारा) सबका उपास्यदेव (होतार:) होता लोगो के (न) समान (दिवियज:) द्युलोक मे सूर्यादि अग्निपुञ्जो के द्वारा यज्ञ करने वाला (मन्द्रतमा) आनन्दस्वरूप उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (परिषिच्यमाना) उपासना किया हुआ (सोमा:) सौम्यस्वभाव परमात्मा (सुवीरम्) सुवीर सन्तान और (क्षयम्) निवास स्थान (धन्वन्तु) दे । यहां बहुवचन आदर के लिए है ॥२६॥

भावार्थ—सुसम्पत्ति तथा सुन्दर सन्तान एकमात्र पुण्य कर्मों से प्राप्त होती है इसलिए पुण्यात्मा बनकर पुण्यो का सञ्चय करना चाहिए ॥२६॥

ए॒वा दे॑व दे॒वता॑ते पवस्व म॒हे सो॑म॒ प्सर॑से देव॒पानः॑ ।

म॒हश्चि॒द्धि ष्मसि॑ हि॒ताः स॑म॒र्ये कृ॒धि सु॑ष्ठा॒ने रोद॑सी पुना॒नः ॥२७॥

पदार्थ—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! आप (देवपान) विद्वानो से प्रारम्भ किए हुए यज्ञ मे (महे) जो सबसे बडा है उसमे (सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन ! (प्सरसे) विद्वानो की तृप्ति के लिए (पवस्व) पवित्र करें और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य मे (सुष्ठाने) शोभन स्थान मे (पुनान) हमको पवित्र करते हुए आप (समर्य) इस ससार के युद्धरूपी क्षेत्र मे (हिता) हितकर (कृधि) बनाए (हि) क्योंकि आप (महश्चित्) बडी से बडी शक्तियो का (स्मसि) अनायास से (एव) ही धारण कर रहे हो ॥२७॥

भावार्थ—परमात्मा सब लोक-लोकान्तरो का अनायास धारण कर रहा है । उसी सर्वाधार परमात्मा की सुरक्षा से पुरुष सुरक्षित रहता है अतएव शुभ कर्म करते हुए एकमात्र उसी से सुरक्षा की प्रार्थना करनी चाहिए ॥२७॥

अश्वो॒ न क्र॑दो॒ वृष॑भिर्युजा॒नः सिं॒हो न भी॒मो मन॑सो॒ जवी॑यान् ।

अ॒र्वा॒चीनैः॑ प॒थिभि॒र्ये रजि॑ष्ठा॒ आ प॑वस्व सौमन॒सं न॑ इन्दो ॥२८॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (अर्वाचीनै) आपके अभिमुख करने वाले (पथिभि) मार्गों से (ये) जो मार्ग (रजिष्ठा) सरल हैं उनके द्वारा (न) हमको (सौमनसम्) सस्कृत मन देकर पवित्र करें, आप (मनसो जवीयान्) मन के वेग से भी शीघ्रगामी हैं, अर्थात् मन के पहुँचने से पहले वहा विद्यमान है । (सिंह) सिंह के (न) समान भयप्रद है, (अश्व) विद्युत् के (न) समान (क्रद) शब्दायमान है (वृषभि) योगियो से (युजान:) जुडे हुए हैं ॥२८॥

भावार्थ—जो लोग परमात्मा से मन की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनके मन को शुद्ध करके उन्हे शुभ बुद्धि प्रदान करता है ॥२८॥

श॒तं धारा॑ दे॒वजा॑ता असृग्रन्स॒हस्र॑मेनाः क॒वयो॑ मृजन्ति ।

इन्दो॑ स॒नित्रं॑ दि॒व आ प॑वस्व पुरए॒तासि॑ मह॒तो धन॑स्य ॥२९॥

पदार्थ—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (सनित्रम्) उपासना के साधनरूप ऐश्वर्य को (दिव) द्युलोक से देकर (आपवस्व) हमको पवित्र करें, क्योंकि, (पुर) प्राचीनकाल से ही आप (महतो धनस्य) बडे धनो के (एता) दाता (असि) हो । आप कैसे हैं । (शतधारा) अनन्त ब्रह्माण्डो के (असृग्रन्) धारण करने वाले हैं और (सहस्रम्) सहस्रो प्रकार की (एना) विभूतिया (मृजन्ति) आपको अलकृत करती हैं, (देवजाता) दिव्यशक्ति सम्पन्न (कवय) क्रान्तदर्शी विद्वान् आपको शुद्ध स्वरूप से वर्णन करते हैं ॥२९॥

भावार्थ—परमात्मा के ऐश्वर्य को सब लोक-लोकान्तर वर्णन करते हैं । जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है वह परमात्मा की विभूति है अर्थात् यह सब चराचर जगत् परमात्मा के एक देश मे स्थित है और परमात्मा इसको अपने में अभिव्याप्त करके सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥२९॥

दि॒वो न सर्गा॑ असस॒ग्रमह्नां॒ राजा॒ न मि॒त्रं प्र मि॑नाति॒ धीरः॑ ।

पि॒तुर्न पु॒त्रः क्रतु॑भिर्यता॒न आ प॑वस्व वि॒शे अ॒स्या अजी॑तिम् ॥३०॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप हमको (अजीतिम्) अजयभाव देकर (पवस्व) पवित्र करें । (दिव) द्युलोक से (न) जिस प्रकार (अह्नाम्) आदित्य की (सर्गा) रश्मिया (अससृग्रम्) प्रचार पाती है इसी प्रकार परमात्मा की ज्योति से प्रकाशरूप परमात्मा से प्रचार पाती हैं और (न) जिस प्रकार (धीर:) धीर (राजा) प्रजा का स्वामी (मित्रम्) मित्ररूप प्रजा को (न प्रमिनाति) नहीं मारता इस प्रकार परमात्मा सदाचारी लोगो को (न प्रमिनाति) नही मारता, और (न) जिस प्रकार (यतान) यत्नशील (पुत्र) पुत्र (क्रतुभि) यज्ञो के द्वारा (पितुः) पिता के ऐश्वर्य को चाहता है इसी प्रकार हम लोग आपके ऐश्वर्य को

सत्कर्मों द्वारा चाहते हैं । इस लिए (बिदो) सन्तानरूप प्रजा को (आपवस्व) आप पवित्र करें ॥३०॥

भावार्थ ---जो लोग परमात्मा से सन्तानों की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उनकी सन्तानों को अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥३०॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।

पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१॥

पदार्थ ---(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (गोनाम्) सब ज्योतियों का (धाम) निवासस्थान हैं और (जज्ञान) आप अपने प्राविर्भाव से (अर्कैः) किरणों के द्वारा (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः) पुष्ट करते हैं और (ते धारा) तुम्हारे आनन्द की लहरें (मधुमतीः) मीठी हैं और (यत्) जब (पूतः) अपने पवित्र भाव से (अव्यान्) रक्षायुक्त पदार्थों को (अत्येषि) प्राप्त होते हो तब तुम्हारी उक्त धारायें (प्रासृग्रन्) अनन्त प्रकार के भावों को उत्पन्न करती हैं, और आप (वारान्) वरणीय पदार्थों को (पवसे) पवित्र करते हैं ॥३१॥

भावार्थ ---इस मन्त्र में परमात्मा की ज्योतियों का वर्णन है अर्थात् परमात्मा की दिव्य ज्योतियां सब पदार्थों को पवित्र करती हैं ॥३१॥

कनिक्रदुदनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।

स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२॥

पदार्थ ---हे परमात्मन् ! (ऋतस्य) सच्चाई के (पन्थाम्) रास्ते का (कनिक्रदत) उपदेश करते हुए (शुक्र) बलस्वरूप आप (विभासि) प्रकाशमान हो रहे हो, तुम (अमृतस्य, धाम) अमृत के धाम हो (स) उक्त गुण-सम्पन्न आप (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवसे) पवित्र करते हैं, (मत्सरवान्) आप आनन्दस्वरूप हैं, (कवीनाम्) मेधावी पुरुषों की (वाचम्) वाणी को (मतिभि) अपने ज्ञानों द्वारा (हिन्वान) प्रेरणा करते हुए (पवसे) पवित्र करते हैं ॥३२॥

भावार्थ ---जो लोग ज्ञानयोगी व कर्मयोगी हैं, परमात्मा उनके उद्योग को अवश्यमेव सफल करता है ॥३२॥

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।

एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥

पदार्थ ---हे परमात्मन् ! आप (दिव्य) दिव्यस्वरूप हैं (सुपर्ण) चेतन हैं (अवचक्षि) आप हमको सदुपदेश करें, (सोम) हे सोम ! (देववीतौ) देवताओं के यज्ञ में (कर्मणा पिन्वन्) पुष्ट करते हुए आप (धारा) अपनी कृपामयी वृष्टि से पुष्ट करें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (सोमधानम्) सोमगुण के धारण करने वाले (कलशम्) अन्तःकरण को (विश) प्रवेश करें और (सूर्यस्य रश्मिम) ज्ञान की रश्मियों का (क्रन्दन) उपदेश करते हुए (उप, एहि) आकर प्राप्त हो ॥३३॥

भावार्थ ---इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया है कि परमात्मा स्वतः ज्ञानस्वरूप है अर्थात् स्वतः प्रकाश है ॥३३॥

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३४॥

पदार्थः---(वह्नि) (वहतीति वह्निः) सर्वप्रेरक परमात्मा (तिस्रो वाच) तीन प्रकार की वाणियों की (प्रेरयति) प्रेरणा करता है उक्त वाणी (ऋतस्य, धीतिम्) सच्चाई धारण करने वाली है (ब्रह्मण) शब्दब्रह्मरूप वेद का (मनीषाम्) मनरूप है, ऐसी वाणी की उक्त परमात्मा प्रेरणा करता है, (गोपतिम्) जिस तरह प्रकाशों के पति सूर्य को (गाव) किरणें (यन्ति) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (वावशाना) कामना वाले जिज्ञासु (पृच्छमाना) जिनको ज्ञान की जिज्ञासा है, वैसे (मतय) मेधावी लोग (सोमम्) परमात्मा को (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥३४॥

भावार्थ ---जो लोग अपने शील को बनाते हैं अर्थात् सदाचारी बन कर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अपने ज्ञान से प्रदीप्त करता है ॥३४॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुतः पूयते अज्यमानः

सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५॥१७॥

पदार्थः---(सोमम्) उक्त परमात्मा की (गावो, धेनव) ज्ञानरूप वाणियाँ इच्छा करती हैं, (सोमम्) उक्त परमात्मा की (विप्रा) मेधावी लोग (मतिभि) (वावशाना) ज्ञान द्वारा (पृच्छमाना) जिज्ञासा करते हैं (अज्यमानः) उपासना किया हुआ (सुत) आविर्भाव को प्राप्त हुआ (सोम) परमात्मा (पूयते) साक्षात्कार किया जाता है (सोमे) उक्त परमात्मा में (त्रिष्टुभः) कर्म, उपासना, ज्ञान रूप तीनों प्रकार की वाणियां (अर्काः) जो परमात्मा की अर्चना करने वाली हैं, वे (स नवन्ते) सङ्गत होती हैं ॥३५॥

भावार्थ ---कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीनों प्रकार के भावों को वर्णन करने वाली वेदरूपी वाणियां एकमात्र परमात्मा में ही सङ्गत होती हैं अथवा यों कहो कि जिस प्रकार सब नदियां समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं इसी प्रकार वेदरूपी वाणियां परमात्मारूपी समुद्र की शरण लेती हैं ॥३५॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।

इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६॥

पदार्थ ---(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमान) उपासना किये हुए आप (न) हमको (आपवस्व) पवित्र करें, और (पूयमान) शुद्धस्वरूप आप (स्वस्ति) मङ्गलवाणी से हमारा कल्याण करें, और (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (आविश) आकर प्रवेश करें तथा (बृहतारवेण) बड़े उपदेश से उसको (वर्धय) बढ़ाए और (पुरन्धिम्) ज्ञान के देने वाली (वाचम्) वाणी को (जनय) उसमें उत्पन्न करें ॥३६॥

भावार्थ ---जो लोग उपासना द्वारा परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुद्ध करता है ॥३६॥

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥

पदार्थ ---(चमूषु) सब प्रकार के बलों को (पुनान) पवित्र करता हुआ (सोम) सोमरूप परमात्मा (मतीनाम) मेधावी लोगों के हृदय में (असदत्) विराजमान होता है, वह परमात्मा (ऋता) सत्यस्वरूप है, (विप्र) मेधावी है (जागृवि) ज्ञानस्वरूप है (यम) जिस परमात्मा को (मिथुनास) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी (निकामा) जो निष्काम कर्म करने वाले हैं, और (अध्वर्यव) अहिंसारूपी व्रत को धारण किये हुए हैं, (रथिरास) ज्ञानी और (सुहस्ता) कर्मशील हैं, वे प्राप्त होते हैं ॥३७॥

भावार्थः---उक्त विशेषणों वाले ज्ञानयोगी और कर्मयोगी परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥३७॥

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।

प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥

पदार्थः---(स सोम) वह उक्त परमात्मा अज्ञानों को (व्याव) नाश करता है (न) जिस प्रकार (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (सूरे) सूर्य के आश्रित (धाता) काल निवास करता है, इसी प्रकार सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर परमात्मा को आश्रय कर स्थिर होते हैं, इसी प्रकार परमात्मा (अप्रा) लोक-लोकान्तरों का प्रचार करता है (चित) और (यस्य) जिस परमात्मा के (प्रियाः) प्रेममय धारायें (प्रियसास) जो अत्यन्त प्रिय है (ऊती) जगद्रक्षा के लिए प्रचार पाती हैं (स) वह (सोम) परमात्मा हमको ऐश्वर्य प्रदान करे (न) जैसे कि धन का स्वामी (कारिणे) अपने भृत्य के लिए (धनम्) धन को (प्रयसत्) देता है इसी प्रकार परमात्मा हमको धन प्रदान करे ॥३८॥

भावार्थ ---अविद्यान्धकार को परमात्मारूपी सूर्य ही निवृत्त करता है । भौतिक-प्रकाश उस अन्धकार के निवृत्त करने के लिए समर्थ नहीं होता ॥३८॥

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥

पदार्थः---(स) वह परमात्मा (वर्धिता) सबको बढ़ाने वाला है (वर्धन) स्वयं वर्धमान है (पूयमान) शुद्धस्वरूप है (सोम) सौम्यस्वभाव है, (मीढ्वान्) सब कामनाओं की वृष्टि करता है, वह (न) हमारी (ज्योतिषा) अपने ज्ञान द्वारा (अभ्यावीत) रक्षा करे, और (येन) जिस परमात्मा से (नः) हमारे (पूर्वे) प्रथम सृष्टि के (पितर) ज्ञानी लोग (पदज्ञा) पदपदार्थ के जानने वाले (स्वर्विद) स्वतन्त्र सत्ता के जानने वाले (अद्रिमुष्णन) अपनी चित्तवृत्ति का निरोध करते हुए (अभिगा) ज्ञान को लक्ष्य बना कर उक्त परमात्मा की उपासना करते थे उसी भाव से हम भी उक्त परमात्मा की उपासना करें ॥३९॥

भावार्थ ---जिस प्रकार पूर्वज लोग परमात्मा की उपासना करते थे उसी प्रकार की उपासनाओं का विधान इस मन्त्र में किया गया है। तात्पर्य यह है कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादि मन्त्र में जो इसे सृष्टि प्रवाहरूप से वर्णन किया है, उसी भाव को यहां प्रकारान्तर से वर्णन किया है ॥३९॥

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये

बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४०॥१८॥

पदार्थः ---(समुद्र) (सम्यग्द्रवन्ति गच्छन्ति भूतानि यस्मात्स समुद्र) परमात्मा उससे सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है इसलिए उसका नाम समुद्र है । वह (भुवनस्य) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का (राजा) स्वामी परमात्मा (प्रथमे) पहला (विधर्मन्) जो नाना प्रकार के धर्मों वाला अन्तरिक्ष है उसमें (प्रजा) प्रजाओं को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सर्वोपरि होकर विराजमान है (इन्दु) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सुवान) सर्वोत्पादक (सोम) सोमगुण सम्पन्न (बृहत्) जो सबसे बड़ा है, (वृषा) सब कामनाओं का देने वाला है वह (अव्ये) रक्षायुक्त (पवित्रे) पवित्र ब्रह्माण्ड के (सानौ) उच्च शिखर में (अधिवावृधे) सर्वव्यापकरूप से विराजमान हो रहा है ॥४०॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ।।४१।।

पदार्थः—(इन्दु) जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्ये) भौतिक सूर्य मे (ज्योति) प्रकाश को (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (पवमान) सबको पवित्र करने वाला वह परमात्मा (इन्द्रे) कर्मयोगी के लिये (ओज) ज्ञानप्रकाश रूपी बल (अदधात्) धारण कराता है और (महिषः) महान् (सोम) सोम (तत्, महत्) उस बड़े काम को (चकार) करता है (यत्) जो (अपाम्) वाष्प रूप प्रकृति के अंशों में (देवान्) सूर्यादि दिव्य पदार्थों क (गर्भ) उत्पत्तिरूप गर्भ से (अवृणीत) वरण किया गया है ।।४१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्यादिकों के प्रकाशकरूप से वर्णन किया है इसी अभिप्राय से उपनिषत्कार ऋषियों ने परमात्मा को सूर्यादिकों का प्रकाशक माना है ।।४१।।

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ।।४२।।

पदार्थ —(पूयमान) वह शुद्धस्वरूप परमात्मा (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक को (राधसे) धन के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है (च) और (वायुम्) कर्मयोगी को (इष्टये) यज्ञादि कर्मों के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है, और (मारुतम्) विद्वानों के गण को (शर्धः) बल के लिए (मत्सि) उत्साहित करता है और (देवान्) विद्वानों को (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक की विद्या के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है (देव) उक्त दिव्य स्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप उक्त प्रकार से पूर्वोक्त अधिकारियो को (मत्सि) उत्साहित करते हैं ।।४२।।

भावार्थ —परमात्मा उद्योगियो के हृदय मे सर्वदा उत्साह उत्पन्न करता है । जिस प्रकार सूर्य चक्षु वाले लोगों के प्रकाशक हैं इसी प्रकार अनुद्योगी परमालसियों के लिये परमात्मा उद्योगदीपक नहीं ।।४२।।

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ।।४३।।

पदार्थ —(ऋजु) शान्त भाव से शासन करने वाले आप (वृजिनस्य) अज्ञानरूप वृजिन दोष के (हन्ता) हनन करने वाले है, (अमीवां) सब प्रकार की व्याधियों को (अपसारय) दूर करें, (च) और (मृध) दुष्ट हिंसको को (बाधमान) दूर करते हुए आप (गोनाम्) इन्द्रियो की (पयसा) तृप्तिकारक वृष्टि द्वारा (पय) ज्ञान को लक्ष्य करके (अभिश्रीणन्) आप लक्ष्य बनाए जाते हैं (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के मित्र हैं इसलिए (वय, तव, सखाय) तुम्हारी मैत्री हम चाहते हैं ।।४३।।

भावार्थ—इस मन्त्र मे सब दुःखो के दूर करने वाले परमात्मा से दुःखनिवृत्ति की प्रार्थना है, अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक उक्त तीनों प्रकार के तापो की निवृत्ति परमात्मा से कथन की गई है । सायणाचार्य 'ऋजु पवस्व' के अर्थ यहां सोम रस के सीधा होकर बहने के करते है, अर्थात् क्षर के करते हैं सो (पूञ् पवने) धातु के सर्वथा अयुक्त है ।।४३।।

मधुः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ।।४४।।

पदार्थ —(इन्दो) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (मध्वः सूदम्) मधुरता के रसो को (आपवस्व) हमको दें (वस्वः) धनो के (उत्सम्) उपयोगी ऐश्वर्यों को आप हमे दें और (वीरम्) वीर सन्तानो को आप (नः) हमे (आपवस्व) दें, (च) और (भगम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य आप हमे दें (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (स्वदस्व) आनन्द देकर (पवमानः) पवित्र करते हुए (रयिम्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को आप (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (आपवस्व) हमको दें ।।४४।।

भावार्थ—परमात्मा कर्मयोगी अर्थात् उद्योगी पुरुषों पर प्रसन्न होकर उन्हे नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह उद्योगी बन कर परमात्मा के ऐश्वर्य का अधिकारी बने ।।४४।।

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ।।४५।।

पदार्थ —(सोम) सर्वोत्पादक (सुत) स्वयंसिद्ध जो परमात्मा है वह (धारया) अपनी स्वतःसिद्ध शक्तियों के द्वारा (अत्य) विद्युत् के समान (सम्) भली प्रकार (हित्वा) गतिशील होता हुआ (सिन्धु) स्यन्दनशील नदी के (न) समान (निम्नम्) नीचे की ओर (वाजी) बलस्वरूप उक्त परमात्मा (वन्यम्) भक्तियुक्त (योनिम्) अन्तःकरणरूप स्थान को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असदत्) स्थिर होता है, वह (इन्दु) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (न) भक्तों के प्रति (अभ्यक्षाः) रक्षा करता है (गोभिः) इन्द्रियो की वृत्तियों द्वारा (अद्भिः) जो प्रेम के प्रवाह से अन्तःकरण को सिञ्चित करती हैं, उनसे (समसरत्) ज्ञान रूप से व्याप्त होता है ।।४५।।

भावार्थ —इस मन्त्र मे रूपकालंकार से यह वर्णन किया है कि परमात्मा नम्र स्वभाव वाले पुरुषो को निम्नभूमि के समान सुसिञ्चित करता है ।।४५।।

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ।।४६।।

पदार्थ —(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुम्हारे लिए (एष, स्यः) वह उक्त परमात्मा (पवते) पवित्र करता है (य) जो (सोम) सौम्यस्वभाव (चमूषु) सब प्रकार के बलो मे (धीर) धीर है और (उशते) कान्ति वाले कर्मयोगी के लिए (तवस्वान्) बलस्वरूप है (स्वर्चक्षाः) सुख का उपदेष्टा (रथिरः) गतिस्वरूप (सत्यशुष्म) सत्यरूप बल वाला और (देवयताम्) देव भाव की इच्छा करने वालो के लिए जो (कामः) कामना के समान (असर्जि) उपदेश किया गया है ।।४६।।

भावार्थ —परमात्मा ही सब कामनाओं का मूल है । जो लोग ऐश्वर्य की कामना वाले हैं उनको चाहिए कि वे कर्मयोगी और उद्योगी बनकर उससे ऐश्वर्यों की प्राप्ति के अभिलाषी बनें ।।४६।।

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ।।४७।।

पदार्थः—(एष.) उक्त परमात्मा (प्रत्नेन वयसा) प्राचीनैश्वर्य से (पुनान) पवित्र करता हुआ और (दुहितु) पृथिवी के (वर्पांसि) रूपो को (तिरोदधानः) अपने तेज से आच्छादन करता हुआ (शर्म) सुख को (वसान) धारण करता हुआ (त्रिवरूथम्) सत्वरज तमोरूप तीनो गुणो वाली प्रकृति को धारण करते हुए (अप्सु) कर्मयज्ञो मे यज्ञ करने वाले (होता, इव) होता के समान (समनेषु) यज्ञो मे (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ परमात्मा (याति) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ।।४७।।

भावार्थ —जिस प्रकार होता अथवा उद्गातादि ऋत्विज् लोग वेदो का गायन करते हुए इस विविध रचनारूप विराट् का वर्णन करते हैं इसी प्रकार परमात्मा स्वयं उद्गातारूप होकर वेदरूप नीति के द्वारा चराचर ब्रह्माण्डो का वर्णन करता है अर्थात् प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा इस चराचर जगत् की विविध रचना का हेतु एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नही ।।४७।।

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ।।४८।।

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तुम (रथिर.) बलस्वरूप हो (चम्वो) सब भुवनो को (पूयमानः) पवित्र करते हुए (अप्सु) जलो में (मधुमान्) मीठा (स्वादिष्ठ) स्वादुरस (ऋतावा) वितीर्ण करते हुए (देव) दिव्यशक्ति के (न) समान (नु) शीघ्र (न) हमारे लिए (सत्यमन्मा) सत्यस्वरूप आप हमारे अन्तःकरण मे आकर (परिस्रव) विराजमान हो ।।४८।।

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा से स्वस्वामिभाव की प्रार्थना की गई है अथवा यो कहो कि प्रेर्य और प्रेरक भाव से परमात्मा की उपासना की गई है ।।४८।।

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ।।४९।।

पदार्थ.—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (वायुम्) ज्ञानयोगी की (वीती) तृप्ति के लिए (अभ्यर्ष) प्राप्त हों (गृणानः) उपास्यमान आप (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक को (अभ्यर्ष) प्राप्त हो, (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए आप (धीजवन, नरम्) कर्मयोगी पुरुष को (अभ्यर्ष) प्राप्त हो, (रथेष्ठाम्) जो कर्मों की गति मे स्थिर है, उसको प्राप्त हो, (वज्रबाहुम्) वज्र के समान भुजाओ वाले (इन्द्रं) योद्धा पुरुष को (वृषणम्) जो बलस्वरूप है उसको प्राप्त हो ।।४९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति के पात्र ज्ञानयोगी, कर्मयोगी और शूरवीर का वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि जो पुरुष परमात्मा की कृपा का पात्र बनना चाहे उसे स्वयं उद्योगी वा कर्मयोगी अथवा शूरवीर बनना चाहिये क्योंकि परमात्मा स्वयं बलस्वरूप है इसलिए जो बलिष्ठ पुरुष है उसकी कृपा का पात्र बन सकते हैं, अन्य नहीं ।।४९।।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ।।५०।।२०।।

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! तृप्ति के लिए (वस्त्रा, सुवसनानि) शोभन वस्त्र (अभ्यर्ष) दें (पूयमान) सबको पवित्र करते हुए आप (सुदुघा.) सुन्दर अर्थों से परिपूर्ण (धेनू) वाणियां (अभ्यर्ष) हमको दें, (चन्द्रा, हिरण्या) आह्लादक धन आप (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें, (रथिन) वेग वाले (अश्वान्) घोड़े (न) हमको (अभ्यर्ष) दें ।।५०।।२०।।

भावार्थः—इस मंत्र मे पुनरपि ऐश्वर्य प्राप्ति की प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमको ऐश्वर्यशाली बनने के लिये ऐश्वर्य प्रदान करें । पुनः-पुनः ऐश्वर्य की प्रार्थना करना अर्थपुनरुक्ति नहीं, किन्तु अभ्यास अर्थात् दृढ़ता के लिए उपदेश है जैसा कि

"आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य " इत्यादिको मे बार-बार चित्तवृत्ति का लगाना परमात्मा में कथन किया गया है, इसी प्रकार यहां भी दृढ़ता के लिए उसी अर्थ का पुन -पुन. कथन है जो अज्ञानियों को वेद मे पुनरुक्ति दोष प्रतीत होता है वेद मे पुनरुक्ति दोष नही यह केवल अज्ञानियों की भ्रान्ति है ॥५०॥२०॥

अभी नों अर्षं दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।

अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१॥

पदार्थ —(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पूयमान**) शुद्धस्वरूप आप (**दिव्या, वसूनि**) दिव्य धन (**नः**) हमें (**अभ्यर्ष**) दें, (**विश्वा, पार्थिवा**) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी धन आप (**न**) हमें दें (**जमदग्निवत्**) चक्षु की दिव्य दृष्टि के समान (**येन**) जिस सामर्थ्य से हम (**आर्षेयम्**) ऋषियों के योग्य (**द्रविणम्**) धन को (**अश्नवाम**) भोग सकें वह सामर्थ्य आप (**नः**) हमको दें ।।५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से भोक्तृत्वशक्ति की प्रार्थना की गई है । तात्पर्य यह है कि जो पुरुष स्वामी होकर ऐश्वर्यों को भोग सकता है वही ऐश्वर्य-सम्पन्न कहलाता है अन्य नही इसी अभिप्राय से उपनिषदो मे अन्नादि अर्थात् ऐश्वर्यों के भोक्ता होने की प्रार्थना की गई है ॥५१॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ।५२॥

पदार्थ —(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**अया**) इस (**पवा**) पवित्र करने वाली वृष्टि से (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**एना**) यह (**वसूनि**) धन आप हमको दें, (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**माँश्चत्वे, सरसि**) वाणी के समुद्र मे आप हमको (**प्रधन्व**) प्रेरणा करके स्नातक बनाए और (**वात.**) कर्मयोगी के (**न**) समान (**जूतः**) गतिशील बनाते हुए आप (**अत्र**) उक्त विज्ञान विषय मे (**ब्रध्नः**) प्रामाणिक (**चित्**) और (**पुरुमेध**) बहुत बुद्धि वाला बनाए (**चित्**) और (**तकवे**) ससार की गति मे (**नरम्**) कर्मयोगी सन्तान (**दात्**) मुझे दें ॥५२॥

भावार्थ —जो लोग उक्त प्रकार से शक्तिसम्पन्न होने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं । परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्यसम्पन्न बनाता है ॥५२॥

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।

षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३॥

पदार्थ.—(**उत**) और (**एना**) इस (**पवया**) पवित्र दृष्टि से (**श्रवाय्यस्य**) जो सबके सुनने के योग्य (**श्रुते**) श्रवण हैं और (**तीर्थे**) तीर्थस्वरूप है उसमे (**अधि**) अत्यन्त (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**नैगुत**) शत्रुओं के (**षष्टिं, सहस्रा, वसूनि**) असंख्यात धनों को हरण करते हुए (**पक्वम**) पके हुए (**वृक्षम्**) वृक्ष के (**न**) समान (**रणाय**) रण के लिए (**धूनवत्**) उनको कंपाते हुए ससार में यात्रा करें ॥५३॥

भावार्थ —जो लोग उक्त प्रकार से कर्मयोगी या उद्योगी बनते हैं, परमात्मा उन्हे अवश्यमेव अविद्यारूपी शत्रुओं के हनन करने का सामर्थ्य देता है ॥५३॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।

अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४॥

पदार्थः—(**वधत्रे**) वध करने वाले (**पृशने**) युद्ध मे (**माँश्चत्वे**) जिनमे गतिशील शक्तियां का उपयोग किया जाता है उनमे (**महि**) बड़े (**इमे**) यह (**अस्य**) इस परमात्मा के (**वृषनाम**) दो काम (**शूषे**) सुखकर हैं (**निगुत**) शत्रुओं को (**अस्वापयत्**) सुला देना (**च**) और (**अपमित्रान्**) अमित्रों का (**स्नेहयत्**) स्नेह प्रदान करना (**वा**) और (**अचित**) जो लोग परमात्मा की भक्ति नही करते अर्थात् नास्तिक है, उनको (**इतः**) इस आस्तिक समाज से (**अपाच**) दूर करना ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे आस्तिक धर्म के प्रचार करने के लिए अर्थात् वैदिक धर्म की शिक्षाओ के लिए तेजस्वी भाषा का वर्णन किया है ॥५४॥

सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।

असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥५५॥२१॥

पदार्थ —(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**त्री**) तीन (**विततानि**) विस्तृत (**पवित्रा**) पवित्र पदार्थों को (**सम्**) भली प्रकार (**एषि**) प्राप्त हैं और (**पूयमानः**) सबको पवित्र करते हुए (**अन्वेकम्**) प्रत्येक पदार्थ में (**धावसि**) गतिरूप से विराजमान हैं (**भग**) आप ऐश्वर्यस्वरूप (**असि**) हैं, (**दात्रस्य**) धन के (**दाता**) देने वाले (**असि**) हैं, क्योंकि आप (**मघवद्भ्य**) सम्पूर्ण धनिकों से (**मघवा**) धनी हैं ॥५५॥२१॥

भावार्थ —परमात्मा सब ऐश्वर्यों का स्वामी है और सब धनिकों से धनी है, इसलिए उसी की कृपा से सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ॥५५॥२१॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।

द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६॥

पदार्थ.—(**एष**) उक्त परमात्मा (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है (**पवते**) सबको पवित्र करने वाला है, (**मनीषी**) सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों का प्रेरक है, (**सोमः**) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**भुवनस्य**) लोकों का (**राजा**) प्रकाशक है (**इन्दुः**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**विदथेषु**) ज्ञानयज्ञों मे (**द्रप्सान्**) ज्ञानों की (**ईरयन्**) प्रेरणा करता हुआ (**अव्यम्**) रक्षा योग्य (**वारम्**) वरणीय पुरुष को (**समयाति, याति**) प्रतिसंनिहित प्राप्त होता है ॥५६॥

भावार्थ.—जो परमात्मज्ञान के अधिकारी हैं, परमात्मा उन्हीं को प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं ॥५६॥

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।

हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥

पदार्थ—(**इन्दुम्**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (**अदब्धाः**) दृढ़ प्रतिज्ञा वाले (**महिषाः**) जो सद्गुणों के प्रभाव से महापुरुष हैं, वे (**रिहन्ति**) प्राप्त होते हैं, (**न, गृध्रा**) निष्कामकर्मी (**कवय**) विद्वान् (**पदे**) ज्ञानरूपी यज्ञ की वेदी में (**रेभन्ति**) जैसे शब्दायमान होते हैं, (**धीरा**) धीर लोग (**दशभि**) दश (**क्षिपाभिः**) प्राणों की गति से (**अपाम्**) सत्कर्मों के (**रसेन**) परिपाक से (**रूपम्**) उक्त परमात्मा के स्वरूप को (**समञ्जते**) साक्षात्कार करते हैं ॥५७॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे प्राणायाम के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है ॥५७॥

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदि-

तिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५८॥२२॥

पदार्थ —(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पवमानेन**) पवित्र करने वाले (**त्वया**) आपकी सहायता से (**वयम्**) हम लोग (**भरे**) अज्ञान की वृत्तियों का नाश करने वाले संग्राम मे (**कृतम्**) सत्कर्मों का (**शश्वत्**) निरन्तर (**विचिनुयाम**) संग्रह करें, (**तत्**) इसलिए (**मित्र , वरुण**) अध्यापक और उपदेशक, (**अदितिः**) अज्ञान का खण्डन करने वाला विद्वान् (**सिन्धु**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौ**) द्युलोक ये सब पदार्थ (**मामहताम्**) मेरे अनुकूल होकर मुझे पूज्य बनाएं ॥५८॥

भावार्थ—जो लोग सदाचारी अध्यापकों या उपदेशकों द्वारा परमात्मज्ञान की शिक्षा पाते हैं, वे अवश्यमेव अज्ञान का नाश करके ज्ञानरूपी प्रदीप से प्रदीप्त होते है ॥५८॥

॥ इति सप्तनवतितमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

अथ द्वादशर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य

॥९८॥१—१२ *अम्बरीष ऋजिश्वा च ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥* छन्द —१, २, ४, ७, १० *अनुष्टुप्* । ३, ५, ६ *निचृदनुष्टुप्* । ६, १२ *विराडनुष्टुप्* । ८ *आर्ची स्वराडनुष्टुप्* । ११ *निचृद्बृहती* ॥ स्वर —१—१०, १२ *गान्धार* । ११ *मध्यमः* ॥

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।

इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ।१॥

पदार्थ —(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**सहस्रभर्णसम्**) अनेक प्रकार का पालन-पोषण करने वाला (**पुरुस्पृहम्**) जो सबको अभिलषित है (**वाजसातमम्**) जो अनन्त प्रकार के बलों का देने वाला है (**रयिम्**) ऐसे धन को (**न**) हमारे लिए (**अभ्यर्ष**) आप दें, (**तुविद्युम्नम्**) जो अनन्त प्रकार के यशों का देने वाला और (**विभ्वसहम्**) सब तरह की प्रतिकूल शक्तियों को दबा देने वाला है, इस प्रकार का धन आप दें ॥१॥

भावार्थ —इस मंत्र मे अक्षय धन की प्राप्ति का वर्णन है ॥१॥

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।

इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥२॥

पदार्थ —(**स्य**) वह पूर्वोक्त (**सुवान**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**अव्ययम्**) रक्षायुक्त पुरुष को (**धाराभि**) अपनी कृपामयी वृष्टि से (**अक्षा**) रक्षा करता है (**न**) जैसे कि (**रथे**) कर्मयोग मे स्थित विद्वान् को (**वर्म**) कर्मयोग (**पर्यव्यत**) सब ओर से रक्षा करता है (**इन्दु**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**अभिद्रुणा**) उपासना किया हुआ और (**हियान**) ज्ञानस्वरूप (**हित**) साक्षात्कार किया हुआ मनुष्य की बुद्धि की रक्षा करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार मनुष्य को सर्वथा सुरक्षित करता है ॥२॥

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।

धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥३॥

पदार्थ —(**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**मदच्युत**) जो आनन्दमय है वह (**अव्ये**) रक्षायोग्य सत्कर्मी पुरुष के अन्त करण मे (**धाराः**) अपना ज्ञान-प्रवाह बहाता है, (**स्य**) वह (**ऊर्ध्व**) सर्वोपरि विराजमान परमात्मा (**यः**)

जो (अध्वरे) अहिंसा प्रधान यज्ञों में (धारा) अपनी आनन्दमयी वृष्टि से (न) जैसे कि (आभा) दीप्ति अपने प्रकाश्य पदार्थों में दीप्ति डालती है इसी प्रकार (गव्ययुः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (सुवानः) जो सर्वोत्पादक है (एति) वह अपनी व्यापक सत्ता से सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा विद्युत् की दीप्ति के समान सर्वत्र परिपूर्ण है ॥३॥

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।

इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (स, त्वम्) पूर्वोक्त आप (मर्ताय, दाशुषे) जो आपकी उपासना मे लगा हुआ पुरुष है (शश्वते) निरन्तर कर्मयोगी है उसके लिए (वसु) धन (सहस्रिणम्) जो अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों वाला है (शतात्मानम्) जिसमे अनन्त प्रकार के बल हैं (रयिम्) ऐसे धन को (इन्दो) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! (विवाससि) आप प्रदान करें ॥४॥

भावार्थ —सामर्थ्ययुक्त पुरुष को परमात्मा ऐश्वर्य प्रदान करता है, इसलिए ऐश्वर्यसम्पन्न होना परमावश्यक है ॥४॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।

नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५॥

पदार्थः—(वृत्रहन्) हे अविद्या-विनाशक परमात्मन् ! (यववृणोत्सवृत्रम-ज्ञानम्) नि० । २ । १८ । (वयम्) हम (अस्य ते) आपके (स्याम) वशवर्ती हो (वसो) हे सर्वाधार परमात्मन् ! (वस्व) आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, (पुरुस्पृह) सबके उपास्य देव हैं (नि, नेदिष्ठतमा) आप सर्वान्तर्यामी हैं, (अध्रिगो) हे ज्ञान गमन परमात्मन् ! आप (इष) ऐश्वर्यों के और (सुम्नस्य) सुख के भोक्ता हो ॥५॥

भावार्थ.—परमात्मा की उपासना द्वारा मनुष्य अविद्या को नाश करके विद्या का प्रकाश करता है ॥५॥

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥६॥

पदार्थ —(यम, ऊर्मिणम्) जो ज्ञान स्वरूप है उस परमात्मा को (द्विः, पञ्च) दश (स्वसारः) इन्द्रियवृत्तिया अथवा दश प्राण (प्रस्नापयन्ति) साक्षात्कार करते हैं (स्वयशसम्) जिसका स्वाभाविक यश है (अद्रिसंहतम्) जो ज्ञानरूपी चित्तवृत्ति का विषय है (इन्द्रस्य, प्रियम्) और जो कर्मयोगी का प्रिय है (काम्यम्) कमनीय है ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र मे प्राणायामादि क्रिया द्वारा अथवा यों कहो कि चित्तवृत्तियो द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया है ॥६॥

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७॥

पदार्थ —(त्यम्) उक्त परमात्मा (हरिम्) जो अनन्त प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है (हर्यतम्) जो सब प्रिय है (बभ्रुम्) ज्ञानस्वरूप है (वारेण) वरणीय से वरणीय पदार्थों द्वारा जिसकी उपासना करते हैं और(यः) जो (विश्वान्) सब (देवान्) विद्वानो को (इत्) ही (मदेन) परमानन्द के (सह) साथ (परिपुनन्ति) पवित्र करता है (परिगच्छति) वह सर्वत्र प्राप्त है ॥७॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे परमात्मा का स्वातन्त्र्य वर्णन किया है ॥७॥

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।

यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥८॥

पदार्थ —(यः) जो परमात्मा (सूरिषु) कर्मयोगियों मे (बृहत्) बड़े (श्रव) ऐश्वर्य को (दधे) धारण करता है (हि) क्योकि (अस्य) उक्त परमात्मा की (अवसा) रक्षा द्वारा (वः) आप लोग (पान्तः) उसके आनन्द का पान करें जो आनन्द (दक्षसाधनम्) सब प्रकार के चातुर्यों का मूल है और (स्वः) सूर्य के (न) समान (हर्यतः) अज्ञान के नाशक परमात्मा का स्वभावभूत गुण है ॥८॥

भावार्थ —उस परमात्मा के सर्वोत्तम स्वादुमय आनन्द को कर्मयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

स वो यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।

देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥९॥

पदार्थ —(सः) वह उक्त परमात्मा (वः) तुम कर्मयोगियों और ज्ञानयोगियों के (यज्ञेषु) यज्ञों मे (जनिष्ट) शुभ फलो को उत्पन्न करता है, इसलिए (मानवी) हे मनुष्य सृष्टि के कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानो ! और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (देवी) दिव्य गुणवती स्त्रियो (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (देवः) जो दिव्य गुण युक्त है (गिरिष्ठाः) जो सब ब्रह्माण्डों में स्थित है, तुम (तुविष्वणि) ज्ञानयज्ञों में (तम्) उस परमात्मा का (अस्रेधन्) साक्षात्कार करो ॥९॥

भावार्थ —जीव मात्र के शुभ अशुभ कर्मों के फलो का दाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥९॥

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१०॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (वृत्रघ्ने) अज्ञान के नाशक (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पातवे) तृप्ति के लिए (परिषिच्यसे) साक्षात्कार किये जाते हो (दक्षिणावते, नरे) अनुष्ठानी विद्वान् (देवाय) जो दिव्य गुण युक्त है उसके लिए (सदनासदे) यज्ञगृह मे साक्षात्कार किये जाते हो ॥१०॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मयोगी तथा अनुष्ठानी विद्वानो द्वारा ही साक्षात् किया जाता है ॥१०॥

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।

अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (प्रत्नास) स्वाभाविक (सोमा) सौम्यस्वभाव (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण मे (अक्षरन्) प्रवाहित होते हैं, (अप्रचेतस) अज्ञानी पुरुष (हुरश्चित) जो कुटिल चित्त वाले है (तान्) उनको आप प्रवाहित नहीं करते क्योंकि वह (अपप्रोथन्त) हिंसक हैं ॥११॥

भावार्थ —परमात्मा का आनन्द सौम्य स्वभाव वाले ही भोग सकते हैं, कुटिल चित्त वाले नहीं ॥११॥

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।

अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥२४॥

पदार्थ —(त्यम) उस पूर्वोक्त परमात्मा का (तम्) जो (वाजगन्ध्यम्) बलस्वरूप है और (पुरोरुचम्) सदा से प्रकाशस्वरूप है उसको (वयम) हम (च) और (यूयम्) आप (सूरय) विद्वान् (सखाय) जो मैत्रीभाव से वर्ताव करते हैं (वाजप) जो उसकी अनन्त शक्तियों का अनुभव करना चाहते है, वे सब (सनेम) उसकी उपासना करें और उसके आनन्द को भोगें ॥१२॥

भावार्थ —परमात्मा ही के आनन्द भोगने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि सच्चा आनन्द वही है ॥१२॥

अट्ठानवेवां सूक्त और चौबीसवा वर्ग समाप्त ।

अथाष्टर्चस्य नवनवतितमस्य सूक्तस्य —

१—८ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द — १ *विराड्बृहती* । २, ३, ५, ६ *अनुष्टुप्* । ४, ७, ८ *निचृदनुष्टुप्* ॥ स्वर — १ *मध्यम* । २—८ *गान्धार* ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।

शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१॥

पदार्थः—(महीयुव) उपासक लोग (असुराय) जो असुर है और (धृष्णवे) अन्याय से दूसरो की शक्तियो को मर्दन करता है (हर्यताय) दूसरो के धन को हरण करने वाला है उसके लिए (पौंस्यम्) शूरवीरता का (धनु.) धनुष (आतन्वन्ति) विस्तार करते हैं, और (विपाम्) विद्वानो के (अग्रे) समक्ष (निर्णिजम्, शुक्राम्) वे सूर्य के समान भ्राजस्विनी दीप्ति का (वयन्ति) प्रकाश करते हैं ॥१॥

भावार्थ —जो लोग तेजस्वी बनना चाहते हैं वे परमात्मोपासक बनें ॥१॥

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।

यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२॥

पदार्थ —(अध) अब इस बात का वर्णन करते हैं कि (क्षपापरिष्कृत) सैनिक बलो मे उपासना किया हुआ परमात्मा (वाजान्, अभि, प्रगाहते) बलो का प्रदान करता है पर (यदि) यदि (विवस्वत) याज्ञिक के (धिय) कर्म (यातवे) कर्म योग के लिए (हरिम, हिन्वन्ति) परमात्मा की प्रेरणा करें ॥२॥

भावार्थ —जो परमात्मोपासक हैं वही युद्ध मे विजय पाते हैं ॥२॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥

पदार्थः—(अस्य) उक्त परमात्मा के (तम्) उक्त आनन्द को (मर्जयामसि) हम लोग शुद्ध भाव से धारण करते हैं, (य) जो (मदः) आनन्द (इन्द्रपातमः) कर्मयोगी की तृप्ति करने वाला है (यम्) जिस आनन्द को (गाव) इन्द्रियां (आसाभि) अपनी वृत्तियो द्वारा (दधु) धारण करती हैं (च) और (नूनम्) निश्चयपूर्वक (सूरय) विद्वान् लोग (पुरा) पूर्वकाल से उपासना करते हैं ॥३॥

भावार्थ —कर्मयोगी लोग अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके परमात्मानन्द का अनुभव करते हैं ॥३॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥

पदार्थ —(**तम्**) उक्त परमात्मा को (**पुनानम्**) जो सबको पवित्र करने वाला है, उसको (**पुराण्या गाथया**) अनादिसिद्ध वेदवाणी द्वारा (**अभ्यनूषत**) वर्णन करते हैं, (**उतो**) और (**धीतय**) मेधावी लोग (**देवानाम्**) सब देवों के मध्य मे उसी के (**नाम**) नाम को (**कृपन्त**) धारण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर उपासना करनी चाहिए ॥४॥

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।

दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५॥२५॥

पदार्थः—(**उक्षमाणम्, तम्**) उक्त बलस्वरूप परमात्मा को (**मनीषिणः**) मेधावी लोग (**अव्यये, वारे**) रक्षायुक्त विषयो में (**पुनन्ति**) वर्णन करते हैं, (**धर्णसिम्**) सर्वाधिकरण को (**दूतम्, न**) दुःख निवारकरूप से (**पूर्वचित्तये**) सबसे प्रथम (**आशासते**) प्रार्थना करते है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का आधार है इससे उसी की उपासना प्रथम करनी चाहिये ॥५॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।

पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

पदार्थ — (**स**) पूर्वोक्त परमात्मा (**पुनान**) सबको पवित्र करने वाला है (**मदिन्तम**) आनन्दस्वरूप है (**सोम**) सर्वोत्पादक है, (**चमूषु**) सब प्रकार के सैनिक बलो मे (**सीदति**) स्थिर है (**पशौ, न**) द्रव्य के समान (**रेत**) (रेत इति जलनामसु पठित नि०) प्रकृति की सूक्ष्मावस्था को (**आदधत्**) धारण करता है (**धिय , पति**) वह कर्माध्यक्ष (**वचस्यते**) उपासना किया जाता है ॥६॥

भावार्थ—आनन्दप्रद, विजयादि प्रदाता और प्रलयादि-कर्त्ता केवल परमात्मा ही है इससे वही उपास्य है ॥६॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।

विदे यदासु सन्दुदिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥

पदार्थ —(**स**) पूर्वोक्त परमात्मा (**देव**) देव (**देवेभ्यः**) जो विद्वानो के लिए (**सुत**) स्तुत किया गया है वह (**यत**) जब (**विदे**) साक्षात्कार किया जाता है तब कर्मयोगी पुरुष (**आसु**) प्रजाओ मे (**सन्ददि**) सम्यक् धनो का प्रदाता होता है और तब (**मही , अप**) बड़े-बड़े कर्मो की विपत्तियो को (**विगाहते**) तैर जाता है ॥७॥

भावार्थ —कर्मयोगी जो परमात्मोपासक है वह सब बलो का आश्रय हो सकता है ॥७॥

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।

इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥८॥२६॥

पदार्थ —(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण मे (**सुत**) आवाहन किये हुए (**नृभि.**) कर्मयोगी पुरुषों द्वारा (**यत**) साक्षात्कार किये हुए, आप (**विनीयसे**) विशेष रूप से साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिए (**मत्सरिन्तम**) आनन्दस्वरूप आप (**चमूषु**) सब प्रकार के बलो मे (**आनिषीदसि**) स्थिर होते हो ॥८॥

भावार्थ —जो मनुष्य शुद्धान्त करण से कर्मयोगयुक्त होता है, परमात्मा उसी की सहायता करता है ॥८॥

निन्यानवेवां सूक्त और छब्बीसवा वर्ग समाप्त ।

अथ नवर्चस्य शततमसूक्तस्य—

१—९ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमान सोमो देवता छन्द —१, २, ४, ७, ९, निचृदनुष्टप् । ३ विराडनुष्टुप् ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ गान्धार स्वर ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ —(**न**) जैसे कि (**पूर्वे**) प्रथम (**आयुनि**) उमर मे (**जातं**) उत्पन्न हुए (**वत्सं**) वत्स को (**मातर**) गौएँ (**रिहन्ति**) आस्वादन करती हैं, इसी प्रकार (**अद्रुह**) रागद्वेष से रहित पुरुष (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**काम्य**) कमनीय (**प्रिय**) सबसे प्यारे कर्मयोग को (**अभिनवते**) प्रेमभाव से प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—अभ्युदय की इच्छा करने वाले मनुष्य को कर्मयोग ही सबसे प्रिय मानना चाहिये ॥१॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।

त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२॥

पदार्थ —(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप (**सोम**) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पुनान**) सबको पवित्र करते हुए आप (**द्विबर्हस**) दोनो लोको मे बढ़ने वाले (**रयिं**) धन से (**आभर**) आप हमको परिपूर्ण करें और (**त्व**) आप (**दाशुषो गृहे**) यज्ञशील दानी पुरुष के घर मे (**विश्वानि, वसूनि**) सब धनो को (**पुष्यसि**) पुष्ट करते हैं ॥२॥

भावार्थ —जो पुरुष आत्मा और पर मे सुख दुःखादि को समान समझ कर परोपकार करते हैं, परमात्मा उनको उन्नतिशील करता है ॥२॥

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।

त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**त्व**) तुम (**मनोयुजं**) मन को स्थिर करने वाले (**धिय**) कर्मयोग को (**सृज**) उत्पन्न करो (**न**) जैसे कि (**तन्यतु**) मेघ (**वृष्टिं**) वृष्टि का विस्तार करता है, इसी प्रकार (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**त्व**) तुम (**पार्थिवा**) पृथिवी सम्बन्धी (**च**) और (**दिव्या**) द्युलोक सम्बन्धी (**वसूनि**) धनों से (**पुष्यसि**) हमको पुष्ट करो ॥३॥

भावार्थ —कर्मयोगी पुरुष ही मन के स्थैर्य को प्राप्त करके विविध ऐश्व का स्वामी बनता है ॥३॥

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।

रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**सुतस्य**) उपासना किये गए (**ते**) तुम्हारी आनन्द की (**धारा**) लहरें उपासक की ओर (**परिधावति**) इस प्रकार दौड़ती हैं (**यथा**) जैसे कि (**जिग्युषः**) जयशील योद्धा का (**वाजी, इव**) घोड़ा शत्रु के दमन के लिये दौड़ता है इसी प्रकार (**रंहमाणा**) वेगवती और (**सानसि**) प्राप्त करने योग्य धारा (**अव्यय, वार**) रक्षायोग्य वरणीय पुरुष की अज्ञान निवृत्ति के लिये इसी प्रकार दौड़ती है ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा का साक्षात्कार करने वाले ही परमानन्द पाते है ॥४॥

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।

इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥२७॥

पदार्थ —(**कवे**) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (**न**) हमारे (**क्रत्वे**) कर्मयोग के लिये (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**धारया**) आप अपनी आनन्दमय वृष्टि से हमको पवित्र करें (**च**) और (**इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पातवे**) तृप्ति के लिये (**मित्राय**) अध्यापक और (**वरुणाय**) उपदेशक की तृप्ति के लिए आप (**सुत**) उपासना किये जाते हो ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोगी, अध्यापक तथा उपदेशक सब की तृप्ति करता है ॥५॥

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।

इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (**वाजसातम**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के देने वाले आप (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण मे (**धारया**) धारणरूप शक्ति से (**सुत**) साक्षात्कार किये जाते हो (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**विष्णवे**) ज्ञानयोगी के लिये (**देवेभ्य**) अन्य विद्वानो के लिये (**मधुमत्तम**) आप आनन्दमय हो ॥६॥

भावार्थः—वस्तुत परमात्मा के ऐश्वर्य तथा विभूति के आनन्द को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ही भोगते हैं, अन्य नही ॥६॥

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।

वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७॥

पदार्थ —(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**विधर्मणि**) नाना प्रकार के ज्ञानो को धारण करने वाले ज्ञानयज्ञ मे (**त्वां**) तुमको (**अद्रुह**) रागद्वेष से रहित विज्ञानी लोग (**रिहन्ति**) आस्वादन करते हैं (**न**) जैसे कि (**धेनव**) गौएँ (**जात**) उत्पन्न हुए (**वत्स**) वत्स को आस्वादन करती हैं, इसी प्रकार (**हरिं**) हरिरूप परमात्मा का सब लोग प्रेम से ग्रहण करते हैं ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन प्रेम है ॥७॥

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।

शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**महिश्रव.**) सर्वोपरि यश वाले हैं (**चित्रेभिः**) आप नाना प्रकार की (**रश्मिभिः**) शक्तियो द्वारा (**यासि**) सर्वत्र प्राप्त हैं और तुम (**शर्धन्**) अपनी ज्ञानरूपी गति से (**विश्वानि तमांसि**) सब अज्ञानो को (**जिघ्नसे**) हनन करते हो और (**दाशुषो गृहे**) उपासक के अन्त करण मे स्थिर होकर आप उसे ज्ञान से प्रकाशित करते हैं ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा के ज्ञानरूप प्रकाश से सब अज्ञानो का नाश होता है ॥८॥

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।

प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥९॥

पदार्थ —(**महिव्रत**) हे बड़े व्रत वाले परमात्मन् ! (**त्वं**) आप (**द्यां**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवीं**) पृथिवीलोक को (**अति जभ्रिषे**) अत्यन्त ऐश्वर्य

सम्पन्न बनाते हो (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (महित्वना) अपने महत्त्व से (वर्मेव) रक्षारूपी कवच से (प्रत्यमुञ्चथा) आच्छादित करते हो ॥९॥

भावार्थ —परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवी लोक को ऐश्वर्यशाली बनाकर उसे अपनी रक्षारूप कवच से आच्छादित किया, ऐसी विचित्र रचना से इस ब्रह्माण्ड को रचा है कि उसके महत्त्व को कोई नहीं पा सकता ॥९॥

इति शततमं सूक्तं अष्टाविंशतितमो वर्गश्च समाप्तः ।
यह १००वां सूक्त और २८वां वर्ग समाप्त हुआ ।
ऋक्संहिताभाष्ये, सप्तमाष्टके नवमे
मण्डले चतुर्थोऽध्याय समाप्त ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।

॥अथ षोडशर्चस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—॥

१—३ ऋषि —अन्धीगु श्यावाश्वि । ४—६ ययातिर्नाहुष । ७—९ नहुषो मानव । १०—१२ मनु सांवरण । १३—१६ प्रजापति ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्द —१, ६, ७, ९, ११- १४ निचृदनुष्टुप् । ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप् । १० पादनिचृदनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ स्वर —१, ४—१६ गान्धार. । २, ३ षड्ज ॥

अथ परमात्मनो गुणगुणिभावेन उपासनमुपदिश्यते ।
अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना कथन करते हैं ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ —(व) आप लोग (पुरोजिती) जो सबके विजेता हैं (अन्धस.) सर्वप्रिय (सुताय) संस्कृत (मादयित्नवे) आह्लादक परमात्मा के स्वरूपज्ञान मे (श्वानम्) जो विघ्नकारी लोग हैं उनको (अपश्नथिष्टन) दूर करें (सखाय) हे सबके मित्रभूत याज्ञिक लोगो ! आप (दीर्घजिह्व्यम्) वेदरूप विशाल वाणी वाले परमात्मा की उपासना करो (जिह्वेति वाङ्नामसु पठितम्) नि० २ ख० २३॥१॥

भावार्थ —परमात्मा, शब्दब्रह्म का एकमात्र कारण है इसलिये मुख्यत उसी को बृहस्पति या वाचस्पति कहा जा सकता है । इसी अभिप्राय से परमात्मा के लिये बहुधा कवि शब्द आया है, इस तात्पर्य मे यहां परमात्मा को दीर्घजिह्व कहा गया है ॥१॥

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

पदार्थ —(यः) जो परमात्मा (पावकया धारया) अपवित्रताओं को दूर करने वाली अपनी सुधामयी वृष्टि से (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र परिपूर्ण है (सुत) और सर्वत्र अपने सत्, चित्, आनन्द स्वरूप मे देदीप्यमान है और (कृत्व्य) वह गतिशील (इन्दु) सर्वव्यापक परमात्मा (अश्व , न) विद्युत् के समान सर्वत्र अपनी सत्ता से परिपूर्ण है ॥२॥

भावार्थ —यहां विद्युत् का दृष्टान्त केवल परमात्मा की पूर्णता बोधन करने के लिये आया है ॥२॥

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥३॥

पदार्थ —(तम्) पूर्वोक्त (दुरोषम्) अखण्डनीय परमात्मा को (नर) नेता लोग (अद्रिभि) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभिहिन्वन्ति) साक्षात्कार करते हैं, जो परमात्मा (यज्ञम्) यज्ञरूप है और (सोमम्) सर्वोत्पादक है, उसको (विश्वाच्या धिया) विचित्र बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा को वेद मे यज्ञ शब्द से कथन किया गया है जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे" वर्णन किया है कि सर्वपूज्य परमात्मा से ऋगादि चारो वेद प्रकट हुए । इसी अभिप्राय से यहां भी परमात्मा को यज्ञरूप से वर्णन किया है ॥३॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

पदार्थ —(सुतासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए (मधुमत्तमाः) अत्यन्त आनन्दमय (सोमा.) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (मन्दिनः) जो आह्लादक हैं वे (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये प्राप्त हो और ([illegible]) (देवान्,) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् हो उनको (मदाः) वह [illegible] (पवित्रवन्त) [illegible] वाले (अक्षरन्) आनन्द की वृष्टि करते हुए (गच्छन्तु) प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा के अपहतपाप्मादि [illegible] का धारण करना इस मन्त्र मे वर्णन किया गया है अर्थात् परमात्मा के सौम्य [illegible] विशों को जब जीव धारण कर लेता है तो वह शुद्ध होकर ज्ञानयोगी व कर्मयोगी [illegible] सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥१॥

पदार्थ —(इन्दु) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (देवास.) विद्वान् लोग (इत्यब्रुवन्) यह कहते हैं कि कर्मयोगी उद्योगी पुरुष ही उसके ज्ञान का पात्र है, (वाचस्पति) वह सम्पूर्ण वाणियों का पति परमात्मा है और (मखस्यते) ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ इत्यादि सब यज्ञो का अधिष्ठाता है वह परमात्मा (ओजसा) अपने स्वाभाविक बल से (विश्वस्य) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का (ईशान) स्वामी है ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी को अपने सद्गुणो द्वारा पवित्र करता है अर्थात् परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभावो के धारण करने का नाम ही परम-पवित्रता है ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थ —(सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (सहस्रधार) अनन्त प्रकार के आनन्दो की वृष्टि करने वाला और (समुद्र.) सम्पूर्ण भूतो का उत्पत्तिस्थान (वाचमीङ्खय) वाणियों का प्रेरक (रयीणाम) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी (दिवे दिवे) जो प्रतिदिन (इन्द्रस्य) कर्मयोगी का (सखा) मित्र है, वह परमात्मा (पवते) सन्मार्ग से गिरे हुए लोगो को पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थ —सहस्रधार परमात्मा को इसलिए कथन किया गया है कि वह अनन्त शक्तियुक्त है । धारा शब्द के अर्थ यहां शक्ति हैं । सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मिन्स "समुद्र" इस व्युत्पत्ति से यहां समुद्रनाम परमात्मा का है ॥६॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७॥

पदार्थ —(अयम्) वह उक्त परमात्मा (पूषा) सबका पोषक है (भगः) ऐश्वर्य देने वाला है (सोम) सर्वोत्पादक है (पुनान) सबको पवित्र करने वाला है, (भूमन, विश्वस्य) इस बृहद् ब्रह्माण्ड का (पतिः) स्वामी है और (रयि) सम्पूर्ण धनो का हेतु है (उभे, रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (व्यख्यत्) निर्माण करने वाला उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा अपनी विभुता से (अर्षति) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ॥७॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे द्युलोक और पृथिवी लोक का प्रकाशक परमात्मा को कथन किया है । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सोमशब्द के अर्थ यहां सृष्टिकर्ता परमात्मा के हैं, किसी जड वस्तु के नहीं ॥७॥

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥८॥

पदार्थ —(गाव) इन्द्रिया (घृष्वय) जो दीप्ति वाली हैं, वे (उ) और जो (प्रिया) परमात्मा मे अनुराग रखने वाली हैं, वे (मदाय) आनन्द के लिए (समनूषत) परमात्मा का भली-भांति साक्षात्कार करती है (सोमास) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (पवमानास) जो सबको पवित्र करने वाले हैं, (इन्दव) जो ज्ञान-विज्ञानादि गुणो के प्रकाशक हैं वे इन्द्रियो से साक्षात्कार किये हुए लोगों को संस्कृत करके (पथ कृण्वते) सन्मार्ग के यात्री बनाते हैं ॥८॥

भावार्थ —गाव शब्द के अर्थ यहां इन्द्रियवृत्तियो के है, किसी गौ, बैल आदि पशु विशेष के नहीं, क्योंकि "सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते" नि० २—१ । इस प्रमाण से प्रकाशक रश्मियो का नाम यहां गाव है ॥८॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥९॥

पदार्थ —(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (य) जो यश (ओजिष्ठ) अत्यन्त ओज वाला है (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य है, (य) जो यश (पञ्च चर्षणी) पांचो ज्ञानेन्द्रिय, अथवा पांचो प्राणो को संस्कृत करता है, (येन) जिस प्रकार परमात्मा के यश से (रयिम्) ऐश्वर्य को (वनामहे) हम प्राप्त हो (त, आभर) उसको दीजिये ॥९॥

भावार्थ —यहां परमात्मा के आनन्द का लाभ करके आनन्दित होने का वर्णन है ॥९॥

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१०॥२॥

पदार्थ —(सोमा) परमात्मा के ज्ञानादि गुण (इन्दवः) प्रकाशक (गातुवित्तमाः) जो शब्दादि गुणों मे श्रेष्ठ हैं (मित्रा) सबके मित्रभूत हैं (सुवाना)

जो स्वसत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं, (अरेपस) जो अविद्यादि दोषों से रहित हैं, जो (स्वाध्य) धारण करने योग्य हैं, (स्वर्विद) जो सर्वज्ञान के हेतु होने के कारण सर्वज्ञ कहे जा सकते हैं, वे (अस्मभ्यम्) हमको (पवन्ते) पवित्रता प्रदान करें ॥१०॥

भावार्थ—परमात्मा के गुणों के वर्णन करने से ज्ञान और पवित्रता बढ़ती है ॥१०॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।

इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥११॥

पदार्थ—(गोरधित्वचि) अन्तःकरण में (अद्रिभि) चित्तवृत्तियों द्वारा (चिताना:) ध्यान किये हुए (वि) विशेषरूप से (सुष्वाणास) आविर्भाव को प्राप्त हुए उस परमात्मा के गुण (अस्मभ्यम) हमको (अभित) सर्व प्रकार से (इषम्) ऐश्वर्य (समस्वरन्) देते हैं और वे परमात्मा के ज्ञानादि गुण (वसुविदः) सब प्रकार के ज्ञानों के उत्पादक हैं ॥११॥

भावार्थ—यहाँ इन्द्रियों का अधिकरण जो मन है उसका नाम अधित्वक् है इस अभिप्राय से अधित्वचि के माने अन्तःकरण के हो सकते हैं ॥११॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।

सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२॥

पदार्थ—(विपश्चित) विज्ञान के बढ़ाने वाले (एते) पूर्वोक्त, परमात्मा के विज्ञानादि गुण (पूता) जो पवित्र हैं, (सोमास) जो शान्त्यादि भावों के देने वाले हैं, (दध्याशिर) धृत्यादि सद्गुणों के धारण करने वाले हैं, (सूर्यास) सूर्य के (न) समान (दर्शतास) सब मार्गों के प्रकाशक हैं (जिगत्नव) गतिशील (घृते) अन्तःकरणों में (ध्रुवा) स्थिर होते हैं ॥१२॥

भावार्थ—जो लोग साधनसम्पन्न होकर अपने शील को बनाते हैं उनके अन्तःकरणरूप दर्पण में परमात्मा के सद्गुण अवश्यमेव प्रतिबिम्बित होते हैं ॥१२॥

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३॥

पदार्थ—(प्रसुन्वानस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा (अन्धस) जो उपासनीय है, (तद्वच) उसकी वाणी को (मर्त) सन्मार्ग में विघ्न करने वाला पुरुष (न वृत) न ग्रहण करे और (श्वानम) उस विघ्नकारी को (अराधसम) जो नास्तिकता के भाव से सत्कर्मों से रहित है, उसको (न) जैसे (भृगव) परिपक्व बुद्धि वाले (मखम्) हिंसारूपी यज्ञ का हनन करते हैं इस प्रकार (अपहत) आप लोग इन विघ्नकारियों का हनन करें ॥१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में हिंसा के दृष्टान्त से नास्तिकों की सङ्गति का त्याग वर्णन किया है ॥१३॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥१४॥

पदार्थ—(न) जैसे (पुत्र) पुत्र (ओण्यो) माता-पिता की (भुजे) भुजाओं की (अव्यत) रक्षा करता है इसी प्रकार (जामिरत्के) अपने उपासकों की रक्षा करने वाले परमात्मा के आधार पर आप लोग विराजमान हों और (न) जैसे कि (जार) "जारयतीति जारोऽग्नि" कफादि दोषों का हनन करने वाला अग्नि (योषणाम) स्त्रियों को (सरत) प्राप्त होता है और (न) जैसे कि, (वर) वर (योनिम्) वेदी को (आसदम्) प्राप्त होता है, इसी प्रकार सर्वगुणाधार परमात्मा को आप लोग प्राप्त हों ॥१४॥

भावार्थ—यहाँ कई एक दृष्टान्तों से परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है। कई एक लोग यहाँ "जारो न योषणा" के अर्थ व्यभिचारी पुरुष अर्थात् स्त्री लम्पट पुरुष के करते हैं, यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है ॥१४॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५॥

पदार्थ—(स) पूर्वोक्त परमात्मा (वीर) सर्वगुणसम्पन्न है (दक्षसाधन) सब चातुर्यादि बलों का देने वाला है, (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (य) जो (तस्तम्भ) सहारा दिये खड़ा है, वह (हरि) सब दुर्गुणों का हनन करने वाला परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होकर (अव्यत) रक्षा करता है (न) जैसे कि, (वेधा) यजमान (योनिम्) अपने यज्ञमण्डप में (आसदम्) स्थिर होता है इसी प्रकार परमात्मा पवित्र अन्तःकरणों में ज्ञानगति से प्रविष्ट होकर उनको प्रकाश करता है ॥१५॥

भावार्थ—जो लोग अपने अन्तःकरणों को पवित्र बनाते हैं अर्थात मन बुद्धि आदिकों को शुद्ध करते हैं उनके अन्तःकरणों में परमात्मा का आविर्भाव होता है ॥१५॥

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।

कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६॥३॥

पदार्थ—(हरि) उक्त परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (निष्कृतम्) सद्गुणसम्पन्न अन्तःकरण को (अभ्येति) प्राप्त होता है, (वृषा) वह सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (गव्ये अधित्वचि) इन्द्रियों के अधिष्ठाता मन में स्थिर होकर (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (पवते) रक्षा करता है, (सोम) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (अव्य.) जो सर्वरक्षक है वह (वारेभिः) पवित्र सद्भावों से सन्मार्गानुयायियों की रक्षा करता है ॥१६॥३॥

भावार्थ—यहाँ कई एक लोग [गव्ये अधित्वचि] के अर्थ गोचर्म के करते हैं। ऐसा करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है न केवल वेदाशय से विरुद्ध है किन्तु प्रसिद्धि से भी विरुद्ध है। क्योंकि अधित्वचि के अर्थ गोचर्म पर गर्जना किये गये हैं और गोचर्म पर गर्जना अनुभव से सर्वथा विरुद्ध है। इस अधित्वचि के अर्थ मनरूप अधिष्ठाता के ही ठीक हैं। किसी अन्य वस्तु के नहीं ॥१६॥३॥

१०१वां सूक्त और ३सरा वर्ग समाप्त ।

अथ अष्टर्चस्य द्व्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य

१—८ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१-४, ८ निचृदुष्णिक् । ५—७ उष्णिक् ॥ ऋषभः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना कथन करते हैं।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

पदार्थ—(शिशु) अति प्रशंसनीय परमात्मा (महीनाम्) बड़े से बड़े पृथिव्यादि लोकों को (क्राणा) रचता हुआ (ऋतस्य) सच्चाई के (दीधितिम्) प्रकाश को (हिन्वन) प्रेरित करता है और वह (विश्वा, परि) सब लोगों के ऊपर (प्रिया) प्रियभाव (भुवत्) प्रकट करता है (अध) और (द्विता) द्वैतभाव से प्रकृति और जीव द्वारा इस संसार की रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में द्वैतभाव का वर्णन स्पष्ट रीति से किया गया है ॥१॥

उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद्गुहा पदम् ।

यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(पाष्यो) प्रकृति और पुरुषरूपी जो दृढ़ अधिकरण हैं उनके आधार पर (त्रितस्य) तीनों गुणों के (पद) पद को (उपाभक्त) सेवन किया (यत) जो पद (गुहा) प्रकृतिरूपी गुहा में (यज्ञस्य) परमात्मा के सम्बन्ध से (सप्तधामभि) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों द्वारा (अध, प्रियं) अत्यन्त प्रियता को धारण करता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में महत्तत्त्वादि कार्य कारणों द्वारा सृष्टि का निरूपण किया गया है ॥२॥

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।

मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(त्रितस्य धारया) तीनों गुणों की धारणारूप शक्ति से (पृष्ठेषु) इस ब्रह्माण्ड में (त्रीणि) तीन प्रकार के भूतों को (ईरय) प्रेरणा करता हुआ परमात्मा (रयिं) ऐश्वर्य को (मिमीते) उत्पन्न करता है (सुक्रतु) शोभन प्रज्ञा वाला परमात्मा (अस्य, योजना) इस ब्रह्माण्ड की योजना करता है ॥३॥

भावार्थ—प्रकृति के सत्त्व रज, तम तीनों गुणों द्वारा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥३॥

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये ।

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४॥

पदार्थ—(सप्त, मातर) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियाँ (जज्ञान) आविर्भाव को प्राप्त (वेधां) जो परमात्मा है (श्रिये) ऐश्वर्य के लिए उसको (अशासत) आश्रयण करती हैं (अय) उक्त परमात्मा (ध्रुव) अचल रूप से विराजमान है और (यत्) जो (रयीणां) सब लोक-लोकान्तरों के ऐश्वर्य का (चिकेत) ज्ञाता है ॥४॥

भावार्थ—इसमें महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों का वर्णन है ॥४॥

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।

स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥५॥४॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा के (व्रते) नियम में (सजोषस:) संगत हुए (विश्वे, देवास) सम्पूर्ण विद्वान् (अद्रुह) द्रोहरहित होकर उक्त परमात्मा की उपासना करें (यत) यदि (रन्तय) रमणशील उक्त विद्वान् (जुषन्त) उक्त परमात्मा की प्रीति से भक्ति करते हैं (स्पार्हा) तो संसार के अत्यन्त प्रिय करने वाले (भवन्ति) होते हैं ॥५॥४॥

भावार्थ—जो लोग राग द्वेष रहित होकर परमात्मा की भक्ति करते हैं वे अपने सामर्थ्य से संसार का बहुत उपकार कर सकते हैं ॥५॥४॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् ।

कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥६॥

पदार्थ—(ऋतावृध) यज्ञकर्म में कुशल विद्वान् (यमी) जिस उक्त परमात्मा के (गर्भं) ज्ञानरूप गर्भ को धारण करते हैं (दृशे) संसार के प्रकाश के लिये उससे (चारु) सुन्दर सन्तान को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं, वह परमात्मा (कविं) सर्वज्ञ (मंहिष्ठं) अत्यन्त पूजनीय और (पुरुस्पृह) सबका उपास्यदेव है (अध्वरे) ज्ञानयज्ञों में उक्त परमात्मा उपासनीय है ॥६॥

भावार्थ —जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक परमात्मा है उसकी उपासना ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ इत्यादि अनन्त प्रकार के यज्ञो द्वारा की जाती है ॥६॥

समीचीने अभीत्मना यह्वी ऋतस्य मातरा ।

तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥७॥

पदार्थ —वह परमात्मा (ऋतस्य) इस संसार के (मातरा) निर्माण करने वाले द्युलोक और पृथिवीलोक को रचता है वह द्युलोक और पृथिवीलोक (समीचीने) सुन्दर हैं (यह्वी) बडे हैं (तन्वाना) इस प्रकृतिरूपी तन्तुजाल के विस्तृत करने वाले हैं और (त्मना) उस परमात्मा के आत्मभूत सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं (यत) जब योगी लोग (यज्ञ) इस ज्ञानयज्ञ को (आनुषक्) आनुषाङ्गिक रूप से सेवन करते हैं अर्थात साधन रूप से आश्रयण करते हैं तो (अभ्यञ्जते) उक्त परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थ —जो लोग इस कार्य संसार और इसके कारणभूत ब्रह्म के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे शक्तिसम्पन्न होकर इस संसार की यात्रा करते हैं ॥७॥

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः ।

हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥८॥५॥

पदार्थ.—हे परमात्मन् ! आप (व्रज) व्रजतीति व्रज अन्धकार, जो ज्ञानरूप प्रकाश से दूर भाग जाय, उसको (क्रत्वा) कर्मों के द्वारा (शुक्रेभि., अक्षभि) बलवान् ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा (दिव) द्युलोक से (अपऋणो) दूर करें और (प्राध्वरे) इस ज्ञानयज्ञ मे (ऋतस्य दीधिति) सच्चाई के प्रकाश को (हिन्वन्) प्रेरणा करते हुए आप हमारे अज्ञान को दूर करें ॥८॥५॥

भावार्थ इस मन्त्र में अज्ञान की निवृत्ति के साधनों का वर्णन है अर्थात् जो पुरुष ज्ञानादि द्वारा जप तप आदि संयम सम्पन्न होकर तेजस्वी बनते हैं वे अज्ञान को निवृत्त करके प्रकाशस्वरूप ब्रह्म मे विराजमान होते हैं ॥८॥५॥

१०२वा सूक्त और ५वा वर्ग समाप्त ।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् ।

भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥१॥

पदार्थ.—(सोमाय) सर्वोत्पादक (वेधसे) जो सबका विधाता परमात्मा है, (पुनानाय) सबको पवित्र करने वाला है (जुजोषते) जो शुभकर्मों मे युक्त करने वाला है उसके लिए (मतिभि) हमारी भक्तिरूपी (वच) वाणी स्तुतियो द्वारा (उद्यतम) उद्यत हो और उक्त परमात्मा (भृतिम्) भृत्य के (न) समान हमे (भर) ऐश्वर्य से परिपूर्ण करे ॥१॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्यो से भरपूर करता है वा यों कहो जिस प्रकार स्वामी भृत्य को भृति देकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार परमात्मा अपने उपासको का भरण-पोषण करके उन्हे उन्नतिशील बनाता है ॥१॥

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।

त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥२॥

पदार्थ —(गोभिरञ्जान) अन्तःकरण की वृत्तियो द्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुआ परमात्मा (अव्यया) अपनी रक्षायुक्त शक्ति से (वाराणि) वरण योग्य अर्थात् पात्रता को प्राप्त अन्त करणो को (परि, अर्षति) प्राप्त होता है, (त्री, षधस्था) कारण, सूक्ष्म और स्थूल तीनो शरीरो को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (हरि) वह अन्त करण के मलविक्षेपादि दोषो को हरण करने वाला परमात्मा (कृणुते) उपासक को पवित्र करता है ॥२॥

भावार्थ —जो लोग अन्त करण के मलविक्षेपादि दोषों को दूर करते हैं वे लोग परमात्मज्ञान के अधिकारी बन कर परमात्मज्ञान का लाभ करते हैं ॥२॥

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति ।

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥३॥

पदार्थ —(मधुश्चुतम्) जो प्रेमरूपी माधुर्य का स्रोत (कोशम्) अन्तःकरण है (अव्यय) रक्षायुक्त (वारे) वरणीय जो स्थिर है, उसमे (परि, अर्षति) परमात्मा प्राप्त होता है और (वाणी, अभि) भक्ति को लक्ष्य रखकर (ऋषीणाम्, सप्त) जो ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्र है उनको (नूषत) विभूषित करता है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा उपासक की ज्ञानेन्द्रियो को निर्मल करके उनमे शुद्ध ज्ञान प्रकाशित करता है ॥३॥

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः ।

सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥४॥

पदार्थ —(विश्वदेवः) जो सम्पूर्ण विश्व का प्रकाशक परमात्मा है, (अदाभ्यः) किसी से तिरस्कृत नहीं हो सकता किन्तु सर्वोपरि होकर विराजमान है, (हरिः) परमात्मा (चम्वो) जीव और प्रकृतिरूपी दोनो प्रकृतियो मे (परिविशत्) प्रवेश करता है ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा शुभ बुद्धियो का प्रदान करने वाला है ॥४॥

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् ।

पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥५॥

पदार्थ —(इन्द्रेण) कर्मयोगी के साथ (सरथम्) समान भाव को प्राप्त होकर (पुनाना) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (स्वधा.) स्वधा से सृष्टि करता हुआ (दैवीरनु) दैवी सम्पत्ति के अनुकूल (परियाहि) गमन करता है और (वाघद्भि) वैदिक लोगो के साथ (वाघत) सशब्द (अमर्त्य) अमरणधर्मा परमात्मा अपने प्रकाश्य-प्रकाशक भाव रूपी योग से वैदिक लोगो को पवित्र करता है ॥५॥

भावार्थ —इस मन्त्र म दैवी सम्पत्ति के गुणो का वर्णन किया है ॥५॥

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः ।

व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥६॥६॥

पदार्थ —(देव) उक्त दिव्यस्वरूप परमात्मा (देवेभ्य, सुत) जो विद्वानों के लिए संस्कृत है और (वाजयु) ऐश्वर्य सम्पन्न (व्यानशि) सर्वव्यापक (पवमान) सबको पवित्र करने वाला वह परमात्मा (सप्ति) विद्युत् के (न) समान (परिधावति) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ॥६॥

भावार्थ —इसमे परमात्मा की व्यापकता को विद्युत् के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है ॥६॥

१०३वा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त ।

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।

शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१॥

पदार्थ - (सखाय) हे उपासक लोगो ! आप (आनिषीदत) यज्ञवेदी पर आकर स्थिर हो (पुनानाय) जो सबको पवित्र करने वाला है, उसके लिए (प्रगायत) गायन करो (श्रिये) ऐश्वर्य के लिए (शिशुम) "य शसनीयो भवति स शिशु" जो प्रशंसा के योग्य है उसको (यज्ञै) ज्ञानयज्ञादि द्वारा (परिभूषत) अलंकृत करो ॥१॥

भावार्थ —उपासक लोग परमात्मा का ज्ञानयज्ञादि द्वारा आह्वान करके उसके ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करते हैं ॥१॥

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।

देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥२॥

पदार्थ - (गयसाधनम) ज्ञान का साधन जो परमात्मा है (देवाव्यम्) देवो का रक्षक (मदम्) जो आनन्दस्वरूप है (द्विशवसम) जो बलिष्ठ है (वत्स, न) जो सर्वाभिव्यक्त शक्ति के समान है (ईम) इसको (मातृभि, संसृजत) विद्वान् लोग बुद्धिवृत्ति द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥२॥

भावार्थ -परमात्मा दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषो को अपनी दिव्य शक्तियो से विभूषित करता है और जो लोग अनाचारी आसुरी भाव सम्पन्न हैं उनको परमात्मा ज्ञान की ज्योति से देव पुरुषो के समान लाभ नही देता । तात्पर्य यह है कि दिव्य पुरुषो में परमात्मा की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है और तमरूप भावो से दूषित पुरुषों में नही ॥२॥

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।

यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥३॥

पदार्थ - (दक्षसाधनम्) सम्पूर्ण ज्ञानो का एकमात्र आधार जो परम है, उसकी उपासना (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) तृप्ति के लिए (पुनात) आप लोग करें (यथा) जिस प्रकार (मित्राय) उपदेशक के लिए और (वरुणाय) अध्यापक के लिए (शन्तम) सुख का विस्तार करने वाला वह परमात्मा हो, उस प्रकार आप उसके ज्ञान का लाभ करें ॥३॥

भावार्थ —जिस प्रकार ग्रह-उपग्रहो का केन्द्र सूर्य है, इसी प्रकार सब ज्ञानों का आधार परमात्मा है जो लोग ज्ञानी तथा विज्ञानी बनकर देश का सुधार करना चाहते है, उनको चाहिए कि परमात्मा से ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करें ॥३॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।

गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥४॥

पदार्थ —(वसुविदम) सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्यो को देने वाले आपको (अस्मभ्यम्) हमारी (वाणी) स्तुति रूप वाणी (अभ्यनूषत) वर्णन करे (ते) तुम्हारे (वर्णम) वर्णन को (गोभि) चित्तवृत्तियो द्वारा (अभिवासयामसि) अपने चित्त म बसायें ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा अनन्त गुण-सम्पन्न है । उसके गुणों के वर्णन को जो पुरुष श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा चित्त मे बसाते हैं, वे पुरुष अवश्यमेव ज्ञानयोगी बनते हैं ॥४॥

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।

सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मदानां, पते) आनन्दपते परमात्मन ! (स) पूर्वोक्त गुण-सम्पन्न आप (देवप्सरा:) दिव्यरूप (असि) हो (नः) हमारे लिए (सखेव, सख्ये) जैसे मित्र अपने मित्र के लिए (गातुवित्तम) मार्ग दिखलाता है, इसी प्रकार आप भी रास्ता दिखलाने वाले (भव) हो ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा सबको सन्मार्ग दिखलाने वाला है और जिस प्रकार मित्र अपने मित्र का हितचिन्तन करता है इस प्रकार परमात्मा सब का हितचिन्तन करने वाला है ॥५॥

सनेमि कृध्य१ स्मदा रक्षसं कंचिदत्रिणम् ।

अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥६॥७॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप इस यज्ञकर्ता के (सनेमि) सनातन काल के मैत्री भाव को (कृधि) धारण करें (कञ्चिदत्रिणम्) कोई भी हिंसक क्यों न हो उसको (रक्षसम) जो राक्षस हो (अपादेवम्) जो दैवी सम्पत्ति के गुणो से रहित है (द्वयुम) झूठ-सच की माया से मिला हुआ है, उसको हम से दूर करो और (नः) हमारे (अंह) पापों को (युयोधि) दूर करो ॥६॥७॥

भावार्थः—परमात्मा पापी पुरुषों का हनन करके निष्कपटता का प्रचार करता है ॥६॥७॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥

पदार्थ —(सखाय) हे उपासक लोगो ! (यज्ञैः स्वदयन्त) जो कि आप लोग यज्ञ द्वारा परमात्मा का स्तवन करते हैं (गूर्तिभि) स्तुतियो द्वारा (तम्) उस परमात्मा को (व पुनानम) जो आप सबको पवित्र करने वाला है (शिशुम्) प्रशसनीय है, उसको आनन्द के लिए (अभिगायत) गायन करें ॥१॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा के यश का गायन करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥१॥

स वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।

देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥

पदार्थ —(देवावी) देवताओ का रक्षक (इन्दु) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (हिन्वान) उपास्यमान (मतिभि) चित्तवृत्तियों द्वारा (अज्यते) उपासन किया जाता है वह (मद , वत्स, इव) परमानन्द के समान (मातृभि) ज्ञानेन्द्रियो द्वारा (परिष्कृत) परिष्कार को प्राप्त ध्यान-विषय होता है ॥२॥

भावार्थ —जो लोग अपनी चित्तवृत्तियो को निर्मल करके उस परमात्मा का ध्यान करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥२॥

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये

अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥३॥

पदार्थ —(अयम्) वह परमात्मा जो (दक्षाय, साधन:) चातुर्य का एकमात्र साधन है (अयम) वह (शर्धाय) बल के लिए (मधुमत्तम) आनन्दमय है (अयम्) वह (देवेभ्य) विद्वानो के लिए (सुत) अभिव्यक्त है ॥३॥

भावार्थ — सब प्रकार की नीति का साधन एकमात्र परमात्मा है जो विद्वान निपुण होना चाहते हैं वे भी एकमात्र परमात्मा की शरण लें ॥३॥

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व ।

शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥४॥

पदार्थ —(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! (सुदक्ष) सर्वज्ञ (सुत) आप सर्वत्र अभिव्यक्त हैं (न) हमको (गोमत्) ज्ञानयुक्त (अश्ववत्) क्रियायुक्त ऐश्वर्य को (धन्व) प्राप्त करायें ताकि (ते) तुम्हारे (शुचिवर्णम्) शुद्धस्वरूप को (अधि गोषु) मनबुद्धि आदिकों में (दीधरम्) धारण करें ॥४॥

भावार्थ —जो लोग परमात्मा के शुद्धस्वरूप का ध्यान करते हैं, परमात्मा उन के ज्ञान का अपनी ज्योति से अवश्यमेव देदीप्यमान करता है ॥४॥

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।

सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥५॥

पदार्थ —(हरीणां, पते) हे अखिल प्रकाशाधार ! (इन्दो) परमात्मन् ! आप (देवप्सरस्तम) दिव्य से दिव्य तेज वाले हैं (स) वह आप (नः, नर्य) हम सब यज्ञकर्ताओं की (रुचे, भव) दीप्ति के लिए हो (सख्ये, सखा, इव) जिस प्रकार मित्र मित्र के लिए तेजोवर्द्धक होता है ॥५॥

भावार्थ —जिस प्रकार सूर्य अन्य पदार्थों के तेज को देदीप्यमान करता है इसी प्रकार परमात्मा भी ज्ञान-विज्ञानादि तेजो से लोगो को देदीप्यमान करता है ॥५॥

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् ।

साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सनेमि) हम पर ऐसी कृपा करें जिससे (अदेवम्) जो अदवी सम्पत्ति का पुरुष है (अत्रिणम्) जो हिंसक है (आ) और जो (द्वयुम्) सत्यानृतरूपी माया-युक्त है, ऐसे (कञ्चित् साह्वान्) सब शत्रु जो कोई एक हैं (बाधः) हमको पीड़ा देने वाले हैं उनको (अस्मत्) हम से (परिजहि) दूर करें ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा मायावी पुरुषों से अपने भक्तों की रक्षा अवश्यमेव करता है अर्थात् परमात्मा के सामने मायावी पुरुषो की माया और दम्भियो का दम्भ कदापि नहीं चलता ॥६॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ —(स्वर्विद) ज्ञानादिगुण (इन्दव) जो प्रकाशस्वरूप हैं (जातासः) जो सर्वत्र विद्यमान हैं और जो (सुता) संस्कृत अर्थात् उपासना द्वारा जो साक्षात्कार को प्राप्त हैं (हरय) जो सब दु:खो के हरण करने वाले हैं (इमे) ये परमात्मा के सब गुण (वृषणम्) कर्म द्वारा उद्योग की वृष्टि करने वाले (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (श्रुष्टी) शीघ्र (अच्छ, यन्तु) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थ.—जो पुरुष उद्योगी हैं अर्थात् कर्मयोगी हैं उनको परमात्मा के गुणों की उपलब्धि अवश्यमेव होती है ॥१॥

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

पदार्थ —(अयम्) उक्त परमात्मा जो (सानसि) सबका उपास्य देव है (सोम) सर्वोत्पादक है (सुत) सर्वत्र विद्यमान है, वह गुणसम्पन्न परमात्मा (यथाविदे) यथार्थज्ञानी के लिए (भराय) जो स्वकर्त्तव्य से भरपूर है (जैत्रस्य) जो जयशील है (इन्द्राय) कर्मयोगी है उसको (चेतति) बोधन करता है और अपने ज्ञान द्वारा (पवते) पवित्र करता है ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा विजयी पुरुषो को धर्म से जो विजय करने वाले हैं उनको अवश्यमेव अपने ज्ञान से बोधन करता है और अपने ऐश्वर्य से उन्हें सदैव उत्साहित बनाता है ॥२॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

पदार्थ —(सानसिम) सर्वभजनीय परमात्मा की (ग्राभम्) जो ग्रहण करने योग्य है (आ) और (वृषणम्) वर्षणशील (वज्रम्) विद्युत् को (सम्भरत्) बनाता है (अस्य, इत्) उसी की ही (इन्द्र) कर्मयोगी (अप्सुजित्) जो सब कामनाओं को वशीभूत करने वाला है (गृभ्णीत) उपासना को (मदेषु) आनन्द की प्राप्ति के लिए करे ॥३॥

भावार्थ —कर्मयोगी को चाहिए कि वह एकमात्र परमात्मा की ही अनन्यभक्ति करे, अन्य किसी की उपासना न करे ॥३॥

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।

द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥४॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन ! आप (जागृवि) जागरणशील हैं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! कर्मयोगी के लिए (परिस्रव) आप प्राप्त हों जो कर्मयोगी (द्युमन्त) दीप्ति वाला (स्वर्विद) विज्ञानी है उसको (शुष्म) बल से (आभर) आप पूर्ण करें और आप (प्रधन्व) कर्मयोगी को प्रेरणा करें ताकि वह संसार की भलाई करे ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा अपनी शक्तियो से सदैव जागृत है और वह कर्मयोगी को सदैव जागृति देकर सावधान करता है ॥४॥

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।

सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥५॥९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (वृषणं) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले हैं (मद) आनन्द (पवस्व) कर्मयोगी को दें । आप (विश्वदर्शत) सर्वज्ञ हैं (सहस्रयामा) अनन्त शक्तियुक्त हैं और (विचक्षण) चतुर हैं (पथिकृत्) अपने अनुयायियो के पथों को सुगम करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा कर्मयोगी के लिए सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है और उनको अपने ज्ञान से प्रकाशित करता है ॥५॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः ।

सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥६॥

पदार्थः—(देवेभ्य) दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषो के लिए (मधुमत्तमः) आनन्दमय परमात्मा (अस्मभ्य) हमारे लिए (गातुवित्तमः) शुभ मार्गों की प्राप्ति करने वाले हो और (सहस्र , पथिभि) अनन्त शक्तिप्रद मार्गों से (कनिक्रदत्) गर्जते हुए (याहि) आप ज्ञान रूपी गति को प्रदान करें ॥६॥

भावार्थ:—परमात्मा अनन्त मार्गों द्वारा अपने ज्ञान का प्रकाश करता है अर्थात् इस विविध रचना से उसके भक्त अनन्त प्रकार से उसके ज्ञान को उपलब्ध करते हैं अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना द्वारा और इस विशाल नभोमण्डल में अपनी दिव्यज्योतियों से परमात्मा सदैव गर्ज रहा है। परमात्मा का यही गर्जन है, निराकार परमात्मा और किसी प्रकार भी गर्जन नहीं करता ॥६॥

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥७॥

पदार्थ —(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (धाराभि) आनन्द की वृष्टि से और (ओजसा) अपने विज्ञानयुक्त बल से (पवस्व) हमको पवित्र करें और (सोम) हे परमात्मन् ! (मधुमान्) आनन्दमय आप (नः कलशं) हमारे अन्त करण मे (आसद) आकर विराजमान हो ॥७॥

भावार्थ —ब्रह्मानन्द जो सब आनन्दो से बढ़कर आनन्द है जिसको उपनिषत्कारो ने "रसो वै स. रस ह्येवाय लब्ध्वा आनन्दी भवति" इत्यादि वाक्यों मे वर्णन किया है। वह आनन्दरूप परमात्मा अपने भक्तो को अवश्यमेव अपने ब्रह्मानन्द से आनन्दित करता है ॥७॥

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥८॥

पदार्थ —(तव, द्रप्सा) तुम्हारी शीघ्रगति वाली शक्तियां जो (उदप्रुत) जलों के प्रवाह के समान बहती हैं वे (इन्द्रं) कर्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिये (ववृधु) बढ़ती हैं और (त्वां) तुम जो (कं) आनन्दस्वरूप हो इससे (देवास) विद्वान लोग (अमृताय) सदा के जीवन के लिये (पपुः) पीते हैं ॥८॥

भावार्थ:—ब्रह्मानन्द वा ब्रह्मामृतरूपी रस जो सब रसो से अधिक स्वादु है उसका पान ब्रह्मपरायण ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ही कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥९॥

पदार्थ —(इन्दव) हे प्रकाशस्वरूप ! (सुतास) सर्वत्र विद्यमान परमात्मन् ! आप (न) हमको (पुनाना) पवित्र करते हुए (रयिं) धन को (आधावत) प्राप्त करायें (वृष्टि, द्याव) द्युलोक को लक्ष्य रखकर वृष्टि करने वाले (रीत्याप) सर्वव्यापक आप ! (स्वर्विदः) आनन्द स्वरूप हैं, हमको भी आनन्दित करें ॥९॥

भावार्थ —जिस प्रकार बाह्य जगत मे परमात्मा की शक्तियों से अनन्तप्रकार की वृष्टि होती है, इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषों के अन्त करण मे परमात्मा की ज्ञानरूपी वृष्टि सदैव होती रहती है। इसको योगशास्त्र की परिभाषा मे धर्ममेघ समाधि के नाम से कहा गया है अर्थात् धर्मरूपी मेघ से योगीजन सदैव सुसिञ्चित रहते हैं ॥९॥

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥१०॥

पदार्थ -(सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरो से (अव्य) सबकी रक्षा करता हुआ (वार) सद्गुण-सम्पन्न पुरुष को (विधावति) प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (अग्रे, वाच) सर्वोपरि आध्यात्मिक विद्यारूप वाणी को (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (पवमान) पवित्र बनाता है ॥१०॥

भावार्थः —जो पुरुष सद्गुण सम्पन्न हैं उनको परमात्मा अपने आनन्द में निमग्न करता है अर्थात् ब्रह्माम्बुधि मे वे लोग अपने आपको सदैव शान्तिमय वारि से स्नान कराते हैं ॥१०॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११॥

पदार्थ:—(धीभि) स्तुतियो द्वारा (वाजिनं) उस बलस्वरूप को (हिन्वन्ति) सर्वोपरिरूप से वर्णन करते है। जो परमात्मा (अत्यवि)सबकी रक्षा करने वाला है (वने क्रीळन्त) सर्वत्र विद्यमान है, (त्रिपृष्ठं) तीनो लोक, तीनो काल और तीनों सवन इत्यादि सब त्रिको मे विद्यमान है उसको (मतय) बुद्धिमान् लोग (समस्वरन्) स्तुति करते हैं ॥११॥

भावार्थ —परमात्मा कालातीत है अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह तीनो काल उसकी इयत्ता अर्थात् हद नहीं बांध सकते। तात्पर्य यह है कि काल की गति कार्य पदार्थों मे है कारणो में नहीं, वा यो कहो कि नित्य पदार्थों मे काल का व्यवहार नहीं होता किन्तु अनित्यों में होता है। इसी अभिप्राय से परमात्मा को यहां कालातीतरूप से वर्णन किया है ॥११॥

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥१२॥

पदार्थ:—(वाजयु:) सब लोको को प्राप्त परमात्मा (मीळ्हे) सग्राम में (सप्तिर्न) विद्युत् के समान (कलशानभि) पवित्र अन्त करणो में (असर्जि) साक्षात्कार किया जाता है, वह परमात्मा (वाचं पुनान) वाणी को पवित्र करके (जनयन्) उत्तम भावो को उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) शुद्ध अन्तकरणों को सिञ्चन करता हुआ स्थिर होता है ॥१२॥

भावार्थ:—उपासकों को चाहिये कि वे उपासना से प्रथम अपने अन्त:करणों को शुद्ध करें, क्योंकि वह उपास्य देव स्वच्छ अन्त करणों में ही अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है ॥१२॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।

अभ्यर्षन्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३॥

पदार्थ —(हर्यत) वह सर्वपूज्य परमात्मा (हरि:) जो सब अवगुणो को हरण करने वाला है, वह (रंह्या) ज्ञानरूप वेग से (ह्वरांसि) सब प्रकार की कुटिलताओ को (अति) अतिक्रमण करके (पवते) पवित्र करता है और (स्तोतृभ्य.) उपासको को (वीरवत् यश) वीर सन्तान और यश (अभ्यर्षन्) देकर (पवते) पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थ —परमात्मा परमात्मपरायण लोगों को सरल भाव प्रदान करके उनकी कुटिलताओं को दूर करता है और उनको वीर सन्तान देकर लोक-परलोक में तेजस्वी बनाता है ॥१३॥

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।

रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४॥११॥

पदार्थ —(देवयु:) वह परमात्मा विद्वानो को पवित्र करने वाला है (मधो. धारा) जिसकी आनन्दमय धारा (असृक्षत) आविर्भाव को प्राप्त की जाती है। (अया) उक्त धारा से हे परमात्मन् ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें, क्योकि आप (विश्वत) सब प्रकार से (पवित्र) पवित्र अन्त करण को (रेभन्) शब्दायमान होते हुए (पर्येषि) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

भावार्थ —परमात्मा का शब्दायमान होना इसी तात्पर्य से है कि वह अपने वेदरूपी शब्दब्रह्म द्वारा शब्दायमान है अर्थात् वेद के सदुपदेश द्वारा लोगों को बोधित करता है ॥१४॥

यह १०६वा सूक्त और ११वा वर्ग समाप्त हुआ

१—२६ *सप्तर्षय ऋषि* ॥ *पवमान. सोमो देवता* ॥ छन्द —१, ४, ६, ९, १४, १७, २१ *विराड्बृहती* । २, ५ *भुरिग्बृहती* । ८, १०, १२, १३, १९, २५ *बृहती* । २३ *पादनिचृद्बृहती* । ३, १६ *पिपीलिकामध्या गायत्री* । ७, ११, १८, २०, २४, २६ *निचृत् पंक्ति* । १५, २२ *पंक्ति* । *स्वर* —१, २, ४—६, ८—१०, १२—१४, १७, १९, २१, २३, २५ मध्यम । ३, १६ षड्ज ७, ११, १५, १८, २०, २२, २४, २६ पञ्चम ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।

दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

पदार्थ:—(सोमम्) सर्वोत्पादक परमात्मा को (सुतम्) जो सर्वत्र विद्यमान है (अप्स्वन्त) जो प्रकृति के सूक्ष्म कारण मे विराजमान है उसका (अद्रिभि) चित्तवृत्तियों द्वारा यज्ञ का अधिष्ठाता (आसुषाव) भली-भांति साक्षात्कार करता है (य , सोम) जो सोम (उत्तम हवि) विद्वानो को सर्वोपरि पूजनीय है (नर्य) सब नरो का हितकारी है तथा (दधन्वान) सबका धारण करता हुआ जो सर्वत्र विद्यमान है उसको (इत) यज्ञादि कर्मों के अनन्तर ज्ञानवृत्तिरूप वृष्टि से (परिषिञ्चत) परिसिञ्चन करें ॥१॥

भावार्थ —सोम जो सम्पूर्ण ससार की उत्पत्ति का कारण है और जो सौम्य स्वभावों का प्रदान करने वाला है वह सोमरूप परमात्मा ससार में ओत-प्रोत हो रहा है। उसका अपनी ज्ञानरूपी वृत्तियो द्वारा साक्षात् करना ही वृत्तियों का सिञ्चन करना है ॥१॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।

सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

पदार्थ·—हे परमात्मन् ! (नूनम्) निश्चय करके (अविभि·) अपनी रक्षाओं से (पुनान) पवित्र करते हुए आप (परिस्रव) हमारे अन्त.करण मे आकर विराजमान हों, आप (अदब्ध) अखण्डनीय हैं (सुरभिन्तर) अत्यन्त शोभनीय हैं, हम लोग (उत्तरम्) अत्यन्त प्रेम से (गोभि) ज्ञानरूप वृत्तियो द्वारा (श्रीणन्त·) तुम्हारा साक्षात्कार करते हुए (अन्धस) मनोमय कोश से (अप्सु) कर्मों में (सुते, चित्) साक्षात्कार के लिये (त्वा) तुम्हारा (मदाम) स्तवन करते हैं ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, आपका स्वरूप अखण्डनीय है, इसलिये आपका ध्यान व्यापक भाव से ही किया जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः । क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थ —(चक्षसे) सब लोगो की ज्ञानवृद्धि के लिये (परिसुवान) ज्ञानरूपी दीप्ति से प्रकट हुआ परमात्मा उपासकों के गोचर होता है, वह परमात्मा

(देवमादनः) विद्वानों को आनन्द देने वाला है (क्रतु) यज्ञरूप है (इन्दु) स्वयं प्रकाश है (विचक्षण) विलक्षण प्रतिभा वाला अर्थात् सर्वज्ञ है ॥३॥

भावार्थ —जिस समय उस निराकार का ध्यान किया जाता है उस समय उसके सद्‌गुण उपासक के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके सत्चित् आनन्द इत्यादि रूप प्रतीत होने लगते हैं । यही परमात्मदेव का साक्षात्कार है ॥३॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अप, पुनानः) हमारे कर्मों को पवित्र करते हुए आप (वसानः) हमारे अन्तःकरण में निवास करते हुए (धारया) आनन्द की वृष्टि से (अर्षसि) हमको प्राप्त होते हैं (रत्नधाः) आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के धारण करने वाले हैं (ऋतस्य, योनिम्) सत्यरूपी यज्ञ के स्थान को (आसीदसि) प्राप्त होते हैं । (देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (उत्स) आप सबका निवासस्थान और (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप हैं, अप इति कर्मनामसु पठितम्—अ०१ —ख—२ ॥४॥

भावार्थ —वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अपनी दिव्य ज्योति से उपासक के अज्ञान को छिन्न-भिन्न करके उसमें विमल ज्ञान का प्रकाश करता है ॥४॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।

आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥

पदार्थ —(दुहानः) सबको परिपूर्ण करने वाला (ऊधः) सबका अधिकरणरूप परमात्मा (मधु) आनन्दस्वरूप (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) अन्तरिक्ष स्थान को (प्रियम्) जो प्रिय है, उसको (आसदत्) आश्रय करता है वह परमात्मा (वाजी) जो बलस्वरूप (विचक्षणः) विलक्षण बुद्धि वाला (नृभिः, धूतः) उपासकों से उपासना किया हुआ (धरुणम्) धारण वाले (आपृच्छ्यम्) जिज्ञासु यजमान को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ —जो पुरुष धारणा ध्यानादि साधनों से सम्पन्न हैं वे ही उस निराकार ज्योति के ज्ञान के पात्र बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।

त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पुनानः) आप सबको पवित्र करते हुए (जागृविः) सदैव अपनी चेतन सत्ता से विराजमान हैं (अव्यः) सर्वरक्षक हैं (वारे) आपका वरण करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में (परि, प्रियः) आप अत्यन्त प्रिय हैं (त्वम्) आप (विप्रः) मेधावी हैं, विप्र इति मेधाविनामसु पठितम् (अङ्गिरस्तमः, अभवः) सब प्राणों में प्रियतम अर्थात् प्राणों के भी प्राण हैं (मध्वा) अपने आनन्द से (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (मिमिक्ष) सिञ्चन करें ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा उपासकों के यज्ञों को अपनी ज्ञानमयी वृष्टि द्वारा सुसिञ्चित करके आनन्दित करते हैं ॥६॥

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।

त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥७॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सोम) सर्वोत्पादक हैं (मीढ्वान्) सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (गातुवित्तमः) सर्वोपरि मार्ग के दिखलाने वाले हैं, (ऋषिः) ऋषत्यानि गच्छति सर्वत्र प्राप्नोतीति ऋषिः - जो अपनी व्यापक शक्ति से सर्वत्र विद्यमान हो उसका नाम यहां ऋषि है (विप्रः) मेधावी (विचक्षणः) सर्वोपरि विज्ञानी हैं (कविः) सर्वज्ञ (अभवः) हैं (देववीतमः) सब विद्वानों के परमप्रिय तथा (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य को (आरोहय) प्रादुर्भाव करते हैं, उक्त गुणशाली आप उपासकों के अन्तःकरणों को (पवते) पवित्र करते हैं ॥७॥

भावार्थ —इस मन्त्र का आशय यह है कि परमात्मा ज्ञानादि गुणों द्वारा उपासक के हृदय को दीप्तिमान् बनाते हैं ॥७॥

सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

पदार्थ —आपको साक्षात्कार करने वाले (सोतृभिः) उपासकों द्वारा (अधि, षुवाणः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए (सोम) सर्वोत्पादक आप (अवीनाम्) रक्षायुक्त वस्तुओं के (ष्णुभिः) रक्षायुक्त साधनों से (अश्वया) विद्युत् के (इव) समान (हरिता) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (मन्द्रया, धारया) आनन्दित करने वाली धारा से (याति) उपासकों के अन्तःकरण को प्राप्त होता है ॥८॥

भावार्थ —जिस प्रकार विद्युत् अपनी शक्तियों द्वारा नाना कार्यों का हेतु होती है इसी प्रकार परमात्मा अपने ज्ञान-कर्मरूपी शक्ति द्वारा सब ब्रह्माण्डों की रचना का हेतु है ॥८॥

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥९॥

पदार्थ —(सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (दुग्धाभिः) ज्ञान को दोहन करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (अक्षाः) साक्षात्कार को प्राप्त होता है (गोमान्) वह ज्ञानरूपी दीप्ति वाला परमात्मा (गोभिः) अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा (अनूपे) अनूपरूपी अन्तःकरण देश में (अक्षाः) प्रवाहित होता है (न) जैसे (समुद्रम्) समुद्र के अभिमुख (संवरणानि) समुद्र को जाने वाली नदियां (अग्मन्) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (मन्दी) आनन्दस्वरूप परमात्मा (मदाय) आनन्द के लिये (तोशते) अज्ञानरूपी आवरण को भंग करके साक्षात्कार किया जाता है ॥९॥

भावार्थ —इस मन्त्र में अज्ञान का भंग करके परमात्मा का साक्षात्कार करना वर्णन किया गया है ॥९॥

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।

जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (सुवानः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (वाराणि) वरणीयान्तःकरणों को (आविशत) प्रवेश करते हैं (हरिः) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (अव्यया) जो सर्वरक्षक है वह (तिरः) अज्ञान का तिरस्कार करके (वनेषु) भक्ति-भाजन अन्तःकरणों में विराजमान होता है और उनको (सदः) स्थिति का स्थान बनाकर (दधिषे) ज्ञान का प्रकाश करता है (न) जिस प्रकार (जनः) जनसमुदाय (चम्वोः) अधिष्ठानरूप (पुरि) पुरी को प्रवेश करता है इसी प्रकार परमात्मज्ञान, पुरीरूप अन्तःकरण में प्रवेश करता है ॥१०॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता वर्णन की गई है ॥१०॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।

अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥

पदार्थ —(मेष्यः) मिषति इति "मेष्यः" सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला (वाजयुः) ऐश्वर्ययुक्त भगवान् (मीळ्हे) युद्ध में (न) जिस प्रकार (सप्तिः) अश्व सत्ता स्फूर्ति वाला होता है, इस प्रकार ओजस्वी (अण्वानि) शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध इन पञ्चतन्मात्राओं का (तिरः) तिरस्कार करके (सः, ममृजे) वह बुद्धिवृत्ति का विषय किया जाता है, और (सोमः) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (विप्रेभिः) जो मेधावी हैं, और (ऋक्वभिः) जो समय-समय पर यज्ञ करने वाले हैं, ऐसे (मनीषिभिः) मनस्वी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला वह परमात्मा (अनुमाद्यः) आनन्द प्रदान करता है ॥११॥

भावार्थ —जो सर्वोपरि ब्रह्मानन्द है, जिसके आगे और सब आनन्द फीके हैं वह एकमात्र परमात्मपरायण होने से ही उपलब्ध होता है, अन्यथा नहीं ॥११॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥

पदार्थ —(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (देववीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (अर्णसा) जल से (सिन्धुः) सिन्धु के (न) समान (प्रपिप्ये) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (अंशोः) जीवात्मा के (पयसा) अभ्युदय से (मदिरः) आह्लादक आनन्द (न) जैसे (मधुश्चुतम्, कोशम्) आनन्द के कोश को अन्तःकरण को (अच्छ) प्राप्त होता है इसी प्रकार (जागृविः) चैतन्यस्वरूप परमात्मा उपासकों की तृप्ति के लिये जीव के अन्तःकरण को आनन्द का स्रोत बनाता है ॥१२॥

भावार्थ —परमात्मा सर्वव्यापक है उसका आनन्द यद्यपि सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको चित्त की निर्मलता द्वारा उपलब्ध करने वाले उपासक प्राप्त कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥१२॥

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।

तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३॥

पदार्थ —(अर्जुने) कर्मों के अर्जन विषय में (अत्के) जो निरूपण किया जाता है वह (हर्यतः) सर्वप्रिय परमात्मा (अव्यत) हमारी रक्षा करता है (न) जैसे (सूनुः) सन्तति (मर्ज्यः) मार्जन करने योग्य होती है इसी प्रकार (प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा सन्ततिस्थानीय हम लोगों की रक्षा करता है (तमीम्) उक्त परमात्मा को (अपसः) कर्म (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं (यथा) जिस प्रकार (गभस्त्योः) बल के समक्ष (रथम्) वेग को (नदीषु) संग्रामों में प्रेरणा करते हैं, इसी प्रकार रथरूप जीव को कर्मरूप संग्राम के अभिमुख परमात्मा प्रेरणा करता है ॥१३॥

भावार्थ —इस मन्त्र का भाव यह है कि सञ्चित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों प्रकार के कर्मों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥१३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥

पदार्थ —(आयवः) ज्ञानशील विद्वान् (सोमासः) सर्वोत्पादक परमात्मा के (अभि) अभिमुख (मद्यम्) आह्लाद तथा (मदम्) आनन्द के लिये (पवन्ते)

आत्मा को पवित्र करते हैं (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष देश के (अधिविष्टपि) ऊपर (मनीषिण) मननशील (मत्सरासः) ब्रह्मानन्द का पान करने वाले (स्वर्विद) विज्ञानी लोग परमात्मा के रस को पान करते हैं ॥१४॥

भावार्थ — ज्ञानी और विज्ञानी लोग ही अपने जप-तप आदि यमों द्वारा परमात्मा के आनन्द को उपलब्ध करते हैं और वही अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं ॥१४॥

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।

अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥१४॥

पदार्थः—(ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरों से (पवमान) पवित्र करने वाला परमात्मा (समुद्रम) अन्तरिक्षलोक को (तरत्) अवगाहन करता है (राजा) "राजते प्रकाशत इति राजा"=सबको प्रकाश करने वाला (देव) दिव्यस्वरूप (बृहत्, ऋतम्) सर्वोपरि सत्य के धारण करने वाला परमात्मा (अर्षत्) सर्वत्र गतिशील होता है और (मित्रस्य) अध्यापक तथा (वरुणस्य) उपदेशक के (धर्मणा) धर्मों द्वारा (बृहत्, ऋतम्) सर्वोपरि सत्य को (हिन्वान) प्रेरणा करता हुआ अध्यापकों और उपदेशको द्वारा देश का कल्याण करता है ॥१५॥

भावार्थ —जिस देश मे अध्यापक तथा उपदेशक अपनी शुभ शिक्षा द्वारा लोगों को सुशिक्षित करते हैं परमात्मा उस देश का अवश्यमेव कल्याण करता है ॥१५॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥

पदार्थ.—(समुद्रिय) अन्तरिक्षदेशव्यापी (देव) दिव्यस्वरूप (राजा) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो का नियन्ता (विचक्षण) सर्वद्रष्टा (हर्यत) सर्वप्रिय परमात्मा (नृभि) सदुपदेशक मनुष्यो द्वारा (येमान.) उपदेश किया हुआ कर्मयोगी के लिए शुभ फलो का प्रदाता होता है ॥१६॥

भावार्थ —परमात्मा के ज्ञान से कर्मयोगी नानाविधि फलो को लाभ करता है, यहाँ कर्मयोगी उपलक्षण मात्र है.वास्तव म ज्ञानयोगी, उद्योगी, तपस्वी और सयमी सब प्रकार के पुरुषो का यहा ग्रहण है ॥१६॥

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।

सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७॥

पदार्थ.—(मरुत्वते) कर्मयोगी द्वारा (सुत.) साक्षात्कार किया हुआ (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (मद) आह्लादक बनकर (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (सहस्रधार) अनन्तशक्ति युक्त परमात्मा (अति, अव्यम) अत्यन्त रक्षा को (अर्षति) प्राप्त होता अर्थात् करता है (तम्) उक्त परमात्मा को (आयव.) कर्मयोगी लोग (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥१७॥

भावार्थ - यहां भी कर्मयोगी उपलक्षण मात्र है। वास्तव मे सब प्रकार के योगियो का यहा ग्रहण है कि वह परमात्मा का साक्षात्कार करके सुरक्षित रहकर आह्लादक तथा सुखकारी पदार्थों का उपभोग करते है ॥१७॥

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८॥

पदार्थ —(चमू) जीव तथा प्रकृतिरूप ससार के आधारभूत दोनो शक्तियो को (पुनान) पवित्र करता तथा (मतिम्) बुद्धि को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (कवि) सर्वज्ञ (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (देवेषु) सूर्यादि दिव्यशक्ति वाले पदार्थों मे (रण्यति) सर्वव्यापक भाव से विराजमान होता है (अप , वसान) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (गोभि , उत्तर) ज्ञानेन्द्रियो द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (परिसीदन्) अन्त करणो मे विराजमान होता तथा (वनेषु) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरो मे (परि, अव्यत) सब ओर से रक्षा करता है ॥१८॥

भावार्थ —द्युभ्वादि लोक-लोकान्तर एकमात्र परमात्मा ही के आधार पर स्थित होने से योगीजन सर्वत्र सुरक्षित रहता है ॥१८॥

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति तां इहि ॥१९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (दिवेदिवे) प्रतिदिन (तव, सख्ये) तुम्हारी मैत्री मे (अहं, रारण) मैं सदैव तुम्हारा स्मरण करता हूँ (बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन् ! (पुरूणि) बहुत (निचरन्ति) नीचभावो से जो राक्षस (माम्) मुझको पीडा देते हैं (तान्, परिधीन्) उन राक्षसों को (अतीहि) अतिक्रमण करके मेरी (अव) रक्षा करो ॥१९॥

भावार्थ —इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! वैदिक कर्मानुष्ठान में विघ्न करने वाले मनुष्यों से हमारी रक्षा करें, "रक्षत्यस्मादिति रक्ष , रक्ष एव राक्षस." यहां राक्षस शब्द से विघ्नकारी मनुष्यों का ग्रहण है। किसी जाति-विशेष का नहीं ॥१९॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥१५॥

पदार्थ —(बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन ! (ते, सख्याय) तुम्हारी मैत्री के लिए (दिवा) दिन (उत) अथवा (नक्तम्) रात्रि (सोम) हे सोम (ते, ऊधनि) तुम्हारे समीप (घृणा, तपन्तम्) जो तुम अपनी दीप्ति से देदीप्यमान हो (अति, सूर्यम्) अपने प्रकाश से सूर्य को भी अतिक्रमण करने वाले हो, तथा (पर) सर्वोपरि हो, उक्त गुण-सम्पन्न आपको (शकुना, इव) शकुन पक्षी के समान (पप्तिम) प्राप्त होने के लिए गतिशील बनें ॥२०॥

भावार्थ —"बिभर्तीति बभ्रु."=जो सबको धारण करने वाला परमात्मा है उसी को उपासना करनी योग्य है ॥२०॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१॥

पदार्थ.—(सुहस्त्य) हे सर्वसामर्थ्यों को हस्तगत करने वाले परमात्मन् ! आप (समुद्रे) अन्तरिक्ष मे (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करते हैं (मृज्यमान·) उपासना किए हुए आप (बहुलम्) बहुत सा (पिशङ्गम्) सुवर्ण-रूपी (रयिम्) धन (पुरुस्पृहम्) जो सबको प्रिय है (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (अभ्यर्षसि) आप देते हैं ॥२१॥

भावार्थ —परमात्मा की उपासना करने से सब प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं, इसलिए ऐश्वर्य की चाहना वाले पुरुष को उसकी उपासना करनी चाहिए ॥२१॥

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।

देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥

पदार्थ —(मृजान) आप सबको शुद्ध करने वाले हैं (अव्यये, वारे) रक्षा-युक्त वरणीय पुरुष को (पवमान) पवित्र करने वाले (वृषा) सब कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (वने) सब ब्रह्माण्डो मे (अव, चक्रद) शब्दायमान हो रहे हैं (सोम) हे सर्वोत्पादक (पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (देवानाम्) विद्वानो के (निष्कृतम) सस्कृत अन्त करण को (अर्षसि) प्राप्त होते हैं, आप कैसे हैं (गोभि , अञ्जान) इन्द्रियो द्वारा ज्ञानरूपी वृत्तियों से साक्षात्कार किये जाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—अभ्युदय और नि श्रेयस का हेतु एकमात्र परमात्मा ही है, इसलिए उसी की उपासना करनी चाहिए ॥२२॥

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।

त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारया देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३॥

पदार्थ —(विश्वानि, काव्या) सर्वज्ञता के सम्पूर्ण भावो को (अभि) लक्ष्य रखकर (पवस्व) आप हमको पवित्र करें, (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (देवेभ्य) विद्वानो के लिए आप (मत्सर) अत्यन्त आनन्दप्रद हैं और (त्वम्) तुमने (समुद्रम्) अन्तरिक्ष रूपी कलश को (प्रथम) सबसे प्रथम (विधारयः) धारण किया है, आप (वाजसातये) ऐश्वर्य धारण करने के लिए (पवस्व) हमको पवित्र बनायें ॥२३॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! इस नभोमण्डल अर्थात कोटि-कोटि ब्रह्माण्डो को एकमात्र आपने ही धारण किया है, इसलिए आप कृपा करके हमारे भावों को पवित्र बनायें जिससे हम आपकी उपासना मे प्रवृत्त रहें ॥२३॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥२४॥

पदार्थ —(पार्थिवम्, रज) पृथिवी के परमाणु (च) और (दिव्या) द्युलोकस्थ अन्य भूतो के परमाणुओं को (स , तु) वह आप (परि, पवस्व) भली प्रकार पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (धर्मभि) तुम्हारे गुणों द्वारा (त्वाम्) तुम्हारा (विप्रास.) मेधावी लोग (मतिभिः) अपनी बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं (विचक्षण) हे सर्वज्ञ ! (शुभ्रम्) सर्वोपरि शुद्धस्वरूप आपको (धीतिभि) कर्मयोग की शक्तियों द्वारा कर्मयोगी लोग तुम्हारी (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥२४॥

भावार्थ —इस ब्रह्माण्ड के परमाणुरूप सूक्ष्म कारण को एकमात्र परमात्मा ही धारण करता तथा पवित्र करता है, इसलिये हे भगवन् ! हम मे भी वह शक्ति प्रदान करें कि हम कर्मयोगी बनकर ऐश्वर्यशाली हो ॥२४॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रियाहया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५॥

पदार्थ —(धारया) अपनी कृपामयी वृष्टि से (पवित्रम्) पवित्र अन्त·-करण को (अभि) लक्ष्य रखकर (अति, असृक्षत) तुम्हारा साक्षात्कार किया जाता है (पवमाना) तुम्हारे पवित्र स्वभाव (मरुत्वन्त) जो विद्वानों द्वारा साक्षात्कार किये गये हैं (मत्सरा) आनन्ददायक हैं। (इन्द्रियाः) कर्मयोगियों के हितकर

है (**इषः**) गति-शील हैं (**च**) और (**मेधाम्**) बुद्धि तथा (**प्रशंसि**) ऐश्वर्यों को देने वाले जो आपके स्वभाव हैं उनसे आप हमको पवित्र करें ॥२५॥

भावार्थ—परमात्मा के अपहतपाप्मादि स्वभाव उपासना द्वारा मनुष्य को शुद्ध करते हैं, इसलिए मनुष्य को उसकी उपासना में सदा रत रहना चाहिए ॥२५॥

अपो वसा॑नः परि॒ कोश॑मर्ष॒तीन्दु॑र्हिया॒नः सो॒तृभिः॑ ।

ज॒नय॒ञ्ज्योति॑र्म॒न्दना॑ अवीवश॒द्गाः कृ॑ण्वा॒नो

न नि॒र्णिज॑म् ॥२६॥१६ ।

पदार्थः—(**सोतृभि**) कर्मयोगियों से (**हियान**) प्रेरणा किया हुआ (**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**कोशम्**) उनके अन्तःकरण को (**पर्यर्षति**) प्राप्त होता है (**अप , वसान**) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (**ज्योति**) सूर्यादि ज्योतियों को (**जनयन्**) उत्पन्न करके (**गा**) पृथिव्यादि लोकों को (**अवीवशत्**) देदीप्यमान करता हुआ और (**निर्णिजम्**) अपने स्वरूप को (**कृण्वान**) स्पष्ट करते हुए के (**न**) समान (**मन्दना**) अभिव्यक्त करता है ॥२६॥

भावार्थ—सूर्य चन्द्रादि नाना ज्योतियों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा सब कर्मों का अध्यक्ष है । वह अपनी कृपा से हमारे अन्तःकरण को प्राप्त हो ॥२६॥

इति सप्तोत्तर शततम सूक्त षोडशो वर्गश्च समाप्त ।

यह १०७वां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ षोडशर्चस्य अष्टोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

ऋषि—१, २ *गौरिवीतिः* । ३, १४—१६ *शक्ति* । ४, ५ *उरु* । ६, ७ *ऋजिश्वा* । ८, ९ *ऊर्ध्वसद्मा* । १०, ११ *कृतयशाः* । १२, १३ *ऋणञ्चय* ॥ *पवमानः सोमो देवता* ॥ छन्द — १, ९, ११ *उष्णिक् ककुप्* । ३ *पादनिचृदुष्णिक्* । ५, ७, १५ *निचृदुष्णिक्* । २ *निचृद्बृहती* । ४, ६, १०, १२ *स्वराड्बृहती* । ८, १६ *पङ्क्तिः* । १४ *निचृत्पङ्क्तिः* । १३ *गायत्री* ॥ स्वरः १, ३, ५ ७, ९, ११, १५ *ऋषभः* । २, ४, ६, १०, १२, *मध्यमः* । ८, १४, १६ *पञ्चमः* । १३ *षड्जः* ॥

पव॑स्व॒ मधु॑मत्तम॒ इन्द्रा॑य सोम क्रतु॒वित्त॑मो॒ मदः॑ ।

महि॑ द्यु॒क्षत॑मो॒ मदः॑ ॥१॥

पदार्थ—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**मधुमत्तम**) आनन्दस्वरूप और (**क्रतुवित्तम**) सब कर्मों के वेत्ता हैं (**द्युक्षतम**) दीप्ति वाले हैं (**महि, मदः**) अत्यन्त आनन्द के हेतु (**मदः**) हर्षस्वरूप आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पवस्व**) पवित्र करें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से शुभकर्मों की ओर लगने की प्रार्थना की गई है कि हे शुभकर्मों के प्रेरक परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों को भली-भांति जानते हुए भी अपनी कृपा से हमें शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करें ताकि हम कर्मयोगी बनकर आपकी समीपता लाभ कर सकें ॥१॥

यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विदः॑ ।

स सु॒प्रके॑तो अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषोऽच्छा॒ वाजं॒ नैत॑शः ॥२॥

पदार्थ—(**यस्य, ते**) जिस तुम्हारे (**पीत्वा**) आनन्द के पान करने से (**वृषभ**) कर्मों की वृष्टि करने वाला कर्मयोगी (**वृषायते**) वर्षतीति वृष , वृषु सिञ्चने, इस धातु से सदुपदेश द्वारा सिञ्चन करने वाले पुरुष के लिए यहां 'वृष' शब्द आया है जिसके अर्थ सदुपदेश के हैं (**अस्य, पीता**) इस आनन्द के पीने से (**सुप्रकेत**) शोभन प्रज्ञा वाला होकर (**इषः, अभ्यक्रमीत्**) शत्रुओं को अतिक्रमण कर जाता है (**एतश**) अश्व (**न**) जैसे (**वाजम्**) संग्राम का (**अच्छ**) अतिक्रमण करता है इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष सब बलों का अतिक्रमण करता और (**स्वर्विद**) विज्ञानी बनता है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेद के सदुपदेश द्वारा कर्मयोगी शोभन प्रज्ञा वाला हो जाता है, यहाँ अश्व के दृष्टान्त से कर्मयोगी के बल और पराक्रम का वर्णन किया है कि जिस प्रकार अश्व संग्राम में विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार कर्मयोगी विज्ञान द्वारा सब शत्रुओं का पराजय करने वाला होता है ॥२॥

त्वं ह्य१॒ङ्ग दैव्या॒ पव॑मान॒ जनि॑मानि द्यु॒मत्त॑मः ।

अ॒मृ॒त॒त्वाय॑ घो॒षयः॑ ॥३॥

पदार्थ—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**त्वम्, दैव्या, जनिमानि**) पवित्र जन्मों को लक्ष्य रखकर (**द्युमत्तम**) दीप्ति वाले आप (**अमृतत्वाय**) अमृतभाव का (**घोषय**) घोषणा करते हैं (**हि**) निश्चय करके (**अङ्ग**) हे सर्वप्रिय परमात्मन् ! आप ही सब का कल्याण करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—वही परमपिता परमात्मा विद्वान् तथा सत्कर्मी जीवों को कल्याण के देने वाले और वही सबका पालन-पोषण करने वाले हैं ॥३॥

येना॒ नव॑ग्वो द॒ध्यङ्ङ॑पोर्णु॒ते येन॒ विप्रा॑स आपि॒रे ।

दे॒वानां॑ सु॒म्ने अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑णो॒ येन॒ श्रवां॑स्यान॒शुः ॥४॥

पदार्थ—(**येन**) जिस तुम्हारे आनन्द से (**नवग्वः**) नवीन पुरुष (**दध्यङ्**) ध्यानी लोग (**अपोर्णुते**) सदुपदेशों द्वारा लोगों को सुरक्षित करते हैं (**येन**) जिससे (**विप्रास**) मेधावी लोग (**आपिरे**) प्राप्त होते हैं (**देवानाम्, सुम्ने, चारुणः, अमृतस्य**) विद्वानों के अमृतरूप सुख में जिज्ञासु विराजमान होता है (**येन**) जिससे (**श्रवांसि**) यशों को (**आनशु**) भोगता है, और यह एकमात्र आप ही का आनन्द है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा ही अपने अनादिसिद्ध ज्ञान द्वारा लोगों को सन्मार्ग की प्रेरणा करता है, वही सद्विद्यारूपी वेदों से सबका सुधार करता है वही सबको आनन्द प्रदान करने वाला है ॥४॥

ए॒ष स्य धार॑या सु॒तोऽव्यो॒ वारे॑भिः पवते म॒दिन्त॑मः ।

क्रीळ॑न्नू॒र्मिर॒पामि॑व ॥५॥१७॥

पदार्थ—(**एष , स्य**) वह पूर्वोक्त परमात्मा (**अव्य**) जो सर्वरक्षक है (**वारेभिः, सुत**) श्रेष्ठ साधनों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवते**) पवित्र करता है (**मदिन्तम**) वह आनन्दस्वरूप (**अपाम्, ऊर्मि , इव**) समुद्र की लहरों के समान (**क्रीळन्**) क्रीडा करता हुआ सब ब्रह्माण्डों का निर्माण करता है ॥५॥

भावार्थ—यहां समुद्र की लहरों का दृष्टान्त अनायास के अभिप्राय से है साकार के अभिप्राय से नहीं अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अनायास ही श्वासादि व्यवहार करता है इसी प्रकार लीलामात्र से परमात्मा इस संसार की रचना करता है ॥५॥

य उ॒स्रिया॒ अप्या॑ अ॒न्तरश्म॑नो॒ निर्गा अकृ॑न्त॒दोज॑सा ।

अ॒भि व्र॒जं त॑त्निषे॒ गव्य॒मश्व्यं॑ व॒र्मीव॑ धृष्ण॒वा रु॑ज ॥६॥

पदार्थ—(**य**) जो परमात्मा (**अप्या , उस्रिया**) अपनी व्याप्तिशील शक्तियों से (**अन्तरश्मन**) मेघों के भीतर (**ओजसा अकृन्तत्**) बल से छेदन करता हुआ (**निर्गा**) निरन्तर शब्दायमान होकर (**व्रजम्**) इस ब्रह्माण्डरूपी समुदाय के समक्ष (**अभि, तत्निषे**) चारों ओर व्याप्त हो रहा है और जो (**गव्यम्**) ज्ञान तथा (**अश्व्यम**) कर्म की शक्तियों को (**वर्मीव**) कवच के समान धारण कर रहा है उसमें यह प्रार्थना है कि (**धृष्णो**) हे धृतिरूप परमात्मन् ! (**आरुज**) आप हमारी बाधक शक्तियों का नाश करें ॥६॥

भावार्थ—वह पूर्ण परमात्मा जो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, वही मङ्गलमय प्रभु सब विघ्नों को निवृत्त करके कल्याण का देने वाला और वही सब पापों का क्षय करने वाला है ॥६॥

आ सो॑ता॒ परि॑ षिञ्च॒ताश्वं॒ न स्तोम॑म॒प्तुरं॑ रज॒स्तुर॑म् ।

व॒न॒क्र॒क्षमु॑द॒प्रुत॑म् ॥७॥

पदार्थः—(**अश्वम्, न**) जो विद्युत् के समान (**अप्तुरम्**) अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को गति देने वाला, (**रजस्तुरम्**) तेजस्वी पदार्थों को गति देने वाला और (**वनक्रक्षम्, उदप्रुतम्**) जो सर्वत्र ओत-प्रोत हो रहा है ऐसे (**स्तोमम्**) स्तुतियोग्य परमात्मा को (**परिषिञ्चत, आ**) अपनी उपासनारूप वारि से भली प्रकार सिञ्चन करते हुए उसका (**सोत**) साक्षात्कार करें ॥७॥

भावार्थः—विद्युदादि नानाविध क्रिया शक्तियों का प्रदाता, निर्माता तथा प्रकाशक एकमात्र परमात्मा ही है, वही सबका उपासनीय और वही सबका कल्याण का देने वाला है ॥७॥

स॒हस्र॑धारं वृष॒भं प॑यो॒वृधं॑ प्रि॒यं दे॒वाय॒ जन्म॑ने ।

ऋ॒तेन॒ य ऋ॒तजा॑तो विवावृ॒धे राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ॥८॥

पदार्थः—(**सहस्रधारम्**) जो अनन्त प्रकार की धाराओं से (**वृषभम्**) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (**पयोवृधम्**) जो अन्नादि ऐश्वर्यों से परिपूर्ण और (**प्रियम्**) जो सर्वप्रिय है, ऐसे परमात्मा से मैं (**देवाय, जन्मने**) दिव्य जन्म के लिये प्रार्थना करता हूँ, जो (**ऋतेन**) प्रकृतिरूपी ऋत से (**ऋतजातः**) ऋतजात अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है (**विवावृधे**) जो सर्वत्र विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त (**य**) जो (**देवः**) दिव्यस्वरूप और जो (**राजा**) सब भूतों का स्वामी है वही (**ऋतं बृहत्**) एकमात्र सर्वोपरि सत्य है, उसी परमात्मा की हम लोग उपासना करें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रकृति को "ऋत" इस अभिप्राय से कहा गया है कि प्रकृति परिणामी नित्य है—अर्थात् परिणामी को प्राप्त होकर नाश नहीं होती, शेष सब अर्थ स्पष्ट है ॥८॥

अ॒भि द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ इष॑स्पते दिदीहि देव देव॒युः ।

वि कोशं॑ मध्य॒मं यु॑व ॥९॥

पदार्थ—(**द्युम्नम्**) दीप्ति वाला (**बृहत्, यश**) बड़े यश वाला (**इषस्पते**) हे ऐश्वर्यों के पति परमात्मन् ! (**अभि, दिदीहि**) आप हमको ऐश्वर्य प्रदान करें (**देवयु**) दीप्ति को प्राप्त (**देव**) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (**मध्यमम्, कोशम्**) अन्तरिक्ष कोश को (**वि, युव**) आप हमें विशेष रूप से समाश्रित करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्य-प्राप्ति की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप ऐश्वर्यरूप सम्पूर्ण कोशों के पति हैं, कृपा करके हमें भी विशेष रूप से सम्पत्तिशील बनावें ॥९॥

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥१८॥

पदार्थः—(सुदक्ष) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप (चम्वोः) प्रकृति तथा जीवरूप व्याप्य पदार्थों मे (सुत) सर्वत्र विद्यमान (विशाम्) सब प्रजाओं के (वह्निः) अग्नि (न) समान (विश्पति) वोढा=नेता है, आप (आ, वच्यस्व) हमें प्राप्त हों (दिवः) द्युलोक की (वृष्टिम) वृष्टि को (पवस्व) पवित्र करें (अपां, रीतिम्) कर्मों की गति को पवित्र करें (गविष्टये) ज्ञान और (धियः) कर्मों की इच्छा करने वाले पुरुष को (जिन्व) अपनी शक्ति से परिपूर्ण करें ॥१०॥

भावार्थ —जिस प्रकार अग्नि एक पदार्थ को स्थानान्तर को प्राप्त कर देती है अर्थात् अपनी तेजोमयी शक्ति से गतिशील बना देती है, इसी प्रकार परमात्मा ज्ञानी तथा सुकर्मी पुरुष को गतिशील बनाता है जिससे पुरुष शक्तिसम्पन्न होकर उसकी समीपता को उपलब्ध करता है ॥१०॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।

विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥११॥

पदार्थ —(त्यमेतमु) उस उक्त परमात्मा को (मदच्युतम्) जो आनन्द से भरपूर (सहस्रधारम्) अनन्त शक्तियों वाला (दिवोवृषभम्) द्युलोक से आनन्द की वृष्टि करने वाला (विश्वावसूनि) और जो सब ऐश्वर्यों के (बिभ्रतम्) धारण करने वाला है, उसको (दुहु) ज्ञानवृत्तियों से परिपूर्ण करते हैं ॥११॥

भावार्थ —ज्ञानवृत्तियां परमात्मा का साक्षात्कार इस प्रकार करती हैं कि आवरण भङ्ग करके सर्वव्यापक परमात्मा को अभिव्यक्त करती है, इसी का नाम वृत्तिव्याप्ति है ॥११॥

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।

स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

पदार्थः—(अमर्त्य) अमरणधर्मा परमात्मा (वृषा) जो सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला है वह (जनयन्) अपनी ज्योति का प्रकाश करता हुआ (विजज्ञे) जायमान कथन किया जाता है (ज्योतिषा) अपनी ज्ञानरूपी ज्योति से (तमः, प्रतपन्) अज्ञान को दूर करता हुआ (कविभि) विद्वानों से वर्णित (निर्णिजम्) निराकार के पद को (दधे) धारण करता है, और (अस्य, दससा) इसके अपूर्व कर्मों से (त्रिधातु) तीनों गुणों की आश्रयभूत प्रकृति स्थिर है (स) उक्त गुण-सम्पन्न परमात्मा (सुष्टुत) भली-भांति उपासना किया हुआ सद्गति प्रदान करता है ॥१२॥

भावार्थ —इस मन्त्र में परमात्मा को जायमान उपचार से कथन किया गया है वस्तुत नहीं, वास्तव में वह अजर, अमरादि गुणसम्पन्न है, वह अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला और उनको सद्गति का प्रदाता है ॥१२॥

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।

सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१३॥

पदार्थ—(स) वह परमात्मा (य) जो (सुन्वे) सब संसार को उत्पन्न करता (य) जो (सोम) सर्वोत्पादक (वसूनाम) सब धनों, (रायाम) ऐश्वर्यों का (आनेता) प्रेरक और (य) जो (इळानां, सुक्षितीनाम्) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठाता है वह हमारे ज्ञान का विषय हो ॥१३॥

भावार्थ—सब पदार्थों का अधिष्ठाता परमात्मा है अर्थात् परमात्मा सब पदार्थों का आधार और सब पदार्थ आधेय है । हे भगवन् ! आप हमारे ज्ञान की वृद्धि करें कि हम लोग आपकी समीपता को प्राप्त होकर आनन्द का उपभोग कर सकें ॥१३॥

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४॥

पदार्थ —(न) हमारा स्वामी परमात्मा (यस्य) जिसके आनन्द को (इन्द्र) कर्मयोगी (पिबात्) पान करते (यस्य) जिसके आनन्द को (मरुत) विद्वानों का गण पान करता (यस्य) जिसके आनन्द को (अर्यमणा) कर्मों के साथ (भग) कर्मयोगी उपलब्ध करता और (येन) जिससे (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशक (करामहे) सदुपदेश करते हैं (महे, अवसे) अत्यन्त रक्षा के लिये (इन्द्रम्) कर्मयोगी को जो उत्पन्न करता है वही हमारा उपास्य देव है ॥१४॥

भावार्थ—जो परमात्मा नाना प्रकार की विद्यायें और इन विद्याओं के वेत्ता कर्मयोगियों तथा ज्ञानयोगियों को उत्पन्न करता जिससे शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक तथा उपदेशक धर्मोपदेश करते और जो दुष्ट दमन के लिये रक्षक उत्पन्न करता है, वही हमारा पूजनीय देव है । उसी की उपासना करनी योग्य है ॥१४॥

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।

पवस्व मधुमत्तमः ॥१५॥

पदार्थ.—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (इन्द्राय, पातवे) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (नृभि, यतः) साक्षात्कार किये हुए आप जो (मधुमत्तम) अत्यन्त मीठे और (मदिन्तम) आह्लादक गुणों को धारण किये हुए हैं (स्वायुध) स्वाभाविक शक्ति द आप (पवस्व) हमारे ज्ञान का विषय हों ॥१५॥

भावार्थः—हे आनन्दवर्धक तथा आह्लादजनक गुण सम्पन्न परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी बनकर आपका साक्षात्कार करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ॥१५॥

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।

जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥१९॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (हार्दि) हृदयरूप (सोमधानम्) अन्तःकरण का (आविश) प्राप्त हों (इव) जिस प्रकार (सिन्धव) नदियां (समुद्रम्) समुद्र को प्राप्त होती हैं इसी प्रकार हमारी वृत्तियां आपको प्राप्त हों, आप (मित्राय) अध्यापक के लिये और (वरुणाय) उपदेशक के लिये (वायवे) ज्ञानयोगी के लिये (जुष्ट) प्रीति से युक्त है और आप (दिव) द्युलोक का (उत्तम) सर्वोपरि (विष्टम्भ) सहारा हैं ॥१६॥

भावार्थ —कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा के आधार पर स्थित है और जो कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी इत्यादि योगीजनों का विद्याप्रदाता है, वही एकमात्र उपास्यदेव है ॥१६॥

इति अष्टोत्तरशततमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ।

यह १०८वां सूक्त और १९वां वर्ग समाप्त हुआ ।

अथ द्वाविंशत्यृचस्य नवोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१—२२ *अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषि* ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द — १, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्षी *भुरिग्गायत्री* । २—६, ९, ११, १२, १९, २२ *आर्ची स्वराड्गायत्री* । २०, २१ आर्ची *गायत्री* । १६ *पादनिचृद्गायत्री* ॥ षड्ज स्वर ॥

अथ कर्मयोगिन गुणा वर्ण्यन्ते—

अब कर्मयोगी के गुणों का वर्णन करते हैं —

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ —(मित्राय) मित्रतारूप गुण वाले (पूष्णे) सदुपदेश द्वारा पुष्टि करने वाले (भगाय) ऐश्वर्य वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (सोम) हे सोम ! आप (स्वादु) उत्तम फल के लिये (परि, प्र, धन्व) भली प्रकार प्रेरणा करें ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा उद्योगियों तथा कर्मयोगियों के लिये नानाविध स्वादु फलों को उत्पन्न करता है अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों फलों का भोक्ता कर्मयोगी तथा उद्योगी ही हो सकता है, अन्य नहीं । इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा उद्योगी बनना चाहिये ॥१॥

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥२॥

पदार्थ (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (सुतस्य) साक्षात्काररूप रस को (इन्द्र) कर्मयोगी (क्रत्वे) विज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य के लिये (पेया) पान करे (च) और (विश्वे, देवा) सब देव तुम्हारे आनन्द को पान करें ॥२॥

भावार्थ —परमात्मानन्द के पान करने का अधिकार एकमात्र दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों को ही हो सकता है, अन्य को नहीं । इसी अभिप्राय से यहां कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा देवों के लिए ब्रह्मामृत का वर्णन किया गया है ॥२॥

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥३॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (शुक्रः) आप बलस्वरूप (दिव्य) दिव्यस्वरूप (पीयूष) विद्वानों के लिए अमृत हैं (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (महे) सदा के निवासार्थ (अमृताय) मुक्ति, सुख तथा (क्षयाय) दोष निवृत्ति के लिये (एव) इस प्रकार (अर्ष) प्राप्त हों जिससे हम सदैव आपके आनन्द को भोग सकें ॥३॥

भावार्थः—यहां मुक्तिरूप सुख का "पीयूष" शब्द से वर्णन किया है । ब्रह्मानन्द का नाम ही पीयूष है और उसी को अमृत, पीयूष, मुक्ति इत्यादि नाना प्रकार के शब्दों से कथन किया गया है ॥३॥

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! आप (समुद्र) "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्र" =जिससे पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं उसका नाम यहां "समुद्र" है और (महान्) सबसे बड़ा (देवानां) सूर्यादि देवों का (पिता) निर्माण करने वाला (विश्वा, अभि, धाम) सबको लक्ष्य रखकर हे ईश्वर ! आप हमको पवित्र करें ॥४॥

भावार्थः—परमपिता परमात्मा जो आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण है उसी की उपासना से मनुष्य मुक्तिधाम को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥५॥

पदार्थ —(देवेभ्य.) आप सब विद्वानों को (पवस्व) पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (दिवे) द्युलोक (पृथिव्यै) पृथिवीलोक (च) और (प्रजायै) प्रजा के लिए (शं) कल्याणकारी हों (शुक्र) क्योंकि आप बलस्वरूप हैं ॥५॥

भावार्थ —परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के लिए आनन्द की वृष्टि करने वाला है अर्थात् वही आनन्द का स्रोत होने के कारण, उसी से आनन्द की लहरें इतस्तत प्रचार पाती है, किसी अन्य स्रोत से नहीं ॥५॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६॥

पदार्थ.—(दिव धर्ता, असि) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक के धारक और (सत्ये, विधर्मन्) सत्यरूप यज्ञ मे (पीयूष) अमृत हैं (शुक्रः) दीप्तिमान तथा (वाजी) बलस्वरूप आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थ —द्युलोक का धारक, अमृत, देदीप्यमान तथा बलस्वरूप परमात्मा जिसने सूर्य, चन्द्रमादि सब लोक-लोकान्तरो का निर्माण किया है वही हम सबका एकमात्र उपास्य देव है, अन्य नही ॥६॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सोम गुणसम्पन्न तथा सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (द्युम्नी) यशस्वरूप (सुधार) अमृतस्वरूप तथा (महान्, अवीनां) बड़े-बड़े रक्षकों में (अनु, पूर्व्य) सबसे मुख्य रक्षक होने से आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थ:—सर्वोपरि परमात्मा जिसका यश महान्—सबसे बड़ा है, वही हमारा रक्षक और वही एकमात्र उपास्य देव है ॥७॥

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥८॥

पदार्थ —(नृभि येमान) सयमी पुरुषो द्वारा साक्षात्कार किये हुए (जज्ञानः) सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त (पूत) पवित्र (मन्द्र) आनन्दस्वरूप (स्वर्वित्) सर्वज्ञ (विश्वानि) सपूर्ण ऐश्वर्य (क्षरत्) हमको दें ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा का साक्षात्कार सयमी पुरुषो को ही होता है अर्थात् जप, तप, सयम तथा अनुष्ठान द्वारा वही लोग साक्षात्कार करत हैं । वह परमात्मा अपनी दिव्य ज्योतियो से सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त और नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव है, वह पिता हमे सब प्रकार का सुख प्रदान करे ॥८॥

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥९॥

पदार्थ·—(इन्दु·) सर्वप्रकाशक (पुनान) सबको पवित्र करने वाला (प्रजां, उराण.) प्रजाओं के ऐश्वर्य को विशाल करता हुआ परमात्मा (विश्वानि, द्रविणानि) सम्पूर्ण ऐश्वर्य (न) हमको (करत्) प्रदान करे ॥९॥

भावार्थ —जो परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के ऐश्वर्य को बढ़ाता और जो स्वत -प्रकाश तथा स्वयभू है वही हमारा उपास्य देव है । उसी की उपासना करता हुआ पुरुष आनन्द लाभ करता है, अन्यथा नहीं ॥९॥

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०॥२०

पदार्थ —(सोम) हे सोम गुणसम्पन्न परमात्मन् (क्रत्वे) विज्ञान के लिए (दक्षाय) चातुर्य प्राप्ति के लिए (अश्व , न) विद्युत् समान (निक्त) वेगवान् (वाजी) बलस्वरूप परमात्मा (धनाय) धन के लिए (पवस्व) पवित्र करें ॥१०॥२०॥

भावार्थ —जिस प्रकार विद्युत् प्रत्येक पदार्थ को देदीप्यमान करता और सब पदार्थों का प्रकाशक तथा उद्दीपक है, इसी प्रकार परमात्मा सबको उद्बोधन करके अपने-अपने कर्मों मे प्रवृत्त करता है और कर्मयोगी पुरुष को सदैव धन का लाभ होता है ॥१०॥२०॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

पदार्थ.—(सोतार) उपासक लोग (ते) तुम्हारे (त) उस (सोम) शान्तिरूप (रस) आनन्द को (मदाय) आनन्दित होने के लिए तथा (महे, द्युम्नाय) बड़े ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धारणा द्वारा (पुनन्ति) पवित्र करते हैं ॥११॥

भावार्थ —इस मन्त्र का भाव यह है कि उपासक लोग इस विराट्स्वरूप को देखकर ईश्वर की धारणा अपने हृदय मे करते हैं, यही इस ऐश्वर्य को पवित्र बनाना है ॥११॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

पदार्थ —(शिशु) सर्वोपरि प्रशसनीय (जज्ञान) सर्वत्र विद्यमान (हरिं) सब दु खो को हरण करने वाला (इन्दु) प्रकाशस्वरूप (सोम) सौम्यस्वभाव परमात्मा को (पवित्रे) पवित्र अन्त करण मे (देवेभ्य·) दिव्यगुणो की प्राप्ति के लिए (मृजन्ति) ऋत्विग् लोग साक्षात्कार करते है ॥१२॥

भावार्थ —जो ऋतु-ऋतु मे यज्ञो द्वारा परमात्मा का यजन करते हैं उनका नाम "ऋत्विग्" है अर्थात् इस विराट्स्वरूप की महिमा को देखकर जो आध्यात्मिक यज्ञादि द्वारा परमात्मा की उपासना करते है, उन्हीं को परमात्मा का साक्षात्कार होता है ॥१२॥

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३॥

पदार्थ —(इन्दु·) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (कवि) जो सर्वज्ञ है वह (अपां, उपस्थे) कर्मों की सन्निधि मे (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्ति तथा (चारु., मदाय) सर्वोपरि आनन्दप्राप्ति के लिए (पविष्ट) हमको पवित्र बनाता है ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव यह है कि जो पुरुष यज्ञादि कर्म तथा अन्य सत्कर्म करते हैं, उन्हीं को परमात्मा पवित्र बनाता है जिससे वह ऐश्वर्य प्राप्ति द्वारा आनन्दोपभोग करते हैं ॥१३॥

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

पदार्थ —(इन्द्रस्य) परमात्मा कर्मयोगी के (चारु, नाम) सुन्दर शरीर को (बिभर्ति) निर्माण करता है (येन) जिससे वह (विश्वानि) संपूर्ण (वृत्रा) अज्ञान (जघान) नाश करता है ॥१४॥

भावार्थ:—इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि यद्यपि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण ये तीनों प्रकार के शरीर सब जीवो को प्राप्त है परन्तु कर्मयोगी के सूक्ष्म शरीर में परमात्मा एक प्रकार का दिव्यभाव उत्पन्न कर देता है जिससे अज्ञान का नाश और ज्ञान की वृद्धि होती है । इस भाव से मन्त्र मे कर्मयोगी के शरीर को बनाना लिखा है ॥१४॥

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

पदार्थ.—(नृभि सुतस्य) संयमी पुरुषो द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (गोभि , श्रीतस्य) जो ज्ञानवृत्तियो से दृढ़ अभ्यास किया गया है, (अस्य) उससे परमात्मा के आनन्द को (विश्वे, देवास·) सम्पूर्ण विद्वान् (पिबन्ति) पान करते हैं ॥१५॥

भावार्थ.—परमात्मा का आनन्द इन्द्रिय संयम द्वारा दृढ़ अभ्यास के बिना कदापि नही मिल सकता, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा दृढ़ अभ्यास करके परमात्मा के आनन्द को लाभ करे ॥१५॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

पदार्थ·—(सहस्रधार) अनन्त सामर्थ्ययुक्त परमात्मा (सुवान) साक्षात्कार किया हुआ (वि वार, अव्य, तिर·) आवरण का तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र अन्त करण को (अक्षा) अपने ज्ञान के प्रवाह से सिञ्चन करता है ॥१६॥

भावार्थ - जब तक मनुष्य मे अज्ञान बना रहता है तब तक वह परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नही कर सकता इसलिये जिज्ञासु को आवश्यक है कि वह परमात्मा के स्वरूप को ढकने वाले अज्ञान का नाश करके परमात्मदर्शन करे । अज्ञान, अविद्या तथा आवरण ये सब पर्याय शब्द है ॥१६॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

पदार्थ —(अद्भि , मृजान) कर्मों द्वारा साक्षात्कार करके (गोभिः, श्रीणान) ज्ञानरूप वृत्तियों के अभ्यास से परिपक्व किया हुआ (सहस्ररेता·) अनन्त सामर्थ्यशाली परमात्मा (वाजी) जो ऐश्वर्यशाली है (स) वह अपनी ज्ञानसुधा से (अक्षा) हमको सिञ्चन करता है ॥१७॥

भावार्थ —जब दृढ़ अभ्यास से परमात्मा का परिपक्व ज्ञान हो जाता है तब परमात्मज्ञान जो अमृत के समान है वह उपासक को आनन्द प्रदान करता है, इसी का नाम यहां सिञ्चन करना है ॥१७॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८॥

पदार्थ —(अद्रिभि·, सुत) चित्तवृत्तियों के संयम द्वारा साक्षात्कार किये हुए (नृभि , येमान) सयमी पुरुषों के लक्ष्य (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (कुक्षा) अन्त करण मे (याहि) प्राप्त हो ॥१८॥

भावार्थ —इस मन्त्र का भाव यह है कि जो पुरुष उसी एकमात्र परब्रह्म परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते है उनको परमपिता परमात्मा अवश्य देदीप्यमान करते हैं ॥१८॥

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९॥

पदार्थ —(सहस्रधार) अनन्त सामर्थ्ययुक्त (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (असर्जि) उपदेश द्वारा प्राप्त होते हैं (वाजी) वह बलस्वरूप परमात्मा (तिर.) अज्ञान का तिरस्कार करके (पवित्र) अन्त करण को पवित्र बनाते है ॥१९॥

भावार्थ:—परमपिता परमात्मा जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का अधिपति है, वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त है । उसके सामर्थ्य को उपदेशों द्वारा कर्मयोगी लाभ करता है ॥१९॥

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥२०॥

पदार्थः—(एन) उक्त परमात्मा को (मध्व , रसेन) उसके माधुर्ययुक्त रस से (वृष्णे) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिए (इन्दु) स्वप्रकाश परमात्मा का उपासक लोग (अञ्जन्ति) ज्ञानवृत्ति द्वारा योग करते हैं ॥२०॥

भावार्थ —परमात्मयोग के अर्थ ब्रह्मविषयणी वृत्ति द्वारा परमात्मा के योग का नाम "परमात्मयोग" है अर्थात् उपासक लोग ज्ञानवृत्ति द्वारा परमात्मा के समीपी होकर परमात्मरूप माधुर्य रस का पान करते हुए तृप्त होते हैं ॥२०॥

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥२१॥

पदार्थः—(देवेभ्य) विद्वानो के लिए (पाजसे) बल के लिए (अपः, वसानं) प्रकृतिरूप व्याप्य वस्तु में निवास करते हुए (हरिं) अविद्या का हरण करने

वाले (त्वां) तुमको (वृथा) कर्मफलों में अनासक्त होकर (मृजन्ति) उपासक लोग साक्षात्कार करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—विद्याप्राप्ति द्वारा विद्वान् बनना, बलवान् होना तथा नानाविध ऐश्वर्य प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली बनना परमात्मा की उपलब्धि के बिना कदापि नहीं हो सकता इसलिए ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वह ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करें ॥२१॥

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥२१॥

पदार्थ—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (तोशते) साक्षात्कार किया जाता है (उग्रः) उग्रस्वरूप परमात्मा (श्रीणन्) अपनी प्रेरणा द्वारा (अपः, रिणन्) मन्दकर्मों को दूर करता हुआ (नि, तोशते) निरन्तर अज्ञान का नाश करता है ॥२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि सुख की इच्छा वाले पुरुष को मन्दकर्मों का सर्वथा त्याग करना चाहिए, जब तक पुरुष मन्दकर्म नहीं छोड़ता तब तक वह परमात्मपरायण कदापि नहीं हो सकता और न सुख उपलब्ध कर सकता है। इसी अभिप्राय से मन्त्र में अज्ञान के नाश द्वारा मन्दकर्मों के त्याग का विधान किया है ॥२२॥

१०९वां सूक्त और २१वां वर्ग समाप्त ।

अथ द्वादशर्चस्य दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य

१—१२ त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषी ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ॥ १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद्बृहती । ९ बृहती ॥ स्वरः—१-३, १०, १२ गान्धारः । ४—९ मध्यमः ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (वाजसातये) ऐश्वर्य प्रदान के लिए हमको (परि, प्र, धन्व) भली-भाँति प्राप्त हों (सक्षणिः) सहनशील आप (वृत्राणि) अज्ञानों को नाश करने के लिए हमें प्राप्त हो (ऊ) और (ऋणया) ऋणों को दूर करने वाले आप (द्विषः) शत्रुओं को (परि, तरध्यै) भली प्रकार नाश करने के लिए (नः) हमको (ईयसे) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वरपरायण होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं वही परमात्मा को उपलब्ध करने वाले कहे जाते हैं या यों कहो कि उन्हीं को परमात्मप्राप्ति होती है और वही अपने ऋणों से मुक्त होते हैं और वही शत्रुओं का नाश करके संसार में अभय होकर विचरते हैं। स्मरण रहे कि पूर्वस्थान को त्यागकर स्थानान्तर प्राप्तिरूप प्राप्ति परमात्मा में नहीं घट सकती ॥१॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे सोम गुणसम्पन्न परमात्मन् (महे, समर्यराज्ये) न्याययुक्त बड़े राज्य में (त्वा, सुतं) साक्षात्कार को प्राप्त आप (अनु, मदामसि) हमको आनन्दित करें (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले भगवन् (वाजान्, अभि) ऐश्वर्यों को लक्ष्य रखकर (प्र, गाहसे) हमको प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र में ऐश्वर्यों के लक्ष्य का तात्पर्य यह है कि ईश्वर में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार के ऐश्वर्य हैं, जो पुरुष मुक्तिसुख को लक्ष्य रखते हैं उनको निःश्रेयसरूप आध्यात्मिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है और जो सांसारिक सुख को लक्ष्य रखकर ईश्वरपरायण होते हैं उनको परमात्मा अभ्युदयरूप आधिभौतिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (पयः, विधारे) जलों को धारण करने वाले अन्तरिक्ष देश में (शक्मना) अपनी शक्ति से (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) उत्पन्न करते हैं और (गोजीरया, पुरन्ध्या) पृथिव्यादि लोकों को प्रेरणा करने वाली बड़ी शक्ति से भी (रंहमाणः) अत्यन्त वेगवान् हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव यह है कि वह परमपिता जो अभ्युदय तथा निःश्रेयस का दाता है, उसका प्रभुत्व विद्युत् से भी अधिकतर है ॥३॥

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४॥

पदार्थ—(अमृत) हे सदा एकरस तथा जरामरणादि धर्मों से रहित परमात्मन् ! आप (मर्त्येषु, आ) मनुष्यों के सम्मुख होने के लिए (चारुणः, अमृतस्य, धर्मन्) सुन्दर अविनाशी परमाणुओं को धारण करने वाले अन्तरिक्ष देश में (अजीजनः) सूर्यादि दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करके (सदा, असरः) सदैव विचरते हो इसलिए (वाजं, अच्छ) ऐश्वर्य को लक्ष्य रखकर (सनिष्यदत्) हमारी भक्ति का विषय हो ॥४॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप सदा एकरस, सर्वत्र विराजमान और सदैव सब प्राणियों को अहर्निश देखते हुए विचरते हैं अतएव प्रार्थना है कि आप हमें अपनी भक्ति का दान दें कि हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए ऐश्वर्यशाली हों । विचरने से तात्पर्य अपनी व्यापक शक्ति द्वारा सर्वत्र विराजमान होने का है, चलने का नहीं ॥४॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप (श्रवसा) अपने ज्ञानरूप ऐश्वर्य से (अभ्यभि) प्रत्येक उपासक के (ततर्दिथ) दुर्गुणों का नाश करते हैं (न) जैसे कोई (अक्षितं) जल से भरे हुए (उत्सं) उत्सरण योग्य जल वाले (जनपानं, कंचित्) वापी आदि जलाधार को मलिन जल निकालकर स्वच्छ बनाता है (हि) निश्चय करके (न) जैसे सूर्य (गभस्त्योः) अपनी किरणों की (शर्याभिः) कर्मशक्ति द्वारा (भरमाणः) सब विकारों को दूर करके प्रजा का पालन करता है ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी गरमी तथा प्रकाश शक्ति से प्रजा के सब विकारों तथा अवगुणों को दूर करके, शुभगुण देता है, उसी प्रकार परमात्मा सदाचारी पुरुषों के दोष दूर करके उनमें सद्गुणों का आधान कर देता है, इसलिए पुरुष को कर्मयोगी तथा सदाचारी होना परमावश्यक है ॥५॥

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६॥२२॥

पदार्थः—(आप्यं) पूजनीय परमात्मा को (केचित्) कई एक लोग (पश्यमानासः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं (आत्) अथवा (ईं, वारं) इस वरणीय परमात्मा को (वसुरुचः, दिव्याः) ऐश्वर्य चाहने वाले विद्वान् (देवः, सविता) दिव्यरूप सूर्य (वि, ऊर्णुते) जिस प्रकार अपने प्रकाश से आच्छादन कर लेता है (न) इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥६॥२२॥

भावार्थ—भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य की प्रभा चहुँ ओर व्याप्त हो जाती है इसी प्रकार ब्रह्मविद्यावेत्ता पुरुषों की ब्रह्मविषयिणी बुद्धि विस्तृत होकर सब ओर परमात्मा का अवलोकन करती है और ऐसे पुरुष परमात्मपरायण होकर ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं ॥६॥२२॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥७॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (प्रथमा) प्राचीन लोग (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने अपनी कामनाओं को उच्छेदन कर दिया है वह (त्वे) आप में (महे, वाजाय) बड़े यज्ञ के लिए अथवा (श्रवसे) ऐश्वर्य के लिये (धियं, दधुः) कर्मरूप बुद्धि को धारण करते हैं (वीर) हे सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मन् (स, त्वं) वह आप (नः) हमको (वीर्याय) वीर पुरुषों में होने वाले गुणों के लिए (चोदय) प्रेरणा करें ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! हम बड़े-बड़े यज्ञ करते हुए ऐश्वर्य सम्पादन करें अथवा वीर पुरुषों के गुणों को धारण करते हुए बलवान् बनें, क्योंकि आप ही की कृपा से मनुष्य वीरतादि गुणों को धारण कर सकता है, अन्यथा नहीं ॥७॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८॥

पदार्थ—(दिवः, पीयूषं) जो द्युलोक का अमृत (पूर्व्यं) सनातन (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (यत्) जो (महः, गाहात्) बड़े गहन (दिवः) द्युलोक से (आ, निः, अधुक्षत) भली-भाँति दोहन किया गया है (इन्द्र, अभि) जो कर्मयोगी को लक्ष्य रखकर (जायमानं) विद्यमान है, उस परमात्मा की उपासक लोग (सं, अस्वरन्) भली प्रकार स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थ—द्युलोक का अमृत परमात्मा का इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि "पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" ऋग० १०।९०।३॥ इस मन्त्र में यह वर्णन किया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एकदेश में है और अनन्त परमात्मा अमृतरूप से द्युलोक में विस्तृत हो रहा है अर्थात् उसका अमृतस्वरूप अनन्त नभोमण्डल में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की उपासक लोग स्तुति करते हैं ॥८॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥९॥

पदार्थ—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (इमे, रोदसी) द्युलोक पृथिवीलोक (अध यत्) और जो (इमा, च, विश्वा, भुवना) ये सब लोक-लोकान्तर हैं उन सबको (मज्मना) बल से (अभि, तिष्ठसे) भली प्रकार धारण कर रहे हो (न) जिस प्रकार (निष्ठा, वृषभः) स्थिर शक्ति वाला स्वामी (यूथे) अपने मण्डल का मध्यवर्ती होकर स्थिर होता है ॥९॥

भावार्थ —जिस प्रकार मण्डलाधिपति अपने मण्डल के मध्य में स्थिर होकर सबको स्वाधीन रखता है, इसी प्रकार परमात्मा सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को बल से धारण करके सर्वत्र स्थिर हो रहा है या यों कहो कि उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय रूप परमात्मशक्ति सदा एकरस दृढ़ता से विराजमान रहती है, उसमें कभी रुकावट नहीं होती ॥९॥

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।

सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥१०॥

पदार्थ - (**सोम**) सर्वोत्पादक (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाला (**अव्यये, वारे**) रक्षायुक्त पदार्थों में (**शिशुः, न, क्रीळन्**) प्रशसनीय वस्तुओं के समान क्रीडा करता हुआ (**सहस्रधार**) अनन्त प्रकार की शक्तियों से युक्त (**शतवाज**) अनन्त प्रकार के बलों वाला (**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**पुनान**) ज्ञानवृद्धि द्वारा पवित्र करता हुआ (**अक्षाः**) अपनी सुधावारि से सबको सिंचन करता है ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा के गुण तथा शक्तियाँ अनन्त हैं और जिससे उसके स्वरूप का निरूपण किया जाता है वह गुण भी उसमें अनन्त है, इसलिए अनन्तस्वरूप की अनन्तरूप से ही उपासना करनी चाहिये ॥१०॥

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।

वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११॥

पदार्थ - (**एष**) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (**पुनान**) सबको पवित्र करने वाला (**मधुमान्**) आनन्दमय (**ऋतवा**) ज्ञानादि यज्ञों का स्वामी (**इन्दु**) प्रकाशस्वरूप (**इन्द्राय पवते**) कर्मयोगी के लिए पवित्रता प्रदान करने वाला (**वाजसनि**) अन्नादि ऐश्वर्यों का दाता (**वरिवोवित्**) धनादि ऐश्वर्य प्रदान करने वाला (**वयोधा**) आयु की वृद्धि करने वाला (**स्वादु, ऊर्मि**) आनन्द की लहरें बहाता है ॥११॥

भावार्थ —इस मन्त्र का आशय यह है कि जो पुरुष उक्त गुणों वाले परमात्मा की ओर क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से बढ़ते हैं उनको परमपिता परमात्मा अवश्य प्राप्त होते है और उन पर सब ओर से आनन्द की वृष्टि करते है ॥११॥

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।

स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२॥२३॥

पदार्थ —(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**पृतन्यून, रक्षांसि**) संग्राम की कामना करने वाले राक्षसों को (**दुर्गहाणि**) जो दुर्गम है (**अप, सेधन्, पवस्व**) दूर करते हुए हमारी रक्षा करें। (**सहमान**) सहनशील (**स्वायुध**) स्वयम्भू (**शत्रून्**) शत्रुओं का (**सासह्वान्**) तिरस्कार करते हुए (**स**) आप हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप कुमार्ग में प्रवृत्त दुष्ट पुरुषों से हमारी रक्षा करें, जिनसे रक्षा की जाती है उनका नाम "राक्षस" है, सो हे पिता ! आप सम्पूर्ण विघ्नकारी पुरुषों से हमारी रक्षा करते हुए हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥२३॥

११०वां सूक्त और २३वां वर्ग समाप्त ।

अथ त्र्यृचस्यैकादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१—३ अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टिः ॥ मध्यमः स्वरः ॥

अथ शूरः किं कुर्यादित्युपदिश्यते —

अब शूरवीर का कर्तव्य कथन करते हैं —

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति

स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।

धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।

विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थः— (**हरि**) हरतीति हरि =परपक्ष को हरण करने वाला शूरवीर (**अरुषः**) उग्र तेज वाला (**पुनान**) अपने वीर कर्मों से पवित्र करने वाला (**सुतस्य, धारा**) संस्कार की धारा से (**रोचते**) दीप्तिमान् होता है (**हिरण्या**) शत्रुओं को हनन करने वाला (**अया**) इस (**रुचा**) दीप्ति से (**पुनान**) पवित्र करता हुआ (**स्वयुग्वभि**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों द्वारा (**विश्वा, द्वेषांसि**) सब शत्रुओं को (**तरति**) हनन करता है (**न**) जैसे (**सूर**) सूर्य (**स्वयुग्वभि**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों से अन्धकार का नाशक होता है (**यत्**) जैसे (**सप्तास्येभि**) सात मुखों वाली (**ऋक्वभि**) किरणों से (**विश्वा, रूपा**) नाना रूपों को धारण करता हुआ सूर्य (**परियाति**) प्राप्त होता है, इसी प्रकार (**ऋक्वभिः**) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से निकले हुए तेज द्वारा शूरवीर परपक्ष को प्राप्त होता है, इसलिये वह सूर्य की सप्त किरणों की तुलना करता है ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र में रूपकालंकार से शूरवीर की सूर्य के साथ तुलना की गई है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य अपने तेजोमय प्रभामण्डल से अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता है इसी प्रकार शूरवीर योद्धा शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके स्वयं स्थिर होता है ॥१॥

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि

स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।

परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।

त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२॥

पदार्थ —(**यत्र**) जिस युद्ध में (**धीतय**) युद्ध कुशल लोग (**परावतः**) दूर से ही (**रणन्ति**) मंगलमय गीत गाते हैं (**न**) जैसे (**साम**) सामगान होता है, हे शूरवीर ! (**त्व**) तुम (**पणीनां**) परपक्ष के ऐश्वर्य वालों से (**त्यत्, वसु**) जो धन छीना गया है उसको (**ऋतस्य, धीतिभि**) कर्मयज्ञ द्वारा (**विद**) लाभ करके (**दमे**) अपने वशीभूत करते हो (**आ**) और (**दमे**) अपने अधीन धन को (**मातृभि, सं मर्जयसि**) माता-पितादत्त शक्ति द्वारा फिर भली-भांति अर्जन करके (**त्रिधातुभि**) तीन धातुओं से बने हुए (**अरुषीभिः**) कान्ति वाले इस शरीर द्वारा (**वय, दधे**) ऐश्वर्य को धारण करते हो और (**रोचमान, वय, दधे**) दीप्ति वाले ऐश्वर्यशाली होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन को आनन्द में परिणत करते हो ॥२॥

भावार्थ —इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मोपासक ब्रह्मयज्ञ में ब्रह्म के ज्ञानादि ऐश्वर्यों को धारण करते हैं इसी प्रकार शूरवीर कर्मयज्ञ में परमात्मा के अभ्युदयरूप ऐश्वर्य को धारण करते हुए इस त्रिधातुमय शरीर के प्रयत्न को सफल करते हैं ॥२॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते

दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।

अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।

वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥२४॥

पदार्थः -(**दर्शत**) दर्शनीय (**रथ**) शूरवीर का गमन (**दैव्य**) दिव्यशक्तियुक्त (**रश्मिभि**) उत्साहरूप किरणों द्वारा (**सं, यतते**) भली-भांति यत्नशील होता है (**चेकितत्**) युद्धविद्या को जानने वाला योधा (**पूर्वां, प्रदिशं**) प्रशसनीय गति को (**याति**) प्राप्त होता है (**पौंस्या, उक्थानि**) पुंस्त्वसम्बन्धि स्तवन जब (**अग्मन्**) विजेता को प्राप्त होते है तब (**जैत्राय**) विजेता उत्साहयुक्त होकर स्वामी को (**हर्षयन्**) प्रसन्न करता हुआ (**इन्द्र**) अपने स्वामी को प्राप्त होता है (**यत्**) क्योंकि (**समत्सु**) संग्रामों में (**अनपच्युता, भवथ**) न गिरे हुए स्वामी तथा सेवक सद्गति के भागी होते हैं (**च**) और (**वज्र**) उनका शस्त्र भी अवर्जनीय होकर संसार में अव्याहत गति को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र में शूरवीर के तेज की दिव्य तेज से तुलना की गई है कि जिस प्रकार द्युलोकवर्ती तेज अन्धकार को दूर करके सर्वत्र प्रकाश का संचार करता है इसी प्रकार शूरवीर का तेज तमोरूप शत्रुओं को हनन करके अभ्युदयरूप ऐश्वर्य का संचार करता है ॥३॥

इत्येकादशोत्तरशततमं सूक्तं चतुर्विंशतिवर्गश्च समाप्तः

१११वां सूक्त और चौबीसवां वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१—४ शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः — १—३ विराट् पङ्क्तिः । ४ निचृत् पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अथ प्रसङ्गप्राप्तो गुणकर्मानुसारेण वर्णानां धर्मो वर्ण्यते—

अब प्रसङ्गप्राप्त गुण कर्मानुसार वर्णों के धर्मों का वर्णन करते हैं —

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।

तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थ —(**न**) हमारे (**धिय**) कर्म (**नानान**) भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं (**वै**) निश्चय करके (**ऊं**) अथवा (**जनानां**) सब मनुष्यों के (**व्रतानि**) कर्म (**वि**) विविध प्रकार के होते है (**तक्षा**) "तक्षतीति तक्षा"—लकड़ी गढ़ने वाला पुरुष (**रिष्ट**) अपने अनुकूल लकड़ी की (**इच्छति**) इच्छा करता है (**भिषक्**) वैद्य (**रुत**) रोगचिकित्सा की इच्छा करता है (**ब्रह्मा**) वेदवेत्ता पुरुष (**सुन्वत**) वेदविद्या से संस्कृत पुरुष की इच्छा करता है, इसलिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) "इन्दतीति इन्द्र" = जो अपने न्यायादि नियमों से राजा बनने के सद्गुण रखता है उसी को (**परि, स्रव**) राज-सिंहासन पर अभिषिक्त करें ॥१॥

भावार्थ —इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पुरुष अपने अनुकूल पदार्थ को सुसंस्कृत करके बहुमूल्य बना देता है इसी प्रकार राज्याभिषेक योग्य राजपुरुष को परमात्मा संस्कृत करके राज्य के योग्य बनाता है ॥१॥

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।

कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(शर्यणावति) प्राचीन (ओषधीभिः) ओषधियों से निर्मित (शकुनानां, पर्णेभिः) उन्नतिशील पुरुषों के नभोयानादि विमानों द्वारा (कार्वीर) शिल्पी लोग (प्रस्रवणैः, द्युभिः) दीप्ति वाले वज्रादि शस्त्रों से (हिरण्यवन्त) ऐश्वर्य वाले राजा की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) उक्त ऐश्वर्य-सम्पन्न राजा के लिये (परि, स्रव) अभिषेक का कारण बनें ॥२॥

भावार्थ—जो राजा दीप्ति अस्त्र-शस्त्र तथा विमानादि द्वारा सर्वत्र गतिशील होता है वह परमात्मा की कृपा से ही उत्पन्न होता है, या यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों के अनुसार परमात्मा ही ऐसे राजा को अभिषिक्त करता है ॥२॥

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।

नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थ—(कारुः, अहं) मैं शिल्पविद्या को शक्ति रखता (ततः) पुनः (भिषक्) वैद्य भी बन सकता हूँ (नना) मेरी बुद्धि नम्र है अर्थात् मैं अपनी बुद्धि को जिधर लगाना चाहूँ लगा सकता हूँ (उपलप्रक्षिणी) पाषाणों का सस्कार करने वाली मेरी बुद्धि मुझे मन्दिरों का निर्माता भी बना सकती है, इस प्रकार (नानाधियः) नाना कर्मों वाले मेरे भाव (वसूयवः) जो ऐश्वर्य को चाहते हैं वे विद्यमान हैं, हम लोग (अनु, गाः) इन्द्रियों की वृत्तियों के समान ऊँच नीच की ओर जाने वाले (तस्थिम) हैं, इसलिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हमारी वृत्तियों को (इन्द्राय) उच्चैश्वर्य के लिये (परि, स्रव) प्रवाहित करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से उच्चोद्देश्य की प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! यद्यपि मेरी बुद्धि मुझे कवि, वैद्य तथा शिल्पी आदि नाना भावों की ओर ले जाती है तथापि आप ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये मेरे मन की प्रेरणा करके मुझे उच्चैश्वर्य की ओर प्रेरित करें ।

रमेशचन्द्रदत्त तथा अन्य कई एक यूरोपियन भाष्यकारों ने इस मन्त्र के यह अर्थ किये हैं कि मैं कारु अर्थात् सूत बुननेवाला हूँ, मेरा पिता वैद्य और मेरी माता धान कूटती है, इस प्रकार नाना जाति वाले हम एक ही परिवार के अंग हैं, इससे उन्होंने यह सिद्ध किया है कि वेदों में ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन नहीं । उनका यह मत सही नहीं है ॥३॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः । शेपो रोमण्वन्तौ

भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४।२५॥

पदार्थ—(अश्व) "अश्नुतेऽध्वानमित्यश्व" निरु० १ । १३ । ४=जो शीघ्रगामी होकर अपने मार्गों का अतिक्रमण करे उसका नाम "अश्व" है, इस प्रकार यहाँ अश्व नाम विद्युत् का है (वोळ्हा) सब पदार्थों को प्राप्त करने वाला वा प्राप्त होने वाला विद्युत् जिस प्रकार (रथ) गति को (इच्छति) चाहता है, जैसे (उपमन्त्रिणः) उपमन्त्री लोग (हसनां) आह्लादजनक क्रिया की इच्छा करते हैं, जैसे (मण्डूक) "मण्डयतीति मण्डूक" मण्डन करने वाला पुरुष (वारित) वरणीय पदार्थ की ही इच्छा करता है, जैसे (शेपः) सूर्य का प्रकाश (रोमण्वन्तौ) प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में (भेदौ) विभाग की इच्छा करता है, इसी प्रकार योग्यतानुसार विभाग की इच्छा करते हुए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न राजा को (परि, स्रव) अभिषिक्त करें ॥४॥

भावार्थ—मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है ।

११२वां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग समाप्त ।

अथ एकादशर्चस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१-११ कश्यप ऋषि ॥ *पवमान सोमो देवता* ॥ छन्द—१, २, ७ *विराट् पङ्क्तिः* । ३ *भुरिक् पङ्क्ति* । ४ *पङ्क्ति* । ५, ६, ८-११ *निचृत् पङ्क्ति* ॥ पञ्चम स्वर ॥

अब प्रसंग संगति से राजधर्म का निरूपण करते हैं—

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।

बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थ—(शर्यणावति) कर्मयोगी में (सोमं) ईश्वरानन्द रूप (इन्द्र) "इन्दतीतीन्द्रः"=परमैश्वर्य को प्राप्त होने वाला राजा (पिबतु) पान करे, वह राजा (वृत्रहा) शत्रुरूप बादलों के नाश करने वाला होता है (बलं, दधानः) बल को धारण करता हुआ और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्, वीर्यं) बड़े बल को (करिष्यन्) उत्पन्न करता हुआ राज्यपद के योग्य होता है (इन्द्राय) ऐसे बलवीर्य सम्पन्न राजा के लिए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥१॥

भावार्थ—इस मंत्र का भाव यह है कि जो राजा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों के सदुपदेश से ब्रह्मानन्द पान करता है वह राजा बनने योग्य होता है । हे परमात्मन् ! ऐसे राजा को राज्याभिषेक से अभिषिक्त करें ॥१॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(सोम) हे सर्वोत्पादक (मीढ्व) कामप्रद (दिशां, पते) सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप (आर्जीकात) सरल भाव से प्रजा में (आ, पवस्व) पवित्रता उत्पन्न करते हुए (ऋतवाकेन, सत्येन) वाणी के सत्य से (श्रद्धया तपसा) श्रद्धा तथा तप से (सुत) जो राज्याभिषेक के योग्य है, ऐसे (इन्द्राय) राजा के लिए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि जो राजा सरल भाव से प्रजा पर शासन करता हुआ श्रद्धा, तप तथा सत्यादि गुणों को धारण करता है, ऐसे कर्मशील राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥२॥

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।

तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थ—(पर्जन्यवृद्धं) सघन घटा के समान वृद्धि को प्राप्त (सूर्यस्य, दुहिता) द्युलोक की पुत्री श्रद्धा (तं) उक्त गुण सम्पन्न (महिषं) पूजा योग्य राजा को (आभरत्) ऐश्वर्यरूप गुणों से भरपूर करती है (तं) उस राजा को (गन्धर्वाः) गानविद्या के वेत्ता जो (प्रति, अगृभ्णन्) प्रत्यक्ष भाव ग्रहण करने वाले हैं (सोमे) "सूते चराचरञ्जगदिति सोम" जो सम्पूर्ण संसार को उत्पत्ति करे उसका नाम यहाँ "सोम" है (तं, रसं) उक्त परमात्मा विषयक रस को (आदधुः) धारण करते हुए गन्धर्व लोग (इन्द्राय) उपर्युक्त गुण सम्पन्न राजा के लिए गान करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) ऐसे राजा के लिए राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र का भाव यह है कि श्रद्धायुक्त राजा ही ऐश्वर्यशाली होता है और परमात्मा उसी को राज्याभिषेक के योग्य बनाता है अर्थात् आस्तिक राजा ही अटल ऐश्वर्य भोगता है, अन्य नहीं ॥३॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।

श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

पदार्थ—(ऋतं, वदन्) यज्ञादिकों का उपदेश करते हुए (ऋतद्युम्न) यज्ञ-कर्मरूप दीप्ति से दीप्तिमान (सत्यं, वदन्) सत्य भाषण करने वाले (सत्यकर्मन्) सत्य के आश्रित कर्म करने वाले (राजन्) हे राजन् ! आप (श्रद्धां वदन्) श्रद्धा का उपदेश करते हुए (सोम) सौम्यस्वरूप (धात्रा) संसार का धारण करने वाले (सोम, परिष्कृत) परमात्मा से परिष्कार किये गये (इन्द्राय) राजा के लिये (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (परि स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥४॥

भावार्थ—जो स्वयं यज्ञादि कर्म करता, औरों को यज्ञादि कर्म करने का उपदेश करता, सत्य भाषण और सत्य के आश्रित कर्म करने वाले राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥४॥

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।

सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥५-२६॥

पदार्थ—(उग्रस्य, सत्यं, बृहत) संग्राम में सत्यता होने से बढ़े हुए जिस पुरुष के (संस्रवाः) सत्यरूप स्रोत से अनेक सत्य के प्रवाह (सं, स्रवन्ति) बह रहे हैं (रसिन) रसिक पुरुषों के (रसा) रस (सं, यन्ति) जिसको भली-भांति प्राप्त होते हैं (ब्रह्मणा) वेदवेत्ता विद्वान से (पुनानः) जो पवित्र किया गया है (इन्द्राय) ऐसे राजा के लिए (हरे) हे हरणशील (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥५॥

भावार्थ—वेदवेत्ता विद्वान् से शिक्षा पाया हुआ जो राजा अपने सत्यादि धर्मों का त्याग नहीं करता उसका राज्य अवश्यमेव चिरस्थायी होता है और वह अनेक सांसारिक रसों का भोक्ता होता है ॥५॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।

ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६॥

पदार्थ—(यत्र) जिस संन्यासावस्था में (ब्रह्मा) वेदवेत्ता विद्वान् (छन्दस्यां, वाचं, वदन्) वेदविषयक वाणी का वर्णन करता हुआ (ग्राव्णा) गुणातीतिग्रावा तेन ग्राव्णा, चित्तवृत्ति निरोधेन—चित्तवृत्ति निरोध द्वारा (सोमे) सौम्यस्वरूप परमात्मा में (महीयते) मोक्षरूप पूज्यपद को लाभ करता है (सोमेन) सौम्यस्वभाव से (आनन्दं, जनयन्) आनन्द को लाभ करने वाले (इन्द्राय) योगेन्द्र सन्यासी के लिये (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) अपने ज्ञान द्वारा पूर्णाभिषेक करें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेदवेत्ता विद्वान् सन्यासावस्था में वेदरूप वाणी का प्रकाश करता हुआ अर्थात् वैदिकधर्म का उपदेश करता हुआ चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा में लीन होकर इतस्ततः विचरता है । वह सबको पवित्र करने वाला होता है । हे परमात्मन् ! आप ऐसे सन्यासी को पूर्णाभिषिक्त करें ॥६॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां धेहि ।

पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

पदार्थ:—(यत्र) जिस मोक्ष मे (अजस्र , ज्योति) निरन्तर ज्योति का प्रकाश होता तथा (यस्मिन, लोके) जिस ज्ञान मे (स्व , हित) सुख ही सुख होता है (तस्मिन्, अमृते) उस अमृत अवस्था मे (अक्षिते) जो वृद्धि तथा क्षय से रहित है (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (मां, धेहि) मुझे रखें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगी के लिए आप (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का कारण बनें ॥७॥

भावार्थ —इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के लिये सदुपदेशरूप वाणी प्रदान करें और वृद्धि तथा क्षय से रहित अमृत अवस्था प्राप्त करायें जिससे वेदरूप वाणी का प्रकाश हो और अपनी कृपा से ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करें ॥७॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।

यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥८॥

पदार्थ —(यत्र) जिस अवस्था मे (वैवस्वतः, राजा) काल ही राजा है (यत्र, अवरोधन, दिव) जहा दिन तथा रात का वशीकरण है (यत्र, अमू , यह्वतीः, आप) जहा उक्त आध्यात्मिक ज्ञानो का बाहुल्य है (तत्र) उस पद मे (मां) मुझको (अमृत, कृधि) अमृत बनाओ (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिए (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक के निमित्त बनें ॥८॥

भावार्थ:—इस मन्त्र का भाव यह है ,कि परमात्मा ज्ञानयोगी को सत्य तथा अनृत के निर्णय मे अभिषिक्त करता है अर्थात् ज्ञानयोगीरूप राजा सत्य तथा अनृत का निर्णय करके अपने विवेकरूप राज्य को अटल बनाता है ॥८॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।

लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

पदार्थ - (त्रिनाके, त्रिदिवे, दिव.) ज्ञानरूप स्वर्गलोक मे (यत्र, अनुकाम, चरण) जहां स्वेच्छानुसार विचरण होता है (यत्र) जिसमे (ज्योतिष्मन्त) केवल ज्ञान ही का (लोका) दर्शन है (तत्र) वहा (मां) मुझको (अमृत) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करो (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥९॥

भावार्थ —मुक्त पुरुष मुक्ति अवस्था मे अव्याहतगति होकर विचरता है अर्थात् उसको उस अवस्था मे किसी प्रकार का बन्धन नही रहता, या यो कहो कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक ईश्वरीय सत्ता मे सम्मिलित होता है । हे परमपिता परमात्मन् ! आप ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को अभिषिक्त करके वह अवस्था प्राप्त करायें ॥९॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।

स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१०॥

पदार्थ —(यत्र, कामा) जहा सब काम (निकामा) निष्काम किये जाते हैं (च) और (यत्र) जहा (ब्रध्नस्य) ब्रह्मज्ञान का (विष्टप) सर्वोच्च पद है (यत्र) जहां (स्वधा) अमृत (च) और (तृप्तिश्च) तृप्ति है (तत्र) वहा (मां) मुझको (अमृत, कृधि) मोक्षपद प्राप्त करायें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥१०॥

भावार्थ —हे परमात्मन् ! जो ब्रह्मज्ञान का उच्चपद है और जहा स्वधा से तृप्ति होती है वह मोक्षरूप सुख मुझे प्रदान कीजिये, या यों कहो कि वह मुक्तिसुख जिससे एकमात्र ब्रह्मानन्द का ही अनुभव होता है। अन्य विषय-सुख आदि जिस अवस्था मे सब तुच्छ हो जाते हैं, वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त करायें ॥१०॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।

कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं-

कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११।२७॥

पदार्थ —(यत्र) जहां (आनन्दा) आनन्द (च) और (मोदा) हर्ष है (मुद , च, प्रमुद) और जहां आनन्दित तथा हर्षित मुक्त पुरुष (आसते) विराजमान होता है (कामस्य, यत्र, आप्ता कामा) और जहां कामना वालो को सब काम प्राप्त है (तत्र) वहा (मां) मुझको (अमृत) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥११॥

भावार्थ —हे भगवन ! जिस अवस्था मे आनन्द तथा मोद होता है और जहां सब कामनायें पूर्ण होती हैं वह अवस्था मुझे प्राप्त करायें, या यो कहो कि हे परमात्मन् ! उस मुक्ति अवस्था में जहां आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है, अन्य सब भाव उस समय तुच्छ हो जाते हैं वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त हो ॥११॥

११३वां सूक्त और २७वां वर्ग समाप्त ।

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य—

१—४ कश्यप ऋषि ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, विराट् पङ्क्तिः । ३, ४, पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वर ॥

अथ मुक्तैश्वर्यं निरूप्यते —

अब मुक्त पुरुष के ऐश्वर्य का निरूपण करते है —

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।

तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थ —(यः) जो पुरुष (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (इन्दोः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (धामानि) कर्म, उपासना तथा ज्ञानरूप तीनों काण्डों का (अनु, अक्रमीत्) भली प्रकार अनुष्ठान करता है (त) उसको (सुप्रजाः, इति, आहु) शुभ जन्म वाला कहा जाता है (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (य) जो पुरुष (ते) तुम्हारे मे (मन.) मन (अविधत्) लगाता है (इन्द्राय) उस उपासक के लिए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (परि, स्रव) ज्ञानगति से प्रवाहित हो ॥१॥

भावार्थ —जो पुरुष कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा परमात्मप्राप्ति का भली प्रकार अनुष्ठान करता है या यो कहो कि जब उपासक अनन्य भक्ति से परमात्मपरायण होकर उसी की उपासना मे तत्पर रहता है तब परमात्मा उसके अन्त करण में स्व-सत्ता का आविर्भाव उत्पन्न करते हैं ॥१॥

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ।

सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थ —(ऋषे) हे सर्वव्यापक (कश्यप) सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप (मन्त्रकृतां, स्तोमैः) स्तुतियुक्त मन्त्रानुष्ठान करने वाले उपासको की (गिरः) उपासनारूप वाणियो को (उद्वर्धयन्) बढाते हुए उपासक का कल्याण करें (य) जो उपासक (सोम, राजान) सोमस्वभाव परमात्मा को (नमस्य) प्रभु मानकर (जज्ञे) प्रकाशित होता है (वीरुधां, पतिः) आप वनस्पतियो के स्वामी है, इसलिए (इन्द्राय) उपासक के लिए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (परि, स्रव) ज्ञानद्वारा उसके हृदय मे व्याप्त हो ॥२॥

भावार्थ —जो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्डो का पति है उससे यहां ज्ञानयोग की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानवर्द्धक वाणियो द्वारा उपासक के हृदय मे ज्ञान की वृद्धि करें ॥२॥

अब मुक्त पुरुष की अवस्था का निरूपण करते हैं —

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थ —मुक्त पुरुष के लिए (सप्त, दिश.) भूरादि सातो लोक (नानासूर्या) नाना प्रकार के दिव्य प्रकाश वाले हो जाते है, और (सप्त) इन्द्रियों के सातो छिद्र प्राणो की गतिद्वारा (होतारः) होता तथा (ऋत्विज) ऋत्विक् हो जाते है (ये, सप्त, देवा) प्रकृति के महत्तत्त्वादि सात कार्य उसके लिए मगलमय होते है (आदित्या) सूर्य सुखप्रद होता है (तेभि) उक्त शक्तियो द्वारा मुक्त पुरुष यह प्रार्थना करता है कि (सोम) हे सोम ! (न) हमारी (अभि, रक्ष) रक्षा कर (इन्दो) हे प्राणप्रद ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये आप (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ॥३॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे मुक्तपुरुष की विभूति का वर्णन किया गया है कि उसकी सब लोको मे दिव्य दृष्टि हो जाती है । "दिशा" शब्द का तात्पर्य यहां लोक मे है और वह भू , भुव तथा स्वरादि सात लोक है अर्थात् विकृतिरूप से कार्य और प्रकृतिरूप से जो कारण है वे सातो अखण्डनीय शक्तियां उसके लिए मगलप्रद होती हैं ॥३॥

अब मुक्तपुरुष की ऐश्वर्य-रक्षा के लिए विघ्नो की निवृत्ति कथन करतेहै —

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।

अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः

किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥२८॥

पदार्थ:—(राजन्) हे सर्वोपरि विराजमान परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा (यत्) जो (शृत) परिपक्व (हवि.) ज्ञानरूप फल है (तेन) उसके द्वारा (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (न) हमारी (अभि, रक्ष) सर्व प्रकार से रक्षा करें (अरातिवा) शत्रु लोग (न) हमको (मा, तारीत्) मत सतावें (च) और (न.) हमारे (किंचन) मोक्ष सम्बन्धी किसी भी ऐश्वर्य को (मा, आममत्) नष्ट न करें (इन्दो) हे परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिए (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे मुक्तिरूप फल का उपसंहार करते हुए सब विघ्नों की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई है कि हे सर्वरक्षक भगवन् ! वैदिक कर्म तथा वैदिक अनुष्ठान के विरोधी शत्रुओ से हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ताकि वह हमारे किसी अनुष्ठान मे विघ्नकारी न हो । अपनी परम कृपा से मोक्ष सम्बन्धी ऐश्वर्य हमे प्रदान करें, यह हमारी आपसे सविनय प्रार्थना है ॥४॥

इति चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तं सप्तमोऽनुवाकः

अष्टाविंशतितमो वर्गश्च समाप्तः

नवम मण्डलं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

[१]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१॥

पदार्थ—(अग्रे) जैसे सबसे पहले (बृहत् अग्नि) बृहत् अग्नि (रुशता भानुना) आलोकित प्रकाश से और (उषसाम् ज्योतिषा) उषा की ज्योति से (निर्जगन्वान्) उगता हुआ (तमस ऊर्ध्व) तम के भी ऊपर (अस्थात्) विराजता और (ऊर्ध्व आगात्) ऊपर उठता है और (सु-अङ्ग जातः) तेजस्वी हो (विश्वा सद्मानि आ अप्रा) सर्व लोकों को स्वप्रकाश से भर देता है । उसी भांति तेजस्वी पुरुष भी (बृहन्) महान् (उषसाम) तेजस्वी पुरुषों के बलों व कामनायुक्त प्रजाओं पर शासित हो, (निर्जगन्वान्) उदित होकर शत्रुरूप तम को परास्त करे, (सु-अङ्ग) वह बलिष्ठ अंग होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्रा) सर्व गृहों, आश्रमों व पदों को तेज से भर देता है ॥१॥

भावार्थः—जिस भांति सर्व प्रथम बृहत् अग्नि प्रकाश एवं उषाओं की ज्योति से प्रस्फुटित होकर अंधकार को हर लेता है और ऊपर उठता है तथा सकल लोकों को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर देता है, वैसे ही विद्या का सूर्य विद्वानों के द्वारा दिव्य ज्ञानों को प्राप्त करता है और सकल लोकों को आलोकित करता है ॥१॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद् गाः ॥२॥

पदार्थ—जिस भांति अग्नि (रोदस्यो गर्भः) उत्तरारणि व अधरारणि के मध्य छिपा रहता है, (जात) उत्पन्न हो (ओषधीषु विभृत) काष्ठों में बस जाता है (तमांसि परि) अन्धकार को मिटा कर (मातृभ्य गा अक्तून कनिक्रदत्) नेत्रों को किरणें देता व प्रकाशित पदार्थों को जताता है उसी भांति हे (अग्ने) तेजस्विन ! तू गर्भ से जन्मे शिशु के तुल्य (जात रोदस्यो) उत्पन्न अथवा प्रकट होकर स्व और पर सैन्यों को (गर्भ) वश में करता (असि) है । तू (चारु) प्रजाओं का भोक्ता और (ओषधीषु विभृत) अन्न इत्यादि ओषधियों पर पुष्ट बालक के समान ही (ओषधीषु) तेजयुक्त सेनाओं के आश्रय से (विभृत) विशेष रूप से परिपुष्ट है । तू (शिशु) शिशु तुल्य (चित्र) परिवर्धन योग्य, आश्चर्य कर्म करने वाली (शिशु) प्रजाओं के मध्य शासन करने वाला बनकर (तमांसि परि) अन्धकार सरीखे दुःखों को दूर करता हुआ (अक्तून्) सर्व दिन (मातृभ्य) मातृवत् राष्ट्रनिर्माता जनों हेतु (गाः अधि कनिक्रदत्) वाणियों और भूमियों पर अधिकार करे ॥२॥

भावार्थ—जिस भांति अग्नि उत्तरारणि और अधरारणि के मध्य छिपा रहता है, उत्पन्न होकर काष्ठों में बस जाता है, अन्धकार को मिटा कर नेत्रों को प्रकाश देता है, उसी भांति हे विद्वत् जनों तुम विद्या के सूर्य हो अतएव सकल मानव समाज को अपने ज्ञान के प्रकाश द्वारा अंधकार से मुक्त कर अज्ञान को हरो ॥२॥

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३॥

पदार्थ—(इत्था) इस भांति (विष्णु) विभिन्न विद्याओं में पारगत हो कर (अस्य परम विद्वान्) यह लोक में श्रेष्ठ पद प्राप्त कर, (बृहत् जात) बड़ा होकर (तृतीयम् अभि पाति) सूर्य सरीखे तीसरे लोक 'द्यौ' को पालता है उसी तरह वह (तृतीयम् अभिपाति) तृतीय आश्रम को पालता है । (यत्) जो (सचेतसः) समान चित्त बनकर (अस्य आसा) इसके मुख से (पयः) अपने दुग्ध सरीखे ज्ञान को (अक्रत) प्राप्त करते हैं वे (अत्र) उसको (स्व) अपना समझ कर (अभि अर्चन्ति) अर्चना करते हैं ॥३॥

भावार्थ—सूर्य जिस भांति परमात्मा से सर्वविधि रक्षण पाता है उसी भांति जो ज्ञानी जन ज्ञानरस को आत्मसात् करते हैं वे उस ज्ञान को प्रदान करने वाले परमात्मा की अर्चना करते हैं ॥३॥

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४॥

पदार्थ—जिस भांति (जनित्री) उत्पादक काष्ठ अग्नि बढ़ाते हैं तदुपरान्त वह (अन्यरूपा प्रति एति) उन्हें जला देता है, उसी भांति हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (पितुभृत) अन्नादि पालक साधनों को धारने वाली प्रजाएं (अन्नावृधं त्वा) अन्न से वृद्धि पाने वाले शिशु जैसी तेरी (अन्नैः प्रति चरन्ति) ऐश्वर्यों द्वारा सेवा करते हैं । (पुनः) और तू (अन्य रूपाः) शुष्क स्नेहरहित उन्हें (प्रति एषि) विपरीत हो पा लेता है और तू (मानुषीषु विक्षु) मानुष प्रजाओं में (होता असि) सर्व सुख दाता है ॥४॥

भावार्थ—जिस भांति काष्ठ अग्नि को उपजाता है और फिर वही आग उन्हें भस्म कर देती है वैसे ही तेजस्वी अन्नादिपालक साधनों को धारण करने वाली प्रजाएं, अन्न से वृद्धि पाने वाले शिशु के सदृश ऐश्वर्यों से तेरी सेवा करते हैं और तू मानुष प्रजाओं में सभी को सुख प्रदान करता है ॥४॥

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

पदार्थ—(होतारं) सर्व सुखों तथा ज्ञानों के देने वाले, (चित्र-रथम्) विचित्र रथ वाले एवं (अध्वरस्य) हिंसा रहित, (यज्ञस्य-यज्ञस्य) उत्तम यज्ञ के (केतुम्) ज्ञाता (रुशन्तम्) तेजस्वी व (मह्ना) स्व सामर्थ्य द्वारा (देवस्य-देवस्य) प्रत्येक तेजोयुक्त, दानशील को (प्रत्यर्धि) वृद्धिदाता (जनानां अतिथिम्) मानवों के बीच अतिथितुल्य पूज्य (त्वा) तुझ (अग्निम्) प्रभु का (श्रिया) ऐश्वर्य हेतु आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥५॥

भावार्थः—मैं तुझ प्रभु का आश्रय ग्रहण करता हूँ जो सर्व सुखों तथा ज्ञान का दाता, हिंसारहित उत्तम यज्ञज्ञाता तेजस्वी एवं दानशील की वृद्धि करने वाला और मानवों के मध्य अतिथि के समान वन्दनीय है ॥५॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६॥

पदार्थ—(अध) और (स तु) वह तुम (पेशनानि वस्त्राणि वसान) उत्तम वस्त्र धारण कर (अग्नि) अग्नि सरीखे तेजस्वी होकर (पृथिव्याः नाभा) भूमि के बीच प्रबन्ध योग्य केन्द्र में विराजकर (अरुष) रोषरहित, (इळायाः पदे जात) भूमि के पाने की सामर्थ्ययुक्त होकर, हे राजन् ! तू (पुर हित) सबके सामने स्थित होकर (देवान् यक्षि) तेजस्वी जनों का साथ कर ॥६॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू रोष रहित होकर भूमि के प्राप्त करने की सामर्थ्य युक्त होकर सबके समक्ष स्थित हो और तेजस्वी पुरुषों की संगति कर ॥६॥

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७॥२६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (द्यावापृथिवी उभे हि) सूर्य व भूमि के तुल्य श्रेष्ठ शासकों और आश्रित प्रजाजनों को और (मातरा पुत्र न) माता-पिता को पुत्रवत् (सदा आततन्थ) सदा बढ़ा । हे (यविष्ठ) बलशालिन् ! हे (सहस्य) शत्रु को परास्त करने वाले (अथ) और तू (उशत. देवान्) तेजस्वी विद्वानों को (प्र याहि) प्राप्त हो और (इह आ वह) इस राष्ट्र में उन्हें सादर रख ॥७॥

भावार्थ—हे तेजस्वी, सूर्य व भूमि समान श्रेष्ठ शासक और आश्रित प्रजा जनों को तुम उसी भांति सदैव बढ़ाओ जिस भांति माता-पिता शिशु को बढ़ाते हैं । हे बलशाली, आप शत्रु संहारक हैं । आप तेजस्वी विद्वज्जनों को प्राप्त हों और इस राष्ट्र में उन्हें आदर प्रदान कराएं ॥७॥

इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[२]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँरृतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रभो ! हे (यविष्ठ) बलवान्, (त्वं) तू (उशतः देवान्) कामनायुक्त लोगों का (पिप्रीहि) पालन कर और (विद्वान्) विद्वान्

बन कर हे (ऋतु पते) सूर्यतुल्य तेजस्विन् ! राजसभा के सदस्यों व तेजस्वी राज-भ्राताओं को भी (इह यज) राष्ट्र मे आदर के साथ रख । (ये) जो (दैव्या ऋत्विज) विद्वान् ऋतु मे यज्ञ कर्ता तथा विद्वानो का आदर करने वाले हैं (तेभि) उनके साथ (त्व) तू भी (होतृणाम् आयजिष्ठ असि) दाता और उपदेश करने वालो मे श्रेष्ठतम हो ॥१॥

भावार्थ —हे प्रभो ! आप कामनावान् मनुष्यो का पालन करो और हे सूर्य के समान तेजस्वी ! विद्वान् बनकर राज्यसभासदो को भी आप राष्ट्र मे आदर सहित रखें। उपदेशको, यज्ञकर्ताओ तथा उपदेशको मे तू ही सर्वश्रेष्ठ है ॥१॥

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥२॥

पदार्थ —हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (होत्र वेषि) दान चाहता है और (उत पोत्र वेषि) पवित्र करने वाले कर्म को भी चाहता है। तू (जनानां) जनो के मध्य मे (मन्धाता) ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् और (द्रविणोदा.) धनों का देने वाला, (ऋत-वा) ज्ञान तथा तेज का स्वामी (असि) है। (वयम्) हम लोग (हवींषि) अन्नो को (स्वाहा कृणवाम) उत्तम पात्रो मे दें और (अग्निः देव) सकल प्रकाश (अर्हन्) वन्दित होकर (देवान् यजतु) विद्वानो को आदर दें ॥२॥

भावार्थ —हे तेजस्विन ! तुम दान चाहते हो और पवित्र करने वालो को भी चाहते हो। तुम्ही धनदाता तथा तेज के स्वामी हो। हम सब भी विद्वानो का भली भाँति आदर करें ॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥३॥

पदार्थ —हम (देवानाम् अपि) विद्वानो के (पन्थाम् अगन्म) पथ का अनुगमन करें। (यत् शक्नवाम) हम जो कार्य कर सके (तत्) उसे (अनु) क्रम से (प्रवोढुम) सम्पन्न करें। (विद्वान्) ज्ञानी जन (अग्नि) अग्नि सदृश है। (स यजात्) वही यज्ञकर्ता है, (स इत् उ होता) वही (होता) ग्रहणकर्ता है। (स अध्वरान् कल्पयाति) वही हिंसा से रहित कर्मों को सम्पन्न करता है और (ऋतून कल्पयाति) वही ऋतुओ को फल उपजाने मे समर्थ बनाता है ॥३॥

भावार्थ —हम विद्वान् लोगो के पथ का अनुगमन करें। जो कार्य भी हम कर सकते है उसे क्रम से सम्पन्न करें। ज्ञानी जन अग्नि के समान है, वही यज्ञ कर्ता है वही ग्रहणकर्ता है, वही हिंसा रहित कर्म करने वाला और ऋतुओ को फलोत्पादन मे समर्थ बनाता है ॥३॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥४॥

पदार्थ —हे (देवा) विद्वानो ! (विदुषां व. यत् व्रतानि) आप विद्वत्-जनो के व्रत-नियमादि (वय) हम (अविदुस्तरास) नितात अज्ञानी बनकर भग करें विद्वान तेजस्वी जन (यभि ऋतुभि.) जिन सत्य बलो से (देवान् कल्पयाति) विद्वानो का कार्यक्षम करता है, उन ही से वह हमारे (तत् विश्वम्) उस सबको (आ पृणाति) पूर्णता प्रदान करे ॥४॥

भावार्थ —हे विद्वत् जनो ! आप के व्रत-नियमादि हम नितात अज्ञानीजन भग करते हैं। आप ही अपने सत्य बल द्वारा हमारी कमियो का निवारण कर सकते हैं ॥४॥

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥५॥

पदार्थ —(दीनदक्ष.) दीन (मर्त्यास) जन (यत) जब (पाकत्रा मनसा) अपने अल्प ज्ञान से (यज्ञस्य) दान, पूजा, सत्सग इत्यादि के विषय मे (न मन्वते) न जानें (तत्) तब (क्रतुवित्) यज्ञज्ञाता (विद्वान अग्नि.) ज्ञानीजन, (होता) ज्ञान देने वाला (यजिष्ठ) दानशील बनकर (देवान् ऋतुश यजाति) विद्वानो तथा फलो के इच्छुक जनो को ऋतु-अनुसार (यजाति) यज्ञ कराए ॥५॥

भावार्थ —बलहीन जन जब अपने अल्पज्ञान से दान, पूजा, सत्सग इत्यादि के विषय मे न जानें तो यज्ञ का ज्ञाता ज्ञानी जन दानशील होकर फल प्राप्ति के इच्छुक लोगो का यज्ञ कराए ॥५॥

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

पदार्थ —(विश्वेषाम्) सकल (अध्वराणाम्) यज्ञो का (अनीक) मुखिया (चित्र केतुम) विचित्र ज्ञाता (त्वा) तुझे (जनिता) तेरे पिता ने (जजान) जन्म दिया है। (स) वह तू (नृवती क्षा अनु) मानवो से बसी भूमियो मे (स्पार्हा) सब प्रिय, (क्षुमतीः) अन्नो से पूर्ण, (विश्व-जन्या) हितकारक (इष) ज्ञानवृष्टियों को (आ यजस्व) दे ॥६॥

भावार्थः—हे सकल यज्ञों के प्रमुख विचित्र ज्ञाता ! तुझे तेरे पिता ने जन्म दिया है। तू ही मानवों से बसी भूमियो मे सर्वप्रिय, अन्नों से पूर्ण, हितकारक, ज्ञान-वृष्टियों को प्रदान कर ॥६॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७॥१०॥

पदार्थ —(य त्वा) जिस तुझे (द्यावापृथिवी) सूर्य-भूमि के तुल्य माता-पिता जन्म देते हैं और (य त्वा आप) जिस तुझे आप्त जन उपजाते हैं, (य त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान) जिस तुझको उत्तम जन्म दाता गुरु उपजाता है, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! तू (पितृयाणम) पालक माता पिताओ के द्वारा गमन योग्य (पन्थाम् प्र विद्वान्) मार्ग को अच्छी तरह जानता हुआ (द्युमत) तेजस्वी और (समिधान) प्रकाशित होकर (वि भाहि) विशेष रूप से चमक ॥७॥

भावार्थः —हे ज्ञान प्रकाशक ! तू भली-भांति तेजस्वी स्वरूप को ग्रहण कर विशेष रूप से कान्तिमान् हो और पथ आलोकित कर ॥७॥

इति दशमो वर्ग ॥

---

[२]

त्रित ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप । ५—७ त्रिष्टुप ॥ सप्तर्चं सूक्तम ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

पदार्थ—हे (राजन्) राजन् ! तू (इन) सभी का स्वामी (अरतिः) बुद्धिमान्, (समिद्ध) अग्नि तुल्य प्रदीप्त (रौद्र) दुष्टो को रुला देने वाला, (दक्षाय) ज्ञान-कर्म हेतु (सु-सु-मान्) उत्तम सामर्थ्यों से युक्त (अदर्शि) दिखाई दे। सूर्य के तुल्य (चिकित) ज्ञानी जन (बृहता भासा) नितांत तेज से (वि भाति) प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सूर्य (रुशतीम् अपाजन असिक्नीम एति) दीप्त वर्णा उषा को दूर कर श्याम रात्रि को पा लेता है और (असिक्नीम अपाजन् रुशतीम् एति) तममयी रात्रि को भगा कर शुक्लवर्णा उषा को पाता है वैसे ही विद्वान् जन भी दिन को मिटा रात्रि को और रात्रि को छोड़ कर दिन को पाए ॥१॥

भावार्थ—हे राजन ! तू सभी का स्वामी है, दुष्टो का दलन करने वाला है। तेरे ही समान विद्वान् भी अन्धकार का हरण कर ज्ञान प्रदान करता है ॥१॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थ —(यत्) जैसे (कृष्णाम् एनीम् वर्पसा अभिभूत्) सूर्य रात्रि को उज्ज्वल रूप से भर देता है और (पितु जाम् योषाम्) महत् पालक से उपजी उषा को स्त्री तुल्य (जनयन्) प्रकटाता है, उसी भांति विद्वान् अपने (वर्पसा) रूप द्वारा (कृष्णाम् एनीम् अभिभूत्) कृष्ण वर्णा मृगछाला को धारे, फिर (बृहत पितु जाम्) उत्तम वश के पिता की पुत्री का (योषां जनयन्) अपनी स्त्री बनाता हुआ (सूर्यस्य भानु) सूर्य की कान्ति को (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) धारण करता हुआ (वसुभि.) विद्वानों के सहित (दिव अरति) कामना योग्य पत्नी का स्वामी बनकर (वि भाति) आलोकित हो ॥२॥

भावार्थः—जिस भांति सूर्य तममयी रात को प्रकाश से भर कर दिन कर देता है उसी भांति विद्वत् जन जग को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करें ॥२॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थः—जिस भांति (जार) रात्रि का विनाश करता हुआ सूर्य (स्वसारं पश्चात् अभि एति) अपनी भगिनी जैसी तमहर्त्री उषा के पीछे आता है और स्वयं (भद्र) सुखदायी बनकर (भद्रया सचमान आगात्) सुखदायिनी उषा सहित आता है और वह (रुशद्भि वर्णै) उज्ज्वल किरणों से (रामम् अभि अस्थात्) रात्रि के तम को हटाता है वैसे ही (भद्र) प्रजा सुखदायी विद्वान् (भद्रया सचमान) प्रजा को सुख देने वाली बुद्धि या नीति से युक्त हो (आगात्) प्राप्त हो। वह (जारः) शत्रु तथा दुष्टो का विनाशक होकर (स्वसारं) सुख सहित शत्रु को भगाने वाली सेना तथा (स्वसार) स्वय आगत प्रजा के (पश्चात् अभिएति) पीछे तदनुकूल रह वश मे करे। वह (अग्नि) अग्नि के सरीखा पुरुष, (सु-प्र-केतैः) ज्ञानवान् (द्युभिः) किरणो के तुल्य विद्वानो सहित (वितिष्ठन्) विविध कार्यों को करता हुआ, (रुशद्भि) उज्ज्वल कमनीय (वर्णै) विद्वानो सहित (रामम् अभि अस्थात्) अन्धकार जैसे शत्रु पर धावा करे ॥३॥

भावार्थ —जिस भांति रात्रि का विनाशक सूर्य उषा के बाद स्वयं आता है और अपनी किरणो से अन्धकार को हटाता है वैसे ही प्रजा को सुख देने वाले विद्वान् प्रजा को सुख देने वाली बुद्धि से युक्त होकर प्राप्त हो। वह शत्रु-विनाशक होकर सेना को नियंत्रित रखते हुए स्वयं आगत प्रजा के पीछे तदनुकूल रहकर उसे वश में करें।

अग्नि तुल्य पुरुष ज्ञानवान् जन विविध कार्य करता हुआ उज्ज्वल कमनीय विद्वानो सहित अन्धकारतुल्य शत्रु पर धावा बोले ॥३॥

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४॥

पदार्थ—(**अस्य**) इस (**बृहतः**) बृहत् (**अग्नेः**) तेजयुक्त (**सख्युः**) सकल मित्र (**शिवस्य**) कल्याणकारी प्रभु तथा राजा के (**वग्नून् इन्धानाः**) उत्तमोत्तम शब्दो को प्रकट करते हुए (**यामासः**) राज्य प्रबन्ध, व्यवस्थादि एव (**ईड्यस्य**) स्तुति योग्य (**वृष्णः**) सुखो के बरसाने वाले (**बृहत**) महान् (**स्वासः**) सौम्य उसके (**भामासः**) तेज भी (**यामन् अक्तवः**) मार्ग मे प्रकाश देने वाली किरणो के तुल्य (**यामन**) राज्यनियन्त्रण मे (**अक्तवः**) स्नेहदायक दीपको के सरीखा (**चिकित्रे**) प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थ—बृहत् तेजयुक्त सर्वमित्र कल्याणकारी प्रभु तथा राजा के उत्तमोत्तम शब्दो को प्रकट करते हुए राज्य प्रबन्ध, व्यवस्थादि एव स्तुति योग्य सुखो के बरसाने वाले महान् सौम्य उसके मार्ग मे प्रकाश देने वाली किरणों के तुल्य राज्य नियन्त्रण में स्नेहदायक दीपकों के समान हो ॥४॥

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥५॥

पदार्थ—(**यस्य सु-दिवः**) जिस सूर्य के समान तेजस्वी (**बृहत**) महान् (**रोचमानस्य**) कान्तियुक्त के (**स्वना न**) आज्ञा-वचनो के तुल्य (**भामासः**) क्रोध तथा बल (**पवन्ते**) प्रकटते है और (**यः**) जो (**ज्येष्ठेभिः**) उत्तम (**तेजिष्ठैः**) तेजस्वी, (**क्रीळुमद्भिः**) विनोदी, (**वर्षिष्ठैः**) वयोवृद्ध, (**भानुभिः**) रश्मि सरीखे अज्ञान के तम के नाशक पुरुष के सहित (**द्याम् नक्षति**) आकाशवत् पृथिवी को पा लेता है वही उत्तम नेता है ॥५॥

भावार्थ—जिस सूर्य के समान तेजस्वी एव महान् के आज्ञा एव वचनो के तुल्य क्रोध तथा पराक्रम प्रकट होते है और जो उत्तम तेजस्वी, विनोदी वयोवृद्ध एव अज्ञान का अन्धकार दूर करने वाले पुरुषो के सहित आकाशवत पृथिवी को पा लेता है वही उत्तम नेता है ॥५॥

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**देवतमः**) विद्वत् जनो मे श्रेष्ठ, (**विभ्वा**) सामर्थ्यशाली (**अरतिः**) मतिमान् सकल स्वामी है वह (**प्रत्नेभिः**) पूर्व से चले आये, वृद्ध, (**रुशद्भिः**) दीप्तिमय (**रेभद्भिः**) उपदेष्टा जनो सहित (**वि भाति**) शोभा पाता है (**नियुद्भिः जेहमानस्य**) सैन्यो सहित जाते हुए वायु के तुल्य बलवान् (**ददृशान-पवेः**) प्रकट शस्त्रादि वाले (**अस्य**) इसके (**शुष्मासः**) विभिन्न बल (**स्वनयन्**) मेघ के जैसे गर्जते हैं ॥६॥

भावार्थ—जो विद्वानो मे श्रेष्ठ सामर्थ्यवान्, बुद्धिमान् एव सभी का स्वामी है वह वयोवृद्ध उपदेश देने वाले जनो सहित शोभित होता है। ससैन्य वह वायु तुल्य बलशाली है उसके प्रकट शस्त्रादि एव विभिन्न बल मेघ के तुल्य गरजते हैं ॥६॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥२१॥

पदार्थ—(**सः**) वह तू (**नः**) हमारे लिए (**महि**) महान् ऐश्वर्य (**आ वक्षि**) प्रदान कर। (**युवत्योः दिव पृथिव्योः**) परस्पर मिले आकाश व पृथिवी दोनो पर सूर्य के तुल्य युवा, युवती तथा शासक शासित जनो पर (**आ सत्सि च**) तू अध्यक्षवत् विराज। वह तू (**अग्निः**) अग्रणी बनकर (**सुतुकेभिः अश्वैः**) सुख सहित जाने वाले अश्वो मे (**स्वयं सुतुकः**) सुख सहित जाने वाला और (**रभस्वद्भिः रभस्वान्**) वेगयुक्त अश्वो से वेग प्राप्त कर (**इहस्थान् आगम्याः**) यहा अपनो को पा ले ॥७॥२१॥

भावार्थ—जिस भांति सूर्यरूप अग्नि द्युलोक एव पृथिवी के मध्य होता हुआ भी द्युलोक व धरती को भी सरलता सहित आलोकित करता है, वह किरणो का प्रकाशक है, उसी भांति ऐश्वर्य सम्पन्न ज्ञानवान् सूर्य तुल्य विद्वान् अपने वश एवं समाज सभी को आलोकित करता है ॥७॥२१॥

इत्येकविंशो वर्गः ।

[४]

त्रित ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१ ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ ६ त्रिष्टुप् ॥ ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१॥

पदार्थः—हे (**राजन्**) हे प्रभो ! मैं (**ते प्रयक्षि**) भली-भांति आपकी पूजा करूं। (**ते मन्म प्र इयर्मि**) तेरी मैं भली-भांति स्तुति करूं (**यथा**) जिस भांति भी हो तू (**हवेषु**) यज्ञों मे (**नः वन्द्यः भुवः**) हमारा वन्दनीय है। हे (**अग्ने**) ज्ञानयुक्त ! तू (**इयक्षवे पूरवे**) पूजक सत्संगी जन हेतु (**धन्वन् इव प्रपा असि**) चातक हेतु आकाश मे स्थित मेघ के तुल्य और मरुस्थल मे विद्यमान प्याऊ के जैसा उत्तम रस प्रदान कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं तुम्हारी भली भांति अर्चना करूं। तू सभी यज्ञो मे वदनीय है। हे ज्ञानयुक्त तू पूजन करने वाले सत्संगी जनो के लिए चातक के लिए आकाश स्थित मेघ के समान और मरुभूमि मे विद्यमान प्याऊ के तुल्य उत्तम रसपान कराता है ॥१॥

त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥२॥

पदार्थ—(**गाव उष्णम् इव व्रजम्**) गौएं जैसे शीत पीडित हो उष्ण गोशाला की तरफ जाती हैं, उसी भांति हे (**यविष्ठ**) बलशालिन् (**यम् उष्णम्**) जिस अग्नि तुल्य प्रतापी (**त्वा**) तुझे (**जनासः**) मानव शीतार्त्त जनो के तुल्य (**अभि सञ्चरन्ति**) शरण आते हैं, वह तू (**देवानाम्**) उत्तम जनो मे (**दूतः**) पूजित तथा प्रतापी, गुणो मे महान् अग्नि के समान ही (**मर्त्यानाम् अन्तः**) मानवो मे (**रोचनेन**) प्रकाश से (**चरसि**) विचरता है ॥२॥

भावार्थ—जिस भांति शीतपीडित गौएं गोशाला की शरण लेती हैं, उसी भांति जनमात्र उसी परमात्मा की शरण प्राप्त करता है जो उत्पत्ति रहित है। वह परमात्मा विद्वत् जनो और सामान्य जनो सभी को उन्नति की प्रेरणा देता है। हमे उसी प्रकाशदाता की वन्दना करनी चाहिये ॥२॥

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३॥

पदार्थ—(**शिशुं न माता**) जिस भांति माता शिशु को (**सचनस्यमाना बिभर्ति**) स्वसम्पर्क मे रखना चाह कर पालती है, वैसे ही (**माता**) पृथिवी, (**त्वा**) तुझ (**जेन्यं**) विजयशील का (**वर्धयन्ती**) वर्धन करती हुई और (**सचनस्यमाना**) तेरे साथ सम्पर्क बनाती हुई (**त्वा बिभर्ति**) तुझे बलिष्ठ बनाती है। तू (**हर्यन्**) धनादि की कामना करता (**अवसृष्टः पशुः इव**) छूटे हुए पशु के तुल्य स्वच्छन्द होकर (**धनोः अधि**) धनुष् के भरोसे (**प्रवता यासि**) अपने निम्न स्थानो को पाता है और (**जिगीषसे**) उन पर विजय पाने की कामना करता है ॥३॥

भावार्थ—जिस भांति माता अपने बालक का लालन-पालन करती है, उसी भांति पृथिवी तुझ विजयशील का वर्धन करती है। तू धन की कामना करता है और तू अपने धनुष के भरोसे विजय पाता है ॥३॥

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥४॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) विद्वान् ! हे (**अमूर**) मोह से मुक्त ! हे (**चिकित्वः**) ज्ञानसम्पन्न ! (**वयं मूराः**) हम मूढ जन (**महित्वं न विद्म**) तेरे सामर्थ्य से अवगत नही। (**अङ्ग**) हे तेजस्विन् ! (**त्वं वित्से**) तू ही जानता है। तू (**वव्रिः**) वरणीय होकर (**शये**) सुख सहित शयन करता है और (**जिह्वया**) वाणी के बल द्वारा (**अदन्**) राष्ट्र का भोग कर विचरण करता है। तू (**विश्पतिः सन्**) प्रजापालक राजा बनकर (**युवतिं रेरिह्यते**) भूमि को नारी के समान भोगता है ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वान् हे मोहरहित हे ज्ञान सम्पन्न ! हम मूढ जन तेरे सामर्थ्य को नही जानते। हे तेजस्वी ! तू अपने वाणी बल से भी राष्ट्र का भोग करता हुआ विचरता है। तू प्रजापालक राजा बनकर भूमि का भोग करता है ॥४॥

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥

पदार्थ—(**धूमकेतुः**) धूम्रकेतु अग्नि, (**पलितः वने तस्थौ**) व्याप्त हो वन मे बसता है, (**नव्यः सनयासु कूचित् जायते**) स्वयं नवीन होकर सूखे काष्ठ मे कहीं भी उपज जाता है, वही अग्नि (**वृषभः**) मेघ स्थित विद्युत बनकर (**अस्नाता, आपः प्रवेति**) बिना गीला हुए जलो मे बसता है और (**यं मर्ताः सचेतसः प्र णयन्त**) ज्ञानी जन जिसे उपजाते हैं, उसी भांति (**नव्यः**) स्तुत्य जन (**सनयासु**) पूर्व विद्यमान प्रजाओ मे (**कूचित् जायते**) कहीं भी बनाया जाता है और वह (**पलितः**) वयोवृद्ध सम पूज्य (**धूम केतुः**) शत्रुओ को प्रकम्पित करने वाले (**वने तस्थौ**) ऐश्वर्ययुक्त पद पर आसीन होता है तथा (**वृषभः आपः न**) वृषभ जैसे पिपासित होकर जल के समीप आता है वैसे ही वह (**अस्नाता**) अनभिषिक्त हो (**आपः प्रवेति**) प्रजाजनो मे जाता है और तब (**मर्ताः**) मानव (**स-चेतसः**) एक सरीखे चित्त वाले होकर (**यं प्र-णयन्त**) जिसको प्रधान पद पर अधिष्ठित कर देते हैं ॥५॥

भावार्थ—एक अग्नि तो सूखी लकडियो से उपजती है जो धुआं देती है। वही अग्नि विद्युत् रूप मे शुभ्र श्वेत है जो जल मे रहकर भी नही बुझती। ऐसी अग्नि का सृजन बुद्धिमान् जन करते है। ऐसी विद्युत् का आविष्कार अभीष्ट है। इसी भांति स्तुत्य जन स्वशक्ति से प्रजाजनो को भांति-भांति से लाभान्वित करें ॥५॥

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

पदार्थ—जिस भांति (**तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा**) देह का त्याग करने वाले, वन गमन वाले पापकर्मा दो चार (**दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्**) दसो रस्सियों से मानव को बांध देते हैं और जिस प्रकार (**तनूत्यजा**) देह को त्याग, धड से अलग लटकती (**तस्करा**) निरन्तर कार्यरत (**वनर्गू**) ग्राह्य पदार्थों तक पहुँचने वाली भुजाएं (**दशभि रशनाभि**) दसों अंगुलियों द्वारा पदार्थ को (**अभि अधीताम्**) भली-भांति पकड़ती हैं उसी भांति हे (**अग्ने**) तेजस्विन्, तेरी ये दोनो सेनाएं (**तनूत्यजा इव**) स्वदेह त्याग मे समर्थ, (**तस्करा**) सतत कर्म करने मे सक्षम (**वनर्गू**) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र मे जाने वाली दो भुजाओ के तुल्य (**दशभि रशनाभि**) सुदूर व्याप्त शक्तियो से राष्ट्र को (**अभि अधीताम्**) बांध लें। हे (**अग्ने**) तेजस्विन् ! (**इयं ते**) यह तेरी (**नव्यसी मनीषा**) नितांत वंदनीय बुद्धि है, इससे (**युक्ष्वाद्रि**) शुचिवान् होकर कार्य करने वाले (**अर्ग**) ज्ञानीजनो से (**रथं न**) अश्वो से रथ के समान इस राष्ट्र को (**युक्ष्व**) सचालित कर ॥६॥

भावार्थ—जिस भांति देह त्यागी वन मे छिपने वाले चोरो द्वारा मानव को बांध दिया जाता है और जिस भांति ग्राह्य पदार्थों तक पहुचने वाली भुजाएं दसो अंगुलियो से पदार्थ को भली-भांति पकड लेती हैं उसी भांति हे समर्थ ! तू सतत कार्यरत एव ऐश्वर्यसम्पन्न राष्ट्र को शक्तियो से सगठित कर। तू ज्ञानसम्पन्न पुरुषो की सहायता से राष्ट्र का सचालन कर ॥६॥

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वोऽ अप्रयुच्छन् ॥७॥२२

पदार्थः—हे (**जातवेद**) पदार्थों के ज्ञाता विद्वन् ! (**ब्रह्म च**) वेद एव (**इयं च गीः**) यह वाणी (**ते सदम् इत्**) तेरी सदैव ही (**वर्धनी भूत्**) वृद्धिकारक हो। हे (**अग्ने**) तेजस्विन् ! (**नः तनयानि तोका**) हमारे पुत्रो एव पौत्रादि सततियों की (**रक्ष**) रक्षा कर (**उत नः तन्व**) और हमारे शरीरो की (**अप्रयुच्छन् रक्ष**) प्रमाद रहित होकर रक्षा कर ॥७॥२२॥

भावार्थ— परमात्मा सर्वज्ञ है। वही सब अग्नि आदि उत्पन्न करने वाला है। उसका मनन, उपासना और यज्ञ आदि करने अभीष्ट हैं जो हमारी आत्मा मे उसके स्वरूप की वृद्धि करने मे सहायक है। वह प्रभु हमारी तथा हमारी सतति की प्रमादरहित हो रक्षा करने वाला है ॥७॥३२॥

इति द्वात्रिंशो वर्ग ।

---

[५]

त्रित ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१ विराट् त्रिष्टुप् । २—५ त्रिष्टुप् । ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥

पदार्थ—वह प्रभु, (**एक**) अनुपम, (**समुद्र**) समुद्र तुल्य अपार गम्भीर (**रयीणा धरुणः**) सर्व ऐश्वर्यों की खान है। वह (**भूरि जन्मा**) विभिन्न जनो का स्वामी बनकर (**अस्मत् हृदः**) हमारे हृदयो तक को (**विचष्टे**) विकसित करता है। जिस भांति सूर्य (**निण्यो उपस्थे**) आकाश तथा भूमि के मध्य (**ऊध**) अन्तरिक्ष मे (**सिषक्ति**) स्थित होता है उसी भांति (**निण्यो**) सन्मार्ग पर चलाने मे समर्थ शासक व शासित वर्ग के (**उपस्थे**) समीप वह (**ऊध**) उत्तम पद पर (**सिषक्ति**) विराजे और (**उत्सस्य मध्ये निहित पदं वे**) जैसे विद्युत् रूपी अग्नि मेघ मे स्थान को ग्रहण करता है वैसे ही वह (**उत्सस्य**) मेघ अथवा कूपवत उन्नत या अवनत, ऊंचे या नीचे जन समुदाय के (**मध्ये**) मध्य मे (**निहित पद**) स्थित अधिकार को (**वे**) पाता है ॥१॥

भावार्थ—वह प्रभु, वह अग्नि, विभिन्न धनो एव ऐश्वर्यों का सागर है। वह विभिन्न जनो का स्वामी होकर हमारे हृदयो को विकसित करता है। अन्तरिक्ष मे निहित सूक्ष्म जल को सींचता है। उसी भांति सुयोग्य शासकवर्ग व शासितवर्ग के समीप वह उत्तम पद पर विराजता है। इसी प्रकार शासक भी विज्ञान साधनो के द्वारा सारे राष्ट्र को सुविधाएं उपलब्ध कराए ॥१॥

समानं नीळं वृषणो वसानाः सञ्जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥

पदार्थ—(**वृषण**) बलशाली (**महिषा**) महत् जन (**समान नीळं वसाना**) समान पद को धारण कर (**अर्वतीभि**) शत्रु संहारक सेनाओ के सहित (**सञ्जग्मिरे**) साथ-साथ रहें। (**कवय**) विद्वान् (**ऋतस्य पद नि पान्ति**) न्याय पद अक्षय रक्खें। (**गुहा**) बुद्धि मे (**पराणि नामानि**) विनयकारी उपायो को (**दधिरे**) धारें ॥२॥

भावार्थः—बलशाली महत्जन और समान पद को धारण करते हुए विद्वत् जन न्याय पद को अक्षुण्ण रखें और बुद्धि मे विनयकारी उपायो को धारें ॥२॥

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥

पदार्थ—(**ऋतायिनी मायिनी**) अन्न सम्पन्न बुद्धिमान् माता-पिता जिस भांति (**शिशु सं दधाते**) शिशु का पालन-पोषण करते हैं (**वर्धयन्ती शिशु मित्वा जज्ञतु**) उसे बढाते हुए, तोल-मापकर बड़ा करते हैं, उसी भांति शासित और शासक दोनो भूमि और आकाश के समान अधरोत्तर रह कर (**ऋतायिनी**) अन्न एवं तेज से युक्त, (**मायिनी**) धन व बल से युक्त हो (**स दधाते**) साथ-साथ रहें और (**शिशु**) शासक राजा को (**मित्वा**) बना कर (**वर्धयन्ती**) उसका वर्धन करते हुए (**जज्ञतुः**) प्रकट करें एव (**चरत. ध्रुवस्य**) जड व चेतन दोनो के (**विश्वस्य**) विश्व के (**नाभिं तन्तु**) विस्तार करने वाले को (**मनसा**) ज्ञानपूर्वक (**वियन्त**) जानकर (**कवे**) प्रभु के सम्बन्ध मे भी (**चित्**) ज्ञान पाए ॥३॥

भावार्थ—बुद्धिमान् माता-पिता, जिस भांति शिशु का पालन-पोषण करते हैं उसी प्रकार शासित और शासक दोनों भूमि आकाशवत् अधरोत्तर रहकर अन्न एव तेजयुक्त धन व बल से सम्पन्न होकर राजा को शासक बनाकर उसे बढ़ाते हुए जड व चेतन दोनो का विश्व विस्तार करने वाले को ज्ञानपूर्वक जानकर उसके [प्रभु के] संबन्ध मे ज्ञान प्राप्त करें ॥३॥

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४॥

पदार्थ—जिस भांति (**ऋतस्य वर्तनय**) अन्न उत्पादक विद्वान् (**वाजाय इष**) अन्न को कमनीय (**प्रदिव सुजातम् सचन्ते**) तेजस्वी सूर्य से उपजे मेघ को या परमाकाश स्थित सूर्य को कारण समझते हैं उसी तरह (**ऋतस्य वर्तनय**) सत्य निर्णय व ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले जन (**वाजाय इषः**) ऐश्वर्य इच्छा करते हुए (**प्र-दिव**) ज्ञान व तेज से (**सु-जातम्**) सुवन्दित विद्वान् व शासक को (**सचन्ते**) प्राप्त होते हैं (**रोदसी**) आकाश व भूमि दोनो (**अधीवास वावसाने**) सूर्यरूप अग्नि को अध्यक्षवत् धारण कर (**घृतै अन्नै**) जलो व अन्नों से (**मधूना**) मधुर पदार्थों के उपजाने वाले सूर्य की महिमा बढ़ाते हैं उसी भांति (**रोदसी**) शत्रुमर्दक रुद्र, सेनापति और उसकी सेना मिलकर अपने पर (**अधीवास वावसाने**) उत्तरीयपट के समान अधिशासक को धारण करते हुए (**घृतं अन्नै.**) जलो और अन्नो से (**मधूनां**) सुखदायक पदार्थों व वृषभो के अध्यक्ष को (**वावृधाते**) बढ़ाएं ॥४॥

भावार्थ—तेजशक्ति व अन्नशक्ति को प्रदान कर मनुष्यों इत्यादि प्रजा को समृद्ध करने हेतु द्युलोक सूर्य से तेज व शक्ति पाता है। पृथिवीलोक को सूर्य से अन्न शक्ति प्राप्त होती है, उसी भांति गुणवान् शासक प्रजा को ज्ञान व अन्न उपलब्ध कराने की कामना करें ॥४॥

सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५॥

पदार्थ—(**विद्वान्**) विद्वत् जन (**सप्त**) सात या गतिमान् (**स्वस**) स्व आत्मा से ही उपजने वाली (**अरुषी**) कान्तियुक्त सात ज्वालाओ के तुल्य नेत्र, नाक, कान, मुख स्थित सात प्राणधाराओ को (**वावशानः**) वश मे करता हुआ (**दृशे**) बाह्य पदार्थ को देखने (**मध्वः कम् उत् जभार**) मधुर रसरूप मधुर सुख को शिर स्थान मे प्रकटाता है और वह (**पुराजा.**) पूर्ववत् जन्म धारक जीव (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष स्थित सूर्यवत् अन्त करण मे स्थित रहकर उन सब प्राणो को (**अन्त येमे**) भीतर ही बांधे रखता है और (**वव्रिम् इच्छन्**) अपने बाह्य देह की कामना करता हुआ (**पूषणस्य अविदत्**) पोषक माता-पिता को पाता है। उसी भांति (**विद्वान्**) ज्ञानी, ऐश्वर्यपद प्राप्त करने वाला शासक (**स्वसः**) स्वय राष्ट्र सचालन मे कुशल (**अरुषीः**) रोषादि रहित सौम्यस्वभाव युक्त (**सप्त**) सात प्रकृतियों की (**वावशान**) कामना करता है और उन्हें वश मे करता हुआ, (**मध्व**) प्रजा को तृप्ति देने वाले बल अथवा राष्ट्र को (**दृशे**) देखने (**कम् उत् जभार**) उन्हें उत्तम पद पर स्थापित करे। वह (**पुराजा**) पूर्ववत् प्रसिद्ध राजा (**अन्तरिक्षे अ त.**) स्वराष्ट्र मे उन सातो को (**येमे**) नियमबद्ध रखे और (**वव्रिम्**) तेजस्वी रूप की कामना करता हुआ (**पूषणस्य अविदत्**) राष्ट्र पोषक वर्ग को पाए ॥५॥

भावार्थ—जिस भांति सूर्य अपनी सात रंगयुक्त किरणो को संसार को दृष्ट कराने हेतु जलयुक्त आकाश से उभरता है और स्वय पहले आकाश मे गुप्त रहता है और जल को बहाकर जलमय आकाश से बाहर दर्शाता है, उसी प्रकार सूर्य तुल्य शासक राजा, प्रजा व राष्ट्र को उन सात नियमो मे आबद्ध रखे और तेजस्वी रूप की कामना करता हुआ राष्ट्र पोषक वर्ग को प्राप्त करे ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

पदार्थ—(**कवय सप्त मर्यादाः ततक्षु**) विद्वानो ने सात मर्यादाएं बताई हैं। मानव को खाने या नाश करने से उन्हें 'मर्यादा' कहा है। (**तासाम् एकाम् इत्**) उनमे से एक को भी जो (**अभि गात्**) प्राप्त हो वह (**अंहुर.**) पापी है। (**उपमस्य आयो**) समीप स्थित जन को (**स्कम्भ**) स्तम्भ तुल्य बांधने वाला, (**पथां विसर्गे**) मार्गों को विभिन्न दिशाओ में जाने के केन्द्र मे (**स्कम्भ**) दीपक के रूप मे या (**धरुणेषु स्कम्भ**) गृह मे लगे धरन दण्डो के मध्य स्तम्भ के तुल्य राजा भी (**धरुणेषु**) राष्ट्र के मध्य में केन्द्रस्थ स्तम्भ तुल्य (**तस्थौ**) स्थिर होकर शोभित हो। राजा व व्यवस्थापक दोनो का यह कर्त्तव्य है ॥६॥

भावार्थः— विद्वानो ने जीवन की सात मर्यादाएं निर्धारित की हैं। ये सात मर्यादाएं हैं—सुरापान, जूआ खेलना, नारी व्यसन, मृगया, कटु वचन, कठोर दण्ड व दूसरे पर मिथ्या आरोप। इनकी ओर कदापि नहीं जाना चाहिए। इनसे बचने वाला प्रतिष्ठा व उच्च स्थिति को पाता है ॥६॥

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।

अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७।३३।५॥

पदार्थः—(परमे व्योमन्) श्रेष्ठतम, विशेष रक्षक और (दक्षस्य) बल व ज्ञान के (जन्मन्) उत्पत्ति स्थल और (अदितेः-उपस्थे) अखण्ड एवं अदीनशक्ति-धारक अध्यक्ष पद पर ही (असत् च सत् च) असत् व सत् दोनों टिके हैं । (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य व न्यायव्यवस्था का (प्रथम-जाः) सर्व प्रथम प्रकट करने वाला (अग्निः ह) निश्चय से वह तेजस्वी प्रभु है । (पूर्वे आयुनि) पहले जन समुदाय मे भी वही (वृषभः च) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला और (धेनुः) गौ के तुल्य पालक था ॥७॥३३॥५॥

भावार्थ—श्रेष्ठतम तथा विशेष रक्षा करने वाले और बल तथा ज्ञान के उत्पत्ति स्थल एवं अखण्ड व अदीनशक्ति धारण करने वाले प्रकाश पद पर ही असत् सत् दोनों है । हमारे लिए सत्य व न्याय व्यवस्था को प्रकट करने वाला निश्चित रूप से ही तेजस्वी राजा या प्रभु है । शासक को भी राष्ट्र के सब मनुष्यादि व वनस्पतियों के पालन एवं गौ तथा अन्य पशुओं की रक्षा करनी चाहिए ॥७॥३३॥५॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

[६]

त्रित ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । २ विराट् पंक्तिः । ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् पंक्तिः । ६ पंक्तिः । ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।

ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१॥

पदार्थ—(अग्नेः) अग्निसम तेजयुक्त के (शर्मन्) गृह अथवा सुख मे (अभिष्टौ) अभीष्ट फल प्राप्ति हेतु (जरिता) स्तुति करने वाला व्यक्ति (यस्य अवोभिः) जिसके ज्ञानों व स्नेहों से (एधते) वृद्धि पाता है और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः भानुभिः) उत्तम कान्तियों से (ऋषूणां पर्येति) ज्ञानदर्शी विद्वानों व छात्रों के मध्य (परि वीतः) कान्तियुक्त सूर्य के जैसा तेजस्वी वा उपवीत होकर (परि एति) प्राप्त होता है (सः) वही (वि-भावा) विशेष कान्ति से प्रकाशित (अयं सः) यह (अग्निः) 'अग्नि' नाम से सम्बोधित होने योग्य है ॥१॥

भावार्थ—जो उत्तम कान्तियों से ज्ञानदर्शी विद्वानों व विद्यार्थियों के मध्य कान्तियुक्त सूर्यतुल्य तेजस्वी वा उपवीत होकर प्राप्त होता है, वही विशेष कान्ति से अग्नि नाम से सम्बोधित किये जाने योग्य है । वह तेजस्वी उपासक को अभीष्ट फल प्रदान करता है ॥१॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।

आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

पदार्थ—जिस भांति (भानुभिः) प्रकाशों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशक हो (वि भाति) विशेष रूप से आलोकित और प्रकाश देता है वैसे ही (यः) जो (अजस्रः) अनश्वर, (ऋतावा) ज्ञानवान् जन भी (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों व विजयी वीरों से (वि-भाति) दीप्त है और (यः) जो (सखिभ्यः) मित्रों हेतु (सख्या आ विवाय) सत्य भाव से प्राप्त होता है वह (सप्तिः न-अत्यः) वेगवान् अश्व के तुल्य (अपरिह्वृतः) कुटिल मार्ग का अनुगमन नहीं करता ॥२॥

भावार्थः—जिस भांति प्रकाशों से अग्नि प्रकाशक होकर विशेष आलोक एवं प्रकाश देता है वैसे ही जो अनश्वर परमात्मा है वह अपने उत्तम गुणों व विजयी वीरों से दीप्त होता है । वह सूर्यरूप मे आकाश मे अपने प्रकाश से ग्रहों के साथ मित्रवत् रहता है ॥२॥

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।

आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वस्याः देववीतेः) संसार के समस्त दिव्य भोग-प्राप्ति का स्वामित्व करता है (ईशे) समर्थ है और जो (विश्वायुः) सबको पूर्ण आयु प्रदान कर (उषसः) प्रभात के (वि-उष्टौ ईशे) प्रकाशित करने मे सक्षम है । (यस्मिन् अग्नौ) जिस ज्ञानमय परमात्मा में (मना हवींषि) विचारणीय ज्ञान ही अग्नि मे हवि तुल्य हैं, वह (अरिष्ट-रथः) मंगलदायक रमणीय रूप वाला परमात्मा (शूषैः स्कभ्नाति) अपने बलों से समस्त जगत् को अपने मे आश्रय प्रदान करता है ॥३॥

भावार्थ—जो प्रभु विश्व के समस्त दिव्य भोग प्राप्ति का स्वामित्व करता है समर्थ है और जो सबको पूर्णायु प्रदान करता है, वह प्रभात को प्रकाशित करने मे समर्थ है । जिस ज्ञानमय परमात्मा में विचार योग्य ज्ञान ही अग्नि में हवि के तुल्य है वह मंगलदायक रमणीय रूप वाला परमात्मा अपने बलों में सकल जगत् को अपने में आश्रय प्रदान करता है ॥३॥

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति । मन्द्रो

होता स जुह्वा यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह (शूषेभिः वृधः) अपने बलों से प्रवृद्ध और अन्यों को बढ़ाने वाला और (अर्कैः जुषाणः) स्तुत्यादि से प्रसन्न करने योग्य, (रघुपत्वा) अत्यन्त समय में प्राप्त होने वाला, (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (देवान् अच्छ जिगाति) सारे विद्वानों, वीरों को आदर पूर्वक पाता है । वह (मन्द्रः) स्तुतियोग्य (होता) सुखदायक, (जुह्वा यजिष्ठः) वाणी द्वारा सबका सत्कार कर्ता, (सं-मिश्लः) सबके साथ सम्बद्ध, (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवान् आ जिघर्ति) उत्तम जनों तथा वीरों को प्राप्त कर पाता है ॥४॥

भावार्थ—प्रभु उपासक जनों की वन्दना द्वारा आनन्दित होता है । वह उन पर सर्व प्रकार से उदारता दिखाता है अथवा उन्हें अपनाता है । वह परमात्मा उत्तमजनों एवं अपनी उपासना करने वालों को आनन्द प्रदान करता है ॥४॥

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।

आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्रं न रेजमानम्) विद्युत् के समान आलोकित (उस्राम्) सुखदायी ऐश्वर्यों के देने वाले, (तम् अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी व्यक्ति को (नमोभिः गीर्भिः) विनययुक्त वाणियों के द्वारा (आ कृणुध्वम्) प्राप्त हो । (यं) जिसे (विप्रासः) विद्वत्जन (मतिभिः) स्तुतियों द्वारा (आ गृणन्ति) उपदेश करते हैं उस (जातवेदसं) ज्ञानयुक्त (सहानां) सकल बलों के (जुह्वम्) प्रमुख दाता को तुम भी (आ कृणुध्वम्) प्राप्त हो जाओ ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा दुष्टजनों को दण्ड देने वाला है, उसकी वन्दना स्तुति करनी चाहिये । वह सकल संसार का उत्पन्न करने वाला है और विद्युत् एवं वायु आदि सभी को अपने अधीन रखने वाला है ॥५॥

स यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।

अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस प्रभु के अधीन (विश्वा वसूनि सं जग्मुः) बसाने वाले सकल ऐश्वर्य एकत्र हैं, और जिसके अधीन (वाजे सप्तीवन्त अश्वाः न एवैः) युद्ध मे तीव्रगामी अश्वों के तुल्य सभी व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा एकत्र है, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! वह तू (अस्मे) हमारे हेतु (इन्द्र वाततमाः) तेजस्वी जनों से प्राप्त (ऊती) रक्षाएं और (अर्वाचीना ऊतीः) नवीनतम रक्षा के साधन प्राप्त (आ कृणुष्व) कराओ ॥६॥

भावार्थ—जिसके अधीन सकल ऐश्वर्य है और जिसके अधीन युद्ध मे तीव्रगामी अश्वों के तुल्य सभी व्यक्ति अपने कर्मों सहित एकत्र हैं, हे तेजस्विन् ! वह तू हमारे लिए तेजस्वी जनों से प्राप्त रक्षाएं और नवीनतम रक्षा साधन प्रदान करा ॥६॥

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।

तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७।१॥

पदार्थ—(अध हि) तेरी कृपा मे हे (अग्ने) प्रभो ! तू (मह्ना) महान् शक्ति मे (सद्यः जज्ञानः) तुरन्त साक्षात् होकर (हव्यः) स्तुत्य (बभूथ) होता है । (ते देवासः) वे उपासक जन (ते केतम् अनु आयन्) तेरे स्वरूप का अनुभव करते हैं । (अध) और वे (प्रथमासः ऊमाः) गुणों मे उत्कृष्ट होकर (अवर्धन्त) समृद्धि पाते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे प्रभो ! आपकी कृपा से महान् शक्ति तुरन्त प्रकट होकर स्तुत्य होती है । उपासक जन भी तुम्हारे स्वरूप का अनुगमन करते हैं और गुणों मे उत्कृष्ट होकर समृद्धि प्राप्त करते हैं ॥७॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

---

[७]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।

सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१॥

पदार्थ.— हे (**देव**) प्रकाशस्वरूप देव ! (**अग्ने**) ज्ञानवान् ! तू (**विश्वायु.**) सब प्रकार का अन्न आदि है। तू (**यजथाय**) जीवन सम्पादन के लिए (**न**) हमें (**दिव पृथिव्या.**) आकाश और भूमि से (**स्वस्ति**) कल्याण (**वेहि**) प्रदान करा। हे (**दस्म**) सर्वदुःख नाशक ! (**तव प्र केतै**) तेरे ज्ञानों के प्रकाशों से (**सचेमहि**) हम सदा तेरी संगति करें। हे (**देव**) तेजस्विन् ! तू (**न**) हमारी (**उरुभि. शंसै·**) प्रशसनीय अनुशासनों से (**उरुष्य**) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थ —हे प्रकाशस्वरूप देव ! तुम ज्ञानवान् हो तथा सब प्रकार का अन्न आदि तुम जीवन सम्पादन के लिए हमे आकाश और भूमि से कल्याण प्रदान करो। हे सर्वदुख विनाशक ! तेरे ज्ञान के प्रकाश से हम सदा तेरी सगति करें। हे देव ! हमारी प्रशसनीय अनुशासन से रक्षा कर ॥१॥

इमा अंग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरुभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) परमात्मन् ! (**इमा मतय**) ये मनुष्य प्रजाए (**तुभ्य जाता**) तेरी स्तुति के लिए प्रकटी (**गोभि अश्वेभि राध गृणन्ति**) धेनुओ तथा अश्वो समेत सकल धन (**तुभ्य**) तुझे ही जताती है। (**मर्त**) मानव (**यदा**) जब (**ते भोगम् अनु आनट्**) तेरे ही सकल भोग्य पदार्थ प्राप्त करता है, हे (**वसो**) बसाने वाले ! हे (**सुजात**) गुणो से प्रकाशित प्रभो ! तब वह मानव (**मतिभि. दधान:**) मतियो से उसे पाता है ॥२॥

भावार्थ —हे प्रभो ! ये मनुष्य प्रजाए तुम्हारी स्तुति के लिए प्रकटी हैं। धेनुओ और अश्वो समेत सकल तुम्हारा ही है। मानव तुम्ही से अपने सकल भोग्य पदार्थ पाता है। हे बसाने वाले ! हे गुणो से आलोकित प्रभो ! मानव बुद्धि से तुम्हे पाता है ॥२॥

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३॥

पदार्थ,—मैं (**अग्निम्**) परमात्मा को पापो के जलाने वाला ज्ञान के देने वाला ही (**पितर मन्ये**) पालक समझता हूँ। (**अग्निम् आपिम्**) उस अग्रणीय को ही सखा मानता हूँ। (**अग्नि भ्रातरम**) उस तेजस्वी को ही भ्राता मानू और (**सदम् इत्**) सदैव ही (**सखायम्**) मित्र (**मन्ये**) मानू। मैं (**बृहत. अग्ने**) उस महान् प्रभु के (**अनीक**) बहु बल की (**सपर्यम्**) वन्दना करता हूँ। (**दिवि**) आकाश मे (**सूर्यस्य**) सूर्य के तुल्य सबके सञ्चालक प्रभु के (**यजत शुक्र**) वन्दनीय शुद्ध स्वरूप की मैं वन्दना करू ॥३॥

भावार्थः—मै परमात्मा को पापो का भस्म करने वाला एव ज्ञानदाता तथा पालक समझता हूँ। उसे ही अपना सखा मानता हूँ। उस तेजस्वी को ही मै अपना भ्राता मानू और सदैव ही मित्र मानू। मै उस महान् प्रभु के बल की वन्दना करता हूँ। मै आकाश मे सूर्य के तुल्य सब सचालक वन्दनीय के शुद्ध स्वरूप की उपासना करू ॥३॥

सिध्रा अंग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहंभिर्वाममंस्तु ॥४॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) परमात्मन् ! (**अस्मे धिय**) हमारी बुद्धि, स्तुतियां और हमारे कार्य (**सिध्रा**) सिद्ध होकर (**अस्मे सनुत्री**) हमे फल देने वाले हो। तू (**नित्य-होता**) सदैव ऐश्वर्य दाता, प्रभु (**य दमे त्रायसे**) जिसे गृह तथा नियन्त्रण मे रख कर उसका सरक्षण करता है (**स ऋतावा**) वह ज्ञान एव धन का स्वामी, (**रोहित् अश्व**) लाल अश्वो वाला तथा वह (**पुरु क्षुः**) अनेक अन्नो का स्वामी हो जाता है। हे प्रभो ! (**द्युभि अहभि**) तेजोयुक्त सकल दिवस (**अस्मा वामम् अस्तु**) हमे धन प्रदान करो ॥४॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! हमारी वन्दनाए तथा कार्य सिद्ध होकर हम फल प्रदान करने वाले हो। तू सदैव ऐश्वर्यों का दाता प्रभु जिस गृह तथा नियन्त्रण मे रखकर उसे सरक्षण देता है वह सकल ज्ञान व धन एव अनेक अन्नो का स्वामी हो जाता है। हे प्रभो ! तेजयुक्त सकल दिवस हमे धन प्रदान करो ॥४॥

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्यं जारम् ।
बाहुभ्यांमग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यंसादयन्त ॥५॥

पदार्थ —(**द्युभि हितम्**) ज्योति से सपन्न, (**मित्रम् इव प्रयोग**) मित्र के समान योग देने वाला, (**प्रत्नम्**) शाश्वतिक, (**ऋत्विजम्**) ऋतु-ऋतु मे यज्ञ सम्पादन करने वाले, (**अध्वरस्य**) यज्ञरूप ससार के (**जारम्**) विनाशकर्त्ता, सर्व-प्रकाशक प्रभु को (**बाहुभ्याम् अजनयन्त**) जैसे मथ कर प्रकटते हैं उसी भांति उस प्रभु की (**बाहुभ्यां अजनन्त**) भुजाए पसार कर याचना करते हुए महत्ता प्रकटाते है और उसी (**होतारं**) जीवनदाता को (**विक्षु**) प्रजाओ के मध्य (**नि असादयन्त**) बैठाते हैं ॥५॥

भावार्थ —ज्योति सम्पन्न, मित्रतुल्य योग देने वाला, शाश्वतिक हर ऋतु मे यज्ञ सम्पादन करने वाले, यज्ञरूप ससार के विनाशकर्त्ता, सर्वप्रकाशक अग्नि को जैसे मथकर प्रकटाते हैं उसी भांति उस परमात्मा की भुजाएं फैलाकर याचना करते हुए महत्ता प्रकटाते और उसी जीवनदाता को प्रजा में प्रतिष्ठित करते हैं ॥५॥

स्वयं यंजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायंज ऋतुभिर्देव देवानेवा यंजस्व तन्वं सुजात ॥६॥

पदार्थ —हे (**देव**) इष्ट देव ! तू (**देवान्**) सूर्यादि लोकों को (**स्वय यजस्व**) स्वय प्रकाशित करता है। (**अप्रचेता**) अल्पज्ञ (**पाक**) दुःख तप्त पुरुष (**ते किं कृणवत**) तेरी क्या वन्दना करेगा ? हे (**देव**) दानी ! तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं से (**यथा देवान् अयज·**) सूर्य, वायु, जलादि को प्रेरित करता है (**एवा**) वैसे ही हे (**सु-जात**) सर्वोत्तम ज्योतिदाता ! (**तन्व**) इस देह को भी तू (**यज**) गुणो से पुष्ट कर ॥६॥

भावार्थः—हे इष्ट देव ! तुम सूर्यादि लोको को स्वय प्रकाशित करते हो। अल्पज्ञ दुःख तप्त जन भला तेरी क्या वन्दना करेंगे ? हे दानी तुम ऋतुओं से सूर्य, वायु जलादि प्रेरित करते हो। उसी भांति हे ज्योतिदाता हमारी देह को भी गुणों से पुष्ट कर ॥६॥

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३अप्रयुच्छन् ॥७॥२॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) प्रभो ! तू (**न· अविता उत गोपा भव**) हमारी बाहरी भय से रक्षा कर। तू (**न वय कृत् उत वयोधा भव**) हमे जीवन देता है और हमारी रक्षा करता है। तू (**न. सुमह हव्यदाति रास्व**) हमे विपुल अन्नादि पदार्थ प्रदान कर। (**उत न तन्व**) हमारे शरीरो की भी (**अप्रयुच्छन्**) उपेक्षा न करते हुए (**त्रास्व**) रक्षा कर ॥७॥

भावार्थ.—हे प्रभो ! तुम हमारी बाह्य भय से रक्षा करो। तुम हमे जीवन देते हो, हमारी रक्षा करते हो और हमे विपुल अन्न आदि पदार्थ प्रदान करते हो। आप हमारी उपेक्षा न करते हुए हमारे शरीरो की रक्षा करें ॥७॥

इति द्वितीयो वर्ग ॥

[८]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषि ॥ १—६ अग्नि ७—९ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ५—७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१॥

पदार्थ —वह (**अग्नि**) परमात्मन् (**बृहता केतुना**) महान् ज्ञान से सूर्य तुल्य (**प्र याति**) सर्वोपरि पद को प्राप्त हो रहा है। वह (**वृषभ**) सुखो का देने वाला (**रोदसी**) आकाश व भूमि को व्याप कर (**आ रोरवीति**) गर्जन करता है (**दिव चित् अन्तान्**) गगन के छोरो और (**उपमाम्**) समीप के क्षेत्रो मे सबको (**उद् आनट्**) व्याप कर सर्वोपरि विराजमान है। वह (**महिष·**) महान् (**अपाम् उपस्थे**) प्रकृति के परमाणुओ एव जीवो के ऊपर स्थित रहते हुए (**ववर्ध**) सबसे महान है ॥१॥

भावार्थ —वह परमात्मा महान् ज्ञान से सूर्यतुल्य सर्वोपरि पद को प्राप्त हो रहा है। वह सुखो का दाता है आकाश व भूमि मे व्याप्त होकर गर्जता है। गगन के छोरो व समीप के क्षेत्रो मे सबको व्याप कर सर्वोपरि आसीन है। वह महान् प्रकृति के परमाणुओं एव जीवो के ऊपर स्थित रहते हुए सबसे महान् है ॥१॥

मुमोदु गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥२॥

पदार्थ —(**स**) वह आत्मा (**गर्भ**) सबका ग्रहणकर्त्ता (**वृषभ**) प्रकाश सुखो का वर्षक, (**ककुद्मान्**) तेजवीर्य वाला, (**अस्रेमा**) श्रेष्ठतम, (**वत्स**) स्तुत्यक, (**शिमीवान्**) कर्म कुशल (**अरावीत्**) उपदेश करता है। (**स.**) वह (**देवताति**) लोको तथा किरणो मे सूर्य के समान (**स्वेषु क्षयेषु**) अपने लोको मे (**उद्यतानि कृण्वन्**) उत्तम प्रबन्ध करता हुआ (**प्रथम**) सब प्रथम (**जिगाति**) विराजता है ॥२॥

भावार्थ —वह आत्मा को सबसे ग्रहण करता है। वह प्रकाश सुखों का वर्षक तेज वीर्यवान, श्रेष्ठतम, स्तुत्यक, कर्मकुशल उपदेशक है। वह लोको तथा किरणो मे सूर्य के तुल्य अपने लोको मे उत्तम व्यवस्था करता हुआ सर्व प्रथम विराजता है ॥२॥

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्धन्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥३॥

पदार्थ —(**य**) जो (**पित्रोः**) माता-पिता के समान आकाश तथा भूमि के (**मूर्धानं**) सर्वोच्च भाग का निर्माता है उस (**सूरः**) सर्वप्रेरक जन के (**अर्णः**) तेज को (**अध्वरे दधिरे**) यज्ञ मे अग्नि तुल्य दिव्य पदार्थ धारते हैं। (**अस्य पत्मन्**) इसके अनुशासन मे (**अरुषी.**) तेजस्विनी (**अश्व बुध्नाः**) भोक्ता आत्मा से बद्ध

(तन्व) विभिन्न देहों को (ऋतस्य योनौ) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म मे जीवगण (जुषन्त) सेवन करते हैं ॥३॥

भावार्थ.—जो माता-पिता के समान आकाश तथा भूमि के सर्वोच्च भाग का निर्माता है उस सर्वप्रेरक जन के तेज को यज्ञ मे अग्नितुल्य दिव्य पदार्थ धारते हैं। उसके अनुशासन मे तेजस्विनी भोक्ता आत्मा से बद्ध विभिन्न देहो को यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म मे जीवगण सेवन करते हैं ॥३॥

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।

ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै ॥४॥

पदार्थ—हे (वसो) सर्व व्यापक आत्मन् ! जैसे (उष.-उष:) प्रति प्रात-काल में (त्वम् अग्रम् एषि) तू सर्वप्रथम पद पाता है, तू (यमयो·) दिवस-रात के जोडो म सूर्य तुल्य (यमयोः) भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध से बद्ध जीव एव प्रकृति मे (वि-भावा अभव) विशेष आभा से युक्त है। (ऋताय) सञ्चालन करने हेतु तू (सप्त पदानि दधिषे) सातो लोको को धारता है। (स्वायै तन्वे) अपने विस्तृत जगन्मय देह हेतु (मित्र जनयन्) मित्र, वायु, जल इत्यादि को प्रकट करता है। उसी भाति प्राण अपान यम मे प्रभु स्वयं के प्राण को प्रकट कर, सात प्राणो को धारता है ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक प्रभो ! जैसे प्रति प्रात काल मे तुम सर्वप्रथम पद पाते हो, तुम दिवस रात के जोडो मे सूर्य के समान भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध से वह जीव एव प्रकृति मे विशेष आभा से युक्त हो। सचालनार्थ तुम सात लोको को धारते हो। अपने विस्तृत जगन्मय देह हेतु मित्र, वायु, जल इत्यादि को प्रकटाते हो। आप ही सप्त प्राणो को धारते हो ॥४॥

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।

भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥३॥

पदार्थ—तू (गोपा) इन्द्रियो का पालन करने वाला होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य तथा मूल प्रकृति का (चक्षु भुव) प्रकाशक है। तू ही (ऋताय वेषि) मूल कारण प्रकृति मे व्यापता है इसी से (वरुण भुव) तू श्रेष्ठतम है। हे (जातवेद) ऐश्वर्यों व ज्ञानो के स्वामिन् ! तू ही (अपां नपात्) जलो मे पाद-विहीन नौका के समान तारने वाला है तू (यस्य हव्य जुजोष) जिसके उपकार-वचन प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूत· भुव) दूत एव ज्ञान उसे देता है ॥५॥

भावार्थ.—तू इन्द्रियो का पालन करने वाला इस महान् सत्य तथा मूल प्रकृति का प्रकाशक है। तू ही मूल कारण प्रकृति मे व्यापता है, इसी से तू श्रेष्ठतम है। हे ऐश्वर्यों व ज्ञानो के स्वामी तू ही जलो मे पादविहीन नौका के समान तारने वाला है तू जिसके उपकार वचन प्रेम सहित स्वीकारता है उसे ज्ञान प्रदान करता है ॥५॥

इति तृतीयो वर्ग ।

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।

दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् ! तू (यज्ञस्य) यज्ञ का तथा (रजस च) लोको का (नेता) संचालन करता (भुव) है, (यत्र) जिनमे तू (शिवाभि) कल्याण करने वाला (नि-युद्भि·) प्रेरक शक्तियो से (सचसे) व्याप्त है। तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को प्रदान करने वाले सूर्य को (मूर्धा न) शिरोवत् (दधिषे) धारता है और तू ही (हव्यवाहम्) ज्ञान दायिनी (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि, जिह्वा के समान सत्य वेदवाणी को (चकृषे) प्रकाशित करता है ॥६॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! तू यज्ञ का तथा लोको का सचालक है। तू ही कल्याण करने वाला एव प्रेरक शक्तियों से सम्पन्न है। तू ही आकाश में तेज प्रदान करने वाले सूर्य को शिरोवत् धारता है और तू ही ज्ञानदात्री अग्नि, जिह्वा के तुल्य सत्य वेदवाणी को प्रकाशित करता है ॥६॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।

सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७॥

पदार्थ—(त्रित) त्रिगुणो से बद्ध जीव (परस्य पितु·) परम पिता की (एवैः) विभिन्न ज्ञानो तथा कर्मों से (धीतिम्) उपासना की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (क्रतुना) कर्म के द्वारा (अस्य) उसको (अन्त वव्रे) अपने भीतर वरे। (पित्रो· उपस्थे) माता-पिता की गोद मे बैठे शिशु के समान वह जीव भी ब्रह्म एवं प्रकृति की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद प्राप्त कर (जामि ब्रुवाणः) वन्दना करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधाओ से सघर्ष करने के साधन प्राप्त करता है ॥७॥

भावार्थः—त्रिगुणों से बद्ध जीव परमपिता की विभिन्न ज्ञानो एवं कर्मों से उपासना की कामना करता हुआ कर्म के द्वारा उसे अपने भीतर वरण करे। माता-पिता की गोद मे शिशु के तुल्य जीव भी ब्रह्म व प्रकृति की गोद मे प्राप्त हो ॥७॥

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।

त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥८॥

पदार्थ—(स.) वह आत्मा (पित्र्याणि) पालक पिता से मिले हुए (आयुधानि) उपकरणो को वीर के समान (विद्वान्) प्राप्त कर उनका ज्ञान पाकर वह (आप्त्य) लिंग शरीर स्थित जीव (इन्द्रेषितः) प्रभु से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरों या गुणो से सम्पन्न (सप्त रश्मि) सात बन्धनो से बधी इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रित) त्रिगुणो मे बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु की (गा नि ससृजे) वाणियो को प्रकटाता है ॥८॥

भावार्थ—वह आत्मा पालक पिता से मिले हुए उपकरणो को वीर के तुल्य प्राप्त कर उनका ज्ञान पाकर वह शरीर स्थित जीव प्रभु से प्रेरित होकर त्रिगुण सम्पन्न सात बन्धनो से बधी इस देह को प्राप्त होकर उस प्रभु की वाणियो को प्रकटाता है ॥८॥

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।

त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९॥४॥

पदार्थः—वह (सत्पति) सज्जनो का रक्षक प्रभु (मन्यमानम्) गर्व करने वाले (भूरि ओज) बहुत बल (उद् इन क्षन्तम्) प्राप्त कराने वाले को (अव अभिनत) भेद देता है और वह (विश्व-रूपस्य त्वाष्ट्रस्य) उस आत्मा के रूप से युक्त देह की (गोनाम् आचक्राण) इन्द्रियो के स्थान बनाने को चेष्टारत (त्रीणि शीर्षाणि) तीन शिरस्थ प्राणो को (परा वर्क्) छेदता है, वह शिर मे प्राण, मुख तथा कान इनके तीन छिद्र निर्माण करता है ॥९॥

भावार्थ·—वह सज्जनो का रक्षक प्रभु गर्व करने वाले बहुत बल प्राप्त कराने वाले को भेद देता है और वह उस आत्मा के रूप से युक्त देह की इन्द्रियो के स्थान बनाने की चेष्टारत तीन शिरस्थ प्राणो को छेदता है। वह शिर मे प्राण, मुख तथा कान इनके तीन छिद्र निर्माण करता है ॥९॥

इति चतुर्थो वर्ग ॥

---

[९]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष ऋषि ॥ आपो देवता ॥ छन्द —१-४, ६ गायत्री। ५ वर्धमाना गायत्री। ७ प्रतिष्ठा गायत्री ८, ९ अनुष्टुप् ॥ नवमं सूक्तम् ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥१॥

पदार्थ—(आप) हे आप्त जनो ! आप (मयः भुव स्थ) जलो के तुल्य सुख को उपजाने वाले हो। (ता) वे आप (ऊर्जे) हमे उत्तम बल देने हेतु, (दधातन) धारण करो, आप हमे (महे रणाय) महान् सुख प्राप्त करने तथा (चक्षसे) ज्ञानदर्शन हेतु (दधातन) धारण करें ॥१॥

भावार्थ—हे आप्त जनो ! आप जलों के तुल्य सुखो को प्रदान करने वाले हो। आप हमे उत्तम बल देने हेतु धारण करो, आप हमे महान् पुरुष प्राप्त करने तथा ज्ञानदर्शन हेतु धारण करो ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥२॥

पदार्थ·—(आप) हे सर्वव्यापक प्रभो ! (उशती इव मातर) पुत्र समृद्धि को चाहने वाली माताओ के तुल्य (व य शिवतम. रस) आपका जो कल्याणदायी ज्ञान तथा बल है (तस्य) इसका (इह न भाजयत) हमे यहां श्रवण कराइये ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक प्रभो ! पुत्र समृद्धि को चाहने वाली माताओ के समान आपका जो कल्याणदायी ज्ञान तथा बल है, इसका हमे यहा श्रवण कराइये ॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥३॥

पदार्थ—हे (आपः) जल के समान शान्ति देने वाले प्रभो ! आप (जन) श्रेष्ठ ज्ञान को (जनयथ) उपजाओ, (यस्य क्षयाय) आप जिसके ऐश्वर्य को बढाते हो, (तस्मै अर गमाम) हम भी उसको शीघ्र प्राप्त करें ॥३॥

भावार्थ.—हे जल के समान शान्ति देने वाले प्रभो ! आप श्रेष्ठ ज्ञान को उपजाओ, आप जिसके ऐश्वर्य को बढाते हो, हम भी उसे शीघ्र प्राप्त करें ॥३॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥

पदार्थ—(देवी) दिव्य गुण वाले (आप) जलवत् शान्तिदाता आप्तजन तथा व्यापक प्रभु (नः श भवन्तु) हमे शान्ति प्रदान करें और वे (अभिष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिए हो। (पीतये भवन्तु) हमारे रसपानवत् पालन के हेतु भी हो। वे (नः) हमारे (श यो.) शान्तिदायक व कष्ट दूर करने के लिए (न· अभि स्रवन्तु) हमे सभी ओर से प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—हे दिव्य गुणयुक्त, जलवत् शान्तिदाता आप्तजन तथा व्यापक प्रभु हमे शान्ति प्रदान करें और अभीष्ट प्राप्ति के लिए हों। हमारे रसपान पालन हेतु भी। हमारे शान्तिदायक व कष्ट दूर करने के लिए हमे सभी ओर से प्राप्त हों ॥४॥

ईशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम् ।

अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ॥५॥

पदार्थ—जिस भांति (अप.) जल (वार्याणां) 'वारि' अर्थात् जलों से पैदा हुए वृक्ष, वनस्पति इत्यादि के (ईशाना) स्वामी है, उन्हे उत्पन्न करने और उनको बढ़ाने वाले हैं और (चर्षणीनां क्षयन्तीः) वे जल विचरणशील प्राणियो को भी इस संसार मे बसाने वाले हैं तथा उनके दोषो को दूर करते हैं ॥५॥

भावार्थ—जिस भांति जल 'वारि' अर्थात् जलों से उत्पन्न वृक्ष, वनस्पति इत्यादि के स्वामी हैं, उन्हे उत्पन्न करने और उनको बढ़ाने वाले हैं और वे जल मे विचरणशील प्राणियो को भी इस ससार मे बसाने वाले व उनके दोष मिटाने वाले हैं ॥५॥

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा ।

अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वशं॑भुवम् ॥६॥

पदार्थ—(सोम) पैदा करने वाला प्रभु (मे) मेरे हेतु (अब्रवीत्) कहता है कि (अप्सु अन्त) जलो के भीतर (विश्वानि भेषजा) सकल औषधि हैं (विश्व शम्भुवम् अग्निं च) सर्व कल्याणकारी अग्नि को भी कहता है ॥६॥

भावार्थः—जलों मे सर्वरोगो को मिटाने वाले गुण हैं, विविध प्रकार सेवन से वे प्राप्त होते हैं। जलो में अग्नि भी है, वह स्वास्थ्य की रक्षा करती है। इसमे अनेक गुण हैं ॥६॥

आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३॒॑ मम॑ ।

ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥७॥

पदार्थ—(आप) हे जलो ! (मम तन्वे) मेरी देह हेतु (वरूथ भेषजम्) रोग हरने वाली औषधि को (प्रणीत) प्रदान करो, जिससे कि (सूर्यं ज्योक् च दृशे) सूर्य जीवन भर देखता रहूँ ॥७॥

भावार्थ—जल रोगो का निवारण करने वाली औषधि देता है, वह दृष्टि को भी बढ़ाता है। इसी प्रकार विद्वान् सत्संग से अध्यात्म की दृष्टि प्रदान करते हैं ॥७॥

इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत्किं च॑ दुरि॒तं मयि॑ ।

यद्वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद्वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ॥८॥

पदार्थ—(आपः) जलो (इदम्) शरीर पर लिपटे मल को (प्रवहत) दूर बहा दो (यत् किञ्च दुरितं मयि) जो कुछ मेरा तमोगुण भाव हो उसे दूर करो (यत् वा) और जो (अहम् अभिदुद्रोह) मैं द्रोह या क्रोध करूं उसे भी हटाओ (यत् वा उत्) और जो भी (अनृत शेपे) असत्य वचन किसी को कहूँ उसे भी दूर करो ॥८॥

भावार्थ—जल मानव के शरीर का मल मिटाते हैं। वैसे ही आप्तजनो के सत्संग से मलिनता दूर हो जाती है ॥८॥

आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।

पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥९॥५॥

पदार्थः—(आप) हे जलो ! (अद्य) इस जीवन में (अनु अचारिषम्) तुम्हे अनुकूलता से सेवन करता हूँ (रसेन समगस्महि) तुम्हारे रस-स्पर्श तथा स्वाद गुण से हम सम्पन्न होते हैं अत (अग्ने) हे इन जलो के प्रेरक प्रभो ! तू (पयस्वान् आगहि) तेजस्वी बन समस्त रूप से मुझे प्राप्त हो और फिर (तं मा) उस मुझ को (वर्चसा संसृज) तेज से सम्पन्न कर ॥९॥

भावार्थ—जल के द्वारा उचित रूप से स्नान, उसका पान और मार्जन आदि का लाभ प्राप्त करना चाहिए। इसी भांति आप्तजनो से साक्षात् सत्संग और उपदेश ग्रहण कर अपने बाह्य वातावरण को बनावें और आन्तरिक सुख-शान्ति को प्राप्त करें एव इन जलो तथा आप्तजनो के स्वामी प्रेरक प्रभु के आनन्द से स्वयं को आनन्दित बनाए ॥९॥

---

[१०]

ऋषि—१, ३, ५-७, ११, १३ यमी वैवस्वती । २, ४, ८—१०, १२, १४ यमो वैवस्वत ऋषिः । १, ३, ५—७, ११, १३ यमो वैवस्वत । २, ४, ८—१०, १२, १४ यमी वैवस्वती देवते ॥ छन्द—१, २, ४, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ९, १०, १२ त्रिष्टुप् । ७, १३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ओ चि॑त्स॒खायं॑ स॒ख्या व॑वृत्यां ति॒रः पु॒रू चि॑दर्ण॒वं ज॑गन्वान् ।

पि॒तुर्नपा॑त॒मा द॑धीत वे॒धा अधि॒ क्षमि॑ प्रत॒रं दीध्या॑नः ॥१॥

पदार्थ—नारी पुरुष को सम्बोधित करती है। मैं (सखी आ) सखी होकर अथवा (सख्या) सख्य भाव हेतु (सखाय) मित्र रूप में तुझे (ओ आ-उ ववृत्यां चित्) आदर से पाऊं। (तिरः पुरू चित्) विशाल (अर्णवं जगन्वान् वेधा) सागर तुल्य दीर्घ जीवन को पार करता हुआ, प्रजापति गृहस्थ (पितुः नपातम्) पितृवश को न गिरने देने वाले पुत्र तथा वधू के नाती को (प्रतर दीध्यानः) जगत्-सागर से पार उतारने को नौकावत् उत्तम साधन समझता हुआ (क्षमि) भूमि तुल्य पुत्रोत्पादन समर्थ नारी मे (अधि आ दधीत) आधान करे। विशेष—यह वचन पुत्राभिलाषिणी, पुत्र उत्पन्न करने मे समर्थ स्त्री का जीवन के उत्तर भाग मे विद्यमान निष्पुत्र पति के प्रति है। पति-पत्नी दोनों एक नाम से कहाने योग्य 'सखा और सखी' हैं। पुत्रोत्पादन कर ऋण रूप अर्णव के पार जाना गृहस्थ कर्म है। स्त्री की दृष्टि मे उसका पुत्र उसके पिता का नाती और पुरुष के वश को चलाने से भी 'नपात्' है। विवाह-बन्धन मे परस्पर एक-दूसरे को बांधने वाला संस्कार 'उपयम' कहाता है व बधने वाले स्त्री और पुरुष दोनों यम और यमी हैं ॥१॥

भावार्थः—जब सूर्य उदित होता है तो धरती पर दिन तथा उसके नीचे रात होती है। गृहस्थाश्रम मे पति से विनम्र हो गृहस्थ धर्म की पत्नी याचना करे तथा पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्ति हेतु पुत्र उत्पन्न करे ॥१॥

न ते॒ सखा॑ स॒ख्यं व॑ष्ट्ये॒तत्सल॑क्ष्मा॒ यद्विषु॑रूपा॒ भवा॑ति ।

म॒हस्पु॒त्रासो॒ असु॑रस्य वी॒रा दि॒वो ध॒र्तार॑ उर्वि॒या परि॑ ख्यन् ॥२॥

पदार्थ—पुरुष कहता है—(ते सखा) तेरा सखी पुरुष (ते एतत् सख्य) तेरे सखा-भाव की (न वष्टि) इच्छा नहीं करता। (यत्) क्योंकि (सलक्ष्मा) समान लक्षण युक्त स्त्री ही (विषु-रूपा भवाति) बहु प्रजा आदि से सम्पन्न होती है। (उर्विया) इस भूमि मे (महः) महान् (असुरस्य) वीर्यवान् पुरुष के (पुत्रासः) पुत्र ही (वीराः) वीर (दिवः धर्तार) कामनायुक्त भूमि तुल्य माता के पोषक (परि ख्यन्) प्रतीत होते हैं।

यह वचन एक निर्बल, नपुंसक अथवा पुत्र पैदा करने में असमर्थ पुरुष का लगता है। इसी से वह स्त्री के संग को स्वयं स्वीकार न कर किसी बलशाली व्यक्ति से पुत्र प्राप्त करने की ओर इंगित करता है। दूसरे बलवान् पुरुष से प्राप्त क्षेत्रज पुत्र भी गृहस्थ अवधि के उपरान्त माता के रक्षक तथा पिता के दायभागी होने के निमित्त शास्त्र मे वर्णित है ॥२॥

भावार्थ—पुरुष कहता है तेरा सखा पुरुष तेरे सखा-भाव की इच्छा नही करता। क्योंकि समान लक्षण युक्त स्त्री ही बहु प्रजा से सम्पन्न होती है। इस भूमि मे महान् वीर्यवान् पुरुष के पुत्र ही वीर कामनायुक्त भूमि तुल्य माता के पोषक प्रतीत होते हैं ॥२॥

उ॒शन्ति॑ घा॒ ते अ॒मृता॑स ए॒तदेक॑स्य चित्त्य॒जसं॒ मर्त्य॑स्य ।

नि ते॒ मनो॒ मन॑सि धाय्य॒स्मे जन्युः॒ पति॑स्त॒न्व१॒॑मा वि॑विश्याः ॥३॥

पदार्थ—पुनः पुत्र प्राप्ति की इच्छुक स्त्री कहती है—(ते अमृतासः) वे अमर दीर्घायु जन (एतत् उशन्ति घ) ऐसा अवश्य चाहते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसं) एक व्यक्ति का भी श्रेष्ठ पुत्र हो और (ते मन अस्मे निधायि) तेरा मन मेरे मन मे स्थिर है। तू (जन्युः पति) पुत्र जनने वाली स्त्री का पति है। तू ही (तन्वम् आ विविश्या) देह मे गर्भ रूप से प्रवेश कर। स्त्री विवाह-बन्धन से आबद्ध होकर असमर्थ पुरुष से ही पुत्र प्राप्ति का अनुरोध करती है ॥३॥

भावार्थ—पुनः पुत्र प्राप्ति की इच्छुक स्त्री कहती है, वे अमर दीर्घायुजन ऐसा अवश्य चाहते हैं कि एक व्यक्ति का भी श्रेष्ठ पुत्र हो और तेरा मन मेरे मन मे स्थित है। तू पुत्रो को जनने वाली स्त्री का पति है। तू ही देह में गर्भ रूप से प्रवेश कर। स्त्री विवाह बन्धन से आबद्ध होकर असमर्थ पुरुष से ही पुत्र का अनुरोध करती है ॥३॥

न यत्पु॒रा च॑कृ॒मा कद्ध॑ नू॒नमृ॒ता वद॑न्तो॒ अनृ॑तं रपेम ।

ग॒न्ध॒र्वो अ॒प्स्वप्या॑ च॒ योषा॒ सा नौ॒ नाभिः॑ पर॒मं जा॒मि तन्नौ॑ ॥४॥

पदार्थ—पुरुष की ओर से कहा गया है—(यत् कत् ह पुरा न चकृम) ऐसा कौन सा उपाय है जो हमने पहले नहीं किया। (ऋता वदन्तः) सदैव सत्य बोलते हुए (नूनम्) अवश्य ही हम (अनृतम् रपेम) असत्य बोलें, यदि कहें कि अमुक उपाय नहीं बरता। (गन्धर्व अप्सु) गम्या भूमि का धारण कर्ता पुरुष भी जलीय अंशो मे है तथा (अप्या च योषा) जलीय परमाणुओ से युक्त स्त्री भी है। (नः सा नाभि) हम दोनों का वही आश्रय स्थल है। वही (नौ तत् जामि) हम दोनो में दोष है जिससे कि एक प्रकृति के ही नारी व नर होने से सन्तान पैदा नही होती ॥४॥

भावार्थः—पुरुष की ओर से कहा गया है कि ऐसा कौन सा उपाय है जो हमने पहले नहीं किया सदैव सत्य बोलते हुए हम यदि यह कहें कि हम ने अमुक उपाय नहीं बरता तो असत्य बोलें। गम्या भूमि धारण कर्ता पुरुष भी जलीय अंशो मे है तथा जलीय परमाणुओं से युक्त स्त्री भी है। हम दोनों का वही आश्रय स्थल है। हम मे दोष हैं जिससे एक प्रकृति के होने से संतान पैदा नहीं होती ॥४॥

गर्भे॒ नु नौ॑ जनि॒ता दम्प॑ती कर्दे॒वस्त्वष्टा॑ सवि॒ता वि॒श्वरू॑पः ।

नकि॑रस्य॒ प्र मि॑नन्ति व्र॒तानि॒ वेद॑ नाव॒स्य पृ॑थि॒वी उ॒त द्यौः ॥५॥६॥

पदार्थः—स्त्री की ओर से कहा गया है—(जनिता) जन्म देने वाला पिता (देव) कन्या को पुरुष के हाथ में देने वाला (त्वष्टा) तेजस्वी (सविता) सर्व उत्पादक (विश्वरूप) विश्वात्मा (गर्भे) गर्भ धारण करने के लिए ही (नौ दम्पती कः) हम दोनों स्त्री पुरुषो को पति-पत्नी बनाता है । (अस्य व्रतानि नकि: प्रमिनन्ति) इसके नियमों को कोई नहीं मिटाता । (नौ अस्य) हमारे इस पति-पत्नी भाव के कर्त्तव्यों को (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी तथा सूर्य भी (वेद) जानते हैं ॥५॥

भावार्थ.—यहां स्त्री की ओर से कहा गया है कि जन्म देने वाला पिता, कन्या को पुरुष के हाथ में देने वाला तेजस्वी सर्व उत्पादक विश्वात्मा परमात्मा गर्भ धारण के लिए ही हम दोनो स्त्री-पुरुष को पति-पत्नी बनाता है । उसके नियमों को कोई नहीं मिटाता । हमारे इस पति-पत्नी भाव के कर्त्तव्यों को पृथ्वी तथा सूर्य भी जानते है ॥५॥

इति षष्ठो वर्गः ।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

पदार्थ —पुरुष कहता है—(अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) इस पहले दिन के सम्बन्ध में किसे पता है ? (ईं कः ददर्श) और इस गर्भ-धारण होने न होने का मूल कारण कौन देख सकता है ? (इह कः प्रवोचत्) इस सम्बन्ध मे कौन बताने मे समर्थ है ? (मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम) सर्वस्नेही परमात्मा का तेज विपुल है। हे (आहनः) कटाक्ष से कहने वाली ! स्त्री ! (नॄन् वीच्य कत् उ ब्रव) मानव का विवेक करके भी कौन भला, कब क्या कहने मे समर्थ है ॥६॥

भावार्थ·—पुरुष कहता है—इस प्रथम दिवस के सम्बन्ध मे किसे पता है और इस गर्भ धारण होने या न होने का मूल कारण कौन देख सकता है ? इस सम्बन्ध में कौन बताने मे समर्थ है ? सर्वस्नेही प्रभु का तेज महान् है । हे कटाक्ष करने वाली स्त्री ! मानव का विवेक मानकर भी कौन भला क्या कहने मे समर्थ है ॥६॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।

जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

पदार्थः—(यमस्य कामः) विवाह के बन्धन से बधी तेरी कामना (मा यम्यं) मुझ यमी को (समाने योनौ) एक स्थान मे (सह-शेय्याय) साथ शयन हेतु (आ अगन्) प्राप्त हो । (पत्ये जाया इव) पति हेतु जाया के तुल्य ही मैं (पत्ये) तुझ पति के लिये (तन्वं) स्व देह को (रिरिच्यां) प्रदान करू । हम (रथ्या इव चक्रा) रथ चक्रो के तुल्य (वि वृहेव चित्) गृहस्थ के भार को वहन करें ॥७॥

भावार्थ —विवाह बन्धन में बन्धी तेरी कामना मुझ यमी को एक स्थान मे साथ शयन हेतु प्राप्त हो । पति हेतु जाया के तुल्य ही मैं तुझ पति के लिए देह को प्रदान करूं । हम रथ के पहियो के तुल्य गृहस्थ के भार को वहन करे ॥७॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।

अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८॥

पदार्थः—(इह) इस ससार मे (ये) जो (स्पशः) सर्व लोको के द्रष्टा चरो के तुल्य (देवानां स्पशः) लोगों के द्रष्टा ये दिवस (चरन्ति) व्यतीत हो रहे हैं । वे (न तिष्ठन्ति) किसी के लिए नहीं ठहरते । (न निमिषन्ति) वे किसी के लिये पल भर नहीं चूकते । व्यर्थ समय खोने से लाभ नहीं! हे (आहन) आक्षेप करने वाली हे प्रिये ! तू (मत् अन्येन तूयं याहि) मुझ से दूसरे पुरुष के साथ शीघ्र सगति कर तथा (रथ्या इव चक्रा वि वृह) रथ-चक्रो के तुल्य गृहस्थ के भार को वहन कर ॥८॥

भावार्थ —इस ससार मे जो सर्व लोको के द्रष्टा चरो के समान लोगो के द्रष्टा ये दिवस व्यतीत हो रहे हैं, वे किसी के लिए नहीं ठहरते । वे किसी के लिए पल भर भी नहीं चूकते । व्यर्थ समय खोने से कोई लाभ नहीं । हे आक्षेपकरने वाली! हे प्रिये ! तू मुझसे दूर दूसरे पुरुष के साथ सगति कर तथा रथ चक्रो के तुल्य गृहस्थ के भार को वहन कर ॥८॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।

दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥

पदार्थः—पुनः पुत्र चाहने वाली कहती है । (रात्रीभिः अहभिः) कुछ दिनो कुछ रातों के उपरान्त (दशस्येत्) प्रभु हमारा मनोरथ पूर्ण करे । (सूर्यस्य चक्षु) सूर्य का तेज (मुहुः उन्मिमीयात्) पुन प्रकटे । (दिवा पृथिव्या) आकाश व भूमि के समान हम दोनों की (मिथुना) जोडी (स बन्धू) समान बन्धन मे है, अत (यमीः) विवाह-बन्धन से बंधी स्त्री ही (यमस्य) विवाह से बधे पुरुष के वीर्य को गर्भ में (बिभृयात्) धारे, यही (अजामि) दोष से परे है ॥९॥

भावार्थ—पुन: पुत्रार्थिनी कहती है, कुछ दिनों, कुछ रातो क बाद प्रभु हमारी मनोकामना पूर्ण करे । सूर्य का तेज पुनः प्रकटे । आकाश व भूमि के तुल्य हम दोनों समान बन्धन में बन्धे हैं । अतः विवाह-बन्धन से बन्धी स्त्री ही विवाह से बंधे पुरुष के वीर्य का गर्भ मे धारण करे, यही दोष से परे है ॥९॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥७॥

पदार्थ·—(ता उत्तरा युगानि आ गच्छान्) वे श्रेष्ठतम वर्ष प्राप्त हो (यत्र) जिनमे (जामय) पुत्र उत्पत्ति मे समर्थ कन्याए, वधुएँ (अजामि कृण्वन्) निर्दोष सन्तानों को जन्म दें, इसलिये हे (सुभगे) सौभाग्यवती ! तू (वृषभाय) वीर्य-सेचन मे समर्थ व्यक्ति के (बाहुम्) बाहु का (उप बर्बृहि) सहारा ले और (मत् अन्यत् पतिम् इच्छस्व) दूसरे पुरुष को पति रूप से चाह ॥१०॥

भावार्थः—वे श्रेष्ठतम वर्ष प्राप्त हों जिनमे पुत्र उत्पत्ति मे समर्थ कन्या, वधुए निर्दोष संतानो को जन्म दें इसलिए हे सौभाग्यवती तू वीर्य सेचन में समर्थ व्यक्ति के बाहु का सहारा ले और दूसरे पुरुष को पति रूप से चाह । पुत्र जनन मे जो समर्थ नहीं वह पुरुष स्त्री को भावी सन्तानें उत्तम होने की आशा से ही वीर्यवान् पुरुष से पुत्र प्राप्ति का परामर्श देता है ॥१०॥

इति सप्तमो वर्गः ।

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।

काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११॥

पदार्थ —हे पुरुष ! जो तू किसी अन्य को पति रूप से चाहने को कहता है तो (किं भ्राता असत्) क्या तू भ्राता है ? (यत्) कि जिस लिए तू (अनाथ भवाति) नाथ नहीं हो रहा है । (किम् उ स्वसा) क्या मैं भगिनी हूँ (यत निर्ऋति) जो निर्गति बाध्य होकर (नि गच्छात्) चली जाऊ । अर्थात् तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी पत्नी हूँ । अतः (काम-मूता) काम युक्त होकर (एतत् बहु रपामि) बहुत कुछ कह रही हूँ कि तू (मे तन्वा) मेरे तन से (तन्वं) अपने तन को (स पिपृग्धि) सगत कर ॥११॥

भावार्थ —हे पुरुष जो तू किसी अन्य को पति रूप से चाहने को कहता है तो क्या तू भ्राता है, कि जिस लिये तू नाथ नहीं हो रहा है । क्या मैं भगिनी हू, जो निर्गति बाध्य होकर चली जाऊ अर्थात् तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी पत्नी हूँ । अत कामयुक्त होकर बहुत कुछ कह रही हू कि मेरे तन से अपने देह की संगति करो ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।

अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

पदार्थः—(वा उ) यदि इसी भाति का विकल्प है अर्थात् तू मुझे भ्राता व स्वय को भगिनी समझती है तो (ते तन्वा) तेरे तन से मैं (तन्वं न स पपृच्याम्) अपने तन का सम्पर्क न कराऊ, क्योंकि (यः स्वसारं निगच्छात्) जो भगिनी का सग करे वह भी (पाप आहु) पापी कहते हैं । (अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व) तू मेरे अतिरिक्त अन्य के साथ क्रीडा कर । हे (सुभगे) सौभाग्यवती ! (ते भ्राता) तेरा पति पुरुष भी भाई के तुल्य ही (एतत् न वष्टि) ऐसे सग की कामना नहीं करता ॥१२॥

भावार्थ —यदि इसी भांति का विकल्प है अर्थात् तू मुझे भ्राता व स्वय को भगिनी समझती है तो तेरे तन से मैं अपने तन का सम्पर्क न कराऊ, क्योंकि जो भगिनी का सग करे वह भी पापी कहाते हैं । तू मेरे अतिरिक्त अन्य से क्रीड़ा कर । हे सुभगे ! तेरा पति पुरुष भी भ्रातातुल्य ऐसे सग की कामना नहीं करता ॥१२॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।

अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

पदार्थ —अब स्त्री पति-हृदय के भाव की परीक्षा करने हेतु कहती है—हे (यम) विवाह से बद्ध ! (बत बत असि) खेद है कि तू नितात दुर्बल है । (ते मन हृदय च नैव अविदाम) तेरे मन तथा हृदय को हम नही जान पाये । (किल युक्तं त्वा अन्या) क्या समर्थ तुझे कोई अन्य स्त्री (वृक्षम् लिबुजा-इव) वृक्ष को लता के तुल्य (परि ष्वजाते) आलिगन करती है ॥१३॥

भावार्थः—अब स्त्री पति-हृदय के भावो की परीक्षा करने के लिए कहती है—हे विवाह के बन्धन से बधे पुरुष खेद है कि तू नितांत दुर्बल है । तेरे मन तथा हृदय को हम जान नही पाए । क्या तुझे कोई अन्य नारी वृक्ष की लता के तुल्य आलिगन करती है ॥१३॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।

तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं

सुभद्राम् ॥१४॥८॥

पदार्थ·—पुरुष अन्तिम आदेश देता है । हे (यमि) विवाहिता ! (त्वं) तू (अन्यम् उ वृक्षम् लिबुजा इव) अन्य पुरुष का वृक्ष की लता तुल्य आलिंगन कर और (अन्यः उ त्वां परि ष्वजाते) दूसरा पुरुष तेरा आलिगन करे । (तस्य वा त्वं मन इच्छ) तू उसके हृदय को चाह और (स वा तव) वह मुझे चाहे । (अध) और तू (सुभद्राम् संविदं कृणुष्व) कल्याणदायी उत्तम मति की सन्तान बना । इस प्रकार बहन भाई के वैवाहिक सम्बन्ध का भी निषेध है और यदि परस्पर

सन्तान को जन्म देने की शक्ति न हो तो भी अतिरिक्त पुरुष से सन्तान पैदा करने की आज्ञा अर्थात् 'नियोग' वेद में प्रतिपादित है ॥१३॥

भावार्थः—पुरुष अन्तिम आदेश देता है कि हे विवाहिता ! तू अन्य पुरुष का वृक्ष की लता के तुल्य आलिंगन कर तथा दूसरा पुरुष तेरा आलिंगन करे । तू उसके मन को चाह और वह तेरे मन को चाहे और तू कल्याणकारिणी उत्तम बुद्धि वाली सन्तान को जन्म दे । इस शब्द योजना से बहन भाई के आपस में वैवाहिक सम्बन्ध का निषेध किया गया है और यदि स्त्री-पुरुष मे परस्पर सन्तान को जन्म देने की शक्ति न हो तो अतिरिक्त पुरुष से भी सन्तान पैदा करने की आज्ञा अर्थात् 'नियोग' का वेद मे प्रतिपादन है ॥१३॥

इत्यष्टमो वर्गः ॥

---

[११]

हविर्धान आंगिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती । ३—५ विराड् जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥१॥

पदार्थ—(**वृषा**) वृष्टिकर्त्ता सूर्य (**यह्व**) महान होकर (**वृष्णे दोहसा**) बरसा करने वाले मेघ के दोहन अथवा पूर्ण सामर्थ्य से (**दिव**) आकाश से (**पयांसि दुदुहे**) जल बरसाता है इसी भांति (**वृषा**) बलशाली (**यह्व**) बलो मे महान् और (**अदाभ्य**) रिपुओ से अहिंस्य (**अदिते**) स्वतन्त्र व्यक्ति (**दिव**) भूमि से (**दोहसा**) अन्नादि देने की क्षमता से (**पयांसि दुदुहे**) पुष्टि देने वाले अन्नो को प्राप्त करे । (**स वरुण.**) वह श्रेष्ठतम राजा (**धिया**) बुद्धि अथवा कर्म से (**यथा विश्व वेद**) जैसे राष्ट्र को पाए और जाने उसी भांति वह (**यज्ञिय** राष्ट्र-यज्ञ का करने वाला (**यज्ञियान् ऋतून् यजतु**) परस्पर संगतिकर्त्ता सदस्यो तथा ऋतुओ को एकत्र करे ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार वर्षा करने वाला सूर्य वर्षणशील मेघ को दोहन कर आकाश से जल बरसाता है, उसी प्रकार बलशाली व्यक्ति भूमि से अपनी क्षमता द्वारा पुष्टिकारक अन्नो को प्राप्त करे। राजा जिस प्रकार बुद्धि एव कर्म से राष्ट्र को प्राप्त करे और जाने उसी भांति राष्ट्रयज्ञ का कर्त्ता परस्पर संगति करने वाले सदस्यो तथा ऋतुओ को एकत्रित करे ॥१॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥२॥

पदार्थ—जैसे (**अप्या**) जल से प्राप्य (**गन्धर्वी**) वाणी धारक विद्युत (**रपत**) गर्जन करती है । उसी भांति (**अप्या**) जल प्रकृति की (**गन्धर्वी**) भूमि के तुल्य अथवा वाणी धारण करने वाली विदुषी (**योषणा**) नारी एव प्रजा (**रपत्**) कह कि (**नदस्य**) गर्जनशील मेघ के तुल्य उदार व्यक्ति के (**नादे**) शासन मे (**मे मन परि पातु**) मेरा मन मुझे रक्षा प्रदान करे । वह (**अदिति**) सतत शासक हो कर (**न**) हमे (**इष्टस्य मध्ये**) ऐश्वर्य के मध्य मे (**नि धातु**) स्थापित करे एव (**न॰**) हममे से (**ज्येष्ठ॰**) ज्येष्ठतम (**भ्राता**) सर्वपालक (**प्रथम**) सर्वश्रेष्ठ हो कर (**न विवोचति**) हमे विद्या उपदेश प्रदान करे ॥२॥

भावार्थ—जिस भांति जल से प्राप्त करने योग्य वाणी का धारण करने वाली विद्युत् गर्जती है, उसी भांति जल प्रकृति की भूमि के समान व वाणी का धारण करने वाली विदुषी नारी या प्रजा कहे कि गर्जना करने वाले मेघ के तुल्य उदार व्यक्ति के शासन मे मेरा मन मुझे रक्षा प्रदान करे । वह सतत शासक होकर हमे सकल ऐश्वर्य दे, सर्वश्रेष्ठ होकर हमे विद्याओ का उपदेश दें ॥२॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

पदार्थ—(**यद् ई**) जब (**उशताम्**) ऐश्वर्य की कामना करने वालो के मध्य (**उशन्त**) इच्छा करने वाले (**क्रतु**) सुदक्ष (**अग्नि**) ज्ञान सम्पन्न जन को (**विदथाय**) यज्ञ की अग्नि के समान (**होतार**) ग्रहीता रूप से (**जीजनन्**) विशेष रूपेण प्रकटते हैं, तब (**सो चित् नु उषा**) वह कामनावती नारी भी प्रभात वेला तुल्य (**क्षु-मती**) उत्तम वचन कहती हुई, (**यशस्वती**) गुणो से कीर्तियुक्त (**स्वर्वती**) सुख सम्पदा सम्पन्न होकर (**मनवे उवास**) मानव हितार्थ रहे ॥३॥

भावार्थ—जब ऐश्वर्य की कामना करने वालों के मध्य इच्छा करने वाले कर्मकुशल ज्ञानीजन यज्ञाग्नि के तुल्य ग्रहीता रूप मे विशेष रूपेण प्रकटते हैं तब वह कामनावती नारी भी प्रभात की वेला के तुल्य उत्तम वचन कहती हुई, गुणो से कीर्तियुक्त सुख सम्पदा वाली होकर मनुष्य के हितार्थ रहे ॥३॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥

पदार्थ—(**यदि**) जब (**आर्या विश**) श्रेष्ठ प्रजाजन (**दस्मं**) दुष्टजनो के संहारक (**होतारम्**) भृत्यों को वेतन इत्यादि के प्रदान करने वाले, (**अग्नि**) तेजस्वी जन को नायक रूप से (**वृणते**) स्वीकार करते हैं (**अध**) तदुपरान्त ही (**धीः अजायत**) वह राष्ट्र को धारने मे सक्षम होता है । (**अध**) और उसी समय (**वि**) कान्तियुक्त तेजस्वी (**श्येनः**) बाज के समान शत्रु पर प्रहार करने वाला वीर सेनापति, (**इषित**) प्रेरणा पाकर (**त्य**) उस (**द्रप्सं**) बलशाली, (**विभ्व**) महान्, (**वि-चक्षण**) बुद्धिमान् व्यक्ति को (**अध्वरे**) राष्ट्र रूप यज्ञ एव अहिंसनीय पद पर (**आभरत्**) प्राप्त करता है ॥४॥

भावार्थ—जब श्रेष्ठ प्रजाजन दुष्ट जन संहारक भृत्यों इत्यादि को वेतनादि देने वाले तेजस्वी पुरुष को नायक के रूप मे स्वीकारते हैं तदुपरान्त ही वह राष्ट्र को धारने मे समर्थ हो जाता है और उसी स्थिति मे शत्रु मर्दनकर्त्ता वीर सेनापति प्रेरणा पाकर उस बलवान् महान् बुद्धिमान् व्यक्ति को राष्ट्र रूप यज्ञ एव अहिंसनीय पद पर प्राप्त करता है ॥४॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥५॥९॥

पदार्थ—(**पुष्यते यवसा इव**) जिस भांति पोषण करने वाले पशु को घास आदि उत्तम प्रतीत होते है उसी भांति (**पुष्यते**) स्व पोषक राष्ट्र हेतु, हे नायक ! तू (**सु-अध्वर.**) उत्तम अहिंसक (**मनुष**) मननशील व्यक्ति की (**होत्राभि॰**) वाणियों के द्वारा (**सदा रण्व असि**) सदैव रमणीय प्रजा का प्रिय हो और (**शश-मान**) उपदेश पाकर (**विप्रस्य**) विद्वान् के (**उक्थ वाज**) प्रशंसनीय ज्ञान को (**ससवान्**) ग्रहण करता हुआ तू (**भूरिभि उप यासि**) अनेक अनुयायियो सहित प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थः—जैसे पोषण करने वाले पशु को घास आदि उत्तम प्रतीत होते हैं वैसे ही स्वपोषक राष्ट्र के लिए हे नायक ! तू उत्तम मननशील व्यक्ति को वाणियो के द्वारा सदैव रमणीय प्रजा को प्रिय हो और उपदेश पाकर विद्वान् के प्रशंसनीय ज्ञान का ग्रहण करता हुआ तू अनेक अनुयायियो सहित प्राप्त हो ॥५॥

इति नवमो वर्गः ॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**जार आभगम्**) रात्रि का जीर्ण करने वाला सूर्य जैसे अपना ताप सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार तू भी (**पितरा**) माता पिता के समान पूज्य जनो के प्रति (**उद् ईरय**) उत्तम वचन कह । उन्हे (**भगम् आ ईरय**) ऐश्वर्य-सुख प्रदान कर । क्योंकि (**हर्यत**) तेजस्वी व्यक्ति ही (**इयक्षति**) समर्थ दानदाता होता है, वह (**हृत्ता इष्यति**) उन्हे हृदय से चाहता है । वह (**वह्नि**) कार्य-भार के वहन मे समर्थ होकर (**विवक्ति**) विविध प्रार्थनाए करता है, (**सु-अपस्यते**) उत्तम आचरण करता है एव (**मख**) वन्दनीय होकर (**तविष्यते**) अध्यात्म कर्म करता है और (**असुर.**) बलिष्ठ होकर (**मती वेपते**) स्वबुद्धि के द्वारा शत्रुओ को प्रकम्पित करता है ॥६॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिस भांति सूर्य रात्रि को मिटा कर अपना प्रकाश सर्वत्र फैलाता है, उसी भांति माता पिता के समान पूज्य जनों के प्रति उत्तम वचन कह कर उन्हे ऐश्वर्य सुख प्रदान कर । क्योंकि तेजस्वी जन ही दान देने मे समर्थ है । वह अपने उत्तम आचरण से वन्दनीय होकर अपनी बुद्धि द्वारा शत्रुओ का संहार करता है ॥६॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) तेज उत्पादक ! प्रभो ! (**य: मर्त**) जो व्यक्ति (**ते सुमतिम् अक्षत्**) तेरे ज्ञान को पा लेता है, (**सहस सूनो**) बल प्रदान करने वाले ! (**स अति प्रशृण्वे**) वह सर्वाधिक ख्याति पाता है । (**स**) वह (**इषं**) अन्न सम्पत्ति एव सेना को (**दधान**) धारता हुआ (**अश्वै वहमान.**) अश्व इत्यादि साधनो द्वारा राज्य को धारण करता तथा (**द्यून्**) सर्वदा (**द्युमान् अमवान्**) तेजस्वी बलशाली (**भूषति**) भूषित रहता है ॥७॥

भावार्थ—हे तेजोत्पादक ! जो व्यक्ति तुम्हारे ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, वह सर्वाधिक ख्याति पाता है । वह अन्न, सम्पदा व सेना को धारता हुआ राज्य को धारता है तथा सर्वथा तेजस्वी रहता है ॥७॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) परमात्मन् ! राजन् ! (**यजत्र**) हे वन्दनीय ! (**यत्**) जब (**यजता देवेषु**) संगमनीय जनो मे (**एषा देवी**) यह विदुषी (**समिति.**) समिति सभा, (**भवाति**) हो और (**यत**) जब हे (**स्वधावः**) अन्नदाता प्रभु ! तू (**रत्ना विभजासि**) रमणीय सुखो को देता है (**अत्र**) तब यहां (**न**) हमारा (**वसुमन्त भाग**) ऐश्वर्यसम्पन्न भाग हमें (**वीतात**) मिले ॥८॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! राजन् ! हे वन्दनीय ! जब संगमनीय जनो मे यह विदुषी समिति या सभा हो और जब हे अनन्त दाता प्रभु तू रमणीय सुखो को देता है तब यहां हमारा ऐश्वर्यसम्पन्न भाग हमे मिले ॥८॥

अधा नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।

आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥१०॥

पदार्थ —हे (अग्ने) प्रभो ! (सधस्थे सदने) हमारे तुम्हारे साथ होने के स्थान में तू (नः) हमारे वचन स्वीकार कर और (अमृतस्य) अमृत तुल्य सत्य ज्ञान को (द्रवित्नुम्) रिसाने वाले (रथम्) रमणीय स्वरूप को (युक्ष्व) मुझमे युक्त कर। (देव पुत्रे) तेजस्वी जनो का पुत्र तुल्य पालन करने वाला (न) हमारे (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् तेजस्वी राजा एव प्रजा दोनों को (आ वह) धारण करे जिससे (देवानाम्) विद्वानो व वीरो में से कोई भी हमसे (माकि. अपभूः स्याः) तिरस्कृत न हो ॥९॥

भावार्थः—हे प्रभो ! हमारे तुम्हारे साथ होने के स्थान मे तू हमारी वन्दनाएं स्वीकार कर और अमृत तुल्य सत्य ज्ञान को रिसाने वाले रमणीय स्वरूप को मुझ से युक्त कर। तेजस्वी जनों का पुत्र तुल्य पालन करने वाला हमारा सूर्य भूमिवत् तेजस्वी राजा एव प्रजा दोनों को धारण करे जिससे विद्वानो व वीरों मे से कोई हम से तिरस्कृत न हो ॥९॥

इति दशमो वर्गः ॥

---

[१२]

हविर्धान आङ्गिर्ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द — १, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।

देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥१॥

पदार्थ.—(देवः) परमात्मा, (होता) दानदाता जब (प्रत्यङ्) आत्मा के तुल्य सर्वप्रिय होकर (स्वम् असुं यन्) स्व प्राण-बल को पाता हुआ (मर्तान्) वीर जनों को (यजथाय) सुसंगत (कृण्वन्) करता हुआ (सीदत्) प्रकाश पद पर अधिष्ठित है, तब ही (द्यावाक्षामा) सूर्य व भूमिवत् (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ, शास्य-शासक जन (ऋतेन अभिश्रावे) वेद-वचन द्वारा स्व प्रतिज्ञा उच्चारते हुए (सत्य-वाचा भवत) सत्यवाणीबद्ध जन होते हैं ॥१॥

भावार्थ —हे परमात्मा ! दानदाता जब आत्मा के तुल्य सर्वप्रिय होकर स्व प्राण-बल को प्राप्त करता हुआ वीरजनो को सुसंगत करता हुआ प्रकाश पद पर अधिष्ठित है। तभी सूर्य व भूमिवत् सर्वश्रेष्ठ शास्य-शासक जन वेदवचन द्वारा स्व-प्रतिज्ञा को उच्चारते हुए सत्यवाणी से बद्ध जीव होते हैं ॥१॥

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।

धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२॥

पदार्थः—हे प्रभो ! तू (देव) तेजस्वी, (विद्वान्) विद्वत् जनों पर भी (ऋतेन) वेदधर्म द्वारा (परि-भू) सर्वोपरि शासक बन कर (चिकित्वान्) ज्ञानवान् एव (प्रथम) श्रेष्ठतम होकर (न हव्यं वह) हमे श्रेष्ठ ज्ञान तथा उत्तम समादि प्राप्त करा। वह तू (धूम-केतु) धूम्र ध्वजायुक्त अग्नि के समान (धूम-केतु) शत्रु को प्रकम्पित करने वाली ध्वजा वाला (समिधाः) सभी के सहयोग द्वारा तेजस्वी, (भा-ऋजीकः) अपनी कान्ति से दुष्टो को जलाने वाला (मन्द्रः) सर्व वन्दनीय, (होता) सबको आदर सहित बुलाने वाला (नित्यः) नित्य एव (वाचा यजीयान्) वाणी द्वारा सभी का आदर करने वाला हो ॥२॥

भावार्थ —हे प्रभो ! तू तेजस्वी विद्वान् जनों पर वेद धर्म के द्वारा सर्वश्रेष्ठ शासक बन कर ज्ञानवान् तथा श्रेष्ठतम होकर हमे श्रेष्ठ ज्ञान एव उत्तम अन्न प्रदान कर। तू अग्नि के समान शत्रु को प्रकम्पित करने वाला है और अपनी कान्ति से दुष्ट जनों का दमन करता है ॥२॥

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।

विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३॥

पदार्थ.—(यदि देवस्य गोः) जब सर्वत्र व्याप्त प्रभु सूर्य (स्वावृक्) सुखदायक (अमृतं) जल उत्पन्न करता है तब (अतः) इसी जल से (उर्वी) धरती पर (जातास अमृत धारयन्त)उपजे प्राणी जीवन पाते हैं और (यत् एनी) जब वह प्रकाशित सूर्य कान्ति, (दिव्यं) आकाश से उपजे (घृतं दुहे) जल को बहाती है (तत् यजुः अनु) उस दान को लक्ष्य करके ही (विश्वे देवा अनु गुः) सर्व जीव उसकी वन्दना तथा अनुकरण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—सर्वत्र व्याप्त प्रभु सूर्य सुखदायक जल उत्पन्न करता है। इसी जल से धरती पर उपजे प्राणी जीवन पाते हैं। जब यह सूर्य-कान्ति आकाश से उत्पन्न जल को बहाती है, उस दान को दृष्टिगत रख कर सभी जीव उसकी वन्दना करते हैं ॥३॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।

अहा यद्द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

पदार्थ —हे (घृतस्नू द्यावाभूमी) जल बरसाने और प्रवाहित करने, भूमि तथा आकाश के तुल्य स्नेह की वर्षा करने वाले माता, पिता, गुरु आचार्य (रोदसी) तथा उत्तम उपदेष्टा जनो ! मैं (वर्धाय) स्व वृद्धि हेतु (वां अप अर्चामि) आपके उत्तम उपकार को आदर देता हूँ। (मे शृणुतं) आप मेरी प्रार्थना सुनें। (यत्) जब (द्याव.) सूर्य की प्रखर किरणें (अहा) सब दिन (असु-नीतिम् अयन्) जीवों की जीवन प्राप्ति का कार्य करते हैं तब (अत्र) इस लोक मे (पितरा) आकाश व भूमिवत माता पिता भी (मध्वा) मधुर वचन तथा वेद के द्वारा (न· शिशीताम्) हमे बल प्रदान करें ॥४॥

भावार्थ —हे जल की वर्षा कर उसे प्रवाहित करने वाले, भूमि एव आकाश के तुल्य स्नेह प्रदान करने वाले माता, पिता, गुरु, आचार्य एव उत्तम उपदेष्टा जनो ! मैं स्व वृद्धि हेतु आपके उत्तम उपकार का आदर करता हूँ। आप मेरी प्रार्थना सुनो। जिस भाँति सूर्य सकल जीवो का जीवन देता है वैसे ही माता पिता भी मधुर वचनों एवं वेद से बल प्रदान करें ॥४॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।

मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥५॥११॥

पदार्थ —(राजा) तेजस्वी शासक (नः किं स्वित् जगृहे) हमारा क्या स्वीकारे ? (अस्य व्रत) उसके विधान की हम (कत् अति चकृम) कब-कब अवहेलना करते हैं ? (कः विवेद) इसे कौन जानता है ? वह राजा प्रजाओं का (मित्रः चित्) स्नेही सखा के तुल्य (जुहुराणः हि) आमन्त्रित होकर (न· देवान् यातान्) हम कामना करने वाले जनों को प्राप्त हो। वह (वाजः अपि अस्ति) निश्चय ही बलशाली है तो भी वह (श्लोकः न) वेदोपदेश के समान माननीय होकर हमें प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ —तेजस्वी शासक अमृत-स्वरूप परमात्मा के लोकविख्यात तथा गुह्यस्वरूप को जान लेता है, उसकी परमात्मा रक्षा करता है ॥५॥

इत्येकादशो वर्गः ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।

यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥६॥

पदार्थ.—(यत्) जो (सलक्ष्मा) समान लक्षण युक्त स्त्रीवत् प्रकृति (विषु-रूपा भवाति) विभिन्न रूपों से सम्पन्न होती है इस सम्बन्ध मे (अमृतस्य) उस अमृतरूप प्रभु का (नाम) स्वरूप (दुर्मन्तु) महान है। (यः) जो व्यक्ति उस (यमस्य) नियामक परमात्मा के (सु-मन्तु) सुख से मनन योग्य अमृतमय रूप का (मनवते) ध्यान करता है। हे (अग्ने) प्रभो ! हे (ऋष्व) महान् ! तू (अ-प्रयुच्छन्) प्रमादरहित होकर (तम् पाहि) उसकी रक्षा कर ॥६॥

भावार्थः—जो समान लक्षणों से युक्त स्त्रीवत् प्रकृति विभिन्न रूपों से संपन्न होती है इस सम्बन्ध में उस अमृतस्वरूप प्रभु का रूप महान है। हे प्रभो जो ध्यान सहित तेरा ध्यान करता है, तू उसकी रक्षा कर ॥६॥

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।

सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥७॥

पदार्थः—(यस्मिन् विदथे) जिसमे ज्ञानस्वरूप (देवाः मादयन्ते) विद्वान् हर्षित होते हैं और (यस्य विवस्वतः सदने) सूर्य के समान जिसके आश्रय में (देवाः) किरणों के सरीखे विद्वान् तथा वीर जन (धारयन्ते) स्वय मे व्रत-नियमादि गुण धारते हैं। जिस (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी के अधीन रहकर (ज्योतिः अदधुः) वे तेज तथा ज्ञान को धारण करते हैं एव (मासि अक्तून्) चन्द्रमा जैसे जिसके आश्रय पर सौम्य रात्रियों के तुल्य विशेष गुण धारते हैं उस (द्योतनिं) तेजस्वी जन के आश्रय ही (अजस्रा) सकल नर-नारी एक दूसरे को नष्ट न करते हुए सतत (परि चरतः) सेवा करें ॥७॥

भावार्थ —जिसको ध्यान कर ज्ञानस्वरूप विद्वान् हर्षित होते हैं और सूर्य के तुल्य जिसके आश्रय मे किरणो के सरीखे विद्वान् तथा वीर जन स्वय व्रत नियमादि धारण करते हैं, जिस सूर्य तुल्य तेजस्वी के अधीन रहकर वे तेज एव ज्ञान को धारण करते हैं। चन्द्रमा भी निरन्तर उसी परमात्मा के आश्रय में रहता है। उसी प्रभु के द्वारा उपासक के हृदय में तेज और मन में शान्ति एव ज्ञान को विकसित किया जाता है ॥७॥

यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म ।

मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

पदार्थ —(यस्मिन् मन्मनि) मनन करने योग्य ज्ञानमय जिसमें (देवाः संचरन्ति) विद्वान् सम्यक् आचरण करते हैं। (वयम् अस्य) हम उस परमात्मा के (अपीच्ये) अव्यक्त रूप में, विद्यमान स्वरूप को (न विद्म) नहीं जानते। वह

(**मित्र**) सखा (**अदिति**) अनश्वर, (**सविता**) सबका उत्पादक, (**देव**) सर्व-ज्ञानदाता (**वरुणाय**) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को पाने हेतु (**अनागान् न**) निष्पाप हमें (**अत्र**) उस परमात्मा के सम्बन्ध में (**वोचत्**) उपदेश दें ॥८॥

भावार्थः—वन्दनीय प्रभु का विद्वान् जन तन्मय होकर ध्यान करते हैं। सामान्य जन उस प्रभु के सही स्वरूप को नहीं जान पाते। वह सर्व उत्पादक अनश्वर, ज्ञानदाता, उत्पादक व मोक्षार्थ वरण करने वाला वधू तुल्य हम पापरहित पुण्यात्माओं का आह्वान कर कल्याणदायक वचन हम सुनाता है ॥८॥

अधो नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।

आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥१२॥

पदार्थ—व्याख्या देखो सूक्त ११ । ९ ॥

भावार्थ—व्याख्या देखो सूक्त ११ । ९ ॥

इति द्वादशो वर्गः ।

[१३]

विवस्वानादित्य ऋषि ॥ हविर्धाने देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥

पदार्थः—पुरोहित कहता है, हे स्त्री पुरुषो ! (**वां**) तुम दोनो को (**नमोभि**) विनय इत्यादि लक्षणों सहित (**पूर्व्यं**) ज्ञान मे पूर्ण (**ब्रह्म**) वेद व ब्रह्म-ज्ञान का (**युजे**) उपदेश देता हूँ। (**सूरेः**) जगत् उत्पादक परमात्मा का वह (**श्लोक**) ज्ञानोपदेश (**पथ्या इव**) सन्मार्गगामी पगडण्डी के तुल्य है। (**विश्वे**) सकल (**अमृतस्य पुत्रा**) परमेश्वर के पुत्र और (**ये**) जो (**दिव्यानि धामानि आ तस्थु**) कामना योग्य उत्तम लोको को प्राप्त हैं वे सब (**शृण्वन्तु**) इसे सुनें ॥१॥

भावार्थ—पुरोहित कहता है कि मैं तुम दोनो को [वर वधू को] विनय इत्यादि गुणो सहित ज्ञान मे पूर्ण वेद तथा ब्रह्मज्ञान का उपदेश देता हूं। जगत् के रचयिता परमात्मा का यह ज्ञानोपदेश सन्मार्ग दर्शाने वाले पथ के तुल्य है। सभी प्रभु-पुत्र व कामना योग्य उत्तम लोको की प्राप्ति के इच्छुक इसे सुनें ॥१॥

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।

आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥

पदार्थ—हे वधू वरो ! आप लोग (**यद्**) जब (**यमे इव**) आपस मे सबद्ध होकर, (**यतमाने**) प्रयत्न करते हुए (**आ एत**) प्राप्त हो, तो (**वां**) आप दोनो को (**देवयन्त मानुषाः**) आस्तिक मनुष्य (**प्रभरन्**) अच्छी प्रकार पोषण करें। आप लोग (**स्वम् उ लोक विदाने**) अपने आत्मा को सभालते हुए (**आ सीदतम्**) आदरणीय पद पर आसीन हो और (**न इन्दवे**) हमारे ऐश्वर्य हेतु (**सु-आसस्थे भवतम्**) शुभ आसन पर विराजमान हो ॥२॥

भावार्थ—हे वधू वरो ! आप लोग जब आपस मे सम्बद्ध होकर सक्रिय बनो तो आप दोनो का आस्तिक जन भली-भांति पोषण करें। आप लोग अपने आत्मा को समझते हुए आदरणीय पद पर विराजमान हो और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए शुभ आसन ग्रहण करो ॥२॥

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।

अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३॥

पदार्थ—(**रूप पदानि**) सीढ़ी के पग-दण्डो के तुल्य मैं (**रुप**) उच्च पद पर पहुँचने के साधन योगमार्ग के (**पञ्च पदानि**) पांचो यमों को (**अनु अरोहम्**) क्रम से लांघू और (**व्रतेन**) व्रत का पालन करके मैं (**चतुष्पदीम्**) चार पदो एव चार आश्रमो मे युक्त जीवन-पद्धति को (**अनु एमि**) प्राप्त करू। (**एताम्**) उस वाणी को (**अक्षरेण**) अक्षर आदि द्वारा वाणी के तुल्य हो (**अ-क्षरेण**) अमर वेद-मय ज्ञान से (**प्रति मिमे**) प्रत्यक्ष रूप से मान पाऊ और (**ऋतस्य**) सत्य ज्ञान के (**नाभौ**) केन्द्र परमात्मा मे रहकर मैं स्वय को (**अधि सम् पुनामि**) अति पावन बनाऊ ॥३॥

भावार्थः—व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम की पूर्ति के उपरान्त वैराग्यवान् वानप्रस्थ बनकर पञ्चकोशों की अनुभूति करनी चाहिए तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एव तुरीय अवस्था में भी योगाभ्यास से उस अविनाशी ब्रह्म के साथ अपने संगतिस्वरूप अध्यात्म यज्ञ मे स्वय को पावन करना चाहिए ॥३॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।

बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४॥

पदार्थ—(**देवेभ्य**) विद्वानो के लिए (**मृत्यु**) मृत्यु को (**अवृणीत कम**) दूर भगाओ, (**प्रजायै**) प्रजा हेतु (**अमृतं**) दीर्घ जीवन को (**न अवृणीत**) नष्ट मत होने दो। (**बृहस्पतिम्**) वेदवाणी को पालन करने वाले (**यज्ञं**) सत्सग योग्य (**ऋषिं**) वेदमन्त्र-द्रष्टा पुरुष को (**अकृण्वत**) नियुक्त करो और (**यम**) विवाह बन्धन से बंधे पुरुष (**प्रियां तन्वं**) अपने प्रिय सन्तान आदि को (**प्रारिरेचीत्**) जन्म दें ॥४॥

भावार्थ—सर्वव्यापक प्रभु उपासक विद्वान् जनो के दीर्घ जीवन को नष्ट नही होने देता। वह परमात्मा ही वेदवाणी के पालक सत्सगयोग्य वेदमन्त्रो के द्रष्टा पुरुष को अभय प्रदान करता है। ऐसे ही विवाह बन्धन से बंधे पुरुष अपनी प्रिय सतान को जन्म दें ॥४॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।

उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥१३॥

पदार्थ—(**पित्रे पुत्रासः**) पिता हेतु पुत्र जैसे प्रेम-भाव प्रदर्शित करते हैं इसी भांति (**मरुत्वते**) प्राणो के प्रमुख (**शिशवे**) भीतर निहित आत्मा के सुख के लिए ही ये (**सप्त**) सातो प्राणगण (**ऋतम् अपि अवीवृतन्**) ज्ञान एव सुख प्रदान कराते हैं। (**अस्य उभयस्य**) ज्ञान व कर्म का सम्पादन करने वाले इसके (**उभे इत् राजते**) दोनों ही ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय आलोकित होते है। (**पुष्यतः**) पोषक द्विवर्ग-स्वामी आत्मा के वे दोनो प्रकार के प्राण (**यतेते**) यत्न करते हैं ॥५॥१३॥

भावार्थ—जिस भांति पिता के लिए पुत्र प्रेम-भाव प्रदर्शित करता है, उसी भांति प्राणो के प्रमुख भीतर निहित आत्मा के सुख के लिए ही ये सातो प्राणगण ज्ञान एव सुख प्रदान कराते हैं। ज्ञान व कर्म का सम्पादन करने वाले दोनो ही ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय आलोकित होते हैं ॥५॥१३॥

इति त्रयोदशो वर्गः ।

[१४]

यम ऋषि ॥ देवताः—१—५, १३—१६ यमः । ६ लिंगोक्ताः । ७—९ लिंगोक्ता पितरो वा । १०—१२ श्वानौ ॥ छन्दः—१, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । १३, १४ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १५ विराड् बृहती ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

पदार्थः—(**प्रवत. महो**) श्रेष्ठ कर्म वालो को (**मही परेयिवांसम्**) उत्तम भूमि को देने वाले, और (**अनु**) अनन्तर (**बहुभ्य**) अनको के हितार्थ (**पन्थाम्**) मार्ग का (**अनुपस्पशानम्**) साक्षी तथा प्रहरी के तुल्य सबके मार्ग दिखाने वाले और (**वैवस्वत**) प्रजा के स्वामी, (**जनाना सगमनम्**) मनुष्यो के एक स्थान पर मिलने का आश्रय (**यम राजान**) नियन्ता राजा का (**हविषा दुवस्य**) श्रेष्ठ अन्न, वचन इत्यादि से आदर कर ॥१॥

भावार्थ—उत्तम कर्म करने वालो का उत्तम भूमि देने वाले और अनको के हितार्थ सबके मार्गद्रष्टा तथा प्रजा के स्वामी लोगो के एक स्थान पर मिलने का आश्रय जो नियन्ता राजा है, उसका श्रेष्ठ अन्न वचन इत्यादि से सत्कार किया जाना चाहिए ॥१॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥२॥

पदार्थः—(**प्रथम.**) सर्वोत्कृष्ट पुरुष (**यमः**) नियन्ता है। वह (**न गातु विवेद**) हमारी वाणी तथा स्तुति का पात्र हो। (**एषा**) वह (**गव्यूति.**) मार्ग (**अपभर्तवा न उ**) त्यागने योग्य नहीं है। (**यत्र**) जिसमें (**न**) हमारे (**पितर**) पालक पिता, पितामह इत्यादि (**स्वा पथ्या**) अपने हितकारी पथ को (**जज्ञाना**) जानते हुए (**एना**) इसी मार्ग से (**अनु परेयु**) दूर तक जाते रहे, अर्थात् दीर्घ जीवन बिताकर परलोकगामी हुए ॥२॥

भावार्थ—सर्वोत्कृष्ट पुरुष नियन्ता है। वही हमारी वाणी तथा वन्दना का पात्र है। वह मार्ग त्यागने योग्य नही जिसे हमारे पालक पिता व पितामह आदि अपने लिए हितकारी मान कर दीर्घ जीवन बिताने के उपरान्त परलोकगामी हुए हैं ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।

यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

पदार्थ—(**मातली**) ज्ञान मार्ग का प्राप्त करने वाला (**काव्यैः**) विद्वानों के ज्ञानो द्वारा (**यम**) नियन्ता, व्यवस्थापक पुरुष (**अङ्गिरोभि.**) तेजस्वी जनों से, और (**बृहस्पति**) बृहती वेदवाणी का पालन करने वाला विद्वान् (**ऋक्वभिः**) वेदज्ञ विद्वानों के द्वारा (**वावृधान**) वृद्धि पाता है। (**ये देवाः**) जो विद्वान् (**यान् च वावृधुः**) जिन्हें बढ़ाते हैं और जो व्यक्ति (**देवान् वावृधु**) इन विद्वानों, ज्ञान धनादि दाताओ को बढ़ाते हैं उनमे से (**अन्ये**) एक वर्ग के (**स्वाहा**) श्रेष्ठ वाणी व शुभ दान सत्कार से (**मदन्ति**) प्रसन्न होते हैं और (**अन्ये**) दूसरे व्यक्ति (**स्वधया**) अन्न-जल के द्वारा (**मदन्ति**) संतुष्ट होते हैं ॥३॥

भावार्थ—ज्ञान मार्ग का प्रापक विद्वानों के ज्ञान से व्यवस्थापक पुरुष तेजस्वी जनों से तथा वेदवाणी का पालक विद्वान् वेदज्ञ विद्वानों द्वारा वृद्धि पाता है। जो

विद्वान् जिन्हें बढ़ाते हैं और जो व्यक्ति इन विद्वानों, ज्ञान धनादि देने वालों को बढ़ाते हैं उनमे से एक वर्ग के लोग उत्तम वाणी तथा शुभदान आदि से प्रसन्न होते है और दूसरे लोग अन्न जल द्वारा तृप्ति पाते हैं ॥३॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

पदार्थ.—हे (**यम**) नियन्तः ! तू (**इम**) इस (**प्र-स्तरम्**) श्रेष्ठ स्थान पर (**आसीद हि**) अवश्य शोभित हो और (**पितृभि**) पालक पिता, पितामह आदि एव (**अङ्गिरोभिः**) ज्ञानी जनो मे (**सं विदानः**) श्रेष्ठतम ज्ञान पाता हुआ, हे (**राजन्**) तेजस्विन् ! तू राजा (**हविषा**) इस आदर योग्य साधन से (**मादयस्व**) प्रसन्न हो । (**कवि-शस्ता. मन्त्रा**) मेधावी जनो के द्वारा उपदिष्ट मननयोग्य विचार (**त्वा आवहन्तु**) तुझे उत्तम मार्ग दिखाए ॥४॥

भावार्थः—हे नियन्ता ! तुम इस श्रेष्ठ आसन पर अवश्य शोभित हो । ज्ञानी जनो से श्रेष्ठतम ज्ञान पाता हुआ तेजस्वी इस आदरयोग्य साधन से प्रसन्न हो । मेधावी जनों द्वारा दिये गये उपदेश तुझे उत्तम मार्ग दिखाए ॥४॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥१४॥

पदार्थ—हे (**यम**) नियन्त. ! तू (**यज्ञियेभि**) पूजा तथा सत्सग योग्य (**अंगिरोभि**) तेजस्वी, (**वैरूपै**) विविध रुचि एव नाना विद्या, कलाओ मे पारगत विद्वानों सहित (**आ गहि**) आ और (**मादयस्व**) सभी को आनन्द प्रदान कर । (**य**) जो (**पिता**) पिता के तुल्य प्रजा की रक्षा करता है उस (**विवस्वन्तं**) भाति-भाति के धनो के स्वामी की मैं (**हुवे**) वन्दना करता हू कि वह (**ते अस्मिन् यज्ञे**) तेरे इस यज्ञ में (**बर्हिषि**) आसन पर (**नि सद्य**) शोभित हो और (**आ**) सबको आनन्द प्रदान करें ॥५॥

भावार्थ—हे नियन्ता तुम पूज्य तथा सत्सग योग्य तेजस्वी व नाना कला पारगत विद्वानो सहित आकर सभी को आनन्द दो । मैं माता-पिता के तुल्य पालक व विभिन्न धनो के स्वामी की वन्दना करता हूँ । वह परमात्मा तुम्हे सर्वभाति आनन्द प्रदान करे ॥५॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

पदार्थ—(**अंगिरस**) प्रखर तेजस्वी, (**न**) हम प्रजाओ के (**पितर.**) पालन करने वाले (**नवग्वा**) सदैव नवीन वाणियो के प्रकट कर्त्ता (**अथर्वाण**) अहिंसक, (**भृगवः**) पाप सहारक, (**सोम्यास**) अन्नादि से सत्कार योग्य हैं । (**यज्ञियानाम्**) सत्सग योग्य उनकी (**सुमतौ**) शुभ मति एव उनकी (**भद्रे सौमनसे**) कल्याणकारी सुखजनक शुभचित्तता मे हम (**स्याम**) सदैव रहे ॥६॥

भावार्थ—अगारो के तुल्य प्रखर, हम प्रजाओ का पालन करने वाले सदैव नवीन वाणियो को प्रकट करने वाले पाप सहारक, अन्नादि से सत्कार करने योग्य हैं हम सदैव उनकी शुभ मति तथा कल्याणकारक सुखजनक शुभचित्तता मे हम सदैव तत्पर रहे ॥६॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**पूर्व्येभि पथिभि**) पहले के ऋषियों द्वारा प्रदर्शित मार्गों से (**प्र इहि प्र इहि**) सतत आगे बढता जा । (**यत्र**) जिन पथों मे (**न पूर्वे पितरः**) हमारे पूर्व पिता इत्यादि जन (**परा ईयु**) दूरी तक दीर्घ जीवन पार कर गये हैं, उस पथ पर चलते हुए तू (**स्वधया मदन्ता**) अन्न व शक्ति से आह्लादित होते हुये (**यम**) नियन्ता एव (**वरुण च**) दुष्टों के सहारक दिन रात्रिवत् (**राजाना**) तेजस्वी (**उभा**) दोनो स्त्री पुरुषों को (**पश्यासि**) देख ॥७॥

भावार्थ—हे मानव ! तू सर्व ऋषियो द्वारा प्रदर्शित मार्ग से सतत आगे बढ़ता चल । जिन पथो से हमारे पूर्वजों आदि ने दीर्घ जीवन पार किया है, उन्हीं पर चलते हुए तू अन्न व शक्ति से आह्लादित होते हुए नियन्ता व दुष्ट सहारक दिन-रात के समान तेजस्वी दोनो स्त्री-पुरुषो को देख ॥७॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

पदार्थ—हे पुरुष ! एव हे स्त्री ! तू (**पितृभि**) पालन करने वाले माता, पिता, गुरुजनों से (**स गच्छस्व**) सत्सग कर । (**यमेन स गच्छस्व**) नियन्ता जन से और (**परमे व्योमन**) सर्व उत्कृष्ट आकाश तुल्य रक्षा स्थान परमात्मा के अधीन रह कर (**इष्ट-आपूर्तेन**) यज्ञ दान आदि साधनो से (**सं गच्छस्व**) सर्वदा युक्त रहे । (**अवद्य हित्वाय**) निन्दनीय कार्य को त्याग कर (**पुनः अस्तम् एहि**) बार बार गृह को प्राप्त हो और (**सु-वर्चा**) तेजस्वी बनकर (**तन्वा**) सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री तथा कुलवर्धक पुत्रादि से (**स गच्छस्व**) सगति का लाभ प्राप्त कर ॥८॥

भावार्थ—हे पुरुष ! हे नारी! तू पालक माता, पिता एव गुरुजनो से सत्सग कर और सर्वोत्कृष्ट आकाश तुल्य रक्षा स्थान प्रभु के अधीन रहकर यज्ञ, दान आदि साधनों से सदैव युक्त रह । निन्दनीय कार्यों को त्याग कर बार-बार गृह को प्राप्त हो तथा तेजस्वी बनकर सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री तथा कुलवर्धक पुत्रादि से सगति का लाभ प्राप्त कर ॥८॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥९॥

पदार्थ—हे दुष्टो ! (**अत अप इत**) यहा से दूर चले जाओ । (**वि इत**) विविध दिशाओ मे भागो । (**वि सर्पत च**) दूर रेंग जाओ । (**पितर**) पालक जन (**एत लोक**) इस लोक को (**अस्मै**) प्रजा हेतु (**अहोभि अक्तुभि**) दिन रात (**अद्भि**) जलो द्वारा (**वि अक्त**) सींचे इस लोक को हरा-भरा (**अक्रन्**) करें । (**यम**) नियन्ता राजा तथा प्रभु (**अस्मै**) इसके लिये यहा हो (**अवसान ददाति**) आश्रय प्रदान करता है ॥९॥

भावार्थ—हे दुष्ट जनो ! तुम यहा से दूर भाग जाओ । विविध दिशाओ मे पलायन करो । पालक जन इस लोक को प्रजा के लिये दिन रात जलो से सींचे । इस लोक को हरा-भरा बनाए । राजा तथा प्रभु इसके लिये यहा ही आश्रय देता है ॥९॥

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**सारमेयौ**) सूर्य प्रभा से उपजे (**श्वानौ**) गतिवान्, (**चतुरक्षौ**) चतुर्दिक व्याप्त (**शबलौ**) श्याम-रक्त वर्ण युक्त दिन-रात्रि दोनों को (**साधुना पथा**) धर्म-मार्ग से (**अति द्रव**) बिताया करो । ये जो विद्वान् (**यमेन**) सर्व-नियन्ता परमात्मा के साथ (**सधमाद**) आनन्द (**मदन्ति**) अनुभव करते है उन (**सु-विदत्रान्**) ज्ञानी, (**पितॄन्**) पालक माता, पिता एव ज्ञानवान् पुरुषो को (**उपेहि**) प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू सूर्य प्रभा मे उपजे गतिमान चतुर्दिक व्याप्त श्याम-रक्त वर्ण-युक्त दिन रात दोनो को धर्म मार्ग से बिताया करो । तुम्हे विद्वान् नियन्ता आस्तिक विद्वानों की तथा पालक, माता, पिता की सगति प्राप्त हो ॥१०॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

पदार्थ—हे (**यम**) नियन्त ! (**ते**) तेरे (**यौ श्वानौ**) जो सदैव सक्रिय, (**रक्षितारौ**) मृत्यु से रक्षक, (**चतुरक्षौ**) चारो आश्रमों मे व्यापे हुये, (**पथि-रक्षी**) जीवन-मार्ग मे रक्षक, (**नृ-चक्षसौ**) देह नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण-अपान हो । हे (**राजन्**) प्रकाश पुञ्ज ! (**ताभ्याम्**) उनसे (**एन**) इस जीव को (**परि देहि**) मुक्ति प्रदान कर और (**अस्मै स्वस्ति च अनमीव च धेहि**) उसे सुखी व रोगरहित शरीर दे ॥११॥

भावार्थ—हे नियन्ता ! तेरे जो सदैव सक्रिय, मृत्यु से बचाने वाले, चारों आश्रमो मे व्याप्त जीवन मार्ग मे रक्षा करने वाले देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान है, हे प्रकाश पुञ्ज ! उनसे इस जीव को युक्त कर और उसको सुखी व रोगरहित शरीर प्रदान कर ॥११॥

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥

पदार्थ—(**यमस्य**) सर्व नियन्ता प्रभु के (**दूतौ**) प्रतिनिधियो के तुल्य, दोनो प्रकार के राजपुरुष [पुलिस] (**उरूणसौ**) बलशाली तथा तीक्ष्ण शक्ति वाले, (**असु-तृपा**) प्राण रक्षा योग्य द्रव्य मात्र से सन्तुष्ट होने वाले, (**उदुम्बलौ**) नितान्त बलशाली जन (**जनान् अनु चरत**) प्रजा जनो को देखते हुए घूमते हैं । (**तौ**) वे दोनो (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये तथा (**सूर्याय दृशये**) सूर्य के समान तेजस्वी द्रष्टा अध्यक्ष हेतु (**इह अद्य**) इस देश व काल मे (**भद्रम् असुम् पुन दाताम्**) कल्याणकारी बल तथा जीवन बार-बार प्रदान करें ॥१२॥

भावार्थ—सर्व नियन्ता परमात्मा के प्रतिनिधियो के समान, दोनो प्रकार के राजपुरुष व बलशाली तथा तीक्ष्ण शक्ति वाले, प्राण रक्षा योग्य द्रव्य मात्र से तृप्त होने वाले नितान्त बलशाली जन प्रजाजनो को देखते हुए विचरते हैं । वे दोनो हमारे लिये इस देश व काल मे कल्याणकारी बल तथा जीवन प्रदान करें ॥१२॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

पदार्थ.—(**यमाय**) यम नियम के व्यवस्थापक राजा के लिये (**सोमं**) औषधि, अन्न सम्पन्नता (**सुनुत**) उपजाओ और (**यमाय**) उस नियन्ता के उपकार के लिये (**हविः जुहुत**) यज्ञाग्नि मे आहुति योग्य द्रव्य प्रदान करो, अन्न दान दो । (**यज्ञ**) यज्ञ व सत्सगादि भी (**अग्नि-दूत**) अग्निवत तेजस्वी दूतो वाला एव (**अरकृत**) सुशोभित होकर (**यम ह गच्छति**) उस नियन्ता को ही शरणार्थ मिलता है ॥१३॥

भावार्थ—यम नियम के व्यवस्थापक राजा के लिये औषधि अन्न, सम्पन्नता उत्पन्न करो और उस नियन्ता के उपकारार्थ यज्ञाग्नि मे हवि प्रदान करो । यज्ञ व सत्सगादि भी अग्निवत् तेजस्वी दूतों वाला व सुशोभित होकर नियन्ता को ही शरणार्थ मिलता है ॥१३॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।

स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

पदार्थ —(यमाय) उस नियन्ता हेतु ही (घृतवद् हवि) घृतयुक्त अन्न (जुहोत) समर्पित करो और (प्र तिष्ठत च) उत्तम मार्गों पर बढो तथा देश-देशान्तर मे जाओ । (सः) वह (न देवेषु) विद्वानो एव वीर पुरुषो मे (जीवसे) उनके जीव के लिए (दीर्घायु प्र आ यमद्) दीर्घ जीवन दे ॥१४॥

भावार्थ —उस प्रभु हेतु ही घृतयुक्त अन्न समर्पित करो एव उत्तम मार्गो पर बढो तथा देश देशान्तर मे जाओ। वह विद्वानो एव वीर पुरुषो मे उनके जीवन के लिए दीर्घ जीवन प्रदान करे ॥१४॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

पदार्थ --(यमाय) व्यवस्था करने वाले (राज्ञे) राजा के हेतु (मधुमत्तम) नितात मधुर, (हव्य) ग्रहणीय पदार्थ (जुहोतन) प्रदान करो । (ऋषिभ्य) ऋषियो के लिए (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज एव (पूर्वभ्य) पूर्व के (पथिकृद्भ्य) मार्ग का उपदेश देने वालो को (इद नम) अन्न, वचनादि के द्वारा आदर मिले ॥१५॥

भावार्थः —व्यवस्था करने वाले शासक के लिये मधुर, ग्रहणीय पदार्थ प्रदान करो । ऋषियो के लिये पूर्वज एव पूर्व के मार्ग का उपदेश देने वालो को अन्न वचनादि के द्वारा आदर प्राप्त हो ॥१५॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥१६॥

पदार्थ.—(एकम् इत् बृहत्) यह एक ही महान् ब्रह्म (त्रि-कद्रुकेभि.) तीन द्रुतगामी गुणो के द्वारा (षट उर्वी) छहो महान् शक्तियो को (पतति) प्राप्त होता है । जिस प्रकार एक सूर्य ग्रीष्म शीत, वर्षा तीन गुणो म छहो ऋतुओ मे व्याप्त होता है उसी भाति एक प्रभु ज्योति, गौ, आयु तात्पर्य यह है कि सूय व भूमि तथा जीवन तत्व इन तीनों के द्वारा इन छहो महाशक्तियों को चला रहा है । सूय, भूमि, जल, वनस्पति अन्न व वाणी ये छ महाशक्तिया है । (त्रिष्टुप्, गायत्री, छन्दासि) त्रिष्टुप, गायत्री तथा अन्य छन्दोबद्ध वाणिया (ता सर्वा) ये सब (यमे) व्यवस्था करने वाले प्रभु मे (आहिता) निहित हैं ॥१६॥१६॥

भावार्थ —वह एक महान् ब्रह्म ही तीन द्रुतगामी गुणों के द्वारा छहो महाशक्तिया को प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा की उसी म सर्वशक्तिया निहित हैं ॥१६॥१६॥

इति षोडशो वर्गः ।

[१५]

शखो यामायन ऋषिः ॥ पितरो देवता ॥ छन्दः - १, २, ७, १२—१४ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ निचृज्जगती । चतुर्दशर्चं सूक्तम ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।

असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

पदार्थ – (अवरे उत ईरताम्) अल्पायु तथा अल्पज्ञानी जन उन्नत बने । (परास) पर, उत्कृष्ट पद प्राप्त (पितर) पालक जन भी (उत् ईरताम्) उत्तम पद पाये । इसी भांति (मध्यमा सोम्यास) इन दोनो वर्गों के मध्य, मध्यम श्रेणी के पालक वृन्द (उद् ईरताम्) उत्तम पद को पालें । (ये) जो (ऋत-ज्ञा) सत्य को जानने वाले विद्वान (असुम् ईयु.) जीवन प्राप्त करें (ते) वे (पितर) पालक (अवृका) हिंसक न होकर (हवेषु) यज्ञो के अवसर पर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थ —अल्पायु तथा अल्पज्ञानी जन उन्नत बनें परन्तु उत्कृष्ट पद प्राप्त पालक जन भी उत्तम पद को पायें । इसी भाति इन दोनो वर्गों के मध्य की श्रेणी के पालक जन भी उत्तम पद को प्राप्त करें । जो सत्य को जानने वाले विद्वान् जीवन को प्राप्त करें वे पालक हिंसक न होकर यज्ञो के अवसर पर हमारी रक्षा कर ॥१॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।

ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

पदार्थ —(ये पूर्वास) जो पूर्व दिशा सम्बन्धी सूर्य रश्मियां (ये उपरास) जो पश्चिम दिशा मे विद्यमान है (ये पूर्वास , ये उ परासः) जो हमसे पूर्व और जो हमारे बाद के (अद्य ईयु) अब हमे प्राप्त है (ये पार्थिवे) जो इस भूलोक मे (आ निषत्ता) आकाश में विराजमान हैं और (ये वा) जो निश्चय करके (सु वृजनासु) प्रजा वर्ग मे विद्यमान हैं उन (पितृभ्य इद नम अस्तु) सूर्य किरणो के लिए यज्ञ है ॥२॥

भावार्थ --सूर्य के पूर्व एव पश्चिम रूप उदय अस्त मार्ग से मिली किरणो एव पृथिवी के भीतर पार्थिव वस्तुओं एव आकाश स्थित पदार्थों को किरणो की यज्ञक्रिया के द्वारा उपयोगी बनाया जाना चाहिये ॥२॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।

बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

पदार्थ —(अह) मैं (सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) सुविधासम्पन्न, ज्ञानवान्, पालक जनो को जानता हूँ और मैं (विष्णो नपात) व्यापक प्रभु के अविनाशी स्वरूप और (वि-क्रमण च) प्रसार व्याप्ति को (अवित्सि) भली-भांति जानता हू । (ये) जो (बर्हि-सद) बुद्धिमान् एव उत्तम आसनो पर विराजते हैं वे (सुतस्य पित्व) श्रेष्ठ औषध, अन्न को (स्वधया भजन्त) अपने शरीर पोषक रूप से सेवन करे (ते) वे (इह आगमिष्ठाः) यहा आदरपूर्वक विराजें ॥३॥

भावार्थ —मैं सुविधासम्पन्न ज्ञानयुक्त पालक जनो को जानता हू और मैं व्यापक प्रभु के अविनाशी स्वरूप और व्याप्ति कौशल को भली-भाँति जानता हूँ । जो बुद्धिमान् हैं एव उत्तम आसन पर विराजते हैं एव श्रेष्ठ औषधि तथा अन्न को अपने शरीर पोषक रूप से सेवन करते हैं वे यहाँ सम्मानपूर्वक विराजें ॥३॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।

त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४॥

पदार्थ—हे (बर्हि-षद. पितर) यज्ञासन पर स्थित गुरुजनो ! आप लोग (ऊती अर्वाक्) हमारी सदैव रक्षा एव प्रीति करें । (इमा हव्या) अन्न, वस्त्र, धनादि को हम (वः) आप लोगो के निमित्त (चकृम) समर्पित करते हैं । (ते) वे आप (आगत) आइये, (अथ) और (शन्तमेन अवसा) शान्ति प्रीति सहित (न. शयो) हमे सुख प्रदान (दधात) कराइये और (अरप दधात) पाप दूर करिये ॥४॥

भावार्थ —हे यज्ञासन पर स्थित गुरुजनो ! आप लोग हमारी सदैव रक्षा करें । हम आपके निमित्त धन, वस्त्र आदि समर्पित करते है । आप लोग आइये और शान्ति प्रीति सहित हमे सुख प्रदान कीजिये व हमे पापो से दूर करिये ॥४॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।

त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥१७॥

पदार्थ —(सोम्यास पितर) अन्न, जल, सम्पदा आदि के योग्य (पितर) विद्वत्जन आदि (बर्हिष्येषु) यज्ञोपयोगी (प्रियेषु) तृप्तिदाता, (निधिषु) नियम से धारण किये जाने योग्य पदार्थों के लिये (उप-हूता) आदर सहित निमन्त्रित हो। (ते) वे (इह आगमन्तु) यहाँ पधारें । (ते इह अधि श्रुवन्तु) वे हमारे वचन सुनें और (ते अस्मान् अवन्तु) इस भांति हमारी रक्षा करें ॥५॥

भावार्थ - अन्न, जल एव सम्पदा आदि के योग्य विद्वत्जन आदि यज्ञोपयोगी तृप्तिदाता, नियम से धारण किये जाने योग्य पदार्थों के लिये सादर आमन्त्रित हो और पधार कर हमारी प्रार्थना सुनें । वे हमारी रक्षा करें ॥५॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

पदार्थः—हे (पितर) प्रजा का पालन करने वालो ! (विश्वे) आप सब (दक्षिणत) दायें ओर (जानु आच्य) गोडे सिकोड कर (नि सद्य) आसीन हो कर (इम यज्ञम् अभि गृणीत) इस यज्ञ एव प्रभु को लक्ष्य कर उपदेश करें । (यद् व·) जो आप लोगो के प्रति हम (पुरुषता आग कराम) मानव होने के कारण अपराध कर दें (केन चित्) किसी भी कारण से (न मा हिंसिष्ट) आप लोग हमे पीडा न दें ॥६॥

भावार्थ —हे प्रजा का पालन करने वालो ! आप सब दाईं ओर गोडे सिकोड कर आसीन हो । इस यज्ञ एव प्रभु को लक्ष्य कर उपदेश करें । आप हमे किसी भी कारण से पीडित न करे ॥६॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

पदार्थ —हे (पितर.) विद्वान् जनो ! (अरुणीनाम् उपस्थे) उत्तम भूमि तथा प्रजाओ के पास (आसीनास) आसीन हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) दानशील व्यक्ति हेतु (रयिं धत्त) देने योग्य धन धारण करो एव कालान्तर मे (तस्य पुत्रभ्य) उसके ही पुत्र पौत्रो के लिये (वस्व प्रयच्छत) उस धन को देवें (ते) वे आप लोग (इह ऊर्ज दधात) इस यज्ञ मे अधिकार धारण करें ॥७॥

भावार्थ—हे विद्वानो, उत्तम भूमि तथा प्रजा के समीप विराजते हुए आप लोग दानशील व्यक्ति के लिये उसके देने योग्य धन धारण करो एव कालान्तर मे उसकी सतति को धन दो । आप लोग इस यज्ञ में अधिकार धारण करें ॥७॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।

तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८॥

पदार्थ —(न) हमारे (ये) जो (पूर्वे) पूर्व आसीन, विद्या इत्यादि मे पारगत (सोम्यासः पितरः) ऐश्वर्य तथा शिष्य पुत्रादि के हितैषी (वसिष्ठाः) उत्तम 'वसु' या दूसरों के बसाने वाले (सोमपीथ अनु ऊहिरे) सोम अर्थात् शिष्य

इत्यादि से पालन योग्य ज्ञान प्रतिदिन धारते है (तेभि: उशद्भि:) उन गुरुजनों सहित (स रराणः यम) सुखपूर्वक निवास करता हुआ यम नियम पालक शिष्य (प्रतिकामम् उशन्) प्रत्येक उत्तम पदार्थ की कामना करता हुआ (हवींषि अत्तु) अन्नो को उपभोग मे लायें ॥८॥

भावार्थ—हमारे जो पूर्व प्राचीन विद्या इत्यादि मे पारगत ऐश्वर्यसम्पन्न शिष्य, पुत्रादि के हितैषी उत्तम बनाने वाले होकर शिष्य इत्यादि से पालन करने योग्य ज्ञान को प्रतिदिन धारण करते है, उन गुरुजनो के सहित सुखपूर्वक निवास करता हुआ नियम पालक शिष्य प्रत्येक उत्तम पदार्थ की कामना करते हुए अन्नो को उपयोग मे लाये ॥८॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

पदार्थ—(ये) जो (होत्रा-विद) अग्निहोत्र तथा वेदवाणी के (स्तोम-तष्टास:) वेद के सूक्तो को स्पष्ट करके बताने वाले विद्वान् (देवत्रा) विद्या की कामना करने वाले शिष्यो को (जेहमाना) प्राप्त कर उनके हेतु (तातृषु) धन इत्यादि की कामना करते है उन (अर्कैः) वन्दनीय (सुविदत्रेभि:) ज्ञानवान (सत्यैः) सत्यभाषी, (कव्यै:) क्रान्तदर्शी, (घर्म सद्भि:) तेजवान्, (पितृभि) पितृतुल्य, पूज्य गुरुजनो सहित (अग्ने) हे विनीत शिष्य ! तू सबके (अर्वाङ् आयाहि) सम्मुख उपस्थित हो ॥९॥

भावार्थ—जो अग्निहोत्र तथा वेदवाणी के वेद के सूक्तो को स्पष्ट करके बतलाने वाले विद्वान् विद्या की कामना करने वाले शिष्यो को प्राप्त होकर उनके लिये धन इत्यादि की कामना करते है उन वन्दनीय, ज्ञानवान् सत्यभाषी, क्रान्तदर्शी, तेजस्वी पितृवत् पूज्य गुरुजनो सहित, हे विनीत शिष्य ! तू सबके समक्ष उपस्थित हो ॥९॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥१८॥

पदार्थः—(ये) जो (सत्यास) सत्य आचरण करने वाले, (हवि-अद) उत्तम अन्न का उपभोग करने वाले (हविष्पाः) उत्तम अन्नरस ग्रहण करने वाले, (इन्द्रेण देवैः) आत्मदर्शी गुरु सहित (स रथं दधाना) समान रथ धारक (देव-वन्दैः) शिष्यो से अर्चनीय, (परैः पूर्वैः) श्रेष्ठ, विद्यादि मे पूर्ण (घर्मसद्भि:) तेजस्वी जनों सहित (अग्ने) हे तेजस्विन् ! तू भी (सहस्रं आ याहि) बलवान् पद प्राप्त कर ॥१०॥१८॥

भावार्थ—जो सत्याचरणशील उत्तम अन्न के भोक्ता, उत्तम अन्नरस ग्रहण करने वाले आत्मदर्शी गुरु के साथ समान रथ धारक शिष्यो से अर्चनीय श्रेष्ठ विद्यादि से पूर्ण तेजस्वी जनो सहित हे तेजस्वी तू भी बलशाली पद का ग्रहण कर ॥१०॥१८॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥

पदार्थ—(अग्नि सु-आत्ता) विनययुक्त शिष्यों तथा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुषो द्वारा आश्रित (पितर) उनके पालक पितरो ! (सुप्रणीतय) हे श्रेष्ठ पद पर ले जाने वाले ! आप लोग (इह आगच्छत) यहाँ पधारो तथा (सद. सदः सदत) प्रत्येक सभा मे उत्तम आसन पर अधिष्ठित हों। आप लोग (प्रयता हवींषि) भृति वेतन इत्यादि का (अत्त) उपभोग करो (अथ) और (बर्हिषी) इस राष्ट्र यज्ञ मे (सर्व-वीर रयिं) सकल वीर जनो से युक्त ऐश्वर्य को (दधातन) धारो ॥११॥

भावार्थ—विनययुक्त शिष्यो तथा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुषो द्वारा आश्रित उनके पालक गुरुजनो ! हे श्रेष्ठ मार्ग पर जाने वालो ! आप लोग यहाँ पधारो तथा प्रत्येक सभा मे उत्तम आसन पर विराजो। आप लोग भृति, वेतन इत्यादि का उपभोग करो। आप इस राष्ट्र यज्ञ मे सकल वीरजनों से युक्त ऐश्वर्य को धारो ॥११॥

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजयुक्त ! हे (जातवेद) ऐश्वर्य, ज्ञान तथा विद्या मे विख्यात ! (त्वम् ईळित) तू सर्वप्रिय बन कर (हव्यानि) ग्रहणीय पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वी) सुगन्धयुक्त करके (अवाट्) प्रदान कर। तू (पितृभ्य: प्रादा) अपने पालकों को भी अन्न दे। (ते) वे उस अन्न को (स्वधया) स्व शरीर के पोषण धारण निमित्त ही (अक्षन्) प्राप्त करें और (त्व) तू भी हे (देव) दान देने वाले ! (प्रयता हवींषि) स्व गुरुजनो द्वारा दिये अन्नों को (अद्धि) ग्रहण कर ॥१२॥

भावार्थ—हे तेजयुक्त ! हे ऐश्वर्य ज्ञान तथा विद्या मे विख्यात ! तू सर्वप्रिय बनकर ग्रहणीय पदार्थों को सुगंध युक्त करके प्रदान कर। तू अपने पालकों को भी अन्न प्रदान कर। वे उस अन्न को स्व-शरीर-पोषण के निमित्त ही प्राप्त करें और तू भी हे देव स्व-गुरुजनो द्वारा दिये गये अन्नों को ग्रहण कर ॥१२॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥

पदार्थ—(ये च इह पितर) जो यहा पालन करते है (ये च न इह) और जो यहा नही (यान् च विद्म) जिन्हे हम जानते है और (यान् उ च न प्र-विद्म) जिन्हे हम नहीं जानते, हे (जात-वेद) विद्यावान् ! (यति) यदि (ते) उन्हें (त्वं वेत्थ) तू जानता है तो (स्वधाभि) अन्न जल के साथ (सुकृतं) उत्तम रीति से किये (यज्ञं जुषस्व) दान को ग्रहण कर। दान से उनकी सेवा-शुश्रूषा कर ॥१३॥

भावार्थ—जो पालक यहा है और जो यहा नही है, जिन्हें हम जानते है और जिन्हे हम नही जानते हे विद्यावान् ! यदि उन्हे तू जानता है तो अन्न-जल के साथ उत्तम रीति से किये गये दान को सेवन कर। दान से उनकी सेवा कर ॥१३॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥१९॥

पदार्थ—(ये) (अग्नि-दग्धा) जो लोग ज्ञानी प्रभु अथवा गुरु द्वारा स्व अज्ञान को क्षार कर देने वाले तथा (ये अनग्नि-दग्धा) जो यज्ञ, गुरु आचार्य इत्यादि द्वारा कर्मों को क्षार नही कर पाये अथवा जो सन्यासी अग्निहोत्र नहीं करते और (मध्ये दिव) भूमि मे तथा प्रकाश के मध्य ही (स्वधया) अन्न, जल या अपने शरीर के बल से (मादयन्ते) आनन्दित रहते हैं (तेभि) उनके साथ तू (स्वराट्) प्रकट होता हुआ (एताम्) इस (असु-नीतिं) बल पाने वाले (तन्व) शरीर को (यथा-वशं) यथाशक्ति (कल्पयस्व) सामर्थ्य दे ॥१४॥

भावार्थ—जो लोग ज्ञानवान् प्रभु या गुरु द्वारा अपने अज्ञान को दूर कर देने वाले हैं तथा जो यज्ञ, गुरु आचार्य इत्यादि द्वारा कर्मों को भस्म नही कर पाये अथवा जो सन्यासी अग्निहोत्र नहीं करते और भूमि मे तथा प्रकाश के मध्य ही अन्न-जल या स्व-शरीर की शक्ति से प्रसन्न रहते हैं उनके साथ तू प्रकटित होकर इस बल प्राप्त करने वाले शरीर को यथाशक्ति सामर्थ्य दे ॥१४॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ।

[१६]

दमनो यामायन ऋषि. ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द - १, ४, ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ९ त्रिष्टुप्। १० स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ ११ अनुष्टुप्। १२ निचृदनुष्टुप्। १३, १४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने एनं मा विदह मा अभि शोच) हे अग्नि मृत देह को विदग्ध मत कर। हे (जातवेद.) हे ऐश्वर्यवान् ! (यदा) जब तू इसे (शृतं कृणव) पकावे, तब (अस्य त्वचं मा चिक्षिप) इसकी त्वचा को मत फेंक या त्वचा को भग करने वाला कष्ट न दे। (मा शरीरं चिक्षिप) शरीर को भी बेचैन मत कर। (अथ) अनन्तर (एनं) इस शव को (पितृभ्य) सूर्य रश्मियो के लिये (प्र हिणुतात्) पहुँचा दे ॥१॥

भावार्थ—शवदाह हेतु इतना ईधन होना अपेक्षित है कि जिससे शव अध-जला न रहे और बहुत ईधन होने से भी अग्नि इधर-उधर जल कर ही न रहे अतएव ठोस ईधन का प्रयोग अपेक्षित है तथा अग चटक-चटक कर यत्र-तत्र न उड़ें या गिरें, ऐसे न चटकने वाले ईधन से शव जलाया जाये जिससे अग्नि से शव सूक्ष्म होकर सूर्य रश्मियो मे व्याप्त हो सके ॥१॥

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२॥

पदार्थ—हे (जात-वेद) अग्नि ! (यदा) जब तू (एनं शृतं करसि) इसे परिपक्व कर दे (अथ एमं पितृभ्य परिदत्तात्) तब सूर्य रश्मियों की सेवा मे प्रदान कर, क्योंकि (यदा) जब (एताम् असु-नीतिं गच्छति) जीव शरीर भरण स्थिति को पा सकता है (अथ) तभी से वह (देवानां) पृथिवी, जल, वायु आदि के वश में हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—अग्नि जब इस मृत देह को क्षार कर देती है, तभी उसे सूर्य-किरणो को सौंप देती है। शरीर आत्मा से मुक्त होते ही पृथिवी आदि पच भूतों में मिलने लग जाता है और अग्नि उसकी इस क्रिया के संपादन मे तीव्रता लाती है ॥२॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥

पदार्थः—(सूर्यं चक्षु: गच्छतु) नेत्र प्रकाश सूर्य को प्राप्त हो (आत्मा वातम्) जीवात्मा वायुमय अतरिक्ष को प्राप्त करे। तू (धर्मणा) सामर्थ्य अनुसार, (द्यां च गच्छ) आकाश और (पृथिवीं च) पृथिवी को अपने कर्म-फल से प्राप्त हो। (वा अप गच्छ) जलमय लोक को प्राप्त कर। (यदि ते तत्र हितम्) यदि वह तेरा कर्म फल है तो तू (शरीरैः) शरीर धारण मात्र (ओषधीषु) औषधियो मे गमनाभाव के आधार पर (प्रति तिष्ठ) स्थावरत्व को प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—देहपात के उपरान्त शरीर तो अपने-अपने कारण पदार्थों मे लीन हो जाता है और जीव अपने कर्म के अनुसार प्रकाशयुक्त जलमय, पृथिवीमय लोकों तथा वृक्षादि की जड़ योनियों को प्राप्त होता है ॥३॥

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥४॥

पदार्थ—(भागः) भोक्ता आत्मा अपने आप (अजः) पैदा नही होता है। हे (जातवेदः) विद्वन् ! (तं) उसे (तपसा तपस्व) तप से सतप्त कर। (ते शोचिः) तेरी शुद्ध ज्योति (तं) उस आत्मा को (तपतु) तप्त करे और (तं ते अर्चिः तपतु) उसे तेरा ज्ञान शुद्ध कर दे। (याः) जो (ते शिवाः तन्वः) तेरे शान्ति देने वाले रूप हैं (ताभिः एनं सुकृताम् लोकम् वह) उनसे उसे तू पुण्यकर्मी जनों के स्थान मे प्राप्त करा ॥४॥

भावार्थ—भोक्ता आत्मा स्वय उत्पन्न नही होता है। हे विद्वन् ! उसे तप से सतप्त कर। तेरी शुद्ध ज्योति उस आत्मा को तप्त करे एव उसे तेरा ज्ञान शुद्ध कर दे। जो शान्तिदायक रूप हैं, उनसे उसको तू पुण्यकर्मी जनो के स्थान में प्राप्त करा ॥४॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥२०॥

पदार्थ—हे (अग्ने) तेजयुक्त ! (यः) जो (ते आहुतः) तेरे अधीन हो (स्वधाभिः) भिक्षा इत्यादि से तेरी सेवा करता है उस शिष्य को तू (पुनः) पुन (पितृभ्यः अव सृज) पालक जनों के लिये प्रेरित कर। वह (वसानः) उत्तम वस्त्र पहन कर (शेषः आयुः उपवेतु) अपनी अवशिष्ट आयु माता-पिता के सहित बिताये। हे (जातवेद) विद्वन् ! वह (तन्वा सं-गच्छताम्) सदैव दृढ़ शरीर से सम्पन्न रहे ॥५॥२०॥

भावार्थ—हे तेजयुक्त ! जो तेरे अधीन होकर भिक्षादि द्वारा तेरी सेवा करता है उस शिष्य को तू पुन पालक जनों के लिए प्रेरित कर। वह उत्तम वस्त्र धारण कर अपनी अवशिष्ट आयु माता-पिता सहित बिताये। वह सदैव स्वस्थ एव बलवान् रहे ॥५॥२०॥

इति विंशो वर्गः ॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (ते) तुम्हें (कृष्णः) काला अथवा काटने वाला (शकुनः) पक्षी अथवा दुःखदायी जन्तु आदि (आ तुतोद) खूब पीड़ा दे (पिपीलः) कीड़ा आदि काटे अथवा (सर्पः) सर्प आदि काटे (उत वा श्वा-पदः) अथवा कुत्ते के तुल्य पजे वाला या व्याघ्र आदि काटे (तत्) उसे (अग्निः) अग्नि अथवा ज्ञानवान् व्यक्ति (विश्वात्) सब भांति से (अगदं कृणोतु) पीडामुक्त करे। (सोमः च) और जो ओषधि-विज्ञ जन (ब्राह्मणान् आ विवेश) वेदज्ञ विद्वान् को प्राप्त है, वह भी उसे रोगमुक्त करे ॥६॥

भावार्थ—सोम एव अग्नि विश्व भेषज तथा सकल भय को दूर करने वाले पदार्थ हैं। यह एक आयुर्वेदिक तथा रक्षा विज्ञान का सिद्धान्त बताया गया है। मानव-जीवन में भयानक पक्षी कीड़े मकोड़े, सर्प तथा व्याघ्र इत्यादि से प्राप्त भय एव पीड़ा का निवारण अग्नि तथा सोम से करना चाहिये। इन जन्तुओं मे आक्रमण किये हुए व्यक्ति की अग्नि व सोम द्वारा शव दहन करने मे रोग सक्रामक कारणों का प्रतिकार हो जाता है ॥६॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७॥

पदार्थ—तू (अग्ने गोभिः) ज्ञानवान् व्यक्ति की वाणियों से (वर्म) रक्षा-योग्य वस्त्र कवचादि (परि व्ययस्व) धारण करा एव (पीवसा मेदसा च) पुष्टि-दायक और स्नेहयुक्त देहधातुओं द्वारा स्वय का (सं प्र ऊर्णुष्व) भली प्रकार आच्छादित कर। जिससे (धृष्णुः) अग्नि तुल्य गुरु (जर्हृषाणः) आह्लादित हो कर (दधृक्) कठोर बनकर (वि धक्ष्यन्) विपरीत पाप आदि को दग्ध करता हुआ (त्वा नेत् पर्यङ्खयाते) तुझे न घेरे, दण्ड न दे ॥७॥

भावार्थ—तू ज्ञानवान् व्यक्ति की वाणियों से रक्षा योग्य वस्त्र कवचादि धारण करा एव पुष्टिदायक और स्नेहयुक्त देहधातुओं द्वारा स्वय को भली-भांति आच्छादित कर, जिससे अग्नि तुल्य गुरु प्रसन्न होकर कठोर बनकर विपरीत पापादि को दग्ध करता हुआ तुझे न घेर ले, दण्ड न दे ॥७॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि तेजोमय ! तू (इमं चमसं) इस कृपापात्र व्यक्ति को (मा विजिह्वरः) कुटिल न बनने दे। अपितु वह (देवानाम् प्रियः) धन इत्यादि देने वालों को प्रिय तथा (सोम्यानाम् प्रियः) माता-पिता आदि को भी प्रिय हो। (यः) जो (चमसः) पात्र के तुल्य विनीत होकर (एषः) वह (देवपानः) विद्वानों का पालन करने वाला है (तस्मिन्) उस पर सभी (देवाः) विद्वान् (अमृताः) दीर्घायु जन (मादयन्ते) प्रसन्न होते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे तेजस्विन् ! तू इस कृपापात्र जन को कुटिल न बनने दे। अपितु वह धन इत्यादि देने वालों को प्रिय तथा माता-पिता आदि को भी प्रिय हो। पात्र के तुल्य विनीत होकर जो वह विद्वानों का पालक है, उस पर सभी विद्वान् दीर्घायु जन हर्षित होते हैं ॥८॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९॥

पदार्थ—मैं (क्रव्यादम्) मांसाहारी (अग्निं) दुष्ट जन्तु अथवा मृत्यु को (दूरं प्र हिणोमि) दूर करूं और (रिप्र-वाहः) पापी पुरुष (यम-राज्ञः गच्छतु) नियन्ता राजपुरुषों के हाथों जावे। (इतरः) और उससे अन्य निष्पाप व्यक्ति (जात-वेदाः) धनवान् होकर (प्र जानन्) ज्ञान प्राप्त करता हुआ (इह एव) इस आश्रम मे ही (देवेभ्यः हव्यं वहतु) ज्ञान दाता विद्वानों को अन्न इत्यादि दे। वह गुरु (देवेभ्यः) विद्या अभिलाषी जनों को (हव्यं) ज्ञान आदि प्रदान करे ॥९॥

भावार्थ—मैं मांसभक्षी दुष्ट जन्तु अथवा मृत्यु को दूर कर दूं और पापी जन नियन्ता राजा के पुरुषों के हाथों समाप्त हो और उससे अन्य निष्पाप जन धनवान् होकर ज्ञान अर्जित करता हुआ इस आश्रम मे ही ज्ञानदाता विद्वानों को अन्न इत्यादि प्रदान करे। वह गुरु विद्याभिलाषी जनों को ज्ञान आदि प्रदान करें ॥९॥

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०॥२१॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) अग्नि सतापक (क्रव्यात्) मांसाहारी जन (इतरं) अपने से भिन्न (जात-वेदसं) विद्या से सम्पन्न जन को देखकर (इमं वः गृहम्) इस आपके गृह मे (प्र-विवेश) प्रवेश करे। मैं (तं हरामि) उसे दूर करूं और (सः) वह विद्या सम्पन्न पुरुष (पितृयज्ञाय) पालक माता-पिता के सम्मान व सत्सग के लिए (परमे) श्रेष्ठतम (सधस्थे) स्थान पर स्थित (देव घर्मं) सूर्य तुल्य प्रकाशमान प्रभु, तपस्वी ज्ञानी जन को (इन्वात्) प्राप्त करे ॥१०॥२१॥

भावार्थ—जो अग्नि के सतापक मांसाहारी जन अपने से भिन्न विद्या से सम्पन्न को देखकर इस आपके गृह मे आये, मैं उसे भगाऊं और विद्यासम्पन्न जन पालक माता-पिता के आदर व सत्सग के लिए श्रेष्ठतम स्थान पर स्थित सूर्य तुल्य प्रकाशमान प्रभु, तपस्वी, ज्ञानीजन को प्राप्त करे ॥१०॥२१॥

इत्येकोविंशो वर्गः ॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥

पदार्थ—(यः) जो (क्रव्य-वाहन अग्निः) कटी हुई लकड़ी आदि मे लगे अग्नि-तुल्य तेजस्वी जन (क्रव्य-वाहन) उत्तम अन्नों या समिधा इत्यादि का धारक होकर (ऋतवृधः पितॄन् यक्षत्) सत्य की वृद्धि करने वाले गुरु आदि का आदर तथा सत्संग करता है वह (देवेभ्यः च) विद्वानों एव (पितृभ्यः) गुरु जनों के (हव्यानि) ज्ञान को (प्र वोचति, आ वोचति) प्रवचन करता है और कराता है ॥११॥

भावार्थ—जो कटी हुई लकड़ी मे लगे अग्नि के तुल्य तेजस्वी जन उत्तम अन्नों या समिधादि का धारक होकर सत्य की वृद्धि करने वाले गुरु आदि का आदर तथा सत्सग करता है वह विद्वानों एव गुरुजनों के ज्ञान का प्रवचन करता-कराता है ॥११॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! हम (उशन्तः) तुझे चाहते हुए (त्वा नि धीमहि) तुझे स्थापित करते हैं एव (उशन्तः) तुझे तथा तुझसे ज्ञान इत्यादि की कामना करते हुए (सम् इधीमहि) तुझे बढ़ाते हैं। हे ज्ञानी ! तू (उशन्) अग्नि-तुल्य प्रदीप्त होकर (उशत पितॄन्) तेरी कामना करने वाले माता, पिता एव गुरु जनों को (हविषे अत्तवे) उत्तम भोजन कराने हेतु (आ वह) रथ इत्यादि द्वारा प्राप्त करा एव (आ वह) उनके भरण का भार उठा ॥१२॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! हम तुझे चाहते हुए, तुझे स्थापित करते हैं और तुझे तथा तुझसे ज्ञानादि की कामना करते हुए तुझे बढ़ाते हैं। हे ज्ञानी अग्नि तुल्य प्रदीप्त होकर तुझे चाहने वाले माता-पिता व गुरु जनों को उत्तम भोजन कराने के लिए रक्षादि द्वारा प्राप्त करा एव उनके भरण का भार उठा ॥१२॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

पदार्थ—जिस भांति अग्नि जिस स्थान की घास को जलाती है, वहां वह स्वय शान्त होकर बाद में अधिक घास उपजन का कारण बनती है वैसे ही हे (अग्ने) गुरो ! (त्वं) तू (यम्) जिस शिष्य को (सम् अदहः) अग्नि के समान सतप्त करे। (तम् उ) उसे ही (पुनः) कालान्तर में अथवा बार-बार

(**निर्वापय**) शान्त, सुखी कर । (**अत्र**) उसमें (**किय्राम्बु**) कितना अपार जलवत् ज्ञानसागर (**रोहतु**) उत्पन्न हो और (**पाक-दूर्वा**) पकी दूब के तुल्य बढ़े । (**वि-अल्कशा**) वेद-विद्या (**रोहतु**) लता के तुल्य उगे एवं बढ़े ॥१३॥

भावार्थ—जिस भांति अग्नि जिस स्थान के घास को जलाती है वही शांत होकर बाद में और अधिक घास उत्पन्न होने का कारण बनता है उसी भांति ही हे गुरु! तुम जिस शिष्य को अग्निवत सन्तप्त करो उसको ही कालान्तर में अथवा बार-बार शांत सुखी करो । वह ज्ञान व वेदविद्या का सागर बने ॥१३॥

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।

मण्डूक्या३सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय ॥१४॥२२॥१॥

पदार्थ—हे (**शीतिके**) शीतल स्वभाव-युक्त ! हे (**शीतिकावति**) शीतवत् शान्ति देने वाली वाणियो से सम्पन्न ! हे (**ह्लादिके**) आनन्ददायिनि ! हे (**ह्लादिकावति**) आह्लाद दाता वाणियो से युक्त विद्ये ! तू (**मण्डूक्या**) जल में मण्डूकी तुल्य गहरी डुबकी लगाने वाली बुद्धि से (**आ गम**) प्राप्त हो, (**सं गमः**) भली-भांति विदित हो और (**इमं अग्निम्**) इस विद्वान् को (**सु हर्षय**) भली प्रकार हर्षित कर ॥१४॥

भावार्थ—हे शीतल स्वभाव वाली, हे शीतवत् शांतिदायक वाणियों से सम्पन्न, हे आनन्ददायिनि ! हे आह्लाद देने वाली वाणियो से युक्त विद्या ! तू जल में मण्डूकी के समान गहरी डुबकी लगाने वाली बुद्धि से प्राप्त हो । तुम विद्वान् को भली-भांति हर्षित करो ॥१४॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

---

[१७]

देवश्रवा यामायन ऋषिः ॥ देवता—१, २ सरण्यूः । ३—६ पूषा । ७—९ सरस्वती । १०, १४ आपः । ११—१३ आपः सोमो वा ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, ९—११ निचृत् त्रिष्टुप् । १३ ककुम्मती बृहती । १४ अनुष्टुप् । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।

यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥१॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) स्रष्टा प्रभु (**दुहित्रे**) जगत् की पूर्ण कर्त्री प्रकृति को (**वहतु कृणोति**) धारता है । तभी (**इदं विश्व भुवन**) यह सकल जगत् (**सम् एति**) उपजता है । (**यमस्य महः विवस्वत**) महान्, सर्व-नियामक लोको के स्वामी की (**जाया**) विश्व के उत्पादन की प्रकृति (**पर्युह्यमाना**) सर्व प्रकार से प्रभु द्वारा धारण होकर (**माता**) माता होकर (**ननाश**) अव्यक्त रूप मे उपस्थित रहती है वैसे ही (**त्वष्टा**) तेजस्वी जन (**दुहित्रे**) सुखो को देने वाली स्त्री के हितार्थ ही (**वहतु कृणोति**) विवाह करता है (**इति इदं विश्वं भुवन समेति**) इसी लिए यह समस्त लोक भली-भांति चलता है । (**यमस्य विवस्वतः**) विवाहकर्ता, विविध धनो के स्वामी व्यक्ति द्वारा (**पर्युह्यमाना**) परिणय सहित विवाह की गयी (**जाया**) पुत्र को जन्म देने मे समर्थ स्त्री (**माता सती महः ननाश**) कालान्तर मे माता होकर पति के तुल्य पूज्यपद पाती है ॥१॥

भावार्थ—स्रष्टा परमेश्वर, जगत् को पूर्ण करने वाली प्रकृति को धारण करता है । तभी यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है । महान् सर्वनियन्ता लोको के स्वामी की विश्व उत्पादक प्रकृति सर्व प्रकार से प्रभु द्वारा धारण होकर अव्यक्त रूप मे विद्यमान रहती है, वैसे ही तेजस्वी जन सुख देने वाली स्त्री के लिए ही विवाह करता है । इसी से यह सकल लोक भली-भांति चलता है । विवाह करने वाले विविध धनो के स्वामी पुरुष द्वारा परिणयपूर्वक विवाह की गयी पुत्र को जन्म देने मे समर्थ स्त्री कालान्तर मे माता होकर पति के तुल्य पूज्य पद पाती है

यास्क के अनुसार—त्वष्टा सूर्य दुहिता उषा को धारण करता है । तब यह सब विश्व प्रकट होता है । तब उस महान् सूर्य की उत्पादक माता रात्रि, उससे लुप्त हो जाती है ॥१॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।

उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२॥

पदार्थः—जल, भूमि इत्यादि तत्त्व उस (**अमृतां**) प्रकृति को (**अप अगूहन्**) छिपाए रखते हैं । वे (**विवस्वते सवर्णाम्**) परमेश्वर के समान वर्ण की व्यापक प्रकृति को (**कृत्वा**) प्रकट करके (**मर्त्येभ्य**) प्राणियो के उपभोग हेतु (**अददु**) देते हैं । वह (**सरण्यूः**) गतिशील प्रकृति (**द्वा मिथुना अजहात्**) दो युगलो को उपजाती है (**यत तत् आसीत्**) जो अप्रकट रूप में थी वही (**अश्विनौ अभरत्**) आकाश व पृथिवी को उत्पन्न करती है । यह वाणी का वर्णन है । (**विवस्वान्**) उस प्रभु की (**अमृतां**) नित्य वाणी को विद्वत् जन (**सवर्णां कृत्वा**) वर्णों सहित करके (**अप अगूहन्**) खोल कर वर्णन करते हैं और (**मर्त्येभ्य अददुः**) मनुष्यों के हित के लिए प्रवचन द्वारा दें । (**यत् तत् आसीत्**) वह जो परम ब्रह्म-ज्ञानमय वाणी है वह (**अश्विनौ**) विद्या में व्याप्त गुरु-शिष्य दोनों को (**अभरत्**) धारण-पोषण करती है । वह (**सरण्यूः**) गुरु से शिष्य को मिलने वाली वाणी, (**द्वा मिथुना**) दोनो जोड़ो को (**अजहात्**) उपजाती है ॥२॥

भावार्थ—जल, भूमि इत्यादि तत्त्व उस प्रकृति को छिपा कर रखते हैं । वे विविध लोकों के स्वामी, परमेश्वर के समान वर्ण की, व्यापक प्रकृति को व्यक्त कर के प्राणियो के उपभोग हेतु देते है । यह गतिशील प्रकृति दो जोड़ो को उपजाती है । जो अव्यक्त रूप मे थी वही आकाश व पृथिवी को उत्पन्न करती है । उस प्रभु की अमरवाणी को विद्वन् जन व्यक्त करते है और मनुष्यो को अपने प्रवचनो से बताते है । वह जो ज्ञानमय वाणी है वह विद्या मे व्याप्त गुरु शिष्य दोनो को धारण-पोषण करती है । वह गुरु से शिष्य को प्राप्त होने वाली वाणी दोनो जोड़ो को उत्पन्न करती है ॥२॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।

स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**पूषा**) सर्व पोषक (**विद्वान्**) ज्ञानी जन (**त्वा इतः प्र च्यावयतु**) तुझे श्रेष्ठ मार्ग की ओर ले जाए । वह (**अनष्टपशु**) ऐसे पशु-पालक जैसा है जिसकी रक्षा मे पशु कभी नष्ट नही होते । (**स अग्नि**) वह सर्वप्रकाशक प्रभु (**त्वा**) तुझ को (**एतेभ्यः पितृभ्य**) इन माता, पिता, चाचा आदि पूज्य एवं (**देवेभ्य**) सुख दाता तुझे चाहने वाले (**सुविदत्रियेभ्य**) ज्ञानरक्षक गुरुओ के हाथ (**परि ददत्**) देता है ॥३॥

भावार्थ—प्राणिमात्र का रक्षक परमात्मा नित्य वर्तमान ज्ञानदृष्टि से देखने वालो का स्वामी है । वह उन मुक्त जीवात्माओ के मध्य मे प्रकृष्ट ज्ञानवान् या सर्वज्ञ है । वही ससार के माता-पिताओ में जीवात्मा को जन्म के लिये भेजता है और शोभन ऐश्वर्यवान् मुक्तो मे भी मोक्षार्थ भेजता है ॥३॥

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।

यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

पदार्थ—(**विश्वायुः**) सभी का जीवन दाता, सर्वत्र व्याप्त (**आयु**) प्राणाधार प्रभु (**त्वा परि पासति**) तेरी सर्वत्र रक्षा करे । (**पूषा**) पोषक प्रभु (**प्रपथे**) श्रेष्ठ मार्ग मे (**पुरस्तात्**) आगे से (**पातु**) रक्षा करे । (**यत्र सुकृत आसते**) जहां उत्तम कर्म कर्ता पुण्यात्मा विराजते है और (**यत्र ते ययु**) जिस उत्तम लोक को वे पाते हैं (**तत्र**) वहा, उस मार्ग मे (**देव सविता**) सर्व उत्पादक प्रभु (**त्वा दधातु**) तुझे स्थापित करे ॥४॥

भावार्थ—सबको जीवन देने वाला और शरणदाता प्रभु उपासक अथवा सत्पात्र आत्मा की रक्षा करता है । वह जीवन यात्रा के मार्ग के मुख पर प्रथम ही रक्षण करता है और पुण्यात्माओ को मोक्ष दिलाता है ॥४॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।

स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥२३॥

पदार्थः—(**पूषा**) पोषक परमात्मा (**इमा सर्वा आशा**) इन सकल दिशाओं व हमारी इच्छाओ को (**अनु वेद**) हर क्षण जानता है । (**सः अस्मान्**) वह हमे (**अभय-तमेन**) भयमुक्त मार्ग से (**नेषत्**) ले चले । (**स्वस्तिदा**) वह कल्याणदाता (**आ घृणि**) सर्व प्रकार से प्रकाश से युक्त, (**सर्व वीर**) सकल वीरो का स्वामी, (**प्र-जानन्**) ज्ञान को जानता हुआ, प्रभु (**अप्र-युच्छन्**) आलस्य न करता हुआ (**पुर एतु**) सदैव हमारे आगे रहे ॥५॥

भावार्थ—प्रभु हमारा पोषक है । वह सकल दिशाओ मे विद्यमान प्राणी अप्राणी को जानता हुआ जागृत रहता है । भय से सर्वथा रहित मार्ग से उपासको को जीवन यात्रा कराता है । प्रसिद्ध ज्योति व सकल बलयुक्त हुआ बिना उपेक्षा किए हमे ज्ञान देता है । हम सर्वप्रथम उसी की अर्चना करें ॥५॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।

उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

पदार्थ—(**पथाम् प्रपथे**) सर्वोत्तम मार्ग मे (**पूषा अजनिष्ट**) पालक प्रभु ही सबका पथ प्रदर्शक है । वही (**दिवः प्रपथे, पृथिव्याः प्रपथे**) आकाश एवं भूमि के मार्ग मे रक्षक है । वही (**प्र-जानन्**) ज्ञानसम्पन्न प्रभु (**उभे प्रिय-तमे सध-स्थे**) नितांत प्रिय इहलोक तथा परलोक मे (**आ च परा च चरति**) समीप एवं दूर विराजता है । वही (**आ चरति च**) पुण्य कर्मों का फल प्रदान करता है । वही (**प्रजानन्**) भली-भांति जानता है कि इसने यह बुरा अथवा अच्छा कार्य किया है ॥६॥

भावार्थ—प्रभु ही उपासना करने वालो की जीवन यात्रा के पथ पर अग्रसर समर्थ बनाता है । आत्मा को प्रभु की कृपा से ही अभ्युदय तथा नि श्रेयस का अनुभव होता है, मोक्ष मार्ग मे भी वही सुख देता है । विश्व में विश्व के सुखों का सेवन करता है और वैराग्य से उन्हें त्याग कर मोक्ष को पाता है ॥६॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥७॥

पदार्थ—(**देवयन्त**) ज्ञान का प्रकाश देने वाले प्रभु की कामना करते हुए विद्वत् जन उसे (**सरस्वतीम् हवन्ते**) प्रशस्त ज्ञान-युक्त शक्ति मानते हैं और (**अध्वरे**

तायमाने) यज्ञ के व्यापक होने पर (सरस्वतीम् हवन्ते) ज्ञान के भण्डार प्रभु का ध्यान करते हैं । (सुकृत.) पुण्यात्मा जन (सरस्वतीं अह्वयन्त) भगवान् को ही पुकारते हैं, क्योकि वह (सरस्वती) ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही (दाशुषे वार्यं दात्) दाता जन को वरणयोग्य उत्तम ज्ञान तथा धन प्रदान करती है ॥७॥

भावार्थ —ज्ञान प्रकाशक प्रभु की कामना करते हुए विद्वत् जन, उसको प्रशस्त ज्ञान-युक्त शक्ति मानते हैं और यज्ञ के विस्तृत होने पर ज्ञानमय प्रभु का स्मरण करते है, क्योकि ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही दानशील जन को वरण-योग्य उत्तम ज्ञान-धन प्रदान करती है ॥७॥

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥८॥

पदार्थ —हे (सरस्वति) दिव्या स्तुति वाणी ! (देवि) देने वाली ! (या) जो तू (स्वधाभि) श्रेष्ठ अन्न, (पितृभि) परमात्मा के प्रति (मदन्ती) आह्लादित करती हुई (स-रथ ययाथ) मनोभावो के समान रमणीय रथ मे जाती है, वह तू (अस्मिन् आ-सद्य) यहां उत्तम आसन पर विराज कर (अस्मे) हमे (अनमीवा) रोगरहित (इष.) धन-धान्य पदार्थ प्रदान कर । (२) प्रभु 'सरस्वती' है । वह भी (पितृभि स्वधाभि.) सर्वपालक अन्न, जलादि अपनी धारण-पोषणकारिणी शक्तियो से सभी को तृप्त करता है । वह स्वय पूर्णकाम है । हमारे रमणयोग्य देह रूपी रथ में भी विद्यमान है । वह हमारे यज्ञ मे शोभित होता है वह हमे उत्तम अन्नवत् इष्ट कर्मफल देता है ॥८॥

भावार्थ —जब पूर्ण तन्मयता-सहित प्रभु की स्तुति अध्यात्म यज्ञ मे की जाती है तो वह हमे सर्वरोगों से मुक्त रखती हुई कमनीय भोगों को धारण कराती है ॥८॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९॥

पदार्थ —(यज्ञम् अभि-नक्षमाणाः) अध्यात्म यज्ञ को प्राप्त होते हुए, (पितर) गृहस्थ जन (यां) जिस (सरस्वतीं) विदुषी को (दक्षिणा) आत्म-समर्पण से (हवन्ते) स्वीकार करते हैं । वह तू (अत्र)हे विदुषि ! इस लोक मे, (सहस्र-अर्घम्) सहस्रो प्रकार से उपयोगी, (इळ भाग) भजनीय सुख और (सहस्रार्घं राय पोषम्) सहस्रो गुणा धन के पोषक फल को (यजमानेषु धेहि) हम यज्ञशील, दानी जनो में धारण करा ॥९॥

भावार्थ —अध्यात्म यज्ञ को प्राप्त होते हुए गृहस्थ जन जिस विदुषी को आत्मसमर्पण से स्वीकार करते हैं, वह विदुषी ही इस लोक मे सहस्रो प्रकार से पूज्य-उपयोगी व भजनीय सुख और सहस्रो गुणा धन के पोषक फल को हम यज्ञशील दानी जनो को प्रदान करती है ॥९॥

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥२४॥

पदार्थः—(अस्मान्) हमे (आप) प्राप्त, (मातर) माता के तुल्य पावन स्नेह से युक्त विद्वान् (शुन्धयन्तु) पवित्र करते हैं और (घृत-प्व) जल-वत् पावन करने वाले विद्वान् (न घृतेन) हमे शान्तिदायी स्नेह से ही (पुनन्तु) पवित्र करें । वे (देवी) दिव्य गुणो से युक्त विद्वान् (विश्व रिप्र प्रवहन्ति) सब प्रकार का पाप बहा देते हैं । (आभ्य इत् शुचि) उनसे ही पवित्र होकर मै (उत् एमि) अभ्युदय पाता हूँ ॥१०॥

भावार्थ —मातृतुल्य पावन स्नेह से युक्त विद्वान् हमे पवित्र करें एव जल-वत् पावन करने वाले विद्वान् हमे शान्तिदायी स्नेह से पवित्र करें । दिव्य गुणो से युक्त जन सभी प्रकार के पापो को नष्ट कर देते हैं । वैसे ही पावन होकर मैं अभ्यु दय पाता हू ॥१०॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥

पदार्थः—(द्रप्स) सूर्य अथवा ओषधिरस (य च पूर्व) जो पुरातन या पूर्वभावी है (प्रथमान् द्यून अनु) प्रथम के सब दिनो वा (प्रथमान् द्यून् अनु) पूर्व उपजे तेजस्वी लोको और (इम योनिम् च अनु) इस भूलोक को भी (चस्कन्द) प्राप्त होता है और (समान योनिम् सञ्चरन्त अनु) समान अन्तरिक्ष स्थान को प्राप्त होते हुए जिसके पीछे (सप्त होत्रा) सात रश्मियो को लक्ष्य करते हैं उसी प्रकार (द्रप्स.) तेजोरूप आत्मा जो इस देह से पूर्व विद्यमान है, जो (प्रथमान् द्यून्) पूर्व के काम्य देहों और (इम योनिम्) इस देह को भी पाता है । एक समान देह मे विचरते उस आत्मा के प्रति (सप्त होत्रा जुहोमि) मै अपने सातो प्राणों को समर्पित करता हूँ ॥११॥

भावार्थ —सूर्य द्युस्थानीय लोको को उनकी अपेक्षा पूर्वभावी रूप मे प्राप्त होता है और इस पृथिवी पर पश्चात् प्राप्त होता है । सप्त रश्मिया उस सूर्य के साथ विचरण करती हैं जिनका उपयोग मनुष्यो की देह-चिकित्सा के लिए होना चाहिए । इस भांति पृथिवी पर चिकित्सा के लिए औषधिरसो का भी उपयोग हो ॥११॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२॥

पदार्थ —हे परमात्मा ! (यः ते द्रप्स) जो तुम्हारा तेजोमय रस (स्कन्दति) बहता है, (य ते अंशु.) जो तुम्हारा व्यापक रस (धिषणायाः उपस्थात्) सर्वो-परि दातृशक्ति से (बाहु च्युत) मानो भुजाओ द्वारा दिया हुआ वा प्रेरित है (वा अध्वर्यो.) अथवा अनश्वर प्रभु से प्रेरित है (वा य पवित्रात् परि) अथवा जो 'पवि' नाम विद्युत्रूप वज्र रक्षक मेघादि से पृथिवी पर जलरूप से तथा पवित्र, सर्वशोधक प्रभु एव सूर्य वा वायु से मिलता है, (त) उस (ते) तेरे तेजोमय प्राण तत्व को (मनसा वषट्-कृतम) मनोबल से छ विभागो मे बाट कर वा प्रदत्त कर (जुहोमि) प्राप्त करता हूँ ॥१२॥

भावार्थ —प्रभु द्वारा विरचित सूर्य अथवा रसरूप जलांशु अन्तरिक्ष के माध्यम से भूमि पर प्राप्त होता है । इस सूर्य अथवा जल का मननपूर्वक विचार करके अधि-काधिक उपयोग किया जाना चाहिये ॥१२॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥

पदार्थ—हे परमात्मा ! (य ते द्रप्स) जो तेरा सर्व उत्पादक रस (स्कन्न.) सभी जगह प्रवाहित है, (यः ते अंशु) जो तेरा सूक्ष्म अंश (स्रुचा) प्राण शक्ति से (अव च, पर च) इस लोक व सुदूर लोको मे व्याप्त है (त) उसे (अय देवः बृहस्पति) यह तेजस्वी, महत् लोकों का पालक सूर्य (राधसे) ऐश्वर्य वृद्धि हेतु (स सिञ्चतु) भली प्रकार जल और तेज के रूप मे सींचे ॥१३॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! तुम्हारा जो सर्वोत्पादक रस सर्वत्र प्रवाहित है, तुम्हारा जो सूक्ष्म अंश प्राण शक्ति से इस लोक से सुदूर लोको तक व्याप्त है, उसे यह तेजस्वी महत् लोको का पालक ऐश्वर्य वृद्धि हेतु भली प्रकार जल और तेज के रूप में सींचे ॥१३॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४॥२५॥

पदार्थः—हे (ओषधयः) औषधियो ! तुम (पयस्वती) पुष्टिकारक रस से सम्पन्न हो । (मामकं वच) मेरा वचन (पयस्वत्) उनके सेवन से रसयुक्त हो । (अपां पय) जलो का सारभूत अंश भी (पयस्वत्) गुणयुक्त है । (तेन) उस (सह) गुण वाले से (शुन्धत) मुझे शुद्ध करो ॥१४॥२५॥

भावार्थ —प्रभु की कृपा से औषधियां मनुष्यो के लिये गुणवती एव उनके रोगों व तापो को मिटाने वाली होती है । उनके भली प्रकार सेवन करने से प्रभु का स्तुतिवचन सफल होता है । इसी भांति अनेक गुणो से युक्त जल भी अनेक प्रकार से हमारा शोधन करता है ॥१४॥२५॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

---

[१८]

सङ्कुसुमो यामायन ऋषि ॥ देवता —१-४ मृत्यु । ५ धाता । ६ त्वष्टा । ७-१३ पितृमेध. । १४ पितृमेध. प्रजापतिर्वा ॥ छन्द —१, ५, ७-९ निचृत् त्रिष्टुप् । २-४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । भुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत् पंक्ति । १४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

पदार्थ.—हे (मृत्यो) मरने वाले ! तू (पर पन्थाम्) अन्य मार्ग का (अनु इहि, परा इहि) अनुसरण कर । (य. ते स्व.) जो तेरा मार्ग है उसे ही तू मान । वह (देव-यानात् इतरः) देवयान से अतिरिक्त पितृयान जहां साधारण जन पुनर्जन्मार्थ माता-पिता को प्राप्त होते हैं । (चक्षुष्मते) आंख वाले और (शृण्वते) सुनने वाले (ते ब्रवीमि) तुझे उपदेश करता हूँ कि तू (न. प्रजां मा रीरिष) देवयान की ओर ले जाने वालो की इन्द्रियो को नष्ट न कर ॥१॥

भावार्थ—विनाश करने वाला काल पुन पुन जन्म धारण करने वाले साधा-रण जनो को बार-बार मारता है परन्तु देवयान मोक्षमार्ग की ओर जाने वाले मुमुक्षु जनों को बार-बार या मध्य मे नही मारता, अपितु उन्हें पूर्ण अवस्था प्रदान करता है ॥१॥

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

पदार्थ —हे (यज्ञियास) यज्ञ करने वाले जनो ! आप लोग (मृत्यो पद) मृत्यु के कारण को (योपयन्त) धकेलते हुए (यत् ऐत) जब जाओगे तो (द्राघीय) दीर्घ तथा (प्रतर) श्रेष्ठ (आयु दधाना. भवत) जीवन को धारण करने वाले बनोगे । आप (प्रजया धनेन) प्रजा एव धन से (आप्यायमाना.) वृद्धि पाते हुए और (शुद्धा पूता. भवत) शुद्ध पावन बनकर रहो ॥२॥

भावार्थः—हे यज्ञ करने वालो! आप लोग मृत्यु के कारणों को दूर करते हुए जब आओगे तो दीर्घायु एवं श्रेष्ठ जीवन को धारण करने वाले बनोगे। आप प्रजा एवं धन से वृद्धि करते हुए शुद्ध एवं पावन बनकर रहो ॥२॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥३॥

पदार्थः—(**इमे जीवा**) ये जीवित व्यक्ति (**मृतैः वि आववृत्रन्**) मृत बन्धुजनों से न घिरे रहें। (**अद्य**) आज के समान सदैव (**नः**) हमें (**भद्रा**) कल्याणदायी (**देव-हूतिः**) विद्वानों का उपदेश (**अभूत्**) मिले। जिससे हम (**द्राघीय प्रतर आयुः**) दीर्घ व श्रेष्ठ जीवन को (**दधानाः**) धारते हुए (**नृतये, हसाय**) नृत्य, हास्य आनन्द हेतु (**प्राञ्चः अगाम**) अग्रगामी बनें ॥३॥

भावार्थ—ये जीवित जन मृतकों से न घिरे रहें। आज के समान सदैव हमें कल्याणदायी विद्वानों का उपदेश सुनने को मिलता रहे, जिससे हम दीर्घतम तथा श्रेष्ठ जीवन को धारण करते हुए नृत्य, हास्य, आनन्द के लिये अग्रगामी बनें ॥३॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥४॥

पदार्थ—मैं (**जीवेभ्य**) जीवनधारी लोगों के लिये (**इम परिधि**) इस सुरक्षा व्यवस्था को (**दधामि**) स्थापित करता हूँ। (**एषां**) इन लोगों में से (**अपर**) कोई भी (**एतम् अर्थं मा गात् नु**) उस मृत्यु के मार्ग पर न जाये। सकल जीवगण (**शत शरद**) सौ वर्ष (**पुरूची**) इससे भी बहुत अधिक वर्ष (**जीवन्तु**) जीवें (**पर्वतेन**) पालन-पोषण करने वाले उपाय से (**मृत्युं अन्तः दधताम्**) प्रकोट से शत्रु तुल्य मृत्यु को दूर कर दें ॥४॥

भावार्थ—मैं जीवनधारी लोगों के हेतु उस सुरक्षा व्यवस्था को स्थापित करता हूँ। इन लोगों में से कोई भी उस मृत्यु के मार्ग पर न जाए। सकल जीवगण शत वर्ष और उससे भी बहुत अधिक जिये और शत्रु तुल्य मृत्यु को दूर भगाए ॥४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥५॥२६॥

पदार्थ—(**यथा**) जिस प्रकार (**अहानि**) दिन (**अनु पूर्वं भवन्ति**) एक दूसरे के बाद होते हैं (**यथा ऋतव ऋतुभिः साधु यन्ति**) जैसे ऋतुएं ऋतुओं के साथ सटी-सटी सी गुजरती हैं। (**यथा पूर्वम्**) जैसे पूर्व विद्यमान पिता इत्यादि को (**अपर**) आगे आने वाला पुत्र न त्यागे (**एव**) ऐसे ही हे (**धातः**) पालक! हे प्रभो! तू (**एषाम् आयूंषि कल्पय**) इन्हें दीर्घजीवी कर ॥५॥२६॥

भावार्थः—जिस भांति दिन-रात एक दूसरे के उपरान्त होते हैं, ऋतुएं एक दूसरे के साथ संयुक्त सी रहती हुई गुजरती हैं, उसी भांति हे प्रभो! तुम इन्हें दीर्घायु प्रदान करो ॥५॥२६॥

इति षड्विंशो वर्गः ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥६॥

पदार्थ—हे लोगो! आप लोग (**अनु-पूर्वं**) पहले से हुए वृद्ध जनों के अनुकूल (**यतमाना**) सन्मार्ग में प्रयत्नशील होते हुए (**यतिष्ठ**) जितने भी हो जाओ वे सभी (**जरसं वृणानाः**) वृद्ध होते हुए (**आयुः आरोहत**) जीवन नसैनी पर बैठो। (**इह**) इस जगत् में (**त्वष्टा**) सकल जगत् का विधाता प्रभु, (**स-जोषाः**) प्रीतियुक्त होकर (**वः सु-जनिमा**) आप लोगों की उत्पत्ति और (**जीवसे**) जीने हेतु (**दीर्घम् आयु**) दीर्घायु (**करति**) करे ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग पूर्व विद्यमान वृद्धजनों के अनुकूल सन्मार्ग में प्रयत्नशील होकर जितने भी हो जाओ सब वृद्ध होते हुए भी जीवन की नसैनी पर चढ़ो। इस लोक में सारे जग का विधाता परमात्मा प्रीतियुक्त होकर आप लोगों को जीने के लिए दीर्घायु दे ॥६॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥७॥

पदार्थ—(**इमा**) ये (**अविधवा**) पति से युक्त (**नारीः**) स्त्रियां (**सु-पत्नीः**) पति की पतिव्रता बनकर (**आञ्जनेन सर्पिषा**) घृतादि गन्धयुक्त पदार्थ से शोभित हो (**सं विशन्तु**) स्वगृह में प्रवेश करें। वे (**अनश्रव**) अश्रु से रहित (**अनमीवाः**) रोग रहित, (**सुरत्नाः**) सुन्दर रत्न एवं रम्य गुणों वाली (**जनयः**) सन्तानों को जन्म देने में समर्थ स्त्रियां (**अग्रे**) आदर सहित पहले (**योनिम् आ रोहन्तु**) गृह में प्रवेश करें ॥७॥

भावार्थ—पतिव्रता नारियां घृतादि गन्धयुक्त पदार्थ से सुशोभित होकर स्वगृह में प्रविष्ट हों। वे अश्रु रहित, रोग रहित, सुन्दर रत्न एवं गुणवान् सन्तानों को जन्म देने में समर्थ नारियां आदर से घर में आएं ॥७॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥

पदार्थ—हे (**नारि**) नारी! तू (**जीव लोकम् अभि**) जीवित लोगों को लक्ष्य करके (**उत् ईर्ष्व**) उठ खड़ी हो। (**एतं गतासुम् उप शेषे**) तू इस निष्प्राण के पास पड़ी है। (**आ इहि**) उठ कर आ। (**हस्तग्राभस्य**) पाणिग्रहण करने वाले और (**दिधिषोः**) पोषण कर्ता (**तव पत्युः**) तेरे पालन कर्ता पति के (**इदं जनित्वं**) इस सन्तान को (**अभि**) लक्ष्य करके तू (**सं बभूथ**) उसके साथ रह। यदि सन्तान जीवित न रहे तो (**जनित्वम् अभि**) केवल सन्तान को ही लक्ष्य कर (**सं बभूथ**) नियोग की विधि से पुत्र को जन्म दे ॥८॥

भावार्थ—हे नारी! तू जीवित जनों को लक्ष्य कर उठ खड़ी हो। तू तो इस निष्प्राण के समीप पड़ी है। उठ कर आ, पाणिग्रहण करने वाले और पोषण करने वाले तथा पालक पति की इस सन्तान को लक्ष्य करके तू उसके साथ रह। यदि सन्तान जीवित न हो तो केवल सन्तान के लिए नियोग विधि से पुत्र को जन्म दे ॥८॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

पदार्थ—(**मृतस्य हस्तात्**) मृतक के हाथ से (**धनुः आददान**) धनुष् या अधिकार ग्रहण करते हुए, हे अधिकार सम्पन्न पुत्र! (**अस्मे**) हमारे (**क्षत्राय**) वीर्य, (**वर्चसे**) तेज एवं (**बलाय**) बल की वृद्धि हेतु (**त्वं अत्र एव**) तू यहां रह, जिससे (**इह**) इस राष्ट्र में (**वयं**) हम (**सु-वीराः**) उत्तम वीर, पुत्र वाले बन कर (**विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम**) सर्व अभिमानयुक्त शत्रु सेना पर विजय-पताका फहराएं ॥९॥

भावार्थ—मृत पुरुष के हाथ से धनुष अर्थात् अधिकार ग्रहण करते हुए हे अधिकार सम्पन्न पुत्र! हमारे वीर्य, तेज और बल की वृद्धि के लिये तू यहां स्थिर रह, जिससे राष्ट्र में उत्तम वीर पुत्र वाले होकर हम शत्रु-सेनाओं को परास्त करें ॥९॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥१०॥२७॥

पदार्थ—हे मानव! तू (**मातरम्**) मातृ तुल्य आदर योग्य, (**एतां**) इस (**उरु-व्यचसम्**) आकाश के जैसी विशाल, (**पृथिवीम्**) विस्तृत (**सु-शेवाम्**) सुखदायी (**भूमिम्**) भूमि को (**उप सर्प**) प्राप्त हो। (**एषा**) वह (**ऊर्ण-म्रदा**) ऊन जैसे मृदु (**दक्षिणावत**) दान देने योग्य उत्साह व शक्तिजनक धन के स्वामी की (**युवति**) युवती स्त्री तुल्य सर्वस्वामिनी है। वह (**त्वा**) तुझे (**निर्ऋतेः उपस्थात्**) पापकर्म से (**पातु**) बचाये ॥१०॥२७॥

भावार्थ—हे मानव! तू मातृ तुल्य आदरणीय इस आकाश सम विशाल सुखदायी भूमि को प्राप्त हो। वह मृदु, दानी, उत्साही व शक्तिजनक धन के स्वामी की स्त्री के तुल्य है। वह तुझे पाप पथ से बचाये ॥१०॥२७॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

पदार्थ—हे (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत् श्वञ्चस्व**) उत्साहपूर्वक उत्तम पथ की ओर ले चल। तू (**मा नि बाधथा**) पीड़ा न दे। (**अस्मै सूपायना**) इस सुख से पास आने वाली, (**सु-उपवञ्चना**) सुख से पास रहने वाली, (**भव**) होकर रह। हे (**भूमे**) सर्वोत्पादिके! (**यथा माता पुत्रं सिचा अभि ऊर्णुते**) जिस प्रकार माता पुत्र को अपने आंचल से ढांपती है उसी प्रकार तू (**एनम् अभि सिच**) उसका अभिषेक कर और (**अभि ऊर्णुहि**) सब ओर से उसे ढक ॥११॥

भावार्थ—हे पृथिवी माता! हमें सोत्साह उत्तम मार्ग की ओर ले चल। तू हमें पीड़ा न दे। हमारे लिये सुखदायी बन! हे सर्वोत्पादिके, जैसे माता पुत्र को अपने आंचल से ढकती है, वैसे ही तू रक्षक बन ॥११॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

पदार्थ—(**पृथिवी उत् श्वञ्चमाना**) पृथिवी उत्साह का सृजन करती हुई (**सु तिष्ठतु**) सुख से आसीन हो। (**सहस्रं मित**) सहस्रों अन्नादि और प्राणी (**उप श्रयन्ताम् हि**) उस पर रहें। (**ते**) वे (**गृहासः**) हमारे घर (**घृतश्चुतः भवन्तु**) घृतवत् स्नेहयुक्त शान्तिदायक हों। वे (**अस्मै**) इस व्यक्ति को (**अत्र**) यहां (**शरणाः सन्तु**) दुःखनाशक शरण हों ॥१२॥

भावार्थ—पृथिवी उत्साह उत्पन्न करती हुई सुख से विराजमान हो। सहस्रों प्रकार के अन्न व प्राणी इस पृथिवी पर रहें। वे हमारे घर घृतवत् स्नेहयुक्त व शान्तिदाता हों। इस मनुष्य के लिए यहां दुःखों के विनाशक बनो ॥१२॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥

पदार्थ—हे राजन्! (**ते**) तेरे अन्तर्गत इस (**पृथिवी**) भूमि को (**उत् स्तभ्नामि**) उत्तम रीति से प्रबन्ध-सम्पन्न करता हूँ। (**इमं लोगं**) इस जन समूह

को (त्वत् परि निवसत्) तेरे प्राश्रय मे देता हुआ (अहं मो रिषम्) मैं दु:खी न बनू , (ते) तेरी (एतां स्थूणां) इस व्यवस्था को (पितर.) पालक शासक वर्ग (धारयन्तु) धारें । (अत्र) इस लोक मे (यमः) प्रभु (ते सद्मा) तेरे घरो को या तेरे पदाधिकारो को (मिनोतु) सुव्यवस्था दे ॥१३॥

भावार्थ.—हे राजन् तेरे अधीन इस भूमि को मैं उत्तम रीति से प्रबन्धयुक्त करता हूं । इस जनसमूह को तुझे सोपता हूं । मैं दु खी न बनूं, तू ऐसी व्यवस्था कर ॥१३॥

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दंधुः ।

प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥२८॥६॥

पदार्थ —विद्वन् जन (इष्वा पर्णम् इव) जैसे बाण के मूल में वेग को बढ़ाने हेतु 'पर्ण' लगाते हैं उसी भांति वे (प्रतीचीने अहनि) किसी सर्व वन्दनीय दिवस (माम्) मुझे (इष्वा) शत्रु के प्रति सही मार्ग मे चलाने योग्य सेना पर (पर्णम्) सचालक के रूप से (आ दधु) नियुक्त करें और मैं (प्रतीचीं वाचम्) सेना के द्वारा आदर से ग्रहणीय को (जग्रभ) उस प्राज्ञा द्वारा प्रजा एव सेना को ऐसे अपने वश मे करू (यथा रशनया अश्वं) जैसे रास से घोड़ा वश मे होता है ॥१४॥२८॥६॥

भावार्थ —विद्वत् जन जैसे बाण के वेग को बढ़ाने हेतु उसके मूल में पर्ण लगाते हैं, वैसे ही तू मुझे शत्रु का दमन करने वाली सेना का नियन्त्रण प्रदान करे । मैं अपनी आज्ञा से सेना को वश मे करू । जिस भांति अश्व रास से वशीभूत किया जाता है ॥१४॥२८॥६॥

इत्यष्टाविंशो वर्ग ॥

इति षष्ठोऽध्याय ॥

सप्तमोऽध्यायः

[१९]

मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गव ॥ देवता ११, २—८ आपो गावो वा । १२ अग्नीषोमौ ॥ छन्द.—१, ३—५ निचृदनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ७, ८ अनुष्टुप् । ६ गायत्री । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।

अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारय रयिम् ॥१॥

पदार्थ·—हे (रेवती) समृद्ध प्रजाओ ! (नि वर्त्तध्वं) तुम कुमार्ग से लौटो । (मा अनु गात) उस पर मत चलो । (अस्मान् सिषक्त) हम धन से दृढ करो । हे (अग्नि सोमा) अग्नि एव सोम के तुल्य तेजस्वी लोगो ! तुम (पुनर्वसू) बार-बार, नये-नये धन को अर्जित करने वाले ! (पुन वसू) बार-बार इस राष्ट्र मे बसने वाले (अस्मे रयिम् धारयतम्) हमे धन ऐश्वर्य दो ॥१॥

भावार्थः—हे धन सम्पन्न प्रजाओ ! तुम कुमार्ग से हमे दूर करो । हमे धन से सम्पन्न करो । हे अग्नि तथा सोम तुल्य तेजस्वी जनो ! तुम बार-बार नये-नये धन को अर्जित करने वाले इस राष्ट्र मे बसने वाले हम लोगो को धन-धान्य आदि समर्पित करो ॥१॥

पुनरेना निवर्तय पुनरेना न्या कुरु ।

इन्द्र एणा नियच्छत्वग्निरेना उप यच्छतु ॥२॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) सर्व सम्पन्न ! तू (एना) इन्हे (नि वर्तय) पाप के पथ से लौटा । (एना पुन नि आ कुरु) इन्हे पुन-पुन वश मे कर । (इन्द्रः) तेजस्वी बनकर (एना नि यच्छतु) इन्हें नियमो मे रख और (अग्नि) तेजस्वी जन, (एना उपयच्छतु) इन्हे सन्मार्ग पर ले जायें ॥२॥

भावार्थ.—हे सर्व सम्पन्न ! तू इन्हें पाप पथ से लौटा । इन्हें पुन-पुन वश मे कर । तेजस्वी बनकर इन्हें नियमों मे रख, जिससे कि तेजस्वी जन इन्हे सन्मार्ग दिखा सके ॥२॥

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।

इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३॥

पदार्थ —(एता) ये सभी (पुनः निवर्तन्ताम्) बार-बार लौट कर और (अस्मिन् गोपतौ) इस गोपालक गोपाल, भूमिपाल के अधीन रहते हुए (पुष्यन्तु) समृद्धि पाएं । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (इह एव नि धारय) इस स्थान मे ही इन्हे नियम में धारण कर । (या रयि.) जो द्रव्य एकत्रित है वह (इह तिष्ठतु) यहां स्थिर रहे ॥३॥

भावार्थ —ये सभी बार बार लौटें और इस गोपालक गोपाल, भूमिपाल के अधीन रहकर समृद्धि को प्राप्त करें । हे तेजस्वी ! इस स्थान से ही इन्हे नियम मे धारण कर, जो द्रव्य एकत्रित है उसे भी स्थिर रख ॥३॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।

आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४॥

पदार्थ - (यत् नियान) जो जीवो का पतन और (नि-अयनम्) निम्न लोक मे वास और (स-ज्ञान) उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना और (यत् परा अयनम्) जो परम पद प्राप्त करना तथा इसी प्रकार (आ-वर्त्तन) इस ससार मे लौट आना, इस सबका मैं (हुवे) ज्ञान पाऊ । (यः गोपा) जो सब इन्द्रियों, लोको और वेदादि वाणियो का रक्षक है (तम् अपि हुवे) उसे भी मैं स्वीकार करता हूं ॥४॥

भावार्थः—मैं मानव के उत्थान पद और परम पद प्राप्ति तथा ससार मे पुन· लौटने आदि सभी का ज्ञान प्राप्त करू । मैं उसे भजता हूं जो सब लोकों व वेदादि वाणियों का रक्षक है ॥४॥

य उदानिड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।

आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५॥

पदार्थ —(य गोपाः) जो गौ रक्षक, (वि अयनं) विविध लोक अथवा प्राप्ति-योग्य पदो को (उत् आनट्) उत्तम मार्ग स अर्जित करता है, (य परा-अयनम उत् आनट्) जो दूर, परम प्राप्य मोक्ष देता है, वह रक्षक (आ-वर्त्तन नि-वर्त्तनम्) इस लोक में एव पुन यहा से जाने की व्यवस्था का भी (अपि नि वर्तताम्) नियमपूर्वक सचालन कर रहा है ॥५॥

भावार्थ —जो गौ रक्षक विविध लोको या प्राप्तियोग्य पदो को उत्तम मार्ग से पाता है, जो दूर परम प्राप्य मोक्ष को पाता है वह रक्षक इस लोक मे और पुन. यहां से जाने की स्थिति को भी नियमपूर्वक चलाता है ॥५॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।

जीवाभिर्भुनजामहै ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) समृद्धिवान् ! हे (नि-वर्त्त) नियम पूर्वक संसार के सचालक ! (आ वर्तय) तू ही वापस आता है और तू ही (नि वर्तय) लौटा ले जाता है, हे (इन्द्र) सम्पन्न ! तू (न पुनः गा देहि) हमे फिर-फिर इन्द्रियगण आदि रीति के स्थूल साधन दे (जीवाभि) प्राण के ससर्ग से चेतनामयी उन इन्द्रिय-वृत्तियो से हम (पुन भुनजामहै) फिर भोग करें ॥६॥

भावार्थ —हे समृद्धिवान् ! हे नियमपूर्वक संसार का संचालन करने वाले तू ही आवागमन का चक्र चलाता है । तू हमे पुन इन्द्रिय आदि रीति से स्थूल साधन प्रदान कर । प्राण के ससर्ग से चेतनामयी उन इन्द्रिय वृत्तियों से हम पुनः भोग करें ॥६॥

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।

ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥७॥

पदार्थः—हे (देवा) नाना कामना रखने वाले जीवो ! (व) तुम सभी को मैं (ऊर्जा घृतेन पयसा) अन्न, दुग्ध आदि पुष्टिदायक पदार्थ से (विश्वत. परिदधे) सर्वप्रकार से पालता-पोषता हूं । (ये के च) और जो कोई भी (देवाः) उत्तम भोगों के कमनीय (यज्ञिया) प्रभु की उपासना से पावन हैं वे (नः) हमारे मध्य (रय्या) श्रेष्ठ सम्पदा से (स सृजन्तु) बसते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे नाना कामना रखने वाले जीवो ! प्रभु तुम्हारा सर्वविध पालक है । जो कोई भी उसकी उपासना करता है, उसे वह इच्छित फल देता है ॥७॥

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।

भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८॥१॥

पदार्थ.—हे (निवर्तन) जगत् को नियमपूर्वक चलाने वाले (आवर्तय) तू हमे सन्मार्ग पर चला । हे (निवर्तन) हमे दुःखो व पापो से दूर करने वाले ! तू (निवर्तय) हमे दु ख से भरे मार्गों से परे कर । (भूम्या. चतस्र प्रदिशः) जीवो के उत्पन्न होने हेतु भूमि की चार मुख्य दिशाए है (ताभ्य एना निवर्तय) उनसे उन्हे रोक । उन सब मे जाने के लिये नियम-पूर्वक उन पर नियन्त्रण कर ॥८॥

भावार्थ —हे ससार को नियम से चलाने वाले हमें सन्मार्ग पर चला । हमे दु खों तथा पापों से अलग हटा । जीव के जन्म के लिए भूमि की चार मुख्य दिशाए हैं, उनसे उन्हे रोक, उन सब मे जाने के लिए नियमपूर्वक उन पर नियन्त्रण कर ॥८॥

इति प्रथमो वर्गः ।

[२०]

विमद ऐन्द्र. प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आसुरी त्रिष्टुप् । २, ६ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ७ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ८ विराड् गायत्री । १० त्रिष्टुप् ॥ दशमं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥१॥

पदार्थ—हे प्रभो ! तू (नः मन) हमारे मन को (भद्र अपि वातय) कल्याणकारी सुखदायी मार्ग की ओर लगा । (२) अथवा (न भद्रं मन अपि वातय) हमे सुखदायी उत्तम ज्ञान दे ॥१॥

भावार्थ—हे प्रभु ! तुम हमारे मन को कल्याणमार्ग की ओर प्रेरित करो और हमे सुखदायी तथा उत्तम ज्ञान प्रदान करो ॥१॥

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।

यस्य धर्मन्त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥२॥

पदार्थ—(भुजां अग्निम्) पालक वीरो के मध्य तेजस्वी, (यविष्ठं) युवा, शक्तिशाली, (शासा) शासन तथा शस्त्र बल से (दुर्धरीतुम्) सग्राम मे हारने वाले, (मित्रं) प्रजाजीवन के रक्षक पुरुष की मैं (ईळे) वन्दना करू, (यस्य धर्मन्) जिसके धारण करने के बल पर (एनीः) उसे प्राप्त जीव (मातु ऊधः) माता के स्तन तुल्य (यस्य स्व सपर्यन्ति) जिसके प्रकाश को पाते हैं ॥२॥

भावार्थः—पालक वीरो के मध्य तेजस्वी, युवा, शक्तिशाली शासन व शस्त्र-बल से सग्राम मे परास्त न होने वाले प्रजाजीवन के रक्षक पुरुष की मैं अर्चना करू, जो प्रकाश दाता है ॥२॥

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति ।

भ्राजते श्रेणिदन् ॥३॥

पदार्थः—जो (श्रेणि-दन्) प्रजा तथा सेनाओ के पक्तिबद्ध समूहो को अन्नादि देता है और (यम्) जिस (कृप-नीळम्) कृपा के भडार और (भासा-केतु) ज्ञान दीप्ति से सभी पदार्थों का ज्ञान कराने वाले को (आसा) मुख के द्वारा तथा (आसा) उपासना से (वर्धयन्ति) बढाते हैं वह (भ्राजते) सर्वत्र आलोकित होता है ॥३॥

भावार्थ—जो प्रजा व सेना के पक्तिबद्ध समूहों को अन्नादि देता है, जो कृपा-सागर है, सभी पदार्थों का ज्ञान कराने वाला है, वह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥३॥

अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् ।

कविरभ्रं दीद्यानः ॥४॥

पदार्थ—(विशां अर्यः) प्रजा का स्वामी प्रभु (गातुः) सबकी प्राप्ति योग्य है । वह (यत्) जो (दिव अन्तान्) आकाश के सुदूर मार्गों तक सूर्यवत् (प्र आनट्) व्याप्त है । वह (अभ्र दीद्यान) मेघ को विद्युत् के समान हृदयाकाश को ज्ञान से आलोकित करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी, (प्र एति) उत्तम पद पर विराजमान है ॥४॥

भावार्थ—प्रजा का स्वामी परमेश्वर सभी को प्राप्त करने योग्य है । वह आकाश के सुदूर मार्गों तक सूर्यवत् विद्यमान है । वह मेघ को विद्युत् के तुल्य हृदयाकाश को ज्ञान से आलोकित करता हुआ कान्तदर्शी तथा उत्तम पद पर विराजमान है ॥४॥

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे ।

मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥५॥

पदार्थः—अग्नि जिस प्रकार (यज्ञे मानुषस्य हव्या जुषत् ऊर्ध्व तस्थौ) यज्ञ मे मनुष्य के हवि को ग्रहण करता है तथा ऊपर उठता है उसी भांति (ऋभ्वा) ज्ञानवान् जन (यज्ञे) परस्पर सग के समय (मानुषस्य) मनुष्य के (हव्या) अन्नादि पदार्थों को (जुषत्) स्वीकारता हुआ (ऊर्ध्व तस्थौ) उत्तम आसन पर सुशोभित, वह (सद्म मिन्वन्) गृह वा आसन को पाता हुआ (पुरः एति) आगे बढ़ता है ॥५॥

भावार्थ—जिस भांति प्रभु अध्यात्मयज्ञ मे प्रार्थना वचन को स्वीकारता है उसी भांति राजा राजसूय यज्ञ मे उपहारो को स्वीकारते हुए शिरोधार्य होता है । परमात्मा जैसे हृदय मे विराजता है, उसी भांति राजभवन में राजा सुशोभित होता है ॥५॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।

अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥६॥२॥

पदार्थ—(स.) वह (हवि-यज्ञ.) उत्तम अन्न इत्यादि से किया गया यज्ञ, (क्षेम हि) प्रजा रक्षक व कल्याणकर्ता है । (अस्य) इसका (गातु.) विद्वान् जन (श्रुष्टी इत्) उत्तम फल शीघ्र ही (एति) पाता है । (देवा.) ज्ञान की इच्छा रखने वाले (वाशीमन्तम् अग्निम्) उत्तम वाणी से युक्त पुरुष की वन्दना करते हैं ॥६॥

भावार्थ—प्राप्ति योग्य प्रभु अथवा राजा के लिए जो प्रार्थना वचन अथवा उपहार प्रदान किया जाता है, वह उपासको व प्रजा का कल्याण करता है । प्रशसा-पात्र प्रभु अथवा राजा को उपासक या विद्वान् जन जो प्रजाजन हैं प्राप्त करते है ॥६॥

इति द्वितीयो वर्ग ।

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य ।

अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥७॥

पदार्थ—जिस (अद्रे सूनुम्) मेघ की प्रेरणा देने वाले को (आयुम् आहु) जीवनप्रद कहते हैं उस (यज्ञ-साह) यज्ञधारक (अग्नि) सूर्यवत् पर-मात्मा की (पूर्वस्य शेवस्य) उत्तम सुख के प्राप्ति हेतु (दुव इषे) वन्दना करता हूँ ॥७॥

भावार्थ—परमात्मा यज्ञ कर्ता को आगे बढाता है । वह जीवन का प्रदाता है । यज्ञ मे परमात्मा आश्रयणीय है, वही उत्तम सुख का दाता है ॥७॥

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः ।

अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥८॥

पदार्थः—(अस्मत् ये के च नर·) जो भी हमारे उत्तम जन हैं (ते) वे (अग्नि हविषा वर्धन्त) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को अर्चना द्वारा बढाते हुए (विश्वा इत् वामे) सभी प्रकार से सेव्य प्रभु मे (आ स्यु.) रमे ॥८॥

भावार्थ—हम मे जो श्रेष्ठ जन हैं वे प्रभु की प्रार्थनाओ द्वारा प्रशसा को बढाते हुए उसके आश्रय मे निवास करते हैं ॥८॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।

हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥९॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमात्मा या राजा का (याम.) जगत् नियामक नियन्त्रण (कृष्ण) दुष्टजनपीडक, (श्वेत) निर्दोष (अरुषः) दीप्तिमान् (ब्रध्न·) जगत् को चलाने वाला (ऋज्र) धर्ममार्ग मे रखने वाला (उत) और (शोण) वेगवान् (यशस्वान्) अन्न, धनैश्वर्य से युक्त है, जिसे (जनिता) प्रभु (हिरण्यरूप जजान) सुखदायी रूप मे प्रकटाता है ॥९॥

भावार्थ—जिस भांति ससार परमात्मा के अधीन है, वैसे ही राष्ट्र राजा के अधीन होता है । विश्वया राष्ट्र निर्दोष, सुन्दर, महान्, अकुरित अन्नो और भोगों से समृद्ध तथा प्रगतिशील हो । इनका उत्पादक प्रभु है और राजा इन्हें सम्पन्न करता है ॥९॥

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।

गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०॥३॥

पदार्थ—(एव) इस भांति हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (वि-मदः) आनन्द-मग्न, (अमृतेभि) दीर्घजीवी वृद्धो से (स-जोषा·) प्रीतियुक्त पुरुष (सु-मतीः इयानः) सुबुद्धियो को पाता हुआ (ते) तेरे विषय में अपनी (मनीषाम्) मन की श्रेष्ठ भावना और (गिर.) वाणियो को (आ वक्षत्) धारण करता है । हे (ऊर्जो नपात्) बल के देने हारे ! तू (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल और (सु-क्षितिम्) निवास योग्य भूमि (विश्वम्) ये सब (आभा) प्रदान कर ॥१०॥

भावार्थ—इस प्रकार हे तेजस्वी, आनन्द मग्न, दीर्घजीवी वृद्धजनो से प्रीति-युक्त पुरुष सुबुद्धियो को पाता हुआ तेरे सम्बन्ध से अपने मन की उत्तम भावना व वाणियो को धारता है । हे बलदाता ! तू अन्न, बल तथा निवासयोग्य भूमि सभी चीज हमे दे ॥१०॥

इति तृतीयो वर्ग ॥

---

[२१]

विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः-१, ४, ८ निचृत् पक्ति ॥ २ पादनिचृद् पक्ति । ३, ५, ७ विराट् पक्ति । ६ आर्ची पक्ति ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

पदार्थ—हम (स्तीर्ण बर्हिषे) कुशादि के बिछे आसनो से युक्त (यज्ञाय) यज्ञ हेतु (स्व-वृक्तिभि) अन्तरात्मा को आकृष्ट करने वाली स्तुतियो से (अग्निम् न) ज्ञानप्रकाशक अग्रगण्य, (होतार) सुखदाता, (पावक-शोचिषं) पावन प्रकाश वाले, (शीर) सर्वव्यापक, (त्वा) तेरा (आ वृणीमहे) वर्णन करते हैं और (मदे) आनन्द हेतु तुझे (वि वृणीमहे) अपनाते हैं । तू (विवक्षसे) उसे धारण कर, तू महान् है ॥१॥

भावार्थ—जिस भांति होमयज्ञ में अग्नि का वरण करते है, उसी भांति अध्यात्मयज्ञ मे हृदय के भीतर उस पावन दीप्तियुक्त सर्वत्र व्याप्त प्रभु को विशेष आनन्द की प्राप्ति के लिए वरण करना चाहिए ॥१॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।

वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२।

पदार्थ—(अश्व-राधस) इन्द्रियसाधक (ते) वे (स्वाभुवः) ऐश्वर्यसम्पन्न व्यक्ति (त्वा) तुझे (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं । (उप-सेचनी) अभिषेक क्रिया (त्वाम् वेति) तुझे चाहती है । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ऋजीति) सत्य मार्ग गामी (आहुति) स्तुति तथा दान (वि मदे) तृप्ति हेतु (त्वाम् वेति) तुझे प्राप्त होती है । तू (विवक्षसे) उसे धारता है ॥२॥

भावार्थ—इन्द्रियों के साधक वे ऐश्वर्य सम्पन्न जन तुझे सुशोभित करते हैं । अभिषेक क्रिया तुझे चाहती है । हे तेजस्वी ! सत्यमार्गगामी स्तुति तथा दानतृप्ति हेतु तुझे प्राप्त होता है, तू उसे धारण करता है ॥२॥

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।

कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (सिञ्चती इव) जैसे सेचन कर्त्ता मेघमालाए सूर्य पर आधारित हैं, वैसे ही (त्वे) तेरे बल पर कुछ लोग (धर्माण) सारे धर्मों को धारते है (सिञ्चती इव) अभिषेक कराने वाली जल धाराओं व प्रजाओं के तुल्य ही (जुहूभिः) स्तुति कारक वाणियो से (आसते) तेरे आश्रय पर खडे है । सूर्य सब को सुख देने हेतु (कृष्णा अर्जुना रूपाणि धत्ते) काले श्वेत रूप, रात्रि-दिन है उसी भांति तू (मदे) प्रजा के हर्ष हेतु (कृष्णा) दुष्टों को पीडित करने वाले व (अर्जुना) धनादि अर्जन कर्त्ता क्षात्र व वैश्य सम्बन्धी (रूपा) रुचिकर व्यवहारों को और (विश्वा श्रिय) सकल लक्ष्मियो को (धिषे) धारता है और (विवक्षसे) विशेषत उन्हे वहन करता है ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जैसे सिञ्चित करने वाले मेघ सूर्य पर आधारित हैं, वैसे ही तेरे बल पर कुछ लोग सकल धर्मों को धारण करने वाले, अभिषेककर्त्ता जल-धाराओं व प्रजाओ के समान ही स्तुतिकारक वाणियो से तेरे आश्रय पर स्थित है । जैसे सूर्य सभी को सुख देने वाले रात दिन देता है, वैसे ही तू भी प्रजा के आह्लाद हेतु उसे सकल धन धान्य प्रदान करता है ॥३॥

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।

तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रभो ! हे (सहसावन्) बलशालिन् ! हे (अमर्त्य) अमर ! तू (य रयिं) जिस ऐश्वर्य को (चित्र) आश्चर्यकारक (मन्यसे) मानता है, तू (तम्) उसे (न वाज-सातये) हमारे बल आदि की वृद्धि एव (वि मदे) तृप्ति हेतु (यज्ञेषु) यज्ञो मे (न आ भर) हमे प्राप्त करा । तू (विवक्षसे) महान् है ॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! हे बलशाली ! हे अमृत्यु ! तू जिस ऐश्वर्य का आश्चर्यकारक मानता है, तू उसको हमारे बल आदि की वृद्धि एव तृप्ति हेतु यज्ञो म हमें प्राप्त करा । तू महान् शक्तिशाली है ॥४॥

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।

भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥४।

पदार्थ (अथर्वणा) स्थिर चित्त वाले प्रजापालक योगी द्वारा (अग्नि जात) परमात्मा अपने आत्मा मे साक्षात् किया हुआ (विश्वानि काव्या विदद्) समस्त ज्ञानो को जाने । वह (काम्य) सबके कामना योग्य होकर (विवस्वत यमस्य) विविध राजा व प्रजा के स्वामी, प्रजा व राष्ट्र के नियन्ता राजा का (दूत) दूत भी (भुवत्) हो । (व वि मदे) तुझे हर्ष के लिए वरते हैं । वह (विवक्षसे) गुणो म महान् है ॥५॥

भावार्थ—स्थिरचित्त योगी प्रभु का अपने मे साक्षात् करता है । साक्षात् हुआ प्रभु उपासक को वेदज्ञान को समझने की योग्यता प्रदान करता है । उस सयमी उपासक का प्रभु प्रिय बनता है । उसे स्वहर्ष, आनन्द हेतु अपनाना अपेक्षित है ॥५॥

इति चतुर्थो वर्ग ॥

त्वा यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे । त्वं वसूनि काम्या

वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् ! (यज्ञेषु) धार्मिक कार्यो मे प्रवृत्त (अध्वरे) आत्म साधक ध्यान मे (प्रयति) होते हुए (त्वाम् ईळते) तेरी स्तुति करते हैं, तुझे चाहते हैं और (त्वं) तू वह (विश्वा काम्या वसूनि) समस्त प्रकार के, कामना करने योग्य नाना धनों का (विदधासि) विशेष रूप से धारण करता है । वे (व मदे) तुझे हर्ष के लिए वरते हैं (दाशुषे) दानशील आत्मसमर्पक प्रजाजन के हितार्थ (विवक्षसे) तू महान् शक्तिशाली है ॥६॥

भावार्थ—श्रेष्ठ कर्मों मे रत लोग ध्यान मे प्रभु की साधारण जन स्तुति करते हैं ताकि श्रेष्ठ कर्मों की सिद्धि पा सके । परन्तु जो उसमे अपनी आत्मा को समर्पित करता है उसके लिये वह प्रभु सकल सुख देता है अतः हर्ष-सहित उसी का वरण करना चाहिये ॥६॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।

घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् । (यज्ञेषु) अध्यात्म यज्ञ मे (घृतप्रतीक) घृत से प्रदीप्त होने वाले अग्नि तुल्य तेज से चमकने वाले, (ऋत्विजं) "ऋतु" अर्थात् अमात्यो से सगत, (चारुम्) सुन्दर (शुक्रम्) शुभ्र, (चेतिष्ठम्) ज्ञानवान्, (त्वां) तुझे ही (मनुष) उपासक जन यज्ञो मे (नि-षेदिरे) आश्रय करते हैं । हे प्रजा-जनो ! (व मदे विवक्षसे) तुझे हर्ष के लिए वरते हैं । तू विशिष्ट है, महान् है ॥७॥

भावार्थः—यज्ञ आदि मे तेजस्वी, अध्यात्म यज्ञ सम्पन्न करने वाले, सावधान करने वाले प्रभु की उपासक शरण लें । वही आनन्द एव हर्षदायक है, वही महान् है ॥७॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।

अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८।५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रभो ! तू (बृहत्) महान् है । (शुक्रेण) तुझे शुद्ध (शोचिषा) कान्ति से (प्रथयसे) विख्यात करता है । (अभि क्रन्दन्) ज्ञानोपदेश करता हुआ (वृषायसे) प्रतिभाषित हो रहा है । तू (जामिषु) सन्तान उत्पत्ति में समर्थ नारियो में गृहपति के तुल्य (जामिषु) ओषधि आदि की उत्पादक भूमियो मे सूर्यवत् (जामिषु) प्रजाओ के बीच (गर्भं दधासि) वेदोपदेश धारण करता है । (विवक्षसे) तू महान् है । (वः वि मदे) तुझे हर्ष के लिये विशेषरूप से वरण करते हैं ॥८॥

भावार्थ—स्व शुभ्रता से अति विख्यात सर्वत्र व्याप्त महान् प्रभु ज्ञान का उपदेश करता हुआ और अमृत बरसाता हुआ उपासको मे साक्षात् होता है । उसे आनन्द व हर्ष के लिए हम वरे ॥८॥

इति पञ्चमो वर्गः ॥

---

[२२]

विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद् वा वासुक्रः ॥ इन्द्रो देवता छन्द —१, ४, ८, १०, १४ पादनिचृद् बृहती । ३, ११ विराड् बृहती । २, ६, १२, १३ निचृदनुष्टुप् । ५ पादनिचृदनुष्टुप् । ७ आर्च्यनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् । १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।

ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१॥

पदार्थ—वह (इन्द्र) प्रभु (कुह श्रुत) कहा सुना जाता है ? (अद्य) आज भी (मित्र न) वह मित्र के तुल्य (कस्मिन् जने श्रूयते) किस लोक समूह में सुना जा सकता है ? उत्तर—(यः) जो (ऋषीणां क्षये) मन्त्रद्रष्टा विद्वानो के स्थान मे या (गुहा) गुहावत् बुद्धि मे स्थित है वह (गिरा चर्कृषे) वाणी से प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थ—वह प्रभु कहा सुना जाता है ? आज भी वह सखातुल्य किस लोक समूह मे सुना जा सकता है ? उत्तर—जो मन्त्रद्रष्टा विद्वन् जनो के स्थान मे अथवा गुहावत् बुद्धि मे स्थित है, वह प्रभु हमसे इस जगत् मे श्रवणीय और स्तुत्य है ॥१॥

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।

मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२॥

पदार्थ—(य) जो प्रभु (जनेषु) लोगो मे (असामि) पूर्ण (यश चक्रे) यश उपजाता है, (अद्य) आज भी जो (वज्री) बलशाली (ऋचीषमः) स्तुति अनुरूप है, वह (इन्द्र) प्रभु हमसे (इह श्रुत) इस जगत् मे श्रवणीय और (स्तवे) स्तुति योग्य है ॥२॥

भावार्थ—जो परमात्मा लोगो मे पूर्ण यश उत्पन्न करता है, आज भी जो बल स्तुति के अनुरूप है, वह प्रभु हमसे इस जगत् मे श्रवणीय और स्तुत्य है ॥२॥

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।

भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥

पदार्थ—(यः शवस पति) जो बलाधिपति है और (असामि) सामान्य (महः नृम्णस्य) विपुल धनैश्वर्य का (तूतुजिः) देने वाला है वह (धृष्णो वज्रस्य) दुष्ट नाशक बल का (भर्ता) धारने वाला और (प्रियम् पुत्रम् इव पिता) प्रिय पुत्र के प्रति पिता तुल्य पालक है ॥३॥

भावार्थ—जो बलाधिपति है और सामान्य व विपुल धनैश्वर्य का दाता है । दुष्टों के नाशक बल का धारने वाला और प्रिय पुत्र के प्रति पिता के समान पालक है ॥३॥

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।

स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४॥

पदार्थ.—हे (**वज्रिवः**) ओजस्वी ! (**देव.**) तू जीवन दाता है, (**देवस्य वातस्य**) जीवनदाता आपका, (**धुनी**) देहप्रेरक (**अश्वा**) दोनों अश्वों के तुल्य प्राण तथा अपान को (**युजान**) देह मे संयुक्त करता हुआ और (**वि रुक्मता पथा**) विरोचमान दिव्य मार्ग से (**स्यन्ता**) जाने वाले उन दोनों को (**अध्वनः**) मार्ग के पार (**सुजान.**) सम्पन्न करता हुआ (**स्तोषि**) स्तुत किया जाता है ॥४॥

भावार्थ.—हे परमात्मा तू स्तुत्य है, जो उपासको के जीवन देने वाले प्राण तथा जीवन शक्तिरूप प्राण के श्वास प्रश्वास को दो अश्वो की भांति युक्त करता हुआ दिव्य मार्ग से जीवन यात्रा के मार्गों को पार कराता है ॥४॥

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।

ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५॥

पदार्थः—(**ययो**) जिन दोनो का (**न देव**) न कोई प्रकाशित पिण्ड, (**न मर्त्य**) और न कोई मरणधर्मा (**यन्त.**) नियमन कर सकता है और (**नकि**) न कोई उनका (**विदाय्य**) ज्ञान करने वाला है। (**त्व**) तू (**त्या चित्**) उन दोनो (**वातस्य अश्वा**) प्राण के अश्वो के समान देह चालक (**ऋज्रा**) ऋजु मार्गगामी प्राण अपान को (**त्मना**) अपनी शक्ति से (**वहध्यै**) धारण करने हेतु (**आ अगा**) चलाता है ॥५॥

भावार्थः—हे प्रभो ! तुम ही ऋजुगामी श्वास-प्रश्वासो को चलाने मे समर्थ हो। तेरे अतिरिक्त अन्य कोई मुमुक्षु, न सामान्य जन और न कोई इनका ज्ञाता हो है ॥५॥

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।

आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**उशना**) जीवन की कामना करने वाला आत्मा (**अध ग्मन्ता वां पृच्छते**) जीवन के अन्त काल मे जाते हुए श्वास प्रश्वास से पूछता है कि (**कदर्था**) किस प्रयोजन से, तुम दोनों (**पराकाद् दिव**) दूरवर्ती सूर्य और (**ग्मः च**) भूमि से (**नः**) हम जीवो के इस (**मर्त्यं गृह आ जग्मथुः**) मरणधर्मा गृह, देह मे आए हो ॥६॥

भावार्थ—जीवन के अन्तिम क्षणो में जीवन की कामना करने वाला आत्मा जाते हुए प्राणापानो से प्रश्न करता है "तुम क्यों जा रहे हो ? यही ठहरो !" तात्पर्य यह है कि मरण काल मे भी आत्मा इन प्राणापानों को छोड़ना नहीं चाहता। यही चाहता है कि मेरी नश्वर काया के प्राण बने रहें। चाहे द्युलोक से या पृथिवी लोक से आए प्राण-अपान किस प्रयोजनार्थ आए हैं, यह ठीक-ठीक समझ व्यक्ति को उनके उपयोग हेतु आचरण करना चाहिये ॥६॥

आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।

तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् ! तू (**न आपृच्छसे**) हमे सब प्रकार से आलिंगन करता है अत (**अस्माक ब्रह्म**) हमारा महान् स्तवन (**उद् यतम्**) तेरे लिए समर्पित है। (**त्वा**) हम तेरे से (**तत् अमानुष अव**) उसी अमानुष रक्षण, बल, प्रेम और ज्ञान की (**याचामहे**) कामना करते हैं जिसे कोई मानव नहीं दे सकता (**यत्**) जो (**अमानुष**) मनुष्यो की सीमा को पार करने वाले (**शुष्णं**) शोषक आसुरी बल को (**हन्**) नष्ट करता है ॥७॥

भावार्थः—हे ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभु ! तू हमे सर्व भांति आलिंगन करता है। अतएव हमारे स्तवन उसी के प्रति हो। हम उसके सुखमय रक्षण के इच्छुक हैं। वह देव बल युक्त है, वह आसुरी बल को नष्ट करता है ॥७॥

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

पदार्थः—हे (**अमित्र-हन्**) शत्रुओ को दण्डित करने वाले प्रभो ! जो (**अकर्मा**) स्वयं सत्कार न करने वाला, (**दस्यु**) प्रजानाशक (**अमन्तुः**) सभी का अपमान करने वाला, (**अन्यव्रतः**) शत्रु तुल्य कार्य करने वाला, (**अमानुष**) मानव के बल, धर्म आदि से परे, राक्षसी स्वभाव का व्यक्ति (**न अभि**) हमे घेरे है (**त्व तस्य**) तू उस (**दासस्य**) सर्वनाशी को (**वध**) दण्ड दे। उसे (**दम्भय**) विनष्ट कर ॥८॥

भावार्थ.—जो धर्म-कर्म रहित, दम्भी, अत्याचारी मनुष्य स्वभाव से भिन्न दूसरो को दबाने-सताने वाले हैं, उन्हे हे प्रभु ! तुम ही नष्ट कर सकते हो ॥८॥

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।

पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥९॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् ! हे (**शूर**) शूर ! (**बर्हणा**) युद्धादि के अवसरो में हम (**त्वा-ऊतास**) तेरे बल से रक्षित रहे। (**ते पूर्तय.**) तेरे कामना पूर्ति के साधन भी (**पुरुत्रा**) अनेक हैं। वे (**यथा क्षोणय**) भूमियो के तुल्य (**वि नवन्त**) भांति-भांति से वरणीय हैं ॥९॥

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् ! युद्धादि के समय हम तेरे बल से सुरक्षित रहें। तेरे कामना पूर्ति के अनेक साधन हैं। वे भूमियों के समान भांति-भांति से वरणीय हैं ॥९॥

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।

गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥७॥

पदार्थ—हे (**शूर**) दुष्ट नाशक वीर ! हे (**वज्रिव**) बलिष्ठ ! (**यदि**) जो तू (**कवीनां**) क्रान्तदर्शी लोगो और (**न-क्षत्र-शवसाम्**) क्षात्रबल एव धनबल रहित (**विशां**) प्रजाजनो के (**गुहा**) हृदय तथा बुद्धि मे आसीन है वह (**त्व**) तू (**वृत्र हत्ये**) दुष्ट जन सहारक (**कार्पाणे**) कृपाण से होने वाले युद्ध मे (**तान् नॄन्**) विभिन्न योद्धा जनो को (**चोदय**) प्रेरणा देता है ॥१०॥७॥

भावार्थ.—हे दुष्टो के नाशक वीर ! हे बलिष्ठ ! जो तू क्रान्तदर्शी जनो और क्षात्रबल एव धनबल से रहित अन्य जनो के हृदय तथा बुद्धि मे आसीन है वह तू दुष्ट-जन सहारक कृपाण से होने वाले युद्ध मे विभिन्न योद्धा जनो को प्रेरणा देता है ॥१०॥७॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।

यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥

पदार्थः—हे (**शूर**) वीर ! हे (**वज्रिवः**) बलशालिन् ! (**आक्षाणे**) शत्रुसहार के कार्य मे, (**दाना प्नस**) प्रजा पर कृपा करने वाले दानरूप कर्म कर्ता (**ते**) तेरे (**ता**) वे विभिन्न कर्म (**मक्षु**) तुरन्त हो। (**यत्**) क्योंकि तू (**ह**) निश्चय से (**स यावभि**) एक साथ मार्ग मे बढ़ने वालो के (**शुष्णस्य**) प्रजापोषक जन के (**विश्व जात**) उत्पन्न किए हुए सारे बलादि का (**दम्भय**) नाश करने मे सक्षम है ॥११॥

भावार्थ—हे वीर ! हे बलशाली ! शत्रु सहारके कार्य मे, प्रजा पर कृपा करने वाले दानरूप कर्म-कर्ता तेरे विभिन्न कर्म शीघ्र हो, क्योंकि तुम निश्चय से एक साथ मार्ग मे बढ़ने वालो के प्रजापोषक जन के लिए उत्पन्न हुए सारे बलादि को नष्ट करने मे समर्थ हो ॥११॥

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।

वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**शूर**) वीर ! हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्य सम्पन्न ! (**अस्मे**) हमारी (**अभिष्टय**) कामनाए और (**वस्वी**) धन सम्पदाएं भी (**अकुध्र्यक्**) निष्फल (**मा भूवन्**) न हों। हे (**वज्रिवः**) शक्तिशालिन् ! (**वयं-वयं**) हम सब सदैव (**ते सुम्ने**) तेरे द्वारा दिये सुख तथा रक्षा मे (**आसां**) इन प्रजाओं के बीच (**स्याम**) सदैव वास करें ॥१२॥

भावार्थ—हे शूरवीर ! हमारी कामनाये व धन सम्पदायें कभी नष्ट न हो। हे शक्तिशाली ! हम सभी तेरे द्वारा दिए सुख तथा रक्षा मे इन प्रजाओं के मध्य सदैव वास करें ॥१२॥

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।

विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! (**अस्मे ता**) हमारी वे कामनायें तथा यज्ञ आदि क्रियाएं (**ते उपस्पृश.**) तुझ तक ले जाने वाली होकर (**सत्या**) सज्जनो का कल्याण करे और (**अहिंसन्ती**) किसी की हिंसा न करने वाली (**सन्तु**) हो। हे (**वज्रिव**) शक्तिशालिन् ! (**यासां**) जिनके परिणाम स्वरूप (**धेनूनां न**) वाणियो तथा गौओ के तुल्य (**भुज विद्याम**) भोग्य पदार्थों को पायें ॥१३॥

भावार्थ.—हे प्रभो ! हमारी वे कामनाये तथा यज्ञादि क्रियायें तुझ तक ले जाने वाली होकर सज्जनो का कल्याण करने वाली और किसी की हिंसा आदि न करने वाली हो। हे शक्तिशाली ! जिनके फलस्वरूप वाणियो एव गौओ के समान भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें ॥१३॥

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।

शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥

पदार्थः—(**यद्**) जैसे (**वेद्यानां शचीभि**) विद्वानो के कर्मों से (**अहस्ता अपदी**) मार्ग रहित (**क्षा वर्धत**) भूमि बढ़कर विस्तार पाती है और तब सूर्य जैसे (**विश्वायवे**) सबके पालन हेतु (**प्रदक्षिणित्**) नितान्त प्रबल (**शुष्ण**) ग्रीष्म-ताप को भी (**नि शिश्नथ**) मेघादि से मद कर देता है, वैसे ही हे ऐश्वर्यवान् ! (**वेद्यानां शचीभि**) विद्वानो और वेदो की वाणियो से (**अहस्ता**) बे-हाथ व (**अपदी**) बिना पाव अत्याचारियों से पीड़ित (**क्षा**) भूमिवासिनी प्रजा भी (**वर्धत**) वृद्धि पाती है। तब तू भी (**विश्वायवे**) सकल प्रजा के हितार्थ (**प्रदक्षिणित्**) सभी को घेर कर बैठे बलशाली (**शुष्णं**) प्रजा के रक्तशोषक दुष्ट जन को (**नि शिश्नथ**) शिथिल बना दे ॥१४॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों के कर्मों से मार्गरहित भूमि बढ़कर विस्तृत हो जाती है और तब जिस भांति सूर्य सबके पालन हेतु नितान्त प्रबल ग्रीष्मताप को भी मेघादि से मंद करता है, वैसे ही हे ऐश्वर्यवान् ! विद्वत् जन और वेदो की वाणियों से बिना हाथ और पैर अत्याचारियों से पीड़ित भूमिवासिनी प्रजा भी वृद्धि पाती है। तुम ही प्रजा के हितार्थ रक्तशोषक दुष्टों का दमन करते हो ॥१४॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५।८॥

पदार्थ—हे (शूर) वीरवर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम पिब-पिब) बल वीर्य व राष्ट्र का पालन तथा उपभोग कर । हे (वसवान) बसे प्रजाजनों के सुखदाता ! तू स्वयं (वसु सन) आत्मा के तुल्य राष्ट्र मे बसने वाला, रक्षक बनकर (मा रिषण्यः) प्रजा का नाश न कर । (उत) अपितु, (गृणत. मघोनः) स्तुति-कर्ता सम्पन्न लोगों की भी (त्रायस्व) रक्षा कर । (न.) हमारे (मह रा.य) विपुल धन हो और (न रेवत कृधि) हमे भी दान देनेयोग्य धनो से युक्त कर ॥१५॥

भावार्थः—हे शूरवीर ! हे ऐश्वर्यवन् ! तू राष्ट्र का पालन तथा उपभोग कर । हे प्रजा को सुख देने वाले तू प्रजा की रक्षा कर । स्तुतिकर्ता सम्पन्न जनो की भी रक्षा कर । हमे धनसम्पन्न कर, दान देने मे समर्थ बना ॥१५॥

इत्यष्टमो वर्गः ॥

---

[२३]

विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ आर्ची भुरिग् जगती । ६ आर्ची स्वराड् जगती । ३ निचृज्जगती । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१॥

पदार्थः—हम (वि व्रतानाम्) कार्यरत (हरीणां) जनो के बीच मे (रथ्यं) रथयोग्य अश्वतुल्य कार्यभार मे समर्थ और (वज्र-दक्षिणम्) शस्त्र आदि को दायें हाथ में धारने वाले (इन्द्र) दुष्ट दमनकारी जन का (यजामहे) आदर करें । वह (राधसा वि दयमान) ऐश्वर्य बल से प्रजा का पालन करता हुआ (सेनाभि) आज्ञा पालक सेनाओ के साथ (श्मश्रु प्र दोधुवत्) आश्रित केशों अथवा बाहुओ को कम्पित करता हुआ (वि) भांति-भांति से (ऊर्ध्वथा भूत्) सर्वोपरि हो ॥१॥

भावार्थ—हम कार्य करने वाले मनुष्यों के बीच में रथयोग्य अश्वों के तुल्य कार्यभार मे समर्थ एवं शस्त्र आदि को दाए हाथ मे धारने वाले दुष्ट दमनकारी पुरुष का आदर करें । वह ऐश्वर्य के बल से प्रजा पालन करता हुआ, आज्ञा-पालक सेनाओ सहित आश्रित केशों व बाहुओं को कपाता हुआ विविध भांति सर्वोपरि हो ॥१॥

हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥२॥

पदार्थ—(या हरी) जो नर-नारी वर्ग (अस्य वने) इस भोग्य राष्ट्र मे (वसुविदे) धन पाते हैं (इन्द्र) शत्रुहन्ता राजा (मघैः मघवा) उन्हीं से मिले धनों का स्वामी होकर (वृत्रहा भुवत) बढ़ते शत्रु को नष्ट करने मे समर्थ होता है । वह (ऋभुः) सत्य से दीप्त और (वाजः) बलसम्पन्न, (ऋभु-क्षा) न्यायशील जनो का आश्रय बनकर (शव पत्यते) बल व धन का पालक होता है । तब मैं प्रजा वर्ग भी (दासस्य) दुष्ट जन के (शवः) बल व (नाम चित्) नाम को (अव क्ष्णौमि) नष्ट कर देता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जो नर-नारी इस भोग्य राष्ट्र में धन पाते है, शत्रुहन्ता राजा उन्ही से मिले धनो का स्वामी बनकर बढ़ते हुए शत्रु का नाश करने मे समर्थ होता है । वह सत्य से दीप्त और सम्पन्न न्यायशील जनो का आश्रय बनकर बल तथा धन का पालक होता है । तब प्रजा वर्ग भी दुष्ट जन के बल व नाम को भी नष्ट कर देता है ॥२॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(अस्य य रथ) इसके जिस रथ के तुल्य राष्ट्र को (हरी वहत) स्त्री व पुरुष धारते है और (मघवा) ऐश्वर्यवान् जन (सूरिभि.) विद्वानो सहित (यदा) जब उस (वज्र) बलशाली (हिरण्यम्) हित व रमणीय (रथ) सबको सुखदायी (यम्) जिस राष्ट्र पर (वि तिष्ठति, आ तिष्ठति) भांति-भांति मे बैठता व शासन करता है तब वह (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सन-श्रुत.) दानादि से विख्यात, तप व वेद मे बहुश्रुत बनकर (वाजस्य दीर्घ-श्रवस पति.) दीर्घकाल तक श्रवणीय ज्ञान व ऐश्वर्य का पालक स्वामी बन जाता है ॥३॥

भावार्थ—इसके जिस रथ के तुल्य राष्ट्र को स्त्री और पुरुष धारण करते हैं और ऐश्वर्यवान् पुरुष विद्वानो सहित जब उस बलशाली हितकारी और रमणीय सर्व सुखदाता जिस राष्ट्र पर भांति भांति से शासन करता है तब वह प्रभु दानादि से विख्यात तप व वेद मे बहुश्रुत बनकर दीर्घकाल तक श्रवणीय ज्ञान व ऐश्वर्य का पालक स्वामी बन जाता है ॥३॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥४॥

पदार्थ— जैसे (इन्द्र·) सूर्य (हरिता) प्रखर तेज द्वारा (श्मश्रूणि) भूमि पर लोमतुल्य उगे वनस्पतियों को (अभि प्रुष्णुते) जल से सींचता है, (सो चित् नु वृष्टि·) उसे ही उत्तम वर्षा कहते है । वैसे ही (इन्द्र·) धन ऐश्वर्य दाता प्रभु (स्वा सचा यूथ्या) अपने सहयोगी समूहो को (अभि प्रुष्णुते) सींचता व बढ़ाता है, (सो चित् नु वृष्टिः) राजा की प्रजा के प्रति यही उत्तम वृष्टि है । वह राजा (सुते) ऐश्वर्य प्राप्ति पर (सु-क्षय अव वेति) उत्तम भवन को पाता है और (मधु वेति) मधुर सुखदायी अन्न पाता है । तब (यथा वातः वनम्) जैसे प्रबल वायु वन को प्रकम्पित करता है वैसे ही वह भी (वनम्) अपनी सेना को जलवत् (उद् धूनोति) सञ्चालित करता व परसैन्य को प्रताडित करता है ॥४॥

भावार्थ—जिस भांति सूर्य अपने तेज से भूमि पर उगे वनस्पतियो को जल से सींचता है, उसे ही उत्तम वर्षा कहा जाता है वैसे ही धन-ऐश्वर्यदाता प्रभु अपने सहयोगियो को बढ़ाता है । राजा भी इसी भांति अपनी सेना के बल पर प्रजा को सुरक्षा प्रदान कर उसके शत्रुओ को दण्डित करे ॥४॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५॥

पदार्थ.—(य·) जो प्रभु अथवा राजा (वि वाच) विपरीत, विविध वाणी-युक्त और (मृध्र-वाच) मर्मवेधिनी वाणी प्रयोग करने वालो को (जघान) दण्डित करता है और जो (पुरु) बहुत से (सहस्रा) अनेक (अशिवा) अति दुष्टो को (जघान) नाश करता है, हम (अस्य) इसके ही (तत् तत् इत् पौंस्य) उस बल वैभव का (गृणीमसि) वर्णन करते हैं । वह राजा अथवा प्रभु (पिता इव) पिता के तुल्य (तविषीं वावृधे) बल एव सेना को बढ़ाता है और (शव· वावृधे) अन्न तथा ज्ञान भी बढ़ाता है ॥५॥

भावार्थः—जो प्रभु अथवा राजा विपरीत, विविध वाणी-युक्त और मर्म-वेधिनी वाणी का प्रयोग करने वालों को दण्डित करता है, जो अनेक दुष्टो का नाश करता है, हम उसके बल-वैभव का ही गुणगान करते हैं । वह राजा पिता तुल्य बल व सेना को बढ़ाता है तथा राष्ट्र के धन-धान्य को बढ़ाता है ॥५॥

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! (वि-मदा.) मद रहित तृप्ति-योग युक्त हो, विद्वान् (ते सु-दानवे) तुझ उत्तम दाता के (अपूर्व्यं) आश्चर्यजनक, (पुरु-तम) सर्व श्रेष्ठ (स्तोम) गुणस्तवन को (अजीजनन्) प्रकटते हैं । (अस्य इनस्य) उस तेरे (भोजनं विद्म हि) ऐश्वर्य को हम समझें और प्राप्त करें । (पशुं न गोपाः) जैसे गोपालक पशु को सदैव अपने सामने रखता तथा बुलाता है वैसे ही हम (गो-पा·) इन्द्रिय-पालक बन कर (त्वा पशु आ करामहे) तुझ सर्वद्रष्टा को बुलाए एवं अपने सामने रखें ॥६॥

भावार्थ·—जो राजा प्रजा को उत्तम सुख देने वाला है उसके राज्य मे हर्ष और सुख बढ़ता है । परमात्मा के तुल्य ही प्रजा ऐसे राजा का आदर करती है । जैसे दुधारू पशु का प्रतिदिन आहार दान से सत्कार किया जाता है ॥६॥

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा ते हि प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (वि-मदस्य तव ऋषेः) हर्ष इत्यादि से युक्त द्रष्टा तेरे (एना सख्या) ये मैत्रीभाव (माकि. वि यौषु) कोई भंग न करे और ये कभी न टूटें । हे (देव) सर्व सुखकारक ! हम (ते प्रमतिम्) तेरी बुद्धि को (विद्म हि) जरूर जानें (जामिवत्) भाई के प्रति बहिन के तुल्य (ते) तेरे (सख्या) मैत्री भाव (अस्मे शिवानि सन्तु) हमारे लिये कल्याणदायी हो । ऐसे ही प्रेम भाव (ते शिवानि सन्तु) तेरे प्रति हमे बाध ॥७॥

भावार्थः—राजा और प्रजा मे पारस्परिक मैत्रीभाव सदैव विद्यमान रहना चाहिये और वंशज सम्बन्ध के तुल्य वे कल्याणकारी हो ॥७॥

इति नवमो वर्गः ॥

---

[२४]

ऋषि विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ॥ देवता·—१—३ इन्द्र । ४—६ अश्विनौ ॥ छन्द —१ आस्तारपंक्ति । २ आर्ची स्वराट् पंक्ति. । ३ शङ्कुमती पंक्ति । ४, ६ अनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ षड्ऋच सूक्तम् ॥

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यदाता ! प्रभो ! राजन् ! तू (इमं सुतम्) इस उपजे (मधुमन्त) मधुर अन्न जलादि से युक्त (सोमम्) ऐश्वर्य सम्पन्न (चमू) भूमि व आकाश मे स्थित जगत् का पुत्र तुल्य (पिब) पालन कर और हे (पुरु-वसो) सर्वान्तर्यामिन् ! तू (अस्मे) हमे (सहस्रिणं रयिं नि धारय) सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान कर । हे मनुष्यो ! वह (विवक्षसे) महान् प्रभु (वो वि-मदे) सबको भांति-भांति से सुखी करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यदाता प्रभो ! तू इस उपजे मधुर अन्न जल से सम्पन्न भूमि व आकाश मे स्थित जगत् का पुत्रवत् पालन कर । तू हम सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान कर। हे मनुष्यो ! वह महान् प्रभु ही तुम सबको भाँति-भाँति से आनन्द दे सकता है ॥१॥

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।

शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थ—हे (**शची-पते**) शक्ति पालक ! हम लोग (**यज्ञेभि उक्थेभि हव्येभिः**) यज्ञो, मन्त्रो व आहुति योग्य पदार्थों से (**त्वाम् ईमहे**) तुझे प्राप्त होते है । तू (**शचीनां श्रेष्ठ वार्यं न धेहि**) सर्वोत्तम वरणीय फल प्रदान कर । हे मनुष्यो ! वह प्रभु (**विवक्षसे व विमदे**) तुम्हारे लिए नाना तृप्ति-योग देने की सामर्थ्य रखता है ॥२॥

भावार्थ—हे शक्तियों के स्वामी ! हम लोग यज्ञो, मन्त्रो व आहुति योग्य पदार्थों सहित तुझे प्राप्त होते हैं । तू कर्मों का सर्वोत्तम फल देता है । हे प्रभु ! तू ही मनुष्यो के लिये नाना तृप्ति योग कराने मे समर्थ है ॥२॥

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।

इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यदाता ! (**य.**) जो तू (**वार्याणाम् पति असि**) वरणीय धनो का स्वामी है और (**रध्रस्य चोदिता**) आराधको का भी सन्मार्ग दिखाने वाला और तू (**स्तोतॄणाम् अविता**) स्तुतिशील जनो का रक्षा करने वाला है, तू (**न द्विष**) हमे द्वेष करने वाला (**अहस**) तथा पाप से (**पाहि**) बचा । (**वि व मदे विवक्षसे**) प्रभु तू महान् है । हे मनुष्यो ! वही तुम्हे सुखी कर सकता है ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यप्रद ! तुम वरणीय धनो के स्वामी हो और आराधक को सन्मार्ग दिखाते हो । तुम्ही स्तुतिशील जनो के रक्षक हो । तुम ही हमे विद्वेषी जनो से बचाने वाले तथा पाप से बचाने वाले हो । तुम ही महान् हो व सुख देने मे समर्थ हो ॥३॥

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।

विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**मायाविना**) सृष्टि उत्पादक परिपक्व रज वीर्य शक्तियुक्त (**शक्रा**) हे शक्तियुक्त पति-पत्नी एवं स्त्री-पुरुषो ! (**युव**) आप दोनो (**समीची**) आपस मे मिलकर (**निर् अमन्थतम्**) निर्मन्थन करो (**वि मदेन यद् ईळिता**) भाँति-भाँति के हर्ष प्रीतियोगादि से प्रेरित हो, हे (**नासत्या**) सत्य व्रतधारी जनो ! आप (**निर् अमन्थतम्**) यज्ञादि का मन्थन कर अग्न्याधान मे रत होओ ॥४॥

भावार्थ—हे सृष्टि उत्पादक, परिपक्व रज वीर्य शक्तियुक्त, पति-पत्नी व स्त्री-पुरुषो, तुम दोनों परस्पर मिलकर निर्मन्थन करो । भाँति-भाँति के हर्ष से प्रेरित होकर सत्यव्रत का पालन करो तथा यज्ञादि मे लगे रहो ॥४॥

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।

नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ॥५॥

पदार्थ—(**समीच्यो**) आपस में सादर संगत हुए तथा (**निष्पतन्त्योः**) ससार मे आने वाले दोनों व्यक्तियो पर (**विश्वे देवा**) सर्व विद्वान् जन (**अकृपन्त**) कृपा कर । (**देवा**) वे विद्वान् (**नासत्यौ अब्रुवन्**) आपस मे असत्य आचरण न करने वाले स्त्री व पुरुष को उपदेश दें कि (**पुन. आवहतात् इति**) सत्य प्रतिज्ञा के बाद उत्साहित होकर बार-बार गृहस्थ का भार धारण करो ॥५॥

भावार्थ—परस्पर आदरपूर्वक सगत हुए तथा ससार में आने वाले दोनो व्यक्तियो पर सभी विद्वान् कृपा करें । वे विद्वान् असत्य आचरण न करने वाले स्त्री-पुरुष को उपदेश दें कि सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ का भार वहन करें ॥५॥

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।

ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥६॥१०॥

पदार्थः—(**मे परा-अयनम्**) मेरा सुदूर देश गमन (**मधुमत्**) स्नेह से युक्त हो और (**पुन आ-अयनम्**) पुन लौटना भी (**मधुमत्**) प्रीति युक्त हो । हे (**देवा**) उत्तम फल इच्छुक स्त्री-पुरुषो ! इस प्रकार (**युवं**) आप दोनो (**देवतया**) दान भाव से (**न. मधुमत. कृतम्**) हमे मधुर स्नेह से युक्त करो ॥६॥

भावार्थ—मेरा सुदूर देश गमन भी स्नेह युक्त हो और पुन लौट कर आना भी प्रीतियुक्त हो । हे उत्तम फल के इच्छुक स्त्री-पुरुषो ! इस भाँति तुम दोनो दान भाव से हमें मधुर स्नेह से युक्त करो ॥६॥

इति दशमो वर्गः ॥

---

[२५]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वसुकृद्वा वासुक्र. ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपंक्तिः । ३—५ आर्षी निचृत् पंक्तिः । ७—९ आर्षी विराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! (**न.**) हमे (**भद्र मन अपि वातय**) कल्याणकारी मन प्रदान कर । (**भद्र दक्षम् उत क्रतुम्**) सुखदायी बल तथा कर्मसामर्थ्य दे । (**यवसे न गाव**) पशु जैसे चारे की इच्छा करते है, वे उसे पाकर हर्षित होते हैं वैसे ही जीवगण (**ते सख्ये अन्धस रणन्**) तेरे मित्र भाव में रह भाँति-भाँति से अन्न व कर्म-फल प्राप्त कर आनन्द पाते है । हे मनुष्यो ! (**विवक्षसे व वि मदे**) वह महान् परमात्मा आपको सकल आनन्द का दाता है ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के मित्र भाव मे रहने पर वह हमारे मन, इन्द्रियो के बल तथा प्राणबल को कल्याण मार्ग पर चलाता है । हम उसके आश्रय मे वैसे ही आनन्द से रमण करते हैं जैसे पशुगण चारे मे रमण करते हैं ॥१॥

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।

अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२॥

पदार्थ—हे (**सोम**) शांत स्वरूप प्रभो ! (**अध**) और (**इमे**) ये सब (**मम कामा**) मेरे कामनाशील (**वसूयव.**) वास योग्य लोको व ऐश्वर्यों के इच्छुक व्यक्ति (**विश्वेषु धामसु**) सभी स्थानो मे (**हृदि-स्पृशः**) नितान्त प्रिय होकर (**ते आसते**) तेरी वन्दना करते है और (**वि तिष्ठन्ते**) स्थिर रहते हैं । हे मनुष्यो ! वह परमात्मा (**विवक्षसे व वि मदे**) महान् तथा हर्ष दाता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्मा ! सभी स्थानो मे तुझे पाने की और तेरे मे वास के इच्छुक उपासको की कामनाए बनी रहती है ॥२॥

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।

अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

पदार्थ—(**उत**) और हे (**सोम**) सकल शासक ! (**अहं पाक्या**) मैं परिपक्व प्रज्ञा से (**ते व्रतानि प्र मिनामि**) तेरे कर्मों का पालन करूं । तू (**वधात् अभि चित्**) विनाश से बचा कर (**सूनवे पिता इव नः मृळ**) पुत्र को पिता के तुल्य हमे सुख दे । हे मनुष्यो ! वह (**विवक्षसे व वि मदे**) महान् प्रभु आप लोगों को भाँति-भाँति से आनन्द दे ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा के आदेशो का पालन विशेष परिपक्व बुद्धि से करना अपेक्षित है । वह पुत्र को पिता के तुल्य घातक प्रहारो या विनाश से बचाता है ॥३॥

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवतौ इव ।

क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥

पदार्थ—(**सर्गास. अवतान् इव**) जल जैसे स्वाभाविक रूप से नीचे की ओर जाता है और (**सर्गासः अवतान् इव**) जैसे जल लेने वालो की रस्सियाँ कूपो की ओर जाती हैं वैसे ही (**सोम**) हे सर्वशक्तिमन् ! (**न: धीतय**) हमारी सारी स्तुतियाँ (**क्रतु स यन्ति उ प्र यन्ति**) जगत् विधाता तुझ तक पहुँचाती हैं । तू (**न.**) हमें (**चमसान इव जीवसे**) प्राण व दीर्घायु के लिए अन्न से पूर्ण पात्रों के तुल्य नाना पदार्थ (**धारय**) प्रदान कर । हे मनुष्यो ! (**विवक्षसे वः विमदे**) वह प्रभु आप सबको आनन्द देता है ॥४॥

भावार्थ—जिस भाँति जल का प्रवाह नीचे की ओर होता है, उसी प्रकार उपासको की प्रज्ञाएं तथा कर्म प्रवृत्तियाँ परमात्मा की ओर झुकी रहती हैं । वह हमारे जीवन-हेतु हमे अपने आनन्द-रसो का पात्र बनाता है । हम उसी की शरण मे रहें ॥४॥

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे । गृत्सस्य

धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥११॥

पदार्थः—हे (**सोम**) शांतिदाता ! (**त्ये**) वे (**नि-कामासः**) तेरी कामना वाले (**धीरा.**) बुद्धिमान् व्यक्ति (**तवस.**) बलशाली (**गृत्सस्य**) स्तुत्य (**तव**) तेरी (**शक्तिभिः**) शक्तियो से (**गोमन्तम् अश्विनम् व्रज वि ऋण्विरे**) गौवो एव अश्वो से समृद्ध पशुशाला तुल्य ज्ञानेन्द्रियो व कर्मेन्द्रियो से युक्त यह देह पाते है । (**विवक्षसे**) वह महान् प्रभु हे मनुष्यो ! (**वः वि मदे**) तुम्हे सकल आनन्द देने वाला हो ॥५॥

भावार्थः—शांतिदाता प्रभु का जो लोग नित्य नियम व योगाभ्यास आदि से ध्यान करते हैं ऐसे उपासक जन शोभन इन्द्रिययुक्त तथा प्रशस्त मन वाले शरीर को प्राप्त करते है । उसी स्थिति मे वे प्रभु के आह्लाददायक स्वरूप को अनुभव कर पाते हैं ॥५॥

इत्येकादशो वर्गः ॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् । समाकृणोषि

जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६॥

पदार्थ —हे (**सोम**) परमात्मा ! तू (**न**) हमारी (**पशु**) पशु की गोपाल के तुल्य (**रक्षसि**) रक्षा करता है और तू (**पुरुधा**) अनेक प्रकार से (**विस्थितं जगत्**) व्यवस्थित ससार की भी (**रक्षसि**) रक्षा करता है। हे प्रभो ! तू (**विश्वा भुवना**) सकल भुवनो को (**सम्-पश्यन्**) देखता हुआ (**जीवसे**) जीव के सुख हेतु (**सम् आकृणोषि**) सारे पदार्थों की उचित व्यवस्था करता है। हे मनुष्यो ! (**विव-क्षसे व वि मदे**) वह प्रभु तुम्हे सुख देने वाला है ॥६॥

भावार्थ —हे परमात्मा! तू हमारी उसी भांति रक्षा करता है, जैसे पशुओ की रक्षा गोपालक करता है। परमात्मा व्यवस्थित जगत् की भी रक्षा करता है। तू ही सर्व प्रकार की विविध सृष्टि करता है। हम उसके हर्षदायक स्वरूप को प्राप्त करें ॥६॥

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।

सेधं राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७॥

पदार्थ —हे (**सोम**) जगत् सञ्चालक ! तू (**अदाभ्यः**) अमर है। (**न विश्वतः गोपाः भव**) तू हमारा सर्व प्रकार रक्षक हो। हे (**राजन्**) राजन् ! तू (**स्रिधः**) हमारे सहारक दुष्टों को (**अपसेध**) दूर कर। (**दु-शंस**) कठोर वचन कहने वाले (**न मा ईशत**) हम पर शासन न करे। हे मनुष्यो ! (**विवक्षसे**) वह प्रभु (**व. वि मदे**) आप लोगो को आनन्द दे ॥७॥

भावार्थ —हे जगत् सञ्चालक प्रभो ! तू अविनाशी है। तू हमारी सब भांति रक्षा कर। सहारक दुष्टो को हमसे दूर भगाओ। कठोर वचन कहने वालो को हम पर शासन न करने दो। आप ही लोगो को आनन्द देते हैं ॥७॥

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।

क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

पदार्थ —हे (**सोम**) परमात्मन् ! (**त्व सु-क्रतु**) तू उत्तम क्रियावान् तथा (**क्षेत्रवित्-तर**) देहरूप निवासस्थान का दाता है। तू (**वयः-धेयाय**) अन्न, बल एव ज्ञान हेतु (**जागृहि**) सदा जागृत रह। तू (**नः**) हमे (**अंहस मनुष**) पापी जनो से और (**द्रुहः मनुष**) द्रोही जनो से (**पाहि**) बचा। हे मनुष्यो ! (**विवक्षसे व वि मदे**) वह महान् प्रभु आपको सुख प्रदान करे ॥८॥

भावार्थ —हे प्रभु ! तू उत्तम क्रियावान् व देहरूप निवास स्थान का दाता है। तू हमे अन्न बल दे तथा पापी व दुष्ट जनो से हमे बचा। तू ही महान् सुखदाता है ॥८॥

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।

यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥

पदार्थ —हे (**वृत्रहन्तम**) दुष्ट नाशक ! हे (**इन्दो**) प्रभो ! (**त्व न शिवं सखा**) तू हमारा कल्याणकारी सखा है और तू (**इन्द्रस्य शिव· सखा**) ऐश्वर्य-वान् का भी मित्र है। (**यत्**) क्योंकि (**तोक-सातौ समिथे**) धनैश्वर्य की प्राप्ति हेतु संग्राम मे (**युध्यमाना**) युद्ध करते हुए जन भी (**सीं हवन्ते**) तुझे ही रक्षार्थ बुलाते हैं। (**विवक्षसे व वि मदे**) हे मनुष्यो ! वह प्रभु तुम्हें विविध सुख दे ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा ही कल्याणकारी है। वही ऐश्वर्यवान् का भी सखा है। क्योंकि वे भी धनैश्वर्य प्राप्ति के लिए सघर्ष मे उसी का स्मरण करते हैं। वही सब को विविध सुख प्रदान करता है ॥९॥

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।

अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥

पदार्थ·—(**अय घ**) यह निश्चय सहित (**तुर**) तुरन्त कार्य करने मे सिद्ध (**इन्द्रस्य मद**) समृद्ध राष्ट्र की सन्तुष्टि मे समर्थ, (**प्रिय·**) सर्वप्रिय बनकर (**वर्धत**) वृद्धि पाता है और (**अयं**) यह (**कक्षीवत**) कार्य के साधनो से युक्त (**विप्रस्य**) विद्वान् जन की (**मतिं**) बुद्धि को (**वर्धयत्**) बढाता है। हे मनुष्यो ! (**विवक्षसे व वि मदे**) वही महान् शक्तिशाली तुम्हे सुख देने वाला है ॥१०॥

भावार्थ —यह निश्चय सहित शीघ्र कार्य करने मे सिद्ध, राष्ट्र को समृद्धि देने मे समर्थ, सर्वप्रिय होकर वृद्धि पाता है। वही विद्वान् जन की बुद्धि को बढाता है। हे मनुष्यो ! वही प्रभु तुम्हें सुख देने वाला है ॥१०॥

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः । अयं सप्तभ्य

आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥११॥१२॥

पदार्थ.—(**अय**) वह परमात्मा (**दाशुषे**) दानी (**विप्राय**) बुद्धि-मान् जन को (**गोमत वाजान्**) वाणी से युक्त ज्ञान तथा भोग्य अर्थों को (**इयर्ति**) प्रदान करता है। (**अयं**) वह (**सप्तभ्य**) सातो को (**वर**) वरणयोग्य ज्ञान (**आ**) देता है और (**विवक्षसे**) वह महान् प्रभु (**व**) आप लोगो के (**अन्ध श्रोण च प्रतारिषत्**) चक्षु से, चरण आदि से हीन जीव को (**मदे**) मोक्षानन्द देने हेतु (**प्र तारिषत्**) पार पहुँचाता है ॥११॥

भावार्थ —आत्म-समर्पण करने वाले उपासक के लिए प्रभु प्रशसनीय अमृत तुल्य भोगो को देता है। उन उपासको के लिए श्रवण करने योग्य उत्कृष्ट मोक्षानन्द को बढ़ाता है। उसी की वन्दना करना अभीष्ट है ॥११॥

इति द्वादशो वर्ग· ।

---

[२६]

विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ऋषि ॥ पूषा देवता ॥ छन्द.—१ उष्णिक । ४ आर्षी निचृदुष्णिक् । ३ ककुम्मत्यनुष्टुप् । ५—८ पादनिचृदनुष्टुप् । ९ आर्षी विराडनुष्टुप् । २ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।

प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१॥

पदार्थः—(**नियुत**) स्थिर (**स्पार्हाः**) हमारी वांछनीय (**मनीषा**) मन की स्तुतियां (**अच्छ प्र यन्ति**) अच्छी प्रकार स्वयं निकलती हैं (**माहिन पूषा**) महान् पोषक प्रभु के लिए (**नियुत्-रथ**) जो सहस्रो, लक्षो लोको का स्वामी, महा-रथी के समान है (**दस्रा**) कर्म करने वाले जीवो का (**प्र अविष्टु**) रक्षक है ॥१॥

भावार्थः—जब उपासकों की वांछनीय मानसिक स्तुतियां पोषण करने वाले प्रभु को प्राप्त होती हैं तो वह दर्शनीय महान् मोक्ष देने वाला परमेश्वर उनके हेतु मोक्ष स्थान को सुरक्षित कर देता है ॥१॥

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।

विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२॥

पदार्थ —(**अय जन**) सब मे मेधावी जन (**यस्य**) जिस प्रभु की (**वाताप्य**) वायु अथवा प्राण से प्राप्त होने योग्य, जीवनप्रद (**त्यत् महित्व**) महान् सामर्थ्य को (**धीतिभि आ वसत्**) खान-पान की क्रियाओ, स्तुतियो और ध्यान धारणाओं से पाता है वह (**विप्र**) मेधावी ही (**सु-स्तुतीन् चिकेताम्**) उत्तम स्तुतियों से भली-भांति स्मरण करता है ॥२॥

भावार्थ —मेधावी व्यक्ति के लिए आवश्यक है, कि जिस पोषण करने वाले प्रभु की कृपा से उसे जन्मादि भोग अपने कर्मानुसार मिलते हैं, उस प्रभु का स्तुतियो द्वारा गुणगान करें ॥२॥

स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।

अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३॥

पदार्थ —(**स**) वह (**इन्दु न**) ऐश्वर्यवान्, (**पूषा**) सर्वपोषक (**वृषा**) सुख देने वाला प्रभु (**सु-स्तुतीनां वेद**) उत्तम स्तुतियो को जानता है। वह (**प्सुर अभि प्रुषायति**) साक्षात् हुआ आनन्द रस की वृष्टि करता है और वह (**व्रज न आ प्रुषायति**) हमारे इन्द्रिय स्थान को अपने आनन्द से भी सींचता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा जो पोषण करने वाला है वह अपने आनन्द रस द्वारा उपासको को तृप्त करता है और प्रत्येक इन्द्रिय स्थान मे भी अपने आनन्द का अनुभव कराता है ॥३॥

मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।

मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४॥

पदार्थ —हे (**पूषन्**) पोषक ! हे (**देव**) परमात्म देव ! (**वयम्**) हम (**त्वा**) तुझे (**अस्माक मतीनां**) अपनी बुद्धियो को (**साधन**) सफल करने वाला और (**विप्राणां च**) स्तुतियो से तुझे प्रसन्न करने वालो के (**आधवं च**) स्वामी और पावन करने वाला (**मंसीमहि**) मानते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के अस्तित्व को मानने वाले उस उन्नत पथप्रदर्शक पाप-नाशक प्रभु को अपनी स्तुतियो द्वारा प्रसन्न करते हैं। वही सबको पावन करने वाला है ॥४॥

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।

ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥१३॥

पदार्थ (**य**) जो (**यज्ञानां प्रति-अर्धि**) यज्ञो का पोषक, (**रथानाम् अश्व-हय**) रथो मे लगे घोडो के तुल्य रम्य पदार्थों और सूर्यादि लोको का प्रेरक है (**स**) वह (**ऋषि**) सर्वज्ञ (**मनु**) ज्ञानमय, (**विप्रस्य सख**) बुद्धिमानों का सखा है (**यवयत्**) सबके दुःखो को दूर करता है।

भावार्थ·—प्रभु सकल श्रेष्ठकर्म पोषक, रमणीय पदार्थ प्रेरक, मननशील उपासको का हित करने वाला सखा और पालन करने वाला है ॥५॥

इति त्रयोदशो वर्ग ।

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

पदार्थः—(**आ-धीषमाणाया**) सर्व प्रकार धारण योग्य (**शुचाया च**) सत्व गुण युक्त, कान्तिमती प्रकृति का और (**शुचस्य च**) 'स्वप्रकाश' आत्मा का भी (**पति**) वह पालक है और जैसे (**वास -वाय अवीनां वासांसि मर्मृजत्**) तन्तु-वाय ऊन के वस्त्र बनाता है वैसे ही वह प्रभु (**वास -वाय**) प्राणियो के वासयोग्य जगत् का निर्माता (**अवीनाम्**) अरक्षित जीवो हेतु (**वासांसि आ मर्मृजत्**) आच्छा-दक देह वा बसने योग्य नाना लोक, निर्माता है ॥६॥

भावार्थः—वही प्रभु सर्व प्रकार से धारण की गई सत्त्व गुण युक्त कान्तिमती प्रकृति तथा आत्मा का पालक है। वही प्राणियो के वासयोग्य जगत् का निर्माण करने वाला है ॥६॥

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥

पदार्थ -- वह प्रभु (**वाजानां इन**) समस्त जगत् का स्वामी और (**पति**) पालक है (**पुष्टीनां इन**) वही अन्न समृद्धियो का स्वामी, (**सखा**) सबका सखा है। वह (**हर्यत**) तेजस्वी (**श्मश्रु वृथा प्र दूधोत्**) रोमो के तुल्य जगत् के पदार्थों को अनायास सञ्चालित करता है और (**य अदाभ्य**) वह अनश्वर है ॥७॥

भावार्थ —वही प्रभु सकल जगत का स्वामी तथा पालक है, वही अन्न समृद्धियो का स्वामी तथा सबका मित्र है। वह तेजस्वी है तथा अनश्वर एव सकल जगत् का सचालक है ॥७॥

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥

पदार्थ —हे (**पूषन्**) पोषक प्रभो ! तू (**विश्वस्य-अर्थिन**) सकल प्रार्थी जनो का (**सखा**) मित्र है। तू (**सन जा**) अजन्मा (**अनपच्युत**) अविनाशी है। (**ते रथस्य धुर**) तेरे जगत्-चक्र के धारक बल को (**अजा ववृत्युः**) प्रकृति व आत्मा तथा अग्नि, वायु, विद्युत्, जल इत्यादि चलाते हैं ॥८॥

भावार्थ —हे पोषक प्रभो, तुम सकल उपासक जनो के मित्र हो, अजन्मा व अविनाशी हो। तेरी महिमा ही चतुर्दिक् व्याप्त हो रही है ॥८॥

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९॥१४॥

पदार्थ —(**पूषा**) जगत्पोषक परमात्मा (**माहिन**) महान् है। वह (**अस्माक रथ**) हमारे (**रथ**) रमणीय देह को (**ऊर्जा**) शक्ति से (**आविष्टु**) सञ्चालित करे। वह (**वाजानां वृधे भुवत्**) बलो और ज्ञानो को बढाता है। वह (**न इम हवम शृणवत्**) हमारी प्रार्थना स्वीकार करता है ॥९॥१४॥

भावार्थः—जगत्पोषक प्रभु महान् है। वह हमारे रमणीय देह को शक्ति से सञ्चालित करता है और बल तथा ज्ञान वाला है और हमारी प्रार्थना स्वीकार करता है ॥९॥१४॥

इति चतुर्दशो वर्ग ।

---

[२७]

वासुक्र ऐन्द्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द — १, ५, ८, १०, १४, २२, त्रिष्टुप् । २, ९, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ११, १२, १५, १९—२१, २१ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, ७, १३, १७ पादनिचृत त्रिष्टुप् । २४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

('**वसुक**' **वसु करोति तादृश इन्द्र एव ऐन्द्र , सोऽस्य सूक्तस्य ऋषि**)

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१॥

पदार्थ - हे (**जरित**) स्तुति करने वाले ! (**मे स अभि-वेग सु असत्**) मेरा वह शाश्वत स्वभाव कल्याणकारी है (**यत्**) कि जो (**सुन्वते यजमानाय शिक्षम्**) यज्ञशील, देवोपासक को आनन्द देता हूं। मैं ईश्वर, राजा, (**अनाशी दाम्**) आशा अनुरूप न देने वालो को (**प्र-हन्ता अस्मि**) नाश करने वाला हूं। मैं (**सत्य-ध्वृत**) सत्य विनाशक व (**वृजिनायन्तम्**) पापाचरण करने वाले (**आभुम्**) शक्तिशाली को (**प्र-हन्ता अस्मि**) नष्ट करता हूं ॥१॥

भावार्थः—प्रभु का यह शाश्वत स्वभाव है कि वह अपने प्रति समर्पण करने वाले उपासक को सर्वविधि आनन्द प्रदान करता है और नास्तिक, पापकर्मरत तथा पीडक जनो का नाश करता है ॥१॥

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

पदार्थ— (**यदि इत्**) यदि (**अह**) मैं (**युधये**) युद्ध के निमित्त उद्यत हो जाऊँ (**तन्वा शूशुजानान्**) शरीर से जाज्वल्यमान क्रोधित हुए (**अदेवयून**) जो तेरी पूजा नहीं करते ऐसे दुष्टो को (**सनयानि**) तेरा उपासक बनाता हूं (**तुम्र वृषभम् पचानि**) और घातक पाप को खा जाता हूं, नष्ट करता हूं। मैं (**तीव्र सुत पञ्च-दश नि-षिञ्चम्**) १५ कलाओ से पूर्ण चन्द्र समान प्रबल सिद्ध ओज को अपने मन, आत्मा मे पूर्णत. धारता हूं ॥२॥

भावार्थ —परमेश्वर की सहायता से ही आस्तिक जन क्रोधियो व नास्तिको के साथ आत्मशक्ति से सघर्ष कर उन्हे भी उपासक और आस्तिक बनाते हैं और अपने भीतर के प्रबल पापो को मिटा कर अपने मन व आत्मा मे तेज धारण करते हैं ॥२॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥

पदार्थ —(**अदेवयून् समीरणे जघन्वान्**) मुझे इष्ट देव न मानने वालो को सग्राम मे मारता हूं (**य. इति ब्रवीति**) जो ऐसा कहता है (**त**) उसे (**अहं न वेद**) मैं नही जानता क्योकि मेरे बिना कोई ऐसा नही कह सकता। (**यद् ऋघावत्**) जो हिंसादि से युक्त (**सम्-अरणम्**) सग्राम को (**अव-अख्यत्**) देखता हूं, (**आत् इत्**) तभी विद्वान् (**मे**) मेरे (**वृषभा**) बलयुक्त कर्मो को (**प्र ब्रुवन्ति**) प्रशसित करते है ॥३॥

भावार्थ —परमात्मा की सहायता के बिना व्यक्ति सग्राम के किसी भी प्रसग मे अपने विरोधी को परास्त करने मे समर्थ नही हो पाता। देवासुर प्रवृत्तियो के आन्तरिक सग्राम मे विजय प्राप्ति भी उसी की सहायता से सभव है अत. उस परमात्मा के गुण, कर्म और पौरुष की वन्दना अभीष्ट है ॥३॥

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

पदार्थ —(**यत्**) जिसस (**अज्ञातेषु वृजनेषु**) दूसरो से अज्ञात मार्गो मे (**आसन्**) मै वर्तमान हू (**विश्वे मघवान**) सब उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (**सत**) सज्जन (**मे**) मेरे (**आसन्**) रहे। जैसे सूर्य (**क्षेमे**) जगत् की रक्षार्थ (**आ सन्तं आभु**) जल एकत्र कर उसे पर्वतो पर मेघरूप मे भेजता है वैसे ही (**क्षेमे**) जगत् रक्षणार्थ (**आ सन्त आभुं**) सब तरफ फैले शत्रु को (**जिनामि वा इत्**) अवश्य परास्त करता हूं (**पाद-गृह्य**) उसका पैर पकड कर उसका आश्रय छीन उसे (**पर्वते प्र क्षिणाम्**) कष्टमय स्थान मे फेंकता हू ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर अनन्त बलो का स्वामी है। मनुष्यो को उन्हे जानना चाहिए। अध्यात्म यज्ञ करने वाले उपासको को उनका ज्ञान है। उनके कल्याण के लिए वह आक्रमणकारी पाप तथा पापी को अपने अज्ञात बल से नष्ट कर देता है ॥४॥

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥१५॥

पदार्थ - (**मां**) मुझे कोई भी (**वृजने**) गन्तव्य पथ से (**न वा उ वारयन्ते**) नही हटा सकता। (**यद अह मनस्ये**) मैं जब चाहता हू तो (**पर्वतास न**) पर्वतो के तुल्य विशाल पदार्थ भी मुझे श्रेष्ठ मार्ग से नही रोक सकते (**मम स्वनात्**) मेरे शब्द से (**कृधु कर्ण भयाते**) अल्प शक्ति जन डरता है। (**एव इत् अनुद्यून्**) ऐसे ही सब दिनो, (**किरण**) सूर्य भी मुझ प्रभु की शक्ति से (**सम् एजात्**) चलता है ॥५॥

भावार्थ — मुझे कोई भी गन्तव्य पथ से नही हटा सकता। मैं जब चाहता हू तो पर्वततुल्य बाधाए भी मुझे श्रेष्ठ मार्ग से नही रोक सकती। मेरे शब्द से अल्पशक्ति जन भयभीत होता है। किरणयुक्त सूर्य भी मुझ परमेश्वर की शक्ति से ही है ॥५॥

इति पञ्चदशो वर्ग ।

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥

पदार्थ - मैं (**अत्र**) इस ससार मे (**अनिन्द्रान्**) ऐश्वर्यवान, प्रभु रहित (**शृत पान्**) परिपक्व फल के उपभोक्ताओ को और (**बाहुक्षद.**) उत्पीडक साधनों से दूसरो के नाशक को और (**शरवे**) हिंसक बल प्राप्त करने हेतु (**पत्यमानान्**) दौडते हुए ऐश्वर्य प्रापको को भी देखता हू। (**वा**) और उन्हे भी देखता हूं (**ये**) जो (**घृषु सखायम्**) अपने सहायक परमात्मा की (**निनिदु**) निन्दा करते है। (**एषु**) उन पर (**उ नु**) निश्चय से ही (**पवय अधि ववृत्यु**) मेरा वज्रप्रहार होता है ॥६॥

भावार्थ — परमेश्वर नास्तिक आक्रमणकारियो व दूसरो का रक्त, मास पीने वाले दुष्ट जनो को देखता है और उनका विरोध करने वाले आस्तिको को भी जानता है। वह आस्तिको की सहायता तथा दुष्टो का सहार करता है ॥६॥

अभूर्वौक्षीर्व्युऽ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥

पदार्थ - हे परमात्मा ! तू (**अभू उ**) अजन्मा है, जो (**औक्षी**) जगत् उत्पादनार्थ बीज वपन करता है। तू (**आयु आनट्**) सकल जीवसग मे व्याप्त है। (**पूर्व दर्षत् नु**) जो पूर्व विद्यमान अथवा शक्तिशाली होता है वही सबका विदारक है (**अपर नु दर्षत्**) और दूसरा कोई विदारक नही। (**द्वे**) ये आकाश व भूमि, जीव तथा प्रकृति (**पवस्ते**) विस्तृत होकर भी (**त न परि भूत**) उसे नहीं ढक सकते (**य**) जो (**अस्य रजस पारे विवेष**) इस लोक के पार भी व्याप्त है ॥७॥

भावार्थ प्रभु विश्व के बीजरूप अव्यक्त शक्ति को सींचता है। स्व शक्ति से सींच कर उसे वृक्ष का रूप देता है और जीवन धारण करने वाले आत्मा मे भी व्याप्त होता है। जो प्रभु ससार व प्रकृति के बाहर भी है, प्रकृति व जीवात्मा दोनो को अपने वश मे किये है ॥७॥

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८॥

पदार्थः—(सह-गोपा. गाव चरन्ति यवम्) जैसे गोपालक के साथ चरती गौए यव आदि पाती है वैसे ही (सह-गोपा) रक्षक सहित, (गावः) ये भ्रमणशील जीव (चरन्ती·) चलते हुए (प्रयुता) व्यवस्थित होकर (यवं अक्षन्) अपना कर्मफल पाते हैं और मैं (अर्यः) स्वामी तुल्य (ता अपश्यम्) उन सबको देखता हूँ । वे (अर्यं अभितः) स्वामी के चतुर्दिक (हवा इत्) बुलाए हुए से (सम् आयन्) एकत्र होते हैं (आसु) उनमे (स्व पति) स्वय प्रभु (कियत् छन्दयाते) कितना ही आनन्द देता है ॥८॥

भावार्थ —जिस भांति गोपाल के साथ चरती हुई गौए यव आदि पाती हैं वैसे ही रक्षक सहित यह भ्रमणशील जीव चरते हुए व्यवस्थित होकर अपना कर्मफल भोगते हैं । परमात्मा स्वामी तुल्य उन्हें देखता है । वे भी उसके चतुर्दिक् एकत्रित हो कर आनन्दित होते हैं ॥८॥

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद् ववन्वान् ॥९॥

पदार्थ —(यत्) क्योकि (वयम् जनानाम्) जन्म धारण करने वाले जीवो मे हम सब (यव-साद) चारे के तुल्य कर्मफल को भोगते है और (उवज्रे अन्त) महान् आकाश मे हम लोग (यव अद) अन्नवत् भोग्यो को भोगते है । (अत्र) इस लोक मे (युक्त) समाहित चित्त हो मनुष्य (अव-सातार) उस परमात्मा को (इच्छात्) चाहे । (अथो) और वह (ववन्वान्) दाता (अयुक्त युनजत) मनोयोग न देने वाले को सन्मार्ग दिखाता है ॥९॥

भावार्थ —परमात्मा उत्पन्न हुए प्राणियो, अन्नभोजी मनुष्यो व पशुओ के हृदय में भी विराजमान है । उस महयोगी प्रभु के प्रति ही हम ध्यान लगाए ॥९॥

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१०॥१६॥

पदार्थ —(अत्र इत् उ) यही (मे) मेरे सम्बन्ध मे (उक्तम् सत्य मससे) हे जीव ! तू किये हुए उपदेश को ठीक से जान ले कि (यत् द्विपात् च चतुष्पात च) जो भी द्विपाद मनुष्य या चौपाये जीव हैं उनको मै (स सृजानि) जन्म देता हू । (अत्र) इस जगत् मे (य·) जो (स्त्रीभि) स्त्रियो के सदृश पराधीन या सेनाओ से युक्त होकर भी (वृषण) बलवान् मुझसे (पृतन्यात्) सग्राम करता है मैं (अयुद्ध) बिना युद्ध ही (अस्य वेद वि भजानि) उसके धन को नष्ट कर देता हू ॥१०॥

भावार्थ —मानव को यह निश्चय से जानना चाहिए कि दो पैर वाले मनुष्यो और चार पैर वाले पशुओ, सभी को परमात्मा उत्पन्न करता है । जो उसका विरोध करता है, उसे वह प्रभु धन तथा बल से विहीन कर देता है ॥११॥

इति षोडशो वर्ग ॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥११॥

पदार्थः—(यस्य) जिसके अन्तर्गत (अनक्षा) नेत्र आदि ज्ञानसाधन रहित (दुहिता) सर्व ऐश्वर्यदायी प्रकृति पुत्रीवत (जातु आस) है । (क विद्वान्) कौन ज्ञानी (ताम् अन्धाम्) उस अन्धी प्रकृति को (अभि मन्याते) अपना मानेगा । (य ईं वहाते) जो इसे धारण करता है और (य ईं वरेयात) जो इसे वरता है (त) उस (मेनि) वज्रवत् दृढ शक्ति का (कतर प्रति मुचाते) कौन धारता है ॥११॥

भावार्थ —ज्ञानरहित प्रकृति प्राणिमात्र के लिए विभिन्न भोगो की व्यवस्था करती है । भला कौन ज्ञानी इस प्रकृति को जान पाता ? उससे कोई सर्वथा मुक्त भी नही हो सकता । प्रत्येक जीव उसके बन्धन मे रहता है, परन्तु जो उसे भली-भाति सहन करने मे समर्थ है, वही उससे मुक्ति भी पा सकता है ॥११॥

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥

पदार्थः—(कियती योषा) कितनी स्त्रिया ऐसी हैं जो (वधूयो मर्यत) वधू की कामना करने वाले व्यक्ति के (पन्यसा वार्येण परिप्रीता) स्तुतियुक्त वचन व धन से सतुष्टि पाती है । वस्तुत (भद्रा वधू भवती) वही वधू कल्याणदायिनी होती है (यत् सुपेशा) जो सुभूषित हो (सा) वह (जने चित् मित्र स्वय वनुते) मनुष्यो के मध्य अपने मित्र पुरुष को पति रूप से स्वीकारती हैं ॥१२॥

भावार्थ —वास्तव मे भाग्यशालिनी तो वही वधू है कि जो उसे चाहने वाले और प्रेम करने वाले वर की प्रशसा की पात्र अन्य वस्तुओं से सतुष्ट रहती है तथा सुभूषित होकर जन समुदाय में वर का वरण करती है ॥१२॥

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३॥

पदार्थः— पुरुष प्रकृति को कैसे व्यापता है ? (पत्तः) व्याप्त हो वह पुरुष (जगार) इस जगत् को अपने भीतर समेटता है और (प्रत्यञ्चम् अत्ति) उसके प्रति व्याप्त प्रकृति का उपभोग करता है, इस ससार के (शिरः वरूथम्) शिरोवत् ऊर्ध्वतम को (शीर्ष्णा प्रति दधौ) अपने शिर तुल्य आकाश रूप से धारता है । वह (ऊर्ध्वाम्) ऊपर विद्यमान प्रकृति को (उपसि आसीन क्षिणाति) मानो उसके समीप बैठ प्रेरित करता है और (उत्तानाम् भूमिम) उत्तान भूमि को भी (न्यङ् अनु एति) मानो नीचे व्याप्त होकर उसके प्रत्येक अवयव मे व्यापता है ॥१३॥

भावार्थ —सच्चे उपासक परमात्मा को जागते हुए, स्वप्न में तथा सुषुप्ति और तुरीय स्थान वाले स्वरूप में अनुभव करते हैं । वही परमात्मा उत्पन्न ससार को विलीन कर देता है, प्रकृति रूप मे कर देता है और फिर वही व्याप्त प्रकृति को अपने आश्रित जगत् रूप मे बदल देता है ॥१३॥

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

पदार्थ —वह प्रभु (बृहन्) महान् है (अच्छाय) अन्धकार तथा मृत्यु से रहित है (अपलाशः) कर्मफल के अशन या भोग से रहित है (अर्वा) दुःखो का नाशक है (माता) जगन्निर्माता व पदार्थों का प्रमाता है (वि-षितः) बन्धन-रहित है, (गर्भ.) सकल जगत् को धारण, आकर्षण व विलीन करने वाला है (अत्ति) इस चराचर जगत् को निगल जाता है । वह (धेनु) जीवो को आनन्दरस-पान कराता है (अन्यस्या.) अपने से भिन्न प्रकृति के (वत्स) पुत्रवत् उत्पन्न जगत् को (रिहती) बच्चे को प्रेम से चाटती गाय के तुल्य उस पर कृपा करता है, (मिमाय) शब्द करता, वेदवाणी का उपदेश देता है, वह (कया भुवा) भला किस भाव से (ऊधः) जगत् को पालन करने हेतु अन्तरिक्ष मे सूर्य, रात्रि आदि जीवन-दायक पदार्थों को, बच्चे के तुल्य स्तनवत् (नि दधे) देता है ॥१४॥

भावार्थ। —वह प्रभु अन्धकार एव मृत्यु से परे है । वह अपने महान् स्वरूप में अनुपम केवल फलभोग से रहित सर्वत्र व्याप्त सभी का निर्माता है, अधिष्ठाता है । वह सकल विश्व को अपने मे रखता है । वही जीवात्मा को स्व आश्रय मे लेकर कर्म फल का भोग कराता है ॥१४॥

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते । नव
पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥१७॥

पदार्थ - उस (अश्न) राजा तुल्य आत्मा के (सप्त वीरास. सप्त अधरात् उत् आयन्) विराट् रूप से प्रभु द्वारा रचित गतिमान् पृथिवी आदि लोक स्थूल रूप से प्रकटे हैं और (ते) वे ही (अष्ट) आठ बनकर (उत्तरात्-तात्) सूक्ष्म रूप मे वे (सम् अजग्मिरन्) एक सर्वत्र बहने वाले उत्पन्न हुए हैं । (ते) वे (पश्चातात्) (स्थिवि-मन्त आयन्) पश्चात् प्राप्त हुए नव ग्रह चन्द्र आदि आधार को अपेक्षित करने वाले प्रकटी भाव को और वे ही (दश अश्न प्राक् सानु वि तिरन्ति) दश व्याप्त पूर्व से पूर्वादि दिशाएं स्थान मात्र को विकसित करती हैं, आश्रय देती हैं ॥१५॥

भावार्थ —परमेश्वर ने ही पृथिवी इत्यादि लोको, वायु इत्यादि सूक्ष्म तत्त्वों एव चन्द्रमा इत्यादि आश्रय पाने वाले ग्रहो तथा दूसरो को आश्रय प्रदान करने वाली दिशाओ का सृजन कर उन्हे धारण किया हुआ है ॥१५॥

इति सप्तदशो वर्ग ॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥१६॥

पदार्थ — (दशानाम् एक कपिल समानम् तम्) दशो इन्द्रियो के एक कमनीय समान भाव से वर्तमान उस आत्मा को (पार्याय क्रतवे हिन्वन्ति) परे वर्तमान मोक्ष हेतु और जगत् मे कर्म करने को वे इन्द्रिया प्रेरित करती हैं । (वक्षणासु माता गर्भं अवेनन्तम् सुधितं) नाड़ियो के बीच प्रकृति माता गर्भ रूप मे भली-भांति प्राप्त हुए शरीर से न निकलने की कामना करते हुए को (तुषयन्ती बिभर्ति) प्रसन्न हो कर धारण करती है ॥१६॥

भावार्थ.—आत्मा ही इन्द्रियो का इष्ट देव है । उसे वे अपवर्ग—मोक्ष, भोग के लिए कर्म करने को प्रेरित करती हैं । शरीर की नाड़ियो और विभिन्न अगो मे प्रकृति स्थान देती है शरीर न छोड़ने के इच्छुक उस आत्मा को प्रकृति ही संतोष प्रदान करती है और धारती है ॥१६॥

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७॥

पदार्थ —(वीराः) दशों प्राण (पीवानं) सर्व पोषक, (मेष) आत्मा को (अपचन्त) परिपक्व बनाते हैं तथा वे (नि-उप्ताः अक्षा) देह मे प्रस्फुटित इन्द्रियगण (अनु) आत्मा के इच्छा के अनुरूप (दीवे) उसके सुख हेतु (आसन्) होते हैं और (अप्सु अन्तः) प्राणों में व्याप्त हो (द्वा) दो मुख्य प्राण, अपान (पवित्रवन्ता) शरीर शोधक बलयुक्त होकर (पुनन्ता) शरीर को पावन करते हैं (अन्तः चरन्ति) शरीर के कण-कण में विचरण करते हैं ॥१७॥

भावार्थ—जब आत्मा शरीर मे आता है तब सर्वप्रथम दशो प्राण प्राप्त होते हैं। तदुपरान्त देह में इन्द्रियो का विकास होता है और फिर शरीर सभी अगों से पूर्ण हो जाता है। आन्तरिक रसों को पावन करते हुए स्वय पावन स्वरूप प्राण-अपानश्वास व प्रश्वास चलते हैं ॥१७॥

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८॥

पदार्थः—(क्रोशनास) उस प्रभु का आह्वान करते हुए (विष्वञ्च) विविध मार्गगामी जीव (वि आयन्) इस लोक मे आते हैं। (नेम) उनमे एक वर्ग (पचाति) पकाता है अर्थात तप करके साधना करता है और (अर्ध नहि पक्षत्) दूसरा वर्ग तप नहीं, भोग करता है। (अय) यह (देव) सुख दुःखादि कर्मफल-दायक (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा (मे तत् आह) मुझे उस परम पद का उपदेश दे। वस्तुतः (द्रुवन्न इत) जैसे काष्ठ को अन्न के समान खाने वाला अग्नि (सर्पि-अन्न) घृत को खाने वाला होकर (वनवत्) आहुति पदार्थों का भक्षण कर जाता है, वैसे ही जो जीव (द्रुवन्न) वनस्पतियो का अन्न तुल्य भोग करता है और जो (सर्पि-अन्न) ससार के जन्म-मरण रूप सुख-दु.खो को भोगता है वही (वनवत्) ऐश्वर्यों को भोगता है ॥१८॥

भावार्थ—उस प्रभु को पुकारते हुए विभिन्न मानसिक गति वाले जन इस संसार मे जन्म पाते हैं। उनमे से कतिपय परमात्मा के ज्ञान को धारण कर पाते हैं और कुछ नही भी कर पाते। सृजक प्रभु अपने ज्ञान का उपदेश करेगा ऐसी आशा रखकर ही आत्मा आता है। दूध, घी, वनस्पति, फल इत्यादि का भोक्ता सात्त्विक व्यक्ति ही परमात्मा के ज्ञान को ग्रहण कर पाता है ॥१८॥

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

पदार्थ—मैं (अचक्रया) गति रहित, जड (स्वधया) स्वत जगत् को बनाते व चलाते हुए और (आरात) अनादिकाल से सतत (ग्राम वहमान) इस भूत-सघ को वहन करते हुए उस परमात्मा को (अपश्यम्) देख रहा हूँ। वह (नवीयान्) वरेण्य (अर्य) स्वामी (सद्यः) सदैव (शिश्ना प्रमिनान) दुःखदायी कारणो को नष्ट करता हुआ (जनानां युगा) जीवो के युगलो को (प्र सिसक्ति) जन्म देता और मिलाता है ॥१९॥

भावार्थ—परमात्मा ही इस जड-जगम प्राणि समूह रूप विश्व का सचालन करता है। वही दुःखदायी कारणो का नाश करता है और जीवो के युगलो को जन्म प्रदान करता है, जिससे यह प्राणीससार चले ॥१९॥

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥१८॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (मे प्रमरस्य) प्राण त्याग कर मरने वाले मेरे (एतौ) ये दोनो (गावौ) प्राण व अपान रथ मे लगे दो वृषभो जैसे (युक्तौ) देह मे जुडे हैं, उन्हे (मो षु प्रसेधीः) तू कभी दूर न कर। प्रत्युत (मुहुः इत्) बार-बार (ममन्धि) जोड। (अस्य) इस जीव के (आपः) सूक्ष्म शरीर (चित्) ही (अस्य अर्थं विनशन्ति) इसे प्राप्य लोक तक ले जाते है और वह परमात्मा (सूर च) सूर्य के तुल्य और (मर्क) सकल जगत् का शोधक (उपर) मेघसम पदार्थों का दाता (बभूवान्) है ॥२०॥

भावार्थ—मरणधर्मा प्राण एव अपान गति करते है। बार-बार शरीर पृथक् होते हैं। बार-बार जन्म धारण करने के ये निमित्त बनते है। उपासना करने वाले की आन्तरिक भावना यही रहती है कि बार-बार शरीर धारण करने से बचे और मोक्ष की प्राप्ति कर सके ॥२०॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

पदार्थ—(अय) यह (य) जो (वज्रः) दुःख हर्त्ता, सर्व सञ्चालक (पुरु-धा) जीवो को धारन मे समर्थ (वि वृत्त) विविध प्रकार से वर्त्तता है, वह (सूर्यस्य) सूर्य के समान सर्वसचालक (बृहत) महान् परमात्मा के (पुरीषात्) अखड ऐश्वय से ही (अव) हमे प्राप्त है। (एना पर) इस लोक मे दृष्ट प्रभु के ऐश्वर्य से उत्कृष्ट (अन्यत्) दूसरा भी (श्रव इत् अस्ति) श्रवणीय परमैश्वर्य है (तत्) उसको (अव्यथी) बाधादि से रहित (जरिमाण) बन्धनों को क्षीण करने व प्रभु स्तुति वाले भक्त (तरन्ति) पाते हैं ॥२१॥

भावार्थ—सूर्य के समान सर्व सचालक प्रभु की कृपा से यह दुःखों से बचाने वाले जीवो का जीवन प्राप्त होता है। उसस बढ़कर मोक्ष जीवन है, जिसे निर्दोष स्तुति करने वाले उपासक ही प्राप्त कर पाते है ॥२१॥

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

पदार्थः—(वृक्षे वृक्षे) प्रत्येक धनुष मे (नियता) बधी (गौ मीमयत्) डोरी शब्द करती है और (तत) पुन: (पूरुषाद वय प्रपतान्) देह-पुर मे बसे जीवो को खाने वाले बाण उससे गिरते है। (अथ इद विश्वम् भुवन) इसी से यह समस्त उत्पन्न जगत् (भयाते) अनुभव करता है और (इन्द्राय सुन्वत् ऋषये च शिक्षत्) उपासना रस समर्पित करता है ॥२२॥

भावार्थ—हर प्राणी का शरीर नाश को प्राप्त करने वाला है। विभिन्न प्रकार के रोगो एव आघातों से व्यक्ति रोगों का आहार बन जाता है। इस स्थिति को देखकर उपासक परमात्मा की अर्चना-वन्दना करता है ॥२२॥

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥

पदार्थ—(देवानां माने) दिव्य भाव युक्त अग्नि, विद्युत, सूर्य, भूमि अथवा वायु आदि व अध्यात्म मे इन्द्रिय इत्यादि की तत्मात्राओं के निर्माण में (प्रथमा) पहले कारणरूप प्रकृति के परमाणु (अतिष्ठन्) विद्यमान थे। (एषां कृन्तत्रात्) इन कारण परमाणु सयोग विभाग से प्रथम (उपराः) मेघ जैसे तत्व जो परम कारण के समीपतम, कार्य रूप होते है वे (उद् आयन्) उपजते है। उसके बाद (त्रय) तीन तत्व अग्नि, विद्युत् सूर्य (अनूपा) अनुकूल हो, जीवो की रक्षा मे समर्थ हो (पृथिवीम तपन्ति) भूमि को तपाते है। जिनमे से (द्वा) दो विद्युत् व सूर्यस्थ अग्नि, (बृबूकम्) जल को (वहत) धारते है तथा (द्वा पुरीष वहत:) दो मेघस्थ विद्युत् व भूमि पोषक अन्न को धारते है ॥२३॥

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ मे देवो अर्थात सूर्य इत्यादि पदार्थों की रचना होती है। मेघ आकाश से जल की वर्षा करते हैं। वनस्पति इत्यादि पदार्थों को मेघ वायु तथा सूर्य बनाते है एव सपुष्ट करते हैं। सूर्य जल को भाप के रूप मे ऊपर खीचता है और वायु पुन उन्हे वर्षा करके जल का रूप प्रदान कर देता है ॥२३॥

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥१९॥

पदार्थ—हे परमात्मा ! (ते) तेरी ही (सा जीवातु) वह प्राणदायक शक्ति है (उत) और तू ही (तस्य विद्धि) उसे पहचानता है। (स मर्त्ये) नश्वर प्राणियो से युक्त लोक के लिए तू (एतादृग्) ऐसे अपने प्राणदाता स्वरूप को (मा अपगूह स्म) न छिपा। हे मानव ! (अस्य निर्णिज.) इस तत्व का (स पादु) वह चेतनायुक्त स्वरूप (न मुच्यते) कभी समाप्त नही होता है, वह (स्व आविः कृणुते) स्व प्रकाश प्रकटाता है और (बुस गूहते) जैसे जल को सूर्य वाष्परूप से धरती से लेता है वैसे ही परमात्मा भी अपने (स्व) तेजोमय ज्ञान को प्रकटाता है, (बुस गूहते) कर्म बन्धन नष्ट करता है। इस भांति वह परमात्मा का (स) वह (पादु) ज्ञान-व्यापार चलता रहता है ॥२४॥१९॥

भावार्थ—परमात्मन् तेरी ही वह प्राणदायिनी शक्ति है और तू ही उसे पहचानता है। नश्वर प्राणियो से युक्त लोक के लिए तू ऐसे प्राणदाता स्वरूप को न छिपा। मानव के इस तत्त्व का वह चेतनायुक्त रूप कभी समाप्त नही होता। वह अपना प्रकाश प्रकटाता है। जीवन सग्राम मे उसे कदापि भूलना नही चाहिए। वही जीवन मे सुख का प्रकाश करता है ॥२४॥१९॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ।

---

[२८]

इन्द्रवसुक्रयोः सवाद । ऐन्द्रः ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, ८, १२ *निचृत् त्रिष्टुप् ।* ३, ६ *त्रिष्टुप् ।* ४, ५, १० *विराट् त्रिष्टुप् ।* ९, ११ *पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥*

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१॥

पदार्थ—(अन्यः) अन्य, (विश्व) देह मे प्रवेश करने वाला प्राण (अरिः) स्वामी (आ जगाम) आ गया, (अह) खेद है कि (मम इत्) यह मेरा है इस प्रकार अधिकार करने वाला (श्व-शुर) सर्वप्रथम प्राप्त होने वाला नायक (न आजगाम) नहीं आया। वस्तुत वही (धाना जक्षीयात्) राष्ट्र की धारक शक्तियों का अन्नवत् उपभोग करने वाला है, (उत) और वही (सोमं) ऐश्वर्य का ओषधि के समान (पपीयात्) पान तथा ऐश्वर्य का पालन करता है और (सु-आशितः) राष्ट्र को प्राप्त होकर ही (पुन अस्त जगायात्) उच्च पद वा गृह पाता है ॥१॥

भावार्थः—जिस समय शरीर के बनाने की प्रक्रिया आरम्भ होती है तब प्राण प्रथम से ही अपना कार्य आरम्भ कर देता है। आत्मा उस समय अपनी ज्ञान शक्ति से कार्य नही करता है। जब वह कार्यारम्भ करने लगता है तब जन्म पाकर ससार मे अन्नादि का भोग करता है और सोमादि का रसपान करता है। इस प्रकार ससार के भोग भोगकर वह मोक्ष भी पाता है ॥१॥

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२॥

पदार्थ —(**स**) वह (**वृषभः**) मघ-तुल्य प्रजागण के लिए सुखो का वर्धक (**तिग्म शृङ्ग**) सूर्यवत् तीक्ष्ण साधनयुक्त (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**वरिमन्**) व्यापक (**वर्ष्मन**) उत्तम पद पर (**आ तस्थौ**) आदर सहित विराजे तथा प्रतिज्ञा करे कि (**सुत सोमा**) अन्नादि के उपजाने वाला (**यः**) जो प्रजा वर्ग (**मे कुक्षी**) मेरे दोनो पार्श्वों पर उपस्थित सैन्यो को (**पृणाति**) पालता है, मै (**एम**) उसकी (**विश्वेषु वृजनेषु**) सभी सग्रामो मे (**पामि**) रक्षा करू ॥२॥

भावार्थ —शरीर मे चेतनाशक्ति-युक्त आत्मा चेतनत्व का अगो मे सृजन करता हुआ स्वय को सिद्ध करता है । शरीर मे श्रेष्ठतम हृदय प्रदेश मे आसीन रहता है । जीवन, प्राण, भोग तथा अपवर्ग म साधन बनता है, एसे साधन रूप प्राणो की वह रक्षा करता है और राष्ट्र मे शस्त्र शक्तिमान् राजा, राष्ट्र की प्रजा पर सुख बरसाता है ॥२॥

अद्रिणा ते मन्दिनं इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।

पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) आत्मन् ! हे ऐश्वयवन् ! (**मन्दिन**) अर्चनशील (**ते**) तेरे लिए (**अद्रिणा**) अविदीर्ण दृढ क्षात्र बल से (**तूयान्**) तीव्रगामी (**सोमान**) वीर पुरुषो का (**सुन्वन्ति**) अभिषेक करते हैं । (**त्वम् एषाम्**) तू इनको (**पिबसि**) पालता है ।(**ते**) तेरे लिये वे (**वृषभान**) बलवान लोगो को (**पचन्ति**) दृढ करते हैं, हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवन् ! तू (**हूयमान**) आदर सहित वन्दना किया जाकर (**तेषा पृक्षेण**) उनके स्नेह से (**अत्सि**) ऐश्वय को भोगता है ॥३॥

भावार्थ —हे आत्मन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! अर्चनाशील तेरे लिए अविदीर्ण दृढ क्षात्र बल से तीव्र वीर पुरुषो का अभिषेक करत हैं । तू इनका पालन करता है । तेरे लिए वे बलवानो को दृढ करत हैं, हे ऐश्वर्यवन ! तू आदर सहित वन्दना किया जाकर उनके स्नेह से ऐश्वर्य को भोगता है ॥३॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।

लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

पदार्थ हे (**जरित**) शत्रु सहारक ! तू (**इद**) यह क्षमता (**मे**) मेरी समझ (**हि**) कि (**नद्य**) नदिया (**प्रतीप शाप वहन्ति**) विपरीत दिशा को दूषित जल बहाती हैं । वैसे ही यह राजा का बल है कि (**नद्य**) स्तुतियुक्त तथा समृद्ध एव गर्जती सेनाए और प्रजाए (**शाप प्रतीप वहन्ति**) ललकारत शत्रु को भी वापस भगा देती हैं । (**लोपाश -रोपास**) तृण खाने वाले पशु भी (**प्रत्यञ्चम् सिंह**) आगे आते सिंह तुल्य हिंसक को (**अत्सात**) मार देता है और (**क्रोष्टा**) शृगाल के समान रोने वाला कमजोर भी (**वराह**) शूकर तुल्य बलिष्ठ को (**कक्षात् निर् अतक्त**) मैदान से भगा देता है ॥४॥

भावार्थ —प्राण शक्ति से शरीर की नाडिया दूषित रस को नीचे बहाती है और प्राण शक्ति मे घास खाने वाला छोटा पशु भी सिंह को पछाडता है । राष्ट्र के मन्त्रियों को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि नदियां दूषित जल को नीचे बहा दें । राष्ट्र के मन्त्री वनस्पति अन्न आदि से पुष्ट होने की ऐसी व्यवस्था करें कि उनका आहार करने वाले सिंह सरीखे बलशाली विरोधियों को भी पछाड सकें ॥४॥

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।

त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! हे विद्वन् ! (**गृत्सस्य**) वन्दनीय और (**तवस**) सवशक्ति युक्त (**ते मनीषाम्**) तेरी इच्छा एव (**एतत**) इस सबको (**कथा अहम् आ चिकेतम्**) मैं कैसे जानू । (**त्व**) तू ही (**विद्वान्**) विद्वान् (**न**) हमे गुरु के समान (**ऋतु-था**) समय समय पर (**वि वोच**) विशेषत उपदेश देता है । हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवन् ! तू (**यम् अर्धं**) जिस अंश का (**वि वोच**) विशेष रूप से उपदेश देता है वही (**क्षेम्या धू**) धारण करने म आश्रय के समान होता है ॥५॥

भावार्थ हे प्रभो ! हे वन्दनीय सवशक्तियुक्त ! तेरी इच्छा आदि को मैं कैसे जान सकता हूँ । तू ही सवज्ञ है । तू हमे गुरु के समान समय समय पर विशेष उपदश देता है । हे ऐश्वर्य-सम्पन्न ! तू जिस अंश का विशेषत उपदेश देता है वही धारण करने मे आश्रययुक्त होता है ॥५॥

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।

पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६॥२०॥

पदार्थ —(**एव हि**) इस भाति (**तवस मां**) मुझ बलशाली जन को(**वर्धयन्ति**) बढाते है । (**बृहत मे**) महान् मेरी (**दिव चित्**) सूय एव आकाश की अपेक्षा भी अधिक (**उत्तरा धू**) उत्कृष्ट धारक शक्ति है । मैं (**पुरु सहस्रा**) सहस्रो दुश्मनो का (**साक**) एक साथ (**नि शिशामि**) सहार कर सकता हूँ । (**जनिता**) उत्पादक प्रभु मुझे (**अशत्रु जजान**) शत्रु के बिना करे ॥६॥२०॥

भावार्थ—शरीर मे आत्मा ही बलिष्ठ होती है । उसे शरीर के अग समृद्धि प्रदान करते हैं । उसकी शरीर धारण की शक्ति द्युलोक से भी उत्कृष्ट होती है, सहस्रो दोष क्षीण कर देती है । परमात्मा इसे शत्रुविहीन शरीर मे प्रकटाता है । जहा बलवान राजा हो, वहा राष्ट्र बलशाली बनता है ॥६॥२०॥

इति विंशो वर्ग ।

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।

वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७॥

पदार्थ.—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! (**देवा**) सुखो की कामना करने वाली प्रजा (**मां एव तवस**) मुझ बलशाली को (**कर्मन् कर्मन्**) प्रत्येक कार्य मे (**उग्रं**) शत्रुओं को भय देने वाला (**वृषणम**) सुखो का देने वाला (**जज्ञु**) जानें । मैं (**वज्रेण महिना**) विपुल बल वीर्य से (**मन्दसानः**) प्रसन्न हो (**वृत्र वधीम्**) मेघ को सूर्य के समान, शत्रु का सहार करू और (**दाशुषे व्रज अप वम्**) दानशील प्रजा हेतु मार्ग प्रशस्त करू ॥७॥

भावार्थ —हे प्रभो ! सुखो की कामना करने वाली प्रजा मुझ बलशाली को प्रत्येक कार्य मे शत्रु को भय देने वाला और सुखो का वर्धक जानें । विपुल बल वीर्य से प्रसन्न हो मेघ को सूर्यवत् शत्रु का सहार करू और दानशील प्रजा के लिए मार्ग प्रशस्त करू ॥७॥

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।

नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८॥

पदार्थ —(**देवासः**) विजय की कामना करने वाले मनुष्य (**आयन्**) आएँ, और (**परशून् अबिभ्रन्**) हथियार धारें । वे (**वना वृश्चन्त**) वन तुल्य शत्रु वर्ग को सहारते हुए (**विड्भि**) प्रजाओ सहित (**अभि आयन्**) सामना करें और (**वक्षणासु**) अगुलियो मे (**सुद्रव**) वेग स दौडने अश्व को (**नि दधत**) नियन्त्रण मे रखते हुए (**यत्र**) सग्राम मे (**कृपीटम् अनु**) अपने सामर्थ्य-अनुसार (**तत्**) शत्रु सैन्य को (**दहन्ति**) दहे ।

भावार्थ —विजय की कामना करने वाले व्यक्ति आए और शस्त्रास्त्र धारें । वे वन तुल्य शत्रुओ को काटते हुए प्रजाओ समेत सामना करें और अगुलियो मे वेग से दौडते अश्व को नियम मे रखते हुए सग्राम मे अपनी सामर्थ्यानुसार शत्रु सैन्य को दग्ध करें ॥८॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।

बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९॥

पदार्थ —(**शश**) मृग तुल्य तीव्रगामी वीर (**प्रत्यञ्च क्षुर**) सामना करने आने वाले शस्त्रादि को (**जगार**) निगलने मे समर्थ है, उसे निष्फल कर सकता है । और मै (**लोगेन**) जन समूह के बल पर प्रकाश एव विद्युत् से (**अद्रि**) पर्वत तुल्य विशाल दुश्मन को भी (**आरात् वि अभेदम्**) दूर से ही विदीर्ण करू और (**ऋहते**) बढाने वाले स्वामी हेतु मैं (**बृहन्त**) प्रबल शत्रु को भी (**रन्धयानि**) वश मे करू (**वत्स**) बच्चा भी (**शूशुवान**) वृद्धि पाकर (**वृषभ वयत्**) वृषभ से टकराता है ॥९॥

भावार्थ —प्राण के प्रबल होने की स्थिति मे मृग के समान तीव्रगामी वीर सामना करने को आने वाले शस्त्रादि को निगल सकता है, उसे निष्फल कर सकता है और जन समूह के बल पर प्रकाश व विद्युत् से पर्वत तुल्य शत्रु को भी छिन्न भिन्न कर सकता है ॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।

निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

पदार्थ. —वह बलशाली वीर (**तस्मै**) उस स्वामी के हेतु (**सुपर्ण**) उत्तम रथ इत्यादि से सम्पन्न हो बाज के तुल्य (**इत्था**) इस प्रकार (**नखम्**) बाधने योग्य हथियार को (**आसिषाय**) ऐसे धार लेता है जैसे (**अवरुद्ध सिंह**) ठहरा हुआ सिंह (**परिपद न**) अपने पजो को आक्रमण के लिए सदैव तैयार रखता है । जैसे (**निरुद्ध महिष चित**) ठहरा हुआ भैंसा (**तर्ष्यावान्**) प्यास होने पर अपने सीगो को सदैव मारने को तैयार रखता है (**तस्मै**) उसके लिये (**गोधा**) बाण फेंकने वाली धनुष की डोरी धारने वाला सैनिक (**अयथ**) असाधारण तौर पर (**एतत् कर्षत्**) धनुष खींचता है ॥१०॥

भावार्थ —जिस भाति किसी वन मे सिंह अपने रक्षा-साधन को भली भाति सुरक्षित रखता है, ठहरा हुआ भैंसा प्यासा होने पर सीगो को सदैव मारने को तैयार रहता है, जिस प्रकार सैनिक अपने धनुष पर प्रत्यचा चढाए सिद्ध रहता है उसी भाति शरीर मे प्राण अपने प्रबल बधन को बाधता है ॥१०॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।

सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

पदार्थ —(**ये**) जो (**अन्नै**) अन्नो के लिए (**ब्रह्मणः प्रतिपीयन्ति**) विद्वानो को नष्ट करते हैं और जो (**अव सृष्टान्**) छोडे गये (**सिम उक्ष्णः**) वीर्य सेचन समर्थ साँडों का (**अदन्ति**) भक्षण कर जाते हैं और (**स्वय तन्व**) स्व शरीर का (**बलानि शृणाना**) बल नष्ट करते हैं (**तेभ्यः**) उनके लिए (**गोधा.**) भूमि अथवा धनुष् की डोर धारने वाले (**अयथ कर्षत्**) धनुष् को खींचें । पराक्रम का प्रदर्शन करें ॥११॥

भावार्थ —जो लोग राष्ट्र मे अन्न को निमित्त बनाकर उपद्रव करते हैं, विद्वानो को परेशान करते हैं, जो उद्दण्ड होकर राष्ट्र के बलो को नष्ट करते हैं, राष्ट्र

के वर्धक विभागो को नष्ट करते हैं ऐसे लोगो को प्रबल शक्ति से राष्ट्र से बाहर निकाल दिया जाना चाहिए ॥११॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः१ सोम उक्थैः ।

नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१॥

पदार्थः—(ये) जो (उक्थैः) श्रेष्ठ वचनो के द्वारा (सोमे तन्वः हिन्विरे) उत्तम ओषधि से शरीर को पुष्ट करते हैं (एते) वे (शमीभि) शांति देने वाले कर्मों मे (सुशमी अभूवन्) कर्मठ पुरुष बनते हैं (वीर) वीर एवं विभिन्न विद्याओ का उपदेशक जन (नृवत) नायक के तुल्य (न उप वदन्) हमे उपदेश व आदेश देता हुआ (वाजान्) ऐश्वर्यों व संग्रामो को (उप माहि) करे तथा (दिवि) भूमि पर (श्रव नाम दधिषे) श्रवणीय, कीर्तिदाता बल धारे ॥१२॥

भावार्थ—जो लोग श्रेष्ठ वचनो के द्वारा उत्तम ओषधि के आधार पर शरीरो को पुष्ट करते हैं, वे शांतिदायक कर्मों से कर्मठ पुरुष बनते है और वीर तथा विविध विद्याओ का उपदेष्टा व्यक्ति नायक के समान हमे उपदेश और आदेश देता हुआ संघर्ष करे एवं श्रवणयोग्य कीर्तिप्रेरक बल धारण करे ॥१२॥

इत्येकविंशो वर्गः ॥

---

[२६]

वसुक्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ६ निचृत त्रिष्टुप् । ३, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।

यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

पदार्थः—(वने वाय स्तोम न) वन मे पक्षीगण जैसे (चाकन्) फल की इच्छा रखता हुआ (भुरणौ) अपने पोषक पक्षो का (अजीग) सचालन करता है, वैसे ही (शुचिः) धार्मिक, (वाय स्तोम) रक्षको का समूह, (चाकन्) ऐश्वर्यों की कामना करता हुआ (वने) राष्ट्र मे (नि अधायि) स्थापित हो, और हे (भुरणौ) राष्ट्र पालक राजा एवं मन्त्री जनो ! वह दल (वां अजीग) तुम्हे प्राप्त हो (यस्य इत) जिसका (इन्द्र) सेनापति (पुरु दिनेषु) बहुत काल तक (होता) स्वीकार्य और (नृणां नर्य) मनुष्यो के बीच नेता होने मे समर्थ, (नृतम) नायको मे श्रेष्ठ और (क्षपावान्) शत्रुनाशक सेना का सचालक हो ॥१॥

भावार्थ—वन मे जिस भांति पक्षीगण फल की इच्छा रखते हुए अपने पोषक पक्षो को सचालित करता है, उसी भांति धार्मिक रक्षक जनो का समूह, ऐश्वर्यों की कामना करता हुआ राष्ट्र मे स्थापित हो । हे राष्ट्र का पालन करने वाले राजा एवं मन्त्री जनो ! वह दल तुम्हे प्राप्त हो, जिसका सेनापति श्रेष्ठ नायक एवं शत्रुओ को परास्त करने मे समर्थ हो ॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।

अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

पदार्थः—(नृणा नृतमस्य ते अस्या-उषस) हे प्रभो ! तुझ श्रेष्ठतम नायक की ज्ञान ज्योति को (नृतौ प्र स्याम) नीति मे हम उन्नति करें (अपरस्या प्र) कल भी उस ज्ञान के प्रकाश को नीति मे हम उन्नति करें (त्रिशोक) ज्ञान, कर्म, उपासना मे जिसके ज्ञान का प्रकाश ऐसा महा विद्वान् (शतं नॄन्-अनु-आवहत) अनेक नायको को तेरे ज्ञान वेद को ग्रहण कर स्वयं को तदनुरूप चलाता है (य. कुत्सेन ससवान्) जो तेरा स्तुति गायक पूर्ण ज्ञानी है (रथ असत) वह सबका आश्रय है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ही महान् नेता है, उसकी ज्ञान-ज्योति अर्थात् वेद सदैव मार्ग दर्शन प्रदान करता है । उसमे उल्लिखित स्तुति, प्रार्थना, उपासना तथा ज्ञान, कर्म, उपासना मे प्रकाशित हुआ प्रभु का उपासक ज्ञानधारक सबको ज्ञान देने मे समर्थ एवं आश्रययोग्य है ॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।

कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरे लिए (क मद.) कौन सी स्तुतियो का समूह (रन्त्यः) तुझे सुख देने वाला जो भी हो (उग्र) बलवान् होकर (दुर अभि धाव) उसे द्वार बनकर प्राप्त हो (गिर वि धाव) हमारी उत्तम स्तुतियो को प्राप्त हो । (वाह) सुख-समृद्धि दाता तू (कत् अर्वाक्) कब हमारे समक्ष होगा और (मा मनीषा उप कत्) मेरी मनःकामना कब पूरी होगी और मैं (उपम) अपने समीप वर्तमान तुझे (कद्) कब (अन्नै) उपासना रसो द्वारा (त्वा राधः आ शक्याम्) तुझ आराधनीय को प्रसन्न कर सकूंगा ॥३॥

भावार्थः—प्रभु की स्तुति उपासना करने वाले को ऐसे मन्त्रो द्वारा करनी चाहिये कि जिससे वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा उन्हें स्वीकार करे तथा अपने भीतर किए उपासना भावों के द्वारा वह प्राप्त हो सके ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।

मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र कत् उ द्युम्नम्) हे प्रभो ! हममे वह ऐश्वर्य कब होगा और तू (कया धिया) किस भांति कर्म तथा बुद्धि से (नॄन् त्वावत करसे) सर्व जनों का अपने तुल्य सुखी करेगा और तुझे (कत् न आगन्) कब मैं प्राप्त होऊंगा ? हे (उरु गाय) बहु स्तुति योग्य ! (समस्य भृत्यै) समस्त जगत् के पोषणार्थ (अन्ने) अन्न प्रदान करने के निमित्त (यत्) जो तेरी (मनीषा असन्) स्तुतियां है उन से लगता है कि (सत्य मित्र न) तू स्थिर मित्र के समान है ॥४॥

भावार्थ—वह प्रभु सभी उपासको का स्थायी मित्र है । उपासको को उसी की स्तुति एवं वन्दना करनी योग्य है, जिससे वह विश्व मे रहकर उन्नति कर सकें और उन्नति करते हुए यशस्वी होकर मुक्ति प्राप्त कर उसकी संगति का लाभ पा सकें ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।

गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥२२॥

पदार्थ—(तुवि-जात इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन परमात्मा ! बहु गुणो मे प्रसिद्ध ऐश्वर्य (ये) जो (जनिधा इव) भार्या को धारण करने वाले गृहस्थ के तुल्य (ते अस्य काम ग्मन्) तेरे इस साक्षात् कान्तियुक्त उज्ज्वल रूप को पाते हैं और (ये) जो (नर) मनुष्य (ते पूर्वी गिर) तेरी श्रेष्ठ स्तुतियो को (अन्नै) अन्नो सहित (प्रति-शिक्षन्ति) दूसरो को सिखाते है उनको तू (सूर) सूर्य के तुल्य होकर (अर्थं न) धन को धनस्वामी के समान (अर्थ पार) प्राप्तव्य मोक्ष पद को (प्रेरय) प्राप्त कराता है ॥५॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवन् ! परमात्मा ! आप बहु गुणो से विख्यात है । तेरी स्तुति एवं वन्दना करने वाले एवं श्रेष्ठ स्तुतियो की विधियो का दूसरो को ज्ञान देने वाले उपासक उसी भांति अपने अभीष्ट मोक्ष पद को पाते हैं, जैसे कि गृहस्थजन गृहस्थाश्रम के सुख का उपभोग करते हैं ॥५॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (द्यौ पृथिवी) आकाश तथा पृथिवी दोनो (ते) तेरे (मज्मना काव्येन) बलिष्ठ कल्प से रचे (मात्रे नु सुमिते) माता के समान उत्तम मापयुक्त (ते) उन दोनो के बीच (सुतास) बनाये पदार्थ (घृत वन्त) घी से युक्त पदार्थों के जैसे (घृत वन्त) जल व तेजयुक्त हो (वराय स्वाद्मन् भवन्तु) श्रेष्ठ जन के लिए मुख से भोग्य और (मधूनि) मधुर पदार्थ (पीतये भवन्तु) पान करने के लिये होवे ॥६॥

भावार्थ—उस ऐश्वर्यवान्, परमात्मा ने ही अपने विशिष्ट रचना कौशल के द्वारा आकाश एवं पृथिवी लोक की रचना की है तथा रसमय फलो से परिपूरित वनस्पतियो को भी उपजाया है । उपासक गण उनका मधुर स्वाद चखते हैं । वही प्रभु सर्वविध वन्दनीय है ॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

पदार्थ (अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (मध्व पूर्णम् अमत्रम) मधुपर्क युक्त पात्र को (आ असिचन्) आदर से देते हैं (स हि सत्य-राधा) वह प्रभु ही आनन्द घन है । (स नर्य) वह मुमुक्षुओ का हितकारी है (पृथिव्या वरिमन्) शरीर के श्रेष्ठ प्रदेश हृदय मे (क्रत्वा पौंस्यैः च अभि वावृधे) ज्ञान व योगाभ्यास से साक्षात् होता है ॥७॥

भावार्थ—हम अपने अन्तःकरण को उपासनाओ मे आप्लावित और परिपूरित करें । प्रभु ही सकल सुखो का आधार है । वही शरीर के श्रेष्ठ भाग अर्थात् हृदय मे ज्ञान तथा योगाभ्यास द्वारा साक्षात् किया जा सकता है ॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।

आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥२३॥२

पदार्थ—(स्वोजा इन्द्र) तेजस्वी ऐश्वर्यवान् प्रभु (पृतना वि आनट्) अपने वा पराये मनुष्यो के सकल अन्तःकरण मे व्याप्त है, (पूर्वीः) श्रेष्ठ प्रजाएं (अस्मै सख्याय) इसके मित्र-भाव के लिए (आ यतन्ते) सब प्रकार से प्रयत्नरत रहती हैं । हे ऐश्वर्यवन् ! (य) जिस (रथ) रथ के तुल्य राष्ट्र को (भद्रया) कल्याण-कारिणी (सु-मत्या) शुभमति द्वारा (चोदयासे) प्रेरित करे उस पर (पृतनासु) प्रजाओ के मध्य (आ तिष्ठ) तू विराजता है ॥८॥

भावार्थः—तेजस्वी एवं ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा, जन-जन के अन्तःकरण मे व्याप्त है और उपासक गण उसे मैत्रीभावना से अपनाने की कामना करते हैं । उन्हें परमात्मा शुभमति से प्रेरित करता है और उनके मध्य विराजता है ॥८॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

---

[३०]

कवष एलूष ऋषिः । देवता—आप अपान्नपाद्वा ॥ छन्द—१, ३, ९, ११, १२, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ६, ८, १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र दे॑व॒त्रा ब्रह्म॑णे गा॒तुरे॑त्व॒पो अच्छा॒ मन॑सो॒ न प्रयु॑क्ति ।
म॒हीं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य धा॒सिं पृ॑थु॒ज्रय॑से रीरधा सुवृ॒क्तिम् ॥१॥

पदार्थ—(ब्रह्मणे गातु) प्रजापति पद के लिये नया राजा प्रगतिशील (अपांनपात्) प्रजा का रक्षक (देवत्रा अपः अच्छ प्र एतु) देव भावी प्रजा को अच्छी प्रकार प्राप्त हो । (मित्रस्य वरुणस्य सुवृक्तिम् महीं धासि सुवृक्तिम्) ससार मे कर्म हेतु मोक्ष मे वरने वाले प्रभु के द्वारा बताई हुई भोग सामग्री व सुविधा से त्याज्य दुःख प्रवृत्ति जिससे हो अर्थात् मुक्ति को (पृथुज्रयस रीरधा) विस्तृत ज्ञान वेग युक्त नए राजा को पुरोहित बनाए ॥१॥

भावार्थ—नवीन शासक राजपद पर आसीन होकर प्रजा रक्षार्थ प्रजाजनों से सम्पर्क स्थापित करे एवं पुरोहितो का कर्तव्य है कि वे राजा को ऐश्वर्य भोग के साथ ही मुक्ति अथवा मोक्षपद-प्राप्ति का पथ भी दर्शाते रहे ॥१॥

अध्व॑र्यवो ह॒विष्म॑न्तो॒ हि भू॒ताच्छा॒प इ॑तोश॒तीरु॑शन्तः ।
अव॒ याश्चष्टे॑ अरु॒णः सु॑प॒र्णस्तमास्य॑ध्वमू॒र्मिम॒द्या सु॑हस्ताः ॥२॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ के अध्वर्यु आदि लोगो ! तुम (हविष्मन्तः हि भूत) उत्तम हवि से युक्त होवो । स्वय (उशन्तः उशतीः अपः अच्छ इत) निज राजसूय यज्ञ के इच्छुक राजा के राजसूय (अरुण) कान्तिमान् यज्ञ की इच्छुक तुम प्रजाओ ! साक्षातयज्ञ मे प्राप्त हो ऐसी पुरोहित घोषणा करें (अरुण सुपर्णः या अवचष्टे) राजपद पर आलोकित उत्तम पालक नवीन राजा जिस प्रजा को अपनी मानता है (तम्-ऊर्मिम्-अद्य सुहस्ताः आ अस्यध्वम्) उस जलो की ऊंची लहर तुल्य ऊपर स्थित रक्षक इस राजसूय अवसर पर शोभन उपहार देने वाली प्रजाएं उपहार ग्रहण कराए ॥२॥

भावार्थ—नए शासक के राजसूय यज्ञ मे ऋत्विग् जन आमन्त्रित हो यज्ञारम्भ करें तथा प्रजाजन भी इस यज्ञ म राजा को राज्य सिंहासन पर विराजमान हुए देखे । उस राजा के लिए भी यह आवश्यक है कि वह प्रजा जनो का उत्तम विधि से पालन करना अपना लक्ष्य निर्धारित करे तथा उसे अपनी शरण मे ले । इसी भांति प्रजा को भी राजा को भांति-भांति के उपहार प्रदान करने चाहियें ॥२॥

अध्व॑र्यवोऽप इ॑ता समु॒द्रम॒पां नपा॑तं ह॒विषा॑ यजध्वम् ।
स वो॑ दददू॒र्मिम॒द्या सुपू॑तं॒ तस्मै॒ सोमं॒ मधु॑मन्तं सुनोत ॥३॥

पदार्थ—हे (अध्वर्यव) राजसूय यज्ञ के ऋत्विजो ! आप (अप. इत) प्रजाजनो को प्राप्त होओ और (समुद्रम् इत्) समुद्र के तुल्य उनके आश्रय रूप गम्भीर राजा को प्राप्त होओ । (सः) वह राजा (अद्य) इस अवसर पर (व) तुम्हे (सु-पूत) पवित्र (ऊर्मिम्) उपहार मे से भाग (ददत्) प्रदान करेगा, (तस्मै) उसके लिये (मधुमन्त सोम सुनोत) शुद्ध मधुर और सुखप्रद पदार्थों से युक्त सोम को राजसूय यज्ञ मे निकालो और उस (अपां नपातम्) प्राप्त प्रजाजनो को एकत्र बांधने और धर्म-मर्यादा से न गिरने देने वाले नए राजा को (हविषा यजध्वम्) उत्तम अन्न तथा वचन से सत्कृत करो ॥३॥

भावार्थः—हे राजसूय यज्ञ के ऋत्विजो ! तुम प्रजा जनो का राजा के साथ उपहार इत्यादि के द्वारा परिचय कराओ, समागम कराओ । राजा का भी यह कर्तव्य है कि वह प्रजा से प्राप्त मधुर उपहारो मे से ऋत्विजो को भी एक भाग प्रदान करके उन्हें सम्मानित करे ॥३॥

यो अ॑नि॒ध्मो दीद॑यद॒प्स्व१॒॑न्तर्यं विप्रा॑स ईळ॑ते अध्व॒रेषु॑ ।
अपां॑ नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ याभि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑य ॥४॥

पदार्थ—(य) जो (अप्सु अन्त) राजा प्रजा के मध्य मे (अनिध्म दीदयत) निरन्तर गुणों से प्रकाशित होता है (विप्रास. य) जिसकी ऋत्विज् (अध्वरेषु ईळते) प्रजा के रक्षणादि के लिए प्रशसा करते हैं, वह (अपां नपात्) तू प्रजा जनो को एकत्र बांधने वाला पुरुष राजन् (मधुमती अप) मधुर स्वभाव वाली अनुशासनबद्ध समृद्ध प्रजा को सुख प्रदान करे, (याभि) जिनसे (इन्द्र) राजा तेजस्वी होकर (वीर्याय वावृधे) बल के पराक्रम को प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा के मध्य निरन्तर अपने गुणो से ख्याति पाता है, उसे ही ऋत्विज् जन राजसूय यज्ञ मे सम्मान प्रदान करते हैं । समृद्ध प्रजा के बल पर ही राजा को बल एव पराक्रम प्राप्त होता है । प्रजा को रक्षण और सुख सुविधा देना भी उसका कर्तव्य है ॥४॥

याभि॒: सोमो॒ मोद॑ते॒ हर्ष॑ते च कल्या॒णीभि॑र्युव॒तिभि॒र्न मर्यः॑ ।
ता अ॑ध्वर्यो अ॒पो अच्छा॒ परे॑हि॒ यदा॑सि॒ञ्चा ओष॑धीभिः पुनीतात् ॥५॥२४॥

पदार्थ—(कल्याणीभि युवतिभिः मर्य न) जिस प्रकार कल्याणी युवती पत्नी के साथ युवा जन (मोदते हर्षते च) प्रसन्नता तथा हर्ष का अनुभव करता है, इसी भांति (याभिः) जिन (कल्याणीभि) कल्याणकारिणी प्रजाओं सहित (सोमः) उत्तम राजा (मोदते) आनन्द की अनुभूति करे एवं (हर्षते) हर्ष को प्राप्त करे, हे (अध्वर्यो) राजसूय यज्ञ के ऋत्विजो ! तुम (ता अप.) उन्हें (अच्छ परा इहि) लक्ष्य कर प्राप्त कर । (यत् आसिञ्चाः) जैसे वृक्ष को सींचा जाता है और वह बढ़ता है, वैसे ही तू भी (यत् आ-सिञ्चा) जिन आप्त जनो से राजा की वृद्धि करेगा, उन्हे तू भी (ओषधीभिः) ओषधि-युक्त तेज धारण करने वाली प्रजाओं के द्वारा (पुनीतात्) पवित्र कर ॥५॥२४॥

भावार्थ—प्रजाओं के साथ समागम और हर्ष तथा आनन्द को राजा भी प्राप्त करे । ऋत्विक् जिस प्रकार राजा का राज्याभिषेक करे वैसे ही प्रजा के प्रतिनिधि और प्रमुखों को अधिकारयुक्त परिषद् में नियुक्ति हेतु अभिषिक्त एव प्रतिज्ञाबद्ध कराये ॥५॥२४॥

एवेद्यूने॑ युव॒तयो॑ नमन्त॒ यदी॑मु॒शन्नु॑श॒तीरेत्यच्छ॑ ।
सं जा॑नते॒ मन॑सा॒ सं चि॑कित्रेऽध्व॒र्यवो॑ धि॒षणाप॑श्च दे॒वीः ॥६॥

पदार्थ—(यूने) युवा जन की प्राप्ति हेतु जैसे (युवतय नमन्त) युवतियां नम्र स्वभाव अपनाती हैं, (यत्) और जैसे (उशन्) कामनायुक्त पुरुष (उशतीः ईम् अच्छ एति) कामनामयी स्त्रियों को प्राप्त करता है, उसी प्रकार (अध्वर्य.) ऋत्विज (मनसा) मनोभाव से (देवी) उत्तम प्रजाओ को (स जानते) सम्यक् देखते हैं और (धिषणा सचिकित्रे) बुद्धिपूर्वक स्वयुक्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जिस भांति नर की प्राप्ति के लिए युवतियां नम्र स्वभाव अपनाती हैं, उसी प्रकार राजा एव प्रजा परस्पर वैरभाव से रहित होकर एक दूसरे से मिलकर रहने वाले स्वभाव के हो और राष्ट्र के अन्य नेता भी मन पूर्वक प्रजा से सहमत होते हुए व्यवहार करें और प्रजा भी उत्तम गुणयुक्त होकर सहमति सहित आचरण करे ॥६॥

यो वो॑ वृ॒ताभ्यो॒ अकृ॑णोदु लो॒कं यो वो॑ म॒ह्या अ॒भिश॑स्ते॒रमु॑ञ्चत् ।
तस्मा॒ इन्द्रा॑य॒ मधु॑मन्तमू॒र्मिं दे॑व॒माद॑नं॒ प्र हि॑णोतनापः ॥७॥

पदार्थ—हे (आप) आप्त जनो ! (य) जो (वृताभ्य) वरण की हुई (वः) तुम प्रजाओ के लिये (लोक अकृणोत्) घर बनाता है, (या व) जो तुम्हे (मह्या अभिशस्ते.) बड़ी निन्दा तथा कष्टादि से (अमुञ्चत्) मुक्ति दिलाता है, (तस्मै इन्द्राय) उस राजा (देव मादन) विद्वानो को सुखी करने वाले का (मधुमन्त ऊर्मिम्) मधुयुक्त उत्तम तरंग अथवा उत्साह (प्रहिणोतन) दो ॥७॥

भावार्थ—जिस भांति राजा वरण की हुई प्रजा पर कृपा करता है और उस की रक्षा करता है, उसे अपनाता है, विरोधियो के प्रहारो से उसकी रक्षा करता है वैसे ही प्रजा भी राजा को उत्तम भेंट प्रदान करे ॥७॥

प्रास्मै॑ हिनोत॒ मधु॑मन्तमू॒र्मिं गर्भो॒ यो वः॑ सिन्धवो॒ मध्व॒ उत्सः॑ ।
घृ॒तपृ॑ष्ठमी॒ड्य॑मध्व॒रेष्वापो॒ रेव॑तीः शृणु॒ता हवं॑ मे ॥८॥

पदार्थ—हे (सिन्धवः) राष्ट्र की आधार प्रजाओ ! जैसे नदियां या जल अपना सार सागर को प्रदान करती है, वैसे ही (व) आप लोगों का, (य) जो (मध्व) अन्नादि का (उत्स.) श्रेष्ठ भाग है, (उत मधुमन्तम् ऊर्मिम्) और मधुर गुणयुक्त उत्तम भाग है (अस्मै प्र हिनोत) इसके लिये प्रदान करे । (रेवतीः) हे प्रजाओ ! (अध्वरेषु) वह यज्ञो तथा दृढ कार्यों में (ईड्यम्) वन्दनीय (घृत-पृष्ठम्) अन्न, जल तथा स्नेह से पुष्ट इसे प्राप्त होकर (मे हवं शृणुत) राजसूय यज्ञ मे मुझ पुरोहित का वचन सुनो ॥८॥

भावार्थः—राष्ट्र का आधार प्रजाएँ ही है । उनकी ओर से मर्यादा सहित दिया हुआ उपहार ही राजा के लिए ग्रहणीय है । राष्ट्र कार्य मे उत्साह व प्रेरणा का प्रेरक है । ऐसा उपहार अवश्य दिया जाना चाहिए ॥८॥

तं सि॑न्धवो मत्स॒रमि॑न्द्र॒पान॑मू॒र्मिं प्र हे॑त॒ य उ॒भे इय॑र्ति ।
म॒द॒च्युत॑मौशा॒नं न॑भो॒जां परि॑ त्रि॒तन्तुं॑ वि॒चर॑न्त॒मुत्स॑म् ॥९॥

पदार्थ—(सिन्धव मत्सरम् इन्द्रपानम् ऊर्मिम् प्र हिन्वन्ति) जिस प्रकार नदियां आनन्द-प्रसारक, सूर्य के द्वारा पाने योग्य ऊर्ध्वगामी जल को बढ़ाती हैं वैसे ही, हे (सिन्धव) राष्ट्र का आधार सैन्यादि प्रजाओ ! (तं) उस (मत्सरम्) आनन्द-दायक, (इन्द्र-पान) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालक, (ऊर्मिम्) आज्ञापक जन को (प्र हेत) खूब दो, (य) जो (उभे) राजा-प्रजा को (इयर्ति) सन्मार्ग मे चलाता है, और (मद च्युतम्) हर्षजनक (औशान) समृद्धि-कामना करते हुए (नभः जाम्) आकाश मे सूर्यवत् उदित होने वाले (त्रि तन्तुम्) पितामह, पिता और पुत्र के (उत्सम् परि वि-चरन्त) यश को देने वाले उत्तम मार्गदर्शक अपने योगक्षेम से अधिक देने योग्य ही है ॥९॥

भावार्थ:—राजा के लिए प्रजा को अपने योगक्षेम से बचे दातव्य भाग को प्रदान करना नितान्त आवश्यक है। वह राजा के लिए अधिकार प्राप्ति योग्य है। राष्ट्र में सुख-समृद्धि का संचार करने वाला उभय लोक राजा तथा प्रजा के लिए दातव्य है ॥९॥

आवर्वृतंतीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥२५॥

पदार्थ—हे (ऋषे) विद्वान पुरोहित ! तू (भुवनस्य) राजसूय यज्ञ को (जनित्रीः) सम्पादन करने वाली और (पत्नी·) पालने वाली, (स-वृधः) राजा के साथ (स-योनी·) राष्ट्र वृद्धि कार्य में लगी (अपः) प्रजाओ को (वन्दस्व) आदर से सम्मानित कर, जो (आवर्वृतती) राजसूय यज्ञ मे (अध नु) और फिर (द्वि-धारा) दो वाणी वाली अर्थात् राजा के लिए कल्याणवाणी व निज हितार्थ प्रार्थना वाणी तथा यज्ञ मे भली-भांति प्रवर्त्तमान (गोषु युधः) राष्ट्र के भू भाग मे बसने वाली हैं (गोषु युधः) राष्ट्र के भू भागों मे वास करने वाली (नियव चरन्ती) नियमित रूप से अन्नसेवी प्रजा को सम्मानित कर ॥१०॥

भावार्थ·—पुरोहित जनो का यह कर्त्तव्य है कि वे राजसूय यज्ञ के समय जहां राजा का सत्कार करें वहां उस देश में निवास करने वाली तथा स्वराष्ट्र को समृद्धि प्रदान करने हेतु चेष्टारत एव नियमित रूपेण सन्तोष सहित अन्नादि भोग करने वाली प्रजा का स्वागत भी करें ॥१०॥

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

पदार्थ—हे (देव यज्या) ऋत्विज् जनो ! तुम परमात्मा की सगति हेतु, (न अध्वरं हिनोत) हमारे राजसूय यज्ञ को अभ्युदय व नि श्रेयस के लिए प्रोत्साहित करो और (धनानाम् सनये) हमे धन की प्राप्ति के लिये (ब्रह्म हिनोत) स्तुति वचन को प्रवृद्ध करो (ऋतस्य योगे) इस यज्ञ के प्रयोग मे (आप.) हे प्रजाजनो ! (ऊध· विष्यध्वम्) राष्ट्र के सुखसम्पदा-दायक कोष को उद्घाटित करो (अस्मभ्यम् श्रुष्टीवरी भूतन) हमारे लिए सुखदायक हो ॥११॥

भावार्थ—पुरोहित गण आस्तिक भावो एव प्रभु की विशेष स्तुति वचनों के द्वारा राजसूय यज्ञ को आरम्भ करें । प्रजाजनो का भी पूर्ण रूपेण सहयोग लें, जिससे कि राजा एव प्रजा दोनो ही राष्ट्र-सम्पत्ति से सुख को प्राप्त करें ॥११॥

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥

पदार्थ—हे (आप·) प्रजाजनो ! हे (रेवती) समृद्ध गृह-लक्ष्मियो ! तुम (वस्वः हि क्षयथः) राष्ट्रीय धन की स्वामिनी हो और (क्रतुम् भद्र) अनुकूल सकल्प और (अमृत च) अन्न, जल, दीर्घ जीवन तथा सन्तान को (बिभृथ) धारण करती हो । आप (स्वपत्यस्य राय.) उत्तम सन्तान और ऐश्वर्य का (पत्नी) पालन करने वाली हो । (सरस्वती) उत्तम ज्ञानयुक्त विदुषी (गृणते) विद्वान् को (तत् वयः) वह उत्तम ज्ञान (धात्) प्रदान करे ॥१२॥

भावार्थ—राष्ट्र का शासक, राष्ट्र की प्रजा द्वारा निर्वाचित किया हुआ ही होना चाहिए, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक स्वामिनी वहा की प्रजाए ही है, जो उत्तम सन्तान से सम्पन्न हैं । उनकी सभा ही राजा की शासन व्यवस्था की विशेष विचारक शक्ति है ॥१२॥

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥

पदार्थ—हे (आप) प्रजा ! (यद्) जब (पीयांसि) पुष्टिकारक घी-दुग्ध और (मधूनि) मधुर वस्तुए (बिभ्रती.) धारण करती हुई और (अध्वर्युभि) राजसूय यज्ञ के विद्वानों के साथ (मनसा सविदाना) चित्त से एक भाव प्राप्त करती हुई और (इन्द्राय) राजा के लिये (सु-सुत सोमं भरन्ती) सुसस्कृत उपहार को धारण करती हुई को (प्र अदृश्रम्) मै पुरोहित प्रत्यक्ष देखता हूँ, प्रशसा करता हूँ ॥१३॥

भावार्थ.—प्रजाजन भी राजसूय यज्ञ में ऋत्विज् जनों के अनुशासन में ही रहते हैं । घृत एव अन्य मधुर वस्तुऐं होम के लिए लाएँ तथा राजा के लिए अनुकूल पदार्थ भेंट में दें ॥१३॥

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥

पदार्थः—(इमाः रेवतीः) ये उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, (जीव-धन्याः आ अग्मन्) प्राणियों में पोषणरूपी धन की प्रेरक प्रजाएँ राजसूय यज्ञ में आती हैं । हे (अध्वर्यव.) यज्ञकर्त्ताजनो ! हे (सखायः सादयत) उन्हें तुम सद्भाव से स्थान ग्रहण कराओ (अपां नप्त्रा सं-विदानास एना.) प्रजा के पालन मे समर्थ राजा द्वारा एकमत हुई प्रजाओ को मन्त्रणाओ मे उत्तम स्थान दो (सोम्यास.) हे सोम सम्पादन करने वाले (बर्हिषि नि धत्तन) उन्हें राष्ट्र के योग्य अधिकार मे नियुक्त करो ॥१४॥

भावार्थः—राष्ट्र जीवन को प्रजाएं ही समृद्धि युक्त करती हैं । उनसे समय-समय पर परामर्श तथा सहयोग प्राप्त किया जाना नितान्त आवश्यक है ॥१४॥

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥२६॥

पदार्थः—हे (अध्वरे उशतीः देवयन्ती आप) राजसूय यज्ञ मे सुख कामना करती हुई तथा सुखदाता राजा को अपने ऊपर शासन करने को चाहने वाली प्रजाएँ (आ अग्मन्) आती है और (इद बर्हि· नि असदन्) इस यज्ञ मंडप को पाती हैं (अध्वर्यव.) हे यज्ञ के विद्वानो ! तुम (सोमम् इन्द्राय सुनुत) राजा के लिए राजैश्वर्य पद दो (वः देव यज्या सुशका अभूत्) तुम्हारे सुख देने वाले राजा का यज्ञ प्रजा के सहयोग से सुगमता से होना सभव है ॥१५॥२६॥

भावार्थ—प्रजा की यह कामना रहती है कि उस पर ऐसे राजा का शासन हो कि जिसके शासन से उसे सुख की प्राप्ति हो सके । ऋत्विज् जनो को भी राजसूय यज्ञ का सचालन करते हुए प्रजा का सहयोग प्राप्त करके ही राजा के राज्य एव ऐश्वर्य· पद को सम्पन्न करना चाहिए ॥१५॥२६॥

इति षड्विंशो वर्ग ।

---

[३१]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्द·—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ११ *त्रिष्टुप्* । ३, १० *विराड् त्रिष्टुप्* । ६ *पादनिचृत् त्रिष्टुप्* । ९ *आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्* ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१॥

पदार्थ—(देवानां शस) लोगो को उपदेश देने वाला विद्वान् (न आवेतु) हमे साक्षात् हो और (यजत्र) पूजनीय जन (विश्वेभि तुरै) शत्रु का नाश करने वाले उपायो सहित (न अवसे) हमारी रक्षार्थ (उप वेतु) आएँ । (तेभिः) उनसे ही (वयम्) हम (सु-सखाय भवेम) सखा बनकर रहे और (विश्वा दुरिता) सारे बुरे आचरणो को (तरन्त स्याम) पार कर लें ॥१॥

भावार्थ—लोगो के उपदेष्टा विद्वान् हमे साक्षात् हो और पूज्य पुरुष शत्रु-सहारक उपायो से हमारी रक्षा के लिए आएँ । हम उन्ही के साथ सखाभाव से रहे और सारे बुरे आचरणो से स्वय को दूर रखें ॥१॥

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥२॥

पदार्थ—(मर्त·) मानव (परि चित् द्रविण) चतुर्दिक् दौड़ने वाले इस मन को (ममन्यात) वश मे करे और (नमसा) आदर पूर्वक (ऋतस्य) ज्ञान के मार्ग से (·आ विवासेत्) बड़ों की सेवा करे (उत) और (स्वेन क्रतुना) उत्तम ज्ञान द्वारा (स वदेत) सम्यक कथन करे और (श्रेयांसं दक्ष) श्रेष्ठतम कर्म को (मनसा जगृभ्यात्) हृदय से स्वीकारे ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने चचल मन को वश मे करे और आदर भावना के साथ विद्वत्जनो की सेवा करे । वह उत्तम ज्ञान को पाकर सम्यक् कथन करे तथा श्रेष्ठ कर्म को अपने हृदय से स्वीकार करे ॥२॥

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥३॥

पदार्थ·—(धीति) पीने योग्य सुधा-तुल्य (धीति अधायि) धारणा को धारण करे । (तीर्थेन) तीर्थ मे (अंशा) जलो के तुल्य गुरु के आश्रय को (अंशा अससृग्रम्) प्राप्त होने वाले जीव शिष्यो के तुल्य आते हैं । (ऊमा दस्म उप यन्ति) देशरक्षक जनो के तुल्य जीव दु खो के नाशक स्वामी को पाते हैं । हम लोग (सुवितस्य शूष) सुख से प्राप्ति योग्य सुख को (अभि आनश्म) सब ओर से ग्रहण करें और हम (अमृतानाम् नवेदस अभूम) मोक्ष-सुखो को पाने वाले हो ॥३॥

भावार्थ—हम सुधा-तुल्य धारणाओ को धारण करें, क्योंकि तीर्थ में जलों के समान गुरु-आश्रय प्राप्त करने वाले जीव शिष्य के समान आते हैं । देशरक्षक जनो के तुल्य जीव दु खो के नाशक स्वामी को प्राप्त होते हैं । हम योग्य सुख को सभी ओर से पाए और मोक्ष पाने मे समर्थ बनें ॥३॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

पदार्थः—(यस्मै) जिस जीव के उपकारार्थ (देव सविता) जगत् उत्पादक दिव्य प्रभु (जजान) पदार्थ उत्पादक है (स्व-पति) सकल धनो व स्वकीयो का पालन करने वाला (दमूनाः) दमनशील, (नित्य) शाश्वत प्रभु (अस्मै चाकन्यात्) उसे सदैव चाहता है । (स) वह (भगः) परमात्मा (अर्यमा) न्यायकारी होकर (ईम्) इसके प्रति (गोभि) वेद वाणियो द्वारा (अनज्यात्) ज्ञान को प्रकाशित करता है (उत) और (अस्मै) उसे (चारु) भली प्रकार (छदयत् उत स्यात्) आच्छादित करने वाला है ॥४॥

भावार्थः—प्रभु जिस जीव के उपकार के लिए पदार्थों को उत्पन्न करता है, उसे वह स्वकीयो का पालक शाश्वत परमात्मा सदा चाहता है । प्रभु न्यायकारी होकर उसे वेद का ज्ञान प्रदान करता है । वही उसकी भली-भांति रक्षा करता है ॥४॥

इ॒ सा भू॒या उ॒षसा॑मिव॒ क्षा यद्ध॑ क्षु॒मन्त॒ः शव॑सा स॒मार॑न् ।
अ॒स्य स्तु॒तिं ज॑रि॒तुर्भिक्ष॑माणा॒ आ नः॑ श॒ग्मास॒ उप॑ यन्तु॒ वाजा॑ः ॥५॥२७॥

पदार्थ —(यत् ह) और जब (क्षुमन्तः) उपदेष्टा विद्वान मेघ तुल्य (शवसा) ज्ञानयुक्त होकर (सम् आयन्) पाए तब (उषसा क्षा. इव) प्रभात बेला मे जिस प्रकार भूमि प्रकटती है और उनके समक्ष होती है वैसे ही उन ज्ञानवानो के अभिमुख (इय क्षा भूया) यह भूमि मे वास करने वाली प्रजा उनके सामने ज्ञान प्राप्ति के लिए हो और (अस्य जरितु) इस अज्ञान मिटाने वाले उपदेष्टा के (स्तुति) उपदेश को (भिक्षमाणा) चाहते रहे और (शग्मास) सुख देने वाले (वाजा) अन्नादि ऐश्वर्य (न आ उप यन्तु) हमे मिलें ॥५॥२७॥

भावार्थः—प्रभु ने जिस पृथिवी की रचना की है, वह हम सदैव आधार प्रदान करने वाली उषा के तुल्य सहायता प्रदान करता है । अज्ञान को दूर करने वाले उपदेशक भी हमे उसकी कृपा से उसी भाति प्राप्त होते है, जैसे अन्न इत्यादि की उत्पत्ति के निमित्त मेघ वर्षा करते है ॥५॥२७॥

इति सप्तविंशो वर्ग ।

अ॒स्येदे॒षा सु॑म॒तिः प॑प्रथा॒नाभ॑वत्पू॒र्व्या भू॑मना॒ गौः ।
अ॒स्य सनी॑ळा॒ असु॑रस्य॒ योनौ॑ समा॒न आ भर॑णे॒ बिभ्र॑माणाः ॥६॥

पदार्थः—(अस्य इत् असुरस्य) सभी के जीवन दाता, जगत्-सचालक उस परमात्मा की (एषा) यह (सु-मति) उत्तम ज्ञान युक्त, (भूमना) बहुत बडी, (पूर्व्या) सनातन (पप्रथाना) ज्ञान विस्तारक (गौ) वेदवाणी (अभवत्) है । (स-नीळा) उसके तुल्य आश्रय मे बसने वाले शिष्यवत् जीव (समाने भरणे) एक समान धारणा मे विद्यमान रहकर (बिभ्रमाणा) उस वाणी को धारते हुए (समाने योनौ) समान गृह तथा आश्रय मे (आ यन्तु) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा की, जो प्राणस्वरूप है, वेदवाणी द्वारा स्तुति शाश्वतिक विस्तृत होती रहती है । उसके अनुसार ही स्तुतिकर्ता मोक्ष मे समान आश्रय प्राप्त करते हैं ॥६॥

किं स्वि॒द्वनं॒ क उ॒ स वृ॒क्ष आ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः ।
सं॒त॒स्था॒ने अ॒जरे॑ इ॒त ऊ॒ती अहा॑नि पू॒र्वीरु॒षसो॑ जरन्त ॥७॥

पदार्थः—(किं स्विद् वन) कौन सा यह 'वन' और (क उ स वृक्ष आस) कौनसा वह वृक्ष या उपादान कारण है (यत) जिससे (द्यावा-पृथिवी) आकाश तथा पृथिवी दोनो को (नि-ततक्षु) रचते है । ये दोनों (सतस्थाने) भली-भांति स्थिर (अजरे) अनश्वर, (इत -ऊती) इस लोक से ही रक्षा पाने वाली है । उन्ह (अहानि) दिन और (पूर्वी उषस) पूर्व की उषायें (जरन्त) प्रकट करती हैं ॥७॥

भावार्थ —परमेश्वर ने अपने प्रकाशक तथा व्यापक स्वरूप से ही इस सृष्टि के प्रमुख आकाश मडल और भू मडल की रचना की है । इसके मध्य दिन, रात और उषाओ को प्रकट किया है जो अन्य प्राणियो आदि की जीर्णता के साथ जीर्णता पाती जाती है ॥७॥

नैताव॑दे॒ना प॒रो अ॒न्यद॑स्त्यु॒क्षा स द्यावा॑पृथि॒वी बि॑भर्ति ।
त्वचं॑ प॒वित्रं॑ कृणुत॒ स्व॒धावा॒न्यदीं॒ सूर्यं॒ न ह॒रितो॒ वह॑न्ति ॥८॥

पदार्थ.—(एना पर अन्यत् न अस्ति) इसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नही है, (उक्षा स) वह जगत का धारक तथा प्रकृति मे जगत-मूलक बीज निषेककर्ता पुरुष ही (द्यावा पृथिवी) इस सूर्य तथा पृथिवी को (बिभर्ति) धारता है । वही (स्वधावान्) पोषण करने वाली शक्ति का स्वामी होकर (पवित्र त्वच) तेज युक्त आकाश रूपी आवरण का (कृणुते) निर्माण करता है, (यद् हरित सूर्य न) दिशाए जैसे सूर्य को धारती हैं, वैसे ही (ईम् वहन्ति) जगत् के पदार्थ उसे अपने मे धारते हैं ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा ही इस द्यावा-पृथिवीमय जगत् को शक्ति प्रदान करता है । जिस भाँति सूर्य की किरण सूर्य के आश्रित होकर ही उसे दर्शाती है, उसी प्रकार जगत् के पदार्थ प्रभु के आश्रित हो उसे दर्शाते हैं ॥८॥

स्ते॒गो न क्षाम॒त्ये॑ति पृ॒थ्वीं मिहं॒ न वातो॒ वि ह॑ वाति॒ भूम॑ ।
मि॒त्रो यत्र॒ वरु॑णो अ॒ज्यमा॑नो॒ऽग्निर्वने॒ न व्यसृ॑ष्ट॒ शोक॑म् ॥९॥

पदार्थ —(स्तेग न) जैसे सूर्य (पृथ्वी क्षा अति एति) भूमि का अतिक्रमण करता है (वात न) वायु जैसे (अति भूम) अत्यधिक (मिह वि वाति) वृष्टि लाता है । वैसे ही (स्तेग) प्रकृति के परमाणु आदि का सघातकर्ता प्रभु इस (पृथ्वीम्) विस्तृत (क्षाम् अति एति) निवास योग्य मूल प्रकृति से बडा है, वह (वात) प्रभु जीवो पर (मिह) सुख बरसाता है, (यत्र) जिसके आश्रय मे (अज्यमान) आलोकित (मित्र) जलो का स्वामी सूर्य तथा (वरुण.) सूर्य द्वारा प्रकाशित रात्रि है । (वनेन) वन मे या काष्ठ मे जैसे (अग्नि शोक वि असृष्ट) अग्नि स्व तेज को प्रकटाता है वैसे ही वह प्रभु भी (अग्नि) व्याप्त होकर (वने) इस मूल-कारण प्रकृति तत्त्व मे अपने (शोकम्) तेजोमय वीर्य को (वि असृष्ट) त्यागता तथा सृष्टियो को उपजाता है ॥९॥

भावार्थ —जिस भाँति सूर्य भूमि को अतिक्रमण करता है, जैसे वायु अत्यधिक वृष्टि लाता है, वैसे ही प्रकृति परमाणु आदि का सघातक प्रभु इस विस्तृत विकास योग्य मूल प्रकृति से बढकर है । वह परमात्मा जीवो को सुख देता है । वही सकल पिण्डो को दूर-दूर तक बिखेरता है और विद्युत् अग्नि आदि सब उसी के आश्रित हैं, वही अपनी ज्योति से जगत् को आलोकित कर रहा है ॥९॥

स्त॒रीर्यत्सूत॑ स॒द्यो अ॒ज्यमा॑ना॒ व्यथि॑रव्य॒थीः कृ॑णुत॒ स्वगो॑पाः ।
पु॒त्रो यत्पूर्वः॑ पि॒त्रोर्जनि॑ष्ट श॒म्यां गौर्ज॑गार॒ यद्ध॑ पृ॒च्छान् ॥१०॥

पदार्थ —(यत्) जिस प्रकार (अज्यमाना) वृषभ के द्वारा निषिक्त हुई (स्तरी) गौ (सूत) सन्तान को जन्म देती है, वह स्वय (व्यथि) पीड़ा का अनुभव करती हुई (स्व-गोपा) स्व सामर्थ्य से रक्षित रहकर (अव्यथी कृणुते) जीवो की व्यथा मिटाती है, वैसे ही यह (स्तरी) व्यापक प्रकृति (सद्य) नितात शीघ्र (अज्यमाना) ब्रह्म बीज से युक्त आलोकित होती हुई, (स्व-गोपा) स्वत रक्षित तथा (व्यथि) पीडित होकर जीवो को (अव्यथी कृणुते) कर्म भोगवा कर व्यथारहित कर देती है । जैसे मानो (पुत्रः) पुत्र (पित्रो पूर्व) माता-पिता के भी पूर्व विद्यमान हो ऐसे ही वह (पुत्र) पालक प्रभु सृष्टि से पहले (जातः) विद्यमान रहता है और जैसे (गो शम्यां जगार) भूमि शमी वृक्ष को अपने मे लिये रहती है वैसे ही जो प्रभु (गो) सर्वसञ्चालक (शम्यां) कर्म कर्त्ता जीव को (जगार) उपदेश देता है (यत् ह पृच्छान्) जिसके सम्बन्ध मे विद्वान् जिज्ञासा करते हैं, वही परमात्मा है ॥१०॥

भावार्थ —समय पर वृषभ से गर्भित हुई गौ बछडे को जन्म देते ही प्रसव पीडा से निवृत्त हो जाती है, गोपाल के द्वारा अपने को पीडा से रहित हुआ पाती है, उसी प्रकार द्युलोक एव पृथिवी लोक का पुत्ररूप से अथवा श्रेष्ठ जीव जन्मता है वह अध्ययन कर्म मे गतिशील होकर जागृत हो जाता है और परमात्मा की अर्चना करते हुए इस संसार की पीडा से मुक्ति पाता है ॥१०॥

उ॒त कण्वं॑ नृ॒षदः॑ पु॒त्रमा॑हुरु॒त श्या॒वो धन॒माद॑त्त वा॒जी ।
प्र कृ॒ष्णाय॒ रुश॑दपिन्व॒तोध॑र्ऋ॒तमत्र॒ नकि॑रस्मा अपीपेत् ॥११॥२८॥

पदार्थ —(उत) और (कण्व) विद्वान् जन को (नृसद) मनुष्यो के ऊपर शोभित राज्य का (पुत्रम् आहु) पुत्र के तुल्य बहुतो का रक्षक कहा जाता है । (उत) और (श्याव) शक्तिशाली (वाजी) ज्ञानी जन ही (धनम् आदत्त) धन पाता है । (कृष्णाय) शत्रु नाशक जन के लिए (रुशत् ऊध) उज्ज्वल आकाश तुल्य परमात्मा (ऋतम् अपिन्वत्) ज्ञान एव न्याय की वृष्टि करता है, (अत्र) इस लोक में (अस्मै) उसके (ऋतम्) धन एव तेज को (नकिः अपीपेत्) कोई नष्ट नहीं कर पाता ॥११॥

भावार्थ —विद्वान् पुरुष मनुष्यो मे शोभित राज्य का, पुत्र के समान अनेको का रक्षक कहलाता है । शक्तिशाली ज्ञानी जन ही धन पाता है । शत्रु नाशक जन हेतु उज्ज्वल आकाश तुल्य प्रभु ज्ञान व न्याय की वृष्टि करता है । इस लोक मे उसके धन व तेज को कोई नष्ट नही कर पाता ॥११॥

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

---

[३२]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्द —१, २, विराड्जगती । ३ निचृज्जगती ४ पादनिचृज्जगती । ५ आर्ची भुरिग् जगती । ६ त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ग्मन्ता॑ धियसा॒नस्य॑ स॒क्षणि॑ व॒रेभि॑र्व॒राँ अ॒भि षु प्र॒सीद॑तः ।
अ॒स्माक॒मिन्द्र॑ उ॒भयं॑ जुजोषति॒ यत्सो॒म्यस्यान्ध॑सो॒ बुबो॑धति ॥१॥

पदार्थ.—(धियसानस्य) ध्यान मे आए हुए (सक्षणि) उनके सग मे (ग्मन्ता) गृहस्थ जीवन को प्रगति देते हुए स्त्री पुरुष को (इन्द्रः प्र जुजोषति) ऐश्वर्यवान् परमात्मा अच्छी प्रकार प्रेम करता है और (प्र-सीदत) प्रसन्न हुए विद्वान् के (वरेभि) श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा वे दोनो नर नारी (वरान् अभि सु) उत्तम सुखों को पाए । (इन्द्र) वह राजा (अस्माकम्) हमारे (उभयं) हित और अहित को (जुजोषति) जानता है, क्योंकि वह (सोम्यस्य अन्धस) उपासना से (बुबोधति) फलो को प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ —वह परमेश्वर हमारे श्रेष्ठ कर्म तथा ज्ञान को चलाता है । वही उपासना के द्वारा ध्यान करने योग्य स्वरूप को प्राप्त कराता है उसकी सगति मे गृहस्थ जीवन को समुन्नत बनाते हुए उन्नति करके प्रसन्न रहते है ॥१॥

वीन्द्र॑ यासि दि॒व्यानि॑ रोच॒ना वि पार्थि॑वानि॒ रज॑सा पुरुष्टुत ।
ये त्वा॒ वह॑न्ति॒ मुहु॑रध्व॒राँ उप॒ ते सु व॑न्वन्तु वग्व॒नाँ अ॑रा॒धसः॑ ॥२॥

पदार्थ.—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन ! तू (दिव्यानि) आकाश मे (रोचना) प्रकाशमान और (पार्थिवा) पृथिवी के समस्त लोको को (रजसा) रजोगुण के द्वारा (वि यासि) विशेष रूप से व्यापता है । (ये) जो विद्वान् (अध्वरान्) तुझे लक्ष्य कर यज्ञो को (मुहु) बार-बार (वहन्ति) सेवन करते है (ते अराधसः)

वे धनरहित भी (वग्वनाद्) वाणी द्वारा सेवन योग्य सुखो का (वन्वन्तु) सेवन करते हैं ॥२॥

भावार्थ—प्रभु ही पृथिवी के मनोभावन पदार्थों मे तथा आकाश, ग्रहों नक्षत्रो आदि मे व्याप्त हो रहा है। उपासको को उसकी स्तुति वन्दना आदि से ही विशेष सुख प्राप्त होता है ॥२॥

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।

जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जैसे (पुत्र.) पुत्र (पित्रो जानं अधीयति) माता-पिता से जन्म पाता है (तत्) उसी तरह यह (मे) मेरा आत्मा (वपुष वपु तरम्) सुन्दरतम (जान छन्त्सत्) जन्म ग्रहण करे। (जाया पतिम्) स्त्री पालक पति सहित (सुमत् वग्नुना) उत्तम वचन से (वहति) विवाह रचाती है तब (परिष्कृत. वहतु) सुशोभित वस्तुएं (पुस इत) पुरुष को ही (भद्र) कल्याणकारी या सुखदायी होती हैं ॥३॥

भावार्थ—जिस प्रकार पुत्र माता-पिता से जन्म ग्रहण करता है वैसे ही यह मेरा आत्मा भी सुन्दरतम जन्म को प्राप्त हो। जैसे स्त्री पालक पति के साथ उत्तम वचन से विवाह रचाती है, तभी सुशोभित वस्तुए पुरुष को कल्याणकारी एव सुखदायक होती हैं ॥३॥

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।

माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (धेनव वहतु न) जैसे गौए बैल घृत, दुग्ध, अन्नादि (शासन्) प्रदान करती हैं और (यत् गाव वहतु शासन्) बैल अथवा अश्व गाडी आदि को चलाते हैं। (तद् इत्) वैसे ही (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! तू (चारु सधस्थम्) उत्तम स्थान (अभि दीधय) दे। (यत्) जैसे (पूर्व्या) प्रेम से परिपूरित, (मन्तुः) माननीय (माता) माता (यूथस्य अभि) अपने पुत्र के लिए आती है और जैसे (जन सप्तधातु वाणस्य) सात स्वरो के धारक वाद्य यन्त्र को सुन उसकी ओर आकृष्ट होता है वैसे ही हे परमात्मा ! हमे भी तू (चारु सधस्थम्) ऐसा श्रेष्ठ स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर (यत्) जिसमे (वहतु न) रथ के तुल्य (धेनवः शासन्) रसपान कराने वाले इन्द्रियगण अनुशासित हो। (यत्) जिसे (पूर्व्या माता) पूर्व विद्यमान मातृशक्ति (मन्तु) मननीय बुद्धि (यूथस्य अभि शासन्) प्राणो को अपने अधीन रखे और (जन) उत्पन्न हुआ प्राणी (इत्) भी (सप्त-धातु) रस, रक्त, मास, अस्थि, मज्जा, मेद, शुक्र इन सात धातुओ मे बने (वाणस्य) शरीर को (अभि शासत्) अपने नियन्त्रण मे करे ॥४॥

भावार्थ—वही परिवार आदर्श परिवार कहा जा सकता है कि जिसमें गौवें दूध देने वाली हो तथा सन्तानो को जन्म देने वाली माता श्रेष्ठ गुणो से युक्त हो एव उसके पुत्र भी सर्वाङ्गपूर्ण हो तथा माता-पिता के अनुशासन मे रहते हो ॥४॥

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।

जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (एक.) अनुपम, (तुर्वणि) अति तीव्रगामी होकर (रुद्रेभि याति) दुखो के निवारक जनो सहित प्रयाण करता है, वह (देवयु) सूर्यतुल्य विजिगीषु जन का स्वामी (व अच्छ) तुम्हे प्राप्त होकर (पद) ज्ञान तथा पद को (प्र रिरिचे) पाता है। (वा) और (येषु) जिन (अमृतेषु) दीर्घजीवी व्यक्तियों के मध्य (जरा दावने) उत्तम वाणी उत्तम ज्ञान देने हेतु है, उन (ऊमेभ्य) गुरुजनो के लिये आप (मधु परि सिञ्चत) अन्न एव जल प्रदान करो ॥५॥

भावार्थ—विद्वत जनों का नेता केवल परम पिता परमात्मा ही है। वही उन्हे मोक्षपद प्रदान करने म समर्थ है। जिन मुमुक्षु जनो को दुष्ट जनो को रुलाने का सामर्थ्य प्राप्त है उन्हे मधुर खाने पीने की वस्तुए समर्पित करना एक उत्तम कार्य है ॥५॥

इत्येकोनत्रिंशो वर्ग ॥

निधीयमानमपगूळहमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।

इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥

पदार्थ—(देवानां) तेजस्वियों के (व्रत पा) व्रत का पालक (मे) मुझे (अप्सु) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओ एव (आप) जलो मे निहित प्राणो अथवा लिङ्ग शरीरो के मध्य (नि धीयमानम्) स्थापित हुए (अपगूळहम्) गूढ आत्मतत्त्व को (मे प्र उवाच) मुझे बताए। हे (अग्ने) अग्ने ! (हि) निश्चय से (इन्द्र हि) आत्मा एव प्रभु उस तत्त्व का साक्षात-कर्त्ता (विद्वान्) ज्ञानवान् जन (त्वा अनु चचक्ष) अनुभव द्वारा तेरा साक्षात् करता है। (तेन अनु शिष्ट) उससे शिक्षण पा मैं (त्वा अनु आ अगाम्) तुझे प्राप्त होऊ ॥६॥

भावार्थ—जो व्यक्ति ज्ञान एव विद्या की प्राप्ति की कामना करता है उसका वास्तविक आचार्य इस ससार के प्रत्येक परमाणु म तथा सभी प्राणो मे व्याप्त है। सच्चे उपासक ही उसे अपने मे साक्षात् कर पाने मे समर्थ होते है ॥६॥

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।

एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७॥

पदार्थ—(अक्षेत्रवित्) मार्ग से अनभिज्ञ (हि) अवश्य (क्षेत्रविद अप्राट्) मार्ग से भिज्ञ पुरुष से पूछता है। (स) वह (क्षेत्रविदा) क्षेत्रज्ञ विद्वान् से (अनुशिष्टः) शिक्षित हो (प्र एति) उत्तम मार्ग को पाता है। (अनुशासनस्य) गुरु के अनुशासन का (एतत् वै भद्रम्) यही कल्याणदायक परिणाम है कि अनुशासित, अज्ञ पुरुष भी (अञ्जसीनाम्) ज्ञान को प्रकाशित करने वाला, वाणियो की (स्रुतिं) गति को (विन्दति) पाता है ॥७॥

भावार्थः—जिस किसी को विशेष विद्या को जानने की जिज्ञासा हो, उसके लिए यही उचित है कि वह उस विद्या में पारगत व्यक्ति की शरण मे जाकर उस विद्या को पूर्ण अनुशासन मे रहकर प्राप्त करे। यही कल्याण मार्ग है और परम्परागत सही पद्धति है ॥७॥

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।

एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥८॥

पदार्थः—वह (अद्य इत् उ प्राणीत) अभी जो गर्भ मे आया आत्मा प्राण लेता है (इमा अममन्) इन नाना सकल्पो को सोचता है। (अपि वृत) देह मे निहित रह कर वह (मातु ऊध अधयत्) माता का स्तन्य पीता है, वह ठीक उसी प्रकार से है जैसे तेजो से आवृत अग्नि या सूर्य पृथिवी पर जलपान करता है। (ईम् एनम् युवान) बाद मे इस युवा होते हुए को जैसे बुढ़ापा आता है वैसे ही (युवानम्) माता से पृथक् होते हुए नवजात बालक को भी (जरिमा) वाणी (आप) प्राप्त होती है। वह (अहेळन्) अनाध्त होकर, (वसु) गुरु के अधीन रहता हुआ (सुमना बभूव) ज्ञान सम्पन्न हो जाता है ॥८॥

भावार्थ आत्मा गर्भ मे रहते हुए प्राण पाता अर्थात् श्वास क्रिया आरम्भ कर देता है। वह गर्भ मे रहते हुए ही स्वय को अनुभव करने लग जाता है। गर्भ से बाहर आकर वह माता का स्तन पान कर युवक बनता है और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर उसका पूर्ण आदर करता हुआ ज्ञान-सम्पन्न हो पाता है ॥८॥

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।

दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ९।३०।७

पदार्थ—हे (कलश) ज्ञान कलाओ से पूर्ण विद्वन् ! हे (कुरु-श्रवण) कर्म प्रेरणाओ को सुनने वाले आचार्य ! (मघानि) उत्तम ज्ञानो तथा धनो को (ददत) देने वाले हम (एतानि भद्रा क्रियाम) इन कल्याणकारी कर्मों को करें। हे (मघवान) ज्ञान के स्वामी लोगो ! (स व दान इत् अस्त) तुम्हारा वह दातव्य पदार्थ स्वीकार करने योग्य हो और (अय सोम च) यह सौम्य प्रवाह शिक्षण विषय भी तुम मे स्थिर हो, (य हृदि बिभर्मि) जिसे मैं अब अपने चित्त मे धारण कर रहा हूँ ॥९॥

भावार्थ - सच्चे अर्थों में वही व्यक्ति आचार्य कहा जा सकता है कि जिसके शिष्य सकल ज्ञान और कलाओ मे पूर्ण तथा आज्ञाकारी एव उसके वचनो को सुनने वाले हो। ऐसे शिष्यो का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने आचार्य को भांति-भांति के धन, वस्त्र आदि भेंट मे दें। आचार्य के लिए भी उचित है कि उन्हे भली-भांति ज्ञान का दान प्रदान करे ॥९॥

इति त्रिंशो वर्ग ॥

इति सप्तमाष्टके सप्तमोऽध्याय समाप्त ॥

अष्टमोऽध्यायः

[३३]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—१ विश्वे देवाः । २, ३ इन्द्रः । ४, ५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः । ६—९ उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्रः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृद् बृहती । ३ भुरिग् बृहती । ४—७, ९ गायत्री । ८ पादनिचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।

विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

पदार्थः—(जनानां प्र युज) ज्ञान द्वारा मनुष्यो को सन्मार्ग मे प्रेरित करने वाले विद्वान् (मा प्र युयुज्रे) मुझे भी उत्तम ज्ञान से प्रेरित करें । मैं (जनानां पूषणम्) लोगो के पोषक प्रभु को (अन्तरेण) अपने अन्दर (वहामि) धारण करता हूँ । (देवास.) विद्वान् और प्राण भी (माम् अरक्षन्) मेरी रक्षा करें (दु-शासुः आगात् इति घोष. आसीत) दु खदायी मृत्यु या दुस्साध्य रोग मुझे घेरता है ऐसा हर व्यक्ति चीत्कार करता है ॥१॥

भावार्थ —विद्वत्ता-सम्पन्न आचार्य ही ज्ञान प्रदान कर मनुष्यो को सत्कर्मों की दिशा मे प्रेरित करते है तथा परमात्मा की ओर उनका ध्यान लगाते हैं, जिससे वे शिष्य भी परमात्मा की अपने आन्तरिक भाव सहित अनुभूति करते हैं । विश्व मे वे ही अधिक काल तक जीवन धारते हैं, अन्यथा मृत्यु और कठिन रोग जनित भारी कष्टो को भोगना पडता है ॥१॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२॥

पदार्थ —(सपत्नी) सौतों के तुल्य (पर्शव) आत्मा से स्पर्श करनेवाली मातृदेह की पसलिया (मा अभित तपन्ति) मुझे सभी तरफ से सताती हैं (अमति) अज्ञान (मा नि बाधते) मुझे पीडा देता है और (नग्नता मा नि बाधते) नग्नता जैसे लज्जा, शीत-ग्रीष्मादि से पीड़ा देता है वैसे ही (नग्नता नि बाधते) हे प्रभो ! तेरी स्तुतियोग्य वाणी का अभाव भी मुझे दु खी करता है । ऐसे ही (जसु नि बाधते) मृत्यु का भय भी मुझे बेचैन करता है । (वे न) जैसे पक्षी के तुल्य (मति) मति (मा वे वीयते) नाश करने वाले शिकारी से डरती है ॥२॥

भावार्थ —जिस समय जीवात्मा मृत्यु के उपरांत पुनर्जन्म मे जाता है तो मातृदेह की पसलिया उसे सपत्नियो के तुल्य पीडित करती हैं । अज्ञता एवं कर्मशक्ति की दृष्टि से असमर्थता उसे पीड़ा देती है और मृत्यु का भय भी उसे उसी प्रकार सताता रहता है, जैसे पक्षी शिकारी से भयभीत रहता है ॥२॥

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।

सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥३॥

पदार्थ – (मूष शिश्ना न) चूहा जिस प्रकार रस लिप्त सूत्रो को खा जाता है वैसे ही (शत-क्रतो) हे प्रज्ञावान् प्रभो ! (आध्यः मा वि अदन्ति) मानसिक वासनाए मुझे खाए जा रही हैं । (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (मघवन्) हे उत्तम पदार्थों के स्वामिन् ! (न. सकृत सु मृळय) एक बार हमें मोक्ष दे, खूब सुखी कर । (अध पिता इव न भव) और तू हमारे पिता तुल्य हो ॥३॥

भावार्थ —वासनायें मानव के जीवन को उसी प्रकार खोखला करती जाती हैं, जैसे चूहा अन्न को खाकर भण्डार खाली करता रहता है । इनसे बचने का एकमात्र उपाय परमात्मा की शरण ग्रहण करना ही है, वही उसे मोक्ष प्रदान करता है ॥३॥

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् ।

मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥४॥

पदार्थ —(ऋषिः) अध्यात्म दृष्टि से दर्शनशील मैं उपासक (वाघताम्) कार्य तथा ज्ञान के धारको मे (मंहिष्ठम्) अधिक दानी, (त्रासदस्यवम्) भय-नाशक (कुरु श्रवणम्) ऋत्विजो की प्रार्थना सुनने वाला, तत्पर (राजानं) तेजस्वी, प्रभु को (आ वृणि) प्रार्थना मे लाता हू ॥४॥

भावार्थ —अध्यात्म ज्ञान से सम्पन्न विद्वत जनो से मार्ग दर्शन पाकर उपासक उस परम पिता परमात्मा की नित्य प्रति वन्दना किया करे ॥४॥

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया ।

स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥५॥१॥

पदार्थ—(यस्य रथे) जिसके रमणीय रथ मे (तिस्र हरित) तीन नाडियां (साधुया) उत्तम मार्ग मे (मा वहन्ति) मुझे पहुँचाती है उसी को मैं (सहस्र-दक्षिणे स्तवै) बहुत लाभों के निमित्त स्तुति करता हू । यह रथ देह हैं, इसमे तीन नाड़ी इडा, पिंगला, सुषुम्ना आत्मा को कल्याण मार्ग पर ले जाती हैं ॥५॥

भावार्थ.—जिसके रमणीय रथ मे इडा, पिंगला, सुषुम्ना आत्मा को कल्याण-मार्ग पर ले जाती है, वही परमात्मा स्तुतियोग्य है ॥५॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः ।

क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥६॥

पदार्थ — (यस्य) जिस (पितु.) सभी के पिता के समान (उपम-श्रवसः) उत्तम ज्ञान सम्पन्न प्रभु के (गिरः प्र स्वादस.) उपदेश प्रदत्त वाणियां नितांत सुखप्रद है । सेवनीय आत्मा हेतु (यस्य क्षेत्र रण्वं ऊचुषे) जिसका निवास स्थान भी नितांत रमणीय क्षेत्र, दिव्य अन्न, कर्म फलादि का उत्पादन करने वाला है, मैं उसी सहस्रों दक्षिणा या अन्नादिवत् कर्म फल देने वाले परमात्मा की वन्दना करूं ॥६॥

भावार्थ —मैं उसी परमात्मा की वन्दना करू कि जो सभी को दिव्य अन्न, कर्म फलादि प्रदान करता है । उसी प्रभु की वाणियां सुखदायी हैं ॥६॥

अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि ।

पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥७॥

पदार्थ—हे (पुत्र) प्रजारक्षक ! हे (उपम-श्रव.) ज्ञान के दाता गुरो ! (मित्रातिथे: नपात्) स्नेही एव अतिथि तुल्य स्वल्प काल के लिये तेरे घर आने वाले को नीचे न गिरने देने वाले तू (अधि इहि) हम पर प्रभावी होकर विराजो । (ते पितुः) पिता के तुल्य तुझ पालक का मैं (वन्दिता अस्मि) अभिवादन करता हूं ॥७॥

भावार्थ.—हे प्रजा वत्सल, हे उत्तम ज्ञान देने वाले ! स्नेही और अतिथितुल्य स्वल्प काल के लिये तेरे गृह आने वालो को नीचे न गिरने देने वाला तू हम पर कृपालु रहे । मैं तेरी वन्दना करता हूँ ॥७॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् ।

जीवेदिन्मघवा मम ॥८॥

पदार्थ—(यद्) यदि मैं (अमृतानाम्) अविनाशी तत्त्वो (उत वा) तथा (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा पदार्थों का (ईशीय) स्वामी हूँ तभी (मम मघवा) मेरा आत्मा (जीवेत् इत्) प्राण धारण मे समर्थ होता है ॥८॥

भावार्थ —मेरा आत्मा तभी प्राण धारण करने मे समर्थ होता है जब मैं अविनाशी तत्त्वो तथा विनष्ट होने वाले पदार्थों का स्वामी हो जाता हूँ ॥८॥

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।

तथा युजा वि वावृते ॥९॥२॥

पदार्थ.—(देवानां व्रत अति) विद्वानो द्वारा निर्धारित किये व्रत नियम आदि का अतिक्रमण करके कोई (शतात्मा चन) सौ बरस तक भी (न जीवति) नहीं जीता एव (तथा) उसी प्रकार (युजा) अपने मित्र बन्धु वा देहादि से (वि वावृते) पृथक् हो जाता है ॥९॥

भावार्थ —विद्वानो द्वारा निर्धारित नियमो की अवहेलना करके कोई भी सौ बरस तक नही जीता । उसके सखा भी उसका साथ छोड जाते हैं ॥९॥

इति द्वितीयो वर्ग ॥

---

[३४]

कवष ऐलूषोऽक्षो वा मौजवान् ऋषि । देवता—१, ७, ९, १२, १३ अक्षकृषि-प्रशंसा । २—६, ८, १०, ११, १४ अक्षकितवनिन्दा । छन्द —१, २, ८, १२, १३ त्रिष्टुप् । ३, ९, ११, १४ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

पदार्थ.—(इरिणे वर्वृतानाः) जल रहित सूखे एव ओषधि-रहित प्रदेश मे होने वाले, (प्र-वाते-जाः) निम्न स्थान मे पैदा हुए, (प्रावेपाः) मदोत्पादक, (बृहत) बडे भारी वृक्ष के फल के तुल्य जुए के पासे (मा मादयन्ति) मुझे हर्षित करते हैं । यह (वि-भीदक) बहेडे के वृक्ष से उत्पन्न जुए का गोटा, (मौजवत सोमस्य-इव भक्ष) मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम ओषधि के भक्षण की भांति रस के समान आस्वादन योग्य द्यूत क्रीडन स्थान मे होता है । (जागृवि.) जीता जागता मानो (मह्यम अच्छान्) मुझे फुसलाता है । जुआ आदि कृत्रिम साधन मुझ लोभी पर छाये हुए हैं ॥१॥

भावार्थः—जुआ खेलने के काम मे आने वाले पासे जुआरी को जुआ खेलने मे सोम पान के तुल्य हर्षित करते है और उसे जागृत करते हैं, वह ऐसा समझता है ॥१॥

न मा॑ मिमेथ॒ न जि॑हीळ ए॒षा शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत् ।

अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तोरनु॑व्रता॒मप॑ जा॒याम॑रोधम् ॥२॥

पदार्थ—(एषा) यह मेरी पत्नी (मा न मिमेथ) मुझे दुःख नहीं पहुँचाती, (न जिहीळे) न अनादर करती है । (सखिभ्यः उत मह्यम्) मेरे मित्रों और मेरे लिये सुखकारिणी (आसीत्) है, तो भी खेद है (एकपरस्य अक्षस्य) एकमात्र अक्ष अर्थात् जुए के (हेतोः) कारण (अनुव्रताम् जायाम्) पतिव्रता स्त्री को भी (अप अरोधम्) मैं रख नहीं सकता, उसे भी मैं हार देता हूं ॥२॥

भावार्थः—जुए की लत के प्रति अनुरक्त हो जाने के कारण मनुष्य सुख देने वाली और आदर करने वाली अनुकूल पत्नी को भी स्वयं से पृथक् कर बैठता है ॥२॥

द्वेष्टि॑ श्व॒श्रूरप॑ जा॒या रु॑णद्धि॒ न ना॑थि॒तो वि॑न्दते मर्डि॒तार॑म् ।

अश्व॑स्येव॒ जर॑तो॒ वस्न्य॑स्य॒ नाहं वि॑न्दामि कित॒वस्य॒ भोग॑म् ॥३॥

पदार्थ—जुए मे सर्वस्व खोने वाले जुआरी से (श्वश्रूः) उसकी सास भी (द्वेष्टि) द्वेष करती है । (जाया अप रुणद्धि) पत्नी भी उसे नहीं चाहती है । (नाथितः) दुःखित होने पर भी (मर्डितारं न विन्दते) किसी को भी अपने पर कृपालु नहीं पाता अथवा मांगने पर भी उसे किसी से धन नहीं मिलता । ठीक है, (जरतः अश्वस्य-इव) बूढ़े घोड़े के तुल्य और (जरतः वस्न्यस्य) पुराने वस्त्र के समान (अहं) मैं भी (कितवस्य) जुआरी के जैसा (भोगं न विन्दामि) सुख और रक्षा नहीं पाता हूँ ॥३॥

भावार्थ—जो जुआरी हो जाता है, उससे उसकी सास भी घृणा करने लग जाती है । उसकी पत्नी भी उसे नहीं चाहती । उसे कोई भी सुख देने वाला नहीं मिलता और उचित भोगों से भी वञ्चित रहना पड़ता है ॥३॥

अ॒न्ये जा॒यां परि॑ मृशन्त्यस्य॒ यस्याग्॑धृ॒द्वेद॑ने वा॒ज्य१॒॑क्षः ।

पि॒ता मा॒ता भ्रात॑र एनमाहु॒र्न जा॑नीमो॒ नय॑ता ब॒द्धमे॒तम् ॥४॥

पदार्थ—जुआरी की दुर्दशा । (यस्य वेदने) जिसकी सम्पदा पर (वाजी अक्षः) बलवान् जुए की लत (अगृधत्) ललचा जाता है (अस्य) उसकी (जायां) पत्नी को भी (अन्ये परि मृशन्ति) दूसरे लोग ले लेते है । (पिता माता भ्रातरः एनम् आहुः) पिता माता भ्राता भी उसे लक्ष्य कर कहते हैं कि (न जानीमः) हम इसे नहीं जानते कि यह है कौन ? (एतम् बद्धम्) इसे बांध (नयत) ले जाओ ॥४॥

भावार्थः—जिस धनवान् को भी जुए की लत लग जाती है उसकी पत्नी को अन्य लोग हथिया लेते हैं । उसके माता-पिता और भाई भी उससे नाता तोड़ लेते हैं ॥४॥

यदा॒दीध्ये॒ न द॑विषाण्येभिः परा॒यद्भ्योऽव॑ हीये॒ सखि॑भ्यः ।

न्यु॑प्ताश्च ब॒भ्रवो॒ वाच॒मक्र॑तँ॒ एमीदे॑षां निष्कृ॒तं जा॒रिणी॑व ॥५॥३॥

पदार्थ—मैं व्यसनी (यद् आदीध्ये) जब सकल्प करता हूँ, उनकी चिन्ता करता हूं तब (एभिः न दविषाणि) इन पासों से नहीं खेलूंगा किन्तु (परायद्भ्यः सखिभ्यः) दूर से आने वाले सखा तुल्य जुआरियों से (अव हीये) दब जाता हूँ । वे (बभ्रवः) लाल-पीले रंग के (न्युप्ताः) फेंके जाकर (वाचम् अक्रत) मानो कहते हैं और मैं भी (एषां निष्कृतं) जुए के स्थान पर (जारिणी इव एमि इत्) व्यभिचारिणी नारी के समान चला जाता हूँ ॥५॥३॥

भावार्थ—जब किसी को जुए का व्यसन पड़ जाता है तो उससे बचना उसके लिये बड़ा कठिन होता है । वह जुआ न खेलने का सकल्प ग्रहण करके भी पुराने साथियों को जुए के स्थान पर देखकर पुनः उसी ओर चल पड़ता है ॥५॥३॥

इति तृतीयो वर्गः ।

स॒भामे॑ति कित॒वः पृ॒च्छमा॑नो जे॒ष्यामीति॑ त॒न्वा॒३॒॑ शूशु॑जानः ।

अ॒क्षासो॑ अस्य॒ वि ति॑रन्ति॒ कामं॑ प्रति॒दीव्ने॒ दध॑त॒ आ कृ॒तानि॑ ॥६॥

पदार्थः—(कितवः तन्वा शूशुजानः पृच्छमानः सभाम् एति) जुआरी शरीर से आवेश मे आया हुआ जुआरियों की मंडली मे आता व समझता है कि (जेष्यामि इति) 'मैं अब जीतूंगा ।' (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी को पराजित करने हेतु (कृतानि) कृत नामक अक्षों को (आ दधतः) रखने वाले (अस्य) इस द्यूत-व्यसनी के (अक्षासः) वे अक्ष (कामं वितिरन्ति) धन-अभिलाषा की वृद्धि करते है ॥६॥

भावार्थः—जुआरी आवेश के वशीभूत होकर पुनः जुआरी मंडली मे जीतने की आशा को मन मे संजो कर जाता है । उसकी भावना यह रहती है कि जुए के ये पासे ही मुझे प्रतिपक्षी पर विजय प्रदान कराएंगे ॥६॥

अ॒क्षास॒ इद॑ङ्कु॒शिनो॑ नितो॒दिनो॑ नि॒कृत्वा॑न॒स्तप॑नास्तापयि॒ष्णवः॑ ।

कु॒मा॒रदे॑ष्णा॒ जय॑तः पुन॒र्हणो॒ मध्वा॒ सम्पृ॑क्ताः कित॒वस्य॑ ब॒र्हणा॑ ॥७॥

पदार्थ—ये (अक्षासः इत्) पासे अवश्य ही (अकुशिनः) अंकुशधारी के समान वशीकरण साधनों से सम्पन्न (नि तोदिनः) बैंत आदि के तुल्य कार्य-भार-वाही को व्यथित प्रेरित करने के साधन रखने वाले, (नि-कृत्वानः) वश विच्छेदक, (तपनाः) सूर्य-किरणों के सतापक और (तापयिष्णवः) दुष्टों को सतापित करने वाले, (कुमार-देष्णाः) बुरी तरह मारने वाले और (जयतः) विजय करने वाले (कितवस्य) 'तेरा क्या-क्या' इस प्रकार ललकारने वाले को (पुनर्-हणः) बार-बार दण्डित करने या मारने वाले, (मध्वा) मधु से (सम्पृक्ताः) युक्त वा (मध्वा बर्हणा सम्पृक्ताः) मधु से युक्त विष के तुल्य है ॥७॥

भावार्थ—जुए में जो व्यक्ति जीतता है, उसके लिये भी जुए के पासे अन्ततः पीड़ा देने वाले ही सिद्ध होते है । वे मधुर स्वाद वाले विषाक्त अन्न के समान हैं, अतएव उनसे अलग ही रहना चाहिए ॥७॥

त्रि॒प॒ञ्चा॒शः क्री॑ळति॒ व्रात॑ एषां दे॒व इ॑व सवि॒ता स॒त्यध॑र्मा ।

उ॒ग्रस्य॑ चिन्म॒न्यवे॒ ना न॑मन्ते॒ राजा॑ चिदेभ्यो॒ नम॒ इत्कृ॑णोति ॥८॥

पदार्थ—(एषां) इनका (त्रि-पञ्चाशः व्रातः) ५३ का संघ (सत्य-धर्मा) सत्य धर्म पालक (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी (देवः) स्वामी के जैसा (क्रीळति) खेलता है, वह (उग्रस्य चित् मन्यवे) भयंकर से भयंकर क्रोध के समक्ष (न नमन्ते) नहीं झुकता । (एभ्यः) इनके लिये (राजा चित् नमः इत् कृणोति) राजा भी प्रणाम ही करता है ॥८॥

भावार्थ—जुए के पासों के समूह का प्रभाव भी सूर्य के समान चतुर्दिक् फैलता है । वे पासे भयंकर क्रोध के समक्ष भी नहीं झुकते । राजा तक भी इनके वशीभूत हो जाते हैं, अतएव इनसे सदैव दूर रहना चाहिये ॥८॥

नी॒चा व॑र्तन्त उ॒परि॑ स्फुरन्त्यह॒स्तासो॒ हस्त॑वन्तं सहन्ते ।

दि॒व्या अङ्गा॑रा॒ इरि॑णे॒ न्यु॑प्ताः शी॒ताः सन्तो॒ हृद॑यं॒ निर्द॑हन्ति ॥९॥

पदार्थः—जो लोग (नीचा) नीच वृत्ति के (वर्तन्ते) होते हैं, वे (उपरि) उच्च पद पर विराजकर (स्फुरन्ति) अधीनों को दुःख देते हैं । वे (अहस्तासः) हनन साधनों से रहित हो (हस्तवन्तं) हथियार वालों को (सहन्ते) सहते हैं, वे (दिव्याः) क्रीडाशील, मोदप्रिय बनकर (इरिणे अंगाराः) कूए मे जलते अंगारों के तुल्य (इरिणे) अन्न-जल दाता हेतु भी (अंगाराः) अंगारों के समान सन्ताप-दायक (न्युप्ताः) बने रहते हैं । वे (शीताः सन्तः) ठण्डे, निरपेक्ष और निर्दयी होकर (हृदयं निर्दहन्ति) हृदय को जलाते हैं ॥९॥

भावार्थ—जुए के पासे जुआरी को चाहे जितायें अथवा हरायें, दोनों स्थितियों मे जुआरी के हृदय में अंगारे जलाये रखते है, अतः इनसे दूर रहना ही सर्वोत्तम है ॥९॥

जा॒या त॑प्यते कित॒वस्य॑ ही॒ना मा॒ता पु॒त्रस्य॒ चर॑तः क्व॑ स्वित् ।

ऋ॒णा॒वा बिभ्य॒द्धन॑मि॒च्छमा॑नो॒ऽन्येषा॒मस्त॒मुप॒ नक्त॑मेति ॥१०॥४॥

पदार्थ—(कितवस्य) उच्छृंखल अथवा द्यूतव्यसनी पुरुष की (हीना) हीन हुई (जाया) पत्नी भी (तप्यते) दुःखित होती है और (क्वस्वित् चरतः) कहीं इधर-उधर विचरते व्यसनी पुत्र की (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है । वह (ऋणावा) ऋणी होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता हुआ, (बिभ्यत्) भय खाये, (नक्तम्) रात्रि में (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी हेतु (एति) जाता है ॥१०॥४॥

भावार्थ—जुआरी पति की पत्नी दुःख पाती है तो जुआ खेलने वाले पुत्र की माता भी दुःख ही पाती है । क्योंकि जुआरी ऋण-ग्रस्त हो जाने पर और अधिक धन चाहता है । इसलिये दूसरों के घर में चोरी भी करने लग जाता है ॥१०॥४॥

इति चतुर्थो वर्गः ।

स्त्रियं॑ दृ॒ष्ट्वाय॑ कित॒वं त॑तापा॒न्येषां॑ जा॒यां सुकृ॑तं च॒ योनि॑म् ।

पू॒र्वा॒ह्णे अश्वा॑न्युयु॒जे हि ब॒भ्रून्त्सो अ॒ग्नेरन्ते॑ वृष॒लः प॑पाद ॥११॥

पदार्थः—(कितव - कितव) अन्यों के छीन-झपट करने वाला जुआरी (स्त्रियं दृष्ट्वा ततापः) दुःखी पत्नी को देखकर दुःखित होता है । वह (अन्येषां जायां) औरों की स्त्री तथा (सुकृतं योनिं च) दूसरों के पुण्य कर्म एवं उत्तम रीति से बने घरों को देखकर (ततापः) दुःखी होता है । वह (पूर्वाह्णे बभ्रून् अश्वान् युयुजे) प्रातः ही पोषक इन्द्र प्राणों से युक्त होता है, तो (सः वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद) रात्रि के बाद प्रातः सावधान हो अपने उद्धारार्थ परमात्मा का स्मरण करता है ॥११॥

भावार्थ—जुआ खेलने वाला जुए के परिणाम से अपनी पत्नी को दुःखी पाता है, और दरिद्रता का अनुभव करता है तथा दूसरों के परिवारों को सुखी एवं सम्पन्न देखकर पश्चात्ताप भी करता है तो रात के उपरान्त प्रातः सावधान होकर अपने उद्धार के लिये भगवान् से प्रार्थना भी करता है ॥११॥

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

पदार्थः—हे जुआरियो ! (**वः महतः गणस्य**) तुम्हारे विपुल समुदाय का जो (**सेनानी**) नायक है और जो (**प्रथमः राजा बभूव**) प्रसिद्धतम है (**तस्मै अहं दश प्राचीः कृणोमि**) मैं उसे नमस्कार करता हूं अथवा (**तस्मै दश प्राची कृणोमि न धना रुणध्मि**) उसके लिये मैं धन भी रोक नहीं रखता । (**तत् ऋतं वदामि**) उसके लिये मैं घोषित करता हूं ॥१२॥

भावार्थ—जिस समय जुआ खेलने वाले को इस दुर्व्यसन से पूर्ण ग्लानि हो जाये तो जुआरी के लिये उपयुक्त है कि वह जुआ खेलने वालों के मुखिया के समक्ष अपने जुआ छोडने के सकल्प की घोषणा कर दे । इस दुर्व्यसन से इसी प्रकार बचा जा सकता है ॥१२॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

पदार्थः—हे (**कितव**) जुए मे आसक्त ! तू (**अक्षैः मा दीव्य**) जुए के पासो से मत खेल, प्रत्युत (**कृषिम् इत् कृषस्व**) तू कृषि किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर और उसी को (**बहु मन्यमान**) बहुत मानता हुआ (**वित्ते रमस्व**) प्राप्त धन मे आनन्द प्राप्त कर । हे (**तत्र गाव**) उसी कर्म मे तेरी गौए, (**तत्र जाया**) उसी में पत्नी अर्थात् गृहसुख प्राप्त होता है (**अयम् अर्य सविता**) यह सर्वप्रेरक जगदीश (**मे तत् वि चष्टे**) मुझ उपासक को उसी का उपदेश करने को कहता है ॥१३॥

भावार्थ—जुए मे आसक्त जन का आह्वान किया गया है कि वह उस विषम तथा पाप की कमाई से दूर रहकर अपने परिश्रम से उपार्जित खेती से प्राप्त हुए अन्न का भोग करे । यही श्रेष्ठ है । ऐसा करने से पारिवारिक व्यवस्था सुधर सकती है और परमात्मा भी अनुकूल बनता है ॥१३॥

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥५॥

पदार्थ—हे लोगो ! (**मित्र कृणुध्वम्**) तुम मुझे अपना और अपने को मेरा मित्र बनाओ । (**नः मृळत खलु**) हमे सुखी करो । (**न.**) हमे (**धृष्णु**) दुःख-जनक (**घोरेण**) सतापदायक दबाव से (**मा अभि चरत**) व्यवहार मत करो । (**मन्यु नु विशताम्**) तुम्हारा क्रोध तुम्ही मे रहे (**अन्य· अराति· बभ्रूणां प्र-सितौ नि अस्तु**) अन्य कोई वधक चमकते पासो मे पड़ा न हो ॥१४॥५॥

भावार्थ—जब कोई जुआरी जुआ खेलने से मुह मोड लेता है तो उसके पुराने साथी भी उससे द्वेष करने लग जाते है । जुआ छोडने वाले को उन्हे भी समझाना चाहिये, जिससे वे जुए की लत से बच सकें ॥१४॥५॥

इति पञ्चमो वर्ग· ।

---

[३५]

लुशो धानाक ऋषि ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्द —१, ६, ९, ११ विराड् जगती । २ भुरिग् जगती । ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती । ४, ८ आर्चीस्वराड् जगती । ५ आर्ची भरिग् जगती । १३ निचृत् त्रिष्टुप् । १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

पदार्थ—(**उषस·-व्युष्टिषु**) उषा की पावन वेला मे (**त्ये इन्द्र वन्त-अग्नय**) वे सूर्य के वशीभूत किरणें या प्रभु के आश्रित उपासक विद्वान् जन (**ज्योति भरन्तु**) तेज और ज्ञान को धारण करने वाले (**अबुध्रम्**) प्रबुद्ध होते है । (**मही द्यावा पृथिवी अप चेतताम्**) महान् द्युलोक या नर-नारी अपना कर्म आरम्भ कर देते है (**देवानाम् अव अद्य-आवृणीमहे**) विद्वान् पुरुषो का ज्ञान सत्सग, उनकी रक्षा हम मागते हैं, ताकि अपना जीवन धारें ॥१॥

भावार्थ·—प्रभात काल मे सूर्य की किरणें अन्धकार को हटा कर धरती व आकाश मे प्रकाश फैला देती हैं । जीवन-रक्षार्थ भी उन किरणों का उपयोग आवश्यक है । प्रात काल होते ही प्रभु-उपासक जाग जाते है । वे नर-नारियो को कार्य और व्यवहार के सम्बन्ध मे पथ दर्शाते हैं । उनके रक्षण मे ही जीवन बिताना श्रेयस्कर है ॥१॥

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

पदार्थ—हम (**दिव· पृथिव्यो·**) आकाश एव भूमि लोक के व ज्ञानदाता अन्नदाता के (**अव· आवृणीमहे**) रक्षण को चाहते हैं । (**सिन्धून् मातॄन् शर्यणावत**) ओषधि व वनस्पति निर्माता (**पर्वतान्**) बहुत जलाशयो, मेघो को तथा मनुष्यों के निर्माता सर्वत्र घूमने वाले उपदेष्टा योगियों को हम चाहते हैं (**सूर्य उषासम् अनागास्त्वं ईमहे**) सूर्य और प्रभात के पावन प्रकाश को चाहते हुए विद्या-सूर्य से उस जैसी विदुषी की अज्ञान-रहितता को चाहते हैं । (**सोमः सुवान् अद्य नः भद्रं कृणोतु**) चन्द्र एव नवस्नातक भी हमारा कल्याण करें ॥२॥

भावार्थ—पृथ्वी पर स्थित सरोवर एव आकाश के मेघ हमारे रक्षक है । ये ही औषधियां उपजाते हैं । सूर्य, उषा, प्रभात एव चन्द्रमा प्रकाश प्रदान करने वाले हैं । माता, पिता व उपदेशक के उपदेश को मानने से ही जीवन की रक्षा होती है । परमात्मा ही माता-पिता है और सर्व सखा है तथा प्रतिदिन अग्निहोत्र करने वालों का वह कल्याण करने वाला है ॥२॥

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥३॥

पदार्थ—(**न**) हम (**अनागस·**) पाप-रहितों को (**द्यावा पृथिवी**) सूर्यवत् तेजस्वी एव पृथिवी के तुल्य आश्रय प्रदान करने मे समर्थ, (**मही**) पूज्य (**मातरा**) माता-पिता तुल्य राजा, राजसभा दोनो (**सुविताय**) उत्तम मार्ग पर चलाने एव सुख प्राप्ति हेतु (**त्रायेताम्**) हमारी रक्षा करें । (**उच्छन्ती**) गुण प्रकाशक (**उषा**) प्रभात बेला के तुल्य गुणो से विभूषित विदुषी एव राज्य मे सेना (**अघम् अप बाधताम्**) पाप को रोके । हम (**समिधानम् अग्निम्**) तेज से अग्निवत् प्रकाशक नेताजन एव प्रभु से (**स्वस्ति ईमहे**) सुख की याचना करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ने द्युलोक व पृथिवी निर्दोष लोगो के कल्याण के लिये ही बनाये हैं । प्रात काल की वेला भी मानव के दोष हरती है । समाज की व्यवस्था करने वाली समिति राष्ट्र की रक्षा करती है । घर मे नववधू भी दु ख हटाती है ॥३॥

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

पदार्थ—(**इय**) यह (**प्रथमा**) श्रेष्ठतम, (**उस्रा**) उत्तम पद प्राप्तकर्त्री (**रेवती**) वधू, (**सु-देव्य**) उत्तम सुखदायक, कामनायुक्त पुरुषो के योग्य (**रेवत्**) धनादि-सम्पन्न, (**न सनिभ्य**) हमारे मे से ज्ञानादि-दाता जनो को (**वि उच्छतु**) उषावत् प्रकाशित करे । हम लोग (**दु-विदत्रस्य**) दु खदायी धनवान् के (**मन्यु**) क्रोध तथा अभिमान को (**आरे धीमहि**) दूर हटाए । (**अग्नि समिधानम् स्वस्ति ईमहे**) अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक प्रभु से हम कल्याण की प्रार्थना करें ॥४॥

भावार्थ—घर मे विकसित होती उषा या आई हुई नववधू घर तथा परिवार का विकास करती है । पारिवारिक जनो के लिये प्रकाश, सुख व सन्तान देती है । उस के धर्माचरण मे गृहस्थ प्रभु की ओर चलता है ॥४॥

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥५॥६॥

पदार्थ—जैसे (**व्युष्टिषु**) विशेष प्रकाश होने पर (**उषस सूर्यस्य रश्मिभिः ज्योतिः भरन्ती सिस्रते**) प्रभात वेला सूर्य की किरणों के प्रकाश को अपने मे धारती हुई आती है, वैसे ही (**या उषस**) जो उत्तम कामनायुक्त, विदुषी नारियां (**सूर्यस्य**) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु की (**रश्मिभि**) प्रकाशक तथा नियामक व्यवस्थाओ से (**ज्योति. भरन्ती सिस्रते**) ज्ञान धार कर आगे बढ़ती हैं । वे (**अद्य**) आज (**न. श्रवसे**) हमे अन्न एव श्रवण योग्य हमारे यश एव ज्ञान प्राप्त करने के लिये (**भद्रा**) कल्याणी तथा सुखदायी होकर (**वि उच्छत**) गुणो का प्रकाश करें । (**समिधानं अग्नि स्वस्ति ईमहे**) हम प्रकाश स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर, उससे कल्याण की कामना करते हैं ॥५॥

भावार्थ—प्रात. सूर्य रश्मियां ज्योति प्रदान करती है और धरती का अन्धेरा हटाकर अन्न की उत्पत्ति मे भी सहायता देती है । जिस भांति विद्वान् पुरुष की विदुषी नववधू गृहस्थ मे कल्याण व सुख बरसाती है ॥५॥

इति षष्ठो वर्ग· ।

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

पदार्थ—(**उषस**) प्रभात वेलाए (**अनमीवा न आ चरन्तु**) हमे रोग-रहित करें । प्रजाओ के समान उत्तम वधुए (**अनमीवा**) रोगरहित करने वाली (**न आ चरन्तु**) हमे प्राप्त हो । वे (**अग्नय**) प्रकाशित (**बृहत् ज्योतिषा**) बड़े भारी तेज से (**उत् जिहताम्**) उदय को प्राप्त हो । (**अश्विना**) फिर दिन-रात (**तूतुजिं रथ आयुक्षाताम्**) बलवान् निरन्तर रमणीय ससार से युक्त हो (**समिधानम् अग्निम् ईमहे**) प्रकाशमान तेजोमय विद्वान् वा प्रभु से सुख और कल्याण को पाए ॥६॥

भावार्थ—प्रभात की वेला रोग-निवारण मे सहायक है । अग्निहोत्र भी ऐसा ही है । घर मे वधुए भी रोगों को दूर करने वाली हो और पुरुष भी विद्वान् हो तो घर सुखी होता है ॥६॥

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

पदार्थ —हे (सवितः) हे परमात्मन् ! तू (नः) हमें (अद्य) आज (श्रेष्ठ) सर्वोत्तम (वरेण्यम्) वरणीय मार्ग मे ले चलने वाला (भागम् आ सुव) सेवन योग्य धन आदि दे (सः हि) वह तू (रत्न-धाः असि) रमणीय पदार्थों को धारने वाला और दाता है । हे मनुष्यो ! मैं तुम लोगो को (रायः जनित्रीम्) धन उत्पादक (धिषणाम् उपब्रुवे) वाणी का उपदेश करता हूँ । (अग्निं समिधानं स्वस्ति ईमहे) अग्निवत् ज्ञान से चमकते परमात्मा से हम सुख की याचना करते हैं ॥७॥

भावार्थः—उपासना करने से प्रभु सर्वश्रेष्ठ मोक्ष तथा सांसारिक सुख देता है ॥७॥

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।

विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

पदार्थ—हम (मनुष्याः) विचारशील जन (यत् अमन्महि) जिसका ज्ञान हम चाहते हैं (देवानां) विद्वान् जनो के (ऋतस्य) सत्य ज्ञान एवं यज्ञादि का (तत् प्र-वाचनम्) वह उपदेश व अध्यापन आदि (मा पिपर्तु) मुझे पालन तथा ज्ञान मे पूर्ण करे । (सूर्यः) सूर्यतुल्य ज्ञान का प्रकाशक (विश्वाः उस्राः स्पट्) ऊर्ध्वगामी वाणियो को प्रकाशित करता हुआ (उत् एति) उदय को पाए । ऐसे (समिधानम् अग्निम् स्वस्ति ईमहे) प्रकाश दाता अग्निवत् ज्ञानी से हम सुख देने की प्रार्थना करें ॥८॥

भावार्थ —हम विचारशील जन जिसका ज्ञान चाहते हैं, वह हमे ज्ञान से पूर्ण करे । सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाशक अपनी वाणियो को प्रकाशित करता हुआ उदय को प्राप्त हो । ऐसे प्रकाशदाता अग्निवत् ज्ञानी से हम सुख देने की प्रार्थना करें ॥८॥

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साधं ईमहे ।

आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥९॥

पदार्थ —(अद्य) आज (बर्हिषः स्तरीमणि) वृद्धिशील राष्ट्र के विस्तारक एव (ग्राव्णां योगे) उत्तम उपदेष्टा तथा शत्रु नाशक वीरो का संयोग होने पर (मन्मनः साधे) मनन योग्य ज्ञान के साधना काल में हम (अद्वेष ईमहे) द्वेषरहित जनो को पाएं । हे मनुष्य ! यदि तू (भुरण्यसि) उन्नति चाहता है तो तू (आदित्यानां) सूर्य किरणो के तुल्य ज्ञान प्रकाशक व पृथिवी के उपासक कृषको के तुल्य अन्नोत्पादक जनो के (शर्मणि) दिये सुख मे (स्था) रह । हम (समिधानम् अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रकाशदाता अग्निवत् ज्ञानी पुरुष से अपने कल्याण की प्रार्थना करते हैं ॥९॥

भावार्थ —वृद्धिशील राष्ट्र के विस्तारक तथा उत्तम उपदेष्टा एव शत्रु-संहारक वीरो का संयोग होने पर मननीय ज्ञान के साधना-काल मे हम द्वेषरहित जनो को प्राप्त करें । मानव यदि उन्नति चाहता है तो सूर्य-किरणो के समान ज्ञान-प्रकाशक व पृथिवी के उपासक कृषको के तुल्य अन्नोत्पादक जनो के द्वारा दिये गये सुख मे रहे । हम प्रकाशदाता ज्ञानीजन की अर्चना करें ॥९॥

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥७॥

पदार्थ —हे परमात्मा ! मैं (बृहत् दिवि) महान् ज्ञान-प्रकाश के निमित्त (देवान् ईळे) विद्वान् पुरुषो का सम्मान करूं । हे विद्वन् ! (सध-मादे) साथ-साथ हर्षित होने के स्थान मे (नः) हमारे (बर्हिः) वृद्धिकारक राष्ट्र मे तू (सप्त होतॄन्) यज्ञ मे सात ऋत्विजो के तुल्य सात विद्वान् पुरुषो को (सादय) स्थापित कर । हम (सातये) धनादि के लिये (इन्द्रं मित्रं वरुणं भगं) ऐश्वर्यवान्, सर्वस्नेही, दुःखहर्त्ता, सर्वश्रेष्ठ, (समिधानम् स्वस्ति अग्निम् ईमहे) तेजस्वी ज्ञानी परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना करें ॥१०॥७॥

भावार्थ —हम विद्वानों का सम्मान करें । प्रभु के स्मरण व वन्दना-प्रार्थना से ही व्यक्ति सच्चा सुख व ऐश्वर्य पाता है ॥१०॥७॥]

इति सप्तमो वर्गः ।

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।

बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥११॥

पदार्थ —(आदित्याः) हे परमात्मा ! (ते) वे आप (सर्व तातये) सबके कल्याणार्थ (आगत) आइये । आप (स जोषसः) प्रेम से युक्त हो (नः वृधे) हमारी वृद्धि हेतु, (यज्ञम् अवत) हमारे दिये अन्न यज्ञ आदि को प्रेम से स्वीकारें, हमारे यज्ञ की रक्षा करें । (बृहस्पतिम्) ज्ञान व वाणी पालक, (पूषणम्) सर्वपोषक तथा वर्द्धक (अश्विना) जितेन्द्रिय नर-नारी, (भग) ऐश्वर्यवान् एव (समिधानम् अग्निम्) तेजस्वी, दीप्तिदायक, परमात्मा से हम (स्वस्ति ईमहे) कल्याण की याचना करते हैं ॥११॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! तुम्हीं सबका कल्याण करते हो । वह प्रभु हमारी वृद्धि के लिये हमारे अन्न, यज्ञ आदि प्रेम से स्वीकारे । हमारे यज्ञ की रक्षा करे । हम जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुष व तेजस्वी दीप्तिदायक प्रभु से ही अपने कल्याण की अर्चना करते हैं ॥११॥

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।

पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥

पदार्थ—हे (देवा) विद्वान् गुरुजनो ! आप लोग (नः) हमें (तत्) श्रेष्ठतम (सु-प्रवाचन यच्छत) सुख देने वाले, वचनोपदेश दो । हे (आदित्याः) ज्ञानवान पुरुषो ! आप (नृ-पाय्यम्) मनुष्यो के पालन में समर्थ (सु-भर) उत्तम रीति से पोषण में योग्य (छर्दिः) गृह (यच्छत) दो । (पश्वे) पशु, (तोकाय) पुत्र, (तनयाय) पौत्र इनके (जीवसे) जीवन एव (स्वस्ति) कल्याण हेतु हम (अग्नि समिधानम्) ज्ञानप्रकाशक आचार्य परमात्मा से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१२॥

भावार्थ —हे विद्वानो ! आप हमे श्रेष्ठतम उपदेश दो, सुख का मार्ग बताओ । हे ज्ञानी जनो आप मनुष्यो को उत्तम रीति से पोषण मे योग्य गृह पशु, सन्तान और जीवन दो । हम उत्तम जीवन के लिये आपकी तथा ज्ञान प्रकाशक परमात्मा की ही याचना करते हैं ॥१२॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।

विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥

पदार्थ —(अद्य विश्वे मरुतः) इस जन्म वा जीवन मे सारे प्राण (विश्वे) सारे शरीर अंग (विश्वे समिद्धा अग्नयः) सब सम्यक् सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ (ऊती भवन्तु) रक्षण हेतु हो (विश्वे देवाः नः अवसा-आ गमन्तु) सब विद्वान् हमारे रक्षण के लिये आवें । (विश्वम् द्रविणम् वाज अस्मे अस्तु) विद्यादि सभी धन हमारे लिये आवें ॥१३॥

भावार्थ—परमात्मा ने ही हमे प्राण एव शरीर के अंग प्रदान किये हैं । सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ भी वही देता है । उसी की कृपा से विद्वान् भी हमारी रक्षा करते हैं । उसी ने विद्यादि धन और बल हमे उपयोग को दिये है ॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।

यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४॥८॥

पदार्थः—हे (देवास यं वाज सातौ) विद्वानो ! जिस व्यक्ति को अमृतान्न भोग प्राप्ति से सम्पन्न करते हो (यं त्रायध्वे) जिस अधिकारी को कष्ट वा शत्रु आदि से बचाते हो, (यं अंहः अति पिपृथ) जिसे पाप से पार कर सुरक्षित रखते हो और (यः वः गोपीथे भयस्य न वेद) जो तुम्हारे प्रवचन-पान से भय नहीं जानता उन ऐसे आप लोगो के संरक्षण मे (देव-वीतये) दिव्य भोगो की प्राप्ति वाली मुक्ति के लिये (ते तुरासः स्याम) वे हम संसार-सागर को पार करने मे सदा समर्थ हो ॥१४॥८॥

भावार्थः—हमे विद्वान् जनों के संरक्षण मे रहते हुए दोषों से दूर रहकर ज्ञान का सचय करते हुए संसार रूपी सागर को पार करते हुए दिव्य सुख-युक्त मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये ॥१४॥८॥

इत्यष्टमो वर्गः ।

---

[३६]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता. ॥ छन्द —१, २, ४, ६—८, ११ निचृज्जगती । ३ विराड् जगती । ५, ९, १० जगती । १२ पादनिचृज्जगती । १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।

इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥

पदार्थ —(बृहती उषासा नक्ता) महत्त्वपूर्ण दिन-रात्रि काल या जीवन में अभ्युदय निःश्रेयस (सु-पेशसा द्यावा क्षामा) उत्तम प्रकार निरूपण करने योग्य द्युलोक पृथिवीलोक जीवन में ज्ञान कर्म (मित्रः वरुण.-अर्यमा) अग्नि, मेघ सूर्य अथवा जीवन में श्वास-प्रश्वास मुख्य प्राण (हुवे) इन्हे आमन्त्रित करता हूँ या धारण करता हूँ (इन्द्र मरुत. पर्वतान्) विद्युत् विविध वायुओं पर्वतो को, जीवन में अन्तरात्मा नाड़ीगत प्राणों को, जोड़ो वाले अंगों को, (अप -आदित्यान् द्यावा पृथिवी) जल किरणों प्रकाश भू-भाग जीवन में रस लेने वाले रक्ताशयों तेज बल को (अप -स्वः) अन्तरिक्ष प्रकाश लोक को जीवन में प्रेरक मस्तिष्क को धारता हूँ ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने मनुष्यो के लाभार्थ ही महत्त्वपूर्ण रात और दिन, अग्नि, मेघ, सूर्य, विद्युत्, पर्वत, जल, किरण, प्रकाश, भूतल, अन्तरिक्ष, प्रकाश लोक रचे हैं । उनसे लाभ उठाना चाहिए, तथा अभ्युदय निःश्रेयस श्वास-प्रश्वास मुख्य प्राण, अन्तरात्मा नाड़ीगत प्राण जोड़ो वाले अंग, रस प्राप्त करने वाले रक्ताशय, तेज व बल धारक रोम छिद्रादि व मस्तिष्क जीवन में धारने योग्य उपयोगी पदार्थ उसी के द्वारा रचे गये हैं ॥१॥

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।

मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥

पदार्थ —(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य एव पृथिवी तथा उनके तुल्य सर्वाश्रय व अन्नदाता (प्रचेतसा) ज्ञानवान्, उदार चित्तयुक्त, (ऋतवरी) जलवत् शान्ति-

दायी एवं अन्नवत् पुष्टिकारक, जन (नः) हमारी (रिषः) विनाशक (अंहसः) पाप से (रक्षताम्) रक्षा करें । (दुः-विदत्रा) दुःखदायी, (निर्ऋतिः) कष्टदशा (न मा ईशत) हम पर प्रभाव न करे । (तत्) इसीलिये (अद्य) आज हम (देवानाम्) विद्वानों एवं मेघ, भूमि, सूर्य आदि के (अवः) बल की (वृणीमहे) प्रार्थना करें ॥२॥

भावार्थ—सूर्य और पृथिवी संसार में चेतना तथा जल देने वाले तथा अन्धकार एवं पीड़ा से रक्षा करने वाले हैं । इनसे उचित लाभ लेकर हम अपनी रक्षा कर सकते हैं । विद्वान् जन भी हमें आपत्तियों से बचाते हैं । हम उनकी भी वन्दना करें ॥२॥

विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३॥

पदार्थ—(मित्रस्य) स्नेही वायु तुल्य जीवन-रक्षक तथा (वरुणस्य) दुःख-निवारक, राजा आदि और (रेवतः) ऐश्वर्य-सम्पन्न की भी (माता) जननी के समान उत्पादक, उनको भी शासक आदि बनाने वाली (अदितिः) शक्ति-युक्त, ब्रह्म-शक्ति और राजसभा (नः विश्वस्मात् अंहसः पातु) हमें सभी प्रकार के पापों से बचावे । हम (अवृक) अहिंसाकारी एवं कष्टों और छल-कपट से रहित (स्वर्वत् ज्योतिः) तेज प्रकाश को (नशीमहि) प्राप्त करें । (तत् देवानां अवः अद्य) हम विद्वानों व दिव्य पदार्थों के इसी ज्ञान तथा सामर्थ्य को (वृणीमहे) पाएँ ॥३॥

भावार्थः—स्नेही एवं वायुवत् जीवन रक्षक और दुःख निवारक राजा आदि तथा ऐश्वर्यवान् की भी जननीतुल्य उत्पादक को शक्ति-युक्त राजसभा ही शासक बनाती है । वह हमें सभी पापों से बचाये । हम छल-कपट से रहित हो तेज व प्रकाश पाएँ ॥३॥

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुःष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(वदन्) उपदेश करता हुआ, (ग्रावा) शत्रुओं का मर्दनकर्ता क्षत्रिय और उपदेष्टा विद्वान् (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (अप सेधतु) भगाये । वह (दुः-स्वप्न्यं) दुःखकारी शयन, (निर्ऋतिम्) पीड़ा, क्षुधा आदि एवं (विश्वम् अत्रिणम्) सर्व प्रकार के प्रजाओं के भक्षकों को (अप सेधतु) दूर भगाये । हम लोग (आदित्य) 'अदिति' अर्थात् सूर्य, भूमि, माता, पिता, पुत्र, राजा आदि से प्राप्ति योग्य (मरुतां शर्म) विद्वानों के सुख को (अशीमहि) पाएं । हम (देवानां तत्) विद्वानों एवं दिव्य पदार्थों के उस (अवः) ज्ञान व बल आदि की (वृणीमहे) सदैव कामना करें ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् उपदेशक अपने उपदेशों के द्वारा मनुष्य के जीवन में बाधक आलस्य आदि एवं जागृत अवस्था में मृत्यु, भय व शोक को दूर भगाता है । इस भांति ऐसे ऊंचे जीवन्मुक्तों की शरण की हम सदैव कामना करें ॥४॥

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५॥९॥

पदार्थ—(इन्द्रः) तेजस्वी जन (बर्हि आसीदतु) आसनवत् प्रजा पर अधिष्ठित हो । (इडा) भूमि व वाणी, ये (पिन्वताम्) सबको तृप्ति दें । (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक (ऋक्वः) अर्चना-साधनों का ज्ञाता, (सामभिः) साम-गायनों में उद्गाता के तुल्य (अर्चतु) पूज्यों की वन्दना करे और हम (जीवसे) जीवन हेतु (मन्म) मननीय (सु-प्रकेतम्) श्रेष्ठ ज्ञान व धन को (धीमहि) धारें । (देवानां तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के उस ज्ञान, रक्षा आदि की कामना करें ॥५॥९॥

भावार्थ—जीवन तभी सफल हो सकता है जब जीवन-वृद्धि हेतु वह तेजस्वी हृदय में साक्षात् हो । अन्न रस आदि से हमारे शरीर को पुष्टि दें । आत्मा उत्तम वाणी से प्रभु की वन्दना अर्चना करें । बुद्धि भी उत्तम और श्रेष्ठ ज्ञान को पा ले ॥५॥९॥

इति नवमो वर्गः ।

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या प्राप्त करने वाले, वेगवान् अश्वों के स्वामी-तुल्य स्त्री पुरुषो ! आप (अस्माकम्) हमारे (इष्टये) इष्टलाभ हेतु (यज्ञ) दान, अर्चनादि को (दिविस्पृशम्) कामनामय मार्गगामी, (जीराध्वर) प्राणियों का नाश न करने वाला तथा (सुम्न) सुखदायक (कृणुतम्) बनाओ और (प्राचीन-रश्मिम्) अग्रगामी रश्मि-युक्त अग्नि को (घृतेन) घृत से (आहुतम् कृणुतम्) आहुति-युक्त करो । हम (तद् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) देवों-विद्वानों के उस ज्ञान को पाएं ॥६॥

भावार्थः—उत्तम विद्वान् और उपदेशक हमारे इष्ट लाभ के लिये हमें उत्तम ज्ञान और अध्यात्म का आनन्दमय मार्ग बताने वाले हों । जिससे कि हमारा जीवन भयरहित व कल्याण-मार्ग का अनुसरण कर सके । हमें देवों का ज्ञान प्राप्त हो सके ॥६॥

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७॥

पदार्थः—मैं (सु-हव) यज्ञशील, उत्तम नाम धारने वाले (मारुत गणम्) वायुवत् बली जनों के समान प्राणगण को (उप ह्वये) पास बुलाऊं । मैं (सख्याय) मित्रभाव हेतु (शंभुवम्) शान्तिदायक, (ऋष्व) महान् (पावकम्) पवित्रकर्ता परमात्मा की (उप ह्वये) वन्दना करता हूं । (सौश्रवसाय) उत्तम सुख पूर्वक ज्ञानादि हेतु हम (राय पोषम् धीमहि) धन के परिपोषक को धारें । (देवानां तद् अवः अद्य वृणीमहे) विद्वानों के उस ज्ञान, धन बलादि को हम प्राप्त करने की इच्छा रखें ॥७॥

भावार्थ—हमें उच्च यज्ञशील और उत्तम विद्वानों की ही संगति करना चाहिए । उनसे ही उपदेश, ज्ञान व बल प्राप्ति की इच्छा करनी चाहिये । प्रभु की कृपा से ही ऐसा होना सम्भव होता है, अतः मैं उसकी वन्दना करता हूं ॥७॥

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

पदार्थः—हम लोग (अपां पेरुम्) जल-पालक मेघ वा समुद्र तुल्य प्रजा और प्राणों के रक्षक (देव-अव्यम्) विद्वानों से प्राप्य कामनावान् जनों से स्वामीवत् प्रेम करने योग्य, (सु-हव) सुखप्रद, सुगृहीत नाम वाले, उत्तम देने वाले, (अध्वर-श्रियम्) यज्ञ की शोभा धारने वाले, अविनाशी सम्पदा युक्त, प्रभु को (भरामहे) धारें और हम (सु-रश्मिम्) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य या अश्व-सारथिवत् (सोमम्) जगत् वा देह प्रेरक के तुल्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यों के स्वामी, इन्द्रियों के प्रमुख, प्रभु आत्मा को (यमीमहि) संयम से प्राप्त करें । (तत् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान और प्राणों का वह बल भी पाएं ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा ही पालक, मेघ व समुद्रवत् प्रजा और प्राणों का रक्षक, यज्ञ की शोभा को धारण करने वाला, अविनाशी सम्पदा-युक्त है । हम उसी की वन्दना करें । हम इन्द्रियों के प्रमुख, प्रभु आत्मा को संयम द्वारा प्राप्त करें । हमें विद्वानों का वह ज्ञान और प्राणों का बल भी प्राप्त हो ॥८॥

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥

पदार्थ—(वयम्) हम (अनागसः) पाप-मुक्त (जीव-पुत्रा) जीवित पुत्र युक्त, (जीवा) स्वयं जीवित रहते हुए (सनित्वभिः) दानशील जनों सहित, (सुसनिता तत् सनेम) सुखपूर्वक सेवनीय व दान आदि से उस प्रभु का भजन, सेवा, आदि करें और (ब्रह्म-द्विष) विद्वानों, वेदों तथा आत्मा, परमात्मा के द्वेषी लोग (एनः) पाप आदि अपराध को (विष्वक् भरेरत) सब प्रकार भोगें, वे पाप का दण्ड पाएं । (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों एवं दानशील जनों के उस श्रेष्ठ स्नेह को पाएं ॥९॥

भावार्थ—पापमुक्त जीवित माता-पिता स्वयं जीवित रहते हुए अपने पुत्र को दानशील व सुखी बनाते हैं । परमात्मज्ञान को प्राप्त विद्वज्जनों द्वारा दिए गए परमात्मज्ञान के हम भागी बनें । परमात्मा के द्वेषी नास्तिक अपने पापों का फल पाते हैं ॥९॥

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (मनो) मननशील आत्मा की (यज्ञिया) पूजा में रत (स्थ) हो, (ते) वे आप (शृणोतन) आत्मा का श्रवण करो और हे (देवा) दानशील व्यक्तियो ! हम (वः यत् ईमहे) आपसे जो ज्ञान की प्रार्थना करते हैं ! (तत् ददातन) उसे धारण कराओ । हमें (जैत्र क्रतुम) संकटों पर विजय दिलाने वाले ज्ञान और कर्म-बल तथा (रयिमत् वीरवत् यशः) धनों व पुत्रों से युक्त यश आदि दो । (अद्य देवानाम् अवः वृणीमहे) हम ज्ञानी, दानशील विद्वानों का रक्षण पाएं ॥१०॥

भावार्थ—हे जीवन्मुक्त विद्वानो ! अपने आयु भर के अर्जित ज्ञान को दूसरों को प्रदान कर उन्हें पाप व अज्ञान पर विजय पाने का पुष्टिप्रद, प्राणदाता व यश-वर्धन करने वाला उच्च ज्ञान प्रदान करो ॥१०॥

इति दशमो वर्गः ।

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

पदार्थ—(अद्य) आज, हम (महताम्) बड़े (अनर्वणाम्) अहिंसक (बृहताम्) ज्ञान आदि में बढ़े हुए (देवानाम्) विजय की कामना पूर्ण करने वाले और दानियों की (अवः आवृणीमहे) शरण चाहते हैं । (यथा) जिससे (वीर-जातं) हम वीर पुत्र व (वीर-जात वसु) वीरों से प्राप्य ऐश्वर्य को (नशामहै) पाएं । (देवानाम् अद्य तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के उस उत्तम बल ज्ञान तथा रक्षा आदि की कामना करते हैं ॥११॥

भावार्थः—हमारे लिए यही उचित मार्ग है कि हम श्रेष्ठ और महान् विद्वत्-जनों से ज्ञान का उपदेश ग्रहण करें और अपने प्राणादि के बल को सम्पन्न और सुदृढ बनाए । हमारी ऐसी ही कामना हो ॥११॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

पदार्थः—(महः) महान् (समिधानस्य) देदीप्यमान परमात्मा के (शर्मणि) सुख में रहें । हम (स्वस्तये) कल्याण प्राप्ति हेतु (मित्रे) स्नेहवान् (वरुणे) प्रभु के अधीन (अनागाः स्याम) अपराध मुक्त होकर बसें और (सवितुः) उत्पादक जगदीश के (श्रेष्ठे सवीमनि) श्रेष्ठ शासन में (स्याम) निवास करें । (देवानाम् तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानो का महान् ज्ञान व बल तथा स्नेह पाए ॥१२॥

भावार्थः—हम देदीप्यमान प्रभु की शरण मे रहे । हम कल्याण प्राप्ति के लिए स्नेहवान् परमात्मा के अधीन अपराध-रहित होकर रहें और हमें विद्वानो का महान् ज्ञान तथा बल प्राप्त हो ॥१२॥

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

पदार्थः—(ये) जो (देवा) विद्वान् (सत्य-सवस्य मित्रस्य) सत्य-स्वामी (वरुणस्य) दुःखों को दूर करने वाले प्रभु के (व्रते) व्रत मे रत हैं, (ते विश्वे) वे (वीरवत्) वीरों से युक्त (गोमत्) वाणियो, भूमियो एवं पशुओ से समृद्ध, (सौभगं) ऐश्वर्य, (अप्नः) ज्ञान, कर्म व (चित्र) अद्भुत (द्रविण) धन (अस्मे) हमें (दधातन) दें ॥१३॥

भावार्थः—जो विद्वान् सत्य के स्वामी, दुःखो को दूर करने वाले, प्रभु के व्रत मे तत्पर हैं, वे वीरो से युक्त वाणियो, भूमियों एव पशुओ से समृद्ध ऐश्वर्य, ज्ञान, कर्म और अद्भुत धन हमें प्रदान करें ॥१३॥

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥११॥

पदार्थः—(सविता पुरस्तात्) उत्पादक परमात्मा हमारे आगे हो (सविता पश्चातात्) सन्मार्ग मे चलाने वाला प्रभु हमारे पीछे हो, (सविता उत्तरातात्) ऐश्वर्यवान् जगदीश हमारे उत्तर मे, बायें या ऊपर हो और (अधरातात् सविता) वही प्रभु हमारे दक्षिण मे अथवा नीचे भी हो । (सविता न सर्वताति सुवतु) वह सर्वोत्पादक जगदीश हमारा अभिलषित सुख हमे दे । (सविता न दीर्घम् आयु रासतां) वह सर्वप्रेरक परमात्मा हमें दीर्घ आयु देवे ॥१४॥११॥

भावार्थ —रचयिता और प्रेरक प्रभु के आदेश के अनुसार रहने पर वह सभी दिशाओं मे हमारी रक्षा करता है और हमें कल्याणदायी वस्तुएं तथा दीर्घ जीवन देता है ॥१४॥११॥

इत्येकादशो वर्गः ।

[३७]

अभितपा सौर्य ऋषि ॥ छन्द —१—५ निचृज्जगती । ६—६ विराड् जगती । ११, १२ जगती । १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१॥

पदार्थः—(मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे) प्रेरक दिन तथा ससार के अपनी प्रकट करने वाली रात तथा प्रलय के प्रसिद्ध करने वाले प्रभु के लिए (नमः) अध्यात्म यज्ञ हो (महे देवाय) परमात्मा के लिए (तत् ऋतं सपर्यत) उस सत्य वचन को समर्पित करो । (दूरे दृशे) जिसकी दूर तक दृष्टि शक्ति है ऐसे प्रभु एव (चक्षसे) दिखाने वाले (महः देवाय) बडे भारी प्रकाशस्वरूप प्रभु के (देव जाताय) अग्नि आदि देव जिससे प्रकट होते हुए ऐसे (केतवे) ज्ञानस्वरूप, (दिवः पुत्राय) मोक्षधाम को पापो से पवित्र करने वाले (सूर्याय) सबके प्रेरक प्रभु के लिए (शंसत) स्तुति करो ॥१॥

भावार्थः—उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सत्य-सकल्प, सत्य-भाषण एवं सत्यकर्म युक्त आचरण करना आवश्यक है, जो दिन-रात ससार एव प्रलय भी क्रमशः प्रकट करने वाला है । वह दूरदर्शी, सत्यद्रष्टा, सकल अग्नि आदि शक्तियो का उत्पादक तथा वेद ज्ञान द्वारा सतर्क करने वाला और मोक्षदाता है । उसी की हम सदैव वन्दना करें ॥१॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(यस्य) जिसके आश्रय में (द्यावा च अहानि च) दिन तथा रात्रियां भी (ततनन्) उपजती हैं, (यत् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जड़ से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय मे (नि-विशते) बसा है और जिस के आश्रय पर (आपः विश्वाहाः) नदी, समुद्रादि एव सकल प्रजाएं स्थित है, (विश्वाहा सूर्यः उदेति) जिसके आश्रय पर सूर्य निकलता है । (सा सत्योक्ति) वह सत्य वचन (मा विश्वतः परिपातु) मेरी सर्व प्रकार रक्षा करें ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा इस जगत् को चला रहा है, जिसकी वेदवाणी मे जड़ चेतन समस्त प्रजाएं स्थित हैं, जिसके आश्रय पर सूर्य उदित होता है, वही मेरी सर्व प्रकार से रक्षा करे ॥२॥

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३॥

पदार्थः—(यत्) जैसे सूर्य (एतशेभि पतरै) वेगवान् अश्वों के समान श्वेत किरणों से (रथर्यसि) प्राप्त होता है, और कोई (अदेव न निवासते) पदार्थ अप्रकाशित नहीं रहता है, (प्राचीनं रज अनु वर्तते) तब उसका एक प्रकाश जहाँ पूर्व दिशा की ओर प्रकटता है और (अन्येन ज्योतिषा याति) दूसरे, पश्चिमगामी, ज्योति से अस्त होता है ऐसे ही, हे (सूर्य) सूर्य के समान उदय-अस्त होने वाले आत्मन् ! (यत्) जो तू (पतरै.) गमनशील (एतशेभि) अश्ववत् प्राणो से (रथर्यसि) देहरूपी रथ से प्राप्त होता है, तब (ते) तेरा कोई भी (प्र दिव) पुरातन अंश (अदेव) अप्रकाशित (न निवासते) नहीं रहता । हे (सूर्य) प्रेरक आत्मन् ! (अन्यत) एक विशेष (प्राचीनं) नितान्त उत्तम (रज.) जल अथवा उत्पादक वीर्य (अनु वर्तते) विकसित हो प्राणिरूप मे प्रकटता है और (अन्येन ज्योतिषा) एक दूसरे ही प्रकार के तेज मे तू इस देह से (उत् यासि) उत्क्रमण पाता है ॥३॥

भावार्थः—जिस भाँति सूर्य वेगवान् अश्वो के तुल्य श्वेत किरणों मे किसी भी पदार्थ को अप्रकाशित नही रहने देता वैसे ही सूर्य के तुल्य उदय-अस्त होने वाली आत्मा तू भी देह रूपी रथ को प्राप्त होती है और तेरा कोई भी पुराना अंश अप्रकाशित नहीं रह जाता । हे आत्मन् ! तू एक दूसरे ही प्रकार के तेज से इस देह से उत्क्रमण करता है ॥३॥

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥४॥

पदार्थः—हे (सूर्य) प्रभो ! तुम (येन ज्योतिषा तम बाधसे) जिस तेज से अन्धकार मिटाता है और (येन भानुना) जिस प्रकाश से (विश्वम् जगत् उत् इयर्षि) सकल ससार को उपजाता है, (तेन) उससे तुम (अस्मत्) हमसे (विश्वाम्) सकल (अनिराम्) अन्न-जल के अभाव, (अनाहुतिम्) यज्ञादि की कमी, (अमीवाम्) रोग-व्याधि, (दु स्वप्न्य) दु स्वप्न आदि के कारण को (अप सुव) मिटा दे ॥४॥

भावार्थ —हे प्रभो ! तुम जिस तेज अन्धकार को हरते हो और जिस प्रकाश से सकल ससार को जन्म देते हो उससे तुम हमसे समस्त अन्न जल, यज्ञादि के अभाव, रोग व्याधि एव दु स्वप्न आदि के कारणो को दूर कर दो ॥४॥

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मा ! तू (प्रेषितः) भक्तों द्वारा काम्य है । तू (अहेळयन्) किसी का अपमान न करता हुआ, (विश्वस्य हि व्रतम् रक्षसि) सबके व्रतो, कर्मों एव जगत् के नियम की रक्षा करता है । हे प्रभो ! (अद्य) आज (यत् त्वा उप ब्रवामहै) हम जिस कर्म की तुझसे उपासना के द्वारा याचना करते हैं (तत् क्रतुम्) उस कर्म की (देवा अनु मंसीरत) विद्वान् हमे अनुमति दें ॥५॥

भावार्थः—हे पमात्मा ! भक्त जन तेरी कामना करते है । तू किसी को अपमानित न करता हुआ सबके व्रतो, कर्मों तथा जगत् के नियमो की रक्षा करता है । हे प्रभो ! आज हम जिस कर्म की तुझसे याचना करते हैं, उस कर्म की विद्वत् जन हमे अनुमति प्रदान करें ॥५॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६॥१२॥

पदार्थः—(द्यावापृथिवी) माता-पिता, (नः त हव शृण्वन्तु) हमारे उस आह्वान को सुनें । (आपः) आप्त जन हमारे (तं) उस आह्वान पर ध्यान दें । (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् वीरजन एवं (मरुतः) वायुवत् बलवान् (न वच शृण्वन्तु) हमारे वचन श्रवण करें । (सूर्यस्य स-दृशि) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु एव शासक के प्रकाशमय दर्शन के अधीन हम (शूने मा भूम) शून्य व निस्सार न रहें, अपितु (भद्र जीवन्त) सुखदायी जीवन बिताते हुए (जरणाम् अशीमहि) वृद्धावस्था पाए ॥६॥

भावार्थः—माता-पिता हमारे इस आह्वान को सुनें, आप्त जन हमारे इस आह्वान पर ध्यान दें । ऐश्वर्यवान् वीरजन एव वायुवत् बलवान् हमार वचन सुनें । सूर्यतुल्य तेजस्वी प्रभु एव शासक के प्रकाशयुक्त दर्शन के अधीन हम शून्य निस्सार न रहे अपितु सुखदायी जीवन बिताते हुए जरा-अवस्था को प्राप्त करें ॥६॥

इति द्वादशो वर्गः ॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

पदार्थः—हे (सूर्य) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! हम (विश्वाहा) सर्वदा (सु-मनस) शुभ्र मन युक्त (सु-चक्षसः) उत्तम ज्ञान-नयनों से सम्पन्न, (प्रजावन्त) उत्तम प्रजा वाले, सुसन्तानवान्, (अनमीवाः) रोगरहित, (अनागसः)

च निरपराध हों । हे (मित्र-मह) स्नेही जनो से पूज्य ! हम तुझे (दिवे-दिवे उत् यन्त पश्येम) दिन प्रतिदिन ऊपर उठता देखें । हम (जीवाः) जीवन मे (ज्योक् प्रति पश्येम) चिरकाल तक तेरा दर्शन करें ॥७॥

भावार्थः—हे सूर्य के समान सर्वप्रकाशक प्रभो ! हमे सदैव स्वस्थ, सम्पन्न एव सन्तानयुक्त रख । हम जीवन मे चिरकाल तक तेरी अर्चना, वन्दना तथा दर्शन करते रहें ॥७॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।

आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

पदार्थ —हे (विचक्षण) जगत् के द्रष्टा ! (चक्षुषे-चक्षुषे) प्रत्येक नेत्र के लिये (मय) सुख तथा (महि ज्योति बिभ्रतम्) महान् तेज को धारत हुए (भास्वन्त) प्रकाश से दीप्त और (बृहत पाजस परि) महान् समुद्र पर उदित होते सूयवत् (बृहत पाजस परि) प्रचंड बल से चलने वाले विश्व के सञ्चालक, काल के ऊपर (आरोहन्त) चढ़े हुए, हे (सूर्य) सूर्य ! प्रभो ! (त्वा) तुझे हम (प्रति पश्येम) साक्षात् देखें ॥८॥

भावार्थ·—हे जगत् द्रष्टा, प्रत्येक नेत्र हेतु सुख और बड़े भारी तेज से धारण किये हुए प्रकाश से आलोकित एव महान सागर पर उदय होते सूर्य के समान विश्व-सञ्चालक, काल के ऊपर चढ़े हुए, हे सूर्य ! हे प्रभो ! तुझे हम साक्षात् देखें ॥८॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।

अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

पदार्थ —हे (हरि-केश) प्रभु ! हे तेज किरणो वाले ! (यस्य ते) जिस तेरे (केतुना) ज्ञान के प्रकाश से (विश्वा भुवनानि) सकल लोक (प्र ईरते च) भली प्रकार चलते हैं और (ते अक्तुभि.) तेरे प्रकाशो से (प्रति विशन्ते च) भली भांति स्थिर है । वह तू (अनागास्त्वेन) पाप आदि से रहित करता हुआ (वस्यसा-वस्यसा) श्रेयस्कर (अह्ना अह्ना) दिन-प्रतिदिन (उत् इहि) उदय को प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ -- हे प्रभु ! हे तेज किरणो वाले, तेरे ज्ञान के प्रकाश से ही सकल लोक आलोकित है, उसी मे वे सुस्थिर हैं । तुम पापरहित श्रेयस्कर दिन-प्रतिदिन उदय को प्राप्त हो ॥९॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।

यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०॥

पदार्थ·—हे (सूय) सर्वप्रेरक परमात्मा ! तू (चक्षसा) सर्वशक्तिमान् तेज द्वारा (न श भव) हमे शान्ति देने वाला हो । (न अह्ना श) दिन के समान बल से हमे शान्ति दे । (हिमा श) तू शीतलस्वरूप से हमे शान्ति प्रदान कर । (घृणेन शम्) अपने ताप से सम्पन्न तेजस्वी स्वरूप से हमे शान्ति प्रदान कर । (भानुना शम्) हम स्व रूप से शान्ति दे । तू (तत्) वह परम (चित्र द्रविण धेहि) ज्ञानमय ऐश्वर्य दे (यथा) जिससे (अध्वन् शम असत्) जीवनमार्ग मे हमे शान्ति मिले । (दुरोणे शम् असत्) हमे गृह मे भी शान्ति प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थ हे सर्वप्रेरक प्रभो ! तू सर्वशक्तिमान् तेज द्वारा अपने ताप से युक्त तेजस्वी स्वरूप से हमे शान्ति प्रदान कर । स्व रूप से शान्ति दे । हे ज्ञानमय ! तू हमे ऐसा ऐश्वर्य दे कि हमे जीवनमार्ग मे शान्ति मिले और हमारे परिवार में भी शान्ति रहे ॥१०॥

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।

अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११॥

पदार्थ —हे (देवा) विद्वान जनो ! आप (उभयाय जन्मने) दोनो प्रकार के जन्म लेने वाले (द्विपदे चतुष्पदे) दोपाय मनुष्यों और चौपाये पशुओ को (शर्म यच्छत) सुख प्रदान करो । (अदत पिबत्) खाया, पिया और (आशितम्) प्राप्त पदार्थ भी (ऊर्जयमानम्) बल उत्पन्न करने वाला हो । आप लोग (अस्मे) हमे (अरप) निष्पाप (श यो) दु खनाशक वस्तु (दधातन) दें ॥११॥

भावार्थ —हे विद्वत जनो ! हे जीवन-मुक्त और प्रभु की उपासना करने वालो ! अपने सत्योपदेश से हमे और हमारे पशुओ के हित को आप साधते हो और उन्हे निर्दोष सुख प्रदान कराते हो । सूय की किरणों तथा उनके जानने वाले विद्वान हमे और हमारे पशुओ को उत्तम जीवन देते हैं ॥११॥

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।

अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन

॥१२॥१३॥

पदार्थ —हे (देवा) उपासको ! विद्वानो ! (व) तुम्हारे प्रति (जिह्वया) वाणी द्वारा (यत्) जो हम (गुरु देवहेळनम् चकृम) महान् विद्वानो का अत्यधिक अनादर करते हैं (वा) अथवा (मनस प्रयुती) मन के प्रयोग से अपराध करते हैं तो (य) जो (न.) हमारे बीच (अरावा) अदानशील, दुष्ट शत्रु (न अभि) हम पर चारो ओर से (दुच्छुनायते) कष्ट देना चाहता है, (तस्मिन्) उसके लिए उस पर हे (वसव) विद्वान् जनो ! (तत् एन) वह पाप (नि धेतन) प्राप्त कराओ ॥१२॥

भावार्थ —हे उपासको ! हे विद्वानो ! तुम्हारे प्रति कभी भी मन, वाणी या आचरण से पाप नही करना चाहिये और न क्रोध हो । अपितु जो अपने प्रति द्वेष या ईर्ष्या करने वाले हों उनके ऐसे आचरणों को भी उपदेशो से दूर करने का प्रयास होना चाहिए ॥१२॥

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३८]

इन्द्रो मुष्कवान् *ऋषि* ॥ इन्द्रो *देवता* ॥ छन्द —१, ५ *निचृज्जगती* । २ *पादनिचृज्जगती* । ३, ४ *विराड् जगती* ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।

यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१॥

पदार्थः—जैसे (इन्द्र) हे ऐश्वर्य सम्पन्न (यशस्वति शिमीवति) यश वाले सग्राम मे (अस्मिन् पृत्सुतौ) इस सघर्ष मे (सातये नः प्र अव) विजय प्राप्ति के लिये हमारी रक्षा कर (यत्र गोषाता) जिसमे राष्ट्र की धरती की प्राप्ति व रक्षा के लिये (विष्वक् पतन्ति नृषाह्ये) मनुष्यो को सहन करने योग्य (धृषितेषु खादिषु) एक दूसरे को खा जाने वाले कठोर योद्धाओं मे (विष्वक् पतन्ति) तीक्ष्ण धार वाले बाण गिरते या चलते हैं ॥१॥

भावार्थ —राजा के लिये यह आवश्यक है कि प्रजा और मनुष्यों की रक्षा हेतु सग्राम मे विनाशक शत्रु सैनिकों पर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रो से आक्रमण करे ॥१॥

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।

स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२॥

पदार्थ·—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जिस भाति सूर्य (क्षुमन्तं गो-अर्णसं रयिम् वि ऊर्णोति) अन्न से भरी भूमि के धनरूप ऐश्वर्य को प्रकटाता है उसी प्रकार (सः) वह तू (न सदने) हमारे आश्रय मे (क्षुमन्तम्) शब्द-उपदेशमय, (श्रवाय्यम्) श्रवणीय (गो अर्णसम्) वेदवाणी तथा धन से युक्त (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य को (वि ऊर्णुहि) प्रकटा । (जयत ते) तेरे विजय करते हुए हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हम (मेदिन स्याम) बलवान् वीरजन हों । हे (वसो) सबके बसाने वाले ! प्रभु ! (यथा वयम् उश्मसि) हम जो कामना करें तू (तत् कृधि) उसे पूर्ण कर ॥२॥

भावार्थ —हे ऐश्वर्यवन् ! जिस भांति सूर्य अन्नयुक्त भूमि के धनरूप ऐश्वर्य को प्रकटाता है उसी प्रकार तू हमारे आश्रय मे शब्द उपदेश से युक्त श्रवणीय वेद-वाणी तथा धन से युक्त ज्ञानैश्वर्य को प्रकट कर । हे सर्वशक्तिमन् ! तू हमारी कामनाए पूर्ण कर ॥२॥

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।

अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम संगमे ॥३॥

पदार्थ.—हे (पुरु-स्तुत) प्रमुख शासक ! (य) जो (न) हमारे मध्य (दास) हमारा भृत्य और (आर्य) श्रेष्ठजन, (अदेव·) हमारे अधिकार तथा ऋण आदि को न देता हुआ (युधये चिकेतति) युद्ध करने हेतु सोचता है, (ते) तेरे वे सभी शत्रु (अस्माभि·) हमारे द्वारा (सु-सहा· सन्तु) परास्त हो और (त्वया) तेरे द्वारा (वय) हम भी (तान्) उन अरिजनों को (सगमे) सग्राम मे (वनुयाम) नष्ट करें ॥३॥

भावार्थ हे मुख्य शासक, जो हमारे मध्य हमारा भृत्य है एव श्रेष्ठ स्वामी है अपितु हमारे अधिकार तथा ऋण आदि को नही देता अपितु युद्ध करने की सोचता है, तेरे द्वारा हम भी ऐसे शत्रु को सग्राम मे विनष्ट करें ॥३॥

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।

तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

पदार्थ —(य) जो (दभ्रेभि) कम बल वाले और (यः च) जो (भूरिभि·) नितांत बलशालियों से भी (हव्य) वन्दनीय है, (यः) जो (नृ-षाह्ये अभीके) वीर नायको के द्वारा विजय योग्य युद्ध मे (वरिव -वित्) धनप्राप्ति कराता है, (वि खादे) भांति-भांति से मनुष्यो का नाश करने वाले युद्ध मे (सस्नि) निष्णात (श्रुत) प्रसिद्ध (त) उस, (इन्द्रम) सूर्य के समान (नरम्) नायक को (अवसे) रक्षार्थ (अर्वाञ्च करामहे) साक्षात् करें ॥४॥

भावार्थः— जो अल्प बल और जो नितांत बलशालियो से भी वन्दनीय है जो वीर नायको के द्वारा विजय योग्य संग्राम मे स्मरण किया जाता है, ऐसे नायक को रक्षा के लिये हम सदैव बुलाए ॥४॥

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।

प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५॥१४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वाम्) तुझे मैं (स्व-वृजम्) स्वय ही सब बन्धनों को नष्ट करने वाला, असङ्ग ही (शुश्रव) सुनता हूं और तुझे मैं (अनानुदम्) दूसरे के दान की अपेक्षा न करने वाला (रध्र-चोदनम्) वशगामियों को सन्मार्ग दिखाने वाला (शुश्रव) सुनता हूं । हे (वृषभ) बलशालिन् ! तू (कुत्सात्) कुमार्ग से (प्रमुञ्चस्व) अपने को तथा अन्यों को शीघ्र मुक्त कर (इह परि आगहि)

यहां पधार । (किम् उ) क्या (त्वावान्) तेरे जैसा ज्ञानी (भुज्यो· बद्धः) विषयभोग मे बधा अर्थात् भोग्य इन्द्रिय सुखादि में वा पतङ्गादि योनियो मे बधा कैसे (आसते) रह सकता है ॥५॥

भावार्थ—हे परमात्मन् ! तुम्ही सारे बधनों को काटने वाले, सन्मार्ग के पथ-प्रदर्शक हो । आप ही कुमार्ग से बचाते हैं । हमें मुक्त करा सकते हो । तेरे सरीखा ही उच्च पदासीन राजा भी भला विषय भोगो मे लिप्त कैसे रह सकता है ॥५॥

इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

---

[३९]

घोषा काक्षीवती ऋषि· ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्द —१, ६, ७, ११, १३ निचृज्जगती २, ८, ९, १२ जगती । ३ विराड् जगती । ४, ५ पादनिचृज्जगती । १० आर्षी स्वराड् जगती । १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) उपदेशको या रसयुक्त आरोग्य सौम्य पदार्थ ! (य) जो (वां) तुम दोनो का (परि-ज्मा सुवृत् रथ.) सर्वत्र जाने वाला, पृथिवी पर प्राप्त होने वाला सुखदाता, स्वभाव से आच्छादक गतिमान् उद्देश्य तक पहुँचाने वाला है, वह उपदेष्टा, (दोषाम् उषस) रात व दिन में (हविष्मता) अन्नादि ग्रहणीय वस्तुओ से (हव्य·) आदर-सत्कार करने योग्य है (वय शश्वत्तमास.) हम पूर्व से श्रवण हेतु है (त) तुम्हारे (उ सुहवम्) उसी गति प्रवाह या यान विशेष को (इदम् नाम) इस प्रवचन या प्राप्त होने को (पितुः न हवामहे) पालक राजा का रक्षण ग्रहण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह स्थान-स्थान पर ऐसे अध्यापक तथा उपदेशक नियुक्त करे कि जिनके ज्ञान का प्रवाह सभी लोगों को सुनने के लिये मिले और लोग उनके उपदेशो पर चलकर अपना जीवन सुखी बना सकें । आग्नेय एवं सौम्य पदार्थों से रथ-यान आदि निर्मित कराकर प्रजामात्र को यात्रा का अवसर प्रदान कर सुखी भी बनाया जाए ॥१॥

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) उपदेशको या विद्युत् की धाराओ ! (सूनृताः) अपनी वाणियों को (चोदयतम्) प्रेरित करो और (धिय· पिन्वतम्) उत्तम कर्मों व बुद्धियो को समृद्ध करो । (पुरम्-धी. उत् ईरयतम्) अनेक मतियो और सद्विचारों को बढ़ाओ । (तत् उश्मसि) इन तीनों को हम चाहते हैं । (न यशस भाग कृणुतम्) हमारे यशरूप सदाचारमय अधिकार का सम्पादन करो (मघवत्सु सोम न चारु कृतम्) अध्यात्मयज्ञ वालों या ऐश्वर्यवानो में चन्द्रमा से प्रचुर ऐश्वर्य मिले ॥२॥

भावार्थः—हे अध्यापको और उपदेशको ! अपने उपदेशो से तुम हमारी बुद्धियो का विकास करो । हमें श्रेष्ठकर्म में लगाओ । हमे मानवीय जीवन मार्ग सदाचार के लिए प्रेरित करो व ऐश्वर्य से सम्पन्न बनाओ । वस्तुत. विद्युत् की दो धाराए ही हमारी बुद्धि को विकसित करती हैं और विशेष क्रिया द्वारा हमे ऐश्वर्य भी प्राप्त कराने मे सहायक सिद्ध होती हैं ॥२॥

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण रहित सज्जनो ! सौम्य पदार्थो ! (युवम्) तुम दोनो आपस मे (अमा-जुर) एक दूसरे के साथ जरावस्था को प्राप्त होने वाले संगी क (भग) सेवन करने व परस्पर सुख देने वाले (भवथः) होवो । आप दोनो (अनाशोः चित्) भोजन आदि से रहित व्यक्ति के भी (अवितारा भवथः) रक्षक होवो । आप (अपमस्य चित् अवितारा भवथ) जाति अथवा गुणो में निकृष्ट, छोटे से छोटे जीव के भी रक्षक होवो । आप (अन्धस्य चित्) अन्धे के (कृशस्य चित्) और दुर्बल के भी रक्षक बनो । (युवाम्) आप दोनो को (रुतस्य चित्) पीड़ित के (भिषजा) रोग को वैद्यो की तरह दूर करने वाला (आहु) कहा जाता है ॥३॥

भावार्थ—राष्ट्र मे ऐसे कुशल चिकित्सक व शल्य चिकित्सक होने चाहियें जो गृहस्थ के वर्तमान दम्पती के शरीर को स्वस्थ रखें और असमर्थ रोगियों की भी चिकित्सा करें । इसके अतिरिक्त सूर्य की किरणों व दो विद्युत् तरगों में भी उनकी रक्षा की जा सके, ऐसे साधन खोजे जाने चाहिये ॥३॥

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥

पदार्थ.—हे विद्वान् नर नारियो ! हे प्राण-अपानो ! (यथा रथं पुन· चरथाय तक्षथु) जैसे रथ को फिर चलने के लिये ठीक करते हैं वैसे ही आप दोनों (सनयं च्यवानं) उत्तम नीतियुक्त, अग्रगामी नायक को (युवानं) बलधारी करके (पुनः) फिर (चरथाय) चलने में समर्थ (तक्षथु·) करो । प्राण-अपान ये दोनों ही (सनय च्यवानम्) सनातन आत्मा को बार-बार युवा बनाते हैं । उसे कर्मफल भोगार्थ देह प्रदान कराते है । तुम दोनो (तौग्र्यम्) प्रजापालक पद पर विद्यमान राजा को (अद्भ्य परि निर् ऊहथुः) आप्त प्रजाओ पर शासकवत् धारण करो (वाम ता) तुम दोनो के वे (विश्वा) सर्व कार्य (सवनेषु प्र-वाच्या) यज्ञ आदि अवसरो में उपदेश योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—राष्ट्र मे औषधि व शल्य चिकित्सको को इतना निपुण होना चाहिये कि जो विकलांगो को भी पुनः युवक बना सके । इसके अतिरिक्त विशेष यान बनाकर यात्रा-सुविधाए उपलब्ध कराई जाए ॥४॥

पुराणा वां वीर्या प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥१५॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय नर-नारियो ! (वा) तुम दोनो के (पुराणा वीर्या) पूर्व काल के वीर-जनोचित कार्यों को मैं (जने) लोगो में (प्र-ब्रव) अच्छी प्रकार बताऊं । (अथो ह) और आप दोनों (मय.-भुवा) सुखदाता, (भिषजा) रोग हर्त्ता (आसथु) होवो । हे (नासत्या) नासिका मे विद्यमान प्राणो के तुल्य प्रमुख जनो ! आप दोनों (नव्यौ) स्तुति योग्य लोगो को (नु) शीघ्र ही (अवसे) रक्षार्थ नियुक्त (करामहे) करें । (यथा) जिससे (अयम् अरि) यह स्वामीजन (श्रत् दधत्) सत्य को धारे ॥५॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! मैं तुम्हार वीरोचित कार्यों से अन्यो को अवगत कराऊ । आप औषधि-चिकित्सक एव शल्य चिकित्सक रोगी को रोग-मुक्त करने में समर्थ हो । आप दोनो ही स्तुति-योग्य हो ॥५॥

इति पञ्चदशो वर्ग ॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या मे पारंगत आचार्यो ! (वां) आप दोनो को (इयम्) यह मै ब्रह्मचारिणी (अह्वे) वन्दना करती हूँ । आप दोनो (पुत्राय इव पितरा) पुत्र को माता-पिता के तुल्य (मह्य) मुझे (शिक्षतम्) ज्ञान दो । मैं (अनापि) बन्धुरहित, (अज्ञा) ज्ञानशून्य, (असजात्या) समान गुणादि वाले अनुरूप पुरुष से वंचित और (अमति) सुमति से रहित हूँ । आप दोनों (तस्या. अभिशस्ते पुरा) उस नाना प्रकार की निन्दा का पात्र बनने के पूर्व ही, मुझे (अव स्पृतम्) रक्षा प्रदान करो ॥६॥

भावार्थ—कुमारी कन्याए अथवा ब्रह्मचारिणियां भी आचार्यों व उपदेशको से सुशिक्षा ग्रहण करें । जीवन्मुक्त होने की कामना करने वाली ब्रह्मचारिणियां विशेषत अध्यात्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करें ॥६॥

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक व उपदेशक ! (युवं) आप दोनों (वि-मदाय) विशेष हर्षयुक्त, ब्रह्मचारी के सुख के लिये (पुरु-मित्रस्य) बहुत मित्रो से युक्त ब्रह्मचारी से (शुन्ध्युवम) निर्दोष, (योषणाम्) ब्रह्मचारिणी कन्या को (नि ऊहथुः) युक्त करो और (युवम्) आप दोनो (वध्रिमत्या·) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिणी के (हवम्) सादर आह्वान तथा प्रार्थना को (आ गच्छतम्) प्राप्त करो । (युवम्) तुम दोनो (पुरन्धये) पुर-रक्षक के तुल्य गृह-रक्षक स्त्री-पुरुष के लिये (सु-सुतिम्) उत्तम ऐश्वर्य-सन्तान (चक्रथुः) प्रदान करो ॥७॥

भावार्थ.—हे अध्यापक एव उपदेशक ! तुम अपने शिष्यो तथा शिष्याओ को पूर्ण सयत एव योग्य बनाकर दोनों को यथायोग्य दाम्पत्य सम्बन्धों मे स्थापित करो और उन्हे उत्तम सुख-सम्पदा से सम्पन्न करो ॥७॥

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८॥

पदार्थ—(युव) आप दोनो (जरणाम् उपेयुष) स्तुतिकारिणी वाणी को प्राप्त होने वाले (कले) ज्ञानी और (विप्रस्य) विविध ज्ञान अन्यो को देने वाले पुरुष के (वय·) जीवन व बल का (पुनः) बार-बार (युवत्) समृद्ध (अकृणुत) करो । (युव) तुम दोनो (वन्दन) ईश्वर का गुणगान करने वाले भक्त का (ऋश्यदात्) दु ख से (उद् ऊपथुः) उद्धार करो और (विश्पलाम्) प्रजा पालक सेना को (सद्य. एतवे) शीघ्र चलने योग्य (कृथ·) करो ॥८॥

भावार्थ—आप दोनो स्तुतिकारिणी वाणी को प्राप्त होने वाले ज्ञानवान् व विविध ज्ञान दूसरो को देने वाले पुरुष को जीवन व बल से बार-बार युक्त करो । ईश्वर भक्त के दु खो को निवारो और प्रजापालक सेना को गति दो ॥८॥

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९॥

पदार्थ—हे आचार्य व उपदेशक ! (वृषणा) सुखों की वर्षा करने वाले, हे (अश्विना) विद्या में निष्णात स्त्री-पुरुषो ! आप (गुहा हितम्) देहरूप गुफा या बुद्धि मे स्थित, (ममृवांस) मरणासन्न (रेभम्) शब्दकारी जीव को (उत् ऐरयतम्)

नव जीवन दो । (युवं) तुम दोनों (सप्त-वध्रये) सातों को निर्बल कर वश में करने वाले (अत्रये) भोक्ता जीव हेतु (तप्तं) संतापदायी (ऋबीसम्) देहादि-बन्धनकारी कारण को भी (ओमन्वन्तम्) सुखदायी (चक्रथुः) बना देते हो ॥९॥

भावार्थ —आचार्य तथा उपदेशक सुख के दाता होते हैं । वे हृदय मे आसीन मरणासन्न स्तोता को भी अमरत्व प्रदान करते हैं और शारीरिक सताप मिटाते है । इन्द्रियों को वश मे रखने वालों को अमृत भोग का अधिकारी बनाकर सुखी बना देते हैं ॥९॥

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥१६॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापको व उपदेशको ! (युव) आप दोनो (पेदवे) सुख प्राप्त करने वाले जीव के लिये (नवभि नवती) निन्यानवे (वाजै) सामर्थ्य से युक्त (वाजिनम) बल तथा विभूतियो से युक्त, (अश्वम्) भोगो से समृद्ध (श्वेतम) शुभ्र व (चर्कृत्य) कर्म करने मे समर्थ वीर पुरुष को अश्व के तुल्य (ददथु·) देते हो । इसी भांति (नृभ्य) सभी जीवो को (द्रावयत्-सखं) मित्रो व साथियो को तीव्रगति से चलाने वाले, (मय -भुवम्) सुख देने वाले, (हव्यं) स्तुत्य-स्वीकार करने योग्य अन्न के समान (भग न) सेवनीय, कर्मफल-अनुरूप ऐश्वर्ययुक्त देह प्रदान करते हो ॥१०॥

भावार्थ —आचार्य एव उपदेशक सुख की कामना करने वाले अधिकारी को उसके अन्त करण व ज्ञानेन्द्रियो सम्बन्धी प्रवृत्तियो से समृद्ध शरीर को बारम्बार सुख-समृद्धि के उपभोग का पात्र बनाते हैं ॥१०॥

इति षोडशो वर्ग ॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

पदार्थ —हे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणो से सम्पन्न जनो ! (सु-हवा) शोभन आह्वान योग्य (रुद्र-वर्तनी) क्रूर कष्टों का दूर करने वाले तुम दोनो (यम्) जिसको (पत्न्या सह) पत्नी सहित (पुर -रथम्) अग्रगामी रथ वाला, वीर (कृणुथः) कर देते हो । हे (राजाना) शुभगुणो से आलोकित ! हे (अदिते) माता-पितावत् तेजस्वियो ! (तं) उसको (अंह) पाप (कुत चन) कही से भी (न अश्नोति) प्राप्त नही होता । (न दुरित) न कोई दुष्ट कर्म उससे होता है और (नकि भयम्) न उसे कोई भय लगता है ॥११॥

भावार्थ —श्रेष्ठ शिक्षक तथा उपदेश देने वाले स्वज्ञान मे अखण्डित हैं, उन्हें सब ही आमन्त्रित करते हैं और वे कष्टहर्त्ता जिसे ज्ञान प्रदान करते है वे सभी प्रकार के पापो से मुक्त एव भयमुक्त रहते हैं । वह व्यक्ति अपनी सहधर्मिणी सहित गृहस्थ-जीवन मे समृद्धि पाता है ॥११॥

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥

पदार्थ·—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर-नारियो ! (यं) जिस सुखदायक (रथ) गृहस्थरूपी रथ को (ऋभव चक्रु) शिल्पी जनो के समान सत्य के प्रकाशक विद्वान् उपदेश करते है, (तेन) उससे (मनस. जवीयसा) मन के बल से गतिमान् उस रथ से (आ यातम्) आओ-जाओ और (यस्य योगे) जिसके जुडने पर (दिवः दुहिता जायते) तेजस्वी सूय की कन्या उषा के तुल्य शुभ गुणो वाली कन्या (सुदिने उभे अहनी) उत्तम सुखदायक दिन तथा रात मे (विवस्वत) विशेष ऐश्वर्यवान् पति की (दिव दुहिता) कामनाओ को पूरा करने वाली (जायते) बन जाती है ॥१२॥

भावार्थ —हे जितेन्द्रिय नर-नारियो ! जिस गृहस्थरूपी रथ को शिल्पी जनो के तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले विद्वान् उपदेश करते हैं उस मानसिक बल से गतिमान् रथ में आओ जाओ । नववधुएं गृह मे आकर उत्तम सतति को जन्म दें ॥१२॥

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ॥१३॥

पदार्थ.—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी राष्ट्र के प्रधान पुरुषो ! (ता) तुम दोनो (जयुषा रथेन) जयशील रथ इत्यादि से (पर्वत) पर्वत के तुल्य उच्च स्थान के प्रति (वर्तिः) उत्तम मार्ग पर (यातम्) जाओ । (शयवे) शिशुवत् अज्ञानी जन के हित के लिये (धेनुम) वाणी का (अपिन्वतम) उपदेश दो (वृकस्य चित आस्यात् वर्तिकाम्) भेडिये के मुख के भीतर पड़ी बटेरी के तुल्य और शासक वर्ग के मुख से (अन्त ग्रसिताम्) भीतर निगली व पीड़ित जनता को (युव) आप दोनो (अमुञ्चतम्) मुक्त कराते हो ॥१३॥

भावार्थ —राष्ट्र का सचालन करने वाले प्रधान पुरुषों के लिए उपयुक्त है कि यदि उनकी प्रजा अज्ञान के वशीभूत शत्रु के नियन्त्रण मे आ जाए तो उसे बन्धनमुक्त करने की चेष्टा करें ॥१३॥

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥१७॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) अश्वादि वेगवान् साधनों के अधिपतियो ! (भृगव· न रथम्) जैसे गतिमान् साधनो को वश में करने वाले विद्वान् लोग यान को साधते हैं वैसे ही हम भी (वां एतं स्तोमं अतक्षाम) तुम दोनो के लिये यह गुणवर्णन और उपदेश योग्य वचन कहें । (मर्ये योषणां न) वर के अधीन जैसे वधु को वस्त्र आभूषणों से सजाते हैं वैसे ही हम भी प्रेमपूर्वक रहने वाली प्रजा या राज्य-सभा को (नि · मृक्षाम) आप दोनों को सौंपें और (तनय दधाना·) पुत्र-पोषक माता-पिता (सूनु न नित्य नि अमृक्षन्त) उसे नित्य स्नानादि कराते हैं वैसे ही हम (दधाना) आप दोनो को मान्य कर (नित्य सूनु) नित्य शासक रूप से (अमृक्षाम) नियमपूर्वक अभिषिक्त करें ॥१४॥

भावार्थः—प्रजा का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र के प्रधान पुरुष शासक अथवा मन्त्री को सम्मानित कर उनके आदेशो का पालन करें वस्त्राभूषण आदि से सजाकर सुकन्याओं के विवाह का जैसे प्रबन्ध किया जाता है, वैसे ही राष्ट्र का राजा व मत्री प्रजा मे आदरणीय बनें ॥१४॥

इति सप्तदशो वर्ग ॥

---

[४०]

ऋषिर्घोषा काक्षीवती ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, ५, १२, १४ *विराड् जगती ।* २, ३, ७ १०, १३ *जगती ।* ४, ८, ११, *निचृज्जगती ।* ६, ९ *पाद-निचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥*

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥

पदार्थः—हे (नरा) नेता तुल्य स्त्री-पुरुषो ! (वां) तुम दोनो के (द्युमन्तं यान्त रथम्) दीप्तिमान् व सुमण्डित रथ को (कुह) किस देश मे (प्रातर्यावाणं विभ्व वहमान) गृहस्थ के पहले अवसर पर प्राप्त हुए विभूतिमान् (विशे विशे वस्तो वस्तो) मानवमात्र के निमित्त प्रतिदिन (धिया शमि) मन या कर्म से (कुह क.) कोई ही (सुविताय प्रति भूषति) सुख विशेष हेतु प्रशसा करता है ॥१॥

भावार्थ·—सुशिक्षा-सम्पन्न स्त्री-पुरुषो का यह पावन कर्त्तव्य है कि पहले तो वे अपने गृहस्थ जीवन को आदर्श रूप प्रदान करें एव तदुपरान्त वे अपने इस अनु-करणीय जीवन द्वारा प्रजा के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करे ॥१॥

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२॥

पदार्थ —हे (अश्विना) स्त्री-पुरुषो ! आप दोनो (दोषा कुह स्वित) रात्रि मे कहां व (वस्तो) दिन मे कहा रहते हो ? और (अभिपित्वं कुह करत·) कहां भोजनादि करते हो ? (कुह ऊषतु) कहा वास करते हो ? (वा शयुत्रा क) तुम दोनो का शयन स्थान कौन सा है ? (विधवा इव देवरम) जैसे विधवा व देवर नियोग होने पर व्यवहार करते हैं । (मर्यं न योषा सधस्थे कृणुते) जैसे वर के लिए वधू सहस्थान बनाती है, ऐसा ही विवाहितो ! तुम व्यवहार करो ॥२॥

भावार्थ·—गृहस्थी नर-नारियो को अपना जीवन सदैव प्रेमयुक्त बनाना चाहिए । जिस भांति विवाह के समय वर-वधू मे स्नेह होता है, वह सदैव बना रहना चाहिए । यदि मृत्यु के कारण पति का पत्नी से वियोग हो जाए तो पत्नी सन्तान की इच्छा होने पर देवर तुल्य पुरुष से नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त कर सकती है ॥२॥

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥

पदार्थ —हे (नरा) श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो ! (जरणा इव कापया) उत्तम स्तुत्य वृद्ध पुरुषों के जैसे आप दोनो (प्रात जरेथे) प्रात.काल उपदेश योग्य हो । (यजता) आदर योग्य बनकर (वस्तो. वस्तो) दिन प्रतिदिन (गृहम् गच्छथ·) गृह को प्राप्त हो । यह भी निरन्तर ध्यान रखो कि आप दोनो (कस्य) किस-किस दोष को (ध्वस्रा भवथ.) नष्ट करते हो और (राजपुत्रा इव) राजपुत्र राजपुत्री के समान (कस्य सवना) किसके यज्ञो तथा अभिषेक योग्य अधिकारो को (अव गच्छथ.) पाते हो ॥३॥

भावार्थ —जो स्त्री-पुरुष आदर्श गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं वे प्रशंसनीय हैं । वे प्रतिदिन सम्मानित होते हुए, राजकुमार व राजकुमारियो के तुल्य आदर पाकर गृहस्थ के दोषो के निवारणार्थ उनके विभिन्न उत्सवो मे भाग लें ॥३॥

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥

पदार्थ —जैसे (मृगण्यवः) शिकार करने वाले (मृगा वारणा) सिंह सिंहनी तथा हाथी-हथिनी दोनों को (हविषा नि ह्वयन्ते) खाद्य पदार्थ से ग्रहण करते हैं वैसे ही

हम भी अभिषेकादि से शुद्ध, नायक नायकादि की कामना करने वाले (मृगा इव वारणा) सिंह सिंहनी के समान तुम दोनों को और (वारणा मृगा) दुःखों के हरने वाले आप दोनों को (हविषा) उत्तम अन्न आदि से (नि ह्वयामहे) आदर सहित बुलावें। हे (नरा) उत्तम नेताओ ! (युवं) आपकी हित-कामना से (ऋतुथा होतारम्) समय-समय पर उत्तम वाणी प्रदान करते हैं, क्योंकि आप दोनों (शुभस्पती) जलों के पालक सूर्य, मेघ तुल्य शुभ गुणों के वर्धक होकर (जनाय इषं वहथ) मानव लाभार्थ अन्न व उपदेश आदि को धारते हो ॥४॥

भावार्थ—जैसे सिंह-सिंहनी आदि को खाद्य पदार्थ द्वारा पकड़ने वाले ग्रहण करते हैं, वैसे ही हम भी शुद्ध नायक-नायकादि की कामना करने वाले आप वयोवृद्ध गृहस्थ जन को आदर से आमंत्रित करते हैं, क्योंकि आप अपनी उत्तम वाणी द्वारा गृहस्थों को सदुपदेश देते हो ॥४॥

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥१८॥

पदार्थः—हे (नरा) उत्तम नायको ! हे (अश्विना) अश्वादि के नायक (परि यती) यत्नरत (राज्ञः दुहिता घोषा) राज्य-कार्यों को पूर्ण करती, राजा की आज्ञा, घोषणा तथा सभा, (वां पृच्छे) तुम दोनों को पूछती है, (अह्न उत अक्तवे) दिन-रात आप दोनों (मे भूतम्) मेरे हितार्थ तत्पर रहें और (अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम्) अश्व-रथादि से युक्त शत्रु के विनाश में समर्थ होवो ॥५॥१८॥

भावार्थः—माननीय गृहस्थ जनों का सम्पर्क राजा तथा राजसभा से भी होना चाहिए। राज सभा के लिए उपयुक्त है कि वह उनके सत्परामर्शों से अश्व-रथादि से युक्त शत्रु के विनाश के लिए प्रभावी व्यवस्था करें ॥५॥१८॥

इत्यष्टादशो वर्गः ।

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

पदार्थ—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वत् जनो ! हे (अश्विना) विद्या इत्यादि मे निष्णात जनो ! आप दोनों (कुत्सः न) शत्रुओं का संहार करने वाले वज्र जैसे (जरितुः विशः) स्तुतिकर्त्ता प्रजावर्ग पर (रथं परि स्थः) रथ पर रह कर नियन्त्रण करो और (नशायथः) दुःखों को हरो। हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामियो ! (युवोः) तुम दोनों के अधीन सभा, सेना (मक्षा) मधुमक्खी तुल्य (आसा) मुख से (मधु) मधु तुल्य वचन तथा उत्तम अन्न, ज्ञान, बल (परि भरत) धारें। (योषणा न निष्कृतम्) स्त्री जैसे घर सभालती है वैसे ही प्रेमयुक्त प्रजा सभा तथा ऐश्वर्य को धारो ॥६॥

भावार्थ—हे दूरदर्शी विद्वानो ! हे निष्णात जनो ! आप दोनों शत्रुसंहारक वज्रतुल्य स्तुतिकर्त्ता प्रजा पर नियन्त्रण करो। उसके दुःखों को हरो। तुम्हारे आधीन सभा, सेना मधुमक्खी के तुल्य मुख से मधुर वचन व उत्तम अन्न धन पाए। स्त्री जैसे घर को संभालती है वैसे ही तुम प्रजा व सभा को ऐश्वर्य-सम्पन्न करो ॥६॥

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) रथी-सारथी तुल्य स्त्री-पुरुषो ! (युवं ह) तुम दोनों अवश्य ही (भुज्युम् उपारथुः) भोगप्रद पालक को प्राप्त हो। (युवं) तुम दोनों (वशं) वश करने वाले तेजस्वी पुरुष को पाओ (युवं शिञ्जारं) तुम दोनों उत्तम वचन कहने वाले ब्राह्मण को प्राप्त करो। तुम दोनों (उशनाम्) धन धान्य चाहने वाले वैश्य को प्राप्त करो। (युवोः ररावा) तुम दोनों का उत्तम दाता और उपदेष्टा (सख्यं परि आसते) मित्रभाव को प्राप्त होता है। (अहम्) मैं उपदेष्टा वा उपदेष्ट्री (अवसा) आप दोनों के रक्षा करने वाले व स्नेह के (सुम्नम् आ चके) प्रवचन से सुख चाहता हूँ ॥७॥

भावार्थ—हे रथी सारथीवत् स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों यथासाधन, चतुर्वर्ण को सहयोग प्रदान करो और उनकी सहायता से सुख की कामना करो ॥७॥

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८॥

पदार्थ—(युव ह) हे शिक्षित स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (कृशम्) क्षीण को और (युव शयुम्) तुम दोनों सोने वाले, असावधान को और (युवं विधन्तं) तुम दोनों विधुर को और (विधवाम्) पतिहीन स्त्री को (उरुष्यथः) रक्षित करते हो। हे (अश्विना) उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सनिभ्यः) ज्ञान के सेवन करने वालों के लिए (स्तनयन्तम्) स्तनवत् मधुर ज्ञान धारा पिलाने वाले (सप्तास्यम्) सात मुख वाले (व्रजम्) व्रजनशील अतिथि को (अप ऊर्णुथ) न रोको, इधर-उधर जाने दो ॥८॥

भावार्थः—राष्ट्र के सुशिक्षित स्त्री-पुरुषों का यह कर्तव्य है कि वे बलहीन, असावधान एवं विधुर तथा विधवाओं की रक्षा करें तथा वे वक्ता अतिथियों को इधर-उधर सभी स्थानों पर जाने में सहायता प्रदान करें ॥८॥

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९॥

पदार्थः—(योषा जनिष्ट) जब ब्रह्मचारिणी समागम योग्य हो जाए तब (कनीनकः पतयत्) कन्या की कामना वाला वर प्राप्त हो जाता है। (वीरुधः अरुहन्) जैसे औषधियां बढ़ती हैं वैसे (दंसना अनु) अपने-अपने कर्मों के अनुरूप (अस्मै) इस वर हेतु (सिन्धवः निवना इव रीयन्ते) सुख-सम्पत्तियां इस प्रकार मिलती हैं, जैसे नदियां नीचे की ओर बहती हैं। (अस्मै-अह्ने तत् पतित्वनं भवति) इस अहन्तव्य वर को गृहस्थ का स्वामित्व मिल जाता है ॥९॥

भावार्थ—सुकन्या एवं कुमार जब ब्रह्मचर्य का पालन कर एक दूसरे की कामना करने और समागम के योग्य हो जाए तो उन्हें विवाह के सूत्र मे आबद्ध कर देना चाहिए। बिना कामना एवं योग्यता के विवाह करना अनुचित है। तभी पावन आचरण आदि से गृहस्थ मे सुख-सम्पदा वैसे ही आती है जैसे नदियां सागर की ओर जाती हैं ॥९॥

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥
॥१०॥१९॥

पदार्थ—लोग (जीवं रुदन्ति) पुत्र प्राप्ति के लिए करुण भाव से प्रार्थना करते हैं वे (अध्वरे) विवाह-यज्ञ मे (वि मयन्ते) प्रतिज्ञारूप वचन कहते हैं। (ये) जो मनुष्य (इदम्) इस परस्पर विवाह आदि कर्म को (पितृभ्यः) अपने पूर्व पालक पिता आदि के लिए (वामम्) श्रेष्ठ वस्तु देते हैं वे (नरः) मनुष्य (दीर्घाम् प्रसितिम् अनु दीधियुः) दीर्घकालयुक्त स्नेह-बन्धनों को प्रकाशित करें और (जनयः) पत्नियां भी (पतिभ्यः परिष्वजे) पतियों से आलिंगनादि कार्य में अपने पतियों के लिए सुख प्राप्त कराती हैं एवं स्वयं भी उनसे सुख प्राप्त करती हैं ॥१०॥१९॥

भावार्थ—गृहस्थ को स्वीकार करने वाले स्त्री-पुरुषों को जीवन-पर्यन्त आपस मे स्नेह बन्धन मे बंधे रहने का सुसंकल्प ग्रहण करना चाहिए और उसका पालन भी करना चाहिए। गृहस्थी जनों को सुसंतान को जन्म देने की आकांक्षा रखनी चाहिए ॥१०॥१७॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ।

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥

पदार्थ—युवक-युवती अपने आप्त माता पिता से कहते हैं—(यत्) जो (युवा) युवा पुरुष (युवत्याः योनिषु) युवती के साथ गृहों में (क्षेति) रहता है हम अबोध युवक-युवती (तस्य न विद्म) उस गृहस्थ के विषय मे सुफल को नहीं जानते (तत् उ षु प्र वोचत) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उसे उसका भली-भांति उपदेश दो। हे (अश्विना) शिक्षित स्त्री-पुरुषो ! हम नवयुवतियां (प्रिय-उस्रियस्य) प्यारी पत्नी बनें, (वृषभस्य) वीर्य-सेचक वर के, (रेतिनः) वीर्यवान् पति के (गृहं गमेम) घर को जावें, (तत् उश्मसि) हमारी यही कामना है ॥११॥

भावार्थ—वृद्ध नर-नारियों को यह कामना करते रहना चाहिए कि नव-विवाहित, गृहस्थधर्म का पालन करने में समर्थ व्यक्ति के यहां गृहस्थ आश्रम को भली-भांति चलाने के लिए सुसन्तान भी हो ॥११॥

आ वामगन्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥१२॥

पदार्थः—(वाजिनीवसू) हे वैज्ञानिक क्रिया प्रसारको ! (वाम्) आप दोनों की (सुमतिः आ अगन्) शुभमति हमें प्राप्त हो। हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशकर्त्ता स्त्री-पुरुषो ! (हृत्सु) हमारे हृदयों में (कामाः) नाना प्रकार की अभिलाषाएं (नि अयंसत) नियमपूर्वक रहें। तुम (गोपा) रक्षक (मिथुना) परस्पर सहयोगी (शुभस्पती) सुख के स्वामी (अभूतम्) हो। (प्रियाः) हम स्त्रियां अपने पतियों की प्यारी हों। (अर्यम्णः) स्वामी के (दुर्यान्) गृहों को (अशीमहि) चाहती हैं ॥१२॥

भावार्थः—विचारशील पत्नियों के मन में वयोवृद्ध सुशिक्षित स्त्री-पुरुषों के प्रति आदर की भावना होनी आवश्यक है। वे उनसे परिवार को चलाने के विज्ञान की दीक्षा और शिक्षा प्राप्त करें जिससे कि अपनी गृहस्थ सम्बन्धी कामनाओं को नियन्त्रित रखें ॥१२॥

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (शुभस्पती) शोभायुक्त पदार्थ रक्षक स्त्री-पुरुषो ! (ता) आप दोनों (मनुषः दुरोणे) मननशील विद्वान् के घर में रहकर (मन्दसाना) अन्न व ज्ञान से स्वयं को तृप्त करते हुए, (वचस्यवे) उत्तम वेदज्ञाता विद्वान् पुरुष के

(राये) ज्ञानरूपी धन को (आधत्तम्) सब भाँति धारण करो और (सह-वीरं) वीर पुत्र युक्त (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करो । आप दोनों (शुभस्पती) शोभायुक्त उत्तम गुणों युक्त (सु-प्र-पाण तीर्थं) सुख से जलपान योग्य नदी धारा जैसे (सु-प्रपाणं तीर्थं) व्रत पालक गुरु को (कृतम्) करो । आप (पथेष्ठाम् स्थाणुम्) मार्ग स्थित वृक्ष के तुल्य, आश्रयदाता जन को स्वीकारो और (दुर्मतिम् अप हतम्) विपरीत ज्ञान को भगाओ ॥१३॥

भावार्थ—हे शोभायुक्त पदार्थों के रक्षक स्त्री-पुरुषो! आप दोनों ही नवगृहस्थों को सुख देने वाले उनके प्यार में उपदेश के इच्छुक जनों के लिए धन को देने वाले उनके गृहस्थ जीवन को पापमुक्त बनाने वाले उपाय करो । तुम गृहस्थ जीवन में आने वाली बाधाओं का निवारण करो ॥१३॥

क्वं स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।

क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥
॥१४॥२०॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्यावान् पुरुषो ! हे (दस्रा) दुष्टों और दुर्गुणों के नाशक दर्शनीय स्त्री-पुरुषो ! (अद्य) इस समय (क्वस्वित्) कहाँ रहते हो ? (कतमासु विक्षु) किन प्रजाओं के मध्य (मादयेते) प्रसन्न होते हो ? हे (शुभस्पती) शुभगुणों के पालक जनो ! (ईम् कः नियेमे) आप दोनों को कौन गृहस्थ अपने घर पर रोकता है और (कतमस्य विप्रस्य) किस विद्वान् पुरुष के (गृहम्) गृह और (कतमस्य यजमानस्य गृहम्) किस धन-ज्ञान आदि दाता, स्वामी के गृह पर (जग्मतुः) जाते हो । इस तरह सभी स्त्री-पुरुषों को अपने घर निमन्त्रित करने की आकांक्षा करो ॥१४॥२०॥

भावार्थः—कल्याण का पथ प्रदर्शित करने वाले सुशिक्षित वयोवृद्ध स्त्री-पुरुषों से यह जानना चाहिये कि वे किस घर मे उपदेश-सुधा बरसाते हैं ? कहाँ उन्हें सत्कार एवं हर्ष प्राप्त होता है ? कौन सा गृहस्थ उन्हें आदर से अपने घर मे स्थान प्रदान करता है ? ऐसी जानकारी उनसे प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें शिष्टाचारयुक्त व्यवहार करते हुए घर पर आमन्त्रित करना उचित है ॥१४॥२०॥

इति विंशो वर्गः ॥

---

[४१]

१—३ सुहस्त्यो घौषेयः ऋषिः ॥ *अश्विनौ देवते* ॥ छन्दः—१ *पादनिचृज्जगती* । २ *निचृज्जगती* । ३ *विराड् जगती* ॥ तृच सूक्तम् ॥

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।

परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (उषस व्युष्टा) प्रभात वेला में प्रातःकाल होने पर (त्यम् उ) उस परम (समानम्) समान धर्म वाले (पुरु-हूतम्) बहुतों से स्तुतियोग्य ग्रहणीय (उक्थ्यं) वेद द्वारा प्रशसित, (त्रिचक्रं रथं) स्तुति, प्रार्थना, उपासना, चक्रवत् वर्तमान तथा तृप्तिकर ऐसे (सवना) प्राप्त (परिज्मानं) व्यापक (विदथ्यं) ज्ञानमय प्रभु को (सु-वृक्तिभि) उत्तम स्तुतियों से (हवामहे) हम निमन्त्रित करें ॥१॥

भावार्थ—उषा की वेला में स्तुति, वन्दना, प्रार्थना, तृप्ति-साधक अगों वाले अनुभवयोग्य मोक्ष को दोषरहित भावनाओं एव क्रियाओ द्वारा जीवन मे धारण करना अभीष्ट है ॥१॥

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।

विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२॥

पदार्थः—(नासत्या) नासिका मे होने वाले (नरा) शरीर के नेता (अश्विना) शीघ्रगामी प्राण-अपानो, (प्रातर्यावाण) प्रातःकाल के समान शुभगति-युक्त प्राप्त करने योग्य, (मधु-वाहन) मधुर अन्न प्राप्त कराने वाले, (रथ) मोक्ष को (अधितिष्ठथः) अपना आश्रय बनाते हो । (येन) जिसे (यज्वरी) देव पूजा करने वाली प्रजाओ को (गच्छथः) तुम प्राप्त होते हो । (कीरे होतृमन्तं यज्ञम् चित्) स्तुतिकर्मों से युक्त आत्मा के अध्यात्मयज्ञ मे प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थः—नासिका के प्राण तथा अपान, श्वास एव प्रश्वास, प्राणायाम की विधि से प्रातःकाल चलाने की क्रिया मधुरतादायक मोक्ष की ओर ले जाती है । उनसे अध्यात्म-यज्ञरत प्रजा को वे यथार्थ रूप मे मिलते है—कार्य करते हैं । अध्यात्म-यज्ञ को स्तुति करने वाले भली-भांति जानते हैं ॥२॥

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।

विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥
॥३॥२१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) प्राणापान ! (मधुपाणि) मधुर स्तुतिकर्त्ता मन को, (सु-हस्त्यम्) हस्त क्रिया में कुशल, (अग्निधम्) परमात्मा को धारण करने वाले, (धृत-दक्षम्) उत्तम बलधारक, (दमूनस) जितेन्द्रिय उपासक को (विप्रस्य सवनानि गच्छथ) या मेधावी के ज्ञानकार्य को प्राप्त होवो । (अतः) अतएव (मधु-पेयम् आयतम्) मधु आनन्द पेय है, जिससे ऐसे मोक्ष की ओर ले चलेगा ॥३॥

भावार्थ—जो व्यक्ति हृदय से प्रभु का मनन करता है, अपने हाथ से यथाशक्ति दान प्रदान करता है, मन को नियन्त्रित रखता है, ऐसे मेधावी जन के प्राण-अपान जीवन को सच्चा सुख व मोक्ष प्रदान कराने का आधार बनते हैं ॥३॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

---

[४२]

ऋषिः कृष्ण ॥ *इन्द्रो देवता* ॥ छन्दः—१, ३, ७—९, ११ *त्रिष्टुप्* । २, ५ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ४ *पादनिचृत् त्रिष्टुप्* । ६, १० *विराट् त्रिष्टुप्* ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।

वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

पदार्थः—(अस्ता इव) बाण फेंकने वाला धनुर्धर जैसे (अस्यन्) बाण फेंकता है (प्रतरम् लाय भरति=हरति) दूर स्थित लक्ष्य पर वार करता है और (भूषन् इव) जैसे आभूषणो मे सजा पुरुष आभूषणों को धारण कर (सु प्र भरति) शोभायुक्त होता है, वैसे ही हे (विप्रा.) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (लायम्) ग्रहण करने योग्य (प्रतरम्) उत्कृष्ट, सकटों से पार करने वाले प्रभु को (सु प्र भर) धारो, उसे प्राप्त करो और उस (अर्यः वाचम्) स्वामी के वचन को (वाचा प्र तरत) नित्य स्वाध्याय करो । हे (जरित) उत्तम उपदेष्टा ! तू (सोमे) आत्मा मे (इन्द्रम् नि रमय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को नित्य बसा ॥१॥

भावार्थ—जिस भाँति धनुर्धर अपने लक्ष्य पर बाण का प्रहार करता है, वैसे ही स्तुति करने वाले उपासक को भी अपने आत्मा को परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए । अपने उत्तम वचनो से उस प्रभु की नित्य उपासना करनी चाहिए ॥१॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।

कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२॥

पदार्थः—हे (जरित) स्तुतिकर्त्ता उपासक ! तू (दोहेन गाम्) दूध को निमित्त बना जैसे गौ सेवा की जाती है वैसे ही (दोहेन) अभीष्ट फलों की प्राप्ति के हेतु (जारम्) स्तुतियोग्य (इन्द्रम् सखाय) परम मित्र, समदर्शी प्रभु की (प्रबोधय) स्तुति कर, आकृष्ट कर । (शूरम्) प्रभु को (कोशं न पूर्णं वसुना नि-ऋष्ट आ च्यावय) जल से पूर्ण मेघतुल्य आत्मधन पूर्ण प्रभु को अपने निकट पाओ ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर आनन्दघन है । सकल आनन्द का अक्षय भण्डार है । वह मित्र के समान है और स्तुत्य भी है । उसकी आराधना करने से वह उपासक को भी अपने आनन्दघन से तृप्त करता है ॥२॥

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।

अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

पदार्थ—(अङ्ग मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् ! (किं त्वा भोजम् आहु) तुझे विद्वान् सबका पालक कहते हैं । तू (मा शिशीहि) मुझे अपना भोग दे, उत्साहित कर, (त्वा शिशय शृणोमि) मै तुझे देने वाला सुनता हूँ । (मम धी अप्नस्वती) मेरी बुद्धि कर्म करने वाली (अस्तु) हो । (न) हमारे लिए (वसुविद भग आ भर) उत्तम धन प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्य दे ॥३॥

भावार्थ—प्रभु सर्वपालक और समर्थ है । वह अपनी कृपा द्वारा सभी को यथायोग्य भोग प्रदान करता है । वह उपासना करने वाले को आध्यात्मिक ऐश्वर्य भी देता है । उसी की उपासना करना श्रेयस्कर है ॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।

अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (जनाः) लोग (त्वा) तुझे (मम-सत्येषु) "मेरा कथन सत्य है, प्रतिवादी का नहीं" ऐसे वाद-विवाद के अवसरो पर (वि ह्वयन्ते) विशेष आदर से निमन्त्रित करते है और (समीके स तस्थानाः वि ह्वयन्ते) युद्ध मे जाते हुए तुझे पुकारते हैं । (अत्र) उस समय पर (यः) जो मनुष्य (हविष्मान्) उत्तम साधनयुक्त होता है वही (त्वां युजं कृणुते) तुझे अपना सहयोगी बनाता है, क्योंकि (असुन्वता) उपासना न करने वाले से (शूर) वह शूर (सख्य न वष्टि) मित्रता नहीं करना चाहता ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उसी व्यक्ति की वस्तुतः सहायता करता है, जो उत्तम साधनों से युक्त होता है । परमात्मा नास्तिक के प्रति मैत्री भाव नहीं रखता । यों तो विवाद के अवसरों व युद्ध मे जाते समय सभी उसका आह्वान करते हैं ॥४॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥२२॥

पदार्थ—(यः) जो (प्रयस्वान्) योगाभ्यास का प्रयास करने वाला, उद्योगी पुरुष (बहुल) बहुत से (धनं न स्पन्द्रं) धनतुल्य पशु अश्वादि सैन्य और (तीव्रान् सोमान्) वेगवान् कार्य साधकों और ऐश्वर्यों को (अस्मै आ

सुनोति) इसे देता है, वह (तस्मै) उसके (सु-युजाम्) हिंसक हथियारों वाले और (सु-अश्व्याम्) अश्वादि साधनों से युक्त (शत्रून्) शत्रुओं को भी (अह्नः प्रातः) प्रातः ही (युवति) दूर भगाता है और (वृत्रम् नि हन्ति) विघ्न आदि मिटाता है ॥५॥२२॥

भावार्थः—जो लोग योगाभ्यासी हैं, उन्हें ही कामादि शत्रुओं का सहार करने की क्षमता प्राप्त होती है एवं वे ही अज्ञान के अंधकार को दूर करने में समर्थ होते हैं तथा दैनिक आनन्द की भी उन्हें ही प्राप्ति होती है ॥५॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।

आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

पदार्थः—(वयं यस्मिन् इन्द्रे) हम जिस राजा या वीर पुरुष के लिए (शंसम् दधिम) स्तुति धारते हैं और (यः) जो (मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी राजा (अस्मे) हमें (कामम्) अभिलषित धन (शिश्राय) देता है। (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयताम्) उसका विरोधी दूर से ही भय खाता है। (अस्मै) उस के लिए (जन्या द्युम्ना) जन-हितकारी धन (नि नमन्ताम्) समर्पित हो जाता है ॥६॥

भावार्थ —वही शासक प्रशंसा का पात्र है, जो अपनी प्रजा के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करता है और शत्रु व विरोधी जिससे भयभीत होते हैं। वे ही राष्ट्रसम्पदा का उपभोग कर पाते हैं ॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।

अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

पदार्थ,—हे (पुरु-हूत इन्द्र) बहुत प्रजाजनों द्वारा आमन्त्रित राजन् ! (यः उग्रः शम्बः) जो तेरा उग्र, बलशाली, शत्रुओं को मार कर सुला देने वाला वज्र है (तेन) उससे तू (आरात्) दूर रहते हो (शत्रुम् अप बाधस्व) शत्रु को पीड़ित कर और (अस्मे) हमे (यवमत् गोमत्) अन्न और गौ आदि पशुओ वाला ऐश्वर्य दे और (जरित्रे) स्तुतिकर्त्ता पुरोहित के लिए (धियं) बुद्धि को (वाज-रत्नां धेहि) ज्ञान से सुशोभित व सम्पन्न कर ॥७॥

भावार्थः—राजा के लिये आवश्यक है कि वह अपने तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा शत्रु को पीड़ित करे और उसे भगा दे एव प्रजा के लिये घी, दूध, अन्न, भोजन आदि की सुव्यवस्था करे ॥७॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।

नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

पदार्थ —(यत् इन्द्रम्) जिस इन्द्र को (बहुल-अन्तास) बहुत से ऐश्वर्य, (तीव्राः) तीव्र स्वभाव वाले, (वृषसवास) बलवान् पुरुष और अश्व सञ्चालक (सोमा) उत्तम शासक (प्र अग्मन्) मिलते हैं, वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (दामानम् अह) उपहारदाता को (न नि यंसन्) नहीं बांधता प्रत्युत (सुन्वते) राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले के हितार्थ वह (भूरि वामम् नि वहति) बहुत प्रकार के वन्दनीय पद पाता है ॥८॥

भावार्थः—राजा का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे लोगों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाए जो अपने व्यापार व विविध कलाओं के द्वारा राष्ट्र को बहुविध ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हैं ॥८॥

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।

यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९॥

पदार्थः—(यत श्वघ्नी कृतं जयाति) जैसे जुआखोर 'कृत' नामक पासे को (काले वि चिनोति) अवसर पर पाता है और (प्रहाम् अतिदीव्य जयति) अपने पासे को मारने वाले को जीतता है। (यत् श्वघ्नी) वीरजन स्वकीय इष्टजनों को प्राप्त करने तथा शत्रुधन को लेने वाला (कृत) स्वोपार्जित धनादि को एव उद्योग से प्राप्त ऐश्वर्य को (काले विचिनोति) उचित समय पर इकट्ठा कर लेता है और (प्रहाम्) कार्यनाशक विघ्न पर विजय पाता है और (य) जो (देवकाम) प्रभु का प्रिय होकर (धना न रुणद्धि) अपने धनैश्वर्यों का खुल कर दान देता है (तम् इत्) उसे ही (स्वधावान् राया सम् सृजति) शक्ति-सम्पन्न ऐश्वर्यवान् राजा धनैश्वर्य से युक्त करे ॥९॥

भावार्थः—उत्तम व श्रेष्ठ राजा का यह धर्म है कि वह विनाशक शत्रुओं को विभिन्न साधनों के द्वारा अपने अधीन करे तथा शान्तिप्रिय व्यक्तियों की धन इत्यादि के द्वारा सहायता करे ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—हे (पुरु-हूत) बहुत पुकारने योग्य राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुध तरेम) यव आदि अन्न से सब प्रकार की भूख पार करें। (वयम्) हम लोग (राजभि) आप जैसे तेजस्वी पुरुषों, राजाओं और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनो को प्राप्त करें ॥१०॥

भावार्थ —प्रजा राष्ट्र के शासक की सहायता के द्वारा धन सम्पदा को प्राप्त हो। स्व बल से वह विभिन्न कार्यों में सफलता पाए। भांति-भांति के भोजन से भूख से मुक्त हो एव विभिन्न विद्याओं से अज्ञान के अधकार को मिटाए ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु

॥११॥२३॥३॥

पदार्थ —(बृहस्पति) राष्ट्र और वेदवाणी का पालक प्रभु (न पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पश्चिम की ओर से और उत्तर दक्षिण से (अघायो पातु) पापाचार से बचावे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यत.) पूर्व दिशा से और बीच से भी (न परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा नः सखिभ्य) वह सबका मित्र परमात्मा, हम मित्रो के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे ॥११॥२३॥३॥

भावार्थः—जब हम सखातुल्य गुण अपनाते तथा आचरण मे लाते हैं तो परमात्मा भी किसी भी दिशा से प्रहार करने वाले अनिष्टकर्त्ता से रक्षा करता है ॥११॥

इति त्रयोविंशो वर्ग ॥

इति तृतीयोऽनुवाक ॥

---

[४३]

१—११ ऋषि कृष्ण.॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६ *निचृज्जगती* । २ *आर्ची स्वराड् जगती* । ३, ६ *जगती* । ४, ५, ८ *विराड्जगती* । १० *विराट् त्रिष्टुप्* । ११ *त्रिष्टुप्* ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।

परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे प्रभो (मे) मेरी (स्वः-विद सध्रीची विश्वा मतय) मोक्ष देने वाली परस्पर सगत वाणियां सब प्रकार से, (उशती. अच्छ अनूषत) तुझे चाहती हुई स्तुति करती हैं। (यथा जनयः मर्यं पतिं न) जैसे स्त्रियां अपने पुरुषो, पतियों को (शुन्ध्युं मघवानम् ऊतये परि ष्वजन्ते) वैसे ही परम पावन ऐश्वर्यवान् तुझ अध्यात्म धनवाले को आत्म तृप्ति हेतु स्तोता आलिंगन करते हैं ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा की स्तुति करने वाली मानव की वाणी ही उसे प्रभु का समागम करा मोक्ष प्राप्त करने से सफलता दिलाने वाला परम या श्रेष्ठ साधन है ॥१॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।

राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

पदार्थः—हे (पुरु-हूत) बहुत प्रकार से पुकारे जाने योग्य राजन् ! (त्वद्रिग्) तेरे प्रति लगा (मे मन) मेरा मन (न घा अप वेति) तुझसे दूर नहीं होता, प्रत्युत (त्वे इत् कामं शिश्रय) तुझमे ही मैं अपनी कामना को स्थापित करता हू। (राजा इव बर्हिषि) राजा जैसे तू मेरे आसन पर विराज, वैसे ही हे (दस्म) दर्शनीय प्रभु (अस्मिन् बर्हिषि राजा इव नि षद) इस लोक-समूह मे राजा के तुल्य अधिष्ठित हो। (अस्मिन् सोमे सु अवपान अस्तु) इस उपासना रस मे तेरा सुन्दर परिपालन हो ॥२॥

भावार्थः—प्रभु के प्रति अपने मन को इस भांति लगाना चाहिए कि सकल मनोरथ पूर्ण हो सकें। जब सच्चे हृदय से प्रभु मे मन को अनुरक्त किया जाये तो फिर वह भटकता नहीं। उसी स्थिति मे उपासक भगवान् को अपने हृदय मे साक्षात् कर पाने में समर्थ होता है ॥२॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

पदार्थ —(स इन्द्र) वह परमात्मा (विषू-वृत्) विषम अर्थात् कुटिलों को खाता है वह (मघवा अमते उत क्षुध) अज्ञान मिटाता है। (इत् राय वस्व. ईशते) वह परमात्मा ब्रह्मधन की ओर बसाने वाला आत्मबल का स्वामी है (तस्य वृषभस्य शुष्मिण -इत्-प्रवणे) उस सुखदाता बलशाली प्रभु के शासन मे (इमे सप्त सिन्धव) ये सात वेग से सर्पणशील प्राण या नदियां (वयः) जीवन को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ॥३॥

भावार्थ —कुटिल व पापी जनो पर भगवान् की कृपा कभी नहीं होती। ऐसे व्यक्तियों को वह किसी न किसी प्रकार दण्ड अवश्य ही देता है। वह अज्ञान एव अत्यधिक भोग की इच्छा को भी मिटाता है। सकल बाह्य एव आन्तरिक धनों का प्रभु ही स्वामी है। उसी के नियन्त्रण में प्रवाहिनी सरिताएं अन्न की वृद्धि करती हैं और शरीर में प्राण प्रगति कर आयु में वृद्धि करते हैं ॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥

पदार्थः—(वयः सुपलाशम् वृक्षं न) जैसे पक्षिगण उत्तम पत्तो से हरे-भरे वृक्ष पर बैठते हैं वैसे ही (मन्दिन:) उत्तम रीति से स्तुति करने व उसके साथ हर्ष पाने वाले, (चमू सदः सोमास:) अध्यात्मरस का आस्वादन कराने वाली समाधि मे (एषाम् अनीकं शवसा प्रदविद्युतत्) इनका मुख आत्म तेज से चमकता है (मनवे आर्यम् स्वः ज्योति विदत्) मननशील को सुखद ज्योति मिलती है ।।४।।

भावार्थः—जिस भांति हरे-भरे पत्तों वाले वृक्ष पर बैठा पक्षी आनन्दित होता है, उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता उपासक समाधिस्थ, शांत होकर प्रभु के आश्रय मे आनन्दित होता है । उसका मुख आत्मतेज से ओजमय होता है । वह प्रभावशाली बनकर श्रेष्ठ सुखद ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करता है ।।४।।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५॥२४॥

पदार्थः—(श्वघ्नी कृतं न विचिनोति) भेडिया जैसे अपने प्रहार से मारे को स्वाधीन करता है (यत् मघवा देवने स-वर्गं सूर्यं जयत्) वैसे ही प्रभु आकाश के लिए प्रकाश दाता सूर्य को प्रकाशित करता है (तत् ते अन्यः अनुवीर्यं शकत्) उसके बाद ही वह तुझसे अलग सूर्य तेरे अनुकूल वीर्य तेज करने में समर्थ होता है । (मघवन्) हे प्रभो (न पुराणः उत न नूतनः) वह सूर्य न तेरे जैसा पूर्ववर्ती है और न अन्य चीजों जैसा नवीन है ।।५।।

भावार्थ.—सूर्य सरीखे शक्तिशाली पिण्ड भी उस परमात्मा के ही अधीन होकर प्रकाश विस्फारित करते हैं । सूर्य न तो शाश्वतिक ही है और न ही अन्य जड़ पदार्थों के समान अर्वाचीन ही है । क्योंकि उसी के प्रकाश से सकल वनस्पति आदि जीवन को धारती हैं ।।५।।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थ —(मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु (विश-विश परि अशायत) मनुष्यादि प्राणीमात्र को प्राप्त होता है (वृषा) सुखो का वर्षक (जनानां धेना अव चाकशत्) मनुष्यो की प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है । (शक्र) वह शक्तिशाली पुरुष (यस्य) जिस प्रजाजन के (सवनेषु) ऐश्वर्यों के बीच (रण्यति) आनन्द लाभ करता है, (स) वह (तीव्रै· सोमै) वेगगामी, विद्वान् पुरुषों द्वारा (पृतन्यत सहते) सेनाओ द्वारा युद्ध करके उसके शत्रुओं को पराजित करता है ।।६।।

भावार्थ.—ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु ही स्तुति करने वाले व्यक्ति की स्तुतिमय वाणी का जानकार है । वही मानवादि प्राणिमात्र का अन्तःसाक्षी है । वह सकल स्तुति प्रसगों मे रमता है । स्तुतिकर्ताओ के सभी शत्रुओ को दूर भगाता है ।।६।।

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

पदार्थ·—(आप न सिन्धु यत्) नदियां वा जलधाराए जैसे समुद्र की ओर बह आती हैं, (कुल्या इव ह्रदम्) जैसे छोटी नहरें बडी नदियो की ओर बह आती हैं, वैसे ही (सोमास) उपासको की उपासना (इन्द्रं) परमात्मा के प्रति होती है (सादने अस्य मह) मन मे इस महान् परमेश्वर को (विप्रा वर्धन्ति) उपासक साक्षात् करते हैं (वृष्टि दिव्येन दानुना यव न) मानव वृष्टि जैसे आकाश के जल से यवो को बढ़ाती है ।।७।।

भावार्थ —जिस भांति सरिताएं सागर मे समाहित होती हैं और नहरें नदियो में मिल जाती हैं, वैसे ही उपासको की उपासना भी प्रभु को ही प्राप्त होती है । उपासना का यह प्रभाव ही उपासको मे प्रभु को प्रबुद्ध करता है, जिस भांति मेघो के द्वारा बरसाये गये जल से खेती को समृद्धि प्राप्त होती है ।।७।।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

पदार्थ —(क्रुद्ध वृषा न रज सु पतयत्) बल से बढ़ा क्रुद्ध सांड जैसे धूल मे वेग से चलता है वैसे ही (य इमा. अप अर्यपत्नी: अकृणोति) जो इन आचरणशील उपासक अपनी पालने योग्य प्रजा को स्वीकारता है और विजयी हो पतिवत् आचरण करता है, वैसे ही (स मघवा) वह सकल लोक स्वामी (हविष्मते) आत्मवान्, (मनवे) मनन शील (सुन्वते) उपासना रस निष्पादक (जीरदानवे) जीवनदाता का (ज्योति अविन्दत्) अपने स्वरूप को प्राप्त करता है ।।८।।

भावार्थ·—जिस भांति बलवान् सांड अपने सींगो से प्रतिद्वन्द्वी पर क्रुद्ध होकर प्रहार करता है, वैसे ही परमात्मा अपने उपासको के हृदय से कामादि शत्रुओं को उखाड फेंकता है । वह दूसरो को जीवन देने वाले के लिये अपनी ज्योति प्रदान करता है । वह आत्मसमर्पणकारी उपासना रस अर्जित करने वालों पर कृपा करता है ।।८।।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

पदार्थ·—(परशु:) उपासको के शत्रुओं का नाशक, (ज्योतिषा सह) तेज के साथ (उत् जायताम्) उन्नत पद को प्राप्त हो । हे प्रभो ! तू (सु-दुघा) दुग्ध देने वाली गौ के तुल्य और (पुराणवत्) वृद्ध जन के समान, प्रजा पालक होकर (ऋतस्य) धन, ज्ञान का (सु-दुघा) देने वाला (भूया:) हो । (अरुष) स्वय तेजस्वी होकर (भानुना वि रोचताम) तेज से दीप्त हो वा (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, (स्वः न शुक्र) स्वच्छ प्रकाशक सूर्य के तुल्य (सत्पतिः) पालक होकर (शुक्र शुशुचीत) शुद्ध तेज से प्रकाश करे और (शुक्र =शुक्ल) शुभकर्म से आत्मा को पावन करे ।।९।।

भावार्थ —भगवान् अपने तेज के द्वारा अपने उपासकों के शत्रुओ का दमन करते हैं । दूध देने वाली गौ के तुल्य उसकी कृपा भी अमृतपान कराती है । वह आराधनारत व्यक्ति मे अपने तेज को प्रकटाता है ।।९।।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थ —हे (पुरु-हूत) बहुतों से आमन्त्रित प्रभो ! हम लोग (दुरेवाम्) दु:साध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुध तरेम) अन्नो से भूखो को तरें । (वयम्) हम लोग (राजभि) तेजस्वी जनो और (अस्माकेन वृजनेन) स्व बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को पाएं ।।१०।।

भावार्थ —राष्ट्रजनों को शासकों की सहायता से धन-सम्पदा का उपार्जन करना चाहिए । उन्हें स्व बल द्वारा अपने कार्यों में सफलता पानी चाहिए । विविध प्रकार के अन्न से भूख मिटाकर तथा नाना विद्याओं के अध्ययन से ज्ञान-सम्पन्न होना चाहिए ।।१०।।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥११॥२५॥

पदार्थ —(बृहस्पति) राष्ट्र तथा वाणी का पालक (न पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमारी पीछे, ऊपर और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायो: पातु) पापाचारी से रक्षा करें । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यत:) आगे से व बीच से भी (न परि पातु) हमारी रक्षा करे । (सखा सखिभ्य) वह सर्वमित्र, न्यायी हम मित्रो के उपकारार्थ (वरिव कृणोतु) उत्तम धन दे ।।११।।२५।।

भावार्थ.—परमात्मा ही सभी दिशाओ से अनिष्ट करने वालो से उपासकों की रक्षा करता है, जबकि वे सखातुल्य गुण व आचरण धार लेते हैं ।।११।।२५।।

इति पञ्चविंशो वर्गः ।

[४४]

ऋषि कृष्णः ।। इन्द्रो देवता ।। छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, १० विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ त्रिष्टुप् । ४ विराड्जगती । ५-७, ९ पादनिचृज्जगती । ८ निचृज्जगती ।। एकादशर्चं सूक्तम् ।।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (स्व-पति.) अपने अधीन जगत् या अपने अधीन राष्ट्र का स्वामी (य) जो (धर्मणा) न्यायगुण से (तूतुजानः) शत्रुओं का नाश कर और प्रजा को ऐश्वर्य देता हुआ (तुविष्मान्) बलवान् हो । वह (अपारेण) अपार, (महता वृष्ण्येन) नाश व बल से युक्त होकर (विश्वा सहांसि अति) उपासको के या प्रजा के शत्रुओ को (प्र त्वक्षाणः) नाश करता हुआ साक्षात् हो या राजपद पाए ।।१।।

भावार्थः—प्रभु स्व उपासकों को स्वीकारता है और आनन्द देने हेतु उन्हें प्राप्त होता है तथा उपासको के कामादि शत्रुओ का संहार करता है । वही राजा तथा प्रजा को अपनाकर उन्हें सुखी व शत्रुओं से निरापद करे ।।१।।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

पदार्थ·—हे (नृपते) मुमुक्षु मनुष्यों के पालक (ते रथ. सु स्थामा) तेरा रथ मोक्षदाता हो । (ते हरी सु यमा) तेरे दोनों अश्व सुख से नियन्त्रित हों । (ते गभस्तौ) तेरी बाहु में (वज्र मिम्यक्ष) शस्त्र-बल रहे । हे (राजन्) राजन् ! तू (सुपथा शीभ अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्ग से इस घर में प्राप्त हो । हम (ते पपुषः) तुझ सर्वपोषक के (वृष्ण्यानि वर्धाम) बलों को अपने में बढावें ।।२।।

भावार्थः—मुमुक्षु जन-प्रतिपालक प्रभु स्वकृपा के प्रसाद से उपासको के अन्दर अध्यात्म मार्ग से विराजता है । प्रजा पालक राजा अपने सैन्यविभाग व सभा विभाग के द्वारा प्रजा-हितरक्षण करता हुआ यानादि से उन्हें प्राप्त हो जाता है । इसी भांति गति-शक्तिरक्षक अपनी दो धाराओं से किसी कला-यन्त्र मे सम्युक्त होकर प्रयोग में आता है ।।२।।

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥

पदार्थः—(अस्मत्रा) हम में (इन्द्र-वाहः) ऐश्वर्य और बलशाली प्रभु को धारण कराने में समर्थ, (उग्रासः) उग्र, (तविषासः) आत्मबलयुक्त बलशाली (सध-मादः) एक साथ हर्ष प्राप्त करने वाले उपासक (नृपतिं) मनुष्यों के—मुमुक्षुओं के पालक (वज्र-बाहुम्) ओजस्वी प्रभु के (उग्रम्) उत्तम गुण वाले (प्र-त्वक्षसं) तेजस्वी, (सत्यशुष्मम्) सत्यबल से बलशाली राजा या प्रभु (वृषभम्) नरश्रेष्ठ को (आ वहन्तु) धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—तपस्वी उपासक ही उत्तम गुणयुक्त प्रभु को प्राप्त कर पाते हैं, अन्य कोई नहीं। इसी प्रकार प्रतापी शासक का विश्वास तेजस्वी कर्मचारी पाते हैं ॥३॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

पदार्थ—(एव) ऐसे ही (द्रोण-साच) राष्ट्रसेवक (स-चेतसम्) ज्ञानी, सहृदय (ऊर्जः स्कम्भम्) बल-पराक्रम के स्तम्भवत् धारक व्यक्ति को (धरुणे) धारने वाले पद पर हे प्रजाजन ! तू (आ वृषायसे) आदरपूर्वक बलवान् की कामना कर। हे राजन् ! तू (ओजः कृष्व) बल वीर्य अर्जित कर (त्वे) तू अपने में ही हमें (सं गृभाय) भली प्रकार ग्रहण कर। (यथा) जैसे तू (केनिपानां इनः) सुखमय विद्वानों का स्वामी बनकर (वृधे) हमारी वृद्धि हेतु (अपि असः) समर्थ हो ॥४॥

भावार्थ—राजा के लिए आवश्यक है कि वह सुखमय विद्वानों का स्वामी बने व राष्ट्र की समृद्धि में सहायक हो। उसे प्रजा का पालक होना चाहिए। ऐसे ज्ञानी व सहृदय जन को ही राजपद प्रदान करना उचित है ॥४॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥२६॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (वसूनि अस्मे गमन्) जीवन को सुख से बिताने वाले धनैश्वर्य हमें दो। मैं तेरी (सु-आशिषं शंसिषम्) शुभ वचनों से प्रशंसा करता हूँ। तू (सोमिनः भरम् आ याहि) ऐश्वर्ययुक्त सोम के यज्ञ वा राष्ट्र-कार्य को प्राप्त हो (त्वम् ईशिषे) तू ही सबका रक्षक है। तू ही (बर्हिषि आ सत्सि) इस वृद्धियुक्त लोक या हृदयासन पर अध्यक्षवत् विराज। (तव पात्राणि) हम तेरे श्रद्धावान् राजपद पर विराजें (धर्मणा) धर्म आदि के बल से (अनाधृष्या) किसी से पराजय प्राप्त नहीं कर सकते ॥५॥२६॥

भावार्थ—प्रभु के उपासकों को सभी आवश्यक पदार्थ मिलते हैं और परमात्मा भी उनके हृदय में बसता है। उन्हें कोई भी कामादि दोष प्रभु से विरक्त नहीं कर सकता तथा जब प्रजा राज्य के शासनानुकूल चलती है तो सुख के साधन उन्हें सुगमता से मिलते हैं। राजा स्वपद पर आसीन होकर उन्हें अभयदान देता है। कोई उन्हें राजा की रक्षा से वंचित नहीं कर सकता ॥५॥२६॥

इति षड्विंशो वर्गः ॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६॥

पदार्थ—(प्रथमाः) श्रेष्ठ (देव-हूतयः) ईश्वर के उपासक जन (पृथक्) अलग-अलग (प्र आयन्) आगे बढ़ मोक्ष पाते हैं। वे (श्रवस्यानि) श्रवण करने योग्य (दुस्तरा) अपूर्व कीर्तिजनक कर्म को पूर्ण कर लेते हैं और (ये) जो (यज्ञियाम् नावम्) प्रभु की उपासनामयी नौका पर (आरुहम् न शेकुः) सवार नहीं हो सकते (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरणों में लिप्त (ईर्मा इव नि अविशन्त) ऋण-ग्रस्त के तुल्य नीचे पड़े रहते हैं, मोक्ष के भागी नहीं बनते ॥६॥

भावार्थ—जो मुमुक्षुजन अध्यात्म गुणों को धारण कर ऊँचे उठते हैं वे संसार सागर को पार कर मोक्ष पा जाते हैं। ऐसे दिव्यगुणों को निकृष्ट व्यक्ति धारण करने में समर्थ नहीं होते, इसीलिए वे मोक्ष के भागी नहीं बन पाते व मोह-ग्रस्त रहते हैं ॥६॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

पदार्थः—(एव एव) इसी प्रकार (अपरे) दूसरे जो ब्रह्म की उपासना से रहित (दूढ्यः) मूढ़ पापी जन हैं (येषां) जिनके (दुः युजः अश्वाः) कुमार्ग में जाने वाले अश्वों जैसे बलवान् इन्द्रियगण (आ युयुज्रे) इधर-उधर के विषयों में लिप्त हैं। वे (अपाग् एव एव) दूर या नीचे ही नीचे गिरते (सन्तु) जाते हैं। (यत्र) जिसमें (पुरूणि वयुनानि) विपुल ज्ञान और (पुरूणि भोजना) बहुत से ऐश्वर्य हैं उस (परे) ब्रह्म में जो (दावने सन्ति) दान देने को सदैव तत्पर हैं वे (इत्था) वास्तव में (प्राक् सन्तु) मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥७॥

भावार्थः—ब्रह्म की उपासना से रहित इन्द्रियों में आसक्त असंयमी व्यक्ति दुर्बुद्धि को पाकर पतित होते हैं। विषयों से मुक्त व दानशील जन ही मोक्ष पाने में सफल होते हैं ॥७॥

गिरीँरज्राँ रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८॥

पदार्थ—वह प्रभु (अज्रान्) गतिशील, (गिरीन्) मेघों और (रेजमानान्) बिजली से कंपितों को (अधारयत्) पृथ्वी पर गिराता है। (द्यौः क्रन्दत्) बिजली जैसे गरजता हुआ, तब मानो वह (अन्तरिक्षाणि) मेघों को लक्ष्य कर (कोपयत्) कुपित करता है मानो उन पर क्रोध करता है। (समीचीने) परस्पर मिले हुए (धिषणे) आकाश व पृथिवी-लोकों को (वि स्कभायति) थामता है और वह (वृष्णः पीत्वा) जलवर्षक रसों का मेघवत् पान करके उपासना रसों को पाकर (मदे) आनन्द में (उक्थानि शंसति) स्तुत्य वेदवचनों का प्रवचन करता है ॥८॥

भावार्थ—प्रभु ही मेघों से जल बरसाता है। वही दुष्टों को विद्युत् गिराकर प्रकम्पित करता है, वही धरती व आकाश को थामता है। वही उपासकों की स्तुति को स्वीकार कर उन्हें ज्ञानमय प्रवचन देता है ॥८॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

पदार्थः—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (येन) जिससे तू (शफारुजः) दुर्वचनों से, तथा दुष्ट जनों को (रुजासि) पीड़ित करता है मैं (ते) तेरे (सुकृतं) उत्तम रीति से बने उस (अङ्कुशं) अंकुश को (बिभर्मि) धारण करूँ। (ते अस्मिन् सवने) तेरे इस शासन में (ओक्यं सु अस्तु) सुखदायी स्थान-घर है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (आ-भगः) सब प्रकार से सम्पन्न होकर (सुते इष्टौ) उत्तम रीति से सम्पादित यज्ञ में (बोधि) हमारी स्तुतियों को जान, पूर्ण कर ॥९॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू सभी लोगों की पीड़ा नष्ट करता है। मैं भी तेरे उत्तम रीति से बने अंकुश को स्वीकार करूँ। तेरे शासन में सुखदायी गृह में मेरा निवास हो। हे प्रभु ! तू उत्तम रीति से सम्पादित ज्ञान से मेरी स्तुतियों को स्वीकार कर ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थ—हे (पुरु-हूत) अनेकों से आमन्त्रण-योग्य प्रभो ! राजन् ! हम (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) अन्न से सर्व प्रकार की भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों व (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को पाएँ ॥१०॥

भावार्थ—राष्ट्र के प्रजाजन शासकों की सहायता द्वारा धन-सम्पदा का अर्जन करें। स्वबल द्वारा अपने कार्यों में सफलता पाएँ। विविध अन्नों से भूख से निवृत्ति प्राप्त करें एवं विभिन्न विद्याएँ प्राप्त कर अज्ञान से मुक्त हों ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥२७॥

पदार्थ—(बृहस्पति) राष्ट्र तथा वाणी का पालन करने वाले (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे ऊपर और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापकर्म से बचाये। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सर्वमित्र न्यायी हम मित्रों के उपकार हेतु (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन हमें प्रदान करे ॥११॥२७॥

भावार्थ—परमात्मा अपने उस उपासक की सभी दिशाओं में वर्तमान अनिष्टकारी से रक्षा करता है, जो सखा समान गुण व आचरण धार लेता है ॥११॥२७॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

---

[४५]

ऋषिर्वत्सप्रिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९—१२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥

पदार्थः—(अग्नि प्रथमः दिवः परि जज्ञे) भौतिक अग्नि पदार्थ प्रथम द्युलोक मे प्रकटा सूर्यरूप मे (जातवेदाः द्वितीयम् अस्मत् परि) दूसरा जातवेद नामक अग्नि प्राण हो हमारी ओर पृथिवी पर प्रकटा (तृतीयम् अप्सु) तीसरा अग्नि विद्युत् अन्तरिक्ष में प्रकटा (नृ-मणाः) वह यह तीन प्रकार की अग्नि मनन, ज्ञानशक्ति देने वाली है (एनम् अजस्रम् इन्धानः स्वाधीः जरते) इसे निरन्तर जलाता होम आदि में रत यज्ञरत जन प्रभु स्तुति करता है व इस अग्नि से जरापर्यन्त प्रभु उपासना करे ॥१॥

भावार्थ —परमेश्वर ने पहले-पहल द्युलोक मे सूर्य अग्नि का सृजन किया, फिर पृथिवी पर अग्नि को प्रकटाया और तीसरे अन्तरिक्ष में विद्युत् को जन्म दिया। मनुष्य को इन अग्नियो को देखकर प्रभु का मनन चिन्तन करते हुए वृद्धावस्था तक उनसे लाभान्वित होते हुए प्रभु की वन्दना करनी चाहिए ॥१॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२॥

पदार्थ —हे (अग्ने) अग्ने ! (ते) तेरे हम (त्रेधा) तीन प्रकार के (त्रयाणि) तीन रूपो को (विद्म) जानें । (ते धाम) तेरे तेजो, जन्मो का (ते पुरुत्रा विभृता धाम विद्म) तेरे बहुत प्रकार से फैले स्थानो मे धारित रूपो को भी जाने । (ते यत् परम नाम यत् गुहा विद्म) तेरे प्रशंसनीय रूप को जानें । हम (तम् उत्स विद्म) उस कारण रूप निकास को भी जानें (यत आ जगन्थ) जहा से तु उत्पन्न होता है ॥२॥

भावार्थः—मानव जिस भाति अन्य अर्थविज्ञानो मे पारगत होता है उसी भाति अग्नि विज्ञान मे भी उसे प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि उसे अग्नि के विभिन्न रूपों और उसके उत्पत्ति स्थानों और उन खनिज पदार्थों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जिससे अग्नि उपजती है ॥२॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

पदार्थ.—(नृ-मणाः) मनन-बल और (नृ-चक्षाः) मनुष्यो मे ज्ञान का द्रष्टा परमात्मा, हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा) तुझे अन्तरिक्ष मे (अप्सु अन्त) मेघो के अन्दर विद्युत्रूप से और (दिवः ऊधन्) आकाशस्थ मेघ से प्राप्त करके प्रदीप्त कर सूर्यरूप मे देता है और (तृतीये रजसि तस्थिवांसम्) तीसरे पृथिवी लोक मे स्थित औषधियो मे सूर्यरूप (त्वा) तुझको (अपाम् उपस्थे) जलो मे भी विद्यमान (महिषाः) ऋत्विज् (अवर्धन्) अधिक शक्तिशाली बनाते हैं, प्रकटाते हैं ॥३॥

भावार्थ —परमेश्वर अग्नि के तत्व को द्युलोक मे सूर्य के रूप मे, अन्तरिक्ष मे बिजली के रूप में तथा धरती पर पार्थिव आग के रूप मे उपजाता है और फिर ऋत्विक् जन या विद्वान् लोग उसका अपने विभिन्न कार्यों के सम्पन्न करने हेतु उपयोग करते हैं ॥३॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

पदार्थः—जैसे (द्यौ) द्युलोक में तेजस्वी विद्युत् (स्तनयत्) गर्जती हुई (क्षामा रेरिहत्) भूमि तक पहुँचती है और जैसे (अग्नि.) आग (वीरुध) ओषधियो, वनस्पतियो को (सम् अञ्जत्) चमकाता हुआ (अक्रन्दत्) गर्जता है । वैसे ही (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी जन (क्षामा रेरिहत्) भूमियो वा शत्रु सेनाओ को प्राप्त करता हुआ (वीरुध) विपरीत अवरोध करने वाली बाधक सेनाओ को (सम् अञ्जन्) सामना करता हुआ, या (वीरुध) विविध रूप से उत्पन्न प्रजा को (सम् अञ्जन्) प्राप्त होता और उन्हे प्रकाशित करता हुआ (स्तनयन्-इव अक्रन्दत्) गर्जते मेघ के समान गर्जे और सूर्य जैसे (जज्ञान.) उत्पन्न होता (इद्ध) प्रदीप्त होकर (भानुना) अपने प्रकाश से (रोदसी अन्त) भूमि व आकाश के मध्य क्षितिज पर (भाति) आलोकित होता है और (सद्य. वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है उसी भांति वह भी (इद्ध) चमक कर (रोदसी अन्त.), शास्य-शासको के मध्य (भाति) प्रकाशित हो और (वि अख्यत्) विशेष घोषणा उपदेश आदि करता है ॥४॥

भावार्थ —अग्नि द्युलोक मे सूर्य के रूप मे प्रकाशित होती है । अन्तरिक्ष मे वह विद्युत् के रूप में अपनी विद्यमानता का परिचय देती है तथा धरती पर काष्ठ व इंधन आदि मे प्रकाशित होती है । इस भांति अग्नितत्व ही द्यावापृथिवीमय ससार मे विख्यात हुआ दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता है ॥४॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

पदार्थः—वह राजा, विद्वान्, अथवा परमात्मा, (श्रीणाम् उत आर) ऐश्वर्यों तथा आश्रितो को उन्नति देने वाला, (रयीणां धरुण) धनों को धारता है, (मनीषाणां प्रार्पण) उत्तम बुद्धि का दाता है, (सोम-गोपा) ऐश्वर्यरक्षक है । वह (वसु) सबको बसाने वाला, (सहसः) बलवान् सेना को (सूनुः) सन्मार्ग पर चलाता है, (अप्सु राजा) प्रजा में तेजस्वी राजा (इधान) दीप्त होकर (उषसाम् अग्रे विभाति) प्रभात वेलाओ मे प्रात.काल मे—सूर्य के तुल्य शोभा देता है ॥५॥

भावार्थः—वह परमात्मा ऐश्वर्यों का दाता व आश्रितो का उन्नत करने वाला है । धनो का धारक और उत्तम बुद्धि का दाता तथा ऐश्वर्य रक्षक है । वही सबका बसाने वाला व सबको सन्मार्ग पर चलाने वाला है । इसी भांति प्रजा में तेजस्वी राजा भी सूर्य के समान शोभा पाता है ॥५॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥२८॥

पदार्थ —वह राजा, प्रभु (विश्वस्य भुवनस्य केतु) सारे जगत् को प्रकाश देता है, (गर्भ) सभी को वश में करने वाला है और सबमें निहित है, (जायमानः) वह प्रकट होकर (रोदसी आ अपृणात्) धरती व आकाश को पूर्ण करता है । वह (वीळुम् अद्रिम् अभिनत्) अभेद्य अन्धकार को भी मिटा देता है, (यत् अग्निम्) जिस तेजस्वी नायक प्रभु को (जना परायन्) मानव परमश्रेष्ठ जान कर उसकी शरण मे जाते हैं और (पञ्च) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद आदि उसकी उपासना करते हैं ॥६॥

भावार्थ —वह सूर्य सकल ससार को प्रकाशित करता है, प्रगति देता है और धरती व आकाश को अपने प्रकाश से पूर्ण करता है । जब सभी उस प्रभु तेजपुंज की आराधना करते हैं तो वही धरती पर मेघ बरसाता है । वही प्राणियो के जीवन का पोषक है ॥६॥

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥

पदार्थ —वह राजा (पावक.) सबका पवित्रकर्ता, (उशिक्) सबका कल्याण चाहने वाला, (अरति) सर्वत्र व्याप्त, (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान्, (अग्निः) प्रकाशक, ज्ञानी, (मर्तेषु) मानवों में (अमृत) अविनाशी (निधायि) व्याप्त होकर वह (अरुषम्) प्रकाशमान, तेजोमय रूप को (भरिभ्रत्) धारता है (धूमम् इयर्ति) शत्रु को कपाने वाले सैन्यबल का सचालन करता है और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध कान्ति से (द्याम् इनक्षन्) आकाश मे शुभ्र प्रकाश फैलाता हुआ मोक्ष को व्यापता हुआ धारता है ॥७॥

भावार्थः—वह परमात्मा अविनाशी है, वही सब मे व्याप्त होकर जीवन मे प्रकाश देता है । वही आराधना करने वालो को मोक्ष की दिशा मे प्रेरित करता है ॥७॥

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८॥

पदार्थ —(दृशान) प्रत्यक्ष देखने वाला, (रुक्म) इच्छायुक्त, (उर्विया) महान् (वि अद्यौत्) यह आत्मारूप अग्नि प्रकटाता है । वह (दुर्मर्षम् आयुः श्रिये रुचानः) आश्रय लेने वाले उपासक के लिये तेजस्वी सूर्य का अबाध्य ज्ञान उत्पन्न करता हुआ (सु-रेताः द्यौः वयोभि यत एन अजनयत्) सम्यक् उत्पादक शक्तिमान् पिता तुल्य तेज वीर्ययुक्त प्राणो से इस उपासक को समृद्धि देता है ॥८॥

भावार्थ —परमेश्वर सभी स्थानो पर एकरस है और विद्यमान है । वह विशेषत अपने आश्रय मे आने वाले उपासक को अबाधित ज्ञान प्रदान करता है और उत्तम प्राणो से समृद्धि देता है ॥८॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९॥

पदार्थ —हे (भद्र-शोचे) कल्याण दीप्ति से युक्त ! हे (देव) तेजस्विन् ! (अद्य) आज (य) जो (ते) तेरे हेतु (घृतवन्तं अपूप कृणवत्) घृतयुक्त अन्न प्रदान करता है तू (तम प्र नय) उसे उत्तम सुख प्राप्त कराता है और (तम्) उसे (अच्छ वस्य प्रतर नय) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है । हे (यविष्ठ) बलवन् ! और (देव-भक्तम्) प्राणो से सेवनीय तू (सुम्नम् अभि नय) सर्व प्रकार से सुख देता है ॥९॥

भावार्थ - परमेश्वर ज्ञान का प्रकाश करने वाला और कल्याण की दीप्ति से युक्त है । उसी का समागम योग्य है । जो उपासक संयम से अपनी इन्द्रियो को तेजस्वी बना लेता है, उसे ही परमात्मा सांसारिक सुखों में श्रेष्ठतम सुख अथवा मोक्ष भी प्रदान करता है ॥९॥

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (ते सौश्रवसेषु आ भज) उसे इस श्रवण-मनन साक्षात्कार मे इनके सेवन करने पर स्वीकार कर—चाहना कर और (शस्यमाने उक्थे उक्थे आ भज) स्तुति किए जाते हुए प्रत्येक वचन में स्वीकार कर (सूर्ये प्रियः अग्ना प्रिय भवति) वह सूर्यरूप तेरी दृष्टि मे प्रिय हो वह (जातेन उत् भिनदत् जनित्वैः उत् भिनदत्) इस पापकर्म से सम्पर्क रहित हो एवं होने वाले पापकर्म से भी उसका सम्पर्क न हो ॥१०॥

भावार्थ —जो उपासक उस तेजस्वी प्रभु का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करता है व उसकी स्तुति में लगा रहता है, वह सर्व प्रकाशक एवं प्रभु का प्यारा बन जाता है । वह कभी पाप नहीं करता, अतएव उसे पाप का फल भी कभी नहीं भोगना पड़ता ॥१०॥

त्वाम॑ग्ने यज॑माना अनु॒ द्यून्विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि ।

त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥११॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्ने, परमात्मन् ! (**यजमाना**) अध्यात्मयज्ञ के यजमान (**त्वाम् अनु**) तेरे अनुरूप हो (**विश्वा वार्याणि वसु दधिरे**) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं और वे (**त्वया सह**) तेरी सहायता से (**द्रविणम् इच्छमाना**) धन व ज्ञान की प्राप्ति चाहते हुए (**उशिज**) मेधावी जन (**गोमन्तं व्रजं वि वव्रु**) नाना वाणियो से युक्त ज्ञानमार्ग को खोलते हैं ॥११॥

भावार्थ—अपने लिए वे व्यक्ति ही ज्ञान के मार्ग को प्रशस्त कर पाते हैं, जो प्रभु के आदेशानुसार सकल जीवन मे वरणीय धनो को प्राप्त करते हैं और ज्ञानमार्ग के पथिक बनते हैं ॥११॥

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒रां सु॒शेवो॑ वैश्वान॒र ऋषि॑भिः॒ सोम॑गोपाः ।

अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् ॥१२॥२९॥८।७।

पदार्थ—वह (**नरां सु-शेव**) मनुष्यो के सुखो का साधक, (**वैश्वानरः**) विश्वनायक प्रभु, (**सोम-गोपा**) सौम्यगुण वाले जीवो का रक्षक है (**ऋषिभिः अस्तावि**) ज्ञानियो से स्तुति किया जाता है। (**अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम**) द्यौरूप पृथिवी रूप दोनो धर्मों से युक्त प्रभु ज्ञान-प्रकाश देता है और धारणकर्त्ता, द्वेषरहित है, उसकी मैं स्तुति करता हूँ (**देवा॰ अस्मे सुवीर रयि धत्त**) और वह प्रभु हमें वीरता से युक्त अध्यात्म ऐश्वय प्रदान कराए ॥१२॥

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्यो को सुख देता है, वही उपासको की रक्षा भी करता है। वही ज्ञान का धारक तथा प्रकाशक है। हमें सदैव उसकी अर्चना मे रत रहते हुए उससे अध्यात्म धन की याचना करनी चाहिए ॥१२॥

इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽध्याय. ॥

इति सप्तमोऽष्टक ।

अथाष्टमेऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

[दशमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः]

[४६]

वत्सप्रिर्ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द:—१, २ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ४, ८, १० त्रिष्टुप् । ६ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृत त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र होता॑ जा॒तो म॒हान्न॑भो॒विन्नृ॒षद्वा॑ सीदद॒पामु॒पस्थे॑ ।

दधि॒र्यो धायि॒ स ते॒ वयां॑सि य॒न्ता वसू॑नि विध॒ते त॑नू॒पाः ॥१॥

पदार्थ—(**य**) जो अग्नि (**महान्**) गुणो व बलों में महान्, (**होता**) होमकर्ता अपने मे ग्रहण करने और अन्यो को देने वाला, सबको अपने प्रति आदरपूर्वक बुलाने वाला, (**नभः-वित्**) न प्रकट होने वाले अज्ञान मे छिपे तत्त्वों को जानने और अन्यो को जताने वाला, (**नृसद्वा**) सभी मनुष्यो के बीच सखा रूप से विराजमान होकर (**अपाम् उपस्थे सीदत्**) जलो पर नौका के समान सर्वतारक होकर सकल लोको पर अध्यक्षवत् विराजता है, (**य दधि॰ धायि**) जो सबके धारणकर्ता रूप से स्थापित है। (**स**) वह (**ते**) तुझे (**वयांसि**) ज्ञान, बल और जीवनों को (**यन्ता**) देने वाला और सबको नियम मे रखने वाला सर्व-व्यवस्थापक है। वह (**वसूनि**) नाना लोकों तथा ऐश्वर्यों का (**विधते**) कर्म करने वाले भक्त जीव के प्रति देने वाला है। वह (**तनूपाः**) सबके देहो का पालक है ॥१॥

भावार्थः—जो अग्नि सकल गुण व शक्ति सम्पन्न है, होम का करने वाला है, सबको अपने प्रति आदर के साथ बुलाता है, अज्ञान में छिपे तत्त्वो को जानने एव दूसरों को बताने वाला है, वह मनुष्यो मे सखा रूप से विराजमान होकर समस्त लोको मे अध्यक्ष के रूप मे स्थित है। वही तुझे ज्ञान, बल एव जीवन को देने वाला है। वह सर्व-व्यापक है। वह भक्त जीव को नाना लोकों एवं विभिन्न ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला है। वही उसकी देह का पालक है ॥१॥

इ॒मं वि॒धन्तो॑ अ॒पां स॒धस्थे॑ प॒शुं न न॒ष्टं प॒दैरनु॑ ग्मन् ।

गुहा॒ चत॑न्तमु॒शिजो॒ नमो॑भिरि॒च्छन्तो॒ धीरा॒ भृग॑वोऽविन्दन् ॥२॥

पदार्थ—(**इमं**) विद्वान् इस आत्मा को (**अपां सधस्थे**) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओ के साथ-साथ जीवात्मा को देह की रक्त नाड़ियों में बहते रुधिर के साथ-साथ (**विधन्त**) विशेष रूप से विधान करते हुए (**नष्टम् पशु न पदै**) खोये पशु को जिस भांति उसके चरण-चिह्नो से उसके पीछे-पीछे जाते और पता लगाते हैं उसी भांति (**नष्ट**) अदृश्य, (**पशु**) सर्वजगत् द्रष्टा को (**पदैः**) वेद-प्रतिपादित ज्ञानमय पदों से (**अनु ग्मन**) अनुक्रम से जान जाते हैं। (**उशिज**) उसके चाहने वाले (**गुहा चतन्त**) वाणी व हृदय मे गुप्त रूप से विद्यमान को, (**नमोभि**) विनययुक्त वचनो से (**इच्छन्तः**) चाहते हुए (**धीरा**) बुद्धिमान् एव (**भृगव**) समस्त पापों का क्षय करने वाले तपस्वी जन (**अनु अविन्दन्**) अनेक साधनो के उपरांत पाते है ॥२॥

भावार्थः—जिस भांति खोये हुए पशु को पाने हेतु उसके पद चिह्नों का सहारा लिया जाता है उसी भांति विद्वत् जन उस आत्मा को प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओ और जीवात्मा को देह की नाड़ियों मे बहते रक्त के साथ-साथ विशेषत॰ विधान करते हुए उस सकल जगत्द्रष्टा को वेद प्रतिपादित ज्ञानमय पदों के अनुक्रम से जान जाते हैं। उस वाणी व हृदय मे गुप्त रूप से विद्यमान को विद्वान् लोग विनययुक्त वचनों आदि अनेक साधनों से प्राप्त करते हैं ॥२॥

इ॒मं त्रि॒तो भूर्य॑विन्ददि॒च्छन्वै॑भूव॒सो मू॒र्धन्यघ्न्या॑याः ।

स शे॒वृधो॑ जा॒त आ ह॒र्म्येषु॒ नाभि॒र्युवा॑ भवति रोच॒नस्य॑ ॥३॥

पदार्थः—(**इम**) इस ज्ञानयुक्त परम अग्नि को, (**वैभूवस**) व्यापक प्रभु में वास कर्ता, (**त्रित**) त्रिलोकों, वेदो व अपने तीन जन्मो को जानने वाला या तीनो दु खो से पार उतरा मुक्त जीव, (**इच्छन्**) इस परम अग्नि को चाहता हुआ इसे (**भूरि**) बहु मात्रा मे (**अविन्दत्**) प्राप्त करता है। तब (**सः**) वह (**शेवृध**) शान्तिमय प्रभु मे शक्ति से बढ़कर (**हर्म्येषु जात.**) बड़े-बड़े प्रसादो मे जन्मे राजपुत्र के तुल्य बड़े-बड़े लोको मे भी (**युवा**) बलवान् होकर (**रोचनस्य**) तेज का (**नाभि**) केन्द्र हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—इस ज्ञानयुक्त अग्नि को व्यापक प्रभु मे बसाने वाला, त्रिलोक, वेदो व अपने त्रिजन्मो में जानने वाला मुक्त जीव बहु मात्रा मे पा लेता है। तदुपरान्त वह शान्तिप्रदाता प्रभु के प्रति अपनी अनुरक्ति बढ़ाकर राजमहलो मे जन्मे राजपुत्र के तुल्य नितान्त बलवान् व तेजस्वी बन जाता है ॥३॥

म॒न्द्रं होता॑रमु॒शिजो॒ नमो॑भिः॒ प्राञ्चं॑ य॒ज्ञं ने॒तार॑मध्व॒राणा॑म् ।

वि॒शाम॑कृण्वन्नर॒तिं पा॑व॒कं ह॑व्य॒वाहं॒ दध॑तो॒ मानु॑षेषु ॥४॥

पदार्थ—(**मन्द्रम्**) आनन्द देने वाला, (**होतारम्**) सबको सुख प्रदाता, सबको अपने मे लेने और अपने प्रति बुलाने वाले, (**प्राञ्चम्**) अति पूज्य, (**यज्ञम्**) सर्वदाता, सर्वोपास्य, (**अध्वराणां नेतारम्**) न नष्ट होने वाले तत्त्वो के सञ्चालन करने वाले, (**विशाम्**) देह मे प्रवेश करने वाले समस्त जीव-प्रजाओ के (**अरतिम्**) स्वामी, (**पावक**) परम पावन, (**हव्यवाहं**) ग्राह्य विषय रूप जगत् को अपने शक्ति-सामर्थ्य से सञ्चालन करने वाले प्रभु को, (**मानुषेषु**) मननशील पुरुषो के मध्य (**उशिज**) उसके चाहने वाले विद्वान् उसे (**नमोभि**) विनययुक्त वचनो से (**प्राञ्चं**) पा लेते हैं ॥४॥

भावार्थ—आनन्ददाता, सर्वसुखदाता, पूज्यतम, नष्ट न होने वाले तत्त्वो के सचालक देह मे प्रवेश करने वाले सकल जीवों के स्वामी तथा सकल जगत् का अपनी शक्ति व सामर्थ्य से सचालन करने वाले प्रभु को मननशील व्यक्तियो के मध्य उसके इच्छुक विद्वान् विनययुक्त वचनो से प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥

प्र भू॒र्जय॑न्तं म॒हां वि॑पो॒धां मू॒रा अमू॑रं पु॒रां द॒र्माण॑म् ।

नय॑न्तो॒ गर्भं॑ व॒नां धियं॑ धु॒र्हिरि॑श्मश्रुं॒ नार्वा॑णं॒ धन॑र्चम् ॥५॥१॥

पदार्थ—(**भूः जयन्त**) भुवनो को वश मे करने वाले, (**महाम्**) महान् (**विपः-धाम्**) नाना ज्ञान व कर्मों के धारक (**अमूरम्**) कभी मृत्यु या मोह को प्राप्त न होने वाले, (**पुरां दर्माणम्**) देहादि पुरो व नाना लोको को भी प्रलय में तोड़ने वाले, (**गर्भम्**) सबको अपने मे ग्रहण करने वाले, (**वनाम्**) परम सेवनीय, (**वनां गर्भम्**) तेजो के धारक (**हिरि-श्मश्रुम्**) नितान्त मनोहर लोमवत् तेजयुक्त (**अर्वाणं न धनर्चम्**) वीर के तुल्य धनैश्वर्यों से अर्चनीय उस प्रभु की ओर (**धियं नयन्ता**) अपनी स्तुति व बुद्धि को ले जाते हुए (**मूरा**) नाशवान् प्राणी उसे ही अपने मे (**धु॰**) धारण करें ॥५॥१॥

भावार्थ.—भुवनों को अपने वशीभूत करने वाले नाना ज्ञान व कर्म धारण करने वाले एव कभी भी मृत्यु या मोह के वश मे न होने वाले नाना लोकों को प्रलय के समय तोड़ने तथा सभी को अपने मे धारण करने वाले, तेजो के धारण करने वाले

वीर के तुल्य धन ऐश्वर्यों से अर्चनीय परमात्मा की ओर अपनी वन्दना व बुद्धि को लगाते हुए नाशवान् प्राणी उस प्रभु को प्राप्त करें ॥५॥१॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६॥

पदार्थ —जीव रूप यह अग्नि, (**पस्त्यासु**) प्राणों अथवा गृहवत् इन देहों मे (**स्तभूयन्**) अपने को स्थिर करने की इच्छा करता हुआ, (**योनौ परिवीत सीदत्**) मातृगर्भ मे चतुर्दिक् से जेर से आवृत होकर चित्त वा इन्द्रिय-सामर्थ्यों को एकत्र कर, (**वि-धर्मणा**) विशेष धारक प्रयत्न से (**अयन्त्रै**) पीड़ा के बिना ही (**नॄन् इयते**) प्राणो को प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ —जीव रूप यह अग्नि प्राणो अथवा ग्रह के तुल्य इन देहो में स्वय को स्थिर करने की इच्छुक मातृगर्भ मे चारो ओर से घिरे चित्त एव सामर्थ्यों को संगृहीत कर विशेष धारक प्रयत्नो के द्वारा पीड़ा के बिना ही प्राणो को प्राप्त कर लेता है ॥६॥

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस विद्वान् के अधीन, (**अग्नय.**) अग्निवत् तेजस्वी, (**अजरासः**) जरावस्था रहित, (**दमाम् अरित्राः**) दमन योग्य प्रजाओं के मध्य, (**अरित्रा.**) नाव के चप्पुओ के जैसा कार्यसाधक, (**अर्चद्-धूमासः**) ज्वालाओ के धूम की तरह शत्रुओ को कपाने वाले, (**पावका**) राष्ट्र के शोधन करने वाले, (**श्वितीचयः**) शुद्ध ज्ञान, यश वा द्रव्य के सग्राहक (**श्वात्रास**) अति क्षिप्रकारी, अप्रमादी, (**भुरण्यव**) प्रजा पालक, (**वन-सद**) वनो मे विराजने वाले, (**वायव**) वायु तुल्य बलशाली एव (**सोमा**) दीक्षाभिषिक्त जनो के समान विद्यादि से स्नात, पदाभिषिक्त नाना पुरुष हो ॥७॥

भावार्थ —इस विद्वान् के अधीन अग्नि के समान तेजस्वी, जरारहित प्रजा के मध्य, नौका के चप्पुओं के समान कार्यसाधक, ज्वालाओ के धुए के तुल्य शत्रुओ को प्रकाशित करने वाले, राष्ट्रशोधक, शुद्ध, ज्ञान, यश तथा द्रव्य के सग्राहक, नितान्त क्षिप्रकारी, अप्रमादी, प्रजा पालक, वनों मे वास करने वाले, वायु सरीखे बलशाली, दीक्षाभिषिक्त जनो के समान विद्यादि में पारगत विभिन्न जन हो ॥७॥

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥८॥

पदार्थ —जो (**अग्नि**) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (**जिह्वया**) वाणी द्वारा (**वेप प्र भरते**) कर्म व ज्ञान को धारण कराता है और (**पृथिव्या वयुनानि**) पृथिवी के ज्ञान को (**चेतसा प्र भरते**) अपने चित्त से धारण करता है, (**तम्**) उस (**पावकम्**) नितान्त पावन, (**मन्द्रम्**) अति स्तुत्य, हर्षदायी, (**होतारम्**) सर्वैश्वर्यों के दाता, (**यजिष्ठम्**) अति पूजनीय को (**आयवः**) सभी मनुष्य (**दधिरे**) धारण करते हैं वा करें ॥८॥

भावार्थ —अग्नि के समान तेजस्वी वाणी से कर्म व ज्ञान को धारण कराता है और धरती के ज्ञान को स्वचित्त में धारता है, उस पावनतम, स्तुत्य, हर्षदायक, सर्वैश्वर्य के देने वाले उस पूज्यतम को मानव धारते हैं तथा धारण करें ॥८॥

द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥९॥

पदार्थ —(**यम्**) जिस (**अग्निम्**) अग्नि तुल्य तेजस्वी व्यक्ति को (**द्यावा पृथिवी जनिष्टाम्**) आकाश तथा सूर्य प्रकट करते हैं और (**सहोभि**) सबको परास्त करने वाले बलो से युक्त जिसे (**आप**) प्राण, समुद्रादि और आप्तजन (**त्वष्टा**) एव सूर्य आदि और (**भृगव**) पापो के नाश करने तपस्वी जन (**जनिष्ठ**) प्रकट करते हैं और (**मातरिश्वा**) आकाश मे चलने वाला वायु जिसे प्रकट करता है, उस (**ईळेन्य**) सर्वस्तुत्य, (**प्रथम**) मुख्य, (**यजत्रम्**) सर्वोपास्य को (**देवा.**) सभी विद्वान् तथा समस्त सूर्य आदि (**मनवे**) मानव हितार्थ (**ततक्षु**) स्पष्ट करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिस अग्नि के तुल्य तेजस्वी जन को आकाश एव सूर्य प्रकट करते हैं तथा सभी को पराजित करने वाले बल से युक्त जिसे प्राण, समुद्रादि एव आप्त-जन तथा सूर्य इत्यादि एव पाप क्षय करने वाले तपस्वीजन प्रकट करते है और आकाश में बहता वायु भी जिसे प्रकटाता है उस सर्वस्तुत्य, सर्वोपास्य को सूर्य आदि सभी मानव के हितार्थ स्पष्ट करते हैं ॥९॥

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१०॥२॥

पदार्थ —हे (**अग्ने**) प्रभो ! (**य**) जिस तुझे (**देवाः**) देवगण व मनन-शील जन (**पुरु-स्पृह**) अति स्नेहयुक्त होकर (**यजत्रं दधिरे**) उपास्य एव सर्वदाता रूप से स्थापित करते हैं, (**स.**) वह तू (**यामन्**) हमे इस महान् जीवन पथ मे (**वय· धाः**) दीर्घजीवन एवं बल धारण करा । (**देवयन्**) तुझ देव को चाहता हुआ वह भक्त (**पूर्वीः यशस.**) पूर्व की सभी यशोवृद्धियो को (**सं**) पा ले ॥१०॥२॥

भावार्थ —हे तेजस्वी प्रभो ! तुझे देवगण मननशील जन, नितान्त स्नेहसहित उपास्य एवं सर्वदाता के रूप में स्मरण करते हैं । तू हमे इस महान् जीवन पथ का दीर्घजीवन प्रदान कर बल दे । हे प्रभु तेरा भक्त सभी प्रकार का यश व ऐश्वर्य प्राप्त करे ॥१०॥२॥

इति द्वितीयो वर्ग ॥

---

[४७]

ऋषि· सप्तगुः ॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठ ॥ छन्द —१, ४, ७ त्रिष्टुप् । २ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥

पदार्थ —हे (**इन्द्र**) प्रभो ! हम लोग (**ते**) तेरे (**दक्षिणम्**) दानशील, बलवान् (**हस्ते**) हस्त (**जगृभ्म**) का सहारा लेते हैं । हे (**वसून वसुपते**) सकल लोकों और धनैश्वर्यों के स्वामी ! हम (**वसूयव**) नाना लोकों और ऐश्वर्यों के इच्छुक जीवगण तुझे (**गोना गोपति विद्म**) समस्त सूर्यों, वाणियों, भूमियों, रश्मियों व जीवों के रक्षक के रूप मे जानते हैं । (**अस्मभ्य**) हमे तू (**चित्र**) अद्भुत, (**वृषण**) सर्व-सुखवर्षक (**रयि दा**) ऐश्वर्य दे ॥१॥

भावार्थ —हे प्रभो ! हम तेरे दानशील, बलवान् हाथ का सहारा लेते हैं । हे सकल लोको और धन तथा ऐश्वर्य के स्वामी, हम नाना लोकों व ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के इच्छुक जीवगण तुम्हे सकल सूर्यों, वाणियो, भूमियो, रश्मियो तथा जीवों के रक्षक के रूप मे जानते हैं । तू हमे अद्भुत सुखदायक ऐश्वर्य प्रदान कर ॥१॥

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२॥

पदार्थ —हे प्रभो ! हम तुझे (**सु-आयुधम्**) दुष्टो को भली प्रकार दण्ड देने वाला (**सु-अवसम्**) उत्तम रक्षा कर्ता, (**सु-नीथम्**) उत्तम नीति व उत्तम वाणी का ज्ञाता, (**चतु· समुद्रम**) चारो समुद्रो का शासक, (**रयीणा धरुणम्**) सभी ऐश्वर्यों का आश्रय, (**चर्कृत्यम**) सकल जगत् का निर्माता, (**शंस्यम्**) प्रशसनीय, (**भूरि-वारम्**) बहुत से कष्टो एव दुष्टो का निवारण करने वाला जानते हैं । तू (**अस्मभ्य**) हमे (**वृषण चित्र रयि दा.**) सर्वसुख वर्षी, अद्भुत ऐश्वर्य दे ॥२॥

भावार्थ —हे प्रभो ! हम तुम्हे दुष्ट दलनकर्ता, उत्तम रक्षक, उत्तम नीति एव वाणी का ज्ञाता तथा चारो समुद्रो का शासक तथा सकल ऐश्वर्य प्रदाता और सकल जगत् का नियामक और प्रशसनीय तथा अनेक कष्ट एव विघ्नहर्ता के रूप मे जानते हैं । तू हमें सर्व प्रकार का सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान कर ॥२॥

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) प्रभो ! तुझे (**सु-ब्रह्माणं**) चारो वेदो का सम्यक् ज्ञाता, (**देववन्तम**) दिव्यपदार्थों व विद्वानों का स्वामी, (**बृहन्तम्**) महान्, (**उरुं**) बड़ा भारी, (**गभीर**) गंभीर, (**पृथु-बुध्नम**) विशाल आश्रययुक्त, (**श्रुत-ऋषिम्**) ज्ञानदर्शी गुरु, शिष्यो मे श्रवण करने योग्य वा ऋषिजनो की प्रार्थनाओ को सुनने वाला, (**उग्रम्**) दुष्टो को भय दाता, (**अभिमाति सहम्**) अभिमानी का मद चूर्ण करने वाला समझते हैं । तू (**अस्मभ्य**) हमें (**चित्रं वृषण रयि दा**) अद्भुत, सुखप्रद धन व ऐश्वर्य प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ —हे परमात्मा, हम तुम्हे चारो वेदो का सम्यक् ज्ञाता, दिव्यपदार्थों, एव विद्वानो का स्वामी, विशाल आश्रयदाता, ज्ञानदर्शी गुरु, शिष्यों से श्रवणीय एव ऋषियो की प्रार्थना सुनने वाले, दुष्ट दलन करने वाले एव अभिमानियो के दर्प को चूर्ण करने वाले के रूप मे जानते हैं । तू हमे अद्भुत सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान कर ॥३॥

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त ! हम तुझे (**सनद्-वाज**) ज्ञान, बल, वेग का दाता, (**विप्रवीरं**) सर्वोत्कृष्ट बलशाली, (**तरुत्रम्**) भवसागर पार उतारने वाला, (**धन-स्पृत**) धन से पालने वाला, (**शूशुवांसम्**) सदा वृद्धि कर्ता, (**सु-दक्षम्**) उत्तम बलशाली, (**दस्यु हनम्**) दस्युओं का सहारक, (**पूर्भिदं**) देहपुरी को तोड़ जीव के मुक्तिदाता, (**सत्यं विद्म**) सत्य ही जानते हैं । तू (**अस्मभ्यम् चित्र वृषणं रयि दा**) हमें अद्भुत, सुखद धन ऐश्वर्य दे ॥४॥

भावार्थ.—हे सकल ऐश्वर्ययुक्त ! हम तुम्हें ज्ञान बाले वेग का दाता, सर्वश्रेष्ठ बलशाली, भवसागर से पार उतारने वाले, धन से पालने वाले एवं सदा वृद्धि कर्ता तथा दस्यु विनाशक और जीव के मुक्तिदाता सत्य ही जानते हैं । तुम हमें अद्भुत धन व ऐश्वर्य प्रदान करो ॥४॥

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! हम तुझे (अश्वावन्त) सकल जीवों का स्वामी, (रथिनम्) ब्रह्माण्ड वा परमानन्द रस का स्वामी, (वीरवन्त) वीरों का स्वामी, (सहस्रिणं) हजारों जनो, धनों का स्वामी, (शतिनं) शत-शत जनों, (वाजम्) बलवान्, (भद्र-व्रातम्) कल्याणकारी जनसमूहो का नायक, (विप्रवीरं) उत्कृष्ट वीर, (स्वर्षाम) सबको सुख देने वाले के रूप मे जानते हैं । तू (अस्मभ्य) हमें (चित्रं वृषणं रयिं दा) अद्भुत, सर्वसुखवर्षी ऐश्वर्य प्रदान कर ॥५॥३॥

भावार्थ—हे प्रभो ! हम तुम्हें सकल जीवो के स्वामी, परमानन्द रस के स्वामी, वीरो के स्वामी, शतशत जन, धन के स्वामी, बलशाली, कल्याणकारी जन-समूह नायक, उत्कृष्ट वीर एव सर्वसुखदाता के रूप मे जानते हैं । आप हमें सभी प्रकार का सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५॥३॥

इति तृतीयो वर्ग ।

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥६॥

पदार्थः—(यः) जो (आङ्गिरस) अग्नि के तुल्य स्वप्रकाश, (नमसा उपसद्य) विनयपूर्वक प्राप्ति योग्य है, उस (सप्त-गुम्) सप्त रश्मियो, सप्त प्राणों के आत्मा, (ऋत धीतिम्) सत्य ज्ञान धारक, (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धि वाले, (बृहस्पतिम्) वेदवाणी, बडी भारी शक्ति तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु को (मति) मननशील मनुष्य (अच्छ जिगाति) साक्षात् प्राप्त हो । हे प्रभो ! तू (अस्मभ्य चित्रं वृषणं रयिं दा) हमे अद्भुत, सर्वसुखप्रद ऐश्वर्य प्रदान कर ॥६॥

भावार्थ—जो अग्नि के समान स्वय प्रकाशित विनयपूर्वक प्राप्ति योग्य है, उस सप्त रश्मियों, सप्त प्राणो के आत्मा, सप्त ज्ञान धारक, उत्तम बुद्धि युक्त, वेद-वाणी, अतुल शक्ति एव ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु को हम मननशील जन साक्षात प्राप्त हों । हे प्रभु ! तुम हमे सकल ऐश्वर्य व सर्वसुख प्रदान करो ॥६॥

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥७॥

पदार्थ—(वनीवाना) प्रार्थना युक्त, (सु-मती इयानाः) शुभ बुद्धियो का इच्छुक (मम स्तोमा) मेरे स्तुतिगण, (दूतास) दूतो के तुल्य (हृदि-स्पृशः) हृदय मे पहुचे हुए, (मनसा) मन से (वच्यमाना) उच्चारण किये हुए, (इन्द्रं चरन्ति) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु तक पहुँचें । हे प्रभो ! (अस्मभ्यं चित्र वृषण रयिं दा) हमें सर्वसुखवर्धक, आश्चर्यकारी ऐश्वर्य दो ॥७॥

भावार्थः—मेरे द्वारा की गई प्रार्थनाएं और मन से उच्चारित वन्दनाए उस ऐश्वर्य-वान् परमात्मा तक पहुँचें । हे प्रभो ! हमे सर्व प्रकार से सुख व आश्चर्यजनक ऐश्वर्य प्रदान करो ॥७॥

यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद्द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥८॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वा यत् यामि) मैं तुझसे जिस पदार्थ को मांगू, तू (न तत् दद्धि) हमे वह दे और तू हमें (बृहन्तं क्षयम्) महान् ऐश्वय, (जनानां असमम्) जो सकल जनो मे सर्वाधिक हो, दे । (तत् द्यावा पृथिवी अभि गृणीताम्) उसकी राजा प्रजागण सर्वत्र स्तुति करें । (अस्मभ्य चित्र वृषण रयिं दाः) हमें सर्वसुखदाता, अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर ॥८॥४॥

भावार्थः—हे प्रभो ! मैं जिस पदार्थ की भी तुमसे याचना करू, तुम हमे वह प्रदान करो । तुम हमे सर्वाधिक ऐश्वर्य दो । ऐसे प्रभु की राजा प्रजा सर्वत्र स्तुति करें । वह हमें अद्भुत सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान करे ॥८॥४॥

इति चतुर्थो वर्गः ॥

---

[४८]

इन्द्रो वैकुण्ठ ऋषिः ॥ देवता-इन्द्रो वैकुण्ठ ॥ छन्द—१, ३ पादनिचृज्जगती । २, ८ जगती । ४ निचृज्जगती । ५ विराड् जगती । ६, ९ आर्ची स्वराड् जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । १०, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१॥

पदार्थ—प्रभु कहता है । (अह) मैं (वसुनः) जिसमे समस्त जीव बसते हैं उस जगत् का (पूर्व्यः पति भुव) सबसे पूर्व, एव पूर्ण पालक, स्वामी हू । (अहं) मैं (शश्वतः धनानि) अनेक प्रकार के धनों को (स जयामि) एक साथ सर्वाधिक विजय करता हूँ । (जन्तवः) सकल जीवगण (मां) मुझे (पितर न हवन्ते) माता पिता के तुल्य बुलाते हैं । (अह दाशुषे) मैं दानशील, आत्मसमर्पक भक्त एव दाता को (भोजनम् वि भजामि) सकल भोग्य ऐश्वर्य, अन्न व सर्व-पालक धन विशेष रूप से देता हूँ ॥१॥

भावार्थः—प्रभु कहते हैं कि मैं वह हूँ कि जिसमे समस्त जीवो का वास है, इस जगत् का सर्वप्रथम पूर्ण पालक स्वामी हू । मैं अनेक प्रकार के धनो को एक साथ सर्वाधिक विजय करता हू । सकल जीव गण मुझे माता-पिता के तुल्य बुलाते हैं । मैं दानी आत्मसमर्पण करने वाले भक्त तथा दाता को सकल ऐश्वर्य प्रदान करता हू ॥१॥

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन्दधीचे मातरिश्वने ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (अथर्वणः) अहिंसक, सर्वपालक जन को (रोधः) शत्रुओ का रोधक बल (वक्ष) प्रदान करता हू । सूर्य पर आश्रित मैं (त्रिताय) तीनो आश्रमों मे स्थित जनो को उपदेष्टावत् (गा) वेदवाणियों को (अजनयत्) प्रकटाता हूं । (अहम्) मैं (दस्युभ्यः) दुष्टों से (नृम्णम्) सकल धन (आददे) ले लेता हू और मैं (मातरिश्वने) माता के गर्भ मे आने वाले (दधीचे) ध्यान-धारणावान् जीव को (गोत्रा शिक्षन्) इन्द्रियो तथा वाणियों के प्रयोग की शिक्षा देता हू ॥२॥

भावार्थः—मैं अहिंसक, सर्वपालक जन को शत्रुओ को रोकने वाला बल देता हू । सूर्याश्रित मैं तीनों आश्रमो मे स्थित जनो को उपदेशक के तुल्य, वेदवाणियों को प्रकटाता हूं । मैं दुष्टो से सकल धन ले लेता हू और माता के गर्भ मे आने वाले ध्यान-धारणावान् जीव को इन्द्रियो व वाणियो के प्रयोग की शिक्षा प्रदान करता हूं ॥२॥

मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३॥

पदार्थ—(त्वष्टा) उत्तम शिल्पी एव सूर्यादि (मह्यम्) मेरे ही (वज्रम्) बल को (अतक्षत्) प्रकटाते हैं । (मयि) मेरे आश्रय होकर (देवास.) विद्वान् ज्ञानी जन (क्रतुम् अपि अवृजन) अपने सकल कर्म मेरे हेतु त्यागते एव करते हैं । (मम अनीकम्) मेरा स्वरूप तथा बल (सूर्यस्य इव दुस्तर) सूर्य के तुल्य असह्य है । (कृतेन कर्त्वेन च) सकल किये सत्-कर्म से (माम् आर्यन्ति) मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थ—सूर्यादि तथा उत्तम शिल्पी मेरे ही बल को प्रकटाते हैं । विद्वान् ज्ञानी जन अपने सकल कर्म मेरे हेतु त्यागते एव करते हैं । मेरा स्वरूप एवं बल सूर्य के समान असह्य है । सकल लोक म किये गए सत्कर्म मुझे ही मिलते हैं ॥३॥

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जब (उक्थिन सोमास) वेद-वचनो के ज्ञाता वीर्यवान् पुरुष (मा) मुझे (अमन्दिषु) प्रसन्न करते है तब मैं (पुरु सहस्रा) अनेक सहस्र ऐश्वर्य (दाशुषे नि शिशामि) आत्मसमर्पण करने वाले के लाभार्थ देता हू और (अहम्) मैं (एत) इस (गव्ययम्) ज्ञानेन्द्रियों (अश्व्य पुरीषिण) व नाना ऐश्वर्यों के स्वामी (हिरण्ययम्) तथा सुवर्णवत् उज्ज्वल तेज स्वरूप (पशु) द्रष्टा आत्मा को (सायकेन) बाण के जैसे तीक्ष्ण, अज्ञान का अन्त कर देने वाले ज्ञान से सम्पन्न करता हू ॥४॥

भावार्थ—जब वेद वचनो को जानने वाले, वीर्यवान् अनेक सहस्र ऐश्वर्य आत्मसमपरण करने वाले लाभ हेतु प्रदान करता हू और मैं ज्ञानेन्द्रियों एव नाना ऐश्वर्यों के स्वामी तथा सुवर्ण के तुल्य उज्ज्वल तजस्वरूप द्रष्टा इस आत्मा को वाण के तुल्य तीक्ष्ण, अज्ञान का नाश करने वाले ज्ञान से सम्पन्न करता हू ॥४॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५॥५॥

पदार्थ—(अहम् इन्द्र) मैं ऐश्वर्यवान् (धन न इत् परा जिग्ये) धन को कभी नहीं हारता और (न मृत्यवे अव तस्थे) न मृत्यु के समान कभी अपने को हारा हुआ पाता हू । हे विद्वानो ! आप (सोम सुन्वन्त) सर्वोत्पादक की उपासना करते हुए (मा इत् याचत) मुझसे नाना याचना करो । (पूरव) मनुष्यो ! आप (मे सख्ये न रिषाथन) मेरे सख्यभाव मे रह कर कभी विनाश को प्राप्त न हो ॥५॥५॥

भावार्थ—मैं ऐश्वर्ययुक्त कभी भी धन को नहीं गवाता, मृत्यु के समक्ष कभी नही हारता । हे विद्वानो आप मुझ सर्वोत्पादक की उपासना करते हुए मुझ से अनेक याचनाए करो । हे लोगो ! मेरे सख्य भाव मे रहकर तुम अमरत्व प्राप्त करो ॥५॥५॥

इति पञ्चमो वर्ग ।

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो (द्वा-द्वा) दो-दो (युधये) युद्ध करने हेतु (इन्द्र वज्र) शत्रु संहारक शस्त्र-समूह को (अकृण्वत) तैयार कर लेते हैं (एतान्) उन (शाश्वसत) सांस लेने वाले, (आह्वयमानान्) दूसरो को ललकारने वाले, (नमस्विन) शस्त्र सम्पन्न जनों के प्रति भी कभी (अनमस्यु) न झुक कर (दृढा

वदन्) दृढ़ सत्य वचन कहता हुआ उनको (हन्मना) हनन करने वाले उपाय से (अव अहनम्) नीचे मार गिराता तथा दण्ड देता हूं ॥६॥

भावार्थ —जो दो-दो मिलकर युद्ध करने हेतु संहारक शस्त्रास्त्र तैयार कर लेते हैं उन दूसरों को चुनौती देने वाले सशस्त्र लोगों के समक्ष भी कभी न झुककर दृढ़ सत्य वचन कहते हुए उन्हें हनन करने के उपायों द्वारा मैं मार गिराता हूं व दण्ड देता हूं ॥६॥

अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।

खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७॥

पदार्थः—मैं एकाकी ही (नि षाट्) शत्रुओं को एक-एक कर सर्वथा परास्त करने वाला हूं । (एकम् माम् अभि) मुझ अकेले के प्रति (द्वा किमु त्रयः करन्ति) दो या तीन भी क्या कर सकेंगे ? मैं (पर्षान्) घोर शत्रुओं को (खले) खलिहान में पड़े सूखे जौ गेहूं के पौधों के तुल्य (भूरि प्रतिहन्मि) बहुतों को मुकाबले पर बहुत ताड़ित करूं । (अनिन्द्राः) ऐश्वर्यहीन (शत्रवः) शत्रु लोग (मा किं निन्दन्ति) मेरी क्या निन्दा करते हैं ? ॥७॥

भावार्थ —मैं अकेला ही शत्रुओं को एक-एक कर सर्वथा परास्त करने में समर्थ हूं । मुझ अकेले का दो या तीन भी क्या कर सकते हैं ? मैं शत्रुओं को उसी भांति प्रताड़ित करूं जो खलिहान मे पड़े सूखे जौ व गेहूं के पौधों के तुल्य हैं । ऐश्वर्यरहित शत्रु भला मेरी क्या निन्दा कर सकते हैं ? ॥७॥

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।

यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥

पदार्थ – (अहम्) मैं (गुङ्गुभ्य) भूमि पर विचरण करने वालों के हिताय (अतिथिग्वम्) अतिथि के तुल्य आने वाले, (इष्करम्) अन्न उत्पादक (वृत्रतुरम्) तथा विघ्नकारी के नाशक को (इषं न) सेना के तुल्य (विक्षु) प्रजा के बीच (धारयम्) धारता हूँ । (पर्णयघ्ने) पालक जन का नाश करने वाले (उत वा) और (करञ्जहे) करावलम्ब देने वाले का हाथ छोड़ देने वाले के विनाश हेतु (महे) बड़े भारी, (वृत्र-हत्ये) दुष्ट के नाश कार्य में मैं (अशुश्रवि) प्रसिद्ध हूं ॥८॥

भावार्थ —मैं भूमि पर विचरण करने वाले प्राणियों के हित के लिए, अतिथि तुल्य आने वाले अन्नोत्पादक एवं विघ्नकारी नाशक सेना के तुल्य प्रजा के मध्य विराजता हूँ । मैं प्रजा उत्पीड़कों के विनाशक के रूप में विख्यात हूँ ॥८॥

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।

दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥९॥

पदार्थ —(मे) मेरे समक्ष (नमी) विनयशील व (साप्य) संघ का हितैषी, (इषे भुजे) अन्न बल को प्राप्त करने व भोगने हेतु और (गवाम् एषे) गौओं और वेदवाणियों को प्राप्त करने के लिए, (प्र भूत्) नितांत समर्थ होता है । हे विद्वानो ! आप भी (द्विता सख्या कृणुत) दो प्रकार की मित्रता करो । (यत्) जो मैं (अस्य समिथेषु) इसको संग्रामों के अवसर पर (दिद्युम् मंहयम्) शत्रुखण्डक बड़ा भारी बल वा शस्त्रास्त्र प्रदान करता हूँ, (आत् इत् एनं शंस्यम् उक्थ्यम् करम्) और अनन्तर इसको मैं अति स्तुत्य और प्रसिद्ध करता हूँ । बल और यश दोनों के लिए मेरे से मित्रता करो ॥९॥

भावार्थ —मेरे समक्ष विनयशील व संघ का हितैषी अन्न बल को प्राप्त करने एवं भोगने हेतु तथा गौओं व वेदवाणियों को प्राप्त करने के लिए नितांत समर्थ है । हे विद्वानो ! आप लोग भी दो प्रकार की मित्रता करो । जैसे मैं संग्राम के अवसर पर शत्रु का मान मर्दन करने वाले शस्त्रास्त्र प्रदान करता हूँ और तदुपरांत इसे मैं नितांत स्तुत्य एवं प्रसिद्ध कर देता हूँ । अतएव बल एवं यश दोनों के लिये ही मुझसे मित्रता करो ॥९॥

प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।

स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥

पदार्थ —(नेमस्मिन्) एक में (सोम अन्तः प्र ददृशे) वह शासक भीतर दीखता है और (नेमम्) दूसरे को वह (गोपा) रक्षक (अस्था) अपने विक्षेपक बल से (आविः कृणोति) स्वयं को प्रकट करता है । (सः) वह (बहुले अन्तः बद्धः) बहुत भारी सैन्य के बीच बद्ध हुए (तिग्म-शृङ्गम् वृषभम् युयुत्सन्) और तीखे सींगों वाले बैल के समान शस्त्रास्त्रसम्पन्न बलवान् शत्रु से युद्ध करते हुए वीर के तुल्य (द्रुहः) सब द्रोहयुक्त पुरुषों को (तस्थौ) दबा कर उन पर विराजता है ॥१०॥

भावार्थ —वह प्रभु स्वयं को रक्षक तथा विक्षेपक बल से प्रकटाता है । वह तीक्ष्ण सींग वाले वृषभों के समान शस्त्रास्त्रयुक्त बलशाली शत्रु से युद्ध करते हुए महावीर के समान समस्त द्रोही जनों का दमन कर उन पर विजय पाता है ॥१०॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।

ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥११॥६॥

भावार्थ —मैं (आदित्यानां) सूर्य की रश्मियों के समान चमकने वाले (वसूनां) सद्गुणों को अपने में बसाने वाले व (रुद्रियाणां) अन्यों की पीड़ा हरने वाले, (देवानां) विद्वानों के बीच (देव) सर्वशक्तिप्रद होकर (धाम न मिनामि) उनके तेज का नाश नहीं करता । वे (भद्राय शवसे) कल्याण सम्पादन हेतु (अपराजितं) अपराजित, (अस्तृतं) अहिंसित, (अषाळ्हं) अतिरस्कृत मुझको (ततक्षुः) अपने में प्रकट करें ॥११॥

भावार्थ —मैं सूर्य रश्मियों के तुल्य चमकीले सद्गुणों को स्वयं में बसाने वाले एवं दूसरों की पीड़ा हरने वाले विद्वानों के मध्य सर्वशक्ति प्रदाता होकर उनके तेज को नष्ट नहीं होने देता । वे कल्याणसम्पादनार्थ अपराजित, अहिंसित एवं अतिरस्कृत मुझे स्वयं में प्रकट करें ॥११॥

इति षष्ठो वर्गः ॥

---

[४९]

इन्द्र वैकुण्ठ ऋषि ॥ देवता—वैकुण्ठः । छन्द —१ आर्ची भुरिग् जगती । ३, ९ विराड् जगती । ४ जगती । ५, ६, ८ निचृज्जगती । ७ आर्ची स्वराड् जगती १० पादनिचृज्जगती । २ विराड् त्रिष्टुप् । ११ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।

अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१॥

पदार्थ —(अहं) मैं (गृणते) स्तुति करने वाले को (पूर्व्यं वसु दाम्) सनातन ऐश्वर्य, निवास योग्य लोक, मोक्ष तथा ज्ञान प्रदान करता हूँ । (अहं ब्रह्म कृणवम्) मैं वेद को उत्पन्न करता हूं । (मह्यं वर्धनम्) यह वेद मेरी ही महिमा की वृद्धि करता है । (अहं यजमानस्य चोदिता) यज्ञ, दान, सत्संग करने वाले को सन्मार्ग में आदेश करने वाला मैं ही हूं । मैं (विश्वस्मिन् भरे) सकल युद्ध में (अयज्वन) न देने वाले, कुसंगी, अयज्ञशील जनों को ही (साक्षि) हराता है ॥१॥

भावार्थ —मैं स्तुतिकर्त्ता को शाश्वत ऐश्वर्य, निवास योग्य लोक, मोक्ष तथा ज्ञान देता हूं । मैं वेद को उत्पन्न करता हूं । यह वेद मेरी ही महिमा को बढ़ाता है । यज्ञ, दान और सत्संग करने वाले को सन्मार्ग में आदेश करने वाला मैं ही हूं मैं कुसंगी व अयज्ञशील जनों को ही सारे युद्धों में पराजित करता हूं ॥१॥

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।

अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२॥

पदार्थ —(मां इन्द्र) मुझ ऐश्वर्ययुक्त को ही (दिवः ग्मः च अपां च) सूर्य, पृथिवी, जल तथा अन्तरिक्ष इन स्थानों के सकल (जन्तवः) प्राणी (देवता नाम धुः) सर्वशक्तिप्रद उपास्य रूप से धारते हैं । (अहं) मैं ही (वृषणा) बलवान् (वि-व्रता) विविध कामकर्ता, (रघू) वेगवान् (हरी) स्त्री-पुरुष दो शक्तियों को (आ ददे) वश में करता हूं और (शवसे) बलकर्म करने हेतु (अहम्) मैं (धृष्णु) शत्रुपराजयकारी (वज्रं) खड्गवत् बल वीर्य को धारता हूं ॥२॥

भावार्थ.—मुझ ऐश्वर्यशाली को ही सूर्य, पृथिवी, जल एवं अन्तरिक्ष आदि स्थानों के सकल प्राणी सर्वशक्तिदाता रूप से स्मरण करते हैं । मैं ही बलवान् विविध कर्मयुक्त वेगवान् नर नारी दो शक्तियों को वश में करता हूं । मैं शत्रुओं को परास्त करने वाले खड्गवत् बल-वीर्य का धारक हूं ॥२॥

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।

अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३॥

पदार्थ —(अहम्) मैं (कवये) विद्वान् जन हेतु (अत्कं) उसके अज्ञान-आवरण को (हथैः शिश्नथम्) उसके नाशक साधन रूप ज्ञानों से शिथिल करता हूं और (आभिः ऊतिभिः) नाना प्रकार की रक्षाकारिणी प्रवृत्तियों से (कुत्सम्) वेदमन्त्रों व स्तुतियों के अभ्यासी जन की (आवम्) रक्षा करता हूं । (अहं) मैं (शुष्णस्य) शोषण करने वाले दुष्ट स्वभाव को (श्नथिता) शिथिल करता हूं और (वधः) वध का, हिंसादि स्वभाव का (यमम्) अवरोध करता हूं । मैं वह हूं (यः) जो (दस्यवे) नाशकारी दुष्टजन को कभी (आर्यं नाम न ररे) आर्य नाम प्रदान नहीं करता ॥३॥

भावार्थ.—मैं विद्वानों के अज्ञान आवरण को हटाकर उन्हें ज्ञान देता हूं और विविध रक्षक प्रवृत्तियों से वेदमन्त्रों व स्तुतियों के अभ्यासियों की रक्षा करता हूं । मैं शोषकों का दुष्ट स्वभाव शिथिल करता हूं और वधकारी हिंसक स्वभाव का अवरोधक हूं । मैं ही वह हूं जो दुष्टों को कदापि आर्य की संज्ञा प्रदान नहीं करता ॥३॥

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।

अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥४॥

पदार्थः—(अहं) मैं (पिता इव) पिता के तुल्य, (अभिष्टये) उत्तम अभिलाषी (कुत्साय) स्तुतिशील जन हेतु, (वेतसून्) वेतस-दण्ड के तुल्य उद्धत और (तुग्रम् स्मदिभम्) गजवत् उग्र अहंकारी पुरुष को भी (रन्धयम्) वश में करता हूं । (अहं यजमानस्य राजनि) मैं दानशील यज्ञार्थी हेतु (भुवं) हूं । (यत्) जो मैं (तुजये) हिंसाशील (आ धृषे) धर्षणकारी ढीठ पुरुष के लिए (प्रिया न भरे) प्रिय पदार्थों को नहीं देता ॥४॥

भावार्थ—मैं पिता तुल्य उत्तम अभिलाषी स्तुतिशील जनों के लिए वेतस-दण्ड के समान उद्धत एवं गजवत् उग्र अहंकारी जन को भी वश में करता हूँ। मैं दानशील यशार्थी के हेतु हूं। मैं हिंसक घर्षणशाली ढीठ जनों को कदापि प्रिय पदार्थ प्रदान नहीं करता ॥४॥

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥५॥७॥

पदार्थः—(अहं) मैं (श्रुतर्वणे) वेदोपदेश अनुगामी शिष्य आदि की (मृगयं) विषयविलास खोजने वाली प्रवृत्ति को (रन्धयम्) वश में करता हूं। (यत्) जिससे कि वह (वयुना चन) अपने ज्ञान द्वारा और कर्म से (आनुषक्) निरन्तर (मा अजिहीत) मेरी ओर ही आए। (अहम्) मैं (आयवे) अपनी ओर आने वाले के (वेशम्) अन्तःप्रविष्ट आत्मा को (नम्रम् अकरम्) विनयशील करता हूं और (अहम्) मैं (सव्याय) शिष्य के लाभ के लिए (पड्गृभिम्) गुरुजनों के चरण स्पर्श करने वाला, (रन्धयम्) और उनके वश में रहने वाला करता हूं ॥५॥७॥

भावार्थ—मैं वेदोपदेश अनुगामी शिष्य आदि की विषय वासना की प्रवृत्ति को वश में करता हूं, जिससे वह स्वज्ञान तथा कर्म द्वारा सतत मेरी ओर ही आए। मैं अपनी ओर आने वाले के अन्तःप्रविष्ट आत्मा को विनयशील बनाता हूं तथा शिष्य के लाभार्थ उनमें गुरु जनों के प्रति आस्था का निर्माण करता हूं ॥५॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥६॥

पदार्थः—(स) वह (अहम्) मैं (वृत्रहा) सकल विघ्नों का विनाशक हूं। वह मैं (नव वास्त्वम्) नव गृह प्रवेशकर्ता, (बृहद्रथ) महान् ब्रह्म तथा वेद-ज्ञान में रमन वाला, (दास) सेवक के तुल्य सेवा-शुश्रूषा करने वाले को (अरुजम् अकरम्) सुखी बनाता हूं और (आनुषक्) समीप (दूरे) तथा दूर (वर्धयन्तम् प्रथयन्तम्) ज्ञान व कीर्ति बढ़ाने और फैलाने वाले को (रजसः पारे) रजोगुण से पार, (रोचना अकरम्) अति तेजस्वी, सर्वप्रिय बनाता हूं ॥६॥

भावार्थः—मैं सकल विघ्नों का विनाशक हूं। मैं नवीन गृह में प्रवेश करने वाले महान् ब्रह्म तथा वेदज्ञान में रमण करने वाले सेवक के तुल्य सेवा शुश्रूषा करने वाले को सुख प्रदान करता हूं और दूर तथा सन्निकट कीर्ति फैलाने वालों को नितांत तेजस्वी तथा लोकप्रिय बना देता हूं ॥६॥

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जब (सावः मनुषः) प्रार्थीजन (मा) मुझसे (निर्-णिजे) अपने आत्म शोधन हेतु, (आह) याचना करता है तब मैं (कृत्व्यम्) नाश करने योग्य (दास) नाशकारी अंश को (हथैः) विभिन्न दण्डों से (ऋधक् कृषे) दूर करता हूं। (अहम्) मैं (सूर्यस्य ओजसा) सूर्य की तीव्रगामी किरणों के साथ-साथ आगे बढ़ता हूं ॥७॥

भावार्थः—जब प्रार्थी मुझसे आत्म-शोधन की याचना करता है तो मैं नाश किए जाने योग्य अंश को विभिन्न दण्डों द्वारा दूर कर देता हूं तथा सूर्य की तीव्रगामी किरणों के साथ-साथ आगे बढ़ता जाता हूं ॥७॥

अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥८॥

पदार्थः—(अहं) मैं (सप्तहा) सूर्य की सात किरणों में गति देने वाला (नहुषः) राष्ट्र का श्रेष्ठ व्यवस्थापक, (नहुष्टर) मनुष्यों के तारक, (शवसा) बल व ज्ञान से (अन्यम् तुर्वशं यदुम्) अन्य चारों पुरुषार्थों के इच्छुक यत्नशील पुरुष को (प्र अश्रावयम्) उत्तम ज्ञान सुनाऊं और (अन्यम्) दूसरे को अपने (सहसा) बल से (सहः नि अकरम्) बलिष्ठ करूं तथा (व्राधतः) विकसित होते गुणों को (नव नवतिं च) ९९ वर्ष तक भक्तों में (वक्षयम्) बसाऊं ॥८॥

भावार्थ—मैं सूर्य की सप्त किरणों को गति प्रदान करने वाला राष्ट्र का उत्तम व्यवस्थापक, मानव तारक, बल तथा ज्ञान से, अन्य चारों पुरुषार्थों के इच्छुक एवं यत्नशील व्यक्ति को उत्तम ज्ञान सुनाऊं और दूसरे को अपने बल द्वारा बलवान् बनाऊं तथा विकसित होते हुए गुणों को ९९ वर्ष तक भक्तों में बसाऊं ॥८॥

अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (सप्त स्रवतः) सात प्राणगण को (वृषा) बलशाली होकर (धारयम्) धारण कराऊं और (सीराः) पार्थिव देह में सक्रिय रक्तशिराओं को भी (धारयम्) धारण कराऊं। (अहम्) मैं (सु-क्रतु.) उत्तम क्रियाशील (अर्णांसि वि तिरामि) रक्तरूप जलों को उचित रूप से पुष्ट करता हूं और (इष्टये) यज्ञ तथा इच्छानुसार फल प्राप्ति के लिये (मनवे) मानव को मैं (युधा) ताड़ना से उसके दुर्गुणों को दूर कर (विदं गातुम् वि तिरामि) ज्ञानयुक्त मार्ग का उपदेश दूं ॥९॥

भावार्थः—मैं सात प्राणों को बलिष्ठ होकर धारण कराऊं तथा पार्थिव देह में बहने वाली रक्त नाड़ियों को भी धारण कराऊं। मैं श्रेष्ठ कर्मशील रक्तरूपी जलों को उत्तम क्रियावान् रक्त रूप जलों को उचित रूप से पुष्टि प्रदान करता हूं और यज्ञ एवं इच्छानुसार फल प्राप्ति के लिए मानव को मैं ताड़नासहित उसके दुर्गुणों को निकाल कर ज्ञानयुक्त मार्ग का उपदेश दूं ॥९॥

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (आसु) इन शिराओं में (तत्) ऐसा रस (धारयम्) धारण कराता हूं (यत्) जिसे (देवः चन त्वष्टा) कोई शिल्पी भी (न अधारयत्) धारण नहीं करा पाएगा। (गवाम् ऊधःसु) गौ के थनों में जिस भांति दूध निहित है और जिस भांति (वक्षणासु) सरिताओं में (श्वात्र्य मधु) वेगवान् जल प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मैं (वक्षणासु) इन सतत प्रवाहित नाड़ियों में (स्पार्हं) अति स्पृहणीय, (मधोः मधु) मधु से ज्यादा मधुर (श्वात्र्य) अति वेग से नाड़ियों में गतिमान, (सोमम्) अपनी सन्तति को उत्पन्न करने वाला वीर्य (आशिरम्) जो कि शरीर का आधार है उसे देह में बसाता हूं ॥१०॥

भावार्थ—मैं इन शिराओं में इस प्रकार का रस धारण कराता हूं जिसे कोई भी शिल्पी धारण न करा पाएगा। जिस भांति गौ के थनों में दूध रहता है और जिस भांति सरिताओं में वेगवान् जल प्रवाहित होता है उसी भांति सतत प्रवाहित नाड़ियों में स्पृहणीय गतिमान् मधु से मधुर, अति वेगसहित नाड़ियों में गतिमान् सन्तति उत्पन्न करने वाला वीर्य देह में बसाता हूं जो शरीर का आधार है ॥१०॥

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन्प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥८॥

पदार्थः—(इन्द्रः) वह प्रभु (मघवा) श्रेष्ठ वीर्यसम्पन्न, (सत्यराधा) सत्य-बल से वश में करने वाला, (च्यौत्नेन) देह में रक्षणशील बल के द्वारा (नॄन्) ज्ञानरस की प्राप्ति कराने वाले (देवान्) अर्थों के प्रकाशक इन्द्रियगण तथा प्राणों को (प्र विव्ये एव) बड़े उत्तम ढंग से प्रकाशित करता है, रक्षा करता है और नियन्त्रित करता है तथा चलाता है। हे (हरिवः) इन्द्रिय रूप अश्वों के स्वामी! हे (शचीव) शक्ति तथा वाणी के स्वामी! उनसे ही (ते ता विश्वा इत्) तेरे वे भांति-भांति के सकल कर्म हो जाते हैं और (तुरास) ये वेगवान् अश्व आदि पशु तथा श्येनादि पक्षी एवं चक्षु आदि इन्द्रियां व सूर्यादि सभी (ते स्वयशः अभि गृणन्ति) तेरा यशोगान करते हैं ॥११॥

भावार्थ—हे प्रभु श्रेष्ठ वीर्यसम्पन्न सत्य-बल से वश में करने वाला, देह-रक्षणशील बल द्वारा ज्ञानरस प्रदाता, अर्थ प्रकाशक इन्द्रियों को उत्तम ढंग से प्रकाशित करता है, रक्षा एवं नियन्त्रण करता है और संचालित करता है। हे इन्द्रियरूप अश्वों के स्वामी! हे शक्ति एवं वाणी के स्वामी! उनसे ही तेरे वे भांति-भांति के सकल कर्म होते हैं और ये वेगवान् अश्व आदि पशु श्येनादि पक्षी तथा चक्षु आदि इन्द्रियां तथा सूर्यादि तुम्हारी ही यशोगाथा गाते हैं ॥११॥

इत्यष्टमो वर्गः ॥

---

[५०]

इन्द्रो वैकुण्ठ ऋषिः ॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठ ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २ आर्ची स्वराड् जगती । ६, ७ पादनिचृज्जगती । ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१॥

पदार्थः—हे उपासको! तुम (अन्धस मन्दमानाय) हृदय से ध्यान करने वाले से तृप्ति पाने वाले, (विश्वानराय) विश्व नेता, (विश्वाभुवे) समस्त जगत् में व्यापक, (महे) महान् प्रभु की (अर्च) स्तुति करो। (यस्य इन्द्रस्य) जिस प्रभु के (सु-मखम्) सुमहान् बल व (महि श्रव) महान् यश मानवों में प्राप्त अध्यात्म सुख है (सह) बल और (नृम्ण च) यश मनुष्यों में प्राप्त अध्यात्मसुख है तथा (रोदसी सपर्यत) आकाश, भूमि, वहां रहने वाले नर-नारी, सभी प्रशंसा करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विश्वव्यापक तथा विश्वनायक है। ज्ञानशील तथा कर्मशील जन उसकी प्रशंसा करते हैं उसका महान् यश व बल मुमुक्षु जनों के लिए है। वही स्तुत्य है ॥१॥

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मन्दसे ॥२॥

पदार्थ—(स इन्द्रः चित् नु सख्या नर्य इन) वह प्रभु उपासना द्वारा समस्त मनुष्यों का हितैषी, सबका स्वामी होता है। (स्तुत-चर्कृत्य) भली-भांति सत्करणीय है (मावते नरे) मेरे जैसे मनुष्यों के लिए है (विश्वासु धूः सु) सारी

योजनाओं में है (वाजकृत्येषु) बल कार्यों में (सत् पते) हे सत्पुरुषों के पालक ! तू (वृत्रे वा अप्सु अभि मन्यसे) पापियों में तथा आप्त जनों मे सम्यक् स्तुति पाता है ॥२॥

भावार्थः—वह प्रभु ही उपासक जनो का हित करने वाला है । सभी योजना व बल से होने वाले कार्यों में उसकी स्तुति की जानी चाहिए ॥२॥

के ते नर॑ इन्द्र॒ ये त॑ इ॒षे ये ते॑ सु॒म्नं स॑ध॒न्य१॒॑मिय॑क्षान् ।

के ते॒ वाजा॑यासु॒र्या॑य हिन्विरे॒ के अ॒प्सु स्वासू॒र्वरा॑सु॒ पौंस्ये॑ ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्र के ते नर.) हे प्रभो ! वे कौन से मनुष्य हैं (ये) जो (ते इषे) तेरी प्रेरणा पाने के लिए (सुम्नं स-धन्यम् इयक्षान्) अपने को साधु व धन्य सफलता सगत करते हैं (के) कौन हैं जो (ते असुर्याय वाजाय) तेरे अमृत अन्न भोग के लिये स्वय को (हिन्विरे) प्रेरित करते हैं (के स्वासु उर्वरासु अप्सु पौंस्ये) कौन अपनी उच्च कामनाओं व आत्मभाव को प्रेरणा देते हैं ॥३॥

भावार्थः—मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक होने के साथ ही साथ उसका अधिकारी बनने वाले थोड़े से ही व्यक्ति होते हैं । प्रभु के अमृत भोग की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले ही अपनी उन्नति करते हैं ॥३॥

भुव॒स्त्वमि॑न्द्र॒ ब्रह्म॑णा म॒हान्भु॒वो विश्वे॑षु॒ सव॑नेषु य॒ज्ञियः॑ ।

भुवो॒ नॄँश्च्यौ॒त्नो विश्व॑स्मि॒न्भरे॒ ज्येष्ठ॑श्च॒ मन्त्रो॑ विश्वचर्षणे ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (त्व ब्रह्मणा महान् भुव) तू वेदज्ञान से महान् है । तू (विश्वेषु सवनेषु यज्ञिय भुव) समस्त ऐश्वर्यों और आश्रमो मे सगमनीय है । तू (नॄन् च्यौत्न) मुमुक्षुओ के प्रति रोगादि को हटाने वाला (ज्येष्ठः च) सबसे ज्येष्ठ है । हे (विश्व-चर्षणे) समस्त विश्व के द्रष्टा ! तू सबके लिए (मन्त्र च) ज्ञानप्रद है ॥४॥

भावार्थः—वह प्रभु महान् ज्ञान का आगार है । वह सभी आश्रम वालों के समागम-योग्य है । मुमुक्षुओं के रागादि दोषों को वही दूर करता है । सकल भरण करने वाले पदार्थों मे श्रेष्ठतम व ज्ञान देने वाला है ॥४॥

अवा॒ नु कं॒ ज्याया॑न् य॒ज्ञव॑नसो म॒हीं त॒ ओमा॑त्रां कृ॒ष्टयो॑ विदुः ।

असो॒ नु क॑मज॒रो वर्धा॑श्च॒ विश्वे॒दे॒ता सव॑ना तू॒तुमा कृ॑षे ॥५॥

पदार्थ.—हे प्रभो ! (नु कम्) निश्चय से तू (यज्ञ-वनस.) सर्वोपास्य परमात्मा के भजने वालो की (अव) रक्षा कर । (कृष्टयः) सभी मनुष्य (ते) तेरी (ओमात्रां महीं विदु) महती रक्षण-शक्ति को जानते है । तू (नु कम् अजरः असः) निश्चय ही जरारहित है । (विश्वा इत् च वर्धा) तू सबको उन्नत कर । तू (तूतुमा सवना एता कृषे) अतिशीघ्र ही सब प्रार्थनाओ को स्वीकारता है, ऐश्वर्य को बढ़ाता है ॥५॥

भावार्थ —प्रभु ही अपने भजन करने वालो की निश्चय ही पूण रक्षा करता है और उनकी प्रार्थना, स्तुति एव वन्दना स्वीकार करता है, वह महान् है तथा उसकी रक्षण शक्ति भी महती है ॥५॥

ए॒ता विश्वा॒ सव॑ना तू॒तुमा कृ॑षे स्व॒यं सू॑नो सहसो॒ यानि॑ दधि॒षे ।

वरा॑य ते॒ पात्रं॒ धर्म॑णे॒ तना॑ य॒ज्ञो मन्त्रो॒ ब्रह्मोद्य॑तं॒ वचः॑ ॥६॥

पदार्थ—(एता विश्वा सवना) हे प्रभो ! इन समस्त यज्ञो, ऐश्वर्यों व चलाने योग्य कर्मों को (तूतुमा स्वय कृषे) तू अतिशीघ्र स्वीकारता है । हे (सहसः सूनो) सर्वातिशायी अध्यात्मशक्ति के प्रेरक ! तू (यानि दधिषे) जिनको स्वय विधान करता है, वेदो मे उपदेश देता है । (वराय ते पात्रं) दु.खो के वारण करने के लिए ही तेरा पोषक बल हो । (तना धर्मणे) तेरे धन धर्मकार्यों और जीव-जगत् को धारण करने हेतु हैं । (यज्ञ) यह महान् यज्ञ (मन्त्र) मननीय है । तेरी (वच) वाणी ही (ब्रह्म उद्यतम्) ब्रह्म अर्थात् सबसे महान् वेदमय तेरे लिये है ॥६॥

भावार्थः—वेदोक्त स्तुति, प्रार्थना व उपासनावचन परमात्मा स्वीकार करता है । वह पात्रभूत स्तुतिकर्ता को आध्यात्मिक सम्पदा प्रदान करता है । अतएव स्तुति करने वाले को सबसे श्रेष्ठ कर्म, चिन्तन तथा ज्ञान प्रभु को अर्पित करना चाहिए ॥६॥

ये ते॑ विप्र ब्रह्म॒कृतः॑ सु॒ते सचा॒ वसू॑नां च॒ वसु॑नश्च दा॒वने॑ ।

प्र ते॑ सु॒म्नस्य॒ मन॑सा प॒था भु॑वन्मदे॑ सु॒तस्य॑ सो॒म्यस्यान्ध॑सः ॥७॥९॥

पदार्थः—हे (विप्र) परमात्मन् ! (ते) तेरे (ये ब्रह्म कृत) जो स्तुति करने वाले (सुते सचा) उपासना मे शामिल (वसूना च वसुनः च दावने) समस्त जीवो को श्रेष्ठ बनाने वाला मोक्ष धन और ऐश्वर्य प्रदान करने वाले जन (ते) तेरी उपासना करते हैं और वे (ते) तेरे दिये (सुम्नस्य सुतस्य सोमस्य अन्धस·) साधु-भाव के समर्पण मे सक्षम होते हैं, उन पर तू कृपा कर ॥७॥९॥

भावार्थ —प्रभु स्तुतिकर्ता को सर्वोत्तम धन अर्थात् मोक्ष देता है । जो लोग हृदय से, सदाचरण द्वारा व साधुभाव सहित भगवान् की उपासना करते हैं, उन पर सदैव प्रभु की कृपा रहती है ॥७॥९॥

इति नवमो वर्गः ॥

[५१]

१, ३, ५, ७, ९ देवा ऋषयः । २, ४, ६, ८ अग्निः सौचीक ऋषिः ॥ देवता—१, ३, ५, ७, ९ अग्निः सौचीकः । २, ४, ६, ८ देवा. ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ७ त्रिष्टुप् । ८, ९ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

म॒हत्तदुल्बं॒ स्थवि॑रं॒ तदा॑सी॒द्येनावि॑ष्टितः प्रवि॒वेशि॑था॒पः ।

विश्वा॑ अपश्यद्बहु॒धा ते॑ अग्ने॒ जात॑वेदस्त॒न्वो॑ दे॒व एकः॑ ॥१॥

पदार्थ.—हे (जातवेद: अग्ने) हे शरीर के उत्पन्न होने के साथ ही आने वाली आत्मा तथा विद्युत् ! (तत्) वह (उल्ब) आवरण (महत् स्थविरम्) आत्मा तथा विद्युत् के समान स्थूल होता है (येन आवेष्टित) जिसके साथ (अपः) दैहिक प्राणों को (प्र विवेशिथ) प्रविष्ट है । (ते तन्वः) तेरी देह की (विश्वाः) समस्त क्रियाओं को या (ते विश्वा तन्व) तेरे समस्त शरीरो को (एक देवः) एक देव प्रभु (बहुधा) बहुत प्रकार से (अपश्यत्) जानता है या प्रकाश देता है ॥१॥

भावार्थ —शरीर में उत्पन्न होते ही आत्मा भी जाना जाता है । वही परमात्मा से जन्म धारण करता आ रहा है, वही प्राणो का धारक है । उसे ही प्रभु कर्मानुसार गर्भ को प्राप्त कराता है । आकाश मे प्राचीन समय से ही मेघो में उत्पन्न होती ही ज्ञान में आने वाली विद्युत् अग्नि है । वह मेघो मे ईश्वरीय व्यवस्था से ही उत्पन्न होता है और मेघ जल बरसाता है ॥१॥

को मा॑ ददर्श कत॒मः स दे॒वो यो मे॑ त॒न्वो॑ बहु॒धा प॒र्यप॑श्यत् ।

क्वाह॑ मित्रावरुणा क्षियन्त्य॒ग्नेर्विश्वाः॑ स॒मिधो॑ देव॒यानीः॑ ॥२॥

पदार्थ—(मा क. ददर्श) यहां मुझे कौन देखता है, जानता है ? (सः देवः कतमः) वह सुखस्वरूप कौन है (य.) जो (मे तन्व) मेरे देहों व सकल अगो को (बहुधा परि अपश्यत्) बहुत विधि से देखता है ? हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् व श्रेष्ठतम माता-पिता तुल्य जनो ! (अग्नि) प्रकाशस्वरूप मेरी (विश्वा.) सकल (देवयानीः समिधः) उस प्रभु को प्राप्त होने वाली दीप्तियां (क्व क्षियन्ति) किस पर आधारित हैं ॥२॥

भावार्थः—प्राणो मे आत्मा को जो देव सुख देता है, आत्मा के अंगो को प्रभु की ओर ले आने वाली उसकी चेतन शक्तियो का जो ज्ञाता है, उसे जानना चाहिए । मेघजलो में निहित विद्युत् अग्नि तरगो का ज्ञाता जो वैज्ञानिक है, उसे भी जानना चाहिए ॥२॥

ऐच्छा॑म त्वा बहु॒धा जा॑तवेदः॒ प्रवि॑ष्टमग्ने अ॒प्स्वोष॑धीषु ।

तं त्वा॑ य॒मो अ॑चिकेच्चित्रभानो दशान्तरु॒ष्याद॑ति॒रोच॑मानम् ॥३॥

पदार्थ —हे (जातवेद:) उत्पन्न प्राणिशरीरो व स्थावरों मे विद्यमान ! (अग्ने) ज्ञान मे आने योग्य विद्युत् ! (बहुधा-अप्सु-ओषधीषु-प्रविष्टं त्वा ऐच्छाम) बहुत प्रकार मानव, पशु, पक्षी रूप से प्राणो मे उष्णता धारक नाडियो में दाखिल हुए को बहुत-बहुत चाहते हैं । हे (चित्र-भानो त त्वा यम अचिकेत्) हे दर्शनीय आत्मा ! तुझे प्रभु जानता है । (दशान्तरुष्यात् अतिरोचमानम्) दश इन्द्रियां चेष्टा से दश स्थानों मे बसने से जानते हैं ॥३॥

भावार्थ.—आत्मा मनुष्य, पक्षी व पशु आदि प्राणियो मे उष्णता धारक नाड़ियो मे चेष्टाओ के होने से मौजूद है । वह शरीर के उत्पन्न होने के साथ ही साथ जाना जाता है । प्रभु ही आत्मा का नियामक है । उसके विभिन्न शरीरो मे जाने का निमित्त रचता है तथा विद्युत् के प्रकटते ही जाना जाता है । वह जल काष्ठादि मे मौजूद है । उसे वैज्ञानिक गण जानते है ॥३॥

हो॒त्राद॒हं व॑रुण॒ बिभ्य॑दायं॒ नेदे॒व मा॑ यु॒नज॒न्नत्र॑ दे॒वाः ।

तस्य॑ मे त॒न्वो॑ बहु॒धा निवि॑ष्टा ए॒तमर्थं॒ न चि॑केता॒हम॒ग्निः ॥४॥

पदार्थ —(अत्र) यहां (देवा) इन्द्रियगण (न इत् एव मा युनजन्) न मुझे वश मे कर लें, इस कारण (बिभ्यत्) यह भय अनुभव करता हुआ (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! (अहम्) मैं (होत्रात्) इनके आह्वान से अलग होकर (आयम्) आया हूँ । (बहुधा तन्व निविष्टा) बहुत से देह मेरे गले अभी पड़े हुए हैं । (अहम् अग्नि.) मैं अग्निरूप जीव (एतम् अर्थम्) इस रहस्य को (न चिकेत) अभी नहीं जानता ॥४॥

भावार्थ —जीवात्मा स्वाभाविक रूप से ही मृत्यु से भय खाता है । वह भय प्रभु की शरण मे जाकर ही मिट सकता है । इन्द्रियां विषयो में आत्मा को खींचती हैं जबकि आत्मा की शक्तियां प्रभु शरण मे ही ब्रह्मानन्द पा सकती हैं । विद्युत् की उत्पत्ति जल से ही होती है चाहे वह मेघ की हो या पृथिवी की । जलों का अभिपति वरुण कहाता है, वही जलकण को ठोस बनाता है । वैज्ञानिक जल को प्रवाहित कर विद्युत् बनाकर उसका यन्त्र मे उपयोग करते हैं । विद्युत् तरंगो की शक्ति का उपयोग अभीष्ट है ॥४॥

एहि॒ मनु॑र्देव॒युर्य॒ज्ञका॑मोऽरं॒कृत्या॒ तम॑सि क्षेष्यग्ने ।

सु॒गान्प॒थः कृ॑णुहि देव॒याना॒न्वह॑ ह॒व्यानि॑ सुमन॒स्यमा॑नः ॥५॥१०॥

पदार्थ —हे (अग्ने) अगो के नेता आत्मा ! (तमसि क्षेषि) तू अज्ञानान्धकार मे निवास करता है तू (मनु) सकल्प-विकल्पवान् हो (देव-यु.) प्राणो का

सुखप्रद पदार्थों की कामना वाला होकर और (यज्ञ-कामः) अपने अध्यात्म यज्ञ का इच्छुक हुआ तू (अरं कृत्य) अपने को समर्थ करके, (सुमनस्यमानः) प्रसन्न-चित्त होकर (हव्यानि) ग्राह्य ज्ञानों को (वह) प्रेरित कर और (देव यानान्) वैज्ञानिकों द्वारा जाने योग्य (पथः सुगान् कृणुहि) मार्गों को गमनयोग्य बना ॥५॥१०॥

भावार्थः—सर्वांग नेता आत्मा इन्द्रियों के विषयों के वशीभूत हो मृत्यु से डरता है। परन्तु आत्मबल पाकर प्रभु वन्दना से मृत्यु का भय मिट जाता है। विद्युत् अग्नि यन्त्र का चालक बने बिना अन्धकार ग्रस्त रहती है। वह वैज्ञानिकों द्वारा यन्त्र में प्रयुक्त होकर ही बलशाली बनती है। यन्त्र द्वारा मिला लाभ सफल व स्थिर होता है ॥५॥१०॥

इति दशमो वर्गः ॥

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥६॥

पदार्थ—(रथी इव अध्वानम्) रथी जैसे मार्ग को पूर्ण करता है उसी भाँति (अग्नेः भ्रातरः) अग्निरूप आत्मा के धारक (पूर्वे) पूर्व के विद्वान् (एतम् अर्थम्) उस प्राप्तव्य सन्मार्ग पर (अनु आवरीवुः) क्रमश चलते रहते हैं। परन्तु हे (वरुण) श्रेष्ठतम प्रभो ! मैं तो (भिया दूरम् आयम्) भय को भुला चुका हूं, मेरा कोई सहयोगी नहीं रहा, मैं किसका अनुकरण करूं ? (तस्मात्) इसलिए (क्षेप्नोः ज्यायाः गौरः न) धनुष् धारण करने वाले की डोरी से भयभीत मृग तुल्य (अविजे) बहुत ही घबरा गया हूं ॥६॥

भावार्थः—रथी जैसे मार्ग को तय करता है, वैसे ही पूर्व के विद्वान् उस प्राप्तव्य सन्मार्ग पर क्रमश चलते रहते हैं, परन्तु मैं तो भय से दूर आ चुका हूँ, मेरा कोई साथी नहीं, मैं किसका अनुकरण करूं। इसलिए मैं धनुर्धर की प्रत्यंचा से भयभीत मृग के समान भयभीत हूँ ॥६॥

कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) आत्मन ! (यत्) जो (अजरं आयुः) आयु जरा-रहित है हम वही (ते कुर्मः) तेरे लिए करते हैं, (यथा) जिससे (युक्तः) युक्त होकर हे (जात-वेदः) उत्पन्न देह में जानने योग्य ! तू (न रिष्याः) नष्ट न हो और हे (सु-जात) उत्तम गुरुजनों से प्रकट होने वाले ! तू (सु-मनस्यमानः) आनन्दित होकर (देवेभ्यः हविषः भागं) विद्वानों से ग्राह्य ज्ञान का (भाग) श्रेष्ठ अंश (वहासि) प्राप्त कर ॥७॥

भावार्थः—आत्मा को शरीर में आकर इन्द्रिय भोगों में संयम बरतते हुए ऐसी स्थिति बनानी चाहिये कि जिससे मोक्ष दीर्घायु प्राप्त हो। इसके लिये विद्वानों से ग्राह्य उत्तमज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है ॥७॥

प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८॥

पदार्थ—हे (देवाः) दानी विद्वानो ! (मे) मुझे (प्रयाजान्) श्रेष्ठ-श्रेष्ठ दान और (केवलान्) असाधारण (अनुयाजान्) कर्मानुरूप उत्तम प्राप्त होने वाले फल तथा (हविषः ऊर्जस्वन्तम् भागम्) अन्न का वह बलयुक्त अंश जो (घृतम्) तेजयुक्त हो और (अपां च ओषधीनां च पुरुषम्) देहस्थ रसों व तापधारक तत्त्वों का पौरुष (दत्त) दो जिससे (अग्नेः च) इस देह में प्राप्त जीव की (आयु) आयु (दीर्घं) लम्बी हो ॥८॥

भावार्थ—हे दानशील विद्वानो ! मुझे श्रेष्ठ दान व असाधारण कर्मानुरूप उत्तम प्राप्तव्य फल व अन्न बलयुक्त व तेजोयुक्त अंश मिले और देहस्थ रसों व तापधारक तत्त्वों का पौरुष मिले जिससे दीर्घायु प्राप्त हो ॥८॥

तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अंगों के नायक आत्मन् ! (तव) तेरे (केवले) असाधारण (प्रयाजाः अनुयाजाः) प्रयाज, अनुयाज व (हविषः ऊर्जस्वन्तः भागाः) अन्न के उत्तम भाग (सन्तु) हों। (अयं सर्वः यज्ञः तव अस्तु) यह सम्पूर्ण यज्ञ तेरे लिए ही हो। (तुभ्यं चतस्रः प्रदिशः नमन्ताम्) तेरे आगे चारों दिशाओं में होने वाली कलाएं आश्रित हों ॥९॥११॥

भावार्थः—व्यक्ति का खान-पान व विषय-भोग उसे संसार में रमाने वाले न हों अपितु उसके कल्याण और मोक्ष के साधन हों। वह स्वयं को ऐसा बनाये कि सकल दिशाओं की प्रजाओं में प्रतिष्ठित हो ॥९॥११॥

इत्येकादशो वर्गः ॥

---

[५२]

अग्निः सौचीक ऋषिः ॥ देवा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २—४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥१॥

पदार्थ—हे (विश्वे देवाः) सकल मान्य पुरुषो ! (मा शास्तन) मुझे इस भाँति से आदेश दो (यथा) जिससे (इह) इस लोक में (होता) ज्ञान ग्रहण करने वाले, शिष्य के रूप से (वृतः) मुझे बनाया जाकर (यत्) मैं (नि-सद्य) तुम्हारे समीप बैठकर (मनवै) ज्ञान प्राप्त कर सकूं। (यथा च भागधेयम्) आप लोगों द्वारा मुझे धारण करने योग्य ज्ञान का आदेश दो वह (मे प्र ब्रूत) मुझे प्रवचन द्वारा उपदेश दो और मुझे यह भी बताओ। (येन पथा) जिस पथ से (वः हव्यम्) आप लोगों के लिए ग्राह्य वस्तु को मैं (आ वहानि) भेंट कर सकूं ॥१॥

भावार्थ—जब नवयुवक का विवाह हो जाये तो वह अपने माता-पिता से गृहस्थ के संचालन का उपदेश ग्रहण करे और विभिन्न रीतियों का अनुगमन करते हुए अपने जीवन को ढाले तथा उनके हेतु उनकी यथोचित आवश्यकताएं पूर्ण करे ॥१॥

अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं अल्पज्ञानी, (होता) ज्ञान तथा शक्ति का लेने वाला और (यजीयान्) सत्-संगति से युक्त होकर (नि असीदम्) स्थिर होकर रहूं और (विश्वे देवाः) ज्ञान का प्रकाशन और उसे प्रदान करने वाले (मरुतः) सभी विद्वान् (मा जुनन्ति) मुझे उपदेश दें। हे (अश्विना) दिन रात्रितुल्य ज्ञाननिष्ठ व कर्मनिष्ठ जनो ! (अहरहः) अहर्निश ही (वाम् आध्वर्यवम् भवति) आप दोनों का ब्रह्मरूप अध्वर सम्बन्धी उपदेश हो और मैं (ब्रह्मा सम्-इत् भवति) चतुर्वेदज्ञ विद्वान् व्यक्ति बन जाऊं। तब (वाम् सा आहुतिः) आप लोगों की वह ज्ञानदायक आहुति अर्थात् ब्रह्मदान साफल्यमंडित हो ॥२॥

भावार्थ—व्यक्ति को विद्वानों व वयोवृद्ध सम्बन्धियों से जितना हो सके ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अहर्निश प्रयत्नशील रहते हुए उपदेशकों से विधिपूर्वक ज्ञान का लाभ लेते हुए ज्ञाननिष्ठ बनने की आकांक्षा रखते हुए अपने अर्जित ज्ञान को दूसरों को भी देना चाहिए ॥२॥

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥३॥

पदार्थः—(अयम्) यह (यः) जो (होता) ज्ञान का ग्रहण करने वाला कहता है (किं उ सः) वह किस प्रकार का हो ? (देवाः यत् सम् अञ्जन्ति) विद्वान्गण जिसे अपने में संयुक्त करते हैं उससे (सः) वह (यमस्य) उस महान् जगत् नियन्ता परमात्मा के (कम् अपि ऊहे) महान् सामर्थ्य के कुछ अंश को ही तर्क से जान पाता है। यह दशा शिष्य अथवा जिज्ञासु की सूर्य-चन्द्र जैसी ही है। जैसे सूर्य (अहः अहः जायते) प्रतिदिन नितान्त उज्ज्वल रूप में प्रकटता है, (अथ) और (देवाः) सूर्य प्रकाशक किरण (मासि-मासि) चन्द्रमा में मास-मास में (हव्य-वाहम् दधिरे) प्रकाशमय तेज को देते हैं उसी भाँति वह परमेश्वर (मासि मासि) हर जिज्ञासु में (हव्य-वाहम्) ग्रहणीय ज्ञान के धारक तेजोमय अग्नि को धारण कराते हैं, नवजीवन देते हैं ॥३॥

भावार्थः—आत्मा ही ज्ञान का ग्रहणकर्ता चेतन पदार्थ है। वह कर्मानुसार फल पाता है। यह ज्ञान द्वारा ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होता जाता है। सूर्य-चन्द्रमा तुल्य उसके ज्ञान का प्रकाश उसे प्रसिद्धि देता है जबकि वह विद्वानों का साथ करते हुए ज्ञान ग्रहण हेतु प्रयत्नशील रहे ॥३॥

मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वान्गण (हव्य-वाहम्) जो ज्ञान के धारक (बहु कृच्छ्रा चरन्त) तथा अनेक कठिन व्रतों का पालन करने वाले और सभी पापों से मुक्त हुए मुझे (दधिरे) ज्ञान का धारक बना देते हैं। (विद्वान् अग्निः) अग्नि सरीखा तेजस्वी जन (नः यज्ञं कल्पयाति) हमारा वह सात्त्विक यज्ञ पूर्ण करता है और वह यज्ञ (पञ्च-यामम्) शरीर में पांचों इन्द्रियों के समवाय द्वारा करने योग्य, (त्रि-वृतम्) मन, वाणी, कर्म तीन प्रकार से होने योग्य और (सप्त-तन्तुम्) सात छन्दों एवं सप्त शीर्षस्थ प्राणों से करने योग्य होता है ॥४॥

भावार्थ—अज्ञानावस्था-ग्रस्त किन्तु ज्ञान ग्रहण करने का पात्र होकर जिज्ञासु व्यक्ति कठिन व्रतों का आचरण करता हुआ विद्वत् जनों से सात छन्द-युक्त वेदज्ञान प्राप्त करता है। उसका यथार्थ आचरण मनसा-वाचा-कर्मणा जीवन में घटाने वाला व फलदायी है ॥४॥

आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५॥

पदार्थ —हे (देवा.) विद्वान् जनो ! (व. यथा वरिव. कृणोमि) मैं तुम्हारी जैसे सेवा करता हूं उसी भांति मैं (वः) तुम्हारे (सु-वीरम्) उत्तम बल-वीर्य-सम्पन्न (अमृतत्वं आ भजे) अमृतत्व भाव को अपने मे धारता हू । मैं (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (वज्रम्) ओज व बलवीर्य को (बाह्वो. आ दधे) अपने में धारता हू । (अथ) और पुनः (इमा-विश्वा. पृतना.) इन समस्त शत्रुसेनाओ और वासनाओं को भी (जयाति) जीत लेता हू ॥५॥

भावार्थ —जिज्ञासु व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह विद्वानों की सेवा करे तथा उनसे ज्ञानबल तथा आत्मिक बल प्राप्त करे एव उसे प्रभु की उपासना भी करनी चाहिए । उसे अज्ञान-हर्ता प्रभु के ओज से अपनी वासनाओ पर विजय प्राप्त करनी चाहिए ॥५॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।

औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥१२॥

पदार्थः—(त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशत् च) ३३३९ [तीन सहस्र तीन सौ उनतालीस] दिव्य शक्तियां या प्रधान नाडियां हैं (अग्निम्) सर्वाग्रणी की (असपर्यन्) परिचर्या करती हैं । वे (अस्मै) इस आत्मा के लिए धारण कर फैलाते हैं । (बर्हिः अस्तृणन्) और उस अग्रणी का (घृतै औक्षन) जलो से अभिषेक करती हैं और (आत् इत्) अनन्तर उस (होतारम) बल, वीर्य, ऐश्वर्य को (नि असादयन्त) नियम पूर्वक शरीर मे स्थापित करती है । बहिरूप देह मे ३३३९ दिव्य शक्तिया आत्मा को प्राप्त हैं जो उसे इस देह मे स्थापित किये है ॥६॥१२॥

भावार्थ·—३३३९ शक्तियां, नाडियां अथवा बाह्य दिव्यपदार्थ आत्मा के रक्षक है । भोजन के सूक्ष्म रस ही आत्मा को तृप्ति देते हैं, शरीर मे मांसादि का स्तर फैलाते हैं एव उसे बढ़ाने तथा स्थिरता प्रदान करते हैं ॥६॥१२॥

इति द्वादशो वर्ग. ॥

---

[५३]

ऋषि·—१–३, ६, ११ देवा. । ४, ५ अग्नि सौचीक ॥ देवता -१—३, ६—११ अग्नि. सौचीकः । ४, ५ देवा ॥ छन्द —१, ३, ८ त्रिष्टुप् २, ४ त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, ९ निचृज्जगती । १० विराड् जगती । ११ पाद-निचृज्जगती । दशर्चं सूक्तम् ॥

यमैच्छाम मनसा सो३ऽयमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान् ।

स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥१॥

पदार्थ —(य मनसा) हम मन से जिस आत्मा को (यम् ऐच्छाम) चाहते थे । (स. अयम् आगात) वह यह है (यज्ञस्य विद्वान्) जो यज्ञ का अनुभवी हमारे कथन को जानता है कि मै यहा हूँ (परुष चिकित्वान्) शरीर के अंगो को चेतना देता है (स -यजीयान्) अति ज्ञानप्रद होकर (नः देवताता यक्षत्) वह हमे ज्ञान से शरीर के अ गो मे प्राप्त होता है अत (अस्मत् पूर्व. हि) हमारे पहले ही (अन्त निषत्सत्) शरीर में बसता है ॥१॥

भावार्थ —शरीर मे इन्द्रियो से पहले आत्मा आता है । वही शरीर के अ ग-प्रत्यग मे अपनी चेतना को फैलाता है तथा स्वय की अनुभूति कराता है कि मै यहां इस शरीर मे हू और पारिवारिक जन प्रतीक्षारत रहते हैं कि हमारे मध्य नयी आत्मा सन्तान रूप मे आये । आत्मा ही नित्य है, वह पूर्व विद्यमान है तथा शरीर मे आकर जन्म लेता है ॥१॥

अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।

यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥२॥

पदार्थ —अधिक ज्ञानदाता, (होता) प्रेम से बुलाने वाला, गुरुवत् पूज्य पुरुष (नि-सदा) उत्तम आसन पर बैठ नित्य देववत् आराधना-योग्य है । क्योंकि वह (सु-धितानि) उत्तम, हितकर ज्ञान को (अभि ख्यत्) साक्षात् कर आप्तवत् अन्यो को उन्ही सत्यो का उपदेश देता है । (हन्त) यह सौभाग्य का विषय है कि हम (यज्ञियान् देवान्) दान, सत्कारादि से आदरणीय विद्वत् जनों की (यजामहै) पूजा करें और (ईड्यान्) स्तुतियोग्य लोगो की हम लोग (आज्येन) व्यक्त वचन, जल वा घृतादि पदार्थों से (ईळामहै) आदर करें ॥२॥

भावार्थ·—महान् ज्ञान का देने वाला, प्रेम से पुकारने वाला, गुरुतुल्य पूज्य व्यक्ति उत्तम आसनासीन होकर देववत् आराध्य है, क्योंकि वही उत्तम ज्ञान से सत्योपदेश देता है । यह सौभाग्य का ही विषय है कि हम दान, सत्कारादि से विद्वत् जनो की पूजा कर सर्वोत्तम स्तुति योग्य जनो का वचन, जल, घृतादि से आदर करें ॥२॥

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।

स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥३॥

पदार्थः—(अद्य) इस अवसर पर हम लोग (यज्ञस्य) उपास्य परमात्मा की (जिह्वाम्) वाणी को (अविदाम) प्राप्त करें । यह विद्वान् (न) हमारी (साध्वीम् देववीतिम्) शुभ दिव्य गुणादि के प्राप्त करने की (अकः) सफलता प्रदान करता है । (स) वह (सुरभि) सुगन्धित यज्ञाग्नि के तुल्य सदाचारयुक्त श्रेष्ठ कर्म करने वाला (आयु वसानः) दीर्घ जीवन धारण करता हुआ (आ अगमत्) प्राप्त होता है । वह अवश्य (नः देव-हूतिम्) हमें श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति (अकः) कराए ॥३॥

भावार्थ—इस अवसर पर हम उपास्य प्रभु की वाणी को प्राप्त करें । वह विद्वान् हमारी शुभ दिव्य गुणादि की प्राप्ति को सफलता प्रदान करता है । वह सुगन्धित यज्ञाग्नि के तुल्य सदाचारयुक्त श्रेष्ठ कर्म करने वाला दीर्घ जीवन को धारण करे ॥३॥

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।

ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥४॥

पदार्थ.—(अद्य) इस अवसर पर (वाच) वेदवाणी के प्रमुख रूप (तत् प्रथमम) सर्वश्रेष्ठ नाम को (मसीय) मनन से प्राप्त करूं । (येन) जिससे (देवा) हम विद्वान् जन (असुरान् अभि असाम) केवल प्राणपोषी विघ्नकारी पुरुषो को पराजित करें अत. (ऊर्जाद.) बलयुक्त अन्न खाने वाले और (यज्ञियास.) सूक्ष्म आहार करने वाले (पञ्च जना) पांचो जन (मम होत्रम्) मेरे आह्वान वा उपदेश को (जुषध्वम्) सेवन करो ॥४॥

भावार्थ — जन्मावसर पर वेदवाणी के या प्रमुख नाम 'ओ३म्' का स्मरण और जन्मे बालक की जीभ पर 'ओ३म्' का लिखना तथा कान मे सुनाना तथा सत्संग के अवसर पर भी उसी का स्मरण करना चाहिए । इस अवसर पर बलयुक्त अन्न खाने व सूक्ष्म आहार करने वाले भी उसी का स्मरण भजन करें ॥४॥

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥५॥१३॥

पदार्थ —(गो-जाताः) धरती पर उत्पन्न तथा वेदवाणी में पारगत, (उत ये) और जो (यज्ञियास) यज्ञ-योग्य है, वे (पञ्च जना) पाचो जन (मम होत्रं) मेरे यज्ञ, आह्वान एव वचनो को प्रेमपूर्वक स्वीकारें । (पृथिवी) पृथिवी माता (नः) हमे (पार्थिवात् अंहस.) पृथिवी के पापो वा दोषों से (पातु) बचावे और (अन्तरिक्षम्) गुरु, पिता आदि (अस्मान्) हमे (अंहस) आकाशी कष्टो से (पातु) बचावें ॥५॥१३॥

भावार्थ —गृहस्थ की यह आकांक्षा होनी चाहिए कि उसके वचनो को वेद-निष्णात तथा विद्वत् जन सुनें और उसका व्यवहार भी ऐसा हो कि पृथिवी व आकाश के कष्टों से बचे रहें ॥५॥१३

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।

अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥६॥

पदार्थः—हे गृहस्थ के कुल में जन्मे विद्वन् ! (तन्तुम् तन्वन्) तू सन्ततिक्रम का विस्तार करता हुआ (रजस· भानुम्) ज्ञान या लोकों के प्रकाशक प्रभु का (इहि) अनुगमन कर और (धिया) बुद्धि से तू (कृतान् पथ) उनके बनाए गए मार्गों को (ज्योतिष्मत.) प्रकाश से युक्त रख । (जोगुवाम्) उपदेष्टा जनो के (अनुल्बणं) कभी कष्ट न देने वाले (अपः) सत्कर्म को (वयत) कर । तू सदैव (मनु भव) मननशील हो और (जन दैव्य जनय) दिव्यगुण वाला पुत्र व शिष्य तैयार कर ॥६॥

भावार्थ·—श्रेष्ठ सन्तान तथा शिष्य का विस्तार करना मानव के लिए अभीष्ट है । स्व जीवन में धर्ममार्ग का अवलम्बन करते हुए वह मननशील बनकर उत्पन्न गुणयुक्त पुत्रों तथा शिष्यो को तैयार करने मे लगा रहे ॥६॥

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।

अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७॥

पदार्थः—हे (सोम्याः) ज्ञानरस अर्जित करने वाले जनो ! (अक्षानहः नह्यतन) इन्द्रियो को बांधो, कर्त्तव्य-बद्ध, वचन-बद्ध हो (उत) और (रशना·) ज्ञान रश्मियो को (इष्कृणुध्वम्) उज्ज्वल करो (उत) तथा (आ पिंशत:) भली-भांति फैलाओ (अष्टावन्धुर आ वहत) अष्टांगयोग मे बांधने वाले योग्य विषयों में मन लगाओ (येन देवासः) जिससे विद्वान् जन (प्रियम् अभि) प्रिय मोक्ष के प्रति (अनयन्) आत्मा ले जाते हैं ॥७॥

भावार्थ —ज्ञान अर्जित करने वाले विद्वत् जन अपनी ज्ञान धाराओ के द्वारा इन्द्रियो के दोषो को बन्द कर विषयों पर संयम रखें और विषयासक्त मन को स्वाधीन कर उसे मोक्ष का पथ दिखाए । यह ज्ञान का श्रेष्ठ फल है ॥७॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥

पदार्थः—(अश्मन्वती रीयते) व्यापक आत्म-शक्तियुक्त नदी के तुल्य यह जनादि प्रवाह सतत गतिमान् है । हे विद्वान् पुरुषो ! (सं रभध्वम्) मिलकर परिश्रम करो । (उत् तिष्ठत) उत्तम स्थिति पाओ । हे (सखाय) मित्रो ! (ये) जो (अशेवा) [illegible] तथा दुःखदायी कारण है उन्हें (अत्र) यहां (जहाम) त्यागो और (शिवान् वाजान् अभि) कल्याणकारी, सुखद ऐश्वर्यों व ज्ञान को लक्ष्य कर (वयम्) हम (उत् तरेम) उत्तम पद पाएं ॥८॥

भावार्थः—व्यापक आत्म-शक्तियुक्त नदी के तुल्य यह अनादि प्रवाह सतत गतिमान् है। विद्वत् जन मिलकर प्रयास कर उत्तम स्थिति पाएं। इसके लिए पापों का परित्याग कर कल्याणकारी पुण्य रूप नौकादि के तुल्य बलशाली प्रयास अपेक्षित है ॥८॥

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९॥

पदार्थः—(अपसाम् अपस्तमः) सर्वोत्तम कर्म सम्पादित करने वाला, (त्वष्टा) जगत्स्रष्टा प्रभु (मायाः) जगत्-निर्माण करने वाली भारी शक्तियों का (वेद) ज्ञाता है। वह (देव-पानानि) सूर्य, पृथिवी, चन्द्र इत्यादि लोकों, चक्षु आदि इन्द्रियों व विद्वानों का पालक नाना (शन्तमा पात्रा) शान्तिदायक पालन करने के उपायों को (बिभ्रत्) धारता है। वह (ब्रह्मणः पतिः) ब्रह्माण्ड व ब्रह्मज्ञान का स्वामी, (सु-आयसम् परशुम् शिशीते) उत्तम लोहसार निर्मित परशु को जिस शिल्पी के तुल्य (सु-आयसम् परशुम्) सुख प्रदाता, परम पद तक ले जाने वाले ज्ञानरूप वज्र को (शिशीते) तीक्ष्ण बनाता है। (येन) जिससे (एतशः) यह शुक्लकर्मा जीव (वृश्चात्) इन सारे कर्म-बन्धों को काटता है ॥९॥

भावार्थ.—सकल कर्मकुशल उत्कृष्ट व्यक्ति की अपेक्षा प्रशस्त कर्म करने वाला प्रभु है। वही सबके कर्मों को यथावत् जानता है। मुमुक्षुओं को उनके कर्मानुसार मोक्ष में वह उन्हें सकल्पबद्ध मन, श्रोत्र आदि तथा आनन्द के पात्रों को समृद्ध करता है ॥९॥

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०॥

पदार्थः—हे (कवय) विद्वानो! आप लोग (याभिः वाशीभि.) उपदेशप्रद वेद-वाणियों से और इन्द्रियादि को नियन्त्रित करने वाली जिन साधनाओं से (अमृताय) मोक्षप्राप्ति हेतु (गुह्यानि) रहस्ययुक्त (पदा) उत्तम ज्ञानों का (तक्षथ) अभ्यास कर उन्हें (सत) ज्ञानवान् पुरुष से (सं शिशीत) प्राप्त कर खूब अभ्यास द्वारा प्राप्त करते हो, (येन) जिससे (देवास) ज्ञानी जन (अमृतत्वम्) अमृतमय मोक्ष पद को (आनशु) पाते हैं ॥१०॥

भावार्थ.—जिस भाँति ज्ञान की खोज मे रत विद्वान् सांसारिक सुखों को वेद के ज्ञान से सिद्ध करते हैं उसी भांति वेद के ज्ञान से वे मोक्ष भी पाते हैं। अपने समान ही दूसरो के भी दोनो सुखो की सिद्धि हेतु उन्हें ज्ञान का प्रचार और उससे दूसरो को प्रेरणा देनी चाहिए ॥१०॥

गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११॥१४॥

पदार्थ—(योषाम् गर्भे वत्सम् अदधु) वाणी के अभिप्राय को विद्वान् लोग धारण करते है (अपीच्येन मनसा) तद्गत चित्त से और (जिह्वया) वाणी से (आसनि) मुख मे (वत्सम् अदधु) बोलने योग्य उत्तम वचन को प्रकट करते हैं। (सः कार इत् जितिं वनते) वह स्तुतिकर्ता समर्थ पुरुष होकर विजय प्राप्त करता है जो (सुमना) उत्तम चित्तवान् होकर (योग्याः अभि) योग्य सत्कर्मियो की (सिषासनि.) सतत सेवा करता है ॥११॥१४॥

भावार्थः—विद्वत् जन विद्या के अभिप्राय को स्वय मे धारते है और अन्यो के लिए उसे मौखिक वचनो से प्रसारित करते है। इसी भांति मन व वाणी से प्रभु की वन्दना कर वे जीवन को धन्य बनाते है ॥११॥१४॥

इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

---

[५४]

बृहदुक्थो वामदेव्य.। इन्द्रो देवता॥ छन्द.—१, ६, त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ षड्च सूक्तम्॥

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥

पदार्थ—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (ते) तेरे (महित्वा) महत्त्व से (तां सु कीर्तिम्) इस शुभ कीर्ति को गाता हूं (यत्) जो कि (भीते रोदसी) भयभीत आकाश व पृथिवी तुल्य ज्ञानी (त्वा अह्वयेताम्) तुझे अपनी रक्षार्थ बुलाते हैं और तू (यत्) जो (देवान् प्र आव.) दिव्य भावों का रक्षक है और (दासम् आ अतिर) आसुरी भावों का संहार करता है, प्रजाघातक का और प्रजा हेतु (ओजः अशिक्षः) अध्यात्म बल-पराक्रम प्रदान करता है और उसकी उसे शिक्षा भी देता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की महत्ता महानतम है। उसके गुण तथा कीर्ति भी स्वतः सिद्ध है। ज्ञानी हो या अज्ञानी, दोनों ही उस प्रभु की सत्ता को अनुभव करते हैं और उससे भय भी खाते हैं। परमात्मा सदाचारी ज्ञानी जन की पूर्णरूपेण रक्षा करता है व दुष्टों को दण्डित करता है। देव श्रेणी वाले मानव प्रजा को अपने अध्यात्म-लाभ भी प्रदान करते हैं ॥१॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जब तू (बलानि) अपने बलों या व्याप्ति से अपने गुण वीर्य को (वावृधानः) बढ़ाता हुआ, अपने व्यापक स्वरूप से (अचरः) विचरता है और जो तू (जनेषु प्रब्रुवाण अचर) मनुष्यों को श्रेष्ठ उपदेश करता विचरता है। लोग जो (ते यानि युद्धानि आहु) तेरे नाना देवासुर युद्धों को बताते हैं, (सा ते माया इत्) वह सभी जीव कर्म निर्माण शक्ति का ही परिणाम है। तू तो (न अद्य शत्रुं विवित्से) न आज शत्रु को पाता है, (न नु पुरा विवित्से) न पहले ही तू किसी को अपने शत्रु रूप मे प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—वेद ज्ञान के द्वारा परमात्मा अपने गुणों का ऋषियों में प्रवचन करता है और कामादि शत्रुओं पर प्रहार कर अपना प्रभाव भी दिखाता है, यही उसकी सहज शक्ति है। उस प्रभु का कोई भी शत्रु नहीं। उसका लक्ष्य तो केवल मनुष्यों के आन्तरिक शत्रुओं का संहार करना ही है ॥२॥

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३॥

पदार्थ—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (के उ नु ऋषय) वे कौन से तत्त्वदर्शी मन्त्रद्रष्टा हैं जिन्होंने (अस्मत् पूर्वे) हमसे पूर्व होकर (ते समस्य महिमन) तेरे समस्त महत्त्व को (अन्तम् आपु) अन्त तक पाया हो। (यत्) तूने ही (मातरं च पितरं च) पृथिवी व आकाश दोनों को (स्वायाः तन्व) स्व अव्यक्त प्रकृति से (अजनयथाः) उत्पन्न किया है ॥३॥

भावार्थ—उस परमात्मा के महत्त्व का पार कोई भी पूर्णरूपेण पाने मे असमर्थ है। उसी ने अपनी महान् शक्ति एवं अव्यक्त प्रकृति द्वारा आकाश धरती दोनों को ही प्रकाशक एवं प्रकाश्य लोकों के जैसा बनाया है ॥३॥

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४॥

पदार्थ—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते महिषस्य) तुझ महान् परमात्मा के (चत्वारि) चार (नाम) नाम या रूप हैं (अदाभ्यानि) वे कभी नाश नहीं होते हैं। (अङ्ग) हे प्रभो! (त्वं तानि विश्वानि वित्से) तू उन सभी को जानता है (येभि.) जिनसे तू (कर्माणि चकर्थ) जगत् निर्माण आदि कर्म करता है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा के चार महान् नाम या रूप भी हैं जो कभी नाश नहीं होते। प्रभु उन सभी को जानता है जिनसे वह जगत् का निर्माण करता है ॥४॥

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५॥

पदार्थ हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमात्मा! (त्वम्) तू (विश्वा) सारे (केवलानि) असाधारण (वसूनि) ऐश्वर्यों को धारण कर रहा है, (या च गुहा) जो अभी अप्रकट है और (यानि आवि) जो प्रकट भी हैं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (मे कामम् इत्) मेरी कामना को कभी (मा वि तारी) नष्ट न होने दे, प्रत्युत (त्वम् आज्ञाता) तू ही आज्ञा देने वाला, प्रमुख है और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू ही (दाता असि) दाता है ॥५॥

भावार्थः—प्रभु ही सकल धन-ऐश्वर्य का स्वामी है, चाहे वे धन प्रसिद्ध प्रत्यक्ष धन हों अथवा इन्द्रियों से भोगने योग्य या गुप्त धन हो जो मन आत्मा से भोगे जाते हैं। उनमें से प्रभु यथाधिकार वांछित धन देता है ॥५॥

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६॥१५॥

पदार्थः—(य) जो प्रभु (ज्योतिषि अन्त ज्योति अदधात्) ज्योतिष्मानों मे ज्योति तेज को धारण करता है, (य) जो (मधुना) मधुर रस से समस्त (मधूनि सम् असृजत्) पदार्थों को युक्त करता है, उस (इन्द्राय) महान् ऐश्वर्य वाले परमात्मा के (प्रिय) अतिप्रिय, (मन्म) मननीय, (शूषम्) बल को, (ब्रह्म-कृत) वेद के उपदेष्टा (बृहदुक्थात्) तथा विशाल वेद के ज्ञानवान् पुरुष से (अवाचि) कहा जाता है ॥६॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा ही ज्योतिपुंज सूर्य आदि को ज्योति देता है एवं माधुर्ययुक्त वस्तु को मधुरता से परिपूर्ण करता है। उसी भांति परमात्मा वेद ज्ञान का रचयिता है। उसी से ज्ञानीजन प्रभु-वन्दना करते हैं ॥६॥१५॥

इति पञ्चदशो वर्ग ॥

---

[५५]

बृहदुक्थो वामदेव्य ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१॥

पदार्थ —(यत्) जो (त्वा) तुझे (भीते) भय से डरते हुए आकाश और पृथिवी (वयः धै) बल धारण कराने या देने हेतु (अह्वयेताम्) आह्वान करते हैं और तू (पृथिवीं द्याम्) पृथिवी व आकाश दोनों को (अभीके) उनके निकट होकर (उत् अस्तभ्ना.) थामता है और (भ्रातुः) भरण पोषण कर्ता सूर्य एव मेघ की (पुत्रान्) पालन करने मे समर्थ किरणों एव जल-धाराओ को (तित्विषाण) तेज से प्रकाशित करता है, तेरा (तत् नाम) वह स्वरूप (पराचै) पराङ्मुख जनो से (गुह्य) गुह्य एव दूर रहता है ॥१॥

भावार्थ —हे प्रभो ! जो लोग नास्तिक हैं वे आपके स्वरूप को समझने मे असमर्थ रहते हैं । ऐसे लोगों को भी उसका भय रहना चाहिए । वही प्रभु धरती व आकाश का आधार है । वही सकल जगत्प्रकाशक है और सभी उससे भय खाते हुए अपना कार्य करते हैं ॥१॥

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२॥

पदार्थः—(महत् तत् गुह्य नाम) परमात्मा वह महान् गुप्ततम रूप है (पुरु स्पृक्) जिसकी अनेक जीव स्पृहा करते हैं (येन) जिससे (भूतम्) वर्तमान जगत् को तू (जनय) उत्पन्न करता है और (येन भव्यम् जनयः) जिससे तू भविष्यत् को भी उपजाता है और (यत) जो कि (अस्य) इसका (प्रत्न) नितान्त पुरातन (ज्योति.) प्रकाशमय रूप (अस्य प्रिय जातम) इस उत्पन्न जीववर्ग को प्रिय है, इस प्रिय ज्योति को प्राप्त होकर (पञ्च सम् अविशन्त) पाचों महाभूत सम्यक् स्थान पाते हैं ॥२॥

भावार्थ —मुमुक्षु जन ही प्रभु के गहन और मननीय स्वरूप को चाहते हैं । वही अपनी स्वरूप सत्ता अथवा शक्ति द्वारा त्रिकाल मे होने वाले जगत का निर्माता है । उसके प्रिय ज्योतियुक्त मोक्षधाम मे पाचो महाभूत आश्रय करते हैं ॥२॥

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३॥

पदार्थ —वह (रोदसी) भूमि एव आकाश को पूर्णता प्रदान कर रहा है । (उत मध्यम् अपृणात्) और वह दोनो के बीच के भाग या अन्तरिक्ष को भी भली-भांति भर रहा है । वह (ऋतुश.) ऋतुओ के अनुसार (पञ्च सप्त सप्त देवान्) पाच ज्ञानेन्द्रिय देवो व सर्पणशील सात प्राण स्थानों के शरीर मे मस्तक आदि प्राणों के केन्द्रो को भली-भांति पूर्ण करता है । वह (वि-व्रतेन) विविध कर्म के जनक (चतुस्त्रिंशता) ३४ प्रकार के गणा सहित (स-रूपेण ज्योतिषा) एक समान तेज से भी (पुरु-धा विचष्टे) नाना प्रकार का दीखता है ॥३॥

भावार्थः—प्रभु की शक्ति ही द्युलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष तीनो मे परिपूर्ण है । पाचो ज्ञानेन्द्रियां व सर्पणशील सात प्राण केन्द्रों को भी अपनी व्याप्ति व अपने व्यवहार मे वही समर्थ बनाता है । वही अपनी कर्मशक्ति व ज्ञानज्योति से सर्वद्रष्टा व प्रकाशक है ॥३॥

यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥४॥

पदार्थ —हे (उषः) सर्ववशकारिणी प्रभु शक्ति ! (यत्) जो तू (विभानाम् प्रथमा) विशेष प्रकाश देने वाले सूर्यादि के बीच सर्वप्रथम (औच्छः) प्रकटती है, (येन) जिससे (पुष्टस्य) परिपोषण योग्य जगत् के (पुष्टम्) पोषण युक्त महान शरीर को (अजनय) प्रकटाती है और (यत्) जो (ते) तुझ (परस्या) परम शक्ति का भी (अवरम्) हम लोगो से प्रत्यक्ष होने वाला मातृतुल्य सम्बन्ध है, वह (महत्या) तुझ महती परमेश्वरी माता का (एकम्) अद्वितीय (महत् असुरत्वम्) महान् जीवनदाता होने का साक्षी है ॥४॥

भावार्थ —प्रभु की ज्योति ही सकल दीप्तियुक्त पदार्थों मे प्रकाशित हो रही है । वही विश्व जननी है, यह उसी का एक रूप है । उसका द्वितीय रूप अमर जीवन प्रदात्री का है । मानव उस ज्योति को उपासना से ही प्राप्त करता है ॥४॥

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५॥१६॥

पदार्थः—(विधु) चचल (समने) सघर्ष में (बहूनां दद्राणं) अनेको को बल से भगाने मे समर्थ (युवानं सन्तं) युवा जन को भी (पलितः) वृद्धतुल्य (वधु) पुराना काल (जगार) ग्रस लेता है । (देवस्य) उस प्रभु के (महित्वा) महान् सामर्थ्य से युक्त (काव्य पश्य) महान् क्रान्तदर्शिता से बनाये गये इस जगत्रूप काव्य को (पश्य) देख, (अद्य ममार) जो आज प्राण त्यागता है, (स ह्य) वह कल (समान) पुन जन्म लेता है ॥५॥१६॥

भावार्थ —चंचल, इन्द्रिय सग्राम में बहुबलधारी समर्थ युवक पुरुष भी वैसे ही ग्रस जाता है, जैसे वृद्ध को समय निगल लेता है । किन्तु यदि मन निग्रह हो तो वह पुन कल्याण का साधन वैसे ही बनता है जैसे जो आज मरता है, वह कल पुनः जन्म लेगा ॥५॥१६॥

इति षोडशो वर्गः ।

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥६॥

पदार्थ —जो परमेश्वर (शाक्मना शाक) अपने महान् बल से समर्थ है । वह (अरुण.) तेजोमय, (सुपर्णः) सुख से सबका पालन करने वाला है । (य) जो वह (महः) महान् (शूर.) दुष्टो का सहारक, (सनात्) सनातन, (अनीळः) सर्वव्यापक है । वह (यत् चिकेत) जो भली-भांति जानता है, (सत्यम् इत् तत्) वह सब सत्य ही जानता है । (तत् मोघ न) वह कभी व्यर्थ (वसु न जेता) ऐश्वर्य को नही जीतता, (उत न दाता) और न व्यर्थ देता है ॥६॥

भावार्थ —प्रभु सृष्टि की रचना एव जीवों को कर्मफल देने में समर्थ है । वह अनन्त है, वही महान् दुष्टदल-सहारक है । वह शाश्वत व सत्य स्वरूप है । उसके कार्य भी सत्य व सार्थक हैं । वही मुमुक्षुओ को मनोवांछित फल देता है और उन्हें मोक्ष का धन प्रदान करता है ॥६॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७॥

पदार्थ —(ये देवा) जो तेजस्वी जन (मह्ना क्रियमाणस्य कर्मणः) महती शक्ति से उत्पन्न किये जाने वाले जगत् का (ऋते कर्मम्) अमृतरूप मोक्ष में मोक्ष को निमित्त बनाकर (उत् अजायन्त) प्रकट होते है, (येभि) जिनके द्वारा (वज्री) पाप-निवारक बल का स्वामी प्रभु, (वृत्र-हत्याय) विघ्नकारी अज्ञान व दुष्ट पुरुषो के विनाश और (वृत्र-हत्याय) नाना धनैश्वर्यों के लिए (पौंस्यानि) नाना बलों व जीवों के हितकारी कर्मों को (औक्षत्) धारता और प्राप्त करता है, (एभि) उनके ही द्वारा वह (वृष्ण्या) सब सुखो के दाता वेदज्ञान को भी (आ ददे) धारण और प्रदान करता है ॥७॥

भावार्थ —वही परमात्मा मानव कल्याण के लिए वेद का प्रकाश देता है । जिनके माध्यम से उसने इस ज्ञान का प्रकाश किया था उनका लक्ष्य अज्ञान को हरना व व्यक्तियों के लिए हितकारी कर्मों व सुखदायी ज्ञान को देना ही था ॥७॥

युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८॥१७॥

पदार्थः —(विश्व-ओजा.) समस्त प्रकार के बल-पराक्रमो का स्वामी, प्रभु, (अशस्ति-हा) अज्ञान व पाप का (तुराषाट्) वेग मे सबसे अधिक, सर्वशक्तिमान् (युजा कर्माणि जनयन्) ध्यान योग के द्वारा उपासको को साक्षात् होने वाले वैदिक कर्मों की प्रेरणा करता हुआ (सोमस्य पीत्वा) उपासना रस को स्वीकार कर (दिवः आवृधानः) तेजोमय सूर्य आदि लोकों को बढ़ाता हुआ, (युधा) ज्ञान के प्रहार से (शूर) शूरवत् (दस्यून् निर् अधमत्) सद्भावनाओं को दुर्बल करने वाले कामादि दोषो को हरता है ॥८॥

भावार्थः- परमेश्वर सकल बलो का स्वामी है । वही सर्वज्ञ है, अज्ञान तथा पापों का नाश करने वाला, ज्ञान का प्रसारक, कामादि दोषो का सहारक है । उसी की वन्दना-अर्चना करनी अभीष्ट है ॥८॥

इति सप्तदशो वर्गः ॥

---

[५६]

बृहदुक्थो वामदेव्य । विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृज्जगती । ५ विराड् जगती । ६ आर्ची भुरिग् जगती । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥१॥

पदार्थ —(इदं ते एकं) यह संसार तेरे लिए एक ज्योति है । (ते एक परः) यह आत्मा द्वितीय उत्कृष्ट ज्योति है । तू (तृतीयेन) परमात्मरूप तृतीय (ज्योतिषा) ज्योतिसहित (संविशस्व) मग्न होकर रह । (तन्व) देह के, और (देवानां परमे जनित्रे) सकल दिव्य शक्तियो के बनाने वाले (परमे) सर्वश्रेष्ठ (संवेशने) सेज तुल्य सबको आश्रय देने वाले परमात्मा में (चारुः) सर्वत्र विचरता हुआ तू, (प्रियः) सर्वप्रिय बनकर, (तन्व. संविशस्व) नाना देहों व विस्तृत लोकों में भी प्रवेश कर और (एधि) वास कर ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्य ! जगत् तेरे लिए एक ज्योति है । यह आत्मा द्वितीय उत्कृष्ट ज्योति है, तू परमात्मारूपी तृतीय ज्योति सहित मग्न रह । तेरा कर्तव्य है कि तू सकल दिव्य शक्तियों के रचयिता सर्वश्रेष्ठ शैयातुल्य सभी के आश्रयदाता परमात्मा की शरण में रहकर सर्वप्रिय बन ॥१॥

तनूष्टे वाजिन्तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२॥

पदार्थ :—हे (वाजिन्) ज्ञानवन् ! (तनूः) तेरी आत्मा (तन्वम् नयन्ती) तेरी काया को बढ़ाती हुई (अस्मभ्यम् वामम् धातु) हमें उत्तम ज्ञान-सुख और (तुभ्यम् शर्म धातु) तुझे सुख प्रदान करे । तू (अह्रुतः) सरल आचरणवान् हो

कर (महः देवान् अवसाय) बड़े शक्तिशाली देवों विद्वानों की शरण पाने के लिए (दिवि इव) आकाश में (स्वम् ज्योतिः) सूर्यवत्, (ज्योतिः आ निमीथाः) अपनी ज्योति का स्वरूप बना ॥२॥

भावार्थः—जब किसी परिवार में किसी आत्मा का जन्म होता है तो वह सूर्य के तुल्य सभी परिवार को प्रकाशित करता है और पारिवारिक जनों को सुखदायी होता हुआ स्वयं को भी सुखी बनाता है। फिर उसे उत्तम सुख के लिए सरल आचरणवान् होकर विद्वत् जनों की सगति कर तेजस्वी बनना चाहिए ॥२॥

वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३॥

पदार्थ.—(वाजी असि) हे बालक ! तू ज्ञान से ज्ञानवान् है। तू (वाजिनेन सु-वेनीः) वीर्य से दीप्त है। (सुवित) शुभ गुणयुक्त तू, (स्तोमम्) उत्तम स्तुति योग्य है। (सुवितः दिवं गाः) तू सुशिक्षित होकर मोक्ष को प्राप्त कर। (सुवितः धर्म) उत्तम आचरण में रह धर्म को प्राप्त कर। (प्रथमा सत्या अनु) उत्तम ही सत्य फलों और सत्य तत्त्वों को प्राप्त कर। (सुवित देवान्) शुभ कर्म में रत रह कर तू विद्वानों की संगति को प्राप्त कर। (सुवित अनु पत्म) उत्तम शुभ मार्ग में रहकर तू अनुकूल सन्मार्ग भी प्राप्त कर ॥३॥

भावार्थः—माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने बालक को चरित्रवान्, धर्म-परायण, विद्वान् बनाए। इसके लिए उन्हें अपने बालक को अपने से उत्तम विद्वानों की संगति करानी चाहिए जिससे कि वे यशस्वी व परमात्मा के उपासक बन सकें ॥३॥

महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४॥

पदार्थ —(देवाः पितरः) दानशील एवं माता-पिता के समान सबका पालक विद्वान्, (एषां महिम्नः ईशिरे) इन प्राणों एवं लोकों के महान् सामर्थ्य व ऐश्वर्य के भी स्वामी बन जाते हैं। वे (देवेषु) उन दिव्य लोकों व विद्वानों के मध्य (क्रतुम् अदधुः) कर्मसामर्थ्य को धारते हैं (उत) और (यानि अत्विषुः) जो ज्योतिर्मय लोक खूब आलोकित हैं वे उन्हें (समविव्यचुः) पाते हैं और (एषां) उनमें वे (तनूषु पुनः नि वि विशुः) देहों में पुनः प्रविष्ट होते हैं ॥४॥

भावार्थ.—विद्वत् जन अपने दृढ़ संकल्प से अपनी इन्द्रियों के तो सही अर्थों में स्वामी हो ही जाते हैं, साथ ही वे गृहस्थ जन को भी अपने उपदेशों से लाभान्वित करते हैं और उनमें तथा अपने स्थानों में पुनः पुनः प्रसिद्धि पाते हैं ॥४॥

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५॥

पदार्थ —वे (पूर्वा) श्रेष्ठतम और (अमिता) अपरिमित (धामा) तेजों को (मिमाना) पाए हुए, (विश्वं रजः परि चक्रमुः) समस्त लोकों का परिभ्रमण करते हैं और (तनूषु) शरीरों में स्थित रहने वाले (विश्वा भुवना नियेमिरे) सभी जीवों को नियम में आबद्ध रखते हैं, उनका सञ्चालन करते हैं और (पुरुध प्रजा प्र असारयन्त) अनेक प्रकार से प्रजा का प्रसार करते, बढ़ाते, फैलाते और उन्हें उत्कृष्ट मार्ग पर ले जाते हैं ॥५॥

भावार्थ —विद्वज्जन श्रेष्ठतम और अपरिमित तेजों को प्राप्त हुए सर्वत्र परिभ्रमण करते हैं, समाज को अनुशासित रखते हैं। वे विभिन्न प्रकार से प्रजा का प्रसार कर उसे उत्कृष्ट मार्ग पर चलाते हैं ॥५॥

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६॥

पदार्थः—(सूनवः) सन्तान उत्पन्न करने वाले जीवगण, (स्वः विदम् असुरम्) सुखप्रदाता तथा प्राणों में रमणीय वीर्य को, (तृतीयेन कर्मणा) तीसरे श्रेष्ठ कर्म से (द्विधा) पुत्र-पुत्रियों को (स्वाम् प्रजाम् आ अस्थापयन्त) अपनी सन्तान को स्थापन करते हैं। वे (पितरः) पिता होकर (अवरेषु) अपने बाद आगे आने वालों में (पित्र्यं सह) पिता के तेज को, (आततम् तन्तुम्) और अभी तक सतत अविच्छिन्न सन्तानरूप तन्तु को (आ अदधुः) बसाते हैं। वे दो प्रकार की प्रजा पुत्र तथा शिष्य होती हैं ॥६॥

भावार्थः—सद्गृहस्थ उत्तम सन्तान को जन्म देने हेतु संयमपूर्वक सुरक्षित जीवन-तत्त्व गर्भाधान से योग्य पत्नी से सन्तान की उत्पत्ति करते हैं और फिर योगाभ्यास से अध्यात्मसुख भी प्राप्त करते हैं ॥६॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७॥१८॥

पदार्थः—(नावा न क्षोदः) नाव से जैसे कोई जल को पार करता है, उसी प्रकार (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारक आचरणों से (पृथिव्याः) सृष्टि के (प्र दिशः) प्रदेशों को (विश्वा दुर्गाणि अति) वहाँ स्थित समस्त दुःखदायी कष्टों को पार करता है, (बृहत्-उक्थः) महान् ज्ञानी विद्वान् (महित्वा) अपनी महान् भावना से (अवरेषु परेषु) दूसरे वर्णों में गुण कर्मानुसार (आ अदधात्) विवाह करता है ॥७॥

भावार्थ —जिस भांति नौका की सहायता से जलाशय पार किया जाता है, या जिस प्रकार विशाल सृष्टि के दुर्गम स्थान यात्रा के साधनों से पार किए जाते हैं, उसी भांति गृहस्थ में आए संकटों को सुचरित्र से पार किया जाए व गृहस्थी अपनी सन्तानों का विवाह स्ववंश तथा परवंश के जनों में गुणकर्मानुसार करें ॥७॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

---

[५७]

बन्धु सुबन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २—६ निचृत् गायत्री ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥१॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! हे परमात्मन् ! (वयं) हम लोग तेरे (सोमिनः) अध्यात्म ऐश्वर्य वाले (पथः) गमन करने योग्य सन्मार्ग से (मा प्र गाम) कभी दूर न हों (मा यज्ञात्) न तेरे यज्ञ से पृथक् हों (अरातयः) ज्ञान धनादि न देने वाले स्वार्थी (नः अन्तः मा स्थुः) हमारे अन्दर या बीच में न रहें ॥१॥

भावार्थ —मनुष्य को प्रभु द्वारा दिए गए उपदेशों से अलग आचरण नहीं करना चाहिए। वही जीवन का सत्य मार्ग है। जो दुर्गुण कामादि दोष जीवन के शोषक हैं, उनसे भी वेद का उपदिष्ट मार्ग ही बचाता है ॥१॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतं नशीमहि ॥२॥

पदार्थ —(यः) जो (यज्ञस्य) उपास्य परमात्मा की (प्रसाधनः) उत्तम रीति से साधना करने वाला (देवेषु आततः) विद्वानों के मध्य फैला हुआ है (तम् आहुतम्) उसे हम (नशीमहि) प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थ —प्रभु द्वारा उपदिष्ट उत्तम रीति और साधन ही विद्वानों में व्याप्त है। मनुष्य को उसी पर आचरण करना चाहिए ॥२॥

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन ।
पितॄणां च मन्मभिः ॥३॥

पदार्थ —(नाराशंसेन) मनुष्यों के द्वारा प्रशंसनीय (सोमेन) वेद ज्ञान द्वारा (मनः आ हुवामहे) हम लोग ज्ञान से मन को अच्छा बनाएं और (पितॄणां मन्मभिः) पालक गुरु जनों के मनन करने योग्य विचारों द्वारा हम (मनः आ हुवामहे) ज्ञान और चित्त को श्रेष्ठ बनाएं ॥३॥

भावार्थ —मानव व्यवहार को बताने वाले प्रभु द्वारा प्रकाशित वेद-ज्ञान से तथा विद्वानों के अनुभव से मानसिक स्तर को उच्च बनाना श्रेयस्कर है ॥३॥

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४॥

पदार्थः—हे पुत्र ! (ते मनः) तेरा मन (पुनः आ-एतु) फिर उत्कृष्ट हो। (क्रत्वे) कर्म करने (दक्षाय) बल प्राप्ति के लिये और (जीवसे) जीवन के लिए और (ज्योक् सूर्यं दृशे च) और दीर्घकाल तक ज्ञान के देने वाले परमात्मा को देखने व अनुभव करने हेतु ॥४॥

भावार्थ —सद्गृहस्थ का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तान का स्तर ऊंचा करे तथा उसमें कर्मशक्ति, शारीरिक बल व जीवन शक्ति बढ़ाने पर ध्यान दे। इसके साथ ही उसमें प्रभु के प्रति अनुरक्ति भी बढ़ाता जाए ॥४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥५॥

पदार्थ—(नः पितरः) हमारे पालक जन (नः मनः ददतु) हमें बार-बार मन को प्रदान करें और (दैव्यः जनः) देवतुल्य आचार्य भी हमें पुनः-पुनः मन तथा ज्ञान प्रदान करें, जिससे हम बार-बार (जीवं व्रातं सचेमहि) जीव समूह की सेवा कर पाएं ॥५॥

भावार्थ —गृहस्थों का यह दायित्व है कि वे अपनी सन्तान को श्रेष्ठ आचार्यों द्वारा ऐसी शिक्षा दिलाएं कि बालक प्राणिमात्र के प्रति यथोचित व्यवहार कर सके ॥५॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥६॥१९॥

पदार्थ —हे (सोम) सर्वशासक प्रभो ! (वयं तव व्रते) हम तेरे व्रत के निमित्त (तनूषु मनः बिभ्रतः) अपनी इन्द्रियों में मन को लगाते हुए (प्रजावन्तः सचेमहि) उत्तम सन्तान वाले बनकर तेरी उपासना करें ॥६॥१९॥

भावार्थः—प्रभु उपासना हेतु मनुष्य का संयमी होना आवश्यक है और प्रभु के नियमानुसार धर्माचरण करे ॥६॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५८]

बन्ध्वादयो गोपायना ऋषयः ॥ देवता—मन आवर्तनम् ॥ निचृदनुष्टुप् छन्द ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यत्ते॑ य॒मं वै॑वस्व॒तं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥१॥

पदार्थ—(यत् ते मनः) हे मानस रोगी ! जो तेरा यह मन (दूरकम्) दूर तक (वैवस्वत यम) कल्पना से दूर (जगाम) चला गया है (ते) तेरे (तत्) उसे भी हम लोग (इह क्षयाय जीवसे) यहा रहने व जीवन लाभ करने के लिए (आ वर्तयामसि) पुन लौटाते है ॥१॥

भावार्थ—मानस रोगी का मन चचल होकर भाँति-भाँति की आशकाए करता है । कुशल चिकित्सक को उसे आश्वस्त करना चाहिए कि तू चिन्ता न कर, हम तुझे दीर्घ जीवन प्रदान कराएगे ॥१॥

यत्ते॒ दिवं॒ यत्पृ॑थि॒वीं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥२॥

पदार्थः—(यत् ते मन) हे मानसिक रोगी ! जो तेरा मन (दिव पृथिवीम् दूरक जगाम) आकाश, भूमि को या दूरस्थ पदार्थ तक जागरण काल मे भी चला जाता है, उसको भी (इह जीवस क्षयाय) जहा जीवन लाभ करने और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (आ वर्तयामसि) पुन लौटा लेते हैं, ताकि तू दीर्घजीवी हो ॥२॥

भावार्थः—मानसिक रोग ग्रस्त व्यक्ति का मन जागृत अवस्था मे भी भ्रान्त होकर पृथ्वीभर के स्थान और प्रदेशो के बारे मे प्रलाप करता है । उसे दीर्घजीवन के प्रति आश्वस्त बनाया जाना चाहिए ॥२॥

यत्ते॒ भूमिं॒ चतु॑र्भृष्टिं॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥३॥

पदार्थ—हे जीव ! जो तेरा मन (यत् ते मन चतुर्भृष्टिम् भूमिम् दूरकम् जगाम) चतुर्दिक् भ्रमयुक्त गोल भूमि को पारकर दूर चला जाता है, (तत्) उसे हम (इह क्षयाय) यहा ऐश्वर्य और निवास तथा (जीवसे) जीवन प्रदान कराने के लिए (ते आ वर्तयामसि) लौटा लाएगे ॥३॥

भावार्थ—मानस रोगका रोगी जब भ्रान्त होकर मैं उच्च स्थान पर हू, मुझे कौन नीचे उतारेगा—सरीखा प्रलाप करे तो उसे आश्वासन दिया जाना चाहिए कि हमने तुझे बचा लिया है । इस प्रकार उसकी चिकित्सा करना अभीष्ट है ॥३॥

यत्ते॒ चत॑स्रः प्र॒दिशो॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥४॥

पदार्थ—(यत् ते मन) हे रोगी ! जो तेरा मन (चतस्रः प्रदिश दूरक जगाम) चारों दिशाओ मे दूर चला गया है (ते तत्) तेरे उस मन को भी (इह क्षयाय जीवसे) यहा ऐश्वर्य, निवास, जीवन आदि लाभ हेतु (आ वर्तयामसि) हम लौटा लावें, स्वस्थ बनावें ॥४॥

भावार्थ—मानसिक रोगी का मन जब विभिन्न दिशाओ सबन्धी बातें क्षण-क्षण मे बदले तो उसे उचित आश्वासन प्रदान कर स्वस्थ किया जाना चाहिए ॥४॥

यत्ते॑ समु॒द्रम॑र्ण॒वं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥५॥

पदार्थः—(यत् ते मन अर्णव दूरक जगाम तत्ते०) हे मानसिक रोगी जो तेरा मन समुद्र तक दूर चला गया है उसको हम यहा ऐश्वर्य, निवास और जीवन सुख के लिए पुन स्वस्थ बना दें ॥५॥

भावार्थ—मानसरोग-ग्रस्त मन वाला जब स्वय को समुद्रादि मे डूबता-तैरता बताए तो उसे निवारक आश्वासन प्रदान कर शान्त किया जाए ॥५॥

यत्ते॒ मरी॑चीः प्र॒वतो॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥६॥२०॥

पदार्थ—(यत् ते मन प्रवत मरीची दूरक जगाम) हे मानसरोग ग्रस्त । जो तेरा मन व्यर्थ आशा वाली मरुमरीचिका तुल्य तृष्णाओ तक दूर तक चला गया है उसको (इह क्षयाय जीवसे) यहां सत्पथ में रहने और सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (आ वर्तयामसि) पुन स्वस्थ बना लेवें ॥६॥

भावार्थ—मानसिक रोगीजन जब भ्रम-मरीचिका मृगतुल्य तृष्णाओं से ग्रस्त हो तो उसे सत्पथ व सुखी जीवन हेतु आश्वस्त किया जाए ॥६॥

इति विंशो वर्गः ॥

यत्ते॑ अ॒पो यदोष॑धी॒र्मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥७॥

पदार्थ—(यत् ते मनः अप ओषधीः दूरक जगाम) हे रोगी ! जो तेरा मन जलो, ओषधियों की प्राप्ति की आशा से दूर-दूर तक जाता है उसे हम (इह क्षयाय जीवसे) यहाँ रहने और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये (आ वर्तयामसि) पुन स्वस्थ बना लें ॥७॥

भावार्थ—जब मानस रोग ग्रस्त व्यक्ति का मन जल, औषधियों की प्राप्ति की आशा मे दूर-दूर तक भटकता है तो उन्हें सुखी व स्वस्थ जीवन के सम्बन्ध में आश्वस्त किया जाना चाहिए ॥७॥

यत्ते॒ सूर्यं॒ यदु॒षसं॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥८॥

पदार्थ—(यत् ते मन सूर्य उषसम् दूरकम् जगाम) हे मानसिक रोगी ! जो तेरा मन सूर्य वा प्रभातिक वेला को लक्ष्य कर दूर गया है, उसे (इह क्षयाय जीवसे तत् ते आवर्तयामसि) यहाँ ऐश्वर्य प्राप्ति, निवास एव सुखमय जीवन के लाभार्थ पुन. स्वस्थ करें ॥८॥

भावार्थ—मानसिक रोगी जिसका मन सूर्य एवं प्राभातिक वेला को लक्ष्य कर दूर भटक गया हो तो उसे पुन सुखमय जीवन बिताने योग्य बनाने का आश्वासन दिया जाना चाहिए ॥८॥

यत्ते॒ पर्व॑तान्बृह॒तो मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥९॥

पदार्थः—(यत् ते मन. बृहत पर्वतान् दूरक जगाम) हे मानसरोग-ग्रस्त ! जो तेरा मन बड़े-बड़े पर्वतों को लक्ष्य कर दूर तक गया है (ते तत इह क्षयाय जीवसे) उसे यहाँ रहने और जीवनलाभ के लिये (आवर्तयामसि) पुन स्वस्थ बना ले ॥९॥

भावार्थः—मानसिक रोगी का मन जब बड़े-बड़े पर्वतो पर भ्रान्ति की अवस्था में भटकता है तो ऐसी बातें करनी चाहिए कि उसे सान्त्वना प्राप्त हो ॥९॥

यत्ते॒ विश्व॑मि॒दं जग॒न्मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥१०॥

पदार्थः—(यत् ते मन इद विश्व दूरक जगाम) हे रोगी ! जो तेरा मन इस विश्व को लक्ष्य कर दूर तक जा पहुँचा है उसे (तत् इह क्षयाय जीवसे आ वर्तयामसि) हम यहां रहने और जीने के लिये पुन स्वस्थ करें ॥१०॥

भावार्थ—मानसिक रोगी का मन भ्रान्त अवस्था मे कभी यहा तो कभी वहा भटकता है उसे भी यथोचित उपचार से स्वस्थ करें ॥१०॥

यत्ते॒ परा॑: परा॒वतो॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥११॥

पदार्थ—(यत् ते मन. परा परावत दूरक जगाम) हे मानसिकरोग-ग्रस्त ! जो तेरा मन सुदूर देशो को लक्ष्य करके दूर तक चला गया है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) तेरे उस चित्त को हम यहा रहने व जीने के लिये पुन स्वस्थ करें ॥११॥

भावार्थ—मानसिक रोगी का मन भ्रान्तिवश सुदूर देशो मे भटक जाता है, उसे भी यथोचित व्यवहार से व्यवस्थित किया जाना चाहिए ॥११॥

यत्ते॑ भू॒तं च॒ भव्यं॑ च॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।

तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥१२॥२१॥

पदार्थ—(यत् ते मन भूत भव्य च दूरकं जगाम) हे रोगी ! जो तेरा मन भूत और भविष्य काल के विषयो मे दूर तक गया है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) उसे यहा दीर्घकाल तक रहने और जीवन व्यतीत करने के लिये (आवर्तयामसि) हम पुन स्वस्थ बना लें ॥१२॥

भावार्थ—मानसिक रोगी कभी भूतकाल तो कभी भविष्य के बारे मे दूर तक भटक जाता है । उसे विविध उपचारो से शान्त एव ठीक किया जाना अपेक्षित है ॥१२॥

इत्येकविंशो वर्गः ॥

---

[५९]

बन्ध्वादयो गोपायना ॥ देवता—१—३ निर्ऋतिः । ४ निर्ऋतिः सोमश्च । ५, ६ असुनीति । लिङ्गोक्ता. । ८, ९, १० द्यावापृथिव्यौ । १० द्यावापृथिव्या-विन्द्रश्च ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४—६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्ति । ९ जगती । १० विराड् जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र ता॒र्यायु॑: प्रत॒रं नवी॑य॒: स्थाता॑रेव॒ क्रतु॑मता॒ रथ॑स्य ।

अध॒ च्यवा॑न॒ उत्त॑वी॒त्यर्थं॑ परात॒रं सु निर्ऋ॑तिर्जिहीताम् ॥१॥

पदार्थ—(नवीय) नवजात बालक की (आयुः) आयु, (प्र तारि) खूब बढ़े, (प्रतरं तारि) खूब बढ़नी चाहिए (रथस्य स्थातारा इव) रथ पर बैठे रथी सारथी के तुल्य (क्रतुमता) कर्म व ज्ञानयुक्त गृहस्थ के स्त्री-पुरुष दोनों (परा-

तरम्) खूब दूर-दूर तक (सु-जिहीताम्) सुख से जाये । (अध) और (वयवानः) रथ से जाने वाला पुरुष (अर्थम्) प्राप्ति योग्य उद्देश्य को (उतबीति) उत्तम रीति से प्राप्त करे तथा (निर्ऋतिः) कष्ट-दशा को (परातरम् जिहीताम्) खूब सुगमता से सहे व पार करे ॥१॥

भावार्थः—स्त्री व पुरुष को गृहस्थ का संचालन इस प्रकार बुद्धिमत्ता से करना चाहिए कि जैसे रथ पर बैठा सारथी अपने लक्ष्य को पाता है। उन्हें धर्मानुसार व्यवहार करते हुए उत्तम सन्तान को जन्म देना चाहिए और उसे बढ़ाना तथा गुणवान् बनाना चाहिए ॥१॥

सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।

ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥२॥

पदार्थः—हम (राये) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (सामन्) भूमि के समतल भाग मे (निधिमत् नु अन्न करामहे) धन-निधि वाले के समान अन्न को उत्पन्न करते हैं और (पुरुध ममत्तु) बहुत प्रकार से (श्रवांसि सु) विविध अन्नो को खाने योग्य बनाते हैं (ता विश्वानि न जरिता ममत्तु) उन सबको पा हमारे वृद्ध महानुभाव तृप्त होवें (परातरं निर्ऋतिः सु जिहीताम्) आपत्तियां दूर रहें ॥२॥

भावार्थ —जैसे कोई धनी व्यक्ति अपने यहां धन के कोष की व्यवस्था करता है, उसी प्रकार समतल भूमि में अन्न उत्पन्न कर मनुष्यों को अपनी जीवनयात्रा सुख से चलाने हेतु अन्नसंग्रह करना चाहिए। इस भांति अन्न के इस भण्डार से वह स्वयं तृप्ति पाए व दूसरे को तृप्ति दे जिससे दुर्भिक्ष आदि आपत्तियों से बचा रहे ॥२॥

अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।

ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥३॥

पदार्थः—हम लोग (पौंस्यैः) पौरुषकर्मों द्वारा (अर्यः सु अभि भवेम) शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करें। (द्यौः भूमिम्) सूर्य जैसे पृथिवी को प्राप्त होता है और (गिरयः अज्रान् न) मेघ जिस भांति अपने प्रेरक वायुओं को पाते हैं उसी प्रकार (जरिता) हमारा विद्वान् उपदेष्टा (नः) हमे प्राप्त हो, हमे ज्ञान दे सन्मार्ग पर चलाए और (नः) हमे (विश्वानि ता) उन विभिन्न पदार्थों को (चिकेत) स्वय जाने और हमे बताए। इस भांति (निर्ऋतिः) कष्टदशा, दु ख दारिद्र्य आदि (परातरं सु जिहीताम्) भली-भांति दूर हो ॥३॥

भावार्थः—हम पौरुष से शत्रुओं को पूर्णत परास्त करें, जैसे सूर्य पृथिवी को मेघ अपने प्रेरक वायु को प्राप्त करते है, वैसे ही विद्वान् उपदेशक हमे ज्ञान दें। हमें वह विभिन्न पदार्थों से अवगत कराए कष्टदशा, दु ख-दारिद्र्य आदि से हम दूर रहें ॥३॥

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।

द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४॥

पदार्थः—हे (सोम) उत्तम पथप्रदर्शक विद्वन् ! तू (नः मृत्यवे मा सु परा दाः) हमे मृत्यु के लिये कदापि न छोड़। हम (सूर्यं उत् चरन्तं नु पश्येम) ऊपर आकाश मे जाते सूर्य को सदैव देखें और (द्युभिः) दिनोदिन (नः जरिमा सुहितः अस्तु) हमारी वृद्ध-अवस्था भी हितकारी बने और (निर्ऋतिः परातरम् सु जिहीताम्) आपत्ति की दशा भली प्रकार दूर हो ॥४॥

भावार्थ —मानव का आचरण ऐसा होना चाहिए कि उसकी शीघ्र मृत्यु न हो और उसकी वृद्धावस्था भी सुखसहित व्यतीत हो तथा वह अपने जीवनकाल मे सूर्य को देखता रहे अर्थात् उसकी नेत्र-ज्योति भी मन्द न हो और वह आपत्तियों से भी बचा रहे ॥४॥

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।

रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥५॥२२॥

पदार्थः—(असु-नीते) हे प्राणधारी जीवों को सन्मार्ग मे चलाने वाले प्रभु तू (जीवातवे) जीवन धारण हेतु (अस्मासु मनः धारय) हमें मन, ज्ञान, सकल्प-विकल्प का सामर्थ्य प्रदान कर और (नः आयुः सु प्र तिर) हमारे जीवन की भांति-भांति वृद्धि कर। (सूर्यस्य सं दृशि नः रारन्धि) सूर्य के उत्तम दर्शन करने-कराने वाले प्रकाश में हमे खूब हर्ष प्रदान कर। तू (घृतेन) घृत, जल व प्रकाश से (नः तन्वं) हमारे शरीर को (वर्धयस्व) बढ़ा ॥५॥२२॥

भावार्थ —प्राणियो को सन्मार्ग दिखाने वाला परमात्मा जीवन धारणार्थ मन, ज्ञान, संकल्प-विकल्प करने का सामर्थ्य प्रदान करता है और जीवन की वृद्धि करता है। वही उन्हें हर्षित करता है तथा घृत, जल व प्रकाश से मनुष्य के शरीर को बढ़ाता है ॥५॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।

ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥६॥

पदार्थः—हे (असु-नीते) प्राणों को प्रेरणा प्रदान करने वाले प्रभु ! तू (अस्मासु पुनः चक्षुः, पुनः प्राणम् धेहि) हममें पुनः चक्षु, ज्ञान व प्राण प्रदान कर। (इह नः भोग धेहि) इस लोक मे हमे श्रेष्ठतम भोग्य पदार्थ दे। हम (उच्चरन्त सूर्य ज्योक् पश्येम) ऊपर आकाश मे जाते सूर्य के चिरकाल तक दर्शन करें। हे (अनु-मते) अनुकूल बुद्धि देने वाले विद्वन् प्रभो ! तू (नः स्वस्ति मृळय) हमें सुख दे ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा ही पुनर्जन्म मे प्राण, नेत्र आदि अग पूर्वजन्म की भांति प्रदान करता है। वही हमे जीवन को सुखी बनाने हेतु भोग-पदार्थ व सकल साधन देता है। हमें उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए ॥६॥

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।

पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ॥७॥

पदार्थः—(पृथिवी) भूमि के समान सर्वाश्रय परमात्मा (नः पुन असुम् ददातु) हमे बार-बार जीवन प्रदान करे। (देवी द्यौ) सूर्यवत् सुखदात्री, तेजोमय प्रभुशक्ति (पुन) हमें बार-बार प्राण दे। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षवत् विशाल परमात्मा (पुन) पुनः-पुन हमे प्राण, जीवन देता है। (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु (नः तन्व पुन ददातु) हमे बार-बार शरीर प्रदान करता है। (पूषा) सर्वपोषक परमात्मा (नः पथ्याम्) हमे सत्पथ दर्शाता है। (या स्वस्ति) वही सुख-कल्याण-कारक है ॥७॥

भावार्थ —परमात्मा ही पुनर्जन्म मे पृथिवी, अन्तरिक्ष एव द्युलोक के माध्यम से हमे प्राण देता है। इन तीनों से प्राणशक्ति स्थापित होती है। वही मानव को पुन सत्पथ प्रदान करता है ॥७॥

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।

भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥८॥

पदार्थः—(यह्वी रोदसी) महान् भूमि व सूर्य की तरह (ऋतस्य मातरा) सत्योपदेश-ज्ञान को देने वाले माता, पिता, गुरु इत्यादि (शम्) उत्तम बन्धु हेतु कल्याणकारी व शान्तिदाता हों। हे (द्यौ. पृथिवि) सूर्यवत् पित ! हे पृथिवीतुल्य मात ! आप दोनो (क्षमा) क्षमाशील होकर (यत् रप) हमारे जो भी पाप हो उन्हे (अप भरताम्) दूर करो। (ते) तेरा (किंचन) कुछ भी (मो सु आममत्) हमे कष्ट प्रदान न करे ॥८॥

भावार्थ.—भूमि एव सूर्य की न्याई उत्तम माता, पिता, गुरु आदि ही संतान के कल्याणदाता हैं। यदि सन्तान से कोई भूल भी हो तो माता, पिता उसे क्षमाशील बनकर सुधारें और संतान को पापमार्ग पर न चलने दें ॥८॥

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।

क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः

पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥९॥

पदार्थ.—(दिव) आकाश से (द्वके) दो-दो और (त्रिका) तीन-तीन (भेषजा) रोग दूर करने वाली शक्तियां भूमि की दिशा मे आती हैं और (क्षमा) भूमि मे (एककम् चरिष्णु) खानेयोग्य अन्नरूप भेषज है। हे (द्यौ. पृथिवि क्षमा) सूर्य भूमि के तुल्य समर्थ विद्वत् जनो ! (यत् रपः अप भरताम्) जो हमारा पाप दु खादि हो उसे मिटाओ और (ते किं चन रप मोसु आममत्) तेरा कोई भी कष्ट-दायी पदार्थ हमे कष्ट न दे ॥९॥

भावार्थ.—मनुष्य के रोगो एव दोषों के निवारणार्थ त्रिलोक से भेषज प्राप्त होते हैं। द्युलोक से सूर्य की किरणें, अन्तरिक्ष से वर्षा का जल व पृथिवी से खाद्य पदार्थ मिलते हैं। मनुष्य को इनका उपयोग कर स्वय स्वस्थ रहना चाहिए तथा अपनी सन्तान को भी कष्टों व पापों से बचाना चाहिए ॥९॥

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।

भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत्

॥१०॥२३॥

पदार्थ —(उशीनराण्या) उशीनराणी पृथिवी पर जो (अनः) जीवनशक्ति (सम् ईरय)को पाता है उस(गाम्) किरण समूह को हे (इन्द्र) तेजदाता सूर्य ! तू भली प्रकार दे। हे सूर्य और पृथिवी ! (यत् रपः अपभरताम्) हमारा जो पाप, कष्ट हो उसे दूर कर। (ते रप किंचन मो सु आममत्) तेरा दोष, मल ताप इत्यादि हमे कोई कष्ट न दे ॥१०॥२३॥

भावार्थः—जो पृथिवी के ऊपर जीवन शक्ति प्राप्त कराता है उस किरण समूह का प्रकाशदाता सूर्य ही प्राणों को प्रेरित करता है। यदि कोई व्यक्ति पाप व कष्ट में पड़े तो परमात्मा ही उसे उनसे मुक्ति दिलाकर उनके दोष व पाप मिटाता है ॥१०॥२३॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

---

[६०]

बन्ध्वादयो गौपायना । ६ अगस्त्यस्य स्वसैषां माता ॥ देवता—१—४, ६ असमाती राजा । ५ इन्द्र । ७—११ सुबन्धोर्जीविताह्वानम् । १२ मरुतः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४, ५ निचृद् गायत्री । ६ पादनिचृदनुष्टुप् । ७, १०, १२ निचृदनुष्टुप् । ११ आर्च्यनुष्टुप् । ८, ९ निचृत् पंक्ति ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

आ जनं त्वेषसंदृशं माहीनानामुपस्तुतम् ।

अगन्म बिभ्रतो नमः ॥१॥

पदार्थ —(माहीनानाम्) महान् आत्माओं के बीच में (त्वेष सन्दृशम्) तेज से युक्त (उप-स्तुतम् जनम्) प्रशस्त व्यक्ति को (नम बिभ्रत अगन्म) हम उपहार धारणार्थ जाए ॥१॥

भावार्थ —महान् आत्माओं से उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए हमें कुछ उपहार लेकर ही उनकी शरण में जाना चाहिए ॥१॥

असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् ।

भजे रथस्य सत्पतिम् ॥२॥

पदार्थ —(असमातिम्) असाधारण मान तथा आदर के योग्य, अतुलनीय (नितोशनं) शत्रुओं के नाशक, (त्वेष) दीप्तियुक्त, (नि-ययिनं) नियम से जाने वाले, (रथम्) रथवान् को, (भजे रथस्य सत्पतिम्) संग्राम में जिसका रथ है, ऐसे रक्षक को ही राजा बनाए ॥२॥

भावार्थ —हमें ऐसे व्यक्ति को ही अपना शासक या राजा बनाना चाहिए कि जो महान् तेजस्वी, सुसम्मानित, शत्रुहन्ता एवं संग्राम में रथ के सम्भालने में सिद्धहस्त है ॥२॥

यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् ।

उतापवीरवान्युधा ॥३॥

पदार्थ —(यः) जो (महिषान् इव जनान्) बड़े-बड़े भैंसों को सिंह के समान (पवीरवान्) शस्त्रवान् (युधा अतितस्थौ) युद्ध से स्वाधीन करता है (उत अप-वीरवान्) अपितु बिना हथियार वाला भी अपने वश में करता है ॥३॥

भावार्थः—शासक ऐसा व्यक्ति ही होना चाहिए कि जो संग्राम में अस्त्रास्त्रों द्वारा शत्रु को हराकर अपने अधीन करने में समर्थ हो और अपने शारीरिक बल से भी शत्रु को ऐसे ही परास्त करे, जैसे सिंह भैंसों को पछाड़ देता है ॥३॥

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते ।

दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४॥

पदार्थ – (यस्य) जिस शासक के (व्रते) शासनकर्म में (इक्ष्वाकुः) वित्त-मन्त्री मधुर रसयुक्त विवेकी शिक्षामन्त्री (रेवान्) तथा धनवान् वित्तमन्त्री (मरायी) शत्रुमारक रक्षामन्त्री (उप एधते) वृद्धि प्राप्त करता है, उस राष्ट्र में (दिवि-इव) सूर्य के आश्रय में किरणें सबल होती हैं (पञ्च कृष्टय) पाँचों प्रजाजन वृद्धि प्राप्त करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस शासक का शिक्षामन्त्री मधुर उपदेष्टा हो, अर्थमन्त्री धनवान् हो और शत्रुसंहारक सेनाध्यक्ष हो वही राष्ट्र के सब वर्गों व प्रजाजन को सबल बनाने में समर्थ होता है ॥४॥

इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।

दिवीव सूर्यं दृशे ॥५॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) शत्रुओं के संहारक ! तू (रथ-प्रोष्ठेषु) रथों के सञ्चालन में दक्ष, (असमातिषु) असाधारण अधिकारी देव (दिवि इव सूर्यम्) आकाश में सूर्य के समान (क्षत्रा धारय) नाना बलों और ऐश्वर्यों को धारण करता है ॥५॥

भावार्थ —राजा के लिए आवश्यक है कि वह ऐसे युद्धकुशल के हाथों में वैसे ही सैन्य बल समर्पित करे जैसे प्रभु ने आकाश में सूर्य को जगत् को प्रकाश देने को स्थापित किया है ॥५॥

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।

पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६॥२४॥

पदार्थ —(राजन्) हे राजन् ! तू (अगस्त्यस्य) निष्पाप एवं समर्थ शक्ति की (नद्भ्य) अभिनन्दक प्रजाओं हेतु (रोहिता सप्ती युनक्षि) वेग से जाने वाले दो अश्वों के समान (रोहिता) वृद्धिशील प्रजा वर्गों को (युनक्षि) सन्मार्ग पर ले चल और (विश्वान्) समस्त (अराधस पणीन्) आराधना न करने वाले व्यापारियों को (नि अक्रमीः) नीचे कर । राजा के दो अश्व हैं एक गृहस्थ बसे प्रजाजन, दूसरा समस्त वेतनबद्ध राज्य कर्मचारी ॥६॥२४॥

भावार्थ —राजा के लिए उचित है कि पापकर्म-रहित एवं प्रभु उपासक जनों के लिए न्याय तथा रक्षा का विशेष प्रबन्ध करे और ऐसे व्यापारियों को भी नियंत्रित करे जो स्वकर्त्तव्य का पालन भली-भाँति नहीं करते ॥६॥२४॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।

इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥७॥

पदार्थ —(अयं माता) यह माता के समान राष्ट्र का बनाने वाला, (अयं पिता) यह पिता के तुल्य पालन करने वाला, (अयं जीवातु आगमत्) यह जीवनदाता होकर मिलता है । हे (सुबन्धो) उत्तम सुप्रबन्धक राजन् ! (इदं) यह तेरा (प्रसर्पणम्) आगे प्रसार हो, (इहि) आ, (निः इहि) निश्चित रूप से प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थ —मातृवत् राष्ट्र निर्माता पितातुल्य पालक वह जीवनदाता राजा ही उत्तम सुप्रबन्ध व्यवस्था से पाता है, वही कीर्तिमान् होता है ॥७॥

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।

एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८॥

पदार्थः—(यथा) जिस भाँति (धरुणाय) धारण करने वाले दण्ड के (युगं) जुए को (वरत्रया नह्यन्ति) रस्सी से बाँधा जाता है, (एव) उसी भाँति हे मनुष्य ! (ते मनः दाधार) तेरे मन रूपी लगाम को आत्मा (जीवातवे) जीवन हेतु धारण करता है, (न मृत्यवे) मृत्यु हेतु नहीं, (अथो अरिष्टतातये) अपितु मङ्गल सुख के लिए धारण करे ॥८॥

भावार्थः—जिस भाँति धारक जुए के दण्ड को रस्सी से बाँधा जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के मनरूपी लगाम को आत्मा जीवन के लिए धारण करता है और उसके सुख एवं मङ्गल के लिए धारता है ॥८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।

एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९॥

पदार्थः—(यथा इयं पृथिवी) जिस प्रकार यह पृथिवी (मही) सुविशाल होकर (इमान् वनस्पतीन् दाधार) इन महावृक्षों को धारती है, इसी प्रकार (पृथिवी) सर्वाश्रय प्रभु (जीवातवे) जीवन हेतु (ते मन) तेरे मन को (दाधार) धारे, (न मृत्यवे) तेरी मृत्यु के लिए नहीं (अथो अरिष्टतातये) बल्कि कल्याण हेतु ॥९॥

भावार्थ—जिस प्रकार सुविशाल धरती में महान् वृक्षों को आश्रय मिलता है उसी भाँति सर्वाश्रय परमात्मा जीवन हेतु मानव मन को धारता है, उसके कल्याण के लिए ही उसके मन को धारता है ॥९॥

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।

जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०॥

पदार्थः—(अहं) मैं (यमात्) सर्व-नियन्ता, (वैवस्वतात्) विविध ऐश्वर्यों के स्वामी (सुबन्धो) उत्तम बन्धुरूप परमात्मा से (मन. आभरम्) मन, ज्ञान, संकल्प-विकल्प शक्ति को पाता हूँ । वह (जीवातवे न मृत्यवे) जीवन के लिये हो, मृत्यु के लिये नहीं, वह (अरिष्टतातये) सदा कल्याणार्थ हो ॥१०॥

भावार्थः—वह परमात्मा सभी का कल्याण करे जो सर्वनियन्ता, विविध ऐश्वर्यों का स्वामी, उत्तम बन्धुरूप है एवं मन, ज्ञान तथा संकल्पशक्ति प्रदान करता है, वही जीवनदाता है ॥१०॥

न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः ।

नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११॥

पदार्थ—(वातः न्यग् अव वाति) वायु नीचे की ओर बहती है, (सूर्यः न्यक् तपति) सूर्य नीचे विनीत हो तपता है, (अघ्न्या नीचीनं दुहे) गौ भी नीचे झुककर पालक को दूध देती है (न्यक् भवतु ते रप.) हे जीव ! तेरा भी दुःख व पाप नीचे ही छूटे ॥११॥

भावार्थ.—जिस भाँति वायु नीचे की ओर बहती है सूर्य नीचे होकर तपता है, गौ भी झुककर दूध देती है, उसी प्रकार जीव के दुःख और पाप भी नीचे ही छूट जाएं ॥११॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥१२॥२५॥४॥

पदार्थः—(अयं मे हस्तः भगवान्) यह मेरा हाथ ऐश्वर्यवान् है, (अयं मे भगवत्तर) यह मेरा दूसरा हाथ और भी अधिक ऐश्वर्यवान् है । यह मेरा हाथ (विश्व-भेषज) सब रोगों को औषधिवत् दूर करता है । (अयं शिवाभिमर्शनः) यह मेरा हाथ सुखमय स्पर्शयुक्त है ॥१२॥२५॥४॥

भावार्थः—चिकित्सक रोगी को आश्वासन देता है कि मेरा यह हाथ ऐश्वर्यवान् है और मेरा दूसरा हाथ सर्व-रोगों की औषधि-स्वरूप है । मेरे हाथ का स्पर्श ही तुझे सुख प्रदान करेगा ॥१२॥२५॥४॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

---

[६१]

नाभानेदिष्ठो मानव ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द.—१, ८—१०, १५, १६ १८, १९, २१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७, ११, १२, २० विराट् त्रिष्टुप् । ३, २६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ४, १४, १७, २२, २३, २५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६, १३ त्रिष्टुप् । २४, २७ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१॥

पदार्थ —(गूर्त-वचा.) श्रमपूर्वक वेदवाणी का अभ्यासी जो स्नातक (इदम्) इस (इत्था) सत्य (रौद्रम् ब्रह्म) और सर्व-कष्टों को दूर करने वाले वेदज्ञान स (शच्याम्) कर्म व वाणी मे, (क्रत्वा) यज्ञ या बुद्धि के द्वारा, (आजौ अन्त) संघर्ष के समय उपदेश करता है, तब (यत्) जो (अस्य) इसके (पितरा) माता व पिता (क्राणा) कार्य कर रहे हैं और (अस्य) इसके जो कार्य (मंहने-स्था.) पूज्यपद पर आसीन करते हैं, उसमे वह, (पक्थे अहन्) पूर्णविद्या प्राप्त करने योग्य दिन मे वे सब (सप्त होतॄन्) पांच इन्द्रियां वाणी व मन को (पर्षत्) संस्कृत करता है । अर्थात् वह पुरुष ही सातों यज्ञकर्ताओं में ब्रह्मा का पद पूर्ण करता है ॥१॥

भावार्थः—जो वेद के ज्ञान का अध्ययन कर उद्यमशील तेजस्वी स्नातक बने उसे उस समय अपने आचार्य, माता-पिता तथा वयोवृद्ध जनो के व्यावहारिक अनुभवों द्वारा अपने मन, ज्ञानेन्द्रिय वाणी को संस्कृत करने का अवसर मिले । उसे उनसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो ॥१॥

स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥२॥

पदार्थ —(सः) वह स्नातक (इत्) अवश्य ही (च्यवान) पाप-संहारक (दभ्याय) दोषों का नाश करने के लिये (दानाय) अन्यों को विद्या का दान देने हेतु (सूदैः वन्वन्) वधू को स्वीकार करने को (वेदिम् अमिमीत) ज्ञानामृत की वर्षा करने वाले ऋत्विजों की सहायता से वेदी बनाता है (तूर्वयाण·) जिसका गमन पाप नष्ट करने को है ऐसा (गूर्तवचः-तमः) नितान्त तेजस्वी वक्ता, (क्षोद न रेत सिञ्चत्) जल के तुल्य बल, धन, वीर्य को (इत ऊति) विधि पूर्वक एव वंश-रक्षणार्थ (सिञ्चत्) पत्नी में सींचता है ॥२॥

भावार्थः—गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने वाले विद्वान् स्नातक अपने गुण स्वभावानुसार वधू का वरण करे। ऊंचे ज्ञानामृत एव वेदामृत बरसाने वाले ऋत्विजो की सहायता द्वारा वेदी तैयार कराकर विधिपूर्वक अपनी वंशलता को चलाने के लिए विवाह करे । वह साथ ही ऋषि ऋण को चुकाने के लिये अपनी विद्या का लाभ भी समाज को प्रदान करता रहे ॥२॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री-पुरुषो ! (य) जो (तुवि-नृम्णः) अनेक धनों का स्वामी होकर (गभस्तौ) स्व हाथ मे (शर्याभिः) शर, बाण इत्यादि हिंसक साधनो से (अस्य) इस राष्ट्र को (आदिशम्) आदेश देने हेतु (अश्रीणीत) उद्योग करे, उस (विपः) विशेष पालनकर्ता स्वामी की (शच्या) शक्ति तथा वाणी से प्रेरित होकर (येषु हवनेषु) जिन ग्रहणीय पदार्थों में (मन. न तिग्मम्) मन के समान तीव्र होकर (द्रवन्ता) जाते हो उनमे भी उसके (आदिशम् वनुथ) आदेश का पालन करो ॥३॥

भावार्थः—स्त्री-पुरुषो को ऐसे वीर-पुरुष के आदेशों का पालन करना चाहिए जो राष्ट्र की रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहता है और उसे धन-धान्य से पूर्ण करने का उद्यम करता है ॥३॥

कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४॥

पदार्थः—(दिव. नपाता) हे ज्ञान प्रकाशक व न गिराने वाले स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जब (अरुणीषु गोषु) मेरी अरुण वर्ण की ज्ञान किरणों में (कृष्णा असीदत्) अन्धकारमयी रात्रि विराजे, तभी मैं (अस्मृतध्रू वाम् हुवे) ज्ञान देने वाले आप दोनों को बुलाता हू । आप दोनो (मे यज्ञ आगतम्) मेरे विद्या-दान सत्संग आदि को प्राप्त होओ । (मे अन्नम्) मेरे अन्न को (वीतम्-वीतम्) ग्रहण करो (इष ववन्वांसा-न) मन कामना पूरी कर फिर याद कराते हो ॥४॥

भावार्थः—स्नातक विद्या अध्ययन के उपरांत ज्ञान का प्रकाश करता है । उसे अपने से वरिष्ठ नर-नारियों को सम्बोधित करते हुए कहना चाहिए कि मेरे ज्ञान प्रसारक कार्य में यदि अज्ञान की धारा प्रविष्ट हो जाये तो मुझे सावधान करके चेताएं ॥४॥

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५॥२५॥

पदार्थः—(कनायाः) कान्तिमय (दुहितुः) सुदूर देश में हितकारिणी तथा पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने वाली स्त्री के गर्भ में (अनु भृतम् आः) विवाह के बाद धारण की सन्तान को (यत्) जो पुरुष (अनर्वा) सर्वश्रेष्ठ होकर (आ वृहति) प्रेम से धारता है, और (यस्य) जिसका (इष्णत्) इच्छायुक्त (अनुष्ठित) अनुष्ठित (वीर कर्मम्) वीर कर्म, तथा पुत्रोत्पादनादि कार्य एवं सन्तान आदि (प्रथिष्ट) विस्तृत हो जाय, वह (नर्य.) सर्वहितैषी बनकर (पुनः तत् अपौहत्) फिर भी उस भार को त्याग सकता है अर्थात् वह पुत्र के पुत्र का मुख देखकर गृह-त्याग कर वन जाए ॥५॥

भावार्थः—सन्तान उत्पत्ति गृहस्थ का लक्ष्य है । अतएव वीर्य ग्रहण कर संतान को जन्म देने वाली पत्नी मे वह बलिष्ठाग के रूप में जन्म लेकर युवा बनता है । उस समय उसे पिता द्वारा सन्तान परम्परा को चलाने को उत्साहित किया जाता है। जब पुत्र भी पुत्रवान् बन जाए तो उस व्यक्ति को गृहस्थ का त्याग कर समाज सेवा करनी चाहिए ॥५॥२६॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥

पदार्थः—(यत् युवत्याम्) जब कि युवती पत्नी मे (काम) अभिलाषा (कृण्वानं) करते हुए (पितरि) पिता के आश्रय, (मध्या) उन दोनों के मध्य और (अभीके) उन दोनों के पास (कर्त्वम् अभवत्) गृहस्थ कर्म पूर्ण होता है उसमे वे (वियन्ता) विशेष रूप से प्राप्त होते हुए (सानौ) भोग्य देह मे (निषिक्तम्) निषेक किये हुए (रेत) वीर्य को (सुकृतस्य योनौ) पुण्य के आश्रयभूत गृहस्थ में (मनानक) कम से कम एक तो अवश्य (जहतु.) अपने पीछे उत्तराधिकारी पुत्र रूप मे छोड़ें ॥६॥

भावार्थः—युवती पत्नी में पुत्र को जन्म देने हेतु वीर्य निषेक किया जाना आवश्यक है । उसके लिए गृहस्थ आश्रम ही पुण्य स्थल है । सन्तान परम्परा के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम एक पुत्र तो हो ही ॥६॥

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७॥

पदार्थ·—(यत्) जो (पिता) पिता (क्ष्मया स-जग्मान) अपनी पत्नी से सगत होकर (रेत निषिञ्चत्) वीर्य-आधान करता है, वह (स्वाम् दुहितर) अपनी कन्या को ही (अधि-स्कन्) पुत्रवत् पाए । (सु-आध्यः देवाः) उत्तम विचार-शील पुरुष (ब्रह्म-अजनयन्) यही वेद-ज्ञान प्रकट करते हैं कि वे ऐसे समय में (स्वां दुहितरम्) अपनी कन्या का या उससे (वास्तोः पतिम्) गृह स्वामी और (व्रत-पाम्) सब कार्यों का पालक उत्तराधिकारी (निर अतक्षन्) प्राप्त करें ॥७॥

भावार्थः—यदि किसी व्यक्ति को पत्नी-समागम करने पर पुत्र प्राप्त न होकर कन्या ही प्राप्त हो तो वह अपनी कन्या को उससे गृह के स्वामी और सर्वकार्यों के पालक उत्तराधिकारी पुत्र को प्राप्त करे, यही वेद-ज्ञान प्रकट करता है ॥७॥

स ई वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८॥

पदार्थः—कन्या से विवाहित (ईम्) उस कन्या को पाकर (आजौ) संगम-काल मे (वृषा न) बलवान् पुरुष के समान (फेनम् अस्यत्) वीर्य का निक्षेप करे सही, परन्तु (स्मत्) हमसे वह (आ परा एत्) दूर ही रहे । वह (दभ्र-चेताः) अल्पचित्त या श्वसुर के धन का लोभी होकर (दक्षिणा) कन्या को दिये धन के प्रति (पदा न अपसरत्) पैर न बढ़ाए, प्रत्युत उसको (परा वृक्) दूर से ही त्याग दे । (मे) कन्या के पिता की (ता पृशन्यः) सम्पत्तियों को वह (न जगृभ्रे) ग्रहण न करे ॥८॥

भावार्थ —कन्या से विवाह करने वाले उसके पति को उससे सन्तान को उत्पन्न करना तो आवश्यक है, किन्तु कन्या के पिता की सम्पत्ति लेने के लोभ में कन्या को ठुकरा देना निन्दनीय कार्य है । ऐसा नहीं होना चाहिए ॥८॥

मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९॥

पदार्थः—(प्रजाया-वह्निः) कन्या का जो पति (उपब्दिः) विवाह कर कन्या को सताता है (अग्नि न नग्नः) अग्नि सा कामातुर हुआ (ऊधः मक्षू न उपसीदत्) रात में कन्या को अचानक न छुए (इध्म सनिता उत वाज सनिता स धर्ता) विवाह मे समिधा आधान करने वाला व स्वबल पोषक (यवी युत्) सयोग के योग्य कन्या से संयुक्त होने वाला (सहसा जज्ञे) योग्य बल से पुत्र पाता है अन्यथा नहीं ॥९॥

भावार्थ —कन्या का पति कन्या को कष्ट देने वाला न हो । वह बलात् उसे न छुए । विवाह-संस्कार मे विधि से अग्न्याधान कर उससे पुत्र उत्पन्न करने का वह अधिकारी बना है अतः सन्तान को जन्म दे और कन्या का अपमान न करे ॥९॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥२७॥

पदार्थः—(नवग्वा) नवशिक्षित स्नातक (ऋत वदन्त) सत्य वचन कहते हुए और (कनायाः सख्य) कन्या के पत्नी सम्बन्ध को (मक्षु-ऋतयुक्तिम्-अग्मन्)

तुरन्त स्वार्थ को छोड़कर विवाह-संस्कार यज्ञ-क्रियानुसार करते हैं (द्विबर्हसः) वे दोनो पिता व ससुर के घरो को बढ़ाते हैं ॥१०॥२७॥

भावार्थ—यज्ञ की वेदी पर विवाह-संस्कार के अवसर पर नवस्नातक वधू की कामना करते हुए वेद-मन्त्रों को उच्चार कर योग्य कुमारी को अपनी सहधर्मिणी बनाए । वह पितृकुल तथा श्वसुरकुल दोनो की ही अभिवृद्धि की कामना करते हुए श्वसुर-कुल से धन की प्राप्ति की इच्छा से रहित रहकर गृहस्थ के सुखों की प्राप्ति करे ॥१०॥२७॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

मधु कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेतं ऋतमित्तुरण्यन् ।

शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११॥

पदार्थ— (कनाया सख्य नवीय राधः-मधु) कन्या के तुरन्त पाने योग्य मे (रेत न ऋतम् इत् तुरण्यन्) जैसे अपना वीर्य अमृत है और गुरु-शुश्रूषा से सत्य-ज्ञान को जो प्राप्त करते हैं, वे ही गाय के दूध के समान (शुचि रेक्ण) शुद्ध सन्तति को भी पाते हैं ॥११॥

भावार्थ—कुमारी का पत्नी-सम्बन्ध ही विवाह-संस्कार का वास्तविक धन है । पत्नी ही वीर्य-धारण कर सन्तानोत्पत्ति करती है तथा वही सभी कामनाओ की पूर्ति करती है । वही गार्हस्थ्य-अमृत की दुहने वाली है ॥११॥

पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।

वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२॥

पदार्थ—(पश्चात् पश्वा) विषयग्राही इन्द्रियगण से (वियुता) रहित आध्यात्मिक सुखो को (बुधन्त) लोग जानते हैं, तब (वक्तरि) उत्तम प्रवचन-कर्ता गुरु के अधीन (वसुत्वा) ज्ञान धन का स्वामी बनकर (रराण) ज्ञान तथा बल मे सुखी रहता हुआ विद्वान् (इति ब्रवीति) इस भांति कहता है कि हे (कारव) स्तुतिकर्त्ताओ ! (अनेहा) निष्पाप जन ही (विश्वम् क्षु विश्वम् द्रविणम् उप विवेष्टि) समस्त अन्न एवं समस्त धन-वीर्य को धारता है ॥१२॥

भावार्थ—व्यक्ति सदैव गृहस्थ आश्रम मे ही रहे । उसे समय आने पर आध्यात्मिक सुखो की प्राप्ति का भी प्रयत्न करना चाहिए । वह स्वयं परमात्मा रूपी महान् धन से रमण कर अन्य को भी उस ओर प्रेरित करे ॥१२॥

तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।

वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥

पदार्थ—(यत्) जब (पुरु-प्रजातस्य) इन्द्रियो मे नाना रूपो प्रकटे (शुष्णस्य) बलवान् प्राण के, (गुहा) बुद्धि मे (स ग्रथितम्) सचित हुए बल को (वि विदत्) आत्मा जानता या पा लेता है । जो (अस्य) इस प्राण के (परिषद्-वान) सर्वत्र वर्तमान सेवको के तुल्य प्राणगण (पुरु सदन्त) नाना अगो को प्राप्त होते हैं (नार्षदम्) आत्मा के निवास-स्थानरूप देह को (बिभित्सन्) भेदते हैं, इन्द्रियो के छिद्रो को बना लेते है, वे (अस्य तत् इत् नु अग्मन) इसके उस परम बल को पाते है और वह (अनर्वा) आत्मा इन्द्रिय से निर्विषयक है ॥१३॥

भावार्थ—वह आत्मा जो कि वैराग्यवान् है तथा प्राणो से परिपूर्ण शरीर में आसीन है इन्द्रियो के विषयग्राही छिद्रो को विषय-रहित कर हृदयरूपी मन्दिर मे परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है ॥१३॥

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।

अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥

पदार्थः—(ये) जो (देवाः) दिव्यपदार्थ (त्रि-सधस्थे) तीन लोको मे बने हुए हैं वे (यस्य निषेदु) जिसके आश्रय पर रहते हैं, (स्व. न) सूर्य के तुल्य तेजस्वी और सर्व-सुखस्वरूप, (भर्ग ह नाम) सब पापो का नाशक और कर्मों का परिपाक करने वाला 'भर्ग' ऐसे नाम वाला है । वह (अग्नि. ह नाम) निश्चय ही अग्नि नाम वाला प्रत्येक देह मे रमा है और (जातवेदाः) उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ को जानने वाला, उसमे विद्यमान सकल धन व ज्ञानों का भण्डार है । हे (होतः) ज्ञान के ग्रहण कर्ता और कराने वाले विद्वन् ! तू (अध्रुक्) द्रोह बुद्धि न कर (न. ऋतस्य श्रुधि) हमारे सत्य ज्ञान को सुनकर और हमे करा ॥१४॥

भावार्थ—जो दिव्य पदार्थ त्रिलोक मे बसा है वे जिसके आश्रय पर रहते हैं, वह सूर्य के समान तेजस्वी एव सर्व-सुखस्वरूप सकल पापों का नाशक तथा सभी कर्मों का परिपाक कर्ता है । वह निश्चय ही अग्नि नाम वाला हर देह मे रमा है और सकल पदार्थ ज्ञाता है व ज्ञान का अक्षय भण्डार भी है । ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ विद्वान हमे उसके सम्बन्ध मे सच्चा ज्ञान प्रदान कराए ॥१४॥

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।

मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५॥२८॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (उत) और (त्या) वे दोनो (रौद्री) कष्टो, दु खों अज्ञानो को दूर करने वाले, (अर्चिमन्ता) ज्ञान-ज्योति वाले, (नासत्यौ) कभी असत्य आचरण न करने वाले, अध्यापक व उपदेशक (मे गूर्तये) मेरे उपकार करने और मुझे ऊपर उठाने और (यजध्यै) ज्ञान-धनादि देने, सत्संग करने के लिए प्राप्त हों । वे (मनुष्वत्) मननशील के लिए (वृक्त-बर्हिषे) तथा वैराग्यवान् के लिए (रराणा) विभिन्न विद्या में रमण करने वालो (मन्दू) सुखदाताओं, हर्षदाताओं (विक्षु) मानव प्रजाओं मे (हित-प्रयसा) हितार्थ उत्तम ज्ञान, अन्न देने वाला या यत्न करने वाले, (यज्यू) तुम हों ॥१५॥२८॥

भावार्थ—जिस भांति शिक्षक व उपदेशक गृहस्थों को सांसारिक व्यवहारों व विद्याओं का ज्ञान देते हैं, वैसे ही गृहस्थ से निवृत्त वानप्रस्थ भी अध्यात्म विद्या का ज्ञान दें ॥१५॥२८॥

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।

स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६॥

पदार्थः—(अयम् राजा वेधाः स्तुतः वन्दि) यह सर्वत्र विद्यमान प्रभु स्तुत्य है, सब जन उसकी स्तुति करते हैं (च) तथा (विप्रः स्वसेतुः अप तरति) विविध रूप मे व्याप्त, जगत् को भी व्याप्त होता हुआ जगत् के सेतु रूप है । (सः कक्षीवन्तं रेजयत्) वह उस प्राणी को मोक्ष में प्रेरित करता है जो गर्भ से उत्पन्न होता है । (स) वह ही (अग्निम्) अग्नि सूर्य को भी चलाता है (रघुद्रु नेमिं चक्र) अति वेग से चलने वाले नमनशील चक्र को (अर्वतः) अश्वों के द्वारा चलाया जाता है ॥१६॥

भावार्थ—प्रभु सर्व व्यापक है, वही रथचक्र की भांति सूर्यादि को चलाता है । वही मातृगर्भ मे आने वाले जीवात्मा को जन्म-जन्मान्तर में चलाता है और पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष की ओर प्रेरित करता है ॥१६॥

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।

सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥

पदार्थ—(स) वह परमात्मा, (द्वि-बन्धुः) जीवात्मा को दोनों अर्थात् ससार एव मोक्ष मे आबद्ध कराने वाला है (वैतरण.) इस लोक से विशेषरूप से तारने वाला है (यष्टा) सृष्टि यज्ञ का याजक, (अस्वम्) कभी न उत्पन्न होने वाली (सब -धुम्) आनन्दरस की दाता वेदवाणी को (दुहध्यै) दोहन करने के लिये समर्थ है (यत्) जबकि (वरूथै ज्येष्ठेभि उक्थैः) प्रभु के श्रेष्ठ उपासनाओ से (मित्रावरुणा अर्यमणं स वृञ्जे) प्राणापान व मुख्य प्राण को भांति-भांति त्यागता व उनके बन्धन से मुक्त होता है, प्रकृति के भोग हेतु ॥१७॥

भावार्थ—परमात्मा ही सृष्टि का रचयिता वह जीवात्मा का सृष्टि व मुक्ति से सम्बन्ध कराने वाला है । मुक्ति का आनन्द स्थायी है और सृष्टि भोगप्रद है । प्रभु ही सृष्टि के भोग व मुक्ति के आनन्द को बाटने मे समर्थ है । परमात्मा ही जीवात्मा को प्राण-साधन प्रदान करता है । भोगों से ग्लानि ही मुक्ति की राह है ॥१७॥

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।

सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८॥

पदार्थ—(तद्बन्धु) वह प्रभु जिसका सखा है वह जीवन्मुक्त (नाभा नेदिष्ठ) आत्मबलयुक्त प्रभु के समीप विद्यमान (वेनन्) प्रभु को चाहने वाला (प्ररपति) प्रशसा करता है (ते) तेरा (दिवि सूरि) मोक्ष मे प्रेरित करने वाला तथा (धिय धाः) बुद्धि को धारने वाला है और वह (नाभी नेदिष्ठ) हृदय के बीच मे अति समीप विराजता है । (स. न वाघ परमा नाभि) वह हमारी बुद्धि प्रभु से सम्बन्ध कराने वाली है । (वा तत पश्चा अहम्) वह हमारी बुद्धि प्रभु से सम्बन्ध कराने वाली है (कतिथ चित् आस तत) उसके कितने उपासकों मे से मैं एक हूं ॥१८॥

भावार्थः—उपासना द्वारा जो परमात्मा को अपना सखा बना लेता है ऐसा व्यक्ति ही परमात्मा के सन्निकट पहुँच पाता है । प्रभु कृपा से मिली प्रज्ञा ही उसके लिए मोक्ष का पथ प्रशस्त करती है और वह अन्य मुक्त हुए लोगो के समान मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१८॥

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।

द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९॥

पदार्थः—(इयम्) यह वेदवाणी (मे नाभि) इस लोक में मुझे बांधने वाली है । (इह मे सधस्थ) इसमे ही मेरा अन्य जीवों के साथ रहने वाला स्थान है । (इमे) ये (देवाः) मेरे साथी देवतारूप कामनावान् जीव (मे) मेरे सहयोगी हैं । (अयम् सर्वः अस्मि) यह मैं आत्मा सब कर्मों में समर्थ हूं (द्विजा) दो अर्थात् माता और पिता दोनो से उत्पन्न हुआ (अह ऋतस्य प्रथमजाः) प्रसिद्ध नित्य आत्मा हूं (इद जायमाना धेनुः अदुहत्) अव्यक्त प्रकृति की यह उपजने वाली सृष्टि धेनुतुल्य मेरे हेतु भोग दोहती है ॥१९॥

भावार्थ—प्रभु अथवा वेदवाणी ही मोक्ष से सम्बन्ध स्थापित कराने वाली है । वही अन्य जीवन्मुक्तों के साथ सहस्थान प्रदान कराती है । मैं आत्मा सर्व कार्य करने मे समर्थ हू । सृष्टि मे मैं माता-पिता के रूप में ख्याति पाता हूं । मुझ आत्मा के लिए प्रकृति से प्रकट हुई यह सृष्टि ही भोग को दोहती है ॥१९॥

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥

पदार्थः—(अध) और (वि-भावा) इन नाड़ियों में (मन्द्रः) गतिमान् (अरतिः) देह से देहान्तर में जाने वाला (वर्तनिः) दोनो प्राण-अपान से चेष्टारत आत्मा (अव स्यति) अवसान को पाता है । वह (वनेषाट्) भक्तियोग्य देह में स्थित है । (यत्) जिसके (ऊर्ध्वा श्रेणिः) उपस्थित नाना प्राणगण शिरोभाग में रहते हैं और जो (शिशुः दन्) बालक के तुल्य सुखदायी हैं । उस (स्थिर) स्थिर (शेवृधम्) सुखों के वर्द्धक को (माता सूते) मुक्ति माता रूप होती है ॥२०॥२१॥

भावार्थ—सब प्राणी शरीर प्रकृति के ही विकृत रूप हैं, उनमे बसने वाला आत्मा ही चेतन है जो इस जन्म तथा अगले जन्म संसार और मोक्ष इन दो मार्गों पर गतिमान् रहता है । अतएव वही नित्य है । उसकी उच्च स्थिति ही मुक्ति है, जहां वह स्थायी सुख पाता है । वही सुखसृजक तथा प्रशसनीय है ॥२०॥

एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥

पदार्थः—(कस्य चित् श्वान्तस्य) किसी महान् आत्मा की ही (गावः) स्तुतियां (कनायाः उपमातिम् अनु) स्तुतियोग्य प्रभु के प्रति (परा ईयुः) प्राप्त होती हैं । हे (सु-द्रविण) उत्तम ऐश्वर्य-भूति के स्वामिन् प्रभो ! (त्वम् नः श्रुधि) तू हमारी प्रार्थना सुन । (त्वम याट्) तू हमे अध्यात्मज्ञान दे । तू (आश्वघ्नस्य) इन्द्रियाश्वो को जीतने वाले (अश्व-घ्नस्य) जितेन्द्रिय की ही (सु-नृताभिः) उत्तम सत्य वाणियों से (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, साक्षात् होता है ॥२१॥

भावार्थ—जो व्यक्ति सच्चे हृदय से परमात्मा की स्तुतियो में रत रहता है, वही उसका कृपा-पात्र बनता है । ऐसे संयमी जनो से ही वह स्तुतियो से साक्षात् हो जाता है ॥२१॥

अध त्वमिन्द्र विद्ध्यस्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (अस्मान् विद्धि) हमे जान । हे (नृपते) राजातुल्य सर्व जीवो के पालक ! (वज्रबाहु) वीर्ययुक्त बाहु वाला होकर (महः राये) महान् ऐश्वर्य के लिये (अस्मान्) हमारी (रक्ष) रक्षा कर । (नः सूरीन्) हम ऐश्वर्यवनों की (पाहि) रक्षा कर । हम (ते अभिष्टौ) तेरी अभिकांक्षा मे (अनेहस) पाप आदि से रहित होकर रहें ॥२२॥

भावार्थ—जो प्रभु उपासक पाप से मुक्त अध्यात्मयज्ञ के करने वाले हैं उन्ही पर प्रभु की दया और कृपा होती है । परमात्मा उन्हें आनन्द प्रदान कर उनकी रक्षा भी करता है ॥२२॥

अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३॥

पदार्थ—हे (राजाना) विद्या एव शक्ति से प्रकाशयुक्त जनो ! (यत्) जो (सरण्युः) गतिशील (गो इष्टौ) अन्यो के उपकारार्थ मोक्ष की इच्छा से (सरत्) विचरता है, वह (जरण्यु) उपदेष्टा (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष ही (कारवे प्रेष्ठः) जगत्कर्त्ता को नितांत प्रिय होता है और (स हि) वह ही (एषां प्रेष्ठः) इन सबका प्रिय होकर (परा वक्षत्) परमात्मा के प्रति प्रेरित करता है (उत) और (एनान् पर्षत्) अन्य जनो को संसार सागर से पार करता है ॥२३॥

भावार्थ—जब साधक मोक्ष की इच्छा से परमात्मा की वन्दना करता है तो वह प्रभु का प्रिय बनता है और दूसरों को भी वह प्रभु-भक्ति की राह दिखाते हुए संसार-सागर को पार कर लेता है ॥२३॥

अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४॥

पदार्थ—(अध नु) और फिर (अस्य जेन्यस्य) उस सर्वविजयी प्रभु को (पुष्टौ) पोषण-शक्ति के लिए, (रेभन्त) उसकी स्तुति करते हुए हम, (वृथा) अनायास सरल भाव से ही (ईमहे) याचना करते है और अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते हैं (तत् उ नु) वह तू हे प्रभु ! (सरण्यु) सर्वत्र व्यापक है (अस्य सूनु) इस लोक का उत्पादक, (अश्व) इस जगत् मे व्यापक और (श्रवसः च सातौ) ज्ञान-ऐश्वर्यादि के लिए (विप्र.) बड़ा कुशल (असि) है ॥२४॥

भावार्थ—प्रभु ही इस सकल जगत् का नियन्ता सर्वव्यापक एव उत्पादक है । वही हमारा पोषक भी है । उसी के यश एव गुणो की हम गाथा गाए तथा उसी से सुख एवं लाभ की याचना करें ॥२४॥

युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥

पदार्थ—हे सूर्यचन्द्र के समान श्रेष्ठ तेजस्वी पुरुषो ! (यस्मिन् गिरः समीची) जिसमे उत्तमोत्तम वाणियां यथार्थ रूप से प्राप्त हैं, वह प्रभु (यदि) यदि (युवोः सख्याय) तुम्हारे सखाभाव को बढ़ाने और (अस्मे शर्धाय) हमारी बुद्धि-बल हेतु (नमस्वान्) नमस्कारयुक्त वचन वाला होकर (स्तोमं जुजुषे) स्तुति समूह का सेवन करता है । वह (विश्वत्र) सर्वत्र (गातु) मार्गतुल्य उद्देश्य की ओर ले जाने वाला, (सूनृतायै) सनातन उत्तम वाणी की प्राप्ति हेतु (दाशत्) हमे बुद्धि प्रदान करता है ॥२५॥

भावार्थः—हे सूर्यतुल्य तेजस्वी जनो ! प्रभु से ही उत्तमोत्तम वाणियां यथार्थ रूप मे प्राप्त होती हैं । वही मार्गदर्शक है । जिसकी स्तुतियो को वह स्वीकार करता है, उसे ही मोक्षमार्ग दिखाता है ॥२५॥

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६॥

पदार्थः—(सः) वह (अद्भिः) आप्त जनो से (सूक्तैः) सद्वचनो द्वारा (गृणान.) स्तुति किया जाता है कि (सः देववान् सुबन्धु इति) वह परमात्मा मुमुक्षु जनो से सेवित है और उनका सुबन्धु है ऐसी उसकी प्रसिद्धि है । (उक्थैः वचोभिः वर्धत्) उत्तम मन्त्रो द्वारा स्तुतिकर्त्ता को बढ़ाता है और (नूनम्) निश्चय से (उस्रियायाः) गौ के तुल्य ज्ञान दुग्ध का स्रवण करने वाली वेदवाणी का (पय.) ज्ञानरूपी दुग्ध (वि अध्वा एति) विविध प्रकार से, ध्यान मार्ग से विशेषतः पाता है ॥२६॥

भावार्थ—परमात्मा ही साधको का इष्ट एव उपासको का सखा है । वह आप्त विद्वानो की स्तुतियां स्वीकार करता है तथा स्तुति करने वाले का बढ़ाता है । जिस प्रकार गौ के स्तन से दूध प्राप्त होता है वैसे ही वह भी स्तुति करने वाले को सुफल प्रदान करता है, वही वन्दनीय है ॥२६॥

त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७॥३०॥

पदार्थ—हे (यजत्रा सजोषा देवासः) हे यज्ञशील विद्वान् जनो ! (ये) जो तुम (वाजान् वियन्त अनयत) विशिष्ट ज्ञान ऐश्वर्यादि, विशिष्ट गति से प्राप्त कराते हो और जो तुम (निचेतार.) निरन्तर कुशल, (अमूरा) स्वच्छमति हो ऐसे आप (नः महः सुभूत) हमारे लिए सुखकारी और महान् होवो ॥२७॥३०॥

भावार्थ.—व्यक्ति को अध्यात्मयज्ञ मे रत साधकों की संगति कर उनसे अपने रक्षणार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी अध्यात्म-मार्ग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥२७॥

इति त्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमोऽध्याय

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[६२]

नाभानेदिष्ठो मानव ऋषिः ॥ देवता—१—६ विश्वेदेवा आङ्गिरसो वा । ७ विश्वेदेवा. । ८—११ सावर्णेर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २ विराड् जगती । ३ पादनिचृज्जगती । ४ निचृज्जगती । ५ अनुष्टुप् । ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ६ बृहती । ७ विराट् पंक्तिः । १० गायत्री । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१॥

पदार्थः—(ये) जो (यज्ञेन) अध्यात्मयज्ञ से और (दक्षिणया) स्वात्म-समर्पण से (समक्ताः) अलंकृत होकर (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सख्यम्) मित्र-भाव को (अमृतत्वम्) और अमृतत्व को (आनश) प्राप्त करते हो और हे (अंगिरसः) ज्ञानवान् तेजस्वी जनो ! (तेभ्यः) उन तुम्हारे लिए (वः) आप लोगों के लिए (भद्रम्) सर्वसुखकारी कल्याण (अस्तु) हो । हे (सु-मेधसः) उत्तम ज्ञान तथा बुद्धि वाले जनो ! आप लोग (मानवं) मनुष्यों को (प्रति गृभ्णीत) स्वीकार करो, उन पर कृपा करो ॥१॥

भावार्थ—आत्मसमर्पण एवं अध्यात्मयज्ञ से स्वय को सिद्ध करने वाले ही प्रभु के अमृतस्वरूप एव सखाभाव की प्राप्ति कर पाते हैं । वे ऐसे ही अन्य लोगो को

भी सुख देते हैं तथा योग्य जनों को ज्ञान की शिक्षा प्रदान कर कल्याण] का पथ दर्शाते हैं ॥१॥

य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥

पदार्थ.—(ये) जो (पितरः) ब्रह्मचर्य व्रत पालक जन, (गोमय वसु) वाङ्मय धन को (उत् आजन्) उत्तम रीति से पाते हैं तथा (परिवत्सरे) चारों ओर से आकर बसने वाले शिष्यो से आवृत आचार्य के अधीन रहकर (ऋतेन) ज्ञानमय तेज से (वलम्) आत्मा को घेरने वाले तम को (अभिनन्दन्) विदीर्ण करते हैं, हे (अंगिरसः) तेजस्वी जनो उन आप लोगों की (दीर्घायुत्वम् अस्तु) दीर्घ आयु हो। हे (सुमेधस.) उत्तम ज्ञानी जनो ! (मानव प्रति गृभ्णीत) आप लोगो को अपने शरण मे लो ॥२॥

भावार्थ —जो ब्रह्मचर्य व्रत पालक जन वाङ्मय धन को उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं और चतुर्दिक् शिष्यों से घिरे आचार्य के अधीन रहकर ज्ञानमय तेज द्वारा आत्मा के घेरने वाले अन्धकार को विदीर्ण करते हैं। हे तेजस्वी जनो ! आप लोग मनुष्यो को अपनी शरण मे लो ॥२॥

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥

पदार्थः—जो (ऋतेन) ज्ञान व तेज से (सूर्यं दिवि आ) सूर्य नाम दक्षिण प्राण को मूर्धा भाग मे ले जाते है और (पृथिवीम् अप्रथयन्) गुदागत अपान को देह मे विशेष रूप से व्याप्त करते हैं वे (सुप्रजास्त्वम्) उत्तम सन्तान के पिता तथा उत्तम ज्ञानवान् होकर मननशील विद्वानो के ज्ञान-तत्त्व को पाते हैं ॥३॥

भावार्थः—श्रोता को विद्वानो द्वारा प्रदत्त ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। वे उत्तम सन्तान के पिता तथा उत्तम ज्ञानवान् होकर मननशील विद्वानों के ज्ञान-तत्त्व को ग्रहण करते हैं। जिस भांति सूर्य की किरणो का प्रकाश फैलता है वैसे ही उनका भी यश विस्तृत होता है ॥३॥

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥

पदार्थः—हे (देव पुत्रा) परमात्म देव के पुत्रो के तुल्य ! हे (ऋषय.) मन्त्रार्थ ज्ञान के द्रष्टा जनो ! (अयम्) यह प्रसिद्ध प्रभु (वः) आप लोगो के (गृहे) हृदय गृह मे वा आश्रम मे, (नाभा) वर्तमान गुरुपद पर स्थित हो, (वः) आप लोगो को (वल्गु वदति) वेदवाणी का उपदेश करता है। आप (तत् शृणोतन) उसे श्रवण करो। हे (अंगिरस वः सुब्रह्मण्यम् अस्तु) आत्माओं के ज्ञानदाता ! उत्तम वेदज्ञान से सम्पन्न जनो शुभ ब्रह्म प्राप्ति फल पाओ, आप (सु-मेधस मानव प्रति गृभ्णीत) उत्तम मेधा वाले हो, मनुष्यो को अपनी शरण दो ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टाओ के अन्तःकरण में ही वेद का ज्ञान देता है। वे फिर अन्य को उस ज्ञान का उपदेश करते हैं। यही उत्तम वेदज्ञान कल्याण का सुखद मार्ग दर्शाता है ॥४॥

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५॥१॥

पदार्थ —(ऋषयः इत्) मन्त्रार्थ द्रष्टा तत्त्वदर्शी जन (वि-रूपासः इत्) विविध रूपों एव रुचि वाले होते हैं। (ते इत् गम्भीर-वेपस) वे गम्भीरता सहित कर्म करने वाले हैं। (ते आङ्गिरसः) वे नितान्त तेजस्वी (अग्ने) और ज्ञानमय प्रभु के (सूनव) पुत्रो के समान उसके शासन में रहते हैं। वे (अग्ने. परि जज्ञिरे) अग्निमय प्रभु से उपजते हैं ॥५॥१॥

भावार्थ—मन्त्रार्थ द्रष्टा तत्त्वदर्शी जन विविध रूपो तथा रुचिवाले होते हैं। वे गम्भीरतासहित कर्म करने वाले होते हैं तथा तेजस्वी एव ज्ञानमय प्रभु पुत्रो के समान उसके नियन्त्रण में रहते हैं और अग्निमय प्रभु ही उन्हें उत्पन्न करता है ॥५॥१॥

इति प्रथमो वर्ग. ॥

ये अग्ने परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥६॥

पदार्थ —(ये) जो (विरूपासः) ज्ञान का निरूपण करने वाले विद्वान् जन (दिवः परि) मोक्षधाम से मोक्ष को लक्ष्य करके (अग्नेः परिजज्ञिरे) प्रभु की कृपा से प्रसिद्ध होते हैं, (देवेषु) उन जनों के बीच में, (नवग्वः दशग्वः) पञ्चज्ञानेन्द्रियों तथा दशकर्मेन्द्रियोंमें गतिमान्, (अङ्गिरस्तमः) अति तेजस्वी विद्वान् होता है। (सचा) सबके साथ विराज कर (मंहते) प्रशंसा को प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थः—द्रष्टा ऋषि ज्ञान का विशेष निरूपण करते हैं और ज्ञान के सागर तथा संयमी बनकर मोक्ष की प्राप्ति में समर्थ होते हैं तथा विद्वज्जनो से प्रशंसा पाते हैं ॥६॥

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥७॥

पदार्थ—(वाघत.) वे ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् जन (इन्द्रेण-युजा) ज्ञानद्रष्टा परमात्मा के सहायक (गोमन्त.) और वाणी से युक्त हो, (अश्विनम्) कर्म सम्बन्धी ज्ञान (व्रजम्) मनुष्यों के लिए (निः सृजन्त) उपदेश करते हैं। (मे) मुझे (सहस्र ददतः) हजारो ऋचाएं व ज्ञान देते हैं (अष्ट कर्ण्यः) व्यापक साधनवान् (देवेषु श्रवः अक्रत) इन्द्रियों में यश सम्पादन करें ॥७॥

भावार्थ.—ज्ञान को धारण करने वाले विद्वत् जन, ज्ञानद्रष्टा प्रभु के सहायक और वाणी से युक्त हो कर्म सम्बन्धी ज्ञान का मनुष्यों के लिए उपदेश करते हैं। वे विभिन्न यश सम्पादन करें ॥७॥

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥

पदार्थ—(अय मनुः) यह ज्ञानदाता (नून प्रजायताम्) अवश्य ही प्रसिद्ध हो (तोक्म इव रोहतु) अल्पायु बालक के समान बढे। (यः) जो (सहस्रं शताश्व) हजारों सैकडों पशुओं वाले वह भी सहस्रगुणित ज्ञान (दानाय सद्य मंहते) यात्रा हेतु तत्काल प्रेरित हो ॥८॥

भावार्थः—ज्ञानदाता अवश्य ही प्रसिद्ध हो। वह अल्पायु बालक के तुल्य बढे जिससे ज्ञान सहस्र गुणित करने में वह समर्थ हो सके ॥८॥

न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९॥

पदार्थ —(दिव. इव सानुम्) आकाश मे ऊंचे स्थान पर स्थित सूर्य के समान (तं) उसको (कः चन) कोई भी (आरभम् न अश्नोति) उस ज्ञानदाता को प्राप्त नहीं कर सकता। (सावर्ण्यस्य) समान वर्ण मे समान भरण-पालन में कुशल की (दक्षिणा) दानशक्ति (सिन्धु. इव) नदी के समान (पप्रथे) विस्तृत होती है ॥९॥

भावार्थः—उस ज्ञान के दाता की स्थिति सर्वोच्च होती है। वह सूर्य के तुल्य उच्च स्थान पर आसीन होता है और उसकी दानशक्ति नदी के तुल्य विस्तृत होती है ॥९॥

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१०॥

पदार्थ —(स्मद्-दिष्टी) प्रशस्त दर्शन वाले, (गो-परीणसा) नाना पशु बहु विद्या वाले उपदेशक (दास) तथा दानी (उत) और उसकी (परि विषे) सेवा के योग्य होओ (यदु तुर्वः च मामहे) यत्नशील एवं प्रगतिशील जन महत्त्व प्राप्त करते हैं ॥१०॥

भावार्थ.—नितांत दर्शनीय, अनेको विद्याओ मे पारगत अध्यापक एवं उपदेशक तथा ज्ञान को देने वालो की प्रशंसा करनी चाहिए ॥१०॥

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥२॥

पदार्थः—(सहस्र-दाः) सहस्रो का दानदाता विचारवान् (ग्रामणीः) ग्राम का नेता (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (मा रिषत्) पीडित न हो, न अन्यो को दुःख दे। (सावर्णेः) समान रूप से वरणीय (दक्षिणा) उसकी दानशक्ति (यतमाना) प्रजाजन में उद्योग-यत्न को बढ़ाती हुई (एतु) हमें प्राप्त हो। (देवाः) दानशील तथा तेजस्वी जन (आयु. प्रतिरन्तु) सूर्य की किरणों के समान हमारे जीवन को बढ़ावें। (यस्मिन्) जिसमें हम (अश्रान्ताः) कभी न थकते हुए (वाजम् असनाम) अन्न, बल, ज्ञान तथा ऐश्वर्य को भोगें ॥११॥

भावार्थ —अन्न इत्यादि का देने वाला मनुष्यो की रक्षा करता है किन्तु ज्ञान के दाता की दान देने की प्रक्रिया सूर्य के प्रकाश के समान ख्याति पाती जाती है, आयु की वृद्धि करती है और उसका आश्रय ज्ञानी बनाता है ॥११॥

इति द्वितीयो वर्ग ॥

---

[६३]

गय प्लात ऋषिः। देवता—१—१४, १७ विश्वेदेवाः। १५, १६ पथ्यास्वस्तिः॥ छन्द—१, ६, ८, ११—१३ विराड् जगती। १४ जगती त्रिष्टुप् वा। १६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ सप्तदशर्चं सूक्तम्॥

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

पदार्थः—(ये) जो (मनु-प्रीतासः) विचारवान् मनुष्यों से प्रेम करनेवाले विद्वान् (परावतः) दूर-दूर देश से भी आए (आप्यम् दिधिषन्त) प्राप्तव्य ब्रह्मचारी को उपदेश करते हैं और जो (विवस्वतः ययातेः नहुष्यस्य) विशेष रूप से

विद्याओं में बसने वाले यत्नशील व संसार बन्धन के (अनिबं विविबन्से) काटने में कुशल के (बर्हिषि) आसन पर (आसते) विराजते हैं, (ते नः अधि बुवन्तु) वे हमें शिष्य के रूप में स्वीकार कर उपदेश दें ॥१॥

भावार्थः—विद्याओं में पारंगत प्रयत्नशील वैराग्यवान् श्रेष्ठ विद्वज्जन उच्च पद पर आसीन होकर दूर से आए ब्रह्मचारी को भी प्रेम के साथ शिष्य रूप मे ग्रहण कर उसे शिक्षा दें और संसार को भी उपदेश प्रदान करें ॥१॥

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**देवा**) उत्तम ज्ञानादि के देने वाले, धनादि के दाता, तेजस्वी जनो ! (**व.**) आप लोगो के (**विश्वा हि नामानि**) सकल नाम तथा दुष्टो का दमन करने वाल बल (**नमस्यानि**) आदरयोग्य और (**वन्द्या**) स्तुतियोग्य हैं। (**उत**) और इसी भांति (**वः यज्ञियानि नामानि**) आप लोगो की पूजा एव यज्ञ-दीक्षा, ज्ञानोपार्जन, सत्संग, दान इत्यादि से उत्पन्न नाम भी (**नमस्यानि वन्द्या**) आदरणीय व स्तुत्य है । (**ये अदिते. जाता· स्थ**) आप लोगो मे से जो अदीन भावना से उपजे हैं, (**ये अद्भ्यः परि**) जो उत्तम आप्त जनो तथा प्रजा जनो द्वारा उनके ऊपर नेतारूप से (**जाताः स्थ**) प्रकटे है, (**ये पृथिव्याः**) जो पृथिवी पर प्रसिद्ध हुए हैं, (**ते मे इह हव श्रुत**) वे मेरे आह्वान, अभ्यर्थना और वचन को सुनें ॥२॥

भावार्थः—हे उत्तम ज्ञान तथा धनादि के दाताओ ! आपके सकल नाम तथा दुष्टो के दमन मे समर्थ बल आदरणीय एव स्तुत्य है । द्युलोकज्ञान मे प्रवीण, आकाश सम्बन्धी ज्ञान में निष्णात आप श्रेष्ठ कर्मों में रत रहते है। ऐसे लोगो से ज्ञान व सत्संग का लाभ लेना अभीष्ट है ॥२॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥३॥

पदार्थ—(**येभ्यः**) जिन विद्वानो के लिए (**माता**) जगत् को उत्पन्न करने वाली माता या पिता (**मधुमत् पय पिन्वते**) मधुर गुणयुक्त दूध के समान, वेदज्ञान रस को (**पिन्वते**) देता है । (**द्यौ,**) तेजोयुक्त (**अदितिः**) और कभी नाश न होने वाला प्रभु (**अद्रि बर्हा.**) तथा मेघो के आच्छादनो से युक्त सूर्यतुल्य आचार्य (**पीयूषं**) नवजीवनदायक ज्ञान देता है, उन (**उक्थ शुष्मान्**) अतिस्तुत्य बलशाली, उपदिष्ट वेदज्ञान से बली, (**वृषभरान्**) उत्तम बलयुक्त, (**सु-अप्नस·**) उत्तम रूपवान्, (**तान् आदित्यान्**) सूर्यसदृश तेजस्वियो को (**स्वस्तये**) सुख-कल्याण हेतु (**अनु मद**) हर्षित कर ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा मे, जो ज्ञान से प्रकाशित जगत् का रचयिता है, जिन अखण्ड ब्रह्मचारियो को वेदज्ञान अमृत व मोक्ष देता है ऐसे विद्वानो को हम अपने कल्याण के लिए तृप्त करें ॥३॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

पदार्थः—(**नृचक्षस**) नरों को ज्ञान का दर्शन कराने वाले, उन्हे चेताने वाले, (**अनिमिषन्तः**) सदा अप्रमादी तथा सतर्क सावधान, (**देवास**) वे तेजस्वी विद्वान् पुरुष, (**अर्हणा**) सर्वथा योग्य पूजा उपासना द्वारा (**बृहत्**) उस महान् (**अमृतत्वम् आनशुः**) मोक्ष को प्राप्त करते है । वे (**ज्योति रथा**) ज्योतिर्मय बल वा रस को जो प्राप्त हैं, (**अहिमाया**) जो अप्रतिहत बुद्धि, मेघवत् परोपकारी बुद्धि से युक्त हैं और (**अनागसः**) निष्पाप हो, (**दिव.**) तेजोमय प्रभु के (**वर्ष्माणं**) परम स्थान मोक्ष को (**स्वस्तये**) सुख कल्याणार्थ (**वसते**) आच्छादन करते है ॥४॥

भावार्थः—ज्ञान एव गुणो से सुसमृद्ध एव वासनाओ से रहित महानुभाव ही मोक्ष के अधिकारी हैं । वे ही संसार कल्याण का पथ भी दर्शाते है ॥४॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥५॥३

पदार्थः—(**ये सम्राज**) जो अच्छी प्रकार प्रकाशमान्, (**सु-वृधः**) उत्तम गुण-रीति से स्वय बढ़ने और अन्यो को बढ़ाने वाले, (**अपरि-ह्वृताः**) अकुटिलाचारी (**यज्ञम् आ-ययुः**) सत्संगयोग्य मान को प्राप्त या प्रभु को साक्षात् किये हैं और जो (**दिवि**) मोक्षधाम (**क्षयम् दधिरे**) मे निवास को धारण करने योग्य हैं, (**तान्**) उन (**आदित्यान्**) आदित्यमय तेजस्वी पुरुषो की (**नमसा सुवृक्तिभि.**) उत्तम अन्न-भोगादि प्रशंसा से अखण्ड व्रतधारी (**स्वस्तये आ विवास**) कल्याण के लिये परिचर्या, सेवा करें ॥५॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानी है एव उत्तम गुणों से युक्त हैं, वे स्वय तो उन्नति करते ही हैं दूसरो को भी बढाते हैं । ऐसे वासनामुक्त जनो की संगति ही कल्याण को देने वाली है । हम उन्हीं की सेवा करें ॥५॥

इति तृतीयो वर्ग. ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥६॥

पदार्थ—हे (**विश्वे देवास**) समग्त विषयों मे विद्वान् जनो ! (**व**) आप लोगो के (**स्तोमं**) उपदेष्टव्य वेदज्ञान को (**क राधति**) कौन साधित करता है (**य जुजोषथ**) जिसको कि आप लोग प्रेम मे उपासना करते हो । हे (**मनुषः**) मननशील जनो ! हे (**तुवि-जाता**) बहुत प्रसिद्ध (**व**) तुम्हारे मध्य मे (**क·**) कौन (**अध्वरम् अरंकरत**) अध्यात्मयज्ञ को पूर्ण करता है । (**यः**) जो (**अंहम् पर्षत्**) हमें दु खसागर से पार कर दे । जो पाप से हम पार करता है (**स्वस्तये**) कल्याण हेतु ॥६॥

भावार्थ—हम अपने कल्याण हेतु विद्वानो के पास जाए और उनसे पूछें कि हम किस प्रकार पापो से अलग रह सकते हैं, किस प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं, यह हमे समझाइए ॥६॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥७॥

पदार्थ.—(**समिद्धाग्नि मनु·**) प्रभु को साक्षात् करने वाला, मननशील उपासक जन (**येभ्य**) जिन विद्वानों से (**प्रथमां**) प्रमुख श्रेष्ठ (**होत्राम्**) वेद-वाणी को (**आयेजे**) आदरपूर्वक अपनाता है, (**सप्तहोतृभि**) सात संख्या वाले ग्रहणकर्ता साधना से (**ते आदित्याः**) वे सूर्यवत् तेजस्वी लोग (**अ शर्म अभयशर्म यच्छत**) हमे भयरहित सुख-शरण प्रदान करो और (**स्वस्तये**) कल्याण-सुख के लिये (**सुपथा सुगा कर्त**) हमारे लिये शुभ मार्गों को अर्जित करो ॥७॥

भावार्थ—जिन साधकों ने अपना मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार, कान, नेत्र एव वाणी आदि सभी प्रभु को समर्पित की हुई है उन्ही से हम वेद का ज्ञान तथा वेदोक्त स्तुति सीखें तथा अपने मे प्रभु का साक्षात या अनुभूति करें, यही कल्याण का मार्ग है ॥७॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥८॥

पदार्थ—(**ये**)जो (**प्रचेतस**) उत्कृष्ट ज्ञान और हृदय वाले सावधान (**मन्तव**) मननशील (**विश्वस्य भुवनस्य**) स्थावर और जगम ज्ञान को (**ईशिरे**) समर्थ होते हैं, (**ते**) वे विद्वान् या प्रभु (**न**) हमे (**कृतात् अकृतात् एनसः**) किये हुए और न किये हुए पाप से, (**एनस अद्य परि पिपृत**) बचाकर इस जीवन मे हमारी रक्षा करें (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ ॥८॥

भावार्थ—उत्कृष्ट ज्ञान व हृदय वाले मननशील सतर्क विद्वज्जन अथवा प्रभु सभी उत्पन्न हुए स्थावर जगम के ज्ञाता है । वे ही हमे वर्तमान व आगे होने वाले पापो के सम्बन्ध मे हमारे कल्याण की दृष्टि से हमे सावधान करते है । ऐसे लोगो के उपदेश व सत्संगति को अपने जीवन मे धारें ॥८॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥९॥

पदार्थ—(**भरेषु**) यज्ञों, संग्रामो व प्रजा के भरण-पोषण सम्बन्धी कार्यों मे, (**स्वस्तये**) प्रजा के योगक्षेम एव कल्याण हेतु, (**सु-हव**) उत्तम नामयुक्त, उत्तम पदार्थों को लेने देने वाले, (**अह.-मुच**) पापो से मुक्त कराने वाले, (**दैव्य जनम्**) देवपद-योग्य जन को और (**अग्नि मित्र वरुण**) स्नेही, रक्षक, सर्वश्रेष्ठ और (**भग**) ऐश्वर्यवान् व (**द्यावापृथिवी**) सूर्य भूमिवत् सर्वाधार नर-नारी और (**मरुत**) वायुवत् बलवान्, व्यापारी तथा कृषक प्रजाजनो को हम (**हवामहे**) आदर से बुलाते है । अथवा, इन्द्र, जन, अग्नि, मित्र, वरुण, द्यावा-पृथिवी ये सब नाम परमात्मा के ही हैं ॥९॥

भावार्थ—परमात्मा ही मनुष्य को सुख शांति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए सच्चा ज्ञान देता है और विभिन्न दोषो से उसकी रक्षा करता है, उसी की वन्दना, अर्चना तथा उपासना करना उत्तम है ॥९॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०॥४॥

पदार्थ—(**सु त्रामाण**) सुख-पूर्वक संसार मे रक्षा करने वाली, (**पृथिवीम्**) प्रख्यात (**द्याम्**) सूर्यवत् ज्ञान से आलोकित (**अनेहसम्**) पापों से रहित, (**सु-शर्माणम्**) उत्तम सुखयुक्त, (**अदितिम्**) अखण्डित (**सु प्रणीतिम्**) आत्मा का सु-प्रणयन करने वाली (**स्वरित्राम्**) सुन्दर चप्पुओं वाली या सुखपूर्वक दुष्टों से बचाने वाली, शोभन अरित्रो समान सुरक्षित (**अस्रवन्तीम्**) न चूने वाली (**दैवीं नावम्**) जल अग्नि भाप विद्युत् आदि से चलने वाली (**नावम्**) नौका के समान सुख से पार उतारने वाली, प्रभुमयी नौका को हम (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**आरुहेम**) प्राप्त करें ॥१०॥४॥

भावार्थ—संसार रूपी सागर से पार लगाने वाली, उत्तम सुख की दात्री तथा उसके स्वरूप का बोध कराने वाली मुक्ति ही है । वह सद्गुणयुक्त दिव्य नौका के समान है । हमे उसे प्राप्त करना ही चाहिए ॥१०॥४॥

इति चतुर्थो वर्गः ।

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥

पदार्थ—हे (**विश्वे यजत्राः**) समस्त विद्याओं में, प्रवीण पुरुषो ! (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**अधि वोचत**) शिष्य के समान हमें उपदेश करो । (**नः**) हमें (**दुरे-वाधाः**) दुःखदायी विपत्ति से, (**अभिह्रुतः**) चारों ओर से नाश करने वाली कुटिल चाल से (**नः त्रायध्वम्**) हमारी रक्षा करो । हे (**देवा**) विद्वानो ! (**नः शृण्वतः**) तुम प्रार्थना श्रवण करने वालों को हम (**सत्यया**) सत्य (**देवहूत्या**) आह्वान वाणी द्वारा (**स्वस्तये अवसे**) कल्याण और रक्षार्थ (**हुवेम**) प्रार्थना करते हैं ॥११॥

भावार्थ—जो विद्याओं में पारगत विद्वान् हैं उनके समक्ष शिष्यभाव से उपस्थित होकर विद्या प्राप्त करनी चाहिए । हमें अपनी वासनाओं व बुरी प्रवृत्तियों का त्याग सत्सगति करके करना चाहिए । ऐसे विद्वानों की कल्याण हेतु हम सद्भाव से प्रशंसा करें ॥११॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥

पदार्थः—आप (**नः**) हमसे (**अमीवाम् अप युयोतन**) रोग एवं रोगवत् पीडकशत्रु को भगा दो । (**विश्वाम् अनाहुतिम् अप**) सब प्रकार की नास्तिकता को दूर करो और (**अघायतः**) हम पर अत्याचार, पाप आदि करने की इच्छा वाले की (**अरातिम्**) न देने और (**दुर्विदत्राम्**) दुःख पहुँचाने की चाल को भी (**अप**) असफल करो और (**स्वस्तये**) जगत् के कल्याण हेतु (**नः उरु शर्म यच्छत**) हमें बहुत सुख प्रदान करो ॥१२॥

भावार्थ—हमें विद्वज्जनों से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमारे आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक कष्टों का निवारण करें । हम उनसे नम्रभाव सहित प्रार्थना करें, जिससे हमें सर्व प्रकार से सुख-शान्ति एवं निरोगता मिले ॥१२॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।

यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥

पदार्थ—हे (**आदित्यास**) आदित्य, ब्रह्मचर्य युक्त विद्वानो ! (**य**) आप लोग जिसको (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**सुनीतिभिः**) उत्तम नीतियों से (**विश्वानि दु-रिता**) समस्त दुःखों एवं दुराचरणों एवं कुमार्गों से (**परि अति नयथ**) पार पहुँचा देते हो वह (**मर्त**) मनुष्य (**विश्वः**) विविध लोकों, स्थानों को जाने में समर्थ, (**अरिष्ट**) अनिष्टों से रहित होकर (**प्र एधते**) खूब वृद्धि पाता है और (**प्रजाभिः**) पुत्रादि समेत (**धर्मणः प्र जायते**) धर्माचरण से उत्कृष्ट हो प्रसिद्धि पाता है ॥१३॥

भावार्थ—हे आदित्य, ब्रह्मचर्ययुक्त विद्वानो ! आप हमारे कल्याण के लिए उत्तम नीतियों द्वारा सकल दुःखों व कुमार्गों से हमें बचाइये । आप सरीखे ज्ञानदाताओं के उपदेश से ही मनुष्य पाप से बचता है और उसे ही सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है ॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।

प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥

पदार्थ—हे (**देवासः**) विद्वान् जनो ! हे (**मरुत**) वायु के समान बलवान् वीरो ! आप लोग (**य वाज-सातौ**) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि लाभ के संग्राम आदि अवसरों पर (**यम् अवथ**) जिसकी शरण में जाते हो और (**शूर-साता**) जिस पापनाशार्थ प्राप्ति के लिए (**हिते धने**) हितकर अध्यात्म-धन को प्राप्त करने के लिए (**य अवथ**) जिसको सुरक्षित रखते हो हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् ! उस (**रथम्**) रथ के तुल्य उद्देश्य तक पहुँचाने वाले, (**सानसि**) उत्तम रीति से सेवनयोग्य, (**अरिष्यन्तम्**) किसी को पीड़ा न देने वाले शासक वा प्रभु को हम (**स्वस्तये**) अपने कल्याणार्थ (**आ रुहेम**) अपना आश्रय बनाएं ॥१४॥

भावार्थ—हे साधक वृन्द, हम आपकी संगति से अमृततुल्य अन्न-भोग पाएं तथा पापमुक्त शुद्धवृत्ति को बनाने के लिए आपसे उपदेश ग्रहण करें । प्रभु पूर्ण ब्रह्मचर्य से सम्पन्न व्यक्ति को ही मुक्ति का सुख देता है ॥१४॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।

स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) जीवन-मुक्त वीर विद्वान्, बलवान् जनो ! (**पथ्यासु न स्वस्ति दधातन**) मार्गों में आने वाले प्रदेशों में हमें सुख प्रदान करो । (**धन्वसु**) जल से रहित प्रदेशों में (**न स्वस्ति दधातन**) हमें कल्याण दो । (**अप्सु**) जलों पर, समुद्र, नदी आदि में, (**स्वः वति वृजने**) सुख आदि से युक्त मार्ग वा, सैन्यादि बल में (**न स्वस्ति**) हमें सुख, कल्याण प्रदान करो । (**पुत्र कृथेषु योनिषु**) सन्तान कर्मों में और (**राये न स्वस्ति दधातन**) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए हमें सुख दो ॥१५॥

भावार्थ—जो विद्वान् जीवन्मुक्त हैं, उन्हीं के उपदेश व शिक्षा से हमें अपने मार्ग में आये मरुस्थल, सरिताओं, सन्तनोत्पत्ति वाले गृहस्थलों, धन के प्रसंगों व दुःख रहित मोक्षों को सुखयुक्त बनाएं ॥१५॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।

सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥

पदार्थः—(**प्रपथे**) उत्तम मार्गगामी का (**स्वस्ति**) कल्याण होता है (**श्रेष्ठा**) सर्वश्रेष्ठ, (**रेक्णस्वती**) उत्तम ऐश्वर्य और वीर्य वाली, (**या वामम् अभि एति**) सेवनीय पुरुष को पाती है (**सा अमा**) ऐसी सहचारिणी गृहणी हो । (**सो**) और वही (**अरणे**) आनन्द-सुखादिरहित निर्जन स्थान में भी (**पातु**) हमारी रक्षा करे । वह (**सु-आवेशा**) निवास गृह से युक्त होकर (**देवगोपा भवतु**) उत्तम पुरुषों एवं उत्तम प्रिय पति से सुरक्षित हो ॥१६॥

भावार्थ—उत्तम मार्ग के अनुगामी का ही कल्याण होता है । हमें जीवन रक्षा के प्रारम्भिक मार्ग, गृहस्थ तथा वन में भी विद्वानों का कल्याण-भावना प्राप्त होती रहे, हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए ॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।

ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥५॥

पदार्थ—हे (**विश्वे आदित्या**) ब्रह्मचर्य सम्पन्न तेजस्वी जनो ! (**एव**) इस भांति (**प्लतेः सूनु**) संसार को पार कराने वाले, (**मनीषी**) बुद्धिमान् पुरुष (**व अवीवृधत्**) तुम्हें बढ़ाते हैं (**ईशानासः नरः**) तुम ज्ञान के स्वामी (**अमर्त्येन**) मरणधर्म-रहित (**गयेन**) उत्तम उपदेष्टा परमात्मा ने (**दिव्य जन**) श्रेष्ठ ऋषि जन भी (**अस्तावि**) ज्ञान प्रदान कर प्रशासित किए हैं ॥१७॥५॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य एवं अखण्ड ज्ञानसम्पन्न, सर्व विषय पारगत, साधक संसार रूपी सागर से पार होने और अन्यों को भी विद्या में निष्णात बनाने हेतु सर्वज्ञ प्रभु के द्वारा अथवा उसके द्वारा प्रेरित जगत् में आते हैं ॥१७॥

इति पञ्चमो वर्गः ।

---

[६४]

गयः प्लातः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द—१, ४, ५, ९, १०, १३, १५ निचृज्जगती । २, ३, ७, ८, ११ विराड् जगती । ६, १४ जगती । १२ त्रिष्टुप् । १६ निचृत् त्रिष्टुप् । १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।

को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१॥

पदार्थ—(**यामनि**) इस संसार यात्रा में (**शृण्वतां देवानां**) हमारी स्तुति प्रार्थनादि सुनने वालों एवं ज्ञानादि देने वालों के मध्य से (**कतमस्य**) कौन से और (**कथा**) किस प्रकार के (**सुमन्तु नाम**) सुख से मनन करने योग्य नाम का (**मनामहे**) हम मनन करें ? (**न कः मृळाति**) हमें कौन सुखी करता है, (**कतमः मयः करत्**) कौन सुख प्रदान करता है (**कतमः ऊती अभि आववर्तति**) कौन हमारे प्रति पुनः रक्षा के लिए व कल्याण के लिए हम से बरतता है ॥१॥

भावार्थ—व्यक्ति को यह विचारना चाहिए कि इस जीवनयात्रा में कौन सत्य अर्थ में उसका सखा अथवा मित्र है । कौन आदर करने तथा स्मरण करने योग्य है कौन सच्चा सुख प्रदान करता है ? तथा कौन वास्तव में हमारी रक्षा करता है और हमारे जीवन को सहारा देता है ? इन सब बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाएगा कि प्रभु ही ऐसा करने में समर्थ है, हम उसी की शरण में आएं ॥१॥

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।

न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२॥

पदार्थ—(**हृत्सु धीतयः**) मन आदि में विद्यमान, (**क्रतव**) संकल्प धाराएं (**क्रतूयन्ति**) उत्तम कर्म और ज्ञान के सम्पादन हेतु जाती हैं और (**वेनाः**) कामना धाराएं (**वेनन्ति**) विभिन्न कामनाएं करती हैं, वे (**दिशः आ पतयन्ति**) उद्देश्य प्रवृत्तियां विभिन्न दिशाओं में जाती हैं । (**एभ्यः**) इन उक्तकर्म करने की इच्छा करने वालों के लिए (**अन्य मर्डिता न विद्यते**) और दूसरा कोई दयालु भी नहीं है (**देवेषु अधि**) आँख आदि इन्द्रियों, रूप आदि ग्राह्य विषयों, विद्वानों और दिव्य-पदार्थों सूर्य, विद्युदादि के निमित्त ही (**मे काम**) मेरी अभिलाषाएं (**अयंसत**) बद्ध हो जाती हैं ॥२॥

भावार्थ—व्यक्तियों में अनेक भावनात्मक शक्तियां सक्रिय रहती हैं, जिस भांति मन में अनेक संकल्प-विकल्प आते हैं, बुद्धि भी नाना प्रकार से विचार करती है । अनेक उद्देश्य भी मानस पटल पर उभरते हैं । भले ही यह सब मानस-सुख साधनार्थ हैं, फिर भी विद्वज्जनों के सम्पर्क से ही उन्हें उत्कृष्ट बनाकर अधिक सुखदायक बनाना चाहिए ॥२॥

नराशंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।

सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! तू (**गिरा**) वाणी से (**नराशंसम्**) मनुष्यों द्वारा स्तुत्य, (**अगोह्यम्**) न छिपे हुए, (**पूषणम्**) सर्वपोषक तथा (**देव इद्धम्**) विद्वानों से प्रकाशित, (**अग्निम्**) अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप प्रभु का (**गिरा अभि अर्चसे**) वाणी से स्तवन कर और इसी प्रकार (**सूर्यामासा चन्द्रमसा**) सूर्य के तुल्य प्रकाशयुक्त एवं चन्द्र के समान सर्वाह्लादक की ओर (**दिवि**) आकाश में (**यमम्**) सबको व्यवस्थित व नियम में चलाने वाले, (**त्रितम्**) तीनों स्थानों में व्याप्त (**वात**) वायुवत् जीवनप्रद की तरफ (**उषसम् अक्तुम्**) प्रातः व रात्रिकाल

(अ हेवना) तथा दिन रात्रिवत् वर्तमान गृहस्थ युगल की भी (गिरा वर्धसे) वाणी से वन्दना कर ॥३॥

भावार्थ—सभी विद्वानों के गुणों से परमात्मा युक्त है । वही मनुष्यों एव ऋषियों के द्वारा स्तुत्य एव साक्षात् करने योग्य है ॥३॥

कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ॥४॥

पदार्थः—(तुवीरवान् कवि) नाना ज्ञानों वाला सर्वज्ञ (कया गिरा ववृधते) कैसी वाणी से वृद्धि को प्राप्त करता है और (बृहस्पति) महान् विश्व का पालक (कया गिरा ववृधते) किस वाणी से साक्षात् होता है । (सु-वृक्तिभि) उत्तम रीति से स्तुतियों द्वारा (एकपात्) वह जगत् को चलाने वाला अद्वितीय (अज.) अजन्मा (सुहवेभिः ऋक्वभि) उत्तम ज्ञानप्रद ऋचायुक्त मन्त्रों से (ववृधते) वृद्धि को प्राप्त है, उसका गुणानुवाद होता है । वह (अहि) अहिंसित नियम वाला (बुध्न्यः) बोधन योग्य है, (हवीमनि) आह्वान करने पर यज्ञादि मे हमारे वचन वह सुने ॥४॥

भावार्थ—प्रभु की जय वन्दना की जाती है, ऋचायुक्त मन्त्रो से उसका गुणानुवाद होता है तो वह किसी न किसी भांति स्तोता के अन्तरात्मा मे साक्षात् होकर उसकी वेदोक्त अर्चनाओं को स्वीकार करता है ॥४॥

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (अदिते) कभी नाश न होने वाले परमात्मन् ! (जन्मनि) जन्म होने पर (मित्रा वरुणौ) शक्तिप्राप्ति के व्रत मे (राजाना) प्राण और अपान दोनो को (आ विवाससि) प्रकटाता है । (अर्यमा) श्रेष्ठो का मान करने वाला (अतूर्त-पन्थाः) जो आत्मा तुरन्त शरीर मे चेतना फैलाती है (पुरु रथः) नाना इन्द्रियो में रमण या सुख भोग करने वाला है, (सप्त-होता) सर्पणशील प्राणो वाला है, (विषु रूपेषु जन्मसु आविवाससि) वह नाना प्रकार के जन्मो मे जाता है ॥५॥६॥

भावार्थः—सृष्टि के चेतन तत्व जीवात्मा के लिए ही प्रभु ने अपने नियमानुसार कर्मफल भोगने हेतु सृष्टि के भोग्य पदार्थ दिए हैं । उनका भोग करने के लिए वह आत्मा देह धारता है । वही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है । वही भिन्न-भिन्न विषयो मे रमण के साधन मन से युक्त हो शरीर में प्राणो के द्वारा अपनी चेतना का प्रसार करता है । वही शरीर को विभिन्न योनियो में जन्म देता है ॥५॥६॥

इति षष्ठो वर्गः ॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो (समिथेषु) सघर्षों में (महः धनं जभ्रिरे) बहुत सा धन तथा यश पाते हैं और जो (त्मना) स्व सामर्थ्य से (मेधसाता सहस्रसा) यज्ञ मे सहस्रों का दान देते हैं, (ते) वे (अर्वन्त) ज्ञानी, (हवन-श्रुतः) आह्वानों का श्रवण करने वाले, (मित द्रव) ज्ञानमार्ग मे द्रुतगति से जाने वाले, (वाजिन.) ज्ञानवान् बलवान् धनवान् सभी जन (न. हव शृण्वन्तु) हमारे आह्वान एवं ग्राह्य वचन को सुनें ॥६॥

भावार्थः—श्रेष्ठ विद्वत्‌जनों का आचरण शास्त्रानुसार होता है । वे ज्ञान प्रदान कराने की प्रार्थना को भी निश्चित रूपेण स्वीकार करते हैं । जो कोई शिष्य-भाव से उनके पास जाता है और अज्ञान से सघर्ष करने की इच्छा से उनसे ज्ञान प्रदान करने की याचना करता है, वे उसकी इच्छा की पूर्ति करते हैं ॥६॥

प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (वायु रथयुजं) रथ मे युक्त वायु-तत्व को और रथ को जोडकर वेग से चलने वाले वायुवद् बलवान् जन को और (पुरन्धिम्) देह धारक आत्मावत् नगर के रक्षक को तथा (पूषणम्) पोषक को, (स्तोमैः) उत्तम स्तुत्य वचनो से (व सख्याय कृणुध्वम्) अपने सखाभाव हेतु चुनो । (ते हि) क्योंकि वे (देवस्य सवितुः) सर्वोत्पादक परमात्मा के (सवीमनि) शासन में (सचित) ज्ञान में युक्त और (स-चेतसः) एकचित्त होकर (क्रतुं सचन्ते) यज्ञतुल्य अपना कार्य सम्पन्न करते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे विद्वज्जनो, साधको ! आप प्रभु का सखाभाव पाने के लिए स्तुतियों से उसका सत्कार करते हो और वही मोक्ष प्रदाता है । हम उसी प्रभु को अपना इष्ट देव मान उसकी प्राप्ति हेतु सदाचरण करते हैं ॥७॥

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वतॉं अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८॥

पदार्थः—हम लोग (ऊतये) स्व-रक्षार्थ (त्रिः सप्त) तीन लोक में सात रश्मियों, (सस्राः) स्रवण करने वाली, (नद्यः) नदियों और (महीः अपः) विशाल जलों को, (वनस्पतीन् पर्वतान्) वनस्पतियों एव मेघों तथा पर्वतों को (अग्निम्) अग्नि व अग्रणि को, (कृशानुम्) विद्युत् को, (अस्तॄन्) मेघो को बहाने वाली वायु के चलाने वाले एव (तिष्य) सूर्य और (सधस्थे) अपने साथ रहने के स्थान में (हवामहे) बुलाते हैं और (रुद्रेषु) अग्नियों मे (रुद्रियम्) होने वाली, (रुद्रं) अग्नि को (आ हवामहे) आदर से बुलाते हैं ॥८॥

भावार्थ—त्रिलोक मे व्याप्त सूर्य रश्मियों, नदियों व जलधाराओ, पर्वतों विद्युत्, सूर्य मेघवर्षक वायु का उपयोग हम विज्ञान एव होम के द्वारा करें ॥८॥

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥

पदार्थः—(सरस्वती) उत्तम जल वाली मेघधारा, (सरयु) वर्षा की धारा एव (सिन्धुः) नदीतुल्य धारा (वक्षणी देवी) बहने वाली (महीः) पूज्य, (आप मातर देवी) आप्त माताएं एव ज्ञानप्रद शक्तियाँ (सूदयित्न्वः) ज्ञानरस देती हुई (मह अवसा) बडे प्रेम मे (आयन्तु) आवें और (न) हमे (घृतवत्) घृत सम (मधुमत् पय) मधुर जल (अर्चत) से हमे तृप्त कर दे ॥८॥

भावार्थ—आकाश मे मेघो की धाराए अन्तरिक्ष मे वर्षा का जल और धरती पर प्रवाहित हो रही सरिताए ये सभी हमारी रक्षार्थ ही हैं । धरती पर जो भी जल है वे अन्न को उपजाने वाले तेजस्वी एव मधुर हो हमें तृप्त करते हैं । हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके रचयिता प्रभु का आभार व्यक्त करें ॥९॥

उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥
१०॥७॥

पदार्थ—(माता) महान् द्युलोक का स्वामी जगन्निर्माता सूर्य की न्याई जगत्पिता हमारी अर्चना सुनें । वह (ऋभुक्षा) महान् (वाज) बलशाली (रथः-पतिः) सर्वरसो का स्वामी, (रण्व) नितान्त रमणीय (भग) सर्वैश्वर्य-वान्, (शंसः) सर्वस्तुत्य प्रभु (न. शशमानस्य) हममे से स्तुतिकर्ता की (पातु) रक्षा करे ॥१०॥७॥

भावार्थ—परमात्मा जो सकल जगत् का निर्माता है हमारी अर्चना सुने । वही महान् बलशाली, सर्वरसो का स्वामी, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वस्तुत्य है । वही स्तुति करने वालो की रक्षा करता है ॥१०॥७॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥

पदार्थ—(सं-दृष्टौ) साक्षात् दर्शन मे (पितुमान् क्षय इव) अन्नादि से समृद्ध निवासगृह के समान है (रण्व) अति सुखदायी है । (रुद्राणां) दुःखों का हर्ता व दुष्टो को रुलाने वा सबको उपदेश करने वाले मनुष्यो का (उप-स्तुति) उपदेश भी (भद्रा) नितान्त कल्याणकारी होता है । हम लोग (जनेषु) मनुष्यों में (गोभि यशस स्याम) वाणियो, भूमियो और पशु-सम्पदाओ से यशस्वी हों और हे (देवास.) उत्तम विद्वान् जनो ! हम (सदा) सदा (इळया सचेमहि) स्तुतिवाणी से युक्त हो ॥११॥

भावार्थ—प्रभु ही आनन्द का रमणीय आगार है । वही साधक विद्वज्जनो की आशा का केन्द्र व दुष्टों का दलनकर्ता तथा सज्जनों के कल्याण की आशा है । हम सदैव उसकी स्तुति व वन्दना करें ॥११॥

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२॥

पदार्थ—हे (मरुत) विद्वानो ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे (देवाः) ज्ञान-प्रदाताओ ! हे (वरुण) श्रेष्ठ जन ! हे स्नेही जन ! (यूयम् यां धियम्) आप लोग जिस बुद्धि एवं कर्म का (मे अददात) मुझे उपदेश करते हो (ताम्) उसे (पयसा धेनुम् इव) दूध से गौ के समान (पीपयत) नाना फलो से समृद्ध करो और (कुविद्) अनेक बार (रथे अधि) रथ पर (गिरः) विद्वानो को (अधि वहाथ) चढा कर लाया करो, मोक्ष हेतु हमे प्रेरित करो ॥१२॥

भावार्थः—हमे साधक आचार्यों, उपदेशको व शिक्षको से शिक्षा ग्रहण कर अपनी कर्मशक्ति को बढाना चाहिए । इसी भांति हम अन्ततोगत्वा मोक्ष पाने में सफल हो सकते हैं ॥१२॥

कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३॥

पदार्थः—(अग मरुत.) हे वीरो ! (यथा चित्) जैसे भी हो आप लोग (कुवित्) अनेक बार (अस्य सजात्यस्य न.) प्रभु का हमसे सम्बन्धभाव हो (प्रति बुबोधथ) प्रति दिन हमें ज्ञान दो । हम लोग (यत्र-नाभा) जिस बन्धन अथवा सम्बन्ध

मे (प्रथमं समसामहे) सर्व-प्रथम प्राप्त होते हैं (अदितिः) परमात्मा (तत् आमित्वं न दधातु) वहां हमारा परस्पर बन्धुत्व सुदृढ़ करें ॥१३॥

भावार्थ —साधक विद्वानों से ही ऐसा ज्ञान ग्रहण किया जा सकता है कि जिससे प्रभु से गहन सम्बन्ध की स्थापना होती है। उसी से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग सुलभ होता है ॥१३॥

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।

उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥

पदार्थ —(ते द्यावा पृथिवी) वे सूर्य लोक भूमि-लोक दोनो जिस प्रकार (देवान्) सब जीवो को (इतः) प्राप्त है, (उभे) दोनो (उभयम्) स्थावर तथा जंगम दोनों को (भरीमभिः) भरण-पोषणकारी अन्न जलो से (बिभृत) परिपूर्ण करते हैं और (पितृभिः रेतांसि सिञ्चतः) पालक मेघो द्वारा जल बरसाते हैं, उसी प्रकार (मातरा मही देवी) पूज्य माता-पिता (यज्ञिये) यज्ञ, आदर-सत्कार, सत्संग पर आश्रित हो हमे (जन्मना) जन्म से (देवान् इतः) हम जीवो को प्राप्त होते हैं, (भरीमभिः) धारक पोषक अन्नादि से (उभय) छोटे बड़े सबका पालन करते हैं और (पितृभिः च) माता पिता रूपो से वे (पुरु) प्रजनक (रेतांसि सिञ्चतः) वीर्यों को सींचते हैं ॥१४॥

भावार्थ —जिस भांति द्युलोक और पृथिवीलोक सभी जीवो को प्राप्त होते हैं। स्थावर जगम के भरण-पोषण के लिए अन्न जल प्राप्ति से उन्हें परिपूर्ण करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ, आदर, सत्संग पर आश्रित पूज्य माता-पिता हमे मिलते हैं। वे धारक पोषक अन्न से छोटे-बड़े का पालन करते हैं ऐसे ही द्युलोक व पृथिवी प्राण वनस्पतियों को उपजाते व उन्हें धारते तथा उनका पोषण भी करते हैं ॥१४॥

वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।

ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥

पदार्थ —(सा होत्रा) वह वेदवाणी, परम वाणी (विश्वम् वार्यम् अश्नोति) समस्त वरणीय इष्ट पदार्थों को व्याप्त होती है। वही (पनीयसी) उत्तम रीति से ज्ञान-उपदेश देती है। (यत्र) जिसमें कुशल पुरुष (अरमतिः) महत् बुद्धि वाला, (बृहस्पतिः) प्रभु विद्वान् कहा जाता है और (यत्र) जिसमे निष्ठ (ग्रावा) उपदेष्टा (मधुषुत्) मधुर ज्ञान का प्रवक्ता (उच्यते) कहा जाता है। (यत्र) जिसके बल पर (मतिभिः) अपनी-अपनी बुद्धियो से (मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष जन (बृहत् अवीवशन्त) उस महान् प्रभु की उपासना करता हैं ॥१५॥

भावार्थः—समस्त पदार्थों के गुण और स्वरूपो का वर्णन वेदवाणी से किया गया है, वह मानव-वाणी के तुल्य प्रतिहत नहीं होती, वही यथार्थ वाणी है। जो विद्वान् उसमे निष्णात है वही उस महान् प्रभु की सच्चे अर्थों मे उपासना कर पाता है ॥१५॥

एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।

उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥

पदार्थ —(एव कविः) इस प्रकार मेधावी (तुवीरवान्) बहुत ज्ञानयुक्त, (ऋत-ज्ञा) सत्यतत्त्व व ज्ञान का ज्ञाता, (द्रविणस्यु) मोक्ष, धन का इच्छुक, (द्रविणसः चकानः) नाना प्रकार के धन की कामना वाला वह (अत्र) इस जन्म में (विप्र) बुद्धिमान्, (गय) स्तुतिशील एवं प्राणवान्, देह गृह का स्वामी बनकर (उक्थेभिः मतिभिः च) उत्तम वचनो, बुद्धियो वा स्तुतियो से (दिव्यानि जन्म अपीपयत्) नाना दिव्य जन्म पुष्ट करता है ॥१६॥

भावार्थ —मेधावी और क्रान्तदर्शी विद्वान् सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर विभिन्न सम्पत्तियो की आकांक्षा करता है तथा उन्हें पाता भी है। वह उनसे स्वयं को तृप्त कर सदाचरण करके मोक्ष का भी अधिकारी हो जाता है ॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।

ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥८॥

पदार्थः—व्याख्या पूर्व सूक्त के अन्तिम मन्त्र की भांति ॥१७॥

भावार्थ —पूर्व सूक्त के अन्तिम मन्त्र की भांति ही इसका भी भावार्थ है ॥१७॥

इत्यष्टमो वर्ग ॥

[ ] ६५]

वसुकर्णो वासुक्रः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ६, १०, १२, १३ निचृज्जगती । ३, ७, ६ विराड् जगती । ५, ८, ११ जगती । १४ त्रिष्टुप् । १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।

आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

पदार्थ —(अग्निः) अग्नि, (इन्द्र) विद्युत्, (वरुण) जल अथवा मेघ, (मित्रः) अन्न, (अर्यमा) सूर्य, (वायुः) वायु, (पूषा) सर्वपोषक पृथिवी, (सरस्वती) जलयुक्त वेगवती नदी, (आदित्याः) किरणें (विष्णु) व्यापक आकाश, (मरुत) वाततसार बल, (स्वः) तेज वा शब्द, (बृहत् सोम) महत् ओषधिगण, (रुद्रः) दुष्टो को रुलाने वाला प्राण, (अदितिः) अखण्ड प्रकृति एवं (ब्रह्मणः पतिः) महान् ब्रह्माण्ड का पालक, ये सब (स-जोषसः) एक दूसरे के अनुकूल होकर विराजे और इस आकाश मे सर्वत्र व्यापे ॥१॥

भावार्थ —धरती से आकाश पर्यन्त सभी पदार्थों व प्रभु एवं मुक्ति के स्वरूप को व्यक्ति जाने। फिर उसका लाभ ले व प्रभु की उपासना कर मोक्ष पाए यह मानव-जीवन का लक्ष्य है ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।

अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥

पदार्थ —(वृत्रहत्येषु) अज्ञान कार्यों मे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि (सम्-ओकसा) एक दूसरे को शक्ति देते हुए, (सत्-पती) सत् पदार्थों के पालक होकर (तन्वा) अपनी महान् शक्ति से (मिथ हिन्वानाः) परस्पर विद्वानो को बढ़ाते हुए, (अन्तरिक्ष आ पप्रु) मेरी वाणी को पूर्ण करें (सोम.) ओषधिवर्ग भी (घृतश्री) रस के आश्रय पर रहकर (ओजसा) महान् तेज से (महिमानम् ईरयन्) अपने महान् सामर्थ्य को प्रेरित करता हुआ सर्वत्र भूमि में व्यापे ॥२॥

भावार्थः—अग्नि एवं वायु मे दो ऐसे शक्तिशाली पदार्थ हैं कि जो अज्ञान के नाशक हैं। ये सभी वस्तुओं को उनके यथार्थ स्वरूप मे दर्शा देते हैं। जब इनका किसी यन्त्र मे प्रयोग किया जाये तो इनसे महत् कार्य भी सम्पन्न होता है। इसी भांति चन्द्रमा भी ओषधियो को रसवान् करता है। इन सभी महत् शक्तियों के वर्णन में हम सफल हो ॥२॥

तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।

ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३॥

पदार्थ —(ऋतज्ञाः) यथार्थ-ज्ञाता मैं (मह्ना महताम्) अपने महान् सामर्थ्य से महान्, (अनर्वणाम्) अन्य की अपेक्षा न करने वाले, (ऋतावृधाम्) बल, अन्न, ज्ञान, यज्ञ तेज की वृद्धि करने वाले, (तेषाम्) उन तत्त्वो के (स्तोमान् इयर्मि) स्तुत्य गुणो को पाता हूँ। (ये) जो (चित्र राधस) धनो के साधक होकर (अप्सवम्) जलो के उत्पादक, (अर्णवम्) जलो से पूर्ण मेघ को उत्पन्न करते वा वर्षाते हैं (सुमित्र्याः) उत्तम मित्र हैं (ते) वे (नः) हमारी (महये) महान् सामर्थ्य हेतु (रासन्ताम्) ऐश्वर्य दें ॥३॥

भावार्थ.—मैं सत्यज्ञान का इच्छुक, अपने सामर्थ्य से महान् अन्य की अपेक्षा न करने वाले बल, अन्न, ज्ञान, यज्ञतेज की वृद्धि करने वाले तत्त्वों के स्तुत्य गुणों से अवगत होता हूँ जो धनो के साधक, जल उत्पादक व जल से पूर्ण मेघ को बनाते हैं व वर्षाते हैं। वे ही उत्तम मित्र हैं। हमें वे महान् सामर्थ्य तथा ऐश्वर्य दें ॥४॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।

पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवा स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४॥

पदार्थः—(स्वर्णरम्) सूर्य को (अन्तरिक्षाणि रोचना) अन्तरिक्ष के नक्षत्रो को, (द्यावा भूमि) पृथिवीलोक को और (पृथिवीम्) समस्त सृष्टि को भी (ओजसा) अपने पराक्रम से (स्कभुः) थामते हैं, व्यवस्थित करते हैं। (पृक्षाइव) सुबन्धु तुल्य (महयन्त.) महत्त्व की कामना करते हुए (सुरातय) शोभन ज्ञानदाता (सूरय. देवा) स्तोता विद्वज्जन (मनुषाय) मानवो के लिए (स्तवन्ते) बताते हैं ॥४॥

भावार्थ —वे महानुभाव ही धन्य है जो सृष्टि के महत्त्वपूर्ण पदार्थों का ज्ञान स्वयं प्राप्त करते हैं एवं दूसरो को भी वह ज्ञान प्रदान करते है ॥४॥

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।

ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५॥९॥

पदार्थ —(दाशुषे मित्राय दाशुषे वरुणाय शिक्ष) दानदाता स्नेही एवं श्रेष्ठ जन के लिये तू भी स्वयं को प्रदान कर। (या) जो वे दोनो (सम्राजा) गुणों से भली प्रकार दीप्त सम्राट् तुल्य होकर (मनसा) चित्त से कभी (न प्रयुच्छतः) प्रमाद नहीं करते, (ययो धर्मणा) जिनके धारण सामर्थ्य से (बृहत् धामः) यह विपुल लोक (रोचते) प्रकाशित होता है और सर्वप्रिय लगता है और (ययोः) जिनके सामर्थ्य से (उभे रोदसी) राजा व प्रजा दोनो (नाधसी) नाना ऐश्वर्यों से युक्त (वृतौ) विद्यमान है ॥५॥९॥

भावार्थ —प्रभु ही इस ससार मे कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं और वही मोक्ष का सुख पाने के योग्य बनाते हैं। हमें ऐसे महान् दानी परमात्मा के प्रति समर्पण करना चाहिए। वह कर्म का फल निश्चित रूप से देता है और सकल सृष्टि मे उसी का नियन्त्रण विद्यमान है ॥५॥९॥

इति नवमो वर्ग ।

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।

सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६॥

पदार्थ —(या) जो (गौ) वाणी (निष्कृतम्) भली-भांति बने (वर्तनिम्) मार्ग को (परि एति) पूर्ण करती है, जो (पयः दुहाना) गौ के तुल्य ही

संसार के प्राणियों के लिये पुष्टिकारक जल देती हुई (अद्यातरः) सतत (अतमी) अन्न भी प्रदान करती है, (सा) वह (वचसाय) सर्वश्रेष्ठ (विबल्वते) विविध लोकों के स्वामी, (दाशुषे) प्रकाश आदि देने वाले सूर्य के सामर्थ्य को (प्रब्रुवाणा) प्रकट करती हुई (देवेभ्यः) जीवों के लिये (हविषा) नाना अन्न से (दाधार) जीवन देती है ।।६।।

भावार्थ.—जो वाणी सत्य मार्ग को पाती है । गौ के तुल्य संसार के प्राणियों को ज्ञान प्रदान कराने मे समर्थ है । वही विविध लोकों के स्वामी परमात्मा के सामर्थ्य को प्रकटाती है । वही विभिन्न शक्तियों के गुणों का वर्णन करती है । हमे उससे प्रभु की वन्दना करनी चाहिए ।।६।।

दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्यप आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी३नि मामृजुः ।।७।।

पदार्थः—(तन्वि) अपनी आत्मा को (नि मामृजु.) जो शुद्ध करते हैं (दिवक्षस) वे ज्ञान को धारण किये हुए, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के तुल्य प्रकाश से ज्ञान-प्रकाश करने वाले जिनकी वाणी है (ऋतावृधः) जो सत्यज्ञान और सत्यव्यवहार को बढ़ाने वाले हैं वे (ऋतस्य योनिम्) सत्य के परम मूल कारण परमब्रह्म का (विमृशन्तः आसते) विचार करते रहते हैं । वे (द्यां) ज्ञान के प्रकाश को थाम कर, अपने (ओजसा) तप से (अप' चक्रु) नाना सत् कर्म करते हैं । (यज्ञ जनित्वी) परस्पर संगति, विद्यादान और यज्ञ करते हैं ।।७।।

भावार्थ —महान् ज्ञानी और उपदेशक प्रभु का मनन करते हैं तथा उसे ही समग्र ज्ञान का आधार मानते हैं । ऐसे लोग ही ज्ञानवर्धन करने वाले एव सत्य के प्रचारक बनकर अपने आत्मा को पवित्र एवं सुशोभित करते हैं ।।७।।

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ।।८।।

पदार्थः—जिस प्रकार (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक, (पूर्व-जावरी) सबसे पूर्व उत्पन्न हुए (सम्-ओकसा) समान स्थान वाले (परि-क्षिता) सीमा पर रहने वाले (घृतवत् पय पिन्वते) जलयुक्त पुष्टिप्रद अन्न सींचते हैं । (ऋतस्य योना) प्राप्त जगत् के आश्रय परमात्मा में वर्तमान होकर रहे ।।८।।

भावार्थ —इस जगत् की सीमा पर सूर्य एव पृथिवीलोक उसी प्रभु के आश्रय पर स्थित हैं । वे ही प्राणीमात्र को तेजस्वी जीवन धारने मे समर्थ रस प्रदान कर सिंचित करते हैं ।।८।।

पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ।।९।।

पदार्थः—(पर्जन्या वाता) मेघ एवं वायु (वृषभा) सुख बरसाने वाले (पुरीषिणा) जल को धारण करने वाले (इन्द्र-वायू) विद्युत् व वायु (वरुणः) सूर्य का (मित्र) सर्वस्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी (ये) जो (पार्थिवास) पृथिवीस्थ (ये अप्सु) जो अन्तरिक्ष में भी हैं । (दिव्यासः) दिव्यगुण पदार्थ हैं उन (देवान्) देवों को (आदित्यान्-अदितिम्) रश्मि व ऊषा को (हवामहे) ज्ञानसिद्धि हेतु सुनें ।।९।।

भावार्थ.—मेघ तथा वायु जो सुख को बरसाने वाले हैं और जल को धारण करते हैं, ये दोनों ही विद्युत् व वायुनाम वाले भी हैं । ये तथा पृथिवी के वनस्पति आदि पदार्थ व दिशाएं व द्युलोक के नक्षत्र हमारे उपयोग मे आए व ज्ञान को बढ़ाने मे सहयोगी सिद्ध हों ।।९।।

त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ।।१०।।१०।।

पदार्थ—हे (ऋभव) मेधावी सामर्थ्यवान् जनो ! (यः) जो (त्वष्टारम्) सूर्य को (वायुम्) वायु को (दैव्या होतारा) इन दोनों प्राण, उदान को, (उषसं) ऊषा को, (स्वस्तये ओहते) सुख-कल्याण के लिए आह्वान करता है और जो (बृहस्पतिः) वेदवाणी, वा महान् विश्व के पालक, (वृत्र-खाद) पापनाशक, (सुमेधसम्) उत्तम बुद्धिमान्, यज्ञमय, (इन्द्रियं) प्रभु की हम उपासना करते हैं, उसी (सोम) उत्तम प्रभु से हम (धन-सा) धनादि सम्पन्न होकर (ईमहे) ज्ञान की याचना करें ।।१०।।

भावार्थः—प्रतिदिन ऊषा की वेला मे अग्नि और वायु से मेधावी जन होम इत्यादि स्वास्थ्य-रक्षार्थ सम्पन्न करें । वे सन्ध्या के द्वारा प्रभु की उपासना करें और अध्यात्मधन अथवा आत्मशान्ति को प्राप्त करें ।।१०।।

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ।।११।।

पदार्थः—(सु-दानव.) कल्याण दात्री सूर्य-रश्मियां (ब्रह्म) अन्न को (गाम्) गौ को (अश्वं) अश्व को, (ओषधीः वनस्पतीः) ओषधियों और वनस्पतियों को (पृथिवीं पर्वतान् अप) भूमियों, पर्वतों और नाना जलों को (जनयन्तः) उत्तम रूप में सम्पन्न करती हुई (दिवि सूर्यं रोहयन्तः) आकाश मे सूर्य को प्रखर प्रकाशित करती हुई, (अधि क्षमि) भूमि पर (आर्या व्रता) नाना श्रेष्ठ कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है, वे सेवन योग्य हैं ।।११।।

भावार्थ —कल्याणदात्री सूर्य की रश्मियो से पृथिवी में अन्न एव पौष्टिकशक्ति उपजती है । गौ, अश्व इत्यादि प्राणियो मे भी उनसे उपयोगी बल एव कर्मशक्ति का सृजन होता है । औषधियो व फलो को भी इन्हीं से शक्ति मिलती है । ये ही सूर्य को आकाश में दीप्त करती हैं । रोग निवारण आदि कर्मों में भी ये प्रभावी ढग से उपयोगी सिद्ध होती हैं ।।११।।

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं१ विश्वकायाव सृजथः ।।१२।।

पदार्थः—हे (अश्विना) सुशिक्षित, उत्तम स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (भुज्युम्) भोग्य पदार्थ की इच्छा वाले पुरुष को (अंहसः निः पिपृथः) पाप से दूर रखो तथा (वध्रिमत्या.) अन्न उपज की (श्याव) वृद्धिकारक, (पुत्र) अनेकों के रक्षक नायक व्यक्ति को (निर अजिन्वतम्) भली प्रकार तृप्त रखो । (कम-द्युवम्) अन्नादि की उपज बढ़ाने की कामना को (वि-मदाय) विशेष आनन्द लाभार्थ (ऊहथु) परस्पर विवाहित करो एव (विष्णाप्व) विविध विद्याओ व व्रतो में निष्णात पुरुष को (विश्वकाय) सबके उपकार हेतु (अव सृजथः) प्रेरित करो वर्षा भी सम्पन्न हो ।।१२।।

भावार्थ —सुयोग्य स्त्री व पुरुष एव ज्योतिर्मय तथा रसयुक्त शक्तियां कृषि वाली भूमि मे उपज वृद्धि के लिए कर्मरत रहे । कृषक एवं व्यापारी को प्रोत्साहन मिले, जिससे कि कृषि एव व्यापार भली-भांति उन्नति पाए । इसकी प्राप्ति के लिए समय पर वर्षा की भी व्यवस्था हो ।।१२।।

पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या ।।१३।।

पदार्थ —(पावीरवी) बाणों से युक्त सेना व (तन्यतु.) ज्ञान विस्तारक विदुषी तथा (एकपात् अज) अजन्मा एकरस (दिव धर्ता) मोक्षधाम का धारक प्रभु, अथवा सूर्य (समुद्रिय सिन्धु·) समुद्र को जाने वाले महानद के तुल्य प्रभु को प्राप्त होने वाला आत्मा, (समुद्रियःआपः) आप्त जन एव (विश्वे देवास) समस्त विद्वान्, (पुरम् ध्या) देहपोषक बुद्धि और (धीभिः) यथायोग्य कर्मों से (सरस्वती) विदुषी (मे वचांसि शृणवन्) मेरे वचनो को सुने और माने ।।१३।।

भावार्थः—परमात्मा का ज्ञान ही अज्ञान का नाश करता है । वेदवाणी ही स्वज्ञान से मानव का उपकार करती है । मोक्ष का धारक प्रभु आप्त विद्वानों तथा ज्ञानसम्पन्न विदुषी नारी यथायोग्य आचरण द्वारा मेरा निवेदन स्वीकारें । द्युलोक धारक सूर्य व विद्युत् तथा नदियां आदि हमारे उपयोग में आए ।।१३।।

विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ।।१४।।

पदार्थ —(विश्वे देवास) प्रकाण्ड विद्वान् वा ज्ञानगण, (धीभिः सह) विभिन्न बुद्धियों व कर्मों सहित, (पुरन्ध्या सह) नगर को धारने वाली विशेष बुद्धि एव नीति सहित, (मनो यजत्राः) मननशील जनगण द्वारा पूज्य तथा उनसे संगति करने वाले, उनके पुजारी, (अमृता) दीर्घायु, (ऋत-ज्ञाः) सत्यविद्या के ज्ञाता; (राति-षाच) दान ग्रहण करने वाले, (अभि साचः) सर्व प्रकार से सघ बना कर रहने वाले, (स्व -विदः) सर्व प्रकार से ऐश्वर्य सुखो के ज्ञाता और पाने वाले (स्वः-गिरः) सुख तथा सर्व प्रकार की वाणियो में (सु-उक्तम्) श्रेष्ठ रीति से उपदिष्ट (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान का (जुषेरत) सेवन कराए ।।१४।।

भावार्थः—प्रकाण्ड विद्वान्, यथार्थ कर्मों का उपदेश देते हैं और बुद्धि प्रदान करते हैं । वे जीवन्मुक्त ज्ञानी जन ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त करते हैं । कर्मशील बनने की प्रेरणा देने वाले हैं । वे ही सर्व प्रकार के ऐश्वर्य सुखो के ज्ञाता है ।।१४।।

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।१५।।११।।

पदार्थ.—(वसिष्ठ) सभी विषयो में सर्वश्रेष्ठ (अमृतान्) जीवन्मुक्त, (देवान्) विद्वानो को (ववन्दे) प्रशासित करे । (ये) जो ज्ञानी (विश्वा भुवना) सारे ज्ञानो को (अभि प्र-तस्थु) अधिकार में रखते हैं (ते) वे (अद्य) सदा (न) हमारे लिये (उरु-गायम् रासन्ताम्) बड़े भारी ज्ञानमय वेद का उपदेश दें । (यूयं स्वस्तिभि नःसदा पात) हे विद्वानो सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करो ।।१५।।११।।

भावार्थः—विद्वान् अपने से उच्च विद्वानों एव जीवन्मुक्तों से ज्ञान को बढ़ा कर आत्मशान्ति की उपलब्धि करें क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम सुख है ।।१५।।

इत्येकादशो वर्ग. ।।

---

[६६]

ऋषिः वसुकर्णो वासुक ।। विश्वेदेवा देवता ।। छन्दः-१, ३, ५—७ जगती । २, १०, १२, १३ निचृज्जगती । ४, ८, ११ विराड् जगती । ९ पादनिचृज्जगती । १४ आर्ची स्वराड् जगती । १५ विराट् त्रिष्टुप् ।। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ।।

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ।।१।।

पदार्थः—(बृहत्-श्रवस) महत् ज्ञान वाले यशस्वी, (ज्योतिः कृत) प्रकाशवान् सूर्य के तुल्य ज्ञान का प्रसार करने वाले और (अध्वरस्य प्र चेतस.) अध्यात्मयज्ञ के रूप में प्रसिद्ध करने वाले (देवान् हुवे) विद्वानो को सादर बुलाता हूँ। (ये) जो (विश्ववेदसः) सर्व ऐश्वर्ययुक्त (इन्द्र-ज्येष्ठास.) प्रभु जिनका इष्ट है ऐसे, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतावृध·) सत्यज्ञान, तेज, न्याय और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, (प्रतर दधातु·) मुझे खूब वृद्धि दें ॥१॥

भावार्थ—महत् ज्ञान वाले, ज्ञानज्योति के प्रसारक, आध्यात्मिक तथा प्रभु की श्रेष्ठतम उपासना का आधार मानने वाले महान् विद्वानो को समय समय पर बुला कर उनसे ज्ञान का लाभ प्राप्त करना चाहिए, जिससे कि हममें सत्यज्ञान, न्याय, तेज व ऐश्वर्य की वृद्धि होती रहे ॥१॥

इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः।

मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (इन्द्र-प्रसूता) ऐश्वर्यवान् राजा एव तत्वज्ञानी जनों से प्रेरित और अनुशासित, (वरुण-प्रशिष्टा·) स्वय वरण किये गए गुरु व श्रेष्ठ जन द्वारा उत्तम रीति से प्रशिक्षित, (सूर्यस्य ज्योतिष) सूर्य ज्योति के अंश के ज्ञान को पा रहे हैं वे (सूरय) विद्वान् (माघोने) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपासक (वृजने) बलवान् (मरुद्गणे) विद्वानो व वीर पुरुषो में (यज्ञं जनयन्त मन्म धीमहि) हम ज्ञानयज्ञ करते हुए प्रभु का ज्ञान धारें ॥२॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् राजा एवं तत्वज्ञानी जनो से प्रेरित व श्रेष्ठ विद्वानो से शिक्षा ग्रहण किए हुए, प्रखर ज्ञान के आलोक को पाए हुए, प्रभु के उपासक विद्वानो से व्यवहारज्ञान व अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति करके ही अभ्युदय व निःश्रेयस प्राप्त करें ॥२॥

इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु।

रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र न· वसुभि.न गयम् परि पातु) ऐश्वर्यवान् राजा विभिन्न ऐश्वर्यों से हमारे गृह को पूर्ण करें व रक्षा करे। (अदितिः) सूर्य (आदित्यैः) मासो, ऋतुओ के द्वारा (न शर्म यच्छतु) हमें सुख दे। (रुद्र) दुष्टो का दलन कर्त्ता और सबके दुःखो को मिटाने वाला (देवः) तेजस्वी जन (रुद्रेभि न. मृळयाति) उसी प्रकार के उत्तम पुरुषों एव पीड़ाहर्त्ता पदार्थों से हमें सुख दे। (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी जन (नः) हमें (सुविताय) सुख प्राप्ति हेतु, (ग्नाभि.) वाणियो से (जिन्वतु) आह्लादित करें ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् राजा विभिन्न ऐश्वर्यों से हमारे घरो को पूर्ण कर हमारी रक्षा करता है। सूर्य भी मासो एव ऋतुओ द्वारा हमें सुख देता है। दुष्ट दलनकर्त्ता तेजस्वी उत्तम पुरुषों की संगति भी हमें सुख देती है। प्रभु की वाणी ही हमारी स्थिति को ठीक करती है ॥३॥

अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत्।

देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून् रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४॥

पदार्थ—(अदितिः) आचार्य को, (द्यावा पृथिवी) भूमि और सूर्यवत् तेजस्वी माता-पिता को (महत् ऋत) उनसे मिले महान् सत्यज्ञान को, (इन्द्राविष्णू) विद्युत् तथा सूर्य के ज्ञान वालो को, (मरुत·) दुष्टो के संहारक जन, (बृहत् स्व) बड़े सुखदायी स्थान को, (आदित्यान् देवान्) अखण्ड ब्रह्मचारियों को (वसून् रुद्रान्) बसाने वाले उपदेशको को (सु-दंससं) उत्तम कर्म करने वाले (सवितार) सबके प्रेरक और उत्पादक प्रभु (अवसे) रक्षा और समृद्धि के लिए (हवामहे) आमन्त्रण देते हैं ॥४॥

भावार्थ—मानव को अपनी रक्षा हेतु माता-पिता, श्रेष्ठ आचार्यों, वैज्ञानिकों उपदेशकों आदि के अनुभवो तथा ज्ञान से लाभान्वित होना चाहिए तथा सर्वरक्षक प्रभु की उपासना से अध्यात्मज्ञान पाना चाहिए ॥४॥

सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना।

ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५॥१२॥

पदार्थ—(सरस्वान् धीभि.) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा जो ज्ञानवान् और (धृतव्रतः वरुण) व्रतपालक श्रेष्ठ जन, (विष्णु) सबमें बसा प्रभु, (महिमा) महत्ता की भावना एव (वायु·) वायु तथा (अश्विना) जितेन्द्रिय नर-नारी व (अमृता) दीर्घजीवी जन (विश्व वेदस.) समस्त ज्ञान के ज्ञाता (ब्रह्म-कृत·) वेदज्ञान के उपदेशक जन, (न) हमे (अंहस) पाप का (शर्म) नाश करने वाला (त्रि वरूथं) तीनो प्रकार के दुःखों को दूर करने वाला गृह अर्थात् मोक्ष प्रदान कराए ॥५॥१२॥

भावार्थः—उत्तम उपदेशक, आचार्य, ब्रह्मज्ञान का अध्यापक, सुशिक्षित नर-नारी एवं साधक जन को, आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं भौतिक सभी प्रकार की पीड़ाओं से बचाए। वे ही हमे पाप बन्धनों से पृथक् रखें और प्रभु हमें मोक्ष धाम प्रदान कराए, यही कामना है ॥५॥१२॥

इति द्वादशो वर्ग ॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः।

वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६॥

पदार्थः—(यज्ञो वृषा) वन्दनीय प्रभु सुखों की वर्षा करे। (यज्ञिया देवाः वृषण. सन्तु) यज्ञवर्ती आदरणीय विद्वान् जन सुखों के दाता और बलवान् हों। (हविः-कृत वृषणः) दान करने वाले सुख की वर्षा करने वाले हों (ऋतावरी द्यावा पृथिवी वृषणा) सत्यव्रती प्रजा व राजा परस्पर अन्न, जल और ज्ञान से संपन्न हों। (पर्जन्य· वृषा) उत्पन्न होने वाला पुत्र भी सुखदायक हो। (वृषस्तुभः वृषणः सन्तु) उस सर्व-सुखदाता की स्तुति करने वाले भी सुख देने वाले हों ॥६॥

भावार्थः—वन्दनीय प्रभु ही समागम योग्य है, वही सुखों का दाता है। उसके सुखदाता होने पर उसी की कृपा से राजा एवं प्रजा विद्वान्, उपासक एव पुत्र सभी सुखवर्षक हो। इनकी जो स्तुति करने वाले हैं वे ही हमें सुखों को दें ॥६॥

अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे।

यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७॥

पदार्थः—मैं (वाज-सातये) ज्ञान, बल ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करने के लिए (अग्नी सोमा) अग्नि व ओषधि के तुल्य तेजस्वी और शान्तिदायक विद्वानों से (उप ब्रुवे) अर्चना करता हूँ। (पुरु-प्रशस्ता) अनेकों से प्रशस्त (वृषणा) सुखदाता हो (उप ब्रुवे) मैं प्रार्थना करता हू और (यौ) जिस भाँति (वृषणः) दूसरे सुख देने वाले जन (देव-यज्यया) विद्वान् एवं तेजस्वी पुरुषों के आदर करने की रीति से (ईजिरे) आदर-आतिथ्य करते हैं (ता) वे दोनो (नः) हमारे (त्रि-वरूथम्) तीनो प्रकार के सतापों को दूर करने वाला (शर्म) गृह तथा सुख (यंसत) प्रदान करें ॥७॥

भावार्थ—ज्ञान का प्रकाश करने वाले एवं शान्ति का प्रसार करने वाले विद्वज्जन अन्य लोगो की सहायता से ज्ञान व शान्ति को प्रसारे जिससे सर्वत्र संताप दूर होकर सुख की वृद्धि हो सके ॥७॥

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः।

अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥८॥

पदार्थ—(धृतव्रता) दृढ़ संकल्पीजनो को स्थिर रूप से (क्षत्रिया·) बलवान्, (यज्ञ निष्कृत) यज्ञ-कर्मों को पूर्ण रूप से करने वाले, (बृहद्-दिवाः) बड़े तेजस्वी, ज्ञानी, (अध्वराणाम्) अहिंसनीय कर्मों के (अभि श्रिय) भली प्रकार से शोभायुक्त, (अग्नि-होतार·) प्रभु से उपासक (ऋत-साप.) सत्य प्रतिज्ञा वचन पर सब बल बनाने वाले (अद्रुह) द्रोह आदि न करने वाले होकर, (वृत्र-तूर्ये) दुष्टों या बढ़ते पाप का नाश करने के लिए (अप अनु असृजन्) कर्म या उद्योग के अनुरूप गति करते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो व्यक्ति दृढ़ संकल्पी श्रेष्ठ जनों के समान आचरण करते हैं वे ही सच्चे धन को पाते हैं। जो महानुभाव प्रभु के उपासक हैं और किसी से द्रोह नहीं करते तथा सदैव सत्य का परिपालन करते हैं वे ही पाप को मिटाने के लिए ठीक प्रकार से प्रयत्न कर पाते हैं ॥८॥

द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया।

अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३नि मामृजुः ॥९॥

पदार्थः—विद्वान् जन (द्यावा पृथिवी) सूर्य एव पृथिवी इन दोनों के आश्रय पर (व्रता) अपने विभिन्न उत्तम कर्मों से (आप·) जलों (ओषधी) नाना ओषधियों को तथा (यज्ञिया वनिनानि) यज्ञोपयोगी वृक्षो एव जलो से सम्पन्न अन्नो को (जनयन्) उपजाएं और वे (देवासः) विद्वान् (स्व अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (देवा·) तेजस्वी होकर (ऊतये) रक्षा के लिए (तन्वि) अपने शरीर में विद्यमान (वशं नि मामृजुः) निर्मल कामना व विचारों को बसाए ॥९॥

भावार्थ—विद्वानो का कर्त्तव्य है कि वे यज्ञोपयोगी वृक्षों एव बलदायक अन्नों को तथा फलो को उपजाए तथा उनसे यज्ञ रचाकर स्वास्थ्य लाभ करें और जनता को भी स्वस्थ रखें एव निर्मल तथा शुद्ध विचारों को उसके मन में बसाए ॥९॥

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः।

आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०॥१३॥

पदार्थः—(दिव धर्तारः) प्रकाश को धारण करने वाले लोग (ऋभवः) सत्य और तेज से दीप्त, (सु हस्ता) हस्तक्रिया कुशल और (वाता पर्जन्या) वायु-मेघवत् बलशाली, (महिषस्य तन्यतो·) बड़े विस्तृत कार्य के कर्त्ता प्रभु या सूर्य का (आप) आप्त (ओषधीः) एवं ओषधियोंवत् तेजोधारी व्यक्ति (नः गिरः प्र तिरन्तु) हमारी वाणियों की वृद्धि करे (राति भगः) दानशील, ऐश्वर्यवान् परमात्मा और (वाजिन·) ज्ञानवान् जन (मे हवं यन्तु) मेरे आह्वान को सुनें व पूर्ण करें ॥१०॥१३॥

भावार्थः—महत् ज्ञान प्रकाश से युक्त प्रभु की ज्ञानरश्मियां तथा सूर्य की किरणें व वायु व मेघ ओषधियो का सम्पादन करते हैं। ज्ञानी जन भी हमारी प्रार्थना स्वीकारते हैं ॥१०॥१३॥

इति त्रयोदशो वर्ग ॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११॥

पदार्थ —(समुद्र) सागर, (सिन्धुः) महानदी, (रज) पृथिवीलोक (अन्तरिक्षम्) आकाश, (एकपात् अज) गतिशील तथा अकेला सौरमण्डल का पालक सूर्य, (तनयित्नुः) विद्युत्, (अर्णव.) जलाशय, (बुध्न्य अहिः) आकाशस्थ मेघ ये सब हमे बढ़ाए और (विश्वे-देवासः) समस्त विद्वान् गण (मे वचांसि शृणवत्) मेरी प्रार्थना व वचनो का श्रवण करें ॥११॥

भावार्थः—सागर, महानदी, पृथिवी, आकाश, सूर्य, विद्युत्, जलाशय एव आकाश स्थित मेघ सभी हमे बढ़ाए और सबल विद्वान् जन भी हमारी प्रार्थनाओ को सुनें ॥११॥

स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत ॥१२॥

पदार्थः—हे (मनव) मननशील विद्वानो ! (वः) आप लोगो की (देववीतये) सुखप्रद सगति के लिए (स्याम) हम हो । (न. यज्ञं) हमारे ज्ञानयज्ञ को (प्राञ्चं) पूजनीय (साधुया) साधु रूप मे (प्र नयत) अच्छी प्रकार परिणत करो । (आदित्या. रुद्राः वसव.) सर्व श्रेणी के ब्रह्मवादी तथा शोभन ये सब (सुदानव.) सुखप्रद ज्ञान देने वाले हों (इमा शस्यमानानि) इन उच्चारण किये वेदवचनों को वा प्रशंसनीय ब्राह्मण कुल को (प्र जिन्वत) वृद्धि दें ॥१२॥

भावार्थः—हमे विद्वानो का सग कर उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा आध्यात्मिक साधना मे लगना चाहिए । हम सभी श्रेणी के ब्रह्मचारियो से उनके द्वारा किये गये मन्त्रविज्ञानो का व वेदवचनों का भी श्रवण करें और उनको आदर मान दें ॥१२॥

दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः ॥१३॥

पदार्थ —हे (प्रथमा) प्रभुदेव विख्यात (पुरोहिता) पुरोहित प्रमुख-समक्ष वर्तमान, (दैव्या होतारः) देवो के बीच उनको शक्ति, ज्ञान देने वाले, उपदेष्टा गुरुजनो ! मैं (साधुया) सद्भाव से (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य, न्यायानुकूल, वेदोपदिष्ट मार्ग का (अनु एमि) अनुगमन करू । इसके लिये हम (क्षेत्रस्य पतिम्) देहपालक आत्मा को जो कि (प्रति-वेशम्) प्रत्येक शरीर मे विद्यमान है और (अमृतान) अमरणधर्मा है उसकी (अप्रयुच्छत) अप्रमादी (विश्वान् देवान्) समस्त विद्वान् वन्दना करते है ॥१३॥

भावार्थ —उपदेष्टा गुरुजन, उपदेशको से वेदो का ज्ञान प्राप्त कर हम उनके अनुरूप ही आचरण करें तथा प्रभु की वन्दना, प्रार्थना, उपासना कर जीवन्मुक्तो की श्रेणी पा जाए ॥१३॥

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥

पदार्थ —(वसिष्ठासः) वसु ब्रह्मचारियो मे श्रेष्ठ आचार्य (पितृवत्) पिता के समान ही गुरु को मानकर (वाचम् अक्रत) वाणी का उपदेश करें । वे (देवान्) विद्याभिलाषियो को (स्वस्तये) सुख कल्याण हेतु (ऋषिवत्) तत्वार्थदर्शी के समान (ईळाना) स्तुति उपदेश करते हुए, (ज्ञातयः प्रीता इव) प्रिय बन्धुओ के तुल्य ही (देवास.) दिव्य सुख प्रदान करते हुए, (अस्मे वसु अव धूनुत) हमे नाना ऐश्वर्य दे ॥१४॥

भावार्थ.—ब्रह्मचर्य तथा वेदाध्ययन मे निष्णात विद्वज्जनो को पितृतुल्य मान कर हम उनका आदर करें । जिन तत्वार्थदर्शियो ने प्रभु का साक्षात्कार किया है, उन्हें भी हम ऋषियो की भाँति सम्मानित कर अध्यात्म-लाभ लें । विद्वानो को बन्धु तुल्य स्नेह से देखते हुए उन्हें निमन्त्रित कर हम उनसे ज्ञान का उपदेश ग्रहण करें ॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥१४॥

पदार्थः—इस मन्त्र की व्याख्या पहले सूक्त के अन्तिम मन्त्र के समान ही है ॥१५॥१४॥

भावार्थ —इस मन्त्र की व्याख्या पहले सूक्त के अन्तिम मन्त्र के समान ही है ॥१५॥१४॥

इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

---

[६७]

अयास्य आंगिरस ऋषि ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २-७ ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ८—१०, १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

पदार्थ —(न) हमारा पिता परमात्मा (ऋत-प्रजाताम्) स्वकीय ज्ञान मे विख्यात (सप्त-शीर्ष्णीम) इन सात छन्दो शिरो वाली (इमां) इस (धियं) वेदवाणी को (अविन्दत) प्रकटाता है और वह (विश्व-जन्यः) समस्तजनों का हितकर्ता (अयास्यः) मुखस्थ प्राणवत् जीवनाधार होकर (इन्द्राय) तत्वदर्शी आत्मा के प्रति (उक्थम्) वचनोपदेश (शसन्) करता हुआ (तुरीयं स्वित् जनयत्) तुरीय परम पद को बताता हुआ मुक्ति प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थ —परमपिता परमात्मा सात छन्दयुक्त बहुत ज्ञान से परिपूर्ण वाणी का उपदेश देता है । वह किसी बाह्य प्रयास की अपेक्षा रखे बिना सहज भाव से ही ससार का सृजन करता है । वही मानव जीवन के लिये हितकारी उपदेश देता है । हम ऐसे प्रभु की मुक्ति-प्राप्ति-हेतु प्रार्थना करें ॥१॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

पदार्थ —(ऋतं शसन्त) वेद के सत्यज्ञान का उपदेश करते हुए, (ऋजु दीध्याना:) धर्म-मार्ग का ध्यान करते हुए (दिव असुरस्य) प्रकाशस्वरूप एव प्राणप्रद प्रभु के (पुत्रास.) पुत्र रूप, (वीराः) विविध विद्याओ के उपदेष्टा (अङ्गिरसः) ज्ञानी जन विप्र कहलाते हुए, (यज्ञस्य) पूज्य परमात्मा के (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (धाम) तेजस्वी धाम को (मनन्त) विचारते और दूसरो को उसका उपदेश करते है ॥२॥

भावार्थ —ज्ञान प्रकाशक प्रभु के पुत्रतुल्य परम ऋषि वेदज्ञान का उपदेश करते हुए, सरल स्वभाव वाले प्रभु का ध्यान करते हुए, प्राणप्रद प्रभु के ज्ञानी, प्राणो के स्वाधीन प्रेरित करने वाले सयमी विशेषत तृप्त करने वाले प्रभु को धारण करते हुए उपासक परमात्मा के धाम-स्वरूप को मानते हैं ॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

पदार्थ —(हसै इव) हसो के समान विवेकी उपदेष्टा मित्रो के साथ (बृहस्पति) वेदवाणी व स्तुतियो का पालक विद्वान् (अश्मन्मयानि नहना) विषय के पत्थरों से बने नाना बन्धनो को (वि अस्यन्) छिन्न-भिन्न करता हुआ, (गा) नाना वाणियो को (अभि कनिक्रदत्) बार बार बोलता है । (उत च) और वह (विद्वान्) विद्वान् (गा प्र अस्तौत उत अगायत् च) वेदवाणियो का दूसरो को उपदेश करता है और स्वय उत्तम रीति से उनका गान या वर्णन भी करता है ॥३॥

भावार्थ —वेद के वचनो को बताने वाला स्तुतिकर्ता, महान् योगी विद्वान्, पाप का हनन करने वाले, आध्यात्मिक जनों के साथ विषय पाषाणों के बन्धन काट देता है और सदुपदेश देकर लोगो को सन्मार्ग दर्शाता है ॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

पदार्थ —(बृहस्पतिः) वेद-वाणी या चेतना का पालक विद्वान्, (गुहा तिष्ठन्ती) इस देह में उपस्थित (गा) रक्तधाराओ को (द्वाभ्याम् अव एकया पर) दो नीचे की और एक ऊपर की रक्त नाडी से प्रेरित करता है । वह (अनृतस्य) चेतनारहित जड तत्व के बने (सेतौ) बन्धन रूपी इस देह मे, (तमसि) घोर तम मे (ज्योति. इच्छन्) प्रकाश करता हुआ, (उस्रा. उत् आ अकः) ज्ञानमयी उषा को प्रकटाता है और (तिस्रः आव.) ऋक्, यजु, साम रूप तीन वाणियो को उभारता है ॥४॥

भावार्थ.—वेद-विद्या का बताने वाला सांसारिक सुख तथा व्यवहार को सिद्ध करता ही है तथा अध्यात्म मोक्ष को भी सिद्ध करता है, स्वय के सांसारिक बन्धनों व अज्ञानान्धकार से स्वय को पृथक् रखता है और दूसरो को भी उनसे पृथक् होने को प्रेरित करता है । ऐसा विद्वान् ही वेद का सच्चा प्रचारक व आश्रय योग्य है ॥४॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

पदार्थ —वह (बृहस्पति.) महान् वाणी व शक्ति का पालक वक्ता (शयथ) स्व शरीर मे प्राप्त होता हुआ (अपाचीम्) निकृष्ट वासना को (ईम् पुरम् विभिद्य) विविध प्रकार से छिन्न-भिन्न करके, (साकम्) एक साथ ही (उदधे.) संसार-सागर के (त्रीणि) तीन बन्धनो को (नि: अकृन्तत्) काट देता है । तब वह (द्यौ स्तनयन् इव) गर्जते मेघ के समान होता है और (उषसम्) उषा, (सूर्यम्) सूर्य (गाम्) वाणी एव (अर्कम्) प्राण तथा अन्न को (विवेद) पाता है ॥५॥

भावार्थ —यथार्थ रूप मे वैदिक ज्ञान को जानने व बताने वाला इसी शरीर मे रहते हुए भी अपनी सारी वासनाओ को तिरोहित कर देता है । अन्त मे वह इस स्थूल-सूक्ष्म कारण शारीरिक बन्धनों से मुक्त हो प्रभु की उच्च स्थिति और उसके आश्रय को प्राप्त कर लेता है ॥५॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥१५॥

पदार्थ —(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् व शत्रुओ को दमन करने वाला तेजस्वी राजा, (दुघानां) दुधार गौओं के तुल्य ऐश्वर्य से राज्य को पूर्णता देने वाली (विश) प्रजा पर (रक्षितारम्) अवरोध डालने वाले व (वलं) घेरा डालने वाले प्रति-

रोधक वर्ग को, (करेण इव) अपने प्रबल हस्त के तुल्य बलशाली (रवेण) अपने आज्ञावचन की गर्जना से ही (वि अकर्त) भांति-भांति से छिन्न-भिन्न करता है (स्वेदाञ्जिभिः) और वह अव्यक्त शासनों से तथा स्नेह से प्रजा को बन्धनादि से छुड़ाने आदि से ख्याति वाले लोगों की सहायता से (आशिर) आज्ञानुरूप ऐश्वर्य की प्राप्ति चाहता हुआ, (पणिम्) प्रजा को सताने वाले वर्ग को (आरोदयत) रुलाए, उसे दण्डित करे और जो (गा अमुष्णात्) प्रजा की भूमियों व पशु आदि को चुरा लेता है—उनको देश से ले जाता है ।।६।।१५।।

भावार्थः—तेजस्वी शासक को अपना प्रभाव इस प्रकार बढ़ाना चाहिए कि प्रजा को बहकाने वाला व राज्यकार्य में अवरोध डालने वाला उसकी घोषणा मात्र से ही आतंकित हो जाए, जो राष्ट्र की सम्पदा चुराने वालों को देश से निकाल दे ।।६।।१५।।

इति पञ्चदशो वर्गः ।

स ईं स॒त्येभिः॒ सखि॑भिः शु॒चद्भि॒र्गोधा॑यसं॒ वि ध॑न॒सैर॑दर्दः ।
ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्वृष॑भिर्व॒राहै॑र्घ॒र्मस्वे॑देभि॒र्द्रवि॑णं॒ व्या॑नट् ॥७॥

पदार्थः—(स) वह (सत्येभिः) सत्याचरणशील, (शुचद्भिः) दूसरों को भी पवित्र करने वाले, (धनसैः) विभिन्न धनों के देने वाले वेतनबद्ध, (सखिभिः) राजा के तुल्य नाम धारने वाले अध्यक्षों द्वारा (गो-धायस) भूमि आदि को हड़पने वाले शत्रु को (वि-अदर्दः) विशेष रूप से नष्ट करता है। वह (ब्रह्मणः पतिः) महान् राष्ट्र का पालक राजा (वृषभिः) बलवान्, (वराहैः) श्रेष्ठ वचन बोलने वाले, (घर्मस्वेदेभिः) कठोर परिश्रम करने वाले योग्य तपस्वी और परिश्रमी जनों से (द्रविणं व्यानट्) उत्तम धनैश्वर्य प्राप्त करता है, वही योग्य है ।।७।।

भावार्थ—जो शासक गुणवान्, पावन हृदय वाले, सत्यशील प्रजाजनों को सहयोग दे व उपद्रवियों को दण्डित करे तथा सज्जनों की पुण्य की कमाई को उपहार रूप में लेता है, वही श्रेष्ठ शासक है ।।७।।

ते स॒त्येन॒ मन॑सा॒ गोप॑तिं॒ गा इ॑या॒नास॑ इषणयन्त धी॒भिः ।
बृह॒स्पति॑र्मि॒थोअ॑वद्यपेभि॒रुदु॒स्रिया॑ असृजत स्व॒युग्भिः॑ ॥८॥

पदार्थ—(ते) वे (गा इयानास) भूमियों के स्वामी माण्डलिक राजा (सत्येन मनसा) सत्य चित्त एवं ज्ञान से तथा (धीभिः) सत्कर्मों से (गो पतिम्) राष्ट्र के मुख्य शासक को (इषणयन्त) चाहें। वह (बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का स्वामी शासक परस्पर एक-दूसरे को घृणित कर्मों से बचाने वाले, (स्व युग्भिः) तथा स्वयं के प्रति सद्भावों वाले कर्मचारियों की सहायता से (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को (उत् असृजत) श्रेष्ठ बनाता है और उनको दुःख-बन्धनों से मुक्ति दिलाता है ।।८।।

भावार्थ—जब श्रेष्ठ जन जो सत्याचरण युक्त है, राष्ट्र के प्रमुख को सहयोग देते हैं तो राष्ट्र निन्दनीय कर्मों से मुक्ति पाता है और प्रजाजन भी दुःख तथा कष्टों से मुक्त रहते हैं ।।८।।

तं व॒र्धय॑न्तो म॒तिभिः॑ शि॒वाभिः॑ सिं॒हमि॑व॒ नान॑दतं स॒धस्थे॑ ।
बृह॒स्पतिं॒ वृष॑णं॒ शूर॑सातौ॒ भरे॑भरे॒ अनु॑ मदेम जि॒ष्णुम् ॥९॥

पदार्थ—प्रजाजन (सिंहम् इव) सिंह के समान (नानदतं) प्रबल घोषणा करते हुए (तं) उस राजा को (शिवाभिः मतिभिः) कल्याणकारिणी वाणियों एवं विचारों से (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए, (शूर-सातौ) शूरवीरों द्वारा करने योग्य संग्राम में (वृषणं) बलवान् शत्रुओं पर बाणादि फेंकने वाले (बृहस्पतिम्) महान् राष्ट्र के स्वामी को (भरे-भरे) प्रत्येक युद्ध तथा प्रजापालन के कार्य में (अनु मदेम) उसकी सहायता करके प्रसन्न करें और स्वयं भी उसके कार्यों का अनुमोदन करें ।।९।।

भावार्थ—सिंह के सदृश शौर्य-सम्पन्न कल्याणकारी घोषणा करते हुए राजा को प्रजाजन प्रोत्साहन देते हैं और शत्रुसंहार-हेतु होने वाले संग्राम में सैनिक भी उसका हृदय से अनुमोदन करते हैं ।।९।।

य॒दा वाज॒मस॑नद्वि॒श्वरू॑प॒मा द्यामरु॑क्ष॒दुत्त॑राणि॒ सद्म॑ ।
बृह॒स्पतिं॒ वृष॑णं व॒र्धय॑न्तो॒ नाना॒ सन्तो॒ बिभ्र॑तो॒ ज्योति॑रा॒सा ॥१०॥

पदार्थः—जो राष्ट्रपालक सर्व प्रकार का ऐश्वर्य, अन्न, घृत आदि पदार्थ प्रजा जनों को प्रदान करता है वह स्वयं (द्याम् उत्तराणि सद्म) राज पालक पद को प्राप्त होता है और उत्तम वस्तुओं के पदों को पाता है। उसके अधीनस्थ प्रजाजन भी उसे बढ़ाते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं ।।१०।।

भावार्थः—जो जन पालक राजा प्रजा के लिए ऐश्वर्य, अन्न, घृत आदि पदार्थ प्रदान करता है वही वास्तव में राजपद को पाने का सही अधिकारी है। ऐसा राजा प्रजाजनों को सुखी कर उनकी प्रशंसा का पात्र बनता है ।।१०।।

स॒त्याम॒शिषं॑ कृणुता वयो॒धै की॒रिं चि॒द्ध्यव॑थ॒ स्वेभि॒रेवैः॑ ।
प॒श्चा मृधो॒ अप॑ भवन्तु॒ विश्वा॒स्तद्रो॑दसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् जनो ! आप (वयोधैः) दीर्घ जीवन धारने के लिए (सत्याम् आशिष) सत्य आशीर्वाद एवं सत्य आशा को सफल करो तथा (स्वेभिः एवैः) स्व ज्ञानों व उद्योगों से (कीरिम् चित्) उपदेष्टा, ज्ञानवान् वा प्रार्थी की (अवथ) रक्षा करो। (मृधः) हिंसक प्रवृत्तियां (पश्चा) पीछे रह जावें, (अप भवन्तु) और दूर हो जावें। हे (विश्वमिन्वे) सभी को प्रसन्न तथा पुष्ट करने वाले स्त्री-पुरुषो ! हे (रोदसी) दुष्टों के पीड़क वा रोगहर्ता सेनापति तथा वैद्य जनो ! आप (शृणुतम्) सुनो एवं तदनुसार कर्त्तव्य की पूर्ति करो ।।११।।

भावार्थः—राज्याधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे प्रजा की प्रार्थनाएं सुनें और ज्ञान व सत्य के उपदेशकों की रक्षा करें। अपने राष्ट्र को आपदाओं से मुक्त रखें तथा प्राणियों का हित साधन करें व रोगादि भी प्रजा के कष्ट हरें ।।११।।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑ ।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॑न्दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१२॥१६॥

पदार्थ—(इन्द्र) राजा (मह्ना) अपनी महत्ता से (महतः अर्णवस्य अर्बुदस्य) महान् ज्ञान के सागर या वाग्विषय के श्रेष्ठतम आसीन वेद के ज्ञान को प्रकट करता है (अहिम् अहन्) मेघ जैसे ज्ञान को ढकने वाले अन्धकार को नष्ट करता है (सप्त सिन्धून्) नदी वेग से आगे बढ़ने वाले शत्रुसैन्यों को हटाता है। (देवैः द्यावा पृथिवी न प्रावतम्) विद्वानों के साथ सभा एवं प्रजा-रक्षा की व्यवस्था करे ।।१२।।१६।।

भावार्थ—परमपिता परमात्मा अपनी महान् शक्ति के द्वारा वेद को प्रकट करता है, जो विज्ञान का सागर व वाग्विद्या का मूर्द्धरूप है। राजा को भी वेद का प्रचार करना चाहिए जिससे अज्ञान का अन्धकार हरे। उन्हीं से प्रजा के सुख का मार्ग प्रशस्त होता है ।।१२।।१६।।

इति षोडशो वर्गः ।

[६८]

अयास्य ऋषि ।। *बृहस्पतिर्देवता* । *छन्द*—१, १२ विराट् त्रिष्टुप् । २, ८—११ त्रिष्टुप् । ३—७ निचृत् त्रिष्टुप् ।। *द्वादशर्चं सूक्तम्* ।।

उ॒द॒प्रुतो॒ न वयो॒ रक्ष॑माणा॒ वाव॑दतो अ॒भ्रिय॑स्येव॒ घोषाः॑ ।
गि॒रि॒भ्रजो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तो॒ बृह॒स्पति॑म॒भ्य१र्का अ॑नावन् ॥१॥

पदार्थ—(मदन्तः) अति हर्षित (अर्काः) स्तुतिकर्ता भक्तजन, (बृहस्पतिम्) महान् ब्रह्माण्ड-पालक परमेश्वर की (अनावन्) उत्साह से स्तुति करते हैं, (उदप्रुत वयः न) जैसे जल पर तैरने वाले पक्षी कलरव करते हैं या (रक्षमाणाः) खेत के रक्षक पक्षियों को उच्च स्वर से हांका करते हैं, जैसे (वावदतः न) शब्दायमान (अभ्रियस्य घोषाः न) मेघ गर्जन होता रहता है, जैसे (गिरिभ्रज ऊर्मय न) पर्वतों से घिरी जलधाराएं ध्वनि करती हैं, वैसे ही स्तुति करने वाले प्रभु की वन्दना करते हैं ।।१।।

भावार्थः—आस्तिक जन विभिन्न प्रकार से परमेश्वर की वन्दना करते हैं। जैसे जल पर तैरने वाले पक्षीगण कलरव करते हैं, जैसे खेत की रक्षा करने वाले पक्षियों को उच्च स्वर से हांकते हैं, वर्षा के लिए उद्यत मेघों की जिस भांति गर्जना होती है, जैसे पर्वत से गिरती जलधाराएं ध्वनि करती हैं ऐसे ही स्तोता प्रभु की सस्वर वन्दना करते हैं ।।१।।

सं गोभि॑राङ्गिर॒सो नक्ष॑माणो॒ भग॑ इ॒वेद॑र्य॒मणं॑ निनाय ।
जने॑ मि॒त्रो न दम्प॑ती अनक्ति॒ बृह॑स्पते वा॒जया॒शूँरि॑वा॒जौ ॥२॥

पदार्थ—(आंगिरस) जैसे विद्वान् का शिष्य (नक्षमाणः) बढ़ता हुआ (गोभि सं निनाय) स्व ज्ञान द्वारा मनुष्य को अंधेरे में भी मार्ग दिखाता है, वैसे ही (आंगिरसः) ज्ञानवान जनों में प्रमुख विद्वान् (नक्षमाणः) विद्या के क्षेत्र में अधिक महान् ज्ञान रखता हुआ (गोभिः) वाणियों से (सं निनाय) शिष्य को सही मार्ग प्रदर्शित करे और (भग इव इत् अर्यमणम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा जिस प्रकार (गोभिः) आज्ञावाणियों के द्वारा उपासकों को, वैसे ही प्रमुख विद्वान् (गोभिः सं निनाय) वेदवाणियों से सन्मार्ग पर लाता है। (जने) जन समूह में जैसे (मित्रः दम्पती) पुरोहित वर-वधू को (सम्) आपस में स्नेह करने की (अनक्ति)प्रेरणा करता है उसी भांति वह प्रमुख विद्वान् प्रभु एवं मुझमें स्नेह निर्माण करे। (आजौ) संग्राम में जैसे वीर नायक (आशून्) वेगवान् घोड़ों को (वाजयति) वेग से चलाता है उसी प्रकार (बृहस्पते) देववाणी का पालक विद्वान् आचार्य (आजौ) जगत् रूप विजय के क्षेत्र में (आशून्) कर्मफल के भोगने वाले हम जीवों को (वाजय) शक्ति दे ।।२।।

भावार्थ—विद्वान् का शिष्य विद्या में रमण करता हुआ अज्ञान के अन्धकार को विदीर्ण करता है और अपनी स्तुतियों द्वारा प्रभु का साक्षात्कार करता है। ऐसे श्रेष्ठ जन को ही परमात्मा मोक्ष प्रदान करता है ।।२।।

सा॒ध्व॒र्या अ॑ति॒थिनी॑रिषि॒राः स्पा॒र्हाः सु॒वर्णा॑ अनव॒द्यरू॑पाः ।
बृह॒स्पतिः॒ पर्व॑तेभ्यो वि॒तूर्या॒ निर्गा ऊ॑पे॒ यव॑मिव स्थि॒विभ्यः॑ ॥३॥

पदार्थ—जैसे किसान (पर्वतेभ्यः) पर्वतों से (गाः) जल की धाराओं को (वि-तूर्य) परिश्रम से काटता है और (यवम् इव ऊपे) जौ आदि अनाज बोता है और जिस प्रकार सूर्य एवं विद्युत् (पर्वतेभ्य) मेघों से (गाः वि-तूर्य) प्रशंसनीय वेदवाणियों या जल धाराओं को देता है, उसी भांति (बृहस्पतिः) वह महान्

शक्तियों का स्वामी परमेश्वर (स्थिविभ्यः) स्थिर, (पर्वतेभ्यः) एव पालक शक्तियों से युक्त सूर्यादि पदार्थों से जीवनशक्ति के तत्वों को (आ. निक्षपे) अनेक भूमियों के प्रति फैलाता है जैसे भूमियों पर जौ छिटकाए जाते हैं। ये भूमियां (साधु-अर्याः) जो कि उत्तम स्वामियों और वैश्यजनों से युक्त हैं, विद्वान् अतिथि उनमें नेता का कार्य करते हैं, जो कि अन्न से परिपूर्ण हैं (स्पार्हाः) चाहने योग्य, (सु वर्णा) उत्तम वर्णयुक्त, (अनवद्य-रूपाः) तथा अनिन्दनीय हैं ॥३॥

भावार्थ.—प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ मे आदि ऋषियो के अन्तःकरण से विश्व की कल्याणसाधिका वेदवाणी को प्रकाशित किया है। वे ही दोष हरने वाली हैं। प्रजा के हित के आकांक्षी राजा को भी पर्वतो से नहरें आदि निकालकर उन्हें विकसित करना चाहिए, ताकि धरती अन्न-जल से भरपूर हो व प्रजा सुखी तथा समृद्ध हो ॥३॥

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

पदार्थः—(बृहस्पति) वेदवाणी का स्वामी या राष्ट्र का पालक (मधुना) मधुर ज्ञान से (आ-प्रुषायन्) पूर्ण करता है जैसे मेघ (ऋतस्य योनिम्) जलाशय को (मधुना) जल से भरता है वह (अर्क) स्तुतियोग्य उपदेशक सत्पात्र को ज्ञान का उसी प्रकार प्रकाश देता है जैसे (अर्क. द्यौ. उल्काम् अवक्षिपन् इव) विद्युत आकाश से चमकती धाराओ को नीचे फेंकती हैं। वह विद्वान् (अश्मनः) सर्वव्यापक परमात्मा की (गा) वेदवाणियो को ऐसे (उत् हरन्) उदारता से देता है जैसे (अश्मनः गा) विशाल पर्वत से जल की धाराए एव मेघ से आती जलधाराएं आती हैं। जैसे (उद्ना) जलधारा के लिए (भूम्याः) भूमि के (त्वचम्) ऊपर के आवरण-पृष्ठ को कोई अभियन्ता पाटता है और नहर बनाता है उसी भांति विद्वान् भी (भूम्याः) ज्ञानधारण के योग्य उत्तम भूमिरूप शिष्य के (त्वचम्) अज्ञान के आवरण को (मधुना) ज्ञान से (वि बिभेद) दूर करता है ॥४॥

भावार्थ —वेदवाणी का स्वामी अथवा महान् राष्ट्र का पालक ज्ञान के पात्र व्यक्ति को वेद का ज्ञान देकर उसके अन्त.करण का विकास करता है, जिस प्रकार मेघ जलाशय को जल से भरता है या विद्युत् आकाश से प्रकाश की किरणो को नीचे फेंकती है। जैसे कि कृषि करने वाला भूमि पर जल लाकर खेती को बढ़ाता है, या अभियन्ता नहर बनाता है ॥४॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।

बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

पदार्थः—जैसे सूर्य (अन्तरिक्षात्) आकाश से (ज्योतिषा) प्रकाश के द्वारा (तम) अंधेरे को (अप आजत्) मिटाता है और जैसे (वात·) तीव्र हवा (उद्नः) जल के ऊपर से (शीपालम् इव) सेवार या काई का आवरण दूर करती है और जिस प्रकार (वात·) वेगवान् वायु (अभ्रम् इव अप) मेघ को भगाता है, उसी भांति आचार्य (ज्योतिषा) ज्ञान के आलोक से (अन्तरिक्षात्) अपने शिष्य के हृदय से(तम) अज्ञान को (अप आजत्) मिटाता है और (बृहस्पतिः) ज्ञानवाणी का पालक गुरु बलशाली आवरणकारी अज्ञान की माया का (अनु-मृश्य) ध्यान कर तदनुसार (आ चक्रे) वेद की वाणियों का उपदेश देता है ॥५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्तरिक्ष से प्रकाश बिखेर कर अंधकार को मिटाता है और जिस भांति तीव्र वायु जल पर से काई को दूर कर देती है उसी भांति आचार्य ज्ञान के आलोक से अपने शिष्य के अज्ञान को मिटाए और ज्ञान वाणी का पालक आचार्य अज्ञान को दूर कर वेदवाणियो का उपदेश देता है ॥५॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।

दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥१७॥

पदार्थः—वेदवाणी पालक ज्ञानवान् व्यक्ति विनाशक अज्ञान के प्रभाव को विदीर्ण कर, अग्नि के समान प्रकाश वाले (अर्कैः) अर्चनायोग्य वेदमन्त्रो से ही (परि-विष्टम्) प्रभु का (आदत्) ग्रहण करे, उसका ज्ञान पाए और (उस्रियाणां निधीन्) वाणियो से परमनिधि रूप (अकृणोत्) विभिन्न शिष्यो को वेद का ज्ञाता बनाए ॥६॥१७॥

भावार्थः—परमेश्वर वेदमन्त्रो के ज्ञान का प्रसार अज्ञान के प्रभाव को विदीर्ण करने के लिए करता है। वेद के मन्त्रो में ज्ञान का महान् कोष निहित है ॥६॥

इति सप्तदशो वर्गः ॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

पदार्थ —(बृहस्पतिः) वेदवाणियों मे पारगत परमात्मा (स्वरीणां) स्वर सहित शब्दोच्चार से गेय (आसां) इन वेदवाणियों के (त्यत् नाम अमत) उस स्वरूप को भी पहचानता है, (यत् गुहा) जो कि बुद्धि के भीतर चिन्तनीय रूप से निहित होता है। (यत्) जैसे (शकुनस्य आण्डा इव भित्वा) पक्षी के अण्डों को फोड़ कर गर्भरूप बच्चा प्रकटता है उसी भांति (बृहस्पति.) वेद का विद्वान् (त्मना) स्वसामर्थ्य से (शकुनस्य) सर्वशक्तिमान् के (आण्डा भित्वा) अनेक ब्रह्माण्डों का अवयवशः ज्ञान प्राप्त कर, (पर्वतस्य) सर्वपालक प्रभु के (गर्भम्) जगत् के ग्रहणीय सामर्थ्य को जाने और (उस्रियाः) जलधाराओ के समान या गौओ के तुल्य ज्ञानरस-धारा की दात्री वाणियो को (उत् आजत्) पाएं ॥६॥

भावार्थ·—वेदवाणी का स्वामी परमात्मा इन गेय वेदवाणियो के ज्ञान का ज्ञाता है और उसे ऋषियो के अन्तःकरण मे प्रकाशित कर उनके मुख से वैसे ही उच्चारित कराता है जैसे पक्षी अण्डे से बच्चे को प्रकट करता है ॥७॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।

निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

पदार्थ —(दीने उदनि) थोड़े जल मे (क्षियन्तं मत्स्य न) रहते हुए मत्स्य तुल्य व्याकुल (मधु) उस मधुर रसयुक्त आत्मा को, विद्वान् या प्रभु (अश्ना अपि-नद्धम्) सुख दु खों के भोगप्रद देह से बंधा (परि अपश्यम्) देखता है। (वृक्षात् चमस न) वृक्ष से फल के तुल्य (तत) उसे वह (विरवेण) विशेष शब्दमय ज्ञान भण्डार वेद एव ओंकार-नाद द्वारा (वि-कृत्य) विशेष साधना कर, उसके बंधे बन्धनो को काट अपने को (निर्जभार) मुक्त करता है ॥८॥

भावार्थः—जिस प्रकार अल्पजल मे रहती हुई मछली व्याकुल रहती है, वैसे ही व्याकुल उस आत्मा का परमात्मा ही उद्धार करता है जो शरीर में बंधा है वह ज्ञानियो के माध्यम से ज्ञान के भण्डार वेद को प्रकट करता है जैसे रसयुक्त फल से रस निकलता है ॥८॥

सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।

बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९॥

पदार्थ —(सः उषाम्) वह आत्मा साधनमार्ग से, पापमल को भस्म कर देने वाली ऋतंभरा, ज्योतिष्मती, प्रज्ञा को (अविन्दत्) पाता है। (सः स्वः) वह सूर्यवत् तेजयुक्त आत्मा का पाता है। (सः अग्निम्) वह अग्नि के समान स्वयं प्रकाशरूप आत्मा को पाता है। (स) वह (अर्केण) मन्त्ररूप ज्ञान के आलोक से अन्धकार के समान (तमांसि वि बबाधे) अनेक अन्धकारो को विनष्ट करता है। (बृहस्पति.) महान्व्रत तथा शक्ति का पालक विद्वान् (गो वपुष.) इन्द्रियो सहित देहरूप मे बने (वलस्य) आत्मा को ढकने वाले इस काया के बन्धन से (पर्वण.) बद्ध आत्मा को (मज्जान न निः जभार) ऐसे पृथक करता है जैसे पोरु-पोरु मे से मज्जा को एव (वलस्य पर्वणः) फल को घेरने वाली गुठली या अखरोट मे से मींगी को निकाला जाता है ॥९॥

भावार्थः—साधना मार्ग से आत्मा अपने भीतर से अंधकार को हटाकर पर-मात्मा के साक्षात्कार मे समर्थ हो सकता है। वह सभी दु खो से मुक्ति पाकर काया के बन्धनो से भी मुक्त हो सकता है ॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥

पदार्थ·—(हिमा इव पर्णा) जैसे हेमन्त ऋतु वृक्ष के पत्तो को झाड़ता है उसी प्रकार (बृहस्पतिना) परमात्मा (वनानि मुषिता) नाना भोगबन्धन से उच्छेद्य बन्धन दूर करता है (वल·) आवरणकारी देह-बन्धन (गाः) आत्मा की शक्तियो और इन्द्रियसामर्थ्यों को भी (अकृपयत्) त्यागता है। जबकि साधक ऐसी साधना करे कि वह (अपुन अननुकृत्यम्) पुन जन्म मरण मे न फंसे और फिर पुनः उसे बन्धन मुक्ति का उद्योग न करना पड़े। (यात्) जब तक भी (सूर्यामासा. मिथ उत् चरात्) सूर्य एव चन्द्र, दिन-रात्री उदित हो ॥१०॥

भावार्थ —जैसे हेमन्त ऋतु मे वृक्षो के पत्ते झड़ जाते हैं, वैसे ही प्रभु अपने द्वारा दिये गए ज्ञान से देह बन्धन से आत्मा को मुक्त कराता है। वही आत्मा को पुन जन्म-मरण के बन्धनो से भी छुटकारा दिलाता है। उसका ज्ञान ही सर्वांगपूर्ण है ॥१०॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।

रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥११॥

पदार्थ —विद्वान् (कृशनेभिः) विभिन्न साधनो से अश्व के समान भोक्ता आत्मा को विभूषित करते हैं, वे ही (पितर) यम-नियम पालक होकर (द्याम्) स्वप्रकाश रूपी आत्मा को (नक्षत्रेभि.) दूर तक जाने एव व्यापने वाले अनेक इन्द्रियगत प्राणों द्वारा (अपिंशन्) चमकाते और निरूपित करते हैं। उसकी रात्री के तुल्य निद्रावृत्ति मे तमोगुण का और दिवा प्रकाश दशा में ज्योतिर्मय सत्व का ही स्थिर निश्चित करते हैं, तब महिमामय वाणी का पालक, साधक अज्ञान-आवरण का नाशक ज्ञानमय रश्मियो, सत्य वाणियो को पाता है ॥११॥

भावार्थ·—विद्वान् विभिन्न साधनो से अश्वतुल्य भोक्ता आत्मा को विभूषित करते हैं। जैसे रात्रि मे गगन में नक्षत्र प्रकाश देते हैं या रात के अंधेरे को सूर्य की रश्मियां हर लेती हैं वैसे ही विद्वानो-ऋषियों की आत्मा में प्रभु ज्ञान का आलोक भर देता है ॥११॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।

बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो

धात् । १२। १८॥५॥

पदार्थ—जो विद्वान् (पूर्वो) पूर्व आचार्यों की ज्ञानपूर्ण व सनातन से विद्यमान वेदवाणियो का (अनु आनोनवीति) क्रमश परम्परा से शिष्यो को अभिमुख बैठा कर उपदेश देता है, (अभ्रियाय) मेघतुल्य ऐसी उदारता से गंभीरतापूर्वक उपदेष्टा हेतु (नम अकर्म:) हम नमस्कार, अन्नादि से सत्कार करें । (स) हमारे मध्य वह (गोभि अश्वेभि वीरैभि) गौओं, अश्वो व वीरो द्वारा (स नृभि) तथा अन्य नायको एव मनुष्यो से (न वय: धात्) हमें बल व शक्ति प्रदान करे ॥१२॥१८॥५॥

भावार्थः— परमात्मा जिस वेद के ज्ञान का आदि सृष्टि में उपदेश देता है, उसे ही वेदवाणी के प्रवक्ता विद्वान् क्रमश· प्रदान करते हैं । यह ज्ञान ही शारीरिक सुख व आध्यात्मिक जीवन का प्रेरक है । ऐसे ज्ञान को देने वालों का हम आदर करें ॥१२॥१८॥५॥

इत्यष्टादशो वर्ग· ॥

इति पञ्चमोऽनुवाक· ॥

---

[६९]

सुमित्रो वाध्र्यश्वः ऋषिः॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१ निचृज्जगती । २ विराड् जगती । ३, ७ त्रिष्टुप् । ४, ५, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९, ११ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

पदार्थ—(वध्र्यश्वस्य) 'वध्रि' अर्थात् तीव्र वेगगामी अश्वो इन्द्रियो का स्वामी, वा शत्रुहन्ता अश्व अर्थात् राष्ट्र-बल सैन्य का सेनापति वा राजा (अग्ने. संदृशः) तेजस्वी अग्नि के तुल्य है, उसकी (दृश भद्रा) सम्यक् दृष्टि सारी प्रजा के लिये सुख कल्याणकारिणी हो । उसकी (प्र-णीती वामी) उत्तम नीतिया कल्याणकारिणी हो । (उप-इतय) उसके आगमन पर प्रजा में (सुरणा) आनन्दोत्सव हो (विश सुमित्रा ईम् अग्ने इन्धते) प्रजा उसकी सखा होकर उसको अग्रासन प्रदान करें । वह (घृतेन आहुत) घृत से आहुति प्राप्त अग्नितुल्य (घृतेन आहुत) तेज से दीप्त वह (घृतेन आहुत) जल मे अभिषिक्त हो (दविद्युतत्) चमके और (जरते) प्रजा पर अपनी आज्ञा-दान आदि से नियन्त्रण करे ॥१॥

भावार्थ —ऐसा शासक कि जो तीव्र वेगगामी अश्वो एव इन्द्रियो का स्वामी है और प्रजा पर कृपा रखता है, वह विशेष ख्याति पाता है, क्योकि उसकी नीतिया कल्याणकारी होती हैं । प्रजा उसकी सूर्य के तुल्य वन्दना करती है ॥१॥

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२॥

पदार्थ —(वध्रि-अश्वस्य) शत्रुमर्दन-कर्ता, अश्व, सैन्य इत्यादि के नायक का (घृतम्) तेज ही (वर्धनम्) वृद्धि करने वाला और शत्रु को मिटाने का साधन है । सेनापति का (घृतम् अन्नम्) तेज ही प्राणधारक कर्ता है । (घृतम उ अस्य मेदनम्) तेज ही इस सेनानायक का अन्य शत्रुओं से स्नेह वा सन्धिपूर्वक मिताने का कारण बनता है । वह अपने (घृतेन) तेज एव अभिषेक से (आ-हुत·) आदरपूर्वक प्रमुख अध्यक्ष स्वीकृत हो विशेष रूप से ख्याति पाए । (सूर्य· इव रोचते) राजा तथा सेनाध्यक्ष (सर्पि -सुति) सर्पण अर्थात् आगे बढ़ने वाले सैन्यो के बल से ऐश्वर्य को अर्जित करें, (सूर्य इव) वेगवान् किरणो के ऐश्वर्य से युक्त सूर्य के समान (रोचते) वह शोभा पाता है ॥२॥

भावार्थः— जो राजा अश्वों व इन्द्रियो का स्वामी है और अपने तेज को बढ़ाता जाता है, तो वह प्रजा को सगठित रखकर उससे आदर पाता है सूर्य तुल्य बन कर प्रजा द्वारा यश की वृद्धि पाता है ॥२॥

यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥३॥

पदार्थ —हे (अग्ने) तेजस्विन् ! सेना एवं प्रजा को सन्मार्ग पर चलाने वाले राजन् ! (ते) तेरा (यत्) जो (अनीकम्) सैन्य बल है, (मनु) ज्ञानवान् और शत्रु की रोकथाम में समर्थ पुरुष और (सु मित्र) सहयोगी, (सम्-ईधे) प्रदीप्त करता है, (तत् इत्) वह सैन्यबल ही (नवीय) सर्वाधिक स्तुति योग्य है (स) वह तू (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होकर (शोच) खूब चमके । (स.) वह तू (गिर: जुषस्व) ज्ञानमयी वाणियों, स्तुतियो तथा उत्तम उपदेष्टाओ को प्रेम से स्वीकार करे । (स) वह तू (वाज दर्षि) ज्ञान, बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करे और शत्रु के (वाज दर्षि) बल आदि को नष्ट करे । (स) वह तू (इह) इस लोक मे (श्रव· धा) अन्न, यश व कीर्ति को धारे ॥३॥

भावार्थ — जिस शासक का सैन्यबल प्रबल होता है और जो अपनी सेना के बल को बढ़ाता है तथा उसे प्रोत्साहन देता है वह सैन्यबल भी मित्र के तुल्य उससे सहयोग कर उसकी कीर्ति को खूब दमकाता और बढ़ाता है ॥३॥

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्विन् ! प्रभो ! (वध्रि-अश्व) वेगवान्, बलवान्, अश्वादि युक्त मैं जीवात्मा (ईळित) तुझे चाहता और तेरी स्तुति करने वाला होकर (पूर्वम् यम् त्वा) तुझ प्रमुख को (सम् ईधे) दीप्त करता है, (सः) वह तू (इदम् जुषस्व) इसे स्वीकार कर । (उत) और तू (नः स्तिपाः भव) हमारे गृहो का रक्षक हो । (उत) और तू (न. तनूपा भव) हमारे देहो वा सन्तानों का भी पालक हो । (यत्) जो (इदं) यह (अस्मे) हमारे लिए (ते दात्रम्) तेरा दान है, तू उसे (रक्षस्व) बनाये रख ॥४॥

भावार्थ—जीवात्मा की यह आन्तरिक अनुभूति होती है कि वह देह के बंधनों मे बंधा है वह जानता है कि परमात्मा ही उसकी आन्तरिक भावनाओं व मन आदि का रक्षक है और शरीर का भी रक्षक है । स्व उत्थान हेतु उसी की वन्दना करना अभीष्ट है ॥४॥

भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५॥

पदार्थ — हे (वाध्र्यश्व) जितेन्द्रिय ! मुझ वासना से बंधे के स्तुतियोग्य प्रतिष्ठित प्रभो ! तू (द्युम्नी) मेरे लिए ऐश्वर्य का स्वामी (भव) हो । (उत) और (गोपा) अध्यात्म धन वाला हो । (अभि-माति) तू अभिमानी और सब ओर से प्रजाओ के हिंसक शत्रु से (त्वा मा तारात्) मुझे न परास्त होने दे । तू (जनानां) समस्त जनों का (शूर. इव) शूरवीर के समान (धृष्णु.) धर्षणकर्ता और (च्यवन) सबका सचालक तथा (सु-मित्रः) शोभन स्नेही है । मैं (वध्रि-अश्वस्य नाम प्र नु वोचम्) जितेन्द्रिय तुम प्रभु के नाम की स्तुति करता हूँ ॥५॥

भावार्थ —मनुष्य चाहे जितेन्द्रिय हो अथवा वासना में लिप्त हो, हर स्थिति मे परमात्मा ही उसका रक्षक व स्तुत्य है । मानव ससार में आकर कई बार अभिमानी हो जाता है परन्तु परमात्मा को गुरुता को वह नहीं मिटा सकता । उसे अपने कर्मफल भोगने ही होते हैं । ऐसे तुझ प्रभु की स्तुति करना ही योग्य है ॥५॥

समज्र्या पर्वत्या३वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥६॥१९॥

पदार्थ.—हे राजन ! तू (अज्र्या) वेग से जाने वाले अश्वों व सूर्य, वायु, तेज आदि पदार्थों से उत्पन्न (वसूनि) विभिन्न ऐश्वर्यों और (पर्वत्या वसूनि) पर्वत व मेघ से प्राप्त होने वाले वृष्टि, जल, अन्न आदि ऐश्वर्यों को (स जिगेथ) ग्रहण कर । तू (दासा) सेवको व (आर्या) स्वामियो और (वृत्राणि) विभिन्न धनों को भी (स जिगेथ) भली प्रकार प्राप्त कर । तू (शूर इव धृष्णु) शूरवीर तुल्य शत्रु का हटाने वाला और (जनानां च्यवन) मनुष्यो को सन्मार्ग पर चलाने वाला शासक होकर, हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (पृतनायून्) सेनाओं के द्वारा सग्रामरत शत्रुओ को और (पृतनायून्) मनुष्यो को भी (अभि स्या.) पराजित कर ॥६॥१९॥

भावार्थ —राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह नदी, सागर, पर्वतो से विभिन्न प्रकार की सम्पदा को प्राप्त कर सग्रह करे । वह प्रजा व शासको के सम्बन्धों को सुधारने हेतु सक्रिय हो । विरोधियो को अपने वश मे रखे और प्रजा को अपने-अपने कार्य मे प्रवृत्त करे तथा अपराधियो को नियन्त्रण मे करे ॥६॥१९॥

इत्येकोनविंशो वर्ग· ॥

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७॥

पदार्थ —(अयम्) यह (अग्नि) तेजस्वी स्वामी या प्रभु (दीर्घतन्तु) दीर्घ ज्ञानरश्मि वाला, (बृहत्-उक्षा) महान् सुखदाता, (सहस्र-स्तरी) अत्यधिक प्रजा विस्तार वाला (शत-नीथ) अनेक नीतिमार्गों में कुशल राजा या परमात्मा, (ऋभ्वा) सत्य, न्याय, तेज से चमकने वाला, (द्युमत्सु सुमित्रेषु) आढ्य, ज्ञानप्रकाशकों मे महान् (देवयत्सु) उत्तम विद्वानो व युद्धविजयी के बीच (नृभि:) स्तुतिकर्ताओ द्वारा (मृज्यमान) सुशोभित और अभिषेक किया जाता हुआ (दीदय) गुणो और सामर्थ्यों से प्रकाशित होता है ॥७॥

भावार्थ —वह परमात्मा दीर्घ ज्ञानरश्मि वाला है । वही सभी ज्ञानियों में ज्ञान का प्रेरक है । स्तुतिकर्ताओ की स्तुति का अधिकारी है । जो उसे अपना इष्ट मानता है, उसका वह सखा हो जाता है । ऐसे ही राजा का भी कर्तव्य है कि वह ज्ञान का भण्डार हो, नीतिमानो मे श्रेष्ठ नीतिमान् हो, उसके सहायक व नायक भी उसमे आस्था रखने वाले एव श्रेष्ठ हो ॥७॥

त्वं धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८॥

पदार्थः—हे (जात-वेद·) सर्वोत्पादक प्रभु या राजन् ! (सुदुघा धनु·) सुख से दोहने योग्य, गायतुल्य (असश्चता) नि स्वार्थ तुझसे (समना) समान मन वाली, (सबर् धुक्) रसों का प्रदान करने वाली तुझ स्वामी के आश्रय तेरी प्रजा है । हे (अग्ने) राजन् ! (त्वं) तू (दक्षिणावद्भि: नृभि.) अन्नादि से सम्पन्न (सु मित्रेभि) उत्तम स्नेही जनों व (देवयद्भि) विद्वानो की कामना वाले पुरुषों द्वारा (त्वम् इध्यसे) तू प्रदीप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—स्तुति करने वाले जन परमात्मा के प्रति स्तुति भेंट रूप में देते हैं और उसे इष्ट देव मानने वाले ही उसका साक्षात् करते हैं। जो राजा राष्ट्रधन का उपभोग करता है किन्तु इन्द्रिय-विषयों में लिप्त नहीं होता उसे प्रजा भी दुधारू गाय के समान भेंट देती है और उसे अपना शासक देव मानकर उसकी प्रशंसा करती है ॥८॥

देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९॥

पदार्थः—हे (जातवेद) उत्पन्न प्राणियों के स्वामिन प्रभो! (अमृताः देवाः चित्) मुक्ति को पाने वाले विद्वान् जन (ते महिमानं प्र-वोचन्) तेरे सामर्थ्य व महिमा को बतलाते हैं। (वाध्र्यश्व) वेगवान् अश्वों के स्वामिन्! (यत्) जिस (सम्पृच्छम्) प्रश्न करने योग्य तुझे (मानुषीः विशः) मननशील प्रजाएं (आयन्) पूछने आती हैं वह (त्वम्) तू, (त्वा वृधेभिः) तुझसे बढ़ने वाले (नृभिः) नेताओं व सहयोगियों से (अजयः) सबको विजय करता है ॥९॥

भावार्थ—जो जितेन्द्रिय है, प्रभु ही का उपास्य बनता है। विद्वान् ही उसकी महिमा के बखान में समर्थ हैं। साधारण व्यक्ति तो उसके सम्बन्ध में अनेक प्रश्न करते हैं। वह अपने स्तोताओं के दोष दूर करता है ॥९॥

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश्चित् ॥१०॥

पदार्थ—(पिता इव पुत्र) पिता जैसे पुत्र को अपने पास रख कर पालता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् प्रभो! (वध्रि अश्वः) जितेन्द्रिय बलवान्, वेगवान् अश्वों व इन्द्रियों वाला व्यक्ति (सपर्यन्) तेरी सेवा वा आदर करता हुआ (त्वाम् उपस्थे अबिभः) तुझे सदा अपने समीप रखता और समीप में (त्वाम् सपर्यन् अबिभः) तेरी सेवा करता हुआ भी तुझसे भयभीत रहता है। तू (अस्य) इस प्रजाजन की (यविष्ठ) हे बलिष्ठ! (समिधम्) अति कान्तियुक्त उज्ज्वल तीव्र भावना को (जुषाणः) स्वीकार करता है, (पूर्वान् व्राधतः चित्) पूर्व विद्यमान बाधकों अर्थात् विघ्नकारणों को (अवनोः) नष्ट करता है ॥१०॥

भावार्थः—व्यक्ति के दोषों का निवारण तभी सम्भव है जब वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर प्रभु की वन्दना करे। उसके प्रति श्रद्धा रखे व हृदय में पूर्णतः बसाए ॥१०॥

शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११॥

पदार्थः—(वध्र्यश्वस्य शत्रून्) जितेन्द्रिय व्यक्ति के कामादि शत्रुओं को (अग्निः) प्रभु (नृभिः सुत-सोमवद्भिः) उपासनारस के निष्पादक जीवन्मुक्तों के दोष दूर करती हैं (शश्वत् जिगाय) निरन्तर दबाता है। (समनं चित्) सम्यक् पाप वाले बलवान् को भी (चित्रभानो) हे अद्भुत तेज वाले! तू (व्राधन्तं चित्) शक्तिशाली विरोधी को (अदहः) दग्ध कर और (वृधः चित्) वृद्धिशील शत्रु को भी (व्राधन्तं चित् अव अभिनत्) नीचे गिरा ॥११॥

भावार्थ—परमेश्वर जितेन्द्रिय जन को सभी प्रकार के दोषों से मुक्त करता है तथा विरोधी प्रभावों व दुर्गुणों से उन्हें मुक्ति प्रदान कराता है ॥११॥

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥१२॥२०॥

पदार्थः—(वध्रि-अश्वस्य अयम् अग्निः) वह जितेन्द्रिय साधक तेजस्वी पुरुष (वृत्रहा) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा, (सनकात् प्रेद्धः) सनातन से खूब तेजस्वी सूर्य के तुल्य (सनकात्) राज्यकर-प्रद प्रजाजनों से भी (प्रेद्धः) सुशोभित और (नमसा उपवाक्यः) आदरयुक्त वचनों से स्तुतियोग्य होता है। (सः) वह तू (अजामीन्) हमारे अबन्धुओं की और (नः) हमारे (वि-जामीन्) विपरीत शत्रुओं को, जो कि (शर्धतः) हमारा नाश कर रहे हों, (अभि तिष्ठ) लक्ष्य कर उठ और उन्हें दबा दे ॥१२॥२०॥

भावार्थ—वह जितेन्द्रिय साधक तेजस्वी जन दुष्टों का नाश करने वाला, सदा से ही तेजस्वी सूर्य के समान राज्यकर-प्रद प्रजाजनों से भी सुशोभित व आदरयुक्त वचनों से स्तुतियोग्य होता है ऐसा तू प्रभु ही हमारे विपरीत शत्रुओं को अर्थात् हमारे दुर्गुणों को दूर करता है ॥१२॥२०॥

इति विंशो वर्गः ॥

[७०]

सुमित्रो वाध्र्यश्व ऋषिः ॥ आप्रं देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५-७, ६, ११ त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक प्रभो! गुरो! (मे) मेरी (इमाम्) इस (समिधम्) आत्मा-समिधा को (जुषस्व) स्वीकार करें, यह मेरा आत्मा तुम्हारे सम्पर्क से, अग्नि के सम्पर्क से काष्ठ के समान प्रज्वलित हो। (इळस्पदे) वेदवाणी का ज्ञान देने के निमित्त (घृताचीम्) तू मेरे हृदयाकाश से अज्ञानमयी मोहरात्रि को (प्रतिहर्य) हटा दे। (वर्ष्मन्) भूमि पर वर्षा करने को मेघ के तुल्य तू (पृथिव्याः) ज्ञानबीज को बोने के लिये शिष्यरूप भूमि पर और (अह्नां सु दिनत्वे) मेरे शुभ दिनों के लिये हे (सुक्रतो) शुभकर्म और प्रज्ञायुक्त! तू (देवयज्या) ज्ञान की कामना वाले शिष्यों को ज्ञान दे तथा उनके सत्कार पूजा आदि से (ऊर्ध्वः भव) अधिष्ठाता होकर विराज ॥१॥

भावार्थ—हे अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक मेरी आत्मा आपके सम्पर्क से वैसे ही प्रदीप्त हो, जिस भांति काष्ठ अग्नि के सम्पर्क से हो जाती है। यह प्रार्थना परमात्मा से करना अपेक्षित है। इसी भांति विद्वानों से भी यह अनुरोध करना चाहिये कि वह आत्मा को ज्ञान से प्रकाशित कर जीवन को आदर्श बनाएं ॥१॥

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२॥

पदार्थ—(देवानां अग्रयावा) जीवन्मुक्तों को मोक्ष देने वाले, ज्ञान के प्रकाशक प्रभु एवं ज्ञानादि को देने वाले जिज्ञासुजनों को अग्रस्थान में प्रेरित करने वाले (नराशंस) मनुष्यों में सत्-ज्ञान का उपदेष्टा वा सबसे प्रशंसित प्रभु या विद्वान्, (विश्व-रूपेभिः अश्वैः) समस्त व्यापक गुणों के सहित (इह आ यातु) मेरे हृदय में आवे वह (ऋतस्य पथा) सत्य न्याय वा ज्ञान के मार्ग से और (नमसा) आदरपूर्वक पूजित होकर (देवतमः) सब विद्वानों और शिष्यों में (मियेधः) सत्संग योग्य तू (देवेभ्यः) दिव्यगुणों में श्रेष्ठतम गुण को (सु-सूदत्) अच्छी प्रकार प्रेरित करे ॥२॥

भावार्थ—साधकजनों को मोक्ष की ओर ले जाने वाला और उनसे प्रशंसित गुणों से व्याप्त, अध्यात्म-मार्गगामी होने से निर्मल व प्रकाशित करने वाला, सकल दिव्यगुण पदार्थों में श्रेष्ठ गुणयुक्त प्रभु आनन्दरस को हृदय में परिपूर्ण करता है तथा विद्या के इच्छुकों को आगे ले जाने वाला विद्वान् ज्ञान का प्रकाशक हो अन्तःकरण को ज्ञान से पूर्ण करता है ॥२॥

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३॥

पदार्थ—(हविष्मन्तः मनुष्यासः) मननशील जन, (दूत्याय) प्रेरित करने के लिए (अग्निम्) तेजस्वी परमात्मा का (शश्वत्-तमम् ईळते) आदि सनातन स्तुति करते हैं। (वहिष्ठैः अश्वैः) वह संसार का वहन करने वाले व्यापक गुणों द्वारा और (सुवृता) उत्तम वर्तने योग्य अथवा (रथेन) रमणीय मोक्ष द्वारा (देवान् आवहसि) साधकों को तू वहन करने वाला है। वह (होता) मेरा स्वीकार करने वाला होकर (इह नि सद) यहां सुशोभित हो ॥३॥

भावार्थ—जो व्यक्ति मननशील है, वही प्रभु के आनन्दरस एवं ज्ञानरस को ग्रहण करने में समर्थ होता है। प्रभु का उपासक ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है ॥३॥

वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥४॥

पदार्थ—(देव-जुष्टम् बर्हिः) साधकों द्वारा सेवित करने योग्य विज्ञान (तिरश्चा) व्यापक होता है (वि प्रथताम्) विस्तृत हो वह (दीर्घं) दीर्घ हो वह (द्राघ्मा) दीर्घता के साथ-साथ (अस्मे) हमारे लिये (सुरभि) उत्तम गंधयुक्त (भूतु) हो। (देव) हे प्रभु! तू (अहेळता मनसा) क्रोध और अनादर से रहित मन से (इन्द्र ज्येष्ठान्) तुझ परमेश्वर को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले हैं (देवान्) तथा शुभ गुणयुक्त हैं (उशत) ऐसे कामनावान् जनों को (यक्षि) संगति का अवसर दे ॥४॥

भावार्थ—जो जीवन्मुक्त साधक हैं, उन्हीं में प्रभु के ज्ञान की वृद्धि होती है, वे परमात्मा को ही उपास्य मानते हैं और वह भी उन्हें स्व-संगति का लाभ प्रदान कराता है। ऐसे महान् जनों से अन्य लोग भी लाभान्वित होते हैं ॥४॥

दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (द्वारः) द्वार तुल्य शोभित गृहदेवियो या शुभ प्रवृत्तियो (उशती) पतियों को चाहने वाली वा लौकिक सुख-सामग्री वा पुत्रादि की कामना करने वाली महिलाओ! आप (दिवः वा) मोक्षधाम-युक्त (सानु स्पृशत) उन्नत पद को प्राप्त करो। (पृथिव्याः वा वरीयः) पृथिवी सृष्टि के महानतम सुख को (मात्रया वि श्रयध्वम्) विशेष रूप से सेवन करो। (महिना) बड़े पूज्य विद्वानों से सेवित व अनुमोदन किये हुए और (देवं रथं रथ-युः) रमणीय मोक्ष को (धारयध्वम्) धारण करो ॥५॥२१॥

भावार्थः—गृहिणियाँ एवं अन्य पारिवारिक जन सृष्टि के भोग आंशिक रूप से भोगें इसी में कल्याण है, अधिक सेवन में नहीं। विद्वज्जनों द्वारा सेवित मोक्ष-सुख बसाना अतः गृहस्थ सुख भोगने योग्य है ॥५॥२१॥

इत्येकविंशो वर्गः ।

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्तं उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६॥

पदार्थ—(दिवः दुहितरा) तेजस्वी सूर्य के पुत्र और पुत्री तुल्य (उषासानक्ता) दिन और रात्रि जैसी विद्या व स्त्री (देवी) कान्तियुक्त होते हैं उसी भाँति (देवी) शुभ गुणों से युक्त, स्त्री-पुरुष (दिवः दुहितरा) एक-दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हों । वे दोनों (सुशिल्पे) सुकर्म साधक होकर (योनौ नि सदताम्) उत्तम बुद्धि वाले युक्त मानव में विराजें । (सुभगे) हे उत्तम ऐश्वर्य-संपन्न ! (उशती वाम्) परस्पर चाहने वाले आपको (उशन्तः देवासः) चाहते हुए विद्वान् जन (उरौ) इस विस्तृत (उपस्थे) स्थान, राष्ट्र वा गृह में (नि सीदन्तु) भली-भाँति प्राप्त हों ॥६॥

भावार्थ—विद्या की दृष्टि से सूर्यतुल्य तेजस्वी विद्वान् की प्राप्त करने योग्य विद्या एवं सुयोग्य जीवन संगिनी सत्कर्म की साधिकाएं बनती हैं जबकि अच्छे स्थान आदि में उनका उपयोग हो ॥६॥

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७॥

पदार्थः—(ऊर्ध्व ग्रावा) उत्तम उपदेश करने वाला उपदेष्टा (बृहत्) महान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी होकर (सम् इद्धः) खूब प्रशंसित हो । (अदितेः उपस्थे प्रिया धामानि) अखण्ड विद्या वाले विद्वान् के हृदय में प्रिय ज्ञान (अस्मिन् यज्ञे) इस ज्ञान के यज्ञ में (पुरोहिता-ऋत्विजा) समय पर ज्ञान देने वाले विद्वान्, उपदेशक (विदुः-तरा) निष्णात विद्वान् (द्रविणम् आ यजेथाम्) ज्ञान, धन, बल, वीर्य भली-भाँति प्रदान करें ॥७॥

भावार्थ—विद्या में पारंगत श्रेष्ठ अध्यापक तथा उपदेशक अपने मस्तिष्क एवं हृदय में विद्या को बराबर बढ़ाने में संलग्न रहते हैं । इसके साथ ही वे अन्य लोगों को भी विद्या-दान देने में लगे रहते हैं ॥७॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८॥

पदार्थ—हे (तिस्रः देवीः) तीन देवियो ! (इदं वरीयः) इस सर्वश्रेष्ठ (बर्हिः) यज्ञ आसन पर (आ सीदत) विराजमान होओ । (वः) आप लोगों के लिये हम (स्योनं) सुखसम्पादन (चकृम) करते हैं । आप तीनों अर्थात् (इळा) स्तुति (देवी) कामना और (घृतपदी) प्रार्थना (मनुष्वत् यज्ञं) मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (सुधिता हवींषि) हितकारी मन, बुद्धि, चित्त आदि को (जुषन्त) सेवन करें ॥८॥

भावार्थ—स्तुति, कामना एवं उपासना इन तीन भावनाओं और धारणाओं के द्वारा ही अध्यात्मयज्ञ की पूर्ति हो पाती है । इनके अनुसार ही मन, बुद्धि, चित्त आदि होने चाहिए ॥८॥

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥

पदार्थ—हे (त्वष्टः) तेजस्विन् ! (यत्) जो (चारुत्वम्) श्रेष्ठता को (आनट्) प्राप्त होता है तथा (यत्) जो तू (आंगिरसाम्) विद्वानों में (सचा-भूः अभवः) उनका सहयोगी बनता है, हे (द्रविणोदः) धन ज्ञानादि के दाता ! (सः) वह तू (सु-रत्न) उत्तम रत्नादि पदार्थों का स्वामी बनकर, (उशन्) इच्छावान् और (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर, (देवानां) ज्ञान देने वाले विद्वान् और विद्या धनादि के इच्छुकों को (पाथः) रक्षा, अन्न, जल आदि पदार्थ (प्र उप यक्षि) प्रदान करता है ॥९॥

भावार्थ—प्रभु जीवों पर दया के रूप में अपनी श्रेष्ठता प्रकटाता है, जो उपासक उसे अपना सहयोगी बनाते हैं, उनपर वह निश्चय ही कृपावृष्टि करता है ॥९॥

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) वनों के पालक ! सबको अपनी शरण में लेने हारे प्रभु (रशनया) व्यापक शक्ति से (नियूय) नियन्त्रण कर (देवानां) विद्वान् प्रजाजनों के (पाथः) भोग को (उप वक्षि) प्राप्त कराता है । (देवः हवींषि स्वदाति) वह प्रभु, नाना अन्न, खाने को देता है (स्वदाति) जीवों को स्वाद से भोजन कराता है (द्यावापृथिवी मे हवम् अवताम्) द्यावापृथिवीयुक्त संसार मेरे भोज्य को रक्षित करे ॥१०॥

भावार्थ—प्रभु ही जीवों के भोग का रक्षक है । वही अपनी व्यापकशक्ति द्वारा उसे नियन्त्रित कर विद्वानों तक पहुँचाता है एवं प्राणियों को अन्न आदि उपजा कर उपलब्ध कराता है ॥१०॥

आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥
११॥२२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशक ! तू (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ जल तथा वरणीय प्रभु को (इष्टये) इष्टसिद्धि और पूजादि हेतु (नः आ वह) हमें प्राप्त करा । (दिवः) आकाश से (नः) हमें (इन्द्रम्) विद्युत् को दे, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष के (मरुतः) नाना वायुओं को प्रदान कर । (विश्वे) सब शक्तियां (यजत्राः) परस्पर संगत होकर (बर्हिः) आसन पर विद्वानों के समान इस लोक में विराजें । (अमृताः) समस्त जीवगण (स्वाहा) उत्तम अन्नाहुति से (मादयन्ताम्) हर्षित हों ॥११॥१२॥

भावार्थः—वह प्रभु इष्ट सिद्धि हेतु जल की वर्षा करता है । वही नाना वायुओं व विद्युत् को प्रदान कराता है । उसी के वरदानों को पाकर याजकजन यजन-रत रहते हैं और साधक हर्षित होते हैं ॥११॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

---

[७१]

बृहस्पतिः ॥ देवता—ज्ञानम् ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ९ विराड् जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१॥

पदार्थ—(हे बृहस्पते) हे बड़ी वाणी के स्वामिन् ! (नामधेय दधानाः) वस्तुओं के नामों को धारण करते हुए ऋषि (यत्) जो (प्रथमम् वाचः) प्रथम वाणियों को (अग्रे) आगे सृष्टि की आदि में (प्रैरत) प्रेरणा करते हैं (यत्) जो (एषाम्) इनका (श्रेष्ठम्) उत्तम (अरिप्रम्) पापरहित वचन (आसीत्) था वह (गुहा निहितम्) गढ़ बुद्धि में (निहितम्) रखा था (तत्) वह (एषाम्) इनके (प्रेणा) प्रेम से (आविः) प्रकट हुआ ॥१॥

भावार्थ—आदि सृष्टि में निष्पाप पवित्र ऋषियों की बुद्धि में ईश्वर ने वेद शब्द प्रेरित किये । वेद शब्दों से ही ऋषियों ने जगत् के पदार्थों के नाम रखे और प्रेम से उस वाणी का प्रचार अन्य मनुष्यों में किया । वह आदि वाणी श्रेष्ठ और निर्दोष थी । भाषा विज्ञानी मानते हैं कि आदि सृष्टि में मनुष्य ने जड़ वस्तुओं द्वारा होने वाले शब्दों से वाणी सीखी, धीरे-धीरे वाणी का विकास हुआ, परन्तु जड़ वस्तुओं में अक्षरमय शब्द नहीं होते । अक्षरमयी वाणी मनुष्य ने कैसे सीखी इसका उत्तर सन्तोषजनक किसी भी भाषाशास्त्री ने नहीं दिया है ॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥

पदार्थ—(तितउना) छलनी से (सक्तुम्+इव) सत्तुओं को जैसे (मनसा) विचार से (वाचम् पुनन्त) वाणी को पवित्र करते हुए (धीराः) बुद्धिमान् (मनसा) मन से (यत्र) जहाँ जिस काल में (वाचम्+अक्रत) वाणी काव्य करते हैं (अत्र) यहाँ इस समय (सखायः) उनके समज्ञानी मित्र (सख्यानि) मित्रभावों को (आ जानते) जान लेते हैं । (एषाम्+अधिवाचि) इनकी साधिकार वाणी में (भद्रालक्ष्मीः) कल्याणमयी शोभा (निहिता) रहती है ॥२॥

भावार्थः—वेदवाणी का प्रचार विचार द्वारा हुआ, बलात् नहीं । उस वाणी में जगत् की मित्रता है सबके लिये प्रेम और हित है घृणा द्वेष नहीं अतः उसे सब ने ग्रहण किया इस वाणी में कल्याण है लक्ष्मी है ॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

पदार्थ—ज्ञानी लोगों ने (यज्ञेन) परस्पर संगीत से विचार से (वाचः पदवीयम्) वाणी के पदार्थ को (आयन्) प्राप्त किया (ऋषिषु प्रविष्टाम्) जो वाणी ईश्वर द्वारा ऋषियों में प्रविष्ट हुई थी उसे (अन्वविन्दन्) जान लिया और प्राप्त कर लिया (ताम्+आभृत्य) उसे धारण करके (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (व्यदधुः) अन्यों को धारण कराया (ताम्) उस वाणी को (सप्तरेभाः) सात छन्द (अभि संनवन्ते) भली-भाँति प्रकट करते हैं ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणी सात छन्दों में है, ऋषियों से सीखकर अन्य ऋषियों ने इसका बहुत प्रचार किया । आदि ऋषियों में यह वाणी प्रविष्ट हुई थी, उनकी अपनी नहीं थी ॥३॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥

पदार्थ—(उतत्वः) और भी है कि (वाचम् पश्यन् न ददर्श) वाणी को जानते हुए भी नहीं जानते (उतत्वः) और (शृण्वन्) सुनता हुआ भी (एनाम् न शृणोति) इसको नहीं सुनते हैं अनेक पढ़-लिख कर भी मूर्ख बने रहते हैं (उतो) और (त्वस्मै) इसके लिये बुद्धिमान् के लिये (तन्वं विसस्रे) शरीर खोल देती है (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों वाली (उशती) कामना करती हुई (जाया) पत्नी (पत्ये+इव) जैसे पति के लिये ॥४॥

भावार्थ—पढ़-लिख कर भी वाणी के मर्म को तो विरले ही समझते हैं । उनके लिये वाणी का रस मिलता है जो मेधावी सहृदय श्रद्धालु होते हैं ॥४॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥२३॥

पदार्थः—(उत त्वम्) और (सख्ये) मित्रता में (एनम् स्थिरपीतम्) इस जन को जिसने वाणी को समझा है, स्थिर ज्ञान रखने वाला कहते हैं (वाजिनेषु) ज्ञानों में यज्ञों में (अपि) भी (एनम् न हिन्वन्ति) अन्य जन उसको नहीं पाते, उसकी बराबरी नहीं कर सकते (एषः) यह मनुष्य (मायया) माया से-धोखे में (अधेन्वा चरति) बिना दूध वाली गाय के साथ (चरति) विचर रहा है । जिसने (अफलाम्, अपुष्पाम्) बिना फल-फूल की अर्थात् न समझी न काम में लायी (वाचम्) वाणी को (शुश्रुवान्) सुना ॥५॥

भावार्थः—ज्ञान को समझ-बूझ कर काम में परिणत करो ॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६॥

पदार्थ.—(यः सचिविदम्) जिसने प्रेम को जानने वाले या ईश्वर को जानने वाले (सखायम्) मित्र को (तित्याज) त्याग दिया (तस्य) उसका (भाग) भाग (वाचि+अपि नास्ति) वाणी में भी नहीं है । अर्थात् वाणी का फल मिलता है ईश्वर को जानने वाले, मित्रभाव रखने वाले जनों के सम्पर्क में रहने से (यत्+ईम् शृणोति) ज्ञानियों को त्यागने वाला जन जो इस वाणी को सुनता है (अलकं शृणोति) व्यर्थ सुनता है (सुकृतस्य पन्थाम्) पुण्य के मार्ग को (नहि प्रवेद) नहीं जानता ॥६॥

भावार्थः—प्रमादी का पढ़ना-जानना सब व्यर्थ है जो सुमार्ग को नहीं जानता वह पढ़ कर भी मूर्ख है ।

उक्त मन्त्र के पाठ में तैत्तिरीय ब्राह्मण में "सचिविदम्" के स्थान पर "सखि-विदम्" है । वेद पढ़ाने वाले पढ़ाते समय कठिन शब्दों के स्थान पर सरल चालू शब्द कहलवा कर अर्थ स्पष्ट करा देते थे इसीलिए ये शाखायें और ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्यान कहलाये, पर ये मूल वेद नहीं हो सकते । सब वेद हैं ऐसा कहने वाले दुरा-ग्रही ही हैं ॥६॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

पदार्थः—(अक्षण्वन्त कर्णवन्त सखाय) आँखों वाले और कानों वाले सखाय =समान इन्द्रियों वाले (मनोजवेषु) मन की गतियों में-विचार शक्ति में (असमाः+बभूवुः) समान नहीं हैं (आदघ्नासः) कुछ के घुटनों तक जल है (उप कक्ष.) कुछ के कोखों तक जल है (उत्वे ह्रदाइवस्नात्वा) दूसरों ने तालाब में स्नान किया है (उत्वे ददृश्रे) दूसरों ने वाणी को देखा है, साक्षात् किया है ॥७॥

भावार्थः—विद्वानों में भी सबकी प्रतिभा समान नहीं होती । गहराई तक कोई-कोई ही पहुँचता है सब मनुष्य एक बराबर हैं यह घोष करने वाले मूर्खों की बकवास ही है ॥७॥

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८॥

पदार्थ.—(हृदा तष्टेषु) हृदय से तराशे हुए (मनसो जवेषु) मन के वेगों में (सखाय) समान (ब्राह्मणा) ब्राह्मण (यत्) जो (संयजन्ते) मिल कर विचार करते हैं संगति लगाते हैं (अत्र ह) और इस विचार में (वेद्याभिः) ज्ञातव्य बातों से (त्वम्) कोई उसे (वि जहुः) त्याग देते हैं (उत्वे) कोई (ओहब्रह्माणः) तर्कयुक्त वेदज्ञान वाले (विचरन्ति) विचरते हैं, उपदेश करते हैं ॥८॥

भावार्थ —विद्वान् लोग किसी को तो जडमति समझ कर छोड़ देते हैं शेष प्रतिभा सम्पन्न ऊहा [विचार] से युक्त काम में लग जाते हैं ॥८॥

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९॥

पदार्थ —(इमे ये) ये जो लोग (न+अर्वाङ्+न+परः) न इस लोक के न परलोक के काम में (चरन्ति) काम करते हैं (न+ब्राह्मणास) न ब्राह्मण हैं (न सुतेकरास.) न कार्य करने में निपुण हैं अर्थात् न ब्रह्मज्ञानी हैं न कर्मकांडी (ते+एते) वे ये (वाचम्+अभिपद्य) वाणी को प्राप्त होकर (अप्रजज्ञयः) ज्ञानहीन रहते हुए (पापया सिरीः) पापरूप तन्तुओं (तन्त्रम् तन्वते) षड्यन्त्रों का विस्तार करते हैं अनेक दुराचारों में फंसते हैं और अन्यों को फंसाते हैं ॥९॥

भावार्थः—आचरण-हीन वाणी को प्राप्त करके भी पाप में ही लिप्त रहते हैं ॥९॥

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

पदार्थः—(सर्वे सखाय.) सब समान विचार वाले (आगतेन यशसा) आये हुए यश से (सभासाहेन) सभा के योग्य ज्ञान से, यश से (नन्दन्ति) प्रसन्न रहते हैं (एषाम्) इनमें (पितुषणि) पालनयोग्य वस्तुओं का दाता (किल्बिषस्पृत्) पापों को नष्ट करने वाला (वाजिनाय) वाणी के स्वामी पद के लिये (अरंहितः) बहुत हितकारी (भवति) होता है ॥१०॥

भावार्थ —ज्ञानी प्रसन्न होकर पाप का नाश करते हैं । प्रजा को पालनयोग्य साधन जुटाते हैं तभी वे उच्च पद पाते हैं ॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः
॥११॥२४॥२॥

पदार्थ —(त्व) कोई विद्वान् (ऋचाम्) वेद मन्त्रों के (पोषम् पुपुष्वान्) पोषण को पुष्ट करता हुआ (आस्ते) रहता है (त्व.) कोई (शक्वरीषु) शक्वरी नामक ऋचाओं में (गायत्रं गायति) गाने योग्य मन्त्रों (सामवेद) को गाता है (त्व) कोई (ब्रह्मा) यज्ञ का ब्रह्मा या अथर्ववेद का ज्ञाता (जातविद्यां) शिल्प विद्या को (वदति) कहता है (उत्व·) और कोई (यज्ञस्य मात्रां) यज्ञ की विधि को (विमिमीत) विशेष रीति से बताता है [यजुर्वेदी विद्वान्] ॥११॥

भावार्थ —मन्त्र में चारों वेदों के विभाग का कारण है चार काम और यज्ञ के चार कार्यकर्ता होता, उद्‌गाता, ब्रह्मा, अध्वर्यु का भी संकेत है ॥११॥

प्रश्न—जब आदि सृष्टि में वाणी मिली तो फिर सबकी वाणी एक सी क्यों नहीं और लाखों जंगली पशु सम क्यों हैं ?

उत्तर—ऐतरेय ब्राह्मण में कथा है कि विश्वामित्र के सौ शिष्य थे । उनमें पचास ने शिक्षा को छोड़कर उद्दण्डता का जीवन अपनाया वे ही सब दस्यु बनाये धीरे-धीरे गिरते-गिरते घोर अज्ञान में पहुँच गये । आज भी सब भाषाओं में मूल शब्द वैदिक भाषाओं के मिलते हैं । देश काल के चक्कर में पड कर सभ्यता संस्कृति से गिर कर वे जातियाँ लाखों वर्षों में जंगली बन गई ॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

[७२]

बृहस्पतिराङ्गिरसो बृहस्पतिर्वा लौक्य अदितिर्वा दाक्षायणी ऋषिः ॥ देवा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ अनुष्टुप् । २ पादनिचृदनुष्टुप् । ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ८, ९ विराडनुष्टुप् । नवर्चं सूक्तम् ॥

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

पदार्थः—(वयम्) हम (विपन्यया) विशेष गुणों वाली वाणी के द्वारा (देवानाम् नु जाना:) देवों में निश्चय उत्पन्न हुए हैं (प्रवोचाम) कहते हैं (शस्य-मानेषु उक्थेषु) बोले जाने वाले वेद स्तोत्रों में (उत्तरे युगे) उत्तर समय में (यः पश्यात्) जो पीछे अर्थात् अन्तिम हो जाता है ॥१॥

भावार्थः—वेदवाणी को जानने वाला वेद बन जाता है । चरम ज्ञान प्राप्त कर सब कुछ जान लेते हैं, तब वे उपदेश करते हैं ॥१॥

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥२॥

पदार्थ·—(ब्रह्मणस्पतिः) वाणियों के स्वामी ईश्वर ने (एताः) इन वाणियों को (कर्मार+इव) लुहार के समान (समधमत्) फू का-ऋषियों में भरा (देवानाम् पूर्व्ये युगे) सूर्यादि लोकों के प्रथम युग में (असतः) अव्यक्त से (सत्+अजायत) व्यक्तरूप संसार आया ॥२॥

भावार्थ:—ईश्वर ने अव्यक्त प्रकृति को व्यक्त किया, उसी ने ऋषियों में वाणी डाली और [एताः] इन ऋषियों को गति दी, यह अर्थ भी है ॥२॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

पदार्थ —(देवानां प्रथमे युगे) सूर्यादि देवों के प्रथम युग में (असतः) अव्यक्त प्रकृति से (सदजायत) व्यक्त रूप संसार हुआ (तदा) तब (आशा.)

दिशायें (अन्वजायन्त) लोकों के बनने के पीछे प्रकट हुई (तत परि) उसके पश्चात् (उत्तान पदः) ऊपर के पद प्रकट हुए ॥३॥

भावार्थः—जब लोक बन गये तो दिशाओं का ऊपर नीचे का व्यवहार होने लगा ॥३॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥

पदार्थः—(भूः) पृथिवीलोक ने (उत्तान पदः) ऊपर के पद को (जज्ञे) प्रकट किया अर्थात् ऊपर का व्यवहार भूलोक की अपेक्षा से हुआ (भुवः) भुव से (आशा+अजायन्त) दिशायें प्रकट हुई अर्थात् पृथिवी लोक के चारो ओर के वायु मण्डल से ही दिशाओं का ज्ञान स्थिर हुआ (दक्ष) आदि सृष्टि के मानव (अदितेः) अव्यक्त प्रकृति से (अजायत) उत्पन्न हुए [दक्ष एक वचन जाति रूप मे है](दक्षात्) दक्ष से (अदितिः अजायत) अदिति प्रकट हुई अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति से ही प्रकृति के अस्तित्व का ज्ञान हुआ । पुत्र से ही माता का मातृत्व होता है ॥४॥

भावार्थ —मूल प्रकृति मे ईश्वर ने गति दी तब ससार बनने लगा ॥४॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।

तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥१॥

पदार्थ —(हे दक्ष) हे ईश्वर (हि) निश्चय (या तव दुहिता) जो तुम्हारी पुत्री है वह (अदितिः) अदिति (अजनिष्ट) उत्पन्न हुई (तां देवा + अनु+ अजायन्त) उसके पीछे सूर्यादि लोक हुए जो कि (भद्राः) कल्याण कारक हैं (अमृत-बन्धवः) अमृत के भाई हैं ॥५॥

भावार्थः—दुहिता—दुहने वाली, दक्ष—कुशल प्रकृति ने कुशल कारीगर से गति को दुहा, सूर्यादि लोक प्रकाश देते हैं अतः अमृत-बन्धु कहे गये ॥५॥

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥

पदार्थ —(अद सलिले) इस महत् तत्व मे प्रकृति मे गति होने लगती है तो वह महत् या सलिल कहलाती है सलिल जल को भी कहते है । यह जल गतिशील परमाणुओ का समुद्र था (यद्देवा.) जो कि सूर्यादि लोक (सुसरब्धाः) सुव्यवस्थित (अतिष्ठत) स्थित थे कार्य अपने कारण मे व्यवस्थित रहता है यह सत् कार्य वाद का सिद्धान्त है (अत्रवः) इसमे तुम्हारा (नृत्यताम्+इव) जैसे नाचने वालों का (तीव्रः) तेज (रेणु) परमाणु पुज (अप+आयत) दूर था ॥६॥

भावार्थ—सूर्यादि लोक भ्रमण कर रहे थे, नाच रहे थे, उनसे बिखरे परमाणु दूर-दूर जा रहे थे ॥६॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।

अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥७॥

पदार्थ —(यत् +यतयः+देवा) जो कि नियम मे बधे सूर्यादि लोक (यथा) जिस प्रकार (भुवनानि) सब भुवनो को (अपिन्वत) जीवन के साधन प्रकाश वर्षा से पालन करते हैं (अत्र समुद्रे) परमाणुओ से भरे इस आकाश में (समुद्रवन्ति परमाणवो-यस्मिन्निति समुद्र -आकाश) (आ गूळ्हम) गूढ तत्व तक (आ-सूर्यम्) सूर्य तक (अजभर्तन) धारण करते हैं ॥७॥

भावार्थ — दिव्य लोक, दिव्य तत्व और ईश्वर की दिव्य [स्वामी की] क्रियायें गूढ तत्व परमाणु से लेकर सूर्य तक सबको धारण करते और पालन करते हैं ॥७॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१ स्परि ।

देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत् ॥८॥

पदार्थ.—(अदिते) उस अव्यक्त प्रकृति के वा ईश्वर के (अष्टौ पुत्रास) आठ पुत्र हैं (ये जातास्तन्व परि) जो शरीर से अथवा विस्तृत शक्ति से उत्पन्न हुए हैं (सप्तभि) सात से (देवान्+उप प्रैत्) प्राप्त होकर (मार्तण्डम्) सूर्य को (परा आस्यत) दूर स्थापित किया ॥८॥

विशेष—ईश्वर की आठ प्रकृतियां [प्रजायें] गीता मे कही हैं यही अदिति के आठ पुत्र हैं —

"भूमिरापोऽनलो वायु खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥७॥४॥

अर्थ —भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश ये ५ मन, बुद्धि, अहंकार ये ८ प्रकृतियां हैं । इनमे से आकाश को छोडकर और सबसे ये लोक बने । आकाश कोई ठोस पदार्थ नही है उसमें ये सब स्थापित हुए, इन लोको में सूर्य मुख्य था ॥८॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।

प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत् ॥९॥२॥

पदार्थ·—(अदिति) अव्यक्त प्रकृति (सप्तभि पुत्रैः) सात पुत्रो के साथ (पूर्व्यम युगम्) प्रथम युग की सृष्टि रचना के समय (उपप्रैत्) समीप हुई (प्रजायै मृत्यवे) जन्म मरण के लिये (मार्तण्डम्) सूर्य को वा इस देह को (आभरत्) धारण किया ॥९॥

भावार्थ —सूर्य द्वारा समय बनता है उसके क्रम से जन्म मरण होते हैं इस देह के द्वारा ही जीवात्मा का जन्म मरण है ॥९॥

इति द्वितीयो वर्ग ॥

[७३]

गौरिवीतिरृषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्द.— १, २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ९ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।

अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१॥

पदार्थ —(धनिष्ठा माता) धन ऐश्वर्य वाली माता ने (यत्+वीरम्) जिस वीर सन्तान को (दधनत्) धारण किया वह वीर (उग्रः) तेजस्वी (सहसे तुराय) शत्रु को हराने और मारने के लिये (ओजिष्ठः) ओजस्वी (मन्द्रः) प्रशंसा योग्य (बहुलाभिमानः) बहुतों से सम्मान पाने वाला (अत्र) इस लोक में, राष्ट्र मे (मरुत +चित्) मनुष्य (इन्द्रम् अवर्धन्तः) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा को बढ़ावें उसका अभिनन्दन करें ॥१॥

भावार्थः—ऐश्वर्यशाली ओजस्वी वीर को राजा बनाना चाहिए ॥१॥

द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।

अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥२॥

पदार्थः—(चित्) जैसे (द्रुह) शत्रुद्रोही सेनापति के पास (निषत्ता) नियमित (पृशनी) सेना हो (एवैः) इस प्रकार (शंसेन) प्रशंसा से (पुरु वावृधुः) प्रजायें बहुत बढ़ाती हैं (ते+इन्द्रम्) वे इन्द्र सेनापति को बढ़ाते हैं (ता.) वे प्रजायें (महापदेन) महान् पद वाले सेनापति से (अभीवृता इव) सुरक्षित सी (प्रपित्वात् ध्वान्तात्) प्राप्त हुए भयरूप अधकार से (गर्भाः) गर्भ (उद्+अरन्त) जैसे गर्भ बाहर आ जाते है वैसे ही निर्भय हो जाती हैं ॥२॥

भावार्थ - सेनापति इन्द्र ऐश्वर्यवान् अच्छी सेना वाला हो ॥२॥

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।

त्वमिन्द्र सालावृकान्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) सेनापते (ते पादा) तेरे चरण (ऋष्वा) पूजनीय हैं (उत्) और (अत्र) इस देश मे (येचित् +वाजा) जो भी बलवान् हैं (यत् प्रजिगासि) जो तू आगे बढ़े (अवर्धन्) तुझे बढ़ावें (हि त्व साला+वृकान् सहस्रम्) घरेलू भेड़िये अर्थात् शिकारी कुत्तो के सहस्रो समूह को (आसन् दधिषे) प्राप्त हुओ को तू धारण करता है (अश्विना+ आववृत्या) जो कि अश्विनी वीरों से घिरे हुए हैं ॥३॥

भावार्थः—सेनापति के साथ अश्विनी वीर तीव्रगामी हों उनसे घिरे हुए अर्थात् उनके अधीन सहस्रो वीर हों जो पालतू भेडियों के समान शत्रु को चीर-फाड़ कर रख दें । सेनापति के साथ ही इसका दूसरा भाव आध्यात्मिक भी है इन्द्र—जीवात्मा योगी के साथ अश्विनी प्राण अपान से घिरे सहस्रोसाला वृक बुरे विचार है उनका दमन प्राणायाम से होगा तब इन्द्र की वर्धना होगी ॥३॥

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।

वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) हे सेनापते (समना) मन सहित (तूर्णि) शीघ्रता सहित (यज्ञम्) युद्ध रूपी यज्ञ को (उपयासि) पहुंचते हो (सख्याय) मित्रता के लिये (नासत्यै) जो सत्य हैं कभी असत्य नहीं ऐसों को (आवक्षि) रखते हो । (मघानि ददतु) धनो को देने वाले (अश्विना) अश्विनी वीर पुरुषों के साथ हे इन्द्र (वसाव्याम्) बसने वाली प्रजा को (हे शूर) हे वीर सेनापते (सहस्रा धारयः) सहस्रो की संख्या मे धारण करो ॥४॥

भावार्थ —उत्तम सेनापति के गुण कर्तव्यो का वर्णन है ॥४॥

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।

आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५॥३॥

पदार्थः—(इन्द्र) राजा (प्रजायै+अधि) प्रजा के लिये (सखिभिः) मित्रो के साथ (इषिरेभि·) अन्न देने वालो के साथ (मन्दमान) प्रसन्न हुआ (ऋतात् अधि) सत्य के अधिकार से (अर्थम्) धन को (आगात्) प्राप्त होता है (आभि) इन अन्न सम्पन्न प्रजाओं के द्वारा (मायाः) अनेक विद्याओं को कुशलताओ को (आगात्) प्राप्त हुआ (दस्युम्) लुटेरे डाकुओ को और (तमांसि) अधेरो अज्ञानो को (प्रतम्राः मिहः) इच्छा करने वाली मेघ के समान अन्नों को बढ़ाने वाली प्रजाओ से (उप प्र अवपत्) दूर कर दिया ॥५॥

भावार्थ —अच्छा राजा प्रजा को अन्न-धन से युक्त करता है प्रजा के अज्ञान को दूर करता है शत्रु को जीतता है ॥५॥

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथा नः ।

ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

पदार्थः—(समानाना) एक से नाम वालों को (इन्द्रः+चित्) जैसे सूर्य (उषसः) उषाओं को (नियमय) नियम मे चलावे (अस्मै) इसे (यथा) जिस प्रकार (उषसः) उषाओं का (गणः) समूह (अजहात्) नष्ट कर दिया तथा समाप्त कर दी (ऋष्व.) दीप्तिमान् (सिषासः) कामना वाले (सखिभिः) मित्रों के (साकम्) साथ (प्रतिष्ठ) प्रतिष्ठित होओ और (हृद्याः) हृदय को, प्रिय वस्तुओं को (अध्वन्) प्राप्त करो ॥६॥

भावार्थ —इन्द्र सूर्य का उदय हो कामनायें मित्रों के साथ पूर्ण हों ॥६॥

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।

त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) हे योगी जीवात्मा (त्वम्) तूने (दासम्) कर्म-नाशक अज्ञानी (मखस्युम्) यज्ञ विघातक (नमुचिम्) नमुचि असुर अर्थात् मोह को (ऋषये) ऋषि के लिये (विमायम् कृण्वानः) माया रहित करते हुए तुमने (जघन्थ) मार दिया (त्वम्) तुमने (मनवे) मनुष्य के लिये (स्योनान् यानान्) सुन्दर यान-विमान (चकर्थ) बनाये (यथा देवत्रा) जैसे ज्ञानी विद्वानों की सगति में (अञ्जसा+इव) सहज मे ही ॥७॥

भावार्थ—इन्द्र [योगी] नमुचि न छोडने वाले मनुष्य के लिपटे हुए मोह को नष्ट कर देता है ॥७॥

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।

अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) त्वम् (ईशान) सामर्थ्यवान् शासक हुए (एतानि नाम) इन प्रसिद्ध वस्तुओं को (वि पप्रिषे) पूर्ण करते हो (गभस्तौ दधिषे) मुट्ठी मे [वश मे] रखते हो (त्वा+अनु) तुम्हारे पीछे चलते हुए (देवा) इन्द्रिय गण (शवसा) तेज से-बल से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं (उपरि बुध्नान् वनिन) ऊपर फैले हुए वनस्पतियो को (चकर्थ) काट दो ॥८॥

भावार्थ —इन्द्रियां आत्मा के अनुकूल रहें तो प्रसन्न रहेंगी। यदि ऊपर फैलने वाले वन के झाड़ों अर्थात् लोभ मोह आदि को काट दिया जाये ॥८॥

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।

पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

पदार्थः—(यत् अस्य) इस सूर्य का (चक्रम्) चक्रकर्तृ शक्ति (अप्सु) जलो मे (आनिषत्तम्) स्थापित है (उत) और (तत्) वह (अस्मै) इसके लिये (मधुइत्) अमृत जल ही (चच्छद्यात्) दे (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (यत्) जो (अतिषितम्) प्रकट हुआ (पयः) जल-रस (ऊधः) दूध (गोषु) गौओं मे (ओषधीषु) औषधियो मे (अदधा) धारण किया है ॥९॥

भावार्थ —जैसे सूर्य औषधियो के रस को—गौ दुग्ध को जलो को धारण कर मधु=अमृत कर देता है वैसे ही योगी ससार के पदार्थों को अमृत बना देता है ईश्वरीय चक्र भी जल, स्थल, नभ मे चल रहा है वही सबको मधु से मिठास में मोह से, आच्छादित किये हुए है उसे जान कर ज्ञानी रस को लेता है ॥९॥

अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।

मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥

पदार्थ —(यत्) जो ज्ञानी जन (वदन्ति) कहते है (अश्वात् इयात्+इति) सूर्य से आया है (उत) और (एनम्) इसको (ओजस) तेज से (जातम्) उत्पन्न हुआ है कहते हैं (मन्यो) ज्ञान से मन्त्र शक्ति से (इयाय) प्राप्त हुआ है (हर्म्येषु तस्थौ) महलो मे, उच्च लोको मे रहता था (यत प्रजज्ञे) जहा से उत्पन्न हुआ है (अस्य) इसको (इन्द्र.+वेद) ईश्वर जानता है (मन्ये) मैं ऐसा मानता हूं ॥१०॥

विशेषः—ससारोत्पत्ति के विषय में ऐसी अनिश्चित बातें कहकर वेद ने संसारोत्पत्ति के ज्ञान की महत्ता दिखाई है। यह परोक्ष ज्ञान है केवल कल्पनाओं से इसका निर्णय नहीं हो सकता इसके निश्चित करने के लिए प्रत्यक्ष द्रष्टा योगी (इन्द्र) की ही बात मानी जायगी। संसारोत्पत्ति ईश्वर की ईक्षण शक्ति से प्रकृति के उपादान द्वारा हुई यह पुरुष सूक्त में आगे बताया जायगा और पहले मन्त्रों मे गतिदाता इन्द्र (वज्र) का भी संकेत किया गया है ऐसे अनेकान्तवाद के विचार व्यक्त करके वेद ने परोक्ष विषयो मे विचार करने की छूट दी है। परोक्ष विषयों मे अनेक दृष्टियो से विचार होना चाहिए यह मत वेद ने व्यक्त करके ज्ञान पर पूर्ण विराम लगा देने का निषेध किया है ज्ञान का प्रवाह चलते रहना चाहिए यह है वेद का उदार उपदेश संकीर्णता से ऊपर उठा आदेश।

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥४॥

पदार्थः—(वय. सुपर्णाः) सुन्दर पख वाले पक्षी, सुपर्ण ज्ञान वाले पक्षी (यहां सुपर्ण शब्द श्लिष्ट है, श्लेष अलकारो और रूपक अलकारो से वेद काव्य भरा हुआ है यह वेद की विशेषता है। वेदवाणी मे काव्य सौन्दर्य भरा है) (प्रियमेधा) जिन्हें मेधा [बुद्धि] प्यारी है (ऋषय) ऋषि (नाधमाना) तीव्र ताप वाले प्रज्वलित अगम वाले (इन्द्रम्+उपसेदु) ईश्वर की सेवा मे पहुंचे अर्थात् समाधिस्थ हुए, (नाधमाना) ईश्वर से प्रार्थी हुए (ध्वान्तम) अन्धकार को, अज्ञान को (अप ऊर्णुहि) हे भगवन्! दूर कर दो (चक्षु. पूर्धि) दृष्टि को प्रकाश से पूर्ण कर दो (निधयाबद्धान्+इव) जल से बधे हुओ के समान (अस्मान) हमे (मुमुग्धि) मुक्त कर दो ॥११॥

भावार्थः—निर्भ्रान्त ज्ञान की प्राप्ति समाधि द्वारा ईश्वर से ही हो सकेगी इससे पहले मन्त्र के विचारो का यह समाधान है ॥११॥

इति चतुर्थो वर्ग ॥

---

[७४]

गौरिवीतिर्ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।

अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥१॥

पदार्थ —(रोदस्यो) द्युलोक और भूलोक के बीच (वसूनाम्) बसे हुओं मे (धिया) बुद्धि द्वारा (यज्ञै) यज्ञों द्वारा (इयक्षन्) यज्ञ करने के इच्छुक जन (रयिमन्तः) धनवान् (सातौ) युद्ध मे (वनु धुः) शत्रुओ को मारने वाले (ये+अर्वन्त) जो गतिशील हैं (सुश्रुत) अच्छे विद्वान् हैं (वा ये) अथवा जो (सुश्रुणम् धु) अध्ययन की वस्तु को धारण करने वाले हैं उन्हें (चर्कृष) आकर्षित करें ॥१॥

भावार्थः—यज्ञ चाहने वाले और धनियो का कर्तव्य है कि वे वीर और विद्वानो का मान करें ॥१॥

हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।

चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२॥

पदार्थ —(द्यौ+न) द्युलोक जैसे (स्वै वारेभिः) अपनी तम निवारक रश्मियो द्वारा (सुविताय) लाभ के लिए (कृणवन्त) करते हुए (देवाः) देव (यत्र) जहां (एषाम्) इनका (असुर हवः) प्राणप्रद यज्ञ (द्यां नक्षत) सूर्य लोक तक पहुचता हुआ (श्रवस्यता मनसा) अन्नेच्छुक मन के साथ (चक्षाणा) यज्ञ करते हुए (क्षाम्) भूमि को (देवा.) देव (निंसत) पहुंचे है ॥२॥

भावार्थः—देवताओ का यज्ञ विश्व भर मे हो रहा है सबके लाभ के लिए द्युलोक से भूमि तक ॥२॥

इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।

धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्यमसामि ॥३॥

पदार्थ —(एषाम्+अमृतानाम) इन मुक्त जीवो की (इय गीः) यह वाणी (सर्वताता) सबका भला करने वाली है (ये रत्न कृपणन्त) जिन्हें रत्न रमणीक सुख सबके लिए लिया गया है (धियम् च यज्ञ च साधयन्त) जिन्होंने बुद्धि कर्म और यज्ञसगति करण की साधना की है (ते न) वे हमारे लिए (असामि) पूर्ण (वसव्यम्) सबको बसाने योग्य सामर्थ्य (धान्तु) धारण करावें ॥३॥

भावार्थ :—सर्व श्रेष्ठ ज्ञानी विद्वान् हम सर्वोपकार के योग्य बनावें ॥३॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।

सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४॥

पदार्थ —(ये) जो (सकृत्स्वम्) एक साथ ही धनादि की उत्पादक (बृहतीम्) बड़ी (पुरु पुत्राम्) बहुतो की माता (सहस्र धाराम्) सहस्रों प्रकार के पदार्थों से पूर्ण (महीम्) भूमि को (दुदुक्षन्) जिन्होंने दुहा है (गोमन्तम्) गाय-बैलों से युक्त (ऊर्वम्) भूमि की उपज को (तितृत्सान्) काटने की इच्छा रखते है (ये) जो (आयव) मनुष्य (हे इन्द्र ते अभिपनन्त) हे इन्द्र तुम्हारी स्तुति करते है (तत्) उस समय ॥४॥

भावार्थ - भूमि की उपलब्धियो के लिए जनता इन्द्र की [सूर्य] वर्षा ईश्वर की चाहना और स्तुति करती है ॥४॥

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।

ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥५॥

पदार्थः—(हे शचीवः) कर्म कर्ता यजमानो (अनानतम्) किसी के आगे नत न होने वाले (पृतन्यून्) प्रति पक्षियों को (दमयन्तम) दमन करने वाले (इन्द्रम्) इन्द्र को (अवसे) रक्षा के लिए (कृणुध्वम्) अपना सहायक करो (ऋभुक्षणं) सत्य पालक (सुवृक्तिम्) सुन्दर स्तुतियों के योग्य (मघवानम्) ऐश्वर्यशाली (य +भर्ता) जो हमारा भरण पोषण करने वाला स्वामी है उसे रक्षक बनाओ वह (य नर्यम् वज्रम् भर्ता) जो सर्व हितकारक शक्ति को धारता है (पुरुक्षुः) उत्तम वचनों को जानता है ॥५॥

भावार्थ—उक्त गुणो वाला ईश्वर पूजनीय है सेनापति और राजा में भी यह गुण होना चाहिए ॥५॥

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।

अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६॥५॥

पदार्थ —(यत्) जो (पुरुतमम्) बड़ी जल राशि को (वावान) चोट करता है (नामानि) जलों को भर देता है (पुराषाळा) मोह के पुरों को जीतने वाला है (वृत्रहा) अज्ञान का नाशक है ऐसा (इन्द्र) प्रकाशमान ईश्वर [सूर्य भी] (तुविष्मान्) शक्ति वाला (प्र सहस्पतिः) बड़ी शक्तियों का स्वामी है (अचेति) उसे जानो (यत् कर्तवे) जो करने को हम यजमान (ईम्+उश्मसि) इसको चाहते हैं (तत् करत्) उसे वह पूर्ण कर देता है ॥६॥

भावार्थ — मन. कामनाओं की पूर्ति के लिए उक्त गुण विशेष ईश्वर का सहारा लो परन्तु कामनाए उसके समान पवित्र हों राजा पर भी मन्त्रार्थ लगता है ॥६॥

इति पञ्चमो वर्ग ।

[७५]

सिन्धुक्षित्प्रैयमेध ऋषि' ॥ नद्यो देवता' ॥ छन्द —१ निचृज्जगती । २, ३ विराड् जगती । ४ जगती । ५, ७ आर्ची स्वराड् जगती । ६ आर्ची भुरिग् जगती । ८, ९ पादनिचृज्जगती ॥

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।

प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१॥

पदार्थ —(हे आप) हे आप्त पुरुषो ! (उत्तम महिमानम्) उत्तम महिमा को (प्र सु व) प्रकट करो (विवस्वत') कार्यरत यजमान के (सदने) घर मे (कारु) कर्म करने वाला (वोचाति) कहता है (सिन्धु) सिन्धु ने (ओजसा) अति बड़े बल से (सृत्वरीणाम्) नदियो का (प्रसप्त सप्त त्रेधाहि) प्रत्येक सात का तीन भागों में ही (प्रचक्रमु) प्रक्रमण किया ॥१॥

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।

भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२॥

पदार्थः—(हे सिन्धो) हे सिन्धु (ते प्रयातवे) तेरे प्रकृष्टता से जाने के लिए (वरुणः) वरुण ने (पथ.) मार्गों को (अरदत्) खोला है (यत्) जिससे कि (त्वम्) तू (वाजान्) अन्नो को, बलों को (अभ्यद्रव) दौड़ी है (भूम्या अधि प्रवता सानुना यासि) भूमि से लेकर पर्वतो की प्रकृष्ट चोटी तक जाती है (यत्) जो कि (एषाम् जगताम्) इन ससारो का (इरज्यसि) आधिपत्य करती है ॥२॥

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।

अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३॥

पदार्थः—(भूम्योपरि) भूमि से ऊपर (दिवि) द्युलोक मे (स्वन) शब्द (यतते) फैलता है (भानुना) सूर्य के साथ (अनन्त शुष्मम्) अनन्त बलरूप जल (उत्+इयर्ति) ऊपर उठता है (वृष्टयः) वर्षाएं (अभ्रादिव) मानो मेघ से (स्तनयन्ति) जल बरसाती हैं (सिन्धु'+यत्+एति) सिन्धु इस प्रकार चलता है (वृषभो न रोरुवत्) मानो विचार [साँड] गरज रहा है ॥३॥

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।

राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४॥

पदार्थ —(सिन्धो) हे सिन्धु (मातर) माताए (शिशुम्+इत्+न) जैसे बच्चे की ओर (पयसा धेनव.+इव) मानो गौएं दूध के साथ (वाश्रा) स्तुति करने वाले (त्वा+अभि+अर्षन्ति) तेरी ओर आ रहे हैं (युध्वा राजा इव) युद्ध करने वाले राजा के समान (त्वम् इत) तुम ही (सिचौ नयसि) तटो पर ले जाते हो (यत्) क्योंकि (प्रवताम् आसाम्) आगे बढ़ने वाली इन प्रजाओ के (अग्रम) आगे के पद को (इनक्षसि) प्राप्त करते हो ॥४॥

विचार—उक्त मन्त्रों में ऐसा लगता है कि ऋषि सिन्धु नदी की स्तुति कर रहा है और काव्य शैली से अनभिज्ञ वा वेद विरोधी भौतिक वादी भी ऐसा ही मानते हैं परन्तु वेद परोक्ष ज्ञान देने के लिये प्रवृत्त हुआ है अत प्रत्यक्ष भूगोल वर्णन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मन्त्रो के शब्द और महत्त्व पूर्ण वर्णन शैली ही बता रही है कि सिन्धु नदी रूपक द्वारा किसी और गूढ़ रहस्य की स्तुति की जा रही है वह रहस्य है—ईश्वर नन्द की धारा । यह सिन्धु सप्त त्रेधा २१ धाराओं में विभक्त कहाँ है पर शरीर में ७ नाड़ियाँ जो भू , भुव , स्वः, मह , जन , तप , सत्यम् की प्रतीक है । कुम्भक, रेचक, पूरक इन तीन प्राणायामों के द्वारा २१ प्रकार की बन जाती हैं उनमें प्राणायाम द्वारा वे सब सकट कट जाते हैं जो ऊपर कहे हैं और अपार वैभव भी प्राप्त होता है जिसका मन्त्रों में वर्णन है इस भौगोलिक सिन्धु मे वे शक्तियाँ कहाँ हैं जो मन्त्रों में वर्णित हैं ।

यह कल्पना हमारी मन गढ़न्त नहीं किन्तु आध्यात्मिक पुस्तको में ऐसी नाड़ियों के वर्णन विद्यमान हैं देखिये—

केन्द्रमध्य स्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता ।
त्रिसप्तति सहस्राणि तासां मुख्या चतुर्दश ६

सुषुम्ना पिंगला—इडा चैव सरस्वती पूषा च वरुणा चैव हस्तिजिह्वा यश- स्विनी, ७

अलम्बुषा कुहू चैव विश्वोदरी तप स्विनी
तिष्ठन्ति परितस्तस्यां नाड्या हि मुनिपुंगव
शंखिनी चैव गांधारा इति मुख्याश्चतुर्दश—
(जाबाल दर्शनोपनिषद चतुर्थ खड:)

इसी प्रकार हठयोग के ग्रन्थो में है —इडा च गंगा प्रोक्ता पिंगला यमुना नदी । मन्त्र तीन में जो आया है कि सिन्धु "वृषभो न रोरुवत" बैल की तरह दहाड़ती है वह भी आध्यात्मिक ध्वनि का वर्णन है:—

ब्रह्मरंध्र गते वायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनघ
शख ध्वनि निभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ३६
(जाबाल द० उपनिषद् खड ६)

आगे भी गंगा आदि दस नदियो के नाम आये है जो शब्द वाहिनी हैं फिर छठे मन्त्र में ८ नदियो के नाम हैं जिनमे गोमती भी है गोमती नदी अवध में है लखनऊ, जौनपुर गोमती के किनारे पर बसे हैं यह नदी नयी है । ३/४ सौ वर्ष से बही है इसका नाम कैसे आ गया ? गंगा भी महाराज भगीरथ की लायी हुई है भगीरथ से बहुत पहले प्रादुर्भूत हुए वेदों मे गगा यमुना का नाम कैसे आ सकता है ? वस्तुतः यह आध्यात्मिक स्रोतों का वर्णन है पश्चात् इन्हीं मन्त्रों से शब्द लेकर ऋषियो ने इन नदियो के नाम रखे ।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५॥६॥

पदार्थ —(गंगे, यमुने, सरस्वति परुष्ण्या शुतुद्रि) हे गंगा, यमुना, सरस्वती परुष्णी के साथ शुतुद्रि (मे, इमं स्तोमम् सचता,) मेरे इन स्तोम को स्वीकार करो और (असिक्न्या मरुद्वृधे) असि की कन्या के साथ मरुद्वृधा (वितस्तयार्जीकीये) वितस्ता के साथ (मे स्तोमम्) मेरी स्तुति को (आशृणुहि) सुनो ॥५॥

भावार्थः—योगी आत्मिक आनन्द की धाराओ की प्रशंसा करता है ॥५॥

अब योगयुक्त आत्मा की महत्ता का वर्णन होता है:—

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।

त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

पदार्थ —(हे सिन्धो) हे योगिन् आत्मन् तू (सरथम्) शरीररूपी रथ के साथ (याभि) जिन नाड़ियों के साथ (ईयसे) गति करता है उनमें (प्रथमम् यातवे) प्रथम गति के लिये (तृष्टा मया सजूः) तृष्टामा नाड़ी से सुसगत होता हुआ (सुसर्त्वा रसया) सुसर्तु और रसा के साथ (त्यात्श्वेत्या) उस श्वेत नाड़ी के साथ (कुभया मेहत्न्वा) कुभा और मेहत्नू के साथ (गोमतीं क्रुमु) गोमती और क्रुमु को (ईयसे) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ —"१=तृष्टामा २- सुसर्तु ३=रसा ४=श्वेत्या ५=कुभा ६=गोमती ७=क्रुमु ८=मेहत्नू ये ८ नाड़ियाँ वेद ने और कही हैं इनके साथ योग करके आत्मा अनेक देह के कार्यों का सम्पादन करता है जैसे "तृष्टामा" नाड़ी से आमाशय भोजन को पचाता है "सुसर्तु" के योग से देह के समस्त रसों को अपने-अपने स्थानों पर भेजता है "रसा" नाड़ी से समस्त देह मे रस व्यापता है "श्वेत्या" से दुग्धवत् रस पक्वाशय से छाती में आकर रक्त स मिलता है "कुभा" नाम नाड़ी जाल से देह की त्वचा का निर्माण करती है गोमती से वाणी का उच्चारण वा इन्द्रिय शक्तियो को वश करता है । "क्रुमु" देह के अंगों के चलने की व्यवस्था करता है "मेहत्नू" नाडी से मूत्र बनने और निकलने की व्यवस्था करता है । (श्री जयदेव विद्यालकार मीमांसा तीर्थ के भाष्य से) ॥६॥

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।

अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७॥

पदार्थ —(ऋजीती) ऋजु—सरल गति वाली (एनी) श्वेत वर्ण की मज्जा और वीर्य वाहिनी नाडी (रुशती) कान्ति देने वाली ओज वाहिनी नाडी (महित्वा) आत्मा की महिमा से (ज्रयांसि रजांसि) जय वाले परमाणुओ को (परि भरते) ले जाती है (अदब्धा सिन्धु) अविनाशी आत्मा (अपसाम्+अपस्तमा) कर्म करने वालो में सर्वोत्तम कर्मकर्त्ता (अश्वा न) घोड़ों के समान [शक्ति-सम्पन्न] (चित्रा) अद्भुत विविध ज्ञानयुक्त (वपुषी इव दर्शता) सुन्दर रूपवती सी दर्शनीय होती है ॥७॥

भावार्थ —उक्त नाडियों की साधना से आत्मा का रूप निखर जाता है ॥७॥

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।

ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८॥

पदार्थ —(सिन्धु.) यह आत्मा (स्वश्वा) सुन्दर अश्वों [इन्द्रियों] वाली (सुरथा) सुन्दर रथ=शरीर वाली (सुवासा) सुन्दर वस्त्र [भावों] से सजी हुई (हिरण्ययी) सुवर्णमय (सुकृता) पुण्यवती (वाजिनी वती) शक्तिसम्पन्न सेना वाली (ऊर्णावती युवतिः) रोमाञ्चित हुई युवती (सीलमावती) ज्ञानवाहिनी नाडी से बद्ध (उत सुभगा) उत्तम सौभाग्ययुक्त (मधुवृधम्) आध्यात्मिक आनन्द रूपी मधु से बढ़े हुए अर्थात् हृदय में (अधिवस्ते) निवास करती है ॥८॥

भावार्थः—योगी की इन्द्रियाँ शरीर के रोम-रोम सब पवित्र प्रसन्न हो जाता है। मन्त्र के उक्त विशेषण भौगोलिक सिन्धु नदी पर कहाँ घटते हैं यह विचारना चाहिए ॥८॥

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।

महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥९॥७॥

पदार्थः—(सिन्धुः) नदी-सम सदा गतिशील (अश्विनम्) इन्द्रिय रूपी घोड़ों से युक्त (रथम्) शरीर रूपी रथ को (सुखम् युयुजे) सुख पूर्वक युक्त होता है, योग साधना करता है। (तेन) उसके द्वारा (अस्मिन्+आजौ) इस जीवन रूपी युद्ध में (वाजं सनिषत्) शक्ति का सेवन करता हुआ (अदब्धस्य स्वयशसः) अविनाशी अपने यश का (विरप्शिनः) महान् यश का (अस्य हि महान् महिमा) निश्चय इसका महान् महत्त्व (पनस्यते) वर्णन किया जाता है ॥९॥

भावार्थ.—शरीर-इन्द्रियादि की साधना द्वारा योगी महिमायुक्त हो जाता है।

रथादि का जोड़ना, संग्राम में उतरना, ये बातें भी सिन्धु नदी पर लागू नहीं होतीं ॥९॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

[७६]

जरत्कर्ण ऐरावतः सर्प ऋषिः ॥ ग्रावाणो देवताः ॥ छन्दः—१, ६, ८ पादनिचृज्जगती । २, ३ आर्ची स्वराड् जगती । ४, ७ निचृज्जगती । ५ आसुरी स्वराडार्ची निचृज्जगती ॥

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।

उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१॥

पदार्थः—(ऊर्जाम्-वि-उष्टिषु) बल को धारण करने वाले विभागों मे (वः+आऋञ्जसे) तुमको अच्छी भांति सजाता हूँ, तुम (इन्द्रम्) इन्द्र को (मरुतः) मरुद्‌गण को [राजा और व्यापारियों को] (रोदसी) द्युलोक, पृथिवी लोक को [इन्द्र-सूर्य और मरुत-वायु] (अनक्तन) प्रसन्न करो (यथा नः उभे अहनी) जिस प्रकार हमारे लिये दिन रात दोनों (सचाभुवा) साथ रहने वाले पति-पत्नी (सदः सदः) घर घर मे (उद्भिदा) अन्न से, फलों से (वरिवस्यातः) सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः—घर घर मे इन्द्र सूर्य, सूर्य की किरणों को मरुद्-वायुओं को द्युलोक, भूलोक को, प्राणप्रद शुद्ध बनाने के लिये उद्भिद्-अन्न, फल, जड़ी-बूटियों से यज्ञ होना चाहिए ॥१॥

तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।

विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२॥

पदार्थ.—हे विद्वानो ! (तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतन) उस यज्ञ को करो (हस्तयतः) हाथों में नियन्त्रित (अत्यो न) घोड़े के समान (सोतरि) सञ्चालक के आधीन (पौंस्यम्+विदत्) बल को प्राप्त करता है (अद्रिः) मेघ के समान आदरयोग्य (अर्यः) स्वामी (हि) निश्चय (अभिभूति) शत्रु को परास्त करने वाले (पौंस्यम् विदत्) बल को प्राप्त किये हुए (यत्+अर्वतः) जो नाशकारक शत्रुओं को (महो राये) बड़े ऐश्वर्य पाने के लिये (चित्) भी (तरुते) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—युद्ध भी एक प्रकार का यज्ञ ही है ॥२॥

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।

गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३॥

पदार्थ.—(अस्य) इस राजा रूपी यजमान का (तत्+इत्+हि सवनम्) निश्चय ही वह यज्ञ (अपः) प्रजाओं को (विवेः) व्याप्त हो (यथा पुरा मनवे) जैसे पूर्व मनुष्य के लिये (गातुम् अश्रेत्) गाने को प्राप्त हो अर्थात् जो इतिहास में गाया जाये। (गो+अर्णसि+अश्व निर्णिजि) पृथिवी वा वाणी के रूप में और घोड़े के रूप मे (त्वाष्ट्रे) तेजस्वी सूर्य में (अध्वरेषु) हिंसारहित कार्यों में (अध्वरान्) यज्ञों को वा अहिंसक जनों को (ईम्) इनको वा इस राजा को (प्र अशिश्रयुः) आश्रय लें [प्रजाएं] ॥३॥

भावार्थः—शासन रूपी यज्ञ का वर्णन है, शासक लोकप्रिय होना चाहिए ॥३॥

अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।

आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४॥

पदार्थ.—हे राजन् ! (रक्षसः अपहत) राक्षसों का हनन करो (भंगुरावतः) व्यवस्था को भंग करने वालों को (स्कभायत) वश में करो, जीतो (निर्ऋतिं+अमतिम्) दुर्भाग्य को, दरिद्रता को, अज्ञान को, विरोध को (अपसेधत) दूर करो (नः) हमारे लिये (सर्ववीरं रयिम्) सब वीरों से युक्त धन को (आसुनोतन) प्राप्त कराओ (हे अद्रयः) हे पर्वतसम अर्थात् उच्च नेताओ (देवाव्यम्) देवताओं के योग्य अर्थात् पवित्र और सम्पन्न (श्लोकम्) ज्ञान को, यश को (आभरत) प्रजा में भरो ॥४॥

भावार्थ—अच्छा शासन दुष्टों को, अभावों को, दरिद्रता को दूर कर यश और ज्ञान फैलाता है ॥४॥

दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।

वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५॥८॥

पदार्थ.—हे राजन् ! तुम (वः) हमें (दिवः+चित्) सूर्य से भी (अमवत्तरेभ्यः) अधिक तेजस्वी (विभ्वना चित्) व्यापक विद्युत से भी अधिक (आशु अपस्तरेभ्यः) शीघ्र काम करने वाले (वायोश्चित्) वायु से भी तीव्र (सोमरभस्तरेभ्यः) प्राणप्रद बल से भी अधिक बलयुक्त (अग्नेश्चित) अग्नि से भी अधिक (पितुकृत्तरेभ्यः) अन्न पैदा करने वाले जनों के लिये (अर्च) सत्कार कर ॥५॥

भावार्थः—शासन अपनी प्रजा के योग्य जनों का सत्कार करे ॥५॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।

नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६॥

पदार्थ—(ग्रावाणः) उत्तम विद्वान् लोग (अन्धसः सोतु) अन्नोत्पादक मेघ जैसे जल को धारण करते हैं (यशसः सोतु नः भुरन्तु) हमारे लिये यश उत्पन्न करने वालों को प्राप्त करो (यत्र) जहाँ (दिविता) उत्तम इच्छा से प्रेरित (दिवित्मता वाचा) प्रकाशयुक्त गतिदात्री वाणी से (नरः) मनुष्य (काम्यम् मधु) कामना योग्य मधु को, सुख को (दुहते) दोहन करते हैं (मिथस्तुरः) मिल कर वेग के साथ (अभितः+आघोषयन्तः) घोषणा करते हैं, उपदेश देते हैं ॥६॥

भावार्थ—शासन में विद्वान यश फैलावें, जनता की शुभ कामनाएं पूरी हों, सुन्दर आघोष हो ॥६॥

सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।

दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७॥

पदार्थ—(अद्रयः) पर्वत वा मेघ (सोम सुन्वन्ति) जल को उत्पन्न करते हैं (रथिरासः) रमणीय पदार्थ रथ आदि को रखने वाले (गविषः) वाणी को चाहने वाले (ते दुहन्ति) वे दुहते हैं (रसं निरस्य) रस को निकालकर (उपसेचनाय) सब प्रजा में सींचने के लिये (ऊधः+दुहन्ति) स्तन को दुहते हैं (नरः हव्या) मनुष्य हव्य पदार्थों को (आसभिः न) जैसे मुखों से (मर्जयन्त.) चबाते हैं ॥७॥

भावार्थ—इस मन्त्रार्थ की व्यञ्जनायें और हैं। विद्वान् वाणियों का प्रचार करते हैं ज्ञानी उपसेचन के लिये उनका रस निकालते हैं बादल और पहाड़ों से जल निकलता है मनुष्य उन्हें सींचने के काम में लाते हैं इसी प्रकार विद्वानों की वाणियों के रस से ज्ञानी लोग तृप्त होते हैं और अज्ञों को भी तृप्त करते हैं ॥७॥

एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।

वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८॥९॥

पदार्थ—(नरः) हे नेताओ ! (एते अद्रयः) ये महान् जन (इन्द्राय) आत्मा के लिये (सोमं सुनुथ) सोम को निचोड़ते हैं (ये सु अपसः) सुन्दर कर्म वाले (अभूतन) होते हैं (वः पार्थिवाय) तुम्हारे पार्थिव शरीर के लिये (दिव्याय धाम्ने) दिव्य धाम के लिये (वामम् वामम्) सुन्दर-सुन्दर (वसु-वसु) वसने योग्य स्थान को (सुन्वते) यज्ञ करने वाले के लिये ॥८॥

भावार्थः—यहाँ भी व्यंग्यार्थ यह है कि आत्मा के दिव्यधाम-प्राप्ति के लिये सोम को आत्मा के लिये दो ॥८॥

इति नवमो वर्गः ॥

[७७]

स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ६—८ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।

सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१॥

पदार्थः—(अभ्रप्रुषः) मेघ के जल बिन्दुओं को लाने वाले (हविष्मन्तः) यज्ञिय वस्तुओं को देने वाले (विजानुषः) विविध पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (मरुतः) मरुद्‌गण [वायु] (वाचा) वाणी से (वसुप्रुषा) धन देने वाले (यज्ञाः+न) यज्ञों के समान हैं (अर्हसे) इनके लिये (ब्रह्माणं न) ब्रह्मा के समान (एषां मारुतं गणम्) इनके मरुत्‌गण को (अस्तोषि) स्तुति करता है (शोभसे न) मानो शोभित हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—यहाँ भी व्यञ्जना है मरुत श्लिष्ट है वायु, मनुष्य [वैश्य] के लिये वर्षा के बिन्दुओं को लाने वाले वायु जैसे स्तुत्य हैं वैसे ही धनादि बढ़ाने वाले विद्वान् और वैश्य प्रशंसनीय है ॥१॥

श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।

दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२॥

पदार्थ—(मर्यासः) मनुष्य (श्रिये) लक्ष्मी के लिये धन-सम्पत्ति के लिये (सुमारुतं गणम्) वर्षा के वायुगण वा वैश्यगण की (अञ्जी न) शोभा वाले

आभूषण—शस्त्रों के समान (अकृण्वत) करें (एता विवस्वतः + न) ये महत सूर्य के पुत्रो जैसे (पूर्वीः + अपः अति) पूर्व रात्रियों को अतिक्रमण करके (नयेतिरे) यदि यत्न न करें तो (ते + आविस्था) वे सूर्य किरणें (अक्ता) स्थावर और जंगम पदार्थों को (न वावृधुः) न बढ़ावें ॥२॥

भावार्थ —चराचर पदार्थों की वृद्धि के लिये वर्षा, वायु, सूर्य-किरणें जैसे आवश्यक हैं वैसे ही विद्वान और उद्योगी जन आवश्यक हैं ॥२॥

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥३॥

पदार्थः—(ये) जो (त्मना बर्हणा) अपनी शक्ति से (दिवः पृथिव्याः न) मानो द्युलोक और पृथिवी से (प्र रिरिच्रे) बढ़े हैं (सूर्यः + अभ्रात् + न) सूर्य जैसे बादल से जल वर्षाता है वैसे ही विद्वान् ज्ञान की वर्षा करता है (पाजस्वन्त वीराः न) बलवान् वीरों के समान (पनस्यवः) व्यवहारो मे निपुण (रिशादसः) दुष्टो को नाश करने वालो के (न) समान (मर्या) मनुष्य (अभिद्यवः) चमकते हैं ॥३॥

भावार्थ —सूर्यादि पदार्थों के समान जनहित करने वाले मनुष्य जगत् मे प्रकाशित होते हैं ॥३॥

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४॥

पदार्थ —(अपां न यामनि) जैसे जलो के बहने पर (मही) भूमि (न विथुर्यति न श्रथर्यति) न पीड़ित होती है न कष्ट पाती है इसी प्रकार हे मनुष्यो ! (युष्माक बुध्ने) तुम्हारे गति करने पर (विश्वप्सुः) विश्वरूप (अयं यज्ञ) यह यज्ञ (अर्वाक्) प्रत्यक्ष है (वः सुप्रयस्वन्त) तुम अच्छा परिश्रम करते हुए (सत्राचः न) सुसगत हुए से (आगत) आओ ॥४॥

भावार्थ—इस जीवन रूपी यज्ञ मे सुसगठित होकर परिश्रम से काम करो तभी यज्ञ सफल रहेगा । तुम्हारी गति से किसी को कष्ट न हो ॥४॥

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥५॥१०॥

पदार्थ —(यूय रश्मिभिः प्रयुजोन) तुम (मरुत्) रस्सियो से बधे हुए के समान (धूर्षु) प्रजा के रक्षण के भारो पर (व्युष्टिषु) विविध कार्यों मे (भासा ज्योतिष्मन्त न) प्रकाश से चमकते हुए से (श्येनास) प्रशंसनीय कार्य वालो के (न) समान (स्वयशस) अपने यश वाले (रिशादस) दुष्टों का दमन करने वाले (प्रवासो न) प्रकृष्ट वस्त्रो वाले वा प्रवासियो के समान (प्रसितास) प्रसिद्ध यामो वाले (परिप्रुष) सब ओर से गमन करो ॥५॥

भावार्थ —वायु के समान विद्वान् यशस्वी होकर स्वतन्त्र विचरें ॥५॥

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६॥

पदार्थ —(हे मरुतः) हे सर्वगति विद्वानो ! (यत् पराकात्) जैसे दूर से (आरात् + चित्) और समीप से भी (संवरणस्य) भली भांति लेने योग्य (राध्यस्य) सबसे सेवनीय (वस्व) धन को (प्रवहध्वे) धारण करते हैं । (विदानासः) पाने वाले होते हो । हे सबका बसाने वाले नेताओ ! (सनुत) भीतर छिपे (द्वेषः) द्वेषों के भावो का (युयोत) दूर कर दो ।६॥

भावार्थ—द्वेष दूर हो, अभीष्ट धन मिले, ऐसा प्रयास विद्वान् करें ॥६॥

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७॥

पदार्थ.—(य अध्वरेष्ठा + मनुष्यः न) जो यज्ञ मे स्थित मनुष्य यजमान के समान (यज्ञे + उदृचि) यज्ञ की समाप्ति पर (मरुद्भ्यः) मरुतो के [विद्वानो के] लिये (रेवत्) धनवान् के समान (ददाशत्) दक्षिणा देता है (सः सुवीर वयोदधते) वह अच्छे वीरो वाला हुआ आयु को धारण करता है (स.) वह (देवानामपि + गोपीथे) देवताओ की भी रक्षा में (अस्तु) होता है ॥७॥

भावार्थ —दक्षिणाओं सहित यज्ञ करने वाला यजमान देवों [विद्वानों] की रक्षा करता है । अपनी आयु स्थिर करता और वीर पुत्र पाता है ॥७॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥११॥

पदार्थः—(ते हि यज्ञियास) वे यज्ञ करने वाले जन (यज्ञेषु) यज्ञों में (ऊमा) रक्षक हों (आदित्येन नाम्ना) आदित्य नाम से प्रसिद्ध वे (शम्भविष्ठाः) शान्ति पहुँचाने वाले हो (ते) वे (महः च) महत्व को भी (चकानाः) चाहते हुए (अध्वरे यामन्) यज्ञ के नियन्त्रण में (रथत.) वेगयुक्त रथ से चलने वाले (मनीषाम् न) हम विचारशीलों की रक्षा करें ॥८॥

भावार्थ —यज्ञों में रक्षक महत्त्वशाली विद्वान् हों ॥८॥

इत्येकादशो वर्गः ॥

---

[७८]

स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्द —१आर्ची त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराड् जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१॥

पदार्थ.—(मन्मभि) मननपूर्ण विचारों से (विप्रास) विद्वान् लोग (न) जिस प्रकार (स्वाध्य) अच्छे अध्ययन वाले (यज्ञै) यज्ञो द्वारा (देवाव्य) देव भावनाओ से युक्त (क्षितिनाम् राजान) भूमियो के राजा लोग (चित्राः) अद्भुत काम करने वाले (सुसदृश) उत्तम तत्वदर्शी (मर्या) मनुष्य (स्वप्नसः) अच्छे कर्म करने वाले (क्षितीनाम्) भूमियो में (अरेपस) पापो से रहित (न) तुल्य हो ॥१॥

भावार्थ —राजा लोग विद्वान् और शुभकर्मकर्ता तथा निष्पाप हों ॥१॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ।२॥

पदार्थ—(ये) जो (अग्निर्न) अग्नि के समान तेजस्वी (भ्राजसा) तेज से (रुक्मवक्षस) सुवर्ण के से हृदय वाले (वातासः न) वायु के समान गति वाले (स्वयुज.) अपने आप कार्यों मे नियुक्त (सद्य ऊतय) तत्काल रक्षा करने वाले (प्रज्ञातारः) प्रकृष्ट ज्ञान वाले (ज्येष्ठा न) बड़ों के तुल्य (सुनीतयः) अच्छे नीतियुक्त व्यवहारो मे ले जाने वाले (सुशर्माणः) अच्छे कल्याणयुक्त (सोमा न) सोमों के समान गुण रखने वाले (ऋतं यते) सत्य के लिये यत्न करें ॥२॥

भावार्थ.—विद्वान् लोग सत्यान्वेषण मे लगें ॥२॥

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ।३॥

पदार्थ —(ये) जो (वातासः न) वायु के समान (धुनय) दुष्टो को कपाने वाले (जिगत्नव) आगे बढ़ने वाले (अग्नीनाम् + जिह्वा न) अग्नि की ज्वालाओं के समान (विरोकिण) नाना दीप्तियो वाले (वर्मण्वन्त योधा न) कवचधारी योधाओ के समान (शिमीवन्त) श्रेष्ठ कामों से युक्त (पितॄणाम् न) अपने गुरु जनो के तुल्य (शंसा) शान्तिकारक (सुरातयः) शुभ दान वाले हों ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य उपयुक्त गुणो वाले हों तो शान्ति रहेगी ॥३॥

रथानां न ये१ऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४॥

पदार्थ —(ये) जो (रथानाम् अराः न) रथो के पहियो मे लगे डंडो के समान (सनाभय) समान कुल के (जिगीवास शूरा न) जीतने की इच्छा वाले वीरो के समान (अभिद्यव) सब ओर विजयी (वरेयवः) श्रेष्ठ कामो मे सहायक (मर्याः न) मनुष्यो के समान (घृतप्रुष) जीवनदायक तत्वों को सेवन करने वाले (अर्कम्) पूजनीय ईश्वर को (अभि स्वर्तार. न) स्तुति करने वालो के समान (सुष्टुभ.) सुन्दर प्रतिभा वाले हो ॥४॥

भावार्थ—रथ के अरो के समान बधे बधुता मे पले लोग विजयी होते हैं । ईश्वर की स्तुति वाले अच्छी प्रतिभा पाते हैं ॥४॥

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥५॥१२॥

पदार्थः—(न) और (अश्वास.) अनेक विद्याओ में निपुण (ज्येष्ठास) बड़े अर्थात् माननीय (रथ्यो + न) रथ के घोड़ो के समान (आशवः) शीघ्र चलने वाले (दिधिषव) सबका पालन रक्षण करने वाले (सुदानव) अच्छे दानी (निम्नै + उदभि न आपः) नीचे जाने वाले जलो से जलधाराओं के समान (जिगत्नवः) आगे जाने वाले (विश्वरूपा) अनेक रूपो वाले (आंगिरस) तपस्वी लोग (सामभि न) जैसे शान्तिमय उपायो से शोभित होते हैं ॥५॥

भावार्थः—तपस्वी जन नियमों से बधे होते हैं ॥५॥

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६॥

पदार्थः—(सूरय) विद्वान लोग (ग्रावाणः न) मेघों के समान (सिन्धुमातर.) जिनकी [मेघों की मातायें नदियां और समुद्र हैं, जिनकी मातायें गंभीर ज्ञान वाली हैं वे मनुष्य] (विश्वहा) सर्वदा (अद्रयः न) शस्त्रों के समान

(आर्वविरास:) सब ओर से शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने वाले (सुमातार) उत्तम माताओं वाले (क्रीडय शिशुला: न) खेलते हुए बालकों के समान (यामन्) गमन करते हुए (त्विषा) दीप्ति से (महाग्रामः न) बड़े समूह के समान ही ॥६॥

भावार्थ:—विद्वान् लोग समूह रूप में काम करें, हँसते खेलते हुए ॥६॥

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।

सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७॥

पदार्थ:—(उषसां न केतव) उषाओं की किरणों के समान (अध्वरश्रिय)यज्ञों की शोभा से युक्त (शुभ यव) शुभ गुणों को धारने वाले (अञ्जिभि + वि + अश्वितन् + न) ज्ञान-किरणों से चमकते हुए (सिन्धवो न ययिय) नदियों के समान गति वाले (भ्राजदृष्टय) प्रकाशित दृष्टि [विचार] रखने वाले (परा वतो न) दूर आने वाले घोड़ो के समान (योजनानि) योजनो को—लंबे-लंबे मार्गों को (ममिरे) पूर्ण कर लेते हैं ॥७॥

भावार्थ:—विद्वान् बड़े बड़े काम अपनी तेजस्विता से पूर्ण करते हैं ॥७॥

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।

अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८॥१३॥

पदार्थ—(हे देवा) हे विद्वानो (न:) हमें (सुभागान् सुरत्नान् कृणुता) सौभाग्ययुक्त और अच्छे रत्नोवाला करो (स्तोतॄन् अस्मान्) स्तुति करने वाले हम लोगों को (मरुत) मरुत् द्वारा (वावृधाना) बढ़ाते हुए (स्तोत्रस्य सख्यस्य) स्तुति योग्य मित्रता को (अधिगात) प्राप्त करो (व) तुम्हारे (रत्नधेयानि) रत्नों के कोश (सनात् हि) सनातन ही (सन्ति) हैं ॥८॥

भावार्थ—वायु के समान फैली हुई ईश्वरीय विभूतियाँ हमें सौभाग्य-शाली बनावें यह प्रार्थना है ॥८॥

इति त्रयोदशो वर्ग ॥

[७९]

अग्नि: सौचीको, वैश्वानरो वा सप्तिर्वा वाजम्भर ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द:—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।

नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१॥

पदार्थ—(अस्य अमर्त्यस्य महत) इस अमर महान् की (महित्वं) महिमा (मर्त्यासु विक्षु) मरण धर्मा प्रजाओं में (अपश्यम्) मैंने देखी (नाना-हनू) अनेक जबड़े मुख के नीचे ऊपर के भाग सूर्यलोक पृथिवीलोक (विभृते) धारण किये हुए सब जगत् का भरण-पोषण कर रहे हैं (असिन्वती) किसी को बन्धन में बाँधती हुई (बप्सती) खाती हुई (भूरि) बहुत (अत्त:) खा जाती है ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी इस मरण धर्म वाले जगत् में महिमा वाले अमर ईश्वर का साक्षात् करता है अर्थ भौतिक अग्नि पर ढाल कर ईश्वर का वर्णन किया है। यह अन्योक्ति अलंकार है ॥१॥

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।

अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥

पदार्थ—(गुहा शिरो निहितम्) गुप्त रूप से बुद्धि में इसका सिर छिपा हुआ है (ऋधक् + अक्षी) दोनों आँखें अलग अलग हैं (जिह्वया) जीभ से (असिन्वन्) खाने की वस्तु को बिना पकड़े ही (वनानि) वनों को (अत्ति) खा जाता है (अस्मै) इसके लिये [जठराग्नि वा ईश्वराग्नि] (पड्भि:) पाँवों से आना जाना करके (अत्राणि) भोज्य वस्तुयें (संभरन्ति) इकट्ठी करते हैं (अधिविक्षु) प्रजाओं में (नमसा) अन्न से, सत्कार से (उत्तान हस्ता) ऊपर को हाथ उठाये हुये ॥२॥

भावार्थ—भौतिक जठराग्नि, दावाग्नि का वर्णन करते हुये ब्रह्माग्नि की व्यंजना की है अग्नि के समान ही ब्रह्म व्यापक है। गुह=हृदय में छिपा है, सूर्य चन्द्र उसके नेत्र हैं ॥२॥

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।

ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३॥

पदार्थ:—(कुमार: न)बालक के समान (मातु: गुह्यम्) माता की गोद को (प्रतर इच्छन्) बहुत चाहता हुआ (उर्वी वीरुध: प्रसर्पत्) भूमि के वनस्पतियों की ओर दौड़ता हुआ (पक्वम् ससं न) पके अन्न के समान (शुचन्त) पवित्र को (रिरिह्वांसं) अच्छा मन करते हुए को (रिप उपस्थे) पृथिवी की गोद में (अन्त: अविदत्) भीतर [अन्दर] पाता है ॥३॥

भावार्थ:—यहाँ भी अग्नि के रूपक से सर्वव्यापक ईश्वराग्नि की ओर मन्त्र का संकेत है। जीवात्मा बार-बार धान्यों और वनस्पतियों के समान इन शरीरों को धारण करता और त्यागता है, पर माता की गोद के समान सुखदायिनी ईश्वर की गोद में आकर आनन्दित होता है ॥३॥

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।

नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४॥

पदार्थ—(रोदसी) हे द्युलोक और पृथिवी लोक (तत् वाम् ऋतं प्रब्रवीमि) तुम दोनों के लिए मैं सत्य कहता हूँ (जायमान: गर्भ: मातरा अत्ति) उत्पन्न हुआ गर्भ माता-पिता को दबाता है (अहं मर्त्य) मैं मरणधर्मा मनुष्य (देवस्य) देव ईश्वर के विषय में (न चिकेत) नहीं जानता (अङ्ग) हे मित्र ! (अग्नि) ज्ञानी (प्रचेता:) उत्कृष्ट ज्ञान वाला (स. विचेता) वह विविध ज्ञान वाला है ॥४॥

भावार्थ—जीव उत्पन्न होता है माता-पिता विदा होने जाते हैं इस जन्ममरण के चक्र को नहीं जान पाता। ज्ञानी गुरु ही से इस गुप्त तत्व का ज्ञान कर सकता है ॥४॥

यो अस्मा अन्नं तृष्वादधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।

तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५॥

पदार्थ—(य. अस्मै) जो इसके अग्नि के लिए (तृषु) शीघ्र तत्परता से (आज्यै: घृतै) सोम रसों और घृतों के साथ (अन्नम् आदधाति जुहोति पुष्यति) अन्न को धारण करता, आहुति करता और पुष्ट करता है (तस्मै) उसके लिए (सहस्रम् अक्षभि) सहस्रों आँखों से (वि चक्षे) तू देखता है (हे अग्ने) हे ईश्वर ! (त्वम्) तू (विश्वत) सब ओर से (प्रत्यङ्ङसि) प्रत्यक्ष है ॥५॥

भावार्थ:—जो श्रद्धा से यज्ञ करते और अपने ज्ञानाग्नि को पुष्ट करते हैं वह ईश्वर सहस्र आँखों से अर्थात् कृपादृष्टियों से उन्हें देखता है वह सब ओर प्रत्यक्ष है, सर्व-व्यापक है ॥५॥

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।

अक्रीळन्क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६॥

पदार्थ:—(हे अग्ने) हे प्रभो ! (देवेषु) विद्वानों में (किम् एन) किस पाप को देखकर (त्यज: चकर्थ) तुम दण्ड प्रदान करते हो अर्थात् देव दिव्य शक्तियाँ सूर्यादि के प्रति वा चेतन देव विद्वानों के प्रति मनुष्य कौन सा पाप करता है जिससे तुम्हारे द्वारा दण्डनीय होता है (अविद्वान्) अज्ञानी मैं (त्वां नु) तुमको ही (पृच्छामि) पूछता हूँ (हरि) संसार का संहार करने वाले आप (क्रीडन् अक्रीडन्) खेल करते हुए वा खेल न करते हुए (अत्तवे अदन्) खाद्य द्रव्यों को खाते हुए जैसे (असि) तलवार (गाम् इव) खाल को जैसे (पर्वशश्चकर्त) टुकड़े-टुकड़े काट देते हो ॥६॥

भावार्थ.—हे ईश्वर संसार के संहार का खेल करते हुए सब सृष्टि के टुकड़े-टुकड़े कर देते हो यह कोप क्यों है ॥६॥

विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।

चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७॥१४॥

पदार्थ:—(वनेजा.) आकाश में प्रकट सूर्य (ऋजीतिभि.) सीधी (रशनाभि:) किरण रूपी लगामों से (गृभीतान्) ग्रहण किए हुए (विषूच: + अश्वान्) विविध भागों पर चलने वाले घोड़ों को अर्थात् इन्द्रियों को (युयुजे) जोतता है (सुजात + मित्र) सुन्दर उदित सूर्य (वसुभि) अन्य ६ वस्तुओं के साथ (चक्षदे) गति करता है (पर्वभि वावृधान) अपनी राशियों पर बढ़ता हुआ (समानृधे) समृद्ध होता है ॥७॥

भावार्थ:—सूर्य के रूपक द्वारा बताया है कि जीवात्मा भी विविध विषयों में जाने वाली इन्द्रियों को अपनी शक्तियों से जोड़े हुए अपने साथ बसने वालों के साथ प्रकाशित होता है ॥७॥

इति चतुर्दशो वर्ग ॥

[८०]

अग्नि सौचीको वैश्वानरो वा ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।

अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् ॥१॥

पदार्थ:—(अग्नि:) ईश्वर (वाजंभरम् सप्तिम्) अन्न देने वाले,युद्ध में शत्रु को हराकर उसकी सम्पत्ति दिलाने वाले अश्व को (ददाति) देता है (अग्नि:) तेजोमय ईश्वर (श्रुत्यं वीर) विद्वान् को, वीर को (कर्म निष्ठाम्) कर्मों में श्रद्धा देता है (अग्नि रोदसी) अग्नि द्युलोक-पृथिवीलोक को (समञ्जन्) प्रकाशित करता हुआ (विचरत्) सब में विचर रहा है (अग्नि) पूजनीय ईश्वर (नारीम् वीरकुक्षि पुरन्धिम्) नारी को वीर सन्तान वाली और घर को धारण करने वाली करता है ॥१॥

भावार्थ—अग्नि विद्वान् विजय दिलाने वाले अश्व [यान] तैयार करते हैं विद्वान् ही रण विद्या में निपुण वीरों को तैयार करते हैं भौतिक अग्नि विवाह संस्कार द्वारा नारी को गृहस्थिनी बनाता है विद्वान् रूपी अग्नि शिक्षा द्वारा नारी को वीर माता और गृह प्रबन्ध में निपुण बनाता है पर ईश्वराग्नि सबसे निपुण है ॥१॥

अ॒ग्नेरप्न॑सः स॒मिद॑स्तु भ॒द्राग्निर्म॒ही रोद॑सी॒ आ वि॑वेश ।
अ॒ग्निरेकं॑ चोदयत्स॒मत्स्व॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ दयते पु॒रूणि॑ ॥२॥

पदार्थ —(अप्नसः) कर्म करने वाले (अग्नि) नेता की (सीमत्) सुसंगत वाणी (भद्रा अस्तु) कल्याणकारिणी हो (अग्नि मही रोदसी आ विवेश) ईश्वर बड़े द्युलोक और भूलोक में प्रविष्ट हो रहा है (अग्नि समत्सु) सेनापति युद्धों में (एकं चोदयत्) एक को प्रेरित करता है जिसे वीर समझता है (अग्नि) ज्ञान रूप ईश्वर (पुरूणि वृत्राणि) मोहान्धकारो को (दयते) दमन कर देता है, सेनापति बड़े शत्रुओं को नष्ट कर देता है ॥२॥

भावार्थ — यहां अग्नि शब्द नेता के लिए, ईश्वर के लिए, सेनापति के लिए प्रयुक्त हुआ है ॥२॥

अ॒ग्निर्ह॒ त्यं जर॑तः कर्णमावा॒ग्निर॒द्भ्यो निर॑दहु॒ज्जरू॑थम् ।
अ॒ग्निरत्रिं॑ घ॒र्म उ॑रुष्यद॒न्तर॒ग्निर्नृ॒मेधं॑ प्र॒जयासृजत्सम् ॥३॥

पदार्थ —(अग्निः ह) अग्नि ही (जरत) स्तुति करने वाले के (त्यम् कर्णम्) उस कार्ण की रक्षा करता है (अग्नि) अग्नि (अद्भ्य) जलों से, वर्षा के जलो से (जरूथम्) जीर्णावस्था को (निरदहत) जला देता है (अग्निः) अग्नि (अत्रिम्) कर्म-फल भोगने वाले जीव को (घर्मे) ताप मे ससारी मानसिक दुःख में (अन्त उरुष्यत्) रक्षा करता है (अग्निः) अग्नि (नृमेधम्) मनुष्यो को अन्न देने वाले को, नेतृत्व की बुद्धि रखने वाले को (प्रजया) प्रजा से (सम्-असृजत्) मिलता है ॥३॥

भावार्थ —ईश्वर ही रक्षक है, प्रजा दायक है, रोगो से रक्षा करता है ॥३॥

अ॒ग्निर्दा॒द्द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा अ॒ग्निरृषिं॒ यः स॒हस्रा॑ स॒नोति॑ ।
अ॒ग्निर्दि॒वि ह॒व्यमा त॑ताना॒ग्नेर्धामा॑नि॒ विभृ॑ता पुरु॒त्रा ॥४॥

पदार्थ —(वीरपेशा) वीरो को प्रेरणा देने वाला (अग्नि) अग्नि (द्रविणदात्) धन देता है (य) जो (अग्नि) अग्नि (ऋषिम्) ऋषि को (सहस्रा सनोति) सहस्रो देता है (अग्नि) अग्नि (दिवि) द्युलोक मे (हव्यम्) हवन को, वस्तु को (आततान) फैलाता है [भौतिकाग्नि और सूर्य] (अग्ने. धामानि) अग्नि के धाम (पुरुत्रा) बहुत रक्षा करने वाले (विभृताः) धारण किए गये हैं ॥४॥

भावार्थः—यहां श्लेषालकार द्वारा अग्नि-सूर्य और ईश्वर के महत्व का वर्णन किया है ॥४॥

अ॒ग्निमु॒क्थैरृष॑यो॒ वि ह्व॑यन्ते॒ऽग्निं नरो॒ याम॑नि बाधि॒तासः॑ ।
अ॒ग्निं वयो॑ अ॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑न्तो॒ऽग्निः स॒हस्रा॒ परि॑ याति॒ गोना॑म् ॥५॥

पदार्थ —(अग्निम्) पूजनीय ईश्वर को (ऋषयः) ऋषि जन (उक्थैः) वेद मन्त्रो से (वि ह्वयन्ते) विशेष रूप से पुकारते हैं (बाधितास नर) दुखित नर (यामनि) यात्रा मे अग्नि को पुकारते है (अन्तरिक्षे पतन्तः वय.) आकाश मे उडते हुए पक्षी (अग्निम्) अग्नि को पुकारते हैं (अग्निः) अग्नि (गोनाम् सहस्रा) सहस्रो वाणियो से (परियाति) आगे है ॥५॥

भावार्थ —यज्ञो मे प्रयाण काल मे मनुष्य उसको पुकारते हैं । पक्षी [ज्ञानी] आकाश मे, [समाधि मे] उसी को याद करते हैं । सहस्रो स्तुतियों से भी वह आगे है अर्थात् उसका पार नही पाया जाता ॥५॥

अ॒ग्निं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्या अ॒ग्निं मनु॑षो॒ नहु॑षो॒ वि जा॒ताः ।
अ॒ग्निर्गान्ध॑र्वीं प॒थ्यामृ॒तस्या॒ग्नेर्गव्यू॑तिर्घृ॒त आ निष॑त्ता ॥६॥

पदार्थ —(या मानुषीः विश) जो मानवी प्रजाए हैं (अग्निम्) अग्नि को (ईळते) स्तुति करती हैं (नहुषः विजाताः मनुष) कर्म बन्धन से बधे फल से उत्पन्न मनुष्य (अग्निम्) अग्नि की स्तुति करते हैं (अग्नि) ज्ञानस्वरूप ईश्वर (ऋतस्य) सत्य को (गान्धर्वीम् पथ्याम्) गान विद्या मे निपुण जनों की पथ्यहित-कारक वाणी को प्रेरित करता है (अग्ने गव्यूति) अग्नि का मार्ग (घृते आ निषत्ता) घृत मे निहित है ॥६॥

भावार्थ —भौतिक अग्नि की सबको चाह है । गाने मे वाणी को अग्नि तत्व सहायता करता है । भौतिक अग्नि घृत से और ईश्वर अग्नि घृत [स्नेह-प्रेम] से प्राप्त की जाती है ॥६॥

अ॒ग्नये॒ ब्रह्म॑ ऋ॒भव॑स्ततक्षुर॒ग्निं म॒हाम॑वोचामा सुवृ॒क्तिम् ।
अग्ने॒ प्राव॑ जरि॒तारं॑ यविष्ठाग्ने॒ महि॒ द्रवि॑ण॒मा य॑जस्व ॥७॥१५॥

पदार्थ.—(ऋभवः) सत्य से प्रकाशित ज्ञानी लोगो ने (अग्नये) ईश्वर को पाने के लिऐ (ब्रह्म ततक्षु.) वेद को चुना (अग्नि महाम् सुवृक्तिम् अवोचाम) हम महान् अग्नि का और सुन्दर वाणी-स्तुति का वर्णन करें (हे अग्ने) हे ज्ञान-प्रकाशस्वरूप ईश्वर ! (जीरतारम्) स्तोता की (प्र+अव) भली प्रकार रक्षा करो (हु यविष्ठाग्ने) हे शक्ति-सम्पन्न अग्ने ! (महि द्रविणम्) महत्वपूर्ण धन सम्पत्ति (आयजस्व) हमें प्रदान करो ॥७॥

भावार्थः—अग्नि नाम से भगवान् की महिमा का वर्णन है ॥७॥

इति पञ्चदशो वर्ग ॥

---

[८१]

विश्वकर्मा भौवनः ॥ विश्वकर्मा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

य इ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि॒ जुह्व॒दृषि॒र्होता॒ न्यसी॑दत् पि॒ता नः॑ ।
स आ॒शिषा॒ द्रवि॑णमि॒च्छमा॑नः प्रथम॒च्छदव॑राँ॒ आ वि॑वेश ॥१॥

पदार्थ.—हे मनुष्यो ! (य) जो (ऋषिः) ज्ञानस्वरूप (होता) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करने हारा (न) हम लोगों को (पिता) रक्षक परमेश्वर है (इमाः) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को प्राप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थित और जो सब लोकों का (जुह्वत्) धारण करता है (सः) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिए (द्रविणम्) धन को (इच्छमानः) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ (अवरान्) पूर्ण आकाशादि को (आविवेश) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है यह तुम जानो ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य जो सब जगत् को रचने धारण करने पालने तथा विनाश करने और सब जीवो के लिए सब पदार्थों का देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त हो रहा है उसी की उपासना करें ॥१॥

किं स्वि॑दासीदधि॒ष्ठान॑मा॒रम्भ॑णं कत॒मत्स्वि॑त्क॒थासी॑त् ।
यतो॒ भूमिं॑ ज॒नय॑न्वि॒श्वक॑र्मा॒ वि द्यामौर्णो॑न्महि॒ना वि॒श्वच॑क्षाः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किंस्वित्) क्या आश्चर्य रूप (आसीत्) है तथा (आरम्भणम्) इस कार्य जगत् की रचना का आरम्भ कारण (कतमत्) बहुत उपादानो मे क्या और वह (कथा) किस प्रकार से (स्वित्) तर्क के साथ (आसीत्) है कि (यत) जिससे (विश्वकर्मा) सब सत्कर्मों वाला (विश्वचक्षा) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और (द्याम्) सूर्यादि लोक को (जनयन) उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपनी महिमा से (व्यार्णोत्) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो यह जगत् कहां बसता है क्या इसका कारण है और किसलिए उत्पन्न होता है ? इन प्रश्नो का उत्तर यही है कि जो जगदीश्वर कार्य जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करके सर्वज्ञता से सबको देखता है । वह इस जगत् का आधार और निमित्त [कारण है । सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवो को पाप-पुण्य को फल देने भोगवाने के लिए इस सब ससार को उसने रचा है । ऐसा मानना चाहिए ॥२॥

वि॒श्वत॑श्चक्षुरु॒त वि॒श्वतो॑मुखो वि॒श्वतो॑बाहुरु॒त वि॒श्वत॑स्पात् ।
सं बा॒हुभ्यां॒ धम॑ति॒ सं पत॑त्रै॒र्द्यावा॒भूमी॑ ज॒नय॑न्दे॒व एकः॑ ॥३॥

पदार्थ —हे मनुष्यो तुम लोग भी (विश्वतश्चक्षु) सब ससार को देखने (उत) और (विश्वतोमुख) सब ओर से सबको करने वाला (विश्वतो बाहु,) सब ओर से अत्यन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एकः) अद्वितीय सहायरहित (देव) अपने आत्मप्रकाश स्वरूप (पतत्रै) क्रियाशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य और पृथिवी लोक को (सजन्यन्) कार्यरूप प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्तबल अनन्तपराक्रम से सब जगत् को (सधमति) सम्यग् प्राप्त हो रहा है, उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्य देव जानो ॥३॥

भावार्थ —जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बड़े से बड़ा निराकार अत्यन्त सामर्थ्य वाला सर्वत्र अभिव्याप्त प्रकाश स्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है । जो पुरुष इसको छोड़ अन्य की उपासना करता है । उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन है ? ॥३॥

किं स्वि॒द्वनं॒ क उ॒ स वृ॒क्ष आ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः ।
मनी॑षिणो॒ मन॑सा पृ॒च्छतेदु॒ तद्यद॒ध्यति॑ष्ठ॒द्भुव॑नानि धा॒रय॑न् ॥४॥

पदार्थः—प्रश्न हे (मनीषिण.) मन का निग्रह करने वाले योगीजनो ! तुम लोग (मनसा) विज्ञान के साथ विद्वानो के प्रति (किं स्वित्) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारण रूप वन तथा (कः) कौन (उ) वितर्क के साथ (सः) वह (वृक्षः) छिद्यमान अनित्य कार्यरूप ससार (आस) है ऐसा (पृच्छत) पूछो कि (यत) जिससे (द्यावा पृथिवी) विस्तार युक्त सूर्य और भूमि आदि लोको को किसने (निष्टतक्षुः) भिन्न-भिन्न बनाया है [उत्तर] (यत्) जो (भुवनानि) प्राणियो के रहने के स्थान लोक-लोकान्तरो को (धारयन्) वायु विद्युत् और सूर्यादि से धारण करता हुआ (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता है (तत् इत्) उसी (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म को तुम सबका कर्ता जानो ॥४॥

भावार्थ —इस मन्त्र के तीन पादों से प्रश्न और मन्त्र के एक पाद से उत्तर दिया है । वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का ग्रहण है । जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत् और बिजली को वायु धारण करता है वैसे ही इन सब को ईश्वर धारण करता है ॥४॥

या ते॒ धामा॑नि पर॒माणि॒ याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा ।
शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॑ वृधा॒नः ॥५॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (विश्व कर्मन्) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर (ते) आपकी सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम

(या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्य कक्षा के (धामानि) सब पदार्थों में आधारभूत जन्म स्थान तथा नाम है । (इमा) इन सबका (हविषा) देने योग्य व्यवहार में (स्वधाम्) आप (यजस्व) सगत कीजिए । (उत) और हमारे (तन्वम्) शरीर को (वृधानः) उन्नति करते हुए (सखिभ्यः) आपकी आज्ञापालक हम मित्रों के लिए (शिक्षा) शुभ गुणों का उपदेश कीजिए ॥५॥

भावार्थ:—जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और वस्तु तथा स्थान रचे हैं वैसे ही सभापति आदि को चाहिए कि तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को अच्छी शिक्षा दे के ऐश्वर्य-युक्त हों ॥५॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥

पदार्थ.—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण उत्तम कर्म करने हारे सभापति (हविषा) उत्तम गुणों के ग्रहण से (वावृधानः) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि लोक को सगत करता है वैसे आप (स्वयं) आप ही (यजस्व) सबसे समागम कीजिए (इह) इस जगत् मे (मघवा) प्रशसित धनवान् पुरुष (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हों जिससे (अस्माकं) हमारे (अन्ये) और (सपत्नः) शत्रु जन (अभित) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ —जो मनुष्य, ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिए जो पदार्थ रचा है उसको वैसा जान के उपकार लेते हैं उनकी दरिद्रता और आलस्यादि दोषो का नाश होने से शत्रुओं का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते है ॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।

स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥१६॥

पदार्थ —हे मनुष्यो हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वाच-स्पतिम्) वेदवाणी के रक्षक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों में कुशल महात्मा पुरुष को (वाजे) सग्राम आदि कर्म में (हुवेम) बुलावें (सः) वह (विश्वशंभू) सबके लिये सुखप्रापक (साधु कर्मा) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करने हारा विद्वान् (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (जोषत्) सेवन करें ॥७॥

भावार्थ:—मनुष्यो को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हो जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड़ कर उत्तम कर्मों का सेवन करता हो तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो उसको सब प्रजा की रक्षा करने मे अधिपति राजा बना दें ॥७॥

विशेष—इस सूक्त का पूरा भाष्य ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र १७ से २३ तक से उद्धृत किया है ।

पहले मन्त्र पर निरुक्तकार यास्क मुनि लिखते हैं —

"तत्रेतिहासमाचक्षते-विश्वकर्मा भौवन. सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि-जुहवाञ्चकार स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार । तदभिवादि न्येषर्गभवति । [य इमा विश्वा] भुवनानि जुह्वत्-इति ॥१०॥२६॥ निरुक्त ।

निरुक्त का कहा हुआ इतिहास मानव का इतिहास कहा है विश्व की रचना का और प्रलय का इतिहास है । भौवन का अर्थ आचार्य सायण ने अपत्य प्रत्यय देख कर भुवन पुत्र कोई ऋषि लिख दिया पर ऐसा ऋषि मनुष्य कैसे हो सकता है जो सब भुवनों पर अधिकार रखता हो यह वर्णन ईश्वर का ही है । "विश्वतश्चक्षु." मन्त्र पर आचार्य महीधर जी ने "पतत्रै." का अर्थ "पञ्चभूतै" और "बाहुभ्याम्" का धर्म धर्माभ्यां किया है अर्थात् पृथिवी आदि ५ भूतों से और जीवो के धर्म-अधर्म के फल देने के लिये सृष्टि बना दी गई । इस सूक्त में ईश्वर का ही वर्णन है यह सिद्धान्त सभी भाष्यकारो का है ।

इति षोडशो वर्ग: ॥

---

[८२]

विश्वकर्मा भौवनः ऋषि. ॥ विश्वकर्मा देवता ॥ छन्द.—१, ५, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।

यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

पदार्थ —(चक्षुषः पिता) सूर्य वा दर्शन ज्ञान का पिता (मनसा हि धीरः) अपनी विचार शक्ति से गम्भीर और सबको धारण करने वाला (घृतम् अजनत्) जल को उत्पन्न करता हुआ (एने नम्नमाने) इन परिणत होते हुए सूक्ष्म से स्थूल रूप में आते हुए (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और भूलोक को उत्पन्न करता है (यदा) जब (इत्+अददृहन्त) पर्यन्त भाग दृढ़ होते जाते हैं (आत्+इत्) अनन्तर आगे-आगे (द्यावा पृथिवी) द्युलोक भूलोक (अप्रथेताम्) विस्तार पाते जाते हैं ॥१॥

भावार्थ:—सर्वज्ञ ईश्वर की प्रेरणा से इन लोक-लोकान्तरों की रचना होती है ॥१॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।

तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥

पदार्थ.—(विश्वकर्मा) सृष्टि को रचने वाला (विमना) विशेष ज्ञान वाला (आत्) सर्वत्र (विहाया) आकाश के समान सर्वत्र व्यापक (धाता) सब विश्व को धारण करने वाला (विधाता) विश्व के विधान को रचने वाला (परमा) परम ज्ञानी सबसे सूक्ष्म तत्व (उत) और (संदृक्) सम्यक् रूप से सबका द्रष्टा (यत्र) जिसके विषय मे ज्ञानी जन (आहुः) कहते हैं कि वह (सप्त ऋषीन् परः) सात ऋषियों मन और बुद्धि से परे है इनसे ज्ञेय नहीं है (एकं आहुः) जिसे एक अद्वितीय कहते हैं (यत्र) जिसके आश्रय मे (तेषाम् इष्टानि) उन सात ऋषियों के प्रियभोग (इषा) इसकी ईक्षण शक्ति से (संमदन्ति) सुखदायक होते हैं ॥२॥

भावार्थ:—ईश्वर इन्द्रियातीत है, सर्व-शक्तिमान् है आत्मा भी शरीर मे इन्द्रियों से सूक्ष्म है, ईश्वर एक अद्वितीय तत्व है ॥२॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३॥

पदार्थ:—(यो नः पिता) जो हमारा पिता है (जनिता यो विधाता) जो उत्पन्न करने हारा है और धारण कर रहा है (भुवनानि-धामानि वेद) सब भुवनों और धर्मों को जानता है (यो-देवानाम्) जो सब सूर्यादि प्रकाशमान लोकों मे (नामधा+एक एव) नाम धारण करने वाला एक ही है वा जो इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नाम धारण करने वाला तत्व एक ही है उससे पृथक् अन्य कोई नहीं है (तं सम्प्रश्नम्) उस पूछे जाने योग्य को ज्ञातव्य को (अन्या भुवना:) अन्य सब भुवनि (यन्ति) प्राप्त हो रहे हैं ॥३॥

भावार्थ.—सृष्टिकर्ता ईश्वर को सब ही विद्वान् जानना चाहते हैं ॥३॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।

असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४॥

पदार्थ:—(ते पूर्वे) वे पहले (ऋषय) ऋषि (जरितार.) स्तुति करने वाले (भूना न) बहुतों के तुल्य (अस्मै) इस ईश्वर के लिये (द्रविणम्) अपना धन और मन (सम् आयजन्त) उसी के यश मे बढ़ा देते हैं और वे (असूर्ते) अचल और (सूर्ते) गतिशील (रजसि) संसार में (निषत्ते) अधिकार रखने वाले ईश्वर मे (इमा भूतानि) इन पृथिवी जलादि पञ्च भूतों को (सम् अकृण्वन्) सगत करते है अर्थात् वही उन सबका स्वामी है ॥४॥

भावार्थ.—ऋषि तत्वद्रष्टा अपना सर्वस्व ईश्वर से अर्पण करते और चरा-चर मे उसी को देखते हैं ॥४॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।

कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥५॥

पदार्थ —(परः दिवा) द्युलोक से परे (एना पृथिव्याः परः) इस पृथिवी से भी परे (देवै असुरैः) देव और असुरो से (परः) पर तत्व (यत् अस्ति) जो है (आप) सृष्टि के आदि परमाणुओ ने (प्रथमम्) प्रथम बार (कंस्वित्) किसको (गर्भं दध्रे) गर्भ मे धारण किया (यत्र) जहाँ (विश्वे देवाः) सब मुक्त जीव (सम्+अपश्यन्त) देखते हैं ॥५॥

भावार्थ —आदि सृष्टि के परमाणुओ मे वही व्यापक हुआ गति दे रहा है मुक्त जीव उसको ज्ञानचक्षु से देखते हैं ॥५॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।

अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६॥

पदार्थ:—(तम् इत्) निश्चय उसे ही (आप) आदि सृष्टि के जल अर्थात् परमाणु (प्रथमं गर्भं दध्रे) प्रथम गर्भ रूप धारण करते हैं (यत्र) जिसमे (विश्वे देवा) सब मुक्त जीव और सूर्यादि लोक (समगच्छन्त) संगत होते हैं (अजस्य अधिनाभौ) अजन्मा ईश्वर के केन्द्र रूप अधिकार मे (एकम्+अर्पितम्) अकेला यह अव्यक्त जगत् (अर्पितं) अर्पित था (यस्मिन्) जिस अव्यय मे (विश्वानि भुवनानि तस्थु) सम्पूर्ण विश्व स्थित थे ॥६॥

भावार्थ·—आदि सृष्टि मे निमित्त कारण ईश्वर उपादान कारण परमाणुओं मे व्याप्त हुआ गति देता है, उस अव्यक्त प्रकृति मे ही उपादान कारण मे कार्य के समान सब लोक छिपे रहते हैं ॥६॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥१७॥

पदार्थ·—हे मनुष्यो (तं न विदाथ) तुम उसे नहीं जानते (यः+इमाः जजान) जिसने इन सृष्टियों को रचा है उत्पन्न किया है (यः) जो तत्व (अन्यत्) और है (युष्माकम् अन्तरम्) तुम्हारे भीतर ही (बभूव) है । (नीहारेण प्रावृताः) कुहरे से ढके हुए अर्थात् मोहान्धकार से आच्छादित हैं । (जल्प्या) कुतर्क से युक्त हैं (असुतृप) प्राणों को तृप्त करने में लगे हैं अर्थात् भोग विलासो में फसे हैं (च) और (उक्थशासः) वेद मन्त्रोच्चारण करने वाले विद्याभिमानी होकर (चरन्ति) विचरते हैं ॥७॥

भावार्थ—अज्ञानी काम भोगपरायण, कुतर्की श्रद्धा विहीन, विद्या के घमण्ड में कर्म-धर्म से रहित पण्डित उस परतत्व को नहीं जान पाते जो उनके ही भीतर उनके अतिरिक्त चेतन छिपा है ॥७॥

इति सप्तदशो वर्गः ॥

---

[८३]

मन्युस्तापसः ॥ मन्युर्देवता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । २ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यस्ते॑ म॒न्योऽवि॑धद्वज्र सायक॒ सह॒ ओजः॑ पुष्यति॒ विश्व॑मानु॒षक् ।

सा॒ह्याम॒ दास॒मार्यं॒ त्वया॑ यु॒जा सह॑स्कृतेन॒ सह॑सा॒ सह॑स्वता ॥१॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे मन्युस्वरूप तेजस्विन् प्रभो (हे वज्र + हे सायक) हे वज्र रूप और बाणरूप तेजोमय भगवन् (य) जो (ते) तेरा (ओजः) बल (सहः) शत्रुओं को दमन करने हारा (आनुषक्) निरन्तर (विश्वम्) विश्व को (पुष्यति) पुष्ट करता है (अविधत) तेरी आज्ञा मानता है (सहस्कृतेन) शत्रु को पराजित करने वाला (सहस्वता) विजयी (सहसा) बलरूप आपसे (त्वया युजा) तुम्हारे योग से (दासम्) शुभ वृत्तियों के क्षय कारक को (आर्यं) श्रेष्ठ को (साह्याम) परास्त करूं । आर्य वा अनार्य जो शत्रु आवे उसे जीतू ॥१॥

भावार्थः—क्रोध भी एक अनोखा भाव है यह राक्षस भी है यदि बिना विचार के है और दुष्टों के दमन के लिये प्रयोग होने पर यही ईश्वरीय तेज बन जाता है ॥१॥

म॒न्युरिन्द्रो॑ म॒न्युरे॒वास॑ दे॒वो म॒न्युर्होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।

म॒न्युं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्याः पा॒हि नो॑ मन्यो॒ तप॑सा स॒जोषाः॑ ॥२॥

पदार्थः—(मन्युः) क्रोध (इन्द्रः) इन्द्र है (मन्युः एव) क्रोध ही (देव आस) देवरूप है (मन्युः) क्रोध (होता, वरुणः जातवेदः) वस्तुओं का आदान-प्रदान करने वाला है यज्ञ का होता है वरुण है न्यायाधीश है अग्नि है ज्ञानरूप है (याः मानुषी विशः) जो मानव प्रजायें (मन्युम् ईळते) मन्यु की स्तुति करती हैं (हे मन्यो) हे तेजोरूप (नः) हमें (सजोषाः) प्रेम के साथ (तपसा) अपने तेज से (पाहि) रक्षा करिये ॥२॥

भावार्थः—ईश्वरीय तेज सज्जनों की रक्षा और दुष्टों की ताडना करके न्याय करता है ईश्वरीय तेज ज्ञान विचार से युक्त होता है ॥२॥

अ॒भी॑हि मन्यो त॒वस॒स्तवी॑या॒न्तप॑सा यु॒जा वि ज॑हि॒ शत्रू॑न् ।

अ॒मि॒त्र॒हा वृ॑त्र॒हा द॑स्यु॒हा च॒ विश्वा॒ वसू॒न्या भ॑रा॒ त्वं नः॑ ॥३॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे तेजोरूप ईश्वर (तवसः तवीयान्) बलशालियों से भी बलवान् (अभि + इहि) शत्रुओं पर आक्रमण कर (युजा तपसा) युक्त तप से (शत्रून् वि जहि) शत्रुओं को मारो (अमित्रहा) शत्रु संहारक (वृत्रहा) अज्ञान के नाशक (च) और (दस्युहा) संसार को पीडा देने वाले को नष्ट करने वाले ईश्वर (त्वम् नः) तुम हमारे लिये (विश्वा वसूनि) सब धन रत्न (आभर) प्राप्त कराओ ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर को तेजोरूप मे भी स्मरण करना चाहिए जिससे हममें शक्ति बढे और हमारे सेना-नायक दुष्टों का दमन करके हमारे लिये धन सम्पत्ति प्राप्त करायें ॥३॥

त्वं हि म॑न्यो अ॒भिभू॑त्योजाः स्वय॒म्भूर्भामो॑ अभिमाति॒षाहः॑ ।

वि॒श्वच॑र्षणिः॒ सहु॑रिः॒ सहा॑वान॒स्मास्वोजः॒ पृत॑नासु धेहि ॥४॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे तेजोमय प्रभो (त्वं हि) तुम निश्चय (अभिभूति ओजाः) दुष्टों को परास्त करने वाले तेज हो (स्वयं भूः) स्वयं शक्ति रूप हो (भामः) शत्रुओं को भय देने वाले हो (अभिमाति षाहः) अभिमानियों को परास्त करने वाले हो (विश्वचर्षणिः) सबके द्रष्टा हो (सहुरिः) शत्रुओं को परास्त करने वाले हो (सहावान्) हे महान शक्तियों से युक्त ईश्वर (अस्मासु पृतनासु) हमारी सेनाओं में (ओजः धेहि) तेज और बल को धारण कराओ ॥४॥

भावार्थः—ईश्वर से प्रार्थना है कि अपना तेज हमारी सेनाओं को भी प्रदान करो ॥४॥

अ॒भा॒गः सन्नप॒ परे॑तो अस्मि॒ तव॒ क्रत्वा॑ तवि॒षस्य॑ प्रचेतः ।

तं त्वा॑ मन्यो अक्र॒तुर्जि॑हीळा॒हं स्वा त॒नूर्ब॑ल॒देया॑य॒ मेहि॑ ॥५॥

पदार्थः—हे ईश्वर (अभागः सन्) भाग्यहीन हुआ मैं (इतः) इधर से तेरे समीप से (अप परा अस्मि) बहुत दूर हो गया हूँ (हे प्रचेतः) हे महान् ज्ञान वाले (तविषस्य तव) बलशाली आपके (क्रत्वा) यज्ञ से दूर हो गया हूँ (हे मन्यो) हे तेजोमय (अक्रतुः) यज्ञ रहित निकम्मा (अहम्) मैं (तं त्वा) उस विजयी आपको (जिहीळ) तिरस्कार करता हूँ (स्वा तनूः) मेरे शरीर को (बलदेयाय) बल देने के लिये (आ + इहि) मुझे प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—मैं अपने अज्ञान वश तुम्हारा तिरस्कार करके तुमसे दूर होकर भाग्यहीन हो गया हूँ । हे तेजोरूप प्रभो मुझे भी तेज और बल दो ॥५॥

अ॒यं ते॑ अ॒स्म्युप॒ मेह्य॒र्वाङ् प्र॑तीची॒नः स॑हुरे विश्वधायः ।

मन्यो॑ वज्रिन्न॒भि मामा व॑वृत्स्व॒ हना॑व॒ दस्यूँ॑रु॒त बो॑ध्या॒पेः ॥६॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे सर्वज्ञ प्रभो (हे सहुरे) हे दुष्टों को दण्ड देने हारे (विश्वधायः) विश्व के धारण कर्त्ता वा दूध पिला कर पालन कर्त्ता (वज्रिन्) हे वज्रधारी (अयम्) यह मैं (ते) तेरा (अस्मि) हूँ (अर्वाङ् + आ + इहि) मेरे सम्मुख आ अर्थात् मुझे आपका प्रत्यक्ष हो (उप प्रतीचीनः) तुम मुझसे विमुख हो (माम् अभि आववृत्स्व) मेरी ओर लौटो, मेरी ओर ध्यान दो (दस्यून् हनाव) हम दोनो, दस्यु अर्थात् काम, क्रोध लोभ मोह मद मत्सर आदि मन के विकारों को मारें (उत) और (आपेः) अपने जन के हितार्थ (बोधि) जान अर्थात् अपने इस सेवक की ओर ध्यान दे ॥६॥

भावार्थः—कैसी भावभरी करुण पुकार है भक्त की अपने भगवान् से ! मन के विकार ही दस्यु हैं उनका नाश ईश्वर की सहायता से ही हो सकता है ॥६॥

अ॒भि प्रेहि॑ दक्षिण॒तो भ॑वा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑ ।

जु॒होमि॑ ते ध॒रुणं॒ मध्वो॒ अग्र॑मु॒भा उ॑पां॒शु प्र॑थ॒मा पि॑बाव ॥७॥१८॥

पदार्थः—(अभि प्र इहि) हे प्रभो मेरे सम्मुख आओ मुझे प्रत्यक्ष होओ (मे दक्षिणतो भवः) मेरे लिये दहिने होओ अर्थात् अनुकूल बनो (अधा) और (भूरि वृत्राणि) बहुत से वस्त्रों को मोहावरणों को (जङ्घनाव) हम और आप मारें, नष्ट करें (ते) तेरे लिये (मध्व + धरुणम्) मधु के पात्र को अर्थात् अपने मृदु भावमय हृदय को (अग्रम्) अन्न को अर्थात् स्व जीवन को (जुहोमि) हवन करता हूँ समर्पित करता हू (उभा) मैं और आप दोनों (उपांशु) एक दूसरे के समीप (प्रथमा) प्रथम (पिबाव) उस मधु को पियें ॥७॥

भावार्थः—उक्त मन्त्र मे अत्यन्त प्रेममय भाव है । ईश्वर मेरे दाहिने हो अर्थात् मेरे सहायक बने मोहावरणों का नाश हो मेरे मधु पात्र से हम दोनों पियें अर्थात् ईश्वर मेरे भावों को जाने और मैं ब्रह्मानन्द की अनुभूति करूं ॥७॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

---

[८४]

मन्युस्तापस ऋषिः ॥ मन्युर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ५ पादनिचृज्जगती । ६ आर्ची स्वराड् जगती । ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

त्वया॑ मन्यो स॒रथ॑मारु॒जन्तो॒ हर्ष॑माणासो धृषि॒ता म॑रुत्वः ।

ति॒ग्मेष॑व॒ आयु॑धा सं॒शिशा॑ना अ॒भि प्र य॑न्तु॒ नरो॑ अ॒ग्निरू॑पाः ॥१॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे तेजोरूप ईश्वर (सरथम्) रथ के सहित (मरुत्वः) मरुत समूह से युक्त (त्वया) तेरे सहयोग से (आरुजन्त) शत्रुओं को परास्त करते हुए (हर्षमाणासः) प्रसन्न हुए (धृषिताः) शत्रु का धर्षण करने वाले (तिग्म इषव) तीक्ष्ण बाणों वाले (आयुधाः संशिशानाः) शस्त्रास्त्रों को तेज करते हुए (अग्निरूपाः) अग्नि के समान तेजोमय (नरः) मनुष्य (अभिप्रयन्त) आगे बढ़ें ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर के मन्यु गुण से युक्त हम लोग भी शस्त्रास्त्र सहित युद्ध की तैयारी करें ॥१॥

अ॒ग्निरि॑व मन्यो त्विषि॒तः स॑हस्व सेना॒नीर्नः॑ सहुरे हू॒त ए॑धि ।

ह॒त्वाय॒ शत्रू॒न्वि भ॑जस्व॒ वेद॒ ओजो॒ मिमा॑नो॒ वि मृधो॑ नुदस्व ॥२॥

पदार्थः—(हे मन्यो) मन्युरूप ईश्वर (अग्नि + इव) आग के समान (त्विषितः) दीप्तिमान् होकर (सहस्व) शत्रुओं को परास्त कर (सहुरे) हे सहनशक्ति से युक्त (हूत) बुलाया हुआ (नः सेनानी एधि) हमारा सेनापति बन । (शत्रून् हत्वाय) शत्रुओं को मार कर (वेद विभजस्व) धनों को बांटो । (ओज मिमान न) तेज को प्रकट करता हुआ (मृध) सेनाओं को (विनुदस्व) विशेष रूप से प्रेरित करो ॥२॥

भावार्थः—युद्ध मे ईश्वरीय सहायता की प्रार्थना है ॥२॥

सह॑स्व मन्यो अ॒भिमा॑तिम॒स्मे रु॒जन्मृ॒णन्प्र॑मृ॒णन्प्रेहि॒ शत्रू॑न् ।

उ॒ग्रं ते॒ पाजो॑ न॒न्वा रु॑रुध्रे व॒शी वशं॑ नयस एकज॒ त्वम् ॥३॥

पदार्थः—(हे मन्यो) हे क्रोधगुणयुक्त ईश्वर (अस्मे अभिमातिम् सहस्व) हमारे शत्रुओं को परास्त कर दो (अस्मे शत्रून्) हमारे शत्रुओं को (मृणन् प्रमृणन्) नाश करता हुआ और पूर्ण-विनाश करता हुआ (रुजन्) उन्हें पीड़ित करता हुआ (प्रेहि) आगे बढ (ते + उग्र पाजः) तेरे भयंकर बल को (ननु + आ रुरुध्रे) शत्रु कब रोक सकते हैं ? (एकज वशी त्वम्) अकेला ही सबको वश में करने वाला तू (वशं नयसे) शत्रुओं को वश मे लाता है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वरीय शक्ति महान् है, उसे पाने की प्रार्थना है ॥३॥

एको॑ बहू॒नाम॑सि मन्यवीळि॒तो विशं॑विशं यु॒धये॒ सं शि॑शाधि ।

अकृ॑त्तरु॒क्त्वया॑ यु॒जा व॒यं द्यु॒मन्तं॒ घोषं॑ विज॒याय॑ कृण्महे ॥४॥

पदार्थः—(मन्यो) हे मन्युरूप ईश्वर (बहूनाम्) बहुतों में (एक असि) एक हो (विशं विश) प्रत्येक प्रजा की स्तुति किया हुआ तू (युधये) युद्ध के लिये (संशिशाधि) प्रेरित करता है (अकृत्तरुक) अविनाशी कान्ति वाले (वयम्) हम (त्वया युजा) तुझसे युक्त हुए (विजयाय) विजय के लिये (द्युमन्तं घोषम्) दीप्तिमान घोषणा को (कृण्महे) करते हैं ॥४॥

भावार्थ —विजय के लिये ईश्वरीय वर पाकर भी वीर आर्यजन चमकीले घोष [जयकारे] करते हैं। युद्ध में ईश्वर-प्रार्थना से साहस बढ़ता है अभिमान नहीं आता और अन्याय नहीं हो सकता। मनोबल बढ़ाने के लिये ऐसी प्रार्थनाएं बड़ी उपयोगी हैं ॥४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।

प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

पदार्थ.—हे राजन् वा सेनापते और ईश्वर (इन्द्रः+इव) इन्द्र के समान (विजेषकृत्) विजय करने वाला (अनवब्रव.) बकवास न करने वाला (मन्यो) हे माननीय सेनानायक ! (इह+अस्माकं+अधिपा भव) इस संग्राम में हमारा स्वामी बन। (हे सहुरे) हे सहनशक्ति से युक्त विजयी प्रभो (ते प्रियं नाम गृणीमसि) तेरे प्रिय नाम का उच्चारण करते हैं। (तम्+उत्सम्) उस स्रोत को (विद्मा) जानें (यत आबभूथ) जहां से तुम प्रकट होते हो ॥५॥

भावार्थ —ईश्वर रूप सेनापति से विजय के लिये प्रार्थना है उसका नामोच्चारण सेना का मनोबल बढ़ाता है। हम इस भेद को नहीं जानते कि कहां से उसकी सहायता अचानक प्रकट हो जाती है ॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।

क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

पदार्थ — (हे वज्र) हे कठोर ! (हे सायक) हे तीक्ष्ण ! (अभिभूते) वैरियों को अभिभूत करने वाले (आभूत्या) अपनी विभूति से (उत्तरम् सहः) सर्वोत्कृष्ट बल (बिभर्षि) धारण कर रहे हो (सहजा) सबके साथ प्रकट (पुरुहूत) बहुत स्तुति किये हुये (महाधनस्य संसृजि) बड़े धन के सृजन में (क्रत्वा सह) कर्ममय यज्ञ के साथ (नः) हमारे लिये (मेदी) स्नेहयुक्त हुए (एधि) प्राप्त होओ ॥६॥

भावार्थः—भगवान् सर्वशक्तिमान् है, न्याययुक्त युद्ध में उसी की सहायता मांगी जाये ॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।

भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्

॥७॥१९॥६॥

पदार्थः—(वरुण+मन्यु:+च) ईश्वर की न्यायकारिणी शक्ति और तेजोमय उग्र शक्ति हमें (संसृष्टम्+उभयम्) मिला-जुला दोनों प्रकार का धन, चल और अचल सम्पत्ति (समाकृतम्) अच्छी प्रकार से संयोजित हुई हो (अस्मभ्यम् दत्ताम्) हमारे लिये दें (शत्रव +हृदयेषु भयं दधाना) शत्रुलोग भय को धारण किये हुए (पराजितास) हारे हुए (अपनिलयन्ताम्) विलीन हो जायें ॥७॥

भावार्थ:—उक्त दोनों सूक्तों में भगवान् की उग्रशक्ति की स्तुति की गई है, हमें विजयरूप धन मिले, भगवान् की वरुण और मन्युशक्ति हमारे साथ हो ॥७॥

विशेष—वेद की शिक्षा निराशा, निरुत्साह एवं आलस्यमय वैराग्य की नहीं है। वेद की शिक्षा उत्साही, विजयसम्पन्न एवं बली होकर प्रशंसित बनना सिखलाती है ॥७॥

इत्येकोनविंशो वर्ग. ॥

इति षष्ठोऽनुवाक: ॥

---

[८५]

सूर्या सावित्री ॥ देवता—१—५ सोम. । ६—१६ सूर्याविवाह । १७ देवा: । १८ सोमार्कौ । १९ चन्द्रमा । २०—२८ नृणां विवाहमन्त्रा आशीः प्रायः । २९, ३० वधूवासः संस्पर्शनिन्दा । ३१ यक्ष्मनाशिनी दम्पत्योः ॥ ३२—४७ सूर्या ॥ छन्द —१, ३, ८, ११, २५, २८, ३२, ३३, ३८, ४१, ४५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ५, ९, ३०, ३१, ३५, ३९, ४६, ४७ अनुष्टुप् । ६, १०, १३ १६, १७, २९, ४२ विराडनुष्टुप् । ७, १२, १५, २२ पादनिचृदनुष्टुप् । ४० भुरिगनुष्टुप् । १४, २०, २४, २६, ३७ निचृत् त्रिष्टुप् । १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ २१, ४४ विराट् त्रिष्टुप् । २३, २७, ३६ त्रिष्टुप् । १८ पादनिचृज्जगती । ४३ निचृज्जगती ३४ । उरोबृहती ॥ सप्तचत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

पदार्थ:—(भूमिः सत्येन उत्तभिता) भूमि सत्य के द्वारा उठाई हुई है, सत्य ईश्वर नियम तथा भूलोक पर स्थित सब मनुष्यों को सत्य व्यवहार करना चाहिए। तभी भूमि पर सुख, शान्ति रह सकती है। (द्यौः) द्युलोक (सूर्येण) सूर्य द्वारा (उत्तभिता) उठाई हुई है, सूर्य के आकर्षण से द्युलोक के नक्षत्र ग्रह प्रभावित हैं। (आदित्याः) १२ मास (ऋतेन तिष्ठन्ति) सत्य प्राकृत नियम से ठहरे हैं (सोम.) सोम (दिवि) द्युलोक में (अधिश्रित) आश्रय किये हुए हैं ॥१॥

भावार्थ —यहां ईश्वरीय नियमों का महत्त्व वर्णित है, सोम यह चन्द्रमा भी है और सोम ब्रह्मानन्द भी है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

पदार्थ —(सोमेन) सोम द्वारा (आदित्या) १२ मास (बलिनः) बलवान् हैं यहां सोम के अर्थ चन्द्रमा है। सोम [चन्द्र] से (पृथिवी मही) पृथिवी महत्त्वपूर्ण है (अथो) और (एषां नक्षत्राणाम् उपस्थे) इन अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रों की गोद में (सोम +आहित) सोम [चन्द्र] स्थित है ॥२॥

भावार्थ.—यहां प्राकृत सौन्दर्य का वर्णन किया गया है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।

सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥

पदार्थ.—(पपिवान्) सोमरस पीने वाला (सोम मन्यते) सोम को मानता है कि (यम् + ओषधिम संपिंषन्ति) जिस ओषधि सोमलता को पीसते हैं, (ब्रह्माण:) ब्रह्मज्ञानी वेदज्ञ (य सोम विदु) जिसे सोम जानते है (तत्) उसे (कश्चन) कोई भी (न अश्नोति) नहीं खाता है वह खाने-पीने की वस्तु नहीं किन्तु आत्मानुभूति की वस्तु है ॥३॥

भावार्थ.—यहां भौतिक सोम, सोमलता और आध्यात्मिक सोम ब्रह्मरसानुभूति दोनों का वर्णन कर दिया है, वैदिक धर्म के विरोधियों ने सोम को शराब लिखा है, भंग बताया है, नशीली जड़ी-बूटी कहा और पढ़े-लिखे बुद्धिशून्यों में यह विचार जम गया कि सोम, शराब, भंग वा कोई नशीली बूटी थी, इस अज्ञान का नाश करने को ऊपर का मन्त्र है कि ब्रह्मज्ञानियों का सोम और है। अब शतपथ ब्राह्मण में देखिये "प्रजापतेर्वा एते अन्धसी यत्सोमश्च सुरा च, तत स सत्य श्रीर्ज्योतिः सोम अनृतम् पाप्मा तम. सुरा। काड ५ अ० १ ब्रा० २

सोम, सत्य, श्री, ज्योति है और सुरा झूठ, पाप और अन्धकार है। और देखिये —

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।

ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४॥

पदार्थ —(आच्छद् विधानै) दुर्ग के परकोटे के समान विधानों से रक्षा किया हुआ है (हे सोम) ऐ सोम तू (बार्हतै) बृहती ऋचाओं से (रक्षित) रक्षित है (ग्राव्णाम्+इत्) विद्वानों में ही (शृण्वन्) सुनता हुआ (तिष्ठसि) रहता है। (ते) तुझे (पार्थिव) राजा (न अश्नाति) नहीं खा सकता वा भौतिक मनुष्य नहीं खा सकता। तो यह सोम क्या है ? साहित्य में काव्य रस को अलौकिक आनन्द कहा है। संगीत में भी अलौकिक रस होता है, पर इन रसों की अनुभूति राम जी के भैंसे नहीं कर सकते, सहृदय जन ही कर सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में है कि गंधर्वों में सोम था। छन्दों में सोम था। ठीक है संगीत और साहित्य की रसानुभूति सोम है और इसी प्रकार समाधि के आनन्द की अनुभूति भी सोम है ॥४॥

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।

वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५॥२०॥

पदार्थ:—(देव) हे देव सोम (यत्त्वा) जो तुझे (प्रपिबन्ति) पीते हैं चन्द्रमा घटता है मानो देव उसे पी जाते हैं। परन्तु (वायु सोमस्य रक्षिता) वायु सोम का रक्षक है। (समानाम्) वर्षों का (मासः) महीना (आकृति) करने वाला है। मासों से वर्ष बन जाते हैं और मास चन्द्रमा से नापे जाते हैं, वायु सूत्रात्मा वायु सब लोकों का रक्षक है, चन्द्र का भी है ॥५॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥६॥

पदार्थ —(रैभी) विद्वानों की वाणी (अनुदेयी) देने योग्य वस्तु (आसीत्) है। (नाराशंसी) मनुष्यों से की हुई प्रशंसा (नि+ओचनी) ओढ़नी हो (सूर्याया.) सूर्य की ज्योतिरूप वधू का (वास) वस्त्र (इति गाथया परिष्कृतम्) इस प्रकार गाथा से परिष्कार किया हुआ (भद्रम्+इत्) कल्याण ही है ॥६॥

भावार्थ:—सूर्य की वधूरूप में उषा का वर्णन है ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।

द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥

पदार्थ —(यत्) जब (सूर्या) उषा (पतिम्+अयात) पति को प्राप्त करे तब (चित्ति) चित्त का संकल्प विचार (आ उपबर्हणम) उत्तम तकिया हो (आ अभि अञ्जनम्) भली-प्रकार आंख का अंजन (चक्षु) नेत्र हो अर्थात् ज्ञान हो (द्यौर्भूमिः) द्युलोक और भूलोक (कोशः आसीत्) कोश है (यत्) जब (सूर्या पतिम्+अयात्) सूर्या पति को प्राप्त होती है ॥७॥

भावार्थ—इसी प्रकार दृढ़ संकल्प और ज्ञान ही वधू के साथ दहेज होना चाहिये ॥७॥

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥

पदार्थ—(स्तोमाः) वेद मन्त्रों की स्तुतियाँ (प्रतिधय , आसन्) भेंटरूप हों (छन्द) वेदों का छन्द या स्वतन्त्रता (कुरीरम्) पति-पत्नी का संगम (ओपश) समीप शयन हो (अश्विना वराः) प्राण और अपान अथवा प्रातःकाल, सायंकाल श्रेष्ठ साथी हों (अग्नि) ज्ञानी विद्वान् (पुरोगवः) पुरोहित (आसीत्) हो ॥८॥

भावार्थ—सूर्या का विवाह और उसके साधन प्राकृत अलंकार रूप रहे हैं ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥

पदार्थ—(सोम) चन्द्रमा (वधूयु) वधू को लेने वाला पति (अभवत्) हुआ (उभा अश्विना वरा) दिन-रात वर के साथी (आस्ताम्) हैं (मनसा) मन से (पत्ये शंसन्ताम्) पति को चाहती हुई (सूर्याम्) सूर्या को (सविता + अदात्) सूर्य ने दान किया ।

भावार्थ—सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा चमकता है यह आकाश मानो सूर्य की पुत्री है प्राकृत कार्यों का किस सुन्दरता से विवाहरूप में वर्णन किया है यह आगे आने वाले मनुष्यों के विवाह की भूमिका है ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥२१॥

पदार्थ—(अस्याः) इस सूर्या रूपी वधू का (मन) मन (अनः आसीत्) गाड़ी रूप है (उत) और (द्यौः) द्युलोक (छदिः) छत (आसीत्) है (शुक्रौ) दो शुक्र तारे (अनड्वाहौ) बैल (आस्ताम्) हैं (यत् अयात् सूर्या गृहम्) जब कि सूर्या पति के गृह को जाती है ॥१०॥

भावार्थ—सूर्य की कान्ति जब चन्द्रमा में जाती है तब शुक्र और दूसरा श्वेत नक्षत्र सूर्य इसमें सहायक होते हैं ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

पदार्थ—(ऋक् सामाभ्याम्) ऋक् और सामवेद में (अभिहितौ) कहे गये (सामनौ) समान (गावौ) बैल हैं (इत) रथ को ले चलते हैं । (ते श्रोत्रम्) तेरे कान (चक्रे आस्ताम्) पहिये हैं (दिवि) द्युलोक में (चराचर) सब जड़ चेतन (ते पन्था) तेरा मार्ग है ॥११॥

भावार्थ—वेदविहित समय दिन-रात बैल हैं, कान पहिये इसलिये हैं कि पति के गुण सुनकर वधू उधर जाती है कान ही मानो ले जाते हैं ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥

पदार्थ—(यात्याः ते) हे सूर्ये तुझ जाती हुई के पहिये (शुचि) शुभ प्रकाशमय हैं ।

पिछले मन्त्र में शुक्रौ यहाँ "शुची" एक ही अर्थवाचक है । पिछले मंत्र में उन्हें बैल के रूपक में कहा और यहाँ चक्र के रूपक में वर्णन किया है यह कोई दो तारे हैं सम्भवतः जो सूर्य के प्रकाश को चन्द्रमा तक पहुँचाने में सहायक हो सकते हैं। इसकी खोज होना चाहिये । (व्यान) व्यान वायु (अक्ष) पहिये का केन्द्र (आहत) सम्बद्ध है (पतिम् प्रयती सूर्या) पति के पास जाती हुई सूर्या (मनस्मयम्+अन) मनरूप रथ को (आरोहत्) चढ़ती है ॥१२॥

भावार्थ—यह भी प्राकृत सौन्दर्य का वर्णन है । पर इसमें ज्योतिष का विज्ञान भी है ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

पदार्थ—(सूर्याया वहतुः) सूर्या का दहेज (यम्+सविता+अवासृजत्) जिसे सूर्य दान करता है (प्रागात्) सूर्या को प्राप्त हो (गाव) सूर्य किरणें और गौ (मघासु) माघ मास में (हन्यन्ते) निर्बल हो जाती हैं । यही उनका मारा जाना है गौओं को माघ का शीत बहुत सताता है (अर्जुन्योः) फाल्गुन मास में (पर्युह्यते) फिर वैसी ही धारण हो जाती हैं । सूर्य किरणें भी चमकने लगती हैं और गौएं भी सुख पाने लगती हैं ॥१३॥

भावार्थः—सूर्या को दहेजरूप में किरणरूपी गौएं जो मिली हैं वे मघा नक्षत्र के सूर्य में दुर्बल हो जाती हैं, फाल्गुन नक्षत्र के सूर्य में फिर ठीक होने लगती हैं ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

पदार्थ—(यत्) जो कि (पृच्छमानौ) पूछे हुए अर्थात् बुलाये हुए (अश्विना) अश्वि तारे या दिन-रात (सूर्यायाः वहतुम्) सूर्या के दहेज का (त्रिचक्रेण) तीन पहिये वाले रथ से (अयातम्) पहुँचाते हैं । (विश्वे देवाः) सब देवता (तत्+अनु+अजानन्) उसका अनुमोदन करते हैं, (वाम् पितरौ) तुम दोनों माता-पिता रूप अश्विनियों को (पूषापुत्रः) सूर्य का पोषकगुण पुत्ररूप में (अवृणीत) वरण करता है ॥१४॥

भावार्थः—त्रिचक्र रथ तो यह संवत्सर है गर्मी-सरदी, वर्षा रूप ३ चक्र हैं आगे भी ज्योतिष का कोई रहस्य है ॥१४॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥२२॥

पदार्थ—(शुभस्पती) शुभ कर्मों के स्वामी (वरेयम्) वर के कार्यों के लिये (यत) जब (सूर्या उप अयात) सूर्या के पास पहुँचते हो तब (वाम्) तुम्हारा (एक चक्र क्व) एक पहिया (देष्ट्राय) निर्देश के लिये (क्व तस्थथुः) कहाँ ठहरते हो ॥१५॥

भावार्थ—यहां ज्योतिष का रहस्य निहित है ॥१५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥

पदार्थ—(हे सूर्ये) हे सूर्य पुत्री (ब्रह्माण) वेदों के विद्वान् (ते द्वे चक्रे) तेरे दो चक्र (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (विदुः) जानते हैं । उत्तरायण और दक्षिणायन को (एक चक्र यत् गुहा) एक चक्र जो गुप्तरूप में है ईश्वरीय प्रबन्ध शक्ति (तत्) उसे (अत्) निश्चय (इत्) ही (अद्धातय) धारण करने वाले योगी ही (विदु) जानते हैं ॥१६॥

भावार्थ—वह तीसरा चक्र है ईश्वरीय नियम गुप्त है विद्वान् योगी जनों से ज्ञेय है ॥१६॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥

पदार्थ—(सूर्यायै) उषा के लिये (देवेभ्य) सूर्यादि देवों के लिये (मित्राय) प्रातःकालीन सूर्य (वरुणाय) सायंकालीन सूर्य (च) और (ये भूतस्य प्रचेतसः) जो इस उत्पन्न जगत के ज्ञाता हैं (तेभ्य) उन सबके लिये (नमः अकरम्) प्रणाम करता है ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य इस विचित्र जगत् को और उसके प्रबन्ध को देखकर इसकी रचना एवं रचयिता को प्रणाम करे अर्थात् इनके प्रति आदर-भाव व्यक्त करे और इसके ज्ञाताओं और ज्योतिर्विदों को प्रणाम करे ॥१७॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

पदार्थ—(एतौ) यह दोनों (पूर्वापर चरतः) आगे-पीछे चलते हुए (मायया) ईश्वर की माया से (क्रीळन्तौ शिशू) खेलते हुए बालक (अध्वर) यज्ञ की ओर (परियात) जा रहे हैं । (अन्य) इनमें एक (विश्वानि भुवना) सम्पूर्ण भुवनों को (अभिचष्टे) देखता है । (अन्य) दूसरा (ऋतून् विदधत्) ऋतुओं को बनाता हुआ (जायते पुनः) नष्ट होकर फिर उत्पन्न हो जाता है ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य, चन्द्र का सुन्दर वर्णन है यहाँ ऋतुयें चन्द्र मास से मानी गई हैं ॥१८॥

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

पदार्थः—(जायमानः) शुक्ल पक्ष में उत्पन्न हुआ (नवो नवो भवति) नया-नया होता है (अह्नाम् केतुः) दिनों की पताका (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) आगे (एति) चलता है (आयन्) आता हुआ (देवेभ्यः) देवताओं के लिये (भाग विदधाति) भाग रखता है (चन्द्रमा) चन्द्र (दीर्घं आयु प्रतरते) दीर्घ आयु बांटता है ॥१९॥

भावार्थः—चन्द्रमा का वर्णन है । देवताओं को भाग देना—तिथियों का निर्माण करना—चन्द्र की किरणों को यथाविधि सेवन करने से कई रोग जाते रहते हैं ॥१९॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥२३॥

पदार्थः—(हे सूर्ये) हे उषा (सुकिंशुकम्) अच्छे फूलों वाले (विश्वरूपम्) संसाररूपी (शाल्मलिम्) सैंमल को (हिरण्यवर्णम्) सुनहरी रंग के (सुवृतम्) अच्छी प्रकार गोल (सुचक्रम्) अच्छे चक्र वाले (अमृतस्य) अमृत के (लोकम्) लोक को (आरोह) चढ़ (पत्ये) पति के लिये (वहतुम्) दहेज की भेंट को (स्योनम् कृणुष्व) सुखकारक बना दे ॥२०॥

भावार्थ—संसार बाहर से बड़ा सुन्दर है पर है सैंभल के फूल के समान नि सार । इसमें ही अमृतलोक की ओर जाना है ॥२०॥

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥

पदार्थ—(अत) यहां से (उत् ईर्ष्व) उठ जा (हि एषा पतिवती) निश्चय यह पति वाली है (विश्वावसुं) विश्वावसु को (नमसा गीर्भिः) नमस्कार और वाणियों से (ईळे) स्तुति करता हू (अन्याम् व्यक्ताम् पितृषदम्) अन्य व्यक्त यौवन वाली पिता के घर मे रहने वाली को (इच्छ) चाह (स ते भाग.) वह तेरा भाग है (तस्य) उस भाग को (जनुषा) जन्म से ही (विद्धि) जान या प्राप्त कर ॥२१॥

भावार्थ—विश्वावसु बहुत धन और कलाओ से युक्त जन और कोई भी स्त्री की कामना न करनी चाहिए । पिता के घर मे रहने वाली कमारी कन्या को पाने का विधिपूर्वक यत्न करे ॥२१॥

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥२२॥

पदार्थ—(हे विश्वावसो) हे कामुक धनी मनुष्य (अतः) यहां से (उदीर्ष्व) उठ चल (त्वा नमसा + इळामहे) तेरी स्तुति नमस्कार द्वारा करते हैं (प्रफर्व्यम् जायाम्) अन्य पुष्ट नितम्बो वाली अर्थात् जवान स्त्री की (इच्छ) इच्छाकर (पत्या सृज) पति से युक्त कर ॥२२॥

भावार्थ—यह विश्वावसु विवाह सम्बन्ध कराने वाला व्यक्ति है । मन्त्र से यह भी सिद्ध हो रहा है कि विवाह कन्या के युवती होने पर होना चाहिए ॥२२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥

पदार्थ—हे वधू (ते) तेरे (पन्था) मार्ग (अनृक्षरा) कांटों से रहित (ऋजवः) सरल सीधे हो (येभि॰) जिन मार्गों से (नः सखायः) हमारे मित्र (वरेयम् यन्ति) वर से प्रार्थित पदार्थ या वर का स्थान या कन्या का पिता इनको (यन्ति) प्राप्त होते हैं । (देवा) हे विद्वानो (नः) हमें (भगः) भाग्य के देवता भगवान् (अर्यमा) सबका नियन्त्रण मे रखने वाले भगवान् (संनिनीयात्) भली प्रकार से चले (जास्पत्य) पति-पत्नी भाव (सुयमम्) सुन्दर नियमबद्ध (अस्तु) हो ॥२३॥

भावार्थ—ईश्वर से प्रार्थना है कि गृहस्थ कटकरहित सरल हो दाम्पत्य-नियम मे बधा हो ॥२३॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥

पदार्थ—हे वधु ! (त्वा) तुझे (वरुणस्य पाशात्) वरुण के पाश से बन्धन से (प्रमुञ्चामि) छुड़ाता हू (येन) जिस बन्धन से (त्वा) तुझे (सुशेवः) सुखदायक (सविता) सूर्य ने वा पिता ने (अबध्नात्) बांधा हुआ था (ऋतस्य योनौ) ऋत के आश्रम में (सुकृतस्य लोके) पुण्य लोक मे (पत्या सह) पति के साथ (अरिष्टाम् त्वा दधामि) कुशलयुक्त तुझे रखता हूं ॥२४॥

भावार्थः—भगवान् कुमारपन के बन्धन से मुक्त करके प्राप्त पति के साथ कुशलतापूर्वक रहने की आज्ञा देते हैं और गृहस्थ ऋत हो, सत्यमय हो, पुण्यरूप हो, पवित्र हो ॥२४॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५। २४॥

पदार्थ—(इत. प्रमुञ्चामि) इधर से पितृगृह से तुम्हें मुक्त किया जाता है, (अमुत) उधर से पतिगृह से (न) नहीं (अमुत.) उधर से पति की ओर से (सुबद्धाम् करम्) अच्छी तरह बद्ध करता हूं (हे इन्द्र) हे ऐश्वर्य शालिन् वर (मीढ्व) तू वीर्यवान् है । (यथा) जैसे (इयम्) यह वधू (सुपुत्रा) अच्छे सन्तानों वाली (सुभगा सति) अच्छे सौभाग्य वाली हो ॥२५॥

भावार्थ—गृहस्थ के नियमो में वधू बधी हुई सौभाग्य और सुसन्तान से युक्त रहे, वर वही बने जो धन एवं वीर्य से सम्पन्न हो ॥२५॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥

पदार्थ—(इत) इधर पिता के घर से (त्वा) तुझे (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर (पूषा) पालन करने वाला पति (नयत) ले जाये (अश्विना) प्राण घोड़ो वाले (रथेन त्वा प्रवहताम्) रथ के द्वारा तेरा वहन करें । (यथा) जिस प्रकार तू (गृहान् गच्छ) घर को प्राप्त हो (गृहपत्नी यास.) घर की स्वामिनी होकर रहे (त्वं वशिनी) तू सबको वश में रखने वाली (विदथम्) घर को (आवदासि) आज्ञा करे ॥२६॥

भावार्थः—पत्नी घर की स्वामिनी है उसमें यह योग्यता होनी चाहिये कि वह सबको वश मे रख कर सबको अपने कहने में रख सके ॥२६॥

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥

पदार्थ—हे वधू (इह) इस घर मे (ते प्रियम्) तेरा प्रियभाव (प्रजया) सन्तान से (समृध्यताम्) फले-फूले (अस्मिन् गृहे) इस घर मे (गार्हपत्याय) गृहस्थ के कर्त्तव्य के लिये (जागृहि) जागती रह सावधानी के प्रबन्ध को कर (एना पत्या तन्व संसृजस्व) इस पति के साथ अपने शरीर को मिला दे पति के कार्यों मे हाथ बटा (अधा) और (जिव्री) जीर्ण हुई वृद्ध हुई (विदथम्) घर को (आवदाथ) आज्ञा देती रह ॥२७॥

भावार्थ—अच्छी सन्तान हो, वृद्धावस्था तक घर का प्रबन्ध करती रहे, घर के कामो मे चेतन रहे ॥२७॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥

पदार्थ. - (नील लोहितम् भवति) यज्ञाग्नि की लपट नीली और लाल है, यह (कृत्या सक्ति.) कर्त्तव्य मे प्रेम (व्यज्यते) प्रगट कर रही है (अस्या) इस वधू के (ज्ञातय) जाति वाले (एधन्त) बढ़ें और (पति बन्धेषु) पति बन्धनों में (बध्यते) बांधता है ॥२८॥

भावार्थ—यज्ञ हो रहा है, जाति वाले प्रसन्न हो रह है पति विवाह बंधन में बंध रहा है दूसरा भाव यह है कि संस्कार रजस्वला का न होना चाहिये रजोधर्म से जब कन्या शुद्ध होती है तब संस्कार हो यह रजोधर्म का नीला लाल रक्त कृत्या है । रोग कारक है ॥२८॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥

पदार्थ—(परादेहि शामुल्यम्) शरीर का मल अर्थात् रजोधर्म के रक्त तथा वह वस्त्र दूर कर दो जब वधू शुद्ध हो ले तब (ब्रह्मभ्यः) ब्राह्मणो के लिये (वसु विभजा) धन दान करो (एषा कृत्या) यह मलीनता रजोधर्म का मैलापन (पद्वती भूत्वा) पावों वाली हो अर्थात् चली जाये तब (जाया पतिम् आविशते) स्त्री पति को प्राप्त करे ॥२९॥

भावार्थ—रजः शुद्धि के बाद ही संस्कार होना चाहिये, संस्कार के अवसर पर विद्वानो को भी दान दिया जाये ॥२९॥

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०॥२४॥

पदार्थ—(तनू॰) शरीर (अश्रीरा) शोभारहित और (रुशती) कष्ट-कारक रोगी (भवति) होता है, (अमुया पापया) इस पापयुक्त अर्थात् रजस्वला के साथ समागम मे (पति) पति (यत्) जब (वध्व वाससा) रजस्वला वधू के वस्त्र से (स्वम् + अङ्गम्) अपने शरीर को (अभिधित्सते) ढांकना चाहे ॥३०॥

भावार्थ — रजस्वला का समागम तो निषिद्ध है ही उसके वस्त्र तक को छूना बुरा है ॥३०॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥

पदार्थ—(ये यक्ष्मा.) जो रोग (वध्व.) वधू मे (वहतु चन्द्रम्-जनात्+अनुयन्ति) शरीर रूपी चन्द्रमा को जन सम्पर्क से लगते हैं (यज्ञिया देवा॰) यज्ञ के विद्वान् (यत॰ + आगता) जहां से आये हैं (तान्) उन्हे (पुनः + नयन्तु) फिर लौटा दें अर्थात् घर के वातावरण से जो रोग या दोष लगे हों उन्हें दूर कर दिया जाये ॥३१॥

भावार्थः—विवाह नीरोग स्त्री मे होना चाहिए ॥३१॥

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२॥

पदार्थः—(परिपन्थिन.) शत्रु (ये दम्पती आसीदन्ति) जो वर वधू को प्राप्त होते हो (माविदन्) प्राप्त न हों (सुगेभि.) सरल मार्गों से (दुर्गम्) कठिनाई को (अतीताम्) पार कर जाए (अरातय.) शत्रु (अपद्रान्तु), दूर से ही दमन हो जाएं ॥३२॥

भावार्थ—दोनों वर वधू शत्रुरहित रहें यह आशीर्वाद है ॥३२॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

पदार्थ.—(इयम् वधूः सुमङ्गली.) ये वधू अच्छे मगलो वाली है (इमाम् समेत, पश्यत) इसे आप सब बारात के लोग आकर देखें (अस्यै) इसके लिए (सौभाग्य दत्वा) सौभाग्य का आशीर्वाद देकर (अथ) फिर (अस्तम्) अपने घर को (विपरेतन) जाओ ॥३३॥

भावार्थ—यह वधू की मुख दिखाई की रीति बताई गई है ॥३३॥

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

पदार्थः—(तृष्टम्+एतत) यह प्यास के समान कष्टकारक (कटुकम् एतत्) यह कड़वा (अपाष्ठवत) दूर रखने योग्य (विषवत्) विष के तुल्य हो सकता है । (एतत) यह (अत्तवे न) भोग के योग्य नही है । (सूर्याम्) सूर्या को अर्थात् वधू को (यो ब्रह्मा विद्यात्) जो वेदज्ञ पुरुष जानता है (स इत्) वह ही (वाधूयम्) वधू के सम्बन्ध कराने को (अर्हति) योग्य है ॥३४॥

भावार्थ—ऐसी भी स्त्रियां हैं जिनके साथ सम्बन्ध होने से जीवन सकटमय बन जाता है वह सम्बन्ध विष हो जाता है अत. वेदज्ञ विद्वानो से परीक्षण करा लिया जाए ॥३४॥

वर-वधू के गुण और स्वभावो की जांच विद्वान् कर लें तब सम्बन्ध होना चाहिए ।

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥२६॥

पदार्थ.—(आ शसन) धृष्टता या मारना (विशसनम्) उपेक्षा या अनादर (अथो) और (अधि विकर्तनम्) काट-छाट, चीरफाड (सूर्यायाः) वधू के (रूपाणि पश्य) इन रूपो को देखो (तानि तु) उन्हे तो (ब्रह्मा) वेदज्ञ, विद्वान् (शुन्धति) शुद्ध करता है ॥३५॥

भावार्थः—स्त्रियो के जो दोष हों उन्हे विद्वान् दूर करे तब विवाह होना चाहिए अन्यथा सम्बन्ध घोर कष्टकारक बन जाता है ॥३५॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥

पदार्थ—(सौभगत्वाय ते हस्त गृभ्णामि) सौभाग्य के लिए तेरे हाथ को पकडता हू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (यथा) जिस प्रकार (जरदष्टिः) वृद्धावस्था तक (अस) हो (भग) सौभाग्यदेव (अर्यमा) नियामक शक्ति (सविता) जगत्स्रष्टा (पुरंधि) सबको धारण करने वाला ईश्वर (देवा) विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहस्थ धर्म के लिए (मह्यम् त्वा अदु) तुम्हे मेरे लिए देते हैं ॥३६॥

भावार्थ—पाणिग्रहण सौभाग्य के लिए है यह वह प्रतिज्ञा करता है अत स्त्री की इच्छाए पूरी करे उसे कोई कष्ट न दे सम्बन्ध बुढापे तक है । बीच मे छोड़ा नही जा सकता यह ईश्वर और विद्वानो का नियम है ॥३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।

या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥

पदार्थ—(हे पूषन्) हे पोषणकर्ता ईश्वर (यस्यां मनुष्या.+बीज वपन्ति) जिसमे मनुष्य बीज बोते अर्थात् गर्भाधान करते हैं (ताम्) उसे (प्रेरयस्व) प्रेरित करो (यान·) जो हम (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) जघाओ को (विश्रयाते) आश्रय दे (उशन्त) कामना करते हुए हम (यस्याम्) जिसमे (शेपम्) कामेन्द्रिय को (प्रहराम) निक्षिप्त करें । अपनी कामना पूरी करें ॥३६॥

भावार्थ.—विवाह उनका ही ठीक है जो एक दूसरे की कामना पूरी करते हो ॥३७॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।

पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ईश्वर (सूर्याम्) सूर्या को वधू को (वहतुना सह) दहेज के साथ (अग्ने) प्रथम (तुभ्यम) तुम्हारे लिए (परि+अवहन्) अर्पित करते हैं (पुन पतिभ्य) फिर पतियो के लिए (प्रजया सह) सन्तान के साथ (जायाम् दा) स्त्री को दे ॥३८॥

भावार्थ.—आस्तिको का सब कुछ ईश्वरार्पण होता है वह ईश्वर अपनी कृपा से उत्तम सन्तान दे यह प्रार्थना है ॥३८॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥

पदार्थ—(अग्नि) तेजस्वी ईश्वर (आयुषा, वर्चसा सह) आयु और तेज के साथ (पुन पत्नीम् अदात्) फिर पत्नी को देता है (अस्याः) इस स्त्री का (य पति.) जो पति है (दीर्घायु) लम्बी आयु वाला हो (शरद. शतम् जीवाति) सौ वर्ष तक जिये ॥३९॥

भावार्थ—ईश्वर से मगल कामना की गई है ॥३९॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥२७॥

पदार्थः—(सोमः प्रथमो विविदे) स्त्री को प्रथम सोम प्राप्त करता है अर्थात् सौम्य गुण सरलता उसमें होती है, (उत्तर) फिर (गन्धर्वो विविदे) गन्धर्व प्राप्त करता है, अर्थात् गाना बजाना शृंगार के भाव आते हैं (तृतीयः+ते पति.+अग्नि) तीसरा तेरा पति अग्नि रजोधर्म और कामेच्छा है (तुरीय+ते) चौथा तेरे लिए (मनुष्यजा) मनुष्य पुत्र होता है ॥४०॥

भावार्थ—नारियो की सब दशाओ का वर्णन है ॥४०॥

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये ।

रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१॥

पदार्थ—(सोम) सोम ने (गन्धर्वाय) गन्धर्व के लिए (अददात्) दिया (गन्धव.) गन्धर्व ने (अग्नये ददत्) अग्नि के लिए दिया (अथो) और (अग्नि) अग्नि ने (रयि च) धन और (पुत्रान्) पुत्रो के लिये (इमाम्) इस स्त्री को (मह्यम) मेरे लिए (अददात) दिया है ॥४१॥

भावार्थ—सोम, गन्धर्व ये दशा विशेष हैं और अग्नि से तात्पर्य यहां ईश्वर है ॥४१॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।

क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

पदार्थ—हे पति पत्नी (इहैव स्तम्) इस गृहस्थ आश्रम में ही रहो (मा वि+यौष्टम्) विभक्त मत हो (विश्वम्+आयु·) पूर्ण आयु (वि+अश्नुतम्) भोगो (पुत्रै +नप्तृभि·) बेटो और नातियो से (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (स्वे गृहे मोदमानौ) अपने घर मे प्रसन्न रहते हुए ॥४२॥

भावार्थ—इससे बीच मे त्याग [तलाक] का निषेध हो गया वानप्रस्थ और सन्यास भी सबके लिए सामान्य काम नही रहा ॥४२॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।

अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥

पदार्थ (प्रजापति) प्रजाओ का स्वामी ईश्वर (प्रजां जनयतु) सन्तान उत्पन्न कर, (अर्यमा) नियामक ईश्वर (आजरसाय) वृद्धावस्था तक (सम्+अनक्तु) रक्षा करे, मिलाए रखे (अदुर मगली) अमगलो से रहित (पति लोकम् +आविश) पति के घर मे प्रवेश कर लोक दशा अर्थात् पति का सब दशाओं मे साथ दे (न) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) दुपायो और चौपायो के लिए (शभव) कल्याण रूप हो ॥४३॥

विशेष पद—पदार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमे अर्थ काम के लिए और धर्म मोक्ष के लिए भी [शम्] सुखकारक हो ॥४३॥

भावार्थ.—उक्त शुभाकाक्षाए है ईश्वर से की गई है ॥४३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।

वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

पदार्थ—हे वधू ! (अघोर चक्षुः) कठोर नेत्र वाली नहीं, किन्तु शीलयुक्त नेत्र वाली (अपतिघ्नी) पति का हनन करने वाली अर्थात् कष्ट देने वाली नहीं किन्तु सुख पहुँचाने वाली (एधि) प्राप्त हो (पशुभ्य) घर के पशुओ के लिए (शिवा) कल्याणकारिणी (सुमना) प्रसन्नमन (सुवर्चा) सुन्दर शक्तियुक्त (एधि) हो (वीरसू) वीर सन्तान उत्पन्न करने वाली (देवृकामा) घर मे देवर जेठ आदि के प्रति अच्छी भावना वाली तथा देव भावना वाली दैवीवृत्ति वाली (न) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) द्विपद और चतुष्पद के लिए (शम्भव) शुभकारिणी हो ॥४४॥

भावार्थ—गृहस्थ में नारी उच्च भावना की हो तो सन्तान अच्छी बनती है घर में मेल रहता है ॥४४॥

ऋग्वेद मे सब सहिता और पाठ देवकामा है और अथर्व संहिता में देवृकामा पाठ है । ऋषि दयानन्द ने जो नियोगपरक अर्थ किया है वह भी ठीक है कोई अन्तर नही पडता, पौराणिको के छापे हुए अथर्व मे भी देवृकामा पाठ है ॥४४॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।

दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) ऐश्वर्य धनयुक्त पति (मीढ्वः) तू वीर्यसिंचन में समर्थ है अत· (इमाम्) इस नारी को (सुभगाम्) धन से सौभाग्यवाली और (सुपुत्राम्) वीर्य से अच्छी सन्तान वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इसमें (दश पुत्रान आधेहि) दश पुत्रो को धारण करा (एकादशम् पतिम् कृधि) ग्यारहवां पति इन सबको सकुशल रख, हे ईश्वर तुमसे यही प्रार्थना है ॥४५॥

भावार्थ—दस तक सन्तान हो अधिक नहीं या दश बहुतों का अर्थवाचक भी हो सकता है, "एकादशम् पतिम्" से ऋषि दयानन्द ने नियोग के पतियों की संख्या नियत की है अन्यर्थ यह भी ठीक है यह व्यग्यार्थ है ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

पदार्थ—(श्वशुरे) श्वसुर पर (सम्राज्ञी भव) महारानी हो (श्वश्र्वाम्) सास पर (सम्राज्ञी भव) राजरानी हो । (ननान्दरि) ननद पर (सम्राज्ञी भव) राजरानी हो (अधि देवृषु) देवरो पर (सम्राज्ञी भव) राजरानी हो ॥४६॥

भावार्थः—घर में वहू का पूर्णाधिकार हो, ससुर, सास की वह अपार लाडली हो, ननदें, देवर उसकी आज्ञा मानें और आदर करें तो उस वधू को अपना घर भूल जायेगा, पति के घर में वह प्रसन्न रहेगी ॥४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।

सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥२८॥३॥

पदार्थः—(विश्वे देवा) सब विद्वान् और दिव्य शक्तियाँ (समञ्जन्तु) सुसगत हो, मिलकर यह जानें कि (नौ) हम दोनों के (हृदयानि) हृदय (समाप) जलों के समान मिले हैं वा हम दोनों समान गुण कर्म वाले हैं (नौ) हम दोनों का (मातरिश्वा) प्राण वा ईश्वर (सदधातु) सम्यक् धारण करें (धाता) जगत् का धारक ईश्वर (संदधातु) भले प्रकार धारण करे ॥४७॥

अन्यर्थ यह भी है कि एक दूसरे को प्राणसम समझें, एक दूसरे का धाता रक्षक हो, एक दूसरे को उपदेश द्वारा समझावें ॥४७॥

भावार्थ —सूक्त मे वर वधू के कर्त्तव्य और ईश्वर-विश्वास से उनका पालन बताया है ॥४७॥

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[८६]

वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च ऋषयः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्द —१, ७, ११, १३, १४, १८, २३ पंक्तिः । २, ५ पादनिचृत् पंक्तिः । ३, ६, ९,१०,१२,१५,२०—२२ निचृत् पंक्तिः । ४, ८, १६, १७, १९ विराट् पंक्तिः ॥

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।

यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

पदार्थ —(सोतोः) सोम यज्ञकर्ता के यज्ञ मे (हि) निश्चय (वि+असृक्षत) विविधरूप से रचनायें की (इन्द्र देवं न अमंसत) इन्द्रदेव की स्तुति नहीं की इन्द्र को नहीं समझा (यत्र पुष्टेषु) जहा पुष्ट यज्ञो में, पदार्थों मे (मत्सखा) मेरा मित्र (अर्य) स्वामी (वृषाकपि) वर्षणशील और गति करने वाला सुखो को पीने वाला मन (अमदत्) आनन्द मग्न हुआ (विश्वस्मात्) सबसे (इन्द्रः) आत्मा तथा परमात्मा (उत्तर) ऊपर हैं, सूक्ष्म हैं ॥१॥

भावार्थः—जनसाधारण सूक्ष्म आत्मतत्व को न जानकर मन ही को सब कुछ मान रहे हैं ॥१॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त योग की ओर जाने वाले आत्मन्, (अति व्यथिः) अति दुःखित हुआ (वृषाकपे) वृषाकपि मन से (पराधावसि) दूर भाग रहा है । (अहह) आश्चर्य है । (सोमपीतये) सोमपान के लिये अर्थात् आध्यात्मिक आनन्द के लिये (नः) हमारे यज्ञ से (अन्यत्र) और स्थान पर (प्रविन्दसि) प्राप्त हो रहा है ॥२॥

भावार्थ —मन के व्यवहारो से आत्मा व्यथित होकर अन्यत्र सोम को खोज रहा है ॥२॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।

यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

पदार्थः—(अयं हरितः मृगः वृषा कपि) यह हरा-भरा मृगसम दौड़ने वाला वृषाकपि मन (त्वां) तुझे (किं चकार) क्या किया (यस्मै) जिसके लिये (अर्यः) तू स्वामी (उ नु) और अधिक (पुष्टिमद्वसु) पुष्ट करने वाला धन (इरस्यसि+इत्) देता ही जाता है ॥३॥

भावार्थः—चपल मोहक मन ने आत्मा पर क्या प्रभाव किया है कि उस मन को आत्मा पुष्ट कर रहा है ॥३॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) हे आत्मन् (त्वं) तू (यम्+इमम्+प्रियम् वृषाकपिम्) जो तू इस प्रिय वृषाकपि को (अभिरक्षसि) रक्षा करता है । (अस्य) इसको (वराहयुः) सूअर का शिकार करने वाला (श्वा) कुत्ता (अपिकर्णे) कान से पकड़कर (जम्भिषत्) चबा डाले ॥४॥

भावार्थः—जिस मन को आत्मा इतना प्यार करता है वह कुत्तों से काटने योग्य अर्थात् गन्दा है ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।

शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥१॥

पदार्थः—(कपिः) यह मनरूपी बन्दर (मे तष्टानि) मुझसे रचे हुए (प्रिया+व्यक्ता) प्रिय व्यक्त पदार्थों को, उत्तम भावो को (वि+अदूदुषत्) दूषित करता है (अस्य) इसका (शिरः) सिर (नु राविषम्) निश्चय काट दूं (दुष्कृते) दुष्ट काम करने वाले के लिये मैं [आत्मशक्ति] (सुगम्) सुखकाकर (ना भुवम्) नहीं होता हूँ ॥५॥

भावार्थ —बन्दर के समान मन आत्मशक्ति से सजोये हुए सब कामों का दूषित कर डालता है, उसको यह कठोर शब्द कहे गये है ॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

पदार्थः—(मत्) मुझसे (सुभसत्तरा) सुन्दर भाग्य वाली (सुयाशुतरा) सुप्रकार पति का सग करने वाली (स्त्री न भुवत्) स्त्री नहीं है । (न मत् प्रतिच्यवीयसी) न पति के पास जाने वाली (न सक्थि+उद्यमीयसी) न जंघा उठाने वाली अर्थात् भोग कराने वाली स्त्री है ॥६॥

भावार्थ —प्रकृति कहती है कि आत्मा के लिये मुझसे अधिक प्रसन्न करने वाली और कोई वस्तु नहीं यह आत्मा की वृत्ति का कथन हो सकता है ॥७॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७॥

पदार्थ.—(उवे अम्ब) हे माता प्रकृति (अङ्ग) प्रिय (सुलाभिके) सुख-पूर्वक लाभ कराने वाली (यथा+इव) जिस प्रकार मानो (भविष्यति) होगा (मे भसत्) मेरा प्रजनन अग (हे अम्ब) हे माता (मे सक्थि) मेरी जंघा (मे शिर) मेरा सिर (वि+इव) पक्षी के समान (हृष्यति) प्रसन्न हो रहा है ॥७॥

भावार्थः—प्रकृति के लिये जीवात्मा का उत्तर है कि मेरा अंग-अग प्रकृति माता के नियम पर चलने मे प्रसन्न रहेगा ॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

पदार्थ —(हे सुबाहो) हे सुन्दर बाँहो वाली (स्वङ्गुरे) सुन्दर अंगुलियों वाली (हे पृथुष्टो) हे बड़े लम्बे बालो वाली (पृथुजघने) बड़े-बड़े नितम्बों वाली (शूरपत्नि) वीर की स्त्री (त्वम्) तू है (नः) हमारे (वृषाकपिम्) वृषाकपि को (किम्) क्यो (अभ्यमीषि) पीड़ित करती हो ॥८॥

भावार्थः—यह प्रकृति ही का सुन्दर नारी रूप मे वर्णन है यह माया ही [वृषाकपि] मन को व्याकुल करती है ॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

पदार्थः—(अयम् शरारु) यह शान्ति नाश करने वाला (माम्) मुझे (अवीराम्+इव) वीरता से रहित सी (अभिमन्यते) मानता है (उत्) और (अहम्) मैं (वीरिणी) इन्द्रपत्नी (मरुत्सखा) मरुत्‌गण जिसके साथी हैं ऐसी (अस्मि) हूं । वि० द० उ० ९ ।

भावार्थः—प्रकृति वा आत्मा की शक्ति बहुत बल रखती है, मन इसे तुच्छ समझता है यह मन की भूल है ॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥२॥

पदार्थ.—(पुरा) पूर्व कल्प मे (नारी) स्त्री (संहोत्र) समानता के साथ यज्ञ में (समन) यज्ञस्थल मे (गच्छति स्म) जाती थी (ऋतस्य) सत्य की (वेधा) विधाता है, (वीरिणी) वीरतायुक्त है । समन का अर्थ संग्राम भी है स्त्री पहले भी युद्धो मे भाग लेती थी । (इन्द्रपत्नी) ऐश्वर्यशाली ईश्वर की यह शक्ति है ॥१०॥ वि० द० उ०

भावार्थः—यहाँ नारी का महत्त्व बताया गया है । नारी पुराने कल्पों से ही यज्ञ मे भाग लेती आयी है, युद्धों मे सहकारिणी रही है, ऋत की वेधा, न्यायाधीश है । इन्द्रपत्नी ऐश्वर्य की रक्षक है ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

पदार्थ—(इमासु नारिषु) इन नारियो मे (अहम्) मैंने (इन्द्राणीम्) इन्द्राणी को—ईश्वर की रचना वा आत्मा की शक्ति अथवा शासन करने वाली स्त्री (सुभगाम्) सौभाग्यशालिनी (अश्रवम्) सुना है (अस्या) इसका (पतिः) स्वामी (अपरं च न) और भी (जरसा) बुढ़ापे से (न मरते) नही मरता अर्थात् इस मायारूपी इन्द्राणी का पति ईश्वर है जो अजर-अमर है ॥११॥ वि० इ० उत्तरः——

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

पदार्थ—(इन्द्राणि) हे इन्द्र की शक्ति (अहम्) मै जीवात्मा (सख्युः + वृषाकपे + ऋते) मित्र वृषाकपि के बिना (न रारण) काम नहीं करता (यस्य इदम् अप्यम्) जिसकी यह अर्पित की हुई हवन की प्रिय वस्तु (देवेषु गच्छति) दिव्य लोकों को वा विद्वानों को प्राप्त होती है ॥१२॥

भावार्थ - आत्मा की मननवृत्ति रूप मन आत्मा के सदा साथ है पीछे भौतिक मन की बुराई की गई है आत्मवृत्ति-रूप मन के बिना आत्मा काम नही कर सकता, इस पवित्र वृत्ति से किया हुआ यज्ञ द्युलोक तक प्रभाव डालता है, विद्वानो को प्रसन्न करता है ॥१२॥ विश्व० इन्द्र० उत्तर.—

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

पदार्थ—(हे वृषाकपायि) हे मन की शक्ति (सुपुत्रे) अच्छे पुत्रो वाली (सुस्नुषे) अच्छी पुत्रवधुओ वाली (रेवति) धन-सम्पन्न (ते इन्द्र) तेरे इन्द्र ने (काचित् करम्) किसी से की हुई (उक्षण) उक्षा की (प्रिय हवि) प्रिय आहुति (घसत्) भक्षण कर ली ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

पदार्थ—(मे) मेरे लिये (उक्ष्णो हि) उक्षाओ के ही (पञ्चदश विंशतिम् साकम्) पाच दस-बीस के साथ (पचन्ति) पकाते हैं (उत) और (अहम्) मैं (पीव) पुष्ट हूँ (उत) और (मे) मेरी (उभा कुक्षी इत) दोनो ही कोखें (पृणन्ति) पूर्ण करते है ॥१४॥ वि—इन्द्र—उत्तर

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः
॥१५॥३॥

पदार्थ—(तिग्म शृङ्ग) तीक्ष्ण सीग वाले (वृषभ + न) बैल के समान (यूथेषु + अन्त) जो अपने झुण्डो मे (रोरुवत्) शब्द करता है (हे इन्द्र) हे ईश्वर (मन्थ) हृदय को मन्थन करने वाला (भावयु) भावना वाला (य सुनोति) जो पदार्थ यज्ञ मे हवन करता है (ते हृदे शम्) तेरे हृदय की शान्ति के लिये है। वि० इ० उ ॥१५॥

भावार्थ—आनन्द मग्न जीव वेदोच्चारण करता हुआ अपने ज्ञान से मन्थन कारक भावना के सहित जब यज्ञ करता है तो [इन्द्र] परमात्मा प्रसन्न होते हैं ॥१५॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

पदार्थ—(स. न + ईशे) वह समर्थ नही है । (यस्य) जिसका (कपृत्) कपाल (सक्थ्या + अन्तरा) टांगो के बीच (रम्बते) लटकता है (स इत् + ईशे) वही समर्थ है । (यस्य रोमशम्) रोमयुक्त चेहरा जवानी का मुख (निषेदुष.) बैठे हुए का (विजृम्भते) प्रसन्नता से विकसित होता है ये मुहावरे हैं घुटनों में सिर दिये अर्थात् सुप्त रोमयुक्त चेहरे का विजृम्भण खिल उठना । वि० इ० उ० ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

पदार्थः—अब ऊपर की बात को उलट दिया है । (स न-ईशे) वह शक्ति वाला नहीं है (यस्य निषेदुष) जिस बैठे हुए का (रोमशम्) दाढ़ी-मूछों वाला चेहरा (विजृम्भते) जमाई लेता है अर्थात् आलस भरा मनुष्य (स + इत् + ईशे) वही समर्थ है (यस्य कपृत्) जिसका कपाल (सक्थ्या + अन्तरा) टांगो के बीच (रम्बते) लटकता है, अर्थात् जो बैठा नहीं रहता किन्तु अपने विचारों को टांगें लगाता है, काम करता है ॥१७॥

भावार्थः—उक्त ऋचाओं में काव्य-कला का प्रदर्शन है और शिक्षा भी, आचार्य सायण ने इन ऋचाओ मे कामशास्त्र की बातें लिखी हैं ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

पदार्थ—(हे इन्द्र) हे योगिन् आत्मन् (अयम् वृषाकपिः) यह मन (परस्वन्तम्) परायेपन को (हतं विदत्) नष्ट हुआ जाने अर्थात् सब अपने है ऐसा जाने (असिम्) तलवार को (सूनाम्) हत्या को (विदत्) जाने (नवं चरुम्) नये चरु को हवन के पदार्थ को (विदत्) जाने (आत् + एधस्य) समीप मे प्रकाशित से (आचितम्) भरे हुए (अन.) शकट को, प्राण को (विदत्) जाने अर्थात् एक ओर तो तलवार वा मारपीट हिंसा है दूसरी ओर नया चरु नये ईश्वर-प्रेम को देखे । समीप ही प्रकाश से भरे हुए शकट प्राण को समझे । अर्थात् हिंसा को त्यागे और प्रकाशमय प्रभु-प्रेम को ग्रहण करे (विश्वस्मात्) सबसे (उत्तरः) ऊपर (इन्द्र) आत्मा है, यह समझे । आत्महनन कभी न करे ॥१८॥

भावार्थ—प्रेम का उपदेश है हिंसा की निन्दा है ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

पदार्थ—(अयम् + एमि) यह मैं आता हूं (विचाकशत्) साक्षात् आत्मदर्शन करता हुआ (आर्यम् दस्युम्) श्रेष्ठ प्रगति करने वाले को और दस्यु कर्मों का क्षय करने वाले आलसी (विचिन्वन्) चुनता हुआ (सुत्वनः) यज्ञ करने वाले के (पाकम्) पाक को हवन के द्रव्य को (पिबामि) पीता हूँ, स्वीकार करता हूँ । (धीरम्) ज्ञानी को (अभिचाकशम्) अच्छी तरह देखता हूँ, जानता हूँ । उसे चाहता हूँ ॥१९॥

भावार्थः—ईश्वर यज्ञहीन, निकम्मे दास को पसन्द नही करता । यज्ञशील कर्म करने वाले आर्य श्रेष्ठ जन को पसन्द करता है ॥१९॥

धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

पदार्थ—(हे वृषाकपे) हे मन (धन्व च) जलरहित (कृन्तत्रम् च) और काटने वाली (ता) वे (कतिस्वित्) कितनी ही (वियोजना) व्यर्थ की योजनायें हैं उन्हे छोड़कर (गृहान् + उप) घरो के पास (नेदीयसः) अत्यन्त समीप होने वाले ईश्वर के (अस्तम्) शरण को (एहि) प्राप्त कर । वि० इ० उ० ॥२०

भावार्थ - जगत् के प्रपञ्च मरुस्थल है उनसे बच कर ईश्वर का आश्रय ले ॥२०॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

पदार्थ—(हे वृषाकपे) हे मन (पुनः + एहि) फिर लौट कर आ (सुविता कल्पयावहै) मैं [इन्द्र] और इन्द्राणी आत्मवृत्ति तेरे लिए उत्तम पदार्थ उत्तम विचार व भावों की रचना करेंगे । (य + एष. स्वप्ननशन) जो यह सोये जन के समान मन है (पथा) मार्ग से (पुनः) फिर (अस्तम् + एषि) घर को आवे वि० इ० उ० ॥२१॥

भावार्थ—मन स्थिर हो आत्मा मन को अच्छे कल्याणकारी विचारो से युक्त कर ॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

पदार्थ—हे (वृषाकपे) हे इन्द्र, हे मन और हे जीवात्मन् (यत + उदञ्च) जब उससे (गृहम् + आजगन्तन) घर मे आ जाते हो तब (पुलु + अघ) बहुत पापो वाला (जनयोपन) मनुष्यो को मोह मे डालने वाला (स्य) वह (मृग.) चपल (क्व कम्) कहाँ किसको (अगम) चला गया ? वि० इ० उत्तर ॥२२॥

भावार्थ—जब मन अपने घर हृदय मे स्थिर हो जाता है तो वह पाप वाला मोहक मन कहाँ चला जाता है ? ॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् । भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥४॥

पदार्थ—(मानवी) मनुष्य की वृत्ति (पर्शु + ह नाम) नायकी है "पशु" परम सूक्ष्म अव्यक्त (साकं विंशतिम्) एक साथ बीस को (ससूव) उत्पन्न करती है । अव्यक्त प्रकृति से दस इन्द्रियाँ पाँच स्थूल भूत पाच तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं [सांख्य का सिद्धान्त है](त्यस्या) उसका (भद्रम् भल + अभूत्) भला कल्याण होता है (यस्या) जिसका (उदरम्) पेट (आमयत्) पीड़ित होता है । अर्थात् जिसे प्रसव की पीड़ा होती है । उसका कल्याण है क्योंकि इससे सलग्न मिलेगी प्रकृति का भी सौभाग्य है कि उसने २० बच्चे जने ॥२३॥

भावार्थ - ऊपर के सूक्त मे "विश्वस्मादिन्द्र उत्तर" यह टेक है जैसे कि गीतो मे टेक होता है "उत्तर" शब्द बताता है कि यहाँ "इन्द्र" जीवात्मा है क्योंकि "उत्" प्रकृति—उत्तर जीवात्मा, उत्तम—परमात्मा । उक्त सूक्त में मन, आत्मवृत्ति

जीवात्मा की गतियों पर कविता है । "उक्षन्" शब्द का अर्थ भाषा-विज्ञान को लेते हुए आक्स—बैल करके वेद विरोधियों ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्र के लिये बैलों की बलि दी जाती थी ॥२१॥

इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८७]

ऋषि पायुः ॥ देवता—अग्नी रक्षोहा ॥ छन्द —१, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । २, ३, २० विराट् त्रिष्टुप् । ४—७, ९—११, १४, १९ निचृत् त्रिष्टुप् । १३-१६ भुरिक् त्रिष्टुप् । २१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २२, २३ अनुष्टुप् । २४, २५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥

पदार्थ—(रक्षोहणम्) राक्षस अर्थात् विषैले कीटाणुओं को नष्ट करने वाली (मित्रम्) हितकारी (प्रथिष्ठम्) अति विस्तृत (वाजिनम् उपयामि) यज्ञाग्नि को प्राप्त होता हूं (शिशानः अग्निः) हुआ अग्नि (क्रतुभिः) यज्ञों से (समिद्धः) उद्दीप्त हुआ (सः) वह (नः) हमे (दिवानक्तम्) दिन मे और रात मे (रिषः) पाप से-रोग से, हिंसा करने वाले से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—यज्ञ के द्वारा विषैले कीटाणुओं का नष्ट किया जावे ॥१॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः । आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥२॥

पदार्थ—(अयोदंष्ट्रः) लोहे के दाढ़ों वाला अर्थात् बहुत कठोर (समिद्धः) प्रज्वलित (जातवेदः) हे अग्ने (यातुधानान्) राक्षसों को (अर्चिषा) अपनी लपट से (उपस्पृश) स्पर्श कर अर्थात् जलादे (क्रव्यादः) कच्चा मांस खाने वाले (मूरदेवान्) पीड़ा देने वालों को (आजिह्वया) सब ओर से जीभ से लपट से (रभस्व) वश मे कर अर्थात् जला डाल (वृक्त्वी अपि) कटे हुए वृक्ष के समान (आसन्) अपने मुख में (अपिधत्स्व) धारण कर ॥२॥

भावार्थः—जड अग्नि को सम्बोधन काव्य शैली मे है । अग्नि [यज्ञाग्नि] इन रोग कीटाणुओं को नष्ट करे ऐसा उपाय यज्ञकर्ता लोग करें ॥२॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च । उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

पदार्थः—(हे उभयाविन्) हे दोनो प्रकार के बलो से युक्त (१ आत्मबल २ बाहुबल) (उभा दंष्ट्रा शिशान) दोनों दाढ़ों को तीक्ष्ण करता हुआ (हिंस्र) दुष्टों की हिंसा करने वाला (अवर परं च) छोटे और बड़े को (उपधेहि) अपने समीप रख (उत) और (हे राजन्) हे राजा (अन्तरिक्षे परियाहि) अन्तरिक्ष मे जा (यातुधानान्) राक्षसों को दुष्टों को वा रोगों के कीटाणुओं को (जम्भैः) दाढ़ों से अर्थात् शस्त्रों से (अभिसंधेहि) बांधकर पीस दे ॥३॥

भावार्थ—राजा का धर्म है कि कठोरता के साथ दुष्टों का दमन करे, यज्ञ की अग्नि भी रोगाणुओं को जो अन्तरिक्ष में फैले हैं उन्हें नष्ट करे ॥३॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः । ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥४॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे नेता राजा (यज्ञैः) यज्ञों से अर्थात् सैनिक यज्ञों से (इषूः) बाणों को, बाणधारी सैनिकों को (सन्नममानः) अपने अधीन रखता हुआ (वाचा) वाणी से आज्ञा से (शल्यान्) शस्त्रों से (अशनिभिः) वज्रों से (दिहानः) मिलाता हुआ (ताभिः) उन शक्तियों से (यातुधानान्) दुष्टों को मायावियों को (हृदये विध्य) हृदय मे बेंधन कर उनके हृदय छेद डाल (एषाम् प्रतीचः बाहून्) इनकी अपने विरुद्ध भुजाओं को (भङ्ग्धि) भंग कर दे, तोड़ दे ॥४॥

भावार्थः—राजा पूरी तैयारी से दुष्टों का दमन करे ॥४॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् । प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥५॥५॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् (यातुधानस्य त्वचम्) राक्षस की खाल को वा आवरण किले आदि को (भिन्धि) भेदन कर दे (हिंस्राशनिः) हिंसक वज्र (एनम्) इस राक्षस को (हरसा) प्राण हारक तेज से (हन्तु) मारे (हे जातवेदः) हे अग्ने वा ज्ञानी जन नेता (प्र पर्वाणि शृणीहि) उनके टुकड़े-टुकड़े कर दे (क्रविष्णुः) मांस की इच्छा वाला (क्रव्यात्) जंगली मांसाहारी जीव (वृक्णम् वि चिनोतु) इस छिन्न अंग वाले को चुन ले खा ले ॥५॥

भावार्थः—दुष्टों को कड़ी मार लगाई जावे, उनके शरीर के टुकड़ों को जंगली जानवर खायें ॥५॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् । यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६॥

पदार्थ—(हे जातवेदः अग्ने) हे सब जानने वाले राजन् (यत्र) जहां (इदानीम्) इस समय (पश्यसि) देखे (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए को (उत वा, उपपथवा चरन्तम्) विचरते हुए को (यद्वा) अथवा (अन्तरिक्षे) आकाश में (पथिभिः) मार्गों के (पतन्तम्) उड़ते हुए को (अस्ता) दुष्टों का उच्छेदक हुआ (शिशान) शस्त्रों को तीक्ष्ण करता हुआ (तम्) उस राक्षस को (शर्वा) तीक्ष्ण शस्त्र से (विध्य) बेधन कर दे ॥६॥

भावार्थ—शत्रु को जहां भी वह हो मारो, वायुयान से आकाश में उड़ता हो तो वहां भी शस्त्रास्त्र प्रहार करो ऐसे अस्त्र भी हों ॥६॥

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् । अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

पदार्थ—(हे जात वेद) हे सब राष्ट्र को जानने वाले राजन् (आलब्धम्) पकड़े हुए प्रजाजन को (आलेभानात्) पकड़ने वाले (यातुधानात्) राक्षस से (स्पृणुहि) रक्षा कर (ऋष्टिभिः) शत्रुओं को सन्तापन करने वाले शस्त्रों से । (शोशुचानः) तेज से प्रकाशित हुआ (पूर्वः) प्रथम (आमादः) कच्चे मांस को खाने वाले राक्षसों को (निजहि) निश्चित रूप से मार (एनी क्ष्विङ्काः) ये आकाश मे उड़ने वाली चीलें (तम्+अदन्तु) उसे खायें ॥७॥

भावार्थ—प्रजाजन की रक्षा करें और प्रजापीड़कों को कठोर दण्ड दें, ये राज धर्म है ॥७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति । तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् (यतमः) बहुतों मे से जो भी (यः सः) जो वह (यातुधानः) राक्षस (इदं कृणोति) ये अनाचार करता है (इह प्रब्रूहि) यहां न्याय सभा में कहो (हे यविष्ठ) हे शक्तिशालिन् (तम्) उसे (समिधा) अग्नि की समिधा से (आरभस्व) दण्ड दो (नृचक्षसः चक्षुषे) न्याय द्रष्टा की दृष्टि के लिए (एनम् रन्धय) इस पापी को दण्ड दो ॥८॥

भावार्थ—दुष्ट शत्रुओं पर अभियोग चला कर जब उनका अपराध सिद्ध कर दो तब उन्हें दण्ड दो न्याय रक्षा के लिए उनका अपराध सिद्ध करना होगा और तब दण्ड दिया जायेगा । जलती हुई समिधा से उसे तपाया जाये ॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः । हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् (तीक्ष्णेन चक्षुषा) तीक्ष्ण दृष्टि से कठोरता के साथ (प्राञ्चं यज्ञं रक्ष) राज्यरूपी यज्ञ की रक्षा कर जो कि सबसे पूर्व है मुख्य काम है (हे प्रचेतः) हे ज्ञानयुक्त राजन् (वसुभ्यः प्रणय) प्रजा के निवासियों को प्रगति करा बन्धनों के लिए प्रेरित हो (हिंस्रम्) मारने वाले (रक्षांसि) राक्षसों को (अभिशोशुचानम्) दण्ड देने को सम्मुख जाते हुए (त्वा) तुझे (हे नृचक्षः) हे न्यायकारिन् (यातुधानाः) राक्षस (मादभन्) न दबा सकें ॥९॥

भावार्थः—राजा को शत्रु दबा न सकें ऐसी शक्ति हो, पूरी सावधानी से प्रजा की रक्षा करें ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा । तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥६॥

पदार्थः—हे अग्नि हे तेजोवान् राजन् (नृचक्षाः) तू नेताओं की हवि रखने वाला है अतः (विक्षु) प्रजाओं मे (रक्षः परिपश्य) राक्षस को सब ओर देख (तस्य) उसके (त्रीणि+अग्रा) तीन प्रमुख भागों को १ सख्या का बल, २ शस्त्रों का बल, ३ धन का बल (प्रति शृणीहि) पूर्ण रूप से नष्ट कर दे (यातुधानस्य) राक्षस का (पृष्टीः) पीठों को अर्थात् उसकी सहायक शक्तियों को (हरसा) तीक्ष्ण दण्ड से (शृणीहि) नष्ट करके और उसकी (मूलम्) जड़ को (त्रेधा) तीन प्रकार से उसके घर वाले, उसके मित्र अथवा तेरे शत्रु उन सबको (वृश्च) काट डाल ॥१०॥

भावार्थ—शत्रु का विनाश इस प्रकार किया जाय कि शत्रु का शेष कुछ न रहे ॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति । तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् (यातुधानः) राक्षस (यः) जो (अनृतेन) झूठ से (ऋतं हन्ति) सत्य का नाश करता है (ते प्रसितिम्) तेरे बन्धन को (त्रि+एतु) तीन प्रकार से प्राप्त हो—तेरे शस्त्रों से, तेरी नीति से, तेरे धन से बंधा जाए (हे जातवेद) हे सब पदार्थों को जानने वाले राजन् (तम्) उस राक्षस को (अर्चिषा) अपने तेज से (स्फूर्जयन्) जलता हुआ (गृणते) प्रार्थना करती हुई प्रजा के लिए (समक्षम्) सबके सामने (एनम्) इस दुष्ट को (निवृङ्धि) मार दे ॥११॥

भावार्थ—झूठे अन्यायी दुष्ट जनों को बन्धन मे रखे वा मार दे, इसी में प्रजा का हित है ॥११॥

तद॑ग्ने॒ चक्षुः॒ प्रति॑ धेहि रे॒भे श॑फा॒रुजं॒ येन॒ पश्य॑सि यातु॒धान॑म् ।
अ॒थ॒र्व॒वज्ज्योति॑षा॒ दैव्ये॑न स॒त्यं धूर्व॑न्तम॒चितं॒ न्यो॑ष ॥१२॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् नृपते (येन) जिससे (शफारुजम्) दुर्वचन से पीड़ित करने वाले (यातुधानम्) राक्षस को (पश्यसि) देखने से (तत्+चक्षुः) वह दृष्टि (रेभे) प्रार्थना करने वाले जन पर (प्रतिधेहि) लगाओ (दैव्येन ज्योतिषा) दिव्य ज्योति से (अथर्ववत्) न्याययुक्त हुआ (सत्यम् धूर्वन्तम्) सत्य का नाश करने वाले (अचितम्) अज्ञानी को (नि+ओष) दण्ड से पीड़ित कर ॥१२॥

भावार्थ—यह राजा का धर्म है कि साधु जन की रक्षा करे व दुष्ट जन को दण्ड दे ॥१२॥

यद॑ग्ने अ॒द्य मि॑थु॒ना शपा॑तो॒ यद्वा॒चस्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त रे॒भाः ।
म॒न्योर्मन॑सः शर॒व्या॒३॒॑ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् ॥१३॥

पदार्थ—(हे अग्नि) हे ज्ञान प्रकाशयुक्त राजा (यत्) जो (वाचस्तृष्टम्) वाणी की कठोरता को (अजनयन्त) प्रकट करते है। (मन्यो+मनस) क्रोध भरे मन से (या शरव्या जायते) वाण लगने जैसा कष्ट होता है (तया) उससे (यातुधानान्) राक्षसो को (हृदये) हृदय में (विध्य) चोट पहुँचाओ ॥१३॥

भावार्थः—दुष्टो को वाणी से भी पीड़ित करो, उनका आदर-सत्कार न करो ॥१३॥

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न्परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि ।
परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपो॑ अ॒भि शोशु॑चानः ॥१४॥

पदार्थः—(अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् ! (तपसा) तप द्वारा (यातुधानान्) राक्षसो को (परा शृणीहि) परली ओर तक नष्ट कर दे (मूरदेवान्) मूढ देवो को स्वार्थी विद्वानो को (अर्चिषा) मित्रतेज से (परा शृणीहि) हातमार (शोशुचानः) पूर्ण प्रकाशयुक्त हुआ (असु तृप) अपने ही प्राणो को तृप्त करने वाले अर्थात् घोर स्वार्थियो को (अभि परा शृणीहि) सब ओर से दण्डित कर ॥१४॥

भावार्थः—राजा दुष्ट राक्षस डाकू आदि को दण्ड दे और मूढ, निकम्मे स्वार्थी विद्वानो तथा घोर स्वार्थियो को भी दण्ड दे ॥१४॥

परा॒द्य दे॒वा वृ॑जि॒नं शृ॑णन्तु प्र॒त्यगे॑नं श॒पथा॑ यन्तु तृ॒ष्टाः ।
वा॒चास्ते॑नं॒ शर॑व ऋच्छन्तु॒ मर्म॒न्विश्व॑स्यैतु॒ प्रसि॑तिं यातु॒धानः॑ ॥१५॥७॥

पदार्थः—(अद्य) अब (देवा) ईश्वर की दिव्य शक्तियाँ (वृजिनम्) हिंसक पापी को (परा शृणन्तु) दूर करें (तृष्टा शपथाः) कठोर शपथें, कड़वे वाक्य जो इसने बोले हैं (एनम् प्रत्यगयन्तु) लोटकर इसी पर जायें (वाचास्तेनम्) वाणी के चोर को (शरव) वाण (मर्मन्) मर्मस्थान को (ऋच्छन्तु) प्राप्त हो (यातु धान) मायावी दुष्ट (विश्वस्य) सब ससार के (प्रसितिम्) बन्धन को (एतु) प्राप्त करे ॥१५॥

भावार्थ—दुष्ट, हत्यारे, कठोर बोलने हारे, झूठे ये सब कारागृह मे डाले जायें ॥१५॥

यः पौरु॑षेयेण क्र॒विषा॑ सम॒ङ्क्ते यो अश्व्ये॑न प॒शुना॑ यातु॒धानः॑ ।
यो अ॒घ्न्याया॒ भर॑ति क्षी॒रम॑ग्ने॒ तेषां॑ शी॒र्षाणि॒ हर॒सापि॑ वृश्च ॥१६॥

पदार्थ—(य यातुधाना) जो राक्षस (पौरुषेयेण क्रविषा) मनुष्य के मांस से (य) जो (अश्व्येन पशुना) घोड़े के मांस से या पशु से (समाङ्क्ते) अपने को पुष्ट करता है (य) जो (अघ्न्यायाः) गौ के (क्षीरम्) दूध को (भरति) चुराता है (हे अग्ने) हे राजन् (तेषाम्) उनके (शीर्षाणि+अपि) सिर भी (हरसा) तीक्ष्ण शस्त्र से (वृश्च) काट ॥१६॥

भावार्थ—पशु हिंसक, मनुष्य का मांस खाने वाले को हिंसा करके गौओ का दूध नष्ट करने वाले, इन सबको मृत्यु-दण्ड दिया जाय ॥१६॥

सं॒व॒त्स॒रीणं॒ पय॑ उ॒स्रिया॑या॒स्तस्य॒ माशी॑द्यातु॒धानो॑ नृचक्षः ।
पी॒यूष॑मग्ने यत॒मस्तितृ॑प्सा॒त्तं प्र॒त्यञ्च॑म॒र्चिषा॑ विध्य॒ मर्म॑न् ॥१७॥

पदार्थः—(हे नृचक्षः) हे न्यायकारिन् नेता ! (उस्रियायाः) गौ के (सम्वत्सरीणम् पयः) वर्ष भर का दूध है (तस्य) उसको (यातुधान) राक्षस (मा+अशीत्) न पी सके (हे अग्ने) प्रकाशमान् राजन् (यतम.) इन यातुधानो में जो (पीयूषम्) अमृतरूप गो दुग्ध को (तितृप्सात्) पी जावें (तम्) उस (प्रत्यञ्चम्) उल्टी चाल वालों को अर्थात् विरोधी को (अर्चिषा) अग्नि की तीक्ष्ण ज्वाला से (मर्मन्) मर्मस्थानो में (विध्य) वेधन कर ॥१७॥

भावार्थ—गौ हिंसक दुष्टजन दूध से वञ्चित रहे, यदि कोई चोरी कर दूध पी जावे तो उसे भी दण्ड मिले ॥१७॥

वि॒षं गवां॑ यातु॒धानाः॑ पिबन्त्वा वृ॑श्च्यन्ता॒मदि॑तये दु॒रेवाः॑ ।
परै॑नान्दे॒वः स॑वि॒ता द॑दातु॒ परा॑ भा॒गमोष॑धीनां जयन्ताम् ॥१८॥

पदार्थ—(यातुधाना) राक्षस (गवाम् विषम्) गायो का विष (पिबन्तु) यह महाविष है अर्थात् गौवो के संकट उन पर पड़ें (अदितये दुरेवाः) उत्तम प्रकृति के लिये बुरे व्यवहार वाले अर्थात् प्राकृत वायु-मण्डल को दूषित करने वाले (परा वृश्च्यन्ताम्) बुरी तरह काट डाले जायें, (देव सविता) सूर्यदेव (एनान् परा ददातु) इन्हे दूर रक्खे अर्थात् सूर्य के प्रकाश से ये वञ्चित रहें, काल-कोठरी में डाल दिये जायें। (ओषधीनाम भागम्) ओषधियो का भाग (पराजयन्ताम्) दूर रहे, इनको रोगो से मरने दिया जाये ॥१८॥

भावार्थः—ऐसे कठोर दण्ड दुष्टो के लिये हैं, कड़े दण्डभय से अपराध कम होते थे ॥१८॥

स॒नाद॑ग्ने मृणसि यातु॒धाना॒न्न त्वा॒ रक्षां॑सि॒ पृत॑नासु जिग्युः ।
अनु॑ दह स॒हमू॑रान्क्र॒व्यादो॒ मा ते॑ हे॒त्या मु॑क्षत॒ दैव्या॑याः ॥१९॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् तुम (सनात्) सदा से (यातुधानान्) राक्षसो को रोग में कीटाणुओ को (मृणसि) नाश करते हैं (रक्षांसि) राक्षस (त्वा) तुझे (पृतनासु) सेनाओ मे (न जिग्युः) नहीं जीत सकते (क्रव्यादः) कच्चे मास खाने वालो अर्थात् पीड़ादायको को (सहमूरान्) जड़सहित (अनुदह) सदा जलाता रह। (ते दैव्याया हेत्या) तेरे दिव्य वाणो से (मामुक्षत) राक्षस बचें नहीं ॥१९॥

भावार्थ—यह सनातन विधान है कि दुष्ट दण्ड से ही ठीक रहते हैं अतः उन पर शस्त्रास्त्र प्रयुक्त किये जायें ॥१९॥

त्वं नो॑ अग्ने अध॒रादुद॑क्ता॒त्त्वं प॒श्चादु॒त र॑क्षा पु॒रस्ता॑त् ।
प्रति॒ ते ते॑ अ॒जरा॑स॒स्तपि॑ष्ठा अ॒घशं॑सं॒ शोशु॑चतो दहन्तु ॥२०॥८॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् सेनापते ! (त्वम्) तुम (न) हमें (अधरात्) नीचे से (उदक्तात्) ऊपर से (पश्चात्) पीछे से (उत) और (पुरस्तात्) आगे से (रक्षा) रक्षा करो (ते) तेरे (प्रति) सामने (ते) वे (अजरास) वृद्धत्वरहित (तपिष्ठा) तप मे लगे वीर सैनिक तथा विद्वान् (शोशुचत+ते) प्रकाश से चमकने वाले तेरे सैनिक (अघशंसम्) पाप के समर्थक को (दहन्तु) जला दें, नष्ट कर दें ॥२०॥

भावार्थ—राजा प्रजा की रक्षा करें राजा के तपोनिष्ठ वीर पापियों और पाप के समर्थको को नष्ट कर डालें ॥२०॥

प॒श्चात्पु॒रस्ता॑दध॒रादुद॑क्तात्क॒विः काव्ये॑न॒ परि॑ पाहि राजन् ।
सखे॒ सखा॑यम॒जरो॑ जरि॒म्णेऽग्ने॒ मर्ताँ॒ अम॑र्त्य॒स्त्वं नः॑ ॥२१॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे बलवान् राजन् ! (पश्चात् पुरस्तात्) पीछे से, आगे से (अधरात्+उदक्तात्) नीचे से, ऊपर से (हे राजन्) हे राजा (कविः) हे क्रान्तदर्शी विद्वान् तुम (काव्येन) अपने कान्तिमय विचार से (सखे) हे मित्र (सखायम्) मित्र को (परिपाहि) रक्षाकर (अजर) तुम अजर होते हुए (जरिम्णे) मित्र को जरावस्था लिये थे। (त्वम्+अमर्त्यः) तुम अमर हो (न) हमारे (मर्तान्) मरणधर्मा मनुष्यो को (परिपाहि) रक्षा करो ॥२१॥

भावार्थ—राजा का यह भी कर्तव्य है कि स्वास्थ्य की व्यवस्था द्वारा प्रजा की आयु बढ़ावे और प्रजा को सब ओर से निर्भय कर दे ॥२१॥

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्रं॑ सहस्य धीमहि ।
धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम् ॥२२॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् ! (हे सहस्य) हे शत्रु विजयी राजन् (परिपुरम्) सब ओर से रक्षक और पूर्ण (विप्रम्) मेधावी (धृषद् वर्णम्) तेजस्वी वर्ण वाले प्रजा-पीड़को के मारने वाले (त्वा) तुमको (वयम्) हम (दिवे-दिवे) नित्य (परि धीमहि) धारण करें, तुम्हारा ध्यान करें ॥२२॥

भावार्थ—ज्ञानी विजयी, दुष्ट-दमनकारी राजा की प्रजा भक्त रहे ॥२२॥

वि॒षेण॑ भङ्गु॒राव॑तः॒ प्रति॑ ष्म र॒क्षसो॑ दह ।
अग्ने॑ ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ तपु॑रग्राभिॠ॒ष्टिभिः॑ ॥२३॥

पदार्थ—(हे अग्ने) तेजस्विन् राजन् (भंगुरावतः+रक्षस) तोड़-फोड़ करने वाले प्रजा पीड़क राक्षस को (तिग्मेन विषेण) तीक्ष्ण विष से (प्रतिदहस्म) जला दो (शोचिषा) अपने तीव्र शस्त्र से (तपुः+अग्राभि ऋष्टिभि) तपे हुए अग्रगामी शस्त्रो से (प्रतिदह) जला दो ॥२३॥

प्रत्य॑ग्ने मिथु॒ना द॑ह यातु॒धाना॑ किमी॒दिना॑ ।
सं त्वा॑ शिशामि जागृ॒ह्यद॑ब्धं विप्र॒ मन्म॑भिः ॥२४॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे अग्निरूप (मिथुना किमीदिना यातुधाना) जोड़ से रहने वाले कीटाणु यातुधानों को (प्रतिदह) जला डाल। (स) वह मैं यजमान प्रजाजन (अदब्धम्) पराश्त न होने वाले (त्वा) तुझे (हे विप्र) हे वैद्य (मन्मभिः) स्तुतियों से (संशिशामि) प्रार्थना करता हूँ। (जागृहि) जाग, सावधान हो ॥२४॥

भावार्थः—ऋचा २३ व २४ मे वैद्य को सबोधित किया गया है, रोग के कीटाणु राक्षस मनुष्य रूप मे रहने वाले राक्षस भी अति भयकर हैं उन्हें विष से मारो यज्ञों द्वारा उन पर विषैली औषधियो का प्रयोग करो ॥२४॥

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥२५॥९॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे राजन्, सेनापते, वैद्य ! (हर) कष्ट रोग, भय को हरने वाला होकर (विश्वत) सबमे से बुराई को, अनाचार को (प्रति शृणीहि) नष्ट कर (यातुधानस्य रक्षस) मायावी राक्षस का (बल वीर्यम्) बल और तेज (विरुज) नष्ट कर दे ॥२५॥

भावार्थः—विद्वान् कवि सबको अग्नि शब्द से सबोधित किया है और उनको उनका कर्तव्य बताया है । चोर, डाकू, दुष्ट इनको राजा दण्ड दे, सेनापति इन्हे शस्त्रों से मारे, वैद्य रोगो के कीटाणुओ को नष्ट करे । प्रजा रोग, शोक, भय से रहित हुई राजभक्त रहे ॥२५॥

इति नवमो वर्ग ॥

---

[८८]

ऋषि मूर्धन्वानाङ्गिरसो वामदेव्यो वा ॥ देवता—सूर्यवैश्वानरौ ॥ छन्दः—१—४, ७, १५, १६ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ८ त्रिष्टुप् । ६, ९—१४, १६, १७ निचृत् त्रिष्टुप् । १८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१॥

पदार्थ —(देवा) दिव्यशक्तियुक्त (स्वर्विदि) प्रकाश को प्राप्त करने वाले (दिविस्पृशि) द्युलोक को छूने वाले (अग्नौ) अग्नि में (आहुतम्) आहुति दिया हुआ (जुष्टम्) स्वीकार किया हुआ (अजरम्) जीर्ण न होने वाला (पान्तम्) पीने योग्य (तस्य) उसके (भर्मणे) भरण करने वाले भुवन के लिये (धर्मणे) धर्म के लिए (स्वधया) स्वधा से, प्रकृति से, सत्य भाव से (कम्) किसको (पप्रथन्त) विस्तृत करते हैं ॥१॥

भावार्थ —विद्वान् या दिव्यशक्तियां अग्नि मे वा सूर्य मे किस के लिए यज्ञ कर रहे हैं । दूसरा अर्थ है [क पप्रथन्त] सुख-स्वरूप ईश्वर को प्रसन्न कर रहे हैं ॥१॥

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२॥

पदार्थ —(जीर्णं भुवनम्) प्रलयावस्था मे पड़ा, निगला हुआ यह ससार (तमसा गूढम्) अधकार से ढका था । (अग्नौ जाते) सूर्य के बन जाने पर (स्वर्) सुखरूप यह सब (आविः+अभवत्) प्रकट हुआ । (तस्य) उसके (देवा.) दिव्यलोक (पृथिवी द्यौ) भूमि और द्युलोक (उत) और (आप·) जल (ओषधि) पेड़-बूटे (अस्य सख्य) इस ईश्वररूप अग्नि के मित्रभाव में (अरणयन्) रमण करते हैं ॥२॥

भावार्थ —यह ससार बिल्कुल अभावरूप न था, सूक्ष्मरूप मे था, ईश्वर के प्रबन्ध से पुन इस दृश्यरूप मे आ गया ॥२॥

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३॥

पदार्थ —(यज्ञियेभि) यज्ञ करने वाले (देवेभि) देवो से ससार रूपी यज्ञ करने वाले दिव्य पदार्थों से (बृहन्तम, अजरम अग्निम्) महान् और अजर अग्नि को अर्थात् ईश्वर को (स्तोषाणि) स्तुति करता हू (य) जिसने (भानुना) सूय के द्वारा (पृथिवीम) भूमि (द्याम्) द्युलोक (रोदसी+अन्तरिक्षम्) द्युलोक और भूलोक के बीच का आकाश (आततान) रचा ॥३॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने यह ससार रचा वह स्तुति के योग्य है । सूर्य की आकर्षण शक्ति से ये लोक धारण किये गए हैं ॥३॥

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४॥

पदार्थ —(यः प्रथमः) जो पहला (देवजुष्ट) दिव्य शक्तियो से सेवित (होता+आसीत्) हवन करने वाला था इस ससार रूपी यज्ञ का होता ईश्वर है (यम्) जिसको (आवृणाना) वरण करने वाले ये पचभूत (आज्येनघृतेन) अविनाशी घृत से अमर प्रेम से (सम् आञ्जन्) युक्त करते हैं, उसका उबटन करते हैं (यः पतत्री) वह पक्षी अधोगतिशील (इत्वरम्) शीघ्र (जातवेदा) सब पदार्थों को जानने वाला (अग्नि·) पूजनीय ईश्वर (स्था+जगत्) स्थावर और जंगम (यत्) जो (श्वात्रम्) शीघ्रता से चलने वाले लोक हैं उन्हे (अकृणोत्) रचता है ॥४॥

भावार्थ.—इस संसार का रचयिता ईश्वर है, ज्ञानी जन प्रेम से उसका ही ध्यान करते हैं ॥४॥

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥१०॥

पदार्थ.—(हे जातवेद) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो (यत) जो कि (रोचनेन सह) प्रकाश के साथ (भुवनस्य मूर्धन्) सम्पूर्ण भुवन के मस्तक पर स्थित हो अर्थात् सब पर आपका अधिकार है (त त्वा) उन आपको (मतिभि) बुद्धियो से (गीर्भि) वाणियो से (उक्थैः) वेद वचनो से (अहेम) प्राप्त हो । (स+यज्ञिय.) वह पूज्य आप (रोदसिप्राः) द्युलोक और भूमि को पूर्ण करने वाले (अभव.) हो अर्थात् जगत् का पालन करें ॥५॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६॥

पदार्थ —(नक्तम्) रात मे (अग्नि) अग्नि (भुवोमूर्धा भवति) पृथिवी की मूर्धा होती है अर्थात् रात मे अग्नि की प्रमुखता है (तत.) फिर (प्रातरुद्यन्) प्रातःकाल उदय होता हुआ (सूर्यो जायते) सूय मूर्धा होता है (यज्ञियानाम्+एताम् मायाम्) यज्ञीय तत्वो की उस माया को (प्रजानन्) जानता हुआ (यत् तूर्णि) वेगयुक्त सूर्य (अप) आदि सृष्टि के जलो का (चरति) विचरता है ॥६॥

भावार्थ —इस सब रचना का ज्ञान होता ही रहता है ॥६॥

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७॥

पदार्थ —(य) जो (दृशेन्य) दर्शनीय है (महिना समिद्ध) अपनी महिमा से प्रदीप्त है (दिवियोनि) दिव्यलोक जिसका स्थान है (विभावा) विशेष कान्ति से (रोचत) चमकता है (तस्मिन्+अग्नौ) उस अग्नि मे (विश्वे देवा) सब दिव्य शक्तियां, सब विद्वान् (तनूपा) शरीर की रक्षा करने वाले इन्द्रियगण (सूक्तवाकेन) वेदमन्त्रो से (हवि) हव्य पदार्थ (आजुहवु) हवन करते है ॥७॥

भावार्थ —भौतिक अग्नि मे यज्ञ ईश्वराग्नि मे उपासना रूप यज्ञ जठराग्नि मे भोजन से यज्ञ किया जाता है ॥७॥

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८॥

पदार्थ —(देवा) विद्वानो ने (प्रथमम) पहले (सूक्तवाकम) वेद वचन को (आदित्) ग्रहण किया फिर (हवि·—अजनयन्त) हवन के पदार्थों को लिया (स+यज्ञः) वह यज्ञ (एषाम्) इन देवो का (तनूपा) शरीर रक्षक (अभवत्) हुआ (तम्) उस यज्ञ को (द्यौ+वेद) द्युलोक जानता है । (तम्) उसे (पृथिवी वेद) पृथिवी जानती है ॥८॥

भावार्थः—ईश्वर का सृष्टि रचना रूपी यज्ञ सब मे फैला हुआ है ॥८॥

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९॥

पदार्थ (यम्+अग्निम्) जिस अग्नि को (देवासः) ज्ञानी जन (अजनयन्) प्रकट करते हैं । (यस्मिन्) जिस अग्नि मे (विश्वाभुवनानि) सब लोक (आजुहवु) आहुति दे रहे हैं (स) वह (अर्चिषा) अपने तेज से (इमाम् द्याम पृथिवीम) इस द्युलोक और पृथिवी को (हूयमान) आहुति देता हुआ (महित्वा) अपनी महिमा से (अतपत्) तपा रहा है ॥९॥

भावार्थ —वह अग्नि ईश्वर है उसी के नियम मे सब लोक काम कर रहे हैं । वही इन्हें अपनी महिमा से जीवित रख रहा है ॥९॥

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन्त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥११॥

पदार्थ·—(स्तोमेन हि) स्तुति से ही (देवास) ज्ञानी योगियो ने (दिवि) प्रकाश दशा मे (अग्निम) अग्नि को (अजीजन्) प्रकट किया जो कि (शक्तिभि) अपनी शक्तियो से (रोदसि प्राम्) द्युलोक और पृथिवी लोक को पूर्ण कर रहा है ।

यह अर्थ भौतिक अग्नि पर (त कम्) उस सुखरूप अग्नि को (भुवे) पृथिवी के लिए (त्रेधा) तीन रूप मे (अकृण्वन) किया । विद्युत्, सूर्य और अग्नि (सः) वह सूर्य (विश्वरूपा ओषधी पचति) बहुत रूपो वाली औषधियों को पकाता है ॥१०॥

भावार्थ —यह सृष्टि-प्रक्रियाओ का वर्णन करके वेद सृष्टि के रचयिता की प्रशसा कर रहा है ॥१०॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११॥

पदार्थ —(**यज्ञियासः+देवाः**) यज्ञ करने वाले देवो ने—प्रकृति के तत्त्वों ने (**यदा+इत्**) जब ही (**एनम्**) इस अग्नि को (**दिवि**) द्युलोक मे (**अदधुः**) धारण किया । (**आदितेयम् सूर्यम्**) अदिति प्रथम गति मे आई हुई प्रकृति के पुत्र सूर्य को (**यदा**) जब (**मिथुनौ**) दोनों सूर्य तथा चन्द्र (**चरिष्णू+अभूताम्**) आकाश मे चलने लगे (**आत्+इत्**) तब समीप से ही दूसरे भी (**विश्वा भुवनानि**) सब भुवन (**अपश्यन्**) देखने लगे ॥११॥

भावार्थः—सूर्य ने सबको प्रकाश दिया ॥११॥

विश्व॑स्मा अ॒ग्निं भुव॑नाय दे॒वा वै॑श्वान॒रं के॒तुमह्ना॑मकृण्वन् ।

आ यस्त॒तानो॒षसो॑ विभा॒तीरपो॑ ऊर्णोति॒ तमो॑ अ॒र्चिषा॒ यन् ॥१२॥

पदार्थ —(**देवाः**) दिव्य शक्तियों ने (**विश्वस्मै भुवनाय**) समस्त भुवनो के लिए (**अह्नाम्**) दिनो के (**केतुम्**) परिचय कराने वाले (**विश्वानराम्**) विश्व के नेता (**अग्निम्**) अग्नि को—सूर्य को (**अकृण्वन्**) स्थापित किया (**यः**) जो (**विभातीः+उषसः**) प्रकाश फैलाती हुई उषाओ को (**आततान**) फैलाता है (**अर्चिषा**) अपनी किरणो से (**तमः**) अंधेरे को (**यन्**) दूर करता हुआ (**अप+ऊर्णोति**) प्रकृति परमाणुओं को आकाश के जल कणो को ढांप लेता है ॥१२॥

भावार्थः—ईश्वर प्रेरणा से प्राकृत जगत् के सौन्दर्य को ऋषियो ने कितना सुन्दर देखा और प्रभु ने उनके मुख से इस सौन्दर्य का काव्य रूप मे वर्णन कराया ॥१२॥

वै॒श्वा॒न॒रं क॒वयो॑ य॒ज्ञिया॑सो॒ऽग्निं दे॒वा अ॑जनयन्नजु॒र्यम् ।

नक्ष॑त्रं प्र॒त्नममि॑नच्चरि॒ष्णु य॒क्षस्याध्य॑क्षं तवि॒षं बृ॒हन्त॑म् ॥१३॥

पदार्थ —(**यज्ञियासः+कवयः+देवाः**) यज्ञ की इच्छा वाले क्रान्तदर्शी विद्वानो ने (**यम्**) जिसे कभी जीर्ण न होने वाले (**वैश्वानरम्**) विश्व के नेता (**अग्निम्**) अग्नि को सूर्य को प्रकट किया, उसने (**प्रत्नम्**) प्राचीन (**चरिष्णु**) विचरणशील (**यक्षस्याध्यक्षम्**) इस संसार रूपी यज्ञ के अध्यक्ष (**बृहन्तम् तविषम्**) महान् और बलवान् (**नक्षत्रम्**) नक्षत्र को (**अभिनत्**) भेदन किया ॥१२॥

भावार्थ —संसार रचना के केन्द्र को नक्षत्र मंडल को भेद सूर्य नक्षत्रों को गति देने लगा । सूर्य का भी केन्द्र जो हिरण्य गर्भ प्रभा मंडल है उस तक सूर्य की ज्योति पहुँचाता है ॥१३॥

वै॒श्वा॒न॒रं वि॒श्वहा॑ दीदि॒वांसं॒ मन्त्रै॑र॒ग्निं क॒विमच्छा॑ वदामः ।

यो म॑हि॒म्ना प॑रिब॒भूवो॒र्वी उ॒ताव॒स्तादु॒त दे॒वः प॒रस्ता॑त् ॥१४॥

पदार्थ —(**यः**) जो (**देवः**) देव (**महिम्ना**) अपनी महिमा से भी (**उर्वी**) पृथिवी को (**उत+अवस्तात्**) नीचे से भी (**उत**) और (**परस्तात्**) ऊपर से भी (**परिबभूव**) व्याप रहा है । (**विश्वहा**) सब दिनो को (**दीदिवांसम्**) प्रकाशित करने वाले (**वैश्वानरम्**) विश्वम्भर के नरो मे व्यापक (**कविम्**) क्रान्तदर्शी विचित्र ज्ञान वाली (**अग्निम्**) अग्नि को, ईश्वर को (**मन्त्रैः**) वेद मन्त्रो से (**अच्छावदामः**) प्रशंसा करते हैं ॥१४॥

भावार्थ —इस लोक के संचालक प्रभु की स्तुति वेदमंत्रो से करते रहो ॥१४॥

द्वे स्रु॒ती अ॑शृणवं पितॄ॒णाम॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।

ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥१५॥१२॥

पदार्थ —(**अहम्**) मैने (**द्वे स्रुती**) दो प्रकार की सृष्टि (**अशृणवम्**) गुरुओ से सुनी है (**पितॄणाम् देवानाम्**) पितरो की देवो की (**उत**) और (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यो की (**इदम् विश्वम्**) यह संसार (**ताभ्याम्**) उन दोनो से (**एजत्**) गति करता हुआ (**समेति**) भली प्रकार चल रहा है । (**यदन्तरा**) जिसके बीच मे (**पितरम् मातरम् च**) पिता और माता को (**समेति**) प्राप्त होता है ॥१५॥

भावार्थ —२ प्रकार की सृष्टि है । एक जड सूर्यादि देव अन्तरिक्षस्थ वायु पितर दूसरी माता-पिता से उत्पन्न होने वाली मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंगादि । मंत्र मे मर्त्य शब्द है । अर्थात् मरण धर्मा जीव मनुष्यादि सब ॥१५॥

द्वे स॒मीची॑ बिभृत॒श्चर॑न्तं शीर्ष॒तो जा॒तं मन॑सा॒ विमृ॑ष्टम् ।

स प्र॒त्यङ्विश्वा॒ भुव॑नानि तस्था॒वप्र॑युच्छन्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः ॥१६॥

पदार्थ.—(**द्वे समीची**) दो संगत हुई अर्थात् द्यावा पृथिवी (**शीर्षतः+जातम्**) उत्तम भाग से उत्पन्न हुए (**मनसा विमृष्टम्**) बहुत विचार के साथ रचे हुए (**चरन्तम्**) विचरण करने वाले [सूर्य और जीवात्मा दोनो] को (**बिभृतः**) धारण किए हुए है । (**स विश्वाभुवनानि प्रत्यङ्**) वह सम्पूर्ण पदार्थों मे प्रकट (**अप्रयुच्छन्**) बिना भूल और आलस्य के (**तरणिः**) सूर्य और आत्मा तरने और तारने वाला (**भ्राजमानः**) सर्वत्र चमकता हुआ (**तस्थौ**) विद्यमान है ॥१६॥

भावार्थः—द्युलोक और भूलोक मे जैसे सूर्य प्रकाशित है, उसी प्रकार विचरता हुआ जीवात्मा भी प्रकाशित हो रहा है ॥१६॥

यत्रा॒ वद॑ते॒ अव॑रः॒ पर॑श्च यज्ञ॒न्योः॑ कत॒रो नौ॒ वि वे॑द ।

आ शे॑कु॒रित्स॑ध॒मादं॒ सखा॑यो॒ नक्ष॑न्त य॒ज्ञं क इ॒दं वि वो॑चत् ॥१७॥

पदार्थ —(**यत्र**) जिसके विषय मे (**विवदेते**) विवाद करते हैं (**यज्ञन्योः**) यज्ञ चलाने वालो मे (**नौ**) हम दोनो (**अवरः+च परः**) अवर और पर (**कतरः**) कौन है । (**सखायः**) मित्र (**यज्ञम् नक्षन्त**) यज्ञ को प्राप्त होते हुए (**सधमादम्**) सुखकर स्थान को (**इत्**) निश्चय (**आशेकुः**) प्राप्त कर सकते हैं । (**इदम् कः विवोचत्**) इसे और कौन कह सकता है ॥१७॥

कत्य॒ग्नयः॒ कति॒ सूर्या॑सः॒ कत्यु॒षासः॒ कत्यु॑ स्वि॒दापः॑ ।

नोप॒स्पिजं॑ वः पितरो वदामि पृ॒च्छामि॑ वः कवयो वि॒द्मने॒ कम् ॥१८॥

पदार्थ —(**कति अग्नयः**) अग्नियां कितनी है ? (**कति सूर्यासः**) सूर्य कितने है ? (**कति+उषासः**) कितनी उषायें है । (**उस्वित्**) और कौन कितने (**आपः**) जल है । (**हे पितरः**) हे ज्ञानियो (**वः**) तुम्हें (**उपस्पिजम्**) स्पर्धा का वचन (**नवदामि**) नही बोल रहा है (**हे कवयः**) हे महान् ज्ञानियो (**विद्मने**) विशेष ज्ञान के लिए (**वः**) तुमसे (**पृच्छामि**) पूछता हू । (**कम् पृच्छामि**) किसस पूछ तो सूर्य ईश्वर को पूछता है ॥१८॥

भावार्थ भुवनों का ज्ञान भुवनकर्ता का ज्ञान प्राप्त किया जाये । इन प्रश्नों का उत्तर वालखिल्य संहिता भाग मे आ गया है ।

(अ॰ ८।५८।२॥) मे दिया है—
एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं विबभूव सर्वम् ॥ इति ॥

एक ही अग्नि है, बहुत प्रकार से प्रज्वलित हुआ है । एक ही सूर्य विश्वभर पर प्रकाशित है । एक ही उषा इस सबको प्रकाशित कर रही है । यह सब एक ही का वैभव है ॥१८॥

याव॑न्मा॒त्रमु॒षसो॒ न प्रती॑कं सुप॒र्ण्यो॒३ वस॑ते मातरिश्वः ।

ताव॑द्दधा॒त्युप॑ य॒ज्ञमा॒यन्ब्रा॑ह्म॒णो होतु॒रव॑रो नि॒षीद॑न् ॥१९॥१३॥

पदार्थः—(**यावत् मात्रम्**) जिस समय तक (**उषसः प्रतीकं न**) उषाओ के प्रतीक के समान (**सुपर्ण्यः**) सूर्य किरणे (**वसते**) ढांके हुए हैं । (**मातरिश्वः**) हे वायु (**तावत्**) तब तक (**यज्ञम्+उपायन्**) यज्ञ के पास आया हुआ (**होतुः+अवरः**) होता से छोटा (**ब्राह्मण.निषीदन्**) बैठा हुआ ब्राह्मण (**उपदधाति**) यज्ञ को धारण करता हैं ॥१९॥

भावार्थ —जब तक उषा अच्छी तरह न फैले तब तक उपहोता यज्ञ का सामान तैयार कर ले ॥१९॥

इति त्रयोदशो वर्गः ।

---

[८९]

ऋषिरेणुः ॥ देवता—१—४, ६—१८ इन्द्रः । ५ इन्द्रासोमौ ॥ छन्दः—१, ४, ६,७, ११, १२, १५, १८ *त्रिष्टुप्* । २ *आर्ची त्रिष्टुप्* । ३, ५, ९, १०, १४, १६, १७ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ८ *पादनिचृत् त्रिष्टुप्* । १२ *आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्* ॥ *अष्टादशर्चं सूक्तम्* ॥

इन्द्रं॑ स्तवा॒ नृत॑मं॒ यस्य॑ म॒ह्ना वि॑बबा॒धे रो॑च॒ना वि ज्मो अन्ता॑न् ।

आ यः प॒प्रौ च॑र्षणी॒धृद्वरो॑भिः॒ प्र सिन्धु॑भ्यो रिरिचा॒नो म॑हि॒त्वा ॥१॥

पदार्थ —(**यस्य मह्ना**) जिसकी महत्ता से (**ज्मः+अन्तान्**) पृथ्वी को और छोटा (**रोचना**) विशेषताए प्रकाशित करता है । अंधकार से (**नृतमम्**) सर्वश्रेष्ठ (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**स्तवा**) स्तुति करो (**यः**) जो (**चर्षणीधृत्**) मनुष्यों को धारण करने वाला है । (**महित्वा**) महिमा से (**प्रसिन्धुभ्यः**) बड़े बड़े समुद्रों मे (**रिरिचानः**) बढ़ा है । (**वरोभिः**) श्रेष्ठ तेजो से (**आ पप्रौ**) पूर्ण कर रहा है ॥१॥

भावार्थ —सर्वव्यापक ईश्वर की ही स्तुति करनी चाहिए ॥१॥

स सूर्यः॒ पर्यु॒रू वरां॒स्येन्द्रो॑ ववृत्या॒द्रथ्ये॑व च॒क्रा ।

अति॑ष्ठन्तमप॒स्यं१॒ न सर्गं॑ कृ॒ष्णा तमां॑सि॒ त्विष्या॑ जघान ॥२॥

पदार्थ —(**स सूर्यः**) वह सूर्य (**आ इन्द्रः**) इन्द्र तुल्य (**उरू वरांसि**) बड़े-बड़े वरदानो को कामो को (**परि ववृत्यात्**) चला रहा है । (**रथ्या चक्रा इव**) रथ के पहियो के समान (**अतिष्ठन्तम्**) न ठहरते हुए (**अपस्यम् न**) सदा काम करते हुए के समान (**सर्गम्**) ऋषि के (**त्विष्या**) अपनी कान्ति से (**कृष्णा तमांसि**) उद्यान काले अन्धकार को नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ —सूर्य इन्द्र है । वह अंधकार का नाश कर संसार का हित कर रहा है ॥२॥

स॒मा॒नम॑स्मा॒ अन॑पावृदर्च क्ष्म॒या दि॒वो अस॑मं॒ ब्रह्म॒ नव्य॑म् ।

वि यः पृ॒ष्ठेव॒ जनि॑मान्य॒र्य इन्द्र॑श्चि॒काय॒ न सखा॑यमी॒षे ॥३॥

पदार्थ —(**अस्मै**) इस ईश्वर के लिए (**अर्च**) पूजा कर जो (**समानम्**) सबके लिए समान है । (**अनपावृत्**) जो दूर नहीं है । (**क्ष्मया दिवः असमम्**) पृथिवी और द्युलोक से विलक्षण है । (**नव्यम्**) नया सूक्त अर्थात् हे उपासक तेरे

लिए नया मन्त्र है । (य) जो (इन्द्र) इन्द्र (अर्यः) सबका स्वामी है । (जनिमानि) सब उत्पन्न हुए जीवो को (पृष्टा+इव) पालन योग्य के समान (विचिकाय) जानता है । (सखायात्) मित्र को (न+ईये) दूर नही करता है ॥३॥

भावार्थ —वेद मन्त्रो से स्तुति की जाये । प्रभु की उपासक के लिए तो सब मंत्र नये ही होत हैं । जिनका उसने पहले प्रयोग न किया हो ॥३॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४॥

पदार्थ.—(सगरस्य बुध्नात) जो ईश्वर अन्तरिक्ष आकाश से (अनिशित सर्गाः) अनल्प सृष्टिया रचने वाले (अप) सूक्ष्म जल के परमाणुओ को (प्रेरयम्) प्रेरणा देता है (य) जो (अक्षेणचक्रिया - इव) अक्ष से पहियो को जैसे (शचीभि) अपनी शक्तियो से (पृथ्वीम् विष्वक् तस्तम्भ) पृथिवी को सब ओर से थामता है । (उत य द्याम्) और द्युलोक को (इन्द्राय गिर) ऐसे इन्द्र के लिए मेरी वाणी की स्तुतियाँ हैं ॥४॥

भावार्थ —स्तुति नियामक इन्द्र की स्तुति करनी चाहिए ॥४॥

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५॥ १४॥

पदार्थः—(अपान्तमन्युः) जिसका तेज सर्वत्र फैला है । (तृपल-प्रभर्मा) जो दुष्टो पर बड़े वेग से प्रहार करता है । (धुनि) जो दुष्टो को कपाने वाला है । (शिमीवान्) विविध कर्म वाला है । (शरुमान्) नाना शस्त्रास्त्रों से युक्त है । (ऋजीषी) जो प्रजाओ को सरल मार्ग से [धर्म से] चलाता है । (सोम) जो सम्पूर्ण प्रतिमान जिसे (न देभु) अपने से कम नहीं कर सकने (अतसा वनानि न+इन्द्रम्) अग्नि या बिजली के तेज को वन जैसे नही रोक सकते उसी प्रकार इन्द्र की शक्ति अदम्य है ॥५॥

भावार्थ.—ईश्वरीय शक्ति अदम्य है ॥५॥

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६॥

पदार्थ.—(न यस्य द्यावा पृथ्वी) जिसके प्रतिमान द्युलोक पर व पृथ्वी लोक पर नहीं है । (न धन्व) न जल (न+अन्तरिक्षम्) न अन्तरिक्ष (न+अद्रया) न पर्वत ही प्रतिमान है । (सोम+अक्ष) वह सोम है जगत् का उत्पादक है और अक्ष है । (यत्) जो कि (अधिनीयमान) अन्धकार किए (शृणाति) बड़े बलवानो को मिटाता है । (स्थिराणि रुजति) स्थिर हुओ को भी भग कर देता है ॥६॥

भावार्थ·—भगवान् की शक्ति अपार है और अतुल्य है ॥६॥

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७॥

पदार्थ —(स्वधिति वना इव) वज्र-कुठार जैसे वनो को, वैसे ही (वृत्रम् जघान) वृत्र को मार डालता है (पुरो रुरोज) ६६ पुरो को नष्ट कर दिया (६६ मोहावरण) शय्या—मोह (सिन्धून् न अरदत्) मानो सिन्धुओ को बहा दिया (बिभेद गिरिम्) पहाड़ को तोड दिया [अज्ञान को नष्ट किया] (नवम्+इत्+न कुम्भम्) नये घडे की ही तरह (इन्द्र स्वयुग्भिः) इन्द्र अपनी योजनाओ से (गा+अकृणुत) भूमियो को रचना है । वेदवाणियो को रचता है ॥७॥

भावार्थः—सृष्टि के अनेक चमत्कार ईश्वर के ही है ॥७॥

त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८॥

पदार्थ·—(हे इन्द्र त्वम् ह) हे इन्द्र निश्चय तुम (त्यत्+ऋणयाः) उस ऋण [धन] की रक्षा करने वाले हो (असि+पर्व न) तलवार जैसे टुकड़ो को वैसे ही (वृजिना शृणासि) सर्पों को काट डालता है । (धीजना.) जो जन (मित्रस्य व वरुणस्य धाम) मित्र के धाम को (युज न मित्रम्) चुप होने वालों के समान मित्र को (प्र मिनन्ति) नष्ट कर देते हो ॥८॥

प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९॥

पदार्थ·—(य) जो (प्रमित्रम् प्रार्यमण प्र मिनन्ति) मित्र करुणा और अपेक्षा को नष्ट करत है (दु एवा) दुराचारी हैं । (ये संगिर प्रमिनन्ति) जो अपनी प्रतिज्ञाओं का नाश करते हैं । (अमित्रेषु) इन शत्रुओ मे (हे वृषन्+इन्द्र) हे सुखवर्द्धक इन्द्र (तुम्रम्) अति शीघ्र चलने वाला (अरुषम्) चमकीली (वृषाणम्) बलशाली (वधम्) वध्यकारी (निशिशीहि) तीक्ष्ण करो ॥९॥

भावार्थः—नास्तिक दुष्टों का दमन होना चाहिए ॥९॥

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०॥१५

पदार्थ —(इन्द्र दिव) इन्द्र द्युलोक को (इन्द्र पृथिव्या ईशे) इन्द्र पृथ्वी का भी स्वामी है । (इन्द्र+अपाम इन्द्र — इत् पर्वतानाम्) इन्द्र ही जलों का, इन्द्र ही पर्वतो का शासक है । (इन्द्र — वृधाम) इन्द्र बढ़े हुए को, बढने वाले का (इन्द्र. इत्) इन्द्र ही (मेधिराणाम्) बड़े-बड़े बुद्धिमानों का स्वामी है (योगेक्षेमे) योग [धन की प्राप्ति] क्षेम [वस्तु की कुशलता] इन दोनों म (हव्य.) स्तुति करने योग्य है ॥१०॥

भावार्थ —विश्वभर की वस्तुए उसी की हैं । अपने योगक्षेम के लिए उसी की उपासना करो ॥१०॥

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥११॥

पदार्थ —(इन्द्र.) इन्द्र (प्र—अक्तुभ्य) परमेश्वर रात्रियो से (प्र—अहभ्य) दिनो से भी (प्र वृध) बढ़ा हुआ है (प्र—अन्तरिक्षात् समुद्रस्य धासे) अन्तरिक्ष और समुद्र के स्थान से भी बढ़ा-चढ़ा है । (वातस्य प्रथस) विस्तृत वायुओ से भी बड़ा (प्रज्मोऽअन्तात) पृथिवी के ओर-छोर से भी बड़ा है । (क्षितिभ्य प्र रिरिचे) मनुष्यों, जीवो सभी से महान् है ॥११॥

भावार्थ —परमात्मा सकल सृष्टि मे व्यापक होकर सृष्टि के बाहर भी है ॥११॥

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥

पदार्थ —(हे इन्द्र ते हेतिः) हे इन्द्र तेरा शस्त्र (असिन्वा) अबाध गति हो (शोशुचत्या उषस) चमकती हुई उषा को (केतु न) प्रतीक के समान (वर्तताम्) वर्तमान हो (दिव — आ सृजान) द्युलोक म उत्पन्न (अश्मेव) बिजली के समान (तपिष्ठेन न हेषसा) प्रबल घोर नाद वाले शस्त्र से (द्रोघमित्राम्) मित्र के द्रोहियो को (विध्य) वेधन कर ॥१२॥

भावार्थ —प्रभु के शस्त्र दुष्टो पर चलते है ॥१२॥

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥

पदार्थ —(अह) अहो (मासा) मास (वनानि) वन, जल, तेज (ओषधी) ओषधियाँ (पर्वतास) पर्वत (इत—इन्द्रम—अनु—अजिहत) इन्द्र ही के पीछे चल रहे हैं । (वावशाने रोदसी) नाना कान्तियो मे चमकने वाले द्युलोक भूलोक (आप) जल (जायमानम—इन्द्रम्—अनु) प्रकट हुए सूर्य के पीछे चल रहे है ॥१३॥

भावार्थ —सूर्य अन्तरिक्ष और भूमियो के मासो, ओषधियो को गति देता है ॥१३॥

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥

पदार्थ —(हे इन्द्र ते सा अघस्य चेत्या) हे इन्द्र तेरी वह पाप नाशक शक्ति (कर्हिस्वित्) कब (असत) प्रकट होगी (यत) जिससे तू (रक्ष) राक्षसो को (भिनद) भेदन करे (मित्रक्रुव) मित्रो को सताने वालो को (आ+ईषत्) सब ओर से डरावे (यत्) जो कि (शसने गाव न) हिंसा स्थल मे पशुओ के समान (अमुया पृथिव्या.) इस पृथ्वी के ऊपर (आपृक्) मरकर (शयन्ते) सोवें ॥१४॥

भावार्थ —शत्रु के विनाश की प्रार्थना इस मन्त्र म की गई है ॥१४॥

शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५॥

पदार्थ —(शत्रूयन्त) शत्रुता करते हुए (ओगणास) समूह बनाए हुए (महिव्राधन्त.) बड़ी-बड़ी बाधाए पहुँचाते हुए (न—अभिततस्रे) हमें सब ओर से गिराते हैं । (हे इन्द्र) हे स्वामिन् ! (अमित्राः) शत्रुगण (अन्धेनतमसा) अन्धतम से, घोर अन्धकार से (सचन्ताम्) युक्त हो (तम्) उसको (सु ज्योतिषा) उत्तम प्रकाश वाली (अक्तव) शक्तियो स (अभि स्यु) परास्त करें, उनके विरुद्ध रहें ॥१५॥

भावार्थ —दुष्ट शत्रुगण परास्त हों ॥१५॥

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६॥

पदार्थः—हे इन्द्र (त्वा) तुझे (जनानाम्) मनुष्यो के (पुरूणि हि सवनानि) बहुत से यज्ञ (गृणताम्—ऋषीणां ब्रह्माणि) स्तुति करते हुए ऋषियो के स्तोत्र (मन्दन्) तुझे प्रसन्न करते हैं । (इमम् सहूतिम्) इस मिलकर हुई प्रार्थना को (अवसा) प्रेम से (आघोषन्) घोषणा करते हैं । (विश्वान् अर्चत) सत्पूजा करने वालो को (अर्वाङ्) अति समीप (तिर —याहि) प्राप्त हो ॥१६॥

भावार्थः—हे प्रभो आप अपने भक्तो को प्रकट हो ॥१६॥

एवा ते' इ्यमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।

विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत तं इन्द्र नूनम् ॥१७॥

पदार्थ —(हे इन्द्र एवा) हे ऐश्वर्यप्रद ! तेरी (भुञ्जतीनाम् नवानां सुमतीनाम्) रक्षा करती हुई नई सुमतियों को (विद्याम) जाने (वयम्) हम (ते इन्द्र नूनम्) हे इन्द्र अवश्य (विश्वामित्र.) सबके स्नेही होकर (अवसा) प्रेम से (गृणन्त) स्तुति करते हुए (ते विद्याम्) तेरे लिए जाने ॥१७॥

भावार्थः—हम ईश्वर की कृपाओं को ही सर्वत्र जानें ॥१७॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१८॥१६॥

पदार्थः—(अस्मिन् भरे) इस यज्ञ मे (शुन) महान् सुख-सागर (वाजसातौ नृतमम्) धन और अन्न देने में श्रेष्ठ नेता (इन्द्रम्) इन्द्र को (गृणन्त) स्तुति करते हैं । (ऊतये) रक्षा के लिए (उग्रम) सर्वाधिक बलवान् (शृण्वन्त) भक्त की पुकार को सुनते हुए (समत्सु) युद्धो मे (वृत्राणि घ्नन्तम्) बाधाओं को निवा- रते हुए (धनानां सं-जितम्) धनों को जीतने वाले को (हुवेम) बुलाते हैं ॥१८॥

भावार्थ —ईश्वर ही वह महान् नायक है कि जो प्रजा की प्रार्थना सुनता है और शत्रुओ का दमन कर अर्थात् इन्द्रियो का दमन कर व्यक्ति को मोक्ष-मार्ग दर्शाता है वही धन लाकर देता है ॥१८॥

इति षोडशो वर्ग. ॥

---

[९०]

ऋषिर्नारायण ॥ पुरुषो देवता ॥ छन्द —१—३, ७, १०, १२,१३ निचृदनुष्टुप् । ४—६, ९, १४, १५ अनुष्टुप् । ८, ११ विराडनुष्टुप् ॥ १६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पदार्थ —(पुरुष) व्यापक शक्तिसम्पन्न राजा के समान ब्रह्माण्ड मे व्याप्त परमात्मा (सहस्र-शीर्षा.) हजारो शिरो वाला है । (स) वह (भूमि) सर्व जगत् के निर्माता, सर्वाश्रय प्रकृति को (विश्वत वृत्वा) सब ओर से वरण करता है (दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत) दश अगुल अतिक्रमण कर शोभित होता है अर्थात वह दशो इन्द्रियो के भोग एव कर्म क्षेत्र से परे है । ससार मे सर्वत्र उसीकी दर्शन- शक्ति ओर गतिशक्ति कार्य कर रही है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा सहस्रो शिरो वाला है । सकल जगत् का निर्माता, सर्वाश्रय प्रकृति का वरण करता है । वह दशों इन्द्रियो के भोग एव कर्मक्षेत्र से पर है । ससार मे सर्वत्र उसी की शक्ति कार्यरत है ॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

पदार्थः—(पुरुष एव इदं सर्वम्) वह ही सब कुछ है (यद् भूत यत् च भव्यम) जो कि उत्पन्न व जो आगे भी उत्पन्न होने वाले कार्य तथा कारण हैं । (उत) वह (अमृतत्वस्य ईशान) मोक्ष का स्वामी है, (यत्) और जो (अन्नेन) अन्न के द्वारा (अति रोहति) बढ़ता है उसका भी वही स्वामी है ॥२॥

भावार्थ —वही सब कुछ है । वही मोक्ष का स्वामी है अन्न से बढ़ने वाले का भी स्वामी है ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

पदार्थः- (अस्य महिमा एतावान्) इस ससार का महान् सामर्थ्य इतना है किन्तु (पूरुष) वह इस जगत् मे व्याप्त परमात्मा (अत ज्यायान्) इससे कही बड़ा है । (विश्वा भूतानि) सकल रचित पदार्थ इसके (पाद) एक चरण के तुल्य हैं । (अस्य त्रिपात्) इसके तीन चरण (दिवि) प्रकाशमय स्वरूप मे (अमृत) अनश्वर हैं ॥६॥

भावार्थ —परमात्मा सामर्थ्य मे सबसे महान है । समस्त उत्पन्न पदार्थ उसके एक चरण के समान हैं । इसके तीन चरण अनश्वर हैं ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

पदार्थ —(त्रिपात् पुरुष) तीन चरणो वाला वह (ऊर्ध्व.) सबके ऊपर (उत् ऐत्) सर्वोत्तम रूप से स्थित है, (अस्य पाद पुनः इह अभवत्) इसका व्यक्त एक चरण यहाँ जगत् रूप है । (तत) वह प्रभु (विष्वङ् वि अक्रामत्) सर्वत्र व्याप्त है । (स· अशन-अनशने अभि) जो 'अशन' अर्थात् भोजन व्यापार से युक्त चेतन प्राणि व अचेतन हैं उन सबमें वही है ॥४॥

भावार्थ —वह तीन चरणो वाला सर्वोत्तम रूप से जाना जाता है । इसका एक चरण जगत् रूप मे प्रकट है ॥४॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥१७॥

पदार्थ —(तस्मात्) उससे (विराड् अजायत) विराट् अर्थात् प्रकाशित ब्रह्माण्ड रूप शरीर पैदा हुआ । (विराज अधि पूरुष) उस ब्रह्माण्डमय देह के ऊपर अध्यक्षरूप से वह प्रभु ही है । (स जातः) वह व्याप्त होकर (अति अरिच्यत) सबसे बड़ा है । वा परमेश्वर समस्त प्राणियो से अतिरिक्त है, सबसे पृथक् भी रहता है । (पश्चाद् भूमिम्) विराट के प्रकट होने पर परमात्मा ने ही भूमि को सृजा, (अथो पुरः) उसके बाद नाना शरीर उत्पन्न किये ॥५॥

भावार्थ.—उससे प्रकाशित ब्रह्माण्डरूप शरीर उपजा है । वही प्रभु समस्त प्राणियों से अतिरिक्त है और सबसे पृथक् भी रहता है । उसी ने विराट् के प्रकटन के बाद भूमि एव नाना शरीर उत्पन्न किये ॥५॥

इति सप्तदशो वर्ग ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

पदार्थ —(देवा) विद्वान् व्यक्ति (यद् यज्ञ) जिस यज्ञ को (हविषा पुरुषेण) पुरुषरूप साधन द्वारा (अतन्वत) प्रकटते हैं (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः आज्यम् आसीत्) वसन्त घृत के समान रहा, (ग्रीष्म इध्म) ग्रीष्म ऋतु जलती लकडी के तुल्य रहा और (शरत् हवि.) शरद् ऋतु हवि के समान था । ऋतुओं *के ब्रह्माण्ड मे ही संवत्सरयज्ञ होते हैं । जैसे घृत से अग्नि अधिक दीप्त होता है उसी* भांति वसन्त के अनन्तर ग्रीष्म तीव्र हो जाता है । शरत् फलदायी होने के कारण हवि के समान है ॥६॥

भावार्थ —ऋतुओं के ब्रह्माण्ड मे संवत्सरयज्ञ हो रहे हैं । जैसे घी से अग्नि प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार वसन्त के बाद ग्रीष्म अधिक तीव्रता पाता है व शरत् फलदायी होने से हवि तुल्य है ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पदार्थ —(त यज्ञ) उस यज्ञरूप (अग्रत जातम्) सर्वप्रथम प्रकटे (पुरुष) व्यक्ति को (बर्हिषि) हृदयान्तरिक्ष मे (प्रौक्षन्) यज्ञ मे दीक्षित के तुल्य ही अभि- षिक्त करते हैं । (देवा) विद्वान् जन, (साध्याः) साधक और (ये च ऋषय·) जो ऋषिगण है वे सब (तेन) उसी व्यक्ति के द्वारा (अयजन्त) यज्ञ एवं उपासना करते हैं ॥७॥

भावार्थ —उस यज्ञरूप सर्वप्रथम प्रकटे पुरुष को ही हृदयान्तरिक्ष मे यज्ञ मे दीक्षित पुरुष के समान ही अभिषिक्त करते हैं । विद्वान् साधक व ऋषि उसी पुरुष के द्वारा यज्ञ उपासना करते हैं ॥७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।

पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८॥

पदार्थ —(सर्वहुतः) सकल जगत् को अपने मे आहुतिवत् लेने वाले, (यज्ञात्) यज्ञरूप (तस्माद्) उस परमात्मा से (पृषत् आज्यं सभृतम्) तृप्तिदायक, सर्व- सेवक, वर्धक, प्राणदाता अन्नादि और घृत, मधु, जल, दुग्ध इत्यादि भी (स-भृतम्) उपजा हुआ है । (तान् पशून् चक्रे) वह प्रभु ही उन प्राणियो का भी बनाने वाला है जो (वायव्यान्) वायु में उड़ने वाले हैं, (आरण्यान्) वन मे रहने वाले सिंह आदि और (ये च ग्राम्या) जो ग्राम के गौ, भैंस आदि पशु हैं ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा ही सकल जगत् को अपने भीतर आहुतिवत् लेने वाला है । वही तृप्तिदायक प्राणदायक है और उसी ने सकल पदार्थों व प्राणियो को उत्पन्न किया है ॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

पदार्थः—(सर्व-हुतः) इस विराट रूप देह को स्वय में धारने वाले उस यज्ञस्वरूप प्रभु से (ऋच.) ऋचाएं (सामानि) एव साम (जज्ञिरे) उपजे हैं । (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) उससे छन्द भी उपजे हैं । (तस्मात्) उसी से (यजु. अजायत) यजुर्वेद भी । 'छन्दांसि'—पद से अथर्ववेद का तात्पर्य है ॥९॥

भावार्थ.—यज्ञ स्वरूप प्रभु से ही ऋचाएं और साम उपजे हैं, उसी से छन्द उपजे हैं, उसी से यजुर्वेद व अथर्ववेद उत्पन्न हुआ है ॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥१८॥

पदार्थ.—(तस्मात् अश्वा अजायन्त) उससे अश्व पैदा हुए तथा उसी ने वे पशु भी उत्पन्न किये (ये के च) कि जो (उभयादत) जिनके जबड़ों में दांत हैं । (तस्मात्) उससे (गावः ह जज्ञिरे) गौ आदि पशु भी उत्पन्न हुए, (तस्मात् अजावयः जाताः) उसी ने बकरी व भेड़ आदि पशु भी पैदा किए ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा ने ही सभी बड़े-छोटे पशुओं को उत्पन्न किया है ॥१०॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पदार्थ—(पुरुष) पुरुष को (यत्) जो (वि अदधुः) विशेषरूप से वर्णन किया तो (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) उसे विशेष रूप से कल्पित किया, (अस्य मुखम् किम्) इस पुरुष का मुख भाग क्या कहा गया, (बाहू कौ) दोनो बाहु क्या कहलाये और (ऊरू) जांघें क्या कहलाईं और (पादौ कौ उच्येते) दोनो पैर क्या कहे गए ॥११॥

भावार्थ—जिस पुरुष का विशेष रूप से वर्णन किया गया है उसे कितने प्रकारों से कल्पित किया है अर्थात् इसका मुख कौन कहा गया, दोनो बाहू क्या कहाए तथा जांघों को क्या सम्बोधित किया गया और दोनों पग क्या कहाये ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

पदार्थः—(ब्राह्मण अस्य मुखम्) ब्राह्मण इसका मुख (आसीत्) है। (राजन्य बाहूकृत.) राजन्य इसके दोनो बाहू । (यद् वैश्य) जो वैश्य हैं (तत) वे (अस्य ऊरू) इसकी जघाए हैं और (पद्भ्यां) पैरों के भाग से (शूद्र अजायत) शूद्र बना है । अर्थात् जिस प्रकार समाज मे ब्राह्मण प्रमुख, क्षत्रिय बलशाली, वैश्य सग्रही और शूद्र मेहनत करने वाले होते हैं उसी प्रकार शरीर मे भी देहवान् आत्मा के भिन्न भिन्न भागों की कल्पना विद्वानों ने की है ॥१२॥

भावार्थ—ब्राह्मण समाज का मुख है, राजन्य इसकी दो भुजाए हैं पेट और जंघा वैश्य तथा पग शूद्र या परिश्रम करने वाले हैं, उसी प्रकार शरीर मे भी विद्वानो ने देहात्मा के विभिन्न भागो की कल्पना की है ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

पदार्थ—(मनस) मनन करने की क्षमता से (चन्द्रमा जातः) चन्द्र हुआ । (चक्षो) रूपदर्शन के सामर्थ्य से (सूर्य अजायत) सूर्य बना (मुखात् इन्द्र च अग्निः च) और मुख से विद्युत् व आग अर्थात् तेजस्तत्व हुए और (प्राणात्) प्राण से (वायुः अजायत) वायु ॥१३॥

भावार्थ—जैसे विराट् देह में चन्द्र का स्थान है, उसी भांति शरीर मे मन की स्थिति है । जैसे चन्द्रमा, सूर्य से प्रकाशित होकर प्रकाश देता है वैसे ही आत्मा के चैतन्य से ही मन चेतन है जो कि मनोमय सकल्प-विकल्प पूर्ण ज्योति पार्थिव निश्चेतन देह मे सर्वत्र प्रकाश देती है । देह मे सूर्य के समान ही नेत्र हैं जो स्थूल जगत् का ज्ञान देते हैं । विराट जगत् मे वायु अन्तरिक्ष में सचरण करता है वैसे ही देह जगत् में प्राणों की स्थिति है ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

पदार्थ—(नाभ्या अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि से अन्तरिक्ष की कल्पना की है । (शीर्ष्णः) सिर भाग से (द्यौः सम् अवर्तत) विशाल आकाश की, (पद्भ्यां भूमि) पैरों से भूमि और (श्रोत्रात् दिश) कानो से दिशाए, (तथा लोकान् अकल्पयन्) इस प्रकार से सभी लोकों की कल्पना की है ॥१४॥

भावार्थः—नाभि से अन्तरिक्ष की कल्पना कीगई है और सिर भाग से विशाल आकाश की तथा पैरो से भूमि की व कानो से दिशाओ की । इसी भांति सकल लोको की कल्पना की गई है ॥१४॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदार्थः—(यत्) जो (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ करते हुए (देवाः) इन्द्रियें तथा पञ्चभूतादि, (पशुम) द्रष्टा, चेतन (पुरुष) पुरुष को (अबध्नन्) बांधते हैं । उस समय (अस्य) इस आत्मा चेतन की (सप्त परिधयः) सात परिधियां तथा (त्रिः सप्त समिध कृता) २१ समिधाए सृजी हैं । यह अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप है ॥१५॥

भावार्थ—यहां अध्यात्म यज्ञ के स्वरूप का वर्णन किया गया है । जिसमे पञ्च तन्मात्राए ही इन्द्रिय स्वरूप देव बनकर परस्पर सगति व शक्ति के दान-आदान-पूर्वक यज्ञ रच रहे हैं । विशाल ब्रह्माण्ड भी एक यज्ञ रचना ही है । उसमें परमात्मा को योगी व ध्यान जन अन्तःकरण मे ध्यान-योग द्वारा बांधते हैं ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह

नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥१९॥७॥

पदार्थः—(यज्ञेन, यज्ञम् अयजन्त) यज्ञ से यज्ञ की संगति करते हैं और यज्ञ रूपी आत्मा से ही यज्ञ रूप प्रभु की उपासना करते हैं क्योंकि (तानि) वे ही (धर्माणि) संसार के धारक अनेक बल (प्रथमानि) सर्वश्रेष्ठ, सबके मूलकारण रूप से (आसन्) होते हैं । (ते ह) और वे ही निश्चय के साथ (महिमानः) महान् क्षमता वाले होकर (नाकं सचन्त) श्रेष्ठतम सुख, आनन्दमय उस प्रभु को सेवते, और पाते हैं, (यत्र) जिसमें (पूर्वे) ज्ञान से पूर्ण, (साध्याः) साधना-सम्पन्न और अनेक साधनो से युक्त (देवा.) ज्ञान से आलोकित, सबको ज्ञान देने वाले विद्वान व्यक्ति (सन्ति) रहते हैं । वे प्रभु के उपासक, मुक्त होकर मोक्ष भोगते हैं ॥१६॥

भावार्थ—यज्ञ से यज्ञ की सगति करते हैं और यज्ञ रूपी आत्मा से ही यज्ञ रूप सर्वोपास्य परमात्मा की उपासना करते हैं, क्योंकि प्रभु ही सर्वश्रेष्ठ व सबका मूल कारण है ॥१६॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

---

[९१]

ऋषि अरुणो वैतहव्य ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, ३, ६ निचृज्जगती । २, ४, ५, ९, १०, १३ विराड् जगती । ८, ११ पादनिचृज्जगती । १२, १४ जगती । १५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।

विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१॥

पदार्थ—(जागृवद्भिः) जागरूक व्यक्तियो द्वारा (जरमाण) स्तुत्य, (दमे) जगत् के सम्यक प्रकार से सचालन मे (दमूनाः) दत्त-चित्त वाला, (इळः पदे इषयन्) वाणी के मार्ग मे सभी को प्रेरित करता हुआ, (हविषः विश्वस्य होता) हविवत् सकल जगत् को अपने भीतर लेने वाला, समस्त जगत् का भर्ता, भोक्ता, (वरेण्य) सबसे वरणीय, (विभुः) व्यापक (वि-भावा) विशेष कान्तिसम्पन्न (सखीयते सुसखा) सखाभाव वाले के हितार्थ उत्तम मित्र वह परमात्मा ही है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ही सकल जगत् मे व्याप्त, जगत रचयिता, भोक्ता सबसे वरण करने योग्य, व्यापक, विशेष कान्तिसम्पन्न व सबका हितकारी एवं उत्तम मित्र है ॥१॥

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।

जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्योविशंविशम् ॥२॥

पदार्थ—(स.) वह प्रभु (दर्शत श्री) दर्शनीय विभूतियुक्त, (गृहे गृहे अतिथि) प्रत्येक घर मे अतिथि के तुल्य वन्दनीय, (वने-वने) काष्ठ-काष्ठ में (तक्ववी. इव) व्याप्त अग्नि के समान (वने-वने) प्रत्येक जल बिन्दु, या प्रत्येक ऐश्वययुक्त पदार्थ मे (शिश्रिये) शोभित है वह (जन्य) सभी उत्पन्न होने वाले प्राणियो का हित करता है और स्वय भी सारे जगत् को उत्पन्न करता है, (जनं-जनं) प्रत्येक प्राणी मे व्याप्त रह कर (विश) प्रजाओ को वा लोको को (न अति मन्यते) अभिमान से तिरस्कृत नही करता, वह किसी की उपेक्षा भी नही करता प्रत्युत वह (विश्य) प्रजा का हितकारी होकर (विशं-विशं आ क्षेति) हर प्रजा मे बसता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त व शोभा को प्राप्त है । वह स्वयं ही सारे जगत् का उत्पा क है और प्रत्येक प्राणी मे व्याप्त रहकर भी प्रजा व लोकों को अभिमान से तिरस्कृत नही करता । वह किसी की भी उपेक्षा न कर सभी का हित करता है ॥२॥

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।

वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद्द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सभी को सन्मार्ग पर ले जाने हारे परमात्मन् ! तू (दक्षैः) बलों से (सु-दक्ष.) उत्तम बलयुक्त है । तू (क्रतुना सु-क्रतुः असि) कर्मसामर्थ्य, प्रज्ञासामर्थ्ययुक्त, उत्तम कर्म व प्रज्ञा वाला है । तू (काव्येन) बुद्धिमानों के उपयोगी ज्ञानमय वेद के द्वारा (विश्ववित् कविः असि) सकल ससार का ज्ञाता और जनाने वाला, कान्तदर्शी है । (यानि) जिन विभिन्न ऐश्वर्यों को (द्यावा च पृथिवी च पुष्यत) सूर्य व पृथिवी पुष्टि देते हैं उन सब (वसूनां) ऐश्वर्यों व बसने वाले सकल प्राणियो का भी (त्वम्) तू ही (एक इत् क्षयसि) एक स्वामी है ॥३॥

भावार्थ—प्रभु ही सबको सन्मार्ग का प्रदर्शक है वही कर्मसामर्थ्य व प्रज्ञा-सामर्थ्ययुक्त उत्तम कर्म व प्रज्ञा वाला है । वही वेद का ज्ञान देकर सकल संसार का ज्ञान देने वाला है । वही सकल लोकों व प्राणियों का स्वामी है ॥३॥

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।

आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वयप्रकाश आत्मन् ! तू (प्रजानन्) सबसे उत्कृष्ट ज्ञानवान् हो, (इळायाः पदे) वेदवाणी के पद-पद में, (ऋत्वियम्) ऋतुओं को प्रकट करने वाले एवं (घृतवन्तम्) प्रकाश तथा तेजयुक्त (योनिम्) स्वरूप को (आ असदः) प्राप्त है । (ते) तेरी (एतय) प्राप्तियां (उषसाम् इव एतय) उषाकालों के आगमनों के तुल्य एवं (सूर्यस्य रश्मय) सूर्य-किरणों के समान (अरेपस) निष्पाप, शुद्ध (चिकित्रे) जानी जाती हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ही वेदज्ञान का प्रदाता, ऋतुओं को प्रकट करने वाला व प्रकाश एवं तेजयुक्त है । उसके वरदान अनन्त हैं ॥४॥

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५॥२०॥

पदार्थ —(वर्षस्य इव विद्युत) बरसने वाले विद्युत्युक्त मेघ की दीप्त (श्रिय) शोभा अथवा कान्तियो के समान (तव श्रिय चिकित्रे) तेरी कान्तियाँ चित्र है और (तव श्रिय) तेरी कान्तियाँ (उषसां केतव न) प्रभात की बलाओ की किरणो के समान भासित होती हैं । (यत्) जिस-भांति (अग्नि वनानि अभि-सृष्ट स्वय परि चिनुते) लकडी के साथ अग्नि उनको जलाने लगता है उसी-भांति (यत् ओषधी अभिसृष्ट) जब आत्मा देहयुक्त होकर ओषधियो की ओर जाता है तो (स्वय) स्वयमेव (आस्ये अन्नम् परि चिनुषे) मुख मे अन्न को पा लेता है । इसी भांति परमेश्वर भी (ओषधी अभि-सृष्ट) अग्नि आदि शक्तियो से युक्त हो, (अन्नम्) अन्न के समान सकल जगत को स्वय म लीन लेता है ॥५॥

भावार्थ - परमात्मा ही संसार का निर्माता है और वही सकल जगत् क स्वय मे समा भी लेता है ॥५॥

इति विंशो वर्ग ॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६॥

पदार्थ —(ओषधी ऋत्विय गर्भम) ओषधिया जिस भांति ऋतु-अनुसार प्राप्त गर्भ धारती हैं और (आप अग्निम्) जिस भांति जलतत्व स्वय मे अग्नितत्व को वा मेघस्थ जल विद्युत् अग्नि को धारते और (जनयन्त) प्रकटते है, (वनिनः विरुध तम् अग्निम्) और जिस भांति वन्य ओषधियाँ उस अग्नि को स्वयं मे धारती हैं, उसी भांति (ओषधी मातर) वीर्य धारक माताए (तम्) उस (अग्निम्) स्वप्रकाश, (समानम्) ज्ञानयुक्त आत्मा को (ऋत्विम् गर्भम्) ऋतु-अनुसार प्राप्त गर्भ के रूप मे (दधिरे जनयन्त) धारती, जन्म देती हैं और (अन्तर्वती) वे गर्भवती होकर (विश्वहा च सुवते) सर्वदा जन्म देती हैं ॥६॥

भावार्थ -जैसे ओषधियां ऋतु-अनुसार उपजती हैं, जैसे जलतत्व स्वय मे जल विद्युत् अग्नि को भी धारता है उसी भांति माताए स्वय प्रकाश ज्ञान से युक्त आत्मा को ऋतु-अनुसार गर्भवती होकर धारती है तथा जन्म देती है ॥६॥

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७॥

पदार्थः—जैसे (वात उपधूत) वायु से भडका अग्नि (वशान) चमकती लकडियो को (वेविषत्) व्याप्त होता है उसी भांति यह आत्मा (वात उपधूत) प्राण वायु से प्रेरित तथा प्रकाशित एवम् (इषित) इच्छावान् हो, (तृषु) शीघ्र ही, (अन्ना अनु) अन्नो को (वेविषत्) पाता तथा (वशान्) काम्य लोको को (वितिष्ठसे) विशेषत प्राप्त करता है । तब (ते शर्धांसि) तेरे विभिन्न बल, (यथा रथ्य) रथ मे जुते अश्वो के समान और (धक्षतः अजराणि शर्धांसि इव) जला देने वाले अग्नि के रथादि प्रेरक बलो के जैसे (पृथक्यतन्ते) पृथक् पृथक् प्रयत्न करते हैं वे नेत्र, नासिका, चक्षु के रूप मे विभिन्न कर्म करते है ॥७॥

भावार्थ —जिस प्रकार वायु मे भडकी आग चमकती लकडियो मे लग जाती है उसी भांति आत्मा प्राण वायु से प्रेरित व प्रकाशित तथा इच्छावान् हो शीघ्र ही अन्नो को पाता है और काम्य लोकों को भी प्राप्त करता है । फिर वह परमात्मा की प्रेरणा से कार्यरत होता है ॥७॥

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८॥

पदार्थ —हम लोग (मेधाकार) ज्ञान तथा सन्मति के दाता, (विदथस्य प्रसाधन) ज्ञान, लाभ,व यज्ञ के उत्तम (होतार) सर्व सुखो के दाता वा प्रेम से सबको अपने समीप बुलाने वाले, (परि-भूतम) सर्वत्र व्याप्त, (मति) ज्ञान-स्वरूप, (अग्निम्) तेज स्वरूप परमात्मा को (आ वृणीमहे) वरते हैं, उसी से सब वस्तुओ के याचक हैं । (समानम् इत्) हम उसे ही सर्वत्र सबके प्रति समान समझते हैं, और (तम इत अर्भे हविषि) उसे ही अल्पतम पदार्थ के लिए भी याचना करते हैं । (महे) और महान पदार्थ या कर्मफलादि के लिए भी (तम् इत् वृणते) उसकी ही वन्दना करते हैं । हे प्रभो ! (त्वत् अन्य न वृणते) तेरे से भिन्न दूसरे को ये विद्वान् नहीं वरते ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा से ही ज्ञानी जन सकल सुखो की याचना करते हैं । परमात्मा ही सकल सुखों का देने वाला है अत विद्वान् उसके अतिरिक्त और किसी को नहीं वरते ॥८॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९॥

पदार्थः—(यत्) जब (देवयन्त) सर्व सुख देने वाले, सर्वप्रकाशक परमात्मा कामना करने वाले (हविष्मन्त) अन्नादि विभिन्न पदार्थों वा साधनो से युक्त (वृक्त बर्हिषः) विघ्नो को कुशाओ के समान विदीर्ण करने वाले (मनव) ज्ञानीजन, (प्रयांसि) विभिन्न अन्नों व साधनों को धारते हैं, (अत्र) इस अवसर मे हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! (त्वायवः) तेरी कामना करने वाले भक्त (वेधसः) विद्वान् व्यक्ति, (विदथेषु) ज्ञान-सत्संगों व यज्ञो मे (त्वाम् होतारं वृणते) तुझ दाता से याचना करते हैं ॥९॥

भावार्थः—विद्वान्, ज्ञानवान् तथा भक्तजन ज्ञान सत्संगो मे और यज्ञो मे उस परमात्मा की ही प्रार्थना करते हैं ॥९॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥२१॥

पदार्थ —हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! (तव होत्रम्) तेरा होता का कर्म है, (ऋत्वियं पोत्र तव) ऋतु अनुकूल होने वाला पोता का कार्य भी तुम्हारा है, (तव नेष्ट्रम्) नेष्टा का कार्य भी आपका ही है (ऋतयतः अग्निम् त्वम्) यज्ञ कर्त्ता का अग्निध्र भी तुम्ही हो , (तव प्रशास्त्रम) प्रशास्ता का कार्य भी तेरा ही है, (त्व अध्वरीयसि) अध्वर्यु का कार्य भी तू ही करता है, तू ही (ब्रह्मा च असि) ब्रह्मा है एवम् (न दमे) हमारे घर मे (गृहपति च असि) गृह-स्वामी भी तू ही है ॥१०॥

भावार्थ — परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप है । वही होता, पोता और नेष्टा का कार्य भी करता है । वही प्रशास्ता है, वही ब्रह्मा है, वही यजमान भी है ॥१०॥

इत्येकविंशो वर्ग.

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

पदार्थ —(अग्ने) हे ज्ञान सपन्न ! (यः मर्त्यः) जो व्यक्ति (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति हेतु (समिधा तुभ्यं दाशत्) समिधा स्वरूप स्वयं को तेरे प्रति अर्पित करता है, अथवा (हविः कृति) हवि रूप मे तुझे स्वय को सौंपता है, तू (तस्य होता भवसि) उसे अपने समीप बुलाता है, तू उसे (दूत्यं यासि) दूत तुल्य नये से नया ज्ञान देने वाला है, तू (उप ब्रूषे) उसके समीप गुरु के समान उपदेश देता है, तू (तस्य यजसि) उसे पिता एवम माता के तुल्य ज्ञानधन देता है, और (तस्य अध्वरीयसि) उसके हिंसारहित यज्ञ की कामना भी करता है॥११॥

भावार्थ —जो ज्ञानसपन्न जन मोक्ष प्राप्ति हेतु समिधा स्वरूप स्वय को परमात्मा को समर्पित करता है उसे परमात्मा पिता-माता तुल्य ज्ञान प्रदान करता है और उसकी प्रार्थनाए पूर्ण करता है ॥११॥

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥

पदार्थ—(यासु वृद्धासु) गुणो से युक्त जिन वाणियो के आश्रित (वर्धनः चित्) सबकी वृद्धि करने वाला परमात्मा (चाकनत्) सभी उपासकों को चाहने लगता है, (अस्मान्) हमारी (इमा मतय) ये बुद्धियां, (इमा वाच) ये वाणियां, (इमा ऋच) ये ऋचाएं, (इमा. गिर सु स्तुतयः) ये उत्तमोत्तम स्तुतियुक्त वाणियाँ (वसूयवः) धनैश्वर्य के इच्छुक प्रजाओ के तुल्य ही (वसवे जात-वेदसे) सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त प्रभु को पाने के लिए (सम् अग्मत) साथ-साथ प्राप्त होती है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा को अपने सभी उपासक प्रिय है । उसी की स्तुति धनैश्वय इत्यादि के लिए भी की जानी अभीष्ट है ॥१२॥

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥

पदार्थ —मैं (अस्मै) इस (प्रत्नाय) सनातन, (उशते) सर्वप्रिय प्रभु की (इमां) इस (नवीयसिम्) श्रेष्ठतम (सु-स्तुति) उत्कृष्ट वन्दना को (वोचेयम्) कहूँ । वह (न शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने । (पत्ये) पति हेतु (उशती) कामना वाली, (सु-वासा) सुन्दर वस्त्र धारे, ऋतुस्नाता (जाया इव) स्त्री के समान मैं (अन्तरा) भीतर (अस्य हृदि) इसके हृदय मे (नि.स्पृशे भूया) खूब स्पर्श करने, उसके हृदय के अन्त स्तल तक पहुँचने वाला बनूं ॥१३॥

भावार्थः—प्रभु से प्रार्थना की गई है वह भक्त की कामनाए पूर्ण करे और उसे अपने हृदय मे स्थान प्रदान करें ॥१३॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥

पदार्थः—जिस प्रकार पशुपालक के अधीन (अश्वासः) अश्व, (ऋषभास.) बडे बडे वृषभ, (वशा) गौएं और (मेषाः) भेड, बकरियां आदि (अवसृष्टास) खुले छोड़े जाते हैं और (आहुताः) वे फिर घर आ जाते हैं और, उसी भांति (यस्मिन्) जिसके अधीन (अश्वास) अश्वारोही, (ऋषभासः) श्रेष्ठ, (उक्षण) कार्यवहन मे समर्थ जन, (वशाः) वशी और (मेषा) विद्वान् वा वीर (अव-सृष्टास) नियुक्त होकर दूर-दूर जाते, और (आहुता) आदर से बुलाए जाते हैं, उस (सोम-पृष्ठाय) ऐश्वर्य के धारक (कीलालपे) आदरपूर्वक अर्घ्य जल को पीने वाले वा कीलाल नाम उदक, सलिलमय प्रकृति के पालक, (वेधसे) मतिमान् (अग्नये) तथा सूर्यवत् तेजस्वी के लिए (चारुम्-मतिम्) उत्तम स्तुति वचन (जनये) प्रकटता हूँ ॥१४॥

भावार्थः—जिस भांति किसी पशुपालक की गउएं, बकरियां आदि खुली होने पर भी पुन उसके घर वापस आ जाती हैं उसी भांति उस प्रभु के प्रति अनुरक्त जन भी विभिन्न कार्य करते हुए पुन उसी को प्राप्त करते हैं ॥१४॥

अध्यास्यग्ने हुविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।

वाजसनिं रयिमुस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥२२॥

पदार्थ —(अग्ने) हे अग्रणी ! (स्रुचि घृतम् इव) स्रुच मे जिस भांति यज्ञिय घृत तथा हवि समर्पित की जाती है उसी भांति (ते आस्ये) तेरे मुख मे (हविः अधायि) उत्तम ग्राह्य वचन हों और (घृतम्) मुख-मण्डल पर तेज हो । (चम्वि इव सोमः) चमस में सोम तुल्य (चम्वि) तेरी सेना के आधार पर तेरा (सोमः) ऐश्वर्य हो । तू (अस्मे) हमे (वाजसनिं रयिम्) बल तथा अन्न का दाता ऐश्वर्य, (प्रशस्तं सु वीरम्) प्रशंसा योग्य, सुखदायी वीर जन, एवं (बृहन्तं यशसम्) महान् यश (धेहि) दे ॥१५॥२२॥

भावार्थ —हे तेजस्वी, जैसे स्रुच मे यज्ञिय घृत और हवि डाली जाती है उसी प्रकार तेरे मुख मे उत्तम ग्राह्य वचन हो और मुख-मंडल तेज युक्त हो, सेना के आधार पर तू ऐश्वर्यवान् हो हमे भी तू बल व अन्न देने वाला ऐश्वर्य प्रशंसनीय सुख-दाता वीर जन एवं महान् यश प्रदान कर ॥१५॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[६२]

ऋषि शार्यातो मानवः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द.—१, ६, १२, १४ निचृज्जगती । २, ५, ८, १०, ११, १५ जगती । ३, ४, ६, १३ विराड् जगती । ७ पादनिचृज्जगती । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

युज्ञस्य वो रुथ्यं विश्पतिं विशां होतारमुक्तोरतिथिं विभावसुम् ।

शोचुञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरुद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (वः) आप (यज्ञस्य होतारम्) देवोपासना को स्वीकारने वाले परमात्मा को (अकृण्वत) स्वीकारो, (रथ्यम्) जो कि रथ मे जुते घोड़े के तुल्य विश्वरथ का सचालन करता है, (विशां विश्पतिम्) प्रजा पालक है, (अक्तो अतिथिम्) रात्रि मे चन्द्र तुल्य अतिथिवत् आनन्द देता है । (विभावसु) तेजोमय ऐश्वर्ययुक्त है, (शुष्कासु शोचन्) सूखे काष्ठ में अग्नि तुल्य, (हरिणीषु) सभी शक्तियो के मध्य देदीप्यमान (जर्भुरत्) सर्वपालक होता हुआ, (वृषा) सर्व सुखो का वर्षक, (केतु) ज्ञानवान्, (यजतः) सर्वोपास्य बनकर (द्याम् अशायत) महान् आकाश तथा सूर्यादि मे भी व्याप्त है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा ही इस विश्व रूपी का सचालक एव प्रजा पालक रात्रि मे चन्द्र के तुल्य आनन्ददाता है । वही सर्व-प्रकाशक, सर्व-सुखदाता, ज्ञानवान् व सर्वोपास्य है । विद्वान् जन व ज्ञानवान् व्यक्ति उसी की उपासना करते हैं ॥१॥

इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।

अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२॥

पदार्थ —(उभये) ज्ञानी व अविद्वान् दोनो, (इमम् अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (अञ्ज पाम्) अन्न को जठराग्नि जैसे जगत् के भक्षण करने वाले 'अग्रारूप', (धर्माणम्) जगत् भर के धारक को (विदथस्य) ज्ञानमय यज्ञ का (साधनम्) साधन मानते हैं । (अक्तुम् न यह्वम्) तेजोमय सूर्य के समान महान्, (उषस पुरोहितम्) प्रभातवेला प्रकाशक, (पुर-हितम्) सर्व साक्षिवत्, (अरुषस्य) तेजोमय जीवात्मा के (तनून पातं) शरीर का पतन होने देने वाले उस विश्वात्मा को विद्वान् (निंसते) पाते हैं ॥२॥

भावार्थ —ज्ञानी और अविद्वान् दोनो ही परमात्मा को जगत् भर का धारक, ज्ञानमय यज्ञ का साधन मानते हैं किन्तु उस विश्वात्मा को विद्वान् ही प्राप्त करते हैं ॥२॥

बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।

यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३॥

पदार्थः—(अस्य पणेः) इस स्तुतियोग्य परमात्मा की (नीथा) वाणी, (बट्) सदैव सत्य है । उसका (वि मन्महे च) विविध प्रकार से हम मनन करते हैं । (अस्य अत्तवे) इसके खाने को (वयः प्र-हुता आसु) नाना व्याप्त शक्तियां अग्नि में आहुतियो के जैसे प्रदत्त हैं । (यदा) जब (घोरासः) घोर तपस्वी जन (अमृतत्वम् आशत) अमृत तत्व को पाते हैं (आत् इत्) उसके बाद ही (दैव्यस्य) इन्द्रियों, प्राणों, सूर्यादि लोको मे व्याप्त (जनस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा का वे (चर्किरन्) गुणगान करते हैं ॥३॥

भावार्थः—प्रभु की वाणी ही सत्य है, हम उसी का विविध प्रकार से मनन करें । मनस्वी व तपस्वी जन अमृत तत्व को पाते हैं । वे सकल लोक में व्याप्त उस प्रभु की ही गुणगरिमा का गान गाते हैं ॥३॥

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यरमतिः पनीयसी ।

इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४॥

पदार्थ —(ऋतस्य-प्रसिति) तेज का उत्तम बन्धन स्थल (द्यौ) सूर्य, (उरु व्यच) महान् अन्तरिक्ष एवं (अरमतिः) विशाल (पनीयसी) नितान्त स्तुत्य (मही) पृथिवी, वे (नम.) उसी के नियन्त्रण में हैं । (इन्द्रः मित्र वरुण) विद्युत्, वायु जल, (अथो) तथा (भग) ऐश्वर्ययुक्त (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रकाशक सूर्य, (पूत-दक्षस) ये सब पावन बल वाले होकर उसी ही के (नमः चिकित्रिरे) शासन का ज्ञान कराते हैं ॥४॥

भावार्थ —सूर्य, अन्तरिक्ष व विशाल धरती आदि सभी परमात्मा के नियन्त्रण मे है । विद्युत्, वायु, जल तथा सर्वोत्पादक सूर्य ये सभी उस परमात्मा के शासन के ही द्योतक हैं ॥४॥

प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।

येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५॥२३॥

पदार्थ —(ययिना रुद्रेण) गर्जना युक्त वेगवान् मेघ से प्रेरित हुई (सिन्धवः) बहती जलधाराए (अरमतिम् महीम्) विशाल भूमि को (तिर दधन्विरे) आप्लावित करती है । (येभिः) जिन मरुद्गणो से (परि-ज्मा) चतुर्दिक् व्याप्त मेघ (उरु-ज्रय) अति वेगवान् होकर (जठरे वि रोरुवत) अन्तरिक्ष मे विविध गर्जना करता है और (विश्वम् उक्षते) विश्व पर जल बरसाता है, उसी भांति (सिन्धवः) गतियुक्त प्राणगण व रुधिर प्रवाह (रुद्रेण) रुद्ररूप आत्मा से प्रेरित हो (महीं तिर दधन्विरे) इस भूमि के विकार से बने देह को व्यापते हैं । (येभिः) जिन प्राणो से व्याप्त नितान्त वेगवान् हो हृदय (जठरे रोरुवत्) शरीर के मध्य मे ध्वनि करता है और (विश्वम् उक्षते) सकल देह को सींचता है ॥५॥२३॥

भावार्थः—जैसे मेघों से जलधाराए बरसकर पृथ्वी पर गिरती है, वैसे ही गतियुक्त प्राणगण व रुधिर प्रवाह रुद्ररूप आत्मा से प्रेरित होकर इस भूमि के विकार से निर्मित देह मे रमते है । इन प्राणो से व्याप्त वेगवान् हो हृदय शरीर में ध्वनि करता है और सकल देह को सींचता है ॥५॥२३॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

काणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।

तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६॥

पदार्थ —(रुद्रा मरुतः) रुद्रा प्राणगण, (काणा) शरीर मे सर्व कामना करते हैं, वे (विश्व-कृष्टय.) सकल मनुष्य देहो मे बसे है । वे (श्येनास) उत्तम रीति से देह मे गतिमान हुए (दिव. असुरस्य) तेज स्वरूप प्राणदाता आत्मा के (नीळयः) आधार हैं । (अर्वश अर्वशेभिः) अश्वपति जिस भांति अश्वो के आगे चलता है, वैसे ही (वरुण) श्रेष्ठतम, (मित्रः) मृत्यु से रक्षक, (अर्यमा) प्राण नियन्ता, (इन्द्र) देह सचालक आत्मा, (तेभि देवेभि) विभिन्न विषयो की कामना करने व ज्ञान दीप्तकर्त्ता उन इन्द्रियगणो से (चष्टे) सभी तत्वो को देखता है ॥६॥

भावार्थ —रुद्र, प्राणगण शरीर मे सर्व कामना करने वाले हैं, वे सकल मानव देहो मे विद्यमान हैं । वे उत्तम रीति से देह को गतिमान करते हुए तेज स्वरूप प्राणो के दाता आत्मा के आधार हैं । देह का सचालक आत्मा ही है वही नाना विषयों की कामना करने वाला है ज्ञान के प्रकाशक इन्द्रियगणो से सकल तत्वो को निहारता है ॥६॥

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।

प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७॥

पदार्थ.—(शशमानास) शमअभ्यास साधक, (इन्द्रे) प्रभु के आश्रय (भुज) पालन व रक्षा को (आशत) पाते हैं, क्योंकि वह (दृशीके) देखने में (सूरः) सूर्य के सम तेजस्वी और (पौंस्ये) पौरुष व बलकर्म में (वृषण च) बलवान् मेघ के जैसा ऐश्वर्य, सुख, अन्न, जलादि का दाता है और (ये नु) जो (अस्य अर्हणा प्र ततक्षिरे) इस प्रभु की नित्य स्तुति करते हैं वे (नृ-सदनेषु) मनुष्यो व प्राणो के विराजने के स्थानो मे अथवा नेतृपदो पर (युज वज्र कारव) अन्यो को भी सत्कर्म-रत बल-उत्पादक करने वाले होते हैं ॥७॥

भावार्थ —प्रभु के सच्चे उपासक ही दूसरो को भी सत्कर्म मे लगाने वाले, उन्हें बल प्रदान करने वाले होते है ॥७॥

सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।

भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८॥

पदार्थ.—(अस्य) इस प्रभु की (तवीयस. इन्द्रात्) बलशाली विद्युत् से (हरित सूरः चित्) तेजोमय सूर्य भी (भयते) भय खाता है । (अस्य तवीयसः) इस बलवान् से (क. चित् भयते) सभी भय खाते है । (भीमस्य वृष्ण) भयानक मेघतुल्य बलशाली, (अभिश्वसः) श्वास-प्रश्वास के नियामक इस परमेश्वर के (जठरात्) मध्य मे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सहुरि.) सबको परास्त करने वाला मेघ (अबाधित) बाधारहित हो (स्तन्) गर्जन करता है ॥८॥

भावार्थः—प्रभु की शक्तिशाली विद्युत् से सूर्य भी भय करता है । उस बलशाली से सभी भय खाते हैं । वही श्वास-प्रश्वास का नियामक है ॥८॥

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।

येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९॥

पदार्थ.—(येभि) जिन (वृष-पाणभि) वेगवान् शक्तिशाली पदार्थों सहित (स्ववान्) स्वयं शक्तिशाली, (शिव.) सर्व कल्याणकारी, (स्व-यशा) स्वयं अपने सामर्थ्य से यशस्वी, (नि-कामभि.) नितरां कान्तियुक्त पदार्थयुक्त (विष सिषक्ति) विभिन्न कामनावान् जनों की अभिलाषाओं की पूर्ति करता है, हे विद्वानो! (अद्य) आज, उसी (रुद्राय) बरसते मेघ के समान सुख वर्षक दुष्टों को रुलाने वाले, (शिक्वने) शक्तिशाली (अवद्र वीराय) वीर जनों को नाश करने वाले वीर सेनापति के समान (नमसा स्तोम दिविष्टन) विनय सहित वन्दना करो ॥९॥

भावार्थ.—परमात्मा ही सर्वशक्तिमान्, सर्व कल्याणकारी है। कान्तियुक्त पदार्थों से वही कामनावान् जनों की अभिलाषाएं पूर्ण करता है। वह दुष्टों का दमन करने वाला व उनका विनाशक है। विद्वान् विनय भाव से उसी की स्तुति करें ॥९॥

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥२४॥

पदार्थः—(बृहस्पति) वेदवाणी पालक एवं महती प्रकृति का स्वामी, (वृषभ) सर्वसुख व ज्ञानदाता और जगत् मूल का निवेत्ता प्रभु और (देवाः) एवं लोकोत्पादक पञ्चमहाभूतगण ये सभी, (सोम-जामय) जीवगण उत्पादक बन्धुतुल्य हैं। वे जीवों के शरीर धारण में कारण हैं। (अथर्वा) प्रजा को शान्तिदाता, (प्रथम) अनादि प्रभु (यज्ञै॰) नाना यज्ञों से (श्रव वि धारयत्) अपनी कीर्ति फैलाता है। (भृगव॰) पापों को भस्म करने वाले तपस्वी (दक्षै.) बलों व उत्साहों से इस परमात्मा का सम्यक् ज्ञान पाते हैं ॥१०॥२४॥

भावार्थ—परमात्मा ही वेदवाणी का पालक, महान्, कृपालु सर्वसुख व ज्ञानदाता है। नाना यज्ञों में उसी की कीर्ति फैली है। तपस्वीजन इस परमात्मा का ही सम्यक् ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥१०॥२४॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥

पदार्थ—(ते हि) वे दोनों (द्यावा पृथिवी) सूर्य एवं भूमि तुल्य (भूरि-रेतसा) अत्यधिक बल वीर्य पराक्रम वाले माता-पिता, एवं (नराशंस) सभी से स्तुत्य (चतुरङ्ग:) चार अंगों से युक्त (यम) नियन्ता (देव त्वष्टा) दानशील उत्तम शिल्पी, (द्रविणोदा.) धन का दाता, सम्पन्न व्यक्ति और (ऋभुक्षण) उत्तम अन्न धन तेज का भोक्ता महान् पुरुष, (रोदसी) दुष्टों का दमन करने वाले सेनापति और (मरुत) वायुवत् बलशाली वीर व वैश्यजन तथा (विष्णु.) व्यापक सामर्थ्ययुक्त प्रभु ये सब (अर्हिरे) पूजनीय हैं ॥११॥

भावार्थ—सूर्य अग्नि तुल्य पराक्रमी माता-पिता, नियन्ता, दानशील, उत्तम शिल्पी, दानदाता सम्पन्न व्यक्ति व उत्तम धन, तेज को भोगने वाले महान् पुरुष, दुष्ट दलनरत सेनापति, बलशाली वीर एवं समृद्धिकारक वैश्यजन तथा परमात्मा ये सभी पूज्य हैं ॥११॥

उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२॥

पदार्थ—(उत) और (उशिजां न) उत्तम कामनायुक्त हम लोगों की (उर्विया) अत्यन्त स्तुति को (स्य) वह (कवि) क्रान्तदर्शी (अहि बुध्न्य.) सर्वाश्रय और सर्वव्यापक (हवीमनि) यज्ञ में (शृणोतु) सुने और (सूर्यामासा) सूर्य व चन्द्रमा प्रकाशित तथा आह्लादक जन, (दिविक्षिता धिया विचरन्ता) आकाश व भूमि में बुद्धि और कर्म से विचरण करते, उत्तम स्त्री-पुरुष वर्ग (शमी-नहुषी) कर्मों से बद्ध रह कर (अस्य बोधतम्) इस प्रभु या आत्मा का ज्ञान पाएं ॥१२॥

भावार्थ—उत्तम स्त्री-पुरुषों की प्रार्थना को वह सर्वव्यापक प्रभु यज्ञ में सुनता है और उन्हें परमात्मा व आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है ॥१२॥

प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३॥

पदार्थ—(पूषा) पृथ्वी के समान पोषक प्रभु (न चरथम प्र अवतु) प्राणीवर्ग की रक्षा करे। (विश्व-देव्य) सर्व देवों का आश्रय, (अपां नपात) प्राणों के रक्षक (वायु) सर्वप्राणप्रद (न अवतु) हमारी रक्षा करे। हे विद्वानो! आप लोग (वातम्) सर्वव्याप्त (आत्मानम) आत्मा की (वस्य अभि अर्चत) श्रेष्ठतम रूप में उपासना करो। (तत) उसी महान् आत्मा के बारे में हे (सुहवा) उत्तम यज्ञाहुति दाता स्त्री-पुरुषो! (यामनि) जीवन के संयमपूर्वक व्यवहारयुक्त मार्ग में चल कर (श्रुतम्) ज्ञान को सुनो ॥१३॥

भावार्थ—पृथिवीवत् सर्वपोषक प्रभु ही प्राणीवर्ग का रक्षक, सर्वप्राणप्रद है। विद्वान जन उसी की सर्वश्रेष्ठ रूप में वन्दना करते हैं। जीवन में संयमित व्यवहार द्वारा ही नर-नारी के लिए उपयुक्त है कि वे सन्मार्ग पर चलते हुए उसके ज्ञान को श्रवण करें ॥१३॥

विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥

पदार्थ—(आसाम् अभयानाम् विशाम्) इन भयमुक्त प्रजाओं में (अधि-क्षितम्) शासक रूप से विराजे, (स्व-यशसम्) स्वपराक्रम व बल से यशस्वी इस प्रभु की हम (गीर्भिः गृणीमसि) नाना वेदवाणियों से स्तुति करें। उस (अदितिं) अविनाशी, (अनर्वाणम्) अन्यों से न चलने वाले, स्वतन्त्र, (युवानम्) युवातुल्य सदैव बलशाली, (पतिम्) गृहपति के समान सकल प्रजाओं के पालक, (नृमणा॰) मनुष्यों के मध्य ज्ञानी के समान उन पर कृपा करने वाले प्रभु की (अक्तो) रातदिन हम (विश्वाभिः ग्नाभि॰) सकल वाणियों से (गृणीमसि) वन्दना करते हैं ॥१४॥

भावार्थ—भयरहित प्रजा के मध्य शासक रूप से विराजे, स्वपराक्रम व बल से यशस्वी उस परमात्मा की हम नाना वेदवाणियों से वन्दना करते हैं। उस अविनाशी, स्वतन्त्र युवा तुल्य, लोगों पर अनुग्रह करने वाले प्रभु की हम महिमा स्तुति करें ॥१४॥

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥२५॥

पदार्थ—(अत्र) इस जगत् में (पूर्व अंगिरा) सर्वपूर्व विद्यमान व सबका पालक प्रभु ज्ञानवान् होकर (जनुषा) जगत् की उत्पत्ति से (रेभत्) उपदेश करता है। (ग्रावाणः) उपदेष्टा (ऊर्ध्वाः) उत्तम कोटि के ज्ञानी जन उसी (अध्वरम्) अविनाशी का (अभि चक्षु) सर्व प्रकार साक्षात् करते हैं जो (विचक्षण.) वह विश्वद्रष्टा (विहाया अभवत्) आकाशवत् व्याप्त है। वही (स्व-धितिः) स्व सामर्थ्य द्वारा जगत का धारक, (सुमेक) उत्तम (पाथ) पालनकारी जलयुक्त मेघ को (वनन्वति) जलादि से युक्त मार्ग में भेजता है ॥१५॥२५॥

भावार्थ—संसार में सबसे पूर्व विद्यमान एवं सर्व पालक प्रभु ही जगत् की उत्पत्ति द्वारा उपदेश करता है। उत्तम कोटि के ज्ञानी उसी विश्वद्रष्टा अविनाशी प्रभु का साक्षात् करते हैं ॥१५॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[९३]

ऋषिस्तान्व॰ पार्थ्यः । विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द—१ विराट् पंक्ति । ४ पादनिचृत् पंक्ति । ५ आर्ची भुरिक् पंक्तिः । ६, ७, १०, १४ निचृत् पंक्ति । ८ आस्तारपंक्ति । ९ अक्षरैः पंक्ति । १२ आर्ची पंक्ति । २, १३ आर्चीभुरिगनुष्टुप् । ३ पादनिचृदनुष्टुप् । ११ न्यङ्कुसारिणी बृहती । १५ पादनिचृद्बृहती । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥१॥

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) आकाश व भूमिवत् नर-नारियो! आप दोनों (महि ऊर्वी) नितान्त विस्तृत एवं (नारी) उत्तम नर-नारी बनो और (न) हमारे मध्य (यह्वी) शक्ति-सामर्थ्ययुक्त (रोदसी न) आकाश तथा भूमि के तुल्य परस्पर उपकार करने वाले (सद) सदा हो। आप दोनों (नः) हमारी (सह्यस.) पराजयकारी राजा के (तेभि) उन उपायों से (पातम्) रक्षा करो तथा (शूषणि) बल के लिये (एभि॰) विभिन्न उपायों से (नः पातम्) हमारी रक्षा करो ॥१॥

भावार्थ—आकाश एवं भूमिवत् स्त्री-पुरुषो! आप दोनों नितान्त विस्तृत व उत्तम बनो और हमारे मध्य शक्ति सामर्थ्य से महान आकाश व भूमि के समान परस्पर उपकारक होवो। आप हमारी रक्षा करो ॥१॥

यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥२॥

पदार्थ—(य॰) जो (दीर्घ-श्रुत्तम:) नितान्त दीर्घकाल तक विभिन्न शास्त्रों को सुनने वाला, (एनान् देवान् आ विवास) उन विद्वानों की सेवा करता है, (स. मर्त्य) वह व्यक्ति (यज्ञे यज्ञे) सकल यज्ञों में (देवान् सपर्यति) उत्तम विद्वानों की (सुम्नै) विभिन्न सुख-साधनों से सेवा करता है ॥२॥

भावार्थ—दीर्घकाल तक अनेक शास्त्रों का श्रवण करने वाला उन विद्वानों की सेवा करता है। वह मनुष्य सकल यज्ञों में उत्तम विद्वज्जनों की सुख साधनों से सुश्रुषा करता है ॥२॥

विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३॥

पदार्थः—हे (विश्वेषाम्) सभी के (इरज्यव:) स्वामियो! (देवानाम्) विद्वानों का (मह वा) विपुल धन है। (विश्वे) आप सब (हि) निश्चयसहित (विश्व-महस) सकल तेजों के धारक सर्वपूज्य और (यज्ञेषु) यज्ञ के अवसरों पर (यज्ञिया) यज्ञ अर्थात् दान मान एवं पूजा योग्य हो ॥३॥

भावार्थ—हे सबके स्वामियो! विद्वानों का धन नितांत विपुल है। आप सब निश्चय से सकल तेजों के धारक सर्वपूज्य व यज्ञों के अवसरों पर यज्ञ अर्थात् दान-मान एवं पूजा के योग्य हो ॥३॥

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥४॥

पदार्थ—(अर्यमा) न्यायी, (मित्रः) सर्व स्नेही, (वरुण) सर्वश्रेष्ठ (परि-ज्मा) सर्वत्र व्याप्त, तथा (नृणां स्तुत) मनुष्यों मे स्तुत्य, (रुद्रः) रोग, दुःखहर्ता, (पूषरणः मरुतः) सर्वपोषक वैश्यगण वीरगण व वर्षा जनक वायुगण और (भगः) ऐश्वर्य स्वामी, ये सब जन (मन्द्रा) वन्दनीय हैं। (ते च) वे सब जन (अमृतस्य राजानः) अनश्वर ज्ञान, अमर आत्मा एव नित्य सुख के (राजान) राजा हैं ।।४।।

उत नो नक्तमपां वृषणवसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या।

सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्न्येषु बुध्न्यः ।।५।।२६।।

पदार्थः—(उत) और (यत्) जब (बुध्न्यः) अविनाशी आत्मा (एषाम् बुध्न्येषु) इन प्राणो के मध्य (सचा सादि) इनके साथ इनमें राजा तथा प्रजापति के तुल्य शोभित होता है, तब (अपां) प्राणो के मध्य (वृषण्वसू) बलशाली दो प्राण, (सूर्या मासा) जगत् मे चन्द्र सूर्य के समान (सधन्या) एक साथ गतिमान (सदनाय) यहां रहने को (नः) हमें (नक्त) रात्रि मे भी (उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें ।।५।।२६।।

भावार्थ—अविनाशी आत्मा जब इन प्राणो के बीच में राजा तथा प्रजापति के तुल्य शोभित होता है तब प्राणों के मध्य बलशाली दो प्राण जगत् मे चन्द्र सूर्य तल एक साथ गति करत हुए यहा रहने, हमारी रात्रि मे भी रक्षा करें ।।५।।

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।

महः स रायः एषतेऽति धन्वेव दुरिता ।।६।।

पदार्थ—(उत) और (अश्विना देवौ) वेगवान्, (शुभ पति) श्रेष्ठ, कल्याणकारी कर्मपालक, (मित्रावरुणौ) दिन और रात्रिवत् विद्वान् पुरुष व स्त्री (न) हमारी (धामभि.) अनेक धारक-पोषक शक्तियो से (उरुष्यताम) रक्षा करें। (स.) वह (मह) महान् (राय) ऐश्वर्यों को (आ ईषते) पाता है और (धन्व इव दुरिता पति) जल के जैसे दु.खो व पापो को पार करता है जिसकी वे रक्षा करते हैं ।६।।

भावार्थ.—विद्वान् पुरुष व स्त्री अपनी अनेक पोषक शक्तियो से रक्षा करते हैं, क्योकि वे वेगवान्, श्रेष्ठ, उत्तम कल्याणकारी कर्मवत् पालक हैं। जिसकी वे रक्षा करते है व पापो से बचते हैं व ऐश्वर्य पाते है ।।६।।

उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।

ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ।।७।।

पदार्थ—(उत) और (न) हमे (रुद्रा चित अश्विना) श्रेष्ठ उपदेश देने वाले स्त्री-पुरुष (मृडताम) सुख दें। (विश्वे देवास) सभी विद्वान् सुख दें। (रथ प्रति भगः) रथों का स्वामी ऐश्वर्यवान् हमे सुख प्रदान करे। (ऋभु) सत्य-ज्ञान से आलोकित (वाज) बलवान ज्ञानी, ये (ऋभुक्षण) सभी महान् और (विश्व-वेदस) सकल ज्ञानो व धनो के स्वामी और (परि-ज्मा) सर्वत्रगामी वायु सभी हमे सुख प्रदान करें ।।७।।

भावार्थ—उत्तम उपदेश देने वाले स्त्री-पुरुषो के उपदेशो से ही व्यक्ति सुख पाता है। क्योकि सत्य-ज्ञान से आलोकित जन ही महान् व वास्तविक धनो के स्वामी हैं ।।७।।

ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।

दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ।।८।।

पदार्थ—(ऋभुक्षा ऋभु) वह प्रभु, सत्य-ज्ञान, प्रकाश से आलोकित है, (विधत) जगत् रचयिता प्रभु का (मद) हर्ष व आनन्द भी (ऋभु) महान है। हे प्रभो ! (जूजुवानस्य) सभी को सन्मार्ग म ले जाने वाले, (ते हरी) धारण व आकर्षणकर्ता, (वाजिना) तेरे दोनो बल (आ) सर्वत्र व्याप्त है, (यस्य साम चित् दुस्तर) जिसका कि बल अपार, श्रेष्ठतम है, और जो स्वय (मानुष न. यज्ञ ऋधक्) सभी मनुष्यो में समानरूप से पूज्य व सबसे पृथक्, सबमे महान् है ।।८।।

भावार्थः—प्रभु ही सत्यज्ञान के प्रकाश व आनन्द का दाता तथा सबको सन्मार्ग की प्रेरणा देने वाला है। उसका बल सर्वोपरि व सर्वव्यापक है। वही समान रूप से पूज्य व महान है ।।८।।

कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।

सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ।।९।।

पदार्थ—हे (देव सवित) सभी सुखो व बलों के दाता ! हे जगत् के सृजक व सञ्चालक ! (न अह्रय कृधि:) हमें ऐसा उत्साही व निष्पाप बना कि हम कभी लज्जा से मुह न झुकाए। (स च) वह तू (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानो मे (स्तुषे) सर्वाधिक स्तुत्य है। (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही, (एषाम् चर्षणीनाम्) इन सकल लोको के (सह) वशकारी बल को, (रश्मिम् चक्र न) अश्वों के वशकारी रासों व रथ के सञ्चालक चक्र के तुल्य ही (नि यो युवे) नियन्त्रण मे रखता है ।।९।।

भावार्थ—वह परमात्मा ही सकल सुखो व बलो का दाता तथा विश्वनिर्माता एवं पालक है। वह हमे ऐसा उत्साही तथा निष्पाप बनाए कि हमे कभी लज्जित न होना पड़े। वही परमात्मा समस्त लोको को अपने नियन्त्रण मे रखता है ।।९।।

ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।

पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ।।१०।।२७।।

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) सूर्य व भूमि के समान राजा व प्रजा के वर्गों ! (अस्मे एषु वीरेषु) हमारे इन वीरो मे (महत) बड़ा (विश्व चर्षणि) सर्व मनुष्योपयोगी और सकल पदार्थों के तत्वदर्शक (श्रव) श्रवणीय ज्ञान (धातम्) दो और (वाजस्य सातये) ज्ञान वा बल की प्राप्ति हेतु (महत पृक्षम् धातम्) बहुत बड़ा परस्पर का प्रेम व अन्न दो। (उत राया तुर्वणे पृक्ष धातम्) और शत्रुओ को पार करने एव उनका नाश करने को धन द्वारा (पृक्ष) परस्पर का सम्पर्क प्रदान करो ।।१०।।

भावार्थ—हे सूर्य व भूमि तुल्य राजा व प्रजा वर्ग वीरो मे सवमानवोपयोगी एव सकल पदार्थों व तत्वों को दर्शाने वाला श्रवणीय ज्ञान दो व बल प्राप्ति हेतु पारस्परिक प्रेम पदा करो तथा शत्रुओ का नाश करने के लिये धन मे आपसी सम्पर्क प्रदान कराओ ।।१०।।

इति सप्तविंशो वर्ग ।।

एत शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा

पाह्यभिष्टये । मेदतां वेदता वसो ।।११।।

पदार्थ - हे (इन्द्र) ऐश्वर्यदाता प्रभो ! हे (सहसावन्) बलशालिन् ! (त्वम् अस्मयु) तू हमे चाहता हुआ, (शंसम) स्तुति करने वाले भक्त की (अभिष्टये कूचित् सन्त एव सदा पाहि) उसकी अभीष्ट सिद्धि हेतु सतत् रक्षा कर। हे (वसो) सबमे बसे ! (मेदताम् अभिष्टये) स्नेहकर्त्ताओं के मध्य भी अपने स्तोताओं को तू (सदा वेदत) सदा जान ।।११।।

भावार्थ—प्रभु ही स्तुतिकर्ता भक्त की अभीष्ट सिद्धि के लिये निरन्तर रक्षा करता है। वही सबमे बसने वाला है। वह अपने स्तोताओं को सदैव जानता है ।।११।।

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।

संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ।।१२।।

पदार्थः—हे विद्वानो ! (सूर्ये तना न) सूर्य मे जिस भांति किरणें ज्योति फैलाती हैं इसी प्रकार (सूर्ये) सबके सञ्चालक परमात्मा के निमित्त (मे) मेरे (द्युतद्यामानम) चमकते मार्ग वाले (एतम स्तोमम) स्तुति वचन को (वावृधन्त) बढ़ा अथवा मेरे लिए उस प्रभु के स्तुतिवचनो का उपदेश दो और (तष्टा इव) जिस भांति शिल्पी (नृणां सवनन) शत्रुओ का संहार करने वाले (अश्व्य) अश्वों से चालित (अनपच्युत) न टूटने फिसलने वाले रथ बनाता है, उसी भांति वे विद्वान् (नृणां सवनन) मनुष्यों के सेवनीय, (अश्व्य) इन्द्रियो से युक्त (अनपच्युतम्) दृढ शरीर को बढ़ावें ।।१२।।

भावार्थ - विद्वान लोगो को उस प्रभु के स्तुति वचनो का उपदेश दें और वे जिस भांति शिल्पी शत्रुओं के संहारक अश्वचालित न टूटने वाले रथ बनाता है वैसे ही विद्वान् व्यक्ति मानवों के सेवनीय इन्द्रिययुक्त दृढ शरीर को बढ़ाए ।।१२।।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।

नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ।।१३।।

पदार्थ (येषाम्) जिनकी स्तुति (राया युक्ता) देने योग्य धन से संपन्न है और (नेमधिता) संग्राम मे (पौंस्या) बलो के तुल्य जिनके पौरुष कर्म (वृथा इव) सहसा ही (विष्ट अन्ता) एक दूसरे मे घुसे अन्तो वाले है, (एषां) उनकी वाणी (हिरण्ययी) हितकारी वा रमणीय (ववर्त) होती है ।।१३।।

भावार्थ—जिनके पौरुष कर्म अनायास ही एक दूसरे से विजयी होते हैं, उनकी वाणी हितकारी व रमणीय होती है ।।१३।।

प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।

ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ।।१४।।

पदार्थ - (ये) जो (अस्मयु) हमे चाहते हुए, (पञ्चशता युक्त्वाय) पांच सौ को जोत (पथा) मार्ग से जाते हैं, (एषां विश्रावि) उनका विविध प्रकार का यश सुनाई पड़ता है, वा उनका ज्ञान विशेषरूप से श्रवणीय है, मैं (तत) उस ज्ञान का, (दु शीमे) परास्त न होने वाले (पृथवाने) विस्तृत, बलयुक्त (वेने) कान्तियुक्त, (रामे) रमणीय, (मघवत्सु) तथा धन सम्पन्न जनो मे (प्र-वोचम्) प्रवचन करू ।।१४।।

भावार्थ—जो हमे चाहते हुए, पांच सौ को जोतकर मार्ग से गमन करते हैं उनका विविध प्रकार का यश सुनाई देता है उनका ज्ञान विशेषत श्रवणीय है ।।१४।।

अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च । सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो

दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ।।१५।।२८।।

पदार्थ—(तान्व.) तनुज्ञान वेत्ता, (अत्र) इस सम्बन्ध मे (सप्त च सप्तति च) ७७ नाड़ियों का तन्तुकेन्द्रो का (अधि दिदिष्ट) उपदेश देता है। (पार्थ्य) विस्तृत शक्ति का स्वामी भी (सद्य) शीघ्र ही ७७ को (अधि दिदिष्ट)

वश मे करे, और (मायव सश. विविष्ट) ज्ञान की कामना वाला भी इनके सम्बन्ध मे ज्ञान की याचना करे ॥१५॥ ८॥

भावार्थ --तनू के ज्ञान का वेत्ता उस सबन्ध मे ७७ नाडियो का तन्तु केन्द्रों का उपदेश देता है । विस्तृत शक्ति का स्वामी भी शीघ्र ही इन्हे वश में करता है । ज्ञान की प्राप्ति के इच्छुक भी इनका ज्ञान प्राप्त करें ॥१५॥

इत्यष्टाविंशो वर्ग ॥

---

[९४]

ऋषिरर्बुद. काद्रवेय सर्प. ॥ *ग्रावाणोदेवता* ॥ *छन्दः*--१, ३, ४, १८, १३, *विराड् जगती* । २, ६, १२ *जगती* । ८, ९ *आर्चीस्वराड् जगती* । ५, ७ *निचृत् त्रिष्टुप्* । १४ *त्रिष्टुप्* ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।

यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥ १ ॥

पदार्थ --(एते) ये विद्वान् (प्र वदन्तु) श्रेष्ठ उपदेश करें, और (वयम्) हम भी (ग्रावभ्य) उत्तम विद्वानो की (वाचम्) वाणी का (प्र वदाम) उत्तम रीति से दूसरों को उपदेश दें । हे विद्वानो ! आप भी (वदद्भ्य) भाषणकर्त्ता के लाभार्थ (वाच वदत) उत्तम वाणी बोलो, (यत्) जब कि (अद्रय) आदरणीय, (पर्वता:) मेघ तुल्य प्रजा शिष्यादि पोषक, (आशव) वेगवान्, (सोमिनः) तथा वीर्यवान् आप लोग (साकम्) एक साथ (इन्द्राय) परमात्मा के (श्लोक) वेद उपदेश को (भरथ) प्राप्त करो व दूसरों तक पहुँचाओ ॥ १॥

भावार्थ --श्रेष्ठ विद्वान् जनो से हमे जो सदुपदेश मिलता है, उसे हम दूसरों को दें । उनका उत्तमपोषक उन्नति का प्रदाता होना है ॥१॥

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।

विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२॥

पदार्थ --(एते ग्रावाण.) ज्ञान के उपदेशक (शतवत् सहस्रवत्) तथा सौ-सौ व सहस्रो शिष्यों वाले ये (वदन्ति) उपदेश करते हैं और वे (सु-कृतः) उत्तम कर्मरत (विष्ट्वी) गृहो मे प्रवेश कर (हरितेभि: आसभि) तेजस्वी मुखों से (सु-कृत्यया) श्रेष्ठ कृत्यों का (अभि क्रन्दन्ति) सर्वत्र उपदेश देते हैं । (पूर्वे) आदरणीय विद्या व आयु मे श्रेष्ठ जनो ! आप लोग (होतु. चित् हवि -अद्यम् आशत) दानशील जन के अन्नादि भोग्य पदार्थ को आदर से ग्रहण करो ॥२॥

भावार्थ --ज्ञान के उपदेशक सहस्रों शिष्यों को उपदेश देने वाले उत्तम कर्मरत गृहो मे प्रवेश कर तेजस्वी मुखो से श्रेष्ठ कृत्यो का सर्वत्र उपदेश देते हैं । हे आदरणीय विद्वान जनों आप लोग दानशील जन के अन्नादि भोग्य पदार्थों को आदरपूर्वक ग्रहण करो ॥२॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।

वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३॥

पदार्थ --(वृक्षस्य पक्वे आमिषि) जिस भांति वृक्ष के पके फल मे (मधु अविदन्) मधुर रस पाते हैं, वैसे ही उसको (अना) मुख से बतलाते और उसे पाते हैं, इसी प्रकार (एते) ये विद्वान् (वृक्षस्य) वृक्षरूप देह के (आमिषि पक्वे अधि) आयुरूप फल के परिपाक होने पर (अना) मुख से (मधु) वेद ज्ञान का लाभ करते है और उसी का (वदन्ति) उपदेश देते है और (नि ऊङ्खयन्ते) नियम से उसका बार-बार अभ्यास करते हैं । (ते सुभर्वा) वे उत्तम सुख जनक फल तथा अन्न के भोक्ता (वृषभा) उत्तम बलवान्, (अरुणस्य) दीप्तियुक्त (वृक्षस्य शाखां बप्सत) महान् वृक्षरूप ससार की आश्रय रूप प्रकृति को भोग परमेश्वर के विषय मे (प्र ईम् अराविषु) भली-भांति वर्णन करते हैं ॥३॥

भावार्थ --विद्वान् जन वृक्षरूप देह के आयुरूप फल के परिपक्व होने पर मुख से वेद ज्ञान का लाभ करते हैं और उसी का उपदेश देते है तथा उसे जीवन मे चरितार्थ करते हैं । वे परमेश्वर के विषय मे भली-भांति ज्ञानार्जन करते हैं ॥३॥

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।

संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥

पदार्थ --(एते) ये (मन्दिना) स्तुतियुक्त, (मदिरेण) हर्षदायक स्तुतिवचन द्वारा (बृहत्) उस महान् परमात्मा का (वदन्ति) उपदेश करते हैं । (अना) मुख से (इन्द्रम) उस परमात्मा को (क्रोशन्त) पुकारते हुए (मधु अविदन्) उसका हर्षजनक ज्ञान पाते हैं । वे (उपब्दिभिः) नाना उपदेश गर्जनाओ द्वारा (पृथिवीम् आघोषयन्ति) भूमि को आघोषित करते हुए, (सं-रभ्या) कार्य मे दृढोद्योगी बनकर, (धीरा) बुद्धिमान जन (स्वसृभि) स्वत चालित शक्तियों वाणियों सहित या भगनीवत् सहयोगिनी प्रजाओ के सहित (अनर्तिषुः) प्रसन्नता से नृत्य करते, आनन्द उल्लास का अभिनय करते है, वे प्रभु प्रेम व उल्लास मे नृत्य कर उठते हैं ॥४॥

भावार्थ --विद्वान व्यक्ति अपने स्तुति युक्त, हर्षप्रद स्तुतिवचन से परमात्मा का ही उपदेश करते हैं, उसी का आह्वान करते हुए वे उसका हर्षजनक ज्ञान प्राप्त करते हैं, और उन्हीं उपदेशों को अन्य को देते हैं । जिससे प्रजा का मगल होता है, और वह प्रभु प्रेम में रग जाती है ॥४॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।

न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥२९॥

पदार्थ --(द्यवि) तेजोमय एवं (आखरे) चारो ओर सुखमय प्रभु मे मग्न (सुपर्णा.) उत्तम मार्गगामी (कृष्णा) स्व देह और अन्त करण के दोषों का वर्णन करने वाले (इषिरा:) शुभ इच्छायुक्त (वाचम् उप अक्रत) वाणी के उच्चारक, उपासक स्तुति प्रार्थना, करते (आ अनर्तिषु) एव नाना हर्ष-प्रदर्शक क्रीडायें करते है और (उपरस्य) मेघतुल्य सुखदायी प्रभु के (निष्कृत नि यन्ति) स्थान को पाते है । वे (सूर्यश्वित) सूर्य के तुल्य तजस्वी जन (पुरु रेतः दधिरे) बहुत-बहुत बल सामर्थ्य धारते है ॥५॥२९॥

भावार्थः --प्रभु भक्त साधक, अपनी वाणी से परमात्मा की ही उपासना, स्तुति व प्रार्थना करते हैं, और परमात्मा के स्थान को पाते हैं ॥५॥

इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।

यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६॥

पदार्थ.--(उग्रा इव प्रवहन्त) वेगवान् वायु के झकोरो के तुल्य प्राण (सम् आयमु) एक साथ आते तथा (सम आयमु) एक साथ नियम में बंधे कार्यरत हैं । (साकम् युक्ता वृषण) जिस भांति एक साथ जुते बैल (धुरं बिभ्रत) शकट के धुरे का भाग धारते हैं उसी भांति वे भी देह मे (साकम् युक्ता) एक साथ लगे हुए, (वृषण) बलवान् हो (धुर बिभ्रत.) धारण करने वाले देह के अंगो को पुष्ट करते हैं । (यत) जब वे प्राणगण (श्वसन्तः) श्वास लेते हुए, (जग्रसाना:) वायु को भीतर निगलते हुए (अराविषु) ध्वनि करते हैं, तब (एषाम्) इनका (अर्वताम इव प्रोथथः शृण्वे) वेगवान् अश्वो के समान ही शब्द सुनता हूँ ॥६॥

भावार्थ --वेगवान वायु के झकोरों के तुल्य प्राण एक साथ आते है, तथा एक साथ नियम मे बधे कार्यरत रहते हैं । एक साथ जुते वृषभों के तुल्य प्राण भी देह में एक साथ लगे बलवान होकर धारक देह अगो को पुष्ट करते हैं ॥६॥

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।

दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥

पदार्थः --(दश-अवनिभ्य) दश गतियो या अगुलियों के तुल्य दश अगयुक्त (दश-कक्ष्येभ्यो) दश प्रकार के कर्मों का प्रकाशक (दश योक्त्रेभ्य) दश प्रकार की योजनाओ वाले, (दश-अभीशुभ्य) दश प्रकार के नाना कर्मों व पदार्थों को भोगने या वश मे करने वाले (अजरेभ्य) शरीर के सचालक (वहद्भ्यः) देह प्राणों के (दश धुर) दश प्रकार के धारक बलो का (अर्चत) वर्णन करो उनका ज्ञान करो । वे दशों इस देह मे (युक्ता) रथ मे अश्व के जैसे हैं ॥७॥

भावार्थः --इस देह मे रथ मे अश्व के तुल्य हो प्राण नियुक्त रहते हैं । उनके दश प्रकार के धारक बलो का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥७॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।

त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥

पदार्थ --(ते) वे (अद्रय) विभिन्न भोगो के भोक्ता, (दशयन्त्रास) दश प्रकार के यन्त्र अर्थात् उपकरणों के स्वामी, (आशव) वेग से कार्य करते हैं । (तेषाम्) उनका (हर्यतम्) अति कान्तियुक्त, (आधानम्) आश्रय आत्मा (परि एति) सर्वत्र जाता है, (ते उ) और वे (प्रथमस्य) श्रेष्ठतम (सुतस्य) सबके प्रेरक (सोम्यस्य) वीर्यवान् (अन्धस) प्राणधारक आत्मा के भी (पीयूषम्) रस को (भेजिरे) सेवते हैं ॥८॥

भावार्थ. वे विभिन्न भोगो के भोगने वाले दश प्रकार के यत्रो के स्वामी वेग से कार्य करते है । उनका अति कान्तियुक्त आश्रय आत्मा सर्वत्र जाता है । और वे सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रेरक वीर्यवान प्राणधारक आत्मा के रस का भी सेवन करते हैं ॥८॥

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।

तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥९॥

पदार्थ.--(ते सोम-अद) वे प्रेरक आत्मा की शक्ति को पाने वाले (इन्द्रस्य हरी निंसते) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के ज्ञान और कर्म दोनो रूपो को पाते हैं । वे (गवि) भूमि पर या वाणी द्वारा (अंशम्) उस व्यापक प्रभु के प्रकाश को, (दुहन्त) गौ में से गौ दुग्ध के तुल्य पाते हुए, (गवि अधि आसते) उस वाणी मे ही आश्रय लेते हैं । (सोम्यं मधु) और ईश्वरीय ज्ञान रस को (पपिवान्) पीता हुआ (इन्द्र) आत्मदर्शी पुरुष (वर्धते) वृद्धि पाता है, (प्रथते) बल व सामर्थ्य मे बढ़ता है और (वृषायते) सर्व-सुखकारी बनता है ॥९॥

भावार्थ --प्रेरक आत्मा की शक्ति को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यवान आत्मा के ज्ञान एवम कर्म दोनों रूपो को प्राप्त करते है । वे भूमि पर या वाणी द्वारा उस व्यापक प्रभु के प्रकाश को गौ दुग्ध के समान पाते हुए उस वाणी में ही आश्रय रहते हैं, और ईश्वरीय ज्ञान रस को पान करता हुआ, आत्मदर्शी व्यक्ति वृद्धि पाता है ॥९॥

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।

रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१०॥३०॥

पदार्थ.—(व अंशु) आप लोगो मे आत्मा (वृषा) सकल सुख देने वाला है । (न किल रिषाथन) आप लोगो का कभी नाश नहीं हो सकता (सदम् इत्) सदैव ही (इळावन्त) अन्न, वाणी, कर्मफलो व भूमि आदि से युक्त और (आशिताः) भोजन द्वारा तृप्त किए जाते (स्थन) रहो । हे (ग्रावाण.) विद्वान् उपदेष्टाओ ! (यस्य अध्वरम्) जिसके हिंसारहित यज्ञ का (अजुषध्वम्) तुम सेवन करते हो, (रैवत्या इव) वह धनवानो के तुल्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (चारव) उत्तम आचारयुक्त (स्थन) होकर रहे ॥१०॥

भावार्थ—आत्मा ही समस्त सुखो का वर्धक है । हे विद्वान् उपदेशको, जिससे हिंसारहित यज्ञ का तुम सेवन करते हो वह धनिक के समान महान सामर्थ्य से उत्तम आचरण युक्त होकर रहे ॥१०॥

इति त्रिंशो वर्ग ॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।

अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११॥

पदार्थ —हे विद्वानो हे वीर जनो ! आप लोग (तृदिला) दुःखो दुष्टों व सशयो के काटने वाले और (अतृदिलास) स्वयं कभी छिन्न-भिन्न न होने वाले बनो व आप लोग (अद्रय) आदरणीय (अश्रमणा) कभी न थकने वाले (अशृथिता·) सत्कार्य में शिथिल न होने वाले (अमृत्यवः) मृत्यु रहित, (अनातुरा) न घबराने वाले, (अजरा) जरारहित (अमविष्णव) सदैव गतिशील, (सुपीवस) नितान्त हृष्ट-पुष्ट, (अतृषिताः) तृष्णा लोभ रहित (अतृष्णज) निस्पृह, निर्मोही (स्थ) बनो ॥११॥

भावार्थ —विद्वान् दुखो व दुष्टो के हर्ता आदरणीय अश्रमण सत्यकार्य मे सदैव रत रहने वाले अमर एवम् अजर हो, सदैव हृष्ट-पुष्ट एवम् गतिशील तथा मोह से मुक्त रहें ॥११॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।

अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२॥

पदार्थ —हे विद्वान् व वीर जनो ! (वः पितर) आप लोगो के पालक दलपति (ध्रुवा एव) सदैव स्थिर, दृढ रहें और (युगे युगे) समय-समय पर (क्षेमकामास) सदनो के समान सदैव सबका कल्याण व रक्षा करने वाले होकर (युञ्जते) मनोयोग दे । वे (अजुर्यास) जरारहित, (हरिषाच) मनुष्यो का समवाय बनाने वाले, (हरिद्रव) अश्वो से वेग मे जाने मे समर्थ, (रवेण) गर्जन ध्वनि से (द्याम् पृथिवीम्) आकाश व पृथिवी मे (आ अशुश्रवु) अपने सन्देश सुनाने वाले हो ॥१२॥

भावार्थ—हे विद्वान् एवम् वीर जनो आपके दलपति भी सदैव सुदृढ सुस्थिर एवम् सबका कल्याण व रक्षण करने वाले हों । वे भी जरारहित मानवो को समवाय बनाने वाले द्रुतगामी, गर्जन ध्वनि से धरा आकाश मे अपने सदेश सुनाते रहे ॥१२॥

तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।

वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥१३॥

पदार्थ —वे (अद्रयः) आदरणीय (विमोचने) विविध सकटों से मोक्ष पाने का (यामन्) यम नियम पालनरूप सन्मार्ग मे (तत्-इत्) उसी प्रभु का (वदन्ति) उपदेश करें । वे उपदेश ध्वनियो स (धान्याकृत बीजम् इव वपन्तः) तथा धान का खेत काटने वालो के तुल्य वासनामय बीजो को छेदते हुए, (सोमं पृञ्चन्ति) प्रभु से स्नेह करें और (बप्सत) स्वय नाना कर्मफलो का भोग करते हुए (न मिनन्ति) कर्मसन्तति को नष्ट करें ॥१३॥

भावार्थः—आदरणीय जन विविध सकटो से मोक्ष प्राप्तिके निमित्त यम नियम पालनरूप सन्मार्ग का उपदेश दें । वे प्रभु के प्रति स्नेही हो ॥१३॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ॥

वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४॥३१॥

पदार्थ —(चायमाना) आदर पाते हुए (अद्रय) आदर योग्य जन, (अध्वरे अधि) अहिंसनीय (सुते अधि) ईश्वरोपासना कार्य मे (वाचम् अक्रत) स्तुति वाणी को उच्चारे । (वि वर्तन्ताम) स्तन्यपायी बालक जैसे माता की गोद मे क्रीडा करते है वैसे ही वे प्रभु की गोद में रहे । हे विद्वान् जन ! तू (सुषुवुष) जगत् उत्पादक और सचालक परमात्मा की (मनीषां वि षु मुञ्च) स्तुति को विशेष प्रकार कर ॥१४॥

भावार्थ —आदरणीय जन ईश्वरीय कार्य मे स्तुति वाणी को उच्चारें । जैसे माता की गोदी मे बालक क्रीडा करता है वैसे ही प्रभु की गोद में क्रीडा करे । विद्वान् जगत् उत्पादक व सचालक प्रभु की स्तुति का गान करें ॥१४॥

इत्येकत्रिंशो वर्ग ॥

इति चतुर्थोऽध्याय ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[९५]

ऋषि —१, ३, ६, ८—१०, १२, १४, १७ पुरूरवा ऐळ । २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६, १८, उर्वशी ॥ देवता—१, ३, ६, ८—१०, १२, १४, १७ उर्वशी । २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६, १८ पुरूरवा ऐळः छन्द —१, २, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, १३, १६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, १०, आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ६—८, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ९, ११, १४, १७, १८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।

न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१॥

पदार्थ —हे (हये) अश्व के तुल्य सर्वाङ्ग मे बलवति ! (जाये) हे पुत्रोत्पन्न करने मे समर्थ स्त्रीतुल्य अपने नायक को अपने बल पराक्रम से प्रसिद्ध करने वाली वा (जाये) जय दिलाने वाली ! हे (घोरे) दुष्कर सग्राम करने वाली ! तू (मनसा) मन को दृढ करके (तिष्ठ) स्थिर हो । सेना व सेनापति हम दोनों (वचांसि) परस्पर प्रतिज्ञा-वचनो को (कृणवावहै नु) करें । क्या (नौ) हम दोनो की (एते) ये (अनु-दितास मन्त्रा) आपस की मन्त्रणाए (परतरे चन अहनि) भविष्य के लिए (मय चन न करन्) सुख प्रदान नही कर सकतीं ? अपितु करती ही है ॥१॥

भावार्थ - सेना एव सेनापति मे परस्पर प्रतिज्ञा वचनो की स्थिति दोनो का ही जयी बनाती है और दुर्धर्ष सग्राम में विजय दिलाती है । दोनों मे पारस्परिक सहमति होना ही विजय की प्रदाता है ॥१॥

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।

पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥२॥

पदार्थः—(उषसाम् अग्रिया इव) उषा जिस भांति सूर्य के आगे चलती है, इसी प्रकार सेना सबसे आगे चलने वाली बनकर (प्र अक्रमिषम्) तेरे आगे चलू तो (एता वाचा) इस मन्त्रणा वाणी की क्या विशेष आवश्यकता है । हे (पुरूरव) अनेक सैन्यदल को आज्ञा देने वाले सेनापति ! (अहम् वात इव) मैं प्रबल वायु के तुल्य (दुरापना अस्मि) शत्रु के वश मे आने वाली नही । तू मुझ द्वारा विजय करके (पुन अस्तम परा इहि) अनन्तर घर वापस जाना ॥२॥

भावार्थ—उषा जिस भांति सूर्य के आगे चलती है, उसी प्रकार विजय की कामनायुक्त सेना अग्रगामी हो तो सेनापति को शत्रु को वश मे करने की दृष्टि से आश्वस्त कर सकती है और विजय का विश्वास दिला सकती है ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।

अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥

पदार्थ —(इषुधे इषु न) तरकस के तीर तुल्य सेनापति (श्रिये) राज्यलक्ष्मी हेतु (असनः) शत्रु दल पर आ गिरे । वह (गो-सा) भूमि का भोक्ता वा दाता और (शतसा न) सैकड़ों सुखो का दाता तथा (रंहि) वेगवान् हो । (अवीरे क्रतौ) वीरो रहित युद्धकार्यों मे (न दविद्युतत्) वह नही चमकता और (उरा न) महान् अन्तरिक्ष के समान (उरा) विस्तृत रणाङ्गण मे (धुनय) शत्रुओ को कपा देने वाले वीर सेनाजन (मायु चितयन्त) वायुओं के तुल्य गर्जना करें और सेनाए भी सेनापति के शब्द को समझें ॥३॥

भावार्थ—सैनिक अगर वीर हो, सेनापति की आज्ञा का पालन करने वाले हो तभी कुशल सेनापति को भी शत्रु पर विजय प्राप्ति का गौरव प्राप्त हो पाता है ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।

अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥

पदार्थ.—(उष) शत्रु को दमन करने वाली सेना (यदि वयः वष्टि) जो बल, अन्न व जीवन चाहती है (सा) वह (श्वशुराय—स्वशूराय) अपने शूरवीर नायक हेतु ऐश्वर्य को धारती हुई (अन्तिगृहात्) समीप के मित्र-राज्य से (अस्त) शत्रु को पछाडने वाले बल को (ननक्षे) पाए (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर वह (दिवा नक्त) दिन-रात्रि (वैतसेन) प्रबल के आक्रमण को देखकर विनय से झुकने और दुर्बल को देख कर फिर सिर उठा लेने वाले नायक से (श्नथिता) वशीभूत हो (चाकन्) नाना सुकामनाए करे ॥४॥

भावार्थ—शत्रु को समाप्त करने वाली सेना, जो बल एव अन्न चाहती है, वही अपने नायक ऐश्वर्य को धारण किए हुए समीप के मित्र राज्य शत्रु को उखाड़ने वाला बल भी पाती है। उसके पराक्रम के समक्ष कोई सिर नहीं उठा पाता। उसका सेनापति कुशल होना चाहिए ॥४॥

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।

पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥५। १॥

पदार्थ—हे सेनापति ! तू (मां) मुझे (अह्नः) न नाश होने वाले (वैतसेन) ज्ञानमय प्रकाश द्वारा (त्रिः श्नथयः) तीनों प्रकार से बन्धन से मुक्त कर। (उत) और (मे अव्यत्यै) मेरे अनुकूल आचरण हेतु मेरा (पृणासि) पालन-पोषण कर। हे (पुरूरवः) अनेकों को आदेश देने वाले शासक ! मैं (ते केतम् अनु आयम्) तेरी शरण प्राप्त करूं। हे (वीरः) शूरवीर तू ! (मे तन्वः) मेरे विस्तृत राष्ट्र का (तत् राजा आसीः) शासक हो ॥५॥१॥

भावार्थ—राष्ट्र का शासक ऐसा शूरवीर होना चाहिए कि जो सभी को अनुकूल आचरण कराने के लिए सुयोजित सेना रख सके व प्रजा को ज्ञान का प्रकाश भी दे सके ॥५॥१॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।

ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥

पदार्थ—(या) जो सेना (सु-जूर्णि) उत्तम वेगयुक्त, (श्रेणि) उत्तम दलों व पंक्तियों में बद्ध, (सुम्ने आपि) सुख निमित्त नायक के बन्धु के समान (ह्रदे चक्षुः) तालाब में प्रतिबिम्बित चक्षुवत् समान अनुराग में युक्त हो (चरण्यु) नायक सहित विचरण करने वाली है, (ता) वे अनेक सेनाएं (अञ्जय) सुव्यक्त भाव युक्त (अरुणय) तेजस्विनी (धेनव न) दुधारु गौओं के समान (श्रिये सस्रुः) राजा की शोभा व समृद्धि की वृद्धि के हेतु (सस्रुः) आगे बढ़ें और (अनवन्त) प्रेम से राजा की वन्दना करें ॥६॥

भावार्थ—जो सेना उत्तम वेग युक्त है पंक्तियों में बद्ध रहती है तथा नायक के बन्धु के तुल्य अनुरागयुक्त रहती है वही तेजस्विनी दुधारू गाय के तुल्य राजा की समृद्धि और शोभा को बढ़ाने के लिए प्रेम से राजा की स्तुति करती है ॥६॥

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।

महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७॥

पदार्थ—हे (पुरूरव) महान् कीर्ति-सम्पन्न ! (यत्) जब (त्वा) तुझे (देवा) विजयोत्सुक वीरजन (दस्यु हत्याय) शत्रुओं को मिटाने के निमित्त (अवर्धयन्) बढ़ाएं, तब (अस्मिन् जायमाने) इसके प्रकट होने पर (ग्ना सम अवर्धयन्) प्रभाव उसके आश्रय में (सम आसत) मिल कर रहें (उत) और (उत) उन (स्वगूर्ताः) स्वयं उद्यमशील (नद्य) समृद्ध प्रजाएं बढ़ाए ॥७॥

भावार्थ—जिसकी सेना विजयोत्सुक है और प्रजा को अभय प्रदान करती है वही महान् शक्तिमान शासक बनाकर प्रजा को सुख-समृद्धि प्रदान कर पाता है ॥७॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।

अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८॥

पदार्थ—(यत्) जब (सचा) एक साथ (जहतीषु) शस्त्रादि छोड़ती चली जाती हुई (आसु अमानुषीषु) इन सामान्य व्यक्तियों से भिन्न सेनाओं पर (मानुष भुज्यु) मननशील रक्षक सेनापति मैं (अत्कं निषेवे) अपने अधिकार का उपयोग करूं, तब वे (तरसन्ती न) मृगी के तुल्य (मत् अप अत्रसन्) मुझसे भयभीत हो जावें (रथ स्पृश अश्वाः न) रथ में लगे घोड़ों के समान भय से शासित रहें ॥८॥

भावार्थ—सेनापति का सेना पर उसी प्रकार प्रभाव व नियन्त्रण होना चाहिए जैसे कि रथ में लगे अश्वों पर सारथी का नियन्त्रण रहता है ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।

ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥९॥

पदार्थ—(यत्) जब (आसु अमृतासु) अनश्वर प्रजाओं व सेनाओं पर (निस्पृक् मर्त) खूब स्नेहवान, शत्रुमारक बलवान् सेनापति (क्षोणीभि) उत्तम वाणियों (न) और (क्रतुभि) कर्मों से (पृङ्क्ते) सम्पर्क करता स्नेह बढ़ाता है, (ता) तब वे (आतय न) गृहपत्नियों के समान (स्वा तन्व शुम्भत) अपने-अपने देहों को अलंकृत करें और (दन्दशाना) दांतों से लगाम काटते हुए (अश्वास न) घोड़ों के समान (क्रीळय) नाना प्रकार की क्रीड़ा, विनोद कर और सन्मार्ग पर चल ॥९॥

भावार्थ—जब प्रजा व सेना पर महाधन, शत्रुमर्दन करने वाले बलशाली सेनापति का अपनी वाणी व कर्म से नियन्त्रण रहता है तो प्रजाजन भी नाना प्रकार का सुख पाते व सन्मार्ग पर चलते हैं ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।

जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥२॥

पदार्थ—(या) जो सेना (अप्या विद्युत् न) जल से बनी विद्युत् के समान (पतन्ती) वेगसहित गतिमान् और (मे) मेरे (काम्यानि) कामना योग्य पदार्थों को (भरन्ती) धारण कर (दविद्योत्) चमकती है, उसमें (अपः) कर्म-कुशल एवं (नर्यः) मानव हितकारी (सु-जात) सेनानायक के रूप में प्रकटता है। (उर्वशी) अनेकों को वश में करने वाली सेना राष्ट्र को (आयुः दीर्घम् तिरत) दीर्घ जीवन देती है ॥१०॥२॥

भावार्थ—विद्युत् समान वेगवान् सेना को कर्मकुशल व मानव हितकारी सेना-नायक मिलता है तो राष्ट्र दीर्घ जीवन पाता है ॥१०॥२॥

इति द्वितीयो वर्गः ॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।

अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

पदार्थ—(इत्था) हे सेनापति ! इस भांति तू (गोपीथ्याय हि जज्ञिषे) भूमि की रक्षा में समर्थ हो। हे (पुरु-रवा) अनेकों के शासक ! (तत् ओज दधाथ) मुझ प्रजा के पराक्रम को तू धार। मैं (सस्मिन् अहनि) सभी दिन (विदुषी) ज्ञानवान होकर (त्वा अशासम्) तेरी आज्ञा का पालन करती हूं। परन्तु तू (मे न अशृणो.) मेरा वचन नहीं सुनता। (अभुक्) पालन में समर्थ न होकर (किं वदासि) तू क्या कह सकता है ? अतः तू मेरा वचन-कथन सुन और पालक होकर प्रजा पर नियन्त्रण कर ॥११॥

भावार्थ—सेनापति को प्रजा की आवश्यकताओं को भी जानना चाहिए तभी वह प्रजा के स्नेह व विश्वास को प्राप्त कर कुशल शासक व प्रजा पालक के रूप में उभर सकता है ॥११॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।

को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

पदार्थः—(सूनु) नव पुत्र (जात) जन्म लेकर (पितर कदा इच्छात्) पिता को चाहेगा और (वि-जानन्) पहिचानने वाला बनकर (चक्रन्) रोता हुआ (अश्रु वर्तयत) अश्रु [illegible] (क) ऐसा कौन पुत्र है जो (समनसा दम्पती) समान चित्त वाले पति-पत्नी को (वि यूयोत) अलग करता है ? और (श्वशुरेषु दीदयत्) श्वशुर-गृह में चमकता है अर्थात् पुत्र माता पिता को पृथक् नहीं करता अपितु उन्हें और भी दृढ़ प्रेम-युक्त करता है। इसी भांति जो सेनानायक (श्वशुरेषु) तीव्रगामी अश्वों और सेना में चमकता है वह (जात) प्रसिद्ध हो (सूनु) सेना का प्रेरक होता है और (पितर इच्छात्) उस पालक को चाहता है और वह विशेष ज्ञानी बनकर (अश्रु चक्र वर्तयन्) व्यापक राज्यचक्र अथवा सैन्यचक्र चलाता है। और ऐसा है जो [illegible] मिले हुए (दम्पती) पति-पत्नी के समान राजा प्रजा को वियुक्त कर दे [illegible] ॥१२॥

भावार्थ—जैसे [illegible] सत्पुत्र माता पिता को पृथक् नहीं करता, उसी प्रकार जो सेनानायक ज्ञान सम्पन्न है तथा राज्य चक्र व सैन्यचक्र को कुशलता से चलाता है वह भी राजा और प्रजा में कोई विभेद की सृष्टि नहीं कर सकता ॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।

प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

पदार्थ—प्रजा अथवा सेना प्रयाण को उद्यत सेनापति वा राजा से कहती है—हे (मूर) शत्रुनाशक ! (अह ते प्रति ब्रवाणि) मैं तुझे प्रतिक्षण कहती हूं कि (चक्रन् न) रोते हुए बालक के तुल्य (अश्रु वर्तयते) आंसू बहाती है और (क्रन्दत्) रोती हुई (शिवायै आध्ये) कल्याण कामना करती है, (यत् ते अस्मे) जो तेरा हम में हित है मैं प्रजा (तत् ते प्रहिनव) उसे मैं तेरे लिए देती हूं। तू (अस्तं परा इहि) गृह पर पुनः वापस आना, यदि नहीं आयेगा तो तू (मा नहि आप) मुझ प्रजा को फिर प्राप्त नहीं करेगा ॥१३॥

भावार्थ—शत्रुनाशक सेनापति की प्रजाजन भी कामना करते हैं, क्योंकि उन्हें उसी से अपने हित सम्पादन का विश्वास रहता है, उसे भी प्रजा की भावनाओं का आदर करना चाहिए ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।

अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

पदार्थ—यदि (सु देव) उत्तम विजीगिषु (अनावृत) अरक्षित हो (परावत परमां गन्तवै अद्य प्रपतेत्) सुदूर परदेश को प्रस्थान करे, (अध) और (निर्ऋते उपस्थे) शत्रुसेना के समीप असावधान होकर (शयीत) प्रमाद करे तब (रभसास) बलवान् (वृकाः) भेड़ियों के समान चोर, डाकू आदि शत्रुजन (एनं अद्यु) उसे नष्ट कर देते हैं ॥१४॥

भावार्थ—जो सेनापति शत्रु सेना के समक्ष असावधानी व प्रमाद बरतता है वह प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ रहता है और शत्रुओं द्वारा किए जाने वाले विनाश के लिए उत्तरदायी बनता है ॥१४॥

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥३॥

पदार्थ—हे (पुरु रव) अनेकों के शासक ! तू (मा मृथा) मृत्यु को न पा, (मा पप्त) तेरा पतन न हो। (अशिवास. वृकास) अकल्याणकारी स्वभाव के व्यक्ति (मा उ क्षन्) तुझे न खावें। तू स्मरण रख (स्त्रैणानि सख्यानि) कि स्त्री आदि भोग्य पदार्थों के उद्देश्य से किए गए मैत्री आदि कार्य (न वै सन्ति) वास्तविक नहीं होते, (एता) वे तो (सालावृकाणां) वनैले कुत्तों अथवा भेड़ियों के (हृदयानि) हृदयों के तुल्य छल व क्रूरतादि से पूर्ण होते हैं ॥१५॥३॥

भावार्थ—शासक को स्मरण रखना चाहिए कि भोग्य पदार्थों के उद्देश्य से किए गए मैत्री कार्य कभी वास्तविक नहीं होते अपितु वे भेड़ियों के हृदयों के तुल्य छल व क्रूरता से ही परिपूरित होते हैं ॥१५॥३॥

इति तृतीयो वर्गः ॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।

घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

पदार्थ—(यत्) जो मैं सेना (वि रूपा) विभिन्न रूपों वाली, नाना व्यूहों से नाना प्रकार की (अचरम्) गति करती हूं, (मर्त्येषु) शत्रुओं का हनन करने वाले वीरों में (रात्री शरद) शरद् के चतुर्मासों के सब दिनों में (अवसम्) बसती हूं और (अहन) अहिंसनीय, (घृतस्य) तेजस्वी वीर नायक के (सकृत्) एक साथ उद्योग करने वाले (स्तोक) शत्रुहिंसक बल को (आश्नाम्) समाप्त कर देती हूं, (तात् एव) उसी से (इदम्) इस भांति मैं (तातृपाणा) शत्रु की निरन्तर हिंसा करती हुई (चरामि) विचरण करती हूं ॥१६॥

भावार्थ—विभिन्न प्रकार की व्यूह रचना में पारंगत सेना ही तेजस्वी वीर नायक के नेतृत्व में शत्रु के बल को तोड़ती है और उसे परास्त करने में सफल हो सकती है ॥१६॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।

उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

पदार्थ—मैं (वसिष्ठ) सब प्रजाजनों में श्रेष्ठ बनकर, (अन्तरिक्ष प्राम्) अन्तरिक्ष अर्थात् विजिगीषु और शत्रु-भूमियों के बीच के भाग को पूर्ण करने वाली, (रजस विमानीम्) राष्ट्र की विविध प्रकार से निर्मात्री, (उर्वशीं) बड़े-बड़े राष्ट्रों को वश करने में समर्थ सेना को मैं (उप शिक्षामि) वश में करता हूं। हे सेने ! (सु कृतस्य) उत्तम रीति से किए कर्म का फल, पुरस्कार आदि का (राति) देने वाला स्वामी, (त्वा उप तिष्ठात्) तुझे मिले। तू (नि वर्तस्व) नियम में बद्ध रह कार्य कर, अन्यथा (मे हृदय तप्यते) मेरा हृदय सन्ताप अनुताप अनुभव पाता है ॥१७॥

भावार्थ—राष्ट्र की विविध प्रकार से निर्मात्री बड़े-बड़े राष्ट्रों को वश में करने वाली समर्थ सेना ही प्रजाजनों का विश्वास प्राप्त कर सकती है। उसे यदि उत्तम रीति से किए गए कर्म का पारितोषिक देने वाला स्वामी मिले तो ही प्रजा को वास्तविक सन्तोष की अनुभूति हो सकती है ॥१७॥

इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।

प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥४॥

पदार्थ—हे (ऐळ) भूमि के स्वामिन् ! (यथा ईम्) जिस प्रकार इस प्रजा का (एतत्) वह परम (मृत्यु-बन्धु भवसि) मृत्यु के तुल्य संहारक, दण्ड-कर्त्ता और बन्धुवत् प्रिय भी तू है, अथवा तू ही (मृत्यु-बन्धु भवसि) मृत्यु के अवसर पर सबका बन्धुवत् आश्वासक है, (इति) उसी प्रकार (इमे देवाः त्वा आहु) ये सब विद्वान् तेरे सम्बन्ध में तुझे बतलाते हैं। (ते प्रजा) तेरी प्रजा (देवान्) विद्वानों का (हविषा यजाति) अन्नादि से सम्मान करे, (त्वम् अपि स्वर्गे) तू भी सुख-समृद्धि युक्त राज्य में (मादयासे) आनन्द प्राप्त कर ॥१८॥४॥

भावार्थ—जिस राजा के द्वारा विद्वानों का आदर किया जाता है, उन्हें योग्य सम्मान मिलता है, उसी के राज्य में प्रजा सुख-समृद्धि व आनन्द की अनुभूति करती है ॥१८॥४॥

इति चतुर्थो वर्गः ।

---

[९६]

ऋषिर्वरु सर्वहरिर्वैन्द्रः ॥ देवता—हरिस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ७, ८ जगती । २—४, ९, १० जगती । ५ आर्ची स्वराट् जगती । ६ विराड् जगती । ११ आर्ची भुरिग्जगती । १२, १३ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।

घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥

पदार्थ—(महे विदथे) विपुल ज्ञानमय यज्ञ में हे परमात्मन् ! (ते हरी) दुःख व अज्ञान के हर्त्ता तेरे दोनों गुणों से युक्त रूपों की मैं (प्र शंसिषम्) वन्दना करता हूं। (वनुषः ते) भजन योग्य तेरे (हर्यतम् मदम् प्रशंसिषम्) चाहने योग्य आनन्द सुख की प्रशंसा करता हूं। (हरिभिः घृत न) जो प्रभु (हरिभि) ज्ञानी विद्वानों द्वारा (चारु सेचते) सेवनीय कर्म का उपदेश और जो (हरिभि) मनोहर उपायों द्वारा (चारुः) योग्य कर्मफल (सेचते) देता है, ऐसे (त्वा) तुझे (हरि-वर्पसम्) रमणीय रूप वाले, (त्वा) तुझे (गिर. आविशन्तु) वाणियां वा स्तुति करने वाले तुझ में तन्मय हों। १॥

भावार्थ—परमात्मा दुःख व अज्ञान को हरने वाला है। वही स्तुत्य है। उसी के भजनीय आनन्द सुख की साधक जन प्रशंसा करते हैं। उसी परमात्मा की ज्ञानी विद्वान् स्तुति करते हैं। उसी के सेवनीय योग्य कर्म का उपदेशक उपदेश प्रदान करते हैं। ऐसे प्रभु की तन्मयता से स्तुति करना ही योग्य है ॥१॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।

आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (योनिम हरिम अभि) सर्वोत्पादक परमात्मा की (सम अभिस्वरन्) मिलकर वन्दना करते हैं, वे (हरी हिन्वन्त) ज्ञान तथा कर्म दोनों के इन्द्रियगणों को प्रेरित करते हुए, (यथा दिव्य सद. तथा सम् अस्वरन्) दिव्य भवन के तुल्य शरण-योग्य रूप से उसकी वन्दना करते हैं। (धेनवः) वाणियां (य पृणन्ति) जिसे पूर्ण करती हैं उस (इन्द्राय) प्रभु के (हरिवन्तं शूषम) दुःख हरने वाले गुणों वाले बल की (अर्चत) हे विद्वानो ! आप वन्दना करो ॥२॥

भावार्थ—विद्वानों को परमात्मा के दुःखहारक गुणों और बल की वन्दना करनी चाहिए वही ज्ञान और कर्म दोनों का प्रेरक है ॥२॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।

द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

पदार्थ—(स अस्य वज्र) वह इसका शक्ति है (य) जो कि (आयसः हरित) स्वर्ण समान रूप वाला है। वह स्वयं (नि काम.) अति कान्तियुक्त, (हरि) सब दुःखों वा अज्ञानों के अन्धकार का नाशक है, उसकी (गभस्त्यो) बाहुओं का बल सूर्य व चन्द्र दोनों का (हरि) सञ्चालक है। वह (द्युम्नी) ऐश्वर्यवान्, (सु-शिप्र) उत्तम बल युक्त, (हरिमन्यु-सायक.) दुष्टों का संहारक क्रोध रूप शस्त्र युक्त है। उस (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा में (हरिता रूपा निमिमिक्षिरे) कमनीय मनोहर अनेक रूप तथा गुण होते हैं ॥३॥

भावार्थ—प्रभु ही स्वर्ण के तुल्य तेजस्वी है। वही सबके दुःखों व अज्ञानों के अन्धकार का नाशक है। वही सूर्य चन्द्र का सञ्चालक है दुष्टों का अपने क्रोध से वही संहार करता है। यह विभिन्न गुणों का आगार है ॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।

तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४॥

पदार्थ—(दिवि केतु न) आकाश में सूर्य के तुल्य वह (हर्यत.) कमनीय प्रभु (अधि धायि) सर्वोपरि है। उसका (वज्र) बल (विव्यचत्) विविध प्रकार से जगत को व्याप्त है। (हरित. न) उसके प्रेरित सूर्यादि वेग से गतिमान हैं। (य) जो (आयस) 'अयप' रूप ज्ञानमय (हरि-शिप्र) दुःखहारी रूप वाला हो (अहिं तुदत) सूर्य को भी चलाता है, (अहिम) वह (हरिम्-भर) सभी जीवों का पालक-पोषक (सहस्र-शोका अभवन्) सहस्रों दीप्तियों का स्वामी है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा ही आकाश में सूर्य के तुल्य सर्वोपरि स्थापित है। उसी का प्रताप जगत् में व्याप्त है। उसी की शक्ति से सूर्यादि गतिमान हैं। वही सकल जीवों का पालक-पोषक वह सहस्रों दीप्तियों से सम्पन्न है ॥४॥

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।

त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (हरि केश) तेजोमय किरणों से युक्त ! तू (पूर्वेभि यज्वभि) पूर्व से देव-उपासना करने वाले यज्ञशील जनों से (उपस्तुतः) स्तुत्य तथा (त्वम् त्वम्) तू ही (अहर्यथा) सब दुःखों का निवारक है। (त्वम् हर्यसि) तू सबको चाहता है, (तव विश्वम् उक्थ्यम्) तेरी ही सकल महिमा है। हे (हरि-जात) सभी लोकों तथा किरणों के उत्पादक ! (तव) तेरा ही (विश्व) समस्त (उक्थ्यतम्) प्रशंसनीय, (असामि) पूर्ण, (हर्यतम् राध) कान्ति-युक्त मनोहर धन व आराधना करने योग्य रूप है ॥५॥५॥

भावार्थ—परमात्मा ही यज्ञशील जनों से स्तुत्य है वही सब दुःखों का निवारक है। वही सकल लोकों का उत्पादक है। उसी की आराधना करनी योग्य है ॥५॥५॥

इति पञ्चमो वर्गः ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।

पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६॥

पदार्थ—(ता) वे अनेक (हर्यता हरी) अग्रगामी, नर-नारी, (मदे) हर्षदायक (रथ) रमणीय सुख के लिए (वज्रिणम) सर्वशक्तिमान्, (मन्दिनम) आनन्दमय, (स्तोम्य) स्तुत्य (इन्द्र) परमेश्वर को (वहत) अपने अन्तःकरण में धारते हैं। (सोम हरयः) उत्पन्न हुए मनुष्य (अस्मै हर्यते) इस कामना-योग्य (इन्द्राय) सर्वैश्वर्यवान परमात्मा की ही (सवनानि) उपासनाओं वा ऐश्वर्यों को (दधन्विरे) धारते हैं ॥६॥

भावार्थ—सकल उन्नति के इच्छुक जन उस कामना योग्य सर्वैश्वर्यमान प्रभु की ही उपासना करते हैं तथा उसकी कृपा से ऐश्वर्य पाते हैं ॥६॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७॥

पदार्थ—(हरय) मानव (कामाय) कामना योग्य प्रभु को प्राप्त करने हेतु (अर) अत्यधिक स्वयं को (दधन्विरे) धारण कर रहे हैं और (हरय) वे व्यक्ति (स्थिराय) नित्य पुरुष को पाने हेतु (तुरा हरी) वेगवान् इन्द्रियों को (हिन्वन) प्रेरित करते हैं। (य) जिसको (अर्वद्भि हरिभि) अग्रगामी जन (जोषम् ईयते) प्रेमपूर्वक पाते हैं, (स) वह प्रभु (अस्य) इस जीव के (हरिवन्तम् कामम्) हरणशील इन्द्रियों से युक्त कमनीय आत्मा की (आनशे) प्रत्येक कामना को पूरा करता है ॥७॥

भावार्थ—प्रभु ही इस जीव के हरणशील इन्द्रियों से युक्त कमनीय आत्मा मे व्याप्त है, वही उसकी प्रत्येक कामना को पूर्ण करता है ॥७॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥

पदार्थः—(हरि-श्मशारु) किरणों को श्मश्रु के समान धारने वाला और (हरि-केश.) किरणों को केशों के तुल्य धारने वाला तेजोमय, (आयस) सुवर्ण के बने पदार्थ के जैसा कान्तिमान्, (य·) जो (हरिपाः) सब मनुष्यों व जीवों का पालक, (तुरः पेये) अति शीघ्र पालन करने के कार्य मे (अवर्धत) सबसे महत् है, (य अर्वद्भि हरिभि) जो उन्नतिशील मनुष्यों द्वारा (वाजिनी-वसु) अन्न-ऐश्वर्यादि को उत्पादन करने वाली पृथिवीरूप धन का स्वामी है वह प्रभु (हरी) स्त्री-पुरुष दोनों को (विश्वा दुरिता) समस्त दुःखों व दुष्टाचरणों से (अति पारिषत्) मुक्त करे ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा ही मनुष्यों और जीवों का पालक है। वही पृथिवी रूपी धन का भी स्वामी है। सकल दुःखों व दुराचरणों से वही मनुष्य को दूर रख सकता है ॥८॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९॥

पदार्थः—(यस्य) जिसके शासन मे (स्रुवा इव) यज्ञ मे दो स्रुवों के तुल्य (हरिणी) दीप्तियुक्त सूर्य व चन्द्र (वि पेततु) विशेष रूप से गतिमान् हैं और जिसकी (हरिणी) आकाश व पृथिवी दोनों (शिप्रे) दो दाढ़ों के तुल्य (वाजाय) अन्न-ऐश्वर्य, जल आदि वा बल कार्य के लिए (दविध्वत) चल रही हैं और (यत् कृते) जिसके रचे (चमसे) कर्मफल भोगने योग्य इस जगत् में (मदस्य) अति हर्ष-सुखदायक, (हर्यतस्य) अति कान्तियुक्त, (अन्धस) प्राण धारण कराने वाले के रस को (पीत्वा) पान कर आत्मा (हरी प्र मर्मृजत्) अपने इन्द्रियों को पावन कर लेता है, वह प्रभु ही है ॥९॥

भावार्थ—जिसके शासन मे यज्ञ मे दो स्रुवों के समान दीप्तियुक्त सूर्य व चन्द्र विशेष रूप से गतिमान् हैं और जिसकी दो दाढ़ों के समान धरती और आकाश अन्न, जल आदि ऐश्वर्य के लिए सक्रिय है और जिसके द्वारा रचे गए कर्मफल भोगने योग्य इस विश्व मे नितान्त हर्षदायक तथा कान्तियुक्त प्राण धारक के रस को पान कर आत्मा अपने इन्द्रियों को पावन करता है, वही परमात्मा है ॥९॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥६॥

पदार्थ—(उत) और (पस्त्यो) आकाश तथा भूमि का बना यह (सद्म) गृहतुल्य महान् भवन भी (हर्यतस्य स्म) उस कान्तिमान् परमात्मा का ही है। (अत्य वाजं न) अश्व जैसे संग्राम की ओर जाता है वैसे ही (हरिवान्) सकल लोकों का स्वामी इस गृह मे (अचिक्रदत्) व्याप्त है। वह (मही चित् धिषणा) सभी लोकों के धारक आकाश व भूमि दोनों को (ओजसा) बल तथा पराक्रम से संचालित करता है। वह (बृहत् वय आ दधिषे) महान् बलशाली है ॥१०॥६॥

भावार्थः—आकाश और भूमि का बना यह गृह-तुल्य महान भवन भी उस कान्तिमान् प्रभु का ही है। वही समस्त लोकों का स्वामी है, सर्वत्र व्याप्त है। वही आकाश व भूमि दोनों का अपने बल तथा पराक्रम से संचालन करने वाला महाबली है ॥१०॥६॥

इति षष्ठो वर्गः ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! तू (महित्वा) महान् सामर्थ्य द्वारा (रोदसी हर्यमाण.) आकाश व भूमि दोनों को आलोकित करता हुआ, (नव्यम्-नव्यम् मन्म हर्यसि) नया-नया मननीय ज्ञान प्रकटाता है। हे (असुर) प्राणों के दाता ! तू (हरये सूर्याय) सर्व लोकों के प्रेरक सूर्य और (गो) इस भूमि के लिए भी (पस्त्यम्) गृह के समान इस महान् आकाश को (आवि कृधि) प्रकटाता है ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा की महान् शक्ति से ही आकाश एव भूमि दोनों आलोकित हैं। वही नवीनतम मननीय ज्ञान को प्रकट करने द्वारा प्राणदाता, सर्वलोक प्रेरक और धरती-आकाश का रचियता है ॥११॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (जनानां) मानवों के मध्य मे (रथे) रस स्वरूप तथा रमणीय तेरे रूप मे (प्रयुज) उत्तम योग करने वाले अभ्यासी जन, (हरि शिप्र) सब मनुष्यों के प्रिय, (हर्यन्तम्) सबको चाहने वाले (त्वा आवहन्तु) तुझे सर्व प्रकार से धारें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (प्रतिभृतस्य मध्वः हर्यन्) प्रेमपूर्वक उपाहृत मधुर वचन की कामना करता हुआ तू, (सध-मादे) साथ मिलकर हर्ष आनन्द लाभ के समय (दश-ओणिम्) दश अंगों से युक्त (यज्ञं) यज्ञ का (पिब) पालन करे। (दशोणि यज्ञ) अथवा अंगुलियों से किये गये नमस्कार को स्वीकारे ॥१२॥

भावार्थः—सभी उत्तम योगाभ्यासी जन मानवों के मध्य रस-स्वरूप तथा रमणीय तेरे रूप को धारें। हे प्रभु ! तू दसों अंगुलियों द्वारा किए गए पूजन को स्वीकार करे ॥१२॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥७॥

पदार्थ—हे (हरिवः) सकल मनुष्यों, जीवों व लोकों के स्वामिन् ! तू (पूर्वेषां सुतानां) पूर्व उत्पन्न लोकों का भी (अपा) पालन करता रहा। (अथो) और (इदं सवनं) यह उत्पन्न भुवन भी (ते केवलम्) केवल एकमात्र तेरी ही विभूति है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मधुमन्त सोमम्) मधुर वचनों वाले जीव को पुत्र के समान (ममद्धि) आनन्दित कर। हे (वृषभ) बरसते मेघ के समान सुखों के वर्धक प्रभो ! तू (सत्रा) नित्य (जठरे) अपने भक्त को अपने गर्भ मे (आवृषस्व) सर्व प्रकार से सुरक्षित कर ॥१३॥७॥

भावार्थः—सकल, मानवों, जीवों एव लोकों के स्वामी तू पूर्व उत्पन्न लोक का भी पालक रहा है और यह उत्पन्न भुवन भी एकमात्र तेरी ही विभूति है। ऐ प्रभो तुम मधुर वचनों वाले जीव को पुत्रवत् हर्षित करो। तुम्ही सुख के वर्धक एव अपने भक्तों के रक्षक हो ॥१३॥७॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

---

[९७]

ऋषिः—१—२३ *भिषगाथर्वणः* ॥ देवता—*ओषधी स्तुति* ॥ छन्द—१, २, ४—७, ११, १७ *अनुष्टुप्* । ३, ९, १२, २२, २३ *निचृदनुष्टुप्* । ८, १०, १३—१६, १८—२१ *विराडनुष्टुप्* ॥ त्रयोविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥

पदार्थः—(या) जो (ओषधीः) ओषधियाँ (पूर्वाः) विभिन्न रूप, तथा जीवों को पालने मे समर्थ रस आदि से युक्त, (देवेभ्य.) मानव-हितार्थ (पुरा) पहिले ही (त्रि-युगम्) तीन ऋतुओं मे (जाता) उपजती है, उन (बभ्रूणाम्) पक्व हुई ओषधियों का मैं (मनै नु) अवश्य ज्ञान पाऊं और उनके (शत धामानि) सौ तेजों तथा (सप्त धामानि) सातों धारण करने योग्य सामर्थ्यों को (मनै) जानूं ॥१॥

भावार्थ—हे प्रभो ! अनेक रूप एव जीवों को पालने मे समर्थ रसादि पूर्ण ओषधियों का, जो कि तीनों ऋतुओं मे उपजती हैं, उनका ज्ञान मुझे अवश्य प्राप्त करा और उनके सौ तेजों एवं सातों धारक सामर्थ्यों का भी मुझे ज्ञान प्रदान कर ॥१॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥

पदार्थ—हे (अम्ब) माता के समान जीवों को पालने वाली रोगनाशक ओषधियो ! (व शत धामानि) तुम्हारे सैकड़ों जन्म, सैकड़ों वीर्य व तदनुरूप ही नाम हैं, (उत) और (व·) तुम्हारे (सहस्र रुहः) सहस्रों अंकुर वा पौधे हैं। (अध) और (यूयम) तुम सब (शत-क्रत्व) अनेक शक्तियों से युक्त हो। (मे इम) मेरे इस देह वा व्याधि-पीड़ित जन को (अगदं कृत) रोगों से मुक्त करो ॥२॥

भावार्थः—अनेक सामर्थ्यों से युक्त व व्याधियों को दूर करने वाली ओषधियों के द्वारा पीड़ित जनों या रोगियों को रोगमुक्त किया जाए ॥२॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥३॥

पदार्थः—हे (ओषधी) ओषधियो ! तुम (पुष्पवती) पुष्पवती (प्र-सू-वरी) उत्तम फलों से युक्त हो हरी-भरी रहो। (प्रति मोदध्वम्) तुम (अश्वाः इव स जित्वरी) अश्व-सेनाओं के समान एक साथ ही रोगरूप शत्रुओं पर विजय

पाने वाली, और (वीरुध) विविध प्रकार की रोग-पीडाओं की रोधक तथा (पारयिष्ण्वः) रोगी को कष्ट से छुडाने वाली हो ॥३॥

भावार्थ —पुष्पवती और उत्तम फलों वाली हरी-भरी औषधियां खूब उत्पन्न हो । जिससे कि विविध प्रकार के रोग व पीडाओं व कष्टों से पीडित जनों को उनके प्रयोग से स्वस्थ होने का अवसर मिलता रहे ॥३॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।

सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥

पदार्थः—हे (मातर) माता तुल्य हितकारिणी ओषधियो ! मैं (देवी उपब्रुवे) देवियों के तुल्य सुखदायक और रश्मियों के समान रोगनाशक रूप से तुम्हारा दूसरों को ज्ञान देता हूँ । हे (पुरुष) वैद्य मैं ! ओषधियों को पाने के लिये (अश्वं) अश्व, (गां) गौ, भूमि, (वास) वस्त्र और (आत्मानं) अपने आप को भी (तव) तेरे लिए (सनेयम्) देता हूँ ॥४॥

भावार्थः—औषधियां भी मातृतुल्य हितकारिणी एवं सुखदायक होती है । ये विभिन्न रोगों का नाश करती हैं । वैद्य से औषधि की प्राप्ति के लिये रोगी स्वयं को उसके अधीन करता है ॥४॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५॥८॥

पदार्थ—हे ओषधियो ! (वः नि-सदनम) तुम्हारा आश्रय (अश्वत्थे) तीव्रगामी वायु पर स्थित मेघ पर है । (वः वसतिः) तुम्हारा निवास का आच्छादन (पर्णे) पत्र समूह पर (कृता) है । तुम (गोभाजः इत् किल असथ) भूमि, सूर्य व रश्मियों का सेवन करने वाली हो , (यत्) जिससे तुम (पूरुषम् सनवथ) पुरुष देह का पोषण करती, उसे बल देती हो ॥५॥८॥

भावार्थ —भूमि, सूर्य एव रश्मियां औषधियों को उपजाने मे सहायक होती हैं एव ये औषधियां मनुष्य के देह का पोषण कर उसे बल देती हैं ॥५॥

इत्यष्टमो वर्गः ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।

विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥

पदार्थः—(राजानः समितौ इव) राजा जिस प्रकार सभा में शोभित होते हैं उसी भांति (यत्र ओषधयः सम् अग्मत) नाना ओषधियां जिनमें एकत्र होती हैं, (सः विप्र भिषक् उच्यते) वह विद्वान् जन चिकित्सक कहलाता है । वह (रक्ष-हा) पीडादायक (अमीव-चातनः) रोगों को हरता है ॥६॥

भावार्थ —जिस भांति राजा सभा मे शोभा पाता है, उसी भांति औषधि ज्ञान मे पारंगत चिकित्सक भी आदर पाता है, क्योंकि वह भी राजा के समान व्यक्ति की रोगजनित पीडा को हरता है ॥६॥

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।

आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥

पदार्थ —हे वैद्य ! तू (अश्व-वतीम्) अश्व के समान गन्ध वाली, और (सोम-वतीम्) सोम के समान रस-वीर्य विपाकयुक्त, (ऊर्जयन्तीम्) बल उत्पादक और (उत्-ओजसम्) उत्तम पराक्रम बढ़ाने वाली ओषधि को और (सर्वा ओषधी) अन्यान्य सभी औषधियों को भी (अस्मै अरिष्ट-तातये) इस मनुष्य के आरोग्य-सुख हेतु (आवित्सि) सर्व प्रकार से और सर्व स्थानों से ग्रहण कर ॥७॥

भावार्थः—वैद्य के लिए आवश्यक है कि वह सोम तुल्य रस-वीर्य विपाक वाली एव अन्य औषधियों को मनुष्य को रोगमुक्त करने के लिए सब प्रकार से और सभी स्थानों से प्राप्त करें ॥७॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥

पदार्थ - (गाव. गोष्ठात् इव) गोशाला से जैसे गौएं आती हैं उसी भांति (ओषधीनां) ओषधियों के बीच में से (शुष्मा उत् ईरते) विभिन्न प्रकार के बल उपजते हैं । हे वैद्य ! उसी भांति (तव) तेरे (आत्मानं सनिष्यन्तीनां) देह का सेवन करने वाली इन ओषधियों का (धन) धनवत् सञ्चित सामर्थ्य या रस भी मिलता है ॥८॥

भावार्थ —औषधियों से शरीर मे नाना प्रकार के बल उपजते हैं । वैद्यजन इनसे संचित रस भी प्राप्त करते हैं ॥८॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।

सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥

पदार्थः—हे औषधिगण ! (वः माता इष्कृतिः नाम) तुम्हारी माता या पृथिवी उत्पादक है । (अथो) और (यूयं नि-ष्कृतीः स्थ) तुम सब रोगों को बाहर करने वाली हो । जब तुम (सीराः) देह की रक्तनाडियों को प्राप्त कर उनमें (पतत्रिणीः स्थन) वेग से गति करती हो, तब (यत् आमयति) जो पदार्थ शरीर को पीडित करता है उसे (निः कृथ) बाहर निकाल देती हो ॥९॥

भावार्थः—रोग नाशक औषधियां देह की रक्त-नाडियों मे पहुँचकर शरीर के उस पदार्थ को बाहर निकाल देती हैं, जिससे रोग होता है ॥९॥

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।

ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥१०॥९॥

पदार्थ —(स्तेन इव व्रजम्) लुटेरा जैसे पथिकों पर (अति अक्रमीत्) आक्रमण करता है, उसी भांति (परिस्था) देह मे सर्वत्र विद्यमान रहकर (ओषधी) समस्त ओषधियां (व्रजम् अति अक्रमुः) रोगसमूह पर धावा करती है, (यत् किञ्च तन्व रपः) जो कुछ देह का कष्टदायी रोग का कारण है उसे (प्र अचुच्यवुः) देह से दूर करती है ॥१०॥

भावार्थ —औषधियां रोगों के समूह पर आक्रमण कर शरीर को रोग से मुक्त करती है ॥१०॥

इति नवमो वर्गः ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।

आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

पदार्थ —(यत्) जब (अहम्) मैं (वाजयन्) बल पाता हुआ (इमाः ओषधी) इन ओषधियों को (हस्ते आ-दधे) हाथ मे लेता हूं, तब (यथा जीव-गृभ) जिस भांति जीवों को पकडने वाले प्राणघाती से भयभीत हो प्राणी भागते हैं, उसी तरह (यक्ष्मस्य) रोग का (आत्मा) व्यापक अंश भी (पुरा) पूर्ववत् (नश्यति) दूर हो जाता है ॥११॥

भावार्थ—औषधियों के सेवन से रोग समूल नष्ट हो सकते हैं ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।

ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥

पदार्थ —ये (ओषधी) ओषधियां (यस्य) जिस व्यक्ति के (अंगम्-अंगम् परु-परु) अंगों और पोरुओं में (प्रसर्पथ) व्याप्त हो जाती हैं, (उग्र मध्यमशी) मध्यस्थ बलवान् पुरुष के तुल्य, वे (ततः यक्ष्म वि बाधध्वे) उसके शरीर मे से रोग को दूर कर देती हैं ॥१२॥

भावार्थ —शरीर मे प्रविष्ट होने के उपरांत औषधियां रोग को नष्ट कर देती हैं ॥१२॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।

साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥

पदार्थ—हे (यक्ष्म) यक्ष्मा ! (त्वं) तू (चाषेण साकं नश्य) अति भक्षण या भूख के साथ भाग और (किकिदीविना साकं नश्य) कि, आदि विशेष वेदना सूचक ध्वनि करने वाले रोग के साथ मिट जा । (वातस्य ध्राज्या साकं नश्य) वात की गति के साथ दूर हो और (निहाकया साकं नश्य) कष्ट ध्वनिकारक पीड़ा के साथ तू नष्ट हो ॥१३॥

भावार्थ. —विभिन्न औषधियों के सेवन से यक्ष्मा, कफजन्य एव सन्निपातक आदि सभी प्रकार के रोग नष्ट हो सकते हैं ॥१३॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।

ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥

पदार्थः—(वः अन्या अन्याम् अवतु) रोग होने पर तुम प्रजा के लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करो । (अन्यस्या उप अवत) एक दूसरे के पास आओ । (ताः) वे सब आप (सं विदानाः) परस्पर भली-भांति परामर्श कर (मेरे इदं वच प्र अवत) मेरे इस कथन को पालें ॥१४॥

भावार्थ.—रोग होने पर वैद्यों को पारस्परिक विचार-विमर्श कर रोगोपचार करना चाहिए ॥१४॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥१०॥

पदार्थ—(या फलिनी) जो फलयुक्त हैं, (या. अफलाः) जो फलरहित हैं, (या अपुष्पा. च पुष्पिणी) जो फूलरहित और पुष्पयुक्त है, (ताः) वे (बृहस्पति-प्रसूता) सूर्य मे एव विद्वान् द्वारा प्रदत्त या बनाई जाकर (नः अंहसः मुञ्चन्तु) हमे पापयुक्त कष्टों या दुःखों से मुक्ति दें ॥१५॥

भावार्थ —कुशल चिकित्सक जन विभिन्न रोगों के उपचारार्थ भांति-भांति की औषधियों का निर्माण करते हैं, जिनके सेवन से ही रोग की निवृत्ति होती है ॥१५॥

इति दशमो वर्गः ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।

अथो यमस्य पड्बीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६॥

पदार्थ.—(**मा शपथ्यात् एनसः मुञ्चन्तु**) मुझे प्रलाप करने वाले रोग से मुक्त करें। (**अथो वरुण्यात् उत मुञ्चन्तु**) और ओषधियां मुझे वरुण—जल पिपासा वाले या वरुण अर्थात् रात्रिकाल में बढ़ने वाले रोग से मुक्ति दिलाए। (**अथो यमस्य पड्वीशात्**) और वे यम अर्थात् सारी देह को जकड़ने वाले तथा पैरों को जकड़ने वाले रोग से मुक्त करें और वे ओषधियां (**सर्वस्मात् देव-किल्बिषात्**) सर्व प्रकार से ऐन्द्रियक रोगों से मुक्ति दिलाए ॥१६॥

भावार्थ.—प्रमाद, जल की पिपासा वाले या रात्रि में बढ़ने वाले, पैरों के जकड़ने वाले तथा समस्त ऐन्द्रियक रोगों से औषधियों के सेवन से ही मुक्त हुआ जा सकता है ॥१६॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।

यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥

पदार्थ—(**ओषधय**) ताप धारक (**दिवः परि अवपतन्ता**) सूर्य की किरणों के समान रोग नाशक तीव्र ओषधियां आकाश से नीचे आती या भूमि से हमें प्राप्त होती हुई (**अवदन्**) मानो कहती हैं कि (**य जीवम् अश्नवामहै**) हम जिस जीवित देह में व्याप्त हैं (**सः पूरुषः न रिष्याति**) वह पुरुष-देह रोगों से ग्रस्त नहीं होता ॥१७॥

भावार्थः—अनेक ऐसी भी औषधियां हैं कि जिनके सेवन से व्यक्ति की देह रोगों के आक्रमण से भी बची रह सकती है ॥१७॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।

तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८॥

पदार्थ—(**या ओषधी सोम राज्ञी**) जो ओषधियां सोम के तुल्य गुणों से युक्त, (**बह्वी शत विचक्षणा**) सैकड़ों गुण-प्रदर्शक हैं, (**तासां**) उनमें से (**त्वम्**) तू (**उत्तमा असि**) उत्तम है और (**कामाय अरं**) इष्टलाभ देने में पर्याप्त और (**हृदे शम्**) हृदय को शान्तिदाता है ॥१८॥

भावार्थ—सोम के तुल्य गुणों से युक्त गुणकारी उत्तम ओषधि इष्ट-लाभ को प्राप्त कराने में समर्थ और शान्तिदायक होती है ॥१८॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।

बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९॥

पदार्थ—(**या सोम-राज्ञी ओषधयः**) वे ओषधियां जिनमें सोम तत्व मुख्य हैं, जो (**पृथिवीम् अनु विष्ठिता**) भूमि के गुण से विशेष रूप से स्थित हैं, वे विद्वान् द्वारा दी जाकर, (**अस्मै वीर्यं स दत्त**) इस व्यक्ति को बल दें ॥१९॥

भावार्थः—सोम औषधि के गुण एवम् सोम तत्व युक्त ओषधियों को जब सुयोग्य चिकित्सक विधि सहित देते हैं तो मनुष्य बलशाली होता है ॥१९॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।

द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०॥

पदार्थ—(**व खनिता मा रिषत्**) तुम्हें खोदने वाला स्वयं पीड़ित न हो, और (**खनिता व मा रिषत्**) खोदने वाला भी तुम्हारा समूलोच्छेद न करे और (**यस्मै च अहं व खनामि स मा रिषत्**) जिसके आरोग्य के हेतु मैं तुम्हें खोदता हूँ वह पीड़ित न हो (**अस्माकम् द्विपत् चतुष्पत**) मनुष्य और पशु (**सर्वम्**) सभी प्राणी वर्ग (**अनातुरम् अस्तु**) रोग रहित हों ॥२०॥

भावार्थ—अनेक ओषधियां भूमि में से खोद कर प्राप्त की जाती हैं और वे मनुष्यों ही नहीं अपितु पशुओं के रोगोपचार में भी प्रयोग में लायी जाती हैं ॥२०॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।

सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥२१॥

पदार्थ.—(**या च**) जिन्हें लक्ष्य कर (**इदम्**) यह विशेष गुण-वचन (**उप शृण्वन्ति**) शिष्य आदि गुरुजनों से सुनते हैं, और (**या च दूर परागता**) जो दूर तक फैली हुई हैं (**सर्वा वीरुध स गत्य**) वे सभी ओषधियां मिल कर (**अस्मै**) इस रोग युक्त काया को (**वीर्यं स दत्त**) बल देवें ॥२१॥

भावार्थ—योग्य गुरु या चिकित्सक अपने शिष्यों को उन औषधियों का ज्ञान कराते हैं जो रोग युक्त काया को निरोग करती हैं ॥२१॥

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥२२॥

पदार्थ—(**ओषधय सोमेन राज्ञा**) ओषधियां राजा-सोम अर्थात् मुख्य सोमलता सहित (**स वदन्ते**) मानो कहती हैं कि (**यस्मै कृणोति ब्राह्मण**) वेदज्ञ विद्वान् जिसके लिए हमारा उपयोग करता है हे (**राजन्**) राजन्! हम (**त पारयामसि**) उसे पूर्णतया व संकट से पार करती हैं ॥२२॥

भावार्थ—अनेक औषधियां सोमलता के समान गुणकारी होती हैं। उनसे रोगजनित संकटों का पूर्णतः निवारण हो जाता है ॥२२॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।

उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३॥११॥

पदार्थः—(**ओषधे**) ओषधे (**त्वम् उत्तमा असि**) तू उत्तम है। (**वृक्षाः तव उपस्तय**) तेरे समीप नाना वृक्ष हैं (**य. अस्मान् अभि दासति**) जो हमारे रोग नाश करे (**स अस्माक उपस्ति अस्तु**) वह हमारे वशीभूत रहे ॥२३॥

भावार्थः—उत्तम ओषधियों के सम्बन्ध में समुचित ज्ञान अर्जित करना आवश्यक है ॥२३॥

इत्येकादशो वर्गः ॥

---

[९८]

ऋषिर्देवापिरार्ष्टिषेण ॥ देवा देवता ॥ छन्द—१, ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ६, ८, ११, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४, १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।

आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्त्स पर्जन्यं शन्तनवे वृषाय ॥१॥

पदार्थः—हे (**बृहस्पते**) वेदवाणी के स्वामिन्! विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (**मित्रः वा**) सखा है और (**वरुणः वा असि**) वरणीय है तथा दुःखों का निवारक है (**वा पूषा असि**) और तू जगत् का पोषक भी है। तू (**आदित्यैः**) तेजस्वी जनों और (**वसुभिः**) सबको बसाने वालों के साथ (**मरुत्वान्**) वीरों का स्वामी है (**सः**) वह तू (**शं-तनवे**) शान्ति विस्तार करने वाले राजा एवम् शान्ति से विस्तृत होने वाले राज्य-सुख हेतु (**वर्षय**) सुखों को प्रदान करे ॥१॥

भावार्थ.—प्रभु ही सच्चा सखा एवम् दुःखों का निवारक तथा जगत् का पोषक है। वही वीरों का स्वामी है, वही शांति का विस्तार करने वाले राजा व उसकी प्रजा को सुख प्रदान करता है ॥१॥

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।

प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् ॥२॥

पदार्थ—हे (**देवापे**) प्रभु के बन्धु! (**त्वत्**) तेरा जो (**देव**) प्रकाशमय, (**दूत**) सतप्त, (**अजिर**) नित्य, (**चिकित्वान्**) ज्ञानवान् आत्मा है, वह (**माम् अभि गच्छत्**) मेरी ओर हो और तू (**प्रतीचीनः**) सर्व बाह्य विषयों से विमुख हो (**माम् प्रति आववृत्स्व**) मेरे प्रति ही आ (**ते आसन्**) तेरे मुख में मैं (**द्युमतीम् वाचम् आ दधामि**) तेजस्विनी, भावपूर्ण वाणी को देता हूँ। आधिदैविक अर्थों में—बृहस्पति, सूर्य, देवापि जल है, अजिर दूत वायु है ॥२॥

भावार्थ—बृहस्पति सूर्य, देवापि जल है तथा अजिर दूत वायु है। जल उठ कर सूर्य के प्रति जाता है और मेघों का रूप धारण करता है और विद्युत्‌रूप से गर्जना रूप वाणी को धारता है ॥२॥

अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।

यया वृष्टिं शन्तनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥३॥

पदार्थ—(**बृहस्पते**) ब्रह्माण्ड या वाणीपालक प्रभो! (**अस्मे आसन् द्युमतीं वाचम् धेहि**) हमारे मुख में ज्ञान-प्रकाश युक्त ऐसी वाणी दे जो (**अनमीवाम्**) सभी प्रकार के दोषों से रहित एवम् अन्यों को पीड़ा न देने वाली (**इषिराम्**) तथा इच्छाशक्ति को सन्मार्ग में ले जाने वाली हो। हे प्रभो! (**यया**) जिससे हम दोनों (**शं तनवे**) शान्ति विस्तार या जीव देह की शान्ति हेतु (**वनाव**) एक दूसरे को प्राप्त हों। (**दिवः**) प्रकाशमय नभ से (**मधुमान् द्रप्स**) मधुर, सुखदायी रस (**आ विवेश**) भीतर अन्न कणों में मिले ॥३॥

भावार्थ—सूर्य हमें जीवन प्रदान करता है जो अन्न, जल देने वाली एवम् रोगों का नाश करने वाली है। जल वृष्टि में भी यही सहयोगी है। उस वृष्टि से शान्ति सुख परम कल्याण प्राप्त होते हैं, वर्षा। वर्षा से ही अन्नादि उपजते हैं ॥३॥

आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।

नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥४॥

पदार्थ—(**नः**) हम (**मधुमन्त. द्रप्सा**) सुख (**आ विशन्तु**) मिले। हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन्! (**अधिरथम् सहस्र देहि**) सर्वातिशायी सहस्रों प्रकार का रस दे। हे (**देवापे**) देव प्रभु को प्राप्त होने वाले! हे परमेश्वर सखा! जीव तू (**होत्र**) पुकारने योग्य एवम् सर्वसुखकारी प्रभु के आश्रय में रह। (**ऋतुथा यजस्व**) समय-समय पर (**यजस्व**) प्रभु की नियम से उपासना कर और (**देवान्**) विद्वानों को (**हविषा सपर्य**) अन्न जल से पूज ॥४॥

भावार्थ—सूर्य से जल वाष्प बनकर मेघों की रचना होती है। मेघों से वर्षा होती है जो अन्न-जल देने वाली है। विद्वानों को यज्ञों में ऐसी समिधाएं समर्पित करनी चाहिए कि जो जल को ग्रहण करें ॥४॥

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।

स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५॥

पदार्थ—(**देव-सुमति चिकित्वान्**) परमेश्वर के प्रति शुभ बुद्धि तथा स्तुति का ज्ञाता (**देवापि**) प्रभु का सखा (**आर्ष्टिषेण**) दर्शन कारिणी शक्तियों को वश में करने वाला जितेन्द्रिय, (**ऋषि.**) यथार्थ तत्त्वदर्शी होकर (**होत्रम् निषीदन्**)

पुकारने योग्य प्रभु में निष्ठा करता है (सः) वह (उत्तरस्मात्) उत्कृष्ट सागरवत् आनन्द सागर प्रभु से (अधरं समुद्रं) नीचे के समुद्रवत् अपने अन्त:करण के लिए (दिव्याः वर्ष्याः अप. अभि असृजत्) दिव्य सुख-वृष्टि रूप आनन्दमय रसों को पाता है ॥५॥

भावार्थ —किरणों को हवि-तत्त्व प्रदाता विद्वान् जो वायु जल विज्ञान का ज्ञाता है, वृष्टि सेना अर्थात् मेघ के सम्बन्ध में भी ज्ञान रखने वाला होकर निष्ठा के साथ आहुतियों द्वारा यज्ञ सम्पन्न करें तथा दिव्य आकाशी वृष्टियों को आकाश से धरती की ओर लाए ॥५॥

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।

ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६॥१२॥

पदार्थ —(अस्मिन् उत्तरस्मिन् समुद्रे अधि) सबके तारक समुद्रवत् अपार आनन्द-सागर परमात्मा में (देवेभिः निवृता आपः अतिष्ठन्) जलाशय में जलों के तुल्य समस्त विद्वानों द्वारा किए गए या चाहे गये प्राप्तव्य फल रहते हैं । (आर्ष्टिषेणेन) जितेन्द्रिय (देवापिना) प्रभु के सखा द्वारा (सृष्टाः) व्यक्त किये जाकर (ताः प्रेषिताः) वे भली-भांति चाहे जाकर (मृक्षिणीषु) शुद्ध प्रजा व योग-भूमियों पर (अद्रवन्) द्रवित होते हैं ॥६॥

भावार्थ —सूर्य की किरणों द्वारा एकत्रित किया गया जल आकाश में सुरक्षित रहता है । उन्हें वृष्टिदलपति मेघविद्या में पारंगत यज्ञों आदि द्वारा भूमि पर बरसाने में सहायक होते हैं ॥६॥

इति द्वादशो वर्गः ॥

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।

देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७॥

पदार्थः— (होत्राय) ज्ञान प्रदान करने हेतु (वृतः) स्वीकार किया, (पुरोहितः) सामने स्थित, (यत् देवापिः) प्रभु-भक्त, (शन्तनवे) शान्ति-सुख विस्तार के लिए (कृपयन्) कृपा करता हुआ (अदीधेत्) नाना कर्म करता है । वह (बृहस्पतिः) वेदवाणी पालक प्रभु (देवश्रुतं) विद्वानों द्वारा श्रवणीय (वृष्टि-वनिं) सुखप्रद ऐश्वर्य विभूति को (रराणः) देता हुआ (अस्मै वाचम् अयच्छत्) इस भक्तजन के प्रति आश्वासन वाणी द्वारा प्रदान करे ॥७॥

भावार्थ —मेघ-विज्ञान का ज्ञाता मेघ वृष्टि यज्ञ में शान्ति-विस्तार-हेतु समस्त यज्ञकर्म सम्पन्न करे । सूर्य ही दातृसम मेघ से स्रवित होती जल वृष्टि के अंश को प्रदान करता हुआ मेघ को विद्युत् रूपी वाणी देता है ॥७॥

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।

विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥८॥

पदार्थ —हे (अग्ने) प्रकाशयुक्त ! (यत्) जब (देव आपिः) प्रभु के सखातुल्य प्रिय (शुशुचानः) शुद्ध पावन होता हुआ (आर्ष्टिषेणः) दर्शन शक्तियों की सेना अर्थात् इन्द्रियगण पर विजयी एवं (मनुष्यः) मननशील बनकर (त्वा समीधे) तुझे भली प्रकार प्रदीप्त करता है तब तू (विश्वेभिः देवैः अनु-मद्यमानः) सभी मनुष्यों और उपासकों से प्रतिदिन स्तुति किया जाता हुआ (वृष्टिमन्तं पर्जन्यम् प्र ईरय) वृष्टि वाले मेघ के समान अपने आनन्दमय रसों के दातारूप को प्रकट कर ॥८॥

भावार्थ —देव विज्ञान का ज्ञाता वृष्टि-ज्ञानी पुरुष जब यज्ञ करे, तो सर्व दिव्य गुणों से सम्पुष्ट होकर अग्नि तथा सूर्य एवं जलप्रद मेघ को पुकारता है ॥८॥

त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।

सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥९॥

पदार्थः—(पूर्वे ऋषयः) पूर्व के ऋषि (गीर्भिः त्वाम् आयन्) स्तुतिवाणियों से तुझे प्राप्त होते हैं । हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे जाने वाले ! (विश्वे) सर्वजन (अध्वरेषु) यज्ञों में स्तुतियों के द्वारा तेरी उपासना करते हैं । (अस्मे) हमें (सहस्राणि अधि रथानि) रथों से युक्त सहस्रों ऐश्वर्य या देह-युक्त सहस्रों सुख एवं बल आदि मिलें । हे (रोहिद्-अश्व) देदीप्त तेज से व्याप्त ! तू (नः यज्ञम् उपयाहि) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो ॥९॥

भावार्थ —सकल यज्ञों में स्तुत्य वाणियों द्वारा परमात्मा की ही उपासना की जाती है । उसकी अर्चना वन्दना से ही हमें भांति-भांति के ऐश्वर्य एवं सुख तथा बल प्राप्त होते हैं ॥९॥

एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।

तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०॥

पदार्थ —हे (अग्ने) तेज स्वरूप ! (एतानि नवतिः नव) ये ९९ वर्ष और (अधिरथा सहस्रा) रथ या देह पर आश्रित बलशाली प्राण आदि (त्वे आहुतानि) तुझ पर ही समर्पित हैं । हे (शूर) दुष्ट-नाशक ! (तेभिः) उनसे तू (पूर्वीः तन्वः) नाना शक्तियों को (वर्धस्व) प्रकट कर । (इषितः) प्रार्थित होकर (नः) हमें (दिवः वृष्टिम् रिरीहि) ज्ञान-प्रकाश की वृष्टि दे ॥१०॥

भावार्थ —हे प्रभो आप तेजस्वरूप हैं । तेरे लिए ही हमारा सर्वस्व समर्पित है । तू ही हमें ज्ञान एवं नाना शक्तियां प्रदान करता है ॥१०॥

एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।

विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥

पदार्थ —हे (अग्ने) तेजोमय विद्वान् ! तू (वृष्णे इन्द्राय) सुखों को देने वाले (इन्द्राय) सूर्यवत् प्रभु को प्रसन्न करने हेतु (एतानि नव नवतिम् सहस्रा) इन ९९ सहस्रों को (भागम् स प्रयच्छ) सेवनीय रूप से दे और (देवानाम् पथः विद्वान्) विद्वानों के गमन-योग्य मार्गों को जानता हुआ (ऋतुशः) समय-समय पर (औलानम्) जीव को (दिवि देवेषु धेहि) ज्ञानमार्ग में रख ॥११॥

भावार्थ —अग्नि द्वारा मेघ की वृष्टि यज्ञ में सहस्रों आहुतियों को वृष्टिकाल मेघ के लिए वातावरण में प्रदान किया जाता है । किरणों के बल पर ही अन्तरिक्ष में मेघ बनते हैं ॥११॥

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।

अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥१३॥

पदार्थ —हे (अग्ने) तेजोमय ! तू (मृध वि बाधस्व) हिंसाकारियों को विविध प्रकार से पीड़ित कर । (दुर्गहा वि) दुःख से ग्रहणीय दुष्पार कष्टों को मिटा । (अमीवाम् अप) रोग दूर कर । (रक्षांसि अप सेध) दुष्टों व विघ्नों को दूर कर । (अस्मात् बृहत समुद्रात्) इस महान् सागर से और (बृहत दिवः) महान् तेजोमय सूर्य से (इह) इस भूमि पर (नः) हमारे हेतु (अपां भूमानम् उप सृज) जलों का बहुत भारी भाग दे ॥१२॥१२॥

भावार्थ —हे विद्वन् ! तुम्हीं हमारे भीतरी अज्ञान एवं क्रोधादि को नष्ट करते हो । विघ्नों को दूर भगाते हो एवं परम सुखदायी प्रभु से हमें लोकों में महत्त्व प्रदान कराते हो ॥१२॥१३॥

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

---

[९९]

ऋषिर्वम्रो वैखानसः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ९, १२ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आसुरी स्वराडार्ची निचृत त्रिष्टुप् । ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।

कदस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥१॥

पदार्थ —हे प्रभो ! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (चित्र) नितान्त पूज्य (पृथुग्मानं) परिमाण में विशाल (वाश्रम्) स्तुत्य (कं) सुखप्रद ज्ञान को (नः वावृधध्यै) हमारी वृद्धि हेतु (इषण्यसि) देता है । (अस्य शवसः) उस बलशाली प्रभु का (दातु कम्) कितना विपुल दान है, जो (व्युष्टौ) भांति-भांति की कामना पूर्ण करने के निमित्त (वृत्रतुर वज्रं) अज्ञान-नाशक ज्ञानरूप वज्र को (तक्षत्) बनाता है और फिर (अपिन्वत्) जगत् को ज्ञान से परिपूरित करता है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ही व्यक्ति की अभिवृद्धि के लिए स्तुत्य सुखप्रद ज्ञान प्रदान करता है । उस परमात्मा का दान विपुल है । वह विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के अज्ञान-नाशक ज्ञान को वज्र बनाता है और फिर संसार को ज्ञान से परिपूर्ण करता है ॥१॥

स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।

स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥२॥

पदार्थः—(स हि) और वह (द्युता) प्रकाशयुक्त (विद्युता) तेज से (साम) एक जैसे (पृथुम्) तथा विशाल आकाश में (वेति) व्याप्त है । (स) वह परम प्रभु (सनीळेभिः) अपने आश्रयों सहित सूर्य वायु आदि से (प्र-सहानः) जगत् को वश में करता हुआ, (असुरत्वा) प्राणप्रद बल द्वारा (ससाद) विराजता है । (ऋते) सत्यज्ञान एवं सत्-प्रकृति के आश्रय (अस्य भ्रातुः न) विश्व के भरण-पोषण कर्ता (सप्तथस्य) सर्वव्यापक एवं षड्विकारों से अतिरिक्त सातवें इस प्रभु की ही (मायाः) समस्त ये निर्माणशक्तियां अथवा बुद्धि-कौशल हैं ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा ही सूर्य वायु आदि द्वारा जगत्-भर को वश में करता है । वही प्राणप्रद बल से सम्पन्न है । वही सत्य प्रकृति के आश्रय से विश्व का भरण-पोषण करने वाला है । वह समस्त निर्माण शक्तियों का भण्डार है ॥२॥

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।

अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

पदार्थः—(सः वाजं याता) वह ऐश्वर्य को पाता है । वह (अपदु-पदा) दुष्टाचार से रहित पुण्यपथ से (यन्) गमन करता (स्व-साता) सुख-लाभ के लिए, (परि सदत्) गति करता है और (यत्) जो (अनर्वा) अहिंसक हो (शत-दुरस्य वेदः) सैकड़ों द्वारों वाले प्रभु के ऐश्वर्य अथवा ज्ञान का (सनिष्यन्) सेवन करने की इच्छा रखता हुआ, (वर्पसा) स्वबल से (शिश्न-देवान्) मूल

इन्द्रिय सम्बन्धी कामनायुक्त भावों को (स्नद्) नष्ट करता हुआ (अभि भूत्) क्षमतावान् होता है ॥३॥

भावार्थ.— सच्चे साधक को ही, जो कि वासनाओं से मुक्त हो परमात्मा सब प्रकार का ज्ञान एव ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

स यह्व्यो३वनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्निः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥४॥

पदार्थः—(स अर्वा) सूर्य जिस भांति (प्रधन्यासु गोषु यह्व्य अवनी आजुहोति) उत्तम धान्य योग्य भूमियों में अनेकानेक जलधाराओं और रश्मियों को फैलाता है। उन भूमियों में (अपादः) पाद-रहित, (अरथाः) रथादि-रहित, (युज्यास द्रोणि-अश्वास) वेगवान् व्यापक गुणों वाले वायुगण (वा उदकम्) उत्तम जल (ईरते) देते हैं, उसी भांति (अर्वा) देह से देहान्तर में जाने वाला आत्मा, (प्रधन्यासु गोषु) उत्तम ऐश्वर्य-विभूतियुक्त इन (गोषु) गमनीय पार्थिव देह-भूमियों में (यह्व्य अवनीः) बड़ी-बड़ी पालन शक्तियों या अन्न जलादि साधनों की आहुति देता है। इन देहभूमियों में (अपाद) ज्ञानशून्य (अरथा) वेगशून्य (युज्यास) अश्वों के तुल्य देह में लगे (द्रोणि-अश्वास) द्रुतगामी इन्द्रियगण (घृतम् वाः ईरते) वरणीय पदार्थ की ओर जाते हैं ॥४॥

भावार्थ—सूर्य एव वायु के तुल्य ही देह से देहान्तर में जाने वाला आत्मा, उत्तम ऐश्वर्य विभूति सम्पन्न इन गमनीय पार्थिव देहभूमियों में पालक शक्तियों या अन्न-जलादि साधनों की आहुति देता है ॥४॥

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।

वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥५॥

पदार्थ—जिस भांति (ऋभ्वा) प्रकाश से समर्थ सूर्य (गयम् हित्वी) स्थान छोड़कर आता है, (विवव्री मिथुना अभि इत्य) और विपरीत रूप वाले मिथुन नक्षत्रों को प्राप्त हो (अन्नम् मुषायन्) अन्न का नाश करता और (अरो दयत्) रुलाता है, उसी भांति (सः) वह (ऋभ्वा) आत्मा (आरे अवद्यम्) निन्दनीय पापादि से रहित (गयम्) प्रभु को (हित्वी) छोड़कर (अशस्त-वार) अप्रशस्त मार्ग को वरण कर (रुद्रेभिः सह आ अगात्) प्राणों के साथ इस देह में आता है। वह (वम्रस्य) वमन करने वाले, इस देह के ही (मिथुना विवव्री) नर-नारी रूप जोड़ों का (अभि इत्य) प्राप्त करके, (अन्नम् मुषायन्) अन्नवत् नाना भोगों को प्राप्त करता हुआ, (अरोदयत्) प्राणियों को वा अपने को पीड़ा देता है, ऐसा (मन्ये) मानता हूँ ॥५॥

भावार्थ—जिस भांति आकाश से सूर्य स्थान छोड़कर आता है और विपरीत रूप वाले मिथुन नक्षत्रों को प्राप्त हो, अन्न का नाश करता और रुलाता है, उसी प्रकार वह आत्मा निन्दनीय पापादि रहित प्रभु को छोड़कर अप्रशस्त मार्ग को वरण कर प्राणों सहित इस देह में आता है। वह नाना भोगों को प्राप्त करता हुआ, प्राणियों को वा अपने को पीड़ित करता है ॥५॥

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।

अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥६॥१४॥

पदार्थ—(स इत् पति) वह आत्मा, (तुवि-रवम्) अनेक शब्दकर्ता (दासम्) नाशकारी मन एव इन्द्रिय को (हन्) दमन करता हुआ, (षड् अक्षम्) ६ ऋतुरूप नेत्रों वाले और (त्रि शीर्षाणम्) तीन कालरूपी शिरों वाले वर्ष को सूर्य के तुल्य, इस देह को जिसमें कि मन सहित छः इन्द्रिया और शिरोवत् तीन धातुए हैं, (दमन्यत्) वश में करता है। वह (त्रित) तीनों लोकों में व्याप्त वा तीनों दु खों से मुक्त आत्मा (ओजसा) स्वबल से (वृधान) बढ़ता हुआ, (अयः-अग्रया) लोहे की सूई की धार तुल्य तीक्ष्ण (विपा) बुद्धि से (वराहम् हन्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को पाता है ॥६॥१४॥

भावार्थ—वह त्रिलोक में व्याप्त त्रितापों से मुक्त आत्मा ही अपने बल से बढ़ता हुआ लोह सूचिका की धार के समान तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त करता है ॥६॥

इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।

स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥७॥

पदार्थ—(स) वह (ऊर्ध्व-सानः) उच्च पद पाने वाला उत्तम व्यक्ति, (द्रुह्वणे) द्रोही और (अर्शसानाय) हिंसाकारी जन को दण्ड देने हेतु (शरुम् आ साविषत्) हिंसाकारी साधन का प्रयोग करे। (स. नृ-तमः) वह उत्तम नरश्रेष्ठ, (नहुषः) दुष्टों को बांधने वाला, (अर्हन्) पूज्य होकर (अस्मत् दस्यु-हत्ये) हमारे नाशकारी शत्रुओं के विनाश संग्राम में (पुर) शत्रु के शरीरों व दृढ़ दुर्गों को (अभिनत्) तोड़ दे ॥७॥

भावार्थ—द्रोही एव हिंसक जनों को दण्डित करने के लिए उच्च पद पर आसीन व्यक्ति को हिंसाकारी साधन भी अपनाने पड़ते हैं। बलशाली शासक ही नाशक शत्रुओं का संग्राम में दमन करता है और शत्रु के दुर्गों को भी विध्वस करता है ॥७॥

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।

उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८॥

पदार्थ—(यवसे न) जिस भांति जौ इत्यादि अन्न की पुष्टि हेतु (उदन्यन्) जल से पूर्ण हो (अभ्रियः) मेघसघ (गातुम् विदत्) भूमि पर बरसता है, उसी प्रकार (न क्षयाय) हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने हेतु (सः) वह प्रभु या राजा (नः गातुम् विदत्) हमारी प्रार्थना सुने। (अस्मे श्येन.) हमारे बीच में प्रशसनीय चरित्रवान् (यत्) जो पुरुष (शरीरै) नाना शरीरों से जन्म-जन्मान्तरों से (इन्दुम्) उस परमैश्वर्य प्रभु को (उप सीदत) प्राप्त कर लेता है, वह (अय-उपाष्टि.) लोहे की बनी एडी वाले पुरुष के तुल्य बलशाली होकर (दस्यून् हन्ति) नाशकारी काम, क्रोधादि को (हन्ति) मारता है ॥८॥

भावार्थ—जिस भांति मेघ भूमि पर जल वृष्टि करके अन्नादि के उपजाने में सहायक होते हैं, वैसे ही प्रभु या शासक हमारी प्रार्थनाएं सुने। वह हमारे विनाशक काम-क्रोधादि को नष्ट कर दे ॥८॥

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।

अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥

पदार्थ—(स) वह (व्राधतः) महान् परमात्मा (शवसानेभि) बलशाली उपायों द्वारा (कुत्साय) कुत्सित व्यक्ति को दण्डित करने को उस पर (शुष्णम्) शोषक कष्ट (अस्य) डालता और (कृपणे) प्रार्थना करने वाले भक्त पर आए (शुष्णम्) दुःख को (परा अदात्) मिटा देता है और (य) जो (नृणां) मनुष्यों के मध्य में (अस्य) इसके (अत्क) व्यापक रूप वा ज्ञान को (सनिता) देता है उस (कविम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् को (अयम् शस्यमान) प्रशसनीय पद (अनयत्) मिलता है ॥९॥

भावार्थ—परमात्मा कुत्सित जन को दण्ड देने के लिए उसे कष्ट देता है और भक्त जन के दु ख को दूर कर देता है। जो क्रान्तदर्शी विद्वान् लोगों को परमात्मा के सम्बन्ध में ज्ञान देता है, वह प्रशसनीय पद पाता है ॥९॥

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।

अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीतारुं यश्चतुष्पात् ॥१०॥

पदार्थ—(अयम् वरुण) वह दु खों का नाशक, सर्वश्रेष्ठ प्रभु (मायी न) बुद्धिमान् पुरुष के समान ही (नर्येभि. देवेभि) सर्व-मनुष्योपकारक (देवेभि) इन्द्रियों वा सूर्य, जल, अग्नि आदि से (दशस्यन्) सुखों को देता हुआ, (अस्य) सर्व दुष्टों का नाशक है। (अयम्) यह (कनीन) कान्तिमान् (ऋतु-पा) ऋतुओं का पालक (अवेदि) जाना जाता है। (य) जो स्वयं (चतु पात्) धर्मादि चार चरणों वाला एव चतुष्पाद ब्रह्म होकर (अरुम् अमिमीत) रुलाने वाले दुष्टजन का वा दु खदायी कष्ट का सहार करता है ॥१०॥

भावार्थः—दुःखों का हर्ता प्रभु सूर्य, जल, अग्नि आदि से मनुष्यों का उपकार करता है। वही ऋतुओं का स्रष्टा है। वही निर्माता और विनाशक भी है ॥१०॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।

सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११॥

पदार्थ—(यत्) जब (यजत) देवपूजक उपासक (गी) स्तोता होकर (दीदयत्) अपने गुणों को उजागर करता है, (पुर इयान) स्व देहों को प्राप्त कर भी उन समस्त देहों को (वर्पसा) बल से वा उत्तम आत्मा रूप से (अभि भूत्) अपने वश में कर लेता है, तब वह (ऋजिश्वा) वशीभूत इन्द्रियों वाला, (औशिज) तेजोमय प्रभु का उपासक होकर, (अस्य स्तोमेभि) उस प्रभु के स्तुति वचनों से ही (वृषभेण) सुखदायक रूप से (पिप्रो.) नित्य पालनीय इस शरीर के (व्रजम्) समूह का (दरयत्) दलन करता है। देह के बन्धनों को तोड़ मुक्त हो जाता है ॥११॥

भावार्थ.—सयमी व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में परमात्मा का उपासक होता है। वही व्यक्ति अन्ततोगत्वा मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥११॥

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।

स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः

॥१२॥१५॥८॥

पदार्थः—हे (असुर) प्राणदाता प्रभो ! (एव) इस प्रकार (महः वक्षथाय) संसार को चलाने वाले तुझ महान् प्रभु को प्राप्त करने हेतु, (पड्भिः) पग-पग से (वम्रकः इन्द्रम् उप सर्पत्) वह स्तोता उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को पाता है। (स इयानः) वह प्रभु प्राप्त होकर (अस्मै) इस प्राणी का (स्वस्ति करति) कल्याण करता है और इसके हितार्थ (इषम् ऊर्जम् सु-क्षितिम्) उत्तम वृष्टि, अन्न और भूमि सृजता है और इस भांति वह विश्व का (आ अभाः) पालक है ॥१२॥१५॥८॥

इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

---

[१००]

ऋषिर्दुवस्युर्वान्दन ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्द —१—३ जगती । ४, ५, ७, ११, निचृज्जगती । ६, ८, १० विराड् जगती । ९ पादनिचृज्जगती । १२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।

देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! हे (मघवन्) धनयुक्त ! तू (भुजे) पालन करने हेतु (त्वावत इत् दृह्य) तुझ जैसे अविनाशी जीवात्मा को दृढ़ बल दे। (स्तुत) स्तुति किया गया (सुतपा) उपासक की पुत्रवत् रक्षा करने वाला होकर (सः वृधे बोधि) वह तू हमारी वृद्धि हेतु सदा जान और हमें भी ज्ञान दे। तू (सविता) सर्व उत्पादक और प्रेरक प्रभु (देवेभिः) वीरो व इन्द्रियों द्वारा (नः) हमारी (प्र अवतु) भली भांति रक्षा कर। हम (श्रुतम्) गुरु-उपदेश द्वारा श्रवणीय (सर्वतातिम्) सर्व जगत् विस्तारक (अदितिम्) अखण्ड प्रभु को (आ वृणीमहे) सर्व प्रकार से वरण चाहते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ही अविनाशी जीवात्मा को दृढ़ कर बल देता है। वही उपासक की पुत्र तुल्य रक्षा करता है। वही ज्ञान देने वाला है और सबका प्रेरक है। हम गुरु उपदेश द्वारा श्रवणीय सर्व जगत्-विस्तारक प्रभु का सर्व प्रकार से वरण करते हैं ॥१॥

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।

गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (भराय) पालक-पोषक, (वायवे) वायु के तुल्य बलशाली, प्राणवत् प्रिय, (शुचिपे) शुद्ध अन्न जल के उपभोक्ता, (क्रन्दत् इष्टये) अभिलषित के उपदेशक राजा के लिए (ऋत्वियम्) ऋतुओं के योग्य (भाग) सेवनीय अंश को (सु भरत) उत्तम रीति से दो। (यः) जो स्वयं (गौरस्य) गो-तुल्य भूमि से दिए (पयस) पुष्टिप्रद दूध के जैसे अंश के (पीतिम्) पान को (आनश) प्राप्त करता है उस (अदितिम्) अदीन (सर्व-ताति) सर्व-मंगलदायक राजा को हम (आ वृणीमहे) आदर से वरण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ऐसा राजा ही आदरपूर्वक वरण किया जाता है जो वायु के समान बलशाली, प्राणवत् प्रिय और सबसे सकल भोग कराने वाला है और स्वयं उसी प्रकार अंश प्राप्त करता है जैसे गौ पुष्टिप्रद दूध का दूसरों को पान कराती है ॥२॥

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।

यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥३॥

पदार्थ—(सविता देव) सर्वजगत्-उत्पादक व प्रेरक (नः) हमारा प्रभु, (ऋजूयते) सरल धर्म मार्ग से गमन करने वाले (सुन्वते यजमानाय) उपासक, यज्ञशील जन के कल्याणार्थ, (पाकवत्) पाक-युक्त (वय) अन्न के समान (पाकवत् वयः) परिपक्व बल, ज्ञान (साविषत्) दे। (यथा) जिससे हम (देवान् प्रति भूषेम) विद्वानों की अपने प्राणों के तुल्य सेवा करें। हम (सर्वतातिम् अदितिम् आवृणीमहे) सर्वमंगलकारी, जगद्-विस्तारक, प्रभु से याचना व प्रार्थना करते हैं ॥३॥

भावार्थ—सरल धर्म-मार्ग से जाने वाले उपासक, यज्ञशील व्यक्ति के कल्याणार्थ परमात्मा सकल बल एवं ज्ञान प्रदान करता है। वही प्रभु जगद्-विस्तारक एवं सर्व-मंगलकारी है ॥३॥

इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।

यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(विश्वहा) सकल दिवस (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा, (अस्मे सु-मना अस्तु) हमारे लिये शुभ चित्तयुक्त हो। (राजा) प्रकाशयुक्त (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर (नः अधि एतु) हम पर शासन करे। (यथा-यथा) जिससे सर्वजन (मित्र-धितानि) सर्वस्नेही प्रभुप्रदत्त वा रचित पदार्थों को (सं-दधु) यथायोग्य रीति से पाते हैं। उस (अदिति) माता-पितावत् अक्षय भण्डार के स्वामी परमात्मा को हम (आ वृणीमहे) पाते हैं ॥४॥

भावार्थः—हम सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु के अनुशासन मे चलते हुए उसके द्वारा रचे गए पदार्थों का यथायोग्य रीति से भोग करें ॥४॥

इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।

यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्र) जल-अन्न दाता परमात्मा (उक्थेन शवसा) स्तुत्य ज्ञान बल द्वारा (परुः दधे) सर्वपालक अन्न का धारक व पोषक और सबका दाता है। हे (बृहस्पते) महान् विश्व-पालक ! तू ही (आयुषः प्र तरीता असि) आयु का दाता और बढ़ाने वाला है। तू (मनुः) ज्ञानवान्, (प्र-मतिः) सर्वोत्तम बुद्धि व ज्ञान-सम्पन्न और (यज्ञ) सर्व सुखों का देने वाला, सर्वपूज्य, (नः पिता हि कम्) हमारे पालक पिता-माता तुल्य है। उस (सर्व-तातिम्) सकल जगत् के हितकारी (अदितिम्) अदीन तुझे (आवृणीमहे) हम सर्व प्रकार से वरण करते हैं ॥५॥

भावार्थ—महान् विश्व-पालक प्रभु ही आयु को देने वाला और बढ़ाने वाला है। हमारे लिए पिता-मातावत् है। उस प्रभु का हम सर्व प्रकार से वरण करते हैं ॥५॥

इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।

यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥६॥१६॥

पदार्थ (इन्द्रस्य) प्रभु वा आत्मा का (नु) ही निश्चय से (सु-कृतम्) उत्तमोत्तम पदार्थों को उत्पन्न करने वाला (दैव्य) इन्द्रियो, विद्वानो, पृथिव्यादि लोको का उपकार करने वाला (सह) बल है। वह (गृहे) गृह में (अग्निः) अग्नि के समान (जरिता) सबको जीर्ण करने वाला है। वही (मेधिरः कवि) बुद्धिमान् क्रान्तदर्शी है। वह (विदथे) ज्ञान में (यज्ञ) पूज्य, (चारु) सर्वत्र व्याप्त वा (अन्तमः) हमारे नितान्त समीप है। उस (सर्वतातिम् अदितिं वृणीमहे) सकल जगत् प्रसारक, अखण्ड देव की हम वन्दना करते हैं ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ही इन्द्रियों, विद्वानो, पृथिव्यादि लोकों का उपकरण है। वही ज्ञान मे पूर्ण, सर्वत्र व्यापक वा हमारे समीपतम है। हम उसी की उपासना, वन्दना करें ॥६॥

इति षोडशो वर्गः ॥

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।

माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७॥

पदार्थ—हे (वसवः) गृह मे बसे माता-पितावत पूज्यो ! हम लोग (गुहा) छुपे घर तथा मन में (दुष्कृतम्) पाप (न भूरि चकृम) कभी भी न करें (आवि-ष्ट्यम्) और प्रकटतः भी (भूरि दुष्कृतम् न चकृम) पाप न किया करें। जिससे (देव हेळनम्) परमेश्वर, राजा तथा विद्वानों का क्रोध (न माकि) हमें न मिले। (सर्वताति अदिति आ वृणीमहे) हम सर्वमंगलकारी परमात्मा से यही याचना करते हैं ॥७॥

भावार्थ—हम अप्रत्यक्षतः या प्रत्यक्षतः पाप कर्म मे कदापि प्रवृत्त न हो। हमे प्रभु, राजा और विद्वानों के क्रोध का भाजन न बनना पड़े। यही प्रार्थना हम परमात्मा से करते हैं ॥७॥

अपामीवां सविता साविषन्न्यग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।

ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥८॥

पदार्थ—(सविता) प्रेरक परमात्मा (अमीवाम् अप साविषत्) दु:खदायी रोग को हरे। (अद्रय) मेघतुल्य उदार व्यक्ति (वरीय) बड़े पापों को भी (न्यक् अप सुधन्तु) जल के समान दूर बहा दें। (यत्र) जिसके आश्रय (ग्रावा) विद्वान् उपदेशक (मधुसुत् उच्यते) ज्ञान देने वाला कहा जाता है उस (बृहत सर्वताति अदिति वृणीमहे) महान्, मंगलदाता प्रभु से हम प्रार्थना करते हैं ॥८॥

भावार्थ—प्रेरक प्रभु ही दु:खदायी रोगों को दूर करता है। वह बड़े-बड़े पापों को भी जल के तुल्य दूर कर देता है। ऐसा सर्वमंगलकारी प्रभु वन्दनीय है ॥८॥

ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।

स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥९॥

पदार्थ—हे (वसव) माता, पिता व गुरु आदि विद्वान् जनो ! (सोतरि) सर्वोत्पादक परमात्मा के आश्रय ही (ग्रावा) श्रेष्ठ उपदेशक (ऊर्ध्व) सर्वोच्च है। आप लोग (सनुत.) हमारे छिपे (द्वेषांसि) द्वेषों का भी (युयोत) हरें। (स देव) वह सर्व सुखों का दाता, सर्वप्रकाशक परमात्मा (न) हमारा (पायुः) पालक तथा (ईड्य) वन्दनीय तथा स्तुत्य है। उस (सर्वतातिम् अदितिं आ वृणीमहे) सर्वमंगलदाता परमात्मा से हम याचना करते हैं ॥९॥

भावार्थ—सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक, प्रभु ही हमारा पालक वन्दनीय तथा स्तुत्य है ॥९॥

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।

तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०॥

पदार्थ—(याः) जो (ऋतस्य सदने) परमकारण अथवा सत्यज्ञान के आश्रय रूप (कोशे) आनन्दमय कोश मे (अङ्ग्ध्वे) अपना सत् प्रकाश प्रकटाती हैं, हे (गाव) वाणियो ! वे आप (यवसे ऊर्जं पीव:) चारे के आश्रय पर जैसे गौवें बलदायक दुग्धरस देती हैं वैसे ही आप भी (ऋतस्य पीवः ऊर्जम्) ज्ञान का विपुल बल तथा रस (अत्तन) प्रदान करो। (तनू एव तन्वः भेषजम् अस्तु) एक प्रकार का देह दूसरे प्रकार के देह के रोग का दूर करने वाला हो। अर्थात् जिस भांति गौ का देह दुग्ध मूत्रादि से मानव देहों के नाना रोग मिटाता है, उसी प्रकार हम भी एक दूसरे के कष्टों को औषधिवत् दूर करें ॥१०॥

भावार्थः—वेदवाणियां ही सत्यज्ञान की प्रकाशक हैं। वे ही ज्ञान प्रदान करती हैं। उनके ज्ञान से हम भी एक दूसरे के कष्टों का औषधिवत् दूर करने वाले बनें ॥१०॥

कृतप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥

पदार्थः—(इन्द्र) प्रकाशित सूर्य जैसे (कृतप्रावा) कर्मों का प्रवर्तक व (जरिता) काल-धर्म से सबकी आयु का ह्रास करता है और (सुतावताम्) उत्पन्न प्राणियों से युक्त (शश्वताम् अवः इत्) सर्व लोकों का प्रवर्तक, बल तथा रक्षक है, (यस्य भद्रा प्रमति.) इसी भांति जिसकी सर्वमंगलकारी, सर्वसुखदायिनी ज्ञानमयी बुद्धि तथा वेदमयी वाणी है, (यस्य) जिसके (पूर्ण ऊध) जल से पूर्ण मेघ स्तन के तुल्य (सिक्तये) लोक को तृप्त करने को हैं, उस (अदितिम्) पृथिवी-सूर्यवत् प्रकाश, अन्न आदि के अक्षय भण्डारस्वरूप परमात्मा की हम (आ वृणीमहे) सर्व प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥११॥

भावार्थ —हम उस पृथिवी-सूर्यवत् प्रकाश अन्न आदि के अक्षय भण्डारस्वरूप परमात्मा की वन्दना करें जो सकल लोकों का प्रवर्तक बल तथा रक्षक है ॥११॥

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२। १७॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! (ते भानु) तेरा प्रकाश (चित्र) अद्भुत, (क्रतु-प्रा) कर्म व ज्ञान का दाता और (अभिष्टि.) सबको कमनीय व योग्य है और (ते स्पृधः) तेरी इच्छाएं व शक्तियां भी (जरणि-प्रा) विद्वानों की इच्छाओं को पूर्ण करती हैं, (अधृष्टा) किसी से न दबने वाली (सन्ति) हैं। जैसे (दुवस्युः) सेवक (पश्वः गोः-अग्रम्) बैल पशु के आगे-आगे के नासिका आदि भाग को (रज्या परि तुतूर्षति) रस्सी से पीड़ित करता और आगे वेग से ले जाता है, इसी भांति मैं (दुवस्युः) तेरा सेवक (गो. अग्रम्) वाणी के श्रेष्ठ अग्र को (रजिष्ठया) नितांत सरल (रज्या) स्तुति से (परि तुतूर्षति) तेरी ओर वेग से लाना चाहता हूँ ॥१२॥१७॥

भावार्थः—हे परमात्मन ! तेरा प्रकाश अद्भुत कर्म और ज्ञान का दाता है। तू ही विद्वानों की इच्छाओं को पूर्ण करता है। जो तेरा साधक है वह वाणी के श्रेष्ठ अग्र को अति सरल स्तुति से तेरी ओर वेग से ले आना चाहता है ॥१२॥

इति सप्तदशो वर्ग ॥

[१०१]

ऋषिर्बुध सौम्य ॥ देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा ॥ छन्द —१, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ८ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट् त्रिष्टुप् । पादनिचृत त्रिष्टुप् । ४, ६ गायत्री । ५ बृहती । ९ विराड् जगती । १२ निचृज्जगती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१॥

पदार्थ —हे (सखाय.) मित्रो ! आप लोग (स-मनसः) समान चित्त वाले होकर (उद् बुध्यध्वम्) जागो, ज्ञान-सम्पन्न होवो। (इन्द्रवतः) परमेश्वर वा आत्मा वाले (व) आप लोगों को (अवसे) ज्ञान, स्नेह आदि के लिए मैं (नि ह्वये) बुलाता व उपदेश देता हूँ कि आप लोग (बहव) अनेक मिलकर (स-नीळा) एक आश्रय या स्थान में रहते हुए (अग्निम् सम् इन्ध्व) यज्ञाग्नि समान ज्ञान प्रकाशक प्रभु को भांति-भांति प्रकाशित करो और (दधि-क्राम्) सकल जगत् के धारक, (अग्निम) अग्निवत् प्रकाशस्वरूप, (उषस च देवीम्) उषावत कान्ति-युक्त परमात्मा को (सम् इन्ध्वम्) वन्दना करो ॥१॥

भावार्थ.— हे मित्रो ! आप समान चित्त वाले होकर जागो एवं ज्ञानवान् बनो। आप ज्ञान के प्रकाशक परमेश्वर के ज्ञान को भली-भांति प्रकाशित करें और परमात्मा की उपासना करें ॥१॥

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥२॥

पदार्थ —हे (सखाय) मित्रो ! आप (मन्द्रा कृणुध्वम्) आनन्ददायक कर्म व स्तोत्र आदि करो। (धिय) उत्तम कर्मों तथा ज्ञानों का (तनुध्वम्) विस्तार करो। (अरित्र परणीं नाव) चप्पू से पार ले जाने वाली नौका को (कृणुध्वम्) बनाओ। (आयुधा) नाना शस्त्र-अस्त्रादि को (इष् कृणुध्वम्) खूब बनाओ और (अर कृणुध्वम्) भारी व पर्याप्त मात्रा में बनाओ। (यज्ञ) पूज्य प्रभु वा आदरणीय नायक को (प्राञ्चं प्र नयत) अग्रनायक बनाओ और पूर्वोक्त प्रभु की सर्व प्रथम वन्दना करो ॥२॥

भावार्थ —हे सखाओ ! आप लोग आनन्ददायक कर्म एवं स्तोत्र आदि करो। उत्तम कर्म तथा ज्ञान का विस्तार करो। आप लोग नौकाओं, शस्त्रास्त्रों आदि का भी निर्माण पर्याप्त मात्रा में करो। आप परम पिता परमात्मा और नायक को सर्व-प्रथम स्थान दो और उनकी स्तुति करो ॥२॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

पदार्थ—आप लोग (सीरा युनक्त) हलों को जोतो, (युगा वि तनुध्वं) जुओं को फैलाओ। (कृते योनौ) सुसम्पादित खेत में, (इह) अथवा इस लोक में (बीजं वपत) बीज को बोवो और (गिरा च) वेदवाणी द्वारा (न) हमारे (स-भरा. श्रुष्टि असत्) अन्न खूब पुष्ट हों तथा (सृण्य) दातरी (पक्वम् नेदीय) पके धान्य के पास (आ इयात्) आवे ॥३॥

भावार्थ —अध्यात्मीजन नाड़ियों में ध्यान योग का अभ्यास करें। इस देह को कर्मयुक्त करें। वेदवाणी का उत्तम ज्ञान प्राप्त करें और परिपक्व ज्ञान के प्रति प्राप्त हों ॥३॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥

पदार्थ —(कवय) क्रान्तदर्शी (सीरा युञ्जन्ति) खेत जोतने के साधन हल आदि को चलाते हैं, (युगा वि तन्वते) नाना जुओं को अलग-अलग विस्तृत करते हैं। (धीरा) कर्म व ज्ञान वाले विद्वान् (देवेषु) ज्ञानप्रद विद्वानों के मध्य (सुम्नया) सुख प्राप्त करने हेतु नाना कर्म करते हैं ॥४॥

भावार्थ —क्रान्तदर्शी जन नाना योगाङ्गों का अनुशीलन करते हैं। नाड़ियों में चित्त लगाते हैं और इन्द्रियों के माध्यम से सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा अभ्यास करते हैं ॥४॥

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप (आहावान् नि. कृणोतन) गौओं के पानी पीने के लिये अनेक स्थान बनाओ। (वरत्रा सम् दधातन) उत्तम रस्सियों को परस्पर बांधो। (वयम्) हम (उद्रिणम्) जलयुक्त (सु-सेकम्) उत्तम रीति से खेत सींचने में सक्षम, (अनुपक्षितम्) कभी क्षीण न होने वाले, (अवतम्) कूप को (सिञ्चामहे) सींचें ॥५॥

भावार्थ—परमात्मा अथाह ज्ञान का सागर है। उससे हम अपने क्षेत्र, शरीर आत्मा एवं हृदय तथा जीवन को सींचें व उत्तम व्रत इत्यादि क्रियाओं से परमात्मा की स्तुति करें ॥५॥

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् । उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६। १८॥

पदार्थ —मैं (इष्कृत आहावम्) जल-पान के सुन्दर स्थान से सुसज्जित, (सु-वरत्रम्) उत्तम रज्जुयुक्त, (सु-सेचनम्) सुखपूर्वक सेचक, (उद्रिणम्) जल-युक्त (अक्षितम्) अक्षय (अवतम्) कूप को प्राप्त कर (सिञ्चे) सिंचाई करूं ॥६॥

भावार्थ —प्रभु ही अविनाशी रस का स्थान है। वही उत्तम वरणीय ज्ञाता है। वही रक्षक है। हम उसके रस से स्वयं को सींचें ॥६॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७॥

पदार्थ —(अश्वान् प्रीणीत) हे विद्वानो ! अश्वों तथा देह में इन्द्रियों को तृप्त रखो। (हित जयाथ) हितकारक अन्न पाओ। (स्वस्ति वाहं रथम्) सकुशल दूरी तक ले जाने वाले श्रेष्ठ अश्वयुक्त रथ को (इत कृणुध्वम्) बनाओ, वा अपने (रथं) रमण साधन देह को (स्वस्ति-वाहं कृणुध्वम्) कल्याण कर्मफल प्राप्ति वाला बनाओ। हे मनुष्यो ! आप लोग (नृपाणं) मनुष्यों के पालक (अंसत्र कोशम्) पञ्चकोशों के धारक (अश्म चक्रम्) पत्थर के घेरे वाले एवं सदैव गति-शील दृढ़ चक्र युक्त, (द्रोण आहावम्) काष्ठ निर्मित जलपान-पात्र से युक्त (अवतम्) कूप को पाकर (सिञ्चत) उससे खेत आदि सींचो ॥७॥

भावार्थ —हे विद्वज्जनो ! देह की इन्द्रियों को तृप्त रखो। हितकारक अन्न पाओ एवं द्रुतगामी रथों को बनाओ तथा रमण साधन देह को कल्याण कर्मफल प्राप्त करने वाला बनाओ ॥७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

पदार्थ—आप लोग (व्रजं कृणुध्वम्) गमन योग्य पथ तथा गोशाला को भली-भांति बनाओ, (स. हि व: नृ-पाणः) वह निश्चय ही आपका रक्षक है। आप लोग (बहुला) बहुत से (पृथूनि) विशाल (वर्म) कवचों को (सीव्यध्वम्) सीयो। आप लोग (अधृष्टा) शत्रु से अजय, (आयसीः) लौह निर्मित शस्त्रादि से सुसज्जित (पुर. कृणुध्वम्) पुरियां, नगरियां बनाओ। (व चमसः) आप लोगों का चमस पात्र भी (मा सुस्रोत्) न चूए, (तम् दृंहत) उसे भी दृढ़ बनाओ ॥८॥

भावार्थः—देह ही इन्द्रियों का वास स्थल है। यही आत्मा का पालक एवं सुख से रसपान करने का स्थान है, यही कवच के तुल्य है। ये पंचकोश नगरियों के समान हैं। प्राणयुक्त होने के कारण 'आयसी' है। विभिन्न सुखरस भोगने के कारण देही 'चमस' है। इसका रस अर्थात् वीर्य दृढ़ हो ॥८॥

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥९॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! मैं (वः) आप लोगों की (यज्ञियां धियं) पूज्य प्रभु की प्राप्ति योग्य कर्म व बुद्धि को (आ वर्ते) प्रेरित करता हूँ। आप लोग

(ऊतये) रक्षार्थ (यज्ञियाम्) यज्ञ योग्य (वसवो) पूजनीय (देवीम्) प्रभुशक्ति एवं वाणी को धारें । (यवसा इव गावी धी) घास, भूस, अन्नादि पाकर पुष्ट गौ के तुल्य वह (मही) महान् शक्ति (सहस्रधारा) सहस्रों सुखों की धारक (नः पयसा दुहीयत्) हमें दूधवत् ज्ञान व बल दे ॥९॥

भावार्थः—विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे यज्ञ योग्य पूज्य प्रभुशक्ति एवं वाणी को धारण करें । परमात्मा की शक्ति ही सुखदायक है । वही हमें दूध के समान ज्ञान व बल से पूर्ण करने में समर्थ है ॥९॥

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।

परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥

पदार्थः—हे उपासक ! (हरिम् आ सिञ्च) तू सबका दुःखहारी प्रभु के आनन्द रस को (ईम् द्रोः) इस द्रुतगति मन के (उपस्थे) बीच में रमा । (अश्मन्-मयीभिः वाशीभिः) लोहसार निर्मित वसूलियों से पात्र के तुल्य (अश्मन्-मयीभिः) व्यापक प्रभु के गुणों से युक्त तथा (वाशीभिः) मन वश में करने वाली योग-क्रियाओं से (तक्षत) प्रभु की वन्दना करो । (कक्ष्याभिः) रज्जुओं से अश्वों के तुल्य (दश) वशी इन्द्रियों को (कक्ष्याभिः) द्रष्टा आत्मा वा प्राणों की वृत्तियों से (परि स्वजध्वम्) चतुर्दिक से नियमित करो और उसे (परि-सु-अजध्वम) सन्मार्ग पर चलाओ । (उभे धुरौ) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को (धुरौ) रथ धारक दो अश्वों के तुल्य जान कर (वह्निं प्रति युनक्त) शरीर वहन कर्त्ता आत्मा को संयुक्त करो ॥१०॥

भावार्थः—उपासक को सर्वदुःख हर्ता परमात्मा के आनन्द रस से अपने चंचल मन को आलोकित करना चाहिए । उसे योग-क्रियाओं का अभ्यासी बनकर अपनी आत्मा व प्राण की वृत्तियों को नियमित करना चाहिए तथा सन्मार्गगामी होना चाहिए ॥१०॥

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११॥

पदार्थः—(वह्निः) देह वहन कर्त्ता आत्मा (आ-पिब्दमानः) आनन्दित होता हुआ, (योना इव द्वि-जानिः) जन्मधारी द्विज के समान, (उभे धुरौ अन्तः) देहधारक दोनों इन्द्रिय-शक्तियों के (चरति) मध्य गति करता है । (वनस्पतिम्) विभिन्न विषयों को सेवन करने वाले इन्द्रियगण पालक आत्मा को (वने) सम्भजन योग्य परमात्मा में (आ-स्थापयध्वम्) स्थापित करो । (नि दधिध्वम्) उस आत्मा को स्थिर करो और (उत्सम्) रसों के परम आश्रय उस परमेश्वर को (अखनन्त) कूप के तुल्य श्रमपूर्वक खोदकर, जल के तुल्य परम रस पाओ ॥११॥

भावार्थः—आत्मा ही देह को वहन करता है । वह द्विज तुल्य देहधारक दोनों इन्द्रिय-शक्तियों के बीच में गतिमान रहता है । साधक को विषयशक्ति त्याग कर परमात्मा के प्रति अनुरक्त होना चाहिए तभी वह प्रभु के आनन्द को पा सकता है ॥११॥

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२॥१९॥

पदार्थः—हे (नरः) मनुष्यो ! वह परमात्मा (कपृत्) जगत् को सुख से पूर्ण करता है । उस (कपृथम्) सुखपूरक आनन्दघन परमात्मा को (उत् दधातन) सर्वोच्च कर स्वचित्त में धारो और (वाजसातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, आनन्द लाभार्थ (चोदयत) उसकी वन्दना करो । (खुदत) उसी में आनन्द पाओ । हे (सबाध) लोक-पीड़ाओं से दुखित जनो ! वा प्रतिपक्ष भावना के अभ्यासी जनो ! आप लोग (इह) इस लोक में (ऊतये) रक्षार्थ (निष्टि-ग्र्यः पुत्रम्) 'निष्टी' नाशवान्-देह को जीर्ण करने वाले प्रभु के 'पुत्रवत्', (इन्द्रम्) आत्मा को (आच्यावय) सर्व प्रकार प्राप्त करो ॥१२॥१९॥

भावार्थ—परमात्मा ही आनन्दघन है, उसे ही हृदय में सर्वोच्च स्थान देना चाहिए । आत्मा को प्रभु के पुत्रवत् बनाना ही श्रेयस्कर है ॥१२॥१९॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१०२]

ऋषिर्मुद्गलो भार्म्यश्वः । देवता—द्रुघण इन्द्रो वा ॥ छन्द—१ पादनिचृत् बृहती । ३, १२ निचृत् बृहती । २, ४, ५, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, ८, १० विराट् त्रिष्टुप् । ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।

अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥१॥

पदार्थः—हे जीव ! (इन्द्रः) विघ्ननाशक प्रभु (धृष्णुया) दुष्टों की विनाशक शक्ति से (ते) तेरे (रथम्) सुख के साधन देह को (अवतु) बचाए । हे (पुरु-हूत) अनेकों के पुकारने योग्य ! (अस्मिन्) इस (श्रवाय्ये) श्रवणीय (आजौ) जीवन समर में और (धन-भक्षेषु च) धनैश्वर्य के सेवन के समय (नः अव) हमारी रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ही विघ्न-विनाशक है । वही स्तुत्य है और धनैश्वर्य का देने वाला तथा रक्षक है ॥१॥

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।

रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब (वातः) वायु तुल्य महाबली पुरुष (रथीः) महारथी बनकर (सहस्रम) सहस्रों शत्रुओं पर (अजयत्) विजय प्राप्त करता है, तो वह (अधि रथम्) रथ पर रह कर (अस्याः) इस सेना का (वासः) वस्त्र तुल्य लज्जा-संगोपन का भार संभालता है । उस समय वह सेना (गविष्टौ) भूमियों को प्राप्त करने हेतु (मुद्गलानी अभूत्) सुखजनक साधनों को देने वाली होती है और (इन्द्र-सेना) शत्रुनाशक वीर की सेना (भरे कृतम्) संग्राम में प्राप्त किये विजय और लक्ष्मी के लाभ को (वि अचेत्) विशेषतः पा ले ॥२॥

भावार्थः—पराक्रमी सेनापति की सेना शत्रुओं का दमन करने वाली होती है तथा वही प्रजा में सुख-शान्ति का विस्तार करती है ॥२॥

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।

दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रु नाशक ! (जिघांसतः) मारना चाहने वाले (अभिदासत) और विनाशक शत्रु के (अन्तः) भीतर तू अपने (वज्रम्) बल-वीर्य तथा शस्त्रबल को (यच्छ) स्थापित कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (दासस्य वा आर्यस्य वा) स्व सेवक व श्रेष्ठ जन के (सनुतः) सदैव गूढ़ रूप से किये (वधम्) नाशक वध-प्रयोग को (यवय) दूर हटा ॥३॥

भावार्थ—प्रभु ही शत्रु नाशक है । वही श्रेष्ठ जनों को शत्रुओं के शस्त्र बल व छल से बचाने में समर्थ है ॥३॥

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।

प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥४॥

पदार्थः—वीर जन (जर्हृषाणः) आनन्दित होकर (ह्रदम् अपिबत) उत्तम बलदायी रस को पीता हुआ (कूटम्) छलयुक्त (अभिमातिम् एति) अभिमानी शत्रु पर प्रहार करता है, (श्रवः इच्छमानः) यशेच्छुक (मुष्क-भार) परिपुष्ट सामर्थ्यवान् बनकर (सिषासन्) ऐश्वर्य कामी हुआ (अजिर) वेग सहित (बाहू प्र अभरत्) शत्रु को पीडक दोनों सैन्यदलों से दल ॥४॥

भावार्थ—वीर पुरुष उत्तम बल से युक्त हो छली व अभिमानी शत्रु पर प्रहार करे और उसका दमन करे ॥४॥

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।

तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥५॥

पदार्थ—विद्वान् (वृषभम् उप प्रयन्तः) सर्व-सुखदाता प्रभु की वन्दना करते हुए (नि अक्रन्दयन्) उसकी भली-भांति स्तुति करते हैं । इसी स्तुति से (प्रधने) उत्कृष्ट धनसम्पन्न प्रभु के लिए (मुद्गलः) आनन्द पाने वाला विद्वान् (सूभर्वम्) सुख से ग्रहण-धारण योग्य (गवां शतवत् सहस्र) सौ से युक्त सहस्र वाणियों अर्थात् अनेक वाणियों को (जिगाय) पाता है ॥५॥

भावार्थः—विद्वान सर्व-सुखदाता प्रभु की उपासना करते हुए उसकी भली-भांति स्तुति करते हैं । इसी स्तुति से प्रभु भी उन पर कृपा करता है और उनके ज्ञान को और अधिक बढ़ाता है ॥५॥

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।

दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्

॥६॥२०॥

पदार्थ—(ककर्दवे) दुःख के बन्धन काटने हेतु (वृषभ) सभी सुखों के दाता प्रभु को (युक्त आसीत्) योग से समाहित चित्त से ध्याया जाता है । वह (केशी) सूर्य तुल्य नाना ज्ञानरश्मियों से सम्पन्न हो (अस्य) इस जीव को (सारथिः) रथसञ्चालक के तुल्य (अवावचीत्) स्पष्टतः उपदेश करता है । (अनसा) प्राण-शक्ति सहित (द्रवतः) वेगवान् (युक्तस्य) योग द्वारा समाहित, (दुधेः) दुर्गन्ध (निष्पदः) ज्ञानक्षेत्र से दूर उस आत्मतत्त्व की (मुद्गलानीम्) सुखदायी परमानन्द शक्ति को (अनसा सह ऋच्छन्ति) अपने प्राण से साक्षात् करते हैं ॥६॥२०॥

भावार्थ—दुःखों से मुक्ति के लिए प्रभु को योग द्वारा समाहित चित्त से ध्याया जाता है । योग साधना के बल पर ही व्यक्ति आत्मतत्त्व की सुखदायी परमानन्द देने वाली शक्ति को अपने प्राण के साथ साक्षात् करता है ॥६॥२०॥

उत प्रधिमुद्वहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।

इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७॥

पदार्थः—(विद्वान्) ज्ञानीजन (अस्य प्रधिम्) संसार के सर्वोत्कृष्ट धारक परमात्मा को (उत् अहन्) उत्तम रीति से पाएं । वह (इन्द्र) तत्त्वदर्शी जन (अत्र) इसी देह में (शिक्षन्) स्वयं को समर्पित करता हुआ (वंसगम्) सकल लोक सञ्चालक और उनमें व्याप्त (अघ्न्यानां पतिम्) अविनाशी शक्ति पालक परमात्मा को (उत् आवत्) उत्तम पद पर पाता है और (ककुद्मान्) श्रेष्ठ हो (पद्याभिः अरंहत) उत्तम गमन योग्य पथ से जाता है ॥७॥

भावार्थ —ज्ञानी जन प्रभु के समक्ष आत्मसमर्पण कर लोकों के संचालक और उनमें व्याप्त प्रभु को उत्तम पद पर प्राप्त करता है और श्रेष्ठ पथ का अनुगमन करता है ॥७॥

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।

नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥८॥

पदार्थ —(कपर्दी) जगत् को सुख से पूर्ण करने वाला (अष्ट्रावी) व्यापक शक्तिमान् हो (वरत्रायाम्) सर्वोत्तम रक्षा करने वाली शक्ति में (दारु) छिन्न भिन्न होने वाले संसार को (आनह्यमानः) सर्व प्रकार बांधता हुआ (शुनम् अचरत्) सुख पूर्वक व्याप्त है । वह (बहवे जनाय) बहुत से उत्पन्न जीवों के सुखार्थ (नृम्णानि) मनुष्यों के कमनीय अनेक ऐश्वर्यों को पाता हुआ (पस्पशानः) जगत् शक्तियों को अध्यक्षवत् देखता है वा (तविषी गाः अधत्त) अनेक बलवती सञ्चालक शक्तियों को धारता है ॥८॥

भावार्थ —परमात्मा ही सकल ससार का नियन्त्रण करता है । वही मनुष्यों के कमनीय अनेक ऐश्वर्य प्रदान करता है । उसकी बलवती शक्तियां अनन्त हैं ॥८॥

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।

येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥९॥

पदार्थ —(इमम् तम् वृषभस्य युञ्जम् काष्ठाया मध्ये शयानम् द्रुघणम् पश्य) इस उस बैल से जुड़े हुए दिशाओं के बीच में पड़े काठ के बने घन को देखो (येन) जिससे (मुद्गलः) मुद्गल ने (पृतनाज्येषु) सेनाओं के संग्राम मे (गवां शतवत् सहस्रम्) सैकड़ों सहस्रों गौओं को जीत लिया ॥९॥

इस मन्त्र पर निरुक्त मे एक कहानी लिखी गई है —

"तत्रेतिहासमाचक्षते— मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिः, वृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा संग्रामे व्यवहृत्याजि जिगाय" निरु ९-२३

यही इतिहास कहते हैं— भार्म्यश्व ऋषि के पुत्र मुद्गल ऋषि ने बैल के साथ द्रुघन [मुद्गर] को जोड़ कर युद्ध मे व्यवहार करके लड़ाई जीत ली । क्या यह कहानी ऐतिहासिक घटना है ? हम पहले दवापि वाले सूक्त पर लिख आये है, कि अर्थ को रोचक बनाने के लिए ये कहानियां बनाई गई हैं और आलंकारिक हैं यथा —

मुद्गल —"मुद्गवान् मुद्गिलो वा मदन गिलतीति वा मदंगिलो वा मदूगिलो वा" नि० ९-२३

मूंग वाला, मूंग खाने वाला, कामदेव को वश मे करने वाला घमण्ड को रोकने वाला ।

"भार्म्यश्व —भृम्यश्वस्यापत्यम्" नि० ९-२३
जिसके घोड़े वचन को पूर्ण करने वाले हों ।

भावार्थ —जिसकी इन्द्रियां [घोड़े] कहने मे चलती हैं ऐसे इन्द्रिय विजयी का पुत्र और कामदेव और मद को जीतने वाला मनुष्य जब वृषभ धर्म के साथ अपने द्रुघण बल को जोड़ लेता है तो सैकड़ों गौओं ज्ञान-वाहिनी नाड़ियों को असुरों-मोहावरणों से जीत लेता है ॥९॥

आरे अघा को न्वित्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।

नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०॥

पदार्थ —(अघा आरे) उससे सब प्रकार के पाप दूर है (इत्था कः नु ददर्श) ऐसे प्रभु को किसने देखा है (यं युञ्जन्ति) जिसके साथ मन को जोड़ते हैं (तम् उ) और उसमे ही (आस्थापयन्ति) स्थित कर देते हैं (न अस्मै तृणम् न उदकं आभरन्ति) उसको घास और जल भी नहीं देते हैं अर्थात् मन रूपी बैल को बांध, भोग वस्तुओं से रहित कर देते हैं । (उत्तरः) ऊंचा उठा वा भव तरने वाला योगी (प्रदेदिशत्) सबको सुमार्ग दिखाता हुआ (धुरो वहति) जीवन के भार को वहन करता है ॥१०॥

भावार्थः—मन को भोगों से हटा कर योग मे लगाना चाहिए ॥१०॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।

एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

पदार्थः—(पीप्याना) शरीर और आयु में बढ़ती हुई कन्या (परिवृक्ता इव) पिता से दी हुई के समान (पति विद्यमानट्) पति बनाने योग्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार (कूचक्रेण) मेघ के चक्र से वा रहट से भूमि को (सिञ्चन इव) मानों सींचते हुए (एषैष्या) विविध इच्छाओं को करने वाली (रथ्या) रथ योग्य भूमि से (जयेम) विजयी बनें (सातं सिनवत्) हमारा भुक्त सुख भी अन्न के समान (सुमंगलं, अस्तु) शुभ मंगलकारी हो ॥११॥

भावार्थः—योगयुक्त होकर हम सुखी बनें ॥११॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।

वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥२१॥

पदार्थः—हे इन्द्र (त्वं विश्वस्य चक्षुषः, चक्षुः, असि) तुम संसार भर के नेत्रों के भी नेत्र हो, (यत्) क्योंकि (वृषा) सुख वर्षक (वध्रिणा युजा) सर्वव्यापक, सबको सुमार्ग मे नियुक्त करने वाले बल से (आजिम्) संग्राम को (वृषणा चोदयन्) रथ मे जुड़े दो घोड़ों को अर्थात् शरीर में जुड़े प्राण और मन को प्रेरणा करता हुआ (सिषाससि) सबको वश मे करता है ॥१२॥

भावार्थ —इन्द्र सबको ज्ञान देता है, सुमार्ग दिखाता है, जीवन संग्राम मे विजयी बनाता है, सब उसके वश मे हैं ॥१२॥

इत्येकविंशो वर्ग.

---

[१०३]

ऋषिरप्रतिरथ ऐन्द्रः ॥ देवता—१—३, ५—११ इन्द्र । ४ बृहस्पतिः १२ अप्वा । १३ इन्द्रा मरुतो वा । छन्द —१, ३—५, ९ त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ८, १० १२ विराट् त्रिष्टुप् । विराडनुष्टुप् । त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

पदार्थ —(आशुः) शीघ्र कार्यकर्ता (शिशानः) तीक्ष्ण (वृषभः, न भीमः) भयंकर बैल के समान (घनाघन) शत्रु का नाशक (चर्षणीनाम् क्षोभणः) सब मनुष्यों को क्षुब्ध करने वाला (संक्रन्दन) शत्रुओं को रुलाने वाला (अनिमिषः) सुस्त न रहने वाला आलस्य रहित (एक वीर) अद्वितीय शूर (इन्द्र) इन्द्र (साकम्) एक साथ (शतं सेनाः) सैकड़ों सेनाओं को (अजयत्) जीत लेता है ॥१॥

भावार्थ – इन्द्र परमेश्वर उक्त गुणों वाला होने से सब पर विजयी है इसी प्रकार इन्द्र राजा सावधान, शीघ्र कार्य कर्ता आदि गुणयुक्त हो तो विजयी रहता है ॥१॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

पदार्थ —(युध नर) हे योद्धा नेताओ ! हम सब (संक्रन्दनेन) शत्रुओं को रुलाने वाले (अनिमिषेण) न झपकने वाले अर्थात आलस्य रहित (जिष्णुना) विजयी (युत्कारेण) युद्ध करने वाले (दुश्च्यवनेन) कभी न गिरने वाले (धृष्णुना) शत्रुओं का दर्प दलन करने वाले (इषुहस्तेन) हाथ मे बाण लिये अर्थात् सशस्त्र (वृष्णा) बलवान् (इन्द्रेण) ऐश्वर्यशाली राजा से तुम (तत् जयत्) उस युद्ध को जीतो (तत् सहध्वम्) उस शत्रु को परास्त करो ॥२॥

भावार्थ —उक्त गुणों से युक्त व्यक्ति को नेता वा राजा बनाओ तो राष्ट्र विजयी रहेगा ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।

संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

पदार्थ —(स) वह (इषु हस्तैः) बाण, तूणीर, तलवार इत्यादि धारी पुरुषों के द्वारा (वशी) शत्रुओं को वश मे करता है (सः) वह (संस्रष्टा) उत्तम व्यवस्थापक (इन्द्र) ऐश्वर्यसम्पन्न (गणेन युध) अपने सहयोगी जनों समेत युद्ध करने वाला है । वह (सोम पाः) प्रजापालक (संसृष्ट-जित्) आपस में मिले शत्रुओं को युद्ध मे हराने वाला (बाहु शर्धी) बाहुबलयुक्त (उग्र धन्वा) उग्र धनुर्धारी है । वही (प्रतिहिताभिः) शत्रु पर छोड़े हुए शस्त्रास्त्रों व सेनाओं द्वारा (अस्ता) शत्रु मर्दन मे समर्थ है ॥३॥

भावार्थ —यह प्रार्थना इन्द्र व सेनापति से है कि वह अपने बल-विक्रम से राष्ट्र की रक्षा करें ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।

प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

पदार्थ —(हे बृहस्पते) हे बड़े-बड़े लोकों के पालक (रथेन परिदीया) रथ से आगे बढ़ो (रक्षोहा) राक्षसों का हनन करने वाले हो, तुम (अमित्रान् अपबाधमान.) शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो । (सेनाः प्रभञ्जन्) सेनाओं को नष्ट करते हुए (युधा) युद्ध द्वारा (प्रमृण) मारते हुए (जयन्) विजय करते हुए (अस्माकं) हमारे (रथानाम्) रथों के (अविता) रक्षक (एधि) होओ ॥४॥

भावार्थः—यह प्रार्थना इन्द्र से भी है और राष्ट्रपति से भी है कि वे रक्षा करें ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।

अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५॥

पदार्थ.—(बलविज्ञाय) सबके बलों को जानने वाला (स्थविरः) महान् (प्रवीरः) उत्कृष्ट वीर (सहस्वान्) शत्रुओं को जीतने वाला (वाजी) शक्तिशाली (सहमानः) शत्रुओं को परास्त करने वाला (उग्रः) तेजस्वी (अभिवीरः) वीरों से युक्त (अभिसत्वा) बलवान् जनों से सम्पन्न (सहोजाः) बल पराक्रम में विख्यात (गोवित्) भूमियों को प्राप्त करने वाला (इन्द्र) हे इन्द्र ! (जैत्रम् रथम् आतिष्ठ) विजय करने वाले रथ पर विराजो ॥५॥

भावार्थः—इन्द्र की प्रशंसा के साथ सेनापति एवं राष्ट्रपति के गुण भी वर्णन किये हैं ॥५॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।

इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६॥२२॥

पदार्थ—(हे सखायः) हे मित्रो ! (गोत्रभिदम्) मेघो को वा पर्वतों को भेदन करने वाले (गोविदम्) पृथिवी को प्राप्त करने वाले (वज्र बाहुम्) कठोर भुजाओं वाले (अज्म जयन्तम्) युद्ध को जीतने वाले (ओजसा) बल-विक्रम से दुष्टो का अच्छी तरह नाश करने वाले (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र को (हे सजाता: हे सहाय्य) हे साथियो, हे मित्रो ! (अनुवीरयध्वम्) अनुकरण करके वीर बनो, (अनुसरभध्वम्) उसके अनुकूल उद्योग आरम्भ करो ॥६॥

भावार्थः—वीर रूप मे इन्द्र की स्तुति है, इससे अपना साहस और उत्साह बढ़ता है ॥६॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।

दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

पदार्थ—(सहसा) एक साथ (गोत्राणि) पर्वतो वा बादलों को (अभि-गाहमान) मथन करता हुआ (अदय) दुष्टो पर दया न करने वाला (वीर) वीर (शतमन्युः) सैकडो गुना कोप करने वाला (इन्द्रः) इन्द्र ईश्वर वा राष्ट्रनायक (दुश्च्यवनः) परास्त न होने वाला (पृतनाषाड) सेनाओं को वश मे करने वाला (अयुध्य) जिससे कोई युद्ध नही कर सकता ऐसा सेनापति वा इन्द्र (प्रयुत्सु) बडे घोर युद्धों में (अस्माकम् सेनाम्) हमारी सेना को (अवतु) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ—सेनापति मे, राष्ट्रनायक मे उपर्युक्त योग्यताए होनी चाहिए ॥७॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

पदार्थ.—(आसाम्) इन सेनाओं का (इन्द्रः नेता) इन्द्र नेता है (बृहस्पति) बडी-बडी शक्तियों का स्वामी (दक्षिणा) रण की कुशलता (यज्ञ) सघटन, सगनिकरण (सोम) औषध (पुर एतु) आगे चलें । (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रुओ को विदीर्ण करने वाली (जयन्तीनाम्) जय करने वाली (देवसेनानाम्) आर्य सेनाओं के (अग्रं) आगे (मरुतः) वायुसम शीघ्रगामी और शत्रुओं के मारने वाले सैनिक (अग्रे यन्तु) आगे चलें ॥८॥

भावार्थ—सेनाओ के सचालन का सुन्दर वर्णन है ॥८॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।

महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९॥

पदार्थ—(वृष्णः) बलवान् (इन्द्रस्य) सेनापति का (वरुणस्य राज्ञ) प्रजा द्वारा वरण किये गए राजा का (आदित्यानाम् मरुताम्) तेजस्वी योद्धाओ का (उग्रम् शर्धं) उग्र बल (भुवनच्यवानां) भुवनों को कंपाने वाले (देवानाम्) देवो का (घोष) जयनाद (जयताम्) विजयी बने, (उत् अस्थात्) ऊपर उठ ॥९॥

भावार्थः—युद्ध मे मनोबल बढ़ाने वाली प्रार्थना है ॥९॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।

उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥

पदार्थ—(हे मघवन्) हे इन्द्र (सत्वनाम् मामकानाम्) बलशाली हमारे पक्षवालों के (आयुधानि मनांसि) शस्त्रास्त्र और मनो को (उद् हर्षय) उत्साहित कर, प्रसन्न कर ।(हे वृत्रहन्) हे वृत्र को मारने वाले इन्द्र ! (वाजिनाम्) अश्वारोहियों के (वाजिनानि) बलों को (उत्) उन्नत कर (रथानाम्) रथों के (घोषा) शब्द (जयताम्) विजयी रथों के शब्द (उद्यन्तु) ऊपर उठें ॥१०॥

भावार्थः—यहाँ इन्द्र से युद्ध-विजय की प्रार्थना है ॥१०॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥

पदार्थः—हे इन्द्र (अस्माकम्) हमारे (सम् ऋतेषु ध्वजेषु) भली प्रकार सुसंगत पताकाओं में (इन्द्र.) इन्द्र सहायक हो (अस्माकम्) हमारे (या. इषवः ता: जयन्तु) जो बाण हैं वे विजयी रहें, (अस्माकम्) हमारे (वीरा) सैनिक (उत्तरे भवन्तु) उन्नत हों (उ) और (देवा) देव जनों (अस्मान्) हमें (आहवेषु) युद्धों में (अवत) रक्षा करो ॥११॥

भावार्थः—विजय की प्रार्थना है, इससे मनोबल बढ़ता है ॥११॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।

अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥

पदार्थः—(हे अप्वे) हे अपराजित सेने ! (अमीषाम्) इन शत्रुओ के (चित्तम्) मन को (प्रतिलोभयन्ती) भुलावे में डालती हुई (अंगानि गृहाण) इनके शरीरो को ग्रहण कर, इन्हे पकड ले, (परेहि) दूर तक जा, (अभिप्रेहि) सामने आगे बढ़, (हृत्सु) इनके हृदयो मे (शोकै) शोको से (निर्दह) जला डाल (अमित्रा) शत्रु (अन्धेन तमसा) घोर अधकार से (सचन्ताम्) युक्त हो जायें ॥१२॥

भावार्थ—शत्रुओ को भुलावे में डालो, धुए से उनको शोकग्रस्त करो ॥१२॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१३॥२३॥

पदार्थः—(हे नर.) हे नेताओ ! (प्र, इत) प्रगति करो (जयत) विजयी बनो (इन्द्र.) ऐश्वर्यशाली ईश्वर (वः) तुम्हे (शर्म) कल्याण, सुख (यच्छतु) दे (व. बाहवः) तुम्हारी भुजाए (उग्राः सन्तु) युद्ध के लिये उग्र हों (यथा) जिस प्रकार तुम (अनाधृष्या असथ) अपराजित रहो ॥१३॥

इति त्रयोविंशो वर्गः

---

[१०४]

ऋषिरष्टको वैश्वामित्र ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द — १, २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।

तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य ॥१॥

पदार्थः—(हे पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुये इन्द्र (तुभ्यम् सोम) तुम्हारे लिये सोमरस (असावि) निचोड़ा गया है (तूयम्) शीघ्र (हरिभ्याम्) अपने दो घोड़ो द्वारा [रथ द्वारा] (यज्ञम् उपयाहि) यज्ञ के समीप आओ (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (प्रवीरा) बडे वीर जन (इयाना गिर) गतिशील स्तुतिया (दधन्विरे) धारण करते हैं (हे इन्द्र सुतस्य पिब) सोमरस पान करो ॥१॥

भावार्थः—अर्थ से यह प्रतीत हो रहा है कि इन्द्र कोई साकार एकदेशीय देव है । रथ पर चढ़कर आता है परन्तु यह सब वर्णन अलंकारमय भावात्मक हैं ।

अथाकार चिन्तन देवतानाम् । पुरुष विधाः स्युरित्येकम् ।
अपि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते । नि० दैवतका—७।६

और देवताओं का आकार चिन्तन करना यह है कि एक सम्मति यह है कि मनुष्यो के आकार के समान आकार-चिन्तन न हो और अङ्गो के समान ही स्तुतियां की जाती हैं । देवता न एकदेशी हैं न साकार । यह केवल मनुष्यो की भावनाए हैं । जैसे—त्वमेव माता च पिता त्वमेव, परन्तु ईश्वर किसी का वास्तविक लौकिक माता पिता नहीं । "कृपा की दृष्टी करो मुझ पै भगवान्" परन्तु ईश्वर नेत्रादि अंग नही रखता यह सब भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये वर्णन से पुरुष मिश्र किया किया जाता है । सोम—भक्तिभाव दो घोडे, ज्ञान और गति ॥१॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।

मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥२॥

पदार्थः—(हरिवः) सब लोगो के पति इन्द्र (इह) इस पात्र मे (नृभि सुतस्य) मनुष्यो के निचोडे हुए (अप्सु धूतस्य) जलो मे कापते हुए (सुतस्य) निचोडे हुए सोम को (पिब) पियो (जठर पृणस्व) उदर को पूर्ण करो (हे इन्द्र उक्थ वाह) वेद वचनो को धारण करने वाले विद्वान् (अद्रय) मेघ विद्वान् जन (यम् मदम) जिस आनन्ददायक जल को (तुभ्यम् मिमिक्षु) तुम्हारे लिये वर्षाते हैं (तेभि , वर्धस्व) उनसे तृप्त होओ, प्रसन्न होओ ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदमार्ग पर चल कर परमात्मा के वरदान अमृत और सोमरस का पान कर सकते हैं ॥२॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥३॥

पदार्थः—(हे हर्यश्व) हे सर्वसचालक प्रभो ! (वृष्णे तुभ्यम्) आनन्दवर्षा करने वाले तुम्हारे लिए (सुतस्य) निचोडे हुए सोम की (प्र-उग्राम् सत्याम् पीतिं) बहुत उग्र सत्य पीने को (प्रयै) अपनी उन्नति के लिये (प्रइयर्मि) स्तुति करता हूँ (हे इन्द्र) हे इन्द्र देव (इह) इस यज्ञ में (विश्वाभि , धेनाभि , धीभिः) सब सुख देने वाली वाणियो के साथ से (गृणान) स्तुति किये हुए (शच्या) दिव्य शक्ति के साथ (मादयस्व) प्रसन्न होओ ॥३॥

भावार्थ—प्रभु हमारे भक्ति-भावना के सोम को पीकर, जानकर इस यज्ञ मे प्रसन्न हो ॥३॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।

प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥४॥

पदार्थ.—(हे शचीवः) हे शक्ति के स्वामिन् (तव, ऊतिः) तुम्हारी रक्षा कृपा (वीर्येण वय , दधाना) शक्ति से आयु धारण करते हुए हम (उशिज) कामना वाले (ऋतज्ञा) आपके सत्य नियमों को जानने वाले, हे इन्द्र (मनुषः)

मनुष्य के (प्रजावत्-दुरोणे) संतानयुक्त घर में (सधमादासः) सबके साथ आनन्द करते हुए (गृणन्तः) आपकी स्तुति करते हुए (तस्थुः) रहें ॥४॥

भावार्थः—अपने घरों में सतानों से युक्त हम सत्य नियमों पर चलते हुए इन्द्र की स्तुति करें ॥४॥

प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।

मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥५॥२४॥

पदार्थः—(हे हर्यश्व) हे सब लोको के पति ईश्वर ! (सुष्टोः सुषुम्नस्य) अच्छी प्रकार स्तुति किये गये और उत्तम धनैश्वर्य के स्वामी (ते) तेरी (प्रणीतिभिः) उत्तम नीतियों से (जनासः) सब जन (पुरुरुचः) उज्ज्वलरुचि वाले बनते हैं । (हे इन्द्र) हे सर्वैश्वर्य पते ! (सूनृताभिः) उत्तम, सत्य, मधुर वाणियो से (तव स्तोतारः) तुम्हारी स्तुति करने वाले (वितिरे) अन्यों को हम दान देने और स्वय तरने के लिये (मंहिष्ठाम् ऊतिम् दधानाः) तेरी महती उत्तम रक्षा को धारण करते हैं ॥५॥

भावार्थ —ईश्वरोपदिष्ट वेदनीतियों पर चल कर ईश्वर-भक्त ईश्वरीय रक्षा को पाते हैं ॥५॥

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।

इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥६॥

पदार्थ —(हे हरिवः) हे सबके स्वामिन् (सुतस्य सोमस्य पीतये) तैयार किये सोम के पीने के लिए (हरिभ्याम्) अपने दो घोड़ो, ज्ञान और प्रयत्नो से (ब्रह्माणि उपयाहि) वेदमन्त्रों से की हुई स्तुतियों के समीप आओ । अर्थात् हमारा सोम प्रेम-भाव वेदपाठ में है उसे स्वीकार करो (हे इन्द्र क्षममाणम् त्वाम्) सर्व-शक्तिसम्पन्न तुम्हे (यज्ञः आनट्) यज्ञ प्राप्त होता है (प्रकेत) प्रकृष्ट ज्ञान वाले आप (अध्वरस्य दाश्वान् असि) यज्ञ के देने वाले हो अर्थात् आपकी कृपा से ही यज्ञ होता है ॥६॥

भावार्थ —वेदपाठ रूपी सोम का ईश्वर स्वीकार करता है, यज्ञ भी उसी के लिये है ॥६॥

सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।

उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥७॥

पदार्थः—(जरितु, गिर) स्तोता की वाणियां (सहस्र वाजम्) सहस्रों शक्ति वाले (सुते रणम्) उत्पन्न किए ससार मे रमण करने वाले अर्थात् व्यापक (अभिमाति षाहम्) अभिमानियों को वश में करने वाले (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति योग्य (मघवानम) सब धनों के स्वामी इन्द्र को (उपभूषन्ति) अलंकृत करती है (जरितः, नमस्याः) स्तुति करने वाले के प्रणाम् (अप्रति, इतम्) अद्वितीय और अप्रत्यक्ष परोक्ष (इन्द्रम्) इन्द्र को (पनन्त) स्तुति करते हैं ॥७॥

भावार्थ —हमारी स्तुति, भक्ति, यज्ञ सब उसी परोक्ष तत्व को पाने के लिए है ॥७॥

सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।

नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥८॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) योग युक्त जीव तू (पूर्भित्) शरीर रूपी पुरी का भेद न करने वाला है (सुरणाः) सुन्दर, रमणीय (अमृक्ता) अविनाशी (सप्त) सात (आपोदेवी) दिव्य प्राण गण (याभिः) जिनसे (सिन्धुम् अतरः) भवसागर को तरते हों (देवेभ्य , मनुषे च गातुम्) देवों और मनुष्यो के लिये गमन करने को (नव च नवतिं स्रवन्तीः) निन्यानवे स्रोतो को (विन्द) प्राप्त करता है ॥८॥

भावार्थ —जीव इन प्राणों को वश मे कर योग द्वारा भवसागर तरता है और निन्यानवे चेतना वाहिनी नाडियों को वश मे करता है ॥८॥

अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।

इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥९॥

पदार्थः—हे इन्द्र (अभिशस्ते.) मेघ से (महीः अपः) बड़े भारी जलों को (अमुञ्चः) मोचन करते, वर्षाते हो (आसु) इन जलो में (एक , अधिदेव.) एक अधिकारी देव (अजागः) जाग रहा है हे इन्द्र ! (याः) जिन जलों को तुमने (वृत्रतूर्ये) वृत्र-मेघ के छेदन करते हुए (चकर्थ) किया है (ताभिः) उनसे (विश्वायुः) सम्पूर्ण सौ वर्ष की आयु वाले (तन्वम्) शरीर को (पुपुष्याः) पुष्ट करो ॥९॥

भावार्थ —ऋषि की सब क्रियाओं मे एक ही अधिदेव ईश्वर जाग रहा है । ईश्वर के प्रबन्ध से ही वर्षा होती है, और वर्षा से हमारे शरीर पलते पुष्ट होते हैं ॥९॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।

आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः, वीरेण्यः) इन्द्र वीरों का नेता है (क्रतुः) सब जगत् का कर्ता है (सुशस्तिः) सुन्दर ज्ञान का उपदेष्टा है (उत अपि) और भी (धेना) वाणी (पुरुहूतम्) इन्द्र को (ईट्टे) स्तुति करती है (वृत्रम् आर्दयत्) अज्ञान जन्य मोह को नष्ट करता है (उ, लोकम् अकृणोत्) और लोक की रचना करता है (शक्रः) शक्तिमान हुआ (पृतनाः) सेनाओ को (अभिष्टिः) आक्रान्ता होकर (ससाहे) परास्त कर देता है ॥१०॥

भावार्थः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है उसकी स्तुति करके उसके गुण धारण करो ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥२५॥

पदार्थ —इसका अर्थ पीछे सूक्त ८९ मंत्र १८ में हो चुका है ॥११॥

इति पञ्चविंशो वर्गः

---

[१०५]

ऋषि कौत्स सुमित्रः सुमित्रो वा ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ पिपीलिका-मध्या उष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, १० निचृदुष्णिक् । ५, ६, ८, ९ विराडुष्णिक् । २ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।

दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥१॥

पदार्थ —(हे वसो) हे सबको बसाने वाले इन्द्र (हे हर्यत) हे सबसे अधिक तेजस्वी (कदा स्तोत्रम्) स्तुति कब करें (श्मशा) खेत मे बनी नाली जैसे (वाः) जलो को (आ, अवरुधत्) सब ओर से रोक कर बहाती है (दीर्घं सुतं) दूर तक जाने वाले मन को (वाताप्याय) प्राणो को रोक कर ईश्वर की प्राप्ति के लिये युक्त करो ॥१॥

भावार्थ —योग की प्रेरणा इस मन्त्र में है ॥१॥

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।

उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥२॥

पदार्थ —(यस्य) जिसके (हरी) कान्ति युक्त (सुयुजा) अच्छी प्रकार जोड़े हुए (विव्रता) विशेष व्रत वाले (अर्वन्ता) घोड़े, प्राण अपान (अशेपा) बल युक्त है । (उभा) दोनो (रजिकेशिनाः) सबको अनरंजित करने वाले, किरणो वाले सूर्य चन्द्रमा के समान हैं (पति) वह योगी (दन्) दान देता हुआ (वेः, अनु) शास्त्रादि की कामना करे ॥२॥

भावार्थ —जिसका मन और प्राण वश में है वही सबको दान दे सकता है और शास्त्रादि वा ज्ञान की कामना भी वह करे ॥२॥

अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् ।

शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥३॥

पदार्थ —(इन्द्र) इन्द्र (तविषीवान्) शक्ति युक्त (शश्रमाणः, मर्तः न) परिश्रमी मनुष्य के समान (पापजे) पाप से उत्पन्न जन मे (बिभीवान्) भयकर (अपयोः) दूर करता और (यत्) जो कि (शुभे) शुभ कार्य में (युयुजे) लगाता है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर पाप पर भयकर है, और भक्त को उससे बचाकर शुभ कार्य मे लगाता है ॥३॥

सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् ।

नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥४॥

पदार्थ —(इन्द्र) इन्द्र (उप, अनसः) अपने समीप प्राण वाले (सपर्यन्) मनुष्य के काम साधता हुआ (आ चर्कृषे) सबका काम पूर्ण करता है । (विव्रतयोः, नदयो) उलटे व्रत रखने वाले और व्यर्थ गरजने वाले के ऊपर इन्द्र (शूर) उन का नाश करने वाला है ॥४॥

भावार्थः—इन्द्र सदाचारी का सहायक और दुराचारी का नाशक है ॥४॥

अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।

वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥५॥२६॥

पदार्थ —(यः) जो (केशवन्ता) किरणों से युक्त (व्यचस्वन्ता) दूर दूर प्रकाश फैलाने वाले अर्थात् सूर्य चन्द्र दोनों पर (पुष्ट्यै) संसार की पुष्टि के लिए जैसे (अधितस्थौ) अधिकार रखता है (शिप्रिणीवान्) बलवती सेना वाला है (शिप्राभ्याम्) सूर्य, चन्द्र वा द्युलोक-भूलोक रूपी जबड़ों से (वनोति) जीवों को सुख देता है ॥५॥

भावार्थ —सूर्य, चन्द्र द्युलोक भूलोक और अपनी बड़ी-बड़ी शक्तियों से भगवान् जगत् का पालन करते हैं ॥५॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।

ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥६॥

पदार्थ—(ऋष्वौजाः) दर्शनीय तेज वाला (ऋष्वेभिः) दर्शनीय ज्ञानियों से (प्रास्तौत्) स्तुति किया जाता है (शूर) शत्रुनाशक (ऋभुभिः) अपने कार्यों से (शवसा) बल से (न) मानो (ततक्ष) इस जगत् को रचता है ॥६॥

भावार्थः—ईश्वर संसार का प्राण है, रचयिता है, ज्ञानी जनो से स्तुत्य है ॥६॥

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।

अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो इन्द्र (हिरीमशः) दीप्तियुक्त तेज से पूर्ण है (हिरीमान्) शक्तियों का स्वामी है (दस्यवे सुहनाय) दस्यु के मारने के लिए (वज्रं-चक्रे) वज्र को तैयार करता है (अरुतहनुः) जिसकी दण्डशक्ति कभी नहीं रुकती (रजः, अद्भुत न) तेज भी मानो अद्भुत है (न रजः) यह प्रकृति की रचना भी अनोखी है ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर का न्याय अबाधित है वह दुष्टों को वज्र से ताड़ित करता है ॥७॥

अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः ।

नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥८॥

पदार्थ—हे ईश्वर (नः) हमारे (वृजिना) पापों को (अवशिशीहि) विनष्ट कर दो (ऋचा) स्तुति से (अनृचः) स्तुति रहित मनुष्यों वा कर्मों को (वनेम) नष्ट करें (अब्रह्मा यज्ञः) वेद ब्रह्मा से रहित यज्ञ (त्वे न ऋधक् जोषति) तुम्हें स्वीकार नहीं है तुम उसे ग्रहण नहीं करते ॥८॥

भावार्थ—यज्ञों में शुद्ध-वेद पाठ होना चाहिए। ऋचाओं का प्रभाव प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों पर पड़ता है, ईश्वर उस पाठ को पसन्द करता है ॥८॥

ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।

सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥९॥

पदार्थः—(यत्) जो (ते) तेरी (यज्ञस्य) यज्ञ की (ऊर्ध्वा त्रेतिनी) तीनों लोकों में व्यापक शक्ति (धूः षु) संसार को धारण करने वाले पदार्थों में (सद्मनि) सबके गृहरूप सूर्य में (भूत्) होती है (आयोः) जीवमात्र की (सचा) सहायक (सजूः) समान प्रेरणा देती है (स्व यशसम् नावम्) अपने यश रूपी नौका को प्राप्त करे ॥९॥

भावार्थ—यज्ञों की सहायता से हम यशवाली नौका पर चढ़कर भवसागर को तरें ॥९॥

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः ।

यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०॥

पदार्थ—(उपसेचनी) भूमि को सींचने वाली मेघमाला (ते श्रिये भूत्) तेरी लक्ष्मी के लिए हो (यया स्वे पात्रे) जिससे अपने पात्र में अर्थात् कृपा के योग्य जन में (अरेपा) पापरहित अन्याय रहित पवित्र (उप सिञ्चसे) सींचता है उसे समृद्धि से भर देता है (दर्विः) तेरी करछुली [शाक को परोसने वाली चमची] अर्थात् समृद्धि देने वाली कृपा (उत्-उत्) और (तव श्रिये) तेरी शोभा के लिए है ॥१०॥

भावार्थ—ईश्वर अपने कृपापात्र को समृद्धि देता है, यह उसकी शोभा है ॥१०॥

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।

आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ।

॥११॥२७॥५॥

पदार्थः—(हे असुर्य) हे प्राणो में बसने वाले भगवन् ! (यत) जो कि (त्वा प्रति) तुम्हारे लिए (सुमित्र) सुखी मित्र भक्त (इत्था अस्तौत्) इस प्रकार स्तुति करता है (वा दुर्मित्र) वा दुःखित मित्र (इत्था अस्तौत्) इस प्रकार स्तुति करता है (शतम्) सैकड़ों बार स्तुति करता है (यत्) जो कि तुम (दस्यु-हत्ये) दुराचारियों के नाश के लिए (कुत्सपुत्रम्) अज्ञान करने वाले के पुत्र को अर्थात उत्तम ज्ञानी की (आव) रक्षा करते हो (यत्) और जो (दस्यु हत्ये) दस्यु के विनाश के लिए (कुत्स वत्सम्) बुरे भावों को मन में बसाने को (प्र आव) नष्ट करते हो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पुनरुक्तवदाभास अलंकार भरा हुआ है। विरोधाभास है ईश्वर भक्त की रक्षा करता है ॥११॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

इति पंचमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१०६]

ऋषिर्भूतांश काश्यप ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—३, ७ त्रिष्टुप् । २, ४, ८—११ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।

सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥१॥

पदार्थ—हे पति-पत्नियो ! (उभा) तुम दोनो (उ) और (नूनम्) निश्चय (तत्+इत्) उस ब्रह्म की ही (अर्थयेथे) प्रार्थना करो (अपसा+इव वस्त्रा) कर्म से, शिल्प से जैसे वस्त्रों को (तन्वाथे) फैलाते हैं इसी प्रकार (धियः) बुद्धियों को फैलाओ (ईम्+यातवे) उस प्रभु की ओर जाने के लिए (सध्रीचीना) मिले हुए और सरल हुए (प्र+अजीगः) उपदेश करो वा स्तुति करो (सुदिना+इव) अच्छे दिनों के समान (पृक्षः) परस्पर सहयोग को (आ तंसयेथे) भली प्रकार उत्तम बनाओ ॥१॥

भावार्थ—पति-पत्नी मिलकर ईश्वरोपासना करें ॥१॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।

दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२॥

पदार्थः—(उष्टारा) एक दूसरे की कामना करते हुए (फर्वरेषु) पूर्ति योग्य कर्मों में (श्रयेथे) सहारा लो (प्रायोगा+इव) प्रयोगों में युक्त हुए जैसे (श्वात्र्या) धन और कर्म में निपुण हुए (शासुः आ इथः) शासन करने वाले शास्त्र के वश में रहो (जनेषु) मनुष्यों में (दूता+इव) सन्देश लाने वालों के समान (यशसा स्थः) यश से युक्त रहो (महिषा+इव) भैंसों के समान (अवपानात्) जल पीने के स्थान से (मा+अपस्थातम्) कर्तव्य कर्म से दूर न जाओ ॥२॥

भावार्थः—भैंसें जैसे जलस्थान से दूर नहीं जाते इसी प्रकार तुम भी कर्तव्य से दूर न हटो ॥२॥

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।

अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३॥

पदार्थः—(शकुनस्य पक्षा+इव) पक्षी के पंखों के समान (साकं युजा) साथ मिले हुए (चित्रा पश्वा+इव) अद्भुत पशु के तुल्य अर्थात् हिरण के समान (यजुः) यज्ञ में (आगमिष्टम) सब प्रकार से प्राप्त हो जैसे पशु भोजन की ओर जाता है वैसे ही आकर्षित होकर कर्तव्य कर्म की ओर बढ़ो (देवयोः) विद्वानों के (अग्नि+इव) अग्नि के समान (परिज्माना+इव) चारों ओर घूमने वाले दो ग्रहों के समान (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (यजथः) यज्ञ करो, संगठित हुए काम करो ॥३॥

भावार्थ—जैसे अग्नि तेज स्वरूप है ऐसे ही तेजस्वी होकर दो ग्रह सूर्य चन्द्र के समान नियम से लोक में प्रकाश प्रस्तुत करो ॥३॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्ये ।

इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४॥

पदार्थः—(वः) हे दिव्य शक्तियो ! तुम (अस्मे+आपी) हमारे मित्र रहो (पितरा+इव पुत्रा) माता-पिता को जैसे पुत्र चाहते हैं (रुचा) कान्ति से (उग्रा+इव) शक्तिशाली के समान (तुर्ये नृपति+इव) शीघ्र काम करने वाली प्रजा के लिए राजा के समान (पुष्ट्यै) पोषण के लिए (इर्यम्+इव) सूर्य और मेघ के तुल्य (भुज्यै) भोजन के पदार्थ अन्नादि की प्राप्ति के लिए किरणों के समान सूर्य किरणों से फल पकते अनाज फसता है (हवम्) यज्ञ को (श्रुष्टीवाना+इव) रथों और सम्पत्ति से युक्त के समान (आगमिष्टम्) आओ ॥४॥

भावार्थ—दिव्य अश्विनी शक्ति हमारे लिए हितकारिणी हो ॥४॥

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।

वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ॥५॥१॥

पदार्थः—(वंसगा—इव) दो बैलों के समान (पूषर्या) सबको पुष्ट करने वाले (मित्रा—इव) मित्रों के समान (शिम्बाता) परस्पर सुख पहुँचाने वाले (ऋता) सत्ययुक्त (शतरा) सैकड़ों लाभ पहुँचाने वाले (शातपन्ता) सैकड़ों उत्तम कार्यों को करने वाले (वाजा इव उच्चा वयसा) घोड़ों के समान ऊँचे बल से (घर्म्येष्ठा+इव) तेजस्वी कार्यों में स्थित के समान (मेषा+इव) मेघ के समान वा वसन्त ऋतु के समान (इषा सपर्या) अन्न की सेवा से युक्त (पुरीषा) सबको पुष्ट करने और पालन करने वाले हो ॥५॥

भावार्थ —अश्विनौ— प्राण, अपान, दिन-रात, पति-पत्नि, सूर्य-चन्द्र हमारे लिए कल्याणकारक पुष्टिकारक बनें ॥५॥१॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।

उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६॥

पदार्थः—(सृण्या=इव) सुमार्ग में ले चलने वाले नेताओं के तुल्य (जर्भरी) अपने जनों का भरण करते हुए और (तुर्फरीतू) विरोधियों का विनाश करते हुए (नैतोशा इव तुर्फरी) राजपुत्रों के समान दुष्ट दमन करते हुए (पर्फरीका) जनता का भरण पोषण करते हुए (उदन्यजा=इव) समुद्र जल में उत्पन्न हुए मोतियों के समान (जेमना) विजयी (मदेरू) प्रसन्न (ता) वे आप दोनों (मे) मेरे लिए (अजरम्) बुढ़ापे से रहित (जरायु) वृद्धावस्था की आयु (मरायु) न आने दें ॥६॥

भावार्थ—हे विद्वानों आप समर्थ हैं । मुझे बड़ी आयु दो, पर वृद्धत्व न होने पाए ॥६॥

पजेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।

ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७॥

पदार्थ —(पज्रा—इव) बलयुक्त पुरुषों के समान (चर्चरम) कर्मफल पाने योग्य (जारम्) जीर्ण होने वाले (मरायु) मरण धर्मा (अर्थेषु) भोग्य पदार्थों मे (क्षद्म—इव) जल के समान (तर्तरीथ) तर जाओ (उग्रा ऋभून्) बलवान् और प्रकाशमान के समान हुए (वायु न) वायु के तुल्य (खरज्रु) तीव्रगति से वा आनन्द रूप वाला ईश्वर (आपत्) सब सुख प्राप्त करावे (रयीणाम् पर्फरत्) धनों से पूर्ण करे (क्षयत्) ऐश्वर्य युक्तकर बसावें ॥७॥

भावार्थ —मरणशील और बुढ़ापे को प्राप्त होने वाले शरीर के अर्थों अर्थात् भोगों मे पार कर दो, इनमे फसो मत, ईश्वर आनन्दरूप धन और ऐश्वर्य देगा ॥७॥

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।

पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्याः न जग्मी ॥८॥

पदार्थ — (घर्मा—इव) तेजस्वी जनों के समान (जठरे मधुसनेरू) उदर मे मधु को भरो, उत्तम भावों को ग्रहण करो (भगे) सौभाग्य मे (अविता) रक्षक बनो (तुर्फरी) बुरे भावों को मारने वाले (अरम् फारिवा) सुन्दर आयु प्राप्त करो (पतरा—इव) पक्षियों के समान स्वच्छ (मन ऋङ्गा) मनरूप प्रसाधन वाले (मनन्या न) मननशील विद्वानों के समान (जग्मी) उत्तम मार्ग पर चलने वाले हो ॥८॥

भावार्थ —मधुर भावना युक्त उत्तम आयु से सुसज्जित शोभित विचार-शील बनो ॥८॥

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।

कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोऽंशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९॥

पदार्थ —(बृहन्ता इव गम्भरेषु) बड़े नागों के समान समूहों मे (प्रतिष्ठां विदाथ) प्रतिष्ठा प्राप्त करो (तरते पादा+इव) तरने वाले के पावों के समान (गाधम् विदाथ) जल की थाह को प्राप्त करो (कर्ण+इव) कानों के समान (शासु) शासक के, गुरु के (हि) निश्चय (अनु स्मराथ) वचनों को बार-बार स्मरण करते रहो (अंशा इव) किरणों वाले सूर्य चन्द्र के समान (नः) हमारे मध्य (चित्रम अप्नः) विविध प्रकार का धन (भजतम) सेवन करो ॥९॥

भावार्थ —उत्तम विचार रखो, अपने लक्ष्य को प्राप्त करो, गुरुजन के उपदेश पर चलकर सुन्दर ऐश्वर्यों का भोग करो ॥९॥

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।

कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥

पदार्थः—(आरङ्गरा—इव) शब्द करने वाले मेघों के तुल्य (मधु—ईरयेथे) मधुर जल की वर्षा को वा शब्द करने वाले उपदेष्टा के समान मधुर वचनों की वृष्टि करो (गवि) वाणी मे (नीचीन बारे) नीचे की ओर द्वार वाले सत्पात्र मे (सारघा=इव) मधु मक्खियों के समान अर्थात् गुणग्राही बनें (मधु आ ईरयेथे) मधु को, गुण को ग्रहण करो (कीनारा इव) किसानों के समान (स्वेदम्) पसीना (आसिष्विदाना:) बहाते हुए (क्षामा इव) भूमि के समान वा गौ के तुल्य (सूयवसात्) उत्तम अन्न वा भूसा प्राप्त करते हुए (ऊर्जा सचेथे) शक्ति सम्पन्न रहो ॥१०॥

भावार्थ—गुणग्राही, मधुरभाषी, परिश्रमी होकर बलवैभव-युक्त बनो ॥१०॥

हृध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।

यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥२॥

पदार्थः—हम लोग (स्तोम हृध्याम) स्तुति को, ज्ञान को बढ़ावें (वाजम्) अन्न को, बल को प्राप्त करें (इह) इस लोक मे (नः) हमारे यज्ञ मे (सरथाः) यूथ हुए (मन्त्रम्) मन्त्र को (उपयातम्) स्वीकार करो (हे अश्विना) हे सूर्य चन्द्र वा प्राण देवो (गोषु) गौओं में, भूमियों मे (अन्त) भीतर (पक्वम् यशः) पुष्ट यश (अन्त. मधु) मधुर दुग्ध (भूतांश) सब भूतों से व्यापक ईश्वर (कामम्) कामना को (आ+अप्राः) पूर्ण करें ॥११॥

भावार्थः—ईश्वर स्तुति करें । वह ईश्वर हमारी कामनाएं पूर्ण करें । उक्त सूक्त मे भगवान् ने भाषा का चमत्कार बताया है ॥११॥२॥

इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०७]

ऋषिर्दिव्य आंगिरसो दक्षिणा वा प्राजापत्या ॥ देवता—दक्षिणा, तद्दातारो वा ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ८, १० पाद-निचृत् त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।

महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

पदार्थ.—(एषाम्) इन मनुष्यों के लिए (महि माघोनम् ज्योतिः) महान् सूर्य का प्रकाश वा इन्द्र का ऐश्वर्य (आविः+अभूत्) प्रकट हुआ है (विश्व जीवम्) सब जीवों को (तमसः) अन्धकार से (निर्+अमोचि) पूरा मुक्त कर दिया है (महि ज्योति) बड़ी ज्योति (पितृभिः दत्तम) पितरों से वा सूर्य किरणों से दी हुई (आगात्) प्राप्त हुई है (दक्षिणाया) दक्षिणा का (उरु पन्था) विस्तृत मार्ग (अदर्शि) देखा गया है ॥१॥

भावार्थ —दक्षिणा (किसी की योग्यता के अनुसार उसे धनादि देना) यह प्रथा बहुत उत्तम है इससे सैकड़ों दुर्भावनाएं दूर होंगी । दानी मे उदात्त भावना जागेगी, लेने वाले मे कृतज्ञता और सद्भावना बढ़ेगी ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।

हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥

पदार्थ —(दक्षिणावन्त) दान दक्षिणा देने वाले जन (दिवि) स्वर्ग मे (उच्चा अस्थु) उच्च पद पर स्थित होते हैं (ये+अश्वदा.) जो घोड़ा दान देने वाले हैं वे (सूर्येण सह) सूर्य के साथ (अस्थुः) स्थित होते हैं (हिरण्यदा) सुवर्ण के देने वाले (अमृतत्व भजन्ते) मोक्ष को प्राप्त करते हैं (हे सोम) हे अच्छी वृत्ति वाले जन (वासोदा) वस्त्र देने वाले (आयु प्रतिरन्ते) बड़ी आयु पाते हैं ॥२॥

भावार्थ —उक्त महिमा दान की है। सब गुणवाद और अर्थवाद के हैं । तात्पर्य केवल है दान की प्रशंसा ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।

अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥३॥

पदार्थ.—(देवयज्या) देवताओं के लिए यज्ञ कराने वाली (दैवी पूर्ति) देवों को पूर्ण करने वाली (नहि कवारिभ्य) यह बुरे आचरण वालों के लिए नहीं है (नहि ते पृणन्ति) वे एक दूसरे का भरण पोषण नहीं करते (अथा) और (प्रयत दक्षिणास) दक्षिणा दान देने वाले जन (अवद्यभिया) अपयश के भय से (बहवः नर) बहुत से मनुष्य (पृणन्ति) दान से जनों की पूर्ति करते हैं ॥३॥

भावार्थ —कुछ लोग दानी होते है, कुछ भय से दान करते है ॥३॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।

ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥

पदार्थ —(नृचक्षस ते) मनुष्यों को उपदेश देने वाले वे (हवि) अन्नादि भोजन योग्य पदार्थ को (शतधारम् वायुम्) शत प्रकार के लाभ पहुँचाने वाली वायु को (स्वर्विदम) स्वर्ग को जानने वाले, स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले (अर्कम्) सूर्य के लिए (हवि अभि चक्षते) हवि को भली प्रकार कहते हैं (ये सगमे) जो सबके मिलने के अवसर पर (पृणन्ति) पूर्ति करते हैं (यच्छन्ति) और दान देते हैं (ते दक्षिणाम दुहते सप्त मातरम) वे दक्षिणा को दुह लेते है सप्त मात्र से अर्थात् पञ्चभूत मन और अहङ्कार तत्त्वों से ॥४॥

भावार्थ।— योग्य जन प्रकृति से दक्षिणा प्राप्त करते हैं । वैज्ञानिकों ने खोजकर भूमि से तेल निकाला, जलप्रपात से बिजली प्राप्त करी और अरबों रुपयों की दक्षिणा इससे प्राप्त कर रहे हैं ॥४॥

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।

तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥३॥

पदार्थः—(दक्षिणावान्) दक्षिणा देने वाला (प्रथमः हूत.) प्रथम स्वीकार किया हुआ सन्देशवाहक (एति) आता है अर्थात् वह जनता को उपकार का संदेश देता है (दक्षिणावान् ग्रामणीः) दक्षिणा वाला ग्राम का मुखिया होकर आता है (तमेव) उसी को, दक्षिणा वाले को (जनानाम् नृपतिं मन्ये) जनता का राजा मानता हूँ (य प्रथम) जिस प्रथम मनुष्य ने (दक्षिणाम्) दक्षिणा को (आविवाय) अन्यों के लिए दक्षिणा से उत्साह बढ़ाता है ॥५॥

भावार्थ —दानी सब प्रकार से आदर योग्य है ॥५॥३॥

इति तृतीयो वर्गः ॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

पदार्थ —(यः शुक्रस्य तिस्रः तन्वः वेद) जो शुक्र के तीन अगों को जानता है (यः प्रथमः दक्षिणया रराध) जिसने प्रथम दक्षिणा से सेवा करी (तमेव ऋषिम्) उसको ही ऋषि (तम् ब्रह्माणम्) उसको ब्रह्मा (तम् यज्ञन्यम्) उसे यज्ञ का नेता (सामगाम्) साम गाने वाला (उक्थ शासम्) वेद-स्तोत्र पढने वाला (आहुः) कहते हैं ॥६॥

भावार्थ —शुक्र वह शुभ्र प्रकाश जिसका प्रत्यक्ष योगी को होता है उसके ३ अग है । ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, सत्संग । यहां भी दान की महिमा का वर्णन है ॥६॥

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

पदार्थः—(दक्षिणा अश्वम्) दक्षिणा घोडा (दक्षिणा गाम्) दक्षिणा गाय (ददाति) देती है (दक्षिणा चन्द्रम्) दक्षिणा चादी (उत यत् हिरण्यम्) और जो सुवर्ण है उसे देती है (दक्षिणा अन्नम् वनुते) दक्षिणा अन्न देती है (यो नः आत्मा) जो हमारा अन्तःकरण है (विजानन्) विशेष ज्ञान रखता हुआ (दक्षिणाम् वर्म कृणुते) दक्षिणा को कवच बना लेता है ॥७॥

भावार्थ—यहां दक्षिणा का भाव है दक्ष बनना, योग्य विद्वान् होना, योग्यता से सब कुछ मिलता है । योग्यता धर्म है ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

पदार्थः—(भोजा) प्रजा-पालक क्षत्रिय (ममुः) मरते नही उनका यश-रूपी जीवन सदा रहता है (नि अर्थम्) निकृष्ट गति को (न ईयु) प्राप्त नहीं होते (न रिष्यन्ति) कष्ट नही पाते (भोजाः) प्रजा-पालक (न व्यथन्ते) कभी नही पीडित होते (इदम् यत् विश्वम् भुवनम्) यह जो सम्पूर्ण भुवन है (स्वः + च) और स्वर्ग (एतत् सर्वम्) यह सब (एभ्यः) इन भोजो के लिए (दक्षिणा ददाति) दक्षिणा इनकी दक्षता और दान (ददाति) देता है ॥८॥

भावार्थ —लोक रक्षक क्षत्रिय प्रजा-पालक राजा इन्हें इनकी योग्यता और उपकारी काम सब लोको की सम्पदा इन्हें देता है । इनका यश और आदर सब ओर होता है ॥८॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं१ या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥९॥

पदार्थ —(भोजा) प्रजा-पालक क्षत्रिय (अग्रे) सबसे आगे (सुरभिं योनिम् जिग्युः) उत्तम योनि को प्राप्त होते है अगला जन्म उत्तम परिस्थितियो मे होता है (भोजा) सबको दान भोजन देकर रक्षा करने वाले जन (वध्वम् जिग्यु या सुवासा) सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित पत्नियो को पाते हैं (भोजा) वे उपकारी जन (सुरायाः + अन्तः पेयम्) देवताओ के अन्न के भीतरी पीने योग्य भाग को अर्थात् आनन्द को (जिग्यु) पाते है (ये अहूता प्रयन्ति) जो बिना बुलाए आते हैं अर्थात् दैवी और भौतिक आपदाएं जो बिना चाहे आती हैं उन्हें भी भोज पालक रक्षक जन (जिग्यु) जीत लेते है ॥९॥

भावार्थ —प्रजा प्रिय जनों को उत्तम ऐश्वर्य मिलता है विपत्तियां दूर होती है अगला जन्म भी अच्छा बनता है ॥९॥

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥१०॥

पदार्थ —(भोजाय) दानशील के लिए (आशुम् अश्वम् सम्मृजन्ति) शीघ्रगामी घोडो को अलकृत करते है (भोजाय) भोज के लिए (शुम्भमाना) सुसज्जित (कन्या आस्ते) कन्या तैयार रहती है । (भोजस्य इदम् वेश्म) भोज का यह घर (पुष्करिणी इव) कमलों के तालाब के समान सुशोभित होता है (परिष्कृतम्) शुद्ध, स्वच्छ होता है (देवमाना इव चित्रम्) देवताओ से बनाया हुआ जैसा अद्भुत होता है ॥१०॥

भावार्थ—यह सब अर्थवाद के वचन हैं । तात्पर्य यह है कि दानी पुण्यात्माओ को सुन्दर सवारी, उत्तम पत्नी, बढ़िया घर आदि सब भौतिक सुख प्राप्त होता है ॥१०॥

भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥११॥४॥

पदार्थ—(भोजम्) दानी को (सुष्ठुवाह) सुन्दरता से रथ आदि को ले चलने वाले (अश्वाः) घोडे (वहन्ति) ले चलते है (दक्षिणायाः) दक्षिणा का (सुवृत्) अच्छी तरह निर्माण किया हुआ (रथ) रथ (वर्तते) रहता है । (भरेषु) भीड़-भाड़ वा युद्धों में (भोजम्) दानी को (देवासः) दिव्यशक्तियां (अवता) रक्षा करती हैं (भोजः) प्रजारक्षक, प्रजापोषक राजा (समनीकेषु) संग्राम में (शत्रून्) शत्रुओ को (जेता) विजय करता है ॥११॥

भावार्थ—प्रजापालक दानी को युद्ध के जीतने के सब साधन मिलते हैं और वह युद्ध मे विजयी रहता है ॥११॥

इति चतुर्थो वर्ग ॥

---

[१०८]

ऋषि पणयोऽसुराः । २, ४, ६, ८, १०, ११ सरमा देवशुनी ॥ *देवता*—१, ३, ५, ७, ९ सरमा । २, ४, ६, ८, १०, ११ पणय ॥ *छन्द* —१ *विराट् त्रिष्टुप्* । २, १० *त्रिष्टुप्* । ३—५, ७—९, ११ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ६ *पादनिचृत् त्रिष्टुप्* । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥

पदार्थ —(सरमा) हे देवदूती (किमिच्छन्ती) क्या चाहती हुई (इदम्) इस स्थान पर (प्र + आनट्) प्राप्त हुई है । (पराचैः, दूरे अध्वा जगुरि) उलट जाने वाले मार्गों से दूर ही मार्ग को पार किया है (अस्मे हितिः क) हममें या हमारे लिए हितकारिणी कौन है ? (परितक्म्या का आसीत्) विचार करने वाली शक्ति कौन है ? (रसाया) नदी के (पयांसि) जलो को (कथम् अतरः) किस प्रकार पार किया ? ॥१॥

भावार्थ —सरण करने वाली योगी की आत्मा किस इच्छा से शरीर मे आयी और ससार रूपी नदी को किस प्रकार पार किया ? ॥१॥

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

पदार्थ —(हे पणय) हे धनी जनो ! (इन्द्रस्य दूती) इन्द्र का सदेश लाने वाली (इषिता) इन्द्र से प्रेषित (व) तुम्हारे (मह निधीन्) बड़े-बड़े कोषो को चाहती हुई (चरामि) विचरती हूँ (अतिष्कदः) सबको लांघने वाले ईश्वर के (भियसा) भय से (न) हमारा (तत्) वह ज्ञान (आवत्) रक्षा करता है (तथा) उस ज्ञान के प्रभाव से मैंने (रसाया.) ससार की मोह-लोभ रूपी नदी के (पयांसि) जलो को (अतरम्) पार किया है ॥२॥

भावार्थ —धन लोभी जन इन्द्रदूती योगी की वाणी से पूछते हैं कि इन्द्र क्या है ? उसका दर्शन-विज्ञान क्या है ? जिससे हम उसे मित्र बनायें और वह हमारी गौओ का वाणियों एवं इन्द्रियो का स्वामी बने अर्थात् हम उसके निर्देश पर चलें । यह सवाद एक निःस्पृह योगी की आत्मा का और ससार सेवी लोभी जनों को कल्पित कर ईश्वर ने दिया है सरमा, पणियो, धनलोलुपो को, माया ग्रस्तो को, इन्द्र का सदेश सुना रही है, सरमा है योगियों की वाणी ॥२॥

कीदृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

पदार्थ —(हे सरमे) हे सरमा (इन्द्र कीदृग्) इन्द्र कैसा है ? (का दृशीका) उसका दर्शन, दार्शनिक रूप क्या है ? (यस्य दूती) जिसकी दूती तू (पराकात्) बहुत दूर से (इदम्) इस स्थान पर (असर) प्राप्त हुई (दधाम) हम उसे धारण करें (अथ)और (न गवाम्) हमारी गौओ का (गोपति) रक्षक (भवाति) हो जाये ॥३॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

पदार्थ —(अहम्) मैं सरमा (त) उस इन्द्र को (दभ्यम्) पराजित होने योग्य (न वेद) नहीं जानती (यस्य दूती) जिसकी दूती मैं (इदं पराकात) इस दूर देश से (असरम्) आ रही हूँ । (तम्) उस इन्द्र को (स्रवतः गभीरा.) बहती हुई गम्भीर नदियां (न गूहन्ति)नहीं छिपाती (इन्द्रेण हताः) इन्द्र से मारे हुए (पणय) हे ससार को ही सब कुछ समझने वाले लोभी जनो (शयध्वे) सोओगे ॥४॥

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥५॥

पदार्थः—(हे सुभगे सरमे) हे सुन्दर भाग्य वाली सरमा (इमा गाव) ये गौयें, भूमि आदि सम्पत्तियां (याः) जिन्हें (ऐच्छ) चाह करने वाली हुई (परि-दिव अन्तान्) स्वर्ग के भाग से (पतन्ती) आती हुई तू है (ते का) तेरा कौन है जो (एना) इन गौओ को (अयुध्वी) बिना युद्ध किये (अवसृजात्) हमसे अलग करा सके (अस्माकम्) हमारे (आयुधा) शस्त्रास्त्र (तिग्माः) तीक्ष्ण (सन्ति) हैं ॥५॥

भावार्थ —हे देववाणी ! हम अपनी सम्पत्ति को दान नही करेंगे । युद्ध के बिना हमसे त्याग नहीं कराया जा सकता और युद्ध भी हमसे कोई नहीं कर सकता । इस मन्त्र में ससार के मायाग्रस्तो की भावना व्यक्त की गई है ॥५॥

इति पञ्चमो वर्ग ॥

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥६॥

पदार्थः—(हे पणयः) हे लोभी धनियो ! (वः, वचांसि) तुम्हारे वचन (असेन्या) सेना योग्य वचनों के समान नहीं हैं अर्थात् तुम ताड नहीं सकते, वचन अशक्त हैं (अनिषव्या,) निषेध से रहित अर्थात् स्वच्छन्द इच्छाचारी (तन्वः) शरीर (पापीः सन्तु) पाप से युक्त होते हैं (व पन्थाः) तुम्हारा मार्ग (एतवै) जाने के लिये (अधृष्ट अस्तु) निर्बल है (बृहस्पति) महान् स्वामी ईश्वर (वः) तुम्हारे लिये (उभया) दोनों लोकों में (मृळात्) सुखी नहीं करेगा ॥६॥

भावार्थ—तुम्हारे वचन अनुचित हैं तुम्हारा परलोक का मार्ग इससे अच्छा नहीं बनेगा, और ईश्वर इस जन्म और अगले जन्मो मे तुम्हें सुख नहीं देगा अत. नास्तिकता छोडो, यह आसुरी वृत्ति त्याग दो ॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥७॥

पदार्थ—(हे सरमे) हे देवदूती (अयं निधिः) यह कोष (अद्रिबुध्नो) अन्नमय कोष है (गोभि) गौओ से (अश्वेभिः) घोडो से (वसुभिः) धनो से (नि+ऋष्ट) परिपूर्ण है (तम्) उसे (पणय) लोभी धनी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (ये सुगोपा) जो अच्छे रक्षक हैं (रेकुपदम्) शंकायुक्त स्थान पर (अलकम् आजगन्थ) व्यर्थ आयी है ॥७॥

भावार्थ—काम-भोगोपलिप्त धनी देववाणी को व्यर्थ समझते हैं। उनके लिये ससारी वैभव ही सब कुछ है ॥७॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८॥

पदार्थ.—(आ इह) सब ओर से यहां (सोमशिता) सोम से तीव्र हुए (अयास्यः) मुख वाले (नवग्वा) नूतन अर्थात् सद्योज्ञान वाले (अंगिरस) अंगिरा (ऋषयः) ऋषि (आगमन्) प्राप्त हैं अर्थात् योगयुक्त प्राणों से कहे वचन हैं (ते) वे (एतम्) इस (गोनाम्+ऊर्वम्) गौओं के समूह को तुम्हारी सम्पत्ति को (वि+अभजन्त) विभाग कर देते हैं (अथ) और (पणय) हे धनिको ! (एतत्+इत्+वचः) इसी वचन को (वमन्) मुँह से निकालो ॥८॥

भावार्थः—ऋषि विद्वान् अर्थात् दिव्यशक्तियां तुम्हारी सम्पत्ति को विभक्त कर देंगी ॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

पदार्थ—(हे सरमे) हे देवदूती (त्वम् एवा च दैव्येन प्रबाधिता) इस प्रकार तू भाग्य से भेजी हुई (सहसा आजगन्थ) एकदम आई है (त्वा) तुझे (स्वसारम् कृणवै) बहिन बनाते हैं (मा पुन अपगाः) फिर लौटकर मत जा (गवाम् ते भजाम) तेरे लिए भी गौए देते हैं ॥९॥

भावार्थ.—सरमा देवदूती अन्तरात्मा की आवाज [कानफुस] लोभी-कामियो को रोकती है तब उसे भी बाहरी विषयो के प्रलोभन अपनी ओर खींचते हैं। परन्तु वह प्रलोभनो से आकर्षित नहीं होती ॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

पदार्थ.—(हे पणयः) हे पैसे वालो ! (नाहम् वेद भ्रातृत्वम् न स्वसृत्वम्) न मैं भाईपन जानती हूँ न बहिन होना जानती हूँ (इन्द्रः च घोरा अंगिरस) इन्द्र और तेजस्वी अंगिरा ऋषि (विदु) जानते हैं (गोकामा) गौओं की कामना वाले इन्द्र और अंगिराओ ने (मे अच्छदयन्) मुझे आच्छादित किया है, दूती बनाकर काम सौंपा है (हे पणय) हे धन वालो ! (यत्) जो (अत) इस कारण (आयम्) आयी हूं (अप इत) इससे दूर (वरीय) जाओ ॥१०॥

भावार्थ—मैं तुम्हारी न बहिन बनूंगी न तुम्हें भाई बनाना है मुझे इन्द्र और अंगिराओ [तपोमय तेजस्विनी शक्तियों ने] जिस काम पर भेजा है वह दूर तक पूरा करना है ॥१०॥

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीरृतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥

पदार्थः—(हे पणय) हे धन-लोभियो ! (वरीय अप इत) तुम यहां से दूर जाओ (ऋतेन) सत्य नियम से (मिनती) अन्धकार मे फसी (गाव) गौए वाणियां, किरणें (उद् यन्तु) उदित हो, प्रकट हों (या) जिन्हे (बृहस्पति,) महान् स्वामी इन्द्र (अविन्दत्) प्राप्त करें (याः निगूळ्हा.) जो छिपी हुई हैं, (सोम) सोम (ग्रावाण.) बडे विद्वान् जन (च) और (विप्रा ऋषय) ब्रह्मज्ञानी ऋषि (अविन्दन्) प्राप्त करें ॥११॥

भावार्थ—इस सूक्त पर कथा है कि इन्द्र की गौए पणियों ने चुरा कर अंधेरे स्थान पर बन्द कर दीं। इस पर इन्द्र ने अपनी कुतिया सरमा को पता लगाने को भेजा और सरमा पता लगा लाई, कथा का तात्पर्य यह है कि आत्मा की दिव्य वृत्तियो को लोभावरणों ने छुपा लिया है, अन्तरात्मा का शब्द उनका पता लगाता है और लोभ, मोह के आवरणों मे बचकर दिव्य वृत्तियों का उद्धार करता है, बड़ी रोचक काव्य-वृत्ति से यह सवाद भरा हुआ है। सरमा को प्रलोभन दिया जाता है पर सच्चा दूत अपने धर्म से नहीं डिगता ॥११॥

इति षष्ठो वर्ग: ॥

[१०९]

ऋषिर्जुहूर्ब्रह्मजायोर्ध्वनाभा वा ब्राह्म. ॥ विश्वेदेवा देवता: ॥ छन्द—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

पदार्थ—(ते प्रथमा.) वे पहले (अकूपार, सलिल मातरिश्वा) सूर्य, जल और वायु (ब्रह्म किल्बिषे) ब्राह्मण के साथ किये अपराध के विषय मे (अवदन्) बोले (ऋतेन प्रथमजा) प्रकृति के अटल नियम से प्रथम उत्पन्न हुए (वीळुहरा) परमेश्वरी रचना शक्ति को धारण करने वाले (उग्र तप) तीव्र तप (मयो भूः) सुखदायक वायु (देवी आप) दिव्य जल ॥१॥

भावार्थ—कथा है कि चन्द्रमा क्षत्रिय ने बृहस्पति ब्राह्मण की स्त्री का अपहरण कर लिया तब सूर्य, सलिल, मातरिश्वा आदि तथा [आपो देवीः] दिव्यजल इन सबने विरोध किया और चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा मे एक पुत्र बुध को उत्पन्न किया और फिर देवताओ के विरोध पर बृहस्पति की पत्नी लौटा दी।

उक्त कथा में सृष्टि की प्रक्रिया का वर्णन है, भूगोल, नक्षत्र और ग्रह बन रहे थे, चन्द्रमा बृहस्पति की कक्षा मे जा पहुँचा था तब सूर्य, वायु, जल आदि में हलचल हुई। विकृति होने लगी इतने मे बुध भी बनकर तैयार हो गया था, फिर सब ग्रह यथावत हो गए और जो नक्षत्र बृहस्पति की कक्षा के थे चन्द्रमा उन्हें छोड कर इन वर्तमान नक्षत्रों पर आ गया, फिर ऋतु के अनुसार काम होने लगा, इस कविता का ध्वन्यर्थ यह है कि ब्राह्मण की स्त्री सम्पत्ति को राजा न छीने। वस्तुत ब्रह्मजाया ब्राह्मण की स्त्री है ब्राह्मण की वाणी राजा ब्राह्मण की वाणी जो वस्तुत: प्रजा की तीसरी और वाणी है उसे न दबावे, न अपहरण करे। चौथी ऋचा में ऐसे ही ध्वन्यर्थ व्यक्त किए गए हैं ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

पदार्थ—(सोम., राजा, प्रथम.) प्रथम सोम राजा ने (अहृणीयमान:) हरण करने वाले ने (ब्रह्म जायाम्) बृहस्पति की पत्नी को (पुनः प्रायच्छत्) फिर दे दिया और (अनु+अर्तिता) पीछे चलने वाले (वरुणो मित्र) वरुण और मित्र थे (अग्नि: होता) प्रदान करने वाले अग्नि (हस्त गृह्या) हाथ पकड कर (निनाय) ले गया और बृहस्पति को सौंप दिया ॥२॥

भावार्थ—प्रारम्भिक युवावस्था मे स्त्री के शरीर में सोम तत्व का उदय होता है फिर अग्नि तत्व का उदय, रजोधर्म के समय फिर वरुण तत्व का उदय, यही विवाह का समय है। प्राकृतिक घटना मे बृहस्पति की कथा को मित्र, वरुण आदि ने फिर यथावत् चन्द्रमा से लेकर बृहस्पति को दे दिया, बुध ग्रह बनाने के लिए वह हलचल ईश्वरीय शक्ति ने दी थी ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

पदार्थ—(अस्याः, आधि.) इस ब्रह्मजाया का अधिकार (हस्तेन एव) हाथ से ही (ग्राह्य) ग्रहण करने योग्य है अर्थात् बल से अधिकार किया जा सकता है (चेत) यदि (इति+अवोचन्) ऐसा कहें तो (एषा) यह (दूताय) दूत के लिये (प्रह्य) प्रेरक के लिये (न (तस्थे) स्थित नहीं है (तथा) इस प्रकार (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय का (राष्ट्रम् गुपितम्) राष्ट्र राज्य रक्षित होता है ॥३॥

भावार्थ.—ब्राह्मण की वाणी पर बल से अधिकार न किया जावे, तो क्षत्रिय का राज्य सुरक्षित रहता है। और यदि बलात् राजा ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् की वाणी को दबायेगा तो क्रान्ति अवश्य होगी। विद्वान् ब्राह्मण की वाणी अपने स्वार्थ के लिये प्रवृत्त नही होती, प्रजा के हितार्थ ब्राह्मण बोलता है ॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

पदार्थः—(देवा:) विद्वान् जन (पूर्वे सप्त ऋषय) आदि-सृष्टि के सात ऋषि प्राकृतिक शक्तियां (ये तपसे निषेदु) जो तप मे लगे हुये हैं (एतस्याम्) इस ब्रह्मजाया के विषय में (अवदन्त) कहते हैं। (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (उपनीता जाया) यज्ञोपवीत धारण की हुई पत्नी अर्थात् शास्त्रों में सुसज्जित वाणी (भीमा) भयंकर होती है अर्थात् विद्वान् भी हो और ब्राह्मण त्यागी तपस्वी भी हो तो उसकी वाणी मे बल होता है। कोई शासन उस वाणी को बल से दबा नहीं सकता। महात्मा गांधी की वाणी को अंग्रेज शासक दबा नहीं पाये उनका प्रभाव जमता ही गया। (दुर्धाम्) बडे तप से धारण करने योग्य उस वाणी को ब्राह्मण (परमे व्योमन्) परम आकाश में जा ईश्वर मे धारण करता है ॥४॥

भावार्थः—तपस्वी विद्वान् की वाणी आकाश मे भर जाती है या ईश्वर तक पहुचती है ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।

तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं१ न देवाः ॥५॥

पदार्थः—उसे (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचर्य-व्रत वाला (विषः वेविषद्) विकसित और ज्ञान की वेदी पर बैठा हुआ (सः) वह (चरति) विचरता है और (देवानाम्) दिव्य शक्तियों का (एकम् अङ्गम् भवति) एक अग हो जाता है, सब दिव्य शक्तियां उसे प्राप्त हो जाती हैं (तेन) इस तप से (बृहस्पतिः) बृहस्पति ने (जायाम्) अपनी स्त्री को, वाणी को (अन्वविन्दत्) प्राप्त किया (सोमेन नीताम्) जो चन्द्र से ले जायी गयी थी (न) और (देवा जुह्वम्) देवो ने जिसे यज्ञ करके लिया ॥५॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।

राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥६॥

पदार्थ—(पुन) फिर (वै) निश्चय (देवा अददु) देवों ने दिया, (उत) और (पुन) फिर (मनुष्याः अददुः) मनुष्यो ने दिया, (सत्यं कृण्वाना) सत्य का पालन करते हुये राजाओ ने (ब्रह्मजायाम्) ब्राह्मण की स्त्री को, सम्पत्ति को वाणी को (पुन.) फिर (ददुः) दे दिया ॥६॥

भावार्थ—देव, मनुष्य, सत्यप्रिय राजा ब्राह्मण की वस्तु का अपहरण नहीं करते ॥६॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।

ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७॥७॥

पदार्थः—(ब्रह्मजायाम्) ब्राह्मण की स्त्री को (पुन) फिर (दाय) देकर (देवै) देवो से (निकिल्बिषम् कृत्वी) निरपराध करके (पृथिव्याः ऊर्जम्) पृथिवी से ऊपर (भक्त्वाय) सेवन करके (उरुगायम्) उन्नत लोक को (उपासते) प्राप्त करते हैं ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य अत्याचार नही करते, दिव्य शक्तियां उनपर प्रसन्न होती हैं और उनका परलोक उत्तम बनता है ॥७॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

[११०]

ऋषिर्जम *प्रभेदनो* *वैरूपः* ॥ *इन्द्रो* *देवता* ॥ *छन्द*—१, ३, ७, ८ *विराट् त्रिष्टुप्* । २, ४—६, ९, १० *निचृत्त्रिष्टुप्* ॥ *दशर्चं सूक्तम्* ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।

आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

पदार्थ—(अद्य) आज (मनुष दुरोणे) मनुष्य के घर में (समिद्ध) प्रदीप्त (जातवेदः) हे ज्ञानवान् (देव.) विद्वान् (यजसि) विद्वानों की पूजा करता है (मित्रमहः) सूर्यसम तेजस्वी (चिकित्वान्) विचारवान् (च देवान् आवह) और देवो का आवाहन कर (त्व दूत , कविः, प्रचेताः असि) तू संदेशवाहक है, कवि है, उन्नत ज्ञान वाला है ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी विद्वान् अपने घर मे विद्वानो को आमन्त्रित करे जिससे सत्सग द्वारा ज्ञान की वृद्धि हो ॥१॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्स्वदया सुजिह्व ।

मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

पदार्थः—(हे तनूनपात्, सुजिह्व) हे शरीर को न गिरने देने वाले और शुभ वचन बोलने वाले विद्वान् तू (ऋतस्य यानान्) ऋत को जाने वाले अर्थात् मुक्ति देने वाले (पथः) मार्गों को (मध्वा समञ्जन्) मधु से सानता हुआ (स्वदय) स्वाद ले और अन्यो को भी इसका स्वाद करा (उत) और (धीभि) बुद्धि, कर्म और वचनों से (मन्मानि) ज्ञानयुक्त विचारों को और (यज्ञम्) यज्ञ को (ऋन्धन्) पूर्ण करता हुआ (च) और (नः) हमारे (अध्वरम्) यज्ञ को (देवत्रा) देवो में अर्थात् देवमय (कृणुहि) कर ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानी विद्वान् सत्संगति से यज्ञ को देवमय बनाते हैं ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।

त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ज्ञान-प्रकाशयुक्त विद्वन् ! (त्वम् आजुह्वानः) आदान-प्रदान करता हुआ (ईड्यः) पूज्य और (वन्द्य) वन्दना योग्य है (सजोषा.) प्रीतियुक्त हुआ (वसुभिः) वसु ब्रह्मचारियो सहित (आयाहि) आओ (त्वं) तुम (देवानाम्) देवो मे (यह्वः) महत्त्वशाली हो (होता) यज्ञ करने वाले हो (स) वह तुम (ईषित) चाहा हुआ (एनान्) इन देवो को (यजीयान्) यज्ञ करने वाला (यक्षि) यज्ञ कर ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् अपने शिष्यों सहित यज्ञ मंडप में पधार कर विश्व की दिव्य शक्तियों को अनुकूल करने के लिए यज्ञ करें ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।

व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

पदार्थ—(अह्नाम) दिनो के (अग्रे) पहले भाग मे (अस्याः पृथिव्याः वस्तो.) इस पृथिवी को ढकने वा बसाने के लिए (प्रदिशा प्राचीनं बर्हि) निर्दिष्ट दिशा से प्राचीन ज्ञानयुक्त हृदय (वृज्यते) दिया गया है । (वरीय) श्रेष्ठ (वितरम्) विस्तृत और तारने वाला (उ) क्या (विप्रथते) विशेष विस्तार करता है ? हाँ (देवेभ्य) विश्व की दिव्य शक्तियों के लिये और (अदितये) प्रकृति के उत्तम भाग के लिये (स्योनम्) कल्याणकारक है ॥४॥

भावार्थ—आदि सृष्टि से ही जो उत्तम हृदय मिले हैं उनका विस्तृत भाव पृथिवी का और सब लोको का कल्याण करता है ॥४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।

देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५। ८॥

पदार्थ—(शुम्भमाना) सजी हुई (जनय) स्त्रियां (पतिभ्य) जैसे पतियो के लिये (सुप्रायणा) सुखकारक है वैसे ही (उर्विया) बड़े (देवी) प्रकाशयुक्त (द्वार) द्वार (व्यचस्वती) विशेष विशाल (बृहती) लम्बे-चौड़े (विश्वमिन्वा) सबको सुखदायक (देवेभ्य भवत) ज्ञानी विद्वानो के लिये हो ॥५॥

भावार्थ—हमारे द्वार विद्वानो के लिये खुले रहें ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।

दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥

पदार्थ—(उषासा नक्ता) दिन और रात (सुष्वयन्ती) सुखपूर्वक चलते हुए (उपाके) समीप हुए (योनौ) घर मे (नि, सदताम्) रहें (यजते) यज्ञ करें (दिव्ये योषणे) दिव्य हुए, मिले हुए (बृहती) उन्नत हुए (सुरुक्मे) सुन्दर सुवर्णरूप (शुक्रपिशम् श्रियम्) दीप्तियुक्त शोभा को, (अधिदधाने) धारण किए हुए रहे ॥६॥

भावार्थः—पति-पत्नि घर मे प्रेमपूर्वक रहें, यज्ञ करें, उत्तम विचार करें ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।

प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थ—(प्रथमा) पहले (दैव्याः होतार) दिव्य होता (सुवाचाः) उत्तम वाणी वाले अर्थात् वेदज्ञ (यजध्यै) यजन करने के लिये (यज्ञ मिमाना) यज्ञ की तैयारी करने वाले (विदथेषु) यज्ञो मे (प्रचोदयन्तः) प्रेरणा करते हुए (कारू) कर्म करने वाले (प्रदिशा) प्रशिक्षण द्वारा (प्राचीन ज्योति) पुरातन प्रकाश (दिशन्ता) बताते हुए रहें ॥७॥

भावार्थ—आदि सृष्टि के ऋषियो ने यज्ञ करके सबको यज्ञ करने की शिक्षा दी ॥७॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥८॥

पदार्थ—(नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (भारती) प्रतिभायुक्त वाणी (इह) इस यज्ञ मे (मनुष्वत्) विचारशील के समान ज्ञान देती हुई (इळा) वेद-वाणी (सरस्वती) विद्यादेवी (तूयम्) तुरन्त (एतु) आयें (तिस्र देवीः) तीन देवियां (सु+अपस) सुन्दर कर्मों वाली (इदम बर्हि) इस आसन पर (स्योनम्) सुखपूर्वक (आसीदन्तु) बैठें ॥८॥

भावार्थ—हमारे यज्ञ मे इळा-वेदवाणी, भारती-प्रतिभा, सरस्वती-साहित्य भंडार का मान हो ॥८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।

तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९॥

पदार्थः—(यः) जो ईश्वर (जनित्री) पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (इमे द्यावापृथिवी) इन द्युलोक और पृथिवीलोक को (विश्वा भुवनानि) सब भुवनो को (रूपै अपिंशत्) विविध रूपो से सजाता है (हे होतः) हे यज्ञ करने वाले (इषित) चाहता हुआ (अद्य) अब (यजीयान्) यज्ञ करने वाला (तं त्वष्टारम् देवम्) उस त्वष्टा देव को (विद्वान्) ज्ञानवान् हुआ तू (इह) इस यज्ञ मे (यक्षि) पूजन कर ॥९॥

भावार्थः—इस ससार के सब पदार्थों को रूप देने वाला ईश्वर है विद्वान् यज्ञ-कर्ता को उसकी पूजा अर्थात् उपासना करनी चाहिए ॥९॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।

वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥

पदार्थ—(आत्मना) अपने सामर्थ्य से (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुकूल (देवानाम्) सूर्यादि देवों को (पाथ.) जल (हवींषि) हवन योग्य अन्नादि पदार्थ

(समञ्जन्) युक्त करता हुआ (उप अवसृज) दान कर (वनस्पति) वनो का स्वामी (शमितम्) शान्ति देने वाला (देवो अग्नि) अग्निदेव (घृतेन मधुना) घी और शहद के साथ (हव्यम्) आहुति की हुई वस्तु को (स्वदन्तु) स्वाद लें ॥१०॥

भावार्थः—यजमान को अपनी शक्ति-अनुसार घृत, शहद, शक्कर आदि से युक्त सामग्री यज्ञ मे आहुति करनी चाहिए ॥१०॥

स॒द्यो जा॒तो व्य॑मिमीत य॒ज्ञम॒ग्निर्दे॒वाना॑मभवत्पुरो॒गाः ।

अ॒स्य होतुः॑ प्र॒दिश्यृ॒तस्य॑ वा॒चि स्वाहा॑कृतं ह॒विर॑दन्तु दे॒वाः ॥११॥९॥

पदार्थ —(सद्यो जात) तत्काल उत्पन्न हुआ (अग्नि) अग्नि (यज्ञम्) यज्ञ को (व्यमिमीत) यज्ञ का विधान करता है (देवानाम् पुरोगा) देवो के आगे चलने वाला होता है । अर्थात् वायु, मेघ, सूर्यादि से प्रथम हवनीय द्रव्य का स्वाद लेता है, (अस्य होतुः प्रदिशि) इस होता के निर्देश मे (ऋतस्य वाचि) सत्य की वाणी मे अर्थात् वेदमन्त्रो मे (स्वाहाकृतम्) त्याग की हुई (हवि) हवन के द्रव्य को (देवा अदन्तु) दिव्य शक्तियां खायें, स्वीकार करें ॥११॥

भावार्थ —वेदमन्त्रों से आहुत की हुई हवन की वस्तु को वायु आदि पदार्थ ग्रहण करके लोक-कल्याण करते हैं ॥११॥

इति नवमो वर्ग ॥

[१११]

ऋषिः जमदग्नी रामो वा भार्गव ॥ देवता आप्रियः ॥ छन्दः—१, २, ५, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ ६, ७, ९ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

मनी॑षिणः॒ प्र भ॑रध्वं मनी॒षां यथा॑यथा म॒तयः॒ सन्ति॑ नृ॒णाम् ।

इन्द्रं॑ स॒त्यैरेर॑यामा कृ॒तेभिः॒ स हि वी॒रो गि॑र्वण॒स्युर्विदा॑नः ॥१॥

पदार्थ —(मनीषिण) हे बुद्धिमानो ! (यथा यथा) जैसी-जैसी (नृणाम्) मनुष्यो की (मतय) बुद्धियां (सन्ति) है, वैसी ही (मनीषाम्) विचार को (प्रभरध्वम्) भरो मनुष्य की बुद्धि शक्ति के अनुसार उन्हे उपदेश करो (सत्यैः कृतेभि) सत्यकर्मों से (इन्द्रम्) इन्द्र को (आ ईरयाम) अपनी ओर प्रेरित करें (स हि वीर) वह ही वीर (विदान) सब कुछ जानता हुआ (गिर्वणस्यु) स्तुति करने वाले को प्रेम करता है ॥१॥

भावार्थ —इन्द्र ही सर्वज्ञ है, स्तुत्य है । जनता मे उत्तम बुद्धि भरो ॥१॥

ऋ॒तस्य॒ हि सद॑सो धी॒तिरद्यौ॒त्सं गा॑र्ष्टे॒यो वृ॑ष॒भो गोभि॑रानट् ।

उद॑तिष्ठत्तवि॒षेणा॒ रवे॑ण म॒हान्ति॑ चि॒त्सं वि॑व्याचा॒ रजां॑सि ॥२॥

पदार्थ —(ऋतस्य हि सदस) ऋत की सभा की (धीति) धारणशक्ति (अद्यौत्) प्रकाशित हो रही है अर्थात् ईश्वर का प्रकाश फैला हुआ है, (गार्ष्टेय, वृषभ) एक बार बछड़ा देने वाली गौ का जना हुआ बैल (गोभि सम् आनट्) गौओं के संग शोभित हो रहा है अर्थात् द्युलोक का पुत्र सूर्य अपनी किरणो के साथ विराज रहा है (तविषेणा रवेण) बलयुक्त शब्द से ऊपर उठा है, (महान्ति) महान (रजांसि) लोको को (चित सम् विव्याचा) निश्चय व्याप रहा है ॥२॥

भावार्थ —सूर्य के समान ईश्वर सब लोको को प्रकाशित कर रहा है और सर्वत्र व्याप्त है ॥२॥

इन्द्रः॒ किल॒ श्रुत्या॑ अ॒स्य वे॑द॒ स हि जि॒ष्णुः प॑थि॒कृत्सूर्या॑य ।

आन्मेनां॑ कृ॒ण्वन्नच्यु॑तो॒ भुव॒द्गोः पति॑र्दि॒वः स॑न॒जा अप्र॑तीतः ॥३॥

पदार्थ —(इन्द्र. किल) निश्चय इन्द्र ही (अस्य) इस संसार का (श्रुत्या वेद) श्रुति के अनुरूप ज्ञान रखता है, (स हि जिष्णु) निश्चय वह विजयी है, (सूर्याय) सूर्य के लिए (पथिकृत्) मार्ग बनाने वाला है, (अच्युत) परिपूर्ण ज्ञानी वह ईश्वर (आत्) सृष्टि रचना के अनन्तर (मेनाम् कृण्वन्) मान्य वेदवाणी का देता हुआ (दिव) द्युलोक का (गोपति) पृथिवी का, वेदवाणी का पति ईश्वर सनातन है (अप्रतीत) अप्रकट है, छिपा हुआ है ॥३॥

भावार्थ —सृष्टि को पूर्ण रूप से ईश्वर ही जानता है, वह सनातन है, अच्युत है, गुप्त है ॥३॥

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॑ व्र॒तामि॑नाद॒ङ्गिरो॑भिर्गृणा॒नः ।

पु॒रूणि॑ चि॒न्नि त॑तान॒ रजां॑सि दा॒धार॒ यो ध॒रुणं॑ स॒त्यता॑ता ॥४॥

पदार्थ —(इन्द्र) इन्द्र (मह्ना) अपने महत्त्व से (महत) महान् (अर्णवस्य) संसार सागर के (व्रताम् इनात) विविध कार्यों को रचता है । (अंगिरोभि गृणान) अंगिरा ऋषियो अर्थात् योगियों से स्तुति किया गया (पुरूणि चित्) निश्चय अनेक (रजांसि ततान) लोको का विस्तार करता है (य सत्यताता) जो सत्यज्ञान का विस्तार करने वाला (धरुणम्) मोक्ष को (दाधार) धारण करता है ॥४॥

भावार्थ.—इन्द्र सृष्टि का रचयिता है, मुक्ति भी उसी के आधीन है ॥४॥

इन्द्रो॑ दि॒वः प्र॑ति॒मानं॑ पृथि॒व्या विश्वा॑ वेद॒ सव॑ना॒ हन्ति॒ शुष्ण॑म् ।

म॒हीं चि॒द्द्याम॒तनो॒त्सूर्ये॑ण चास्क॒म्भ चि॑त्क॒म्भने॑न॒ स्कभी॑यान् ॥५॥१०॥

पदार्थ —(इन्द्र) इन्द्र (दिवः पृथिव्या प्रतिमानम्) द्युलोक और पृथिवीलोक के परिमाण को और (विश्वाः सवना वेद) सब लोको को जानता है (शुष्णम् हन्ति) दुःख का, अज्ञान का नाश करता है (सूर्येण) सूर्य के साथ (याम् महीम् द्याम्) जिस भूमि को, द्युलोक को भी (अतनोत्) रचता है (चित् स्कम्भनेन स्कभीयान) धारण करने वाला (चास्कम्भ) रोके हुए है ॥५॥

भावार्थ — सृष्टि रचयिता और सृष्टि धारणकर्ता ईश्वर ही है ॥५॥

इति दशमो वर्ग ॥

वज्रे॑ण॒ हि वृ॑त्र॒हा वृ॒त्रमस्त॒रदे॑वस्य॒ शूशु॑वानस्य मा॒याः ।

वि धृ॑ष्णो॒ अत्र॑ धृष॒ता ज॑घ॒न्थाथा॑भवो मघवन्बा॒ह्वोजाः॑ ॥६॥

पदार्थ — (वृत्रहा) मोहावरण का विनाश करने वाला इन्द्र (वृत्रम्) मोहावरण को, (वज्रेण) वज्र से अर्थात् अपने ज्ञान के तेज से, (शूशुवानस्य अदेवस्य माया) और विस्तार करने वाले (असुर) मोह की मायाओ को (धृषता) विजयी प्रकाश से (धृष्णो) विजयी इन्द्र (वि+अस्तः) तितर-बितर कर देता है (अथ) और (मघवन्) हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र (अत्र) इस लोक मे (बाह्वोजाः) बहुत शक्तिशाली बाहुओ वाला इन्द्र (अभव) होता है ॥६॥

भावार्थ —अज्ञान मोहावरण को ईश्वर नष्ट करके उपासक का कल्याण करता है ॥६॥

सच॑न्त॒ यदु॒षसः॒ सूर्ये॑ण चि॒त्राम॑स्य के॒तवो॒ राम॑विन्दन् ।

आ यन्नक्ष॑त्रं॒ ददृ॑शे दि॒वो न पुन॑र्य॒तो नकि॑र॒द्धा नु वे॑द ॥७॥

पदार्थ —(यत) जब (उषस) उषायें (सूर्येण सचन्त) सूर्य से मिलती हैं तब (अस्य केतव) सूर्य के केतु अर्थात् प्रकाश (चित्राम् राम्) विचित्र रमणीयता को (अविन्दन्) प्राप्त करते है । (यत्) जो (दिव नक्षत्रम्) द्युलोक का नक्षत्र (न ददृशे) नही दिखाई देता । (आयत) सब ओर से जा (यत) जिस कारण से (अद्धा) वास्तव मे (नकि, नु वेद) कोई भी नही जानता ॥७॥

भावार्थ —सूर्य से युक्त उषायें शोभित होती हैं ईश्वर से युक्त आत्मायें शोभा पाती हैं बिना ईश्वर-सहायता के सत्यज्ञान नही मिलता ॥७॥

दू॒रं किल॑ प्रथ॒मा ज॑ग्मुरासा॒मिन्द्र॑स्य॒ याः प्र॑स॒वे स॒स्रुरापः॑ ।

क्व॑ स्वि॒दग्रं॒ क्व॑ बु॒ध्न आ॑सा॒मापो॒ मध्यं॒ क्व॑ वो नू॒नमन्तः॑ ॥८॥

पदार्थ —(य) जो (आप) सूक्ष्म परमाणु (इन्द्रस्य प्रसवे) इन्द्र की आज्ञा मे (सस्रु) गति करते हैं (आसाम् प्रथमा) इनमे प्रथम ही (दूर किल जग्मु) निश्चय दूर चले गये (आसाम्) इनका (क्व स्वित अग्रम) आरम्भ कहा है ? (क्व मध्यम्) मध्य कहां है ? (बुध्न क्व) आश्रय कहा है ? ॥८॥

भावार्थ —सृष्टि के उपादान कारण परमाणु मनुष्य के विचार से दूर हैं । ईश्वर ही उनको जानता है ॥८॥

सृ॒जः सिन्धूँ॒रहि॑ना जग्रसा॒नाँ आदिदे॒ताः प्र वि॑विज्रे ज॒वेन॑ ।

मुमु॑क्षमाणा उ॒त या मु॑मु॒च्रेऽधेदे॒ता न र॑मन्ते॒ निति॑क्ताः ॥९॥

पदार्थ —(अहिना जग्रसानान्) मेघ से ग्रस्त (सिन्धून्) जलो की नदियो को (सृज) बहाता हैं । (आत् इत्) सब ओर से निश्चय (जवेन) वेग से (प्रविविज्रे) बहाता है (उत्) और (या) जो (मुमुक्षमाणा) मुक्ति की इच्छा करने वाले (उत्) और (या) जो (मुमुच्रे) मुक्त हो गए हैं हम (एताः) इनको (न अवेत) नही जानते (नितिक्ता) तीक्ष्ण हुए (न रमन्ते) नहीं रमण करते हैं ॥९॥

भावार्थ —मुक्त और मुक्ति योग्य जीवो को ईश्वर जानता है ॥९॥

स॒ध्रीचीः॒ सिन्धु॑मुश॒तीरि॑वाय॒न्त्सना॑ज्जा॒र आ॒रितः॑ पू॒र्भिदा॑साम् ।

अस्त॒मा ते॒ पार्थि॑वा॒ वसू॑न्य॒स्मे ज॑ग्मुः सू॒नृता॒ इन्द्र॒ पूर्वीः॑ ॥१०॥११॥

पदार्थ —(उशती) कामना करती हुई (सध्रीची.) सीधी जल धाराएं (सिन्धुम) समुद्र को (इव) समान (आयन) प्राप्त होती हैं । (पूर्भित्) पुरो का सत्व, रज, तम तीन गुणों का भेदन करने वाली (आसाम्) इनका (आरितः) प्राप्ति योग्य स्वामी (जारः) ज्ञानोपदेशक बन्धनो को जीर्ण करने वाला इन्द्र है (हे इन्द्र) हे जीवात्मन् (ते) वे (पार्थिवा वसूनि) भौतिक धन (अस्मे) इसके लिए (अस्तम् आजग्मु) अस्त को प्राप्त हो जाते हैं (पूर्वी सूनृता) पहली सत्ययुक्त वाणी वेदज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥१०॥

भावार्थ —ईश्वर कृपा से भौतिक इच्छाएं हट जाती हैं, सत्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥१०॥

इत्येकादशो वर्ग ॥

[११२]

ऋषिः नभ प्रभेदनो वैरूप ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३, ७, ८, विराट् त्रिष्टुप् । २, ४-६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातः सावस्तव हि पूर्वपीतिः ।

हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या३ प्र ब्रवाम ॥१॥

पदार्थः—(हे इन्द्र) हे ईश्वर (सुतस्य) निचोड़े हुए सोम रस को आत्मा के भक्ति-भाव को (प्रतिकामम् पिब) इच्छानुसार पान करो, अर्थात् खूबजानो (प्रातः साव) हमारा प्रातः काल का यज्ञ (तव पूर्व पीतिः) तुम्हारा जलपान है । हे वीर इन्द्र ! (शत्रून् हन्तवे) शत्रुओं को—काम, क्रोध आदि को मारने के लिये (हर्षस्व) प्रसन्न होओ (ते) तेरे लिये (उक्थेभिः) स्तुतियों से (वीर्या) वीरता वाली स्तुतियां (प्रब्रवाम) बोलते हैं ॥१॥

भावार्थ —हमारे हृदय के प्रेमभाव से प्रसन्न होकर प्रभु दुर्भाव रूपी शत्रुओं को नष्ट कर देता है ॥१॥

यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।

तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥२॥

पदार्थ.—हे इन्द्र ! (यः ते रथ) जो तेरा रथ (मनसः जवीयान्) मन से भी तीव्र गति वाला है (तेन) उससे (सोमपेयाय) सोम पीने के लिए (याहि) जाओ (ते हरयः) तेरे घोड़े, तेरी शक्तियां (तूयम्) शीघ्र (आद्रवन्तु) गति में आये (येभिः वृषभिः) जिन आनन्द वर्धक गुणों से (मन्दमानः) आनन्द मान (यासि) गमन करते हो ॥२॥

भावार्थः—हे प्रभो ! हमारे भक्ति भावों को जानकर शीघ्र हम पर द्रवित हूजिये ।

प्रश्नः—भगवान् के पास रथ हैं और घोड़े हैं उनके द्वारा गमन करता है ?

उत्तर —कविता में ऐसी ही कल्पनायें की जाती हैं वेद काव्य है पर मानव के मनोभावों की अभिव्यक्ति ईश्वर ने कराई है । रथ है "मनसो जवीयान्" मन से भी तेज गति वाला, यह शब्द बताते हैं कि यह सर्वव्यापकता के कारण कहा गया है ॥२॥

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।

अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥३॥

पदार्थ (सूर्यस्य श्रेष्ठैः रूपैः) सूर्य के श्रेष्ठ रूपों द्वारा (हरित्वता वर्चसा) सर्वव्यापक तेज से (तन्वम् स्पर्शयस्व) मेरे शरीर का स्पर्श कर अर्थात् मुझे वर्चस और ज्ञान प्रकाश प्राप्त हो, (हे इन्द्र) हे प्रभो ! (अस्माभिः सखिभिः) हम मित्रों के द्वारा (हुवानः) पुकार किये हुये आप (सध्रीचीनः) सरल रूप हमारे साथ हुये (निषद्य) हमारे समीप बैठकर (मादयस्व) आनन्द लो ॥३॥

भावार्थ —कितना विश्वस्त प्रेमभाव भरा हुआ है मन्त्र में । ईश्वर हमारा स्पर्श करे, हमारे साथ मित्रों की तरह आनन्द ले, यह भाव भक्ति की पराकाष्ठा का है ॥३॥

यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।

तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥४॥

पदार्थ —(यस्य ते महिमानं) जिस तेरी महिमा को (मदेषु) आनन्दों में (इमे मही रोदसी) यह महान् पृथिवी और द्युलोक (न अविविक्ताम) विवेचन नहीं कर सकते (त्यत्) तुम्हारे (तत् ओक) उस स्थान को (प्रियेभि) प्यारे (युक्तैः हरिभि) जुड़े हुए घोड़ों से अर्थात् अपनी शक्तियों से युक्त और जीवात्मा अपनी इन्द्रियों को वश में किये हुये (प्रियम् अच्छ, अन्नम्) प्यारे अच्छे अन्न को (आयाहि) आया प्राप्त करो ॥४॥

भावार्थ —हे सब शक्तिमान् प्रभो ! हमारे भेंट किये अन्न को, मनोभावों को, जीवनों को स्वीकार करो ॥४॥

यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।

स ते पुरंधिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ॥५॥१२॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) हे ईश्वर (यस्य पपिवान) जिसे स्वीकार करने वाले तुम (शश्वत्) निरन्तर (शत्रून्) शत्रुओं को (अनानुकृत्या) अनुकरण न करने योग्य अर्थात् अनुपम (रण्या) रण से (चकर्थ) काट देते हो (स) वह (सोमः) सोम (ते मदाय) तुम्हारे आनन्द के लिये (सुतः) निचोड़ा है (स) वह (ते) तेरी (पुरंधिम्) पुरों को धारण करने वाली (तविषीम्) तेज जीवनी शक्ति को (इयर्ति) प्रेरणा करती है ॥५॥

भावार्थ —हमारे भक्ति भावों को सदा स्वीकार करके अपने तेज से हमे कृतार्थ करो ॥५॥

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।

पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥६॥

पदार्थ—(हे इन्द्र) हे भगवन् (इदम् ते पात्रम्) यह आपका पात्र (सनवित्तम्) सनातन है यह पात्र सर्वज्ञता (हे शतक्रतो) हे सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्र (एना) इस पात्र से (सोमम पिबा) मेरे हृदय के भक्ति-भाव को पान करो, स्वीकार करो (मदिरस्य मध्व.) आनन्द के मिठास को (पूर्ण आहवा) पूर्ण लेकर जिसको (विश्वे देवा.) सब ज्ञानी विद्वान् (इत्) निश्चय (अभिहर्यन्ति) चाहते हैं ॥६॥

भावार्थ.—हे प्रभो, हमारी भावना को अपनी सर्वज्ञता से जानो, इन भावों को सब देव, विद्वान् चाहते हैं ॥६॥

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।

अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥७॥

पदार्थः—(हे इन्द्र, हे वृषभ) हे ऐश्वर्ययुक्त और सुख की वर्षा करने वाले ईश्वर (हित प्रयस) हित को बोने वाले (पुरुधाजनास) अनेक जन (त्वाम् हि) तुमको ही (वि ह्वयन्ते) विशेष रूप से प्रार्थना करते है (अस्माकम्) हमारे (इमाः ये) ये जो (मधुमत्तमानि) अत्यन्त मीठे (ते) तेरे लिए (सवना) यज्ञ (भुवन्) हो रहे हैं (तेषु हर्य) उनमे रुचि करो ॥७॥

भावार्थ —हे इन्द्र बहुत जन तुम्हे पुकार रहे हैं, हमारे यज्ञों मे पधारो, रुचि लो ॥७॥

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।

सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥८॥

पदार्थ —हे इन्द्र (ते) तेरे (प्रनूनम) निश्चय (पूर्व्याणि) पूर्ण तेजोयुक्त (प्रथमा कृतानि) पहले किये हुए (वीर्याणि) शक्ति-सम्पन्न कामो को (प्रनूनम् प्रवोचम्) निश्चय ही कहता हूँ (सतीनमन्युः) जलों को अपनी किरणों से रोकने वाला सूर्य (अद्रिम्) मेघों को (अश्रथा) खण्डित कर देता है (ब्रह्मणे गाम्) अन्न के लिए पृथिवी को (सुवेदनाम् अकृणोः) उत्तम बनाता है वा वेद के लिए वाणी मे सुन्दर प्राप्ति योग्य बनाता है ॥८॥

भावार्थ —हम इन्द्र के यशों का वर्णन करें यह स्तुति वेदवाणी को सुगम बनाती है ॥८॥

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।

न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥९॥

पदार्थ—(हे गणपते) हे गणों के स्वामिन् (गणेषु) गणों में, अपने भक्तों मे (सुनिषीद) अच्छी प्रकार बैठो अर्थात् भक्तों के हृदयों में आपका विश्वास पूरा हो, (हे मघवन्) हे ऐश्वर्यशालिन् ! (त्वत ऋते) तुम्हारे बिना (किञ्चन न क्रियते) कुछ नहीं किया जाता है (त्वाम) तुमको (कवीनाम् विप्रतमम्) कवियों मे विद्वान् (आहु) कहते है । हे इन्द्र (महाम-अर्कम्) महान् आदर योग्य (चित्रम्) अद्भुत धन (अर्च) हमें प्रदान करो ॥९॥

भावार्थ —इन्द्र महान् है वही हम चित्र-विचित्र धन दे सकता है ॥९॥

अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।

रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माऽभक्ते चिदा भजा राये अस्मान्

॥१०॥१३॥९॥

पदार्थ —(हे मघवन्) हे इन्द्र (सखे) हे मित्र (न नाधमानान्) हम प्रार्थना करने वालों का (अभिख्या) कल्याण का आदेश करो, (हे वसुपते) हे सब लोकों और धनों के स्वामी (सखीनाम्) हम मित्रों का (बोधि) ज्ञान दो (हे सत्यशुष्म) हे सत्य का बल रखने वाले प्रभो (रणकृत्) आप रण करने वाले है, (रण कृधि) रण करो अर्थात् हमारे आसुरी भावों को नष्ट कर दो, (अभक्ते + चित् + राय) बिना बांटे हुए धन मे (अस्मान्) हम (आभज) भाग दो ॥१०॥

भावार्थ — हमारे बुरे विचार नष्ट कर हमे ज्ञान दो, धन-सम्पत्ति दो, हमारी प्रार्थना सुनो ॥१०॥

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

[११३]

ऋषि शतप्रभेदनो वैरूपः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ५ *जगती* । ३, ६, ९ *विराड् जगती* । ३ *निचृज्जगती* । ४ *पादनिचृज्जगती* । ७, ८ *आर्चीस्वराड् जगती* । १० *पादनिचृत्त्रिष्टुप्* ॥ *दशर्चं सूक्तम्* ॥

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।

यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥१॥

पदार्थ —(सचेतसा द्यावापृथिवी) सावधान हुए हृदय से द्युलोक और पृथिवीलोक (अस्य) इस मनुष्य के (विश्वेभि देवैः) सब दिव्य शक्तियों के सहित (तत्शुष्मम्) उस बल के (अनु+आवताम्) पीछे चलते हैं (यत्) जो कि (इन्द्रियम् महिमानम् कृण्वान ऐत्) इन्द्रियों को महत्त्वपूर्ण करता हुआ प्राप्त होता है (सोमस्य पीत्वी) सोम को पीकर (क्रतुमान्) यज्ञ करने वाला (अवर्धत) बढ़ाई पाता है ॥१॥

भावार्थ —हे इन्द्रिय विजयी ईश्वर-भक्ति का रस सोम पीए हुए विज्ञान उपकार आदि यज्ञ वाला सब लोकों और सब विद्वानों मे प्रशंसा पाता है ॥१॥

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांऽशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।

देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥२॥

पदार्थ —(अस्य) इसकी (महिमानम) महिमा (विष्णु.) सूर्य (ओजसा) तेज से (मधुन) मधु के (अंशु दधन्वान्) किरण को धारण करता हुआ (विरप्शते) कहता है। मानो सूर्य भी अपनी किरणों से इसक महत्त्व मे मिठास भर देता है (स मादभि: देवेभि) साथ चलने वाले देवों के साथ (इन्द्र) सूर्य (मघवा) ऐश्वर्यशाली (वृत्रम् अघ्नवान्) मेघ का छिन्न-भिन्न करता हुआ और योगी मोहावरण को नष्ट करता हुआ (वरेण्य) श्रेष्ठ (अभवत्) होता है ॥२॥

भावार्थ —इन्द्रियजयी भगवदनुकम्पा प्राप्त जन अज्ञान को नष्ट कर श्रेष्ठ बनाता है ॥२॥

वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनाऽवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३॥

पदार्थः—(युधये) युद्ध के लिए (आयुधा) अस्त्र-शस्त्रों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (यत्) जो (अहिना वृत्रेण) कुटिल चाल वाले वृत्र से, तमोगुण से (शसम्+आविदे) कीर्ति पाने के लिए (समस्थिथा) संग्राम करता है (अत्र) इस सग्राम मे (ते) तेरे लिए (विश्वे मरुतः) सब मरुद्गण वायु और बलवान् मनुष्य तथा प्राण (त्मना सह) आत्मा के साथ-साथ (उग्रम् इन्द्रियम् महिमानम्) उग्र इन्द्र सम्बन्धी महिमा को (अवर्धन्) बढ़ावा देते हैं ॥३॥

भावार्थ—सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न करता है राजा दुष्टों का नाश करता है तो मेघ उसकी सहायता करता है, योगी अज्ञान, मोह का नाश करता है प्राण उसकी सहायता करते हैं ॥३॥

जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४॥

पदार्थ —(जज्ञान एव वीर) उत्पन्न होते ही वीर पुरुष (स्पृध) स्पर्धा करने वालों को (व्यबाधत) बाधा देता है (पौंस्यम् रणम्) पुरुषार्थ युक्त युद्ध को (प्रापश्य) देखता हुआ (अद्रिम् अवृश्चत्) पहाड़ को काटता हुआ वा मेघ को छिन्न-भिन्न करता हुआ (सस्यदः अवसृजत्) जलो को बहाता हुआ (सु अपस्यया) अपनी कार्य-कुशलता से (पृथुम् नाकम्) बड़े भारी सुख को (अस्तभ्नात्) स्थापित करता है ॥४॥

भावार्थः—पुरुषार्थी वीर सब बाधाओं को रोक कर कठिन से कठिन कामों को करके समार के लिए हित का जल बहाता है और स्वर्ग की स्थापना करता है ॥४॥

आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥५। १४॥

पदार्थः—(आत्) इसके पश्चात् (इन्द्र) इन्द्र (सत्रा) एक साथ (तविषी) सेनाओं को (अपत्यत्) प्राप्त करे (वरीय) वह श्रेष्ठ वीर (द्यावापृथिवी, अबाधत) द्युलोक से पृथिवीलोक तक को जीत ले (धृषित) शत्रुओं को जीतने वाला (आयसम् वज्रम् अवाभरत्) लोहे के वज्र को धारण करता है अर्थात् कठोरता से कार्यों को कर डालता है और (दाशुषे मित्राय वरुणाय) दानशील मित्र और वरुण ज्ञानी और न्यायकारी के लिए (शेवम्) धन को (अवाभरत्) भर देता है ॥५॥

भावार्थ —इन्द्र वीर पुरुषार्थी नेता भूमि आकाश सब मे पुरुषार्थ करके घोर परिश्रम से प्रजा का धन सम्पत्ति से भर देता है ॥५॥

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसाऽपो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥६॥

पदार्थ —(अत्र) इस युद्ध में (इन्द्रस्य) इन्द्र की (तविषीभ्य) सेनाओ मे (ऋघायत विरप्शिन) शत्रु दमनकारी राजा के विरोधी (मन्यवे अरंहयन्त) क्रोध के लिए खदेड़ दिए जाते हैं। (यत्) जब फिर (उग्र) तेजस्वी सूर्य (वृत्रम्) मेघ को (तमसा) अन्धकार से (परीवृतम्) घिरे हुए को (अप) जलो को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले को (ओजसा) तेज से, बल से (वि+अवृश्चत्) टुकड़े टुकड़े कर देता है ॥६॥

भावार्थ —इन्द्र सूर्य जैसे मेघ को छिन्न-भिन्न कर जल वर्षा देता है वैसे ही तेजस्वी राजा दुष्टों को भगाकर प्रजा मे सुख-शान्ति की वर्षा कर देता है ॥६॥

या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥७॥

पदार्थ—(महित्वेभि) महत्त्वशाली तेजों से (यतमानौ) प्रयत्न करते हुए दो दल (सम् ईयतु) एक साथ आते हैं (या) जिन (कर्त्वा) करने योग्य (प्रथमानि वीर्याणि) प्रथम बलों को करते हैं (हते) नष्ट होने पर (ध्वान्तम् तमः) गहरा अन्धेरा (अवदध्वसे) नष्ट हो जाता है (इन्द्रः) सूर्य (मह्ना) महत्त्व से (पूर्वहूतौ) पहली पुकार पर (अपत्यत्) पहुँचता है ॥७॥

भावार्थ —जैसे सूर्य स्वतेज से मेघ को नीचे गिरा देता है वैसे ही उत्तम राजा प्रजा की पहली ही पुकार पर दुष्टों का दमन करता है ॥७॥

विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाऽग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥८॥

पदार्थ —(अध) और (विश्वेदेवास) सब विद्वान् (सोमवत्या वचस्यया) सौम्यता से युक्त वाणी से (वृष्ण्यानि) बलों को (अवर्धयन्त) बढ़ाते हैं, (इन्द्रस्य) इन्द्र को (हन्मना) हनन करने वाले शस्त्र से (रद्धम्) पीड़ित (अहिम्) सर्पवत् कुटिल (वृत्रम) वृत्र को (अग्नि) आग (जम्भै) ज्वालाओं से (तृषु) तत्काल (अन्नं न) जैसे अन्न को (आवयत्) जला देता है ॥८॥

भावार्थ —उस राजा का सब विद्वान साथ देते हैं वह दुष्ट जनों को शीघ्र नष्ट कर देता है ॥८॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिरृक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥९॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (दक्षेभिः) बलयुक्त (ऋक्वभि.) ऋचाओं से युक्त (सख्येभि) मित्रता युक्त (वचनेभि) वचनों से (भूरि) बहुत (सख्यानि) मित्रता के भावों को (प्रवोचत) बोलो (इन्द्रः) योगी ईश्वर (धुनिं च चुमुरिं च) क्रोध और काम को (दम्भयत्) दमन करता हुआ (दभीतये) दुर्भावों को नष्ट करने के लिए (श्रद्धा मनस्या) श्रद्धायुक्त मन से (शृणुते) तुम्हारी प्रार्थना सुनता है ॥९॥

भावार्थः—वेदोपदेश के अनुसार वचन बोलो, ईश्वर सब बुराइयों का दमन करेगा वह श्रद्धा चाहता है ॥९॥

त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु णं उर्विया गाधमद्य ॥१०॥१५॥

पदार्थः—हे ईश्वर वा आत्मन् ! (पुरूणि) बहुत (स्वश्व्यानि) उत्तम अश्वसम बलों को, इन्द्रियों को (आभर) भरण कर (येभि) जिससे (निवचनानि (शसन्) नियमित वचन बोलता हुआ (मंसै) ज्ञान लाभ करूं और (सुगेभि) सुगम यत्नों से (विश्वा दुरिता) सब दुःखों, दुर्व्यसनों को (तरेम) तर जाऊं, हे ईश्वर (न) हमें (उर्वियागाधम्) महत्त्वपूर्ण पद (अद्य) अब (सुविदः) प्राप्त करूं ॥१०॥

भावार्थ. —उत्तम वचन बोलूं ईश्वर कृपा से दुःखों से पार होकर महत्त्व प्राप्त करूं ॥१०॥

इति पञ्चदशो वर्गः ॥

---

[११४]

ऋषिः सध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापस ॥ विश्वेदेवा देवताः छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४ जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥१॥

पदार्थ —(घर्मा) प्रेम और प्रकाश (समन्ता.) सब मिले हुए (त्रिवृतम्) तिगुने ज्ञान को श्रवण, मनन, निदिध्यासन (वि+आपतु) प्राप्त करें (मातरिश्वा) वायु (तयो) उन दोनों के, गुरु शिष्य के, पति-पत्नी के, राजा प्रजा के (जुष्टिम्) मेल को (जगाम) प्राप्त होता है (देवाः) विद्वान् (दिवः) स्वर्ग के (पय) जल को (दिधिषाणा) धारण करते हुए (अवेषन) व्याप्त होते हैं और (सहसामानम) एक ही साथ उत्पन्न होने वाले (अर्कम) अन्न को (विदुः) जानते हैं ॥१॥

"सह सामानम् अर्कम् विदु" सामवेद सहित ऋग्वेद को जानते हैं, अर्थात् ज्ञान और उपासना दोनो मे निपुण हैं।

भावार्थ—वायुवत् गुरु सब मे सहयोग करता है तब शिष्य जन ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥१॥

तिस्रो देष्ट्राय निरृतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥२॥

पदार्थः—(दीर्घश्रुत) बहुत परिश्रमी विद्वान् (वह्नय) ज्ञानधारक विद्वान् (देष्ट्राय) उपदेश के लिए (हि) निश्चय (तिस्र निरृतीः) तीन दुःखों को [आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक] (वि जानन्ति) जानते हैं (कवय) दूरदर्शी विद्वान (तासाम्) उन निरृतियों के (निदानम्) कारण का (चिक्यु.) विवेचन करते हैं (याः) जो निरृतियाँ (परेषु) सूक्ष्म (गुह्येषु व्रतेषु) गूढ़ व्रतो मे हैं ॥२॥

भावार्थ —विद्वान् दुःखो के सूक्ष्म कारणों को जानकर उनकी निवृत्ति करें ॥२॥

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥३॥

पदार्थ—(चतुष्कपर्दा) चार चोटी वाली (युवतिः सुपेशा) सुन्दर रूप और वेशवाली (घृत-प्रतीका) स्नेह करने वाली (वयुनानि वस्ते) सब पदार्थों को ढके हुए है (तस्याम्) उसमें (वृषणा) सुख वर्षक (सुपर्णा.) सुन्दर ज्ञान वाले आत्मा (निषेदतु) रहते हैं (यत्र) जिसमें (देवा) ज्ञानी विद्वान् और दिव्य शक्तियां (भागधेयम् दधिरे) अपना भाग धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—यह प्रकृति है, यज्ञवेदी है, वाणी है। प्रकृति—नाम, रूप, घटना, बढ़ना, चार चोटी, स्नेह वाली यज्ञवेदी, होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, यजमान घृत की आहुति वाली। वाणी—नाम, आख्यात, निपात और उपसर्ग और रसवाली इसमें सुपर्ण पक्षी जीवात्मा रहते हैं ॥३॥

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥४॥

पदार्थः—(एक. सुपर्ण) एक पक्षी सुन्दर ज्ञान वाला (स) वह (समुद्रम्) समुद्र अर्थात् इस विश्व में (आविवेश) प्रविष्ट हो रहा है (स) उसने (विश्वं भुवनम्) सब संसार (विचष्टे) प्रकाशित किया है (तम्) उसे (पाकेन मनसा) परिपक्व मन से (अपश्यम्) देखा है, जाना है (अन्तित) समीप से अर्थात् आत्मा में व्यापक होने से (तम्) उसको (माता) प्रकृति (रेढि) प्राप्त करती है ॥४॥

भावार्थः—संसार का रचयिता ईश्वर प्रकृति में व्यापक है ॥४॥

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥५॥१६॥

पदार्थः—(कवय) दूरदर्शी विद्वान् (विप्राः) ज्ञानी (सुपर्णम्) ईश्वर को (एक सन्तम्) एक होते हुए को (बहुधा कल्पयन्ति) नाना प्रकार से कल्पित करते हैं, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकों मे उसका वर्णन नाना प्रकार के रूपो मे करते हैं (अध्वरेषु) यज्ञों मे (छन्दांसि) छन्दो का (दधतः) धारण करते हुए (सोमस्य) सोम के (द्वादश ग्रहान्) १२ पात्रों की (मिमते) कल्पना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—सोम के द्वादश पात्र १२ छन्दो के प्रतीक है ब्रह्म को भी अनेक नामो से पिता, माता, बन्धु, इन्द्र, वरुण करके पुकारा जाता है, ५ सुपर्ण नाम यज्ञ का भी है ॥५॥

इति षोडशो वर्गः ॥

षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम्।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ॥६॥

पदार्थ—(षट्त्रिंशांश्च चतुर) छत्तीस और चार या ३६ के चौगुने (छन्दांसि) छन्दो का (कल्पयन्त.) कल्पना करते हुए (च) और (आद्वादशम् दधत्) १२ तक रखते है, (कवय) कवि लोग [विद्वान् जन] (यज्ञ विमाय) यज्ञ का विधान करके (मनीषा) बुद्धि से (ऋक्सामाभ्याम्) ऋग्वेद और सामवेद से (रथम) रथ को, यज्ञ का (प्रवर्तयन्ति) प्रारम्भ करते हैं ॥६॥

भावार्थः—सोमग्रह— सोम के पात्र २ ऐन्द्रवायव, २ के तीन इन्द्राग्नन्थी २, आग्रायण ३, माहेन्द्र १, आदित्य १, सावित्र १, वैश्वदेव १, वालीवत् १, हारियोजन १ योग ३६ और आयाग्निष्टोम मे उक्त ३६ और अंशु, अदाभ्य, दधिग्रह और षोडशी ये चार ग्रह मिलाकर, ४० ग्रह [पात्र] हो जाते हैं ये सब यज्ञ मे प्रजापति के ही नाना सामर्थ्यों को दर्शाने वाले रूप हैं। (भाष्यकार श्री जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार) ॥६॥

चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ॥७॥

पदार्थ—(अस्य) इस यज्ञ की (अन्ये) और (चतुर्दशमहिमानः) चौदह महत्वपूर्ण काम हैं (तम्) उसको (धीरा) योगीजन (वाचा) वाणी द्वारा (सप्त) सात (प्रणयन्ति) सम्पादन करते है (आप्नानम् तीर्थम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ तीर्थ को संसार से तारने वाले ज्ञान को (इह) यहां (क-प्रवोचत) कौन उपदेश करता है (येन पथा) जिस मार्ग से (सुतस्य) निचोड़े हुए सोमरस का (प्रपिबन्ते) पान करते हैं ॥७॥

भावार्थ.—इसका गूढ़ अर्थ तो आध्यात्मिक है सात लोक हैं। भूः भुव· स्व. आदि नाभि से ऊपर सात हैं, तल वितल आदि नाभि से नीचे ब्रह्मानन्द सोमरस का पान योग रूपी तीर्थ से किया जाता है।

संसार का रचयिता प्रभु बड़ा चतुर, कलाकार, हम उसे प्राप्त करें ॥७।

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत्।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥८॥

पदार्थः—(उक्थया) उपदेश के वचन (सहस्रधा) सहस्रों प्रकार के हैं। यज्ञ के रूप सहस्रों हैं मुख्य (पंचदशानि) पन्द्रह प्रकार के हैं। ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ तन्मात्राएं (यावत् द्यावा पृथिवी) जहां तक द्युलोक और पृथिवी लोक हैं (तत् तावत् इत्) वह यज्ञ सोम वहीं तक निश्चय है, अर्थात् सर्वत्र है (सहस्रधा) सैकड़ों प्रकार से (महिमान·) महिमाएं (सहस्रम्) सहस्रों हैं (यावत् ब्रह्म विष्ठितम्) जितना वेद विस्तृत है (तावती वाक्) वहीं तक वाणी है ॥८॥

भावार्थः—वाणी केन्द्र वेद है ॥८॥

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

पदार्थ—(कः धीर) कौन विद्वान् (छन्दसाम् योगम्) छन्दों के योग को (आवेद) जानता है (धिष्ण्याम्) बुद्धि मे (वाचम्) वाणी को (क प्रतिपपाद) कौन प्रतिपादन कर सकता है? (कम्) किसको (ऋत्विजाम) ऋत्विजो में (अष्टमम् शूरम्) आठवां शूर कहते हैं (क स्वित्) और कौन (इन्द्रस्य हरी) इन्द्र के घोड़ों को (निचिकाय) जानता है ॥९॥

भावार्थ.—धिषणा-बुद्धि और यज्ञस्थान सात ऋत्विग और ७ प्राण आठवां शूर आत्मा। इन्द्र के घोड़े ज्ञान और प्रेम, सब कविता रहस्यवादी है ॥९॥

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥१७॥

पदार्थ—(एके) कोई-कोई (भूम्या) भूमि के (अन्तम् परिचरन्ति) ओर-छोर तक विचरते हैं। (रथस्य धूर्षु) रथ के धुरो मे (युक्तास· अस्थु) जुड़े रहते है (श्रमस्य दायम्) श्रम का दान (एभ्यः विभजन्ति) इसके लिए विभाग किया जाता है (यदा) जब (यमः) नियम करने वाला जीवात्मा (हर्म्ये) शरीर में (हितः) धारण हुआ होता है ॥१०॥

भावार्थः—कुछ का ज्ञान भूमि की जहां तक गति है वहां तक है, कुछ का ज्ञान सूर्यरूपी रथ से युक्त लोकों तक है, परन्तु इस श्रमज्ञान का आत्मज्ञान ही है। आत्मज्ञान के बिना सब ज्ञान व्यर्थ है ॥१०॥

इति सप्तदशो वर्गः ॥

---

[११५]

ऋषिरुपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, २, ४, ७ विराड् जगती। ३ जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। ६ निचृज्जगती। ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ पादनिचृच्छक्वरी ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥१॥

पदार्थ—(शिशो) सब से व्यापक (तरुणस्य) कष्टो से तारने वाले की (वक्ष) सबको वहन करने वाली शक्ति (चित्र। इत्) अद्भुत है, (य) जो (मातरौ) द्युलोक और भूलोक का, जो जगत के प्राणियों की माताएं है (धातवे) रस पान करने के लिए (न अप्येति) न आता (यदि) जो (अनूधा) स्तन-रहित अर्थात् पुरुषवत् होकर भी (मातरौ) द्युलोक और भूलोक को (जीजनत्) उत्पन्न करता है (अध च नु ववक्ष) और इन दोनों को धारण करता है (सद्य) सदा (महि.) बड़ा (दूत्यम् चरन्) अन्न, धन आदि दान करता रहता है ॥१॥

भावार्थ—ईश्वर सब लोकों को रचता, धारण करता और पालन करता है ॥१॥

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥२॥

पदार्थ- (अग्नि) ज्ञान प्रकाशस्वरूप ईश्वर (ह) निश्चय (नाम) नाम वाला (धायि) धारण करने योग्य है (दन्) दानी है (अपस्तम) सबसे उत्तम जल है, सब कर्मों से श्रेष्ठ कर्म है (य।) जो (भस्मना दता) प्रकाशयुक्त ज्वाला रूपी दांत से (वना) अग्नि जैसे काष्ठो को, सूर्य जैसे जलो को, ऐश्वर्यों को (सं युवते) अच्छी तरह ग्रहण करता है (अभि प्रमुरा जुह्वा) सबसे बड़ी ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वध्वर) उत्तम यज्ञों वाला (इनः न) स्वामी के समान (प्रोथमानः) विस्तृत होता हुआ (यवसे वृषा) अन्न देने के लिए वर्षा करने वाला है ॥२॥

भावार्थ—भौतिक अग्नि यज्ञ होने पर प्राणप्रद वर्षा करता है। ईश्वर रूप अग्नि उपासना द्वारा सब सुखो की वर्षा करता है ॥२॥

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३॥

पदार्थः—हे ज्ञानियो ! (व) तुम लोग (न द्रुषदम्) वृक्ष पर बैठे हुए (विं न) पक्षी के तुल्य (तम्) उसके (देवम्) देव को (अन्धसः) अन्न के, जीवन के (देवम्) दाता को (इन्दुम्) आनन्द और प्रकाशयुक्त को (प्रोथन्तम्) व्यापक को (प्रवपन्तम्) सब मे जीवन का बीज बोने वाले को (अर्णवम्) आनन्द के सागर को (वह्निं न) सब लोको को धारण करने वाले अग्नि के समान (विरप्शिनम्) महान (महिव्रतम् न) महान व्रत वाले के समान (शोचिषा) अपने तेज से (अध्वनः सरजन्तम्) मार्गों को प्रकाशित करने वाले प्रभु को (आसा) संसार को प्रेरणा देने वाले सामर्थ्य से युक्त की स्तुति करो ॥३॥

भावार्थ.—सर्वव्यापक सबके धारक ईश्वर का ही भजन करो, गुणगान करो ॥३॥

वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।

आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥४॥

पदार्थः—(हे अजर) सदा एकरस रहने वाले भगवन् (ज्रयसानस्य) सर्वव्यापक (यस्य ते धक्षोः) सब पापों को भस्म करने वाले (वाताः न) वायु के समान गतिशील (अच्युताः) स्थिर रहने वाले पदार्थ (परिसन्ति) चारों ओर हैं (युयुधयः) योद्धा जन (सत्वनम् न) बलशाली नेता को जैसे (इष्टये) अभिलाषा पूर्ति के लिए (नशन्त) प्राप्त होते हैं (रण्वासः) तेरा गुणगान करने वाले सेवक (प्रशिषन्त) स्तुति करते हुए (आनशन्त) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—सबके आधार सबके स्वामी आपकी स्तुति करते हुए भक्त जन सेवन करते हैं ॥४॥

स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।

अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ॥५॥१८॥

पदार्थ —(स इत्) वह ही (अग्निः) तेजस्वरूप ईश्वर (कण्वतम) सबसे श्रेष्ठ ज्ञानी (कण्व सखा) विद्वानों का मित्र (आर्यः) श्रेष्ठज्ञानी (परस्य अन्तरस्य तरुष) परम अन्त. सूक्ष्म तत्व को तारने वाला है अर्थात् अति सूक्ष्म भावों को जानता है, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर (गृणत) स्तुति करने वाले यजमान की (पातु) रक्षा करें (अग्नि) तेज स्वरूप ईश्वर (सूरीन् पातु) विद्वानों की रक्षा करें (तेषाम् अव) उनका ज्ञान और कर्म (न ददातु) हमें प्रदान करें ॥५॥

भावार्थः—ईश्वर सर्वोच्च ज्ञानी है । ज्ञानियों का रक्षक है हमें भी शुभ ज्ञान सिखावें ॥५॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।

अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥६॥

पदार्थ —(हे सुपित्र्य) हे उत्तम पिता के पुत्र (यः) जो (अनुद्रे) जलरहित मरुस्थल में (धृषता) विजयिनी शक्ति से (वरम्) श्रेष्ठ रहता है उस (वाजिन्तमाय) महान् शक्तिमान के लिए (सह्यसे) सब सहन करने वाले के लिए (जातवेदसे) सब उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले के लिए (महिन्तमाय) सबसे महान् के लिए (सते) सत्यस्वरूप के लिए (धन्वना धृषता) विजय करने वाले धनुष से (अविष्यता) रक्षा करने वाले से (इत्) ही (तृषु) शीघ्र (अनुच्यवानः) युक्त हुआ आनन्द प्राप्त कर ॥६॥

भावार्थ —सर्वरक्षक ईश्वर से मिलकर ही जीव आनन्द प्राप्त करता है ॥६॥

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।

मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् ॥७॥

पदार्थ —(मित्रास न) मित्रों के समान (ये) जो (सुधिता) उत्तम स्थिति वाले जन (ऋतायव) सत्य धारण करने वाले व्यक्ति (द्याव न) सूर्य की रश्मियों के तुल्य (द्युम्नैः) धनों से और तेजों से (मानुषान् अभिसन्ति) मनुष्यों को प्राप्त होते हैं (सूरिभि मर्तैः) विद्वान् मनुष्यों के साथ (नृभिः सह) नेताओं के साथ (वसुः) सर्वत्र वसने वाला (अग्निः एव) अग्नि ही (स्तवे) स्तुति करता है (सहसः सूनर) सब सेना को जैसे उत्तम सेनापति, इसी प्रकार भक्तों को सुमार्ग पर ले जाता है ॥७॥

भावार्थ —ईश्वर ज्ञानियों से स्तुत्य सर्वव्यापक है, वही सुमार्ग दर्शक है ॥७॥

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८॥

पदार्थ —(हे ऊर्जः नपात्) हे सर्वोन्नत और कभी न गिरने वाले प्रभो ! (सहसावन्) अपार बल युक्त (उपस्तुतस्य) स्तुति करने वाले भक्त की (वृषावाक्) सुख वर्षक वाणी (त्वा इति) तुम्हें इसी प्रकार (वन्दते) वन्दना करती है (त्वां स्तोषाम) हम तुम्हारी स्तुति करते हैं (त्वया सुवीरा.) तुम्हारे द्वारा उत्तम वीर बनें (प्रतरम) उत्तम (द्राघीय आयु, दधाना) दीर्घ आयु को धारण करें ॥८॥

भावार्थः—ईश्वर की कृपा दीर्घ आयु एवं सब सुख देती है ॥८॥

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।

ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषड्वषळित्यूर्ध्वासो

अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥१९॥

पदार्थः—(हे अग्ने) सत्य प्रकाश युक्त प्रभो ! (इति उपस्तुता स) स्तुति करने वाले भक्त लोग (वृष्टिहव्यस्य) अन्न आदि की वृष्टि करने वाले तुझ प्रभु के (पुत्रा.) पुत्र, भक्त (त्वा इति अवोचन्) तुम्हारा इस प्रकार गुणगान करते हैं, (तान् गृणत) उन गुणगान करने वालों को (सूरीन् च) और विद्वानों को (पाहि) रक्षा करो (ऊर्ध्वास.) ऊपर को मुख किए वे (वषड्, वषड् इति) यज्ञ में आहुति दो, यज्ञ में आहुति दो ऐसे कहते हुए (त्वाम्+अनक्षन्) तुम्हें प्राप्त होते हैं (ऊर्ध्वासः) ऊर्ध्व गति को पाने वाले (नम , नमः इति) तुम्हें प्रणाम तुम्हें प्रणाम ऐसा कहते हुए (त्वा अनक्षन्) तुम्हें प्राप्त करते हैं ॥९॥

भावार्थ —प्रभुभक्त यज्ञों द्वारा, परोपकार द्वारा स्तुति करते हुए मोक्ष पाते हैं ॥९॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[११६]

ऋषिरग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः ॥ इन्द्रो देवता । छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । नवर्चं सूक्तम् ॥

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।

पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) ईश्वर (महते इन्द्रियाय) महान् वैभव के लिए (सोम पिब) सोमपान करो (हे शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (वृत्राय हन्तवे) वृत्र को मारने के लिए (सोम पिब) सोमपान कर (हूयमान) आवाहन किया गया तू (शवसे राये) बल और धन के लिए (सोमं पिब) सोमपान कर (मध्व तृपत्) मधु से तृप्त हुआ (आवृषस्व) वर्षा कर ॥१॥

भावार्थ —सोम भक्तिभाव, मधु-ईश्वर प्रेम, इनसे प्रसन्न हुआ इन्द्र, ईश्वर, हमें धन वैभव दे, वृत्र अज्ञान के मोहावरण को नष्ट कर दे और आनन्द की वर्षा कर दें । मन्त्रार्थ को राजा और योगी पर भी लगाया जाता है ॥१॥

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।

स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२॥

पदार्थ —हे इन्द्र (अस्य क्षुमतः) इस स्तुति युक्त (प्रस्थितस्य) प्रतिष्ठा युक्त (आसुतस्य) अभिषेक किये हुए (सोमस्य) सोम का, भक्तिभाव का (वरम्) चुने हुए उत्तम भाग को (पिब) स्वीकार करो (स्वस्तिदा) कल्याणदायक (अर्वाचीनः) नवीन हुए (मादयस्व) प्रसन्न हो (मनसा) मन से (रेवते सौभगाय) सम्पत्ति युक्त सौभाग्य के लिए (वरम्) वरदान जानो ॥२॥

भावार्थ —प्रभु से सौभाग्य की प्रार्थना है, तुम्हारे भाव रूपी सोमों से प्रसन्न होकर प्रभु वर देते हैं ॥२॥

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।

ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥३॥

पदार्थ —(हे इन्द्र) हे ईश्वर वा योगिन् (दिव्यः सोमः) दिव्य भाव (त्वां ममत्तु) तुम्हें प्रसन्न करें (य.) जो सोम (पार्थिवेषु) राजाओं में (सूयते) निचोड़ा जाता है, अर्थात् राजसूय का वैभव (येन वरिवः चकर्थ) जिससे श्रेष्ठ वैभव प्राप्त करे वह सोम (ममत्तु) आनन्द से युक्त करे (येन) जिससे (शत्रून्) मोह, लोभादि वैरियों को (निरिणासि) नष्ट करता है वह सोम आनन्द दे ॥३॥

भावार्थः—सोम ईश्वर की भक्ति के भाव हैं जो आनन्द से भरपूर करते हैं ॥३॥

आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।

गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४॥

पदार्थः—(वृषा इन्द्र) सुखवर्षक वा बलशाली राजा (अमिनः) सब ओर से (द्विबर्हाः) दो पक्षों सहित अर्थात् धन बल एवं जन बल सहित (आयातु) प्राप्त हो (हरिभ्याम्) अपने घोड़ों द्वारा अर्थात् प्रयुक्त ज्ञान द्वारा आवे (गवि) भूमि पर (अन्धः) अन्न (परिषिक्तम्) सिंचित हुआ (आसुतस्य प्रभृतस्य मध्वः) निचोड़े हुए बहुत से मधु की वर्षा कर (सत्रा) सदा (खेदाम्) शोक भावना को (अरुशहा) विनष्ट करता हुआ इन्द्र (आवृषस्व) सुखों की वर्षा करे ॥४॥

भावार्थ —राजा शक्तियुक्त हो, अन्न सींचा जाए, पृथिवी पर मधु वर्षा हो ॥४॥

नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।

उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५॥२०॥

पदार्थ —(तिग्मानि) बहुत तेज (भ्राश्यानि) चमकते हुए शस्त्रों को (भ्राशयन्) चमकाता हुआ (स्थिरा) स्थिर वैभवों को (यातुजूनाम्) शत्रुओं के (अवतनुहि) नीचाकर (ते उग्राय) तेरी विजय के लिए (सहः बलम्) शत्रुनाशक बल को (ददामि) देता हूँ (यह वर ईश्वर की ओर से है ।) (प्रतीत्या) शत्रुओं पर आक्रमण करके (विगदेषु) युद्धों में (वृश्च) काट डाल ॥५॥

भावार्थ —शस्त्र बलयुक्त हों, ईश्वर से वर प्राप्त हो, तो निश्चय विजय होती है ॥५॥

इति विंशो वर्गः ॥

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योज स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।

अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६॥

पदार्थः—हे इन्द्र (अर्यः) शत्रु के (श्रवांसि) धनों को, यशों को (वितनुहि) नीचा कर (धन्वन. ओजः) धनुष के तेज को (स्थिरा इव वितनुहि) स्थिर जैसा विस्तार कर (अस्मत्+र्यक्) हमें प्राप्त होता हुआ (वावृधानः) बढ़ता हुआ, बधाई पाता हुआ (अनिभृष्टः) शत्रुओं से पराजित न हुआ (सहोभिः) बल

से (अभिमाती.) अभिमानी शत्रुओं को नष्ट कर (तन्वम्) विस्तार को (वावृधस्व) बढ़ा ॥६॥

भावार्थः—राजा का कर्त्तव्य है कि शत्रु को सदा दबाये रखे या नष्ट करे ॥६॥

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।

तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वोऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७॥

पदार्थ —(हे मघवन्) हे ऐश्वर्यशाली भगवन् ! (इदम् हवि:) यह आहुत पदार्थ (तुभ्यम् रातम्) तुम्हारे अर्थ दिया गया है (सम्राट्) तुम सम्राट् हो (अहृणानः) सक्रोध के बिना (प्रतिगृभाय) इसको ग्रहण करो, (हे मघवन्) सर्वैश्वर्ययुक्त भगवन् ! (तुभ्यं सुत) तुम्हारे लिये तैयार किया है (तुभ्यम् पक्वः) तुम्हारे लिये पकाया है (प्रस्थितस्य) भली प्रकार रखे हुए का (पिब) पानकर (अद्धि) भोजन कर ॥७॥

भावार्थ:—ईश्वर न खाता है, न पीता है यह सब भावनाएं भक्त की भावाभिव्यक्ति के लिये हैं ॥७॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।

प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥

पदार्थः—हे इन्द्र (इमा प्रस्थिता हवींषि) इन उपस्थित की हुई हव्य वस्तुओं को (अद्धि) खाओ, स्वीकार करो (चन) अन्न (उत पचता उत सोमम्) पकाई हुई सामग्री पुरोडाश आदि को और सोम को (दधिष्व) धारण करो, स्वीकार करो (प्रयस्वन्त) श्रेष्ठ भोग के लिए (त्वा प्रतिहर्यामसि) तुम्हारे प्रति शुभ भाव प्रकट करते हैं । (यजमानस्य कामा सत्याः सन्तु) यजमान की कामनाए सत्य हों ॥८॥

भावार्थः—भावनाओं के थाल सजोये भक्त जब प्रभु के समीप आता है तो उसकी कामनाए सत्य होती हैं । वह बुरी अभिलाषाएं करता ही नहीं ॥८॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।

अयाइव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥९॥२१॥

पदार्थः—(सिन्धौ, नावम्, इव) समुद्र में नाव के समान (अर्कैः) अर्चनाओं से (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (सुवचस्याम्) सुन्दर वचनों वाली स्तुतिरूप (वाचम्) वाणी को (प्र+इयर्मि) अच्छी प्रकार से कहता हूं और (देवा) दिव्य शक्तियां और विद्वान् (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (धनदाः) धन देने वाले हों और (उद्भिदश्च) अन्न, फल आदि देवें ॥९॥

भावार्थ —समुद्र मे नाव के समान इन्द्र ऐश्वर्यवान् ईश्वर, अग्नि, ज्ञानस्वरूप मेरा बेड़ा पार करें, मैं उत्तम वाणी से देवों को प्रसन्न करूं, वे धनादि प्रदान करें ॥९॥

इत्येकविंशो वर्ग. ॥

---

[११७]

ऋषिर्भिक्षु ॥ इन्द्रो देवता—धनान्नदानप्रशंसा ॥ छन्दः—निचृज्जगती—२ पादनिचृज्जगती । ३, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।

उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

पदार्थः—(न वा उ देवाः क्षुध वधं) देव लोग केवल भूख ही न दें, (किन्तु वध ददुः) मृत्यु दें (आशितम्) भोजन करने वाले को भी (मृत्यवः) मौतें (उपगच्छन्ति) प्राप्त होती हैं (उत) और (पृणत) दान देने वाले का (रयि) धन (न, उपदस्यति) क्षीण नहीं होता है (अपृणन्) दान न देने वाला (मर्डितारम्) दया करने वाले को (न विन्दते) नहीं पाता है ॥१॥

भावार्थः—भूख से मौत अच्छी, खाने वाले भी मरते हैं, दान करने से धन नहीं घटता, कंजूस पर कोई दया नहीं करता, कंजूस सामाजिक सद्भावनाओं को नष्ट कर डालता है, अतः दान दो ॥१॥

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।

स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (आध्राय) पालन करने योग्य को (पित्वः चकमानाय) अन्न की इच्छा वाले भूखे को (रफिताय) दुःखी जन को (उपजग्मुषे) भोजन के लिये समीप आये हुए को (अन्नवान्सन्) अन्न-धन वाला होता हुआ भी (मनः स्थिरं कृणुते) मन को स्थिर कठोर कर लेता है, उसे दान नहीं देता (पुरा सेवते) अतिथि से प्रथम खा लेता है (उत चित् सः) और वह भी (मर्डितारं न विन्दते) दयालु परमात्मा को नहीं पाता है ॥२॥

भावार्थः—दीन-दुखियों पर दया न करने वाला भी मानवीय सद्भावनाएं नष्ट करता है ॥२॥

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।

अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

पदार्थ —(स इत् भोज) वही वास्तविक पालक है (य गृहवे ददाति) जो ग्रहण करने वाले को देता है (अन्नकामाय चरते) अन्न की इच्छा वाले विचरते हुए अतिथि को (कृशाय) दुर्बल को दान देता है, (अस्मै यामहूता) उसके लिए यज्ञ में (अरं भवति) पर्याप्त धन मिलता है (उत) और (अपरीषु) अन्य प्रजाओं में और लोगों में (सखायम् कृणुते) मित्र प्राप्त कर लेता है ॥३॥

भावार्थ —दानी को धन की कमी नहीं रहती, दान द्वारा गैरों को, विरोधियों को अपना बना लेता है । दान से सामाजिक प्रेम बढ़ता है ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।

अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (सचाभुवे) साथ रहने वाले (सचमानाय) सेवा करने वाले (सख्ये) मित्र के लिये (पित्व) अन्न (न ददाति) नहीं देता है (न सः, सखा) वह सच्चा मित्र नहीं है (अस्मात) इससे (अपप्रेयात) दूर रहो (न तत्+ओकः) वह आश्रय नहीं है ठीक सहारा नहीं है (पृणन्तम) पालन करने वाले (अन्यम् अरणम्) अन्य विरोधी के पास (चित्+इच्छेत) भी जाना चाहता है ॥४॥

भावार्थ —अपने लोग भी कंजूस से दूर हो जाते हैं, दानी गैर भी हो तो उसे अपना लेते हैं ॥४॥

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।

ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥२२॥

पदार्थ —(तव्यान्) समर्थ मनुष्य (नाधमानाय) याचना करने वाले के लिये (पृणीयात्+इत्) अवश्य दान दे, (द्राघीयांसम् पन्थाम् अनुपश्येत) दूर तक के लम्बे मार्ग को देखे अर्थात् दूर तक के परिणामों को विचारे (रथ्या चक्रा इव वर्तन्ते) ये धन रथ के पहिये के समान गति करते हैं (रायः) धन (अन्यम्) और को (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित होते हैं ॥५॥

भावार्थ —धन चलते-फिरते हैं, धन पाकर अवसर न चूको, दान पुण्य के द्वारा यश प्राप्त करो ॥५॥

इति द्वाविंशो वर्ग ॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

पदार्थ —(अप्रचेताः) अनुदार चित्त वाला व्यक्ति (अन्नं मोघ विन्दते) अन्न-धन को व्यर्थ पाता है उसका धन निरर्थक है (सत्य ब्रवीमि) मैं [ईश्वर] सत्य कहता हूं (वध, इत् सः, तस्य) उसकी यह मृत्यु ही है कंजूस को सैकड़ों खतरे लगे रहते हैं (न अर्यमणं पुष्यति) न नियामक ईश्वर को तृप्त करता है यज्ञ उपासना द्वारा । (नो सखायम्) न दान द्वारा मित्र को पुष्ट करता है (केवलादी) केवल अपने भोगों की पूर्ति करने वाला (केवलाघो भवति) केवल पापरूप होता है ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य धन कमाकर अपने साथियों की भी सेवा करें, यज्ञादि करें केवल अपने भोग-विलास में ही धन लगाना पाप है, यह मानव, जीवन नहीं, मृत्यु है ॥६॥

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।

वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७॥

पदार्थ—(कृषन् इत्) खेत जोतता हुआ ही (फाल) हल का फाल (आशितम् कृणोति) अन्न उत्पन्न करता है (यत्) जो कि (चरित्रै) पापों से अथवा चरित्रों, सदाचारों से (अध्वानम्) मार्ग को (अपवृङ्क्ते) पार करता है, ससार में जीवन सफल बना लेता है (वदन् ब्रह्मा) उपदेश करता हुआ ब्राह्मण (अवदतः) उपदेश न करने वाले से (वनीयान्) उत्तम है, सेवायोग्य है । (पृणन् आपिः) कामना पूर्ण करने वाला दानी (अपृणन्तम्) दान न देने वाले को (अभिष्यात्) छोड़कर प्रशंसा पा लेता है ॥७॥

भावार्थः—दानी को कीर्ति मिलती है ॥७॥

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।

चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

पदार्थ.—(एकपात् भूयः) एक पग वाला फिर (द्विपदो विचक्रमे) दो पग आगे चलता है (द्विपात्) दो पग वाला (त्रिपात् पश्चात् अभ्येति) तीन पग वाले के पीछे चलता है (चतुष्पात्+एति) चार पग वाला पशु (द्विपाम्+अभिस्वरे) दो पग वाले मनुष्य के स्थान में (सम्पश्यन्) देखता हुआ (पंक्तिः) पद चिह्नों को (उपतिष्ठमानः) उपस्थित होता है ॥८॥

भावार्थः—अपने से समुन्नत का अनुकरण करना चाहिये, ज्ञानियों के पदचिह्नों पर चलकर उन्नति होती है ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।

यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥९॥२३॥

पदार्थ —(समौ चित् हस्तौ) हाथ समान होते हुए भी (समं न विविष्टः) समान काम नहीं करते (सम् मातरा चित्) समान मातायें भी (न सम दुहाते) समान दूध नहीं देती (यमयो चित् वीर्याणि न समा) जुड़वा उत्पन्न भाइयों के भी बल-बुद्धि समान नहीं होते ॥९॥

भावार्थः—कितना तथ्य ज्ञान वेद ने बताया है कामों में, स्वभावों में मनुष्य समान नहीं, मनुष्य क्या पशु भी समान नहीं । तब अन्न प्राप्ति मे सब समान कैसे हो जायेंगे, साम्यवाद, गांधीवाद, सर्वोदयवाद सब अनुभवहीन अदूरदर्शी जनों की सुहानी कल्पनाए हैं । अब सब असफल होती जा रही हैं । बलात् धन पुरुषार्थी से छीनकर आलसी, प्रमादी को देना अन्याय ही है । पुरुषार्थ का अपमान ही है । दान दिलाना उचित है इसमे दाता की भावना उत्तम होगी और गृहीता को कृतज्ञता आयेगी, शुभ भावनाए बढ़ेंगी, अन्यथा ईर्ष्या-द्वेष, मार-काट बढ़ती रहेगी ॥९॥

इति त्रयोविंशो वर्ग ॥

---

[११८]

ऋषिरुरुक्षय आमहीयव ॥ *देवता —अग्नी रक्षोहा* ॥ *छन्दः—१ पिपीलमध्या गायत्री । २, ५ निचृद्गायत्री । ३, ८ विराड् गायत्री । ६, ७ पादनिचृद्-गायत्री । ४, ९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम ।*

अग्ने हंसि न्य१त्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।

स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप विद्वान् (स्वेक्षये) अपने घर मे (दीद्यन्) प्रकाशित (हे शुचिव्रत) हे पवित्र व्रत वाले (आ मर्त्येषु) सब मनुष्यो में (अत्रिणम्) भक्षक नाशकारी अन्धकार को (नि हंसि) नष्ट करते हो ॥१॥

भावार्थः—जैसे अग्नि अन्धकार का नाश करती है विद्वान् अज्ञान का नाश करे ॥१॥

उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।

यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

पदार्थ.—हे अग्ने (स्वाहुत) अच्छी तरह आहुतियों से प्रकाशित (उत्तिष्ठसि) उठते ही प्रदीप्त होते हो (घृतानि प्रतिमोदसे) घृतो को पसन्द करते हो (यत्) जो कि (त्वा) तुमको (स्रुच) स्रुवा से (सम्, अस्थिरन्) स्थिर रखते हैं अर्थात् स्रुवा से घृत डालकर प्रदीप्त रखते हैं ॥२॥

भावार्थः—ये अन्योक्तियाँ हैं यज्ञाग्नि प्रदीप्त करके विद्वान् की प्रशंसा की गई है, घृत से अर्थात् प्रेम से, स्नेह से विद्वान् प्रसन्न होते हैं ॥२॥

स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा ।

स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

पदार्थः—(स अग्नि) वह अग्नि (आहुत) आहुति पाया हुआ (विरोचते) चमकता है (गिरा) स्तुतिरूप वाणी द्वारा (ईड्य) स्तुति के योग्य (रोचते) चमकता है (प्रतीकम) वायु, मेघ आदि सब देवों का प्रतीक प्रतिनिधि रूप अग्नि (स्रुचा) स्रुवे से (अज्यते) घृत डालकर तृप्त किया जाता है ॥३॥

भावार्थ —जनता द्वारा बुलाया हुआ विद्वान् जनता की पुकार पर चमकता है, जनता की पीड़ा उसके हृदय पर आहुति बनकर पड़ती है ॥३॥

घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।

रोचमानो विभावसुः ॥४॥

पदार्थ —(अग्नि) आग (घृतेन समज्यते) घी से प्रकाशित की जाती है (आहुत) आहुति दिया हुआ अग्नि (मधु प्रतीकः) मधु के समान हो जाता है (रोचमान) प्रकाशित हुआ (विभावसु) प्रकाशरूप बल वाला है ॥४॥

भावार्थ —स्नेह से भरा ज्ञानी जनता की पुकार पर प्रदीप्त हो उठता है ॥४॥

जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहनः ।

तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥२४॥

पदार्थ —(जरमाण) स्तुति किया हुआ अग्नि (समिध्यसे) प्रकाशित हो उठता है (देवेभ्य) सूर्य, वायु आदि देवो के लिये (हव्यवाहन.) हवन की वस्तुओं को पहुँचाने वाला (त त्वा) उस प्रज्वलित तुझको (मर्त्याः) मनुष्य (हवन्त) स्तुति करते है ॥५॥

भावार्थ —ज्ञानी जन प्रकाशमान विद्वानों को लाभ पहुँचाते हैं । जनता उनकी स्तुति करती है ॥५॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत ।

अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

पदार्थः—(मर्ताः) मनुष्य (तम् अमर्त्यम् अग्निम्) अमर्त्य अग्नि को (घृतेन) घी से, स्नेह से सेवा करते हैं (अदाभ्यम्) जो हटाया नहीं जा सकता (गृहपतिम्) जो गृह का पति है ऐसे की पूजा करते हैं ॥६॥

भावार्थ—जनता अमर ईश्वर की अमर नेता की वीर गृहपति की सेवा करती है ॥६॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।

गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

पदार्थ —(हे अग्ने) हे ईश्वर वा हे तेजस्वी नेता (अदाभ्येन) जो न दबाया जा सके ऐसा (शोचिषा) प्रकाश से (त्वम्) तुम (रक्ष) राक्षसों को (दह) जलाओ (ऋतस्य गोपा.) सत्य के रक्षक हुए (दीदिहि) प्रकाश करो ॥७॥

भावार्थः—नेता दुष्टों का दमन करे, सत्य की रक्षा करे, ईश्वर भी दुष्टों का दमन करके सत्य की रक्षा करता है ॥७॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।

उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ज्ञानरूप प्रभो (स) वह प्रशंसनीय आप (उरुक्षयेषु) उच्च घरो मे, हृदयो मे (दीद्यत्) प्रकाश करते हुए (यातुधान्यः) राक्षसी आपदाओ को (प्रतीकेन) उत्तम प्रयोग से (प्रति+ओष) नष्ट कर दो ॥८॥

भावार्थ —नेता सदुपायो से बुराइयो को दूर करें ॥८॥

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।

यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥२५॥

पदार्थ —(उरुक्षया) उन्नत घर वाले या उन्नत हृदयो वाले (तं त्वा यजिष्ठ हव्यवाहम) पूज्य और हवन सामग्री को वहन करने वाले को (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं ॥९॥

भावार्थ —उत्तम हृदय वाले भगवान् के तेज को हृदयों में प्रकाशित करते हैं ॥९॥

इति पञ्चविंशो वर्ग ॥

---

[११९]

ऋषिर्लब ऐन्द्रः ॥ *देवता—आत्मस्तुति* ॥ *छन्द —१-५, ७-१० गायत्री । ६, १२, १३ निचृद्गायत्री ॥ ११ विराड् गायत्री ॥*

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥१॥

पदार्थ —(सोमस्य कुवित्) सोम को भली प्रकार (अपाम्) पिया अतः (मे मनः) मेरा मन (गाम् वा अश्वम्) गौ वा अश्व को (सनुयाम्) याचकों को दान दू ॥१॥

भावार्थ.—ईश्वरभक्ति मे मग्न जन उदात्त भावना बनाता है ॥१॥

प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥२॥

पदार्थ —(पीता) पान किय गये सोम (मा) मुझे (प्रवाता इव) प्रबल वायुओं के समान (दोधत्) कपाते हुए (उत् अयसत) उन्नति की ओर ले जा रहे है । (कुवित सोमस्यापाम) सोमरस पिया है ॥२॥

भावार्थ —ईश्वरीय योग से भाव ऊचे होते हैं ॥२॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥३॥

पदार्थ —(आशव अश्वा. रथम् इव) शीघ्रगामी घोड़े जैसे रथ को, वैसे ही (पीता) पीये हुए सोम (मा, उत्, अयसत) मुझे ऊपर उठा रहे हैं ॥३॥

भावार्थ —प्रभु-मिलन का रसपान करके भाव बहुत उन्नत हो जाते हैं ॥३॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥४॥

पदार्थ —(वाश्रा) बड़ी उमगो वाली माता (प्रियम् पुत्रम् इव) जैसे प्यारे पुत्र को उपस्थित होती है (मा) मुझे (मतिः) बुद्धि (उपास्थित) प्राप्त

हुई है स्नेह भरी बुद्धि सर्वलोक प्रिय मति हो गई है क्योंकि (कुवित् सोमस्यपाम्) मैंने सोमरस का पान किया है ॥४॥

भावार्थः—ईश्वर भक्त सबका हितैषी बन जाता है ॥४॥

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥५॥

पदार्थः—(तष्टा इव) शिल्पकार के समान (वन्धुरम्) रथ को (हृदा) हृदय से (मतिम्) ज्ञान को (परि अचामि) ग्रहण करता हूं (इति कुवित् सोमस्यपाम्) क्योंकि मैंने सोमरस का पान किया है ॥५॥

नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥६॥

पदार्थः—(पञ्च कृष्टयः) पांच आकर्षक अर्थात् इन्द्रियां (मे) मेरे लिये (न अक्षिपत् चन) कभी चलायमान नहीं कर सकतीं (नहि अच्छान्त्सुः) और न लुभा सकती हैं (इति) ऐसा है क्योंकि (कुवित् सोमस्यपाम्) सोम पिया है ॥६॥

इति षड्विंशो वर्गः ॥

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥७॥

पदार्थ —(नहि मे रोदसी उभे) मेरे लिये भूमि और सूर्यलोक दोनों (अन्यं पक्षं च न प्रति) एक पक्ष के एक बाजू के तुल्य भी नहीं हैं क्योंकि (कुवित् सोमस्यपाम्) मैंने सोम पिया है ॥७॥

अभि द्यां महिना भुवमभीऽ३मां पृथिवीं महीम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥८॥

पदार्थ.—(महिना) मैं अपनी बड़ी शक्ति से (द्याम् अभि भुवम्) द्युलोक और भूलोक को (इमां महीम् पृथिवीम्) इस महती पृथिवी को कुछ नहीं गिनता हू, क्योंकि मैंने (कुवित् सोमस्यपाम्) सोम पिया है ॥८॥

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥९॥

पदार्थ—(हन्त) हर्ष है कि (अहम्) मैं (इमाम् पृथिवीम्) इस पृथिवी को (इह वा वा इह) यहां का वहां (निदधानि) रख दूं क्योंकि (कुवित् अपाम्) मैंने सोम पिया है ॥९॥

ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥१०॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (पृथिवीम् इत्) इस भूमि को ही (इह वा वा+इह) इधर का उधर (ओषम् जङ्घनानि) ताप से चोट पहुँचाऊं अत्यन्त तप्त कर दू क्योंकि मैंने (कुवित सोमस्यपाम) सोम का पान किया है ॥१०॥

दिवि मे अन्यः पक्षोऽ३धो अन्यमचीकृषम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥११॥

पदार्थ —(दिवि) द्युलोक मे (मे) मेरा (अन्य पक्षः) अन्य पंख है (अन्यम्) दूसरे पक्ष को (अधः) नीचे भूलोक मे (अचीकृषम्) खींचा है क्योंकि मैंने (कुवित् अपाम्) सोम का पान किया ॥११॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥१२॥

पदार्थः —(अहम्) मैं (महामह अस्मि) महान् से भी महान् हूँ (अभिनभ्यम्) आकाश की ओर (उद् ईषितः) उदित हो रहा हूँ । क्योंकि (कुवित् अपाम्) सोम का पान किया ॥१२॥

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥१३॥२७॥६॥

पदार्थ —(देवेभ्य. हव्यवाहन) देवताओं के लिये हव्य पदार्थ पहुँचाने वाला (अरंकृतः) सुसज्जित मैं (गृहो यामि) घर को जाता हू अर्थात् अपने इष्ट ब्रह्म को प्राप्त होता हूँ क्योंकि (कुवित् अपाम् इति) मैंने छक कर सोम पिया है ॥१३॥

प्रश्न—क्या सोम नशीली वस्तु है जिसे पीकर मनुष्य ऊपर जैसी उड़ान की बातें करता है ?

उत्तर—नहीं सोम है ब्रह्मानुभूति । ब्रह्मानन्द का नशा सब नशों से बड़ा है । देखो गुरु नानक देव क्या कहते हैं—

और नशे संसार के उतर जायें परभात [प्रभात] नाम खुमारी [नशा] नानका चढी रहे दिन-रात ।

प्रश्न—लोग कहते है सोम कोई नशीली वस्तु होती थी, या शराब थी, जिसे पीकर ऋषि ऊल-जलूल बकते थे ?

उत्तर—ऋषि तो ऊल-जलूल नहीं बकते थे पर ये वेदानभिज्ञ पडितामिमानी नास्तिक अवश्य ऊल-जलूल कल्पनाएं करते हैं । देखो सोम क्या है ? सुरा क्या है ? शतपथ ब्रा० कांड ५ अध्याय १ ।

ब्रा० २—सत्यं श्री ज्योतिः सोमः

सत्य, श्री, ज्योति सोम है ।

अनृतं पाप्मा तमः सुरा—

झूठ, पाप, अज्ञान, अन्धकार सुरा है । सोम का विस्तृत विवेचन हमारी रीति की, पुस्तक वेदवाणी में देखो ।

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोध्यायः

[१२०]

ऋषिर्बृहद्दिव आथर्वणः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४, ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥

पदार्थ.—(भुवनेषु ज्येष्ठम्) सब भुवनों में बड़ा (तत्+इत्+आस) वही है (यतः) जिससे (उग्र.) प्रतापी (त्वेषनृम्णः) प्रभायुक्त सूर्य (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (सद्य जज्ञानः) तत्काल उत्पन्न हुए ने (शत्रून्) अन्धकार रूप शत्रुओं को (निरिणाति) जीत लिया (यम+अनु) जिसके पीछे (विश्वे+ऊमा) सब जीव (अनुमदन्ति) प्रसन्न होते हैं ॥१॥

भावार्थः—सूर्य अंधकार को दूर कर सब जीवों में नयी चेतना देता है, इसी प्रकार ईश्वर से मिली आनन्द की अनुभूति काम, क्रोधादि शत्रुओं को दूर कर नव-स्फूर्ति देती है, यह है स्वयं ॥१॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।

अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

पदार्थ —(भूरि, ओजा.) बहुत तेजों वाला (शवसा) तेज से (वावृधानः) अंधकार [अज्ञान] के लिये शत्रु (भियसम्) भय को (दधाति) देता है (अव्यनत्, व्यनत् च सस्नि) पवित्र प्राणीवर्ग और अप्राणी वस्तुएं (प्रभृता) पालित-पोषित (ते मदेषु) तेरे आनन्दों में (सनवन्त) तुझे प्राप्त होते हैं, तेरी शरण लेते हैं ॥२॥

भावार्थ —सूर्य से पालित-पोषित प्रजा सूर्य को प्राप्त करती है और ब्रह्म से पालित सब जीव उसकी शरण पकड़ते हैं वह महान् तेजस्वी है ॥२॥

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

पदार्थ —(विश्वे) सब यजमान (त्वे) तुम्हारे लिये (क्रतुमपि वृञ्जन्ति) यज्ञ भी पूर्ण करते हैं (यत्) जो कि (ऊमा.) सब प्राणी (द्विर्भवन्ति) जोड़े वाले होते हैं (एते) ये प्राणी (त्रिर्भवन्ति) पुन सन्तान द्वारा तीन अर्थात् बहुत हो जाते हैं । (स्वादो) स्वाद से (स्वादुना) स्वाद से (स्वादीय) बहुत स्वादु (सृजा) उत्पन्न करो (समदः) आनन्दयुक्त (मधुना) मधु से (सुमधु) बहुत मधुर (अभियोधी.) भली प्रकार मिलाओ ॥३॥

भावार्थ —सब यज्ञ प्रभु के लिये हैं । एक से दो, दो से बहुत, यही संसार का क्रम है इस ससार मे अपने व्यवहारो से स्वादु युक्त मिठास भरो ॥३॥

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।

ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४॥

पदार्थ.—(इति चिद् हित्वा) इस प्रकार ही हे इन्द्र ! तुम (धनाजयन्तम्) धनों को जीतने वाले को अर्थात् सर्वैश्वर्ययुक्त को (मदे मदे) प्रत्येक आनन्द में

(विप्रा) ज्ञानी जन (अनुमदन्ति) आपको प्रसन्न करते हैं, (विष्वः) शत्रु को वर्जित करने वाले (ओजीय) तेज (आतनुष्व) हे प्रभो ! विस्तार कर (त्वा) तुम्हें (दुरेवा) दुष्ट चालों वाले (यातुधानाः) राक्षस (मा दभन्) न दबा सकें ॥४॥

भावार्थ.—हे भगवन् ! अपने तेज का विस्तार करो जिससे आसुरी शक्तियां नष्ट हो जायें ॥४॥

त्वया॑ व॒यं शा॑शद्महे॒ रणे॑षु प्र॒पश्य॑न्तो यु॒धेन्या॑नि॒ भूरि॑ ।

चो॒दया॑मि त॒ आयु॑धा॒ वचो॑भिः॒ सं ते॑ शिशामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वयां॑सि ॥५॥१॥

पदार्थः—(वयम्) हम (त्वया) तुमसे युक्त (रणेषु) संग्रामों में (शाशद्महे) शत्रुओं को वश में करें (प्रपश्यन्त) सुमार्ग को देखते हुए (युधेन्यानि) संग्राम करने योग्य शस्त्रास्त्रों को (भूरि) बहुत (ते वचोभिः) आपके वचनों से (आयुधा) शस्त्रास्त्रों को (चोदयामि) संचालन करूं (ते ब्रह्मणा) तुम्हारे ज्ञान से (वयांसि) बलों को (सशिशामि) तेज करूं ॥५॥

भावार्थः—संसार के संघर्षों में आपकी शक्ति हमारे साथ रहे तो विजय निश्चित है ॥५॥

स्तु॒षेय्यं॑ पुरु॒वर्प॑सु॒मृभ्व॑मि॒नत॑ममा॒प्त्यमा॒प्त्याना॑म् ।

आ द॑र्षते॒ शव॑सा स॒प्त दानू॒न्प्र सा॑क्षते प्रति॒माना॑नि॒ भूरि॑ ॥६॥

पदार्थः—(स्तुषेय्यम्) स्तुति योग्य (पुरुवर्पसम्) विविध गुण वाले (ऋभ्वम्) प्रकाशमान् (इनतमम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (आप्त्यानाम्) आप्त विद्वानों के ज्ञान को (आप्त्यम्) प्राप्त करूं (शवसा) बल से (सप्तदानून्) पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि इन सातों को (दर्षते) रखता है (भूरि प्रतिमानानि) नाना ज्ञानों को (प्र-साक्षते) पाता है ॥६॥

भावार्थः—मैं उत्तम ज्ञान को प्राप्त करूं ईश्वर सप्त इन्द्रियों आदि को रखता है । हम उनसे ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥६॥

नि तद्द॑धि॒षेऽव॑रं॒ परं॑ च॒ यस्मि॒न्नावि॒थाव॑सा दुरो॒णे ।

आ मा॒तरा॑ स्थापयसे जिग॒त्नू अत॑ इनोषि॒ कर्व॑रा पु॒रूणि॑ ॥७॥

पदार्थः—(यस्मिन् दुरोणे) जिस घर में (जिगत्नू) गतिशील (मातरा) द्युलोक और भूलोक (अवसा) रक्षा से (आविथा) अग्नि और जल से (स्थापयसे) स्थापित करता है (अवरम् परम्) समीप के और दूर के लोक को भी (निदधिषे) धारण करता है (अतः) इस कारण (पुरूणि कर्वरा) बहुत अच्छे कर्मों को (इनोषि) प्रदान करता हूं ॥७॥

भावार्थ—भूलोक, द्युलोक माता के समान हमारी रक्षा घर में करें, ईश्वर हमें शुभ कर्मों में प्रेरित करें ॥७॥

इ॒मा ब्रह्म॑ बृ॒हद्दि॑वो विव॒क्तीन्द्रा॑य शू॒षम॑ग्रि॒यः स्व॒र्षाः ।

म॒हो गो॒त्रस्य॑ क्षयति स्व॒राजो॒ दुर॑श्च॒ विश्वा॑ अवृणो॒दप॒ स्वाः ॥८॥

पदार्थ.—(बृहद्दिव) बड़ा द्युलोक प्रकाशमान् विद्वान्, (इमा ब्रह्म) इन वेद वचनों की (विवक्ति) व्याख्या कर रहा है (इन्द्राय शूषम्) इन्द्र के लिये बल को (अग्रियः) सबसे अगले बल को (स्वर्षा) तेज को बढ़ाता है (स्वराज) स्वयं प्रकाशमान (महः गोत्रस्य) महत्वपूर्ण वाणी के रक्षक का (क्षयति) आश्रय होता है, (विश्वा) सम्पूर्ण (स्वः दुरः) स्वर्ग के द्वारों को (अवृणोत्) खोल देता है ॥८॥

भावार्थ.—सबका आश्रय ईश्वर है वही सब अधिकारियों के लिये स्वर्ग प्रदान करता है ॥८॥

ए॒वा म॒हान्बृ॒हद्दि॑वो॒ अथ॒र्वाऽवो॑च॒त्स्वां त॒न्व१॒मिन्द्र॑मे॒व ।

स्वसा॑रो मात॒रिभ्व॑रीररि॒प्रा हि॒न्वन्ति॑ च॒ शव॑सा व॒र्धय॑न्ति च ॥९॥२॥

पदार्थः—(एवम्) इस प्रकार (महान्) बड़ा (अथर्वा) प्रजापति अथर्वा ने (बृहद्दिव) बड़े द्युलोक के स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्र को (एव) ही (स्वां तन्वम्) तुमको अपना शरीर (अवोचत्) कहा है (स्वसार) अपने साथ चलाने वाली संसार की गतियां (मातरिभ्वरी) अपने उत्पादक ईश्वर को प्रकट करती हुई (अरिप्राः) दोषरहित (शवसा) बल से (हिन्वन्ति) जगत को प्रेरणा देती हैं (वर्धयन्ति च) और बढ़ाती है ॥९॥

भावार्थः—इन्द्र सर्वोपरि पूज्य है वही सबका निमित्त कारण है उसकी शक्तियां संसार का संचालन करती हैं ॥९॥

इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१२१]

ऋषि *हिरण्यगर्भ प्राजापत्यः* ॥ को देवता ॥ छन्द—१, ३, ६, ८, ९ *त्रिष्टुप्* २, ५ *निचृत् त्रिष्टुप्* ४, १० *विराट् त्रिष्टुप्* । ७ स्वराट् *त्रिष्टुप्* ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत् ।

स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥१॥

पदार्थ.—(अग्रे) संसार के इस रूप में आने से प्रथम (हिरण्यगर्भ) संसार के सुवर्णमय उपादान कारण को अपने गर्भ में रखने वाला (सम् अवर्तत) वर्त्तमान था (भूतस्य) पंचभूत समूह का (एकः) एकमात्र (पति जातः आसीत्) पति हुआ था (सः) उसने (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत) और (इमाम् द्याम्) इस द्युलोक को (दाधार) धारण किया (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) देव के लिये (हविषा) हवन सामग्री से वा अपने हृदय के प्रेम-भाव से (विधेम) हम प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थ—यहां प्रश्नोत्तर भी माना जा सकता है । हम किस देवता को भेंट दें ? उत्तर—जो हिरण्यगर्भ और सबका रचयिता ईश्वर है । इसी प्रकार सब मन्त्रों की यह टेक है "कस्मै देवाय हविषा विधेम" क प्रजापति वा सुखस्वरूप यह अर्थ भी उचित है ॥१॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः ।

यस्य॑ छा॒याऽमृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो ईश्वर (आत्मदा बलदा) जीवन देने वाला और शक्ति देने वाला है (यस्य प्रशिषम) जिसकी आज्ञा को (विश्वे देवा) सब ज्ञानी विद्वान् और दिव्यशक्तियां (उपासते) उपासना करते और ग्रहण कर रहे हैं (यस्य) जिसकी (छाया) कृपा, रक्षा (अमृतम्) अमृत है (यस्य) और जिसकी उपासना न करना (मृत्युः) मृत्यु है ॥२॥

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑ ।

य ईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले जगत् का (निमिषतः) पलक मारने वाले जगत् को अर्थात् जीवात्मा से हित केवल प्राण वाले पदार्थों का और पलक मारने वाले जीवयुक्त प्राणीवर्ग का (जगतः) संसार भर का (महित्वा) अपनी महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा बभूव) स्वामी है (यः) जो (अस्य) इस संसार के (द्विपदः च चतुष्पदः) द्विपद् और चतुष्पदों का शासनकर्त्ता है ॥३॥

भावार्थः—विश्व रचयिता और विश्व के शासक की हम स्तुति करें ॥३॥

प्रश्न—दुपाये मनुष्य और पक्षी एवं चौपाये पशुओं पर यह शासनकर्त्ता है, तो बिना पांवों के सर्प एवं बहुत पांवों के गिजाई आदि और छः पांव के भ्रमर पर किसका शासन है ?

उत्तर—यहां पद का अर्थ पांव नहीं है किन्तु पदार्थ है और संसार के जीव दो पदार्थ वाले हैं या चार पदार्थ वाले हैं । मनुष्य चतुष्पाद है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त कर सकता है, किन्तु मनुष्येतर योनियां केवल द्विपद हैं । केवल अर्थ [भोजन सामग्री] काम, स्त्री सेवन संतान प्राप्त कर सकते हैं, धर्म और मोक्ष इन योनियों से नहीं मिलती, मुक्तिद्वार केवल मनुष्य योनि है ।

"साधन-धाम मोक्षकर द्वारा, पायन जिन पर लोक संवारा" गो० तु० दा०, मानव तन साधना, धर्म, कर्म, उपासना का मंदिर है । मुक्ति का द्वार है, इसको पाकर जिसने परलोक नहीं बनाया, वह अभागा है, इस मन्त्रमेमानव बनने का महत्व बताया गया है ॥३॥

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रं र॒सया॑ स॒हाहुः ।

यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥४॥

पदार्थ—(यस्य) जिसकी (महित्वा) महिमा को (इमे हिमवन्त.) ये बर्फ वाले पहाड़ (आहु) कह रहे हैं, (यस्य) जिसके तेज को (रसया सह समुद्रम्) नदी के साथ समुद्र कह रहा है (यस्य) जिसकी (इमा.) यह (प्रदिश) मुख्य दिशाएं (यस्य बाहू) जिसकी मानो भुजाएं हैं । कस्मै ॥४॥

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ळ्हा येन॒ स्वः॑ स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑ ।

यो अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥५॥३॥

पदार्थः—(येन) जिसने (उग्रा द्यौ) प्रचण्ड द्युलोक (पृथिवी च) पृथिवी को (दृढ़ा) नियम में किया (येन) जिसने (स्व. स्तभितं) सुखमोक्ष को दृढ़ किया (येन नाकः) जिसने दुःखरहित लोक दशा स्थिर करी (यः) जो (अन्तरिक्षे) द्युलोक में (रजस.) अनेक लोकों का (विमान.) विमान है, इन्हें धारण किए हुए है या इनका रचयिता है । कस्मै देवाय ॥५॥

यं क्रन्द॑सी॒ अव॑सा तस्तभा॒ने अ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने ।

यत्राधि॒ सूर॒ उदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥६॥

पदार्थ—(यम्) जिसे (अवसा तस्तभाने) रक्षा से रोके हुए (क्रन्दसी) द्यौ और पृथिवी (रेजमाने) प्रकाशित हुए (मनसा) मानो मन से (अभि+ऐक्षेताम्) ईक्षण कर रहे हैं (यत्र) जिसमें (उदित सूर्यः) उदय को प्राप्त सूर्य (विभाति) चमक रहा है । कस्मै देवाय ॥६॥

आपो॑ ह॒ यद्बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न्गर्भं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम् ।

ततो॑ दे॒वानां॒ सम॑वर्त॒तासु॒रेकः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जिस कारण से (बृहतीः आपः) बड़े जल तत्व प्रकृति के आदि सृष्टि के परमाणु (गर्भं दधानाः) सृष्टि रूप गर्भ को धारण किए हुए (अग्निं जनयन्ती) अग्नि, सूर्य को उत्पन्न करती हुई (आयन्) प्राप्त हुई (ततः) फिर (देवानाम्) देवों का (एक असुः) एक प्राण (समवर्तत) वर्तमान था। कस्मै देवाय ॥७॥

यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द्दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम् ।

यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त्कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥८॥

पदार्थः—(यः चित्) जो कि (आपः) आदि सृष्टि के परमाणु (महिना) महिमा से (दक्षं दधानाः) प्रजापति को धारण करते हुए (यज्ञं जनयन्तीः) यज्ञ रूप सृष्टि को उत्पन्न करते हुए (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है। (यः) जो (देवेषु) सूर्यादि देवों मे (एकः अधिदेव: आसीत्) एक ही अधिष्ठाता देव है। कस्मै देवाय ॥८॥

मा नो॑ हिंसीज्जनि॒ता यः पृ॑थि॒व्या यो वा॒ दिवं॑ स॒त्यध॑र्मा ज॒जान॑ ।

यश्चा॒पश्च॒न्द्रा बृ॑ह॒तीर्ज॒जान॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥९॥

पदार्थ—(यः पृथिव्याः जनिता) जो पृथ्वी लोक को उत्पन्न करने वाला है (न माहिंसीत्) हमें न मारे अर्थात् हम ऐसे काम न करें जो ईश्वरीय दण्ड के भागी बनें (यः वा सत्यधर्मा) जो सत्य धर्म वाला है अर्थात् जिसके नियम अटल हैं उसने (दिवं जजान) द्युलोक को उत्पन्न किया है (य) जिसने (चन्द्राः) सब लोगों को आह्लाद देने वाले (बृहतीः आपः) बड़े आदि जल तत्वों को (जजान) उत्पन्न किया है। कस्मै देवाय ॥९॥

भावार्थ—सृष्टि के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना करें ॥९॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ जा॒तानि॒ परि॒ ता ब॑भूव ।

यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥१०॥४॥

पदार्थः—(हे प्रजापते) हे प्रजाओ के स्वामी (त्वदन्य.) तुम्हारे अतिरिक्त (एतानि विश्वा जातानि) इस सब उत्पन्न हुई वस्तुओ का (परिता न बभूव) व्यापक कोई नहीं है (यत्कामा) जिस कामना वाले हम (ते जुहुमः) तुम्हें पुकारें, (तत्) वह कार्य (नः) हमारा (अस्तु) होवे (वयं रयीणां) हम धन वैभवों के (पतय) स्वामी (स्याम) हों ॥१०॥

भावार्थ.—ससार की वस्तुओ के स्वामी हे प्रभो ! आप ही हमारी कामनाएं पूर्ण कर दो ॥१०॥

इति चतुर्थो वर्गः ॥

---

[१२२]

ऋषिर्चित्रमहा वसिष्ठ ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ जगती । ३, ८ पादनिचृज्जगती । ४, ६ निचृज्जगती । ७ आर्ची स्वराड् जगती ॥

वसुं॒ न चि॒त्रम॑हसं गृणीषे वा॒मं शेव॒मति॑थिमद्विषे॒ण्यम् ।

स रा॑सते शु॒रुधो॑ वि॒श्वधा॑यसो॒ऽग्निर्होता॑ गृ॒हप॑तिः सु॒वीर्य॑म् ॥१॥

पदार्थ—(वसुं न) वसु के समान (चित्रमहसम्) अद्भुत तेजधारी (वामम्) सुन्दर (शेवम्) सुखकारक (अतिथिम्) सबसे उच्च को (अद्विषेण्यम्) किसी से द्वेष न रखने वाले को (गृणीषे) मैं स्तुति करता हूं (स) वह (शुरुधः) शोक को रोकने वाली (विश्वधायस) सबको आनन्द रस पिलाने वाली वाणी का (रासते) उपदेश करता है (होता) मगल प्रदाता (अग्निः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर (गृहपति) हमारे गृह का पालक (सुवीर्यम् रासते) उत्तम बल देता है ॥१॥

जु॒षा॒णो अ॑ग्ने॒ प्रति॑ हर्य मे॒ वचो॒ विश्वा॑नि वि॒द्वान्व॒युना॑नि सुक्रतो ।

घृत॑निर्णि॒ग्ब्रह्म॑णे गा॒तुमेर॑य॒ तव॑ दे॒वा अ॑जनय॒न्ननु॑ व्र॒तम् ॥२॥

पदार्थ.—(हे अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् (जुषाणः) सेवन किये हुए आप (मे वच) मेरे वचन को (प्रतिहर्य) स्वीकार करो (हे सुक्रतो) उत्तम यज्ञ रचना करने वाले प्रभो आप (विश्वानि वयुनानि) सब पदार्थों को (विद्वान्) जानने वाले हो (घृतनिर्णिक्) जल वा स्नेह से सबको तृप्त करने वाले (ब्रह्मणे) वेद के लिए (गातुम्) गान करने को (मा) मुझे (ईरय) प्रेरित करो (तव अनु) तुम्हारा अनुकरण करके (देवाः) विद्वान् (व्रतम्+अजनयन्) व्रत को प्रकट करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सर्वज्ञ प्रभु की स्तुति करो वह वेद ज्ञान देगा और विद्वान्-व्रत सदाचार देंगे ॥२॥

स॒प्त धामा॑नि परि॒यन्नम॑र्त्यो॒ दाश॑द्दा॒शुषे॑ सु॒कृते॑ मामहस्व ।

सु॒वीरे॑ण र॒यिणा॑ग्ने स्वा॒भुवा॒ यस्त॒ आन॑ट् स॒मिधा॒ तं जु॑षस्व ॥३॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) वह अमर ईश्वर (सप्त धामानि) भू आदि सात धामों को (परियन्) व्याप्त हो रहा है (दाशुषे) दानी के लिए (दाशत्) दान देता है (सुकृते) पुण्य कर्म करने वाले के लिए दान देता है उसकी (मामहस्व) उपासना कर (हे अग्ने) हे ज्ञान प्रकाशयुक्त प्रभो (सुवीरेण रयिणा) वीरो से युक्त धन से (स्वाभुवा) स्वय में उत्पन्न हुई (समिधा) उत्तम भावना से (यः) जो (ते) तेरे समीप (आनट्) प्राप्त होता है (तं जुषस्व) उसे स्वीकार कर ॥३॥

भावार्थः—सर्वव्यापक प्रभु भक्तो की भावनाएं स्वीकार करता और शुभ कामो के लिए उन्हें धन देता है ॥३॥

य॒ज्ञस्य॑ के॒तुं प्र॑थ॒मं पु॒रोहि॑तं ह॒विष्म॑न्त ईळते स॒प्त वा॒जिन॑म् ।

शृ॒ण्वन्त॑म॒ग्निं घृ॒तपृ॑ष्ठमु॒क्षणं॑ पृ॒णन्तं॑ दे॒वं पृ॑ण॒ते सु॒वीर्य॑म् ॥४॥

पदार्थ—(हविष्मन्त) यज्ञ की सामग्री सहित यजमान (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के प्रमुख (प्रथमं पुरोहितम्) अग्रगण्य पुरोहित को (सप्त वाजिनम्) सात प्रकार की ज्वाला वाले वा सात प्रकार की शक्तियों वाले को ज्ञानस्वरूप ईश्वर को (ईळते) स्तुति करते हैं (शृण्वन्तम्) हमारी स्तुति को सुनते हुए (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप ईश्वर को (घृत पृष्ठम्) स्नेह से भरे हुए को (उक्षणम्) आनन्द की वर्षा करने वाले को (पृणन्तम्) पालन कर्ता (सुवीर्यम् देवम्) सुन्दर बलयुक्त दिव्य रूप को (पृणते) यज्ञ से तृप्त करते हैं ॥४॥

भावार्थः—ज्ञानी यजमान उसी प्रभु की उपासना करते हैं ॥४॥

त्वं दू॒तः प्र॑थ॒मो वरे॑ण्यः॒ स हू॒यमा॑नो अ॒मृता॑य मत्स्व ।

त्वां म॑र्जयन्म॒रुतो॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हे त्वां स्तोमे॑भि॒र्भृग॑वो॒ वि रु॑रुचुः ॥५॥५॥

पदार्थ—(त्वं दूत· प्रथम वरेण्य·) तुम प्रथम श्रेष्ठदूत हो (स. हूयमानः) वह स्तुति किया हुआ (अमृताय मत्स्व) अमृत मोक्ष के लिए, मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाय (दाशुषः मरुतः) दानी मनुष्य (त्वां मर्जयन्) तुम्हें शोभित करते हुए (गृहे त्वाम् स्तोमेभिः) अपने घर में वा हृदय मे तुम्हें स्तुतियो से (मर्जयन्) शोभित करते हुए (भृगव) तप शील विद्वान् (विरुरुचुः) विशेष रूप से आप मे रुचि रखते हैं ॥५॥

भावार्थः—तपस्वी विद्वान् आपकी ही स्तुति करते हैं भौतिक अग्नि के पक्ष में अग्नि को यज्ञ के लिए, घर में रुचि से स्थापित करते हैं ॥५॥

इषं॑ दु॒हन्त्सु॒दुघां॑ वि॒श्वधा॑यसं यज्ञ॒प्रिये॒ यज॑मानाय सुक्रतो ।

अग्ने॑ घृ॒तस्नु॒स्त्रिर्ऋ॒तानि॒ दीद्य॑द्व॒र्तिर्य॒ज्ञं प॑रि॒यन्त्सु॑क्रतूयसे ॥६॥

पदार्थ—(हे सुक्रतो) हे सुन्दर रचनाओं वाले प्रभो (यज्ञप्रिय यजमा-नाय) यज्ञ द्वारा सबको तृप्त करने वाले यजमान के लिए (विश्वधायसम्) सबको तृप्त करने वाली (सुदुघाम्) अच्छे बहुत से दूध देने वाली वा सरलता से दुहने योग्य प्रकृति को (इष दुहन्) अन्न अर्थात् जीवन के समान को दुहते हुए (घृतस्नुः) स्नेह को वा जीवन की शक्ति को बरसाता हुआ तू तीनो सत्यों को, विचारों का सत्य, व्यवहारों का सत्य, वाणी का सत्य प्रकाशित करता हुआ (यज्ञं वर्ति) यज्ञ करता हुआ (परियन् सुक्रतूयसे) श्रेष्ठ कर्म कराता है ॥६॥

भावार्थ—उक्त अर्थ ईश्वर और यजमान दोनों पर लागू है ॥६॥

त्वामिद॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टिषु दू॒तं कृ॑ण्वा॒ना अ॑यजन्त॒ मानु॑षाः ।

त्वां दे॒वा म॑हया॒य्या॑य वावृधु॒राज्य॑मग्ने निमृ॒जन्तो॑ अध्व॒रे ॥७॥

पदार्थ—(उषस) ऊषाओ के (वि उष्टिषु) प्रकाशित होने के समयों में (मानुषा) मनुष्य (त्वाम् अस्याः दूत कृण्वाना) तुम्हे ही दूत बनाते हुए (अयजन्त) यज्ञ करते हैं। (त्वाम्) तुम्हें (देवाः) ज्ञानी जन (महयाय्याय) बड़ा समझकर (हे अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप प्रभो (अध्वरे) यज्ञ मे (घृतम्) घी (निमृजन्त.) डालते हुये (वावृधु·) बढ़ाते हैं ॥७॥

भावार्थ—यज्ञ द्वारा ईश्वर की ही उपासना ज्ञानी जन करते हैं भौतिक अग्नि भी देवदूत हैं और सर्वव्यापकता से ईश्वर भी सर्वत्र यज्ञ का दूत है ॥७॥

नि त्वा॒ वसि॑ष्ठा अह्वन्त वा॒जिनं॑ गृ॒णन्तो॑ अग्ने वि॒दथे॑षु वे॒धसः॑ ।

रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धारय यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥८॥६॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ईश्वर (वेधसः वसिष्ठा) विधि जानने वाले ज्ञानी जन (विदथेषु) यज्ञो मे (गृणन्त.) स्तुति करते हुये (त्वा वाजिनम्) तुझ शक्ति-शाली को (नि अह्वन्त) आवाहन करते हैं (यजमानेषु) यजमानों मे (रायस्पोषम्) सम्पत्ति और पोषण को (धारय) रखो (यूयम्) हे विद्वज्जनो तुम (स्वस्तिभिः) आशीर्वादो से (सदा नः पात) सदा हमारी रक्षा करो ॥८॥

भावार्थ—यज्ञादि द्वारा विद्वान् उसी को मनाते हैं। विद्वान् हमें कल्याण का आशीर्वाद देवें ॥८॥

इति षष्ठो वर्गः॥

---

[१२३]

ऋषिर्वेनो भार्गव ॥ वेनो देवता ॥ छन्द—१, ३,७ निचृत् त्रिष्टुप् । २—४०, ६, ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं वे॒नश्चो॑दय॒त्पृश्नि॑गर्भा॒ ज्योति॑र्जरायू॒ रज॑सो वि॒माने॑ ।

इ॒मम॒पां सं॑ग॒मे सूर्य॑स्य॒ शिशुं॒ न विप्रा॑ म॒तिभी॑ रिहन्ति ॥१॥

पदार्थः—(अयं वेनः) यह ज्ञान प्रकाशयुक्त ईश्वर (पृश्निगर्भाः) सृष्टियों को अपने गर्भ मे रखने वाले (रजस.) परमाणुओं के (विमाने) धारण कर्ता में (जरायु) जो जरायु के समान है (ज्योति) ऐसी ज्योति को (चोदयत्) प्रेरणा देता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य के और (अपां सगमे) परमाणु के मिलाने मे कारण रूप (इमम्) इस ज्योति को (विप्रा) विद्वान् (शिशुंन) बच्चे के समान (मतिभि) बुद्धियो से (रिहन्ति) चाटते हैं ॥१॥

भावार्थ.—जैसे गौ अपने बछड़े को चाहती है, वैसे ही विद्वान् लोग जगत् रचयिता प्रभु को प्यार करते हैं ॥१॥

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।

ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२॥

पदार्थ —(नभोजाः वेनः) आकाश मे प्रकट हुआ सूर्य (समुद्रात्) सागर से (ऊर्मिम) लहर को (उदयर्ति) उठाता है (हर्यतस्य पृष्ठम दर्शि) सूर्य का पृष्ठ भाग दिखाई देता है (ऋतस्य सानौ) ऋतु की चोटी पर (अधिविष्टपि) स्वर्ग के ऊपर (भ्राट्) चमकता हुआ (समानम् योनिम्) समान स्थान को (व्रा) वरण किये हुये (अभ्यनूषत) साथ रहता है ॥२॥

भावार्थ —सूर्य समुद्र से लहरों को उठाता है ईश्वर भी आत्मा मे आनन्द की लहरें उठाता है उस समय उसके एक भाग का अर्थात् कुछ-कुछ साक्षात होता है तब मनुष्य ऋतु के शिखिर तक पहुँचकर ईश्वर के आनन्द को प्राप्त होता है स्वर्ग पर अधिकार करता है ॥२॥

समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।

ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३॥

पदार्थ —(पूर्वी वाणी) आदिम वाणियां वेद (समानम्) अनुकूल (वावशाना) वर्णन करती हुई (सनीळा) समान घर वाली (मातरः) माताएं (वत्सस्य) बच्चे के लिये (तिष्ठत) ठहरती हैं। इसी प्रकार वाणियां (ऋतस्य सानौ) ऋत की चोटी पर (अधि चक्रमाणा) अधिकार करती हुई (अमृतस्य मध्व) अमृत मधु का (रिहन्ति) स्वाद लेती हैं ॥३॥

भावार्थ —वेदपाठ द्वारा अनादि सत्य तक पहुँचा जा सकता है ॥३॥

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।

ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४॥

पदार्थ.—(विप्राः) ज्ञानी लोग (मृगस्य रूपम्) खोजने योग्य ब्रह्म के रूप का, आस्तित्व का जानते हुये (महिषस्य घोषम) भैंसे के नाद को, (ग्मन्) प्राप्त होते हुये (हि) निश्चय (अकृपन्त) स्तुति करते हैं (यन्तः) योगी जन (ऋतस्य) परम सत्य के (सिन्धुम्) सागर पर (अधि अस्थु) अधिकार करत है (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला साधक (अमृतानिनाम्) अमृत नाम को (विदत्) प्राप्त करता है ॥४॥

भावार्थ—ज्ञानी, योगी वाणी के योग द्वारा सत्यधाम मोक्ष को पा लेता है ॥४॥

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।

चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५॥७।

पदार्थ —(अप्सरा योषा) अप्सरा स्त्रियां (जारम्) जार उपपति को (उपसिष्मियाणा.) समीप गई हुई (परमे व्योमन् बिभर्ति) महा आकाश को धारण करती है (प्रिय.) प्रियतम (प्रियस्य) प्रिय की (योनिषु चरत्) योनियो मे विचरता हुआ विहार करता हुआ, (सवेन,) वह योगी (हिरण्यये पक्षे) सुवर्णमय पक्ष पर (सन्त्सीदत्) विराजता है ॥५॥

भावार्थः—यह ऊपर का पूरा सूक्त रहस्यवाद की कविताओ से भरा है। अप्सरा प्रिय यह सब काम भावनाओं की उपमाए प्रभु प्रेम की प्रतीक हैं ॥५॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६॥

पदार्थ —(यत्) जो कि (नाके) स्वर्ग में (उप पतन्तम्) समीप मे उड़ते हुए (त्वा सुपर्णम्) तुझ सुन्दर पक्षो वाले को (वेनन्तः) ज्ञानी जन (अभ्यचक्षत) देखते हैं (हिरण्यपक्षम्) सुनहरी पंखों वाले को (त्वा) तुझे (हृदा) हृदय से (अभ्यचक्षत) देखते हैं (वरुणस्य दूतम्) वरुण के दूत (यमस्य योना) यम के घर मे (भरण्युम् शकुनम्) भरण्य पक्षी को ॥६॥

भावार्थः—यह छायावादी कविता है, वरुण का दूत यम का पक्षी सुपर्ण सब श्लिष्ट और व्यजना से भरे शब्द हैं। भाव यह है कि ज्ञानी जन आपको सर्वत्र देखते हैं ॥६॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।

वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७॥

पदार्थ —(ऊर्ध्वं गंधर्व) ऊपर गंधर्व (अधिनाके) स्वर्ग मे (प्रत्यङ् अस्थात्) उलटा स्थित है (अस्य) इसके (चित्रा आयुधानि बिभ्रत्) अद्भुत आयुधो को धारण करता हुआ (सुरभि अत्कम्) सुरभित कवच को (वसानः) पहने हुए (दृशे) दृष्टि के लिये (कम्) सुखरूप (स्वर्णम्) सवर्ण (प्रियाणि नाम) अनेक प्रिय वस्तुओं को प्रकट करता है ॥७॥

भावार्थ —यहां भी छायावाद है, कवच गंधव आयुध, यह सब व्यंजक शब्द हैं। भक्त भगवान् को रक्षक के रूप मे देखता है ॥७॥

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।

भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८॥८॥

पदार्थ —(द्रप्स) शीघ्र गति वाला (यत्) जो कि (समुद्रम्) समुद्र को (अभिजिगाति) प्राप्त होता है (गृध्रस्य चक्षसा) गृध्र की दृष्टि से अर्थात् दूर तक जाने वाले ज्ञान से (विधर्मन्) विरुद्ध गुणवाले पदार्थों को भी (पश्यत्) देखता हुआ (भानु) सूर्य (शुक्रेण शोचिषा) शुभ्र प्रकाश से (चकान) चमकता हुआ (तृतीये रजसि) तीसरे लोक में (प्रियाणि चरति) प्रिय कार्यों को करता है ॥८॥

भावार्थः—ब्रह्मानन्द की अनुभूतियो का वर्णन सूक्त है, व्यजनाओ के साथ आत्मा गृध्र दृष्टि सूक्ष्म दर्शन पा लेता है सूर्य के प्रकाश से भी अधिक चमकता है। परम धाम मे प्रिय इष्ट प्राप्त करता है ॥८॥

इत्यष्टमो वर्गः

[१२४]

ऋषि —१, ५—९ *अग्निवरुणसोमाना निहव.* । २—४ *अग्निः* ॥ *देवता*— १—४ *अग्नि* । ५—८ *यथानिपातम्* । ९ *इन्द्रः* ॥ *छन्द.*—१, ३, ८ *त्रिष्टुप्* । २, ४, ९ *निचृत्त्रिष्टुप्* । ५ *विराट् त्रिष्टुप्* । ६ *पादनिचृत्त्रिष्टुप्* । ७ *जगती* । *नवर्चं सूक्तम्* ॥

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।

असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः ॥१॥

पदार्थ —(हे अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन् (नः) हमारे (इमम्) इस (पञ्चयामम्) पांच पहर होने वाले, या पांच प्राणो से नियंत्रित (त्रिवृतम्) तीन प्रकार से घिरे हुए सत्व, रज, तम तीन गुणों से घिरे हुए (सप्ततन्तुम्) जिसके सात वायः (क अग होते हैं ऐसे जो भू आदि सात भुवन जिससे सूक्ष्म रूप से हैं ऐसे (यज्ञम्) यज्ञ मे (उपएहि) आओ। भौतिक यज्ञ अग्निहोत्र मे और आध्यात्मिक यज्ञ शरीर मे साक्षात् होओ (असः) खाने वाला (हव्यवाट्) अग्नि या भोक्ता जीवात्मा (नः पुरोगाः) हमारे आगे चले अर्थात् हमारा पथप्रदर्शक हमारा आत्मा हो, (आत्मैव आत्मनो बंधु) आत्मा ही आत्मा का बन्धु है (गीता ज्योक एव) दीर्घकाल के ही (दीर्घतम) लम्बे अधकार को—अज्ञान को (आशयिष्ठाः) प्रविष्ट होकर दूर कर ॥१॥

भावार्थ — यज्ञ मे अग्नि के प्रज्वलन मे अंधेरा दूर हो जाता है शरीर में ब्रह्मज्ञान के प्रकाशित होते ही अविद्यान्धकार नष्ट हो जाता है ॥१॥

अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन्प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि ।

शिवं यत्सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि ॥२॥

पदार्थ —(देव) मैं देव अर्थात् ज्ञानी जीवात्मा (अदेवात्) अदेव अर्थात् दिव्यतारहित शरीर से (यत्) जो नि (गुहा प्रचता) गुहा [आत्मज्ञान] को जानता हुआ (प्रपश्यमान) खूब देखता हुआ, आत्मा को जानता हुआ (अमृतत्वम्) मोक्ष को (एमि) प्राप्त होता हूँ। (यत्) जो कि (अशिवः) अशुभ मैं (शिवसन्तम्) कल्याणरूप होते हुए को, यज्ञ को (जहामि) त्यागता हूं, पूर्ण करता हूं (स्वात् सख्यात्) आत्मरूप मित्रभाव से (शिवम्) कल्याणरूप (अरणीम्) यज्ञाग्नि को प्रकट करने वाली समिधा अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान (नाभिम्) केन्द्र को (एमि) प्राप्त होता हूं ॥२॥

भावार्थ.—यज्ञ द्वारा भौतिक शरीर का त्याग बुद्धि गूढ़ ज्ञान को प्राप्त कर यज्ञ को भी त्याग जगत् के निमित्त कारण ईश्वर को जीव पा लेता है ॥२॥

पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि ।

शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ॥३॥

पदार्थः—(अन्यस्या वयायाः) अन्य प्राप्त होने योग्य दशा के (अतिथिम् पश्यन्) अतिथि को देखता हुआ मैं (ऋतस्य) सत्य के (पुरूणि धाम) ऊंचे स्थानों को (विमिमे) विविध रूप से बनाता हूं, (असुराय पित्रे) प्राणदायक पिता के लिये (शंसामि) प्रशंसा करता हूं (अयज्ञियात्) यज्ञ के अयोग्य शरीर से (यज्ञिय भागम्) यज्ञ के योग्य भाग (शिवम्) सुख को (एमि) प्राप्त करता हूं ॥३॥

भावार्थः—शुभकर्म आयुभर करते हुए जब ईश्वर की शरण लेकर मुक्ति को प्राप्त होता हूं ॥३॥

बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि ।

अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ॥४॥

पदार्थ —मैं (अस्मिन् अन्तः) इस देह मे (बह्वीः समाः) बहुत से वर्ष (अकरम्) बिता देता हूं। उसके पश्चात् मैं (इन्द्र पितरम् वृणानः) ऐश्वर्यवान्

परमात्मा को पाता हुआ यह बन्धन त्यागता है । उस समय (अग्निः) जाठर अग्नि तथा (सोमः) वीर्य एवं (वरुण) जलमय रक्त विकार (ते) वे सभी मुझसे (च्यवन्ते) छूट जाते हैं । तब (राष्ट्रं) स्वराज्य का प्रकाश (परि आवत्) मिलता है, उस समय मैं (आयन तत् अयाभी) आगे बढ़ते हुए उस परम ब्रह्म को पाता हूँ ॥४॥

भावार्थ.—अनेक वर्षों की साधना के उपरांत तभी साधक परमात्मा को प्राप्त होता है जब वह सकल ऐषणाओं से मुक्त हो जाता है ॥४॥

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे ।

ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥५॥९॥

पदार्थ.—(उ) आश्चर्य है कि (त्ये असुरा) वे प्राणदायक इन्द्रिय आदि (निर्माया.) मायारहित (अभूवन्) हो गए हैं (हे वरुण) हे वरणीय भगवन् ! (त्वम्) और तुम (मा कामयसे) मुझे चाहते हो (हे राजन्) हे राजा वरुण ! (ऋतेन्) परम सत्य से (अनृतम्) असत्य को (विविञ्चन्) विवेक करता हुआ (मम राष्ट्रस्य) मेरे राज्य के (आधिपत्यम्+एहि) स्वामित्व को प्राप्त करो ॥५॥

भावार्थ·—मेरे भव पाश टूट गए हैं प्रभु अब आप मेरे राष्ट्र के स्वामी बनें अर्थात् मेरी मुक्ति दशा मे आप ही मेरे स्वामी हैं ॥५॥

इदं स्वरिदमिदास वाममयं प्रकाश उर्व१न्तरिक्षम् ।

हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥६॥

पदार्थः—(इद स्व) यह स्वर्ग (इदम्+इत्) यह ही (वामम्+आस) बहुत सुन्दर है (अयं प्रकाश) यह प्रकाश (ब्रह्मानन्द उत् अंतरिक्षम्) विस्तृत आकाश मुक्ति दशा (हे सोम) हे ब्रह्मानन्द ! (निः+एहि) खूब प्रकट हो (वृत्रम्) मोहावरण को (हनाव) हम दोनो नष्ट करें (हवि सन्तम्) हविरूप होते हुए (त्वा हविषा यजाम·) हवि से सत्कार करें ॥६॥

भावार्थ —हे प्रभो ! तुम ही हवि [हवन वस्तु] हो तुम्हारे लिये ही हवन है सब कुछ ब्रह्मानन्द मे विलीन हो रहा है ।

ब्रह्मानन्द प्राप्त ज्ञानी की अनुभूति का वर्णन है । सोम आत्मा भी है ॥६॥

कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।

क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥७॥

पदार्थ —(कविः) उस क्रान्तदर्शी परमात्मा ने (कवि त्वा) अपने रचना कौशल से (दिवि) द्युलोक मे (रूपम्) सौन्दर्य को (आसजत्) सजा दिया या (वरुण) वरणीय ईश्वर ने (अप्रभूति) थोड़े प्रयत्न से ही (अप.) जलो को (निः असृजत्) रचा (क्षेमं कृण्वानाः) कुशल करती हुई (जनय न) स्त्रियों के समान (सिन्धवः) सागर (शुचय) पवित्र हुए (अस्य) इसके (वर्णम्) वर्ण को (भरिभ्रति) धारण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—ससार का रचयिता प्रभु बड़ा चतुर है, कलाकार है, हम उसे प्राप्त करें ॥७॥

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।

ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥८॥

पदार्थ - (ता) वे (आप) जल, प्रकृति के सूक्ष्म तत्व (अस्य) इस परमात्मा के (ज्येष्ठम्) प्रमुख (इन्द्रियम्) लक्षण को, संकेत को (सचन्ते) प्राप्त करते हैं (स्वधया) स्वधा आत्मशक्ति से (मदन्ती) आनन्दित हुए (ईम्) इस ईश्वर को (आक्षेति) आश्रय लेते हैं (ता ईम्) वे इसे (विशः) प्रजाएं (राजानं न) राजा के समान (वृणानाः) वरण करते हुए (वृत्रात) अज्ञानावरण से (बीभत्सव) डरते हुए (अतिष्ठन्) रहते हैं, यहां अप, आत्मा के अर्थ मे भी है, जीवात्मायें अज्ञान से डर कर ज्ञान स्वरूप ईश्वर का आश्रय लेते हैं ॥८॥

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।

अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥९॥१०॥

पदार्थः—(बीभत्सूनाम्) अज्ञान से डरने वाले (दिव्यानाम्) दिव्य प्रकाशमान् (अपाम्) उपादान कारण जलों के वा जीवात्माओं के (सयुजम्) साथी (सख्ये चरन्तम्) इनके मध्य विचरते हुए को (हंसम्+आहुः) हंस—विवेकी को हंस कहते हैं (कवय) कवि जन (मनीषा) विचारवान् लोग (अनुष्टभम्) अनुरूप स्तुति योग्य (अनु चर्चूर्यमाणम्) अनुकूल विचरने योग्य (इन्द्रम्) इन्द्र को (निचिक्युः) विचार करते हैं और ग्रहण करते हैं ॥९॥

भावार्थः—ज्ञानी लोग दिव्य तत्वों मे उस परमब्रह्म को ही विचारते हैं और प्राप्त कर लेते हैं ॥९॥

इति दशमो वर्गः

[१२५]

ऋषिर्वाग् आम्भृणी ॥ देवता—वाग् आम्भृणी ॥ छन्द —१, ३, ७, ८ *विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ।* २ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पदार्थः—(अहम) मै (रुद्रेभि·, वसुभि चरामि) रुद्रो और वसुओ के साथ विचरती हूँ (अहम्) मै (आदित्यैः) आदित्यो के साथ (उत्) और (विश्वदेवैः) सब दिव्य शक्तियो के साथ (अहम) मैं (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण (उभा) दोनो को (बिभर्मि) धारण करती हूँ (अहम्) मैं (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि को (अहम्) मैं (उभा) दोनों (अश्विना) अश्वि नक्षत्रों को ॥१॥

भावार्थ —विश्व की प्रमुख प्राकृत शक्तियां हैं ११ रुद्र, ८ वसु, १२ आदित्य विश्वेदेवाः, मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, दो अश्वी इनके भिन्न-भिन्न अर्थ किये गए हैं पर भौतिक जगत् की ये प्रमुख शक्तियां हैं यही जड़ देव हैं इन सबकी सचालक है इस सूक्त की देवता—वागम्भृणी, ज्ञान और शक्ति को भरने वाली वाणी ईश्वरीय वाणी यही इस सूक्त की ऋषि भी है । भगवदादेश से ही ससार चल रहा है ॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते ॥२॥

पदार्थ —(अहम्) मैं (आहनसम्) दुष्टों को हनन करने वाले (सोमम्) सोम को (बिभर्मि) धारण करती हूँ (अहम्) मैं (त्वष्टारम्) जगत् को रूप और आकार देने वाली शक्ति को (उत्) और (पूषणम्) पोषक शक्ति को (भगम्) ऐश्वर्य को (अहम) मैं (हविष्मते) यज्ञ करने वाले के लिये (द्रविणम्) धन (दधामि) धारण करती हूँ (सुप्राव्ये) अच्छी तरह रक्षा करने वाले (सुन्वते) दान करने वाले के लिये (यजमानाय) यजमान के लिए ॥२॥

भावार्थ —मैं सोम, त्वष्टा, पूषा, भग इन सब दिव्य शक्तियो को रखती हूँ, सबके रक्षक कार्यशील दानी यजमान को धन देती हूँ ॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

पदार्थ - (अहम्) मै (वसूनां संगमिनि) वसुओ का, धनों का, वसुदेवों का, देश के निवासियों का, संगठन करने वाली (राष्ट्री) राष्ट्र की शक्ति हूँ । (यज्ञियानाम) यज्ञ योग्य व्यक्तियो की, पदार्थों की भावो के (प्रथमा) प्रमुख (चिकितुषी) विचार करने वाली हूँ (ताम् मा) उस मुझको (भूरिस्थात्राम्) बहुत स्थिर (भूरि+आवेशयन्तीम्) बहुत शक्तिशालिनी, बहुतों में प्रविष्ट को (पुरुत्रा) बहुत स्थानो मे, बहुत कार्यों मे, (देवा) ज्ञानी जन वा दिव्य शक्तियां (व्यदधुः) धारण कर रही हैं ॥३॥

भावार्थ —ईश्वरीय शक्ति ही ससार के पदार्थों का संगठन करने वाली, यज्ञों के भावो को जानने वाली है, विद्वान् लोग उसे ही धारण करते हैं ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

पदार्थ - (य. विपश्यति) जो विशेष रूप से उसे देखता है अर्थात् विशिष्ट ज्ञानी है (य प्राणिति) जो प्राणयुक्त है (य) जो प्राणयुक्त (ईम् उक्तम् शृणोति) इस वचन को सुनता है (स) वह (मया) मेरे द्वारा (अन्नम् अत्ति) अन्न खा रहा है (माम्+अमन्तव) मुझे न मानने वाले (न, उपक्षियन्ति) मेरे समीप नहीं होते, दूर ही रहते हैं (हे श्रुत) हे विद्वन्, (श्रुधि) सुन (ते) तेरे लिये (श्रद्धियम्) श्रद्धायोग्य वचन (वदामि) कहती हूं ॥४॥

भावार्थ —ईश्वर ही सबको भोजन देता है, नास्तिक ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते विद्वान् के लिये तो वेद वचन श्रद्धा योग्य ही है ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥११॥

पदार्थ.—(अहम, एव) मैं ही (इदं स्वयम् वदामि) यह स्वयं कहती हूँ जो कि (देवेभि जुष्टम्) देवो से सेवित है (उत्) और (मानुषेभिः) विचारशील मनुष्यो से सेवित है (यं कामये) जिसे चाहती हूं (तम्) उसे (उग्रम्) बलवान् उन्नत (करोमि) करती हूँ (तम् ब्रह्माणम्) उसे ब्रह्मा (तम् ऋषिम्) उसे ऋषि (तम् सुमेधाम्) उसे उत्तम धारणावती बुद्धि वाला बनाती हूँ ॥५॥

भावार्थ —ईश्वरीय शक्ति का ही यह प्रबन्ध है कि कोई राजा, कोई विद्वान् कोई महान् ज्ञानी है ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (रुद्राय) रुद्र के लिये (धनु आ, तनोमि) धनुष का विस्तार करती हूँ (ब्रह्म द्विषे) ज्ञान के द्वेषी (शरवे) हिंसा प्रिय शत्रु के लिये (उ) आश्चर्य (हन्तवे) मारने के लिये (अहम्) मै (जनाय) अपने प्रिय जन के लिये (समदम्) आनन्द से भरपूर (कृणोमि) करती हूँ । (अहम्) मै (द्यावापृथिवी) द्युलोक, भूलोक में (आविवेश) व्यापक हूँ ॥६॥

भावार्थ.—कर्मानुसार तो है पर विशेष विधान उसके ही हाथ में है कि वह अपने जन पर कृपा करता है और सर्वव्यापक है कहीं न जाओ, वह तुम्हारे ही पास है ॥६॥

अहं सुवे पितरंमस्य मूर्धन्मम योनिंरप्स्वन्तः संमुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपं स्पृशामि ॥७॥

पदार्थ.—(अहम्) मैं (अस्य मूर्धन्) इस लोक के ऊपर (पितरम्) पिता को, प्रजापति को वा सूर्य को (सुवे) उत्पन्न करती हूँ (मम योनि) मेरा घर (अप्सु) जलो मे (अन्त समुद्र) समुद्र के भीतर है अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओ के सागर मे भी मैं ही हूँ (तत.) फिर (विश्वा भुवनानु) सब भुवनों मे (वितिष्ठे) व्यापक हूँ (उत) और (अमुम् द्याम्) इस द्युलोक को (वर्ष्मणा) अपने तेज से (उप स्पृशामि) छूती हूँ ॥७॥

भावार्थ —ईश्वर ने सर्वव्यापकता मे सब लोक रचे हैं ॥७॥

अहमेव वातंइव प्र वाम्यारभंमाणा भुवंनानि विश्वां ।
परो दिवा पर एना पृंथिव्यैतावंती महिना सं बंभूव ॥८॥१२॥

पदार्थ —(अहम्+एव) मैं ही (वात इव) वायु के समान (प्रवामि) सबमें व्यापक हूँ (विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब विश्वो का निर्माण करती हुई (पर: दिवा) द्युलोक से पार (एना पृथिव्या: पर) इस पृथिवी से भी पार (एतावता महिना) इतनी बडी महत्ता से युक्त (सम्बभूव) सम्पन्न है ॥८॥

विचार—यह अमभृणी वाक् क्या है ? सबका भरण-पोषण करने वाले प्रभु की वाणी अम्भृण की वाणी आम्भृणी । संसार के सब काम उसकी आज्ञा पर ही चल रहे हैं ।

इस सू. . मे भौतिक शिक्षा भी बडा महत्त्वपूर्ण मिलती है यह सूक्त मार्कण्डेय पुराण से चुनी दुर्गा सप्तशती के अध्याय २ में कथा है कि जब महिषासुर ने सब देवो को परास्त कर सब लोको मे अधिकार कर लिया तो देवता ब्रह्मा जी को लेकर विष्णु भगवान और शंकर जी के पास गए, देवो की व्यथा सुन कर कुपित हुए विष्णु और शकर के शरीर से एक तेज निकला, तभी और देवो के शरीर से भी तेज निकला ।

निर्गत सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥११॥
अतीव तेजस कर ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्त दिगन्तरम् ॥१२॥
अतुल तत्र तत्तेज: सर्वदेव शरीरज ।
एकस्थ तदभून्नारी व्याप्तलोक त्रयत्विषा ॥१३॥

यह एकत्रित तेज श्री दुर्गा के रूप मे हो गया, सब देवों ने देवी जी को शस्त्रास्त्र दिए और युद्ध हुआ, महिषासुर पर देवो को विजय मिली, दुर्गा जी की कथा इस सूक्त की काव्यमयी व्याख्या है, इसलिये दुर्गा सप्तशती के अत मे यह सूक्त भी "देवी वैदिक सूक्तम्" के शीर्षक से छापा गया है कथा से शिक्षा मिलती है, सब लोग थोडा-थोडा तेज इकट्ठा करें तो सगठन की देवी बन जाएगी । शक्ति सगमन मे है, इसीलिये सूक्त मे भी बताया है "सगमनी वसूनाम" देश मे बसने वालों की संघटन करने की शक्ति । वही सूक्त मे कहा —"अह राष्ट्री"— मैं राष्ट्र शक्ति हूँ । वागाम्भृणी, दुर्गा यह सब हैं राष्ट्र की सगठित शक्ति के नाम । देश की सगठन शक्ति ही सेनापति रुद्र को शस्त्र देती है । यही मित्र, वरुण, [न्यायाधिकारी, दण्डाधिकारी] नियुक्त करती है । यही प्रजा को अन्न देवी भरण-पोषण करती है । इसकी अवमानना करने वाले देश की उपलब्धियों से वंचित रहते हैं । सूक्त मे राष्ट्र धर्म की शिक्षा दी गई है, संघटन का महत्त्व बताया गया है, लोकसभा की शक्ति का वर्णन किया गया है ।

इति द्वादशो वर्ग

---

[१२६]

ऋषि कुल्मलबर्हिष शैलूषिरंहोमुग्वा वामदेव्य ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द.—१, ५, ६ निचृद बृहती २—४ विराड् बृहती । ८ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

न तमंहो न दुंरितं देवांसो अष्ट मर्त्यंम् ।
सजोषंसो यमंर्यमा मित्रो नयंन्ति वरुंणो अति द्विषंः ॥१॥

पदार्थ.—(तम्) उसको (अंह) रोग, पाप (दुरितम्) दुराचार बुरा फल (न अष्ट) नही प्राप्त होना (यम) जिसका (सजोषस.) प्रेम से मिले हुए (देवास) देवता विद्वान् (अर्यमा) ईश्वर की नियामक शक्ति (मित्र·) ज्ञानमयी शक्ति, (वरुण) दण्डदात्री शक्ति, (द्विष) शत्रु से (अति नयन्ति) पृथक ले जाते हैं ॥१॥

भावार्थ·—ईश्वर कृपा और विद्वानो का सत्संग मनुष्य को सब क्लेशों से बचाता है ॥१॥

तद्धि वयं वृंणीमहे वरुंण मित्रार्यंमन् ।
येना निरंहंसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषंः ॥२॥

पदार्थ —(हे वरुण) हे मित्र (हे अर्यमन्) हे श्रेष्ठ न्यायकारी सबके नियामक भगवन् (हि) निश्चय (वयम्) हम उपासक (तत्) वह वर (वृणीमहे) वरना चाहते हैं (येन) जिससे (यूयम्) तुम (अहंस: नि., पाथ) पाप से, रोग से निश्चय रक्षा करो (मर्त्यम्) मनुष्य को (अतिद्विष:) शत्रुओ से अलग करके (नेथा) ले चलो ॥२॥

भावार्थ —प्रभो हम पाप से बचें, शत्रु से बचें ॥२॥

ते नूनं नोऽयमूतये वरुंणो मित्रो अर्यमा ।
नयिंष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषंः ॥३॥

पदार्थ —(नूनम्) निश्चय (ऊतये) रक्षा के लिये (अयम्) यह (वरुण:, मित्र , अर्यमा) ईश्वर की दिव्य शक्तिया (ते) वे सब (न) हमें (नेषणि) ले जाने योग्य मार्ग मे (उ) निश्चय (नयिष्ठा:) ले जाने वाले हैं (उ) और (न) हमे (पर्षणि) पालन मे (पर्षिष्ठा:) पालन करने वाले हों (अतिद्विष:) शत्रुओ से बचाकर (नयिष्ठा) ले चलें ॥३॥

भावार्थ —ईश्वरीय शक्तियो से प्रार्थना है, पापो से, शत्रुओं से बचाने को ॥३॥

यूयं विश्वं परि पाथ वरुंणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषंः ॥४॥

पदार्थ —(वरुण:, मित्र , अर्यमा यूयम्) वरुण, मित्र, अर्यमा तुम सब (विश्व परिपाथ) विश्व की रक्षा करते हो (युष्माक-प्रिये शर्मणि) आपके प्रिय कल्याण में, सुख मे (सुप्रणीतय) अच्छी नीतियो वाले हम (अतिद्विष) शत्रुओं से अलग हुए (स्याम) हों ॥४॥

आदित्यासो अति स्रिधो वरुंणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुंवेमेन्द्रंमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषंः ॥५॥

पदार्थ.—(आदित्यास) सूर्य के प्रकाश दिव्य शक्तियां (वरुणो, मित्रो, अर्यमा) वरुण, मित्र, अर्यमा, ईश्वरीय शक्तियां (अतिस्रिध) हिंसक जन से अलग रखें (अतिद्विष:) शत्रुओ से ऊपर रक्खें मैं हम (मरुद्भि) मरुतों के साथ (उग्रम्) तेजस्वी रुद्र को (इन्द्रम् अग्निम) इन्द्र को, अग्नि को (स्वस्तये) कल्याण के लिये (हुवेम्) पुकारते हैं ॥५॥

भावार्थ —मित्र, वरुण, अर्यमा, रुद्रादि कोई पृथक् देव नहीं हैं गुणों के कारण ये पृथक्-पृथक् नाम हैं । ईश्वर की अनन्त शक्तियो के पाप से बचने को वरुण दंडदात्री शक्ति, अर्यमा, नियामक शक्ति आदित्यास ज्ञान प्रकाश हैं इनका स्मरण करना उचित ही है ॥५॥

नेतार ऊ षु णंस्तिरो वरुंणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वांनि दुरिता राजांनश्चर्षणीनामति द्विषंः ॥६॥

पदार्थ —(चर्षणीनां राजानम) प्रजाओं के राजा को (ऊ) जो कि (न:) हम (तिर सुनेतार:) प्रति (विश्वानि दुरिता) सब बुराइयो से दूर ले जाने वाले हैं (अतिद्विष:) शत्रुओ से पृथक् रखने वाले हैं (वरुणो, मित्रो अर्यमा) वरुण, मित्र और अर्यमा ॥६॥

भावार्थ —ईश्वरीय शक्तियो का स्मरण हम पाप से दूर रखता है ॥६॥

शुनमस्मभ्यंमूतये वरुंणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमंहे अति द्विषंः ॥७॥

पदार्थ —(वरुणो, मित्रो अर्यमा) वरुण, मित्र, अर्यमा (उतये) रक्षा के लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शुनम्) अन्न को (सप्रथ शर्म) बड़े विस्तृत सुख को (अतिद्विष) शत्रुओ से ऊपर करके (यत्+ईमहे) हम जो चाहते हैं (यच्छन्तु) हमे दें ॥७॥

भावार्थ —ईश्वर से सुख के लिए प्रार्थना है ॥७॥

यथां ह त्यद्वंसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुंञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुंञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुंः ॥८॥१३॥

पदार्थ·—(यथाह) जैसे कि (यद् वसव) वे वसुगण ब्रह्मचारी वा निवासी जन (यजत्रा) यज्ञ करने वाले (पदिषिताम्) पैरो में बंधी (गौर्यंचित्) मानो गौ को (अमुञ्चत) मुक्त करते हैं (एवो) इसी प्रकार (अस्मत्) हमें (अंहः) पाप से (सुविमुञ्चत) सुगमतया विमुक्त करो (हे अग्नि) हे ईश्वर (न:) हमें (प्रतरम्) लम्बी (आयु) आयु (प्रतारि) दान दो ॥८॥

भावार्थ: — बड़ी आयु मिले, पर पापो से मुक्त होकर ॥८॥

इति त्रयो दशो वर्ग: ॥

---

[१२७]

ऋषि. कुशिक सोभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी ॥ देवता—रात्रिस्तव ॥ छन्द — १; ३, ६ विराड् गायत्री । पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ८ गायत्री । ७ निचृद् गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा दे॒ ऽक्षभिः ।

विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१॥

पदार्थः—(रात्री देवी) रात्रि देवी (आयती) आती हुई (अक्षभि) अपने प्रहरो से (पुरुत्रा) बहुत रक्षा वाली (वि+अख्यत्) कहती है (विश्वा-श्रिय.) सब शोभाए, लक्ष्मिए (अधित) धारण करती है ॥१॥

भावार्थः—रात्री की प्रशसा है और इसमे नारी को शिक्षा दी गयी है ॥१॥

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो दे॒व्यु१द्वतः ।

ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥

पदार्थ —(अमर्त्या देवी) अमर रात्रि देवी वा प्राकृतिक नियम वाली रात्रि देवी (निवतः, उद्वत) निचाई-ऊचाई को (आ+उरु+अप्रा) सब ओर से बहुत अच्छी तरह प्राप्त होती हुई (ज्योतिषा) प्रकाश से (तम.) अधेरे को (बाधते) दूर करती है ॥२॥

भावार्थः—चांदनी रात का वर्णन है, ध्वनि से शिक्षा भी है कि सुनारियां घर को प्रकाशित करती हैं ॥२॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं दे॒व्यायती ।

अपेदु हासते तमः ॥३॥

पदार्थ —(आयती देवी) आती हुई रात्रि देवी (नि.+उ) निश्चय ही (स्वसारम् उषसा) बहिन उषा को (अकृत) करती है (इत्+उ) और निश्चय ही (तम) अधकार (अपा हासते) दूर चला जाता है ॥३॥

भावार्थ —रात के बाद दिन का होना निश्चित सा है ॥३॥

सा नो अ॒द्य यस्या व॒यं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।

वृ॒क्षे न व॑स॒तिं वयः ॥४॥

पदार्थः—(यस्या) जिसके (यामन्) प्रहर मे वा नियम में (अविक्ष्महि) हम विश्राम करते हैं (वृक्षे वय , न वसतिम्) वृक्ष पर पक्षी के समान विश्राम को (सा न , अद्य) वह रात्रि हमें आज (सुतरा भव) सुखदायिनी हो, सुतरा भव, यह मन्त्र ६ से लिया जाता है अन्वय पूर्त्ति के लिए ॥४॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि प॒क्षिणः ।

नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५॥

पदार्थ.—(ग्रामास.) समूह (नि अविक्षत) विश्राम करते हैं (निपद्वन्त , नि पक्षिण) पांवो वाले और पखो वाले (निश्येनास.) शिकारी बाज भी (चित्+अर्थिनः) जो भी चाहने वाले हैं ॥५॥

भावार्थ —रात्रि मे मनुष्य, पशु, पक्षी सब विश्राम करते हैं ॥५॥

या॒वया॑ वृ॒क्य१॑ वृ॒कं य॒वय॑ स्ते॒नमू॑र्म्ये ।

अथा नः सुतरा भव ॥६॥

पदार्थ —(हे ऊर्म्ये) हे रात्रि (वृक्य वृकम) चीर-फाड़ के स्वभाव वाले भेड़िये को, दुष्ट जन को (यावय) दूर कर (स्तेनम् यवय) चोर को दूर कर (अथ न सुतरा भव) और हमारे लिये भली प्रकार बीतने वाली हो ॥६॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।

उष ऋणेव यातय ॥७॥

पदार्थ —(मा) मुझे (पेपिशत्) दबाता हुआ गाढ़ा (कृष्णम्) काला (व्यक्तम्) प्रकट (तम) अन्धेरा (उप+आस्थित) प्राप्त हुआ है (उषः) हे उषा देवी (ऋणेव यातय) प्राणो के समान दूर कर दे ॥७॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।

रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥१४॥

पदार्थ —(हे दिव) द्युलोक की (दुहितः) पुत्री उषा (ते) तेरी (गा. इव) किरणो के समान (रात्रि) हे रात्रि (जिग्युषे स्तोम न) विजयी स्तोम के समान (उप+अकरम्) स्तुति करता हू (वृणीष्व) स्वीकार करो ॥८॥

भावार्थः—यह रात्रि और उषा को सम्बोधन काव्य शैली है वास्तव मे तो इच्छा शक्ति को उद्दीप्त किया जाता है ॥८॥

इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२८]

ऋषिर्विहव्य ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द — १, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप । ७ भुरिक त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृज्जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे ईश्वर (विहवेषु) सग्रामो मे (वर्च) तेज (अस्तु) हो (वयम्) हम (त्वा+इन्धाना) तुझ प्राप्त होते हुए तुम्हे प्रसन्न करते हुए (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें (चतस्र प्रदिश) चारो दिशायें (मह्यम्) मेरे लिये झुकें (त्वया + अध्यक्षेण) तुम अध्यक्ष के द्वारा (पृतना) सेनाओ को (जयेम) जीतो ॥१॥

भावार्थ —भगवान् को अपना लेने पर मनुष्य सर्वविजयी हो जाता है ॥१॥

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।

ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥२॥

पदार्थ —(इन्द्रवन्त) इन्द्र के साथ (सर्वे देवा) सब देवगण (मम विहवे) मेरे यज्ञ में (सन्तु) हों (मरुत , विष्णु:, अग्नि) मरुद्गण, विष्णु, अग्नि (मम) मेरा (अन्तरिक्षम्) आकाश (उरु लोकम् अस्तु) उच्च लोक हो मेरे लिये (अस्मिन् कामे) इस इच्छा मे (वात:) वायु (पवताम) पवित्र करे और सुखद वायु चले ॥२॥

भावार्थ —ईश्वर कृपा से सब लोक और दिव्य शक्तियां अनुकूल बन जाती हैं ॥२॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।

दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥३॥

पदार्थ —(मयि) मुझमे (देवा) देवजन (द्रविणम्) धन (आयजन्ताम्) सगत करें (मयि) मुझ पर (आशी. अस्तु) आशीर्वाद हो (मयि देवहूति) देवताओ का बुलाना मुझमे सफल हो, (दैव्या. होतार:) दिव्य होता (पूर्वे) पहले अर्थात् अनुकूल (वनुषन्त.) उपदेश देने वाले हो और हम (तन्वा अरिष्टा.) शरीर से निरोग (सुवीरा) उत्तम वीरो वाले (स्याम) होवें ॥३॥

भावार्थ. —प्रभु से शुभ प्रार्थना की गई है ॥३॥

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।

एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥

पदार्थ —(यानि मम, मह्य यजन्तु) जो मेरे हैं वे मुझ से सगत हों (मे मनसः) मेरे मन को (हव्याकूति) यज्ञ का विचार (सत्या+अस्तु) सत्य हो (अहम्) मैं (कतमत्+चन) किसी भी (एन.) पाप को (मा निगाम्) प्राप्त न होऊं ॥४॥

भावार्थ —हम पाप रहित हो यही कामना है ॥३॥

देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।

मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥५॥१५॥

पदार्थ (षडुर्वी देवी) आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि, आप और ओषधि इन छ शक्ति वाली देवियां (न) हमे (उरु करोतु) उन्नत करे (इह) यहां (विश्वे देवास) विश्वेदेवा (वीरयध्वम्) वीर बनावें (मा हास्महि प्रजया तनूभि) हम सन्तान और शरीर से हीन न हो (हे सोम राजन्) हे राजा सोम (ईश्वर) हम (द्विषते मा रधाम) शत्रु के वश मे न हो ॥५॥

भावार्थ —हम शक्तिशाली हो, वीर हों, शत्रु पर जय पावें ॥५॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।

प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते३मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६॥

पदार्थ.—(हे अग्ने) हे ईश्वर (परेषाम्) शत्रुओ के (मन्युम्) क्रोध को (प्रतिनुदन्) प्रतिकार करता हुआ (अदब्धः) विजयी (गोपा) रक्षक (त्वम्) तू (नः) हमे (परिपाहि) रक्षा कर (पुन) फिर (ते निगुत) वे गुप्त षड्यन्त्र करने वाले लोग (प्रत्यञ्च) पीछे को लौटें (एषाम् प्रबुधाम चित्तम्) इन जागे हुओ का चित्त (अमा विनेशत्) एक साथ ही नष्ट हो जाये ॥६॥

भावार्थ —दुष्टो की जागृति सज्जनो के लिए अहितकर है वह नष्ट हो ॥६॥

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।

इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७॥

पदार्थ —(धातृणाम् धाता) धारण करने वालों का भी धारण करने वाला (य:) जो (भुवनस्य पतिः) इस संसार का स्वामी है (दिवत्रातारम्) द्युलोक के

रक्षक (अभिमातिसाहम्) सब अभिमानियों को विजय करने वाले को मैं स्तुति करता हूँ (इमम् यज्ञम्) इस जीवनरूपी यज्ञ को (उभा अश्विना) दोनों अपूर्व शक्तियां (प्राण अपान् बृहस्पति) वेदवाणी का स्वामी ईश्वर (यजमानम्) यजमान को (नि अर्थात्) नीच भाव से (पान्तु) रक्षा करें ।।७।।

भावार्थः—प्रभु प्रार्थना करो कि हम निकृष्ट भावों से सदा बचे रहें ।।७।।

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।

स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ।।८।।

पदार्थः—(उरुव्यचाः) महान् व्यापक ईश्वर (महिष) महान् मान्य (पुरु हूत) बहुत स्तुति किया हुआ (पुरुक्षु) बहुतों को निवास आश्रय देने वाला (अस्मिन् हवे) इस यज्ञ मे (शर्म यसत्) कल्याण की प्रेरणा करें (ह हर्यश्व) सबको घोड़ो के समान चलाने वाले (इन्द्र) इन्द्रदेव (स) वह तू (मृळय) कृपा कर (न) हम पर (मारीरिष) क्रोध मत कर (मा पराधा) और हमें मत त्याग ।।८।।

भावार्थ —हम सदा प्रभु के कृपा पात्र रहें ऐसे काम करें ।।८।।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।

वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन्

।।९।।१६।।१०।।

पदार्थः—(न) हमारे (ये सपत्ना) शत्रु हैं (ते) वे (अप भवन्तु) तिरस्कृत हों (इन्द्राग्निभ्याम्) राजा और सेनापति से (ताम्) उनको (अपबाधामहे) हम बाधित करें (वसव , रुद्रा , आदित्या) वसु, रुद्र और आदित्य (मा) मुझे (उपरि स्पृशम्) उन्नत लोक को प्राप्त करने वाला (उग्रम) उन्नत बल वाला (चेत्तारम्) चेतन सावधान (अधिराजन्) राज्य का अधिकारी (अक्रन्) करें ।।९।।

भावार्थ —मैं शत्रुओं को हरा दूं । वसु, रुद्र, आदित्य ये सब प्रजाजन मुझ उन्नति चाहने वाले और चेतन को राजपद पर नियुक्त करें ।।९।।

इति षोडशो वर्ग ।।

इति दशमोऽनुवाक ।।

[१२९]

ऋषिः प्रजापति परमेष्ठी । देवता—भाववृत्तम् ।। छन्द —१—३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ।। सप्तर्चं सूक्तम् ।।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।।१।।

पदार्थः—(तदानीम्) उस समय सृष्टि रचना से पूर्व (न, असत + आसीत्) न अभाव था (नोसद् आसीत) ना ही भाव था (न रज) न परमाणु (न व्योमो) न आकाश (यत् पर) जो सबसे सूक्ष्म है (किम् + आ + वरीय) आवरण क्या था (कुह) कहा (कस्य शर्मन्) कैसा घर था (किम) क्या (गहनम्) गम्भीर कठिनता से जानने योग्य गहरा (अम्भ) जल था ।।१।।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।।२।।

पदार्थ.—(तर्हि) तब (न मृत्यु. आसीत्) न मौत थी (न अमृतम्) न अमरत्व था अर्थात् जीवन था न मृत्यु (रात्र्या + अह्न) रात का दिन का (प्रकेतः) चिह्न (न + आसीत्) नहीं था सूर्य चन्द्र वा काल विभाग का कोई चिह्न (आसीत् + अवातम) बिना वायु अर्थात् बिना प्राण (स्वधया) अपनी शक्ति से तथा अपनी से धारण की गई सूक्ष्म प्रकृति के साथ (तत् + एकम्) वह एक (आसीत्) था (तस्मात् + अन्यत्) उसके अतिरिक्त और कुछ (परः) सूक्ष्म (किञ्चन् न आस]) कुछ नहीं था ।।२।।

भावार्थ·—प्रथम मन्त्र के प्रश्नो के उत्तर हैं सूक्ष्म प्रकृति सहित एक ईश्वर था, गीता मे ईश्वर की दो प्रकृतियाँ बताई हैं भूम्यादि जड पदार्थ और जीव अत· ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन तत्व थे ।।२।।

जब सृष्टि का उपादान कारण अव्यक्त रूप मे था तो उसे सत् नहीं कहा जा सकता था क्योंकि वह [अलक्षणम् प्रमेयम्] था असत् इसलिये नहीं कहा जा सकता कि अभाव से भाव नहीं होता आकाश वह है जिसमे गमनागमन हो, जब गति का व्यवहार ही नहीं था तो क्या कुछ था ? क्या वह आच्छादित था तो उसका आच्छादन क्या था ? यहां कौन था ? क्या कुछ गहन गम्भीर रूप मे था ? अर्थात् कुछ था अवश्य पर हमारे लिये वह अज्ञेय है अवर्णनीय है ।

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।।३।।

पदार्थ —(अग्ने) सृष्टि के व्यक्त रूप म आने मे पहले (तमसा गूळ्हम्) अन्धकार से ढका हुआ (तम आसीत्) अन्धकार था (अप्रकेतम्) लक्षण में न आने वाले (सर्वम् + आ + इदम्) यह सब व्यापक हुआ (सलिलम्) गतिशील पदार्थ था (तुच्छ्येन) सूक्ष्म से (आ भ + अपिहितम्) सब ओर ढका हुआ था (तत्) वह (तपसः, महिना) तप ज्ञान के महत्व से (एकम् + अजायत्) एक प्रकट हुआ ।।३।।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।।४।।

पदार्थ —(अग्ने) प्रथम (काम) सकल्प (सम् + अवर्तत्) वर्तमान हुआ जो (मनस , अधि) मन मे (प्रथमम् रेत) प्रथम वीर्य (तत् + आसीत्) वह था (कवय., मनीषा) क्रान्तिदर्शी विद्वानो ने (हृदि) हृदय मे (प्रतीष्य) विचार कर (असति) अभाव मे (सतो बन्धुम्) भाव को बाँधने वाले सत को (निरविन्दन) जाना ।।४।।

भावार्थ —फिर ईश्वर का संकल्प सृष्टि रचना का हुआ और अव्यक्त जगत् व्यक्त रूप मे आ गया ।।४।।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।

रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ।।५।।

पदार्थ —(एषाम् रश्मि) इन पदार्थों की किरणें (तिरश्चीनः विततः) तिरछी फैली (अध· स्वित + आसीत्) कदाचित नीचे (उपरिस्वित्) कभी ऊपर (आसीत्) थी (रेतोधा आसन् महिमान आसन्) वीर्य धारण करने वाला ईश्वर था और उसकी महिमायें थी (स्वधा अवस्तात्) प्रकृति छोटी थी (प्रयति परस्तात्) रचना का प्रयत्न बड़ा था ।।५।।

भावार्थ —अब ये पदार्थ प्रकट रूप मे आने लगे तब भी प्रकृति सीमित थी और ब्रह्मा का रचना गुण महान् था ।।५।।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ।।६।।

पदार्थ —(कः अद्धा वेद) ठीक-ठीक काम जानता है (इहक प्रवोचत्) इस विषय मे कौन कह सकता है (कुत आजाता) कहा से उत्पन्न हुए (कुत इयं विसृष्टिः) कहाँ से यह विशेष रूप वाली सृष्टि हुई (अस्य विसर्जनेन) इस सृष्टि रचना की तुलना में (देवा· अर्वाक्) विद्वान् बाद के हैं (अथ) और (कोवेद) कौन जानता है (यत आबभूव) जहा से ससार प्रकट हुआ ।।६।।

भावार्थ —सृष्टि रचना प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, अनुमान और शब्द प्रमाण ही इसमे प्रधान हैं यह कितना उदार विचार वेद ने दिया है ।।६।।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।।७।।१७।।

पदार्थ —(इयम विसृष्टि) यह विशेष रचना (यत आबभूव) जहां से प्रकट हुई (यद् वा दधे) वा जो इसे धारण करता है (यदि वा न) अथवा नहीं धारण करता है (योऽस्याध्यक्ष.) जो इस सृष्टि का स्वामी है (हे अङ्ग) हे मित्र जिज्ञासु (सः) वह (वेद) जानता है (यदि वा न वेद) क्या नहीं जानता है ? अर्थात् (अवश्यत्) जानता है ।।७।।

भावार्थ —सृष्टि का मर्म जानने की अपेक्षा ब्रह्मा को जानो "तस्मिन् ह विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" उपनिषद् कहता है उसके जान लेने पर सबका ज्ञान हो जायगा इस सूक्त मे दर्शन के मौलिक विचार भगवान ने मनुष्य को दिये हैं, उनका विकास मनुष्य नाना रूप मे करता रहा है दर्शन का मूल रूप तो सृष्टि और उसकी रचना का विचार ही है ।।७।।

इति सप्तदशो वर्ग. ।।

[१३०]

ऋषिर्यज्ञ प्राजापत्य। ।। देवता—भाववृत्तम् ।। छन्द —१ विराड् जगती । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् ।। सप्तर्चं सूक्तम् ।।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।

इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ।।१।।

पदार्थ —(यः यज्ञ) जो यज्ञ (विश्वत स्तन्तुभिः) चारो ओर से (ततः) यज्ञ की क्रियाओं से विस्तृत किया गया है (एकशत देवकर्मभिः, आयतः) एक सौ एक देव कर्मों से बढ़ाया गया है (इमे पितरः) ये पितर (ये आययु) जो आये हैं इस यज्ञ को बुनते हैं (प्रवय, अपवय) इधर सीधा बुनो, इधर तिरछा बुनो (तते) फैलाने पर (इति आसते) ऐसा कहते रहते हैं ।।१।।

भावार्थः—यज्ञ मे पितर परामर्श देते हैं और इस जीवनरूपी यज्ञ का भी वे सचालन करते हैं ।।१।।

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।

इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ।।२।।

पदार्थ—(पुमान् एनम् तनुते) पुरुष इस यज्ञ का विस्तार करता है (पुमान् उत्कृणत्ति) पुरुष ही समाप्त करता है (अस्मिन् अधि नाके) इस स्वर्ग में (वितते) विस्तार करता है (इमे मयूखाः) ये किरणें (उपसद) उच्च स्थान पर (उपसेदु.) समीप पहुँचती है (आतवे) बुनने के लिये (सामानि) सामगान (तसराणि चक्रुः) तिरछे तन्तु बनाये जाते हैं ॥२॥

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत्।

छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

पदार्थ—यज्ञ, जीवन, सृष्टि तीनों पर लागू है (कः आसीत् प्रमा) इस यज्ञ का मापदण्ड क्या था (प्रतिमा किम् आसीत्) प्रति कृति क्या थी (किं निदानम्) आदि कारण क्या था ? (परिधि क आसीत्) सीमा क्या थी, घेरा कितना था ? (छन्द. किम् आसीत्) छन्द क्या थे और (आज्य प्र उग) आदि मन्त्र क्या थे (यत्) जिससे कि (विश्वे देवा.) सब देवों ने (देवम् अयजन्त) ईश्वर के लिए यज्ञ किया ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।

अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने. सयुग्वा) अग्नि की साथिन (गायत्री अभवत्) गायत्री हुई (उष्णिहया सविता संबभूव) उष्णता से युक्त सविता हुआ (अनुष्टुभा उक्थैः सोम) अनुष्टा से व स्तुति मन्त्रों द्वारा महान् बना (बृहस्पते वाचम्) बृहस्पति की वाणी को (बृहती आवत) बृहती मिली ॥४॥

भावार्थ—अग्नि से विभिन्न शक्तियो को बल मिलता है ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।

विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥५॥

पदार्थ—(मित्रावरुणयो) मित्र और वरुण इन दोनो को (विराट् अभिश्रीः) विराट् आश्रित हुई । (इन्द्रस्य त्रिष्टुप्) इन्द्र की त्रिष्टुप् एव (इह अह्नः भाग) यह दिन का भाग (विश्वान् देवान्) विश्व के सभी देवो को (जगती आविवेश) जगती मिली (तेन) उसे (ऋषयः) तत्वदर्शी जन एव (मनुष्या) मननशील व्यक्ति (चाक्लृपे) क्षमतायुक्त हुए ॥५॥

भावार्थ—तत्वदर्शी व मननशील जन विभिन्न शक्तियों को प्राप्त करते हैं ॥५॥

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।

पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥६॥

पदार्थ—उस (पुराणे यज्ञे जाते) प्राचीन यज्ञ के उद्भव पर (तेन) उससे ही (ऋषय मनुष्या) तत्वज्ञानी ऋषिजन एव मननशील व्यक्ति एव (न पितर) पालक माता-पिता (चाक्लृपे) सामर्थ्यवान् हुए (पूर्वे) पूर्व के (ये इम यज्ञम्) जो इस यज्ञ को (अयजन्त) करते थे । (तान् मनसा चक्षसा पश्यम्) उन्हे मैं गण रूप चक्षुओ से निहारता हुआ (मन्ये) जगाता हूँ ॥६॥

भावार्थ—यज्ञों से विभिन्न तत्वज्ञानी व मननशील जन अलग-अलग प्रकार की शक्तियां प्राप्त करते हैं ॥६॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।

पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३ न रश्मीन् ॥७॥१८॥

पदार्थः—(सह-स्तोमा) ऋचा-समूहो समेत (सह-छन्दस) छन्दों सहित (सह प्रमाः) परिमाणों से युक्त, (आवृतः) विद्यमान (सप्त दैव्या. ऋषयः) सात ज्ञान द्रष्टा (धीरा) बुद्धिमान् ऋषि (पूर्वेषां पन्थाम् अनुदृश्य) पूर्व विद्यमानो के मार्ग का अवलोकन कर और उस पर (अनु आलेभिरे) चलकर सतत यज्ञ करते हैं जैसे कि लगाम का अवलम्ब लेकर अश्वो का सचालन किया जाता है ॥७॥

भावार्थ—ऋषिगण पूर्व विद्यमानों के मार्ग का अवलम्बन कर यज्ञरत रहते हैं । आत्मा ही प्रजापति है, वही १०० वर्ष तक यज्ञ सम्पन्न करता है ॥७॥

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१११]

ऋषिः सुकीर्तिः काक्षीवतः ॥ देवता—१—३, ६, ७ इन्द्रः । ४, ५ अश्विनौ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।

अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (विश्वान् प्राच शत्रून्) सकल अभिमुख आये प्रजा-विनाशक शत्रुओं को (अप नुदस्व) दूर रख । हे (अभि-भूते) शत्रुओं को हराने वाले ! तू (अपाचः शत्रून् अप नुदस्व) पीछे से आते शत्रुओं को भगा । (उदीचः अप) ऊपर से आने वालों को दूर कर । हे (शूर) शूरवीर (अधराचः अप) नीचे से आने वालों को भगा । (यथा) जिससे (तव उरौ शर्मन् मदेम) तेरी बड़ी महान् शरण में हम हर्षित हों ॥१॥

भावार्थः—हे प्रभो ! तू प्रजा के विनाशक सभी शत्रुओं को परास्त कर और मेरे चारों ओर के शत्रुओ को हरा ॥१॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।

इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

पदार्थ—(अङ्ग) हे राजन् ! (यव-मन्तः) जो आदि के खेतो के स्वामी जिस भाति (अनु पूर्वम्) क्रमानुसार (यव चित् यथा दान्ति) उत्तम पके जौ आदि काटते हैं, उसी भाँति (ये) जो (बर्हिष.) महान् यज्ञ के लिये (नम-वृक्तिम्) नमस्कार या हवि आदि के वर्जन को (न जग्मु) नहीं जाते अर्थात् सदा प्रभु उपासना में रत रहते हैं और नित्य यज्ञ-दान करते हैं (एषां) उनको (इह इह) इस राष्ट्र मे (भोजनानि) भोग योग्य विभिन्न साधनो (कृणुहि) को प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे प्रभो तुम राष्ट्र को धन-धान्य से परिपूर्ण करो ॥२॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु ।

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

पदार्थ—(स्थूरि) बिना बैलो के रुकी गाड़ी (ऋतु-था) ठीक-ठीक समय पर मार्गों मे जैसे (यातम् न अस्ति) जा नहीं सकती, उसी प्रकार (स्थूरि) अकेले व्यक्ति से गृहस्थ की गाड़ी नहीं चलती । अर्थात् उसके हेतु (उत) और (संगमेषु) सग्रामों या मिलापों मे भी (श्रव न विविदे) अन्न, यश, कीर्ति, ज्ञान का लाभ नहीं मिलता जब तक कि मेघ, सूर्य, उत्तम ज्ञानवान् पुरुष प्रयोक्ता हो । अतएव (विप्राः) विद्वान् जन (गव्यन्तः) गौ, बैल, भूमि व ज्ञान-वाणी की कामना करते हुए और (अश्वयन्त) सग्रामार्थ अश्व एव अश्व जैसे कार्यवाहक समर्थ पुरुष की कामना करते हुए और (वाजयन्तः) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान एव वेग की इच्छा करते हुए, (वृषणम् इन्द्रम्) सुखो को देने वाले प्रभु को (सख्याय) मित्रभाव हेतु चाहते हैं ॥३॥

भावार्थ—जब तक पुरुष उत्तम और ज्ञानवान् नहीं बनता तब तक वह अपने परिवार की व्यवस्था को भी सुचारू रूप से नहीं चला पाता । इसके लिये परमात्मा के प्रति अनुरक्ति आवश्यक है ॥३॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर-नारियो ! आप दोनो (शुभ पती) शोभाजनक अलकारो एव गुणो के पालक और (सचा) परस्पर संगत हो (नमुचौ आसुरे) न त्यागने योग्य प्राणों से प्राप्त जीवन के लिए (सुरामं विपिपाना) सुख, आनन्ददाता अन्न, जल, वीर्य, बल आदि का भाँति-भाँति से पान व पालन करते हुए (कर्मसु) अपने सकल कर्मों मे (इन्द्रम् आवतम्) उस महान् ऐश्वर्यदाता प्रभु को सदैव प्रेम करो ॥४॥

भावार्थ—जितेन्द्रिय नर-नारियो को विभिन्न अन्न, जल आदि का पान करते हुए अपने सकल कर्मों द्वारा महान् ऐश्वर्यदाता प्रभु की कृपा पाने का प्रयास करना चाहिए ॥४॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।

यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

पदार्थः—(पुत्रम् इव पितरा) पुत्र को जैसे माता-पिता प्यार करते हैं, वैसे ही (अश्विना) उत्तम अश्वो से युक्त सेना व उत्तम नायको से युक्त प्रजागण दोनों (काव्यै) विद्वानो से प्रदर्शित (दंसनाभि) नाना कर्मों से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वाम् आवथु) तुझे प्रेम करें । (यत्) जो तू (शचीभि) स्व शक्तियों से (सुरामम् विअपिब.) उत्तम रमणीय राज्यैश्वर्य का भाँति-भाँति से पालन व उपभोग करता है उस (त्वाम्) तुझे हे (मघवन्) ऐश्वर्यशालिन् ! (सरस्वती अभिष्णक्) स्त्रीवत् प्रजाजन भी सेवें ॥५॥

भावार्थः—उत्तम और श्रेष्ठ राजा प्रजापालक होता है, प्रजा को भी उसकी सेवा करनी चाहिए ॥५॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।

बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सुत्रामा) उत्तम प्रकार रक्षा करने वाला (स्ववान्) बहुत अपने जन विद्यमान जिसके ऐसा (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विज्ञान को जानने वाला (इन्द्र) दुष्टता का नाश करने वाला (अवोभिः) रक्षण आदि से हम लोगों का (सुमृळीक) उत्तम प्रकार सुख करने वाला (भवतु) हो तथा (द्वेषः) द्वेष आदि दोषो से युक्त जनो का (बाधताम्) निवारण करे और (अभयम्) निर्भयपन (कृणोतु) करे उस (सुवीर्यस्य) सुन्दर पराक्रम व ब्रह्मचर्य्य वाले के हम लोग (पतयः) पालन करने वाले स्वामी (स्याम) होवें उसके रक्षक आप लोग भी हूजिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो राजा सम्पूर्ण विद्या और किए हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से युक्त बहुत मित्रों वाला और अपने सदृश श्रेष्ठ का रक्षक, दुष्टो को दण्ड देने वाला, सब प्रकार से निर्भयता करता है उसकी रक्षा सबको चाहिए कि सब प्रकार से करें ॥६॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥७॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग (तस्य) उस पहिले प्रतिपादन किये विद्या और विनय से युक्त राजा के और (यज्ञियस्य) विद्वानो की सेवा सङ्ग और विद्या दान करने योग्य की (सुमतौ) सुन्दर बुद्धि मे (सौमनसे) उत्तम धर्म से युक्त मानस व्यवहार मे (भद्रे) कल्याण करने वालो मे (अपि) भी निश्चय से वर्त्तमान (स्याम) होवें और जो (स्ववान्) अपने सामर्थ्य से युक्त (इन्द्रः) विद्या देने वाला (अस्मे) हम लोगो की (सुत्रामा) उत्तम प्रकार पालना करने वाला होता हुआ हम लोगो के (आरात्) समीप वा दूर से (चित) भी (द्वेष) धर्म से द्वेष करने वालों को (सनुत.) सदा ही (युयोतु) पृथक् करे (स) वह हम लोगो से सदा सत्कार करने योग्य है ॥७॥

भावार्थ —हे राजा और प्रजा जनो ! जिस शुद्ध, न्याय और श्रेष्ठ गुणो मे राजा वर्त्ताव करे वैसे इस विषय में हम लोग भी वर्त्ताव करें और सब मिलकर मनुष्यों से दोषो को दूर करके गुणो को सयुक्त करके सब काल मे न्याय और धर्म्म के पालन करने वाले होवें ॥७॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

---

[१३२]

ऋषि शकपूतो नार्मेध. देवता—१ लिङ्गोक्ता २– ७ मित्रावरुणौ ॥ छन्द —१ बृहती । २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः । ३ पंक्ति ५, ६ विराट् पंक्ति ७ महासतो बृहती॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि ।

ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥१॥

पदार्थ —(ईजानम्) यज्ञकर्त्ता को (द्यौ) द्युलोक (गूर्त-वसुः) ऐश्वर्य हाथ मे लिए (सुम्नै·) नाना सुख देता है । (ईजानम्) यज्ञकर्त्ता को (भूमिः) पृथिवी (प्र-भूषणि) प्रचुर सत्ता प्राप्त करन हेतु (अभि) खूब बढ़ाती है । (ईजान) यज्ञशील को (अश्विनौ देवौ) दिन-रात्रि भी (सुम्नै अभि वर्धताम्) विभिन्न सुखप्रद साधनो से बढ़ावें ॥१॥

भावार्थ·—यज्ञशील जन का द्युलोक, पृथिवी सूर्य, चन्द्र, अनन्त दिन-रात ऐश्वर्य बढ़ाते हैं ॥१॥

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।

युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥२॥

पदार्थ.—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर स्नेही तथा वरणीय दो श्रेष्ठ जनो ! आप (धारयत्-क्षिती) भूमिवासिनी प्रजा के धारक, (सु-सुम्ना) तथा उत्तम सुखदायक हो । (ता वाम्) उन आप दोनो को हम (इषितत्वता) चाहने योग्य गुण के कारण (यजामसि) पूजते हैं । (क्राणाय) कर्मकर्त्ता के लिए हम (युवो सख्यैः) आप दोनो के मित्र भावो से (रक्षस) दुष्ट जन को (अभि स्याम) हराएं ॥२॥

भावार्थ·—परस्पर स्नेही एव वरणीय श्रेष्ठ जन उत्तम सुखदायक स्वामी हों। हम ऐसे जनो की वन्दना करते हैं । ऐसे लोगो की कृपा से ही दुष्ट जन पराजित होते हैं ॥२॥

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।

दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥३॥

पदार्थ —हम (पत्यमाना) ऐश्वर्यसम्पन्न होते हुए (वाम) आप दोनो के (यत् प्रियम) जिस प्रिय (रेक्ण) धन का (अभि दिधिषामहे) धारते है, (यत् वा रेक्ण) और जिस धन की (दद्वान्) दानी पुरुष (पुष्यति) वृद्धि करता है, (अस्य) इसके (मघानि) नाना उत्तम धनो को (नकि सम उ आरन्) कोई भी नही पा सकता ॥३॥

भावार्थ —हम ऐश्वर्यसम्पन्न होते हुए आप दोनो के जिस प्रिय धन को धारते है और जिस धन की दानी जन वृद्धि करता है । उसके नाना उत्तम धनो का कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता ॥३॥

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।

मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥४॥

पदार्थः—हे (असुर) प्राणदाता ! (असौ द्यौ अन्य. सूयत) यह सूर्यवत् तेजस्विनी व्यापक राज्यसभा एक को ही उत्पन्न करती है । हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! तू (विश्वेषाम् राजा असि) सभी का शासक है । तू (रथस्य मूर्धा) रथ सैन्य के शिरोदेशस्थ नायकतुल्य महारथी है। (अन्तक-ध्रुक्) तू प्रजा नाशक पुरुष का द्वेषी है । तू (एतावता एनसा न चाकन्) थोड़े से भी पाप से प्रेम नहीं करता ॥४॥

भावार्थ —परमात्मा प्रजा के नाशक पुरुष का द्वेषी है और वह थोडा सा पाप करने वाले को प्रेम नही करता ॥४॥

अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान् ।

अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववा ॥५॥

पदार्थ·—(अस्मिन् शक् पूते) इस शक्ति अभिषिक्त पुरुष मे और (हिते मित्रे) हितकारक मित्र मे वा सर्वप्रिय स्थापित राजा मे (एतत् एन) यह लघुतम पाप भी (निगतान् वीरान् सु हन्ति) नीचे विद्यमान वीरो को प्राप्त होता व उन्हें नष्ट करता है । इसी भांति (अवोः वा यत् अव.) रक्षक का जो रक्षण वा प्रेम, ज्ञान आदि (धात्) गुण है, वह (यज्ञियासु प्रियासु तनूषु:) सत्सङ्ग योग्य प्रिय प्रजाओ मे भी (अर्वा) जाता है । शासक के पाप, गुण, दोष इत्यादि शासकों व प्रजाओ मे भी आते हैं ॥५॥

भावार्थ·—थोडा सा भी पाप व्यक्ति के पतन का कारण बनता है और शासक के पाप, गुण, दोष इत्यादि से प्रजा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहती ॥५॥

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।

अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ॥६॥

पदार्थ —हे (वि चेतसा) विशेष ज्ञानयुक्त नर-नारियो ! (युवो हि माता) तुम दोनो की माता (अदिति.) भूमि है । (द्यौ न भूमि.) आकाश के तुल्य यह भूमि भी (पयसा) जलवत् पुष्टिदायक अन्न से (पुपूतनि) पावन तथा पुष्ट करती है । आप लोग (प्रिया) प्रीति तथा तृप्तिकारक पदार्थ (अव दिदिष्टन) प्रदान करो । (सूर) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) किरणो से (निनिक्त) प्रजा को शुद्धि दें ॥६॥

भावार्थ —विशेष ज्ञान वाले नर-नारियो का दूसरो के प्रति प्रेम का प्रदर्शन कर उन्हे नाना पदार्थों से युक्त करना चाहिए ॥६॥

युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।

ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ॥७॥२०॥

पदार्थ —हे (अप्नराजौ) उत्तम रूप व कर्म से आलोकित आप दोनो (रथम् आसीदतम्) रथ पर आसीन होओ । क्योकि जो भी (धू सदम्) राष्ट्र-भार की वहनकर्त्ता मुख्य धुरा पर आसीन है, (वन सदम्) तथा ऐश्वर्य पाने वाले परम (रथम्) रमणीय राज्यपद पर सुशोभित होता है वह (नृ-मेधः) अनेक मनुष्यों को सुगठित करने मे समर्थ (न कणूकयन्ती ता) हम, दुःखित प्रजाओं को (अंहसः तत्रे) पाप से नष्ट होने से बचाता है । वही (सुमेध) उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष, (अहसः तत्रे) प्रजा जन को पाप से नष्ट होने से बचा पाता है ॥७॥

भावार्थ —ऐसा व्यक्ति ही शासक होना चाहिए कि जो प्रजा को सगठित रखे तथा उसे दु खों व कष्टो से बचाए ॥७॥

इति विंशो वर्ग ॥

---

[१३३]

ऋषि सुदा पैजवन ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१—३ शक्वरी । ४—६ महापंक्ति । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।

अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता

नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थ —(अस्मै इन्द्राय) शत्रुओ के नाशक इस व्यक्ति के (पुरः रथम् शूषम) रथ के आगे-आगे विद्यमान शक्ति की (अर्चत) वन्दना करो । वह (अभीके सगे) निर्भय परस्पर मिलाप मे (लोक-कृत्) सकल लोक उपकारक है और (समत्सु वृत्रहा) सग्रामो मे शत्रु नाशक है । वह (अस्माक चोदिता) हमे सन्मार्ग मे प्रेरितकर्त्ता (बोधि) हमारा हित करे । (अन्यकेषां धन्वसु) दूसरे शत्रुओ के धनुषो की (अधि ज्याका) डोरियां (नभन्ताम्) नष्ट हो ॥१॥

भावार्थ —सच्चे हृदय से प्रभु की वन्दना करना ही श्रेयस्कर है, वही सग्रामो मे शत्रुओ का परास्त कर हम सन्मार्ग पर ले जाने वाला है । वही हमारा वास्तविक हितकारी तथा रक्षक है ॥१॥

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे

नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

पदार्थ – हे स्वामिन ! (त्व) तू (सिन्धून्) प्रवाहित नद व नदियों के तुल्य वेगगामी सैन्य व शत्रुओ को (अधराच अव असृज) दबाता है । (अहिम् अहन्) और सर्प जैसे कुटिल स्वभाव युक्त पुरुष को नष्ट करता है । तू (अशत्रु-जज्ञिषे) शत्रु रहित हो जाता है । (विश्व वार्यं पुष्यसि) सकल वरणीय धन को पुष्टि देता है । (त त्वा परिष्वजामहे) उस तुझे हम सर्व प्रकार से अपनाते हैं ॥२॥

भावार्थ —परमात्मा ही नदियो के तुल्य तीव्रगामी व वेगवती शत्रु सेना को पराजित करने वाला है और वह कुटिल जनो का सहारक है । उसकी सर्व प्रकार से वन्दना करनी चाहिए ॥२॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु

नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

पदार्थ —(विश्वाः अर्य. अरातय) जो सारे शत्रु कर नहीं देते (वि सु नशन्त) वे विविध उपायो से समाप्त हो और (न धिय. त्वा नशन्त) हमारी स्तुतियां व बुद्धियां तुझे मिलें । (इन्द्र) हे राजन् ! (य न· जिघांसति) जो हमें

मारने का इच्छुक है उस (आभवे) शत्रु के नाश हेतु उस पर (वधं अस्ता असि) तु वध-दण्ड देता हो । (ते रातिः वसु दधि) तेरा दान हमें धन दे ॥३॥

भावार्थः—राजा सभी शत्रुओं को परास्त कर प्रजा को शत्रुओं से मुक्त करे और दुष्टों को दण्डित करे ॥३॥

यो न॑ इन्द्राभितो जनो॑ वृकायुरादिदे॑शति ।

अधस्पदं तमीं॑ कृधि विबाधो॑ असि सासहि

नभ॑न्तामन्यकेषां॑ ज्याका अधि धन्व॑सु ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! (यः) जो (वृकायु जनः) भेड़िये वा चोर के जैसे स्वभाव वाला (नः अभितः) हमारे चतुर्दिक् (आदिदेशति) हम पर शस्त्रादि फेंकता है, (तम् ईं अधः पद कृधि) उसे हमारे पग के तले कर । तू (विबाधः असि) शत्रुओं को विशेषत पीड़ित करता है । तू (सासहिः असि) शत्रुओं को हराने वाला है ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे शत्रुओं को परास्त करे और हमें उनसे पराजित करने की शक्ति प्रदान करे ॥४॥

यो न॑ इन्द्राभिदास॑ति सनाभिर्य॑श्च निष्ट्यः ।

अव॑ तस्य बलं॑ तिर महीव॑ द्यौरध त्मना

नभ॑न्तामन्यकेषां॑ ज्याका अधि धन्व॑सु ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः नः अभि दासति) जो हमारा नाशक है, और (यः) जो (सनाभिः) हमारा सगोत्र होकर भी (निष्ट्यः) नीच है, तू (तस्य बलं अव तिर) उसका बल नष्ट कर । तू (त्मना) अपने सामर्थ्य से स्वय (मही व द्यौ) भूमि व सूर्य के तुल्य महान् व तेजस्वी हो ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! जो हमारा स्तोत्र होकर भी नीच स्वभाव का है तू उसके बल को नष्ट कर । तू ही महान् बलशाली एव तेजस्वी है ॥५॥

व॒यमि॑न्द्र त्वाय॒वः॑ सखि॒त्वमा र॑भामहे ।

ऋ॒तस्य॑ नः प॒था न॒याऽति॒ विश्वा॑नि दु॒रिता

नभ॑न्तामन्यकेषां॑ ज्याका अधि॒ धन्व॑सु ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रभो ! (वयम्) हम लोग (त्वायवः) तेरी इच्छा करते हुए, (सखित्वम् आरभामहे) तेरे मित्रभाव को पाए । तू (नः) हमे (ऋतस्य पथा नय) सत्य मार्ग से चला और हमे (विश्वानि दुरिता अति) सर्व पापो वा पाप के फलों से भी बचा ॥६॥

भावार्थः—हे प्रभो जो तुम्हारे प्रति आस्थावान् है, उन्हे तुम अपनी शरण में लेकर सद्मार्ग पर चलाओ और पापो से उन्हें बचाओ ॥६॥

अ॒स्मभ्यं॒ सु त्वमि॑न्द्र॒ तां शि॑क्ष॒ या दोह॑ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे ।

अच्छि॑द्रोध्नी पी॒पय॒द्यथा॑ नः स॒हस्र॑धारा॒ पय॑सा म॒ही गौः ॥७॥२१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (अस्मभ्यम्) हमे (तां शिक्ष) यह वाणी दे । (या) जो (अच्छिद्र-ऊध्नी) त्रुटि दोषादि से मुक्त स्तनो वाली गौ के समान होकर (जरित्रे) स्तुतिकर्ता को (प्रति) प्रत्यक्ष (दोहते) रस दे । (यथा) जो (सहस्र-धारा) हजारो की धारक (गौ मही) पूज्य वाणी (नः पीपयत्) हमे पुष्टि दे ॥७॥२१॥

भावार्थ—हे परमात्मा ! आप हमे ऐसी वाणी प्रदान करें कि जो हमे त्रुटि और दोषो से मुक्त कर ॥७॥२१॥

इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१३४]

ऋषि मान्धाता यौवनाश्वः । ६, ७ गोधा ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—६ महापंक्ति ॥ ७ पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उ॒भे यदि॑न्द्र॒ रोद॑सी आप॒प्राथो॒षा इ॑व । म॒हान्तं॑ त्वा म॒हीनां॑

स॒म्राजं॑ चर्षणी॒नां दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उषा इव) प्रभात के तुल्य (यत्) तू (रोदसी आपप्राथ) जो द्यौ व पृथिवी की रचना करता है, तब (महीनां चर्षणीनाम्) महा शक्तियो के मध्य (महान्तं सम्राजं) तुझ महान् प्रकाशक को पाकर (जनित्री देवी) ससार उत्पादक प्रकृति (अजीजनत्) ससार को उत्पन्न करती है । (भद्रा) कल्याणकारिणी प्रकृति मा (अजीजनत्) जगत् की निर्माता है ॥१॥

भावार्थः—हे परमात्मा आप ही द्यौ एवं पृथिवी के रचयिता है । हम आपको प्राप्त हो क्योंकि आपकी कल्याणकारिणी प्रकृति ही जगत् उत्पादक है ॥१॥

अव॑ स्म दु॒र्हणा॑य॒तो मर्त॑स्य तनुहि स्थि॒रम् ।

अ॒ध॒स्प॒दं तमीं॑ कृधि॒ यो अ॒स्माँ आ॒दिदे॑शति

दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥२॥

पदार्थ—(दुर्हणायतः मर्तस्य) दुःखदायी रूप से हिंसक के (स्थिरम्) दृढ बल को (अव तनुहि) हरा वा (यः अस्मान् आदिदेशति) जो हम पर आवेश चलाता हो, (तम् ईम्) उस दुष्ट को भी (अधः पदम् कृधि) हमारे चरणों में गिरा (देवी जनित्री०) इत्यादि पूर्ववत् ॥२॥

भावार्थ—हे प्रभु तू हम पर बलात् शासन करने वालों को हरा । ऐसे दम्भी जन को परास्त करने की शक्ति हमे प्रदान कर ॥२॥

अव॒ त्या बृ॑ह॒तीरिषो॒ विश्व॑श्चन्द्रा अमित्रहन् ।

शची॑भिः शक्र धूनु॒हीन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॑-

र्दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥३॥

पदार्थ—हे (शक्र) शक्तियुक्त ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अमित्रहन्) शत्रु दण्डित कर्ता ! तू (त्या) उन (बृहतीः इषः) विपुल अन्न सम्पदाओ एव (विश्व-चन्द्राः) सबको आनन्द देने वाली सम्पत्तियो व प्रजाओ को, अपनी (शचीभि) शक्तियो तथा वाणियो से और (विश्वाभि ऊतिभि) समस्त रक्षक शक्तियो से, (अव धूनुहि) प्रकम्पित कर । (देवी जनित्री०) इत्यादि पूर्ववत् ॥३॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आप शत्रुओं को दण्डित करने वाले हैं आप सज्जनों को धन-सम्पदा से युक्त कर उनकी रक्षा करें ॥३॥

अव॒ यच्छ॑तक्रतविन्द्र॒ विश्वा॑नि धूनु॒षे । र॒यिं न सु॑न्व॒ते सचा॑

स॒ह॒स्रिणी॑भिरू॒तिभि॑र्दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥४॥

पदार्थ—हे (शत क्रतो) सैकडो सामर्थ्यो वाले ! हे (इन्द्र) प्रभो तू (विश्वानि) सकल तत्वो का (अव धूनुषे) सचालक है और (सहस्रिणीभि ऊतिभिः) सहस्रो सुखो की प्रदाता रक्षाओ से (सुन्वते) अपने उपासक को (रयिं न अव सुन्वते) ऐश्वर्य भी देता है । (देवी जनित्री०) इत्यादि पूर्ववत् ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा ही सुखदाता व ऐश्वर्यदाता एव सकल रक्षक है ॥४॥

अव॒ स्वेदा॑ इवा॒भितो॒ विष्व॑क्पतन्तु दि॒द्यवः॑ । दूर्वा॑या इव॒ तन्त॑वो॒

व्य१॒॑स्मदे॑तु दुर्म॒तिर्दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥५॥

पदार्थ—हे प्रभो ! (दिद्यवः) हमारे चमचमाते शस्त्र (स्वेदाः इव) स्वेद बिन्दुओ के तुल्य (विष्वक् अव पतन्तु) सर्वत्र जावें (दूर्वायाः इव तन्तवः) तृणवत् (दुर्मति अस्मत् वि एतु) दुष्टबुद्धि वा दुःखदायी शत्रु हम से दूर हों । (देवी जनित्री) पूर्ववत् ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! हमे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि हम दुष्टबुद्धि शत्रुओं को दूर भगा सकें ॥५॥

दी॒र्घं ह्य॑ङ्कु॒शं य॑था॒ शक्तिं॒ बिभ॑र्षि मन्तुमः । पूर्वे॑ण मघवन्प॒दाऽजो ।

व॒यां यथा॑ य॒मो दे॒वी जनि॑त्र्यजीजनद्भ॒द्रा जनि॑त्र्यजीजनत् ॥६॥

पदार्थ—हे (मन्तुमः) ज्ञानवन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्य-सम्पन्न ! तू (शक्ति) शक्ति को (दीर्घं हि अंकुशं यथा) दीर्घ अंकुश के तुल्य ही (बिभर्षि) धारता है । (अजः यथा) जिस भांति बकरा (पूर्वेण पदा वयम्) अपने अगले पैर से शाखा पकड़ता है उसी भांति तू जगत् को धारे हुए है ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा ही सकल जगत् को धारण करता है ॥६॥

न॒कि॑र्देवा मिनीमसि॒ नकि॒रा यो॑पयामसि मन्त्रश्रु॒त्यं॑ चरामसि ।

प॒क्षेभि॑रपिक॒क्षेभि॒रत्रा॒भि सं र॑भामहे ॥७॥२२॥

पदार्थः—ब्रह्मवादिनी, ऋषि । हे (देवा:) विद्वानो ! (नकिः मिनीमसि) हम किसी की हिंसा न करें । (नकि आयोपयामसि) हम अव्यवस्था न फैलाए । (पक्षेभि अपिकक्षेभि) ग्रहणीय अपनो व सहयोगियो सहित हम मिलकर यत्नशील बनें ॥७॥२२॥

भावार्थः—विद्वान जनो का कर्तव्य है कि वे समाज मे अनुशासन तथा सहयोग की भावना को विकसित करें ॥७॥२२॥

इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१३५]

ऋषि कुमारो यामायन ॥ देवता-यमः ॥ छन्दः—१—३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगनुष्टुप् सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यस्मि॑न्वृ॒क्षे सु॑पला॒शे दे॒वैः स॒म्पिब॑ते य॒मः ।

अत्रा॑ नो वि॒श्पतिः॑ पि॒ता पु॑रा॒णाँ अनु॑ वेनति ॥१॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (सु-पलाशे) उत्तम युक्त (यमः) वृक्ष पर एवं यतात्मा साधक, (देवैः) सुखप्रद व ज्ञानप्रद इन्द्रियो से ही (पुराणान् संपिबते) पूर्व के कर्मफलो को भोगता है, (अत्र) उसी वृक्ष पर (नः) हमारा (विश्पतिः) प्रजापति, इन्द्रियादि का अधिष्ठाता (पुराणान् अनु वेनति) पूर्व भुक्त भोगों को पुनः चाहता है ॥१॥

भावार्थ—यह ससार भी वृक्ष के तुल्य है । जसे वह वृक्ष उत्तम कहलाता है कि जो पत्र युक्त है वैसी ही स्थिति प्रजापति की है ॥१॥

पु॒रा॒णाँ अ॑नु॒वेन॑न्तं॒ चर॑न्तं पा॒पया॑मु॒या ।

अ॒सू॒यन्न॒भ्य॑चाकशं॒ तस्मा॑ अस्पृहयं॒ पुनः॑ ॥२॥

पदार्थ—(पुराणान्) पूर्व भुक्त भोगो की (अनु वेनन्तं) पुनः इच्छा करते हुए और (अमुया पापया चरन्तं) विभिन्न पापो, कष्टो, भोगो को भोगते हुए

व्यक्ति को मैं (असूयत्) निन्दा से (अभि अचाकशम्) देखूं, परन्तु फिर भी मैं (तस्मै) उसके प्रति (अस्पृहयम्) प्रेम रखूं ॥२॥

भावार्थः—हम पापी जनों के प्रति निन्दा का दृष्टिकोण तो रखें किन्तु उनके प्रति भी हमारे हृदय में प्रेम ही हो ॥२॥

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।

एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥३॥

पदार्थ —हे (कुमार) कुमार ! (यं नवं) जिस नवीन, (अचक्रम्) बिना चक्र के अर्थात् स्वय गतिशीलता रहित रथ रूपी देह को (मनसा) अपने मन रूप सारथि से (अकृणोः) चलाता है, उस (एक ईषम्) इच्छारूप 'ईषा' या अग्रदण्ड वाले और (विश्वतः प्राञ्चम्) सर्व ओर से आगे जाने वाले देह रूप रथ पर, (अपश्यन्) उसके तत्व को देखे बिना ही (अधि तिष्ठसि) तू उस पर सवार होता है ॥३॥

भावार्थः—बालक बिना विचारे ही अनेक इच्छाओं को अपने मन में बसा लेता है ॥३॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।

तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥४॥

पदार्थ—हे (कुमार) बालक के समान अबोध जीव ! (यं रथ) जिस रथ रूप शरीर को तू (विप्रेभ्यः परि) ज्ञानी जनो से प्रेरित होकर (प्र अवर्तय) संचालन करता है, (तं) उसमे (साम) शान्ति व विशेषज्ञान (अनु प्र अवर्तत) प्रविष्ट हो जाता है जैसे कि नौका मे कोई वस्तु रख दें ॥४॥

भावार्थ—बालक के तुल्य अबोध व्यक्ति यदि विद्वानो के वचनो का श्रवण कर अपने जीवन को तदानुरूप ढालता है तो वह जीवन मे शान्ति और ज्ञान पाता है ॥४॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् ।

कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥५॥

पदार्थ.—(कुमार क अजनयत्) अबोध जीव को कौन जन्म देता है ? (कः रथं निर् अवर्तयत्) रथरूप इस शरीर को सतत् कौन चलाता है ? (तत्) उस रहस्य को (कः स्वित् नः) कौन हमे (अद्य) आज (ब्रूयात्) बताएं, (यथा) जिसमे कि (अनुदेयी अभवत्) सतत् ज्ञान-बलदात्री शक्ति उत्पन्न हो ॥५॥

भावार्थ —जीवन के विभिन्न रहस्यो को जानने के लिए किसी न किसी विद्वान् जन की सेवा मे ही जाना होता है ॥५॥

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।

पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥६॥

पदार्थः—(यथा) जिस भांति (अनुदेयी अभवत्) अनुक्षण प्राण क्रिया चलती है । (ततः) उसी से वह (अग्रम्) सर्वाधिक मुख्यतत्व मन भी (अजायत) उपजता है । (पुरस्तात्) उसके आगे (बुध्न आततः) मूल प्रकृति ही फैलाती है और बाद मे (निर् अयन कृतम्) उसमे से यह ससार व्यक्त रूप से बनाया है ॥६॥

भावार्थ —जैसे अनुक्षण प्राण क्रिया होती रहती है, उसी से वह सबसे मुख्य तत्व भी उत्पन्न होता है उसके आगे मूल प्रकृति ही फैली होती है और बाद मे उसमें से जगत व्यक्त रूप धारता है ॥६॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।

इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥७॥२३॥

पदार्थ —(यत् देवमान उच्यते) जो पच भौतिक पदार्थों से निर्मित कहलाता है (इद) यह शरीर (यमस्य सादन) नियन्ता आत्मा का मुख्य भवन है । (इयम्) यह (नाडी) आत्मा की नाड़ी (धम्यते) गति या गु जित होती रहती है एव (अयम्) यह (गीर्भि) विभिन्न वाणियो से (परिष्कृतः) शोभा पाता है ॥७॥२३॥

भावार्थः—जो पच भौतिक पदार्थों से बना कहा जाता है, वह यह शरीर नियन्ता आत्मा का मुख्य भवन है । यह आत्मा की नाड़ी गति या शब्द करती रहती है और यह विभिन्न वाणियों से सुशोभित होता है ॥७॥२३॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३६]

ऋषिः मुनयो वातरशनाः । देवता—१ जूतिः । २ वातजूतिः । ३ विप्रजूतिः । ४ वृषाणकः । ५ करिक्रतः । ६ एतशः । ७ ऋष्यशृंगः ॥ केशिनः ॥ छन्द —१ विराडनुष्टुप् । २—४, ७ अनुष्टुप् । ५, ६ निचृदनुष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।

केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥१॥

पदार्थ —(केशी) केशो के समान विभिन्न रश्मियों का धारक सूर्य (अग्नि बिभर्ति) अग्नि को धारता है, वही (विष बिभर्ति) जल को धारता है । (केशी रोदसी बिभर्ति) वही रश्मियो वाला भूमि व आकाश दोनों को धारता है । (केशी) वह रश्मियों युक्त ही (दृशे) दर्शन के हेतु सर्व प्रकार को धारता है । (इद ज्योतिः केशी उच्यते) यह प्रत्यक्ष ज्योति केशी कहलाता है ॥१॥

भावार्थः—सूर्य केश तुल्य नाना रश्मियो का धारक है । वही अग्नि को धारण करता है । वही रश्मियों वाला भूमि तथा आकाश का भी धारक है । वही सर्व प्रकार के प्रकाश का धारक है ॥१॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।

वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥२॥

पदार्थः—(यत्) जब (देवास) इन्द्रियाँ (वातस्य अनु ध्राजि यन्ति) प्राण वेग के सहित अनुकूल होकर गति करती हैं, तब (वातरशनाः) प्राणाभ्यासी मुनि (पिशगा) अति उज्ज्वल प्रकाश को धारते हैं, और (यत्) जब (देवासः) वे इन्द्रियां (अविक्षत) भीतर प्रविष्ट होती हैं तब वे (वातरशनाः) प्राण के भोक्ता (मला वसते) निद्रावृत्ति धारते हैं । जाग्रत काल में वे चेतन चमकते दीपों के समान होते हैं और सोते हुए वे अन्धकार ग्रस्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—जब इन्द्रियां प्राण के वेग के साथ-साथ अनुकूल होकर गति करती हैं, तब प्राणाभ्यासी मुनि अति उज्ज्वल प्रकाश धारण करती है और जब इन्द्रियां भीतर प्रविष्ट होती है तब वे प्राण के भोक्ता निद्रावृत्ति धारते हैं । जागृत काल में वे चैतन्य युक्त चमकते दीपों के समान होते हैं और सोते हुए अन्धकार ग्रस्त होते हैं ॥२॥

उन्मदिता मौनेयेन वातां आ तस्थिमा वयम् ।

शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३॥

पदार्थ —(वयम्) हम (मौनेयेन) मननशील अन्त करण के स्वामी आत्मा से (उन्मदिता) उत्तम हर्षयुक्त हो (वातान् आतस्थिम) केवल वायुओं के आश्रय पर आसीन हैं । हे (मर्तासः) मनुष्यो ! (यूयं मर्तास) आप मरणधर्मा जन (शरीरा इत् अस्माक अभि पश्यथ) हमारे शरीर अर्थात् बाह्य आकृति को ही देख पाते हो, अन्तरतम को नही ॥३॥

भावार्थ —प्राणगण कहते हैं कि हम मननयुक्त अन्त करण के भी स्वामी आत्मा से उत्तम हर्षयुक्त होकर केवल हवाओं के आश्रय पर आसीन है । हे मरणधर्मा जनो, आप हमारे शरीर मात्र को ही देख पाते हो भीतरी रूप को नहीं ॥३॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।

मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥४॥

पदार्थः—(मुनि) विज्ञानयुक्त आत्मा एव मन सत्व, (अन्तरिक्षेण) भीतर व्याप्त बल से (पतति) गतिमान होता है और (विश्वा रूपा अव चाकशत्) सकल रूपो एव रुचिकर पदार्थों को देखता है । वह (देवस्य-देवस्य) हर इन्द्रिय के (सौकृत्याय) उत्तम रूप मे कार्य करने हेतु उसके (सखा) समान नाम रूप वाला मित्र तुल्य होकर (हितः) उसमे आसीन होता है ॥४॥

भावार्थ —विज्ञानमय आत्मा व मन सत्व भीतर व्याप्त बल से गतिमान होता है । वह सभी रूपो व रुचिकर पदार्थों को देखता है । वह हर इन्द्रिय को उत्तम रूप से कार्य करने की प्रेरणा देता है ॥४॥

वातस्याश्वो वायोः सखाऽथो देवेषितो मुनिः ।

उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥५॥

पदार्थ —यह (मुनिः) मननशील आत्मा तथा मन (वातस्य अश्वः) प्राण का भोक्ता एव (वायो सखा) प्राण आदि शब्द से सम्बोधन योग्य, (देवइषितः) तथा इन्द्रियों द्वारा कमनीय वा प्रभु, आत्मा मे प्रेरणा पा, (यः च पूर्वः उत अपर) पूर्व व अपर (उभौ समुद्रौ) दोनों सागरो को (आ क्षेति) प्राप्त होता है । (पूर्वः उत च अपर.) सागर मन के पक्ष मे स्वप्न व जागृत दो सागर हैं ॥५॥

भावार्थ —मननशील आत्मा एव मन प्राण का भोक्ता और प्राण आदि शब्द से रहने योग्य व प्रभु आत्मा मे प्रेरित होकर दोनो सागरो को प्राप्त होता है ॥५॥

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।

केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥६॥

पदार्थ – आत्मा (अप्सरसां) 'अप्स' अर्थात् रूपो मे विचरण शील चक्षु और (गन्धर्वाणां) गन्ध आदि मे विचरणशील नासिकादि और (मृगाणां) नाना विषयो की खोजी इन्द्रिया के (चरणे) संचरण-व्यापार में (चरन्) स्व कर्मफल का भोक्ता (केतस्य विद्वान्) व ज्ञान-दाता होकर (सखा) उनके ही समान चक्षु इत्यादि नाम का धारक बनकर, (स्वादुः) सुख भोक्ता और (मदिन्तम) सर्वाधिक आनन्दयुक्त होता है । वह आत्मा (केशी) तेजयुक्त है ॥६॥

भावार्थ —आत्मा ही वस्तुत तेजोमय है । वही कर्मफल भोक्ता व ज्ञानदाता है ॥६॥

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।

केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥७॥२४॥

पदार्थ —(केशी) ज्योतियुक्त आत्मा, (रुद्रेण सह) प्राण सहित (पात्रेण) पात्र आधार इस शरीर से ही (विषस्य वि-सस्य) भांति-भांति से योग्य कर्मफलों का (अपिबत्) उपभोक्ता है । (वायु अस्मै उप अमन्थीत्) प्राणवायु मानो उसके हेतु रस को निचोडता है और (कुनन्नमा) ध्वनि करने हेतु झुकने वाली जिह्वा अर्थात् मुख उसके लिए (पिनष्टि) अन्न को पीसता है ॥७॥२४॥

भावार्थ—ज्योतिर्मय आत्मा प्राण के साथ पान करने के आधार इस देह से ही भांति-भांति से भोगने योग्य कर्मफलो का उपभोग करता है । प्राणवायु भी मानो उसके लिए रस निचोडता है ॥७॥२४॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१३७]

ऋषि सप्त ऋषय एकर्चाः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ अनुष्टुप् । २, ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।

उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! आप लोग (अवहितम्) नीचे गिरे को (उत् नयथ) उठाओ । कैसे ? जैसे रश्मिगण नीचे के जल को उठाते हैं । हे (देवाः) उत्तम गुणवानो ! (पुनः उत नयथ) पुनः-पुनः उठाओ । (उत) और हे (देवाः) विद्वानो ! (आगः चक्रुषं) अपराध व पाप करने वाले को भी (उत नयथ) ऊपर उठाओ ! हे (देवाः) उदार जनो ! (पुनः जीवयथ) उन्हें बारम्बार जीवन दो ॥१॥

भावार्थ—विद्वानों का यह कर्तव्य है कि वे पतितों को उत्थान का मार्ग दर्शाए । उन्हें अपराधी व पापियो के उद्धार का भी प्रयत्न करना चाहिये ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥२॥

पदार्थ—(इमौ) ये (द्वौ) दो (वातौ) वायु (वात) प्रवाहित होते हैं, एक तो (आ सिन्धोः) सागर से वा दूसरा (आ परावतः) दूर स्थित भाग से । इन दोनो में से (अन्य) एक तो (दक्षम् आ वातु) बल, जीवन, उत्साह देता है और (अन्यः) दूसरा (यत् रपः) जो देह स्थित मल को (परा वातु) दूर ले जाता है । इसी भांति शरीर में जाने वाला श्वास देह को बल देता है और बाहर निकाला हुआ निःश्वास हमारे शरीर के रोग उत्पन्न करने वाले अंश को निवारता है ॥२॥

भावार्थः—वायु दो प्रकार का है । इनमे से एक सागर से व दूसरा सुदूर स्थित स्थल से आता है । इनमे से पहला बल व जीवन का दाता तथा दूसरा परिष्कार करता है । इसी भांति शरीर मे जाने वाला श्वास देह को बल देता है और जो छोड़ा जाता है वह शरीर के रोग को दूर करता है ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥

पदार्थः—हे (वात) वायु ! तू (भेषजं आ वाहि) व्याधि को मिटाने वाला बल दे, (यत् रपः) जो रोग पैदा करने वाले हों उन्हे (वि वाहि) भांति-भांति से निकाल । (त्वं) तू (विश्व-भेषज) सकल रोगो का निवारक तथा इन्द्रियो के मल तपाता है ॥३॥

भावार्थ—वायु शरीर को भांति भांति से शुद्ध करता है ॥३॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।

दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥४॥

पदार्थः—मैं (त्वा) तुझे (शं-तातिभि.) शान्तिदायक और (अरिष्ट-तातिभि) मृत्यु नाशक उपायो के साथ (आ अगमम्) मिलता हूं । हे रोगी ! मैं (ते भद्र दक्षम्) तेरे लिए स्वास्थ्यकारी बल (आभार्षम्) लेकर आयो हूं और (ते यक्ष्मम्) तेरे रोग को (परा सुवामि) मिटाता हूं ॥४॥

भावार्थ—रोगी को रोग निवृत्ति का आश्वासन दिया गया है ॥४॥

त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।

त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥५॥

पदार्थः—(इह) इस लोक मे (देवा) विद्वान्, धनी तथा तेजस्वी आदि रश्मियां (त्रायन्ताम्) इसको बचाए एवं (मरुतां गणः त्रायताम्) वायु-समूह भी बचाए वा (विश्वा भूतानि) समस्त पांचो भूत भी (त्रायन्ताम्) इसकी रक्षा करें (यथा) जिससे (अयम्) यह (अरपा असत्) रोगरहित हो ॥५॥

भावार्थः—प्रकाश-रश्मियां, वायु समूह तथा समस्त पञ्चभूत भी रक्षक हैं और इससे रोगी रोगमुक्त होता है ॥५॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥६॥

पदार्थ—(आप इत् वा उ) जल ही (भेषजी) सकल रोगहर्त्ता और (अमीव-चातनी) रोग के कारणो को मिटाने वाले हैं । (आपः सर्वस्य भेषजी) जल सभी रोगो की औषध है (ताः ते भेषज कृण्वन्तु) वे तेरे सभी रोगों को दूर करें ॥६॥

भावार्थ—जल ही सकल रोगों को दूर करने वाला है और रोग के कारणों को मिटाने वाला है व सभी रोगो की औषधि है ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।

अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥७॥२५॥

पदार्थ—(दश-शाखाभ्यां हस्ताभ्याम्) दश शाखाओ वाले दोनों हाथों से (वाचः पुरोगवी) वाणी का आगे ले जाने वाली (जिह्वा) जीभ है । (ताभ्यां अनामयित्नुभ्याम्) उन दोनो हाथो से (त्वा उप स्पृशामसि) हम तुझे स्पर्श करते हैं तथा रोगहर साधनो का उपदेश भी करते हैं ॥७॥

भावार्थ—यहां रोगी का वाणी तथा रोगहारक साधनो से आश्वस्त करने का विधान है ॥७॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३८]

ऋषिरङ्ग औरवः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ४, ६ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३, ५ विराड् जगती ॥ षडृच सूक्तम् ॥

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।

यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्युत्तुल्य तीक्ष्ण कान्तियुक्त ! (त्ये) वे (वह्नय) दायित्व और कर्त्तव्य वहन करने वाले जन (तव सख्येषु) तेरे मित्रभावो मे (ऋतम् मन्वानाः) सत्य ज्ञान का चिन्तन करते हुए (वलम) अज्ञानान्धकार के मोह को (वि अदर्दिरु) विविध उपायो से छिन्न-भिन्न करते हैं । (यत्र) जिस स्थिति में तू भी प्रभो ! (उषसः) कार्यों का दाह करने वाली शक्तियों को वा कान्तियुक्त विशोका, ऋतम्भरा प्रज्ञाओ को (दशस्यन्) देता हुआ और (अपः रिणन्) कर्म-बन्धनों को हटाता हुआ, (कुत्साय) स्तुतिकर्त्ता भक्तजन के (मन्मन्) मननशील अन्तःकरण मे विद्यमान (अह्यः) आवरण का (दंसय) नाश करता है ॥१॥

भावार्थ—विद्युत्तुल्य तीक्ष्ण कान्तियुक्त स्वामिन् वे दायित्व व कर्त्तव्य को अपने ऊपर लेने वाले जन तेरे मित्रभावो मे सत्यज्ञान का चिन्तन करते हुए अज्ञानान्धकार के मोह को छिन्न-भिन्न करते हैं । परमात्मा की कृपा से ही ऐसा हो पाता है ॥१॥

अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।

अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥२॥

पदार्थ—(सूर्यः शुशोच) वह परमात्मा उत्पादक शक्तियो को प्रेरणा देता है, मेघो को प्रेरित करता है, सूर्यादि को चलाता है, मधुर अन्न-जल का पान कराता है और (वनिनः) भक्तो को बढाता है । (अस्य दंससा) इस परमेश्वर के दर्शनीय कर्म से (सूर्यः शुशोच) सूर्य उद्दीप्त है और इसी की (ऋतजातया गिरा) सत्य-ज्ञानदायिनी वेदवाणी से (सूर्यः) तेजस्वी विद्वान् सूर्य के समान कान्तिमान होता है ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा ही उत्पादक शक्तियो का प्रेरक है, वही मेघो को प्रेरित करता है, सूर्यादि को चलाता है और मधुर अन्न जल का पान कराता है तथा भक्तों का कल्याण करता है । उसी के प्रताप से सूर्य चमकता है और वेदवाणी से तेजस्वी विद्वान् भी सूर्यवत् चमकता है ॥२॥

वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः ।

दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥३॥

पदार्थ—(सूर्यः) सूर्यसम तेजस्वी व्यक्ति, (दिवः मध्ये रथ अमुचत्) पृथिवी के बीच अपना रथ अथवा वेगवान् अश्व छोड़े और (दासाय प्रतिमानम् अविदत्) संहारक दुष्ट शत्रु हेतु पूर्ण प्रतिकार करे (ऋजिश्वना चकृवान्) भली-भांति सधे अश्वो वाले सैन्य से विजय पाता हुआ, (मायिन पिप्रो असुरस्य) मायावी शत्रु के (दृळ्हानि वि आस्यत्) दृढ दुर्गों को ढहा दे ॥३॥

भावार्थ—सूर्यतुल्य तेजस्वी व्यक्ति दुष्टो का प्रतिकार करें और मायावी शत्रु के दृढ दुर्गों को तोड़ें ॥३॥

अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः ।

मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥४॥

पदार्थः—(धृषितः) शत्रु को हराने वाला वह राजा (अना धृष्टानि) अपराजित शत्रुशक्ति को (वि आस्यत्) विशेषत पीड़ित करे । (अदेवान्) कर न चुकाने वाले (निधीन्) धन स्वामियो को (अयास्य) स्वय अथक परिश्रमी हो (अमृणत्) नष्ट करे । (मासा इव सूर्य) स्व तेज द्वारा सूर्य जिस भांति जल लेता है उसी भांति वह (पुर्यम्) शत्रु के पुर, नगर, दुर्गादि का समस्त धन ले ले । (गृणानः) स्तुत्य हुआ, (विरुक्मता) विशेष दीप्तियुक्त शस्त्रादि से (शत्रून् अशृणात्) शत्रुओ का मर्दन करे ॥४॥

भावार्थः—शत्रु को हराने वाला राजा अपराजित शत्रु-बलो को विशेषतः हराए । धन स्वामियों को स्वय अनथक परिश्रमी होकर नष्ट करे । स्व तेज से जैसे सूर्य जल को लेता है, उसी प्रकार वह शत्रु के पुर, नगर, दुर्गादि का सकल धन पाए । वह स्तुत्य होता हुआ शत्रुओ का मर्दन करे ॥४॥

अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।

इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५॥

पदार्थः- वह (विभवा) भांति-भांति से उपजने वाले (विभिन्दता) तथा शत्रुपक्ष के भेदक भेद-उपाय से (अपुद्ध-सेन) बिना सेना के ही (वृत्र-हा) शत्रु को नष्ट कर (तुज्यानि तेजते) अपने मारने योग्य शत्रुओं को घटाए और (इन्द्रस्य वज्रात्) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् पुरुष के (अभि श्नथ) सर्व दिशा में मारक 'वज्र', शत्रुवर्जक बल, सैन्य, अस्त्र व पराक्रम से (अबिभेद्) सब कोई भयभीत हो और (शुन्ध्यु वय) शत्रुरूप कण्टकों को हटाने वाली सेना (प्र अक्रामत्) आगे बढ़े व (उषा अनः प्र अजहात्) शत्रु सन्तापक सैन्य अपना रथ आगे ले जाए ॥५॥

भावार्थ —वह भांति-भांति से उत्पन्न होने वाले तथा शत्रु पक्ष के भेदक भेद उपायो से बिना लड़े ही शत्रु को नष्ट कर अपने शत्रुओं को कम करे और शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के सब दिशा प्रहारक 'वज्र' रखने वाले से सभी भय खाते है ॥५॥

एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।

मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥६॥२६॥

पदार्थ.—हे शासक ! (एता) ये (त्या) विभिन्न (ते) तेरे ही (श्रुत्यानि) श्रवणीय कर्म हैं (यत्) कि तू (एक) एकाकी भी (एकम् अयज्ञम्) दान सत्संगादि रहित, कर न देने व सन्धि न करने वाले प्रत्येक शत्रु को (अकृणोः) नष्ट कर। (अधि द्यवि) धरती पर (मासाम् विधानम्) मासों की व्यवस्था (अदधा) कर और (विभिन्न प्रधिम्) टूटे हुए चक्र को भी (पिता) प्रजा-पालक जन (त्वया भरति) तेरे बल से धारें और चलाए ॥६॥

भावार्थ.—हे शासक ! ये विभिन्न तेरे ही श्रवणीय कर्म हैं। तू एकाकी भी दान सत्संगादि से रहित कर न देने सन्धि न करने वाले प्रत्येक शत्रु को नष्ट कर। धरती पर मासों का विधान कर और टूटे हुए चक्र को भी प्रजापालक जन तेरे बल से धारें, चलाए ॥६॥

इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१३९]

ऋषि विश्वावसुर्देवगन्धर्वः ॥ देवता—१—३ सविता । ४—६ विश्वावसु ॥ छन्द १, २, ४—६ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।

तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१॥

पदार्थ —(अजस्र ज्योति उत् अयान) सूर्यादि जिसके रश्मितुल्य हैं और वायु आदि केश तुल्य वह प्रभु सूर्यादि जीवनदाता ज्योतियों को उगाता है। (तस्य प्रसवे) उसकी उत्तम व्यवस्था में (विद्वान् पूषा) ज्ञानवान् एवं सर्वपोषक (विश्वा भुवनानि गोपा) व समस्त प्राणियों के रक्षक विद्वान भी सूर्य के तुल्य (सम्पश्यन्) सम्यक् रीति से ज्ञान दर्शन करता कराता हुआ (याति) चलता है ॥१॥

भावार्थ —सूर्यादि रश्मितुल्य व वायु आदि केशतुल्य हैं वह प्रभु सूर्यादि जीवनदाता ज्योतियों को उगाता है। उसकी उत्तम व्यवस्था में ज्ञानवान् तथा सर्वपोषक व सकल प्राणी-रक्षक विद्वान् भी सूर्यतुल्य ज्ञानदर्शन करता-कराता है ॥१॥

नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥२॥

पदार्थः—(नृ-चक्षाः) सभी लोगों पर दृष्टि रखने वाला विद्वान् (दिवः मध्ये) ज्ञानयुक्त क्षेत्र के मध्य (आस्ते) शोभा पाता है और (रोदसी) नर-नारियों को (अन्तरिक्षम्) भीतरी अन्तःकरण को (आपप्रिवान्) सर्व प्रकार ज्ञान-युक्त करता है। (स) वह (विश्वाची) सर्वत्र व्याप्त, (घृताची) तेज स्नेह युक्त ज्ञान-वाणियों का दर्शन व उपदेश करता है। (अन्तरा पूर्वम् अपर च) पूर्व से पश्चिम तक (केतुम्) ज्ञान को फैलाता है ॥२॥

भावार्थ —सभी लोगों पर दृष्टि रखने वाला विद्वान ज्ञानयुक्त क्षेत्र के बीच विराजता है और नर-नारियों के भीतरी अन्तःकरण को सर्व प्रकार से ज्ञानयुक्त करता है। वह सर्वत्र व्याप्त तेज स्नेह युक्त ज्ञान-वाणियों का दर्शन व उपदेश करता है। पूर्व से पश्चिम तक ज्ञान फैलाता है ॥२॥

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।

देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥३॥

पदार्थ —(रायः बुध्न) ऐश्वर्य आधार, (वसूनां सगमनः) बसी प्रजा को एक स्थान पर एकत्रित करने वाला, (शचीभि) वाणियों से (विश्वा रूपा) सभी प्रकार के रूपों, रुचिकर पदार्थों को (अभि चष्टे) आलोकित करता है। (देवः इव सविता) तेजस्वी सूर्यतुल्य सबको सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला, (सत्य धर्मा) सत्य धर्मों, व्रतों व नियमों का पालक, (इन्द्रः न) मेघ-विदारक विद्युत् या सूर्य के समान ही, (धनानां समरे) ऐश्वर्यों को दिलाने के कार्य में (तस्थौ) स्थित होता है ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्याधार बसी प्रजा को एक स्थान पर मिलाने वाला वाणियों से सभी प्रकार के रूपों, रुचिकर पदार्थों को आलोकित करता है। तेजस्वी सूर्यतुल्य सभी को सन्मार्ग में प्रेरित करता है। वह सत्यधर्म, व्रत नियम-पालक सूर्य के समान ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है ॥३॥

विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।

तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसाँ परि सूर्यस्य परिधीँरपश्यत् ॥४॥

पदार्थः—हे (सोम) विद्वन् ! (विश्वावसुम्) सकल लोकों को बसाने वाले, सबमें रमने वाले, (गन्धर्वम्) पृथिवी के धारक सूर्य की ओर जिस भांति (आप ऋतेन वि आयन्) जल के परमाणु उसके तेज बल से आते हैं उसी भांति (तत्) उस परमात्मा को, (ददृशुषीः आपः) साक्षात् करने वाले ज्ञानी, (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से (वि आयन्) विविध उपायों से पाते हैं और जिस भांति (रारहाण इन्द्र तत् अनु अवैत्) वेग गति वाला वायु उस सूर्य के ही अनुकूल चलता है और (सूर्यस्य परि आसाम् परिधीन् अपश्यत्) सूर्य के चतुर्दिक् इन जलों के परिमण्डलों को दर्शाता है, उसी भांति (रारहाण. इन्द्र.) सकल भोग विलासादि को छोड़ने वाला आत्मा, (तत् अनु अवैत्) उसी का अनुगमन करता है और (आसाम् परि) इन सभी प्रजाओं के भी ऊपर (सूर्यस्य परिधीन्) सर्वसञ्चालक परमात्मा के धारक बलों का (अपश्यत्) दर्शन करता है ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! तुम सभी लोकों को बसाने वाले, सबमें रमे पृथिवी के धारक सूर्य की ओर जिस भांति जल के परमाणु उसके तेज के बल से आते हैं, उसी भांति प्रभु का साक्षात् करने वाले ज्ञानी आप्तजन सत्य ज्ञान के बल से विविध उपायों से पाते हैं। सकल भोग विलासादि को छोड़ने वाला आत्मा उसी का अनुगमन करता है ॥४॥

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।

यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥५॥

पदार्थः—(दिव्यः गन्धर्व) ज्ञानवाणियों के धारक परमेश्वर (रजस विमानः) सकल लोकों को विशेषतः जानने व बनाने वाला है। वह (नः तत् गृणातु) हमें उस परम सत्य-ज्ञान का उपदेश दे (यत् वा सत्यम) जो सत्य है, व (यत् न विद्म) जिसे हम नहीं जानते। वही हमारी (धिय हिन्वान) बुद्धियों को प्रेरणा देता है। प्रभो ! वह ही तू (नः धिय इत् अव्या) हमारी बुद्धि व सत्कर्मों की रक्षा कर ॥५॥

भावार्थः—इस खगोल के ज्ञान को विश्वावसु आकाश का एक जातीय तत्व या सब विद्वानों का वेत्ता विद्वान् हमें बतावे हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे। मनुष्य आकाश के विद्वानों को जाने, इस मन्त्र में यह प्रेरणा है ॥५॥

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् । प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥६॥

पदार्थ — (गन्धर्व) वाणी का तत्त्व जानने वाला विद्वान् (नदीनां चरणे) नदियों के विचरने में संसार की गतियों में (सस्निम्) स्नान करने वाले मेघ को आनन्दवर्धक ईश्वर को (अविन्दत्) प्राप्त करता है (अश्मव्रजानाम् + प्रासाम्) लक्ष्य की ओर, ईश्वर की ओर जाने वाली इन नदियों के (दुर अपावृणोत्) द्वारों को खोल देता है (अमृतानि वोचत् + इन्द्र) अमृतों को, आध्यात्मिक रहस्यों को कहता हुआ इन्द्र (दक्ष) ज्ञान को (अहीनाम् परिजानत्) मेघों से भी ऊपर जानता है ॥६॥

भावार्थः— खगोल का पूरा ज्ञान योगी वेदज्ञ ही करा सकता है, क्योंकि वह मेघों से ऊपर का भी ज्ञान रखता है सब गतियों को जानता है और उन सबमें से एक आनन्दवर्धक तत्त्व को देखता है ॥६॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[१४०]

ऋषिरग्निः पावक ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१, ३, ४ निचृत्पङ्क्तिः । २ भुरिक् पङ्क्ति । ५ सस्तारपङ्क्ति ॥ ६ विराट् त्रिष्टुप् ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

पदार्थः—(अग्ने विभावसो) हे सबमें प्रकाशवान् तेजस्वी (तव श्रवः वयः) तुम्हारा यश, बल (अर्चयः) कान्तियां (भ्राजन्ते) प्रकाशित हैं (बृहद्भानो कवे) बड़ी-बड़ी किरणों के प्रकाशों को रखने वाले वाणी को गति देने वाले प्रभो (शवसा) बल से, तेज से (उक्थ्यम् वाजम्) स्तुतियोग्य तेज को, बल को अन्न को (दाशुषे) दानी यज्ञकर्ता जन के लिये (दधासि) धारण करते हो ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है वह भक्तों को अन्न, बल, तेज देता है ॥१॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।

पुत्रो मातरौ विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ —(पावक वर्चा) पवित्र करने वाले तेजयुक्त (शुक्र वर्चा) शुभ्र तेज वाले (अनून वर्चाः) पूर्ण तेज वाले (भानुना) तेज से (उत् इयर्षि) उदित हो रहे हो (पुत्रः मातरौ विचरन् + उपावसि) जैसे पुत्र माता-पिता की सेवा करते हुए उनके समीप रहता है, वैसे ही तुम (उभे रोदसी) दोनों भूलोक और द्युलोक को (पृणक्षि) पूर्ण करते हो, पालन करते हो ॥२॥

भावार्थ.—उक्त मन्त्रार्थ सूर्य पर और श्लेष से ईश्वर पर लगता है ॥२॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

पदार्थः—(जातवेदः) हे सर्वज्ञ प्रभो (ऊर्जः न पात्) तेज को नहीं गिरने देता (सुशस्तिभि, धीतिभि.) उत्तम प्रशंसाओं से, उत्तम धारणाओं से (हित) धारण किया हुआ (मन्दस्व) प्रसन्न होओ (भूरिवर्पस) बहुत रूपों वाले (चित्रोतयो) विचित्र रक्षाओं वाले (वामजाताः) सुन्दर उत्पन्न हुए (त्वे+इष) तुझमें इच्छा रखने वाले तुझे धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ —उत्तम साधक तेरा ही ध्यान करते हैं ॥३॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥४॥

पदार्थ —(अमर्त्य अग्ने) हे अमर तेजस्विन् प्रभो (जन्तुभिः) प्राणियों के नाना लोको से (इरज्यन्) ऐश्वर्ययुक्त होता हुआ (अस्मे) हमारे लिये (रायः) धन-सम्पत्ति (प्रथयस्व) बढ़ाओ (स दर्शतस्य वपुषः विराजसि) बहुत दर्शनयोग्य सुन्दर शरीर से विराजमान है भौतिक अग्नि और ईश्वर का दर्शनीय शरीर प्रकृति की शोभा, जिसमें वह व्यापक है (सान सिम् क्रतुम्) सुखदायक यज्ञ को (पृणक्षि) पूर्ण करते हो ॥४॥

भावार्थः—भौतिक अग्नि और ईश्वर की कृपा से यज्ञ पूर्ण होता है ॥४॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

पदार्थ—(अध्वरस्य, इष्कर्तारम्) यज्ञ को भली प्रकार से करने वाले (महः, राधस, क्षयन्तम) बड़े वैभव के आश्रय (प्रचेत सम्) महान् ज्ञानी को (वामस्य) सुन्दर धन के (रातिम्) सम्पत्ति को (सुभगाम् महीम् इषम्) सौभाग्ययुक्त बड़ी अन्न राशि को (सानसिम रयिम) सुखदायक धन को (दधासि) धारण करते हो ॥५॥

भावार्थः—ईश्वर का आश्रय लेने से धन, अन्न, सुख, सौभाग्य और ज्ञान मिलता है ॥५॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥२८॥

पदार्थ —(जना) यजमान लोग (ऋतावानम्) सत्य, ज्ञान और गुण, कर्म स्वभाव वाले को (महिषम्) महान् को (विश्वदर्शतम्) विश्व को देखने वाले को (अग्निम्) तेजस्वी प्रभु को (सुम्नाय) सुख के लिये (पुरः दधिरे) सामने धारण करते हैं (मानुषा युगा) मनुष्य दम्पत्ति (श्रुत्कर्णम्) सब प्रकार सुनने वाले (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त प्रसिद्ध (त्वा) तुम्हें (दैव्यम्) दिव्य को (गिरा) वाणी से स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थ —घरो मे यजमान अग्नि की स्थापना करते हैं और हृदयो मे उक्त गुण विशिष्ट ईश्वर को धारण करते है ॥६॥

इत्यष्टाविंशो वर्ग ॥

[१४१]

ऋषिरग्निस्तापसः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, निचृदनुष्टुप् । ३, ६ विराडनुष्टुप् । ४, ५ अनुष्टुप् षड्चं सूक्तम् ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥१॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजस्विन् विद्वन् वा नेता (न) हमारे लिए (इह अच्छा वद) उत्तम वाणी बोलो (प्रत्यङ् नः) हमारे सामने (सुमना भव) अच्छे मन वाले होओ (विशस्पते) हे प्रजापते (नः प्रयच्छ) हमारे लिए धनादि दे (त्वं न. धनदा असि) तुम हमें धन देने वाले हो ॥१॥

भावार्थः—विद्वान्, नेता, राजा हम पर प्रसन्न रहें ॥१॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥२॥

पदार्थ —(नः) हमारे लिये (अर्यमा प्रयच्छतु) नियामक अधिकारी धन दे (भग.) भाग्य का देवता दिव्य शक्ति (बृहस्पतिः) वेदज्ञ विद्वान् (प्र-प्रयच्छतु) धन दे (प्र देवा) दिव्य शक्तियां (उत) और (सूनृता देवी) सत्य और मधुर वाणी (नः राय. ददातु) हमें धन दे ॥२॥

भावार्थः—उक्त दिव्य गुणों को धारण करने से धन मिलता है ॥२॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥३॥

पदार्थः—(अवसे) रक्षा के लिये (सोमम्, राजानम् अग्निम्) सोम, राजा और अग्नि को बुलाते हैं (आदित्यान्) आदित्यों को (विष्णु) विष्णु को (सूर्यम् ब्रह्माणम्) सूर्य को, ब्रह्मा को (च) और (बृहस्पतिम्) बृहस्पति को आह्वान करते हैं ॥३॥

भावार्थ —उक्त देवता भौतिक शक्तियां है और आत्मिक गुण भी, उपायों द्वारा इनको जागृत करके मनुष्य बहुत लाभ उठा सकता है ॥३॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ॥४॥

पदार्थ —(सुहव) हे सुन्दरता से पुकारे जाने वाले (इह) इस यज्ञ में (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु को (बृहस्पतिम्) बृहस्पति को (हवामहे) बुलाते हैं (यथा) जिस प्रकार (न.) हमारे लिये (सर्व , जन , इत्) सब ही जन (संगत्यां सुमना., असत्) संगति मे अच्छे भावों वाले हो जावें ॥४॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५॥

पदार्थ —हे साधक तू (अर्यमणम्) विश्व के नियामक (बृहस्पतिम्) वेद-वाणियों के पति (इन्द्रम) सर्वैश्वर्य से पूर्ण (वातम विष्णुम) व्यापक सर्व में समाये हुए (सरस्वतीम्) वाग्देवी को (च) और (वाजिनम् सवितारम्) शक्ति-शाली जगत् उत्पादक को (दानाय) दान के लिये (चोदय) प्रेरित कर ॥५॥

भावार्थ —उक्त गुण विशिष्ट प्रभु से लौ लगा तो जो चाहता है वह मिलेगा ॥५॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥६॥२९॥

पदार्थ —(हे अग्ने) तेजस्विन् प्रभो (त्वम) तुम (न) हमारे लिए (अग्निभि.) ज्ञानियो से (ब्रह्म) ज्ञान को (च) और (यज्ञम) यज्ञ को (वर्धय) बढ़ाओ (त्वम्) तुम (देवतातये) देवो के दानार्थ देवकार्यार्थ (दानाय) दान के लिये (रायः) धनों को (चोदय) प्रेरित कर ॥६॥

भावार्थ —प्रभु हमें शुभ कर्मों मे लगाने को धन दे ॥६॥

इत्येकोनत्रिंशो वर्ग. ॥

[१४२]

ऋषि शार्ङ्गाः । १, २ जरिता । ३, ४ द्रोण । ५, ६ सारिसृक्वः । ७, ८ स्तम्बमित्रः । अग्निर्देवता ॥ छन्द —१, २ निचृज्जगती । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृदनुष्टुप् । ८ अनुष्टुप ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य१न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥१॥

पदार्थः—(हे अग्ने) हे तेजोमय प्रभो (अयम् जरिता) यह स्तुति करने वाला (अपि त्वे । अभूत्) तुझमे हो जाये, तेरी उपासना मे तन्मय हो जाये (सहसः सूनो) बल के उत्पादक (नहि+ अन्यत्+आप्यम्+अस्ति) और कुछ प्राप्तव्य नहीं है । (भद्रम् हि शर्म त्रिवरूथम् अस्ति) भद्र कल्याण जो तीन घरो वाला है अर्थात् शारीरिक, मानसिक कल्याण वह हमे प्राप्त हो (हिंसानाम् दिद्युत्) हिंसकों का चमकीला शस्त्र (आरे अपाकृधि) दूर कर दो ॥१॥

प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपा इव त्मना ॥२॥

पदार्थ —(अग्ने) हे अग्ने ! (पितूयत) पालक (ते) तेरा (जनिमा) जन्म (प्रवत) भली-भांति आगे बढ़ने वाला होता है (साची । इव) सहयोगी के समान (विश्वा भुवनानि) सब भुवनो का (न्यृञ्जसे) वश मे करता है (सप्तयः) घोड़े अर्थात् इन्द्रियां (नः) हमारी (धियः प्रसनिषन्त) बुद्धियो को प्रेरणा देती हैं अपने से (पशुपाः+इव) ग्वाले के समान (पुरश्चरन्ति) आगे चलती हैं ॥२॥

भावार्थ.—यह अग्नि है नेता जो विश्व को वश मे कर सके जिसकी इन्द्रियां बुद्धि तथा कर्म गतिशील हो ॥२॥

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥३॥

पदार्थ.— (अग्ने) हे अग्न (बहो , उलपस्य बप्सत्) बहुत से तृणो को खाता हुआ (स्वधावः) अपनी शक्ति से युक्त (उ) आश्चर्य रूप से सम्पन्न है (परिवृणक्षि) शत्रु को नष्ट कर देता है (उत्) और (उर्वराणाम्) उपजाऊ भूमि खण्ड (खिल्याः भवन्ति) ऊसर हो जाते हैं (मा ते तविषीं हेतिम् चुक्रुधाम) हम तेरे शक्तिवान शस्त्र को क्रोधित न करें ॥३॥

भावार्थ.—तीव्र अग्नि खेती को जलाकर भूमि को मैदान बना देती है, इसी प्रकार सेनापति शत्रु देश को उजाड़ देता है अग्नि को और सैनिक शक्ति को कभी नहीं छेड़ना चाहिए ॥३॥

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।

यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥४॥

पदार्थः—हे सेनापते (यत्) जब तुम (उद्वत निवत यासि) ऊंचे-नीचे स्थानो को पार करते हो (बप्सत्) भक्षण करते अर्थात् विनाश करते हुए (प्रगर्धि सेना इव) राज्यों पर विजय चाहने वाली सेना के समान (पृथक् एषि) अलग-अलग जाते हो (यदा) जब (वातः) वायु (ते) तेरे (अनुवाति) अनुकूल चलता है तब तेरी (शोचि) लपट (वप्ता+इव श्मश्रु) हजामत करने वाला नाई जैसे दाढ़ी मूछो को (वपसि) काट देता है, इसी प्रकार तू (भूम) शत्रु भूमि को (प्रवपसि) उजाड़ देता है ॥४॥

भावार्थः—सेना की उपमा अग्नि और नाई से देकर कितनी भयंकरता दिखाई है, युद्ध की । युद्ध में हरे-भरे देश उजड़ जाते हैं ॥४॥

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।

बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे तेजस्विन् सेनानायक (यत्) जब तू (बाहू) बाहुओं को (अनुमर्मृजान) मलते हुए (न्यङ्, उत्तानम् भूमिम) नीचे ऊपर की भूमि को (एषि) प्राप्त होता है तब (अस्य श्रेणयः) इसकी पंक्तियां (प्रति ददृश्रते) प्रत्येक को दिखाई पड़ती हैं, (एक नियानम्) एक मार्ग है (बहवो रथास) बहुत से रथ हैं ॥५॥

भावार्थ—खम्भ ठोक कर वीर सेनापति नीची, ऊंची सभी भूमियों को पार कर जाता है, उसके रथ सेना पंक्तियां अनेक हैं पर लक्ष्य सबका एक है, विजय ॥५॥

उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।

उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥६॥

पदार्थ—(अग्ने) सेनापते (ते शुष्माः) तेरी ज्वालायें शक्तियां (उत् जिहताम्) ऊपर उठे (ते अर्चि) तेरा तेज (उत्) ऊपर उठे (शशमानस्य वाजा.) खाते हुए, जलाते हुए, भूमि को अधिकृत करते हुए तेरी शक्तियां, तेज बल (उत्) उन्नत हो (वर्धमान) बढ़ता हुआ, बधाई पाता हुआ तू (उच्छ्वञ्चस्व) उन्नत हो (निनम) विनम्र हो (अद्य त्वा) आज तुम्हें (विश्वे वसवः) सब नेता भी (आसदन्तु) प्राप्त हो तेरा आश्रय लें ॥६॥

भावार्थ—नेता का तेज सर्वत्र फैल जाये सब उसका आश्रय लें । अग्नि-अग्रणी, नेता ॥६॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥७॥

पदार्थ—(इदम् अपाम् नि, अयनम्) यह जलों का स्थान है तथा (समुद्रस्य निवेशनम्) समुद्र का घर है, मेघ का स्थान है, (इत अन्यम् पन्थाम् कृणु, कृणुष्व) इससे अलग मार्ग बना । (तेन) उस मार्ग से (वशान्) वश मे किए हुए देशों को, वश किए हुए लोकों को, ज्ञानों को (अनुयाहि) प्राप्त कर ॥७॥

भावार्थ—यह संसार अप् अर्थात् कर्मों का स्थान है, कर्म-भूमि है, यह भव सागर है, यह अलग मार्ग, मुक्ति मार्ग बना ॥७॥

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।

ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥८॥३०॥७॥

पदार्थ—(ते आयने, परायणे) तेरे आने-जाने मे (पुष्पिणी दूर्वा रोहन्तु) फूलों भरी घासें उगें यह मुहावरा है अर्थात् तुम्हारे मार्ग सुखदायक हो (च) और (समुद्रस्य इमे गृहा) समुद्र के ये घर (ह्रदा) तालाब अर्थात् बड़े-बड़े सरोवर (पुण्डरीकाणि) कमल पुष्प (रोहन्तु) उगावें ॥८॥

भावार्थः—तुम्हारा उद्योग सफल सुखदायक हो ॥८॥

इति त्रिंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[१४३]

ऋषि अत्रि सांख्य ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द—१—५ अनुष्टुप् ॥ ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।

कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

पदार्थः—(हे अश्विनौ) हे प्राणो-अपानो ! (त्यं चित्) तुमने ही (अत्रिम्) अत्रि को [जो तीन तापो से रहित हो जाये, वह अत्रि है] (अर्थम् यातवे) काम की ओर जाने वाले (अश्व न) घोड़े के समान (ऋतजुरम्) रोग रहित, जीर्णता रहित, (कक्षीवन्तम्) कक्षीवान् को [जो कमर बांधे तैयार रहें] चुस्त, कर्मशील (यदि) अगर (पुन) फिर (नवम् रथम् न) फिर नए रथ के समान (कृणुथ) कर दिया तो हमें भी ऐसा ही करिए ॥१॥

भावार्थ—प्राण-अपान के साधने अनेक रोग दूर हो जाते हैं, मनुष्य अत्रि [त्रितापरहित] बन जाता है, परन्तु होना चाहिए [कक्षीवान्] काम करने वाला ॥१॥

त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।

दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥

पदार्थ—(यम् चित्) और जिस (अरेणव) प्राणों ने (वाजिनम् अश्वम् न) शक्तिशाली घोड़े के समान (अयत्नत) बांधा है, (त्यम् अत्रिम्) उस त्रिताप रहित जीव को (यविष्ठम्) शक्ति-सम्पन्न को (आरज) भौतिक जगत् तक (दृळ्ह ग्रन्थि, न) दृढ गांठ के समान (विष्यत) खोल दो अर्थात् प्रकृति बंधन से मुक्त कर दो ॥२॥

भावार्थ—प्राणापान की साधना से भव बन्धन कट जाते हैं । अश्विनौ हैं प्राण+अपान ॥२॥

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।

अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

पदार्थः—(हे दंसिष्ठौ नरौ) हे उत्तम कर्मवादी नेताओ ! (अत्रये) अपने भक्त जीव के लिए (शुभ्राः, धिय) स्वच्छ बुद्धियां (सिषासतम्) सिखाओ (अथ हि) और निश्चय (नरा) नेता को (वाम्) तुम दोनो (पुन) फिर (दिव) प्रकाश से (स्तोमः न) स्तुति के तुल्य (विशसे) विशेष शासन के लिए [उपदेश दो] ॥३॥

भावार्थः—प्राण-शक्ति की प्रशंसा है ॥३॥

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।

आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥४॥

पदार्थ—(हे सुराधसा, अश्विना) उत्तम आराधना से प्रसन्न हे ईश्वर की शक्तियो ! (वाम्) तुम दोनो (चिते) चेतन जीव के लिए (राति) धन-सम्पत्ति (सुमतिः) उत्तम बुद्धि [दान दें] (यत्) जो कि (नरा) हे नेताओं, ईश्वरीय गुणो (पृथौ, समने सदने) विशाल ज्ञानयुक्त घर में, इस लोक में (न पर्षथः) हमारा पालन करो ॥४॥

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।

यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

पदार्थ—(हे नासत्या) हे अश्विनो ! (आरजस समुद्रे) इस संसाररूपी समुद्र से (युवाम्) तुम दोनों (ईङ्खितम्) डोलते हुए (भुज्युम्) कर्म-फल भोक्ता जीव को (सातये) हित के लिये (पतत्रिभि) चप्पुओं से (अच्छा कृतम्) अच्छी तरह पार करने को (यातम्) चलो ॥५॥

भावार्थः—संसार सागर मे गोते खाते हुए जीव को पार करो ॥५॥

आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।

समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥६॥१॥

पदार्थः—(विश्ववेदसा) सबको जानने वाले (वाम्) तुम दोनों [सूर्य-चन्द्र, दिन-रात] (सुम्नै) सुखदायक उपदेशों से (शयू, इव) शान्तिदायक के समान (मंहिष्ठा) हमे कल्याण देने वाले होओ । (हे नरा) हे नेताओ ! (पिप्युषी, इष) उत्तम वर्षाएं और अन्न (उत्सम् न) दुग्ध वर्षा के समान (अस्मे) हमारे लिए (समभूषतम्) भरण कराइए ॥६॥

भावार्थ—आपकी कृपा से अभी हमे सब सुख साधन प्राप्त हो ॥६॥

इति प्रथमो वर्गः ॥

[१४४]

ऋषि सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायन ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ६ निचृद्गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । २ आर्ची स्वराड् बृहती । ५ सतोबृहती । ६ निचृत् पंक्ति ॥ षड्च सूक्तम् ॥

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते ।

दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥१॥

पदार्थ —(अयं हि अमर्त्यः) यह निश्चय अमर (इन्दुः) चन्द्र (दक्षः) चतुर, बुराइयो को वहन करने वाला (विश्व+आयुः) पूर्ण आयु वाला वा सबको आयु देने वाला (अश्व न) अश्व के समान (वेधसे ते) तुझ विधाता के लिये (पत्यते) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—सूर्य के समान चन्द्र भी प्रकाश देता है और उसका प्रकाश आयुवर्धक है ॥१॥

अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।

अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥२॥

पदार्थः—(अयम्) यह इन्दु (अस्मासु) हममे (काव्यः) विचित्र है, अद्भुत है (ऋभुः) तेजस्वी है, (दास्वते वज्रः) अपने को दान कर देने वाले साधक के लिए वज्र है, शक्तिदाता है (अयम्) यह (ऊर्ध्वकृशनम्) उच्चता प्राप्त कराने वाले अग्नि को (मदम् बिभर्ति) आनन्द से भर देता है (ऋभुर्न) प्रकाशमान विद्वान् के समान (कृत्व्यम् मदम्) कर्म करने वाले यजमान को आनन्द देता है ॥२॥

भावार्थः— यह भौतिक चन्द्र और सूर्य की बाते नहीं, आध्यात्मिक ज्ञानप्रकाश का वर्णन है ॥२॥

घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः ।

अवं दीधेदहीशुवः ॥३॥

पदार्थ—(श्येनाय कृत्वने) प्रशंसित कर्मकर्ता यजमान के लिये करने को (घृषुः) कान्तियुक्त तेजोमय (आसु स्वासु) इन अपनी शक्तियो मे (वंसग) व्याप्त हुआ (अहीशुव) उत्तम शक्तियो को (अवदीधेत्) प्रकाशित करे ॥३॥

भावार्थ —यजमान के लिए सब प्रकार से शक्ति मिले ॥३॥

यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।

शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः ॥४॥

पदार्थ.—(श्येनस्य पुत्रः य सुपर्णः) जो गरुड है (परावतः) दूर से (आभरत्) लाता है, (य.) जो (अह्यः) अविनाशी है (शतचक्रम् वर्तनिः) सौ चक्र वाला मार्ग है ॥४॥

भावार्थ.—यह कूट पद है श्येन [बाज] सुपर्ण [गरुड] अन्योक्ति शब्द है आध्यात्मिक वर्णन है ॥४॥

यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।

एना वयो वि तार्यायुर्जीवसं एना जागार बन्धुता ॥५॥

पदार्थ —(ते) तेरे लिए (श्येन) ज्ञानी गुरु (चारुम्) उत्तम (अवृकम्) विदीर्ण न करने वाला अर्थात् दोषरहित (अरुणम्) लाल, सुन्दर (अन्धसः, मानम्) अन्न के तेज को (आ अभरत्) धारण करता है। (एना) इससे (जीवसे) जीवन के लिए (वय आयु) शक्ति और आयु (वितारि) विस्तृत होती है। (एना) इससे (बन्धुता जागार) प्रेमभाव जागता है ॥५॥

भावार्थः—जो आत्मिक उपदेश गुरु दे रहा है यह जीवन है। इससे विश्व मे प्रेम बढ़ेगा। यहाँ वय और आयु पुनरुक्तवदाभास अलंकार जता रहे हैं ॥५॥

एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।

क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥६॥२॥

पदार्थ—(इन्दुना) तेज से (इन्द्र) इन्द्र, सूर्य वा तेजस्वी विद्वान् (तत्) उस (महि त्यजः, चित्) उस महत्वपूर्ण बल को (देवेषु) ज्ञानियों में (धारयति) धारण करता है (क्रत्वा) यज्ञ द्वारा (वयः आयुः) बल और आयु (वितारि) वितरित करता है (सुक्रतो) हे कर्मकर्ता यजमान (क्रत्वा) यज्ञ से (अयम्) यह तेज (अस्मत्+आसुत) हमारे लिये निचोड़ा गया है ॥६॥

भावार्थः—[इन्द्र] जीवात्मा, [इन्दु] सोम। जब आत्मा में सोम का, ईश्वरीय प्रेम का विकास होता है तब आत्मा आनन्द से विभोर हो उठता है ॥६॥

इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१४५]

ऋषिः इन्द्राणी ॥ देवता—उपनिषत्सपत्नी बाधनम् । छन्द.— १, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ४ अनुष्टुप् । ३ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।

यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

पदार्थ.—(इमाम् वीरुधम् ओषधीम् खनामि) मैं इस पौधे रूप वा, विपरीतता से रोकने वाली वा विशेषता को रोकने वाली वा विशेष रोकने वाली औषधि को खोदती हूँ। (यया) जिससे (सपत्नी) सौत (बाधते) बाधा देती है (यया) जिससे (पतिम्) पति को (संविन्दते) प्राप्त कर रही है ॥१॥

भावार्थः—सपत्नी यह माया, जिसके द्वारा मुझे पति से मिलने में रुकावट डालती है उस [वीरुध] विशेष रोकने वाली जड़ी को उखाड़ती हूँ जिसके द्वारा पति को प्राप्त किया है, उसे भी ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।

सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥२॥

पदार्थ —(उत्तानपर्णे) फैले हुए पत्तो वाली, (सुभगे) हे सुन्दर भाग्य वाली (देवजूते) हे देवी ! [इन्द्रियो से सेवित] (सहस्वति) हे शक्ति वाली (मे सपत्नीम्) मेरी सौत को (पराधम) परास्त कर (पतिं मे कुरु) पति को केवल मेरा कर दो ॥२॥

भावार्थ —भगवद्भक्ति की सब बाधाए दूर हों और प्रभु हमारे हो जाए ॥२॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।

अधा सपत्नी या ममाऽधरा साधराभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(उत्तरे) हे उन्नतियुक्त (अहम् उत्तरा) मै उन्नत हूँ (उत्तराभ्य) उन्नति वालियों से (इत्+उत्तरा) निश्चय उन्नत हूँ (अध) और (मे सपत्नी) मेरी सौत (सा) वह (अधराभ्य अधरा) नीचो से भी अधिक नीच है ॥३॥

भावार्थः—स्वाभिमान जागृत करता है ॥३॥

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने ।

परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥४॥

पदार्थः—(अस्या. नाम नहि गृभ्णामि) इसका नाम नही लेती हूँ (अस्मिन् जने नो रमते) इस जन मे प्रेम नही करती हूँ (पराम् इव परावतम्) दूर की वस्तु के समान दूर अति दूर (मे सपत्नीम् गमयामसि) मेरी सौत को भेज दो ॥४॥

भावार्थः – सौत अर्थात् प्रभु मिलन मे बाधक शक्तियाँ दूर हों तो ईश्वर का प्रेम प्राप्त हो ॥४॥

अहमस्मि सहमानाऽथ त्वमसि सासहिः ।

उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

पदार्थ —(अहम् सहमाना, अस्मि) मैं सहनशक्ति वाली हूँ (अथ) और (त्वम् सासहिः असि) तू शक्ति वाली हो (उभे सहस्वती भूत्वी) दोनो शक्तिशालिनी बनकर (मे सपत्नीम्) मेरी सौत को (सहावहै) परास्त करें ॥५॥

भावार्थ—यहाँ उस विरुद्ध क्रिया को भी अनुकूल करने की प्रार्थना है अविद्या विद्या बनकर माया का विरोध करे ॥५॥

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥३॥

पदार्थ.—हे साधक आत्मन् (ते उप-सहमानाम् अधाम्) शक्तिवती को मैं विद्या धारण करती हूँ (त्वा) तुझे (सहीयसा) शक्ति से (अधाम्) धारण करती हूँ (माम् अनु) मेरे पीछे (ते मनः) तेरा मन (गो वत्सम्+इव) गाय बछड़े की ओर जैसे (धावत) दौड़े (पथा) मार्ग से (वा. इव) जल के समान (धावत) दौड़े ॥६॥

भावार्थ —पूरा सूक्त ५ तक अन्योक्ति रूप मे है। सौत है माया, पति है ब्रह्म औषधि है अविद्या और विद्या। जब साधक अविद्या को उखाड़ कर विद्या प्राप्त कर लेता है तो विद्या कहती है कि तेरा मन सदा मुझमे लगे ॥६॥

इति तृतीयो वर्गः ॥

[१४६]

ऋषिर्देवमुनिरैरम्मद ॥ देवता—अरण्यानी ॥ छन्द.—१ विराडनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४, ६ अनुष्टुप् । षड्चं सूक्तम् ॥

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।

कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीँ ॥१॥

पदार्थः—(अरण्यानि) हे वन समूह (या असौ) जो यह तू (प्रेव) पहले से ही आगे-आगे बढ़ता है (कथा ग्रामम् न पृच्छसि) अपने पास पहुँचे हुए को क्यों नहीं पूछते (न त्वा भी. इव विन्दती) तुझे भय सा नही लगता ॥१॥

भावार्थ —यह ससार एक वन है इसी पर यह अन्योक्ति चरितार्थ हो रही है। ससार अपार है, चला जा रहा है, जन्म मृत्यु पुन जन्म मृत्यु ॥१॥

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।

आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥२॥

पदार्थः—(वदते वृष-रवाय) उपदेशक गुरु के पास (चित् चिकः) ज्ञान कामनाकर्ता जन (उपावति) प्राप्त होता है। वह (अरण्यानिः) ऋणादि रहित वानप्रस्थ जीवन बिताने वाला पुरुष (आघाटिभि इव) बारम्बार पछाड़े वस्त्र के तुल्य वा वीणा के स्वरों के समान स्व अन्त करण को (धावयन्) शुद्ध करता हुआ (महीयते) प्रतिष्ठा पाता है ॥२॥

भावार्थ —ज्ञान की कामना करने वाला व्यक्ति उपदेशक गुरु के समक्ष जब वानप्रस्थ आश्रम मे जीवन बिताता हुआ पहुँचता है तो वह अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता हुआ महान् प्रतिष्ठा पाता है ॥२॥

उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।

उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥३॥

पदार्थः—जैसे वन मे (गावः अदन्ति) गौवें चरती है उसी भांति विद्वान् वानप्रस्थ मे विभिन्न वाणियां विचरा करती है और वह स्वयं (वेश्म इव दृश्यते) गृह तुल्य, शिष्यो का एकमात्र शरण प्रतीत होता है। (उतो) और (साय शकटी इव) साय काल जैसे वन से नाना विभिन्न गाड़ियां चारा, लकड़ी इत्यादि लेकर निकलती है वैसे ही वह वानप्रस्थ व्यक्ति भी अनेक शक्तियो एव वाणियो को उपजाता है ॥३॥

भावार्थ —वन मे जैसे गौवें चरती है, उसी भांति विद्वान् वानप्रस्थ भी विभिन्न ज्ञान से शिष्यो को लाभान्वित करता है। वानप्रस्थ पुरुष भी अनेक शक्तियों व वाणियो को उपजाता है ॥३॥

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।

वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥४॥

पदार्थ.—(अङ्ग) हे महान् ! (अरण्यान्याम्) ऋणमुक्त दशा मे (वसन्) बसता हुआ (एष) अमुक व्यक्ति (गाम् आह्वयति) वाणी का अभ्यास करता है एवं (एष.) अमुक जन (दारु अप अवधीत्) काष्ठ तुल्य ज्ञान शस्त्र से अज्ञान को नष्ट करता है और वह अमुक व्यक्ति उस स्थिति मे (अक्रुक्षत् इति मन्यते) भगवान को ही स्मरण करे ऐसा कर्त्तव्य समझता है ॥४॥

भावार्थः—जो व्यक्ति ऋणमुक्त हो ज्ञान का सहारा लेता है वह अज्ञान का नाश करता है और प्रभु का स्मरण करना अपना कर्त्तव्य मानता है, वही श्रेष्ठ है ॥४॥

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।

स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥५॥

पदार्थः—(अरण्यानि) वानप्रस्थी (न वै हन्ति) हिंसा नहीं करना एवं (अन्यः इत् च) दूसरा कोई भी रिपु होकर (न अभि गच्छति) उस पर हमला नहीं करना। वह (स्वादोः) सुख से स्वाद लिए जाने, करने योग्य वृक्ष का (फलस्य) फल (जग्ध्वाय) खा करके (यथा-कामम्) स्व उत्तम सकल्पानुसार (नि पद्यते) रहता है ॥५॥

भावार्थः—सच्चा वानप्रस्थ न किसी की हिंसा करता है और न ही, उसका किसी से शत्रुभाव रहता है। वह उत्तम संकल्पानुसार जीवनयापन करता है ॥५॥

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।

प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥६॥४॥

पदार्थ —मैं (आञ्जन-गन्धिम्) अजन या आत्मा पर आये रजोविकार को परत (सु-रभिम्) सुख दाता, (बहु अन्नाम्) सुखयुक्त बहु फल युक्त, (अकृषी-वलाम्) कष्ट आवरण से युक्त, (मृगाणाम् मातरम्) आत्म-ज्ञान खोजियो के हेतु (मातरम्) मातृ तुल्य (अरण्यानिम्) वर्तमान इस वनस्थ वृत्ति का (प्र अशंसिषम्) भली-भांति वर्णन करता हू ॥६॥४॥

भावार्थ —यहाँ वनस्थ-वृत्ति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है जो आत्मा पर आए रजोविकार को नष्ट करने वाली एव सुखदाता तथा मातृतुल्य है ॥६॥४॥

इति चतुर्थो वर्गः

[१४७]

ऋषि सुमेदा शैरीषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १ विराड् जगती। २ आर्ची भुरिग् जगती। ३ जगती। ४ पादनिचृज्जगती। ५ विराट त्रिष्टुप पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।

उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१॥

पदार्थ —(यत्) जिस समय तू (वृत्रम् अहन्) आकाश आच्छादक मेघ को ताड़ता है, (नर्यम् अप विवेः) सकल जीव हितकारक जल देता है, उस (प्रथमाय) श्रेष्ठतम (मन्यवे) दुष्टो पर क्रोध करने वाले (ते) तेरे लिए (श्रत् दधामि) मैं सत्य-विश्वास को धारण करता हूँ। हे (अद्रिवः) बल वीर्य युक्त ! (उभे रोदसी) दोनो लोक (त्वा अनु भवत.) तेरे ही नियन्त्रण में हैं। तेरी (शुष्मात्) शक्ति से (पृथिवी चित् रेजते) यह धरती कपित होती है व गति करती है ॥१॥

भावार्थ —परमात्मा ही आकाश के मेघों से जल प्रदान कर सकल जीवो को हितकारक जल प्रदान करता है। उसी में सत्य विश्वास धारण करना चाहिए। वही बल वीर्य का स्वामी तथा दोनो लोको का नियन्ता है और उसी के इंगित पर धरती गति करती है ॥१॥

त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।

त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥२॥

पदार्थः—(अनवद्य) कदापि निन्दा न करने योग्य भगवन् ! (त्वं) तू (श्रवस्यता मनसा) अन्न उत्पादक इच्छा युक्त मन से, (मायिनं वृत्रम्) गर्जन करते हुए मेघ को (मायाभि.) गर्जन शील नाना विद्युतों से (अर्दयः) ताड़ता है (नरः) सकल मानव (गविष्टिषु) पार्थिव सम्पत्ति पाने के लिए (त्वाम् इत् वृणते) तुझ से ही मांगते हैं। (हव्यासु विश्वासु इष्टिषु) एवं सकल आहुति देने योग्य यज्ञों मे भी (त्वां) तुझे ही (वृणते) वरते हैं ॥२॥

भावार्थ —सभी मानव पार्थिव सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिए परमात्मा से ही याचना करें। क्योंकि वही सर्व प्रकार के सुखो व अन्न-बल का दाता है ॥२॥

ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।

अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥३॥

पदार्थ —हे (पुरुहूत) अनेक प्रजाओ द्वारा आहूत प्रभो ! (ये) जो (वृधासः) वृद्धि-कर्त्ता विद्वान् जन (मघम् आनशु) श्रेष्ठ धन सम्पदा को पा लेते हैं, (एषु) उन (सूरिषु) विद्वानों मे तू (आ चाकन्धि) सर्व प्रकार से चमकता है। हे (मघवन्) धनैश्वर्य के स्वामिन् ! वे लोग (वाजिनम्) बल, ज्ञान, वेग एव ऐश्वर्य के स्वामी तुझे ही, (तोके तनये) पुत्र, पौत्र और (परिष्टिषु) अन्य नाना वाञ्छनीय फलों को पाने के लिए और (मेध-साता) लाभ, कृषि आदि हेतु और (अह्रये धने) लज्जा भगाने वाले धन को पाने के लिए (अर्चन्ति) अर्चन करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही विद्वान् श्रेष्ठ धन सम्पदा अर्जित करते हैं। उसी का प्रकाश उनमे आलोकित होता है। वाञ्छनीय फलो, धन तथा सन्तान की प्राप्ति के लिए परमात्मा का ही अर्चन किया जाता है ॥३॥

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।

त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥४॥

पदार्थ —(य) जो विद्वान् (अस्य) इस विद्युत् के (रह्य मद) वेग उत्पादक चमत्कार से (चिकेतति) अवगत है, (स इत् नु) वही (अस्य सुभृतस्य रायः) इस उत्तम रीति से धारण योग्य ऐश्वर्य का (चाकनत्) इच्छुक है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली ! (त्वा वृध) तेरे बल से वृद्धि पाने वाला, (दाशु-अध्वरः) दान रूप अखण्ड यज्ञ कर्त्ता, (मक्षु) अति शीघ्र (नृभि) ले जाने वाले रथादि साधनो से (धना भरते) विभिन्न धन देता है ॥४॥

भावार्थ.—जो विद्वान् इस विद्युत् के वेग उत्पन्न करने वाले चमत्कार को जानता है, वही इस उत्तम रीति से धारणीय ऐश्वर्य की कामना करता है। हे ऐश्वर्य-वन् तेरे बल से वृद्धि पाने वाला दान रूप अखण्ड यज्ञ कर्त्ता अति शीघ्र ले जाने वाले रथादि साधनों से नाना धन प्रदान करता है ॥४॥

त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।

त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥५॥५॥

पदार्थ —हे (मघवन्) ऐश्वर्य वाले ! (त्व) तू (शर्धाय) बल प्राप्ति हेतु (महिना गृणान) महान् ज्ञानवान पुरुष से उपदेश पा (उरु कृधि) प्रचुर धन उत्पन्न कर और हमें (राय शग्धि) विपुल धन प्रदान करने में समर्थ हो। (त्वं न. मित्रः) तू हमारी मृत्यु से रक्षा करने वाला है, (वरुणः न मायी) तू श्रेष्ठतम है। तू ज्ञान व बुद्धि से युक्त होकर हे (दस्म) सकट मोचन ! हे (दस्म) दर्शनीय ! (नः पित्व न भक्ता) हमारा अन्नदाता होकर (दयसे) हम पर अनुग्रह करता है ॥५॥५॥

भावार्थ - परमात्मा ही हमे मृत्यु से बचाने वाला है, वही सर्वश्रेष्ठ है और ज्ञान एव बुद्धि से युक्त होकर वही सकटो का दूर करने वाला दर्शनीय अन्नदाता हम पर कृपा करने वाला है ॥५॥५॥

इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१४८]

ऋषि—१—५ पृथुर्वैन्य ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् त्रिष्टुप् ॥ २ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ ३, ५ पादनिचृत त्रिष्टुप्। आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।

आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥१॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशाली भगवन् ! हम (सु-स्वानासः) तेरे उपासक (त्वा स्तुमसि) तेरी ही वन्दना करते हैं। हे (तुविनृम्ण) अनेक धन प्राप्त करने हारे ! हम तेरी पूजा से ही (वाज ससवांसः) ऐश्वर्य पाते हैं। तू (यस्य चाकन्) जिस धन की इच्छा करे (नः) हमे वही (सुवितम् आभर) उत्तम रीति से प्राप्ति योग्य धन दे। हम (त्वा-ऊता) तेरे द्वारा सुरक्षित (त्मना) स्वसामर्थ्य मे (तना सनुयाम) विभिन्न धन पाए और दान दें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ही ऐश्वर्यवान् है, उसी की वन्दना व स्तुति से हम उत्तम रीति से धन-धान्य एवं सुख को प्राप्त कर दानशील वृत्ति धारण कर सकते हैं ॥१॥

ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्ट मर्दनकर्त्ता ! हे (शूर) वीर ! तू (ऋष्व) महान् (जातः) विख्यात है । तू (सूर्येण) सूर्य के समान (दासीः विशः) आज्ञाकारी प्रजाओं को (सह्याः) अपने नियन्त्रण में करता है । (प्रस्रवणे सोम न) नहर इत्यादि में जैसे जल होता है (गुहा हितम्) बुद्धि में स्थित वा (अप्सु गूढम्) प्राणों में गूढ रूप से हम विद्यमान तुझे (बि-भृमसि) धारते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ही दुष्टों को दण्ड देने वाला महान् वीर है । वही सूर्य के सदृश आज्ञाकारिणी प्रजाओं को अपने वश में करता है । हमें उसी परमात्मा को अपने हृदय में धारण करना चाहिए ॥२॥

अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥३॥

पदार्थः—तू (अर्यः) सभी का स्वामी, (विद्वान्) ज्ञानवान् (विप्र) मेधावी, (ऋषीणां सुमतिं चकानः) ऋषियों की शुभ मति की कामना करता हुआ, (गिरः अभि अर्च) वाणियों को स्वीकारे । हे (रथ ऊळ्ह) रथ से वहनीय रथीवत् आत्मन् ! (ये) जो तुझे (सोमैः) श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से (रणयन्त) प्रसन्न करते हैं (ते) वे हम (स्याम) बनें, (उत) और (एना) इन (भक्षैः) भजन-सेवन योग्य पदार्थों से हम तेरी सेवा करें ॥३॥

भावार्थ—हमें भजन-सेवन और योग्य पदार्थों से परमात्मा की अर्चना करनी चाहिए वही सबका स्वामी, ज्ञानवान्, मेधावी तथा ऋषियों को शुभ मति देने वाला है ॥३॥

इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशाली ! (तुभ्यं) तेरी ही (इमा ब्रह्म शंसि) ये वेद-मन्त्र रूप स्तुतियां हैं । हे (शूर) शूरवीर ! (नृणां नृभ्य) मानवों में श्रेष्ठ जनों को (दाः शवः) बल व ज्ञान देता है । (एषु चाकन्) जिनमें प्रेम एवं स्नेह है (तेभिः) उनके साथ तू (सक्रतुः भव) समान ज्ञान व कर्मवान् हो, (उत) और तू (गृणतः) स्तुति कर्ताओं वा उपदेष्टाओं की (स्तीन्) और संघ अथवा समूह बनाकर रहने वालों की (त्रायस्व) रक्षा कर ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा की महिमा ही वेद-मन्त्र रूप स्तुतियों से की जाती है । वही शूरवीर ! मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुषों को बल व ज्ञान प्रदान करता है । वही स्तुति करने वालों एवं उपदेष्टाओं की और संगठित होकर रहने वालों की रक्षा करता है ॥४॥

श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥५॥६॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) हे दुष्ट दलन करने वाले ! हे (शूर) शत्रुहन्ता ! तू (पृथ्या हवम् श्रुधि) प्रजा की प्रार्थना सुन । तू (वेन्यस्य अर्कैः स्तवसे) तेरी कामना करने वालों के अर्चनीय वचनों से (स्तवसे) स्तुत्य है । (यः) जो (ते) तेरे (घृतवन्त) जलतुल्य शीतल तथा प्रकाशयुक्त तेजोमय (योनिम्) परम पद का (आ अस्वा) सब ओर उपदेश देता है, तू उसके वचन भी सुन । (निम्नैः ऊर्मि न) निम्न स्थलों से जलप्रवाह तुल्य (वक्वा) श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वक्ता जन भी (निम्नैः) विनयपूर्ण वचनों व व्यवहारों के द्वारा (द्रवयन्त) अति शीघ्र तेरी ओर आते हैं ॥५॥

भावार्थः—हे प्रभो ! आप दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं । आप प्रजा की पुकार सुनें । तेरी विनययुक्त वचनों एवं व्यवहारों से अर्चना करने वाले अति शीघ्र ही तेरे प्रिय होते हैं ॥५॥

इति षष्ठो वर्गः ॥

[१४९]

ऋषिः अर्चन् हैरण्यस्तूपः ॥ सविता देवता ॥ छन्द—१, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१॥

पदार्थः—(सविता) सकल जगत् के उत्पादक प्रभु (यन्त्रैः पृथिवीम्) स्व नियंत्रण करने वाले साधनों व बलों से पृथिवी एवं प्रकृति को (अरम्णात्) स्थिर करता है । (सविता) सारे संसार को उपजाने वाला प्रभु (द्याम्) महान् सूर्य को (अस्कम्भने) निरालम्ब गगन में (अदृंहत्) स्थापित करता है एवं परमात्मा (धुनिम्) सबको कंपित तथा सञ्चालित करने वाले वायु को (अश्वम् इव अधुक्षत्) वेगवान् अश्वतुल्य तीव्रता से हांकता है और (अतूर्ते) अविनाशी आकाश में (बद्धम्) बंधे, (अन्तरिक्षम्) मध्य से खोखले, (समुद्रम्) विभिन्न रस प्रवाहक मेघ को भी (अधुक्षत) विद्युत् इत्यादि से प्रकाशित करता है प्रकम्पित करता है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा ही सारी सृष्टि का उत्पन्न करने वाला है । वही प्रकृति को अपनी शक्ति व साधनों से स्थिर करता है । उसी ने निरालम्ब गगन में सूर्य को स्थापित किया हुआ है । वही वायु को चलाता है तथा उस पर नियन्त्रण रखता है । वही मेघ को भी विद्युत् आदि से दीप्ति व प्रकम्पित करता है ॥१॥

यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जिसके सहारे (समुद्रः) आकाश स्थित सागर (वि औनत्) भूमि का विशेष रूप से सेचक है, (अपां नपात्) जलों का आधार (सविता) प्रभु (तस्य वेद) उस महान् शक्ति का ज्ञाता है । (अतः) इस परमात्मा से (भूः) यह पृथिवी एवं प्रकृति व्यक्त है, (अतः रज आ उत्थितम्) उसमें ही यह सकल लोक-समूह सर्वत्र चतुर्दिक् उठते हैं और उससे ही यह (द्यावा पृथिवी) आकाश व भूमि दोनों (अप्रथेताम्) विस्तार पाते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमात्मा ही जलों का आधार है । उससे ही यह पृथिवी एवं प्रकृति व्यक्त होती है, उससे ही ये सकल लोक-समूह सर्वत्र चतुर्दिक् उठते हैं और उसी से यह धरती और आकाश विस्तार पाते हैं ॥२॥

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥३॥

पदार्थ—उस (अमर्त्यस्य) अमर (भुवनस्य) महान् जगत् उत्पादक परमात्मा की ही (भूना) महान् शक्ति से (पश्चात्) उसके पीछे (इदम् अन्यत् यजत्रम् अभवत्) यह सब उससे पृथक् जड जगत् आपसी संयोग से उपजा है । (अङ्ग) हे विद्वन् ! (सवितुः) उस महान् जगत् स्रष्टा व जगत् सञ्चालक परमात्मा से ही (सु-पर्णः)उत्तम रश्मियुक्त, (गरुत्मान्) महान् पिण्डयुक्त सूर्य (पूर्वः) सर्वप्रथम, (जातः) उत्पन्न हुआ और वह (अस्य धर्म अनु) उसके धारक सामर्थ्य के समान ही सामर्थ्यवान् है ॥३॥

भावार्थः—यह जगत् परमात्मा की ही शक्ति से उपजा है । उसी ने उत्तम रश्मियों से युक्त महान् सूर्य को सबसे पहले उत्पन्न किया और वह उसके कारण सामर्थ्य के अनुरूप ही सामर्थ्यवान् होता है ॥३॥

गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४॥

पदार्थः—(गाव इव ग्रामम्) जैसे गौएं स्व ग्राम में शीघ्र ही आती हैं और (यूयुधिः इव अश्वान्) योद्धा जैसे अश्वों को पाता है और (वाश्रा इव वत्सम्) गौवें जैसे प्रेम सहित बछड़े के प्रति (दुहाना) दूध देती आती हैं, (पतिः इव जायाम् अभि न) और पति जिस भांति अपनी पत्नी को पाता है, (दिवः धर्ता) उसी भांति आकाश का धारक (विश्व-वारः) सर्ववरणीय (सविता) जगत् उत्पादक परमात्मा (न नि एतु) हमें सब प्रकारों से मिले ॥४॥

भावार्थ—अपने ग्राम में शीघ्र वापस आने वाली गौओं, योद्धाओं को मिलने वाले अश्वों और पति के पास आने वाली पत्नी के तुल्य आकाश का धारण करने वाला सर्ववरणीय जगत् उत्पादक प्रभु हमें सब प्रकार से प्राप्त हो ॥४॥

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥५॥७॥

पदार्थः—हे (सवितः) जगत् सञ्चालक ! (आङ्गिरसः हिरण्यस्तूपः) प्रत्येक अंग में रस वा बल के संचालक और रमणीय प्रभु की वन्दना करने वाला व्यक्ति (अस्मिन् वाजे) इस ऐश्वर्य हेतु (यथा त्वा जुह्वे) जिस भांति तेरी वन्दना करता है, (एव त्वा) उसी भांति तेरा (अर्चन्) अर्चन करने वाला भी (त्वा वन्दमानः) तेरी वन्दना करता हुआ, (सोमस्य अंशुम् इव) सोम के अंशु को लक्ष्य कर जागृत के तुल्य, (अहम् प्रति जागर) मैं तेरे लिए प्रतिदिन जागूं । तेरे लिए सदैव जागृत तथा सतर्क रहूँ ॥५॥

भावार्थः—सच्चे साधक को सदैव परमात्मा का स्मरण करने के सम्बन्ध में जागरूक रहना चाहिए ॥५॥

इति सप्तमो वर्गः ॥

[१५०]

ऋषिर्मृळीको वासिष्ठः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—१, २ बृहती । ३ निचृद् बृहती । ४ उपरिष्टाज्ज्योतिर्नाम जगती वा । ५ उपरिष्टाज्ज्योतिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥१॥

पदार्थ—हे (हव्य-वाहन) देवों को देने योग्य पदार्थ उपलब्ध कराने वाले प्रभो ! तू (देवेभ्य सम् इध्यसे) विश्व में आलोकित है और तू (आदित्यैः वसुभिः) प्रपितामह, पितामह व पिता भी (समिद्ध चित्) तेरी आदर पूर्वक उपासना करते हैं, तू सुख हेतु हमें मिले ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की ही हमारे पूर्वज आदरपूर्वक उपासना करते रहे हैं, हम भी उसी सुख समृद्धि दाता की उपासना करें ॥१॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥२॥

पदार्थ —(इमं यज्ञं जुजुषाणः) उपासना को प्रेम से स्वीकारता हुआ और (इदं वचः) इस स्तुति का सेवन करता हुआ (उप-आगहि) तू हमें प्राप्त हो हे (समिधान) दूसरों से सतत प्रज्वलित ! (मर्तासः) हम मानव (मृळीकाय त्वा हवामहे) सुख प्राप्ति हेतु तेरी वन्दना करते हैं । हम तो (त्वा हवामहे) तेरे ही उपासक हैं ॥२॥

भावार्थ·—परमात्मा हमारी स्तुति और उपासना को स्वीकार करे । हम मानव सुख-प्राप्ति के लिए उसी की वन्दना-उपासना करते हैं ॥२॥

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥३॥

पदार्थ —हे (अग्ने) प्रकाशपुंज ! (त्वाम् उ) तुझे ही मैं (विश्व-वारं जातवेदसं) सर्वाधिक वरणी सर्व ज्ञान उत्पादक व सकल उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता समझकर (धिया गृणे) मन, वाणी व कर्म से तेरी पूजा करता हूँ । तू (नः) हमें (प्रिय-व्रतान् देवान् आ वह) व्रत सत्कर्म के प्रेमी विद्वान् जन दे और (मृळीकाय) हमारे सुख हेतु (प्रिय-व्रतान् आ वह) व्रतों, आचरणों के प्रेमी जनों को दे ॥३॥

भावार्थ·—प्रकाशपुंज परमात्मा ही सर्वाधिक वरणीय, सर्वज्ञान का उत्पादक व सकल उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता है । हम मन, वचन, कर्म से उसी की उपासना करें । उसी की कृपा से हमें विद्वानों का सत्सग प्राप्त होता है ॥३॥

अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या३ ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥४॥

पदार्थ —(अग्नि देवानाम् पुरोहितः अभवत्) तेजपुंज प्रभु ही दानी पुरुषों के मध्य पुरोहित तुल्य सबका उपास्य हो । (मनुष्या ऋषयः) मननशील जन एव तत्त्वार्थदर्शी ऋषि (अग्नि समीधिरे) उस सकल प्रकाशक को प्रज्वलित करते हैं । मैं (महः धनसातौ) महान् ऐश्वर्य को पाने हेतु (महः अग्निम्) उस अग्नि का (हुवे) आह्वान करता हू और (मृळीकाय) सुखप्राप्ति के लिए (धन-सातौ) ऐश्वर्य-लाभार्थ उससे ही (हुवे) याचना करता हूँ ॥४॥

भावार्थ —तेजस्वी प्रभु ही दानशील पुरुषों के मध्य पुरोहित तुल्य सर्वोपास्य हो । मननशील जन एव तत्त्वार्थदर्शी ऋषि जन उस सर्वप्रकाशक को ही प्रज्वलित करते है । मैं महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये उस महान् अग्नि को ही पुकारता हूँ और सुख प्राप्ति के लिए उसी से प्रार्थना करता हूं ॥४॥

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥५॥८॥

पदार्थः—(अग्नि·) प्रकाशपुंज परमात्मा (आहवे) वन्दना करने पर (अत्रि) त्रि-ताप से रहित, (भरद्-वाज) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यधारक, (गवि-स्थिरम्) वेदवाणी व जितेन्द्रिय, (कण्व) सूक्ष्मदर्शी (त्रस-दस्युं) एव दुष्टों को भयाक्रान्त करने वाले लोगो की (प्र आवत) भाँति-भाँति रक्षा करता है तथा (वसिष्ठः) सभी बसने वालो मे श्रेष्ठतम (पुर हित) सभी के समक्ष उस पद पर विराजा पुरुष भी (अग्नि) उसी प्रभु की (हवते) पूजा करता है । (पुरोहित) सबमे अग्र स्थित व्यक्ति भी (मृळीकाय) सुखों की प्राप्ति हेतु उस परमात्मा की ही वन्दना करता है ॥५॥

भावार्थ —प्रकाशपुज परमात्मा ही त्रि ताप से रहित, वेदवाणी और इन्द्रिय गण पर स्थित जितेन्द्रिय सूक्ष्मदर्शी एव दुष्टो को भयाक्रान्त करने वाले लोगों की भली-भाँति रक्षा करता है तथा सभी बसने वालो में श्रेष्ठतम, सभी के समक्ष उस पद पर स्थित पुरुष भी उसी प्रभु को पूजते है ॥५॥

इत्यष्टमो वर्ग ॥

[१५१]

ऋषि श्रद्धा कामायनी ॥ देवता—श्रद्धा ॥ छन्द —१, ४, ५ अनुष्टुप् २ विराडनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

पदार्थ —(श्रद्धया) श्रद्धा बुद्धि से ही (अग्निः समिध्यते) अग्नि जलाई जाती है और (श्रद्धया हवि हूयते) श्रद्धा से ही यज्ञ मे हविष्य आहुति प्रदान की जाती है । हम (मूर्धनि) अपने मस्तक मे महान् परमात्मा की (वचसा) वेदवाणी के द्वारा (श्रद्धां) सत्य धारणा को (आ वेदयामसि) धारें ॥१॥

भावार्थ.—हम श्रद्धा सहित महान् परमात्मा की वेदवाणी द्वारा सत्य धारणा को धारण करें ॥१॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

पदार्थः—हे (श्रद्धे) श्रद्धेय ! तू (मे इदम् उदितम्) मेरे उत्थान को (ददतः प्रियं कृधि) दानी के लिए प्रिय बना । (दिदासतः प्रियं कृधि) और दान देने के इच्छुक के प्रति भी मेरा उत्थान भला लगे और मेरा यह उद्भव (भोजेषु) प्रजा के पालक एव (यज्वसु) दानी पुरुषों को भी (प्रियं कृधि) प्रिय प्रतीत हो ॥२॥

भावार्थ —हे प्रभो ! मेरा उत्थान दानशील जनों व प्रजापालक व्यक्तियों को प्रिय लगने वाला हो ॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

पदार्थः—(यथा) जिस भाँति (देवा) धन व विजय इत्यादि की कामना करने वाले जन, (उग्रेषु) शत्रुओं को भयभीत करने वाले (असुरेषु) बलशाली व्यक्तियों पर (श्रद्धाम्) श्रद्धा (चक्रिरे) कर लेते हैं उसी भाँति (भोजेषु यज्वसु) सबके पालक व दानी जनो मे (अस्माकम् उदितं) हमारा उत्थान भी श्रद्धेय व विश्वास्य (कृधि) बना ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार धनादि विजयादि की कामना करने वाले व्यक्ति शत्रु को भयभीत करने वाले बलवानों पर श्रद्धा रखते हैं उसी प्रकार सबके पालक व दानी पुरुषों मे हमारा उत्थान भी श्रद्धा योग्य व विश्वास्य हो ॥३॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

पदार्थ.—(देवा) तेजस्वी जन, (वायु-गोपा) एव वायुवत् बलशाली पुरुष को अपना रक्षक समझने वाले, (यजमानाः) एव यज्ञकर्ता (श्रद्धाम् उपासते) सत्यधारणायुक्त श्रद्धा को उपासते हैं और वे (हृदय्यया आकूत्या) हृदय में बसे मनोभाव से (श्रद्धां उपासते) श्रद्धा की अर्चना करते हैं । (श्रद्धया वसु विन्दते) सत्य धारणा द्वारा ही परम ऐश्वर्य पाते हैं ॥४॥

भावार्थः—सत्य धारणा से ही परम ऐश्वर्य को प्राप्त करना सम्भव होता है ॥४॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥९॥११॥

पदार्थ·—(प्रात श्रद्धां) हमारे द्वारा प्रात· श्रद्धा का आह्वान किया जाता है, (मध्यं-दिन परि श्रद्धां हवामहे) दोपहर में (सूर्यस्य नि-म्रुचि) एवं सायंकाल में भी श्रद्धा का आह्वान किया जाता है । (श्रद्धे) हे श्रद्धा तू (नः इह श्रद्धापय) हमे इस ससार मे श्रद्धा धारण करा ॥५॥

भावार्थः—हम प्रात , मध्याह्न एव सायंकाल श्रद्धा का आह्वान करें और हे श्रद्धा तू हमे इस ससार में श्रद्धा धारण करा ॥५॥

इति नवमो वर्गः ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥

[१५२]

ऋषि शासो भारद्वाज· ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥१॥

पदार्थ —हे परमात्मन् ! राजन् ! तू (इत्था) सचमुच ही (महान् शासः असि) महान् विश्व का शासन करता है । तू (अद्भुत) आश्चर्य वाला (अमित्र-खादः) तथा शत्रु नाशक है । (यस्य सखा न हन्यते) जिसका मित्र नहीं मरता और (न कदाचन जीयते) न कभी हारता ही है ॥१॥

भावार्थ —प्रभु ही विश्व का पालक व शासक है, उसके प्रति अनुरक्ति और भक्ति रखने वाला व्यक्ति कभी परास्त नहीं होता ॥१॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥२॥

पदार्थः—(स्वस्ति दाः) कल्याणदाता, (विशः पतिः) प्रजा पालक, (वृत्र-हा) विघ्नों व आवरणकारी अज्ञानों का नाश करने वाला, (वि मृधः) संग्रामकर्त्ता, (वशी) सभी को वश मे रखने वाला, (वृषा) बलशाली, (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त, (सोम-पाः) उत्पन्न जगत्, एवं ओषधि आदि का पालक, (अभयं-करः) एव अभय दाता प्रभु (नः पुरः एतु) हमे साक्षात् हो ॥२॥

भावार्थ —कल्याणदाता, विघ्न-विनाशक, अज्ञानहारी, बलशाली एवं जगत् का पालक परमात्मा हमे अभय दान दे ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥

पदार्थः—(रक्षः वि जहि) विघ्नकर्त्ता राक्षसो का भाँति-भाँति से नाश कर। (मृधः वि जहि) संग्राम रतों को भी विशेष ताड़ना दे। हे (वृत्र-हन्) शत्रुहन्ता ! तू (वृत्रस्य) बढ़ते लोभादि रूपी शत्रु के (हनू विरुज) सांघातिक साधनों को विशेषत तोड। हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (अभि-दासत) सर्व प्रकार से नाशक (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम वि जहि) क्रोध को नष्ट कर दे ॥३॥

भावार्थ —हे आत्मन् तू सर्वप्रकार से नाश करने वाले शत्रु के क्रोध को नष्ट कर दे। क्योंकि तू ही शत्रुहता व लोभादि रूपी शत्रुओ का भी विनाश करने वाला है ॥३॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) सामने आए शत्रु पर वेग से प्रहार करने वाले ! तू (नः मृध. वि जहि) हमारे हिंसक शत्रुओं का नाश कर दे और (पृतन्यतः नीचा यच्छ) सेनाओ के इच्छुकों को नीचे गिरा। (यः अस्मान् अभि दासति) जो हमारा नाश करना चाहता है उसे (अधरं तम गमय) नीचे के तिमिर मे पठा ॥४॥

भावार्थः—हे प्रभु जो हमारा नाश करना चाहता है उसको तू तिमिर के गर्त में डाल दे ॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।

वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त ! तू (द्विषत मन अप जहि) शत्रु के चित्त को दूर हटा और (जिज्यासतः वधम अप जहि) हमें मारने के इच्छुको के हथियार को नष्ट कर एव (मन्योः) अभिमानी शत्रु से हमें बचा वा (शर्म वि यच्छ) सुख शरण हमे दे। (वरीय वधम्) महानतम् शत्रु-बल को (यवय) भगा ॥५॥

भावार्थ —हे प्रभु ! तू हमारे विरोधी अभिमानी शत्रुओ से हमे बचा और हमे अपनी सुख शरण मे स्थान दे तथा शत्रु के बल को नष्ट कर दे ॥५॥

इति दशमो वर्ग ॥

[१५३]

ऋषय इन्द्रमातरो देवजामय. ॥ *इन्द्रो देवता* ॥ *छन्दः—१, निचृद् गायत्री* । *२—५ विराड् गायत्री* ॥ *पञ्चर्चं सूक्तम्* ॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।

भेजानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थ — (जातम् इन्द्रम्) ख्याति प्राप्त शत्रुहन्ता राजा को (ईङ्खयन्तीः) प्राप्त हुई (अपस्युवः) विभिन्न कर्म करने वाली प्रजा, (सु-वीर्यम् भेजानास) उत्तम वीर्य का सेवन करती हुई (उप आसते) उसका आश्रय पाती हैं ॥१॥

भावार्थ—शत्रुहन्ता शासक का विभिन्न कर्मरत प्रजा आश्रय ग्रहण करती है ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।

त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थ —इन्द्र अध्यक्ष का उद्भव। हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त ! शत्रुहन्ता (त्व) तू (बलात्) शक्ति से (सहसः) शत्रु को प्रभव करने की सामर्थ्य से, और (ओजस:) बल से, (अधि जात असि) सर्व अध्यक्ष, सर्वोपरि शासक बनता है। हे (वृषन्) बलशाली ! (त्व) तू (वृषा इत् असि) सर्वाधिक बली व सर्व सुखदाता है ॥२॥

भावार्थ.—हे बलशाली ! तू ही सर्वाधिक बलवान् और सर्व सुखों का दाता ऐश्वर्य-सम्पन्न और पराक्रमी तथा सर्वोपरि शासक है ॥२॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः ।

उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥३॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-सम्पन्न ! (त्वम वृत्रहा असि) तू विघ्न करने वाले शत्रुओ का नाशक है। तू (अन्तरिक्षम्) मध्य की भूमि वाले मध्यस्थ शासक को (वि अतिरः) शत्रुबल के छेदन-भेदन से बढ़ाता है और (ओजसा) शक्ति से (द्याम्) आकाश को सूर्य के समान तू पृथिवी वा तेजस्विनी सेना तथा सभा को (उत् अस्तभ्नाः) वश में करता है ॥३॥

भावार्थः—हे ऐश्वर्य-सम्पन्न ! तुम्ही विघ्नकारी शत्रुओ का नाश करते हो। तुम्हीं मध्यस्थ शासक को शत्रुबल के भेदन की शक्ति देते हो और वह अपने पराक्रम से तेजस्विनी सेना व सभा को वश मे रखता है ॥३॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।

वज्रं शिशान ओजसा ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशाली ! (त्वम्) तू (बाह्वो) बाहुओं में (सजोषसम्) प्रीतिमय (अर्कम्) अर्चनीय पूज्य शक्ति को (बिभर्षि) धारता है और (ओजसा) पराक्रम से (वज्रम् शिशान) शस्त्र-सेना को तीक्ष्ण कर देता है ॥४॥

भावार्थ —हे ऐश्वर्यवन ! तुम्ही अपनी बाहुओ मे प्रीतियुक्त अर्चनीय पूज्य बल को धारते हो और पराक्रम से शस्त्र-सैन्य को तीक्ष्णता देते हो ॥४॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।

स विश्वा भुव आभवः ॥५॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुहन् ! तू (ओजसा) पौरुष द्वारा (विश्वा जातानि) सभी पदार्थों को (अभि-भू असि) स्व अधीन करता है और (विश्वा-भुव) सकल भूमिया को (आ अभव) अपने अधीन करता है ॥५॥

भावार्थ —शत्रुहन्ता ही अपने पौरुष द्वारा समस्त पदार्थों को स्व अधीन करता है एव सभी भूमियों को अपने वश मे करता है ॥५॥

इत्येकादशो वर्ग ॥

[१५४]

ऋषिर्यमी ॥ *देवता—भाववृत्तम्* ॥ *छन्द —१, ३, ४ अनुष्टुप्* । *२, ५ निचृदनुष्टुप्* ॥ *पञ्चर्चं सूक्तम्* ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

पदार्थ.— (एकेभ्य) एक सरीखे व्यक्तियो से (सोमः पवते) वीर्य शक्ति अथवा सामगान का प्रवाह होता है, (एके घृतम् उपासते) एक विद्वान् यजुर्वेद के उपासक होते हैं। हे आत्मन् ! तू (येभ्य मधु) ऋग्वेद जिनमे की ऋचाए (प्र धावति) वेग से मिलती हैं (ताम् चित् एव) उन्हें भी तू (अपि गच्छतात्) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ —समान मति वाले जनो मे ही वीर्य शक्ति या सामगान प्रवाहित होता है। हे आत्मन जिनसे ऋग्वेद की ऋचाए वेग से मिलती हैं उन्हे भी तू प्राप्त हो ॥१॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।

तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

पदार्थः—(ये तपसा अनाधृष्या) जो लोग तप से पराजित नहीं होते और (ये तपसा स्वः ययु) जो तप के द्वारा मोक्षमय आनन्द को पाते है, (ये मह तप. चक्रिरे) जो महान् तप करते हैं। (तान् चित् एव अपि गच्छतात) हे जिज्ञासुओ एव जीवन मार्ग के यात्रियो ! तू उन्हें भी प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ —जो लोग तप पूत हैं और मोक्षमय आनन्द को प्राप्त होते हैं जीवन मार्ग के यात्री को उनकी सगति करनी चाहिये ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।

ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥

पदार्थ —(ये) जो (प्रधनेषु) महान् युद्धो मे (युध्यन्ते) सग्राम करते हैं और जो (शूरास) वीर जन (तनू त्यज) देह त्यागने वाले वीर हैं, (ये वा) जो (सहस्र-दक्षिणा.) सहस्रों को दान देते हैं, हे यात्रिन् ! जीव ! (तान् चित् एव अपि गच्छतात्) तू उन्हे भी प्राप्त कर ॥३॥

भावार्थः—जो महायुद्धो मे सग्राम करते हैं जो शूरवीर देह छोड़ने वाले वीर जन हैं, सहस्रो को दान देने वाले हैं जीवन यात्री को उनकी शरण लेनी चाहिए ॥३॥

ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।

पितृन्तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४॥

पदार्थ—(ये चित् पूर्वे) जो पहले के (ऋत साप) सत्यज्ञान को ग्रहण करते हैं, (ऋतावानः) यज्ञ उपासक, (ऋतावृध) सत्यन्याय की वृद्धि करते हैं (तान्) उन (तपस्वतः पितृन्) तपोनिष्ठ पालनकर्त्ताओ को (चित्) भी (यम) हे जितेन्द्रिय ! तू (अपि गच्छतात्) पाए ॥४॥

भावार्थः—व्यक्ति को अपने कल्याण के लिए उन लोगो की शरण मे जाना चाहिये जो सत्यज्ञान का सेवन करने वाले, यज्ञ के उपासक तथा सत्य न्याय को बढ़ाने वाले हैं ॥४॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥५॥१२॥

पदार्थ —(ये) जो (सहस्र-णीथा) हजारो वाणियों के जानने वाले, (कवय) क्रान्तदर्शी, (सूर्यम्) सूर्य के समान सर्वप्रेरक परमात्मा के (गोपा-यन्ति) उपासक हैं, (तान् तपस्वत: ऋषीन् तपोजान् अपि) उन तपस्वी, तपःपूत, मन्त्रद्रष्टाओं को भी (गच्छतात्) तू प्राप्त हो ।

इस सूक्त की ऋषिका यमी है और देवता सोम है ॥५॥

भावार्थ—जो व्यक्ति यम नियम से जितेन्द्रिय होकर गुरु सेवा तथा बड़ो से ज्ञानादि उपार्जन के लिए जाने को सिद्ध हैं, उनसे माता-पिता बन्धु आदि यह कह सकते हैं तुम्हें तपस्वी मन्त्रद्रष्टा जन प्राप्त हो ॥५॥

इति द्वादशो वर्ग ॥

---

[१५५]

ऋषि. शिरिम्बिठो भारद्वाज ॥ देवता —१, ४ अलक्ष्मीघ्नम् । २, ३ ब्रह्मणस्पति । ५ विश्वेदेवा ॥ छन्द—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।

शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१॥

पदार्थ—हे (अरायि) तू जो न देने वाली है । नेत्रो से न देखने वाली ! (विकटे) विकट रूपधारिणी, (सदान्वे) एव सदैव आक्रोश करने वाली अकाल वृत्ति ! तू (गिरिं गच्छ) दूर हो जा (शिरिम्बिठस्य) आकाश मे छिन्न-छिन्न होने वाले मेघो की (सत्वभि) शक्ति से (त्वा चातयामसि) हम तेरा नाश करें ॥१॥

भावार्थ —हम नेत्रो से न देखने वाली, विकट रूप वाली एव आक्रोश करने वाली दुर्भिक्ष वृत्ति को नष्ट करें ॥१॥

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।

अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥२॥

पदार्थ.—(इत चत्तो) इधर से विनाश को प्राप्त एव ताड़ित हो, (अमुत चत्ता) उस ओर से भी नष्ट या प्रताड़ित की जाय, वह (सर्वा भ्रूणानि) सब गर्भों को अथवा अकुरो या जीवों को (आरुषी) नाशक है, ऐसी (अराय्यम्) शत्रु-सेना को (ब्रह्मण पते) हे मन्त्र-पालक एव हे महान् धर्म-बल के पालनकर्ता ! हे (तीक्ष्ण-शृङ्ग) हिंसक सैन्य, आयुध आदि को तीक्ष्णता देने वाले ! तू (उद् ऋषन्) उत्तम गति से गमन करता हुआ (इहि) उसे नष्ट कर ॥२॥

भावार्थः—हे प्रभु ! तुम महान धर्मबल के पालक हो । आप ही सैन्य आयुध आदि को तीक्ष्ण करते हो । आप हमारे शत्रुओ को ताड़ित कर उनका विनाश करें ॥२॥

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।

तदा रंभस्व दुर्हणो तेनं गच्छ परस्तरम् ॥३॥

पदार्थ —(अद) वह सुदूर (यत्) जो (दारु) शत्रुबल विदारक एवं काष्ठमय नौकादि, (सिन्धो पारे) नदी अथवा समुद्रादि को पार करने को है, जो (अपूरुषम्) पुरुष के वेग से नहीं चलता है, (तत् आ रभस्व) उसे तू प्राप्त कर । हे (दुर्हणो) दुःख विनाशक ! तू (तेन) उससे (पर तरम् गच्छ) तरणीय, दूर दूर जलीय देशो को जा ॥३॥

भावार्थ —हे दुःख का नाश करने वाले तू शत्रुबल को विदीर्ण करने के लिये हमें सागरादि को पार करने की भी सामर्थ्य प्रदान कर ॥३॥

यद् प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥४॥

पदार्थ —हे वीर ! (यत्) जब (प्राची) अग्रगामी, (उरो) सुविशाल तथा शत्रुहन्ता, (मण्डूर धाणिकी) लोह बाणों की धारक तोपें (अजगन्त) जाती है, तब (इन्द्रस्य) इन्द्र, वीर शासक के (शत्रव) सभी शत्रु (बुद्बुद-याशवः) बुलबुले के तुल्य नष्ट होने वाले बनकर (हता) नष्ट होते हैं ॥४॥

भावार्थ —जिस समय सकुशल शासक अपनी गोले उगलने वाली तोपों से युक्त विशाल शत्रुहन्ता सेना को लेकर प्रयाण करते हैं तो शत्रु सैन्य बुलबुले के तुल्य नष्ट हो जाती है ॥४॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।

देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥५॥१३॥

पदार्थ —(इमे गाम् परि अनेषत) ये वीर व्यक्ति भूमि के सभी स्थानों पर जाए । (अग्निम् परि अहृषत) अपने अग्रणी अथवा नायक को पाकर उसकी सेवा करें । (देवेषु श्रव अक्रत) विद्वानो से वे ज्ञान एव अन्न को बढ़ाए । तब (क इमान् आ दधर्षति) कौन इन्हें हरा सकता है ?

भावार्थः—जो सेनाएं वीर सैनिकों पर आधारित हों और जिनका अग्रणी या सेनानायक ज्ञानवान् हो और वे उसके अनुशासन मे रहती हुई विद्वानो की रक्षक हों, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता ॥५॥

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

---

[१५६]

ऋषिः केतुराग्नेयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द.—१, ३, ५ गायत्री । २, ४ निचृद् गायत्री ॥

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।

तेनं जेष्म धनंधनम् ॥१॥

पदार्थ — (न: धियः) हमारे कर्म तथा बुद्धि, (आजिषु आशुम् इव) ज्ञान बल, ऐश्वर्य इत्यादि से सम्पन्नो के मध्य वेग व क्रिया-सामर्थ्य से युक्त (सप्तिम् अग्निम्) एवं सातो प्राणो के स्वामी एव तेजस्वी व्यक्ति को (हिन्वन्तु) प्रेरणा दें । (तेन) उससे (धन-धन जेष्म) प्रत्येक धन को जीतें ॥१॥

भावार्थ—हमारे कर्म और बुद्धि, ज्ञान बल ऐश्वर्य सम्पन्नों के मध्य वेग व क्रिया सामर्थ्य से युक्त एव सात प्राणों के स्वामी व तेजस्वी पुरुष को प्रेरणा दे जिससे वह प्रत्येक धन को विजय करे ॥१॥

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।

तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

पदार्थ—(यया सेनया) जिस सेना द्वारा तथा (यया तव ऊत्या) जिस तेरी रक्षा करने की शक्ति से हम (गा आकरामहे) भूमि व वाणियों को पाते हैं, (तां) उसी सेना तथा रक्षण शक्ति को (न मघत्तये हिन्व) हमे ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु दे ॥२॥

भावार्थ —जिस सेना और तेरी रक्षण शक्ति से हम भूमि व वाणियों को पाते हैं, उसी सेना व रक्षण शक्ति से हमे ऐश्वर्य भी प्राप्त हो ॥२॥

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।

अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम् ॥३॥

पदार्थ —हे (अग्ने) नायक आत्मा ! तू (स्थूरम्) स्थूल, (पृथुम्) व्यापक, (गोमन्तम्) इन्द्रिययुक्त (रयिम आ भर) मूर्तिमान शरीर को सर्वप्रकार से पुष्टि प्रदान कर । (खं अङ्ग्धि) इन्द्रियगण तथा हृदयाकाश को प्रकाश दे और (पणिम् वर्तय) सम्पूर्ण व्यवहार का सचालन कर ॥३॥

भावार्थः—हे नायक आत्मन् ! तू स्थूल, व्यापक, इन्द्रिययुक्त मूर्तिमान् देह को सब भांति पुष्टि दे । इन्द्रिय वा हृदयाकाश को तू प्रकाशित कर और हमारे समग्र व्यवहार का सचालन कर ॥३॥

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।

दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

पदार्थ —हे (अग्ने) प्रकाशदाता ! तू (दिवि) विपुल आकाश मे, (अजरम्) अजंरित होने वाले, (नक्षत्रम् सूर्यम्) नक्षत्र के समान अपने स्थान से न गिरने वाले सूर्य को (आरोहय) चढ़ाता है, जो (जनेभ्य ज्योति दधत्) लोगो को सतत प्रकाश प्रदान करता है ॥४॥

भावार्थ —हे प्रकाश देने वाले, महान् आकाश में जीर्ण होने वाले नक्षत्र सम अपने स्थान से न गिरने वाले सूर्य को चढ़ाता है, जो लोगों को सतत प्रकाश प्रदान करता है ॥४॥

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।

बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥१४॥

पदार्थ —हे (अग्ने) प्रकाशपुज ! तू (उपस्थ सत्) सदैव निकट रहने वाला, (प्रेष्ठ) नितांत प्रिय, (श्रेष्ठ) सर्वश्रेष्ठ, (विशां केतु: असि) प्रजा के ज्ञानदाता, सर्वोच्च ध्वजा के समान माननीय है । तू (स्तोत्रे बोध) स्तुति करने वाले को ज्ञान दे और (वय दधत्) बल, आयु, तथा ज्ञान व तेज दे ॥५॥

भावार्थ —हे प्रकाशपुज तू ही स्तुति करने वालो को ज्ञान, बल, आयु व तेज देता है ॥५॥

इति चतुर्दशो वर्गः ॥

---

[१५७]

ऋषिर्भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः । विश्वेदेवा देवता ॥ द्विपदा त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थः— (इन्द्र: च) ऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा, गुरु, विद्वान् व जीव और (विश्वे च देवा) सकल जीव, शिष्य, मानव व इन्द्रियगण, (इमा नु भुवना सीषधाम क) उन सारे उत्पन्न पदार्थों व लोकों को अपने नियन्त्रण में करें ॥१॥

भावार्थः—हे प्रभु, गुरु, विद्वान् व जीव तथा सकल जीव शिष्य, मानव व इन्द्रियां इन सकल उत्पन्न पदार्थों व लोकों को वश मे करें ॥१॥

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥२॥

पदार्थ.—(इन्द्र) अन्नदाता मेघ, सूर्य एव परमात्मा (न यज्ञ च) हमारे यज्ञ को, एव (तन्वं च) शरीर को तथा (प्रजां च) प्रजा को (आदित्यैः सह) किरणों तथा मासों के सहित (चीक्लृपाति) सामर्थ्य प्रदान करता है ॥२॥

भावार्थ·—अन्नदाता मेघ, सूर्य एव प्रभु ही हमारे यज्ञ, शरीर व प्रजा को किरणों व मासों सहित सामर्थ्य देता है ॥२॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३॥

पदार्थ.—(इन्द्रः) शत्रु के नाशक व ऐश्वर्यवान् शासक (स-गण.) स्व सैन्य दलों से, (आदित्यैः मरुद्भिः) तेजस्वी विद्वानों व बलशाली पुरुषों के द्वारा (अस्माकं तनूनां अविता भूतु) हमारे देहों एव हमारे पुत्र प्रजादिकों की रक्षा करने वाला हो ॥३॥

भावार्थ —हे शत्रुहन्ता व ऐश्वर्य-सम्पन्न राजा आप अपनी सेना, तेजस्वी विद्वानों व बलशाली पुरुषों से हमारी तथा हमारी सन्तानों आदि की रक्षा करें ॥३॥

हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥४॥

पदार्थ.—(देवाः) विजिगीषु व्यक्ति (यत्) जब (असुरान् हत्वाय) अपने से बलवान् रिपुओं को नष्ट करके (आयन्) आएं तो वे (देवत्वम् अभि रक्षमाणाः) अपनी दानशीलता और तेजस्वी स्वरूप की रक्षा करते ही रहें ॥४॥

भावार्थ:—विजिगीषु व्यक्ति जब अपने से प्रबल रिपुओं का नाश करके आए तो वे अपनी दानशीलता तथा तेजस्वीपन की रक्षा करते रहें ॥४॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५ ।१५॥

पदार्थ —हे विजय के इच्छुक व्यक्ति, (अर्कम्) अर्चना योग्य व्यक्ति को (शचीभिः) शक्तियों एव उत्तम कर्मों, अधिकारों तथा स्तुतियों से (प्रत्यञ्चम्) प्रतिपद पूज्य रूप में आगे ही आगे (अनयन्) लिए जाए, तब (आत् इत्) उसके बाद ही वे (इषिरां स्वधाम् परि अपश्यन्) अन्नदाता अपनी देह-पोषक आजीविका पाते हैं ॥५॥

भावार्थ.—हे विजय के इच्छुक जन, अर्चनीय व्यक्ति को शक्तियों व उत्तम कर्मों, अधिकारों एव वन्दनाओं से प्रतिपद पर पूज्य रूप में आगे ही लिये जाए। तभी वे अन्न देने वाली अपनी देहपोषक आजीविका को प्राप्त करते हैं ॥५॥

इति पञ्चदशो वर्ग ॥

[१५८]

ऋषिश्चक्षु सौर्यः ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् गायत्री । २ स्वराड् गायत्री । ३ गायत्री । ४ निचृद गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् ।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१॥

पदार्थ.—(सूर्य) सर्व सचालक परमात्मा (न दिव· पातु) हमारी आकाश से रक्षा करे, (वातः) वायु (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष के उपद्रवों से रक्षा करे (अग्नि. नः पार्थिवेभ्य) अग्नि हमारी धरती पर होने वाले उपद्रवों से रक्षा करे ॥१॥

भावार्थ:—हे सर्वसचालक प्रभु हमारी सभी ओर से तथा सभी प्रकार के उपद्रवों से रक्षा कीजिये ॥१॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति ।
पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥२॥

पदार्थ —हे (सवित.) सकल जगत्स्रष्टा ! (यस्य ते हर· शत सवान् अर्हति) जिससे तुम्हारा तेज सैकड़ों स्तुतियों के योग्य है वह तू (जोषा) प्रेम सहित हमारी प्रार्थना स्वीकारे वा (न) हमें (पतन्त्याः दिद्युतः पाहि) गिरती विद्युत् से बचाए ॥२॥

भावार्थ —हे जगत् स्रष्टा ! आप सैकड़ों स्तुतियों के योग्य हैं। आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमें पतन से बचायें ॥२॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दधातु नः ॥३॥

पदार्थ —(सविता देव) सर्व प्रेरक तेजयुक्त लोक तथा प्रभु (नः चक्षुः दधातु) हमें चक्षु दे। (उत पर्वत न चक्षु दधातु) और मेघ हमें उत्तम चक्षु अथवा उत्तम प्रकाश प्रदान करें। (धाता) सर्व पोषक वायु (न. चक्षुः दधातु) हमें दर्शनीय नेत्र एव प्रकाश प्रदान करें ॥३॥

भावार्थ.—सर्व प्रेरक परमात्मा हमें चक्षु प्रदान करे और मेघ हमें उत्तम प्रकाश दें। सर्वपोषक वायु भी हमें ज्योति प्रदान करे ॥३॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।
सं चेदं वि च पश्येम ॥४॥

पदार्थ:—हे परमात्मन् ! हे सूर्य ! (न. चक्षुषे चक्षु धेहि) हमारे नेत्र को ज्योति दे। (नः तनूभ्य. विख्यैः चक्षुः धेहि) तू हमारे शरीरों की विशेष कान्ति अथवा दर्शन हेतु प्रकाश प्रदान कर। जिससे (इदं) इस संसार को हम (स पश्येम च वि पश्येम च) भली प्रकार देखें एव विविध प्रकार से उसका अवलोकन करें ॥४॥

भावार्थ:—हे प्रभु ! हे सूर्य ! आप हमारे नेत्रों को ज्योति दो। जिससे हम इस ससार का भली-भांति देख सकें ॥४॥

सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षसः ॥५ ।१६॥

पदार्थ —हे (सूर्य) सबका सचालन करने वाले परमात्मा ! (सु-सं-दृशम् त्वा) उत्तम द्रष्टा तुझे (वयम् प्रति पश्येम) हम सदैव देखें और हम (नृ-चक्षसः) मनुष्यों के मध्य द्रष्टा होकर (वि पश्येम) विशेषत से या भांति-भांति से हर वस्तु को देखें ॥५॥

भावार्थ:—हे सर्वसचालक प्रभो ! हम तुझ उत्तम द्रष्टा को सदैव देखें और हम मनुष्यों के मध्य द्रष्टा होकर विशेष रूप या भांति-भांति से हर वस्तु को देखें ॥५॥

इति षोडशो वर्ग ॥

[१५९]

ऋषि शची पौलोमी ॥ देवता—शची पौलोमी ॥ छन्द —१—३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् ॥ षडृच सूक्तम् ॥

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१॥

पदार्थ.—(असौ) वह वन्दनीय (सूर्य) सूर्यतुल्य कान्तियुक्त तेजस्वी (उत् अगात्) उत्तम पद पाता है। (अय मामक भग उत्) मेरा यह ऐश्वर्य-सौभाग्य भी उदित हो। (अहम् तत् पति विद्वला) मैं उसे अपना पालक मानती हुई, (वि ससहि) विशेषत विरोधी अरियों को हराने में समर्थ होकर, (अभि असाक्षि) समक्ष आए शत्रुओं को परास्त करू ॥१॥

भावार्थ.—नारी यह कल्पना करती है कि मुझे सूर्यसम कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष प्राप्त हो। उसे पाकर मेरा सौभाग्य भी उदित हो और मैं उसे अपना पालक मानती हुई विरोधी शत्रुओं को परास्त करने में समर्थ बनू ॥१॥

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ।२॥

पदार्थ:—(अहं केतुः) मैं ध्वजा तुल्य यश वैभव को बताने वाली तथा (अहं मूर्धा) मैं सिर के तुल्य सम्माननीय, (अहम्) मैं (उग्रा) बलवती, (वि-वाचनी) विविध वचनों की वक्ता बनूं। (मम सेहानायाः) शत्रु को जीतने वाली मेरे ही (क्रतुम् अनु) कर्म अथवा इच्छा सकल्पानुकूल (पति. उप आ चरेत्) मेरा पति काम करे ॥२॥

भावार्थ —मैं ध्वजा के तुल्य यश-वैभव की वृद्धि करने वाली और शीर्षसम आदरणीय, बलयुक्त, विविध वचनों को बोलने में समर्थ एव शत्रु पर विजय पाने वाली बनूं और मेरा पति भी मेरे अनुकूल हो ॥२॥

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३॥

पदार्थ —(मम पुत्रा) मेरे पुत्र (शत्रुहन) शत्रुनाशक हों। (अथो) और (मे दुहिता) मेरी कन्या का सुदूर देश में विवाह हो (विराट्) वह विविध गुणों से युक्त हो। (उत) और (अहम् सं-जया अस्मि) मैं उत्तम जय पाने वाली होऊं। (मे उत्तमः श्लोक पत्यौ) मेरा श्रेष्ठ यश पति के हृदय में भी हो ॥३॥

भावार्थ —मेरे पुत्र शत्रुहन्ता और मेरी पुत्री भी सुदूर देश में विवाहित होकर विविध गुणों की प्रकाशक हो। मैं उत्तम जय पाने वाली बनू और पति के हृदय में भी मुझे उत्तम स्थान प्राप्त हो ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४॥

पदार्थ:—(येन) जिस (हविषा) अन्न इत्यादि सामग्री से (इन्द्र) ऐश्वर्य-सम्पन्न मेरा स्वामी, (कृत्वी द्युम्नी उत्तम अभवत्) कर्म कुशल, यशस्वी तथा उत्तम हो, हे (देवा) विद्वानो ! (इद तत् अक्रि) वही साधन करो और मैं (असपत्ना किल अभुवम्) शत्रु एव सौत से रहित होऊं ॥४॥

भावार्थ —जिस अन्नादि साधन सामग्री से मेरा स्वामी ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर यशस्वी व कर्म-कुशल हो सके। हे विद्वज्जनो वही उपाय मुझे बताओ और मैं शत्रुओं व सौत से भी मुक्त रहूँ ॥४॥

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५॥

पदार्थ:—मैं (असपत्ना) शत्रुरहित, (सपत्न-घ्नी) शत्रुहन्ता, (जयन्ती) जय पाती हुई, (अभि-भूवरी) सबको हराती हुई, (अन्यासां) दूसरे शत्रुओं की

(अस्थेयसाम् इव) अस्थिर सेनाओं के (वर्चः राध) तेज तथा धन को (आ अवृक्षम्) सब ओर से मिटा दू ॥५॥

भावार्थ.—मैं शत्रुरहित, शत्रुहन्ता, जय प्राप्त करने वाली व सबको हराने वाली होऊ और शत्रु सेना के तेज व धन को समाप्त कर सकू ॥५॥

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।

यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६॥१७॥

पदार्थः—(अह) मैं (इमा सपत्नीः) इन शत्रुदलो को (अभि-भूवरी) परास्त करने वाली बनकर (सम अजैषम्) भली-भांति विजय प्राप्त करूं । (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अस्य वीरस्य जनस्य च) इस वीर एव प्रजाजन सहित (विराजानि) विशेषत दीप्त होऊ, प्रतिष्ठा अर्जित करू ॥६॥

भावार्थ —मैं शत्रु पक्ष को हरा कर भली-भांति वीर एवं प्रजाजन के साथ प्रतिष्ठा अर्जित करू ॥६॥

इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१६०]

ऋषि पूरणो वैश्वामित्र ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३ त्रिष्टुप् । २ पाद-निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ४, ५ विराट् त्रिष्टुप ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।

इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

पदार्थ —हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (अस्य) इस (तीव्रस्य) तीव्र वेगगामी, (अभि वयस) सब प्रकार के अन्न-सम्पन्न राष्ट्र का (पाहि) पालक हो (इह) यहां (सर्वरथा हरी) सभी प्रकार के रथो को चलाने म समर्थ अश्वो को (वि मुञ्च) खोल । (त्वा) तुझे (अन्ये यजमानाम) दूसरे या शत्रु गण (मा नि रीरमन्) न लुभा पाए । (इमे सुतास तुभ्यम्) ये सारे उपजे ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरी ही सभा म समर्पित हैं ॥१॥

भावार्थ —महान् सेनापति ही उन्नतिशील सर्वप्रकार सम्पन्न राष्ट्र का पालक हो सकता है । ऐसे कुशल सेनापति के प्रति हम सब उत्पन्न ऐश्वर्य को समर्पित करें ॥१॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रु का नाश करने वाले ! (तुभ्यम् सुताः) ये ऐश्वर्य तुझे समर्पित हैं । (तुभ्यम उ सोत्वास) उपजने वाले ऐश्वय भी तेरे ही हैं । (त्वां) तुझे (श्वात्र्या) शुद्ध (गिर) वाणियां (आह्वयन्ति) सभी ओर से पुकार रही हैं । (अद्य इद सवन जुषाण) इस अभिषेक को आज प्रेम से स्वीकारता हुआ, (विश्वस्य विद्वान्) सबका जानता हुआ, (सोमम् पाहि) इस ऐश्वर्य-सम्पन्न राष्ट्र का पालक हो ॥२॥

भावार्थः—हे शत्रु का नाश करने वाले, ये ऐश्वर्य तेरे लिए है और उत्पन्न होने वाल ऐश्वर्य भी तुझे ही समर्पित हैं । तू इस सकल अभिषेक को प्रेम से स्वीकारते हुए ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालन कर ॥२॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

पदार्थ.—(यः) जो (देव काम) देने वाले परमात्मा का इच्छुक (अस्मै) इसके हेतु (सर्व-हृद) पूर्ण हृदय सहित एव (उशता मनसा) कामना स भरे चित्त से (सोम सुनोति) ऐश्वर्य उपजाता है, (इन्द्र तस्य गा) वह ऐश्वर्य-सम्पन्न उसकी वाणियो तथा भूमियो को (न परा ददाति) नष्ट नही करता और (अस्मै प्रशस्तम् इत् चारु कृणोति) उस प्रजा के हेतु प्रशसनीय सुन्दर धन उपजाती है ॥३॥

भावार्थ —जो दाता प्रभु इच्छुक इसके लिये पूर्ण हृदय से तथा कामनायुक्त चित्त के द्वारा ऐश्वर्य उपजाता है वह ऐश्वर्य सम्पन्न, उसकी वाणियो वा भूमियो को नष्ट नही करता और प्रजा जन के लिए वह प्रशसनीय एव अच्छा धन उपजाता है ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।

निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

पदार्थ —(य) जो (रेवान् न) धन-सम्पन्न के समान (अस्मै) इस परमात्मा के लिये (सोम) अन्न, ऐश्वर्य, आदर-पूजन आदि (सुनोति) प्रदान करता है (एष अस्य अनु स्पष्ट भवति) वह उसे दिन प्रति दिन दिखाई देता जाता है, (मघवा) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (तम्) उसे (अरत्नौ नि दधाति) बाहु स पकड़कर कष्टो से बचाता है और (अनानुदिष्ट) बिना प्रार्थना ही के (ब्रह्म द्विष हन्ति) वेद तथा विद्वानों के शत्रुओ को नष्ट कर देता है ॥४॥

भावार्थः—जो परमात्मा के प्रति अपना ऐश्वर्य, आदर सत्कार व पूजादि प्रदान करता है परमात्मा उसे कष्टो से स्वय उतार लेता है और बिना प्रार्थना ही वेद व विद्वानो के शत्रुओं को मिटाता है ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥१८॥

पदार्थ —(वयम्) हम (अश्वायन्तः गव्यन्त वाजयन्त) अश्वो, गौओ, एवं कर्मेन्द्रियो तथा ज्ञानेन्द्रियो की कामना करने वाले, (त्वा उपगन्तवै हवामहे) तुझे पाने को तेरा आह्वान करते हैं । (ते नवायां सुमतौ) तेरी शुभ मति में, (आभूषन्त) सर्व प्रकार से बसते हुए, हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-सम्पन्न ! (त्वा शुन हुवेम) तुझे सुख सहित बुलाए ॥५॥

भावार्थ —हम सकल पदार्थों व कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियो की कामना करने वाले परमात्मा की शुभ मति मे रहते हुए उसी का आह्वान करें ॥५॥

इत्यष्टादशो वर्ग ॥

[१६१]

ऋषिर्यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः ॥ देवता—राजयक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः—१, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

पदार्थः—हे रोगी ! (त्वा) तुझे, (अज्ञात-यक्ष्मात्) प्रकट न होने वाले (उत) और (राज यक्ष्मात्) प्रकट राज्यक्षमा [तपेदिक] मे (क जीवनाय) सुख सहित जीने हेतु (मुञ्चामि) मुक्त करता हूं । (यदि ग्राहि) यदि ग्राही नामक शरीर जकड़ने वाले रोग ने (एनम् जग्राह) तुझे जकड़ा है तो (तस्याः) उस रोग से भी (इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तम) विद्युत् व अग्नि के गुणयुक्त औषधियां मुक्ति दें ॥१॥

भावार्थ —यहां रोगी को यह आश्वासन प्रदान किया गया है कि यदि वह राज्यक्षमा से पीड़ित है तो भी प्रभु कृपा से रोग मुक्त हो सकता है । यदि वह ग्राही नामक शरीर को जकड़ने वाले रोग से ग्रस्त है तो विद्युत् एव अग्नि के गुणयुक्त औषधियां मुक्त कराए ॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।

तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ —(यदि क्षितायु) यदि किसी रोगी की जीवन शक्ति समाप्त हो, (यदि वा परा इत) यदि वह सीमा से भी परे हो गया है, (यदि मृत्यो. अन्तिकं) यदि वह मृत्यु के सन्निकट (नीत एव) चला गया है, तो भी (तम्) उसे मैं (निर्ऋते उपस्थात् आ हरामि) भारी कष्टप्रद रोग के पजे से मुक्त कराऊ तथा (एन) उसे (शत-शारदाय) शत वर्ष के जीवन हेतु (अस्पार्शम्) बल-सम्पन्न करू ॥२॥

भावार्थ —यदि रोगी की जीवनशक्ति समाप्त हो रही है और उसका रोग सीमा को पार कर गया है तब भी परमात्मा उसे इस कष्टप्रद रोग से मुक्त कर शत वर्ष का जीवन दे सकता है ॥२॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।

शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

पदार्थ —मैं (एन) इस रोगी को (सहस्राक्षेण) सहस्रगुणयुक्त, (शत-शारदेन) सौ वर्ष तक जिलाने मे समर्थ (हविषा) औषधि से (अहार्षम्) रोग से छुड़ाऊ । (यथा) जिससे (इन्द्र) प्राण (शरद शतम्) सैकड़ो वर्ष (विश्वस्य दुरितस्य पारम्) सभी दुःखो के पार (नयाति) उसे पहुँचा दें ॥३॥

भावार्थ —सहस्रगुणो वाली सौ वर्ष जीवित रखने वाली औषधि से रोगी रोगमुक्त हो सकता है और दुःखो से मुक्ति पा सकता है ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।

शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४॥

पदार्थ —हे मानव ! तू (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (शत शरद जीव) सौ वर्ष तक जिए । (शत हेमन्तान्) सौ हेमन्त तथा (शत वसन्तान् उ) सौ वसन्तो तक जीवित रह । (इन्द्र-अग्नी) सूर्य व अग्नि या प्राण एव जाठर, (सविता बृहस्पतिः) उत्पादक वीर्य वा इस देह का पालन करने वाला रक्त (शतायुषा हविषा) सौ वर्षों तक जीने के साधन या बल से (एन पुन. दुः) इसे शक्ति पुनः दें ॥४॥

भावार्थ —हे मानव ! तू वृद्धि पाता हुआ शत वर्ष तक जीवन धारण कर । सौ हेमन्त, सौ वसन्त तक जी । सूर्य और अग्नि या प्राण एव जाठर, उत्पादक वीर्य और इस देह का पालन करने वाला रक्त सौ वर्षों तक जीवन देने के साधन तथा बल से इसे पुनः शक्ति दे ॥४॥

आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।

सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥५॥१९॥

पदार्थ —हे रोगी ! (त्वा आहार्षम्) मैं तुझे रोग से मुक्त करूं । (त्वा अविद) तुझे मैं पाऊं । (पुनः आगाः) तू पुनः आ । हे (पुनः नव) नव जीवन के धारक ! हे (सर्व-अंग) सकल अंगयुक्त ! (ते सर्वं चक्षुः) तेरी चक्षु आदि इन्द्रियों और (सर्वं च आयुः) सारी आयु (ते अविदम्) तुझे दूं ॥५॥

भावार्थ.—हे रोगी ! मैं तुझे रोगमुक्त करूं । तुझे मैं प्राप्त होऊं । हे समस्त अंगयुक्त तेरी चक्षु इत्यादि इन्द्रियां व सम्पूर्ण आयु तुझे प्रदान करूं ॥५॥

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६२]

ऋषीरक्षोहा ब्राह्मः ॥ देवता—गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् ॥ छन्द.—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५, ६ अनुष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

पदार्थ —(ब्रह्मणा सं-विदानः) वेद की विधि से (रक्षोहा अग्निः) रोग कीटादि कारण का नाशक अग्नि नामक औषधि (इतः) इस देह से (बाधताम्) उस रोग को भगाए, (यः) जो (दुर्णाम) दुर्नाम (अमीवा) रोग (ते गर्भं योनिम् आशये) तेरे गर्भ व योनि में गुप्त रूप से प्रविष्ट हुआ ॥१॥

भावार्थ —वेद विधि से रोग कीटादि कारण की नाशक अग्नि नामक औषधि उस रोग को दूर कर सकती है जो बुरे रूप वाला है गर्भ व योनि में गुप्त रूपेण प्रविष्ट हो जाता है ॥१॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

पदार्थ —(यः) जो (दुर्णामा) कुरूप (अमीवा) रोग (ते गर्भम् योनिम् आशये) तेरे गर्भ तथा योनि भाग में गुप्त रूप से गया है, (अग्निः) अग्निनामक औषधि (तं क्रव्यादम्) उस मांसहारी [पेराजाईट] रोग पैदा करने वाले कीटाणु को (निः अनीनशत्) सर्वथा मिटाए ॥२॥

भावार्थ —जो विकराल रोग गर्भ और योनि भाग में गुप्त रूप से प्रविष्ट हुआ है अग्नि नामक औषधि उस मांसभक्षी रोगनाशक कीटाणु को सर्वथा नष्ट कर सकती है ॥२॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३॥

पदार्थ —(यः) हे नारी ! जो रोग (ते पतयन्तं) तेरे गर्भाशय में प्रविष्ट होते हुए वीर्यांश को (हन्ति) नष्ट करता है, या (नि सत्स्नुं) गर्भाशय में स्थिर हो गर्भ का (हन्ति) नष्ट करता है, (यः) जो (सरीसृपं) सरकते गर्भ को मिटाता है, (यः ते जातं जिघांसति) जो रोग तेरे से उत्पन्न शिशु को नष्ट करने का इच्छुक है, (तम्) उस रोग को हम (इतः) यहां से (नाशयामसि) दूर भगा दें ॥३॥

भावार्थः—हे नारी ! जो रोग तेरे गर्भाशय में प्रविष्ट हुए वीर्यांश को नष्ट करता है अथवा गर्भ को नष्ट करता है या भ्रूण को मिटाता है, उस रोग को हम उस स्थान से दूर कर दें ॥३॥

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ॥४॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (यः) जो रोग उत्पन्न करने का कारण (ते ऊरू विहरति) तेरे दोनों जांघों के मध्य है और (दम्पती अन्तरा शये) नर-नारी दोनों में से किसी के शरीर में भी गुप्त रूप से है तथा (यः) जो (योनिम् अन्तः आरेळिह) गर्भाशय के मध्य में प्रविष्ट हो गर्भ को खा जाता है, (तम् इतः नाशयामसि) उस रोग को उत्पन्न करने वाले कीटाणु आदि को हम यहां से भगाएं ॥४॥

भावार्थ —हे स्त्री ! रोग उत्पादक जो कारण तेरी दोनों जंघाओं के मध्य रहता है और नर-नारी दोनों में से किसी के देह में भी गुप्त रूपेण है एवं गर्भाशय में प्रविष्ट हो गर्भ को नष्ट कर देता है, उस रोग के कीटाणुओं को ही हम मिटा दें ॥४॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५॥

पदार्थः—हे नारी ! (यः) जो (त्वा) तेरे पास (भ्राता) तेरे भ्राता के रूप से अथवा (पतिः) पतिरूप से वा (जारो भूत्वा) प्रेमी बनकर (निपद्यते) प्राप्त होता है और (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजा का नाश चाहता है, (तम् इतः नाशयामसि) हम उसे यहाँ से भगाएं ॥५॥

भावार्थ.—ऐसे तत्त्वों को दूर किया जाए कि जो विभिन्न रूपों में रोग का कारण बनते हैं ॥५॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६॥२०॥

पदार्थः—(यः) जो (त्वा) तुझे (स्वप्नेन) नींद से (मोहयित्वा) अचेत कर (निपद्यते) तेरे समीप आता है, (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजा का नाश करने का इच्छुक है (तम् इतः नाशयामसि) उसे हम यहां नष्ट करें ॥६॥२०॥

भावार्थ.—जो तुझे निद्रा से अचेत कर तेरे समीप आता है और तेरी संतति या प्रजा को मिटाना चाहता है उसे हम यहाँ से भगा दें ॥६॥२०॥

इति विंशो वर्गः ॥

[१६३]

ऋषिर्विवृहा काश्यप ॥ देवता—यक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः—१, ६ अनुष्टुप् । २—५ निचृदनुष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

पदार्थ.—मैं (ते अक्षीभ्यां यक्ष्म अधि वि वृहामि) तेरे नेत्रों में से यक्ष्मा को भगाऊं । (ते नासिकाभ्यां, ते कर्णाभ्याम्) तेरी नासिकाओं एवं कानों से और (छुबुकात् अधि) तेरी ठोडी से भी यक्ष्मा को मिटाऊं और (शीर्षण्यं यक्ष्म) सिर से यक्ष्मा को (मस्तिष्कात्) मस्तिष्क से एवं (जिह्वायाः) जीभ से भी मिटा दूं ॥१॥

भावार्थ —शरीर के विभिन्न अंगों अर्थात् नेत्र, नासिका, कान, ठोडी तथा सिर एवं मस्तिष्क तथा जीभ सभी से राजयक्ष्मा सरीखे रोग को भी दूर करना सम्भव है ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्यं१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

पदार्थ —हे रोगी ! (ते दोषण्यं यक्ष्म) तेरी भुजाओं में बैठे यक्ष्मा को (ग्रीवाभ्य) ग्रीवा की शिराओं से, (उष्णिहाभ्य) ऊपर की ओर जाने वाली धमनियों से, (कीकसाभ्य) अस्थियों से वा (अनूक्यात्) संधि भाग से (असाभ्यां बाहुभ्यां) कन्धों एवं बाहुओं से (वि वृहामि) दूर करूं ॥२॥

भावार्थ —रोगी को आश्वासन दिया गया है कि तेरी बाहुओं, ग्रीवा, या नाडियों एवं धमनियों तथा कन्धों आदि से भी राज्यक्ष्मा सरीखा रोग मिटाया जा सकता है ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।

यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

पदार्थ —(ते आन्त्रेभ्य) तेरी अंतडियों से, (गुदाभ्यः) गुदा नाडियों से एवं (वनिष्ठोः) स्थूल आंत से (हृदयात् अधि) हृदय से, (ते मतस्नाभ्यां) तेरे दोनों गुर्दों से, (यक्नः) यकृत से, (प्लाशिभ्य) उदर स्थित अन्य भोजन-पाचक तिल्ली आदि यन्त्रों से (यक्ष्मं वि वृहामि) यक्ष्मा को मिटा दूं ॥३॥

भावार्थः—तेरे नेत्रों, गुदा की नाडियों, स्थूल आंत, हृदय, गुर्दे, यकृत्, उदर भोजन-पाचक तिल्ली आदि से भी यक्ष्मा रोग का निवारण सम्भव है ॥३॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥४॥

पदार्थ.—(ते ऊरुभ्यां) तेरी जांघों से, (अष्ठीवद्भ्याम्) विशेष अस्थि युक्त गोडों से, (पार्ष्णिभ्यां) एडियों वा (प्रपदाभ्यां) पञ्जों से, (श्रोणिभ्यां) नितम्ब अंगों और (भासदात् भंसस) कटिभाग में स्थित गुदा एवं उपस्थ प्रदेश से (यक्ष्म वि वृहामि) यक्ष्मा को मिटा दूं ॥४॥

भावार्थः—तेरी जंघाओं से, विशेष अस्थि वाले गोडों, एडियों, पंजों एवं नितम्ब भागों व कटिभाग में स्थित गुदा व उपस्थ प्रदेश से यक्ष्मा को दूर किया जा सकता है ॥४॥

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।

यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

पदार्थ.—हे रोगी ! (वनं-करणात् मेहनात्) जल उत्पन्न करने वाले मूत्र करने वाले और शुक्रसेचक मूल-इन्द्रिय से, (ते लोमभ्यः नखेभ्य) तेरे लोमों व नखों से और (सर्वस्मात् ते आत्मनः) तेरे सारे देह से (ते तम् इदं वि वृहामि) तेरे उस यक्ष्मा को मिटा दूं ॥५॥

भावार्थ.—हे रोगी ! जल उत्पादक, मूत्रकारी व शुक्रसेचक मूल-इन्द्रिय से, तेरे लोमों व नखों एवं सारे देह से तेरे ऐसे यक्ष्मा का निवारण हो सकता है ॥५॥

अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।

यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥२१॥

पदार्थ —(अङ्गात् अङ्गात्) अंग-प्रत्यंग से, (लोम्नः लोम्न) लोम-लोम से और (पर्वणि पर्वणि जातं) पोरुओं में पैदा हुए (तम् इदम्) उस (यक्ष्म) यक्ष्मा को (सर्वस्मात् आत्मनः) सभी देह से (वि वृहामि) दूर करूं ॥६॥२१॥

भावार्थ —अंग-प्रत्यंग एवं लोम-लोम से एवं पोरुओं मे उपजे, उस यक्ष्मा को सकल देह से दूर किया जाना सम्भव है ।।६।।२१।।

इत्येकविंशो वर्गः ।।

---

[१६४]

ऋषिः प्रचेता ।। देवता—दुःस्वप्नघ्नम् ।। छन्द —१ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ३ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ पंक्ति. ।। पञ्चर्चं सूक्तम् ।।

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ।।१।।

पदार्थ —हे (मनस पते) अन्तःकरण को पतित करने वाले पाप-संकल्प ! तू (अप इहि) दूर हट, (अप क्राम) परे जा, (परः चर) परे हट जा । तू (जीवतः मन) प्राणी के मन को, (बहुधा) अनेक प्रकार से (निर्ऋत्यै) दुःख देने वाली पापप्रवृत्ति हेतु (आ चक्ष्व) बार-बार कहता है । (पर) तू दूर हो जा ।।१।।

भावार्थ —अन्तःकरण को पतित करने वाले पाप-संकल्प हम से दूर हो जाए । तू प्राणी के मन को अनेक प्रकार से दुःख देने वाली पाप-प्रवृत्ति हेतु बार-बार आह्वान करता है, तू दूर हो जा ।।१।।

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।

भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ।।२।।

पदार्थ —मानव प्राय (भद्र) कल्याणदायक (वरं) श्रेष्ठ पदार्थ की (वृणते) कामना करते हैं । वे (दक्षिण) उत्साही हृदय को भी (भद्र युञ्जन्ति) कल्याण हेतु ही लगाते हैं । (जीवत मन बहुत्र) जीवित प्राणी का चित्त यत्र-तत्र जाता है । वह (वैवस्वते) विविध प्राणियो के स्वामी प्रभु के आश्रय मे, (भद्र चक्षुः) उत्तम कल्याण दर्शकों के समान हो ।।२।।

भावार्थ —मानव प्राय कल्याणकारक श्रेष्ठ पदार्थ की कामना करते हैं । वे उत्साही हृदय को भी कल्याण मे लगाते है । जीवित प्राणी का चित्त चचल होता है वह विविध प्राणियो के स्वामी मे श्रेष्ठ कल्याण देखने वाले नेत्रो के तुल्य हो ।।२।।

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।

अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ।।३।।

पदार्थ.—(यत्) जो बुराई हम (आ-शसा) आशा से, (नि शसा) निराशा से, (अभि शसा) या पुनः चाह कर (उपारिम) पाएं, वा (यत्) जिस बुराई को हम (जाग्रतः) जाग्रत अवस्था मे वा (स्वपन्तः) सुप्त अवस्था में (उपारिम) प्राप्त हो, (अग्निः) तेजयुक्त प्रभु एव विद्वान् उन (दुष्कृतानि) दुष्टकर्मों व (अजुष्टानि) न सेवनीय पापो को (अस्मत् आरे) हमसे दूर (अप दधातु) भगाए ।।३।।

भावार्थ —जिस बुराई को हम आशा, निराशा या पुनः कामना कर पाए अथवा जिस बुराई को हम जाग्रत या सुप्त अवस्था मे करें, तेजोमय प्रभु अथवा विद्वान् दुष्टकर्मों व न करने वाले पापो से हमे दूर रखे ।।३।।

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।

प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ।।४।।

पदार्थ —हे (इन्द्र) ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! हे (ब्रह्मण. पते) महान् ज्ञान तथा ब्रह्माण्ड के स्वामिन ! (यत अभिद्रोह चरामसि) हम जो द्रोहपूर्ण आचरण करें तो (आंगिरस) अगों मे विद्यमान (प्र-चेता) तथा सभी चित्तों का स्वामी, (द्विषतां अहस) अन्त एव बाह्य शत्रुओ के पाप से (न पातु) हमारी रक्षा करें ।।४।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! हे महान् ज्ञान एव ब्रह्माण्ड के स्वामी ! जो द्रोहपूर्ण आचरण हम करें तो वह प्रभु ही सब पापों से हमे बचाए ।।४।।

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् । जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ।।५।।२२।।

पदार्थः—(अद्य अजैष्म) हमने आज पाप पर विजय पा ली, (अद्य असनाम) आज हमने प्राप्तव्य पा लिया । (वयम् अनागसः अभूम) हम आज पाप-रहित हो गये । (जाग्रत्-स्वप्न) जागने-सोते समय का (पाप संकल्प) पाप रूप अशुभ सकल्प (यम् द्विष्म त स ऋच्छतु) जिसे हम द्वेष करते है उसे वह प्राप्त हो तथा (यः न द्वेष्टि) जो हमारा द्वेष्टा है (त स ऋच्छतु) उसे वह प्राप्त हो ।।५।।२२।।

भावार्थ —हमने आज पाप पर विजय पा ली, आज हमने प्राप्तव्य पा लिया, हम आज निष्पाप हो गये हैं । जागते-सोते हुए पापरूप अशुभ सकल्प जिसको हम द्वेष करते हैं उसको वह प्राप्त हो और जो हमसे द्वेष करता है, उसे वह प्राप्त हो ।।५।।२२।।

इति द्वाविंशो वर्गः ।।

---

[१६५]

ऋषिः कपोतो नैर्ऋतः ।। देवता—कपोतोपहतौ प्रायश्चित्तं वैश्व देवम् ।। छन्दः—१ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ।। ५ त्रिष्टुप् ।। पञ्चर्चं सूक्तम् ।।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।

तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।१।।

पदार्थ —हे (देवा) विद्वानो ! (निर्ऋत्याः) परदेश का (दूत) सदेश लाने वाला (कपोतः) जो कि सही अर्थ अथवा तात्पर्य को दर्शाता है (इषितः) वह प्रेरित हो (यत इच्छन् इदम् आ जगाम) जो कुछ भी चाहता हुआ आये तो हम (अस्मै अर्चाम) उसे आदर दें, उसका (निष्कृतिं कृणवाम) श्रम मिटाए, (नः द्विपदे शम् चतुष्पदे शम् अस्तु) वह हमारे द्विपदों व पशुओं के लिए भी शान्ति का सन्देश लाये ।।१।।

भावार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! परदेश का सन्देश लाने वाला जो कि सही-सही अर्थ या तात्पर्य को दर्शाने वाला है, वह प्रेरित होकर जो कुछ भी चाहता हुआ आये तो हम उसे आदर दे एवं उसकी थकान मिटाएं । वह हमारे दुपायों व चौपायों के लिए भी शान्ति का सन्देश लाये ।।१।।

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।

अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ।।२।।

पदार्थ —(इषित कपोत न शिवः अस्तु) दूसरे के द्वारा प्रेषित दूत हमारा कल्याण करने वाला हो । हे (देवा) विद्वानो ! (न गृहेषु) हमारे गृहो मे वह (अनागा) अपराध रहित हो, उस पर किसी भांति का अपमान या प्रहार न हो । (अग्नि हि) वह अग्नि-तुल्य ही नियम-पूर्वक (नः हवि जुषताम्) हमारा उत्तम अन्न पाए । (पक्षिणी हेतिः) पक्षों से युक्त, शस्त्रधारी सेना (नः परि वृणक्तु) हम पर प्रहार न करे ।।२।।

भावार्थ —दूसरे द्वारा भेजा गया दूत हमारे लिये कल्याण देने वाला हो । हे विद्वानो ! हमारे घरो मे वह अपराध से रहित हो, उस पर किसी प्रकार का अपमान या प्रहार न हो । वह अग्नि तुल्य ही नियमानुसार हमारा उत्तम अन्न ग्रहण करे । हम पर सशस्त्र सेना का आक्रमण न हो ।।२।।

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।

शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ।।३।।

पदार्थः—(पक्षिणी हेतिः) पक्षों से युक्त सेना (अस्मान् न दभाति) हमे नष्ट न करे । (आष्ट्र्यां) विपुल सेना मे वह विद्वान् दूत (अग्नि-धाने) अग्नि के समान तेजस्वी पद के योग्य स्थान पर (पद कृणुते) मानपद पाता है । हे (देवा.) विद्वानो ! वह (कपोतः) अद्भुतवर्ण युक्त व्यक्ति (नः मा हिंसीत्) हमे मारे नहीं (न गोभ्यः शम्, पुरुषेभ्य च शम् अस्तु) हमारी गौओं व पुरुषों के लिए भी वह शान्ति देने वाला हो ।।३।।

भावार्थ —पक्षो वाली सेना, हमारा नाश न करे । व्यापक सेना मे वह विद्वान् दूत अग्नि तुल्य तेजस्वी पद के योग्य स्थान पर सम्मानित स्थान पाता है । हे विद्वानो, वह अद्भुतवर्ण वाला व्यक्ति हम पर प्रहार न करे हमारी गौओं व पुरुषों के लिये भी वह शान्तिदायक हो ।।३।।

यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।

यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।४।।

पदार्थ.—(यत्) जो (उलूक — उरुक) बहुत अधिक बातूनी है (एतत् मोघम् वदति) वह व्यर्थ ही प्रलाप करता है और (यत्) जब (कपोत) उत्तम विद्वान् (अग्नौ) स्वयं तेजस्वी शासक के पास (पद कृणोति) अपना पद पाता है, तब (एषः) वह (यस्य) जिसके द्वारा (प्रहित दूत) प्रेषित दूत आता है (तस्मै मृत्यवे) उस मृत्यु के समान नरसहारक वीर शत्रुयोद्धा (यमाय) सेनापति के प्रतिषेध हेतु (नम. अस्तु) नमस्कार वा दण्ड का प्रयोग किया जाए ।।४।।

भावार्थ —जो बहुत अधिक बातें बनाता है, वह व्यर्थ ही प्रलाप करता है । जब उत्तम विद्वान् स्वयं तेजस्वी राजा के पास पद पाता है, तब वह कि जिसके द्वारा भेजा हुआ दूत आता है, उस मृत्यु तुल्य सहारक योद्धा, सेना सचालक के प्रतिषेध हेतु नमस्कार एव दण्ड का प्रयोग किया जाये ।।४।।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।

संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ।।५।।२३।।

पदार्थः—(प्र-णोदम्) दूर भेजे जाने योग्य (कपोत) विद्वान् दूत को (ऋचा) उत्तम अर्चना-आदर से (नुदत) प्रेरित करो । (इषं मदन्तः) अन्न की इच्छा को प्रसन्न रख (गाम् परि नयध्वम्) वाणी एवं दुग्ध आदि पदार्थ दो । हम (विश्वा दुरितानि सयोपयन्त.) सभी बुरे परिणामों को दूर हटाते हुए सदैव सतर्क रहें । (न ऊर्जं हित्वा) वह हमें बल पराक्रम देता हुआ (पतिष्ठ.) उत्तम पतनशील, दूरगामी हो (प्र पतात्) भली प्रकार जावे ।।५।।२३।।

भावार्थ—दूर भेजने योग्य विद्वान् दूत को उत्तम-अर्चना आदर सहित प्रेरणा दो। दूसरे की इच्छा का आदर करते हुए वाणी एवं दुग्ध आदि पदार्थ प्रदान करो। हम सभी बुरे परिणामों को दूर करते हुए सदा सतर्क रहें। वह प्रभु हमें बल पराक्रम प्रदान करे ॥५॥२३॥

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

---

[१६६]

ऋषिर्ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा ॥ देवता—सपत्नघ्नम् ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप् । ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ महापंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।

हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१॥

पदार्थ—हे परमात्मन् ! (मा) मुझे (समानानाम् ऋषभम्) एक समान सम्माननीयों में श्रेष्ठतम और (सपत्नानां वि सासहिम्) शत्रुओं को विशेषत हराने में समर्थ, (शत्रूणां हन्तारं) प्रहार कर्त्ता शत्रुओं का नाशक और (गवां गो पतिम्) भूमियों के भूमिपति तथा (वि राजं) विशेष कान्ति युक्त, विविध देशों का शासक (कृधि) बना ॥१॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मुझे सम्माननीयों में श्रेष्ठतम एवं शत्रुओं को परास्त करने में समर्थ एवं शत्रुहन्ता तथा भूमिपति एवं शौर्यवान् शासक बना ॥१॥

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।

अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (इन्द्र इव) सेनापति के समान (अरिष्ट) स्वयं पीड़ा मुक्त और (अक्षतः) अक्षत होकर (सपत्नहा अस्मि) शत्रुओं को नष्ट करूं (इमे सर्वे सपत्ना) ये सब शत्रु जो मेरी भूमि पर अधिकार करना चाहते हैं वे (अभि-स्थिताः) मेरे समक्ष खड़े होकर भी (मे पदोः अधः) मेरे पदों के नीचे हों ॥२॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मुझे शक्ति दो कि मैं पीड़ा से मुक्त होकर शत्रुओं का नाश करूं। मेरी भूमि पर अधिकार करने के आकांक्षी शत्रु मुझसे परास्त हों ॥२॥

अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नी इव ज्यया ।

वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३॥

पदार्थः—(ज्यया उभे आर्त्नी इव) जैसे डोरी के द्वारा धनुष के दोनों किनारे बांधे जाते हैं वैसे ही (ज्यया) हे शत्रुओ ! (वः आर्त्नी अपि नह्यामि) तुम्हें मैं बांधता हूं। हे (वाचः पते) वाणी पालक ! (इमान् नि षेध) इन्हें ऐसा रोक (यथा) जिससे ये सब (मत् अधरम् वदान्) मेरे अधीन होकर बात करें ॥३॥

भावार्थ—प्रभु मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं अपने शत्रुओं को बांध सकूं और वे सभी मेरे समक्ष नतमस्तक हों ॥३॥

अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।

आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४॥

पदार्थः—मैं (विश्वकर्मेण धाम्ना) सभी शत्रुओं को वश में करने वाले तेज से (अभि-भूः) सभी को हराने वाला बनकर (आ आगमम्) प्राप्त होऊं। (अहं) मैं (वः व्रतम् वः समितिम्) आप लोगों के हृदय को, व्रतों, कर्मों व समिति सभा आदि को (आ ददे) सभी प्रकार से स्व अधीन करूं ॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं सभी शत्रुओं को वश में करने वाले तेज से सबको परास्त करने वाला होकर व्रतों, कर्मों और समिति सभा आदि को सब प्रकार से वश में करने में समर्थ बनूं ॥४॥

योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।

अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥५॥२४॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वः) आपके (योगक्षेमं आदाय) अप्राप्त धन की प्राप्ति व मिले धन की रक्षा यानी कि भावी आय व सञ्चित धन को प्राप्त कर (उत्तमः भूयासम्) सबसे उत्तम बनूं। मैं (वः) आप लोगों के (मूर्धानम् अक्रमीम्) बीच शिरोमणि बनूं। आप लोग (मे पदात् अधः) मेरे पद से नीचे रहकर (उदकात् मण्डूका इव) जल से मेंढकों के तुल्य (उत् वदत) प्रसन्न होकर बोलो ॥५॥२४॥

भावार्थ—परमात्मा मुझे लोगों के अप्राप्त धन की प्राप्ति व प्राप्त धन की रक्षा में समर्थ बनाए। मैं लोगों के मध्य शिरोमणि बनूं और वे मुझ से प्रसन्न रहें ॥५॥२४॥

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

---

[१६७]

ऋषिः विश्वामित्रजमदग्नी ॥ देवता—१, २, ४ इन्द्रः । ३ लिंगोक्ता ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड् जगती । २, ४ विराड् जगती । ३ जगती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तुभ्येदिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।

त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) आत्मा ! (तुभ्य इत्) तेरे लिए ही (इदम्) ये सारे (मधु) मधुर खाद्य इत्यादि (परि सिच्यते) शरीर में सिंचित हैं, (त्वं) तू ही (सुतस्य) इस उपजे (कलशस्य) देहघट के मध्य (राजसि) आलोकित होता है। (त्वं) तू ही (नः) हमारे (रयिम्) शरीर को (पुरुवीराम् कृधि) इन्द्रियों रूपी वीरों से सम्पन्न बनता है। (त्वं) तू ही (तपः परितप्य) तप द्वारा (स्वः अजयः) सभी सुखों को पाता है ॥१॥

भावार्थ—आत्मा के लिये ही ये सारे मधुर खाद्य आदि शरीर में सींचे जाते हैं। वही इस उत्पन्न देहघर में प्रकाशित होता है। वही हमारे शरीर को इन्द्रिय रूपी वीरों से युक्त करता है। वही तप द्वारा सकल सुखों को पाता है ॥१॥

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।

इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२॥

पदार्थ—हम (स्वः जितं) सुखों पर विजय प्राप्त करने वाले, (अन्धसः महि मन्दानम्) अन्न से बहुत अधिक आह्लाद देने वाले एवं (सुतान् उप) उत्पन्न हुए इन शरीरों को प्राप्त कर (शक्रम्) शक्तिशाली हुए आत्मा का (परि हवामहे) सर्वत्र ही बखान करते हैं। हे आत्मन् ! तू (नः इमं यज्ञम् इह बोधि) हमारे यज्ञ को यहां जान, (आगहि) तू हमें प्राप्त हो। (स्पृधः जयन्तम् मघवानम्) स्पर्धालु सेना तुल्य बाधक शक्तियों पर विजयी ऐश्वर्यवान् आत्मा से हम सकल अभिलाषाओं की प्रार्थना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—अन्न के द्वारा अत्यधिक प्रसन्नतादायी एवं उत्पन्न हुए इन देहों को प्राप्त कर शक्तिशाली हुए आत्मा का ही सर्वत्र वर्णन होता है। हे आत्मन् ! तू हमारे यज्ञ को यहां जान। हमें प्राप्त हुए ऐश्वर्य-सम्पन्न आत्मा से ही हम समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते हैं ॥२॥

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।

तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी ! मैं (राज्ञः सोमस्य) दीप्तिमान् सकल उत्पादक, सबके शासक, (वरुणस्य) श्रेष्ठतम (बृहस्पते,) महान् विश्व पालक परमात्मा के (धर्मणि) शासन में एवं (अनु-मत्या) सभी को अनुमति देने वाली आज्ञापक बल की (शर्मणि) शरण में बसता हुआ और हे (धातः विधातः) सकल जगत् धारक, उत्पादक एवं संहारक ! (तव उपस्तुतौ) तेरे उपदेश में रहकर, मैं जीव (कलशान्) इन विभिन्न देहों को (अभक्षयम्) भोगता हूं ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा के अधीन रहकर ही जीव नाना देहों का सेवन अथवा भोग करता है। वही उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी तथा विश्व-पालक तथा धारक, उत्पादक व संहारक है ॥३॥

प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।

सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥४॥२५॥

पदार्थ—हे (विश्वामित्र-जमदग्नी) सभी को प्रेम करने वाले ! तथा हे ज्ञान से आलोकित आत्मा युक्त श्रेष्ठ जनो ! (यदि) मैं जब भी [बाद में] आप के प्रति (आगमम्) आऊं तो (सातेन) सेवनीय ज्ञान से (सुते) परिष्कृत आत्मा में मैं (प्रथमः सूरि सन्) श्रेष्ठतम विद्वान् बनकर, (इम स्तोम उत् मृजे) इस स्तुतिमय प्रशमनीय वेदज्ञान का एवं स्तुत्यपद आत्मा का परिशोधन करूं। (चरौ अपि) एवं आचरणीय मार्ग तथा भोक्तव्य पदार्थों के बारे में (प्रसूत) शुभ मार्ग में जाकर ही (भक्षम् अकरम्) मैं उनका सेवन करूं ॥४॥२५॥

भावार्थ—सबको स्नेह करने वाले एवं ज्ञान से आलोकित आत्मा वाले श्रेष्ठ जनों की शरण में ज्ञान से परिष्कृत हो उत्तम विद्वान् बना जा सकता है। उन्हीं के चरणों में बैठकर प्रशसनीय वेदज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है तथा शुभ मार्ग का अवलम्बन किया जा सकता है ॥४॥२५॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

---

[१६८]

ऋषिरनिलो वातायनः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् ॥

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।

दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१॥

पदार्थ—(पृथिव्या रेणुम् अस्यन् याति) महारथी एवं महारथ (रुजन्) शत्रुओं के दुर्गों को विध्वंस करता हुआ, (स्तनयन् मेघवत्) गर्जता हुआ, (दिविस्पृक्) विजिगीषा में सभी तक आने वाला, (अरुणानि कृण्वन्) संग्रामस्थलों को रक्त से बहाता हुआ, (पृथिव्याः) भूपृष्ठ से (रेणुम् अस्यन्) हिंसक शत्रुओं को धूलि के समान दूर भगाता हुआ (याति एति) प्रयाण करता है और दिग्विजय करके आता है। यह (रथस्य महिमानं) रथ की महिमा है, इसे देखो ॥१॥

भावार्थ—महान् रथी का महारथ ही शत्रु दुर्गों का विध्वंस कर गर्जन करता हुआ समर भूमि को रक्त से लाल करता हुआ शत्रुओं को धूल के समान उड़ाता, प्रस्थान कर दिग्विजय प्राप्त कर लौटता है ॥१॥

सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।

ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥२॥

पदार्थः—(वातस्य अनु वि-स्था सं प्र ईरते) वायु तुल्य बलशाली के अनुकूल बनकर (वि स्था) विशेष स्थिति-युक्त अन्य राजगण तथा अन्य विशेष पदाधिष्ठित शासक भी (सं प्र ईरते) मिलकर उत्तम विधि से कार्य करते हैं । (योषाः समनं न) स्त्रियां जैसे समान चित्त वाले पुरुष को पाती हैं । उसी भांति (योषाः) प्रेम से या वृत्ति से सेवा करने वाली सेनाए (समनं) स्तम्भनकारी बल-युक्त (एनं गच्छन्ति) सेनापति को पाती हैं । वह (देव) विजिगीषु (ताभिः) उनका (सयुक्) सहयोगी बनकर (स-रथं ईयते) समान रूप से महारथी समझा जाता है, वह (अस्य विश्वस्य भुवनस्य) इस सकल भुवन के राजा के समान है ॥२॥

भावार्थ—वायु के समान महान् बलशाली के अनुकूल बनकर विशेष स्थिति युक्त राजगण वा अन्य विशेष पदो पर नियुक्त शासक जन भी मिलकर उत्तम ढंग से कार्य करते हैं । जैसे स्त्रियां समान चित्त वाले पुरुष पाती हैं, वैसे ही प्रेम से अथवा वृत्ति से सेवा भावी सेनाए स्तम्भनकारी बलयुक्त सेनापति को पाती है । वही उनका सहयोगी व महारथी बनता है । वही इस समस्त भुवन के राजा के समान है ॥२॥

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।

अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥३॥

पदार्थ—(कुत आ बभूव) तेजस्वी शासक अन्तरिक्ष मे विभिन्न मार्गों से जाएं, किसी दिन भी निश्चल न बैठे । (अपां सखा) आप्त विद्वानो प्रजाओं का मित्र बनकर वह (ऋतावा) तेजस्वी बनता है । वह किसी कुल मे जन्म लेता है, कहीं-कहीं से आकर प्रकटता है ॥३॥

भावार्थः—तेजस्वी राजा कदापि निश्चल न बैठे । वह आप्त विद्वानो व प्रजा का मित्र बनकर तेजस्वी होता है । वह किसी भी कुल मे जन्म लेकर कही से आकर प्रकटता है ॥३॥

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।

घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४॥२६॥

पदार्थः—वह राजा (देवानाम् आत्मा) विद्वानों एव व्यापारी आदि का आत्मा है, वह (भुवनस्य गर्भ) राष्ट्र को ग्रहण करता है (एषः देव) वह प्रकाश-पुंज व अन्यों का प्रकाशक बनकर (यथा वशम् चरति) नियमो के वश मे चलता है, वायु तुल्य (अस्य घोषा इत् शृण्विरे) इसकी घोषणाए राष्ट्र मे गूंजती हैं । (न रूपम्) इसका रूप सर्वत्र प्रदर्शित नही । (तस्मै वाताय) उस प्रबल शासक की हम (हविष.) अन्न आदि से उत्तम रूप से सेवा करें ॥४॥२६॥

भावार्थ—वह राजा विद्वानों तथा व्यापारी आदि की आत्मा है । वही राष्ट्र को ग्रहण करता है । वह स्वय प्रकाश का पुंज है और दूसरो को भी प्रकाशित करता है और दूसरो से पालन कराता है । ऐसा राजा ही सेवा करने योग्य है ॥४॥२६॥

इति षड्विंशो वर्गः ॥

---

[१६९]

ऋषि शबरः काक्षीवतः गावो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।

पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

पदार्थ—(मयो भूः) सुखदायक उत्पादक (वात) वायु (अभि वातु) सर्वत्र बहे । (उस्रा) गौवें (ऊर्जस्वतीः ओषधी.) बलदायक औषधियो को (आ रिशन्ताम) सर्व ओर खाए एव (पीवस्वती) हृष्ट-पुष्ट बनकर (जीव-धन्या) प्राणो को तर्पण करने वाले जलों को (पिबन्तु) पाए । हे (रुद्र) रुद्र ! पशु तुल्य जीवो को कुमार्ग से हटाने वाले ! तू (पद्वते) चरणों वाले जीव हेतु (अवसाय) खाद्य अन्न देने हेतु (मृळ) उन पर दया करे ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा सुखदायक उत्पादक वायु सर्वत्र बहाए । गौवें बलदायक चारे को खाए और हृष्ट-पुष्ट होकर प्राण-तर्पक जल पिए । हे दुष्ट-दलन-कर्ता पशुओ के समान जीवो को कुमार्ग से भी तुम्हीं हटाने वाले हो । तुम्हीं सब जीवो के पालक हो ॥१॥

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।

या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (स-रूपा वि-रूपा) समान रूप युक्त और विविध रूप युक्त होकर भी (एक-रूपा.) गोरूप से एक रूप वाली हैं, (यासाम्) जिनके (इष्टया) यज्ञोचित उत्तम-उत्तम (नामानि) रूपों को (अग्नि) बुद्धिमान् व्यक्ति (वेद) जानता है । (या) जिन्हें (अंगिरस. तपसा) सूर्य किरणों के समान विद्वान् (इह) इस लोक में (चक्रुः) कृषि आदि रूप से उपजाते हैं । हे (पर्जन्य) रसो के दाता (ताभ्यः) उनके हेतु (महि शर्म यच्छ) महान् सुख दे ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की महिमा विभिन्न रूपों में व्यक्त है और विद्वान् ही उसे जानता है । वह रसदाता ही विद्वत् जनों को सुख देता है ॥२॥

या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।

ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

पदार्थः—(या) जो (देवेषु) विद्वानो के मध्य (तन्वम्) अपने स्वरूप का (ऐरयन्त) प्रकटाती हैं, (सोमः) उत्तम विद्वान् व्यक्ति ही (यासाम् विश्वा रूपाणि वेद) जिनके सभी रूपों को समझता है । (प्रजावतीः) प्रजायुक्त बनकर (पयसा पिन्वमाना) दुग्ध आदि से पुष्ट करती हुई (ता) उन्हें (रिरीहि) गोशालाओं में दे ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वानों के मध्य में अपने स्वरूप को व्यक्त करती है, उत्तम विद्वान् ही जिसके सकल रूपों को जानता है । प्रजा से युक्त होकर दूध आदि से पुष्टि करती हुई उन गौओं गौशालाओं मे प्रदान कर ॥३॥

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।

शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥२७॥

पदार्थः—(प्रजापतिः) प्रजा-पालक परमात्मा (मह्यम्) मुझे (एता) इन श्रेष्ठ गौओं को (रराण) देता हुआ एव (विश्वै देवै पितृभि.) सभी विद्वानों व पालकों से (सं-विदान.) हमारा ऐक्य बनाता हुआ, (शिवा सतीः) हमारी गोशाला में कल्याण करने वाली गौए (उप आक) दिलाता है । (तासां प्रजया) उनकी प्रजा सहित (वयम् सं सदेम) हम शान्ति से विराजें ॥४॥२७॥

भावार्थ—प्रजापालक प्रभु ही हमें उत्तम गौओ को प्रदान करता है और समस्त विद्वानो व पालको से हमारा ऐक्य स्थापित कराता है । वही हमारी गौशालाओ मे कल्याणकारी गौएं प्राप्त कराता है । उनकी सतति-सहित हम शान्ति पूर्वक रहे ॥४॥२७॥

इति सप्तविंशो वर्गः ॥

---

[१७०]

ऋषिः विभ्राट् सौर्यः ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २ जगती । ४ आस्तारपंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थ—(विभ्राट्) विशेष प्रकाशमान सूर्य (बृहत् सोम्यं मधु पिबतु) बड़े सोमयुक्त मधु का पान करे अर्थात् भूमि का जल पिए (यज्ञपतौ) यजमान में (अविह्रुतम्) अकुटिल [सरल] (आयु दधत्) आयु को धारण करता हुआ (य.) जो (वातजूत) जो वायु से प्रेरित परमेष्ठी वायु से प्रेरित (त्मना) अपने आप (प्रजा.) प्रजाओं को (अभिरक्षति) रक्षा करता है (पुपोष) पालन करता है (पुरुधा) बहुत प्रकार से (विराजति) शोभित हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—वायु और सूर्य द्वारा सभी को जीवन प्राप्त होता है वही प्राण-रक्षक भी हैं ॥१॥

विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थ—(विभ्राट) विशेष प्रकाशमान (बृहत्) बड़ा (सुभृतम्) अच्छी तरह धारण किया हुआ (वाजसातमम्) अन्न, बल, और ज्ञान को देने वाला (धरुणे) सूर्य मे, ज्ञान के सूर्य मे (सत्यम् अर्पितम्) सत्य स्थित है । (अमित्रहा) शत्रुनाशक (वृत्रहा) अधकार नाशक (दस्यु हन्तमम्) आलसी प्रमादी को नष्ट करने वाली (असुरहा) अज्ञानी को मारने वाली (सपत्नहा) शत्रुनाशक (दिवः धर्मन्) द्युलोक को धारण करने वाली (ज्योति) ज्योति (जज्ञे) प्रकट हुई है ॥२॥

भावार्थ—यहाँ सूर्योदय से होने वाले लाभ तथा काव्यमय भव्य वर्णन किया गया है ॥२॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।

विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थ—(इदम् श्रेष्ठम्) यह श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः) ज्योतियों की ज्योति (उत्तमम्) उत्तम (विश्वजित्) विश्व को जीतने वाला (धनजित्) धन को जीतने वाला (बृहत्) महान् (उच्यते) कहा जाता है (विश्वभ्राड्) विश्व को प्रकाशित करने वाला (भ्राज) देदीप्यमान (महि सूर्यः) महान् सूर्य (सहः अच्युतम् ओजः) महान् अच्युत तेज (दृशे) दृष्टि के लिये (उरु पप्रथे) बहुत विस्तार पा रहा है अर्थात् सूर्य-प्रकाश फैल रहा है ॥३॥

भावार्थः—सूर्य श्रेष्ठतम ज्योति है और वही विश्व विजेता है, उसी का प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है ॥३॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।

येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥२८॥

पदार्थ—(ज्योतिषा विभ्राजन्) ज्योति से प्रकाशित होता हुआ (दिवः रोचनम्) द्युलोक का प्रकाशक (स्वः अगच्छः) स्वर्ग को प्राप्त हुआ (येन) जिसने (इमा) ये (विश्वा भुवनानि) सब लोक (आभृता) भरण किए गए हैं (विश्व कर्मणा) सब कर्म करने वाले से (विश्व देव्य, अवता) सम्पूर्ण दिव्य तेजों की रक्षा करने वाले से सूर्य की महिमा कही गई है ॥४॥

भावार्थ - चित्रों की प्रशंसा चित्रकार की प्रशंसा है, सूर्य की महिमा सूर्य के रचयिता विश्वकर्ता का गुणगान है ॥४॥

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[१७१]

ऋषिरिटो भार्गवः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१ निचृद् गायत्री । २, ४ विराड् गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः ।

अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (इटतः) अपने इच्छुक जन के (त्यम् रथम्) उस रथ की (प्राव) रक्षा करो, शरीर रूपी रथ की (सुतावतः सोमिन) सोम रस निचोड़ने वाले अर्थात् ब्रह्मानन्द रस का पान करने वाले भक्त के (हवम्) स्तुति को (अशृणो) सुनो ॥१॥

भावार्थ—प्रभु से भक्त की रक्षा करने एवं उसकी स्तुति को स्वीकार करने का अनुरोध किया गया है ॥१॥

त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।

अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) हे इन्द्र तुम (मखस्य दोधतः) यज्ञ का विध्वंस करने वाले के (शिरः) सिर को (त्वचः) त्वचा से (अवभरः) नीचा कर दे । (सोमिन) सोम वाले यजमान के (गृहम्+अगच्छः) घर को प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थ—भक्त के घर अर्थात् हृदय में परमात्मा का प्रकाश हो तथा यज्ञ-विध्वंसक का नाश हो ॥२॥

त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् ।

मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (त्यम्) उस (वेन्यम् मर्त्यम) इच्छा वाले मनुष्य को (आस्त्रबुध्नाय मनस्यवे) अस्त्रों का आश्रय वाले मनस्वी जन के लिये (मुहु श्रथ्ना) बार-बार वश में करो ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह उत्तम जन की रक्षा करे ॥३॥

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि ।

देवानां चित्तिरो वशम् ॥४॥२९॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (त्यम्) उस (पश्चासन्तम् सूर्यम्) पश्चिम दिशा में गए सूर्य को (पुरस्कृधि) सामने कर दो (देवानाम्) देवों से भी (चित् तिरः) छिपा हुआ है, (तम् वशम् कृधि) उसे कान्तियुक्त करो ॥४॥

भावार्थ—परमात्मा से गूढ़तम ज्ञान एवं विभिन्न रहस्यों की जानकारी प्रदान करने की प्रार्थना की गई है ॥४॥

एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[१७२]

ऋषि संवर्तः ॥ उषा देवता ॥ छन्द—पिपीलिकामध्या गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम ॥

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

पदार्थ—हे उषा (वनसा सह आयाहि) तेज के साथ आओ (गावः) गौएं व किरणें (वर्तनिम् सचन्त) घर का सेवन करें, घर में भर जायें (यत्) जो कि (ऊधभि) दूध से वा जीवन से घर को भर दें ॥१॥

भावार्थः—उषा काल में व्यक्ति को अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं ॥१॥

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥

पदार्थ—हे उषा (वस्व्या धिया आयाहि) धन वाली बुद्धि के साथ वा बसाने योग्य कर्म के साथ (आयाहि) आओ (मंहिष्ठ) दानशील मनुष्य (सुदानुभिः) उत्तम दानों से (जारयत् मखः) यज्ञ को समाप्त करता हुआ हो ॥२॥

भावार्थ—उषा काल के उदय के साथ ही साथ दानशील यजमान को यज्ञ करना चाहिए ॥२॥

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३॥

पदार्थ—(पितुभृत) [illegible] (सुदानव) उत्तम दानी जनों के (न) समान (तन्तुम् इत प्रतिदध्म) यज्ञ के तन्तु को या यज्ञ के तन्तु को निश्चय धारण करें (यजामसि) यज्ञ करें ॥३॥

भावार्थ—उषाकाल में यज्ञ किया जाना नितान्त आवश्यक है ॥३॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥३०॥

पदार्थ—(उषा) उषायें (स्वसु) अपनी बहिन रात्रि के (तमः) अंधेरे को (अपानयत) दूर करती है (सुजातता) शील आदि शुभ गुण (वर्तनिम्) घर में (स वर्तयति) फैलाती है ॥४॥

भावार्थ—उषा रात्रि के अंधेरे को दूर कर चेतनता का सृजन करती है ॥४॥

इति त्रिंशो वर्गः ॥

[१७३]

ऋषिध्रुवः ॥ देवता—राज्ञः स्तुति ॥ छन्द १, ३—५ अनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

पदार्थ—(त्वा) हे राजन्, तुम्हें (आ+अहार्षम) ले चलता हूं (अन्तः एधि) भीतर आ अर्थात् अपनी प्रजा के साथ-साथ मेल बढ़ा, राज्य के भीतरी कार्यों को जान (अविचाचलि.) चलायमान न होता हुआ (ध्रुवातिष्ठ) अपने राज्य पर अटल होकर रहो (सर्वा. विश्रः) सब प्रजायें (त्वा वाञ्छन्तु) तुझे चाहें (त्वत् राष्ट्रम्) तेरा राज्य (मा, अधिभ्रशत्) अधिकार से निकले नहीं ॥१॥

भावार्थ—जो राजा प्रजा में प्रिय होगा और राज्य के भीतर व बाहर की भली-प्रकार जानकारी रक्खेगा, उसके राज्य में सुख-शान्ति व समृद्धि आएगी और वह सुरक्षित भी रहेगा ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।

इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

पदार्थ—(इह, एव, एधि) हे राजन, यहाँ ही रहो (मा, अप, च्योष्ठा) राज्यच्युत कभी न होओ । (पर्वत इव) पर्वत के समान (अविचाचलि) अचल रहो (इह) इस राज्य पर (इन्द्र इव) इन्द्र के समान (ध्रुव +तिष्ठ) अटल रहो । (इह) यहां (राष्ट्रम धारय) राष्ट्र को धारण करो ॥२॥

भावार्थ—राजा के लिये आशीर्वाद देते हुए उसे कर्त्तव्य-परायण होने की चेतावनी दी गई है ॥२॥

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।

तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(इमम्) इस राजा को (इन्द्र) इन्द्र ने (अदीधरत्) धारण किया है अर्थात् राजा में इन्द्र के गुण होने चाहियें (ध्रुवेण हविषा) अटल यज्ञ सामग्री अर्थात् राज्य रक्षा की साधना से (ध्रुवम्) अटल (अदीधरत्) धारण किया है, (तस्मै सोम अधिब्रवत्) उसे सोम महान् विद्वान् उपदेश करता है (उ) और (तस्मै) उसके लिए (ब्रह्मणस्पतिः) बृहस्पति वेदों महान् विद्वान् उपदेश करता है ॥३॥

भावार्थः—वही राजा सफल होता है जिसे नीति की उच्च शिक्षा मिलती रहे और वह उस नीति को क्रियान्वित भी करता रहे ॥३॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।

ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥

पदार्थ—(द्यौ ध्रुवा) द्युलोक अपने नियम में अटल है, (पृथिवी ध्रुवा) भूमि अपने नियम में अटल है (इमे पर्वता ध्रुवासः) ये पर्वत अचल हैं (इदम् विश्वम् जगत, ध्रुवम्) यह सब जगत अपने नियमों में अटल है (अयम् राजा) यह राजा (विशाम्) प्रजाओं में (ध्रुव.) अटल हो ॥४॥

भावार्थ—संसार के प्रबन्ध के नियमों में जो राजा शिक्षा लेकर स्वयं उन नियमों पर चलता है उसकी राज्यसत्ता अटल रहती है ॥४॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।

ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

पदार्थ —हे राजन् (**ते राष्ट्रम्**) तेरे राज्य को (**वरुण. राजा**) वरणीय राजा ईश्वर (**ध्रुवम् धारयताम्**) अटल धारण करें (**देव बृहस्पति**) दिव्य गुण-युक्त महान् विद्वान् (**इन्द्रः च अग्नि च**) ऐश्वर्यवान् भगवान् तेजस्वी प्रभु (**ध्रुवम् धारयताम्**) अटल बनावें ॥५॥

भावार्थ.—राजा को वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि के गुण लेने चाहिये, अर्थात् न्याय, विद्या, दीप्ति एव तेज से युक्त होना चाहिए ॥५॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।

अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत्॥ ६॥३१॥

पदार्थ —हे राजन् हम पुरोहित ऋत्विग (**ध्रुवेण हविषा**) अटल हवन सामग्री से अर्थात उत्कृष्ट कोटि की नीति से (**ध्रुवम् सोमम्**) अटल सोम रस का अर्थात प्रेमभाव को (**अभिमृशामसि**) प्राप्त करते है (**अथ**) और (**इन्द्र**) इन्द्र ने (**विशः**) प्रजाओ को (**केवली**) केवल (**ते बलिहृत**) तेरे लिये राज्य कर देने वाली (**करत्**) किया है ॥६॥

भावार्थ —विद्वान् पुरोहित प्रजाओ मे सोम भावनाये भरे और प्रजा केवल अपने राजा को ही कर चुकाए ॥६॥

इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१७४]

ऋषिरभीवर्त ॥ देवता—राज्ञः स्तुति ॥ छन्द —१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।

तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १॥

पदार्थ —(**अभी वर्तेन हविषा**) आगे बढ़ाने वाले अर्थात् विजय कराने वाले, हवनीय पदार्थ से (**येन**) जिससे (**इन्द्र अभिवावृते**) इन्द्र विजयी होता है (**ब्रह्मणस्पते**) वाणियो के पति विद्वान् (**तेन**) उस हव्य पदार्थ से (**अस्मान्**) हमें (**राष्ट्राय**) अपने राष्ट्र के लिए (**अभि वर्तय**) आगे बढ़ाओ ॥१॥

भावार्थ —विजय के उत्तम साधन शस्त्र-अस्त्र जिससे [**इन्द्र**] राजा को विजय मिले वे साधन हमे प्राप्त हो जिससे हम अपने राष्ट्र की सेवा कर सकें ।

विद्वान् से निवेदन है कि हमे [प्रजा को] विजयी साधना दो और विद्वान् का कर्त्तव्य भी बताया है कि अपनी योग्यता से राष्ट्र की सेवा करे ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२॥

पदार्थ —(**सपत्नान्**) शत्रुओ को (**अभिवृत्य**) आक्रमण करके (**नः**) हमारे (**अरातय**) शत्रुओ पर (**अभिया**) हे राजन् ! आक्रमण कर (**अभि पृतन्यन्त**) सेना से सामना करने वाले को (**अभितिष्ठा**) सामना कर (**यः**) जो (**न**) हमसे (**इरस्यति.**) द्वेष करता है, उससे युद्ध कर ॥२॥

भावार्थ —राजा सेनापति होना चाहिये, जिससे वह अपने राष्ट्र के शत्रु पर आक्रमण करके शत्रु का दमन करने मे समर्थ हो ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।

अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

पदार्थ —(**देव सविता**) सूर्य देव (**सोम**) चन्द्रदेव (**त्वा**) हे राजन् ! तुम्हें (**अभि अवीवृतत्**) आगे बढ़ावे अर्थात प्राकृतिक शक्तियां आपके अनुकूल हों, (**विश्वा भूतानि**) सब प्राणी वा सब प्राकृत पदार्थ (**त्वा**) तुमको (**अभि अवीवृतत**) आगे बढ़ावें, विजयी बनावें, (**यथा**) जिस प्रकार तुम (**अभीवर्त**) विजयी (**असि**) होओ ॥३॥

भावार्थ —सभी प्राकृतिक शक्तियो के राजा के अनुकूल होने पर ही विजय प्राप्त होती है ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।

इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४॥

पदार्थ —(**या हविषा**) जिस हवन के पदार्थ से (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यशाली राजा (**द्युम्नी**) द्युतिमान् प्रकाशित (**कृत्वी**) कार्य मे सफल (**उत्तम**) उत्तम (**अभवत्**) हुआ (**देवाः**) विद्वान् दिव्य शक्तियां (**तत् इदम्**) वह-वह साधन (**अक्रि**) करें, जिससे कि मैं राजा (**किल**) निश्चय (**असपत्नः**) शत्रु रहित (**अभुवम्**) हो जाऊं ॥४॥

भावार्थ.—राजा की प्रार्थना विद्वानो से है कि वे राजा की विजय के साधन जुटायें और राजा को विजयी बनायें ॥४॥

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।

यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥३२॥

पदार्थ —(**असपत्न**) शत्रुरहित (**सपत्नहा**) शत्रुओ को मारने वाला (**अभि राष्ट्र**) सब प्रकार अपने राष्ट्र का स्वामी (**विषासहि**) विशेष रूप से शत्रुओं को पराजित करने वाला (**यथा**) जिस प्रकार (**अहम्**) मैं राजा (**एषाम् भूतानाम् विराजानि**) इन प्राणियो पर प्रजा पर विराजमान बनूं (**जनस्य च**) और जनता का भी आदर पाऊं ॥५॥

भावार्थ.—राजा को ऐसे काम करने चाहिए कि वह जनता मे अधिकाधिक लोकप्रिय हो सके ॥५॥

इति द्वात्रिंशो वर्ग. ॥

[१७५]

ऋषिरूर्ध्वग्रावार्बुदः ॥ ग्रावाणो देवता ॥ छन्द —१, २, ४ गायत्री । ३ विराड गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा ।

धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥१॥

पदार्थः—(**ग्रावाण**) हे प्रवचन करने वाले विद्वानो ! हे गौरवशालियो ! (**व**) तुम्हे (**देव सविता**) सूर्यदेव (**धर्मणा प्रसुवतु**) धर्म से युक्त करें (**धूर्षु**) कार्य भारो मे (**युज्यध्वम्**) नियुक्त होओ, (**सुनुत**) उत्पादन करो, जनता को प्रेरणा दो ॥१॥

भावार्थ —विद्वान् लोग धर्मयुक्त होकर कार्य करें तथा जनता को उपदेश करें ॥१॥

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् ।

उस्राः कर्तन भेषजम् ॥२॥

पदार्थ —(**ग्रावाण**) हे गुरु जनो ! (**दुच्छुनाम् दुर्मतिम् अपसेधत**) दुर्भाग्य वाली दुष्टबुद्धि को दूर करो (**उस्रा.**) गौए, सूर्यकिरणें (**भेषजम् कर्तन**) हमारे लिये औषधि करें अर्थात् दूध द्वारा, पौधो द्वारा रोग निवारण करें ॥२॥

भावार्थ —हे गुरुजनो ! आप दुर्मति का हरण कर सद्बुद्धि प्रदान करो ॥२॥

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः ।

वृष्णो दधतो वृष्ण्यम् ॥३॥

पदार्थः—(**ग्रावाण**) गौरवशाली जन (**उपरेषु**) अपने आस-पास के जनो मे (**सजोषसः**) प्रीतियुक्त हुए (**आ महीयन्ते**) सब प्रकार से महत्त्व प्राप्त करते हैं (**वृष्णः**) बलवान मे (**वृष्ण्यम् दधतः**) बल धारण करते हुए ॥३॥

भावार्थ —गौरवपूर्ण विद्वान् अपने समीपस्थ जनता मे आदर पाते हैं तथा अपने उपदेशो से जनता को बलवान बनाते हैं ॥३॥

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।

यजमानाय सुन्वते ॥४॥३३॥

पदार्थः—(**ग्रावाण**) हे गौरवयुक्त जनो ! (**नु**) और (**देव सविता**) सूर्यदेव (**व**) तुम्हे (**धर्मणा सुवतु**) धर्म से उत्पन्न करे अर्थात् धर्म के कामो मे लगावे (**सुन्वते यजमानाय**) यज्ञ करते हुए यजमान के लिए ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग धर्मयुक्त होकर यजमान के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें ॥४॥

इति त्रयस्त्रिंशो वर्ग. ॥

[१७६]

ऋषि सूनुरार्भव ॥ देवता—१ ऋभव । २—४ अग्नि ॥ छन्द —१, ४ विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।

क्षाम ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥१॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**विश्वधायसः**) विश्व को धारण करने वाले (**ऋभूणाम् सूनवः**) ऋभुओ के पुत्र हैं (**बृहत् वृजनाः**) तीव्र गति वाले है (**प्र अवन्त**) रक्षा करते हैं । (**क्षाम् मातरम्**) भूमि माता को (**धेनुम् न**) गौ के समान (**आश्नत्**) भोगते हैं ॥१॥

भावार्थ —ऋभु नक्षत्रों की किरणें तीव्र गति वाली हैं और भूमि के जल को पीती हैं ॥

ऋभु वर्षा लाने वाला वायु भी है उसके पुत्र अन्न हैं ॥१॥

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।

हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२॥

पदार्थ—(**देव्याधिया**) दिव्य भावना वाली बुद्धि से (**जातवेदसम् देवम् भरत**) सर्वज्ञ प्रभु की भक्ति करो (**न**) हमे (**आनुषक्**) निरन्तर (**हव्या वक्षत्**) हव्य पदार्थो से मिलावे ॥२॥

भावार्थ—हम यज्ञ करें और ईश्वर हमें सदैव यज्ञ के पदार्थ प्रदान करता रहे ॥२॥

अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।

रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३॥

पदार्थ.—(अयम्+उ, स्य) और यह वह (देवयुः) देवों का प्यारा (होता) यज्ञकर्ता (यज्ञाय) यज्ञ के लिये (प्रणीयते) लाया जाता है । [विद्वान् वा यज्ञ का अग्नि] (यः) जो (रथः न) रथ के समान (अभिवृतः) भक्तों से यज्ञ प्रेमियों से घिरा हुआ (घृणीवान्) सूर्य के तुल्य तेजस्वी (त्मना) अपने द्वारा (चेतति) ज्ञान देकर चेताता है ॥३॥

भावार्थ—यज्ञ का होता तो यज्ञाग्नि को यज्ञस्थल में बहुत जलाता है । वह यज्ञवेदी को प्रकाशित करता है ॥३॥

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।

सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४॥२४॥

पदार्थ—(अयम् अग्निः) यह विद्वान् वा नेता (अमृतात्+इव) मानो अमृत से (उरुष्यति) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् नेता भी अमृत तुल्य जीवनदाता व रक्षक होता है ॥४॥

इति चतुर्विंशो वर्ग ॥

[१७७]

ऋषि. पतङ्ग प्राजापत्य ॥ देवता—मायाभेद ॥ छन्द.—१ जगती । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।

समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१॥

पदार्थः—(विपश्चितः) ज्ञानी विद्वान् (असुरस्य मायया) प्राण देने वाले ईश्वर की माया से (अक्तम् पतङ्गम्) मिले हुए उड़ने वाले को अर्थात् जीवात्मा को (हृदा मनसा पश्यन्ति) हृदय से, मन से देखते अर्थात् जानते हैं । (कवयः) ज्ञानपूर्वक देखने वाले विद्वान् (समुद्रे, अन्तः, विचक्षते) समुद्र के, भवसागर के बीच मे देखते हैं (मरीचीनाम्) सूर्य की रश्मियों के (वेधसः पदम्) विधाता के पद को, मोक्ष को (इच्छन्ति) चाहते हैं ॥१॥

भावार्थ—यद्यपि जीवात्मा प्रकृति में लिपटा हुआ है परन्तु ज्ञानी इस गहराई मे भी आत्मा को जान लेते हैं और मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ॥१॥

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः ।

तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥२॥

पदार्थ—(पतङ्गः) जीवात्मा (मनसा वाचम् बिभर्ति) मन से वाणी को धारण करता है, (तां गन्धर्वः) उसका धारणकर्ता विद्वान् (गर्भे अन्तः, अवदत्) गर्भ के भीतर अर्थात् अन्तःकरण मे कहता है । (ताम् द्योतमानाम्, स्वर्यम् मनीषाम्) उस प्रकाशित और स्वर्ग ले जाने वाली बुद्धि को (कवयः) क्रान्तदर्शी ज्ञानी जन (ऋतस्य पदे) सुख के पद पर (निपान्ति) रक्षा करते हैं । अर्थात् मुक्ति के लिए इस ज्ञान की रक्षा करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मन से मुक्ति पद का विचार करके विद्वान् इस मुक्ति दीपक ज्ञान की रक्षा करता है ॥२॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३॥२५॥

पदार्थ—(अनिपद्यमानाम् गोपाम्) अविनाशी और इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा को (आ, च परा च पथिभिः) उरले परले मार्गों से (चरन्तम्) विचरते हुए को अर्थात् ऊंची-नीची योनियों में घूमते हुए को (अपश्यम्) मैंने देखा । आत्मज्ञानी कहता है कि मैंने जान लिया । (सः) वह जीवात्मा को (सध्रीचीः) सरल सीधी (विषूचीः) टेढ़ी योनियों को (वसानः) धारण करता हुआ (भुवनेषु+अन्तः) भुवनों के भीतर (आवरीवर्ति) वर्तमान रहता है ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा नीची, ऊंची योनियों मे विचर रहा है, उसे ज्ञानी विद्वान् साक्षात् करके कृतार्थ हो जाता है, अतएव आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥३॥

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१७८]

ऋ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्य ॥ देवता—तार्क्ष्य ॥ छन्द—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

पदार्थ—(त्यम्+उ) और उस (सुवाजिनम्) उत्तम बल वाले (देवजूतम्) देवों से प्रेरित (सहावानम्) विजयी (रथानाम्) रथों के (तरुतारम्) शीघ्र ले जाने वाले (अरिष्टनेमिम्) जिसके रथ पर का हाला, चक्र पर चढ़ा लोह ठीक है बिगड़ा नहीं है (पृतनाजम्) सेना को परास्त कर देने वाले (आशुम्) शीघ्रगामी (तार्क्ष्यम्) तार्क्ष्य [गरुड़] जाति के घोड़े को, बिजली को (स्वस्तये) कल्याण के लिये (इह) इस यज्ञ मे युद्ध मे अन्य शिल्प मे (आहुवेम) हम बुलावें अर्थात् प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—बिजली को व्यवहार मे लावें, यह गरुड़ के समान गति वाली एवं शक्तिशाली होती है ॥१॥

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।

उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य इव) इन्द्र के समान (रातिम्) दान को (आजोहुवानाः) ग्रहण करते हुए (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नावम्+इव) मानो नाव पर (आरुहेम) चढ़ते हैं (उर्वी पृथ्वी न) विस्तृत पृथिवी के समान (बहुले गभीरे) गम्भीर अन्धकार मे (वाम्) तुम दोनो पृथिवी और द्युलोक (आ, इतौ) इधर से (परा+इतौ) उधर से (मा रिषाम्) कष्ट न करें ॥२॥

भावार्थ—इन्द्र के समान दान को ग्रहण करते हुए व कृपा को प्राप्त हुए हम कष्टों से बचे रहें ॥२॥

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।

सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥३॥२६॥

पदार्थ.—(सद्य, चित्) तत्काल ही (यः) जो (पञ्चकृष्टीः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णहीनों को (शवसा) बल से (सूर्यः) सूर्य (ज्योतिषा, इव) सूर्य जैसे अपने प्रकाश से (अपः) जलों को, मेघों को (ततान) फैला देता है (सहस्रसाः शतसाः अस्य रंहिः) हजारों प्रकार का, सैकड़ों प्रकार का इसका वेग है (शर्याम् युवतिम् न) बाण के निशान को भेदने वाली बाणों की नली के समान (न वरन्ते स्म) वरण नहीं किया जा सकता ॥३॥

भावार्थ—बिजली [तार्क्ष्य] का प्रकाश और शक्ति जल पर प्रचुर रूप से छा जाती है, उसे टाला नहीं जा सकता ॥३॥

इति षड्विंशो वर्ग ॥

[१७९]

ऋषि शिबिरौशीनर । २ प्रतर्दन काशिराज । ३ वसुमना रौहिदश्व ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१ निचृदनुष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । तृच सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।

यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१॥

पदार्थ.—(उत्तिष्ठत) उठो (इन्द्रस्य) इन्द्र के (ऋत्वियम् भागम्) ऋतु ऋतु के भाग को (अव पश्यत) भली भांति देखो (यदि श्रातः) यदि पका हुआ है तो (जुहोतन) आहुति लगाओ (यदि अश्रातः) यदि पका नहीं है तो (ममत्तन) पकने की प्रार्थना करो ॥१॥

भावार्थ—शब्दार्थ तो यही है कि इन्द्र भाग के मास को पकाओ, परन्तु व्यंजना है अपने भावों को शुद्ध कर इन्द्र के अर्पण करो यदि भाव कच्चे हैं तो ईश्वर उन्हें परिपक्व करे, ऐसी प्रार्थना करो ॥१॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।

परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

पदार्थ.—(इन्द्र) हे इन्द्र ! (श्रातम् हविः) पके हुए हवन के चरु को (सु प्र याहि) अच्छी तरह जाओ (सूरः) सूर्य (अध्वनः) अपने मार्ग के (विमध्यम्) मध्य को (जगाम) प्राप्त हुआ है अर्थात् मध्याह्न का समय है अथवा सूर्य वसन्त सम्पात से लेकर अब तक ६ मास बिता चुका है, (व्राजपतिम्) गृहपति को वा धर्म मार्ग के रक्षक को (कुलपाः न) कुल के रक्षक, कुलीन जन के समान (सखायः) मित्र (त्वा) तुम्हें (निधिभिः) कोषों से, धनों से (परि+आसते) चारों तरफ इकट्ठे होते हैं ॥२॥

भावार्थ—यहां इन्द्र राजा है सूर्य का अयन बीतने पर कर का धन लेकर प्रजायें राजा के चारों ओर आकर बैठती हैं ॥२॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।

माध्यंन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

पदार्थः—(ऊधनि) गौ के थन में (श्रातं मन्ये) पका हुआ मानता हूं अर्थात् गौ का दूध थनों से निकलते ही पका हुआ है, वह पी लेना चाहिये, (अग्नौ श्रातम्) अग्नि में भी जो पका है, उसे भी पका हुआ (मन्ये) मानता हूं । (तत् सुश्रातम्) उस अच्छी प्रकार पके हुए को (ऋतम् नवीयः) सत्य और नवीन (मन्ये) मानता हूं । हे (वज्रिन्) वज्रधारी (पुरुकृत्) अनेक कार्यों को करने हारे (इन्द्र) हे ऐश्वर्यपूर्ण प्रभो (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) मध्याह्न यज्ञ के (दध्नः पिब) दही का पान करो ॥३॥

भावार्थः—मध्याह्न मे, यज्ञ मे दही हवन मे डाला जाये, प्रभु उसे स्वीकार करें और वर्ष के मध्य भाग मे सूर्य गाढ़े जल को सोखता है । पकना दो प्रकार का है जैसे गौ का दूध कच्चा भी पका हुआ ही है पिया जा सकता है, और अग्नि में

पकाना दूसरा प्रकार है यहां वह पकाने की बात मे शिक्षा है, यह पकाना ऋत है सत्य है और सदा नवीन है, ताजा है ॥३॥

इति सप्तत्रिंशो वर्ग ॥

[१८०]

ऋषिजय ॥ इन्द्रो देवता, छन्द.—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं च सूक्तम् ॥

प्र संसाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।

इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ईश्वर (**पुरुहूत**) बहुतो से स्तुति किये गए प्रभो ! (**शत्रून प्रससाहिष**) शत्रुओ के बुरे विचारो को विजय करो (**इह**) इस यज्ञ मे (**ते शुष्म**) तुम्हारी शोषण शक्ति अर्थात् शुद्ध करने की शक्ति और (**राति**) दान (**ज्येष्ठ अस्तु**) सबसे बड़ा रहे (**दक्षिणेन वसूनि आभर**) दाहिने हाथ से धनो को हमे दो क्योंकि आप (**रेवतीनाम् सिन्धूनाम्**) धन से भरी नदियो के (**पतिः**) स्वामी हो ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर हमे यज्ञार्थ समुचित धन-सामग्री प्रदान करो ॥१॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।

सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताळ्हि वि मृधो नुदस्व ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे इन्द्र ! (**भीम, मृग, न**) भयंकर पशु सिंह के समान (**कुचर**) पृथ्वी पर विचरता हुआ (**गिरिष्ठा**) पर्वतो पर स्थित अर्थात् नीची-ऊंची सब जगहो मे व्याप्त आप (**परस्याः परावत**) परली से भी परली ओर से अर्थात् अत्यन्त दूर से भी (**आजगन्थ**) आओ (**सृकम् तिग्मम् पविम् संशाय**) तेजी से चलने वाले तीक्ष्ण वज्र को तेज करके (**शत्रून् विताळ्हि**) शत्रुओ को ताड़ित करो । (**मृध**) संग्राम करने वाले को (**विनुदस्व**) दूर कर दो ॥२॥

भावार्थ—हमारी बुरी वृत्तियां नष्ट हो, दुष्ट जन हिंसक जन नष्ट हो, आप हमे प्राप्त हो ॥२॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।

अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३॥३८॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे देवेश्वर (**वामम**) सुन्दर (**ओज**) पराक्रम (**क्षत्रम्**) क्षत्रियत्व (**अभि । अजायथा**) हममे प्रकट हो, (**वृषभ**) हे शक्तिशालिन्, सुखवर्धक प्रभो ! (**चर्षणीनाम**) मनुष्यो के (**अमित्रम्**) शत्रु (**जनम्**) मनुष्यो को (**अपानुद**) दूर करो (**देवेभ्य**) ज्ञानी विद्वानो के लिए (**लोकम्**) लोक को (**उरुम् अकृणु**) ऊंचा करो ॥३॥

भावार्थ—हे परमात्मा आप दुष्टो को हमसे दूर करो तथा ज्ञान व साधनारत लोगो की उन्नति करो ॥३॥

इत्यष्टात्रिंशो वर्ग ॥

[१८१]

ऋषि प्रथो वासिष्ठ । २ सप्रथो भारद्वाज ॥ ३ घर्म सौर्य ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्द —१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥१॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिसके (**नाम**) नाम के (**प्रथ**) लम्बा चौड़ा (**च**) और (**सप्रथ च**) समान आकार वाला भी (**आनुष्टुभस्य हविष**) अविरुद्ध करने वाले हविष का (**यत हवि**) जो आहुति योग्य पदार्थ है, (**द्युतानात्**) चमक वाले (**धातु**) विधाता के (**सवितु च**) और समस्त उत्पन्न करने वाले के (**विष्णो**) विष्णु [व्यापक] के (**रथन्तरम्**) रथन्तर नामक साम गायन को (**वसिष्ठ**) वस्तुओ मे उत्तम विद्वान ने (**आजभार**) प्राप्त किया ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् ज्ञानी ने अनेक यज्ञ और यज्ञीय पदार्थ का तथा साम-गायन का विस्तार किया है ॥१॥

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२॥

पदार्थ—(**ते**) उन विद्वानो ने (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**धाम**) नाम रूप स्थानो को (**यत् अतिहितम्**) जो सबसे ऊपर स्थित है (**यत्**) जो (**परमं गुहा आसीत्**) बहुत बड़ी गुफा है अर्थात् गढ़ ज्ञान है (**द्युतानात**) प्रकाशित (**धातु**) विधाता के, बिजली के (**सवितु, च**) और सूर्य के (**विष्णो**) आकाश के वा प्रकाशवान जगदुत्पादक व्यापक ईश्वर के (**अग्ने**) ज्ञानमय प्रभु के धाम को (**भरद्वाज**) ज्ञान को भरने वाला विद्वान (**बृहत् आचक्रे**) बड़ा करता है ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी विद्वान् यज्ञ का विस्तार करता है एवं ब्रह्मज्ञान का भी प्रचार करता है ॥२॥

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥३॥३९॥

पदार्थ—(**दीध्याना**) तेजोयुक्त (**ते**) वे ऋषि (**मनसा**) मन से (**प्रथमम्**) प्रथम बार (**स्कन्नम्**) हवि हुए (**देवयानम् यजु**) देवो के मार्ग वाले यजु [संगति को, दान को, देवयजन को, यजुर्वेद को, यज्ञ विधि को] (**अविन्दन्**) प्राप्त किया (**एते**) इन्होंने (**द्युतानात् धातुः**) द्युतिमान विधाता के (**च**) और (**सवितु**) सविता के (**विष्णो**) विष्णु के (**आ सूर्यात**) सूर्य तक (**घर्म**) तेज को, प्रकाश को (**अभरत**) भर दिया ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानी विद्वान् मानसिक योग करके परमात्मा के ज्ञान को सबमें फैला देते है ॥३॥

इत्येकोनचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८२]

ऋषि. तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्द —१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।

क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥१॥

पदार्थ—(**बृहस्पति**) बड़े-बड़े लोकों के स्वामी होकर (**दुर्गहा**) कष्टों को दूर करने वाला (**तिर, नयत**) शत्रुओ को दूर कर दे (**अघशसाय**) पाप की प्रशसा करने वाले के लिए (**मन्म**) दण्ड (**नेषत्**) प्रेरित करता हुआ (**अशस्तिम् क्षिपत्**) अकल्याण को दूर करता हुआ (**दुर्मतिम्, अपहन्**) बुरी बुद्धि को दूर करता हुआ (**अथ**) और (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**शयो.**) शान्ति और कष्ट (**करत**) दूर करें ॥१॥

भावार्थ—ईश्वर हमे सद्बुद्धि प्रदान करे और हमारे कष्ट दूर करे, अकल्याण को दूर भगा दे ॥१॥

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।

क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥२॥

पदार्थ—(**नराशस**) मनुष्यों को शिक्षा देने वाला ज्ञानी गुरु (**न**) हमे (**प्रयाजे**) यज्ञ मे (**अवतु**) रक्षा करे (**अनुयाज**) अनुकूल यज्ञ मे, वा यज्ञ के बाद (**न**) हमारे लिए (**शम्**) शान्ति (**अस्तु**) हो (**अशस्तिम् क्षिपत**) आदि ॥२॥

भावार्थ—विद्वान लोग हमारे यज्ञ को सफल बनाने मे सहयोग प्रदान करें ॥२॥

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।

क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३॥४०॥

पदार्थ—(**तपुर्मूर्धा**) तप युक्त मस्तक वाला मनुष्य (**रक्षस**) राक्षसो को (**तपतु**) तपावे, दण्ड दे और जो (**ब्रह्मद्विष**) जो ब्राह्मणो के, वेद के ज्ञान के द्वेषी हैं उन्हे (**शरवे**) हिंसा करने वाले के लिये (**उ**) और (**हन्तवे**) इनके मारने के लिये ॥३॥

भावार्थ—तपस्वी व्यक्ति, राक्षस प्रवृत्ति वाले हिंसक व्यक्तियो को दण्ड दे ॥३॥

इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८३]

ऋषि प्रजावान्प्राजापत्य ॥ अन्वृच यजमानपत्नीहोत्राशिषो देवता ॥ छन्द —१ त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।

इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१॥

पदार्थ—(**हे पुत्रकाम**) हे सतान की कामना वाले पुरुष (**त्वा**) तुझे (**मनसा चेकितानम्**) मन से विचार करते हुए को (**तपसः**) तप से (**जातम्**) उत्पन्न हुये (**तपस विभृतम्**) तप से धारण किये हुये को (**अपश्यम्**) देखती हू (**इह प्रजाम्**) इस घर मे सतान को (**रयिम्**) धन को (**रराण**) देता हुआ (**प्रजया**) सतान के द्वारा (**प्रजायस्व**) उत्पन्न हो ॥१॥

भावार्थ—पुरुष का कर्त्तव्य है कि घर मे कमाकर धन इकट्ठा करे और सतान उत्पन्न करे, सतान के रूप मे मानो वही उत्पन्न हो रहा है ॥१॥

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।

उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥

पदार्थः—(**युवति**) हे युवति ! (**मनसा दीध्यानाम्**) मन से ध्यान करती हुई (**त्वा**) तुझे (**अपश्यम्**) देखा है (**स्वायाम् तनू**) अपने शरीर को (**ऋत्व्ये नाधमानाम्**) ऋतु काल के लिये सौभाग्य सम्पन्न देखू, (**पुत्रकामे**) पुत्र की

इच्छा वाली (युवतिः) जवान स्त्री (माम् +उप) मेरे समीप (उच्चावभूया) आदरणीय हो (प्रजया प्रजावस्व) सतान से सम्पन्न हो ॥२॥

भावार्थ —स्त्री पुरुष से आदर पाकर सतानवती बन एव यश की वृद्धि करे ॥२॥

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।

अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३।४१॥

पदार्थ —(अहम्) मैं (ओषधीषु) पेड़-पौधों मे (गर्भम्) गर्भ (अदधाम) धारण करता हूँ (अहम) मैं (विश्वेषु भुवनेषु अन्त) सब लोको के भीतर हूँ । (अहम् पृथिव्या म् प्रजा अजनयम्) मैंने पृथिवी पर प्रजा को उत्पन्न किया (अहम) मैं (जनिभ्य) स्त्रियो के लिये (अपरीषु) जो पराई न हो (पुत्रान अजनयम) संतान उत्पन्न करता हूँ ॥३॥

भावार्थ.—ऊपर के दो मन्त्रो मे ईश्वर ने नर-नारी को उपदेश दिया कि सतान उत्पन्न करो यह तुम्हारा मन चाहता है मैं विश्व भर मे पेड़-पौधो मे फल, प्राणियों मे बच्चे उत्पन्न करता हू, सजातीय जोडो मे ॥३॥

इत्येकचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८४]

ऋषि *त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्य* ॥ देवता —*लिगोक्ता.* । *गर्भार्थाशीः* ॥ छन्दः—१, २ *अनुष्टुप्* । ३ *निचृदनुष्टुप्* ॥ त्र्यृच सूक्तम् ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।

आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१॥

पदार्थ—(विष्णु) विष्णु देव (ते योनिम्) तेरी योनि को समर्थ करें (त्वष्टा) त्वष्टा देव (रूपाणि पिंशतु) रूपो का निर्माण करे (प्रजापति) प्रजा का स्वामी अर्थात् पुरुष (आसिञ्चतु) वीर्य सिंचन करे (ते गर्भम्) तेरे गर्भ को (धाता दधातु) धाता धारण करे ॥१॥

भावार्थ —यहाँ विष्णु, त्वष्टा, धाता ये सूर्य की शक्तियां हैं जिनसे गर्भ धारण होता है ॥१॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

पदार्थ—(हे सिनीवालि) हे बन्धन करने वाली (सरस्वती) हे सरस्वती (गर्भं धेहि) गर्भ को धारण करो (ते गर्भम्) तेरे गर्भ को (पुष्करस्रजौ देवौ अश्विनौ) पुष्टिकारक रज वीर्य को उत्पन्न करने वाले अश्विनी देव (आधत्ताम्) धारण करें ॥

भावार्थ.—गर्भ मे सहायक ये प्राकृतिक शक्तियां सरस्वती, सिनीवाली, अश्विनौ ये वायु एव सूर्य की शक्तियाँ हैं ॥२॥

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।

तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥४२॥

पदार्थ —(हिरण्ययी) सुनहरी (अरणी) अग्नि उत्पन्न करने की दो काष्ठ शलाका ये जिनको (अश्विनौ देवौ) अश्विनी देवो ने (यम्) जिस गर्भ को (निर्मन्थत) मन्थन किया है जैसे अरणियो को मन्थन करके अग्नि प्रकट किया जाता है, इसी प्रकार नर-नारी सुवर्ण की अरणी हैं अश्विनी देव दोनो की काम वासना की प्राणशक्ति इसके द्वारा मन्थन होकर गर्भ हुआ है (तं ते गर्भम्) उस तेरे गर्भ को (दशमे मासि सूतवे) दसवें मास मे जन्म लेने के लिए (हवामहे) हम चाह करते हैं, प्रार्थना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—गर्भ विधिवत् धारण किया जाये ताकि बच्चा दसवें मास मे जन्मे, उससे पहले नही ॥३॥

इति द्विचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८५]

ऋषि *सत्यधृतिर्वारुणि* ॥ देवता —*अदिति* । *स्वस्त्ययनम्* छन्द —१, ३ *विराड् गायत्री* । २ *निचृद् गायत्री* ॥ तृच सूक्तम् ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।

दुराधर्षं वरुणस्य ॥१॥

पदार्थः—(त्रीणाम्) तीन का (मित्रस्य) मित्र का (वरुणस्य) वरुण का (अर्यम्णः) अर्यमा का (महि) महत्त्वपूर्ण (द्युक्षम्) द्युतियुक्त (दुराधर्षम्) अजेय (अव) रक्षाशक्ति (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थः—उक्त तीनो नाम परमात्मा के हैं, शरीर मे भी मित्र, अर्यमा, वरुण ये तीन शक्तियां हैं इनकी साधना से मनुष्य विजयी बनता है ॥१॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु ।

ईशे रिपुरघशंसः ॥२॥

पदार्थ (तेषाम् अमा चन) उनके साथ (नहि) नही (अध्वसु) मार्गों मे (वारणेषु) विघ्न नाशक साधना मे अथवा (रणेषु) सग्रामो मे (अघशंस,) पाप को प्रशसा करने वाला (रिपु) शत्रु (न ईशे) समर्थ नही होता है ॥२॥

भावार्थ —मित्र, वरुण, अर्यमा को कोई शत्रु परास्त करने मे समर्थ नहीं हो सकता ॥२॥

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।

ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३॥४३॥

पदार्थ —(यस्मै मर्त्याय) जिस मनुष्य के लिए (अदितेः पुत्रासः) अदिति के पुत्र [प्रकृति के दिव्य तत्त्व] (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योति) प्रकाश (यच्छन्ति) देते हैं उसको (रिपु) शत्रु (न दभ्नो) नहीं जीत सकता ॥३॥

भावार्थ —[अर्यमा] नियम मे रहने वाला मित्र सूर्य प्रकाशयुक्त वरुण उत्तम गुण धारक और प्राकृतिक नियमो पर चलने वाला विजयी रहता है ॥३॥

इति त्रिचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८६]

ऋषि *उलो वातायन.* ॥ *वायुर्देवता* ॥ छन्द —१, २ *गायत्री* । ३ *निचृद् गायत्री* ॥ तृच सूक्तम् ॥

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।

प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ —(न) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (वात) वायु (शम्भु) शान्तिदायक (मयोभु) वैभवकारक (भेषजम्) ओषधि (आवातु) प्राप्त हो अर्थात् हमे नीरोग, पुष्टिकारक उत्तम वायु मिलती रहे (न) हमारे लिये (आयूंषि) आयु प्रदान कर (प्रतारिषत्) आयुवर्द्धक वायु मिले ॥१॥

भावार्थ —शरीर के स्वस्थ रखने के लिए आयुवर्धक वायु मिलना जरूरी है ॥१॥

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।

स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदार्थ —(उत) और (वात) वायु (न.) हमारा (पितासि) पालक है (भ्राता) भरणकर्ता भाई है (उत्) और (न सखा) हमारा मित्र है (सः) वह (न) हमे (जीवाय कृधि) जीवन के लिये योग्य करे ॥२॥

भावार्थ शुद्ध वायु मनुष्य का पालन करने वाला सखा व जीवन दाता है ॥२॥

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।

ततो नो देहि जीवसे ॥३॥४४॥

पदार्थ —(वात) हे वायो (ते गृहे) तेरे घर मे (यत् अदः) जो यह (अमृतस्य निधि) अमृत का कोश (हित.) रखा है (तत) उसमे (न.) हमे (जीवसे) जीवन के लिए (देहि) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ.—वायु के गुण बताये गये हैं । जड को सबोधन किया जाना एक काव्य शैली ही है ॥३॥

इति चतुश्चत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८७]

ऋषिर्वत्स आग्नेय. । *अग्निर्देवता* ॥ छन्द —१ *निचृद् गायत्री* । २—५ *गायत्री* ॥ पचर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥

पदार्थ —(क्षितीनाम् वृषभाय) भूमियो के वृषभ अर्थात् भूमियो मे बलवान् और वर्षा करने वाले (अग्नये) सूर्य के लिए (वाचम्) वाणी को (प्र+ईरय) प्रेरित करो (स) वह (न) हमे (द्विष) शत्रुओ से (अति पर्षत्) पार करे ॥१॥

भावार्थ —यह मत्र सूर्य, अग्नि, सेनापति और ईश्वर के सम्बन्ध मे भी लगता है ॥१॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥

पदार्थ —(स) वह ईश्वर (परस्य परावत) पहले से भी परले (धन्वातर) अन्तरिक्ष से भी परली ओर (अतिरोचते) चमकता है, प्रकाशित है (सनः द्विष., अति पर्षत्) वह हमे काम, क्रोध आदि शत्रुओं से पार कर देगा ॥२॥

भावार्थ —अनन्त प्रकाशित प्रभु की स्तुति करो ॥२॥

यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

पदार्थ —(यः) जो (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध तेज से (रक्षांसि) विषैले कीटाणुओं को नाश करता है (स न) पूर्ववत् ॥
भावार्थ —यहां सूर्य से ही तात्पर्य है ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥

पदार्थ —(य) जो (विश्वा अभिविपश्यति) सबको पूर्णरूप से देखता है, (च) और (भुवना संपश्यति) भुवनों को सम्यक् देखता है । सनः— पूर्ववत् ॥४॥
भावार्थ—यहां तो ईश्वर से ही तात्पर्य है ॥४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥४५॥

पदार्थः—(य) जो (अस्य रजस परि) इस प्राकृतिक जगत् से सूक्ष्म (शुक्र अग्निः) शुद्ध अग्नि (अजायत) प्रकट है (स न) पूर्ववत् ॥५॥
भावार्थ —इस प्राकृतिक जगत् से प्रकटने वाला अग्नि ब्रह्म ही है ॥५॥

इति पञ्चचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८८]

ऋषिः श्येन आग्नेय ॥ देवता—अग्निर्जातवेदा ॥ गायत्री छन्दः ॥ तृच सूक्तम् ॥

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥१॥

पदार्थ—(नूनम्) निश्चय (जातवेदसम्) उत्पन्न शरीर को प्राप्त करने वाले वा सब पदार्थों को जानने वाले [जीव और ईश्वर] (वाजिनम् अश्वम्) शक्तिशाली अश्व को व्यापक को गतिशील को (प्रहिनोत) प्रेरित करो (न.) हमारे (इदम् बर्हि) इस आसन पर (आसदे) बैठें ॥१॥
भावार्थ —प्रभु से प्रार्थना करो कि वह हमारे हृदयासन पर आसीन हो ॥१॥

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः ।
महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥२॥

पदार्थ —(अस्य जातवेदस) इस जातवेदस परमात्मा जीवात्मा के (विप्रवीरस्य) विशिष्ट वीर के (मीढुष) आनन्द सिंचन में समर्थ के (महीम्) बड़ी (सु+स्तुतिम) सुन्दर स्तुति को (इयर्मि) प्रेरित करता हूँ ॥२॥
भावार्थः— परमात्मा सर्वशक्तिसम्पन्न, जीवात्मा का रक्षक है, उसी की स्तुति करो ॥२॥

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥३॥४६॥

पदार्थ —(जातवेदस) अग्नि की (या रुच) जो कान्तियां, ज्वालाएं, (हव्य वाहिनी) आहुत वस्तु को ले जाती हैं (ताभि) उनके द्वारा (न) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इन्वतु) प्राप्त हो ॥३॥
भावार्थ —हमारे यज्ञ में अग्निदेव आएं, खूब प्रज्वलित हों और जीवन यज्ञ में ईश्वर के ज्ञान की ज्वालाएं प्रकाशित हों ॥३॥

इति षट्चत्वारिंशो वर्ग ॥

[१८९]

ऋषिः सार्पराज्ञी ॥ देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३ गायत्री ॥ तृच सूक्तम् ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थः—(आ+अयम्+गौ) सब ओर से यह सूर्य (पृश्नि) तेजस्वी (मातरम् पुरः) माता द्युलोक में (असदत्) रहता हुआ (अक्रमीत्) गति कर रहा है (स्वः) स्वर्गरूप (पितरम्) द्युलोक को (प्रयन्) चलता हुआ (स्वः) स्वतन्त्र गति करता हुआ ॥१॥
भावार्थः—यहां सूर्योदय का वर्णन है, गौ का अर्थ पृथिवी भी है, अतः पृथिवी सूर्य लोक की परिक्रमा कर रही है यह अर्थ भी होता है, ऋषि दयानन्द का भाष्य ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में "आयं गौः अयम् गौ पृथिवी लोक सूर्यश्चन्द्रोऽन्यो लोको यः पृथिव्यन्तरिक्षमाक्रमीत् आक्रमणं कुर्वन् सन् गच्छतीति । तथाऽन्योऽपि तत्र पृथिवी मातरं समुद्रजलमसदत् समुद्रजलं प्राप्ता सती तथाऽस्य सूर्यं पितरम् अग्निमयं च पुरः पूर्वं प्रयन्त सन् सर्वस्य परितो याति एवमेव सूर्यो वायुम् पितरमाकाशं मातरं च तथा च द्यौरपि पितरं नभो मातरं प्रति चेति योजनीयम्" ॥१॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

पदार्थ—(अस्य रोचना) इसका प्रकाश (महिषः) यह महान् सूर्य (दिवम्) द्युलोक को (व्यख्यन्) प्रकाशित करता हुआ (प्राणात्) प्राण वायु से (अपानति) नाड़ियों द्वारा गमन करती हुई (अन्तः) अन्तरिक्ष में (विचरति) विचरण करता है ॥२॥
भावार्थः—यहां सूर्य की महान् शक्ति का वर्णन किया गया है ॥२॥

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥४७॥

पदार्थ —(द्युभि) अपनी किरणों से (वस्तोः) दिन-रात को (अह) धारण करता है (वाक्) वाणी-स्तुति (पतङ्गाय) सूर्य के लिए (प्रतिधीयते) धारण की जाती है (त्रिंशत्+धाम) दो पक्षों के, ३० दिनों को (विराजति) विराजमान रहता है ॥३॥
भावार्थ —सूर्य अपनी किरणों से दिन-रात को धारण करता है उसकी स्तुति की जाती है ॥३॥

इति सप्त चत्वारिंशो वर्ग ॥

[१९०]

ऋषिरघमर्षणो माधुच्छन्दस ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्द—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृदनुष्टुप् ॥

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

पदार्थ —(अभीद्धात् तपस) अति प्रज्वलित तप से, ज्ञान से, सृष्टि रचना का विचार करते हुए ईश्वर से (ऋतम्) ज्ञानमय सत्य (सत्यम्) व्यवहारमय सत्य (अध्यजायत) उत्पन्न हुए (ततो रात्रि अजायत) उस नियम से ही प्रलय रात्रि हुई, (तत) उस प्रलय के पश्चात् (अर्णव समुद्र) जलों से पूर्ण समुद्र अन्तरिक्ष प्रकट हुआ । अन्तरिक्ष परमाणुओं से भरा हुआ था ॥१॥
भावार्थ —परमात्मा ही सकल सत्यों को प्रकट करता है । उसी ने प्रलय के उपरान्त अन्तरिक्ष को प्रकट किया है ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

पदार्थ —(अर्णवात समुद्रात्) जल-पूर्ण समुद्र अर्थात् परमाणु-पूर्ण अन्तरिक्ष में (संवत्सर) समय काल-गणना (अजायत) प्रकट हुई अर्थात सूर्य बना (अहोरात्राणि) दिन और रात को (मिषत विश्वस्य) प्राणवान् विश्व को (वशी) वश में करने वाले ने (विदधत) धारण किया ॥२॥
भावार्थः—संसार अब प्राणवान् गतिशील होने लगा, और उसका धारणकर्ता ईश्वर था ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

पदार्थ —(धाता) उस धारण करने वाले (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा को (दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षम्) द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक (अथ स्व) और स्वर्ग लोक को (यथापूर्वम) यथापूर्व अर्थात् क्रमशः पूर्व सृष्टि में जैसे (अकल्पयत्) निर्माण किया ॥३॥
भावार्थ —यहां संक्षेप में सृष्टि का वर्णन किया गया है जिसका कर्ता ईश्वर और ईश्वर के नियम हैं ॥३॥

इति अष्टाचत्वारिंशो वर्ग ॥

[१९१]

ऋषि संवनन ॥ देवता—१ अग्नि । २—४ संज्ञानम् ॥ छन्द—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

पदार्थ—(हे अग्ने) हे ईश्वर वा नेता (वृषन्) आनन्दवर्षक (अर्य) हे स्वामिन् (इत्) निश्चय ही (विश्वानि) सब वस्तुओं को (सम् युवसे) मिलाते हो (स) वह तुम (न) हमारे लिए (वसूनि) धन (आभर) दो (इळस्पदे) भूमि पर वा हृद पर (समिध्यसे) प्रज्वलित किये जाते हो ॥१॥
भावार्थः—अग्नि नेता, ईश्वर इन तीनों से ही इस मन्त्र का तात्पर्य लिया जा सकता है ॥१॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

पदार्थ —(**संगच्छध्वम्**) संग चलो (**संवदध्वम्**) संगति पूर्वक बोलो (**वः मनांसि**) तुम्हारे मन (**सं जानताम्**) संगतिपूर्वक विचार करें (**यथा**) जिस प्रकार (**पूर्वे देवाः**) ऊँचे विद्वान् (**संजानानाः**) एक मत हुए भाग का (**उपासते**) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ —विद्वान् वः ये इन्द्रियां अपना-अपना भाग ले लेते हैं अर्थात् अपने विषय को ग्रहण करते हैं इसी प्रकार तुम भी ग्रहण करो।

सब राष्ट्र मिलकर विचारें, मिलकर काम करें सबको उनका श्रमभाग मिले ॥२॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

पदार्थ —(**समानो मन्त्रः**) तुम्हारी मन्त्रणा समान हो, (**समितिः**) तुम्हारी मन्त्रणा करने की सभा (**समाना**) समान हो, (**समानम् मनः**) मन समान हो (**वः**) तुम्हारे लिये (**समानम् मन्त्रम्**) समान विचार को (**अभिमन्त्रये**) मन्त्रणा-युक्त करता हू, (**वः**) तुम्हें (**समानेन हविषा**) समान यज्ञीय पदार्थ से (**जुहोमि**) आदान-प्रदान करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—प्रभु आशीर्वाद देते हैं कि मैं तुम्हें सब वस्तु समान रूप से दे रहा हू, परन्तु अपने पुरुषार्थ और ज्ञान के अनुसार ही इन्हें पा सकते हो, ज्ञान भी समान होना चाहिए और कार्यशक्ति भी समान होनी चाहिए यथा ऋग्वेद मे प्रभु का संकेत है। (सू० १७७ म० ६ में)

समानौ हस्तौ न सम विविष्ट,
सम्मातरा चिन्न सम दुहाते ॥

समान माताए भी समान दूध नही देती, समान भी हाथ समान काम नहीं करते, अत फल भी समान नहीं मिल सकता, साम्यवादी राज्यो में भी एक वितरण करने वाले है, नेता हैं दूसरे उपभोक्ता है, अनुयायी है। बुद्धि, कार्यशक्ति और संयम के कारण मनुष्यों मे भेद सदा रहेगा। भगवान् की ओर से सबको समान अधिकार अवश्य है ॥३॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥४९॥८॥१२॥१०॥

पदार्थ.—(**समाना व आकूतिः**) तुम्हारी संकल्प शक्ति अध्यवसाय समान हो (**व**) तुम्हारे (**हृदयानि समाना**) हृदय समान हो (**वः मन**) तुम्हारा मन (**समानम् अस्तु**) समान हो (**यथा व**) जिससे तुम्हें (**सुसह+असति**) सब शोभन हो ॥४॥

भावार्थ:—उक्त सूक्त में राष्ट्र को भावनात्मक एकता का उपदेश प्रभु ने दिया है सब एक मन एक संकल्प होकर काम करें और अपने-अपने भाग को काम के अनुसार प्राप्त करें ॥४॥

इत्येकोनपञ्चाशो वर्गः । इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः ।

यह दशम मंडल और ऋग्वेद समाप्त हुआ

卐

प्रकाशकः—दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ओ३म्

प्रकाशक:—

दयानन्द संस्थान

नई दिल्ली-५

प्रकाशक:-

दयानन्द-संस्थान

नई दिल्ली-५